अथ स्कन्दपुराणान्तर्गतरेवाखण्डस्य सूचीपत्रं व्याख्यायते ॥

इति श्रीमद्विजयपण्डितशक्तिधरसंकलित रेवाखण्डस्य सूचीपत्र समाप्ति प्रकाण ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

❀ अथ स्कन्दपुराणरेवाखण्ड सटीक ❀

स्नान करतेहुये गजोंके गण्डस्थल से गिरेहुये मदमें जो मदिरा के समान गंध है तिस करके मतवाला होरहा है भौरों का समूह जिसमें और स्नान करने से सिद्ध नामक देवताओं की स्त्रियों के दोनों कुचोंसे छूटेहुये केसर के संयोग से पीला होरहा और सायङ्काल व प्रातःकाल मुनिलोगों के कर्म मे लगेहुये कुश व फूलों से ढका है किनारे परका जल जिसका और हाथी व हाथियों के बच्चोंके शुण्डादण्ड से रोंक दीगईहैं तरङ्गैं जिसकी ऐसा नर्मदाका जल तुम्हारी रक्षाकरै ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि

मज्जन्मातङ्गगण्डच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं स्नानैःसिद्धाङ्गनानांकुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ॥ सायंप्रातर्मुनीनांकुशकुसुमचयच्छन्नतीरस्थनीरं पायाद्वोनर्म्मदाम्भःकरिकरभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हिमवच्छिखरेरम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ यक्षविद्याधराकीर्णे नानागणसमन्विते ॥ २ ॥ ब्रह्मविष्णुसुराःसर्वे स्कन्दनन्दिगणेश्वराः ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ ३ ॥ वायुश्चवरुणश्चैव कुबेरोथयमस्तथा ॥ इन्द्राद्यादेवतास्सर्वे गन्धर्वगणएवच ॥ ४ ॥ ब्राह्मयाद्यामातरश्चैव ऋषयश्चतपोधनाः ॥ मूर्तिमन्तश्चतीर्थानि चण्डभृङ्गिमहाबलाः ॥ ५ ॥ दानवासुरदैत्याश्च पिशाचाभूतराक्षसाः ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं मणिमाणिक्यशोभित

सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित यक्ष व विद्याधरों से व्याप्त अनेक प्रकार के देवगणों से युक्त रमणीक हिमालय के शिखर में ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, सब देवता, स्वामिकार्त्तिकेय, नन्दीश्वर, गणेश सब ग्रहोंकरके सहित चन्द्रमा व सूर्य नक्षत्र सहित ध्रुवमण्डल ॥ ३ ॥ वायु, वरुण, कुबेर, यमराज और इन्द्रआदि सब देवता और गन्धर्वों के गण ॥ ४ ॥ ब्राह्मीआदि मातृगण और तपही जिनका धन ऐसे ऋषि और मूर्त्तिधारण किये सब तीर्थ और बड़े बलवाले चण्ड व भृङ्गी ॥ ५ ॥ और दानव व असुर व दैत्य

और पिशाच व भूत व राक्षस ये सबलोग करोड सूर्यके समान तेजवाले मणि और माणिक से शोभित ॥६॥ रत्न व वैदूर्य्यकी सीढ़ीवाली हजारों बावलियों से युक्त कमल व नीलकमलों से युक्त तथा अनेक वृक्षोंसे युक्त ॥ ७ ॥ इच्छा करनेलायक अभीष्ट फलदायक फलेफूले वृक्षों से युक्त हंस तथा पनडुब्बी पक्षियों से व्याप्त और चकवा व चकई के शब्दों से गुञ्जित ॥ ८ ॥ और काक व कोयलके शब्दोंसे भरेहुये अनेक प्रकार के पक्षियों से व्याप्त सिद्धों से सेवित जो महादेवजी का स्थान तिस को प्राप्त होतेहुये ॥ ९ ॥ वहांपर बैठेहुये लोक के कल्याण करनेवाले शङ्करजी की कोई स्तुति करते हैं और कोई शिवजी के सम्मुख नाच रहे हैं॥ १० ॥ व पार्वतीजी

म् ॥ ६ ॥ रत्नवैदूर्य्यसोपानवापीकूपसहस्रकम् ॥ पद्मनीलोत्पलोपेतं नानावृक्षसमन्वितम् ॥ ७ ॥ काम्यंकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैःफलितैर्युतम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपकूजितम् ॥ ८ ॥ काककोकिलसंघुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् ॥ स्थानंसर्वेहरस्यापुः सिद्धैश्चपरिसेवितम् ॥ ९ ॥ तत्रासीनंमहादेवं शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ स्तुवन्तःकेपिदेवेशं केचिन्नृत्यन्तिचाग्रतः ॥ १० ॥ दिव्यसिंहासनासीनमुमयासहितंहरम् ॥ तेषांमध्येसमुत्थाय स्कन्दोवचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ सृष्टिसंहारकर्त्तारं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्णुवन्द्रवरदम्भक्तानांभक्तवत्सलम् ॥ त्र्यम्बकासितकण्ठाय ज्ञाताज्ञातस्वरूपिणे ॥ १३ ॥ ईश्वरायाविनाशाय गजचर्मावगुण्ठिने ॥ कपालमालाभरणद्वीपिचर्म्मधरायच ॥ १४ ॥ भस्मोद्धूलितदेहाय नमस्तेस्तुपिनाकिने ॥ अनन्तानन्तरूपाय कालायपरमेष्ठिने ॥ १५ ॥ सद्योवामस्तथाघोरस्तत्पुरुषायतेनमः ॥ ईशानायपरेशाय सदाशिवनमोस्तु

के सहित दिव्य सिंहासनपर बैठेहुये महादेवजी से उठके स्वामिकार्त्तिकेयजी वचन बोलतेहुये ॥ ११ ॥ दोनो हाथ जोड़कर और साष्टाङ्ग प्रणाम करके जोकि महादेवजी सृष्टि संहार करते हैं व जिनको देवता दैत्योंने नमस्कार कियाहै ॥ १२ ॥ व ब्रह्मा,विष्णु और भक्तोंके वर देनेवाले हैं भक्तवत्सलहै उनसे स्कन्दजी कहतेहैं कि हे त्रिलोचन ! नीलकण्ठ, ज्ञात, अज्ञात पदार्थ जिनका रूपहै ॥ १३ ॥ ईश्वर, नाशरहित, गजचर्म के ओढ़नेवाले, मुण्डमाला के धारण करनेवाले, व्याघ्रचर्म पहने हुये ॥ १४ ॥ भस्म से विभूषित देहवाले, पिनाकनामक धनुषके धरनेवाले, अनन्तोंके अनन्तरूप, कालरूप, परमेष्ठी ॥ १५ ॥ सद्योजात, वामदेव तथा अघोर, तत्पुरुष,

ईशान, परमेश्वर, सदाशिव ॥ १६ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद जिनका रूपहै, महाप्रलय का अग्नि जिनका रूपहै, अन्तर्यामीरूपसे सब लोगोंके हृदयमें वास करने वाले ॥ १७ ॥ पार्वतीजी जिनका आधाअङ्ग हैं, अतिशय करके जो वृद्धहैं, कल्याणरूप रूपरहित पृथिवीआदि महाभूत जिनका स्वरूप हैं ॥ १८ ॥ शिव जिनका नाम है, यह सब संसार जिन्हीं का रूपहै, भयानक रूपवाले और जटाओं के धारण करनेवाले आपके नमस्कार है यह चराचर सब जगत् आपही से व्याप्तहै ॥ १९ ॥ हे ईशान ! आपको जाने या विना जाने जिह्वाकी चञ्चलता से मैंने क्लेशित किया सो मेरे अपराध को क्षमा कीजिये ॥ २० ॥ तब महादेवजी बोले कि हे सुव्रत

ते ॥ १६ ॥ ऋग्यजुःसामरूपाय अथर्वायनमोस्तुते ॥ नमःकालाग्निरूपाय सर्वलोकनिवासिने ॥ १७ ॥ नमःकान्तार्द्धदेहाय वर्षिष्ठायचतेनमः ॥ ॐनमःशिवायरूपाय भीमायभवरूपिणे ॥ १८ ॥ शिवायभवरूपाय भीमरूपकपर्द्दिने ॥ त्वयाव्याप्तंजगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ १९ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिमयाप्रभो ॥ क्षमस्वममईशान अज्ञानाज्ज्ञानतोपिवा ॥ २० ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्तेस्तवेनानेनसुव्रत ॥ ददामितेनसन्देहो वरंमनसिकाङ्क्षितम् ॥ २१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुंममेच्छसि ॥ उत्तरेतुदिशाभागे हर्म्याहेममयाःशुभाः ॥ २२ ॥ सप्तभौमास्तुविस्तीर्णहेमप्राकारतोरणाः ॥ नानामणिसमुक्ताद्या वज्रवैदूर्यमण्डिताः ॥ २३ ॥ तत्रैवमधुरावाणी वेणुवीणाःसहस्रशः ॥ प्रेक्षणीयैर्नृत्यगीतैर्दिव्यकान्तिमनोहरैः ॥ २४ ॥ कस्यैतानिगृहाणीति मेरोरुत्तरतःशिव ॥ त्वत्प्रसादात्तुपृच्छामि परंकौतूहलंहिमे ॥ २५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुस्कन्दसुरश्रेष्ठ कथ्यमानंनिबोधमे ॥ भृगुस्थानपुरेये

स्कन्दजी ! तुम्हारा कल्याणहो हम तुम्हारी स्तुतिसे प्रसन्न होके तुम्हारे मनोवाञ्छित वरको निःसन्देह देतेहैं ॥ २१ ॥ महादेवजी का वचन सुनके स्कन्दजी बोलतेहुये कि हे महाराज ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझे वरदेने की इच्छा करतेहो तो उत्तरदिशामें सुवर्णके बनेहुये ॥ २२ ॥ सात २ चौकवाले, बडेभारी, सुवर्णके परकोटोंवाले, बड़े बड़े फाटकवाले, अनेकमणि, मुक्ता, हीरा और पन्नाओंसे भूषित ॥ २३ ॥ जिनमें वंशी, सितारआदिकी मधुरवाणी सुन पड़तीहै, देखनेलायक नृत्य, गान जिनमें होरहे हैं ॥ २४ ॥ हे शिवजी ! ये सुमेरुपहाड़ के उत्तरमें किसके मन्दिरहैं मुझको बडा आश्चर्य है सो मैं आपकी प्रसन्नतासे पूछताहूं मुझसे कहिये ॥ २५ ॥ तब महादेवजी

बोले कि हे देवताओंमें श्रेष्ठ स्कन्दजी ! मेरे कहने को सुनो और समझो जे मनुष्य भृगुस्थान,सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्र प्रभासक्षेत्र,रुद्रपद,केदारक्षेत्र,कनखल ॥२६।२७॥ हे पुत्रक ! भैरवक्षेत्र,ललिताक्षेत्र और शिवनदी(नर्मदा)में शिवका ध्यानकरके शिवध्यानमें तत्पर जो लोग मरगयेहैं॥२८॥ ये रमणीक मन्दिर व अपने कर्मफलोंसे कमायेहुये सप्तभूमिवाले दिव्यघरों समेत वस्त्र और बडेभोग उन्हींकेहैं और मन्दिरों के भोग सुखोंको मैंने उन्हींके वास्ते दियेहैं यह सुनके स्कन्दजी फिर बोलतेहुये कि हे भगवन् ! सैकडों,हजारों चौकवाले,पन्ना और मणियोंसे भूषित ॥२९।३०॥ बड़े२किवाड़वाले दरवाजे जिनमें लगेहैं देखनेलायक,मनोहर और दिव्य नृत्य,गान,उत्सवोंसे युक्त ॥३१॥

वै राहुसूर्य्यसमागमे ॥ २६ ॥ कुरुक्षेत्रेप्रभासेच मोक्षेरुद्रपदेतथा ॥ केदारक्षेत्रकस्थाने रुद्रेकनखलेतथा ॥ २७ ॥ भैरवेललिताक्षेत्रे शिवंध्यात्वाचपुत्रक ॥ येमृताःशिवनद्यान्तुशिवध्यानपरायणाः ॥ २८ ॥ तेषांगृहाणिरम्याणि स्वयंकर्मफलार्जितैः ॥ सप्तभौमैर्गृहैर्दिव्यैर्वस्त्रभोगाश्चपुष्कलाः ॥ २९ ॥ दत्तानिचमयैतेषां हर्म्यभोगसुखानिच ॥ स्कन्दउवाच ॥ सहस्रशतभौमाश्च वैदूर्य्यमणिमण्डिताः ॥ ३० ॥ कूटैःकपाटकैर्नद्धसिद्धद्वाराण्यनेकशः ॥ नित्योत्सवैर्नृत्यगीतैः काम्यैर्दिव्यैर्मनोहरैः ॥ ३१ ॥ असंख्याताःगृहारम्याःसूर्य्यकोटिसमप्रभाः ॥ कस्यैतानीहहर्म्याणि पूर्वभागेमहेश्वर ॥ ३२ ॥ दक्षिणेपश्चिमेचैव नानाभोगाःसहस्रशः ॥ सुरेन्द्रभवनेभोगाः कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ३३ ॥ केनकर्म्मविपाकेन शुभेनाप्यशुभेनवा ॥ कूष्माण्डवासिनश्चक्रे घोरेमज्जन्तितामसे ॥ ३४ ॥ पूयशोणितकूपेषु कृमिकीटपतङ्गिनः ॥ तिर्य्यग्योनिगताःपापैः पीड्यमानास्तुमानुषाः ॥ ३५ ॥ दारिद्र्यदुःखितादीनाः पच्यमानाबुभुक्षि

कोटिसूर्यके समान तेजवाले,अगणित सुमेरुके पूर्व दिशामें ये किसके मन्दिरहैं ॥३२॥ तथा सुमेरुके दक्षिण व पश्चिममें अनेक भोगोंसे युक्त,इन्द्रलोक के भोग जिनकी सोलहवी कलाको नहीं पातेहैं ॥३३॥ वे मन्दिर किसकेहैं और मनुष्य किस शुभाशुभ कर्मके फलसे कूष्माण्डनामक नरकमें वास करतेहैं तथा घोर तामसनरकमें डूबतेहैं ॥ ३४ ॥ पीब, रक्तके कुंवाओंमें कीड़े होके रहतेहैं पापोंसे पीड़ित पशु, पक्षी की योनिमें प्राप्तहोते है ॥ ३५ ॥ दरिद्र से दुःखित, भूखे, दीन और नरकमें पचते

ये रहतेहैं और हे प्रभो ! किस कर्म के फलसे शुभाशुभगति होतीहै ॥३६॥ यह सब यथायोग्य अपनी प्रसन्नतासे आप हमसे कहें तब महादेवजी बोले कि हे षण्मुख !
ो मनुष्य नर्मदाके तटमें व तिग्मसङ्गममें मृत्युको प्राप्तहुयेहैं ॥३७॥ सुमेरुके पूर्व भागमें ये मन्दिर उन्हीं मनुष्योंके हैं ॐकारनाथके दक्षिणभागमें तथा अमरकण्टक
के पूर्वभाग में ॥ ३८ ॥ नर्मदा के कोटितीर्थ में हे स्कन्दजी ! जे मनुष्य मरेहैं वे मनुष्य इन रमणीक मन्दिरोंमे वास करतेहैं ॥ ३९ ॥ जे मनुष्य भृगुपात करते हैं
अग्नि व जल में वानप्रस्थाश्रम के अनन्तर प्रवेश करते है जिन्होंने नर्मदा, कपिलके सङ्गममें दान, तप कियाहै वेही मनुष्य इन मन्दिरो मे रहतेहै ॥ ४० ॥ और

ताः ॥ केनकर्म्मविपाकेन शुभाशुभगतिःप्रभो ॥ ३६ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं कथयस्वप्रसादतः ॥ ईश्वरउवाच ॥ येमृता
नर्म्मदातीरे सङ्गमेतिग्मदर्शिते ॥ ३७ ॥ तेषांगृहाणिरम्याणि पूर्वभागेचषण्मुख ॥ ॐकारदक्षिणभागे पूर्वतोऽमरक
ण्टके ॥ ३८ ॥ नर्म्मदाकोटितीर्थेच येमृतास्स्कन्दमानुषाः ॥ हर्म्येमनोरमेरम्ये तेवसन्तिनरोत्तमाः ॥ ३९ ॥ भृगौ
वग्नौजलेवापि रेवाकपिलसङ्गमे ॥ दानंदत्तंतपस्तप्तं तेवसन्तिगृहैरिमैः ॥ ४० ॥ गोदावर्य्यांपयस्विन्यान्तपत्याञ्चैव
सङ्गमे ॥ त्र्यम्बकेधौतपापेच हिमाद्रौविन्ध्यपर्वते ॥ ४१ ॥ महेश्वरमयेसह्ये गोकर्णेचमहाबले ॥ हरिश्चन्द्रपुरेचन्द्रे श्री
शैलेत्रिपुरान्तके ॥ ४२ ॥ कृष्णायांससमुद्रायामेकादश्यांमहानदे ॥ कार्त्तिकेयोनिकुण्डेच येम्रियन्तेचपुत्रक॥४३ ॥
याम्येहर्म्येहेममये तेषांश्रेष्ठास्स्वयम्भुवः ॥ नानाभोगांश्चभुञ्जन्ति यथाशक्रस्त्रिविष्टपे ॥ ४४ ॥ सरस्वत्यान्त्यजेत्प्रा
णान्प्रभासेशशिभूषणे ॥ पारियात्रेमहाकाले प्रयागेचमहापथे ॥ ४५ ॥ तेषांगृहाणिरम्याणि नानाभोगाश्चपुष्कलाः ॥

गोदावरी, पयस्विनी, तपतीनदी का संगम, त्र्यम्बकेश्वर, हिमालय, विन्ध्याचल ॥ ४१ ॥ माहेश्वरक्षेत्र, सह्यपर्वत, गोकर्ण, हरिश्चन्द्रपुर, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक
क्षेत्र ॥ ४२ ॥ समुद्रसहित कृष्णानदी,एकादशीके दिन महानद,कार्त्तिकमें योनिकुण्ड इन स्थानोंमें हे पुत्र ! जे मनुष्य मृत्युको प्राप्तहोतेहैं ॥४३॥ वे मनुष्य सुमेरुके
दक्षिण दिशाके मन्दिरोंमें वास करतेहैं जैसे कि इन्द्र स्वर्गमें अनेक भोग भोगतेहैं वैसेही वे भी भोग भोगतेहैं ॥ ४४ ॥ सरस्वती प्रभासक्षेत्र,पारियात्रपर्वत,महाकाल,
प्रयाग और महापथमें ॥ ४५ ॥ जे लोग प्राण छोड़तेहैं उनके वास करनेके वास्ते रमणीक,अनेक भोगोंसे युक्त मणि,माणिककी दीप्तिसे प्रकाशित तेरह करोड मन्दिर

सुमेरुके उत्तरभागमें मिलतेहैं ॥४६॥ इसीप्रकारसे पूर्वभागमें एकइस करोड़ और दक्षिणमें नवकरोड़ सुवर्णके महलहैं ॥ ४७ ॥ और पश्चिममें मोतीके समान प्रकाश वाले सोलह करोड़ मन्दिर हैं तीर्थ व दानके प्रभाव से ॥ ४८ ॥ हमारी प्रसन्नता से सुमेरुके उत्तर, दक्षिण और पश्चिमवाले, मनोहर, देवताओंके बनायेहुये मन्दिरों में अनेक भोगोंको भोगते हैं वहां देवताओं के कारीगर विश्वकर्मा रहते हैं ॥ ४९ । ५० ॥ व हे महासेन! सुमेरुके ऊपर सब रत्नोंसे जटित मन्दिरको देखतेहो जिसके पूर्व भागमें नर्मदा स्नानकरनेवालाजन फलको प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ हे स्कन्द! देवताओंके हितके लिये जो आपने हमसे प्रश्न किया वह सब हम आपसे कहा ॥ ५२ ॥

मणिमाणिक्यदीप्ताभाः सौम्येकोटित्रयोदश ॥ ४६ ॥ एवंतथैकविंशत्या पूर्वेचैवोपवेशिताः ॥ दक्षिणेनवकोट्यस्तु भृताहर्म्याहिरण्मयाः ॥ ४७ ॥ गृहामौक्तिकसंकाशाः कोट्यःषोडशवारुणे ॥ तीर्थयात्राविशेषेण दानधर्म्मविशेषतः ॥ ४८ ॥ भुञ्जन्तिविविधान्भोगान्मयातुष्टेनपुत्रक ॥ मेरोरुत्तरतोभागे दक्षिणेवारुणेतथा ॥ ४९ ॥ क्रीडन्तिचमनोहारिमन्दिरेदेवनिर्म्मिते ॥ देवानांवार्द्धकिस्तत्र कर्ताविश्वस्यकर्म्मणः ॥ ५० ॥ सर्वरत्नमयंहर्म्यम्मुवनोपरिपश्यसि ॥ पूर्वभागेमहासेन नार्म्मदःफलमश्नुते ॥ ५१ ॥ एतत्तेकथितंस्कन्द परिपृष्टन्त्वयाचयत् ॥ देवानांचहितार्थाय तुभ्यंसर्वम्मयानघ ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ श्रोतुकामाइमेसर्वे ब्रह्मविष्णुसुरोत्तमाः ॥ प्रभावमीदृशंयस्य तीर्थस्यास्यमहत्फलम् ॥ १ ॥ नर्म्मदायास्तथोत्पत्तिं सङ्गमंलिङ्गपूजनम् ॥ पर्वकालेचदेवानांपर्वतेमरकण्टके ॥ २ ॥ आख्यानसहितंदेव कथयस्वयथार्थतः ॥ तीर्थयात्राफलंसम्यग्वंशोमन्वन्तराणिच ॥ ३ ॥ भक्त्यायुक्तंचयत्किञ्चित्कथयस्वप्रसादतः ॥ सूतउवाच ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेप्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्कन्दजी बोले कि हे भगवन्! ये सब ब्रह्मा विष्णुआदि देवता इस नर्मदातीर्थ का प्रभाव व फल सुनने की इच्छा कररहे हैं ॥ १ ॥ नर्मदा की उत्पत्ति, संगम, लिंग और देवताओं का पर्वकाल में पूजन अमरकण्टक का माहात्म्य ॥ २ ॥ कथा के सहित यथार्थसे आप कहे और तीर्थयात्राका फल, वंश और मन्वन्तर ॥ ३ ॥

भक्ति करनेलायक और जो कुछहो अच्छेप्रकार से आप कहें सूतजी शौनक से कहते हैं यह पुराना, स्कन्दजीका कहाहुआ, पवित्र आख्यान सुनके ॥ ४ ॥ भूत,भविष्य कालके तत्त्वके जाननेवाले,सात कल्पतक जीनेवाले, ऋषियोंके सहित मार्कण्डेयमुनि उस समयमें आतेहुये ॥ ५ ॥ जोकि सब कामनाओंसे पूर्ण व श्रेष्ठ व अपनेही प्रभावसे पूजित और सवालाख, बड़े तेजवाले ऋषि जिनके साथमेंहैं ॥ ६ ॥ और जो श्रीमान् ब्रह्मर्षि,राजर्षि व देवर्षि इन्हों से बीचमें युक्त वनाश्रममें ॥ ७ तीर्थयात्रा के फलको पाके नर्मदाकेतट में बैठेथे उन मार्कण्डेयजी के बड़े प्रभावको सुनके लोमहर्षणजी ॥ ८ ॥ पापों के नाश करनेवाले, मार्कण्डेयऋषि के देखनेको आतेहुये

श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यं पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञः सप्तकल्पानुवर्तकः ॥ आजगामाथमार्कण्ड ऋषिभिःसहितस्तदा ॥ ५ ॥ सर्वकामसमृद्धात्माश्रेयान्स्वेनैवपूजितः ॥ सपादलक्षमधिकमृषीणांचोग्रतेजसाम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मर्षयोदेवर्षयस्तथाराजर्षयःपरे ॥ एतैःपरिवृतःश्रीमान्मध्येरण्याश्रमम्प्रति ॥ ७ ॥ तीर्थयात्राफलंप्राप्य नर्म्मदा तटमाश्रितः ॥ श्रुत्वामहान्तंमार्कण्डप्रभावंलोमहर्षणः ॥ ८ ॥ आजगामततोद्रष्टुमृषिंकल्मषनाशनम् ॥ नर्म्मदा प्रवहेपुण्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ ९ ॥ यक्षविद्याधराकीर्णे किन्नरैरुपशोभिते ॥ नानादेवगणाकीर्णे नानागणनिषेवि ते ॥ १० ॥ रेवावतरणंश्रुत्वा प्रभावंपुण्यमङ्गतम् ॥ ननृतुर्देवतास्तत्र सिद्धविद्याधरानराः ॥ ११ ॥ कह्लारैःशतपत्रैश्च पुन्नागैर्नागचम्पकैः ॥ आम्रजम्बूकपित्थैश्च दाडिमैःपनसैस्तथा ॥ १२ ॥ निम्बजम्बीरनारङ्गैःकदलीषण्डमण्डितैः ॥ कुमुदैर्नागवल्ल्याद्यैश्शालेयैश्चतमालकैः ॥ १३ ॥ बीजपूरकखर्जूरैर्द्राक्षामधुरपाटलैः ॥ बिल्वचन्दनपीलवाद्यैः क

सिद्धगन्धर्वों से सेवित पवित्र, यक्ष, विद्याधरों से व्याप्त, किन्नरों से शोभित, अनेक प्रकारके देवगणों से व्याप्त और अनेक गणोंसे सेवित नर्मदा के तटमें ॥ ९।१० ॥ नर्मदा का अवतरण व पवित्र,प्रभाव सुनके देवता, सिद्ध,विद्याधर और मनुष्य नाचनेलगे ॥ ११ ॥ जोकि नर्मदा का तट कह्लार, शतपत्र, कमल, पुन्नाग,नाग, चम्पा, आब,जामुन,कैथा,अनार,कटहर ॥ १२ ॥ नींब,जम्भीरी, नारंगी, केला, कोकाबेली, पान,सांखू, आमनूस ॥ १३ ॥ बिजौरा,खजूर,मुनक्का,पाढर,बेल, चन्दन, पिलुआ,

कुरैया ॥ १४ ॥ और भी सब कामना के देनेवाले, फले फूले वृक्षों से शोभित है और हंस, पनडुब्बी, चकई और चकवाओं से शोभित ॥ १५ ॥ और कोयल, मोर, सुआ और भी अनेक पक्षियों के शब्दसे भराहुआहै पूर्वजन्मका स्मरणहै जिनको ऐसे पक्षी मनुष्य की वाणी से बोलरहेहैं ॥ १६ ॥ और पर्वतपर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधरों की जोडी विहार करती हैं ॥ १७ ॥ जोकि देखनेलायक, दिव्य गन्धर्वों के नृत्य व वंशी, सितारआदि के शब्दों से शोभित ॥ १८ ॥ गीत और बाजाओं के शब्दसे स्वर्ग और भूमिको भररहा है और जे ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षिथे ॥ १९ ॥ उनके वेदध्वनियुक्त यज्ञों व अग्निहोत्रोंसे प्रकाशितहै ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

दम्बकुटजैस्तथा ॥ १४ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैः फलितंपुष्पितंभृशम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ १५ ॥ कोकिलाबर्हिणशुकैर्नानापक्षिविनादितम् ॥ जातिस्मराःपक्षिणश्च व्याजह्रुर्मानुषीङ्गिरम् ॥ १६ ॥ गन्धर्वकिन्नरयुतै र्यक्षविद्याधरोरगैः ॥ क्रीडतेमिथुनंदिव्यं शनैर्गिरिवरोत्तमे ॥ १७ ॥ दिव्यगन्धर्वनृत्यैश्च वेणुवीणासहस्रशः ॥ दिव्यो द्भवैःप्रेक्षणीयैः शोभितेर्गिरिगह्वरे ॥ १८ ॥ गीतध्वनिनिनादेन दिवंभूमिंव्यनादयन् ॥ ब्रह्मर्षयोदेवर्षयस्तथा राजर्षयः परे ॥ १९ ॥ वेदध्वनितयज्ञानामग्निहोत्रप्रकाशतः ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाणि चातुर्वर्ण्यांद्विजोत्तमाः ॥ २० ॥ पुल स्त्यश्चवसिष्ठश्च पुलहश्चक्रतुस्तथा ॥ भृगुरत्रिर्मरीचिश्च भारद्वाजोथकाश्यपः ॥ २१ ॥ मनुर्यमोङ्गिराश्चैव शातातपप राशरौ ॥ आपस्तम्बोथशम्बोथ काव्यःकात्यायनोमुनिः ॥ २२ ॥ गौतमःशङ्खलिखितौ दक्षःकात्यायनिस्तथा ॥ जा मदग्न्योयाज्ञवल्क्य ऋष्यश्रृङ्गोविभाण्डकः ॥ २३ ॥ गर्गशौनकदाल्भ्या व्यासउद्दालकःशुकः ॥ नारदःपर्वतश्चैव दुर्वासाश्चोग्रतापसः ॥ २४ ॥ शाकल्योगालवश्चैव जाबालिर्मुद्गलस्तथा ॥ विश्वामित्रःकौशिकश्च ऋषयोदेवसम्म

और अथर्ववेद पढ़नेवाले ब्राह्मणोंसे व्याप्तहै ॥ २० ॥ अब उसी स्थानमें पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, भृगु, अत्रि, मरीचि, भारद्वाज, काश्यप ॥ २१ ॥ मनु, यम, अंगिरा, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, शम्ब, काव्य, कात्यायन मुनि ॥ २२ ॥ गौतम, शङ्ख, लिखित, दक्ष, कात्यायनि, परशुराम, याज्ञवल्क्य, ऋष्यश्रृङ्ग, विभाण्डक ॥ २३ ॥ गर्ग, शौनक, दालभ्य, व्यास, उद्दालक, शुक, नारद, पर्वत, उग्रतपस्वी दुर्वासा ॥ २४ ॥ शाकल्य, गालव, जाबालि, मुद्गल, विश्वामित्र और भी देवताओं के समान

ऋषि॥ २५ ॥ धर्म, शतानन्द,वैशम्पायन,वैष्णव,शाकलायन,वार्द्धक्य,जुहुति,आवसु ॥ २६ ॥ महात्मा बालखिल्य और जे पृथिवीपर कर्मकरके वेदके बलसे देवलोक को जातेहैं ॥ २७ ॥ और भी धार्मिक अपने तेजसे प्रकाशित होरहे विना धुयें के अग्निके समान ऋषि आतेहुये ॥ २८ ॥ उनमें कोई एक महीने के व्रत करनेवाले हैं कोई एक पक्षके, कोई तीन दिनके, कोई सान्तपन करनेवाले, कोई निराहार हैं ॥ २९ ॥ कोई फूल, फलोंके आहारकरते, कोई वायुभक्षण करते हैं, कोई गोबर, कोई जल आहार करते हैं ॥ ३० ॥ कोई विद्वान् अग्निहोत्र करतेहैं कोई मोक्षप्रतिपादन करनेवाले वेदके अर्थ के विचारनेवाले हैं कोई इतिहास, पुराण, श्रुति,

ताः ॥ २५ ॥ तथाधर्म्मशतानन्दवैशम्पायनवैष्णवाः ॥ शाकलायनवार्द्धक्यो जुहुतिश्चावसुस्तथा ॥ २६ ॥ बालखि ल्यामहात्मानो भूमिमण्डलवासिनः ॥ ब्रह्मदण्डंसमारुह्य देवलोकंव्रजन्तिये ॥ २७ ॥ एतेचान्येऽव्रजंस्तत्र ऋष योधार्मिकाःपरे ॥ ज्वलन्तस्तेजसासर्वेनिर्धूमाइवपावकाः ॥ २८ ॥ मासोपवासिनःकेचित्केचित्पक्षोपवासिनः ॥ त्रि रात्रकाःसान्तपना निराहारास्तथापरे ॥ २९ ॥ केचित्पुष्पफलाहाराः शान्तावाताशिनस्तथा ॥ केचिद्गोमयभक्ष्याश्च जलाहारास्तथापरे ॥ ३० ॥ साग्निहोत्राश्चविद्वांसो मोक्षवेदार्थचिन्तकाः ॥ इतिहासपुराणादिश्रुतिस्मृतिविशार दाः ॥ ३१ ॥ एतेचान्येचबहवो मार्कण्डेयन्तपस्विनः ॥ एतैश्चान्यैश्चसन्तिष्ठन् ऋक्षैरिवनिशाकरः ॥ ३२ ॥ तीर्थया त्राफलंश्रुत्वा धर्म्मपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥ अभिज्ञैर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं द्रौपद्याप्रिययासह ॥ ३३ ॥ विद्वद्भिर्वेदविद्भिश्च ब्रह्मिष्ठैर्ब्रह्म चिन्तकैः ॥ नर्म्मदातीरमायातो मार्कण्डेयाश्रमम्प्रति ॥ ३४ ॥ प्रदक्षिणंत्रिःप्रणम्य साष्टाङ्गञ्चपुनःपुनः ॥ उपविष्ट स्तदातत्र भ्रातृभिस्सहधर्मजः ॥ ३५ ॥ उपविष्टंनृपन्दृष्ट्वा मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ उवाचवचनंदेवं धर्म्मपुत्रंयुधिष्ठि

और स्मृतियों के जाननेवालेहैं ॥ ३१ ॥ इन और भी बहुतसे तपस्वियों करके मार्कण्डेयजी शोभितहुये जैसे नक्षत्रों करके चन्द्रमा शोभित हो ॥ ३२ ॥ तबतक तीर्थ-यात्रा के फलको सुनके समझदार ब्राह्मण, अपनी प्रिया द्रौपदी ॥ ३३ ॥ ब्रह्मिष्ठ, ब्रह्मचिन्तक, विद्वान्, ब्राह्मणों के सहित राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेयजी मुनिके आ-श्रममें आतेहुये ॥ ३४ ॥ तीनबार प्रदक्षिणा व बार २ साष्टाङ्ग प्रणाम करके भाइयों के सहित राजा युधिष्ठिर वहांपर बैठतेहुये ॥ ३५ ॥ महामुनि मार्कण्डेय राजा

को बैठे देखके धर्म के पुत्र युधिष्ठिर से वचन बोलते हुये ॥ ३६ ॥ हे नृपशार्दूल ! भाई और ब्राह्मणो के सहित आपकी कुशल है तब हँसके राजा मार्कण्डेयमुनिसे बोले ॥ ३७ ॥ कि आज हमारा जन्म सफलहुआ और हमारा जीवनभी सफल है आज आपके चरणकमल के देखने से हम कृतकृत्य हुये सूर्यके समान प्रकाश करतेहुये तपोवनको देखके ॥ ३८ ॥ आज हमारे अन्तःकरणका मल नष्ट होगया और पापोंके नाश होनेसे मन निर्मल होगया ॥ ३९ ॥ हे विभो ! उत्तरदिशा की मनोहर देवभूमि में विहार करके सातजन्मों के पापसे हम छूटगये ॥ ४० ॥ तीनोंलोकोंमें रहनेवाली गङ्गादेवी, यमुना, सरस्वती, गङ्गाद्वार, हिमालय, कुब्जाग्र, ब्रह्मयोनि ॥ ४१ ॥

रम् ॥ ३६ ॥ कुशलंनृपशार्दूल भ्रातृभिर्ब्राह्मणैस्सह ॥ प्रहस्यसोऽब्रवीद्वाक्यंमार्कण्डंमुनिसत्तमम् ॥ ३७ ॥ अद्यमेसफलंजन्म जीवितंचसुजीवितम् ॥ कृतकृत्योभवन्त्वद्य त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ ३८ ॥ अद्यमेन्तर्मलंनष्टंपापोच्छेदननिर्म्मलम् ॥ दृष्ट्वातपोवनंसर्वं ज्वलन्तंसूर्यवर्चसम् ॥ ३९ ॥ निर्मुक्तःकिल्बिषादस्मात्सप्तजन्मान्तराद्विभो ॥ रन्त्वा चोत्तरदिग्भागे देवभूमिंमनोहराम् ॥ ४० ॥ गङ्गान्त्रिपथगान्देवीं यमुनाञ्चसरस्वतीम् ॥ गङ्गाद्वारंहिमस्थानं कुब्जाग्रंब्रह्मयोनिकम् ॥ ४१ ॥ उग्रंकनखलञ्चैव केदारम्भैरवन्तथा ॥ नैमिषञ्चगयातीर्थं कुरुक्षेत्रञ्चपुष्करम् ॥ ४२ ॥ वाराणसींप्रयागञ्च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ कालञ्जरञ्चाप्यतीर्थं प्रभासंशशिभूषणम् ॥ ४३ ॥ पुण्यान्येतानिचान्यानि त्यक्त्वाक्षेत्राणिसुव्रत ॥ सेव्यतेकेनकार्य्येण नर्म्मदेवमहानदी ॥ ४४ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञ त्रिकालज्ञत्रिवेदिक ॥ श्रोतुकामाइमेसर्वे कथयस्वप्रसादतः ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो ब्राह्मणैर्भ्रातृभिस्सह ॥ तत्तेहंकथयिष्यामिपुराणंस्कन्दकीर्त्तितम् ॥ ४६ ॥ स्वायम्भुवेथमुनय आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ देवानांसङ्गमेतत्र कैलासेचशिवा

उग्र, कनखल, केदार, भैरव, नैमिष, गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर ॥ ४२ ॥ काशी, प्रयाग, गङ्गासागर, कालञ्जर, आप्यतीर्थ, प्रभास और शशिभूषण ॥ ४३ ॥ इनको और भी पवित्रतीर्थों को छोड़के आप नर्मदाही नदी का किस प्रयोजन से सेवन करते हो ॥ ४४ ॥ हे त्रिकालज्ञ भगवन् ! ये सब लोग इस कारण को सुना चाहतेहैं सो आप प्रसन्नता से कहें ॥ ४५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो राजन् ! आप ब्राह्मण और भाइयों के सहित सुनें हम स्वामिकार्त्तिकेयका कहाहुआ पुराण

लये ॥ ४७ ॥ कार्त्तिक्यान्देवदेवेशं हरंद्रष्टुंसमाययुः ॥ प्राक्पृष्टंकार्त्तिकेयेन धर्म्माधर्म्मनिदर्शनम् ॥ ४८ ॥ शिवेन कथितम्पूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ विष्णुब्रह्मादिदेवानां शृण्वतांयक्षरक्षसाम् ॥ ४९ ॥ अष्टलक्षाणिसार्द्धानि शिवलोकेचगीयते ॥ तदर्द्धंवैष्णवेलोके चार्द्धार्द्धंब्रह्मणःपुरे ॥ ५० ॥ चतुरशीतिसहस्राणि मर्त्यलोकेचगीयते ॥ आराधितः शिवःपूर्वं ब्रह्माद्यैश्चसुरासुरैः ॥ ५१ ॥ ततस्तुष्टःसुरेशानो वरन्दातुंयथेप्सितम् ॥ देवाऊचुः ॥ यदितुष्टोसिदेवेश देवानांवरदोभव ॥ ५२ ॥ सप्तद्वीपावसुमती वसुधाकर्म्मभागिनी ॥ नवमद्वीपपर्यन्तं जम्बूद्वीपंप्रचक्षते ॥ ५३ ॥ वापीकूपसहस्राणि नवार्णःसरितोनहि ॥ नसृताश्चापगाःशर्वपितृघोरावतारिणीः ॥ ५४ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄन्पातुंहि साम्प्रतम् ॥ तारिणींसर्वलोकानामवतारयनर्म्मदाम् ॥ ५५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ दुष्प्राप्यन्त्रिदशैःसर्वैर्याच्यंयाच्यते

कार्त्तिकी के दिन शिवजीके स्थान कैलास में देवताओं के मेलामें मुनिलोग ॥ ४७ ॥ पहले कल्पमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके पहले सत्ययुग में कार्त्तिकेयजीने महादेवजी से धर्म अधर्म का निर्णय पूछा ॥ ४८ ॥ तब शिवजीने ब्रह्मा, विष्णु, देवताओंके ईश्वर महादेवजीके दर्शन के वास्ते जातेहुये पूर्वकाल में कार्त्तिकेय और पार्वतीजी से इसी पुराणको कहा ॥ ४९ ॥ इस पुराण में सब साढ़ेआठलाख श्लोकहैं सो शिवलोक में गायेजाते देवता, यक्ष और राक्षसों के सुनतेहुये कार्त्तिकेय और पार्वतीजी से इसी पुराणको कहा ॥ ४९ ॥ ... हैं उनके आधे चारलाख विष्णुलोक में उनके आधे दोलाख साढ़ेबारह हजार ब्रह्मलोक में गायेजाते हैं ॥ ५० ॥ चौरासी हजार श्लोक मनुष्यलोक में गाये जातेहैं पूर्वकाल में ब्रह्मादिक देवता और दैत्योंकरके आराधन कियेहुये महादेवजी ॥ ५१ ॥ प्रसन्नहोके अभीष्टवर देनेको उद्यतहुये तब देवता बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो तो देवताओं के वरके देनेवाले होवो ॥ ५२ ॥ यह सातद्वीपवाली पृथिवी कर्मका क्षेत्र है जिसमें समुद्र पर्यन्त पृथिवी के भाग को जम्बूद्वीप कहते हैं ॥ ५३ ॥ हे महादेवजी! जिसमें बावली और कुँवा तो हज़ारों हैं लेकिन नवीन जलवाली नदियां नहीं हैं और भयानक पितरों की तारनेवाली नदियांभी नहीं हैं ॥ ५४ ॥ इससे इससमय तिलोदक के देने से पितरों की रक्षा के लिये सब लोकोंकी तारनेवाली नर्मदानदी को आप उतारें ॥ ५५ ॥ तब शङ्करजी बोले

कि हे देवताओ ! जो तुम लोगोंको भी नहीं प्राप्त होसक्ती जोकि मांगने लायक नहीहै उसको तुम मांगते हो इस नर्मदा के वेगको कौन सहसक्ता है ॥ ५६ ॥ इसके वेगसे सब जगत् जलहोके बहजायगा इससे जो सुखसे आसके ऐसीऔर नदीको तुम मांगो ॥ ५७ ॥ तब देवता बोले कि शोकतारिणी नर्मदा को छोड़के और कौन नदी पापियों को तारसक्तीहै ॥ ५८ ॥ देवताओं के वचनको सुनके शिवजीने नर्मदाको बुलाया तब सब आभूषणों से भूषित नर्मदादेवी आतीहुई ॥ ५९ ॥ मगर पर सवार हुई महादेवजी की आज्ञासे प्रत्यक्षहुई और बोलीं कि हे देव ! जो आपको कहनाहो मुझसे कहिये और मेरे ऊपर आपको कृपा करनी चाहिये ॥ ६० ॥ महा-

सुराः ॥ वेगंशक्नोतिकस्सोढुन्तत्तोयभ्रमणस्यच ॥ ५६ ॥ तोयम्भूतंजगत्सर्वं निपतिष्यज्जवेनतु ॥ याचध्वमन्यांसरितं सुखसाध्यान्तरङ्गिणीम् ॥ ५७ ॥ देवाऊचुः ॥ कान्यातारयितुंशक्तापुण्यासोढुंसरिद्वरा ॥ मुक्त्वात्रिनयनेशानीं नर्मदांशोकतारिणीम् ॥ ५८ ॥ देवानांवचनंश्रुत्वा समाहूतासरिद्वरा ॥ आगताचततोदेवी सर्वाभरणभूषिता ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षामकरारूढा देवदेवस्यचाज्ञया ॥ देवमेदेहिवक्तव्यं कर्तव्यातुकृपामयि ॥ ६० ॥ निशम्यतद्वचस्सौम्यं नर्म्मदायास्त्रिलोचनः ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं मर्त्यलोकेप्रगम्यताम् ॥ ६१ ॥ लोकानांचहितार्थाय मर्त्यानाञ्चविशेषतः ॥ नर्म्मदोवाच ॥ तवाज्ञाञ्चकरिष्येहं निराधाराकथंविभो ॥ ६२ ॥ कोमान्धर्तुञ्चशक्नोति महीयास्यतिविप्लवम् ॥ आदिदेशततःसर्वान्पर्वतान्परमेश्वरः ॥ ६३ ॥ आदिश्यैतांश्चतान्सर्वांस्ततोदेवःस्वयंशिवः ॥ पर्वताऊचुः ॥ नशक्नुमोवयंसर्वे धर्तुंवेगञ्चनार्म्मदम् ॥ ६४ ॥ भेदमाप्नोतिवैपृथ्वी शतधायान्तिभूभृतः ॥ ऋक्षवानब्रवीद्देवन्देवाज्ञान्त्रिदशो

देवजी नर्मदा का ऐसा सौम्य वचन सुनके स्नेहयुक्त वचन बोले कि हे नर्मदे ! आजही तुम मनुष्यलोक को जावो ॥ ६१ ॥ सब लोकोंके हितके लिये और मनुष्योंके तो विशेपही हितके वास्ते तब नर्मदाजी बोलीं कि हे भगवन् ! मैं निराधार होके आपकी आज्ञा कैसे करसक्ती हूं ॥ ६२ ॥ मेरे धारण करने को कौन समर्थ है मेरे गिरने से पृथिवी नष्ट होजागी तब महादेवजी पर्वतों को आज्ञा देतेहुये ॥६३॥ इस प्रकार आज्ञा देके महादेवजी आप सच्छन्द हुये तब महादेवजी से पर्वत बोले कि हे महादेव ! हमलोग नर्मदा के वेगको नहीं धारण करसक्ते ॥ ६४ ॥ क्योंकि जब नर्मदा के वेगसे पृथिवी फटजायगी तब पहाड़ों के सैकड़ों टुकड़े होजायँगे

तब ऋक्षवान् पर्वत बोला कि हे देव! आप मुझको आज्ञा देवैं ॥ ६५ ॥ मैं सत्य व आपकी कृपासे नर्मदाको धारण करूंगा तब हे नगाधिप युधिष्ठिर! जम्बूद्वीपमें नर्मदा देवी उतारीगई ॥ ६६ ॥ फिर सब पर्वत और जङ्गलों के सहित सब पृथ्वीमें फिराके देवताओंने नर्मदासे कहा कि हे सुव्रते! अब तुम मर्यादा को धारण करो ॥ ६७ ॥ सो नर्मदा इक्कीसहजार योजनका जिनका प्रमाणहै ऐसे सात पातालों को फाड़ कर रसातल को जातीहुई ॥ ६८ ॥ फिर प्रलय होनेपर नर्मदाजी देवलोकको चलीगई यह पहले मन्वन्तरमें नर्मदा के प्रथम अवतरणकी कथा कहीगई ॥ ६९ ॥ हे अपाप! आदिकल्प के दूसरे स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रथमयुग में सागर,नदी,तीर्थ और

श्वर॥६५॥धारयामिचसत्येन त्वत्प्रसादादुमापते॥ततोऽवतारितादेवी जम्बूद्वीपेनराधिप ॥ ६६ ॥ चारयित्वामहींसर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ ततोदेवगणैरुक्ता मर्य्यादांवहसुव्रते ॥ ६७ ॥ एकविंशत्सहस्राणि योजनानांप्रमाणतः ॥ साभित्त्वासप्तपातालान् रसातलतलंययौ ॥ ६८ ॥ देवलोकंजगामाथ प्रलयेसमुपस्थिते ॥ प्रथमाकथिताराजन्नवतारस्यकल्पना ॥ ६९ ॥ स्वारोचिषेद्वितीयेतु आदिकल्पेयुगेनघ ॥ नसागरानसरितो नतीर्थानिनसङ्गमः ॥ ७० ॥ त्रेतायुगेवतीर्णातु पुराभागीरथीसरित् ॥ जह्नुनाचुलुकेनैव हृदिमध्येऽव्यवस्थिता ॥ ७१ ॥ साकथंसेव्यतेराजंस्त्यक्त्वाचैवतुकल्पगाम् ॥ अज्ञानतमसाच्छन्ना विष्णुमायाविमोहिताः ॥ ७२ ॥ त्यक्त्वावैनर्म्मदांराजन्सेवन्तेन्यांनदींसुराः ॥ यादृशंसूर्य्यदेवानां मणिरत्नप्रभासुच ॥ ७३ ॥ अन्तरंतादृशंराजन्नर्म्मदान्यापगासुच ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यं शङ्करस्यप्रभावतः ॥ ७४ ॥ सेव्यतेसप्तगातत्र पुराणंस्कन्दकीर्त्तितम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ ७५ ॥

संगम कुछ भी नहीं था ॥ ७० ॥ तब त्रेतामें गंगाजी उतरीं जिनको जह्नु राजाने चुल्लू से आचमन करके हृदयमें स्थापित किया ॥ ७१ ॥ पूरे कल्पभर रहनेवाली नर्मदा को छोड़के वे गंगा किस प्रकार से सेवन कीजासक्ती हैं अज्ञानरूप अन्धकार से ढकेहुये विष्णुमायासे मोहित जीव ॥ ७२ ॥ नर्मदा को छोड़कर और नदियोंकी सेवा करते हैं जैसे मणि और रत्नोंकी प्रभाओंसे सूर्यदेव का अन्तरहै ॥ ७३ ॥ इसी प्रकार और नदियों से नर्मदाजी का अन्तर है मार्कण्डेयजी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि महादेवजी के प्रभावसे स्कन्द के कहेहुये इस पवित्र आख्यान को सुनके हम नर्मदाका सेवन करते हैं हे राजन्! यह इतिहास जैसा कुछ

मैंने देखा व सुनाथा आपसे कहा ॥ ७४ । ७५ ॥ आप इन वेदपाठी ब्राह्मणों करके सहित कृतकृत्यहो और वैराग्य से रहित आप परमपद को प्राप्तहोगे ॥ ७६ ॥ इस पवित्र पापनाशक आख्यान को सुनके गोहत्या का पापभी नष्ट होताहै ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेभाषानुवादेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❁ ॥

फिर राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेयजी से बोले कि हे भगवन् ! नर्मदा का पवित्र दूसरा अवतार, संगम, वाणलिंग, तीर्थयात्रा का प्रमाण, युग और मन्वन्तर ॥ १ ॥ पर्वत का माहात्म्य, नर्मदा में यथोचित कर्म करना, तीर्थ २ में देवताओं का पर्वकाल ॥ २ ॥ शहरका माहात्म्य, उसमें वास, भृगुका पवित्र कीर्तन और ब्रह्महत्या से छूट-

कृतकृत्यःसर्वकामान्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥ प्राप्नोषिपरमंस्थानंवैराग्यविवर्जितम्॥७६॥श्रुत्वाऽऽख्यानमिदंपुण्यं पवित्रमघनाशनम् ॥ येशृण्वन्तिसदानित्यं गोहत्याचप्रणश्यति॥७७॥ इति श्रीरेवाखण्डेआदिकल्पकथनंद्वितीयोऽध्यायः२॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ रेवावतरणंपुण्यं सङ्गमंलिङ्गमर्चितम् ॥ तीर्थयात्राप्रमाणञ्च युगमन्वन्तराणिच ॥ १ ॥ पर्वतस्य तुमाहात्म्यं तत्रनद्यांयथोचितम् ॥ पर्वकालस्तुदेवानांतीर्थेतीर्थेविशेषतः ॥ २॥पत्तनस्यतुमाहात्म्यं तत्रवासंयथोचितम् ॥ भृगोस्तुकीर्तनंपुण्यं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ३ ॥ केनावतीर्य्यकार्य्येण जम्बूद्वीपेसरिद्वरा ॥ शिवलोकंगतासातु तन्मेवदमहामुने ॥ ४ ॥ उक्तानुक्तञ्चयत्किञ्चित्कथयस्वप्रसादतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतांराजराजेन्द्र कथ्यमानंनिबोधमे ॥ ५ ॥ हिरण्यकशिपुश्चासीद्युगेचाद्येमहासुरः ॥ शिवप्रसादसम्पन्नो ह्यलंमातृबलोत्कटः ॥ ६ ॥ निर्जिता देवतास्तेन पलायनपरायणाः ॥ जग्मुःशरणमुद्विग्ना भयार्ताभयविह्वलाः ॥ ७ ॥ शङ्खचक्रधरंदेवं संसारार्णवतारण

जाना ॥ ३ ॥ व हे महामुने! किसप्रयोजनसे जम्बूद्वीपमें नर्मदाजी अवतार लेके फिर शिवलोकको चलीगई यह सब मुझसे कहो ॥ ४ ॥ और भी जो कुछ मैंने पूछाहो या न पूछाहो अपनी प्रसन्नतासे कहिये मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! आप सुनें और मेरे कहने को समझें ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें सत्ययुगमें महादेवके प्रसादसे युक्त और अपनी माता दितिके बलसे प्रबल हिरण्यकशिपु नामका महाअसुर होताहुआ ॥ ६ ॥ उससे जीतेहुये घबड़ाने व भागतेहुये सब देवता विष्णुकी शरणको प्राप्त हुते ॥ ७ ॥ और

बोले कि शङ्ख और चक्रके धरनेवाले संसारसमुद्रसे तारनेवाले माधवजीके शरणको हम प्राप्तहैं हे मधुसूदनजी ! ॥ ८ ॥ न अग्निहोत्र व वेद और देवताओंका पूजनहै और न वेदका पाठ, न यज्ञ, न हवन और पितरों का तर्पण है ॥ ९ ॥ यह सब नष्ट होगया और दुष्ट दानवों करके धर्म कर्म नाश करदियागया हे राजन् ! यह सुनके उसीकालमें प्रभावशाली विष्णुजी ने ॥ १० ॥ नृसिंहरूप से उन सब दैत्यों को मारडाला फिर धर्म और देवता, ब्राह्मणों का पूजन प्रवृत्तहुआ ॥ ११ ॥ पाप-कर्ममें रत,अधम सब दानवलोग नाश करदियेगये इसी हेतुसे लोकधारिणी नर्मदा भी चली गई ॥ १२ ॥ स्वारोचिष मन्वन्तरमें आदिकल्पके सत्ययुगमें देवताओंसे

म् ॥ शरणञ्चप्रपन्नाःस्मो माधवंमधुसूदन ॥ ८ ॥ अग्निहोत्राश्चवेदाश्च नदेवानांचयाजनम् ॥ नस्वाध्यायोनयज्ञा श्च नहुतंपितृतर्पणम् ॥ ९ ॥ चयावितंदानवैर्दुष्टैर्धर्म्मकर्म्मचनाशितम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्विष्णुनाप्रभविष्णु ना ॥१०॥ दैत्याश्चनिहतास्सर्वे नृसिंहवपुषानुते ॥ पुनःप्रवर्ततेधर्म्मोदेवब्राह्मणयाजनम् ॥ ११ ॥ त्वयितादानवास्सर्वे पापकर्म्मरताधमाः ॥ गतातेनैवकार्य्येण नर्म्मदालोकधारिणी ॥ १२ ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ अ वतारंपुनर्मर्त्ये देवीत्रिदशपूजिता ॥ १३ ॥ करिष्यतिनरश्रेष्ठ लोकानांहितकाम्यया ॥ धर्म्मकर्म्मतरंज्ञात्वा मर्त्येसुर गणार्चितः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आसीत्पुराचक्रवर्ती सोमवंशेपुरूरवाः ॥ शशासपृथिवींसर्वां यथाशक्रस्त्रिवि ष्टपम् ॥ १५ ॥ एकदासनृपश्रेष्ठः सभामध्येपुरूरवाः ॥ पप्रच्छब्राह्मणान्वृद्धान्वृद्धसेवीधृतव्रतः ॥ १६ ॥ यज्ञादिभि र्विनाकेन मानवाःपापमोहिताः ॥ स्वर्गंप्रापुरुपायेन तन्मेवदयथातथम् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ आस्तेस्वर्गेमहारा

पूजित देवीनर्मदाजी फिर मनुष्यलोकमें अवतारको धारण ॥१३॥ करैंगी हे नरश्रेष्ठ लोकोंके हितकी कामना करके धर्म कर्मको जानके देवगण से पूजित नर्मदाजी मनुष्यलोक में आई ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी राजा युधिष्ठिर से फिर बोले कि हे राजन् ! पूर्वकाल में चन्द्रवंश में चक्रवर्ती पुरूरवा राजा होतेहुये और समस्त पृथिवीकी राज्य करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गमें राज्य करते हैं ॥ १५ ॥ एक समयमें सभाके मध्यमें वृद्धों की सेवा करनेवाले राजाओं में श्रेष्ठ,कियेहुये व्रतको न छोड़नेवाले वे पुरूरवा जी वृद्ध ब्राह्मणोंसे पूंछतेहुये ॥ १६ ॥ कि यज्ञादिकोंके विना पापसे मोहित मनुष्य किस उपाय से स्वर्गको प्राप्त हुये उसको मुझ से आपलोग यथार्थ कहें ॥१७॥

तब ब्राह्मण बोले कि हे महाराज ! स्वर्गमें लोकोंके पवित्र करनेवाली नर्मदा है उस लोकपापहारिणी को स्वर्गसे आप उतारें ॥ १८ ॥ अपने मनके वश करने वाले उन ब्राह्मणों के उसवचनको सुनके कुछ अधिक हजार वर्ष महादेवजी को आराधन करतेहुये ॥ १९ ॥ कन्द, मूल, फल, शाक और जलका आहार करके निर्मल अन्तःकरण से महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर होतेहुये ॥ २० ॥ तब सन्तुष्टहो महादेवजी बोले कि हे पुत्र! अपने मनका प्यारा यथेष्ट वर मांगो मैं तुम्हारे लिये देऊंगा इसमें कोई सन्देह नहीहै ॥ २१ ॥ तब पुरूरवा बोले कि हे महादेव ! जो आप मुझ से प्रसन्नहैं और मुझको वरदेने की इच्छा करतेहो तो सब लोकोंके हितके

ज नर्म्मदालोकपावनी ॥ अवतारयतांस्वर्गाल्लोकानांपापहारिणीम् ॥ १८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा द्विजानांविधृतात्मना म् ॥ आराधयामासदेवमयुतंसाग्रमेवच ॥ १९ ॥ कन्दमूलफलैःशाकैर्जलाहारैस्तथापिसः ॥ शिवभक्तिपरोनित्यं विशुद्धेनान्तरात्मना २० ॥ ततस्तुष्टोमहादेवोवरंवरयपुत्रक॥ददामितेनसन्देहोयथेष्टंमनसेप्सितम् ॥ २१ ॥पुरूरवाउवा च ॥ यदितुष्टोमहादेव वरंदातुंममेच्छसि ॥ हितायसर्वलोकानामवतारयनर्म्मदाम् ॥ २२ ॥ नवखण्डास्सप्तद्वीपा स्त्वापगास्सरितस्तथा ॥ निमग्नंनरकेघोरे जगत्सर्वंमयाश्रुतम् ॥२३॥ लक्षयोजनपर्य्यन्तं जम्बूद्वीपंनिराश्रयम् ॥ नदे वास्तृप्तिमायान्ति नमातृपितृमानुषाः ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वामहादेवो नरदेवस्यभाषितम् ॥ हरउवाच ॥ उवाचदुर्लभंदे वैरयाच्यंयाच्यतेनृप ॥ २५ ॥ वरमन्यंप्रयच्छामि वर्जयित्वातुनर्म्मदाम् ॥ पुरूरवाउवाच ॥ नान्यंवरंमहादेव प्राण त्यागेपिप्रार्थये ॥ २६ ॥ ज्ञात्वातुनिश्चयंराज्ञस्तपसोग्रेणसाधनम् ॥ आज्ञापितामेकलासावतरत्वंसुरेश्वरि॥ २७ ॥ पुरू

वास्ते नर्मदाको उतारो ॥ २२ ॥ नवखण्ड सातद्वीप और सब नदियां भी हैं लेकिन सब जगत् घोरनरकमें डूबाहै यह मैंने सुनाहै ॥ २३ ॥ एकलाख योजनका जम्बूद्वीप निराधार होरहा है देवता, माता, पितर और मनुष्य तृप्तिको नहीं प्राप्त होते ॥ २४ ॥ महादेवजी राजाके इस वचनको सुनके बोले कि हे नृप ! देवताओं को दुर्लभ और मांगने के अयोग्यवर को आप मांगतेहो ॥ २५ ॥ नर्मदा को छोड़के और वरको हम देंगे तब पुरूरवा बोले कि हे महादेव ! हम मरण पर्यन्त भी दूसरे वरको नहीं मांगेंगे ॥ २६ ॥ राजाके उग्रतप से साधन को निश्चय जानके महादेवजी नर्मदाको आज्ञा देतेहुये कि हे सुरेश्वरि ! तुम उतरो ॥ २७ ॥ पुरू-

स्वाके तपोबलसे तुम मनुष्यलोक का हितकरो आज्ञाको पाके वे नर्मदाजी महादेवजीके आगे स्थितहुई ॥ २८ ॥ व हाथ जोड कहनेलगीं कि आज मुझको आज्ञा दीजावे तब महादेवजी नर्मदासे बोले कि हे रेवे ! तुम हमारी आज्ञासे स्वर्गलोकसे मनुष्यलोक को जावो ॥ २९ ॥ हे कल्याणि ! इस समय पुरूरवा के तप को सत्यकरो तब नर्मदा बोलीं कि हे ईश ! निराधारहोके स्वर्गसे पृथिवीको मैं कैसेजाऊं ॥ ३० ॥ तदनन्तर पार्वतीजीकेपति महादेवजी नर्मदाके वचनको सुनके आठ कुल-पर्वतोंको बुलातेहुये ॥ ३१ ॥ महादेवजी पर्वतोंसे बोले कि नदीके धारण करनेको कौन सा पर्वत समर्थ है तब पर्वत बोले कि हे भगवन् ! नर्मदाके जलके वेगरो

रवोविपाकेन मर्त्यलोकहितंकुरु ॥ आज्ञापितागतासाच शिवस्याग्रेऽव्यवस्थिता ॥ २८ ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वासमादेशो धदीयताम् ॥ हरउवाच ॥ स्वर्गात्प्रयाहिरेवेत्वं मर्त्यलोकंममाज्ञया ॥ २९ ॥ पुरूरवस्तपस्सत्यं कुरुकल्याणिसाम्प्र तम् ॥ नर्म्मदोवाच ॥ कथमीशनिराधारा स्वर्गाद्यास्याम्यहंधराम् ॥ ३० ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वा देवदेवउमापतिः ॥ ...मासस्वानष्टौकुलनगोत्तमान् ॥ ३१ ॥ उवाचपर्वतान्देवः कःसरिद्धारणेक्षमः ॥ पर्वताऊचुः ॥ शतधाभेदमाया ...न्महाद्रयः ॥ ३२ ॥ अभाषततोविन्ध्योधर्तुमुत्सहतेनदीम् ॥ ममपुत्रस्सुरेशाग्र्य त्वत्प्रसादान्नसंश ...इतिविख्यातः कन्दर्प्पदृढविक्रमः ॥ ज्येष्ठस्सर्वगुणैर्युक्तो मान्यःसर्वमहीभृताम् ॥ ३४ ॥ देवैरपि ...रतः ॥ सन्त्येवपर्वतास्सर्वे यद्यपीहमहेश्वर ॥ ३५ ॥ तथापिधारणेशक्तः सएवेहनसंशयः ॥ ...महीधराः ॥ ३६ ॥ अनुज्ञांदेहिपर्य्यङ्कः त्वमस्तान्धर्तुमागगाम् ॥ अनुज्ञातश्चदेवेन पर्य्य

...विन्ध्यपर्वत बोला कि हे सुरेशाग्र्य ! आपके प्रतापसे मेरा पुत्र नदी धारण करनेको समर्थहै इसमें कोई सन्देह ...है सब गुणोंसे युक्त कामदेवके सदृश पराक्रमी पर्यङ्क जिसका नामहै ॥ ३४ ॥ देवता भी जिसको नहीं ...भी सब पर्वत हैं ॥ ३५ ॥ तथापि नर्मदाके धारण करनेमें पर्यङ्कही समर्थहै इसमें सन्देह नहीं है ...आज्ञा देवें उस नदीके धारण करनेको पर्यङ्क समर्थ है तब वह पर्वतश्रेष्ठ पर्यङ्क महादेवजी

...रती, दण्डकी, गण्डकी, ...

से आज्ञापाके ॥ ३७ ॥ बोला कि हे महेश्वर ! आपके प्रसादसे मैं धारण करूंगा तदनन्तर देवी नर्मदाजी पर्यङ्क पर्वत की चोटीपर प्राप्तहुई ॥ ३८ ॥ जलके समूह के वेग और भ्रमण से पर्वत और जङ्गलों के सहित समस्त पृथिवी भीगगई और सब जगत् वेसमय प्रलय के भयसे घबड़ागया ॥ ३९ ॥ तब सब देवगणों से नर्मदाजी स्तुति कीगई कि हे कल्याणि ! आप मर्य्यादा को धारणकरो क्योंकि आप लोकोंकी हितकारिणी हो ॥ ४० ॥ आपसे यह सब चराचर त्रैलोक्य व्याप्त होरहाहै तब महादेवकी आज्ञासे नर्मदाजी सङ्कोच को प्राप्तहुई ॥ ४१ ॥ पितामहोंको तृप्त करके इक्कीस हजार योजन के प्रमाण से रसातल में वे नर्मदाजी प्रवेश करती

ङ्कस्सनगोत्तमः ॥ ३७ ॥ उवाचधारयिष्येहं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ततःप्रचलितादेवी मूर्द्धिपर्य्यङ्कभूभृतः ॥ ३८ ॥ जलौघवेगभ्रमणात्सशैलवनकानना ॥ प्लाविताबसुधासर्वा अकालकलितंजगत् ॥ ३९ ॥ स्तुतादेवगणैःसर्वैस्तदामेकलकन्यका ॥ मर्य्यादांवहकल्याणि लोकानांहितकारिणी ॥ ४० ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ततःसंवृतरूपेण शिवाज्ञातश्चमेकला ॥ ४१ ॥ प्रमाणतोयोजनानां सहस्राण्येकविंशतिः ॥ रसातलंसाविविशे तर्प्पयित्वा पितामहान् ॥ ४२ ॥ स्पृशमान्त्वंस्वहस्तेन इत्युक्तस्सपुरूरवाः ॥ पीत्वाचसलिलंदत्ते पितृभ्यश्चतिलोदकम् ॥ ४३ ॥ अगमन्परमंस्थानं यत्सुरैरपिदुर्ल्लभम् ॥ पवित्रंपरितस्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४४ ॥ सेव्यतेतेनकार्य्येण नर्म्मदा सप्तकल्पगा ॥ एतत्तेकथितंराजन्नाख्यानञ्चशिवोदितम् ॥ ४५ ॥ वैवस्वतमिदानीन्तु द्वापरान्तेसमुद्यते ॥ त्वंराजाभ्रातृभिस्सार्द्धं सत्यसन्धोदृढव्रतः ॥ ४६ ॥ त्रेतायाःप्रथमेपादे गङ्गाभागीरथीस्मृता ॥ अदहत्कपिलश्चास्य पितॄणामयु

हुई ॥ ४२ ॥ और पुरूरवासे कहा कि अपने हाथसे मेरे जलको छुवो तब पुरूरवाने जलको पीके पितरों को तिलोदक दिया ॥४३॥ जोकि देवताओंको भी दुर्लभ परम स्थान है तिसको पुरूरवा के पितर प्राप्तहुये और सब चराचर तीनोंलोक चारो तरफसे पवित्र होगये ॥ ४४ ॥ इसी हेतुसे सातो कल्पमें रहनेवाली नर्मदा का हम सेवन करतेहैं हे राजन् ! इस महादेवके कहेहुये आख्यानको मैंने तुम्हारे लिये कहा ॥ ४५ ॥ इस समय में वैवस्वत मन्वन्तर है तिसके द्वापर के अन्तमें सत्यप्रतिज्ञा

वाले दृढ़व्रत भाइयों के सहित तुम राजाहुये हो ॥ ४६ ॥ त्रेताके पहले चरण में भागीरथी गङ्गा हुईं इन भगीरथके साठ हजार पितरोंको कपिलने भस्म करदियाथा॥ ४७ ॥ वे लोग विष्णुकी मायासे मोहित होकर सातवें रसातलको प्राप्तहुयेथे इसी प्रकार और एक मन्दाकिनी नामकी दूसरी गङ्गाहैं ॥ ४८ ॥ मर्यादाको नहीं छोडते ऐसे सातो समुद्र नर्मदाहीके जलसे पूर्णहोगये और वैसेही त्रेताके तीसरे चरण में सरस्वतीनदी पृथिवीपर उतरीं ॥ ४९ ॥ वह सरस्वती स्थानेश्वर को गईं फिर गङ्गाके समागम में प्राप्तहुई कनखल में गङ्गा पवित्रहैं तथा सागरसङ्गम में पवित्रहैं ॥५०॥ ऊर्ध्वतीर्थ, प्रयाग और काशी में विशेष करके पवित्र है और प्राची सरस्वती जहां

तानिषद् ॥ ४७ ॥ मोहितामाययाविष्णोर्गतासप्तरसातलम् ॥ एवंमन्दाकिनीनाम त्वन्यागङ्गासरिद्वरा ॥ ४८ ॥ मेक लातोयसम्पूर्णास्सागरास्सप्तयन्त्रिताः ॥ तृतीयेचतथापादे अवतीर्णासरस्वती ॥ ४९ ॥ स्थानेश्वरगतासातु पुनर्गङ्गा समागमे ॥ गङ्गाकनखलेपुण्या गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ५० ॥ ऊर्ध्वतीर्थेप्रयागेचवाराणस्यांविशेषतः ॥ प्राचीसरस्वतीय त्र कुरुक्षेत्रेचपुण्यदा ॥ ५१ ॥ प्रणष्टेद्वादशादित्ये प्रलयेसमुपस्थिते ॥ सप्तकल्पक्षयेवृत्ते नमृतातेननर्मदा ॥ ५२ ॥ स रितश्चक्षयंयान्ति गङ्गाद्याश्चसहस्रशः ॥ नर्म्मदातिष्ठतेदेवी सप्तकल्पानुगामिनी ॥ ५३ ॥ ब्राह्मीसरस्वतीमूर्तिर्वैष्णवी त्रिपथास्मृता ॥ नर्म्मदाशाङ्करीमूर्तिर्नद्यस्तिस्रस्त्रिदेवताः ॥ ५४ ॥ गङ्गाचयमुनाचैव सरयूश्चसरस्वती ॥ शतभागाच न्द्रभागा रम्यासिन्धुर्महानदी ॥ ५५ ॥ इरावतीचकपिलानर्मदासवितस्तिका ॥ दण्डकीगण्डकीचैव घर्घराचमहान दी ॥ ५६ ॥ शोणोमहानदश्चैव वेदिकाचतरङ्गिणी ॥ ब्रह्मवाहाविष्णुवाहा सारङ्गागौतमीतथा ॥ ५७ ॥ विश्ववाहाधेनुम

हैं वहां कुरुक्षेत्र मे पुण्यकी देनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ बारहों सूर्यों के नाश होनेपर और प्रलय के आनेपर सातो कल्पोंके क्षयहोनेपर नहीं नष्टहुई इससे नर्मदा कही जाती हैं ॥ ५२ ॥ गङ्गाआदि हजारों नदियां नाशको प्राप्त होजाती हैं नर्मदादेवी सात कल्पपर्यन्त बनीरहती हैं ॥ ५३ ॥ सरस्वती ब्रह्माकी मूर्त्तिहैं और गंगाजी विष्णुकी नर्मदा शिवजीकी ये तीनों नदिया तीनों देवताही हैं ॥ ५४ ॥ गंगा, यमुना, सरयू, सरस्वती, शतद्रू, चन्द्रभागा, रमणीक महानदीसिन्धु ॥ ५५ ॥ इरावती, कपिला, नर्मदा, वितस्ता, दण्डकी, गण्डकी, महानदीघर्घरा ॥ ५६ ॥ महानद शोणभद्र, वेदिका, तरंगिणी, ब्रह्मवाहा, विष्णुवाहा, सारंगा वैसेही गौतमी ॥ ५७ ॥

विश्ववाहा, धेनुमती, अपारा, अपरा वैसेही वेत्रवती, कुमुदा, महातापी, पयोष्णी ॥ ५८ ॥ वेणा, दुग्धिका, शिप्रा, अजहासा, अभ्रमती, कृष्णा, भीमरथी और महा-नदी तुंगभद्रा ॥ ५९ ॥ गोदावरी जिसका नाम दक्षिणगंगा है औरभी जो सब नदियां, सब तीर्थ और समुद्रहैं ॥ ६० ॥ उनमें कल्पांतक रहनेवाली नर्मदाको छोड़ के ये सब नदियां नाशको प्राप्तहोती हैं और गंगादेवी क्या वर्णन कीजाती हैं जिन को महादेवजी ने शिरमें धारण किया है ॥ ६१ ॥ और साक्षात्परमेश्वर महादेवजी के आधे शरीर में स्थित होनेवाली पार्वतीजी की क्या प्रशंसा करनी नर्मदाजी वर्णन करने के योग्य हैं जोकि सातकल्पों तक बनी रहती है ॥ ६२ ॥ वे देश, पर्वत

ती अपाराअपरातथा ॥ वेत्रवतीचकुमुदा महातापीपयोष्णिका ॥ ५८ ॥ वेणाचदुग्धिकाशिप्राजहासाभ्रमतीतथा ॥ कृष्णाभीमरथीचैव तुङ्गभद्रामहानदी ॥ ५९ ॥ गोदावरीतिविख्याता गङ्गासादक्षिणास्मृता ॥ नद्यश्चैवतथाचान्यास्स र्वतीर्थानिसागराः ॥ ६० ॥ सर्वास्ताःप्रलयंयान्ति वर्ज्जयित्वातुकल्पगाम् ॥ गङ्गाकिंवर्ण्यतेदेवी हरेणशिरसाधृता ॥ ६१ ॥ गौरीवार्द्धशरीरस्था शिवस्यपरमेष्ठिनः ॥ नर्म्मदावर्ण्यतेदेवी सप्तकल्पानुगामिनी ॥ ६२ ॥ तेदेशाःपर्वताःपु ण्यास्तेग्रामास्तेपिचाश्रमाः ॥ यत्रयातासरिच्छ्रेष्ठा नर्म्मदासप्तकल्पगा ॥ ६३ ॥ त्रिभिस्सारस्वतंपुण्यं सप्ताहेनतुया मुनम् ॥ सद्यःपुनातिगाङ्गेयं दर्शनादेवनर्म्मदा ॥ ६४ ॥ रेवातटेपुयेवृक्षाः पतिताःकालपर्य्यये ॥ नर्म्मदातोयसंस्पृ ष्टास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ ६५ ॥ रेवायायत्रकुत्रापि सङ्गमेभरतर्षभ ॥ स्नानंदानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृपूजन म् ॥ ६६ ॥ देवताराधनंदीक्षा न्यासोदेहविसर्जनम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेमर्त्यैस्तदनन्तफलंस्मृतम् ॥ ६७ ॥ गोसह

वे ग्राम और वे आश्रमभी पवित्रहैं जिनमें नदियों में श्रेष्ठ सातकल्प पर्यन्त रहनेवाली नर्मदाजी विद्यमान हैं ॥ ६३ ॥ सरस्वतीका जल तीन दिनमें पवित्र करताहै और यमुनाका सात दिनमें और गंगाजल तत्कालमें व नर्मदाका दर्शनमात्रही से पवित्र करदेताहै ॥ ६४ ॥ नर्मदा के तटमें जो वृक्षहैं वे कालयोगसे गिरे और नर्मदा के जल के स्पर्शको प्राप्तहुये तो वे भी श्रेष्ठगतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ६५ ॥ हे भरतर्षभ ! नर्मदाके संगममें जहां कहीं स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृपूजन ॥ ६६ ॥ देवाराधन,

मन्त्रोपदेश, संन्यास और देहका त्याग या जो कुछ मनुष्योंकरके कियाजाताहै उसके फलका अन्त नहीं है ॥६७॥ गोसहस्र, गोशत, गोदान और महादानोंको वैशाखी अथवा माघी, कार्त्तिकी, ग्रहण, अयन ॥ ६८ ॥ मेष और तुलाकी संक्रान्ति, अन्य संक्रान्ति, व्यतीपात, वैधृति, अमावास्या, तिथिक्षय, तिथिवृद्धि, मन्वादितिथि, युगादि तिथि ॥६९॥ कल्पादितिथि, माता व पिताका क्षयाह, ॐकारनाथ, भृगुक्षेत्र और संगममें जो करताहै॥ ७० ॥ और जो श्रेष्ठ मनुष्य नर्मदामें स्नान, दान, जप और होम, पूजन आदि करता है वह अश्वमेधके फलको पाता है ॥ ७१ ॥ और ब्रह्महत्याआदि पापोंसे छूटजाताहै इसमें कोई संशय नहींहै अपने आगेकी सौपीढ़ी, और अपने पीछेकी

स्रशतन्धेनुं महादानानिकृत्स्नशः ॥ वैशाख्यामथवामाघ्यां कार्त्तिक्यांग्रहणायने ॥ ६८ ॥ विषुवेसंक्रमेभानोर्व्यती पातेचवैधृतौ ॥ दर्शेदिनक्षयेवृद्धौ मन्वादिषुयुगादिषु ॥ ६९ ॥ कल्पादौचयुगादौच मातापित्रोःक्षयेहनि ॥ ॐकारेवाभृगोःक्षेत्रे विशेषादुपसङ्गमे ॥ ७० ॥ रेवायांस्नानदानानि जपहोमार्चनादिकम् ॥ यःकुर्य्यान्मनुजश्रेष्ठः सोश्वमेधफलं लभेत् ॥ ७१ ॥ ब्रह्महत्यादिभिःपापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ कुलानांशतमागामि समतीतन्तथाशतम् ॥ ७२ ॥ उद्धरेदात्मनासार्द्धं रेवातीर्थावगाहनात् ॥ ग्रामार्द्धंग्राममेकंवा योदद्यान्नर्म्मदातटे ॥ ७३ ॥ सलभेद्विपुलांलक्ष्मीमत्यन्त फलमश्नुते ॥ नर्म्मदातीरसम्भूतां मृदंमूर्द्ध्निबिभर्तियः ॥ ७४ ॥ बिभर्तिमूर्तिमर्कस्य तमोनाशायकेवलम् ॥ यत्रयत्रनरःस्नायान्नर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ ७५ ॥ प्राप्नुयादश्वमेधस्य फलमेतच्छिवोदितम् ॥ नर्म्मदातोयपानस्य स्नानस्य प्रेक्षणस्यच ॥ ७६ ॥ अपिचान्द्रायणशतं तुल्यम्भवतिवानवा ॥ नर्म्मदांकीर्तयेद्यस्तु प्रातरुत्थायमानवः ॥ ७७ ॥ स

सौपीढ़ी ॥ ७२ ॥ अपने सहित नर्मदा, तीर्थमें स्नान करनेसे उद्धार करताहै आधागांव या पूरागांव जो नर्मदाके तटमें देताहै ॥ ७३ ॥ वह बहुत लक्ष्मी व अत्यन्त फल को प्राप्तहोताहै नर्मदा के किनारे की मट्टी जो अपने मस्तकपर धारण करता है ॥ ७४ ॥ वह केवल अन्धकार नाश करने को मानो सूर्यनारायण की मूर्त्ति को धारण किये है हे युधिष्ठिर ! मनुष्य जहा जहां नर्मदा में स्नान करेगा वहा वहां ॥७५॥ अश्वमेधके फल को पावेगा यह शिवजी ने कहाहै नर्मदाका जलपान व स्नान व

दर्शन के ॥ ७६ ॥ बराबर सौ चान्द्रायण होते या नहीं जो मनुष्य प्रातःकाल उठके नर्मदाको कीर्तन करताहै ॥ ७७ ॥ उसका सात जन्मका कियाहुआ पाप उसीक्षण में नष्टहोता है और जहां संगम और बाणलिङ्ग से युक्त नर्मदाजी हैं वहां स्नान करके अश्वमेध के फल और शिवपुरको प्राप्त होताहै ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेरेवाद्वितीयावतारकथनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

राजा युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन् ! पूर्वकालमें राजा हिरण्यतेजा करके मनुष्यलोक में नर्मदादेवी किस प्रकार से उतारीगई सो सब कहनेको आप योग्यहो ॥

प्तजन्मकृतं[illegible] तत्क्षणादेवनश्यति ॥ सङ्गमेनसमायुक्ता नर्मदालिङ्गसङ्गता ॥ हयमेधफलंतत्र स्नात्वाशिवपुरंव्रजेत् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेरेवाद्वितीयावतारकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ हिरण्यतेजसापूर्वं राज्ञावैनर्मदाकथम् ॥ मर्त्येऽवतारितादेवी तत्सर्वंवक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हिरण्यतेजाराजर्षिः सोमवंशेमहीपते ॥ सर्वधर्म्मभृतांश्रेष्ठः प्रजापतिसमोऽभवत् ॥ २ ॥ एकच्छत्रांशशासोर्वीं सशैलवनकाननाम् ॥ ख्याताचन्द्रपुरीतस्यशक्रस्यैवामरावती ॥ ३ ॥ निराबाधाःप्रजास्तत्र भयदारिद्र्यवर्ज्जिताः ॥ चिरायुषोनरास्तत्रसमालक्षन्तुजीविनः ॥ ४ ॥ स्वयंकामदुघाधेनुर्धरणीसस्यशालिनी ॥ कौशेयपट्टवस्त्राश्च वृक्षेवृक्षेसमुद्भवाः ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते ह्यमावास्यांरविग्रहे ॥ सत्कारोत्रास्तिदेवानां पितॄणाञ्चविशेषतः ॥ ६ ॥ वापीकूपसरोदिव्यं जम्बूद्वीपःप्रकीर्तितः ॥ स्रवन्तीनिम्नगाकाचित्तस्मिन्द्वीपेनविद्यते ॥ ७ ॥ गवांशतसहस्राणि हेमरत्नं

१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महीपते ! चन्द्रवंशमें सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ प्रजापति के समान हिरण्यतेजा नामके राजर्षिहुये ॥ २ ॥ पहाड़ और जंगलों के सहित एकही जिसमें छत्र ऐसी पृथिवीकी राज्य करतेथे उनकी राजधानी चन्द्रपुरी नाम से विदित इन्द्र की अमरावती के तुल्य होतीहुई ॥ ३ ॥ बाधासे रहित व भय और दरिद्रसे रहित दीर्घआयु लाखवर्ष जीनेवाली प्रजाहोतीहुई ॥ ४ ॥ अभीष्ट समयमें दुग्ध देनेवाली गौ व सब अन्नोंसे युक्त पृथिवी व हरएक वृक्षमें रेशमी कपडे होतेथे ॥ ५ ॥ एक समयमें अमावास्या को सूर्यग्रहण प्राप्तहोनेपर जिसमें देवता और पितरोंका विशेष सत्कार होताहै ॥ ६ ॥ उस समयमें इस जम्बूद्वीपमें बावली, कूप,

तालाब अनेक थे परन्तु नदी कोई नहीं थी ॥ ७ ॥ राजाजी लाखों गौवें, सुवर्ण, मणि, रत्न, खजाने, घोड़े और मतवाले अगणित श्रेष्ठ हाथी राहु से ग्रसे सूर्य के होनेपर ब्राह्मणों को देतेहुये और अपने पुरोहित को हजारों मोहर और मणियोंको दिया ॥ ८ । ९ ॥ व हे भारत ! हव्य और कव्य से पितरों को भी तृप्त करतेहुये राजा ने देखा कि पितरों को जलपान का बड़ा क्लेशहै ॥ १० ॥ तृषासे गला,तालु और ओंठ सूखते हैं जिनके, मटीलेजल पीनेसे दुःखी, नंगे, मैले कपड़े वाले सैकड़ों और हजारों पितरोंको ॥ ११ ॥ हिरण्यतेजा राजर्षिने देखा तब राजा पितरों से बोले कि भयानकरूपवाले प्रेत से होरहे और भूखेसे तुम कौनहो ॥ १२ ॥

मणींस्तथा ॥ कोशंहयानसंख्यातान्मत्तांश्चवरदन्तिनः ॥ ८ ॥ ग्रस्तेचराहुणासूर्य्ये ब्राह्मणान्प्रददौनृपः ॥ पुरोधसेस हस्राणि हेमरत्नमणींस्तथा ॥ ९ ॥ अतर्प्पयत्पितॄंश्चापि हव्यकव्येनभारत ॥ कश्मलंजलपानञ्चापश्यत्पितृजुगुप्सि तम् ॥ १० ॥ क्षुत्क्षामकण्ठताल्वोष्ठान्कश्मलांश्चमृदम्भसा ॥ नग्नान्मलिनवस्त्रांश्च शतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥ हि रण्यतेजाराजर्षिः पश्यतिस्मतदापितॄन् ॥ हिरण्यतेजाउवाच ॥ केयूयंविकृताकाराः प्रेतभूताबुभुक्षिताः ॥ १२ ॥ म ज्जन्तेनरकेघोरे रौरवेलोमहर्षणे ॥ कथयध्वंयथान्यायं कर्म्मणाकेनपाविताः ॥ १३ ॥ पितरऊचुः ॥ शृणुराजन्म हाभाग कथ्यमानंनिबोधच ॥ सरिद्धीनमिदन्द्वीपं धर्म्मकर्म्मविनाशितम् ॥ १४ ॥ नदेवास्तृप्तिमायान्ति पितरोवाक थञ्चन ॥ पितॄन्मोचयितुंशक्ता दुराराध्यासुरैरपि ॥ १५ ॥ आगमिष्यतिद्वीपेस्मिन् रेवामुक्तिर्भविष्यति ॥ एतत्तेकथि तंराजन्यथेष्टंकर्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ हिरण्यतेजाउवाच ॥ पितॄणांमोक्षणंकार्य्यं यथायान्तिपराङ्गतिम् ॥ मयाराज्येनकिं

रोवां जिससे खड़ेहों ऐसे घोर रौरवनरकमें डूबरहे अपनें को यथार्थ कहो और किस कर्मसे पवित्र होसक्तेहो ॥ १३ ॥ तब पितर बोले कि हे महाभाग,राजन् ! हमारे कहने को आप सुनें और समझें कि यह द्वीप नदियोंसे रहित होनेसे धर्म के कर्मों से भी रहित है ॥ १४ ॥ विना नदीके देवता व पितर किसी तरह तृप्त नहीं हो सक्ते देवताओंसे भी प्रसन्न होना जिसका कठिनहै पितरों के छुटानेमें समर्थ ॥ १५ ॥ नर्मदा जो इस द्वीपमें आवेगी तो मुक्ति होसक्तीहै हे राजन् ! यह आपसे कहा गया अब जैसा उचित हो आप करिये ॥ १६ ॥ तब हिरण्यतेजा बोले कि पितरों का छुटादेना हमारा कार्य्य है जिससे पितर उत्तमगति को प्राप्तहोवें राज्य से हमारा

क्या कार्य है और हमारा जीना भी वृथाहै ॥ १७ ॥ इस प्रकार कहके सिद्धि के देनेवाले उदयपर्वत को राजा चलेगये कन्द, मूल और फलों का आहार करते शिवजी के ध्यानमें तत्पर ॥ १८ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक उग्रतप में स्थित हुये वहां शिवजी ने राजाकी श्रेष्ठभक्तिको निश्चय से जानकरके ॥ १९ ॥ उस समय बैलपर सवार तीन नेत्रवाले देवताओं के देवता महादेवजीने उन राजाको प्रत्यक्ष अपने दर्शन दिये ॥ २० ॥ हे भारत! उस राजाने महादेवजी का ऐसा रूप देखके तीनबार प्रदक्षिणा करके और साष्टाङ्ग प्रणामकरके ॥ २१ ॥ बड़े तेजवाले महादेवजीकी स्तुति किया कि हे देवताओंके ईश्वर! आपके नमस्कार हैं व हे त्रिशूलपाणे!

कार्य्यंजीवितञ्चनिरर्थकम् ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वाययौराजा ह्युदयंसिद्धिपर्वतम् ॥ कन्दमूलफलाहारः शिवध्यानपरायणः ॥ १८ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु उग्रेतपसिसंस्थितः ॥ राज्ञस्तुपरमाम्भक्तिं ज्ञात्वावैतत्रत्र्यम्बकः ॥ १९ ॥ वृषारूढस्त्रिनेत्रश्च देवदेवोमहेश्वरः ॥ प्रत्यक्षन्तस्यराज्ञश्च तदात्मानमदर्शयत् ॥ २० ॥ सदृष्ट्वाताद‍ृशंरूपं देवदेवस्यभारत ॥ त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ २१ ॥ स्तोत्रंचकारदेवस्य शम्भोरमिततेजसः ॥ नमस्तेऽस्तुसुरेशान शूलपाणेनमोस्तुते ॥ २२ ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च वायुराकाशमेवच ॥ शब्दंस्पर्शश्चरूपश्च रसोगन्धश्चपञ्चमः ॥ २३ ॥ बुद्धिर्मनस्त्वहङ्कारः प्रकृतिश्चगुणास्त्रयः ॥ सर्वाध्यक्षःसर्वगोदेवस्सकलोनिष्कलोऽव्ययः ॥ २४ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन क्लेशितोसिमयाप्रभो ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवैश्च तवाद्यन्तंनलभ्यते ॥ २५ ॥ कथन्तुमानुषाःपापाः स्तोतुंशक्ताउमाधवम् ॥ हिरण्यतेजसःस्तोत्रं श्रुत्वादेवोजगत्पतिः ॥ २६ ॥ वरंवृणुमहाभाग यत्तेमनसिरोचते ॥ उवाचवचनंराजा शूलपाणिंमहे

आपके नमस्कार हैं ॥ २२ ॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस व पांचवां गन्ध ॥ २३ ॥ बुद्धि, मन, अहङ्कार, प्रकृति और माया व तीनोंगुण इन सबके अधिष्ठाता आपही हो सब पदार्थोंमें प्राप्त, कलाओ के सहित व कलाओंसे रहित आपहो ॥ २४ ॥ हेप्रभो! जिह्वाकी चञ्चलतासे मैंने आपको क्लेशित किया ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओ से भी आपका आदि अन्त नहीं पायाजाता ॥ २५ ॥ ऐसे पार्वतीजीके पति आपकी स्तुति करनेको पापी मनुष्य कैसे समर्थ होसक्तेहैं हिरण्यतेजा का स्तोत्र सुनके जगत् के पति महादेवजी बोले ॥ २६ ॥ कि हे महाभाग! जो तुम्हारे मनमेंहो वह वर मांगो तब त्रिशूल जिनके हाथमें ऐसे महेश्वर

जीसे राजा वचन बोले ॥ २७ ॥ कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करते हो तो सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदादेवी को दारुण और घोरनरक में डूबते पितरों के लिये उतारो जिससे वे मेरे पितर तृप्तहो छूटें और परमगतिको प्राप्तहों ॥ २८ । २९ ॥ हे उमापते ! इस वरको आपकी प्रसन्नता से हम चाहतेहैं तब महादेवजी बोले कि हे तात ! मांगने के अयोग्यवरको आपने मांगा क्योंकि नर्मदाजी तो ब्रह्मा, विष्णु, देवता और दैत्य ॥ ३० ॥ तथा और भी अल्पजीवी जीवों से नहीं उतारी जासक्ती हैं इससे तुम्हारा कल्याणहो तुम और वरको मांगो उसको मैं इसीसमय तुम्हें देऊंगा ॥ ३१ ॥ तब महाभाग राजा चन्द्रमा

श्वरम् ॥ २७ ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरंदातुंममेच्छसि ॥ सप्तकल्पवहान्देवीं नर्म्मदामवतारय ॥ २८ ॥ पितॄणांमज्जतांघोरे नरकेदारुणेभृशम् ॥ मुच्यन्तेतेयथाप्रेतास्तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ २९ ॥ एवंवरमहंमन्ये त्वत्प्रसादादुमापते ॥ ईश्वरउवाच ॥ अयाच्यंयाचितन्तात ब्रह्मविष्णुसुरासुरैः ॥ ३० ॥ नावतारयितुंशक्या तयान्यैरल्पजीविभिः ॥ अन्यंयाचस्वभद्रन्ते वरंदास्येधुनातव ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ ततोराजामहाभागः प्रोवाचशशिभूषणम् ॥ त्वयितुष्टेमहादेवे लोकनाथेजगद्गुरौ ॥ ३२ ॥ साध्यासाध्यंनवक्तव्यं त्रिषुलोकेषुकिञ्चन ॥ जन्मान्तरसहस्रेण वरंनान्यंवृणोम्यहम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वाचैवसरिच्छ्रेष्ठां नर्म्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ दीयतांममदेवेश भृत्यभृत्योस्मिशाधिमाम् ॥ ३४ ॥ हिरण्यतेजसोज्ञात्वा निश्चयंमानसन्तदा ॥ आहूताचततोदेवी नर्म्मदालोकपावनी ॥ ३५ ॥ मकरासनमारूढा दिव्याभरणभूषिता ॥ श्यामवर्णामहातेजा शिवस्याग्रेव्यवस्थिता ॥ ३६ ॥ उमामहेश्वरौनत्वा पादग्रहणपूर्वकम् ॥ उवाचवच

जिनका भूषण ऐसे शिवजी से बोले कि जगत् के गुरु लोकों के नाथ महादेव आपके प्रसन्न होनेपर ॥ ३२ ॥ तीनोंलोकों में कुछ भी साध्य असाध्य नहीं कहा जासक्ता और हम तो हजारों जन्मों करके दूसरे वरको नहीं मांगते ॥ ३३ ॥ सातकल्पतक रहनेवाली नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा को छोड़के तिससे हे देवेश ! आप मुझे उसे देवें मैं आपके दासोंका दासहूं मुझे आज्ञादीजिये ॥ ३४ ॥ तब हिरण्यतेजा के मनका निश्चय जानके तदनन्तर लोकोंको पवित्र करनेवाली नर्मदादेवी बुलाई गई ॥ ३५ ॥ मगरपर सवार दिव्य आभूषणों से भूषित श्याम जिनका रंग बड़े तेजवाली नर्मदाजी शिवके आगे स्थित होतीहुई ॥ ३६ ॥ चरण स्पर्शपूर्वक महादेव

और पार्वती के नमस्कार करके नर्मदादेवी बोलीं कि हे देव ! मैं किस वास्ते स्मरण कीगईहूं ॥ ३७ ॥ हे देव ! मुझे आप आज्ञा देवें मैं आपकी आज्ञामे स्थितहूं तब महादेवजी बोले कि हे नर्मदे ! राजा हिरण्यतेजा राज्यको छोड़के ॥ ३८ ॥ चौदह हजार वर्षतक घोररूप दारुण तप किया देवताओ की हजारों वर्षतक उग्रतप में स्थितरहे ॥ ३९ ॥ कन्द, मूल और फलोंका आहार करते शिवके ध्यानमें तत्पर रहे तिससे जम्बूद्वीपकी पृथिवी में तुम अवतारको धारणकरो ॥ ४० ॥ हे वरारोहे ! संसारसमुद्र से तारनेवाली तुम शीघ्रही जावो और नरकमें पड़ेहुये प्रेतरूप सब पितरोंको उद्धारकरो ॥ ४१ ॥ जिससे पापोंके समूह से छूटजावें और पापोंसे छूटेहुये

नंदेवी किमर्थंदेवसंस्मृता ॥ ३७ ॥ आदेशंदेवमेदेहि त्वदादेशेस्थिताह्यहम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ हिरण्यतेजान्नृपतिस्त्य क्त्वाराज्यंचनर्मदे ॥ ३८ ॥ चतुर्दशंतपस्तेपे घोररूपंसुदारुणम् ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु उग्रेतपासिसंस्थितः ॥ ३९ ॥ कन्दमूलफलाहारः शिवध्यानपरायणः ॥ जम्बूद्वीपेवतारन्त्वं कुरुष्वधरणीतले ॥ ४० ॥ क्षिप्रंयाहिवरारोहे संसारार्णवतारिणि ॥ प्रेतरूपान्पितॄन्सर्वान्नरकस्थान्समुद्धर ॥ ४१ ॥ मुच्यन्तेयेनचाघौघाद्धूतपापायथेप्सितम् ॥ नर्मदोवाच ॥ महेश्वरंशूलपाणिमेवमस्त्वितिचाब्रवीत् ॥ ४२ ॥ निराधाराकथन्देव जम्बूद्वीपेसमाश्रये ॥ आहूतास्तेततस्तत्र पर्वताश्चकुलाकुलाः ॥ ४३ ॥ क्षणमात्रन्तुतिष्ठध्वं येनयातिसरिद्वरा ॥ ऊचुश्चपर्वतास्तञ्च अशक्ताधारणेवयम् ॥ ४४ ॥ नर्मदोवाच ॥ अशक्तान्धारणेचैनान्प्रपश्यामिजगत्पते ॥ ममतोयौघपातेन कल्लोलप्रवणावृताः ॥४५॥ शतधाभेदमायान्ति गिरयोवज्रदारिताः ॥ तेषांमध्येसमुत्थाय प्राब्रवीदुदयाचलः ॥४६॥ शिवप्रसादसम्पन्नो ह्यहंधा

यथेष्टगति को प्राप्तहोवें तब नर्मदा शूलपाणि महादेवजी से बोलीं कि ऐसाहीहो ॥ ४२ ॥ परंतु हे देव ! निराधार मैं जम्बूद्वीप का किसप्रकार आश्रयण करसक्ती हूं तदनन्तर महादेव करके वहा वे कुलपर्वत बुलायेगये ॥ ४३ ॥ महादेवने पर्वतों से कहा कि तुम लोग क्षणमात्र स्थिर होजावो जिससे नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा पृथिवी को जावे तब पर्वतों ने उन महादेवजी से कहा कि हम धारण करने में अशक्त हैं ॥ ४४ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे जगत्पते ! अपने धारण करने में मैं इनको अशक्त देखतीहूं क्योंकि मेरे जलसमूह के गिरने से कल्लोलों की टक्करों से युक्त ॥ ४५ ॥ मानो वज्रसे फाड़ेहुये पर्वत सैकडो टुकड़े होके फूटेंगे तब उन पर्वतो के मध्यमे से

उठके उदयपर्वत बोला ॥ ४६ ॥ कि महादेवजी के प्रसाद से युक्त मैं धारण करने को समर्थहूं तदनन्तर उदयाचल की चोटीपर अपने चरण को देके नर्मदादेवी बहती हुई ॥ ४७ ॥ आकाश से छूटीं नर्मदादेवी पृथिवीतल में गिरतीहुई फिर वायुके समान वेगवाली होके पश्चिम दिशाको आश्रयण किया ॥ ४८ ॥ जम्बूद्वीपमें सब चराचर लोक बेसमय की पीड़ासे पीडित हुआ व हे भारत ! तीनों लोकोंमें बडा हाहाकार होताहुआ ॥ ४९ ॥ रोयें खड़ेकरनेवाले भयानक कलकलाशब्द को सुनके पाताल से प्रचण्ड तेजवाला लिंग उठताहुआ ॥ ५० ॥ और हुङ्कारही करके नर्मदा से वचन बोला कि हे भद्रे ! हे सब पापोंकी हरनेवाली ! हे सुव्रते ! मर्यादा

रयितुंक्षमः ॥ ततःप्रचलितादेवी दत्त्वापादंनगोपरि॥४७॥ गगनात्प्रच्युतादेवी पपातधरणीतले ॥ वायुवेगापुनर्भूत्वा वारुणीन्दिशमाश्रिता ॥ ४८ ॥ अकालपीडितेलोकेजम्बूद्वीपेचराचरे ॥ हाहाकारोमहानासीत्त्रिषुलोकेषुभारत ॥ ४९ ॥ श्रुत्वाचकलकलाशब्दं भीषणंलोमहर्षणम् ॥ पातालादुत्थितंलिङ्गं ज्वलितंदीप्ततेजसम् ॥ ५० ॥ हुङ्कारेणैवतद्भद्रेनर्म्मदामब्रवीद्वचः ॥ सर्वपापहरेदेवि मर्य्यादांवहसुव्रते॥५१॥त्वद्धारणार्थमीशेननिसृष्टाःपर्वतास्त्रयः ॥ विन्ध्यश्चतुर्थकस्तत्र श्रेष्ठस्सर्वमहीभृताम् ॥ ५२ ॥ मेरुश्चहिमवांस्तत्रकैलासश्चतृतीयकः ॥ तदाभित्त्वात्रिशूलेनकीलितावसुधातले ॥ ५३ ॥ द्वात्रिंशत्तुसहस्राणि प्रवाहःपूर्वपश्चिमे ॥ सहस्रार्द्धञ्चविस्तारंदक्षिणोत्तरमानतः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्तिदेवतास्सर्वाः शङ्खवादित्रनिस्वनैः॥सिद्धाविद्याधरायक्षा गन्धर्वाःकिन्नरानराः॥५५॥आदित्यावसवोरुद्राविश्वेदेवामरुद्गणाः॥ स्तुवन्तिपरया भक्त्या नर्म्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ ५६ ॥ हिरण्यतेजाराजर्षिर्नर्म्मदांचेदमब्रवीत् ॥ अनुग्रहःकृतोदेवि पितॄणान्तारणा

को धारण करो ॥ ५१ ॥ तुम्हारे धारण करने के वास्ते ईश्वर करके तीन पर्वत उत्पन्न कियेगये और वहां सब पर्वतों में श्रेष्ठ चौथा विन्ध्यभी उत्पन्नकियागया ॥५२॥ सुमेरु, हिमवान् और तीसरा कैलास उस समय में त्रिशूलसे फाड़के पृथिवी में इन पर्वतों को कील दिया ॥ ५३ ॥ इनका लम्बान पूर्व पश्चिम बत्तीसहजार और चौड़ान उत्तर दक्षिण पांचसौ काहै ॥५४॥ शङ्ख और बाजों के शब्दोंके साथ सबदेवता नाचते हैं सिद्ध,विद्याधर, यक्ष,गन्धर्व, किन्नर,नर ॥५५॥ आदित्य,वसु,रुद्र, विश्वेदेव,और मरुद्गण, सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदाकी बडीभक्ति से स्तुति करतेहैं ॥५६॥हिरण्यतेजा राजर्षि नर्मदासे यह बोले कि हे देवि ! मेरे पितरोंके तारनेके वास्ते

आपने बड़ाअनुग्रह किया॥ ५७ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे राजन्! तुमसे अधिक दूसरा पृथिवीमें कौनहै जिस बडेतेजवाले दूसरे राजाका ऐसा प्रभावहो॥ ५८॥ हे अनघ ! जिससे हमारे लिये आपने महादेवका तपकिया इससे अपने रनिवास व सम्बन्धियोंके सहित तुम्हारे जे माता व जे पिताके कुलके पुरुषहोंगे ॥ ५९॥ हे नृपते ! वे हमारे प्रभाव से पार्वती व महादेव के पुरको प्राप्तहोंगे तब राजा देवताओंमें श्रेष्ठ नर्मदाके नमस्कार करके कहा कि हे वरानने ! मैं तुम्हारा पुत्रहूं ॥ ६० ॥ और विधिपूर्वक स्नान करके पितर और देवताओंका तर्पण करतेहुये वहां श्राद्ध व पिण्डदान किया ॥ ६१ ॥ सब पितर नरक से निकल के देवयान मार्ग में स्थित होतेहुये कृमि,

यमे ॥ ५७ ॥ उवाचकल्पगाराजंस्त्वत्तोन्यःकोनुवैभुवि ॥ प्रभावईदृशोयस्य राज्ञश्चामिततेजसः ॥ ५८ ॥ तपस्तप्त्वा महेशस्य ममार्थंत्वंयतोऽनघ॥ मातृकाःपैतृकायेये सान्तःपुरपरिग्रहाः ॥ ५९ ॥ ममप्रभावान्नृपते उमामाहेश्वरंपुरम् ॥ नमस्कृत्यसुरश्रेष्ठां पुत्रोहन्तेवरानने ॥ ६० ॥ स्नानंकृत्वाचविधिवत्पितॄन्देवांश्चतर्प्पयन् ॥ श्राद्धंपिण्डप्रदानञ्च तत्रसर्वमकल्पयत्॥६१॥नरकादुद्धृतास्सर्वे देवयानपथेस्थिताः ॥ कृमिकीटपतङ्गाश्च पक्षिणश्चाण्डजाश्चये ॥ ६२ ॥ भूतग्रामस्समग्रश्च रेजेविद्याधरेपुरे ॥ एतत्तेकथितंराजन्नादिसर्गावकल्पनम् ॥ ६३ ॥ कीर्तितानिमयारेवावताराणिविशाम्पते ॥ आगतायेनमार्गेण लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ६४ ॥ एषोऽवतारःप्रथम आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ द्वितीयस्तुतथा स्कन्द दक्षसावर्णिकेन्तरे ॥ ६५ ॥ तृतीयःपुरूरवसा तथावैष्णवकेन्तरे ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथादृष्टम्पुरातनम् ॥ ६६ ॥ स्नानावगाहनात्पानात्स्मरणात्कीर्तनादपि॥अनेकभाविकंघोरमघंनश्यतितत्क्षणात ॥ ६७ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कै

कीट, पतङ्ग, पक्षी और जे अण्डज॥६२॥व सबप्राणियोंका समूह ये विद्याधरोंके पुरमें शोभित होतेहुये हे राजन्! आदिसर्गमें नर्मदाका अवतरण यह आपसेकहा ॥ ६३ ॥ हे विशाम्पते ! ये नर्मदा के अवतार मैंने कहे लोकोंके ऊपर अनुग्रह की कामना करके जिस प्रकार नर्मदा आई ॥ ६४ ॥ यह पहला अवतार आदिकल्प के सत्ययुग में हुआ हे स्कन्द ! वैसेही दूसरा अवतार दक्षसावर्णि मनुके अन्तर में हुआ ॥६५॥ तीसरा अवतार पुरूरवा राजाकरके वैष्णव मनुके अन्तर में करायागया हे राजन् ! यह पुराना वृत्तान्त जैसा देखागया तैसा आपसे कहागया ॥ ६६ ॥ स्नान, तैरना, जलपान, स्मरण और नामकीर्त्तन से अनेकजन्मों का घोरपाप उसीक्षण नष्ट

होताहै ॥ ६७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे सुव्रत,मार्कण्डेयजी ! कैलास,हिमवान् और सुमेरु ये तीनों पर्वत नर्मदा के तटमें किस प्रयोजन से स्थापित कियेगये ॥ ६८ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि मार्गको छोडके बहनेवाली नर्मदा के धारण करने को विन्ध्याचल नहीं समर्थ हुआ तब अपने जलके प्रवाह से पृथिवीतलको डुबा ॥६९॥
वरके बहतीहुई नर्मदा को देखके लोकके कल्याण करनेवाले शङ्करजीने त्रिशूलसे पृथिवी फाड़के तीनों पर्वत कील दिये ॥ ७० ॥ इसी अन्तरमें वैदूर्य्य पर्वतमें नर्मदा
प्राप्तहुई हे अनघ ! यह सब वृत्तान्त संक्षेप से मुझ करके कहागया ॥ ७१ ॥ हे भारत ! इसीप्रकारसे और भी जो २ कुछ तुम इच्छा करते हो वह हम कहेंगे ॥७२॥

कैलासोहिमवान्मेरुः केनकार्य्येणसुव्रत ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य निक्षिप्ताःपर्वतास्त्रयः॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उन्मा
र्गगामिनींरेवां विन्ध्योवैधर्तुमक्षमः ॥ आपगातोयपूरेण प्लावितंजगतीतलम् ॥ ६९ ॥ कृत्वाव्रजन्तीन्दृष्ट्वावै शङ्क
रोलोकशङ्करः ॥भित्त्वाभूमिन्त्रिशूलेन कीलिताःपर्वतास्त्रयः ॥ ७० ॥ अत्रान्तरेचवैदूर्य्यगिरौवैपर्य्यकल्पत ॥ एत
त्सर्वंसमासेन शंसितंचमयानघ ॥ ७१ ॥ कथयिष्येतथैवान्यद्यद्यदिच्छसिभारत ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाख
ण्डेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ राज्ञावतारितारेवा कथंवैपुरुकुत्सुना ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ १ ॥ मार्कण्डेय
उवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यां पुरास्कन्दस्यकीर्तिताम् ॥ तत्तेहंकथयिष्यामि शिवेनोक्तंश्रुतंमया ॥ २ ॥ क्षत्रियस्य
कुलोत्पन्नः पुरुकुत्सुर्महायशाः ॥ तेनवर्षसहस्रंवै पूर्वमाराधितोहरः ॥ ३ ॥ तपसाचभवेनोक्तं कस्त्वयाप्रार्थितोवरः ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! राजा पुरुकुत्सु करके नर्मदा किसप्रकार उतारीगई वह सब हम आपसे सुनने की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ मार्कण्डे-
यजी बोले कि हे राजन् ! पूर्वकाल में स्कन्दजी की कही हुई दिव्यकथा को सुनो महादेव के कहेहुये अपने सुने उस सब वृत्तान्त को हम आपसे कहेंगे ॥ २ ॥
क्षत्रियकुलमें उत्पन्न बड़े यशस्वी पुरुकुत्सु नामक राजाहुये उन करके हजारवर्ष पर्यन्त महादेवजी आराधन कियेगये ॥ ३ ॥ तपस्यासे प्रसन्न महादेव करके कहागया

कि तुम जिस वरको चाहतेहो वह वर हम तुमको देतेहैं जिससे तुम सुखीहोवो ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहेगये राजाने कहा कि हम आपकी आज्ञा से मांगतेहैं हे देव ! जो मेरे लिये आप प्रसन्नहो तो मैं अपने कामको कहूं ॥ ५ ॥ नर्मदा नामसे प्रसिद्ध बडेभाग्यवाली नदी है हे शम्भो ! उस दिव्यरूपवाली कुमारी नदीको आप उतारें ॥ ६ ॥ राजाके उस वचन को सुनके महादेव विस्मय को प्राप्तहुये और कहा कि हे स्कन्दजी ! बहुत कालतक कष्टितहुये महात्मा क्षत्रियकरके देवताओं को भी असाध्य और प्रार्थनाके अयोग्य वर मांगागया अपने अभिप्राय को जिसने कहदिया उस राजर्षि से फिर हमने कहा कि और दूसरे किसी साध्य वर को तुम मांगो ॥ ७ । ८ ॥

ददामितेवरंह्येतद्येनत्वंसुखमेधसे ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तदाराजाप्रार्थयेहन्तवाज्ञया ॥ यदितुष्टोसिमेदेव कार्य्यंतत्कथयाम्य हम् ॥ ५ ॥ आस्तेनदीमहाभागा नर्मदानामविश्रुता ॥ अवतारयतांशम्भो कुमारींदिव्यरूपिणीम् ॥ ६ ॥ तस्यतद्वच नंश्रुत्वा शम्भुर्विस्मयमागतः ॥ सुचिरंक्लिश्यमानेन क्षत्रियेणमहात्मना ॥ ७ ॥ अप्रार्थ्यंप्रार्थितंस्कन्द दुःसाध्यन्त्रि दशैरपि ॥ उक्ताशयःसराजर्षिःसाध्यंकिञ्चिन्निषेवय ॥ ८ ॥ ममवाक्यन्तुतच्छ्रुत्वा क्षत्रियस्तुसविह्वलः ॥ अपततसमहा भागो मूर्च्छितोधरणीतले ॥ ९ ॥ आश्वासितोमयातत्र स्वस्थोभवविशाम्पते ॥ मर्त्यलोकेसरिच्छ्रेष्ठां नर्म्मदामवतार ये ॥ १० ॥ तस्यास्त्वागमनंश्रुत्वा त्रस्तादेवास्सवासवाः ॥ कःशक्नुयादिमम्भारं सोढुंवेगञ्चनार्म्मदम् ॥ ११ ॥ धरणी भारभूताच नष्टाभ्रष्टाश्चपर्वताः ॥ अशक्तास्तोयवर्षस्य धारणेसरितस्तथा ॥ १२ ॥ अस्तिसिद्धोमहापुण्यः पर्य्यङ्कोना मपर्वतः ॥ ससहेतमहाभारं वोढुंवेगञ्चनार्म्मदम् ॥ १३ ॥ सर्वेदेवागतास्तत्र प्रार्थितुन्तंनगोत्तमम् ॥ दृष्टास्तुपर्वतेन्द्रेण

हमारे इस वचनको सुनके वह महाभाग क्षत्रिय विह्वल व मूर्च्छित होके पृथिवी में गिरपड़ा ॥ ९ ॥ उस समय में हम करके राजाका आश्वास कियागया और कहा कि हे विशाम्पते ! तुम स्वस्थ होवो हम नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाको मनुष्यलोकमें उतारतेहैं ॥ १० ॥ उस नदीका आगमन सुनके इन्द्रसहित सब देवता डरगये क्यों कि नर्मदा के इस भार व वेगके सहने के लिये कौन समर्थ है ॥ ११ ॥ भारसे दबीहुई पृथिवी नष्ट होजायगी व पर्वत भ्रष्ट होजायँगे और नदियां जलवृष्टि के धारण मे अशक्त होजायँगी ॥ १२ ॥ सिद्ध और महापवित्र पर्यङ्क नामक पर्वत है वह नर्मदाके भार व वेगको सहसक्ता है ॥ १३ ॥ तब सब देवता उस उत्तम पर्वत की

प्रार्थना करने को जातेहुये पर्वतराजसे पूंछेभी गये कि आपलोग किस कार्य के निमित्त आये हैं ॥ १४ ॥ देवता बोले कि इक्ष्वाकुवंश में पैदाहुआ पुरुकुत्सु राजाहै उस करके पवित्र नर्मदा नामकी नदी उतारीगई है ॥ १५ ॥ उसका तेज, शब्द, भार, गिरना और वेग धारण करने को हे पर्वतों में उत्तम ! तुमको छोड़के कोई पर्वत समर्थ नहीं हैं ॥ १६ ॥ पर्यङ्क बोला कि महादेवी नर्मदा आवे मैं धारण करूंगा कोई संशय नहीं आतीहुई महापवित्र नदीको अभी धारण करताहूं ॥ १७ ॥ राजा और सब देवताओं के सहित बड़ेवेगसे नर्मदादेवी चलीं और उस पर्यङ्क पर्वतही की चोटियों में होके पूर्वकाल में राजा पृथुने अश्वमेध से यजन कियाथा ॥ १८।१९ ॥

केनकार्य्येणचागताः ॥ १४ ॥ देवाऊचुः ॥ इक्ष्वाकुवंशसम्भूतः पुरुकुत्सुर्नराधिपः ॥ तेनावतारितापुण्या नदीना म्नातुनर्म्मदा ॥ १५ ॥ तेजःशब्दश्चभारश्च तस्याःपातंरयन्तथा ॥ असमर्थानगावोढुन्त्वामृतेगिरिसत्तम ॥ १६ ॥ प र्य्यङ्कउवाच ॥ आगच्छतुमहादेवी धारयामिनसंशयः ॥ आगच्छन्तींमहापुण्यां धारयामिचसाम्प्रतम् ॥ १७ ॥ च लितानर्म्मदाशीघ्रं वेगेनसमुपस्थिता ॥ कृत्वातस्योत्तमाङ्गेषु पर्य्यङ्कस्यैवभूभृतः ॥ १८ ॥ राज्ञातुसहितादेवी त्रिदशैर पिसंयुता ॥ वैन्येनतुपुराचेष्टमश्वमेधेनभूभुजा ॥ १९ ॥ मखस्थानेचवैन्यस्य वेणुस्तम्बोमहानभूत् ॥ यंदृष्ट्वाविस्म यंप्राप्तास्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ २० ॥ वेणोस्तस्यैवमूलात्तु निर्गतासामहानदी ॥ कृताञ्जलिपुटादेवास्स्थिताःसर्वत्रसं स्थिताः ॥ २१ ॥ जयशब्दंप्रकुर्वन्तस्त्रिदशाब्रह्मवादिनः ॥ गणगन्धर्वयक्षाश्च मरुतश्चतथाश्विनौ ॥ २२ ॥ पिशाचा राक्षसानागा ऋषयश्चतपोधनाः ॥ सर्वेपाद्येनचार्घ्येण भीतास्तेकिङ्कराइव ॥ २३ ॥ पाद्योपसंग्रहंकृत्वा नर्म्मदांशर

उनके यज्ञस्थान में बड़ा बासों का झुंड जमाथा जिसको देखके इन्द्रसहित सब देवता विस्मयको प्राप्तहुये ॥ २० ॥ उसी बांस के बेंटके जड़से महानदी नर्मदाजी निकलीं वहांपर सब देवता हाथजोड़ेहुये स्थितहुये ॥ २१ ॥ वेद पढ़नेवाले देवता जयशब्द को करते थे व गण, गन्धर्व, यक्ष, मरुत् तथा अश्विनीकुमार ॥ २२ ॥ पिशाच,राक्षस,नाग और तपोधन ऋषि डरेहुये सेवकोंके तुल्य सबलोग अर्घ और पाद्यसे ॥ २३ ॥ पूजन करके नर्मदाकी शरण को प्राप्तहुये और कहा कि आज हम

लोगोंका जन्म सफल है और आज हमारा तप सफलहै ॥ २४ ॥ हे देवि ! यहां तुम्हारे दर्शन से सब देवता कृतार्थ हुये हम उसीको पुरुष मानते हैं जिसकरके यह नर्मदानदी उतारीगई ॥ २५ ॥ सब देवता कहते हैं कि मनुष्यलोक श्रेष्ठ होगया व ऋषि और देवताओं ने कहा कि हे नर्मदे ! अपने हाथसे तुम देवताओंको छुवो पाप जिनके नष्ट होगये ऐसे सब देवता जिससे पवित्रताको प्राप्त होवें तब नर्मदाने कहा कि हम देवगणोंको नहीं स्पर्श करैंगी ॥ २६ । २७ ॥ हम अबतक कुमारी हैं हमारा पति नहीं है बड़ाकष्ट है चिन्तासे देवता विह्वल होगये ॥ २८ ॥ तुम्हारे तुल्य रूपयुक्त उत्तमवर कहासे मिलसक्ता है जिस करके तुम लोकमें दिखाईगईहो

पुण्यता: ॥ अद्यनःसफलंजन्म तपोद्यसफलञ्चनः॥ २४ ॥ कृतार्थादेवताःसर्वा देवित्वद्दर्शनादिह ॥ तमेवपुरुषंमन्ये ये नैषाह्यवतारिता ॥ २५ ॥ वदन्तिदेवतास्सर्वा मर्त्यलोकःपरंगतः ॥ ऋषिभिर्दैवतैःप्रोक्ता स्पृशहस्तेनदेवताः ॥ २६ ॥ ये नपूतत्वमायान्ति नर्म्मदेनष्टकिल्बिषाः ॥ नर्म्मदातुवदत्येवं नस्पृशामिसुरान्गणान् ॥ २७ ॥ कुमारीह्यहमद्यापि म मभर्तानविद्यते ॥ अहोकष्टन्तुदेवाश्च चिन्तयाविह्वलीकृताः ॥ २८ ॥ त्वत्तुल्योरूपसम्पन्नः कुतःप्राप्योवरोत्तमः ॥ ये नत्वंदर्शितालोके सतेभर्ताभविष्यति ॥ २९ ॥ ब्रह्मणस्तुपुराशापात्समुद्रःपुरुकुत्सुकः ॥ गतोमर्त्येमहाबाहुरिक्ष्वा कुकुलनन्दनः ॥ ३० ॥ पुरुकुत्सुर्वरस्तेस्तु क्षत्रियोदेवसन्निभः ॥ उद्वाहितातदातेन क्षत्रियेणातुनर्म्मदा ॥ ३१ ॥ उवाच वचनंदेवान्नर्म्मदासप्तकल्पगा ॥ देवत्वमीदृशंयस्य प्रजाधर्मेव्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥ किमन्यत्तस्यवाच्यंस्यात्पुरुकु त्सोर्महात्मनः ॥ स्वयम्भुवोयथापुत्रो मानसःपरिकीर्तितः ॥ ३३ ॥ पुरुकुत्सुस्तथाचायं सर्वधर्म्मपरायणः ॥ उवाचव

वही तुम्हारा पति होगा ॥ २९ ॥ पूर्वकाल में ब्रह्माके शापसे समुद्र मनुष्यलोकमें प्राप्तहो महाबाहु इक्ष्वाकुकुलको आनन्द करनेवाला पुरुकुत्सु राजाहुआ ॥३०॥ देवताओं के तुल्य पुरुकुत्सु क्षत्रिय तुम्हारा वरहो तब उस क्षत्रिय करके नर्मदा विवाही गई ॥ ३१ ॥ सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा देवताओं से वचन बोली कि जिसका इस प्रकारका देवता होनाहै, जिसकी प्रजा धर्ममें स्थितहैं ॥ ३२ ॥ उस महात्मा पुरुकुत्सु को और कुछ क्या कहना है ब्रह्माका जैसे मानस पुत्र कहाजाता

है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार सब धर्ममें तत्पर ये पुरुकुत्सु भी हैं राजा पुरुकुत्सुभी नर्मदा से बचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे नर्मदे ! तुम देवताओं की कन्याहो आप मुझपर प्रसन्नहोवो हमारे पितर स्वर्गको जावें और हमारा बड़ायशहो ॥ ३५ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे राजेन्द्र ! ऐसाहीहो हमसे जो २ तुम इच्छा करतेहो वह सब आपका हमारे प्रसाद से होगा ॥ ३६ ॥ यह कह करके उस समय उस पर्यंक पर्वतसे निकलीहुई नदियों में श्रेष्ठ नर्मदादेवी पश्चिम दिशाको चलीगई ॥ ३७ ॥ समस्त पृथिवी, पर्वत और शिखरों को विदारण करके धनुष से छूटे बाणके तुल्य वेगसे नर्मदाजी जातीहुई ॥ ३८ ॥ वज्रसे मारेहुये के तुल्य उन सबको चूर्णकरके विन्ध्या-

चनेराजा पुरुकुत्सुश्चनर्म्मदाम् ॥ ३४ ॥ नर्म्मदेदेवकन्यात्वंप्रसादःक्रियतांमयि ॥ यान्तुमेपितरःस्वर्गं ममचास्तुमहद्य शः ॥ ३५ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्र मत्तस्त्वंयद्यदिच्छसि ॥ तत्सर्वंभवतश्चाद्य मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥३६॥ एवमुक्त्वाययौदेवी वारुणीञ्चदिशान्तदा ॥ निष्क्रान्तापर्वतात्तस्मात्पर्य्यङ्कात्सरितांवरा ॥ ३७ ॥ यातिवेगात्तथादे वी धनुर्मुक्तःशरोयथा ॥ विदार्य्यमेदिनींसर्वां पर्वताञ्छिखराणिच ॥ ३८ ॥ चूर्णयित्वाचतान्सर्वान्वज्राशनिहतानि व ॥यत्रयत्रगताविन्ध्ये तत्रतत्रावगाह्यते ॥३९॥ तत्रगङ्गासहस्रस्यफलंस्यात्तीर्थवर्जिते॥ तदास्तुतामहादेवीनर्म्मदालो कपावनी ॥ ४० ॥ ऋषिभिर्वैदिकैःसर्वैस्सुखसन्तानकारिका ॥ वेदाधर्म्मस्यमूलानि स्मृतिःपुष्पफलानिच ॥ ४१ ॥ भक्ष यन्तिद्विजाःपुण्या अग्निहोत्रपरायणाः ॥ सेवन्तेनर्म्मदान्तेपि स्वर्गसोपानपद्धतिम् ॥ ४२ ॥ यत्रयत्रगतास्कन्द तत्रत त्रैवदुर्लभा ॥ दर्शनेनर्म्मदायास्तु अग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ ४३ ॥ येतुसंस्नान्तिसेवन्तेनर्म्मदामप्यकामतः ॥ फलंबहु

चलमें जहां २ नर्मदाजी गई वहां २ स्नान कियाजाताहै ॥ ३९ ॥ वहां तीर्थरहित स्थानमेंभी स्नानकरने से हजार गंगास्नान का फल होता है तब वेदके पढ़नेवाले समस्त ऋषियों करके लोकोंको पवित्र करनेवाली सुख और सन्तानकी करनेवाली महादेवी नर्मदा स्तुति कीगई धर्मवृक्ष की जड़ वेदहैं और स्मृति फूल व फल है ॥ ४०।४१ ॥ अग्निहोत्रमें तत्पर पवित्र जे ब्राह्मण धर्मके फलोंको भोगतेहैं स्वर्गकी सीढ़ी नर्मदा को वे भी सेवते हैं ॥४२॥ हे स्कन्दजी ! जहां २ नर्मदाजी गई वहां २ दुर्लभही हैं नर्मदाके दर्शनमें अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ जे मनुष्य नर्मदाको स्नान व निष्काम सेवन करते हैं वे भी बहुत सुवर्णदान के फलको

पावेंगे ॥ ४४ ॥ जहां२ शुभ शिवजीके स्थानमें पवित्र नर्मदा विद्यमानहैं वहां लाख गङ्गास्नानके समान फल होताहै ॥ ४५ ॥ अग्निहोत्रसे जो पुण्यहै और पितरोंके श्राद्धमे जो फलहै वह सबै उसको नर्मदाके जलसे प्राप्तहोता है ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण लोग जो कुछ वैदिककर्म सदा किया करते हैं वही शुद्धि नर्मदा के तट में होती है इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जहां नर्मदा का संगम है वहां शिवक्षेत्रहै वह स्थान तो लाखगंगा से विशेष है ॥ ४८ ॥ नर्मदा के नामका लेना और तीर्थ के संगम में दानदेना हे राजन् ! इसके बराबर कुछ नहीं है यह हम सत्य कहते हैं ॥ ४९ ॥ जे बुद्धिमान् प्रातःकाल उठके नर्मदा को स्मरण करते हैं

सुवर्णस्य तेपिप्राप्स्यन्तिमानवाः ॥ ४४ ॥ यत्रयत्रगतापुण्या शिवस्यायतनेशुभे ॥ गङ्गास्नानस्यलक्षेण तत्रस्नानं समम्भवेत ॥ ४५ ॥ अग्निहोत्रेणयत्पुण्यंपितृश्राद्धेणयत्फलम् ॥ सर्वंसम्पद्यतेतस्य नर्म्मदायाजलेनतु ॥ ४६ ॥ यत्कि ञ्चिद्वैदिकंकर्म्मब्राह्मणाःकुर्वतेसदा ॥ नर्म्मदायास्तटेशुद्धिर्नात्रकार्य्याविचारणा ॥ ४७ ॥ नर्म्मदासङ्गमोयत्र शिवक्षे त्रंविनिर्दिशेत ॥ गङ्गायालक्षमात्रेण तत्स्थानन्तुविशिष्यते ॥ ४८ ॥ कीर्तनंनर्म्मदायास्तु दानंतीर्थस्यसङ्गमे ॥ नतेन सदृशंराजन्सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४९ ॥ नर्म्मदांप्रातरुत्थाय येस्मरन्तिविचक्षणाः ॥ पूर्वजन्मकृतंपाप[illegible]कञ्च विनश्यति ॥ ५० ॥ नर्म्मदांमानवःकश्चित्तत्रयत्रावगाहते ॥ शतजन्मार्जितपापं तत्क्षणान्नश्यतिध्रुवम् ॥ ५१ ॥ नर्म्म दायास्तटेचैव प्राणांस्त्यजतिमानवः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ५२ ॥ येप्यधर्म्मपराधीना नर्मदा यांकथञ्चन ॥ तेपिरुद्रत्वमायान्ति सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ५३ ॥ प्रायश्चित्तानिदीयन्ते यत्ररेवानविद्यते ॥ रेवातोयेतु

उनका पूर्वजन्म और इस जन्मका कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै ॥ ५० ॥ जो कोई मनुष्य चाहे जहां नर्मदास्नान करता है उसके हजारों जन्मका जमा किया पाप उसीक्षण निश्चय नष्ट होता है ॥ ५१ ॥ और नर्मदा के तट में जो मनुष्य प्राणों को त्यागता है वह हजारों कोटि कल्पतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ ५२ ॥ जे मनुष्य अधर्मही करते हैं परन्तु किसीतरह नर्मदा में मरे तो वे भी महादेवही के भावको प्राप्त होतेहैं यह हम सत्य कहते हैं ॥ ५३ ॥ जहा नर्मदा नहीं है वहां प्राय-

श्चित्त कियेजातेहैं व नर्मदाजल के प्राप्त होनेपर तो प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५४ ॥ महापवित्र सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदाको भक्तिकरके जो निरन्तर स्मरण करता है वह शिवही कहागया है ॥ ५५ ॥ वहांपर बांसोंकी जड़में स्थित वैण्येश्वरदेवको पापों के नाश करनेवाले स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले जानो ॥ ५६ ॥ विन्ध्यही के मानसपुत्र आठ पर्वत कहेगये हैं जिनमें पहला सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ पर्यंक जानने योग्यहै ॥ ५७ ॥ असिताङ्ग, वराङ्ग, पावक, जातवेदा, कदम्ब, सुरनायक, वैसेही और भी जे पर्वतहैं ॥ ५८ ॥ वे धर्म कर्म में तत्पर उन महात्माओं करके पूजन कियेजाते उदयसे अस्ततक पश्चिम दिशाको चलेगये हैं ॥ ५९ ॥ उस नर्मदा की डेढ़सौ

संप्राप्ते प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ५४ ॥ नर्म्मदाञ्चमहापुण्यां सप्तकल्पाधिवासिनीम् ॥ सततंयःस्मरेद्भक्त्या सशिवःपरिकीर्तितः ॥ ५५ ॥ तत्रवैण्येश्वरंदेवं वेणुमूलेव्यवस्थितम् ॥ स्वर्गदम्मोक्षदंविद्धि लोकानांपापनाशनम् ॥ ५६ ॥ विन्ध्यस्यैवतथाचाष्टौ मानसाःपरिकीर्तिताः ॥ पर्य्यङ्कःप्रथमोज्ञेयः श्रेष्ठःसर्वमहीभृताम् ॥ ५७ ॥ असिताङ्गोवराङ्गश्च तथान्येचापिपर्वताः ॥ पावकोजातवेदाश्च कदम्बःसुरनायकः ॥ ५८ ॥ अर्चितास्तैर्महाभागैर्धर्म्मकर्म्मपरायणैः ॥ उद्गमाद्विनिर्गमयावत्प्रतीचींदिशमास्थिताः ॥ ५९ ॥ सार्द्धमेकशतन्तस्याः प्रवाहाःपरिकीर्तिताः ॥ क्रोशार्द्धस्यत्रिभागञ्च विस्तारःपरिकीर्तितः ॥ ६० ॥ शिवस्यवर्ततेचात्र ब्रह्मविष्णुविडौजसाम् ॥ कोटिभिस्त्रिदशानान्तु कान्याधर्तुंप्रशक्यते ॥ ६१ ॥ आत्मानमात्मनामातु बभारपरमेश्वरी ॥ त्रिदशानांहितार्थाय मानवानाञ्चभारत ॥ ६२ ॥ लक्षयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपंप्रचक्षते ॥ द्विगुणःपरिवेषस्तु लवणोदस्तुभारत ॥ ६३ ॥ सहस्रयोजनंविद्धि कन्याद्वीपञ्चभारत ॥ त

धारायें कहीगई हैं और [illegible] का विस्तार कहागया है ॥ ६० ॥ शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और तेंतीस करोड़ देवताओं को और कौन धारण करसक्ती है ॥ ६१ ॥ हे भारत ! देवता और मनुष्यों के हितके लिये उस नर्मदा परमेश्वरी ने आपही से आपको धारण किया ॥ ६२ ॥ हे भारत ! एकलाख योजनका जिसका प्रमाण ऐसा जम्बूद्वीप को कहते हैं उससे दूना [illegible] का समुद्र है ॥ ६३ ॥ हे भारत ! एक हजारयोजन का कन्याद्वीप जानो वह द्वीप पांचसौ योजनतक गम्य (जानेके योग्य)

स्याःपञ्चशतीगम्या त्वगम्याचतथापरा ॥ ६४ ॥ शुभाशुभफलञ्चात्र पुण्यपापविभागयोः ॥ प्रथमंमानुषोभूत्वा दे-त्वमुपपद्यते ॥ ६५ ॥ क्षीणेपुण्येपुनर्याति मानुषत्वंपृथक्पृथक् ॥ कर्म्मभूमिमिमांविद्धि विद्धितंतवभारत ॥ ६६ ॥ धर्म्मेणकर्म्मणास्वर्गस्स्यादेवसुकृतेकृते ॥ नद्याःप्रवाहेभूभागे कल्पगायाव्यवस्थितिः ॥ ६७॥लोकानान्तारणार्थाय अवतीर्णासरिद्वरा ॥ अत्रस्वर्गश्चमोक्षश्च नर्म्मदातीरमाश्रितौ ॥ ६८ ॥ एतत्तेकथितं राजन्यथादृष्टंसुरोत्तमैः ॥ ६९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदायाश्चतुर्थावतारेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ मुनेमेकलकन्याया अवतारःश्रुतोमया ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामि तीर्थानियथाक्रमम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ वत्सगुल्मात्समारभ्य यावद्वैभृगुकच्छकः ॥ २ ॥ तन्मान्तरेपितीर्थानां संख्याकेनतुशक्यते ॥ तथापितेप्रवक्ष्यामियथादृष्टंविशाम्पते ॥ ३ ॥ नर्म्मदासौम्यभागेतु अनन्तपुर

है बाकी रहा सो अगम्यहै ॥ ६४ ॥ इसमें पुण्य और पापके हिसाबसे शुभ और अशुभ फल होताहै प्रथम मनुष्य होके फिर देवभावको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥ पुण्यके क्षीण होने पर फिर मनुष्यभावको प्राप्त होताहै हे भारत ! इसको तुम कर्मभूमि जानो वह पृथक् २ तुम्हारा जानाही है ॥ ६६ ॥ धर्मरूप कर्म से सुकृत करनेपर स्वर्ग होताही है इसी नदीप्रवाहवाले कर्मभूमि के हिस्सेमें कल्पोंतक रहनेवाली नर्मदा की स्थितिहै ॥ ६७ ॥ लोकों के तारने के वास्ते नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदाने अवतार लिया स्वर्ग और मोक्ष इसी नर्मदाके तटके आश्रितहैं ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! जैसा कुछ देवताओं करके देखागया वह आपसे मैंने कहा ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदाचतुर्थावतारेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुने ! मेकलकन्या (नर्मदा) का अवतार मैंने सुना अब इस समयमें तीर्थों को क्रमसे सुनने की इच्छा करताहूं ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! हम कहते हैं आप सुनो वत्सगुल्मस्थानसे लेके जहांतक भृगुकच्छ है ॥ २ ॥ इसके बीचमें जो तीर्थहैं उनकी संख्या किससे कीजासक्ती है तथापि हे विशाम्पते ! जैसा देखाहै वैसा आपसे कहेंगे ॥ ३ ॥ नर्मदाके उत्तर तरफ नाशरहित अनन्तपुर है और सब पापोंका हरनेवाला बड़ा अनन्त-

सिद्धिलिङ्ग है ॥ ४ ॥ वैश्रवण, कौबेर, धनद, मणिभद्र, और यज्ञनाम के तीर्थहैं नर्मदातीर्थ के प्रभावसे ॥ ५ ॥ मोक्ष और सब कामनाओं के देनेवाले व पवित्र व सबलोकों के वास्ते स्थित हैं यहां सब देवता हैं जिनमें ऐसे पवित्र ऋषियों के आश्रमहैं ॥ ६ ॥ सावर्णि, कौशिक, अघमर्षणमुनि, शाकल्य, कुशाकर्णि, शरभङ्ग, अग्निगर्भ ॥ ७ ॥ ये व और भी तारीफ करनेलायक व्रत करनेवाले बहुत से मुनि तपकरके इसतीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गको गये ॥ ८ ॥ निषादयोनिको प्राप्त ऋषियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी इस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्मतेजवाले शरीर को धारण करतेहुये ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकु, कुवलयाश्व, दिलीप, नहुष, बेणु, राजा ययाति, अजपाल और

मव्ययम् ॥ अनन्तासिद्धिलिङ्गञ्च सर्वपापहरंपरम् ॥ ४ ॥ तीर्थंवैश्रवणंनाम कौबेरन्धनदन्तथा ॥ मणिभद्रंतथायज्ञं तत्तीर्थस्यप्रभावतः ॥ ५ ॥ मोक्षदंकामदंपुण्यं सर्वलोकव्यवस्थितम् ॥ ऋषीणामाश्रमंपुण्यं सर्वदेवमयंशुभम् ॥ ६ ॥ सावर्णिःकौशिकश्चैव मुनिश्चैवाघमर्षणः ॥ शाकल्यश्चकुशाकर्णिः शरभङ्गोग्निगर्भगः ॥ ७ ॥ एतेचान्येचबहवो मुनयःशंसितव्रताः ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्तपस्तप्त्वादिवङ्गताः ॥ ८ ॥ वाल्मीकिर्ऋषिवर्योवै नैषादींयोनिमाश्रितः ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थस्य ब्रह्मतेजोवपुर्धरः ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकुःकुवलयाश्वो दिलीपोनहुषस्तथा ॥ वेणुर्ययातीराजाच अजपालस्महैहयः ॥ १० ॥ एतेचान्येचराजानो ह्यनन्तपुरवासिनः ॥ अत्रान्तरेमहेशानं मेकलातीरमाश्रितम् ॥ ११ ॥ तमभ्यर्च्यविधानेन सर्वेतेत्रिदिवङ्गताः ॥ अखिलैरन्यतीर्थैश्च चिरकालफलप्रदैः ॥ १२ ॥ अत्रास्तेस्वर्गदःश्रीमान्स्वयंदेवोमहेश्वरः ॥ तीर्थंसप्तऋषिंनाम सप्तसारस्वतंनृप ॥ १३ ॥ अमर्त्यसम्भवंलिङ्गन्तथैवारण्यकेश्वरम् ॥ अघौघनाशनंतीर्थं तथान्यत्कल्मषापहम् ॥ १४ ॥ पञ्चब्रह्ममयन्तीर्थं सहस्रशिरसंहरम् ॥ वाराहंवामनंतीर्थं यमतीर्थंमहोत्कट

हैहय ॥ १० ॥ ये व और भी अनन्तपुरके रहनेवाले वे सब राजा इसीस्थान में नर्मदातट में विद्यमान उन महादेवजी को विधान से पूजन करके स्वर्गको जातेहुये और सब तीर्थ बहुकाल में फल देते हैं ॥ ११ । १२ ॥ हे नृप ! यहां स्वर्गके देनेवाले श्रीमान् महादेव आपही विद्यमान हैं सप्तऋषि नामका तीर्थ, सप्तसारस्वत ॥ १३ ॥ अमर्त्यसम्भवलिंग, इसीप्रकार आरण्यकेश्वर, अघौघनाशन तीर्थ वैसेही कल्मषापहतीर्थ ॥ १४ ॥ पञ्चब्रह्ममयतीर्थ, सहस्रशिरा, हरतीर्थ, वाराह, वामनतीर्थ

महाउत्कट यमतीर्थ ॥ १५ ॥ सौरभङ्ग, सहस्राश्वमेध, महामख, हिरण्यगर्भ, सावित्र, चातुर्वेद और पावन ॥ १६ ॥ ये सब तीर्थलोकों को पवित्र करनेवाले हैं यह जानो इसीप्रकारपर्यंक पर्वतसे, पश्चिम अनन्तपुरतक शुभक्षेत्र है ॥ १७ ॥ इसके बीचमें दान और धर्मसे रहित भी जे मनुष्य मरे वेभी जबतक चौदहो इन्द्र रहेंगे तबतक स्वर्ग में पूजित होतेहैं ॥ १८ ॥ तिसके अनन्तर सबसे उत्तम द्वीपेश्वर नामका व्यासजीका तीर्थहै वहां स्नानकरके मनुष्य अश्वमेध के फलको पाता है ॥ १९ ॥ तदनन्तर कामिकतीर्थ है ऐसातीर्थ न हुआहै न होगा हे भारत ! जो व्यासतीर्थकी प्रदक्षिणा करताहै ॥ २० ॥ उस करके मानो सातो द्वीपवालीपृथिवी

म् ॥ १५ ॥ सौरभङ्गंसहस्रन्तु अश्वमेधंमहामखम् ॥ हिरण्यगर्भंसावित्र्यं चातुर्वेदंचपावनम् ॥ १६ ॥ एतत्सर्वंविजा
नीहि लोकानांपावनंपरम् ॥ तथानन्तपुरंयावत्पर्य्यङ्कात्पश्चिमेशुभम् ॥ १७ ॥ अत्रान्तरेमृतायेच दानधर्म्मविवर्जिज
ताः ॥ तेपिस्वर्गेमहीयन्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १८ ॥ ततोद्वीपेश्वरंनाम व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वालभते ह
यमेधफलंनरः ॥ १९ ॥ कामिकंतत्परंतीर्थं नभूतंनभविष्यति॥प्रदक्षिणाञ्चयःकुर्य्याद्व्यासतीर्थस्यभारत ॥ २० ॥ प्रद
क्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा॥ नरोवायदिवानारी शिवलोकेमहीयते ॥ २१ ॥ द्वीपेश्वरेततस्स्नात्वा वृषभंयःप्रय
च्छति ॥ काञ्चनेनविमानेन रुद्रलोकेमहीयते ॥ २२ ॥ कार्त्तिकस्यचतुर्दश्यां कृष्णपक्षेजितेन्द्रियः ॥ स्नापयेद्यःशि
वंतत्र ह्युपवासपरायणः ॥ २३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ व्यासतीर्थन्तुवैगत्वा सर्वेब्रह्मादयःसुराः॥२४॥
स्तुवन्तिभावितात्मानं ऋषयश्चतपोधनाः ॥ येचान्येसिद्धगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसाः ॥ २५ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य मो

प्रदक्षिणा कीगई नर हो या नारीहो वह शिवलोक में पूजित होताहै ॥ २१ ॥ तदनन्तर द्वीपेश्वर में स्नान करके जो वृषभका दानकर्त्ता है वह सुवर्ण के विमानकरके रुद्रलोक में जाताहै ॥ २२ ॥ जो मनुष्य उपवास में तत्पर इन्द्रियों को जीतेहुये कार्त्तिककृष्णकी चतुर्दशी में वहां शिवजी को स्नान कराता है ॥ २३ ॥ सब पापों से छूटाहुआ वह मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है ब्रह्माआदि सब देवता और तपोधन ऋषि व्यासतीर्थ को जाके आत्मज्ञानी शङ्करजी की स्तुति करतेहैं औरभी जो

सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, और राक्षस ॥ २४ । २५ ॥ पापों से रहित नर्मदाके तटमें रह करके आनन्द भोगते हैं व मंगल शब्दों से युक्त अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुतिभी करते है ॥ २६ ॥ सो कहतेहैं कि जिसके अद्भुतशक्तिहै जिसके समान शक्तिवाला दूसरा वीर नहींहै वह देव चाहे जिसको उच्चकरे और चाहे जिसको नीच करे जो देवताओं मे श्रेष्ठ चन्द्रशेखर भूतोंका भी पतिहोके श्रेष्ठ देवताओंसे पूजित होताहै ॥ २७ ॥ क्षीरसमुद्रके मन्थनसे पैदाहुये विषको महादेव को छोंड़के किसने कण्ठमें धारण किया इसको क्या ब्रह्मा व और देवता व विष्णुजीने नहीं देखा ॥ २८ ॥ जिन महादेव करके एक बाणसे त्रिपुर भस्म करदियागया और मस्तक

दन्तेगतकल्मषाः ॥ स्तुवन्तिविविधैःस्तोत्रैर्माङ्गल्यस्तुतिसंस्कृतैः ॥ २६ ॥ यस्यास्तिशक्तिरसशक्तिरिहप्रवीरः प्रोर्ध्वां करोतुयदिवावनतिंकरोतु ॥ यःपूजितःसुरवरःशशिशेखरेण नाराधितःसपदिभूतपतिःसुरैर्वा ॥२७॥ किंवानदृष्टंहिपिता महेन नवासुरैर्वामधुसूदनेन ॥ क्षीरोदमन्थोद्भवकालकूटं कण्ठेधृतंकेनहरंविहाय ॥ २८ ॥ एकेनदग्धंत्रिपुरंशरेण का मोललाटाक्षिनिरीक्षणेन ॥ भिन्नोऽन्धकःशूलवरेणयेन कस्तेनसार्द्धंकुरुतेविरोधम् ॥ २९ ॥ जलौघकल्लोलतरङ्गभङ्गा गङ्गाधृतायेनजटाग्रभागे ॥ पादाम्बुजाङ्गुष्ठनिपीडनेन पपातलङ्काधिपतिर्विसंज्ञः ॥ ३० ॥ सुरासुराणामिहयत्समक्षं विध्वंसितोदक्षमखःक्षणेन ॥ प्रणम्यदक्षःक्षयकारकस्य लेभेवरंतारकमारकस्य ॥ ३१ ॥ सर्वस्यपूज्यंहिवरोत्तमाङ्गं स म्पूज्यतेलिङ्गवरंहरस्य ॥ अनेनपर्य्याप्तमतीवमूढः प्राप्तुंपदंयच्छतियत्करोति॥३२॥ ब्रह्मात्रवृद्धोहरिरत्रलिङ्गं सुरासुरा

में टिके नेत्रके देखने से कामदेव और त्रिशूल से अन्धकासुर विदारण कियागया उन महादेव के साथ कौन विरोध करसक्ता है ॥ २९ ॥ जलके समूह के कल्लोल व तरंगों का लय जिनमें होरहा ऐसी गंगाजी जिन महादेव करके जटाओं के अगिलेभाग में धारण कीगई और जिनके चरणकमल के अँगूठे की दाबसे लङ्का-धिपति (रावण) बेहोश होके गिरताहुआ ॥ ३० ॥ जिन महादेव करके देवता और दैत्योंके प्रत्यक्ष क्षणमात्र में दक्षका यज्ञ विध्वंसकर दियागया तत्पश्चात् प्र-लयके करनेवाले और तारकासुर के मारनेवाले महादेव को प्रणामकरके दक्षवरको भी प्राप्तहुये ॥ ३१ ॥ और सबका शिरही पूजन कियाजाता है परन्तु महादेव का लिंगही पूजाजाता है इसीसे सब पूर्णहै अत्यन्त मूढ़भी जिसपद प्राप्तिकी इच्छा करताहै लिंगपूजनसे उसीपदको प्राप्तहोताहै ॥ ३२ ॥ यद्यपि वृद्ध ब्रह्माजी,विष्णु,

देवता और दैत्य सब लिंगहीको पूजते हैं तथापि लोग इस विचार को कियाकरते हैं कि महादेव से अधिक व उनके बराबर कौन देवता है ॥ ३३ ॥ जिन्हीं महादेव करके चक्रदेके विष्णु चक्राङ्क कियेगये और कमलासन की पदवीदे के ब्रह्मा सरोरुहाङ्क कियेगये और लिंग व भगके चिह्नसे युक्त सब जगत् जिन्हीका है तब भी विचार करते है सो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि हाथमें बँधेहुये नयेकङ्कण को मूर्खलोग आरसीसे देखते हैं ॥ ३४ ॥ पुण्यका देनेवाला सब पापोंका नाश करने वाला पवित्र महादेवका स्तोत्र महात्मा व्यास करके कियागया ॥ ३५ ॥ अर्घ और पाद्यकरके विधिपूर्वक पूजनकर मधुर वचनबोले कि हे देव! मेरे ऊपर आप प्रस-

श्चैवममर्चयन्ति ॥ तथापिनूनंसुविचारयन्तिकोवाधिकोवास्तिसमोहरेण ॥ ३३ ॥ तेनैवचक्राङ्कसरोरुहाङ्कौ लिङ्गाङ्कितंयस्यजगद्भगाङ्कम् ॥ हस्तेप्रबद्धेनवकङ्कणेवै पश्यन्तिमूढाःखलुदर्प्पणेन ॥ ३४ ॥ पुण्यंपवित्रंस्तवनं व्यासेनोक्तंमहात्मना ॥ कृतन्देवाधिनाथस्य सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ३५ ॥ प्रतिपूज्ययथान्यायमर्घपाद्यैरनुक्रमात् ॥ उवाचमधुरंवाक्यं प्रसादःक्रियतांमयि ॥ ३६ ॥ देयन्तस्यफलंदेवयःपुमाञ्छ्रद्धयार्चति ॥ इतिस्तुत्वामहेशानं ऋषयःशंसितव्रताः ॥ ३७ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले प्रयातास्तेयथातथम् ॥ अन्येचऋषयोदेवा द्वैपायनमथाब्रुवन् ॥ ३८ ॥ आश्रमस्तेमहाभाग वायसैराकुलीकृतः ॥ यथानवायसाःकेपि प्रविशन्तितपोवनम् ॥ ३९ ॥ म्रियन्तेतेसदासर्वे मूर्द्धातेषांविशीर्य्यते ॥ व्यासेन शप्तास्तेसर्वे वायसामहतोभयात् ॥ ४० ॥ तस्मिंस्तीर्थेमहाराज प्रविशन्तिनकर्हिचित् ॥ ऋषयोवचनंश्रुत्वा व्यासस्यतुमहात्मनः ॥ ४१ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले सर्वमेवकृतंक्षणात् ॥ तिष्ठन्तिमुनयस्सर्वे देवस्याराधनेरताः ॥ ४२ ॥ आरा

न्नताकरैं ॥ ३६ ॥ हे देव ! जो श्रद्धासे आपका पूजन करै उसको आप फल देवैं इसप्रकार महात्माऋषि महादेवजी की स्तुतिकरके ॥ ३७ ॥ नर्मदा के दक्षिण तटमें यथेष्ट चलेजातेहुये तदनन्तर और ऋषि न देवता व्यास से बोले ॥ ३८ ॥ कि हे महाभाग ! आपका आश्रम कौवों करके व्याप्त रहता है इससे कौवा जिसतरह तपोवनमें न प्रवेश करैं सो करो ॥ ३९ ॥ तब व्यासने कहदिया कि वे सब कौवा मरजायँगे और उनका शिर फटजायगा जो इस आश्रम में आवेंगे व्यासकरके शापित होगये सब कौवा बड़ेभयसे ॥ ४० ॥ उसतीर्थमें कभी प्रवेश नहीं करते ऋषिलोग महात्मा व्यासका वचन सुनके ॥ ४१ ॥ नर्मदाके दक्षिणतटमें व्यासजी

के आराधनमें तत्पर सब मुनिलोग रहतेहैं ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक महादेवका आराधन करके व्यासके कियेहुये यस्यास्तिशक्तिः इत्यादि स्तोत्रसे स्तुति करतेहुये ॥ ४३ ॥ भक्तिसे व्यासकरके कियेहुये देवताओं के ईश्वर महादेव के स्तोत्रको प्रातःकाल जो कोई प्रयत्न से पाठकर्त्ता व स्मरण करता है वह समय पर महादेव का गण होताहै ॥ ४४ ॥ पवित्र इस व्यासाष्टक को जो महादेव के समीप पाठकर्त्ता है उस पर व्यास और नर्मदा प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार महात्मा व्यासजी करके स्तुति कियेगये महादेव व्यासपर प्रसन्नहोके इस वचन को बोले ॥ ४६ ॥ कि हे विप्र! ठहरेहुये हम क्या करें तुम अपने अभीष्टवर को मागो प्रसन्नहुये हम तुमको

ध्यविधिनादेवमस्तुवन्परमेश्वरम् ॥ यस्यास्तिशक्तिरित्यादिव्यासस्तुतिपरायणाः ॥ ४३ ॥ स्तोत्रन्तदेतत्त्रिदशेश्वर स्य व्यासेनभक्त्याकृतमीश्वरस्य ॥ प्रातःपठेद्यस्स्मरतिप्रयत्नात्कालेसजातोनुचरोहरस्य ॥ ४४ ॥ व्यासाष्टकमिद म्पुण्यं यःपठेच्छिवसन्निधौ ॥ व्यासस्तस्यभवेत्प्रीतो नर्म्मदाचप्रसीदति ॥ ४५ ॥ एवंस्तुतोमहादेवो व्यासेनतुमहा त्मना ॥ शिवोव्यासस्यसन्तुष्ट इदंवचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ किङ्करोमिस्थितोविप्र वरंब्रूहियथेप्सितम् ॥ वरंददामितेप्री तो येनत्वंसुखमेधसे ॥ ४७ ॥ व्यासउवाच ॥ नर्मदादक्षिणेकूले तिष्ठत्वञ्चोत्तरेशिव ॥ आश्रमास्तेभविष्यन्ति सर्वेपु ण्यतमास्स्मृताः ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वाततोव्यासं तत्रैवान्तरधीयत ॥ व्यासोपिचात्रवत्स्यामि दक्षिणंनर्म्मदेव्रज॥४९॥ ततश्चदण्डकाष्ठेन चालयामासनर्म्मदाम् ॥ नर्म्मदाचाब्रवीद्वाक्यं पूर्वमार्गेणसागता ॥ ५० ॥ ततोव्यासस्तुसंक्रुद्धो यु गान्ताग्निरिवाभवत् ॥ व्यासस्तुकुपितोराजन्सन्तीर्णोद्विजसत्तमः ॥ ५१ ॥ हुङ्कारिताचसादेवी नागतातत्रनर्म्मदा ॥

वरदेते हैं जिससे तुम सुखीहोवो ॥ ४७ ॥ तब व्यासजी बोले कि हे शिव ! आप नर्मदाके दक्षिण और उत्तरतटमें स्थितहोवो ये सब आपके पवित्र आश्रम होजावेंगे ॥ ४८ ॥ महादेवजी व्याससे ऐसाहीहो इसप्रकार कहकर वहीं अन्तर्द्धान होजातेहुये व्यासभी नर्मदासे कहा कि हे नर्मदे ! हम यहां बसेंगे तुम दक्षिणको हटजावो ॥ ४९ ॥ तदनन्तर काष्ठके दण्डसे नर्मदा को चलातेहुये पूर्वमार्ग से आईहुई नर्मदा वचन बोली ॥ ५० ॥ तब क्रोधको प्राप्तहुये व्यास महाप्रलय के अग्नि के समान होतेहुये हे राजन् ! ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ व्यास क्रुद्धहोके नर्मदा उतरगये ॥ ५१ ॥ हुङ्कार शब्दकरके नर्मदादेवी बुलाई भी गई परन्तु वहां नहीं आई और व्याससे कहा कि

हे विप्र ! कोपवाले आपकरके हम कभी प्रलयको नहीं प्राप्तहोसक्ती हैं ॥ ५२ क्योंकि सातकल्प के क्षयहोने परभी हम मृत्यु को नहीं प्राप्तहुई तब व्यासजी चलेगये नर्मदाभी दक्षिणमें जातीहुई ॥ ५३ ॥ वह महानदी नर्मदा व्याससे डरीहुई नहीं रुकी उत्तरके तटमें सब मुनिलोग स्थितहुये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उत्तमव्रत के करने वाले मुनिलोग प्रसन्नमन होतेहुये व्यास तथा और मुनिश्रेष्ठों करके श्राद्ध किया गया ॥ ५५ ॥ हे नृप ! जिससे पितर बारहवर्षतक तृप्तहोतेहुये ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

नाहंकोपवताविप्र प्रलयंयामिकर्हिचित् ॥ ५२ ॥ सप्तकल्पक्षयेवृत्ते नमृतास्मीतिनर्म्मदा ॥ ततोद्विजस्तुसंजातो दक्षिणेनततोगता ॥ ५३ ॥ नवारिताचसानेन व्यासभीतामहानदी ॥ उत्तरेमुनयस्सर्वे कूलेतिष्ठन्त्यनेकशः ॥ ५४ ॥ ततस्तेहृष्टमनसो मुनयःशंसितव्रताः ॥ व्यासेनचार्जितंश्राद्धं तथान्यैर्मुनिपुङ्गवैः ॥ ५५ ॥ पितरोद्वादशाब्दानि तर्प्पितास्तेनराधिप ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्मदामाहात्म्येषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अन्यत्तीर्थंमहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ अश्वमेधसमुद्भूता नदीयत्रवराङ्गना ॥ १ ॥ स्नात्वाचसङ्गमेयत्र हयमेधफलंलभेत् ॥ व्याधिभिर्मुच्यतेयत्र नारीवायदिवानरः ॥ २ ॥ श्राद्धंतत्रप्रकुर्वन्तः पितॄणांप्रीतिवर्द्धनम् ॥ त्रिपुर्य्यांपूर्वभागेतु दिशियाम्यांशिवस्स्थितः ॥ ३ ॥ अनुग्रहार्थंलोकानां शैवक्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥ पञ्चाशीतिः कुरुक्षेत्रे पञ्चाशीतिरिहात्रतु ॥ ४ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे समानंकीर्तितंसुरैः ॥ श्राद्धेत्रीणिचलक्षाणि पुराणेकीर्तितानि

मार्कण्डेयजी बोले कि और भी सब पापोंका नाश करनेवाला महापवित्र तीर्थहैजहां अश्वमेध से उत्पन्नहुई श्रेष्ठनदी है ॥ १ ॥ जिस सङ्गम में स्नानकरके स्त्री या पुरुष अश्वमेधके फलको पाताहै और रोगोंसे छूट जाताहै ॥२॥ वहां पितरोंकी प्रीतिकेबढ़ानेवाले श्राद्धको करतेहैं त्रिपुरीके पूर्वभागमें दक्षिणके तरफ लोकोंपर दयाकरनेके वास्ते शिवजी स्थितहैं उसको विद्वान् शैवक्षेत्र जानतेहैं पचासी तीर्थ कुरुक्षेत्रमें और पचासी यहाभीहैं ॥३।४॥ सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्र और यह तीर्थ देवताओंकरके बराबर

कहा गयाहै और श्राद्धमे तीनलाख तीर्थ पुराणोंमें कहेगयेहैं ॥ ५ ॥ हे नृपसत्तम ! वे सब यहां स्थितहैं जहां देवताओं के स्वामी मधुदैत्यके मारनेवाले माधवजी रहते हैं ॥ ६ ॥ व हजार जिनके शिर और उत्पलावर्त जिनका नाम ऐसे विष्णु और महादेव ये दोनों और तीसरी नर्मदाहैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस नर्मदाका इन्द्रादिक देवताओं से क्या वर्णन होसक्ताहै हे महाराज ! उसमें स्नान करके फिर जन्म नहीं होताहै ॥ ८ ॥ व पापयोनि मे नहीं प्रवेश करता और यमलोक को नहीं देखता है और महादेव के पूजन से गणपति के स्थानको प्राप्तहोता है ॥ ९ ॥ जहां शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले प्रकटहुये हरिभगवान् ब्रह्मा और इन्द्रादि

वै ॥ ५ ॥ तीर्थानांतानितत्रैव तिष्ठन्तिनृपसत्तम ॥ यत्रतिष्ठतिदेवेशो माधवोमधुसूदनः ॥ ६ ॥ उत्पलावर्तनामाच सहस्रमस्तकोहरिः ॥ हरश्चद्विविधावेतौ तृतीयाचैवनर्म्मदा ॥ ७ ॥ तस्याःकिंवर्ण्यतेराजन्देवैरपिसवासवैः ॥ तत्रस्नात्वामहाराज सम्भवोनपुनर्भवेत् ॥ ८ ॥ पापयोनिश्चनविशेद्यमलोकंनपश्यति ॥ अर्चनाद्देवदेवस्य गाणपत्यमवाप्यते ॥ ९ ॥ उत्पन्नोहिहरिर्यत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ उपास्यतेसुरैःसर्वैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ॥ १० ॥ क्रोशमात्रंहरिक्षेत्रं कथंशोचन्तिमानवाः ॥ अत्रान्तरेमृतायेच कृमिकीटपतङ्गमाः ॥ ११ ॥ तेपियान्तिहरेर्लोकं किंपुनर्वैष्णवान्नृप ॥ अवशःस्ववशोपिस्यात्प्राणत्यागंकरोतियः ॥ १२ ॥ दशवर्षसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डदानेनभारत ॥ १३ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ एकादश्यांनिराहारो गन्धपुष्पैस्समर्चयेत् ॥ १४ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ द्वादश्यांपञ्चगव्यन्तु हविष्यान्नेनपारणम् ॥ १५ ॥ भक्त्यातुभोजयेद्विप्रा

सब देवताओं करके उपासना किये जाते हैं ॥ १० ॥ एककोसही भर का विष्णुजी का क्षेत्र है मनुष्य क्यों शोच करते हैं क्योंकि इसके बीच में कीड़े व पतङ्गतक जो मरते हैं ॥ ११ ॥ वे भी विष्णुलोक को प्राप्तहोते हैं हे नृप ! फिर वैष्णव तो क्या किन्तु परवश या अपने वशभी हो जो प्राणत्याग करता है ॥ १२ ॥ वह दश हजार वर्षतक विद्याधरों के पुर में राजा होता है और तिलोदक के देने से व पिण्डों के देनेसे हे भारत ! ॥ १३ ॥ उस दाताके पितर तृप्तहोतेहैं और तृप्त हुये परम गतिको प्राप्तहोते हैं व जो एकादशी को निराहार होकर सुगन्धित फूलोंसे पूजनकरे ॥ १४ ॥ और रात्रिमें जागरण करके दियाली जलावे द्वादशी को पञ्च-

न्सहस्रंचसदक्षिणान् ॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवाय ॥ इमंमन्त्रंजपन्यस्तु शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १६ ॥ नतस्यपुनरा
धानं जन्मचैवयुधिष्ठिर ॥ अनेकभाविकंघोरं तूलराशिमिवानलः ॥ १७ ॥ तत्क्षणाद्दहतेकृत्स्नमेधांसीवहुताशनः ॥
कल्पकल्पानुगौदेवौ नारायणमहेश्वरौ ॥ १८ ॥ दक्षिणान्दिशमास्थाय रेवातीरेऽव्यवस्थितौ॥अर्चितौतौचदेवेशौसुरा
सुरगणैस्तथा ॥ १९ ॥ सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैःकिन्नरैर्नरैः ॥ स्थाणुःपुण्यजलावर्ते ह्यवतारःपुराकृतः ॥ २० ॥ अनु
ग्रहायलोकानां देवानांहितकाम्यया ॥ ननादसुमहानादं घोररूपंभयानकम् ॥ २१ ॥ पिनाकिनाचशूलेन भित्त्वाचैव
रसातलम् ॥ समानीताचसावित्री स्वर्गसोपानपद्धतिः ॥ २२ ॥ मानवाःक्षीणपापाश्च तथायान्तिपराङ्गतिम् ॥ अज्ञा
नतमसाध्वस्ता नावरोहन्तियेजनाः ॥ २३ ॥ आत्मानंनावमन्यन्ते पापोपहतचेतसः ॥ कल्पगांयेनसेवन्ते तेषांजन्म

गव्य और हविष्यान्न से पारणकरे ॥ १५ ॥ और भक्तिसे दक्षिणा सहित हजार ब्राह्मणों को भोजन करावे और सावधान व पवित्रहोके " ॐनमोभगवतेवासुदे-
वाय" इस मन्त्रको जो जपता है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसका फिर गर्भाधान व जन्म नहीं होता व अनेक जन्मोंका घोरपाप भस्म होजाता है जैसे अग्नि रुई के
ढेर को जलाता है ॥ १७ ॥ जैसे अग्नि सम्पूर्ण काष्ठों को उसीक्षण जलाता है इसी प्रकार इस तीर्थ का पुण्य उसीक्षण सब पापोंको भस्म करताहै अनेक कल्प
तक रहनेवाले देवनारायण और महादेव ॥ १८ ॥ दक्षिण दिशाके आश्रित होकर नर्मदा के तटमें स्थितहैं वे दोनों देवेश देवता और दैत्योंके गण वैसेही सिद्ध,
विद्याधर,यक्ष, गन्धर्व किन्नर, और नरोंकरके पूजन कियेजातेहैं लोकोंपर दयाकरनेके वास्ते और देवताओं के हितकी कामनाकरके पवित्रजल के भ्रमर में महादेवजी
ने पूर्वकाल में अवतार को धारण किया घोररूप भयानक बड़ेशब्द को करतेहुये ॥ १९ । २० । २१ ॥ महादेव करके त्रिशूल से रसातल को फाड़कर स्वर्गकी सीढ़ी
सावित्री लाईगई ॥ २२ ॥ पाप जिनके क्षीण होगये ऐसे मनुष्य जिस सावित्री करके परमगति को प्राप्त होतेहैं व जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नान नही करते वे अज्ञा-
नरूप अन्धकार से नष्ट है ॥ २३ ॥ व पापोंसे चित्त जिनका भ्रष्ट है वे आत्मा को नहीं मानते व कल्पपर्यन्त रहनेवाली नर्मदा का जो सेवन नहीं करते उनका जन्म

निष्फलहै ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसी स्थानमें आपही से प्रकटहुये महात्मा महादेवजी के अट्ठाईस लिंग पूजन के वास्ते विद्यमान हैं ॥ २५ ॥ वे कौनहैं कि स्थानेश्वर, महादेव,शूलपाणि वैसेही अपर सप्तेश्वर, कल्पेश, हिरण्य, जातवेदा ॥ २६ ॥ प्राजापत्य, सिद्धनाथ, शशांकनयन, अनुकेश, वैसेही स्कन्द,आश्विन तथा तैजस॥२७॥ ब्रह्मेश्वर, अग्निगर्भ, श्रीकण्ठ, उमापति, नीलकण्ठ,खट्वाङ्ग,महाकाल, घटेश्वर॥२८॥ त्रिलोचन, त्र्यम्बक, देवदेव और महेश्वर हे भारत ! ये व औरभी यहां सिद्ध-लिंगहै ॥ २९ ॥ जैसे अनङ्गलिङ्ग, रतिकी प्रीतिसे युक्त कामदेवलिंग और सिद्धमन्वन्तरलिंगहैं व जहां अनंगत्रयोदशी ॥ ३० ॥ तथा हे नृप ! वहाही रम्भा तृतीया और

निरर्थकम् ॥२४॥ अष्टाविंशतिरत्रैवलिङ्गानान्तुस्वयम्भुवाम् ॥ पूजनेसंस्थिताराजञ्छिवस्यचमहात्मनः ॥ २५ ॥ स्थानेश्वरंमहादेवं शूलपाणिन्तथापरम् ॥ सप्तेश्वरंचकल्पेशं हिरण्यंजातवेदसम् ॥ २६ ॥ प्राजापत्यंसिद्धनाथं शशाङ्कनयनंतथा ॥ अनुकेशंतथास्कन्दमाश्विनन्तैजसंतथा ॥ २७ ॥ ब्रह्मेश्वरंचाग्निगर्भं श्रीकण्ठञ्चउमापतिम् ॥ नीलकण्ठञ्चखट्वाङ्गं महाकालंघटेश्वरम् ॥ २८ ॥ त्रिलोचनंत्र्यम्बकञ्च देवदेवंमहेश्वरम् ॥ एतान्यन्यानिचैवेह सिद्धलिङ्गानिभारत ॥ २९ ॥ अनङ्गंकामदेवञ्च रतिप्रीतिसमन्वितम् ॥ सिद्धमन्वन्तरंचैव यत्राऽनङ्गत्रयोदशी ॥ ३० ॥ रम्भातृतीयातत्रैव तथाकृष्णाष्टमीनृप ॥ विद्याधरीचतत्रैव उर्वशीचतिलोत्तमा ॥ ३१ ॥ अहल्यामेनकाचैव तथान्याश्चवराङ्गनाः ॥ दाक्षायणीचानुमती चम्पकासम्भरायणी ॥ ३२ ॥ एताश्चान्याश्चतत्रैव बह्व्यःसिद्धाविशाम्पते ॥ केशवस्यपुरीरम्या पुण्यापापहरानृप ॥ ३३ ॥ सुरासुराणांसर्वेषां दानवानाञ्चभारत ॥ स्वर्गमार्गप्रदादेवी तथाहरिहरात्मिका ॥ ३४ ॥ एतत्तेकीर्तितंराजन् यथादृष्टंपुरातनम् ॥ स्नानावमाहनात्पानाच्छ्रवणात्कीर्तनादपि ॥ ३५ ॥ अनेकभा

कृष्णाष्टमी और वहाही विद्याधरी,उर्वशी,तिलोत्तमा ॥३१॥ अहल्या,मेनका तथा और भी उत्तम स्त्रियां जैसे दाक्षायणी, अनुमती,चम्पका और सम्भरायणी ॥३२॥ ये व और भी बहुतसी स्त्रियां हे विशाम्पते ! वहांही सिद्धहुईहैं व हे नृप ! पापोंकी हरनेवाली व पवित्र व रमणीय केशवजीकी पुरी है ॥३३॥ देवता, दैत्य और सब दानवोंको स्वर्गमार्गकी देनेवाली देवी हे भारत! हरिहररूपही है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह पुराना वृत्तान्त जैसा देखागया वैसा कहागया स्नान,तैरने,जलपान करने, सुनने और

कहने से भी ॥ ३५ ॥अनेक जन्मोंका घोरपाप उसीक्षण नष्ट होताहै तदनन्तर हे महाभाग ! वहां सब पापोंका हरनेवाला नर्मदाके उत्तर तटमें श्रेष्ठ कपिलातीर्थहै हे राजन् ! इन्द्रियोंको जीतेहुये स्त्री या पुरुष वहां स्नानकरके ॥ ३६।३७ ॥ देवता और पितरोंका तर्पण करके तीनों ऋणोंसे छूटजाता है व ब्राह्मणों को भोजन करवाके परमगति को प्राप्तहोता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेव्यासतीर्थमहिमवर्णनोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि इसके अनन्तर और तीनोंलोक में विदित त्रिपुरीनामसे प्रसिद्ध परमतीर्थ नर्मदाके उत्तरतटमें है ॥ १ ॥ जिसमें हे भारत ! सवालाखतीर्थ

विकंघोरमघंनश्यतितत्क्षणात् ॥ ततस्तस्मिन्महाभाग कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ रेवायाउत्तरेकूले सर्वपापहरंपरम् ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्नारीवापिजितेन्द्रिया ॥ ३७ ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवान्मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातु लभतेपरमाङ्गतिम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेव्यासतीर्थमहिमवर्णनोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ त्रिपुरीनामविख्यातं रेवायाउत्तरेतटे ॥ १ ॥ सपादलक्षतीर्थानि यत्रतिष्ठन्तिभारत ॥ शतमष्टोत्तरंतत्र लिङ्गानान्तुस्वयम्भुवाम् ॥ २ ॥ त्रिपुरःपातितोराजन्देवदेवेनशूलिना ॥ स्तोतव्यंकिंपरन्तत्र सुरासुरनिषेवितम् ॥ ३ ॥ लोकानुग्रहकन्देवं स्वयंविद्धिमहेश्वरम् ॥ गोकर्णनामविख्यातम्भोगदम्मोक्षदायकम् ॥ ४ ॥ कीर्तनाद्देवदेवस्य स्नपनेनार्चनेनच ॥ तोयेननर्म्मदायास्तु ब्रह्महत्याप्रणश्यति॥५॥ गन्धधूपप्रदीपैश्च तथाविभवविस्तरैः ॥ अपिवर्षसहस्रेण पुण्यसंख्यानज्ञायते ॥ ६ ॥ यदातदाशिवेदानं तस्यसंख्या

रहते हैं और वहा एकसौ आठ आपसे प्रकटहुये शिवजीके लिंगहैं ॥२॥ हे राजन् !त्रिशूल को धारण किये देवताओं के भी देवता महादेव करके त्रिपुरासुर यहां गिरायागया देवता और दैत्योंकरके सेवित यह तीर्थ इससे अधिक और क्या प्रशंसनीय है ॥ ३ ॥ लोकोंपर दया करनेवाले भोग और मोक्षके देनेवाले गोकर्णनाम से विदितको साक्षात् महादेवही जानो ॥ ४ ॥ यहां महादेवके नामलेने,स्नानकराने और नर्मदाके जलसे पूजन करनेसे ब्रह्महत्या नष्ट होतीहै ॥ ५ ॥ चन्दन,धूप,दीप और विभवानुसार पूजन के विस्तारो करके जो पुण्य होताहै उसकी गणना हजारवर्ष करके भी नहीं होसक्ती ॥ ६ ॥ जब कभी शिव के निमित्त दान किया जावे

उसकी संख्या नहीं है हे राजन् ! धन्य वे मनुष्यहैं जो स्नान करके शिवको देखते हैं ॥ ७ ॥ हे नृप ! जो मनुष्य त्रिपुरी में बास करता है वह कैलास में रहता है जो अपनी इच्छा से व विना इच्छा त्रिपुरी में प्राणों का त्याग करताहै ॥८॥ वह हंसो से युक्त और क्षुद्रघण्टिकाओं के शब्द से युक्त, विमान करके और धारण कियेहुये प्रकाशमान सुवर्ण के छाते करके ॥ ९ ॥ और झल्लरी बाजा, नृत्य, गान और उत्सवों से युक्त देवता और दैत्यों करके देखा जाता हुआ सब आभूषणों से भूषित ॥ १० ॥ जब तक इच्छा करता है तब तक महादेवजी के स्थान में बहुत भोगों को व इसीप्रकार और भी जो विषय मनुष्यों करके कामना किये जाते हैं उनको

अकामात्का नविद्यते॥ धन्यास्तेमानवाराजन्स्नात्वापश्यन्तियेहरम् ॥७॥ कैलासेसवसेन्मर्त्यस्त्रिपुर्य्यांयोवसेन्नृप ॥ अकामात्कामतोवापि प्राणत्यागंकरोतियः ॥ ८ ॥ हंसयुक्तविमानेन किङ्किणीरवशालिना ॥ छत्रेणध्रियमाणेन सौवर्णेनविराजता ॥ ९ ॥ झल्लरीतूर्य्यवाद्येन नृत्यगीतोत्सवेनच॥ सुरासुरैर्वीक्ष्यमाणस्सर्वालङ्कारभूषितः॥१०॥ भुङ्क्तेतुविपुलान्भोगान् यावदिच्छन्महेश्वरे॥ एवमेवापिचान्यानि यानिकाम्यानिमानुषैः ॥ ११ ॥ त्रिपुरारिस्तुदेवेशो यत्रतिष्ठतिभारत ॥ त्रयस्त्रिंशत्प्रसिद्धानान्देवानांकोटिभिःशिवः ॥ १२ ॥ त्रिपुर्य्यांनिवसेद्यस्माच्छिवक्षेत्रमतःस्मृतम् ॥ क्रोशद्वयप्रमाणन्तु शिवक्षेत्रंप्रकीर्तितम् ॥ १३ ॥ अत्रान्तरेमृतायेच तेप्रयान्तिशुभाङ्गतिम् ॥ ब्रह्मणातुपुराचेष्टं ब्रह्मयज्ञंमखोत्तमम् ॥ १४ ॥ शक्रेणदेवराजेन कृतंक्रतुशतम्पुरा ॥ गोकर्णञ्चमहादेवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १५ ॥ वटेश्वरंतथाचान्यं सर्वेश्वसिद्धलिङ्गंसुरेश्वरम् ॥ ईश्वरञ्चैवकामेशमश्विभ्यामर्चितंहरम् ॥ १६ ॥ अनङ्गंवामदेवञ्च कपोतेश्वरमेवच ॥

भी भोगता है ॥ ११ ॥ हे भारत ! देवताओंके ईश्वर त्रिपुरारि जहां रहतेहैं जिससे तेंतीस करोड़ प्रसिद्ध देवताओं के सहित शिवजी त्रिपुरी में रहते हैं इस से शिवक्षेत्र कहा जाता है दो कोस के प्रमाण का शिवक्षेत्र कहा गया है ॥ १२ । १३ ॥ इस के बीचमें जो मरे हैं वे शुभगति को प्राप्त होते हैं व पूर्वकाल में ब्रह्मा करके यज्ञों में उत्तम ब्रह्मयज्ञ किया गया है ॥ १४ ॥ और देवताओं के राजा इन्द्र करके भी पूर्वकाल में सौ यज्ञ किये गये यहा सब सिद्धियों के देनेवाले गोकर्ण महादेव । १५ ॥ वटेश्वर वैसेही दूसरा देवताओं का ईश्वर सिद्धलिङ्ग, ईश्वर, अश्विनीकुमार करके पूजन किये गये कामेश महादेव ॥ १६ ॥ अनङ्ग, वामदेव, कपोतेश्वर,

रंसोमनाथं ऋणमोचनमेवच ॥ १७ ॥ कपालमोचनन्देवंतथान्यमघनाशनम् ॥ इन्द्रेश्वरञ्चब्रह्मेशं शिवंनारायणंभवम् ॥ १८ ॥ विश्वदेवंसिद्धनाथममरञ्चान्द्रमेवच ॥ सिद्धंविद्याधरंयज्ञमतुलंवासवन्तथा ॥ १९ ॥ ईशानमग्निगर्भञ्च कुबेरमतुलन्तथा ॥ गायत्रञ्चैवसावित्रं रोहिणीतीर्थमेवच ॥ २० ॥ दाक्षायणीचैवसती दक्षयज्ञहरास्मृता ॥ रत्नावलीसूर्य्यपत्नी सूर्य्यभामाचवारुणी ॥ २१ ॥ विष्णुर्मरीचिमैंत्रेय ऋष्यश्रृङ्गोविभाण्डजः ॥ तपस्वीशौनकोगर्गो दुर्वासाउग्रतापसः ॥ २२ ॥ पञ्चायुतानिसिद्धानि त्रिपुर्य्यांनृपसत्तम ॥ अपिवर्षसहस्राणि नस्तोतुंशक्यतेपुरी ॥ २३ ॥ त्रिपुरीक्षेत्रमाहात्म्यं शक्रेणापिनराधिप ॥ अनेकानिसहस्राणि क्षत्रियाणांयुधिष्ठिर ॥ २४ ॥ दीक्षायज्ञविधानेन नाकपृष्ठमुपासते ॥ इतिहासंप्रवक्ष्यामि आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ २५ ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते कापिलेकालसंज्ञके ॥ मनुर्नामपुराराजा चक्रवर्तीमहायशाः ॥ २६ ॥ अयोध्यांसपुरींलेभे सूर्य्यवंशोमहीपतिः ॥ ससाराध्यमहादेवं शङ्करंमधुसू

सर्वेश्वर, सोमनाथ, ऋणमोचन ॥ १७ ॥ कपालमोचन देव, तथा पापों के नाश करनेवाले इन्द्रेश्वर, ब्रह्मेश, महादेव, नारायणेश्वर, ॥ १८ ॥ विश्वदेव, सिद्धनाथ, अमरेश्वर, चान्द्रलिङ्ग, सिद्ध, विद्याधर, यज्ञ वैसेही उपमारहित वासवलिङ्ग ॥ १९॥ ईशान, अग्निगर्भ, कुबेर तथा अतुल गायत्र और सावित्र लिङ्ग हैं रोहिणीतीर्थ ॥ २० ॥ दक्षयज्ञ को विनाश करनेवाली दक्षकी कन्या सतीजी, सूर्यकी स्त्री रत्नावली, सूर्यभामा और वारुणी ये सिद्धदेवी हैं ॥ २१ ॥ विष्णु, मरीचि, मैत्रेय, विभाण्ड के पुत्र ऋष्यश्रृंग, तपस्वी शौनक, गर्ग, उग्रतपस्वी दुर्वासा ॥ २२ ॥ हे नृपसत्तम ! और पांच हजार सिद्ध त्रिपुरी में रहते हैं हजारवर्ष तक भी त्रिपुरी स्तुति करने को शक्य नहीं होसक्ती ॥ २३ ॥ हे नराधिप ! त्रिपुरी क्षेत्र का माहात्म्य इन्द्र से भी नहीं कहा जासक्ता है हे युधिष्ठिर ! अनेक हजार क्षत्रिय ॥ २४ ॥ यज्ञकी दीक्षा के विधान से स्वर्ग में वास करते हैं पहले कल्प के सत्ययुग में हुये इतिहास को हम कहेंगे ॥ २५ ॥ कपिल का अवतार जिसमे हुआ है काल जिसका दूसरा नाम है ऐसे स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर पूर्वकाल मे बड़े यशस्वी मनुनाम चक्रवर्त्ती राजा होते हुये ॥ २६ ॥ वे सूर्यवंशी राजा कल्याणकारी महादेव और विष्णु को

प्रसन्न करके अयोध्यापुरी को प्राप्त हुये ॥ २७ ॥ जो कि विश्वकर्मा करके बनाई गई और दानवों करकेभी तोड़ने योग्य नहीं थी हजारों बावली, कुँवा, खाई और शहरपनाह से युक्तथी ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जैसे अलका नाम से प्रसिद्ध कुबेर की पुरी है वैसेही और इन्द्रकी अमरावतीपुरी के तुल्य अयोध्या भी सुन्दर होती हुई ॥ २९ ॥ धन और अन्न से भरी हुई शहरकी शोभा बढ़ानेवाली चीजों से भूषित वेदों के शब्द से पृथिवी को स्वर्ग के समान बनादिया था ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण वेद पढ़ेहुये अग्निहोत्री विद्वान् ब्राह्मणों से युक्त जिसमें चारोंवर्णों का धर्म और प्राकृत मनुष्य वास करते हैं ॥३१॥ जहांकी सब प्रजा सवालाखवर्ष जीती है दरिद्र, बुढ़ापा

दनम् ॥ २७ ॥ अवध्यादानवैर्यांतु निर्मिताविश्वकर्मणा ॥वापीकूपसहस्रेण परिखाट्टालकेनवा ॥ २८ ॥ धनदस्यपुरी यद्वदलकानामविश्रुता ॥ अयोध्याशोभनाराजञ्छक्रस्येवामरावती ॥ २९ ॥ धनधान्यसमाकीर्णा सर्वालङ्कारभूषिता ॥ ब्रह्मघोषनिनादेन भूमिन्दिवमिवाकरोत् ॥ ३० ॥ साग्निहोत्रैश्चविद्वद्भिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ चतुर्वर्णाश्चधर्म्मश्च प्राकृताइतरेजनाः ॥ ३१ ॥ सपादलक्षवर्षाणि प्रजासर्वाचजीवति ॥ नकार्प्पण्यजरारोगा दुर्भिक्षंनतुमृत्युभीः ॥ ३२ ॥ स्वयंकामदुघाधेनुः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ अन्यायेनचभूतेषु दत्ताहर्तानविद्यते ॥ ३३ ॥ नवखण्डांसप्तद्वीपां सशैलवनकाननाम् ॥ शशासमेदिनींसर्वां यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ३४ ॥ एकपत्नीगृहंयद्वद्गृहस्थस्यविराजते ॥ यज्ञदानसहस्रेण तर्पितास्सर्वदेवताः ॥ ३५ ॥ यंयंप्रार्थयतेकामं तन्तमापनसंशयः ॥ एकोदोषःपरंतत्र नदीनैवात्रविद्यते ॥ ३६ ॥ राहुसोमसमायोगे देवखातंसमाययौ ॥ स्नानंकर्तुंसमाधाय ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ३७ ॥ विमानानांसह

रोग, दुर्भिक्ष और मृत्यु का भय जिसमें नहीं है ॥ ३२ ॥ गौवें आपही से दुग्ध देनेवाली हैं पृथिवी सब अन्नों से युक्तहै प्राणियों में दिये हुये का अन्यायसे हरनेवाला कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ इस प्रकारकी अयोध्या में रहकर नवखण्ड,सातद्वीप पहाड़ और जंगलों करके सहित पृथिवी की राज्य राजामनु करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्ग की राज्य करैं ॥३४॥ जैसे एकपत्नीवाले गृहस्थ का गृह शोभित हो इसी प्रकार राजाका गृह शोभित होताहै हजारों यज्ञ और दानोंसे सब देवता तृप्त कियेगये ॥ ३५ ॥ जिस जिस कामको चाहा उस उस को प्राप्तहुये इसमें कोई संशय नहीं है परन्तु वहा एक यही दोष था कि कोई नदी नहीं थी ॥ ३६ ॥ चन्द्रग्रहण में स्नान करने के

वास्ते वेदपाठी ब्राह्मणों के सहित राजा देवखात को जाते हुये ॥ ३७ ॥ शङ्ख,तूर्य्य, वेणु और वीणा के शब्द से युक्त हजारों सवारियों करके सहित स्त्रियों के गणों करके देखेजाते, रानी व परिवारके सहित श्रेष्ठ राजा उस स्थान को प्राप्त होकर पर्व के समय में स्नान, दान, होम आदि कर्म को समाप्त करके ॥ ३८ । ३९ ॥ देवताओं से रचित पवित्र अयोध्या नगरी में प्रवेश किया पौर्णमासी को पहर भर रात्रि के व्यतीत होनेपर राजाके स्वस्थ होनेपर ॥ ४० ॥ आकाशमे गीत और बाजाओं के शब्द से युक्त आकाशगामियो के हजारों घोड़ों के आभूषणों का शब्द सुनपड़ा ॥ ४१ ॥ मकान के ऊपर शोभित होरहे राजा देवताओं की मनोहर

स्रेण गत्वादेशंनृपोत्तमः ॥ शङ्खतूर्य्यनिनादेन वेणुवीणास्वनेनच ॥ ३८ ॥ सान्तःपुरपरीवारो वीक्ष्यमाणोङ्गनागणैः ॥ निर्वर्त्यपर्वकालेतु दानहोमविधिक्रियाम् ॥ ३९ ॥ विवेशनगरींपुण्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ पौर्णमास्याङ्गते यामे स्वस्थेचैवनृपोत्तमे ॥ ४० ॥ श्रूयतेकिङ्किणीशब्दआकाशेऽव्योमचारिणाम् ॥ गीतवादित्रयुक्तानां सहस्रंपङ्क्तिवाजिनाम् ॥ ४१ ॥ मनोहराणांयानानान्दृष्ट्वाचैवदिवौकसाम् ॥ जगामविस्मयंराजा भवनोपरिशोभितः ॥ ४२ ॥ कस्यैतानिविमानानि ममैवभवनोपरि ॥ शयनेशयनेचैव कामभोगविवर्ज्जितः ॥ ४३ ॥ शोकोपहतचित्तस्तु चिन्तयाऽव्याकुलीकृतः ॥ किमिदंसाहसंलोके विमानानांनभोपरि ॥ ४४ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य सानिष्क्रान्तानिशानृप॥ उदितेचतथासूर्य्ये धर्म्मकर्म्मसमाप्यवै ॥ ४५ ॥ वशिष्ठंप्राहराजर्षिरभिवाद्यनमस्कृतम् ॥ उपविष्टंयथान्यायमासने देवनिर्म्मिते ॥ ४६ ॥ इतिहासपुराणादि श्रावयन्विधिपूर्वकम् ॥ मनुनाचपुरापृष्टो वशिष्ठोमुनिपुङ्गवः ॥ ४७ ॥ कस्यैता

सवारियों को देखकर बिस्मय को प्राप्तहुये ॥ ४२ ॥ मेरेही मकान के ऊपर ये किसके विमान हैं जिनमें हरएक शय्या काम भोगों से रहित दीखती हैं ॥ ४३ ॥ शोक से बिगड़ा है चित्त जिसका और चिन्ता करके व्याकुल कियेगये राजाने कहा कि लोकमें आकाश के ऊपर विमानो का यह क्या आश्चर्य्य है ॥ ४४ ॥ हे नृप ! इस प्रकार चिन्ता करते हुये उस राजा की वह रात्रि व्यतीत होगई और सूर्य के उदय होनेपर धर्म के कर्म को समाप्त कर ॥ ४५ ॥ अभिवादन करके नमस्कार किये हुये देवरचित आसनपर सहित नीति के बैठे वशिष्ठजी से राजर्षि मनुजी बोले ॥ ४६ ॥ विधिपूर्वक इतिहास और पुराण आदिको को सुनाते हुये मुनियों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी

मनुकरके प्राचीन समय में पूंछगये ॥ ४७ ॥ कि हे महामुने ! मेरे ऊपर किसके ये विमान हैं और किस कर्म के फल व दान व नियम से मिलते हैं ॥ ४८ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! हे महाभाग ! मेरे सन्देह है सो कहो किस देश में किया गया यज्ञ स्वर्ग व अभीष्ट फलका देनेवाला होताहै ॥ ४९ ॥ जिससे नित्य मृत्युरहित अक्षय लोकों को मैं प्राप्त होऊं क्षत्रिय के वंश में उत्पन्न हुआ जो पृथिवी को शिक्षा देताहै ॥ ५० ॥ उसका यही काम है कि यज्ञ करके माता पिता के वंशको स्वर्ग को पहुँचावे उत्पन्न वही हुआ है कि जिससे भूलोक सब प्रकार दोषों से रहित किया जाय ॥ ५१ ॥ और पुत्र तो केवल माता को क्लेश देने के वास्ते होते हैं मनुराजा से इस

निविमानानि ममोपरिमहामुने ॥ केनकर्म्मविपाकेन दानेननियमेनच ॥ ४८ ॥ संशयोमेमहाभाग त्रिकालज्ञनिवेदय ॥ कस्मिन्देशेकृतोयज्ञः स्वर्गकामफलप्रदः ॥ ४९ ॥ येनयाम्यक्षयाँल्लोकान्नित्यान्तकविवर्ज्जितान् ॥ क्षत्रवंशसमुत्पन्नो यस्तुवैशिक्षतेक्षितिम् ॥ ५० ॥ मातृकंपैतृकंवंशंयज्ञमिष्ट्वादिवंनयेत् ॥ सजातोयेनभूलोकः सर्वथाऽवद्यवर्ज्जितः ॥ ५१ ॥ अन्येपुत्रत्वमापन्नास्तेतुक्लेशायकेवलम् ॥ एवमुक्तोवशिष्ठस्तु मनुनाब्राह्मणैस्सह ॥ प्रसन्नस्त्वब्रवीत्तन्तु वशिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥ शृणुष्वत्वंमहाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ ब्रह्मणागदितंपूर्वं कश्यपस्यमहामुनेः ॥ ५३ ॥ दक्षस्यात्रेर्गुरोश्चैव प्रजापतिरकल्पयत् ॥ वेदश्रुतपुराणोक्तं तत्रकृत्स्नंमयाश्रुतम् ॥ ५४ ॥ हन्ततेकथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ पुराणवेदबाह्यन्तु कर्म्मयत्क्रियतेनृप ॥ ५५ ॥ नतत्सन्तःप्रशंसन्ति धर्म्महानिश्चजायते ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य त्रिपुरीनामविश्रुता ॥ ५६ ॥ यैरिष्टंतत्रयज्ञैस्तु दानहोमबलिक्रिया ॥ तेषांराजन्विमानानि स्थिता

प्रकार कहेहुये ब्राह्मणों के सहित व मुनियों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी प्रसन्न होकर राजा से बोले ॥ ५२ ॥ कि हे महाभाग ! मेरे कहने को तुम सुनो और समझो पूर्वकाल में महामुनि कश्यप से जो ब्रह्मा ने कहा है ॥ ५३ ॥ और दक्ष, अत्रि और बृहस्पति से भी प्रजापति जीने वेद व शास्त्र और पुराणों मे कहे हुये वृत्तान्त को कहा था वही मैंने भी सम्पूर्ण सुना था ॥ ५४ ॥ उसको प्रसन्नतापूर्वक हम क्रमसे यथावत् आप से कहेंगे हे नृप ! पुराण और वेद से बाहर जो कर्म कियाजाताहै ॥५५॥ महात्मा लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि उससे धर्म की हानि होती है नर्मदा के तट में त्रिपुरी नाम से विख्यात एक स्थान है ॥ ५६ ॥ उस में जिन्हों ने

यज्ञों से यजन कियाहै और दान, होम और बलिकर्मों को भी किया है हे राजन् !आपके मकान पर उन्हीं के विमान ठहरेथे ॥ ५७ ॥ उस पुरी के उल्लंघन करने को इन्द्र सहित सब देवता समर्थ नहीं होसक्ते किन्तु वे विमान स्वर्गको नांघजातेहैं और विमानों के स्वामी शिवजी के साथ आनन्द भोगतेहैं ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र ! विषाद को छोंडो कर्मों की गति कठिन है और क्षेत्र में हजार गुना किया दान, तप और होम ॥ ५९ ॥ नर्मदाके तट में एकगुने किये के बराबर नहीं होता महादेव का सुनाया और स्कन्दजी का कहा हुआ यह पुराण है ॥ ६० ॥ हे महाराज ! जम्बूद्वीप में एकही नर्मदा देवी ने पापी और दुराचारियों को स्वर्ग

न्युपरिवेश्मनः ॥ ५७ ॥ नतांलङ्घयितुंशक्ताः सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ अतिक्रामन्तितेस्वर्गं शिवेनसहमोदते ॥ ५८ ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्म्मणाङ्गतिः ॥ अन्यक्षेत्रेसहस्रन्तु दत्तंतप्तंहुतंतथा ॥ ५९ ॥ एकंतुकल्पगातीरे तुल्यंभवतिवानवा ॥ शिवेनश्रावितंचासीत्पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ६० ॥ जम्बूद्वीपेमहाराज एकादेवीतुनर्मदा ॥ पापकर्म्मदुराचारान्नयतेस्मदिवौकसम् ॥ ६१ ॥ तेपियान्तिनसन्देहः कल्पगातोयदर्शनात् ॥ धर्मध्वजाश्चयेमर्त्यास्त्रिषुलोकेषुविश्रुताः ॥ ६२ ॥ संसारार्णवमग्नानां पापोपहतचेतसाम् ॥ यानरूपावरारोहा त्रैलोक्येसचराचरे ॥६३॥ एकवक्त्रस्तुतत्पुण्यं नगुणान्स्तोतुमर्हति ॥ त्यक्त्वाचैवमहाभाग ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ६४ ॥ संख्यांकर्तुंनशक्नोति तपसोदानकर्म्मणाम् ॥ नगङ्गायमुनाचापि नदीचैवसरस्वती ॥६५॥इरावतीवितस्ताच विपाशाकपिलातथा ॥ शोणश्चघर्घरश्चै

को पहुँचाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य तीनों लोकों में धर्मध्वज कहे जाते हैं वे भी नर्मदाजल के दर्शन से निस्सन्देह स्वर्ग को जाते हैं ॥ ६२ ॥ सहित चराचर के तीनों लोकों में पापों से भ्रष्टचित्तवाले संसारसमुद्र में डूबे हुये जीवों के स्वर्ग जानेके वास्ते सवारी रूप वरारोहा (नर्मदा) ही है ॥ ६३ ॥ हे महाभाग ! ब्रह्मा,विष्णु और महादेव को छोड़कर और एक मुखवाला पुरुष नर्मदा के पुण्य व गुणों की स्तुति करनेको योग्य नहीं होसक्ता है ॥ ६४ ॥ नर्मदाके तटमें कियेहुये तप, दान और सत्कर्मों के पुण्यकी संख्या करने को कोई समर्थ नहीं होसक्ता है गङ्गा, यमुना, सरस्वती, इरावती, वितस्ता, विपाशा तथा कपिला, शोणभद्र, घर्घर,

सारंगा तथा बदरी, पवित्र महानदी तापी, गण्डकी, पयोष्णी महापवित्र तुंगभद्रा,महानदी भीमरथ्या, तीर्थ और समुद्र जो जम्बूद्वीप में हैं वे कोई नर्मदा की बराबरी नहीं करसक्ते देवखात, तड़ाग, गड्ढा और नदियों में ॥ ६५ । ६६ । ६७ । ६८ ॥ यज्ञोंसे यजनकरके हे नृपोत्तम ! मनुष्य क्या फल पाताहै और क्षेत्रमें कियाहुआ पाप पुण्यक्षेत्रमें नष्ट होजाताहै ॥ ६९ ॥ परन्तु पुण्यक्षेत्रमें कियाहुआ पाप वज्रलेप होताहै हे भारत ! जैसे पाप वैसेही धर्म एकतुल्यहै अर्थात् धर्मभी क्षेत्रके माहात्म्य से घटा बढ़ा करता है ॥७०॥ तिससे चञ्चल जीवनके वास्ते पाप कभी न करै राजा नर्मदा का यशरूप पवित्र इस आख्यानको सुनकर ॥ ७१ ॥ तदनन्तर मन्त्री और

व सारङ्गाबदरीतथा ॥ ६६ ॥ पुण्यामहानदीतापी गण्डकीचपयोष्णिका ॥ तुङ्गभद्रामहापुण्या भीमरथ्यामहानदी ॥ ६७ ॥ तीर्थानिसागराणांहि जम्बूद्वीपेवसन्तिहि ॥ देवखाततडागेषु गर्तेषुचसरित्सुच ॥ ६८ ॥ किंफलंलभतेमर्त्यं इष्ट्वायज्ञैर्नृपोत्तम ॥ अन्यक्षेत्रेकृतंपापम्पुण्यक्षेत्रेविनश्यति ॥ ६९ ॥ पुण्यक्षेत्रेकृतंपापं वज्रलेपोभविष्यति ॥ अयं यथातथाधर्म्मः समम्भारतवर्तते ॥ ७० ॥ तस्मात्पापंनकुर्वीत चञ्चलेजीवितेसति ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंराजा नर्म्मदाकीर्तनंशुभम् ॥ ७१ ॥ आदिदेशततोऽमात्यान्भृत्यांश्चैवसहस्रशः ॥ राजोपस्करमादाय यूयङ्गच्छतमाचिरम् ॥ ७२ ॥ धेनूनांपञ्चलक्षाणि सवत्सानाञ्चभारत ॥ श्यामकर्णहयानाञ्च लक्षमेकंशितत्विषाम् ॥ ७३ ॥ अयुतंचकरीन्द्राणां घण्टाभरणसंयुजाम् ॥ ७४ ॥ हिरण्यकोटीःपञ्चाशत सर्वाश्चमणयस्तथा ॥ सुमुहूर्तेसुनक्षत्रेचन्द्रेचैकादशेशुभे॥७५॥ नानादेशनृपैस्सार्द्धं गीतवादित्रमङ्गलैः ॥ दिव्ययानसमारूढस्स्तूयमानोमुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥ ब्राह्मणैर्वेदविद्भिश्च प्रा

हजारों नौकरों को आज्ञा देतेहुये कि तुम सब राजसी सामान लेकर चलो देर मतकरो ॥ ७२ ॥ हे भारत ! बछड़ोंके सहित पांचलाख गौवें, सफेद एकलाख श्यामकर्ण घोड़े ॥ ७३ ॥ घण्टा,कण्ठा, झूल और अम्बारीआदि भूषणों से सजेहुये दश हजार हाथी ॥ ७४ ॥ पचास करोड़ मोहर और सब प्रकारकी मणियों को लेकर शुभमुहूर्त्त, शुभनक्षत्र, ग्यारहवें शुभचन्द्रमा में ॥ ७५ ॥ अनेक देशोंके राजाओं के सहित,मंगलगीत और बाजाओं से युक्त दिव्यसवारी पर सवारहुये बारबार स्तुति

कियेजाते ॥ ७६ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मणों करके सहित, राजा सात कल्पतक बहनेवाली देवता और दैत्योंसे नमस्कार कीगई पवित्र नर्मदा के समीप विद्यमान त्रिपुरी को जातेहुये ॥ ७७ ॥ नर्मदा के जलदर्शन से रानी व परिवार के सहित राजा अनेक जन्मों के पापों से छूटगये ॥ ७८ ॥ समुद्रपर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थहैं वे सभी नर्मदाही के जलके स्पर्शसे पवित्रहुये हैं ॥ ७९ ॥ विधिपूर्वक स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करतेहुये चन्दन और पुष्पआदि से महादेवका पूजन करके ॥ ८० ॥ सब धर्मों में तत्पर महाबाहु राजा यज्ञके वास्ते दशयोजन का मण्डप बनवातेहुये ॥ ८१ ॥ और भी जो कुछ भोजनके पात्र थे वे सब सुवर्ण व चांदीके थे

याचत्रिपुरींनृपः ॥ सप्तकल्पवहांपुण्यां सुरासुरनमस्कृताम् ॥ ७७ ॥ आजन्मरूढैस्तुपापैस्सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ विमुक्तःपृथिवीपालः कल्पगातोयदर्शनात् ॥ ७८ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ मेकलातोयसंस्पर्शात्पवित्राणीहतान्यपि ॥ ७९ ॥ स्नानंकृत्वायथान्यायं पितृन्देवांश्चतर्प्पयन् ॥ अर्चयित्वामहेशानं गन्धपुष्पविलेपनैः ॥ ८० ॥ दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञरूपंचमण्डपम् ॥ अकारयन्महाबाहुः सर्वधर्म्मपरायणः ॥ ८१ ॥ हेमरूप्यमयं सर्वं यच्चान्यद्भोज्यभाजनम् ॥ अगस्त्योगौतमोगर्गो विष्णुःशातातपस्तथा ॥ ८२ ॥ अत्रिश्चैववशिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहःक्रतुः॥भृगुरग्निर्मरीचिश्च कश्यपोथमनुस्तथा॥८३॥दुर्वासायाज्ञवल्क्यश्च भरद्वाजोथभल्लुकः ॥ विश्वामित्रोजमदग्नी ऋष्यशृङ्गोविभाण्डकः ॥ ८४ ॥ दत्तःपराशरोव्यासः काषायणबृहस्पती ॥ एतेचान्येचबहव ऋषयःशंसितव्रताः ॥ ८५ ॥ चतुर्विद्यावेदविदो यज्ञकर्म्मविशारदाः ॥ तीर्थंवैपुष्करंयद्वद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ ८६ ॥ तत्रप्रावर्तय

यज्ञ कराने के वास्ते अगस्त्य, गौतम,गर्ग, विष्णु और शातातप ॥८२॥ अत्रि,वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, अग्नि, मरीचि, कश्यप, तथा मनु ॥ ८३ ॥ दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, भल्लुक, विश्वामित्र, जमदग्नि, विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृङ्ग ॥ ८४ ॥ दत्त, पराशर, व्यास, कापायण और बृहस्पति ये व और भी बहुत प्रशंसा करनेयोग्य व्रत करनेवाले ऋषि ॥ ८५ ॥ जोकि चारोंवेद व विद्याओं के जाननेवाले व यज्ञकराने में प्रवीण थे वे सब आये पुष्करतीर्थ जैसे ब्रह्मा, विष्णु, और

शिवजी का स्वरूप है यह तीर्थभी ऐसाही है ॥ ८६ ॥ जिससे उत्तम कोई भी यज्ञ नहीं है ऐसे अश्वमेधयज्ञ को वहां प्रवृत्त करतेहुये सब देवता और देवताओं के राजा पाकशासन (इन्द्र) बुलायेगये ॥ ८७ ॥ अर्घ, पाद्य, मधुपर्क और विष्टरों से सब तृप्त कियेगये तदनन्तर वेदोक्तकर्म से यज्ञ समाप्त कियागया ॥ ८८ ॥ कोई हाथियोंपर सवार और कोई घोड़ोंपर कोई और भी दिव्य माला, बजुल्ला, कडा, कण्ठा औरभी भूषणों से विभवानुसार सब ब्राह्मण प्रसन्न कियेगये ॥ ८९ ॥ सवारियों पर सवार दिव्य मालाओं को धारण कियेहैं ॥९०॥ वहाके पक्षी व और भी वनचर जीव जिन्होंने यज्ञके उच्छिष्टमें तृष्णाकी वे सब सुवर्णमय होगये ॥९१॥

यज्ञं हयमेधमनुत्तमम् ॥ आहूतादेवताःसर्वा देवेन्द्रःपाकशासनः ॥ ८७ ॥ तर्पिताअर्घपाद्यैश्च मधुपर्कैश्चविष्टरैः ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो यथोक्तोवेदकर्म्मणा ॥ ८८ ॥ तर्पिताब्राह्मणास्सर्वे यथाविभवविस्तरैः ॥ हारकेयूरकटकैः कण्ठाभरणभूषणैः ॥ ८९ ॥ केचित्कुञ्जरमारूढास्तथाचहयसंस्थिताः ॥ दिव्ययानसमारूढा दिव्यमालावलम्बिनः ॥ ९० ॥ वयांसिपक्षिणोयत्र तथान्येवनचारिणः ॥ यज्ञोच्छिष्टेषुललिता जाताःसर्वेहिरण्मयाः ॥ ९१ ॥ यंयंकामंप्रार्थयते तंतंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ घोषणाक्रियतांराष्ट्रे दण्डहस्तैस्तुकिङ्करैः ॥९२॥ पितृदेवमनुष्याश्च तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना वरंदत्त्वादिवंययुः ॥ ९३ ॥ अत्रयज्ञस्तपोदानं सर्वंभवतिचाक्षयम् ॥ एवंनिवर्तितोयज्ञो राज्ञश्चामिततेजसः ॥ ९४ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा मनुरित्याहकल्पगाम् ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य सोमयागशतस्यच ॥ ९५ ॥ त्वत्तोयपानमात्रेण समम्भवतिवानवा ॥ लोकानांतारणार्थाय अवतीर्णामहानदी ॥ ९६ ॥ त्वयाव्याप्तंजगत्कृत्स्नं

फिर राजाकी आज्ञाहुई कि चोबदारों करके राज्यमें पुकार दियाजावे कि जिस २ मनोरथ को जो चाहता हो वह उस २ मनोरथ को निस्सन्देह प्राप्तहोवे ॥ ९२ ॥ पितर,देवता और मनुष्य तृप्तहोकर परमगति को प्राप्तहुये ब्रह्मा,विष्णु और महादेव वर देकर स्वर्गको चलेगये ॥ ९३ ॥ इस क्षेत्रमें कियाहुआ यज्ञ, तप और दान सब अक्षय होताहै बडे तेजवाले राजाका यज्ञ इस प्रकार समाप्तहुआ ॥९४॥ हाथ जोड़कर राजा मनु नर्मदासे यह बोले कि हे नर्मदे! हजार चान्द्रायण और सौ सोमयागका फल ॥ ९५ ॥ केवल तुम्हारे जल पीनेके फलके बराबर नहीं होताहै लोकोंके तारनेके वास्ते महानदी तुमने अवतारको धारण कियाहै ॥ ९६ ॥ तुम्हींसे सब जगत् और

चराचरलोक व्याप्त होरहेहैं स्नान,तैरना,जलपान,स्मरण और कीर्त्तनसे भी ॥९७॥ अनेक जन्मोंके पापको तुम्हारा जल भस्म करदेताहै जैसे रुईकी राशिको अग्नि भस्मकरताहै इसमें कुछ विचार करना योग्य नहींहै ॥ ९८ ॥ पितरोंके हितकी कामनाकरके स्वर्गकी सीढ़ी होरहीहो हे वरारोहे ! चारों प्रकार के भूतग्राम को स्वर्गको पहुँचावो ॥९९॥ हे देवि ! लोकमें जितनी नदियां व अनेक प्रकारके तीर्थहैं उनकी तुम माताहो और पितरों की श्रेष्ठ तारनेवाली हो ॥ १०० ॥ तुम्हारे विना जो तीर्थ व शुभफल देनेवाला धर्मकर्महै वह अन्धाहै जैसे सूर्यके विना जगत् अन्धाहै ॥१॥ जैसे सूर्य और चन्द्रमा का प्रभाव सब प्राणियों में समान है और जैसे अन्नों और

लोकाश्चैवचराचराः ॥ स्नानावगाहनात्पानात्स्मरणात्कीर्तनादपि ॥ ९७ ॥ अनेकभाविकंपापं तूलराशिमिवानलः ॥ दहत्येवंहितोयन्ते नात्रकार्य्याविचारणा ॥ ९८ ॥ स्वर्गसोपानभूतासि पितॄणांहितकाम्यया ॥ दिवंनयवरारोहे भूतग्रामञ्चतुर्विधम् ॥ ९९ ॥ याःकाश्चित्सरितोलोके तीर्थानिविविधानिच ॥ तेषान्त्वंजननीदेवि पितॄणान्तारिणीपरा॥१००॥ त्वयाविनातुयत्तीर्थं धर्म्मकर्म्मशुभोदयम् ॥ सूर्य्येणैवविहीनंहि निरालोकंजगद्यथा ॥ १ ॥ सूर्य्याचन्द्रमसोर्भावस्सामान्यस्सर्वजन्तुषु ॥ समंवर्षतिपर्जन्यः सस्येषुचतृणेषुच ॥ २ ॥ तथात्वंसर्वलोकानां माताचैवगरीयसी ॥ अपिवर्षसहस्रेण गुणान्कीर्तयितुंशुभे ॥ ३ ॥ ब्रह्माबृहस्पतिश्चैव नशक्तोपिवरानने ॥ स्तोत्रंश्रुत्वामहाभागा मनोरमिततेजसः॥ ४ ॥ प्रत्युवाचवरारोहा मकरासनसंस्थिता ॥ सर्वाभरणशोभाढ्या चन्द्रकान्तिनिभानना ॥ ५ ॥ वरंवृणुमहाभाग तुष्टास्मिमनसीप्सितम् ॥ नमस्कृत्यमहादेवीं राजावचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ यदितुष्टावरारोहे वरंदातुंममेच्छसि ॥ तीर्थभूतं

तृणोंमें मेघ बराबर बरसता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार सब लोकोंकी तुम श्रेष्ठ माताहो हे शुभे ! हे वरानने ! हजारवर्षकरके भी तुम्हारे गुणोंके कहने को ब्रह्मा और बृहस्पति भी नहीं समर्थ हैं बड़ेतेजवाले मनुके स्तोत्रको महाभागवाली नर्मदाजी सुनकर ॥ ३ । ४ ॥ मगरपर सवार व श्रेष्ठ जिनका आरोहहै सब आभूषणों की शोभा से युक्त चन्द्रमा की कान्ति के समान मुखवाली नर्मदाजी बोलीं ॥५॥ कि हे महाभाग ! हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनका अभीष्टवर मांगो तब महादेवी को नमस्कार

करके राजा वचन बोले ॥ ६ ॥ कि हे वरारोहे ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वर देनेकी इच्छा करती हो तो हे वरवर्णिनि ! सब जगत् को पवित्र करदीजिये ॥ ७ ॥ और अयोध्या के देशमें अनेक नदियां होजावें स्वर्गमें गंगाआदि अनेक प्रकारकी नदियां विद्यमान हैं ॥ ८ ॥ वे सब जिसतरह इस देशमें गिरें सो हे कल्पगे ! आप करें ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेत्रिपुरीवर्णनोनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

नर्मदा बोली कि हे नृपोत्तम ! त्रेताके पहले चरण में तुम्हारे वंशमें भगीरथ ऐसे प्रसिद्ध राजाहोंगे वेगंगाको लावेंगे ॥१॥ तोंवीसे उत्पन्नहुये साठ हजार राजा सगर

जगत्सर्वं कुरुष्ववरवर्णिनि ॥७॥ अयोध्याविषयेदेशे स्रवन्त्यस्सम्भवन्त्विति ॥ नानाविधास्तुसरितो गङ्गाद्यास्तुसुरालये ॥ ८ ॥ यथाचपतितास्सर्वास्तथात्वंकल्पगेकुरु ॥ १०९ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेत्रिपुरीवर्णनोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नर्मदोवाच ॥ त्रेतायांप्रथमेपादे तववंशेनृपोत्तम ॥ भगीरथइतिख्यातस्सगङ्गामानयिष्यति ॥ १ ॥ सागराःषष्टिसाहस्रा अलाबुजसमुद्भवाः ॥ कपिलस्यतुमार्गेण हयेपातालगामिनि ॥ २ ॥ पितुराज्ञावसानेतु विदार्य्यंधरणीन्ततः ॥ हयंतुवासुदेवेन सागरास्तेविदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ प्रविष्टास्सागरास्तेतु रसातलतलङ्गताः ॥ तानहंपूरयिष्यामि आत्मतोयेन सुव्रत ॥ ४ ॥ एवंदत्तोवरस्तावच्छेषंवृणुनरेश्वर ॥ पादेद्वितीयेत्रेतायाः कालिन्दीचसरस्वती ॥ ५ ॥ सरयूर्गण्डकीनाम महाभागाविनिस्सृताः ॥ भगीरथइतिख्यातस्तववंशेभविष्यति ॥ ६ ॥ भागीरथीचविख्याता भविष्यतिसरिद्वरा ॥ गङ्गाचजाह्नवीचैव समभागाप्रकीर्तिता ॥ ७ ॥ ख्यातिंयास्यन्तितास्सर्वाः कन्याद्वीपेनसंशयः ॥ आगच्छन्तीतुसागङ्गा

के पुत्र कपिलदेव के मार्गसे पाताल में घोड़ेके जानेपर ॥२॥ पिताकी आज्ञाके अनन्तर पृथिवी को फाड़कर ईश्वर की इच्छा से वे बुद्धिमान् लोग घोड़ेको जानगये ॥ ३ ॥ और वे सगर के पुत्र उसमें प्रविष्ट हो रसातल को प्राप्तहुयेहैं हे सुव्रत ! उन को हम अपने जलसे पूर्ण करेंगी ॥ ४ ॥ हे नरेश्वर ! इस प्रकार यह वर तुमको दियागया अब बाकीरहे को तुम मांगो त्रेताके दूसरे चरण में कालिन्दी, सरस्वती ॥ ५ ॥ सरयू और महाभागा गण्डकी निकलेंगी तुम्हारे वंशमें भगीरथ इस नामसे प्रसिद्धहोंगे ॥ ६ ॥ इसीसे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाभागीरथी नामसे विदित होंगी और वेही गंगा, जाह्नवी और समभागा कही जायँगी ॥७॥ ये सब नदियां कन्याद्वीप

में प्रसिद्धि को प्राप्तहोंगी आतीहुई वे गंगा महर्षि जह्नुकरके ॥ ८ ॥ हाथसे खींचकर पीडालीगई जैसे कोई साधारण जलको पीजावे तब देवताओं के हजार वर्ष तक जह्नुके पेटमें घूमतीरही ॥९॥ उस समयमें वे भगीरथ राजा सूखेमुख के होगये और कहा कि मेरा कियाहुआ तप निष्फल हुआ और महादेवजी की सेवा निष्फल होगई ॥ १० ॥ मुझ करके यह सब चराचर जगत् सेवन कियागया अब क्या करूं फिर निश्चय करके महादेव के शरणगये ॥ ११ ॥ फिर महादेवजी की आज्ञा से संयुक्त होकर लोकोंके हितकी कामना करके बड़े यशवाले राजा मोहसे फिर गंगाके समीप आये ॥ १२ ॥ तब क्रोधसे संयुक्त जह्नुऋषि वचन बोले कि हे राजन् !

जह्नुनाचमहर्षिणा ॥ ८ ॥ हस्तेनाकृष्यसापीता यथान्यःप्राकृतंजलम् ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु उदरेचविसर्पिता ॥ ९ ॥ विपन्नवदनोराजा तदासीत्सभगीरथः ॥ निष्फलंमेतपस्तप्तं शिवसेवाचनिष्फला ॥ १० ॥ मयातुसेवितंह्येतज्जगत्सर्वंचराचरम् ॥ किङ्करोमीतिनिश्चित्य महेशंशरणङ्गतः ॥ ११ ॥ शिवाज्ञासंयुतोभूत्वा लोकानांहितकाम्यया ॥ आगतश्चपुनर्मोहात्तांगङ्गांसमहायशाः ॥ १२ ॥ उवाचवचनंराजन् ऋषिःक्रोधसमन्वितः ॥ गङ्गायामोक्षणंकर्तुं योमामाराधयिष्यति ॥ १३ ॥ गङ्गायामोक्षणंतत्र कर्तव्यंनात्रसंशयः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा जह्नोरमिततेजसः ॥ १४ ॥ तमेवाराधयामास तपसोग्रेणभारत ॥ ततस्तुष्टस्तुभगवान्मुमोचोत्तरवाहिनीम् ॥ १५ ॥ ततःप्रभृतिलोकेस्मिञ्जाह्नवीतिप्रकीर्तिता ॥ एतत्तेकथितंराजंस्त्रेतायांयद्भविष्यति ॥ १६ ॥ तत्रैवान्यंप्रवक्ष्यामि मर्कटीतीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रस्नात्वामहाराज कामतोऽकामतोपिवा ॥ १७ ॥ चान्द्रायणशतस्योक्तं यत्पुण्यंतदवाप्नुयात् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ संक्षेपाच्छ्रुतमेत

गंगाके छुड़ाने के वास्ते जो मेरा आराधन करेगा ॥ १३ ॥ तो गंगाका छोड़देना अवश्यही करनाहोगा उन बड़े तेजवाले जह्नुके इस वचन को सुनकर ॥ १४ ॥ हे भारत ! उग्रतप से उन्हींका आराधन किया तदनन्तर भगवान् जह्नु सन्तुष्ट हुये और उत्तरवाहिनी (गंगा)को छोड़दिया ॥ १५ ॥ तबसे इस लोकमें गंगाजी जाह्नवी नाम से कहीगई हे राजन् ! यह तुमसे कहागया जो त्रेतामें होगा ॥ १६ ॥ अब वहींपर दूसरे उत्तम मर्कटीतीर्थको कहेंगे हे महाराज ! कामना व विना कामना के जिसमें स्नान करके ॥१७॥ सौचान्द्रायण का जो पुण्य कहागया है उसको पाताहै युधिष्ठिरजी बोले कि हे तपोधन ! यह संक्षेप से सुना हे सुव्रत ! वह मर्कटीतीर्थ

किस प्रकारका है उसको मुझ से विस्तार से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि त्रेतायुगमें बड़े तपवाले सत्यसेन राजाहुये ॥ १८ । १९ ॥ उनकी प्यारी शृङ्गारवल्लरी नाम करके रानीहुई वह पूर्वजन्मकी जाननेवाली थी और बड़ी सुन्दरभी थी परंतु केवल वानर के मुखके समान मुखवाली थी ॥२० ॥ किसी समयमें वे राजा रानी सहित शिकार के वास्ते अनेक वृक्ष व लताओं से युक्त नर्मदा के तटको गये ॥२१॥तदनन्तर उस रानीको वहां ठहराकर आप दूसरे वनको गये वहा विहारकरतीहुई वह रानी बांसकी झाडीमें अपने शिरको ॥ २२ ॥ देखकर विस्मयको प्राप्तहुई और अपने समीप में स्थित किसी सिपाही से कहा कि इस खोपड़ी को लेकर नर्मदा के

कथन्तुमर्कटीतीर्थं तन्मेकथयसुव्रत ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आसीत्त्रेतायुगेराजा सत्य
द्वि विस्तरेणतपोधन ॥ १८ ॥ सेनोमहातपाः ॥ १९ ॥ राज्ञीतस्यप्रियाचासीन्नाम्नाशृङ्गारवल्लरी ॥ जातिस्मरातुसुभगा केवलंमर्कटानना ॥ २० ॥
कदाचित्समहीपालो मृगयांप्रिययासह ॥ जगामनर्मदातीरं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ २१ ॥ स्थापयित्वातुतान्देवीं वना
न्तरमगात्ततः ॥ क्रीडमानाचसातत्र वंशगुल्मेस्वकंशिरः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वाविस्मयमापन्ना पार्श्वस्थंकञ्चिदब्रवीत् ॥ गृ
हीत्वैतच्छिरः शीघ्रंनर्म्मदायाजलेक्षिप ॥ २३ ॥ निक्षिप्तमात्रेशिरसि राज्ञीचन्द्राननाभवत् ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा
प्राप्तस्तत्रप्रियान्तिकम् ॥ २४ ॥ सदृष्ट्वाताद‍ृशंतस्या मुखंपूर्णशशिप्रभम् ॥ पृच्छतिस्मप्रियांराजा विस्मयाविष्टचेत
नः ॥ २५ ॥ कथयामासवृत्तान्तं पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ अत्राहंमर्कटीवासं तीरेवैनार्म्मदेशुभे ॥ २६ ॥ कदाचित्क्रीडमा
नाहं वंशंभित्त्वाह्यकामतः ॥ ततःकालवशाज्जीर्णं शरीरंपतितंजले ॥ २७ ॥ शिरस्तत्रैवसंलग्नं कपिवक्त्रास्मितेन

जलमें शीघ्र डालदो ॥ २३ ॥ शिरको पानीमें डालतेही रानी चन्द्रमा के समान मुखवाली होगई इसी अन्तर में राजा वहां अपनी प्रिया के समीप आगये ॥ २४ ॥ उस रानी के वैसे पूर्णचन्द्रमा के समान शोभावाले मुखको देखकर विस्मयसे युक्त वे राजा रानी से पूंछतेहुये ॥ २५ ॥ तब रानीने अपने पूर्वजन्म का हाल कहा कि इस शुभ नर्मदा के तटमें मैं वानरी हुईथी ॥ २६ ॥ किसी समय में विहार करती हुई मैं निष्प्रयोजन बांसको फाड़कर निकली तो मेरा शिर बांसमें उलझगया तद-नन्तर कालवश से शरीर तो जीर्ण होकर जलमें गिरगया ॥ २७ ॥ परन्तु शिर बांसही में उलझारहा निश्चय इसी कारणसे मेरा मुख वानर के मुखके सदृश

हुआ हे प्रिय ! इस समयमें शिरको नर्मदाके जलमें डालतेही ॥ २८ ॥ तीर्थके माहात्म्यसे मेरा मुख चन्द्रबिम्बके समान शोभावाला होगया वे राजा तीर्थके माहात्म्य को सुनकर विस्मयसे अद्भुत नेत्रवाले होगये ॥ २९ ॥ अपने पुरोहितको बुलाकर वहां स्नान करने को उद्यतहुये वहां विधिपूर्वक स्नानकरके सौकरोड़ मोहरों को दिया ॥ ३० ॥ हे राजेन्द्र ! तबसे मर्कटीतीर्थ कहाजाता है उसके पूर्वभाग में अतिउत्तम भृगुतीर्थ विद्यमान है ॥ ३१ ॥ उसमें कार्त्तिकी को स्नान करके मनुष्य पाप से छूटजाता है और वहां स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले नरकेश्वर देव हैं ॥ ३२ ॥ जहां महादेव के आगे सामने एक बांस देख पड़ता है उस निर्मल बांसके समीप

वै ॥ इदानींनर्मदातोये निक्षिप्तेशिरसिप्रिय ॥ २८ ॥ मुखंमेतीर्थमाहात्म्याच्चन्द्रबिम्बसमप्रभम् ॥ श्रुत्वासतीर्थमाहात्म्यं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २९ ॥ पुरोहितंसमाहूय स्नातुंतत्रप्रचक्रमे ॥ स्नात्वातत्रविधानेन हेमकोटिशतंददौ ॥ ३० ॥ तदाप्रभृतिराजेन्द्र मर्कटीतीर्थमुच्यते ॥ पूर्वभागस्थितंतस्य भृगुतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥ तत्रस्नात्वातुकार्त्तिक्यां नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ स्वर्गदोमोक्षदश्चैव देवस्तुनरकेश्वरः ॥ ३२ ॥ देवस्यचाग्रेवंशोवै सम्मुखोयत्रदृश्यते ॥ पूर्वभागेस्थितंतत्र तस्मिन्वंशेतुनिर्मले ॥ ३३ ॥ त्रिलोचनइतिख्यातं तथैवभ्रुकुटिस्थितम् ॥ तृतीयंलोचनंदृष्ट्वा भृगुस्तुमुनिसत्तमः ॥ ३४ ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौ स्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ भृगुरुवाच ॥ प्रणमामिजनेसंस्थं भूतेशम्भूतिदंहरम् ॥ ३५ ॥ भाव्यंभर्गंपशुपतिं भुवनेश्वरमेवच ॥ दोषमात्रविहीनञ्च नित्यविज्ञानविग्रहम् ॥ ३६ ॥ परद्रव्यापहरणात्परदारानिषेवणात् ॥ पराभवात्पराभूतं रक्षमांकल्मषात्प्रभो ॥ ३७ ॥ आत्माभिमानमुदितं क्षणभङ्गुरकेतथा ॥

वहांही पूर्वभाग में स्थित ॥ ३३ ॥ त्रिलोचन इस नामसे विदित तथा तीसरानेत्र भौहों के मध्यमें विद्यमान देखकर मुनियों में श्रेष्ठ भृगुजी ॥ ३४ ॥ दण्डके समान पृथिवी में गिरकर स्तुति करने को प्रारम्भ किया भृगुजी बोले कि सब में स्थित, भूतों के ईश्वर, ऐश्वर्य्य के देनेवाले, संहार करनेवाले, कल्याणरूप, तेजस्स्वरूप, पशु (नन्दीश्वर) के पति ऐसेही भुवनों के ईश्वर, दोषमात्र से रहित नित्य ज्ञानही जिनका रूप ऐसे महादेवजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३५ । ३६ ॥ हे प्रभो ! और की द्रव्यके हरने, औरकी स्त्री के सेवने, पराभव और भी पापसे पराजयको प्राप्त होरहे मेरी रक्षाकरो ॥ ३७ ॥ हे परमेश्वर ! क्षणभंगुरशरीरमें उदयहोरहा

है आत्माभिमान जिसको ऐसे दीन व कुमार्गके सम्मुख होरहे मुझको पालो ॥ ३८ ॥ मुझ दीन ब्राह्मणके वास्ते ज्ञानके देनेवाले हूजिये मूढ़होरहे मुझको देखकर सदा कल्याण के करनेवाले आप क्यों विलम्ब करते हो ॥ ३९ ॥ हे हर ! तृष्णाका अत्यन्त नाशकरो और मुझको निश्चल लक्ष्मी देवो जब आपके निमित्त तीर्थयात्रा मात्रही मोह को निःशेष नाशकरती व पापको हरती और संसारसे छुटाती तो भी हे महेशान ! आप मेरा संग्रह नहीं करते ॥४०।४१॥ ऐश्वर्यके कारणमें मूढ़ होरहे पुरुषका त्याग करना निष्फलहै इस भृगुजीके कहेहुये करुणाहृदय नामक स्तोत्रको ॥ ४२ ॥ प्रातःकाल उठके जो पाठ करताहै वह परमगतिको प्राप्तहोताहै इस स्तोत्र

कुपथाभिमुखंदीनंत्राहिमांपरमेश्वर ॥ ३८ ॥ दीनद्विजवरस्यार्थेप्रज्ञानेपरितोभव ॥ दृष्ट्वासदाशङ्करस्त्वंमूढंमाङ्किंविलम्ब से ॥ ३९ ॥ तृष्णांहरहरात्यर्थं लक्ष्मींमेदेहिनिश्चलाम् ॥ ४० ॥ नित्यंछिनत्तिमोहंपापं हन्तितारणंविदधाति ॥ तवतीर्थमात्रगमनंतदपिनसञ्चितंमहेशान ॥ ४१ ॥ भूतिमूलविमूढस्य विमागन्तान्निरर्थकम् ॥ करुणाहृदयंनामस्तोत्रमेतद्भृगूदितम् ॥ ४२ ॥ यःपठेत्प्रातरुत्थाय सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ स्तोत्रेणानेनसन्तुष्टः शिवःप्रोवाचतंभृगुम् ॥ ४३ ॥ सर्वंदास्यामितेविप्र वरंयन्मनसीप्सितम् ॥ सिद्धिश्चैवपुनःश्लाघ्या यत्सुरैरपिदुर्लभाम् ॥ ४४ ॥ भृगुरुवाच ॥ यदितुष्टोसि देवेश वरंदातुमिहेच्छसि ॥ ममनाम्नास्यतीर्थस्य ख्यातिर्भवतिभूतले ॥ ४५ ॥ अवतारयचात्मानं भृगुक्षेत्रेमहेश्वर ॥ शङ्कर उवाच ॥ एवंभवतुविप्रेन्द्र तवनाम्नाभविष्यति ॥ ४६ ॥ क्षेत्रंपापहरंपुण्यं देवानामपिदुर्लभम् ॥ पितृपुत्रविसंवादः क्रोधाज्जातःकथञ्चन ॥ ४७ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्सतुशान्तिङ्गमिष्यति ॥ ततःप्रभृतियेदेवा ब्रह्माद्याःकिन्न

से सन्तुष्टहुये महादेवजी उन भृगुजीसे बोले ॥ ४३ ॥ कि हे विप्र ! जो तुम्हारे मनमेंहो वह सब वर हम तुमको देवेंगे और फिर देवताओंको भी दुर्लभ प्रशंसा करने के योग्य सिद्धिको भी देवेंगे ॥ ४४ ॥ तब भृगुजी बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करतेहो तो पृथिवीमें इसतीर्थकी ख्याति मेरे नाममें होवे ॥ ४५ ॥ और हे महेश्वर भृगुक्षेत्रमें आप अपने को उतारो तब महादेवजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! ऐसाहीहो तुम्हारेही नाम से होगा ॥ ४६ ॥ देवताओंको भी दुर्लभ व पापों का हरनेवाला व पवित्र यह क्षेत्र है किसी प्रकार जो क्रोधसे पैदाहुआ पिता और पुत्रका झगड़ा होगा ॥ ४७ ॥ वह इस तीर्थके माहात्म्य से

शान्तिको प्राप्तहोगा तबसे लेकर ब्रह्मादिक जो देवता, किन्नर और नर ॥ ४८ ॥ भृगुक्षेत्र की उपासना करते हैं जहां महादेव प्रसन्नहुये हैं उसके दर्शन और स्पर्शन से ब्रह्महत्या करके छूटजाता है ॥ ४९ ॥ उसमें जो स्नान करताहै वह तीनों ऋणसे छूटजाता है वहां हे राजन्! स्वयम्भू करके सत्ययुगमें अवतार कियागया है॥ ५० ॥ हे नरश्रेष्ठ! उसी क्षेत्रमें आठ रुद्र कहेगयेहैं भृगु,शूली,वेद, चन्द्रमुख ॥५१॥ अट्टहास, काल, कराली और अष्टम हे युधिष्ठिर! उस क्षेत्रमें आठरुद्र उत्पन्नहुये॥ ५२ ॥ तिससे भृगुक्षेत्र रम्य और धन्य कहागया है, अयन, विषुव, संक्रान्ति, ग्रहण ॥ ५३ ॥ व्यतीपात, दिनक्षय और गजच्छाया में स्नान, दान, होम, तर्पण

रानराः ॥ ४८ ॥ उपासतेभृगुक्षेत्रं यत्रतुष्टोमहेश्वरः ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ४९ ॥ स्नानंयःकुरुतेतत्र मुच्यतेसऋणत्रयात् ॥ अवतारःकृतोराजन्युगेतत्रस्वयंभुवा ॥ ५० ॥ तत्रक्षेत्रेनरश्रेष्ठ अष्टौरुद्राःप्रकीर्तिताः ॥ भृगुश्चैवतथाशूली वेदश्चन्द्रमुखस्तथा ॥ ५१ ॥ अट्टहासस्तथाकालः करालीचाष्टमस्तथा ॥ अष्टौरुद्रास्समुत्पन्नास्तस्मिन्क्षेत्रेयुधिष्ठिर ॥ ५२ ॥ तेनरम्यञ्चधन्यञ्च भृगुक्षेत्रमुदाहृतम् ॥ अयनेविषुवेचैव संक्रान्तौग्रहणेषुच ॥ ५३ ॥ व्यतीपातेदिनच्छेदे छायायान्तुगजस्यच ॥ स्नानंदानंतथाहोमं तर्पणंदेवतार्चनम् ॥ ५४ ॥ सर्वंतदक्षयंराजंस्तस्मिन्क्षेत्रेनसंशयः ॥ स्नातस्यचभृगुक्षेत्रे एकरात्रोषितस्यच ॥ ५५ ॥ यत्पुण्यंजायतेपुंसोनतत्क्रतुशतैरपि ॥ दर्शेभाद्रपदेमासे शुक्लपक्षेविशेषतः ॥ ५६ ॥ नरःप्रदक्षिणांकृत्वा भृगुतीर्थस्यसंयतः ॥ तत्क्षणाद्विरजोभूत्वा शिवलोकेमहीयते ॥५७॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ मर्कट्याःपश्चिमेभागे ह्यर्कतीर्थमुदाहृतम् ॥ ५८ ॥ तत्रनित्यंस्थितोभा

और देवताओं का पूजन ॥ ५४ ॥ हे राजन्! उस भृगुक्षेत्रमें यह सब अक्षय होता है इसमें कुछ संशय नहीं है भृगुक्षेत्र में स्नान करनेवाले और एकरात्रि व्रत करने वाले पुरुष को जो पुण्यहोता है वह सौ यज्ञोंकरके भी नहीं होता अमावास्या को व भादोंके महीने के शुक्लपक्ष में विशेष करके ॥ ५५ । ५६ ॥ संयमी मनुष्य भृगु तीर्थकी प्रदक्षिणाकरके उसीक्षण निर्मल होकर शिवलोक में पूजित होताहै॥ ५७ ॥ इसी तीर्थके माहात्म्य से सब पापोंकरके छूटजाता है मर्कटीतीर्थके पश्चिमभाग

में अर्कतीर्थ कहागया है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! सब देवताओं करके नमस्कार कियेगये सूर्य वहां नित्यही स्थित रहतेहैं उनकी प्रदक्षिणाकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ५९ ॥ उस देवका माहात्म्य संक्षेपसे सुनो कि पूर्वकाल में नामसे मोहन नामका गन्धर्वराज होताहुआ ॥ ६० ॥ ब्रह्माके आराधनमें तत्पर वह ब्रह्माकी सभा को प्राप्तहुआ अपने रूपसे अहङ्कारको प्राप्तहोरहा वहां दुर्वासाजीको देखकर ॥ ६१ ॥ वह अज्ञान और अपमान करके हे नृप ! मुनिको हँसताहुआ उस समयमें मुसुकुराते मुखवाले गन्धर्वराजको देखकर मुनिने उसको शाप देदिया ॥ ६२ ॥ कि रूपसे अभिमान को प्राप्त होरहा तू चित्रकुष्ठी और दुराचारी हो तदनन्तर वह

नुः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ नरःप्रदक्षिणांकृत्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५९ ॥ माहात्म्यंतस्यदेवस्य शृणुराजन्समासतः ॥ पुरागन्धर्वराजस्तु मोहनोनामनामतः ॥ ६० ॥ ब्रह्मणस्तुसभांप्राप्तस्तदाराधनतत्परः ॥ तत्रदुर्वाससन्दृष्ट्वा रूपेणानेनगर्वितः ॥ ६१ ॥ अज्ञानेनावमानेन सजहासमुनिंनृप ॥ स्मेराननंसमालोक्य तंशशापमुनिस्तदा ॥ ६२ ॥ चित्रकुष्ठीदुराचारो भवत्वंरूपगर्वितः ॥ सतुशापभयात्प्राह मुनिंगन्धर्वराट्ततः ॥ ६३ ॥ शापान्तंकुरुमेविप्र बालिशस्यप्रसादतः ॥ दुर्वासाउवाच ॥ गच्छगन्धर्वराजत्वं त्रिपुर्य्यांनर्म्मदातटम् ॥ ६४ ॥ यस्मिन्नास्तेस्वयंदेवः समग्रभयनाशनः ॥ भासतेभास्करंनाम विख्यातंचोत्तरेतटे ॥ ६५ ॥ तत्रस्नानान्महाराज शापान्तस्तेभविष्यति ॥ सजगामपुनर्नत्वा ततोवैनर्म्मदातटम् ॥ ६६ ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन पूजयामासभास्करम् ॥ त्रिरात्र्याराधितोभानुः प्रातःप्रोवाचतंनृप ॥ ६७ ॥ वरंवृणुमहाभाग यत्तेमनसिवर्तते ॥ गन्धर्वउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरंदातुमिहेच्छसि ॥ ६८ ॥ चित्रकुष्ठंविनश्येत

गन्धर्वराज शापके भयसे मुनिसे बोला ॥ ६३ ॥ कि हे विप्र ! अपनी प्रसन्नतासे मुझ मूर्खके शापका अन्तकरो तब दुर्वासा बोले कि हे गन्धर्वराज ! तू त्रिपुरीमें नर्मदा के तटको जा ॥ ६४ ॥ जहां सब भयोंके नाश करनेवाले सूर्यदेव आपही रहते हैं नर्मदा के उत्तरतट में भास्कर नामसे विख्यात तीर्थ प्रकाश करता है ॥ ६५ ॥ हे महाराज ! उसमें स्नान करनेसे तुम्हारे शापका अन्तहोजायगा वह फिरसे नमस्कार करके नर्मदाके तटको जाताहुआ ॥ ६६ ॥ वहां विधान से स्नान करके सूर्यकी पूजा करता हुआ हे नृप ! तीनरात्रि तक आराधन किये गये सूर्य प्रातःकाल उस गन्धर्वसे बोले ॥ ६७ ॥ कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मन में हो उस वरको मांगो

तब गन्धर्व बोला कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और वरदेनेकी इच्छा करते हो ॥ ६८ ॥ तो हे प्रभो ! तुम्हारे प्रसाद से मेरा चित्रकुष्ठ नष्ट होजावे तब उस गन्धर्वराज से सूर्यने कहा कि ऐसाही हो ॥ ६९ ॥ हे भारत ! इसके अनन्तर शापसे छूटाहुआ गन्धर्व अपने पुर को जाताहुआ हे राजन् ! इस महादेवजी के कहेहुये को मैंने तुमसे कहा ॥ ७० ॥ हे भारत ! वहां पुत्र के वास्ते सावित्रीका आराधन होताहै मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके और सूर्यका पूजन करके ॥ ७१ ॥ पुत्रवाला और रोगसे मुक्त होजाताहै इसमें कोई संशय नहीं है वहींपर दक्षिण भाग में कोटीश्वर महादेव हैं ॥ ७२ ॥ मनुष्य विधानसे उनको पूजकरके करोड लिंगके पूजनके

त्वत्प्रसादेनमेप्रभो॥एवमस्त्विततिंप्राहगन्धर्वाधिपतिंतदा॥६९॥ शापान्मुक्तोजगामाथ स्वपुरम्प्रतिभारत॥ एतत्तेकथितंराजञ्छिवेनपरिकीर्तितम् ॥ ७० ॥ सावित्र्याराधनंतत्र पुत्रार्थंकिलभारत ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा समभ्यर्च्यचभास्करम् ॥ ७१ ॥ पुत्रवान्व्याधिमुक्तश्च जायतेनात्रसंशयः ॥ कोटीश्वरन्तुतत्रैव विद्धिदक्षिणभागतः ॥ ७२ ॥ तमभ्यर्च्यविधानेन कोटिलिङ्गार्चनात्फलम् ॥ नरःप्राप्नोतिराजेन्द्र सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ ७३ ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ तत्रयस्सन्त्यजेत्प्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ ७४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तश्शिवलोकेमहीयते ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽर्कतीर्थमाहात्म्येनवमोध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेतस्यतीर्थस्य कल्पगातीरमाश्रितम् ॥ सोमेनाराधितंतीर्थं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति मृतास्तेनपुनर्भवाः ॥ दक्षिणेतस्यदेवस्य स्थितःशक्रेश्वरःशिवः ॥ २ ॥ शक्रेणाराधितःपूर्वं सर्व

फलको पाताहै हे राजेन्द्र ! यह हम सत्य २ कहते हैं ॥ ७३ ॥ कोटितीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै वहां परवश या अपने वशहोकर जो प्राणों को त्यागताहै ॥ ७४ ॥ वह सब पापोंसे छूटाहुआ शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽर्कतीर्थमाहात्म्येनवमोऽध्यायः॥९॥

मार्कण्डेयजी बोले कि उस तीर्थ के दक्षिणमें नर्मदा के तट के आश्रित चन्द्रमा करके आराधन किया हुआ भुक्ति मुक्ति फल देनेवाला तीर्थहै ॥ १ ॥ वहां स्नान करके स्वर्ग को जाते हैं और वहां परके मरे फिर पैदा नहीं होते उन देवके दक्षिणमें शक्रेश्वर महादेव स्थित हैं ॥ २ ॥ जो कि पूर्वकालमें इन्द्र करके सब कामनाओं

की वृद्धि के वास्ते आराधन कियेगये और भी तीर्थ जो कि ब्रह्मकुण्ड ऐसा कहा गयाहै उसको कहेंगे ॥ ३ ॥ जहां पर भगवान् विष्णुजी रहते हैं और नर्मदा उत्तर-वाहिनी हैं हे महाराज ! वहां स्नान करके वैष्णवलोक को पाता है ॥ ४ ॥ अमावास्या व व्यतीपात में तिलोदक देने से और श्राद्धके करने से पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है ॥५॥ जहां उत्तरवाहिनी नर्मदा और पश्चिमवाहिनी गङ्गा जहां हैं हे नृपश्रेष्ठ ! उस क्षेत्रको जावो जहां प्राची सरस्वती हैं ॥ ६ ॥ ब्रह्मकुण्ड के उत्तरभाग में अम्बरीष नाम से विदित सनातन देव मधुसूदन माधवको जानो ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! जो मनुष्य एकादशीमें स्नान करके और अम्बरीष का पूजन करके सब पापों

कामसमृद्धये ॥ अन्यत्तीर्थंप्रवक्ष्यामि ब्रह्मकुण्डमितिस्मृतम् ॥ ३ ॥ यत्रास्तेभगवान्विष्णू रेवाचोत्तरवाहिनी ॥ तत्र स्नात्वामहाराज वैष्णवंलोकमाप्नुयात ॥ ४ ॥ दर्शेचैवव्यतीपाते तिलतोयप्रदानतः ॥ श्राद्धस्यकरणात्तत्र पितॄणां तृप्तिरक्षया ॥ ५ ॥ उदीचीनर्म्मदायत्र प्रतीचीयत्रजाह्नवी ॥ क्षेत्रंगच्छनृपश्रेष्ठ प्राचीयत्रसरस्वती ॥ ६ ॥ ब्रह्मकुण्डोत्तरेभागे विद्धिदेवंसनातनम् ॥ अम्बरीषमितिख्यातं माधवंमधुसूदनम् ॥ ७ ॥ एकादश्यांसमभ्यर्च्य स्नात्वायस्तुनराधिप ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति॥८॥ तस्यैवपश्चिमेभागेहंसतीर्थंनराधिप ॥ तत्रस्नात्वापुराराजन्हंसावैत्रिदिवङ्गताः ॥ ९ ॥ तत्रापिकुरुतेश्राद्धं दानञ्चैवनराधिप ॥ हंसतीर्थप्रभावेण तिर्य्यग्योनौनजायते ॥ १० ॥ पश्चिमेतस्यभागेतु लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ महाकालमितिख्यातं यन्मयाराधितम्पुरा ॥ ११ ॥ तमभ्यर्च्यविधानेन शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थराजमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ मातृतीर्थमितिख्यातं लिङ्गञ्चमातृकेश्वरम् ॥

से छूटजाता है वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ८ ॥ उसी के पश्चिम भाग में हे नराधिप ! हंसतीर्थ है हे राजन् ! पूर्वकाल में वहा स्नान करके हंस निश्चय स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ हे नराधिप ! वहां भी श्राद्ध और दानको जो करता है वह हंसतीर्थ के प्रभावसे तिर्य्यग्योनि में नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥ उसके पश्चिम भाग में परमसिद्धिका देनेवाला लिङ्ग है महाकाल नामसे विदित जो पूर्वकालमें मुझ करके आराधन किया गया है ॥ ११ ॥ उसको विधि से पूजन करके शिवलोकको प्राप्त होताहै अब इसके अनंतर अतिउत्तम दूसरे तीर्थराज को कहेंगे ॥ १२ ॥ मातृतीर्थ इस नाम से विदित है और वहां मातृकेश्वरलिङ्ग है हे राजेन्द्र ! उसमें

स्नान कियेहुये को अश्वमेध का फल होता है ॥ १३ ॥ उसके प्रवाह को अतिक्रमण करके जो नर्मदा का श्रेष्ठ उत्तर तट है उसमें सप्तविंशोद्भव नाम वाले शिव लोकों में गायेजाते हैं ॥ १४ ॥ वहां स्नान करके पितरों के लिये जल व पिण्डोंके देने से सब कामनाओं से पूर्ण शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ १५ ॥ हे युधिष्ठिर ! वहां कुछ भी जो दान दियाजाता है उसकी संख्या नहीं है यह भगवान् शिवजीने कहा है ॥ १६ ॥ उससे पश्चिममें ब्रह्मेश्वर इस नाम से सुना गया लिङ्ग है जो कि ब्रह्मा करके सिद्ध कियागया व शीघ्रही सब काम फलका देनेवाला है ॥ १७ ॥ उस देवके दर्शनसे सब पापोंसे छूटजाताहै मंगल व चतुर्दशी में उस लिंग को विधि

तत्रस्नातस्यराजेन्द्र हयमेधफलम्भवेत् ॥ १३ ॥ तत्प्रवाहमतिक्रम्य यद्वारेवोत्तरंमहत् ॥ सप्तविंशोद्भवशिवस्तत्रलोकेषुगीयते ॥ १४ ॥ तत्रस्नात्वापितृभ्यश्च तोयपिण्डप्रदानतः ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ १५ ॥ तत्रयद्दीयतेदानं किञ्चिद्वापियुधिष्ठिर ॥ तस्यसंख्यानविद्येतइत्याहभगवाञ्छिवः ॥ १६ ॥ ततःप्रतीच्यांलिङ्गन्तु ब्रह्मेश्वरमितिश्रुतम् ॥ ब्रह्मणासाधितंसद्यःसर्वकामफलप्रदम् ॥ १७ ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ अङ्गारेवाचतुर्दश्यां तदभ्यर्च्यविधानतः ॥ १८ ॥ शिवभक्तिपरोमर्त्यः शिवलोकेमहीयते ॥ अन्यत्तीर्थंप्रवक्ष्यामि स्वर्गद्वारमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ तत्रस्नातोनरव्याघ्र स्वर्गलोकेमहीयते ॥ तत्रपश्चिमभागेतु लिङ्गंसिद्धेश्वरम्परम् ॥ २० ॥ तत्रसिद्धेश्वरंचैव तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २१ ॥ पौषेमासिसिताष्टम्यान्तमभ्यर्च्यविधानतः ॥ दत्त्वातुकपिलांधेनुं स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २२ ॥ तस्मादुत्तरतोविद्धि सङ्गमंलोकविश्रुतम् ॥ गङ्गायमुनयोर्नि

से पूजन करके ॥ १८ ॥ शिवभक्ति में तत्पर मनुष्य शिवलोक मे पूजित होताहै और भी अतिउत्तम स्वर्गद्वार नाम तीर्थ को कहते हैं ॥ १९ ॥ हे नरव्याघ्र ! उसमें स्नान करनेवाला स्वर्गलोक मे पूजित होताहै वहां पश्चिमभाग मे श्रेष्ठ सिद्धेश्वर लिंग है ॥ २० ॥ वहांही पापों का नाश करनेवाला सिद्धेश्वर तीर्थभी है उसमें स्नान करके जे मरे हैं वे स्वर्ग को जाते हैं व फिर नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ २१ ॥ पूसमहीने में शुक्लपक्ष की अष्टमीमे विधि से उस को पूजन करके और कपिला गौ को दान

करके स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ २२ ॥ हे नराधिप ! तिससे उत्तर लोक में विदित गङ्गा, यमुना और नर्मदा के नित्य सङ्गम को जानो ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र ! उसमें स्नान करनेवाले को अश्वमेध का फल होता है वहां पितरों की प्रीति के बढ़ानेवाले श्राद्धको करै ॥ २४ ॥ तब राजा बोले कि हे मुने ! इस स्थान में गङ्गा और यमुना किस प्रकारसे आई हे मुनिपुंगव ! यह सब विस्तारसे कहो ॥ २५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग,राजन् ! मुझ करके कहाजाता जो वृत्तान्त तिसको तुम सुनो और समझो कि धर्म में परायण, शिवजी के भक्त,महायोगी, वेदों के जाननेवालोंमें श्रेष्ठ छहमहीनेके बाद भोजन करनेवाले धर्मात्मा मतंग नामके

त्यं रेवायाश्चनराधिप ॥ २३ ॥ तत्रस्नातस्यराजेन्द्र अश्वमेधफलम्भवेत् ॥ श्राद्धंतत्रप्रकुर्वीत पितॄणांप्रीतिवर्द्धनम् ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ गङ्गाचयमुनाचात्र समायातेकथम्मुने ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वं प्रब्रूहिमुनिपुङ्गव ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ मतङ्गोनामराजर्षिरासीद्धर्म्मपरायणः ॥ २६ ॥ शिवभक्तोमहायोगी त्रिपुर्य्यांवेदवित्तमः ॥ षण्मासभोजीधर्म्मात्माहत्वाकरिवरंस्वयम् ॥ २७ ॥ षष्ठेमासेतुसंप्राप्ते यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ पितृयज्ञन्तुनिर्वर्त्य शेषंभुङ्क्तेनराधिप ॥ २८ ॥ एवंतपस्तप्तेतु कालेनमहताततः ॥ सप्तर्षयस्समायातास्तेनमार्गेणभारत ॥ २९ ॥ सतान्दृष्ट्वानमस्कृत्य अर्घपाद्यैरपूजयत ॥ कुशासनोपविष्टांस्तु प्रोवाचमुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ धन्योस्मिपितृमेधेयत्संप्राप्तामेभवादृशाः ॥ तत्तस्यवचनंश्रुत्वा मतङ्गस्यमहात्मुनेः ॥ ३१ ॥ ऋषयश्चिन्तयामासुरन्योन्यंवैतदानृप ॥ मांसेनपितृमेधोऽस्य कथंत्याज्योभवेदिति ॥ ३२ ॥ चिन्ताविष्टान्मुनीन्दृष्ट्वा वशिष्ठःप्राहतंमुनि

राजर्षि त्रिपुरी में होते हुये वे आपही से एक श्रेष्ठ हाथी को मारकर ॥ २६ । २७ ॥ हे नराधिप ! छठे महीने के प्राप्त होनेपर यथावत् विधिपूर्वक पितृयज्ञ को करके शेष को खाते थे ॥ २८ ॥ हे भारत ! इस प्रकार बहुत काल तक तप करते हुये मतङ्ग के समीप उसीमार्ग से सप्तर्षि आतेहुये तदनन्तर ॥ २९ ॥ उन मतङ्गजीने उनको देखकर नमस्कार करके अर्घ और पाद्य से पूजन किया और कुशासन पर बैठे हुये ऋषियों से मुनिश्रेष्ठ मतंगजी बोले ॥ ३० ॥ कि हम धन्य हैं जिससे कि मेरे पितृयज्ञ में आपलोग प्राप्तहुये उन महामुनि मतंगजी के उस वचनको सुनके ॥३१॥ हे नृप ! उससमय में ऋषिलोग परस्पर विचार करनेलगे कि इनका पितृयज्ञ मांस

से होगा यह किस प्रकार त्याग करनेयोग्य है ॥ ३२ ॥ चिन्तामें मग्न मुनियों को देखकर उन मतंग मुनिजी से वशिष्ठजी बोले कि हे महामुने ! गंगा यमुनाके संगम में स्नान करके ॥ ३३ ॥ हम सब लोग भोजन करेंगे इसमें कुछ विचार नहीं कर्तव्यहै उन वशिष्ठजीके उस वचनको सुनकर उनसे हँसते हुये मतंगजी बोले ॥ ३४ ॥ कि गंगा यमुना के संगममें यहीं स्नान होगा यह कहकर और ध्यानमें स्थित होकर मुनियोंमें श्रेष्ठ वे मतंगजी वैसेही गंगा और यमुना को बुलाते हुये उसीक्षण दोनों प्राप्त हुईं तब मतंग ने कहा कि हे मुनियो ! गंगा यमुनाके संगममें आपलोग स्नान करैं ॥३५।३६॥ वे उन महात्मामुनि के वैसे अद्भुत कर्मको देखकर विस्मित

म् ॥ गङ्गायमुनयोर्योगे स्नानंकृत्वामहामुने ॥ ३३ ॥ भोक्ष्यामहेवयंसर्वे नात्रकार्य्याविचारणा ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मतङ्गःप्राहतान्हसन् ॥ ३४ ॥ गङ्गायमुनयोर्योगे स्नानंचात्रभविष्यति ॥ इत्युक्त्वाध्यानमास्थाय सगङ्गांयमुनान्त था ॥ ३५ ॥ समाह्वयन्मुनिश्रेष्ठः समायातेतुतत्क्षणात् ॥ स्नानंकुरुध्वंमुनयो गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ ३६ ॥ तेदृष्ट्वाताद्द शंकर्म्म मुनेस्तस्यमहात्मनः ॥ विस्मयाविष्टहृदयाः प्रशशंसुश्चतंमुनिम् ॥३७॥ ततस्तुमुनयस्सर्वे स्नानंकृत्वायथा विधि ॥ पितृयज्ञन्तुनिर्वर्त्य मतङ्गस्यययुर्दिवम् ॥ ३८ ॥ गङ्गाचयमुनाचैव प्रविष्टेसप्तकल्पगाम् ॥ इत्थंससङ्गमोजा तस्सर्वपापहरःपरः ॥ ३९ ॥ अमासोमसमायोगे स्नानंयःकुरुतेनरः ॥ सर्वधर्म्मसुसम्पन्नश्शिवभक्तिपरायणः ॥ ४० ॥ उद्धृत्यपूर्वजान्सप्त सप्तचैवापरांस्तथा ॥ दिव्यदेहसमापन्नोदिव्याभरणभूषितः ॥ ४१ ॥ दिव्ययानसमारूढस्स्तूय मानोप्सरोगणैः ॥ तत्क्षणाद्विरजोभूत्वा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ४२ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ नैर

हृदयहोतेहुये उन मुनिकी प्रशंसा करतेहुये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सब मुनिलोग विधिपूर्वक स्नान करके और मतंगकी पितृयज्ञ समाप्त कराके स्वर्गको चलेगये ॥ ३८ ॥ गंगा और यमुना नर्मदा में प्रवेश करती भईं इस प्रकार सब पापों का हरनेवाला श्रेष्ठ वह संगम प्रकटहुआ ॥ ३९ ॥ सब धर्मोंसे युक्त महादेव की भक्तिमें तत्पर जो मनुष्य सोमवती अमावास्याको उक्त संगममें स्नान करताहै ॥४०॥ वह दिव्यदेह से युक्त व दिव्य आभूषणों से भूषित इधर व उधर के सात २ पुरुषों को उद्धारकर के ॥ ४१ ॥ दिव्य सवारी पर सवार अप्सराओं के समूहोंसे स्तुति कियाजाता उसी क्षण निर्मल होकर स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ ४२ ॥ इस तीर्थके माहात्म्य से

सब पापोंसे छूटजाता है क्रोधको जीतेहुये और इन्द्रियों को जीते छह महीनेतक निरन्तर ॥४३॥ जो स्नान करताहै और वहां महादेवजीका पूजन करताहै वहयात्री किसी कारणसे म्लेच्छदेश में व अन्यत्र ॥ ४४ ॥ जहा कहीं मरा तो वह भी महादेवके समीप प्राप्तहोता है स्नान, दान, तप और होम व जो कुछ पर्वमें यहा संगम में कियाजाताहै उसके पुण्यकी संख्या नहीं है हे राजन् ! मुझकरके यह त्रिपुरीक्षेत्रका वर्णन तुमसे कियागया ॥ ४५।४६ ॥ हे राजेन्द्र ! जिसका सुनना देवताओं को भी दुर्लभहै हे महाराज ! इस पवित्र नर्मदाके कीर्त्तन को सुनकर ॥४७॥ नर्मदाको नमस्कार करके अभीष्ट सवारीपर सवार होकर देवरचित पवित्र अयोध्यापुरी में प्रवेश

न्तयर्येणषरामासाञ्जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ४३ ॥ स्नानंयःकुरुतेतत्र पूजयेच्चमहेश्वरम् ॥ पथिकःकारणाद्वापि म्लेच्छदेशेपिवाक्वचित् ॥ ४४ ॥ यत्रतत्रमृतस्सोपि प्राप्नुयाच्छिवसन्निधिम् ॥ स्नानंदानंतपोहोमः संयोगेचैवपर्वणि ॥ ४५ ॥ यदत्रक्रियतेतस्य पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ एतत्तेमेकृतंराजंस्त्रिपुरीक्षेत्रवर्णनम् ॥ ४६ ॥ श्रवणंयस्यराजेन्द्र देवैरपिदुर्लभम् ॥ एतच्छ्रुत्वामहाराज नर्मदाकीर्तनंशुभम् ॥ ४७ ॥ नमस्कृत्यवरारोहां कामिकंयानमास्थितः ॥ विवेशनगरींपुण्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ ४८ ॥ मुदापरमयायुक्तो यथापूर्वंतथैवसः ॥ एतत्तेकीर्तितंराजन्यथावदनुपूर्वशः ॥ ४९ ॥ शिवेनकथितंपूर्वं स्कन्दस्यतुमहात्मनः ॥ श्रवणात्कीर्तनाच्चैव शिवलोकेमहीयते ॥ ५० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमातङ्गाख्यानंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अथान्यत्परमंतीर्थं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ योगतीर्थमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ योगीस्नात्वाविधानेन

करतेहुये ॥ ४८ ॥ बड़े आनन्द से युक्त पहलेकी तरह वे रहनेलगे हे राजन् ! यह क्रमसे आप से यथावत् कहागया ॥ ४९ ॥ जैसे पूर्वसमय में महादेव करके महात्मा स्वामिकार्त्तिकेय से कहागया था इसके सुनने और कहने से शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमातङ्गाख्यानंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

अब इसके अनन्तर देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियागया सब पापों का नाश करनेवाला योगतीर्थ नाम से विदित, दूसरा परमतीर्थ कहलाताहै ॥ १ ॥

जिसमें विधिपूर्वक स्नानकरके योगके अन्तमें योगी स्वर्गको प्राप्तहुआ हे राजन्! उसमें मनुष्य स्नान करके तिर्यग्योनि में नहींजाता॥ २ ॥ सब पापों से छूटाहुवा विष्णुलोक में पूजित होताहै अब इसके अनन्तर और भी परमतीर्थ है जिसमें ध्रुवजी प्रकाश करते हैं ॥ ३ ॥ जो मनुष्य सबकाम फलके उदयवाले ध्रुवतीर्थमें स्नान करके ध्रुवेश्वर महादेवजी को भक्तिसे पूजन करता है ॥ ४ ॥ वह दश हजार वर्षतक विद्याधरों के उत्तम पुरमें राजाहोताहै व एक नाक्षत्रनाम का तीर्थ नर्मदाके तट में विद्यमान है ॥ ५ ॥ जहां सब पापोंके नाश करनेवाले ऋक्षेश्वर महादेवहैं जिस स्थान में सत्ताईस नक्षत्र सिद्धिको प्राप्तहुयेहैं ॥ ६॥ उस तीर्थके माहात्म्यसे देवता

योगान्तेत्रिदिवंगतः ॥ तत्रस्नात्वानरोराजंस्तिर्य्यग्योनौनगच्छति ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकेमहीयते ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं ध्रुवोयत्रप्रकाशते ॥ ३ ॥ ध्रुवतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वकामफलोदये ॥ ध्रुवेश्वरंमहादेवं भक्त्यायस्तु प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ दशायुतानिराजावै पुरेविद्याधरेशुभे ॥ नाक्षत्रंनामतीर्थन्तु नर्म्मदातीरमाश्रितम् ॥ ५ ॥ यत्रऋक्षेश्वरोदेवः सर्वपापप्रणाशनः ॥ सप्तविंशतिसंसिद्धिं नक्षत्राणिगतानिवै ॥ ६ ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्दिविदीव्यन्तिदेवताः ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ७ ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं वाराहंनामविश्रुतम् ॥ नर्म्मदाशर्मदायत्र विख्याताशूकरानदी ॥ ८ ॥ महाशूकररूपेण धात्रीयत्रसमुद्धृता ॥ एकादश्यांनरस्स्नात्वा कृत्वाचैवयथोदितम् ॥ ९ ॥ उपवासपरोभूत्वा द्वादश्यान्तुयुधिष्ठिर ॥ वैष्णवस्तुशुचिर्भूत्वा वाराहंचसमर्चयेत् ॥ १० ॥ पुष्पोपहारधूपैश्च गन्धदीपविलेपनैः ॥ वर्षलक्षन्तुसाग्रंवै लोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारीजितक्रोधो विष्णुधर्मपरायणः ॥ भक्त्याभोजय

रूप से आकाश में प्रकाश करते हैं वहां स्नानकरके जे मरगये वे स्वर्गको जातेहैं व फिर उत्पन्न नही होतेहैं ॥ ७ ॥ अब इसके अनन्तर एक और वाराहनामसे प्रसिद्ध परमतीर्थ है और जहां कल्याण देनेवाली नर्मदाजी शूकरानदी नामसे विख्यात हैं ॥ ८ ॥ जहा महाशूकररूप करके पृथ्वी उद्धार कीगई है वहां मनुष्य एकादशी में स्नान करके और यथोक्तकर्म करके ॥ ९ ॥ हे युधिष्ठिर ! उपवास में तत्पर होके द्वादशी में जो वैष्णव पवित्रहो वाराहजी को पुष्पोपहार, धूप, दीप और चन्दनादि से पूजन करता है वह कुछ अधिक एकलाख वर्षतक वैष्णवलोक में विहार करता है ॥ १० । ११ ॥ व जो क्रोधको जीतेहुये, वैष्णवधर्म मे तत्पर, ब्रह्मचारी मनुष्य

भक्तिरो वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै वैसेही ॥ १२ ॥ वस्त्र और आभूषणोंसे भूषित विशेषसे विष्णुधर्मों को लिखवाके विशेषकर वेदपाठी ब्राह्मणको देताहै ॥ १३ ॥ और सावधान होताहुआ पुराण नर्मदाख्यान को सुनवाता है उसको ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों देवता वरके देनेवाले होतेहैं यह सत्यहै इसमें विचार नहीं करनेयोग्यहै व नर्मदाख्यानमें अक्षरोंकी जो संख्याहै व पत्रोंकी जो संख्याहै ॥ १४।१५ ॥ उतने हजारयुग पर्यन्त स्वर्गलोकमें पूजित होताहै क्योंकि विद्यादानसे बड़ा दूसरा दान लोकों में नहीं कहाजाताहै ॥ १६ ॥ जैसे बिना दियाकी रात्रि और विनासूर्यका आकाश इसी प्रकार विद्याहीन सब जगत् अन्धकार में डूबजाताहै ॥ १७ ॥

तेयस्तु विप्रान्वैष्णवकांस्तथा ॥ १२ ॥ लेखयित्वाविष्णुधर्मान्वस्त्रालङ्कारभूषितान् ॥ निवेदयेद्ब्राह्मणाय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥ १३ ॥ पुराणंनर्म्मदाख्यानं श्रावयेच्चसमाहितः ॥ वरदाश्चत्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १४ ॥ भव न्तितस्यसत्यंवै नात्रकार्य्याविचारणा ॥ यावदक्षरसंख्यानंयावत्पत्रसमुच्चयः ॥ १५ ॥ तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोकेम हीयते ॥ विद्यादानात्परंदानं नान्यंलोकेषुगीयते ॥ १६ ॥अदीपाचयथारात्रिरनादित्यंयथानभः ॥ विद्याहीनंतथास र्वमन्धेतमसिमज्जति ॥ १७ ॥ एतत्तेकथितंसर्वं विद्यादानस्ययत्फलम् ॥ सर्वदानफलंतस्य विद्यादानप्रभावतः ॥ १८ ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं चान्द्रायणमितिस्मृतम् ॥ शशाङ्केरोहिणीयुक्ते पौर्णमास्यांमहोत्सवे ॥ १९ ॥ शशाङ्कभूष णंदेवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ अर्चयित्वाविधानेन स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २० ॥ पौर्णमास्यान्तुकुरुते राहुसूर्यसमाग मे ॥ तिलोदकंपिण्डदानं पुत्रःपरमधार्म्मिकः ॥ २१ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति पापोपहतचेतसः ॥ सर्वपाखण्डयुक्तश्च

विद्यादान का जो फल है वह यह सब तुमसे कहागया विद्यादान के प्रभावसे विद्यादेनेवाले को सब दानोंका फल प्राप्तहोता है ॥ १८ ॥ अब इसके अनन्तर चान्द्रायण नामका परमतीर्थ कहागयाहै रोहिणीसे युक्त चन्द्रमावाली पौर्णमासी महोत्सव में ॥ १९ ॥ सब सिद्धियों के देनेवाले शशाङ्कभूषण महादेवजी को विधानसे पूजकरके स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ २० ॥ राहुसूर्यसमागम (सूर्यग्रहण) व पौर्णमासी में जो परमधार्मिक पुत्र तिलोदक व पिण्डदान करताहै ॥ २१ ॥

उसके पापी भी पितर तृप्त होजाते हैं और कलियुग करके आवृत (घिरा) सब जगत् पाखण्ड से युक्तहोगया है ॥ २२ ॥ व पुराण, वेदोंके धर्म, दान, यज्ञ और तप यह सब पुण्य पापकर्मों और हेतुवादी नग्न मलिन दीन दिगम्बरों करके आच्छादित होगया है इससे लोकमें धर्ममें तत्पर पुरुषों करके कलियुग विषे नर्मदा नदीही नित्य उपासना करने के योग्यहै ॥ २३।२४ ॥ उत्तरायण में द्वादशादित्यतीर्थ पुण्यका बढ़ानेवाला है हे राजन् ! वहां मनुष्य स्नानकरके व संक्रान्ति व विषुव कालमें सूर्य को पूजकरके सूर्यलोक में पूजित होताहै वहां एक ब्राह्मण के भोजन कराने से एकलक्ष ब्राह्मण भोजन करानेका फल होताहै ॥ २५।२६ ॥ तिल अन्न

आवृतंकलिनातथा ॥ २२ ॥ पुराणवेदधर्म्माश्च दानंयज्ञस्तपस्तथा ॥ आच्छादितमिदंपुण्यं हेतुकैःपापकर्म्मभिः ॥ २३॥नग्नैर्मलिनदीनैश्च कलौलोकेदिगम्बरैः॥तस्माद्धर्म्मपरैर्नित्यमुपास्यानर्म्मदानदी ॥ २४ ॥ सौम्येतुद्वादशादित्यतीर्थंपुण्यविवर्द्धनम् ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्नर्चयित्वातुभास्करम् ॥ २५ ॥ संक्रान्तौविषुवेचैव सूर्य्यलोकेमहीयते ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे लक्षम्भवतिभोजितम् ॥ २६ ॥ तिलान्नञ्चहिरण्यञ्च यथाशक्त्याददातियः॥ शुक्लपक्षस्यमाघस्य शुभाषष्ठीचसप्तमी ॥ २७ ॥ तस्यांदानप्रभावेणह्युपवासपरायणः ॥ दशवर्षसहस्राणि सूर्य्यलोकेमहीयते ॥ २८॥ तीर्थमाप्सरसंनाम याम्यान्दिशिसमाश्रितम् ॥ चम्पकासीमपानामा केशिनीभामिनीतथा ॥ २९ ॥ कौमुदीसुप्रभाचैव उत्पलाचमहोदया॥निषादयोनिंसंप्राप्ताः पूर्वजन्मनिभारत ॥ ३० ॥ एताआप्सरसन्देवं गौरीचैवसुरेश्वरी ॥ माघेमासितृतीयायां निराहाराश्चनिर्जलाः ॥ ३१ ॥ उदकैःस्नापयित्वातु बिल्वपत्रैरपूजयन् ॥ दशवर्षसहस्राणि साव

व सुवर्ण यथाशक्ति माघ शुक्लपक्षकी शुभषष्ठी व सप्तमी जोहै उसमें जो देताहै और आप उपवास करताहै उसदानके प्रभावसे दश हजारवर्ष तक सूर्यलोक में पूजित होताहै ॥ २७।२८ ॥ दक्षिणदिशामें टिका आप्सरस नामतीर्थ है वहां चम्पका,सीमपा,अनामा,केशिनी तथा भामिनी ॥ २९ ॥ कौमुदी,सुप्रभा,उत्पला और महोदया हे भारत ! पूर्वजन्ममें निषाद योनिको भलीभांति प्राप्तहुई ॥३०॥ ये स्त्रियां और सुरेश्वरी गौरी जी भी माघके महीनेमें तृतीया विषे निराहार और निर्जलहोकरके आप्सरस

महादेवजी को ॥३१॥ सावधान होतीहुई निरन्तर दशहजारवर्षतक नर्मदा के जल से स्नान करवाके बिल्वपत्रों से पूजन करतीहुई ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वे सब कामोंसे युक्त व अप्सराओं से भलीभांति पूजित व सब अलङ्कारों की शोभासे युक्त व अनेकप्रकारके वस्त्रोंसे भूषितहुई ॥३३॥ उस तीर्थके माहात्म्य से परमसिद्धिको प्राप्तहुई अब इसके अनन्तर और भी अतिउत्तम पुण्यतीर्थ को कहते हैं ॥३४॥ जिसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले को कन्यादान का फल होताहै उत्तरदिशा में शङ्करनामका लिंग कहागया है ॥ ३५ ॥ हे नराधिप ! अमावास्या में उन देवको पूजकरके सब पापोंसे छूटाहुआ ब्रह्मलोक में पूजित होताहै ॥ ३६ ॥ अब इसके अनन्तर लोकमें

धानास्तुनार्मदैः ॥३२॥ सर्वकामसमृद्धास्ता अप्सरोभिःसुपूजिताः ॥ सर्वालङ्कारशोभाढ्या नानावसनभूषिताः॥३३॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्संसिद्धिंपरमाङ्गताः ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि पुण्यतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥ यत्रस्नातस्य विधिवत्कन्यादानफलम्भवेत् ॥ शङ्करंनामलिङ्गन्तु उत्तरस्यान्दिशिस्मृतम् ॥ ३५ ॥ अर्चयित्वातुतन्देवन्दर्शेचैवनराधिप ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ ३६ ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामि सङ्गमंलोकविश्रुतम् ॥ दत्तात्रेयानदीयत्र सङ्गतासहरेवया ॥ ३७ ॥ सौम्यभागेवरारोहा सुरासुरनमस्कृता ॥ तत्रस्नात्वाचदत्त्वाच अर्चयित्वातुकेशवम् ॥ ३८ ॥ पापिष्ठायेदुराचारा धर्म्मकर्म्मबहिष्कृताः ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थस्य तेपियान्तिहरेःपुरम् ॥ ३९ ॥ मेधातिथिःकरःस्कन्दस्सावर्णिःकौशिकोमनुः ॥ काश्यपोगालवश्चैव मैत्रेयस्तपसांनिधिः ॥४०॥ एतेचान्येपिबहवोऋषयःसंशितव्रताः ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेणसंसिद्धिम्परमाङ्गताः॥४१॥इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेतीर्थमहिमवर्णनोनामैकादशोध्यायः ११

विदित संगम को कहते हैं जहा नर्मदा के साथ दत्तात्रेयानदी मिली है ॥ ३७ ॥ उत्तरके तरफ देवता और दैत्योंसे नमस्कार कीगई नदी है उसमें स्नानकर और दानदेकर व केशवका पूजन करके ॥३८॥ जे पापिष्ठ और धर्मकर्मसे रहित दुराचारीहैं वेभी उस तीर्थके प्रभावसे हरिके पुरको प्राप्तहोते हैं ॥३९॥ मेधातिथि, कर, स्कन्द, सावर्णि, कौशिक, मनु, काश्यप, गालव और तपोनिधि मैत्रेय ॥ ४० ॥ ये व और भी उत्तम व्रतवाले बहुत ऋषि इस तीर्थके प्रभाव से परमसिद्धिको प्राप्तहुये ॥४१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेतीर्थमहिमवर्णनोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र! अब दक्षिण दिशाके आश्रित देवताओंसे पूजित गांजालभेद नामके शैवसंगम को सुनो ॥१॥ वहां स्नानकरके जो मरे वे स्वर्गको जाते व फिर नहीं उत्पन्न होतेहैं व जो देवता और पितरों का तर्पण पिण्डदान करेगा ॥ २ ॥ उसके पितर जबतक सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र रहते हैं तबतक तृप्तरहते हैं बडेउत्सव मे व कार्त्तिकी पौर्णमासी अथवा पर्वमें ॥ ३ ॥ सिद्धिके देनेवाले गाञ्जालेश्वर लिंगको पूजनकरै पूर्वकालमें कन्यापुरके चक्रवर्त्ती राजा हरिकेश ॥ ४ ॥ इस तीर्थके प्रभाव से बछडा और गौवोंकी हत्यासे छूटगये यह सुनके युधिष्ठिर बोले कि हे तात! मुझको यह बहुत बड़ा लोमहर्षण संशय है ॥ ५ ॥ कि उक्त राजाको

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथशृणुष्वराजेन्द्र दक्षिणान्दिशमाश्रितम् ॥ शैवंगाञ्जालभेदञ्च सङ्गमंसुरपूजितम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ यःकुर्य्यात्पितृदेवानां तर्पणंपिण्डपातनम् ॥ २ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ महोत्सवेचकौमुद्यां कार्त्तिक्यांचैवपर्वणि ॥ ३ ॥ गाञ्जालेश्वरलिङ्गञ्च अर्चयेत्सिद्धिदायकम् ॥ हरिकेशश्चक्रवर्ती कन्यापुरपतिःपुरा ॥ ४ ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण मुक्तोभूद्वत्सगोवधात् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ ममास्ति संशयस्तात सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥ ५ ॥ कथंराजनिगोहत्या कथंमुक्तश्चगोवधात् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथान्दिव्यामितिहासंपुरातनम् ॥ ६ ॥ सोमवंशेनृपश्चासीत्सत्यधर्म्मव्रतेस्थितः ॥ देवानीकइतिख्यातो हरिकेशस्तदात्मजः ॥ ७ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णश्चक्रवर्तीमहाबलः ॥ अनेकाश्चमखास्तेन राजन्निष्टामहात्मना ॥ ८ ॥ ख्यातंकन्यापुरंतस्य धनदस्यालकायथा ॥ चिरायुषःप्रजास्सर्वाधनधान्यसमन्विताः ॥ ९ ॥ तुङ्गभद्रेतिविख्याता श्रीशैलेत्रिपुरा

कैसे गोहत्या हुई और उससे छूटभी कैसे गये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! पुराने इतिहास व दिव्यकथा को सुनो ॥ ६ ॥ चन्द्रवंश में सत्य व धर्म के व्रतमें स्थित देवानीक नामसे प्रसिद्ध राजाहुये उनके पुत्र हरिकेश हुये ॥ ७ ॥ जोकि सब लक्षणों से युक्त महाबलवाले चक्रवर्त्ती थे हे राजन्! उन महात्मा राजाकरके अनेक यज्ञ कियेगये ॥ ८ ॥ उनकी कन्यापुर राजधानी कुबेरकी अलकापुरी के समान होतीहुई वहांकी सब प्रजा धन और अन्नसे युक्त दीर्घ आयुर्दायवाली होती हुई ॥ ९ ॥

त्रिपुर के समीप श्रीशैलमें तुंगभद्रानदी प्रसिद्ध है जोकि मल्लिकार्जुन के दर्शन से पातालगङ्गा कहीगई है ॥ १० ॥ तदनन्तर उस पर्वत के पूर्वभागमें श्रीधामनामका वनहै जोकि अनेक मुनियों से व्याप्त व करोड़ों देवताओं से युक्तहै ॥ ११ ॥ वहां शिव परमात्मा करके ललिताजी विवाही गई पूर्वसमयमें प्रजापतिजी ने इन ललिताजी का आयुषा नाम रक्खा था ॥ १२ ॥ व उन्हीं का सुप्रभा नाम विख्यात होताहुआ हे विशाम्पते ! पार्वतीजी का यह पहला अवतार तुमसे कहागया ॥ १३ ॥ दूसरे अवतार में हिमवान् की पुत्री, पार्वती और उमा कहीगई तीसरे में दक्षदुहिता और गौरीनाम से विदितहुई ॥ १४ ॥ हे राजसत्तम ! सुप्रभाके समीप इस पुण्य

न्तिके ॥ उक्तापातालगङ्गेति मल्लिकार्जुनदर्शनात् ॥ १० ॥ पूर्वभागेततस्तस्य श्रीधामंनामखेटकम् ॥ नानामुनिसमाकीर्णं देवकोटिसमावृतम् ॥ ११ ॥ ललितोद्वाहितातत्र शिवेनपरमात्मना ॥ पुरात्वस्यायुषानाम प्रजापतिरकल्पयत् ॥ १२ ॥ सुप्रभानामतस्यास्तु विख्यातमभवत्तथा ॥ देव्याःपूर्वावतारोयं कथितस्तेविशाम्पते ॥ १३ ॥ द्वितीयेहिमवत्पुत्री पार्वतीचउमातथा ॥ तृतीयेदक्षदुहिता नाम्नागौरीतिविश्रुता ॥ १४ ॥ पुण्यतीर्थेचक्षेत्रेस्मिन्हरिकेशःप्रतापवान् ॥ सुप्रभानिकटेनाम सुप्रभोराजसत्तम ॥ १५ ॥ शशासमेदिनींराजा सर्वधर्म्मपरायणः ॥ लक्षमेकन्तुदोग्ध्रीणां राहुसूर्य्यसमागमे ॥ १६ ॥ निष्काणान्तुसहस्रंवै प्रतिगङ्गामकल्पयत् ॥ सर्वाभरणशोभाढ्यामेकांगांचोपवेशयत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणांश्चसमाहूय वेदविद्याबहुश्रुतान् ॥ पञ्चभिर्दिवसैःपूर्वंराहुसूर्य्यसमागमे ॥ १८ ॥ प्रयागेतत्रयोगेवा इत्युक्तंवेदपारगैः ॥ दैवोपक्कृतयोगेन पूर्वकर्म्मकृतेनच ॥ १९ ॥ आग्नेयीहूयतेचेष्टी राज्ञानलसमागमे ॥ अग्नावाहवनीयेत्र रौद्रैर्म

तीर्थक्षेत्रमें प्रताप व सुन्दर शोभावाले हरिकेश नाम ॥ १५ ॥ राजा सब धर्मों में तत्परहो पृथ्वीका राज्य करतेहुये सूर्यग्रहणमें एकलाख गौवें ॥ १६ ॥ व हजार मोहर गंगा के तटमें देतेहुये और सब आभूषणों की शोभा से युक्त एक गौ स्थापित करतेहुये ॥ १७ ॥ सूर्यग्रहण में पांच दिनसे पहले वेदविद्या से युक्त बहुश्रुत ब्राह्मणों को बुलाके पूर्वोक्त दान दिया ॥ १८ ॥ वेदपाठी ब्राह्मणों करके यह कहागया कि इस योगमें प्रयागके समान पुण्यहोता है प्रारब्ध के योगसे अथवा पूर्वकर्म के कारण

करके बडा अनर्थ हुआ ॥ १६ ॥ कि राजाकरके यहां अग्निसमागम विषे आहवनीय अग्नि में बड़े तेजवाले रौद्रमंत्रों से आग्नेयी इष्टि कीगई ॥ २० ॥ उस समय में महाप्रलय के अग्नि के तुल्य प्रभावाला पाताल से पृथ्वी फोड़कर अग्नि निकला उसी से सब गोमण्डल और दश हजार ब्रह्मचारी भस्महोगये ॥ २१ ॥ उस समस्त मण्डप और पुरको भस्म होगया देखकर दुःखी जिनका मन होगया ऐसे राजा हरिकेश अग्नि में प्रवेश करने के वास्ते ॥ २२ ॥ रानियों व समय के जाननेवाले मन्त्रियों व सेनाओं के सहित ज्योंही आसन से उठे त्योंही ॥ २३ ॥ हे भारत ! तीनों लोकों में बडा हाहाकार होताहुआ फिर राजा वेदपाठी ब्राह्मणों

न्त्रैस्सुतेजसैः ॥ २० ॥ पातालादुत्थितोवह्निर्युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ दग्धंगोमण्डलंकृत्स्नमयुतंब्रह्मचारिणाम् ॥ २१ ॥ भस्मीभूतञ्चतत्सर्वं मण्डपंपुरमेवहि ॥ हरिकेशोविषण्णात्मा प्रवेष्टुंवैहुताशनम् ॥ २२ ॥ आसनादुत्थितोराजा सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ अमात्यैस्संवृतस्तावत्समयज्ञैर्वलोत्तरैः ॥ २३ ॥ हाहाकारोमहानासीत्त्रिषुलोकेषुभारत ॥ उवाच वचनंराजा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ २४ ॥ ब्राह्मणस्यैवहत्याया गवांचैवविशेषतः ॥ अपिवर्षसहस्रेण निष्कृतिर्नविधीयते ॥ २५ ॥ धेनूनांचैववत्सानां ब्राह्मणानांयथागतिः ॥ सागतिर्मेभवेन्नित्यं सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गच्छत्वंचमहाभाग कल्पग्रामंपुरोत्तमम् ॥ अगस्तिर्भगवान्यत्र कश्यपोभृगुरेवच ॥ २७ ॥ भारद्वाजोत्रिगर्गौच गौतमोमनुरेवच ॥ याज्ञवल्क्योवशिष्ठश्च ऋषयःशंसितव्रताः ॥ २८ ॥ तत्रगत्वामहाराज प्रायश्चित्तंप्रगृह्यताम् ॥ महर्षीणांमतेनैव वेदशास्त्रार्थदर्शिनाम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तोययौराजा पादचारीद्विजैस्सह ॥ विवेशनगरींपुण्यां ब्रह्मलोक

से वचन बोले ॥ २४ ॥ कि ब्राह्मण और गौवों की हत्याका प्रायश्चित्त विशेष करके हजार वर्ष करके भी नहीं होसक्ता ॥ २५ ॥ इससे गौवों व बछड़ो और ब्राह्मणोंकी जैसी गतिहुई है वहही गति हमारी भी नित्य होवे यह हम सत्य कहते हैं ॥ २६ ॥ तब एक ब्राह्मण बोला कि हे महाभाग ! तुम पुरोंमें उत्तम कल्पग्राम को जावो जहा भगवान् अगस्ति, कश्यप और भृगु ॥ २७ ॥ भारद्वाज, अत्रि, गर्ग, गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ और भी प्रशंसित व्रतवाले ऋषिलोग रहते हैं ॥ २८ ॥ हे महाराज ! वहां जाकर वेद और शास्त्रार्थ के देखनेवाले महर्षियों के मतकरके प्रायश्चित्त ग्रहणकरो ॥ २९ ॥ हे नृप ! इस प्रकार कहेगये राजाने ब्राह्मणों करके

सहित पैदल ब्रह्मलोक के समान पवित्र नगरी में प्रवेश किया ॥३०॥ वहां वे राजा उन महर्षियोंको देखकर अभिवादनपूर्वक प्रणामकरके निश्चय बहुत देरतक उन्हों के आगे खड़ेरहे ॥ ३१ ॥ तब ऋषि बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! हमलोगों के हजारों कर्मों का फलरूप आपका आगमन अतिउत्तमहुआ आपके आगमन का क्या प्रयोजन है यह हमलोगों से सत्य कहिये ॥ ३२ ॥ उन ब्रह्मचारी ऋषियों के उस वचन को सुनके हाथ जोड़कर अपना वृत्तान्त कहतेहुये ॥ ३३ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! भलीभांति सिद्ध भी कार्य प्रारब्ध से नष्टहोजाता है एकलाख गौवें और दशहजार ब्राह्मण जलगये ॥ ३४ ॥ इसका प्रायश्चित्त आप बतलावें हम इसको बडा अनुग्रह मानते हैं तब

समान्नृप ॥ ३० ॥ महर्षीस्तत्रतान्दृष्ट्वा सोभिवाद्यप्रणम्यच ॥ निश्चयंचिरकालन्तु तेषामेवाग्रतःस्थितः ॥ ३१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ स्वागतंतेनृपश्रेष्ठ फलंकर्म्मसहस्रशः ॥ किमागमनकार्य्यञ्च सत्यमेतद्वदस्वनः ॥ ३२ ॥ तेषांतद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा वृत्तान्तंस्वंन्यवेदयत् ॥ ३३ ॥ दैवाद्विपद्यतेकार्य्यं संसिद्धमपिभो द्विजाः ॥ दशायुतंगवान्दग्धं द्विजानामयुतंतथा ॥ ३४ ॥ अनुग्रहंबहुंमन्ये प्रायश्चित्तमथोदितम् ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ दश लक्षाणिगायत्र्यास्तीर्थेतीर्थेजपंकुरु ॥ ३५ ॥ अयुतन्तुगवान्दत्त्वा सहिरण्यंनृपोत्तम ॥ कोटिहोमन्तुकुर्वीत सहस्र शतदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ प्रयागंचमहातीर्थं गच्छेद्वाराणसींशुभाम् ॥ केदारंचतथेशानं गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ३७ ॥ पि तृतीर्थंगयाञ्चैव नैमिषंपुष्करंतथा ॥ मायापुरींहरिक्षेत्रं गङ्गाद्वारंमहाफलम् ॥ ३८ ॥ तीर्थेष्वेतेषुचान्येषु यावद्द्वादश वत्सरान् ॥ ३९ ॥ अनेनक्रमयोगेन शुद्धिस्तेनात्रसंशयः ॥ मुक्तिस्तेभविताराजन्ब्राह्मणानांप्रभावतः ॥ ४० ॥ दत्त

ब्राह्मण बोले कि प्रतितीर्थ में गायत्री का दशलाख जपकरो ॥ ३५ ॥ व हे नृपोत्तम ! सुवर्ण सहित दशहजार गौवों का दान करके एकलक्ष दक्षिणा के सहित करोड आहुतियों से हवनकरो ॥ ३६ ॥ महातीर्थ प्रयाग, शुभरूप काशी, केदार तथा ईशान, गंगासागरसंगम, पितरों का तीर्थ गया, नैमिष, पुष्कर तथा मायापुरी, हरि- क्षेत्र और महाफलवाले गंगाद्वारको जावो ॥ ३७ । ३८ ॥ इन तथा और भी तीर्थों में बारहवर्षतक इस पूर्वोक्तकर्म के करने से आपकी शुद्धिहोगी इसमें संशय नहींहै हे

राजन् ! ब्राह्मणों के प्रभाव से आपकी मुक्तिहोगी॥३९।४०॥ वेदके वाक्य से ब्राह्मणोंकरके तुमको प्रायश्चित्त दियागया इससे ब्राह्मणों के चरणोंकी पूजा विधिसे करना चाहिये ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर राजा सोमसव यज्ञ करने के वास्ते कुरुक्षेत्र को जातेहुये अपने पापों का प्रायश्चित्त इस प्रकार समझकर सरस्वतीनदी के आश्रित हुये ॥ ४२ ॥ शिवजी का स्तोत्र, हर, विष्णु, सरस्वती का जप किया और यह कहते हैं कि कुरुक्षेत्र को जायँगे और कुरुक्षेत्रहीमें बसेंगे ॥ ४३ ॥ कुरुक्षेत्र के नाम करके भी मनुष्य पापसे छूटजाता है इस संसार में समस्त शब्दरूप औषधों से नाशकर दियेगये हैं सब प्राणियों के कलङ्क जिस करके और मुनियों करके उपासना

न्तेश्रुतिवाक्येन प्रायश्चित्तंद्विजोत्तमैः ॥ पादपूजाद्विजेन्द्राणां कर्तव्याचविधानतः ॥ ४१ ॥ कुरुक्षेत्रंजगामाथ कर्तुंसोमसवंनृपः ॥ विचिन्त्यैवंस्वाघन्यासंसरस्वत्यांसमाश्रयत् ॥ ४२ ॥ जपतिस्माशिवस्तोत्रं हरंविष्णुंसरस्वतीम् ॥ कुरुक्षेत्रंगमिष्यामि कुरुक्षेत्रेवसाम्यहम् ॥ ४३ ॥ कुरुक्षेत्रस्यनाम्नापि नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ अखिलशब्दमहौषधप्रक्षालितसकलभूतकलङ्का ॥ मुनिभिरुपासिततीर्थासरस्वतीहहरतुमेदुरितम् ॥ ४४ ॥ राज्ञस्तद्वचनंश्रुत्वा प्राहपापहरानदी ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र शृणुमेवचनंपरम् ॥ ४५ ॥ उपदेशंप्रदास्यामि स्थातुंतवनृपोत्तम ॥ अनेकभाविकंघोरं स्मरणादेवनश्यति ॥ ४६ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रन्तु गोहत्यालक्षमेवच ॥ नचमोचयितुंशक्ता गङ्गाचैवसरिद्वरा ॥ ४७ ॥ चराचरेस्यलोकेस्मिन्कर्त्रीतिष्ठतिकल्पगा ॥ दीपादित्यादिभिर्वीक्ष्य यथान्धत्वंप्रणश्यति ॥ ४८ ॥ तथानाशयतेपापं कल्पगासरितांवरा ॥ दानैर्दग्धापुराचाहं क्षत्रियाणामनेकधा ॥ ४९ ॥ अस्ताहन्तेनपापेन नृपदक्षिणयाततः ॥ शुक्लतः

कियाजाता है स्नान स्थान जिसका ऐसी सरस्वती हमारे पापको हरे ॥ ४४ ॥ राजा के इस वचनको सुनके पापों की हरनेवाली सरस्वतीनदी बोली कि हे राजेन्द्र ! विषादको छोड़ो और हमारे श्रेष्ठ वचन को सुनो ॥ ४५ ॥ हे नृपोत्तम ! हम तुम्हारे रहनेके वास्ते उपदेश देतीहै जिसके स्मरणमात्रसे अनेक जन्मोंका घोर पाप नष्ट होजाता है ॥ ४६ ॥ हजारो ब्रह्महत्या और लाखों गोहत्या छुडाने को नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी नहीं समर्थ होसक्तीं ॥ ४७ ॥ इस कामकी करनेवाली इस चराचरलोक में नर्मदाही विद्यमान होरही हैं दीप और सूर्यआदि के द्वारा देखकर जैसे अन्धत्व दूरहोता है ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार नदियो में श्रेष्ठ नर्मदाजी पापको नाश करतीहैं पूर्व

कालमें क्षत्रियों के अनेक प्रकार के दानोंकरके हम दग्ध होगईं थीं ॥ ४९ ॥ हे नृप ! उस पापकरके अथवा दक्षिणा करके ग्रस्तहुईं हम अपने शुक्लवर्ण से कृष्ण वर्णको प्राप्तहुईं हे पृथिवीपते ! ॥ ५० ॥ राहुकरके सूर्यको ग्रस्तहुये पर हे नराधिप! कोटितीर्थ में स्नान करने के वास्ते हम बारहवें और चौबीसवें वर्षमें जातीरहीं ॥ ५१ ॥ सो अब तुम हमारा शरीर तेजके समान उज्ज्वल प्रत्यक्ष देखो हे नृपश्रेष्ठ ! स्नान और शिवका पूजन करके बहुत सुवर्ण जिसमें दियाजावे ऐसे उत्तम यज्ञको वहां करो तिससे तुम्हारी निष्कृति होजायगी और जो ब्राह्मण व गौवें मरी हैं उनकी हड्डियोंको जल में बहादो ॥ ५२ । ५३ ॥ नर्मदा के जलके स्पर्श से स्वर्ग में देव

कृष्णतांचाहं प्राप्ताभोःपृथिवीपते ॥ ५० ॥ द्वादशाब्देचतुर्विंशे स्नानंकर्तुंसमागमम् ॥ ग्रस्तेवैराहुणासूर्य्ये कोटितीर्थेनराधिप ॥ ५१ ॥ प्रत्यक्षंमेशरीरन्त्वं पश्यतेजस्समुज्ज्वलम् ॥ स्नात्वातुशिवमभ्यर्च्य बहुस्वर्णमखोत्तमम् ॥५२॥ कुरुतत्रनृपश्रेष्ठ तेनतेनिष्कृतिर्भवेत् ॥ येमृताब्राह्मणागावस्तेषामस्थिप्रवाहनम् ॥ ५३ ॥ नर्म्मदोदकसम्पर्काद्दिवि देवत्वमाप्यते ॥ तिलोदकप्रदानेन तेषांमुक्तिःपराभवेत् ॥ ५४ ॥ श्रुत्वैतत्कथितंवाक्यं सरस्वत्यान्नृपश्चताम् ॥ नमस्कृत्यसमुत्थाय कन्यापुरमगात्ततः ॥ ५५ ॥ सान्तःपुरपरीवारो मुदापरमयान्नृपः ॥ तेनाज्ञप्तास्ततोभृत्याः सर्वसम्भारसंभृताः ॥ ५६ ॥ यज्ञोपस्करमादाय मेकलायत्रगच्छत ॥ अस्थिभस्मयथान्यायं नीतंकर्म्मकरैस्ततः ॥ ५७ ॥ प्रावाहयत्कल्पगायां मन्त्रयुक्तेनवारिणा ॥ अस्थ्यादिपूजयित्वाच यथाविधमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥ देवांश्चब्राह्मणांस्तत्र तर्प्पयि

भाव प्राप्त होगा और तिलोदक के देने से उनकी परममुक्तिहोगी ॥ ५४ ॥ इस सरस्वती के कहे हुये वचनको सुनकर राजा उन सरस्वतीजी के नमस्कार करके तदनन्तर उठकर कन्यापुर को जातेहुये ॥ ५५ ॥ रानी व परिवार के सहित बड़े आनन्द से युक्त राजा होते हुये तदनन्तर राजाकरके सब सामान से युक्त नौकर लोग आज्ञा दियेगये ॥ ५६ ॥ राजाने कहा कि यज्ञका सामान लेकर तुम सब जहां नर्मदा हैं वहां को जावो तदनन्तर नौकरों करके हड्डी व भस्म नर्मदा के तट में प्राप्तकीगईं ॥ ५७ ॥ मन्त्रयुक्त जलकरके नर्मदा में अस्थिआदि को बहादिया व विधिपूर्वक अतिउत्तम पूजन करके ॥ ५८ ॥ हाथ जोड़हुये देवता और ब्राह्मणों को

वहां तृप्तकरके कृतकृत्य होतेहुये वहां एक सोता निकला व नर्मदा में प्रवेश करता हुआ ॥ ५९ ॥ हे नृप ! वह नर्मदासंगम गांजाल नामसे विदित होताहुआ व करोड़ सूर्यके समान तेजवाला गांजालसिद्धलिंगभीहै ॥६०॥ जो कालाग्निकरके भस्म करदियेगये थे वे सब दिव्यसवारी पर सवार आशीर्वाद देनेमें तत्पर हरिकेशकी स्तुति करतेहुये ॥ ६१ ॥ कि हे महाभाग ! आपके प्रसाद से हम सब स्वर्गमें देवभाव को प्राप्तहुये देवताओं की दुन्दुभी, वेणु और वीणाओं के शब्दों करके युक्त ॥ ६२ ॥ दिव्य सवारियों पर सवार वे सब वैष्णवपद को प्राप्तहुये और राजाओं में श्रेष्ठ हरिकेशभी परमआनन्द से युक्त ॥ ६३ ॥ सात कल्पतक बहनेवाली लोकोंको पवित्र

त्वाकृताञ्जलिः ॥ प्रवाहोनिर्गतस्तत्र नर्म्मदायांसमाविशत् ॥ ५९ ॥ सगाञ्जालेतिविख्यातो नर्म्मदासङ्गमोनृप ॥ गाञ्जालसिद्धलिङ्गञ्च सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥ ६० ॥ दिव्ययानसमारूढा दग्धाःकालाग्निनातुये ॥ आशीर्वादपरास्सर्वे हरिकेशंप्रतुष्टुवुः ॥ ६१ ॥ त्वत्प्रसादान्महाभाग दिविदेवत्वमागताः ॥ देवदुन्दुभिनिर्घोषैर्वेणुवीणारवैस्तथा ॥ ६२ ॥ दिव्ययानसमारूढा गतास्तेवैष्णवम्पदम् ॥ हरिकेशोनृपश्रेष्ठः परयाचमुदायुतः ॥ ६३ ॥ सप्तकल्पवहान्देवीं नर्म्मदां लोकपावनीम् ॥ नमस्कृत्यसरिच्छ्रेष्ठां स्तुतिंचक्रेसमाहितः ॥ ६४ ॥ नमस्तेस्तुसरिच्छ्रेष्ठे सप्तकल्पनिवासिनि ॥ यत्र तत्रनरःस्नात्वा मुक्तोभवतिकल्मषात् ॥ ६५ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ जन्मान्तरसहस्रेण नत्वांस्तम्भयतेबली ॥ ६६ ॥ जह्नुनाहिपुरापीता करतोयेनजाह्नवी ॥ त्वयाचपूरितंसर्वं विश्वंचैवचराचरम् ॥ ६७ ॥ त्वत्प्रसादान्महादेवि मुक्तिश्चापिभवार्णवात् ॥ प्रत्यक्षाकल्पगेतच स्तोत्रंश्रुत्वानृपोदितम् ॥ ६८ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ वरंवृणुमहाभा

करनेवाली नदियों में श्रेष्ठ नर्मदादेवी को नमस्कार करके सावधान होकर स्तुति करतेहुये ॥ ६४ ॥ हे सरिच्छ्रेष्ठे ! हे सप्तकल्पनिवासिनि ! आपके लिये नमस्कार है जहां कहीं आपमे स्नान करके मनुष्य पापसे छूटजाताहै ॥ ६५ ॥ इस घोरसंसारसागरमें फिर उसकी आवृत्ति नहीं होती हजारजन्मों करके भी कोई बली तुमको नहीं रोकसक्ता ॥६६॥ पूर्वकाल में जह्नुकरके हाथसे गंगाजी पीडालीगई तुमकरके सब चराचर विश्व पूर्ण करदियागया ॥६७॥ हे महादेवि ! तुम्हारे प्रसादसे संसारसमुद्र से मुक्ति होतीहै राजाकरके कहे इसस्तोत्रको सुनके नर्मदाजी प्रत्यक्ष होतीहुई ॥६८॥ नर्मदा बोलीं कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस वरको मांगो

नर्मदाके उसवचन को सुनकर हरिकेश यह बोले ॥ ६९ ॥ कि हे देवि ! जो तुम मुझे वर देनेको उद्यतहो तो मुझको पवित्रकरो स्नान, अवगाहन, जलपान, स्मरण और कीर्त्तनसे भी सात जन्मोंका कियाहुआ पाप शीघ्रही नाशहोजावे तब नर्मदा बोलीं कि हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसाही हो हमारे प्रसाद से सब होगा ॥ ७० । ७१ ॥ इस प्रकार कहकर नर्मदाजी वहीं अन्तर्धान होगईं सब अलङ्कारों से भूषित चक्रवर्त्ती हरिकेश साष्टाङ्ग प्रणाम करके अभीष्ट सवारी पर सवार होकर जैसे अमरावतीमें इन्द्र वैसेही पवित्र अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ७२ । ७३ ॥ तदनन्तर कुछकाल राज्यकरके रानी और परिवारके सहित स्वर्गमें संपूर्ण भोगोंको भोगतेहुये ॥ ७४ ॥ हे महाभाग !

ग यत्तेमनसिवर्तते ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा हरिकेशोब्रवीदिदम् ॥ ६९ ॥ यदिमेवरदादेवि पूतंमांपरिकल्पय ॥ स्नानावगाहनात्पानात्स्मरणात्कीर्त्तनादपि ॥ ७० ॥ सप्तजन्मकृतंपापं सद्यएवप्रणश्यतु ॥ रेवोवाच ॥ एवमस्तुनृपश्रेष्ठ मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ हरिकेशश्चक्रवर्ती साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ७२ ॥ कामिकंयानमारुह्य सर्वालङ्कारभूषितः ॥ विवेशनगरंपुण्यं यथाशक्रोमरावतीम् ॥ ७३ ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते राज्यं कृत्वासुरालये ॥ सान्तःपुरपरीवारो भोगान्भुङ्क्तेस्मपुष्कलान् ॥ ७४ ॥ एतत्तेकथितंराजन्महाभागविशाम्पते ॥ द्वापरंवंशमैक्ष्वाकं ब्राह्मंवैवस्वतंतथा ॥ ७५ ॥ कापिलंपुष्करंचेति सप्तकल्पान्विदुर्बुधाः ॥ कापिलंप्रथमंविद्धि प्राजापत्यं द्वितीयकम् ॥ ७६ ॥ ब्राह्मंरौचञ्चसावित्रं बार्हस्पत्यंप्रभासकम् ॥ महेन्द्रमग्निकल्पंवैजयन्तंमारुतंतथा ॥ ७७ ॥ वैष्णवंब्रह्मरूपञ्च ज्योतिषञ्चचतुर्दशम् ॥ एतेकल्पास्तुसंख्यातानमृतायेषुनर्मदा ॥ ७८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्नितिहास

हे विशाम्पते ! हे राजन् ! यह आख्यान आप से कहागया द्वापर, वंश, ऐक्ष्वाक. ब्राह्म तथा वैवस्वत ॥ ७५ ॥ कापिल और पुष्कर इन सातकल्पोंको विद्वान् जानते हैं पहला कल्प कापिल जानो दूसरा प्राजापत्य ॥ ७६ ॥ ब्राह्म, रौच, सावित्र, बार्हस्पत्य, प्रभासक, महेन्द्र, अग्निकल्प, वैजयन्त तथा मारुत ॥ ७७ ॥ वैष्णव, ब्रह्मरूप और चौदहवां ज्योतिष ये कल्प गिनेगये जिनमें नर्मदाजी नहीं मरीं ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया यह धन, यश और आयुर्दाय का

देनेवाला और महात्माओं की कीर्त्तिको बढ़ानेवालाहै ॥ ७९ ॥ इसके सुनने व कहनेसे सब पापोंसे छूटजाता है॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्मदामाहात्म्ये प्राकृतभाषाऽनुवादेगाञ्जालतीर्थवर्णनोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाला दक्षिण दिशामें बालुकेश्वर नामसे विख्यात अन्य परमतीर्थ है ॥ १ ॥ वहां परमसिद्धिका देनेवाला पवित्र लिंग कहागया है वहां सविधि स्नानकरके भारभर सुवर्णदान का फल पाताहै ॥ २ ॥ शंकुकर्ण नामसे विख्यात परमसिद्धि का देनेवाला यक्ष उत्तरा-

म्पुरातनम् ॥ धन्यंयशस्यमायुष्यं महतांकीर्तिवर्द्धनम् ॥ ७९ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि मुच्यतेसर्वकिल्बिषात् ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदामाहात्म्येगाञ्जालतीर्थवर्णनोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❋ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥ दिशियाम्यांसमाख्यातं नाम्नावैबालुकेश्वरम् ॥ १ ॥ पुण्यंप्रकीर्तितंतत्र लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ तत्रस्नात्वायथान्यायं हेमभारफलंलभेत् ॥ २ ॥ शङ्कुकर्णइतिख्यातो यक्षःपरमसिद्धिदः ॥ उत्तरायणमासाद्य कन्यारेवासमागमे ॥ ३ ॥ संजगामनृपश्रेष्ठ शिवसंसक्तमानसः ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि ब्राह्मणार्थमकल्पयत् ॥ ४ ॥ तावन्नृपस्तुतंस्थानात्स्थाणुञ्चैवमहेश्वरम् ॥ चालयामासयक्षस्तु ततः क्रुद्धोमहेश्वरः ॥ ५ ॥ ददाहहस्तौयक्षस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥ आकाशवचसाप्रोक्तं विषादन्त्यजपुत्रक ॥ ६ ॥ सुरसङ्घास्त्रयस्त्रिंशन्नैनंचालयितुंक्षमाः ॥ सुरासुरगुरुन्देवं स्थाणुभूतंस्वयम्भुवम् ॥ ७ ॥ किंपुनर्दानवायक्ष मानुषाश्चाल्पचेत

यण सूर्य को प्राप्तहो कन्या और नर्मदानदी के समागममें ॥ ३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! महादेवमें मनको लगायेहुये प्राप्तहुआ वहां ब्राह्मणों के अर्थ मणि और माणिक व रत्नोंको देताहुआ ॥ ४ ॥ तबतक हे नृप! वह यक्ष स्तुति कियेगये स्थापित महादेवजीको स्थानसे चलाताहुआ तब महादेवजी क्रुद्धहो ॥ ५ ॥ विस्मय को प्राप्तहुये यक्षके दोनों हस्त भस्म करदिये तब आकाशवाणी से कहागया कि हे पुत्रक! विषाद को छोडदो ॥ ६ ॥ इन स्थाणुभूत देवता और दैत्योंके गुरु स्वयम्भूदेव को चलाने को तेंतीस

देवता नहीं समर्थ होसक्ते ॥ ७॥ हे यक्ष! थोड़ी बुद्धिवाले दानव और मनुष्य क्या हैं तब शंकुकर्ण देवताओं के ईश्वर करोड़ सूर्य के समान तेजवाले प्रचण्ड प्रकाश वाले महादेव को क्षमाकराके कहा कि अज्ञान से यह काम किया गया इससे मुझ पुत्रके विषयमें क्षमा करनी चाहिये ॥ ८। ९॥ महादेवजीसे वचन बोला कि हे महेश्वर ! वरदेवो प्रसन्नकरके यक्षने कहा कि आपके वशको प्राप्त होरहे भृत्यको ॥ १०॥ गणोंके मध्यमें हे सुरसत्तम ! गणभाव देवो व यक्षतीर्थ इस नाम से विख्यात और बालुकेश्वर लिंग ॥ ११ ॥ इस तीर्थमें करने को हे देवेश ! आप योग्य हो जिससे सब चराचर करके यहां उत्तरायणमें स्नान दान करना उत्तम होवे ॥१२॥ हे शंकर !

सः ॥ क्षमयित्वातुदेवेशं शङ्कुकर्णोमहेश्वरम् ॥ ८ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं ज्वलन्तंदीप्ततेजसम् ॥ अज्ञानात्कृतमेतत्तु क्षन्तव्यंमयिपुत्रके ॥ ९ ॥ उवाचवचनंदेवं वरंदेहिमहेश्वर ॥ प्रसाद्यचाब्रवीद्यक्षस्तवभृत्यंवशङ्गतम् ॥ १० ॥ गणत्वंगणमध्येतु देहिहेसुरसत्तम ॥ यक्षतीर्थमितिख्यातं लिङ्गंवैबालुकेश्वरम् ॥ ११ ॥ कर्तुमर्हसिदेवेश तीर्थेऽस्मिन्सचराचरैः ॥ अयनेचोत्तरेह्यत्र स्नानदानमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ इमंवरमहंमन्ये यदितुष्टोसिशङ्कर ॥ शङ्करउवाच ॥ सर्वकामफलावाप्तिर्मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहेशानस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ शङ्कुकर्णोमहातेजास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १४ ॥ दिव्ययानंसमारुह्य ययौमाहेश्वरम्पुरम् ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १५ ॥ दिशियाम्यांसमाख्यातं नाम्नापूर्णमनोरथम् ॥ पुण्यकीर्तनलिङ्गन्तु ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ॥ १६ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज गोसहस्रफलंलभेत् ॥ हरिवर्मापुराचासीद्विराटनगराधिपः ॥ १७ ॥ सर्वधर्म्मगुणोपेतो यज्ञयाजीमहायशाः ॥ इष्टस्त

जो आप प्रसन्न होवो तो हम इसी वर को चाहते हैं तब महादेवजी बोले कि सब मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हमारे प्रसादसे होगी ॥ १३ ॥ महादेवजी ऐसे कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये व बड़े तेजवाले शंकुकर्ण भी इस तीर्थके प्रभावसे ॥ १४ ॥ दिव्य सवारी पर चढ़कर महादेवजी के पुरको चलेगये अब इसके अनन्तर एक और सब पापोंका हरनेवाला परमतीर्थ ॥ १५ ॥ दक्षिणदिशामें पूर्णमनोरथ नाम से विख्यात और ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला पुण्यकीर्तन लिंगभीहै ॥१६॥ वहां स्नान करके हे महाराज ! हजार गोदानका फल होताहै पूर्वकाल में विराटनगर के राजा हरिवर्मा होतेहुये ॥ १७ ॥ जोकि सब धर्म और गुणों से युक्त यज्ञोंका करनेवाला,

बड़ा यशस्वी होताहुआ जिसकरके वहां नर्मदाके तटमें बड़ायज्ञ कियागया ॥१८॥ भारभर सुवर्ण के सहित वहां एकलाख गोदान दिया और देवता,ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति वहां तृप्त किगेगये ॥ १९ ॥ नाना रत्नोंसे भूषित ब्राह्मण भक्तिकरके पूजन कियेगये मनोरथ जिनके पूर्णहुये ऐसे सब देवता राजाकी प्रशंसा करतेहुये ॥२०॥ अब इसके अनन्तर एक और तीर्थ कहते हैं जोकि सब तीर्थों में अतिउत्तम व नर्मदा और मत्स्याके संगम में सब देवता दैत्योंकरके नमस्कार कियागया है ॥ २१॥ हे अनघ ! नाभाग राजा और आपस्तम्बमुनि का संवाद है चाक्षुष मन्वन्तर में द्वापरयुग के प्राप्तहुयेपर ॥ २२ ॥ मत्स्येश्वर नामकरके विदित जलके मध्यमें स्थित

त्रमहायज्ञो येनवैकल्पगातटे ॥ १८ ॥ गोलक्षंतत्रदत्तञ्च हेमभारपरिष्कृतम् ॥ देवाश्चतर्पितास्तत्र ब्रह्माविष्णुर्बृहस्पतिः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाःपूजिताभक्त्या नानारत्नविभूषिताः ॥ प्रशशंसुश्चनृपतिं सुराःपूर्णमनोरथाः ॥ २० ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थात्तीर्थमनुत्तमम् ॥ रेवामत्स्यासमायोगे सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २१ ॥ नाभागस्यचसंवादमापस्तम्बस्य चानघ ॥ मन्वन्तरेचाक्षुषेवै संप्राप्तेद्वापरेयुगे ॥ २२ ॥ नाम्नामत्स्येश्वरंलिङ्गंजलमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ पूज्यतेनागकन्याभिर्नतंपश्यन्तिमानुषाः ॥ २३ ॥ महातेजोमणिमयं चन्द्रबिम्बसमप्रभम् ॥ स्मरणाद्यस्यदेवस्य ब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ २४ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ साधुभिःसहसंवासात्केगुणाःपरिकीर्तिताः ॥ काःकथाःकानिपुण्यानि सङ्गमेसाप्तकल्पगे ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासम्पुरातनम् ॥ नाभागस्यचसंवादमापस्तम्बतपोनिधेः ॥ २६ ॥ महर्षिश्चात्मवान्पूर्वमापस्तम्बोद्विजोत्तमः ॥ उपवासकृतारम्भो बभूवभगवांस्तथा ॥ २७ ॥ नित्यंक्रोधं

लिंग जोकि नागकन्याओं करके पूजन कियाजाता उसको मनुष्य नहीं देखते ॥ २३ ॥ मणियों से बना बड़ा तेजवाला चन्द्रबिम्बके समान प्रभावाला जिस देव के स्मरण से ब्रह्महत्या नष्ट होतीहै ॥२४॥ तब युधिष्ठिर बोले कि महात्माओं के साथ वासकरनेसे कौन २ गुण कहेगये व कौन २ कथा और नर्मदा के संगम में कौन२ पुण्य होतेहैं ॥ २५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि यहींपर इस पुराने इतिहास को कहते हैं नाभागराजा और तपोनिधि आपस्तम्ब का संवाद है ॥ २६ ॥ मनके वश करनेवाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ व्रतारम्भ के करनेवाले सब ऐश्वर्योंसे युक्त पूर्वकालमें आपस्तम्बमहर्षि होतेहुये ॥ २७ ॥ क्रोध, काम, लोभ और मोहको नित्यही त्याग

करके नर्मदा और मत्स्या के संगममें जल में प्रवेश किया ॥ २८ ॥ वहां मल्लाहों करके नदीके जलके भँवरमें मछलियोंके साथ जालोंसे वे महात्माभी खींचलियेगये ॥ २९ ॥ फिर उस जल से ब्रह्मनन्दन आपस्तम्ब को मल्लाहोंने निकाला तपस्या से प्रकाशमान उन आपस्तम्ब को देखकर मल्लाह लोग भयसे घबड़ागये ॥ ३० ॥ शिरोंसे ऊंचा प्रणाम करके इस वचन को बोले कि अज्ञान से इस काम के करनेवाले हमलोगों के अपराध को क्षमा करो ॥ ३१ ॥ और हे सुव्रत ! आज हम आप का क्या प्रियकरैं सो आज्ञादेवो तब मुनि मछलियों के उस कियेगये महानाशको देखकर ॥ ३२ ॥ बड़ी कृपासे युक्त व दुःखित हो मल्लाहों से बोले कि

चकामञ्च लोभंमोहंविसृज्यच ॥ रेवामत्स्यासमायोगे विवेशसलिलाशये ॥ २८ ॥ समत्स्यैःसलिलावर्ते सरितश्चानुगैस्तदा ॥ तत्रान्योत्पतितैर्जालैस्समानीतोमहायशाः ॥ २९ ॥ तस्मादुत्तारयामासुस्सलिलाद्ब्रह्मनन्दनम् ॥ तन्दृष्ट्वातपसादीप्तं कैवर्ताभयविह्वलाः ॥ ३० ॥ शिरोभिःप्रणिपत्योच्चैरिदंवचनमब्रुवन् ॥ अज्ञानात्क्रियमाणानामस्माकंक्षन्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ किंवाकिञ्चप्रियन्तेऽद्य तदाज्ञापयसुव्रत ॥ समुनिस्तन्महद्दृष्ट्वा मत्स्यानांकदनंकृतम् ॥ ३२ ॥ कृपयापरयाविष्टो दाशान्प्रोवाचदुःखितः ॥ दुःखितानीहभूतानियोनभूतैःपृथग्विधैः ॥ ३३ ॥ केवलात्मसुखेच्छातोवेन्द्रंशंसतरोऽस्तिकः ॥ ३४ ॥ अहोस्वस्थेष्वकारुण्यं स्वार्थैचैववलिर्वृथा ॥ ३५ ॥ ज्ञानिनामपिचेद्यस्तु केवलात्महितेरतः॥ ज्ञानिनोहियथास्वार्थमाश्रित्यध्यानमाश्रिताः ॥ ३६ ॥ दुःखार्तानीहभूतानि प्रयान्तिशरणंततः ॥ योभिवाञ्छतिभोक्तुंवै सुखान्येकान्ततोजनः ॥ ३७ ॥ पापात्परतरंतंहि प्रवदन्तिमुमुक्षवः ॥ कोनुमेस्यादुपायोहियेनाहंदुःखितात्मना

इस संसारमें मूर्खप्राणियोंकरके दुःखित कियेगये जीवोंकी जो पुरुष केवल अपने सुखकी इच्छासे रक्षा नहीं करता उससे और दूसरा क्रूर कौनहै॥३३।३४॥ बड़े खेदकी वार्त्ताहै कि जो जीव आपही स्वस्थ नहींहैं उनमें निर्दय होना और अपने वास्ते भोगदेना यह वृथा है ॥ ३५ ॥ ज्ञानियों के मध्य में भी जो केवल अपने ही हित में तत्पर है जैसे कि ज्ञानीजन अपने स्वार्थ के आश्रित होकर ध्यान के आश्रित होते हैं ॥ ३६ ॥ इस संसार में दुःख से कष्टित जीव शरण को प्राप्तहोते है जो मनुष्य केवल सुखों को ही भोग करने की इच्छा करता है ॥ ३७ ॥ मुमुक्षुलोग उसको निश्चय पापीसे पापी कहते हैं वह कौन उपाय हमको सिद्धहोवे कि जिसकरके

दुखिया मनवाले ॥३८॥ जीवोंके भीतर पैठकर उनके सब दुःखोंका भोगनेवाला मैं होऊं जो कुछ हमारे पुण्यहोवे वह दीनोंके पास चलाजावे ॥ ३९ ॥ और उन दीनोंकरके जो पाप कियागया हो वह सब हमारे पास आजावे उन दरिद्री और विकलाङ्ग रोगी दुखियों को देखकर ॥ ४० ॥ जिसके दया नहीं उत्पन्नहोती वह राक्षस है यह हमारा सिद्धान्त है प्राणोंकी सन्देह को प्राप्तहोरहे और भयसे घबड़ायेहुये प्राणियों की ॥ ४१ ॥ जो समर्थ होकर भी रक्षा नहीं करता वह दुःखी प्राणियों के पापको भोगताहै डरानेहुये रक्षाकरने के वास्ते बुलायेगये जीवोंको जो सुखहोताहै ॥४२॥ स्वर्ग और मोक्ष उसकी सोलहवीं कलाको नहीं प्राप्त होसक्ते इससे इन दीन अतिदुःखित

मू ॥ ३८ ॥ अन्तःप्रविश्यभूतानां भवेयंसर्वदुःखभुक् ॥ यन्ममास्तिशुभंकिञ्चित्तद्दीनानुपगच्छतु ॥ ३९ ॥ यत्कृतंदुष्कृतंतैश्च तदशेषमुपैतुमाम् ॥ दृष्ट्वातान्कृपणान्व्यङ्गाननङ्गान्रोगिणस्तथा ॥ ४० ॥ दयानजायतेयस्य सरक्षइतिमे मतिः ॥ प्राणसंशयमापन्नान्प्राणिनोभयविह्वलान् ॥ ४१ ॥ योनरक्षतिशक्तोपि सतत्पापंसमश्नुते ॥ आहूतानांभयार्तानां सुखंयदुपजायते ॥ ४२ ॥ तस्यस्वर्गापवर्गौच कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ तस्माचैतानहंदीनाञ्छकुंमीनान्सुदुःखितान् ॥ ४३ ॥ याद्दष्ट्वात्रंनपश्यामि किंपुनस्त्रिदशालयम् ॥ निशम्यैतन्मुनेर्वाक्यं दाशास्तेजातसंभ्रमाः ॥ ४४ ॥ यथार्थन्तुतथासर्वं नाभागायन्यवेदयन् ॥ नाभागोपिततःश्रुत्वा तन्द्रष्टुंब्रह्मनन्दनम् ॥ ४५ ॥ त्वरितःप्रययौतत्र सामात्यस्सपुरोहितः ॥ ससम्यक्पूजयित्वातु देवकल्पंनृपस्ततः ॥ ४६ ॥ प्रोवाचभगवन्विद्वन्किंकरोमितवाज्ञया ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ श्रमेणमहताविष्टाः कैवर्तादुःखजीविनः ॥ ४७ ॥ ममर्मूल्यंप्रयच्छेति यद्योग्यंमन्यसेनृप ॥ नाभागउ

मछलियों की रक्षा करने के बराबर हम ॥ ४३ ॥ मोक्षको भी नहीं देखते फिर स्वर्ग तो क्या पदार्थ है इस मुनिके वचन को सुनकर वे मल्लाहलोग सम्भ्रमको प्राप्त हुये ॥ ४४ ॥ और वह सब वृत्तान्त नाभागसे यथार्थ कहतेहुये तदनन्तर नाभाग भी वृत्तान्त को सुनकर उन ब्रह्मनन्दनको देखनेके लिये ॥ ४५ ॥ पुरोहित और मन्त्रियों करके सहित बड़ेवेग से वहां जातेहुये तदनन्तर देवताओंके तुल्य आपस्तम्ब का अच्छेप्रकार पूजनकरके वे राजा ॥ ४६ ॥ बोले कि हे भगवन्! हे विद्वन्! आपकी आज्ञाकरके हम क्या करैं तब आपस्तम्ब बोले कि दुःखहीसे जिनका जीवन ऐसे ये मल्लाह बड़ेश्रमसे युक्तहोरहेहैं ॥४७॥सो हे नृप! जो हमारे योग्य मानते हो वह हमारा

मूल्य इनको देवो तव नाभाग बोले कि एकलाख आपका मूल्य हम निषादोंको देतेहैं ॥४८॥ हे भगवन् , ब्रह्मनन्दन ! यह धन आपके निष्क्रयके वास्ते लायागया है तब आपस्तम्ब बोले कि हे पार्थिव ! सौहजार करके हम आपके खरीदने के योग्य नहीं होसक्के ॥ ४९ ॥ हमारे बराबर जो मूल्यहो वह दियाजावे आप मन्त्रियों करके सहित विचारो तव नाभागबोले कि हे द्विजोत्तम ! करोड़ रुपया मूल्य निषादों को दियाजावे ॥ ५० ॥ जो यह भी योग्य न हो तो और दियाजावे तब आपस्त-म्ब बोले कि हे राजन् ! करोड़ या इससे अधिक भी हमारेयोग्य नहीं होसक्ता हे पार्थिव ! ॥ ५१ ॥ हमारे बराबर मूल्य दियाजावे आप ब्राह्मणोंसे पूंछो तब राजाबोले कि

वाच ॥ सहस्राणिशतंमूल्यं निषादेभ्योददाम्यहम् ॥ ४८॥ निष्क्रयार्थंहिभगवन्नीतंतेब्रह्मनन्दन ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ नाहंशतसहस्रेण नियम्यःपार्थिवत्वया ॥ ४९ ॥ सदृशंदीयतांमूल्यममात्यैस्सहचिन्तय ॥ नाभागउवाच ॥ कोटिं प्रदीयतांमूल्यं निषादेभ्योद्विजोत्तम ॥ ५० ॥ यद्येतदपियोग्यंनो ततोभूयःप्रदीयताम् ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ राजन्ना हांवयंकोटिमधिकंचापिपार्थिव ॥ ५१ ॥ सदृशंदीयतांमूल्यं ब्राह्मणैस्सहसंवद ॥ राजोवाच ॥ अर्द्धराज्यंसमस्तं वा निषादेभ्यःप्रदीयते ॥ ५२ ॥ एतन्मूल्यमहंमन्ये किंवालंमन्यसेद्विज ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ अर्द्धराज्यंसमस्तंवा नाह महामिवैनृप ॥ ५३ ॥ सदृशंदीयतांमह्यं ऋषिभिस्सहचिन्तय ॥ महर्षेस्तद्वचःश्रुत्वा नाभागस्तुविवादयन् ॥ ५४ ॥ चिन्तयामासधर्म्मात्मा सामात्यस्सपुरोहितः ॥ ततःकश्चिदृषिस्तत्र लोमशस्तुमहातपाः ॥ ५५ ॥ नाभागमब्रवीन्मा भैस्तोषयिष्यामितंमुनिम् ॥ राजोवाच ॥ ब्रूहिमूल्यंमहाभाग मेज्ञातिकुलबान्धवान् ॥ ५६ ॥ निर्दग्धवानृषिःक्रुद्धस्त्रैलो

आधा या समस्त राज्य निषादोंको दियाजावे ॥ ५२ ॥ इस मूल्यको हम ठीक मानते अथवा हे द्विज ! आप किसको पूरा मूल्य समझतेहो तब आपस्तम्ब बोले कि हे नृप ! आधे या समस्त राज्यके योग्य हम नहीं होसक्ते ॥ ५३ ॥ हमारे बराबर दियाजाये ऋषियोंकरके सहित विचारो तब विवाद करतेहुये नाभागजी महर्षिके इस वचनको सुनकर ॥ ५४ ॥ अपने मन्त्री और पुरोहित करके सहित धर्मात्मा राजा विचार करतेहुये तदनन्तर वहां कोई बड़े तपवाले लोमशऋषि ॥ ५५ ॥ नाभाग से बोले कि तुम मत डरो हम उन मुनिको प्रसन्न करलेवेंगे तब राजाबोले कि हे महाभाग ! मूल्यको बतादो नहीं तो हमारे ज्ञाति,कुल और बान्धवोंको ॥ ५६ ॥ और

सब चराचर त्रैलोक्यको क्रुद्धहुये ऋषि जलादेंगे । फिर बहुत छोटा विषयात्मा दीन मनुष्य क्या वस्तु है ॥ ५७ ॥ तब लोमशजीबोले कि हे महाराज ! तुम समर्थहो और ब्राह्मण जगतके पूज्यहैं और गौवेंभी दिव्य होतीहैं तिससे इनका मूल्य गौवें दीजावें॥५८॥ तदनन्तर मन्त्री और पुरोहित करके सहित वचनको सुनकर बड़े आनन्दसे युक्त वे राजा मुनिसे यह वचनबोले ॥ ५९ ॥ कि हे भगवन् ! अब आपका अभीष्ट करदियागया इसमें कोई संशय नहींहै तिससे अब आप उठो उठो हे मुनिसत्तम ! यह मूल्य आपके बहुतही योग्यहै ॥ ६० ॥ तब आपस्तम्ब बोले कि हे पार्थिव ! हम अतिप्रसन्नताके साथ अभी उठते हैं आपकरके हम बहुत अच्छे खरीदेगये गौवोंके

क्र्यंसचराचरम्॥ किंपुनर्मानवंदीनमत्यल्पंविषयात्मकम् ॥ ५७ ॥ लोमशउवाच ॥ त्वंसमर्थोमहाराज जगत्पूज्याद्वि जोत्तमाः ॥ गावश्चदिव्यास्तस्माद्वै मूल्यमस्मैप्रदीयताम्॥ ॥ ५८ ॥ ततःश्रुत्वातुवचनं सस्रामात्यपुरोहितः ॥ हर्षेणम हताविष्टः प्रोवाचेदंवचोमुनिम् ॥ ५९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभगवन्कृतमेवनसंशयः॥ एतद्योग्यतमंमूल्यं भवतोमुनिसत्तम॥ ६० ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ उत्तिष्ठाम्येवसंप्रीत्या सम्यक्क्रीतोस्मिपार्थिव ॥ गोभ्योमूल्यंनपश्यामि पवित्रंपापना शनम् ॥ ६१ ॥ गावःप्रदक्षिणीकार्य्या वन्दनीयाहिनित्यशः॥ मङ्गलायतनंदिव्यास्सृष्टास्त्वेताःस्वयंभुवा॥६२ ॥अप्या गाराणिविप्राणां देवतायतनानिच ॥ यद्गोमयेनशुध्यन्ति किंब्रूमोह्यधिकंततः ॥ ६३ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पि स्तथैवच ॥ गवांपञ्चपवित्राणि पुनन्तिसकलंजगत॥ ६४ ॥गावोमेचाग्रतोनित्यं गावःपृष्ठतएवच॥ गावोमेहृदयेचैवग वांमध्येवसाम्यहम् ॥ ६५ ॥ एवंयःपठतेनित्यं त्रिसन्ध्यंनियतःशुचिः ॥मुच्यतेसर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकंसगच्छति ॥६६॥

बराबर पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला दूसरा मूल्य हम नहीं देखते ॥ ६१ ॥ गौवें नित्यही प्रदक्षिणा और नमस्कार करने के योग्यहैं मंगल का स्थानहैं और दिव्यहैं ब्रह्माकरके ये उत्पन्नकीगईहैं ॥ ६२ ॥ जिनके गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर शुद्ध होतेहैं तो इनसे श्रेष्ठ और हम किसको कहें ॥ ६३ ॥ गोमूत्र, गोमय, दूध, दही और घी गौवोंके ये पांच पवित्रहैं और ये सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करते हैं ॥ ६४ ॥ हमारे आगे व पीछे व हृदयमें गौवें निरन्तर वासकरें और गौवों के मध्य में हम वासकरें ॥ ६५ ॥ इसप्रकार पवित्र व नियमवान् होकर तीनों सन्ध्याओं में जो नित्य पाठकरता है वह सब पापोंसे छूटजाता है और स्वर्गलोक

को जाताहै ॥ ६६ ॥ प्रथम गोग्रास देनेमें प्रेम प्रतिदिन भक्तिसे करना चाहिये इसको विनाकिये आपही भोजन करताहुआ दुर्गति को प्राप्तहोता है ॥ ६७ ॥ उसकर के अग्नि अच्छे प्रकार से हवन कियेगये और पितर भी तृप्त कियेगये और उसीकरके देवता भी पूजितहुये जो निरन्तर गवाह्निक (गोग्रास) देताहै ॥ ६८ ॥ (गोग्रास देनेके मन्त्रका अर्थ) सुरभीकी कन्या जगत्की पूज्य विष्णुपदमें नित्य रहनेवाली सब देवताओंकी मूर्त्ति मुझकरके दियेगये ग्रासको देखो ॥ ६९ ॥ वेदोंकी रक्षा करने से और गौवों के खुजलाने से और दरिद्री व कष्टितकी रक्षा करनेसे स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ७० ॥ यज्ञकी आदि मध्य और अन्त गौवेंही कही

अग्रेग्रासपरोभावः कर्तव्योभक्तितोन्वहम् ॥ अकृत्वास्वयमाहारं कुर्वन्नाप्नोतिदुर्गतिम् ॥ ६७ ॥ तेनाग्नयोहुता स्सम्यक् पितरश्चापितर्पिताः ॥ देवाश्चपूजितास्तेनयोददातिगवाह्निकम् ॥ ६८ ॥ (मन्त्रः) सौरभेयीजगत्पूज्या नित्यंविष्णुपदेस्थिता ॥ सर्वदेवमयीग्रासं मयादत्तंप्रतीक्षताम् ॥ ६९ ॥ रक्षणाद्ब्रह्मपुत्राणां गवांकण्डूयनात्तथा ॥ क्षीणार्तरक्षणाच्चैवततःस्वर्गेमहीयते ॥ ७० ॥ आदिर्हिगावोयज्ञस्यमध्यंचान्त्यंप्रकीर्तिताः ॥ क्षरन्तितास्तुसकलं क्षीराज्यममृतंतथा ॥ ७१ ॥ तस्माद्गावःप्रदातव्याः पूजनीयाहिनित्यशः ॥ स्वर्गस्यसङ्क्रमायैतास्सोपानंहिविनिर्मिताः ॥ ७२ ॥ एतच्छ्रुत्वानिषादास्ते गवांमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ प्रणिपत्यमहाभागमापस्तम्बमथाब्रुवन् ॥ ७३ ॥ निषादाऊचुः ॥ सम्भाषादर्शनस्पर्शवर्णनंकीर्तनंतथा ॥ पावनानिसमस्तानि साधूनामितिनःश्रुतम् ॥ ७४ ॥ सम्भाषादर्शनंचैवमिहास्माभिःकृतंद्विज ॥ कुरुष्वानुग्रहंतस्मात्त्वांवयंशरणङ्गताः ॥ ७५ ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ एतांगांप्रतिगृह्णन्तु ततस्तेमुक्तकिल्बिषाः ॥

गईहैं वे गौवें दूध, घी और अमृत सभी देतीहैं ॥ ७१ ॥ तिससे नित्यही गौवें देने और पूजनेके योग्यहैं स्वर्गके जानेके वास्ते ये गौवें नसेनीरूप रचीगईहैं ॥ ७२ ॥ वे निषाद इस गौवोंके उत्तम माहात्म्य को सुनकर महाभाग आपस्तम्बजी को प्रणाम करके तदनन्तर बोले ॥ ७३ ॥ निषाद कहतेहुये कि महात्माओंका सम्भाषण करना, दर्शन, स्पर्शन और उनका वर्णन व कीर्तन ये सब पवित्र हैं यह हमलोगोंका सुनाहुआ है ॥ ७४ ॥ सो हे द्विज ! हमलोगों करके यहां आपसे वार्त्ता व दर्शन कियागया तिससे आप कृपाकरैं हम सब आपके शरणागतहैं ॥ ७५ ॥ तब आपस्तम्ब बोले कि इस गौ को तुम ग्रहणकरो तिससे तुम्हारे सबपाप छूटजायँगे जल

से पैदाहुये मत्स्योंके सहित सब निषाद स्वर्गको जावोगे ॥ ७६ ॥ निन्दितकर्म करके भी प्राणियों की प्रीति पैदाकरके चाहे हम नरकको देखें चाहे स्वर्गमें बसें ॥ ७७॥ मुझ से मन, वचन और कर्मकरके जो कुछ सुकृत कियागया हो तिससे सब दुःखी शुभगति को प्राप्तहोवें ॥ ७८ ॥ तदनन्तर उन भावितात्मा महर्षि आपस्तम्ब के प्रसादसे और उनके उक्त वचन से मछलियों करके सहित निषाद लोग स्वर्ग को प्राप्तहुये ॥ ७९ ॥ तिन मछलियों व उनसे जीविका करनेवाले निषादों को स्वर्गको गये देखकर तदनन्तर मन्त्री और सेवकों के सहित वे राजा विस्मय से यह बोले ॥ ८० ॥ कि कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषों करके महात्मा व पवित्र

निषादाश्चगतास्स्वर्गं सहमत्स्यैर्जलोद्भवैः ॥ ७६ ॥ प्राणिनांप्रीतिमुत्पाद्य निन्दितेनापिकर्म्मणा ॥ नरकंयदिपश्यामि वसस्यामिस्वर्गमेववा ॥ ७७ ॥ यन्मयासुकृतंकिञ्चिन्मनोवाक्कायकर्म्मभिः ॥ कृतंतेनापिदुःखार्तास्सर्वेयान्तुशुभांगतिम् ॥ ७८ ॥ ततस्तस्यप्रसादेन महर्षेर्भावितात्मनः ॥ निषादास्तेनवाक्येन सहमत्स्यादिवंगताः ॥ ७९ ॥ तान्दृष्ट्वाथगतान्स्वर्गं समत्स्यान्मत्स्यजीविनः ॥ सामात्यभृत्योनृपतिर्विस्मयादिदमब्रवीत् ॥ ८० ॥ सेव्याःश्रेयोर्थिभिस्सन्तस्तीर्थंपुण्यजलोत्तमम् ॥ क्षणोपासनमप्यत्र नतेषांनिष्फलम्भवेत् ॥ ८१ ॥ सद्भिस्सहसमासीत सद्भिःकुर्वीतसत्कथाम् ॥ आपस्तम्बोमुनिस्तत्र लोमशश्चमहातपाः ॥ ८२ ॥ पदैस्तुविविधैरिष्टैर्बोधयामासतुर्नृपम् ॥ ततःसंधारयामास धर्म्मबुद्धिंसुदुर्लभाम् ॥ ८३ ॥ तथेतिकृत्वाचोक्त्वाच नृपंतंप्रशशंसतुः ॥ अहोधन्योसिराजेन्द्र यत्तेधर्म्मपरामतिः ॥८४॥ धर्म्मःसुदुर्लभःपुंसां विशेषेणमहीक्षिताम् ॥ यदिराज्यमदाविष्टःस्वधर्म्मंनपरित्यजेत् ॥ ८५ ॥ ततोजगतिकस्तस्मा

जलवाले उत्तम तीर्थही सेवन करने के योग्यहैं यहां क्षणमात्र भी कियागया इन का सेवन निष्फल नहीं होसक्ता ॥ ८१ ॥ महात्माओं के साथ बैठे और महात्माओंहीसे उत्तम वार्त्ताकरे तदनन्तर वहां आपस्तम्ब मुनि और महातपा लोमश जी ॥ ८२ ॥ प्यारे अनेक प्रकारके पदोंकरके राजाको बोध करातेहुये तदनन्तर राजा ने अतिदुर्लभ धर्मबुद्धि को धारण किया ॥ ८३ ॥ राजासे इस प्रकार कहकर उक्त राजाकी प्रशंसा करतेहुये कि हे राजेन्द्र ! बड़ा आनन्द है कि तुम बड़े धन्यहो जिससे तुम्हारी बुद्धि धर्ममें तत्पर होरही है ॥ ८४ ॥ धर्म तो सबही मनुष्यों को अतिदुर्लभ है परन्तु राजाओं को तो विशेषकर अतिदुर्लभ है जो राज्यमद से युक्त

राजा निज धर्मको न छोड़े ॥ ८५ ॥ तो फिर जगतमें उससे अधिक और कौन होसक्ताहै धर्म, राज्य और मोह सदा अटल हैं ॥८६ ॥ और नरक तो बडाही निश्चलहै तिससे जे राज्यकी निन्दा करते वेही बुधहैं जो मनुष्य विषय में लोलुप है वहही मूढ़ राज्यको उत्तम मानता है ॥ ८७ ॥ बुद्धिमान् लोग तो राज्यको हमेशा नरक हीके समान देखते हैं तिससे शोक, मोह और मद तुमको कभी नहीं करना चाहिये ॥ ८८ ॥ हे महाराज ! जो अपनी अटलगति चाहते हो तब मार्कण्डेयजी बोले कि यह कहकर वे दोनों महात्मा अपने २ आश्रम को चलेगये ॥ ८९ ॥ नाभागभी वरको पाकर प्रसन्नहो अपने पुरमें प्रवेश किया हे राजन् ! यह तुम से कहा महात्मा-

त्पुनरभ्यधिकोभवेत ॥ ध्रुवंधर्म्मश्चराज्यंवै मोहश्चैवसदाध्रुवः ॥ ८६ ॥ महाध्रुवश्चनरको राज्यंनिन्दन्तितेबुधाः ॥ राज्यंहिमन्यते मूढोनरोविषयलोलुपः ॥ ८७ ॥ मनीषिणस्तुपश्यन्ति सदैवनरकोपमम् ॥ तस्माच्छोकश्चमोहश्च नकर्तव्योमदस्त्वया ॥ ८८ ॥ यदीच्छसिमहाराज शाश्वतींगतिमात्मनः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वातौमहात्मानौ जग्मतुःस्वंस्वमाश्रमम् ॥ ८९ ॥ नाभागोपिवरंलब्ध्वा प्रहृष्टस्त्वविशत्पुरम् ॥ एतत्तेकथितंराजन्ये गुणाःसत्समागमे॥ ९० ॥ माहात्म्यंवैगवान्तद्वत्किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ रेवामत्स्यासमायोगे गवांमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ९१ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज मत्स्येश्वरमथार्चय ॥ आपस्तम्बोमहाभागोनिषादामत्स्यजीविनः ॥ ९२ ॥ मत्स्यैस्सहगताःस्वर्गं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ दिव्यकान्तिधरास्सर्वे लोकेक्रीडन्तिवैष्णवे ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमत्स्येश्वरतीर्थवर्णनोनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ओंके समागम में जो गुण होतेहैं ॥ ९० ॥ और इसीतरह गौवोंका माहात्म्यभी कहा अब फिर तुम क्या सुनने की इच्छा करतेहो नर्मदा और मत्स्याके समागम में गौवोंका उत्तम माहात्म्यहै ॥९१॥ हे महाराज ! वहा स्नान करके मत्स्येश्वरका पूजनकरो महाभाग आपस्तम्ब और मछलियों से जीविका करनेवाले निषाद ॥९२॥ मछलियों करके सहित इस तीर्थके प्रभाव से स्वर्गको जातेहुये दिव्य शोभा को धारण किये सब वैष्णवलोक में विहार करते हैं ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमत्स्येश्वरतीर्थवर्णनोनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर पापोंके छुडानेवाले और तीर्थको कहते हैं मत्स्या और पवित्र तापीके संगम में देवताओं करके सेवित तीर्थहै ॥ १ ॥ मत्स्येश्वरनाम के महादेव नागकन्याओं करके पूजन कियेगये हैं वहां स्नानकरके स्वर्गको जातेहैं और जो वहां मरेहैं वे फिर नहीं उत्पन्न होते ॥ २ ॥ मत्स्यतीर्थ के प्रभावसे पांचमुख और तीन नेत्रवाले होजातेहैं कलहंस नामसे विदित ध्यानमें तत्पर एक देवर्षि हुये ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षियों करके सेवित परम रमणीक उनका वहां आश्रमथा उसमें शाक, मूल और फलोंके आहार करनेवाले जप और ध्यान में तत्पर कलहंसजी ॥ ४ ॥ शिवके ध्यानमें लगेहुये सब प्राणियों के हितमें रत साढ़ेदश

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थपापविमोचनम् ॥ मत्स्यायाःशुभताप्याश्च सङ्गमेसुरसेवितम् ॥ १ ॥ देवोमत्स्येश्वरोनाम नागकन्याभिरर्चितः ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २ ॥ पञ्चवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च मत्स्यतीर्थप्रभावतः ॥ कलहंसइतिख्यातो देवर्षिर्ध्यानतत्परः ॥ ३ ॥ तस्याश्रमंपरंरम्यं ब्रह्मर्षिविनिषेवितम् ॥ शाकमूलफलाहारो जपध्यानपरायणः ॥ ४ ॥ सोतिष्ठदयुतंसार्द्धमेकपादेनभारत ॥ शिवध्यानपरोभूत्वा सर्वभूतहितेरतः ॥५॥ ततस्तुध्यानयोगेन तस्यदेवःशतक्रतुः ॥ चकम्पेतपसाचासौ देवराजोभविष्यति ॥ ६ ॥ हरिष्यतिनसन्देहो पुरींचैवामरावतीम् ॥ ब्राह्मणश्चसुरेशानः कुब्जोवामनरूपधृक् ॥ ७ ॥ जगामवृद्धरूपेण कलहंसाश्रमम्प्रति ॥ उवाच वचनंशक्रो ब्राह्मणंतपसिस्थितम् ॥ ८ ॥ किमर्थंतपसेशीघ्रं काममेतद्ब्रवीहिमे ॥ आराधयसिकंदेवं सत्यमेतत्तपोधन ॥ ९ ॥ संहृत्यतपसायोगं प्रहसन्नब्रवीद्वचः ॥ जानामित्वांमहाभाग शक्रस्त्वंत्रिदशेश्वरः ॥१०॥ नकामयेहमिन्द्र

हजारवर्षतक एक पांवसे खड़ेरहे हे भारत ! ॥५॥ तब उनके तप और ध्यानयोगकरके इन्द्रदेव कांपतेहुये कि यह देवराज होजायगा ॥ ६॥ अमरावतीपुरीको हरलेगा इस में कोई सन्देह नहीं है तब इन्द्र कुबेर वामनब्राह्मण का रूप धारण कियेहुये ॥ ७ ॥ कलहंस के आश्रम को वृद्धरूप से प्राप्तहुये तपस्या मे स्थित कलहंस ब्राह्मण से इन्द्र वचन बोले ॥ ८ ॥ कि किसवास्ते शीघ्रता से तप करतेहो अपनी उस कामनाको मुझसे कहो हे तपोधन ! किस देवका आराधन करतेहो सो सत्य कहो ॥९॥ तब कलहंस तपसे अपने योगको खींचकर हँसतेहुये वचन बोले कि हे महाभाग ! हम तुमको जानतेहैं कि तुम देवताओं के ईश्वर इन्द्रहो ॥ १० ॥ हम इन्द्रहोनेकी

कामना नहीं करते तुम यथेष्ट राज्यकरो हम महादेवजी को आराधन करते और किसी देवको कभी नहीं ॥ ११ ॥ उस महर्षि के इस वचन को सुनकर इन्द्र बोले कि हे महाभाग ! वरमांगो जिससे शङ्करजीको देखोगे ॥ १२ ॥ तब कलहंस बोले कि विना महादेवके हम और देवतासे वर नहीं मांगते हे शक्र ! तुम विजयी होवो हम और वर नहीं मागेंगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहेगये इन्द्र सबकामोंसे युक्त चलेगये व देवताओं के देवता महादेवजी उसकी श्रेष्ठभक्ति को जानकर ॥ १४ ॥ कालेकण्ठ और तीन नेत्रवाले अपने स्वरूप को दिखातेहुये तदनन्तर महादेवजी के रूपको देखकर और साष्टाङ्ग प्रणाम करके ॥ १५ ॥ मुनियों में श्रेष्ठ कलहंसजी स्तुति करनेको

त्वंराज्यंकुरुयथेप्सितम् ॥ आराधयाम्यहंदेवं नान्यंदेवंकथंचन ॥ ११ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य महर्षेरब्रवीद्वृषः ॥ वरंवृ णुमहाभाग यथाद्रक्ष्यसिशङ्करम् ॥ १२ ॥ कलहंसउवाच ॥ विनाहन्त्र्यम्बकंयाचे नान्यद्देवादहोवरम् ॥ विजयीभवश क्रत्वं नान्यंवृणएवेवरन्त्वहम् ॥ १३ ॥ एवमुक्तोययौशक्रस्सर्वकामसमन्वितः ॥ ज्ञात्वातस्यपरांभक्तिं देवदेवोमहेश्वरः ॥ १४ ॥ अदर्शयदथात्मानं नीलकण्ठंत्रिलोचनम् ॥ दृष्ट्वारूपंमहेशस्य साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ १५ ॥ कलहंसोमुनिश्रे ष्ठस्स्तोतुंसमुपचक्रमे ॥ नमोस्तुतेमहादेव नीलकण्ठत्रिलोचन ॥ १६ ॥ नमश्शिवायशान्ताय शूलहस्तनमोस्तु ते ॥ नमःशिवायसम्भवाय अनाथायनमोनमः ॥ १७ ॥ त्र्यम्बकायमहादेवेत्यादिनामादिभिस्स्तुत ॥ ॐनमोदेवा यशम्भवायभूर्भुवःस्वःसोमरुद्रध्वान्तसूर्य्याय नमोरुद्राग्नयेनमः ॥ १८ ॥ नमश्शम्भोपञ्चवक्त्र महाशिवनमोस्तुते ॥ स्वयम्भूवनपाताल नीलकण्ठनमोस्तुते ॥ १९ ॥ ब्रह्मशर्वसुरेशानहरिहरायनमोनमः ॥ ज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिचरा

उद्यतहुये कि हे नीलकण्ठ,त्रिलोचन,महादेव ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥१६॥ हे शूलहस्त ! शिव,शान्तरूप आपके लिये नमस्कारहै और कल्याणरूप जगत् के बनानेवाले व कोई मालिक नहीं है जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे महादेव इत्यादि नामोंसे स्तुति को प्राप्त ! त्र्यम्बक व प्रकाश करनेवाले व कल्याण जिनसे होताहै भूलोक, आकाश, स्वर्ग, चन्द्रमा, घोर अन्धकार, सूर्य और महाप्रलयके अग्नि जिनके रूपहैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है ३ ॥ १८ ॥ हे शम्भो ! हे पञ्चवक्त्र ! हे महाशिव ! आपके लिये नमस्कारहै हे ब्रह्मा, वन और पातालरूप ! हे नीलकण्ठ ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥१९॥ ब्रह्मा,महादेव,इन्द्र, हरि,

और हररूपके लिये नमस्कारहै ज्ञान और कर्मकी जिसमें शक्तिहै ऐसा चराचर आपही का रूपहै तिन आपके लिये नमस्कार है सुवर्णरूप पार्वतीजी के पति जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूप सर्वज्ञ जो आपहैं तिन के लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ २० । २१ ॥ सद्योजात तथा अघोर और तत्पुरुष के लिये नमस्कार है नमस्कार है यह सब चराचर तीनोंलोक तुम्हींसे व्याप्त होरहे हैं ॥ २२ ॥ आदि, मध्य और अन्तरूप आपही हो तिनके लिये नमस्कार है और हे कलह व कालरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे श्रीकण्ठ ! हे उरगभूषण ! पार्वती करके शोभितहै आधा देह जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कारहै ॥ २३ ॥ अनन्त

चरनमोस्तुते ॥ २० ॥ हाटकायनमस्तुभ्यमुमानाथनमोस्तुते ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाय सर्वज्ञायनमोनमः ॥ २१ ॥ सद्योजातस्तथाघोरस्तत्पुरुषायनमोनमः ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ २२ ॥ आदिमध्यान्तरूपाय कलिकालनमोस्तुते ॥ उमाकान्तार्द्धदेहाय श्रीकण्ठोरगभूषण ॥ २३ ॥ अनन्तगुणरूपाय नागयज्ञोपवीतिने ॥ शब्दस्स्पर्शश्चगन्धश्च रसोरूपंचपञ्चमम् ॥ २४ ॥ बुद्धिर्मनस्त्वहङ्कारो ह्यष्टमूर्तेनमोस्तुते ॥ सूर्य्योर्य्यमाभगस्त्वष्टा पूषार्कः सवितारविः ॥ २५ ॥ गभस्तिमांश्चत्वंकालो मृत्युर्धाताप्रकाशकः ॥ पृथिव्यापस्तथातेजो वायुराकाशमेवच ॥ २६ ॥ सोमोबृहस्पतिःशुक्रो बुधोङ्गारकएवच ॥ इन्द्रोविवस्वान्दीप्तांशुः शुचिःशौरिर्जनेश्वरः ॥ २७ ॥ कलास्तेविष्णुब्रह्माद्या वेदोवैश्रवणोयमः ॥ कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च पक्षमासर्तवस्तथा ॥ २८ ॥ संवत्सरस्त्वमेवासि कालचक्रोविभावसुः ॥ पुरुषः

गुणही जिनका रूपहै सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले आपके लिये नमस्कारहै शब्द,स्पर्श,गन्ध,रस व पांचवां रूप ॥२४॥ बुद्धि, मन और अहङ्कार येही आठतत्त्व हैं मूर्त्ति जिनकी ऐसे हे अष्टमूर्त्ते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि ॥ २५ ॥ गभस्तिमान्, काल, मृत्यु और प्रकाश करनेवाले धाता ये बारहो सूर्य तुम्हीहो व पृथिवी,जल,तेज,वायु और आकाश आपहीहो ॥ २६ ॥ चन्द्रमा, बृहस्पति, शुक्र,बुध और मंगल आपहीहो इन्द्र, विस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, जनेश्वर ॥ २७ ॥ विष्णु और ब्रह्माआदि देवता सब आपही की कलाहैं चारोंवेद, कुबेर, यम, कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, पक्ष, मास तथा ऋतु ॥२८॥

संवत्सर और कालही जिनका चक्र ऐसे सूर्य आपही हो प्रत्यक्ष व परोक्ष पुराणपुरुष और अटलयोग तुम्हींहो ॥ २९ ॥ लोकोंके ईश्वर, देवताओं के ईश्वर, संसार के वनानेवाले, अन्धकार के हरनेवाले, जलके अधिष्ठाता, शीतल तेजवाले, जलवृष्टि करनेवाले, जीनेका कारण, शत्रुओं के नाश करनेवाले ॥ ३० ॥ भूत काल, देवता जिनसे तृप्तहोते ऐसे यज्ञ आपही के स्वरूप हैं, भूतोंके पति, सब लोकपालों करके सेवित, विचार करनेवाले व शोभन जिनका पतनहै अर्थात् जीव व ईश्वररूप प्राणियों के आदिरूप हे सदाशिव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! जिह्वाकी चञ्चलतासे मुझकरके आप कष्टित कियेगयेहैं क्योंकि ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओं करके भी जिनका अन्त नहीं मिलता ॥ ३२ ॥ तिनकी स्तुतिकरनेको संसारसमुद्र में डूबेहुये जीवोंके मध्यमें कौन समर्थ होसक्ता है इससे हे

शाश्वतोयोगो व्यक्ताव्यक्तःसनातनः ॥ २९ ॥ लोकाध्यक्षःसुराध्यक्षो विश्वकर्मातमोनुदः ॥ वरुणःशीतभारश्च जीमूतोजीवनोरिहा ॥ ३० ॥ भूतोयज्ञोभूतपतिर्लोकपालैर्निषेवितः ॥ मनस्सुपर्णोभूतादिस्सदाशिवनमोस्तुते ॥ ३१ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिमयाप्रभो ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्यस्यान्तोनैवलभ्यते ॥ ३२ ॥ भवसागरमग्नानां कः स्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि शूलपाणेक्षमस्वतत् ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदंदेवः कलहंसस्यभारत ॥ वरंवृणुमहाप्राज्ञ प्रीतस्स्तोत्रेणतेनघ ॥ ३४ ॥ कलहंसउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुमिहेच्छसि ॥ कलहंसेश्वरंनाम तीर्थंलिङ्गंसुरेश्वर ॥ ३५ ॥ अक्षयादेवदेवात्र होमदानबलिक्रियाः ॥ अत्राक्षयंकृतंसर्वंत्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३६ ॥ शिवाज्ञावर्त्ततेऽत्रनरस्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ उत्क्रान्तिकुरुतेयस्तु अवशःस्ववशोपिवा ॥ ३७ ॥

शूलपाणे ! जाने या विनाजाने जो कुछ कहागया उसको आप क्षमाकीजिये ॥३३॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भारत ! महादेवजीने इस कलहंसके स्तोत्रको सुनकर कहा कि हे महाप्राज्ञ ! हे अनघ ! तुम्हारे स्तोत्रकरके हम प्रसन्नहैं सो तुम वरमांगो ॥ ३४ ॥ तब कलहंस बोले कि हे देव ! जो आप प्रसन्नहो और यहां मुझको वर देनेकी इच्छा करतेहो तो हे सुरेश्वर ! कलहंसेश्वर नामका तीर्थ व लिंग होजावे ॥ ३५ ॥ और हे देवदेव ! यहां कियेहुये होम, दान और बलिदान आदि कर्म अक्षय होवें किन्तु हे महेश्वर ! यहां कियाहुआ सबही आपके प्रसादसे अक्षय होवे ॥३६॥ हे शिव ! आपकी यहां आज्ञा होजावे कि जो मनुष्य परवश व अपने वश होकर प्राण

त्यागकरे वह स्वर्गको प्राप्तहोवे ॥ ३७ ॥ हे शङ्कर ! इस स्तोत्रकरके जो तुम्हारी स्तुति करताहै व जो स्तुतिकरेगा वह यदि ब्राह्मणका मारनेवाला व दारूका पीनेवाला व सुवर्णका चुरानेवाला व गुरुस्त्री का भोग करनेवालाहो ॥ ३८ ॥ तोभी इस तीर्थ के प्रभाव से सब शिवजी के स्थानको प्राप्तहोवें सब कामोंकी सिद्धिके वास्ते हम इसी वरको अच्छा समझतेहैं ॥ ३९ ॥ तब महादेवजी बोले कि चराचर तीनों लोकमें जिस २ कामकी इच्छाकरेगा हमारे प्रसाद से वह सब होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥ हे नृप ! यह कहकर महादेवजी कैलासस्थान को चलेगये तदनन्तर वे जितेन्द्रिय कलहंस ब्रह्मिष्ठ मुनियों करके सहित ॥ ४१ ॥ कुछ अधिक दश

स्तवेनानेनयस्स्तौति यस्त्वांस्तोष्यतिशङ्कर ॥ ब्रह्महावासुरापोवा स्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ ३८ ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सर्वैयान्तुशिवालयम् ॥ इदंवरमहंमन्ये सर्वकामसमृद्धये॥ ३९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यंयंकामयतेकामं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहः सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः कैलासनिलयंनृप॥ कलहंसोथमुनिभिर्ब्रह्मिष्ठैस्सजितेन्द्रियः ॥ ४१ ॥ वर्षायुतानिसाग्राणि भुङ्क्तेभोगाञ्छिवालये ॥ दिव्ययानसमारूढस्स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ ४२ ॥ वेणुवीणानिनादेन सर्वालङ्कारभूषितः ॥ दशवर्षसहस्राणि तथैवशिवसन्निधौ ॥ ४३ ॥ दक्षिणोत्तरदिग्भाग पञ्चक्रोशप्रमाणतः ॥ स्नानात्तत्रदिवंयाति म्रियतेविबुधोभवेत् ॥ ४४ ॥ एतत्तेकथितंराजन्कलहंसस्यकीर्तनम् ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ ४५ ॥ कलहंसस्यचाख्यानान्नसीदन्तिकलौजनाः ॥ पुत्रदारावृतानाघमा

हजारवर्ष पर्यन्त शिवजी के स्थानमें भोगोंको भोगते हुये दिव्य सवारीपर चढ़ेहुये अप्सराओं के गणोंकरके स्तुति कियेजाते ॥ ४२ ॥ वंशी और सितार के शब्दोंसे युक्त, सब आभूषणों से भूषित, दश हजार वर्षतक इसी प्रकार शिवजी के समीप रहतेहुये ॥ ४३ ॥ दक्षिण और उत्तरदिग्भाग के पांचकोस के प्रमाण में स्नानकरने से स्वर्गको जाताहै और वहां जो मरता है वह देवता होताहै ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! यह कलहंस का यश तुमसे कहागया जोकि स्वारोचिष मन्वन्तर मे आदिकल्प के सत्ययुग के प्राप्तहुये हुआ ॥ ४५ ॥ कलहंस के आख्यान से कलियुग मे मनुष्य कष्टित नहीं होते पुत्र और स्त्रियों करके युक्त व पाप, माया और मोहसे रहित

होजातेहैं ॥४६॥ जो इस आख्यान करके सहित महादेवजी का मन, कर्म, वचन से स्मरण करते हैं ॥४७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशिवमहिम वर्णनोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे देव ! फिर भी कल्याणदायक नर्मदा का कीर्तन हम सुनने की इच्छा करते हैं जो आख्यानके सहित आपका जानाहुआ है उसको इस समय कहिये ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! पूर्वकाल में महादेव करके कहेहुये यज्ञ और दानके प्रभावसे काम और मोक्षके देनेवाले तीर्थको

यामोहसमन्विताः ॥ आख्यानसहितं देवंकर्म्मणामनसागिरा ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशिवमहिम वर्णनोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुं नर्मदाकीर्तनंशुभम् ॥ आख्यानसहितंदेव विदितंवदसाम्प्रतम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजेन्द्रतीर्थंवै शिवेनकथितम्पुरा ॥ कामदंमोक्षदंचैव यज्ञदानप्रभावतः ॥ २ ॥ रेवायाउत्तरेकूले कपिलासङ्गमात्परम् ॥ वैदूर्य्यात्पश्चिमेभागे विख्यातंनर्मदापुरम् ॥ ३ ॥ अर्द्धकोटिस्तुतीर्थानां महादेवेनभारत ॥ शतमष्टोत्तरंतत्र लिङ्गानांपरिकीर्तितम् ॥ ४ ॥ यत्रवैवसुरुद्रैश्च ब्रह्माद्यैश्चसुरासुरैः ॥ सिद्धगन्धर्वयक्षैश्च विद्याधरमहोरगैः ॥ ५ ॥ वेदध्वनिनिनादेन व्याप्तमस्तिचराचरम् ॥ यत्राग्निर्हुतहोमेन त्रिदिवंपर्य्यपूरयत् ॥ ६ ॥ देवर्षयोमहाराज तथाब्रह्मर्षयोपरे ॥ आसन्राजर्षयस्तत्र तापसाव्यवसायिनः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाश्चवसन्तिस्म मनसाब्रह्मचिन्तनाः ॥

सुनो ॥२॥ नर्मदा के उत्तरतटमें कपिलासङ्गम के आगे वैदूर्यसे पश्चिम तरफ नर्मदापुर विख्यातहै ॥ ३ ॥ हे भारत ! वहां महादेव करके पचासलाखतीर्थ और एकसौ आठ लिंग कहेगये हैं ॥ ४ ॥ जहा निश्चयकरके वसु, रुद्र, ब्रह्मादि देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर और बड़े २ नागोंसे युक्त ॥ ५ ॥ चराचर वेदोंके शब्दोंसे व्याप्त रहताहै न जहां होमेहुये अग्नि अपने धुवांसे स्वर्गको पूर्णकरतेहुये ॥६॥ हे महाराज ! वहां देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षि रहतेथे जोकि तपस्या करके हरएक

विषय का निश्चय करसके थे ॥ ७ ॥ मन करके ब्रह्मके विचार करनेवाले ब्राह्मणलोग वास करते थे करोड़ों ऋषियों से युक्त वहां जमदग्निजी का आश्रम होता हुआ ॥ ८ ॥ कश्यप, गालव, गर्ग, बादरायण, शाकट, अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु ॥ ९ ॥ भृगु, मरीचि, महातपस्वी भारद्वाज, शाकल्य, ऋष्यशृङ्ग, मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा ॥ १० ॥ वशिष्ठके पुत्र, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, शुक्र, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति ॥ ११ ॥ हारीत, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, गौतम, अगस्त्य, पावक, उग्रतपस्वी दुर्वासा ॥ १२ ॥ शतानन्द, जह्नु, वैशम्पायन, जैमिनि, लोमश, विहङ्ग, शौनक, हरि ॥ १३ ॥ ये व और भी बहुत से मुनि दृढ़व्रत

आश्रमंजमदग्नेश्च ऋषिकोटिसमावृतम् ॥ ८ ॥ कश्यपोगालवोगर्गो बादरायणशाकटौ ॥ अत्रिश्चैववशिष्ठश्च पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ ९ ॥ भृगुश्चैवमरीचिश्च भारद्वाजोमहातपाः ॥ शाकल्यऋष्यशृङ्गश्च मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः ॥ १० ॥ वाशिष्ठदक्षौसंवर्तः शातातपपराशरौ ॥ आपस्तम्बोशनोव्यासाः कात्यायनबृहस्पती ॥ ११ ॥ हारितःशङ्खलिखितौ याज्ञवल्क्योथगौतमः ॥ अगस्त्यःपावकाख्यश्च दुर्वासाउग्रतापसः ॥ १२ ॥ शतानन्दस्तथाजह्नुर्वैशम्पायनजैमिनी ॥ लोमशश्चविहङ्गश्च शौनकोहरिरेवच ॥ १३ ॥ एतेचान्येपिमुनयो बहवःसंशितव्रताः ॥ ज्वलन्तस्तपसातत्र सूर्यतेजस्समप्रभाः ॥ १४ ॥ चतुर्विद्यावेदविदः श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ संवत्सरकृताहारा अपहारकरास्तथा ॥ १५ ॥ मासोपवासिनश्चान्ये तथापक्षोपवासिनः ॥ शाकाहारानिराहारास्तथान्येमारुताशनाः ॥ १६ ॥ कन्दमूलफलाहारा महात्मानस्तथापरे ॥ इतिहासपुराणादिनानाशास्त्रविचिन्तकाः ॥ १७ ॥ मोक्षोपायधृतात्मानो मौनिकाश्चनमौनि

वाले व तपस्या करके दहकते हुये और सूर्यके समान तेज व प्रकाशवाले वहां रहतेथे ॥ १४ ॥ सब विद्या और चारोंवेदों के जाननेवाले तथा श्रुति व स्मृति में प्रवीण ब्राह्मण जिनमें कोई सालभर के बाद एकबार भोजन करते व कोई नहीभी करते ॥ १५ ॥ कोई एकमास निरन्तर व्रतकरते कोई एकपक्ष व्रत करनेवाले हैं कोई शाकका आहार करते कोई निराहार रहते कोई वायुके भोजन करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ व कोई महात्मा कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले और इतिहास पुराणआदि अनेक शास्त्रोंके विचार करनेवालेहैं ॥ १७ ॥ मोक्षके उपायोंमें अपने मनको लगारक्खाहै मौनीभी हैं और मौनी नहीं भी है कोई एकपावसे खड़े कोई आधेपांवमे खडे पृथिवी

में कारणमात्रही का भोगकररहे है ॥१८॥ नर्मदापुर मे वास करनेवालों का आख्यान हम कहते हैं महादेवजीमें तत्पर नर्मदापुरमें निवास करतेहुये जमदग्निजी ॥१६॥ नर्मदा के सङ्गम में स्नानकरके और वहीं मनके हरनेवाले अगरों व अनेकप्रकार के सुगन्धित फूलोंसे महादेवजी का पूजन करके ॥ २० ॥ दक्षिणामूर्त्तिके आश्रित होकर जप करतेहुये विद्यमान रहे व एक मास पर्यन्त जप करतेहुये उन मुनिके प्रत्यक्ष देवताओं के देवता महादेवजी ॥२१॥ सिद्धेश्वर नामका लिंगही जिनका रूप है जहां देवता और दैत्य सिद्धहुये है वहही देव हे भारत ! ब्राह्मण से वचन बोलते हुये ॥ २२ ॥ कि तुम्हारी भक्तिकरके सन्तुष्ट हैं और रुद्रजाप्य से भी हम प्रसन्न

काः ॥ एकपादार्द्धपादाश्च भूमौकारणभोजिनः ॥ १८ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि नर्म्मदापुरवासिनाम् ॥ जमदग्नि स्तुनिवसन्मुनिःशिवपरायणः ॥ १९ ॥ नर्म्मदासङ्गमेस्नात्वा तत्राभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ विविधैर्गन्धपुष्पैश्च तथागुरुम नोहरैः ॥ २० ॥ दक्षिणामूर्तिमाश्रित्य जपन्नासीत्तथामुनेः ॥ मासंचजपतस्तस्य देवदेवोमहेश्वरः ॥ २१ ॥ सिद्धेश्वरं नामलिङ्गं सिद्धायत्रसुरासुराः ॥ उवाचवचनंदेवो ब्राह्मणंप्रतिभारत ॥२२॥ तुष्टोहंतवभक्त्यातु रुद्रजाप्येनतोषितः ॥ज मदग्निरुवाच ॥ यदितुष्टोमहादेव वरंदातुंममेच्छसि ॥ २३ ॥ होमार्थञ्चैवधेनुंमे ददस्वपरमेश्वर ॥ धर्म्मकर्म्मशुभार्थे षु शिवपूजासुतर्प्पणे ॥ २४ ॥ पितृकार्य्येदेवकार्य्ये गावःपुण्यतमास्स्मृताः ॥ एतस्मात्कारणादीश होमधेनुंप्रयच्छ मे ॥ २५ ॥ दत्ताचैवमहाभाग सर्वकामसमृद्धये ॥ एवमुक्त्वाददौराजंस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २६ ॥ यान्यान्प्रार्थयतेकामां स्तांस्तान्प्राप्नोत्यसौततः ॥ ऋषीणांचसहस्राणि कामैर्भोजयतेद्विजः ॥ २७ ॥ हिरण्मयैःस्वर्णपात्रैर्नानाभक्ष्यैर्यथेच्छ

कियेगये हैं तब जमदग्नि बोले कि हे महादेवजी ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वरदेने की इच्छा करतेहो ॥ २३ ॥ तो हे परमेश्वर ! मुझको होमके वास्ते गौ को देवो क्योंकि धर्म, कर्म, शुभ अर्थ, शिवपूजा, तर्पण ॥२४॥ पितृकर्म और देवकर्ममें गौवें अत्यन्त पवित्र कहीगई हैं इसी कारणसे हे ईश ! होमधेनुको मुझे देवो ॥२५॥ तब महादेवजी ने कहा कि हे महाभाग ! सब कामोंकी सिद्धिके वास्ते गौ तुमको दीगई हे राजन् ! शिवजी इसप्रकार कहकर गौ देतेहुये और वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ २६ ॥ उस गौ सेये जमदग्निजी जिन २ कामों को चाहते हैं उन२ को प्राप्त होते हैं हजारों ऋषियों को इच्छा भोजन करवाते हैं ॥ २७ ॥ सुवर्ण के पात्र

देनेसे पूर्वपुरुष स्वर्गको जातेहैं ॥ ४६ ॥ हे राजन्! यह उत्तम नर्मदापुरका माहात्म्य आपसे कहागया इसके श्रवण करने से और कहनेसे स्वर्गमें देवभाव प्राप्तहोता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकार्त्तवीर्याख्यानेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर और भी लोकोंमें विदित, देवता और दैत्योंकरके सेवित, बृहती और नर्मदा के संगम को कहते हैं ॥ १ ॥ जोकि अनेकवृक्ष और लताओं से व्याप्त, विन्ध्यपर्वतसे शोभित,चम्पा, मौलसिरी, अशोक व स्तबकों से भी युक्त ॥ २ ॥ व पुन्नाग, चिरायता, सुगन्धवाले नागकेसर,चॅबेली,

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यंसंप्रवक्ष्यामि सङ्गमंलोकविश्रुतम् ॥ बृहत्यानर्म्मदायास्तु सुरासुरनिषेवितम् ॥ १ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं विन्ध्यपर्वतसेवितम् ॥ चम्पकैर्बकुलैर्युक्तमशोकैस्स्तबकैरपि ॥ २ ॥ पुन्नागैःकिङ्किरातैश्च सुगन्धैर्नागकेशरैः ॥ मल्लिकोत्पलजातीभिः पाटलैःपारिजातकैः ॥ ३ ॥ आम्रजम्बूकपित्थैश्च श्रीफलैःपनसैस्तथा॥खर्जूरैर्बदरीभिश्च दाडिमैर्बीजपूरकैः ॥ ४ ॥ अरुष्करैःक्षीरवृक्षैर्नारङ्गैरुपशोभितैः ॥ भरणायात्मवर्गस्य संविधायवनेचरः ॥ ५॥ मुखगण्डूषसलिलं शिवायससमाहरत् ॥ अज्ञानभक्तिगर्भस्तु स्नापयित्वाफलंददौ ॥ ६ ॥ वासरेवासरेचैव निषादोधर्मतत्परः ॥ सौम्यायनेचचक्षुर्वै दत्त्वासौम्यंतथात्मनः ॥ ७ ॥ एवंसम्पूजयामास त्र्यम्बकंविधिपूर्वकम्॥एतत्तेकथितं राजन्कल्पगानेत्रसङ्गमम् ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि महाकौतूहलंहिमे ॥ संजातोमुनिशार्दूल

गुलाब, जाही, पाड़र, पारिजात ॥ ३ ॥ आंब,जामुन,कैथा, बेल, कटहर, छोहारे, बेरी, अनार,बिजौरा ॥ ४ ॥ अरुष्कर,खिन्नी और नारंगीआदि वृक्षोंसे शोभित होरहाहै उस स्थानमें एक निषाद अपने कुटुम्ब के पोषण के वास्ते भोजन रखकर ॥ ५ ॥ महादेवजी के वास्ते वह जलको मुँहमें भरकर लेगया अनबूझ भक्तिसे युक्त महादेवको स्नान कराके एकफल अर्पण करताहुआ ॥ ६ ॥ रोज २ धर्ममें तत्पर निषाद उत्तरायण में अपने बायेंनेत्रको अर्पणकरके ॥७॥ इसप्रकार विधिपूर्वक महादेवजी को पूजताहुआ हे राजन्! यह नर्मदानेत्रसङ्गम आप से कहागया ॥ ८ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन्! हम सुनने की इच्छा करते हैं यह बड़ा आश्चर्य हम

को हुआ कि हे मुनिशार्दूल ! वह नेत्रसंगम कैसे हुआ ॥ ६ ॥ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि एक दिन व्यतीपात और संक्रान्ति के होनेपर वह निषाद फूलोंको लेकर शिवालय में प्रवेश किया ॥ १० ॥ वहां महादेवजी के तीसरे नेत्रको नहीं देखा तब विस्मयसे युक्त होकर विचार करनेलगा ॥ ११ ॥ कि किस पापीकरके इन देवका नेत्र हरलियागया हे भारत ! यह कहकर तीखेबाण से अपने नेत्रको ॥ १२ ॥ निकालकर महादेवजीके मस्तक में लगादिया इस काम के करनेमें उसको कम्प नहीं हुआ और दीनता भी नहींहुई और उसका मनभी और भावको नहीं प्राप्तहुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर महादेवजी निषाद पर प्रसन्नहुये हे भारत ! हँसतेहुये महादेवजी

सकथंनेत्रसङ्गमः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एकस्मिन्वासरेप्राप्ते व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ सपुष्पभारमादाय प्रविवेशशिवालये ॥ १० ॥ तृतीयमीक्षणंतत्र देवस्यचनपश्यति ॥ तदातुचिन्तयामास विस्मयाविष्टचेतनः ॥ ११ ॥ केनापहृतमेतस्यनेत्रंदेवस्यपाप्मना ॥ इत्युक्त्वाचस्वकंनेत्रं तीक्ष्णबाणेनभारत ॥ १२ ॥ ललाटेदेवदेवस्य उत्कृत्यसंन्यवेशयत् ॥ नकम्पोनचकार्पण्यं नान्यथातस्यमानसम् ॥ १३ ॥ ततस्तुष्टःसुरेशानो निषादम्प्रतिभारत ॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवो वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ १४ ॥ शिवप्रसादसम्पन्ना बुद्धिरन्याप्रचक्रमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वातुवचनंशम्भोः साष्टाङ्गंप्रणिपत्यसः ॥ १५ ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरंदातुंममेच्छसि ॥ निषादास्तइमेसर्वे मृगपक्षिगणैस्सह ॥ १६ ॥ सपुत्रदारपशवो येचान्येपापयोनयः ॥ त्वत्प्रसादान्महेशान शिवलोकंप्रयान्तुते ॥ १७ ॥ एतद्वरमहंमन्ये भूतानांहितकाम्यया ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य निषादाधिपतेःशिवः॥१८॥उवाचसर्वकामाप्तिं मत्प्रसादात्त्वमाप्स्यसि ॥ एवमुक्त्वाशिवो

बोले कि तुम अपना अभीष्ट वर मांगो ॥ १४ ॥ महादेव के प्रसादसे युक्त उसकी बुद्धि निर्मल होगई मार्कण्डेयजी बोले कि महादेवजी के वचन को सुनकर वह साष्टाङ्ग प्रणामकरके बोला ॥ १५ ॥ कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वर देनेकी इच्छा करतेहो तो मृग और पक्षियों करके सहित ये सब निषाद॥१६॥ और भी पापी अपने पुत्र स्त्री और पशुओं के सहित हे महेशान ! आपके प्रसाद से शिवलोक को प्राप्तहोवें ॥ १७ ॥ प्राणियों के हितकी कामना करके हम इसीवर को चाहते हैं महादेवजी निषादोंके स्वामीके इस वचन को सुनकर ॥ १८ ॥ बोले कि हमारे प्रसाद से तुम सब कामोंको प्राप्त होगे हे राजन् ! यह कहकर महादेवजी

वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १९ ॥ फिर दिव्य विमान पर सवार, अपने सेवकों करके सहित, सुवर्ण के छत्रको धारण किये, अप्सराओंके गणोंकरके चमर डुरायेजाते हैं जिसके ऊपर, दिव्यआभूषणों की शोभासे युक्त, सब अलङ्कारों से विभूषित, दिव्यवस्त्रोंको धारण किये, दिव्यचन्दनको लगायेहुये, देवता और दैत्योंकरके स्तुति किया जाता व वंशी और सितारकी आवाजें आगे जिसके होरहीं ऐसा निषाद इस तीर्थके प्रभावसे शिवजीके पुरको शीघ्र जाताहुआ ॥ २०।२१।२२ ॥ हे राजन् ! शिवनेत्रह्रदके आश्रित इस चरित्रको तुमसे कहा सैकडों पापयोनियोंमें रत होरहे मनुष्य ॥ २३ ॥ नर्मदा और शिवके संयोग में परमसिद्धिको प्राप्तहुये परवश व अपने वश होकर जो

राजंस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९ ॥ दिव्ययानसमारूढो निषादोनुचरैस्सह ॥ धृतस्वर्णातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ २० ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यः सर्वालङ्कारभूषितः ॥ दिव्यवस्त्रपरीधानो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ २१ ॥ सुरासुरैस्स्तूयमानो वेणुवीणापुरस्सरः ॥ प्रायाच्छिवपुरंक्षिप्रं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ २२ ॥ एतत्तेकथितंराजञ्छिवनेत्रह्रदाश्रितम् ॥ अनेकशतसंख्याताः पापयोनिरतानराः ॥ २३ ॥ नर्म्मदाशिवसंयोगे संसिद्धिम्परमाङ्गताः ॥ अवशस्स्ववशोवापि यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ २४ ॥ वसेद्वर्षसहस्राणि उमामाहेश्वरेपुरे ॥ श्रवणात्कीर्तनाच्चापि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ २५ ॥ धन्यास्तेपुरुषाराजन्ये म्रियन्तेशिवायने ॥ नतेषांगर्भभूतिश्च जन्मचैवयुधिष्ठिर ॥ २६ ॥ पुत्रदारपरिग्रस्ता मोहजालसमावृताः ॥ कल्पगान्तुनपश्यन्ति पापोपहतचेतसः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदामाहात्म्येह्रदाख्यानंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्राणों को त्यागताहै ॥ २४ ॥ वह हजारों वर्ष पार्वती और महादेवजी के पुरमें वास करता है सुनने और कहने से भी संसारबन्धन से छूटजाता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! वे मनुष्य धन्यहैं जो इस शिवजी के स्थान में मरते हैं हे युधिष्ठिर ! उनकी गर्भमें स्थिति और जन्म नहीं होताहै ॥ २६ ॥ पुत्र और स्त्रियोंसे ग्रसेहुये और मोहजाल में लपटेहुये व पापोंसे नष्टहोगई है बुद्धि जिनकी ऐसे मनुष्य नर्मदाको नहीं देखते हैं ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येह्रदाख्यानंनामषोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर सहस्रयज्ञ नामसे विख्यात तीनोंलोक में विदित मुझकरके कहेजाते और परमतीर्थ को जानो ॥ १ ॥ वहां स्नान, जप और महादेव का पूजनकरके उसकी इस घोरसंसारसागर में फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ तुमसे पुराने आख्यान व इतिहास को कहतेहैं तारावलि नामका नाग, कम्बल और अश्वतर ॥ ३ ॥ और सफेद सर्प और भुजङ्ग व और भी सर्प ये सब अनेक प्रकार के फूल व चन्दनों करके नागेश्वरको पूजते थे ॥ ४ ॥ कभी नागोंके समूह एकत्र होकर महादेव का पूजन कररहे थे तबतक गर्ग, अघमर्षण, च्यवन, शौनक, अङ्गिरा ॥ ५ ॥ ये व और भी वेदविद्या के पारगन्ता बहुत से ब्राह्मण नागों

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं कथ्यमानंनिबोधमे ॥ सहस्रयज्ञंविख्यातं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाचजप्त्वाच पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ २ ॥ कथयामितवाख्यानमितिहासम्पुरातनम् ॥ तारावलिर्नामनागः कम्बलाश्वतरौतथा ॥ ३ ॥ श्वेतोरगास्तथाचान्ये भुजङ्गाश्चतथापरे ॥ नागेश्वरंतेर्चयन्ति नानापुष्पविलेपनैः ॥ ४ ॥ नागपूगाःसमासाद्य पूजयन्तिमहेश्वरम् ॥ गर्गोघमर्षणश्चैव च्यवनःशौनकोङ्गिराः ॥ ५ ॥ एतेचान्येपिबहवो ब्रह्मविद्याङ्गपारगाः ॥ नागानांचाश्रमंहर्तुं तत्रसर्वेह्युपस्थिताः ॥ ६ ॥ ततस्तैःकुपितैर्नागैर्दष्टाश्चैवद्विजोत्तमाः ॥ विषाघ्रातान्मुनीन्दृष्ट्वा कुपितश्चाघमर्षणः ॥ ७ ॥ वाहनंवासुदेवस्य पक्षिराजंसमाह्वयत् ॥ तत्क्षणादागतःपक्षी गरुडःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ८ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा ब्राह्मणंचेदमब्रवीत् ॥ भुजङ्गान्भक्षयिष्यामि ब्राह्मणानिर्विषास्ततः ॥ ९ ॥ ब्रह्मशापभयार्तेन गरुडेनविषोल्बणाः ॥ भक्षिताःपन्नगास्सर्वे मोचितामुनयोविषात् ॥ १० ॥

के आश्रम को हरलेने के वास्ते वहां सब उपस्थित हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर क्रोधको प्राप्तहुये उन नागोंकरके वे सब उत्तम ब्राह्मण डस लियेगये विषसे डसेहुये मुनियों को देखकर अघमर्षणजी कुपितहुये ॥ ७ ॥ वासुदेवजी के वाहन पक्षिराज (गरुड) को बुलातेहुये व उसी क्षण क्रोधसे बढ़ेहुये पक्षी गरुडजी आगये ॥ ८ ॥ दोनों हाथजोड़कर ब्राह्मण से यह बोले कि सर्पोंको हम खाजायँगे तिससे ब्राह्मण निर्विष होजायँगे ॥ ९ ॥ ब्राह्मणों के शापके भयसे कष्टित होरहे गरुडकरके विषसे

डरावने सब सर्प खाय डालेगये और विषसे मुनिलोग छुडा दियेगये ॥ १० ॥ सर्पोंको खाकर गरुडजीको अपने स्थानमें गये पर बाकीरहे जो सर्प वे सब रसातल को प्रवेशकर गये ॥ ११ ॥ नर्मदाकी वृद्धिको प्राप्तहुयेपर नर्मदाजीका प्रवाह क्षणभर में सर्पोंकी हड्डियों को बोरदिया तिससे सब सर्प स्वर्गको जातेहुये ॥ १२ ॥ सर्प योनिको छोडकर महादेवजी के लोकमें विहार करतेहुये नागेश्वर और नर्मदा के संयोग से पाप छूटजाते हैं ॥ १३ ॥ वहां नागकुण्ड भी विद्यमान है जोकि तीनों लोकों में विदित है वहां स्नान कियेहुये जो नागेश्वर का पूजन करता है वह स्वर्ग को जाताहै ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया जिसके

पक्षीन्द्रेचगतेस्थाने भक्षयित्वाभुजङ्गमान् ॥ अवशिष्टास्तुयेनागा विविशुस्तेरसातलम् ॥ ११ ॥ आप्लवेचसु संप्राप्ते प्रवाहोनार्मदःक्षणात् ॥ अस्थीनिस्रावयामास ततोनागादिवंययुः ॥ १२ ॥ सर्प्पयोनिंपरित्यज्य लोकेक्रीड न्तिशाम्भवे ॥ नागेश्वरस्यरेवायाः सम्पर्कात्पापमोक्षणम् ॥ १३ ॥ तत्रनागह्रदश्चास्ते त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ तत्र स्नातोदिवंयाति योनागेश्वरमर्चयेत् ॥ १४ ॥ अयंतेकथितोराजन्नितिहासःपुरातनः ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि मुच्यते भवबन्धनात् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनागेश्वराख्यानंनामसप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थंचजनकोत्तमम् ॥ रेवायाउत्तरेकूले सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १ ॥ अश्वमेधन्तुतत्रैव शतमेधंतथापरम् ॥ सहस्रमेधंविज्ञेयं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २ ॥ लक्षमेधंतथाचान्यं शिवेनपरि कीर्तितम् ॥ जनकोनामराजर्षिर्यत्रेष्ट्वात्रिदिवंययौ ॥ ३ ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते त्रेतायांचनराधिप ॥ पुरोधसंयाज्ञव

सुनने और कहने से संसारबन्धन से छूटजाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनागेश्वराख्यानंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर नर्मदाके उत्तरतट में सब सिद्धियोंके देनेवाले एक और उत्तम जनकतीर्थ को कहते हैं ॥ १ ॥ वहीं अश्वमेध वैसेही शतमेध और सुर व असुरों करके नमस्कार कियागया सहस्रमेध जाननेयोग्य है ॥ २ ॥ और वैसेही अन्य लक्षमेध शिवजी करके कहागया है जनकनामके राजर्षि

जहां यज्ञकरके स्वर्गको जातेहुये ॥ ३ ॥ हे नराधिप ! स्वारोचिष मन्वन्तरके प्राप्तहोनेपर त्रेतायुग में ब्रह्मके जाननेवालों में उत्तम ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य पुरोहित को ले कर ॥ ४ ॥ ब्रह्मर्षियों के गणोंकरके सेवित, सिद्ध और गन्धर्वों के गीतोंसे युक्त, वेदोंके शब्दोंसे गूँजरहे,अभीष्टफल देनेवाले व फूलेफले वृक्षोंसे युक्त,शुभ,जैसे देवताओंकी बनाईहुई कुबेरजी की अलकापुरी हो तद्वत शोभित,अनेक मुनिवृन्दों करके सेवित, पवित्र कश्यपजी के आश्रमको सैकड़ों दूध देनेवाली दिव्य कामधेनुओं को तथा ॥ ५ । ६ । ७ ॥ यथाविधि यज्ञ करने के वास्ते यज्ञ करानेवाले ऋत्विज् लोग औरभी सब यज्ञके सामान को लेकर जनक राजा जातेहुये ॥ ८ ॥ तदनन्तर

ल्क्यं ब्रह्मर्षिंब्रह्मवित्तमम् ॥ ४ ॥ कश्यपस्याश्रमंपुण्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ सिद्धगन्धर्वगीताढ्यं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ५ ॥ युक्तंकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैःफलितैःशुभम् ॥ धनदस्यपुरीयद्वदलकादेवनिर्मिता ॥ ६ ॥ तद्वच्चशोभितं नानामुनिवृन्दनिषेवितम् ॥ कामधेनूस्तथादिव्याः शतसंख्याःपयस्विनीः ॥ ७ ॥ याज्ञिकान्त्विजश्चैव क्रतुंकर्तुं यथाविधि ॥ यज्ञोपस्करसंभारं सर्वमादायगच्छति ॥ ८ ॥ आदिदेशततोमर्त्यान्भृत्यांश्चैवसहस्रशः ॥ भक्ष्यभोज्यादिसंभारसंख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ ९ ॥ एवंप्रवर्तितस्तत्र लक्षमेधःक्रतूत्तमः ॥ जगृहुर्यज्ञभागंच शक्राद्याःसुरसत्तमाः ॥ १० ॥ निवर्तितस्ततोयज्ञो हरिर्ब्रह्माशतक्रतुः ॥ नानाविधैस्तथारत्नैर्वासोयुग्मैश्चतर्पिताः ॥ ११ ॥ स्वंस्वंयानंसमारूढा जग्मुर्देवास्त्रिविष्टपम् ॥ नर्म्मदावभृथंस्नात्वा पुत्रदारोपशोभितः ॥ १२ ॥ हरंहरिंचार्चयित्वा वरदानप्रभावतः ॥ दिव्यं यानंसमारूढो यथाशक्रोमरैस्सह ॥ १३ ॥ धृतस्वर्णातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ गीयमानोप्सरोभिश्च नानाल

हज़ारों मनुष्य और सेवकोंको आज्ञा देतेहुये भक्ष्य और भोजनआदिके सामानोंकी संख्या करनेको शक्य नहीं होसक्ती ॥ ९ ॥ यज्ञों में उत्तम लक्षमेध वहां इसप्रकार प्रवृत्तहुआ इन्द्रआदि उत्तम देवता यज्ञभागको ग्रहण करतेहुये ॥ १० ॥ तदनन्तर यज्ञ समाप्त कियागया विष्णु,ब्रह्मा और इन्द्र अनेक प्रकारके रत्न व कपड़ों के जोड़ों करके प्रसन्न कियेगये ॥ ११ ॥ अपनी २ सवारीपर सवार देवता स्वर्गको जातेहुये राजा नर्मदा में यज्ञान्तस्नान करके पुत्र और स्त्रियोंकरके शोभितहुये ॥ १२ ॥ महादेव और विष्णुजी का पूजनकरके वरदानके प्रभावसे दिव्य सवारी पर सवार जैसे देवताओं करके सहित इन्द्र ॥ १३ ॥ वैसेही सुवर्ण के छत्रको धारणकिये अप्सराओं

के गणोंकरके हवा कियेजाते और उन्हीं से गाये जारहे अनेक अलङ्कारों से भूषित ॥ १४ ॥ जनक राजा देखेगये तदनन्तर धर्मराजजी उठे व सवारीके आगे पावोंसे चलतेहुये अर्घ और पाद्यआदि पूजन के सामानसे युक्त ॥ १५ ॥ हाथ जोड़ेहुये होकर इस वचन को बोले कि तप, ध्यानयोग, दान और देवताओं के पूजनकरके ॥ १६ ॥ महादेव और नर्मदा के प्रसाद से तुमकरके सबलोक जीत लियेगये तब यशस्वी धर्मराज से जनक राजा बोले ॥ १७ ॥ कि जैसे प्रकाश करनेवाले सूर्य है इसी प्रकार आपकी भी मूर्त्ति है ब्रह्मा, विष्णु और इसी प्रकार महादेवजी सब कर्मों के साक्षी हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार जनक के संवाद में धर्म और अधर्म का विचार

ङ्कारभूषितः ॥ १४ ॥ दृष्टोजनकराजातद्धर्म्मराजस्समुत्थितः ॥ यानस्याग्रेपादचारी अर्घपाद्यादिसंयुतः ॥ १५ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा वचनंचेदमब्रवीत ॥ तपसाध्यानयोगेनदानदेवार्चनैरपि ॥ १६ ॥ शिवरेवाप्रसादेन जितालोकास्त्वयाखिलाः ॥ उवाचजनकोराजा धर्म्मराजंयशस्विनम् ॥ १७ ॥ तथैवतवमूर्तिश्च यथाभानुःप्रभाकरः ॥ ब्रह्माविष्णुस्तथाशम्भुः साक्षीसकलकर्म्मणाम् ॥ १८ ॥ एवंजनकसंवादे धर्म्माधर्म्मविचारणात ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः किङ्किणीजालमण्डितम् ॥ १९ ॥ वेणुवीणानिनादाढ्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ विमानंदिव्यमारूढो देवराजःशतक्रतुः ॥ २० ॥ नारदःपर्वतश्चैव तथान्येमुनिसत्तमाः ॥ धर्म्मराजपुरंप्राप्ताःश्रुत्वाजनकमागतम् ॥ २१ ॥ अध्यासुस्तमक्रुध्यन्तमासनानिमहान्तिच ॥ प्रसमीक्ष्ययथार्हन्तु पूजिताश्चपृथक्पृथक् ॥ २२ ॥ तेषांमध्येमहाराज नारदोधर्म्ममब्रवीत ॥ केदेशाःपर्वताःपुण्याः कानद्यश्चाश्रमाश्चके ॥ २३ ॥ कानितीर्थानिलोकेस्मिन्यत्रदत्तंहुतंतपः ॥ नक्षीयतेमनुष्याणां

होरहा था इसी अन्तर में क्षुद्रघण्टिकाओं के जालोंसे भूषित, वंशी और सितारों के शब्दोंसे युक्त, अप्सराओं के गणोंसे सेवित ऐसे दिव्य विमानपर चढ़ेहुये देवताओं के राजा इन्द्र प्राप्तहुये ॥१९।२०॥ नारद, पर्वत तथा और भी उत्तममुनि जनककी आये सुनकर धर्मराजके पुरको प्राप्तहुये॥२१॥और क्रोध नहीं करतेहुये उन धर्मराज को देखकर बड़े २ आसनों पर जाबैठे यथायोग्य पृथक् २ पूजन कियेगये ॥२२॥ उनके मध्यमें हे महाराज ! नारदजी धर्मसे बोले कि वे कौन देश, पर्वत व कौन

पवित्र नदियां और कौन आश्रम ॥ २३ ॥ और कौन तीर्थ इस लोकमेंहैं जिनमें दियागया दान,होम,तप मनुष्योंका नहीं चीणहोता वह हमसे तत्त्वसे कहो ॥ २४ ॥ हे महाराज ! आपको हम जानते हैं कि सूर्य के पुत्रहो सो आप हमसे आज सब के स्वरूप को यथावत् क्रमसे वर्णन करो ॥ २५ ॥ तब धर्म बोले कि हे मुनिशार्दूल ! शिवलोक में जैसा सुनागया है सो आप सुनो मथुरा में कल्माषपाद राजा विख्यातहुये ॥ २६ ॥ इसी प्रकार नाभागनाम के राजर्षि अयोध्याके राजाहुये व महात्मा नाभागराजर्षि का विमान ऊपर ॥ २७ ॥ और कल्माषपाद का विमान नीचे सब देवताओं करके देखागया तब उन दोनों महात्माओं का वहां शिवलोक में

तन्मेकथयतत्त्वतः ॥ २४ ॥ जानामित्वांमहाराजसूर्य्यपुत्रोब्रवीहिमे ॥ स्वरूपमद्यसर्वेषां यथावदनुपूर्वशः ॥ २५ ॥ धर्मउवाच ॥ श्रूयतांमुनिशार्दूल शिवलोकेयथाश्रुतम् ॥ कल्माषपादोविख्यातो मथुरायांनराधिपः ॥ २६ ॥ नाभागो नामराजर्षिरयोध्याधिपतिस्तथा ॥ यानंचोपरिराजर्षेर्नाभागस्यमहात्मनः ॥ २७ ॥ अधःकल्माषपादस्य दृश्यते सर्वदैवतैः ॥ शिवलोकेविवादोभूत्तयोस्तत्रमहात्मनोः ॥ २८ ॥ कल्माषपादउवाच ॥ पुष्करेदशयज्ञाश्च मयाचेष्टा विधानतः ॥ गङ्गायांनैमिषारण्ये प्रभासेशशिभूषणे ॥२९॥ गङ्गायमुनयोर्योगे वाराणस्यान्तथैवच ॥ इष्टंयज्ञशतंसाग्रं मयातत्रमहेश्वर ॥ ३० ॥ अधोभागेविमानोमे नाभागस्यममोपरि ॥ कल्पगांवर्जयित्वातुतीर्थेतीर्थेमखोत्तमाः ॥ ३१ ॥ कृतामयामहादेव विमानंमेतथाप्यधः ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ ३२ ॥ लक्षमेधं नामतीर्थं रेवायाउत्तरेतटे ॥ लक्षमेधेश्वरंनाम्ना लिङ्गंतत्रपरंस्मृतम् ॥ ३३ ॥ चकारतत्रनाभागो यज्ञमेकंयथोदितम् ॥

विवादहुआ ॥ २८ ॥ कल्मापपाद बोले कि पुष्कर में मुझकरके विधिसे दशयज्ञकियेगये और गङ्गा, नैमिषारण्य, प्रभास, शशिभूषण ॥ २९ ॥ प्रयाग वैसेही काशी में हे महेश्वर ! कुछ अधिक सौयज्ञ मुझकरके कियेगये ॥ ३० ॥ फिर मेरा विमान नीचे और मेरे ऊपर नाभागका विमान यह क्याहै नर्मदा को छोड़कर हरएक तीर्थ में उत्तमयज्ञ ॥ ३१ ॥ हे महादेव ! मुझकरके कियेगये तब भी मेरा विमान नीचेहो तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुझकरके कहेजाते को सुनो व समझो ॥ ३२ ॥ नर्मदा के उत्तरतट मे लक्षमेधनाम का तीर्थहै और लक्षमेधेश्वर नाम करके वहां श्रेष्ठ लिंग भी कहागयाहै ॥ ३३ ॥ वहां नाभाग यथार्थ एक यज्ञको

करतेहुये उस तीर्थपर कियेहुये यज्ञके माहात्म्यसे इसका विमान ऊपर हुआ ॥ ३४ ॥ नर्मदाको छोडकर असंख्यतीर्थोंमें भी हे राजसत्तम ! तुमकरके यजन कियागया इसीमे तुम्हारा विमान नीचेहुआ ॥ ३५ ॥ धर्म बोले कि महादेवजी से परे दूसरा देवता नहीं है और नर्मदा से श्रेष्ठ नदी नहीं है सत्यसे परे दूसरा धर्म नहींहै और सब प्राणियों में दया करना यह भी परमधर्म है ॥ ३६ ॥ सूर्यलोक में मुझकरके सुना गया और सूर्यकरके महादेवजी से सुनागया यह सब पुराना वृत्तान्त आपसे कहा गया जैसा देखागया था ॥३७॥ शिवजीके ध्यानमें तत्पर जो नर्मदातटमें बसताहै निश्चय करके यमराज उसके राजा नहीं होते और वह यमलोक को नहीं देखता

तत्तीर्थयज्ञमाहात्म्याद्यानमस्योपरिस्थितम् ॥ ३४ ॥ असंख्येष्वपितीर्थेषु त्वयेष्टंराजसत्तम ॥ विहायकल्पगान्तेन त वयानमधस्स्थितम् ॥ ३५ ॥ धर्म्मउवाच ॥ नशङ्करात्परोदेवो नरेवायाःपरानदी ॥ नसत्यादपरोधर्म्मो कारुण्यंसर्व जन्तुषु ॥३६॥ मयाश्रुतंसूर्य्यलोके सूर्य्येणापिमहेश्वरात् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथादृष्टम्पुरातनम् ॥ ३७ ॥ वासीयो नर्म्मदातीरे शिवध्यानपरायणः ॥ नतस्यवैयमःशास्ता यमलोकंनपश्यति ॥ ३८ ॥ ब्रह्माविष्णुःशिवःशास्ता सत्य मेवयथोदितम् ॥ धर्म्मराज्ञासमग्रन्तुनारदाद्यामहर्षयः ॥ ३९ ॥ धर्म्माख्यानमिदंश्रुत्वा मुदापरमयायुताः ॥ स्वंस्वंया नंसमारुह्य शक्राद्यास्त्रिदिवंययुः ॥४०॥ धर्म्माख्यानमिदंपुण्यमितिहासंपुरातनम् ॥ कथितंतवयत्नेन विदेहाद्यानराधि पाः॥४१॥ दानयज्ञप्रभावेणत्रिदिवंवरमाययुः॥४२॥इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेजनकयज्ञोनामाष्टादशोऽध्यायः १८॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ सप्तसारस्वतंतीर्थंशंसमेत्रमहामुने ॥ उत्पत्तिंचास्यतीर्थस्य कथयस्वयथार्थतः ॥ १ ॥ मार्कण्डेय

है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवही उसके राजाहोते यह सत्यही है धर्म्मराजकरके कहेहुये इस समग्र धर्माख्यान को नारदआदि महर्षि सुनकर बड़े आनन्द से युक्त हुये अपने २ विमानों पर चढ़कर इन्द्रादिक देवता स्वर्गको जातेहुये ॥ ३९ । ४० ॥ यह पवित्र धर्माख्यान व पुराना इतिहास यत्नकरके आपसे कहागया जिसमे जनकआदि राजा ॥ ४१ ॥ दान और यज्ञके प्रभावसे श्रेष्ठ स्वर्गको जातेहुये ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेजनकयज्ञोनामाष्टादशोऽध्यायः १८॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! सप्तसारस्वत तीर्थको आप मुझसे कहें और इस तीर्थकी उत्पत्तिभी यथार्थ से कहो ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि सप्त-

सारस्वत नामका गन्धर्व शिवजीके यशका गानेवाला व सितार, वंशी और भी दर्शनीय बाजाओं के बजाने व गाने में प्रवीण होताहुआ ॥ २ ॥ मणिभद्रा व सुभद्रा और वैसेही हेमगर्भा इन अप्सराओं करके प्रतिदिन विहार करताहुआ ॥ ३ ॥ मदिराके पीनेसे बेहोश, कामसे कष्टित और कामसे मोहको प्राप्त होरहा महादेवजी की पूजाको छोड़कर भक्ष्य और भोजनमें रतहोताहुआ ॥ ४ ॥ कुछकाल के व्यतीत होने पर महादेवजी के दर्शन को गया पहाड़ों में उत्तम कैलास में गाने व नाचने से महादेवजीकी स्तुति करताहुआ ॥ ५ ॥ बहुत कालके बाद आयेहुये उस गन्धर्व को देखकर महादेव की भक्तिसे विमुख उक्त गन्धर्व को नन्दीश्वरजी क्रोधसे शाप

उवाच ॥ सप्तसारस्वतोनाम गन्धर्वःशिवगायनः ॥ वीणावेणुप्रेक्षणीययन्त्रगीतविशारदः ॥ २ ॥ मणिभद्रासुभद्राच हेमगर्भातथापरा ॥ आभिर्वराप्सरोभिश्च चिक्रीडेप्रतिवासरम् ॥ ३ ॥ मदिरानष्टचैतन्यः कामार्तःकाममोहितः ॥ विहायशाङ्करीम्पूजां भक्ष्यभोज्यरतोभवत् ॥ ४ ॥ कियत्यपिगतेकाले ययौद्रष्टुमुमापतिम् ॥ गीतनृत्यैश्चतुष्टाव कैलासेतं नगोत्तमे ॥ ५ ॥ गन्धर्वंतंसमालोक्य चिरकालेसमागतम् ॥ शशापनन्दीकोपेन शिवभक्तिपराङ्मुखम् ॥ ६ ॥ चाण्डालयोनिंगच्छत्वं पापस्यास्यप्रभावतः ॥ क्षुत्क्षामस्त्वंनिराहारो मर्त्यलोकेचरिष्यसि ॥ ७ ॥ प्रसाद्यनन्दिनंसोथ गन्धर्वोवाक्यमब्रवीत् ॥ शापस्यान्तंमहाभाग दातुमेत्वमिहार्हसि ॥ ८ ॥ नन्द्युवाच ॥ नर्मदायांव्यतीपाते स्नात्वाभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ अन्तंशापस्यसंप्राप्य पुनस्त्वंचागमिष्यसि ॥ ९ ॥ एवंतद्वचनंश्रुत्वा चाण्डालींयोनिमाश्रितः ॥ जातिस्मरत्वंसंप्राप्य सशैलवनकाननाम् ॥ १० ॥ बभ्रामधरणींसर्वां तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ अथचकाङ्गयोगेन नर्मदा

देतेहुये ॥ ६ ॥ कि इस पापके प्रभावसे तू चाण्डालयोनिको प्राप्तहो क्षुधासे दुर्बलहो निराहार तू मनुष्यलोक में घूमता रहेगा ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर वह गन्धर्व नन्दीश्वरको प्रसन्नकरके वचन बोला कि हे महाभाग! मेरे शापके अन्तके देनेको आप योग्यहो ॥ ८ ॥ तब नन्दीश्वर बोले कि व्यतीपातयोगके होनेपर नर्मदा में स्नानकरके और महादेव का पूजन करके शापके अन्तको प्राप्त होकर तू फिर आवेगा ॥ ९ ॥ इसप्रकार नन्दीश्वर के वचन को सुनकर चाण्डालयोनिको प्राप्तहुआ वहां भी जातिस्मरत्वको प्राप्तहोकर पर्वतों और जलों तथा जङ्गलों करके सहित ॥१०॥ समस्त पृथिवीपर तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमताहुआ इसके अनन्तर दैवयोग से

नर्मदाके तटमें आताहुआ ॥ ११ ॥ वहां जाकर शङ्करस्थण्डिलमें यजन करताहुआ मनके हरनेवाले अनेक पुष्पोपहार व सितार के बाजोंकरके ॥ १२ ॥ गन्धर्व की भक्तिको जानकर महादेवजी प्रत्यक्षहुये स्थण्डिल से जलमें महापवित्रलिंग प्रकटहुआ ॥ १३ ॥ गाने व बजानेसे प्रसन्न कियेगये महादेवजी उस गन्धर्वसे बोले कि हे महाभाग ! जो तेरे मनमें हो वह वर तू मांगले ॥१४॥ नर्मदाजल के संयोग से तू परमगतिको प्राप्तहोगा तब गन्धर्व बोला कि हे महेशान ! जो प्रसन्नहो और यहां वरदेने की इच्छा करतेहो ॥ १५ ॥ तो हे महादेव ! सप्तसारस्वततीर्थ और सारस्वतलिंग आपके प्रसाद से पृथिवीतल में ख्यातिको प्राप्तहोवे ॥ १६ ॥ तिर्यग्योनि में

तीरमागतः ॥ ११ ॥ शङ्करस्थण्डिलेयागं तत्रगत्वाचकारसः ॥ पुष्पोपहारैर्विविधैर्वीणावाद्यैर्मनोहरैः ॥ १२ ॥ गन्धर्वभक्तिंविज्ञाय प्रत्यक्षोभून्महेश्वरः ॥ स्थण्डिलादुत्थितंलिङ्गं महापावनमम्भसि ॥ १३ ॥ उवाचतंमहादेवो गीतवादित्रतोषितः ॥ वरंवृणुमहाभाग यत्तेमनसिवर्तते ॥ १४ ॥ कल्पगातोयसंस्पर्शात्प्राप्नोषिपरमाङ्गतिम् ॥ गन्धर्वउवाच ॥ यदितुष्टोमहेशान वरन्दातुमिहेच्छसि ॥ १५ ॥ सप्तसारस्वतंतीर्थं लिङ्गंसारस्वतंतथा ॥ ख्यातिंयातुमहादेवत्वत्प्रसादान्महीतले ॥ १६ ॥ तिर्यग्योनिगताःपापाश्चाण्डालाश्चनराधमाः ॥ सर्वेतेत्रिदिवंयान्तु तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १७ ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा महेशोन्तरधीयत ॥ दिव्ययानसमारूढः सर्वालङ्कारभूषितः ॥ १८ ॥ शिवलोकमवाप्यैवं यथापूर्वंतथैवसः ॥ सप्तसारस्वतेस्नात्वा अर्चयित्वावृषध्वजम् ॥ १९ ॥ कुलैकविंशमुद्धृत्य स्वर्गलोकेमहीयते ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २० ॥ शिवाज्ञावर्ततेराजंस्तत्रयस्त्रिदिवंजयेत् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्स्रष्टाचास्य

प्राप्तहोरहे पापी व चाण्डाल अधम मनुष्य ये सब इस तीर्थ के प्रभावसे स्वर्गको जावें ॥१७॥ ऐसाहीहो ऐसे उस गन्धर्व से कहकर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये व गन्धर्व भी दिव्य सवारीपर सवार,सब आभूषणों से भूषित ॥१८॥ महादेवके लोकको प्राप्तहोकर पूर्वही के समान होगया सप्तसारस्वतमें स्नानकरके और महादेवजी को पूजकरके ॥ १९ ॥ इक्कीसकुल को उद्धार करके स्वर्गलोक में पूजित होता है वहां स्नान करके स्वर्गको जाते हैं और जो मरजाते हैं वे फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! शिवजी की आज्ञा है कि इस तीर्थके वासी स्वर्गको जीतते हैं तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुने ! इस जगत् का रचनेवाला व नाश और

पालन करनेवाला कौनहै ॥२१॥ हे तपोधन ! यह यथार्थ विस्तारसे आप कहो यह सब आनन्द से युक्त हम आपसे सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ २२ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि पूर्वसमय स्वामिकार्त्तिकेय के कहेहुये पुराण को मैंने जैसा सुना हे राजन् ! उसी प्रकार यथार्थ आपसे कहूँगा आप सुनो ॥ २३ ॥ कल्पान्तके करने वाले महादेवजी स्कन्दकरके पूर्वकाल में पूछेगये कि यह सब चराचर किस प्रकार प्रलयको प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ ये देवता कहां को जातेहैं और कैसे इनकी स्थिति होती है और ब्रह्माजी कहांको जाते हैं व विष्णुजी कहांको जाते हैं ॥ २५ ॥ व छहअंग, पद और क्रमोंकरके सहित वेद कहांको जातेहैं और समुद्र, द्वीपसयुक्त सब

जगतो हर्ताधर्ताचभोमुने ॥ २१ ॥ यथार्थमेतदाचक्ष्व विस्तरेणतपोधन ॥ त्वत्तोहंश्रोतुमिच्छामि सर्वमेतन्मुदायुतः ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वं पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ तथातेकथयिष्यामि शृणुराजन्यथार्थतः ॥ २३॥ स्कन्देनतुपुरापृष्टो हरःकल्पान्तकारकः ॥ चराचरमिदंसर्वं कथंगच्छतिसंलयम् ॥२४॥ कुत्रगच्छन्त्यमीदेवाः कथंचैषांस्थितिर्भवेत् ॥ क्वचगच्छतिवैब्रह्मा कुत्रगच्छतिकेशवः ॥२५॥ वेदास्तुकुत्रगच्छन्ति सषडङ्गपदक्रमाः ॥ अग्नयःपर्वतास्सर्वे समुद्रद्वीपसंयुताः ॥ २६ ॥ सिद्धास्सर्वेसनक्षत्राः सूर्याद्याश्चतथाग्रहाः ॥ पातालभुवनादीनि देवलोकाश्चशाश्वताः ॥ २७ ॥ कल्पान्तेचसुरश्रेष्ठ क्वलीयन्तेचदेवताः ॥ हरउवाच ॥ कथयामिपरंगुह्यं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ २८ ॥ प्रलयेसर्वभूतानि स्थावराणिचराणिच ॥ शिवलिङ्गेविलीयन्ते नष्टेजगतिशाश्वते ॥ २९ ॥ शून्यंचैतज्जगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ आतिष्ठतियदावह्निर्विस्फुरन्सर्वतोमुखः ॥ ३० ॥ ततोबृहस्पतिर्गायन्वेदत्रयसमन्वितम् ॥

अग्नि व पर्वत ॥ २६ ॥ और सब सिद्ध तथा नक्षत्रों के सहित सूर्य आदिग्रह, पातालआदि भुवन और हमेशा रहनेवाले देवलोक ॥ २७ ॥ व देवता हे सुरश्रेष्ठ ! कल्पान्त में कहां लीन होजाते हैं तब महादेवजी बोले कि परमगुप्त सृष्टि और संहार करनेवाले को हम कहते हैं ॥ २८ ॥ प्रलय में इस नित्य जगत् के नष्टहोनेपर स्थावर और जंगम सब प्राणी शिवजीके लिंगमें लयको प्राप्तहोते हैं ॥ २९ ॥ यह सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य जगत् शून्य होजाता है जिससमय में सब तरफ जिनका मुखहै ऐसे फैलतेहुये अग्निदेव उठतेहैं ॥ ३० ॥ तदनन्तर तीनों वेदोंको बृहस्पतिजी गातेहैं उसी समय में कूर्मरूपको धारण किये, बडे प्रकाशवाले व

बड़ेबलवाले महाप्रज्वलित होरहे अग्निदेव सब नरकोंको भस्म करदेतेहुये तदनन्तर सम्पूर्ण भस्महोगया और पाताल व नागोंके लोक ॥ ३१ । ३२ ॥ व चौदहो भुवन कालरूप अग्निकरके भस्म करदियेगये व वेदशब्दों से उत्पन्नहुये सब चराचर को लपटों की मालाओं से भस्म होनेपर ॥ ३३ ॥ और पहाड़ों व जलों और जंगलों करके सहित सम्पूर्ण तीनों लोकोंके नष्टहोने पर व मायाके तीन गुणों से उत्पन्नहुये इस सम्पूर्ण जगत्के प्रलयको प्राप्तहोनेपर ॥ ३४ ॥ तदनन्तर सब देवताओं करके सहित ब्रह्माजी नष्टहोते हैं व ब्रह्माण्ड व देवताओं करके सहित सब प्राणियोंको नाशकरके ॥ ३५ ॥ देवताओं करके पूजित उत्तम घाटवाली एक नर्मदा स्थित

तदैवातिबलोदेवः कूर्मरूपोमहाद्युतिः ॥ ३१ ॥ नरकांश्चादहत्सर्वांस्ततःप्रज्वलितोमहान् ॥ सर्वन्दग्धन्तुपातालनागानाम्भुवनानिच ॥ ३२ ॥ कालरूपेणदग्धानि भुवनानिचतुर्दश ॥ ज्वालामालाकुलीभूते वाङ्मयेसचराचरे ॥ ३३ ॥ नष्टेत्रिविष्टपेसर्वे सशैलवनकानने ॥ मायामयेतुसर्वेस्मिंस्त्रैगुण्येप्रलयंगते ॥ ३४ ॥ विनश्यतिततोब्रह्मा सहितःसर्वदेवतैः ॥ नाशयित्वाचभूतानि ब्रह्माण्डैस्सहदैवतैः ॥ ३५ ॥ स्थितातुनर्म्मदाचैका सुतीर्थासुरपूजिता ॥ नर्म्मदायावतारोयं मर्त्यलोकेऽव्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ गतमिन्द्रसहस्रन्तु यावद्दैदशपञ्चच ॥ अतीतंब्रह्मणांषट्कं सप्तमोयंप्रजापतिः ॥ ३७ ॥ तदेवमग्निमध्यस्थं तेनसर्वमचेतनम् ॥ अव्यक्तेसर्वभूतानामीशेजागर्तिजाग्रति ॥ ३८ ॥ यदास्वपितिशान्तात्मा तदासर्वंनिमीलितम् ॥ सविष्णुःसृष्टिकर्ताच हर्ताचजगतःप्रभुः ॥ ३९ ॥ एकीभूतेषुभूतेषु व्यपास्यन्सर्वतेजसाम् ॥ पुनःसृष्टिंप्रकुरुते देवदेवःसदाशिवः ॥ ४० ॥ ब्रह्माभूत्वासृजल्लोकं विष्णुर्भूत्वाह्यपालयत् ॥ रुद्रःकालाग्निरूपेण

रहती है यह नर्मदा का अवतार मनुष्यलोक में सर्वदा बना रहता है ॥ ३६ ॥ जबतक एक हजार पन्द्रह इन्द्र व्यतीत होगये और छह ब्रह्मा व्यतीत होगये ये सातवें प्रजापति विद्यमान हैं ॥ ३७ ॥ इससे तबतक सो इस प्रकार अग्निके मध्यमें स्थित सब अचेतन जगत् अव्यक्त सर्वभूतों के ईश्वर के जागतेहुये जागता है ॥ ३८ ॥ और जिस समय शान्तरूप होकर परमात्मा सोता है तब यहभी सब सोजाता है वही प्रभु विष्णु जगत्की सृष्टिका करनेव हरनेवाला है ॥ ३९ ॥ सब प्राणियों को एकही रूपहोनेपर सबके तेजोको पृथक्२ करताहुआ देवताओंका देवता सदाशिव फिर सृष्टिको करता है ॥ ४० ॥ ब्रह्माहोकर सब लोकोंको रचा और

विष्णु होकर पालन किया और अन्तमें कालाग्निरूप करके वही रुद्रहोकर नाश करताहै ॥ ४१ ॥ यह सब हमकरके कहागया अब और क्या पूछतेहो यह नर्मदाजी महादेवजी की इडानाम की कलाहैं ॥ ४२ ॥ इसीसे इस लोकमें शिवजी के ध्यानमें तत्पर नर्मदाजी अक्षयहैं व आठ हजार चारोंयुगका ब्रह्माजीका अहोरात्र (दिन रात) होताहै ॥ ४३ ॥ इसी प्रमाणसे वे ब्रह्मा सौवर्ष जीतेहैं और ब्रह्मा के सौ अहोरात्र करके विष्णुका एक अहोरात्र होताहै ॥ ४४ ॥ व विष्णुके चौदह हजार अहोरात्रका रुद्रका आधा निमेष होताहै इतनेमें असंख्य ब्रह्मा नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ तिसमें देवताओं के बारहहजार वर्ष में चारोंयुग व्यतीतहोते है यही दैवतयुग कहा

हरत्यन्तेसएवहि ॥ ४१ ॥ तन्मयाकथितंसर्वंकिमन्यत्परिपृच्छसि ॥ इडानामकलाह्येषा शम्भोर्वैसप्तकल्पगा ॥ ४२ ॥ अक्षयातेनलोकेस्मिञ्छिवध्यानपरायणा ॥ अष्टौयुगसहस्राणि अहोरात्रंप्रजापतेः ॥ ४३ ॥ अनेनैवतुमानेन शतंब्रह्मासजीवति ॥ पितामहशतेनैव विष्णोर्मानंविधीयते ॥ ४४ ॥ निमेषार्द्धञ्चशम्भोस्तु सहस्राणिचतुर्दश ॥ एतावतिविनश्यन्ति ह्यसंख्याताःपितामहाः ॥ ४५ ॥ तत्रद्वादशसाहस्रं दैवतंयुगमुच्यते ॥ तदेकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ४६ ॥ एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुर्मनीषिणः ॥ हरार्कचन्द्रमनवः शक्रस्यायुःप्रकीर्तितम् ॥ ४७ ॥ लोकपालादयोदेवाः साध्याश्चैवमरुद्गणाः ॥ अष्टाविंशतिपर्य्यन्तं युगानांसन्तितेपिच ॥ ४८ ॥ एतत्तेकल्पगाकालमानंनिगदितं मया ॥ येमृताःकल्पगातीरे दानयज्ञतपस्स्थिताः ॥ ४९ ॥ दुर्गमंयमलोकञ्च नपश्यन्तिकदाचन ॥ तपसाध्यानयोगेन ब्रह्मार्चनपरायणाः ॥ ५० ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य येत्रप्रासादकारकाः ॥ दारुणंनरकंघोरं नाश्रयन्तेयमालयम् ॥ ५१ ॥

जाताहै और वह इकहत्तर चतुर्युगी का यहां मन्वन्तर कहाजाता है ॥ ४६ ॥ इसी मन्वन्तरके चौदहगुने को पण्डित लोग कल्प कहते हैं यही हर, सूर्य, चन्द्र, मनु और इन्द्रकी आयु कहीगई है ॥ ४७ ॥ लोकपाल आदिदेवता, साध्य और मरुद्गण अट्ठाईस युग पर्यन्त ये भी रहते हैं ॥ ४८ ॥ यह नर्मदा के कालका प्रमाण मुझकरके तुम से कहागया दान, यज्ञ और तपमें स्थित जो नर्मदा के तटमें मरे हैं ॥ ४९ ॥ वे दुर्गम यमलोक को कभी नहीं देखते तप और ध्यान योगकरके जो ब्रह्मके पूजनमें तत्परहै ॥ ५० ॥ अथवा नर्मदाके तटको प्राप्तहो यहां जो धर्मशालाके बनवानेवालेहैं वे दारुण व घोरनरकरूप यमालयके आश्रित नहीं होतेहैं ॥ ५१ ॥

उत्तम बुद्धिवाले वृद्धावस्था में नर्मदाही का सेवन करते यही परमध्यान है बाकी और सब निरर्थक है ॥ ५२ ॥ नर्मदा के दक्षिणतट में अशोकवनिकामें अशोकज-नननाम का तीर्थ विद्यमान है व वहां ॥ ५३ ॥ सब पापोंका नाश करनेवाला अशोकेश्वर लिंगभी है वहां एकलाख गौवें देनेसे जो फलहै वह वहां जानेवाले को होता है ॥ ५४ ॥ सप्तसारस्वतलिंग वैसेही सुरार्चितलिंग व सासर्षनामका लिंग वैसेही योगेश्वरलिंग ॥ ५५ ॥ तथा चन्द्रकान्तलिंग और वरुणेश्वरलिंग को परम भक्तिसे पूजन करके यमलोक को नहीं देखता है ॥ ५६ ॥ हे भारत ! तिलोदकदेने व पिण्डदान करने से अपने इधर उधर के सौ पुरुषोंको घोरनरक से शीघ्रही

नर्म्मदान्तुनिषेवन्ते वार्द्धक्येतुसुबुद्धयः ॥ एतदेवपरंध्यानं शेषमन्यन्निरर्थकम् ॥ ५२ ॥ नर्मदादक्षिणेतीरे अशोकवनिकासुच ॥ अशोकजननंनाम तीर्थंतत्रव्यवस्थितम् ॥ ५३ ॥ अशोकेश्वरलिङ्गन्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्र गोलक्षदानेन यत्फलंतत्रगच्छतः ॥ ५४ ॥ सप्तसारस्वतंलिङ्गं तथालिङ्गंसुरार्चितम् ॥ सासर्षनामलिङ्गंच लिङ्गंयोगेश्वरंतथा ॥ ५५ ॥ चन्द्रकान्तंतथालिङ्गं वरुणेश्वरमेवच ॥ अभ्यर्च्यपरयाभक्त्या यमलोकंनपश्यति ॥ ५६ ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ पितॄन्समुद्धरत्याशु घोरात्पूर्वपरंशतम् ॥ ५७ ॥ तत्रदत्तंहुतंयच्च तस्यसंख्यानविद्यते ॥ पुरादेवगणास्सर्वे तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ५८ ॥ संसिद्धिंपरमांप्राप्य दिविदेवत्वमाययुः ॥ संसारसागरेराजन्सञ्चरन्तिनदारुणे ॥ ५९ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ लिङ्गानिकीर्तितानीह तथातीर्थानियानिच ॥ नानाख्यानसमेतानि प्रसादात्कथयस्वमे ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग इतिहासंपुरातनम् ॥ नागेश्वरंसिद्धलिङ्गं स्थितन्नाग

उद्धार करता है ॥ ५७ ॥ वहां जो दिया व हवन कियागया उसकी संख्या नहीं है पूर्वकालमें सब देवगण इस तीर्थ के प्रभाव से ॥ ५८ ॥ परमसिद्धिको प्राप्तहोकर स्वर्गमें देवभाव को प्राप्तहुये वे हे राजन् ! दारुण संसारसागर में नहीं घूमते हैं ॥५९॥ तब युधिष्ठिर बोले कि यहां आपने जिन लिंग व तीर्थों को कहाहै उनको आख्यानों के सहित प्रसन्नता से आप मुझसे कहें ॥६०॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! हे राजन् ! पुराने इतिहासको आप सुनें नागेश्वर सिद्धलिंग शुभ

नागह्रदमें स्थित है ॥ ६१ ॥ जो कि सब लोकों को सिद्धि का देनेवाला व नागकन्याओं करके पूजन कियागया है ब्रह्मतेजही जिनका शरीर व शोभावाले व बारहो सूर्य के समान व अग्निके तुल्य प्रकाशमान नाम से अघमर्षणऋषि व आपस्तम्ब व मैत्रेय व संवर्त व अत्रि ॥ ६२ ।६३ ॥ ये व औरभी उत्तम व्रतवाले बहुत से अस्सी हजार मुनीन्द्र ऋषि हे नृप ! उस आश्रममें रहतेथे ॥ ६४ ॥ कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले व कोई शाकाहार व कोई जलाहार वैसे ही कोई गोबर के भक्षण करनेवाले ॥ ६५ ॥ व कोई चान्द्रायण व्रत में तत्पर होरहे श्रुति और स्मृतिमें प्रवीण मोक्षके उपाय को खोजरहे अतिशय करके ब्रह्म के

ह्रदेशुभे ॥ ६१ सिद्धिदंसर्वलोकानां नागकन्याभिरर्चितम् ॥ ब्रह्मतेजोवपुःश्रीमान्नाम्नाचैवाघमर्षणः ॥ ६२ ॥ द्वादशादित्यसंकाशो दीप्यमानइवानलः ॥ आपस्तम्बोथमैत्रेयस्संवर्तश्चात्रिरेवच ॥ ६३ ॥ एतेचान्येपिबहव ऋषयस्संशितव्रताः ॥ अयुतानिमुनीन्द्राणामष्टौतत्राश्रमेनृप ॥६४॥ कन्दमूलफलाहाराः शाकाहारास्तथापरे ॥ जलाहारास्तथैवान्ये केचिद्गोमयभक्षिणः ॥ ६५ ॥ चान्द्रायणपराश्चान्ये श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ मोक्षोपायंविचिन्वन्ति ब्रह्मिष्ठाब्रह्मवित्तमाः ॥ ६६ ॥ अघमर्षाश्रमपदं ब्रह्मलोकसमंनृप ॥ धर्म्मस्तुवैश्यरूपेण जिज्ञासार्थंसमागमत् ॥ सप्तसारस्वतेतीर्थे सोर्चित्वावृषभध्वजम् ॥ ६७॥ गन्धपुष्पैस्तथादीपैरुपहारैर्मनोरमैः ॥ वर्तेरन्नृषयस्तत्र शतमष्टोत्तरन्तथा ॥ ६८ ॥ भिक्षाचभिक्षवेदत्ता कौपीनंमृगचर्म्मच ॥ साष्टाङ्गञ्चनमस्कृत्य तान्देवर्षिगणान्मुनीन् ॥ ६९ ॥ मासोपवासनिरतो नाशिकारण्यमागमत् ॥ पुत्रदारस्नुषास्तस्य नित्यंतद्गतमानसाः ॥ ७० ॥ मासेमासेत्वतिक्रान्तेर

जाननेवाले ब्रह्मिष्ठ हैं ॥ ६६ ॥ हे नृप ! वह अघमर्षणऋषि का आश्रम ब्रह्मलोक के समान होताहुआ ब्राह्मणों की परीक्षा लेनेके वास्ते वैश्यके रूप करके धर्म आते हुये वे सप्तसारस्वत तीर्थमें चन्दन, पुष्प व दीप और मनोहर उपहारोंसे महादेवका पूजन करके वहां एकसौ आठ ऋषि वर्तमान थे ॥ ६७ । ६८ ॥ उन भिक्षुकों को भिक्षादी और कौपीन तथा मृगचर्म दिया और उन देवर्षिगण और मुनियों को साष्टांग नमस्कार करके ॥ ६९ ॥ एक २ महीने के व्रतमें तत्पर नाशिकारण्य को

आताहुआ उसके पुत्र,स्त्री और वधू नित्यही उसीमें मन लगाये रहती थीं॥७०॥हे नृप!महीने२में सूर्यसंक्रान्तिके व्यतीत होनेपर निराहार तप करतेहुये उक्त वैश्यको छहऋतु व्यतीत होगये ॥ ७१ ॥ न पदार्थो का भोग और न कृपणता,न मान और न मत्सर न काम, क्रोध और लोभ उसके हुये क्योंकि हे भारत! ये सब उसकरके जीत लिये गये ॥ ७२ ॥ और यही सङ्कल्प उसके रहा कि मेरे धनकी कमाई वेद व ब्राह्मणों के अर्थ होवे इस प्रकार नित्य विष्णु के धर्म में तत्पर और विष्णुही के आराधन में तत्पर होरहा ॥ ७३ ॥ उत्तरायण के महीने में सप्तसारस्वत तीर्थ में स्नान करके और लिङ्गरूप जनार्दन देव को पूज करके ॥ ७४ ॥ विभव के अनुसार

विसंक्रमणेनृप ॥ ऋतवःषडतिक्रान्ता निराहारंतपस्यतः ॥ ७१ ॥ नभोगोनचकार्पण्यं नमानोनचमत्सरः ॥ नकामक्रोधलोभाश्च निर्जितास्तेनभारत ॥ ७२ ॥ वेदार्थेब्राह्मणार्थेच ममवित्तस्यचार्जनम् ॥ विष्णुधर्म्मपरोनित्यं विष्णवाराधनतत्परः ॥ ७३ ॥ उत्तरेचायनेमासे सप्तसारस्वतेतथा ॥ स्नात्वादेवंसमभ्यर्च्य लिङ्गरूपंजनार्दनम् ॥ ७४ ॥ यथाविभवयोगेन भिक्षान्दत्त्वायथापुरा ॥ हरउवाच ॥ वरम्ब्रूहिमहाभाग सिद्धस्त्वंधर्म्मतोयतः ॥ ७५ ॥ महाराजमहाभाग यत्तेमनसिवर्तते ॥ इदंविमानमारुह्य दिव्यभोगसुखंकुरु ॥ ७६ ॥ पुत्रदारस्नुषोपेतो विष्णुलोकमितोव्रज ॥ शार्ङ्गउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुंयथेप्सितम् ॥ ७७ ॥ वरंदशसहस्राणि लोकंयान्तुद्विजोत्तमाः ॥ इदंवरमहंमन्ये हरेर्नान्यंकदाचन ॥ ७८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ वैश्यःपापोदुराचारो महतांलाघवंयतः ॥ सर्वेषामेववर्णानां ब्राह्मणोगुरुरुच्यते ॥ ७९ ॥ त्रीन्वर्णान्याजयित्वाच त्वंयदादिवमानयेः ॥ नदृष्टंनश्रुतंचासीदेवंश्रुतिपुराणयोः ॥ ८० ॥ ब्राह्मण

पहलेकी तरह भिक्षा देकर स्थित हुआ तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग ! तुम वरमांगो जिससे धर्मसे तुम सिद्ध होगये ॥ ७५ ॥ हे महाराज ! हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें हो इस विमानपर सवार होकर दिव्य भोगों के सुखको करो ॥ ७६ ॥पुत्र,स्त्री और वधू करके सहित यहांसे विष्णुलोक को जावो तब शार्ङ्ग वैश्य बोला।कि हे देव ! जो मुझ से प्रसन्नहो और अभीष्ट वरदेने की इच्छा करते हो॥ ७७ ॥ तो दश हजार ब्राह्मण उत्तम लोक को जावें परमेश्वर से इसी वरको हम चाहते और कभी किसी को नहीं॥ ७८ ॥ तब ऋषि बोले कि यह वैश्य बड़ा दुराचार पापीहै जिससे बड़ोंकी लघुता होतीहै क्योंकि सब वर्णोंका ब्राह्मणही गुरु कहा जाताहै ॥७९॥

तीन वर्णों को यजन कराके जब तुम स्वर्ग को पहुँचावोगे तो ऐसा वेद और पुराण में देखा व सुना नहींहै ॥ ८० ॥ ब्राह्मण के अपमान से भी कहीं धर्म होसक्ता है तप और ध्यान व धर्म करके हे मुने ! स्वर्ग को नहीं जावोगे ॥ ८१ ॥ हजार वर्ष करके भी तुमको स्वर्ग दुर्लभ है इससे इस समय हे वैश्य ! तुम धर्म-पूर्वक अपने घरको जावो ॥ ८२ ॥ वह वैश्य ब्राह्मणों करके इस प्रकार कहा गया तब उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ विमुक्त से वैश्य वचन बोला ॥ ८३ ॥ जाने व विनाजाने क्रोध करने को योग्य नहीं होता ज्ञान से रहित, श्रद्धासे हीन तुम को देवता नहीं ग्रहण करसक्ता ॥ ८४ ॥ क्रोधकरके सहित ब्राह्मण करके जो

स्यापमानेन धर्म्मोवैजायतेकचित ॥ तपसाध्यानधर्म्माभ्यां नयास्यसिदिवंमुने ॥ ८१ ॥ अपिवर्षसहस्रेण दुर्गम स्तेसुरालयः ॥ व्रजत्वंवैश्यधर्मेण स्वगृहंप्रतिसाम्प्रतम् ॥ ८२ ॥ सएवमुक्तोविप्रैस्तान्साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ उवाचवच नंवैश्यो विमुक्तंमुनिपुङ्गवम् ॥ ८३ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि कोपंकर्तुंन्नयुज्यते ॥ अज्ञातंत्वांनगृह्णीयाच्छ्रद्धाहीनञ्च देवता ॥ ८४ ॥ सक्रोधेनतपस्तप्तं सर्वंभवतिनिष्फलम् ॥ दैवतैरपिदुर्ज्ञेया गहनाकर्म्मणोगतिः ॥ ८५ ॥ सत्येनध्रिय तेधर्म्मस्ततःस्वर्गःप्रजायते ॥ स्वकर्म्मनिरतञ्चैवसुद्धरन्तंतथाद्विजम् ॥ ८६ ॥ वैश्यंब्राह्मणमित्याहुर्ब्राह्मणंवैश्यमेव च ॥ निष्ठुरंनिर्घृणंक्रूरं कृतघ्नंदीर्घकोपिनम् ॥ ८७ ॥ द्विजंवाचालरूपन्तु दूरतःपरिवर्ज्जयेत ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ कोभ वान्वैश्यरूपेण ब्रह्माशक्रोजनार्दनः ॥ ८८ ॥ साङ्गोपाङ्गास्तथावेदास्त्वयिधर्मःप्रतिष्ठितः ॥ शार्ङ्गउवाच ॥ धर्म्मोहं

तप किया जाता वह सब निष्फल होताहै कर्मकी गति बहुत कठिनहै देवताओं करके भी दुर्ज्ञेय है ॥ ८५ ॥ सत्य करके धर्म धारण किया जाताहै तिससे स्वर्ग होताहै अपने कर्ममें तत्पर तथा ब्राह्मण के उद्धार करनेवाले ॥ ८६ ॥ वैश्य को ब्राह्मण कहते हैं और अपने कर्म से रहित ब्राह्मण को वैश्य कहतेहैं दया से रहित, निठुर, क्रूर, उपकार को नहीं माननेवाले बड़े क्रोधी ॥ ८७ ॥ बकवादी ब्राह्मणको दूरसे छोंडदेवे तब ब्राह्मण बोले कि वैश्य के रूपको धारण किये आप कौन हो ब्रह्मा व इन्द्र व विष्णुहो ॥ ८८ ॥ साङ्गोपाङ्ग वेद वैसेही धर्म आपही में स्थितहै तब शार्ङ्ग बोला कि हम धर्म हैं आप लोगों की परीक्षाके वास्ते वैश्यरूपसे यहां

पर आये हैं ॥ ८९ ॥ अब इस विमानपर सवार होकर आपलोग वैष्णवपदको जावो तब वे लोग विमानपर सवार होकर स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ९० ॥ सप्तसारस्वत तीर्थ और हरिहरदेव को नमस्कार करके अपने पुत्रादिकों से युक्त वैश्य भी विष्णुलोक को प्राप्त हुआ ॥ ९१ ॥ हे राजन्! यह उत्तम नर्मदातीर्थ आपसे कहा गया ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेसृष्टिसंहारसारस्वततीर्थकथनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि शाण्डिल्या और नर्मदाका सङ्गम सब पापोंका हरनेवाला और श्रेष्ठ है व सब पापोंका हरनेवाला, श्रेष्ठ, शाण्डिल्येश्वर लिङ्ग भी है ॥१॥

वैश्यरूपेण जिज्ञासार्थमिहागतः ॥ ८९ ॥ इदंविमानमारुह्य गम्यतांवैष्णवंपदम् ॥ एतेविमानमारुह्य सम्प्राप्तास्त्रिदशालयम् ॥ ९० ॥ सप्तसारस्वतंनत्वा तीर्थन्देवंहरंहरिम् ॥ वैश्यःपुत्रादिभिर्युक्तो प्रापलोकन्तुवैष्णवम् ॥ ९१ ॥ एतत्तेकथितंराजन्नर्म्मदातीर्थमुत्तमम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेसृष्टिसंहारसारस्वततीर्थकथनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ शाण्डिल्याकल्पगायोगस्सर्वपापहरःपरः ॥ शाण्डिल्येश्वरलिङ्गंच सर्वपापहरंपरम् ॥ १ ॥ स्नातमात्रोनरस्तस्मिन्नर्चयित्वामहेश्वरम् ॥ कर्म्मभूमिन्नलभते हरस्यवचनंयथा ॥ २ ॥ तिलोदकप्रदानेन हविषा पिण्डपातनात ॥ तृप्यन्तिपितरस्तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३ ॥ राहुसोमस्समायोगे कुरुक्षेत्रेमहाफलम् ॥ तत्रैव जन्मराजर्षेः कार्तवीर्य्यनृपस्यच ॥ ४ ॥ स्नात्वाभ्यर्च्यमहादेवं गन्धपुष्पाद्युपस्करैः ॥ सूर्य्याचन्द्रमसौयावद्धुमामाहेश्वरेपुरे ॥५॥ भुङ्क्तेसविविधान्भोगांस्तावद्दौशिवसन्निधौ ॥ तत्रशाण्डिल्यकौण्डिन्यौ माण्डव्योमुनिसत्तमः ॥६॥

उसमे स्नानमात्रकियाहुआ मनुष्य महादेवका पूजनकरके कर्मभूमिको नहीं प्राप्तहोता ऐसा महादेवका वचनहै ॥२॥ तिलोदक देनेसे और खीरके पिण्डदान से जब तक चौदहो इन्द्र रहते तबतक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥३॥ चन्द्रग्रहणमें कुरुक्षेत्रविषे महाफल होताहै वहीं पर राजर्षि कार्तवीर्य्य राजाका जन्मभी है ॥ ४ ॥ स्नान करके और चन्दन पुष्प आदि सामग्रीसे महादेवका पूजनकरके सूर्य और चन्द्रमा जबतक रहते तबतक पार्वती और महादेवजीके पुरमें वह महादेवजीके समीप अनेक भोगों

को भोगताहै वहां शाण्डिल्य, कौण्डिन्य और मुनियोंमें श्रेष्ठ माण्डव्य ॥५।६ ॥ बड़ेतेजवाले कौशिक, कश्यप और भृगु जप और ध्यान में तत्पर ये व और भी बहुतसे ब्राह्मण ॥ ७ ॥ साठहजार मुनि उग्रतपमें स्थितहुये रहतेथे शाण्डिल्या और नर्मदाके सङ्गममें उन शाण्डिल्यजी का रम्य आश्रम है ॥ ८ ॥ शाण्डिल्यपुर इस नामसे विख्यात ब्रह्मर्षियों करके सेवित है नर्मदा के दक्षिण तट में द्वादशादित्य तीर्थ है ॥ ९ ॥इसी प्रकार देवदारुतीर्थ है तथा और देववनभी है उस सङ्गम में दशलाख तीर्थ विद्यमानहैं ॥ १० ॥ द्वादशादित्य नामका यह तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवालाहै और भी जौन लिङ्ग हे अनघ ! तुमसे कहे गये ॥ ११ ॥ एक मूषक बिलौटा

कौशिकश्चमहातेजाः कश्यपोभृगुरेवच ॥ एतेचान्येपिबहवो जपध्यानपरायणाः ॥ ७ ॥ मुनीनांषष्टिसाहस्रं तपस्युग्रेऽप्यवस्थितम् ॥ तस्याश्रमपदंरम्यं शाण्डिल्याकलपगायुजि ॥ ८ ॥ शाण्डिल्यपुरमित्येवं ब्रह्मर्षिविनिषेवितम् ॥ द्वादशादित्यतीर्थंच नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ ९ ॥ देवदारुतथातीर्थमन्यद्देववनंतथा ॥ दशलक्षाणितीर्थानि तत्र तिष्ठन्तिसङ्गमे ॥ १० ॥ द्वादशार्कमिदन्नाम तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ अन्यानियानिलिङ्गानि कथितानितवानघ ॥११॥ मूषकश्चतथातीर्थे माज्जीरेणैवभक्षितः ॥ निशायांमूषकःकश्चिदटमानइतस्ततः ॥ १२ ॥ माज्जीरेणततस्सोपि भक्षितश्चधृतःपुरा ॥ ततोमेघागमेकालेप्रवाहस्तत्रनिर्गतः ॥ १३ ॥ अस्थिप्रवहणंतस्य निमग्नंतत्रसङ्गमे ॥ तीर्थस्यास्य प्रभावेण यक्षराजोभवन्नृप ॥ १४ ॥ बृहद्वृन्दस्समाख्यातो यक्षायुतसमावृतः ॥ हंसयुक्तविमानेन यक्षलोकेमहीयते ॥ १५ ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि शाण्डिल्यानर्म्मदाश्रितम् ॥ नाम्नाचाप्सरसंलिङ्गं मुक्ताश्चाप्सरसोयतः ॥१६॥

करके तीर्थ मे खाय डालागया रात्री में एक मूषक इधर उधर घूमता हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर वह पकडकर बिलौटा करके पूर्वकाल में भक्षण करडाला गया तदनन्तर वर्षाकालमें नर्मदाका प्रवाह वहा निकला ॥ १३ ॥ उस सङ्गममें उस मूषकके हाड डूबगये इस तीर्थके प्रभावकरके हे नृप ! वह यक्षराज होगया ॥ १४ ॥ बृहद्वृन्द इस नामसे विख्यात व दश हजार यक्षो से युक्त हंस जिसमें जुते हुये ऐसे विमान करके यक्षलोक में पूजित हुआ ॥ १५ ॥ अब और शाण्डिल्या और नर्मदाके

आश्रित तीर्थ को कहते हैं कि आप्सरस नाम करके विख्यात लिङ्ग जिससे अप्सरायें मुक्त होती हुईं ॥ १६ ॥ वही ज्ञानरूपमय सिद्धलिङ्ग महादेव कहेगये हैं तब युधिष्ठिरजी बोले कि किसकारणसे अप्सराओंको शाप दियागया और वे सङ्गमको कैसे प्राप्त हुईं ॥ १७ ॥ और शाप से उनका मोक्ष कैसे हुआ यह इस समय हमको विदित करो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! तुम यथार्थ इस वृत्तान्त को सुनो हे अनघ! हम तुमसे कहते हैं ॥ १८ ॥ कि पूर्वकालमें महादेव के यहां के वसन्त के उत्सव (जल्सा) को छोड़कर इन्द्र के जल्से को चलीगईं उर्वशी वैसेही रम्भा, अहल्या व तिलोत्तमा ॥ १६ ॥ घृताची, मेनका, चित्ररेखा और शालिनी ये

ज्ञानरूपमयन्देवं सिद्धलिङ्गंप्रकीर्तितम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्मादप्सरसःशप्ताः कथंयाताश्चसङ्गमम् ॥ १७ ॥ कथञ्चमोक्षणंशापाद्विदितंकुरुसाम्प्रतम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्यथान्यायं कथयामितवानघ ॥ १८ ॥ मधूत्सवंशिवस्याग्रे विहायेन्द्रोत्सवङ्गताः॥ उर्वशीचतथारम्भाअहल्याचतिलोत्तमा ॥ १९ ॥ घृताचीमेनकाचैव चित्ररेखाचशालिनी ॥ एताश्चाप्सरसोबह्व्यस्सर्वावैदेवनिर्मिताः ॥ २० ॥ वसन्तेताविशन्तिस्म शक्रलोकंसुरैस्सह ॥ मदिरानन्दपानेन मोहिताःकामपीडिताः ॥ २१ ॥ समतीतेवसन्तेतु उमामाहेश्वरंपुरम् ॥ कैलासनिलयन्देवं समाराधयितुं गताः ॥ २२ ॥ शापस्यभयभीतास्ता देवदेवस्यसुव्रताः ॥ साष्टाङ्गंप्रणिपत्याथ मन्त्रगीतेनतुष्टुवुः ॥ २३ ॥ ताश्चैवाप्सरसोगौरी ज्ञात्वातत्रपराङ्मुखीः ॥ गौर्य्याःपरमचित्तज्ञास्सर्वाभरणभूषिताः ॥ २४ ॥ अनङ्गकुसुमाचान्या रूपयौ

बहुत सी अप्सरायें सब देवताओं करके रचीगई ॥ २० ॥ वे सब देवताओं करके सहित वसन्त में इन्द्रलोक को जाती हुईं वहां आनन्द से मदिरा के पीनेसे काम करके पीड़ित मोहको प्राप्त होती हुईं ॥ २१ ॥ व वसन्त के व्यतीत होने पर पार्वती और महादेव के पुर को कैलासवासी महादेव के प्रसन्न करने के वास्ते जाती हुईं ॥ २२ ॥ व देवताओं के देवता महादेवजी के शापके भय से डरी हुईं शोभन व्रतवाली अप्सरायें साष्टांग प्रणाम करके तदनन्तर मन्त्रों के गाने से स्तुति करती हुईं ॥ २३ ॥ वहां उन अप्सराओं को पार्व्वती जी अपने से विमुख जान करके पार्वतीजी की पूरी मनसा की जाननेवाली, सब आभूषणों से भूषित ॥ २४ ॥

रूप और युवावस्था को प्राप्त होरही अनङ्गकुसुमा, धनपाली, व्योमरेखा ॥ २५ ॥ चामरग्राहिणी, गान्धर्वी, हेमदण्डा और प्रतीहारा ये पार्वती जी की सखियां अप्सराओं से बोलीं ॥ २६ ॥ कि पार्वती और महादेवजी के पुरको तुम सब नहीं आई आज यही तुम सबोंका अतिदुःसह अपराध हुआ ॥ २७ ॥ इसी अपराध करके मनुष्यलोक में तुम सब बकरी होवोगी कुछ अधिक देवताओं के सौ वर्षतक इसी प्रकार तुम दुःखित रहोगी ॥ २८ ॥ तब अप्सरायें बोलीं कि हे वरारोहे ! हे पार्वति ! हम सबों के शापके अन्त को देने के लिये तुम योग्य होसक्ती हो उनके इस वचन को सुन करके पार्वतीजी वचन बोलीं ॥ २९ ॥ कि नर्मद के

वनशालिनी ॥ धनपालीतथाचान्या व्योमरेखातथापरा ॥ २५ ॥ चामरग्राहिणीचान्या गान्धर्वीचतथापरा ॥ हेमदण्डाप्रतीहारा ऊचुरप्सरसःप्रति ॥ २६ ॥ उमामाहेश्वरन्नाम भवत्योनसमागताः ॥ अपराधोयमेवाद्य भवतीनांसुदुस्सहः ॥ २७ ॥ अनेनैवापराधेन अजामर्त्येभविष्यथ ॥ दिव्यंवर्षशतंसाग्रमेवंभवतदुःखिताः ॥ २८ ॥ अप्सरसऊचुः ॥ शापान्तन्नोवरारोहे दातुमर्हसिपार्वति ॥ इतितासांवचःश्रुत्वा देवीवचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥ शाण्डिल्याकल्पगायोगे नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति शाण्डिल्येश्वरपूजनात् ॥ ३० ॥ गौरीतीर्थन्तुतत्रैव ज्ञातुंयोग्यंहि कल्पगाम् ॥ उत्तीर्णातेनमार्गेण लग्नास्कन्दस्यपृष्ठतः ॥ ३१ ॥ तत्रस्नात्वाशिवंनत्वा कैलासंचागमिष्यथ ॥ शापभ्रष्टास्तुतास्सर्वाः क्ष्माङ्गत्वाअतिदुःखिताः ॥ ३२ ॥ शापावसानेसम्प्राप्ते कल्पगातीरमाश्रिताः ॥ तत्रस्नात्वातुशाण्डिल्यं पूजयित्वाविधानतः ॥ ३३ ॥ अजारूपधरास्सर्वास्तस्मिन्नप्सरसःक्षणात् ॥ दिव्ययानसमारूढास्सर्वाल

दक्षिण तट में शाण्डिल्या और नर्मदा के योग में स्नान करके और वहां शाण्डिल्येश्वरके पूजन से स्वर्ग को जाते हैं ॥ ३० ॥ वहीं नर्मदा के सङ्गम में गौरीतीर्थ भी जानना चाहिये हम स्कन्दजी की पीठि पर चढ़कर उसी मार्गसे नर्मदा को उतरी रहीं ॥ ३१ ॥ वहा स्नान करके शिवजीके नमस्कार करके कैलास को आवोगी शाप से भ्रष्ट हुई वे सब अप्सरायें पृथिवीको जाकर बड़ी दुःखितहुई ॥ ३२ ॥ शापकी समाप्ति के प्राप्त होने पर नर्मदा के तटके आश्रित हुई वहां स्नान करके और विधि से शाण्डिल्य का पूजन करके ॥ ३३ ॥ बकरी के रूपको धारण किये हुई वे सब उस तीर्थ में क्षणमात्र से अप्सरा होगईं सब आभूषणों से भूषित और दिव्य रत्ना-

रियों पर सवार ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार गौरीतीर्थ को पहले की तरह प्राप्त हुई वह अजातीर्थ नाम से विख्यात हुआ और इसीप्रकार अजेश्वर महादेवभी हुये ॥ ३५ ॥ और वैसेही सब पापों का हरनेवाला आप्सरस लिङ्ग है वहां व्यतीपात में स्त्री व पुरुष स्नान करके ॥ ३६ ॥ परवश व अपने वश होकर जो प्राण त्याग करताहै वह दश हजार वर्षतक विद्याधरों के पुर में राजा होता है ॥ ३७ ॥ एक और कनकाको मोक्ष देनेवाला पवित्र, कनकेश्वर लिङ्ग है व वहां ज्वरेश्वर लिंग भी है जहां ज्वर नहीं आता है ॥ ३८ ॥ ज्वरसे युक्त ऋषिलोग जहां ज्वर से रहित होते हुये और पञ्चब्रह्मेश्वर नाम का लिंग पापों का छुड़ानेवालाहै ॥ ३९ ॥ मलकेतु नाम का असुर

ङ्कारभूषिताः ॥ ३४ ॥ गौरीतीर्थंतथैवापुर्यथापूर्वंतथैवतु ॥ अजातीर्थमितिख्यातं देवश्चाजेश्वरस्तथा ॥ ३५ ॥ सर्वपापहरंचैव लिङ्गमाप्सरसंतथा ॥ तत्रस्नात्वाव्यतीपाते नारीवायदिवानरः ॥ ३६ ॥ अवशस्स्ववशोवापि प्राणत्यागंकरोतियः ॥ दशवर्षसहस्राणि राजाविद्याधरेपुरे ॥ ३७ ॥ कनकेश्वरमन्यत्तु कनकामोक्षदंशुभम् ॥ ज्वरेश्वरंतत्रलिङ्गं ज्वरोयत्रनविद्यते ॥ ३८ ॥ ज्वरिताऋषयोयत्र बभूवुर्ज्वरवर्जिताः ॥ पञ्चब्रह्मेश्वरन्नाम लिङ्गंपापविमोचनम् ॥ ३९ ॥ असुरोमलकेतुश्च शक्रस्यैवभयेनतु ॥ पञ्चब्रह्मात्मकैर्मन्त्रैस्स्थण्डिलस्थन्तुशङ्करम् ॥ ४० ॥ नानाविधैःपुष्पधूपैस्सम्पूज्यस्वपुरंययौ ॥ अपराह्णेथसंस्मार सपापोलिङ्गमैशकम् ॥ ४१ ॥ नमस्कृत्वाथनिर्माल्यं यावदुद्धर्तुमिच्छति॥ तावत्तत्स्थाणुभूतंवै लिङ्गंदृष्ट्वामहासुरः ॥ ४२ ॥ विषसादमहाबाहुः किमेतदितिविस्मितः ॥ आकाशवाचाचोक्तंवै विषादंत्यजपुत्रक ॥ ४३ ॥ पञ्चब्रह्मेश्वरन्नाम लिङ्गमेतन्महासुर ॥ आकाशवचनंश्रुत्वा नमस्कृत्यदिवंययौ ॥ ४४ ॥

इन्द्र के भय से पांच ब्रह्मात्मक मन्त्रों से वेदी पर स्थित महादेवजी को ॥ ४० ॥ अनेक प्रकार के पुष्पों और धूपों से पूजन करके अपने पुरको चलागया तदनंतर अपराह्ण समय में वह पापी महादेवजी के लिंग को स्मरण करता हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर नमस्कार करके जब तक निर्माल्य उठाने की इच्छा करता हुआ तबतक स्थाणुरूप होगये उस लिंगको देखकर वह महासुर ॥ ४२ ॥ महाबाहु विषादको प्राप्तहुआ और यह क्या होगया ऐसे कहकर विस्मयको प्राप्तहुआ तब आकाशवाणी करके कहागया कि हे पुत्रक ! विषादको छोड़ दो ॥ ४३ ॥ हे महासुर ! यह पञ्चब्रह्मेश्वर नामका लिंगहै आकाशवाणीको सुनकर नमस्कार करके स्वर्गको जाता हुआ ॥४४॥

पञ्चब्रह्मेश्वरलिंग तथा पुष्पेश्वरलिंग इसी प्रकार तीसरे स्थण्डिलेश्वरलिंग को जानो ॥ ४५ ॥ नित्य और नैमित्तिक कार्य में और चन्द्र, सूर्य के ग्रहण में श्रद्धा करके संगम में स्नान करके तीनों लिंगों के पूजन से ॥ ४६ ॥ पितर स्वर्ग को जातेहैं जैसे पिण्डदान आदि करके जबतक सौ मन्वन्तर होते हैं तबतक ब्रह्माके पुरमें आनन्द करताहै ॥ ४७ ॥ नर्मदा के दक्षिण दिशामें गोप्यलिंग विद्यमान है उसके पूजन से ब्रह्महत्या इत्यादिक पाप सात रात्रि में नाश होता है ॥ ४८ ॥ त्वष्टा और पूषा इन नामों से विख्यात, बली, समुद्र मे विहार करनेवाले ब्रह्मराक्षस हुये वे दोनों इन्द्र करके अपने वज्र से मारेगये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा आदि देवताओं करके

पञ्चब्रह्मेश्वरंलिङ्गं लिङ्गंपुष्पेश्वरन्तथा ॥ तृतीयन्तुतथाविद्धि लिङ्गंवैस्थण्डिलेश्वरम् ॥ ४५ ॥ नित्येनैमित्तिकेकार्य्ये ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ श्रद्धयासङ्गमेस्नात्वा लिङ्गत्रितयपूजनात् ॥ ४६ ॥ गच्छन्तिपितरःस्वर्गं हविर्दानादिभिर्यथा ॥ मन्वन्तरशतंयावन्मोदतेब्रह्मणःपुरे ॥ ४७ ॥ नर्म्मदायाम्यभागेतु गोप्यलिङ्गंव्यवस्थितम् ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं सप्तरात्रेणनश्यति ॥ ४८ ॥ त्वष्टापूषेतिविख्यातौ बलिनौब्रह्मराक्षसौ ॥ वज्रेणस्वेनशक्रेण हतौतौसिन्धुचारिणौ ॥ ४९ ॥ बुद्ध्वाब्रह्मादिभिर्देवैर्ब्रह्महात्वेषवासवः ॥ इन्द्राण्याचैवसंत्यक्तस्सर्वैस्सुरगणैस्तथा ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्यासमायुक्तस्सम्प्राप्तोवैहिमालयम् ॥ चन्द्रहीनायथारात्रिरनादित्यंयथानभः ॥ ५१ ॥ इयमाभातिवैतद्वच्छक्रहीनामरावती ॥ ततोदेवगणैस्सर्वैः प्रेषितोहव्यवाहनः ॥ ५२ ॥ शक्रस्यान्वेषणार्थाय कृशानोगम्यतान्त्वया ॥ जलेदृष्ट्वा निवर्त्याथदेवतास्संन्यवेदयत् ॥ ५३ ॥ ततस्सम्प्रेषितोदेवैस्सर्वव्यापीप्रभञ्जनः ॥ सतंप्रवेशयामास प्रोवाचत्रिदशे

यह इन्द्र ब्रह्महत्याराहै यह जानकर इन्द्राणी और वैसेही सब देवताओं करके इन्द्र छोड़दिये गये ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्या से युक्त इन्द्र हिमालय को प्राप्त हुये जिसप्रकार चन्द्रमा से रहित रात्रिहो और सूर्य से रहित आकाश हो ॥ ५१ ॥ इसी तरह इन्द्र से रहित यह अमरावती पुरी होरही है तदनन्तर सब देवगणों करके अग्नि भेजे गये ॥ ५२ ॥ देवताओंने कहा कि इन्द्र के खोजने के वास्ते हे कृशानो ! तुम जावो जल में इन्द्र को देखकर तदनंतर लौटकर सब देवताओं से कह दिया ॥ ५३ ॥

तदनन्तर देवताओं करके सर्वव्यापी वायु भेजे गये वे अग्नि वायु को प्रवेश करा दिया तब वायुजी इन्द्र से बोले॥ ५४ ॥ कि देवताओं की आज्ञा सेही हम आप के लेने निमित्त आये हैं ऐसे कहकर उनको दिव्य अमरावती पुरीमें लाकर तदनतर ब्रह्मा और विष्णु आदि सब देवगण इन्द्र करके सहित पर्वतों में उत्तम कैलाश में जहां भगवान् महादेव रहे वहा जाते हुये ॥ ५५ । ५६ ॥ देवता और दैत्यों करके नमस्कार किये गये महादेवजी के नमस्कार करके बैठे हुये देवताओं से भगवान् महादेवजी यथान्याय पूंछते हुये ॥ ५७ ॥ आप लोगों के आनेका क्या काम है और कहां से आपलोगों को भय आगया तब देवता बोले कि ये देवताओं के

श्वरम् ॥ ५४ ॥ देवानांशासनादेव समागच्छञ्चतत्कृते ॥ तमानीयपुरंदिव्यं ब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ ५५ ॥ ततोदेव गणास्सर्वे शक्रेणसहितागताः ॥ ईशानोभगवान्यत्र कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ५६ ॥ नमस्कृत्यमहादेवं सुरासुरनमस्कृत म् ॥ प्रविष्टांस्तुयथान्यायं पप्रच्छभगवान्हरः ॥ ५७ ॥ किमागमनकार्य्यंवो कुतोवोभयमागतम् ॥ देवाऊचुः ॥ एष त्वांप्रतिसम्प्रष्टुं देवराजःशतक्रतुः ॥ ५८ ॥ मोक्षणंब्रह्महत्यायाः स्याद्यथावैतथाकुरु ॥ ईश्वरउवाच ॥ वाराणस्यां क्रतुंचेष्ट्वा हयमेधंयथाविधि ॥ ५९ ॥ तीर्थयात्राक्रमेणैवब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ नमस्कृत्यततोदेवं सुराःकाशीपुरंय युः ॥ ६० ॥ यज्ञोपस्करमादाय तत्रचेष्टोमखोत्तमः ॥ पौष्करन्नैमिषारण्यंकुरुक्षेत्रंतथापुनः ॥ ६१ ॥ केदारंभैरवंतीर्थं गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ओघतीर्थंप्रयागञ्च प्रभासंशशिभूषणम् ॥ ६२ ॥ बभ्रमुस्सर्वतीर्थानि पृथिव्यांयानिकानिच ॥ कृष्णमस्यशरीरार्द्धमर्द्धंगौरंनिरीक्ष्यच ॥ ६३ ॥ विस्मयंपरमंजग्मुस्सर्वेदेवगणास्तथा ॥ वाराणसींपुरींगता सुरा

राजा इन्द्र आप से पूंछने के वास्ते आये हैं ॥ ५८ ॥ ब्रह्महत्या का मोक्ष जिस प्रकार होवे वैसा आपकरैं तब महादेवजी बोले कि काशी में विधिपूर्वक अश्व-मेधयज्ञ करके ॥ ५९ ॥ तीर्थयात्रा के क्रम करके ही ब्रह्महत्या नष्ट होती है तदनन्तर महादेव को नमस्कार करके देवता काशीपुरी को जाते हुये ॥ ६० ॥ यज्ञका सामान लेकर वहां यज्ञों में उत्तम अश्वमेध यज्ञ किया गया फिर पुष्कर, नैमिषारण्य तथा कुरुक्षेत्र ॥ ६१ ॥ केदार, भैरवतीर्थ, गंगासागरसंगम, ओघतीर्थ, प्रयाग, प्रभास और शशिभूषण ॥ ६२ ॥ पृथिवी में जितने कुछ तीर्थ रहे उन सब में घूमते रहे परन्तु इन्द्र का आधा शरीर काला और आधा गोरा देखकर ॥ ६३ ॥

सब देवगण परम विस्मय को प्राप्तहुये फिर काशीपुरी को जाकर देवताओं ने इन्द्र से कहा ॥ ६४ ॥ कि यह काशीपुरी अन्तरिक्ष में विद्यमान कही गई है इसके समान और पुरी नहीं है इसके पांच कोसके मध्यमें ब्रह्महत्या नहीं आतीहै ॥ ६५ ॥ हे देव ! हे देवराज ! हे शतक्रतो ! पुराणोंमें सुनाजाता है कि जबतक गंगा व काशी व संगम में पापी रहता है ॥ ६६ ॥ तबतक ब्रह्महत्या नहीं आती इससे निकल गयेपर फिर प्रवेश करती है ॥ ६७ ॥ तब काशीजी बोलीं कि ब्रह्महत्या के हरने में नर्मदा को छोडकर हम कोई समर्थ नहीं हैं ॥ ६८ ॥ ब्रह्महत्या जिस तरह नष्ट होतीहै वह उपदेश हम तुम को देती हैं नर्मदा के दक्षिण भाग में शाण्डिल्या और नर्मदाके

विज्ञापयन्तितम् ॥ ६४ ॥ अन्तरिक्षेपुरीख्याता वाराणस्यसमातथा ॥ पञ्चक्रोशान्तरेतस्या ब्रह्महत्यानसर्प्पति ॥ ६५ ॥ पुराणेश्रूयतेदेव देवराजशतक्रतो ॥ यावत्तिष्ठतिगङ्गायां वाराणस्यांसमागमे ॥ ६६ ॥ नतावद्ब्रह्महत्यातुनिर्गमेपुनराविशेत् ॥ ६७ ॥ काश्युवाच ॥ नाहंसमर्थाहरणेमुक्त्वाकाचित्तुकल्पगाम् ॥ ६८ ॥ ब्रह्महत्यायथानश्येदुपदेशंददामिते ॥ शाण्डिल्यानर्म्मदायोगे याम्येभागेतुनार्म्मदे ॥ ६९ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज त्रीणिलिङ्गानिचार्चयेत् ॥ पञ्चब्रह्मेश्वरन्देवं पुष्पेश्वरमथापरम् ॥ ७० ॥ तृतीयन्तुतथाशक्र लिङ्गंवैस्थण्डिलेश्वरम् ॥ शिवेनकीर्तितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ ७१ ॥ काशीपुर्य्यावचःश्रुत्वा देवदेवःशतक्रतुः ॥ तन्देशंसमनुप्राप्य सर्वंस्नानादिकंव्यधात् ॥ ७२ ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहश्च सूर्य्यसंक्रमणंययौ ॥ शरीरात्तस्यनिर्गत्य ब्रह्महत्याहवासवम् ॥ ७३ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यादेकहत्यातवैवका ॥ ब्रह्महत्यासहस्रंहि तमस्सूर्य्योदयेयथा ॥ ७४ ॥ तीर्थेऽस्मिन्नविशेद्धत्या योजनानिचतुर्दश ॥ एतस्मिन्नन्तरेशक्रं प्र

योग में ॥ ६९ ॥ स्नान करके हे महाराज ! वहां पञ्चब्रह्मेश्वरदेव और पुष्पेश्वर और हे शक्र ! वैसेही तीसरे स्थण्डिलेश्वरलिङ्ग इन तीनों लिंगों को पूजन करै यह महादेव करके पूर्व समयमें पार्वती और स्वामिकार्त्तिक से कहा गया है॥ ७० ॥ ७१ ॥ देवताओं के देवता इन्द्र काशीपुरी के वचन को सुनकर उसी देशको प्राप्त होकर सब स्नान आदि कर्म को किया ॥ ७२ ॥ उसी क्षण दिव्यदेह होकर सूर्य के समीप प्राप्त हुये उन इन्द्र के शरीर से निकलकर ब्रह्महत्या इन्द्र से बोली ॥ ७३ ॥ कि इस तीर्थ के माहात्म्य से आपही की एक ब्रह्महत्या क्याहै हजारों ब्रह्महत्यायें नष्टहोती हैं जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होता है ॥ ७४ ॥ इस तीर्थ में चौदह

योजन से हत्या प्रवेश नहीं करती इसी अन्तर में इन्द्र से प्रत्यक्ष नर्मदाजी बोलीं ॥ ७५ ॥ कि हे महाराज ! तुम्हारा कल्याण हो अब इस समय आप अपने घरको जावो नर्मदा के इस वचन को सुनकर नर्मदा के नमस्कार करके ॥ ७६ ॥ बड़े आनन्द से युक्त व अप्सराओं के गणोंसे व्याप्त, सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित, दिव्य सवारी पर चढ़ेहुये ॥ ७७ ॥ इन्द्र पहले की तरह वहां बैठे, दिव्यछाताको लगाये हुये, अप्सराओं के गणोंसे हवा कियेजाते ॥ ७८ ॥ देवताओं के गणोंकरके स्तुति कियेजारहे अमरावतीपुरी में प्रवेश करतेहुये यह वृत्तान्त महादेव करके पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से कहागया ॥ ७९ ॥ वही ब्रह्मर्षियों के प्रत्यक्ष मुझकरके हे राजन् !

त्यक्षंप्राहकल्पगा ॥ ७५ ॥ शिवमस्तुमहाराज स्वगृहंयाहिसाम्प्रतम् ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा नमस्कृत्यतुनर्म्मदाम् ॥ ७६ ॥ दिव्यंयानंसमारूढो मुदापरमयायुतः ॥ अप्सरोगणसङ्कीर्णं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ ७७ ॥ तत्रारूढस्सुरपतिर्यथापूर्वंतथैवच ॥ धृतदिव्यातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ ७८ ॥ स्तूयमानस्सुरगणैः प्रविवेशामरावतीम् ॥ शिवेनकथितंह्येतत्पार्वत्याः षण्मुखस्यच ॥ ७९ ॥ मयातुकथितंराजंस्तवब्रह्मर्षिपूर्वकम् ॥ ८० ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेब्रह्महत्याछेदनोनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुं नर्म्मदातीर्थकीर्तनम् ॥ तृप्तिंनैवाधिगच्छामि शृण्वन्नपिमहामुने ॥ १ ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामि रेवाकुब्जासमागमम् ॥ आख्यानसहितंब्रह्मन्कथयस्वप्रसादतः ॥ २ ॥ कुब्जिकाकर्म्मणाकेनत्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ एतन्नस्त्वंपरंब्रह्मन् संशयंछेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यां सर्व

आप से कहागया ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेब्रह्महत्याछेदनोनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ॥

युधिष्ठिर बोले कि फिर भी हम नर्मदातीर्थ का कीर्तन सुननेकी इच्छा करते हैं हे महामुने ! सुनते भी हम तृप्तिको नहीं प्राप्तहोते ॥ १ ॥ अब इस समयमें हम नर्मदा और कुब्जाके समागमको सुननेकी इच्छाकरते हैं सो हे ब्रह्मन्! आख्यानकरके सहित अपनी प्रसन्नतासे कहो ॥ २ ॥ किस कर्मकरके कुब्जिका तीनों लोकों में विदितहुई हे ब्रह्मन् ! हमारे इस बड़े संशयको काटनेकेलिये आप योग्यहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! सबपापोंको नाश करनेवाली दिव्यकथाको

सुनो जोकि महादेवहीं करके पार्वती और स्वामिकार्त्तिकसे हमारे प्रत्यक्षकहीगई है॥ ४॥ और ब्रह्माआदि ऋषि और महादेवजीके अनुचारी गणोंके भी प्रत्यक्षही कही गई अनेकनक्षत्र सूर्यही के योगसे जगत् के प्रकाश करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ चन्द्रमा और सूर्यही के समीप होनेपर आकाशमें नक्षत्र प्रकाश करते हैं पितर देवता और मनुष्यों को संसारसमुद्र के तारने में नर्मदा को छोड़कर और नदी नहीं समर्थ होसक्ती वहां जिन्होंने स्नान कियाहै वे स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न नहीं होते ॥ ६ । ७ ॥ एक हजार चान्द्रायण और वैसेही दश हजार ब्रह्मकूर्च नर्मदाजल के पीने के बराबर होते या नहीं ॥ ८ ॥ तिलोदकके देनेसे पितरोंकी अक्षय

पापप्रणाशिनीम् ॥ कथितामीश्वरेणैव पार्वत्याःषण्मुखस्यमे ॥ ४ ॥ ऋषीणांब्रह्ममुख्यानां गणानांचानुचारिणाम् ॥ नानाऋक्षाणिसूर्य्यस्य जगदुद्योतकारिणः ॥ ५ ॥ शशिसूर्य्योपगमने ताराभान्तिनभस्तले ॥ नान्यापयस्विनी शक्ता संसारार्णवतारणे ॥ ६ ॥ पितृदेवमनुष्याणां मुक्त्वा चैवतुकल्पगाम् ॥ तत्रस्नातादिवंयान्तियेमृतानपुनर्भवाः॥ ७ ॥ चान्द्रायणसहस्रंच ब्रह्मकूर्चायुतंतथा ॥ नर्म्मदातोयपानेन तुल्यंभवतिवानवा ॥ ८ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणां प्रीतिरक्षया ॥ गायन्तिपितरोगाथां तथैवचपितामहाः ॥ ९ ॥ मातामहाद्यास्सततं सर्वएवपरस्परम् ॥ अपिस्यात्स्वकुलेस्माकं पुत्रःपरमधार्मिकः ॥ १० ॥ हविस्तिलयुतंदद्याद्योरेवासलिलार्च्चितम् ॥ वर्षलक्षंतथातेन तृप्तायामःपराङ्गतिम् ॥ ११ ॥ यज्ञक्रियाकृतातेन समग्राभूरिदक्षिणा ॥ एतत्तेकथितंराजञ्छिवेनोक्तंयथापुरा ॥ १२ ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ मागयांगच्छकौन्तेय मागङ्गांमासरस्वतीम् ॥ १३ ॥ तत्रगच्छनृपश्रेष्ठ यत्रकुब्जासनर्म्म

प्रीति होतीहै पितर, पितामह व मातामह आदि सभी आपसमें निरन्तर गाथाको गाते हैं कि कोई भी हमारेकुलमें परमधार्मिक पुत्रहोवे ॥ ९।१० ॥ जो नर्मदाके जलसे पूजित तिलोंसे युक्त खीरकोदेवे उससे एकलाख वर्षतक तृप्तहुये हम परमगति को प्राप्तहोवें ॥ ११ ॥ उसकरके बड़ी दक्षिणावाला मानो सब यज्ञकर्म कियागया स्वारोचिष मन्वन्तरमें आदिकल्पके सत्ययुगके प्राप्त होनेपर हे राजन् ! महादेवकरके पूर्वकालमें जैसाकहागया वही मुझकरके आपसे कहागया तिससे हे कौन्तेय !

गया, गंगा और सरस्वती को मतजाओ ॥ १२।१३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जहां नर्मदा करके सहित कुब्जाहै वहांको जाओ काशी, प्रयाग, गंगासागरसंगम ॥ १४ ॥ केदार, कनखल, प्रभास, शशिभूषण, हरिश्चन्द्रपुर, चान्द्र, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक ॥ १५ ॥ माहेन्द्र, मलय, गोकर्ण, महाबल, कालञ्जर, नीलकण्ठ, धोडालेगये हैं पाप जिसकरके ऐसा त्र्यम्बक ॥ १६ ॥ रुद्रकोटि, हिमस्थान, भैरव और महापथ ये व और भी तीर्थ उक्ततीर्थकी सोलहवीं कलाको नहीं प्राप्तहोते ॥ १७ ॥ पुराणमें कहे हुये और भी अनेक प्रकार के हजारों तीर्थ ऐसेही हैं ब्रह्मा, विष्णु और महादेवकरके इसका प्रमाण सिद्धिके वास्ते कहागया है ॥ १८ ॥ नर्मदा और कुब्जाके समा-

दा ॥ वाराणसींप्रयागञ्च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ १४ ॥ केदारंकनखलंच प्रभासंशशिभूषणम् ॥ हरिश्चन्द्रपुरंचान्द्रं श्रीशैलंत्रिपुरान्तकम् ॥ १५ ॥ माहेन्द्रंमलयंचैव गोकर्णञ्चमहाबलम् ॥ कालञ्जरन्नीलकण्ठं त्र्यम्बकंधूतकिल्बिषम् ॥ १६ ॥ रुद्रकोटिंहिमस्थानं भैरवञ्चमहापथम् ॥ तीर्थान्येतानिचान्यानि कलान्नार्हन्तिषोडशीम् ॥ १७ ॥ नानातीर्थसहस्राणि पुराणेकीर्तितानिच ॥ ब्रह्मविष्णुशिवोक्तंहि तत्प्रमाणंहिसिद्धये ॥ १८ ॥ सोमेप्रसिद्धामावास्या रेवाकुब्जासमागमे ॥ एरण्ड्यांचण्डवेगायां रेवयासहसङ्गमे ॥१९॥ राजन्दर्शेयदासोमः संविशेद्रविमण्डले ॥ व्यतीपातेचसंक्रान्तौ वैधृतौविषुवेतथा ॥ २० ॥ दक्षोत्तरायणेचैव षडशीतिमुखेतथा ॥ दर्शेस्याद्विंशतिगुणं व्यतीपातेसमांशतः ॥ २१ ॥ संक्रमेवैधृतौराजञ्छतार्द्धंपरिकीर्तितम् ॥ अमासोमसमायोगे राहुसोमसमागमे ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्राच्छतगुणं पुण्यमाहशिवस्स्वयम् ॥ बिल्वाम्रकंसिद्धलिङ्गं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ २३ ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य शिव

गममें सोमवती अमावास्या प्रसिद्धहै एरण्डी और चण्डवेगाके नर्मदाकरके सहित समागममें भी वही अमावास्या प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जिस समयमें अमावास्या को सूर्यमण्डलमें चन्द्रमा प्रवेशकरै वह दिन व्यतीपात, संक्रान्ति, वैधृति वैसेही विषुव ॥ २० ॥ दक्षिणायन, उत्तरायण और षडशीतिमुख में उसी प्रकार का फल होताहै अमावास्या को बीसगुना और व्यतीपात में बराबर फलहोताहै ॥ २१ ॥ और हे राजन् ! संक्रान्ति और वैधृतिमें पचासगुना कहागया है व अमावास्या और चन्द्रमा के योगमें अथवा राहु और चन्द्रमा के योगमें ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्रसे सौगुने पुण्यको महादेवजी ने आपही कहाहै वहां बिल्वाम्रक नामका सिद्ध लिंग

ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला है ॥ २३ ॥ उसके दर्शन व स्पर्शनसे महादेवजीके लोकमें पूजित होताहै और दूसरा कुब्जेश्वरलिंग है उसको मनुष्य नहीं देखपाते हैं ॥ २४ ॥ वह नर्मदा और कुब्जिकाके मध्यमें है नागकन्याओं करके पूजाजाताहै स्वारोचिष मन्वन्तरमें आदिकल्प के सत्ययुग के प्राप्तहोनेपर ॥ २५ ॥ कालाग्नि रुद्रके समान, करोड सूर्यके समान तेजवाला, जलतेहुये अग्निके तुल्य प्रभावाला, पातालसंगमको फाड़कर ॥ २६ ॥ देवताओं के बुलानेकी इच्छा करके हे नृपोत्तम ! ॐकारसे एक जौभर छोटा कुब्जेश्वरलिंग नर्मदा के मध्यमें उठताहुआ ॥ २७ ॥ इस चराचर लोककी पृथिवीमें जितने तीर्थहै वे सब इससे आधाजौभर कम

लोकेमहीयते ॥ कुब्जेश्वरन्तथैवान्यन्नतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ २४ ॥ नर्म्मदाकुब्जिकामध्ये नागकन्याभिरर्च्यते ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ २५ ॥ कालाग्निरुद्रसंकाशंभित्त्वापातालसङ्गमम् ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं प्रदीप्तज्वलनप्रभम् ॥ २६ ॥ उत्थितंकल्पगामध्ये देवावाहनकाम्यया ॥ ॐकारस्ययवेकेनहीनंलिङ्गंनृपोत्तम ॥ २७ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि लोकेस्मिन्सचराचरे ॥ हीनान्यस्माद्यवार्द्धेन सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ २८ ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानमासोमसमागमे ॥ दिव्ययानसमारूढः स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ २९ ॥ धृतदिव्यातपत्रस्तु सर्वालङ्कारभूषितः ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि वसेच्छिवपुरेशुभे ॥ ३० ॥ त्यजेद्वितत्रयःप्राणान्नवशस्स्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजाविद्याधरेपुरे ॥ ३१ ॥ रन्तिदेवश्चक्रवर्ती शक्रतुल्योमहीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान्सर्वधर्म्मभृतांवरः ॥ ३२ ॥ कण्वाश्रमपदेरम्ये सुरासुरनिषेविते ॥ आख्यानसहितंराजञ्छृणुवेदयथाक्रमम् ॥ ३३ ॥ तीर्थसंख्याप्र

हैं यह महादेव करके सत्य कहागया है ॥ २८ ॥ अमावास्या और चन्द्रमा के योग में जो वहां प्राण छोड़ता है वह दिव्य सवारीपर सवार और अप्सराओं के गणों करके स्तुति कियाजाता ॥ २९ ॥ दिव्यछाता को धारण कियेहुये,सब आभूषणों सेभूषित, तीसलाख वर्षतक उत्तम महादेव के पुरमें वास करताहै ॥ ३० ॥ परवश व अपने वशहोकर जो वहां प्राणोंको छोडताहै वह दश हजार वर्षतक विद्याधरों के पुरमें राजा होताहै ॥ ३१ ॥ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले अयोध्याके स्वामी सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीमान् चक्रवर्ती राजा रन्तिदेव ॥ ३२ ॥ देवता और दैत्योंकरके सेवित रमणीक कण्वमुनि के आश्रममें यज्ञ करतेहुये हे राजन् ! उस आख्यानके

सहित जिस क्रमसे हम जानतेहैं तिमको तुम सुनो ॥ ३३ ॥ इसमेंतीर्थोंकी संख्याका प्रमाण व पुराना इतिहासहै एकसमयमें कार्त्तिकीको पर्वतोंमें उत्तम कैलास विषे महादेवजीके समीप ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा,विष्णु और इन्द्र इत्यादिक देवता जातेहुये वहां करोड़ों गणोंकरकेयुक्त,पार्वतीजी करके सहित महादेवजी बैठेहुयेथे ॥३५॥ इसीप्रकार नन्दी, स्कन्द, देवता और दैत्यों करके सेवित महाकाल, नदियां,समुद्र,पर्वत और करोड़ों तीर्थ भी विद्यमानरहे ॥३६॥ उनके मध्यमें स्कन्दजी उठकर वचन बोलतेहुये कि हे शङ्कर ! ये किसके विमान आकाशमें प्रकाश करतेहैं ॥३७ ॥ जिनमें सुवर्णकेपरकोटे और फाटकवाले गाने व नाचनेकी आवाजकरके स्त्रियोंके मनके हरनेवाले

माणञ्च इतिहासंपुरातनम् ॥ हरान्तिकेचकार्त्तिक्यां कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ३४ ॥ ब्रह्मादयोगतास्तत्र विष्णुशक्रपुरोगमाः ॥ उमयासहितोरुद्रो गणकोटिसमन्वितः ॥ ३५ ॥ नन्दिस्कन्दमहाकालसुरासुरनिषेवितः ॥ सरितस्सागराः शैलास्तीर्थानांकोटयस्तथा ॥ ३६ ॥ तेषांमध्येसमुत्थायस्कन्दोवचनमब्रवीत् ॥ कस्यैतानिविमानानि दीव्यन्तेदिविशङ्कर ॥ ३७ ॥ सप्तभौमागृहारम्या हेमप्राकारतोरणाः ॥ गीतनृत्यनिनादेन कामिनीनांमनोहराः ॥ ३८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुस्कन्दमहाभाग कथ्यमानंयथोदितम् ॥ तीर्थदानप्रभावेण तीर्थज्येष्ठक्रमेणतु ॥ ३९ ॥ येमृतानर्म्मदातीरे पर्वतेऽमरकण्टके ॥ माहेश्वरादितीर्थेषु भृगुकच्छावसानतः ॥ ४० ॥ इमानियानितीर्थानि लिङ्गमूर्तिधराणि च ॥ सरितश्चापिगङ्गाद्यास्तासुदानप्रभावतः ॥ ४१ ॥ एतत्तेकथितंस्कन्द हर्म्यास्सन्तिसमुद्धृताः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥

रमणीक सात२चौकके मकान शोभित होरहेहैं ॥३८॥तब महादेवजी बोले कि हे स्कन्द! हे महाभाग ! जैसा कहागयाहै अब कहेजाते उस वृत्तान्तको सुनो तीर्थोंमें दान के प्रभावकरके न तीर्थों में ज्येष्ठतीर्थ के क्रमकरके जो होताहै उसको कहतेहैं ॥३९॥ नर्मदा के तटमे व अमरकण्टक पर्वत में व भृगुकच्छतक माहेश्वरादि तीर्थोंमें जो मरे है ॥ ४० ॥ उनके अथना ये जो लिंगरूप मूर्त्तियोंके धारण करनेवाले तीर्थ है व गंगाआदि नदियां हैं उनमें दान करने के प्रभावसे अर्थात् दान करनेवालो के ॥ ४१ ॥ उड़तेहुये विमानों में ये महल विद्यमानहैं हे स्कन्द ! यह तुमसे कहागया तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाराज ! इसीप्रकार पूर्वकाल में पर्वतों मे श्रेष्ठ

कैलास पर्वत विषे ॥ ४२ ॥ शङ्करजी से तीर्थोंको ब्रह्माजी विधिपूर्वक पूंछतेहुये कि पृथिवीपर सब देवखात, तड़ाग वैसेही समुद्र और पर्वतोंसे उत्पन्नहुई गंगाआदि सब नदियां हैं हे देव ! उनमें उत्तम कितनी हैं सो आप अपनी प्रसन्नता से कहें ॥ ४३ । ४४ ॥ तब महादेवजी बोले कि परम पवित्र पापोंके नाश करनेवाले तीर्थ को हम कहते हैं कौतुक से तुम करके नदियों में उत्तम नदी पूंछीगई ॥ ४५ ॥ सो सब नदियों के मध्यमें नर्मदा उत्तम है तीनोंलोकोंमें सुन्दर यहां सबकी माता नर्मदाही नदीहै ॥ ४६ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि गंगाजीको छोड़कर आपकरके नर्मदा क्यों वर्णन कीजातीहै यह सब लोकों और सब देवताओंके विशेष विरुद्धहै॥४७॥तब

एवंपुरामहाराज कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ४२ ॥ ब्रह्मापप्रच्छतीर्थानां शङ्करंविधिपूर्वकम् ॥ देवखातानिसर्वाणि सरितस्सागरास्तथा ॥ ४३ ॥ नद्यस्सर्वाश्चभूपृष्ठे गङ्गाद्यागिरिसम्भवाः ॥ उत्तमाःकतिचिद्देव कथयस्वप्रसादतः ॥ ४४ ॥ हरउवाच ॥ कथयामिपरंतीर्थं पवित्रंपापनाशनम् ॥ कौतुकेनत्वयापृष्टा नदीनामुत्तमानदी ॥ ४५ ॥ सर्वासांसरितांमध्य उत्तमासप्तकल्पगा ॥ सर्वेषांजननीचेह नदीत्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सुरसिन्धुंपरित्यज्य नर्म्मदावर्ण्यतेकथम् ॥ विरुद्धंसर्वलोकानां देवानांचविशेषतः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मणस्तुवचःश्रुत्वा अगस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ मध्येपदेनियुक्तश्च वक्तुमेवन्नयुज्यते ॥ ४८ ॥ धर्म्मास्सर्वेवेदमूलाब्राह्मणावेदसम्भवाः ॥ वेदहीनानसिध्यन्ति यज्ञदानविधिक्रियाः ॥ ४९ ॥ स्वयम्भूर्भगवाञ्च्छम्भुः शम्भुश्चभगवान्हरिः ॥ वेदाश्चभगवाञ्च्छम्भुः कल्पगाशम्भुसम्भवा ॥ ५० ॥ अव्यक्ताव्यक्तरूपेण जगतःकारणेच्छया ॥ संहारसृष्टिरूपेण प्रलयोत्पत्तिकारिणी ॥ ५१ ॥ भगीरथनेमिनीता हरिणा

ब्रह्माके वचनको सुनकर अगस्त्यजी वचन बोले जो पूँछा नहीं गयाहै उसको वार्ताके मध्यमें इसप्रकार कहनेको योग्य नहीं है परन्तु हम कहतेहैं ॥४८॥ कि वेदही जिनका मूलहै ऐसे सबधर्महैं और ब्राह्मण वेदोंके आश्रयहैं वेदोंके विना यज्ञदानआदि विधिरूपकर्म सिद्ध नहीं होते ॥ ४९ ॥ भगवान् महादेवही ब्रह्माहैं और भगवान् महादेवही विष्णुहैं और वेदभी भगवान् महादेवही हैं नर्मदाजी भी महादेवहीसे उत्पन्नहुई हैं ॥५०॥ जगत् के कल्याण की इच्छा से सूक्ष्मरूपवाली आप स्थूलरूप से विद्यमान

हुई संहार और सृष्टिरूपकरके प्रलय और उत्पत्तिकी करनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ और भगीरथ के रथकी पुठ्ठियों की गड़ारोंसे लाईहुई व हरिकरके यहां उतारीगई गंगा सो जह्नुमुनि करके चुल्लूसे पीडालीगई ॥ ५२ ॥ क्रोधको प्राप्तहोरहे मुनि उनको पीके ध्यानमें तत्पर स्थितहुये देवताओ की हजारवर्षतक वे गङ्गा उन जह्नुके पेटमें स्थितरहीं ॥ ५३ ॥ तब देवताओं को बडा विस्मय व कुतूहल हुआ ब्रह्माआदि सब देवता उनके आश्रमको जाकर ॥ ५४ ॥ शापकी शङ्कासे घबडारहा है मन जिनका ऐसे वे देवता मुनिसे बोले कि हे मुने ! पापोंकी नाश करनेवाली पवित्र महानदी को आप छोड़देवें ॥ ५५ ॥ लोकोंके सन्तापको हरनेवाली यह नदी

न्नावतारिता ॥ गङ्गासाजह्नुनापीता मुनिनाचुलुकेनच ॥ ५२ ॥ क्रुद्धःपीत्वामुनिस्तान्तु स्थितोध्यानपरायणः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सातुतस्योदरेस्थिता ॥५३॥ विस्मयोदेवतानांहि समापेदेकुतूहलम्॥ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वा गत्वातस्याश्रमम्प्रति ॥ ५४ ॥ शापशङ्काकुलात्मानो मुनिंविज्ञापयन्तिते ॥ महानदींमुनेमुञ्च पवित्रांपापनाशिनीम् ॥ ५५ ॥ मर्त्ये वहतुसानित्यं लोकसन्तापहारिणी ॥ देवताऋषिप्रोक्तेन मुक्तातेनमहानदी ॥ ५६ ॥ मुक्तातुजह्नुनातत्र तेनसाजाह्नवी स्मृता ॥ सातुकिंवर्ण्यतेब्रह्मन्पीतायाजह्नुनापुरा ॥ ५७ ॥ मयाचुलुकमात्रेण शोषितास्सप्तसागराः ॥ हरिश्चभगवान्ब्रह्मसुरशम्भुश्चभगवानिति ॥ ५८ ॥ विन्ध्यस्सप्तशैलराजोनर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ तेनोद्धृतादेवमार्गा वर्तमानानिवारिताः ॥ ५९ ॥ यज्ञपर्वतपर्यङ्कावुभौविन्ध्यसुतौपुरा ॥ मयानिवारितौवृद्ध्यादेवमार्गप्रवृत्तये ॥ ६० ॥ एवंविगर्हितोब्रह्मा

मनुष्यलोकमें नित्यही बहाकरै देवता व ऋषियों करके कहेगये जह्नुकरके महानदी छोडदीगई ॥ ५६ ॥ वहां जह्नुकरके छोडीगईं इससे वे गंगाजी जाह्नवी कहीगईं हे महाब्रह्मन् ! वह क्या वर्णन कीजावे जो पूर्वकाल में जह्नुकरके पीडालीगईं ॥ ५७ ॥ हम करके चुल्लूमात्र से सातों समुद्र पीडालेगये इससे विष्णुहैं सो भगवान् महादेवही हैं और महादेवहैं सो विष्णुही हैं ॥५८॥ नर्मदाके प्रभावसे सातों कुलपर्वतोंकाराजा विन्ध्याचलहुआ वृद्धिकोप्राप्तहुये विन्ध्याचलकरके देवमार्ग रोक दियागया॥५९॥ यज्ञपर्वत और पर्यङ्क ये दोनों विन्ध्याचलके पुत्र पूर्वकालमें वृद्धिको प्राप्तहोरहे सो मुझकरके देवमार्ग की प्रवृत्तिके वास्ते वृद्धिकरके निवारण करदियेगये ॥ ६० ॥ इस

प्रकार आपस के संवाद से ब्रह्माजी समझा दियेगये तदनन्तर अगस्त्य पर सब देवता प्रसन्नहुये हे भारत ! ॥ ६१ ॥ तब देवताओंके नक्कारे बजे और फूलोंकी वर्षा भी हुई हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुब्जामाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❁ ॥

युधिष्ठिरजी पूछतेहैं कि नर्मदा और कुब्जा के समागममें रमणीक कण्वमुनिके आश्रममें बुद्धिमान् रन्तिदेवका यज्ञ किस प्रकारहुआ॥१॥हम सम्पूर्ण सुननेकी इच्छा करते हैं महादेवजी के कहेहुयेको कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि समागम सुननेकी कामनाकररहे सब मुनिलोग सुनें ॥ २ ॥ यह पुराना इतिहास पुण्यरूप मुझकरके

संवादेनपरस्परम् ॥ ततस्तुष्टास्सुरास्सर्वे ह्यगस्त्यंप्रतिभारत ॥ ६१ ॥ देवदुन्दुभयोनेदुः पुष्पवृष्टिःपपातच ॥ इतिते कथितोराजन्नितिहासःपुरातनः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेकुब्जामाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ कथन्निर्वर्तितोयज्ञो रन्तिदेवस्यधीमतः ॥ कण्वाश्रमपदेरम्ये रेवाकुब्जासमागमे ॥१॥ निखिलं श्रोतुमिच्छामि कथयस्वशिवोदितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृण्वन्तुमुनयस्सर्वे श्रोतुकामास्समागमम् ॥ २ ॥ मया ख्यातमिदंपुण्यमितिहासंपुरातनम् ॥ शण्डामर्कोथराजर्षिर्मानसोब्रह्मणस्सुतः ॥ ३ ॥ सूर्यतेजस्समप्रख्यस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ब्रह्मिष्ठस्सत्यवादीच वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारीजितक्रोधस्सर्वभूतहितेरतः ॥ षडशीतिसहस्राणि मुनीनांदीप्ततेजसाम् ॥ ५ ॥ तपस्तत्रैवतप्यन्ते मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ कन्दमूलफलाहाराजलाहारास्तथापरे ॥ ६ ॥ मासोपवासिनश्चान्ये तथापक्षोपवासिनः ॥ चरन्तिकेसान्तपनं प्राजापत्यंतथैवच ॥ ७ ॥ चान्द्रायणपराश्चान्ये

कहागयाहै शण्डामर्कनामके राजर्षि ब्रह्माकेमानसपुत्र हुये ॥ ३ ॥ जो कि सूर्यके समान तेजवाले,तेजकरके प्रकाश कररहे. ब्रह्मिष्ठ,सत्यके कहनेवाले, वेद और वेदांगो के जाननेवाले ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी, क्रोधको जीतेहुये, सब प्राणियों के हितमें तत्पर हुये व प्रचण्ड तेजवाले छियासी हजार मुनि ॥ ५ ॥ मोक्षके उपाय के विचारनेवाले कन्द, मूल और फलों के आहार करनेवाले तथा कोई जलाहार करनेवाले व कोई महीनाभरके व्रत करनेवाले व कोई पक्षभरके व्रत करनेवाले उसी आश्रम में

तप करतेहुये कोई सान्तपन करते हैं और वैसेही कोई प्राजापत्य करतेहैं ॥६ । ७॥ व कोई चान्द्रायण में तत्पर हैं व कोई ब्रह्मकूर्चपान करते हैं सब शण्डामर्क के आश्रित होरहे सबके गुरु वेही थे ॥ ८ ॥ वेदकी ध्वनियों करके आकाश और पृथिवीसे शब्द कारहेहैं वहां हवन कियेगये अग्नि धूमसे रहित होतेहुये ॥ ९ ॥ काम और क्रोधसे रहित, इन्द्रियों के जीतनेवाले,ब्रह्मचारी, ब्रह्मा के समान ब्राह्मणोंकरके युक्त शण्डामर्क का दिव्य आश्रम होताहुआ ॥ १० ॥ इसी प्रकार सब कामना के फलोंसे युक्त, फूले वृक्षोंकरके अतिशोभित होताहुआ सब आश्रमों के गुरु रन्तिदेव राजा होतेहुये ॥ ११ ॥ पर्वतों व जलों और जंगलोंकरके सहित पृथिवी रन्तिदेव

ब्रह्मकूर्चास्तथापरे ॥ शण्डामर्काश्रितास्सर्वे सर्वेषांगुरुरेवच ॥ ८ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्दिवंभूमिंव्यनादयन् ॥ निर्धूमो ज्वलनस्तत्र हूयमानोहुताशनः ॥ ९ ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्तैर्ब्रह्मचारिजितेन्द्रियैः ॥ शण्डामर्काश्रमंदिव्यं युक्तंब्रह्मसमद्विजैः ॥ १० ॥ तथाकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैस्त्वतिशोभितम् ॥ सर्वाश्रमगुरुश्चासीद्रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ११ ॥ शासिताधरणीतेन सशैलवनकानना ॥ ननराःशोकमात्सर्य्यरोगदारिद्र्यदुःखिताः ॥ १२ ॥ चिरायुषःप्रजास्सर्वा धनधान्यसमाकुलाः ॥ स्वयंकामदुघागावः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ १३ ॥ कौशेयंपट्टसूत्रंच सर्वेषांविमलंचितम् ॥ पर्जन्यःकामवर्षीच कालेकालेऋतावृतौ ॥ १४॥ नानापुराणिरम्याणि हेमरत्नान्वितानिच ॥ नानाचामरमालाच हेमरत्नावगुण्ठिता ॥१५॥ किङ्किणीजालसञ्छन्ना मणिमालाविलम्बिता ॥ बुद्बुदैरर्द्धचन्द्रैश्च पारिजातकदम्बकैः॥१६॥

करके पालितहुई उनकी राज्यमें शोक, मात्सर्य्य, रोग और दरिद्रकरके दुःखित मनुष्य नहीं होतेहुये ॥१२॥ सब प्रजा दीर्घ आयुवाली धन और अन्नसे युक्त होतीहुई व गौवें अभीष्ट समय में दुग्धकी देनेवाली और पृथिवी अन्नसे पूर्णहुई ॥ १३ ॥ सबके रेशमी निर्मलवस्त्र होतेहुये व समय २ में ऋतु २ में इच्छानुकूल वर्षा करनेवाले मेघ होतेहुये ॥ १४ ॥ अनेक शहर सुवर्ण और रत्नोंसे युक्त रमणीक होतेहुये व रत्नों के कामवाली सोनेकी डांड़ीसे युक्त चामरों की माला जहां विद्यमान है ॥ १५ ॥ सोनेकी क्षुद्रघण्टिकाओं से व्याप्त मणियों की माला जहां हरएक स्थान में लटक रहीहैं व बुलबुला के आकारवाले और आधे चन्द्रमा के समान आकारवाले और

पारिजात व कदम्बक नामके मन्दिरों करके ॥ १६ ॥ और शहरपनाह के दिव्यफाटकोंकरके युक्त अनेक प्रकार के आनकनाम के बाजाओं करके शब्दायमान हो रही अनेकफूलों से भरेहुये नाच व गाने के महलों से शोभित ॥ १७ ॥ व जहां सुवर्ण के खजानों करके युक्त होनेसे सब पृथ्वी सुवर्णमयी होरही है व देवताओं के देवता महादेव का मन्दिर अनेक उत्तम रत्नोंसे जटित जहां विद्यमान होरहाहै ॥१८॥ जैसा कि मेरुपर्वत, कैलास में विराजमान है रत्नोंसे जटित शिला व अनेक शिखरों से शोभित ॥ १९ ॥ रत्नोंकी मालाओं से भूषित, चन्द्रशाला (घरके ऊपर का घर) व झरोखाओं करके युक्त व पचास सातचौकवाले उसीप्रकार दश हजार

गोपुरैश्चमहादिव्यैर्नानानकनिनादिता ॥ नाट्यहर्म्यैश्चसङ्गीतैर्विचित्रकुसुमावृतैः ॥ १७ ॥ भूमिर्हेममयीचैव चाचितायत्रसञ्चितैः ॥ प्रासादश्चमहारत्नैर्देवदेवस्यशूलिनः ॥ १८ ॥ मेरुमन्दरकैलासे यादृशश्चविराजते ॥ नानारत्नशिलाभिश्च अनेकशिखरोत्करैः ॥ १९ ॥ चन्द्रशालागवाक्षैश्च रत्नमालाविभूषितैः ॥ शतार्द्धसाप्तभौमैश्च तथैवायुतभूमिकैः ॥ २० ॥ चन्द्राननपताकाभिर्यज्ञैश्चापिविराजिता ॥ एवंविधानृपश्रेष्ठ सर्वशोभासमन्विता ॥ २१ ॥ रन्तिदेवस्यराजर्षेरयोध्यानगरीशुभा ॥ इत्थंशशासधरणीं यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ नृपोयागसहस्रैश्च भूमिष्टप्टंददाहसः ॥ पुरोधसंवशिष्ठञ्च पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ २३ ॥ कस्मिंस्तीर्थेतुनिर्विघ्ना यज्ञसिद्धिर्महामुने ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा राजर्षेर्मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ उवाचरन्तिदेवञ्च वशिष्ठोब्रह्मवित्तमः ॥ दुर्वासाःकश्यपोगर्गोनारदःपर्वतःक्रतुः ॥ २५ ॥ अग्निश्चशौनकश्चैव बृहस्पतिरथाङ्गिराः ॥ भृगुरत्रिस्तथावत्स्यः पुलस्त्यःपुलहस्तथा ॥ २६ ॥ काश्यपोगालवश्चैवऋ

चौकवाले महलों से व्याप्त ॥ २० ॥ चन्द्राकार पताका व यज्ञोंकरके प्रकाशित हे नृपश्रेष्ठ! सब शोभासे युक्त इस प्रकार की ॥ २१ ॥ राजर्षि रन्तिदेवकी अयोध्यानगरी मोक्षको देनेवाली होतीहुई इस प्रकार पृथिवी का पालन करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गको पालते हैं ॥ २२ ॥ वे राजा अनेक हजार यज्ञोंकरके पृथिवी को जलादेते हुये व मुनियों में श्रेष्ठ अपने पुरोहित वशिष्ठ से पूंछतेहुये ॥ २३ ॥ कि हे महामुने! किस तीर्थ में निर्विघ्न यज्ञकी सिद्धि होतीहै उन राजर्षिके इस वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ ॥ २४ ॥ अतिशयकरके ब्रह्मके जाननेवाले वशिष्ठजी ने रन्तिदेव से यह कहा कि दुर्वासा, कश्यप, गर्ग, नारद, पर्वत, क्रतु ॥ २५ ॥ अग्नि, शौनक, बृह-

रपति, अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, वत्स्य, पुलस्त्य वैसेही पुलह ॥ २६ ॥ काश्यप, गालव, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक व हम ये मुनि तथा और ब्रह्मतेजवाले सब मुनि ॥ २७ ॥ हे नराधिप ! इन सबका और हमारा भी यही मतहै कि सब तीर्थों में श्रेष्ठ पुराणों में कहाहुआ तीर्थ ॥ २८ ॥ व और तीर्थोंसे करोड़का करोड़गुना पुण्य वहा होताहै जहां नर्मदा विद्यमानहै तब राजाने उन वशिष्ठजी से यह कहा कि ऐसाही है आपकरके यह सत्य कहागया है ॥ २९ ॥ तदनन्तर सेवक, मन्त्री और पुरोहित को आज्ञा देतेहुये कि यज्ञका सामान शीघ्रही तैयार कियाजावै ॥ ३० ॥ तदनन्तर अनेक देशोंको शीघ्र जानेवाले दूतोंको भेजतेहुये राज्यमें डंका पीटदियाजावे कि राजा

ष्यशृङ्गोविभाण्डकः ॥ अहञ्चमुनयश्चैते मुनयोब्रह्मवर्चसः ॥ २७ ॥ सर्वेषांमतमेवंवै ममचैवनराधिप ॥ अन्यतीर्था त्परंतीर्थं पुराणेपरिकीर्तितम् ॥ २८ ॥ कोटिकोटिगुणंपुण्यंकल्पगायत्रवर्तते ॥ एवमेवेतितंब्रूयात्सत्यमेतत्त्वयोदित म् ॥ २९ ॥ ततश्चाज्ञापयामास भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ यज्ञोपस्करसम्भारः शीघ्रमेवविधीयताम् ॥ ३० ॥ आदिदे शततोदूतान्नानादेशेषुसत्वरान् । घोषणाक्रियतांराष्ट्रे समागच्छन्तुभूमिपाः ॥ ३१ ॥ आगतास्तेततस्सर्वे रन्तिदेवस्य शासनात् ॥ यथाविभवशोभाढ्याः शक्रतुल्यामहीभृतः ॥ ३२ ॥ गावश्चदशलक्षाणि सवत्साश्चपयस्विनीः ॥ हेमभा रैर्भूषिताश्च कामधेनुपयस्विनीः ॥ ३३ ॥ लक्षमेकंहयानान्तु अयुतंदन्तिनान्तथा ॥ मणिमाणिक्यरत्नानां तत्रसं ख्यानविद्यते ॥ ३४ ॥ अनेकानिसहस्राणि करभानाञ्चभारत ॥ दिव्ययानंसमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ३५ ॥ नानातूर्यैर्गीतवाद्यैर्मेकलातीरमागतः ॥ तत्रमण्डपकुण्डानि यज्ञयूपाहिरण्मयाः ॥ ३६ ॥ नानाभक्ष्याणि

लोग हमारे यज्ञमें आवें ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रन्तिदेव की आज्ञा से अपने विभवके अनुसार शोभासे युक्त, इन्द्रके तुल्य वे सब राजालोग आतेहुये ॥ ३२ ॥ व दूध वाली, बछड़ों करके सहित, सुवर्ण के आभूषणों से भूषित, कामधेनु के तुल्य दश लाख गौवें ॥ ३३ ॥ और एक लाख घोड़े तथा दश हजार हाथी व मणि और माणिक आदि रत्नोंकी तो वहा कुछ संख्याही नहीं है ॥ ३४ ॥ हे भारत ! और अनेक हजार ऊंट यज्ञमें जातेहुये व रानी और सामान के सहित दिव्य सवारी पर सवार होकर ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के गीत व बाजाओं से युक्त राजा नर्मदातट को जातेहुये वहा मण्डप व कुण्ड और यज्ञ के खम्भा सुवर्णही के बनायेगये ॥३६॥

अनेक प्रकारके भक्ष्य और विविध प्रकारके भोज्य तैयार कियेगये व अनेक प्रकारके गहनें और रत्नोंकरके ब्राह्मण लोग भूषित कियेगये ॥ ३७ ॥ रानीकरके सहित राजा यज्ञदीक्षाको ग्रहण करतेहुये तदनन्तर शोभित नर्मदाके तटमें यज्ञ प्रवृत्त कियागया ॥ ३८ ॥ वहां धुवां करके रहित अग्नि प्रत्यक्ष जलतेहुये ब्रह्मा और इन्द्रआदि देवता, लोकपाल, मरुद्गण ॥ ३९ ॥ विश्वेदेवा,साध्य,वसु,चन्द्रमा, सूर्य, नदियां, समुद्र, पर्वत, सब तीर्थ व पहाड़ी नदियां ॥ ४० ॥ मातृगण, यक्ष, नाग और राक्षसों करके सहित, सिद्ध गन्धर्व, पार्वती करके सहित महादेव व देवताओं के ईश्वर विष्णु ॥ ४१ ॥ इन सबके यज्ञभागों को राजा पृथक् २ देतेहुये हे राजन् ! इसी अन्तर में

भोज्यानि पक्वानिविविधानिच ॥ नानाभरणरत्नैश्च ब्राह्मणास्समलंकृताः ॥ ३७ ॥ यज्ञदीक्षाञ्जग्राह पत्न्यासहनराधिपः ॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञो रेवातीरेसुशोभने ॥ ३८ ॥ तत्रज्वलतिनिर्धूमः प्रत्यक्षोहव्यवाहनः ॥ ब्रह्मशक्रादयोदेवा लोकपालामरुद्गणाः ॥ ३९ ॥ विश्वेदेवाश्चसाध्याश्च वसवश्चन्द्रभास्करौ ॥ सरितस्सागराश्शैलास्सर्वतीर्थानिचापगाः ॥ ४० ॥ मातरस्सिद्धगन्धर्वास्सयक्षोरगराक्षसाः ॥ उमयासहितोरुद्रो विष्णुश्चैवसुरेश्वरः ॥ ४१ ॥ सर्वेषांयज्ञभागांश्च पृथक्पृथगकल्पयत् ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्वेदध्वनिनिवेदितम् ॥ ४२ ॥ विस्मिताह्यभवन्सर्वे श्रुत्वास्मृतिभयानकम् ॥ दानवाबलवन्तोद्य तेक्रौञ्चपुरवासिनः ॥ ४३ ॥ महाबाहुस्सुबाहुश्च दैत्यकोटिसमावृताः ॥ आगतानर्म्मदातीरे सभृत्यबलवाहनाः ॥ ४४ ॥ दक्षिणांदिशमाश्रित्ययज्ञविघ्नंविचक्रिरे ॥ ब्रह्माद्यामुनयस्सर्वे भयत्रस्ताश्चकम्पिरे ॥ ४५ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा देवतुल्यंपुरोधसम् ॥ मयाविधिर्विस्मृतश्च मन्त्रादीनांमहाभयात् ॥ ४६ ॥ उवाचरन्तिदेवश्च

वेदोंकी ध्वनिसे सूचित कियेहुये ॥४२॥ स्मरण करनेसे भयानक कर्मको आज सुनकर वे क्रौञ्चपुरके रहनेवाले,बलवाले, सब दानवलोग विस्मितहुये ॥ ४३ ॥ व करोड़ों दैत्योंसे युक्त व सेवक, सेना और सवारियों करके सहित महाबाहु और सुबाहुआदि राक्षस नर्मदा के तटमें आतेहुये ॥ ४४ ॥ दक्षिणदिशा के आश्रित होकर यज्ञमें विघ्नको करतेहुये तब ब्रह्माआदि सब मुनि भयसे घबड़ायेहुये कांपनेलगे ॥४५॥ देवताओं के तुल्य पुरोहित से ब्रह्माजी वचन बोले कि महाभय से मन्त्रादिकों की

विधिको हम भूलगये ॥४६॥ फिर रन्तिदेवसे कहा कि तुम यज्ञके विघ्नको निवारण करो तब ब्रह्मिष्ठ रन्तिदेव राजा उस वचन को सुनकर ॥४७॥ बोले कि जो हमारे सत्य व महादेव की भक्तिमें तत्पर बुद्धिहोवे तो दुष्ट दैत्य व राक्षस व और भी जो विघ्नके करनेवाले होवें ॥ ४८ ॥ वे सब नाशको प्राप्त होजावें जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होजाता है पापों से रहित देवता हमारे सामर्थ्य को देखै ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहकर तदनन्तर कुशाग्र से नर्मदाके प्रवाह को दुष्टोंकी रक्षा के वास्ते दक्षिणदिशामें कल्पित करतेहुये ॥ ५० ॥ और वहां शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले विष्णुभी राजाकरके स्मरण कियेगये और देवयान के

यज्ञध्वंसंनिवारय ॥ ब्रह्मिष्ठस्तद्वचःश्रुत्वा रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ४७ ॥ यदिमेविद्यतेसत्यं शिवभक्तिपरामतिः ॥ दैत्यराक्षसदुष्टाश्च येचान्येविघ्नकारकाः ॥ ४८ ॥ सर्वेतेविलयंयान्ति तमस्सूर्योदयेयथा ॥ पश्यन्तुममसामर्थ्यं देवा विगतकल्मषाः ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्कुशाग्रेणतुनार्मदः ॥ प्रवाहोदुष्टरक्षार्थं दक्षिणस्यांप्रकल्पितः ॥ ५० ॥ विष्णुश्चैवस्मृतस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ उत्तरेदेवयानस्यप्रवाहःपरिकल्पितः ॥ ५१ ॥ एवंकृत्वातुघोरेण देवमन्त्रेण सुव्रतः ॥ जुहावाहवनीयेतु कुण्डेबिल्वाम्रवेतसम् ॥ ५२ ॥ तस्मात्समुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ नान्तोनादिर्नमध्यञ्च तस्यलिङ्गस्यभारत ॥ ५३ ॥ ततस्सुरासुरास्सर्वे चक्रुस्स्तोत्रमिदम्पुरः ॥ ॐनमोभुवनेशाय आदिदेव नमोस्तुते ॥५४॥ चराचरव्यापकाय सृष्टिसंहारकारिणे ॥ स्तोत्रंश्रुत्वामहादेवः शान्तरूपोजगत्पतिः ॥५५॥ बभूवपरम

उत्तरभी रक्षाके वास्ते प्रवाह कल्पित कियागया ॥ ५१ ॥ इसप्रकारकरके सुन्दर व्रतवाले राजा घोर देवमन्त्रसे आहवनीयकुण्डमे बेल और अमलबेतस का हवन करते हुये ॥ ५२ ॥ तब उस कुण्ड से जलतेहुये कालाग्नि के तुल्य प्रभावाला लिंग उठताहुआ हे भारत ! उस लिंगका आदि, मध्य और अन्त नहीं दीखता ॥ ५३ ॥ तदनन्तर सब देवता व दैत्य इस स्तोत्रको आगे पढ़तेहुये कि चौदहो भुवनों के मालिक के लिये नमस्कारहै व हे आदिदेव ! आपके लिये नमस्कारहै ॥५४॥ चराचर में व्यापक व सृष्टि और संहार करनेवाले के लिये नमस्कारहै शान्तरूप जगत् के पति महादेवजी स्तोत्र को सुनकर ॥ ५५ ॥ चराचर के गुरु महादेव परमप्रसन्नहुये

तब बुद्धिमान् रन्तिदेव राजाके ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ ५६ ॥ दानवोंका राजा वहा आकर रन्तिदेवका पूजन करताहुआ और मुझको आज्ञा दीजावे मैं क्या करूं ऐसे कहताहुआ ॥ ५७ ॥ तब हे भारत ! हँसतेहुये राजा वचनबोले कि अतिथिके सत्कार करने के समयमें तुम प्राप्तहुयेहो इससे तुमको यज्ञभाग हम देतेहैं ॥ ५८ ॥ देवता और दानवों को सब यज्ञभाग यथायोग्य देकर बड़ेआनन्दसे युक्त हुये ॥ ५९ ॥ वे सब दानव अपनी२ सवारीपर सवार होकर देवताओं करके सेवित जगत्पति (शिव) जी के बिल्वाम्रक लिंग नाम ॥ ६० ॥ महादेवको नमस्कार करके रन्तिदेवकी स्तुति करतेहुये तदनन्तर आनन्दहोरहे सब देवता रन्तिदेवका सत्कार

प्रीतश्चराचरगुरुस्तदा ॥ तद्दृष्ट्वाताऽऽदृशंकर्म्म रन्तिदेवस्यधीमतः ॥ ५६ ॥ आगत्यदानवाधीशो रन्तिदेवमपूजयत् ॥ आदेशोदीयतांमह्यं किङ्करोमीतिचाब्रवीत ॥ ५७ ॥ उवाचवचनंराजा प्रहसन्निवभारत ॥ आतिथ्यकालेसम्प्राप्ते यज्ञभागंददामिते ॥ ५८ ॥ देवानांयज्ञभागञ्च दानवानांचसर्वशः ॥ परिकल्प्ययथान्यायं मुदापरमयायुतः ॥५९ ॥ स्वंस्वंयानंसमारुह्य दानवास्तेचसर्वशः ॥ लिङ्गंबिल्वाम्रकन्नाम जुष्टंदेवैर्जगत्पतेः ॥ ६० ॥ नमस्कृत्यमहादेवं रन्तिदेवंप्रतुष्टुवुः ॥ ततःप्रमुदितादेवा रन्तिदेवमपूजयन् ॥ ६१ ॥ उमयासहदेवेशं गणकोटिसमन्वितम् ॥ ब्रह्माविष्णुश्चदेवाश्चवरन्दत्त्वादिवंययुः ॥ ६२ ॥ गतेषुतेषुदेवेषुरन्तिदेवःपुरंययौ ॥ कदाचिद्वृत्रहातत्र ब्रह्महत्यासमावृतः ॥ ६३ ॥ रेवाकुब्जासभायोगे सर्वस्नानादिकंव्यधात् ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु सूर्य्यसंकाशतेजसः ॥ ६४ ॥ शरीरात्तस्यनिर्गत्य ब्रह्महत्याहवासवम् ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यादेकहत्यातवैवका ॥ ६५ ॥ ब्रह्महत्यासहस्त्रंहितमस्सूर्य्योदयेयथा ॥ ती

करतेहुये ॥ ६१ ॥ पार्वती करके सहित और करोडों गणोंकरके युक्त महादेव और ब्रह्मा, विष्णु व सब देवता वरको देकर स्वर्गको जातेहुये ॥ ६२ ॥ उन देवताओं के गयेपर रन्तिदेव भी अपनेपुर को जातेहुये किसी समयमें ब्रह्महत्या करके युक्त इन्द्र वहा ॥ ६३ ॥ नर्मदा और कुब्जा के समागम मे सब स्नानआदि कर्म करते हुये उसीक्षण मे दिव्यदेह होगये व सूर्यके समान तेजवाले ॥ ६४ ॥ उनके शरीरसे निकलकर ब्रह्महत्या इन्द्रसे बोली कि इस तीर्थके माहात्म्य से एक तुम्हारीही

ब्रह्महत्या क्या है ॥ ६५ ॥ इस तीर्थमें चौदह योजनके अन्तर्गत हजारों ब्रह्महत्या नाशहोती हैं जैसे सूर्योदय होनेपर अंधकार नष्टहोजाता है ॥ ६६ ॥ इसी अन्तर में नर्मदा प्रत्यक्ष इन्द्रसे बोलीं कि हे महाभाग ! तुम्हारी शान्तिहो अब इससमय यथेच्छ अपने स्थानको जावो ॥ ६७ ॥ उसके इस वचन को सुनकर नर्मदा को नमस्कार करके अप्सराओं के गणोंसे संयुत व दिव्य गन्धर्वों के नादसे भरेहुये दिव्य विमानपर सवार होकर बड़े आनन्द से युक्त हुये जैसे उस विमान में बैठेहुये पहले शोभित होतेथे उसीप्रकार सुशोभित हुये ॥ ६८ । ६९ ॥ व दिव्य छाता को लगाये, अप्सराओं के गणों से हवा कियेजारहे, देवताओं के गणोंकरके स्तुति किये

थेंस्मिन्विनश्येद्यावद्योजनानिचतुर्दश॥६६॥एतस्मिन्नन्तरेशक्रं प्रत्यक्षंप्राहकल्पगा ॥ शान्तिस्तेस्तुमहाभाग यथेष्टं गच्छसांप्रतम् ॥६७॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा तांनमस्कृत्यकल्पगाम् ॥ दिव्ययानंसमारुह्य मुदापरमयायुतः॥६८॥ अप्सरोगणसंयुक्तं दिव्यगन्धर्वनादितम् ॥ तत्रारूढस्सुरपतिर्यथापूर्वंतथैवसः ॥ ६९ ॥ धृतदिव्यातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ स्तूयमानस्सुरगणैःप्रविवेशामरावतीम्॥७०॥शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ मयाचकथितंराजंस्तवब्रह्मर्षिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेबिल्वाम्रकोत्पत्तिवर्णनोनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ हरिकेशइतिख्यातश्शालग्रामेद्विजोत्तमः ॥ शिलोञ्छवृत्तिर्धर्म्मात्मा सत्यव्रतपरायणः ॥ १ ॥ ब्राह्मणीसुव्रतातस्य धर्म्मपत्नीयशस्विनी ॥ पतिव्रतामहाभागा पतिशुश्रूषणेरता ॥ २॥ कालेऋतुमतीसातुऋतु

जातेहुये अमरावती में प्रवेश करतेहुये ॥ ७० ॥ पूर्वकाल में यह इतिहास महादेव करके पार्वती और स्वामिकार्त्तिकके प्रत्यक्ष कहागया हे राजन्! इन ब्रह्मर्षियोंके प्रत्यक्ष मुझकरके भी तुमसे कहागया ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेबिल्वाम्रकोत्पत्तिवर्णनोनामद्वाविंशोऽध्यायः॥ २२ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि शालग्राम में शीला बीनकर भोजन करनेवाले,धर्मात्मा, सत्यव्रतमें तत्पर, ब्राह्मणों में उत्तम हरिकेश इस नामसे प्रसिद्ध होतेहुये ॥ १ ॥ उनकी धर्मपत्नी ब्राह्मणी, उत्तम व्रतवाली,बड़ी यशवाली, पतिव्रता,पतिकी सेवामें तत्पर, बड़भागिनी होतीहुई ॥ २ ॥ वह स्त्री समयपर रजोवती हुई और वे ब्राह्मण

भी ऋतुकाल बिषे अपनी स्त्रीमें गमनकिया उसके कपिलापुरमें सौ पुत्र उत्पन्न होतेहुये ॥ ३ ॥ शीलाकी वृत्तिके योगकरके वे ब्राह्मण एक सेरभर अन्न पैदा करतेहुये व क्षुधासे दुर्बल होरहे वे बालक बडे दीनहोकर रोतेहुये तदनन्तर ॥ ४ ॥ बालकों को क्षुधित देखकर माता बड़े शोकसे विह्वल होरही और बहुत दुःख से विकल निन्दा करतीहुई ब्राह्मणी अपने पति से बोली ॥ ५ ॥ कि वृद्ध माता व पिता और पतिव्रता स्त्री व छोटे बालक ये यत्नकरके पोषण करने के योग्य होते हैं यह सनातनधर्महै ॥ ६ ॥ अपने पालन करनेयोग्य जीवोंका और पुत्रोंका तो विशेषही पोषण करना धर्महै ब्राह्मणी के इस वचन को सुनकर शोकसे विह्वल ॥ ७ ॥ हरिकेश हे

गामीचसद्विजः ॥ तस्यपुत्रशतंजज्ञेकपिलापुरमाश्रितम् ॥ ३ ॥ शिलोञ्छवृत्तियोगेन प्रस्थमेकमुपार्जयत् ॥ क्षुत्क्षामास्तेचशिशवो रुदन्तिकरुणन्ततः ॥४॥ शिशून्बुभुक्षितान्दृष्ट्वा माताशोकार्तिविह्वला ॥ गर्हयन्तीसुदुःखार्ता ब्राह्मणी पतिमब्रवीत् ॥ ५ ॥ वृद्धौचमातापितरौ साध्वीभार्य्यासुतःशिशुः ॥ भरणीयाःप्रयत्नेन एषधर्म्मस्सनातनः ॥ ६ ॥ भरणंपोष्यवर्गस्य पुत्राणाञ्चविशेषतः ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनं ब्राह्मण्याःशोकविह्वलः ॥ ७ ॥ हरिकेशोब्रवीद्वाक्यं ब्राह्मणींप्रतिभारत ॥ नमयासञ्चितंधान्यं नवित्तंगृहमेधिना ॥ ८ ॥ ग्रामेग्रामेभिक्षयित्वा सविभागंपृथक्पृथक् ॥ ददामिंपरमंधान्यं नान्यांवृत्तिन्तुकारये ॥ ९ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ बालहत्यासमंपापं बालेवृद्धेक्षुधार्दिते ॥ तस्मात्प्रतिग्रहंकृत्वा भर्तव्याममपुत्रकाः ॥ १० ॥ पुत्रेणलोकंजयति पुत्रेणसुखमेधते ॥ पुत्रेणस्वर्गमाप्नोति पितॄणांपरमागतिः ॥ ११ ॥ अम्बरीषस्यनृपतेरयोध्याधिपतेःकिल ॥ वर्तमानेमहायज्ञे कुरुक्षेत्रेद्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥ गताश्चब्राह्मणास्तत्र प्रति

भारत ! ब्राह्मणी से वचन बोलते हुये कि मुझ गृहस्थकरके अन्न व धन नहीं संचय कियागया ॥ ८ ॥ गांव २ में भिक्षा मांगकर यथाभाग अलग २ सबको उत्तम अन्न देतेहैं दूसरी जीविका तो हम करतेही नहीं ॥ ९ ॥ तब ब्राह्मणी बोली कि बालक व वृद्धके भूखों मरने से बालहत्या के बराबर पापहोता है इससे दान लेकर हमारे पुत्र पोषण करनेयोग्य हैं ॥ १० ॥ पुत्रसे लोकको जीतता है और पुत्रसे सुख बढ़ता है पुत्रसे स्वर्गको पाताहै पुत्र पितरों की परमगति है ॥ ११ ॥ प्रसिद्ध है कि अयोध्याके स्वामी राजा अम्बरीष के कुरुक्षेत्रमें होरहे महायज्ञ में शालग्रामके रहनेवाले उत्तम ब्राह्मण दान लेनेकी इच्छा करके गयेथे वहां वे ब्राह्मणलोग गौवें

और सुवर्ण धनको पाकर ॥ १२ । १३ ॥ अनेक आभूपणों की शोभासे युक्त व भलीभांति अलङ्कारों से संयुत आये हैं सो जहां सब शालग्रामनिवासी ब्राह्मणगये रहैं वहां आपभी जावो ॥ १४॥ तदनन्तर पुत्रोंके वास्ते हरिकेश भी रक्षित कुरुजाङ्गलमें होरहे राजा अम्बरीषके महायज्ञमें ॥ १५ ॥ ब्राह्मणी और पुत्रोंको लेकर कुरुक्षेत्र को जातेहुये जहां वे ऋत्विज् लोग रहे उस यज्ञमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ और वे ब्राह्मण वेदके स्वरसे आयेहुये देवताओं को आकाश में देखकर स्थितहुये जिस क्षेत्रके प्रभावसे यम, अङ्गिरा, मुनि विष्णु, वशिष्ठ व दक्ष ॥ १७ ॥ प्रसन्नमनवाले बृहद्विष्णु, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, शुक्राचार्य, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति ॥ १८ ॥ हारीत, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, गौतम, दुर्वासा, काश्यप, गर्ग, भारद्वाज, अत्रि ॥ १९ ॥ नारद, पर्वत, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, विभाण्डक, भृगु, शाकट, बादरायण ॥ २० ॥ बालखिल्य नामके ब्रह्माजी के पुत्र, ब्रह्म तेजके धारणकरनेवाले और भी अट्ठासी हजार मुनि ब्रह्मलोकको जातेहुये ॥२१॥ अब हे महाराज ! अम्बरीष राजा उन श्रेष्ठ ब्राह्मण व उन ब्रह्मर्षियोंको देखकर नमस्कार करके अर्घ और पाद्य से पूजन किया ॥ २२ ॥ और कहा कि हे विप्र ! स्त्री और पुत्रोंकरके

ग्रहजिघृक्षया ॥ गाःकाञ्चनंधनंप्राप्य शालग्रामनिवासिनः ॥ १३ ॥ नानाभरणशोभाढ्या आगतास्समलंकृताः ॥ याहियत्रद्विजास्सर्वे शालग्रामनिवासिनः ॥ १४ ॥ सुतार्थंहरिकेशोथ रक्षितेकुरुजाङ्गले ॥ अम्बरीषस्यनृपतेर्वर्तमाने महामखे ॥ १५ ॥ गृहीत्वाब्राह्मणींपुत्रान्कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ प्रविष्टश्चाध्वरेतस्मिन्यत्रतेसन्तिऋत्विजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मघोषस्वरेणैव सदृष्ट्वादिविदेवताः ॥ यमोङ्गिरामुनिर्विष्णुर्वशिष्ठोदक्षएवच ॥ १७ ॥ बृहद्विष्णुःप्रसन्नात्मा शातातपपराशरौ ॥ आपस्तम्बोशनोव्यासाःकात्यायनबृहस्पती ॥ १८ ॥ हारीतःशङ्खलिखितौ याज्ञवल्क्योथगौतमः ॥ दुर्वासाःकाश्यपोगर्गो भारद्वाजोत्रिरेवच ॥ १९ ॥ नारदःपर्वतश्चैव पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ विभाण्डकोभृगुश्चैव शाकटोबादरायणः ॥ २० ॥ बालखिल्याब्रह्मपुत्रा ब्रह्मतेजोवपुर्द्धराः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि ब्रह्मदण्डंसमारुहन् ॥ २१ ॥ अम्बरीषोमहाराज दृष्ट्वाब्राह्मणपुङ्गवम् ॥ ब्रह्मर्षींस्तान्नमस्कृत्य अर्घपाद्यैरपूजयत् ॥ २२ ॥ किमर्थमागतोविप्र

सहित आप किसवास्ते आयेहो हे सुव्रत! हम इसको बडा अनुग्रह समझते हैं जो आप हम से बोलते हैं ॥ २३ ॥ आतिथ्य के समय में प्राप्तहुये आप जो उचितहो उसको मागो तब ब्राह्मण बोले कि हे भूप! हमारे एकएक पुत्रके लिये सौवर्ष की जीविकाके वास्ते आप शीघ्र धन देवो और होमके लिये उत्तम गौ और भी सुवर्ण के भार से युक्त दश हजार गौवें ॥ २४ । २५ ॥ एक करोड़ अशर्फी और उत्तम कपड़ा व गहना देवो राजा उस ब्राह्मण के इस वचन को सुनकर ॥ २६ ॥ उत्तम श्रद्धा से युक्त कहेहुये सब पदार्थों को देकर सवारियों से शालग्रामस्थानको शीघ्र पहुँचा देतेहुये तदनन्तर ॥ २७ ॥ यज्ञको करके वे राजर्षि बहुतकाल पर्यन्त देवताओं

सभार्य्यस्सहपुत्रकैः ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये यन्मांवदसिसुव्रत ॥ २३ ॥ आतिथ्यकालेसम्प्राप्तो याचयस्वयथोचितम् ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ वित्तंवर्षशतंयावदेकैकायसुतायमे ॥ २४ ॥ त्वन्देहिजीवनायाशु होमधेनुंतथोत्तमाम् ॥ अयुतन्तु गवांभूप हेमभारपरिष्कृतम् ॥ २५ ॥ कोटिमेकांहिरण्यस्यवस्त्रभूषणमुत्तमम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा द्विजस्यपृथिवीपतिः ॥ २६ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तस्सर्वंदत्त्वायथोदितम् ॥ शालग्रामपदंयानैः शीघ्रंप्रावेशयत्ततः ॥ २७ ॥ क्रतुमिष्ट्वासराजर्षिर्मुमुदेदेववच्चिरम् ॥ नानाविधान्सभुक्त्वाथ भोगान्पत्नीसुतैस्सह ॥ २८ ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते ऋषिर्मृत्युवशङ्गतः ॥ मरुदेशेनिरुदकेब्रह्मरक्षस्त्वमागतः ॥ २९ ॥ राजप्रतिग्रहाद्दुष्टात्पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ब्राह्मण्यंयःपरित्यज्य द्रव्यलोभेनमोहितः ॥ ३० ॥ विषयामिषलुब्धस्तु कुर्य्याद्राजप्रतिग्रहम् ॥ नरकेरौरवेघोरे तस्येहपतनंध्रुवम् ॥ ३१ ॥ वृक्षादावाग्निनादग्धाः प्ररोहन्तिघनागमे ॥ राजप्रतिग्रहाद्दग्धानप्ररोहन्तिकर्हिचित् ॥ ३२ ॥ शोचन्तिपूर्व

के तुल्य आनन्द करतेहुये व वे हरिकेश ब्राह्मण भी अपनी स्त्री व पुत्रों के सहित अनेक प्रकार के भोगोंको भोगकर ॥ २८ ॥ कालान्तर के प्राप्त होनेपर वे ऋषि मृत्युके वशको प्राप्तहुये तदनन्तर निर्जल मारवाड़ देशमें ब्रह्मराक्षस होतेहुये ॥ २९ ॥ राजा के दुष्टप्रतिग्रह लेनेसे फिर मनुष्य जन्म होना कठिन है द्रव्य के लोभ से मोहको प्राप्त होरहा जो ब्राह्मणताको छोडकर ॥ ३० ॥ विषयों में लोभको प्राप्तहोरहा यहां राजाके दानको लेताहै उसको घोर रौरवनरक मे अवश्य गिरना पड़ता है ॥ ३१ ॥ दावानल से जलेहुये वृक्ष वर्षाकालमें फिर जाम उठतेहैं परन्तु राजा के प्रतिग्रह से जलेहुये ब्राह्मण कभी नहीं हरियाते ॥ ३२ ॥ पूर्वजन्म व और

जन्मोंके कियेहुये पापोंको शोच करते हैं अब वह ब्राह्मण भी कहता है कि स्त्री और पुत्रोंके पीछे मैं नरकसमुद्र में प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ ऐसे कहकर पुत्र और स्त्रीके सहित कुरुक्षेत्रको गया वहां भूंखा बारह वर्षतक रहकर ॥ ३४ ॥ जूठा व मैला भोजन करताहुआ राक्षसीयोनि को प्राप्तहोरहा काशी, प्रयाग, पुष्कर वैसेही नैमिष ॥ ३५ ॥ गङ्गासागरसंगम वैसेही कनखल, महापवित्र केदार, प्रभास और शशिभूषणआदि ॥ ३६ ॥ सब तीर्थोंमें घूमकर पापयोनि मे रमताहुआ हे नृप ! चिन्ता करनेलगा कि यह मेरी देह किसीतरह नहीं छूटती ॥ ३७ ॥ इससे अब अपने पापकी शुद्धिके वास्ते अग्निमें प्रवेशकरूं तब पुत्रोंके सहित व उत्तम व्रतवाली उसकी

जन्मानि अन्यजन्मकृतानिच ॥ भार्य्यापुत्रकृतेनैव गतोहन्नरकार्णवम् ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वाकुरुक्षेत्रं पुत्रदारादिभिस्सह ॥ तत्रद्वादशवर्षाणि उषित्वासुबुभुक्षितः ॥ ३४ ॥ उच्छिष्टंकश्मलंभुङ्क्ते राक्षसींयोनिमाश्रितः ॥ वाराणसींप्रयागन्तु पुष्करन्नैमिषंतथा ॥ ३५ ॥ गङ्गासागरसम्भेदंक्षेत्रंकनखलंतथा ॥ केदारञ्चमहापुण्यं प्रभासंशशिभूषणम् ॥ ३६ ॥ अटित्वासर्वतीर्थानिपापयोनिरतोनृप ॥ चिन्तयामासदेहम्मे ननिवृत्तंकथञ्चन ॥ ३७ ॥ तस्मात्पापविशुद्ध्यर्थंप्रविशामिहुताशनम् ॥ भार्य्यातस्यसपुत्रावै भर्तारंसुव्रताऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥ किञ्चिद्विज्ञापयामित्वां यदिमांमन्यसेविभो ॥ क्षणमात्रेणदुःखेन साधयामिसुखंबहु ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणस्यहिधर्म्मोयं सर्वस्तद्वह्निसाधने ॥ तत्समाहृत्यदारूणि प्रदीप्यचहुताशनम् ॥ ४० ॥ अहंविशाम्यविधवा भर्तारंप्रथमंद्रुतम् ॥ नपश्यामिपतन्तंवै ज्वलनेदारुणेभृशम् ॥ ४१ ॥ उक्तासाकाशवाण्याच मातेमृत्युभयंशुभे ॥ श्रूयतांममवाक्यंहि यथाधर्म्मोनहीयते ॥ ४२ ॥ कु

स्त्री अपने पति ब्रह्मराक्षस से बोली ॥ ३८ ॥ कि हे विभो ! कुछ मैं आपसे कहती हूं जो आप मुझको मानतेहो तो सुनो कि मैं क्षणमात्र के दुःखसे बडे सुखको सिद्ध करतीहूं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण का यह सब धर्म अग्निही से सिद्ध होताहै इससे लकड़ियों को जमाकरके और अग्नि को जलाकर ॥ ४० ॥ सौभाग्यवती मैं पहिले शीघ्र अग्निमें प्रवेश करती हूं क्योंकि अतिदारुण अग्निमें प्रथम गिरतेहुये अपने पतिको मैं नहीं देखसक्ती हूं ॥ ४१ ॥ तब आकाशवाणी करके वह स्त्री कहीगई

कि हे शुभे ! तुझको मृत्युमे भय मतहोवे मेरी बातको सुनो जिससे धर्म नष्ट नहीं होगा ॥ ४२ ॥ कुब्जा और नर्मदाके समागममें ब्रह्मराक्षन छूटजाताहै वहा स्नान करके बिल्वाम्रक लिंगके पूजनसे स्वर्गको जाताहै ॥ ४३ ॥ व ब्रह्मलोक को प्राप्तहोताहै और राक्षसयोनि से मोक्ष होताहै तब ब्रह्मराक्षस बोला कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो और किसकी स्त्रीहो हे यशस्विनि ! ॥ ४४ ॥ पूर्वजन्म में कियेहुये शुभकर्मोंसे प्राणियोंके अनुग्रहके वास्ते आपका दर्शन होताहै तब आकाशवाणी बोली कि सब प्राणियों की कल्याण करनेवाली प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूपवाली हम हैं ॥ ४५ ॥ यह कहकर वह देवी वहीं अन्तर्द्धान होगई व पुत्र और स्त्रीकरके सहित हरिकेश

ब्जारेवासमायोगे ब्रह्मरक्षोविमोक्षणम् ॥ तत्रस्नात्वादिवंयाति बिल्वाम्रकसमर्चनात् ॥ ४३ ॥ लभतेब्रह्मलोकंच रक्षोयोनेश्चमोक्षणम् ॥ ब्रह्मराक्षसउवाच ॥ कासित्वंचवरारोहे कस्यचासियशस्विनि ॥ ४४ ॥ अनुग्रहार्थंभूतानां पूर्वजन्मकृतैश्शुभैः ॥ आकाशवाण्युवाच ॥ धन्याहंसर्वभूतानामव्यक्ताव्यक्तरूपिणी ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वातुसादेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ पुत्रदारान्वितोनत्वा हरिकेशस्सुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥ सम्प्राप्तस्स्वमुदायुक्तः कुब्जारेवासमागमम् ॥ तत्र स्नात्वायथान्यायमर्चयित्वामहेश्वरम् ॥ ४७ ॥ हुताशनंप्रविविशुः स्मृत्वादेवंहरिंहरम् ॥ स्वीयंगृहमिवाक्लेशाः कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ४८ ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहास्तु ब्रह्मतेजोवपुर्द्धराः ॥ दिव्ययानंसमारुह्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ४९ ॥ पुत्रदारसमायुक्तो हरिकेशोनृपोत्तम ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्दिविदीव्यतिदेववत् ॥ ५० ॥ शतमष्टोत्तरंतत्र लिङ्गानांपुण्यसङ्गमे ॥ मार्कण्डेश्वरमित्येकं मधुरेश्वरमेवच ॥ ५१ ॥ शूलपाणिंतथैवान्यमगस्त्येश्वरमेवच ॥ एतान्य

महादेव के नमस्कार करके ॥ ४६ ॥ बडे आनन्द से युक्त कुब्जा और नर्मदा के समागमको प्राप्तहुये वहां सविधि स्नानकरके और महादेवका पूजन करके ॥ ४७ ॥ काम और क्रोधसे विवर्जित व क्लेशरहित हरिहरदेवको स्मरण करके अपने मकान की नाईं अग्निमें सब प्रवेश करतेहुये ॥ ४८ ॥ उसी क्षणसे दिव्यदेहवाले ब्रह्मतेज वाले शरीर को धारण कियेहुये दिव्यसवारी पर सवार हो सब ब्रह्मलोक को प्राप्त होतेहुये ॥ ४९ ॥ हे नृपोत्तम ! पुत्र और स्त्री के सहित हरिकेश ब्राह्मण उस तीर्थ के माहात्म्य से स्वर्गमें देवताओंके समान विहार करते हुये ॥ ५० ॥ उस पवित्र संगममें एकसौ आठ लिंगहैं मार्कण्डेश्वर यह एक और मधुरेश्वर ॥ ५१ ॥ वैसेही

अन्य शूलपाणि और अगस्त्येश्वर ये व और भी यहां सिद्धलिंग हैं ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! यह सब यथार्थ आप से कहागया कुब्जा और नर्मदा का सङ्गम देवता और दैत्योंकरके सेवन कियागया है ॥ ५३ ॥ सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा को जो प्रातःकाल भक्तिसे कीर्त्तन करताहै वह सब पापोंसे छूटाहुआ महादेवजी के पुरको प्राप्तहोता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेकुब्जामाहात्म्येत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि जिस कुब्जामें गन्धर्व, सर्प और राक्षसभी सब पापोंसे छूटे व निर्मलचित्तहुये उस कुब्जाकी उत्पत्ति को ॥ १ ॥ हे महामुने ! विस्तार से

न्यानिचैवेह सिद्धलिङ्गानिसन्तिवै ॥ ५२ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं कथितंतवसुव्रत ॥ कुब्जारेवासमायोगं सुरासुरनिषेवितम् ॥ ५३ ॥ प्रातर्यःकीर्तयेद्भक्त्या नर्म्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सशैवंलभतेपुरम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकुब्जामाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ समुत्पत्तिंचकुब्जाया यस्यांविमलमानसाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ १ ॥ एतद्वैश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणमहामुने ॥ कथ्यतांमुनिशार्दूल समाख्यानंपुरातनम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ चित्राङ्गदःशक्रसुतो गन्धर्वःकाममोहितः ॥ ३ ॥ समालम्ब्यकुमारीणां दशलक्षाणिभारत ॥ रेमेयथेच्छयासोपि पश्चान्मुक्तश्चकिल्बिषात् ॥ ४ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथावृत्तंपुरातनम् ॥ सुवर्णोनामगन्धर्वस्तस्यभार्य्यायशस्विनी ॥ ५ ॥ हेमगर्भेतिविख्याता शक्रस्यैवयथाशची ॥ सुतातस्यास्सुका

हम सुननेकी इच्छा करते हैं सो हे मुनिशार्दूल ! इस पुराने आख्यानको आप कहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! सब पापोंकी नाश करनेवाली दिव्य कथाको आप सुनो कि इन्द्रका पुत्र चित्राङ्गद नामका गन्धर्व कामसे मोहको प्राप्तहोरहा ॥ ३ ॥ हे भारत ! दशलाख कुमारियों को लेकर इच्छानुसार रमताहुआ पीछेसे वह भी पापसे छूटगया ॥ ४ ॥ हम पुराने आख्यान को कहेंगे जैसाहुआहै सुवर्ण नामका एक गन्धर्व होताहुआ उसकी स्त्री यशवाली ॥ ५ ॥ हेमगर्भा इस

नाम से विख्यात जैसी इन्द्रकी इन्द्राणी वैसीही होतीहुई उसकी एक कन्या कामदेवको भी मोहनेवाली सुकामा इस नामसे विदितहुई ॥ ६ ॥ रूप और जवानी से युक्त वह कुबेरकरके ब्याहीगई पार्वतीकी सेवाके योगसे उसके पुत्रभी होताहुआ ॥ ७ ॥ केतुमाल इस नामसे विख्यात वह विद्याधरों के पुरमें राजाहुआ उसकी बड़ी रूपवाली शशिरेखा नामकी प्यारी स्त्रीहुई ॥ ८ ॥ वह मनकी रमानेवाली रति और प्रीति इन दो कन्याओं को उत्पन्न करतीहुई व वह केतुमाल अपनी कन्याओंको पाणिग्रहणपूर्वक कामदेवको देताहुआ ॥ ९ ॥ अब वे दशलाख कन्या जोकि चित्राङ्गद गन्धर्वके पास रहती थीं सब आभूषणोंसे भूषित सवारी पर चढ़ी

मेति विदितानङ्गमोहिनी ॥ ६ ॥ रूपयौवनसम्पन्ना ऊढावैधनदेनसा ॥ गौर्य्याराधनयोगेन तस्याःपुत्रोप्यजायत ॥ ७ ॥ केतुमालइतिख्यातो राजावैद्याधरेपुरे ॥ शशिरेखाप्रियातस्य भार्य्यावैरूपशालिनी ॥ ८ ॥ द्वेकन्येजनयामास रतिःप्रीतिर्मनोरमे ॥ ददौसकामदेवाय पाणिग्रहणपूर्वकम् ॥ ९ ॥ कन्यानांदशलक्षाणि भूषणैर्भूषितानिच ॥ तास्तु यानसमारूढाः कामरूपामनोरमाः ॥ १० ॥ विचित्रवस्त्राभरणा गौर्य्याराधनतत्पराः ॥ तावन्नभुज्यतेताभिस्ताम्बूलं भोजनादिकम् ॥ ११ ॥ यावन्नकार्य्यमस्माभिरितिसङ्कल्पमादधुः ॥ नित्यंतौर्य्यत्रिकन्तास्तु चक्रुःसर्वास्समाहिताः ॥ १२ ॥ वसन्तेसमनुप्राप्ते द्रष्टुंप्रेक्षणकम्पुरा ॥ पुष्पकेणविमानेन जग्मुस्ताइन्द्रमन्दिरम् ॥ १३ ॥ क्रीडयित्वायथा न्यायं मदिरामदविह्वलाः ॥ अदृष्ट्वैवभवानींताश्चक्रुस्ताम्बूलभक्षणम् ॥ १४ ॥ चित्राङ्गदस्यचापारं रूपंदृष्ट्वावरा ङ्गनाः ॥ मोहितानाभिजानन्ति मदिरोन्मत्तमानसाः ॥ १५ ॥ तैश्चापिकामितास्सर्वा गन्धर्व्वैर्मुदिताननाः ॥ ना

हुई यथेष्टरूपकी बनानेवाली मनकी रमानेवाली ॥ १० ॥ विचित्रवस्त्र और आभूषणोंको धारण कियेहुई पार्वतीकी सेवामें तत्पर होरहीं इस संकल्पको करतीहुई कि जबतक पार्वतीजी का पूजन न करेंगी तबतक भोजन व ताम्बूल को नहीं खावेंगी वे सब सावधान होकर पार्वतीजी के आगे नित्य नृत्य करतीहुई ॥ ११ । १२ ॥ प्राचीनसमय में वसन्त के प्राप्तहोने पर उत्सव देखने के वास्ते पुष्पक विमान करके वे सब इन्द्रके मन्दिर को जातीहुई ॥ १३ ॥ मदिरा के मदसे विह्वल होरहीं यथेष्ट क्रीड़ाकरके पार्वती के दर्शन किये विनाही ताम्बूल भक्षण करतीहुई ॥१४॥ वे वराङ्गना गन्धर्व्वकन्या चित्राङ्गद के अपाररूप को देखकर मदिरा के मदसे मत-

वाले मनवाली मोहको प्राप्तहोरहीं कुछ नहीं जानती हुई ॥ १५ ॥ उन गन्धर्वों करकेभी प्रसन्नमुखवाली सब गन्धर्वकन्या कामना कीगई कामके वेगसे अनेक प्रकार के हावभावों करके स्वर्ग में क्रीड़ा करती हुई ॥ १६ ॥ एक वर्षके व्यतीत होनेपर वे सब गन्धर्वपुर को आतीहुई फिर पार्वतीजी को देखनेके लिये उमामाहेश्वरपुरको जातीहुई ॥ १७ ॥ तदनन्तर देवी पार्वतीको नमस्कार करके इस वचन को बोलीं कि हे ईशानि! अपने नियम से टलीहुई हम सबकी आप रक्षाकरैं ॥ १८ ॥ तदनन्तर पापकर्म में रमेहुये उन गन्धर्वोंपर पार्व्वतीजी क्रोध करतीहुई और यह कहा कि जो लोग व्रतोंको नष्ट करतेहैं और जो लोग परस्त्रियोंको भ्रष्ट

नाविधैस्तथाकार्य्यैश्चिक्रीडुर्मन्मथाद्दिवि ॥ १६ ॥ अतीतेवत्सरेतास्तु गन्धर्वपुरमागताः ॥ गौरींद्रष्टुंसमाजग्मुरुमामाहेश्वरम्पुरम् ॥ १७ ॥ नमस्कृत्यततोदेवीमिदंवचनमब्रुवन् ॥ रक्षस्वास्माकमीशानि च्युतानांनियमात्स्वकात् ॥ १८ ॥ ततश्चुकोपदेवीतान्पापकर्म्मरतान्प्रति ॥ व्रतादिकहतायेये परदाराविदूषकाः ॥ १९ ॥ अपत्रपादुराचारास्सर्वलोकबहिष्कृताः ॥ तदधर्म्मस्यपापस्यानिष्कृतिर्द्धरणीतले ॥ २० ॥ कुमारींकामयेद्यस्तु कामलोभेनमोहितः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायांजायतेकृमिः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजंस्ततश्चित्राङ्गदःस्तुवन् ॥ प्रणम्यशिरसादेवीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ शापस्यमभयाद्भूरि विललापनराधिप ॥ अकार्य्यंकृतमस्माभिर्गन्धर्वतनयान्वितैः ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्तंकिमस्याद्य पापस्यगदनिष्कृतिम् ॥ उवाचवचनन्देवी गन्धर्वंकाममोहितम् ॥ २४ ॥ धर्म्मक्रियाविलुप्त

करते हैं ॥ १९ ॥ लज्जासे रहित, बुरे आचरण करते हैं सब लोकोंके बाहर कर दियेगये उनके अधर्म व पापका प्रायश्चित्त पृथिवी में नहीं है ॥ २० ॥ जो कामके लोभसे मोहको प्राप्तहोकर कुमारीकी इच्छा करताहै वह साठिहजार वर्षतक विष्ठा में कीड़ाहोताहै ॥ २१ ॥ इसी अन्तरमे हे राजन्! स्तुति करताहुआ चित्राङ्गद गन्धर्व शिरसे देवीको प्रणाम करके तदनन्तर इस वचनको बोला ॥२२॥ हे नराधिप! और शापके भयसे वह विलाप भी बहुत करता हुआ और कहा कि गन्धर्वोंके पुत्रोंसे युक्त मुझकरके अयोग्यकाम कियागया ॥ २३ ॥ आज इस पापका क्या प्रायश्चित्तहोगा इसकी निष्कृति आप मुझसे कहे तब कामसे मोहित गन्धर्वसे देवी वचन बोलीं ॥२४॥

कि धर्म कर्मसे रहित और स्वर्गसे गिरेहुये पुरुष को जो कुमारी के भ्रष्ट करने में पाप होताहै वह बड़े पुरुषों के रोयें खडे करनेवाला होताहै ॥ २५ ॥ कन्या के दुष्ट करनेमें जो पापहै उसका प्रायश्चित्त नहीं विधान कियागया है हमारी गन्धर्वकन्यायें मदिराके पीनेसे मोहित करदीगई ॥ २६ ॥ कामसे मोहित तुम सब हज़ारों गन्धर्व इस पापकरके कुबरे, बौना और अङ्गोंसे हीन होजावोगे ॥ २७ ॥ कन्याओ के बिगाडनेके दोषसे कुबरे और वानरोंके सरीखे मुखवाले देवताओं के हजार वर्षतक मनुष्यलोक में विचरोगे ॥ २८ ॥ अपने कर्म से कियेहुये दोषकरके पृथिवीमें पापको भोगो इसप्रकार देवीकरके शाप दियेगये वे सब गन्धर्व मनुष्यलोक

स्य स्वर्गलोकच्युतस्यच ॥ कुमारीदूषणेपापं महतांलोमहर्षणम् ॥ २५ ॥ कुमारीदूषणेपापे निष्कृतिर्नविधीयते ॥ ममगन्धर्वकन्याश्च मधुपानैर्विडम्बिताः ॥ २६ ॥ यूयंत्वनेनपापेन गन्धर्वाःकाममोहिताः ॥ कुब्जावामनहीनाङ्गा भविष्यथसहस्रशः ॥ २७ ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु मर्त्यलोकेचरिष्यथ ॥ कन्याविकृतदोषेण कुब्जामर्कटकाननाः ॥ २८ ॥ स्वकर्म्मकृतदोषेण पापंभुञ्जन्तुभूतले ॥ एवंशप्तास्तुतेदेव्या सर्वेमर्त्यसमागमन् ॥ २९ ॥ शोचन्तःस्वानिकर्म्माणि पूर्वजन्मकृतानिच ॥ बभ्रमुस्सर्वतीर्थानि लोकेचैवचराचरे ॥ ३० ॥ विषण्णवदनास्सर्वे पापेनानेनकर्षिताः ॥ शापस्यान्तन्नविन्दन्ति सर्वतीर्थान्भ्रमन्त्यपि ॥ ३१ ॥ एकविंशतिलक्षाणि गन्धर्वाणितथानघ ॥ नदेवानचतीर्थानि पापस्यास्यविशुद्धये ॥ ३२ ॥ नान्यद्वायुज्यतेकर्म्म मुक्त्वाचैवहुताशनम् ॥ कर्म्मणांदोषदाहेन मुञ्चामःपापकर्म्मणः ॥ ३३ ॥ दत्तोस्माकंमहाशापो पापमार्गनिवर्तकः ॥ एतास्मिन्नन्तरेप्राप्तस्सकुबेरस्सुराधिपः ॥ ३४ ॥ सम्प्राप्तोनैमिषारण्ये य

को जातेहुये ॥ २९ ॥ पूर्वजन्म मे कियेहुये अपने पापोंको सोचतेहुये इस चराचर लोकके सब तीर्थोंमें भ्रमतेहुये ॥ ३० ॥ इस पापसे खींचेगये, विषादयुक्त मुखवाले सब गन्धर्व सब तीर्थोंमें भ्रमतेहुयेभी शापके अन्तको नहीं पातेहुये ॥ ३१ ॥ हे अनघ ! इक्कीसलाख गन्धर्व तथा देवता और तीर्थ इस पापकी शुद्धिके वास्ते नहीं होसक्ते ॥ ३२ ॥ और भी अग्निको छोड़कर कोई कर्म योग्य नहीं होसक्ता इससे कर्मोंके दोषके जलाने से हम पापकर्म से छूटजावेंगे ॥ ३३ ॥ पापकी राहका छुडानेवाला महाशाप हमको दियागया है इसी अन्तर में कुबेर के सहित इन्द्र आते हुये ॥ ३४ ॥ जहां चित्रांगद आदि गन्धर्व रहे उसी नैमिषारण्य में प्राप्तहुये वे देव

उन गन्धर्वों को देखकर बोले कि तुम जलो मत क्षणमात्र ठहरो ॥ ३५ ॥ जबतक कि उमामाहेश्वरपुर में हम जाकर तुम्हारा हाल कहैं इस प्रकार कहकर पर्वतों में उत्तम कैलास को इन्द्र जातेहुये ॥ ३६ ॥ पार्वती करके सहित महादेव को साष्टाङ्ग प्रणामकरके बोले कि हे देवि ! हे सुरेशानि ! हे संसारसमुद्र से तारनेवाली ! आप की जयहो ॥ ३७ ॥ यह सब चराचर त्रैलोक्य तुम्हीं से रचाहुआ है शक्तिरूप से सब प्राणियों में भी तुम्हीं व्याप्त होरही हो ॥ ३८ ॥ इत्यादि वचनों से इसप्रकार देवीजी की इन्द्र स्तुति करतेहुये स्तोत्रोंसे स्तुति कीगई महादेवीजी इन्द्र से वचन बोलीं ॥ ३९ ॥ कि तुम्हारे कौन पीड़ा उत्पन्नहुई है सो हमसे यथार्थ कहो तब हे

श्चित्राङ्गदादयः ॥ तान्दृष्ट्वासोब्रवीद्देवः क्षणमात्रंप्रतीक्षत ॥ ३५ ॥ उमामाहेश्वरेयावद्गच्छिमगत्वायथोदितम् ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ ३६ ॥ साष्टाङ्गंचनमस्कृत्य उमयासहितंहरम् ॥ जयदेविसुरेशानि संसारार्णवतारिणि ॥ ३७ ॥ त्वयासृष्टमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ व्यापिनीशक्तिरूपेण सर्वेषांप्राणिनामपि ॥ ३८ ॥ इत्येवमादिभिर्वाक्यैर्देवीन्तुष्टाववासवः ॥ स्तोत्रैस्स्तुतामहादेवी शक्रंवचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ आर्तिःकातेसमुत्पन्ना यथार्थंकथयस्वमे ॥ उवाचवचनंशक्रः पार्वतींप्रतिभारत ॥ ४० ॥ वरदायदिमेदेवि वरंदातुंत्वमिच्छसि ॥ चित्राङ्गदादिपापस्य मोक्षणंक्रियतांशुभे ॥ ४१ ॥ देव्युवाच ॥ शिवाज्ञावर्ततेलोके पापस्यास्यविशुद्धये ॥ तस्मात्पापविशुद्ध्यर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ४२ ॥ देवदेवंमहादेवं याचस्वपरमेश्वरम् ॥ एवंदेव्यावचःश्रुत्वा शक्रःप्रोवाचशङ्करम् ॥ ४३ ॥ निष्कृतिस्त्वस्यपापस्य क्रियतांवचनान्मम ॥ शङ्करउवाच ॥ यज्ञपाकाश्रमंगत्वा मेकलातीरमाश्रितम् ॥ ४४ ॥ यज्ञप

भारत ! इन्द्र पार्वतीजी के प्रति वचन बोले ॥ ४० ॥ कि हे देवि ! जो आप वर की देनेवालीहो और मुझको वरदेनेके लिये इच्छा करतीहो तो हे शुभे ! चित्रांगद- आदि गन्धर्वों के पापोंको छुडादीजिये ॥ ४१ ॥ तब देवीजी बोलीं कि लोकमें इस पापकी निशुद्धिके वास्ते महादेवजी की आज्ञा वर्तमान है इससे पापोंकी विशुद्धि के वास्ते तीनों लोकों में विख्यात ॥ ४२ ॥ देवताओं के देवता परमेश्वर महादेवजी से याचनाकरो इस प्रकार देवी के वचन को सुनकर इन्द्र महादेवजी से बोले ॥ ४३ ॥ कि इस पापका प्रायश्चित्त हमारे वचन से कियाजावे तब महादेव जी बोले कि नर्मदा के तटमें विद्यमान यज्ञपाकाश्रम को जाकर ॥ ४४ ॥ विन्ध्या-

चलके उत्तम पुत्र यज्ञपर्वत को प्राप्तहोकर वहां परमसिद्धि का देनेवाला यज्ञेश्वर देवलिंग है ॥ ४५ ॥ और भी नर्मदातटके आश्रित बिल्वाम्रक नामका दूसरा लिंग है उस पुण्यस्थान में इस शापका अन्त होगा ॥ ४६ ॥ इन्द्रने इस वृत्तान्त को गन्धर्वों से कहदिया तब हे महाराज ! कुबरेपन को प्राप्त होरहे इक्कीसलाख गंधर्व उस संगम में शापसे छूटगये ॥ ४७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इसीसे वह कुब्जा महानदी कहीजाती है दिव्य सवारियों पर सवार मरुद्गणों करके स्तुति कियेजाते ॥ ४८ ॥ पापोंसे छूटेहुये, बिल्वाम्रकलिंग को पूजन करके परमआनन्द से युक्त गन्धर्व अपने लोकको प्राप्तहुये ॥ ४९ ॥ जैसे पूर्वकाल में रहे वैसेही इस तीर्थके प्रभाव से

र्वतमासाद्य विन्ध्यस्यैवसुतोत्तमम् ॥ तत्रयज्ञेश्वरन्देवं लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ ४५ ॥ बिल्वाम्रकंतथाचान्यत्कल्पगातीरमाश्रितम् ॥ पुण्यस्थानेतुतत्रास्य शापस्यान्तोभविष्यति ॥ ४६ ॥ एकविंशतिलक्षाणि तत्रमुक्तानिसङ्गमे ॥ गन्धर्वाणांमहाराज कुब्जभावमुपेयुषाम् ॥ ४७ ॥ महानदीनृपश्रेष्ठ कुब्जातेनप्रकीर्तिता ॥ दिव्ययानसमारूढाः स्तूयमानामरुद्गणैः ॥ ४८ ॥ मुदापरमयायुक्ता गान्धर्वलोकमाप्नुयुः ॥ बिल्वाम्रकंपूजयित्वा गन्धर्वागतकिल्बिषाः ॥ ४९ ॥ यथापूर्वंतथेदानीं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ हर्षेणमहतायुक्तः शक्रोपित्रिदिवालयम् ॥ ५० ॥ जगामत्रिदशैस्सार्द्धं परिपूर्णमनोरथः ॥ षडस्यचोत्तरेभागे षडस्यदक्षिणेतथा ॥ ५१ ॥ एवन्तेकथितोराजन् रेवाकुब्जासमागमः ॥ अनेकेयस्यमाहात्म्यात्संसिद्धिंपरमाङ्गताः ॥ ५२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकुब्जामाहात्म्येचित्राङ्गदशापमोचनोनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥

अबभी होगये व बड़े आनन्दसे युक्त इन्द्रभी पूरे मनोरथवाले होकर देवताओंके सहित स्वर्गको जातेहुये व छह तीर्थ इसके उत्तरभागमें और वैसेही छह इसके दक्षिणभागमेंभी हैं ॥ ५०।५१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नर्मदा और कुब्जाका समागम तुमसे कहागया जिसके माहात्म्यसे अनेक लोग परमसिद्धि को प्राप्तहुये ॥ ५२ ॥ जिसके सुनने और कहनेसे संसारबन्धन से छूटजाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुब्जामाहात्म्येचित्राङ्गदशापमोचनोनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और सब पापोंके हरनेवाले स्वर्गकी नसेनी के तुल्य सब तीर्थोंमें उत्तम दिव्य तीर्थ को कहते हैं ॥ १ ॥ हे नृप ! माहेश्वरपुर में सवाकरोड़ तीर्थ रौद्र और वारुणतीर्थके कोसभरके प्रमाणमेंहैं ॥ २ ॥ हे महाराज ! इसके बीचमें शिवक्षेत्र कहागया है इसमें जो प्राणत्याग करताहै वह महादेवजी के लोकमें आनन्दित होताहै ॥ ३ ॥ तिर्यग्योनि में प्राप्त होरहे जे पापी कीड़े, पक्षी और मृगआदि पशुहैं वेभी शिवजी के स्थानको प्राप्तहोते हैं जहां महादेवजी देवताहैं ॥ ४ ॥ तिलोदकके देनेसे उसके माता और पिताके कुलके पितर महाप्रलयतक तृप्त रहतेहैं ॥ ५ ॥ वहां ब्रह्मा करके असंख्य उत्तम यज्ञ कियेगये और इन्द्र

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थानांतीर्थमुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंदिव्यं स्वर्गसोपानसन्निभम् ॥ १ ॥ सपादकोटितीर्थानि पुरेमाहेश्वरेनृप ॥ रौद्रंवारुणमासाद्य क्रोशमात्रप्रमाणतः ॥ २ ॥ अत्रान्तरेमहाराज शिव क्षेत्रमुदाहृतम् ॥ प्राणत्यागञ्चयःकुर्य्याच्छिवलोकेचमोदते ॥ ३ ॥ तिर्य्यग्योनिगताःपापाः कीटपक्षिमृगादयः ॥ तेपियान्तिशिवस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ४ ॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकाःपितृकास्तथा ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति या वदाभूतसम्प्लवम् ॥ ५ ॥ तत्रेष्टाब्रह्मणापूर्वमसंख्येयामखोत्तमाः ॥ शक्रश्चदेवराजत्वं तत्रेष्ट्वासमवाप्तवान् ॥ ६ ॥ कार्त्तवीर्य्येणतत्रैव कृतंयज्ञशतम्पुरा ॥ अयोध्यायांपुराराजन्यज्ञदानपरायणः ॥ ७ ॥ आदित्यस्यसुतश्चासीत्सूर्य्यवंशे महीपतिः ॥ जित्वासुरांस्तथादैत्यान् रक्षोगणसमन्वितान् ॥ ८ ॥ मनुर्नाम्नाचक्रवर्ती शक्रादीशाद्गुणोत्तमः ॥ पुरोत्त मेनसर्पन्ति मृत्युरोगजरास्तथा ॥ ९ ॥ शतार्द्धसाप्तभौमैश्चगृहैर्हेममयैश्शुभैः ॥ वापीकूपतडागानां दीर्घिकानांशतैर्यु

भी वहीं यज्ञकरके देवताओं की राज्यको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ और पूर्वकालमें वहीं कार्त्तवीर्य राजाकरके सौयज्ञ कियेगये हे राजन् ! पूर्वकाल में यज्ञ और दानमें तत्पर सूर्यवंश में सूर्य के पुत्र अयोध्यामें राजाहुये असुर तथा दैत्य और राक्षसों को जीतकर ॥ ७ । ८ ॥ चक्रवर्त्ती व इन्द्र और महादेवसे गुणों में उत्तम मनु नाम करके विदितहुये उस उत्तम अयोध्यापुरीमें मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था नहीं आती॥ ९ ॥ सुवर्णके बनेहुये शुभ, सात २ चौकवाले पचास महलोंकरके शोभित और सैकड़ों

वावली, कुवां और तालाबों व दीर्घिकाओं (बड़ी बावलियों) से युक्त ॥ १० ॥ देखनेलायक अनेकप्रकारके रूपवाले पुरुषोंसे सुशोभित,बंशी और सितारकी आवाजों से युक्त और भी हजारों बाजाओंके शब्दसे गूँजरही ॥ ११ ॥ कुबेरकी अलकापुरीकी नाईं और इन्द्रकी अमरावतीकी तरह देवताओंकी रचीहुई अयोध्यापुरी वैसेही विराजमान होतीहुई ॥ १२ ॥ वहा ढाईलाख वर्ष सब प्रजा जीवतीहुई वहीं सूर्यवंशमें सालङ्कायन राजर्षि परमधार्मिक होतेहुये ॥ १३ ॥ जिन्होंने अनेकप्रकारके हजारों यज्ञोंकरके इसपृथिवीको जलादिया न वह देश,न वह तीर्थ,न वह राज्य,न वह आश्रम बाकीरहा ॥ १४॥ जहां सालङ्कायन राजाकरके महायज्ञोंसे यजन न कियागया

ना ॥ १० ॥ सुशोभिताप्रेक्षणीयैर्नानारूपैर्विलासिभिः ॥ वेणुवीणाध्वनियुता नानावाद्यैस्सहस्रशः ॥ ११ ॥ अलकेव कुबेरस्य शक्रस्येवामरावती ॥ पुरीविराजतेतद्वदयोध्यादेवनिर्म्मिता ॥ १२ ॥ लक्षाणिद्वेचसार्द्धाणि प्रजाजीवन्तितत्रच ॥ तत्रैववंशेराजर्षिरभूत्परमधार्मिकः ॥ १३ ॥ नानामखसहस्रैर्योददाहपृथिवीमिमाम् ॥ नतद्देशोनतत्तीर्थं नतद्राष्ट्रन्नचाश्रमः ॥ १४ ॥ नेष्टंयत्रमहायज्ञैः सालङ्कायनभूभृता ॥ सस्यमालाधृतापृथ्वी धनधान्यसमन्विता ॥ १५ ॥ स्वयंकामदुघागावः पट्टवस्त्रंमहीरुहाः ॥ यज्ञैस्सर्वैर्विवाहैश्च वेदैर्माङ्गल्यमङ्गलैः ॥ १६ ॥ एवन्तुसततंधात्री कालेनमहतातत ॥ अनावृष्टिरभूद्राष्ट्रे पुराद्वादशवार्षिकी ॥ १७ ॥ मृताजानपदास्सर्वे द्विपदाश्चचतुष्पदाः ॥ तृणगुल्मलतावल्ल्यो भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ १८ ॥ हाहाकारोमहानासीद्देवासुरनृणांतथा ॥ सालङ्कायनराजर्षिश्चिन्तयामासभारत ॥ १९ ॥ जन्मप्रभृतिमेपापं किञ्चिदेवनविद्यते ॥ पूजयामिहरिन्देवंसंसारार्णवतारणम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणांश्चमुनींश्चैव तर्पयामा

हो अन्नके समूहको धारण कियेहुई पृथिवी धन और धान्यसे युक्त होतीहुई ॥१५॥ गौवें आपही अभीष्टसमयमें दूधदेनेवाली होतीहुई और वृक्ष रेशमी वस्त्रोंको देतेहुये यज्ञ व वेद और सब विवाहआदि मङ्गलकामोंसे पृथिवी निरन्तर शोभित होतीहुई इस प्रकार बहुतकाल व्यतीत हुआ तदनन्तर पूर्वकालमें उस देशमें बारह वर्षकी अनावृष्टि होतीहुई ॥ १६ । १७ ॥ सब देशवासी मनुष्य और पशु मरतेहुये घास, फूस, लता, बेली और चारो प्रकारका भूतग्राम नष्ट होताहुआ ॥ १८ ॥ उससमय में देवता, दैत्य और मनुष्यों का बड़ा हाहाकार हुआ हे भारत ! तब सालङ्कायनराजर्षि चिन्ता करतेहुये ॥ १९ ॥ जन्म से लेकर आजतक कुछ मेरा पाप नहीं

जानपडता संसारसमुद्र से तारनेवाले हरिदेव का हम पूजन करतेहैं ॥ २० ॥ ब्राह्मण और मुनियों को मैंने यथेष्ट तृप्त किया यह कहकर बुद्धिसे बृहस्पति के समान ब्रह्मवादी वशिष्ठजी को ॥ २१ ॥ साष्टाङ्ग प्रणाम करके भक्तिसे राजा पूछतेहुये कि हे विप्र ! यह बारहवर्षकी अनावृष्टि क्यों हुई ॥ २२ ॥ ब्राह्मण और देवताओं का अपराध मुझकरके कुछभी नहीं कियागया हे अनुग्रहतत्पर ! यह मुझको बडा संशय है आप इसको जानते हो ॥ २३ ॥ तब वशिष्ठजी बोले कि हे महाबाहो, राजन् ! अनावृष्टि के कारणको आप सुनो पूर्वकाल के वार्षिकयज्ञ में वृद्धमुनियों ने कहाहै ॥ २४ ॥ सभामें उनके वचन को सुनकर उपाय करना चाहिये तबतक

सचेच्छया ॥ बृहस्पतिसमंबुद्ध्या वशिष्ठंब्रह्मवादिनम् ॥ २१ ॥ पप्रच्छनृपतिर्भक्त्या साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ अनावृष्टिर भूद्विप्र कथंद्वादशवार्षिकी ॥ २२ ॥ नापराधोमयाकश्चित्कृतोब्राह्मणदेवयोः ॥ संशयोमेमहांस्तत्र वेदानुग्रहतत्पर ॥ २३ ॥ वशिष्ठउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो अनावृष्टेश्चकारणम् ॥ पुरासांवत्सरेयज्ञे वृद्धाश्चमुनयोवदन् ॥ २४ ॥ तेषां चवचनंश्रुत्वा कर्तव्यंजनसंसदि ॥ तावदेवमुनिश्चात्रिः पुलस्त्यःपुलहः क्रतुः ॥ २५ ॥ भृगुरग्निर्मरीचिश्चकश्यपोथवि भाण्डकः ॥ जमदग्निश्चमाण्डव्योयमोविष्णुस्तथाङ्गिराः ॥ २६ ॥ बृहस्पतिस्तथादक्षः शातातपपराशरौ ॥ उशना गौतमश्चैव व्यासःकात्यायनस्तथा ॥ २७ ॥ विश्वामित्रोथशाण्डिल्यो कक्षःकात्यायनिस्तथा ॥ हारीतःशङ्खलि खितौ याज्ञवल्क्योथगालवः ॥ २८ ॥ आत्रेयश्शौनकोगर्गो जह्नुरुद्दालकस्तथा ॥ कौशिकोभार्गवोगस्त्यो दुर्वासा श्च्यवनस्तथा ॥ २९ ॥ एतेचान्येपिबहवो ऋषयस्सूर्यवर्चसः ॥ ३० ॥ धर्माणामुपदेष्टारो वेदशास्त्रानुयायिनः ॥

अत्रिमुनि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु ॥ २५ ॥ भृगु, अग्नि, मरीचि, कश्यप, विभाण्डक, जमदग्नि, माण्डव्य, यम, विष्णु, वैसेही अङ्गिरा ॥ २६ ॥ बृहस्पति वैसेही दक्ष, शातातप, पराशर, शुक्र, गौतम, व्यास तथा कात्यायन ॥ २७ ॥ विश्वामित्र,शाण्डिल्य,कक्ष, कात्यायनि, हारीत, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, गालव ॥ २८॥ आत्रेय, शौनक, गर्ग, जह्नु, उद्दालक वैसेही कौशिक, भार्गव, अगस्त्य, दुर्वासा तथा च्यवन ये व औरभी बहुतसे ऋषि,सूर्यके समान तेजवाले ॥२९।३०॥ धर्मोंके

सिखानेवाले, वेद और शास्त्रके अनुकूल बर्ताव करनेवाले, निश्चय से अनावृष्टि को जानकर अयोध्याको जातेहुये ॥ ३१ ॥ परमधार्मिक वे राजा आये हुये मुनियों को देखकर हे महाभाग ! स्वर्गमें दूसरे इन्द्रके नाईं उठतेहुये ॥ ३२ ॥ व अर्घ और पाद्यआदि से आपही वे राजा उनका यथायोग्य पूजन करके देखने में उत्तम आसनपर बैठेहुये उन मुनियों से अनावृष्टि का कारण पूंछतेहुये तब सालङ्कायन राजासे मुनिलोग वचन बोलतेहुये ॥ ३३ । ३४ ॥ कि, भूत और भविष्यकाल के तत्त्वके जाननेवाले और सात कल्पतक रहनेवाले सबके गुरु महात्मा मार्कण्डेय का पूजन करो ॥ ३५ ॥ उनके आश्रम को जाकर ब्राह्मणों करके सहित विचारकरो

अनावृष्टिंतुवैज्ञात्वा प्रत्ययोध्यांप्रतस्थिरे ॥ ३१ ॥ आगतान्समुनीन्दृष्ट्वा राजापरमधार्म्मिकः ॥ उदतिष्ठन्महाभाग दिविशक्रइवापरः ॥ ३२ ॥ तानभ्यर्च्ययथान्यायमर्घपाद्यादिभिस्स्वयम् ॥ उपविष्टान्यथान्यायमासनेशुभदर्शने ॥ ३३ ॥ सकारणमनावृष्टेस्तानपप्रच्छमहात्मनः ॥ अब्रुवन्मुनयोवाक्यं सालङ्कायनभूपतिम् ॥ ३४ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञं सप्तकल्पान्तवासिनम् ॥ मार्कण्डेयंमहात्मानं सर्वेषांगुरुमर्चय ॥ ३५ ॥ तस्याश्रमपदंगत्वा ब्राह्मणैस्सहचिन्तय ॥ यंयंधर्म्मंसवदति तंतंकर्तुमिहार्हसि ॥ ३६ ॥ एवमुक्तोद्विजैस्सर्वैस्सालङ्कायनभूपतिः ॥ उवाचवचनंसर्वान्मुनीन्द्रान्श्रंसितव्रतान् ॥ ३७ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये प्रसादंमुनिसत्तमाः ॥ आदिदेशततोराजा भ्रातरौद्वारपालकौ ॥ ३८ ॥ सुधन्ववीरधन्वानौ प्रतीहारौमहाबलौ ॥ रथेहयान्नियुज्यन्तां ब्राह्मणारोहणम्प्रति ॥ ३९ ॥ ब्रह्मशर्म्मादेवशर्मा मन्त्रिणौतत्त्वदर्शिनौ ॥ पप्रच्छगमनार्थाय कर्तव्यञ्चयथादिशत ॥ ४० ॥ मन्त्रिणावूचतुः ॥ समयज्ञोमहाबाहो त्वमेवविहितंकु

जिस २ धर्मको वे कहैं उस २ को यहा करने के लिये तुम योग्यहो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सब ब्राह्मणों करके कहेगये सालङ्कायन राजा सब श्रेष्ठ व्रतवाले मुनियों से वचन बोले ॥ ३७ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! हम आपके इस प्रसाद को बड़ा अनुग्रह समझते हैं यह कहकर तदनन्तर राजा द्वारपालक, अपने भाई, महाबली, प्रतीहार सुधन्वा और वीरधन्वाको आज्ञादेतेहुये कि ब्राह्मणों के चढ़नेके वास्ते रथमें घोड़े जोतेजावें ॥ ३८ । ३९ ॥ तत्त्वके देखनेवाले ब्रह्मशर्मा और देवशर्मा इन दोनों मन्त्रियों

से जानेके वास्ते पूंछतहुये और करनेके योग्य कामोंको आज्ञा दिया ॥ ४० ॥ तब दोनों मन्त्री बोले कि हे महाबाहो ! आप समय के जाननेवाले हो उचित हो सो करिये तब धर्मशास्त्र के जाननेवाले राजा उन मन्त्रियों के वचन को सुनकर ॥ ॥ ४१ ॥ प्रसन्नता से स्नेहवाला होरहा है मन जिनका ऐसे राजा रसीली वाणीसे बोले कि ब्राह्मणों करके सहित हमको वहां अवश्य जाना है जहां मार्कण्डेय मुनि रहते हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कहकर हे भारत ! ब्राह्मणों करके सहित दिव्यसवारीपर चढ़ेहुये राजा जातेहुये और नर्मदाके तटको प्राप्तहुये ॥ ४३ ॥ व धर्मारण्यको प्राप्तहो वे राजा मुनियो करके सहित बैठेहुये नमस्कार करने के योग्य

रु॥ राजातद्वचनंश्रुत्वा धर्म्मशास्त्रविशारदः ॥ ४१ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा हर्षगद्गदमानसः ॥ गन्तव्यंब्राह्मणै स्सार्द्धं यत्रकल्पान्तगोमुनिः ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वाययौराजाब्राह्मणैस्सहभारत ॥ दिव्ययानसमारूढस्सम्प्राप्तःकल्पगा तटम् ॥ ४३ ॥ धर्म्मारण्यंसमासाद्य मार्कण्डंमुनिभिस्सह ॥ ससमीपेसमासीनं प्रणम्यप्रणतिक्षमम् ॥ ४४ ॥ आपृ ष्टःकुशलन्तेन तेनवैब्रह्मवादिना ॥ उवाचवचनंराजा मार्कण्डंज्ञानचक्षुषम् ॥ ४५ ॥ अद्यमेकुशलंब्रह्मंस्त्वत्पादाम्बु जदर्शनात् ॥ किन्तुमांबाधतेनित्यं भविष्यंचैवतत्त्ववित ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अपमार्गेणप्रजानान्देवब्राह्म णहिंसया ॥ वर्णाश्रमविलोपेन अधर्म्मोधर्म्मबाधकः ॥ ४७ ॥ शम्भुर्नपूज्यतेयत्र रुद्रभागोनदीयते ॥ देशेतस्मिन्न नावृष्टिर्दुर्भिक्षंमरणंध्रुवम् ॥ ४८ ॥ विनश्यन्तिप्रजाराष्ट्रे अल्पायुर्नृपतिर्भवेत् ॥ अब्रह्मण्याब्राह्मणाश्च शूद्रावैब्रह्मवा

मार्कण्डेयजी को प्रणामकरके समीप में बैठगये ॥ ४४ ॥ तब उन राजा और उन ब्रह्मवादी मुनिकरके आपस में कुशलप्रश्न हुआ फिर ज्ञानही जिनके नेत्र ऐसे मार्कण्डेयजीसे राजा वचन बोले ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज आपके चरणकमलों के दर्शन से मेरा कुशल है परन्तु हे तत्त्ववित ! कुछ भविष्यवार्ता हमको नित्य बाधा करती है ॥ ४६ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि प्रजाओं की कुचाल से और देवता व ब्राह्मणों की पीड़ासे व वर्णाश्रमधर्म के लोपसे जो अधर्म होताहै वह धर्मको बाधताहै ॥ ४७ ॥ जिस देशमें महादेवजी नहीं पूजेजाते और रुद्रका भाग नहीं दियाजाता उस देशमें अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और मरण अवश्य होताहै ॥ ४८ ॥

हैं और शूद्र वेदोंकी वार्त्ता करते हैं ॥ ४९ ॥ व जब शूद्र
राज्यमें प्रजा नाशको प्राप्तहोती हैं और राजा अल्पायु होजाता है व ब्राह्मण ब्रह्मकर्म से हीन होजाते हैं ॥ ५० ॥ ऐसे पाप करनेवालों
शैवमन्त्रोंको जपतेहैं और ब्रह्मसूत्रको धारण करते हैं तभी गृहस्थ फकीरोंके चिह्नोंको धारण करते हैं और ब्रह्मचारी व्रतोंको छोड़देते हैं ॥ ५० ॥ ऐसे पाप करनेवालों
को राजा अपने देशसे निकाल देवै और उनके बायें तरफ यज्ञोपवीत व उसीतरह अग्निसे दागकर जनेऊके आकार बनवादेवै ॥ ५१ ॥ और लोकमें निन्दित गदहे
की सवारी उनको करादेवे हे राजन् ! यह अनावृष्टिका कारण आपसे कहागया ॥ ५२ ॥ अनावृष्टि से अन्नकी हानि होती व अन्नकी हानिसे प्रजा मरती व प्रजा

स्वपापंकृतव
दिनः ॥ ४९ ॥ शिवजपंयज्ञसूत्रं शूद्रोधारयतेयदा ॥ अलिङ्गिनोलिङ्गिनश्च अव्रताव्रतधारिणः ॥ ५० ॥ स्वपापंकृतव
न्तश्च तान्स्वराष्ट्रेप्रवासिनः ॥सव्याङ्गेब्रह्मसूत्रंच वह्निसूत्रञ्चकारयेत् ॥ ५१ ॥ गर्दभारोहणन्तस्यकारयेल्लोकगर्हितम् ॥
एतत्तेकथितंराजन्ननावृष्टेश्चकारणम् ॥ ५२ ॥ अनावृष्ट्यासस्यहानिस्तत्त्क्षयान्म्रियतेप्रजा ॥ प्रजाक्षयाद्वेदहानिस्त
द्धानौयज्ञसंक्षयः ॥ ५३ ॥ तत्क्षयाद्धर्म्महानिश्च तद्धानौवर्णसङ्करः ॥ तत्सङ्करात्कर्म्मलोपः पतनंनरकेध्रुवम् ॥५४॥
गङ्गासागरसम्भेदे चाण्डालास्सप्तसाम्प्रतम् ॥ कणधूमंपिबन्त्याशु ऊर्द्ध्वपादाह्यधःशिराः ॥ ५५ ॥ चकम्पिरेसुरास्स
र्वे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ देवराजस्सुरैस्सार्द्धमासनाच्चलितोनृप ॥ ५६ ॥ तपसस्तुप्रभावोयमपिदृष्टोनराधिप ॥ नै
मिषेचमहारण्ये सुरासुरनमस्कृते ॥ ५७॥ शतमष्टोत्तरंसर्वे तापसाःशूद्रजन्मनः ॥ ब्रह्मकर्म्मसमासाद्यस्थिताधर्म्मप

के नाशसे वेदकी हानि होती और वेदकी हानि होनेपर यज्ञोंका नाशहोताहै ॥ ५३॥ व यज्ञोंके नाशसे धर्मकी हानि होती व धर्मकी हानि होनेपर वर्णसङ्कर होजाता व
वर्णसङ्कर होनेसे कर्मों का लोपहोता और कर्मोंके लोपसे निश्चय नरकमें गिरना होता है ॥ ५४ ॥ इस समय विषे गङ्गासागरसंगम में सात चाण्डाल नीचेको शिर
किये और ऊपर को पावँ कियेहुये अन्नका धुवां शीघ्र पीते हैं ॥५५॥ इस काम से सब देवता, सिद्ध व गन्धर्व और किन्नर कांपतेहुये और हे नृप ! देवताओं करके
सहित इन्द्र अपने आसन से चलतेहुये ॥ ५६ ॥ हे नराधिप ! तपस्या का यह प्रभाव देखागया और देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये नैमिष महावन

में ॥ ५७ ॥ सब एकसौ, आठ शूद्रलोग तपस्वी, धर्म में तत्पर, ब्रह्मकर्म को प्राप्तहोकर स्थित हैं ॥ ५८ ॥ अधर्म करनेवाले पुरुषों के पापसे राजा लिप्त होजाता है व जिनका यज्ञ नहीं होना चाहिये उनके यज्ञ करनेवालों के स्थानमें अनावृष्टि सदा होतीहै ॥ ५९ ॥ और देवताओं के भी देवता महादेवजी के पूजन के न करने से न स्वर्ग, न मोक्ष और पूर्णभोग भी नहीं प्राप्तहोते ॥ ६० ॥ ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सब देवता महादेवजी को पूजते हैं फिर विचारे पापी मनुष्य व पापजीवी राजा क्या हैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य महादेव का पूजन नहीं करते वे पापभागी स्वर्ग, मोक्ष और भोगफलको नहीं पाते ॥ ६२ ॥ तिससे हे नृप ! ब्राह्मणोंकरके सहित

रायणाः ॥ ५८ ॥ अधर्म्मचारिणांपुंसां राजापापेनलिप्यते ॥ अयज्ञयाजकस्थाने अनावृष्टिर्भवेत्सदा ॥ ५९ ॥ अपूज नात्तथानित्यं देवदेवस्यशूलिनः ॥ नस्वर्गोनापवर्गश्च नभोगाश्चापिपुष्कलाः ॥ ६० ॥ ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राद्या अर्चयन्ति महेश्वरम् ॥ किम्पुनर्मानुषाःपापा राजानःपापजीविनः ॥ ६१ ॥ नार्चयन्तिमहेशंये तेनराःपापभागिनः ॥ नचस्वर्ग स्यमोक्षस्य फलंभोगमवाप्नुयुः ॥ ६२ ॥ तस्मान्नृपत्वंश्रेयांसि ब्राह्मणैस्सहाचिन्तय ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य रुद्रयज्ञं समारभ ॥ ६३ ॥ तेषांशिरांसिहोमेस्मिन्पातयत्वंयथाविधि ॥ समर्चयसुरेशानं ततश्शान्तिर्भविष्यति ॥ ६४ ॥ कामवर्षीचपर्ज्जन्यः पुनस्सृष्टिःप्रवर्तते ॥ मुच्यतांपापदोषेण राज्यंस्वर्गमवाप्स्यसि ॥६५॥ तवैतत्कथितंराजन्यथादृ ष्टंमयानघ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा राजापरमधार्मिकः ॥ ६६ ॥ नमस्कृत्यमुनिश्रेष्ठमृषिभिस्सहभारत ॥ अनुग्रहमिमंम न्ये त्वत्प्रसादाद्यथोदितम् ॥ ६७ ॥ आदिदेशप्रतीहारान्यज्ञसम्भारसिद्धये ॥ गत्वाऽयोध्यांपुरींरम्यामादेशम्मखस

तुम कल्याणोंको विचारो व नर्मदाके तट में प्राप्त होकर तुम रुद्रयज्ञको करो ॥६३॥ और उन चाण्डालों के शिरोंको इस होममें तुम डालदेवो और महादेवजी का विधिपूर्वक पूजनकरो तब शान्ति होगी ॥ ६४ ॥ मेघ समय में जल बरसेंगे फिर सृष्टिहोगी तुम पापदोष से छूटजावोगे राज्य और स्वर्गको पावोगे ॥ ६५ ॥ हे अन-घ ! हे राजन् ! आपसे यह कहागया जैसा मुझकरके देखागया था परमधार्मिक राजा उन मार्कण्डेयजीके इस वचन को सुनकर ॥ ६६ ॥ हे भारत ! ऋषियोंकरके सहित मुनियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय जी को नमस्कार करके कहा कि प्रसन्नतापूर्वक आपके इस कहने को हम बडा अनुग्रह समझते हैं ॥ ६७ ॥ तदनन्तर यज्ञ

की सामग्री तैयार करने के लिये द्वारपालों को राजा आज्ञा देतेहुये और कहा कि रम्य अयोध्यापुरी को तुम जाकर यज्ञ के वास्ते हमारी आज्ञा को कहो ॥ ६८ ॥
कि यज्ञ का सामान लेकर सब लोग आवें वैसेही एक हजार आठ हमारी रानी और राजकुमार ॥ ६६ ॥ और अनेक देशों के सब राजा सात रात्रि के अन्दर प्रवृत्त
होनेवाले यज्ञ में आवें ॥ ७० ॥ वे दोनों प्रतीहार राजाके नमस्कार करके अयोध्यापुरी को जातेहुये और राजा करके कहीहुई आज्ञा को वहां कहते हुये ॥ ७१ ॥
तदनन्तर एक हजारआठ रानी दिव्य वस्त्रों को धारण किये और जे राजकुमार व राजा लोग व और भी जो घर के काम करनेवाले हैं ॥ ७२ ॥ रम्भा और उर्वशीके

म्भवम् ॥ ६८ ॥ यज्ञोपस्करमादाय सर्वैरागम्यतामिति ॥ राज्ञीनाञ्चकुमाराणां सहस्रंसाष्टकंतथा ॥ ६९ ॥ सर्वांश्चैव महीपालान्नानादेशसमुद्भवान् ॥ सप्तरात्राभ्यन्तरतो यथायज्ञःप्रवर्तते ॥ ७० ॥ नमस्कृत्यगतौतौतु प्रतीहारौपुरम्प्रति ॥ कथयामासतुस्तत्र यथोद्दिष्टंनृपेणतु ॥ ७१ ॥ अष्टोत्तरसहस्रन्तु राज्ञीनांदिव्यवाससाम् ॥ कुमारायेचराजानोयेचान्येगृहकर्म्मिणः ॥ ७२ ॥ असूताक्षतयोनीनां लक्षमेकन्तुयोषिताम् ॥ रम्भोर्वशीसमानानां रूपेणाप्रतिमत्विषाम् ॥ ७३ ॥ महोरस्स्कन्धगात्राणां वाहानामयुतानिषट् ॥ सुवर्णरत्नपूर्णानां मुद्राणामयुतन्तथा ॥ ७४ ॥ सवत्सानांचधेनूनां त्रिंशल्लक्षाणियन्त्रितः ॥ पाण्डुराणांहयानान्तु अयुतानिदशैवतु ॥ ७५ ॥ घण्टाभरणशोभानां दन्तिनामयुतंतथा ॥ यज्ञोपस्करमादाय सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥ ७६ ॥ प्रस्थितौनर्म्मदांराज्ञे सन्निवेशयताम्पुरः ॥ प्रणम्यचाब्रवीद्राजा सप्तकल्पान्तवासिनम् ॥ ७७ ॥ आदेशोदीयतांमह्यं मखंयत्रप्रवर्तते ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ वैदूर्य्य

समान व रूपकरके और स्त्री जिनके बराबर नहीं होसक्ती व पुत्र जिनके नहीं हुये व योनि जिनकी क्षत नहीं हुई ऐसी एकलाख स्त्रियां ॥ ७३ ॥ और बड़ी छाती और
कांधेवाले साठहजार घोड़े सुवर्ण और रत्नोंकरके सहित दशहजार मुद्रा ॥ ७४ ॥ बछड़ों के सहित तीसलाख गौवें और भी एकलाख सफेद घोड़े ॥ ७५ ॥ घण्टा
और अम्बारी आदि आभूषणों की शोभा से युक्त दशहजार हाथी और भी सब यज्ञ का सामान लेकर ॥ ७६ ॥ वे दोनों द्वारपालक नर्मदा को यात्रा करतेहुये
और राजा के प्रत्यक्ष सब सामान को स्थापित करदिया तब राजा सात कल्पों के अन्त में भी वास करनेवाले मार्कण्डेयजी को प्रणाम करके बोले ॥ ७७ ॥ कि अब

मुझको आप करके आज्ञा दीजावे जहां यज्ञ किया जावे तब मार्कण्डेयजी बोले कि वैदूर्य्यपर्वत के पश्चिममें यज्ञयूप और मण्डप को बनवावो ॥ ७८ ॥ और भी सब यज्ञकी तैयारी वहीं कराइये तब राजा वशिष्ठ, वामदेव, भृगु, अङ्गिरा ॥ ७९ ॥ पुलस्त्य, पुलह, भारद्वाज, कश्यप, याज्ञवल्क्यमुनि, दुर्वासामुनि ॥ ८० ॥ विभाण्डक, पर्वत, विश्वामित्र, नारद, शौनक, गर्ग, संवर्त्त, पराशर ॥ ८१ ॥ आपस्तम्ब, शुक्राचार्य, व्यास, कात्यायन, गौतम, हारीत, शङ्ख, लिखित, ऋष्यशृङ्ग, सोमप ॥ ८२ ॥ और अट्ठासीहजार बालखिल्य नामक मुनियों को यज्ञ के वास्ते वरण करते हुये सब देवताओं करके नमस्कार करने के योग्य पर्वत के समान यज्ञ शोभित

स्यचवारुण्यां यज्ञयूपांश्चमण्डपान् ॥ ७८ ॥ अन्यांश्चयज्ञसम्भारान्सर्वांस्तत्रैवकारय ॥ वशिष्ठंवामदेवञ्च भृगुमङ्गिरसंतथा ॥ ७९ ॥ पुलस्त्यंपुलहंचैव भारद्वाजञ्चकश्यपम् ॥ याज्ञवल्क्यंमुनिञ्चैव मुनिंदुर्वाससंतथा ॥ ८० ॥ विभाण्डकंपर्वतञ्च विश्वामित्रञ्चनारदम् ॥ शौनकञ्चैवगर्गञ्चसंवर्तञ्चपराशरम् ॥ ८१ ॥ आपस्तम्बोशनोव्यासान् सकात्यायनगौतमम् ॥ हारीतंशङ्खलिखितौ ऋष्यशृङ्गञ्चसोमपम् ॥ ८२ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि बालखिल्यान्मुनींस्तथा ॥ सर्वदेवनमस्कार्य्यो यज्ञपर्वतसंज्ञितः ॥ ८३ ॥ हिरण्मयामहास्तम्भा यादृशैरुपशोभिताः ॥ बहुधायत्रशोभन्ते तथोक्तेयज्ञमण्डपे ॥ ८४ ॥ कुण्डस्थलीःस्रुवास्सर्वाः कृत्वाहेममयान्नृपः ॥ नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यै रसैश्चविविधैस्तथा ॥ ८५ ॥ सरितस्सागराञ्छैलांस्तीर्थराजञ्चसर्वशः ॥ लोकपालान्महाबाहुरसुरान्दैत्यदानवान् ॥ ८६ ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ ब्रह्माद्यांश्चसुरांस्तत्र मरुतोदेवतास्तथा ॥ ८७ ॥ विष्णुञ्चैवसुरेशानं

हुआ ॥ ८३ ॥ यज्ञमण्डपमें सुवर्णके बड़े बड़े खम्भे अनेक प्रकारके शोभित होरहे हैं ॥ ८४ ॥ कुण्ड, वेदी और स्रुवाओं को सुवर्ण के बनवाके अनेक प्रकार के चर्वण व भोजन करने योग्य अन्नों व अनेकप्रकार के रसों करके राजा सबका सत्कार करतेहुये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर नदी, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, तीर्थराज (प्रयाग), लोकपाल, असुर, दैत्य, दानव ॥ ८६ ॥ ग्रहों करके सहित चन्द्र व सूर्य, नक्षत्रो करके सहित ध्रुवमण्डल, ब्रह्मादि देवता, मरुत्नामके देवता ॥ ८७ ॥ और यज्ञमें सब देवताओं

के स्वामी साक्षात् यज्ञपुरुष विष्णुजी को और करोड़ों गणोंकरके सहित महादेव जी को राजाने आवाहन किया ॥ ८८ ॥ तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मणों करके आवाहन किये गये अग्नि करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाले, धुवांरहित, जलतेहुये ॥ ८९ ॥ वेद के शब्दों करके आकाश और पृथिवी को शब्दायमान करतेहुये आये फिर राजाने वशिष्ठजी से कहा कि कणधूम के आहार करनेवाले उन सात चाण्डालों को बुलावो ॥ ९० ॥ व नैमिषारण्य के रहनेवाले उन शूद्रों को आप बुलावें तब वशिष्ठजी बोले कि हे पार्थिव ! हम इसको दया समझते हैं जो आप हमसे कहतेहो ॥ ९१ ॥ तदनन्तर कुशाग्रसे राजा उन चाण्डालों व शूद्रोंके शिरों को काटकर

यज्ञतत्पुरुषंस्वयम् ॥ आवाहयन्महादेवं गणकोटिसमन्वितम् ॥ ८८ ॥ आवाहितस्ततश्चाग्निर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निर्धूमःप्रज्वलंश्चैव सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ ८९ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्दिवंभूमिञ्चनादयन् ॥ कणधूमकृताहारांश्चाण्डालान्सप्तवानय ॥ ९० ॥ तानानयतथाशूद्रान्नैमिषारण्यवासिनः ॥ वशिष्ठउवाच ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये यन्मांवदसिपार्थिव ॥ ९१ ॥ कुशाग्रेणततोराजा तेषांमूर्द्धान्यपातयत् ॥ तन्दृष्ट्वामानुषंहोमं सामिषंप्रेतरूपिणम् ॥ ९२ ॥ प्रणष्टतोयारेवातु विहायत्रिदिवङ्गता ॥ होमावसानेसम्प्राप्ते स्नानार्थंनर्म्मदांययुः ॥ ९३ ॥ शुष्कतोयान्ततोपश्यन्नर्म्मदांशंसितव्रताः ॥ विस्मयंपरमंप्राप्ताः प्राहदुर्वाससंनृपः ॥ ९४ ॥ चुकोपराजाविप्रेषु पापकर्मादुरासदः ॥ पर्जन्यार्थंवृष्टिकामैः कृतोयज्ञोनिरर्थकः ॥ ९५ ॥ पयःपुरातनंनष्टं नजातंवर्षणंकचित् ॥ राज्ञस्तुवचनंश्रुत्वा दुर्वासाश्चाब्रवीन्नृपम् ॥ ९६ ॥ मुनींश्चसर्वांस्तत्रस्थान्धर्म्मतत्त्वविशारदान् ॥ उदकंसर्वलोकानामीप्सितञ्चनसंशयः ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणानां

अग्निमें डालदिया मासंसहित प्रेतरूपी इस मानुष होमको देखकर ॥ ९२ ॥ जल जिसका नष्ट होगया ऐसी नर्मदा अपने स्थान को छोड़कर स्वर्ग को चलीगई होम की समाप्ति के, प्राप्त होनेपर स्नान के वास्ते सबलोग नर्मदा को गये ॥ ९३ ॥ वहां उत्तम व्रतवाले ऋषिलोग सूखे जलवाली नर्मदा को देखते हुये तब बड़े आश्चर्य्य को प्राप्तहुये राजा दुर्वासाजीसे बोले ॥ ९४ ॥ पापकर्मी व जबरदस्त राजाने ब्राह्मणोंपर कोप किया और कहा कि वर्षाकी कामनावाले हमलोगों करके मेघोंके वास्ते यह निरर्थकयज्ञ कियागया ॥ ९५ ॥ कि जिससे पुराना भी जल नष्ट होगया और वर्षा कहीं नहीं हुई राजा के इस वचन को सुनकर दुर्वासाजी राजा से बोले ॥९६॥ और

वहां बैठेहुये धर्मतत्त्व के जाननेवाले सब ऋषियों से भी बोले कि जल तो सबही लोकोंको प्रियहै इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ९७ ॥ तप, होम और वेदों के मन्त्र ब्राह्मणोंके वशमें रहतेहैं और हे नृप ! दक्षिणा और यज्ञकी रक्षा यजमानके वशमें होती है ॥ ९८ ॥ यज्ञका जो कुछ सामान वेदसे कहागयाहै वह सब यजमानके अधीन है और वेदकी जड़ ब्राह्मण हैं ॥ ९९ ॥ नर्मदा जल से रहित होगई और मेघ जल नहीं बरसते किया सबही कुछगया और श्रुति यह पुरानी है ॥ १०० ॥ जो चलीगई है उस नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाकी तुम राह देखो तब दुर्वासा के इस वचनको सुनकर राजाने यह कहा कि क्षमा कीजिये ॥ १ ॥ हे युधिष्ठिर ! वशिष्ठ और

तपोहोमो वेदमन्त्रावशेस्थिताः ॥ दक्षिणायज्ञरक्षाच यजमानवशेनृप ॥ ९८ ॥ यज्ञोपस्करणंकिञ्चिद्यच्चान्यद्वेदसम्मितम् ॥ तत्सर्वंयज्ञमानेन वेदमूलंद्विजोत्तमाः ॥ ९९ ॥ वितोयानर्म्मदाजाता पर्ज्जन्योनैववर्षति ॥ तत्सर्वंकृतमेवन्तु श्रुतिरेषासनातनी ॥ १०० ॥ याययौतांप्रतीक्षस्व नर्मदामापगोत्तमाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाक्षमस्वेत्यब्रवीन्नृपः ॥ १ ॥ वशिष्ठोवामदेवश्च वदत्येवंयुधिष्ठिर ॥ काशीपुर्य्यांप्रयागेवा गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ २ ॥ तत्रैववर्ततेयज्ञः सत्यमेवतपोधनाः ॥ केचिदाहुःकुरुक्षेत्रं स्थानेयत्रसरस्वती ॥ ३ ॥ समुद्दिष्टानितीर्थानि मुनिभिस्तुपृथक्पृथक् ॥ अब्रवीत्सहसाराजन्दुर्वासारौद्रतापसः ॥ ४ ॥ नारदोपिमुनिश्रेष्ठस्तापसोगतकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यांमहाराज तत्रतोयन्नविद्यते ॥ ५ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा सालङ्कायनभूपतिः ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं सर्वान्नृषिगणान्प्रति ॥ ६ ॥ क्षणमेकंप्रतीक्षध्वं यावद्वहतिकल्पगा ॥ इत्युक्त्वासनृपश्रेष्ठस्ततस्तुष्टावकल्पगाम् ॥ ७ ॥ नमस्तेस्तुसुरेशानि नमस्तेशङ्करात्मजे ॥

वामदेवजी ने भी यही कहा कि काशीपुरी व प्रयाग, गंगा यमुनाके सङ्गममें ॥ २ ॥ हे तपोधनलोगो ! वहीं यज्ञ कियाजावे यह भी सत्यही है औरोंने कहा कि कुरुक्षेत्र अच्छा है जिस स्थान में सरस्वती विद्यमान है ॥ ३ ॥ ऐसे मुनियोंकरके पृथक् २ तीर्थ बतलायेगये हे राजन् ! तब फिरभी क्रोधी तपस्वी दुर्वासाजी सहसा बोले ॥ ४ ॥ और मुनियों में श्रेष्ठ, पापरहित, तपस्वी नारदभी बोले कि हे महाराज ! सरस्वती में तो वहां जलहै नहीं ॥ ५ ॥ उन सबके इस वचन को सुनकर सालङ्कायन राजा सब ऋषिगणों से वचन बोले ॥ ६ ॥ कि आपलोग क्षणमात्र देखो जबतक नर्मदाजी बहती हैं राजाओंमें श्रेष्ठ वे सालङ्कायन राजा यह कहकर फिर नर्मदा की

स्तुति करतेहुये ॥ ७ ॥ कि हे सुरेशानि ! आपके लिये नमस्कारहै और हे शङ्करजीकी पुत्री ! तुम्हारे लिये नमस्कार है इडा, पिंगला, उमा, गङ्गा, सरस्वती ॥ ८॥ वेदों की माता गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी और गौरी आपही हो सब लोकोंकी माताहो और यशवाली हो ॥ ९ ॥ पृथिवी में जितने कुछ तीर्थ कहेगयेहैं वे सब आपही करके व्याप्तहैं और सब चराचर जगत् भी तुम्हींसे व्याप्तहै ॥१०॥ हम उसको नहीं देखते जोकि तुम्हारे जलसे व्याप्त न देखाजाताहो तुम्हारे जलमें स्नानमात्रही से तृप्तहोकर परमगति को प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥ बड़े तेजवाले राजाके इस स्तोत्रको सुनकर मगरपर चढ़ीहुई नर्मदादेवी प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ १२ ॥ और

इडाचपिङ्गलाचैव उमागङ्गासरस्वती ॥ ८ ॥ गायत्रीवेदमाताच सावित्रीचसरस्वती ॥ ब्राह्मीचवैष्णवीगौरी लोकमातायशस्विनी ॥ ९ ॥ समुद्दिष्टानितीर्थानिपृथिव्यांयानिकानिच ॥ त्वयावृतानिसर्वाणि जगच्चसचराचरम् ॥ १० ॥ न तत्पश्यामित्वद्वारावृतंयन्नप्रदृश्यते ॥ त्वत्तोयस्नानमात्रेण तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ ११ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवी राज्ञश्चामिततेजसः ॥ मकरासनमारूढा प्रत्यक्षासप्तकल्पगा ॥ १२ ॥ प्राहब्रूहिवरंराजन्यत्तेमनसिवर्तते ॥ राजोवाच ॥ पूर्वान्सप्तपरान्सप्त प्रवाहानक्षयान्कुरु ॥ १३ ॥ वरमेतमहंमन्ये सप्तकल्पान्तवासिनि ॥ नर्मदोवाच ॥ दत्तोवरोमयाह्येष सत्यंतवनराधिप ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वासरिच्छ्रेष्ठा जलौघेनपरिप्लुता ॥ प्रवाहैर्विस्तृतैस्तत्र वहन्तीसाव्यवस्थिता ॥ १५ ॥ तन्दृष्ट्वाताद्दृशंकर्म सालङ्कायनभूपतेः ॥ तुष्टुवुर्मुनयस्सर्वे सत्यधर्मपरायणाः ॥ १६ ॥ स्नानावगाहनंपानं चक्रुस्तेपितृतर्पणम् ॥ ततोनिर्वर्तितोयज्ञो विप्रैस्सर्वस्वदक्षिणैः ॥ १७ ॥ योयत्कामयतेकामं तत्तस्मैप्रतिपा

बोलीं कि हे राजन् ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो तब राजा बोले कि सात पूर्वके और सात पश्चिम के प्रवाह अक्षयकरो ॥ १३ ॥ हे सातकल्पतक रहने वाली ! हम इसी वरको मांगते हैं तब नर्मदाजी बोलीं कि हे नराधिप ! तुमको यह वर मुझकरके सत्यही दियागया है ॥ १४ ॥ इस प्रकार कहकरके नदियोंमें श्रेष्ठ वे नर्मदा जलसमूह से पूर्णहोरहीं बड़े २ प्रवाहों से बहतीहुई वहां स्थित होतीहुई ॥ १५ ॥ सालङ्कायन राजा के इस प्रकार के इस कर्मको देखकर सत्यधर्म में तत्पर सब मुनिलोग स्तुति करतेहुये ॥ १६ ॥ स्नान, अवगाहन, जलपान और पितरों का तर्पण सब लोग करतेहुये तदनन्तर सब कुछ जिन्होंने दक्षिणा में पाया

ऐसे ब्राह्मणों करके यज्ञ समाप्त कियागया ॥ १७ ॥ जो जिसको चाहता था उसके लिये वह यथेष्ट कियागया वस्त्र और आभूषणों के दान व सुन्दर सवारियों से ॥ १८ ॥ सालंकायन राजाकरके ऋत्विज् लोग पूजन कियेगये ब्रह्मा, विष्णु और महादेव एकबारही सब पूजन कियेगये ॥ १९ ॥ तदनन्तर शिवालय में जाकर देवताओं करके पूजन कियागया सब कामफलोंका देनेवाला, पार्वतीकरके सहित, भुक्ति और मुक्तिका देनेवाला शिवस्वरूप माहेश्वरनाम से विदित लिंगको ॐमहेश्वर, देव, शम्भु के लिये नमस्कार नमस्कार है ॥ २० । २१ ॥ इत्यादि मन्त्रकरके विधिसे पूजन करके हाथ जोड़ेहुये होकर राजा वहीं स्थित होतेहुये ॥ २२ ॥ तदनन्तर नर्मदादेवी महादेवजी के चरणके नीचे से निकलीं वह नर्मदाजी का प्रवाह देवताओं करके पूजितहुआ ॥ २३ ॥ हे भारत ! फिर सन्तुष्टहुये महादेवआदि सब देवताओं ने कहा कि हे भूपाल ! यथेष्ट अपने मनका अभीष्टवर तुम मांगो ॥२४॥तब परमधार्मिक राजा देवताओं से वचन बोले कि जो आपलोग अपनी प्रसन्नता से हमको वर व कामना के देनेवालेहो ॥ २५ ॥ तो महादेव आदि देवताओं करके यह स्थान त्याग नहीं कियाजावे और राज्यमें अनावृष्टि से पीड़ित होरही प्रजा वृद्धिको प्राप्तहोवें ॥ २६ ॥ इसी वरको हम चाहतेहैं कि पापीभी स्वर्गको जावें और आहवनीय अग्नि यहां सर्वदा आपही बनेरहै ॥ २७ ॥ तब देवता बोले कि हे

दितम् ॥ वस्त्रालङ्कारदानैश्च दिव्ययानैस्सुशोभनैः ॥ १८ ॥ ऋत्विजःपूजितास्सर्वे सालङ्कायनभूभृता ॥ युगपत्पूजितास्सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९ ॥ ततःशिवालयंगत्वालिङ्गंत्रिदशपूजितम् ॥ नाम्नामाहेश्वराख्यातं सर्वकामफलप्रदम् ॥ २० ॥ उमयासहितंशम्भुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ॐमहेश्वरायदेवाय शम्भवायनमोनमः ॥ २१ ॥ इत्यादिनातुमन्त्रेणसमभ्यर्च्यविधानतः॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वास्थितस्तत्रैवपार्थिवः ॥ २२ ॥ ततोविनिर्गतादेवीपदमूलेनशूलिनः ॥ प्रवाहोनर्म्मदाभेदे नार्म्मदस्सुरपूजितः ॥ २३ ॥ ईश्वराद्यास्तथादेवास्सर्वेतुष्टास्तुभारत ॥ वरंयाचस्वभूपाल यथेष्टंमनसेप्सितम् ॥ २४ ॥ उवाचवचनन्देवान् राजापरमधार्म्मिकः ॥ यदिमेवरदायूयं कामदाश्चप्रसादतः ॥ २५ ॥ इदंस्थानन्तुनत्याज्यमीश्वराद्यैस्सुरैरपि ॥ यान्तुराष्ट्रेप्रजावृद्धिमनावृष्ट्याप्रपीडिताः ॥ २६ ॥ इदंवरमहंमन्ये पापा यान्तुत्रिविष्टपम् ॥ अग्निश्चाहवनीयोत्रस्वयंतिष्ठतिसर्वदा ॥२७॥देवाऊचुः॥ यत्त्वयाभाषितंराजंस्तत्सर्वन्तुभवेदिति॥

राजन्! जो आपकरके कहागया है वह सबहोगा यह कहकर आकाशचारी सब देवता अन्तर्द्धान होगये ॥ २८ ॥ देश फिर वृद्धिको प्राप्त कियागया और इन्द्र अभीष्टसमयमें वर्षा करनेवालेहुये यज्ञको समाप्त करके दिव्यमन्त्रियों से युक्त ॥ २९ ॥ हजारों राजा और अपनी रानी व सामानके सहित राजा देवताओं से रची हुई रमणीक अयोध्यापुरी में प्रवेश करतेहुये ॥ ३० ॥ हे राजन्! यह उमामाहेश्वरपुरका वृत्तान्त तुमसे कहागया है जिससे तिर्यग्योनि में प्राप्त होरहे, पापी, पशु,पक्षी और सर्पआदि व जो परवश व अपनेवश हो शिवलोक को प्राप्त होताहै ॥ १३१।१३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वाययुस्सर्वेह्यन्तर्द्धानञ्चखेचराः ॥ २८ ॥ पुनःप्रवर्द्धितंराष्ट्रं कामवर्षीचवासवः ॥ यज्ञंनिवर्तयित्वातु दिव्यामात्यैस्समावृतः ॥ २९ ॥ महीपालसहस्रैस्तु सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ विवेशनगरींरम्यामयोध्यान्देवनिर्म्मिताम् ॥ ३० ॥ एतत्तेकथितंराजन्नुमामाहेश्वरम्प्रति ॥ तिर्य्यग्योनिगताःपापा मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ३१ ॥ अवशास्स्ववशोवापि शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि मण्डपेश्वरमुत्तमम् ॥ स्नातमात्रोनरस्तत्र नविशेद्योनिसङ्कटम् ॥ १ ॥ दशलक्षाणितीर्थानि तस्मिंस्तिष्ठन्तिभारत ॥ मण्डपेश्वरतीर्थस्य कूर्म्मवृद्धिवदर्चनम् ॥ २ ॥ सुरासुरगणैरिष्टं तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ अनेकभाविकंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ३ ॥ तिलोदकप्रदानेनपिण्डपातेनभारत ॥ तृप्यन्तिपितरस्सर्वे यावत्तिष्ठतिकल्पगा ॥ ४ ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशस्स्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और उत्तम मण्डपेश्वर तीर्थको कहते हैं जिसमें स्नानमात्र कियेहुआ मनुष्य योनि के सङ्कट को नहीं प्राप्तहोता है हे भारत! उस तीर्थमें दशलाखतीर्थ और विद्यमान हैं मण्डपेश्वरतीर्थ का कछुये के बढ़ने के समान पूजन होताहै अर्थात् कछुवा जैसे मानसी प्रेमसे बढ़ता है वैसेही इसका भी मानसपूजन होताहै ॥ १ । २ ॥ हे नराधिप! उस तीर्थमें देवता और दैत्योंकरके यजन कियागयाहै अनेक जन्मोंका पाप उसीक्षणही नष्ट होताहै ॥ ३ ॥ तिलोदक व पिण्डोंके देनेसे जबतक नर्मदा रहती हैं तबतक सब पितर तृप्त रहते हैं ॥ ४ ॥ वहां परवश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह दशहजार वर्ष

तक विद्याधरोंके पुरमें राजा होताहै ॥ ५ ॥ बादरायण और शाकटनाम के दो ब्रह्मा के मानस पुत्रहुये वे महर्षिगणों करके सेवित पवित्र अगस्त्य के आश्रम में रहते थे ॥ ६ ॥ महादेवजी की भक्तिमें परायण कन्द, मूल, फल और शाककरके अपनी आजीविका करते थे एक समयके प्राप्तहुये पर राजाके पुत्र, अयोध्या के स्वामी, शोभावाले, इन्द्रके तुल्य पराक्रमी अजापाल राजा जोकि एकसौ आठ व्याधों को बकरी बनाकर रक्षा करतेहुये ॥ ७ । ८ ॥ उक्त राजाके समय में कुबेर के समान धनाढ्य सवालाख वर्ष प्रजा जीवतीथी तथा राजा पुरीकी राज्यकरतेहुये ॥ ९ ॥ व किसी समयमें वही महाभाग राजा सेनाके सहित और हजारों राजाओं के साथ व

मानसौब्रह्मणःपुत्रौ बादरायणशाकटौ ॥ अगस्त्यस्याश्रमंपुण्यं महर्षिगणसेवितम् ॥ ६ ॥ कन्दमूलफलैश्शाकैःशिवभक्तिपरायणैः ॥ एकदावसरेप्राप्ते अजापालोनृपात्मजः ॥ ७ ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ अष्टोत्तरंशतंव्याधानजाःकृत्वाररक्षच ॥ ८ ॥ सपादलक्षंजीवन्ति प्रजास्तस्मिन्महीपतौ ॥ धनाढ्याधनदस्येव प्रशशासपुरीन्तथा ॥ ९ ॥ सकदाचिन्महाभागः ससैन्योमृगयाङ्गतः ॥ महीपालसहस्रेण मुदापरमयायुतः ॥ १० ॥ सोऽपश्यत्पर्वतस्याग्रे मेरुतुल्येमहीपतिः ॥ पुष्पारामसहस्राणि हर्म्याणिविविधानिच ॥ ११ ॥ तत्रैवशतसाहस्रं यतीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ भक्त्याभ्यर्च्यविधानेन देवेशंचमुनींस्तथा ॥ १२ ॥ प्रणम्योवाचमधुरं बादरायणशाकटौ ॥ पितॄणांतारणार्थाय श्राद्धकालत्वसिद्धये ॥ १३ ॥ महानयंभवद्भिश्च प्रसादःक्रियताम्मयि ॥ अभ्यर्च्यतान्मुनीन्सर्वान्प्रणिपत्यस्थितस्ततः ॥ १४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाअजापालस्यभूभृतः ॥ ऋषीणांतापसौवृद्धौ बादरायणशाकटौ ॥ १५ ॥

बड़े आनन्द करके युक्त शिकार को गये ॥ १० ॥ उन राजाने सुमेरु के तुल्य पर्वतकी चोटीपर हजारों फुलवारी व अनेकप्रकारके महलोंको देखा ॥ ११ ॥ वहींपर हजारों जितेन्द्रिय संन्यासियोंको और महादेव व मुनियोंको विधिपूर्वक भक्तिमे पूजनकरके ॥ १२ ॥ बादरायण व शाकट से नमस्कार करके मधुरवाणी को बोले पितरों के तारने के वास्ते जो श्राद्ध है तिसकी सिद्धिके लिये ॥ १३ ॥ राजाने कहा कि आप लोगों करके मेरे ऊपर यह बड़ा अनुग्रह कियाजावे यह कहकर उन सब मुनियों का पूजन करके और नमस्कार करके स्थित होतेहुये ॥ १४ ॥ उन अजापाल राजाके इस वचनको सुनकर ऋषियोंमे वृद्ध, तपस्वी बादरायण और शाकट ॥ १५ ॥

ये दोनों अजापालराजा से वचनबोले कि उत्तमव्रतवाले सबही मुनि राजाके दानके लेनेवाले नहीं होते ॥ १६ ॥ राजासे दान लेना बड़ाघोर व पाप और बडाडरावना होताहै नरक में घोरपीडा सहने को कौन शक्तिवाला होसक्ता है ॥ १७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपका कल्याण हो और आपको मार्ग सुख देनेवाला होवे यह कहकरके उन मुनियों ने अपनी वाणीको रोंकदिया ॥ १८ ॥ ब्राह्मणों के शापके भयसे डरे हुये राजा चुपहोगये तदनन्तर घण्टाआदि आभूषणों से भूषित दशहजार हाथी ॥ १९ ॥ और सुवर्ण का बनाहुआ उत्तम एक मठ एक ब्राह्मणको संकल्प करके देदिया और कालञ्जर पर्वत की तीन प्रदक्षिणा राजा करतेहुये ॥ २० ॥ भक्तिसे युक्त

ऊचतुस्तौतुवचनमजापालन्नराधिपम् ॥ नराजग्राहकास्सर्वे मुनयश्शंसितव्रताः ॥ १६ ॥ राजप्रतिग्रहोघोरो रौद्रःपापोभयावहः ॥ नरकेयातनाङ्घोरां कस्सोढुंशक्तिमान्भवेत् ॥ १७ ॥ स्वस्तितेऽस्तुनृपश्रेष्ठ पन्थानस्सन्तुते शिवाः ॥ एवमुक्त्वातुचक्रुस्ते मुनयोवाक्यसंयमम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मशापभयाद्भीतो नृपस्तूष्णींबभूवह ॥ गजानांदशसाहस्रं घण्टाभरणभूषितम् ॥ १९ ॥ प्रादाद्विप्रायसङ्कल्प्य मठंहेममयंशुभम् ॥ कालञ्जरगिरिंराजा त्रिश्चकारप्रदक्षिणम् ॥ २० ॥ नमस्कृत्वामहेशानं भक्तियुक्तस्सुहृद्वृतः ॥ जगामस्वपुरंराजा यथाशक्रोमरावतीम् ॥ २१ ॥ गतेतस्मिन्महीपाले ऋषयःकाममोहिताः ॥ केचिद्गजसमारूढा नानारत्नसमन्विताः ॥ २२ ॥ केचिदश्वसमारूढा वीज्यमानाश्च चामरैः ॥ लभन्तेविविधान्भोगांस्तेब्रह्मर्षितपोधनाः ॥ २३ ॥ देवस्वभक्षकास्सर्वे स्त्रीलोभवशवर्तिनः ॥ सुखञ्चपरमं प्राप्ता देवद्रव्येनराजसाः ॥ २४ ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते सर्वेमृत्युवशङ्गताः ॥ वर्जयित्वातुविप्रौद्वौ बादरायणशा

और अपने मित्रोंकरके सहित महादेवजी के नमस्कार करके राजा अपने पुरको जातेहुये जैसे इन्द्र अमरावती को जावे ॥ २१ ॥ उन राजाके गयेपर कामसे मोहित ऋषिलोग अनेक रत्नोंसेयुक्त कोई हाथियों पर चढ़ेहुये ॥ २२ ॥ और कोई घोड़ोंपर सवार चामरोंसे हवा कियेजारहे वे तपोधन ब्रह्मर्षि अनेक भोगोंको प्राप्त होरहेहैं ॥ २३ ॥ देवताओं की द्रव्यका भोग करतेहुये सब स्त्री के लोभके वशमें पड़ेहुये रजोगुणी लोग उस देवद्रव्य करके बड़ेसुख को प्राप्तहोतेहुये ॥ २४ ॥

तदनन्तर कालान्तर के प्राप्त होनेपर वे सब मृत्युके वशको प्राप्त होतेहुये बादरायण और शाकट इन दोनों ब्राह्मणोंको छोड़करके ॥ २५ ॥ देवता को अर्पित कियेहुये पदार्थोंके भक्षण करने से वे सब पापी मुनिश्रेष्ठ कुत्ताकी योनिको प्राप्तहुये और अशुद्धवस्तुओंके भक्षण करनेवालेहुये ॥ २६ ॥ उन लोगोके संगसे वे भी दोनों मुनि कुत्ते के मुखके समान मुखवाले होगये सब लोग अपने कर्मोंका शोच करतेहुये मनुष्योंकी वाणी बोलतेहैं ॥ २७ ॥ वे दोनों बादरायण और शाकट कुत्ताकी योनिको प्राप्त होरहे मुनियोंसे पूंछतेहुये कि तुम लोग किस कर्मकरके कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये हो ॥२८ ॥ तब ऋषि बोले कि देवता,गुरु और महादेवकी द्रव्यके दान व भोजन व

कटौ॥ २५॥श्वयोनिंसमनुप्राप्तास्सर्वेतेमुनिपुङ्गवाः॥ अमेध्यभक्षकाःपापा देवनिर्माल्यभक्षणात् ॥ २६ ॥तेषांसम्पर्कभावेन श्ववक्त्रौद्वावुपस्थितौ ॥ शोचन्तस्स्वानिकर्म्माणि व्याहरन्तःस्वकाङ्गिरम् ॥ २७ ॥ पप्रच्छतुश्श्वयोनींस्तौ बादरायणशाकटौ ॥ कर्म्मणाकेनयूयंवैश्वयोनिंसमुपागताः ॥ २८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ देवद्रव्येगुरुद्रव्ये द्रव्येचण्डीश्वरस्य च ॥ त्रिविधंपातकंदृष्टं दानभक्षणलङ्घनात् ॥ २९ ॥ तस्मात्सम्पर्कदोषेण सारमेयत्वमागताः ॥ बभ्रमुस्सर्वतीर्थानि दिव्यंवर्षशतन्तथा ॥ ३० ॥ नैमिषारण्यमासाद्य यथायोगंव्यवस्थिताः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा बादरायणशाकटौ ॥ ३१ ॥ जग्मतुर्ब्रह्मलोकन्तौ ब्रह्मपुत्रौयशस्विनौ ॥ अभिवाद्ययथान्यायं ब्रह्माणंजगताम्पतिम् ॥ ३२ ॥ ऊचतुश्चस्ववृत्तान्तं पितरंतत्त्वदर्शिनम् ॥ अत्यन्तौमुनिशार्दूलौ दृष्ट्वातौविकृताननौ ॥ ३३ ॥ उवाचवचनंश्रीमान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ देवद्रव्यापहारेण दुष्कृतंस्वर्गगर्हितम् ॥ ३४ ॥ सुरासुरगणैर्यत्तु लङ्घितुन्नैवशक्यते ॥ किम्पुनर्मानुषैःक्षुद्रैर्देवद्र

अतिक्रमण करने से तीनतरहका पातक देखागयाहै ॥ २६ ॥ इससे संसर्गके दोष करके हम कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये सब तीर्थों में देवताओं के सौ वर्षतक भ्रगते रहे ॥ ३० ॥ नैमिषारण्यको भी प्राप्तहोकर जैसेके तैसे बनेरहे बादरायण और शाकट उनके इस वचनको सुनकर ॥ ३१ ॥ वे दोनों यशस्वी ब्रह्माके पुत्र ब्रह्मलोक को जातेहुये जगत् के पति ब्रह्माका यथायोग्य अभिवादन करके ॥ ३२ ॥ तत्त्वके देखनेवाले अपने पितासे अपना वृत्तान्त कहतेहुये मुनियों में श्रेष्ठ उन दोनोंको अत्यन्त बिगड़े मुहँवाले देखकर ॥ ३३ ॥ लोकके पितामह श्रीमान् ब्रह्माजी वचन बोले कि देवताओं की द्रव्यके हरने से बड़ा पापहोता जिससे स्वर्ग कभी नही हो

सका ॥ ३४ ॥ देवता और दैत्यों करके भी जो अतिक्रमण करनेको योग्य नहीं है वह देवद्रव्य से जीविका करनेवाले क्षुद्रमनुष्यों करके कैसे होसक्ताहै ॥ ३५ ॥ उन
का तो घोरनरक में गिरना अवश्यही कहागया है उनकी निष्कृति तो लोकों की पवित्र करनेवाली नर्मदाही कहीगई है ॥ ३६ ॥ नर्मदा के जलमें स्नानकरके और
महादेव को पूजन करके सब पापों से छूटजाता है यह हमकरके सत्य कहागया है ॥ ३७ ॥ बादरायण और शाकट ब्रह्माके वचनको सुनकर ऋषियों करके सहित
वहाही नर्मदातटके आश्रित होतेहुये ॥ ३८ ॥ इस पापके शुद्धकरने के वास्ते इस लोक में और नदी नहीं है तदनन्तर वे सब मुनिलोग पूर्वजन्म के कियेहुये पापको स्मरण

ठ्योपजीविकैः ॥ ३५ ॥ तेषान्तुनियतङ्घोरे नरकेपतनंस्मृतम् ॥ निष्कृतिर्नर्म्मदातेषां विहितालोकपावनी ॥ ३६ ॥
स्नात्वातुकल्पगातोयेऽभ्यर्चयित्वावृषध्वजम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३७ ॥ पितामहवचःश्रु
त्वा बादरायणशाकटौ ॥ ऋषिभिस्सहतत्रैव नर्म्मदातीरमाश्रितौ ॥ ३८ ॥ सरिन्नान्यास्तिलोकेस्मिन्पापस्यास्यवि
शुद्धये ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वेस्मरन्तःपूर्वदुष्कृतम् ॥ ३९ ॥ षण्मासाभ्यन्तरेराजञ्छिवध्यानपरायणाः ॥ निष्कल्म
षावभूवुस्ते तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ४० ॥ बल्याद्यामुनयस्सर्वे शतक्रतुपुरोगमाः ॥ ददृशुस्तेक्रतुवरंशिवेनैवयथोदि
तम् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाथमुनीन्सर्वे ब्रह्माद्याश्चसुरासुराः ॥ सुप्रभांस्तांस्तुदेवत्वं मण्डपेश्वरदर्शनात् ॥ ४२ ॥ तेनलिङ्ग
न्तुविख्यातं लोकेस्मिन्मण्डपेश्वरम् ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते त्रेतायान्तुनृपोत्तम ॥ ४३ ॥ क्षत्रियाणांसहस्राणि तत्र
सिद्धानिभारत ॥ एतत्सर्वंसमाख्यातं समासेनमयानघ ॥ ४४ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्राजन् हयमेधफलंलभेत् ॥ ४५ ॥ युधि

करतेहुये ॥ ३९ ॥ महादेवके ध्यान में तत्पर हे राजन्! छह महीनेमें इस तीर्थ के प्रभाव से वे पापरहित होजातेहुये ॥ ४० ॥ वे बलिआदि सब मुनि इन्द्रसहित महादेव करके
किये हुये श्रेष्ठ यज्ञ को देखतेहुये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सब ब्रह्माआदि देवता और असुर भी मण्डपेश्वर के दर्शन से सुन्दर शोभावाले होरहे उन मुनियों को लेकर
देवभावको प्राप्त करतेहुये ॥ ४२ ॥ इसी से इस लोकमें मण्डपेश्वरलिंग विख्यात हुआ हे नृपोत्तम! स्वारोचिष मन्वन्तर के त्रेतामें ॥ ४३ ॥ हे भारत! हजारों क्षत्रिय
लोग यहां सिद्ध होतेहुये हे अनघ! यह सब संक्षेपसे मुझकरके कहागया ॥ ४४ ॥ हे राजन्! इसके सुनने और कहने से अश्वमेधके फलको पाताहै ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरजी

बोले कि अमरेश्वरके पूर्व और पर्यङ्कके पश्चिममें ॥ ४६ ॥ हे तपोधन ! तीर्थोंकी संख्याको क्रमकरकेकहो ॥ ४७॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! पूर्वभाग मे स्थित पापोंके नाश करनेवाले श्वेतकिंशुकनामक तीर्थको सुनो जिसमें स्नान कियेहुये मनुष्य सुखरूपसे स्वर्गको जातेहुये ॥ ४८।४९ ॥ व वहीं परमसिद्धि का देने वाला श्वेतकिंशुकनामक लिंगहै और स्वर्गफल के देनेवाले ताटकेश्वर देवभी हैं ॥ ५० ॥ व पापोंका नाश करनेवाला वर्ण इस नामका और तीर्थ है जहां लोकमें वरके देनेवाले त्र्यम्बक महादेव हैं ॥ ५१ ॥ उस तीर्थके माहात्म्य से गण्डेश स्वर्गको जातेहुये वहां गण्डकेश्वर लिंग और वैसेही शुक्लेश्वर लिंगहै ॥ ५२ ॥ नर्मदा और दन्ति-

ष्ठिरउवाच ॥ अमरेश्वरपूर्वेणपर्य्यङ्कात्पश्चिमेतथा ॥ ४६ ॥ तीर्थसंख्यांक्रमेणैवकथयस्वतपोधन ॥ ४७॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग पूर्वभागेऽव्यवस्थितम् ॥४८॥ श्वेतकिंशुकनामानं तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ नराःसुखेनरूपेण यत्रस्नातादिवङ्गताः ॥ ४९ ॥ श्वेतकिंशुकनामास्ति लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ ताटकेश्वरदेवश्च तत्रस्वर्गफलप्रदः ॥ ५० ॥ अन्यत्तुवर्णनामेति तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ त्र्यम्बकस्तुमहादेवो यत्रलोकेवरप्रदः ॥ ५१ ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्गण्डेशस्त्रिदिवङ्गतः ॥ गण्डकेश्वरलिङ्गन्तु लिङ्गंशुक्लेश्वरन्तथा ॥ ५२ ॥ नर्म्मदादन्तिवनिकासङ्गमोलोकविश्रुतः ॥ तत्रलिङ्गेश्वरंलिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५३ ॥ बालकेश्वरलिङ्गन्तु तथान्यत्पूर्णकेश्वरम् ॥ रेवायाउत्तरेकूले नर्म्मदापुरमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तीर्थकपिशिलानाम सर्वानर्थविदूपणम् ॥ लिङ्गंसिद्धेश्वरन्नाम तथान्यन्नाडकेश्वरम् ॥ ५५ ॥ अत्रान्तरेनृपश्रेष्ठ दशलक्षाणिनामतः ॥ तीर्थानिदशलक्षाणि कीर्तितानियथाक्रमम् ॥ ५६ ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ वैदूर्य्यात्पश्चिमांदिशम् ॥ शशभीनर्म्मदायोगं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥ भुक्तिदंमुक्तिदंचैव लिङ्गंवैशशभेश्वर

वनिकाका सङ्गम लोक में विदितहै वहां सब सिद्धियों का देनेवाला लिंगेश्वरलिंग है ॥ ५३ ॥ बालकेश्वर और अन्य पूर्णकेश्वर लिंगभी वहां है नर्मदाके उत्तरतट मे उत्तम नर्मदापुर है ॥ ५४ ॥ सब अनर्थों का नाश करनेवाला कपिशिलानाम का तीर्थहै वहां सिद्धेश्वर वैसेही अन्य नाडकेश्वर लिंगहै ॥ ५५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इसी अन्तर में दशलक्षनाम के दशलाख तीर्थ यथाक्रम कहेगये हैं ॥ ५६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वैदूर्य्यपर्वत से पश्चिमदिशा को जावे जहा सब पापोंका नाश करने-

वाला शशभी और नर्मदाका योगहै ॥ ५७ ॥ वहां मुक्ति और भुक्तिका देनेवाला शशभेश्वरलिंग है जोकि गर्दभयोनिसे छुटानेवाला तीनोंलोकों में विख्यात हैं ॥ ५८ ॥ हे नराधिप ! यहां मण्डलेश्वर नामका तीर्थ और लिंगभी है जहां माण्डलिक राजा और अजापाल मनुजी सिद्धहुये हैं ॥ ५९ ॥ वहां यज्ञकरके मनुष्य फिर संसारमें नहीं आताहै तिलोदक व पिण्डदान से हे भारत ! ॥ ६० ॥ जबतक चन्द्रमा व सूर्य रहते तबतक उसके पितर तृप्तरहते हैं वहां जो दान कियाजाता उसके पुण्यकी संख्या नहीं है ॥ ६१ ॥ तदनन्तर सब तीर्थों में श्रेष्ठ व शुभ कान्तारकतीर्थ को जावे वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न नहीं होते

रम् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं गर्द्दभीयोनिमोक्षणम् ॥ ५८ ॥ मण्डलेश्वरनामेह तीर्थंलिङ्गंनराधिप ॥ यत्रमाण्डलिकाः सिद्धा अजापालोमनुस्तथा ॥ ५९ ॥ तत्रचेष्ट्वातुमनुजस्सम्भवेन्नपुनर्भवे ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ ६० ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तत्रप्रदीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६१ ॥ कान्तारकंततोगच्छेत्स र्वतीर्थवरंशुभम् ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ६२ ॥ सपादलक्षमधिकं तीर्थानांमण्डलेश्वरे ॥ कीर्तितं तवराजेन्द्र यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ ६३ ॥ त्रेतायांरघुवंशेतु कुमारौरामलक्ष्मणौ ॥ मैथिल्यासहराजेन्द्र उत्तीर्णौयत्रक ल्पगाम् ॥ ६४ ॥ जग्मतुःपितुराज्ञांवै कुर्वन्तौविष्णुरूपिणौ ॥ स्नात्वातीर्थवरेतत्र भक्त्याभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ ६५ ॥ राजतीर्थन्तुतद्गोप्यं लिङ्गंवैलक्ष्मणेश्वरम् ॥ सीतेश्वरन्तथालिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६६ ॥ तत्रस्नात्वार्चयित्वातु शूलपाणिंमहेश्वरम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ पुण्यतीर्थंशिवालय

है ॥ ६२ ॥ मण्डलेश्वर में कुछ अधिक सवालाख तीर्थ हैं हे राजेन्द्र ! सो सब आप से देखे और सुनेके अनुसार कहेगये ॥ ६३ ॥ त्रेता विषे रघुवंश में हुये राम और लक्ष्मणनाम के राजकुमार सीताकरके सहित हे राजेन्द्र ! जहां नर्मदा को उतरे ॥ ६४ ॥ और पिताकी आज्ञा करतेहुये विष्णुरूप आप उस श्रेष्ठतीर्थमें स्नान करके और महादेव का पूजन करके जातेहुये ॥ ६५ ॥ वहां छिपाने योग्य राजतीर्थहै और देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये लक्ष्मणेश्वर व सीतेश्वरलिंग हैं ॥ ६६ ॥ वहां स्नानकरके व शूलपाणि महादेव का पूजन करके सब पापों से छूटाहुआ गणों की राज्यको प्राप्तहोता है ॥ ६७ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! पुण्यतीर्थ शिवालयको

जावे वहां रमणीक उस माहिष्मतीपुरी को देखकर कभी नीचेको नहीं गिरता ॥ ६८ ॥ जहां कालाग्नि रुद्र कोई कारणों करके जलतेहुये ऐसे विद्यमान होरहे हैं और वहां तेंतीस करोड़ लिङ्गहैं ॥ ६९ ॥ हे नराधिप ! तदनन्तर कोटितीर्थ में कोटीश्वरलिंग है वहां उस लिंगके पूजनसे करोड़यज्ञोंका फल होता है ॥ ७० ॥ वहां पर दियेहुये दानकी करोडगुनी संख्या होजाती है व मुक्ति और मुक्तिफलका देनेवाला दशाश्वमेधतीर्थ है ॥ ७१ ॥ वहां तिलोदकके देनेसे पितरोंकी उत्तम गति होती है व स्नानमात्र कियेहुये मनुष्य सूर्यके तेजके समान तेजवाला होताहै ॥ ७२ ॥ वहां सामान्य से पांचपुर महादेवकरके कहेगये हैं प्रभास, कुरुक्षेत्र वैसेही शुभ

म् ॥ माहिष्मतींपुरींरम्यांतान्दृष्ट्वानच्युतःकचित् ॥ ६८ ॥ यत्रकालाग्निरुद्रोस्ति प्रज्वलन्निवहेतुभिः ॥ त्रयस्त्रिंशत्तु तिष्ठन्तु लिङ्गानांकोटयस्तथा ॥ ६९ ॥ ततःकोटीश्वरंलिङ्गं कोटितीर्थेनराधिप ॥ यज्ञकोटिफलंतत्र तस्यलिङ्गस्यपूजनात ॥ ७० ॥ तत्रदत्तस्यदानस्य कोटिसंख्यातुविद्यते ॥ दशाश्वमेधतीर्थन्तु भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांगतिरुत्तमा ॥ स्नातमात्रोनरस्तत्र सूर्य्यतेजस्समप्रभः ॥ ७२ ॥ पुराणिपञ्चसामान्याच्छम्भुना कीर्तितानिवै ॥ प्रभासश्चकुरुक्षेत्रं तथामायापुरीशुभा ॥ ७३ ॥ अवन्तीचमहाकालं तथामाहेश्वरम्पुरम् ॥ एतेषुचसमग्रेषु विद्धिलिङ्गान्यनुक्रमात ॥ ७४ ॥ अत्रदत्तंहुतंचेष्टमक्षयादपिचाक्षयम् ॥ अवशस्स्ववशोवापि प्राणत्यागंकरोति यः ॥ ७५ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ कीर्तयेत्प्रातरुत्थाय पुण्यान्येतानियोनरः ॥ ७६ ॥ नसपापेन लिप्येत यमलोकन्नपश्यति ॥ तीर्थंपिपीलिकानाम गतायत्रपिपीलिकाः ॥ ७७ ॥ शिवलोकंमहाभाग सर्वलोकोत्तमो

मायापुरी ॥ ७३ ॥ अवन्ती महाकाल और माहेश्वरपुर इनसबोंमें क्रमसे लिंगोंको भी जानो ॥ ७४ ॥ यहांपर जो दियागया व हवन कियागया व यजन कियागया वह अक्षयसे भी अक्षय होताहै और परवश व अपने वश होकर जो प्राणत्याग करताहै ७५ ॥ वह जहां महेश्वरदेवजी रहतेहैं उस परमस्थानको जाताहै और जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन पुण्यलिंगों का कीर्त्तन करता है ॥ ७६ ॥ वह पापसे नहीं लिप्त होता और यमलोक को भी नहीं देखताहै एक पिपीलिका नामका तीर्थहै

हे महाभाग ! जहां सब लोकों में उत्तम से उत्तम शिवलोक को पिपीलिका जातीं हुईं व बन्ध्या और नर्मदा का समायोग देवता और दैत्योंकरके नमस्कार किया गया है ॥ ७७ । ७८ ॥ हे राजेन्द्र ! जिस संगम में मुनकेश्वरलिंग है उसको योगी देखते हैं व मनुष्य उसको नहीं देखपाते हैं ॥ ७९ ॥ नर्मदा के दक्षिणतटमें वह नगर विख्यात है हे नराधिप ! जहा दशहजार लिंग व तीर्थ हैं ॥८०॥ वहां चण्डीश्वर तथा उडुगणेश्वर नाम और बकेश्वरलिंगको जानो जहां बगुला स्वर्गको जातेहुये ॥८१॥ गङ्गावह नामका तीर्थ सब सिद्धियों का देनेवाला है और हे भारत ! वहां निर्मल अङ्गारेश ऐसा लिंगभी जानना चाहिये ॥ ८२ ॥ सोमतीर्थ और इसके आगे

त्तमम् ॥ बन्ध्यारेवासमायोगं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ७८ ॥ सङ्गमेयत्रराजेन्द्र लिङ्गंवैमुनकेश्वरम् ॥ योगिनस्तत्तुप श्यन्ति नतत्पश्यन्तिमानुषाः ॥ ७९ ॥ विख्यातंतत्तुनगरं नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ अयुतंयत्रलिङ्गानां तीर्थानाञ्चनरा धिप ॥ ८० ॥ लिङ्गंचण्डीश्वरन्नाम तथैवोडुगणेश्वरम् ॥ बकेश्वरन्तत्रविद्धि बकायत्रदिवङ्गताः ॥ ८१ ॥ तीर्थंगङ्गा वहंनाम लिङ्गंवैसर्वसिद्धिदम् ॥ अङ्गारेशमितिज्ञेयं विमलंतत्रभारत ॥ ८२ ॥ सोमतीर्थमितिज्ञेयं शुक्रतीर्थमतः परम् ॥ तीर्थानांनिरसन्नाम ध्रुवतीर्थंनराधिप ॥ ८३ ॥ अनेकानिसहस्राणि तीर्थानांचैवभारत ॥ तीर्थंपिपीलिका नाम भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ८४ ॥ क्रोशमात्रन्तुविज्ञेयं पूर्वपश्चिमतस्तथा ॥ तीर्थानामयुतंसार्द्धं ऋषिदेवनिषे वितम् ॥ ८५ ॥ तत्रदत्तंहुतंचैव तस्यसंख्यानविद्यते ॥ तत्रयस्सन्त्यजेत्प्राणानवशस्स्ववशोपिवा ॥ ८६ ॥ सर्वपाप विनिर्मुक्त उमामाहेश्वरेपुरे ॥ मोदतेसर्वकामैस्तुयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८७ ॥ यस्मादेवंशिवंतस्मादर्चयेच्छान्त

शुक्रतीर्थ जाननेयोग्यहै हे नराधिप ! जहा तीर्थोंमें श्रेष्ठ निरसनाम, ध्रुवतीर्थ है ॥ ८३ ॥ हे भारत ! और भी अनेकों हजार तीर्थ हैं पिपीलिका नामका तीर्थ भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है ॥ ८४ ॥ नर्मदा के पूर्व और पश्चिम कोशभरतक ऋषि और देवताओं करके सेवन कियेगये पन्द्रह हजार तीर्थ जाननेयोग्य हैं ॥ ८५ ॥ वहांपर देये और होमेहुये की कुछ संख्या नहीं है वहांपर जो कोई अवश व अपने वश होकर प्राणोंको छोड़ताहै ॥ ८६ ॥ वह सब पापों से छुटाहुआ जबतक चौदह इन्द्र

रहते तबतक उमामाहेश्वरपुर मे सब कामनाओं से युक्त आनन्द करताहै ॥ ८७ ॥ जिससे ऐसाहै तिससे शान्तमन होकर महादेव का पूजन करै जो सबका मित्र और नित्य सबपर दया करनेवाला होताहै वह परमपद को प्राप्तहोता है ॥ ८८॥ हे नराधिप ! क्षणमात्र करके जो पुण्य होताहै वह निश्चय करके सौ वर्ष से नहीं और सैकडों यज्ञोंसे भी नहीं होता व हे राजन् सैकडों तीर्थोंकरके भी सिद्धकरने को योग्य नहीं होसक्ता तिससे दीन और अनाथ सब प्राणियों में दया की भावना करताहुआ शिवपूजन करै ॥ ८९ । ९० ॥ हे राजन् ! पुण्यवाले पुरुषों मेंही सदैव मैत्री और मुदिता होती है व सब प्राणियों में पुण्यवालेही को सुखहोता है यह

मानसः ॥ मैत्रःकारुणिकोनित्यं प्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ ८८ ॥ क्षणमात्रेणयत्पुण्यं ततःकुर्य्यान्नराधिप ॥ नतद्वर्षशते नापि नतुयज्ञशतैरपि ॥ ८९ ॥ शक्यंसाधयितुंराजंस्तथातीर्थशतैरपि ॥ सर्वप्राणिषुकारुण्यं दीनानाथेषुभावयन् ॥ ९० ॥ मैत्रीचमुदिताराजन्पुण्यशीलेषुसर्वदा ॥ पुण्यवत्सुखमापेक्ष्य सर्वप्राणिषुयत्नतः ॥ ९१ ॥ अक्षेत्रेतुकृतंपुण्यं सममभवतिभारत ॥ नर्म्मदासङ्गमोयत्र तत्रसंख्यानविद्यते ॥ ९२ ॥ अन्यदेशेकृतंपापं पुण्यक्षेत्रेविनश्यति ॥ पुण्य क्षेत्रेकृतंपापं वज्रलेपोभविष्यति ॥ ९३ ॥ उत्तीर्णोनर्म्मदांयत्र कार्त्तिकेयोमहाबलः ॥ लिङ्गंतत्रचविज्ञेयं सिद्धिदंकार्त्ति केश्वरम् ॥ ९४ ॥ चन्द्रेश्वरन्तथालिङ्गं लिङ्गंचैवशिखीश्वरम् ॥ शक्तीश्वरंतथाचान्यत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९५ ॥ ए तेषाञ्चैवलिङ्गानामर्चनंभक्तिभावतः ॥ ब्रह्महत्यादिकात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९६ ॥ शिवलोकमवाप्नोति पितॄणां

विचारकरके यत्नसे पुण्यही को करै ॥ ९१ ॥ जहां क्षेत्र नहीं है वहां कियागया पुण्य हे भारत ! साधारण होताहै और जहां नर्मदा का सङ्गमहै वहांकी कुछ संख्याही नहीं है ॥ ९२ ॥ और जगह में कियाहुआ पाप पुण्यक्षेत्र में नष्ट होजाता है और पुण्यक्षेत्र में कियाहुआ पाप वज्रलेप होजाताहै॥ ९३ ॥ बड़े बलवाले कार्त्तिकेयजी जहां नर्मदा उतरे थे वहां सिद्धिके देनेवाले कार्त्तिकेश्वरलिंगको जानना चाहिये ॥ ९४ ॥ चन्द्रेश्वरलिङ्ग तथा शिखीश्वरलिङ्ग वैसेही एक और सब पापोंका नाश करनेवाला शक्तीश्वरलिङ्ग भी वहां है ॥ ९५ ॥ इन लिंगोंका भक्तिभाव से पूजन करने से ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूटजाता है इसमे कोई संशय नहीं है ॥ ९६ ॥

और शिवलोकको प्राप्तहोता है उसके पितरों को स्वर्गकी प्राप्तिहोती है ॥ ९७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन् ! माहिष्मती के पश्चिम तिलेशके समीप में सब पापों के नाश करनेवाले देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये रासभी और नर्मदा के संगम के सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ ९८ । ९९ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! पुराने इतिहास को सुनो नर्मदा और गर्दभी का सङ्गम तिर्य्यग्योनि से छुड़ानेवाला है ॥ १०० ॥ हे महाराज ! जिस पापनाशन तीर्थमें सुतेजास्त्री और हरिकेश ब्राह्मण की अपार गर्दभयोनि से मुक्ति हुई ॥ १ ॥ व हे युधिष्ठिर ! बड़े समर्थ हविर्धाननाम के राजर्षि होतेहुये और ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ

स्वर्गतिस्तथा॥९७॥युधिष्ठिरउवाच॥भगवञ्च्छ्रोतुमिच्छामि माहिष्मत्यास्तुपश्चिमे ॥ ९८ ॥ सन्निधौचतिलेशस्यस र्वपापप्रणाशनम् ॥ रासभीनर्म्मदाभेदं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ९९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग इतिहा संपुरातनम् ॥ नर्म्मदागर्दभीभेदं तिर्य्यग्योनिविमोचणम् ॥ १०० ॥ यस्मिंस्तीर्थेमहाराज सुतेजाहरिकेशयोः ॥ अ पाराद्रासभत्वाच्च मुक्तिःकल्मषनाशने ॥ १ ॥ हविर्द्धानस्तुराजर्षिरासीत्कल्पोयुधिष्ठिर ॥ आत्रेयस्यसुतश्चासीद् ब्र ह्मर्षिर्ब्रह्मवित्तमः ॥ २ ॥ पावकस्यसुतायातु पाणिग्रहणधर्म्मतः ॥ हविर्द्धानायसादत्ता सुतेजानामनामतः ॥ ३ ॥ कु शवल्कपरीधाना कन्दमूलफलाशिनी ॥ रूपयौवनसम्पन्ना पार्वतीवमनोहरा ॥ ४ ॥ हविर्द्धानस्तुराजर्षिर्ऋतुंबुद्ध्वा गतस्तुताम् ॥ आगतोसौयुवातत्र सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥ महर्षिन्त्वागतंज्ञात्वा सुतेजाकामितुङ्गता ॥ सहसालंकृता न्तान्तु करंजग्राहसद्विजः ॥ ६ ॥ तेनसाधर्षितातत्र यथेष्टंकामपीडिता ॥ अग्निहोत्रस्यशालायां दाम्पत्यंकामसंयु

आत्रेयके पुत्र हरिकेशनामक ब्रह्मर्षि भी होतेहुये ॥ २ ॥ व जो नाम से सुतेजानाम की अग्निकी कन्याथी वह विवाहकी रीतिसे हविर्द्धान के वास्ते दीजातीहुई ॥ ३ ॥ जोकि कुश व भोजपत्रों को पहिरनेवाली और कन्द, मूल और फलोंको भोजन करनेवाली, रूप और जवानी से भरीहुई पार्वती के समान मनोहर होती हुई ॥ ४ ॥ हविर्द्धानराजर्षि ऋतुसमय को जानकर उस स्त्री के साथ गमन करतेहुये तबतक सब शास्त्रोंके जाननेवाले वे युवा हरिकेश वहां आतेहुये ॥ ५ ॥ आयेहुये महर्षि को जानकर सुतेजा कामना के वास्ते जातीहुई उन हरिकेश ब्राह्मणने भी आभूषणोंसे भूषित उस स्त्रीका सहसा हाथ पकड़लिया ॥ ६ ॥ वहां कामसे पीड़ित वह स्त्री उस

ब्राह्मण करके यथेष्ट धर्षित कीगई व अग्निहोत्रकी शाला में कामसे युक्त स्त्री पुरुष का संयोग होताहुआ ॥ ७ ॥ धर्म और अधर्म के जाननेवाले वे महात्मा हविर्द्धान देखतेहुये उस अग्निकी कन्याको देखकर उदासीनमुखवाले होगये ॥ ८ ॥ पापकर्मका करनेवाला, दुष्ट, पापात्मा, ब्राह्मण अवध्य है व यह दुष्टा हमारी स्त्री भी स्त्री होनेसे अवध्य है ॥ ९ ॥ इस प्रकार विचारकरके अपनी स्त्री के भ्रष्ट करनेवाले उस ब्राह्मण से हविर्द्धान बोले कि माता, गुरुकी स्त्री, बहिन और कन्या में ॥ १० ॥ गमनकरके अग्निमें प्रवेशकरै तब मनुष्य शुद्ध होता है इससे हे ब्राह्मण! तू और यह हमारी स्त्री गदहा और गदही होजा ॥ ११ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक

तम् ॥ ७ ॥ ददर्शेसमहात्मावै धर्म्माधर्म्मविशारदः ॥ आसीद्विषण्वदनो दृष्ट्वातांपावकात्मजाम् ॥ ८ ॥ अवध्योब्राह्मणोदुष्टः,पापात्मापापकर्म्मकृत ॥ इयञ्चपत्नीदुष्टामे नवध्याश्चस्त्रिभावतः ॥ ९ ॥ तमुवाचविचार्य्यैवं ब्राह्मणन्दारकर्षकम् ॥ मातरंगुरुपत्नीञ्च स्वसारंदुहितरन्तथा ॥ १० ॥ गत्वानुप्रविशेदग्निं ततःशुद्ध्येतमानवः ॥ गर्दभस्त्वंभवेद्विप्र गर्दभीचतथाविधि ॥ ११ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु अमेध्यंभक्षयिष्यथः ॥ सुतेजाहरिकेशौतु हविर्द्धानःशशापतौ ॥ १२ ॥ पीडितौकर्म्मणातेन गतौवदरिकाश्रमम् ॥ हिमस्थानञ्चकेदारं भैरवंनैमिषंतथा ॥ १३ ॥ सूर्य्याक्षंचगयातीर्थं गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ वाराणसींप्रयागञ्च ओघतीर्थञ्चपुष्करम् ॥ १४ ॥ योगीश्वरंरुद्रकोटिं महेन्द्रंब्रह्मसम्भवम् ॥ प्रभासञ्चकुरुक्षेत्रं तीर्थंसौम्येश्वरन्तथा ॥ १५ ॥ अनेकानिचतीर्थानि पृथिव्यांयानिकानिच ॥ सार्द्धतयातपस्विन्या हविर्द्धानस्यशापतः ॥ १६ ॥ अनेकदुःखसम्पन्नो हरिकेशोभ्रमन्महीम् ॥ खरयोनिनियुक्तस्तु परदाराभिकर्षकः ॥ १७ ॥

अशुद्धभक्षण करोगे इस प्रकार सुतेजा और हरिकेश इन दोनोंको हविर्द्धान शापदेतेहुये ॥ १२ ॥ उस कर्मकरके पीड़ित वे दोनों बदरिकाश्रम को जातेहुये और हिमालय, केदार, भैरव तथा नैमिष ॥ १३ ॥ सूर्याक्ष, गयातीर्थ, गङ्गासागरसंगम, काशी, प्रयाग, ओघतीर्थ, पुष्कर ॥ १४ ॥ योगीश्वर, रुद्रकोटि, महेन्द्र, ब्रह्मसम्भव, प्रभास, कुरुक्षेत्र तथा सौम्येश्वरतीर्थ ॥ १५ ॥ और भी जो कोई पृथिवीपर तीर्थ हैं उन सबमें हविर्द्धान के शापसे उस तपस्विनी स्त्रीकरके सहित ॥ १६ ॥ अनेक

दुःखोंकरके युक्त व परस्त्री के भ्रष्ट करनेवाले व गदहे की योनिमें पड़ेहुये हरिकेश पृथिवी में भ्रमतेहुये ॥ १७ ॥ बहुत कालकरके उसी स्त्रीकरके सहित, उसी गदहे के रूपकरके हरिकेश वहा अगस्त्य महामुनि को प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ वहां गिरकर साष्टाङ्ग मुनिके नमस्कार करके कहा कि गुरुस्त्री मे गमन करनेवाले व परस्त्री में गमन करनेवाले पापीके पापका ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्त हे द्विजोत्तम ! मुझको विधान से दियाजावे ब्रह्मलोक के बराबर स्थान में स्थित होरहे आप इस योनिको छुटा देवो ॥ २० ॥ तब अगस्त्यने उनसे कहा कि तुम हविर्द्धानके समीप जावो उनके इस वचन को सुनकर सुतेजाके संगको प्राप्तहोरहे हरिकेश ब्रह्मचारी मुनियों के

कालेनभूयसातत्र हरिकेशस्तयासह ॥ तेनैवखररूपेण अगस्त्यञ्चमहामुनिम् ॥ १८ ॥ नमस्कृत्यमुनिंतत्र साष्टाङ्गं प्रणिपत्यच ॥ गुरुतल्पगपापस्य परदाराभिगामिनः ॥१९॥ प्रायश्चित्तंविधानेनदीयताम्मेद्विजोत्तम ॥ मोचयत्वमिमां योनिं ब्रह्मलोकपदस्थितः ॥ २० ॥ हविर्द्धानान्तिकंयाहिततोगस्त्यउवाचतम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मुनीनामूर्द्ध्वरे तसाम् ॥ हरिकेशोऽब्रवीद्वाक्यं सुतेजासहसङ्गतः ॥ २१ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये ब्राह्मणानान्नसंशयः ॥ ततोगतौतुतं राजन्हविर्द्धानस्यचाश्रमम् ॥ २२ ॥ नमस्कृत्यमुनिश्रेष्ठंहरिकेशोऽब्रवीद्वचः ॥ गुरुतल्पगपापोहं क्षमस्वमयिपुत्र के ॥ २३ ॥ शापान्तंचवरंमन्ये दातुमर्हसिसुव्रत ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा हरिकेशस्यदुर्म्मतेः ॥ २४ ॥ उवाचवचनंवि प्रस्तंवैगर्दभरूपिणम् ॥ स्वकर्मणातनुंत्वंहि गार्दभींप्राप्तवानसि ॥ २५ ॥ जन्मान्तरकृतैश्चैव कर्म्मभिःकर्मकारिभिः ॥

प्रत्यक्ष वचन बोले ॥ २१ ॥ कि यह हम ब्राह्मणों का बड़ा अनुग्रह मानते हैं इस में कोई संशय नहीं है तदनन्तर हे राजन् ! वे दोनों उस हविर्द्धान के आश्रमको जातेहुये ॥ २२ ॥ मुनियों में श्रेष्ठ हविर्द्धान के नमस्कार करके हरिकेश वचन बोलतेहुये कि गुरुस्त्री के गमन करनेका पापवाला मैं हूं सो मुझ पुत्रमें आप क्षमा कीजिये ॥ २३ ॥ और शापान्तहीको हम वर मानतेहैं सो हे सुव्रत ! आप मुझको देनेको योग्यहो उस दुर्मति हरिकेश के इस वचनको सुनकर ॥ २४ ॥ उस गदहे के रूपवाले से हविर्द्धान वचन बोले कि अपने कर्मकरके तू गदहे के शरीर को प्राप्तहोरहा है ॥ २५ ॥ कर्मकारियों करके और जन्ममें कियेहुये कर्मोंकरके शुभ

व अशुभफल अवश्य प्राप्तहोता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २६ ॥ हे विप्र ! कर्मोंका यह फल इन्द्रसहित देवताओं करके भी जानने के योग्य नहीं होसक्ता, कर्मोंकी गति बहुत कठिनहै ॥ २७ ॥ तिससे हे ब्राह्मण ! तेरा दोष किसीतरह नहीं होसक्ता किन्तु और जन्ममें कियेहुये कर्मकरके यह कर्म तुझकरके कियागया ॥ २८ ॥ तिससे इस गदही करके सहित नर्मदातट में तू अग्निमें प्रवेशकर वहां महादेवजी से वरको प्राप्तहोकर फिर तू उत्तमगति को प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहागया हरिकेश उस गदही करके सहित जाताहुआ हरिकेश और सुतेजा नर्मदातटके समीप ॥ ३० ॥ लकड़ी जमाकरके अग्निमें प्रवेश किया

शुभंवाप्यशुभंवापि प्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ २६ ॥ कर्म्मणाञ्चविपाकोयमपिदेवैस्सवासवैः ॥ ज्ञातुन्नशक्यतेविप्रगह नाकर्म्मणाङ्गतिः ॥ २७ ॥ दोषोनविद्यतेचैव तद्ब्राह्मणकथञ्चन ॥ किन्तुजन्मान्तरेयेन कर्म्मणातत्कृतंतव ॥ २८ ॥ तस्माद्विशहुताशन्त्वमनयामेकलातटे ॥ शङ्करादृरमासाद्य तावत्प्राप्स्यसिसद्गतिम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तोययौराजन्ह रिकेशस्तयासह ॥ हरिकेशस्सुतेजाच नर्म्मदातीरसन्निधौ ॥ ३० ॥ दारूणिचसमाहृत्य प्रविष्टौचहुताशनम् ॥ त त्क्षणाद्दिव्यदेहौतु स्नात्वास्पृष्ट्वाह्युभावपि ॥ ३१ ॥ कामिकंयानमारूढौ सर्वालङ्कारभूषितौ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहा त्म्याद्यथालक्ष्मीजनार्दनौ ॥ ३२ ॥ भुञ्जन्तौविविधान्भोगान्गत्वामाहेश्वरंपुरम् ॥ तेनासौसङ्गमःपुण्यस्तिर्य्यग्योनि विमोक्षणः ॥ ३३ ॥ हरिकेशेश्वरंलिङ्गं सुतेजानिर्मितंतथा ॥ हविर्द्धानेश्वरन्नाम चतुर्थोऽगस्त्यनिर्म्मितम् ॥ ३४ ॥ च त्वारिपुण्यलिङ्गानिकाममोक्षप्रदानितु ॥ तिलोदकप्रदानेन तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ ३५ ॥ मातृकंपैतृकंचैव नरकादु

उसीक्षण दोनों दिव्यदेह होगये नर्मदा मे स्नान और स्पर्श करके ॥ ३१ ॥ सब अलङ्कारों से भूषित, यथेष्ट सवारीपर चढ़ेहुये इस तीर्थ के माहात्म्य से जैसे लक्ष्मी और विष्णुहोवें ॥ ३२ ॥ इसीतरह माहेश्वरपुर को जाकर अनेक भोगोंको भोगते हुये इसीसे यह तिर्य्यग्योनि का छुड़ानेवाला पवित्र संगम है ॥ ३३ ॥ वहां हरिकेशेश्वरलिंगहै और सुतेजाकरके रचाहुआ लिङ्गहै हविर्द्धानेश्वर और चौथा अगस्त्य का स्थापन कियाहुआ लिंगहै ॥ ३४ ॥ ये चारो पुण्यलिंग काम और मोक्षके देने

वालेहैं हे नराधिप ! उस तीर्थमें तिलोदक के देनेसे ॥ ३५ ॥ माता और पिताके कुलके पितरों को नरकसे उद्धार करता है वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न नहीं होतेहैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया ॥ १३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगर्दभी तीर्थवर्णनोनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब देवताओं करके नमस्कार कियेगये गौरीखण्ड को जावे वहां स्नान करके मनुष्य सब तीर्थों के फलको पाताहै ॥ १ ॥

द्धरेत्पितॄन् ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंराजन्नाख्यानञ्चपुरातनम् ॥ १३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगर्दभीतीर्थवर्णनोनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ गौरीखण्डंततोगच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ तत्रस्नानेनलभते सर्वतीर्थफलन्नरः ॥ १ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांतृप्तिरक्षया ॥ जायतेचनृपश्रेष्ठ नात्रकार्य्याविचारणा ॥ २ ॥ गौरीखण्डेश्वरन्नाम लिङ्गंपापहरंपरम् ॥ तत्रज्ञेयंमणिमयं जलमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ ३ ॥ नतत्पश्यन्तिमनुजास्सर्वैर्देवैस्तुपूजितम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ गौरीखण्डेश्वरन्नाम तस्मिंस्तीर्थेकथम्मुने ॥ ४ ॥ कथ्यताञ्चयथान्यायं विदितंयत्तुसाम्प्रतम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुरादेवगणैस्सर्वैः कुमारःशङ्करात्मजः ॥ ५ ॥ सेनापत्येनियुक्तश्च तारकस्यवधम्प्रति ॥ कामितास्तेनतत्रैव सर्वास्ताः

और तिलोदक के देने से हे नृपश्रेष्ठ ! पितरों की अक्षय तृप्ति होती है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ वहा पापोंका हरनेवाला श्रेष्ठ गौरीखण्डेश्वर नाम लिंग जलके मध्यमें विद्यमान मणियों से रचित जानना चाहिये ॥ ३ ॥ उसको मनुष्य नहीं देखपाते हैं किन्तु सब देवताओं करकेही पूजन कियाजाता है युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुने ! गौरीखण्डेश्वर नाम उस तीर्थमें किस प्रकार आये ॥ ४ ॥ सो जो विदितहो वह आपकरके इससमय यथायोग्य कहाजावे तब मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल मे सब देवगणों करके महादेवजी के पुत्र, कुमार ॥ ५ ॥ तारकासुर के मारने के वास्ते सेनापतिके अधिकारमें स्थापन कियेगये-वहीं उक्त

सेनापति करके वे सब देवताओं की स्त्रियां कामना कीगई ॥ ६ ॥ तदनन्तर वे सब उमामाहेश्वरपुर में प्राप्तकीगईं पार्वतीजी स्त्रियोंके सहित प्राप्तहुये कुमारजी को सुनकर उदासीन होगईं ॥ ७ ॥ जिस २ स्थान में कुमारने उनकी कामनाकी वहीं २ पार्वतीजी प्राप्तहुईं ॥ ८ ॥ माताको देखकर कुमार लज्जित होगये और मोर पर सवार हुये देवताओं करके सहित चलेगये ॥ ९ ॥ पीछेसे रोतीहुईकी नाईं जायरही माता देवी पार्वतीजी महादेवका पूजन करके नर्मदाको उतरीं ॥ १० ॥ इसी से तीनों लोकोंमें वह तीर्थ गौरीखण्ड नामसे विख्यात हुआ वहां कुमारेश्वर नाम का लिङ्ग स्थापित कियागया ॥ ११ ॥ मयूरेश्वर लिंगभी भुक्ति और मुक्तिफल का

सुरयोषितः ॥ ६ ॥ उपालब्धास्ततस्सर्वा उमामाहेश्वरेपुरे ॥ उपालब्धन्तुतंश्रुत्वा विषण्णाचैवपार्वती ॥ ७ ॥ कामितंयत्रयत्रैव तत्रतत्रेश्वरेश्वरी ॥ ८ ॥ दृष्ट्वाथलज्जितःसोपि पत्तिणासौसमाययौ ॥ देवैःपरिवृतःश्रीमान्मयूरस्थोमहाबलः ॥ ९ ॥ पृष्ठतोनुगतामाता रुदतीवसुरेश्वरी ॥ उत्तीर्णाकल्पगान्देवी पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ १० ॥ गौरीखण्डन्तु विख्यातं त्रिषुलोकेषुतेनतत् ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठितंतत्र कुमारेश्वरसंज्ञितम् ॥ ११ ॥ मयूरेश्वरलिङ्गन्तु भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ यस्यदेवस्यमाहात्म्यान्मयूरास्त्रिदिवङ्गताः ॥ १२ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य तिर्य्यग्योनिर्नजायते ॥ ततोगच्छेन्महाराज करमर्दासमागमम् ॥ १३ ॥ तत्रस्नातोमहाराज सभवेनपुनर्भवेत् ॥ करमर्देश्वरंलिङ्गं पूजयेत्तत्रभारत ॥ १४ ॥ पितृणांतर्पणात्तत्र स्वर्गंप्राप्नोतिमानवः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथयस्वमहाभाग करमर्दासमुद्भवम् ॥ १५ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञस्त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामियथादृष्टं शृणुचैकमनान्नृप ॥ १६ ॥ मैत्रेयस्याश्रमंपुण्यं

देनेवाला है जिस देव के माहात्म्य से मयूर स्वर्गको जातेहुये ॥ १२ ॥ उन देवके पूजन करने से तिर्य्यग्योनि नहीं होती है महाराज ! तदनन्तर करमर्दा के समागम को जावै ॥ १३ ॥ वहां जिसने स्नान किया है महाराज ! वह फिर संसारमें नहीं होता है भारत ! वहां करमर्देश्वर लिंगका पूजनकरे ॥ १४ ॥ व वहां पितरोंके तर्पण करनेसे मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! करमर्दाकी उत्पत्तिको कहो ॥ १५ ॥ आप भूत और भविष्यके तत्त्वके जाननेवालेहो और तीनोंकाल व तीनों वेदों को जानतेहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृप ! जैसा देखा है वैसाही हम कहते हैं तुम एकाग्रमन होकर सुनो ॥ १६ ॥

ऋषियों करके सेवित, मैत्रेयमुनिका पवित्र आश्रम होताहुआ जब वहां कन्द,मूल और फलोंके आहार करनेवाले हजारों मुनि तप करनेके वास्ते सदा वास करतेहुये तब किसीकालमें उस मुनिवरके आश्रम में ॥ १७ । १८ ॥ हे नृप! एकछत्र राज्य करनेवाले कुशध्वज नामके राजा सूर्यग्रहण में नर्मदा के तटपर आतेहुये ॥ १९ ॥ वहां उतरेहुये सब मुनियों के यथायोग्य नमस्कार करके कहा कि आज पितरों के श्राद्धका समय है आपलोग मुझपर प्रसन्नता करिये ॥ २० ॥ तब ऋषि बोले कि एकबार ब्याईहुई, दूधकी देनेवाली, बछड़ों के सहित, सुन्दर रङ्गवाली, घण्टा और आभूषणोंकरके सोहतीहुई एकलाख गौवोंको ॥ २१ ॥ देवता और पितरोंके

षिभिस्तुनिषेवितम् ॥ मुनीनान्तुसहस्राणिकन्दमूलफलाशिनाम् ॥ १७ ॥ निवसन्तियदातत्र तपःकर्तुन्निरन्तरम् ॥ कस्मिंश्चिदन्यकालेतु तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ १८ ॥ राजाकुशध्वजोनामएकच्छत्राधिपोन्नृप ॥ आगमन्मेकलातीरंराहुसूर्य्यसमागमे ॥१९॥ अवतीर्णान्मुनीन्सर्वान्यथार्हंप्रणिपत्यच ॥ पितॄणांश्राद्धकालोद्य प्रसादःक्रियतांमयि ॥ २० ॥ ऋषयऊचुः ॥ गवांदशायुतान्येकप्रसूतानांपयोमुचाम् ॥ सवत्सानांसुवर्णानां घण्टाभरणशोभिनाम् ॥ २१ ॥ यदि शक्तोसिदातुन्त्वं होमार्थेपितृदेवयोः ॥ तत्रप्रवर्ततांश्राद्धं सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ २२ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ कुशध्वजोऽब्रवीद्वाक्यं ब्राह्मणांस्तान्यथार्थतः ॥ २३ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये यथोक्तंब्रह्मचारिभिः ॥ ददाम्यहन्नसन्देह इहैवमुनिपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ भोजयित्वाततःश्राद्धे ब्राह्मणांस्तान्नृपोत्तमः ॥ सकुशंजलमादाय तेभ्योदत्त्वा तुगास्तदा ॥ २५ ॥ दत्त्वादानंमुदायुक्तः सजगामस्वकम्पुरम् ॥ स्थितास्तुब्राह्मणास्तत्र होमकार्य्यार्थसिद्धये ॥ २६ ॥

अर्थ व होमके लिये देनेको जो आप समर्थ होवो तो श्राद्ध प्रवृत्तहोवे यह हमलोगों करके तुमसे सत्य कहागयाहै ॥ २२ ॥ उन ऊर्ध्वरेता मुनियोंके इस वचन को सुनकर उन ब्राह्मणों से कुशध्वज यथार्थ वचन बोलतेहुये ॥ २३ ॥ जैसा ब्रह्मचारियों करके कहागया इसको हम अनुग्रह मानते हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! हम यहीं गौवें देदेवेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ तदनन्तर श्राद्धमें उन ब्राह्मणोंको भोजन कराके श्रेष्ठ राजा ने कुशसहित जल लेकर उनके वास्ते उसी समय में गौवें भी देदीं ॥ २५ ॥ दानको देकर बड़े आनन्द से युक्त वे राजा अपने पुरको चलेगये और ब्राह्मणलोग होम करनेके लिये वहीं स्थित होतेहुये ॥ २६ ॥

एक दिन घोररूप बड़ी डाढ़ोंवाले, भयानक, डरावने मुहँवाले, भूखे राक्षस प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ तब ब्राह्मणों की गौवोंको खानेके वास्ते प्राप्तहोरहे उन भयानकरूपवाले तीक्ष्णशब्द के करने में तत्पर होरहे राक्षसों को देखकर ॥ २८ ॥ अपने उस स्थान से भागीहुई गौवें नर्मदाके जलमें प्रवेशकर जातीहुई वे सब कामधेनु उसीक्षणमें दिव्यलोक में स्थित होतीहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे सब भूखेराक्षस ब्राह्मणों के भक्षण करनेको प्राप्तहुये वे सब उत्तमव्रतवाले ब्राह्मण परमेश्वर का स्मरण करते हुये ॥ ३० ॥ राक्षसों करके पीड़ित नर्मदा के जलमें पैठजाते हुये वहां विष्णुके पसीना का प्रवाह नर्मदाको जाताहुआ ॥ ३१ ॥ सब देवताओं करके नमस्कार किया

एकस्मिन्वासरेप्राप्ता राक्षसाघोररूपिणः ॥ बुभुक्षितामहादंष्ट्रा विकृतास्याभयानकाः ॥ २७ ॥ ब्राह्मणानांतदागा वै भक्षितुंमुपागतान् ॥ दृष्ट्वातान्विकृताकारांस्तीव्रनादपरायणान् ॥ २८ ॥ प्रणष्टास्तुततःस्थानान्नर्म्मदाजल माविशन् ॥ तत्क्षणाद्दिव्यलोकस्थास्सर्वास्ताःकामधेनवः ॥ २९ ॥ ततस्तेक्षुधितास्सर्वे ब्राह्मणान्भक्षितुङ्गताः ॥ हरिं स्मरन्तितेसर्वे ब्राह्मणाश्शंसितव्रताः ॥ ३० ॥ रेवाजलंप्रविष्टावै राक्षसैःपरिपीडिताः ॥ विष्णोःप्रस्वेदजस्तत्र प्रवाहोन र्म्मदाङ्गतः ॥ ३१ ॥ गोपदंदृश्यतेतत्र सर्वामरनमस्कृतम् ॥ करमर्द्देश्वरंलिङ्गं विष्णुचक्राद्विनिस्सृतम् ॥ ३२ ॥ प्रति ष्ठितंचतत्रैव विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ गावश्चब्राह्मणाश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ३३ ॥ ब्रह्मलोकंगतास्सर्वे तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ करमर्द्देश्वरंतीर्थंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ कीर्तितंकर्म्मणातेनमह्यामिततेजसा ॥ ३४ ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीरेवाखण्डेसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गया गौवों के चरणों का चिह्न वहां दीखता है और करमर्द्देश्वर लिंग विष्णुजी के चक्र से निकला ॥ ३२ ॥ परमप्रभाववाले विष्णुजी करके वहीं प्रतिष्ठित कियागया गौवें और ब्राह्मण इस तीर्थ के प्रभावसे ब्रह्मलोकको जातेहुये आपसे हम यह सत्य कहते हैं पृथिवीमें उस बड़े तेजवाले कर्मकरके करमर्द्देश्वरतीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला कहागया है ॥ ३३ । ३४ ॥ वहां स्नान करनेवाले मनुष्य स्वर्गको जाते हैं और वहां के मरेहुये फिर जन्म नहीं पाते इसके सुनने और कहने से हजार गोदानका फल होता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकरमर्द्देश्वरकीर्त्तनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि राजाओं में श्रेष्ठ मान्धाता राजा तीनों लोकोंमें विदित होतेहुये इससे उन बुद्धिमान् का चरित हम सुनने की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन्! जो तुम हमसे पूछते हो वह सुनो इक्ष्वाकुवंश में पैदाहुये युवनाश्व नामक राजा होतेहुये ॥ २ ॥ उन राजाने बडी दक्षिणावाली यज्ञोंसे यजन किया परन्तु वे दृढ़व्रत, महात्मा, राजर्षि पुत्रों रहित रहे ॥ ३ ॥ इससे वह राज्य मन्त्रियों के अधीन करके राजा वनमें जारहे शास्त्र में देखीहुई विधि करके अपनी बुद्धि से मनको रोंककर ॥ ४ ॥ फल व जडोंको भक्षण करते हुये उन्होंने बडा तप किया एक दिन प्यास से विकल अत्यन्त

युधिष्ठिरउवाच ॥ मान्धाताराजशार्दूलस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुं चरितंतस्यधीमतः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ शृणुराजन्महाभाग यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो युवनाश्वोमहीपतिः ॥ २ ॥ सोयजत्पृथिवीपालः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ अनपत्यस्तुराजर्षिस्समहात्मादृढव्रतः ॥ ३ ॥ मन्त्रिष्वाधायतद्राज्यं वननिष्ठोमहीपतिः ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिना संयम्यात्मानमात्मना॥ ४ ॥ फलमूलानुभक्तश्च सचचारमहत्तपः ॥ शुष्ककण्ठः पिपासार्तः पानीयार्थेभृशन्नृपः ॥ ५ ॥ सम्प्रविश्याश्रमस्यान्तः पानीयंसोभ्ययाचत ॥ तस्यशुष्केणकण्ठेन क्रोशतस्तुतदाभृश ॥ ६ ॥ नाश्रौषीद्वचनंतत्र चातकस्येववासवः ॥ भगवांस्तुतदाकश्चिदृषिस्तस्यमहीपतेः ॥ ७ ॥ पुत्रीयमग्रतःकृत्वा मन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ रात्रौचकलशंतत्र जलपूर्णंपिपासितः॥ ८ ॥ अभ्यद्रवत्सवेगेन पीत्वापस्तत्रचास्वपत् ॥ सपीत्वार्थं पिपासार्तोमहीपतिः ॥ ९ ॥ अग्निर्निर्वर्तितस्तस्यसुखीचैवाभवत्तदा ॥ ततस्तेचाप्यबुध्यन्त मुनयश्शं

राजा पानी के वास्ते आश्रम के भीतर पैठकर पानीको मांगते हुये तब सूखेगले से बड़ेजोर चिल्लाते हुये उन राजा के ॥ ५ । ६ ॥ जैसे पपीहा के शब्दको इन्द्र नहीं सुने तबतक कोई ऋषिभगवान् पहलेही उन राजाके पुत्रके वास्ते मन्त्रों से अभिमन्त्रित बहुतसी यज्ञें कीगई ॥ ... जलका कलश रक्खा ... प्यासे ॥ ७ । ८ ॥ राजा बड़ेवेग से दौडे और उसी जलको पीके सोरहे प्याससे विकल वे राजा ठंढे पानी

को पीकर ॥ ६ ॥ अग्नि उनकी शान्तहुई और तब सुखीभी होतेहुये तदनन्तर श्रेष्ठव्रतवाले उन मुनिलोगों ने भी इस कामको जाना ॥ १० ॥ तब कुपितहोकर उन राजासे पूंछा कि यह किसका कामहै तब युवनाश्व बोले कि यह काम मेराहीहै यह बात सत्यह ॥ ११ ॥ तब युवनाश्व राजासे भार्गव भगवान् यह बोले कि तपसे भराहुआ यह जल पुत्रके वास्ते स्थापन कियागया था ॥ १२ ॥ दारुणतप के आश्रित होकर मुफ्कर के तुम्हारे पुत्रके वास्ते यह काम कियागया है राजेन्द्र ! जिससे तुम्हारे बलवान् पुत्रहोवे ॥१३॥ बड़ा बलवाला व बड़ा पराक्रमवाला तपोबलसे युक्त सब धर्मोंमें अत्यन्त तत्पर इन्द्रके समान पुत्रहोगा ॥ १४ ॥ मन्त्रोंसे

सितव्रताः ॥ १० ॥ कस्येदंकर्म्मकुपिताः पप्रच्छुस्तंनृपन्तदा ॥ युवनाश्वोममेत्येवं सत्यंसमभिपद्यते ॥११॥ युवनाश्व मिदंप्राह भगवान्भार्गवस्तदा॥सुतार्थंस्थापितंह्येतत्तपसाचैवसम्भृतम् ॥ १२ ॥ मयाकर्मकृतञ्चैतत्तपआस्थायदारुण म् ॥ पुत्रार्थंतवराजेन्द्र येनतेबलवान्भवेत् ॥ १३ ॥ महाबलोमहावीर्य्यस्तपोबलसमन्वितः ॥ सुतश्शक्रसमोत्यर्थं सर्व धर्म्मपरायणः ॥ १४ ॥ विधिनामन्त्रयुक्तेन मयैतदुपपादितम् ॥ अभक्षणंत्वयाराजन्नयुक्तंकृतमत्रवै ॥ १५ ॥ नूनन्दै वकृतंत्वद्य यत्त्वंकृतवानसि ॥ पिपासुनाचयत्पीतं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ १६ ॥ जलंत्वयामहाराज तेनत्वंवीर्य्यवा नसि ॥ अन्वहंकर्म्मकृत्वापि महान्तंसुखमाप्स्यसि ॥१७॥विधास्यामोवयंचात्र पुत्रेष्टिंपरमान्तदा ॥ वीर्य्येणशक्रतु ल्यंत्वं पुत्रंवैजनयिष्यसि ॥ १८ ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे तस्यराज्ञोमहात्मनः ॥ वामपार्श्वंविनिर्भिद्य सुतस्सूर्य्यइवापरः ॥ १९ ॥ निश्चक्राममहातेजा नचतंमृत्युराविशत् ॥ युवनाश्वस्यनृपतेस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २० ॥ ततश्शक्रोमहातेजा

युक्त विधिसे मुफ्करके यह काम कियागया सो हे राजन् ! अभक्षणको तुमने भक्षण किया इसमें तुमकरके यहां अयोग्य काम कियागया ॥ १५ ॥ आज जो तुमने कियाहै वह निश्चय से प्रारब्धकाही कियाहुआ है जो प्यासे आपकरके विधिपूर्वक मन्त्रों से संस्कृत जल पीडालागया हे महाराज ! इसीसे तुम गर्भवाले होगये निरन्तर कर्मकोकरके भी बडेसुखको प्राप्तहोगे ॥ १६।१७ ॥ हमलोग तुम्हारे वास्ते यहां परमपुत्रेष्टि करेंगे तब पराक्रम करके इन्द्रके तुल्य तुम पुत्र पैदाकरोगे ॥१८॥ तदनन्तर सौवर्षोंके पूर्णहोनेपर उन महात्मा राजाकी बाईकोखको फाड़कर दूसरे सूर्यसरीखा पुत्र ॥ १९ ॥ बड़ा तेजवाला निकल आताहुआ व उसकी मृत्यु नहीहुई

यह युवनाश्व राजाको आश्चर्यसा होताहुआ ॥ २० ॥ तदनन्तर बड़े तेजवाले इन्द्र उस लड़केको देखनेके लिये आतेहुये उन इन्द्रसे देवता पूंछतेहैं कि यह बालक क्या पीवेगा ॥ २१ ॥ उन देवताओंसे इन्द्र यह कहतेहुये कि यह बालक मुझको पीवेगा तदनन्तर इन्द्र उसके मुहँमें अपनी तर्जनी अंगुलीको लगादिया॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होरहा वह बालक इन्द्रकी उस प्रदेशिनी को पीताहुआ इन्द्र इस बालकका ठीक अर्थवाले मान्धाता इसनामको रखतेहुये ॥ २३ ॥ वहां वह महीपाल बालक इन्द्रकरके दीहुई प्रदेशिनीको पाकरके सोलहवर्षतक बढ़ताहुआ किन्तु ॥२४॥ तब उस महाराजको ध्यानमात्रहीसे आयुर्वेदआदि शास्त्र और दिव्य सब शस्त्र

एषमान्धास्यतीत्येवं शक्रःप्रोवाच स्तन्द्रष्टुंसमुपागतः ॥ शक्रंपृच्छन्तितन्देवास्सुतःकिन्धास्यतीत्ययम् ॥ २१ ॥ मान्धातान्सुरान् ॥ प्रदेशिनीञ्चतस्यास्ये ततःशक्रस्समादधौ ॥ २२ ॥ सतांबालस्ततोहृष्टः पपौतस्यप्रदेशिनीम् ॥ किन्तु तेतिचनामास्य शक्रश्चक्रेयथार्थवत् ॥ २३ ॥ अवाप्यसशिशुस्तत्र शक्रदत्तांप्रदेशिनीम् ॥ अवर्द्धतमहीपालः षोडशिकास्समाः ॥ २४ ॥ आयुर्वेदादिशास्त्राणि दिव्यशस्त्राणिसर्वशः ॥ उपतस्थुर्महाराजं ध्यानमात्रेणतन्तदा ॥ २५ ॥ धनुराजगवन्नाम शराश्शृङ्गोद्भवाश्चये ॥ अभेद्यंकवचञ्चैव सद्यस्तमुपतस्थिरे ॥ २६ ॥ सोभिषिक्तोमघवता देवैस्सार्द्धंचभारत ॥ धर्म्मेणचाक्रमल्लोकान्सर्वान्विष्णुरिवक्रमैः ॥२७ ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रं प्रचचारमहात्मनः ॥ शतानिचैवराजानस्स्वयमेवोपतस्थिरे ॥ २८ ॥ तस्यैवमभवत्पूर्वं वसुधावसुधापते ॥ तेनेष्टंविविधैर्यज्ञैर्बहुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥२९॥ आपालिताच हृष्टमनामहातेजास्स्वधर्म्मंप्राप्यपुष्कलम् ॥ शक्रस्यार्द्धासनंधीमाँल्लब्धवानमितद्युतिः ॥ ३० ॥

उपस्थित होतेहुये ॥ २५ ॥ आजगव नाम धनुष व जे सींगोंके बनेहुये बाण वे और अभेद्य बख्तर शीघ्रही उनको उपस्थित होतेहुये ॥ २६ ॥ हे भारत ! देवताओंकरके सहित इन्द्रकरके अभिषेक कियेगये मान्धाता विष्णुकी नाईं धर्मकरके सब लोकों को क्रमसे आक्रमण करते हुये ॥ २७ ॥ उन महात्मा का चक्र बेरोक चलताहुआ और सैकड़ों राजालोग आपही मिलतेहुये ॥ २८ ॥ हे वसुधापते ! पूर्वकाल में उन राजाकी पृथिवी इस प्रकारकी होतीहुई उन राजाकरके अनेकप्रकारकी पूरीदक्षिणा वाली बहुतसी यज्ञें कीगई ॥ २९ ॥ प्रसन्नमनवाले, बुद्धिमान् व अमित दीप्तिवाले और बड़े तेजवाले राजा मान्धाता पूरे अपने धर्मको पाकरके इन्द्रके आधे आसनको

प्राप्तहोतेहुये ॥ ३० ॥ उन बुद्धिमान् राजाकरके धर्म से पृथिवी पालन कीगई और समुद्र व शहरों करके सहित आज्ञामात्रही से जीतलीगई ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! उक्त राजाकरके करीहुई दक्षिणावाली यज्ञोंकरके चारो समुद्रपर्यन्त पृथिवी व्याप्तहोगई कोई जगह खाली नहीं रही ॥ ३२ ॥ दशकरोड वर्षतक उन महात्मा राजाकी राज्य होतीहुई एक समयमें बारहवर्ष की अनावृष्टि में उक्त महात्मा राजा करके ॥ ३३ ॥ इन्द्र के देखतेहुये अन्नवृद्धि के वास्ते वर्षा करवादीगई सोमवंशमें उत्पन्न हुआ, श्रेष्ठ, गन्धर्वों का राजा मान्धाता करके प्रेरित हुआ वहां जाकर अपने बाणोंसे जीतकर मेघोको लाताहुआ इस प्रकार महात्मा मान्धाता करके चारो प्रकार

पृथिवी तेनधर्म्मेणधीमता ॥ निर्जिजताशासनादेव सरत्नाकरपत्तना ॥ ३१ ॥ तत्कृतानांमहाराजक्रतूनांदक्षिणावताम् ॥ चतुरन्तामहीव्याप्ता नासीत्किञ्चिदनावृतम् ॥ ३२ ॥ दशलक्षसहस्राणि राज्यंतस्यमहात्मनः ॥ तेनद्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यांमहात्मना ॥ ३३ ॥ वृष्टिंचसस्यवृद्ध्यर्थंमिषतावज्रपाणिना ॥ तेनसोमकुलोत्पन्नो गन्धर्वाधिपतिर्महान् ॥ ३४ ॥ गत्वासमानयन्मेघं प्रमथ्याभिहितश्शरैः॥ प्रजाश्चतुर्विधास्तेन धृतास्तत्रमहात्मना ॥ ३५ ॥ तेनाप्तास्तपसालोकाःस्थापिताःस्वेनतेजसा ॥ तस्यैवदेववसतिस्थानमादित्यतेजसः ॥ ३६ ॥ यस्यपुण्यतमेदेशे दृश्यतेऽमरकण्टकः ॥ इष्ट्वातत्रक्रतुशतमोङ्कारस्यैवचाग्रतः ॥ ३७ ॥ राज्ञाचपर्वतेतस्मिन्स्तोत्रमेतदुदाहृतम् ॥ नमस्तेकालमेघाय कालात्मकनमोस्तुते ॥ ३८ ॥ कालाधिपनमस्तेस्तु कालरूपःप्रवर्तसे ॥ कालात्माकालरूपेण विश्वात्माविश्वरूपधृक् ॥३९॥ विश्वेश्वरनमस्तेस्तु कालत्यागेप्रवर्तकः॥ भवायभवनाशाय भवोद्भवनमोस्तुते ॥ ४० ॥ ॐनमोमहादे

की प्रजा पालीगई ॥ ३४ । ३५ ॥ तपस्या से उन राजाको लोक प्राप्तहुये और अपने तेजकरके स्थापन कियेगये सूर्यके समान तेजवाले उन्हीं राजाका यह देवस्थानहै ॥ ३६ ॥ जिनके बड़े पुण्यवाले देशमें अमरकण्टक दीखता है वहां ॐङ्कारनाथहीके आगे सौयज्ञोंको करके ॥ ३७ ॥ राजाकरके उसीपर्वतपर यह स्तोत्र कहा गया है कि कालेमेघों के समान रूपवाले आपके लिये नमस्कार है और कालही जिनका आत्मा ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे कालके स्वामी ! आपके लिये नमस्कार है कालरूप होकर आपही प्रवृत्त होतेहो कालरूप करके आप कालात्मा होतेहो संसार के धारण करनेवाले आप विश्वात्माहो ॥ ३९ ॥ हे विश्वे-

श्वर ! आपके लिये नमस्कार है हे भवोद्भव ! कालगति के प्रवृत्त करनेवाले आपहीहो, संसाररूप और संसार के नाश करनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ महादेव के लिये नमस्कारहै कल्याणस्वरूप व संसारके उत्पन्न करनेवाले के लिये नमस्कारहै नामरहित होने से जप जिनका नहीं होसक्का, उत्पत्तिरहित, गायारूप स्थानमें वीर्यके सीचनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ ४१ ॥ प्रभाव करनेवाले, अत्यन्तकल्याणरूप, क्षमारहित आपके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै तीन नेत्रवाले, तीन मूर्त्तिवाले, तीनोंलोको के स्वामी आपके लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ कालरहित व अजर और अमर के लिये नमस्कार है नमस्कार है आदिदेव ॐकारनाथ

वाय शम्भवायभवायच ॥ अजपायअजाताय अजायतनमीढुषे ॥ ४१ ॥ प्रभवायशिवतराय अक्षमायनमोनमः ॥ त्र्यम्बकायत्रिमूर्ताय त्रिलोकेशायतेनमः ॥४२॥ अकालायअजराय अमरायनमोनमः ॥ ॐङ्कारमादिदेवञ्च येवैध्यायन्तिनित्यशः ॥ ४३ ॥ नतेषांपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देव ॐङ्कारःकालरूपधृक् ॥ ४४ ॥ प्रत्युवाचमहीपालं देवदेवउमापतिः ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते स्तोत्रेणानेनसुव्रत ॥ ४५ ॥ तुष्टोस्मीतिनसन्देहो यथेष्टंतद्ददाम्यहम् ॥ मान्धातोवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरन्दातुन्त्वमिच्छसि ॥ ४६ ॥ वैदूर्य्योनामशैलेन्द्रो मान्धाताख्यानमर्हति ॥ देवस्थानमिदन्देव त्वत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ४७ ॥ अत्रदानंतपःपूजा तथाप्राणविसर्ज्जनम् ॥ येकुर्वन्तिनरास्तेषां शिवलोकेनिवासिता ॥ ४८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मान्धातुःपरमेश्वरः ॥ उवाचवचनन्देवो मान्धातारंमहीपतिम् ॥ ४९ ॥

का जो निरन्तर ध्यान करते हैं ॥ ४३ ॥ घोर संसार समुद्र में फिर उनकी उत्पत्ति नहीं होती कालरूपधारी ॐकारनाथ देव इस स्तोत्रको सुनकर ॥ ४४ ॥ देवताओंके देवता पार्वतीजी के पति महादेवजी राजासे बोले कि हे सुव्रत ! वरदान को मांगो तुम्हारा कल्याण होवे इस स्तोत्रसे ॥ ४५ ॥ हम प्रसन्नहैं तुम्हारे अभीष्ट को हम देंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है तब मान्धाता बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और वर देने की इच्छा करतेहो ॥ ४६ ॥ तो हे देव ! वैदूर्यनाम का पर्वतराज मान्धाता नामवाला होनेको योग्य होसक्का है और आपके प्रसादसे यह देवस्थान होजावे ॥ ४७ ॥ यहांपर दान, तप, पूजा और प्राणोंका त्याग जो मनुष्य करें उनका शिवलोक में वासहोवे ॥ ४८ ॥ उन मान्धाता के उस वचन को परमेश्वरजी सुनकर मान्धाता राजासे महादेवजी वचन बोले ॥ ४९ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! हमारे प्रसाद से यह सब होगा ऐसाही हो यह महादेवजी से कहकर वरदान को पाकर राजा ॥ ५० ॥ शीघ्रही अपनी पुरीको जातेहुये जैसे इन्द्र अमरावती को जावें यह सब मान्धाता का उत्तम चरित तुमसे कहागया ॥ ५१ ॥ हे अनघ ! हे महीपाल ! जो पर्वत हमारे सामने तुम करके देखागया था तब से वही वैदूर्यपर्वत मान्धातानाम से कहाजाताहै ॥ ५२ ॥ इसी तीर्थ के माहात्म्य से मान्धाताआदि राजा लोग सब कामनाओं से युक्त विष्णुलोक में विहार करते हैं ॥ ५३ ॥ इसके सुनने व कहने से अश्वमेध के फलको पाताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमान्धातुरुपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ⊛ ॥

सर्वमेतन्नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ एवमस्त्विवतितंचोक्त्वा वरंलब्ध्वामहीपतिः ॥ ५० ॥ जगामस्वाम्पुरींशीघ्रं यथाशक्रोमरावतीम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं मान्धातुश्चरितंमहत् ॥ ५१ ॥ योममाग्रेमहीपाल दृष्टोद्रिर्वैत्वयानघ ॥ तदाप्रभृतिमान्धाता वैदूर्य्योगीयतेगिरिः ॥ ५२ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मान्धातृप्रमुखान्नृपाः ॥ सर्वकामसमुद्युक्ता लोकेक्रीडन्तिवैष्णवे ॥ ५३ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि हयमेधफलंलभेत् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मान्धातुरुपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ कृतेयुगेथसम्प्राप्ते बलिर्नाममहासुरः ॥ तस्यपुत्रोमहावीर्य्यस्सहस्रभुजविश्रुतः ॥ १ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तेनचाराधितोहरः ॥ तुष्टेनतेनसम्प्रोक्तः प्रार्थयस्ववरंवर ॥ २ ॥ यत्किञ्चिद्देवरंप्रोक्तं तद्दास्यामिनसंशयः ॥ बाणासुरोवदत्येवं यदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ३ ॥ पुरंभवतुमेदिव्यमजेयंसर्वदैवतैः ॥ त्वामेववर्जयित्वातु दुष्प्राप्यंस

मार्कण्डेयजी बोले कि इसके अनन्तर सत्ययुगके प्राप्तहोने पर बलिनामका महाअसुर होताहुआ हजार भुजावाला प्रसिद्ध बड़ा पराक्रमी उसका पुत्र होताआ ॥ १ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक उस करके महादेवजी आराधन कियेगये व प्रसन्नहुये महादेव करके कहागया कि हे वर ! तू वरको मांगले ॥ २ ॥ जो तू वरगा वह हम देंगे इसमें कुछ संशय नहीं है बाणासुर इस प्रकार कहताहै कि हे प्रभो ! जो मेरे लिये प्रसन्नहो ॥ ३ ॥ तो सब देवताओं करके जीतने के अयोग्य

दिव्य मेरा शहर होजावे तुम्हीं को छोड़कर और सब देवताओं के प्राप्तहोने योग्य न हो ॥ ४ ॥ जो मेरे स्थिर होनेपर स्थिर बनारहे और मेरे चलनेपर चलाकरै हे देव! मेरे मनके अनुकूल मेरा शहर व मकान सदा बनारहे ॥ ५ ॥ बड़ा यशवाला बलिका पुत्र बाणासुर उन महादेवजी करके कहागया कि ऐसाहीहो तदनन्तर यह विष्णुकरके भी कहागया कि महादेव तुझसे क्या मागेगये ॥ ६ ॥ तब बाणासुर बोला कि महादेव करके मेरे वास्ते शहरों में श्रेष्ठ शहर दियागया सब देवताओं के जीतने के अयोग्य और असुरोंको भी दुर्लभ ॥ ७ ॥ जो महादेव करके तेरेवास्ते तेरे मनका शहर दियागया तो मुझकरके भी दूसरा वैसाही शहर दियागया ॥ ८ ॥ विष्णु

वेदैवतैः ॥ ४ ॥ मयितिष्ठतियत्तिष्ठेन्मयिगच्छतिगच्छतु ॥ कामिकंभवनन्देव पुरंभवतुमेतदा ॥ ५ ॥ उक्तोबाणासुरस्तेन बलिपुत्रोमहायशाः ॥ विष्णुनाभिहितश्चासौ किन्त्वयाप्रार्थितोहरः ॥ ६ ॥ बाणउवाच ॥ मह्यंदत्तंमहेशेन पुरम्पुरवरोत्तमम् ॥ अजेयंसर्वदेवानामसुराणाञ्चदुर्लभम् ॥ ७ ॥ यदिदत्तंमहेशेन पुरंतुभ्यंयथेप्सितम् ॥ मयापितेप्रदत्तञ्च द्वितीयन्तादृशंपुरम् ॥ ८ ॥ विष्णुनापिपुरन्दत्तं द्वितीयञ्चमनोरमम् ॥ एकीभूतौतुतौदेवावूचतुस्तौबलेस्सुतम् ॥ ९ ॥ गच्छबाणासुरक्षिप्रं यत्रास्तेकमलासनः ॥ गतस्तत्रबलेःपुत्रो यत्रातिष्ठत्पितामहः ॥ १० ॥ परिष्वज्यस्वहस्तेन पृष्टश्चैवस्वयम्भुवा ॥ बहुवर्षसहस्रन्तु तपोघोरन्त्वयाकृतम् ॥ ११ ॥ वरस्तुकस्त्वयाप्राप्तस्तपसाराध्यशङ्करम् ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा प्रत्युवाचमहासुरः ॥ १२ ॥ मयातुप्रार्थितोरुद्रो दत्तस्तेनप्रसादतः ॥ कामरूपंपुरंप्राप्तं मनोरम्यंमनोरमम् ॥ १३ ॥ तादृशन्तुपुरन्दत्तं द्वितीयंविष्णुनापुनः ॥ बाणासुरवचःश्रुत्वा प्रत्युवाचमहासुरम् ॥ १४ ॥ त्वयातु

करकेभी दूसरा मनका रमानेवाला शहर दियागया फिर महादेव और विष्णु दोनों देव एकत्र होकर बलिके पुत्रसे कहतेहुये ॥ ९ ॥ कि हे बाणासुर! जहां ब्रह्माहैं वहां को तुम शीघ्रजावो तब बलिका पुत्र वहां गया जहां ब्रह्मा विद्यमान थे ॥ १० ॥ अपने हाथसे आलिङ्गन करके ब्रह्माजी करके पूंछागया कि बहुत हजार वर्षतक तुझ करके घोर तप कियागया ॥ ११ ॥ उस तपकरके महादेवजीको प्रसन्नकरके तुझको क्या वर प्राप्तहुआ ब्रह्माके वचनको सुनकर बाणासुर बोला ॥ १२ ॥ कि मुझकरके महादेवजी प्रार्थना कियेगये सो उनकरके प्रसन्नतापूर्वक वर दियागया सुन्दर मनका रमानेवाला, मेरी इच्छाके अनुकूल रूपवाला शहर मुझको मिला ॥ १३ ॥ और

फिर उसीके समान विष्णुकरके भी दूसरा पुर दियागया बाणासुर के वचनको सुनकर ब्रह्माजी फिर महाअसुरसे बोले ॥ १४ ॥ तुम करके प्रार्थना कियेगये रुद्र उन महात्माकरके पुर दियागया मुझकरके भी तुम्हारेवास्ते पुरही दियागया तिससे यह त्रिपुर कहागयाहै हे राजन् ! इस प्रकार प्राप्तहुआ है वर जिसको ऐसा बड़ाबल व पराक्रमवाला असुर होगया ॥ १५ ॥ हजार भुजाओं से विस्तारको प्राप्त होरहा सब देवताओं करके अवध्य दानव, देवता, यक्ष, विद्याधर, गन्धर्व और राक्षसों के जो पुरथे वे सब उसकरके तोड़डालेगये और स्थण्डिल नाश करदियेगये ॥ १६ । १७ ॥ व हे भारत ! पूर्वकाल में इन्द्रकी अमरावतीपुरी भी उस करके भग्न करदीगई

प्रार्थितोरुद्रो दत्तन्तेनमहात्मना ॥ मयापितेपुरन्दत्तं तेनासौत्रिपुरस्स्मृतः ॥ एवंप्राप्तवरोराजन्महाबलपराक्रमः ॥ १५ ॥ सहस्रभुजविस्तीर्णस्त्ववध्यस्सर्वदैवतैः ॥ पुराणिदानवानान्तु अमराणान्तुयानिच ॥ १६ ॥ यक्षविद्याधराणान्तु गन्धर्वाणाञ्चरक्षसाम् ॥ भग्नानितानिसर्वाणि स्थण्डिलानिहतानिच ॥ १७ ॥ भग्नामरावतीतेन पुराशक्रस्यभारत ॥ त्रिपुरंह्यभवत्सर्वं कैलासःकेवलंपृथक् ॥ १८ ॥ उद्विग्नमानसादेवा हरपार्श्वमुपाययुः ॥ वरोदत्तस्त्वयातस्मै ब्रह्मणाविष्णुनापिच ॥ १९ ॥ तेनसार्द्धन्तुसंग्रामे शक्तिर्नास्तीतिकस्यचित् ॥ यस्तस्यपुरतस्तिष्ठेत्तमसौभस्मतान्नयेत् ॥ २० ॥ एवंश्रुत्वाशिवोवाक्यं परंकौतूहलंततः ॥ सम्प्रेपितास्तदादेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ २१ ॥ समेत्यगम्यतान्देवास्त्रिंशत्कोट्योमहाबलाः ॥ विनाशयतयत्नेन त्रिपुरंपुरसंस्थितम् ॥ २२ ॥ ततोगतास्सुरास्सर्वे बद्धवैरास्सहस्र

सब त्रिपुरही होगया केवल कैलासही बाकी रहगया ॥ १८ ॥ घबड़ाने मनवाले देवता महादेवजी के समीप को जातेहुये और कहा कि बाणासुर के लिये आप व ब्रह्मा और विष्णुकरके वर दियागया है ॥ १९ ॥ संग्राम में उसके साथ लड़ने को किसीकी सामर्थ्य नहीं है जो कोई उसके सामने खड़ाहो उसको वह भस्म कर सक्ताहै ॥ २० ॥ तदनन्तर इस प्रकार महादेवजी वचन सुनकर परमआश्चर्यको प्राप्त हुये उस समय में महादेव करके ब्रह्मा और विष्णुआदि देवता भेजेगये ॥ २१ ॥ महादेवजीने कहा कि हे देवताओ ! तीसकरोड़ बड़े बलवाले आपलोग इकट्ठे होकरजावो और यत्नसे पुरमें वर्तमान त्रिपुर को विनाशकरो ॥ २२ ॥ तदनन्तर अतितीक्ष्ण

और पैने हथियारवाले, वैरको बांधेहुये, सब हजारों देवता जहां बाणासुरका पुर था वहांको जातेहुये ॥ २३ ॥ सुन्दर युद्धके बलसे युक्त वे बलवाले सब देवता मार्ग, पुर और देशोंको मेघोंकी तरह ढांकतेहुये ॥ २४ ॥ थोड़ेही कालकरके मनके विचारकी नाईं वे सब त्रिपुरको प्राप्तहुये जैसे धनुष से छूटेहुये बाण जावें ॥ २५॥ जो सिपाही उस बाणासुर करके दशोदिशा देखनेके वास्ते भेजेगये थे वे सब बाणासुर से कहतेहुये कि हे प्रभो ! आप बेखटके कैसे होरहेहो ॥ २६ ॥ तब बाणासुर करके भी कहागया कि आज मेरा वर सफलहोगया इच्छा कियाहुआही फल प्राप्त होगया कि अब वे देवतालोग कहांको जावेंगे ॥ २७ ॥ तब उसकरके एक क्षणमात्रहीमे वे

शः ॥ बाणासुरपुरंयत्र सुतीक्ष्णनिशितायुधाः ॥ २३ ॥ सुयुद्धबलसम्पन्नास्सर्वेतेबलशालिनः ॥ मार्गम्पुरञ्चदेशञ्च छादयन्तोघनाइव ॥ २४ ॥ संक्षिप्तेनैवकालेन मनसाचिन्तितेनच ॥ सर्वेतेत्रिपुरंप्राप्ता धनुःक्षिप्ताःशराइव ॥ २५ ॥ द्रष्टुंदशदिशस्तेन प्रेपितायेचकिङ्कराः ॥ ऊचुर्बाणासुरन्तेतु निश्चिन्तस्त्वंकथंप्रभो ॥ २६ ॥ उक्तंबाणासुरेणापि वरो मेसफलोमम ॥ समीहितफलंप्राप्तं कुतोगच्छन्तितेसुराः ॥ २७ ॥ तेनतेक्षणमात्रेण सर्वेदेवाजितास्तदा ॥ हृतानिच ततोस्त्राणि पात्रकेभोजनंयथा ॥ २८ ॥ इन्द्रस्यापिहृतंवज्रंचक्रंवैकेशवस्यतु ॥ जलंपितामहस्यापि पाशञ्चवरुणस्य च ॥ २९ ॥ कुबेरस्यगदाञ्चैव मरुतश्चाङ्कुशन्तथा ॥ यमस्यापहृतोदण्डः शक्तिर्वैश्वानरस्यच ॥ ३० ॥ कामरूपंपु रन्तस्य हरदत्तंप्रसादतः ॥ नशक्यतेसुरैस्सर्वैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमैः ॥ ३१ ॥ बाधितुन्दैत्यराजस्यसमन्तान्मिलितैरपि ॥ सुराबाणासुरेणैव ततोयुद्धेपराजिताः ॥ ३२ ॥ भग्नास्तूत्साहरहिता हरपार्श्वमुपागताः ॥ शिवेनोक्तास्तुतेसर्वे तत्रग

सब देवता जीतलियेगये तदनन्तर उनके सब अस्त्र छीन लियेगये जैसे पात्रमें भोजन करलियाजावे ॥ २८ ॥ इन्द्रका वज्र, विष्णुका चक्र व ब्रह्माका कमण्डलु और वरुणका पाश उसने हरलिया ॥ २९ ॥ व कुबेरकी गदा वैसेही मरुतका आंकुस, यमराज का दण्ड और अग्निकी शक्ति उसकरके हरलीगई ॥ ३० ॥ महादेवकरके प्रसन्नतासे दियागया कामरूप उस दैत्यराजका पुर ब्रह्मा, विष्णुआदि सब देवताओंकरके चारोंतरफसे मिलकर भी बाधा करनेको योग्य नहीं होसक्ता बाणासुर करकेही सब देवता युद्धमें पराजित कियेगये तदनन्तर ॥ ३१ । ३२ ॥ टूटेफूटे, उत्साहरहित महादेवजी के समीप जातेहुये व वे सब महादेव करके पूंछेगये कि वहां

जाकर तुमलोगों करके क्या कियागया ॥ ३३ ॥ उसके साथ तुमलोगों करके संग्राम कैसा कियागया तब देवताओं ने कहा कि हे महादेव ! आप क्या कहतेहो हम लोग उसके काममें कुछ सामर्थ्य नहीं करसक्ते ॥ ३४ ॥ उसके साथ लड़ाई में किसीने सामना नहीं किया देवताओं के वचन को सुनकर क्रोधको प्राप्तहुये महादेवजी बोले ॥ ३५ ॥ कि इस महादुष्ट त्रिपुर को हम नाशकरेंगे अथवा धनुषको खींचकर हम असुरको जलादेवेंगे ॥ ३६ ॥ जिससे जो कोई नर जीतारहेगा वह देवताओंका दास होगा पतिव्रताके प्रसादसे यह त्रिपुर देवता और दैत्योंकरके ॥ ३७ ॥ धर्षणा करनेको शक्य नहीं है इससे पातिव्रत्य भङ्ग करनेके वास्ते हम नारदको

त्वातुकिंकृतम् ॥ ३३ ॥ संग्रामःकीदृशस्तेन भवद्भिस्सहनिर्म्मितः ॥ ततःकिंकथयतेदेव नशक्तास्तस्यकर्म्मणि ॥ ३४ ॥ नतेनसहसंग्रामे सम्मुखंकेनचित्कृतम् ॥ देवतावचनंश्रुत्वा क्रुद्धःप्रोवाचशङ्करः ॥ ३५ ॥ त्रिपुरञ्चमहादुष्टमिमंव्यापादयाम्यहम् ॥ अथवाचापमाकृष्यह्यसुरंप्रदहाम्यहम् ॥ ३६ ॥ येनजीवन्नरोयस्तु सुराणांकिङ्करोभवेत् ॥ पतिव्रताप्रसादेन त्रिपुरश्चसुरासुरैः ॥ ३७ ॥ नशक्यंधर्षितुंतस्मान्नारदंप्रेषयाम्यहम् ॥ नारदःप्रेषितस्तत्र क्षोभयत्वंपतिव्रताः ॥ ३८ ॥ एवमुक्तस्तुदेवर्षिर्बाणासुरपुरंययौ ॥ त्वरितंपुरमध्येतु यत्रबाणासुरोनृपः ॥ ३९ ॥ तन्तुदेवऋषिंदृष्ट्वा ह्यसुरोवाक्यमब्रवीत् ॥ नमस्कृत्यचसाष्टाङ्गमर्घपाद्यैःप्रपूज्यच ॥ ४० ॥ कुतोत्रागमनंतेद्य किंवाकार्य्यंमहामुने ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मुनिःप्रोवाचतन्तदा ॥ ४१ ॥ कुशलन्तेबलेःपुत्र सादरन्तेपुनःपुनः ॥ बाणासुरोऽब्रवीद्वाक्यं कुशलंतवदर्शनात् ॥ ४२ ॥ देवर्षिरुपविष्टस्तु दिव्यासनसुशोभितः ॥ राज्ञीचाभ्यर्चयत्तत्र सतस्यैनारदस्तदा ॥ ४३ ॥

भेजतेहैं यह कहकर नारदको वहां भेजतेहुये और कहा कि पतिव्रता स्त्रियों को तुम बिगाड़ देवो ॥ ३८ ॥ इसप्रकार कहेगये नारदजी बाणासुर के पुरको जातेहुये बडे वेगसे जहां बाणासुर राजाथा वहां शहरके मध्यमें जापहुँचे ॥ ३९ ॥ उन देवऋषिको देखकर बाणासुर साष्टाङ्ग नमस्कार व अर्घपाद्यसे पूजन करके वचन बोला ॥ ४० ॥ कि हे महामुने ! आज तुम्हारा आगमन यहां कहांसे हुआ और क्या आपका कार्य्यहै उसके इस वचनको सुनकर मुनिजी उससमय उससे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे बलिके पुत्र ! तेरी कुशल है, आदरपूर्वक बार २ पूछतेहुये कि तेरी कुशल है तब बाणासुर वचन बोला कि आपके दर्शनसे मेरी कुशल है ॥ ४२ ॥

दिव्यआसन पर सुन्दर शोभाको प्राप्त होरहे नारदजी बैठे वहां रानीभी नारदजी का पूजन करती हुई तब वे नारदमुनिजी उस रानीको पुराण और वेदोंके बाहरवाले वृत्तान्त सिखादिये उस समय में देवमुनि (नारद) जी स्त्रियोंके चित्तको चलायमानकरके ॥ ४३।४४ ॥ फिर श्रीमान् नारदजी पर्वतों में उत्तम कैलास को आतेहुये महादेवजीके नमस्कार करके वृत्तान्तको कहदिया ॥ ४५ ॥ कि हे देव ! शाखानगरों के सहित, देवताओंके कण्टक, त्रिपुर को नाशकरो तब उस अपने स्थान कैलास से प्रभु शिवजी निकलते हुये ॥ ४६ ॥ अपनेही मार्ग से जहां वह त्रिपुरासुर था वहांको चले उनके साथ पार्वतीजी, चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, महेश्वर ॥ ४७ ॥ वृष,

पुराणवेदबाह्यानि वृत्तान्यादेशयन्मुनिः ॥ नारीणांचलितंचित्तं कृत्वादेवमुनिस्तदा ॥ ४४ ॥ आगतोनारदःश्रीमान्कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ नमस्कृत्यमहादेवं वृत्तान्तंसंन्यवेदयत् ॥ ४५ ॥ घातयत्रिपुरन्देव सपुरंसुरकण्टकम् ॥ निर्गतस्तु हरस्तस्मात्कैलासनिलयात्प्रभुः ॥ ४६ ॥ स्वकीयेनैवमार्गेण यत्रासौत्रिपुरासुरः ॥ देवीचण्डेश्वरोनन्दी महाकालो महेश्वरः ॥ ४७ ॥ वृषोभृङ्गिरिटिश्चैव विघ्नेशस्स्कन्दएवच ॥ पुष्पदन्तोमहावीरो घण्टाकर्णोमहोदरः ॥ ४८ ॥ गोमुखोहस्तिकर्णश्च स्थूलजङ्घोवृकोदरः ॥ गणाःपञ्चदशत्वेते हरतुल्यपराक्रमाः ॥ ४९ ॥ अस्तिसिद्धोमहाक्षेत्रं श्रीशैलोनामपर्वतः ॥ तत्रस्थित्वामहादेवो हन्तव्यस्त्रिपुरःप्रिये ॥ ५० ॥ स्थानंमाहेश्वरंचक्रे व्यापीतत्रपिनाकधृक् ॥ एकपादेनब्रह्माण्डं पातालंचापरेणच ॥ ५१ ॥ हिमवन्तंधनुःकृत्वा गुणंकृत्वातुवासुकिम् ॥ शरंवैश्वानरंकृत्वा तस्याग्रंकालमेवतु ॥ ५२ ॥ रथंभूमण्डलंकृत्वा वेदान्कृत्वाहयांस्तथा ॥ रश्मींस्तक्षककर्कोटौ ब्रह्माणंसारथिंस्वयम् ॥ ५३ ॥

भृङ्गिरिटि, विघ्नेश, स्कन्द, पुष्पदन्त, महावीर, घण्टाकर्ण, महोदर ॥ ४८ ॥ गोमुख, हस्तिकर्ण, स्थूलजङ्घ और वृकोदर ये महादेव के तुल्य पराक्रमवाले पन्द्रहगण थे ॥ ४९ ॥ व जहां महाक्षेत्र श्रीशैलनाम का सिद्धपर्वतहै वहां स्थित होकर महादेवजीने पार्वतीजी से कहा कि हे प्रिये ! यहांपर त्रिपुरासुर मारनेयोग्य होगा ॥ ५० ॥ यह कहकर उसीको अपना स्थान किया और वहां पिनाकनाम के धनुषको धारण किये हुये आप विराट्रूपको धारण किया एकपाँव से ब्रह्माण्ड और दूसरे से पाताल को दबाया ॥ ५१ ॥ हिमवान् पर्वत को धनुषकरके और वासुकि नागको रोदाकरके अग्निको बाणकरके और कालको उसका अग्रभाग अर्थात् गांसी करके ॥ ५२ ॥

व पृथिवी को रथकरके और उसी प्रकार वेदोंको घोड़ेकरके तक्षक और कर्कोटक नागको रस्सी और स्वयं ब्रह्माहीको सारथि ॥ ५३ ॥ और चारोंकी रक्षा करनेवाले वासुदेव और सात अघोरमन्त्र तथा मन्त्रराज पाशुपत मन्त्रको बनाकर ॥ ५४ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक उसीजगह को टिकाश्रय करके स्थित होतेहुये महादेव जी पार्वतीजीसे कहतेहैं कि हे प्रिये ! वहां बहुत कालतक स्थित होरहे जो हमहैं उनका ॥ ५५ ॥ गणेशजी गुप्त व प्रकट शरीरको बनाकर विघ्न करतेहुये हम बायें पावँसे नखभर स्थानसे टलगये ॥५६॥ इससे मुझसे यह त्रिपुरासुर नहीं मारागया तब हम गणेशसे कहा कि हे गणाधीश ! जगत्के नाश करनेवाले त्रिपुरासुरकी रक्षा

चक्ररक्षंवासुदेवमघोरंमन्त्रसप्तकम् ॥ तथापाशुपतञ्चैव मन्त्रराजंतथैवच ॥ ५४ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तुस्थानंकृत्वास्थितोभवत् ॥ तिष्ठतोममतत्रैव कालेनमहताप्रिये ॥ ५५ ॥ लक्ष्यालक्ष्येतनूकृत्वा गणेशोविघ्नमाचरत् ॥ वामपादनखाग्रेण चलितःस्थानकादहम् ॥ ५६ ॥ ततोमयाहतोनासौ रक्षितुंत्रिपुरंकथम् ॥ प्रवृत्तोसिगणाधीश जगद्विध्वंसकारकम् ॥ ५७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा विघ्नेशोवाक्यमब्रवीत ॥ अहन्नविघ्नयेत्वाञ्चेत् कथमन्येर्चयन्तिमाम् ॥ ५८ ॥ अपूजितेमयिविभो यःकार्य्यंकर्तुमिच्छति ॥ तस्मैविघ्नंप्रदास्यामि सुरासुरगणेष्वपि ॥ ५९ ॥ एवमस्त्वितितंप्राह शङ्करस्तदनन्तरम् ॥ वध्यंचैवगतोलक्ष्यं संशक्तस्त्रिपुरम्प्रति ॥ ६० ॥ तापसोयंदुराचारो दैत्यःपरपुरञ्जयः ॥ विनाशायास्यदुष्टस्य कञ्चाहंप्रेषयेशरम् ॥ ६१ ॥ त्रिपुरस्यवधार्थायत्क्षिप्रंपाशुपतंमहत् ॥ अस्त्रमन्यद्विधास्यामीत्युक्त्वादेवोहरःपु

करनेको तुम कैसे प्रवृत्त होरहेहो ॥ ५७ ॥ महादेवके इसवचनको सुनकर गणेशने कहा कि जो हम आपहीका विघ्न न करें तो और लोग हमारा पूजन कैसेकरैं ॥५८॥ विना हमारे पूजन किये हे विभो ! जो कोई कार्य करनेकी इच्छा करताहै वह देवता व दैत्य कोईहो हम उसका विघ्न अवश्य करतेहैं ॥ ५९॥ तब महादेवने उनगणेशजीसे कहा कि ऐसाही हो यह कहकर वध करने योग्य त्रिपुरासुरसे लड़नेको सन्नद्धहोरहे महादेव निशानाके सम्मुख प्राप्तहुये ॥ ६० ॥ और कहा कि शत्रुओंके पुरोंका जीतनेवाला यह बड़ा दुराचार तपस्वी दैत्यहै इससे इसदुष्टके मारनेके वास्ते हम किस बाणको चलावें ॥ ६१ ॥ यद्यपि त्रिपुरके नाश करनेको पाशुपत अस्त्र ठीकहै

और शीघ्रकारी भी है परन्तु हम और दूसरेही अस्त्रको चलावेंगे यह कहकर महादेवजीने अघोरअस्त्रसे जीर्णहोरहे त्रिपुरको तीन खण्डकरके भस्मकरदिया और उसको वहां नर्मदाके जलमें गिरादिया तदनन्तर महादेवजी पार्वतीजीसे कहतेहैं कि हे भवानि ! दानवों करके सहित,पुत्रोंके तरफ देखरहीं उनकी स्त्रिया मेरे शरण आतीहुई और रोतीहुई सैकडों हजारों स्त्रिया गिररहीहैं ॥६२।६३।६४॥ उस निर्दय अग्निने उन सब स्त्रियोंके पतियोंको भस्मकरदिया व एक शहर श्रीशैलपर्वत पर गिरा और दूसरा अमरकण्टकमें ॥ ६५ ॥ और हे प्रिये ! तीसरा गङ्गासागरसङ्गममें गिरा पुत्र,पौत्र,स्त्री, मणि, सोना और शहर ॥ ६६ ॥ ये सब विनाशको प्राप्तहोरहे हैं परन्तु यहां एक

रम् ॥ ६२ ॥ अघोरास्त्रेणतद्दग्धं त्रिखण्डंजर्जरीकृतम् ॥ पातितन्तुजलेतत्र ततोमांशरणङ्गताः ॥ ६३ ॥ भवानिदानवैस्सार्द्धं तेपांपत्न्यःसुतेक्षणाः ॥ आपतन्तिरुदन्त्यस्ताश्शतशोथसहस्रशः ॥ ६४ ॥ सर्वासान्निर्दयोवह्निस्सददाहपतींस्तथा ॥ श्रीशैलेपतितंचैकमन्यच्चामरकण्टके ॥ ६५ ॥ गङ्गासागरसम्भेदे तृतीयञ्चतथाप्रिये ॥ पुत्रपौत्रकलत्राणि मणिहेमपुराणिच ॥ ६६ ॥ विनाशंयान्तितान्यत्र लिङ्गमेकन्ननश्यति ॥ लिङ्गानांनवकोटीनां यद्येकमपिदह्यते ॥ ६७ ॥ प्राणत्यागंकरिष्यामिहुताशेस्मिंस्तदाध्रुवम् ॥ दग्धन्तुत्रिपुरंकृत्स्नमघोरास्त्रेणदारुणम् ॥ ६८ ॥ पातितंनर्म्मदामध्ये ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ तद्भित्त्वासप्तपातालं रसातलतलंययौ ॥ ६९ ॥ तेनजालेश्वरंतीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ७० ॥ कल्पकोटिसहस्राणि वसेच्छिवपुरेसुखी॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्तियेमृतानपुनर्भवाः ॥ ७१॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति शिवोयावच्चकल्पगा॥७२॥

हमारा लिङ्ग नहीं नष्टहुआ हमारे नवकरोड लिङ्ग वहां रहे उनमेंसे जो एकभी जलजाता ॥ ६७ ॥ तो हम उसी अग्निमें निश्चय अपने प्राणोंका त्याग करदेते सम्पूर्ण दारुण त्रिपुर अघोरअस्त्र करके भस्म करदियागया ॥ ६८ ॥ जलतेहुये महाप्रलय के अग्नि के समान प्रभावाला नर्मदाके मध्य में गिरादियागया वह सात पातालों को फाड़कर पाताल को चलागया ॥ ६९ ॥ इससे वह जालेश्वर तीर्थ तीनों लोकों मे प्रसिद्ध हुआ उस देवके पूजनसे ब्रह्महत्यासे छूटजाताहै ॥ ७० ॥ हजारों करोड़ कल्पभर महादेवके पुरमें सुखी रहताहै वहां स्नान करके स्वर्गको जातेहैं और जो मरे हैं वे फिर उत्पन्न नहीं होतेहैं ॥ ७१ ॥ हे भारत ! तिलोदकके देने व पिण्डोंके देनेसे

जबतक महादेव और नर्मदाजी रहती हैं तबतक उसके पितर तृप्त रहतेहैं ॥ ७२ ॥डेढ़करोड़ लिंग गङ्गासागरसङ्गममें गिरे और डेढ़करोड़ लिङ्ग पुरवर्द्धनमें गिरे॥ ७३॥ और पांचकरोड़ त्रिपुरके समीप श्रीशैलमें गिरे और साढ़ेतीनकरोड़ अमरकण्टकमें गिरे ॥ ७४ ॥ इतने बाणलिंग मुक्ति और मुक्तिके देनेवालेहैं त्रिपुरके नाश करनेवाले, महाप्रलयके रुद्राग्निके समान जलतेहुये अघोर अस्त्रको ॥७५॥ नर्मदाको छोड़कर और कौन नदी धारण करनेको समर्थ होसक्ती ऐसा वह अस्त्र नर्मदाके जलमें गिरता हुआ ॥ ७६ ॥ त्रिपुरवधसे प्रकटहुआ यह जालेश्वरतीर्थ तुमसे कहागया इसको कोई चराचरलोक नहीं जानते ॥ ७७ ॥ जिस त्रिपुरासुर करके संग्रामों में ब्रह्मादिक

सार्द्धकोटिश्चलिङ्गानां गङ्गासागरसङ्गमे ॥ सार्द्धकोटिश्चपतिता लिङ्गानांपुरवर्द्धने ॥ ७३ ॥ दशार्द्धकोटिःपतिता श्रीशैलेत्रिपुरान्तिके ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच पतितामरकण्टके ॥ ७४ ॥ एतानिबाणलिङ्गानि भुक्तिमुक्तिप्रदानितु ॥ त्रिपुरघ्नमघोरास्त्रं ज्वलत्कालाग्निरुद्रवत् ॥ ७५ ॥ कल्पगांवर्जयित्वातु कान्याधारयितुंक्षमा ॥ एतादृशन्तुपतितं तदस्त्रंकल्पगाजले ॥ ७६ ॥ जालेश्वरन्तुकथितं त्रिपुरघ्नमिदन्तव ॥ एतत्तीर्थंनजानन्ति लोकाश्चसचराचराः ॥ ७७ ॥ दहन्तंत्रिपुरंदृष्ट्वा देवाविस्मयमागताः ॥ ब्रह्माद्यादेवतायेन संग्रामेषुपराजिताः ॥ ७८ ॥ शरेणैकेनतद्वीर्य्यं कृतंभस्मैकपुञ्जवत् ॥ बाणासुरःपुरेदग्धे भीतःस्तोत्रमिदंजगौ ॥ ७९ ॥ ॐनमोऽनादिदेवेश विघ्नेश्वरमहेश्वर ॥ सर्वज्ञाज्ञानहृज्ज्ञानप्रदानैकनमोस्तुते ॥ ८० ॥ अनन्तगुणरत्नाय परेशायनमोस्तुते ॥ परात्परपरातीत उत्पत्तिस्थानकारक ॥ ८१ ॥ सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वरनमोस्तुते ॥ निरञ्जननिराधारस्वभावनिरुपद्रव ॥ ८२ ॥ प्रसन्नपरमे

देवता पराजय को प्राप्तहुये उस त्रिपुर को जलतेहुये देखकर सब देवता विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ७८ ॥ एकही बाणसे उसका पराक्रम भस्मकासा ढेर करदिया गया अपने शहर के जलेपर डराहुआ बाणासुर इस स्तोत्रको पढ़ताहुआ ॥ ७९ ॥ हे ॐअनादिदेव, ईश, विघ्नेश्वर, महेश्वर, सर्वज्ञ, अज्ञानके नाश करनेवाले, ज्ञान के देनेमें एक आप के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ८० ॥ व अनन्तगुणरत्न, परेश आपके लिये नमस्कार है व हे परात्परपरातीत ! व हे उत्पत्ति और स्थिति करनेवाले ! ॥ ८१ ॥ हे सबके प्रयोजन सिद्ध करनेमें उपायरूप! हे विश्वेश्वर! आपके लिये नमस्कारहै हे मायारहित! हे निराधारस्वभाववाले! हे निरुपद्रव! ॥८२॥

हे प्रसन्न ! हे परम ! हे ईशान ! हे योगेश्वर ! आपके लिये नमस्कारहै हे असुरघ्न ! हे पिशाचघ्न ! हे भूत और वेतालोंके नाश करनेवाले ! ॥ ८३ ॥ हे भूतनाथ ! हे जगन्नाथ ! हे सर्वाधार ! आपकेलिये नमस्कारहै हे सृष्टि, संहार, मोक्ष और सातो पातालोंके आश्रय ! ॥ ८४ ॥ हे श्रीकण्ठ ! हे नीलकण्ठ ! हे ईश ! हे महाकण्ठ ! आपके लिये नमस्कारहै व तीननेत्रवाले,त्रिशूल धारण करनेवाले, तीनों लोक जिन्हींका रूपहै ऐसे आपकेलिये नमस्कारहै ॥ ८५ ॥ व हे कपालोंसे भूषित अङ्गवाले ! हे चन्द्रशेखर ! हे देवताओं व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये ! मुण्डों के धारण करनेवाले व पार्वती करके शोभित होरहाहै आधा देह जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कारहै ॥ ८६ ॥ तुम्हारे रूपमें विद्यमान,सर्वत्र व्याप्त होनेसे चल और स्वभावसे अचल शरीरवाला, व्यापक, चर्मदृष्टिमे नहीं देखाजाता, भीतर और बाहर निर्मल

शानयोगेश्वरनमोस्तुते ॥ असुरघ्नपिशाचघ्न भूतवेतालनाशन ॥ ८३ ॥ भूतनाथजगन्नाथ सर्वाधारनमोस्तुते ॥ सृष्टि संहारनिर्वाणसप्तपातालसंश्रय ॥ ८४ ॥ श्रीकण्ठनीलकण्ठेश महाकण्ठनमोस्तुते ॥ त्र्यम्बकायत्रिशूलाय त्रिलोकायचतेनमः ॥ ८५ ॥ कपालिनेकपालैश्च बद्धाङ्गशशिशेखर ॥ उमाकान्तार्द्धदेहाय सुरासुरनमस्कृत ॥ ८६ ॥ यत्र त्वंरूपसंस्थं चलमचलतनुं व्यापकं लक्ष्यहीनं तेजोभ्यन्तर्मरालं घनमघनमजं स्फाटिकं स्फाटिकाभम् ॥ रक्तंनीलंच पीतं सितमसितमनेकाल्परूपंप्रयुक्तं मध्यान्तादिव्यपेतंस्फुटतनुरहितं लिङ्गरूपं नमामि ॥ ८७ ॥ मध्याह्नेलक्ष्ययोगे नहृदयकमले धारणीशेनहंसे नाकाशेवायुतत्त्वेनलधरणिजले विद्यतेनैवशक्यम् ॥ नोनादे नैवबिन्दौ नकरणनिलये नादिमध्यावसानेस्थानेष्वेषुप्रबद्धोनचनियमयितुंयंसदाद्यंनमामि ॥ ८८ ॥ जिह्वाचापलयभावेनवर्णितम्मेमहाप्रभो ॥

मूर्त्ति में स्थित होने से घन, वास्तव में स्वरूपरहित, स्फटिककासा स्वच्छ उसीके समान है प्रकाश जिसमें प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होने से लाल, नीला, पीला, सफेद, कालारङ्गवाला अनेक प्रकारके छोटेभी हैं रूप जिसके, मायामें प्रतिबिम्बित होनेसे चेतनरूपसे सर्वत्रहै प्रयोग जिसका,मध्य, अन्त और आदिमे रहित,प्रकट शरीरसे रहित जो लिंगरूप तेजहै तिसके हम नमस्कार करते हैं ॥ ८७ ॥ व मध्याह्नकालमें सूर्यमें रुद्रका वास होता है इसमे मध्याह्न, सम्प्रज्ञातसमाधि, हृदयकमल, चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, वायु, अग्नि, पृथिवी, जल, नाद, बिन्दु, आत्मा, आदि, मध्य और अन्त इन स्थानोंमें शास्त्रसे यद्यपि व्यापकरूप से आप बँधेभीहो परन्तु

क्षन्तव्यंतत्सुरेशानकस्त्वांवर्णयितुंक्षमः ॥ ८९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तुतिंचबाणस्य तुष्टोसौभगवान्हरः ॥ उवाचवचनंशम्भुरसुरंप्रतिभारत ॥ ९० ॥ सेवापराधजोह्येष क्षान्तस्तेदैत्यनायक ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते ॥ ९१ ॥ शिवस्यवचनंश्रुत्वा बाणोदैत्यपतिस्तदा ॥ प्रणम्यचाब्रवीद्वाक्यं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ९२ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरन्दातुंत्वमिच्छसि ॥ अनेनैवशरीरेण सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ९३ ॥ तवलोकंगमिष्यामि यत्रजन्मनविद्यते ॥ अत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां निर्विण्णोसुरयोनिषु ॥ ९४ ॥ त्रिभिर्देवैःपुरन्दत्तं भिन्नंतत्रिपुरन्त्वया ॥ कथंतत्पतितंभूमौ गहनाकर्मणाङ्गतिः ॥ ९५ ॥ दाताबलिःप्रार्थयिताचविष्णुर्दानंमहीवाजिमखस्यकालः ॥ आसीत्फलंबन्धनमेवतस्य नमोस्तुतस्यैभवितव्यतायै ॥ ९६ ॥ स्वर्गोदुर्गंसुरास्सैन्यं गजाश्चैरावतादयः ॥ शस्त्रंवज्रमवाप्यास्ते यत्रदेवोबृहस्प

हे महाप्रभो ! जिह्वाकी चञ्चलता से मुझकरके नियम करनेको शक्य नहीं होसके कि इन्हींमें होसके अन्यत्र नहीं ऐसे आप को हम नमस्कार करतेहैं ॥ ८८ ॥ हे सुरेशान ! आप करके क्षमा कियाजावे आपका वर्णनकरने को कौन समर्थ होसक्ताहै ॥ ८९ ॥ मार्कण्डेयजी कहते हैं कि बाणासुरकी स्तुतिको सुनकर ये भगवान् महादेवजी सन्तुष्ट होतेहुये और हे भारत ! फिर महादेवजी उस असुरसे वचन बोले ॥ ९० ॥ कि हे दैत्यनायक ! सेवा और अपराधसे उत्पन्न हुआ यह तेरा काम क्षमा कियागया अब तेरा कल्याण हो जो तेरे मनमें हो उस वरको तू मागले ॥ ९१ ॥ उस समयमे दैत्योंका स्वामी बाणासुर महादेवजीके वचन को सुनकर देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजीको प्रणाम करके वचन बोला ॥ ९२ ॥ कि हे देव ! जो आप मुझपर सन्तुष्ट हो और वरदेने की इच्छा करतेहो तो अपने परिवारसहित मैं इसी शरीर करके ॥ ९३ ॥ आपके लोक को जाऊं जहां जन्म नहीं होताहै क्योंकि यहां तो असुरयोनि में उत्पत्ति और विपत्तियों करके मुझको वैराग्य होरहा है ॥ ९४ ॥ क्योंकि तीनों देवताओं करके मुझको तीन शहर दियेगये वे तीनों आपकरके तोड दियेगये और पृथिवी में भी गिरपड़े यह कैसे हुआ कर्मोंकी गति बहुत कठिन है ॥ ९५ ॥ दान करनेवाले राजाबलि व दान लेनेवाले विष्णु व पृथिवीका दान और अश्वमेधयज्ञ का समय इन सब बातोंका फलहुआ यजमानका बन्धन इससे उस होनहारी के लिये नमस्कारहै ॥ ९६ ॥ स्वर्ग तो किला और देवताओंकी सेना और ऐरावतआदि हाथी और वज्र

ऐसा अस्त्र और जहां बृहस्पतिसे आचार्य हैं इनको भी प्राप्तहोकर ॥ ९७ ॥ रावणके पुत्र, मेघनाद करके इन्द्र जीतलियेगये और सब अपने वश करलियागया तौ प्रारब्ध बड़ा जबरदस्त है ॥ ९८ ॥ बाणासुर के वचनको सुनकर देवताओं के देवता, वरके देनेवाले महादेवजी ने कहा कि हमारी भक्तिके प्रसादसे तू हमारे समीप को प्राप्तहोगा ॥ ९९ ॥ तदनन्तर श्रीमान् बाणासुर महादेवजी के प्रसादसे दिव्य सवारीपर चढ़ाहुआ, देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियागया ॥ १०० ॥ शिवजी के पुरको प्राप्त होताहुआ जहां महादेवजी रहते हैं तब हे विशाम्पते ! महादेवजी से वे नर्मदाजी वचन बोलीं ॥ १ ॥ कि हे शङ्कर ! आपके अघोरास्त्र करके मेरा

तिः ॥ ९७ ॥ निर्जितोमेघनादेन दशाननसुतेनच ॥ सर्वमात्मवशन्नीतं दैवंहिबलवत्तरम् ॥ ९८ ॥ बाणासुरवचःश्रुत्वा देवदेवोवरप्रदः ॥ ममभक्तिप्रसादेन मदन्तिकमवाप्स्यसि ॥ ९९ ॥ ततोबाणासुरःश्रीमान्देवदेवप्रसादतः ॥ दिव्यया नसमारूढस्सुरासुरनमस्कृतः ॥ १०० ॥ प्रायाच्छिवपुरंयत्र देवदेवोमहेश्वरः ॥ नर्म्मदासाब्रवीद्वाक्यं शम्भुंप्रतिवि शाम्पते ॥ १ ॥ बिन्दुमात्रन्नमेदग्धमघोरास्त्रेणशङ्कर ॥ ददाहत्रिपुरंकृत्स्नं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ २ ॥ शान्तञ्च ममतोयेन रसातलतलंययौ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पुरन्तुनिखिलंदग्धमघोरास्त्रंसुदुस्सहम् ॥ ३ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं म ध्यदेशेतवाम्भसः ॥ अगमत्सौम्यरूपत्वं प्रभावात्तवनर्म्मदे ॥ ४ ॥ सरितस्सागराश्शैला गङ्गाद्याश्चसहस्रशः ॥ गो प्यंतत्क्षणमात्रेण भस्मपुञ्जोयथाजलम् ॥ ५ ॥ सोढुंकान्यासरिच्छ्रेष्ठा त्वांविनाभुविकल्पगे ॥ एवमुक्त्वाययौदेव

एक बिन्दुभी नहीं जला जिसने जलतेहुये प्रलयकाल के अग्नि के समान सारे त्रिपुरको भस्म करादिया ॥ २ ॥ जोकि मेरे जलसे बुझाहुआ पातालको चलागया तब महादेवजी बोले कि हे नर्मदे ! जिसकरके सारा त्रिपुर भस्मकर दियागया वह अतिदुःसह, करोड सूर्योंके समान तेजवाला अघोरास्त्र तुम्हारे जलके बीचमें तुम्हारेही प्रभावसे सौम्यरूप को प्राप्तहोगया ॥ ३ । ४ ॥ समुद्र, पर्वत और गङ्गाआदि हजारों नदिया उस अघोरास्त्रकरके क्षणमात्रही में भस्म होसक्ती हैं ॥ ५ ॥ इससे हे कल्पगे ! तुम्हारे विना पृथिवी में और कौन श्रेष्ठ नदी उस अस्त्रके सहन करनेको समर्थ होसक्ती है यह कहकर देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजी

जातेहुये ॥ ६ ॥ व हे भूप, युधिष्ठिर ! यह जालेश्वरतीर्थ का वेदानुकूल आख्यान तुमसे संक्षेप से कहागया ॥ ७ ॥ इसी प्रयोजन से सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा सेवन कीजाती है इस आख्यान के, सुनने व कहने से महादेवजीका अनुचर होताहै ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽमरेश्वरमाहात्म्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! नैमिषारण्य के रहनेवाले दश हजार ऋषि होतेहुये गर्ग,शौनक और दक्ष ये उन सबके धर्मसे पिताके बराबर रहे ॥ १ ॥ वहां

स्सुरासुरनमस्कृतः ॥ ६ ॥ एतत्तेकथितंभूप आख्यानंश्रुतिसम्मितम् ॥ जालेश्वरस्यतीर्थस्य समासेनयुधिष्ठिर ॥ ७ ॥ सेव्यतेतेनकार्य्येण नर्म्मदासप्तकल्पगा ॥ श्रवणात्कीर्तनात्तस्य रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽमरेश्वरमाहात्म्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ऋषीणामयुतंराजन्नैमिषारण्यवासिनाम् ॥ गर्गश्चशौनकोदक्षस्सर्वेषांधर्म्मतःपिता ॥ १ ॥ तेषान्निवसतान्तत्र आश्चर्य्यमभवन्नृप ॥ हिरण्यानामनगरी दृष्टावायदिवाश्रुता ॥ २ ॥ हिरण्यवेगानाम्नीतु नदीपुष्पफलद्रुमा ॥ धनदस्यपुरीरम्या धनाढ्याचयथास्थिता ॥ ३ ॥ सप्तभौमैर्गृहैरम्यैर्हैमप्राकारतोरणैः ॥ वेणुवीणाविनादैर्गन्धर्वैर्नादितायुतैः ॥ ४ ॥ नागराःपूजितास्सर्वेत्राधिष्ठितधनान्विताः ॥ अग्निहोत्रैश्चविद्वद्भिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥ एवंविधापुरीरम्या सर्वोत्सवसमन्विता ॥ अकालेम्रियतेयस्तु सराज्ञाग्रहतेपुनः ॥ ६ ॥ मुदापरमयायुक्तोनित्ते

उनके रहतेहुये हे नृप ! एक आश्चर्य होताहुआ एक हिरण्यानाम की नगरी आपकी देखी व सुनी होगी ॥ २ ॥ जिसमें फूलेफले वृक्षोंसे युक्त हिरण्यवेगा नामवाली नदी होतीहुई जैसे धनयुक्त रमणीक कुबेर की पुरी स्थित होवे ॥ ३ ॥ सुवर्ण के हाता और फाटकों से युक्त व सात २ चौकवाले रमणीक मकानों करके युक्त वंशी व सितारके बजानेवाले अयुतों गन्धर्वोंकरके नादित ॥ ४ ॥ व यहां बड़े धनसे युक्त सब शहरके रहनेवाले राजाकरके पूजित रहतेहुये व समस्त वेदोंके पढ़नेवाले अग्निहोत्री विद्वान् ब्राह्मणोंकरके युक्त ॥ ५ ॥ सब उत्सवों से युक्त इस प्रकारकी रमणीक पुरी होतीहुई जो अकाल में मरता वह राजाकरके फिर जिला दियाजाता ॥ ६ ॥

परम आनन्द से युक्त कुबेर के समान धनी राजा मुनियोंमें श्रेष्ठ व ब्रह्माजी के मानसपुत्र दक्षप्रजापतिजी को गिरकर नमस्कार करके उनसे अनेक हजार ब्रह्मतेज वाले मुनियोंके सुनतेहुये भलीभांति पूंछतेहुये ॥ ७ । ८ ॥ कि सौत्रामणि व सोमयज्ञ किस देशमें सिद्ध होसक्ती है हे मुनिशार्दूल ! सो मुझसे कहिये क्योंकि आप सब धर्मोंके जाननेवाले हो ॥ ९ ॥ तब सूर्यके पुत्र हिरण्यबाहु से दक्ष बोलतेहुये कि पुष्करनाम का तीर्थ तीनोंलोकों मे विदित है ॥ १० ॥ हे राजन् ! उसमें जो कुछ पूजन व हवन कियागया वह सब करोड़गुना होजाता है ब्राह्मणों के प्रसाद से इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥ उनके इस वचन को सुनकर उन

शोधनदोयथा ॥ प्रजापतिसम्पप्रच्छ ब्रह्मणोमानसंसुतम् ॥ ७ ॥ प्रणिपत्यनमस्कृत्य दक्षंतम्मुनिपुङ्गवम् ॥ अनेका निसहस्राणि मुनीनांब्रह्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥ सौत्रामणिस्सोमसंस्था कस्मिन्देशेचसिद्ध्यति ॥ आचक्ष्वमुनिशार्दूल यत स्त्वंसर्वधर्म्मवित ॥ ९ ॥ हिरण्यबाहुंप्रोवाच दक्षोवैवस्वतन्तदा ॥ तीर्थंहिपुष्करन्नाम त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १० ॥ तस्मिन्निष्टंहुतंराजन्सर्वंकोटिगुणंभवेत ॥ ब्राह्मणानांप्रसादेन नात्रकार्य्याविचारणा ॥ ११ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा राजा प्रोवाचतम्मुनिम् ॥ निष्पाद्यताञ्चयज्ञोमे भगवन्पुष्करेशुभे ॥ १२ ॥ मानसंब्रह्मणःपुत्रं सर्ववेदविशारदम् ॥ त्वामृतेदी क्षितुंकस्य शक्तिरस्मिन्महीतले ॥ १३ ॥ एवमस्त्वितितंप्राह दक्षोराजर्षिसत्तमम् ॥ ततोजगामराजर्षिः पुष्करंसर्व सम्भृतः ॥ १४ ॥ गवांचदशलक्षाणि सार्द्धलक्षन्तुवाजिनाम् ॥ द्विपञ्चाशत्सहस्राणि गजेन्द्राणांरथायुतम् ॥ १५ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि वस्त्राण्याभरणानिच ॥ तेषांसंख्यानविद्येत कुबेरस्यधनंयथा ॥ १६ ॥ ततोभक्ष्याणिभोज्यानि

मुनिजी से राजा बोलतेहुये कि हे भगवन् ! मेरा यज्ञ उत्तम पुष्करतीर्थ में करायाजावे ॥ १२ ॥ सब वेदोंके जाननेवाले ब्रह्माजीके मानसपुत्र आपको छोड़कर दीक्षा दिलाने के वास्ते इस पृथिवीतल में किसकी सामर्थ्य होसक्तीहै ॥ १३ ॥ तब उन श्रेष्ठ राजर्षि से दक्षने कहा कि ऐसाही हो तदनन्तर सब सामान के सहित राजर्षि पुष्कर को जातेहुये ॥ १४ ॥ दशलाख गौवें, डेढ़लाख घोड़े, बावन हजार हाथी, दशहजार रथ ॥ १५ ॥ मणि, माणिक, रत्न, वस्त्र और आभूषणोंकी कोई संख्या नहीं

पानानिविविधानिच ॥ एवंप्रवर्तितोयज्ञः पवित्रेश्रेष्ठपुष्करे ॥ १७ ॥ आहूतश्चततोब्रह्मा शक्रश्चापिसुरेश्वरः ॥ अन्यदेवैश्चकिङ्कार्य्यं ताभ्यांसर्वंप्रपूजितम् ॥ १८ ॥ नरुद्रोयज्ञभागार्हो वासुदेवस्त्वयाजकः ॥ नचादित्योनवरुणो नदेवानचचन्द्रमाः ॥ १९ ॥ वेदमूलोयतोयज्ञो राज्ञश्चामिततेजसः ॥ वेदनिर्घोषशब्देन यज्ञधूमेनभारत ॥ २० ॥ रोदस्यन्तरंराजन्सर्वमेवप्रपूरितम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेयज्ञच्छिद्रान्वेषणतत्पराः ॥ २१ ॥ सम्प्राप्तराजशार्दूलबलेनबलवत्तराः ॥ पराजयञ्चदेवानामसुराणांजयन्तथा ॥ २२ ॥ कर्तुंप्रस्थापितास्सर्वे ह्यसुरादेवकण्टकाः ॥ तेभ्योनिकेतुनाप्रोक्तं दैत्यानामीश्वरेणहि ॥ २३ ॥ नरुद्रोस्तिनविष्णुर्वा ब्रह्मास्तेसतुपूजकः ॥ नकर्तव्यंभयन्तेषां ब्राह्मणाज्ञानदुर्बलाः ॥ २४ ॥ गच्छन्तुदानवादैत्या भूतवेतालराक्षसाः ॥ पिबन्तुसोमंयज्ञाङ्गं भक्षयन्तुतथाद्विजान् ॥ २५ ॥ विध्वंसितस्ततो यज्ञो ब्राह्मणाश्चैवभक्षिताः ॥ अग्निर्विनाशितोयज्ञयूपश्चयज्ञमण्डपः ॥ २६ ॥ ऋषीणांधर्षिताःपत्न्यो नग्नरूपैस्त

रही जैसे कुबेरका धनहोवे ॥ १६ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकार के भक्ष्य,भोज्य और पान सिद्ध कियेगये इस प्रकार पवित्र व श्रेष्ठपुष्करमें यज्ञ प्रवृत्त होताहुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और देवताओं के राजा इन्द्रही बुलायेगये और देवताओं करके क्या कार्यहै इन्हीं दोनोंसे सब पूजित होजायँगे ॥ १८ ॥ महादेवजी भागके योग्य नहीं हैं और विष्णुभी यज्ञके करानेवाले नहीं हैं न सूर्य, न वरुण, न चन्द्रमा और न देवताहीहैं ॥ १९ ॥ क्योंकि हे भारत ! अमित तेजवाले राजाका यज्ञ तो वेदमूल ही रहा वेदोंकी ध्वनिसे व यज्ञके धुयेंसे ॥ २० ॥ हे राजन् ! पृथिवी और आकाश का बीच सब पूर्ण होगया इसी अन्तरमें यज्ञके छिद्रोंके ढूंढने में तत्पर होरहे ॥ २१ ॥ हे राजशार्दूल ! सेनासे युक्त, बड़े बलवाले देवताओंके पराजय और दैत्योंके विजय करनेके वास्ते भेजेगये देवताओंके कण्टकरूप सब असुर भलीभांति प्राप्त हुये उनसे असुरों के राजा निकेतु ने कहा था ॥ २२ । २३ ॥ कि इस यज्ञमें रुद्र और विष्णु नहीं हैं ब्रह्माहैं सो वे तो पुजारी हैं इससे इन लोगोंका भय नहीं करना चाहिये और ब्राह्मणलोग तो ज्ञानसे दुर्बलहैं ॥ २४ ॥ इससे दानव,दैत्य,भूत, वेताल और राक्षसलोग जावें और यज्ञके अङ्ग सोमको पीवें और ब्राह्मणोंको भक्षण करें ॥ २५ ॥ तदनन्तर उन लोगोंकरके यज्ञ विध्वंसित करदियागया, ब्राह्मण खायडालेगये. अग्नि बुझादियागया, यज्ञ का खम्भा व यज्ञका मण्डप तोड़ दियागया ॥ २६ ॥ वैसेही नङ्गे

असुरों करके जबरदस्ती ऋषियों की स्त्रियां भ्रष्टकरडालीगईं थोड़ी अवस्थावाले ऋषि भयसे विकल और प्राणों के जानेकी शङ्कासे पीडितहुये ॥ २७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और देवताओंके गणोंकरके सहित इन्द्र भागगये इस प्रकार यज्ञके विध्वंस होनेपर चक्रवर्ती श्रेष्ठराजा ॥ २८ ॥ हिरण्यबाहु ब्राह्मणों पर हे भारत! कोप करते हुये और कहा कि अतिपापी, दुराचारी, भिक्षुक वे ब्राह्मण लोग चलेगये ॥ २९ ॥ और यज्ञका सामान लेकर दैत्य भी अपने स्थानको चलेगये अब हम भी इकले अपनी रानीकरके सहित घोडेपर सवारहोकर चलेजायँगे ॥ ३० ॥ क्योंकि यह समय पौरुष व कोपकरने का कदापि नहीं है जिस यज्ञमें महादेवजी देवता नहीं हैं

थाबलात् ॥ कुमाराऋषयश्चैव भयार्ताःप्राणपीडिताः ॥ २७ ॥ प्रणष्टश्चततोब्रह्मा शक्रोदेवगणैस्सह ॥ एवंयज्ञेचवि ध्वस्ते चक्रवर्तीनृपोत्तमः ॥ २८ ॥ हिरण्यबाहुःकुपितो ब्राह्मणान्प्रतिभारत ॥ पापिष्ठाश्चदुराचारा गतास्तेभिक्षुकाद्वि जाः ॥ २९ ॥ स्वस्थानञ्चगतादैत्या गृहीत्वायज्ञसम्भृतिम् ॥ एकाकीहयमारुह्य सहपत्न्याव्रजाम्यहम् ॥ ३० ॥ नपौ रुषस्यकालोयं कोपस्यचकथञ्चन ॥ शम्भुर्नदेवतायत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ३१ ॥ कथंसिद्ध्यतियज्ञोसौ नसूर्य्योनै वचन्द्रमाः ॥ लोलुपाब्राह्मणाःपापास्त्वशक्तायज्ञरक्षणे ॥ ३२ ॥ यदिमेविद्यतेसत्यं भवन्तुब्रह्मराक्षसाः ॥ सकण्टके निरुदके प्रदेशेनष्टचेतनाः ॥ ३३ ॥ दत्ताद्यैर्ब्राह्मणैस्सर्वैस्सोभिशप्तोमहीपतिः ॥ अरक्षितात्वंयज्ञस्य क्षत्रियाणान्तथा धमः ॥ ३४ ॥ खरोद्वादशवर्षाणि भविष्यसिनसंशयः ॥ शापाद्बभूवुरन्योन्यं तेखरब्रह्मराक्षसाः ॥ ३५ ॥ एतत्तेक थितंवृत्तं नहरोनहरिःप्रभुः ॥ नयज्ञोनचतद्दानं नतपोध्ययनंनच ॥ ३६ ॥ वेदोक्तंकर्म्मनब्राह्मयं नधर्म्मनत्रिविष्टपम् ॥

और विष्णु भी नहीं हैं ॥ ३१ ॥ सूर्य नहीं हैं व चन्द्रमाभी नहीं हैं वह यज्ञ क्योंकर सिद्ध होसक्ताहै अतिलोभी पापी ब्राह्मणलोग यज्ञरक्षा करनेको नहीं समर्थ होसक्ते हैं ॥ ३२ ॥ इससे जो मुझमें सत्यहोवे तो वे सब ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस होजावें और कटीले निर्जल स्थान में बुद्धिरहित वे लोग वासकरैं ॥ ३३ ॥ वह राजाभी दत्त आदि सब ब्राह्मणों करके शाप दियागया कि क्षत्रियोंमें अधम यज्ञकी रक्षा करनेमें तू समर्थ न होसका ॥ ३४ ॥ इससे बारह वर्षतक तू गदहा रहेगा इसमें कोई संशय नहीं है परस्पर शाप से वे सब गदहा व ब्रह्मराक्षस होतेहुये ॥ ३५ ॥ यह वृत्तान्त आपसे कहागया जिसमें हर व हरि प्रभु नहीं है तो न वह यज्ञ, न वह दान, न तप,

इसी अन्तर में तब हे राजन्, न पढ़ना ॥ ३६ ॥ न वेदोक्तकर्म, न वैदिक धर्म, न स्वर्ग, न व्रत और न वषट्कार सब पापों का नाश करनेवाला होसक्ता है ॥ ३७ ॥ भारत ! यज्ञ देखनेके वास्ते पुष्करमें देवर्षि नारदजी आतेहुये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उसी समय पापकर्मी दैत्योंकरके यज्ञके नष्टहोने पर वेदके जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण देवर्षि नारदजीसे हिरण्यबाहु राजा वचनबोले कि हे मुनिपुङ्गव ! क्षुद्र ब्राह्मणोंकरके मेरा यज्ञ नाश करादिया गयाहै ॥ ३९ । ४० ॥ मैं यज्ञकी रक्षाकरनेमें समर्थ रहा यज्ञ विध्वंस करनेवालों को नाश भी करसक्ता, तीनों लोकों के जीतने में समर्थ हूं फिर दैत्य और दानवों को क्या कहनाहै ॥ ४१ ॥ परन्तु मुझ करके भी हरिहर-

नव्रतंनवषट्कारस्सर्वपापप्रणाशनः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्देवर्षिर्नारदस्तदा ॥ आजगामक्रतुंद्रष्टुं पुष्करम्प्र तिभारत ॥ ३८ ॥ ततोविप्लाविते यज्ञे दैत्यैर्दुष्कृतिकारिभिः ॥ हिरण्यबाहुश्चपरं ब्राह्मणंब्रह्मपारगम् ॥ ३९ ॥ उवाचवच नंराजा देवर्षिर्नारदन्तदा ॥ नाशितोब्राह्मणैर्यज्ञः क्षुद्रैर्मेमुनिपुङ्गव ॥ ४० ॥ यज्ञधर्म्मविधौशक्तो घातयाम्यध्वरान्त कम् ॥ शक्तोस्मित्रिजगज्जेतुं किम्पुनर्दैत्यदानवान् ॥ ४१ ॥ मयाचापिकृतोयज्ञो हरिशङ्करवर्जनात् ॥ ब्रह्मशापवशा द्भीतो गार्दभींयोनिमाश्रितः ॥ ४२ ॥ केनोपायेनदेवर्षे त्रिकालज्ञत्रिवेदवित् ॥ स्वर्गलोकंगमिष्यामि ऋत्विग्भिर्ब्राह्म णैस्सह ॥ ४३ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये यन्माप्राप्तोसिनारद ॥ नारदउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानन्निबोधमे ॥ ४४ ॥ रेवाचरुकसम्भेदं पञ्चलिङ्गानिभूमिप ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ४५ ॥ तत्रगच्छनरश्रेष्ठ ब्राह्म णैर्ब्रह्मराक्षसैः ॥ नयज्ञोनतपोदानं शिवध्यानपरोभव ॥ ४६ ॥ सद्यःप्रमुच्यतेपापाद्ब्राह्मणैश्शापदूषितैः ॥ यत्रासु

रहित यज्ञ कियागया इससे कुछ न होसका अब ब्राह्मणोंके शाप से डराहुआ मैं गदहे की योनि को प्राप्त होऊंगा ॥ ४२ ॥ इस से हे त्रिकालज्ञ,तीनों वेदोंके जानने वाले, देवर्षे ! किस उपाय करके ऋत्विज् ब्राह्मणों करके सहित हम स्वर्गलोक को जावेंगे ॥ ४३ ॥ हम इसको बड़ा अनुग्रह मानते हैं कि हे नारद ! जो आप हमारे पास प्राप्तहुये तब नारदजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुझकरके कहे जाते को आप सुनें व समझें ॥ ४४ ॥ हे भूमिप ! नर्मदा और चरुक का सङ्गम और पञ्चलिङ्गहैं उस में जो स्नान करते वे स्वर्ग को जाते और जो मरे वे फिर नहीं होतेहैं ॥ ४५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप ब्रह्मराक्षस ब्राह्मणों करके सहित वहांको जाओ

रस्तुनिहतो भैरवंरूपमाश्रितः ॥ ४७ ॥ पापप्रणाशनंलिङ्गंऋणमोचनमेवच ॥ चतुष्केश्वरमपरं तथासिद्धेश्वरंपरम् ॥ ४८ ॥ पञ्चमंवारुणंलिङ्गं सिद्धंतत्रप्रतिष्ठितम् ॥ एवन्तुनारदःप्राह भगवन्तंनृपोत्तमम् ॥ ४९ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ भगवन्कीदृशंरूपं यदानृत्यतिभैरवः ॥ एतदाचक्ष्वमेसर्वं प्रसादःक्रियताम्प्रभो ॥ ५० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ गौर्य्यापृष्टःपुराराजन्कौतुकेनसुरेश्वरः ॥ नृत्यरूपंसमाख्याहि किमन्यैःकथितैर्मम ॥ ५१ ॥ शान्तरूपंततस्त्यक्त्वा कृतंरूपंसुदारुणम् ॥ स्थितश्चैकेनपादेन प्रपीड्यवसुधातलम् ॥ ५२ ॥ द्वितीयेनचपादेन ब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ ख्यातंदारुवनन्नाम पञ्चलिङ्गसमन्वितम् ॥ ५३ ॥ निहत्यचासुरंतत्र पुनर्नृत्यंमयाप्रिये ॥ तस्मिन्दारुवनेचण्डि रुद्रंभुवनदारुणम् ॥ ५४ ॥ एतत्तेकथितंराजन्पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ ५५ ॥ गच्छगच्छनृप

क्योंकि यज्ञ व तप और दान कुछ भी नहीं हैं केवल शिवजी के ध्यान में तत्पर होवो ॥ ४६ ॥ तो शाप से दूषित ब्राह्मणों करके सहित शीघ्रही पापसे छूटजावोगे जहां बडे भयानक रूप को धारण कियेहुआ असुर मारागया है ॥ ४७ ॥ पापप्रणाशनलिंग व ऋणमोचन व अन्य चतुष्केश्वर वैसेही और सिद्धेश्वर ॥ ४८ ॥ और पांचवां सिद्ध वारुण लिंग वहां प्रतिष्ठित है इसप्रकार ऐश्वर्यवाले श्रेष्ठ राजा से नारद ने कहा ॥ ४९ ॥ युधिष्ठिर जी बोले कि हे भगवन् ! जिससमय में भैरव जी नाचते हैं उस समय में कैसा रूप होता है यह सब मुझ से कहो हे प्रभो ! आप करके यह प्रसाद किया जावे ॥ ५० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पूर्वकाल में आश्चर्य से पार्वती जी करके महादेवजी पूछे गये कि नाचका रूप कहो और कहीहुई बातों से मुझ को क्या है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर महादेवजी शान्तरूप को छोड़कर अतिदारुणरूप को धारण किया और एक पावँ से पृथ्वीतल को दबाकर स्थित हुये ॥ ५२ ॥ दूसरे पावँ से चराचर सहित ब्रह्माण्ड को दबाया पञ्चलिंगसे युक्त वह दारुवननाम से विदित होताहुआ ॥ ५३ ॥ महादेव जी कहते हैं कि हे प्रिये ! इस रूप से वहां असुर को मारकर फिर मुझकरके नृत्य कियागया हे चण्डि ! उस दारुवन में लोकों को भय करानेवाला रुद्र है ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! यह स्वामिकार्त्तिकजी का कहाहुआ पुराण तुम से कहागया यह

पूर्वकाल में पार्वती और स्वामिकार्त्तिक से महादेव करके कहागया ॥ ५५ ॥ नारद जी राजा से कहते हैं कि हे नृप ! नर्मदा और चरु के सङ्गमरूप स्थान को तुम जावो २ वहां तुम्हारे स्नान करने मात्र से शाप का अन्त होजावेगा ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! यह कहकर देवर्षि नारदजी उस समय में चलेगये तदनन्तर हिरण्य-बाहुराजा अपने परिवार सहित शापसे भ्रष्ट दक्ष, शौनक और गर्गआदिकों से युक्त नर्मदा और चरु के सङ्गम को शीघ्रही प्राप्त होते हुये ॥ ५७ । ५८ ॥ वहां वे राजर्षि स्नानकरके और तिलोदक देकर उसी समय उस दारुवनमें पांचों लिङ्गोंका पूजन करके ॥५९॥ व सिद्धेश्वर, चरुलिङ्ग, ऋणमोचन, पापप्रणाशन और भुक्ति व मुक्ति

स्थानं नर्म्मदाचरुसङ्गमम् ॥ तत्रतेस्नातमात्रस्यशापस्यान्तोभविष्यति ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वाययौराजन्देवर्षिर्नारदस्त
दा ॥ हिरण्यबाहुर्नृपतिस्सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ५७ ॥ दक्षशौनकगर्गाद्यैश्शापभ्रष्टैस्समन्वितः ॥ आजगामतत
श्शीघ्रं नर्म्मदाचरुसङ्गमम् ॥ ५८ ॥ तत्रस्नात्वासराजर्षिर्दत्त्वाचैवतिलोदकम् ॥ पञ्चलिङ्गानिचाभ्यर्च्य तस्मिन्दारु
वनेतदा ॥ ५९ ॥ सिद्धेश्वरंचरुलिङ्गं ऋणमोचनमेवच ॥ पापप्रणाशनंचान्यच्चण्डिकेश्वरमुत्तमम् ॥ ६० ॥ पूजयि
त्वायथान्यायं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ स्तोत्रैस्तुष्टावविविधैः शिवभक्तिपरायणः ॥ ६१ ॥ त्वयाविनातपोदानं नयज्ञंन
चयाजनम् ॥ नस्वर्गंनचमोक्षञ्च कामयेयमहेश्वर ॥ ६२ ॥ नहरोनहरिर्यत्र सर्वंतन्निष्फलंभवेत् ॥ ततस्तुष्टस्सुरेशा
नो वरंवृणिवत्युवाचतम् ॥ ६३ ॥ हिरण्यबाहूराजर्षिः प्रसाद्यशिवमब्रवीत् ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरन्दातुंत्वमिच्छसि ॥
६४ ॥ तदास्याःखरयोनेर्मां महादेवविमोचय ॥ त्यजन्तिचात्रयेप्राणान्पापाअपिनराधमाः ॥ ६५ ॥ तेपियान्तितव

के देनेवाले उत्तम चण्डिकेश्वरका विधिपूर्वक पूजन करके महादेवजी की भक्तिमें तत्पर अनेकप्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करतेहुये ॥ ६० । ६१ ॥ कि हे महेश्वर ! आपके विना तप, दान, यज्ञ, याजन, स्वर्ग और मोक्षकी हम नहीं कामना करतेहैं ॥ ६२ ॥ जहां हर व हरि नहीं हैं वह सब निष्फल है तदनन्तर महादेवजी सन्तुष्टहुये और उस राजासे यह कहा कि तुम वरमांगो ॥ ६३ ॥ तब हिरण्यबाहु राजर्षि प्रसन्नकरके शिवजीसे बोले कि हे देव ! जो आप मुझपर प्रसन्नहो और वरदेने की इच्छा करते हो ॥६४॥ तो हे महादेव ! इस गदहे की योनि से मुझको छुटा देवो और मनुष्योंमें अधम पापी भी जो यहां प्राणोंको छोड़ें ॥६५॥ वे भी आपके स्थानको प्राप्त होवें यह

हमारा वचन सत्य होवे और यज्ञ की सिद्धि, दान, तप और श्रेय निर्विघ्न होवें ॥ ६६ ॥ ऐसाही हो यह कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये शाप से छूटेहुये वे धर्मात्मा दिव्यशोभावाले शरीर को धरेहुये ॥ ६७ ॥ अभीष्ट सवारी पर चढ़कर अपने परिवार के सहित, छत्रको धारण कियेहुये, मागधों करके स्तुति कियेजाते ॥ ६८ ॥ परमआनन्दसे युक्त यज्ञ कराने के वास्ते दूसरे ब्रह्मवादी याजकके ढूंढ़ने के लिये हिरण्यपुर को जातेहुये ॥ ६९ ॥ इसी अन्तर के प्राप्त होने पर उसी पुरको नारदजी भी आतेहुये ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेरेवाचरुसङ्गमवर्णनोनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्थानं सत्यमेतद्वचोमम ॥ निर्विघ्नायज्ञसिद्धिश्च श्रेयोदानंतपस्तथा ॥ ६६ ॥ एवमस्त्वितितंप्रोक्त्वा शिवस्त्वन्तरधीयत ॥ शापान्मुक्तस्सधर्म्मात्मा दिव्यकान्तिवपुर्द्धरः ॥ ६७ ॥ कामिकंयानमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ध्रियमाणातपत्रश्च स्तूयमानश्चमागधैः ॥ ६८ ॥ मुदापरमयायुक्तो हिरण्यपुरमाविशत ॥ अन्यंयाजकमन्वेष्टुं यज्ञार्थंब्रह्मवादिनम् ॥ ६९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते नारदःपुरमभ्यगात ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेरेवाचरुसङ्गमवर्णनोनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ हिरण्यबाहुःशापान्ते नगरींप्राप्यनिर्वृतः ॥ दक्षादयःकथंमुक्तास्तस्माच्छापाच्चकथ्यताम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो कथ्यमानन्निबोधमे ॥ हिरण्यबाहुनाशप्ता यावन्मुक्ताद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ बभ्रमुस्सर्वतीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ तेषांब्रह्मादयश्शापं ननिवर्तयितुंक्षमाः ॥ ३ ॥ वाराणसींमहापुण्यां गङ्गासागरस

युधिष्ठिरजी बोले कि राजा हिरण्यबाहु के शाप के अन्त होनेपर अपनी नगरी को प्राप्त होकर आनन्दित होगये फिर दक्ष आदि ब्राह्मण उस शापसे किस प्रकारसे छूटे सो आप करके कहाजावे ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो, राजन्! आप मेरे कहने को सुनो व समझो हिरण्यबाहु करके शापित श्रेष्ठ ब्राह्मण जबतक मुक्त होवें तबतक ॥ २ ॥ समुद्र पर्यन्त के सब तीर्थों में भ्रमतेरहे व उनके शाप के निवृत्त करने को ब्रह्माआदि देवता समर्थ नहीं हुये ॥ ३ ॥ तब हे भारत ! महा-

पवित्र काशी, गङ्गासागरसंगम, हिमालय, केदार, मौर्वतीर्थ ॥ ४ ॥ गङ्गा, नैमिषारण्य, भैरव तथा पुष्कर वैसेही रमणीक मायापुरी तथा उग्र कनखल ॥ ५ ॥ रौद्र तथा ईशान व देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियागया गङ्गाद्वार, हिमस्थान, प्रभास, शशिभूषण ॥ ६ ॥ रुद्रकोटिसमायोग, गंगाभेद,सरस्वती तथा स्थानेश्वर और वैसेही पवित्र कुरुक्षेत्र ॥ ७ ॥ कुरुक्षेत्र को जावेंगे, कुरुक्षेत्रमें रहेंगे, कुरुक्षेत्रके नामकरके भी मनुष्य सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ८ ॥ ऐसे कहते इनतीर्थों में घूमने से विकल होरहे वे लोग शाप के अन्तको नहीं प्राप्त होतेहुये तदनन्तर पापकर्म में रतहोरहे उन ब्रह्मराक्षसों करके सब तीर्थ निन्दा कियेगये ॥ ९ ॥ तब

ङ्गमम् ॥ हिमवन्तंचकेदारमौर्वतीर्थंचभारत ॥ ४ ॥ गङ्गांचनैमिषारण्यं भैरवंपुष्करन्तथा ॥ मायापुरीन्तथारम्यामुग्रं कनखलन्तथा ॥ ५ ॥ रौद्रंचैवतथेशानं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ गङ्गाद्वारंहिमस्थानं प्रभासंशशिभूषणम् ॥ ६ ॥ रुद्रकोटिसमायोगं गङ्गाभेदंसरस्वतीम् ॥ स्थानेश्वरन्तथापुण्यंकुरुक्षेत्रंतथैवच ॥ ७ ॥ कुरुक्षेत्रंगमिष्यामि कुरुक्षेत्रेवसाम्यहम् ॥ कुरुक्षेत्रस्यनाम्नापि नरःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ भ्रमेणैवंविषण्णास्ते शापस्यान्तंनलेभिरे ॥ निन्दितानिच तीर्थानि पापकर्म्मरतैस्ततः ॥ ९ ॥ आकाशवचनंश्रुत्वा महातीर्थानिनिन्दत ॥ हरंहरिंचयोद्वेष्टि नाभिनन्दतियस्सुरान् ॥ १० ॥ सयातियत्रयत्रैव दुःखंप्राप्नोत्यसंशयः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो नारदोदेवपूजितः ॥ ११ ॥ दक्षशौनकगर्गादीन्सर्वांस्तान्मुनिसत्तमान् ॥ ब्रह्मरक्षस्तनून्दृष्ट्वा नारदोवाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ भवन्तःकर्म्मणाकेन सञ्जाताब्रह्मराक्षसाः ॥ तस्याथवचनंश्रुत्वा नारदस्यमहामुनेः ॥ १३ ॥ सोभिवाद्यनमस्कृत्य दक्षोवचनमब्रवीत् ॥ यथोत्सवं

आकाशवाणी हुई कि तुमलोग महातीर्थोंकी निन्दा करतेहो जो हरि,हरकी निन्दा करता है न जो देवताओं का अभिनन्दन नहीं करताहै ॥ १० ॥ वह जहां जहां जाता है वहां वहां दुःखही पाता है इस में कोई संशय नहीं है इसी अन्तर में देवताओं करके पूजित नारदजी वहां प्राप्तहुये ॥ ११ ॥ और उन दक्ष, शौनक और गर्गआदि सब मुनिश्रेष्ठों को ब्रह्मराक्षस शरीरवाले देखकर नारदजी वचन बोलते हुये ॥ १२ ॥ कि आपलोग किस कर्म से ब्रह्मराक्षस हुये तब उन नारद महामुनिजी के

वचनको सुनकर ॥ १३ ॥ अभिवादन और नमस्कार करके दक्ष वचन बोलतेहुये कि ब्रह्मलोकके वास्ते उत्साहपूर्वक जो कर्म कियागया ॥ १४ ॥ वही उलटे भाव को प्राप्तहोगया कर्मकी गति बहुत कठिन है अब आप हमको ऐसा कोई कर्म बतावें जिससे हम पापको छोड़ें ॥ १५ ॥ हे नारद ! हमलोग जहां २ जाते वहां २ जल व अन्न नहीं मिलता किन्तु वहां २ घोर अनावृष्टि होतीहै ॥ १६ ॥ तब नारदजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! हिरण्यपुर में स्थित होरहे धर्मात्मा हिरण्यबाहु आपलोगों करके प्रसन्न कियेजावें वे शापका अन्तकरेंगे ॥ १७ ॥ नर्मदा और चरुके संगममें यज्ञ करनेके वास्ते जाकर पांचों लिंगोंका पूजन करके शापके अन्तकोकरेंगे ॥ १८ ॥

कृतंकर्म्म ब्रह्मलोकहिताययत् ॥ १४ ॥ तद्विपर्य्यासमापन्नंगहनाकर्म्मणोगतिः ॥ कर्म्मोपदिशमेकिञ्चिद्येनमुञ्चामि दुष्कृतम् ॥ १५ ॥ यत्रयत्रचगच्छामो जलमन्नंनविद्यते ॥ अनावृष्टिरभूद्घोरा तत्रतत्रैवनारद ॥ १६ ॥नारदउवाच॥ प्रसाद्यतांमुनिश्रेष्ठाः शापस्यान्तंकरिष्यति ॥ हिरण्यबाहुर्धर्म्मात्मा हिरण्यपुरमास्थितः ॥ १७ ॥ यज्ञंकर्तुंसमायातो रेवाचरुकसङ्गमे ॥ पञ्चलिङ्गानिचाभ्यर्च्य शापान्तंचकरिष्यति ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वासदेवर्षिर्ब्राह्मणैश्शापकर्षितैः ॥ आजगामततोदिव्यां हिरण्यनगरींशुभाम् ॥ १९ ॥ हिरण्यबाहुर्नृपतिर्वशिष्ठश्चमहामुनिः ॥ विलोक्यतान्मुनीन्सर्वान्सदेवर्षिपुरोगमान् ॥ २० ॥ अभिवाद्ययथान्यायमर्घपाद्यैरपूजयत् ॥ नारदस्तुततोवाक्यं राजानमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ कुशलन्तेनृपश्रेष्ठ सुखंतिष्ठसिसुव्रत ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा सर्वधर्म्मपरायणः ॥ २२ ॥ उवाचवचनंराजा नारदंश्लक्ष्णयागिरा॥ अद्यमेकुशलंब्रह्मंस्तवपादाब्जदर्शनात् ॥ २३ ॥ किङ्कर्तव्यंमयातेद्य ब्रह्मन्मेनुग्रहंकुरु ॥

इसप्रकार कहकर वे देवऋषि शापसे कर्षित ब्राह्मणों करके सहित दिव्य, शुभ, हिरण्यनगरी को आतेहुये तदनन्तर ॥ १९ ॥ राजा हिरण्यबाहु और महामुनि वशिष्ठजी नारदसहित उन सब मुनियों को देखकर ॥ २० ॥ यथार्थरीति से अभिवादनकरके अर्घ्य व पाद्य से पूजन करते हुये तदनन्तर राजा से नारदजी यह वचन बोले ॥ २१ ॥ कि हे नृपश्रेष्ठ ! आपकी कुशल है व हे सुव्रत ! आप सुखसे रहतेहो तब नारदके वचनको सुनकर सब धर्मोंमें परायण ॥ २२ ॥ राजा रसीली वाणी द्वारा नारद से वचन बोले कि हे ब्रह्मन् ! आज आपके चरणकमल के दर्शन से मेरी कुशलहै ॥ २३ ॥ मुझकरके आज आपका क्या कार्य करनाहोगा

सो हे ब्रह्मन् ! मेरे ऊपर आप कृपाकरें तब नारदजी बोले कि अपने राजदर्शन से ब्रह्ममुनियों के शाप का अन्तकरो ॥ २४ ॥ पापकरनेवाले महादुष्ट दैत्यों का नाशकरो बन्धन में पड़ेहुये जीव छुटाने के योग्य होते हैं ब्राह्मण तो विशेषही करके होते हैं ॥ २५ ॥ तब राजा बोले कि जे अज्ञान से वेदको पढ़ते हैं उसके अर्थ को नहीं जानते हैं क्योंकि वेदही भूतलोक का प्रमाण है हे ब्रह्मन् ! वेदही करके विधिपूर्वक कर्म के करनेवाले वे स्वर्ग को जाते हैं व जे अहंकार करके मूढ़ होरहे दान लेने के वास्ते मिथ्या याजक होते हैं ॥ २६ । २७ ॥ व महादेव और विष्णुके वैर में तत्पर होते वे नरक में पड़ते हैं अब हम अगस्त्य और वशिष्ठ इन दोनों को

नारदउवाच ॥ कुरुब्रह्ममुनीनान्त्वं शापान्तंराजदर्शनात् ॥ २४ ॥ निपातयमहादुष्टान्दैत्यान्दुष्कृतकारिणः ॥ बन्धनस्थाहिमोक्तव्या ब्राह्मणास्तुविशेषतः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ वेदंपठन्तियेऽज्ञानाद्विदन्त्यर्थन्नतस्यच ॥ प्रमाणंभूतलोकस्यतद्वत्कर्म्मचकुर्वतः ॥ २६ ॥ ब्रह्मन्वेदेनविधिवत्तेतुस्वर्गंप्रयान्तिवै ॥ अहङ्कारविमूढाश्च मिथ्यादानेनयाजकाः ॥ २७ ॥ पतन्तिनरकेविष्णुशङ्करद्वेषणेरताः ॥ अगस्त्यञ्चवशिष्ठंश्च कृत्वातौयाजकौमुने ॥ २८ ॥ क्रतुमिष्ट्वाविधानेन रेवाचरुकसङ्गमे ॥ मोचयिष्याम्यहंशापात्पञ्चलिङ्गार्चनाद्द्विज ॥ २९ ॥ वेदमन्त्रहुतंतत्र स्वयंविष्णुर्ग्रहीष्यति ॥ रुद्रःकालाग्निरूपेण ग्राहकश्चभविष्यति ॥ ३० ॥ एवंयज्ञेतुसम्पूर्णे तुष्टेनारायणेशिवे ॥ द्विजानांमोक्षणंतत्र भविष्यतिनसंशयः ॥ ३१ ॥ नमुनेदेवतायत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ इहलोकेपरेचैव गतिस्तस्यनविद्यते ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाययौराजा सर्वसम्भारसम्भृतः ॥ यज्ञोपस्करमादाय ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ३३ ॥ रेवाचरुकसम्भेदे यज्ञमिष्ट्वावि

याजक बनाकर हे मुने ! ॥ २८ ॥ नर्मदा और चरुके संगम में विधान से यज्ञ करके हे द्विज ! पांचों लिङ्गों के पूजन से ब्राह्मणों को शापसे छुटा देवेंगे ॥ २९ ॥ वहां वेदों के मन्त्रों से होमेहुये को विष्णुजी आपही ग्रहण करेंगे और रुद्रभी कालाग्निरूपसे भाग के ग्राहक होंगे ॥ ३० ॥ वहां इसप्रकार यज्ञ के पूर्णहोने पर व नारायण और शिव के सन्तुष्ट होने पर ब्राह्मणों का मोक्ष होजावेगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जहां शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करनेवाले विष्णु देवता नहीं हैं उसकी इस लोक व परलोक में गति नहीं है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार कहकर सब सामग्रीके सहित यज्ञका सामान लेकर वेदपाठी ब्राह्मणों करके युक्त राजा

जातेहुये ॥ ३३ ॥ व नर्मदा और चरु के संगम में विधि से यज्ञको करके वे राजा पाप को छोड़ाकर उन शापित ब्राह्मणोंको छुटा दिया ॥ ३४ ॥ पांचों लिंगों के समायोग में इस तीर्थ के प्रभावसे ब्रह्मयानपर चढ़े हुये, अप्सराओं के गणों करकेहवा किये जारहे ॥ ३५ ॥ बन्दीजनोंसे स्तुति कियेजाते, छाता लगायेहुये हे नृप ! उमामाहेश्वर नाम दिव्य महादेवजी के पुरको जातेहुये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! यह पुराना उत्तम आख्यान आप से कहागया इस पञ्चलिंग के समागमरूप पुण्य आख्यान को सुनकर ॥ ३७ ॥ यमलोक को नहीं देखता और पापयोनि को नहीं जाता है किन्तु अश्वमेध यज्ञ के फल को पाकर शिवलोक में पूजित होताहै ॥ ३८ ॥ पापों

धानतः ॥ विहायपापंशप्तांस्तान्मोचयामाससद्विजान् ॥ ३४ ॥ पञ्चलिङ्गसमायोगे तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ब्रह्मयान समारूढो वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ ३५ ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु स्तूयमानश्चवन्दिभिः ॥ प्रायाच्छिवपुरन्दिव्यमुमामाहेश्वरन्नृप ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंराजन्पुराणाख्यानमुत्तमम् ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यं पञ्चलिङ्गसमागमम् ॥ ३७ ॥ यमलोकन्नपश्येद्वै पापयोनिन्नगच्छति ॥ हयमेधफलंप्राप्यशिवलोकेमहीयते ॥ ३८ ॥ पापग्रस्तोविमूढात्माविष्णुमायाविमोहितः ॥ कथंप्रयातितत्तीर्थंकालग्रहवशीकृतः ॥ ३९ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे पञ्चलिङ्गमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ गुह्यातिगुह्यरूपाणि पवित्राणियुधिष्ठिर ॥ श्राद्धकार्यस्यसिद्धानि तीर्थानीहनिबोधमे ॥ १ ॥ अतिगुह्यस्यपुण्यस्य सर्वतोमरकण्टके ॥ तमारभ्यगिरिश्रेष्ठं सर्वंपुण्यतरंस्मृतम् ॥ २ ॥ यावत्सानर्म्मदामध्ये पु

से ग्रसाहुआ, मूढ़बुद्धिवाला, विष्णुकी मायासे मोहित, कालग्रह करके वश करलियागया पुरुष इस तीर्थ को कैसे जासक्ता है ॥ ३९ ॥ इसके सुनने व कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपञ्चलिङ्गमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥

मार्कण्डेय जी बोले कि हे युधिष्ठिर ! गुप्त से गुप्तरूपवाले श्राद्धकर्म में अतिपवित्र सिद्धतीर्थों को आप हम से यहां जानो ॥ १ ॥ अमरकण्टकमें सर्वत्र अत्यन्त गुप्त पुण्यका वास है पर्वतों में श्रेष्ठ उस अमरकण्टक को लेकर सब स्थान अतिपवित्र कहागया है ॥ २ ॥ जहां तक पवित्र सोतोंवाली महानदी वे नर्मदा जी हैं

हे भारत ! उससे अधिक पवित्र तीनों लोकों के मध्य में कोई स्थान नहीं है ॥ ३ ॥ उस स्थानके उत्तरभाग में यज्ञपर्वत नाम का पर्वत है जो कि पर्यङ्कपर्वत का भाई व विन्ध्यपर्वत का छोटा लड़का है ॥ ४ ॥ वहां पूर्वकालमें ब्रह्माजी करके सौत्रामणि नाम का यज्ञ कियागया हे भारत ! और वहीं इन्द्र करके अश्वमेध यज्ञ से यजन कियागया ॥ ५ ॥ और दधीचि व अन्य देवताओं करके भी वहीं महायज्ञों से यजन कियागया है उसी यज्ञपर्वत से चतुनाम की महानदी निकली है ॥ ६ ॥ और नर्मदा में गिरी है वह सङ्गम लोकों में विदितहै उसके तीर में जो पीले कुश पृथ्वी में जमे हैं ॥ ७ ॥ हे भूप ! वे श्राद्धकरने में पितरों को मोक्ष देनेवालेहैं जहां

एयस्रोतामहानदी ॥ नास्तितस्मात्परंपुण्यं त्रिपुलोकेषुभारत ॥ ३ ॥ तस्योत्तरविभागेस्ति नामतोयज्ञपर्वतः ॥ कनिष्ठोविन्ध्यपुत्रस्तु भ्रातापर्य्यङ्कभूभृतः ॥ ४ ॥ स्वयंभुवापुरातस्मिन्निष्टस्सौत्रामणिर्मखः ॥ तत्रैवेष्टंमघवता हयमेधेनभारत ॥ ५ ॥ दधीचिनाथदेवैश्च तत्रैवेष्टंमहामखैः ॥ निष्क्रान्तापर्वतात्तस्माच्चतुर्नाममहानदी ॥ ६ ॥ पतितानर्मदायान्तु सङ्गमोलोकविश्रुतः ॥ तस्यास्तीरेतुयेदर्भाःपीतवर्णाःक्षितिङ्गताः ॥ ७ ॥ तेश्राद्धकरणेभूप पितॄणांमोक्षदायकाः ॥ सयावत्सङ्गमोनद्याः सयावद्यज्ञपर्वतः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजञ्छ्राद्धंयःपरिकल्पयेत् ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति स्नानंकुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ९ ॥ सिद्धेश्वरन्नामलिङ्गं चतुष्केश्वरमेवच ॥ संख्यानभूयोलोकेषु ख्यातमात्रंमयानघ ॥ १० ॥ सङ्गमेविद्यतेदेवो नतंपश्यन्तिमानवाः ॥ पूज्यतेनागकन्याभिस्सदेवासुरसत्तमैः ॥ ११ ॥ कथयामितवाख्यानमितिहासम्पुरातनम् ॥ ऋषिस्सुपर्णोयत्रासीद्ब्रह्मयोनिर्जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ पुरुहूतातस्यभार्या धर्म्मपत्नीप

तक वह नदी का संगम है और जहांतक वह यज्ञपर्वतहै ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इतने बीच में जो श्राद्धकरता है और स्नान व प्रदक्षिणा करता है उसके पितर तृप्तहोजाते हैं ॥ ९ ॥ वहां सिद्धेश्वर और चतुष्केश्वर नाम लिंग हैं हे भूप ! लोकों में उनके पूजन के पुण्य की कुछ संख्या नहीं है हे अनघ ! आप से कथनमात्र किया है ॥ १० ॥ सङ्गम में भी महादेवजी विद्यमानहैं परन्तु मनुष्य उनको नहीं देखते वे नागकन्या व देवता और दैत्यों करकेही पूजन कियेजाते हैं ॥ ११ ॥ इस पुराने आख्यान व इतिहास को हम आपसे कहते हैं जहां ब्रह्माजी के पुत्र जितेन्द्रिय सुपर्ण नाम के ऋषि हुये ॥ १२ ॥ उनकी धर्मपत्नी पतिव्रता पुरुहूता नाम की भार्या

होतीहुई नैमिषारण्य के रहनेवाले कन्द, मूल और फलोंके खानेवाले ॥ १३ ॥ मृगचर्म व भोजपत्र आदि के ओढ़नेवाले, त्रिकाल अग्नि में हवन करनेवाले और वेदों के पढ़ने में तत्पर ॥ १४ ॥ वेद, स्मृति और पुराणों में कहेहुये मोक्ष के उपायों के विचारनेवाले, नैमिषारण्यके रहनेवाले, दशलाख ऋषि ॥ १५ ॥ और वहीं ब्रह्माजी के मानसपुत्र बालखिल्य जो कि ब्रह्मदण्डपर आरूढ़होकर देवलोकको जाते हैं ॥ १६ ॥ वहां कोई महीने भरके व्रत करनेवाले व कोई जलाहार करनेवाले व बहुत से एक पांवसे खड़े रहते ॥ १७ ॥ ऐसे २ ऋषियोंसे युक्त, सिद्ध व गन्धर्वोंसे सेवित उस रमणीक तपोवनमें पुरुहूता अपने पतिको प्रसन्न करके वचन बोली ॥ १८ ॥

तिव्रतां ॥ नैमिषारण्यवासस्य कन्दमूलफलाशिनः ॥ १३ ॥ कृष्णाजिनपरीधानवल्कलादिकवाससः ॥ त्रिकालव
ह्निहोतारोवेदाध्ययनतत्पराः ॥ १४ ॥ वेदस्मृतिपुराणोक्तमोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ ऋषयोदशलक्षाणि नैमिषारण्य
वासिनः ॥ १५ ॥ बालखिल्याश्चतत्रैव ब्रह्मणोमानसास्सुताः ॥ ब्रह्मदण्डंसमारुह्य देवलोकंप्रयान्तिते ॥ १६ ॥ मा
सोपवासिनस्तत्र जलाहारास्तथापरे ॥ तिष्ठन्तिबहवःकेचिदेकपादेनचापरे ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तपोवनेरम्ये सिद्धगन्ध
र्वसेविते ॥ प्रसाद्यचाब्रवीद्वाक्यं पुरुहूतानिजंपतिम् ॥ १८ ॥ ऋतुकालेतुपर्वणि माम्भजस्वमहामुने ॥ जायतेमेयथा
पुत्रस्सर्वसन्तानपावनः ॥ १९ ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयते तृप्यन्तिपितृदेवताः ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्ति तस्मात्पुत्रमजीज
नः ॥ २० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अमावास्याद्ययोगेस्मिन्मैथुनंवर्जितंप्रिये ॥ अकर्तव्यमिदंभद्रे पितॄणांवर्ज्जितंध्रुवम् ॥
२१ ॥ पितरस्तस्यतन्मांसं भुञ्जतेऋतुगामिनः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु तप्तंमेदुष्करन्तपः ॥ २२ ॥ स्नात्वातत्क्षणमा

कि हे महामुने ! इस ऋतुकालरूप पर्व में आप हमको ग्रहणकरो जिससे सम्पूर्ण वंश का पवित्र करनेवाला हमारे पुत्र उत्पन्नहोवे ॥ १९ ॥ पुत्रसे लोकों को जीतता है पितर और देवता भी तृप्त होते हैं अपुत्र की गति नहीं होती तिस से आप पुत्र उत्पन्न करो ॥ २० ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे प्रिये ! आज अमावास्या है इस योग में मैथुन मना है हे भद्रे ! यह काम करने के योग्य नहीं है पितरोंके वास्ते यह निश्चय करके वर्जित है ॥ २१ ॥ ऋतुकाल में भी जो अमावास्या को गमन करताहै उसके पितर उसका मांस भोजन करते हैं देखो देवताओंकी हजार वर्ष तक मुझ करके दुष्कर तप कियागया ॥ २२ ॥ और स्नान करके क्षणमात्रसे

मेरे देखते चाण्डाल स्वर्ग को चलागया इससे सब कहेहुये को वारंवार धिक्कार है वेद व पूजन कुछ भी ठीक नहीं है ॥ २३ ॥ तब उन मुनिपर हँसकर निषाद की स्त्री वचन बोली कि हे विप्रर्षे ! विषादको छोड़ो हम यह आपसे सत्य कहती हैं ॥ २४ ॥ अहङ्कारसे मूढबुद्धिवाला तुम्हारे बराबर दूसरा तापस नहींहै क्योंकि स्नान, जप, होम, स्वाध्याय और शिवका पूजन कुछभी न किया ॥ २५ ॥ निरासरे वायुमात्रका भक्षण करतेहुये निष्फल क्लेश को तुम प्राप्तहुये तुम्हारा तप व ध्यान व योगही निष्फलहै तो स्वर्गकी प्राप्ति कैसे होसक्ती है ॥ २६ ॥ तब जाबालि बोले कि हे वरारोहे ! निषादीके रूपको धारणकिये तुम कौनहो पार्वती, सरस्वती व गङ्गाहो

त्रेण चाण्डालस्त्रिदिवङ्गतः ॥ धिक्धिक्धिगीरितंसर्वं नवेदोनचयाजनम् ॥ २३ ॥ प्रहस्यचाब्रवीद्वाक्यं निषादीतंमुनिम्प्रति ॥ विषादंत्यजविप्रर्षे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥ अहङ्कारविमूढात्मा त्वत्समोनास्तितापसः ॥ नस्नानन्न जपोहोमो नस्वाध्यायःशिवार्चनम् ॥ २५ ॥ निष्फलंक्लेशमापन्नो वायुभक्षोनिराश्रयः ॥ त्वत्तपोध्यानयोगश्च स्वर्गप्राप्तिश्चतत्कथम् ॥ २६ ॥ जाबालिरुवाच ॥ कासित्वंचवरारोहे निषादीरूपमाश्रिता ॥ उमासरस्वतीगङ्गा मांजिज्ञासितुमागता ॥ २७ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये धर्म्मंब्रूहिशुचिस्मिते ॥ निषादोनैमिषारण्ये ममासीन्मुनिपुङ्गव ॥ २८ ॥ कामार्तयामयादर्शे भर्तापुत्राययाचितः ॥ अकालेयाचमानाहं तेनशप्तामहात्मना ॥ २९ ॥ सचभर्तामयाशप्तस्ततोन्योन्यंसमागते ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यादावांमुक्तौतुकिल्बिषात् ॥ ३० ॥ तस्मात्त्वंहिमुनिश्रेष्ठ शिवाराधनतत्परः ॥ तदर्थंकुरुकर्म्माणि होमजाप्यादिकंमुहुः ॥ ३१ ॥ यास्यसेत्वंसमेदेशे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ इत्युक्त्वासाययौस्वर्गं

हमारी परीक्षा लेनेके वास्ते आई हो ॥ २७ ॥ सो हम इसको अनुग्रह समझते हैं इस से हे शुचिस्मिते ! तुम धर्म को कहो तब निषादी बोली कि हे मुनिपुङ्गव ! नैमिषारण्यमें मेरा पति निषाद होताहुआ ॥ २८ ॥ सो अमावास्या के दिन काम से पीड़ित मुझ करके पुत्र उत्पन्न करने के वास्ते पति प्रार्थना कियागया कुसमय में प्रार्थना करती हुई मैं उस महात्मा करके शापित होगई ॥ २९ ॥ वह पति भी मुझ करके शाप देदिया गया तदनन्तर परस्पर इसप्रकार होनेपर हम दोनों इस तीर्थ के माहात्म्य से पापसे छूटगये ॥ ३० ॥ तिससे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम शिवजी के आराधनमें तत्परहो और उन्हीके वास्ते कर्म, होम, जप आदि वारंवारकरो ॥ ३१ ॥

इससे तुम उत्तम स्थान को प्राप्त होवोगे यह हम सत्य कहती हैं यह कहकर वह अपने पति करके सहित स्वर्ग को जातीहुई ॥ ३२ ॥ जाबालि भी अपने तपको छोड़कर शिवजी के आराधन में तत्परहुये और थोड़ेही काल करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होतेहुये ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेब्राह्मणस्य भार्यायासहस्वर्गारोहणन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नीलगङ्गा के पश्चिम में और नर्मदा के उत्तर तटपर परमसिद्धिका देनेवाला व्यतीपातेश्वर नामका लिङ्ग है ॥ १ ॥ और जगत् के पति

निजभर्त्रासमन्विता ॥ ३२ ॥ त्यक्त्वास्वकलपंजाबालिः शिवाराधनतत्परः ॥ अचिरेणैवकालेन ब्रह्मलोकमुपागतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे ब्राह्मणस्यभार्ययासहस्वर्गारोहणन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ पश्चिमेनीलगङ्गाया नर्म्मदोत्तरकूलतः ॥ व्यतीपातेश्वरन्नाम लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ १ ॥ सोमनाथंस्वयंविद्धिसोममूर्तिंजगत्पतिम् ॥ सावित्र्याचतपस्तप्तं तत्रसप्तर्षिभिस्तथा ॥ २ ॥ सावित्रीकुण्डमित्येतद्विख्यातंनर्म्मदातटे ॥ नरस्यस्नानमात्रस्य कन्यादानफलम्भवेत् ॥ ३ ॥ तिलोदकप्रदानेन चान्नदानेनभारत ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति सावित्रीलोकमाश्रिताः ॥ ४ ॥ दक्षस्यदुहिताचासीत् कुमुदानामविश्रुता ॥ सोमायदत्त्वातान्दक्षो मुदा परमयायुतः ॥ ५ ॥ तस्यांसजनयामास हिमांशुःपुत्रमद्भुतम् ॥ ज्ञात्वामृतमयंतन्तु सुरायज्ञफलार्थिनः ॥ ६ ॥ हिमांशुंसोमपुत्रञ्च तेययुश्चमुदान्विताः ॥ अन्यासोमस्यपरमा कलायाषोडशीस्मृता ॥ ७ ॥ अध्यास्तेसाचन्द्रमसं पितृ

सोमनाथ को साक्षात् सोममूर्त्तिही जानो वहां सावित्री और सप्तर्षियों करके तप कियागया है ॥ २ ॥ नर्मदा के तटमें सावित्रीकुण्ड नामसे विख्यात तीर्थ है उसमें स्नानमात्र किये मनुष्यको कन्यादान का फल होताहै ॥ ३ ॥ तिलोदक देने से व अन्न के देने से हे भारत ! उसके पितर सावित्रीलोक में रहकर तृप्त होते हैं ॥ ४ ॥ कुमुदा नाम से विख्यात एक दक्षकी कन्या होतीहुई दक्ष उसको चन्द्रमा को देकर परम आनन्द से युक्त होतेहुये ॥ ५ ॥ उस कन्यामें वे चन्द्रमा अद्भुत पुत्र उत्पन्न करते हुये यज्ञफल के अर्थी देवतालोग उस पुत्रको अमृतरूप जानकर ॥ ६ ॥ वे देवता आनन्द से युक्त चन्द्रमाके पुत्र हिमांशु को प्राप्तहुये और जो सोलहवीं

चन्द्रमा की उत्तम कला कहीगई है ॥ ७ ॥ वह पितरों के तारने के वास्ते चन्द्रमा में रहती है वनस्पति व गौवों के दूध व घी में चन्द्रमा के गयेपर ॥ ८ ॥ अथवा देवताओं के महान् सोमयाग में व अमावास्या में सोमको प्राप्त होनेपर सब असुर लोग पीडाला गया चन्द्रमाको सुनकर आपभी पीनेको उद्यत होतेहुये ॥ ६ ॥ तब असुरों के भयसे चन्द्रमा विन्ध्याचल के आश्रित होताहुआ व वे असुरलोग अपने भयसे गिरिदुर्ग में चन्द्रमा को स्थित सुनकर ॥ १० ॥ तदनन्तर राहु करके सूर्य के ग्रसेहुये पर हे भारत ! काय और अतिकाय आदि दानव चन्द्रमाके प्रति प्राप्त होतेहुये ॥ ११ ॥ सिंहिका के पुत्र, राहुके भाई बड़े बलवाले सब दानवलोग चन्द्रमा

णातारणायच ॥ वनस्पतौगतेसोमे गवांक्षीरेहविःषुच ॥ ८ ॥ सोमपानेमहायज्ञे दर्शेदिविषदांतदा ॥ पीतंश्रुत्वासुरास्सर्वे हिमांशुंपातुमुद्यताः ॥ ६ ॥ असुराणांभयाद्विन्ध्यं हिमांशुर्गिरिमाश्रयत् ॥ श्रुत्वातेगिरिदुर्गस्थमसुरास्स्वभयात्तदा ॥ १० ॥ ग्रस्तेतेराहुणासूर्ये हिमांशुंप्रतिभारत ॥ कायातिकायप्रमुखास्सम्प्राप्तादानवास्ततः ॥ ११ ॥ राहोस्तुभ्रातरःसर्वे सैंहिकेयामहाबलाः ॥ समाहृत्यहिमांशुस्तैस्सुधार्थेचिरजीविभिः ॥ १२ ॥ भूतलेपातितःपापैः क्रन्दन्तिस्मसुरास्तदा ॥ उवाचसपतन्भूमौ हिमांशुस्सोमनन्दनः ॥ १३ ॥ पातुमान्देवईशानो दानवानाम्भयङ्करः ॥ एतस्मिन्नन्तरेभूप हिमांशोरक्षणायवै ॥ १४ ॥ पातालादुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ तेनबाणेनरौद्रेण हुङ्कारेणमहासुराः ॥ १५ ॥ भस्मीकृतास्तुतत्रैव देवदेवेनशूलिना ॥ ततस्तमब्रवीद्देवो भयमासुरजंत्यज ॥ १६ ॥ शिवभक्तिप

को अमृतके वास्ते खींचकर फिर उन चिरजीवी ॥ १२ ॥ पापियों करके पृथिवी में गिरादिया गया तब देवता लोग बड़ा विलाप करते हुये पृथिवी में गिरता हुआ वह चन्द्रमा का पुत्र हिमांशु बोला ॥ १३ ॥ कि दानवों के भयका करनेवाला ईशान देव हमारी रक्षाकरै इसी अन्तरमें हिमांशु की रक्षा करने के वास्ते हे भूप ! ॥ १४ ॥ जलताहुआ कालाग्नि के समान प्रभावाला लिङ्ग पाताल से उठताहुआ तदनन्तर उन देवताओं के देवता महादेव करके भयानक बाण व हुङ्कार से महाअसुर वहीं भस्म करादिये गये तदनन्तर उस हिमांशु से महादेवजी ने कहा कि असुरों से उत्पन्न हुये भयको तुम छोड़दो ॥ १५ । १६ ॥ हे पुत्रक ! महादेव की भक्ति में तत्पर

होकर निर्भय खड़ेरहो तदनन्तर देवताओं करके सहित चन्द्रमा ब्रह्मा के स्थानको जाकर ॥ १७ ॥ वृत्तान्त को कहताहुआ तब उसके कहने से चन्द्रमा सहित वे सब ब्रह्मा आदि देवता जातेहुये ॥ १८ ॥ जहां नर्मदा के तट में ॐकारनाथ विद्यमान हैं हे भारत ! सृष्टि और संहार के करनेवाले त्र्यम्बक देवको देखकर ॥ १९ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्मादेव वचन बोलतेहुये कि चन्द्रमा का पुत्र यह अमृतरूप श्रीमान् हिमांशुहै ॥ २० ॥ सो हे नाथ ! हे देव ! दैत्योंकी शङ्कासे आप करके रक्षा करने के योग्यहै सत्ताईस नक्षत्रों की गति तो चन्द्रमाहै ॥ २१ ॥ और सब लोकोंकी गति आपहो इस से तुम रक्षा करने को योग्यहो उनके इस वचन को सुनकर महादेव

रोभूत्वा निर्भयस्तिष्ठपुत्रक ॥ अथसोमःसुरैस्सार्द्धं गत्वाब्रह्मनिकेतनम् ॥ १७ ॥ वृत्तान्तंकथयामास ततस्तद्वचनात्सुरा ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वा जग्मुस्सोमपुरोगमाः ॥ १८ ॥ ॐकारःकल्पगातीरे यत्रातिष्ठतिभारत ॥ दृष्ट्वातुत्र्यम्बकन्देवं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ १९ ॥ उवाचवचनन्देवो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ श्रीमानमृतरूपोयं हिमांशुस्सोमनन्दनः ॥ २० ॥ रक्षणीयस्त्वयानाथ देवदानवशङ्कया ॥ सप्तविंशतियोगानां गतिःप्रोक्तातुचन्द्रमाः ॥ २१ ॥ त्वङ्गतिस्सर्वलोकानां तस्मात्त्वंत्रातुमर्हसि ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा शिवऊचेयथोचितम् ॥ २२ ॥ पूजयित्वातुदेवेशं सोमनाथंजगत्पतिम् ॥ पातालेश्वरनामानं गतास्सर्वेत्रिविष्टपम् ॥ २३ ॥ तदाप्रभृतितत्स्थानं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ सावित्रीकुण्डतोयेन स्नानंकृत्वातमर्चयेत् ॥ २४ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिस्सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ प्रभासेयत्फलंराजन् दृष्टंचशशिभूषणे ॥ २५ ॥ तत्फलंनृपशार्दूल भवेदेवनसंशयः ॥ कालातिक्रमणंकुर्यात्तत्रयोभैक्ष्यमाश्रितः ॥ २६ ॥ नतस्यपुनरावृ

जी यथोचित वचन बोले ॥ २२ ॥ तब देवताओं के ईश्वर जगत् के पति सोमनाथ पातालेश्वर जिनका दूसरा नाम है उनका पूजन करके सब स्वर्ग को चले गये ॥ २३ ॥ तबसे लेकर वह स्थान तीनोंलोकोंमें विदित होताहुआ सावित्रीकुण्ड के जलसे स्नानकरके उन महादेवका पूजनकरै ॥ २४ ॥ उसकी फिर आवृत्ति नहीं होती यह महादेव करके सत्य कहा गयाहै हे राजन् ! जो फल प्रभास व शशिभूषणमें देखा गयाहै ॥ २५ ॥ हे नृपशार्दूल ! वही फल होता है कुछ संशय नहीं है व

वहां जो भिक्षाके आश्रित होकर अपना काल व्यतीत करता है ॥ २६ ॥ उसकी फिर आवृत्ति नहीं होती यह हम सत्य कहते हैं हे भारत ! तिलोदक के देने व पिण्ड देने से ॥ २७ ॥ पतित जीवों को नरकसे उद्धार करता है इसमें संशय नहीं है इसके सुनने व कहने से सोमलोक में पूजित होता है ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपातालेश्वरमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे भारत ! अब इन्द्रद्युम्न राजाका आख्यान तुम से कहते हैं कि अयोध्या के स्वामी श्रीमान् सूर्यवंश में इन्द्रद्युम्न नाम के राजा होते

त्तिस्सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ २७ ॥ पतितानुद्धरेज्जन्तून्नरकान्नात्रसंशयः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य सोमलोकेमहीयते ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पातालेश्वरमाहात्म्यन्नामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामितवाख्यानमिन्द्रद्युम्नस्यभारत ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमान् सूर्यवंशेमहीपतिः॥ १ ॥ बुभुजेसमहींसर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ चक्रवर्तीनृपश्रेष्ठस्सत्यसन्धोदृढव्रतः ॥ २ ॥ सशशासमहींसर्वां यथाशक्रोमरावतीम् ॥ यज्ञहोमसहस्रैस्तु ददाहवसुधामिमाम् ॥ ३ ॥ यज्ञोत्सवविवाहैस्तु वेदमङ्गलमङ्गलैः ॥ चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मस्थं प्राकृताइतरेजनाः ॥ ४ ॥ कामंकामदुघाधेनुर्धरणीसस्यशालिनी ॥ पप्रच्छसतुराजर्षिर्वशिष्ठंब्रह्मवित्तमम् ॥ ५ ॥ शक्रश्चाङ्गिरसंयद्वदयोध्याधिपतिस्तथा ॥ सोमसूर्यान्वयस्यैकं तारणञ्चपुरोधसम् ॥ ६ ॥ हयमेधंमहायज्ञं कस्मिंस्तीं

हुये ॥ १ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ, सत्य प्रतिज्ञावाले, पुष्टहै व्रत जिनका ऐसे चक्रवर्ती वे राजा पर्वतों व जलों और जङ्गलों के सहित सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करतेहुये ॥ २ ॥ और वे सम्पूर्ण पृथिवी को शिक्षा देतेहुये जैसे इन्द्र अमरावतीको देवें हजारों यज्ञोंके होम से इस पृथिवी को जलादिया ॥ ३ ॥ यज्ञ, उत्सव, विवाह और भी वेदोक्त मङ्गलों करके युक्त वहाके चारोंवर्ण अपने धर्म में स्थिर रहतहुये और साधारण मनुष्य भी इसी प्रकार के होतेहुये ॥ ४ ॥ अभीष्ट कालमें दुग्धकी देनेवाली गौ और अन्न से युक्त पृथिवी होतीहुई वे राजर्षि अतिशय करके ब्रह्मके जाननेवाले वशिष्ठजी से पूछतेहुये ॥ ५ ॥ चन्द्र और सूर्यवंशके एकही तारनेवाले पुरोहितसे

अयोध्या के राजा ने इस प्रकार पूंछा जैसे इन्द्र बृहस्पति से पूंछें ॥ ६ ॥ राजाने कहा कि अश्वमेध महायज्ञ हम किस तीर्थ में करें सो आप प्रसन्नता से अपने देखे व सुने के अनुसार कहो ॥ ७ ॥ तब वशिष्ठजी बोले कि हे नृप ! वेद के जाननेवाले ब्रह्मर्षि जैसा आपसे कहें उसीप्रकार ऋत्विक् ब्राह्मणों करके सहित तुमको यज्ञ करना चाहिये ॥ ८ ॥ तब मरीचि, कश्यप, अङ्गिरा, गौतम, दुर्वासा, च्यवन, धूम्र व कण्व ॥ ९ ॥ हे नृपते ! ये व और भी उत्तम व्रतवाले मुनीन्द्रलोग जो वहां विद्यमान थे उनसे हे महाराज ! इन्द्रद्युम्नराजा पूंछतेहुये ॥ १० ॥ कि किस तीर्थ में कियाहुआ यज्ञ अभीष्ट फल भोग का देनेवाला होताहै हे मुनिश्रेष्ठो ! यह सब

र्थेयजाम्यहम् ॥ कथयत्वंप्रसादेन यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ ७ ॥ वशिष्ठउवाच ॥ ब्रह्मर्षयोवेदविदो यथातेचाब्रुवन्नृप ॥ यज्ञोनिवर्तितव्यस्तु ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैस्तव ॥ ८ ॥ मरीचिःकश्यपश्चापि अङ्गिरागौतमस्तथा ॥ दुर्वासाश्च्यवनोधूम्रः कण्वश्चैवमहामुनिः ॥ ९ ॥ एतेचान्येचनृपते मुनीन्द्राश्शंसितव्रताः ॥ पप्रच्छतान्महाराज इन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ १० ॥ कस्मिंस्तीर्थेकृतोयज्ञः कामभोगफलप्रदः ॥ एतत्सर्वंयथार्थम्मे वदन्तुमुनिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ ऋषयऊचुः ॥ केचिद्वाराणसींभूप प्रयागञ्चतथापरे ॥ १२ ॥ अन्येवैनैमिषंतीर्थं पुष्करञ्चतथापरे ॥ कुब्जाम्रकंतथाचान्ये गङ्गाद्वारमथापरे ॥ १३ ॥ मायापुरीन्तथाचान्ये सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ वदन्त्यन्येहिमस्थानं बिल्वकंनीलपर्वतम् ॥ १४ ॥ कुशावर्तंतथैवान्ये तथारुद्रमहालयम् ॥ ईशानंचैवकेदारं सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ १५ ॥ और्वतीर्थंवदन्त्यन्ये तथाबदरिकाश्रमम् ॥ कालञ्जरन्नीलकण्ठं देवदारुवनन्तथा ॥ १६ ॥ हेमकूटंविरूपाक्षमन्येचण्डीश्वरन्तथा ॥ भूतेश्वरम्भस्मगा

यथार्थ आप लोग हम से कहें ॥ ११ ॥ तब ऋषि बोले कि हे भूप ! इस कामके योग्य कोई काशी जी को कहते हैं और कोई प्रयाग ॥ १२ ॥ कोई नैमिष, कोई पुष्करतीर्थ, कोई कुब्जाम्रक, कोई गङ्गाद्वार ॥ १३ ॥ कोई सब देवताओं से नमस्कार कीगई मायापुरी. कोई हिमालय, कोई बिल्वक, कोई नीलपर्वत को कहते हैं ॥ १४ ॥ व कोई कुशावर्त, कोई रुद्रमहालय, कोई ईशान, कोई सब-तीर्थों से व्याप्त व शुभ केदार ॥ १५ ॥ कोई और्वतीर्थ, कोई बदरिकाश्रम, कोई कालञ्जर,

कोई नीलकण्ठ, कोई देवदारुवन, कोई हेमकूट, कोई विरूपाक्ष, कोई चण्डीश्वर, कोई भूतेश्वर, कोई भस्मगात्र, कोई प्रभास और कोई शशिभूषण को कहते हैं ॥ १६ । १७ ॥ इतने व और भी तीर्थ हे अनघ ! आप से कहेगये यह मुनियों का अनेक प्रकार का मत कहा गया ॥ १८ ॥ तब दुर्वासा हँसते हुये की नाई उन राजा से वचन बोले कि ब्राह्मणों का ज्ञानसे जेठापन है और क्षत्रियों का बलसे ॥ १९ ॥ वैश्यों का धन और धान्य से और शूद्रों का जन्मसेही होताहै इससे सातकल्प पर्यन्त रहनेवाले भूत और भविष्यके तत्त्वके जाननेवाले व तीनों कालों के जाननेवाले और तीनों वेदों के जाननेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी के प्रमाण के

त्रं प्रभासंशशिभूषणम् ॥ १७ ॥ तीर्थान्येतानिचान्यानि कथितानितवानघ ॥ मतान्तरंमुनीनांच विविधंपरिकीर्तितम् ॥ १८ ॥ दुर्वासाश्चाब्रवीद्वाक्यं प्रहसन्निवतंनृपम् ॥ विप्राणांज्ञानतोज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणान्तुवीर्यतः ॥ १९ ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणांचैवजन्मतः ॥ मार्कण्डेयेविद्यमाने सप्तकल्पानुवर्तिनि ॥ २० ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञे त्रिकालज्ञेत्रयीविदि ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानप्रमाणज्ञेतपोधने ॥ २१ ॥ कस्यास्तिधर्म्मकथने सामर्थ्यंधर्म्मनिश्चये ॥ धर्म्मारण्येमहाराज गम्यतांकल्पगातटे ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयोवक्ष्यतेयत्तत्रयज्ञःप्रवर्त्यताम् ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यथावदसिदेवर्षे तथाकार्यं मयानघ ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वामुनिभिस्सार्द्धं गन्तुंमार्कण्डमाश्रमम् ॥ उवाचवचनंराजा प्रतीहारंसुवर्चसम् ॥ २४ ॥ मन्त्रिणन्देवगर्भंच बृहस्पतिसमंनृप ॥ यज्ञोपस्करसम्भारं सर्वमादायसत्वरम् ॥ २५ ॥ आगच्छन्तुभवन्तोत्र ममादेशपराय

जाननेवाले, तपही जिनका धन ऐसे मार्कण्डेयजी के विद्यमान होनेपर ॥ २० । २१ ॥ धर्म के कहने व धर्म के निश्चय में किसकी सामर्थ्य है इससे हे महाराज ! नर्मदाके तटमें विद्यमान धर्मारण्य को आप चलो ॥ २२ ॥ वहां मार्कण्डेयजी जिस स्थान को कहेंगे वहीं यज्ञ कियाजावे तब इन्द्रद्युम्न बोले कि हे देवर्षे ! जैसा आप कहते हो हे अनघ ! वैसाही हमको करना चाहिये ॥ २३ ॥ यह कहकर मुनियों करके सहित मार्कण्डेयके आश्रम को जानेके वास्ते सुवर्चा नाम के डेवढ़ीबरदार से राजा वचन बोले ॥ २४ ॥ और हे नृप ! बृहस्पति के समान देवगर्भ नाम के मन्त्री से भी कहा कि यज्ञका सब सामान लेकर हमारी आज्ञा में तत्पर होरहे आप

लोग शीघ्रही यहां आवें हम अग्निहोत्री ब्राह्मणों करके सहित नर्मदातटको जायँगे ॥ २५।२६ ॥ यह सब शीघ्रही सिद्ध किया जावे जिससे यज्ञ प्रवृत्त होजावे इन सब ब्राह्मणोंकी सवारी पृथक् २ तैयार कीजावें ॥२७॥ और इन आठसौ रानियों की सवारियां तैयार कीजावें और नवोखण्डके राजाओं व समुद्रके द्वीपोंके वासी ॥ २८॥ नाना प्रकारके हजारों राजालोगों के वास्ते वारंवार बुलावा देदिया जावे और चन्द्रद्वीप, सेतु, ताम्रपात्र, शिलाष्टक ॥ २९ ॥ भोगद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण और नवां कुमारिका नामक हैं ये नव भेदवाले नवोखण्ड कहेगये हैं ॥ ३० ॥ इसीप्रकार जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मलि, प्लक्ष और पुष्कर ये सात द्वीप कहे

णाः ॥ साग्निभिर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं यास्यामःकल्पगातटम् ॥ २६ ॥ शीघ्रंसम्पाद्यतांसर्वं यथायज्ञःप्रवर्त्यताम् ॥ सर्वेषामेव विप्राणां यानमेषांपृथक्पृथक् ॥ २७ ॥ शतानिचाष्टौराज्ञीनां यानमासांप्रकल्पय ॥ नवखण्डक्षितीशानां समुद्रद्वीप वासिनाम् ॥ २८ ॥ नानान्नृपसहस्राणां घोषणाक्रियताम्मुहुः ॥ चन्द्रद्वीपञ्चसेतुञ्च ताम्रपात्रंशिलाष्टकम् ॥ २९ ॥ भोगद्वीपञ्चसौम्यञ्च गान्धर्वंवारुणंतथा ॥ कुमारिकाख्यंनवमं नवभेदंप्रवर्तितम् ॥ ३० ॥ जम्बूशाककुशक्रौञ्चशाल्मलिप्लक्षपुष्कराः ॥ सप्तद्वीपास्समाख्याताः समुद्रांश्चनिबोधमे ॥ ३१ ॥ क्षारसर्पिर्दधिक्षीरमदिरेक्षुजलात्मकाः ॥ समुद्राःपरिखाकाराः पृथिवीमानकीर्तिताः ॥ ३२ ॥ एतेषांघोषणाकार्याममादेशानुवर्तिनाम् ॥ गवाञ्चत्रीणिलक्षाणि सवत्सानांपयोमुचाम् ॥ ३३ ॥ अश्वानांश्यामकर्णानां सपादंलक्षमेवच ॥ दन्तिनामयुतंचैव घण्टाभरणभूषितम् ॥ ३४ ॥ सहस्राणिचचत्वारियानानांकामचारिणाम् ॥ लक्षन्तुकरभाणांवै मणिमाणिक्यमेवच ॥ ३५ ॥ अग्निशौचा

गये हैं अब समुद्रों को मुझ से जानो ॥ ३१ ॥ खारीजलका, घीका, दहीका, दूध का, दारूका, ऊखका और शुद्ध जलका ये सात समुद्र खांवां के आकार बनेहुये पृथिवी की नापके वास्ते रचेगये हैं ॥ ३२ ॥ इनके रहनेवाले हमारी आज्ञाके अनुकूल बर्तनेवाले राजाओं को प्रसिद्ध कियाजावे और बछड़ों करके सहित, दूध की देनेवाली तीनलाख गौवें ॥ ३३ ॥ श्यामकर्ण सवालाख घोड़े, घण्टा और आभूषणों से भूषित दशहजार हाथी ॥ ३४ ॥ अपने मनके अनुकूल चलनेवाली चार

हजार सवारियां, एकलाख ऊंट, मणि और माणिक ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणों के वास्ते सोनहले कपड़े, अनेकप्रकारके भक्ष्य, भोज्य और पीनेवाले अनेकप्रकारके पदार्थ ॥ ३६ ॥ एकलाख सेवक और तिल व कुश आदि कहेहुये सब पदार्थों के लाने के वास्ते राजा जी देवगर्भ मन्त्रीको आज्ञा देकर ॥ ३७ ॥ वहां विद्यमान होरहे ब्राह्मणों करके सहित दिव्य सवारीपर बैठेहुये परम आनन्द से युक्त रनिवास व सामान के सहित ॥ ३८ ॥ धर्मारण्य को प्राप्त होतेहुये जहां मार्कण्डेयजी रहते थे तदनन्तर ओंकारनाथ, नर्मदा और वैदूर्यपर्वत को देखकर ॥ ३९ ॥ आज हम सात जन्मों करके भी किये हुये पापसे छूटगये यह कहकर मार्कण्डेयजी को साष्टाङ्ग प्रणाम

लक्षंकर्म्मकराणान्तु तिलद निवस्त्राणि ब्राह्मणार्थेतथैवच ॥ नानाभक्ष्याणिभोज्यानिपानानिविविधानिच ॥ ३६ ॥ मुदापरमया दिव्यंयानंसमाश्रितः ॥ तत्रस्थैर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं ॥३७॥ देवगर्भंसमादिश्य मन्त्रिणंवदतांवरः ॥ भार्यादिकंतथा॥ ओङ्कारंकल्पगांदृष्ट्वा वैदूर्य्यंपर्वतंत युक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ३८ ॥ धर्म्मारण्यंततःप्राप्तोयत्रास्तेसप्तकल्पगः ॥ ४० ॥ यथार्थंपू था ॥ ३९ ॥ मुक्तोस्मिकिल्बिषादद्य सप्तजन्मकृतादपि ॥ एवमुक्त्वोपविष्टोसौ साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ४० ॥ यथार्थंपू जयामास तमृषिंसनृपोत्तमः ॥ दृष्ट्वातंनृपतिंप्राहमार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ ४१ ॥ कुशलंनृपशार्दूलचिरंदृष्टोसिसुव्रत ॥ किमागमनकार्यंते ब्राह्मणैर्मुनिपुङ्गवैः ॥ ४२ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यज्ञंकर्तुंसमायातःकस्मिंस्तीर्थेद्विजोत्तम ॥ शिवेन कथितंयत्ते पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥४३॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि यज्ञक्षेत्रफलंमहत ॥४४॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पृथिव्यां

करके यह राजा बैठते हुये ॥ ४० ॥ और राजाओंमें उत्तम वे इन्द्रद्युम्न राजा उन मार्कण्डेय ऋषि का यथार्थ पूजन करते हुये उन राजाको देखकर महामुनि मार्कण्डेयजी बोले ॥ ४१ ॥ कि हे नृपशार्दूल ! आपकी कुशलहै हे सुव्रत ! बहुत कालके बाद आप देखपड़े इन ब्राह्मण मुनिश्रेष्ठों करके सहित आपके आगमन का क्या प्रयोजनहै॥४२॥तब इन्द्रद्युम्न राजा बोले कि हे द्विजोत्तम ! हम यज्ञ करनेके वास्ते आयेहैं सो किसतीर्थमेंकरें और शिवजीकरके स्वामिकार्त्तिकेयका कहाहुआ जो पुराण तुमसे कहा गयाहै ॥ ४३ ॥ उसको हम सुननेकी इच्छाकरतेहैं और यज्ञकेवास्ते उत्तम फलका देनेवाला क्षेत्रभी जानाचाहते हैं ॥ ४४ ॥ तब मार्कण्डेयजीबोले कि समुद्र

पर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थ हैं ॥ ४५ ॥ हे नराधिप ! वे सब नर्मदा में स्नान करने के वास्ते आते हैं उत्तर में जितने लिङ्ग हैं व दक्षिणमें जितने तीर्थ हैं ॥ ४६ ॥
वे सब कोटितीर्थ में लीन होते हैं इसी से कोटितीर्थ कहा गयाहै यह वृत्तान्त पूर्वकाल में महादेव करके पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से कहा गया ॥ ४७ ॥ और
ब्रह्मा. विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं से भी कहा गया हे राजन् ! वही मुझकरके कहा गया जैसा कुछ शम्भुजी करके कहा गया था ॥ ४८ ॥ ॐकारनाथ के
समीप नर्मदा में कोटितीर्थ कहा गया है इसमें किया हुआ दान, होम, यज्ञ और दुष्कर तप जो है ॥ ४९ ॥ उसका अन्त नहीं है यह महादेवजी का वचन है राहु

यानितीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ ४५ ॥ स्नानंकर्तुंसमायान्ति नर्म्मदायान्नराधिप ॥ उत्तरेयानिलिङ्गानि यानितीर्थानिदक्षिणे ॥ ४६ ॥ लीयन्तेकोटितीर्थेषु कोटितीर्थंततःस्मृतम् ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ ४७ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां शक्रस्यापिप्रकीर्तितम् ॥ तन्मयाकथितंराजन् यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ ४८ ॥ ॐकारसन्निधौ रेवाकोटितीर्थंप्रकीर्तितम् ॥ अत्रदत्तंहुतंचेष्टं तपस्तप्तंसुदुष्करम् ॥ ४९ ॥ तस्यान्तोनैवविद्येत महेश्वरवचोयथा ॥ राहुसोमसमायोगे कुरुक्षेत्रंप्रशस्यते ॥ ५० ॥ सर्वदासर्वकार्येषु नर्म्मदापुण्यदायिनी ॥ त्रयोदशगुणंविद्धि तीर्थमाहुर्मनीषिणः ॥ ५१ ॥ शतकोटिगुणंतत्तु कोटितीर्थंप्रचक्षते ॥ ५२ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेतु विशेषेणनराधिप ॥ यजत्वंकोटितीर्थेषु यदिस्वर्गमभीप्ससि ॥ ५३ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा राजापरमधार्मिकः ॥ पादौजग्राहतत्रैव मुनेरमिततेजसः ॥ ५४ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये यत्त्वयाकथितंमम ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते यज्ञयूपानुपस्करान् ॥ ५५ ॥ नानादेशान्क्षत्रियांश्च

और चन्द्रमा के योग में कुरुक्षेत्र प्रशंसा कियाजाता है ॥ ५० ॥ और नर्मदा सब कामों में सर्वदा पुण्यकी देनेवाली है पण्डितलोग तीर्थ को औरों से तेरहगुना
कहते हैं यह तुम जानो ॥ ५१ ॥ और कोटितीर्थको सौकरोड़गुना कहतेहैं ॥ ५२ ॥ और हे नराधिप ! चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें उक्तसेभी विशेषहै इससे तुम कोटितीर्थ
में यज्ञकरो जो स्वर्गको चाहते होवो ॥ ५३ ॥ परमधार्मिक राजा उनके इस वचनको सुनकर बड़े तेजवाले मुनिके चरणोंको वहीं ग्रहण करतेहुये और कहा ॥ ५४ ॥
कि हम इसको बड़ा अनुग्रह मानते हैं जोकि आपकरके हमसे यज्ञस्थान कहदियागया इसी अन्तरके प्राप्तहुये पर यज्ञके खम्भा आदि सामग्री ॥ ५५ ॥ अनेक देशों

के क्षत्रिय, गौवें, घोड़े और हाथियों को लेकर उसी क्षण में देवगर्भ प्रतीहार अर्पण करताहुआ ॥ ५६ ॥ तीसयोजनपर्यन्त यज्ञके स्तम्भ और मण्डप को बनवाया और अपने प्रमाण युक्त अनेक प्रकार के कुण्ड भी बनवाये ॥ ५७ ॥ वेदों की ध्वनियां आकाश और पृथिवी को भरदेतीहुई और करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाले अग्नि वेधुयें होजातेहुये ॥ ५८ ॥ राजाने ब्रह्मा व विष्णु और रुद्रको बुलवाया तदनन्तर वहां ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ॥ ५९ ॥ विश्वदेव तथा साध्य और मरुत व वसु, लोकपाल और आठो समुद्र वैसेही नदियां ॥ ६० ॥ वनस्पति, पर्वत अनेकप्रकार के तीर्थ, दिक्पाल, भूतपाल, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर ॥ ६१ ॥ भुक्ति

गाश्चाश्वांश्चगजांस्तथा ॥ तत्क्षणाद्देवगर्भश्च प्रतीहारस्समार्पयत ॥ ५६ ॥ त्रिंशद्योजनपर्यन्तं यज्ञयूपांश्चमण्ड पम् ॥ चकारस्वप्रमाणानि कुण्डानिविविधानिच ॥ ५७ ॥वेदध्वनितनिर्घोषा दिवंभूमिंसमस्पृशन् ॥ निर्धूमश्चासवह्नि्नः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ५८ ॥ ब्रह्माणञ्चतथाविष्णुं रुद्रंचैवसमाह्वयत ॥ रुद्राएकादशतत्र तथादित्याश्चद्वादश ॥ ५९ ॥ विश्वेदेवास्तथासाध्या मरुतश्चतथावसुः ॥ लोकपालास्तथाचाष्टौ समुद्रास्सरितस्तथा ॥ ६० ॥ वनस्पतयस्त थाशैलास्तीर्थानिविविधानिच ॥ दिक्पालाभूतपालाश्च सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ ६१ ॥ पितरस्सोमपास्सर्वे भुक्तिमुक्ति फलप्रदाः ॥ राक्षसागुह्यकाभूता उरगाश्चयथातथा ॥ ६२ ॥ सद्मवातास्तथाकाशवासिनश्चतथोत्सवे ॥ घृतक्षीरवहान द्यो दधिपायसकर्दमाः ॥ ६३ ॥ बभूवन्नृपतेस्तस्य तस्मिन्यज्ञेमहोत्सवे ॥ भक्ष्यभोज्यैश्चविविधैः काम्ययानादिभि स्तथा ॥ ६४ ॥ तृप्तादेवाश्चमुनयो भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ एवंनिर्वर्तितोयज्ञो ब्राह्मणैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ६५ ॥ सुरासुरैस्तथा

और मुक्तिके देनेवाले सब सोमके पीनेवाले पितर, राक्षस, गुह्यक, भूत, सर्प ॥ ६२ ॥ और वायुमण्डल व आकाशमण्डलके रहनेवाले देवता ये सब आतेहुये राजाके उस यज्ञोत्सवमें घी और दूधकी बहनेवाली दही और खीरके कीचडवाली नदियां बहतीहुई ॥ ६३ ॥ उसराजाके इसयज्ञमहोत्सवमें इसप्रकार का आश्चर्य होताहुआ अनेकप्रकार के भक्ष्य, भोज्य और मनकी सवारियों करके ॥ ६४ ॥ देवता मुनि और चारोंप्रकारका भूतग्राम तृप्त होतेहुये बड़ी दक्षिणावाले ब्राह्मणोंकरके इसप्रकार

यज्ञ कराया गया ॥ ६५ ॥ उस समयमें देवता और दैत्यों करके दिव्य स्तोत्रों से राजा इन्द्रद्युम्न स्तुति किये गये व राजा देवताओं के भाग पृथक् २ कल्पित करत हुये ॥ ६६ ॥ ब्रह्माकरके जैसा कुछ रुद्रका भाग रचागया है उसी प्रकार देतेहुये तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! रुद्र, आदित्य, वसु और विश्वेदेव आदि देवताओं का प्रमाण, नाम और गोत्रों को कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि अत्रि, आङ्गिरस, सर्पि, मरुत, बृहस्पति ॥ ६७ । ६८ ॥ ध्रुव, धूम्र, केतु, धर, धाता और हर सब काम फलोंके देनेवाले जे ग्यारहरुद्र कहेगये हैं वे ॥ ६९ ॥ व अर्यमा, वरुण, इन्द्र, पूषा, गभस्तिमान्, मित्र, जघन्य, जलकृत ॥ ७० ॥ विवस्वान्, पर्जन्य,

दिव्यैरिन्द्रद्युम्नःस्तुतस्तदा ॥ यज्ञभागांश्चदेवानां पृथक्पृथगकल्पयत् ॥ ६६ ॥ तथाभागोहिरुद्राणां यथासृष्टःस्वयम्भुवा ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ रुद्रादित्यवसूनाञ्च विश्वेदेवहविर्भुजाम् ॥ ६७ ॥ प्रमाणन्नामगोत्रांश्च कथयस्वमहामुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अत्रिश्चाङ्गिरसस्सर्पिर्मरुतश्चबृहस्पतिः ॥ ६८ ॥ ध्रुवोधूम्रश्चकेतुश्च धरोधाताहरस्तथा ॥ एकादशस्मृतारुद्रास्सर्वेकामफलप्रदाः ॥ ६९ ॥ अर्यमावरुणश्चेन्द्रः पूषाचैवगभस्तिमान् ॥ मित्रश्चैवसमाख्यातो जघन्योजलकृत्तथा ॥ ७० ॥ विवस्वांश्चैवपर्ज्जन्यो धातावैद्वादशस्मृताः ॥ कश्यपस्याश्रमेजातास्तेजोनिधयउत्थिताः ॥ ७१ ॥ मासावरप्रयोगेण सञ्चरन्तिपरेच्छया ॥ अहोरात्रमिमेसर्वे स्वर्लोकंचभ्रमन्ततः ॥ ७२ ॥ वसूनष्टौमहाराज कथ्यमानाञ्छृणुष्ववै ॥ ध्रुवोधरश्चसोमश्च सावित्रोह्यनिलोनलः ॥ ७३ ॥ प्रत्यूषश्चैवकल्पश्च अष्टौतेवसवःस्मृताः ॥ विश्वायाश्चतथापुत्रा विश्वेदेवाःप्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥ क्रतुर्दक्षस्तथासत्यः कालःकामोमुनिस्तथा ॥ पुरूरवोमार्द्रवसौ

और धाता ये बारह आदित्य हैं कश्यप के आश्रम में उत्पन्न हुये हैं तेजका स्थान हैं और उदय होते हैं ॥ ७१ ॥ ये सब एक २ महीने में दिन रात ईश्वरेच्छा करके सब ओर आकाशमें घूमा करते हैं ॥ ७२ ॥ हे महाराज ! अब मुझकरके कहेजाते आठ वसुओं को सुनो ध्रुव, अध्वर, सोम, सावित्र, अनिल, अनल ॥ ७३ ॥ प्रत्यूष, और कल्प ये आठ वसु कहे गये हैं और विश्वाके पुत्र विश्वेदेव कहे गये हैं ॥ ७४ ॥ क्रतु, दक्ष, सत्य, काल, काम, मुनि, पुरूरवा, मार्द्रवस और रोचमान ये दश

विश्वेदेव हैं ॥ ७५ ॥ व मुहूर्ता के पुत्र साध्यदेवता कहेगये हैं और उंचास मरुत् नाम के देवता कहेजाते हैं ॥ ७६ ॥ हे युधिष्ठिर ! इन सबके नाम आप से कहेगये हे अनघ ! यह सब मुझकरके आपसे कहा गया जो कुछ आपकरके मुझ से पूंछा गया था ॥ ७७ ॥ तदनन्तर राजा, ध्रुव और ब्राह्मणों के पुत्र मुनियों को विसर्जनकरके फिर ॐकारनाथ को जानकर पूजन करते हुये ॥ ७८ ॥ मणि और माणिक आदि रत्नों करके लिङ्ग को भूषित किया अनेक प्रकारके गन्ध, धूप, कपूर, अगर, चन्दन, ॥ ७९ ॥ ध्वजा, छत्र, चँदोवा, व्यजन और दिव्य चामरों करके विधान से पूजन करके यह स्तोत्र पढ़ागया ॥ ८० ॥ कि बिन्दुसे संयुक्त ॐकार का

रोचमानश्चतेदश ॥ ७५ ॥ मुहूर्तायास्तथापुत्रास्साध्यादेवाःप्रकीर्तिताः ॥ एकहीनास्तुपञ्चाशन्मरुतश्चैवकीर्तिताः ॥ ७६ ॥ एषान्नामानिसर्वेषां ख्यातान्येवयुधिष्ठिर ॥ एतत्तेकथितंसर्वं यत्पृष्टोहंत्वयानघ ॥ ७७ ॥ ततोध्रुवंनिसृज्याथमुनींश्चब्रह्मनन्दनान् ॥ ॐकारञ्चततोज्ञात्वा राजापूजांचकारह ॥ ७८ ॥ मणिमाणिक्यरत्नैश्च लिङ्गस्याभरणंकृतम् ॥ गन्धधूपैश्चविविधैःकर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ ७९ ॥ ध्वजच्छत्रवितानैश्च व्यजनैर्दिव्यचामरैः ॥ पूजयित्वाविधानेन स्तोत्रमेतदुदाहृतम् ॥ ८० ॥ ॐकारंबिन्दुसंयुक्तं नित्यन्ध्यायन्तियोगिनः ॥ कामदोमोक्षदश्चैव ॐकारायनमोनमः ॥ ८१ ॥ ब्रह्मविष्णिवन्द्रवरद सर्वदेवनमोस्तुते ॥ कद्रुदायप्रचेतसेसहस्राक्षायमीढुषे ॥ ८२ ॥ यातेरुद्रशिवातनूरघोरापापकाशिनी ॥ सर्वाननशिरोग्रीवसर्वभूतशिवायच ॥ ८३ ॥ सर्वव्यापीचभगवांस्तस्मैसर्वगतेनमः ॥ सर्वतःपाणिपादान्तः

योगीलोग नित्यही ध्यान करते हैं जो कि काम और मोक्षका देनेवालाहै ऐसे ॐकार के लिये वारंवार नमस्कार है ॥ ८१ ॥ हे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के वर देनेवाले, सब देवताओं का स्वरूप ! आपके लिये नमस्कार है व कद्रू के खण्डन करनेवाले, वरुणरूप, हजारनेत्रवाले और वीर्य के आसेचन करनेवाले ॐकारके लिये नमस्कार है ॥८२॥ हे रुद्र ! पापोंका नाश करनेवाला जो आपका अघोर शरीर है तिसके नमस्कारहै चारो तरफ हैं मुख, शिर और ग्रीवा जिनकी, सब प्राणियोंके कल्याणरूप आपके लिये नमस्कारहै ॥८३॥ हे सर्वग ! आप सबमें व्याप्त व ऐश्वर्यवाले हो ऐसे आपके लिये नमस्कारहै, चारों तरफ हैं हाथ पाव जिनके और सब तरफहै नेत्र,

यह कहकर तदनन्तर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये देवता, दैत्य और आदित्य व साध्यों करके बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! यह सब तुम्हारा काम सिद्ध होवे ॥ ६५ ॥ यह कहकर तदनन्तर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये देवता, दैत्य और आदित्य व साध्यों करके सहित हे युधिष्ठिर ! अपनी सवारीपर सवार होकर कैलासस्थानको प्राप्त होतेहुये ॥ ६६ ॥ राजाभी चारोंप्रकार के भूतग्रामको सुनादिया कि हमारी यज्ञके प्रभाव से सब उपद्रवरहित होजावें ॥ ६७ ॥ और हमारे यज्ञके प्रभाव से सब तृप्ति को प्राप्तहोवें हे भारत ! तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न ब्रह्माजी की स्तुति करतेहुये ॥ ६८ ॥ तब प्रसन्नहुये ब्रह्मा उन राजा से बोले कि हे विशाम्पते ! तुम वरको मागो तब राजा बोले कि हे देव ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और वरदेनेकी इच्छा करतेहो ॥ ६६ ॥

सुरासुरैस्त कारउवाच ॥ सर्वमेतन्नृपश्रेष्ठ कामस्सम्पद्यतान्तव ॥ ९५ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सुरासुरैस्त थादित्यैस्साध्यैस्सार्द्धंयुधिष्ठिर ॥ स्वकीयंयानमारुह्य कैलासनिलयंययौ ॥ ९६ ॥ राजापिश्रावयामास भूतग्रामंच तुर्विधम् ॥ ममयज्ञप्रभावेण सर्वेसन्तुनिरामयाः ॥ ९७ ॥ सर्वेतुतृप्तिमायान्तु ममयज्ञप्रभावतः ॥ इन्द्रद्युम्नस्तुब्रह्माणं ततस्तुष्टावभारत ॥ ९८ ॥ तुष्टःप्रोवाचधातातं वरंवृणुविशाम्पते ॥ राजोवाच ॥ तुष्टोसियदिमेदेव वरन्दातुमिहेच्छ सि ॥ ९९ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले लिङ्गमूर्तिधरोभव ॥ इमंवरमहंमन्ये यदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ १०० ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र ब्रह्मलोकंप्रयातुवै ॥ एवंभवतुराजेन्द्र ब्रह्माप्रोवाचसत्वरम् ॥ १ ॥ एवमुक्त्वाययौब्रह्मा रुद्रलोकंसुरैस्सह ॥ विष्णुंचैवत तोराजा साष्टाङ्गंचयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ केशवंमाधवंविष्णुं गोविन्दंमधुसूदनम् ॥ पद्मनाभंहृषीकेशं श्रीधरञ्चत्रिविक्रम म् ॥ ३ ॥ दामोदरंवासुदेवं हरिञ्चप्रणमाम्यहम् ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषणम् ॥ ४ ॥ लोकनाथंजगन्नाथं श्री

और उस स्थान में प्राणों के तो नर्मदा के दक्षिण तटमें लिङ्गरूप मूर्त्ति के धारण करनेवाले होवो इसी वरको हम चाहते हैं हे प्रभो ! जो आप प्रसन्नहो ॥ १०० ॥ और उस स्थान में प्राणों के त्याग करनेपर ब्रह्मलोक को जावें तब ब्रह्माने शीघ्र कहा कि हे राजेन्द्र ! ऐसाही हो ॥ १ ॥ इसप्रकार कहकर देवताओं करके सहित ब्रह्माजी रुद्रलोक को जातेहुये तदनन्तर हे युधिष्ठिर ! राजा साष्टाङ्ग प्रणामकरके विष्णुजी की स्तुति करतेहुये ॥ २ ॥ राजा बोले कि केशव, माधव, विष्णु, गोविन्द, मधुसूदन, पद्मनाभ, हृषी-केश, श्रीधर, त्रिविक्रम ॥ ३ ॥ दामोदर, वासुदेव और हरि को हम प्रणाम करते हैं शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और वनमाला है भूषण जिनका ॥ ४ ॥ लोकों के नाथ,

सर्वतोक्षिशिरोमुखः ॥ ८४ ॥ सर्वतःश्रुतिमाल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति ॥ ८५ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिम हेश्वर ॥ कृतंस्तोत्रमिदन्देवस्येन्द्रद्युम्नेनभारत ॥ ८६ ॥ लिङ्गमध्येपरंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ यद्दृष्टंतदुवाचैनं राजानंप्रतिभारत ॥ ८७ ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते॥८८ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरन्दातुंममे च्छसि ॥ ८९ ॥ अत्रत्वमुमयासार्द्धं देवद्रोण्यांसमर्चितः ॥ आवासंकुरुदेवेश सर्वदायज्ञपर्वते ॥ ९० ॥ अवशःस्ववशो वापि प्राणत्यागंकरोतियः ॥ तीर्थेस्मिन्देवदेवेश शिवलोकंप्रयातुसः ॥ ९१ ॥ सहस्रयाजीधर्मज्ञो दानयज्ञाधिपस्त था ॥ अन्धाश्चवामनाश्चैव तिर्यग्योनिगतानराः ॥ ९२ ॥ मरणादुभयोस्साम्यं भवेदत्रमहेश्वर ॥ पर्वतंवेष्टयेद्यस्तु सू त्रेणैकेनपर्वणि ॥ ९३ ॥ पृथिवीवेष्टितातेन सशैलवनकानना ॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिश्शिवलोकेप्रयात्यसौ ॥ ९४ ॥ ॐ

शिर और मुख जिनके ॥ ८४ ॥ और जो सब तरफ कानवाले हैं लोकमें सब को आवरणकरके विद्यमान होरहे हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ८५ ॥ हे महेश्वर ! जिह्वा की चञ्चलता से आप मुझकरके कष्टित कियेगये सो क्षमाकरो हे भारत ! इन्द्रद्युम्न राजाकरके महादेवजी का यह स्तोत्र कियागया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर हे भारत ! लिङ्गके मध्यमें जलतेहुये कालाग्नि के समान प्रभावाला जो दूसरा लिङ्ग देखागया वह इन राजा से बोला ॥ ८७ ॥ कि आपका कल्याणहो जो तुम्हारे मनमें वर्तताहो वह वर तुम मांगो ॥ ८८ ॥ तब इन्द्रद्युम्न बोले कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करतेहो ॥ ८९ ॥ तो देवद्रोणी में पूजितहुये आप पार्वतीजी करके सहित हे देवेश ! इस यज्ञपर्वत में सर्वदा वासकरो ॥ ९० ॥ और इस तीर्थमें जो परवश व अपने वश होकर प्राणोंका त्याग करे हे देवदेवेश ! वह शिवलोकको प्राप्तहोवे ॥ ९१ ॥ जो हजार यज्ञका करनेवाला धर्मका जाननेवाला दान और यज्ञोंका अधिपही हो वह और अन्धा, बौना व तिर्यग्योनिमें प्राप्त होरहे मनुष्य ॥ ९२ ॥ यहां मरनेसे इन दोनोंकी हे महेश्वर ! बराबरी होजावे और पर्व में जो इस पर्वतको एक सूत्रसे लपेटे ॥ ९३ ॥ उस करके पर्वतों व जलों और जङ्गलोंके सहित सम्पूर्ण पृथिवी मानो लपेट डाली गई ऐसा फलहोवे, सबतीर्थोंके फल की प्राप्ति होवे और वह शिवलोक को जावे ॥ ९४ ॥ तब ॐकारनाथ

जगतके नाथ, लक्ष्मीके नाथ, अतिशय करके सर्वज्ञ, श्रीकान्त, श्रीधर, श्रीश और श्रीनिवास को हम नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे यज्ञेश ! हे यज्ञाधिप ! आपके लिये नमस्कार है ऋक्, साम, अथर्वरूप और यज्ञहै रूप जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कारहै ॥ ६ ॥ नृसिंह, मत्स्य, वाराह और कूर्मरूपवाले आपके लिये नमस्कार है हे पवित्र सवारीपर सवार होरहे,गरुड़ध्वज ! आपके लिये नमस्कारहै ॥ ७ ॥ हजार शिरवाले, कलाओं करके सहित और कलाओं से रहित, जानने के योग्य, जीवरूप करके शरीरों में वास करनेवाले, इन्द्रियों के ईश्वर, सबसे पूर्वकाल में होनेवाले, जलशायी, प्रभु परमात्मा देवको हम नमस्कार करते

नाथंसर्ववित्तमम् ॥ श्रीकान्तंश्रीधरंश्रीशं श्रीनिवासंनमाम्यहम् ॥ ५ ॥ अच्युतानन्तयज्ञेश यज्ञाधिपनमोस्तुते ॥ ऋक्सामाथर्वरूपाय यज्ञरूपायतेनमः ॥ ६ ॥ नृसिंहमत्स्यवाराहकूर्मरूपायतेनमः ॥ तीर्थयानसमारूढ गरुडध्वज तेनमः ॥ ७ ॥ सहस्रशिरसन्देवं सकलंनिष्कलम्परम् ॥ वेद्यंपुरुषमध्यक्षमाद्यंनारायणंप्रभुम् ॥ ८ ॥ प्रणतोस्मिसदा देवं दैत्यान्तकरणंहरिम् ॥ हिरण्यगर्भंभूगर्भं यज्ञगर्भामृतोद्भवम् ॥ ९ ॥ श्रीगर्भज्ञानगर्भाय वासुदेवनमोस्तुते ॥ त्वया सृष्टंजगत्सर्वं चराचरमिदंप्रभो ॥ १० ॥ स्रष्टापालयितात्वंवै हर्तात्वञ्चयुगेयुगे ॥ विश्वतश्चक्षुरव्यक्तो विज्ञेयोविश्वतो मुखः ॥ ११ ॥ विश्वात्माविश्वतोदेवो वासुदेवोनमोस्तुते ॥ त्वमादित्यश्चवायुश्च त्वमग्निस्त्वञ्चचन्द्रमाः ॥ १२ ॥ त्वं धातादेवदेवेश त्वमिन्द्रस्त्वंप्रजापतिः ॥ त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ यज्ञसिद्धिर्ममाभवत् ॥ १३ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवश्श्री

हैं ॥ ८ ॥ दैत्यों के अन्त करनेवाले हरिदेवको हम सदा प्रणत हैं हिरण्य, पृथिवी और यज्ञहैं गर्भमें जिनके ऐसे अमृत के उत्पत्ति स्थान विष्णुके हम नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हे वसुदेवके पुत्र ! श्री और ज्ञानहै गर्भ में जिनके ऐसे आपके लिये नमस्कारहै हे प्रभो ! यह चराचर सब जगत् आपही करके रचागयाहै ॥ १० ॥ और युग युगमें आपही रचने व पालने व हरनेवाले हो चारोंतरफ नेत्र व मुखवाले अव्यक्तरूप आपही जानने के योग्य हो ॥ ११ ॥ विश्वके आत्मा, सब देवतारूप शरीरों मे वास करनेवाले देव आपके लिये नमस्कार है सूर्य, वायु,अग्नि और चन्द्रमा तुम्हीं हो ॥ १२ ॥ हे देवदेवेश ! ब्रह्मा, इन्द्र और प्रजापति तुम्हींहो हे सुरश्रेष्ठ ! आपही

के प्रसाद से मेरे यज्ञकी सिद्धि हुई ॥ १३ ॥ शंख, चक्र और गदा के धरनेवाले देव इस स्तोत्र को सुनकर ॥ १४ ॥ सत्य वचन को बोले कि हे विशाम्पते ! आप वर को मांगो हम आपको देंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है यज्ञकी सिद्धिको तुम प्राप्त होवोगे ॥ १५ ॥ तब राजा बोले कि ॐकारनाथ के उत्तरभाग में वैदूर्यपर्वत की चोटी पर लोकों के पवित्र करनेवाले जनार्दन आप लिङ्गरूपी होजावो ॥ १६ ॥ इसी वरको हम मानते हैं जो आप देनेकी इच्छा करते हो व यहां विधानसे पूजन करके मनुष्य वैष्णवस्थान को प्राप्त होंगे किन्तु तिर्यग्योनि व यमलोक को नहीं प्राप्त होंगे व वहां प्राणोंके त्यागकिये पर मनुष्य तुम्हारे पदको जावें ॥ १७ । १८ ॥

शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥ उवाचवचनंसत्यं वरंवृणुविशाम्पते ॥ ददामितेनसन्देहो यज्ञसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ ॐकारसौम्यभागेतु लिङ्गरूपीजनार्दनः ॥ वैदूर्य्यशिखरस्याग्रे भवत्वंलोकपावनः ॥ १६ ॥ इमंवरमहंमन्ये यदिदातुमिहेच्छसि ॥ यास्यन्तिवैष्णवंस्थानमिहाभ्यर्च्यविधानतः ॥ १७ ॥ तिर्यग्योनिन्नगच्छन्ति यमलोकंतथा नराः ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र नरागच्छन्तितेपदम् ॥ १८ ॥ पितॄणामन्नदानेन पितरोवैष्णवंपदम् ॥ प्रसादात्तेचगच्छन्तु सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ १९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा राज्ञश्चामिततेजसः ॥ उवाचवचनंविष्णुरिन्द्रद्युम्नंविशाम्पते ॥ २० ॥ अवतारंकरिष्यामि इहैवनृपसत्तम ॥ सर्वमेवनृपश्रेष्ठ मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ सुरासुरैःस्तूयमानस्त्रिदिवंप्रतिभारत ॥ २२ ॥ एषतेकथितोराजन्निन्द्रद्युम्नमहाध्वरः ॥ तेनासौपर्वतःपुण्यस्सर्वलोकेषुविश्रुतः ॥ २३ ॥ सिद्धेश्वरञ्चब्रह्माणं विद्धिनारायणंहरिम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य विष्णुलोकेमही

बड़े तेजवाले उस राजाके इस वचन को सुनकर हे विशाम्पते ! विष्णुजी इन्द्रद्युम्न से वचन बोले ॥ २० ॥ हे नृपसत्तम ! हम यहीं अवतार को करेंगे और हे नृपश्रेष्ठ ! हमारे प्रसादसे सब होगा ॥ २१ ॥ हे भारत ! यह कहकर शंख, चक्र और गदाके धरनेवाले विष्णुदेव देवता और दैत्यों करके स्तुति कियेजारहे स्वर्गको चलेगये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! यह इन्द्रद्युम्न राजाका महायज्ञ आपसे कहागया इसीसे यह पवित्र पर्वत सब लोकों में विदित हुआ ॥ २३ ॥ ब्रह्माको सिद्धेश्वर और हरिको नारायणेश्वर जानो इस इतिहासके सुनने व पितरों के वास्ते अन्नदान करके आपके प्रसाद से पितर वैष्णवपद को जावें यह हम सत्य २ कहते हैं ॥ १९ ॥

कहने से मनुष्य विष्णुलोकमें पूजित होताहै ॥ २४ ॥ तदनन्तर सत्यव्रतमें स्थितहोरहे राजा तीर्थोंकी स्तुति करते हुये पितरोंके तारनेवाले तीर्थोंके लिये बार २ नम-स्कार है ॥ २५ ॥ तब तीर्थ बोले कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मन में वर्तताहो वह वर मांगो तीर्थों के वचन को सुनकर इन्द्रद्युम्न बोले ॥ २६ ॥ कि ॐकारनाथ के समीप वर्तमान होरहे तीर्थ में आप लोगों करके हम पर अनुग्रह करके स्थितहोना योग्य है तब तीर्थलोग राजा पर ऐसाही हो यह कहकर नर्मदाकी स्तुति करते हुये ॥ २७ ॥ कि कल्प पर्यन्त रहनेवाली महादेवजी की परमकला नदियोंमें श्रेष्ठ पृथिवी में सब लोकों को अत्यन्त विदित होरही जो आपहो तिनके नमस्कार हम

यते ॥ २४ ॥ ततस्तुष्टावतीर्थानि राजासत्यव्रतेस्थितः ॥ पितॄणांतारणार्थाय तीर्थेभ्यश्चनमोनमः ॥ २५ ॥ तीर्थान्यूचुः ॥ वरंवृणुमहाभाग यत्तेमनसिवर्तते ॥ तीर्थानांवचनंश्रुत्वा इन्द्रद्युम्नउवाचह ॥ २६ ॥ ॐकारसन्निधौतीर्थे स्थातव्यंमदनुग्रहात् ॥ एवमस्त्वितिराजानमुक्त्वाचक्रुस्सरित्स्तुतिम् ॥ २७ ॥ कल्पगांत्वांनमस्कुर्मो हरस्यपरमांकलाम् ॥ अतीवसर्वलोकानां सुविख्यातांसरिद्वराम् ॥ २८ ॥ नास्मत्प्रभावतःपूता किन्तुपूतास्वभावतः ॥ यद्वत्सूर्यप्रभापुण्या वह्नेश्चापिप्रभायथा ॥ २९ ॥ हिमांशोश्चैवराजेन्द्र तथैवेयंमहानदी ॥ इत्युक्त्वातञ्चराजानं तीर्थान्यन्तर्दधुस्तदा ॥ ३० ॥ ततस्तुष्टावगङ्गांवा अर्घंदत्त्वान्नृपोत्तमः ॥ गङ्गाभागीरथीदेवी तथाभोगवतीशुभा ॥ ३१ ॥ जाह्नवीमोक्षदाभद्रा तारिणीपापनाशिनी ॥ स्वर्गेमन्दाकिनीचैव देवदेवनमस्कृता ॥ ३२ ॥ गायत्रीवेदमातात्वमुमाकात्यायनीतथा ॥ कि

करते हैं ॥ २८ ॥ आप हम लोगों के प्रभावसे नहीं पवित्रहो किन्तु अपने स्वभावही से पवित्रहो जैसे सूर्यकी प्रभा पुण्य है और अग्नि की प्रभा जैसे पुण्यहै ॥२९॥ और हे राजेन्द्र ! जैसे चन्द्रमा की प्रभा पुण्यहै इसीप्रकार यह महानदी पुण्यहै उन राजा से इस प्रकार कहकर तीर्थ उसी समय अन्तर्द्धान होगये ॥ ३० ॥ तद-नन्तर राजाओं में उत्तम इन्द्रद्युम्न राजा अर्घदेकर गङ्गाजीकी स्तुति करते हुये कि गङ्गा,भागीरथी, देवी, शुभ भोगवती ॥ ३१ ॥ जाह्नवी, मोक्षदा, भद्रा, तारिणी और पापनाशिनी ये तुम्हारे नाम हैं स्वर्ग में मन्दाकिनी कहीजाती हो और देवताओंके भी देवताओं करके नमस्कार कीगई हो ॥ ३२ ॥ वेदोंकी माता गायत्री तुम्हींहो

मन्यदर्पितेदेवि हरेणशिरसाधृता ॥ ३३ ॥ कस्यास्तिशक्तिस्स्तोतुंत्वामृतेचन्द्रार्द्धशेखरात् ॥ गङ्गोवाच ॥ तुष्टास्मि तेमहाराज वरंयाचस्वसुव्रत ॥ ३४ ॥ गङ्गायावचनंश्रुत्वा राजातांप्रत्युवाचह ॥ राजोवाच ॥ यदितुष्टासिदेवेशि वरंदातुमिहेच्छसि ॥ ३५ ॥ इहैवक्रियतांवासो वरएषप्रदीयताम् ॥ ३६ ॥ गङ्गोवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्र भागेनैववहाम्यहम् ॥ ३७ ॥ ततस्तुष्टावगङ्गातु कल्पगांसरितांवराम् ॥ श्रेष्ठात्वंकल्पगेदेवि नमस्कार्येचिरायुषि ॥ ३८ ॥ त्वत्तोयस्यप्रभावेण पावित्र्यसमभवन्मे ॥ कल्पान्तेतुक्षयंयान्ति सरितस्सागरादयः ॥ ३९ ॥ तीर्थानिचैवसर्वाणि त्वमेवात्रैवतिष्ठसि ॥ पूज्यात्रिदशवन्द्याच सुभगेचिरगामिनी ॥ ४० ॥ गौरीसमाजटाग्रेवै हरमूर्तिर्भविष्यसि ॥ एवमुक्त्वाततोगङ्गा नमस्कृत्यचमेकलाम् ॥ ४१ ॥ दिव्ययानसमारूढा स्तूयमानाप्सरोगणैः ॥ सरस्वत्युवाच ॥ दुहिताहंतवह्येषा धर्म्म

और पार्वती व कात्यायनी तुम्हींहो हे देवि ! तुमको और क्या कहाजावे जोकि आप महादेवजी करके शिरसे धारण कीगईहो ॥ ३३ ॥ महादेवको छोड़कर तुम्हारी स्तुति करने को किसकी सामर्थ्य है तब गङ्गाजी बोलीं कि हे सुव्रत, महाराज ! हम तुमसे प्रसन्न हैं तुम वर को मांगो ॥ ३४ ॥ गङ्गाके वचन को सुनकर राजा गंगासे बोले कि हे देवेशि ! जो आप सन्तुष्टहो और यहां वरदेनेकी इच्छा करतीहो ॥ ३५ ॥ तो आप करके यहीं वास कियाजावे यही वरदियाजावे ॥ ३६ ॥ तब गंगाजी बोलीं कि हे राजेन्द्र ! ऐसाहीहो हम अपने अंशकरके बहेंगी ॥ ३७ ॥ तदनन्तर गङ्गाजी नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा की स्तुति करती हुई कि हे नमस्कार करने के योग्य, दीर्घ आयुर्दायवाली, कल्पगे, देवि ! आप श्रेष्ठहो ॥ ३८ ॥ तुम्हारे जलके प्रभावसे हमारी पवित्रताहुई नदी और समुद्र आदि सब जलाशय कल्पान्त में नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ३९ ॥ और सब तीर्थ भी नष्ट होजाते हैं एक तुम्हीं यहां रहतीहो हे सुभगे ! बहुतकालतक रहनेवाली आप देवताओं करके पूज्य व नमस्कार करने के योग्यहो ॥ ४० ॥ पार्वती जी के समान महादेवजी की जटाओ में रहतीहुई महादेवजी की मूर्तिही होरही हो गङ्गाजी इस प्रकार कहकर नर्मदा के नमस्कार करके ॥ ४१ ॥ दिव्य सवारी पर चढ़ी हुई अप्सराओं के गणों करके स्तुति कीजाती अपने स्थान को जाती हुई तब सरस्वती जी नर्मदा से बोली कि हम

धर्मसे पालन कीगई आपकी कन्या हैं ॥ ४२ ॥ हे महाभागे, सप्तकल्पवहे, धन्ये ! आपकी सेवामें तत्पर होरही हम आपके चरणकमलों को देखने की इच्छा करके आई हैं ॥ ४३ ॥ हे धरेश्वरि, वाहिनि, महाभागे, देवि ! क्या आप मुझको नहीं जानती हो कि चौबीस वर्षके बाद हथिनीके रूप में स्थित होकर कोटितीर्थ में स्नान करने के वास्ते हम आई हैं चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणमें हे कल्पगे, देवि ! आपही विष्णुजी करके आज्ञादियेगये सवा करोड़ तीर्थ मुझमें स्नान करने के वास्ते आते हैं सब तीर्थ विद्यमान हैं जिसमें ऐसे शुभ कुरुक्षेत्रमें द्वापरके चतुर्थांश में कौरव और पाण्डवों की सेनायें युद्धके वास्ते उपस्थित होती हुई उस स्थान में जो दान

तःपरिपालिता ॥ ४२ ॥ सप्तकल्पवहेधन्ये त्वच्छुश्रूषापरायणा ॥ आगताहंमहाभागे त्वत्पादाब्जदिदृक्षया ॥ ४३ ॥ स्नानंकर्तुंतथादेवि चतुर्विंशतिवत्सरैः ॥ किन्नवेत्सिमहाभागे मान्धरेश्वरिवाहिनि ॥ ४४ ॥ करिणीरूपमास्थाय कोटितीर्थेसमागता ॥ सपादकोटितीर्थानि चन्द्रसूर्येसमेग्रहे ॥ ४५ ॥ स्नानार्थंकल्पगेदेवि आदिष्टाविष्णुनास्वयम् ॥ द्वापरस्यचतुर्थांशे कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४६ ॥ युद्धार्थंसमितोपुञ्जं सर्वतीर्थमयेशुभे ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तप्यतेथत पस्तथा ॥ ४७ ॥ सर्वंशतगुणंतद्धि त्वत्तोयेकल्पगेपुनः ॥ तदेवकोटिगुणितं राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वा महाराज कल्पगाश्चसरस्वती ॥ इन्द्रद्युम्नश्चराजानं स्वस्थानंचाभ्यगात्पुनः ॥ ४९ ॥ इन्द्रद्युम्नस्ततोराजा स्वयंतुष्टाव भारत ॥ त्वत्तोयस्यप्रभावेण पितृदेवाश्चतर्पिताः ॥ ५० ॥ पवित्रञ्चत्वयादेवि त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ त्वंमातासर्वभूता नां नृणांसंसारतारिणी ॥ ५१ ॥ मेकलासिमहादेवि कल्पगानर्म्मदातथा ॥ जलपूर्णेतिविख्याता विन्ध्यपर्वतभूष

दियाजाता है वैसेही जो तप कियाजाताहै ॥ ४४ । ४५ । ४६ । ४७ ॥ वह सब सौ गुना होताहै और फिर वही हे कल्पगे ! आपके जलमें सूर्यग्रहण में कियागया तो करोड़ गुना होजाताहै ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार सरस्वती जी नर्मदा व इन्द्रद्युम्नसे कहकर फिर अपने स्थान को चलीगई ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे भारत ! इन्द्रद्युम्न राजा नर्मदाकी आपही स्तुति करते हुये कि तुम्हारे जलके प्रभाव करके पितर और देवता तृप्त करदियेगये ॥ ५० ॥ और हे देवि ! आप करके चराचर तीनों लोक पवित्र करदियेगये सब प्राणियों की आपही माताहो और मनुष्यों को संसारसे तारनेवाली हो ॥ ५१ ॥ और हे महादेवि ! मेकला, कल्पगा, नर्मदा और

जलपूर्णा इन नामों से आप विख्यातहो और विन्ध्यपर्वत की आप शोभाहो ॥५२॥ हजार वर्ष करके भी आपकी स्तुति करनेको हे शुभे ! कौन समर्थ होसक्ता है राजा के इस स्तोत्रको सुनकर नर्मदा देवी बोलीं ॥५३॥ कि हे पार्थिव ! यहां हजारों क्षत्रियों करके यज्ञ किया गया परन्तु हे महाराज ! आपके यज्ञके बराबर न हुआहै और न होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! आपको हम वर देती हैं जिससे आप सिद्धिको प्राप्त होवोगे हे युधिष्ठिर ! उन नर्मदाजी के उस वचनको सुनकर ॥ ५५ ॥ उसीसमय ब्राह्मणों करके सहित शिवजी की भक्ति में नित्य तत्पर होरहे हँसतेहुये राजा बोले कि हे शुभे, सप्तकल्पवहे !॥ ५६ ॥ हे देवि ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और वरदेने

णाम् ॥ ५२ ॥ अपिवर्षसहस्रेण कस्स्तोतुंचक्षमश्शुभे ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवी नृपस्यास्यतदाब्रवीत् ॥ ५३ ॥ क्षत्रियाणांसहस्रैस्तु कृतोयज्ञोत्रपार्थिव ॥ सदृशस्तेमहाराज नभूतोनभविष्यति ॥ ५४ ॥ वरन्ददामितेराजन् येनसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा कल्पगायायुधिष्ठिर॥ ५५ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्राजा ब्राह्मणैस्सहितस्तदा ॥ शिवभक्तिपरो नित्यं सप्तकल्पवहेशुभे ॥ ५६ ॥ यदितुष्टासिमेदेवि वरन्दातुंत्वमिच्छसि ॥ प्रवाहान्कुरुसप्तत्वं दक्षिणोत्तरकूलयोः ॥ ५७ ॥ सर्वतस्सर्वगेदेवि यदिमांबहुमन्यसे ॥ इमंवरमहंमन्ये यदितुष्टासिसुव्रते ॥ ५८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा इन्द्रद्युम्नस्यभारत ॥ नर्म्मदाचाब्रवीद्वाक्यमिन्द्रद्युम्नन्नराधिप ॥ ५९ ॥ सर्वमेतत्प्रभावेण मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ अत्रान्तरे चयद्दानं दीयतेनात्रसंशयः ॥ ६० ॥ तस्यसंख्यानविद्येत सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ नतेषांपुनरावृत्तिरित्याहभगवान्नृप ॥ ६१ ॥ अन्त्यजाःश्वपचावापि मृगाश्चैवसरीसृपाः ॥ सर्वेतेत्रिदिवंयान्ति नीलगङ्गासमागमे ॥ ६२ ॥ यज्ञमिष्ट्वान्नृप

की तुम इच्छा करतीहो तो दक्षिण और उत्तरके दोनों तटोंमें सात धारा करदेवो ॥ ५७ ॥ हे सर्वगे, देवि ! चारो तरफसे इस कामको करो जो हमको बहुत मानती हो हे सुव्रते ! जो आप प्रसन्नहो तो इसी वरको हम चाहते हैं ॥ ५८ ॥ हे भारत ! उन इन्द्रद्युम्नके इस वचन को सुनकर इन्द्रद्युम्नसे नर्मदाजी वचन बोलीं कि हे नराधिप ! ॥ ५९ ॥ हमारे प्रसाद व प्रभाव से यह सब होजायगा इसमें सन्देह नहीं है व इसके बीचमें जो कुछ दान दियाजायगा ॥ ६० ॥ उसकी कुछ संख्या न होगी यह हम आपसे सत्य कहती हैं और दान देनेवालों की फिर आवृत्ति न होगी हे नृप ! यह महादेवजी ने कहाहै ॥ ६१ ॥ शूद्र, चाण्डाल, पशु और कीड़े जो कोई

...के समागम में मरेंगे वे सब स्वर्ग को जावेंगे ॥ ६२ ॥ हे विशाम्पते ! राजाओं में श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नराजा यज्ञको करके नर्मदा और ॐकारके नमस्कार करके ... ॥ ६३ ॥ सत्यधर्म में तत्पर होरहे अपनी सवारीपर सवार होकर हजारों राजाओं करके युक्त अप्सराओं के गणोंकरके स्तुति कियेजारहे॥६४॥ देवताओंकी ... पवित्र अयोध्यापुरीमें प्रवेश करतेहुये हे राजन्! यह पुराना इतिहास आपसे कहागया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर बहुत काल पर्यन्त बड़े बलवाले वे राजा यहां राज्य ... जातेहुये ॥ ६६॥ इसके सुनने व कहनेसे हजार गोदान का फल होताहै और सुनने व कहनेवाला यमलोक व पापयोनिको नहीं प्राप्त होताहै॥१६७॥

अथ इन्द्रद्युम्नोविशाम्पते ॥ नर्मदाञ्चनमस्कृत्य ॐकारञ्चैवभारत ॥ ६३ ॥ स्वकीयंयानमारुह्य सत्यधर्मपरायणः ॥ नृपाणांसहस्रेण स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ ६४ ॥ विवेशनगरीम्पुण्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ एतत्तेकथितंराजन्नि तिहासंपुरातनम् ॥ ६५ ॥ ततःकालेनमहता राज्यंकृत्वामहाबलः ॥ अयुतंसाग्रमेवेह सराजात्रिदिवङ्गतः ॥ ६६ ॥ श्र वणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ यमलोकन्नपश्येच्चपापयोनिन्नगच्छति ॥ १६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाख ण्डेइन्द्रद्युम्नयज्ञनीलगङ्गावतारोनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ वैदूर्यपर्वतंरम्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ मान्धाताकेनकार्येण गतोवैसप्तकल्पगाम् ॥ १ ॥ तथापा शुपतास्त्रेण हत्वावैत्रिपुरंहरः ॥ पातालंभेदयित्वातु रसातलतलंययौ ॥ २ ॥ जालेश्वरंतथालिङ्गमुत्थितंकेनहेतुना ॥ नीलगङ्गाकथंतत्र कल्पगामेदमागता ॥ ३ ॥ बाणासुरश्शिवेभक्तः शिवलब्धवरश्शुचिः ॥ लिङ्गानितानितेनेह पूजिता ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेइन्द्रद्युम्नयज्ञनीलगङ्गावतारोनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि देवता और दैत्यों करके सेवित रमणीक वैदूर्यपर्वत व नर्मदाको राजा मान्धाता किस प्रयोजन से जातेहुये ॥ १ ॥ इसीप्रकार पाशुपत ... महादेवजी त्रिपुरको मारकर और पातालको फाड़कर रसातलके नीचे क्यों जातेहुये ॥ २ ॥ और जालेश्वरलिङ्ग किसप्रयोजनसे उत्थितहुआ और नीलगङ्गा

नर्मदाके सङ्गमको कैसे प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ महादेव से पायाहै वर जिसने ऐसा महादेव जीका पवित्र भक्त बाणासुर हुआ हे महामुने ! उस करके पूजेहुये ॥ ४ ॥ संख्या करके नवकरोड़ लिङ्ग नर्मदामें क्यों डालदियेगये हे महामुने ! यह सब संक्षेपसे आप कहें ॥ ५ ॥ पार्वती, स्वामिकार्त्तिक,ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओंसे पूर्वकल्पमें कहेहुये स्कन्दपुराण में जैसा कुछ आपकरके सुनागयाहो ॥ ६ ॥ वैसाही हे तात ! आप करके कहाजावे जैसा महादेवजी करके कहागया है तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्, महाबाहो ! मुझकरके कहेजारहे वृत्तान्तको सुनो और समझो ॥ ७ ॥ पूर्वकल्प के स्वारोचिषमन्वन्तर में सत्ययुग के प्राप्तहुये पर उत्तम कैलासपर्वतमें

निमहामुने ॥ ४ ॥ संख्ययानवकोट्यस्तु तानिक्षिप्तानितत्रवै ॥ एतत्सर्वंसमासेन कथयस्वमहामुने ॥ ५ ॥ यथाश्रुतंपुराकल्पे पुराणेस्कन्दकीर्त्तिते ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ ६ ॥ तथातुकथ्यतान्तात यथोद्दिष्टं शिवेनतु ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो कथ्यमानंनिबोधमे ॥ ७ ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृते युगे ॥ देवानांसङ्गमंयत्र कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ८ ॥ कार्त्तिक्याञ्चसुरास्सर्वे हरंद्रष्टुमुपागताः ॥ तत्रदेवगणान्सर्वान् स्कन्दोवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ मयाश्रुतंचदृष्टंच शिवेनकथितम्पुरा ॥ अष्टलक्षाणिसार्द्धानि ग्रन्थेस्मिन्कीर्तितानिच ॥ १० ॥ शिवलोकेशिवेनैव निबद्धानियथायथा ॥ तदर्द्धंवैष्णवेलोके तदर्द्धंब्रह्मणःपुरे ॥ ११ ॥ सपादलक्षंसूर्यस्य लोकेचैवव्यवस्थितम् ॥ १२ ॥ चतुर्भिरधिकाशीतिसहस्राणितथाक्रमम् ॥ ख्यातानिमर्त्यलोकेच नात्रकार्याविचारणा ॥ १३ ॥ सूतस्संग्रहकर्ताच संहितास्तत्रएवच ॥ कल्पस्कन्दोमहास्कन्दः पुराणंसप्तधाविदुः ॥ १४ ॥ सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशोम

देवताओंका सङ्गम होताहुआ ॥ ८ ॥ कार्त्तिकी को महादेवजी के दर्शन करने को सब देवता प्राप्त होतेहुये वहां सब देवताओं से स्कन्दजी वचन बोलतेहुये ॥ ९ ॥ कि पूर्वकालमें महादेवजी करके यह पुराण कहागया और मुझकरके देखा व सुना गया इस ग्रन्थमें साढ़े आठलाख श्लोक कहेगये हैं ॥ १० ॥ शिवजीके लोकमें शिवही करके जैसे २ बांधेगये सम्पूर्ण ग्रन्थ तो वहींरहा उसका आधा विष्णुलोक में और उसका आधा ब्रह्मलोक में रहा ॥ ११ ॥ और सवालाख ग्रन्थ सूर्यलोक में स्थित रहा ॥ १२ ॥ और चौरासीहजार श्लोक क्रमसे मनुष्यलोकमें विदितहुये इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ इसके संग्रह के करनेवाले सूत हुये तिसमें कल्पस्कन्द

और महास्कन्द आदि सात संहितायें हुई इसतरह सातप्रकारका यह पुराण होगया॥ १४ ॥ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशाऽनुचरित इन पांचों लक्षणोंवाला पुराण होताहै ॥ १५ ॥ पुराण रचनाका यह कारण है कि कलियुगमें वेदसे वैदिक पदार्थोंके जानने में मनुष्यलोक में मनुष्य अशक्त होंगे और थोड़ेकाल तक जीने वाले होंगे, दुष्ट आचार करनेवाले तथा बुद्धिसे हीन होवेंगे ॥ १६ ॥ और वेदपाठ, वषट्कार, तप और यज्ञ कुछ भी न होगा स्त्रियों की कामना करनेवाले, लोभी, कामनाके वास्ते कर्मों के करनेवाले, भीख मांगनेवाले ब्राह्मण होंगे ॥ १७ ॥ दानके लेने में तत्पर और नित्य कुटुम्ब का पोषण करना यही उनका प्रयोजन होगा

न्वन्तराणिच ॥ वंशानुचरितंचेति पुराणंपञ्चलक्षणम् ॥ १५ ॥ अशक्तामानुषालोके अल्पजीवेनजीविकाः ॥ बुद्धि हीनादुराचारा भविष्यन्तिकलौयुगे ॥ १६ ॥ नस्वाध्यायोवषट्कारो नतपोनचयाजनम् ॥ स्त्रीकामालोलुपाविप्राः का म्यकृत्यास्तुयाचकाः ॥१७॥ प्रतिग्रहपरानित्यं कुटुम्बभरणार्थिनः॥ आत्मानंनैवबुध्यन्ते स्त्रीणांस्नेहवशंगताः॥१८॥ कुकर्माणिकरिष्यन्ति धर्मिष्ठास्तापसास्तथा॥ कलौयुगेतथाप्राप्ते कालेकौलादिगम्बराः ॥ १९ ॥ एकवर्णाःप्रजास्सर्वा राजाम्लेच्छोभविष्यति ॥ हीनेयुगेतथाप्राप्ते बौद्धस्थेचैवकेशवे ॥ २० ॥ अल्पायुषश्चैवमर्त्या अल्पवीर्यपराक्रमाः ॥ नानादेशोपद्रवाश्च भविष्यन्तिमहामुने ॥ २१ ॥ वेदान्वैप्राप्पयिष्यन्ति द्विजाश्चाण्डालवंशिनः ॥ वेदादेशंकरिष्य न्ति वेदविक्रयणंतथा ॥ २२ ॥ राजद्वारेगमिष्यन्ति धनप्राप्तिसमीहया ॥ विक्रयंचाग्निहोत्राणां कन्यानांविक्रयंत

आत्मा को नहीं जानेंगे किन्तु स्त्रियों के स्नेहके वशमें रहेंगे ॥ १८ ॥ धर्मिष्ठ और तापस ब्राह्मण कुकर्मों को करेंगे, कलिकाल के प्राप्त हुयेपर सब वाममार्गी और नग्न होजावेंगे ॥ १९ ॥ सब प्रजायें एक वर्ण होजावेंगी और म्लेच्छ राजा होगा कलियुग के प्राप्तहोनेपर और बौद्धावतार में विष्णुजी के स्थित होनेपर ॥ २० ॥ थोड़ी आयुर्दायवाले और थोड़े बल पराक्रमवाले मनुष्य होवेंगे और हे महामुने ! सब देशों में अनेक उपद्रव हुआ करेंगे ॥ २१ ॥ और चाण्डालों के वंश में उत्पन्न हुये ब्राह्मणलोग वेदों को पढ़ेंगे वेदों का प्रारम्भमात्र करलेवेंगे और वेदोंको बेचेंगे ॥ २२ ॥ धनप्राप्तिकी आशाकरके ब्राह्मणलोग राजद्वार में जावेंगे अग्निहोत्र का

विक्रय और कन्याओं का विक्रय ॥ २३ ॥ करेंगे और वेदपाठी सब ब्राह्मण व्रतों से रहित होंगे बारहवेंवर्ष के पूर्ण होनेपर मनुष्य जवान और बुड्ढे भी होजावेंगे ॥ २४ ॥ दश व बारह वर्षवाली स्त्री गर्भवती होगी स्त्री अपने पतिको नहीं मानेगी और पुत्र माता व पिताको नहीं मानेगा ॥२५॥ बहू सासुको नहीं मानेगी और कन्या माता को नहीं मानेगी यह संक्षेपसे कहागया अब जिसका प्रारम्भहै उसको सुनो ॥ २६ ॥ हे महाराज ! यज्ञकरने के वास्ते और पितरों के तारने के वास्ते मान्धाता राजा वैदूर्यपर्वत को प्राप्त होतेहुये ॥ २७ ॥ देवताओं के हितके वास्ते महादेवजी त्रिपुरको मारतेहुये वह त्रिपुर जलतेहुये पाशुपत अस्त्रकरके पूर्वकालमें भस्महोजाता

था ॥ २३ ॥ करिष्यन्तिद्विजास्सर्वे श्रोत्रियाव्रतवर्जिताः ॥ पूर्णेतुद्वादशेवर्षे नराःपलितयौवनाः ॥ २४ ॥ दशद्वादशवर्षा तु नारीगर्भधराभवेत् ॥ नारीनपुरुषंमन्येन्नमातापितरौसुतः ॥ २५ ॥ नस्नुषामन्यतेश्वश्रूं दुहितामातरन्तथा ॥ एत दुद्देशतःप्रोक्तं प्रकृतंशृणुभारत ॥ २६ ॥ यज्ञंकर्तुंमहाराजमान्धातान्नृपसत्तमः ॥ वैदूर्यपर्वतंप्राप्तो पितॄणांतारणाय च ॥ २७ ॥ देवतानांहितार्थंवै जघानत्रिपुरंहरः ॥ ज्वलत्पाशुपतास्त्रेण तद्दग्धमभवत्पुरा ॥ २८ ॥ पातालात्तेनचानीतं लिङ्गंजालेश्वरन्तथा ॥ कामदंमोक्षदञ्चैव सदादेवनमस्कृतम् ॥ २९ ॥ लोकानांतारणार्थाय नीलगङ्गासमागता ॥ मेघराजसमुद्भूता सर्वपापहरापरा ॥ ३० ॥ तस्यांश्राद्धंप्रकुर्वीत पितॄणामक्षयेच्छया ॥ बाणासुरस्यलिङ्गानि कोटितीर्थेशिवालये ॥ ३१ ॥ पतितानिजलेचैव नर्म्मदायानराधिप ॥ पूजितानिपवित्राणि भुक्तिमुक्तिप्रदानितु ॥ ३२ ॥ बाण लिङ्गानिराजेन्द्र ख्यातानिभुवनत्रये ॥ नप्रतिष्ठानसंस्कारस्तेषामावाहनादिच ॥ ३३ ॥ एवमेवप्रपूज्यानि शिवरूपाणि

हुआ ॥ २८ ॥ देवताओं करके सदा नमस्कार कियागया काम और मोक्षका देनेवाला जालेश्वरलिङ्ग उस पाशुपत अस्त्रकरके पातालसे लायागया ॥ २९ ॥ और लोकों के तारने के वास्ते सब पापोंको हरनेवाली मेघराजसे उत्पन्नहुई नीलगंगा आती हुई ॥ ३० ॥ पितरों के अक्षय फलकी इच्छा करके उस नीलगंगा में श्राद्धको करै बाणासुरके पूजेहुये लिङ्ग कोटितीर्थ, शिवालय और नर्मदा के जलमें हे नराधिप ! गिरतेहुये वे लिङ्ग पूजन करनेमें पवित्रहैं और भुक्ति व मुक्तिके देनेवाले है ॥ ३१ । ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! बाणलिङ्ग तीनों भुवनों में विख्यातहैं उनकी प्रतिष्ठा, संस्कार और आवाहन आदि नहीं होताहै ॥ ३३ ॥ वैसेही पूजन करनेके योग्यहैं हे भारत !

पहले सत्ययुग में ॥ ४४ ॥ ॐकारनाथके अवतार करके वह पर्वत सम्पूर्ण पन्नाका होताहुआ त्रेतामें मणियोंका और द्वापर में सुवर्ण का होताहुआ ॥ ४५ ॥ कलियुगमें पापों के हरनेवाले जैसे महादेव वैसाही पर्वतभी हुआ यह पुराना वृत्तान्त जैसा देखा गया वैसाही सब आप से कहा गया ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेवैदूर्यपर्वतवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में अयोध्या के अधिपति, इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले, चक्रवर्ती, श्रीमान्, वसुदान नाम के राजर्षि होतेहुये ॥ १ ॥ वे समस्त पृथिवी

सरित् ॥ वैवस्वतान्तरे प्राप्तेराजन्नादिकृतेयुगे ॥ ४४ ॥ ॐकारस्यावतारेण सर्ववैदूर्यमयोगिरिः ॥ त्रेतायुगेमणिमयो द्वापरेहैमरूपकः ॥ ४५ ॥ कलौपापहरःप्रोक्तो यथादेवस्तथागिरिः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथादृष्टंपुरातनम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे वैदूर्यपर्वतवर्णनन्नाम पञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ वसुदानस्तुराजर्षिश्चक्रवर्तीपुराभवत् ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ १ ॥ बुभुजेपृथिवींसर्वां ग्राममेकमिवाथसः ॥ ईजेयागसहस्रेण हयमेधकृतेनच ॥ २ ॥ सपादलक्षमधिकं सर्वाजीवन्तिचप्रजाः ॥ नतत्रदीनोदुःखीवा दरिद्रोवापिकश्चन ॥ ३ ॥ स्वयंकामदुघाधेनुः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ एवंपालयतस्तस्य पृथिवींपृथिवीपते ॥ ४ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले दैत्यास्त्रिदशकण्टकाः ॥ केतुमालीसुकेतुश्च सुमुखोदुन्दुभिस्तथा ॥ ५ ॥ धर्म्मविघ्नंचकर्तारस्समुद्भूतास्सुरालये ॥ केपिनोशक्नुवन्तीह यज्ञंकर्तुंभयात्तदा ॥ ६ ॥ वसुदानोब्रवीद्वाक्यं वशिष्ठंब्रह्म

को एक ग्रामकी नाईं भोग करतेहुये और अश्वमेध नामकी हजारों यज्ञों करके पूजन करतेहुये ॥ २ ॥ उनकी राज्यमें सवालाख वर्ष सब प्रजा जीवतीरही वहां कोई दीन, दुःखी व दरिद्री नहीं होताहुआ ॥ ३ ॥ गौ अभीष्टसमय में आपही दूधकी देनेवाली और पृथिवी अन्नसे युक्त होतीहुई हे पृथिवीपते ! इसप्रकार पृथिवी की पालना करतेहुये उन राजाके ॥ ४ ॥ नर्मदा के दक्षिणतट में देवताओंको कण्टक के तुल्य केतुमाली, सुकेतु, सुमुख और दुन्दुभि इत्यादिक दैत्य ॥ ५ ॥ धर्म में विघ्न करनेवाले उत्पन्न होतेहुये उनके भयसे यहां देवस्थानमें यज्ञ करनेको कोई समर्थ नहीं होतेहुये तब ॥ ६ ॥ वसुदान राजर्षि ने ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ वशिष्ठजी से पूछा

वे सब शिवरूपही हैं हे अनघ!यह सब आपसे कहागया जो कुछ तुमकरके पूंछागया था ॥ ३४ ॥ अब हे राजन् ! पापोंकी नाश करनेवाली और दिव्य कथा को सुनो हे अनघ ! जो हमको पापोंकी नाश करनेवाली जानपड़ती है उसको हम आप से कहेंगे ॥ ३५ ॥ यहां श्रीमान्, नामसे वैदूर्यनाम का पर्वत है उसमें पवित्र तीर्थ व मन्दिर विद्यमान हैं ॥ ३६ ॥ अभीष्ट फलके देनेवाले फूले फले वृक्ष, दिव्य पक्षियोंके शब्द, वेंतके जङ्गल ॥ ३७ ॥ सांखू, ताल, सर्ज और आमनूसों करके शोभित पापोंकी नाश करनेवाली पुण्य नर्मदा नदी हे भारत ! वहां विद्यमान है ॥ ३८ ॥ तीनों लोकों में जो तीर्थ, पवित्र मन्दिर, नदियां, समुद्र, पर्वत, ब्रह्माजी के सहित

भारत ॥ एतत्तेकथितंसर्वं यत्पृष्टोहंत्वयानघ ॥ ३४ ॥ शृणुराजन्कथान्दिव्यामन्यांपापप्रणाशिनीम् ॥ अघघ्नी याप्रतीतामे कीर्तयिष्यामितेनघ ॥ ३५ ॥ अस्तीहपर्वतःश्रीमान्वैदूर्यौनामनामतः ॥ तत्रपुण्यानितीर्थानि तिष्ठन्त्या यतनानिच ॥ ३६ ॥ कामंकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैःफलितैस्तथा ॥ दिव्यपक्षिनिनादैश्च वानीरवनराजिभिः ॥ ३७ ॥ शालैस्तालैश्चसरलैस्तमालैरुपशोभिता ॥ नदीपापहरापुण्या नर्म्मदातत्रभारत ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानि पु ण्यान्यायतनानिच ॥ सरितस्सागराश्शैला देवाश्चसपितामहाः ॥ ३९ ॥ नर्म्मदायांनृपश्रेष्ठ सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥ स्नातुमायान्तितेसर्वे सर्वसिद्धिस्तुभारत ॥ ४० ॥ किंतत्रपर्वतेराजन् यत्रविश्वावसुर्मुनिः ॥ नयक्षाधिपतिर्यत्र कुबेरो नरवाहनः ॥ ४१ ॥ वैदूर्य्यशिखरेपुण्ये तत्रसाक्षाद्विवस्वतः ॥ नित्यंपुष्पफलायत्र पादपाहरितच्छदाः ॥ ४२ ॥ बह्वा श्चर्यंतथातत्र दृश्यतेपर्वतोत्तमे ॥ पुण्येस्वर्गोपमेदिव्ये नित्यन्देवर्षिसेविते ॥ ४३ ॥ ह्लादिनीपुण्यतीर्थानां राजर्षेतत्रवै

सब देवता, सिद्ध, गन्धर्व और चारण नर्मदा में स्नान करने के वास्ते हे नृपश्रेष्ठ ! ये सब आते है हे भारत ! नर्मदा सब सिद्धियों की देनेवाली हैं ॥ ३९ । ४० ॥ हे राजन् ! उस पर्वतमें क्याहै जहां विश्वावसुमुनि और जहां यक्षों के अधिपति नरवाहन कुबेरजी नहीं हैं ॥ ४१ ॥ उस पवित्र, वैदूर्यपर्वतके शिखर में साक्षात् सूर्यका वासहै और नित्य फूलेफले हरियाले पत्तोंवाले वृक्ष जहां विद्यमान हैं ॥ ४२ ॥ व वहां पर्वतों में उत्तम, पुण्य, स्वर्ग के तुल्य, सर्वदा देवर्षियों करके सेवित, दिव्य पर्वत में बडा आश्चर्य दीखता है ॥ ४३ ॥ हे राजर्षे ! उस पर्वतमें पुण्य तीर्थोंको आनन्द करानेवाली नर्मदा नदी विद्यमान है हे राजन् ! वैवस्वतमन्वन्तरके प्राप्त होनेपर

कि किस तीर्थ में अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न होसक्ता है ॥ ७ ॥ यज्ञविद्याकी विधि से निश्चय करके हमसे कहाजावे बुद्धिमान् उन वसुदान राजाके उस वचन को सुन कर ॥ ८ ॥ हे भारत ! राजासे वशिष्ठजी वचन बोले कि कोई यज्ञ करनेको शक्य नहीं होसक्ता और अश्वमेध तो विशेषही करके कठिन है ॥ ९ ॥ दक्षिण दिशा में अमरेश्वरजी की मूर्त्तिहै वहा इन्द्रसहित सब देवता दैत्योंकरके जीतलिये गयेहैं ॥ १० ॥ इस कारण से वे देवतालोग यज्ञभाग ग्रहण करने को कभी समर्थ नहीं होसके हे राजन् ! यह आपसे सत्य कहा गया है ॥ ११ ॥ उन वशिष्ठ महात्मा के इस वचन को सुनकर वसुदान राजाने बडा कोप किया और पुरोहितको जवाब

वित्तमम् ॥ कस्मिंस्तीर्थेहिनिर्विघ्नो हयमेधोविधीयते ॥ ७ ॥ यज्ञविद्याविधानेन निर्दिश्यममकथ्यताम् ॥ तस्यतद्वच नंश्रुत्वा वसुदानस्यधीमतः ॥ ८ ॥ वशिष्ठश्चाब्रवीद्वाक्यं राजानंप्रतिभारत ॥ नशक्यतेमखःकर्तुं हयमेधोविशेषतः ॥ ९ ॥ अमरेश्वरस्यमूर्तिर्वै दक्षिणाशामुखेस्थिता ॥ दानवैर्निर्जितास्तत्र सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १० ॥ यज्ञभागंग्रहीतु न्न शक्नुवन्तिकदाचन ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ११ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वशिष्ठस्यमहात्म नः ॥ चुकोपवसुदानश्च प्रत्याहचपुरोधसम् ॥ १२ ॥ हत्वैतान्राक्षसान्पापानद्यवैदेवकण्टकान् ॥ देवानाञ्चप्रसादेन करिष्येयागमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वाययौराजा सर्वसम्भारसंवृतः ॥ ब्राह्मणैस्सहितोविद्वान् ऋत्विग्भिर्वेदपार गैः ॥ १४ ॥ गवाञ्चपञ्चलक्षाणि सवत्सानांपयोमुचाम् ॥ सपादलक्षमश्वानां दन्तिनामयुतंतथा ॥ १५ ॥ मणिमा णिक्यरत्नानि हेमरूप्यवसूनिच ॥ विविधंभक्ष्यभोज्यंचआज्यंव्रीहितिलांस्तथा ॥ १६ ॥ मण्डपान्यज्ञयूपांश्च समा

दिया ॥ १२ ॥ कि आज हम इन देवताओं के कण्टकरूप पापी दैत्योंको देवताओं के प्रसादसे मारकर उत्तम यागको करेंगे ॥ १३ ॥ यह कहकर वेदके पारके जानेवाले ऋत्विक् ब्राह्मणों करके सहित सब सामानसे युक्त विद्वान् वसुदानराजा जातेहुये ॥ १४ ॥ बछडों करके सहित दूधकी देनेवाली पांचलाख गौवें, सवालाख घोडे, दश हजार हाथी ॥ १५ ॥ मणि, माणिक आदिरत्न, सुवर्णका धन और अनेकप्रकार के भक्ष्य, भोज्य, घी, चावल, तिल ॥ १६ ॥ मण्डपका सामान और यज्ञ के स्तम्भों

को लेकर राजाओंमें उत्तम वसुदानराजा जातेहुये हे भारत ! इस प्रकार निर्विघ्नता से यज्ञके प्रवृत्त होने पर ॥ १७ ॥ यज्ञान्त स्नान के जलों करके भीगीहुई पृथिवी सब सुवर्ण रचित होगई उस कीचड़में जितने पंशु व पक्षी गिरे ॥ १८ ॥ हे भारत ! वहां वे सब सुनहले रङ्गवाले होगये जिस यज्ञमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव एक साथही पूजन कियेगये ॥ १९ ॥ वहां होमसे पृथक् २ दूध और घी की धारा निकलीं और हे नृपसत्तम ! वहां गौवो के मूत्रकी भी धारा निकली ॥ २० ॥ वेदके पारगन्ता ऋषियों करके जो देवताओं के स्नानका जल कियागया हे नृपसत्तम ! उसका भी प्रवाह वहां निकला ॥ २१ ॥ हे नृप ! उस समयमें सब प्रवाहोंके मिलने

दायनृपोत्तमः ॥ एवंप्रवर्तितेयज्ञे निर्विघ्नेनतुभारत ॥ १७ ॥ आवभृथ्योदकैःक्लिन्ना वसुधाहेमनिर्मिता ॥ बभूवुर्ललितायेतु कर्दमेमृगपक्षिणः ॥ १८ ॥ तेहेमवर्णकास्सर्वे बभूवुस्तत्रभारत ॥ युगपत्पूजितायत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९ ॥ होमाच्चपृथक्क्षीराज्यप्रवाहास्तत्रनिर्गताः ॥ गवांमूत्रप्रवाहश्च तत्राभून्नृपसत्तम ॥ २० ॥ स्नानोदकञ्चदेवानामृषिभिर्वेदपारगैः ॥ यत्कृतंतत्प्रवाहश्च तत्रासीन्नृपसत्तम ॥ २१ ॥ प्रवाहेषुचसर्वेषु मिलितेषुतदानृप ॥ आपगाकपिलानाम दृष्टाब्रह्मर्षिदैवतैः ॥ २२ ॥ नर्म्मदासङ्गमस्तत्र रुद्रावर्तःप्रकीर्तितः ॥ ततस्तुब्राह्मणास्सर्वे दक्षिणाभिःप्रपूजिताः ॥ २३ ॥ गजाश्वरथमारूढा नानाभरणभूषिताः ॥ तुष्टादेवगणास्सर्वे ऊचुस्तंपार्थिवंतदा ॥ २४ ॥ वरंवृणुमहाभाग यज्ञेनानेनसुव्रत ॥ वसुदानउवाच ॥ रेवाकपिलसम्भेदे स्नात्वाभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ २५ ॥ विमानैस्त्रिदिवंयान्तु येमृता

पर कपिला नामकी नदी ब्रह्मर्षि और देवताओं करके देखीगई ॥ २२ ॥ उसमें नर्मदा का सङ्गमहुआ वह सङ्गम रुद्रावर्त कहागया तदनन्तर दक्षिणाओं करके पूजित हुये सब ब्राह्मण ॥ २३ ॥ हाथी, घोड़े और रथोंपर सवार अनेक आभूषणों से भूषित होतेहुये प्रसन्न होरहे सब देवगण उस समय में उन राजासे वचन बोले ॥ २४ ॥ कि हे महाभाग ! इस यज्ञ करके हम सब प्रसन्न हैं इससे हे सुव्रत ! आप वरको मांगो तब वसुदानराजा बोले कि नर्मदा और कपिलाके सङ्गम में मनुष्य स्नान और महादेव का पूजन करके ॥ २५ ॥ विमानों से स्वर्गको जावें और जो मरें वे फिर उत्पन्न न होवें इसी वरको हम मानते हैं सो मुझपर कृपाकरके दिया

जावे ॥ २६ ॥ तब देवता बोले कि चिन्तना कियेहुये आपके मनोरथ अभीष्ट फल को फलेंगे हे राजन् ! वरको देकर देवतालोग प्रसन्न हुये तदनन्तर ॥ २७ ॥ अपने अपने विमानपर चढ़कर आनन्द से स्वर्गको जातेहुये राजर्षि वसुदानभी वेदपाठी ब्राह्मणों करके सहित ॥ २८ ॥ परम आनन्दसे युक्त अयोध्यापुरी को जातेहुये इस तीर्थके प्रभावकरके अपनी रानी व कुटुम्बके सहित॥२९॥परिपूर्ण भोगोंको भोगकरके महादेवके पुरको जातेहुये यह सब नर्मदा और कपिलाके सङ्गमका वृत्तान्त आप से कहागया ॥३०॥ इसके सुनने व कहनेसे संसारबन्धनसे छूटजाताहै ॥३१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकपिलावतारोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

नपुनर्भवाः ॥ इमंवरमहंमन्ये दीयतांमदनुग्रहात् ॥ २६ ॥ देवाऊचुः ॥ कामंकामंफलिष्यन्ति चिन्तितास्तेमनोरथाः॥ वरंदत्त्वाचभोराजन् प्रीतावैदेवतास्ततः ॥ २७ ॥ स्वंस्वंविमानमारुह्यमुदितास्त्रिदिवंययुः ॥ वसुदानोपिराजर्षिर्ब्राह्मणै र्वेदपारगैः ॥ २८ ॥ मुदापरमयायुक्तो ह्ययोध्यामाययौतदा ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ २९ ॥ भो गांश्चपुष्कलान्भुक्त्वा गतोमाहेश्वरम्पुरम् ॥ एतत्तेकथितंसर्वं रेवाकपिलसङ्गमम् ॥ ३० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यमुच्य तेभवबन्धनात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे कपिलावतारोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ अरुन्धतीप्रसूताया दाक्षायण्यास्सुतोऽभवत् ॥१॥ विश्रवानामराजाभूच्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ मथुराधिपतिःश्रीमांश्चक्रवर्तीमहाबलः ॥ २ ॥ निर्जितामरदैत्यश्च सराजा मघवात्विव ॥ सर्वकामसमृद्धाश्च ब्राह्मणाश्चेतरेजनाः ॥ ३ ॥ एवंशासयतःपृथ्वीं धनधान्यसमाकुलाम् ॥ नदुर्भिक्षं

स्वायम्भुवमन्वन्तर के प्राप्त होनेपर पहले कल्पके सत्ययुगमें अरुन्धतीसे उत्पन्नहुई दक्षकी कन्याके पुत्र हुआ ॥ १ ॥ यह मथुराका अधिपति, बड़े बलवाला, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, चक्रवर्ती, श्रीमान् विश्रवा नामका राजा होताहुआ ॥ २ ॥ व जीत लियेगये हैं देवता और दैत्य जिसकरके ऐसे इन्द्रके तुल्य वह राजाहुआ उसकी राज्यमें सब कामनाओं से पूर्ण ब्राह्मण और अन्य जन भी होतेहुये ॥ ३ ॥ इसप्रकार धन और अन्न से भरीहुई पृथिवी की रक्षा करतेहुये पृथिवीतल में दुर्भिक्ष और

दारिद्र्य कहीं नहीं हुआ ॥ ४ ॥ इसी अन्तरके प्राप्त होनेपर राजा अमरकण्टक को जातेहुये वहां कोटितीर्थ मे स्नानकरके और महादेवजी का पूजन करके ॥ ५ ॥ हे भारत ! उन महादेवजी की दक्षिणामूर्त्तिके आश्रित होकर धर्म जिनको प्यारा है ऐसे राजा जबतक समाधि में स्थित होवें ॥ ६ ॥ तबतक मध्याह्नके समय मे देखा कि पश्चिमदिशामें सूर्यमण्डल से दो सूर्य पूर्वदिशा को चले गये और दो दक्षिण दिशाको ॥ ७ ॥ व दो पातालको और दो प्रचण्डरूप सूर्य ऊपरको चलेगये और हे नृप ! उस समयमें कालस्वरूप संवर्तक नामके अग्नि अतीव जलतेहुये ॥ ८ ॥ और प्रलयके करनेवाले भयानक कठिन वायु चलनेलगे दिग्दाह,भूमिकम्प और दारुण

नदारिद्र्यं कश्चिदस्तिमहीतले ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते प्रस्थितोमरकण्टकम् ॥ स्नात्वाचकोटितीर्थेवै समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ ५ ॥ दक्षिणांमूर्तिमाश्रित्य तस्यदेवस्यभारत ॥ समाधिस्थोभवेद्यावत् सराजाधर्मवत्सलः ॥ ६ ॥ तावत्पश्यतिमध्याह्ने प्रतीच्यादित्यमण्डलात् ॥ द्वौसूर्यौपूर्वदिग्भागे गतौद्वौदक्षिणांदिशम् ॥ ७ ॥ द्वौपातालंतथाचोर्ध्वं द्वौ सूर्यौचण्डरूपिणौ ॥ कालस्संवर्तकोवह्निः प्रजज्वालतदान्नृप ॥ ८ ॥ रौद्राश्चदारुणावाता वबुःप्रलयकारिणः ॥ दिग्दाहोभूमिकम्पश्च उल्कापाताश्चदारुणाः ॥ ९ ॥ पतितास्सिद्धगन्धर्वा देवलोकात्सकिन्नराः ॥ विद्याधरास्तथायक्षाः कर्मच्छेदादिवच्युताः ॥ १० ॥ विद्याधर्योरुदन्त्यश्च तथैवाप्सरसस्तथा ॥ प्रजज्वालमहावह्निस्सशैलवनकाननाम् ॥ ११ ॥ भस्मीकृत्यधरांसर्वां रेवाकूलमिवागमत् ॥ तृषार्तोदाहसन्तप्तस्तदाभून्नृपसत्तमः ॥ १२ ॥ समुद्यतःपयःपातुं यावत्पश्यतिमेकलाम् ॥ तावत्तन्मध्यमार्गेतु वारिकिञ्चिन्नविद्यते ॥ १३ ॥ प्रवाहोरेणुभूतश्च दृश्यतेनतुनर्म्मदा ॥

उलकापात होनेलगे ॥ ९ ॥ और देवलोक से सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर गिरते हुये विद्याधर और यक्षभी गिरे जैसे कर्मोंकी समाप्तिमें जीव स्वर्गसे गिरे ॥ १० ॥ रोती हुई विद्याधरी और अप्सरायें भी गिरी और महाअग्नि जलताहुआ, पर्वतों व जलों और जंगलों करके सहित ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण पृथिवीको भस्म करके मानो नर्मदाके तटको प्राप्तहुआ उससमय में दाहसे तपेहुये राजाओं में श्रेष्ठ वे राजा प्यास करके कष्टितहुये ॥ १२ ॥ पानी पीने के वास्ते उद्यत होरहे जबतक नर्मदाको देखे तबतक

नर्मदाके बीचमें जल कुछभी न रहा ॥ १३ ॥ नर्मदाकी धारा बालू होगई नर्मदा नहीं देखपड़ती नदियां, समुद्र, पर्वत और तालाबों में राजा भ्रमते हुये ॥ १४ ॥ परन्तु उन श्रेष्ठ राजाने पानी पीनेको कहीं भी नहीं पाया नर्मदा देवी और उत्तम विन्ध्यपर्वत को नहीं देखतेहुये ॥ १५ ॥ राजा नर्मदा के मध्यमें पैठे और चिन्ता करके व्याकुल होतेहुये कि आज पानीके विना मेरा मरण नियत होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १६ ॥ समस्त जगत् नष्ट होगया पानीके विना कुछ न रहेगा राजा यह विचार करके ॐकारके आश्रित होतेहुये ॥ १७ ॥ प्यास से विकल होरहे राजा जबतक पर्वतपर चढ़नेकी इच्छाकरें तबतक इन राजाने वहां फले फूले शाखाओं

सरितस्सागराञ्छैलान् बभ्रामससरांसिच ॥ १४ ॥ जलंपातुन्नकुत्रापि लब्धवान्सनृपोत्तमः ॥ अपश्यन्नर्म्मदान्देवीं विन्ध्यंगिरिवरोत्तमम् ॥ १५ ॥ प्रविष्टोनर्म्मदामध्येनृपश्चिन्ताकुलोभवत् ॥ जलंविनाद्यमरणं नियतम्मेनसंशयः ॥ १६ ॥ अन्तर्हितंजगत्कृत्स्नं नचकिञ्चिज्जलंविना ॥ चिन्तयित्वानृपश्रेष्ठ ॐकारञ्चसमाश्रयत् ॥ १७ ॥ पर्वतारोहणंयावत् तृषार्तःकर्तुमिच्छति ॥ तावत्पश्यतिराजासौ तत्रैकल्पशाखिनम् ॥ १८ ॥ फलितंपुष्पितंरम्यं शाखाभिरुपशोभितम् ॥ तन्दृष्ट्वाशयितोराजाछायांप्राप्यसुशीतलाम् ॥ १९ ॥ शरीरममृतंभूतं जीविताशाभवत्तदा ॥ अपश्यत्पुरुषंतत्र शयानंदीप्ततेजसम् ॥ २० ॥ तदुच्छ्वासेनलोकाश्चैकम्पिताश्चोर्ध्वशस्तदा ॥ पातालानितथासप्त निःश्वासेन युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ कुम्भाःपार्श्वेचचत्वारस्तस्यातिष्ठन्तिसोदकाः ॥ तान्दृष्ट्वाचिन्तयामास तृषार्तोनृपसत्तमः ॥ २२ ॥ बोधयेसुखसुप्तन्नो नादत्तंचपिबाम्यहम् ॥ किङ्करोमीतिसञ्चिन्त्य तम्प्रणम्यस्थितोनृपः ॥ २३ ॥ मानुषींतनुमाश्रित्य

करके शोभित, रमणीक कल्पवृक्ष को देखा उस वृक्षको देखकर और शीतल छायाको पाकर राजा सोगये ॥ १८ । १९ ॥ राजाका शरीर अमृत होगया और जीवनकी आशा होती हुई उस वृक्षपर प्रचण्ड तेजवाले सोतेहुये पुरुषको देखा ॥ २० ॥ उसकी ऊपरवाली श्वास करके उससमय ऊपरके लोक कांपतेहुये और हे युधिष्ठिर ! श्वासके खींचनेसे सातों पाताल कांपतेहुये ॥ २१ ॥ उस पुरुषके दोनोंतरफ जलसे भरेहुये चार कलश विद्यमान होरहे हैं तृषासे विकल राजा उन कलशोंको देखकर विचार करतेहुये ॥ २२ ॥ कि सुखसे सोरहे इस पुरुषको हम जगावें सो ठीक नहीं है और विनादिये जलको हम पीवें नहीं तो अब क्याकरें यह विचारकर उसके नम-

रकार करके राजा स्थित होरहे ॥ २३ ॥ व साक्षात् प्रजापति देव जगत के प्रभु कर्ता और हर्ता पुरुषोत्तम मनुष्यके शरीरके आश्रितहोकर स्थित होरहेहैं ॥ २४ ॥ तदनन्तर बैलपर चढ़ेहुये, तीन नेत्रवाले, त्रिशूलको हाथमें लिये, पिनाक धनुषको धारणकिये, प्रचण्ड तेजवाले दूसरे पुरुषको देखा ॥ २५ ॥ भस्मसे उज्ज्वल होरहा है शरीर जिसका, जटाओं के मुकुट को धारण किये, मुण्डों की मालाही है आभूषण जिसका व बिजली की ज्योति के समान प्रभावाला ॥ २६ ॥ दाढ़ोंकरके भयानक, पीले नेत्रवाला, चन्द्रमा है मुकुट में जिसके, सब के रोयें खड़े करनेवाले ऐसे रूपवाले उस पुरुषको देखकर ॥ २७ ॥ सब देवताओं करके नमस्कार कियेगये देवताओं के ईश्वर महादेवकी राजा स्तुति करतेहुये कि हे देव ! हे महादेव ! हे आदिदेव ! आप सर्वोपरि विराजमान हो आपके लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे देव ! हे शूलपाणे ! हमको तृषा बहुत बाधा करती है सो आप सुनो और हमको शीतल जल देवो हे शङ्कर ! जिससे हम जीवें ॥ २९ ॥ राजाके इस वचनको सुनकर हँसतेहुये महादेव जी बोले व बोलतेहुये उन महादेवजी के मुखमें चारों तरफसे देवता, ब्रह्मर्षि सातों चराचर लोक, पाताल, भूत, गन्धर्व, सर्प और राक्षस देखपड़े ॥ ३० । ३१ ॥ तद-नन्तर घबड़ानी व वहां प्राप्तहुई एक स्त्रीको राजाने देखा धूलि से धुरियाले होरहे हैं सब अङ्ग जिसके, रक्तसे भीगीहुई है ॥ ३२ ॥ अनन्त और प्रचण्ड है तेज जिस

स्थितोयंपुरुषोत्तमः ॥ स्वयंप्रजापतिर्देवो हर्ताकर्ताजगत्प्रभुः ॥ २४ ॥ ततोपश्यद्द्वितीयञ्च पुरुषंदीप्ततेजसम् ॥ वृषारूढंत्रिनेत्रञ्च शूलपाणिंपिनाकिनम् ॥ २५ ॥ भस्मोज्ज्वलितगात्रञ्च जटामुकुटधारिणम् ॥ कपालमालाभरणं तडिज्ज्योतिस्समप्रभम् ॥ २६ ॥ दंष्ट्राकरालंपुरुषं पिङ्गाक्षंशशिशेखरम् ॥ तन्दृष्ट्वाताद्दशंरूपं सर्वेषांलोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ राजातुष्टावदेवेशंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ जयदेवमहादेव आदिदेवनमोस्तुते ॥ २८ ॥ तृषामांबाधतेदेव शूलपाणेश्शृणुष्वतत् ॥ प्रयच्छशीतलंतोयं येनजीवामिशङ्कर ॥ २९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रहसन्नब्रवीच्छिवः ॥ जल्पतस्तस्यदेवस्य चास्येदृष्टाःसमन्ततः ॥ ३० ॥ सुराब्रह्मर्षयोलोकाः सप्तचैवचराचराः ॥ पातालानिचभूतानि गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ ३१ ॥ ततोददर्शनारीञ्च समुद्विग्नांसमागताम् ॥ रजोगुण्ठितसर्वाङ्गीं रुधिरेणपरिप्लुताम् ॥ ३२ ॥ अनन्तदीप्ततेजस्कां मारुतोद्धूतमूर्द्धजाम् ॥ बालंनिधायवामोरौ कन्यांचैवस्तनान्तरे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मसूत्रत्रिदण्डाभ्यां कु

का, हवासे उड़ते हैं बाल जिसके एक बालक को अपनी बाईं जङ्घापर बिठाके कन्याको रतनों के मध्य मे लगाये हुये है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मसूत्र, त्रिदण्ड और कुण्डलों करके भूपित है इस प्रकार की उस स्त्रीको देखकर वे राजा उस समय वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे लोकोंपर अनुग्रह करनेवाली ! हे महादेवि ! हे देवि ! आपकी जय होवे तृपासे व्याप्त होरही है देह जिसकी ऐसा मैंहूं सो आप मुझको यहां जल पिलावें ॥ ३५ ॥ राजा के इस वचन को सुनकर उन राजासे परमेश्वरी बोलीं कि हे महीप ! जो तुमको तृषा बाधती है तो तुम मेरा दूध पीओ ॥ ३६ ॥ उसके इस वचनको सुनकर राजा चिन्ता करतेहुये व बोले कि हे देवेशि ! हम आपके दूधको

ण्डलाभ्यामलंकृताम् ॥ दृष्ट्वातांसततोराजा प्रोवाचवचनन्तदा ॥ ३४ ॥ जयदेविमहादेवि लोकानुग्रहकारिणि ॥ तृषयाप्लुतदेहोहं जलंपाययमामिह ॥ ३५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा तम्प्राहपरमेश्वरी ॥ स्तन्यंपिवमहीपत्वं यदित्वांबाधतेतृषा ॥ ३६ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा चिन्तयामासपार्थिवः ॥ स्तनंपास्यामिदेवेशि नारीवचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ प्रतिज्ञातंमयापूर्वं सुतेजस्त्वन्नृपोत्तम ॥ अग्रेन्यस्यस्तनंत्वांवै पश्चाद्दास्यामिबालकम् ॥ ३८ ॥ तस्मात्पिबमहाभागस्तन्यंमेनास्तिपातकम् ॥ ततःप्रोवाचनृपतिस्तान्नारीङ्कामरूपिणीम् ॥ ३९ ॥ अकार्यमेतत्सर्वेषां मादृशानांकुतःकथा ॥ अन्योन्यंजल्पतान्तेषां सातत्रान्तरधीयत ॥ ४० ॥ क्वगतासिमहादेवीत्युक्त्वाविस्मयमागतः ॥ स्वप्नलब्धा यथावार्तानिष्फलाप्रतिभासते ॥ ४१ ॥ इन्द्रजालमयंयद्वन्मृगतृष्णाजलंयथा ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरग्रेव्यवस्थि

पीवेंगे तब वह स्त्री वचन बोली ॥ ३७ ॥ कि हे नृपोत्तम ! हे सुतेजः ! पूर्वकालमें मुझ करके प्रतिज्ञा कीगई है कि पहले आप को दूध पिलाके पीछे बालक को देऊंगी ॥ ३८ ॥ तिससे हे महाभाग ! आप मेरे दूधको पीवें इसमें कुछ पाप नहीं है तदनन्तर उस कामरूपिणी स्त्री से राजा बोले कि ॥ ३९ ॥ यह काम तो सबके करने को अयोग्य है फिर हमसरीखे पुरुषोंको तो विशेषही अयोग्य है इस प्रकार आपसमें वार्ता करतेहुये उनके मध्यसे वह स्त्री अन्तर्द्धान होगई ॥ ४० ॥ हे महादेवि! आप कहां को चलीगई यह कहकर राजा विस्मय को प्राप्त होतेहुये स्वप्न में प्राप्त हुई वार्ता जैसे निष्फल भासती है ॥ ४१ ॥ और इन्द्रजाल व मृगतृष्णा का जल

जैसे मिथ्याहो ऐसा यह वृत्तान्त होगया इसप्रकार चिन्ता करतेहुये उन राजाके आगे फिर वह स्त्री खड़ी होगई ॥ ४२ ॥ तब फिर उस स्त्रीको देखतेही राजा साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो सो हमसे सत्य कहो ॥ ४३ ॥ पार्वती, कात्यायनी, गङ्गा, गायत्री, सरस्वती, ब्रह्माणी अथवा महालक्ष्मी हो सो अपनी प्रसन्नतासे कहो ॥ ४४ ॥ और तुम्हारे समान यह पुरुष कौनहै और ये चार कलश कौनहैं और बैलपर सवार तीन नेत्रवाला त्रिशूल और पिनाक धनुष को धारण किये हुये यह कौन है ॥ ४५ ॥ गोदी में लियाहुआ यह बालक कौन है और यह कन्या कौन है मैं मूर्खहूं कुछ नहीं जानता जैसे कोई जन्म व मरण को नहीं

ता ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वैवततोराजा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ कासित्वंहिवरारोहे सत्यमेतद्ब्रवीहिमे ॥ ४३ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा वेदमातासरस्वती ॥ ब्रह्माणीचमहालक्ष्मीः कथयस्वप्रसादतः ॥ ४४ ॥ समानःपुरुषःकोयं कुम्भाश्चत्वारएवके ॥ वृषारूढस्त्रिनेत्रश्च कोयंशूलपिनाकधृक् ॥ ४५ ॥ उत्सङ्गेनिहितःकोयं बालकःकाचकन्यका ॥ मूर्खोहंनाभिजानामि जननंमरणंयथा ॥ ४६ ॥ स्त्र्युवाच ॥ पृथिवींविद्धिमांराजन् सप्तद्वीपैरलंकृताम् ॥ सप्तपाताललोकैश्च सशैलवनकाननाम् ॥ ४७ ॥ सरितस्सागराश्शैला ममोदरनिवासिनः ॥ व्याप्तंमयाजगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४८ ॥ पर्यङ्कशायिनन्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ जगद्योनिंहरिंविद्धिसंसारार्णवतारणम् ॥ ४९ ॥ त्रिनेत्रंशूलपाणिञ्च विद्धिदेवं महेश्वरम् ॥ वृषारूढंमहादेवं लोकनाथंजगत्पतिम् ॥ ५० ॥ उत्सङ्गस्थंशिशुंविद्धि ब्रह्माणंसृष्टिकारकम् ॥ त्रिभिर्या

जानता ॥ ४६ ॥ तब स्त्री बोली कि हे राजन् ! सातों पाताल व लोकों से युक्त व पर्वतों व जलों और जङ्गलोंवाली, सातों द्वीपों से भूषित मुझको पृथिवी जानो ॥ ४७ ॥ नदियां,समुद्र और पर्वत मेरेही उदरमें बसते हैं यह चराचर तीनों लोकरूप सब जगत मुझकरके व्याप्त होरहा है ॥ ४८ ॥ संसार समुद्र से तारने वाले, जगत् के कारण, शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले पर्य्यङ्क पर सोनेवाले देवको हरि जानो ॥ ४९ ॥ तीन नेत्रवाले, त्रिशूल हाथमें लिये,बैलपर सवार, जगत् के पति, लोकों के नाथ, महेश्वर को महादेव जानो ॥ ५० ॥ गोदीमें विद्यमान होरहे बालकको सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा जानो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन

तीनों करके सब जगत् व्याप्त होरहा है ॥ ५१ ॥ जगतकी सृष्टिके करनेवाले ब्रह्माजी हैं और पालनेवाले आपही विष्णुजी हैं और संहार करनेवाले रुद्रजी हैं इन्हीं तीनों करके जगत् व्याप्त होरहाहै ॥ ५२ ॥ व पर्वतों पर स्थित चारों कलशों को समुद्र जानो और हमारे स्तनों के मध्यमें विद्यमान होरही कन्या को पवित्र करने वाली नर्मदा जानो ॥ ५३ ॥ राजा इस वचन को सुनकर परम विस्मय को प्राप्त होतेहुये तदनन्तर बहुत काल करके फिर सृष्टि प्रवृत्त होतीहुई ॥ ५४ ॥ सबलोकों के हितके वास्ते ब्रह्मा व विष्णु और महेश्वर अपने २ कामों को करते हैं हे युधिष्ठिर ! कल्प २ में यह सब मुझ करके देखागया है॥ ५५ ॥ व हे भारत ! अक्षयवट

प्तंजगतसर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ५१ ॥ जगत्सृष्टिकरोब्रह्मास्वयंपालयिताहरिः ॥ संहारकारकोरुद्रस्त्रिभिर्व्याप्तंजगत्त तः ॥ ५२ ॥ कलशांश्चतुरोविद्धि समुद्रान्पर्वतस्थितान् ॥ स्तनमध्येगतांकन्यां नर्म्मदांविद्धिपावनीम् ॥ ५३ ॥ एत च्छ्रुत्वावचोराजाविस्मयंपरमङ्गतः ॥ ततःकालेनमहता पुनःसृष्टिःप्रवर्तते ॥ ५४ ॥ सर्वलोकहितार्थाय ब्रह्मविष्णुमहे श्वराः ॥ कल्पेकल्पेमयादृष्टमेतत्सर्वंयुधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ न्यग्रोधःकल्पवृक्षश्च ॐकारःसप्तकल्पगा ॥ अहंवैदूर्यशैलश्च परलिङ्गानिभारत ॥ ५६ ॥ अक्षयंवाव्ययंचैतत् सर्वंजानीहितत्त्वतः ॥ एतत्तेकथितंराजन् यत्पृष्टोहंत्वयानघ ॥५७॥ भक्तस्त्वंश्रवणेश्रद्धा पुराणानान्नसंशयः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यतेभवबन्धनात ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरे वाखण्डेकल्पान्तदर्शनन्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ ईदृशंयस्यमाहात्म्यंतीर्थस्यचपरन्तप ॥ तृप्तिन्नैवाधिगच्छामि शृण्वन्वेदविदांवर ॥ १ ॥ समर्थै

कल्पवृक्ष, ॐकारनाथ, नर्मदा, हम, वैदूर्य्यपर्वत और बाणलिङ्ग ॥ ५६ ॥ इन सबको तत्त्व से अक्षय और अव्यय जानो हे निष्पाप, राजन् ! यह आपसे कहा गया जो कुछ आप करके हमसे पूछागया था ॥ ५७ ॥ आप भक्तहो और पुराणों के सुनने में आपकी श्रद्धाहै इसमें कुछ संशय नहीं है इसके सुनने व कहने से संसार बन्धन से छूटजाता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकल्पान्तदर्शनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे परन्तप ! जिस तीर्थ का ऐसा माहात्म्य है हे वेदविदांवर ! जिसको सुनतेहुये हम तृप्ति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ इससे सब कार्यों

में समर्थ, वेदोंके पारगन्ता ब्राह्मणों करके सहित फिर तीर्थों का माहात्म्य हे महामते ! मुझसे कहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाराज ! एक तीर्थ और यमेश्वर लिङ्ग है इसके दर्शन व पूजन करने से मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है ॥ ३ ॥ नर्मदाके दक्षिण और कपिलाके पश्चिममें रमणीक विष्णुकी पुरी है जैसी इन्द्रकी अमरावती है ॥ ४ ॥ करोड़ों कल्प व युगों भर विष्णुजी वहां रहते हैं पूर्वकाल में देवता और दैत्यों के युद्धमें देवताओं के कण्टकरूप दैत्यों करके ॥ ५ ॥ सब देवता जीतलिये गये तब पृथिवी बहुत कष्टितहुई और ब्रह्माआदि सब देवता क्षीरसमुद्र में सोनेवाले, स्तुति करने के योग्य, अन्तःकरण में विद्यमान और नाश

स्सर्वकार्येषुब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ भूयस्तीर्थस्यमाहात्म्यंनिवेदयमहामते ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अस्तितीर्थंमहाराज लिङ्गमन्यंयमेश्वरम् ॥ दर्शनात्पूजनादस्य यमलोकन्नपश्यति ॥ ३ ॥ नर्म्मदादक्षिणेतीरे कपिलायाश्चपश्चिमे ॥ विष्णोस्तत्रपुरीरम्या शक्रस्येवामरावती ॥ ४ ॥ कल्पकोटियुगञ्चापि तस्यांतिष्ठतिमाधवः ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे दानवैर्देवकण्टकैः ॥ ५ ॥ निर्जितादेवतास्सर्वास्तदासीच्चधरार्दिता ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वाः क्षीरोदार्णवशायिनम् ॥ ६ ॥ तुष्टुवुःप्रणिपत्यैनं स्तुत्यंचान्तस्स्थमव्ययम् ॥ जयदेवजगन्नाथ दैत्यान्तकजनार्दन ॥ ७ ॥ वाराहरूपमास्थाय प्रोद्धृतावसुधा त्वया ॥ उद्धृतामत्स्यरूपेण वेदास्सागरमध्यतः ॥ ८ ॥ कूर्मशेषादिरूपैश्च देवानामार्तिनाशनम् ॥ बलिर्वामनरूपेण त्वयाबद्धोसुरारिणा ॥ ९ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्सर्वलोकभयङ्करः ॥ त्वयान्नृसिंहरूपेण निहतोदेवकण्टकः ॥ १० ॥ वेदमूलजगन्नाथ रक्षनश्शरणागतान् ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवो ब्रह्माणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किमर्थंनत्वयाब्रह्मन्

रहित विष्णु के प्रणाम करके इनकी स्तुति करतेहुये कि हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यों के नाश करनेवाले ! हे जनार्दन ! आपकी जय होवे ॥ ६ । ७ ॥ वाराहरूप को धारण करके आप से पृथिवी उद्धार कीगई और समुद्रके मध्यसे मत्स्यरूप करके वेद उद्धार कियेगये ॥ ८ ॥ कूर्म और शेष आदि रूपों करके देवताओं के क्लेशको नाश किया दैत्यों के शत्रु आप करके वामनरूपसे बलि दैत्य बाधागया ॥ ९ ॥ सब लोकों को भय करनेवाला देवताओं का कण्टक हिरण्यकशिपु दैत्य नृसिंहरूप आप करके मारागया ॥ १० ॥ हे वेदमूल, जगतके नाथ ! शरण आयेहुये हम लोगोंकी रक्षाकरो विष्णुदेव इस स्तोत्रको सुनकर ब्रह्मासे वचन बोले ॥ ११ ॥

कि हे ब्रह्मन्! क्षीरसमुद्र में सोतेहुये हम तुम करके किस प्रयोजन से जगाये गये ॥ १२ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे जगन्नाथ! आपके विना पृथिवी दैत्यों करके व्याप्त होगई ॥ १३ ॥ जैसे सूर्य के विना प्रकाशरहित जगत् अन्धकार करके व्याप्त होजावे ॥ १४ ॥ तब विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मन्! तुम भय को शीघ्रही छोड़दो जितने जबरदस्त दैत्यहैं उन सब दानवों को थोड़ेही कालमें हम नाश करदेवेंगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहकर देवताओं करके सहित जनार्दनजी आतेहुये और सब लोकों के हितके वास्ते सुदर्शनचक्र करके दानवों के शिरों को भगवान् विष्णु जी काटते हुये तब भयसे कष्टित सब दानवलोग भागने में तत्पर होतेहुये ॥ १६।१७॥

क्षीरोदेहंप्रबोधितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयाविनाजगन्नाथ क्षोणीछन्नासुरारिभिः ॥ १३ ॥ सूर्येणचविहीनंहि निरालोकंजगद्यथा ॥ १४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ब्रह्मन्भयंत्यजाशुत्वं दानवोयन्दुरासदः ॥ अचिरेणैवकालेन घातयामिचदानवम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वासुरैस्सार्द्धमाजगामजनार्दनः ॥ सुदर्शनेनचक्रेण दानवानांशिरांसिच ॥ १६ ॥ चकर्तभगवान्विष्णुस्सर्वलोकहितायवै ॥ भयार्तादानवास्सर्वे पलायनपरायणाः ॥ १७ ॥ विष्णोस्त्रासात्तुतेसर्वे रसातलतलंययुः ॥ पुनःप्रवर्तितोयज्ञो द्विजदेवतपस्विनाम् ॥ १८ ॥ तस्याम्पुर्य्यांमहाभाग देवोभूद्दैत्यसूदनः ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणान वशःस्ववशोपिवा ॥ १९ ॥ वैष्णवेनविमानेन विष्णुलोकेमहीयते ॥ कपिलापश्चिमायान्तु नीलगङ्गासमागता ॥ २० ॥ अष्टायुतानितीर्थानि विष्णुनाप्रेरितानिवै ॥ चक्रतीर्थं वामनञ्चकोटितीर्थंयुगन्धरम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वानरो राजन् कोटितीर्थफलंलभेत् ॥ सुदर्शनन्नामतीर्थं दैत्यसूदनमेवच ॥ २२ ॥ विष्णवावर्तंशिवावर्तं लक्ष्म्यावर्तंतथैवच ॥

विष्णुके डरसे वे सब रसातल के नीचे चलेगये फिर ब्राह्मण, देवता और तपस्वियों के यज्ञ प्रवृत्त हुये ॥ १८ ॥ हे महाभाग! उस पुरी में दैत्यों के नाश करनेवाले विष्णुजी देवता हुये वहा परवश व अपने वश होकर जो प्राणोंको त्यागताहै ॥ १९ ॥ वह वैष्णव विमान करके विष्णुलोकमें पूजित होताहै कपिला नदीके पश्चिम दिशा में नीलगङ्गा आई हैं ॥ २० ॥ वहां अस्सीहजार तीर्थ विष्णुकरके भेजेगये हैं जैसे कि चक्रतीर्थ, वामन, कोटितीर्थ और युगन्धर इत्यादि हैं ॥२१ ॥ हे राजन्! उसमें स्नान करके मनुष्य कोटितीर्थ के फल को पाताहै सुदर्शन नाम का तीर्थ, दैत्यसूदनतीर्थ ॥ २२ ॥ विष्णवावर्त, शिवावर्त और लक्ष्म्यावर्त तीर्थ हैं इनमें जो

दान दियाजाताहै उसकी संख्या नहीं है ॥ २३ ॥ वहांपर विष्णुको प्रसन्नकरके अनन्त फलको पावता है एक कोस प्रमाणवाला विष्णुक्षेत्र कहागयाहै ॥ २४ ॥ इतने बीचमें ब्रह्महत्या नहीं प्रवेश करसक्की यह महादेवकरके सत्य कहागयाहै जो महीना भरका उपास करता अथवा अग्निहोत्र करताहै ॥ २५ ॥ और पतिव्रताधर्म, सत्य वचन, वेदपाठ, यज्ञकर्म, चान्द्रायण, पराक और पितरों को तिलोदक आदिको जो करता है ॥ २६ ॥ उसके पितर तृप्त होते हैं और विष्णुलोक में विहार करते हैं एकरात्र, त्रिरात्र, कृच्छ्र, सान्तपन ॥ २७ ॥ अतिकृच्छ्र, पर्णकृच्छ्र इसीप्रकार और भी वैष्णव व्रत जो करताहै और दोनों पक्षोंकी एकादशी, में जो भोजन नहीं करता है ॥ २८ ॥ वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां विष्णुभगवान् रहते हैं और क्षेत्रसे करोड़गुना फल यहां होताहै यह केशवजीने कहाहै ॥ २९ ॥ वहां जप व तप जो किया गयाहै वह सब अक्षय होताहै वहांपर श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशी बहुत पुण्य है और रोहिणीमें अष्टमी शुभहै ॥ ३० ॥ इनमें वहां व्रतकरके हे महाराज ! विष्णुलोक में पूजित होता है चाण्डाल, श्वपच अथवा तिर्यग्योनि में प्राप्त भी ॥ ३१ ॥ जो जीव यहां प्राणों का त्याग करताहै वह विष्णुलोक को जाता है

तत्रयद्दीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ २३ ॥ विष्णोस्तुप्रीणनंकृत्वा अनन्तफलमश्नुते ॥ क्रोशमात्रप्रमाणंहि विष्णुक्षेत्रंप्रकीर्तितम् ॥ २४ ॥ नविशेद्ब्रह्महत्याच सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ मासोपवासंयःकुर्यादग्निहोत्रंतथैवच ॥ २५ ॥ पतिव्रतात्वंसत्यंच स्वाध्यायंयज्ञकर्मच ॥ चान्द्रायणंपराकञ्च पितॄणाञ्चतिलोदकम् ॥ २६ ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति लोकेक्रीडन्तिवैष्णवे ॥ एकरात्रंत्रिरात्रञ्च कृच्छ्रंसान्तपनन्तथा ॥ २७ ॥ अतिकृच्छ्रंपर्णकृच्छ्रं तथान्यद्वैष्णवंव्रतम् ॥ एकादश्यान्नभुङ्क्तेयः पक्षयोरुभयोरपि ॥ २८ ॥ सगच्छतिपरंस्थानं यत्रास्तेभगवान्हरिः ॥ अन्यक्षेत्रात्कोटिगुणं फलंवैकेशवोब्रवीत् ॥ २९ ॥ तत्रजप्तंतपस्तप्तं सर्वंभवतुचाक्षयम् ॥ श्रवणेद्वादशीपुण्यारोहिण्यामष्टमी शुभा ॥ ३० ॥ तत्रोपोष्यमहाराज विष्णुलोकेमहीयते ॥ चाण्डालःश्वपचोवापि तिर्यग्योनिगतोपिवा ॥ ३१ ॥ अत्र यस्त्यजतिप्राणान् विष्णुलोकंसगच्छति ॥ कार्त्तिकेचैववैशाख उपवासंकरोतियः ॥ ३२ ॥ दशकोट्युपवासानां फलं

कार्त्तिक अथवा वैशाख में जो उपास करता है ॥ ३२ ॥ वह मनुष्य दश करोड़ उपवासों के फलको प्राप्त होताहै पूर्वकालमें स्कन्दजी के कहेहुये पुराणमें यह शिव जी करके कहा गयाहै ॥ ३३ ॥ वहांपर मासभर उपवास करनेवालों को अथवा पतिव्रता स्त्रियों को देख करके यमराज आपही जाकरके उनके वास्ते अर्घ को देते हैं ॥ ३४ ॥ साठिहजार सवारियों करके सहित भगवान् प्रभु धर्मराज आये व हजार योजन आगेसे भगवान् यमराज आते हैं ॥ ३५ ॥ सफेद वस्त्रोंको पहनेहुये धर्म और तेजही के शरीर को धारण कियेहुये सवारीके आगे खड़े होकर भक्तिकरके चरणोंको नमस्कार करते हैं ॥ ३६ ॥ उन महात्माओंको वैष्णवलोक दिखाकर फिर

प्राप्नोतिमानवः ॥ शङ्करेणपुरागीतं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ ३३ ॥ मासोपवासिनोदृष्ट्वा तत्रैवचपतिव्रताः ॥ धर्म्मराजःस्वयंगत्वा अर्घंतेभ्योनिवेदयेत् ॥ ३४ ॥ षष्टियानसहस्रैस्तु आगतोभगवान्प्रभुः ॥ सहस्रयोजनंयावदायातिभगवान्यमः ॥ ३५ ॥ शुक्लवस्त्रपरीधानो धर्म्मतेजोवपुर्द्धरः ॥ स्थित्वायानस्यचैवाग्रे भक्त्यापादौचवन्दते ॥ ३६ ॥ प्रदृश्यवैष्णवंलोकं ततोगत्वानिवर्तते ॥ प्रत्यागतेषुयानेषु अपृच्छन्स्वेच्छयायमम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मणोमानसाःपुत्रास्सप्तचैवमहर्षयः ॥ कस्माच्चकारणाद्धर्म पादचारीगतःस्वयम् ॥ ३८ ॥ कथयस्वमहाभाग परंविस्मयमागताः ॥ प्रहस्यचाब्रवीद्धर्म्मः शृण्वन्तुमुनिसत्तमाः ॥ ३९ ॥ पतिव्रतानांदीप्तिंच दीप्तिंमासोपवासिनाम् ॥ अशक्ताद्रष्टुमेतासां विमानान्दूरतःस्थितान् ॥ ४० ॥ ताभ्यःप्रत्यागतास्सर्वे ममभृत्याभयङ्कराः ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः पादचारीगतोह्यहम् ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ माहात्म्याच्चामरावत्यांहरेरमिततेजसः ॥ वासश्चयजनंतत्रकीर्तितंकलिनाशनम् ॥ ४२ ॥

आप लौट आतेहैं व सवारियोंके लौटआने पर ब्रह्माके मानसपुत्र सातों महर्षिलोग स्वेच्छापूर्वक यमराजसे पूछतेहुये कि हे धर्म ! आप किस कारणसे पैदल गये थे ॥ ३७ । ३८ ॥ मो हे महाभाग ! आप हम से कहें हमलोग परम विस्मयको प्राप्त होरहे हैं तब हँसके धर्मराज बोले कि हे अतिश्रेष्ठ मुनियो ! आपलोग सुनें ॥ ३९ ॥ पतिव्रता स्त्रियों की दीप्ति व मासभर उपवास करनेवालोंकी दीप्ति और दूर विद्यमान होरहे उनलोगों के विमानों को देखने के लिये हमलोग अशक्तहैं ॥ ४० ॥ और उन स्त्रियों के समीपसे हमारे सब भयङ्कर दूत लौटआये इसी कारण से हे विप्रो ! हम पैदल गये थे ॥ ४१ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि अमरावतीमें अनन्त

तेजवाले हरिका वासहै इसी माहात्म्य से वहां का पूजन कलियुग का नाश करनेवाला कहा गयाहै ॥ ४२ ॥ अब इसके अनन्तर नर्मदा के उत्तरतट में एक और पापों के नाश करनेवाले ब्रह्मेश इस नामसे विख्यात परमदेव भलीभांति स्थितहैं॥ ४३ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन देवके पूजनसे पाप नष्ट होजाताहै और पूजन करनेवाले के पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं और ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ लङ्केश्वर से दक्षिण ओर सिद्धलिङ्ग कहा गया है उसके पूजन व स्पर्श से गणोंका स्वामी होताहै ॥ ४५ ॥ सब देवताओं का रूप, कल्याणरूप, विश्वेश्वर नामका महालिङ्गहै वैशाखशुक्लपक्षकी अष्टमी में उस लिङ्गका पूजन करनेसे हजार लिङ्गों के पूजन

अथान्यःपरमोदेवो ब्रह्मेशइतिविश्रुतः ॥ रेवायाउत्तरेकूलेसंस्थितःपापनाशनः ॥ ४३ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य नश्यते नोयुधिष्ठिर ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ४४ ॥ लङ्केश्वराद्दक्षिणतः सिद्धलिङ्गंप्रकीर्तितम् ॥ अर्च नात्स्पर्शनात्तस्य गाणपत्यमवाप्यते ॥ ४५ ॥ विश्वेश्वरंमहालिङ्गं सर्वदेवमयंशुभम् ॥ शुक्लाष्टम्याञ्चवैशाखे लिङ्ग युतफलंलभेत् ॥ ४६ ॥ अर्चनात्तस्यलिङ्गस्य शिवस्यानुचरोभवेत् ॥ ततोगच्छेन्महाराज रेवायाउत्तरेतटे ॥ ४७ ॥ पापप्रणाशनंचैव लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ अर्चनात्तर्पणात्स्नानाद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ४८ ॥ ऋणानांमोचनंचैव लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ अनेकभाविकंचैवऋणंतस्यप्रणश्यति ॥ ४९ ॥ तिलोदकप्रदानेन ऋणमोचनदर्शनात् ॥ पि तरस्तस्यतृप्यन्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ५० ॥ अथान्यत्परमंलिङ्गं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ दारुवनेसिद्धलिङ्गं कथं पश्यन्तिकश्मलाः ॥ ५१ ॥ नर्म्मदाचरुसम्भेदे स्नानंकृत्वायथोदितम् ॥ स्नापयित्वोदकेनेशं बिल्वपत्रैश्चपूजना

का फल पाता है और महादेवजी का अनुचर (गण) होता है तदनन्तर हे महाराज ! नर्मदा के उत्तर तटको जावे ॥ ४६ । ४७ ॥ वहां परमसिद्धिका देने वाला, पापप्रणाशन लिङ्ग है उसके पूजन व तर्पण और स्नानसे ब्रह्महत्याको दूर करताहै ॥ ४८ ॥ व वहीं पापोंका नाश करनेवाला ऋणमोचन लिङ्गहै उसके पूजने वाले के अनेक जन्मोंका ऋण नष्ट होजाताहै ॥ ४९ ॥ तिलोदक के देने से और ऋणमोचन के दर्शन से जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहते हैं तबतक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ५० ॥ अब इसके अनन्तर एक और तीनों लोकों में विदित दारुवनमें उत्तम सिद्धलिङ्ग है उसको पापी कैसे देखसक्ते हैं ॥ ५१ ॥ नर्मदा और

बाजाओं को बजातेहुये ॥ ६१ ॥ वहां महादेवजी नाचते हैं और सब देवता नाचते हैं तिससे वह दारुवन कहागयाहै और वहां पापोंका नाश करनेवाला लिङ्गभी है ॥ ६२ ॥ उन देवके पूजन करनेसे गाणपत्यको प्राप्त होताहै वहीं सब देवताओंका स्वरूप, शुभ, विमलेश्वर लिङ्गहै ॥ ६३ ॥ वहां स्नान करनेसे स्वर्ग को जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं वहां देवता और दैत्य महादेव करके निर्मल देहवाले करदियेगये और हे महाराज ! सब स्वर्गको प्राप्त करदिये गये और तिलोदक व पिण्डदान करके जो मनुष्य वहां पितरों को तृप्त करता है ॥ ६४ । ६५ ॥ वह परम स्थान को प्राप्त होताहै जहां महेश्वरदेव रहते हैं चन्द्रमा और सूर्यका ग्रहण

श्वरंतत्रलिङ्गं सर्वदेवमयंशुभम् ॥ ६३ ॥ स्नानात्तत्रदिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ निर्मलीकृतदेहास्तु कृतास्तत्रसुरासुराः ॥ ६४ ॥ पिनाकिनामहाराज नीतास्सर्वेत्रिविष्टपम् ॥ तिलोदकैःपिण्डदानैः पितॄन्प्रीणातियोनरः ॥ ६५ ॥ सगच्छतिपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ चन्द्रसूर्यग्रहेप्राप्ते दानसंख्यानविद्यते ॥ ६६ ॥ शिवमभ्यर्च्यतत्रैव गाणपत्यमवाप्नुयात ॥ विमलेश्वरंतत्रलिङ्गं स्वयंविद्धिमहेश्वरम् ॥ ६७ ॥ व्याघ्रेश्वरंयत्रलिङ्गं व्याघ्रीयत्रदिवंगता ॥ तिलोदकप्रदानेन हविषापिण्डदानतः ॥ ६८ ॥ पितॄनुद्धरतेपुत्रः शतपूर्वास्तथापरान् ॥ वसेत्सवारुणेलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ६९ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य कीर्तनाच्छ्रवणादपि ॥ इन्द्रलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेचक्रस्वामिवर्णनोनामाष्टत्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्राप्त होनेपर जो दान कियाजाता है उसके पुण्यकी संख्या नहीं है ॥ ६६ ॥ वहीं शिवजी का पूजन करके गणोंकी राज्यको पाताहै वहां विमलेश्वरलिङ्गको साक्षात महादेवही जानो ॥ ६७ ॥ जहां व्याघ्रेश्वर लिङ्ग है व जहा व्याघ्री स्वर्गको प्राप्त हुई है वहां तिलोदक के देने से और खीर करके पिण्डों के देने से ॥ ६८ ॥ पुत्र इधर उधर के सौ पितरों को उद्धार करताहै और वह जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक वरुणके लोक में रहताहै ॥ ६९ ॥ उन देवके पूजन व कीर्तन व श्रवण से इन्द्रलोकको प्राप्त होताहै यह मुझ करके सत्य कहा गयाहै ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचक्रस्वामिवर्णनोनामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

चरुके सङ्गम में यथोक्त स्नान करके और जलसे महादेवजी को स्नान कराके बिल्वपत्रों करके पूजनसे उस पूजन करनेवालेकी पार्वती और महादेव के पुरसे फिर आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ ५२ । ५३ ॥ आँवलाके बराबर चतुष्केश्वर नामका सिद्धलिङ्ग देवता और दैत्यों करके पूजन किया गयाहै उसको मनुष्य नहीं देखसक्ते है ॥ ५४ ॥ यहां जो परमधार्मिक पुत्र श्राद्ध करताहै उसके पितर महाप्रलय तक तृप्तरहते हैं ॥ ५५ ॥ शाकल्य का पवित्र आश्रम दशहजार योजन का विस्तारवाला है यज्ञपर्वत के आश्रित होकर चरुका नामकी नदी निकली है ॥ ५६ ॥ बृहस्पति जिनके पुरोहित ऐसे इन्द्र करके वहां यज्ञ कियागया सब देवताओं करके अत्यन्त पुण्यवाला वह स्थान

त् ॥५२॥ नतस्यपुनरावृत्तिरुमामाहेश्वरात्पुरात् ॥५३ ॥ चतुष्केश्वरंसिद्धलिङ्गमामलक्याःप्रमाणतः ॥ अर्चितंवैसुरै दैत्यैर्नतंपश्यन्तिमानवाः ॥ ५४ ॥ करोत्यत्रतुयःश्राद्धं पुत्रःपरमधार्मिकः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाहूतसंप्लव म् ॥ ५५ ॥ शाकल्यस्याश्रमंपुण्यं योजनायुतविस्तरम् ॥ यज्ञपर्वतमासाद्य निस्सृताचरुकानदी ॥ ५६ ॥ शक्रेणेष्टंपु रातत्र बृहस्पतिपुरोधसा ॥ एतत्पुण्यतमंलोके गीयतेसर्वदैवतैः ॥ ५७ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेतु यत्फलंकुरुजाङ्गले ॥ रे वाचरुकसंयोगे तत्फलंशिवकीर्तितम् ॥ ५८ ॥ तत्राख्यातंदारुवनंभुविसर्वैर्निषेवितम् ॥ मुनीनांषष्टिसाहस्रैस्त्रेतातपसि संस्थितैः ॥ ५९ ॥ कन्दमूलफलाहारैरग्निहोत्रपरायणैः ॥ एतत्तीर्थप्रभावेण गतास्तेब्रह्मणःपुरीम् ॥ ६० ॥ निहत्य चान्धकंतत्र ननर्तभगवाञ्छिवः ॥ गणानांनायकास्सर्वे नानावाद्यान्यवादयन् ॥ ६१ ॥ तत्रनृत्यतिदेवेशः सर्वान्नृत्य न्तिदेवताः ॥ तेनदारुवनंख्यातं लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ ६२ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ विमले

लोकमें गाया जाताहै ॥ ५७ ॥ चन्द्र और सूर्य के ग्रहण बिषे जो कुरुक्षेत्र में पुण्य होताहै वही नर्मदा और चरुकाके सङ्गममें शिवजी करके कहागयाहै ॥ ५८ ॥ वहां की पृथिवीमें दारुवन विख्यातहै जो कि त्रेताबिषे तपमें स्थित होरहे कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले अग्निहोत्रमें परायण सब साठिहजार मुनियों करके सेवन कियागयाहै इस तीर्थ के प्रभाव करके वे ब्रह्माजीकी पुरीको जातेहुये ॥ ५९ । ६० ॥ वहां अन्धकासुरको मारकर भगवान् शिवजी नाचते हुये और सबगणों के नायक

वे राजा वहां बैठेहुये मुनि का अभिवादन व नमस्कार करके बैठतेहुये भारद्वाजभी उनके वास्ते श्रेष्ठ आसन देकर वचन बोले ॥ १० ॥ कि हे महाराज ! आपका आगमन बहुत अच्छा हुवा आपकी स्त्री करके सहित कुशल है हे धर्मज्ञ ! बहुतकाल में आप देखपड़े हो व आप एकाकी (इकले) कैसे हो ॥ ११ ॥ तब राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! आज आपके चरणकमलों के दर्शनसे मेरी कुशलहै हे महर्षे ! यह मेरे पितरों के श्राद्धका समय वर्तमानहै ॥ १२ ॥ सो जिस प्रकार हम ब्राह्मण को भोजन करावें सो आप करने के लिये योग्य हो उन राजा के इस वचन को सुनकर भारद्वाजजी वचन बोले ॥ १३ ॥ कि सन्तोष को प्राप्त होरहे अखण्ड

तस्मैदत्त्वासनंमहत् ॥ १० ॥ स्वागतन्तेमहाराज कुशलंसहभार्यया ॥ चिरंदृष्टोसिधर्म्मज्ञ एकाकीत्वंकथंचन ॥११॥ राजोवाच ॥ अद्यमेकुशलंब्रह्मंस्त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ महर्षेश्राद्धकालोयं पितॄणांममवर्तते ॥ १२ ॥ भोजयेहंयथाविप्रं तथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भारद्वाजोब्रवीद्वचः ॥ १३ ॥ महर्षीणांसहस्राणि तुष्टानामूर्ध्वरेतसाम् ॥ हंसलोमशमुख्यानां यदिभोजयितुंक्षमः ॥ १४ ॥ पश्चात्प्रवर्ततेश्राद्धं सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ दद्याहेममयंपीठं दद्याधान्यंतथावसु ॥ १५ ॥ मधुधेनुंतथादिव्यां पयोधेनुंतथैवच ॥ अग्निशौचस्यकौपीनं वस्त्रस्यतुविशाम्पते ॥ १६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भारद्वाजस्यभूपतिः ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा सर्वंपत्न्यैन्यवेदयत् ॥ १७ ॥ महोक्षंकल्पयित्वातु पितृकार्यंनिवर्तये ॥ श्रौतस्मार्तादिकंकर्म्म आमिषंपितृतर्पणम् ॥ १८ ॥ इत्यादिस्मृतिवाक्यानि पर्यालोच्य

ब्रह्मचारी हंस लोमश आदि हजारों महर्षियोंको भोजन कराने के लिये जो तुम समर्थ होवो ॥ १४ ॥ तो पीछे श्राद्ध प्रवृत्त होगा यह हम सत्य कहते हैं और सुवर्णका आसन देवोगे व अन्न, द्रव्य तथा दिव्य मधुधेनु, पयोधेनु और अग्निमें पवित्र किये गये सुनहले वस्त्रका कौपीन हे विशाम्पते ! जो देवोगे तो श्राद्ध होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ राजा उन भारद्वाज के इस वचनको सुनकर ऐसाही होगा यह भारद्वाज से कहकर फिर सब वृत्तान्त अपनी रानीसे कहतेहुये ॥ १७ ॥ बड़े बैलको मारकर हम पितृकार्य को करें श्रौत और स्मार्त आदि जो कर्म है उसमें मांसही पितरोंका तृप्त करनेवालाहै ॥ १८ ॥ इत्यादि स्मृतियों के वाक्यों को बार बार विचार करके

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! विघ्न करनेवालों के समागममें सब पापों का नाश करनेवाला जो व्याघ्रेश्वर नामक लिङ्ग आप करके कहागयाहै ॥ १ ॥ हे मुने ! उसके प्रभाव को जानने की हम फिर इच्छा करते हैं तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! सब पापोंको नाशकरनेवाली दिव्य कथाको सुनो ॥ २ ॥ सत्य धर्म में तत्पर पुण्ड्रवर्धन के रहनेवाले परमधार्मिक पूर्वकाल में बभ्रुनाम के राजा होतेहुये ॥ ३ ॥ पिताका क्षयाह प्राप्तहोनेपर श्राद्ध के समयमें संयम को प्राप्तहोरहे वे राजा नित्य और नैमित्तिककर्म पिताके वास्ते करतेहुये ॥ ४ ॥ यज्ञका समय निवृत्त होनेपर हे भारत ! यह राजा बुद्धिको प्राप्तहोकर चिन्ता करतेहुये और यह

युधिष्ठिरउवाच ॥ लिङ्गंव्याघ्रेश्वरन्नाम विघ्नकर्तृसमागमे ॥ कथितंयन्महाभाग सर्वपापविमोक्षणम् ॥ १ ॥ प्रभावंवेदितुंतस्य पुनरिच्छाम्यहम्मुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ २ ॥ बभ्रुर्नामपुराचासीद्राजापरमधार्मिकः ॥ पुण्ड्रवर्द्धनवासीच सत्यधर्म्मपरायणः ॥ ३ ॥ पितुःक्षयाहेसम्प्राप्ते श्राद्धकालेसुसंयतः ॥ नित्यंनैमित्तिकंकर्म पित्रर्थंसचकारह ॥ ४ ॥ यज्ञकालेनिवृत्तेथ बुद्धिंप्राप्यतुभारत ॥ चिन्तयामासराजासौ किङ्करोमीतिचाब्रवीत् ॥ ५ ॥ ऋषयोनिरपेक्षाशाः कन्दमूलफलाशिनः ॥ विप्रातिथिंनपश्यामि कम्भोजयितुमुत्सहे ॥ ६ ॥ संचिन्त्यविप्रभोज्यार्थं पाकमप्सुव्यनिक्षिपत् ॥ ऋग्वेदश्चततोवाक्यं कोपात्प्राहततस्तदा ॥ ७ ॥ इदानींद्वापरस्यान्ते वर्ततेपापसम्भवः ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते ब्राह्मणालुब्धकामुकाः ॥ ८ ॥ तेभुञ्जन्कामुकाःसर्वे राजद्रव्यंसकिल्बिषम् ॥ देशेकदाचित्पुण्याहे भारद्वाजाश्रमंगतः ॥ ९ ॥ सोभिवाद्यनमस्कृत्य मुनिंतत्रव्यवस्थितः ॥ भारद्वाजोब्रवीद्वाक्यं

कहते हुये कि अब हम क्या करैं ॥ ५ ॥ कन्द, मूल और फलों के खानेवाले ऋषि तो आशाओं से निरपेक्ष होरहे हैं हम ब्राह्मण अतिथि को नहीं देखते किसको भोजन कराने का उत्साह करें ॥ ६ ॥ ब्राह्मण को भोजन कराने के वास्ते विचारकरके पाक को जलमें डालदिया तब कोपसे उस समय में ऋग्वेद वचन बोला कि ॥ ७ ॥ इस समय द्वापरके अन्त में पापका सम्भव वर्त्तमान होरहाहै इस वैवस्वतके अन्तरको प्राप्तहोनेपर ब्राह्मण लोग लोभकी इच्छा करनेवाले होरहेहैं ॥ ८ ॥ वे सब कामना करनेवाले ब्राह्मण पापसे युक्त राजाओं की द्रव्यका भोग करते हैं तदनन्तर किसी और पुण्यवाले दिन राजा भारद्वाजके आश्रमको जातेहुये ॥ ९ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ बैलको मारकर उन पितरों को तृप्त करतेहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर बैलको पशु जानकर भारद्वाज आदिक मुनिलोग उस कर्म करके कोप को प्राप्त हुये कोपके भारसे जलतेहुये उक्त मुनिलोग राजा और रानीकी निन्दा करते हुये बोले कि मधूक और मांस आदिकों का मद्य बनाकर व गोमांसका भक्षण करके ॥ २० । २१ ॥ ब्राह्मण तप्तकृच्छ्रको करै तत्पश्चात् यज्ञोपवीत करके शुद्ध होताहै अभक्ष्यका भक्षणकरके ब्राह्मण सूखेगोबर की अग्निमें प्रवेश करै तब शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ इस से तुझ करके आठहजार तपस्वी मारडाले गये ऐसे पुरुषका हव्य देवता नहीं ग्रहण करते हैं फिर पितर कैसे ग्रहण करसक्ते हैं ॥ २३ ॥ तुझ करके

पुनःपुनः ॥ महोक्षञ्चततोहत्वा तर्पयामासतान्पितॄन् ॥ १६ ॥ अनड्वाहंपशुंज्ञात्वा भारद्वाजादयस्ततः ॥ कुपिताःक मणातेन राज्ञींराजानमेवच ॥ २० ॥ कोपसम्भारसन्तप्ता गर्हयन्तोब्रुवंस्तदा ॥ सुरामांसादिमाध्वीकं कृत्वागोमांसभ क्षणम् ॥ २१ ॥ तप्तकृच्छ्रंचरेद्विप्रो मौञ्जीबन्धेनशुद्ध्यति ॥ अभक्ष्यभक्षणंकृत्वा करीषाग्नौविशेद्द्विजः ॥ २२ ॥ घा तितानित्वयाचाष्टौ सहस्राणितपस्विनाम् ॥ हव्यन्देवानगृह्णन्ति कथञ्चपितरःपुनः ॥ २३ ॥ त्वयावैकृतवश्रेष्ठास्तेग तार्विश्वयोनिषु ॥ व्यर्थमासतपस्तेद्य मूलनाशस्त्वयाकृतः ॥ २४ ॥ बभ्रुरुवाच ॥ वेदोक्तंयःपरित्यज्य धर्ममन्यंसमा चरेत् ॥ दशवर्षसहस्राणि श्वयोनौजायतेध्रुवम् ॥ २५ ॥ वेदार्थनिन्दकायेवै ब्राह्मणाज्ञानदुर्बलाः ॥ इहजन्मनिशूद्रा स्ते मृताःश्वानोभवन्तिते ॥ २६ ॥ गोमेधोहयमेधश्च नरमेधस्तथापरः ॥ क्षत्रियास्त्वथजीवन्ति पूज्यन्तेदेवमानु षैः ॥ २७ ॥ राज्ञस्तद्वचनंश्रुत्वा भारद्वाजोशपन्नृपम् ॥ यस्मान्महोक्षमांसेन तर्पिताब्राह्मणास्त्वया ॥ २८ ॥ भवत्व

जितने यज्ञ किये गये वे सब कुत्तों को प्राप्त हुये आज तेरा तप व्यर्थ होगया तुझ करके मूल नाश करदिया गया ॥ २४ ॥ तब बभ्रुराजा बोले कि जो वेदोक्त धर्मको छोड़कर और धर्मको करताहै वह निश्चयकरके दशहजार वर्ष तक कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होताहै ॥ २५ ॥ ज्ञानसे दुर्बल जो ब्राह्मण वेदके अर्थकी निन्दाकरने वाले होते हैं वे इस जन्ममें शूद्रहैं और मरेपर कुत्तेहोतेहैं ॥ २६ ॥ गोमेध व अश्वमेध और नरमेध करतेहुये क्षत्रिय जीते हैं और वे देवता व मनुष्योंकरके पूजित होते हैं ॥ २७ ॥ राजाके इस वचनको सुनकर भारद्वाज राजाको शापदेतेहुये कि जिससे बैलके मांससे तुझकरके ब्राह्मण तृप्तकियेगये ॥ २८ ॥ इससे इसपापकरके तू व्याघ्र

हो और तेरी स्त्री व्याघ्री होवे देवताओंके हजार वर्षतक पृथिवींमें घूमाकरोगे ॥ २९ ॥ बड़े तेजवाले उन मुनि के इस वचनको सुनकर यशवाली रानी सुधर्मा वचन बोली ॥ ३० ॥ कि जिससे वेदोक्त कर्मका करनेवाला मेरा पति शाप दियागया और वैसेही निर्दोष धर्मिष्ठा, पतिव्रता मैं शाप दीगई ॥ ३१ ॥ इससे इसी पापकरके दुःखित होरहे दशहजार वर्षतक आप लोग महाघोर ब्रह्मराक्षस होवोगे ॥ ३२ ॥ कण्टकों से युक्त निर्जल मारवाड़देशमें क्षुधा और तृषासे कष्टित पीछे लगेहुये कौवा और गीधोंकरके युक्तरहोगे ॥ ३३ ॥ वहां भारद्वाज और रानी परस्पर ऐसे शाप देतेहुये तदनन्तर हे नृप ! भारद्वाज उन ब्राह्मणों करके सहित पुण्यकर्म को करके ॥३४॥

नेनपापेन व्याघ्रोव्याघ्रीतवप्रिया ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतु वसुधांविचरिष्यथः ॥ २९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मुनेरमिततेजसः ॥ सुधर्म्माचाब्रवीद्वाक्यं राजपत्नीयशस्विनी ॥ ३० ॥ वेदोक्तकर्मकर्तातु यतःशप्तःपतिर्मम ॥ पतिव्रताचनिर्दोषा धर्मिष्ठाहन्तथैवच ॥ ३१ ॥ दशवर्षसहस्राणितेनपापेनदुःखिताः ॥ भविष्यथमहाघोरा यूयंवैब्रह्मराक्षसाः ॥ ३२ ॥ निर्जलेमरुदेशेच अपरेकण्टकावृते ॥ क्षुधार्ताश्चतृषार्ताश्चकाकगृध्रैरनुद्रुताः ॥ ३३ ॥ भारद्वाजश्चराज्ञीच शप्त्वातत्र परस्परम् ॥ भारद्वाजश्चसार्द्धन्तैः कृत्वापुण्यंततोनृप ॥ ३४ ॥ ब्रह्मलोकंजगामाथ ब्राह्मणैस्सहभारत ॥ सोभिवाद्यय थान्यायं ब्रह्माणंसुरसत्तमम् ॥ ३५ ॥ सर्वंन्यवेदयत्तत्राभक्ष्यभोज्यञ्चयत्कृतम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोकापचरितंकर्म न कार्यंदेववर्जितम् ॥ ३६ ॥ उक्तानिचनिषिद्धानि धर्म्माधर्म्मविचारणे ॥ लोकोक्तंविहितंकर्म त्रयीमार्गविचारितम् ॥ ३७ ॥ कर्तव्यन्तुप्रयत्नेन स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ बोधिताब्राह्मणास्तेन ब्रह्मणानृपतिस्तदा ॥ ३८ ॥ शापान्तःकथित

ब्रह्मलोकको जातेहुये तदनन्तर हे भारत ! ब्राह्मणोंकरके सहित वे भारद्वाज जी देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी को यथायोग्य अभिवादन करके ॥ ३५ ॥ जो कुछ वहां अभक्ष्य भक्षणकिया था वह सब ब्रह्माजी से कहदिया तब ब्रह्माजी बोले कि लोक में जो निषिद्ध कर्म है वह देवताओं को छोड़कर और को नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥ धर्म और अधर्म के विचार करने में यह निश्चित होताहै कि कहेहुये भी निषिद्ध हैं और निषिद्ध भी कहेहुये हैं इससे लोकमें जो कर्म कहा गयाहै और विचारेहुये वेदमार्ग में भी कहाहुआ होवे ॥ ३७ ॥ वह कर्म यत्नकरके करना चाहिये क्योंकि वही कर्म स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला होताहै इसप्रकार उस समयमें उन

ब्रह्माजी करके ब्राह्मण और राजा बोध करादिये गये ॥ ३८ ॥ और उन्हीं ब्रह्माजी करके उन लोगोंके शापका अन्तभी कहदियागया ब्रह्माजी ने कहा कि पापकर्म के करनेवाले आपलोगों के शापका अन्त मुझकरके देखागया है ॥ ३९ ॥ युगान्तर में पुण्यके क्षयहोने पर तुमलोग शापको प्राप्तहुयेहो इससे जो महामुनि मार्कण्डेयजी नर्मदातीरपर रहते हैं ॥ ४० ॥ वे आपलोगों को उपदेश देवेंगे जिससे तुमलोग मोक्षको प्राप्तहोवोगे तदनन्तर बहुत कालकरके दैवयोगसे नर्मदातीर के रहनेवाले मार्कण्डेय मुनिको वे सबलोग प्राप्त होतेहुये रीतिपूर्वक उन ऋषिका अभिवादन व प्रणामकरके ॥ ४१ ।४२ ॥ आपसमें अपने कर्मको कहरहे वहीं स्थितहोते

स्तेषां तेनैवपरमेष्ठिना ॥ शापस्यान्तोमयादृष्टो भवतांपापकर्मिणाम् ॥ ३९ ॥ पुण्यक्षयेचशप्तास्तु सम्प्राप्तेतोयुगान्तरे ॥ नर्मदातीरवासीयो मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ ४० ॥ सदास्यत्युपदेशंवो येनमोक्षमवाप्स्यथ ॥ ततःकालेनमहता मार्कण्डेयंमुनिङ्गताः ॥ ४१ ॥ दैवयोगेनतेसर्वे कल्पगातीरवासिनम् ॥ अभिवाद्ययथान्यायं तमृषिंप्रणिपत्यच ॥ ४२ ॥ स्थिताःस्वकर्मतत्रैव व्याहरन्तःपरस्परम् ॥ दृष्ट्वातांश्चिन्तयामास मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ ४३ ॥ मिथुनंव्याघ्ररूपेण व्याहरन्मानुषीङ्गिरम् ॥ केनकर्म्मविपाकेन ब्राह्मणाब्रह्मराक्षसाः ॥ ४४ ॥ एवंसंचिन्त्यमार्कण्डो भारद्वाजमथाब्रवीत ॥ दम्पतीव्याघ्ररूपेण ब्राह्मणाब्रह्मराक्षसाः ॥ ४५ ॥ यूयंचविकृताकाराः कथयध्वंकथञ्चतत् ॥ भारद्वाजउवाच ॥ शृणुब्रह्मन्समासेन कथ्यमानंवचोमम ॥ ४६ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञ त्रिकालज्ञत्रिवेदवित् ॥ बभ्रुर्नामाचक्र

हुये तब महामुनि मार्कण्डेयजी उनको देखकर चिन्ता करतेहुये ॥ ४३ ॥ कि व्याघ्रकेरूपसे मनुष्यवाणीको बोलरहा स्त्री पुरुषका जोड़ा और ये ब्राह्मणलोग ब्रह्मराक्षस किस कर्म के फलसे हुये ॥ ४४ ॥ इसप्रकार विचारकरके मार्कण्डेयजी भारद्वाज जीसे बोले कि व्याघ्रके रूपकरके ये स्त्री पुरुष और भयानक आकारवाले ब्रह्मराक्षस होरहे तुम ब्राह्मणलोग कहो कि तुम सबोंका यह हाल कैसे हुआ तब भारद्वाजजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! संक्षेपसे कहेजारहे हमारे वचनको आप सुनो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे होनेवाले और होगये के तत्त्वके जाननेवाले ! व हे तीनों कालों के जाननेवाले ! और हे तीनों वेदों के जाननेवाले ! पुण्ड्रवर्द्धन का रहनेवाला यह बभ्रु

नामका चक्रवर्ती राजाहै ॥ ४७ ॥ और इसीकी यह पतिव्रता सुधर्मानामकी धर्मपत्नीहै एक समय श्राद्धकालमें इस राजाने ब्राह्मण अतिथिको नहीं पाया ॥ ४८ ॥ तब मुझको विचारकरके मेरे आश्रमको प्राप्तहुआ और मेरेपांव अपने शिरकरके ग्रहण करताहुआ तदनन्तर मुझसे वचन बोला ॥४६ ॥ कि मेरे पितरों के श्राद्धका समय है सो मुझपर आप प्रसन्नता करिये तब मुझकरके यह उपदेश दियागया कि इस समय मुनियों को तुम भोजन करावो ॥ ५०॥ तब श्रेष्ठ बैलको मारकर इस करके वे तपस्वी मुनिलोग भोजन करादियेगये तब मुझकरके इसको शाप दियागया कि तू शीघ्रही व्याघ्रयोनि को प्राप्तहोगा ॥ ५१ ॥ तब इसकी स्त्री मुझको डपटकर

वर्ती पुरा द्रविड़वर्धनसंस्थितः ॥ ४७ ॥ सुधर्मानामतस्यैव धर्मपत्नीपतिव्रता ॥ एकदाश्राद्धकालेतु नातिथिंप्राप्तवान्द्विजम् ॥ ४८ ॥ सञ्चिन्त्याथतदात्मानमागतोह्याश्रमंमम ॥ पादौजग्राहशिरसा ततोवचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ पितॄणांश्राद्धकालोमे प्रसादःक्रियतांमयि ॥ ततोमयोपदिष्टोसौ मुनींस्त्वंभोजयाधुना ॥ ५० ॥ महोक्षंशातयित्वातु भोजितास्ते तपोधनाः ॥ शप्तोमयाचशीघ्रंत्वं व्याघ्रयोनिङ्गमिष्यसि ॥ ५१ ॥ निर्भर्त्स्यमाञ्चतत्पत्नी शशापब्रह्मराक्षसाः ॥ यूयंभवततेसर्वे मरुदेशेक्षुधार्द्दिताः ॥ ५२ ॥ ब्रह्माणंचततःप्राप्ता विवादेनपरस्परम् ॥ ब्रह्मणाप्रेषितास्तेमीत्वत्सकाशमिहागताः ॥ ५३ ॥ एतत्तेकथितंसर्वं कारणंविकृतेमहत् ॥ नान्यत्स्थानंप्रपश्यामो यत्रास्माकंस्थितिर्भवेत् ॥ ५४ ॥ नदिवानैवरात्रिश्च नसूर्योनचचन्द्रमाः ॥ नग्रहानैवऋक्षाणि ऋषयोयत्रमण्डलम् ॥ ५५ ॥ सरितःसागराःशैला भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ आसीदिदंतमोभूतमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ५६ ॥ मुग्धावयंनजानीमो नचाज्ञायतकिञ्चन ॥ न्यग्रोधं

शाप देतीहुई कि तुम सब क्षुधासे विकल मारवाड देशमें ब्रह्मराक्षस होजावो ॥ ५२ ॥ तदनन्तर इस आपस के विवादसे हम सब ब्रह्माजी को प्राप्तहुये ब्रह्माजी करके भेजगये हम सब यहां आपके समीप आये हैं ॥ ५३ ॥ यह सब अपने लोगोंके बिगाडमें जो बडा कारणथा वह आपसे कहागया हमलोग और स्थानको नहीं देखते जहां हमलोगोंकी स्थितिहोवे ॥ ५४ ॥ न दिन, न रात्रिही, न सूर्य, न चन्द्र, न ग्रह व नक्षत्र, ऋषिलोग, नदियां, समुद्र, पर्वत और चारो प्रकारका भूतग्राम कुछ भी नही रहा आदि, मध्य और अन्त करके रहित यह सब जगत् अन्धकाररूप होगया ॥ ५५ । ५६ ॥ मोह को प्राप्तहोरहे हमलोग कुछ नही जानते कुछ

भी नहीं जानाजाता है मेघोंके तुल्य, कालरूपवाले बरगद को नर्मदा के मध्य में देखते हैं और सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ आपको देखते हैं और कुछ भी नहीं देखते हैं इससे साक्षात् आपही हमारे पिता, गुरु, विष्णु, ब्रह्मा और शिव हैं ॥ ५८ ॥ विना इच्छा के पाप कियागया किन्तु आपही से उपस्थित होगया सो हे मुनिश्रेष्ठ ! इस घोर पाप से आपके प्रसाद से हम छूट जायँगे ॥ ५९ ॥ सौ करोड़ कल्पों करके भी विना भोग कियाहुआ कर्म नहीं क्षीण होता है कियाहुआ शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोग करना पडेगा ॥ ६० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि वैदूर्य से पश्चिमभागमें ब्रह्मर्षियों के गणों करके सेवित पुण्यवाला शाकल्यका आश्रम है जहां महादेव

नर्मदामध्ये मेघाभङ्कालरूपिणम् ॥५७॥ त्वांवैसर्वद्विजश्रेष्ठंनान्यंपश्यामिकिञ्चन ॥ त्वंपितानोगुरुश्चैवहरिर्धातास्वयं शिवः ॥ ५८ ॥ अकामतःकृतंपापं स्वयमेतदुपार्जितम् ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मुञ्चामोघोरकिल्बिषात् ॥ ५९ ॥ नाभुक्तंक्षीयतेकर्म्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतंकर्म्मशुभाशुभम् ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शाकल्यस्याश्रमंपुण्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ वैदूर्य्यात्पश्चिमेभागे यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ६१ ॥ तत्रगत्वाचयूयंवै तपश्चोग्रं करिष्यथ ॥ जपध्यानपरानित्यं कन्दमूलफलाशिनः ॥ ६२ ॥ एवंद्वादशवर्षाणि सन्तिष्ठध्वंद्विजोत्तमाः ॥ यावद्वैवेदमानेन पुनःसृष्टिःप्रवर्तते ॥ ६३ ॥ तमोभूतमिदंसर्वं नप्राज्ञायतकिञ्चन ॥ सर्वंचकारभगवान् महाकालवपुर्धरः ॥६४॥ प्राणिनांकर्म्मणाह्येतज्जगत्कालवशङ्गतम् ॥ वायुरग्निर्जलंपृथ्वी भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ ६५ ॥ कालस्यभोजनंसर्वं भस्मपुञ्जमिवाभवत् ॥ नाश्चर्यमत्रकर्तव्यं पुनस्सृष्टिर्भविष्यति ॥ ६६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सर्वेतेपापयोनयः ॥ नमस्कृ

जी विद्यमान हैं ॥ ६१ ॥ वहां जाकरके आपलोग उग्र तपको करो नित्यही जप व ध्यान में तत्पर होवो कन्द, मूल और फलों के भोजन करनेवाले होवो ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार बारह वर्षतक स्थितरहो जबतक वेद के प्रमाण से फिरसे सृष्टि प्रवृत्त होवे ॥ ६३ ॥ यह सब जगत् अन्धकाररूप होरहा है इसमें कुछ नहीं जानपडता है, महाकालरूप को धारण कियेहुये भगवान् ने इस सब काम को किया है ॥ ६४ ॥ प्राणियों के कर्म करके यह सब जगत् काल के वशको प्राप्तहो रहा है वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और चार प्रकार का भूतग्राम ॥ ६५ ॥ यह सब कालका भोजन है सो भस्म कासा ढेर होगया है इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना

चाहिये क्योंकि सृष्टि फिर होवेगी ॥ ६६ ॥ उनके इस वचन को सुनकर वे सब पापयोनि मुनियों में श्रेष्ठ कल्पजीवी, मार्कण्डेयजी को नमस्कार करके ॥ ६७ ॥ राजा व रानी और ऋषिलोग विमलेश्वर को जातेहुये फिर बहुतकाल करके सृष्टिभी प्रवृत्त हुई ॥६८॥ प्रजाओं के पति ब्रह्माजी आपही अनेक प्रकार की प्रजाओं को रचतेहुये कला, काष्ठा और मुहूर्त तथा स्थावर जङ्गम जगत् ॥६९॥ नदियां,समुद्र,वृक्ष,पर्वत,लता,जल,अग्नि तथा वायु और चारोंप्रकारके भूतग्राम को रचा ॥ ७० ॥ दाहिने नेत्रमें सूर्यको तथा और भी प्राणियों को उन ब्रह्माजी ने रचा और वैसेही उन्होंने बायें नेत्रमें चन्द्रमा को कल्पित किया ॥ ७१ ॥ इन श्रेष्ठ नक्षत्रों करके

त्यमुनिश्रेष्ठं मार्कण्डंकल्पवासिनम् ॥ ६७ ॥ राजाचराजपत्नीच ऋषयोविमलेश्वरम् ॥ जग्मुःकालेनमहता पुनस्सृष्टिःप्रवर्तिता ॥ ६८ ॥ स्वयंप्रजापतिर्ब्रह्मा ससर्जविविधाःप्रजाः ॥ कलाःकाष्ठामुहूर्तांश्च जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६९ ॥ सरितस्सागरान्गुल्मान्पर्वतांश्चलतास्तथा ॥ आपोग्निवैतथावायुं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ७० ॥ सूर्यञ्चदक्षिणेनेत्रे सोसृजत्प्राणिनस्तथा ॥ वामनेत्रेहिमांशुञ्च सतथापर्यकल्पयत् ॥ ७१ ॥ एतद्दक्षवरैस्सार्द्धम्पवित्रंध्रुवमण्डलम् ॥ विवस्वतःप्रभांचैव सर्वलोकप्रकाशिनीम् ॥ ७२ ॥ सृष्टाचान्द्रमसीज्योत्स्ना दिवारात्रीतथैवच ॥ अपरेषुचद्वीपेषु नसूर्यो नैवचन्द्रमाः ॥ ७३ ॥ रौद्रीप्रभास्तितत्रैवं पुनस्सृष्टिःप्रवर्तिता ॥ पूर्णेतुद्वादशेवर्षे शापान्तेसमुपस्थिते ॥ ७४ ॥ अर्चयित्वामहेशानं रेवाव्याघ्रसमागमे ॥ भारद्वाजादयस्सर्वे ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ७५ ॥ कामिकंयानमारुह्य राजामुनियुतस्तदा ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण उमामाहेश्वरेपुरे ॥ ७६ ॥ व्याघ्रेश्वरोव्याघ्रकर्तृसङ्गमेत्रिदशार्चितः ॥ अन्य

सहित पवित्र ध्रुवमण्डल व सब लोकों की प्रकाश करनेवाली सूर्यकी प्रभा ॥ ७२ ॥ व चन्द्रमा की उजेरी रचीगई तथा दिन व रात्री रचीगई अन्य द्वीपों में न सूर्य और न चन्द्रमाही है किन्तु वहां रुद्रहीका प्रकाश है इस प्रकार फिर सृष्टि प्रवृत्त कीगई बारहवां वर्ष पूर्ण होनेपर और शापान्त को उपस्थित होनेपर ॥ ७३ । ७४ ॥ नर्मदा और व्याघ्र के समागम में महादेवजीका पूजन करके भारद्वाज आदि सबब्राह्मण ब्रह्मलोकको प्राप्तहोतेहुये ॥ ७५ ॥ और उसीसमय अभीष्ट सवारी पर सवार होकर मुनियों करके युक्त राजा भी इस तीर्थके प्रभाव से उमामाहेश्वरपुरको जातेहुये ॥ ७६ ॥ व्याघ्रकर्ताके सङ्गम में देवताओं करके पूजित व्याघ्रेश्वर महा-

देव हैं परन्तु विमलेश्वरके बराबर और दिव्य लिङ्गको हम नहीं देखते हैं ॥ ७७ ॥ उस लिङ्गके पूजन व दर्शन तथा स्पर्शन से ब्रह्महत्या भी नष्टहोजाती है और पापों की क्या कथा है ॥ ७८ ॥ तीर्थों में श्राद्धके करने से पितरों की अक्षय गति होती है हजारों करोड कल्प तथा सैकड़ों करोड़ कल्प भर तक ॥ ७९ ॥ इस तीर्थ के प्रभावसे वैष्णवलोक में क्रीड़ा करते हैं यह अपने देखे व सुनेके अनुकूल आपसे सब कहागया ॥ ८० ॥ इसके सुनने व कहनेसे अश्वमेध का फल होताहै ॥ ८१ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेविमलेश्वरवर्णनोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

ल्लिङ्गन्नपश्यामि दिव्यंवैविमलेश्वरात ॥ ७७ ॥ अर्चनात्तस्यलिङ्गस्य दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥ ब्रह्महत्याप्रणश्येत पापेष्वन्येषुकाकथा ॥ ७८ ॥ तीर्थेषुश्राद्धकरणात् पितॄणामक्षयागतिः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच ॥ ७९ ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण लोकेक्रीडन्तिवैष्णवे ॥ एतत्तेकथितंसर्वं यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ ८० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य अश्वमेधफलंलभेत ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेविमलेश्वरवर्णनोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ मनसाचिन्तितंयच्च तदेवसमुपस्थितम् ॥ लक्षणंसूत्रयागस्य पर्वतस्यतुवेष्टनम् ॥ १ ॥ कस्मिन्कालेप्रकर्तव्यं विधानंविधिपूर्वकम् ॥ त्वमेववेत्सिसर्वंवै विदितंकुरुसाम्प्रतम् ॥ २ ॥ येनदेवास्सगन्धर्वा मानुषाःपापयोनयः ॥ तत्रयागप्रभावेण दिविदेवत्वमागताः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतांराजशार्दूल सूत्रयागस्यलक्षणम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागेतु षडशीतिमुखेतथा ॥ ४ ॥ युगादौविषुवेचैव व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ कार्त्तिक्याञ्चतथामाघ्यां वै

युधिष्ठिरजी बोले कि मनसे जो विचार कियागया वही उपस्थित हुआ इससे सूत्रयागका लक्षण और पर्वतका लपेटना ॥ १ ॥ विधिपूर्वक किस काल में करना चाहिये और उसका विधान भी क्या है सो सब आपही जानते हो इससे इससमय हमको भी विदित करो ॥ २ ॥ जिससे वहां याग के प्रभाव करके गन्धर्वों करके सहित देवता और पापयोनि मनुष्य स्वर्गमें देवभावको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजशार्दूल ! सूत्रयागका लक्षण आप करके सुनाजावे कि

चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें षडशीतिमुख संक्राति में ॥ ४ ॥ व युगादि, विषुव, व्यतीपात, संक्रांति, कार्त्तिकी तथा माघी, वैशाखी में हे भारत ! ॥ ५ ॥ तथा सूर्यग्रहणके तुल्य कपिलाषष्ठी में ॥ ६ ॥ और वैशाखमासके शुक्लपक्षमें जो तीजहै व कार्त्तिकशुक्लपक्षमें जो नवमी है व माघमासकी अमावास्या और भादो कृष्णपक्षकी त्रयोदशी ये युगादि तिथी हैं ॥ ७॥ हे कौन्तेय ! इन पर्व्वोंमें सूत्रयागकोकरै पूर्व्वकालमें यह याग अनन्त फलसे भराहुआ महादेव करके कहागयाहै ॥ ८॥ महादेवके तुल्य पर्व्वतको जो सूत्रसे लपेटताहै व पार्वती और गणेशकरके सहित महादेवको लपेटताहै ॥ ९ ॥ उतने हजारयुगभर स्वर्गलोकमें पूजित होताहै पुत्रवाली अपने पति करके संयुक्त

शाख्यांचैवभारत ॥ ५ ॥ सूर्योपरागतुल्यायां षष्ठ्यांहिकपिलस्यतु ॥ ६ ॥ वैशाखमासस्यतुयातृतीया नवम्यथोर्ज्जस्यचशुक्लपक्षे ॥ माघेत्वमाचैवनभस्यकृष्णात्रयोदशीचेतियुगादयस्तथा ॥ ७ ॥ पर्वस्वेतेषुकौन्तेय सूत्रयागन्तुकारयेत् ॥ अनन्तफलसंयुक्तं शिवेनकथितम्पुरा ॥ ८ ॥ सूत्रेणवेष्टयेद्यस्तु पर्वतंशिवसन्निभम् ॥ उमयासहितन्देवं गणेशेनतथैवच ॥ ९ ॥ तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ पुत्रिणीभर्तृसंयुक्ता नारीतद्वेष्टिनीभवेत् ॥ १० ॥ कौशेयंपट्टसूत्रञ्च कार्पासञ्चमहीपते ॥ नवतन्तुञ्चयःकुर्याद्दशद्वादशतन्तुकम् ॥ ११ ॥ अष्टादशमहाराज चतुर्विंशतिवाक्रमात् ॥ क्षालयेत्कोटितीर्थेतु गन्धधूपेनवासयेत् ॥ १२ ॥ बध्नीयात्पुष्पमालाञ्च दीपमालांचबोधयेत् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा ॐकारेविधिपूर्वकम् ॥ १३ ॥ शिवध्यानपरोभूत्वानिराहारोनिशान्नयेत् ॥ प्रभातेचोत्सवंकुर्यादोङ्काराभ्यर्चनन्तथा ॥ १४ ॥ न्यग्रोधेबन्धयेत्सूत्रं समाधिस्थोनरेश्वर ॥ कोटितीर्थंततोगच्छेत्सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ १५ ॥ ऋण

स्त्री उसको लपेटनेवाली होवे ॥ १० ॥ हे महीपते ! कौशेय व रेशमी व कपासके सूत्रको जो मनुष्य नवतागका करे अथवा दश व बारह धागेका ॥ ११ ॥ व हे महाराज ! अठारह व चौबीस धागेका क्रमसे बनावे व उसको कोटितीर्थ में धोवे व चन्दन और धूपसे बसावे ॥ १२ ॥ फूलोंकी मालाको बांधे और दियालियों को जलावे व ॐङ्कार में विधिपूर्वक रात्रिमें जागरण करके ॥ १३ ॥ महादेवजी के ध्यान में तत्पर होकर निराहार रात्रिको व्यतीतकरे प्रातःकाल उत्सव व ॐङ्कारजी का पूजनकरे ॥ १४ ॥ हे नरेश्वर ! सावधान होकर अक्षयवट में सूत्रको बांधे तदनन्तर सब तीर्थों के स्वरूप, पवित्र कोटितीर्थ को जावे ॥ १५ ॥ फिर ऋणमोचन,

है तदनन्तर सब तीर्थोंमें अत्युत्तम जालेश्वरको जावे ॥ २५ ॥ वहां स्नानमात्रको कियेहुये मनुष्य संसार में फिर नहीं होताहै तिलोदकके देने से पितरों की अक्षयगति होतीहै ॥ २६ ॥ भैरवरूप को धारण करके बाणासुरके तीनपुर नर्मदाके जलके बीचमें महादेव करके प्रकाश करतेहुये पाशुपत अस्त्र करके गिरादियेगये तदनन्तर वहीं उस अस्त्र के संयोग से पाताल से जालेश्वरनामका लिङ्ग शीघ्र उठताहुआ जोकि ब्रह्महत्या को नाश करता है तदनन्तर फिर कोटितीर्थ को आवै और विधिपूर्वक स्नान करके ॥ २७ । २८ । २९ ॥ हे भारत ! ॐकार जी के सफेद सूत्र को बांधे व ॐकारका पूजन करके दीपमालाको जगावे ॥३०॥ और यह कहे

रस्तत्र सम्भवेन्नपुनर्भवेत्॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणामक्षयागतिः ॥ २६ ॥ भैरवंरूपमास्थाय बाणस्यचपुरत्रयम् ॥ पातितंजलमध्येतु नर्म्मदायाहरेणवै ॥ २७ ॥ ज्वलत्पाशुपतास्त्रेण तत्रैवतदनन्तरम् ॥ तदस्त्रसङ्गमाच्छीघ्रं पातालाद्योत्थितन्ततः ॥ २८ ॥ लिङ्गंजालेश्वरन्नाम ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ कोटितीर्थंततोगच्छेत्स्नात्वाचविधिपूर्वकम् ॥ २९ ॥ धवलंबन्धयेत्सूत्रमोङ्कारस्यतुभारत ॥ ओङ्कारंचसमभ्यर्च्य दीपमालाञ्चबोधयेत् ॥ ३० ॥ सफलस्सूत्रयागस्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ यतींश्चभोजयेत्तत्र दद्याच्छक्त्याचदक्षिणाम् ॥ ३१ ॥ सार्द्धंचबन्धुभृत्यैश्च पारणंक्रियतेनृप ॥ यश्शारीरेणकष्टेन पर्यटेच्छिवपर्वतम् ॥ ३२ ॥ पदेपदेयज्ञफलं तस्यस्याच्छङ्करोब्रवीत् ॥ पुरादेवगणैस्सर्वैस्सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ३३ ॥ विद्याधरैस्तथायक्षैरसुरैर्दैत्यदानवैः ॥ चन्द्रादित्यग्रहैश्चैव नक्षत्रध्रुवमण्डलैः ॥ ३४ ॥ विश्वेदेवैश्चसाध्यैश्च मरुद्भिर्वसुभिस्तथा॥ देवराजेनचेन्द्राण्या सावित्र्याचैवभारत ॥ ३५ ॥ अरुन्धत्यासरस्वतया

कि हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से सूत्रयाग सफल होवे तदनन्तर वहा यतियोंको भोजन करावे और शक्तिके अनुसार दक्षिणा को देवे ॥ ३१ ॥ हे नृप ! फिर भाई और सेवकों करके सहित पारण करे जो अपने शरीर के क्लेश से शिवजी के पर्वत का पर्य्यटन करताहै ॥ ३२ ॥ उसको पग २ पर यज्ञका फल होता है यह महादेवजी ने कहा है पूर्वकाल में सब देवगणों करके तथा सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर ॥ ३३ ॥ विद्याधर तथा यक्ष, असुर, दैत्य, दानव, चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह, नक्षत्र, ध्रुवमण्डल ॥ ३४ ॥ विश्वेदेव, साध्य, मरुत, वसु, इन्द्र, इन्द्राणी, सावित्री, अरुन्धती, सरस्वती और गायत्री करके हे भारत ! वह पर्वत भक्तिकरके सूत्रसे लपेटा

पापनाशन व उत्तम नरकेश्वर व अत्यन्त शोभन गन्धर्वेश्वर लिङ्गको जावे ॥ १६ ॥ जोकि सब प्राणियोंको अदृश्यहै और नागकन्याओं करके पूजन कियाजाताहै हे राजन् ! वह मनुष्य उसमे स्नान करके गान्धर्व लोकको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उत्तम अङ्गारेश्वरको जावे उस लिङ्गके दर्शनसे गणोंकी राज्यको प्राप्तहोता है ॥ १८ ॥ अङ्गार करके देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त तप कियागया वह अङ्गार इस तीर्थ के प्रभाव से ग्रह होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ जिसमें विद्यमान हैं ऐसे शुभरूप ब्रह्मावर्त को जावे हे राजन् ! वहां स्नानकरके मनुष्य शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ २० ॥ व तिलोदक के देने से पितरों की परमगति होती

मोक्षंपापनाशं नरकेश्वरमुत्तमम् ॥ गन्धर्वेश्वरलिङ्गन्तु गच्छेत्परमशोभनम् ॥ १६ ॥ अदृश्यंसर्वभूतानांनागकन्याभिरर्च्यते ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्गान्धर्वंलोकमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ अङ्गारेश्वरमुत्तमम् ॥ दर्शनात्तस्यलिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्यते ॥ १८ ॥ अङ्गारेणतपस्तप्तं दिव्यंवर्षशतंतथा ॥ ग्रहत्वमगमत्सोपि तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मावर्तंततोगच्छेत् सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ तत्रस्नात्वानरोराजञ्छिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तुतपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ २१ ॥ ब्रह्माचैवपुराकल्पे लोकानुग्रहकारकः ॥ लिङ्गंमध्येश्वरन्नाम जलमध्येव्यवस्थितम् ॥ २२ ॥ पूज्यतेनागकन्याभिर्नतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ दारुकेश्वरलिङ्गन्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २३ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्यनरोविद्याधरोभवेत् ॥ भृगुलिङ्गंततोगच्छेद्भैरवोयत्रसंस्थितः ॥ २४ ॥ भृगुंगत्वानरश्रेष्ठ मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ जालेश्वरंततोगच्छेत्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ २५ ॥ स्नानमात्रेण

है पूर्वकल्पमें लोकों के ऊपर अनुग्रह के करनेवाले ब्रह्माजी देवताओंके हजार वर्षतक अतिदुष्कर तप करतेहुये तब जलके मध्यमें मध्येश्वरनामका लिङ्ग उपस्थित हुआ ॥ २१ । २२ ॥ वह नागकन्याओं करके पूजन कियाजाता है उसको मनुष्य नहीं देखपाते हैं और भी सब पापोंका नाशकरनेवाला दारुकेश्वरलिंग है ॥ २३ ॥ उस देवके पूजनसे मनुष्य विद्याधर होताहै तदनन्तर भृगुलिङ्गको जावे जहां भैरवजी विद्यमानहैं ॥ २४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! भृगुको जाकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूटजाता

में जो तीर्थ हैं ॥ ४ ॥ वे साक्षात् परमपद जो कोटितीर्थ है उसमें लीन होते हैं कपिला और अमराका मध्य व नर्मदा और ॐङ्कारका जो मध्यहै ॥ ५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इतने अन्तरमें कोटितीर्थ विद्यमान है पाताल के रहनेवाले एक लाख तीर्थ ॥ ६ ॥ कपिला व नर्मदा के मध्य में महादेव करके स्थापन किये गये हैं हे महाराज ! इस अन्तरमें रुद्रावर्त्तके जलसे ॥ ७ ॥ मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करके शिवजीके मन्दिरको जाते हैं जो उत्तरके तटमें बसते हैं वे महादेव के लोकमें बसते हैं ॥ ८ ॥ और जो बायें तरफ वास करते हैं वे वैष्णवलोकको जाते हैं जो अमरकण्टकके पूर्व व पश्चिम भाग में रहते हैं ॥ ९ ॥ वे रुद्र व ब्रह्मा व विष्णु के लोक को जाते हैं कोटि-

अत्रान्तरेनृपश्रेष्ठ कोटितीर्थंव्यवस्थितम् ॥ दशायुतानितीर्थानां पातालतलवासिनाम् ॥ ६ ॥ कपिलानर्म्मदामध्ये शिवेनस्थापितानिच ॥ अत्रान्तरेमहाराज रुद्रावर्तजलेनतु ॥ ७ ॥ स्नात्वा विधानतस्तेवै गच्छन्तिशिवमन्दिरम् ॥ येवसन्त्युत्तरेकूले रुद्रलोकेवसन्तिते ॥ ८ ॥ वसन्तिवामभागेवै तेलोकंयान्ति वैष्णवम् ॥ येपूर्वपश्चिमेभागे वसन्त्यमरकण्टके ॥ ९ ॥ रुद्रस्यब्रह्मणोलोकं तेप्रयान्तिचवैष्णवम् ॥ जलेचैकादशाग्नौतु पतनेषोडशैवतु ॥ १० ॥ सहस्राणितथाशीतिर्मरणाद्गोगृहेतथा ॥ अनशनेब्रह्मलोकस्सार्द्धंलक्षमुदाहृतः ॥ ११ ॥ कपिलानर्म्मदातोये जलाग्नीसाधयन्तिये ॥ चतुर्युगसहस्राणि रुद्रलोकेवसन्तिते ॥ १२ ॥ अवशःस्ववशोवापि मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ तिर्यग्योनिगताःपापा म्रियन्तेयेयुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ राजानस्तेप्रजायन्ते शुभेवैद्याधरेपुरे ॥ राहुसोमसमायोगे कोटितीर्थेनराधिप ॥ १४ ॥ पुण्यंयत्कीर्तितंपुंसां तस्यसंख्यानविद्यते ॥ गयायांचकुरुक्षेत्रे

मरयोर्मध्ये नर्म्मदोङ्कारमध्यतः ॥ ५ ॥

तीर्थ विषे जलमें गिरकर मरने से ग्यारह हजार वर्ष ब्रह्मलोक होताहै अग्नि में पात करने से सोलह हजार और गोशालामें मरने से अस्सी हजार और अनशनव्रत करने से डेढ़लाख वर्ष ब्रह्मलोक कहागया है ॥ १० । ११ ॥ कपिला और नर्मदा के जल में जो जल व अग्निका साधन करते हैं वे चार हजार युग पर्य्यन्त रुद्रलोक में बसते हैं ॥ १२ ॥ हे युधिष्ठिर ! परवश व अपने वश होकर पशु, पक्षी व कीड़े अथवा और तिर्यग्योनि में प्राप्त होरहे पापी जो मरते हैं ॥ १३ ॥ वे उत्तम विद्याधरों के पुरमें राजा होते हैं राहु व चन्द्र के संयोग में हे नराधिप ! कोटितीर्थ में ॥ १४ ॥ मनुष्योंको जो पुण्य होता है उसकी संख्या नहीं है राहुसे ग्रसे हुये सूर्य में गया,

गया व महादेवका कहाहुआ फल भी उनको प्राप्तहुआ ॥ ३५।३६ ॥ अहल्या, मेनका,रम्भा, घृताची वैसेही उर्वशी तथा अन्य तिलोत्तमा व नदियां और समुद्र ॥३७॥ इस पर्वतको सूत्र से लपेटने से दिशाओं के देवभावको प्राप्त होतेहुये जबतक चन्द्र व सूर्य व जबतक पृथिवी रहे ॥ ३८ ॥ तबतक सूत्रयागके प्रभाव से शिवजी के पुरमें वास करताहै हे राजन् ! यह जो सूत्रयागका फल आप से कहा गया ॥ ३९ ॥ इसके सुनने व कहने से महादेवजीका अनुचर होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेसूत्रयागवर्णनोनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

गायत्र्यासचपर्वतः ॥ सूत्रेणवेष्टितोभक्त्या फलंप्राप्तंशिवोदितम् ॥ ३६ ॥ अहल्यामेनकारम्भा घृताचीचोर्वशीतथा ॥ तिलोत्तमातथाचान्या सरितस्सागराश्चवै ॥ ३७ ॥ वेष्टनात्पर्वतस्यास्य दिग्देवत्वमवाप्तवान् ॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ३८ ॥ सूत्रयागप्रभावेण तावच्छिवपुरेवसेत् ॥ एतत्तेकथितंराजन् सूत्रयागस्ययत्फलम् ॥ ३९ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे सूत्रयागवर्णनोनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ कीर्तनंकोटितीर्थस्य मानसंख्याप्रमाणतः ॥ तीर्थानिचोत्तरेयाम्ये प्राकारेसंस्थितानिच ॥ १ ॥ कथयस्वप्रसादेन तानिमेमुनिसत्तम ॥ तेषान्तुदर्शनादेव पापंदुष्कृतकर्मिणाम् ॥ २ ॥ प्रणश्येत्तत्क्षणादेव तमस्सूर्योदयेयथा ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तरेयानितीर्थानि यानितीर्थानिदक्षिणे ॥ ३ ॥ लीयन्तेकोटितीर्थेतु साक्षाच्छिवपदेनृप ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ ४ ॥ तानिसाक्षात्कोटितीर्थे लीयन्तेपरमेपदे ॥ कपिला

युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! आपने कोटितीर्थ का कीर्तन किया अब उस तीर्थ के उत्तर व दक्षिण व चारोंतरफ जितने तीर्थ हैं उनको संख्या व प्रमाण से अपने प्रसाद करके मुझ से कहिये उनके दर्शनमात्र से पापकर्मवाले जीवोंका पाप ॥ १ । २ ॥ उसी क्षण नष्ट होताहै जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होताहै तब मार्कण्डेयजी बोले कि उत्तर में जो तीर्थ व दक्षिणमें जो तीर्थ हैं ॥ ३ ॥ वे सब साक्षात् शिवजी के पद कोटितीर्थ में लीन होते हैं हे नृप ! और-समुद्र पर्य्यन्त पृथिवी

कुरुक्षेत्र, पुष्कर और अमरकण्टक में बराबर फल को पाता है जहां प्राची सरस्वती व महादेव व पश्चिम सरस्वतीका जल विद्यमान है ॥ १५ । १६ ॥ वहां साढ़े बारह लाख वर्ष तक दान का फल रहता है इसी के बराबर यह सब कोटितीर्थ में भी होताहै इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७ ॥ राहुसे ग्रसे हुये सूर्यमें नीति से पैदा किये हुये धनके दानका अनेक प्रकारका पुण्य होताहै यह सिद्धान्त कहागयाहै ॥ १८ ॥ यह प्रमाण ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी करके कहा गया है और सबका भी यही सम्मत है हे राजन्! वे मनुष्य थोड़े सारवाले व माया से मोहित हैं जो समयपर ॐकार व नर्मदा को नहीं देखते हैं हे महाराज! गौ और बकरीका जैसा अन्तर

पुष्करेमरकण्टके ॥ १५ ॥ तुल्यंफलमवाप्नोति राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ प्राचीसरस्वतीयत्र स्थाणुस्सारस्वतंजलम् ॥
१६ ॥ सार्द्धद्वादशलक्षन्तु दत्तंतत्रप्रवर्तते ॥ तत्तुल्यन्तुभवेत्सर्वं कोटितीर्थेनसंशयः ॥ १७ ॥ न्यायोपार्जितवित्तस्य
राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ नानाविधन्तुपुण्यञ्च मतंवैपरिकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवोक्तञ्च प्रमाणंसर्वसम्मतम् ॥
अल्पसत्त्वानराराजन् कालेमायाविमोहिताः ॥ १९ ॥ ॐकारंयेनपश्यन्ति तथावैसप्तकल्पगाम् ॥ गोछागयोर्महारा
ज हेमरूप्येयदन्तरम् ॥ २० ॥ शूद्रब्राह्मणयोर्यद्वद्यथावद्दधितक्रयोः ॥ अमरेश्वरतीर्थंहि ज्ञेयंतीर्थान्तरैस्सह ॥ २१ ॥
दीयतेकोटितीर्थेयद्गुञ्जामात्रंहिरण्यकम् ॥ तस्यसंख्यानविद्येत यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ २२ ॥ चतुर्हस्तप्रमाणन्तु
कोटितीर्थन्नसंशयः ॥ हस्तमात्रंतथाचान्ये वितस्तिश्चतथापरे ॥ २३ ॥ चतुरङ्गुलमयंकेपि केचिदङ्गुलमानतः ॥ अ
र्द्धाङ्गुलंयवमात्रं ब्रह्मसूत्रप्रमाणतः ॥ २४ ॥ चतुर्विंशेद्वादशाब्दे कुरुक्षेत्रात्सरस्वती ॥ कोटितीर्थेतथास्नातुं राहुग्र

है और सोने व रूपेका जैसा अन्तर है ॥ १९ । २० ॥ व शूद्र और ब्राह्मणका जैसा अन्तर है और दही व मट्ठे का जैसा अन्तर है ऐसेही और तीर्थों से अमरेश्वर तीर्थ का अन्तर जानना चाहिये ॥ २१ ॥ कोटितीर्थ में जो रत्तीभर सोना दियाजाता है उसकी संख्या महाप्रलयतक नहीं होसक्ती है ॥ २२ ॥ अब प्रमाण को कहते हैं कि चार हाथका प्रमाणवाला कोटितीर्थ है इसमें कुछ संशय नहीं है कोई हाथभर और कोई बालिश्त भरका प्रमाण कहते हैं ॥ २३ ॥ कोई चार अंगुलका, कोई अंगुलभरका, कोई आधे अंगुलका, कोई जौ भर का और कोई ब्रह्मसूत्र भर का प्रमाण कहते हैं ॥ २४ ॥ सूर्य को राहुसे ग्रसे हुयेपर चौबीस व बारहवें वर्षमें कोटि-

तीर्थ बिषे स्नान करने के वास्ते कुरुक्षेत्र से सरस्वती जी अपनी पुण्य के क्षीण होनेसे हथिनी के रूपको धारण करके आती हैं और स्नान करके फिर कुरुक्षेत्र को जाती हैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २५ । २६ ॥ कावेरी के सङ्गम से लेकर समुद्र के सङ्गम पर्य्यन्त हे महाराज ! इस अन्तर में दशकरोड़ तीर्थ कहेगये हैं ॥ २७ ॥ और कोटितीर्थ से लगाकर नीलगङ्गा पर्य्यन्त ब्रह्मसूत्रके प्रमाणसे आठलाख तीर्थहैं॥२८॥ कावेरी नदी के पूर्वभाग में जहांतक पर्य्यंक पर्वत है इतने बीचमें तीर्थोंकी संख्या दशलाख तुमसे कहीगई है ॥ २९ ॥ नर्मदा में प्राप्तहोकर जमदग्नि के श्रेष्ठ आश्रम तक जो बीच है उसमें श्रीकण्ठ व पापोंका नाशकरनेवाला नीलकण्ठ लिङ्ग

स्तेदिवाकरे ॥ २५ ॥ करिणीरूपमास्थायायायात्स्वपुण्यकक्षयात् ॥ स्नानंकृत्वापुनर्याति कुरुक्षेत्रन्नसंशयः ॥ २६ ॥ कावेरीसङ्गमंयावदारभ्योदधिसङ्गमम् ॥ अत्रान्तरेमहाराज तीर्थकोट्योदशस्मृताः ॥ २७ ॥ कोटितीर्थंसमारभ्यनी लगङ्गावसानतः ॥ अष्टलक्षाणितीर्थानां ब्रह्मसूत्रप्रमाणतः ॥ २८ ॥ कावेर्याःपूर्वभागेच यावत्पर्यङ्कपर्वतः ॥ दश लक्षाणितीर्थानां संख्याचकथितातव ॥ २९ ॥ नर्म्मदायांसमासाद्य जमदग्नेर्महाश्रमम् ॥ श्रीकण्ठंनीलकण्ठंच लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ ३० ॥ कन्यातीर्थंमहापुण्यं कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ कपिलावर्तसंज्ञन्तु तीर्थंपापहरंपरम् ॥ ३१ ॥ तत्रपूषाचसूर्यस्तु शिवध्यानपरायणः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ ३२ ॥ ततस्तुष्टःसुरेशानस्तमुवाच तदानृप ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते ॥ ३३ ॥ पूषोवाच ॥ यदितुष्टोसि देवेश वरंदातुंत्वमिच्छसि ॥ सूर्यपि ङ्गलसंज्ञन्तु लिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ ३४ ॥ आकाशेप्रतपद्रश्मिसहस्रांशुसमप्रभम् ॥ मासेमासेऽन्यमित्रस्तु संक्रम

है ॥ ३० ॥ और महापवित्र कन्यातीर्थ है व उत्तम कपिलेश्वरलिङ्ग है और पापोंका नाशकरनेवाला कपिलावर्त नाम का श्रेष्ठ तीर्थ भी है ॥ ३१॥ वहां पूषा नामके सूर्य शिवजी के ध्यान में तत्पर देवताओं के हजार वर्षतक अतिदुष्कर तप करतेहुये ॥ ३२॥ तदनन्तर हे नृप ! महादेवजी प्रसन्नहुये और उन पूषासे उससमय बोले कि तुम्हारा कल्याणहो जो तुम्हारे मनमें वर्तता हो उस वर को तुम मांगो ॥ ३३ ॥ तब पूषा बोले कि हे देवेश ! जो तुम प्रसन्न हो और वर देनेकी इच्छा करते हो तो परमसिद्धिका देनेवाला सूर्यपिङ्गल नामका लिङ्ग ॥ ३४ ॥ आकाशमें तपतेहुये सूर्य की किरणों के समान प्रभावाला प्रकटहोवे और महीने २ में दूसरे सूर्य हुआकरें

व-अन्यराशियों में संक्रान्ति भी हुआ करें ॥ ३५ ॥ हम इसी वरको मांगते हैं जो कि जगतका प्रकाश करनेवाला है तब महादेवजी बोले कि हमारे प्रसादसे तुम्हारे सब सम्पत्तियों की समृद्धि होगी ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! सत्ययुग में यह मुझ करके देखागया था कि चतुर्दशी व अष्टमी में पिंगलेश्वरके पूजन से ॥ ३७ ॥ करोड़ यज्ञों के फलको प्राप्तहोकर शिवलोकमें पूजित होता है नर्मदा के तट में आपहीसे प्रकटहुये कोसभरतक जितने देवताहैं ॥ ३८ ॥ वे सब सिद्धियों के व अभीष्ट फल भोगके देनेवाले जाननेयोग्यहैं उनमें कोई कुंभड़ा के बराबर और कोई फूल के बराबर प्रमाणवाले हैं ॥ ३९ ॥ और कोई रेंडीके, कोई हीरा और कोई मोती के बराबर

आन्यराशिषु ॥ ३५ ॥ इमंवरमहंमन्ये जगद्द्योतनकारकम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ सर्वसम्पत्समृद्धिस्ते मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ३६ ॥ कृतेयुगेमहाराज मयैतद्दृष्टमेवच ॥ चतुर्दश्यांतथाष्टम्यां पिङ्गलेश्वरपूजनात् ॥ ३७ ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ रेवातीरेषुयेदेवाः क्रोशमात्रंस्वयंभुवः ॥ ३८ ॥ सर्वेतेसिद्धिदाज्ञेयाः कामभोगफलप्रदाः ॥ केचित्कूष्माण्डमात्रावै केचिद्वैपुष्पमात्रकाः ॥ ३९ ॥ एरण्डफलमात्राश्च वज्रमौक्तिकमानतः ॥ कृतेमणिमयाःप्रोक्तास्त्रेतायान्तुहिरण्मयाः ॥ ४० ॥ द्वापरेरौप्यताम्राश्च कलौचाश्ममयाःस्मृताः ॥ ब्राह्मणंकृतयुगंप्राहुस्त्रेतांवैक्षत्रियंतथा ॥ ४१ ॥ द्वापरंवैश्यमित्येवं कलिंशूद्रंतथैवच ॥ नापुण्यलिङ्गमासाद्य म्रियतेऽमरकण्टके ॥ ४२ ॥ कोनमुच्येतकौन्तेय सप्तजन्मजकिल्बिषात् ॥ यादृशोयंगिरिःपुण्यः सर्वतोमरकण्टकः ॥ ४३ ॥ तादृशंनानुपश्यामि त्रिषुलोकेषु भारत ॥ पर्वतस्यसमन्तात्तु तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता ॥ ४४ ॥ स्वर्गसोपानमासाद्य प्रत्यक्षंशिवदर्शनम् ॥ सुपुण्यंकोटिती

प्रमाणवाले हैं सत्ययुग में वे लिङ्ग मणियों के व त्रेतामें सुवर्ण के कहेगयेहैं ॥ ४० ॥ और द्वापर में रूपे व तांबे के और कलियुग में पत्थर के कहेगये हैं सत्ययुग को ब्राह्मण व त्रेताको क्षत्रिय कहते हैं ॥ ४१ ॥ द्वापरको वैश्य और वैसेही कलियुगको शूद्र कहते हैं हे कौन्तेय ! अमरकण्टक में पवित्र लिङ्गको प्राप्तहोकर जो मनुष्य मरते हैं उनमें कौन सातजन्मों में पैदाहुये पापसे नहीं छूटजाताहै अर्थात् सब छूटजाते हैं क्योंकि जैसा यह अमरकण्टक पर्वत सब कहीं पवित्र है ॥ ४२। ४३ ॥ हे भारत ! ऐसे दूसरे पर्वत को तीनोंलोकोंमें हम नहीं देखते हैं इस पर्वतके चारों तरफ करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं ॥ ४४ ॥ स्वर्गकी नसेनीरूप अमरकण्टकको प्राप्त

होकर महादेव का दर्शन प्रत्यक्षही है कोटितीर्थ और अमरकण्टक ये दोनों निश्चयसे अतिपवित्र हैं ॥ ४५ ॥ अमरकण्टक को स्वर्ग, मोक्ष और सर्व सिद्धियों का देनेवाला जानो वैदूर्य्यपर्वत पर सत्ययुग में सिद्धहुये मान्धाता राजा ॥ ४६ ॥ हे नृपशार्दूल ! आपसे कहेगये उसीप्रकार अब और तीर्थको आपसे कहतेहैं पुण्य-वाला कावेरी का सङ्गम तीनोंलोकों में विदितहै ॥ ४७ ॥ वहां कावेरी में स्नानकरने से स्वर्गको जातेहैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होवेंगे व चतुर्दशी मङ्गलको जब व्यतीपात होवे ॥ ४८ ॥ तब उस कावेरी के सङ्गममें हजार गुना पुण्य होताहै जो शस्त्रसे मारेगये हैं वे तिल मिले जलके दान से और एकोद्दिष्ट श्राद्ध से स्वर्गलोक

थैवै तथाचामरकण्टकम् ॥ ४५ ॥ स्वर्गदंमोक्षदंविद्धि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ वैदूर्यपर्वतेसिद्धो मान्धाताचकृतेयुगे ॥ ४६ ॥ कथितोनृपशार्दूल तथान्यत्कथयामिते ॥ कावेरीसङ्गमःपुण्यः सर्वलोकेषुविश्रुतः ॥ ४७ ॥ तत्रस्नानाद्दिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ कावेर्य्यांभूतजाभौमे व्यतीपातोयदाभवेत् ॥ ४८ ॥ सहस्रगुणितंपुण्यं भवेत्तस्यास्तुसङ्गमे ॥ शस्त्रेणनिहतायेवै तिलमिश्राम्बुदानतः ॥ ४९ ॥ तेचैकोद्दिष्टश्राद्धेन स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥ चाण्डालाद्गुहकात्सर्पाद्विद्युतोब्राह्मणादपि ॥ ५० ॥ दंष्ट्रिभ्यश्चपशुभ्यश्चमरणंपापकर्मिणाम् ॥ सर्वेतेनृपशार्दूल कावेरीसङ्गमेशुभे ॥ ५१ ॥ श्राद्धस्यकरणात्सत्यं तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ कुबेरेणतपस्तप्तं दिव्यंवर्षसहस्रकम् ॥ ५२ ॥ आराधितःपूजितश्च लोकनाथउमापतिः ॥ शिवप्रसादसम्पन्नो लोकपालत्वमाप्तवान् ॥ ५३ ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणांस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि देवराज्यमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ अवशःस्ववशोवापि प्राणत्यागंकरोतियः ॥ दशवर्षसहस्राणि राजा

को पाते हैं चाण्डाल, भील, सर्प, बिजली, ब्राह्मण ॥ ४९ । ५० ॥ और दाढ़वाले पशुओं से पापकर्मियोंका मरण होता है वे सब जीव हे नृपशार्दूल ! पवित्र कावेरी के सङ्गम में ॥ ५१ ॥ श्राद्ध करने से तृप्तहोकर सत्यही परमगति को प्राप्त होते हैं कुबेर करके देवताओं के हजार वर्षतक तप कियागया ॥ ५२ ॥ व लोकों के नाथ, पार्वतीपति शिवजी आराधन व पूजन कियेगये तब महादेव के प्रसादसे युक्त कुबेर लोकपालपनेको प्राप्तहोतेहुये ॥ ५३ ॥ वहा जो प्राणोंको त्यागता है उस के पुण्यफलको सुनो कि साठहजार वर्षतक वह देवताओं की राज्यको पाता है ॥ ५४ ॥ परवश व अपने वशहोकर जो प्राणत्याग करता है वह दश हजार वर्षतक

विद्याधरोंके पुर में राजा होता है ॥ ५५ ॥ नर्मदा और कावेरीके जलोंसे और वनके तिलोंसे तृप्त कियेहुये पितर तृप्त होकर परमगतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ५६ ॥ अनेक हजार धाराओं से कावेरी पृथिवी में प्रसिद्ध है जैसे वायु अथवा सूर्यकी किरणोंकरके चराचर व्याप्त है ॥ ५७ ॥ इसीतरह कावेरी के जलसे पृथिवीतल व्याप्तहै व नर्मदाके दक्षिणतट में वाराह व विन्ध्याचल में ॥ ५८ ॥ सब देवताओं को प्रत्यक्ष दीखती है जहां से पयोष्णी नदी निकली है जोकि चन्द्रमा की कन्या है और चन्द्रमा के भीतर विद्यमान ठण्ढापन के बराबर ठण्ढी है ॥ ५९ ॥ पार्वती की मूर्ति पयस्विनी नदी पूर्वकाल में महादेव करके आराधन कीगई ॥ ६० ॥ लोकों के

वैद्याधरेपुरे ॥ ५५ ॥ रेवाकावेरिकैस्तोयैस्तिलैरारण्यकैस्तथा ॥ पितरस्तर्पितास्तत्र तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ ५६ ॥ नानामुखसहस्रैस्तु कावेरीप्रथिताभुवि ॥ चराचरंयथाव्याप्तं वायुनासूर्यरश्मिभिः ॥ ५७ ॥ तथातोयेनकावेर्या व्याप्तं चवसुधातलम् ॥ नर्मदादक्षिणेकूले वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ ५८ ॥ प्रत्यक्षासर्वदेवानां पयोष्णीनिर्गतायतः ॥ सोमस्यदु हिताचासीद्धिमगर्भेन्दुशीतला ॥ ५९ ॥ हरेणाराधितापूर्वमुमामूर्तिःपयस्विनी ॥ ६० ॥ लोकानांतारणार्थाय सोमग ङ्गेतिगीयते ॥ ६१ ॥ विनिष्क्रान्ताशरीराच्च वाराहस्ययशस्विनः ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन् भवेन्नैनपुनर्भवेत् ॥ ६२ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितरस्तस्यभारत ॥ दशायुतसहस्राणि लोकेक्रीडन्तिशाङ्करे ॥ ६३ ॥ कार्त्तिक्यांयत्फलंतस्य वा राहेविन्ध्यपर्वते ॥ संख्यानशक्यतेस्नानादत्रवर्षशतैरपि ॥ ६४ ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ तत्रयद्दी यतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६५ ॥ येचार्चयन्तिवाराहं नतेप्राकृतमानुषाः ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र शिवलोकमवाप्नु

तारने के वास्ते जो सोमगंगा नाम से कहीजाती है ॥ ६१ ॥ जोकि यशस्वी वाराहपर्वत के शरीर से निकली है हे राजन्! उसमें स्नानकरके मनुष्य निश्चय से फिर संसार में नहीं होता है ॥ ६२ ॥ हे भारत! तिलोदकके देने से उस देनेवाले के पितर लाख वर्षतक शिवलोक में विहार करते हैं ॥ ६३ ॥ वाराह व विन्ध्याचल पर कार्त्तिकीमें यहां पयोष्णी बिषे स्नान करनेसे जो फल होताहै उसकी गिनती सैकड़ों वर्षसे भी नहीं होसक्ती है ॥ ६४ ॥ स्वामिकार्त्तिक करके कहेगये पुराण में पूर्व कालमें यह महादेवजीने कहाहै और वहां जो दान दियाजाताहै उसकी भी संख्या नहीं है ॥ ६५ ॥ वाराहका जो पूजन करते हैं वे साधारण मनुष्य नहींहैं वहां प्राण

त्याग किये पर शिवलोक को प्राप्तहोते हैं ॥ ६६ ॥ चन्द्रग्रहण के समय वाराह व विन्ध्याचल में कुरुक्षेत्र के बराबर पुण्यको पूर्वकाल में महादेवजीने कहाहै ॥६७॥ हे नृपश्रेष्ठ ! वाराह पर्वतसे लेकर पयोष्णीके सङ्गमतक जो बीचहै उसमें एक करोड़ तीर्थ कहेगये हैं ॥ ६८ ॥ वहां पयोष्णीके संगममें जो भँवरहै वह सोमावर्त कहा जाताहै वह जगह सब तरफ पवित्रहै यह आपसे सत्य कहागया है ॥ ६९ ॥ पापों के हरनेवाले पयोष्णी के संगम में लिंगके दर्शन व वहां स्नान, दानकी जो पुण्य है उसकी संख्या करने से नहीं होसक्ती है ॥ ७० ॥ हे नृप ! चन्द्र व सूर्यके ग्रहण में तापी और पयोष्णी का संगम कुरुक्षेत्रसे सौगुना पुण्यवाला महादेवकरके कहा

युः ॥ ६६ ॥ राहुसोमसमायोगे वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ कुरुक्षेत्रसमंपुण्यं पुरावैशङ्करोऽब्रवीत् ॥ ६७ ॥ गिरेरारभ्यवाराहा त्पयोष्ण्याःसङ्गमावधि ॥ अत्रान्तरेनृपश्रेष्ठ तीर्थकोटिरुदाहृता ॥ ६८ ॥ पयोष्णीसङ्गमेतत्र सोमावर्तःसउच्यते ॥ स देशःसर्वतःपुण्यः सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ६९ ॥ पयोष्णीसङ्गमेपापहरेलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ तत्रस्नानस्यदानस्य सं ख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ ७० ॥ तापीपयोष्णीसंभेदश्चन्द्रसूर्यग्रहेनृप ॥ कुरुक्षेत्राच्छतगुणः शिवेनपरिकीर्तितः ॥ ७१ ॥ चतुर्भुजोहरिर्यत्र श्रीपतिःपुरुषोत्तमः ॥ विष्णुक्षेत्रन्तुविज्ञेयं क्रोशमात्रन्तुतन्नृप ॥ ७२ ॥ आश्विनस्यतुमासस्य कृ ष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ अमावास्यासिनीवाली पर्वाण्येतान्यनुक्रमात् ॥ ७३ ॥ चतुर्दश्याञ्चतुर्योगे पीयूषंवहतेनृप ॥ पित रस्तृप्तिमायान्ति दिनेतस्मिन्नसंशयः ॥ ७४ ॥ सूर्यग्रहेकुरुक्षेत्रे यत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ तापीपयोष्णीसम्पर्के तत्फलं परिकीर्तितम् ॥ ७५ ॥ दीपोत्सर्गेतुकौमुद्यां फलंसंख्यानविद्यते ॥ पुरुषश्चक्रवर्तीस्याद्दीपंतत्रचकारयः ॥ ७६ ॥ कार्त्ति

गयाहै ॥ ७१ ॥ जहां लक्ष्मीके पति, पुरुषोत्तम, चार भुजावाले, हरिभगवान् विद्यमानहैं हे नृप ! वह एककोसभर का विष्णुक्षेत्र जानने के योग्य है ॥ ७२ ॥ कुँवार के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अथवा सिनीवाली अमावसये क्रमसे पर्वहैं इनमें हे नृप ! चतुर्दशी को वह चार तीर्थोंका संगम अमृत को बहाता है उस दिन निस्संदेह पितर तृप्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ७३ । ७४ ॥ सूर्यग्रहण के होनेपर कुरुक्षेत्र में जो पुण्य कहागया है वही तापी और पयोष्णी के संगम में कहागया है ॥ ७५ ॥ पूर्णमासी

को दीपदान करने में जो फल होता उसकी संख्या नहीं है जिसने दीपदान किया है वह पुरुष चक्रवर्ती होताहै ॥ ७६ ॥ कार्त्तिकी को अथवा कुँवार के महीनेके दोनों पाखोंमें एक मासतक जो भोजन नहीं करता उसके पुण्यफल को सुनो ॥ ७७ ॥ हे भारत ! जबतक चन्द्र, सूर्य, हिमालय और समुद्र रहते हैं तबतक स्वर्ग व विष्णुलोक में वास करता है ॥ ७८ ॥ नर्मदा के दक्षिण में पृथिवी फाड़कर पाताल से एक कुण्ड निकला है वह तीनों लोकों में कावेरीकुण्ड इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ७६ ॥ वहां केवल नहायाहीहुआ मनुष्य गणोंका राजा होताहै वहां देवता और सिद्धोंसे सेवित कुण्डेश्वर सिद्धलिंग है ॥८०॥ उस पवित्रलिंग का विनाजाने भी

क्यामाश्विनेमासि पक्षयोरुभयोरपि ॥ मासमेकंनभुञ्जीत तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ७७॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च हिमवां श्चमहोदधिः ॥ तावत्कालंवसेत्स्वर्गे विष्णुलोकेचभारत ॥ ७८ ॥ नर्म्मदादक्षिणेभित्त्वा पातालात्तुसमुत्थितम् ॥ कावे रीकुण्डमित्येवं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ७६ ॥ स्नातमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यमवाप्नुयात ॥ कुण्डेश्वरंसिद्धलिङ्गं सुरसिद्ध निषेवितम् ॥ ८० ॥ प्रमादात्कुरुतेयस्तु पूतलिङ्गस्यपूजनम् ॥ नतत्पुण्यस्यसंख्यास्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ८१ ॥ ति लोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ असंख्यकालिकातृप्तिः पितॄणांनास्तिसंशयः ॥ ८२ ॥ कावेर्यास्तुप्रभावेण न र्म्मदासङ्गमात्पुनः ॥ यज्ञावर्तोभवद्देशः सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ ८३ ॥ स्वयम्भुवानिलिङ्गानि, स्वर्गमोक्षप्रदानितु ॥ यत्रतत्रनरःस्नात्वा कावेर्यांनृपसत्तम ॥ ८४॥ अश्वमेधफलंप्राप्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ त्यक्त्वाप्राणांस्तुकावेर्यांकौबे रंलोकमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥ कौबेरेश्वरलिङ्गन्तु सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ कावेरीनर्म्मदामध्ये नतत्पश्यन्तिमानवाः ॥८६॥

जो पूजन करता है उसके पुण्यकी संख्या चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों के रहनेतक भी नहीं होसक्तीहै ॥ ८१ ॥ हे भारत ! तिलोदक व पिण्डदानसे असित कालतक पितरों की निस्सन्देह तृप्ति रहती है ॥ ८२ ॥ कावेरी के प्रभावसे और नर्मदा के संगम से वह जगह यज्ञ करनेके योग्य है यह महादेव का कहाहुआ सत्यहै ॥८३॥ स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले आपसे प्रकट हुये वहां अनेक लिंगहैं हे नृपसत्तम ! कावेरीमें मनुष्य जहां कहीं स्नानकर ॥ ८४ ॥ अश्वमेधके फलको पाकर विष्णुलोक में पूजाजाताहै और कावेरी में प्राणोंको छोड़कर कुबेर के लोकको पाताहै ॥८५॥ कावेरी और नर्मदा के बीचमें सब सिद्धियों का देनेवाला कौबेरेश्वर लिंगहै उसको

मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ ८६ ॥ वह देवता, दैत्य और नागकन्याओं करके पूजा जाताहै उस देवके पूजन से बारहों सूर्यों के समान तेजवाला ॥ ८७ ॥ सब पापोंसे छुटाहुआ शिवजी के लोक में पूजाजाता है कावेरी और नर्मदा के संगम में बाणलिंग स्थापित है ॥ ८८ ॥ संगमेश्वर नामसे प्रसिद्ध जो पूर्वकाल में कुबेरकरके देखागया है उस देवके पूजन से लोकपालों के पुरमें वास करता है ॥ ८९ ॥ चतुर्दशी मंगलको व्यतीपात व संक्रान्ति के होनेपर गंगा व यमुना के संगम मे जो फल कहागया है ॥ ९० ॥ वही चन्द्रग्रहण में आठगुना कहागया है और गंगा यमुना के संगम में जो अस्सीगुना है ॥ ९१ ॥ वही कावेरी और नर्मदा के योग

पूज्यतेसुरदैत्यैस्तु नागकन्याभिरर्च्यते ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य द्वादशादित्यसन्निभः ॥ ८७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ कावेरीनर्म्मदाभेदे बाणलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ८८ ॥ कुबेरेणपुरादृष्टं सङ्गमेश्वरनामतः ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य लोकपालपुरेवसेत् ॥ ८९ ॥ गङ्गायमुनसंभेदे यत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ भौमेतुभूतजायोगे व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ ९० ॥ राहुसोमसमायोगे तदेवाष्टगुणंस्मृतम् ॥ अशीतिश्चगणाःप्रोक्ता गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ ९१ ॥ कावेरीनर्म्मदायोगे बाणाअष्टगुणाःस्मृताः ॥ गङ्गाषष्टिसहस्रैस्तु क्षेत्रपालैःप्रपूज्यते ॥ ९२ ॥ तदर्द्धैरन्यतीर्थानि रक्ष्यन्तेनात्रसंशयः ॥ अमरेश्वरयाम्येतु लिङ्गंचैवजलेश्वरम् ॥ ९३ ॥ दर्शनात्तस्यलिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ लक्षैश्चरक्षिता देवैर्नर्म्मदासप्तकल्पगा ॥ ९४ ॥ धन्विभिःषष्टिपुरुषैः सहस्रैश्चयुधिष्ठिर ॥ ॐकारंशतसाहस्रया पर्वतोलिङ्गमेवच ॥ ९५ ॥ अन्यदेशेकृतंपापं पुण्यक्षेत्रेविनश्यति ॥ पुण्यक्षेत्रेकृतंपापं वज्रलेपोभविष्यति ॥ ९६ ॥ क्षणमात्रेणदुःखेन

में अस्सीसे आठगुना है साठहजार क्षेत्रपालों से गङ्गाजी पूजीजाती हैं ॥ ९२ ॥ उनके आधे और तीर्थोंकी रक्षा करते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है अमरेश्वर के दक्षिण में जलेश्वर लिंगहै ॥ ९३ ॥ उस लिंगके दर्शन से गणोंका स्वामी होता है सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा की एक लाख देवता रक्षा करते हैं ॥ ९४ ॥ और भी मनुषको घरेहुये साठि हजार पुरुष हे युधिष्ठिर ! नर्मदाको रखाते हैं एकलाख देवगण ॐकारनाथ लिंग व अमरकण्टक पर्वत की रक्षा करते हैं ॥ ९५ ॥ और

जगह कियागया पाप पुण्यस्थान में नष्ट होताहै और पुण्यक्षेत्र में कियागया पाप वज्रलेप होजाता है ॥ ९६ ॥ थोडीदेर के दुःखसे बड़े सुखको पाताहै ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकावेरीमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे नरव्याघ्र ! नर्मदा को फाड़कर प्रचण्ड वेगवाली महाभागा नदी निकलीहै मनुष्य उसमें स्नानकर ब्रह्महत्याको छोड़ता है ॥ १ ॥ उस तीर्थमें तिलोदक व खीर करके पिण्डदानसे घोरनरकसे पितरोंको उद्धार करताहै इसमें संशय नहीं है ॥ २ ॥ घोरकर्मोंके करनेवाले जो मनुष्य पापकी मौतसे मरे हैं

अत्यन्तसुखमश्नुते ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकावेरीमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ रेवांभित्त्वाचण्डवेगा महाभागाविनिःसृता ॥ तत्रस्नात्वानरव्याघ्र ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ १ ॥ तिलोदकंतत्रतीर्थे हविषापिण्डदानतः ॥ पितॄन्समुद्धरेद्घोरान्नरकान्नात्रसंशयः ॥ २ ॥ पापमृत्युमृतायेतु चण्डकर्मकृतोनराः ॥ मुच्यन्तेतेनपापेन चण्डवेगासमागमे ॥ ३ ॥ चण्डेश्वरंतत्रलिङ्गं सर्वदेवमयंशुभम् ॥ दर्शनात्पूजनादस्य पुष्पगन्धादिदानतः ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रैर्हि तत्क्षणादेवमुच्यते ॥ चन्द्रसेनःपुराचासीद्दुरात्मापापकर्मकृत् ॥ ५ ॥ परदाररतश्चौरो ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगः ॥ सोमवंशीचपापात्माऋषिपत्नीश्चब्राह्मणीम् ॥ ६ ॥ अन्याश्चयावैसुभगाः पतिंहत्वासमाहरत् ॥ नैमिषारण्यवासीच शाण्डिल्योब्रह्मवित्तमः ॥ ७ ॥ सौदामिनीतस्यभार्या धर्म्मपत्नीयशस्विनी ॥

वे चण्डवेगाके समागममें उस पापसे छूटजाते हैं ॥ ३ ॥ वहां सब देवताओंका स्वरूप पवित्र चण्डेश्वरलिंगहै उसके दर्शन व चन्दन, पुष्पआदि दानकरके पूजनसे ॥ ४ ॥ उसीक्षणमें हजारों ब्रह्महत्याओं से छूटजाताहै पूर्वकालमें पापकर्मों का करनेवाला बड़ा दुष्ट एक चन्द्रसेन राजा हुआ ॥ ५ ॥ औरोंकी स्त्रियों में रति करनेवाला, चोर, ब्राह्मणों का मारनेवाला, गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला ऐसा पापी वह चंद्रवंशी राजा ऋषियोंकी स्त्रियोंको तथा अन्य ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको ॥ ६ ॥ और भी जो सुन्दरी स्त्रियांथीं उनके पतियोंको मारकर लाताहुआ और नैमिषारण्यके रहनेवाले वेदके ज्ञाताओं में श्रेष्ठ एक शाण्डिल्य नाम के ब्राह्मणथे ॥ ७ ॥ उनकी बड़ी यशवाली

सौदामिनी नामकी धर्मपत्नी स्त्री होतीहुई, रूप और जवानी से संयुक्त चन्द्रमा के समान शोभावाली ॥ ८ ॥ प्रेम करनेके योग्य, भोजपत्रों को पहनेहुये, भारी और ऊंचेहैं कुच जिसके ऐसी उस स्त्री और उस चन्द्रसेन राजाके पुराने इतिहासको हम कहते हैं ॥ ९ ॥ कि घोड़ेपर सवार, जङ्गलमें मृगोंको खोजतेहुये वे राजा चन्द्रसेन नैमिषारण्यके वासी शाण्डिल्यजीके आश्रमको प्राप्तहुये ॥ १० ॥ उन राजा ने उस समयमें शाण्डिल्यजीकी प्यारी स्त्री सौदामिनीको देखा और उससे वचनबोले कि तू मेरी रानीहो ॥ ११ ॥ और भोजपत्रोंका धारण करनेवाला कुश और काशकी पवित्रियों का पहिरनेवाला कन्द, मूल और फलोंका खानेवाला ब्राह्मण तेरा पति

रूपयौवनसम्पन्ना चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥ ८ ॥ कामिनीवल्कलधरापीनोन्नतपयोधरा ॥ आख्यानंकथयिष्यामितस्यास्तस्यपुरातनम् ॥ ९ ॥ हयारूढश्चन्द्रसेनो नैमिषारण्यवासिनः ॥ शाण्डिल्यस्याश्रमंप्राप्तो वनेसम्मृगयन्मृगान् ॥ १० ॥ दृष्टासौदामिनीतेन शाण्डिल्यस्यप्रियातदा ॥ उवाचवचनंतांवै त्वंमेराज्ञीभवेदिति ॥ ११ ॥ वल्कलाजिनधारी च कुशकाशपवित्रकः ॥ कन्दमूलफलाशीच ब्राह्मणश्चपतिस्तव ॥ १२ ॥ किङ्करिष्यसितत्तेन ममभोगांश्चपुष्कलान् ॥ सर्वदामत्प्रसादेनभुङ्क्ष्वत्वंवरवर्णिनि ॥ १३ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा नृपतेःपापकर्मणः ॥ आहसौदामिनीवाक्यं चन्द्रसेनंनृपाधमम् ॥ १४ ॥ याचस्वमेपतिंराजंस्तस्याहंवशवर्तिनी ॥ शाण्डिल्यमब्रवीद्राजा ततोऽमूंवरयामिते ॥ १५ ॥ कन्यामिमाञ्चपत्नींतेचेदद्यत्वंददस्वमे ॥ मौल्येददामितेद्रव्यमस्याःशतसहस्रशः ॥ १६ ॥ शाण्डिल्यउवाच ॥ सर्वाःस्त्रियःकैतवबद्धमूलास्तासांप्रियोनास्तिमनुष्यलोके ॥ यथेष्टचेष्टोभवभूमिपालकिंमान्द्विजंपृच्छसिदुर्बलञ्च ॥ १७ ॥ कामान्धस्तुत

है ॥ १२ ॥ सो, उससे तू क्या करेगी हे वरवर्णिनि ! मेरी खुशीसे मेरे परिपूर्ण भोगोंको तू हमेशा भोगकर ॥ १३ ॥ उस पापकर्मवाले राजाके इस वचनको सुनकर राजाओं में अधम (नीच) चन्द्रसेन राजासे सौदामिनी वचन बोली ॥ १४ ॥ कि हे राजन्! मेरे पतिसे आप मुझे मांगो क्योंकि मैं उन्हींके वशमेंहूं तब राजा शाण्डिल्यसे बोले कि मैं तुमसे इसको मांगता हूं ॥ १५ ॥ थोड़ी अवस्थावाली इस अपनी स्त्रीको जो तुम मुझे देदेवो तो इसके मूल्यमें मैं तुम्हें हजारों का द्रव्य देऊंगा ॥ १६ ॥ तब शाण्डिल्यजी बोले कि हे भूमिपाल ! सब स्त्रियां छलका मूल होती हैं और मनुष्यलोकमें उनका प्यारा कोई नहीं है इससे आप जो चाहो वह करो मुझ दुर्बल

ब्राह्मणसे क्यों पूंछते हो ॥ १७ ॥ तदनन्तर कामसे अन्धा होरहा वह राजा उस समयमें उस स्त्रीका हाथ पकड़लिया तब वह स्त्री उस पापीको देखकर बड़े क्रोधसे झुल झुलाती हुई उससे बोली कि मैं रजस्वला हूं मुझको छूकर तू चाण्डाल होजायगा ॥ १८ ॥ तब प्राण जिसको प्यारे हैं और भयसे घबड़ानीहुई रजस्वला और नंगी उस स्त्रीको देखकर सब प्राणियोंको भय करनेवाला वह राजा उसी क्षणमें चाण्डाल होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सब देवता व मनुष्य बड़ाहाहाकार करतेहुये व वह राजा घोड़े पर सवार होकर अयोध्यापुरी में प्रवेश करताहुआ ॥ २० ॥ तब पुरवासी ब्राह्मण व राजपुत्र व रनिवास चाण्डालरूप उस राजा को देखकर राजा की निन्दा

तोराजा करेजग्राहतान्तदा ॥ सानिरीक्ष्याहतंपापं ज्वलन्तीतीव्रकोपतः ॥ रजस्वलाहंमांस्पृश्य चाण्डालस्त्वं भविष्यसि ॥ १८ ॥ तान्दृष्ट्वातादृशंनग्नां भयार्त्तप्राणवल्लभाम् ॥ चाण्डालस्तत्क्षणाज्जातः सर्वभूतभयावहः ॥ १९ ॥ हाहाकारंततश्चक्रुः सर्वेदेवाःसमानुषाः ॥ अश्वमारुह्यराजासावयोध्यामाविशत्पुरीम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वाचाण्डालरूपंतं ब्राह्मणाःपुरवासिनः ॥ राजपुत्रामहीपाल स्वान्तःपुरनिवासिनः ॥ २१ ॥ बभूवुर्भयभीताश्च गर्हयन्तोमहीपतिम् ॥ वशिष्ठंशरणंप्राप्तः शोचित्वाचात्मनस्तनुम् ॥ २२ ॥ राजाविषण्णवदन उवाचस्वपुरोहितम् ॥ जगामाहसमुद्देशंनैमिषारण्यवासिनम् ॥ २३ ॥ शाण्डिल्यञ्चनमस्कृत्य साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ अब्रवन्देहिभार्यांस्वां वित्तेनबहुलेनमे ॥ २४ ॥ शाण्डिल्यस्यतुपत्न्यावैतयाशप्तोहमन्तिके॥श्रुत्वातस्यचरित्रंच पापस्यभोनराधिप ॥ २५ ॥ वशिष्ठोप्यब्रवीद्वाक्यं चन्द्रसेनंनराधिपम् ॥ शाण्डिल्यंगच्छराजेन्द्र तापसंऋतुगामिनम् ॥ २६ ॥ सौदामिनीमृषेर्भार्यां ज्वलन्तीमि

करतेहुये डरगये राजा भी अपने शरीर का शोचकर वशिष्ठ की शरण को प्राप्तहुआ ॥ २१।२२ ॥ उतरे मुँहवाला राजा अपने पुरोहित से बोला कि मैं नैमिषारण्यवासी शाण्डिल्यमुनि के समीपगया और गिरकर साष्टांग नमस्कारकर उनसे कहा कि तुम बहुतसी द्रव्यलेकर मुझे अपनी स्त्रीको देवो ॥ २३।२४ ॥ तब शाण्डिल्यके समीप मेंही मुझे उनकी उसस्त्रीने शापदेदिया तब हे नराधिप! उस पापी के चरित्रको सुनकर ॥ २५ ॥ वशिष्ठजी चन्द्रसेन राजासे वचन बोले कि हे राजेन्द्र! ऋतुसमय में अपनी स्त्रीमें गमन करनेवाले तपस्वी शाण्डिल्यही के पास तुम जावो ॥ २६ ॥ और तेजसे प्रकाश करतीहुई शाण्डिल्यऋषिकी स्त्री सौदामिनी के पास भी जावो

तब राजा उन अपने पुरोहित के नमस्कारकर कहा कि ऐसाही हो यह कहकर ॥ २७ ॥ वह उस स्थानको गया और नैमिषारण्यवासी शाण्डिल्यजी को बार २ साष्टाङ्ग नमस्कार कर ॥ २८ ॥ भयसे डराहुआ राजा उन श्रेष्ठमुनिसे बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी स्त्री को चाहनेवाले मुझपर क्षमाकरो ॥ २९ ॥ अब तुम्हीं मेरे माता पिता हो रघुवंश को उद्धारकरो मैंने जो आज आपका अपकार किया था उसका फल मुझको मिला ॥ ३० ॥ तब उसकी पतिव्रता स्त्री सौदामिनी व ब्राह्मण प्रसन्न होकर बोले कि हे राजन् ! मार्कण्डेय मेरे पिताहैं और उन्हीं महात्माका मैं शिष्यहूं ॥ ३१ ॥ यहां नैमिषारण्यवासी मेरी स्त्री के वास्ते तुम प्राप्तहुये इससे हे नृप-

वतेजसा ॥ एवमस्त्विवतिचोक्कातं नमस्कृत्यपुरोधसम् ॥ २७ ॥ सजगामतमुद्देशं नैमिषारण्यवासिनम् ॥ शाण्डिल्यन्तुनमस्कृत्य साष्टाङ्गंचपुनःपुनः ॥ २८ ॥ अब्रवीत्तंमुनिश्रेष्ठं भयत्रस्तोनराधिपः ॥ क्षमस्वमेमुनिश्रेष्ठ त्वद्भार्यांप्रतिकामिनः ॥ २९ ॥ त्वंमातामेपिताचासि रघुवंशंसमुद्धर ॥ मयात्वपकृतंतेद्य तस्यप्राप्तंफलंहिवै ॥ ३० ॥ उवाचब्राह्मणः प्रीतो भार्याचैवपतिव्रता ॥ मार्कण्डेयःपिताराजञ्छिष्योहंतस्यधीमतः ॥ ३१ ॥ भार्यार्थमिहसंप्राप्तो नैमिषारण्यवासिनः ॥ त्वंतुगच्छनृपश्रेष्ठ चण्डवेगासमागमम् ॥ ३२ ॥ चण्डेश्वरंतमभ्यर्च्य तत्रस्नात्वानृपोत्तम ॥ अवाप्स्यसिपरं स्थानं मुक्तश्चास्माच्चकिल्बिषात् ॥ ३३ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा शाण्डिल्यस्यमहात्मनः ॥ शाण्डिल्यंचनमस्कृत्य तथासौदामिनींनृपः ॥ ३४ ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि चण्डवेगासमागमम् ॥ एवमुक्त्वागतस्तत्र समागत्यक्षमापतिः ॥ ३५ ॥ चण्डेश्वरंसमभ्यर्च्य तत्रस्नात्वाविधानतः ॥ दिव्ययानसमारूढः स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ ३६ ॥ सर्वपापविनिर्मु

श्रेष्ठ ! तुम चण्डवेगा के समागम को जावो ॥ ३२ ॥ वहां स्नानकर हे नृपोत्तम ! उन चण्डेश्वर का पूजनकर इस पापसे छुटेहुये उत्तम स्थानको प्राप्तहोवोगे ॥ ३३ । ३४ ॥ उन शाण्डिल्य महात्मा के इस वचनको सुनकर राजा शाण्डिल्य व सौदामिनी के नमस्कारकर कहा कि आपका कल्याणहो हम चण्डवेगा के समागम को जाते हैं यह कहकर चलागया और वहां जाकर राजा ॥ ३५ ॥ वहां समागम में स्नानकर और चण्डेश्वर का विधान से पूजनकर अप्सराओं के गणों

करके स्तुति कियाजाता दिव्यसवारी पर चढ़ाहुआ ॥ ३६ ॥ इस तीर्थके प्रभावसे सब पापोंसे छुटाहुआ चन्द्रसेन राजा क्षणमात्र में शिवके पुरको चलागया ॥ ३७ ॥
स्वारोचिष मन्वन्तर के पहले सत्ययुगके प्राप्त होने पर हजारों राजा इस स्थान में सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! यह चण्डवेगा का समागम तुमसे कहागया
इसके सुनने व कहने से गर्भहत्या नष्ट होजाती है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचण्डवेगामाहात्म्यवर्णनोनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर एरण्डी और नर्मदा के योगकोजावे जो तीसरी चण्डवेगा है स्वर्ग जानेके वास्ते नसेनीरूप सड़क है ॥ १ ॥ वहां

क्तस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ क्षणाच्छिवपुरंप्राप्तश्चन्द्रसेनोमहीपतिः ॥ ३७ ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥
भूतानांचसहस्राणि संसिद्धिंतत्रचान्वयुः ॥ ३८ ॥ एतत्तेकथितंराजंश्चण्डवेगासमागमम् ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापिभ्रूण
हत्याप्रणश्यति ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेचण्डवेगामाहात्म्यवर्णनोनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ एरण्डीनर्म्मदायोगं ततोगच्छेद्युधिष्ठिर ॥ तृतीयाचण्डवेगाच स्वर्गसोपानपद्धतिः ॥१॥ तत्रस्ना
त्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ २ ॥ अनेककालिकातृप्तिः पितॄणामुपजा
यते ॥ अमासोमसमायोगे राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ ३ ॥ एरण्डीसङ्गमस्थाने पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ एरण्डीश्वरलिङ्गन्तु स
र्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्य गन्धधूपैःप्रपूजयेत् ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु मोदतेशिवसन्निधौ ॥ ५ ॥ दर्श
नात्तस्यलिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ भद्ररुद्रेश्वरंनामलिङ्गंपरमसिद्धिदम् ॥ ६ ॥ भद्ररुद्रौपुराकल्पे गन्धर्वौभ्रात

स्नानकर स्वर्गको जाते हैं और जो मरेहैं वे फिर नहीं होतेहैं हे भारत ! तिलोदक व पिण्ड देने से ॥ २ ॥ अनेक कालतक पितरों को तृप्ति रहती है अमावस और
चन्द्रके योगमें तथा सूर्यग्रहण के होनेपर ॥ ३ ॥ एरण्डी के सङ्गम स्थानमें जो पुण्य होती है उसकी संख्या नहीं है और एरण्डीश्वर लिंग सब पापों का नाश करने
वालाहै ॥ ४ ॥ उसको केसर से लेपनकर चन्दन व धूपसे जो पूजनकरे तो देवताओं की हजार वर्षतक शिवके समीप आनन्द करता है ॥ ५ ॥ उस लिंगके दर्शनसे
गणोंकी राज्यको प्राप्तहोता है और परमसिद्धि का देनेवाला एक भद्ररुद्रेश्वरनामका लिंगहै ॥ ६ ॥ पहले कल्पमें भद्र व रुद्र नाम के गन्धर्व दोनों भाई होतेहुये वे

विधान से इस लिंगका पूजनकर विद्याधरों के पुरको जातेहुये॥ ७ ॥ पिता और पितामह इस गाथाको गाते हैं कि हे भारत! तिलोदक व पिण्डदानसे चौदह मन्वन्तरभर रुद्रलोक में वास करता है जो मनुष्य अस्त्रसे मारेगये अथवा अपने प्रारब्धसे पापकी मौत से मरेहैं॥ ८।९॥ हे भारत ! वे चतुर्दशी में श्राद्ध करने से व वृषोत्सर्ग से वीरलोक को प्राप्तहोकर वहां विहार करते हैं॥ १० ॥ वहां अपने वश व परवश होकर जो प्राणोंको त्यागताहै वह इस तीर्थ के प्रभावसे फिर इस संसार में नहीं होता है ॥११॥ और चारहजार युगभर विद्याधरोंके पुरमें राजा होताहै हे अनघ! अब और आख्यानको कहेंगे जैसा पूर्वकालमें देखाहै॥ १२ ॥ हे विशांपते ! पहले

रौतथा ॥ तमभ्यर्च्यविधानेन गतोवैद्याधरंपुरम् ॥ ७ ॥ गायन्तिपितरोगाथां तथैवचपितामहाः ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ ८ ॥ वसेन्मन्वन्तराणीह , रुद्रलोकेचतुर्दश ॥ अस्त्रेणतुहतायेवै दैवात्पापमृतानराः ॥ ९ ॥ चतुर्दश्यान्तुश्राद्धेन वृषोत्सर्गेणभारत ॥ वीरलोकमवाप्यैव तत्रक्रीडन्तिमानवाः ॥ १० ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सभवेनपुनर्भवेत्॥ ११ ॥ चतुर्युगसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथादृष्टंपुरानघ ॥ १२ ॥ चाक्षुषेचान्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ निमिर्नामपुराराजा चक्रवर्तीविशाम्पते ॥ १३ ॥ पक्षियोनौचसंप्राप्तःकोपाद्वैब्राह्मणस्यच ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्दर्शसोमसमागमे ॥ १४ ॥ स्नात्वासन्त्यज्यतांयोनिं राज्यंकृत्वादिवंगतः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथंसराजासंप्राप्तो मानुषीञ्चतनुंपुनः ॥ १५ ॥ एतदाश्चर्यभूतंमे कथयस्वमहामते ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सुकन्यांनामकन्यांवै ययाचेच्यवनोनृपम् ॥ १६ ॥ राज्ञीचन्द्रवतीनाम निमे

कल्पके चाक्षुष मन्वन्तर में सत्ययुगके प्राप्त होने पर पूर्वकालमें निमिनाम के चक्रवर्त्ती राजा होतेहुये॥१३॥ वे ब्राह्मण के कोपसे पक्षीयोनि में प्राप्तहुये सो अमावस और चन्द्रकेयोगमें स्नानकर इसतीर्थके माहात्म्यसे उस योनिको छोड़कर और राज्यकर स्वर्गको जातेहुये तब युधिष्ठिरजी बोले। कि वे राजा फिर मनुष्यशरीरको कैसे प्राप्त हुये ॥ १४ । १५ ॥ हे महामते ! इस आश्चर्यरूप वार्त्ताको मुझ से कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि एक समय में च्यवनमुनिने राजा निमि से उनकी सुकन्यानाम

की कन्याको मांगा ॥ १६ ॥ निमिराजाकी चन्द्रवती नामकी रानी पतिव्रता अपने प्राणोंसे भी प्यारी एक कन्या पैदा करतीहुई ॥ १७ ॥ एक समय में सुखसे बैठेहुये राजा अकस्मात् आयेहुये च्यवनमुनि को देख अर्घ और पाद्य से पूजन करतेहुये ॥ १८ ॥ और कहा कि आज आपके चरणकमलोंके दर्शन से मेरा जन्म सफल हुआ मैं आपके इस आगमन को बड़ा अनुग्रह समझताहूं इससे अब आप भोजन करनेको योग्य होतेहो ॥ १९ ॥ उन राजाके इस वचन को सुनकर च्यवनमुनि बोले कि धर्ममें तत्पर अपनी कन्याको जो मुझे स्त्रीके वास्ते देवोगे ॥ २० ॥ तो हे महीपाल ! हम भोजन करेंगे और जो न देवोगे तो तुम पापको पावोगे तब राजा

रासीत्पतिव्रता ॥ सापुत्रींजनयामास प्राणेभ्योपिगरीयसीम् ॥ १७ ॥ एकदापिनृपश्रेष्ठः सुखासीनोयदृच्छया ॥ आगतंच्यवनंदृष्ट्वा अर्घपाद्यैरपूजयत् ॥ १८ ॥ अद्यमेसफलंजन्म त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये भोजनंकर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रोवाचच्यवनोमुनिः ॥ कन्यांददासिचेन्मह्यं भार्यार्थंधर्मतत्पराम् ॥ २० ॥ तदाभोक्ष्येमहीपाल नोचेत्पापमवाप्स्यसि ॥ राजोवाच ॥ एकामेदुहिताब्रह्मन् राज्ञींयाचस्ववर्णिनीम् ॥ २१ ॥ कन्यादानेनशक्तोहं सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ततःश्रुत्वावचोराज्ञीं मुनिर्वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कन्यांदेहिचमेराज्ञि गृहिणःपुत्रकारणात् ॥ प्रहस्यचाब्रवीद्राज्ञी नतेयोग्याद्विजोत्तम ॥ २३ ॥ अन्यदाचक्ष्वब्रह्मर्षे तद्ददामिनसंशयः ॥ ततःकोपाच्छशापैनां पक्षियोनिन्तुगच्छसि ॥ २४ ॥ शापंश्रुत्वाततोराज्ञीशशापाथमहामुनिम् ॥ यदिमेविद्यतेसत्यं भर्तृभक्तिश्चनिश्चला ॥ २५ ॥

बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरे एकही कन्या है इससे आप श्रेष्ठ रानीसे मांगो ॥ २१ ॥ कन्याके देनेमें मैं नहीं समर्थ होसक्ताहूं यह आपसे सत्यकहताहूं इस वचनको सुन कर फिर च्यवनमुनि रानी से वचन बोले ॥ २२ ॥ कि हे राज्ञि ! मुझ गृहस्थ को पुत्रके वास्ते तुम अपनी कन्याको देवो तब हँसकर रानीने कहा कि हे द्विजोत्तम ! कन्या आपके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ इससे हे ब्रह्मर्षे ! और कुछ मांगो सो हम तुमको देंगी इसमें संशय नहीं है तदनन्तर च्यवन ने उस रानीको शाप दिया कि तू पक्षी की योनिको प्राप्तहो ॥ २४ ॥ रानी शापको सुनकर आपभी महामुनि को शाप देतीहुई बोली कि जो मुझ में सत्य व निश्चल पतिकी भक्तिहो ॥ २५ ॥

और निरपराध मुझको शाप दियाहो तो तुम नेत्रों से हीन अर्थात् अन्धे होजावोगे आपसमें शापको प्राप्तहुये दोनों नर्मदाके तट में आये ॥ २६ ॥ एरण्डी के संगम में देवताओं की हजार वर्षतक च्यवन मुनि उग्रतपको करते हुये और बांबी से ढकजाते हुये ॥ २७ ॥ और अमरकण्टक पर्वतके पूर्व में मध्यारण्य नाम का वन कहा गया है उसी वनमें कदम्ब वृक्ष के नीचे वे दोनों स्त्री पुरुष राजा रानी ॥ २८ ॥ फूले फले जंगल में पक्षीरूप होगये और भी वहां हजारों पक्षी रहते ॥ २९ ॥ वे सब जातिस्मर अर्थात् पूर्वजन्मकी सुध रखनेवाले उत्तम मनुष्यकी वाणी बोलरहे ऐसे वे सारंग अर्थात् पपीहा नामके पक्षी हमेशा प्रसन्नचित्त रहतेहुये ॥ ३० ॥ तब

शप्तानिरपराधाहं नेत्रहीनोभविष्यसि ॥ परस्परंचतौशप्तौ नर्म्मदातीरमागतौ ॥ २६ ॥ चचारच्यवनश्चोग्रमेरण्डीसङ्गमेतपः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु वल्मीकेनतुपूरितः ॥ २७ ॥ गिरेर्वैपूर्वभागेतु मध्यारण्यमितिस्मृतम् ॥ कदम्बवृक्षमासाद्य वनेतस्मिंश्चदम्पती ॥ २८ ॥ पुष्पितेफलितेरम्ये संजातौपक्षिरूपिणौ ॥ अन्येपिपक्षिणस्तत्र समुद्भूताः सहस्रशः ॥ २९ ॥ जातिस्मराव्याहरन्तो मानुषींगिरमुत्तमाम् ॥ सारङ्गाःपक्षिणस्तेतु सर्वदाहृष्टमानसाः ॥ ३० ॥ ज्येष्ठेमासेतुसंप्राप्ते दावाग्निरदहद्वनम् ॥ प्रणष्टाश्चाण्डजाःसर्वे ज्वालामालाकुलीकृताः ॥ ३१ ॥ कोटरेतुसमालम्ब्य पुत्रैःसहयथासुखम् ॥ एकदागर्भिणीजाता पक्षिणीतत्रभारत ॥ ३२ ॥ भर्त्तारंपक्षिणीप्राह किन्त्वन्तिष्ठसिनिर्भयम् ॥ गताश्चपक्षिणःसर्वे किन्त्वंसंहारयिष्यसि ॥ ३३ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा खेचरोवाक्यमब्रवीत् ॥ भार्यान्त्यक्त्वासुतांश्चैव याम्येकाकीकथंप्रिये ॥ ३४ ॥ इतिलोकेनवेदेच दृष्टंकेनापिकुत्रचित् ॥ पाणिग्रहेणयाभार्या सुशीलाधर्म्मचारिणी ॥ ३५ ॥

तक जेठके महीने को प्राप्तहुये पर दावानलने सारे जंगलको जलादिया उसीमें अग्निकी लपटोंसे व्याकुल वे सब पक्षी भी भस्म होगये ॥ ३१ ॥ परन्तु वह राजाकी रानी जो पक्षिणी अर्थात् चिड़िया होगई थी सो अपने घोंसलेमें पुत्रोंके सहित बैठी हुई हे भारत ! ॥ ३२ ॥ अपने पतिसे कहा कि तुम कैसे निर्भय बैठे हुयेहो और सब पक्षी चले गये तुम क्या संहार करोगे ? ॥ ३३ ॥ उसके इस वचनको सुनकर पक्षी वचन बोला कि हे प्रिये ! मैं स्त्री और पुत्रोंको छोड़कर इकल्ले कैसे चलाजाऊं ॥ ३४ ॥ ऐसा

काम कहीं लोक व वेद में नहीं देखा गयाहै कि विवाह की रीति से जो धर्म की करनेवाली उत्तम स्वभावकी स्त्री होतीहै ॥ ३५॥ उसको छोड़कर जो मोहसे चला जाताहै वह भ्रूणघ्न अर्थात् गर्भका गिरानेवाला कहाजाताहै तब उसकी स्त्री बोली कि हे जीवेश ! कुलके मूलरूप अपनेको आप बचावो ॥३६॥ फिर भी आपकी और सैकड़ों व हजारों स्त्रियां होजावेंगी अपने पतिके जीतेहुये जो स्त्री और पतिको चाहतीहै ॥३७॥ वह दुराचार पापिनी स्त्री विष्ठामें कीडा होतीहै पतिसे हीन विधवा स्त्री जो अपने पतिके साथ सती नहीं होती है ॥ ३८ ॥ वह सौवर्ष भी जीवे परन्तु पापिष्ठाही कही जाती है और पति के जीतेहुये जो पति के आगे मरजाती है ॥ ३९ ॥ वह

त्यक्त्वागच्छतितांमोहाद् भ्रूणघ्नःसतुकीर्तितः ॥ पत्निरुवाच ॥ आत्मानंरक्षजीवेश मूलभूतंकुलस्यतु ॥ ३६ ॥ भूयोन्यास्तेभविष्यन्ति भार्याःशतसहस्रशः ॥ जीवमानेतुयापत्यावन्यंकामयतेवरम् ॥ ३७ ॥ सापापिष्ठादुराचाराविष्ठायांजायतेकृमिः ॥ विधवाभर्तृहीनायानुगतानस्वकंपतिम् ॥ ३८ ॥ जीवेद्वर्षशतंयावत्सापापिष्ठाप्रकीर्तिता ॥ पत्यौजीवतियानारी म्रियतेभर्तुरग्रतः ॥ ३९ ॥ भर्तृदत्तोदकश्राद्धैःसायातिपरमाङ्गतिम् ॥ प्रसादाद्यस्यलभ्येत पुत्रालङ्कारकीर्तयः ॥ ४० ॥ कोन्यःप्रियतरस्तस्मादिहलोकेपरत्रच ॥ स्वयंप्राप्तस्तुदावाग्निः शीघ्रंगच्छकथंसुतान् ॥ ४१ ॥ त्यक्त्वागच्छामिजीवेश संहारोवर्ततेधुना ॥ हस्तौपादौनविद्येते पावकोनैवशाम्यति ॥ ४२ ॥ अशक्तानीयमानेतु पक्षिणश्चाण्डजीविनः ॥ सुतांस्त्यक्त्वातुयामाता भयार्तायातिगर्हिता ॥ ४३ ॥ सासप्तजन्मपर्यन्तं सर्पिणीजायतेध्रुवम् ॥

पति के दिये हुये जल व श्राद्धों से परमगति को प्राप्त होती है जिस पति के प्रसादसे लड़के, गहने और कीर्त्ति मिलती है ॥ ४० ॥ उससे अधिक इस लोक व परलोक में और दूसरा प्यारा कौन होसक्ता है इससे दावानल आपही प्राप्त होगया है सो तुम बहुत शीघ्र चलेजावो और मैं लड़कोंको छोड़कर हे जीवेश ! कैसे जाऊं अब इस समयमें संहार होरहा है लड़कोंके हाथ पावँ अभी ठीक नहीं हुये हैं और अग्नि बुझती नहीं है ॥ ४१ ।४२ ॥ अण्डोंसे जीतेहुये बच्चे लेचलने में अशक्त हैं लड़कोंको छोड़कर भयसे पीड़ित जो नालायक माता चलीजाती है ॥ ४३ ॥ वह सात जन्मोंतक निश्चय करके सांपिनि होतीहै यह कहकर फिर वहीं वे दोनों स्त्री

पुरुष आपस में लड़कों की जोडी २ को बड़ेयत्न से लेकर एरण्डी के समागम में बिठाकर पति स्त्रीसे बोला ॥ ४४ ।४५ ॥ कि हे प्रिये! अभी मैं और पुत्रोंको लानेके वास्ते जाताहूं तबतक तुम खाऊजीवों से मेरे बच्चों को बड़ेयत्नसे बचाये रहना ॥४६॥ ऐसे कहकर वह पक्षी कदम्बमें वर्तमान अपने घोंसलेको जाताहुआ तब वहां उसने अपने मकानको अग्निसे जलताहुआ देखा ॥ ४७ ॥ पुत्रोंके वास्ते स्नेह से जलतेहुये मकानमें पैठगया उसीसमयमे अग्निने वृक्ष व लड़कोंके सहित उसको जलादिया ॥ ४८ ॥ उस अग्निसे जलाहुआ वह पक्षी अग्निरूपही होगया उस जंगलके जलजानेपर वर्षाकाल प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ हे नृप! वह सब वहां एरण्डी

एवमुक्त्वातुतत्रैव पुत्राणाञ्चपरस्परम् ॥ ४४ ॥ सासंगृह्यप्रयत्नेन युग्मंयुग्मंचदम्पती ॥ संस्थाप्यैरण्डिकायोगे भर्ता भार्यामुवाचह ॥ ४५ ॥ दंष्ट्रिभ्यश्चप्रयत्नेन रक्षणीयाःसुताःमम ॥ गच्छामिचसुतानन्यानानेतुंसाम्प्रतंप्रिये ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वागतःपक्षी कदम्बाश्रितमन्दिरम् ॥ सोपश्यद्दैतदातत्र मन्दिरंवह्निसंकुलम् ॥ ४७ ॥ स्नेहात्प्रविष्टःपुत्रार्थी ज्वालामालावृतंगृहम् ॥ तंददाहतदावह्निः ससुतंसमहीरुहम् ॥ ४८ ॥ दग्धस्तुवह्निनातेन वह्निपुञ्जइवाभवत् ॥ भस्मीभूते वनेतस्मिन् प्रावट्कालःसमागतः ॥ ४९ ॥ एरण्ड्यन्तर्जलेतत्र सर्वंतत्प्लावितंनृप ॥ अमासोमसमायोगे पक्षिणस्तस्य चास्थिवै ॥५०॥ एरण्ड्याःसङ्गमेप्राप्तं दैवाद्दैनृपसत्तम ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु दिव्ययानंसमाश्रितः ॥ ५१ ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ दिव्यवस्त्रपरीधानोदिव्यालङ्कारभूषितः ॥ ५२ ॥ उपरिव्याहरन्भार्यां सजगामात्मनःपुरीम् ॥ आगच्छसुभगेशीघ्रं भार्यात्वंमेभविष्यसि ॥ ५३ ॥ सिद्धविद्याधरैर्यक्षैः साधुवादेनपूजितः ॥ पुष्पवृष्टिः

के जलमें डूबगया हे नृप! अमावस और सोमके योगमें उस पक्षीकी हड्डी ॥५०॥ दैवयोगसे एरण्डी के संगम में प्राप्तहुई हे नृपसत्तम! वह पक्षी उसीक्षण में दिव्य देहवाला दिव्यसवारी पर सवार ॥ ५१ ॥ छाताको लगायेहुये, अप्सराओं से हवा कियाजाता हुआ, दिव्यकपड़े पहनेहुये और दिव्य गहनोंसे भूषित ॥ ५२ ॥ ऊपर से अपनी स्त्री से कहताहुआ वह अपनी पुरीको चलागया कहता है कि हे सुभगे! तुम शीघ्रही आवो मेरी स्त्री होवोगी ॥५३॥ सिद्ध, विद्याधर और यक्षोंकरके प्रशंसा

कियागया और उसपर इन्द्रकरके बरसाई हुई फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इसी अन्तर में फिर भी वह अपनी स्त्री से बोला कि कन्याके वास्ते च्यवन महात्माने तुझको शापदियारहा ॥ ५५ ॥ सो तू धर्मात्माओं के मन्दिर को प्राप्तहोकर अपने शरीर को छोंडदे इस प्रकार आकाशवाणी से राजाकरके सुध कराईगई उस पुरको प्राप्तहुई ॥ ५६ ॥ और अपने पुत्रोंको लेकर आके पतिसे यह बोली कि जो गति मेरे पतिकी हो वही मेरी भी नित्य होवे ॥ ५७ ॥ तब उसका पति वचन बोला कि इस सोमवती अमावास्या को एरण्डीतीर्थ के सङ्गम में झटसे अग्निमें प्रवेशकर ॥ ५८ ॥ वहां जो तेरी हड्डी गिरेगी वही तुझको पापसे

पपातोच्चैर्देवराजोपकल्पिता ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन् पत्नीं भूयोपिचाब्रवीत् ॥ कन्यार्थंत्वंसुशप्तासि च्यवनेनम हात्मना ॥ ५५ ॥ मुञ्चात्मानमवाप्यत्वं भवनंधर्म्मचारिणाम् ॥ स्मारिताकाशवचसा नृपेणैवंपुरङ्गता ॥ ५६ ॥ सुतान्प्र गृह्यचागत्य भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ यागतिर्ममभर्तुःस्यात्सामेनित्यम्भविष्यति ॥ ५७ ॥ उवाचवचनंभर्ता शीघ्रंविश हुताशनम् ॥ अमासोमसमायोगे एरण्डीतीर्थसङ्गमे ॥ ५८ ॥ तत्रयत्पतितंचास्थि पापात्त्वान्तारयिष्यति ॥ एवमस्त्व तितंचोक्त्वा पक्षिणीसत्वरंतदा ॥ ५९ ॥ आहृत्यतृणकाष्ठानि सम्प्रदीप्यहुताशनम् ॥ ततोयानंसमारूढा भर्तुःसाच सुतैःसह ॥ ६० ॥ उमामहेश्वरंयद्वल्लक्ष्मीपतिश्चयथारमा ॥ तद्वच्चावापभर्त्तारं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ६१ ॥ एवंयानंस मारुह्य सभार्यस्तुतदानृपः ॥ चन्द्रसेनोदेवसेनो यज्ञसेनस्तथापरः ॥ ६२ ॥ त्रिभिःपुत्रैःपरिवृतो धर्म्मवृत्तिपरायणः ॥ विवेशनगरींरम्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ ६३ ॥ मुदापरमयायुक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ राज्यंकृत्वावर्षलक्षं ततः

छुडादेगी तब वह चिड़िया उस अपने पतिसे ऐसाही हो यह कहकर बहुत जल्द ॥ ५९ ॥ काठ व तृणोंको एकत्रितकर अग्निको जलाके जलगई तदनन्तर वह अपने पुत्रोंके सहित पतिकी सवारी पर सवारहुई ॥ ६० ॥ जैसे पार्वतीजी महादेव को पावें और जैसे लक्ष्मीजी विष्णुको पावें इसीतरह इस तीर्थके प्रभावसे वह अपने पतिको प्राप्तहुई ॥ ६१ ॥ उस समय इसतरह राजा अपनी रानीके सहित सवारी पर सवार होकर चन्द्रसेन, देवसेन वैसेही और यज्ञसेन ॥ ६२ ॥ इन तीनों अपने पुत्रोंसे युक्त, धर्मके करनेवाले, देवताओंकी बनाईहुई, रमणीक, अयोध्यानगरी में प्रवेश करतेहुये ॥ ६३ ॥ बड़े आनन्दसे युक्त अपने परिवार सहित लाख वर्षतक

प्राप्तःशिवालयम् ॥ ६४ ॥ एरण्डीश्वरमभ्यर्च्य एरण्ड्याःसङ्गमेनृप ॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि क्षत्रियाणांमहात्मनाम् ॥ ६५ ॥ गतानितत्रराजेन्द्र सत्यंवैशाम्भवम्पुरम् ॥ एतत्तेकथितंराजन्नाख्यानंवैपुरातनम् ॥६६॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापिगो सहस्रफलंलभेत्॥६७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेएरण्डीसङ्गममहिमानुवर्णनोनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ सुकन्यार्थेमुनिःशप्तश्चन्द्रवत्यामहामुने ॥ वल्मीकाच्चकथंमुक्तश्च्यवनःकाममोहितः ॥ १ ॥ पर लोकंकथंप्राप्तो ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ कथयस्वमहाबाहो परंकौतूहलंहिमे ॥२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुत्वंराजशार्दूल कथ्यमानंनिबोधमे ॥ निमिःपुत्रंचराज्येवै सूर्यसेनंनिवेश्यच ॥ ३ ॥ आदिदेशाथमतिमाञ्ज्येष्ठावैभगिनीतथा ॥ च्य वनायप्रदातव्या ब्राह्मणायनसंशयः॥४॥एरण्ड्याःसङ्गमेचेष्ट्वाहयमेधंमखोत्तमम् ॥सर्वयज्ञकृतंपुण्यंब्राह्मणायप्रदास्य सि॥५॥उक्त्वैवंसूर्यसेनन्तुसगतःशिवमन्दिरे॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा सूर्यसेनःप्रतापवान् ॥ ६ ॥ एवंसञ्चिन्त्यमनसा

राज्यकरके फिर शिवजी के लोकको जातेहुये ॥ ६४ ॥ हे नृप ! एरण्डीके समागम में एरण्डीश्वर का पूजन करके पचासी हजार महात्मा क्षत्रिय राजा ॥ ६५ ॥ हे राजेन्द्र ! वहां सत्यही शिवजी के पुरको जातेहुये हे राजन् ! यह पुराना आख्यान तुमसे कहागया ॥ ६६ ॥ इसके सुनने व कहने से एक हजार गोदानका फल पाताहै ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेएरण्डीसङ्गममहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! सुकन्या के वास्ते जिनको चन्द्रवती ने शाप दियाथा वे कामसे मोहित च्यवन मुनि बांबी से किस तरह छूटे ॥ १ ॥ और ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ वे ब्राह्मण परलोक को कैसे प्राप्त हुये सो हे महाबाहो ! आप मुझसे कहिये मुझे बड़ा आश्चर्य होता है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजशार्दूल ! तुम सुनो और मेरे कहने को समझो राजा निमि सूर्यसेन अपने पुत्रको राज्य में बिठाके ॥ ३ ॥ उसको आज्ञादी कि अपनी जेठी बहिनको च्यवन ब्राह्मण को देना इसमें कुछ संशय न हो ॥ ४ ॥ और एरण्डी के संगम में अश्वमेधयज्ञ को करके सब यज्ञकी पुण्य ब्राह्मणको देदेना ॥ ५ ॥ इसतरह सूर्यसेन से कहकर वह शिवजी के मकान को चलागया प्रतापवाला सूर्यसेन भी अपने पितासे ऐसाही हो यह कहकर ॥ ६ ॥ और मनसे विचारकर स

सर्वसम्भारसंवृतः ॥ सजगामसुरैःसार्द्धं कन्यामादायभूपतिः॥७॥ मण्डपांश्चैवयूपांश्च पञ्चयोजनविस्तरान् ॥ सच कारततोराजा पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥ ८ ॥ यज्ञस्तेनसमारब्धः समाप्तवरदक्षिणः ॥ रममाणासुकन्याच कन्याभिर्नृप तिस्वसा ॥ ९ ॥ श्रुत्वाशब्दंचवल्मीके कर्त्तुंक्रीडांसमाययौ ॥ तत्रापश्यन्मानुषंसा चक्षुर्हीनमधोमुखम् ॥ १० ॥ दृष्ट्वासा कण्टकेनैव विव्याधचगृहङ्गता ॥ हाहाकारोमहानासीत् किमेतदितिभारत ॥ ११ ॥ दुर्मनाःसूर्यसेनस्तु ब्राह्मणैःसहसत्व रम् ॥ आजुहावततोदेवावश्विनौपाकशासनम् ॥ १२ ॥ यज्ञंनिवर्तयामास यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ निवर्त्यचततोयज्ञं रा जापरमधार्मिकः ॥ १३ ॥ देवानभ्यर्चयामास च्यवनायमहात्मने ॥ दिव्यंचक्षुर्ददध्वंहि वपुःकान्तंनवंवयः ॥ १४ ॥ ए वमभ्यर्थितैर्देवैर्दत्तंचक्षुर्युधिष्ठिर ॥ रूपयौवनसम्पन्नं कामदेवसमंवपुः ॥ १५ ॥ ततःप्रसादयित्वासौ च्यवनंवाक्यमब्र वीत् ॥ तत्क्षमस्वमहाभाग यत्कृतन्तेसुकन्यया ॥ १६ ॥ गृहाणपाणिमस्यास्त्वं मुनेकोपंपरित्यज ॥ एवमभ्यर्थितो

सहित कन्याको लेकर देवताओं करके सहित राजा जाताहुआ ॥ ७ ॥ और अपने पिताकी आज्ञाको सुध करताहुआ पांच योजनतक फैलाववाले मण्डप व यज्ञके खम्भे बनवाये ॥ ८ ॥ समाप्तिमें उत्तम दक्षिणा जिसमें दीगई ऐसे यज्ञका उस राजाने प्रारम्भ किया राजाकी बहिन सुकन्या कन्याओं के साथ खेलतीहुई ॥ ९ ॥ बांबी में शब्द को सुनकर खेलने के वास्ते वहां चलीगई वहां उसने एक मनुष्यको देखा कि वह अन्धा है और अपना मुहँ नीचेको कियेहुये है ॥ १० ॥ वह देख कर उसको कांटे से छेददिया और आप अपने घरको चलीगई हे भारत ! उससमय में बड़ा हाहाकार हुआ कि यह क्या होगया ॥ ११ ॥ राजा सूर्यसेन बड़ा उदास होगया तदनन्तर बड़ी जल्दी से ब्राह्मणोंकरके सहित देवता अश्विनीकुमार व इन्द्रको बुलाया ॥१२॥ व विधिपूर्वक यज्ञको यथावत् समाप्त किया तदनन्तर परमधर्म का करनेवाला राजा यज्ञको समाप्तकर ॥ १३ ॥ देवताओं का पूजन किया और कहा कि च्यवन महात्मा के लिये दिव्यनेत्र और बहुत सुन्दर देह व नई उमर आपलोग देवें ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार याचना कियेगये देवताओंने नेत्र व रूप और जवानी से भरीहुई कामदेव के बराबर सुन्दर देहको देदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर च्यवनमुनि को प्रसन्नकर ये राजा वचन बोले कि हे महाभाग ! उस अपराध को आप क्षमाकरो जोकि आप के लिये सुकन्या ने कियाथा ॥ १६ ॥

हे मुने ! इसका हाथ आप पकड़ो यानी इसके साथ आप विवाहकरो और क्रोधको छोड़दो इसप्रकार राजाके कहनेपर मुनिने कहा कि अच्छा ऐसाही करेंगे ॥ १७॥ तदनन्तर यज्ञान्तस्नान के समाप्त होनेपर चण्डवेगा के समागम में. राजा विधिपूर्वक अपनी बहिन और मुनिकी जोड़ी को बिठाकर उन मुनिको यज्ञका फल देकर ॥ १८ ॥ सुकन्याका मनोहर विवाह करतेहुये वे दोनों स्त्री पुरुष लक्ष्मीनारायणके समान दिव्यरूपको धरेहुये ॥ १९ ॥ खुशी से बड़े २ नेत्र जिनके होरहे ऐसे वे दोनों स्त्री पुरुष वहां होगये राजा, सूर्यसेन वहां कन्याको मुनिको देकर अपने शहरको जातेहुये ॥ २० ॥ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले राजा सूर्यसेन अनेक भोगोंको

राज्ञा मुनिरोमित्युवाचह ॥ १७ ॥ ततश्चावभृथेयुग्मं चण्डवेगासमागमे ॥ संस्थाप्यविधिवद्राजा तस्मैदत्त्वाक्रतोःफलम् ॥ १८ ॥ चकारपाणिग्रहणं सुकन्यायामनोहरम् ॥ दिव्यरूपधरौतौतु लक्ष्मीनारायणाविव ॥ १९ ॥ संजातौदम्पतीतत्र हर्षेणोत्फुल्ललोचनौ ॥ दत्त्वाकन्यांमुनेस्तत्र सूर्यसेनःपुरंययौ॥२०॥बुभुजेविविधान्भोगाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ सूर्यसेनंसुकन्याञ्च च्यवनंशक्रमश्विनौ॥ २१ ॥ भोजनान्तेस्मरेद्यस्तु चक्षुस्तस्यनहीयते ॥ एतत्तेकथितंराजंश्चण्डैरण्डकसङ्गमम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नातोदिवंयातिनपुनर्गर्भमाविशेत् ॥ यजेतवाश्वमेधेन नीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ २३ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ बभ्रामसर्वतीर्थानि दुर्वासाश्चोग्रतापसः ॥ २४ ॥ पितृतीर्थसमागम्य पितॄणांहितकाम्यया ॥ तत्रस्नात्वार्चयित्वाच शूलपाणिपितामहम् ॥ २५ ॥ जलाञ्जलींकुशतिलां पितृपिण्डमवासृजत् ॥

भोगतेहुये, सूर्यसेन, सुकन्या, च्यवन, इन्द्र और अश्विनीकुमारको ॥ २१ ॥ जो भोजनके अन्तमें स्मरण करताहै उसके नेत्र नहीं जातेहैं हे राजन् ! यह चण्डा और एरण्ड का समागम तुमसे कहा ॥ २२ ॥ वहां स्नान करनेवाला स्वर्गको जाता है फिर गर्भ मे नहीं आता जो अश्वमेधयज्ञ करता व नीलबैल को छोड़ता वह भी उक्तफल को पाताहै ॥ २३ ॥ अब और दूसरे आख्यान को देखे व सुनेके अनुसार कहते है किसीसमय में उग्रतपके करनेवाले दुर्वासाजी सब तीर्थों में घूमतेहुये ॥ २४ ॥ पितरों के हितकी कामनाकरके पितृतीर्थ (गया) को जाकर और वहां स्नानकर महादेव व ब्रह्माका पूजनकर ॥ २५ ॥ जलाञ्जली, कुश, तिल और पितरों

को पिण्डदेतेहुये पिण्डको देकर बड़े आश्चर्य में होरहे दुर्वासाजी मुनियों से बोले ॥२६॥ कि हे मुनियो ! मैंने सुनाथा कि पितरलोग यहां पिण्डोंको हाथमें लेलेतेहैं सो हम आज नहीं देखते इससे हमारी तीर्थयात्रा व्यर्थ है ॥ २७ ॥ उन दुर्वासाको उग्रतापस जानकर वहां वे मुनिलोग बोले कि अमावस में दियेहुये पिण्डको पितरलोग हाथमें लेतेहैं ॥ २८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह बात सत्यहै वेदका कहना झूठ नहीं होसक्ता सो तवतक आप और तीर्थोंके देखने की इच्छा से अमावस को परखो ॥२९॥ तब दुर्वासा ब्रह्मर्षि कोप करतेहुये वचन बोले कि अब हम यहां न पिण्डदेवेंगे और न स्नान व दान करेंगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर मुनियोंमें उत्तम एरण्डजी

दत्त्वापिण्डंमुनीन्प्राह परंविस्मयमागतः ॥ २६ ॥ करेगृह्णन्तिपितरः पिण्डानीहमयाश्रुतम् ॥ तदद्यभोनप श्यामि तीर्थयात्रानिरर्थिका ॥ २७ ॥ तमुग्रतापसंज्ञात्वा प्रोचुस्तेमुनयस्तदा ॥ करेगृह्णन्तिपितरः पिण्डंदर्शेप्रकल्पि तम् ॥ २८ ॥ सत्यमेतन्मुनिश्रेष्ठ नान्यथावेदभाषितम् ॥ तद्दर्शंत्वप्रतीक्षत्वं तीर्थान्तरदिदृक्षया ॥ २९ ॥ चुकोपवैतदा विप्रऋषिश्चैवाऽब्रवीद्वचः ॥ अत्रनोपातयेपिण्डं स्नानंदानंकरोमिन ॥ ३० ॥ दुर्वासास्तुततःप्राह एरण्डंमुनिपुङ्गवम् ॥ करेकमण्डलुंकृत्वा जलपूर्णंमहामुनिम् ॥ ३१ ॥ शरीरंक्लिश्यसेकस्मात्तवात्रनिष्फलंतपः ॥ ॐकारंकल्पगांगच्छ गृ हीत्वैकंकमण्डलुम् ॥ ३२ ॥ एकःपितामहःपूज्यो गयायांप्रभुरव्ययः ॥ उक्त्वैवमृषिभिःसार्द्धं गिरिन्त्वमरकण्टक ॥ ३३ ॥ आजगाममहातेजागत्वातत्रचभारत ॥ ॐकारस्यार्चनंकृत्वा स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ ३४ ॥ नमःकालाय त्रिदेवायत्रिमूर्तये ॥ अव्यक्ताव्यक्तरूपाय अनन्तानन्तगामिने ॥ ३५ ॥ ऋग्यजुःसामरूपाय सर्वज्ञायनमोस्तु

मुनि दुर्वासाजी जलका भराहुआ कमण्डलु हाथमें लेकर बोले ॥३१॥ कि तुम अपने शरीरको क्यों क्लेश देतेहो तुम्हारा यहां तप करना निष्फलहै इससे केवल लेकर ॐकारनाथ व नर्मदा को जावो ॥ ३२ ॥ इस गया में एक अविनाशी, प्रभु, ब्रह्माही पूजन करने योग्य हैं इस प्रकार कहकर ऋषियों के सहित जी अमरकण्टक को ॥ ३३ ॥ आतेहुये हे भारत ! बड़े तेजवाले दुर्वासा जी वहां आकर ॐकारनाथका पूजनकर इस स्तोत्रको पढ़तेहुये ॥ ३४ ॥ कि काल देवताओंका स्वरूप, तीन मूर्त्तिवाले, देवके लिये नमस्कारहै देखाजाता और नहीं भी देखाजाताहै रूप जिनका व अन्त जिनका नहीं है और बहुत दूरतक

ज.नेवाले ॥ ३५ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनका रूपहै और सबके जाननेवाले हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है व हे संसारके पैदा करनेवाले, जगत् के स्वामी, पार्वती के पति ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ असुरोंके मारनेवाले, त्रिपुरासुरके मारनेवाले देव आपके लिये नमस्कार है सद्योजात और अघोर जिनके नामहैं ऐसे जीवोंके मालिक आपके लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ महाप्रलयके अग्निरूप जो रुद्र आपहो तिनका जयहो और महाप्रलयके मेघरूप जो आप हो तिनके लिये नमस्कार है नमस्कार है इन्द्रियोंके मालिक जो रुद्रहैं और जीवात्माओंके मालिक जो आपहैं तिनके लिये नमस्कारहै ॥ ३८ ॥ कल्याणके पैदा करनेवाले व सुखके पैदा करनेवाले आपकेलिये नमस्कारहै व शङ्कररूप आपके लिये नमस्कारहै हे ब्रह्मा,विष्णु और इन्द्रको वर देनेवाले ! तीन नेत्रवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ३९ ॥

ते ॥ भवोद्भवजगन्नाथ उमाकान्तनमोस्तुते ॥ ३६ ॥ असुरघ्नायदेवाय त्रिपुरघ्नायतेनमः ॥ सद्योजातस्तथाघोरः पुरुषेशायतेनमः ॥ ३७ ॥ जयकालाग्निरुद्राय संवर्तायनमोनमः ॥ हृषीकेश्वररुद्राय पुरुषेशायतेनमः ॥ ३८ ॥ नमः शम्भवायमयोभवाय शङ्करायनमोस्तुते ॥ ब्रह्मविष्णिवन्द्रवरद त्रिनेत्रायनमोस्तुते ॥ ३९ ॥ श्रीकण्ठनीलकण्ठायनमःसोमार्द्धधारिणे ॥ कपालमालिनेतुभ्यंनमःखट्वाङ्गधारिणे ॥ ४० ॥ नमःत्रिशूलहस्ताय नागाभरणभूषिणे ॥ नमःपिनाकिनेतुभ्यं महानाथनमोस्तुते ॥ ४१ ॥ शर्वायसर्वरूपाय चराचरनमोस्तुते ॥ जिह्वाचापल्यभावेनखेदितोसिमयाप्रभो ॥ ४२ ॥ क्षमस्वमेसुरेशान इहलोकेपरत्रच ॥ त्वत्समोनास्तिदेवेश कश्चिदन्यउमापते ॥ ४३ ॥

शोभावाला व कालाहै कण्ठ जिनका ऐसे आधे चन्द्रमाके धारनेवाले शिवजी के लिये नमस्कारहै व मुण्डोंकी मालाके पहिरनेवाले व मूड़के सहित मनुष्यकी रीरके धारण करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ४० ॥ त्रिशूलको हाथमें लिये व सांपोंकेगहनेको पहनेहुये तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे महानाथ ! पिनाक धनुषके धारनेवाले जो आपहो तिनके लिये नमस्कारहै॥ ४१ ॥ हे चराचरस्वरूप ! जगतके नाशकरनेवाले, सबका रूप तुम्हारेलिये नमस्कारहै हे प्रभो ! अपनी जीभकी चञ्चलतासे आपको मैंने कष्टित कियाहै ॥ ४२ ॥ सो हे सुरेशान ! इसलोक व परलोकमें मेरे अपराधको आप क्षमाकरो हे देवेश, उमापते ! आपके बराबर और कोई नहींहै॥४३॥

ॐकाररूप के धरनेवाले शिवजी इस दिव्यस्तोत्र को सुनकर इस वचन को कहा कि हे महाभाग ! तुम वरको मागो ॥ ४४ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हे देवेश ! जो आप मुझपर प्रसन्नहो और जो आपको मुझे वर देनाहै तो गयाजी के बराबर यह तीर्थ होजावे यही मुझको आप देवें ॥ ४५ ॥ तब ॐकारजी बोले कि हे तपोधन ! मेरे प्रसाद से यह सब आजही होजावे इन चराचर तीनों लोकोंमें अनहोनी भी तुम्हारे वास्ते होसक्ती है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उग्रतपस्वी दुर्वासा ब्राह्मण वरको पाकर अमरकण्टकपर्वतके पूर्वतरफ मुनियोंके सहित वसतेहुये ॥ ४७॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इसी अन्तरमें ब्रह्माजी से नारदजीने कहा कि उस दुर्वासा के कोप-

श्रुत्वास्तोत्रमिदंदिव्यं शिवॐकाररूपधृक् ॥ वरंवृणुमहाभाग इतिवाक्यमुवाचह ॥ ४४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ पितृतीर्थसमंतीर्थमेतदस्त्वितिदेहिमे ॥ ४५ ॥ ॐकारउवाच ॥ एतत्सर्वंभवत्वद्य मत्प्रसादात्तपोधन ॥ असाध्यमपिसाध्यन्ते त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ४६ ॥ एवंलब्ध्वावरंविप्रो गिरेर्वैपूर्वभागतः ॥ उवासमुनिभिःसार्द्धंदुर्वासाउग्रतापसः ॥ ४७ ॥ अत्रान्तरेनृपश्रेष्ठ ब्रह्माणंप्राहनारदः ॥ पितृतीर्थंगयानष्टा दुर्वासःकोपतस्ततः॥४८॥ आस्तेसनर्म्मदातीरे ॐकारेमरकण्टके॥नारदस्यवचःश्रुत्वाब्रह्मालोकानुकम्पया ॥४९॥ हंसयानंसमारूढो देवैःसहनृपोत्तम ॥ आजगामाश्रमंतत्र दुर्वासायत्रसंस्थितः ॥ ५० ॥ दृष्ट्वापितामहंदेवमेरण्डोमुनिपुङ्गवः ॥ कमण्डलुंसमादाय पादमूलेतुब्रह्मणः ॥ ५१ ॥ विनिक्षिप्ययथान्यायमर्घंदत्त्वाचतस्थिवान् ॥ कमण्डलुजलोद्भूतः प्रवाहोनर्मदांगतः ॥ ५२ ॥ ततःसम्पूज्यविधिवद्दुर्वासास्तंपितामहम्॥ब्रह्मोवाच ॥ उद्भवेद्यदितेतीर्थममासोमसमागमे ॥ ५३ ॥ इदानीं

से पितरों को तारनेवाली गया नष्टहोगई ॥ ४८ ॥ वह दुर्वासा नर्मदाके तटमें ॐङ्कार व अमरकण्टकमें रहतेहैं नारद के वचनको सुनकर लोकोंपर दयाके कारण से ब्रह्माजी ॥ ४९ ॥ हंसपर सवारहुये देवताओंके सहित हे नृपोत्तम ! जहां दुर्वासाजीथे उस आश्रम को आतेहुये ॥ ५० ॥ मुनियों में श्रेष्ठ एरण्डजी देव ब्रह्माजी को देखकर कमण्डलु लेकर ब्रह्माके चरणों में ॥ ५१ ॥ जल छोडकर व यथारीति अर्घ देकर खड़ेहोतेहुये कमण्डलु के जलसे पैदाहुई धारा नर्मदा को चलीगई ॥ ५२ ॥ तदनन्तर दुर्वासा भी उनब्रह्माजीका विधिपूर्वक पूजनकर बैठतेहुये तब ब्रह्माजी बोले कि जो तुम्हारा तीर्थ सोमवती अमावास्याको प्रभाववालाहो तो अच्छाहै ॥५३॥

परन्तु इससमयमें पितरोंका तीर्थ (गया) तो लोकों करके देखाही नहीं जाता है और आपका शाप हटाने के योग्य नहीं होसक्ता है इससे हमारे अभिप्राय को इस समय पूर्णकरो ॥ ५४ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हे पितामह ! आपके वचन से मैंने अपने शापको निवृत्त करदिया वहां गयामें पितरों का दर्शन होगा गया पितरोंके विसर्जन करनेवाली होगी ॥ ५५ ॥ हे पितामह ! आपके प्रसादसे उस तीर्थमें यह सब काम होगा हे नृप ! ब्रह्माजी उन दुर्वासाजी से ऐसाही हो यह कहकर स्वर्गको चलेगये ॥ ५६ ॥ देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजीके नमस्कारकर बड़े आनन्दसे युक्त उत्तम ब्राह्मणोंसे पूजन कियेगये ॥ ५७ ॥ मुनियों

पितृतीर्थन्तु जनैर्नैहोपदृश्यते ॥ अनिवर्त्यस्तुशापस्ते तत्पूर्णंकुरुसाम्प्रतम् ॥ ५४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ मयानिवर्तितःशापो वचनात्तेपितामह ॥ पितॄणांदर्शनंतत्र गयापितृविसर्ज्जिनी ॥ ५५ ॥ भविष्यतिप्रसादात्ते तस्मिंस्तीर्थेपितामह ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा दिवंब्रह्मायर्यौनृप ॥ ५६ ॥ नमस्कृत्यमहेशानं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ हर्षेणमहताविष्टःपूज्यमानोद्विजोत्तमैः ॥ ५७ ॥ दुर्वासास्तुमुनिश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तेनपुण्यतमंलोके तत्रैरण्डीसमागता ॥ ५८ ॥ एरण्डीश्वरलिङ्गन्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ पुण्यकर्मानुपश्येद्वा अमासोमसमागमे ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वातत्परमंलिङ्गं यमलोकंनपश्यति ॥ एतत्तुकथितंराजन् मयात्वांप्रतिभारत ॥ ६० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गच्छेन्माहेश्वरंपुरम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदुर्वासश्चरित्रेएरण्डीतीर्थवर्णनोनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥

में श्रेष्ठ दुर्वासाजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तिससे बड़ा पवित्र यह तीर्थहै यहां एरण्डी आईहै॥५८॥ देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये एरण्डीश्वर लिंगको सोमवती अमावस में बड़े पुण्यकर्मवाला मनुष्य देखता है ॥ ५९ ॥ इस उत्तम लिंगके दर्शनकर फिर मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है हे राजन्, भारत ! यह तुमसे मैंने कहा ॥ ६० ॥ इसके सुनने व कहने से महादेवजी के पुरको जाताहै ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेदुर्वासश्चरित्रेएरण्डीतीर्थवर्णनोनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेन्महाभाग रेवाशल्याविशल्ययोः ॥ तत्रस्नात्वादिवंयाति फलंयज्ञेश्वराज्ञया ॥ १ ॥ तत्रयज्ञेश्वरंलिङ्गं धूपेश्वरमनुत्तमम् ॥ सिद्धिदंमोक्षदंविद्धि नतेपश्यन्तिमानवाः ॥ २ ॥ तिलोदकप्रदानेन चान्न दानेनभारत ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥३॥ पौर्णमास्यान्तुसोमेवै व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ दानंयत्क्रियतेतत्र तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ भरतेनकृतस्तत्र हयमेधःपुरायथा ॥ तत्तेहंकथयिष्यामि शृणुकौन्तेयसाम्प्रतम् ॥ ५ ॥ भरतोनामराजासीत् सूर्यवंशेविशाम्पते ॥ प्रशशासमहाराज कृत्स्नंवैसमहीतलम् ॥ ६ ॥ यावत्तृणंविजानीया यावत्कीर्तिश्चभास्करः ॥ तावद्वैभरतक्षेत्रं सशैलवनकाननम् ॥ ७ ॥ एकदासनृपश्रेष्ठो यज्ञकर्मपरायणः ॥ भृगोर्दक्षिणभागेतु कुण्डमण्डपमण्डिताम् ॥ ८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णां यज्ञभूमिञ्चकारह ॥ गवांहिदशलक्षाणि सवत्सानांपयोमुचाम् ॥ ९ ॥ लक्षमेकंहयानांच दन्तिनामयुतंतथा ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि वासांसिविविधानिच ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा में विद्यमान शल्या और विशल्या तीर्थोंको जावे वहां स्नानकर स्वर्गको जाता है यह यज्ञेश्वर की आज्ञासे फल कहागयाहै ॥ १ ॥ वहां अत्युत्तम यज्ञेश्वर व धूपेश्वरलिंग है उनको सिद्धि व मोक्षके देनेवाले जानो उन्हें मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २ ॥ तिलोदक व अन्नके देने से हे भारत ! पितर तृप्तहोते हैं जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहते हैं ॥ ३ ॥ पूर्णमासी, सोमवार, व्यतीपात और संक्रान्ति में वहां जो दान कियाजाता उसके पुण्यफल को सुनो ॥ ४ ॥ भरतने पूर्वकालमें वहां अश्वमेधयज्ञ को जिस प्रकार किया सो हम तुमसे इससमय कहेंगे हे कौन्तेय ! तुम सुनो ॥ ५ ॥ हे विशाम्पते ! सूर्यवंशमें भरत राजा हुये सो हे महाराज ! वे सब पृथिवीतल की राज्य करते हुये ॥ ६ ॥ जहांतक तिनका व जहांतक यश व सूर्य हैं तहांतक पर्वत, जलों व जङ्गलों के सहित भरतही का क्षेत्र जानो ॥ ७ ॥ एक समय में वेही भरत राजा यज्ञकर्म करनेमें तत्पर हो भृगुपर्वतके दक्षिणतरफ कुण्ड और मण्डपोंसे शोभित ॥ ८ ॥ दश योजनकी लम्बी चौड़ी यज्ञके वास्ते भूमि बनातेहुये और बछड़ोंसहित दूधदेनेवाली दशलाख गौवें ॥ ९ ॥ एकलाख घोडे वैसेही दशहजार हाथी, मणि,

माणिक रत्न और अनेकतरहके कपड़े ॥ १० ॥ यह सब यज्ञका सामान लेकर सब सामान के सहित वेदकी ध्वनिने स्वर्ग और पृथ्वीको छूतेहुये गये ॥ ११ ॥ होमसे सातोलोकों के रहनेवाले देवताओं को तृप्त किया इस प्रकार बड़े तेजवाले राजा के यज्ञको वर्तमान होनेपर ॥ १२ ॥ यज्ञके बिगाडनेके वास्ते बड़े डरावने रूपवाले राक्षस माल्यवान्, सुमाली, सुकेशी, शङ्ख और दूषण ॥ १३ ॥ हजारों राक्षसों को लेकर शीघ्र आतेहुये तीनों लोकोंमें दारुण उन राक्षसोंने सब यज्ञकी चीजों को तोड़फोड दिया ॥ १४ ॥ व सब देवताओं और यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको नाश करदिया हे अनघ ! इस प्रकार राक्षसों ने जब यज्ञको बिगाड़ दिया तब ॥ १५ ॥

यज्ञोपस्करमादाय सर्वसम्भारसंवृतः ॥ वेदध्वनिनिनादेन दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ११ ॥ होमेनदेवतास्तृप्ताः सप्तलोकनिवासिनः ॥ एवंप्रवर्तितेयज्ञे राज्ञश्चामिततेजसः ॥ १२ ॥ यज्ञविध्वंसनार्थन्तु राक्षसारौद्ररूपिणः ॥ माल्यवांश्चसुमालीच सुकेशीशङ्खदूषणौ ॥ १३ ॥ राक्षसानांसहस्राणि समायातास्तुसत्वरम् ॥ भग्नानियज्ञवस्तूनि त्रिपुलोकेषुदारुणैः ॥ १४ ॥ प्रणष्टादेवताःसर्वा ऋत्विजश्चनिपातिताः ॥ एवंविनाशितेयज्ञे रक्षोभिश्चततोनघ ॥ १५ ॥ कोपाज्जज्वालराजापि हुताशनइवाहुतः ॥ जघानराक्षसान्सर्वान् गिरीन्वज्रधरोयथा ॥ १६ ॥ प्रणष्टान्भयभीतांश्च पतितान्धरणीतले ॥ राक्षसैर्निहतान्दृष्ट्वा ब्राह्मणान्ऋत्विजस्तथा ॥ १७ ॥ शोकाविष्टस्ततःप्राह भरतोदेवमन्त्रिणम् ॥ गुरुस्त्वंसर्वदेवानां त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं ममार्थेदेवकण्टकैः ॥ प्रायश्चित्तंमयाकार्यं किन्त्वंब्रूहिबृहस्पते ॥ १९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ विद्यासंजीवनीतेहं ददामिनृपसत्तम ॥ जीविताब्राह्मणादेवाः शशंसुर्देवमन्त्रिणम् ॥ २० ॥

बड़े कोपसे होमीहुई आगकी तरह राजा जलनेलगे और सब राक्षसों को मारा जैसे पहाडोंको इन्द्र ने माराहै ॥ १६ ॥ वैसेही मरे और भयसे डरेहुये पृथ्वीपर गिरे व राक्षसों से मारेहुये यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणों को देखकर ॥ १७ ॥ शोकसे भरेहुये भरत राजा बृहस्पति से बोले कि तुम सब देवताओं के गुरुहो और तीनों काल व तीनों वेदों के जाननेवालेहो ॥ १८ ॥ यह हमारे पीछे देवताओं के कण्टकरूप राक्षसोंसे ब्रह्महत्या आदि पाप होगयाहै सो हे बृहस्पते ! इसका क्या प्रायश्चित्त हमको करना चाहिये सो आप कहे ॥ १९ ॥ तब बृहस्पतिजी बोले कि हे नृपसत्तम ! हम तुमको संजीविनी विद्या देतेहैं उसी विद्यासे राजाने सबको जिला दिया

ततोनिवर्तितोयज्ञः समग्रवरदक्षिणः ॥ यूपमूलसमुद्भूता शल्याचैवविशल्यका ॥ २१ ॥ प्रविवेशमहाराज नर्म्मदांलोकपावनीम् ॥ ततोदेवाःसमारुह्य स्वंस्वंयानंदिवंययुः ॥२२॥ भरतोपिद्विजैःसार्द्धं प्रविवेशपुरींततः ॥ तेनशल्याविशल्याच विख्याताभुवनत्रये ॥ २३ ॥ भरतेश्वरलिङ्गञ्च ब्रह्मयोन्यांसमास्थितम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ २४ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य नविशेद्योनिसङ्कटे ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे शल्याविशल्यामाहात्म्यानुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ भृगुंपतन्तियेशूराः काङ्गतिंप्राप्नुवन्तिते ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्त्वेतत् कथयस्वमहामुने ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अनाशकेनभोराजन् भृगुगोग्रहसङ्गरैः ॥ प्राणांस्त्यजन्तियेशूरा गतिंतेषांनिबोधमे ॥ २ ॥ पृथक्पृथङ्निवासांश्च तेषांकर्म्माणिभारत ॥ चतुर्विंशतिकोट्यस्तु सप्तविंशतिरेवच ॥ ३ ॥ उभयातुपुराज्ञप्ता मध्यमोत्तम

जियेहुये ब्राह्मण व देवता बृहस्पति की प्रशंसा (तारीफ़) करनेलगे ॥ २० ॥ तदनन्तर सब अच्छी दक्षिणावाली यज्ञ समाप्तहुई वही यज्ञके खम्भा की जड़से शल्या और विशल्या ये दो नदी उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ सो हे महाराज ! लोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा में प्रवेशकिया तदनन्तर देवतालोग अपनी २ सवारीपर सवार होकर स्वर्गको चलेगये ॥ २२ ॥ भरतभी ब्राह्मणों के सहित अपनीपुरी में प्रवेश किया इसीसे शल्या विशल्या तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुई ॥ २३ ॥ ब्रह्मयोनि में भरतेश्वर लिंग विद्यमान है हे राजन् ! यह तुमसे देखे व सुनेके अनुसार कहा गया ॥ २४ ॥ इसके सुनने व कहनेसे योनिके सङ्कटमे नहीं आताहै ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशल्याविशल्यामाहात्म्याऽनुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥

राजा युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! भृगुके ऊपर चढ़कर जो शूर गिरते हैं वे किस गतिको प्राप्त होतेहैं सो हम सुना चाहते हैं आप कहें ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! अनशन, भृगुपात, गौवोंके पीछे और संग्राम से जो शूर प्राणोंको छोड़ते है उनकी गतिको मुझसे जानो ॥ २ ॥ उनके रहने के वास्ते जुदे २ स्थान और हे भारत ! उनके कामोंको कहते हैं चौबीस करोड़ और सत्ताईस ॥ ३ ॥ अव्वल और दोयम दर्जेवाली कन्याओंको पार्वतीजीने आगे आज्ञादीथी

कि इस तरहसे जो मनुष्य अपने प्राणोंको छोड़ें ॥ ४ ॥ मेरी दीहुई तुम सब उनके साथ अपनी खुशीसे भोगकरो अमरेश्वरमें जो मरेहैं अथवा अपने शरीर नाशकरने के वास्ते जो गिरतेहैं वे लोग ॥ ५ ॥ भृगुको देखकर ब्रह्महत्यासे छूटजातेहैं हे नृपश्रेष्ठ ! चौरासी भृगु जम्बूद्वीप में कहेगये हैं ॥ ६ ॥ उसी प्रकार और भी सात भृगु कहेगयेहैं ये सब स्वर्गकी उत्तम नसेनीहैं भैरवनामका उत्तम भृगु अमरकण्टकमें जाननेयोग्य है ॥ ७ ॥ उस भृगुमें शूद्र,क्षत्रिय, वैश्य,चाण्डाल और नीचलोग येही प्राणोंको छोड़ते हैं हे नृप ! वहां ब्राह्मणको मनाहै ॥ ८ ॥ जो वहां ब्राह्मण गिरताहै तो ब्रह्महत्या और अपनी हत्याका पाप उसे होताहै ॥ ९ ॥ व हे राजन्! चन्द्रग्रहण

कन्यकाः ॥ अनेनविधिनायेतु प्राणांस्त्यक्ष्यन्तिमानवाः ॥ ४ ॥ तांश्चभुङ्ध्वंमयादत्ता युष्माकंसुप्रसादतः ॥ अमरेश प्रमीताश्च भ्रंशितुंयेपतन्तिते ॥ ५ ॥ भृगुन्दृष्ट्वानृपश्रेष्ठ मुच्यन्तेब्रह्महत्यया ॥ चतुरशीतिभृगवो जम्बूद्वीपेप्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥ तथान्येसप्तनिर्दिष्टाः स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ भैरवस्तुभृगुश्रेष्ठो ज्ञेयस्त्वमरकण्टके ॥ ७ ॥ शूद्राश्चक्षत्रियावैश्या अन्त्यजाश्चाधमास्तथा ॥ एतेत्यजन्तिप्राणान्वै वर्जयित्वाद्विजंनृप ॥ ८ ॥ पतितोब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महाचात्महाभवेत् ॥ ९ ॥ द्वाविंशतिसहस्राणि राहुसोमसमागमे ॥ वर्षाणांजायतेराजन् राजाविद्याधरेपुरे ॥ १० ॥ ग्रस्तेतुराहुणासूर्ये द्विगुणंफलमश्नुते ॥ अवशःस्ववशोवापि जलपूरानलाहतः ॥ ११ ॥ म्रियतेयोभृगुंप्राप्य सविद्याधरराड्भवेत् ॥ भृगुर्भैरवरूपेण विन्ध्यकैलाससन्निभः ॥ १२ ॥ गर्हयन्तिभृगुंयेतु तेलिङ्गब्रह्मभेदिनः ॥ भैरवःक्षमतेतेषां नेतिस्कन्देनकीर्तितम् ॥ १३ ॥ संन्यासाच्चच्युतोविप्रो मातृहापितृहातथा ॥ स्वसृगःस्वस्नुषागश्च तथास्वज्ञातिगस्तथा ॥ १४ ॥ एते

में भृगुके ऊपरसे गिरने में बाईस हजार वर्षतक विद्याधरोंके पुरमें राजा होताहै ॥ १० ॥ और सूर्यग्रहण में इससे दूने फलको पाताहै और के वश व अपने वश हो कर जो जल व अग्निसे मारागया ॥ ११ ॥ वह भृगुको पाकर जो मरता है तो विद्याधरों का राजा होताहै भैरवके रूपसे विन्ध्याचल और कैलासके समान भृगुपर्वत है ॥ १२ ॥ उस भृगुकी जो निन्दा करतेहैं वे लिंगब्रह्मके तोड़नेवाले होते हैं उनका अपराध भैरवजी नहीं क्षमाकरतेहैं यह स्वामिकार्त्तिकेयजीने कहाहै ॥ १३ ॥ जिस ब्राह्मणने संन्यासको छोडदियाहै व माता पिताका मारनेवालाहै, बहिन, बहू तथा अपने घरानेकी कन्याओंमें जो गमन करताहै ॥ १४ ॥ इन लोगोंका भृगुके ऊपर

से गिरना अथवा अग्निमें जलना अच्छा है इसके करने से उस पापसे छूटजाता है और वह शिवलोक को जाता है ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुर, चन्द्र, श्रीशैल, त्रिपुरान्तिक, पापों को धोनेवाले त्रैयम्बक, वाराहपर्वत, विन्ध्यपर्वत ॥ १६ ॥ और इसीतरह कावेरीनदी का कुण्ड इनमें गिरने से स्वर्गको पाताहै भृगुके दक्षिण तरफ चपलेश्वर लिङ्गहै ॥ १७ ॥ यहां क्षेत्रकी रक्षाके वास्ते पापोंका नाश करनेवाला प्रसिद्ध साठिधनुष तक चपलेश्वर का क्षेत्र जाननेयोग्यहै ॥ १८ ॥ जो मनुष्य विना उन चपलेश्वरजी के दर्शन किये पहाडपर चढ़ता है उसके सब पुण्यफल को वे चपलेश्वरजी लेलेते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ कपड़े में सूर्य की तसवीर

षांपतनंशस्तं करीषाग्नौप्रसाधनम् ॥ मुच्यतेतेनपापेन शिवलोकंमगच्छति ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुरेचन्द्रे श्रीशैलेत्रिपुरान्तिके ॥ त्रैयम्बकेधौतपापे वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ १६ ॥ कावेर्यास्तुतथाकुण्डे पतनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ भृगोर्दक्षिणभागेतु लिङ्गंवैचपलेश्वरम् ॥ १७ ॥ क्षेत्रसंरक्षणायेह विख्यातंपापनाशनम् ॥ धनुःषष्ट्यांततःक्षेत्रं विज्ञेयंचापलेश्वरम् ॥ १८ ॥ आरोहतिगिरिंयस्तु तमदृष्ट्वातुमानवः ॥ तस्यपुण्यफलंसर्वं सगृह्णातिनसंशयः ॥ १९ ॥ आलेख्यचपटेसूर्यं पताकादण्डमण्डितम् ॥ वलयंचकरेकृत्वा वीज्यमानस्तुचामरैः ॥ २० ॥ वीरस्तुपतितुङ्गच्छेदारोहेद्भृगुपर्वतम् ॥ पदेपदेयज्ञफलं तस्यस्याच्छङ्करोब्रवीत् ॥ २१ ॥ प्रतीक्षन्तेसर्वकालेऽप्सरसःकाममोहिताः ॥ दिव्यंयानंसमारूढा दिव्याभरणभूषिताः ॥ २२ ॥ वीरस्तुपतितस्तत्र स्वंचत्यक्त्वाकलेवरम् ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २३ ॥ कामदंयानमारुह्य विवादेनपरस्परम् ॥ गच्छेच्छिवपुरंसार्द्धमप्सरोभिःसमन्वितः ॥ २४ ॥ क्लीबस्य

लिखकर उस पताका को सुन्दर छर्डामें पोहकर उसको और एक चूड़ाको हाथमें लेकर चामरों की हवा खाताहुआ ॥ २० ॥ जो वीर गिरने के वास्ते भृगुपर्वत पर चढ़ता है उसको एक २ पगपर यज्ञका फल होताहै यह शङ्करजीने कहाहै ॥ २१ ॥ दिव्य सवारियों पर सवार और दिव्य गहने से शोभायमान, कामसे मोहित अप्सरायें सदा उसकी राह देखाकरती हैं ॥ २२ ॥ वहां जो वीर भृगुपर्वत से गिराहै वह अपने देहको छोंडकर उसीसमयमें दिव्यदेहवाला होकर इन्द्रके बराबर पराक्रम वाला ॥ २३ ॥ मनमाने फल देनेवाली सवारीपर सवार होकर आपस में झगड़ा करती हुई अप्सराओंके साथ शिवजीके पुरको जाताहै ॥ २४ ॥ जो मनका कच्चाहै

और मनका पक्का नहीं है व भृगुपर्वत पर चढ़कर फिर उतर आताहै उसको पग २ पर ब्रह्महत्या होतीहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ कोई मनुष्य अमर नहीं होसक्ता फिर किसकारण से गिरने में डरता है अपने कालआनेपर मौतके वशमें होरहे मनुष्य को कोई नहीं बचासक्ता है ॥ २६ ॥ जो संन्यास आदि उत्तमदर्जा पर चढ़कर गिरपड़ता है वह मनुष्य बड़ापापी व बुरी चालवाला व चाण्डाल व संसारमें निन्दित होताहै ॥ २७ ॥ संन्यास को जिसने छोड़दियाहै ऐसे ब्राह्मणको देखकर सब यत्नपूर्वक स्नानकर सूर्यका दर्शनकरै तब पवित्र होताहै और जो उस को छूताहै उसके वास्ते चान्द्रायणव्रत करना कहाहै ॥ २८ ॥ उसके साथ झूठ

सत्त्वहीनस्य उत्तीर्णस्यभृगोःपुनः ॥ पदेपदेब्रह्महत्या भवेत्तस्यनसंशयः ॥ २५ ॥ नाचिरायुर्भवेन्मर्त्यः कस्मान्मृत्यो र्बिभेत्यसौ ॥ नकोपिरक्षितुंशक्तः कालमृत्युवशङ्गतम् ॥ २६ ॥ सपापिष्ठोदुराचारश्चण्डालोलोकगर्हितः ॥ संन्यासा दिकमारुह्य च्यवतेयस्तुमानवः ॥ २७ ॥ संन्यासात्प्रच्युतंविप्रं दृष्ट्वास्नानार्कवीक्षणम् ॥ कुर्यात्सर्वप्रयत्नेन स्पर्शा चान्द्रायणंस्मृतम् ॥ २८ ॥ ऋतानृतंनवक्तव्यं तेनसार्द्धंकदाचन ॥ स्थातव्यंचैवमौनेन नोचेत्पापमवाप्नुयात् ॥२९॥ निश्चितेमरणेप्राप्ते कथंमृत्युरुपेक्ष्यते ॥ जरामृत्युश्चरोगाश्चसंसारोदधिसम्प्लवे ॥ ३० ॥ एवंज्ञात्वानृपश्रेष्ठ ह्यारोहेद्भृगु पर्वतम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् भृगोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ नब्रूयाद्दुष्टबुद्धीनां कलौपाखण्डकर्म्मणाम् ॥ दिगम्ब रश्वेतपटबौद्धादीनांविशेषतः ॥ ३२ ॥ असम्भाष्यादुराचाराः पुराणस्मृतिनिन्दकाः ॥ नतैःसहप्रकर्तव्यः संवादो

सांच कुछभी कभी न बोलना चाहिये किन्तु चुपचाप रहना ठीकहै नहीं तो पाप को पाताहै ॥ २९ ॥ मरना तो निश्चयसे होगाही तो फिर मौतके छोड़ने की क्यों इच्छा करताहै बुढ़ापा,मौत और रोग तो इस संसारसमुद्रमें भरेही पड़ेहैं ॥ ३० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसा जानकर भृगुपर्वत पर जरूर चढना चाहिये हे राजन् ! यह भृगु-पर्वतका उत्तम माहात्म्य मैंने तुमसे कहाहै ॥ ३१ ॥ इसको कलियुगमें पाखण्डवाले कामों के करनेवाले दुष्टबुद्धियों से नहीं कहै क्योंकि उनके विश्वास नहीं हो सक्ता और जो नङ्गे रहते हैं व सफेद कपड़े पहिनते हैं व बौद्धमजहब के मनुष्य हैं उनसे तो कभी नहीं कहै ॥ ३२ ॥ ऐसे दुराचारी मनुष्य पुराण और स्मृतियों की

निन्दा करनेवाले जो हैं वे सम्भाषण करनेयोग्य नहीं हैं इससे उनके साथ कभी बातभी न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हरएक देवताओंसे महादेवजीने आपही कहाहै कि जो मूढ़ मेरे कहेहुये तीर्थराज को नहीं मानते व जो भृगुपर्वत से उतर आतेहैं वे घोरनरकको जातेहैं ॥ ३४ । ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! ॐकारनाथ का वर्णन, दान, यज्ञ, तप, पांचमुहँकी उत्पत्ति वैसेही लिंगोंकी उत्पत्ति ॥ १ ॥ युगोंका प्रमाण, शिवजी की कला

हिकदाचन ॥ ३३ ॥ प्रत्येकंसर्वदेवानां स्वयमाहवृषध्वजः ॥ नमन्यन्तेतुयेमूढास्तीर्थराजंमयोदितम् ॥ ३४ ॥ प्रयान्ति नरकंघोरं भृगोर्येवतरन्तितेे ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोनाम षट्चत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ ॐकारकीर्तनंविप्र दानंयज्ञस्तपस्तथा ॥ सम्भवंपञ्चवक्त्राणां लिङ्गानांसम्भवंतथा ॥ १ ॥ युगसंख्यां कलांचैव चरितंचमहामुने ॥ कथयस्वप्रसादेन यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतांराजराजेन्द्र पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ द्वात्रिंशतिसहस्राणि लक्षाण्यष्टादशैवच ॥ ३ ॥ एषाकृतयुगेसंख्या सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ लक्ष्याण्यष्टौतथाचाष्टौ सहस्राणियुधिष्ठिर ॥ ४ ॥ द्वापरेमानमिच्छन्ति सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ सहस्राणिचचत्वा रितथालक्षचतुष्टयम् ॥ ५ ॥ मानंकलियुगस्यैतत् सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ अल्पक्षीरप्रदागावो ह्यल्पसस्याचमे

और चरित्रों को हे महामुने ! अपनी प्रसन्नता से कहिये जैसा कुछ महादेवजी ने कहाहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! स्कन्दजीके कहेहुये पुराण को सुनो अठारहलाख बत्तीस हजार ॥ ३ ॥ यह सत्ययुग का प्रमाण है और उस की सन्ध्या और सन्ध्यांश का भी प्रमाण इतनेही सौ वर्षका होताहै और हे युधिष्ठिर ! आठलाख आठहजार वर्षका ॥ ४ ॥ प्रमाण द्वापरमें इच्छा करते हैं इतनेही सौवर्ष की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशहै चारलाख चारहजार वर्षका ॥५॥ कलियुग

का प्रमाण है इसीतरह सन्ध्या और सन्ध्यांश का मानहै कलियुगमें थोड़े दूधकी देनेवाली गौवें होंगी और थोडे अन्नकी पैदा करनेवाली पृथिवी होगी ॥ ६ ॥ वैसेही थोडे पानीके मेघ और थोडी विद्यावाले ब्राह्मण होंगे सोलहवीं वर्षके पूरे होनेपर मनुष्योंकी जवानी जाती रहेगी ॥ ७ ॥ दशवें व बारहवें वर्ष में स्त्री गर्भको धारण करेगी कलिकालमें नंगेहोकर शूद्रलोग धर्ममें तत्परहोंगे ॥ ८ ॥ सब प्रजा एकही वर्णवाली होजावेगी और म्लेच्छ राजा होगा कलियुग के प्राप्तहोनेपर उसीरूप में नारायण भी होजायँगे ॥ ९ ॥ तब न अग्निहोत्र, न वेद, न धर्म, न यज्ञकरना, न सत्य, न तप, न दान, न सतोगुण और न देवता कहीं रहेंगे ॥ १० ॥ ब्राह्मणलोग वेदोंके

दिनी ॥ ६ ॥ अल्पोदकास्तथामेघाः स्वल्पविद्यास्तथाद्विजाः ॥ पूर्णेतुषोडशेवर्षे नराःपलितयौवनाः ॥ ७ ॥ दशमे द्वादशेवर्षे नारीगर्भधराभवेत् ॥ शूद्राधर्म्मपरानित्यं कलौकालेदिगम्बराः ॥ ८ ॥ एकवर्णाःप्रजाःसर्वा राजाम्लेच्छो भविष्यति ॥ कलौयुगेतथाप्राप्ते कलिरूपेचमाधवे ॥ ९ ॥ नाग्निहोत्रंनवेदाश्च नधर्म्मोनचयाजनम् ॥ नसत्यंनतपो दानं नसत्त्वंनचदेवताः ॥ १० ॥ वेदविक्रयिणोविप्रा अन्त्यजानांगृहेगृहे ॥ वेदादेशंकरिष्यन्ति वेदविप्लवकारकाः ॥ ११ ॥ कन्याविक्रयिणःपापास्तथाकन्योपजीविनः ॥ सहस्रांशोनधर्म्मस्य कलाचैकाप्रवर्तिता ॥ १२ ॥ यत्रासिद्धस्त त्रतीर्थं जलेस्नास्यन्तिमानवाः ॥ शूद्रापत्नीद्विजानान्तु भविष्यतिगृहेगृहे ॥ १३ ॥ अधरोत्तरभावेन भविष्यन्तिकलौ नराः ॥ बौद्धाःक्षपणकाःपापा नग्नामलिनकश्मलाः ॥ १४ ॥ विडम्बयन्तिबालानां मोहिताःपापकर्म्मणाम् ॥ नगुरुंमन्य तेशिष्यः पुत्रश्चपितरंतथा ॥ १५ ॥ स्ववंशद्रव्यहर्तारः प्रव्रज्यावेषधारिणः ॥ लिङ्गोपजीविनःपापास्तथाभस्मोपजी

बेंचनेवालेहोंगे, शूद्रोंके घर २ मे वेदोंको सुनावेंगे, वेदोंके नाश करनेवाले होंगे ॥ ११ ॥ पापीलोग लडकियों को बेंचेंगे और उन्हींसे अपनी जीविका करेंगे धर्मका हजारहवां अंशभी न रहेगा एक कला रहजायगी ॥ १२ ॥ जहां कोई फकीर रहेगा वहीं तीर्थहोगा उसी जलमें सब मनुष्य स्नानकरेंगे ब्राह्मणोंके घर२में शूद्रोंकी स्त्रियां व लडकियां स्त्री होंगी ॥ १३ ॥ कलियुग में छोटे बड़ेमनुष्य बनेंगे बौद्ध, क्षपणक, नागा और अघोरी येही पापी पन्थवाले मनुष्य होंगे ॥ १४ ॥ ये लोग पापकर्मी मूर्ख मनुष्योंको छलेंगे और आपभी मोहको प्राप्त बने रहेंगे चेला गुरूको नहीं मानेगा और पुत्र पिताको नहीं मानेगा ॥ १५ ॥ अपनेही वंशके धनको हरेंगे और

संन्यासियों के रूपको बनावेंगे अनेक वेषोंको बनाकर जीवेंगे इसीतरह भस्मको लगाकर जीविका करेंगे ॥ १६ ॥ वैवस्वत मन्वन्तर के कलियुग में यह सब होगा
हे राजन्! यह आपसे कहागया जो २ कलियुग में होगा ॥ १७ ॥ हे अनघ! अब ॐङ्कारकी उत्पत्ति व रचना विधिपूर्वक आपसे थोड़ेमें कहते हैं जो आपने पूछा
था ॥ १८ ॥ इन देवके कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै ॐम् यह एक अक्षर ब्रह्मका नामहै इसको कहतेहुये और सुध करतेहुये ॥ १९ ॥ देहको छोडताहुआ जो
जाताहै वह परमगति को प्राप्तहोताहै वेदोंकी माता गायत्री ॐङ्कारही से पैदाहुई है ॥ २० ॥ ॐकार जो एक अक्षरका तत्त्वहै उसीमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जी हैं

विनः ॥ १६ ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते कलौसर्वम्भविष्यति ॥ एतत्तेकथितंराजन् कलौयद्यद्भविष्यति ॥ १७ ॥ ॐकारस्यै
वचोत्पत्तिं विधानंविधिपूर्वकम् ॥ कथयामिसमासेन यत्पृष्टोहन्त्वयानघ ॥ १८ ॥ कीर्तनादस्यदेवस्य मुच्यतेभवब
न्धनात् ॥ ॐमित्येकाक्षरंराजन् व्याहरन्समनुस्मरन् ॥ १९ ॥ यःप्रयातित्यजन्देहं सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ वेदमाता
चगायत्री ॐकारप्रभवातथा ॥ २० ॥ ॐमित्येकाक्षरेतत्त्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ॐकारोवेदमूलन्तु श्रुतिशाखःप्रति
ष्ठितः ॥ २१ ॥ फलंचैवतुपुष्पञ्च पर्णानिस्मृतिरागमः ॥ यथादौसर्वविद्यानामोंकारःपरिपठ्यते ॥ २२ ॥ तथादौसर्वदे
वानामादिदेवोमहेश्वरः ॥ सन्ध्यात्रयंत्रिकालादि ॐकारेपरिकीर्तितम् ॥ २३ ॥ अग्नित्रयंत्रयोलोकास्त्रिवर्गश्चप्रति
ष्ठितः ॥ अष्टषष्टिश्चतीर्थानां ब्रह्मणेशिवकीर्तितम् ॥ २४ ॥ एकेनचशतंपूर्णं रुद्राणाम्परिकीर्तितम् ॥ केदारेशतमे
कन्तुॐकारेकोत्तरंशतम् ॥ २५ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्रमोंकारंलिङ्गमुत्तमम् ॥ पृथिव्यांयानिलिङ्गानि आसमुद्रान्तगो

ॐङ्कारही वेदकी जडहै वेद उसकी शाखायें हैं ॥ २१ ॥ स्मृति और शास्त्र ये सब फल, फूल और पत्तेहैं जैसे सब विद्याओंकी आदिमें ॐकार पढ़ाजाताहै ॥ २२ ॥ इसी
तरह सब देवताओंके आदिदेवता महादेवजी है तीनों सन्ध्या और तीनों कालआदि ॐङ्कारही में कहेगये हैं ॥ २३ ॥ तीनोंअग्नि और तीनोंलोक तथा त्रिवर्ग (धर्म,
अर्थ, काम) ये ॐङ्कारही मे रहते हैं अरसठ तीर्थ ब्रह्मासे शिवजीने कहेहैं ॥ २४ ॥ और एकसौएक रुद्र कहेहै केदारनाथमे सौरुद्र और ॐकारनाथमें एकसौएक रुद्र

हैं ॥ २५ ॥ पांच वेद जिनसे निकलेहैं ऐसे पांच मुखवाला उत्तम ॐकार लिंगहै चारोंसमुद्रतक पृथिवीमें जितने लिंगहैं ॥ २६ ॥ उनमें ॐकारनाथ को छोड़कर पांचमुख किसी लिंगके नहीं हैं हे युधिष्ठिर ! स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्राप्तहोनेपर आदिकल्पके सत्ययुगमें ॥ २७ ॥ नर्मदा के तीरमें रहनेवाले देवताओं को दानवोंने जीतलिया, कंकोल, कालिकेय और कालक नाम के दैत्योंने देवताओंको भगादिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा सहित वे सब देवता ईश्वरकी शरण जातेहुये हे भारत ! तदनन्तर बृहस्पति ब्रह्मासे बोले ॥ २९ ॥ कि आप दानवों के नाश करनेवाली यज्ञको करो जो बड़ी भयानक हो तब उन बृहस्पतिजी से ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ३० ॥ कि दानवों के

चरे ॥ २६ ॥ नतेषांपञ्चवक्त्राणि त्यक्त्वोंकारंयुधिष्ठिर ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ २७ ॥ दानवैर्निर्जिता देवानर्म्मदातीरमाश्रिताः ॥ अवद्रुताःकङ्कोलैस्तु कालिकेयैश्चकालकैः ॥ २८ ॥ तेदेवाब्रह्मसहिता ईश्वरंशरणङ्गताः ॥ बृहस्पतिस्ततःप्राह ब्रह्माणम्प्रतिभारत ॥ २९ ॥ इष्टिंकुरुमहारौद्रीं दानवानांक्षयंकरीम् ॥ उवाचवचनंब्रह्मा तदातंदेवमन्त्रिणम् ॥ ३० ॥ ममैवविस्मृतामन्त्रा दानवानांभयेनच ॥ एतस्मिन्नन्तरेभित्त्वा पातालानिचसप्तच ॥ ३१ ॥ ॐकारपूर्वकंराजन् भूर्भुवस्स्वश्चकीर्तयन् ॥ पर्वतादुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ ३२ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं ज्वालामालासमाश्रितम् ॥ आदिमध्यान्तहीनञ्च नदृष्टंपरमंक्वचित् ॥ ३३ ॥ चतुर्वर्गैश्चतुर्वेदैर्वेदाङ्गनिगमैःस्वयम् ॥ उवाचवचनंशम्भुर्ब्रह्माणंलोकभावनम् ॥ ३४ ॥ सौम्यांचैवतुभोब्रह्मँल्लोकानांशान्तिकारिणीम् ॥ मयासमर्पितावेदा इष्टिं

भयसे हमको आपही मन्त्र भूलगये हैं इसी अन्तर में सातो पातालों को फाड़कर ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! ॐकारपूर्वक भूर्भुवःस्वः इन तीनों व्याहृतियों को कहता हुआ जलतेहुये महाप्रलयके अग्निके समान पर्वत से एक लिंग उठताहुआ ॥ ३२ ॥ करोड़ सूर्योंके बराबर तेजवाला हजारों लपटोंसे व्याप्त ऊपर, बीच और नीचा जिसका नहीं जानपडता है और ऐसा श्रेष्ठलिंग कभी देखा नहीं गयाथा ॥ ३३ ॥ सो वेही लिंगरूप शिवजी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारोंवेद, वेदांग और शास्त्रों के सहित संसारके बनानेवाले ब्रह्माजी से वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! लोकोंकी शांति करनेवाली व सौम्य यज्ञको तुम स्वेच्छापूर्वक करो मैने तुमको वेदोंको

दियाहै ॥ ३५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने प्रथम तो दैत्यों के नाश करनेवाले भयानक यज्ञको किया फिर लोकोंकी शान्ति करनेवाली सौम्ययज्ञ को किया॥ ३६ ॥ तब हे महाराज ! वे सब दैत्यलोग भयङ्कर यज्ञ को देखकर ब्रह्माके शापके भयसे डरे हुये दशो दिशाओं को भागगये ॥ ३७ ॥ ॐकार के प्रभाव से सब देवता निर्भय होगये फिर महादेवजी का पूजनकर वे सब देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ३८ ॥ हे पार्थिव ! कल्पके अन्ततक रहनेवाले देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियेगये इस महालिग ॐकार को काम और मोक्षका देनेवाला जानो ॥ ३९ ॥ कल्पके अन्तमें उस लिङ्गमें सब देवता लीन होजाते हैं इसीसे इस लिङ्गको अमर,ब्रह्म,

कुरुयथेप्सया ॥ ३५ ॥ ततोब्रह्माचकारेष्टिं रौद्रींदैत्यक्षयङ्करीम् ॥ इष्टिंचैवततःसौम्यां लोकानांशान्तिकारिणीम् ॥ ३६ ॥ ततोऽसुरामहाराज दृष्ट्वाचेष्टिंभयङ्करीम् ॥ ब्रह्मशापभयोद्विग्ना गतास्तेतुदिशोदश ॥ ३७ ॥ ॐकारस्यप्रभावेण सर्वेदेवास्तुनिर्भयाः ॥ ततोभ्यर्च्यसुरेशानं देवास्तेत्रिदिवंययुः ॥ ३८ ॥ कल्पान्तगंमहालिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ कामदंमोक्षदंचैव ॐकारंविद्धिपार्थिव ॥ ३९ ॥ तस्मिँल्लिङ्गेतुलीयन्ते कल्पान्तेसर्वदेवताः ॥ अमरंब्रह्मवेत्याहुर्हरिंसिद्धेश्वरंतथा ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वरमादित्यं सोमंपित्रीश्वरंतथा ॥ यत्रसिद्धास्त्रयोवेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ४१ ॥ तेनसिद्धेश्वरंविद्धि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ कथितंपर्वतस्याग्रेलिङ्गकोटिसमन्वितम् ॥ ४२ ॥ अर्चनात्तस्यलिङ्गस्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ ॥ कल्पेकल्पेमहाराज क्षीयन्तेसर्वदेवताः ॥ ४३ ॥ मुक्त्वातुपञ्चलिङ्गानि मार्कण्डंनार्म्मदंनृप ॥ अविमुक्तंचकेदारमोङ्कारममरेश्वरम् ॥ ४४ ॥ तथैवचमहाकालमेवंलिङ्गन्तुभारत ॥ पुण्यानिपञ्चलिङ्गानि प्रातरुत्था

हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वर नामके सूर्य और पित्रीश्वर चन्द्रमा, छहोअङ्ग, पद और क्रमकरके सहित तीनोंवेद जहां सिद्ध हुयेहैं ॥ ४१ ॥ इससे सब सिद्धियों के देनेवाले इस लिंगको सिद्धेश्वर जानो पर्वत के ऊपर करोड़ों लिङ्गोंसे युक्त यह लिङ्ग कहागया है ॥४२ ॥ इस लिङ्गके पूजन करनेसे विष्णुलोक में पूजित होता है हे महाराज ! कल्प २ में सब देवता नहीं रहते हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप ! इन पांचों लिंगोंको छोड़कर अर्थात् इनका नाश नहीं होताहै नर्मदा के तटमें विद्यमान मार्कण्डेयलिंग,अविमुक्त (विश्वनाथ), केदारनाथ,अमरेश्वर ॐकारनाथ ॥४४॥ इसीतरह महाकाललिंग हे भारत ! इसप्रकार इन पवित्र पांचों लिंगोंको प्रातः-

काल उठकर जो पढ़ता है ॥ ४५ ॥ वह सब तीर्थों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होताहै महाकालमें एक कालीशक्ति हमेशा व्यापकरूप से रहतीहै ॥ ४६ ॥ और हे नृप ! सवाकरोड़ तीर्थ महाकाल में रहते हैं और हे नृप ! कावेरीनदी शिवलोक में नहीं है किन्तु यहा शिवक्षेत्रमें स्थित है ॥ ४७ ॥ चारकोस के भीतर ब्रह्महत्या नहीं आती है उस कावेरीनदी के किनारे पर आग्नेयनाम का सिद्धलिंग विद्यमान है ॥ ४८ ॥ और हे कुरुनन्दन ! शिवख्यात नाम से प्रसिद्ध तीर्थहै उसमें स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य फिर संसार में नहीं होता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कीडा, चिड़िया, पतिंगवा आदि तिर्य्यग्योनियों मे प्राप्त होगये हैं वे भी वहा पाप

यःपठेत् ॥ ४५ ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ एकाकालीमहाकाले वसेद्व्यापिनीसदा ॥ ४६ ॥ सपाद कोटिस्तीर्थानां महाकालेवसेन्नृप ॥ शिवलोकेनकावेरी शिवक्षेत्रेस्थितान्नृप ॥ ४७ ॥ चतुःक्रोशाभ्यन्तरतो ब्रह्मह त्यानसर्प्पति ॥ आग्नेयंसिद्धलिङ्गंच तस्यास्तीरेसमाश्रितम् ॥ ४८ ॥ शिवख्यातमितिख्यातं तीर्थंतुकुरुनन्दन ॥ स्ना तमात्रोनरस्तत्र सभवेन्नपुनर्भवेत् ॥४९॥ कीटपक्षिपतङ्गादितिर्यग्योनिगतानराः ॥ मुच्यन्तेतत्रपापेन शिवस्यवचनंय था ॥ ५० ॥ तत्रयःकुरुतेश्राद्धं पितॄणांचतिलोदकम् ॥ युगकोटिसहस्रन्तु पितरस्तेनतर्पिताः ॥ ५१ ॥ सर्वेषामेवलिङ्गा नां दिव्यंवात्रप्रकीर्तितम् ॥ तत्रस्नातोदिवंयाति नविशेद्योनिसङ्कटे ॥ ५२ ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ अष्टकोटिस्तुतीर्थानां केदारेकथितान्नृप ॥ ५३ ॥ दर्शनादर्चनात्तस्य स्पर्शान्मोक्षफलंनृणाम् ॥ केदारस्योदकेपीते पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ५४ ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा पयःपानंकरोतियः ॥ तस्योदरेभवेल्लिङ्गं षण्मासाद्ब्रह्मचारिणः ॥ ५५ ॥

से छूटजाते हैं ऐसा शिवजी का वचन है ॥ ५० ॥ वहां जो कोई श्राद्ध व पितरों के वास्ते तिलोदक देताहै उसने मानो करोडो हजारयुग तक पितरोंको तृप्त कर दिया ॥ ५१ ॥ सब लिंगों में जो दिव्यलिंगहै वह यहां कहागयाहै इससे इस तीर्थ में स्नान करनेवाला स्वर्गको जाताहै व योनिके संकट में नही आताहै ॥ ५२ ॥ और करोडयज्ञों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होताहै हे नृप! आठ करोड़ तीर्थ केदारनाथमे कहेगये हैं ॥५३॥ उन केदारनाथके दर्शन व पूजन व स्पर्शनसे मनुष्योंको मोक्षफल होताहै व केदारनाथ के चरणोदक पीने से फिर जन्म नहीं होताहै ॥ ५४ ॥ दिन रात व्रत करनेवाला होकर जो केवल दूध पीताहै उस ब्रह्मचारी

के पेटमें छह महीना में एक लिङ्ग उत्पन्न होजाता है ॥ ५५ ॥ केदारजी के दर्शनही से शिवलोक में पूजित होता है काशी तीनों लोकोंमे महापुण्यवाली प्रसिद्धहै ॥ ५६ ॥ वह पुरी आकाश में है और मनुष्यलोक के बाहर है उसके पांचकोसतक चारो तरफ ब्रह्महत्या नहीं आती है ॥ ५७ ॥ हे भारत ! वहां अट्ठाईस करोडलिङ्ग है गङ्गा और वरुणाके बीचमें यथोचित स्नान करके ॥ ५८ ॥ सब पापों से छूटाहुआ देवताओं की तरह स्वर्ग में आनन्द करता है वहां जो शिवजी का ध्यानकर प्राणों को छोडताहै ॥ ५९ ॥ वह अपने हजारकुलों को उद्धारकर शिवलोक को जाताहै वहा जो दान दियाजाता है उसकी संख्या नही है ॥६०॥ तिलोदक के देनेसे पितरों

केदारदर्शनादेव शिवलोकेमहीयते ॥ वाराणसीमहापुण्या त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ५६ ॥ अन्तरिक्षेपुरीसातु मृत्युलोकस्यबाह्यतः ॥ पञ्चक्रोशान्तरेयावद्ब्रह्महत्यानसर्प्पति ॥ ५७ ॥ अष्टाविंशतिकोट्यस्तु लिङ्गानांतत्रभारत ॥ गङ्गावरुणयोर्मध्येस्नानंकृत्वायथोदितम् ॥ ५८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देववन्मोदतेदिवि ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणाञ्छिवंध्यात्वातुमानवः ॥ ५९ ॥ सहस्रकुलमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांप्रीतिरक्षया ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ ६१ ॥ त्रिनेत्रःशूलपाणिस्तु शिवस्यानुचरोभवेत ॥ अविमुक्तस्यलिङ्गस्य स्पर्शनान्मुक्तिराप्यते ॥ ६२ ॥ कलात्रयन्तुतत्रास्ते काशीपुर्यांनसंशयः ॥ गङ्गासागरसंभेदेचतस्रस्तुकलाःस्मृताः ॥ ६३ ॥ गङ्गासहस्रवक्रेण प्रविष्टायत्रसागरम् ॥ स्नानावगाहनात्पानात् पिण्डदानाच्चतर्पणात ॥ ६४ ॥ गच्छेच्छिवपुरंतत्र पितृभिस्सहमानवः ॥ अपरंकालरुद्रन्तु सप्तपातालवासिनम् ॥ ६५ ॥ हाटकंविद्धितं

की अक्षय प्रीतिहोती है वहां जो कोई परवश व अपने वशहो प्राणों को छोड़ताहै ॥ ६१ ॥ वह त्रिशूलको हाथमें लियेहुये तीन नेत्रवाला शिवका सेवक होताहै अविमुक्तलिङ्ग (विश्वनाथ) के स्पर्शसे मुक्ति होती है ॥ ६२ ॥ वहां काशीपुरीमें तीन कला हैं इसमें कुछ संशय नहीं है और गङ्गासागर के संगम में चार कला कहीगई हैं ॥६३॥ जहां हजारों मुखसे गंगाजीने समुद्रमें प्रवेश कियाहै वहा स्नान,तैरना, जलपीना, पिण्डदान और तर्पण से पितरों के सहित मनुष्य शिवपुरको जाताहै

सात पातालतक रहनेवाले एक कालरुद्रलिंग को ॥ ६४ । ६५॥ हाटकेश्वर जानो उन देवको मनुष्य नहीं देखतेहैं देवता और सिद्धोंकरके सेवाकियेजाते वे देव, देवता और दैत्योंकरके पूजन कियेजाते हैं ॥ ६६॥ दूसरे गंगेश्वर और तीसरे सागरेश्वर और चौथे शूलपाणि येही चारों कला हैं ॥ ६७॥ और मनमाने रूपके धारनेवाले ॐकारनाथ महादेव को छोड़कर और समुद्रपर्यन्त पांच कलावाला कोई रुद्र नहीं है ॥ ६८ ॥ पांचों वेद पांचों जिनके मुखहैं और नवशक्तियोंसे युक्त नर्मदा के तीर में विद्यमान ॐकारही को महादेवजी ने पूर्वकाल में कहा है ॥ ६९ ॥ इसीसे इस पुण्यवाले लोकमें तीनोलोकों से पूजेगये ॐकारही हैं उनका पश्चिमवाला मुख

देवं नतुपश्यन्तिमानवाः ॥ पूज्यतेसुरदैत्यैश्च सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ ६६ ॥ गङ्गेश्वरंद्वितीयन्तु तृतीयंसागरेश्वरम् ॥ चतुर्थंशूलपाणिन्तु चतस्रश्चकलाइति ॥ ६७ ॥ कलापञ्चात्मकंरुद्रमासमुद्रान्तगोचरे ॥ वर्जयित्वामहेशानमोंकारंकामरूपिणम् ॥ ६८ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रं नवशक्तिसमन्वितम् ॥ ॐकारंकल्पगातीरे शिवेनकथितम्पुरा ॥ ६९ ॥ तेनपुण्यात्मकेलोके लोकत्रितयपूजितम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुसंकाशं सद्योवक्त्रन्तुपश्चिमम् ॥ ७० ॥ ऋग्वेदोनिर्गतोयस्माद्ब्रह्मातत्राधिदेवता ॥ उत्तरंवामदेवन्तु पीताभंसुमनोहरम् ॥ ७१ ॥ यजुर्वेदोद्भवंविद्धि विष्णुस्तत्राधिदेवता ॥ अघोरंमेघवर्णाभं याम्याञ्चदिशिचास्थितम् ॥ ७२ ॥ सामवेदोद्भवंविद्धि सूर्यकालाग्निदैवतम् ॥ पूर्वेतत्पुरुषंज्ञेयं कुङ्कुमारुणसन्निभम् ॥ ७३ ॥ अथर्वनिर्गतन्तुर्यमापस्तत्राधिदेवताः ॥ ईशानस्तववक्त्रन्तु पञ्चवर्णमहातनुम् ॥ ७४ ॥ श्रुतिसिद्धा

सद्योजात नाम का है जोकि शंख,कुन्द और चन्द्रमा के समान सफेद है ॥ ७० ॥ जिससे ऋग्वेद निकलाहै उसके देवता ब्रह्माजी हैं और उत्तरवाला मनका हरनेवाला पीलेरंगका वामदेव नामका मुखहै ॥ ७१ ॥ उससे यजुर्वेदकी उत्पत्ति जानो उस के देवता विष्णुजी हैं मेघोंके समान रंगवाला दक्षिण दिशा में विद्यमान अघोरनाम का मुखहै ॥ ७२ ॥ उसे सामवेद का उत्पन्न करनेवाला जानो उसके सूर्य व काल और अग्नि देवता हैं व पूर्वमें केसरके समान लालव पीला तत्पुरुषनाम का मुख जानना चाहिये ॥ ७३ ॥ उससे चौथा अथर्ववेद निकला है उसका जल देवता है व पाचरंग का बडाभारी ईशाननाम का मुखहै ॥ ७४ ॥ वेदोंके सिद्धान्त उस मुखसे

गायेगये हैं उसके देवता सोमहैं छठा सदाशिव नाम का मुखहै जिसके हिस्सा नहीं होसक्ते दोषोंसे रहितहै ॥ ७५ ॥ उसमें कोई चिह्न नहीं हैं और वह किसीसे लखा नहीं जाताहै उसको जानकर मुक्त होसक्ताहै इसमें कुछ संशय नहीं है हे राजन्! यह ॐकारका वर्णन तुमसे मैंने कहा॥ ७६ ॥ हजार मुहँवालेकी नहीं ताकतहै एक मुहँवालेकी क्या बातहै जलसे स्नानकराके बिल्वपत्रसे जो पूजा करताहै ॥ ७७ ॥ वह चारहजार वर्षतक रुद्रलोकमें रहताहै दक्षिणामूर्त्ति जो ॐकारजी हैं उनके पास जो अपने प्राणोंको छोडता है ॥ ७८ ॥ वह करोडहजार वर्षतक महादेवजीके पुरमें रहता है जो कोई चूना और ईंटसे जुड़ाहुआ महल व मठ ॥ ७९ ॥ पताका और

न्तसङ्गीतंसोमंतत्राधिदेवता ॥ षष्ठंसदाशिवंनाम निर्भागंचनिरामयम् ॥ ७५ ॥ निर्लक्षंलक्षहीनन्तु ज्ञात्वामोक्षेन्नसंशयः ॥ एतत्तेकथितंराजन्नोङ्कारस्यतुवर्णनम् ॥ ७६ ॥ सहस्रास्यस्यनोशक्तिरेकवक्त्रस्यकाकथा ॥ स्नापयित्वोदकेनैव बिल्वपत्रेणपूजयेत् ॥ ७७ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते ॥ ॐकारदक्षिणामूर्तौ प्राणत्यागंकरोतियः॥७८॥ वर्षकोटिसहस्राणि वसेन्माहेश्वरेपुरे ॥ प्रासादञ्चमठंचापि सुधयेष्टकसंयुतम् ॥ ७९ ॥ चित्रमालेख्यमूलेच पताकाध्वजशोभितम् ॥ वितानंकिङ्किणीयुक्तं नेत्रवंशोद्भवंशुभम् ॥ ८० ॥ पञ्चवर्णकशोभाढ्यमोंकारस्यतुकारयेत् ॥ पञ्चामृतैस्स्नापयित्वा चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ ८१ ॥ समावेष्ट्यपरीधानैर्नानावस्त्रैःसुशोभनैः ॥ हेममौक्तिकरत्नैश्च सघृतंगुग्गुलुंदहेत् ॥ ८२ ॥ घण्टांचदीपकंचैव विधूमारार्तिकंचयत् ॥ मृदङ्गान्पटहांश्चैव वेणुंवीणाञ्चगीतकम् ॥ ८३ ॥ काहलीशङ्खवाद्यानि कांस्यतालाद्यमेवच ॥ व्यजनंगेडुकंछत्रं चामरंध्वजदण्डकम् ॥ ८४ ॥ हेमचान्नधरादीनि गृहांश्चग्राम

ध्वजाओं मे शोभित दीवार में चित्रसारी खिंचवाकर बनवाताहै अथवा क्षुद्रघण्टिकाओं की झालरें जिसमें टकीहुई उम्दा कपडा व उत्तम बांस जिसमें लगेहुये ऐसे चँदोवा को लगाता है ॥ ८० ॥ जोकि पांचों रंगोंकी शोभासे युक्तहै अथवा पञ्चामृतसे स्नान कराके चन्दन, अगर और केसरसे लेपन करताहै ॥ ८१ ॥ अनेकतरह के उत्तमकपड़ों से मूर्त्तिको लपेटकर सोना, मोती और रत्नोंसे पूजनकर घीसहित गूगुलको जलाताहै ॥ ८२ ॥ घण्टा, दिया और धुआंरहित आरती करता है मृदङ्ग, पटह, बेन, सितारको बजाता और गाताहै ॥ ८३ ॥ काहली, शङ्ख, झांझ, मंजीरा और तारीआदि बाजाओं को जो बजाता है बेना, गडुवा, छाता, चँवर, ध्वजा,

लाठी ॥ ८४ ॥ सोना, अन्न, पृथिवी, मकान, गांव और शहरआदि पदार्थोंका जो अर्पण करता है जैसे तैसे किसी तरह ॥ ८५ ॥ उसके दानके फलकी संख्या नहीं कीजासक्ती है चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें सिद्धेश्वर व ॐकारको ॥ ८६ ॥ ध्वजाओंसे चारोंतरफ घेरे तो उसकी पुण्यके फलको सुनो कि कपड़ेमें जितनी सूतकी संख्या है और वे सूत वायुसे हिलतेहैं ॥ ८७ ॥ हे नृप ! उतने हजार युगतक शिवलोकमें रहताहै करोड़ों हजारयुग और करोड़ों सौ युग तक ॥ ८८ ॥ सब कामोंसे भराहुआ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके स्थानमें रहताहै हे राजन् ! यह तुमसे ॐकारकी उत्पत्ति व लक्षण कहा॥ ८९ ॥ अब ब्रह्माके कियेहुये ॐकारके स्तोत्रको तुमसुनो॥९०॥

पत्तनम् ॥ यद्दातद्दानृपश्रेष्ठ ॐकारायनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥ तस्यदानफलस्येह संख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ सिद्धेश्वरोङ्कारयोस्तु चन्द्रसूर्य्यग्रहग्रहे ॥ ८६ ॥ ध्वजमालाकुलंकुर्य्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावतीतन्तुसंख्यास्ति वायुनोद्धूयते पुनः ॥ ८७ ॥ तावद्युगसहस्राणि शिवलोकेवसेन्नृप ॥ युगकोटिसहस्राणियुगकोटिशतानिच ॥ ८८ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ एतत्तेकथितंराजन्नोङ्कारोत्पत्तिलक्षणम् ॥ ८९ ॥ ब्रह्मणातुकृतंतस्य स्तोत्रन्त्वंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेॐकारमहिमानुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ब्रह्मणेकथितोमन्त्र ॐकारेणततोनघ ॥ ब्रह्मापितद्वचःश्रुत्वा स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ १ ॥ ॐ व्योमसंख्यायितेव्योमहरायसर्वव्यापिने ॥ अनन्तायअनाथाय अमृतायध्रुवायच ॥ २ ॥ शम्भवायशाश्वताय यो

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेॐकारमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे अनघ ! तदनन्तर ब्रह्माजीसे ॐकारजीने मन्त्रकोकहा व ब्रह्माभी उनके वचनको सुनकर इस स्तोत्रको पढ़तेहुये ॥ १ ॥ कि आकाशके बनानेवाले ॐकारही हैं क्योंकि वेदमें पहले नादही की उत्पत्ति कहीगई है उससे आकाश हुआ इसी से आकाशका शब्द गुण है तो आकाशकी नाईं सबमें व्याप्त जो ॐकाररूप शिवजीहैं उनके लिये नमस्कार है अन्त जिनका नहीं है और कोई जिनका मालिक नहीं है, मोक्षरूप, हमेशा अटल रहनेवाले ॥ २ ॥ सुखके

पैदा करनेवाले,हमेशा रहनेवाले, योगासनसे बैठनेवाले,हमेशा योगाभ्यास करने से योगीरूप होरहे, आकाश की नाईं सब वस्तुको अपनेही में हरलेनेवाले ॥ ३ ॥ ॐकाररूप शिवजीकेलिये नमस्कारहै सबकी उत्पत्तिके स्थान, सबके मालिक, कल्याणस्वरूप,शिवजीकेलिये नमस्कारहै "फिर उन्हीं शब्दोंका उच्चारणकरना आदर के लिये है" ॥ ४ ॥ तत्पुरुषनाम मुख जिनका शिरकी जगहपरहै, अघोरनामकी कला विष्णुरूप जिनके हृदयकी जगहपरहै, सद्योजात नामकी कला जिनके गुप्तस्थान की जगहपर है ऐसे ॐकारमूर्त्ति शिवजी के लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ५ ॥ घटाबढ़ीसे रहित, नाशरहित, जाननेवाले, वज्रके बराबर पोढ़ी देहवाले, सब जगत् के संहार करनेवाले ॥ ६ ॥ सब इन्द्रियों के मालिक, संसारके बनानेवाले व सिखानेवाले, पिनाक धनुषके धरनेवाले, देवताओंके मालिक, महाप्रलय के अग्निरूप,

गपीठसंस्थितायनित्यंयोगयोगिनेऽव्योमहराय ॥ ३ ॥ ॐनमःशिवायसर्वप्रभवायशिवायईशानाय शिवायसर्वप्रभवा यशिवायईशानाय ॥ ४ ॥ मूर्द्धायतत्पुरुषायवक्त्रायअघोरायहृदयायवासुदेवायगुह्यायसद्योजातायमूर्तये ॐकाराय नमोनमः ॥ ५ ॥ कलातीतोऽव्ययोबुद्धो वज्रदेहोपमर्दनः ॥ ६ ॥ अध्यक्षश्चविधुःशास्ता पिनाकीत्रिदशाधिपः ॥ अग्नीरुद्रोहुताशश्च पिङ्गलःपावनोहरः ॥ ७ ॥ ज्वलनोदहनोवस्तुर्भस्मान्तश्चक्षमान्तकः ॥ अपमृत्युहरोधाता विधाताकर्तृसंज्ञकः ॥ ८ ॥ कालोधर्म्मपतिःशास्ता वियोक्तानवमःप्रियः ॥ निमित्तोवारुणोहन्ता क्रूरदृष्टिर्भयावहः ॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विरूपाक्षो दंष्ट्रावान्धूम्रलोचनः ॥ बालोह्यतिबलश्चैव पाशहस्तोमहाबलः ॥ १० ॥ श्वेतोविरूपोरुद्रश्च दी

उत्पन्न होनेपर रोनेवाले, होमेहुये पदार्थ के भोजन करनेवाले, भस्मके योगसे कपिसैलेरूपके धारण करनेवाले, सबके पवित्र करनेवाले व हरनेवाले ॥ ७ ॥ प्रकाश करनेवाले व जलानेवाले इस जगत् में जो सत्यहै वह आपही हैं, अन्तमें सबको भस्म करनेवाले,क्रोधरूप, अकालमृत्युके हरनेवाले,धाता और विधाता इन दोनों प्रजापतियोंके रूपके धारण करनेवाले और सबके कर्त्ता॥८॥सब चीजको पुरानी करनेवाले, कालरूप, धर्मके मालिक, जगत् के सिखानेवाले अर्थात् ईश्वररूप, सबके वियोग के करानेवाले, कुछभी कम नहीं होनेवाले, आत्मारूप होनेसे सबके प्यारे, सबके कारणरूप, जलमूर्त्तिके धारण करनेवाले, सबके नाश करनेवाले, डरावनी नजरवाले, भय करानेवाले ॥ ९ ॥ ऊपर यानी माथेपर आंखवाले, बिगड़ेरूप-की आंखोंवाले, बड़ी २ दाढ़ोंवाले, धुमैले नेत्रवाले, बालकरूपसे रहनेवाले व बड़े

बलवाले, फँसरी को हाथमें पकड़नेवाले और महाबलवाले ॥ १० ॥ सफेद जिनका रूपहै और विकरालरूपवाले भी हैं, सबके रुलानेवाले, बडे २ हाथोंवाले, जड़ोंके नाश करनेवाले, बड़ेजल्द,बहुत हलके, वायुके बराबर वेगवाले, बडे डरावने, वड़वामुख अग्नि जिनका रूपहै ॥ ११ ॥ पांच शिरवाले, जटाजूट के धारण करनेवाले, बहुत सूक्ष्म और बड़ेपैने, अज्ञानरूप रात्रिके नाश करनेवाले, खजानेके मालिक, रौद्ररसवाले, धनुषके धरनेवाले, सुन्दरदेहवाले,दुष्टोंके नाश करनेवाले ॥ १२ ॥ शेष-नारायणकी पालना करनेवाले, सबके धारण करनेवाले, पातालके मालिक, बैल की ध्वजावाले, धुमैलेरंग से युक्त, सर्वदा रहनेवाले, संहार करनेवाले, सब कहीं कपिसैले रंगवाले,करालरूपवाले ॥ १३ ॥ सबमें व्याप्त रहनेवाले, सबके मालिक, बड़ी बुद्धिवाले, सुखरूप, मौतसे रहित, कल्याणरूपसे रहनेवाले,सब कहीं व्याप्त

घबाहुर्जडान्तकः ॥ शीघ्रोलघुर्वायुवेगो भीमश्चवडवामुखः ॥ ११ ॥ पञ्चशीर्षाकपर्दीच सूक्ष्मस्तीक्ष्णःक्षपान्तकः ॥ निधीशोरौद्रवान्धन्वी सौम्यदेहःप्रमर्दनः ॥ १२ ॥ अनन्तपालकोधारः पातालेशोवृषध्वजः ॥ सधूम्रःशाश्वतश्शर्वः सर्वपिङ्गःकरालवान् ॥ १३ ॥ विष्णुरीशोमहात्माच सुखोमृत्युविवर्जितः ॥ शम्भुर्विभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षश्चैवादिवस्पतिः ॥ १४ ॥ संवादश्चविवादश्च प्रभविष्णुर्विवर्धनः ॥ शतमेकोत्तरंयावद्रुद्राणांसंख्ययास्मृतम् ॥ १५ ॥ शतमेकोत्तरंसर्वमोङ्कारेचप्रतिष्ठितम् ॥ स्तोत्रंकृत्वातथाब्रह्मा देवदेवंमहेश्वरम् ॥ १६ ॥ भूमौप्रणम्यसाष्टाङ्गं कृत्वाचैवप्रदक्षिणम् ॥ मनसासंस्मरन्देवं तस्थौलोकपितामहः ॥ १७ ॥ स्तोत्रंश्रुत्वाभगवतो ब्रह्मणोलोमहर्षणम् ॥ देवदेवोब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणंप्रतिभारत ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेनदिव्येन तुष्टोहन्तेवरंवृणु ॥ ददामितेनसन्देहो दुष्प्राप्यन्त्रिदशैरपि ॥ १९ ॥

रहनेवाले, गणों के मालिक, तीन नेत्रवाले, स्वर्ग के मालिक ॥ १४ ॥ सलाह व झगड़ा जिनका रूपहै सबके ऊपर प्रभाव करनेवाले व बढ़ानेवाले हैं एक सौ एक रुद्र जो संख्या से कहेगये हैं ॥ १५ ॥ वे सब एकसौ एक रुद्र ॐकारही में स्थितहैं तथा ब्रह्माजी देवताओं के देवता महादेवजी के स्तोत्रको कर ॥ १६ ॥ पृथिवी में साष्टाङ्ग प्रणामकर और प्रदक्षिणाकर मनसे महादेवजी की सुध करतेहुये लोकों के पितामह ब्रह्माजी खडे होरहे ॥१७॥ तब भगवान् ब्रह्माजीके इस रोयें खडे करने वाले स्तोत्रको सुनकर हे भारत ! महादेवजी ब्रह्माजीसे वचन बोले ॥ १८ ॥ कि इस तुम्हारे दिव्यस्तोत्र से हम बहुत प्रसन्नहै,इससे तुम वरको मांगो देवताओं को भी

जो नहीं मिलसक्ता वह हम तुमको देवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ तब ब्रह्माजीबोले कि हे देवेश ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझे आपको वरदेना योग्य ही है तो संसार बिषे आपके पाचोंमुखों में मेरे नामसे पूजन हुआकरै ॥ २० ॥ तब महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! ऐसाहो यह तुम्हारा कहना सचहो हे भारत ! तबसे ब्रह्माजीकी धर्मपूजा होनेलगी ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्माजी बोले कि इस रुद्रके स्तोत्रको ॐकार जो आपहो तिनके आगे सदा आपहीमें मनको लगायेहुये ब्राह्मण,क्षत्रिय और बनियें जो पढ़ेंगे ॥ २२ ॥ तो इस लोक व परलोकमें सब कामोंको पावेंगे व इसका पढ़नेवाला मनुष्य जिस २ कामना को करेगा उस २ को पावेगा ॥ २३ ॥ व

ब्रह्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ पञ्चवक्त्रेषुयजनं ब्रह्मनामभवत्विह ॥ २० ॥ हरउवाच ॥ एवम्भवतुवैब्रह्मन्सत्यमेतत्त्वोदितम् ॥ ब्रह्मणोधर्म्मपूजावै तदाप्रभृतिभारत ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पठिष्यन्तिस्तवंरौद्रमोङ्कारस्यतवाग्रतः ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः सदातद्गतमानसाः ॥ २२ ॥ सर्वकाममवाप्स्यन्ति चेहलोकेपरत्रच ॥ यंयंकामयतेकामं तंतंप्राप्नोतिमानवः ॥ २३ ॥ शतमेकोत्तरंनित्यं पठित्वाचदिवंव्रजेत् ॥ एवमुक्त्वातदाब्रह्मा नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ २४ ॥ दिव्ययानसमारूढो ब्रह्मलोकंमुदाययौ ॥ चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणोहःप्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ अनेनैवतुमानेन शतंब्रह्माहिजीवति ॥ पितामहशतंयावद्विष्णोर्मानंविधीयते ॥ २६ ॥ ॐकारनिमिपार्द्धेन सहस्राणिचतुर्दश ॥ विनश्यन्तिपरंविष्णोरसंख्याताःपितामहाः ॥ २७ ॥ एवंब्रह्मगतिंज्ञात्वा शिवमन्तःसदार्चयेत् ॥ शिवाज्ञावर्ततेलिङ्गे तस्माल्लिङ्गंसदार्चयेत् ॥ २८ ॥ द्वेष्टिलिङ्गन्तुयोमोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सयातिनरकंघोरं शिवस्यवचनंयथा ॥ २९ ॥

नित्य एकसौ एकबार पढ़कर स्वर्गको जावेगा उस समय ब्रह्माजी इस प्रकार कहकर और महादेव के नमस्कारकर ॥ २४ ॥ दिव्य सवारीपर सवार खुशीसे ब्रह्मलोक को जातेहुये चारोंयुगों के हजारबार बीतने से ब्रह्माका एक दिन होताहै ॥ २५ ॥ इसी हिसाबसे सौ वर्षतक ब्रह्माजीते हैं व ब्रह्माके सौवर्ष का विष्णुका एक दिन होताहै ॥ २६ ॥ परन्तु ॐकारके आधेपलमें चौदहहजार विष्णु और अनगिन्ती ब्रह्मा नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥ इसतरह ब्रह्माका हाल जानकर शिवका पूजन अन्तः-करण से हमेशा कियाकरे लिंगमें शिवजीकी आज्ञाहै इससे लिङ्गका पूजन हमेशा करे ॥ २८ ॥ सब देवताओं रो नमस्कार कियेहुये लिंगमे जो मूढ़तासे वैर करताहै

वह घोरनरकको जाताहै ऐसा शिवजीका वचन है ॥ २९ ॥ झूठतत्त्व के माननेवाले बौद्ध, क्षपणक और पाखण्डी जो अलग करदियेगये हैं व शिवके पूजन से रहित होगये उनको नष्ट समझो ॥ ३० ॥ अनेकजन्मों के अभ्याससे वे रसातल को जाते हैं पुराणों में शिवके कहेहुये धर्मको जानकर करै ॥ ३१ ॥ वह दुष्ट और बड़ापापबुद्धिहै जो और धर्मको करताहै हे राजन् ! इसस्कन्दके कहेहुये पुराणको मैंने तुमसेकहा ॥ ३२ ॥ इसके सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

बौद्धक्षपणपाखण्डा मिथ्यातत्त्वविचक्षणाः ॥ नष्टास्तुनाशितायेवै शिवाराधनवर्ज्जिताः ॥ ३० ॥ जन्मजन्मान्तराभ्यासात्तेप्रयान्तिरसातलम् ॥ पुराणेषुतथाबुद्ध्वा शिवोक्तंधर्म्ममाचरेत् ॥ ३१ ॥ सदुष्टःपापबुद्धिस्तु योन्यंधर्म्मं समाचरेत् ॥ एतत्तेकथितंराजन् पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेन्महाभाग रेवाकपिलसङ्गमम् ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ १ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ दिनानिनवसार्द्धानिराहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ २ ॥ वृद्धिंयातिमहाराज पुण्यवृद्ध्यानसंशयः ॥ ग्रस्तेतुराहुणासूर्य्ये दिनानिचदशैवतु ॥ ३ ॥ वर्द्धतेकपिलाभेदस्तद्वदेवनिशाम्पते ॥ रेवायाःकपिलायोगे वाराणस्याःसमागमे ॥ ४ ॥ समानंफलमुद्दिष्टं तिलोदेनापिविद्यते ॥ वाराणसीसमारेवा कपिलायाश्चसङ्गमे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा और कपिला के संगम को जावे वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो वहां मरेहैं वे फिर नहीं उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥ तिलोदक देनेसे पितरों की परमगति होती है चन्द्रग्रहण में साढ़े नव दिनतक ॥ २ ॥ हे महाराज ! पुण्यकी बाढ़िसे वह संगम बढताहै इस में कुछ संशय नहीं है और सूर्यग्रहण में दशदिनतक ॥ ३ ॥ कपिलाका संगम हे निशाम्पते ! उसीतरह बढ़ता है नर्मदा व कपिला के संगममें और काशीमें ॥ ४ ॥ बराबरही फल कहागयाहै जो तिलोदकके देनेसेही होताहै क्योंकि कपिलाके संगम में काशीके बराबर नर्मदाहै ॥ ५ ॥ व स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर ब्रह्माके

वरसे जिनकी उत्पत्तिहै ऐसे ब्रह्मावर्त, रुद्रावर्त्त और सूर्यावर्तहैं ॥ ६ ॥ कपिला और नर्मदाके योगमें ये तीनों जाननेयोग्य हैं जहां कि चार हाथके प्रमाणसे नर्मदाका सङ्गम है ॥ ७ । हे राजन्! उसी नर्मदा और कपिलाके संगममें दो आवर्त कहे गयेहैं वहां सात पातालोंकी रहनेवाली पिप्पला नदी है ॥ ८ ॥ वहीं कपिलावर्त और पिप्पलावर्तहै अपनी तृप्तिके देनेवाले इस तीर्थकी पितर इच्छा किया करतेहैं ॥ ९ ॥ इससे लड़का बड़े उपाय से पितरों के वास्ते तिलोंसे मिली हुई जलाञ्जली व पिण्ड विधिपूर्वक यत्नसे देवे ॥ १० ॥ नर्मदा और कपिलाके संगममें स्नानकर पवित्र होकर मनुष्य पितरोंको श्राद्ध करके घोरनरकसे उद्धार करै ॥ ११॥ जो कोई वहा

स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते ब्रह्मलब्धवरोद्भवाः ॥ रुद्रावर्तंब्रह्मावर्तं सूर्य्यावर्तंतथापरम् ॥ ६ ॥ कपिलानर्म्मदायोगे ज्ञेयमेतत्त्र यंपुनः ॥ नर्मदाभेदनंयत्र चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥ ७ ॥ रेवाकपिलयोराजंस्तत्रावर्तद्वयंस्मृतम् ॥ पिप्पलावाहिनीतत्र स प्तपातालवासिनी ॥ ८ ॥ तत्रैवकपिलावर्तं पिप्पलावर्तमेवच ॥ कामयन्तिहितीर्थंच पितरस्तृप्तिदायकम् ॥ ९ ॥ तस्मा त्पुत्रःप्रयत्नेन पितृभ्यश्चयथाविधि ॥ जलाञ्जलिंतिलैर्मिश्रं दद्यात्पिण्डंचयत्नतः ॥ १० ॥ पितॄन्समुद्धरेद्घोराच्छ्रा द्धंकृत्वातुमानवः ॥ रेवाकपिलयोर्योगेशुचिःस्नात्वातुमानवः ॥ ११ ॥ यःपश्येदमरंतत्र फलंतस्याश्वमेधिकम् ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेतु पर्वकालेविशेषतः ॥ १२ ॥ गन्धंधूपंचनैवेद्यं दीपमालाञ्चकारयेत् ॥ तिलतण्डुलमिश्रैर्यः कुर्य्या ल्लिङ्गस्यचार्चनम् ॥ १३ ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्यरक्तवस्त्रैःप्रवेष्टयेत ॥ पुष्पमालार्चनंकृत्वा हेमरत्नादिभिस्तथा ॥ १४ ॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्य्यश्च हिमवांश्चमहोदधिः ॥ तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते ॥ १५ ॥ कौशेयंपट्टसूत्रञ्च कार्पासंर

अमरनाथको देखताहै उसको अश्वमेधयज्ञ का फल होताहै उसमें भी चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें व पर्वमें विशेषकरके फल होताहै ॥ १२ ॥ चन्दन, धूप और नैवेद्य तथा दियालियोंको जलावे और तिलचौरीसे जो लिंगका पूजन करताहै ॥ १३ ॥ केसरसे लिंगका लेपनकर लालकपड़ों से लपेटे, फूलोंकी माला तथा सोना व रत्नो से पूजनकर ॥ १४ ॥ जबतक चन्द्रमा, सूर्य, हिमाचल और समुद्र रहतेहैं उतने हजार युगभर रुद्रलोकमें पूजित होताहै ॥ १५ ॥ कुसेहरी कीडेका सूत, रेशम का सूत,

कपासका सूत.लालसूत, वैजयन्तीमाला और चँदोवा इन सब चीजोंको मन्दिरके कलशके ऊपर बांधे ॥ १६ ॥ और उसको पञ्चरत्न व क्षुद्रघण्टिकाओंसे युक्त करे उन सूतोंकी जितनी गिनती हो हे भारत ! उतने मुहूर्त्त काल तक स्वर्ग व पार्वती और महादेवजी के पुरमें रहताहै और एक ईशान लिंगहै जिसको हम पहले साधारण रीतिसे कहचुके हैं ॥ १७ । १८ ॥ वह कपिला के पूर्वतरफ थोड़ीही दूरपर वर्तमान है उस लिङ्ग के पूजन से गणोंका स्वामी होताहै कातिक के उजियाले पाखकी अष्टमीको इससे सौगुना फल होताहै संक्रान्ति और व्यतीपात में तो उसकी कुछ संख्याही नहीं है ॥ १९ ।२० ॥ वहां धन आदिके बांटनेसे व कपिलेश्वर के पूजन

कृतान्तवम् ॥ वैजयन्तीवितानञ्च कलशोपरिवर्द्धयेत् ॥ १६ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं किङ्किणीरवसंयुतम् ॥ तत्तन्तुसंख्य यायावन्मुहूर्तमिहभारत ॥ १७ ॥ तावत्कालंवसेत्स्वर्ग उमामाहेश्वरेपुरे ॥ ईशानमपरंचैव सामान्यात्कथितम्पुरा ॥ १८ ॥ कपिलापूर्वभागेतु नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ अर्चनात्तस्यलिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ शुक्लाष्टम्यांका र्त्तिकेतु फलंशतगुणोत्तरम् ॥ संक्रमेचव्यतीपाते तस्यसंख्यानविद्यते ॥ २० ॥ उपहारप्रदानेन कपिलेश्वरपूजना त् ॥ वर्षाणामयुतंसार्द्धं लोकेक्रीडतिभास्करे ॥ २१ ॥ मृतवत्सातथाबन्ध्या गर्भस्रावाचयाभवेत् ॥ रक्तवस्त्रैःपञ्चरत्नैः स्नानंसाचसमाचरेत् ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यांतथाष्टम्यां कपिलायांयुधिष्ठिर ॥ सुभगाजीवपुत्राच सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ २३ ॥ उमयाचवरोदत्तो नारीभ्यश्चप्रसादतः ॥ कपिलानिर्गतायस्मान्नर्म्मदायांप्रसर्प्पति ॥ २४ ॥ तीर्थानामष्टसाह स्रं कामभोगफलप्रदम् ॥ आस्तेतत्रमहाराज शिवेनकथितम्पुरा ॥ २५ ॥ कपिलाचततोदेया सर्वाभरणभूषिता ॥ ब्रा

से पन्द्रहहजार वर्षतक सूर्यलोकमें विहार करताहै ॥ २१ ॥ जिस स्त्रीका लड़का मरजाताहै व जो बांझहै व गर्भ जिसका गिरजाताहै वह लालकपड़ा व पञ्चरत्नके सहित चतुर्दशी व अष्टमी को कपिला में स्नान करे तो हे युधिष्ठिर ! वह सौभाग्यवती और जीनेवाले पुत्रवाली होवे यह शिवका कहाहुआ सत्य है ॥ २२ । २३ ॥ पार्वतीजी ने अपनी खुशीसे स्त्रियोंके वास्ते वरदान को दियाहै कपिलानदी जहां से निकली और नर्मदा में मिलीहै ॥ २४ ॥ वहां आठहजार तीर्थहैं वे मनमाने भोग व फलोंके देनेवाले हैं हे महाराज ! यह शिवजीने पूर्वकाल में कहा है ॥ २५ ॥ वहां सब आभूषणों से युक्त कपिला गौ दान करनेयोग्य है और अपनी शक्तिके

अनुसार वहां ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ २६ ॥ आप व्रतकरे और दैवता व पितरों को तृप्तकरे वहीं सिद्धिका देनेवाला हेमजालेश्वर नामका लिंगहै ॥ २७ ॥ उस देवके पूजन से यमलोक को नहीं देखताहै पुरानेसमय में धुन्धुदैत्य के मारनेवाले वसुदान चक्रवर्त्ती राजा हुये ॥ २८ ॥ वे इस तीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गमें देवता होते हुये अनेकहजार क्षत्रिय हे नृपश्रेष्ठ ! इस कोटितीर्थके प्रभावसे बड़ी सिद्धिको पातेहुये व उल्लूनामके पक्षियोंने कौवोंके सैकड़ों व हजारों शिरकाटके यहां कोटितीर्थ के पानीमें डाल दिये वे कौवा उसीक्षण दिव्यदेहहोकर विमानपर सवार ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ विद्याधरोंके राजाहुये हे अनघ ! मैंने उनको पूर्वकालमें देखाहै और सियारों

ह्मणान्भोजयेत्तत्र यथाविभवविस्तरैः ॥ २६ ॥ उपवासपरोनित्यं तर्पिताःपितृदेवताः ॥ हेमजालेश्वरंनाम लिङ्गन्तत्रैवसिद्धिदम् ॥ २७ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य यमलोकंनपश्यति ॥ वसुदानोधुन्धुमारश्चक्रवर्तीपुराभवत् ॥ २८ ॥ अस्य तीर्थस्यमाहात्म्याद्दिविदेवत्वमाप्तवान् ॥ अनेकानिसहस्राणि संसिद्धिंपरमाङ्गताः ॥ २९ ॥ क्षत्रियाणांनृपश्रेष्ठ कोटितीर्थप्रभावतः ॥ उलूकैःपातितान्यत्र कोटितीर्थेशिरांस्यथ ॥ ३० ॥ काकानांजलमध्येतु शतशोथसहस्रशः ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहास्तु तेकाकायानमाश्रिताः ॥ ३१ ॥ विद्याधराणांराजानो मयादृष्टाःपुरानघ ॥ वृन्दाश्चजम्बुकानान्तु व्याघ्राणांचभयेनवै ॥ ३२ ॥ तथामेघावृतेकाले नर्म्मदाजलमाविशन् ॥ यक्षलोकन्तुतेप्राप्ताः सर्वकामफलोदयम् ॥ ३३ ॥ जम्बुकेश्वरमित्येवं तिर्यग्योनिविमोक्षणम् ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ ३४ ॥ वाराणसीप्रयागंच त्रैलोक्येत्वमरेश्वरम् ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिस्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ३५ ॥ तत्रस्नातश्चराजेन्द्र हयमेधफलंलभे

के झुण्ड बाघोंके भयसे ॥ ३२ ॥ चौमासे में नर्मदा के जलमें पैठगये वे सब यक्षोंके लोकको प्राप्तहुये जहां सब मनमाने फल मिलते हैं ॥ ३३ ॥ वहां जम्बुकेश्वर इस नामका लिङ्ग तिर्यग्योनि से छुड़ानेवालाहै पृथिवी में नैमिषतीर्थ है और अन्तरिक्षमें पुष्करतीर्थहै ॥ ३४ ॥ काशी और प्रयाग है व अमरेश्वरतीर्थ तीनोंलोकमेंहै जो तेंतीस करोड़ देवता और दैत्यों से नमस्कार कियागयाहै ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! वहां स्नान करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको पाताहै व इसी तीर्थके प्रभावसे वहां

सरस्वती सिद्धहुई है ॥ ३६ ॥ पितरों की प्रीतिके बढ़ानेवाले श्राद्धको जो कोई करताहै वह मनुष्य पितरोंके सहित परमस्थान को जाताहै ॥ ३७ ॥ सारस्वत नामका लिङ्ग ब्रह्महत्या का नाश करनेवालाहै अब पुराने इतिहास व आख्यान अर्थात् कथाको कहते हैं ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पहले कल्पके सत्ययुगमें बड़े लक्ष्मी वाले इन्द्रके बराबर पराक्रम (ताकत) वाले सत्यवचन के बोलनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, यज्ञोंके करनेवाले, दानके देनेवाले, देवता और अतिथि के सत्कार करनेवाले धुन्धुमार इस नामसे प्रसिद्ध अयोध्या के राजा होतेहुये ॥ ३९ । ४० ॥ उन राजाकी प्रजा दोष व भय और दरिद्रसे रहित होतीहुई और हे भारत ! वे सब

त ॥ सिद्धासरस्वतीतत्र तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ३६ ॥ यःकश्चित्कुरुतेश्राद्धं पितॄणांप्रीतिवर्द्धनम् ॥ सयातिपरमंस्थानं पितृभिःसहमानवः ॥ ३७ ॥ लिङ्गंसारस्वतंनाम ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ आख्यानंकथयिष्यामि इतिहासम्पुरातनम् ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ३९ ॥ धुन्धुमारइतिख्यातः सत्यवादीजितेन्द्रियः ॥ यज्ञयाजीदानशीलो देवतातिथिपूजकः ॥ ४० ॥ निरवद्याःप्रजास्तस्य भयदारिद्र्यवर्जिताः ॥ सपादलक्षवर्षाणि प्रजाजीवन्तिभारत ॥ ४१ ॥ यज्ञोत्सवविवाहैश्च वेदमङ्गलनिस्स्वनैः ॥ स्वयंकामदुघाधेनुः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि प्राकृताइतरेजनाः ॥ कौशेयपट्टवृक्षेषु बद्धंसर्वत्रभारत ॥ ४३ ॥ यज्ञहोमसहस्रैस्तु सदादोहमयींनृप ॥ एवंशशासपृथिवीं यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ४४ ॥ एकस्मिन्समयेराजा प्रतीहारमुवाचह ॥ आदेशयनृपान्सर्वान्नानादेशसमुद्भवान् ॥ ४५ ॥ प्रतीहारसमादिष्टाः समायातास्ततोनृपाः ॥ मृग

प्रजा सवालाख वर्ष जीतीरहीं ॥ ४१ ॥ यज्ञ, उत्सव (जल्सा),विवाह, वेदपाठ और मङ्गलशब्दोंसे सब प्रजा युक्तरही गौ आपही मनमाने समयपर दूधकी देनेवाली व पृथिवी अन्नसे भरी होतीहुई ॥ ४२ ॥ चारहजार वर्षतक नीचलोग जीतेरहे और हे भारत ! रेशमी कपडे सर्वत्र वृक्षोंमें बँधेरहते थे ॥ ४३ ॥ हे नृप ! यज्ञ और हजारों होमों के कारण से हमेशा कामधेनु के बराबर होरही पृथिवीकी राजा इस प्रकार रक्षाकरतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी रक्षाकरे ॥ ४४ ॥ एक समयमें राजा अपने चोबदार से बोले कि अनेकदेशों के सब राजाओं को बुलावो ॥ ४५ ॥ तदनन्तर चोबदारोंसे आज्ञा पायेहुये राजालोग आतेहुये उन सब राजाओं के सहित शिकार

करनेके वास्ते विन्ध्याचलको वे राजा जातेहुये ॥ ४६ ॥ जहां अग्निहोत्री ब्राह्मणों के वेदोंकी ध्वनियों के शब्दोंसे नादित हुई तीनोंलोकोंमें प्रसिद्ध नर्मदा विद्यमान है ॥ ४७ ॥ वहां बडा शोभायमान, रमणीक, विचित्र,सघन जंगल था हे भारत ! उसीमें क्षत्रियोंके सहित उन राजाने हजारों जीवोंको मारकर ॥ ४८ ॥ तदनन्तर बडे दारुण सब वनमें प्रवेश किया तो वहा डरावने रूपवाले, बडेघोर, दुःखसे देखने योग्य, अतिदुस्सह ॥ ४९ ॥ मेघोंकी आवाजसे गर्जिरहे, अत्यन्त रोयें खडेकरने वाले, सफेद रंगवाले, अपनी दोनों दाढ़ोंसे डरावने होरहे एक सुवरको देखा ॥ ५० ॥ वहां श्रेष्ठ राजाने उस वैसे सुवरको देखकर और सब क्षत्रियोंसे कहा कि रोयें खड़े

यान्तुसतैःसर्वैः कर्तुंविन्ध्यंजगामह ॥ ४६ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्द्विजानामग्निहोत्रिणाम् ॥ नादितात्रिषुलोकेषु विख्याता सप्तकल्पगा ॥ ४७ ॥ तत्रोपशोभितंरम्यं विचित्रंवनमण्डलम् ॥ हत्वाजीवसहस्राणि क्षत्रियैःसहभारत ॥ ४८ ॥ विवेशचवनंसर्वं ततःपरमदारुणम् ॥ भीमरूपंमहाघोरं दुष्प्रेक्ष्यंचसुदुस्सहम् ॥ ४९ ॥ मेघनादेनगर्जन्तं सुतरांलोमहर्षणम् ॥ वाराहंश्वेतवर्णञ्च दंष्ट्रायुगलभीषणम् ॥ ५० ॥ तंदृष्ट्वाताद‍ृशंतत्र वाराहंनृपसत्तमः ॥ उवाचक्षत्रियान्सर्वान्न दृष्टंनमयाश्रुतम् ॥ ५१ ॥ एताद‍ृशंवराहस्य रूपंवैलोमहर्षणम् ॥ इत्युक्त्वापाशमादाय यावद्धन्तुंसमुद्यतः ॥ ५२ ॥ तावद्वायुवपुर्भूत्वा निर्यातःप्राणपीडितः ॥ विवेशजलमध्येच कोटितीर्थेनराधिप ॥ ५३ ॥ पृष्ठतोनुजगामाथ सराजाहयवाहनः ॥ प्रविष्टमात्रःपयसि वराहस्तुविशाम्पते ॥ ५४ ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु कामिकंयानमास्थितः ॥ किमिदंप्राहतंराजा वाराहंदेवरूपिणम् ॥ ५५ ॥ हृदिविस्मयमापन्नोसत्यमेतच्चब्रूहिमे ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वाराहोदेवरूपधृक् ॥ ५६ ॥

करनेवाले सुवरके ऐसे रूपको मैंने कभी देखा व सुना नहीं था यह कहकर फँसरीको लेकर उसके मारनेको जबतक राजा तैयारहों ॥ ५१।५२ ॥ तबतक वह अपने प्राणों के डरसे हवाकी तरहहो उड़ा हे नराधिप ! कोटितीर्थके जलके बीचमें पैठगया ॥ ५३ ॥ वह राजा घोडेपर सवार उसके पीछे चला हे विशाम्पते ! वह सुवर पानी में पैठतेही ॥ ५४ ॥ उसीक्षण दिव्यदेह होकर मनमानी सवारीपर सवार होगया उस देवरूप होगये सुवर से राजा बोले कि यह क्या हुआ ॥ ५५ ॥ मेरे हृदयमें बड़ा

विस्मय होरहा है इससे मुझसे यह सत्य कह तो देवता के रूपको धरेहुये वह सुवर उन राजाके इस वचनको सुनकर ॥ ५६ ॥ हँसताहुआ राजा से वाक्य बोला कि हे महामते, राजन्! तुम सुनो कि मुझको अंगद नाम का महादेवजी का गण समझो ॥ ५७ ॥ किसी समयमें अपने गण व देवता व पार्वती के सहित महादेव जी विहार करते रहे हे नृपसत्तम! उनके आगे ॥ ५८ ॥ मैंने दण्डक नामका बहुत अच्छा गानागया परन्तु वहां उर्वशी और रम्भाको देखकर मै कामसे मोहित होगया ॥ ५९ ॥ और सुवरकी वाणीको बोलताहुआ मैं बिगडी आवाजवाला व बिगड़े मुहँवाला होगया और वहां बेहोशहुये मैंने अप्सराओंके साथ विहारको किया ॥ ६० ॥

प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं शृणुराजन्महामते ॥ अङ्गदंनामतुगणं विद्धिमांशङ्करस्यतु ॥ ५७ ॥ गणैश्चदेवमुख्यैश्च उमयाचमहेश्वरः ॥ क्रीडन्नाऽऽस्तेकदाचित्तु तस्याग्रेनृपसत्तम ॥ ५८ ॥ तत्रगीतंमयागीतं रम्यंदण्डकलक्षणम् ॥ दृष्ट्वोर्वशींतथारम्भामभूवंकाममोहितः ॥ ५९ ॥ व्याहरञ्छूकरींवाणीं विस्वरोविकृताननः ॥ विह्वलेनमयातत्र ह्यप्सरोभिस्तुक्रीडितम् ॥ ६० ॥ तादृशंमान्तुदृष्ट्वावै कामक्रीडावशङ्गतम् ॥ शशापनन्दीकोपात्मा शूकरोमेध्यभुग्भव ॥ ६१ ॥ दशवर्षसहस्राणि भ्रमिष्यसिमहीतले ॥ ब्रह्मापिनैवशक्नोति शिवस्यतुप्रकीर्तितम् ॥ ६२ ॥ त्वंतुगामटमानोपि किङ्करस्यापिकिङ्करः ॥ कुपितंनन्दिनंज्ञात्वा भयभीतान्तरात्मना ॥ ६३ ॥ प्रसादितोमयानन्दी शापान्तंवरमादिशत् ॥ दर्शनाद्धुन्धुमारस्य कोटितीर्थप्रभावतः ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वातुशूकरींयोनिं पुनःप्रत्यागमिष्यसि ॥ एतत्तेकथितंराजन्वाराहींयोनिमाश्रितः ॥ ६५ ॥ यथाहिकिल्बिषान्मुक्तस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ॐकारदर्शनाद्राजन् रेवातोयपरिष्कृतः ॥ ६६ ॥

कामके विहारमें आसक्त होरहे वैसे मुझको देखकर बड़े क्रोधवाले नन्दीश्वरजी ने शाप देदिया कि तू मैला खानेवाला सुवरहो ॥ ६१ ॥ दशहजार वर्षतक पृथिवी में घूमाकरेगा महादेवके कहेहुयेको ब्रह्माभी नहीं हटासक्तेहैं ॥ ६२ ॥ गुलामका गुलाम तू पृथिवी में घूमता रहेगा तब नन्दीश्वरजीको क्रोधयुक्त जानकर भयसे डरेहुये ॥ ६३ ॥ मैंने नन्दीश्वरजीको प्रसन्नकिया तब उन्होंने शाप समाप्त होजानेका मुझे वरदिया कि धुन्धुमार राजाके दर्शनसे व कोटितीर्थके प्रभावसे ॥ ६४ ॥ सुवर की योनिको छोड़कर फिर तू यहीं आवेगा हे राजन्! यह आपसे कहा कि सुवरकी योनिमें पड़ाहुआ ॥ ६५ ॥ जैसे इस तीर्थके प्रभावकरके पापसे छूटगया हे राजन्!

ॐकारके दर्शनसे व नर्मदाके जलसे शुद्ध हुआ ॥ ६६ ॥ व आपके दर्शनसे हे सुव्रत ! मै गन्धर्वयोनिको प्राप्तहुआ इससे हे राजेन्द्र ! आप शोचको छोडो कर्मोंकी गति बडी कठिनहै ॥ ६७ ॥ धर्ममें अपनी बुद्धिको लगाकर सब जीवोंके हितके करनेवाले होवो क्योंकि हे राजन् ! पैदाहोने से मरना होताहै और मरनेसे पैदाहोना होता है ॥ ६८ ॥ इससे पाप व पुण्यवाले कामोंको जानकर तुम अपनेको उद्धारकरो अपनाही कमाया कर्म आपही भोगता है ॥ ६९ ॥ भले बुरेकर्मों का करनेवाला व भोगनेवाला आपहीहै अब आपका भलाहो मैं जाताहूं यह कहकर चलागया ॥ ७० ॥ छाताको लगायेहुये अप्सराओंसे चँवर ढुरायाजारहा ऐसा आप शिवके ध्यानमे

प्राप्तोगन्धर्वयोनिन्तु दर्शनात्तवसुव्रत ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्म्मणाङ्गतिः ॥ ६७ ॥ धर्म्मेबुद्धिंसमाधा
य सर्वभूतहितोभव ॥ जन्मतोमरणंराजन्मरणाज्जन्मसम्भवः ॥ ६८ ॥ ज्ञात्वाशुभाशुभंकर्म्मत्वमात्मानंसमुद्धर ॥
स्वयमेवार्जितंकर्मस्वयमेवोपभुज्यते ॥ ६९ ॥ स्वयंकर्ताचभोक्ताच शुभस्याप्यशुभस्यच ॥ स्वस्तिवोस्तिगमिष्यामि
एवमुक्त्वाजगामह ॥ ७० ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ शिवध्यानपरोभूत्वा कैलासेन्यवसत्सुख
म् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेवाराहस्वर्गारोहणंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ सतस्मिन्नृपतिश्रेष्ठस्तृषितःश्रान्तवाहनः ॥ हयंमुमोचराजावै सर्वोपस्करमेवच ॥ १ ॥ स्मर
न्नूर्द्ध्वगतिन्तावदुपविष्टःशिलातले ॥ रेणुध्वस्तस्ततोश्वोवैप्रविष्टःसप्तकल्पगाम् ॥ २ ॥ पानस्नानादिकंकृत्वा ह्यन्तरि
क्षस्थितोहयः॥ब्रह्मतेजःस्थितोभूत्वा ब्रह्मयानंसमाश्रयत्॥ ३॥ अत्यद्भुतंतुतन्दृष्ट्वा परंविस्मयमागतः॥उवाचवचनंरा

परायण होकर कैलास में सुखसे रहताहुआ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेवाराहस्वर्गारोहणंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि राजाओं में श्रेष्ठ वे धुन्धुमार राजा थकी सवारीवाले और प्यासे उसी स्थानमें घोडेको छोंडदिया और उसका साजभी सब उतार लिया ॥ १ ॥ राजा परलोक की गतिको सुध करताहुआ चट्टान पर बैठगया तदनन्तर धूलिसे भराहुआ घोडा नर्मदा में पैठगया ॥ २ ॥ पानी पीके व स्नानकरके घोड़ा आकाश में स्थित हुआ और ब्रह्मतेज में स्थित होकर ब्राह्मणोंकी सवारीपर सवार हुआ ॥ ३ ॥ राजा उसका बडा अजबहाल देखकर बड़े अचम्भेमें होगये व ब्राह्मण

होगये उस अपने घोड़ेसे राजा वचन बोले ॥ ४ ॥ कि हे ब्रह्मन्! यह क्या कारण है सो मुझसे आज ठीक २ कहो तब यह सुनकर ब्राह्मण होरहा वह घोड़ा वचन बोला ॥ ५ ॥ कि पूर्वकाल में कुरुक्षेत्र बिषे रहनेवाला मैं गालवनाम का ब्रह्मर्षिहूं सो घोड़े के दान लेने से मैं जलगया व घोड़ेकी योनि में आपड़ा ॥ ६ ॥ दावानल से जो जलाहुआ है वह पानी से फिर जमआता है और दुष्टदान के लेनेसे जो जलगयाहै वह कभी नहीं जमता है ॥ ७ ॥ पहिले जमाने में अयोध्या के मालिक, बड़े धर्मात्मा, बड़े बलवाले, चक्रवर्ती द्रुमसेन राजा होतेहुये ये राजा सूर्यग्रहण में ब्राह्मणों के वास्ते देने को हाथी, घोड़े, सोना, गौवें, माणिक, हीरा, पन्ना और

जा तुरङ्गंतंद्विजर्षभम् ॥ ४ ॥ किमेतत्कारणंब्रह्मन्ब्रूहिसमेद्ययथोचितम् ॥ उवाचतद्वचःश्रुत्वा हयरूपोद्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ ब्रह्मर्षिर्गालवश्चाहं कुरुक्षेत्रेपुरास्थितः ॥ अश्वप्रतिग्रहाद्दग्धस्त्वश्वयोनिंसमाश्रितः ॥ ६ ॥ दावाग्निनाचयद्दग्धमुदकात्तत्प्ररोहति ॥ दुष्टप्रतिग्रहाद्दग्धो नप्ररोहेत्कदाचन ॥ ७ ॥ द्रुमसेनःपुराचासीद्राजापरमधार्म्मिकः ॥ अयोध्याधिपतिश्चासौ चक्रवर्तीमहाबलः ॥ ८ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ गजानश्वान्समादाय हिरण्यञ्चास्तथैवच ॥ ९ ॥ माणिक्यवज्रवैदूर्य्यंवासांसिविविधानिच ॥ ब्राह्मणार्थेनृपश्रेष्ठ मुदापरमयायुतः ॥ १० ॥ गृहाणिसाष्टभौमानि धूपितानितुकाञ्चनैः ॥ सर्वकामसमृद्धानि ब्राह्मणेभ्योयथाविधि ॥ ११ ॥ दत्त्वासयाचयामास सक्तुप्रस्थव्रतेस्थितम् ॥ राजोत्तमकुलंविप्रमुञ्छवृत्तिंसमाश्रितम् ॥ १२ ॥ श्राद्धकालःपितॄणांमे भोजनंक्रियतामिति ॥ ऋषिरुवाच ॥ राज्ञोहि दर्शनंघोरं मेधामथनमक्षमम् ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाचैवमहीपालमादित्यंचावलोकयेत् ॥ द्विजात्परतरोनास्ति प्रतिग्रहपरा

अनेक तरह के कपड़े लेकर बडी खुशीसे युक्त हे नृपश्रेष्ठ! कुरुक्षेत्र को जातेहुये ॥ ८ । ९ । १० ॥ और वहां सात २ चौकवाले सोने के कामवाले, सब चीजों से भरेहुये मकान ब्राह्मणों को विधिसे ॥ ११ ॥ देकर फिर सेरभर सत्तूके ऊपर दान नहीं लेना इस व्रतमें स्थित होरहे शीला बीनकर खानेवाले, उत्तमकुलवाले, एक ब्राह्मण से उन राजाने प्रार्थना की ॥ १२ ॥ कि मेरे पितरों के श्राद्धका समयहै सो आप भोजन करें तब वह ऋषि बोला कि राजाका दर्शन बड़ाघोर होताहै बुद्धि को नाश कर देताहै ठीक नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाको देखकर सूर्यका दर्शनकरे तब शुद्ध होता है और दानके नहीं लेनेवाले ब्राह्मण से कोई श्रेष्ठ नहीं

होताहै ॥१४॥ दुष्टदानके लेनेसे जरूर नरकको जाताहै इससे स्त्रीके दानका लेनेवाला तू और किसी ब्राह्मणसे प्रार्थनाकर ॥ १५ ॥ ऋषिके वचनको सुनकर राजाने अपने चोबदार से कहा कि कुरुक्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मणों के वास्ते तू शीघ्र पुकारकरदे ॥ १६ ॥ कि जिस किसीको दान लेनाहो वह यहां शीघ्रआवे हे नृप ! पुकार करने परभी कोई दानका लेनेवाला नहीं हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर राजा बड़ा नाराज हुआ और उस स्थानकी निन्दाकी कि यह स्थान ब्राह्मणों का नहीं है और न यहां वेदहै न यज्ञका कराना है ॥ १८ ॥ ऐसे उन सबकी निन्दाकर फिर चुपहोरहा उस के इस वचनको सुनकर राजासे मैंने यह कहा ॥ १९ ॥ कि चारों वेदोंका पढ़ने

श्सुखात् ॥ १४ ॥ असत्प्रतिग्रहंगृह्णन्नरकंयातिवैध्रुवम् ॥ भार्य्याप्रतिग्रहग्राही याचस्वान्यंद्विजोत्तमम् ॥ १५ ॥ ऋषे राजावचःश्रुत्वा प्रतीहारंतथाब्रवीत् ॥ घोषणाक्रियतांशीघ्रंस्थानेश्वरनिवासिनाम् ॥ १६ ॥ प्रतिग्रहाययःकश्चित् स चायात्विहसत्वरम् ॥ कृतेतुघोषणेकश्चिन्नासीन्नृपप्रतिग्रही ॥ १७ ॥ ततस्तुकुपितोराजा स्थानन्तचनिनिन्दच ॥ अब्रह्मण्यमिदंस्थानं नवेदोनचयाजनम् ॥ १८ ॥ जुगुप्सित्वातुतान्सर्वांस्तूष्णींचैवबभूवह ॥ तस्यवाक्यन्तुतच्छ्रुत्वा राजानंचेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ गालवोहंद्विजश्रेष्ठश्चतुर्वेदीमहातपाः ॥ यज्ञयाजीतपस्वीच सर्वभूतहितेरतः ॥ २० ॥ अनुग्रहमिमंविद्धि उद्धरिष्येभवार्णवात् ॥ राजोवाच ॥ ददामितेनसन्देहस्त्वमेकोमुनिसत्तमः ॥ २१ ॥ मुद्गलाद्यैर्द्विजैः सर्वैर्वार्य्यमाणोपिचानघ ॥ गृहीतोश्वरथस्तत्र मयाभरणभूषितः ॥ २२ ॥ ततःसमांनमस्कृत्य द्रुमसेनोययौनृप ॥ मयापिचाग्निहोत्रादिकर्म्मंत्यक्त्वायथासुखम् ॥ २३ ॥ नानाविधानिदिव्यानि स्त्रीभिःसार्द्धंसुखानितु ॥ क्रीडतोपित

वाला, बड़ेतप का करनेवाला, यज्ञोंका करनेवाला, सब जीवोंके हितका करनेवाला, तपस्वी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मैं गालवनाम का ब्राह्मण हूं ॥ २० ॥ इसको तू मेरी दया समझ मैं तुझे संसारसमुद्र से उद्धार करूंगा तब राजा बोला कि मैं आपको दान देऊंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है आपही एक मुनियो में श्रेष्ठहो ॥ २१ ॥ हे अनघ! यहां मुद्गलआदि सब ब्राह्मणोंसे मैं रोंकाभी गया परन्तु सब साज से सजेहुये घोड़रथको मैंने लेलिया ॥ २२ ॥ हे नृप ! तदनन्तर वह द्रुमसेन राजा मुझको नमस्कारकर चलागया मैंनेभी अग्निहोत्रआदि कर्मको छोड़कर सुखसे ॥ २३ ॥ अनेक तरह के दिव्यसुखों को स्त्रियोंके साथ भोगे व मुझको विहार करतेहुये वह सब

द्रव्य नाश (खर्च) होगई ॥ २४ ॥ ऐसे कहकर वह ब्राह्मण सनातन ब्रह्मलोकको चलागया तदनन्तर हे भारत! अकेला वह राजा सोचनेलगा ॥ २५ ॥ कि अब जो मैं अकेला व घोड़ा न होनेसे पैदलही चलाजाऊं तो राजालोग आपसमें यह कहकर कि डाकुओंने इनके घोडेको मारडाला ऐसी २ अपनी बातोंसे मुझे हँसेंगे घोड़ेके साजको अपने शिरपर लेकर मुझको कैसे ॥ २६ । २७ ॥ शहरमें पैठना योग्यहै यह बात मुझको बड़ी शर्मकी है और आजतक मैंने ब्राह्मणके ऊपर सवारीकी ॥ २८ ॥ इससे अब इस पापके छूटने के वास्ते मैं आगीमें प्रवेश करूंगा इसतरह राजाने वहां विचार किया और बड़ीजल्दी से ॥ २९ ॥ दक्षिण दिशामें टिककर सूखी लकड़ी

दर्थैवै यावन्मेचत्तयङ्गतम् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वाययौविप्रो ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ एकाकीचततोराजा चिन्तयामासभारत ॥ २५ ॥ एकाकीयदियास्यामि गताश्वश्चरणेनतु ॥ राजानोमांहसिष्यन्ति वचनैःस्वैःपरस्परम् ॥ २६ ॥ दस्युभिर्निहतश्चास्य हयइत्येवमादिभिः ॥ अश्वोपस्करमादायशिरसाचकथंमया ॥ २७ ॥ प्रवेष्टव्यंपुरंचैतन्महालज्जाकरंमम ॥ अद्ययावन्मयातावद्ब्राह्मणारोहणंकृतम् ॥ २८ ॥ पापस्यास्यविशुद्ध्यर्थं प्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ एवंविचिन्तयामास राजातत्रैवसत्वरम् ॥ २९ ॥ दक्षिणान्दिशमाश्रित्यशुष्ककाष्ठानिचाहरत् ॥ ततःप्रज्वाल्यकाष्ठानि कृत्वाचत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥ नमस्कृत्यहुताशञ्च विवेशस्वगृहंयथा ॥ निर्ज्जित्यतेजसातेजः पावकस्यतदान्नृपः ॥ ३१ ॥ चतुर्भुजात्रिनेत्रातु मुक्ताभरणभूषिता ॥ तंगृहीत्वाकरेणैव इदंवचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अप्राप्तंमरणंराजन्नकालोविहितस्तव ॥ अकस्मात्साहसन्देव युक्तंनप्रतिभातिमे ॥ ३३ ॥ कालप्राप्तंपुमांसन्तु नरत्तेदीश्वरःस्वयम् ॥ राजोवाच ॥

को जमा किया तदनन्तर लकडी को जलाकर तीनबार प्रदक्षिणाकर ॥ ३० ॥ और आगीको नमस्कारकर अपने मकानकी तरह आगीमें पैठगया उससमयमें अपने तेजसे आगीके तेजको जीतकर राजा स्थितहुआ ॥ ३१ ॥ तबतक चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, सब गहनेसे सजीहुई एक स्त्री उन राजाको हाथसे पकड़कर इस वचन को बोली ॥ ३२ ॥ कि हे राजन् ! अभी आपकी मौत नहीं है और अभी आप का समय नहीं है हे देव ! यह एकाएकी जबरदस्ती करना आपका मुझको ठीक

नहीं समझ पडता है ॥ ३३ ॥ जिसका समय आगया उस पुरुषको साक्षात् ईश्वरभी नहीं बचासक्ता है तब राजा बोला कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो पार्वती व गङ्गा व लक्ष्मीहो ॥ ३४ ॥ हे महाभागे ! सो कहो मुझको तुम बडीभक्तिकी देनेवाली हो तब वह स्त्री बोली कि हे नृप ! न मैं गङ्गाहूं और न सरस्वतीहूं इस मुझको आप महादेव से निकलीहुई, नर्मदा के भीतर बहनेवाली कपिला नदी जानो व वसुदान राजा की यज्ञ में नर्मदा और कपिलाका संगम हुआ ॥ ३५ । ३६ ॥ उसी यज्ञ मे उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ३७ ॥ शतद्रू, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता और देवीचर्मण्वती

कासित्वंचवरारोहे ह्युमागङ्गाथवारमा ॥ ३४ ॥ कथयस्वमहाभागे ममत्वंभक्तिदायिनी ॥ स्त्र्युवाच ॥ नाहंगङ्गानवाणी वाकपिलांविद्धिमांनृप ॥ ३५ ॥ एनांरुद्राद्विनिष्क्रान्तां नर्म्मदातलवाहिनीम् ॥ वसुदानस्ययज्ञेतु रेवाकपिलसङ्गमः ॥ ३६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा ॥ सरस्वतीतथाशिप्रा वरणाचशुभापगा ॥ ३७ ॥ शतद्रूश्चन्द्रभागाच सिन्धूरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्म्मण्वादेवी सोमावभृथमध्यतः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्नानार्थंहृतवारिभिः ॥ तिलोदकैर्मुनीनान्तु प्रणीतःकलशोदकैः ॥ ३९ ॥ तथासोमरसैश्चैव घृतखण्डादिमिश्रितैः ॥ बभूवातिप्रवाहो वै इज्याजन्योमहान्पुरा ॥ ४० ॥ एतद्भूतंमहत्पुण्यमुदयाचलमाश्रितम् ॥ रुद्रावर्तपदंचात्र विद्यतेनृपसत्तम ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोययौराजा देवीचान्तरधीयत ॥ हृष्टस्तुष्टश्चक्रवर्तीमार्कण्डेयाश्रमंययौ ॥ ४२ ॥ गत्वाप्रणम्यतमृषिमुपविष्टस्तथाग्रतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कुशलंतेनृपश्रेष्ठ धर्म्माचारविदांवर ॥ ४३ ॥ सन्त्यज्यचकथंसैन्यमेकाकीत्व

ये सब नदियां सोमयज्ञ के यज्ञान्तस्नानमें ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा व विष्णु और महादेवके स्नानके वास्ते आईं सो इनके जलोंसे व तिलोंसे मिलेहुये मुनियों के कलशों के जलोंसे प्राप्त ॥ ३९ ॥ व इसीतरह घी और शक्करआदि से मिलेहुये सोमलता के रसोंसे यज्ञसे पैदाहुआ बडाभारी जलोंका प्रवाह पूर्वकाल में होताहुआ ॥ ४० ॥ हे नृपसत्तम ! यह उदयाचलके आश्रित महापुण्यतीर्थ हुआ और यहां रुद्रावर्त नामका भी तीर्थहै ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहागया राजा चलागया व देवीभी अन्तर्द्धानहो गई बड़े खुश और सन्तुष्ट चक्रवर्त्ती राजा मार्कण्डेयमुनिके आश्रमको चलेगये ॥ ४२ ॥ वहां जाकर उन ऋषिको नमस्कारकर आगे बैठगये तब मार्कण्डेयजी बोले

कि हे नृपश्रेष्ठ ! हे धर्मके आचार के जाननेवालों में श्रेष्ठ ! आपकी कुशलहै ॥४३॥ अपनी सेनाको छोड़कर अकेले तुम यहां कैसे आये तब राजा बोले कि आज आप के चरणकमलोंके दर्शनसे मेरा जन्म सफल होगया ॥ ४४ ॥ फिर धुन्धुमार राजाने सब पहलेवाला हाल कहा तदनन्तर मार्कण्डेयजी राजासे हालको सुनकर ॥ ४५ ॥ नर्मदा और कपिला के संगम में स्नानकर स्तुति करतेहुये इस नर्मदा और कपिलाके संगम में स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं ॥ ४६ ॥ उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ४७ ॥ शतद्रू, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता, चर्मण्वती, बाहुदा, वारुणी ॥ ४८ ॥ सरयू, गण्डकी,

मिहागतः ॥ राजोवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ ४४ ॥ धुन्धुमारस्तथाराजा कथयामासपूर्वकम् ॥ मार्कण्डेयस्ततःश्रुत्वा वृत्तान्तंपृथिवीपतेः ॥ ४५ ॥रेवाकपिलयोर्योगे स्नात्वास्तोत्रंचकारह ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति रेवाकपिलसङ्गमे ॥ ४६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा ॥ सरस्वतीतथाशिप्रा वरणाचशुभापगा ॥ ४७ ॥ शतद्रूश्चन्द्रभागाच सिन्धूरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्म्मणादेवी बाहुदावारुणीतथा ॥ ४८ ॥ सरयूर्गण्डकीचैव घर्घराबदरीतथा ॥ गोमतीवेणुकीचैव पारावेत्रवतीशुभा ॥ ४९ ॥ विपाशाचतथावाहा शङ्खिनीचपयोष्णिका ॥ गोदावरीचकावेरी भीमाकृष्णातथाशुभा ॥ ५० ॥ सुभद्राचतथाभद्रा करतोयाथमालिनी ॥ एतास्सर्वास्त्वमेवासि सर्वगेत्वांनमाम्यहम् ॥ ५१ ॥ लोकत्रयन्त्वयाव्याप्तमपांरूपेणसुव्रते ॥ प्रसीदत्वंमहाभागे लोकत्रितयपावनी ॥ ५२ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदंदेवी मार्कण्डेयात्तपोधनात् ॥ पुष्पकंयानमारुह्य सर्वाभरणभूषिता ॥ ५३ ॥ चतुर्भुजात्रिनेत्राच चन्द्र

घाघरा तथा बदरी, गोमती, वेणुकी, पारा और शुभ वेत्रवती ॥ ४९ ॥ विपाशा वैसेही वाहा, शङ्खिनी, पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भीमा तथा शुभ कृष्णा ॥ ५० ॥ सुभद्रा तथा भद्रा, करतोया और मालिनी ये सब नदियां तुम्हींहो हे सर्वगे ! तुम्हारे हम नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥ हे सुव्रते ! पानीके रूपसे तीनों लोक तुम्हींसे व्याप्तहैं व तीनोंलोकों को पवित्र करनेवालीहो हे महाभागे ! तुम प्रसन्न होवो ॥ ५२ ॥ तपोधन मार्कण्डेयजीसे देवीजी इस स्तोत्रको सुनकर सब गहनेसे सजी हुई

पुष्पक विमानपर सवार होकर ॥ ५३ ॥ चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, चन्द्रमाके बिम्बके समान मुखवाली देवी महामुनि मार्कण्डेयजीसे वचन बोलीं ॥ ५४ ॥ कि इस स्तोत्रसे हम प्रसन्नहैं तुम अपने मनका वर मांगो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे देवेशि! जो तुम प्रसन्नहो और वर देनेकी इच्छा करती हो तो हे हरसम्भवे! हे कल्याणि ! लोकोंके पापको हरो जे कोई स्नानकर आपकी स्तुतिको करें वे शिव की आज्ञासे उत्तम लोकोंको प्राप्तहोवें ॥ ५५ । ५६ ॥ और हे देवि! अब इससमय तुम धुन्धुमार राजाको वर देवो कि राज्यको कर अपने रनिवास सहित स्वर्गको जावें ॥ ५७ ॥ और हे सुव्रते ! जिस २ कामनाको राजाकरें उस २ को पावें तब

बिम्बनिभानना ॥ उवाचवचनंदेवी मार्कण्डेयंमहामुनिम् ॥ ५४ ॥ स्तोत्रेणानेनतुष्टाहं वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ परितुष्टासिदेवेशि वरंदातुंत्वमिच्छसि ॥ ५५ ॥ कलुषंहरकल्याणि लोकानांहरसम्भवे ॥ स्नानंकृत्वास्तुवन्तोये लोकानापुःशिवाज्ञया ॥ ५६ ॥ वरंददस्वदेवित्वं धुन्धुमारायसाम्प्रतम् ॥ राज्यंकृत्वादिवंयातु सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ५७ ॥ यंयंचिन्तयतेकामं तंतंप्राप्नोतिसुव्रते ॥ एवंभवतुविप्रेन्द्र मत्तोयद्वाञ्छितंत्वया ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वा ययौदेवी कपिलालोकपावनी ॥ मार्कण्डेयंमुनिंराजा मुनिभिःपरिवारितम् ॥ ५९ ॥ प्रणिपत्ययथान्यायं गतश्चस्वपुरंतदा ॥ ततःकालेनमहता राजाधर्म्मपरायणः ॥ ६० ॥ राज्यंकृत्वाक्रतूनिष्ट्वा धुन्धुमारोदिवङ्गतः ॥ एतत्तेकथितंसर्वं मयादृष्टम्पुरानघ ॥ ६१ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकपिलामाहात्म्येधुन्धुमारस्वर्गारोहणंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवीने कहा कि हे विप्रेन्द्र! मुझसे जो तुमने इच्छाकी वह ऐसाहीहो ॥ ५८ ॥ ऐसे कहकर लोकोंको पवित्र करनेवाली कपिलादेवी चलीगई राजाभी मुनियोंसे घिरेहुये मार्कण्डेयमुनिको ॥ ५९॥ उचित रीतिसे नमस्कारकर उसीसमय अपने शहरको चलेगये तदनन्तर बड़े समयतक धर्मात्मा धुन्धुमार राजा राज्य व यज्ञोंकोकर स्वर्गको जातेहुये हे अनघ ! अगले जमाने में यह सब अपना देखाहुआ हाल आपसे कहा गया ॥ ६० । ६१ ॥ इसके सुनने व कहने से संसारके बन्धन से छूटजाताहै ॥६२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकपिलामाहात्म्येधुन्धुमारस्वर्गारोहणंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि द्वीपोंकी गिन्ती व पृथिवी की नाप व समुद्रों का हाल व नीचेके लोकोंकी गिन्ती यह सब मुझको विदित करो ॥ १ ॥ नरक और स्वर्ग का प्रमाण और भी जो कुछ ऐसा हालहो मेरा पूंछा व अनपूंछा जो कुछ शुभ व अशुभकर्मों का वृत्तान्तहो ॥ २ ॥ यह सब संक्षेपसे मुझसे कहो जिसतरह स्वामिकार्त्तिकजी से पूँछेगये महादेवजी ने पुराण को कहाहो व जैसा कुछ पुराना हालहो ॥ ३ ॥ आप होनेवाले और होगये जमानेके तत्त्वके जाननेवालेहो व तीनों कालों के जाननेवाले हो और तीनों वेदोंके जाननेवाले हो आपही सब कुछ जानते हो इससे अपनी प्रसन्नता से मुझपर कहने को आप योग्य होतेहो ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय

युधिष्ठिरउवाच ॥ द्वीपसंख्याभुवोमानं सागराणाञ्चकीर्तनम् ॥ पाताललोकसंख्यानं सर्वतोविदितंकुरु ॥ १ ॥ नरकंस्वर्गमानञ्च यत्किञ्चिदन्यदीदृशम् ॥ उक्तानुक्तन्तुयत्किञ्चित्कर्म्माकर्म्मशुभावहम् ॥ २ ॥ एतत्सर्वंसमासेन स्कन्दपृष्टेनशम्भुना ॥ कथितंतुपुराणंवै यथावृत्तंपुरातनम् ॥ ३ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञस्त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ त्वमेववेत्सिसर्वं च प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ अनेकानिसहस्राणि मया दृष्टानिभारत ॥ ५ ॥ युगेयुगेक्षत्रियाणां दानयज्ञक्रियाणिच ॥ नान्यस्तुत्वादृशोराजा दृष्टस्तेषान्तुमध्यतः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वंसमासेन स्कन्दपृष्टेनशम्भुना ॥ कथितंतुपुराणंवै तत्तेहंकथयाम्यहम् ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीपःप्रभासेतुस्ताम्रपर्णीगभस्तिमान् ॥ नागद्वीपश्चसौम्यश्च गन्धर्वोवरुणस्तथा ॥ ८ ॥ नवमःकुमारिकाख्यस्तु इतिद्वीपाःप्रकीर्तिताः ॥ नवखण्डवतीचैषा कथितातेसमासतः ॥ ९ ॥ खण्डेष्वेतेषुसर्वेषु प्रवाहोनाम्र्मदस्स्मृतः ॥ जम्बूशाककुशक्रौञ्चशाल्मल्यश्चयु

जी बोले कि हे महाभाग ! हे राजन् ! मैं आपके पूंछेहुये हालको कहताहूं उसको आप सुनो और समझो क्योंकि हे भारत ! मैंने युग २ में दान व यज्ञोंके करनेवाले अनेक हजार क्षत्रियोंको देखाहै परन्तु उनके बीचमें तुम्हारा ऐसा और राजा नहीं देखा ॥ ५।६ ॥ यह सब संक्षेप रीतिसे स्वामिकार्त्तिकेयसे पूंछेगये महादेवजी करके पुराण कहागया था उसीको मैं आपसे कहताहूं ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीप, प्रभासेतु, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण ॥ ८ ॥ और नवां कुमारिका नामहै ये तो द्वीप कहेगये हैं नवखण्डवाली यह पृथिवी आपसे साधारण रीति से कहीगई ॥ ९ ॥ इन सब खण्डोंमें नर्मदाजी का प्रवाह वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर !

सुरोद और मधुरोद ये सात समुद्र कहे जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मली ॥ १० ॥ लक्ष और पुष्कर ये सातद्वीप कहे गयेहैं क्षार, क्षीर, दधि, घृत वैसेही इक्षुरस ॥ ११ ॥ गये हैं भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक ॥ १२ ॥ जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सातलोक ऊपरके हैं और हे युधिष्ठिर ! भूलोक और सूर्यका जो बीच है उसका प्रमाण चारलाख योजन व इतनेही प्रमाणवाला पाताल भी जानो हे भारत ! यहां रुद्र और आठ वसुनामके देवता रहतेहैं ॥ १३ । १४ ॥ इन लोकोंको मैंने कहा अब पातालोंको मुझसे जानो अतल, वितल शर्कर, गभस्तिक ॥ १५ ॥ महातल, सुतल, रसातल इसकेबाद सब कामनाओंसे भराहुआ आठवां सौवर्ण जानो ॥ १६ ॥

धिष्ठिर ॥ १० ॥ प्लक्षश्चपुष्करश्चैव सप्तद्वीपाःप्रकीर्तिताः ॥ क्षारंक्षीरंदधिसर्पिस्तथैवेक्षुरसोपिच ॥ ११ ॥ सुरोदोमधु रोदश्च समुद्रास्सप्तकीर्तिताः ॥ भूर्लोकश्चभुवर्लोकस्स्वर्लोकश्चमहस्तथा ॥ १२ ॥ जनलोकस्तपोलोकस्सत्यलोकस्त थापरः ॥ भूर्लोकादित्ययोर्विद्धि त्वन्तरालंयुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ योजनानांचतुर्लक्षं पातालंयत्प्रमाणतः ॥ रुद्राश्चवसवश्चा ष्टौ निवसन्त्यत्रभारत ॥ १४ ॥ कथिताश्चमयालोकाः पातालानिनिबोधमे ॥ अतलंवितलंचैव शर्करंचगभस्तिकम् ॥ १५ ॥ महातलंचसुतलं रसातलमतःपरम् ॥ सौवर्णमष्टमंविद्धि सर्वकामसमन्वितम् ॥ १६ ॥ वह्नेर्दाहोह्यपांशैत्यं मरुतां वहनंतथा ॥ काठिन्यंचतथाधात्र्या गगनेशुषिरंतथा ॥ १७ ॥ स्वभावएवभूतानां स्वस्वभावानुसारतः ॥ प्रकृतिंया न्तिभूतानि नात्रकार्य्याविचारणा ॥ १८ ॥ लक्षाणिचतुरशीतिर्योनीनांपापकर्म्मणाम् ॥ नरकेषुचघोरेषु दारुणाय मयातनाः ॥ १९ ॥ निरुद्धाःप्राणिनःसर्वे नीतास्तुयमकिङ्करैः ॥ यातनाविविधारौद्रास्तत्रस्थैरनुभूयते ॥ २० ॥ स्वक

यह अपनी २ तासीर के अनुसार महाभूतों का स्वभावही है आगमें जलाना, पानी में ठण्ढापन, हवामें चलना, जमीन में कड़ापन और आसमान में पोल ॥ १७ ॥ पापीजीवों की चौरासीलाख योनि हैं घोरनरकों में यमयातना बड़ी कठिन सब जीव अपने कारणमें मिलजाते है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ है ॥ १९ ॥ यमराज के दूतोंसे लायेगये सब प्राणी कैद कियेजाते हैं वहां ठहरनेवाले प्राणियों करके अनेक तरह की भयानक यातनायें (यमलोककी तकलीफें)

भोगीजाती हैं ॥ २० ॥ अपने कर्मोंके फलोंके कारणसे भलेबुरे फलोंको पातेहैं इसीके वास्ते तप,होम, दान और पवित्र करनेवाला ध्यान ॥ २१ ॥ व सब प्राणियों पर दया व नर्मदाके तटमें वास व नर्मदाकी स्तुति व सूर्यकी पूजा करना चाहिये जिससे कल्याण होवे ॥ २२ ॥ अब हम कथाको कहेंगे जैसा कुछ हाल अगिले जमाने में हुआहै हे भारत ! दानवों के राजा मुचुकुन्द का संवादहै ॥ २३ ॥ हे राजन् ! प्रसिद्धहै कि चाक्षुष मन्वन्तर के सत्ययुग में कुवलयाश्व नामके बडे यश वाले चक्रवर्त्ती राजर्षि हुये ॥ २४ । २५ ॥ उन बड़े तेजवाले राजाकी राज्य इन्द्रसे आठगुनी होतीहुई उन राजाने अनेकतरहके अनेकहजार अत्युत्तम दानोंको सब तीर्थों में

र्म्मफलयोगेन प्राप्नुवन्तिशुभाशुभम् ॥ एतदर्थंतपोहोमंदानंध्यानंचपावनम् ॥ २१ ॥ कारुण्यंसर्वभूतेषु नर्म्मदाश्रयणंतथा॥ रेवायास्स्तवनंपूजा सूर्य्यस्यप्रभवोयथा ॥ २२॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथावृत्तम्पुरातनम् ॥ मुचुकुन्दस्यसंवादो दानवेन्द्रस्यभारत ॥ २३ ॥ कुवलयाश्वोथराजर्षिश्चक्रवर्तीमहायशाः॥ आसीत्कृतयुगेराजन्नन्तरेचाक्षुषेकिल ॥ २४ ॥ शक्रादष्टगुणंराज्यं राज्ञश्चामिततेजसः ॥ अनेकानिसहस्राणि दानानिविविधानिच॥ २५॥ दत्तानितेनराज्ञा वै सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ इष्टाश्चक्रतवश्चापि वर्जयित्वातुकल्पगाम् ॥ २६ ॥ दानवोमुचुकुन्दश्चसर्वधर्म्मपरायणः॥ब्रह्मण्यश्शिवभक्तश्च विष्णुभक्तोजितेन्द्रियः ॥ २७ ॥ राहुसोमसमायोगे वैदूर्य्येसिद्धपर्वते ॥ ॐकारनाथसहिता यत्रास्तेकल्पगासरित् ॥ २८ ॥ अन्यानियानिलिङ्गानि लोकेचैवचराचरे ॥ कल्पान्तेतानिलीयन्त ॐकारेवैनसंशयः ॥ २९ ॥ शिवेनकथितंह्येतद्विष्णोश्चैवशतक्रतोः ॥ पार्वत्याःषण्मुखस्यापि पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ ३० ॥ आगतोकल्पगान्दे

दिया और अनेक यज्ञोंको भी किया परन्तु नर्मदाको छोडकर अर्थात् नर्मदामें कुछ न किया ॥ २६ ॥ सब धर्मोंका करनेवाला ब्राह्मण,शिव और विष्णुका भक्त इन्द्रियोंका जीतनेवाला मुचुकुन्द दानव भी ॥ २७ ॥ चन्द्रग्रहणमें सिद्धवैदूर्य्य पर्वत पर जहां ॐकारनाथ के सहित नर्मदा नदी विद्यमानहै ॥ २८ ॥ क्योंकि और जितने इस स्थावरजङ्गमरूप संसार में लिङ्गहैं वे सब महाप्रलयमें ॐकार में मिलजाते हैं इस में कुछ संदेह नहीं है ॥ २९ ॥ इस बातको स्कन्दपुराण में महादेवजी ने विष्णु,

इन्द्र, पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहाहै ॥ ३० ॥ सो वह राजा नर्मदादेवी के पास कोटितीर्थमें आया नर्मदा और कपिला के सङ्गममें सब सामान के सहित ॥ ३१ ॥ हे नृप ! एक लाख दुधारी गौवें, दशहजार घोडे, एक हजार हाथियों को लेकर ॥ ३२ ॥ व सोनेके कामवाले मनके प्यारे एक हजार रथ, धन, अन्न, कपड़े और अनेक तरहके रत्नोंको लेकर ॥ ३३ ॥ और स्नानकर उसीसमय यथायोग्य ब्राह्मणों को देताहुआ और हे नराधिप ! ॐङ्कारकी मूर्त्तिमें दक्षिणाको भी चढ़ाता हुआ ॥ ३४ ॥ जिसने जिस कामनाको किया उसके लिये वह राजा वही देताहुआ और धर्म कर्मका करनेवाला राजा कुवलयाश्वभी ॥ ३५ ॥ सूर्यग्रहण मे अपने

र्वीं कोटितीर्थेनराधिपः ॥ नर्म्मदाकपिलायोगे सर्वसम्भारसंवृतः ॥ ३१ ॥ लक्षमेकन्तुदोग्ध्रीणां समादायगवांनृप ॥ अयुतंचहयानाञ्च सहस्रंदन्तिनान्तथा ॥ ३२ ॥ कामिकानान्तुयानानां सहस्रंहेममालिनाम् ॥ धनंधान्यञ्चवासांसि रत्नानिविविधानिच ॥ ३३ ॥ स्नानंकृत्वायथान्यायं ब्राह्मणेभ्योददौतदा ॥ मूर्तौतुदक्षिणाश्चापि ॐकारस्यनराधिप॥ ३४ ॥ योयंकामयतेकामं तंतस्मैसप्रयच्छति ॥ राजाकुवलयाश्वस्तु धर्म्मकर्म्मपरायणः ॥ ३५ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंययौकिल ॥ सान्तःपुरपरीवारो ह्ययोध्याधिपतिस्स्वयम् ॥ ३६ ॥ राजपुत्रसहस्रैस्तु वृतःस्नानेप्सयाकिल ॥ लक्षमेकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतंतथा ॥ ३७ ॥ हेममाणिक्यरत्नानि वासांसिविविधानिच ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो ब्राह्मणेभ्योददौनृप ॥ ३८ ॥ शेषंनिर्वापितंक्षेत्रे स्थानेवायनपूर्वकम् ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते कुरुक्षेत्रप्रभावतः ॥ ३९ ॥ नानायानसहस्रैस्तु सान्तःपुरपरिग्रहः ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ ४० ॥ शङ्खवादित्रघोषेण नानाभ

रनिवास व परिवारके सहित साक्षात् अयोध्याका मालिक हजारों राजपुत्रों से युक्त स्नान करनेकी इच्छा से कुरुक्षेत्र को जाताहुआ वह राजा एकलाख घोडे दशहजारहाथी ॥ ३६ । ३७ ॥ सोना, माणिक, रत्न और अनेकतरह के कपड़े बड़ीश्रद्धासे युक्त हे नृप ! ब्राह्मणों को देताहुआ ॥ ३८ ॥ जो धन देनेसे बाकी रहा वह उसी क्षेत्रस्थान में बैनेकी तरह बांट दियागया तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर कुरुक्षेत्र के प्रभाव से ॥ ३९ ॥ अपने रनिवास व असलाके सहित अनेक प्रकारकी

हजारों सवारियों से युक्त छाताको लगायेहुये व अप्सरा लोग जिनके ऊपर चँवर को ढुरारही हैं ॥ ४० ॥ अनेक गहनों से सजेहुये शङ्खआदि बाजाओं की आवाज से युक्त दूसरे विद्याधरकी तरह वहां स्थितहो विचरतेहुये ॥ ४१ ॥ और दैत्योंके राजा मुचुकुन्द भी सब कामनाओं से युक्त सोने और रत्नोंके गहनों को पहनेहुये मनमानी सवारियों पर सवार सोहतेहुये ॥ ४२ ॥ हे विशाम्पते ! हजारों बाजोंको सुनकर धर्मराज बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये और कहा कि यह क्याहै ॥ ४३ ॥ तद-नन्तर कुवलयाश्व राजाभी उसी दिन उस शहर में प्राप्तहुये दोनोंको दूतोंने बुद्धिमान् धर्मराजसे प्रसिद्ध किया ॥ ४४ ॥ कि राजर्षि कुवलयाश्व और बड़ेबली मुचु-

रणभूषितः ॥ विचचारचतत्रस्थो विद्याधरइवापरः ॥ ४१ ॥ मुचुकुन्दोपिदैत्येन्द्रः सर्वकामसमन्वितः ॥ कामिकैश्चमहायानैर्हेमरत्नविभूषणैः ॥ ४२ ॥ श्रुत्वावाद्यसहस्राणि धर्म्मराजोविशाम्पते ॥ जगामविस्मयंघोरं किमेतदितिचाब्रवीत ॥ ४३ ॥ ततःकुवलयाश्वोपितस्मिन्नहनितत्पुरम् ॥ उभौनिवेदितौदूतैर्धर्म्मराजस्यधीमतः ॥ ४४ ॥ कुवलयाश्वोथ राजर्षिर्मुचुकुन्दोमहाबलः॥ लोकान्तरमुभावेतौविमानस्थौसमागतौ ॥ ४५ ॥ तावदुत्पतितंयानंमुचुकुन्दस्यचोपरि ॥ योजनानांसहस्रेणह्यपर्युपरिसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ अयोध्याधिपतेर्यानमधोभागेऽव्यवस्थितम् ॥ पप्रच्छधर्म्मराजोपिचित्रगुप्तंतुलेखकम् ॥ ४७ ॥ किंतुयानंसमासाद्यअर्घपाद्येनपूजये ॥ सप्तर्षीन्टपिमुख्यांश्चधर्माधर्म्मविचारकान् ॥ ४८ ॥ चित्रगुप्तोब्रवीद्वाक्यंतथासप्तर्षयोब्रुवन् ॥ मुचुकुन्दंसमासाद्यत्वर्घपाद्येनपूजय ॥ ४९ ॥ दानेनकापिलेनेज्योदानवेन्द्रो नचापरः ॥ अधःकुवलयाश्वश्चमुचुकुन्दस्तथोपरि ॥५० ॥ एवमुक्तोधर्म्मराजोदानवेन्द्रमुपाश्रयत् ॥ श्वेतवस्त्रपरीधा

कुन्द ये दोनों विमानपर सवार अपने लोकसे दूसरे लोकको प्राप्तहुये हैं ॥ ४५ ॥ तबतक मुचुकुन्द की सवारी ऊपरको उडी व हजारों योजनके ऊपर २ स्थित होती हुई ॥ ४६ ॥ अयोध्याके राजा कुवलयाश्वका विमान नीचे रहगया तब धर्मराज ने अपने लेखक (मुमद्दी) चित्रगुप्त से पूछा ॥ ४७ ॥ कि हम किस विमानके पास जाकर अर्घ और पाद्यसे पूजन करें और धर्म व अधर्म के विचारनेवाले ऋषियों मे बडे सप्तर्षियों से भी पूछा ॥ ४८ ॥ तब चित्रगुप्त और राजर्षियों ने जवाब दिया कि मुचुकुन्द के पास जाकर तुम अर्घ और पाद्यसे पूजनकरो ॥ ४९ ॥ कपिला नदीके तीर दान देनेसे दैत्योंका राजा मुचुकुन्दही पूजाके योग्यहै दूसरा नहीं क्योंकि

कुवलयाश्व नीचे पडाहै और मुचुकुन्द ऊपरहै ॥ ५० ॥ ऐसे कहेगये, सफेद कपड़ों को पहनेहुये दगदगाते हैं कुण्डल और गहने जिनके ऐसे धर्मराजजी दानवेन्द्र मुचुकुन्द के पास जातेहुये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर मुचुकुन्दकी सवारी के आगे खडेहुये और बोले कि हे सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! हे दैत्येन्द्र ! आज आपकी कुशल है ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! आपने इस दानसे तीनोंलोकों को जीतलियाहै क्योंकि कपिलाके सङ्गममें दक्षिणामूर्ति जो ॐङ्कारनाथहैं उनके पास ॥ ५३ ॥ नर्मदाके तीरमें दानकी गिन्ती नहीं है तब मुचुकुन्द बोले कि धर्म अधर्मके मामिलेमें मुखिया आपही हो जिससे कि आपही स्वर्गके फाटकके बेलन

नो ज्वलत्कुण्डलभूषणः ॥ ५१ ॥ अञ्जलिञ्चततोबद्धा यानस्याग्रेऽव्यवस्थितः ॥ कुशलन्तेऽद्यदैत्येन्द्र सर्वधर्म्मभृतांवर ॥ ५२ ॥ निर्जितास्तेत्रयोलोका दानेनानेनसुव्रत ॥ ॐकारदक्षिणस्यान्ते मूर्तौकापिलसङ्गमे ॥ ५३ ॥ सप्तकल्पवहातीरे दानसंख्यानविद्यते ॥ मुचुकुन्दउवाच ॥ धर्म्माधर्मेत्वमेवाद्यः स्वर्गद्वारार्गलोयतः ॥ ५४ ॥ एवमुक्तोयमस्तत्र दैत्येन्द्रेणमहात्मना ॥ पन्थानन्दर्शयामास दैत्येन्द्रस्ययुधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ ततस्तुप्रेषितस्तेन मुचुकुन्दोजगामह ॥ मुदापरमयायुक्त उमामाहेश्वरंपुरम् ॥ ५६ ॥ संस्मारयित्वाविधिवद्दैत्येन्द्रंधर्म्मराट्ततः ॥ आसाद्यकुवलयाश्वन्धर्म्मराजोब्रवीदिदम् ॥ ५७ ॥ स्वागतन्तेमहाराज कुशलन्तवसर्वदा ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ परस्परविरोधत्वं देवदानवयोःसदा ॥ ५८ मान्त्यक्त्वादानवेन्द्रस्तु पाद्यार्घेणत्वयार्चितः ॥ विपरीतञ्चतत्सर्वं धर्म्मराजकृतंकथम् ॥ ५९ ॥ यम

हो ॥ ५४ ॥ ऐसे जब दैत्येन्द्र महात्मा मुचुकुन्दने यमराजसे कहा तब हे युधिष्ठिर ! यमराज ने मुचुकुन्द को राह दिखादी ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उन यमराजने मुचुकुन्दको बिदा किया मुचुकुन्द बड़े आनन्द से युक्त पार्वती व महादेव जीके पुरको चलेगये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर विधिसे धर्मराज दैत्येन्द्र मुचुकुन्द को सब याद दिला के फिर धर्मराज उन कुवलयाश्व के पास जाकर यह बोले ॥ ५७ ॥ कि हे महाराज ! आपका आना बहुतही अच्छा हुआ आपकी हमेशा कुशलहै तब कुवलयाश्व बोले कि देवता और दैत्योंका आपसमें विरोध तो सदा चलाआयाहै ॥ ५८ ॥ फिर हमको छोड़कर आपने पाद्य अर्घसे दानवेन्द्र मुचुकुन्द का पूजनकिया हे धर्म-

उवाच ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्म्मणाङ्गतिः ॥ नाहंदाताचहर्त्ताच शुभाशुभफलस्यवै ॥ ६० ॥ कर्म्मसाक्षीचसर्वेषान्देवासुरनृणांनृप ॥ सरस्वत्यांकुरुक्षेत्रे दानंदत्तन्त्वयानघ ॥ ६१ ॥ द्वापरान्तेतुदानंवै रेवादानंसमंनहि ॥ शिवेनकथितंचासीद्ब्रह्मविष्णुमरुद्गणान् ॥ ६२ ॥ कलांनार्हन्तितीर्थानि सार्द्धकल्पगयाक्वचित् ॥ अनृतंनमयाचोक्तं पुराणंश्रुतिसम्मतम् ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन् द्वयोःसंवदतोस्तयोः ॥ उक्तःकुवलयाश्वस्तु तदाकाशगिरास्वयम् ॥ ६४ ॥ धर्म्मश्चेत्थंमहाराज माकृथास्त्वंकथञ्चन ॥ कल्पगातोयसंस्पृष्टो दैत्यःशिवमवाप्तवान् ॥ ६५ ॥ सराजाविस्मयापन्नः पुनर्व्यावृत्यचागतः ॥ नर्म्मदांस्नातुकामोपि कपिलासङ्गमम्प्रति ॥ ६६ ॥ तत्रप्लुतस्ततोराजा शिवलोकंजगामह ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मुचुकुन्दकुवलयाश्वस्वर्गारोहणंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥

राज ! यह सब आपने उलटा क्यों किया ॥ ५९ ॥ तब यमराज बोले कि हे राजेन्द्र ! आप शोचमत करो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है हम भलेबुरे फलके न देनेवाले है और न लेनेवालेहैं ॥ ६० ॥ हे नृप! हम तो केवल देवता,दैत्य और मनुष्य सबोंके कर्मोंके साखीमात्र हैं हे अनघ ! कुरुक्षेत्र में सरस्वतीनदी के किनारे आपने दानको दिया ॥ ६१ ॥ परन्तु द्वापरयुगके अन्तमें नर्मदा के तटमें जो दानहै उसके बराबर और कहींका दान नहीं होसक्ताहै यह महादेवजीने ब्रह्मा, विष्णु और मरुत् देवताओंसे कहाहै कोई तीर्थ नर्मदाकी एक कला को भी नहीं पासक्तेहैं मैंने झूंठ नहीं कहाहै क्योंकि पुराण वेदसे मिलाहुआहै ॥ ६२ । ६३ ॥ हे राजन् ! इसी अन्तर में उन दोनों के बतलातेही हुये आकाशवाणी ने राजा कुवलयाश्व से आपही कहा ॥ ६४ ॥ कि हे महाराज ! धर्म ऐसाहीहै तुम किसीतरहकी तर्क मत करो नर्मदा के जलसे छुवागया दैत्य शिवजी को प्राप्तहुआ ॥ ६५ ॥ आश्चर्य को प्राप्तहुआ वह राजा फिर लौटकर नर्मदामें स्नान करनेकी इच्छा करताहुआ कपिला के संगम को आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वहां स्नानकर राजा शिवजी के लोकको जाताहुआ ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमुचुकुन्दकुवलयाश्वस्वर्गारोहणनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! यमराजके पास कौन जातेहैं और वे नरक कैसेहैं यह सब आप मुझसे कहो और देवलोकको कौन जातेहैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जो पुखराजके देनेवाले है वे पुष्पकविमानसे जातेहैं व जो देवताओंके मकान बनवानेवालेहैं वे शिवलोकको जातेहैं ॥ २ ॥ जो अनाथोंके मकानोंको बनवा देते हैं वे उत्तम मकानोंमें विहार करतेहै व जो देवता, अग्नि, गुरु,ब्राह्मण,माता और पिताके पूजनेवालेहैं ॥ ३ ॥ वे मनुष्य औरोंसे पूजेजातेहुये मनमानी सवारियोंसे सुखसे जातेहै व दियाके देनेसे दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये जातेहैं ॥४॥ सभाके देनेसे सुखसे यमलोकको जातेहैं व पानीका देनेवाला सब कामनाओंसे युक्त

युधिष्ठिरउवाच ॥ केव्रजन्तियमंविप्र कीदृशानरकास्तुते ॥ एतन्मेसर्वमाख्याहि देवलोकंव्रजन्तिके ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यान्तिपुष्पकयानेन पुष्परागप्रदायिनः ॥ देवायतनकर्तारः शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ २ ॥ अनाथमण्डपानान्तु तेक्रीडन्तिगृहोत्तमैः ॥ देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्चपूजकाः ॥ ३ ॥ पूज्यमानानरायान्ति कामिकैश्वयथासुखम्॥ द्योतयन्तोदिशःसर्वा यान्तिदीपप्रदानतः ॥४॥ प्रतिश्रयप्रदानेन सुखंयान्तियमालयम् ॥ सर्वकामसमृद्धेन तथागच्छतितोयदः ॥ ५ ॥ अन्नंपानंप्रयच्छन्ति सुखंयान्तिनिराकुलाः ॥ दीपमालांहिपच्छन्ति गुरुशुश्रूषणेरताः॥ ६ ॥ पादाभ्यङ्गश्चयःकुर्य्यात्सोश्वपृष्ठेनगच्छति ॥ हेमरत्नप्रदानेन यान्तिरत्नविभूषिताः ॥ ७॥ सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेनगच्छति ॥ अन्नपानप्रदानेन पिबन्खादंश्चगच्छति ॥ ८॥ इत्येवमादिभिर्दानैः सुखंयान्तिशिवालयम् ॥ स्वर्गेचविपुलान्भोगान् प्राप्नोत्यन्नप्रदानतः ॥ ९ ॥ सर्वेषामेवदानानामन्नदानंपरंविदुः ॥ सर्वप्रीतिकरंपुण्यं बलपुष्टिविव

सवारी से जाताहै ॥ ५ ॥ अन्न व पानीको जो देतेहैं वे व्याकुलतारहित हो सुखसे जाते हैं व जो दियालियों को देतेहैं और गुरुकी सेवामें प्रेम करते हैं ॥ ६ ॥ और गुरुके पैरोंको दाबतेहै वे घोड़ेकी पीठपर सवार होकर जातेहै सोने व रत्नोंके देनेसेरत्नों से सजेहुये जातेहै ॥ ७ ॥ पृथ्वीके देनेसे सब कामनाओंसे भराहुआ जाताहै अन्न व जलके देनेसे खाता पीताहुआ जाताहै ॥ ८ ॥ ऐसे २ दानोंसे सुखसे शिवलोक को जातेहैं और अन्नके देनेसे स्वर्गमें अनेक भोगोंको पाताहै ॥ ९ ॥ सब दानोंमें

हैं कहीं टेढ़े बैंचे गड्ढोंसे व ताते ढेले और ईंटोंसे युक्तहै व कहीं २ अतिताती वालू पैनीमेखैं और अनेक टूटीहुई डालोंसे व्याप्तहै ॥ ३०।३१ ॥ कोई बडे अँधियारेसे यमलोकको जातेहैं कहीं राहमें पडेहुये अङ्गारों से तपे व दावानलसे गँसेहुयेजातेहैं ॥३२ ॥ कहीं ताती पत्थरकी चट्टानोंसे कहीं करिहांवतक कीचमे,कही गन्दे पानीसे और कहीं गन्देगोबर की आगसे व्याप्तहै ॥ ३३ ॥ कहीं गीध, बगुला, बाघ, अतिदारुण दुष्टकीडोंसे व कहीं बडे २ विच्छुवोंसे व कहीं अजगरोंसे ॥ ३४ ॥ व कही भयानक मच्छड़, जहरीले साप, चारोंतरफसे मारनेवाले बड़े बलवाले पैने दांतोंसे राहको खोदरहे मतवाले हाथियोंके झुण्ड, सिंह,बड़े सींगवाले भैंसे और मतवाले,

तप्तबालुकाभिश्च तथातीक्ष्णैश्चशङ्कुभिः ॥ अनेकभग्नशाखाभिरावृतेनकचित्कचित् ॥ ३१ ॥ कष्टेनतमसाकेचिद्ग च्छन्तिहियमालयम् ॥ मार्गस्थाङ्गारकैस्तप्तैर्ग्रस्तादावाग्निभिस्तथा ॥ ३२ ॥ कचित्तप्तशिलाभिश्च पङ्केनकटिमान तः ॥ कचिद्दुष्टाम्बुनाव्याप्तंदुष्करीषाग्निनाकचित् ॥ ३३ ॥ कचिद्गृध्रैर्बकैर्व्याघ्रैर्दुष्टैःकीटैस्सुदारुणैः ॥ कचिन्महा कुलीराद्यैः कचित्त्वजगरैःपुनः ॥ ३४ ॥ मक्षिकाभिश्चरौद्राभिः कचित्सर्पैर्विषोल्बणैः ॥ मत्तमातङ्गयूथैश्च समन्ताच्चप्र माथिभिः ॥ ३५ ॥ पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महाबलैः ॥ सिंहैर्विषाणमहिषैरौद्रैर्मत्तैश्चश्वापदैः ॥ ३६ ॥ डाकि नीभिश्चरौद्राभिर्विकरालैश्चराक्षसैः ॥ व्याधिभिश्चमहाघोरैःपावकैश्चदुरासदैः ॥ ३७ ॥ महानलविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥ महापाषाणवर्षेण भिद्यमानानिराश्रयाः ॥ ३८ ॥ कचित्कचित्प्रतप्तेन दीप्यमानाव्रजन्तिहि ॥ महताबाणवर्षे ण भिद्यमानाःसमन्ततः ॥ ३९ ॥ पतद्भिर्वज्रसङ्घातैरुल्कापातैश्चदारुणैः ॥ प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण हन्यमानाव्रजन्तिहि ॥ ४० ॥ महाघोररवैर्घोरैर्वित्रस्यन्तोमुहुर्मुहुः ॥ निशितायुधवर्षेण पूर्यमाणाश्चसर्वशः ॥ ४१ ॥ महाक्षाराम्बुधाराभिः

जीवोंकेखानेवाले भेंडियाआदि जीवोंमे व्याप्तहै ॥ ३५।३६ ॥ कहीं बड़ी भयानक डाकिनी,विकराल राक्षस,बडेघोररोग, प्रचण्ड आग ॥ ३७ ॥ लपटसे मिलीहुई बडी प्रचण्डवायु और बडे२ पत्थरोंकी वर्षामे मारेजातेहुये निराधार जातेहैं ॥ ३८ ॥ कहीं२ तातीराह से जलतेहुये जातेहैं कही बडीबाणोंकी वर्षासे चारोतरफसे मारेहुये जाते हैं ॥ ३९ ॥ कही गिरतीहुई बिजलियोंके समूह, भयानक ऊँक और प्रचण्ड अङ्गारोंकी वर्षासे मारेहुये जातेहैं ॥ ४० ॥ और कहीं बड़ीघोर आवाजवाले डराने जीवों

से बार२ डरवायेजाते और पैने हथियारोंकी वर्षासे चारोंतरफ से तोपेहुये ॥ ४१ ॥ व बहुत खारीपानी की धाराओंसे बारबार भिगोयेगये,बडेघोर जाड़ेसे और छूरोंकी धारआदिकोंसे दुःखी जातेहैं ॥ ४२ ॥ और अनेकतरहके सैकड़ों हजारों दुःखोंसे व्याप्त,ताती, भयानक, खाली, ऊंची, सहँतावटसे रहित बड़ीभारी बहुतदूरवाली, ॥ ४३ ॥ बहुत नगीच, बहुत कष्टवाली और सब दुखों से भरीहुई राहसे हे भारत ! ॥ ४४ ॥ सब पापी मूढ़ जीव यमराजकी आज्ञा करनेवाले बड़ेघोर यमदूतों से जबरदस्ती लायेजाते हैं ॥ ४५ ॥ अकेले हैं, पराये अधीनहैं, मित्र और भाइयों से रहितहैं, अपने कर्मोंको सोचते हैं, बार २ जलेजाते हैं ॥ ४६ ॥ भूत और प्रेतोंके

सिच्यमानामुहुर्मुहुः ॥ महाशीतेनरौद्रेण क्षुरधारादिभिस्तथा ॥ ४२ ॥ अन्यैर्बहुविधाकारैः शतशोथसहस्रशः ॥ इतथ्वतप्तरौद्रेण मार्गेणविषमेणच ॥ ४३ ॥ अविश्रान्तेनमहताह्यविदूरेणभारत ॥ अविदूरेणकष्टेन सर्वदुःखाश्रयेणच ॥ ४४ ॥ नीयन्तेदेहिनस्सर्वे मूढाःपापपरायणाः ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्यमाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥ ४५ ॥ एकाकिनःपराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ॥ शोचन्तःस्वानिकर्म्माणि दह्यन्तेचमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ प्रेतभूतविमिश्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥ कृशाङ्गाभीतभीताश्च दह्यमानाहुताग्निना ॥ ४७ ॥ बद्धाःशृङ्खलयाकेचिन्मज्जन्तःपापिनोभृशम् ॥ कृष्यन्तेदह्यमानास्तु यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ ४८ ॥ उरस्यधोमुखस्थाने तथैवखलुदुःखिताः ॥ केशपाशेविबद्धाश्च कृष्यन्तेपापिनस्तथा ॥ ४९ ॥ ललाटेचाशुगैर्विद्धा कृष्यन्तेदेहिनःकचित् ॥ उत्तानादुष्टपन्थानं नीयन्तेपापकर्म्मणा ॥ ५० ॥ पार्श्वबाहुविबद्धाश्च जठरेपरिपीडिताः ॥ ग्रीवापाशविकृष्याश्च केऽपियान्तिसुदुःखिताः ॥ ५१ ॥ जिह्वाशङ्कुप्रदानेन समा

साथमें हैं, गला, ओंठ और तालु जिनके सूख गये हैं, दुबली देहवाले हैं, डरेसे ज्यादा डरेहैं, होमीहुई आगसे जलेजातेहैं ॥ ४७ ॥ कोई पापी जंजीर से बँधेहैं और गन्देपानी में गोतेखाते हैं बड़े जबरदस्त यमदूतों से जलतेहुये खींचेजाते हैं ॥ ४८ ॥ उसी प्रकार कोई दुःखी पापी छातीमें बँधेहैं व कोई मुहँके नीचे बँधेहैं और कोई बालोंमे बँधे खींचेजाते हैं ॥ ४९ ॥ कोई प्राणियोंके माथेमें बाण नाथ दियेगये हैं उन्हींमें बँधे कहीं खींचेजाते हैं कोई अपने पापकर्मसे उताने दुष्ट सड़क पर खींचेजाते हैं ॥ ५० ॥ कोई पसुली और हाथोंमें बँधेहैं कोई पेटमें नथेहैं व कोई गलेमें फँसरीसे खींचेजाते बड़े दुःखी जातेहैं ॥ ५१ ॥ जीभमें कीलसे नथेहुये कोई कण्ठ

में नथेहुये अर्द्धचन्द्रसे इधर उधर झटकाखाते खींचेजाते है ॥ ५२ ॥ कोई रस्सीमे लिङ्ग और अण्डकोश में बँधहुये खींचेजाते हैं व कोई हाथ, पांव, कान, ओंठ और नाक जिनके काटिडालेगये हैं ऐसे जातेहैं लिंग, अण्डकोश और शिरआदि अङ्ग जिनके कटगये हैं आंगुसों से छेदेजाते और बिच्छुओं से काटेजातेहुये जाते हैं ॥ ५३।५४ ॥ इधर उधर दौड़तेहैं विलाप करते हैं निरालम्ब मुगदर और लोहेके दण्डोंसे वार २ मारेजातेहुये जातेहैं ॥ ५५ ॥ अनेकतरह के घोर कोडाओं से और भिन्दिपालों से चारोंतरफ से मारेजाते वार २ रक्तको उगिलतेहुये जातेहैं ॥ ५६ ॥ पानीमें डालेजाते छाहीको मांगते हैं इस प्रकार पापके करनेवाले व दानसे राहित

नीयक्तकाटिकाः ॥ अर्द्धचन्द्रेणगृह्यन्ते क्षिप्यमाणाइतस्ततः ॥ ५२ ॥ शिश्नेचवृषणेचैव रज्ज्वाबद्धास्तथापरे ॥ विच्छिन्नहस्तपादाश्च छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः ॥ ५३ विच्छिन्नशिश्नवृषणाश्छिन्नशीर्षाङ्गसञ्चयाः ॥ अङ्कुशैर्भिद्यमानास्तु खाद्यमानाःसरीसृपैः ॥ ५४ ॥ इतश्चेतश्चधावन्ति क्रन्दमानानिराश्रयाः ॥ मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमानामुहुर्मुहुः ॥ ५५ ॥ कशाभिर्विविधाभिश्च घोराभिश्चसमन्ततः ॥ भिन्दिपालैश्चतुद्यन्ते वमन्तःशोणितंमुहुः ॥ ५६ ॥ पात्यमानाश्च सलिले छायांवैप्रार्थयन्तिच ॥ दानहीनाःप्रयान्त्येवं प्रायश्चित्तकृतोनराः ॥ ५७ ॥ गृहीत्वाचैवपाथेयं सुखंयान्तियमालयम् ॥ एवंपथानिकृष्टेन प्राप्तायमपुरंनराः ॥ ५८ ॥ प्राज्ञापितैस्तथादूतैः प्रवेश्यन्तेयमाग्रतः ॥ तत्रयेशुभकर्म्माणस्तान्वैसंस्मारयेद्यमः ॥ ५९ ॥ स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेणप्रियेणच ॥ धन्यायूयंमहात्मान आत्मनोहितकारिणः ॥ ६० ॥ यैस्तुदिव्यसुखार्थंहि भवद्भिःसुकृतंकृतम् ॥नर्म्मदातटमाश्रित्य पर्वतेमरकण्टके ॥ ६१ ॥ दानंदत्तंतपस्तप्तं हुतं

मनुष्य जाते हैं ॥ ५७ ॥ और सफ़रखर्च को लेकर जो जातेहैं वे सुखसे यमलोक को जातेहैं इस प्रकार बुरी राहसे मनुष्य यमलोक को प्राप्तहोते हैं ॥ ५८ ॥ आज्ञा को पायेहुये दूतोंकरके यमराज के आगे पापी खड़े कियेजाते हैं वहां जो शुभकर्मों के करनेवाले हैं उनका यमराज स्वागतप्रश्न अर्थात् आपका आना बहुत अच्छा हुआ यह कहना. आसन, पाद्य और अर्घ व प्रियवचन से सत्कार करते हैं और कहते हैं कि अपने हितके करनेवाले आपलोग बड़े महात्माहो और धन्यहो ॥५९। ६० ॥ जिन आपलोगों ने दिव्यसुख के वास्ते पुण्यको कियाहै नर्मदातट में व अमरकण्टक में बैठकर ॥ ६१ ॥ दानको दियाहै, तपको कियाहै विधान से होम

और यज्ञोंको कियाहै इसीतरह इन सब कामोंको काशी, कुरुक्षेत्र,प्रयाग,पुष्कर ॥ ६२ ॥ गया, नैमिषारण्य, गङ्गासागरसङ्गम, केदार, भैरव, प्रभास, शशिभूषण ॥ ६३ ॥ रमणीक महाकालवन, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक, पापोंके धोनेवाले त्रैयम्बक वैसेही नीलकण्ठ ॥ ६४ ॥ गङ्गाद्वार, हिमद्वार और कालञ्जर पर्वत इनमें व और तीर्थों व क्षेत्रोंमें जिन्होंने यथाक्रम कियाहै ॥ ६५ ॥ ऐसे आपलोगों ने अपने जन्मके फल को पाया इसमें कोई सन्देह नहीं है अब आपलोग दिव्य स्त्रियोंके भोगसे युक्त इस विमानपर सवार होकर ॥ ६६ ॥ सुखके देनेवाले सब कामों से भरेहुये स्वर्गको जावो वहा अपनी पुण्यकी संख्या से अनगिन्ती बड़े भोगोंको भोगकर ॥ ६७ ॥ फिर

चेष्टंविधानतः ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे प्रयागेपुष्करेतथा ॥ ६२ ॥ गयायांनैमिषारण्ये गङ्गासागरसङ्गमे ॥ केदारेभैरवेचापि प्रभासेशशिभूषणे ॥ ६३ ॥ महाकालवनेरम्ये श्रीशैलेत्रिपुरान्तके॥त्रैयम्बकेधौतपापे नीलकण्ठेतथैवच॥६४॥ गङ्गाद्वारेहिमद्वारे तथाकालञ्जरेगिरौ ॥ एतेष्वन्येषुतीर्थेषु क्षेत्रेषुचयथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ लब्धंजन्मफलञ्चैव भवद्भिर्नात्रसंशयः ॥ इदंविमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ॥ ६६ ॥ सङ्गच्छध्वंशिवंस्वर्गं सर्वकामसमन्वितम् ॥ तत्रभुक्त्वामहाभोगाननन्तान्पुण्यसंख्यया ॥ ६७ ॥ यत्किञ्चिदन्यदशुभं स्वल्पंतदपिभोक्ष्यथ ॥ आख्यातन्तुमयातावत्कल्पगातीरवासिनः ॥ ६८ ॥ आरोहन्तिविमानानि सर्वेषामुपरिस्थिताः ॥ सर्वतीर्थेषुसंख्यास्ति ह्युक्तंब्रह्मादिभिःपुरा ॥ ६९ ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तेनस्वर्गेमहीयते ॥ म्रियतेतत्रयःकश्चिद्व्रतेनानशनेनच ॥ ७० ॥ दिव्ययानंसमाश्रित्य सम्प्रयातिशिवालयम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् कल्पगापुण्यमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ पश्यन्तिपुण्यकर्म्माणो यमंमित्रमिवात्मनः ॥ येपु

जो कुछ तुम्हारा थोड़ा पाप भी होगा उसको भी भोगडालोगे पहले मैने इस बातको तो कहाही है कि नर्मदातीर के रहनेवाले ॥ ६८ ॥ विमानों पर सवार सबके ऊपर रहते हैं क्योंकि सवतीर्थों में पुण्यकी गिन्ती ब्रह्माआदि देवताओं करके अगिले जमानेमें कहीगई है ॥ ६९ ॥ और वहां नर्मदातीर में जो दान दियाजाता है और स्वर्गमें पूजाजाताहै और जो कोई वहा अनशनव्रतसे मरताहै ॥ ७० ॥ वह दिव्यसवारीपर सवारहोकर शिवके स्थानको जाताहै हे राजन् ! यह नर्मदाका उत्तम

पुण्य तुमसे कहागया ॥ ७१ ॥ पुण्यकर्मों के करनेवाले यमराज को अपना मित्र ऐसा देखते हैं और जो पापकर्मों के करनेवाले हैं वे यमराज को भयानक देखतेहैं कि दाढ़ोंसे डरावना जिनका मुखहै और टेढ़ी भौंहोंवाले जिनके नेत्रहैं खड़ेबालोंवाले, बड़ीदाढ़ीवाले, फड़फड़ाते हैं नीचे और ऊपरवाले होंठ जिनके ॥ ७२। ७३ ॥ अठारह भुजावाले, बड़े क्रूरस्वभाववाले, काले काजलके समान जिनका रूपहै सब हथियारों को हाथों में लियेहुये गर्जते हैं कालदण्ड को हाथमें लिये हैं ॥ ७४ ॥ बड़े भारी भैंसेपर सवारहैं व जलतीहुई आगके ऐसे नेत्रवाले हैं व लालेमाला व कपड़ों को पहनेहुये हैं व बड़े सुमेरुपर्वत की नाईं ऊंचेहैं ॥ ७५ ॥ प्रलयकाल के मेघोंकी

नःक्रूरकर्म्माणस्तेपश्यन्तिभयानकम् ॥ ७२ ॥ दंष्ट्राकरालवदनंभ्रुकुटीकुटिलेक्षणम्॥ऊर्द्ध्वकेशंमहाश्मश्रुं स्फुरदोष्ठाधरोत्तरम् ॥ ७३ ॥ अष्टादशभुजंक्रूरं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ सर्वायुधोद्यतकरं गर्जन्तंदण्डपाणिनम् ॥ ७४ ॥ महामहिषमारूढं तप्ताग्निसमलोचनम् ॥ रक्तमाल्याम्बरधरंमहामेरुमिवोत्थितम् ॥ ७५ ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्तमिववारिधीन् ॥ ग्रसन्तमिवत्रैलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ ७६ ॥ मृत्युस्तस्यसमीपस्थः कालानलसमप्रभः ॥ कालश्चाञ्जनसंकाशः कृतान्तश्चभयानकः ॥ ७७ ॥ विविधाव्याधयस्तीक्ष्णा नानारूपाभयानकाः ॥ शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिपाणयः ॥ ७८ ॥ वज्रदंष्ट्राधरारौद्राः क्रूराश्चाञ्जनसन्निभाः ॥ सर्वायुधोद्यतकरा यमदूताश्चघातकाः ॥ ७९ ॥ एवंविधंयमंतत्र पश्यन्तिपापचारिणः ॥ निर्भयोयातिचात्यर्थं यमोवापापकारिणम् ॥८०॥ चित्रगुप्तश्च

तरह बोलते हैं मानो समुद्रों को पियेजाते हैं तीनोंलोकों को मानो खायेजाते हैं मानो आगको उगिल रहेहैं ॥ ७६ ॥ मौत उनके तीर खड़ीहै जोकि महाप्रलय के समान तेजवाली है काले काजल के समान रूपवाला बड़ा भयानक काल भी तीर वर्तमानहै ॥ ७७ ॥ अनेक रूपवाले बड़े भयानक अनेक रोग विद्यमानहैं, सांग, त्रिशूल, आंगुसको धरेहुये फँसरी, चक्र और तलवारको हाथमें लियेहुये॥ ७८ ॥ वज्रके समान दाढ़ोंवाले, बड़े डरावने, क्रूरस्वभाववाले, काजलसे काले,सब हथियारों को हाथोंमें उठायेहुये,मारनेवाले, यमदूत भी वर्तमानहैं ॥ ७९ ॥ इस तरहके यमराजको वहां पापीलोग देखते हैं यमराज भी पापीके पास बिल्कुलही निर्भय चलेजाते

हैं ॥ ८० ॥ भगवान् चित्रगुप्त भी पापियोंको धर्म सिखातेहुये तीर जातेहैं और कहते हैं कि हे पापकर्मों के करनेवाले ! हे पराई द्रव्यके हरनेवाले ! ॥ ८१ ॥ रूप और ताकत से गर्जनेवाले, पराई स्त्रियोंके भ्रष्ट करनेवाले तुम नहीं जानतेहो कि जो कोई जिस कर्म को करताहै वह उसके फलको भोगता है ॥ ८२ ॥ सो तुमलोगों ने अपने नाश करने के वास्ते पापको क्यों कियाहै अब क्यो सन्ताप करनेहो अपने कर्मोंसे पीड़ित होरहेहो ॥ ८३ ॥ अपनेही कर्म भोग कियेजाते हैं इसमें किसी का कुछ दोष नहीं है फिर चित्रगुप्त यमराजसे कहते है कि हे महीपते ! ये राजालोग दुर्बुद्धिके बलसे गर्वको प्राप्त होरहे हैं अपने घोरकर्मोंसे यहां प्राप्त हुयेहैं यह कह

भगवान् धर्म्मन्तेषांप्रबोधयन् ॥ भोभोदुष्कृतकर्म्माणः परद्रव्यापहारकाः ॥ ८१ ॥ गर्जितारूपवीर्येण परदारोपमर्द्दकाः ॥ यस्तुयत्कुरुतेकर्म्म तेनतद्भुज्यतेपुनः ॥ ८२ ॥ तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतंकृतम् ॥ किमर्थंपरितप्यध्वं पीड्यमानाःस्वकर्म्मभिः ॥ ८३ ॥ भुज्यन्तेस्वानिकर्म्माणिनास्तिदोषोत्रकस्यचित् ॥ एतेचपृथिवीपालाः संप्राप्ताश्च महीपते ॥ ८४ ॥ स्वकीयैःकर्म्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञाबलगर्विताः ॥ भोभोनृपादुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः ॥ ८५ ॥ स्वल्पकालस्यराज्यस्य किंवैतद्दुष्कृतंकृतम् ॥ भवद्भीराज्यलोभेन मोहेनान्यायवृत्तिभिः ॥ ८६ ॥ यद्गृहीतंफलन्तस्य यूयंभुङ्ग्ध्वंयथातथम् ॥ कुत्रराज्यंकलत्रंवायदर्थमशुभंकृतम् ॥ ८७ ॥ तत्सर्वंस्वंपरित्यज्य यूयमेकाकिनस्तथा ॥ त्वद्बान्धवानपश्यन्ति येनविध्वंसिताःप्रजाः ॥ ८८ ॥ यमदूतैःपात्यमाना अधुनाकीदृशम्भवेत् ॥ एवंबहुविधैर्वाक्यैरुप

कर फिर राजाओं से कहतेहैं कि हे प्रजाओंके नाश करनेवाले, बुरी चालवाले,राजालोगो ! ॥ ८४ ।८५ ॥ तुमलोगोंने थोडे दिनकी राज्यके लिये ऐसा पाप क्यों किया मूढ़ता के कारण अनीति से चलनेवाले आपलोगोंने राज्यके लोभसे ॥ ८६ ॥ जो पाप कियाहै अब उसके फलको ठीक २ तुमलोग भोगो कहां राज्यहै और स्त्री कहां है जिनके वास्ते तुमलोगोंने पापको कियाहै ॥ ८७ ॥ सो अब तुमलोग अपने सर्वस्वको छोड़कर अकेले यहां आयेहो अब तुम्हारे भाई लोग तुमको नहीं देखते है जिनके वास्ते तुमलोगोंने प्रजाओं का नाश करदिया ॥ ८८ ॥ अब इससमय में यमदूत तुमको गिरारहेहैं कहो अब क्या होसक्ताहै ऐसी २ अनेक बातोंसे यमराजसे

रिसवाये गये वे ॥ ८९ ॥ हे पार्थिव ! चुपचाप होरहे अपने कर्मोंको शोचते है धर्मराज उनराजाओं से ऐसी बातें कहकर तदनन्तर उनके पापोके छोड़ानेके वास्ते यमराज दूतोंसे बोले कि हे चण्ड ! और हे महाचण्ड ! इन राजाओं को लेकर ॥ ९०।९१ ॥ नरकरूपी आगसे इनको पापोंसे क्रमसे शुद्धकरो तदनन्तर बड़ीजल्दी से उठकर उनराजाओं के पावोंको पकड़कर और बड़ेजोरसे घुमाकर यमराज के दूत फेंकतेहुये सब दूत बडेजोर से लोहेके ऐसे वृक्ष जिसमें हैं ऐसे ताते बडेभारी पृथिवीतल मे उनको फेकते है तदनन्तर वे सब राजालोग मारसे शीघ्र चूर्ण करदियेगये ॥ ९२।९३।९४ ॥ हे युधिष्ठिर ! तब वेहोश हाथ पांव चलाने की चेष्टासे रहितमूर्च्छित होजातेहैं

लब्धायमेनते ॥ ८९ ॥ शोचन्तिस्वानिकर्म्माणि तूष्णींभूताश्चपार्थिव ॥ इतिवाक्यैःसमादिश्य नृपांस्तान्धर्म्मराट्तः ॥ ९० ॥ तेषांपापविशुद्ध्यर्थं यमोदूतानथाब्रवीत् ॥ भोभोश्चण्डमहाचण्ड गृहीत्वानृपतीनिमान् ॥ ९१ ॥ विशोधयध्वंपापेभ्यः क्रमेणनरकाग्निना ॥ ततश्शीघ्रंसमास्थाय नृपान्संगृह्यपादयोः ॥९२॥ भ्रामयित्वातुवेगेन चिक्षिपुर्यमकिङ्कराः ॥ सर्ववेगेनमहता सुप्रतप्तेमहीतले ॥९३॥ आस्फालयन्तिमहति चाश्मसारमयद्रुमे ॥ ततस्तेसर्वएवाशु प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ ९४ ॥ विसंज्ञाश्चतदासन्ति निश्चेष्टाश्चयुधिष्ठिर ॥ ततस्तेवायुनास्पृष्टाः शनैस्तुजीविताःपुनः ॥९५॥ तानानीयविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्तिनरकार्णवे ॥ अष्टाविंशतिरेवाद्यास्तीव्रानरककोटयः ॥ ९६ ॥ सप्तमस्यतलस्यान्ते घोरेतमसिसंस्थिताः ॥ अतिघोराचरौद्राच तथाघोरतमास्थिता ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी घोररूपाचपञ्चमी ॥ षष्ठीतरणताराख्या सप्तमीचभयानका ॥ ९८ ॥ अष्टमीकालरात्रिश्च नवमीचघटोत्कटा ॥ दशमीचैवचण्डाच महाचण्डाततोप्यधः ॥ ९९ ॥ चण्डकोलाहलाचैव प्रचण्डाचवराग्निका ॥ जघन्याह्यवरालोमा भीषणीचैवनायिका ॥ १०० ॥

तदनन्तर फिर हवाके लगने से धीरे २ वे जीआते है ॥ ९५ ॥ फिर उनको शुद्धकरनेके वास्ते लेकर नरकसमुद्रमें डालते हैं पुराने अट्ठाईस करोड विकराल नरक ॥ ९६ ॥ सातवे पाताल के नीचे घोर अन्धकार में भलीभांति स्थित है उन एक २ कोटि के ये नामहैं अतिघोरा१ रौद्रा २ घोरतमा ३ ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी ४ पांचवीं घोररूपा ५ छठीं तरणतारा ६ सातवीं भयानका ७ ॥ ९८ ॥ आठवीं कालरात्रि ८ नवीं घटोत्कटा ९ दशवी चण्डा १० तिसके नीचे महाचण्डा ११ ॥ ९९ ॥

चण्डकोलाहला १२ प्रचण्डा १३ वराग्निका १४ जघन्या १५ अवरालोमा १६ भीषणी १७ नायिका १८ ॥१००॥ कराला १९ विकराला २० वज्रविंशति २१ अस्ता २२ पञ्चकोणा २३ सुदीर्घा २४ परिवर्तुला २५॥१॥ सप्तभौमा २६ अष्टभौमा २७ और अट्ठाईसवीं दीर्घमाया २८ये घोर नरककोटि नामोंसे कहीगईहैं ॥२॥ पापीप्राणियों के वास्ते ये अट्ठाईस कोटि गिन्तीसे कहीगई हैं तिनके क्रमसे पांच पांच नायक जाननेयोग्य हैं ॥३॥ हे विशाम्पते ! उन हरएक कोटिके नायकोंको नामसे कहतेहैं उनमें पहला रौरवहै जहां प्राणी रोते हैं ॥ ४ ॥ दूसरा महारौरव है जिसमें पीड़ाओंसे बड़े २ भी रोतेहैं तदनन्तर तम, शीत, उष्ण ये पांच पहली कोटि के नायक

करालाविकरालाच वज्रविंशतिराश्रिता ॥ अस्ताचपञ्चकोणाच सुदीर्घापरिवर्तुला ॥ १ ॥ सप्तभौमाष्टभौमाच दीर्घमायेतिहापरा ॥ इतितानामतःप्रोक्ता घोरानरककोटयः ॥ २ ॥ अष्टाविंशतिरेतास्तु भूतानांमानत स्मृताः ॥ तासांक्रमेणविज्ञेयाः पञ्चपञ्चैवनायकाः ॥ ३ ॥ प्रत्येकंसर्वकोटीनां नामतस्तुविशाम्पते ॥ रौरवःप्रथमस्तेषां रुदन्तियत्रदेहिनः ॥ ४ ॥ महारौरवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्तिहि ॥ तमःशीतंतथाचोष्णं पञ्चैतेनायकाःस्मृताः ॥ ५ ॥ अघोरःप्रथमस्तीक्ष्णः पद्मःसंजीवनःशठः ॥ महामायोविलोमश्च करटकःकटकःस्मृतः ॥ ६ ॥ तीव्रोवामःकरालश्च किङ्करालःप्रकम्पनः ॥ महाचक्रःसुपद्मश्च कालसूत्रःप्रगर्ज्जनः ॥ ७ ॥ सूचीमुखःसुनेमिश्च खादकःसुप्रपीडितः ॥ कुम्भीपाकःसुपाकश्च क्रकचश्चसुदारुणः ॥ ८ ॥ अङ्गाररात्रिःपचनः असृक्पूयभवस्तथा ॥ सुतीक्ष्णःशुण्डशकुनी महासंवर्तकःक्रतुः ॥ ९ ॥ तप्तजन्तुःपङ्कलेपः पूतिमांश्चह्रदस्त्रपुः ॥ उच्छ्वासश्चनिरुच्छ्वासः सुदीर्घःकूरशाल्मली ॥ १० ॥ उष्ट्रितस्तुम

कहेगये हैं ॥ ५ ॥ अब दूसरी आदि कोटियों के नायकों को कहते हैं तिसमें दूसरी कोटि का पहला अघोर है फिर तीक्ष्ण, पद्म, सञ्जीवन, शठ, महामाय, विलोम, करटक, कटक ॥ ६ ॥ तीव्र, वाम, कराल, किङ्कराल, प्रकम्पन, महाचक्र, सुपद्म, कालसूत्र, प्रगर्ज्जन ॥ ७ ॥ सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रपीडित, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, सुदारुण ॥ ८ ॥ अङ्गाररात्रि, पचन, असृक्पूयभव, सुतीक्ष्ण, शुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु ॥ ९ ॥ तप्तजन्तु, पङ्कलेप, पूतिमान्, ह्रद, त्रपु, उच्छ्वास,

निरुच्छ्वास, सुदीर्घ, क्रूरशाल्मली ॥ १० ॥ उष्ट्रित, महानाद, प्रवाह, सुप्रवाहन, वृषाश्रय, वृषाश्व, सिंहानन, व्याघ्रानन, गजानन ॥ ११ ॥ श्वानन, शूकरानन, अजानन, महिषानन, मेषानन, मूषानन, खरानन, ग्राहानन, कुम्भीरानन, नक्रानन, महाघोर, भयानक ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्य, स्वभक्ष्य, सर्वकर्मा, अश्व, वायस, गृध्रोलूक, उलूक, शार्दूल, कपि, कच्छुर ॥ १३ ॥ गण्डक, पूतिवक्त्र, रक्तास्य, पूतिमूत्रिक, कणधूम, तुषाराग्नि, कृमिमान्, निरय ॥ १४ ॥ आतोद्य, प्रतोद्य, रुधिरोद्य, भोजन,

हानादः प्रवाहःसुप्रवाहनः ॥ वृषाश्रयोवृषाश्वश्च सिंहव्याघ्रगजाननाः ॥ ११ ॥ श्वशूकराजमहिषमेषमूषखरान नाः ॥ ग्राहकुम्भीरनक्रास्या महाघोराभयानकाः ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्याःस्वभक्ष्याश्च सर्वकर्म्माश्ववायसाः ॥ गृध्रोलूक उलूकश्च शार्दूलकपिकच्छुराः ॥ १३ ॥ गण्डकःपूतिवक्त्रश्च रक्तास्यःपूतिमूत्रिकः ॥ कणधूम्रस्तुषाराग्निः कृमिमान्निरयस्तथा ॥ १४ ॥ आतोद्यश्चप्रतोद्यश्च रुधिरोद्यश्चभोजनम् ॥ कालात्मगोनुभक्तश्च सर्वभक्तस्सुदारुणः ॥ १५ ॥ कर्कटस्तुविशालश्च विकटःकटपूतनः ॥ अम्बरीषःकटाहश्च कष्टावैतरणीनदी ॥ १६ ॥ सुतप्तोलोहशङ्कुश्च एकपादोश्रुपूरणः ॥ असिपत्रवनंघोरमस्थिलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ तिलातसीक्षुयन्त्राणि कूटपापप्रमर्द्दनाः ॥ महाचुल्लीविचुल्लीच तप्तलोहमयीशिला ॥ १८ ॥ पर्वतःक्षुरधाराख्यो मयोयमलपर्वतः ॥ सूचीविष्ठान्धकूपाश्च पतनःपातनस्तथा ॥ १९ ॥ मुशलीवृषलीचैवाशिवासङ्कटलातथा ॥ तालपत्रासिगहनंमहामोहकएवच ॥ २० ॥ संमोहनोस्थिभङ्गश्च तप्ताचलम

कालभक्त, आत्मभक्ष, गोऽनुभक्त, सर्वभक्ष, सुदारुण ॥ १५ ॥ कर्कट, विशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टवाली वैतरणी नदी ॥ १६ ॥ सुतप्त, लोहशङ्कु, एकपाद, अश्रुपूरण, घोर असिपत्रवन, प्रतिष्ठित अस्थिलिंग ॥ १७ ॥ तिलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इक्षुयन्त्र, कूट, पाप, प्रमर्दन, महाचुल्ली, विचुल्ली, तातेलोहेकी चट्टान ॥ १८ ॥ क्षुरधारनामका पर्वत, मय, यमलपर्वत, सूचीकूप, विष्ठाकूप, अन्धकूप, पतन, पातन ॥ १९ ॥ मुशली, वृषली, अशिवा, सङ्कटला, तालपत्रवन, असिपत्रवन, महामोहक ॥ २० ॥

संमोहन, अरिथभङ्ग, तप्ताचलमय, अगुण, बहुदुःख, महादुःख, कश्मल,यमल ॥२१॥ हालाहल,विरूप,श्वरूप,च्युतमानस,एकपाद, त्रिपाद और सबको प्रकट होरहा
तीव्र भी है ॥ २२ ॥ ये क्रमसे अट्ठाईस पँचकड़ी कहीगई हैं ॥१२३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनरकवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि कोटियों के सदृश पांचही पांच नायक भी हैं रौरव से लेकर मरीचि तक सौ नरक कहेगये हैं ॥ १ ॥ उसमें चालीस और अधिक हैं ऐसा
महानरको का मण्डलहै अपने कर्मों के हिसाब से मनुष्य लोग एक २ के क्रमसे नरकोंको भोगते हैं ॥२॥ दुष्ट कामनाओंसे जो कुकर्म जमा कियेगये उनसे शीघ्रही

योगुणः ॥ बहुदुःखोमहादुःखः कश्मलोयमलस्तथा ॥२१॥ हालाहलोविरूपश्च श्वरूपश्च्युतमानसः ॥ एकपादस्त्रिपा
दश्च तीव्रश्चविदितस्ततः ॥ २२॥ अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशःपञ्चकाःस्मृताः ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे
नरकवर्णनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ कोटीनामनुरूपाश्च पञ्चपञ्चैवनायकाः ॥ रौरवाद्यंमरीच्यन्तं नरकानांशतंस्मृतम् ॥ १ ॥ च
त्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ॥ एकक्रमात्प्रभुज्यन्ते नरैःकर्म्मानुरूपतः ॥ २ ॥ कामनाभिर्विरूपाभिर
कर्म्मप्रचयाद्द्रुतम् ॥ सुगूढयाततोध्वान्ते तप्तशृङ्खलयानराः ॥ ३ ॥ महावृक्षस्यशाखायां लम्बयन्तेयमकिङ्करैः ॥ त
तस्तान्सर्वतश्चैव दोलयन्तिहिकिङ्कराः ॥ ४ ॥ दोलिताश्चातिवेगेन निःसंज्ञांयान्तिपापिनः ॥ अन्तरिक्षेस्थितानाञ्च
लोहभारशतंतदा ॥ ५ ॥ पादयोर्बध्यतेतेषां यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ तेनभारेणमहता भृशंसन्तापितानराः ॥ ६ ॥ ध्याय

बहुत पोढ़ी तपीहुई जंजीरसे बांधकर अँधियारेमें ॥३॥ बड़े वृक्षकी डालमें मनुष्योंको यमदूत लटकातेहैं तदनन्तर फिर दूतलोग उनसबको बड़ेजोरसे झुलातेहैं बडेजोर
से झुलायेगये वे पापी बेहोश होजाते हैं आसमान में लटकतेहुये उन पापियोंके पावोंमें सौ[1] भार लोहा जबरदस्त यमदूत बांध देतेहैं तब उस बड़ेभारसे मनुष्य बडे

[1] भार चौंसठ अढ़ैया को कहते हैं ॥

सन्तापको प्राप्त होते हैं ॥ ४ । ५ । ६ ॥ अपने कर्मोंको याद करते हैं और बेतहाशे चुप रहजाते हैं तदनन्तर फिर क्रमसे काँटेवाले आगसे धँधेहुये लोहेके डण्डाओं
से ॥ ७ ॥ यमदूत यत्नसे पापियों के माथे में मारते हैं तदनंतर विष्ठासे भरेहुये कीडे जिसमें पड़े हैं ऐसे कुयें में डालते हैं ॥ ८ ॥ चारोंतरफ से घोर यमदूत पाप
करनेवालों को पकाते हैं तदनन्तर खारीपानी से आगमें विशेष औटते हैं ॥ ९ ॥ व तातेलोहे के कड़ाहमें बैंगन की तरह पकाते हैं व जलके जीवोंसे भरेहुये गन्दे
कुयें में डालकर ॥ १० ॥ तदनन्तर चर्बी, रक्त और पीवसे भरीहुई बावली में डाले गये वे पापीलोग कीडों और पैनी लोहेकीसी चोंचवाले कौवोंसे खायेजाते

न्तिस्वानिकर्म्माणि तूष्णीन्तिष्ठन्तिनिश्चलाः ॥ ततःक्रमादग्निवर्णैर्लोहदण्डैःसकण्टकैः ॥ ७ ॥ निहन्यन्तेप्रयत्नेन
यमदूतैश्चमस्तके ॥ विष्ठापूर्णेततःकूपे कृमीणांनिलयेततः ॥ ८ ॥ समन्तात्किङ्करैर्घोरैः पच्यन्तेपापकारिणः ॥ ततः
क्षारेणनीरेण वह्नावपिविशेषतः ॥ ९ ॥ वार्ताकवत्प्रपच्यन्तेतप्तेलोहकटाहके ॥ अमेध्यकूपेप्रक्षिप्य जलजन्तुसमाकु
ले ॥ १० ॥ मेदोसृक्पूयपूर्णायां वाप्यांक्षिप्तास्तुतेततः ॥ भक्ष्यन्तेकृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्चवायसैः ॥ ११ ॥ पच्य
न्तेमांसवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु ॥ प्रोताःशूलेषुतीक्ष्णेषु नराःपापसमन्विताः ॥ १२ ॥ पच्यन्तेपापिनस्तेवै यमदूतै
रनेकधा ॥ तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषुततःपुनः ॥ १३ ॥ तेषांचोत्पाट्यतेजिह्वा असत्याप्रियवादिनाम् ॥ सुदृढेनसुतप्तेन
प्रपीड्योरसिपादतः ॥ १४ ॥ मिथ्यागमप्रयुक्तस्य द्विजस्यापितथैवच ॥ यज्ञार्थंकोशविस्तीर्णं भल्लैस्तीक्ष्णैःप्रतोद्यते ॥
१५ ॥ निर्भर्त्सयन्तियेमूढा मातरंपितरंगुरुम् ॥ तेषांवक्त्रंवालुकाभिर्मुहुरापूर्य्यसिच्यते ॥ १६ ॥ ततःक्षारेणदीप्तेन पय

हैं ॥ ११ ॥ बहुत पैने त्रिशूलों में पोहेहुये पापी मनुष्य दगदगाते हुये अङ्गारोंके ऊपर कबाब की तरह पकायेजातेहैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर फिर तेलसे भरेहुये ताते कड़ाहों
में यमदूत अनेकप्रकारसे उन पापियोंको चुराते हैं ॥ १३ ॥ पांवसे छातीमें दबाकर बडी पोढ़ी ताती सँगसी से झूठ और कडुई बातों के कहनेवाले उन पापियों की
जीभ निकाली जातीहैं ॥ १४ ॥ बहुत द्रव्यको यज्ञके वास्ते झूंठेशास्त्र से जो ब्राह्मण खर्च कराताहै उसकी भी जीभ पैने भालाओंसे छेदीजाती है ॥ १५ ॥ जो मूर्ख माता,

पिता और गुरुको धमकाते हैं उनका मुहँ बालू से भरके फिर पानीसे सींचाजाता है ॥ १६ ॥ तदनन्तर खारी व गर्मपानीसे उनका मुहँ बारबार जल्दीसे भरते हैं फिर जलतेहुये तेलमे अत्यन्त भरतेहैं ॥१७॥ कीडोसे भरीहुई विष्ठापर से कुत्तोंकी तरह यमदूतों करके निकालेजाते हैं डण्डेसे मारकर लोहेके सेमर में बाधेजातेहैं ॥१८॥ फिर बडे जबर डरावने दूत उनको पीछेसे मारतेहैं व दँतीले पोढ़े गोंठिले आरासे ॥१९॥ शिरसे लेकर नीचेतक अपने घोरकर्मों के कारणसे फाड़दिये जातेहैं यमदूत पापियों को उन्हींके मांसको खिलाते और उन्हींके रक्तको पिलातेहैं ॥ २० ॥ जिन मूर्खोंने अन्न व जलको नहीं दियाहै और न इसके देनेकी तारीफ ही की है वे पापी मुगदरों

सातुपुनःपुनः ॥ द्रुतंसम्पूर्य्यतेत्यर्थं तप्ततैलेनतन्मुखम् ॥ १७ ॥ विष्ठाभिः कृमिपूर्णाभिः श्वानवद्यैर्भटैः ॥ परिपी ड्यविषाणेन प्रविष्टालोहशाल्मलीम् ॥ १८ ॥ हन्यन्तेपृष्ठदेहेषु पुनर्भीमैर्महाबलैः ॥ दन्तुरेणातिकुण्ठेन क्रकचेनव लीयसा ॥ १९ ॥ शिरःप्रभृतिपाट्यन्ते घोरैःकर्म्मभिरात्मजैः ॥ खादयन्तिस्वमांसानि पाययन्तिस्वशोणितम्॥२०॥ अन्नंपानंनदत्तंयैर्मूढैर्नाप्यनुमोदितम् ॥ इक्षुवत्तेप्रपीड्यन्ते जर्ज्जरीकृत्यमुद्गरैः ॥ २१ ॥ असितालवनेघोरे छिद्यन्तेख ण्डखण्डशः ॥ सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्ततःशूलेप्ररोपिताः ॥ २२ ॥ चाचल्यमानाःकृष्यन्ते नम्रियन्तेतथापिच ॥ देहा दुत्पाट्यतेमांसं तेषामस्थीनिमुद्गरैः ॥ २३ ॥ बहुशःकृष्यतेतूर्णं यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ तेनुच्छ्वासेनानुच्छ्वासास्तिष्ठन्तिन रकेचिरम् ॥ २४ ॥ उच्छ्वासेचसदोच्छ्वासा बालुकावदनावृताः ॥ रौरवेपुतुदन्तेवै पीड्यन्तेविविधैश्चरैः ॥ २५ ॥ महारौ

से चूरकरके ईखकी तरह पेरेजाते हैं ॥ २१ ॥ तलवार सरीखे जिनके पत्तेहैं ऐसे ताडके वृक्षोंके घोर जंगलमें टुकड़े २ कर काटेजाते हैं व सूजाओंसे सब अंग जिनके छेदेगये ऐसे पापी पीछेसे सूलीपर चढ़ायेजाते हैं ॥ २२ ॥ हिलायेजाते और खींचेभी जाते पर मरते नहीं हैं उनका मांस देहसे निकालाजाता है और हड्डियां मुगदरों से चूर कीजाती है ॥ २३ ॥ बड़े जबरदस्त यमदूत इसीतरह बहुतबार जल्द उनके मांसको खींचते हैं इससे वे लोग बेसांस बहुत कालतक नरक में पडे रहते हैं ॥ २४ ॥ बालूमे ठमेमुहँवाले पापी श्वास नहीं लेसक्ते हैं रौरवनरक में बड़ी तकलीफ पाते हैं और वहां अनेकप्रकार के दूतभी उनको बडी पीडादेते है ॥ २५ ॥ महारौरव

रवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्तिहि ॥ उपस्थास्येगुदेपार्श्वे पादेचोरसिमस्तके ॥ २६ ॥ निहन्यन्तेभटैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहमुद्गरैः ॥ निन्दन्तियेस्वरूपेण परदारान्हसन्तिच ॥ २७ ॥ आलिङ्गन्तिपतीनन्यान्नविन्दन्तिस्वकान्स्त्रियः ॥ किमुधावसिवेगेन नस्मरेरतिशाश्वतीम् ॥ २८ ॥ वञ्चितश्चत्वयासर्ता पापान्धश्चयथासुखम् ॥ लोहकुम्भेविनिक्षिप्ताः पाचिताश्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ समृद्धाग्नौप्रपाच्यन्ते प्रवेश्यन्तेशिलासुच ॥ क्षिप्यन्तेचान्धकूपेषु दश्यन्तेजगरैर्भृशम् ॥ ३० ॥ येनिन्दन्तिमहात्मानमाचार्य्यंधर्म्मदर्शिनम् ॥ शिवभक्तंचविप्रञ्च शिवधर्म्मंचशाश्वतम् ॥ ३१ ॥ तेषामुरसिकण्ठेच जिह्वायान्देहसन्धिषु ॥ कीलकैरोष्ठपुटके कील्यन्तेयमकिङ्करैः ॥ ३२ ॥ एवमादिमहाघोरा यातनाःपापकर्म्मिणाम् ॥ एकैकनरकेज्ञेयाः शतशोथसहस्रशः ॥ ३३ ॥ यातनागहनाराजन् सर्वेपांपापकर्म्मिणाम् ॥ इत्येवंयातनानन्ताःसर्वेषुनरकेषुच॥३४॥कस्तावर्षशतेनापि वक्तुंशक्नोतिमानवः ॥ इत्येवंविविधैर्घोरैः पात्यमानाःस्वकर्म्मभिः॥३५॥

की तकलीफों से बड़े २ भी रोतेहैं मुख, लिंग, गुदा, पसुली, पांव, छाती और माथे में ॥ २६ ॥ बड़े पैने तातेलोहे के मुगदरों से यमदूत उनको मारते हैं जो अपने रूप से औरोंकी निन्दा करते हैं व पराई स्त्रियोंको हँसते हैं ॥ २७ ॥ और जो स्त्रियां और पुरुषों को लपटाती हैं अपने पतियोंके पास नहीं रहतीं व जो पुरुष स्त्रियोंसे कहते हैं कि कहां बड़ी जल्दीसे जारही हो हमारी याद नहीं करती हो हमारी तुम्हारी प्रीति बहुत पुरानी है ॥ २८ ॥ ऐसी स्त्रियोंसे यमदूत कहते हैं कि तुमने अपने पतिको धोखादिया और पापों से अन्धे अन्य पुरुषको सुखसे ग्रहण किया ऐसे कहकर उनको लोहे के बटुआ में डालकर धीरे २ पकाते हैं ॥ २९ ॥ बड़ेजोर आग में उनको भूंजतेहैं और ताती पत्थरों की चट्टानों पर बिठाते हैं अँधवाकुवों में उनको डालते हैं और अजगर सांपोंसे अत्यन्त कटाते हैं ॥ ३० ॥ जो धर्मके जाननेवाले महात्मा आचार्य्य की निन्दा करतेहैं अथवा शिवजी के भक्त ब्राह्मण व पुराने शिवधर्म की निन्दा करते हैं ॥ ३१ ॥ उनके छाती, गला, जीभ, देहके जोड और ओठोंको यमदूत कीलोंसे कीलते है ॥ ३२ ॥ ऐसी २ बडीघोर पाप करनेवाले प्राणियों को एक २ नरकमे सैकडों हजारों तकलीफें जाननेयोग्य हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन्! सब पापकर्मियो को बड़ी कठिन तकलीफै है ऐसी २ अनन्त पीडा सब नरकों मे हैं ॥ ३४ ॥ सौ वर्षसे भी उनको कहनेको कौन पुरुष समर्थ होसक्ता है ऐसे २ बडेघोर अनेकतरह

के अपने कर्मोंसे क्रमसे सब नरकोंमें डालेजाते और पकायेजाते है इसमें कुछ सन्देह नहीं है महापातक करनेवाले जो पापी हैं वे सब नरकों में ॥ ३५ । ३६ ॥ जबतक
चन्द्रमा और नक्षत्र रहतेहैं तबतक अनेकतरह के दूतोंसे पीड़ाको पातेहैं इसीतरह सब पातकी भी इन्हीं नरकों में हमेशा पड़े रहते हैं और उपपातकी जो मनुष्य
हैं वे इनसे आधे समयतक को जाते हैं व चारों दिशाओं के नरकों में पचा करतेहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३७ । ३८ ॥ हे तात ! यह नहीं जानपड़ता है
कि कब किसकी मौत होगी अकस्मात मौतके आजानेपर फिर वर्ष दिन कौन मनुष्य पासक्ता है ॥ ३९ ॥ जिससे सब छोड़कर निश्चय अकेलेही जावोगे इससे सब

क्रमात्सर्वेषुपच्यन्ते नरकेषुनसंशयः ॥ महापातकिनश्चापि सर्वेषुनरकेषुच ॥ ३६ ॥ आचन्द्रतारकंयावत् पीड्यन्ते
विविधैश्चरैः ॥ तथापातकिनस्सर्वे निरयेष्वेषुसर्वदा ॥ ३७ ॥ चतुर्दिक्षुसुपच्यन्ते नरकेषुनसंशयः ॥ उपपातकिनश्चा
पि तदर्द्धंयान्तिमानवाः ॥ ३८ ॥ मृत्युर्नज्ञायतेतात कदाकस्यभविष्यति ॥ प्राप्तेचाकस्मिकेमृत्यौ वर्षंविन्दतिकोनरः ॥
३९ ॥ परित्यज्ययतःसर्वमेकाकीयास्यसिध्रुवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यधर्म्मपरोभव ॥ ४० ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं
नरकाणान्तुलक्षणम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनरकयातनानुवर्णनोनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥
युधिष्ठिरउवाच॥ तीर्य्यतेकेनधर्म्मेणसंसाराब्धिःसुदुस्तरः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तेननिर्भर्त्सितैःपापैः कथ्यमानां
कथांश्रृणु ॥ १ ॥ रक्तोमूढश्चलोकोयमकार्य्येसंप्रवर्तते ॥ नचात्मानंविजानाति नपरंनचदैवतम् ॥ २ ॥ नश्रृणोतिपरं

यत्नोंसे सच्चेधर्म में तत्पर हूजिये ॥ ४० ॥ यह सब तुमसे नरकों का लक्षण कहा गयाहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनरकयातनाऽनुव
र्णनोनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
युधिष्ठिरजी बोले कि किस धर्म से यह दुस्तर संसारसमुद्र तरा जासक्ता है, तब मार्कण्डेयजी बोले कि यमराजजी से धमकाये गये पापियों की कहीहुई कथा को
सुनो ॥ १ ॥ पापी कहते हैं कि यह लोक विषयोंमें फँसाहुआ इसीसे मूढ होरहा सो कुकर्ममें फँसता है आत्मा को नहीं जानताहै व न परमेश्वर और न देवताही को

जानताहै ॥ २ ॥ उत्तम अपने कल्याण की बातको नहीं सुनता है और आंखें भी हैं पर नहीं देखता है व बराबर सड़कपर धीरे २ भी चलाजाताहै परन्तु पग२ पर गिरताहै ॥ ३ ॥ ऐसे कहेगये धर्मराजजीने उन पापियोंसे जिस वृत्तान्तको थोड़े में कहाहै उसीको इस समय मुझसे विस्तारसे तुम सुनो ॥ ४ ॥ पापियोंसे यमराज बोले कि हमारा छोड़ाहुआ मनुष्य पण्डितों से भी समझाया जाता परन्तु नहीं जानता इस संसार में अनेकतरह के राग और लोभों के वशसे मनुष्य बड़ा क्लेश पाता है ॥ ५ ॥ गर्भ में पड़ने से फिर कहेहुये शास्त्र को नहीं समझता है और स्वर्ग व मोक्षके देनेवाले कर्म को मनुष्य नहीं सुनता है ॥ ६ ॥ इस लोकमे सब

श्रेयः सतिचक्षुषिनेक्षते ॥ समेपथिशनैर्गच्छन् प्लुवतेस्मपदेपदे ॥ ३ ॥ एवमुक्तोधर्म्मराजः संक्षेपात्पापदेहिनाम् ॥ विस्तरेणयदाचख्यौ तेषांतच्छृणुसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ यमउवाच ॥ मयामुक्तोनजानाति बोध्यमानोबुधैरपि ॥ संसारे क्लिश्यतेनाना रागलोभवशान्नरः ॥ ५ ॥ गर्भपातेनभावेनशास्त्रमुक्तंनबुध्यते ॥ नरोनश्रूयतेकर्म्म स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥ ६ ॥ सन्तप्यतिशिवध्याने सर्वकामार्थसाधने ॥ नरकादात्मनःश्रेयो यदत्रमहदद्भुतम् ॥ ७ ॥ प्रेतभूतानरास्सर्वे यमलोकंसमागताः ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथोद्दिष्टम्पुरातनम् ॥ ८ ॥ सूर्य्येणकथितंत्वासीन्नर्म्मदाख्यानमुत्तमम् ॥ देवतानांपितॄणाञ्च ममपित्रानुकम्पया ॥ ९ ॥ सपादलक्षमधिकं ब्रह्मणाकथितंरवेः ॥ तत्रश्रुतंमयाकृत्स्नं ब्रह्मणातुशिवाच्छ्रुतम् ॥ १० ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यतु ॥ जम्बूद्वीपंसमासाद्य मानुषींयोनिमाश्रितः ॥ ११ ॥

इच्छा और सब प्रयोजनों के सिद्धकरनेवाले शिवजी के ध्यान में तकलीफ पाता है जोकि नरक से छुडानेवाला अपना परम अद्भुत कल्याण है ॥ ७ ॥ प्रेतरूप सब मनुष्य यमलोक को आते हैं अब हम कथा को कहते हैं जैसी अगिले जमाने में कहीगई है ॥ ८ ॥ हमारे पिता सूर्यने कृपाकरके देवता और पितरोंसे नर्मदा के उत्तम आख्यान को कहाथा ॥ ९ ॥ वहां ब्रह्माजीने सवालाख श्लोकका पुराण सूर्य से कहाथा व हम अपने पितासे सब सुना और पिताने ब्रह्माजी से सुना व ब्रह्माजी ने शिवजी से सुना ॥ १० ॥ शिवजी ने पहिले पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेय से कहा इस जम्बूद्वीप में आकर और मनुष्यजन्मको पाया ॥ ११ ॥

फिर भी सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदादेवी के जो आश्रित नहीं होता है अर्थात् स्नान, तैरना, जलपीना और दानआदि कामों को नहीं करता है ॥ १२ ॥ तो इस लोकमें पापी मनुष्यों को गति देनेवाली और कौन होसक्ती है पापों की हरनेवाली महादेवी नर्मदा का जो ध्यान करते हैं ॥ १३ ॥ उनके पाप नाश होजाते हैं जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होजाता है जो नर्मदा को याद करताहै अथवा जो अपनी वाणी से कहताहै ॥ १४ ॥ परलोकमें गयेहुये उस मनुष्य को यमदूत नहीं सताते हैं जो पापी नीच मनुष्य नर्मदा को कहता है ॥ १५ ॥ वह हमारे कहे हुये नरकोंको कभी नहीं जाताहै व वहां गङ्गाआदि नदियां और अनेक प्रकार के

नाश्रयेन्नर्म्मदान्देवीं सप्तकल्पवहान्तुयः ॥ स्नानावगाहनात्पानात्तथादानक्रियादिभिः ॥ १२ ॥ लोकेस्मिन्गतिदा कान्या पापोपहतचेतसाम् ॥ येध्यायन्तिमहादेवीं नर्मदांपापहारिणीम् ॥ १३ ॥ अघानितेषांनश्यन्ति तमःसूर्य्योद येयथा ॥ नर्म्मदांसंस्मरेद्यस्तु कीर्तयेद्यस्तुवागिरा ॥ १४ ॥ परलोकंसमायातो यमदूतैर्नबाध्यते ॥ नर्म्मदांकीर्तयेद्य स्तु पापकर्म्मानराधमः ॥ १५ ॥ नरकान्समयोद्दिष्टान्नचक्रामतिकर्हिचित् ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्तत्र तीर्थकोटिरनेक धा ॥ १६ ॥ रेवातेजःप्रतापेन शुद्धिङ्गच्छन्तितत्क्षणात् ॥ नरकस्थस्स्मरेद्यस्तु मेकलान्तुहरंहरिम् ॥ १७॥ मुच्यतेय मदूतैस्सतत्क्षणान्नात्रसंशयः ॥ यदितिष्ठतिवैदूर्य्यपर्वतेमरकण्टके ॥ १८॥ ॐकारःपरमेशानो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ किमर्थंत्विहशोचन्ति पापोपहतचेतसः ॥ १९ ॥ सिद्धेश्वरंसिद्धलिङ्गं लोकानुग्रहकारकम् ॥ यज्ञेश्वरंचमध्येतु तत्रैवश शिभूषणम् ॥२०॥ नर्म्मदादक्षिणेभागे लिङ्गश्चैवमहेश्वरम् ॥ चतुर्थंकपिलेशश्चशिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥२१॥ येर्चयन्तिस

करोड़ों तीर्थ ॥ १६ ॥ नर्मदा के तेज व प्रताप से उसीक्षण शुद्धिको प्राप्त होते हैं व नरक में पडाहुआ भी जो नर्मदा अथवा हरिहर का स्मरण करता है ॥ १७ ॥ वह उसीक्षण यमदूतों से छूटजाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है और जो वैदूर्यपर्वत व अमरकण्टक पर भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले सबके मालिक ॐङ्कारजी वर्त्त-मानहैं तो पापीलोग यहां क्यों शोच करते हैं ॥ १८ । १९ ॥ लोकोंपर दया करनेवाला सिद्धलिंग सिद्धेश्वर तथा यज्ञेश्वर वहीं बीचमें शशिभूषण ॥ २० ॥ नर्मदा

के दक्षिण तरफ महेश्वर लिंग चौथे कपिलेश्वर जहां विद्यमान हैं उसको विद्वान् लोग शिवक्षेत्र जानते हैं ॥ २१ ॥ इनका जो सदा फूल, धूप, आरती और तर्पण
से भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं वे नरकसे भी शिवलोकको जातेहैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २२ ॥ हे अनघ ! यह सब आपसे कहा जो आपने पूछाथा हे भारत !
इसीतरह अतिपापी अधर्मी पुरुषों से यमराज ने कहाहै ॥ २३ ॥ गोदान, सोनेका दान, तिलोंका दान, अन्नका दान, दूधका दान, सब सामानों का दान ॥ २४ ॥
महलों का दान और बगीचोंका दान जो बड़े मनुष्य करते हैं वे घोररूप नरक व यमलोकको नहीं जाते हैं ॥ २५ ॥ व सब पापोंसे छूटजातेहैं ऐसा शिवजीका वचन

दाभक्त्या पुष्पधूपार्त्तितर्पणैः॥ शिवलोकन्तुतेयान्तिनरकान्नात्रसंशयः ॥२२॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथापृष्टन्त्वयानघ॥
पापिष्ठान्नूनधर्मस्थान्कथयामासभारत ॥ २३ ॥ गोदानंहेमदानञ्च तिलदानंतथैवच ॥ अन्नदानंपयोदानं सर्वोपस्करमे
वच ॥२४॥ प्रासादारामदानञ्च येकुर्वन्तिनरोत्तमाः॥ यमलोकंनतेयान्तिनरकंघोररूपिणम् ॥ २५ ॥ मुच्यन्तेसर्वपापे
भ्यः शिवस्यवचनंयथा ॥ सन्मानञ्चापमानेन वियोगेनेष्टसङ्गमम् ॥२६॥ यौवनंजरयाग्रस्तंकष्टात्सौख्यमुपद्रुतम् ॥ ब
लिभिःपलितैश्चापि जर्जरीकृतविग्रहः ॥२७॥ किङ्करोतिनरःप्राज्ञो जरयाजर्ज्जरीकृतः ॥ स्त्रीपुंसोर्यौवनंरूपं यदन्योन्यं
प्रियङ्करम् ॥ २८ ॥ तदेवजरयाग्रस्तमुभयोरपिनप्रियम् ॥ अपूर्ववत्तथात्मानं शैथिल्येनसमन्वितम् ॥ २९ ॥ यःपश्य
न्नविरज्येत कोन्यस्तस्मादचेतनः ॥ जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः ॥ ३० ॥ अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च

है सन्मान के साथ अपमान लगाहुआ है और प्यारीवस्तु के संयोगमें वियोग लगा हुआहै ॥ २६ ॥ जवानी के साथ बुढापा लगाहै तब सुख तो बड़े कष्ट से होसक्ता
है क्योंकि सुखमें उपद्रव बहुत हैं सिमिटा और बालों के सफेद होजाने से जांजर होगयाहै शरीर जिसका ॥ २७ ॥ ऐसा बुद्धिमान् पुरुष बुढ़ापेसे जीर्ण होरहा क्या
करसक्ता है स्त्री और पुरुषका आपस में प्यार करानेवाली जवानी व रूपही होता है ॥ २८ ॥ वही जब बुढ़ापे से बिगाड दियागया तब दोनोंको दोनों नहीं प्यारे
लगते हैं तथा पहले से और तरह का व शिथिलतासे युक्त अपने को ॥ २९ ॥ देखताभी जो मनुष्य वैराग्य को नहीं प्राप्त होता उससे अधिक और कौन मूर्ख है

बुढ़ापेसे दबेहुये मनुष्य का स्त्री, पुत्र और भाईलोग ॥ ३० ॥ व बुरेआचरणवाले सेवकलोग भी बेकाम होनेमे अनादर करते हैं बुढ़ापे से युक्त मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सिद्ध करनेको नहीं समर्थ होसक्ताहै तिससे पहलेही धर्मको करलेवे हे युधिष्ठिर ! इस शरीरमें वात, पित्त और कफकी घटाबढ़ी हुआ करती है ॥ ३१ । ३२ ॥ और वायुआदि का समूह शरीरही से पैदा होताहै तिससे यह अपना शरीर सदा रोगवालाही जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ जब वातकी बढ़ती अधिक होतीहै तब ज्वरसे पीड़ित होताहै ऐसे अनेक तरहसे पैदाहुये रोगोंसे बहुत अनेकतरहके दुःख होते हैं ॥ ३४ ॥ उनको आपही जानसक्ताहै और हम क्या कहें इस देहमें एकसौ एक

परिभूयते ॥ धर्म्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षंनजरयायुतः ॥ ३१ ॥ शक्तःसाधयितुन्तस्मात्पुराधर्म्मंसमाचरेत् ॥ वातपित्तकफादीनां वैषम्यञ्चयुधिष्ठिर ॥ ३२ ॥ वातादीनांसमूहश्च देहजःपरिकीर्तितः ॥ तस्माद्व्याधिपरंज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥ ३३ ॥ वातोत्पत्त्यतिरेकेण बाधितोवैज्वरेणच ॥ रोगैर्नानाविधिभर्वैर्बहुदुःखान्यनेकधा ॥ ३४ ॥ तानिचस्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ एकोत्तरंमृत्युशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठितम् ॥ ३५ ॥ तत्रैकंकालरूपञ्च शेषास्त्वागन्तवःस्मृताः ॥ येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्तिभैषजैः ॥ ३६ ॥ जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ अपमृत्युश्चसर्वस्य विषमद्यादिसम्भवः ॥ ३७ ॥ नचातिपुरुषस्तस्मादपमृत्योर्बिभेतिवै ॥ विविधाव्याधयःकष्टाः सर्पाद्याःप्राणिनस्तथा ॥ ३८ ॥ विषाणित्वभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणिदेहिनाम् ॥ पीडितंरोगसर्पाद्यैरपिधन्वन्तरिःस्वयम् ॥ ३९ ॥ स्वस्थंकर्तुंनशक्नोति कालप्राप्तंहिदेहिनम् ॥ नौषधंनतपोदानं नमित्राणिनबान्धवाः ॥ ४० ॥ परित्रातुंनोसमर्थाः का

मौतें लगी हुई हैं ॥ ३५ ॥ तिनमें एक तो कालरूपही है और बाकी आने जानेवाली कहीगई हैं यहां जो आनेजानेवाली कहीगई हैं वे दवाइयों से शान्त होजाती हैं ॥ ३६ ॥ जप, होम और दानोंसे कालरूपी मौत नहीं शान्तहोतीहै और सबकी अकालमृत्यु विष और दारूआदिसे होती है॥३७॥इसीसे मनुष्य अकालमृत्युसे बहुत नहीं डरता है अनेकतरह के रोग, तकलीफें तथा सांपआदि जीव ॥ ३८ ॥ व विष और मारणआदि प्राणियों की मौतके दरवाजे हैं रोग और सांपआदि से पीड़ित, कालको प्राप्तहोरहे, प्राणीको आराम करनेके लिये साक्षात् धन्वन्तरि भी नहीं समर्थ होसके हैं और कालसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षाकरनेके लिये न औषध, न तपस्या, न

दान, न मित्र और न भाईलोगही समर्थ होसक्ते हैं इससे मौतके बराबर कोई दुःख नहीं है व मौतके बराबर कोई शत्रु नहीं है ॥ ३६ ।४० । ४१ ॥ और सब प्राणियो को मौतके बराबर काल नहीं है हे भारत ! सुन्दर स्त्रियां, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य (हुकूमत) और अनेकतरहके सब सुखोंको मौत छुडादेती है हे राजन् ! यह तुमसे भाईबन्धुरूप दुस्तर संसार कहागया ॥ ४२।४३ ॥ यह सब नाशवालाहै और कालका भोजनहै ऐसा जानकर सब प्रयत्नसे नर्मदाका भलीभांति सेवन करना चाहिये ॥ ४४ ॥ सदा सब दुःखोंकी नाश करनेवाली व सब शोकोंकी नाश करनेवाली नर्मदा देवी जो जिस२ कामनाको करताहै उसके लिये उसी२ कामनाको देती हैं ॥ ४५॥

लेनपरिपीडितम् ॥ नास्तिमृत्युसमंदुःखं नास्तिमृत्युसमोरिपुः ॥ ४१ ॥ नास्तिमृत्युसमःकालः सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥ सद्भार्य्यापुत्रमित्राणि राज्यैश्वर्य्यसुखानिच ॥ ४२ ॥ मृत्युश्छिनत्तिसर्वाणि विविधान्यपिभारत ॥ इदंतेकथितंराज ञ्ज्ञातिसंसारदुस्तरम् ॥ ४३ ॥ परिणामइतिज्ञात्वा सर्वङ्कालस्यभोजनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यासप्तकल्पगा ॥ ४४ ॥ सर्वदुःखापहानित्यं सर्वशोकविनाशिनी ॥ योयान्कामयतेकामांस्तांस्तान्देवीप्रयच्छति ॥ ४५ ॥ इदंज्ञानमि दंध्यानं पाण्डित्यंवेदवेदनम् ॥ निवासस्सर्वभूतानां सेव्यतेसप्तकल्पगा ॥ ४६ ॥ यज्ञोदानंतपस्सत्यं स्वाध्यायःपितृ तर्पणम् ॥ सफलंलभतेतेषां योरेवाम्बुनिषेवते ॥ ४७ ॥ ब्रह्मकूर्चसहस्राणि सोमपानायुतंतथा ॥ नर्म्मदातोयपानस्य क लांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ४८ ॥ संयुक्तोपिमहापापैर्नानाजन्मकृतैरपि ॥ ॐकारदक्षिणेघोरं मुच्यतेतत्क्षणाज्जपन् ॥ ४९ ॥ गोदानान्नपरंदानं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ नर्म्मदापयसिस्नात्वा योदद्याद्गान्द्विजन्मने ॥ ५० ॥ संख्यांकर्तुंयथा

यही ज्ञान, यही ध्यान व बुद्धिमानी और वेदोंका जाननाहै जो सब प्राणियों का आधार नर्मदा सेवन कीजावे ॥ ४६ ॥ यज्ञ, दान, तप, सत्य, वेदपाठ और पितरों का तर्पण इन सबोंका फल वही पाताहै जो नर्मदाके जलका सेवन करताहै ॥ ४७ हजारों ब्रह्मकूर्च और दशहजार सोमपान यज्ञ नर्मदा के जल पीनेकी सोलहवी कलाको नहीं पासक्ते हैं ॥ ४८ ॥ अनेकजन्मों के किये हुये महापापों से संयुक्त भी मनुष्य ॐकारनाथ के दक्षिण तरफ अघोर मन्त्र का जप करताहुआ उसीक्षण में छूटजाता है ॥ ४९ ॥ गोदान से परे तीनोंलोको मे नामूद और कोई दान नहीं है जो नर्मदा के जलमें स्नानकरके ब्राह्मण के लिये गौ देवे ॥ ५० ॥ तो उसके

रे०पु० ३६०

पुण्य की यथायोग्य गिन्ती देवताओं करके भी करने को अशक्य है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे कर्म्मगतियमवाक्यन्नाम च तुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि गौ कितनी तरहकी होतीहै और किस समय में सब सामानसे संयुक्त दीजातीहै यह आपसे हम जाना चाहते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो, राजन् ! मुझसे कहेजाते वृत्तान्त को तुम सुनो व समझो तुमसे मैं एक आख्यानको कहताहूं कि पहिले कल्पके सत्ययुगमें ॥ २ ॥ सब धर्म-

वच्च नदेवैरपिशक्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकर्म्मगतियमवाक्यंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ धेनुःकतिविधाप्रोक्ता कस्मिन्कालेपिदीयते ॥ सर्वोपस्करसंयुक्ता त्वत्तइच्छामिवेदितुम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो कथ्यमानंनिबोधमे ॥ कथयामितवाख्यानमादिकल्पेकृतेयुगे ॥ २ ॥ चक्रवर्तीशशाङ्कोभूत्सर्वधर्म्मभृतांवरः ॥ नचवर्णयितुंशक्यः सत्यधर्म्मव्रतेस्थितः ॥ ३ ॥ बुभुजेसमहीमेतामेकच्छत्रां समाहितः ॥ नवखण्डांसप्तद्वीपां यथाशक्रोमरावतीम् ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्रस्यतस्यापि संवादश्चक्रवर्तिनः ॥ हरिश्चन्द्रः कुरुक्षेत्रे गवामयुतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ हेमभारमलङ्कारसर्वरत्नविभूषितम् ॥ ब्रह्मर्षिर्मुद्गलोनाम स्वयंब्रह्मप्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥ मुद्गलाश्चद्विजास्सर्वे सत्यधर्म्मपरायणाः ॥ शतमष्टोत्तरंसाग्रं ब्राह्मणाब्रह्मवादिनः ॥ ७ ॥ हरिश्चन्द्रोददौतेभ्यो राहुसू

धारियों में श्रेष्ठ, सत्य और धर्ममें स्थित शशाङ्कनाम का एक चक्रवर्ती राजा हुआ जिसकी बड़ाई नहीं कीजासक्ती है ॥ ३ ॥ सावधान वह राजा सातद्वीप और नव खण्डवाली इस पृथिवी को अकेला भोगताहुआ जैसे इन्द्र अमरावती को भोगे ॥ ४ ॥ उस चक्रवर्ती राजा और हरिश्चन्द्र राजाका संवाद है कि हरिश्चन्द्र राजा कुरुक्षेत्र में सोने और रत्नोंके जेवरों से सजीहुई उत्तम दशहजार गौवों को देतेहुये वहां स्वयंब्रह्म की पदवी पायेहुये एक मुद्गल नामके ब्रह्मर्षिथे ॥ ५।६ ॥ जिनके वंश वाले सत्य और धर्ममें तत्पर सब ब्राह्मण मुद्गलही कहाते थे उन्हीं ब्राह्मणों में ब्रह्मके जाननेवाले कुछ अधिक एकसौ आठ ब्राह्मण थे ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणों को

बड़ी श्रद्धासे युक्त राजा हरिश्चन्द्रजी विधिसे पूजन कर उन्हीं के लिये सूर्यग्रहण में गौवोंको देतेहुये ॥ ८ ॥ परमसिद्धि के देनेवाले स्थानेश्वर महादेव का पूजनकर और बडे आनन्द से युक्त चक्रपाणि हृषीकेश भगवान् का भी पूजन करके ॥९॥ हे नृपश्रेष्ठ ! सरस्वती के तटमें तिल और कुशोंसे संयुक्त इस दानके प्रभावसे उन हरिश्चन्द्र राजा ने सब लोकोंको जीतलिया ॥ १० ॥ सब लोकों के मनकी हरनेवाली आसमान में हरिश्चन्द्र को पुरी मिलतीहुई वह इस चराचर लोकमें हरिश्चन्द्रपुरी इस नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ११ ॥ सत्य, दान और सब छोंड़ देना ऐसे २ उत्तम कामोंसे भूपित राजा हरिश्चन्द्रके बराबर दूसरा राजा न हुआहै और न होने

र्य्यसमागमे ॥ द्विजान्सम्पूज्यविधिवच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ ८ ॥ अर्चयित्वामहेशानं स्थानंपरमसिद्धिदम् ॥ चक्रपाणिंहृषीकेशं मुदापरमयायुतः ॥ ९ ॥ सरस्वत्यांनृपश्रेष्ठतिलदर्भान्वितस्यतु ॥ दानस्यास्यप्रभावेण लोकास्तेनाखिलाजिताः ॥ १० ॥ अन्तरिक्षेपुरीप्राप्ता सर्वलोकमनोहरा ॥ हरिश्चन्द्रपुरीख्याता सास्मिँल्लोकेचराचरे ॥ ११ ॥ सत्यदानसर्वत्यागैरित्यादिभिरलंकृतः ॥ हरिश्चन्द्रसमोराजा नभूतोनभविष्यति ॥ १२ ॥ एवंगाथापुरागीता शक्राद्यैस्सुरसत्तमैः ॥ शशाङ्कोप्यकरोत्सर्वं नर्म्मदातीरमाश्रितः ॥ १३ ॥ दानंयज्ञंतपःसत्यं पर्वतेमरकण्टके ॥ ददौचार्द्धप्रसूताङ्गां ब्राह्मणायमहात्मने ॥ १४ ॥ दानस्यास्यप्रभावेण हरिश्चन्द्राधिकोभवत् ॥ अनेकभाविकंपापं दग्ध्वातूलौघवच्छिखी ॥ १५ ॥ यावद्वत्सस्यपादौद्वौ मुखंयोनौप्रदृश्यते ॥ तावद्गौःपृथिवीज्ञेया सशैलवनकानना ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गीरौप्यखुरी सवत्साकांस्यदोहना ॥ नर्म्मदास्नानयुक्तातु सकुशातिलसंयुता ॥ १७ ॥ ॐकारामरयोर्मध्ये कोटिती

वालाहै ॥ १२ ॥ ऐसी गाथाको पूर्वकाल विषे देवताओं में उत्तम इन्द्रआदि देवताओंने गायाहै और शशाङ्क राजाभी नर्मदा के तटमें बैठकर दान, यज्ञ, तपस्या और सत्यवचन आदि सब काम करतेहुये व अमरकण्टक पर्वतपर आधी ब्याई गौ महात्मा ब्राह्मण को देतेहुये ॥ १३ । १४ ॥ इस दानके प्रभावसे अनेक जन्मोंके पापको रुईकी राशिको आगकी तरह जलाकर हरिश्चन्द्रसे अधिक होतेहुये ॥१५॥ जबतक बछड़ाके दोनों पांव और मुहँ गौकी योनिमें देखपड़े तबतक वह गौ पर्वत व जलो और जङ्गलो के सहित पृथिवी के बराबर जाननेयोग्य है ॥ १६ ॥ सोने के सीगोंवाली, चांदीके खुरोंवाली, बछडासे युक्त, कांसेकी दोहनीवाली, नर्मदा में

नहलाईहुई और कुश व तिलोंसे संयुक्त ॥ १७ ॥ ऐसी हजार गौवें ॐङ्कार और अमरकण्टक के बीचमें जो कोटितीर्थ है उसीमें ब्राह्मणों के लिये राजा देतेहुये ॥ १८ ॥ इसी बीचमें देवताओंके नक्कारे आकाशमें बाजतेहुये उसीक्षणमें सवारीपर सवार, मणियों से दगदगाते हुये ॥ १९ ॥ अपने पास वर्त्तमान अनगिन्ती विमान के चढ़नेवाले देवताओं से स्तुति कियेजाते,सुवर्णके छातेको लगायेहुये, चामरोंसे दुराये जारहे राजा शशाङ्क सोहतेहुये ॥ २० ॥ और उनके हजारयोजन नीचे स्थित राजा हरिश्चन्द्र भी शशाङ्कराजा के ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ २१ ॥ आश्चर्य्य से युक्त आप कुरुक्षेत्रकी निन्दा करके कहा कि सूर्यग्रहण विषे नर्मदामें इन शशाङ्क

राजा ने ॥ २२ ॥

एताःसहस्रसंख्याता ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेनेदुर्देवदुन्दुभयोदिवि ॥ तत्क्षणाद्याथैनराधिपः ॥ धृतस्वर्णातपत्रस्तु वीज्यमानस्तुचामरैः ॥ स्तूयमानःसमीपस्थैरसंख्यातैर्विमानिभिः ॥ नमारूढो ज्वलन्मणिगणैरिव ॥ १९ ॥ योजनानांसहस्रेण हरिश्चन्द्रोप्यधःस्थितः ॥ तद्दृष्ट्वातादृशंकर्म्म शशाङ्कस्यविशाम्पतेः ॥ २० ॥ सविनिन्द्यकुरुक्षेत्रं विस्मयाविष्टचेतनः ॥ महानद्यांशशाङ्केन राहुसोमसमागमे ॥ २१ ॥ दत्तंदानंनसामान्यं भवेदितिसमासतः ॥ विषण्णवदनोभूत्वा हरिश्चन्द्रोनृपोत्तमः ॥ २२ ॥ ब्रह्मलोकंगतःक्षिप्रं यत्रलोकेश्वरःप्रभुः ॥ अभिवाद्ययथान्यायं पप्रच्छसपितामहम् ॥ २३ ॥ दानेननिर्जितादेवाः शशाङ्केनमहात्मना ॥ किन्नुपुण्यमिदंब्रह्मन्कुरुक्षेत्राद्विशिष्यते ॥ २४ ॥ अमरेश्वरतीर्थन्तु नामरेवासमुद्भवम् ॥ केनापिनसमम्भूतमुपर्य्युपरिदीप्यते ॥ २५ ॥ इति श्रुत्वावचस्तस्य हरिश्चन्द्रस्यधीमतः ॥ उवाचवचनंब्रह्मा हरिश्चन्द्रंनृपोत्तमम् ॥ २६ ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहना ॥ २७ ॥

ने ॥ २२ ॥ दानको दियाहै सो वह साधारण नहीं है ऐसे संक्षेपसे कहकर उदासमुहँवाले होकर राजाओंमें उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी ॥ २३ ॥ बहुतजल्दी ब्रह्मलोक को जातेहुये जहां लोकों के मालिक प्रभु ब्रह्माजी विद्यमान हैं वहा वे राजा ब्रह्माजीको यथायोग्य नमस्कार कर पूंछतेहुये ॥ २४ ॥ कि महात्मा शशाङ्क राजाने दान से देवताओ को जीतलिया सो हे ब्रह्मन् ! यह पुण्य क्या कुरुक्षेत्र से भी विशेष है ॥ २५ ॥ नर्मदा से उत्पन्न हुआ अमरेश्वरनाम का तीर्थ किसी तीर्थके बराबर नहीं है सबके ऊपरही ऊपर प्रकाश करता है ॥ २६ ॥ उन बुद्धिमान् हरिश्चन्द्रजीके इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी राजाओं में उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी से वचन

कर्म्मणाङ्गतिः ॥ शशाङ्कसदृशोराजा नदृष्टोनश्रुतोमया ॥ २८ ॥ एवंवक्तुंनयोग्योहं नदेवापिसवासवाः ॥ अनेकानिस हस्राणि पुरावैचक्रवर्तिना ॥ २९ ॥ इष्टानिचविधानेन पर्वतेमरकण्टके ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे तीर्थलक्षाणिभारत ॥ ३० ॥ सरस्वतींकुरुक्षेत्रं पुष्करंनैमिषंतथा ॥ तीर्थान्येतानिचान्यानि स्नानंकर्तुंसमाययुः ॥ ३१ ॥ मेकलायांहरिश्चन्द्र कोटितीर्थेनराधिप ॥ तीर्थानान्त्यजराजेन्द्र साम्यंमेकलयासह ॥ ३२ ॥ वाराणस्याकुरुक्षेत्रं तोलितञ्चमयापुरा ॥ तीर्थानिनसमंयान्ति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ३३ ॥ ख्यातमात्रंकुरुक्षेत्रं लोकयात्राप्रवर्तकम् ॥ पुराणंनश्रुतंयैस्तु मि थ्याज्ञानसमन्वितैः ॥ ३४ ॥ सेव्यतांकल्पगादेवी यदीच्छेत्परमंपदम् ॥ नमस्कृत्यविधातारमयोध्याधिपतिस्तदा ॥ ३५ ॥ मुदापरमयायुक्तो ययाचामरेश्वरम् ॥ एतत्सर्वंसमाख्यातं यथावत्तवसुव्रत ॥ ३६ ॥ यःशृणोतिनरोराजन्गो सहस्रफलंलभेत् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगोदानमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५॥

बोले ॥ २७ ॥ कि हे राजेन्द्र ! विषादको छोड़ो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है शशाङ्कराजा के बराबर दूसरे राजाको मैंने न देखाहै और न सुनाहै ॥ २८ ॥ हम और इन्द्रआदि सब देवताभी राजा इतनी पुण्यवाला है ऐसा नहीं कहसक्ते क्योंकि अगिले समय में इस चक्रवर्त्ती राजाने अनेक हजारयज्ञों को अमरकण्टक पर्वतपर विधानसे कियाहै हे भारत ! सूर्यग्रहणमें लाखो तीर्थ ॥ २९ । ३० ॥ सरस्वती, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषआदि ये व और भी तीर्थ हे नराधिप, हरिश्चन्द्र ! नर्मदा के कोटितीर्थ में स्नान करने के वास्ते आते हैं तिससे हे राजेन्द्र ! नर्मदाके साथ और तीर्थोंकी बराबरी को छोड़देवो ॥ ३१ । ३२ ॥ अगिले जमाने में हमने काशीके साथ कुरुक्षेत्रको तौलाथा परन्तु इस तीर्थके प्रभावकी बराबरी कोई तीर्थ नहीं करसक्तेहैं ॥ ३३ ॥ कुरुक्षेत्र तो प्रसिद्धमात्रहै लोगोंकी यात्राका करानेवालाहै सोभी उन्हींलोगोंकी कि जिन मिथ्याज्ञानियोंने पुराणको नहीं सुनाहै ॥३४॥ इससे जो परमपदकी इच्छाकरे तो नर्मदादेवीका सेवनकरे इतनासुनकर अयोध्याके राजा वे हरिश्चन्द्रजी ब्रह्माजी के नमस्कार कर बड़ेआनन्द से युक्त उसी समय अमरेश्वर को चलेगये हे सुव्रत ! यह सब आपसे यथावत् कहागया ॥ ३५ । ३६ ॥ हे राजन् ! इसको जो मनुष्य भक्तिसे सुनताहै वह हजार गोदान के फल को पाता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि माहिष्मतीपुरी के पश्चिम तरफ पापोंका हरनेवाला और सब शोचों का छुड़ानेवाला अशोकवनिका नामका तीर्थ है ॥ १ ॥ वहां स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार विस्तार से पार्वती का पूजनकरे इसीतरह सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित वहां मातङ्गका भी आश्रमहै ॥ २ ॥ अँधियारे व उजियाले पाख की तीज विषे चन्दन, धूप, केसरआदि का लेपन, अनेक बलि और दियालियों के जलाने आदि से ॥ ३ ॥ जो स्त्री वहां भक्तिसे युक्तहो पार्वतीका पूजनकरे वह रूप और सुन्दरभाग्य से युक्त अच्छे पतिको पाती है ॥ ४ ॥ कातिक की पूर्णमासी को प्रसन्नमन व इन्द्रियों को वश कियेहुये जो स्त्री अपने प्राणों का त्याग करती है

मार्कण्डेयउवाच ॥ माहिष्मत्याःपश्चिमेवै तीर्थपापहरंपरम् ॥ अशोकवनिकानाम सर्वशोकविनाशनम् ॥ १ ॥ स्नात्वातत्रार्चयेद्गौरीं यथाविभवविस्तरैः ॥ मातङ्गस्याश्रमंतद्वत्सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥२॥ शुक्लकृष्णातृतीयायाङ्गन्धधूपविलेपनैः ॥ उपहारैरनेकैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ ३ ॥ तत्रयापूजयेन्नारी गौरीम्भक्तिसमन्विता ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नं लभतेसत्पतिन्तुसा ॥ ४ ॥ कार्त्तिक्यान्तुगतप्राणा मोदमानातुसंयता ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्प्राप्तामाहेश्वरंपुरम् ॥ ५ ॥ मातङ्गोनामदेवर्षिः पुराकल्पेयुधिष्ठिर ॥ नर्म्मदातीरमाश्रित्य तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ ६ ॥ पुराजन्मनिषादःसजातिंस्मरतिपूर्विकाम् ॥ अघमर्षणदेशस्थः सर्वधर्म्मंबुबोध च ॥ ७ ॥ महर्षीणांप्रसङ्गेन नर्म्मदादर्शनेन च ॥ पापबुद्धिंपरित्यज्य धर्म्मबुद्धिञ्चकारसः ॥ ८ ॥ निर्विण्णोहञ्चभिक्षुश्चाधुनाश्वपचयोनिषु ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्नशोकवनिकाङ्गतः ॥ ९ ॥ जटावल्कलधारीच कन्दमूलफलाशनः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु शिवाराधनतत्परः ॥ १० ॥ शिवध्या

वह इस तीर्थके माहात्म्य से महादेव के पुरको प्राप्तहोती है ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर! आगे के कल्प में मातङ्ग नामके देवर्षि नर्मदा के तीर बैठकर बड़े कड़ेतपको करते हुये ॥ ६ ॥ वे पहिले जन्ममें निषादरहे सो अपनी पहिली जातिको जानतेरहे और उस अघमर्षण (पापोंके नाश करनेवाले) स्थान में बैठेहुये मातङ्ग सब धर्मों को जानते थे ॥ ७ ॥ महर्षियों की सङ्गति से और नर्मदा के दर्शनसे वे पापबुद्धिको छोड़कर धर्ममें बुद्धिको करतेहुये ॥ ८ ॥ और कहा कि इस समयमें मैं विरक्त व भिक्षुक हूं और चाण्डालयोनि में पड़ाहूं ऐसे कहकर तदनन्तर हे राजन्! अशोकवनिका को चलेगये ॥ ९ ॥ जटा और भोजपत्रों को धारण किये कन्द, मूल और

फलोंके खानेवाले देवताओं के हजारवर्षतक शिवजी के पूजन में लगेरहे ॥ १० ॥ वे शिवजी के ध्यानमें परायण व कड़ीतपस्या में स्थित होतेहुये इसीतरह देवताओं के हजारवर्षतक तपस्या करतेहुये उस महात्मा की ॥ ११ ॥ जटाओं के अग्रभाग से उसी क्षणमें निकलीं और आपही आप नर्मदाके जलमें गिरतीहुई अनेकप्रकार की व बेप्रमाण की, अनन्त, कालेरङ्गवाली, बड़ेतेजवाली, सब गहनोंसे सजीहुई इक्यासी हजार यक्षिणी ॥ १२ । १३ ॥ इसतीर्थके प्रभावसे बहुत जल्दी यक्षलोकों को चलीगईं अब मातङ्ग यद्यपि मन्त्रयन्त्र से खालीरहे परन्तु महादेवजी की भक्तिमें तत्परहो ॥ १४ ॥ सब मन्त्रोंमें उत्तम "ॐनमः शिवाय" इस षडक्षरमन्त्र

नपरस्सोभूद्दुश्चेतपसिसंस्थितः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंहि तथातस्यतपस्यतः ॥ ११ ॥ एकाशीतिसहस्राणि जटाग्रेभ्योविनिस्सृताः ॥ स्वयंपतन्तिविविधा नर्म्मदातोयमध्यतः ॥ १२ ॥ तत्क्षणाद्यक्षिणीरूपा अनन्ताश्चाप्रमाणिकाः ॥ श्यामवर्णास्सुतेजस्कास्सर्वाभरणभूषिताः ॥ १३ ॥ यक्षलोकंव्रजन्त्याशुतीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ मन्त्रयन्त्रविहीनोपि शिवभक्तिपरायणः ॥ १४ ॥ षडक्षरमिमंमन्त्रं हृदिचक्रेदिवानिशम् ॥ ॐनमःशिवायइति सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ १५ ॥ तस्यभक्तिंपरांज्ञात्वा देवदेवउमापतिः ॥ प्रत्यक्षरूपोभगवाञ्छूलपाणिःसमागतः ॥ १६ ॥ उवाचवचनन्देवो मातङ्गम्प्रतिभारत ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते ध्यानेनानेनसुव्रत ॥ १७ ॥ मातङ्गउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरंदातुमिहेच्छसि ॥ मातङ्गनाम्नाविख्यातिं तीर्थमेतत्प्रयातुवै ॥ १८ ॥ चाण्डालाःश्वपचाश्चैव पापयोनिगताश्चापि ॥ जपादिरहिताश्चापि मुच्यन्तेत्रापिकिल्बिषात् ॥ १९ ॥ मातङ्गनामलिङ्गन्तु नर्म्मदातीरमाश्रितम् ॥ स्नात्वायोत्रार्चयेत्तस्य भवे

को दिन रात अपने मनमें रखतेहुये ॥ १५ ॥ तब उनकी पराभक्ति को जानकर देवताओं के देवता, पार्वतीजी के पति, त्रिशूलको हाथमें लिये, भगवान् महादेवजी प्रत्यक्षरूप आगये ॥ १६ ॥ हे भारत ! मातङ्गसे महादेवजी वचन बोले कि हे सुव्रत ! इस ध्यानसे तुम्हारा कल्याण हो तुम वरको मांगो ॥ १७ ॥ तब मातङ्ग बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और यहां वर देनेकी इच्छा करतेहो तो यह तीर्थ मातङ्ग के नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १८ ॥ चाण्डाल, श्वपच और भी पापयोनि जीव जप आदिकों से खाली भी हों परन्तु यहांपर पापसे छूटजावें ॥ १९ ॥ नर्मदा के तीर विद्यमान मातङ्ग नाम के लिङ्गका स्नानकर जो पूजनकरे उसका बन्धन

छूटजावे ॥ २० ॥ हे महेश्वर ! हम आपके प्रसादसे इसी वर को चाहते हैं उन मातङ्गके इस वचन को सुनकर फिर महादेवजी बोले ॥ २१ ॥ कि हमारे प्रसाद से ऐसाही हो इसमें कुछ संशय नहीं है ऐसे कहकर महादेवजी उत्तम कैलासपर्वत को चलेगये ॥ २२ ॥ मातङ्ग वरदान को पाकर सब आभूषणों से भूषित, मनमानी सवारीपर सवार बहुत कालतक स्नान के प्रभाव से भोगोंके भोगने के वास्ते पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये चैत्र महीने में कृष्णपक्ष की जो अमावस है अथवा चतुर्दशी है ॥ २३ । २४ ॥ उसमें जो कुछ वहा होम कियाजावे व दान दियाजावे वह अनन्तफल को देताहै तिलोदक के देनेसे पापयोनि भी जीव कृतार्थ

न्धविमोक्षणम् ॥ २० ॥ इदंवरमहंमन्ये त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रत्युवाचशिवापतिः ॥ २१ ॥ एवम्भवतुतत्सर्वं मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ २२ ॥ वरंसम्प्राप्यमातङ्ग उमामाहेश्वरम्पुरम् ॥ कामिकंयानमारूढः सर्वाभरणभूषितः ॥ २३ ॥ जगामाशुचिरम्भोक्तुं भोगान्स्नानप्रभावतः ॥ याचैत्रमासेमावास्या कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ २४ ॥ तस्यांतत्रहुतंदत्तमनन्तफलमश्नुते ॥ तिलोदकप्रदानेन पापयोनिगताअपि ॥ २५ ॥ सक्त्वाज्यगुडपिण्डेन पितॄन्मोदयतेतुयः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २६ ॥ तिलतण्डुलमिश्रंयः कुर्य्याल्लिङ्गस्यपूजनम् ॥ सोपिवर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ २७ ॥ अशोकवनिकानाम मातङ्गंतीर्थमुच्यते ॥ रेवायाउत्तरेकूले कथितन्तवभारत ॥ २८ ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि याम्यभागेव्यवस्थितम् ॥ तीर्थंमृगवनं नाम [illegible]पापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ तत्रस्नात्वार्चयेद्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ एकादश्यांमहाराज निराहारोनिशांन

[illegible] ॥ २५ ॥ सत्तू और गुड़के पिण्डोंसे जो पितरों को प्रसन्न करता है उसके पितर जबतक चौदहों इन्द्र रहते तबतक तृप्त रहते है ॥ २६ ॥ तिलचौरी से [illegible] पूजन करता है [illegible] भी हजार वर्षतक शिवलोक में पूजाजाता है ॥ २७ ॥ अशोकवनिका मातङ्गनाम का तीर्थ कहाजाता है वह नर्मदा के उत्तरतट में [illegible] भारत आपसे कहागया ॥ २८ ॥ अब और दक्षिण के तरफमें विद्यमान सब पापोंके नाश करनेवाले मृगवन नामके तीर्थको कहेंगे ॥ २९ ॥ वहा स्नान

कर शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले विष्णुका पूजनकरे और हे महाराज ! एकादशीमें निराहारहो रातको बितावे ॥ ३० ॥ मृगवन में चन्दन और फूलोंसे हरिका पूजनकरे वहां एक ब्राह्मण को भोजन कराने से लाख ब्राह्मण भोजन करानेका फल होता है ॥ ३१ ॥ तिलोदक के देनेसे पितरों को वैष्णवपद होताहै वहीं उत्तम वाराहतीर्थ भी है ॥ ३२ ॥ जहां वाराहरूपसे पृथिवी उद्धार कीगई है इसीतरह बड़ेतेजवाले विष्णुने और भी वहा विश्वरूप को धारण कियाहै ॥ ३३ ॥ पतिव्रता स्त्री अथवा महीनेभर व्रतकी करनेवाली स्त्री वहां विधान से स्नानकर निश्चय विष्णु के लोकको प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे

येत् ॥ ३० ॥ हरिंमृगवनेतत्र गन्धपुष्पैश्चपूजयेत् ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे लक्षम्भवतुभोजितम् ॥ ३१ ॥ तिलोदक प्रदानेन पितॄणांवैष्णवंपदम् ॥ तत्रैवसन्निविष्टन्तु वाराहंतीर्थमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ यत्रवाराहरूपेण धराचैवसमुद्धृता ॥ विश्वरूपंतथाचान्यद्धरिणामिततेजसा ॥ ३३ ॥ पतिव्रताचनारीवै तथामासोपवासिनी ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन लोकंप्राप्नोतिवैष्णवम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ आख्यानंकथयिष्यामि ख्यातंमृगवनंयथा ॥ व्याधःकश्चिद्दुराचारः सर्वभूतेषुनिर्दयः ॥ १ ॥ पाशहस्तोधनुष्पाणिर्विचरन्गिरिकन्दरे ॥ आजघानमृगान्सर्वान्कुटुम्बार्थेनृपोत्तम ॥ २ ॥ ज्येष्ठेमासितुसंप्राप्ते निदाघेज्वलनप्रभे ॥ भ्रमतिस्मतृषार्तश्च वृक्षमूलेसमाश्रितः ॥ ३ ॥ रात्रौस्वपितिनिश्चेष्टो दुःखार्तश्चक्षुधान्वितः ॥ वनसं

मातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और आख्यान को कहते हैं जैसे मृगवन प्रसिद्ध हुआ एक बहेलिया सब प्राणियोंमें दयासे खाली ॥ १ ॥ फँसरी और धनुष को हाथमें लिये पहाड़ की कन्दरा में घूमताहुआ अपने कुटुम्ब के वास्ते हे नृपोत्तम ! बहुत से मृगोंको मारताहुआ ॥ २ ॥ ज्येष्ठके महीनेको प्राप्तहुये पर और आगके बराबर घाम होनेपर प्यासके मारे विकलहोरहा वह बहेलिया घूमताहुआ व एक पेड़की जड़पर बैठगया ॥ ३ ॥ और रातमें दुःख व क्षुधासे विकल बेहोश सोगया तब

तक वनकी रगड़से पैदाहुई आग पर्वत की खोहसे उठी ॥ ४ ॥ उसने हरिण और बाघआदि पशुओंसे युक्त वनको जलादिया वह सब वन अच्छीतरह जलकर खाक होगया ॥ ५ ॥ वर्षाकाल विषे कन्याराशिमें सूर्यके आनेपर श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीविषे पुण्यवाले नर्मदा के प्रवाह में जलाहुआ वह सब जंगल बहगया ॥६॥ वहां जितने सांप जले वे सब नर्मदाके जलके छूनेसे यक्ष होगये उसी क्षणमें दिव्यदेहको धारणकिये विष्णुलोकके विमानोंपरसवार होतेहुये ॥ ७ ॥ और वह बहेलिया इस तीर्थके प्रभावसे राजा होताहुआ व दशहजार वर्षतक मनोहर भोगोंको भोगताहुआ ॥ ८ ॥ और जितने वहां मृग जले वे सभी गन्धर्व होकर वैष्णवही विमानसे विष्णुलोक

घर्षजोवह्निरुत्थितोगिरिकन्दरात् ॥ ४ ॥ प्रदग्धंचवनंतेन मृगव्याघ्रसमावृतम् ॥ भस्मीभूतश्चतत्सर्वं रेणुभूतश्चकृ तस्नशः ॥ ५ ॥ मेघागमोक्तकालेतु प्रवाहेनार्म्मदेशुभे ॥ कन्याराशिगतेभानौ द्वादश्यांश्रवणेनतु ॥ ६ ॥ नर्म्मदातोय संसर्गाद्यक्षाजातास्तुपन्नगाः ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहास्तु वैष्णवंयानमास्थिताः॥७॥सव्याधश्चाभवद्राजा तीर्थस्यास्यप्रभा वतः ॥ दशवर्षसहस्राणि भोगान्भुङ्क्तेमनोहरान् ॥ ८ ॥ येपिदग्धामृगास्तत्र तेपिगन्धर्वतांगताः ॥ वैष्णवेनैवयानेन प्राप्तास्तुवैष्णवम्पदम् ॥ ९ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु विष्णुलोकेसमोदते ॥ १० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ मनोरथंनामतीर्थमन्यत्परमसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं रेवातीरसमुद्भवम् ॥ यंयंप्रार्थयतेकामं तंतंस्नात्वापिमानवः ॥ १२ ॥ सर्वंचसमवाप्नोति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ अ ङ्गारावर्तसंभेदो गोसहस्रफलप्रदः ॥ १३ ॥ अङ्गारेश्वरदेवश्च तत्रतिष्ठतिसङ्गमे ॥ स्नानमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यमवा

को जातेहुये ॥ ९ ॥ परवश व अपने वश होकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह देवताओंके हजार वर्षतक विष्णुलोक में आनन्द करता है ॥ १० ॥ तिलोदक के देने से पितरों की परमगति होती है परमसिद्धिका देनेवाला एक और मनोरथनाम का तीर्थहै जोकि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध व नर्मदा के तटमें उत्पन्न हुआहै उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर जिस जिस मनोरथ को चाहता है उस उस ॥ ११ । १२ ॥ सबको इस तीर्थके प्रभाव से पाताहै अंगारावर्त नामका जो संगमहै वह हजार गोदान

के फलका देनेवालाहै ॥ १३ ॥ उस संगम में अंगारेश्वर देवभी विद्यमानहैं वहां स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य गणोंका मालिक होताहै ॥ १४ ॥ हे भारत ! जब चौथि के दिन मंगलवार होवे तब सोनेकी नराकार,मूर्त्तिको बनवाकर लालेकपडेसे लपेटे ॥ १५ ॥ घी और गुड़से भरेहुये तांबेके पात्रको और उस मूर्त्तिआदि सबसामानको विधिपूर्वक विशेषकरके वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणको देवे ॥ १६ ॥ इस तीर्थपर इस दानके प्रभावसे इन्द्रके आधे आसन का भोगनेवाला होताहै जिससे पाप बडेकड़े व बहुत दुःखोंके देनेवाले हैं ॥ १७ ॥ इससे पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि वह अपने को बड़ी तकलीफ का देनेवालाहै जिस समयमें व जिस जगहपर जैसी उमर

प्नुयात् ॥ १४ ॥ अङ्गारश्चचतुर्थ्याञ्च यदाभवतिभारत ॥ हिरण्यपुरुषंकृत्वा रक्तवस्त्रेणवेष्टयेत् ॥ १५ ॥ घृतपूर्णताम्र पात्रं गुडेनापिप्रपूरितम् ॥ तत्सर्वंविधिवद्दद्याच्छ्रोत्रियायविशेषतः ॥ १६ ॥ दानतीर्थप्रभावेण शक्रार्द्धासनभाग्भवेत् ॥ यस्मात्पापानिदुःखानि तीव्राण्यपिबहून्यपि ॥ १७ ॥ तस्मात्पापंनकर्तव्यमात्मपीडाकरंहितत ॥ यस्मिन्कालेच देशेच वयसायादृशेनच ॥ १८ ॥ कृतंशुभाशुभंकर्म्मं तत्तथातेनभुज्यते ॥ तस्मात्सदैवदातव्यमविच्छिन्नतयार्थिने ॥ १९ ॥ विच्छिद्यन्तेन्यथाभोगा ग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ संसेव्यतेयथादेवी सप्तकल्पवहाशुभा ॥ २० ॥ संसारस्यसमु च्छित्त्यै ज्ञानयोगंब्रवीमिते ॥ शिवप्रकाशकंज्ञानं योगस्तत्रैवचिन्तितः ॥ २१ ॥ दुर्विज्ञेयगतिर्योगो नर्म्मदाशिवसान्नि धौ ॥ शिवाज्ञावर्ततेतत्र स्नानपूजाविधिर्यथा ॥ २२ ॥ ससिद्धान्ताविरोधेन पुस्तकैर्नविरोधयेत् ॥ धर्म्मज्ञानापवर्गार्थ

से ॥ १८ ॥ भला बुरा कर्म कियागया है वह वैसेही उस करके भोगाजाता है तिससे हमेशा निरन्तर मांगनेवालेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार कुछ देना चाहिये ॥ १९ ॥ विना दानके दिये सब भोग कटजाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियां सूखजाती हैं जिससे सात कल्पतक बहनेवाली और पुण्यवाली नर्मदादेवी सेई जातीहै ॥ २० ॥ संसारसे छुड़ाने के वास्ते उस ज्ञानयोगको हम तुमसे कहते हैं वह ज्ञान शिवका कहाहुआहै और योगभी वहीं विचारागयाहै ॥ २१ ॥ नर्मदा और शिवके विषयका जो योगहै उसकी गति किसी के जाननेयोग्य नहीं है नर्मदामें स्नान और पूजाकी जैसी विधिहै उसमें शिवकी आज्ञाही प्रमाण है ॥ २२ ॥ वह

सिद्धान्त और पुस्तकों से जिसतरह विरोध न हो उस तरह होना चाहिये ऐसे करने से मनुष्य धर्म, अर्थ, ज्ञान और मोक्षको साथही पाताहै ॥ २३ ॥ आगे पीछे के विरोधमें कहीं भी प्रयोजन नहीं होताहै पहले से तर्कको देखकर भी वेदके साथ में न करे ॥ २४ ॥ तिससे विद्वान् पुरुष करके शास्त्र और युक्ति इन दोनों से सदा सिद्धान्तका विचार करने योग्य है अकेले अन्दाजही से सिद्धान्तका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ जिसका फल छोटा बड़ा कहागया है उसका विचार अनेकतरह से कहागया है तिससे परीक्षाको करै कि कौन बड़ेफलवाला और पुण्यवाला उत्तम कर्म है ॥ २६ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य पाखण्डी, कुकर्मी, वैडाल-

सहितंविन्दतेनरः ॥ २३ ॥ पूर्वोत्तरविरोधेन कुत्रार्थोभिमतोभवेत् ॥ दृष्ट्वाद्यमूलतस्तर्कं श्रुत्यासहविवर्जयेत् ॥ २४ ॥ तस्मादागमयुक्तेन सदात्मार्थविचारणम् ॥ कर्तव्यंनानुमानेन केवलेनविपश्चिता ॥ २५ ॥ हीनोत्तमाद्यस्यफलं बहुधास्वश्चतत्स्मृतम् ॥ तस्मात्परीक्षांकुर्वीत पुण्यंसाधुमहत्फलम् ॥ २६ ॥ पाखण्डिनोविकर्म्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥ वर्जयेद्दूरतोधीमान् हैतुक्यांस्तीर्थनिन्दकान् ॥ २७ ॥ दिगम्बराञ्छ्वेतपटान् येचान्येहेतुवादिनः ॥ एतैस्सहनसंवादं संसर्गंनकथञ्चन ॥ २८ ॥ विपरीतंकलौधर्म्मं नग्नामुण्डामलाशिनः ॥ तस्मात्तञ्चपरित्यज्य त्रेताधर्म्मं समाचरेत् ॥ २९ ॥ प्रमाणंसर्वधर्म्मेषु ब्रह्मविष्णुशिवोदितम् ॥ अन्यथाकुरुतेयस्तु नरकेपततिध्रुवम् ॥ ३० ॥ सर्वेषामेवशास्त्राणामेवंशास्त्रविनिश्चयः ॥ सेव्यतांकल्पगादेवी शिवपूजारतैस्सदा ॥ ३१ ॥ पितॄणांतर्पणंकुर्य्याद्भिक्षांदद्याच्चभिक्षवे ॥ कारुण्यंसर्वभूतेषु नर्म्मदाख्यानचिन्तनम्॥ ३२ ॥ इदंज्ञानमशेषञ्च सर्वकर्म्मविशोधनम् ॥ आदिम

व्रतिक, शठ, तर्कवाले, नागा, सफेद कपड़ेवाले और तीर्थोंके निन्दकों को दूरसे छोड़देवे व और जो तर्कसे बात करतेहों उनके साथ बात और उनका संसर्ग कभी न करे ॥ २७ । २८ ॥ नागा, मुण्डा और अघोरियोंने कलियुग में धर्मको उलटा करदियाहै तिससे उसको छोड़कर बाकीरहे तीन युगों का धर्मकरे ॥ २९ ॥ सब धर्मोंके बीचमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकाही कहाहुआ धर्म प्रमाणहै जो और तरहसे करताहै वह निश्चय नरक में गिरता है ॥ ३० ॥ सभी शास्त्रोंका यही निश्चय है कि महादेव के पूजन करनेवाले नर्मदा का सेवन हमेशा कियाकरें ॥ ३१ ॥ पितरोंका तर्पणकरे और भिखारी को भीख देवे, सब प्राणियोंपर दयाकरे और नर्मदा

की कथाको विचारे सब कर्मोंका अतिशुद्ध करनेवाला यही पूरा ज्ञानहै आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अपने स्वभावहीसे निर्मल, प्रभु॥ ३२ । ३३ ॥ सबके जानने वाले और सबतरह से पूर्ण शिवशास्त्र में शिवजी जानने योग्यहैं उनका कहाहुआ ज्ञान निःसन्देह सब प्रयोजनोंका सिद्ध करनेवालाहै ॥ ३४ ॥ जो सबका जानने वाला, सम्पूर्ण, स्वभाव से निर्मल और सब दोषोंसे रहित शिवहै वह मिथ्या कैसे कहसक्ता है ॥ ३५ ॥ और विना शिवजी की आज्ञा संसार की सृष्टि कैसे होसक्ती है जो मायासे कहो तो वह जड़वस्तु है और जीवसे कहो तो वह भी अज्ञानी है ॥३६॥ परमाणु आदि जो माया है वह जड़है वह बुद्धिवाले दूसरे सहायक के विना

ध्यान्तरहितः स्वभावविमलःप्रभुः ॥ ३३ ॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च शिवोज्ञेयःशिवागमे ॥ सर्वार्थसाधकंज्ञानं तत्प्रणीतमसंशयम् ॥ ३४ ॥ यःसर्वज्ञस्सुसम्पूर्णः स्वभावविमलःशिवः ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तः सब्रूयात्कथमन्यथा ॥ ३५ ॥ शिवाज्ञामन्तरेणापि जगत्सृष्टिःकथम्भवेत् ॥ अचैतन्यात्प्रधानेन अज्ञत्वात्पुरुषस्यच ॥ ३६ ॥ प्रधानंपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ॥ तन्नकर्तृस्वयंदृष्टं बुद्धिमत्कारणंविना ॥ ३७ ॥ नयथाघटमानेन मृत्पिण्डःस्वयमृच्छति ॥ तथाज्ञाबुद्धिभावेन नतिष्ठेत्प्रकृतिःस्वयम् ॥ ३८ ॥ धर्म्माधर्म्मोपदेशोन धर्म्माधर्म्मविचारणम् ॥ सर्वज्ञेनविनाजातु नादिसर्गेप्रसिद्ध्यति ॥ ३९ ॥ यथानादिप्रवृत्तोयं घोरःसंसारसागरः ॥ शिवोपिहितथानादिः संसारान्मोचकःस्मृतः ॥ ४० ॥ व्याधीनांभेषजंयद्वत् प्रतिपक्षंस्वभावतः ॥ तद्वत्संसारघोराणां प्रतिपक्षःशिवःस्मृतः ॥ ४१ ॥ वैद्यंविनानिराक्रन्दाः

आपही करनेवाली व देखनेवाली नहीं होसक्ती है ॥ ३७ ॥ जैसे विना किसी चेष्टा करनेवाले के मट्टी का पिण्ड आपही कुछ काम नहीं करसक्ता इसीतरह बुद्धिवाली वस्तु के विना जड़ माया आपही नहीं रहसक्ती है ॥ ३८ ॥ इससे इस अनादि संसार में धर्म और अधर्म का सिखलाना व धर्म और अधर्म का विचार सब जानने वाले के विना कभी नही होसक्ता है ॥ ३९ ॥ जैसा यह घोर अनादि संसारसागर बनाहै इसीतरह इस संसारसे छुड़ानेवाले अनादि शिवभी कहेगये हैं ॥ ४० ॥ जैसे दवा रोगों का वैरी अपने स्वभावही से है इसीतरह जन्म मरणरूपवाले घोर संसार के शत्रु शिवभी कहेगये हैं ॥ ४१ ॥ वैद्यके विना जैसे आनन्दरहित रोगी

दुःख पाते हैं इसीतरह शिवजी के विना सब जगत् दुःख पाताहै ॥ ४२ ॥ तिससे चारोंतरफ से पूर्ण, सबके जाननेवाले, सबसे श्रेष्ठ और अनादि शिवजीही हैं इन से और कोई पुरुष इस संसारसागर में रक्षा करनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥ अपने हृदयमें शिवको धरेहुये जो लोग शिवके कहेहुये ज्ञानका अभ्यास करते हैं तिनको जो वेदप्रमाण हैं तो ज्ञान जरूर होता है ॥ ४४ ॥ सब जीवोंकी रक्षा करनेवाली पृथिवी में यह नर्मदाही है जोकि पानी के रूपसे विद्यमान होरही लोकोंपर दया करनेवाली देवी है ॥ ४५ ॥ व नरकमे गिरतेहुये स्थावर और जंगम चारों प्रकारके जीवोंके समूह को यही भगवती निश्चय से उद्धार करती हैं ॥ ४६ ॥ हे नरश्रेष्ठ !

क्लिश्यन्तेरोगिणोयथा ॥ शिवेनतुविनासर्वं निराक्रन्दंजगत्तथा ॥ ४२ ॥ तस्मादनादिःसर्वज्ञः परिपूर्णःपरःशिवः ॥ अस्तिनातःपरित्राता पुमान्संसारसागरे ॥ ४३ ॥ येभ्यसन्तिशिवज्ञानं हृदयेशिवभाविताः ॥ यदिवेदाःप्रमाणन्तु ते षांज्ञानंप्रजायते ॥ ४४ ॥ इयञ्चसर्वभूतानां शरणम्भुविनर्म्मदा ॥ अपांरूपतयादेवी लोकानुग्रहकारिणी ॥ ४५ ॥ स्थावरंजङ्गमंचैव भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ भगवत्युद्धरत्येषा पतन्तंनरकेध्रुवम् ॥ ४६ ॥ एवंज्ञात्वानरश्रेष्ठ शिवमन्वीक्ष्य कल्पगाम् ॥ उच्चैर्गृहाणिदिव्यानि धनधान्यान्वितानिच ॥ ४७ ॥ सर्वोपस्करदिव्यानि ब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् ॥ अना थायातिवृद्धाय विकलायकुटुम्बिने ॥ ४८ ॥ काष्ठमृन्मयगेहञ्च योद्विजायप्रयच्छति ॥ एवंविधान्गृहान्रम्यान् सर्व तोमरकण्टके ॥ ४९ ॥ कारयेद्यःपुमान्दिव्यांस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ किंतस्यबहुभिर्दत्तैर्दानैर्भवतिभारत ॥ ५० ॥ एत देवपरंदानंसर्वकामार्थसाधकम् ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्यासर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५१ ॥ इति सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७॥

ऐसा जानकर नर्मदाको महादेवही समझकर धन और अन्नसे भरेहुये, सब दिव्य सामानसे सजेहुये बड़े ऊंचे दिव्य मकान ब्राह्मणोंको देवे अनाथ, विकल, कुटुम्ब वाले और अतिवृद्ध ॥ ४७ । ४८ ॥ ब्राह्मणके लिये जो काठ व मट्टीके मकानको देताहै व ऐसेही रमणीक दिव्य मकानोंको जो पुरुष अमरकण्टकमें बनवाताहै उस की पुण्यके फलको तुम सुनो उसको बहुत दानोंके देनेसे क्या है हे भारत ! ॥ ४९ । ५० ॥ सब मनोरथ व सब प्रयोजनों का सिद्ध करनेवाला यही श्रेष्ठ दान है जो मनुष्य इसको भक्तिसे सुनता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे देव ! इस बड़े गुप्त वृत्तान्त को सुनकर अब गौवोंकी उत्पत्ति और ब्रह्मकूर्चके माहात्म्यको हम आपसे तत्त्वपूर्वक सुना चाहते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आप सब कहो कि गोलोक कैसा कहागया है और किस कर्म करनेसे मिलताहै और उसमें हमेशा कौन रहा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महादेवजी को नमस्कार करके सब कामोंसे भरेहुये, सब लोकोंके ऊपर २ विद्य मान उत्तम मातारूप गौवोंके लोकको हम यथावत् कहतेहैं तुम सुनो पहले सब से नीचे सात पाताल हैं तिसमें पहला पाताल पातालही कहलाताहै ॥ ३।४ ॥ चारोंतरफसे जितनी नापवाली पृथिवीहै उसके नीचे उतनेही प्रमाणवाले वे पाताल

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वैतत्परमंगुह्यं गवान्देवसमुद्भवम् ॥ ब्रह्मकूर्चस्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ १ ॥ आख्याहिभगवन्सर्वं गोलोकःकीदृशःस्मृतः ॥ प्राप्यतेकर्म्मणाकेन केतस्मिन्ननिशंस्थिताः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ गोमातृलोकंपरमं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३ ॥ यथावत्सर्वलोकानामुपर्युपरिसंस्थितम् ॥ पातालानिततःसप्त पातालंचततस्तथा ॥ ४ ॥ यावत्प्रमाणंपरितः परिच्छिन्नंमहीतलम् ॥ तावत्प्रमाणंतस्याधःसमुद्रास्तानिचैवतु ॥ ५ ॥ तेषांप्रत्येकमुत्सेधप्रमाणंपरिकीर्तितम् ॥ योजनानांसहस्राणिदशार्द्धानिततस्ततः ॥ ६ ॥ सहस्रयोजनोत्सेधस्तस्याभ्यन्तरतस्तथा ॥ विवराणांसमस्तानां सहस्राणिनवस्मृतम् ॥ ७ ॥ तेषांरुचिरमाहात्म्यं नामतस्तुमहीतले ॥ दिव्यदिव्योपसम्पन्नः श्रीमच्चामीकरद्युतिः ॥ ८ ॥ नागराजस्सदैवास्ते तस्मिन्कृतनिकेतनः ॥ अनन्तोनन्तधामाच मुकुन्दोनृपशैवलः ॥ ९ ॥ ततोरसातलंनाम शिवसंतोषभूमिकम् ॥ वासुकेर्नागराज

और समुद्र हैं ॥ ५ ॥ उन हरएक पातालों की ऊँचाई की प्रमाण पांच हजार योजनकी कहीगई है और वैसेही उनके अन्दरभी हजार योजनकी ऊँचाईहै तदनन्तर जितने पाताल हैं वे सब नव २ हजार योजन के विस्तारवाले हैं ॥ ६ । ७ ॥ उन सबकी उत्तम तारीफ़ उनके नामोंसे पृथिवी में प्रसिद्ध है व जो उम्दासे उम्दा शोभासे युक्त सोनहला चमकवालाहै ॥ ८ ॥ उस पहले पातालमें अपने स्थानको बनायेहुये शेषनाग हमेशा रहते हैं हे नृप ! और भी वहां अनन्त, अनन्तधाम,

मुकुन्द और शैवलआदि नाग रहतेहैं ॥ ९ ॥ तिसके नीचे महादेवजी जिसकी जमीनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसा दूसरा रसातल नाम का पातालहै वहां वासुकिनाम के नागराजका बहुत अच्छा पुरहै ॥ १० ॥ और दानवोंके राजा सुरलोमा का भी वहां बड़ाभारी शहरहै व गरुड़का पुरहै औरभी सब बड़े महात्मा दैत्योंके शहरहैं ॥ ११ ॥ फिर उसके नीचे सुतलनामका पातालहै जिसकी जमीन कँकरीली है वहीं सदा स्वस्तिक आदि नागराजोंकी बस्ती है ॥ १२ ॥ और वहीं वैरोचन और हिरण्यआदि महात्मा दानवों के राजाओं का उत्तम स्थान है ॥ १३ ॥ उसके नीचे उन सब पातालों में बड़ा अतल इस नामका पाताल कहागया है उसकी जमीन केवल

स्य तत्रचारुमहापुरम् ॥ १० ॥ पुरंचसुरलोम्नस्तु दानवाधिपतेर्महत् ॥ सुपर्णस्यचदैत्यानामशेषाणांमहात्मनाम् ॥ ११ ॥ ततःसुतलनामास्ति शर्कराञ्चितभूमिकम् ॥ नागादीनांस्वस्तिकानां तत्रैववसतिःसदा ॥ १२ ॥ दानवाधिपतीनाञ्च तत्रैवनिलयःपरः ॥ वैरोचनहिरण्याख्यप्रभृतीनांमहात्मनाम् ॥ १३ ॥ ततश्चातलमित्युक्तं पातालानान्तुतस्यवै ॥ तेषामूर्द्ध्वस्तुसर्वेषां मृन्मयंचतलंक्षितेः ॥ १४ ॥ असुराधिपतेस्तावत्कालनेमेर्महापुरम् ॥ चारुचामीकराभासं वैनतेयस्यचापरम् ॥ १५ ॥ ततश्चवितलंनाम पातालंरक्तभूतलम् ॥ तस्मिन्महान्तकोनाम दानवेन्द्रकृतालयः ॥ १६ ॥ तालकोग्निमुखस्तस्मिन्नलह्रादश्चदानवाः ॥ निवसन्तिकृतागारास्तथाप्रह्लादवर्चसः ॥ १७ ॥ पातालंवितलंनाम शुक्लंक्षितितलंततः ॥ कम्बलाश्वतरौनागौ सहितौतत्रतिष्ठतः ॥ १८ ॥ महाजम्भहयग्रीवप्रभृतीनांमहात्मनाम् ॥ वाराणस्यसुरेन्द्राणां निवासस्तत्रकल्पितः ॥ १९ ॥ कृष्णंक्षितितलंतस्मात्पातालतलसंज्ञकम् ॥ शङ्कुकर्णश्च

मिट्टीकी है ॥ १४ ॥ उसमें पहले दैत्योंके राजा कालनेमि का बड़ा शहर है और अच्छे सोनेके कामवाला दूसरा गरुडका भी शहर है ॥ १५ ॥ उसके नीचे लाल जमीनवाला वितलनाम का पाताल है, उसमें महान्तक नामका दानवेन्द्र मकान को बनाये हुये ॥ १६ ॥ और वही तालक, अग्निमुख, नलह्राद तथा प्रह्लाद वर्चा आदि दानवलोग मकान बनायेहुये बसते हैं ॥ १७ ॥ उसके नीचे फिर वितल नामका पाताल है उसकी जमीन सफेद है वहां कम्बल और अश्वतर ये दोनों नागराज साथही रहतेहैं ॥ १८ ॥ और महाजम्भ और हयग्रीवआदि काशीके महात्मा दानवोंका भी वही निवासहै ॥ १९ ॥ उसके नीचे पातालतल नामका पाताल

है उसकी जमीन कालीहै उसमें शंकुकर्ण, महानाद और नमुचिका मकान है ॥ २० ॥ और सातवें पाताल के ऊपर सातद्वीपवाली पृथिवी विद्यमान है जो कि सात समुद्र और पर्वतों से युक्त शोभित होरहीहै ॥ २१ ॥ उसके बीच में जम्बूद्वीपहै तिसके बीचमें लक्षद्वीप है उससे परे शाल्मलीद्वीपहै उसके बाहर कुशद्वीप है ॥ २२ ॥ उसकेबाद क्रौञ्चद्वीप है तिसके बाहर शाकद्वीपहै उससे परे सातवां पुष्करद्वीप कहागयाहै ॥ २३ ॥ इन्हीं द्वीपोंमें सात समुद्रभीहैं जैसे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, दधितोय, क्षीरोद और सातवां स्वादूद समुद्र कहागया है ॥ २४ ॥ सातोंद्वीप और सातों समुद्र एक से दूसरा दूनाहै यही उनके विस्तारका प्रमाण है

हानादनमुचीनांनिकेतनम् ॥ २० ॥ पातालात्सप्तमादूर्द्ध्वं सप्तद्वीपामहीस्थिता ॥ समुद्रैस्सप्तभिर्युक्ता पर्वतैस्समलंकृता ॥ २१ ॥ जम्बूद्वीपश्चतन्मध्ये प्लक्षद्वीपस्ततःपरः ॥ ततश्चशाल्मलीद्वीपः कुशद्वीपश्चतद्बहिः ॥ २२ ॥ क्रौञ्चद्वीपश्चपरतः शाकद्वीपश्चतद्बहिः ॥ परतःपुष्करद्वीपःसप्तमःपरिकीर्तितः ॥ २३ ॥ क्षारोदकश्चेक्षुरसः सुरोदश्चघृतोदधिः ॥ दधितोयःक्षीरपूर्णः स्वादूदःसप्तमःस्मृतः ॥ २४ ॥ सप्तद्वीपसमुद्राणां द्विगुणद्विगुणान्तरः ॥ प्रमाणविस्तरोज्ञेयो नियुतःप्रथमःस्मृतः ॥ २५ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चेतिदक्षिणे ॥ नीलश्चश्वेतःशृङ्गश्च मेरोरुत्तरतःस्मृताः ॥ २६ ॥ मेरुरास्तिस्थितोमध्ये जम्बूद्वीपस्यभारत ॥ माल्यवान्पूर्वतोज्ञेयः पश्चिमेगन्धमादनः ॥ २७ ॥ एतेपर्वतराजानो जम्बूद्वीपेनवस्मृताः ॥ प्लक्षद्वीपादिषुज्ञेयास्सप्तसप्तैवपर्वताः ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपमध्येतु पर्वतोवलयाकृतिः ॥ एकःस्मृतस्समन्ताच्च नामतोमानसःस्मृतः ॥ २९ ॥ विन्ध्योनाममहाभागो जम्बूद्वीपेऽव्यवस्थितः ॥ यत्रैषानर्म्मदादेवी प्लवन्ती

तिसमें पहला एक लाख योजनका है ॥ २५ ॥ सुमेरुपर्वत के दक्षिण में हिमवान् हेमकूट और निषध ये तीन पर्वतहैं और सुमेरु के उत्तरमें नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये तीन पर्वत कहेगयेहैं ॥ २६ ॥ हे भारत ! सुमेरुपर्वत जम्बूद्वीपके बीचमें वर्तमानहै और उसकेपूर्वमें माल्यवान् और पश्चिममें गन्धमादन जाननेयोग्यहै ॥ २७ ॥ और जम्बूद्वीपमें ये नव पर्वत पर्वतोंके राजा कहेगयेहैं और लक्षआदि द्वीपोंमें सातही सात पर्वत जाननेयोग्यहैं ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपके बीचमें एकही पर्वत कहागया है जोकि चारोंतरफ से कड़ा के आकार बनाहुआ है उसका नाम मानस है ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीप में बड़ेभाग्यवाला विन्ध्यनाम का पर्वत वर्तमान है जहां लोकोंके

तारनेवाली यह नर्मदादेवी वहती है ॥ ३० ॥ विन्ध्यपर्वतका छोटाभाई दक्षिण में सह्यनामका पर्वतहै यह पृथिवी कछुये की पीठि ऐसी बनीहुईहै जिसके चारोंतरफ सोनहला मण्डल है ॥ ३१ ॥ वह पृथिवी ज्ञानी के वास्ते परमाणुरूप कहीगई है वैसेही उसका प्रमाण दशकरोड योजन का कहागया है ॥ ३२ ॥ उसके किनारे चारोंतरफ लोकालोक इस नामसे प्रसिद्ध पर्वत है वह बडाभारी और सोनेका बनाहुआ बडी शोभावाला सीधा गोलहै ॥ ३३ ॥ अद्धा उसका हजार योजन का है इसी हिसाब से विस्तार भी है उसके अद्धामें सूर्य हैं ॥ ३४ ॥ वे इधर उजियाला करते हैं और पिछली तरफ नहीं करसकतेहैं इसीसे यह श्रेष्ठ पर्वत लोकालोक ऐसा

लोकतारिणी ॥ ३० ॥ विन्ध्यस्यचानुजोभ्राता सह्योदक्षिणतःस्मृतः ॥ उर्वीकूर्म्मतलाकारा काञ्चनीपरिमण्डला ॥ ३१ ॥ अणुरेवतथासातु निर्दिष्टातिविदःक्षितिः ॥ तस्याःप्रमाणंनिर्दिष्टं दशयोजनकोटयः ॥ ३२ ॥ लोकालोकइति ख्यातस्तस्याःप्रान्तेसमन्ततः ॥ स्फीतोहेममयःश्रीमान्सरलःपरिमण्डलः ॥ ३३ ॥ योजनानांसहस्राणि चार्द्धम स्यव्यवस्थितम् ॥ तावदेवचविस्तीर्णं तदर्द्धेभानुराहितः ॥ ३४ ॥ प्रकाशयतिसज्योतिः परभागेऽयहन्यते ॥ लोका लोकइतिप्रोक्तस्ततोसावचलोमहान् ॥ ३५ ॥ लोकालोकावसानोयं भूर्लोकःपरिकीर्तितः ॥ गन्धर्वयक्षरक्षोभिः पिशा चैश्चनिषेवितः ॥ ३६ ॥ मानुषैःपशुभिश्चैव मृगपक्षिसरीसृपैः ॥ स्थावरैर्विविधाकारैर्भूतैरेतैश्चषड्विधैः ॥ ३७ ॥ भूर्लोक श्चभुवर्लोको यावदादित्यमण्डलम् ॥ वसन्तिसततंरुद्रास्सततंवक्रभास्कराः ॥ ३८ ॥ आदित्यमण्डलादूर्ध्वं स्मृता स्वर्लोकसंस्थितिः ॥ विमानकोटयस्तस्मिन्नष्टाविंशतिराशयः ॥ ३९ ॥ मेढीभूतोविमानानां सर्वेषामुपरिध्रुवः ॥ नि

कहागया है अर्थात् उसके इधर लोकहै और उधर लोक नहीं है ॥ ३५ ॥ बस लोकालोक पर्वत तक यह भूलोक कहागया है जोकि गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पशु, हरिण, पक्षी सांप इन अनेक प्रकारके आकारवाले स्थावर और छह प्रकारके जीवों से सेवितहै ॥ ३६ । ३७ ॥ यह भूलोकहै इसके बाद सूर्यमण्डलतक भुवर्लोकहै उसमें निरन्तर सूर्य जिनके मुँहमेंहैं ऐसे रुद्र हमेशा रहा करतेहैं ॥३८॥ सूर्यमण्डल के ऊपर स्वर्लोक की स्थिति कहीगई है उसमें अट्ठाईस करोड़ विमान

हैं ॥ ३९ ॥ सब विमानों के ऊपर कोल्हूकी जाटकी तरह ध्रुवहैं इन्हींमें वायुके सात पर्त लगेहुये हैं ॥ ४० ॥ पहला पर्त पृथिवी से मेघमण्डल तक है उनका नाम आह्व है जितनी चीजें इकट्ठी रहतीहैं वह उनका एकत्रित करनेवालाहै ॥ ४१ ॥ दूसरा पर्त प्रवह नाम का है वह सूर्यमण्डल में बँधाहुआहै व यह तीसरा सुन्दर पर्त संवह नाम का प्रतिष्ठितहै ॥ ४२ ॥ चौथा पर्त सोद्वह नाम का नक्षत्रमण्डल में वर्तमान है तदनन्तर पांचवें और छठवें इन दोनों पर्तोंका विमानों को उड़ाना यही कामहै ॥ ४३ ॥ ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊंचेपर महर्लोक है परिवह नाम का सातवां वायुका पर्त ध्रुव में बँधाहुआ है ॥ ४४ ॥ सब पर्तोंके ऊपरवाला यह

युताअनिलस्कन्धास्सप्तास्मिन्नन्तरेस्थिताः ॥ ४० ॥ पृथिव्याःप्रथमःस्कन्धः स्थितश्चामेघमण्डलम् ॥ आहवोनाम वैवातो व्यूहानांव्यूहकृत्तथा ॥ ४१ ॥ द्वितीयःप्रवहोनाम निबद्धःसूर्यमण्डले ॥ तृतीयःसंवहोनाम सुस्कन्धोसौप्रतिष्ठितः ॥ ४२ ॥ चतुर्थस्सोद्वहस्स्कन्धः स्थितोनक्षत्रमण्डले ॥ ततोद्वयोर्विनिर्दिष्टा विमानोद्वहनक्रिया ॥ ४३ ॥ योजनानांध्रुवःकोटिर्महर्लोकःसमुच्छ्रितः ॥ स्कन्धःपरिवहोनाम निबद्धःसप्तमोध्रुवे ॥ ४४ ॥ अन्नादीनिकरोत्येष पर्वणामुपरिस्थितः ॥ विनिर्वृत्तविकाराणामधिवासोमहात्मनाम् ॥ ४५ ॥ तत्राधिकारिदेवानामष्टाविंशतिकोटयः ॥ जनात्स्वर्लोकमागत्य नियोगात्पद्मजन्मनः ॥ ४६ ॥ स्थितामन्वन्तरंतत्र स्वव्यापारावसायिनः ॥ आरुह्यचमहर्लोकमागच्छन्तिततःपुनः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मणोदिवसैकेन देवास्स्वर्गेचतुर्दश ॥ क्रमेणकृत्वाकर्म्माणि महर्लोकेवसन्तिते ॥ ४८ ॥ कोटिद्वयंमहर्लोकाज्जनलोकःसमुच्छ्रितः ॥ साध्यानामनुगास्तत्र वसन्तिसुखिनःसदा ॥ ४९ ॥ योजनानांचतुष्कोट्यो

पर्त अन्नआदि को पैदा करता है बिगड़नेवाली चीजों के स्थान होचुके अब आगे महात्माओं के स्थानहैं ॥ ४५ ॥ महर्लोक में हुकूमत करनेवाले अट्ठाईस करोड़ देवता रहते हैं वे देवता ब्रह्माकी आज्ञासे जनलोक से स्वर्गलोक को आकर ॥ ४६ ॥ अपने कामकी समाप्तिपर्यन्त एक मन्वन्तर तक वहां रहतेहैं फिर वहांसे चढ़कर महर्लोक को चलेजाते हैं ब्रह्मा के एक दिनमें चौदह देवता स्वर्गमें आते हैं व क्रमसे अपने कामोंको कर फिर वे महर्लोक में बसते हैं ॥ ४७ । ४८ ॥ महर्लोक से

जनलोक दो करोड़ योजन ऊंचेपर है वहां साध्य नाम के देवता सदा सुखी रहते हैं ॥ ४६ ॥ जनलोक से चार करोड़ योजन ऊंचेपर तपलोकहै वहां ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति लोग रहतेहैं ॥ ५० ॥ तपलोक से सत्यलोक छह करोड़ योजन ऊंचेपरहै वहां देवता और दैत्योंसे युक्त ब्रह्मा रहतेहैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे विष्णुलोक दूना ऊंचाहै ब्रह्मलोक के ऊपर विस्तार से युक्त वह बड़ा दिव्यलोकहै ॥५२ ॥ उसके ऊपर विष्णुलोक के बाद बाईस करोड़ योजनका विस्तारवाला श्रीमान् शिवजीका श्रेष्ठलोकहै ॥ ५३ ॥ जोकि हजारों सूर्योंके समान तेजवालाहै और सब कामनाओंसे संयुक्त है अनेक जिसमें जङ्गल हैं और गङ्गाजीसे शोभायमान होरहा है ॥ ५४ ॥

जनादप्युच्छ्रितन्तपः ॥ प्रजानांपतयस्तत्र स्थितास्तुब्रह्मणःसुताः ॥ ५० ॥ सत्यलोकस्तपोलोकात्कोटिषट्कंस मुच्छ्रितम् ॥ आस्तेपरिवृतस्तत्र देवासुरगणैर्विराट् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणेनसमुच्छ्रितः ॥ विस्तरेणत दूर्ध्वेच दिव्यलोकस्समन्वितः ॥ ५२ ॥ विष्णुलोकाच्चपरतःश्रीमच्छिवपुरम्महत् ॥ द्वाविंशत्कोटिविस्तीर्णं तदूर्ध्वेसमु पस्थितम् ॥ ५३ ॥ सूर्यायुतप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥ अनेकारण्यविन्यासं स्वर्गनद्युपशोभितम् ॥ ५४ ॥ स र्वरत्नान्वितैर्दिव्यैस्तप्तजाम्बूनदप्रभैः ॥ सहस्रखण्डभौमैश्च सर्वशोभासमन्वितैः ॥ ५५ ॥ विमानैःसर्वतोव्याप्तं चन्द्रै रिवनभस्तलम् ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वविद्याधरान्वितम् ॥ ५६ ॥ नृत्यगीतरवोपेतैरप्रमेयगुणान्वितैः ॥ मनोजवै रसंख्यातैः परिवारसमन्वितैः ॥ ५७ ॥ क्वचिद्दोलागृहैरम्यैःकिङ्किणीरवकान्वितैः ॥ उद्धृतैरर्द्धचन्द्रैश्च घण्टाभरणभूषि तैः ॥ ५८ ॥ मणिमुक्तावितानैश्च मणिरत्नचयैःशुभैः ॥ सर्वरत्नार्चितैर्द्रव्यैर्मुक्तादामसुशोभनैः ॥ ५९ ॥ महासिंहासनैर्दि

सब रत्नोंसे युक्त, आगसे निकलेहुये सोनेके समान तेजवाले, हजारों खण्डवाले, सब शोभाओं से युक्त, दिव्य ॥ ५५ ॥ विमानों से सबओर व्याप्तहै मानो चन्द्रमाओंसे आसमान भराहोवे अप्सराओं के गणोंसे भराहुआ और सब विद्याधरोंसे युक्तहै ॥५६ ॥ नाच और गानेकी आवाजोंसे युक्त,बे प्रमाण गुणोंसे भरेहुये,मनके बराबर चलने अर्थात् उड़ानेवाले,अनगिन्ती, सब सामानों से भरेहुये ॥ ५७ ॥ क्षुद्रघण्टिकाओं की आवाजोंसे युक्त, घण्टाआदि साजोंसे सजेहुये, मणि और मोतियोंसे सजी हुई चांदनीवाले, उत्तम मणि और रत्नों के ढेरोंसे भरेहुये, बड़े ऊंचे, आधे चन्द्रमा के आकार बनेहुये और रमणीक झूलावाले मकानों से कहीं २ शोभित होरहा है

सब रत्न व सब द्रव्यों से शोभित, मोतियों की झालरों से सुहावने ॥ ५८ । ५९ ॥ व सब रत्नोंसे सजेहुये और दिव्यरूप बड़े २ सिंहासनों से युक्त होरहा है कहीं अनगिन्नी गुणवाले पवित्र मकानों से व्याप्त है ॥ ६० ॥ कहीं हमेशा फूलने व फलनेवाले मनके रमानेवाले वृक्षोंसे व्याप्त है सैकड़ों व हजारों बडी रमणीक फुलवारियों से युक्त है ॥ ६१ ॥ वहीं नदियों में श्रेष्ठ, सात कल्पतक बहनेवाली, पवित्र नर्मदा भी वर्तमान हैं उनकी एक कलाका हजारहवां हिस्सा जम्बूद्वीप में दीखता है ॥ ६२ ॥ लोकोंपर दया करने की इच्छा से पृथिवीपर उतरी हैं और गंगाआदि नदियों का यहां पूरा अवतार हैं ॥ ६३ ॥ और भी अमृतकी बहानेवाली नदियों से

व्यैः सर्वरत्नविभूषितैः ॥ कचित्पुण्यगृहैर्व्याप्तमसंख्येयगुणान्वितैः ॥ ६० ॥ सदापुष्पफलैर्वृक्षैः कचिद्व्याप्तंमनोरमैः ॥ पुष्पोद्यानैर्महारम्यैः शतशोथसहस्रशः ॥ ६१ ॥ सप्तकल्पवहापुण्या तत्रैवास्तेसरिद्वरा ॥ तत्कलायास्सहस्रांशो जम्बूद्वीपेप्रदृश्यते ॥ ६२ ॥ अवतीर्णामहीपृष्ठे लोकानुग्रहकाम्यया ॥ सर्वात्मनावतारश्च गङ्गादिसरितामिह ॥ ६३ ॥ अमृतस्यन्दिनीभिश्च नदीभिरुपशोभितम् ॥ हेमरत्नाञ्चितावाप्यःसोपानैःस्फाटिकैर्युताः ॥ ६४ ॥ सितरक्तासितैःपीतैस्सरोजैर्यःसुगन्धिभिः ॥ पञ्चवर्णैश्चगुरुभिः शोभिताःकाञ्चनाकुलैः॥६५॥ महाविकाशिसंस्निग्धैः श्रीमद्भिःपञ्चहस्तकैः ॥ दशद्वादशहस्तैश्च तथाविंशतिहस्तकैः ॥६६॥ नालैर्मरकतप्रख्यैर्मनोहरदलान्वितैः ॥ पूर्णानीलोत्पलैश्चान्यैर्दीर्घिकाश्चकचित्कचित् ॥ ६७ ॥ सिंहव्याघ्रमुखैर्दिव्यैर्गजवाजिमृगाननैः ॥ गोमुखैश्छागवदनैः कपिपक्षिमुखैस्तथा ॥ ६८ ॥ एकवक्रैर्महावक्रैर्बहुवक्रैरवक्रकैः ॥ एकपादैस्त्रिपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ ६९ ॥ वामनैर्ज्जटिलैर्मुण्डैर्दीर्घग्रीवैर्महोद

शोभित होरहा है सोने और रत्नोंसे सोहिरहीं व बिल्लौर की सीढ़ियो से युक्त जहां बावलियां विद्यमानहैं ॥ ६४ ॥ जोकि सफेद, लाले, काले,पीले, पँचरंगा और सोनहले सुगन्धिवाले उत्तम कमलों से सोहिरही हैं ॥ ६५ ॥ बड़े प्रकाशवाली, चिकनी, सुहावनी, पांच हाथकी, दश हाथ की, बारह हाथ की, वैसेही बीसहाथकी ॥ ६६ ॥ और पन्नाकी सी चमकवाली डांड़ियों से युक्त, मनकी हरनेवाली पँखुरियोंवाले नीले कमलों से तथा और तरह के भी कमलो से भरीहुई कहीं २ बावलिया विद्यमान हैं ॥ ६७ ॥ सिंह, बाघ, हाथी, घोड़े, हस्रा, गौ, बकरा, वानर और पक्षियों के ऐसे हैं मुहँ जिनके ऐसे शिवजी के गण ॥ ६८ ॥ तथा एक मुहँवाले,

बड़े मुहँके, बहुत मुहँवाले, बेमुहँके, एक पावँवाले, तीनपावँवाले, बहुत पावँवाले और बेपावँके ॥ ६९ ॥ बौना, जटावाले, मुण्डा, लम्बे गलेवाले, बडेपेटवाले, भारी देहवाले, बड़ी नाकवाले,बड़े २ कानवाले और बेकानके ॥ ७० ॥ अनेकतरहकेरूप और आकारोंके धारण करनेवाले अनेक प्रकारके गहने पहरनेवाले,अनेकतरहके दिव्य वेपोंके भरनेवाले, मनमानेरूपकेबनानेवाले, बड़ेबली ॥ ७१ ॥ अनेक प्रकारके प्रभाववाले और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले गणोंसेयुक्तहोरहाहै और भी अनेक तरहकी जातिवाले जीव इसीतरहके वहां रहते हैं ॥ ७२ ॥ और कुबरी,बौनी, लम्बी,अच्छी देहवाली, अच्छे मुहँवाली, मुण्डिनी,डरावनी, ठमकी,छोटी,लम्बी ॥ ७३ ॥ लम्बे

रैः ॥ महाकायैर्महानासैर्महाकर्णैरकर्णकैः ॥ ७० ॥ नानारूपाकृतिधरैर्नानाभरणभूषितैः ॥ नानावेषधरैर्दिव्यैः कामरूपैर्महाबलैः ॥ ७१ ॥ नानाप्रभावसंयुक्तैर्नानाशास्त्रविशारदैः ॥ असंख्याजातयश्चान्यानिवसन्तितथाविधाः ॥ ७२ ॥ कुब्जावामनकादीर्घा वरदेहावराननाः ॥ मुण्डाश्चविकटानीचा ह्रस्वदीर्घाश्चतादृशाः ॥ ७३ ॥ लम्बोदराह्रस्वभुजा विनताह्रस्वजानुकाः ॥ मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवाजिमुखास्तथा ॥ ७४ ॥ ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दरप्रियदर्शनाः ॥ पञ्चाशत्कोटयस्तत्र शिवस्यपरिचारिकाः ॥ ७५ ॥ मणिमाणिक्यगेहेषु रमन्तेतावहिःक्वचित् ॥ तत्रगेहेपुयद्द्वारिसहस्रशतभूमिषु ॥ ७६ ॥ विचित्राभूमयस्तत्रवज्रवैदूर्य्यभूषिताः ॥ इतिसर्वगुणोपेतैः स्त्रीसहस्रैर्वराननैः ॥ ७७ ॥ असंख्यातैःपुरंव्याप्तमीश्वरस्यसमन्ततः ॥ तन्मध्येसर्वतोभद्रं दिव्यमायतनंमहत् ॥ ७८ ॥ शुद्धस्फाटिकसं

पेटवाली, छोटे हाथोंवाली, लचेकरहिांतवाली, छोटी घुटनूवाली, सिंह, हाथी और घोडोंके ऐसे मुहँवाली ॥७४॥ छोटे छल्लेदार बालोंवाली और देखनेमें सुन्दर और प्यारी पचास करोड़ शिवजीकी दासियां वहां विद्यमानहैं ॥ ७५ ॥ वे दासियां मणि व माणिकसे जड़ेहुये मकानोंमें कहीं विहार करतीहैं और कहीं बाहर क्रीड़ा किया करती हैं वहां हजार २ और सौ २ चौकवाले मकानों के दरवाजों के ॥ ७६ ॥ सहनकी जमीनें बड़ी विचित्र हीरा और पन्नाओं से जड़ी हैं इस तरह का महादेव जीका पुर सब गुणोंसे युक्त उत्तम मुहँवाली अनगिन्ती हजारों स्त्रियोसे चारोंतरफ भराहुआ है वहां उस पुरके बीचमें नौकोर बड़ा दिव्य, सफेद बिल्लौर के समान

पार्वतीपति महादेवजी का सनातन मन्दिर है उसीमें गणोंके मालिकोंसे पूजेजारहे पार्वतीजी के सहित भगवान् महादेवजी बैठेहैं॥ ७७।७८।७९॥ और अपने स्थान में विद्यमान सिद्ध, ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओं से भी पूजेजाते हैं उस महादेवजी के मन्दिर में श्रीमान् धर्मभी विद्यमानहैं हे अनघ! ॥ ८० ॥ जहां उनका पति धर्महै वहीं गोमाताभी नित्य रहती है और वहीं देवता और दैत्योंसे पूजी जातीहुई वे नर्मदा देवीभी हैं ॥ ८१ ॥ हे पापरहित! उन्हीं के जलसे गौवें, बछडे और सब देवता तृप्तहोते हैं और वहां ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, पार्वतीसहित शिव ॥ ८२ ॥ देवता, ऋषि, भूत, पितर और मातृगण रहतेहैं यहां वही गोलोक व शिवलोक और नर्मदा-

काशं स्थानमाद्यमुमापतेः ॥ तत्रास्तेभगवान्सोमः पूज्यमानोगणेश्वरैः ॥ ७९ ॥ सिद्धैस्स्वस्थानसंप्राप्तैर्ब्रह्मविष्णवादिभिस्तथा ॥ धर्म्मस्तत्रस्थितःश्रीमानीश्वरायतनेनघ ॥८० ॥ यत्रवीरवृषस्तत्र नित्यंगोमातरस्स्थिताः ॥ तत्रसानर्म्मदादेवी पूज्यमानासुरासुरैः ॥ ८१ ॥ तेनोदकेनतृप्यन्तिगोवत्साःसर्वदेवताः ॥ ब्रह्माविष्णुस्सुरेशान उमयासहितोनघ ॥ ८२ ॥ सुराश्चऋषयोभूताः पितरोमातरस्तथा ॥ सलोकश्शिवलोकोत्र नर्म्मदालोकएवच ॥ ८३ ॥ येगुणारुद्रलोकस्य गोलोकस्यतथैवच ॥ नन्दाभद्रासुभद्राच सुशीलासुरभिस्तथा ॥ ८४ ॥ इतिगोमातरःपञ्च शिवलोकविनिर्गताः ॥ षष्ठीतुनर्म्मदादेवी लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ८५ ॥ एतास्सर्वाजगत्सर्वं सर्वलोकस्यमातरः ॥ तर्पयन्तिमहाराज नित्यमत्रात्मिकैर्गुणैः ॥ ८६ ॥ कारणाच्चशिवस्थानादीश्वरेच्छावशानुगा ॥ ॐकारात्सर्वलोकानामिमंलोकंसमाश्रिताः ॥ ८७ ॥ तृणानिखादन्तिचरन्त्यरण्ये पिबन्तितोयानिसुनिर्मलानि ॥ दुग्धंप्रयच्छन्तिपुनन्तिदेहं गावोयतो

लोकभी है ॥ ८३ ॥ जो गुण शिवलोकमें हैं वेही गोलोक में भी हैं नन्दा, भद्रा, सुभद्रा व सुशीला और सुरभि ॥ ८४ ॥ ये पांच गोमाता शिवलोकहीसे निकली हैं और लोकोंपर दया करनेकी मनसा से छठवीं नर्मदादेवी भी वहीं से निकली हैं ॥ ८५ ॥ ये सब संपूर्ण लोकोंकी माताहैं सो हे महाराज! अपने गुणोंसे यहां सब जगत्को नित्यही तृप्त किया करती हैं ॥ ८६ ॥ शिवजी की इच्छाके अनुसार चलनेवाली सब लोकोंका कारण ॐकाररूप शिवजी के स्थान से इस लोकको आई हैं ॥ ८७ ॥

ये गौवें घासको खाती हैं, जङ्गल में चरती हैं ,अतिनिर्मल पानी पीतीहैं, दूधको देतीहैं और देहको पवित्र करतीहैं इन्हींसे सब जीवलोक जीताहै ॥ ८८ ॥ जिनके मकान आपही छोटे २ बछड़ेवाली गौवोंसे हमेशा सोहते हैं जैसे स्त्रियोंसे सोहते हैं उनके पापकहाहैं ॥ ८९ ॥ जो लोग ॐकार और नर्मदाको शिवरूपसे सदास्मरण किया करते है इस घोरसंसारसमुद्र में उनका फिर जन्म नहीं होताहै ॥९०॥ और जो लोग चारा पानी देनेसे गौवोंकी बड़ी भक्तिकरते हैं वे उनकी प्रसन्नतासे शिवलोकको जातेहैं ॥९१॥ये गोमाता सदा अपनी प्रसन्नतासे सब कामनाओंकी देनेवालीहैं जो इन पवित्र गौवोंकी रक्षा करतेहैं वे शिवलोकको जातेहैं ॥ ९२ ॥ और जो

जीवतिजीवलोकः ॥ ८८ ॥ कुतस्तेषांहिपापानि येषांगृहमलङ्कृतम् ॥ सततंबालवत्साभिर्गोभिस्स्त्रीभिरिवस्वयम् ॥ ८९ ॥ येस्मरन्तिसदोंकारं नर्म्मदाञ्चशिवात्मना ॥ नतेषांपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ ९० ॥ येकुर्वन्तिपरांभक्तिं तृणतोयप्रदानतः ॥ प्रसादात्तुगवांतासां शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ ९१ ॥ एतास्सदानुकूलेन मातरस्सर्वकामदाः ॥ येरक्षन्ति शुभागाश्च शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ ९२ ॥ येर्चयन्तिशिवम्भक्त्या सद्विधानैस्समाहिताः ॥ तेविन्दन्तिमहाभोगान्पुरंया न्तिशिवस्यवै ॥ ९३ ॥ येशिवाश्रयतीर्थानि श्रद्धयायान्तिमानवाः ॥ कल्पगांचविशेषेण शैलञ्चामरकण्टकम् ॥९४॥ तेक्रीडन्तिमहाभोगैर्ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ पयोमृतंघृतंक्षीरं मधुदध्यादिकंतुयत ॥ ९५ ॥ नपश्यतिमहाभाग कल्प गायांविमोहितः ॥ एतत्तेकथितंराजन्रेवावतरणंशुभम् ॥ ९६ ॥ अस्याख्यानेनभगवान् प्रीयतांमेशिवःस्वयम् ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशिवलोकवर्णनोनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥

अच्छे विधानपूर्वक भक्तिसे,सावधान होकर शिवका पूजन करतेहैं वे मनुष्य बड़ेभोगोंको पातेहैं और निश्चयसे शिवजीके पुरको जातेहैं ॥ ९३ ॥ जहां शिवजी विद्यमानहैं ऐसे तीर्थोंको जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जातेहैं और नर्मदा व अमरकण्टकपर्वतको विशेषकरके जातेहैं ॥ ९४ ॥ वे मनुष्य बड़ेभोगोंके साथ ब्रह्मा,विष्णु और शिवके लोकमें विहार करतेहैं जल, अमृत,घी,दूध,मिठाई और दहीआदि जो नर्मदामें वर्तमानहैं ॥९५॥ उनको हे महाभाग! मोहको प्राप्तहोरहा यह मनुष्य नहीं देखसक्ताहै हे राजन्! यह मङ्गलरूप नर्मदाका अवतार तुमसे कहा ॥९६॥ इसके कहनेसे आपही भगवान् शिवजी मुझसे प्रसन्नहोवें॥९७॥ इति स्कन्दपुराणेरेवाखण्डेष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः५८॥

स्कं०पु० ३८३

युधिष्ठिरजी बोले कि हे कल्पग ! हम दानधर्म के विधान को सुना चाहते हैं गरीब भिक्षुक लोग कैसे शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ १ ॥ किस विधिसे और किस दान-से पाप छूटता है सो लोकोंके हितके वास्ते हे महामुने ! आप कहैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! हे निष्पाप ! हम आपसे यथार्थ कहतेहैं सो तुम सुनो कमल, बिल्वपत्र, कुश और नर्मदाका जल ॥ ३ ॥ इनको भगवान् ब्रह्माजी ने साधारण धर्मका कारण कहाहै सब धर्म विश्वासही से पवित्र होतेहैं उन के चितानेवाले पुराण और वेदही हैं ॥ ४ ॥ उन्हीं से सिखलायेहुये धर्म से मनुष्य स्वर्गको जातेहैं जो मनुष्य रुईका छीरके सहित लालकपड़ा व बाघकी खालका

युधिष्ठिरउवाच ॥ दानधर्म्मविधानञ्च श्रोतुमिच्छामिकल्पग ॥ दरिद्राभिक्षवोवापि कथंयान्तिशिवालयम् ॥ १ ॥ विधिनाकेनदानेन मुच्यतेदुष्कृतन्तथा ॥ लोकानाञ्चहितार्थाय कथयस्वमहामुने ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु राजन्यथान्यायं कथयामितवानघ ॥ पुष्करंबिल्वपत्रञ्चकुशास्तोयंचनार्म्मदम् ॥ ३ ॥ स्वयम्भूर्भगवानाह सामान्यंधर्म्मकारणम् ॥ श्रद्धापूताःसर्वधर्म्माः पुराणंश्रुतयस्तथा ॥ ४ ॥ तस्योपदेशधर्म्मेण नरायान्तित्रिविष्टपम् ॥ यस्तूलपूर्णविस्तीर्णंरक्तवस्त्रंससूत्रकम् ॥ ५ ॥ व्याघ्रचर्म्मकृतंवापिनववस्त्रावगुण्ठितम् ॥ कृष्णाजिनोपवीतञ्चपुण्यधूपाधिवासितम् ॥ ६ ॥ शिवध्यानाभियुक्ताय श्रद्धयाविनिवेदयेत् ॥ तत्तूलवस्त्रतन्तूनां रोमसंख्यास्तियावती ॥ ७ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ मोदतेसर्वलोकेषु भुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ ८ ॥ पुनश्चक्षितिमासाद्य सिंहासनपतिर्भवेत् ॥ तृणवल्कलपर्णानि शय्याप्रावरणादिकम् ॥ ९ ॥ दत्त्वातदर्थिनेभूमौशिवलोकेमहीयते ॥ शिवमुद्दिश्यनैवेद्यं यो

बनाहुआ अथवा मृगचर्म व पवित्रधूप से बसायाहुआ व नवीनवस्त्रसे लपेटाहुआ यज्ञोपवीत ॥ ५ । ६ ॥ शिवजी के ध्यान करनेवाले ब्राह्मण को श्रद्धासे देताहै वह उस रुईके कपड़ेके सूतों के जितने रेशाहैं ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षतक शिवलोक में पूजित होताहै औरभी सब लोकोंमें अनेक भोगोंको भोगकर आनन्द करता है ॥ ८ ॥ और फिर पृथिवी में आकर राजा होताहै तिनका, भोजपत्र, पत्ते, पलँग और ओढ़ने के कपड़े आदिको ॥ ९ ॥ पृथिवी में उस २ चीज की चाह करनेवाले

के लिये देकर शिवलोक में पूजित होताहै महादेवजी के नामसे जो शिवभक्तको नैवेद्य देताहै ॥ १० ॥ व जो शाक, जड और फल देताहै उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि चावलआदिकों की जो गिन्ती है अथवा फलों व दलोंकी जो गिन्ती है ॥ ११ ॥ उतने हजार वर्षोंतक शिवलोकमें पूजित होताहै व मनुष्य भक्तिसे शिव के भक्तको व्यञ्जनों के सहित भिक्षा देकर ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! लाखवर्षतक शिवलोक में पूजित होताहै दही और भातसे अत्यन्त भराहुआ सुन्दर भिक्षाका पात्र ॥ १३ ॥ जो शिवभक्त को देताहै उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि करोड़ वर्षतक बड़ेभोगों से युक्त ॥ १४ ॥ दिव्य महादेवजी के पुरमें रहकर पीछे से राजा

दद्याच्छिवदर्शिने ॥ १० ॥ शाकंमूलंफलंवापि तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावत्स्यात्तण्डुलादीनां संख्याफलदलेषुच ॥ ११ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ भिक्षांसव्यञ्जनान्दत्त्वा शिवभक्तायभक्तितः ॥ १२ ॥ वर्षलक्षंमहाभाग शिवलोकेमहीयते ॥ दधिभक्तंसुसम्पूर्णं भिक्षापात्रंसुशोभनम् ॥ १३ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ वर्षकोटिसमन्दिव्यं महाभोगैःसमन्वितम् ॥ १४ ॥ स्थित्वाशिवपुरेदिव्ये तस्यान्तेचमहीपतिः ॥ सुशीतलेनतोयेन शिवभक्तंसितायुजा ॥ १५ ॥ तर्प्पयित्वाशम्भुलोके वर्षलक्षंचमोदते ॥ कलशंशर्करोपेतं वस्त्रपूताम्बुपूरितम् ॥ १६ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं विमानंसर्वकामिकम् ॥ १७ ॥ संप्राप्यशिवलोकेतु वर्षकोटिंसमोदते ॥ पलाशपर्णैःपत्रैर्वा यः कुर्य्यात्पुटकानितु ॥ १८ ॥ प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्ताम्रपात्रप्रदोहिसः ॥ यस्ताम्रपात्रंसुकृतं प्रदद्याच्छिवयोगिने ॥ १९ ॥ कोटिषट्कंसकल्पानां शिवलोकेमहीयते ॥ शूलंवहतियः

होताहै बहुत ठण्ढेपानी से कियेहुये मिश्री के शर्बत से महादेवजी के भक्तको ॥ १५ ॥ तृप्तकर लाख वर्षतक शिवलोक मे आनन्द करता है व शक्करका शर्बत कपड़े से छनाहुआ उससे भरेहुये कलशको ॥ १६ ॥ जो शिवभक्त को देताहै उसके पुण्यफल को सुनो कि निर्मल बिल्लौर के तरह सफेद सब भोगोंसे युक्त विमान को ॥ १७ ॥ पाकर वह करोड वर्षतक शिवलोकमें आनन्द करताहै व जो ढाके व और पत्तोंसे दोने बनाताहै ॥ १८ ॥ और शिवयोगियों को देताहै वह ताबेके पात्रों के देनेके फलको पाताहै व जो अच्छे बनेहुये तांबेके पात्रको शिवयोगी को देता है ॥ १९ ॥ वह छह करोड़ कल्पभर शिवलोक में पूजित होताहै व जो हाथमें

त्रिशूल रखता है और पीठपर सागको रखता है और कमण्डलु भी रखताहै ॥ २० ॥ऐसे शैवको यत्नसे भोजन कराकर शिवलोक को प्राप्तहोताहै अपनी शक्तिसे जो शैवको भोजन कराता है ॥ २१ ॥ वह शिवलोकमें स्थित होकर श्रेष्ठभोगो से विहार करता है व जो बुद्धिमान् मनुष्य शैवधर्म मे स्थित गृहस्थ को भोजन कराता है ॥ २२ ॥ वह बडे २ अनेकभोगों से युक्त शिवलोकमें पूजाजाताहै अथवा शैव आश्रम के जो व्रतहैं उनमें स्थित मनुष्य को कन्दमूल आदिसे जो मनुष्य भोजन कराता है ॥ २३ ॥ वह महादेवजी के पुरमें स्थित होकर दिव्यभोगो को पाताहै इसीतरह महादेवजीके भक्तको भोजन कराकर और प्रणामकर ॥ २४ ॥ अनेकतरह

पाणौ शक्तिंपृष्ठेकमण्डलुम् ॥ २० ॥ तंभोजयित्वायत्नेन शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ भोजयेच्चयथाशक्त्यायःशिवव्र तचारिणम् ॥ २१ ॥ भोगैःसक्रीडतिश्रेष्ठैः शिवलोकेव्यवस्थितः ॥ यःशिवाश्रमधर्म्मञ्च गृहस्थम्भोजयेद्बुधः ॥ २२ ॥ विपुलैःसमहाभोगैः शिवलोकेमहीयते ॥ शिवाश्रमव्रतस्थंयः कन्दाद्यैर्भोजयेन्नरः ॥ २३ ॥ सदिव्यानाप्नुया द्भोगानीश्वरस्यपुरेस्थितः ॥ एवंपाशुपतंभक्तं भोजयित्वाप्रणम्यच ॥ २४ ॥ नानाविधैर्महाभोगैःशिवलोकेमहीयते ॥ महाव्रतधरायैव भिक्षांयःप्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥ सदिव्यैश्शोभनैर्भोगैः शिवलोकेमहीयते ॥ अत्यन्तयमनाचारं शिवभक्तिपरंनरम् ॥ २६ ॥ भोजयित्वायथाशक्त्या शिवलोकेमहीयते ॥ ज्ञानयोगबहिःस्थाये लोकसामान्यधर्मि णः ॥ २७ ॥ पूजयन्तिशिवम्भक्त्या शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ २८ ॥ अनाशिकेनापिकरीषवह्निनापयःप्रदानेनतपोभिरु ग्रैः ॥ प्रयान्तियज्ञैश्चनतांगतिंनरा नीचोपियांयातिहिरुद्रभक्तः ॥ २९ ॥ यथारेवाजलस्पर्शाल्लभन्तेसद्गतिंनराः ॥ नत

के भोगों से शिवलोक मे पूजाजाता है व महाव्रत के करनेवाले को जो भिक्षाही देता है ॥ २५ ॥ वह बहुत अच्छे दिव्यभोगों से युक्त शिवलोक में पूजाजाता है अत्यन्त यम और नियमों के करनेवाले शिवभक्त मनुष्य को ॥ २६ ॥ यथाशक्तिसे भोजन कराकर शिवलोक में पूजाजाता है जो लोग ज्ञानयोग को नहीं जानतेहैं और दुनियावी साधारण धर्मो के करनेवालेहैं ॥ २७ ॥ वे भी भक्तिसे शिव का जो पूजन करते हैं तो शिवलोक को जातेहैं ॥ २८ ॥ अनशनव्रत, कण्डे की अग्निसे जलना, दूधवा दान, कड़ीतपस्या और यज्ञोंकरके भी मनुष्य उस गति को नहीं प्राप्तहोते हैं जिस गतिको नीचभी शिवका भक्त प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

हे भरतर्षभ ! मनुष्य जैसे नर्मदा के जलके स्पर्शसे उत्तमगति को पातेहैं ऐसे यज्ञ और दानआदि उपायों से उस गति को नहीं पातेहैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रसंग से यह शिवलोक, गोलोक और नर्मदाजी का लोक भलीभाति कहागया है जोकि शिवजी के भक्तोंसे युक्तहै ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोग से शान्त होरहे जो मनुष्य परमशिव को जपतेहैं सब दुःखोंसे छुटेहुये वे हमेशा सुखी रहतेहैं ॥ ३२ ॥ पञ्चभूत (पृथिवी,जल, तेज, वायु, आकाश) अहङ्कार, सत्त्वगुण और आठवीं प्रकृति इन आठ परदोंवाला शिवलोक जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ ऐसे हजारों करोड नाग भी जाननेयोग्य हैं माया के सबही अङ्गहैं इससे इधर, उधर, नीचे और ऊपर प्रधानही

थायज्ञदानाद्यैरुपायैर्भरतर्षभ ॥ ३० ॥ इत्येषशिवलोकस्तुप्रसङ्गात्समुदाहृतः ॥ गोलोकःकल्पगालोकः शिवभक्तैस्सम न्वितः ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगेनयेशान्ता जपन्तिपरमंशिवम् ॥ तेसर्वदुःखनिर्मुक्ता भवन्तिसुखिनःसदा ॥ ३२ ॥ शिवलो कश्चविज्ञेयो मण्डलावरणात्मकः ॥ पञ्चभूतान्यहंकारः सत्त्वंप्रकृतिरष्टमी ॥ ३३ ॥ ईदृशानान्तुनागानां कोट्योज्ञेयाः सहस्रशः ॥ सर्वाङ्गत्वात्प्रधानस्य तिर्य्यगूर्ध्वमधःस्थितम् ॥ ३४ ॥ विष्णुलोकात्परंस्थानं कुमारस्यमहात्मनः ॥ स्व च्छमौक्तिकसंकाशं परमाश्रीसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ स्कन्दलोकात्परंस्थानमुमादेव्याःप्रकीर्तितम् ॥ तप्तचामीकरप्र ख्यमशेषगुणसंयुतम् ॥ ३६ ॥ उमास्थानात्परंचैव हरस्थानन्तदुत्तमम् ॥ सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम्॥ ३७ ॥ गणैरध्युषितंसर्वैरसंख्यैर्योगतत्परैः ॥ हिरण्यगर्भकूर्म्माद्यैर्वसुरुद्रदिवाकरैः ॥ ३८ ॥ स्तूयतेभगवान्नित्यं तस्या

विद्यमान है ॥ ३४ ॥ विष्णुलोक से ऊपर निर्मल मोतीके समान, बड़ी शोभासे युक्त, महात्मा स्वामिकार्त्तिकजी का स्थानहै ॥ ३५ ॥ व स्वामिकार्त्तिकजी के लोक के ऊपर पार्वतीदेवी का स्थान कहागयाहै जोकि पिघले सोने के समान रङ्गवाला और सब गुणोंसे युक्तहै ॥ ३६ ॥ और पार्वतीजी के स्थान से परे महादेवजी का उससे उत्तमस्थान है वह करोड सूर्योंके समान तेजवाला और सब कामनाओंसे भराहुआ है ॥ ३७ ॥ जिसमें अनगिन्ती योगाभ्यास के करनेवाले सब गण रहते हैं हिरण्यगर्भ, कूर्मआदि, वसु, रुद्र और आदित्यनाम के देवता ॥ ३८ ॥ महादेवजीके पास रहनेकी इच्छा करनेवाले भगवान् महादेवजी की नित्यही स्तुति किया

करते हैं ज्ञान और ध्यानमें लगेहुये, भिक्षासे भोजन करनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, उन उत्तम कर्मोंके करनेवाले, पाप जिनके जलगये हैं ऐसे शान्त ब्राह्मण लोगोंसे वह दशहजार सूर्योंके समान तेजवाला श्रेष्ठस्थान पानेयोग्यहै ॥ ३९।४० ॥ जिस सत्यस्थान में क्लेशसे रहित,निर्मल मनवाले, महात्मालोग रहते हैं और जो मनुष्य नर्मदा का सेवन करते हैं वे उस पदको पाते हैं ॥ ४१ ॥ हे पार्थ ! जैसा महादेवजी ने कहाथा वैसेही इस वृत्तान्त को मैंने तुमसे कहा नर्मदा के तीर जिस दानको मैंने कहा है ॥ ४२ ॥ उस दानका हजारहवां हिस्साभी और तीर्थ को जो जाते हैं उनके दानसे विशेष है और जो हमारे कहने के अनुसार दान

न्तिप्रतिकाङ्क्षिभिः ॥ ज्ञानध्यानपरैश्शान्तैर्भिक्षाहारैर्जितेन्द्रियैः ॥ ३९ ॥ प्राप्यन्तेश्चपरंस्थानं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ तत्सत्कर्म्मकरैर्नित्यं ब्राह्मणैर्दग्धकल्मषैः ॥ ४० ॥ वसन्तियत्रतंसिद्धाशयास्तक्लेशवर्जिताः ॥ नर्म्मदांसेव्यमानाश्च लभन्तेतत्पदंनराः ॥ ४१ ॥ एतत्तेकथितंपार्थ यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ यन्मयाकथितंदानं नर्म्मदातीरमाश्रितम् ॥ ४२ ॥ गच्छन्तियेन्यत्तीर्थन्तु सहस्रांशोविशिष्यते ॥ सर्वज्ञास्सर्वगाःशुद्धाः परिपूर्णाभवन्तिते ॥ ४३ ॥ शुद्धकर्म्मकरायेतु परमैश्वर्य्यसंयुताः ॥ सदेहाश्चविदेहाश्च भवन्तिस्वेच्छयापुनः ॥ ४४ ॥ इतिनित्यंविशुद्धञ्च स्थानमाद्यमुमापतेः ॥ दिव्यंश्रीकण्ठनाथस्य जगद्भर्तुःसमंस्थितम् ॥ ४५ ॥ स्थानंनवकमित्येवं निर्गतायत्रकल्पगा ॥ परमाष्टगुणैश्वर्य्यंनित्यमक्षयमव्ययम् ॥ ४६ ॥ शश्वद्गुरुप्रणीतेन ध्यानयोगेनयेनराः ॥ ध्यायन्तिदेवतांनित्यन्ते सिद्धायान्तित

आदि करते हैं वे सबके जाननेवाले, सब कहीं जानेवाले, निर्मल और सब मनोरथों से भरेपुरे रहते हैं ॥ ४३ ॥ जो निर्मलकर्मों के करनेवाले हैं वे बडे ऐश्वर्य से संयुक्त होते हैं और अपनी इच्छा से चाहे देहसहित रहें और चाहे देहरहित होजावें ॥ ४४ ॥ पार्वतीपति, जगत् के मालिक, महादेवजीका यह नाशरहित निर्मल सब से पहलेका दिव्य स्थान सदा एकरस बनारहताहै ॥ ४५ ॥ इसप्रकार नव स्थान हैं जहां से नर्मदाजी निकली हैं जहां आठों उत्तम सिद्धियों के ऐश्वर्य, नाशरहित सदा अक्षय बनेरहते है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य गुरुके बतायेहुये ध्यानयोग से देवता का नित्यही ध्यान किया करते हैं वे सिद्धलोग उस पदको प्राप्त

तपदम् ॥ ४७ ॥ येभ्यसन्तिशिवज्ञानं नर्म्मदातीरमाश्रिताः ॥ कामतृष्णाविनिर्मुक्तास्तेपियान्तिचतत्पुरम् ॥ ४८ ॥ अप्ये कदिवसंयावच्छिवध्यानपरायणः ॥ शिवधर्म्मपरस्तस्य धर्म्मस्यान्तोनविद्यते॥ ४९ ॥ योगधर्म्मसुसारत्वादभेद्यंपापमु द्गरैः ॥ वज्रतण्डुलवज्ज्ञेयं तस्मात्तस्यफलंमहत्॥ ५० ॥ देहान्तेनैवधर्म्मेण स्थानमाद्यंशिवालयम् ॥ यत्रास्तेविपुलैर्भो गैः क्रीडन्कल्पायुतंनरः ॥ ५१ ॥ ततःकल्पायुतस्यान्ते स्थानंकौमारमाप्नुयात् ॥ तत्रार्द्धसम्मितंकालंसक्रीडन्ससुखंव सेत् ॥ ५२ ॥ तदन्तेविष्णुलोकञ्च संप्राप्यवसतेपुनः ॥ ब्रह्मलोकंगतश्चान्ते तत्रापिवसतेनरः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मलोकपरिभ्रष्टो वसेच्छिवपुरेसुखम् ॥ तत्तस्माद्ब्रह्मविष्ण्वाद्याँल्लोकान्प्राप्नोत्यनुक्रमात् ॥ ५४ ॥ इत्येवंसर्वलोकेषुरमित्वाक्रमशस्ततः॥ मनुष्यलोकमासाद्य शिवंरेवांसमाश्रयेत् ॥ ५५ ॥ मयातेकथितान्यत्र यानिदानानिभारत ॥ तानिसर्वेप्रशंसन्ति पर्वतेम रकण्टके ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदामाहात्म्येशिवमहिमानुवर्णनोनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः५९॥

होते हैं ॥ ४७ ॥ मनोरथों की तृष्णा से रहित नर्मदा के तटमें बैठकर जो लोग शिवजी के ज्ञानका अभ्यास करते हैं वे भी उस पुरको प्राप्तहोते हैं ॥ ४८ ॥ व जो एक दिनभर भी शिवजी के ध्यान और शिवजी के धर्ममें परायण होवे उसके धर्मका अन्त नहीं है ॥ ४९ ॥ योगधर्म सबका सारहै इसमे वह पापरूपी मुगदरों से तोडा नही जासक्ता है वज्रके चावल के समान उसको जानना चाहिये इससे उसका बडाफल है ॥ ५० ॥ देहके अन्ततक कमायेहुये धर्मसे सनातन महादेवजी का स्थान प्राप्त होताहै जहा बहुत से भोगोंमे दशहजार कल्पोंतक मनुष्य विहार करता हुआ रहताहै ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दशहजार कल्पोंके बाद स्वामिकार्त्तिकजीके स्थान को पाताहै वहां उस कालके आधे कालतक विहार करताहुआ वह सुखसे रहता है ॥ ५२ ॥ उसके पीछे फिर मनुष्य विष्णुलोक को भलीभांति प्राप्तहोकर वहां रहता है और अन्तमे ब्रह्मलोकको प्राप्तहो वहाभी रहता है ॥ ५३ ॥ व ब्रह्मलोक से छुटाहुआ फिर शिवजी के पुरमें सुखसे रहता है इसीतरह उस २ लोकसे ब्रह्मा और विष्णुआदि के लोकोंको क्रमसे प्राप्तहोताहै ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सब लोकोंमें क्रमसे विहारकर तदनन्तर मनुष्यलोकको प्राप्तहोकर फिर शिव व नर्मदा का सेवनकरे ॥ ५५ ॥ हे भारत ! यहां अमरकण्टक पर्वतमें जो दान मैंने तुमसे कहे हैं उनकी सबलोग प्रशंसा करते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेएकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब मुझसे कहेजारहे विष्णुके दानधर्म को समझो सब दुःखोंके नाश करने के वास्ते विष्णुयोग को अभ्यासकर ॥ १ ॥ व घी स्नान और स्तोत्र पाठआदि से विधिपूर्वक विष्णुको भलीभांति पूजकर द्वादशी विषे नर्मदाके तटको प्राप्तहोकर जो विष्णुके नामसे एक दुधारी गौको देवे उसकी पुण्यके फलको तुम सुनो कि धर्मराज से जैसे विष्णु पूजेजाते हैं वैसेही वह भी पूजाजाता है ॥ २ । ३ ॥ चन्दन और फूलोआदि से पूजेहुये, सोनेके गहने और कपड़ो से सजेहुये दश बैलोंके सहित एक हजार गाभिन गौवो से मिलेहुये एकहजार शैव व वैष्णवो को जो भोजन कराताहै और "ॐनमोभगवतेवासुदेवाय" इस मंत्रराज

मार्कण्डेयउवाच ॥ वैष्णवंदानधर्म्मञ्च कथ्यमानंनिबोधमे ॥ विष्णुयोगंसमभ्यस्य सर्वक्लेशापनुत्तये ॥ १ ॥ विष्णुंसम्पूज्यविधिना घृतस्नानादिभिःस्तवैः ॥ द्वादश्यांविष्णुमुद्दिश्य दद्यादेकाम्पयस्विनीम् ॥ २ ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पूज्यतेधर्म्मराजेन यथाविष्णुस्तथैवसः ॥ ३ ॥ शैवानांवैष्णवानाञ्च सहस्रम्भोजयेत्तुयः ॥ गर्भिणीधेनुसंमिश्रं वृषभैर्दशभिर्युतम् ॥ ४ ॥ अर्चितंगन्धपुष्पाद्यैर्हेमवस्त्रैरलंकृतम् ॥ प्रदक्षिणमुपाक्रम्य मन्त्रराजंचभक्तितः ॥ ५ ॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवायेतिसमुच्चरन् ॥ वेदविद्भिःसमाकीर्णं विष्णोराराधनैःशुभैः ॥ ६ ॥ नर्म्मदातोयमासाद्य दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ गावोममाग्रतोनित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ ७ ॥ गावोमेहृदयेवापि गवांमध्येवसाम्यहम् ॥ इमंमन्त्रंसमुत्थाय जपेदासांपुरोगवाम् ॥ ८ ॥ गन्धतोयाक्षतैर्मिश्रैर्गृहीत्वाताम्रभाजनम् ॥ शृङ्गपुच्छजलस्नातःशुक्लवस्त्रसमन्वितः ॥ ९ ॥ नर्म्मदास्नानपानेन गवांपुच्छाम्भसातथा ॥ सर्वकल्मषनिर्मुक्तः सुसिद्धःसुचिरव्रतः ॥१०॥

को उच्चारण करताहुआ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणाकर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों से व्याप्त और पवित्र विष्णुके पूजनों से शोभित ॥ ४ । ५ । ६ ॥ नर्मदा के जलको प्राप्त होकर दियाली जलावे और उन गौवोंके सामने भलीभांति खडाहोकर इस मन्त्रको पढ़े कि "गावोममाग्रतोनित्यंगावःपृष्ठतएवच। गावोमेहृदयेवापिगवांमध्ये वसाम्यहम्" इसका यह अर्थहै कि गौवें सदा मेरे आगे रहें और गौवें मेरे पीछेभी रहें और गौवें मेरे हृदयमें रहें और गौवोंके बीचमें मैं रहूं ॥ ७ । ८ ॥ गौवोंके सींग और पूंछके जलसे स्नान कियेहुये और सफेद कपडों को पहने, मिलेहुये चन्दन, जल और अक्षतों से युक्त ताम्बेके पात्रको लेकर ॥ ९ ॥ नर्मदाके स्नान व उसके

जल पीने से व गौवोंके पूंछके जलसे सब पापोंसे छुटाहुआ बहुत दिनके व्रतका करनेवाला अत्यन्त सिद्ध होरहा वह यजमान ॥ १० ॥ गौवोंको नहलाकर ब्राह्मणों के सहित वहां नर्मदा के किनारेपर जाकर पूर्णमासी बिषे चन्द्रमा के पूरे होनेपर अथवा चन्द्रग्रहण में ॥ ११ ॥ उन्हीं ब्राह्मणों के सहित विष्णुका भलीभांति पूजन कर स्मरणकरे अपने सेवक, पुत्र, स्त्री, भाई और बन्धुओंसे युक्त ॥ १२ ॥ और श्रद्धासे युक्त इस मन्त्रसे गौवोंको कृष्णके वास्ते अर्पणकरे "मन्त्रः—श्राद्धेदानेचहोमे चविवाहेमङ्गलेतथा । गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवायैतामयादत्ताविष्णवेचमहात्मने " इसका यह अर्थहै कि श्राद्ध, दान, होम, विवाह और

स्नापयित्वागतस्तत्र सविप्रोनर्म्मदातटे ॥ पौर्णमास्यांपूर्णचन्द्रे राहुसोमसमागमे ॥ ११ ॥ तैरेवसार्द्धंविप्रेन्द्रैःसंप्रपूज्यहरिंस्मरेत्॥ भृत्यपुत्रकलत्राद्यैर्युक्तःस्वजनबान्धवैः॥ १२ ॥ निवेदयेत्तुकृष्णाय मन्त्रेणश्रद्धयान्वितः ॥ श्राद्धेदानेचहोमेच विवाहेमङ्गलेतथा ॥ १३॥ गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवायैतामयादत्ता विष्णवेच महात्मने ॥ १४ ॥ एवंविप्राययोदद्याद्यज्ञार्थंसमलंकृताः ॥ एवंनिवेद्यपुरुषो गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कुलानित्रिंशदुत्तार्य्य नरकाद्भृत्यबान्धवान् ॥ स्थापयेद्वैष्णवेलोके शिवस्यचमहात्मनः ॥ १६ ॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च विशुद्धःसर्वगःप्रभुः ॥ संसारसागरान्मुक्तो हरितुल्यःप्रजायते ॥ १७ ॥ अनेनैवविधानेन गृहस्थाःप्राप्नुयुर्दिवम् ॥ विनापिज्ञानयोगेन गोसहस्रप्रदानतः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापि शूद्रोवापिचभक्तितः ॥ नर्म्मदाकपिलायोगे यथाविभववि

भी मङ्गलकार्य में गऊमाता हमेशा रहती हैं जोकि मङ्गलरूप विष्णुलोककी रहनेवाली हैं इनको मैंने शिव अथवा महात्मा विष्णुजी के वास्ते दियाहै ॥ १३ । १४ ॥ इस प्रकार सजीहुई गौवोंको यज्ञके वास्ते जो पुरुष ब्राह्मण को देवे तो ऐसे देकर वह हजार गौवोंके दानके फलको पाताहै ॥ १५ ॥ और अपनी तीस पीढ़ियों को तथा सेवक और भाइयोंको नरकसे उद्धारकर विष्णु व महात्मा शिवजीके लोक में स्थापित करताहै ॥ १६ ॥ और आप विष्णुकी तरह सर्वज्ञ, सबसे पूर्ण, निर्मल, सब में व्याप्त, सबका मालिक और संसारसमुद्र से छुटाहुआ होजाता है ॥ १७ ॥ बस इसी विधानसे गृहस्थलोग स्वर्गको प्राप्तहोतेहैं ज्ञानयोग के न होनेपर भी केवल

एकहजार गौवों के देनेही से ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र कोईहो भक्तिसे नर्मदा और कपिलाके संगममें अपने विभव के अनुसार ॥ १९ ॥ यज्ञके करने वाले ब्रह्मतेज से शोभित दरिद्री ब्राह्मण को चन्द्र व सूर्य के ग्रहण अथवा व्यतीपात, संक्रान्ति ॥ २० ॥ षडशीतिमुख, सोमवती अमावस, कार्त्तिकी, युगादितिथि में व हे भारत ! औरही किसी पुण्यवाले दिनमें कहेहुये दानको देवे ॥ २१ ॥ जिससे कि हे नराधिप ! पितरलोग ऐसी गाथाको गाया करतेहैं कि ऐसाभी कोई हमारे कुलमें बड़ा धर्मात्मापुत्र होगा ॥ २२ ॥ जोकि नर्मदा और कपिलाके योगमें अथवा मुक्तिके देनेवाले कोटितीर्थ मे सब सामान से संयुत गौवोंको देकर हमलोगों

स्तरैः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणायदरिद्राय दीक्षितायोपशोभिने ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेतु व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ २० ॥ षडशीति मुखेदद्यादमासोमसमागमे ॥ कार्त्तिक्यांवायुगादौवा पुण्येवाहनिभारत ॥ २१ ॥ यद्दिगायन्तिपितरो गाथामेतान्नरा धिप ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं पुत्रःपरमधार्म्मिकः ॥ २२ ॥ नर्म्मदाकपिलायोगे कोटितीर्थेचमुक्तिदे ॥ नरकादुद्धरेद स्मान्दत्त्वागायस्तुसंयुताः ॥ २३ ॥ दशवर्षसहस्राणिलोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र गोसहस्रप्रदोभव ॥ २४ ॥ देववद्दिविमोदन्ते येनतेपितरस्सदा ॥ कथयामितवाथाहमितिहासंपुरातनम् ॥ २५ ॥ युवनाश्वःपुराराजा च क्रवर्तीमहायशाः ॥ शक्राच्छतगुणंपुण्यं प्रजापालनतत्परः ॥ २६ ॥ अयोध्यानगरीयस्य ब्रह्मलोकसमप्रभा ॥ त स्यांकृतयुगेचादौ सर्वधर्म्मपरायणः ॥ २७ ॥ बृहस्पतिब्रह्मसमं वशिष्ठंस्वपुरोहितम् ॥ अभिवाद्ययथान्यायमुवाचमु

को नरकसे उद्धार करेगा ॥ २३ ॥ इस दानका देनेवाला दशहजार वर्षतक वैष्णवलोकमें विहार करताहै तिससे हे राजेन्द्र ! तुमभी हजारगौवो के देनेवाले हूजिये ॥ २४ ॥ जिस से तुम्हारे पितरलोग देवताओं की तरह स्वर्ग में सदा आनन्द करें अब यहां पर तुमसे पुराने इतिहास को कहते हैं ॥ २५ ॥ अगिले जमाने में बड़े यशवाले चक्रवर्त्ती युवनाश्वराजा होतेहुये उनका पुण्य इन्द्रसे सौगुना था वे राजा अपनी प्रजाके पालनमें तत्पर होतेहुये उन राजाकी अयोध्यापुरी ब्रह्मलोकके समान शोभावाली होतीहुई उसी अयोध्यामें आगे सत्ययुगमें सब धर्मोंके करनेवाले राजा युवनाश्व ॥ २६ । २७ ॥ बृहस्पति व ब्रह्माके समान अपने पुरोहित मुनि-

श्रेष्ठ वशिष्ठजीको यथारीति नमस्कार कर उनसे बोले ॥२८॥ कि किस स्थानमें व किस तीर्थ व देशमें व किस देवालयमें यज्ञ करनाचाहिये तब वशिष्ठआदि सब मुनि लोग यह बोले कि.॥ २९ ॥ पृथिवीमें सब तीर्थोंका स्थान,नैमिषतीर्थ बहुत अच्छाहै वहां करनेसे अश्वमेधयज्ञ करोड़से करोड़गुना अधिक फलवाला होसक्ताहै ॥३०॥ हे राजन्! यह तीर्थ मत्स्यपुराण में मछली के रूप को धरेहुये भगवान् विष्णुजी करके कहागयाहै और हे राजन्! अपने पुत्र मनुजी से सूर्यने भी कहाहै ॥ ३१ ॥ सब पुराणो में मत्स्यपुराण श्रेष्ठ कहागया है अगिले जमाने में वेद नष्ट होगये रहे सो वे मत्स्यरूपसे उद्धार कियेगये ॥ ३२ ॥ जब वेद नहीं रहे थे तब सब ब्राह्मण

निसत्तमम् ॥ २८ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेयज्ञं तीर्थेदेशेसुरालये ॥ वशिष्ठप्रमुखास्सर्वे मुनयश्चेदमब्रुवन् ॥ २९ ॥ पृथिव्यां नैमिषंतीर्थं सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ सफलोहयमेधस्तु कोटिकोटिगुणोत्तरः ॥ ३० ॥ पुराणेकीर्तितंराजन्मत्स्यरूपेणविष्णुना ॥ सूर्य्येणकीर्तितंराजन्मनुपुत्रायचात्मनः ॥ ३१ ॥ सर्वेषान्तुपुराणानां पुराणंमत्स्यकीर्तितम् ॥ वेदाश्चैवपुरा नष्टा मत्स्यरूपेणचोद्धृताः ॥ ३२ ॥ वेदहीनाश्चवर्तन्ते द्विजावैयज्ञकर्म्मसु ॥ एवंविधन्तुतत्तीर्थं युवनाश्वतवोदितम् ॥ ३३ ॥ एवंश्रुत्वाततोवाक्यं वशिष्ठस्यपुरोधसः ॥ आदिदेशततोमात्यान्धर्म्मिष्ठान्सत्यवादिनः ॥ ३४ ॥ यज्ञोपस्करमादाय समागच्छतसत्वरम् ॥ घोषणंक्रियतांराष्ट्रे दण्डहस्तैश्चकिङ्करैः ॥ ३५ ॥ आहूतास्तुततोदेवा नृपतेर्यज्ञकर्म्मणि ॥ ब्रह्माविष्णुःसुरेशश्च स्कन्दोवैश्रवणस्तथा ॥ ३६ ॥ शम्भुश्चैवविशेषेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ धेनूनांदशलक्षाणि हेमरत्नान्वितानिच ॥ ३७ ॥ लक्षमेकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतत्रयम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च हिरण्यञ्चाप्यनन्तकम् ॥ ३८ ॥

वेदों से रहित होगये इससे वे लोग यज्ञकर्म को नहीं करसक्ते थे हे युवनाश्व! ऐसा यह नैमिष तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अपने पुरोहित वशिष्ठ जी के ऐसे वचन को सुनकर तदनन्तर धर्मात्मा व सत्यके बोलनेवाले अपने मन्त्रियों को राजाने आज्ञादी ॥ ३४ ॥ कि यज्ञका सामान लेकर आपलोग जल्दी चलें और देशमें चोबदारों करके पुकार करदीजावे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर राजा के यज्ञकर्म के वास्ते देवता बुलायेगये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, स्वामिकार्त्तिक तथा कुबेर॥ ३६ ॥ और देवताओं व असुरों करके नमस्कार कियेगये महादेवजीभी विशेषकरके बुलायेगये सोने और रत्नोंसे युक्त दशलाख गौवें ॥ ३७ ॥ एक लाख घोडे, तीसहजार

नानाविधानिद्रव्याणि भक्ष्यभोज्यमलंकृतम् ॥ यज्ञद्रव्यश्चयच्चान्यत्तत्सर्वसहितोनृपः ॥ ३९ ॥ नानासहस्रया नैस्तु नानादेशगतैर्नृपैः ॥ नानावाद्यसहस्रैस्तु नानागीतैर्मनोहरैः ॥ ४० ॥ वेदघोषेणमहता दिवंभूमिंविनादयन् ॥ विवेशनैमिषंतीर्थं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ४१ ॥ हरिंसद्यःप्रभुंदृष्ट्वा मुच्यतेयत्रकिल्बिषात् ॥ स्वर्गसोपानमेतत्तु प्रत्यक्षन्देवलोकवत् ॥ ४२ ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यहरिं हरंस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ कीर्तनान्नैमिषस्यास्य नरोदहतितत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ अनेकभाविकंघोरं तूलराशिमिवानलः ॥ दीक्षिताब्राह्मणादेवाः कुतश्चित्तुसमागताः ॥ ४४ ॥ आर्त्तानामयुतंतेभ्यो ददौदेवायचानघ ॥ सहस्रमेकंनृपतिर्भूषणानांचभारत ॥ ४५ ॥ ॐ नमःशंकरायेतिमाधवायेतिचोत्तमः ॥ जलदर्भौसमादाय पात्रेराजाहिरण्मये ॥ ४६ ॥ एवंसङ्कल्प्यराजेन्द्रयज्ञवाटमकारयत ॥ दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञयूपांश्चहेमजान् ॥ ४७ ॥ ततोनिर्वर्तितोयज्ञो वशिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥ मुदितादेवतास्सर्वा दिव्ययानसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ जयशब्दंप्रचक्रुस्ता

हाथी, मणि, माणिक, मोती, बहुतसा सुवर्ण ॥ ३८ ॥ और भी अनेक तरहकी चीजें चबाने और खाने योग्य अन्न व गहना और भी जो कुछ यज्ञके लायक सामानहै उस सबके सहित राजाने ॥ ३९ ॥ अनेकप्रकारके हजारों विमानों से व अनेक देशके राजाओं से युक्त हो अनेक तरहके हजारों बाजों व अनेक प्रकार के मनोहर गीतों से ॥ ४० ॥ व बड़ीभारी वेदकी ध्वनि से आकाश और पृथिवी को भरतेहुये नैमिष तीर्थ में प्रवेश किया जहां महादेवजी देवता हैं ॥ ४१ ॥ जहां प्रभु विष्णुजी को देखकर पापते शीघ्र छूटजाता है यह नैमिपतीर्थ देवलोक की तरह खुलासा स्वर्ग की सीढ़ी के समान है ॥ ४२ ॥ वहां स्नानकर और हरिहर का पूजनकर मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होताहै और इस नैमिषतीर्थ के कहने से उसी क्षण अनेक जन्मों के घोर पापको जलादेता है जैसे आग रुई के समूहको जला देती है ऐसे माहात्म्य-वाले नैमिष में दीक्षा को लियेहुये कहींसे ब्राह्मण और देवता भलीभांति आगये ॥ ४३।४४ ॥ और भी दशहजार दीन मनुष्य आये राजाने उन सबको और देवताओं को हे निष्पाप, भारत ! एक हजार गहने दिये ॥ ४५ ॥ " ॐनमःशङ्कराय, ॐनमो माधवाय " ऐसे कहकर वे उत्तम राजा सोने के पात्रमें जल व कुशों को लेकर ॥ ४६ ॥ और इसी तरह सङ्कल्प कर हे राजेन्द्र ! यज्ञस्थान को बनवाते हुये व दश योजन तक सोने के यज्ञके खम्भे गड़वाये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों

ने यज्ञको कराया उससमय दिव्य सवारियों पर चढेहुये सब देवता लोग आनन्दित होतेहुये ॥ ४८ ॥ और उन्हीं देवताओं ने जयशब्द को किया और कहा कि आप के बराबर दूसरा राजा नहीं है व राजा भी मेरे बराबर कोई और नहीं है ऐसे अहङ्कारवाला होताहुआ ॥ ४९ ॥ जबतक अपने रनिवास व सामान के सहित सवारी पर सवार होकर नैमिषारण्य से राजा निकले तबतक एक वानरको देखा ॥ ५० ॥ इसके बाद वह वानर राजासे बोला कि हे राजन्! खड़ेरहो खड़ेरहो हमारी बातको सुनो कि तुम्हारी इस यज्ञके करने से क्या हुआ इस कर्म में केवल देवताओं को भाग दियागया है ॥ ५१ ॥ तुम अहङ्कार से मूढ़बुद्धिवाले होरहे हो अपने को मैं यज्ञका करनेवालाहूं ऐसा मानरहे हो अगिले जमाने में सत्यधर्म राजाके अमरेश्वर में कियेहुये यज्ञमें ॥ ५२ ॥ मेरे मुहँको छोड़कर और गले के नीचे का

राजानान्योभवत्समः ॥ नान्योममसमःकश्चिदित्यहङ्कारवान्नृपः ॥ ४९ ॥ यावद्यानंसमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ निस्सृतोनैमिषारण्यात्तावत्पश्यतिवानरम् ॥ ५० ॥ तिष्ठतिष्ठेत्युवाचाथ श्रृणुराजन्वचोमम ॥ किन्तेयज्ञविधानेन देवतादानकर्म्मणि ॥ ५१ ॥ अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमितिमन्यसे ॥ पुरामरेश्वरेयज्ञे सत्यधर्म्मस्यभूपतेः ॥ ५२ ॥ वर्जयित्वामुखम्मेभूत्कण्ठाधोहेमवर्णकम् ॥ येगताश्शिशवस्तेषां सर्वाङ्गाश्चहिरण्मयाः ॥ ५३ ॥ कपिलानर्म्मदायोगे यज्ञतोयप्रवाहतः ॥ स्नानावगाहनात्पानाल्लोडनात्कर्दमेतथा ॥ ५४ ॥ गन्धर्वलोकंसम्प्राप्तो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ त्वदीयेलुलितंयज्ञे नैमिषारण्यसम्भवे ॥ ५५ ॥ पङ्केनलिप्तंगात्रम्मे क्षालितंचाम्बुनातथा ॥ नकिञ्चित्फलमासीन्मे तवयज्ञोनिरर्थकः ॥ ५६ ॥ गवांत्वयायुतंदत्तं धनंधान्यंतथाबहु ॥ भूभुजासत्यधर्म्मेण किन्तुतावन्निरर्थकम् ॥ ५७ ॥ दा

सब अङ्ग सोनहला होगया और जो हमारे बचेलोग वहां गये रहे उनके भी सब अङ्ग सोनहले होगये ॥ ५३ ॥ यह हाल हमलोगों का कपिला और नर्मदा के योग में जो यज्ञका जल बहकर मिला उसमें स्नान व मॅझाने व पीने व कीचड़ में लोटने से होता हुआ ॥ ५४ ॥ और वहां के चारोंतरह के जीवसमूह गन्धर्वलोक को भलीभांति प्राप्त होतेहुये और तुम्हारे इस नैमिषारण्य के यज्ञ में मैंने लोट लगाई ॥ ५५ ॥ सो कीचड़से मेरा शरीर भरगया फिर उसको पानी से धोया किंतु मुझे फल कुछ भी न हुआ इससे तुम्हारा यज्ञ वेकाम हुआ ॥ ५६ ॥ इस यज्ञ में सच्चे धर्मवाले पृथ्वीपति आपने दशहजार गौवों को दिया और बहुतसा धन व अन्न

दिया परन्तु यह सब निरर्थक है ॥ ५७॥ दान व तपस्यासे तुमने तीनों लोकों को कमाया है परन्तु तुम यह नहीं जानतेहो कि निश्चयकरके नर्मदाही सब तीर्थों की माता कही गई हैं ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहा जैसा कुछ अमरेश्वर में हुआ अब आपका कल्याण हो मैं जाताहूं आपभी अयोध्या को जाइये ॥ ५९ ॥ और मैं भी सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा को जाऊंगा आपकी यज्ञको सुनकर नैमिषारण्य को आयाथा ॥ ६० ॥ अब मैं निराश जाताहूं मेरा मुहँ सोनेका नहीं हुआ ऐसे वानर के वचनको सुनकर राजा युवनाश्व वानर से वचन बोले कि वानरके रूपसे आप कौनहो सो हमसे सत्य कहो तब वानर बोला कि मैं जाबालि

नेनतपसावापि त्रयोलोकास्समर्जिताः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां मातावैमेकलास्मृता ॥ ५८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथा भूदमरेश्वरे ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि त्वंवायोध्यांप्रतिव्रज ॥ ५९ ॥ अहमेवगमिष्यामि नर्म्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ श्रुत्वात्वदीयंयज्ञंहि नैमिषारण्यमागतः ॥ ६० ॥ निराशोहंगमिष्यामि नाभून्मेकाञ्चनस्मुखम् ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा युवनाश्वोब्रवीद्वचः ॥ ६१ ॥ कस्त्वंवानररूपेण सत्यमेतद्ब्रवीषिमे ॥ वानरउवाच ॥ अहंजाबालिनःपुत्रः कदम्बोना मविश्रुतः ॥ ६२ ॥ तिर्य्यग्योनौप्रविष्टश्च प्राक्तैःकर्म्मभिःस्वकैः ॥ भ्रान्तानिसर्वतीर्थानिवेषेणानेनसुव्रत ॥ ६३ ॥ परित्राणंपरन्नाभूत्सत्यधर्म्मसखोत्तमे ॥ वपुर्हिरण्मयंसर्वं मुखवर्जमभासवत् ॥ ६४ ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा सन्निवृत्यनृपोत्तमः ॥ आराध्यदेवदेवेशं नैमिषेयज्ञपूरुषम् ॥ ६५ ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं प्रणिपत्यप्रसाद्यच ॥ मदीययज्ञेदानेन

का लड़का कदम्ब नाम प्रसिद्ध था ॥ ६१।६२ ॥ सो अपने स्वाभाविक कर्मों से वानरकी योनि को प्राप्त हुआ हे सुव्रत! मैं इसी वानर के रूपसे सब तीर्थोंमें घूमता रहा ॥ ६३ ॥ परन्तु मेरा भला कहीं नहीं भया केवल सत्यधर्म राजाके उत्तम यज्ञमें इतना हुआ कि मेरे मुहँ को छोड़कर और सब देह सोनहली होगई ॥ ६४ ॥ वानर के वचन को सुनकर श्रेष्ठ राजा फिर लौटकर नैमिष मे देवताओं के देवता भगवान् यज्ञपुरुष का आराधन कर ॥ ६५ ॥ प्रणाम और प्रसन्न करके रसीले वचन को बोले कि हे भगवन् ! यह एक जीव वानर के रूपको धरेहुये मेरे यज्ञ में कियेहुये दान व तपस्या व नियमसे अपने कल्याण को चाहताहुआ अपने हाल

को मुझे सुनाया सो जैसे इसका मुहँ सोने का होजावे वैसा आप करें ॥ ६६।६७॥ तब करोड़ों सूर्य्यों के समान तेजवाले नैमिष तीर्थ देव प्रत्यक्ष हो राजायुवनाश्व से वचन बोले ॥ ६८ ॥ कि पृथिवी में नैमिष तीर्थ है और पुष्करतीर्थ आकाशमें है और अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है॥ ६९ ॥ हे तात ! तुमने स्वामिकार्त्तिकजी के कहेहुये पुराणको नहीं सुना है जहां सब नदी व तीर्थों की माता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी विद्यमान हैं ॥ ७० ॥ इनके नाममात्रके कहने से मनुष्य संसार बन्धन से छूटजाता है तिससे विषाद को छोंड़ो तीर्थों में अमरकण्टक मुख्यहै ॥ ७१ ॥ अब सत्यधर्म राजा फिर भी वहां उत्तम यज्ञको करेंगे नर्मदा और

तपसानियमेनच ॥ ६६ ॥ शमिच्छञ्छ्रावयामास एकोवानररूपधृक् ॥ हिरण्मयंमुखंचास्य यथास्यात्त्वन्तथाकुरु ॥ ६७ ॥ उवाचवचनंदेवो युवनाश्वंमहीपतिम् ॥ प्रत्यक्षंनैमिषंतीर्थं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥ ६८ ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातो गिरिश्चामरकण्टकः ॥ ६९ ॥ नचश्रुतंत्वयातात पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ मातासायत्रसरितां तीर्थानांचसरिद्वरा ॥ ७० ॥ नामसंकीर्तनादस्या मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ विषादंत्यज तीर्थानां प्रधानोमरकण्टकः ॥ ७१ ॥ सत्यधर्म्मःपुनस्तत्रकरिष्यतिमखोत्तमम् ॥ रेवाकपिलयोर्योगे मुखंतत्रहिरण्मयम् ॥ ७२ ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तववानरसत्तम ॥ नैमिषंसनमस्कृत्य आदिदेवंहरंहरिम् ॥ ७३ ॥ स्थानंस्वञ्चजगाम मुदापरमयायुतः ॥ नैमिषस्यवचःश्रुत्वा अयोध्याधिपतिस्तथा ॥ ७४ ॥ विवेशनगरींपुण्यां यथाशक्रोमरावतीम् ॥ वानरोपिगतस्तत्र सत्यधर्म्मोयतःस्वयम् ॥ ७५ ॥ प्रणम्यसत्यधर्म्माख्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥ रेवाकपिलयोर्योगे त्व

कपिला के योगमें वहीं तुम्हारा मुहँ सोनेका होजायगा हे वानरसत्तम ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है वह वानर नैमिष व आदिदेव हरिहरके नमस्कारकर ॥ ७२।७३॥ बड़े आनन्द से युक्त अपने स्थान को चलागया इसके बाद वैसेही नैमिष देवके वचन को सुनकर अयोध्याके राजा युवनाश्व भी ॥ ७४ ॥ जैसे इन्द्र अमरावती में प्रवेश करें वैसेही अपनी पुण्यवाली अयोध्यापुरी में प्रवेश करते हुये व वानरभी वहां को चलागया जहां राजा सत्यधर्म विद्यमान थे ॥ ७५ ॥ और सत्य-

धर्मनाम राजाके नमस्कार कर इस वचनको बोला कि नर्मदा और कपिला के योग विषे आपके महायज्ञ में ॥ ७६ ॥ यज्ञान्तस्नान से उत्पन्न हुये कीचड़ मे मेरे लोटने से मेरा शरीर सोनेका होगया अकेला मुहँ ही बाकी रहगया है ॥ ७७ ॥ सो अब आप फिर भी वहां यज्ञ करके मेरा मुहँ सोनेका करदीजिये जिससे फिर भी वानर की योनि से छूटाहुआ गन्धर्वों का राजा होजाऊं ॥ ७८ ॥ उसके कहनेसे जब राजाने वहां यज्ञको किया तब वह श्रेष्ठ वानर सोनहली देहवाला होगया व देवताओंके बाजोंकी आवाज के साथही अनेक आभूषणों से सजा हुआ ॥ ७९ ॥ हंस जिसमें जुतेहुये हैं ऐसे विमान से अप्सराओं के गणों करके हवा कियाजाता हुआ इस तीर्थ के प्रभावसे शङ्करजी के लोकको चलागया ॥ ८० ॥ और भी जो हिंसक जीव वहां थे वे सभी स्नानकर स्वर्गको जातेहुये हे पार्थ ! यह पुराना हाल

दीयेचमहामखे ॥ ७६ ॥ अवभृथस्नानजनिते कर्द्दमेलुठनान्मम ॥ शरीरंकाञ्चनीभूतं मुखमेवावशिष्यते ॥ ७७ ॥ यज्ञमिष्ट्वापुनस्तत्र मुखंमेकाञ्चनंकुरु ॥ गन्धर्वाधिपतिर्भूयोमुक्तोवानरयोनितः ॥ ७८ ॥ हेमीभूतवपुस्तत्र यदावानरसत्तमः ॥ देवदुन्दुभिनादेन नानालङ्कारभूषितः ॥ ७९ ॥ हंसयुक्तेनयानेन वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ जगामशाङ्करंलोकं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ८० ॥ तत्रयेश्वापदास्सर्वे तेपिस्नात्वादिवङ्गताः ॥ एतत्तेकथितंपार्थ यथावृत्तंपुरातनम् ॥ ८१ ॥ श्रवणात्कीर्तनाच्चास्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्मदामाहात्म्येषष्टितमोध्यायः ६० ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वानानाविधान्धर्म्मांस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ नाहंतृप्तिन्तुगच्छामि नर्म्मदाख्यानकीर्तनात् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ गावःपवित्रमतुलं गावःसर्वार्थसाधकाः ॥ तस्माद्धिगोप्रदानेन शिवभक्त्याप्रमुच्यते ॥ २ ॥

जैसा कुछ हुआ सो आपसे कहागया ॥ ८१ ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंका फल पाता है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे नर्मदामाहात्म्येषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! आपके प्रसादसे अनेक तरह के धर्मों को सुनकर इस नर्मदाके आख्यानके कीर्त्तन से हम तृप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि गौवें बड़ी पवित्र वस्तुहैं और गौवें सब अर्थोंकी सिद्धि करनेवालीहैं तिससे गौवोंके देने व महादेवकी भक्तिसे मनुष्य पापसे छूटताहै॥२॥

जिस देशमें महादेवजी की नित्य भक्तिसे युक्त मनुष्य होताहै वह देशही पवित्र होजाता है फिर भाइयों के सहित वह पवित्र होता है इस बातको क्या कहना है ॥ ३ ॥ इस पुराण में छह हजार श्लोक नर्मदा माहात्म्य के कहेगये हैं ज्ञानयोग व धर्मयोगके तत्त्वके जाननेवाले ने इस बातको कहाहै ॥ ४ ॥ धर्म और अधर्मों से जो गतियां होती हैं उनका हाल इस पुराण में कहागया है और तीर्थोंकी कथाके साथ उत्तम नर्मदा की कथा कहीगईहै ॥ ५ ॥ उस कथाके सुनने व कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै वसन और फूलों से युक्त पुराणविद्याको सिंहासन पर स्थापित कर ॥ ६ ॥ और महादेव तथा विष्णुका पूजन कर पुराण को

यस्मिन्देशेभवेन्नित्यं शिवभक्तिसमन्वितः ॥ सोपिदेशोभवेत्पूतः किम्पुनश्चसबान्धवः ॥ ३ ॥ उक्तानिषट्सहस्राणि पुराणेमेकलातटे ॥ इत्याहज्ञानयोगस्य धर्म्मयोगस्यतत्त्ववित ॥ ४ ॥ धर्म्माधर्म्मगतीनाञ्च स्वरूपमुपवर्णितम् ॥ तीर्थाख्यानसमायुक्तं नर्म्मदाख्यानमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कीर्तनाच्छ्रवणात्तस्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ विद्यांसिंहासनेदिव्ये वस्त्रपुष्पाधिवासिताम् ॥ ६ ॥ पूजयित्वाहरंविष्णुंश्रृणुयाद्वाचयेत्तथा ॥ श्रीमत्सिंहासनंवापि क्लृप्तंहैमंसुशोभनम् ॥ ७ ॥ हेमवस्त्रोपरिच्छन्नं नानारत्नविभूषितम् ॥ राजतंताम्रकंकांस्यं ब्रह्मचारिविनिर्मितम् ॥ ८ ॥ तच्चुतारसमुद्भूतं श्रृङ्गवद्रत्नभूषितम् ॥ दिव्यंसिंहासनंवापि पूजांकृत्वाप्रयत्नतः ॥ ९ ॥ गन्धाधिवासितकरः श्रीमदासनसंस्थितः॥ शम्भ्वायतनतीर्थेषु नरेन्द्रभवनेषुच ॥ १० ॥ बोधयेत्परमंधर्म्मं गृहग्रामपुरेषुच ॥ नर्म्मदाकीर्तनाच्छ्रोता शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥ इदंतीर्थमिदंतीर्थं पर्य्यटन्नेतिवैनरः ॥ नर्म्मदैवपरन्तीर्थमित्याहभगवाञ्छिवः ॥ १२ ॥ अस्मि

सुने और वक्तासे बँचावे व सुवर्ण का बनाहुआ अतिशोभन चमकीला सिंहासन हो ॥ ७ ॥ जिसके ऊपरका भाग सोनहले वस्त्रोंसे ढका होवे और अनेक प्रकार के रत्नों से शोभितहो अथवा चांदी व तांबे व कांसेहीका होवे परन्तु ब्रह्मचारीका बनाया हुआ होवे ॥ ८ ॥ अथवा रत्नोंसे विभूषित, पीतलका शिखरवाला सिंहासन होवै उस दिव्य सिंहासनका अतियत्नसे पूजनकर ॥ ९ ॥ चन्दनसे महकीले हाथवाला उत्तम आसनपर बैठाहुआ महादेवके स्थानोंसे युक्त तीर्थोंमें अथवा राजभवनोंमें ॥ १० ॥ व अपने घर व गांव व शहरमें पुराण में कहेहुये परमधर्मको श्रोताओंको समझावे नर्मदा की कथासे श्रोता शिवलोकमें पूजित होता है ॥ ११ ॥ यह तीर्थ है

यह तीर्थहै ऐसेही मनुष्य भ्रमा करता है परन्तु निश्चय करके सबसे श्रेष्ठ तीर्थ नर्मदाही है यह भगवान् महादेवजी ने कहाहै ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! इस तीर्थमें विधि से श्राद्ध करना चाहिये श्राद्ध में जो स्वागत कियाजाता है उससे यमराज प्रसन्न होतेहैं और श्राद्ध में जो आसन दियाजाता है उससे इन्द्र प्रसन्न होतेहैं और पाद्य से पितर प्रसन्न होते हैं और अन्नआदि के देनेसे प्रजापतिजी प्रसन्न होतेहैं व ब्राह्मणों के चरणोदक से जबतक पृथिवी भीगी रहती है ॥ १३ । १४ ॥ तबतक पितरलोग कमलदलों के पात्रों में जल पीते हैं विद्याके पढ़नेवाले को व संन्यासी को व वेदपाठीको व दण्डरहित परमहंसको और वैष्णव भिक्षुकको श्राद्ध का सब

स्तीर्थेनरश्रेष्ठ श्राद्धंकार्य्यंविधानतः ॥ स्वागतेनयमःप्रीतश्चासनेनशतक्रतुः ॥ १३ ॥ पितरःपादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ विप्रपादोदकक्लिन्नायावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ १४ ॥ तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्तिपितरोजलम् ॥ विद्यावतेस्नातकाय भिक्षवेश्रोत्रियायच ॥ १५ ॥ तथापरमहंसाय विष्णुव्रतधरायच ॥ सर्वोपस्करणंदत्त्वा शिवलोकेमहीयते ॥ १६ ॥ अनाहिताग्नियोविप्रमाहिताग्निंकरोतिच ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः स्ववित्तेनैवकारयेत् ॥ १७ ॥ अर्द्धार्द्धंसफलंतस्य यावज्जीवन्नसंशयः ॥ विष्णुलोकेन्तकालेच भोगान्भुङ्क्तेचपुष्कलान् ॥ १८ ॥ स्वद्रव्येणचयोयज्ञं करोति विधिवद्द्विजः ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य ब्रह्मलोकेसमोदते ॥ १९ ॥ धात्रींहिरण्मयींकृत्वा ब्राह्मणायप्रकल्पयेत् ॥ कपिलातीरमाश्रित्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ २० ॥ तिलतण्डुलकर्पूरसुसम्भोज्यविमिश्रितैः ॥ कुङ्कुमैर्वस्त्रधान्यैश्च नि

सामान देकर शिवलोक में पूजाजाताहै ॥ १५ । १६ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्र नहीं करता है उसको जो ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य अपने धन से अग्निहोत्री करता या करवाताहै ॥ १७ ॥ वह उस अग्निहोत्री ब्राह्मणके जिन्दगी भरके फलके आधेका आधा (चतुर्थांश) फलपाता है इसमें कुछ सन्देह नहींहै और अन्तसमय में विष्णुजी के लोकमें पूरे भोगोंको भोगताहै ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण नर्मदाके किनारे जाकर अपने धनसे यज्ञको विधिसे करताहै वह ब्रह्मलोकमें आनन्द करताहै ॥१९॥ सोनेका आंवला बनवाकर जो नर्मदा के किनारे जाकर ब्राह्मणको देताहै वह विष्णुलोक में पूजित होताहै ॥ २० ॥ और जो मनुष्य वस्त्र व धान्योंसे युक्त, तिल व

चावल, कपूर, सुन्दर भोज्य पदार्थों से मिलेहुये कुंकुम से बनाये हुये आंवले को शिवजी के निकटमें व ग्रहणके समय में व अमरकण्टक पर्वत पर व नर्मदा के किनारेपर देताहै वह विष्णुलोक व स्वर्गमें बसताहै इसमें संशय नहींहै॥२१।२२॥ व जो उत्तम पुरुष सोने व रत्नोंके गहनोंसे सजीहुई प्रत्यक्षगौ व घृतधेनु व गुड-धेनु और शर्कराधेनुको नर्मदा और कपिला के योग में देता है वह इन गौवों को देकर सब पापो से छुटाहुआ विष्णुलोक में विहार करता है ॥ २३ । २४ ॥ व हे महाराज ! जो वहां नर्मदा व कपिलाके संगममें अपनी मांगीहुई भिक्षाका अन्न दियाजावे तो उसके पुण्यकी गिन्ती नहीं है किन्तु हे नृप ! जबतक वह संगम रहे

मितंशिवसंधिन्नौ ॥ २१ ॥ पर्वकालेचयोदद्यात्पर्वतेमेकलातटे ॥ वसेत्सविष्णुलोकेषु नरःस्वर्गेनसंशयः ॥ २२ ॥ प्रत्यत्तधेनुंयोदद्याद्धेमरत्नविभूषिताम् ॥ घृतधेनुंगुडधेनुं शर्कराधेनुमेवच ॥ २३ ॥ रेवाकपिलयोर्योगे दत्त्वैतानरसत्तमः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ २४ ॥ यदितत्रमहाराज भिक्षान्नञ्चनिवेदितम् ॥ तस्यसंख्यानविद्येत सयावत्संगमोनृप ॥ २५ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं कथितन्तवसुव्रत ॥ वैवस्वतेन्तरेथान्यच्छृणुत्वंनृपसत्तम ॥ २६ ॥ वीरणस्यतुराजर्षेर्मैत्रेयोभूत्पुरोहितः ॥ तेनचायतनंविष्णोःकारितंनर्म्मदातटे ॥ २७ ॥ पुर्य्याश्चैवामरावत्या दिशियाम्यांव्यवस्थितम् ॥ तदायतनमाहात्म्यान्नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ २८ ॥ मोदतेवैष्णवेलोके युगस्यार्द्धंद्विजोत्तमः ॥ शृणुत्वंयानितीर्थानिरेवायाःपश्चिमोत्तरे ॥ २९ ॥ वनंमेघवनन्नाम यज्ञपर्वतमाश्रितम् ॥ रन्तिदेवःपुरातत्र चक्रवर्तीयुधिष्ठिर ॥ ३० ॥ गविनीतंकुलंयेन सदेवासुरमानुषम् ॥ पितरोमोचितायेन गोभिर्विनिहताःपुरा ॥ ३१ ॥ चाण्डालैश्च

तबतक वह विष्णुलोक में विहार करताहै ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! यह सब यथार्थ आपसे कहागया अब हे नृपसत्तम ! और वृत्तान्त तुम सुनो कि वैवस्वतमन्वन्तरमें॥२६॥ वीरणनामक राजर्षि के मैत्रेय नामके पुरोहित होतेहुये उन्हों ने नर्मदा के तट में ठाकुरद्वारा बनवाया ॥ २७ ॥ वह अमरावती पुरीके दक्षिण दिशा में विद्यमान है उस मन्दिरके माहात्म्यसे और नर्मदाके प्रभावसे ॥ २८ ॥ वे उत्तम ब्राह्मण आधे युगभर विष्णुके लोकमें आनन्द करते रहे अब नर्मदाके पच्छिह और उत्तर में जो तीर्थहैं उनको तुम सुनो ॥ २९ ॥ कि मेघवन नामका वन यज्ञपर्वत पर वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में वहां चक्रवर्ती राजा रन्तिदेव होतेहुये ॥ ३० ॥

जिन्होंने देवता, दैत्य और मनुष्योंके सहित अपने कुलको गोलोकमें प्राप्तकरदिया गौवोंसे पूर्वकालमें मारेगये अपने पितरोंको पापसे छुटादिया ॥ ३१ ॥ जो चाण्डालों से मारेगये थे वे भी परमगतिको प्राप्तहुये चाण्डाल व जल व सांप व बिजली व ब्राह्मण ॥ ३२ ॥ व दांतोंवाले पशुओं से पापियों की मौत होती है वे लोग नारायणबलि से क्रिया करने से व तीर्थों में पिण्डोंके देनेसे परमगतिको प्राप्तहोतेहैं अवन्तीपुरके मालिक दधीचि नामके राजर्षि ॥ ३३ । ३४ ॥ सब धर्मधारियों मे श्रेष्ठ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले होतेहुये अगिले जमाने में देवता और दैत्यों के युद्धमें दैत्यों ने देवताओंको जीतलिया ॥ ३५ ॥ देवता और ब्राह्मणोंके मारनेवाले

हतायेच प्राप्नुवन्तिपराङ्गतिम् ॥ चाण्डालादुदकात्सर्पाद्विद्युतोब्राह्मणादपि ॥ ३२ ॥ दन्तिभ्यश्चपशुभ्यश्च मरणंपाप शालिनाम् ॥ विष्णोर्बलिप्रदानेन क्रियाणांकरणेनच ॥ ३३ ॥ तीर्थपिण्डप्रदानेन तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ दधीचि र्नामराजर्षिरवन्त्यधिपतिस्तथा ॥ ३४ ॥ सर्वधर्म्मभृतांश्रेष्ठश्शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे दैत्यैर्देवाविनिर्जि ताः ॥ ३५ ॥ देवानांब्राह्मणानाञ्च हन्तारोदैत्यकण्टकाः ॥ नष्टाःस्वपापदोषेण सभृत्यकुलबान्धवाः॥ ३६ ॥ देवास्स मुदितास्सर्वे लोकपालास्सवासवाः ॥ निर्विघ्नंपृथिवींकृत्वा लोकञ्चैवचराचरम् ॥ ३७ ॥ विंध्यंगिरिङ्गतास्तेतु यस्मि न्वहतिकल्पगा ॥ समर्थंभूपतिंज्ञात्वा दधीचिंकुरुसत्तम ॥ ३८ ॥ दत्तान्यस्त्राणिरक्षार्थं तस्यराज्ञस्सुरोत्तमैः ॥ वज्रंश क्तिंतथापाशं दण्डंखड्गंध्वजंगदाम् ॥ ३९ ॥ त्रिशूलंचेतिदेवानामायुधानिप्रचक्षते ॥ तानिदत्त्वायथान्यायं नाक पृष्ठंमुदाययुः ॥ ४० ॥ पुराणमतमाज्ञाय दधीचिस्सत्यविक्रमः ॥ शापस्यैवभयाद्भीतो नमस्कृत्यप्रगृह्यच ॥ ४१ ॥

काटे ऐसे वे दैत्यलोग अपनेही पापके दोपसे अपने सेवक और परिवार व भाइयोंके सहित नष्टहोगये ॥ ३६ ॥ तब सब देवता व इन्द्रसहित सब लोकपाल आनन्दित होगये फिर पृथिवी और सब चराचर लोकको बेखटके करके ॥ ३७ ॥ वे सब देवतालोग विन्ध्याचलको चलेगये जहां नर्मदाजी बहती हैं वहां हे कुरुसत्तम ! राजा दधीचिको समर्थ जानकर ॥ ३८ ॥ उनकी रक्षाके वास्ते उत्तम देवताओंने राजाको अस्त्रोंको देदिया वज्र, शक्ति, फॅमरी, दण्ड, तलवार, ध्वजा, गदा ॥३९॥ और त्रिशूल ये ही देवताओ के हथियार कहेजाते हैं इनको रीतिपूर्वक राजा को देकर प्रसन्नतासे देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ४० ॥ पुराने मतको जानकर सच्ची

ताक़तवाले राजा दधीचि देवताओंके शापके भयसे डरेहुये देवताओंके नमस्कार कर और हथियारोंको लेकर ॥ ४१॥ अपने प्रभावसे उन हथियारोंको पानी बनाकर अपने शरीरके भीतर करलिया तदनन्तर फिर और समय के होने पर फिर दानव लोग अपने बल से अहंकार को प्राप्त होतेहुये ॥ ४२ ॥ जम्भ, कुम्भ और हयग्रीव आदि दानवलोग फिर उठतेहुये दानवोंके बलको जानकर इन्द्रसहित सब देवता डरगये ॥ ४३ ॥ समय लगे पर देवता लोग अपने हथियारों की यादकर हे भारत ! नारद को दधीचि के पास भेजतेहुये ॥ ४४ ॥ उन देवताओं के ऋषि नारद जीने उज्जैनीपुरीको प्राप्तहोकर मणि और सोनेकी वेदी बनीहैं जिसमें ऐसे

प्रभावात्तोयतांनीत्वा शरीरान्तर्न्यवेशयत ॥ ततःकालान्तरेप्राप्ते दानवाबलदर्पिताः ॥ ४२ ॥ जम्भकुम्भहयग्रीवप्रमुखाःपुनरुत्थिताः ॥ दानवानांबलंज्ञात्वा त्रस्तादेवास्सवासवाः ॥ ४३ ॥ कार्य्यकालेसमुत्पन्ने संस्मृत्यास्त्रायुधानि च ॥ नारदंप्रेषयामास दधीचिंप्रतिभारत ॥ ४४ ॥ अवन्तींसपुरीम्प्राप्य देवर्षिर्नारदस्तथा ॥ विवेशभवनंराज्ञो मणिकाञ्चनवेदिकम् ॥ ४५ ॥ उत्थितोनृपशार्दूलो मुनिन्दृष्ट्वासुतेजसम् ॥ पूजयित्वायथान्यायं हेमकासनसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ तन्तुदृष्ट्वासुखासीनं राजावचनमब्रवीत् ॥ किमर्थंमानुषेलोके देवलोकात्समागतः ॥ ४७ ॥ नारदउवाच ॥ युद्धंमहत्समुत्पन्नं देवानांदानवैस्सह ॥ समर्पयत्वंशस्त्राणिक्षीयन्तेदानवायथा ॥ ४८ ॥ कुरुकार्य्यञ्चदेवानां सत्यधर्म्मव्रतेस्थितः ॥ दधीचिरुवाच ॥ शृणुकार्य्यञ्चदेवर्षे देवानांहितकाम्यया ॥ ४९ ॥ अचिरेणैवकालेन क्षयंयास्यन्ति

राजाके मकान में प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ दधीचि राजा सुन्दर तेजवाले मुनिको देखकर उठे और सोने के सिंहासन पर बैठेहुये मुनिका यथार्थ रीति से पूजनकर ॥ ४६॥ फिर सुखसे बैठेहुये उन मुनिजीको देखकर राजा वचन बोले कि आप देवलोक से मनुष्यलोकको किस वास्ते भलीभांति आयेहो ॥४७॥ तब नारदजी बोले कि देवताओंका दानवों के साथ बड़ा युद्ध पड़गया है सो अब आप उन हथियारों को दीजिये जिनसे दानवलोग क्षीण होजावें ॥ ४८ ॥ आप सच्चे धर्मके व्रतमें स्थितहो इससे देवताओं के कामको करो तब दधीचि बोले कि हे देवर्षे ! अब देवताओंके हितकी कामनासे जो काम करनाहै उसको तुम सुनो ॥४९॥

थोडेही कालमें सब दानवलोग नष्ट होजायँगे मैंने उन्हीं हथियारों की रक्षाके वास्ते हे महामुने ॥ ५० ॥ उनको पानी करके पीलिया है सो वे मेरी देहके भीतर वर्त्तमान हैं अब इनको देवतालोग उपाय से लेलेवें मैं इनको फिर देवताओं को देदूंगा ॥ ५१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इतना कहकर पूर्वकाल में राजा दधीचि गौओं को बुलातेहुये तब हे विशाम्पते ! गौवोंने दधीचि का मांस आदि सब चाटलिया केवल हड्डियों को छोड़दिया ॥ ५२ ॥ तब लोकपालोंने जैसे तैसे अपने हथियारों को पाया वह स्थान गोनर्द नाम से लोकों में प्रसिद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ फिर देवताओं ने दैत्योंको मारा और फिर संसार भी अपने कामों में प्रवृत्त हुआ तदनन्तर वहां

दानवाः ॥ मयातान्येवशस्त्राणि रक्षणार्थंमहामुने ॥ ५० ॥ आपोभूतानिपीतानि शरीरेसन्तितानिवै ॥ उपायेनहिगृह्णन्ति दास्याम्येतानिवैपुनः ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वाचनृपश्रेष्ठ आजुहावचगाःपुरा ॥ मांसादिभक्षितंगोभिरस्थिवर्जंविशाम्पते ॥ ५२ ॥ अस्त्रग्रामस्ततःप्राप्तो लोकपालैर्यथातथा ॥ गोनर्दनामनगरं तत्तुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ५३ ॥ दानवानिहतादेवैः पुनःसृष्टिःप्रवर्तिता ॥ अचिन्तयत्तदातत्र रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ५४ ॥ गोविद्युत्पशुचाण्डालसर्पैर्विनिहतानराः ॥ देवलोकंनतेयान्ति नतेषामुदकक्रिया ॥ ५५ ॥ शोचयित्वाचिरंकालं सान्तःपुरपरिग्रहः ॥ प्रक्षाल्यनर्मदातोये तदस्थीनिव्यसर्जयत ॥ ५६ ॥ लिङ्गंब्रह्मेश्वरंतत्र यज्ञपर्वतसन्निधौ ॥ धर्म्मसंशयमापन्नो रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ५७ ॥ पप्रच्छमुनिशार्दूलान्वशिष्ठप्रमुखान्द्विजान् ॥ त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य यथान्यायमिदंवचः ॥ ५८ ॥ केदेशाःपर्वताःपुण्या नद्यःकाःकीर्तिताश्शुभाः ॥ नरकस्थान्पितॄन्यत्र तद्दद्युःसमुद्धरेत् ॥ ५९ ॥ अक्षयंचपितृश्राद्धं पितॄणामक्षयाग

राजा रन्तिदेवने विचार किया ॥ ५४ ॥ कि गौ, बिजली, पशु, चाण्डाल और सर्पों से मारे हुये मनुष्य स्वर्ग को नहीं जाते हैं और न उनको जलदान होसक्ता है ॥ ५५ ॥ ऐसे बहुत काल तक अपनी रानियों के सहित राजा रन्तिदेव जी ने विचार कर फिर दधीचि की हड्डियों को धोयकर नर्मदा के जल में विसर्जन कर दिया ॥ ५६ ॥ वहां यज्ञपर्वत के तीर ब्रह्मेश्वर लिङ्ग है अब यहां धर्मकी सन्देह में पड़ेहुये राजा रन्तिदेव ने वशिष्ठ आदि उत्तम ब्रह्मर्षियों से पूँछा उनकी तीन बार प्रदक्षिणाकर नीति के अनुकूल इस वचन को कहा ॥ ५७ ५८ ॥ कि कौन देश व कौन पर्वत व कौन नदियां बहुत पवित्र कही गई है जहां पर नरकोंमें पडेहुये पितरोंको

मनुष्य उद्धार करसके सो आपलोग हम से कहें ॥ ५९ ॥ जहांपर करने से पितरोंका श्राद्ध अक्षयफलवाला होवे और पितरोंकी अक्षयगति भी हो तब ऋषिलोग बोले कि हे भूपते ! हमलोगों के सहित आप मार्कण्डेयमुनि के आश्रमको चलो ॥ ६० ॥ क्योंकि नर्मदाके तट में बैठेहुये ये मार्कण्डेयजी भी सब कुछ जानते हैं मुनियों से ऐसे कहेगये रन्तिदेव भी उनके उसवचनको सुनकर ॥ ६१ ॥ मुनियोंके सहित नर्मदा तटके रहनेवाले मार्कण्डेयजीके पास जातेहुये और ब्राह्मणोंके सहित उनके नमस्कारकर पूजन करतेहुये ॥ ६२ ॥ तब कुशासन पर बैठेहुये मार्कण्डेयजी खड़े होकर वचनबोले मार्कण्डेयजीनेकहा कि नर्मदाजी किन पापी पितरोंको संसारसमुद्र

तिः ॥ ऋषयऊचुः ॥ मार्कण्डेयाश्रमंगच्छ अस्माभिस्सहभूपते ॥ ६० ॥ सोपिसर्वंविजानीयात्कल्पगातीरमाश्रितः ॥ तच्छ्रुत्वारन्तिदेवोपि मुनिभिःपरिभाषितः ॥ ६१ ॥ जगाममुनिभिस्सार्द्धंकल्पगातीरवासिनम् ॥ सराजाब्राह्मणैस्सार्द्धं प्रणिपत्यतथार्चयत् ॥ ६२ ॥ समुत्थायाब्रवीद्वाक्यमुपविष्टःकुशासने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कान्नमोचयतेघोरान्पितॄन्संसारसागरात् ॥ ६३ ॥ शृण्वन्तुममवाक्यानि मुनयोविदितात्मनः ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वार्थात्ममयीशुभा ॥ ६४ ॥ शिवेनैतन्निगदितं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ कुब्जारेवासमायोगे विशेषात्सुरपूजिते ॥ ६५ ॥ तत्रस्नातादिवं यान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ तत्रश्राद्धेनयोगेन पितॄणांपरमागतिः ॥ ६६ ॥ इदन्तेकथितंराजन्कुब्जारेवासमागमे ॥ अर्चयित्वामहेशानं तत्रबिल्वाम्रकाह्वयम् ॥ ६७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ सार्द्धकोटिस्तुकन्या

से नहीं छुटासक्ती हैं ॥ ६३ ॥ यहांके बड़े बडे आत्मज्ञानी मुनिलोग मेरी बातोंको सुनें कि ये नर्मदा सब तीर्थोंका रूपहैं और सब पदार्थ इन्हीं में वर्त्तमानहैं व पवित्र हैं ॥ ६४ ॥ यह स्कन्दपुराणमें महादेवजी ने कहाहै तिसमें देवपूजित कुब्जा और नर्मदा के संगम में विशेष फल होताहै ॥ ६५ ॥ वहां जिन्हों ने स्नान किया है वे स्वर्ग को-जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर पैदा नहीं होसक्ते वहां श्राद्ध के करने से पितरों की परमगति होती है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! यह तुम से कहा गया कुब्जा और नर्मदा के समागम में बिल्वाम्रक नाम के महादेव का पूजनकर ॥ ६७ ॥ सब पापोंसे छुटा हुआ गणों की राज्य को पाताहै वहीं पर डेढ़ करोड़ कन्यायें

परम सिद्धिको प्राप्त हुई हैं ॥ ६८ ॥ हे भारत ! कामदेव के दोष से उन कन्याओंको पूर्वकाल के मुनियों ने शापदिया था और भी कुबेरपुर के रहनेवाले विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर भी उसी दोषसे शापित हुये थे परन्तु वे सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में सिद्धि को प्राप्त हुये ॥ ६९ । ७० ॥ सोमवती अमावस, कार्त्तिकी और ग्रहण आदि पर्वों में काशी, प्रयाग, पुष्कर और नैमिष ॥ ७१ ॥ ये सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में स्नान करने को भलीभाँति आते हैं इसके सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेरन्तिदेवोपाख्यानंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥

नां तत्रसिद्धिंपराङ्गता ॥ ६८ ॥ शप्तास्ताःपूर्वमुनिभिः कामदोषेणभारत ॥ विद्याधराश्चयक्षाश्च गन्धर्वाःकिन्नरास्तथा ॥ ६९ ॥ शप्तास्तेनैवदोषेणकुबेरपुरवासिनः ॥ सर्वेतेसिद्धिमापन्नाःकुब्जारेवासमागमे ॥ ७० ॥ अमासोमसमायोगे कार्त्तिक्यांचैवपर्वणि ॥ वाराणसीप्रयागश्च पुष्करन्नैमिषंतथा ॥ ७१ ॥ एतेस्नातुंसमायान्तिकुब्जारेवासमागमे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ७२ ॥ इति श्रीरेवाखण्डेरन्तिदेवोपाख्यानन्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

रन्तिदेवउवाच ॥ यथाशप्तास्तुताःकन्यास्तासान्नामानिकल्पग ॥ श्रोतुमिच्छामितत्त्वेनकेषुस्थानेषुपूजिताः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ वाराणस्यांविशालाक्षी नैमिषेलिङ्गधारिणी ॥ प्रयागेललितादेवी कामुकागन्धमादने ॥ २ ॥ मानसेकुमुदानाम विश्वयोनिस्तथाम्बरे ॥ गोमन्तेगोमतीनाम मन्दरेकामचारिणी ॥ ३ ॥ मदोत्कटाचैत्ररथे तपन्तीहस्तिनापुरे ॥ कान्यकुब्जेतथागौरी प्रभाकमलपर्वते ॥ ४ ॥ एकाग्रेकीर्तिमत्याख्या विश्वाविश्वेश्वरेतथा ॥ पुष्करेपुरु

राजा रन्तिदेवजी बोले कि हे कल्पग ! जैसे उन कन्याओं को शाप दिया गयाहो और उनके जो जो नामहों उनको हम तत्त्वसे सुना चहते है और वे किन स्थानों में पूजीजाती हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि काशीमें विशालाक्षी और नैमिषमें लिङ्गधारिणी पूजीजाती हैं इसीप्रकार प्रयाग में ललितादेवी, गन्धमादन मे कामुका ॥ २ ॥ मानस में कुमुदानाम उसीप्रकार अम्बरमें विश्वयोनि, गोमन्त में गोमती नाम, मन्दर में कामचारिणी ॥ ३ ॥ चैत्ररथ में मन्दोत्कटा, हस्तिनापुर मे

तपन्ती, कान्यकुब्ज में गौरी, कमलपर्वतपर प्रभा ॥ ४ ॥ एकाम्र में कीर्तिमती नाम, विश्वेश्वर में विश्वा,पुष्करमें पुरुहूता, केदारमें मार्गदायिनी ॥ ५ ॥ हिमालय में नन्दा, गोकर्ण में भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर में भवानी, बिल्वकमें बिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलमें माधवी उसीप्रकार भद्रेश्वर में भद्रा, वाराहपर्वत मे जया, कमलालयमें कमला ॥ ७ ॥ रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालञ्जर मे कोटि, महालिङ्ग में कपिला, माकोट में मुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्राम में महादेवी, शिवलिङ्ग में जलप्रिया, मायापुरी में कुमारी वैसेही सन्तानमें ललिता ॥ ९ ॥ उत्पलनाम स्थानमें सहस्राक्षी, हिरण्याक्षमें महोत्पला, तीर्थों में मङ्गलानाम, पुरुषोत्तम में विमला ॥ १० ॥

हूतेति केदारेमार्गदायिनी ॥ ५ ॥ नन्दाहिमवतःपृष्ठे गोकर्णेभद्रकर्णिका ॥ स्थानेश्वरेभवानीति बिल्वकेबिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलेमाधवीनाम भद्राभद्रेश्वरेतथा ॥ जयावाराहशैलेतु कमलाकमलालये ॥ ७ ॥ रुद्रकोट्यान्तुरुद्राणी कोटिःकालञ्जरेतथा ॥ महालिङ्गेतुकपिला माकोटेमुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्रामेमहादेवी शिवलिङ्गेजलप्रिया ॥ मायापुर्य्यांकुमारीतु सन्तानेललितातथा ॥ ९ ॥ उत्पलाख्येसहस्राक्षी हिरण्याक्षेमहोत्पला ॥ तीर्थायांमङ्गलानाम विमलापुरुषोत्तमे ॥ १० ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाटलापुण्ड्रवर्द्धने ॥ नारायणीसुपार्श्वेच त्रिकूटेभद्रसुन्दरी ॥११॥ विपुलेविपुलानाम कल्याणीप्रलयाचले ॥ कोटीविकोटितीर्थेतु यमुनायांमृगावती ॥ १२ ॥ करवीरेमहालक्ष्मीरुमादेवीविनायके ॥ आरोग्यावैद्यनाथेतु महाकालेमहेश्वरी ॥ १३ ॥ अभयाकृष्णतीर्थेतु अमृताविन्ध्यकन्दरे ॥ माण्डव्येमाण्डुकानाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे ॥ १४ ॥ छागलम्बाप्रचण्डेच चण्डिकामरकण्टके ॥ सोमेश्वरेवराहीतु प्रभासे पुष्करावती ॥ १५ ॥ देवमातासरस्वत्यां पारापारावतेतथा॥ महालयेमहाभागा पयोष्ण्यांपिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ संहि

विपाशा में अमोघाक्षी, पुण्ड्रवर्द्धनमें पाटला, सुपार्श्व में नारायणी, त्रिकूट में भद्रसुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलमें विपुला, प्रलयाचल में कल्याणी, विकोटितीर्थ में कोटी, यमुना में मृगावती ॥ १२ ॥ करवीर में महालक्ष्मी, विनायक में उमादेवी, वैद्यनाथ में आरोग्या, महाकालमें महेश्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णतीर्थ में अभया, विन्ध्यकन्दर में अमृता, माण्डव्यमें माण्डुकानाम, माहेश्वरपुर में स्वाहा ॥ १४ ॥ प्रचण्डमें छागलम्बा, अमरकण्टकमें चण्डिका, सोमेश्वरमें वराही, प्रभासमें पुष्करावती ॥१५॥

सरस्वती में देवमाता, वैसेही पागवत में पारा, महालय में महाभागा. पयोष्णी में पिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ कृतशौच में संहिता, कार्त्तिकेय में शाङ्करी, उत्पलावर्षमें लोला, शोणसङ्गम में सुभद्रा ॥ १७ ॥ मालासिद्धतल में लक्ष्मी, भारताश्रम में अनन्ता, जालन्धर में सिद्धमुखी, किष्किन्धापुरी के पर्वतपर तारा ॥ १८ ॥ देवदारुवन में पुष्टि, कश्मीरमण्डल में मेधा, हिमालय-में भीमादेवी, वस्त्रेश्वर में तुष्टि ॥ १९ ॥ कपालमोचन में सिद्धि, कायावरोहण में माता, शङ्खोद्धारमें धृति नाम, पिण्डारकमें ध्वनि ॥ २० ॥ चन्द्रभागा में कला, अच्छोदमें शिवधारिणी, वैजयन्ती में अमृता, वदरी में ओषधी ॥ २१ ॥ उत्तरकुरुमें भी ओषधी ही है, कुशद्वीपमें कुशोदका, हिमकूटमें मन्मथा, प्रमतमें सत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थ में वन्दिनी, वैश्रवण में निधि, वेदों के मुखमें गायत्री, महादेव जी के समीप पार्वती ॥ २३ ॥ उसीप्रकार देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माजी के मुखमें सरस्वती, सूर्यबिम्ब में प्रभा, मातृका और वैष्णवी ॥ २४ ॥ सती स्त्रियोंमें अरुन्धती, अप्सराओंमें तिलोत्तमा और सब देहवाले जीवों में ब्रह्मकला नामकी चिति शक्ति रहती है ॥ २५ ॥ ये संक्षेपसे उत्तम एकसौ आठ नाम कहेगये कहीहुई एकसौ आठ तीर्थोंकी शक्तियों

ताकृतशौचेतु कार्त्तिकेयेतुशाङ्करी ॥ उत्पलावर्षकेलोला सुभद्राशोणसङ्गमे ॥ १७ ॥ मालासिद्धतलेलक्ष्मीरनन्ताभारताश्रमे ॥ जालन्धरेसिद्धमुखी ताराकिष्किन्धपर्वते ॥ १८ ॥ देवदारुवनेपुष्टिर्मेधाकश्मीरमण्डले ॥ भीमादेवीहिमाद्रौतु तुष्टिर्वस्त्रेश्वरेतथा ॥ १९ ॥ कपालमोचनेसिद्धिर्माताकायावरोहणे ॥ शङ्खोद्धारेधृतिर्नाम ध्वनिःपिण्डारकेतथा ॥ २० ॥ कलातुचन्द्रभागायामच्छोदेशिवधारिणी ॥ वैजयन्त्यमृतानाम वदर्य्यामोषधीतथा ॥ २१ ॥ ओषधीचोत्तरकुरौ कुशद्वीपेकुशोदका ॥ मन्मथाहिमकूटेतु प्रमतेसत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थेवन्दिनीनाम निधिर्वैश्रवणेतथा ॥ गायत्रीवेदवदने पार्वतीशिवसन्निधौ ॥ २३ ॥ देवलोकेतथेन्द्राणी ब्रह्मास्येसरस्वती ॥ सूर्य्यबिम्बेप्रभानाम मातृकावैष्णवीतथा ॥ २४ ॥ अरुन्धतीसतीनांच अप्सरस्सुतिलोत्तमा ॥ चितिर्ब्रह्मकलानाम शक्तिस्सर्वशरीरिणाम् ॥ २५ ॥ एतदुद्देशतःप्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ अष्टोत्तरन्तुतीर्थानां शतमेकंह्युदाहृतम् ॥ २६ ॥ यःपठेत्प्रातरु

का ॥ २६ ॥ जो प्रातःकाल उठकर पाठ करताहै वह परमगति को प्राप्त होताहै इन तीर्थोंमें स्नानकर जो मनुष्य इन शक्तियोंको दर्शन करते हैं ॥ २७ ॥ सब पापों से छूटेहुये वे परमगतिको प्राप्त होते हैं और जो कोई मनुष्य इन देवीजीके स्थानोंमें अपने शरीर को छोड़ताहै ॥२८॥ वह ब्रह्मलोक को नांघकर महादेवजी के स्थान को जाताहै तीज व अष्टमी को महादेवजीके समीप जो मनुष्य इन एकसौ आठ नामों को सुनाता है वह मनुष्य बहुत पुत्रोंवाला होताहै गोदानके समय मे, श्राद्ध के समय में, विवाह व मङ्गलकार्य में ॥ २९ । ३० ॥ और देवताओं के पूजनविधान में इसका पढ़नेवाला ब्रह्महोता है इस बड़ी महिमावाले स्तोत्र को सुनकर

तथायसयातिपरमाङ्गतिम् ॥ एषुतीर्थेषुयेस्नात्वा एताःपश्यन्तिमानवः ॥ २७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ यःकरोतितनुत्यागमुमास्थानेषुमानवः ॥ २८ ॥ सभित्त्वाब्रह्मसदनं पदमाप्नोतिशाङ्करम् ॥ नामाष्टकशतंयस्तुश्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥ २९ ॥ तृतीयायान्तथाष्टम्यां बहुपुत्रोभवेन्नरः ॥ गोदानेश्राद्धकालेच विवाहेमङ्गलेतथा ॥ ३० ॥ देवार्चनविधौवापि पठन्ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ श्रुत्वैतत्स्तोत्रमतुलं नमस्कृत्यचपर्वतम् ॥ ३१ ॥ राजास्वपितृमोक्षाय यज्ञार्थंप्राहकल्पगम् ॥ कस्मिंस्तीर्थेभवेद्यज्ञः पितॄणांमोक्षदायकः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मातृस्तुतिर्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ रेवातटेमहापुण्ये पितॄणांमोक्षणम्प्रति ॥ कुरुयज्ञंमहाभाग मुच्यन्तेपितरोयथा ॥ १ ॥ इति श्रुत्वामहाराज नमस्कृत्यचकल्पगाम् ॥ वशिष्ठप्रमुखैस्सार्द्धं जगामस्वपुरन्नृपः ॥ २ ॥ सवत्सानाञ्चलक्षैकमप्रसूता

और पर्वत के नमस्कारकर राजारन्तिदेव अपने पितरों के मोक्षके वास्ते यज्ञ के लिये मार्कण्डेयजी से बोले कि पितरों को मोक्ष देनेवाला यज्ञ किस तीर्थ में होना चाहिये ॥ ३१ । ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमातृस्तुतिर्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! अतिपवित्र नर्मदातट में पितरोंको नरकसे छुटाने के लिये आप यज्ञ करो जिससे तुम्हारे पितर पापसे छूटजावें ॥ १ ॥ हे महाराज ! इतनी बात को सुनकर और नर्मदा के नमस्कार कर वशिष्ठ आदि ऋषियों के सहित राजा रन्तिदेव अपने शहर को आतेहुये ॥ २ ॥ और वहां आकर

बछड़ोंवाली एकलाख गौवें और दशहजार बेबियानी गौवें, बीसहजार श्यामकर्ण घोड़े, मणि, माणिक और मोती आदि से सजेहुये उच्चैःश्रवा घोड़ेकीसी शोभा- वाले और भी दशहजार घोड़े व घण्टाआदि आभूषणों से सोहतेहुये दशहजार हाथी ॥ ३।४ ॥ और मणि, माणिक आदि रत्नों की तो गिन्तीही नहीं करीजासक्ती है इतना सामान लेकर अनेक देशों के राजाओं व पूरे वेदोंके पढ़नेवाले ब्राह्मणों के सहित ॥ ५ ॥ बीन, सितार और वेदों की ध्वनियों से चारों तरफ़ सब दिशाओं को गुञ्जारते हुये व पृथ्वी और आसमान को आवाज से छूतेहुये ॥ ६ ॥ बड़े आनन्द व यज्ञ के सामान से युक्त राजारन्तिदेव नर्मदा के तीर आतेहुये ॥ ७ ॥

युतन्तथा ॥ विंशतिःश्यामकर्णानांहयानाञ्चदशायुतम् ॥ ३ ॥ मणिमाणिक्यमुक्तादिभूषितोच्चैःश्रवास्त्विषाम् ॥ अयु तञ्चकरीन्द्राणां घण्टाभरणशोभिनाम् ॥ ४ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानां संख्यांकर्तुन्नशक्यते ॥ नानादेशनृपैस्सार्द्धं ब्रा ह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥ वेणुवीणानिनादेन ब्रह्मघोषरवेणच ॥ आपूरयन्दिशस्सर्वा दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ६ ॥ हर्षेण महतायुक्तो यज्ञसम्भारसंभृतः ॥ रन्तिदेवोमहीपालः कल्पगातीरमाश्रितः ॥ ७ ॥ अनेकभक्ष्यभोज्यानां तत्रसंख्यान विद्यते ॥ अष्टयोजनपर्य्यन्तं यज्ञयूपाश्चमण्डपाः ॥ ८ ॥ हेमरत्नमयास्स्तम्भा मणिमौक्तिकभूषिताः ॥ हिरण्मयानि कुण्डानिवेदिकाश्चसहस्रशः ॥ ९ ॥ स्रुवश्चयज्ञपात्राणिसर्वंस्वर्णमयन्तथा ॥ समाहूतास्ततोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ १० ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ सिद्धाविद्याधरायक्षास्सुरासुरमहोरगाः॥ ११ ॥ देवराजश्चदेवाश्च बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ततोयज्ञस्समारब्धो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ १२ ॥ होमेनतर्पितादेवाः सर्वलोकनिवासिनः ॥ नि

वहां खाने व चबाने की चीजों की गिन्ती नहीं थी आठ योजन तक यज्ञों के खम्भे व मण्डप बने थे ॥ ८ ॥ मणि और मोतियों से सजेहुये रत्नों से जड़े सोने के खम्भे बनायेगये और सोने के कुण्ड व वेदी हजारों बनाई गईं ॥ ९ ॥ स्रुवा आदि यज्ञ के पात्र सब सोनेही के बने थे तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि देवता बुलायेगये ॥ १० ॥ ग्रहों के सहित चन्द्रमा व सूर्य, नक्षत्रोंके सहित ध्रुवमण्डल, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, देवता, दैत्य, उत्तम नाग ॥ ११ ॥ इन्द्र, बृ- हस्पति आदि और भी सब देवता बुलाये गये तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मणों ने यज्ञ का प्रारम्भ किया ॥१२॥ होम से सब लोकोंके रहनेवाले देवताओं को तृप्त किया

धूंमश्चज्वलद्वह्निस्सप्तजिह्वासमन्वितः ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च स्वयंयज्ञेनराधिप ॥ ततोनिर्वर्तितोयज्ञो ब्राह्मणै रात्तदक्षिणैः ॥ १४ ॥ घोषणाश्राविताराष्ट्रे प्रतीहारैस्सहस्रशः ॥ योयंकामयतेकामं सोऽत्रतन्त्वेत्यसंशयः ॥ १५ ॥ आहूताःपूर्वजास्तत्रमातृकाःपैतृकास्तथा ॥ अपमृत्युवशंप्राप्तास्तिर्य्यग्योनिगताश्चये ॥ १६ ॥ तेसर्वेशुभयोनित्व मापन्नायज्ञयोगतः ॥ अर्चितानर्म्मदादेवी प्रत्यक्षारूपधारिणी ॥ १७ ॥ अर्चितोभगवांस्तत्र पार्वत्यासहितोहरः ॥ श्रीपतिश्चश्रियासार्द्धं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १८ ॥ शक्रादयस्तथादेवास्सपत्नीकाअलंकृताः ॥ गाश्चाश्वांश्चकरीन्द्रांश्च ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १९ ॥ यच्चान्यद्विद्यतेकिञ्चिद्धनंधान्यंपयोदधि ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि सर्वंतेभ्योन्यवेदयत् ॥ २० ॥ युगपत्पूजितादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अर्चितानर्मदादेवी शैलमूलेव्यवस्थिता ॥ २१ ॥ प्रवाहोनिर्गतोयत्र कुब्जारेवासमागमे ॥ पितरस्तर्पितादेवाः प्राप्ताश्चपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ दिव्ययानसमारूढो दधीचिश्चनृपो

और अपनी सातों जीभों से युक्त विना धुआंके अग्नि जलते हुये ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! यज्ञ में अग्निदेव आपही प्रत्यक्षरूप से वर्त्तमान रहे तदनन्तर दक्षिणा को पायेहुये ब्राह्मणोंने यज्ञ को समाप्त किया ॥ १४ ॥ हजारों चोबदारों ने देशमें डुगडुगी पिटवादी कि जो जिस बातकी इच्छा करता हो वह उसको यहां पावेगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और वहां माता व पिताके कुलवाले पुरिखा बुलायेगये जो लोग अकाल मौचसे मरे व पशुओंकी योनि में पड़ेथे ॥ १६ ॥ वे सब यज्ञ के प्रभाव से उत्तम योनियोंको पातेहुये और खुलासा रूप को धरेहुये नर्मदा देवी वहां पूजीगई ॥ १७ ॥ और वहां पार्वतीजी के सहित भगवान् महादेवजी का भी पूजन किया गया और लक्ष्मीजीके सहित शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले विष्णु भी पूजेगये ॥ १८ ॥ वैसेही इन्द्र आदि देवता अपनी स्त्रियों के सहित गहने व कपड़ों से शोभित कियेगये गौवें, घोड़े और हाथियों को राजा ने ब्राह्मणों को दिया ॥ १९ ॥ और भी जो कुछ वहां धन, अन्न, दूध व दही व अग्निसे साफ कियेहुये कपड़े रहगये वह सब पदार्थ उन ब्राह्मणों कोही देदिया गया ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि सब देवता एक साथही पूजेगये और पर्वत की जड़पर विराजमान नर्मदा देवी भी पूजीगई ॥ २१ ॥ जहां कुब्जा और नर्मदा के संगम में धारा निकली थी उसमें पितर और देवताओं का तर्पण कियागया इसी से वे सब

परमगति को पातेहुये ॥ २२ ॥ और अपने आगेवाले एकसौ आठ व पीछेवाले एक सौ आठ पुरुषों से युक्त महाराज दधीचि दिव्य सवारी पर सवार होतेहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! देवताओं की सवारियां जिस रास्तेसे जाती हैं उसी रास्ते में विद्यमान जो सैकड़ों ब्रह्मा आदि देवताये वे सब राजा रन्तिदेवसे बोलते हुये ॥ २४ ॥ कि हे भूमिप ! आपका कल्याण हो हम सबलोग आपके इस सच्चे कर्म से बहुत प्रसन्न हैं अब जो चाहो सो वर आप मांगलो आप अपने पितरों व माताओं के सहितपरमलोक को प्राप्तहुये हो ॥ २५ ॥ तब राजा रन्तिदेव बोले कि जो आपलोग मुझको वरदेनेवाले हो तो जहां सम्पूर्ण वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणों ने कलश को स्थापन किया है ॥ २६ ॥ जो कि चारों वेदों के धारण करनेवाले और भक्त हैं उसी स्थानमें पांचों वेद जिसके शरीरहीमें वर्त्तमान हैं ऐसा शिवजी

त्तमः ॥ शतमष्टोत्तरंपूर्वं पश्चिमंतदनन्तरम् ॥ २३ ॥ देवयानपथेसन्तः शतशोथनृपोत्तम ॥ ऊचुश्चदेवास्तेसर्वे ब्रह्मा धारन्तिदेवकम् ॥ २४ ॥ वृणीष्वभद्रन्तेप्रीतास्सत्येनानेनभूमिप ॥ प्राप्तोसिपरमंलोकं पितृभिर्मातृभिस्सह ॥ २५ ॥ रन्तिदेवोब्रवीद्वाक्यं यूयम्मेवरदायदि ॥ कलशःस्थापितोयत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २६ ॥ चतुर्वेदधरैर्भक्तैः पञ्चब्रह्मत नुस्स्वयम् ॥ शिवलिङ्गंभवेत्तत्र ज्वालामालासमप्रभम् ॥ २७ ॥ यज्ञपर्वतमासाद्य प्रवाहोयज्ञनिर्गतः ॥ स्नानेविनिर्गताकुब्जा चरुकेचरुकातथा ॥ २८ ॥ चर्मिलाचाङ्घ्रिमूलेतु शिल्पेशिल्पाविनिर्गता ॥ धनदोदेवताश्चान्यास्सम्पूज्यप्र णिपत्यच ॥ २९ ॥ कल्पगाञ्चनमस्कृत्य कामिकंयानमाश्रिताः ॥ स्तोत्रंचक्रेमहाभाग लिङ्गरूपस्यशूलिनः ॥ ३० ॥ लोकनाथोजगत्स्रष्टा प्रणिपत्ययथाविधि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्तिरुद्रसमोदेवो नास्तिरुद्रसमोगुरुः ॥ ३१ ॥ नित्यदासल

का लिङ्ग लपटके समान तेजवाला प्रकट होजावे ॥ २७ ॥ अगिले जमाने में जो यज्ञ पर्वतके तीर यज्ञहुआ था वहां से प्रवाह अर्थात् एक धारा निकली और जो यज्ञ के अन्त में स्नान कियागया उस से कुब्जा निकली यज्ञमें जो चरु होताहै उससे चरुका निकली ॥ २८ ॥ पर्वत की जड़में चर्मिला निकली और पर्वत से जहां कुछ खोदखाद हुई वहां से शिल्पा निकली ये पांचों धारायें नर्मदा में मिली हैं अब कुबेर व और सब देवतालोग महादेवजी का पूजन व प्रणामकर ॥ २९ ॥ और नर्मदा के नमस्कार कर मनमानी सवारी पर सवार होतेहुये तदनन्तर हे महाभाग ! लोकों के मालिक व जगत् के बनानेवाले ब्रह्माजी लिङ्गरूप महादेवजी

को विधि से प्रणामकर स्तुति करते हुये ब्रह्माजी बोले कि रुद्र के बराबर कोई देवता नहीं है और न रुद्र के बराबर कोई गुरु है ॥ ३० । ३१ ॥ हमेशा निर्मल शरीर जिनका रहता है और अपनेही प्रकाश से निर्मल जिनकी मूर्त्ति है और मङ्गल के देनेवाली भस्मही जिनका चन्दन है ऐसे देवताओं के मालिक आप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ काले गलेवाले, सबका रूप, अनेकमूर्त्तिवाले, बहुतरूपवाले, शोभावाले, सब से पुराने देव जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सब से बडे परमेश्वर, सबके जाननेवाले आपके लिये नमस्कारहै व सब जिनकी देह के नमस्कार करते हैं और आप किसी के नमस्कार नहीं करते ॥ ३४ ॥ और पूजा करनेलायकों को भी पूजाकरने लायक, तीननेत्रवाले और त्रिशूल के धारण करनेवाले, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु करके जानने योग्य, संसार की उत्पत्ति व रक्षा के

कायायस्वप्रभामलमूर्तये ॥ शिवभस्माङ्गरागाय देवेशायनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ नीलकण्ठायदेवाय सर्वायामितमूर्तये ॥ बहुरूपायकान्ताय शाश्वतायनमोस्तुते ॥ ३३ ॥ परायपरमेशाय सर्वज्ञायनमोस्तुते ॥ सर्वप्रणतदेहाय स्वयमप्रणतायच ॥ ३४ ॥ पूज्यानामपिपूज्याय नमस्त्र्यक्षायशूलिने ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुवेद्याय उत्पत्तिस्थितिहेतवे ॥ ३५ ॥ देवस्तुतनमस्तेस्तुभुक्तिमुक्तिप्रदायच ॥ वामायवामरूपाय वामोमारोपभासिने ॥ ३६ ॥ वामकान्तार्द्धदेहाय ईशानायनमोस्तुते ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवो ब्रह्मणस्सोमितद्युतिः ॥ ३७ ॥ वृणीष्ववाञ्छितंयज्ञे वरमित्याहशङ्करः ॥ ददामिते नसन्देहो यस्त्वयावरईप्सितः ॥ ३८ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा शङ्करंसर्वगंप्रभुम् ॥ पञ्चवक्त्रंपञ्चलिङ्गं ब्रह्मपूज्यंप्रकीर्तितम् ॥ ३९ ॥ बिल्वानिवेदितायस्मिन्नाम्नाश्चविनिवेदिताः ॥ बिल्वाम्रकन्नामलिङ्गंसंसारार्णवतारणम् ॥ ४० ॥ प्रसिद्धिपर

कारण आपके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ व हे देवस्तुत ! मुक्ति और मुक्तिके देनेवाले आपके लिये नमस्कार है उत्तमस्वभाववाले, सुन्दररूपवाले, बायें तरफपार्वतीजी के धारण करने से प्रकाशवाले ॥ ३६ ॥ बायें तरफ स्त्रीवाली है आधी देह जिनकी, ऐसे ईश्वर जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है इसतरह बडे तेजवाले महादेवजी ब्रह्माजी के इस स्तोत्र को सुनकर ॥ ३७ ॥ शङ्कर जीने यह कहा कि इस यज्ञमें जो तुम्हारे मनमें हो वह वर मागो जो वर तुम चाहते हो वह हम तुम को देंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ तब सबमें व्यापिरहे, सबके मालिक, शङ्करजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि पांचमुहँवाला पञ्चलिङ्ग ब्रह्मा के पूजने

योग्य कहागया है ॥ ३९ ॥ और उसपर बेल व आंब चढ़ायेगये हैं इससे संसारसमुद्र का तारनेवाला वह लिङ्ग आपके प्रसाद से बिल्वाम्रक नाम से पूरा प्रसिद्ध होवे हे भगवन् ! जहां छोटी नर्मदा है और जहां यह उत्तम बिल्वाम्रक लिङ्ग है॥ ४० । ४१ ॥ हे नरव्याघ्र ! वहां स्नानकर शिवलोक को पावे संसार के भलेकरने वाले इसी वर को हम चाहते हैं ॥ ४२ ॥ तब नाशरहित ब्रह्माजी से शङ्करजी ने कहा कि ऐसाही हो ऐसे कहकर करोड़ों गणों के सहित महादेवजी सब देवताओं से स्तुति कियेजाते अपने मन्दिर को चलेगये और ब्रह्मा आदि देवता भी अपने अपने स्थानों को चलेगये ॥ ४३ । ४४ ॥ तदनन्तर लिङ्ग के रूप को धरेहुये शङ्कर

मांयातु भगवंस्त्वत्प्रसादतः ॥ वामनामेकलायत्र यत्रेदंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ तत्रस्नात्वानरव्याघ्र शिवलोकमवाप्य ते ॥ इदंवरमहंमन्ये लोकानुग्रहकारकम् ॥४२॥ शङ्करस्तुतथेत्येवं प्राहब्रह्माणमव्ययम् ॥ एवमुक्त्वामहेशानो गण कोटिसमावृतः ॥ ४३ ॥ स्तूयमानस्सुरैस्सर्वैर्जगामभवनंस्वकम् ॥ब्रह्माद्यादेवताश्चैव गताःस्वंस्वंनिवेशनम् ॥ ४४ ॥ रन्तिदेवःप्रतुष्टाव लिङ्गरूपधरंशिवम् ॥ निशम्यरन्तिदेवस्यस्तोत्रंप्राहमहेश्वरः ॥ ४५ ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते स्तोत्रे णानेनसुव्रत ॥ रन्तिदेवोब्रवीद्वाक्यं यदिमेवरदःशिवः ॥ ४६ ॥ इदंतीर्थन्नमोक्तव्यं महादेवसदात्वया ॥ अघौघसम्प्लु तायेतु तिर्य्यग्योनिगतानराः ॥ ४७ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्तेयान्तुपरमाङ्गतिम् ॥ अत्रयद्दीयतेदानं सर्वंभवतिचा क्षयम् ॥ ४८ ॥ इदंवरमहंमन्येयदितुष्टोसिशङ्कर ॥ शङ्करउवाच ॥ अमासोमसमायोगेकार्त्तिक्यांचैवपर्वणि ॥ ४९ ॥

जी की राजारन्तिदेवजी स्तुति करतेहुये रन्तिदेवजी के स्तोत्रको सुनकर महादेवजी बोले ॥ ४५ ॥ कि हे सुव्रत ! इस स्तोत्र से तुम्हारा कल्याणहो तुम वर को मांगो तब रन्तिदेवजी वचन बोले कि जो मुझको शिवही वरके देनेवाले हैं ॥ ४६ ॥ तो हे महादेवजी ! यह तीर्थ आप को सदा नहीं छोड़ना चाहिये जो मनुष्य पापों के समूह में डूबेहुये हैं और पशुओं की योनि में प्राप्त होरहे हैं ॥ ४७ ॥ वे सब इस तीर्थ के माहात्म्य से परमगति को प्राप्त होवें और यहां जो कुछ दान दिया जावे वह सब अक्षय होजावे ॥ ४८ ॥ हे शङ्कर ! जो आप प्रसन्नहो तो हम इसी वर को चाहते हैं तब महादेवजी बोले कि सोमवती अमावास्या को अथवा

कार्त्तिकी व और किसी पर्व में ॥ ४६॥ यहां जो कुछ दान दियाजावे वह अनन्त होजावे हे राजन्! पापों का नाश करनेवाला यह तीर्थ आप से कहागया ॥ ५० ॥ इस तीर्थ में विश्वेदेव उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये अगस्त्य, शौनक, पाराशर, अघमर्षण ॥ ५१ ॥ और भी अनेक मुनिलोग परमसिद्धिको प्राप्तहुये यहांपर हजारों मुनि तपस्या से स्वर्ग को जातेहुये ॥ ५२॥ संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्र व सूर्यग्रहण, सोमवती अमावास्या और पडशीतिमुख में ॥ ५३ ॥ कियेहुये पुण्यको दशगुना वृद्धियुक्त समझो यह महादेवजी ने सत्य कहा है कुब्जा और नर्मदा के समागम में सवाकरोड़ तीर्थ रहते हैं ॥ ५४ ॥ वह जगह नर्मदा के दक्षिण उत्तर एक कोस

अत्रयद्दीयतेदानं तदनन्तंसमश्नुते ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ ५० ॥ विश्वेदेवाःपरांसिद्धिमस्मिं
स्तीर्थेसमागताः ॥ अगस्त्यश्शौनकश्चैव पाराशरोघमर्षणः ॥ ५१ ॥ संसिद्धिंपरमाम्प्राप्ता नानामुनिगणास्तथा ॥
अत्रायुतंमुनीनांच तपसादिवमारुहत् ॥ ५२ ॥ संक्रमेचव्यतीपाते ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ अमासोमसमायोगे पडशी
तिमुखेतथा ॥ ५३ ॥ पुण्यंदशगुणंवृद्धिं सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां कुब्जारेवासमागमे ॥ ५४ ॥
दक्षिणोत्तरभागेतु क्रोशमात्रंप्रतिष्ठितम् ॥ अवशःस्ववशोवापि प्राणान्यस्तुपरित्यजेत् ॥ ५५ ॥ राजावर्षसहस्रा
णि विद्याधरपुरेभवेत् ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तीर्थेस्मिन्प्राणमोक्षणे ॥ ५६ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु राजाविद्याधरेपुरे ॥
बिल्वाम्रकंसिद्धलिङ्गं कामभोगफलप्रदम्॥५७॥ कुब्जेश्वरंमहच्चान्यद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ अत्रान्तरेमहाराजशिव
क्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥५८॥ रेवाकुब्जासमायोगेयवानांसप्ततिस्तथा ॥ अमासोमसमायोगेस्नानाच्छान्तिःप्रकीर्तिता॥५९॥

तक प्रतिष्ठित है इस क्षेत्र में परवश व अपने वश होकर जो प्राणों को छोड़ताहै ॥ ५५ ॥ वह हजारों वर्षतक विद्याधरोंके पुर में राजा होताहै कृमि, कीट, पतिंगना आदि भी इस तीर्थ में प्राणों के छोड़ने पर ॥ ५६ ॥ देवताओं की हजारवर्ष तक विद्याधरों के पुर में राजा होता है यह बिल्वाम्रक नामका सिद्धलिङ्ग मनमाने भोग व फलों का देनेवाला है ॥ ५७ ॥ और दूसरा कुब्जेश्वर भी महालिंग ब्रह्महत्याको नाश करताहै हे महाराज! इसी बिल्वाम्रक और कुब्जेश्वरके बीचमें विद्वान्लोग शिवजी का क्षेत्र जानते हैं ॥५८॥ नर्मदा और कुब्जाके समागम में सत्तर जौभरे का प्रमाणवाला वह क्षेत्र है उसमें सोमवती को स्नान करने से शान्ति होती है ॥५९॥

काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गया और उत्तम केदारतीर्थ ॥ ६० ॥ इन मे सोमवती अमावास्या को साधारण फल होताहै और कुब्जा व नर्मदाके संगम में अक्षय फल कहागया है ॥ ६१ ॥ तिलोदक देने से लड़का अपने माता व पिता के कुलवाले इधर उधर के सब पुरुषोंको नरकसे उद्धार करताहै ॥ ६२ ॥ अब वे राजा रन्तिदेवभी अपने सब पुरिखोंको उद्धारकर अपने घरको जातेहुये हे राजन् ! यह कुब्जा और नर्मदाका समागम तुमसे कहागया ॥ ६३ ॥ रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, पुरुहूत और पुरूरवा यहां अनेक यज्ञों को करके स्वर्ग में देवताओं की नाईं विहार करते हैं ॥ ६४ ॥ हे नरसत्तम ! इस तीर्थ के कहने व सुननेसे सब पापोंसे निर्मल

वाराणसीकुरुक्षेत्रं प्रयागोनैमिषंतथा ॥ पुष्करंचगयाचैवकेदारंतीर्थमुत्तमम् ॥ ६० ॥ फलमेतेषुसामान्यममासोमसमागमे ॥ अक्षयञ्चफलंप्रोक्तं कुब्जारेवासमागमे ॥ ६१ ॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकंपैतृकंसुतः ॥ नरकादुद्धरेत्सर्वान्पूर्वानपिपरानपि ॥ ६२ ॥ सोपिराजागृहंप्राप्तः सर्वानुद्धृत्यपूर्वजान् ॥ अयन्तेकथितोराजन्कुब्जारेवासमागमः ॥ ६३ ॥ रन्तिदेवोहरिश्चन्द्रः पुरुहूतःपुरूरवाः ॥ अत्रेष्ट्वाविविधैर्यज्ञैर्दीव्यन्तिदिविदेववत् ॥ ६४ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यतीर्थस्यनरसत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे कुब्जामाहात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थंतीर्थवरंशुभम् ॥ याम्यप्रदेशेरेवाया आश्रमस्सुरपूजितः ॥ १ ॥ सुवर्णद्वीपविख्यातो देवद्रोणीसमावृतः ॥ हारीतोगौतमोविष्णुस्सावर्णिःकौशिकस्तथा ॥ २ ॥ एतेचान्येचबहवो

होगया है आत्मा जिसका ऐसा मनुष्य शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुब्जामाहात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और भी सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व शुभ तीर्थ को कहते हैं नर्मदा के दक्षिण तरफ देवताओं से भी पूजागया ऐसा आश्रम है ॥ १ ॥ सुवर्णद्वीप इस नामसे प्रसिद्ध है और देवताओं की गुफाओं से युक्तहै वहां हारीत, गौतम, विष्णु, सावर्णि तथा कौशिक ॥ २ ॥ ये व और भी तारीफ़ी व्रतवाले मुनिलोग

रहते हैं उनमें कोई एक महीने के व्रत करनेवाले, कोई एक पाख के व्रत करनेवाले ॥ ३ ॥ कोई चान्द्रायण के करनेवाले, कोई कृच्छ्र के करनेवाले, कोई फल व जड़ोंके खानेवाले, कोई वायुके खानेवाले ॥ ४ ॥ कोई धुवांके कणोंको पीतेहैं और कोई जलाहारी हैं व कोई एक पांवसे खड़ेहैं और कोई आधेपांव से खड़ेहैं ॥ ५ ॥ कोई दांतों व ओखली से काटकूट के खानेवाले है कोई सूर्यही को देखते हैं ऐसे २ ब्रह्मके जाननेवाले वेद व स्मृतियों में प्रवीण ब्राह्मण वहां रहते हैं ॥ ६ ॥ इतिहास और पुराणों के जाननेवाले व मोक्षके उपायों के विचारनेवाले और नित्य अग्निहोत्र व जप और यज्ञकर्म्म में तत्पर रहनेवाले ॥ ७ ॥ अपने वेदोंके शब्दसे

मुनयश्शंसितव्रताः ॥ मासोपवासिनःकेचिदन्येपक्षोपवासिनः ॥ ३ ॥ चान्द्रायणपराश्चान्ये तथान्येकृच्छ्रचारिणः ॥ फलमूलाशिनःकेचित्तथान्येवायुभक्षकाः ॥ ४ ॥ कणधूमंपिबन्त्यन्ये जलाहारास्तथापरे ॥ एकपादास्स्थिताःकेचिदन्येचार्द्धपदास्स्थिताः ॥ ५ ॥ दन्तोलूखलिनःकेचिदन्येसूर्य्यावलोकिनः ॥ ब्राह्मणाश्चब्रह्मविदः श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ ६ ॥ इतिहासपुराणानि मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ अग्निहोत्रपरानित्यं जपयज्ञक्रियापराः ॥ ७ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैस्तारयन्तिजगत्रयम् ॥ नतस्मिन्सञ्चरेत्पापं तमस्सूर्य्योदयेयथा ॥ ८ ॥ मेकलादक्षिणेतीरे ब्रह्मलोकइवास्थितः ॥ आम्रजम्बूकदम्बैश्च कपित्थैर्बिल्वदाडिमैः ॥ ९ ॥ कदलीबीजपूराद्यैर्जम्बीरैःपनसैस्तथा ॥ न्यग्रोधबदरैर्मुख्यैर्बहुवृक्षविभूषितम् ॥ १० ॥ पुन्नागैर्नागबकुलैरशोकैस्तिलकैस्तथा ॥ मन्दारैश्चम्पकैश्चाम्रातकैर्नीलोत्पलोत्पलैः ॥ ११ ॥ पत्रपुष्पफलोपेतैर्वृक्षैस्सर्वैरलंकृतम् ॥ नानापक्षिगणोपेतं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १२ ॥ व्याहरन्त्यण्डजास्सर्वे

तीनों लोकोंको ताररहे हैं उस स्थान में पाप कभी नहीं आताहै जैसे सूर्यके उदय में अँधेरा नहीं आता है ॥ ८ ॥ मानो नर्मदा के दक्षिणवाले तटमें ब्रह्मलोक विद्यमानहै आंब, जमुनी, कदम्ब, कैथा, बेल, अनार ॥ ९ ॥ केला, बिजौरा, जम्भीरी, कटहर, बरगद और बेरीआदि भारी अनेक वृक्षों से भूषित है ॥ १० ॥ और भी पुन्नाग, नाग, मौलसिरी, अशोक, तिलक, मदार, चम्पा, आंवला और नीले कमल व और कमल आदि ॥ ११ ॥ पत्ते व फूल और फलों से युक्त सब तरह के वृक्षों से सुहावना होरहा है अनेकतरह के पक्षियों से युक्त और सिद्ध व गन्धर्वोंसे सेवित है ॥ १२ ॥ हे नृप ! जहापर सब पक्षी मनुष्यों की आवाज से बोलते हैं ऐसे

गुणोंसे युक्त सबसे उत्तम सुवर्णद्वीप था ॥ १३ ॥ अब हे राजन् ! पहले कल्प में स्वायम्भुव मन्वन्तर के सत्ययुगमें इसी सुवर्णद्वीपके रहनेवाले मनुष्य महादेवजी के पूजनसे ॥ १४ ॥ सब अज्ञानको छोड़कर शिवजीके लोकमें विहार करते हैं पितरोंको अन्न व तिलोदक देनेसे ॥ १५ ॥ पापोंको छोड़कर ब्रह्माजी के पुरमें रहते हैं हे भूप ! पुण्यवाली कार्त्तिकी में यह तीर्थ सब तीर्थोंके फलका देनेवाला होताहै ॥ १६ ॥ परन्तु कलियुगमें माया से मोहित होरहे मनुष्य इसको नहीं देखते हैं नर्मदा के दक्षिणतरफ करोड़ों तीर्थ अनेक प्रकार के ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध हैं परन्तु वह स्थान केवल सिद्ध व मुनियों से जानाजाता है और जो नास्तिक व मर्यादाके बिगाडने

मानुषाणांगिरान्नृप ॥ एतद्गुणसमायुक्तंसुवर्णद्वीपमुत्तमम् ॥ १३ ॥ स्वायम्भुवेन्तरेराजन्नादिकल्पेकृतेयुगे ॥ अर्चनाद्ध वदेवस्य सुवर्णद्वीपवासिनः ॥ १४ ॥ अपहायतमःकृत्स्नंलोकेक्रीडन्तिशाङ्करे ॥ पितॄणामन्नदानेन तिलतोयप्रदान तः ॥ १५ ॥ मलापकर्षणंकृत्वा वसन्तिब्रह्मणःपुरे ॥ पुण्यायांभूपकार्त्तिक्यांसर्वतीर्थफलप्रदः ॥ १६ ॥ नैतत्पश्यन्ति मनुजाः कलौमायाविमोहिताः ॥ कल्पगायाम्यभागेतु तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १७ ॥ प्रसिद्धंसिद्धमुनिभिर्ज्ञायतेकेवलं हितत ॥ नास्तिकैर्भिन्नमर्यादैः पुराणस्मृतिनिन्दकैः ॥ १८ ॥ तैलाभ्यक्तैर्नवेदोक्तकरैरेवातटेतथा ॥ कलिमायाविमू ढैश्चस्थानंतन्नप्रदृश्यते ॥ १९ ॥ हिरण्यगर्भास्थानेतु यस्मिन्वहतिकल्पगा ॥ यज्ञगर्भेश्वरन्नाम शिवलिङ्गंप्रकीर्ति तम् ॥ २० ॥ पूज्यतेसिद्धगन्धर्वैस्सुरासुरमहोरगैः ॥ यत्रवैवस्वतोराजा सूर्य्यपुत्रोमहायशाः ॥ २१ ॥ तस्यतीर्थस्य माहात्म्याच्चन्द्रबिम्बाननोभवत् ॥ चैत्रस्यैवतुमासस्य शुक्लपक्षेनराधिप ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यांपौर्णमास्यां यत्रसन्निहि

वाले पुराण व स्मृतियों के निन्दा करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ अथवा तेलियापण्डा हैं व नर्मदाके किनारे वेदमें कहेहुये कर्मोंके नहीं करनेवाले व कलियुगकी मायासे मूढ़ हैं वे उस स्थानको नहीं देखते हैं ॥ १९ ॥ जिस स्थानमें सुवर्ण जिसमें भराहुआहै ऐसी नर्मदा बहती है और वहां यज्ञगर्भेश्वर नाम शिवजी का लिङ्ग कहागयाहै ॥ २० ॥ उस लिङ्गका सिद्ध, गन्धर्व, देवता, दैत्य और नाग पूजन करते हैं जहां सूर्यके पुत्र बडे यशवाले राजा वैवस्वत ॥ २१ ॥ उसी तीर्थके माहात्म्य से चन्द्र-बिम्बके समान मुँहवाले होगये हे नराधिप ! चैत महीने के उजियाले पाखमें ॥ २२ ॥ चौदस व पूर्णमासी बिषे जहां महादेवजी विद्यमान हैं वहा हे भारत !

तिलोदक व पिण्डदानसे भारी दक्षिणाका देनेवाला मनुष्य अपने पितरों को नरक से उद्धार करता है और आप जबतक सूर्य व चन्द्रमा देख पडते हैं तबतक विष्णुलोक में वास करता है ॥ २३ । २४ ॥ वहा जो कुछ दान दिया जाताहै वह कुरुक्षेत्र के बराबर होताहै वहां प्राणों के छोडनेपर जीव यमलोक को नहीं देखते हैं ॥ २५ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर पर्यङ्कनाम का पर्वत है वह शोभावान् शुभरूप पर्वत कि जिसमें सब देवतालोग रहते हैं विन्ध्याचलका पुत्र है ॥ २६ ॥ उसपर पापों के हरनेवाले विष्णुभगवान् आपही बैठे हैं जोकि मनुष्यों के पापोंके हरनेवाले हैं और नर्मदाके तटपर विद्यमान होरहे हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज ! वहा

तोहरः ॥ तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनभारत ॥ २३ ॥ पितॄन्समुद्धरेत्तत्र नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥ निवसेद्वैष्णवेलोके या वच्चन्द्रार्कदर्शनम् ॥ २४ ॥ तत्रयद्दीयतेदानं कुरुक्षेत्रसमंहितत् ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र नपश्यन्तियमालयम् ॥ २५ ॥ रेवायाउत्तरेकूले पर्य्यङ्कोनामपर्वतः ॥ सचविन्ध्यसुतःश्रीमान्सर्वदेवमयश्शुभः ॥ २६ ॥ तत्रपापहरोविष्णुः स्वयंतिष्ठतिकेशवः ॥ नरपापहरोयस्तु नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज गोसहस्रफलंलभेत् ॥ तर्पिताःपितरस्तस्य तृप्तायान्तिहरेःपुरम् ॥ २८ ॥ एकादशीन्द्वादशींवा तत्रयःकुरुतेनरः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ २९ ॥ क्रोशमात्रप्रमाणञ्च हरिक्षेत्रंप्रकीर्तितम् ॥ अपमृत्युमृतायेच तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेविष्णुकीर्तनन्नामचतुःषष्टितमोध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्म्मदायाम्यभागेतु तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ माण्डव्यस्याश्रमंपुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥१॥

स्नानकर एक हजार गोदान के फलको पाताहै वहांपर तर्पण जिनका कियागया ऐसे उसके पितर तृप्तहुये विष्णुजीके पुरको जातेहैं ॥ २८ ॥ और वहां जो मनुष्य एकादशी व द्वादशीका व्रत करता है उसकी फिर इस कठिन संसारमें आवृत्ति नहीं होती है ॥ २९ ॥ एक कोस का प्रमाण जिसका है ऐसा विष्णुजी का क्षेत्र कहागयाहै वहां जो अकालमीच से मरेहुये हैं वे परमगति को पाते हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेविष्णुकीर्तननामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदा के दक्षिणतरफ में पापोंका नाश करनेवाला तीर्थहै वहां सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित,पुण्यवाला,माण्डव्यमुनि का आश्रमहै ॥१॥

उसमें विभाण्डक, गार्ग्य और ऋष्यशृङ्गआदि उत्तम व्रतवाले हजारों मुनिलोग रहते हैं ॥ २ ॥ ऐसे अशोकवनिका नाम के उत्तमतीर्थ को हे राजन् ! इससमय में तुम सुनो वहां पार्वतीजी के सहित महादेवजी रहते हैं ॥ ३ ॥ और उस आश्रम में शोकरहित निर्मल महादेवजी अपना आवेश रखतेहैं जहां विशोकानदी के साथमें नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी मिली हैं वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर नहीं होतेहैं और वहां अशोकेश्वरलिंग है जोकि प्रत्यक्षही सिद्धि व कल्याण करनेवाला है ॥ ४।५ ॥ वहां शापसे भ्रष्ट होगये ब्राह्मणोंको नारदजी ने छुटाया है उस तीर्थके माहात्म्य से वे देवता होकर स्वर्गमें आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥

विभाण्डकश्चगार्ग्यश्च ऋष्यशृङ्गादयस्तथा ॥ तस्मिन्सहस्रसंख्याता मुनयश्शंसितव्रताः ॥ २ ॥ अशोकवनिकांराजञ्छृणुसाम्प्रतमुत्तमम् ॥ तत्रसन्निहितोदेव उमयासहितोहरः ॥ ३ ॥ आविष्टश्चाश्रमेतत्र विशोकोविमलश्शिवः ॥ विशोकयासरिच्छ्रेष्ठा नर्म्मदायत्रसङ्गता ॥ ४ ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ अशोकेश्वरलिङ्गंच प्रत्यक्षंसिद्धिशङ्करम् ॥ ५ ॥ शापभ्रष्टाद्विजास्तत्र नारदेनविमोचिताः ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मोदन्तेदिविदेवताः ॥ ६ ॥ नानावृक्षफलैःपुष्पैस्सर्वकामसमन्वितैः ॥ नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानावृक्षनिषेवितम् ॥ ७ ॥ सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ वेणुवीणानिनादेन शङ्खवादित्रनिस्स्वनैः ॥ ८ ॥ शोभतेसर्वदाराजन्नर्म्मदाविन्ध्यसङ्गमः ॥ अशोकादेवतायत्रब्रह्मशक्रपुरोगमाः ॥ ९ ॥ विश्वेदेवाश्रमन्तद्धिसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ विश्वायाश्चतथापुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥ अशोकवनिकायाञ्चजनयामासकश्यपः ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते त्रेतायान्नरसत्तम ॥ ११ ॥ पञ्चायु

और वह स्थान सब कामनाओं के देनेवाले अनेक वृक्षोंके फलों व फूलोंसे युक्तहै और अनेक प्रकार के पक्षियों व अनेकप्रकार के वृक्षोंसे भी सेवितहै ॥ ७ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के बेन व सितारकी आवाज से व शङ्ख व और बाजाओंके शब्दसे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वह नर्मदा और विन्ध्याचल का सङ्गम हमेशा शोभायमान रहता है जहां ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता बेसोच रहते हैं ॥ ९ ॥ सब देवताओं से नमस्कार कियागया वह विश्वेदेवों का आश्रम है विश्वाके लड़के विश्वेदेव कहेगये हैं ॥ १० ॥ उनको अशोकवनिका में कश्यपजी ने पैदा किया है वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेतामें यह हाल हुआ था हे नरसत्तम ! ॥ ११ ॥ वहां बहुत

अच्छे पचास हजारतीर्थ वास करते हैं और वहां सावित्री तथा देवताओंकी माताअदिति सिद्धहुई हैं ॥ १२ ॥ व देवयानी, इन्द्राणी, रोहिणी, सम्मरायणी, दाक्षायणी, लोकोंके नमस्कार करनेयोग्य बड़े यशवाली लोपामुद्रा ॥ १३ ॥ सूर्यकी स्त्री रत्नावली, ध्रुवा, तारा और गणेश्वरी ये भी सब वहां सिद्ध होती हुई और भी वहांकी रहनेवाली सैकड़ों स्त्रियां उस स्थानकरके बेसोच करदीगई ॥ १४ ॥ इस तीर्थके माहात्म्य से मनुष्य पापसे छूट जाता है हे भारत ! कुआर के महीने के उजियाले पाखकी चतुर्दशी को ॥ १५ ॥ जिसके पुत्र नहीं जीते अथवा बांझस्त्री वं कुरूप व विधवा स्त्री स्नानको कियेहुये पञ्चरत्न व फलों से युक्त घटों से महादेवजी का

तानितीर्थानि निवसन्तिशुभानिच ॥ तत्रसिद्धाचसावित्री देवमातादितिस्तथा ॥ १२ ॥ देवयानीतथेन्द्राणी रोहिणीसम्मरायणी ॥ दाक्षायणीलोकवन्द्या लोपामुद्रामहायशा ॥ १३ ॥ रत्नावलीसूर्य्यभार्य्या ध्रुवातारागणेश्वरी ॥ अशोकास्तेनविहितास्तत्रस्थाश्शतसंख्यकाः ॥ १४ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेकिल्विषान्नरः ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यामाश्विनेमासिभारत ॥ १५ ॥ अपुत्रिणीतथावन्ध्या दुर्भगाभर्तृवर्जिता ॥ पञ्चरत्नफलैःस्नाता दिव्यकुम्भैस्समर्चयेत् ॥ १६ ॥ सहस्रजन्मसाभूयः पुत्रिणीसुभगाभवेत् ॥ अशोकवनिकाक्षेत्रे तत्रगौर्य्यावरःकृतः ॥ १७ ॥ यस्मिन्वहतिसादेवी नर्म्मदासप्तकल्पगा ॥ तत्रेष्टंधर्म्मराजेन वरुणेनमहात्मना ॥ १८ ॥ नैर्ऋतयेनतथान्यैश्च लोकपालैर्यथाविधि ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च लोकपालानुपागतः ॥ १९॥ अत्रिर्मरीचिःकश्यपश्चक्रुस्तत्रमखोत्तमम् ॥ अन्यक्षेत्राच्छतगुणा तत्रदानादिकाक्रिया ॥ २० ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं गयावैनैमिषंतथा ॥ मायापुरीपुष्करञ्च प्रयागःशशिभूष

पूजनकरे ॥ १६ ॥ तो वह हजारजन्मतक लडकोंवाली व सोहागिल रहती है यह फल अशोकवनिका के क्षेत्रमें होताहै क्योंकि वहांको पार्वतीजी ने वरदान किया है ॥ १७ ॥ जिस स्थानमें सातकल्प तक रहनेवाली नर्मदादेवी बहती हैं वहां धर्मराज, महात्मा वरुण और नैर्ऋत्य इसीतरह और भी लोकपालोंने विधि से यज्ञको कियाहै अग्नि भी लोकपालोंके पास प्रत्यक्ष होकर आये हैं ॥ १८ । १९ ॥ अत्रि, मरीचि और कश्यप ने भी वहा उत्तम यज्ञको किया है और क्षेत्रमे सौगुना वहां

दान आदि कर्मोंका फल होताहै ॥ २० ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, गया, नैमिष, मायापुरी, पुष्कर, प्रयाग, शशिभूषण ॥ २१ ॥ और काश्यपी आदि सब तीर्थ वहीं हैं जहां नर्मदा जी बहती हैं इससे अशोकवनिका के बराबर और तीर्थको जाननेवाले नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ अगिले जमाने में हे राजन्! जहां ब्रह्माजीने यज्ञों में उत्तम अश्वमेध यज्ञको कियाहै और पूर्वकालमें इस तीर्थ के माहात्म्यसे पटनाके रहनेवाले ब्राह्मणोंको कुत्तेकी योनिसे छोंड़ादियाहै तब राजायुधिष्ठिरजी बोले कि हे तात! ब्रह्माजीने सौ यज्ञोंको कैसे किया ॥२३।२४॥ और पूर्वकालमें कुत्तेकी योनि से ब्राह्मणोंको कैसे छोंड़ादिया और अगिले जमानेमें इन्द्रके बराबर कौन राजा होताहुआ ॥२५॥

णम् ॥ २१ ॥ काश्यपीसर्वतीर्थानि यत्रतिष्ठतिकल्पगा ॥ अशोकवनिकायास्तु नान्यत्तीर्थंसमंविदुः ॥ २२ ॥ इष्टंयत्र पुराराजन्हयमेधंमखोत्तमम् ॥ ब्रह्मणामोचिताःपूर्वं विप्राःकौलेययोनितः ॥ २३ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्पाटली पुत्रवासिनः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ हयमेधशतेनेष्टं कथंतातस्वयम्भुवा ॥ २४ ॥ कथञ्चमोचिताविप्राः पूर्वंकौलेययोनि तः ॥ कोवाराजापुराब्रह्मन्देवराजसमोभवत् ॥ २५ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं शंसमेमुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृ णुराजन्महाभाग समाख्यानंपुरातनम् ॥ २६ ॥ अशोकवनिकातीर्थं कल्पगातटमाश्रितम् ॥ नजानन्तिमहामूढा म नुजाःपापमोहिताः ॥ २७ ॥ गुप्ताद्गुप्ततरन्तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ विशोकेश्वरलिङ्गन्तु तस्मिन्परमसिद्धिदम् ॥ २८ ॥ पूज्यतेसिद्धगन्धर्वैर्नतत्पश्यन्तिमानुषाः ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवेन्त रेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ रविश्चन्द्रोमहाराज चक्रवर्तीमहायशाः ॥ ३० ॥ सोमवंशजनिप्राप्तः काञ्चीपुरपतिस्त

हे मुनिसत्तम! यह सब ठीक ठीक आप मुख से कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन्! अब तुम पुराने आख्यानको सुनो॥ २६ ॥ नर्मदाके किनारेपर विद्यमान अशोकवनिका तीर्थको पापों से मोहित महामूढ मनुष्य नहीं जानते हैं ॥ २७ ॥ गुप्तसे अतिगुप्त वह तीर्थ है और सब तीर्थोंसे उत्तमोत्तम है उस में बड़ी सिद्धिका देनेवाला विशोकेश्वर लिङ्गहै ॥२८॥ उसको सिद्ध व गन्धर्वलोग पूजतेहैं और मनुष्य उसको नहीं देखतेहैं उसके दर्शन व स्पर्श से ब्रह्महत्याको मनुष्य नाश कर देताहै ॥ २९॥ स्वायम्भुवमन्वन्तरके प्राप्तहोनेपर पहले कल्पके सत्ययुग में हे महाराज! बड़े यशवाले चक्रवर्ती रविश्चन्द्र राजाहुये ॥ ३० ॥ उन्होंने सोमवंश

में जन्मको पायाथा और काञ्चीपुर के मालिकहुये सब पृथिवी की राज्य करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी राज्य करतेहैं ॥ ३१ ॥ सो वे राजा अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और अनेक पक्षियों से युक्त व अनेक मुनियोंसे सेवित ॥ ३२ ॥ जहां अगस्त्येश्वरनाम का महादेवजीका शुभ मन्दिर था वहां को जातेहुये जिस स्थानको अगस्त्य आदि बड़े तपस्वी सब मुनिलोग सेवन करते हैं ॥ ३३ ॥ जहां सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदा व अमरकण्टक पर्वतहै वहीं सूर्यग्रहणमें राजाओंमें उत्तम राजा रविश्चन्द्र ॥ ३४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, खजाना, फौज और सवारियोंके सहित मुनियों के समूहसे घिरे व तपस्याको करतेहुये और आग ऐसे जलतेहुये महात्मा अगस्त्य नाम

था ॥ शशासपृथिवींसर्वां यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ३१ ॥ गतस्तुपृथिवीपालो नानावृक्षसमाकुलम् ॥ नानापक्षिगणै र्जुष्टं नानामुनिनिषेवितम् ॥ ३२ ॥ यत्रागस्त्येश्वरन्नाम शम्भोरायतनंशुभम् ॥ सेव्यतेमुनिभिःसर्वैरगस्त्याद्यैस्तपोधनैः ॥ ३३ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे रविश्चन्द्रोनृपोत्तमः ॥ सप्तकल्पवहायत्र शैलश्चामरकण्टकः ॥ ३४ ॥ हस्त्यश्वरथपादातैः सकोशबलवाहनैः ॥ तपस्यन्तंमहात्मानं मुनिसङ्घैस्समावृतम् ॥ ३५ ॥ मैत्रावरुणिकन्नाम ज्वलन्तमितिपावकम् ॥ तेषांमध्येसमुत्थाय शाण्डिल्यश्चमहातपाः ॥ ३६ ॥ उरसापृथिवींगत्वा सोगस्तिंपरिपृच्छति ॥ रविश्चन्द्रोमहातेजास्समायातस्तवाश्रमम् ॥ ३७ ॥ पुरोहितोहमस्यास्मि जानीहित्वन्तपोनिधे ॥ त्वत्पादार्चनमाकाङ्क्षी मन्यसेचेदनुग्रहः ॥ ३८ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ आगच्छतुनृपश्रेष्ठश्शीघ्रंसिंहासनेस्थितः ॥ आगतस्तदनुज्ञातः पादौजग्राहतस्यच ॥ ३९ ॥ अर्घपाद्यैश्चसम्पूज्य पप्रच्छकुशलंमुनिः ॥ कुशलन्तेमहाभाग सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ४० ॥ उवाचवचनंराजा मुनी

मुनिके पास जातेहुये तब वहां बड़े तपवाले शाण्डिल्यजी उन मुनियों के बीच में उठकर ॥ ३५।३६ ॥ और छातीसे पृथ्वीको जाकर अर्थात् साष्टांग प्रणामकर उन्होंने अगस्त्यसे पूछा कि बड़े तेजवाले राजा रविश्चन्द्र आपके आश्रमको आयेहैं ॥ ३७ ॥ मैं इनका पुरोहितहूं हे तपोनिधे ! ऐसा आप जानें यह राजा आपके चरणोंकी पूजा को चाहताहै सो जो आपको अङ्गीकारहो तो बड़ी कृपा है ॥ ३८ ॥ तब अगस्त्यजी बोले कि राजाओंमें श्रेष्ठ रविश्चन्द्र जल्द आवें और सिंहासनपर बैठें इसप्रकार अगस्त्यकी आज्ञाको पायेहुये राजा आये और उनके पांवोंको छूतेहुये ॥ ३९ ॥ तब अगस्त्यमुनिजी अर्घ और पाद्य से राजाका भलीभांति पूजनकर कुशल पूंछतेहुये

कहा कि हे महाभाग ! आपकी परिवार सहित कुशल है ॥ ४० ॥ तब हे भारत ! मुनीन्द्र अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि आज मेरा जन्म व राज्य व जीवन सफलहुआ ॥ ४१ ॥ आपके कमलसमान पांवों के इस दर्शन से मैं पापसे छूटगया सब तीर्थ जिसमें हैं ऐसी शुभ नर्मदाजी तो सब कहीं पवित्र हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु हे मुनिसत्तम ! हम किस स्थानमें यज्ञको करें सो मुझ से कहिये जिससे यज्ञ सिद्ध होजावे और देवताओंको अक्षयतृप्ति होवे ॥ ४३ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! यह सब ठीकठीक कहिये तब अगस्त्यजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! सुनिये और कहेजारहे वृत्तांत को समझिये ॥ ४४ ॥ अगिले जमानेमें महादेवजीने पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से

न्द्रंप्रतिभारत ॥ अद्यमेसफलंजन्म राज्यंजीवनमेवच ॥ ४१ ॥ मुक्तश्चकिल्बिषादस्मात्त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ सर्वत्रकल्पगापुण्या सर्वतीर्थमयीशुभा ॥ ४२ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेयज्ञं शंसमेमुनिसत्तम ॥ यथासंसिद्ध्यतेयज्ञस्सुराणांतृप्तिरक्षया ॥ ४३ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं त्रिकालज्ञनिवेदय ॥ अगस्त्यउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानन्निबोधच ॥ ४४ ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानामन्येषाञ्चदिवौकसाम् ॥ ४५ ॥ मयातत्रश्रुतंराजन्मार्कण्डेनचिरायुषा ॥ तत्तेहंकथयिष्यामिमेकलातीर्थसम्भवम् ॥ ४६ ॥ शृणुध्वंमुनयस्सर्वे यत्प्रष्टव्यावतारणम् ॥ कस्यशक्तिर्महाराज वर्जयित्वामहेश्वरम् ॥ ४७ ॥ प्रमाणंसर्वतीर्थानां संख्यांवाकर्तुमादितः ॥ उद्देशमात्रवक्ताहं मार्कण्डस्यमहामुनेः ॥ ४८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथावृत्तम्पुरातनम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदामाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कहा है और भी ब्रह्मा व विष्णु आदि देवताओं से कहाहै ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! वहीं हम और भारी उमरवाले मार्कण्डेयजी ने सुना है वही नर्मदा तीर्थका सम्भव हम तुम से कहेंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनियो ! आप सबलोग पूंछनेलायक बातकी भूमिका को सुनो कि हे महाराज ! वैसे महादेवजी को छोडकर सब तीर्थोंकी आदमे गिन्ती व प्रमाण करनेकी किसको सामर्थ्य है महामुनि मार्कण्डेय जी के उद्देश (इशारे) मात्रका कहनेवाला मैं हूं ॥ ४७ । ४८ ॥ हे राजन् ! यह तो पुराना हाल जैसा था वह तुमसे कहागया ॥४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में ऐसे बुद्धिमान् राजा रविश्चन्द्र ने सुना तदनन्तर मुनियों में श्रेष्ठ श्रीमान् अगस्त्यजी फिर वचन बोले कि सरस्वती, गङ्गा, यमुना, समुद्र व और भी प्रयागआदि तीर्थ ऐसे पवित्र नहीं हैं ॥ १ । २ ॥ सात कल्पतक बहनेवाली एक नर्मदाही पुण्यवाली व शुभ है एकलाख योजनतक जम्बूद्वीप कहागया है ॥ ३ ॥ उसमें जितना चराचर लोकहै तिसमें जो तपस्या से हीनभी मनुष्य हैं वे भी नर्मदा के जल पीने से शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ ४ ॥ जो जिस कामना को करता है वह उस पूरी कामनाको पाता है हे महाभाग, पापरहित ! वाह २ आपने जो हमसे पूंछा ॥ ५ ॥ उन नर्मदाजी को हमने कहा मनकी

मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंश्रुतंपुराराज्ञा रविश्चन्द्रेणधीमता ॥ उवाचवचनंश्रीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ १ ॥ सरस्वतीनगङ्गाच यमुनावानसागराः ॥ नचैवान्यानितीर्थानि प्रयागप्रमुखान्यपि ॥ २ ॥ एकैवनर्म्मदापुण्या सप्तकल्पवहाशुभा ॥ लक्षयोजनपर्य्यन्तं जम्बूद्वीपंप्रकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥ नर्म्मदातोयपानेन लोकालोकेचराचरे ॥ तपोहीना नराश्चैव तेपियान्तिशिवालयम् ॥ ४ ॥ योयंकामयतेकामंसतंप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ साधुसाधुमहाभाग पृष्टोहंयत्त्वयानघ ॥ ५ ॥ नर्म्मदाकथितादिव्या हृद्याकस्यनरोचते ॥ सन्तितीर्थानियावन्ति दक्षिणोत्तरकूलयोः ॥ ६ ॥ त्वत्प्रीतिदानितावन्ति कथयामिनृपोत्तम ॥ अन्यानिग्रन्थलक्षेणनचकीर्तयितुंक्षमः ॥ ७ ॥ त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्तिस्रस्सन्ध्यास्त्रयोग्नयः ॥ सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ विद्याधराश्चाप्सरसः कल्पगातटमाश्रिताः ॥ ॐकारादीनिलिङ्गानि वैदूर्य्यादिनगाःपुरा ॥ ९ ॥ द्वापरेचकलिंप्राप्य पावनत्वमवाप्नुयुः ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां मर्त्या

प्यारी दिव्य नर्मदाजी किसको नहीं रुचती हैं अब नर्मदा के दक्षिण और उत्तरवाले किनारोंपर तुम्हारे प्रसन्न करनेवाले जितने तीर्थ हैं हे नृपोत्तम ! उन सबको हम कहते हैं बाकी और तीर्थोंको एकलाख ग्रन्थसे हम कहने को समर्थ नहीं हैं ॥ ६।७ ॥ तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों सन्ध्यायें, तीनों अग्नियां, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग ॥ ८ ॥ विद्याधर और अप्सरायें ये सब नर्मदा के पास रहतेहैं ॐकारआदि लिंग और वैदूर्यआदि पर्वत अगिले जमानेमें ॥ ९ ॥ तथा द्वापर में और कलियुग

को भी पाकर औरों के पवित्र करनेवाले होतेरहे अब ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओं की भी मर्यादा को कहते हैं ॥ १० ॥ अपने तेजों से प्रकाश करतीहुई नर्मदा के दक्षिण और उत्तर में जो जमीन है वह यज्ञभूमि कहीगई है जिसको देवता व दैत्यभी नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ वहां अशोकवनिका है उसमें महादेवजी हैं वहां यज्ञ निर्विघ्न सिद्ध होताहै यह महादेवजी ने कहा है ॥ १२ ॥ तब मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि हे महामुने ! आपका कल्याण हो अब हम आपके सहित वहीं चलेंगे ॥ १३ ॥ ऐसे कहकर वे राजा मुनियोंसे युक्त अशोकवनिका को प्राप्तहुये नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर उत्तम जो पुण्य-

दाकथ्यतेधुना ॥ १० ॥ प्रभाभिर्द्योतमानाया रेवायादक्षिणोत्तरे ॥ यज्ञभूमिरियंख्याता सुरासुरनमस्कृता ॥ ११ ॥ अशोकवनिकातत्र तस्यान्देवोमहेश्वरः ॥ तत्रसिद्ध्यतिनिर्विघ्नो यज्ञइत्याहशङ्करः ॥ १२ ॥ उवाचवचनंराजा अगस्त्यंमुनिसत्तमम् ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि त्वयासहमहामुने ॥ १३ ॥ अशोकवनिकांप्राप्तस्सराजामुनिभिर्वृतः ॥ रेवायादक्षिणेकूले पुण्यतीर्थेसुशोभने ॥ १४ ॥ दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञयूपाश्चमण्डपम् ॥ मणिमाणिक्यरत्नौघैस्सर्वद्वारेषुशोभिताः ॥ १५ ॥ पताकाध्वजशोभाढ्या नानावस्त्रावगुण्ठिताः ॥ विश्वामित्रोभरद्वाजः कश्यपोभार्गवस्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्मदृश्योलोमशश्च तथान्येमुनिसत्तमाः ॥ बालखिल्यामहाभागा मानसाब्रह्मणस्सुताः ॥ १७ ॥ एतेचान्येचबहवो मुनयश्शंसितव्रताः ॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञो ब्राह्मणैरात्मदक्षिणैः ॥ १८ ॥ तृप्ताश्चदेवतास्सर्वाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ जग्मुस्सर्वेचमुदिता मुनयःस्वाश्रमम्प्रति ॥ १९ ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो दुर्वासाःकुपितोगतः ॥ नात्रवैवस्वतोनाहं

वाला तीर्थ है उसमें ॥ १४ ॥ दशयोजनतक यज्ञके खम्भे गडाये व मण्डपको बनाया सब दरवाजों में मणि, माणिक और रत्नसमूहों से खम्भे शोभित कियेगये ॥ १५॥ वे खम्भे अनेक प्रकार के कपड़ों से लपेटेहुये पताका और ध्वजाओं की शोभासे युक्त हुये अब विश्वामित्र,भरद्वाज, कश्यप तथा भार्गव॥१६॥ ब्रह्मदृश्य,लोमश तथा और भी श्रेष्ठ२ मुनिलोग जैसे ब्रह्माजी के मानसपुत्र बड़े भाग्यवाले बालखिल्य ॥१७॥ ये सब व और भी उत्तम व्रतवाले बहुतसे मुनिलोग आतेहुये तदनन्तर पूरीदक्षिणावाले ब्राह्मणों ने यज्ञको प्रवृत्त किया ॥१८॥ सब देवता तृप्तहोकर स्वर्गको लौटगये और सब मुनिलोग भी आनन्दित होकर अपने२ आश्रमोंको चलेगये ॥१९॥

तदनन्तर यज्ञ समाप्त हुआ तब वहां बड़े क्रोधी दुर्वासा आये और कहा कि न यहां हम आये और न यमराज व नारद तथा पर्वत आये ॥ २० ॥ कैसे पापकर्मी अधम मनुष्यों ने यज्ञको समाप्त करदिया तबतक वहां यमराज, नारद तथा पर्वत ॥ २१ ॥ लिखनेवाले चित्रगुप्त, काल और मृत्युभी आगये और अपने यज्ञभाग के विना इन सबों ने कोपको किया है नृप ! ॥ २२ ॥ तब उन सबको नाराज देखकर राजा रविश्चन्द्र वचन बोले कि अशोकेश्वर देव और नर्मदाजीके प्रसाद से ॥ २३ ॥ देवता और दैत्यों के बीचमें मेरे विघ्न करनेको कौन समर्थ होसक्ता है इसी तरह और जीवोंमें भी यज्ञविघ्न के वास्ते कौन समर्थ होसक्ता है ॥ २४ ॥ यज्ञके

नारदःपर्वतस्तथा ॥ २० ॥ कथन्निर्वर्तितोयज्ञः पापकर्म्मिनराधमैः ॥ आगतस्तुयमस्तत्र नारदःपर्वतस्तथा ॥ २१ ॥ लेखकश्चित्रगुप्तश्चकालोमृत्युस्तथैवच ॥ एतेचकुपितास्सर्वे यज्ञभागंविनानृप ॥ २२ ॥ तान्सर्वान्कुपितान्दृष्ट्वा रविश्चन्द्रोब्रवीद्वचः ॥ अशोकेश्वरदेवस्य नर्म्मदायाःप्रसादतः ॥ २३ ॥ कोमेसमर्थोविघ्नाय सुरासुरगणेष्वपि ॥ तथैवकोन्योजन्तूनां यज्ञविघ्नस्यहेतवे ॥ २४ ॥ यज्ञकालेचसम्प्राप्तो यःकश्चिदपिमानवः ॥ पूजनीयस्तथाऽस्माभिर्यथा देवश्चतुर्भुजः ॥ २५ ॥ यथायातामहाभागा ब्रह्मपुत्रामहौजसः ॥ ददामिवोनसन्देहो मनसायदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ परिपूज्यश्चनःपुत्रो नारदःपर्वतस्तथा ॥ एकाकीप्रार्थयेनाहं मिलित्वाप्रार्थयामहे ॥ २७ ॥ रविश्चन्द्रउवाच ॥ योयंकामयतेकामं तंतस्मैप्रददाम्यहम् ॥ इतिसर्वेपितेनैव प्रस्तुतामुनिपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सुप्रीताविहिताराजन्नर्घपाद्यप्रदानतः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ मुनयःकेनकार्य्येणपाटलीपुत्रवासिनः ॥ २९ ॥ देव्याशप्ताःश्वयोनिंच गता

समय में जो कोई मनुष्यभी आवे तो वह हमको वैसे पूजा करने के योग्य है कि जैसे चार भुजावाले विष्णुजी पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जैसे बड़े तेजवाले और बड़े भाग्यवाले ब्रह्माजी के पुत्र आये उसीतरह आप लोगोंको भी जो मनसे चाहो वह हम देवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हमारे पुत्र नारद और पर्वत भी पूजनेलायकहैं हम अकेले नहीं मांगते किन्तु मिलकर मांगेंगे ॥ २७ ॥ तब राजा रविश्चन्द्रजी बोले कि आपलोगों में जो जिस कामनाको चाहेगा उसको वही हम देवेंगे इसतरह उन्हीं राजा करके वे मुनिश्रेष्ठलोग खुशामद किये गये ॥ २८ ॥ और अर्घ व पाद्यके देनेसे हे राजन् ! प्रसन्न कियेगये युधिष्ठिरजी

पूंछते हैं कि पटना के रहनेवाले मुनियोंको किस कारणसे ॥ २९ ॥ देवीजीने शापदिया और कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये वे लोग फिर किसतरह उससे छूटे तब मार्कण्डेयजी बोले कि अगिले जमानेमें जटा और भोजपत्रोंको धारण किये सब तपस्वी लोग ॥ ३० ॥ नैपालमें देवताओं के देवता, कल्याणरूप, महेश्वर, पशुपति महादेवजी का विना पार्वती के भक्तिसे पूजन करते थे ॥ ३१ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार कियेगये महादेवजी तो अर्द्धनारीश्वर देव हैं इसीकारण से लिङ्गके भेद करनेवाले ब्राह्मणों को पार्वतीजी ने शाप दिया ॥ ३२ ॥ पार्वतीजी ने कहा कि हे महादेवकी चढ़ीहुई द्रव्य व उनके पार्षद जो चण्डहैं उनकी द्रव्य के खानेवाले पापीलोगो !

मुक्ताश्चतेकथम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुरातपोधनास्सर्वेजटावल्कलधारिणः ॥ ३० ॥ नैपालेवैपशुपतिं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ पूजयन्तिशिवंभक्त्या गौर्य्याविरहितंहरम् ॥३१॥ अर्द्धनारीश्वरंदेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ संशप्तास्तेनकार्य्येण पार्वत्यालिङ्गभेदिनः ॥ ३२ ॥ वर्षसहस्रंहिमितंश्वयोनिंगमिष्यथ ॥ निर्माल्यभक्षकाःपापाश्चण्डद्रव्यस्यभक्षकाः ॥ ३३ ॥ तेषांकृतेमहाराज दुर्वासानृपमब्रवीत् ॥ श्वयोनिंसमनुप्राप्तास्तत्रकालेमुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ मोचयत्वंततोराजन्नस्मत्प्रियचिकीर्षया ॥ पार्वत्यातेभिशप्ताश्च नरकेमज्जन्तिदारुणे ॥ ३५ ॥ उवाचवचनंराजा मुनिंदुर्वाससंततः ॥ मोचयामिनसन्देहो तस्मात्पापाद्द्विजोत्तमान् ॥ ३६ ॥ प्रेषिताःकिङ्करास्तेन सीदन्तोयत्रतेवने ॥ प्रणिपत्यचतेसर्वे तानूचुश्चवनेचरान् ॥ ३७ ॥ स्मारयन्तिपूर्वजातिमादिष्टाःप्रभुणायथा ॥ ततस्तद्वचनात्प्राप्तास्तेऽशोकवनिकांद्रुत

एक हजार वर्षप्रमाण तक तुम कुत्तेकी योनिको पावोगे ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! उन्हीं ब्राह्मणों के वास्ते राजासे दुर्वासाने कहा कि उससमय में मुनीश्वरलोग कुत्ते की योनिको प्राप्त होगयेथे ॥ ३४ ॥ सो हे राजन् ! अब हमारे प्रिय करनेकी इच्छा से तुम उनको उस शापसे छुटादेवो वे लोग पार्वतीसे शापको पायेहुये दारुण नरक में डूबरहे हैं ॥ ३५ ॥ तब दुर्वासामुनि से राजा वचन बोले कि हम उन उत्तम ब्राह्मणों को उस पापसे छुटादेवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ यह कहकर उन राजाने उस वनमें अपने दूतोंको भेजा जहां वे ब्राह्मण दुःखित होरहे थे वे सब दूत उन जङ्गली मुनियों के नमस्कार कर बोले ॥ ३७ ॥ और उनके पूर्वजन्मकी

सुध करातेहुये जैसे मालिक ने कहाथा वैसेही कहा तब वे उनके कहनेसे अशोकवनिकाको शीघ्र आये ॥ ३८ ॥ तब चक्रवर्ती राजा रविश्चन्द्र उन तपस्वियोंको देख कर बड़े आनन्द से युक्त हँसतेहुये ऐसे उनसे बोले ॥ ३९ ॥ कि अशोकेश्वरदेव व नर्मदा के प्रभाव से व हमारे दानके प्रभाव से व महर्षियों के प्रसाद से ॥ ४० ॥ ये सब मुनिलोग कुत्तेकी योनिको छोड़कर निश्चय से शिवके लोकको जावें और इनका यह सब महाघोर पाप मुझमें बैठे ॥ ४१ ॥ उसीक्षण शापसे छुटेहुये वे सब महर्षिलोग मनमानी सवारी पर सवार होकर सौयज्ञों के करनेवाले राजा रविश्चन्द्र से वचन बोले ॥ ४२ ॥ कि आपही हमारे माता व आपही पिता और आपही

म् ॥ ३८ ॥ रविश्चन्द्रश्चक्रवर्ती तान्विलोक्यतपोधनान् ॥ मुदापरमयायुक्तः प्राहतान्प्रहसन्निव ॥ ३९ ॥ अशोकेश्वर देवस्य मेकलायाःप्रभावतः ॥ ममदानप्रभावेण महर्षीणांप्रसादतः ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाश्वयोनिंमुनयः शिवलोकंप्रया न्तुवै ॥ एतत्पापंमहाघोरं मयिसर्वंनिषीदतु ॥ ४१ ॥ तत्क्षणान्मुक्तशापास्ते कामिकंयानमास्थिताः ॥ ऊचुर्महर्षयो वाक्यं रविश्चन्द्रंशतक्रतुम् ॥ ४२ ॥ त्वंमातात्वंपिताऽस्माकंत्वंगुरुर्मोक्षदायकः ॥ एवमुक्त्वाययुस्तेतु उमामाहेश्वरंपु रम् ॥ ४३ ॥ साधुसाधुमहाभाग त्वन्तुयज्ञतपोनिधिः ॥ नान्यस्त्वयासमःकश्चित्सोमवंशेमहीपतिः ॥ ४४ ॥ त्वयाहि निर्जितंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ एवमुक्त्वासुरश्रेष्ठास्साधुवादैस्तमार्चयन् ॥ ४५ ॥ देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपा तच ॥ दुर्वासाउवाच ॥ क्षत्रियेषुत्वयातुल्यो नदृष्टोनश्रुतोमया ॥ ४६ ॥ प्राणत्यागोहिसुकरोधर्म्मत्यागोहिदुष्करः ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते ॥ ४७ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं राजादुर्वाससंमुनिम् ॥ ममदानप्रभावेण नरादुष्कृततु

गुरुहो जिन्होंने हमको छोड़ादिया है ऐसे कहकर वे सब पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! वाह २ आप तो यज्ञ व तपस्या के खजाने हो चन्द्रवंशमें तुम्हारे बराबर और कोई राजा नहीं हुआ ॥ ४४ ॥ तुमने सब चराचर तीनों लोकोंको जीतलिया ऐसे कहकर उत्तम देवता तारीफ़वाली बातोंसे उन राजाकी पूजा करतेहुये ॥ ४५ ॥ और देवताओं के नगाड़े बजे व फूलों की वर्षा हुई तब दुर्वासाजी बोले कि क्षत्रियों में तुम्हारे बराबर दूसरे क्षत्रियको न मैंने देखाहै और न सुना है ॥ ४६ ॥ क्योंकि प्राणोंका भी छोड़देना सहजमें होसक्ता है परन्तु अपने कमायेहुये धर्मका छोडदेना बहुतही कठिनहै इस से तुम्हारा कल्याण हो अब

जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ ४७ ॥ तब राजा हँसतेहुये दुर्वासामुनि से वचन बोले कि हमारे दानके प्रभावसे पापबुद्धिवाले भी मनुष्य ॥ ४८ ॥ परम स्थानको प्राप्तहोवें यही वर हमको प्याराहै ऐसाही हो ऐसे उन राजाके आगे कहकर मुनियों में श्रेष्ठ वे दुर्वासाजी बड़े आनन्द से युक्त वहीं अन्तर्धान होगये बड़े तेजवाले राजाके ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ ४९ । ५० ॥ बड़ी शङ्का से युक्त धर्मराज यह कहतेहुये कि यज्ञभागसे बाहर करदियेगये हम आपको वर देतेहैं आपका कल्याणहो ॥ ५१ ॥ जिन्होंने कुत्तेकी योनिको प्राप्तहोरहे ब्राह्मणों को कर्मबन्धन से छोड़ादिया है नृपोत्तम ! आपकी ऐसी सामर्थ्यको हम जानते हैं ॥ ५२ ॥ पृथिवी

द्वयः ॥ ४८ ॥ प्राप्नुवन्तुपरंलोकं वरएषममप्रियः ॥ एवमस्त्वितितस्याग्रेऽभिधायमुनिपुङ्गवः ॥ ४९ ॥ समुदापरयायुक्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तद्दृष्ट्वाताहृशंकर्म्म राज्ञश्चामिततेजसः ॥ ५० ॥ शङ्कयापरयायुक्तो धर्म्मराजोब्रवीदिदम् ॥ वरंददामिभद्रन्ते यज्ञभागबहिष्कृतः ॥ ५१ ॥ श्वयोनित्वंगताविप्रा मोचिताःकर्म्मबन्धनात ॥ ईदृशंतवसामर्थ्यं जानामिचनृपोत्तम ॥ ५२ ॥ पृथिव्यांदुष्करंकर्म्म यज्ञश्चैवविशेषतः ॥ योददादिमहाभाग स्वकीयंपुण्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ यमलोकोजितस्तेन देवलोकोजितस्तथा ॥ वरयोग्योसिराजेन्द्र सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५४ ॥ रविश्चन्द्र उवाच ॥ यदितुष्टस्सूर्य्यपुत्र वरंदातुंममेच्छसि ॥ ममयज्ञशतेनैव दानेनतपसातथा ॥ ५५ ॥ पापयोनिगतायेतु येच दुष्कृतकारिणः ॥ प्रयान्तुत्वत्प्रसादेन धर्म्मराजशिवालयम् ॥ ५६ ॥ इमंवरमहंमन्ये प्रसादःक्रियतांमयि ॥ यमउवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्र सत्यधर्म्मपरायण ॥५७॥ प्राप्नुहित्वंपरंलोकं सत्येनानेनसुव्रत ॥ यतस्तेमोचिताःसर्वाः कश्म

में बड़े दुष्करकर्म को आपने किया और विशेषसे यज्ञको किया है महाभाग ! जिसने अपनी उत्तमपुण्य को देदिया ॥ ५३ ॥ उसने यमलोक को जीतलिया उसी प्रकार देवलोक को जीतलिया इससे हे राजेन्द्र ! आप वरदान के योग्यहो मैंने आपसे यह सत्य कहा है ॥ ५४ ॥ तब राजा रविश्चन्द्र बोले कि हे सूर्यपुत्र ! आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करतेहो तो हमारे सौयज्ञों से व दान और तपस्यासे ॥५५॥ पापके करनेवाले या पापयोनि में पड़ेहुये जो जीवहों हे धर्मराज ! वे सब आपके प्रसादसे शिवजी के स्थानको जावें ॥ ५६ ॥ बस हम इसी वरको चाहते हैं आप मेरे ऊपर दयाकरें तब यमराज बोले कि हे सच्चेधर्म में तत्पर ! हे

राजेन्द्र ! ऐसाही हो ॥ ५७ ॥ हे सुव्रत ! आपने इस सत्यापन से तुम उत्तमलोक को प्राप्तहोवो जिससे सब पापयोनियों को तुमने कष्टसे छोड़ादिया है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! सैकड़ों क्षत्रिय या और भी हजारों जीव जिनको आपने पापसे उद्धार किया है उनकी गिन्ती नहीं है ॥ ५६ ॥ बड़ी २ भुजावाले धर्मराज श्रेष्ठ राजासे ऐसे कहकर और देवता व दैत्यों से नमस्कार कीगई अपनी सवारीपर सवार होकर ॥ ६० ॥ अपने मकान को चलेगये और हे राजन् ! नारद व पर्वत भी चलेगये हे नरसत्तम ! उस अशोकवनिकामें अस्सी लाख तीर्थहैं ॥ ६१ ॥ हे अनघ ! अशोकवनिका में विद्यमान होरहे तीर्थोंको आपसे कहा उनके सुनने व कहने से हजार

त्तात्पापयोनयः ॥ ५८ ॥ क्षत्रियाश्शतशोराजन्नन्येचैवसहस्रशः ॥ पापात्समुद्धृतायेच तेषांसङ्ख्यानविद्यते ॥ ५९ ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठं धर्म्मराजोमहाभुजः ॥ कामिकंयानमारुह्य सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६० ॥ ययौस्वभवनंराजन्नारदःपर्वतस्तथा ॥ तस्यामशीतिलक्षाणि तीर्थानांनरसत्तम ॥ ६१ ॥ अशोकवनिकायान्तु कीर्तितानितवानघ ॥ श्रवणात्कीर्तनात्तेषां गोसहस्रफलंभवेत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽशोकवनिकावर्णनोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथातःकथयिष्यामि तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ रेवायाउत्तरेकूले पुरंवागीश्वराभिधम् ॥ १ ॥ वागुर्नामनदीतत्र रेवयासहसङ्गता ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २ ॥ वागीशातत्रचामुण्डा दानवक्षयकारिणी ॥ मणिभद्रोवीरभद्रस्तथान्येशतशोनृपाः ॥ ३ ॥ बभूवुर्मुक्तशापास्ते तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ तिलपिण्डप्रदा

गोदानोंका फल होता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽशोकवनिकावर्णनोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके बाद पापों के नाश करनेवाले और तीर्थको हम कहेंगे नर्मदा के उत्तरवाले तटपर वागीश्वर नाम का पुर है ॥ १ ॥ वहां वागु नामकी नदी नर्मदा के साथमें मिली है उसमें स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर नहीं होतेहैं ॥ २ ॥ वहां दानवों के नाश करनेवाली वागीशानाम की काली रहती हैं इस तीर्थके प्रभावसे मणिभद्र, वीरभद्र तथा और भी सैकड़ों राजा शापसे छूटगये यहां तिलोंके सहित पिण्डों के देनेसे पितरों की परम

गति होती है ॥ ३।४ ॥ सूर्य्यवंश में इन्द्रके बराबर ताकतवाले श्रीमान् अयोध्याके मालिक चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्तजी हुये ॥ ५ ॥ जोकि धन व अन्नसे युक्त, भय और दरिद्र से रहित होतेहुये उन राजाके होनेपर सब प्रजा बड़े आनन्द से युक्त होतीहुई ॥ ६ ॥ उन्होंने नर्मदा और वागुनदीके सङ्गममें उत्तमयज्ञको किया उसयज्ञमें ब्रह्माआदि सब देवता व इन्द्र और विष्णुआदि देवता आतेहुये॥ ७ ॥ और गणेशजीके सहित महादेवजी भी प्रत्यक्ष हुये लोकपाल, मरुत, चन्द्रमा, सूर्य तथा ध्रुव ॥ ८ ॥ नक्षत्र, योग, सिद्ध और सोमआदि सब आतेहुये मुनियों के सहित वशिष्ठ तथा जनकपुर के राजा जनक ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब बुलायेगये मित्र और वरुण

नेन पितॄणांपरमागतिः ॥४॥ ब्रह्मदत्तश्चक्रवर्त्ती सूर्य्यवंशेमहीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ५ ॥धनधान्यसमायुक्तो भयदारिद्र्यवर्जितः ॥ प्रजास्तस्मिन्महीपाले सर्वाअपिमुदान्विताः ॥ ६ ॥ इष्टःक्रतुवरस्तेन नर्म्मदावागुसङ्गमे ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वाः शक्रविष्णुपुरोगमाः ॥ ७ ॥ प्रत्यक्षश्चमहेशानो गणेश्वरसमन्वितः॥लोकपालाश्चमरुतश्चन्द्रादित्यौध्रुवस्तथा ॥ ८ ॥ ऋक्षाणियोगसिद्धाश्च सोममुख्याश्चसर्वशः ॥ वशिष्ठोमुनिभिस्सार्द्धं विदेहाधिपतिस्तथा ॥ ९ ॥ एवमाद्याःसमाहूता मित्रावरुणएवच ॥ सर्वेहिरण्मयास्तत्र यज्ञयूपाश्चमण्डपाः॥ १० ॥दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञभूमिर्महीभृतः॥ स्वारोचिषेन्तरेराजन्नादिकल्पेकृतेयुगे ॥ ११ ॥ गवांशतसहस्राणि हेमभारान्वितानिच॥ हयानांश्यामकर्णानामयुतंसाग्रमेवच ॥ १२॥दन्तिनामयुतंचैव घण्टाभरणभूषितम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च भक्ष्यभोज्यान्यनेकधा ॥१३॥ एवंराजाब्रह्मदत्तःसर्वभूपालसत्तमः ॥ यज्ञंप्रवर्तयामास सर्वसम्भारसंभृतः ॥१४॥

भी बुलायेगये वहां सब यज्ञके खम्भे, व मण्डप सोनेही के थे ॥ १० ॥ राजा ब्रह्मदत्तजी की यज्ञभूमि चालीस कोसतक होतीहुई हे राजन् ! यह वृत्तान्त पहले कल्पके स्वारोचिष मन्वन्तर के सत्ययुग में हुआथा ॥११॥ सोनेके भारसे लदीहुई एक लाख गौवें, कुछ अधिक दशहजार श्यामकर्णवाले घोडे ॥ १२ ॥ घण्टाआदि जेवरों से सजेहुये दशहजार हाथी, मणि, माणिक, मोती और अनेकतरह के चबाने व खानेलायक अन्न ॥ १३ ॥ इस प्रकार सब राजाओं मे अत्युत्तम राजा ब्रह्म-

दत्तजी सब सामानसे युक्तहो यज्ञको रचतेहुये ॥ १४ ॥ वेदके शब्दोंसे व गाने व बाजाओं के शब्दोंसे युक्त, अनेक सवारियों पर सवार देवताओं के गणोंने राजा ब्रह्मदत्तजीकी स्तुतिको किया ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तजी की यज्ञसे व वागीशके प्रसादसे व नर्मदा के प्रसाद से प्रेतलोग बड़ी तृप्तिको पातेहुये ॥ १६ ॥ तब राजा युधिष्ठिर जी बोले कि ब्रह्मदत्तजी का नर्मदा के तीर यज्ञका करना कैसे हुआ व प्रेतलोग कैसे छूटे और वे किस कर्म से प्रेतहुये थे ॥ १७ ॥ हे तपोधन ! यह सब आप हम से यथार्थ कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! तुम ठीक २ पुराने इतिहासको सुनो ॥ १८ ॥ कि कार्त्तिकी को ज्येष्ठपुष्कर जो पुष्करतीर्थ है उसमें जलसे

वेदनिर्घोषशब्देन गीतवाद्यरवेणच ॥ नानायानसमारूढैःस्तूयमानोमरुद्गणैः ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तस्ययज्ञेन वागीशस्य प्रसादतः ॥ नर्म्मदायाःप्रसादेन प्रेतास्तृप्तिंपराङ्गताः ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथन्तुब्रह्मदत्तस्य कल्पगातीरया जनम् ॥ कथंप्रेताविनिर्मुक्ताःप्रेतास्तेकेनकर्म्मणा ॥ १७ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायंकथयस्वतपोधन ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ शृणुराजन्यथान्यायमितिहासम्पुरातनम् ॥ १८ ॥ कार्त्तिक्यामुत्सवंप्राप्य पुष्करेज्येष्ठपुष्करे ॥ अयोगन्धःस्वयंभूश्च पुण्डरीकाक्षएवच ॥ १९ ॥ पितामहस्स्वयंतत्र सुरासुरगुरुःपिता ॥ काव्यश्चहोतृसदनौवेदगर्भःकृतध्वनः ॥२०॥ स्वस्तिकश्चैवसावित्रो वामदेवोघमर्षणः ॥ एतेचान्येचमुनयो ब्रह्मतेजोंशसम्भवाः ॥ २१ ॥ तथातेहियथाशक्त्या ऋतुकालाभिगामिनः॥गार्हस्थ्येचस्थिताभार्य्याभर्तृशुश्रूषणेरताः ॥ २२ ॥ चीरवल्कलधारिण्यः शाकश्यामाकभक्षिकाः ॥ विषण्णास्तेनधर्म्मेण सत्यस्ताअप्यगर्हयन् ॥२३ ॥ द्विजस्यषट्चकर्म्माणि यजनंयाजनंतथा॥ अध्यापनंचाध्य

को पायकर अयोगन्ध, स्वयम्भू, पुण्डरीकाक्ष ॥ १९ ॥ देवता और दैत्योंके गुरु व पिता आपही ब्रह्माजी, काव्य, होतृ, सदन, वेदगर्भ, कृतध्वन ॥ २० ॥ स्वस्तिक, सावित्र, वामदेव और अघमर्षण ये व और भी ब्रह्मतेज व अंशों से पैदाहुये मुनिलोग आये और वहीं रहतेरहे ॥ २१ ॥ वे सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार ऋतुसमय में अपनी स्त्रियों के ग्रहण करनेवाले रहे और उनकी स्त्रियांभी गृहस्थ के धर्ममें स्थित अपने पतियों की सेवामें लगी रहतीरहीं ॥ २२ ॥ चीर व भोजपत्रों की पहरनेवाली और शाक व सांवांआदि की खानेवालीरहीं अब वे स्त्रियां उस वानप्रस्थधर्म से दुःखित होरहीं तो यद्यपि वे पतिव्रताथीं पर उस क्लेशमे अपने पतियों की

निन्दा करनेलगीं ॥ २३ ॥ स्त्रियोंने कहा कि ब्राह्मण के छह कर्म होतेहैं यज्ञकरना १ यज्ञकराना २ वेदपढ़ना ३ वेदपढ़ाना ४ दानदेना ५ दानलेना ६ ॥ २४ ॥ और स्त्रियोंको गहने व कपड़ोंका पहिरना और अपने पतियों की सेवाकरना यही कर्म है हे राजन्! इस प्रकार स्त्रियोने अपने पतियोंकी निन्दाकी ॥ २५ ॥ तब उनके वे पति डरगये और सब आश्चर्य को प्राप्तहुये व उदासमुहँवाले होगये उसीसमय में एक राजा हरिश्चन्द्र रहे जिनके समान दूसरा राजा न हुआहै और न होगा ॥ २६ ॥ जिसने अपने दानसे चराचरों के सहित तीनो लोकोंको जीतलिया वे राजा सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र को जातेहुये ॥ २७ ॥ तब वे सब ब्राह्मण भी धनके लोभसे मोहित होरहे सो पुष्करतीर्थ को छोड़कर अपनी स्त्रियों व पुत्रोंके सहित हजारों मुनिलोग ॥ २८ ॥ दानलेने की इच्छा से जहां राजा हरिश्चन्द्र थे वहां पहुँचगये तब

यनं दानञ्चैवप्रतिग्रहः ॥ २४ ॥ भूषणंपरिधानञ्च योषितांभर्तृसेवनम् ॥ एवंचगर्हिताराजन्योषिद्भिःपतयस्तथा ॥ २५ ॥ भीतास्तेविस्मितास्सर्वे विषण्णवदनास्तथा ॥ हरिश्चन्द्रःपुराराजानभूतोनभविष्यति ॥ २६ ॥ दानेननिर्जितंयेन त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ २७ ॥ त्यक्त्वातेपुष्करंतीर्थं धनलोभेनमोहिताः ॥ सहस्रसंख्यामुनयः सभार्य्यास्ससुताश्चते ॥ २८ ॥ यत्रराजाहरिश्चन्द्रःप्रतिग्रहविलिप्सया ॥ मुनीनाहहरिश्चन्द्रोमुदापरमयायुतः ॥ २९ ॥ धन्यामेसफलायात्राकुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ क्षुधार्त्तादुःखिताश्चैव बालावृद्धाःकृशातुराः ॥ ३० ॥ वल्कलाजिनवस्त्राश्च यौवनेप्रेतरूपिणः ॥ यन्नोयूयमभिप्राप्ताः पत्नीपुत्रैश्चसंयुताः ॥ ३१ ॥ उवाचवचनंराजा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ आदेशोदीयतांमह्यं किंकरोमिभवत्कृते ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाददौश्रीमानेकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ लक्षंलक्षंहिर

राजा हरिश्चन्द्र बड़े आनन्द से युक्त मुनियों से बोले ॥ २९ ॥ कि सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्रकी यह मेरी यात्रा धन्य है और सफलहुई क्योंकि जिससे क्षुधासे विकल, दुःखित, बालक, वृद्ध और बीमार, भोजपत्र व मृगचर्म के जिनके कपड़े हैं और जवानी में प्रेतोंके ऐसे रूपोंको धारण किये स्त्री व पुत्रोंके सहित आपलोग हमारे तीर प्राप्तहुयेहो ॥ ३० । ३१ ॥ फिर साष्टाङ्ग प्रणामकर ब्राह्मणों से राजा वचन बोले कि आपलोग मुझको आज्ञादेवें मैं आपलोगोंके वास्ते क्या करूं ॥ ३२ ॥ ऐसे कहकर श्रीमान् राजा हरिश्चन्द्रजी एक २ को जुदे २ एक २ लाख अशर्फियां तथा हजार २ गौवें, हजार २ घोड़े, सौ २ हाथी, सोनेके हाता व सोनेके फाटकवाले

सात २ चौकवाले रमणीक महल और भी अनेक तरहके भोगोंको देतेहुये जैसे कुबेरजी आपही देवें वे सब ब्राह्मण दानको लेकर कालान्तर में जब मरे तब बड़े भयङ्कर लम्बेओठोंवाले व लम्बे अण्डकोशोंवाले और डरावने मुहँवाले प्रेतरूप होगये दानलेने के प्रभाव से ब्राह्मण का नरकमें गिरना ज़रूरही होताहै ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ अब वे ब्राह्मण अपने पहले जन्मकी सुध करनेवाले अकेले बाहर अपने को शोचते हैं और कहतेहैं कि हमारी स्त्री, पुत्र, सेवक और भाई लोग कोई दानके लेनेसे नहीं जले सब पहलेहीकी तरह बनेहैं और हमलोग अकेलेही जलगये जैसे आगसे वृक्ष जलजावें ॥ ३७ । ३८ ॥ राजाओंके दानलेने से

एयस्य तथागावःसहस्रशः ॥ ३३ ॥ सहस्रंतुरगाणांच दन्तिनांशतमेवच ॥ सप्तभौमान्गृहान्रम्यान्हेमप्राकारतोरणान् ॥ ३४ ॥ नानाविधविलासांश्च यथाधनपतिःस्वयम् ॥ कल्पान्तरेमृताजाताः प्रेतरूपाभयङ्कराः ॥३५॥ लम्बोष्ठालम्बवृषणा विकृताननसंयुताः ॥ प्रतिग्रहप्रभावेण द्विजस्यपतनंध्रुवम्॥ ३६ ॥जातिस्मराःस्वंशोचन्ति एकाकिनास्तुतेबहिः ॥ नभार्य्यानचमेपुत्रा नभृत्यानचबान्धवाः ॥ ३७ ॥ नतेप्रतिग्रहैर्दग्धा यथापूर्वंतथैवच ॥ वयमेकाकिनोदग्धा वृक्षाइवहविर्भुजा ॥ ३८ ॥ राजप्रतिग्रहैर्दग्धानप्ररोहन्तिमानवाः॥ वैश्वानरेणदग्धानां पुनर्जन्मप्रजायते॥३९॥ नमातानपितापुत्रो द्रविणंनचबान्धवाः ॥ यमदूतैर्गृहीतानांधर्म्मएकःसहानुगः ॥ ४० ॥ शोचित्वासुचिरंकालं भार्य्यापुत्रविवर्जिताः ॥ भ्रमित्वाचमहींसर्वां पुष्करंतीर्थमागताः ॥ ४१ ॥ प्रेतरूपान्मुनीन्दृष्ट्वा विषादंपरमंगतः ॥ तानुवाचमुनिश्रेष्ठः कथंप्रेतत्वमागताः ॥ ४२ ॥ प्रेताऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रःसत्यधर्म्मस्सूर्यवंशेमहीपतिः॥अयोध्याधिपतिःश्रीमा

जलेहुये मनुष्य फिर कभी नहीं जमते हैं और आगसे जलीहुई चीजोंका फिर जमना होता है ॥ ३९ ॥ यमदूतों से पकडेगये हमलोगों के माता, पिता, पुत्र, धन और भाई ये कोई सहायक नहीं हैं एक हमारा धर्मही सहायकहै ॥ ४० ॥ इसतरह स्त्री और पुत्रोंसे रहित वे लोग बहुत कालतक शोचकर और सब पृथिवी में घूम कर पुष्करतीर्थ को आतेहुये ॥ ४१ ॥ वहां नारदजी प्रेतरूपवाले उन मुनियोंको देखकर बडे विषादको प्राप्तहुये तब मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी उन मुनियों से बोले कि तुमलोग प्रेतभावको कैसे प्राप्तहुये ॥ ४२ ॥ तब प्रेत बोले कि सच्चेधर्मवाले, अयोध्याके मालिक, देवताओं के बराबर ताकतवाले, सूर्यवंशमें श्रीमान्, राजा हरि-

श्चन्द्रजीहुये ॥ ४३ ॥ उन राजाका दान सूर्यग्रहणमें हमलोगोंने लिया इसीसे हे मुने! हम सब ब्रह्मर्षिलोग प्रेतभावको प्राप्तहुये ॥४४॥ हे ब्रह्मन्! यह आप से कहा अब हमलोगोंका इस योनिसे छुटकारा कियाजावे क्योंकि आप तीनोंकालके तत्त्वके जाननेवाले, ब्रह्माके पुत्र और तपस्याके खजानाहो ॥ ४५ ॥ तब श्रीमान् नारदजी उन तपोधनों से वचन बोले कि किसी पुण्यवाले दिव्यपर्व कार्त्तिकी के समयमें ४६ ॥ महादेवजी ने पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से पूर्वकाल में कहाथा वहीं स्कन्दके कहेहुये पुराण को हमने भी सुनाहै ॥ ४७ ॥ उसमें कहाहै कि हे नृप! नर्मदाको छोड़कर और पापोंके नाश करनेको कौन समर्थ होसक्ती है हे विप्रो। यद्यपि गङ्गा

न्देवतुल्यपराक्रमः ॥ ४३ ॥ तस्यप्रतिग्रहोऽस्माभिराप्तस्सूर्यग्रहेस्थिते ॥ तेनप्रेतत्वमापन्नास्सर्वेब्रह्मर्षयोमुने॥४४॥ एतत्तेकथितंब्रह्मन्मोक्षोस्माकंविधीयताम् ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञो ब्रह्मपुत्रस्तपोनिधिः ॥ ४५ ॥ उवाचवचनंश्रीमान्नार दस्तांस्तपोधनान् ॥ कस्मिन्नवसरेपुण्ये कार्त्तिक्यांदिव्यपर्वणि ॥ ४६ ॥ शिवेनकीर्तितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ श्रु तंमयैवतत्रैव पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४७ ॥ कान्यापापक्षयंकर्तुं शक्तारेवांविनानृप ॥ गङ्गाद्यास्सरितोविप्राः पुण्यती र्थास्तथापिच ॥ ४८ ॥ वागीशंचपुरंतत्र नर्म्मदातटमाश्रितम् ॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मोक्षणंतुभविष्यति ॥ ४९ ॥ उद्दे शंतुततोदत्त्वा नारदस्त्रिदिवंगतः ॥ तेपिप्रेतामहाभाग ध्यात्वाशिवमुमापतिम् ॥ ५० ॥ अभिजग्मुस्तमुद्देशं वागीशपुर मुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यशिवं हरिंभास्करमेवच॥५१॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मुक्तास्सर्वेपिकिल्बिषात् ॥ ब्रह्मयानंस मारुह्य ब्रह्मलोकंसमागताः ॥ ५२ ॥ प्रतपन्तियथादित्याब्रह्मतेजोवपुर्द्धराः ॥ तस्योपरिनरेशस्य पुष्पवृष्टिःपपात

आदि नदियां व और भी पुण्यवाले तीर्थ विद्यमान हैं तथापि वे नहीं समर्थ हैं ॥ ४८ ॥ नर्मदा के किनारे पर वागीशपुर है वहां ब्रह्मदत्त की यज्ञमें तुमलोगों का मोक्षहोगा ॥ ४९ ॥ ऐसे सूचनाको देकर तदनन्तर नारदजी स्वर्गको चलेगये हे महाभाग! वे प्रेतभी पार्वतीजी के पति महादेवजी का ध्यानकर ॥ ५० ॥ उसी उत्तम वागीशपुर को चलेगये वहां स्नानकर और महादेव, विष्णु और सूर्यका पूजनकर ॥ ५१ ॥ ब्रह्मदत्तकी यज्ञमें वे सब पापीलोग पाप से छूटगये ब्रह्माजीकी सवारीपर

सवारहोकर ब्रह्माजीके लोकको प्राप्तहो ॥ ५२ ॥ ब्रह्मतेजके शरीरको धरेहुये सूर्य्यके समान तपतेहैं, उस राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! यह आपसे कहागया जैसा कुछ पूर्वकाल में होताहुआ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंके फलको पाताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे वागीश्वराख्यानन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि दानलेना यह बड़ाभारी मगर है इससे ग्रसेहुये और लोभ व मोहसे मोहित होरहे ब्राह्मण घोरनरक में डूबते हैं जहां पड़कर फिर नहीं

वे ॥ ५३ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथावृत्तंपुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेवागीश्वराख्यानंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ प्रतिग्रहग्रहग्रस्ता लोभमोहविमोहिताः ॥ मज्जन्तिनरकेघोरे यत्रगत्वानानिर्गताः ॥ १ ॥ सफलावेदयज्ञाश्च तीर्थयात्राचभारत ॥ तथाक्लिश्यन्तिचात्मानं प्रतिग्रहपरानराः ॥ २ ॥ दाताचयाचकश्चैव कराभ्यामेवसूचितौ ॥ अधोगच्छेद्ग्रहीतातु दातागच्छतिचोर्द्धतः ॥ ३ ॥ सहस्रावर्तकंनाम तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नातस्यविधिवद्वृषोत्सर्गफलंभवेत् ॥ ४ ॥ आसप्तमंकुलञ्चैवपुनीतेनात्रसंशयः ॥ रेवायाउत्तरेकूले सहस्रायुधसंख्यया ॥ ५ ॥ ततश्चान्तेमहाभाग कारायावनमुत्तमम् ॥ अग्निष्टोमफलंयत्र स्नात्वास्वर्गंचगच्छति ॥ ६ ॥ रेवायाउत्तरेभागे

निकलसक्ते हैं ॥ १ ॥ हे भारत ! यद्यपि वेदोंमें कहीहुई यज्ञें व तीर्थयात्रा ये सब फलवाली हैं तथापि दानके लेनेवाले मनुष्य अपने आत्माको क्लेश देते है ॥ २ ॥ देनेवाले और लेनेवाले दोनों हाथोंसेही कामकरतेहैं परन्तु दानका लेनेवाला नीचेको जाताहै और देनेवाला ऊपरको जाताहै ॥ ३ ॥ सबपापोंका छोडानेवाला एक सहस्रावर्तकनाम का तीर्थ है उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले को वृषोत्सर्गका फल होताहै ॥ ४ ॥ और अपनी सातपीढ़ीतकको पवित्र करताहै इसमें कुछ संशय नहीं है यह तीर्थ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सौ धनुषका लम्बाहै ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! उसके अन्तमें कारा का वनहै वह बड़ा उत्तम है जहां अग्निष्टोमयज्ञ का फल

होताहै और स्नानकर स्वर्गको जाताहै ॥ ६ ॥ नर्मदा के उत्तरतरफ परमसुहावन तीर्थ सौगन्धिक नामका वनहै उसको पवित्र व्रतवाले ब्रह्मचारी, पितर, ब्रह्माआदि देवता, श्रेष्ठ तपस्वी, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व्व, किन्नर और नागोंने सींचाहै ॥ ७ । ८ ॥ उस वनमें पैठकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है तदनन्तर नदियों में उत्तम सरस्वतीनदी है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! वह देवताओं की कन्या है व उन्हीं के देखनेलायक है और महापवित्र कही गई है हे नृपते ! मनुष्य उसके जलमें स्नान करे ॥ १० ॥ और पितर व देवताओं का तर्पणकर अश्वमेधके फलको पाता है वहां ईशानाध्युषित नामका अतिदुर्लभ तीर्थ है ॥ ११ ॥ उसमें व्यतीपात व संक्रान्ति

तीर्थंपरमशोभनम् ॥ सौगन्धिकंवनंनाम ब्रह्मचारिशुचिव्रताः ॥ ७ ॥ सिषिचुःपितरस्तत्तु ब्रह्माद्यास्सुतपोधनाः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ प्रविश्यतद्वनंमर्त्यः सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ ततःसरस्वतीचास्ति नदीनामुत्तमानदी ॥ ९ ॥ लक्ष्यादेवसुताराजन्महापुण्याप्रकीर्त्तिता ॥ तत्रस्नानंप्रकुर्वीत मानवोनृपतेजले ॥ १० ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवानश्वमेधफलंलभेत ॥ ईशानाध्युषितंनाम तत्रतीर्थंसुदुर्लभम् ॥ ११ ॥ तत्रस्नात्वाव्यतीपाते संक्रान्तौग्रहणे नरः ॥ सहस्रकपिलादाने वाजिमेधेचयत्फलम् ॥ १२ ॥ सुगन्धाञ्छातकुम्भांश्च पञ्चयज्ञांश्चभारत ॥ अभिगम्य नरश्रेष्ठ स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १३ ॥ त्रिशूलाख्यन्तुतत्रैवतीर्थमासाद्यभारत ॥ तत्राभिषेकंयःकुर्य्यादर्चयेत्पितृदैवतम् ॥ १४ ॥ गणेशत्वंसलभतेत्यक्त्वादेहंनसंशयः ॥ ततोगच्छेन्महाराज ब्रह्मस्थानमनुत्तमम् ॥ १५ ॥ रेवायाउत्तरे कूले कामभोगफलप्रदम् ॥ ब्रह्मोदमितिविख्यातंप्रकाश्यंभुविभारत ॥ १६ ॥ तत्रसप्तर्षयःप्राप्ताःस्नानार्थंभरतर्षभ ॥

और ग्रहण में मनुष्य स्नानकर हजार कपिलागौवों के देनेमें व अश्वमेध में जो पुण्य होता है उसको पाताहै ॥ १२ ॥ और हे नरश्रेष्ठ, भारत ! सुगन्ध व शातकुम्भ और पञ्चयज्ञनाम के तीर्थोंमें जाकर स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ १३ ॥ हे भारत ! फिर वहीं त्रिशूलनाम के तीर्थको पाकर उसमे जो स्नान करता है और पितर व देवताओं का पूजन करता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य देहको छोड़कर गणों के राज्यको पाताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है हे महाराज ! तदनन्तर सबसे उत्तम ब्रह्मस्थान को जावे ॥ १५ ॥ नर्मदाके उत्तरतट मे मनमाने भोगोका देनेवाला ब्रह्मोदनामसे प्रसिद्ध तीर्थ है हे भारत ! वह पृथिवीमे प्रकाश करनेके लायकहै ॥ १६ ॥

हे भरतर्षभ ! वहां स्नान करने के वास्ते सातों ऋषि प्राप्तहुये हे भारत ! और भी मुनियों में श्रेष्ठ कपिञ्जल, हव्यवाह ॥ १७ ॥ भगवान् देवयान और महामुनि विश्वावसु ये सब इस तीर्थ के माहात्म्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हुये ॥ १८ ॥ और यहांपर श्राद्ध के देनेसे पितालोग ब्रह्माजीके पुरको प्राप्त हुये तदनन्तर एक गूलर का वृक्षहै विधिसे उसका दर्शनकर ॥ १९ ॥ तपस्या से पाप जिसके जलगये ऐसा मनुष्य अन्तर्द्धान को पाता है हे महाराज ! तदनन्तर लोकों के कल्याण करनेवाले शङ्करजीको प्राप्तहोवे ॥ २० ॥ अँधियालेपाखकी चौदसिको महादेवजी के समीप जाकर सब कामोंको पाताहै और निश्चय करके स्वर्गलोकको जाता

कपिञ्जलोमुनिश्रेष्ठोहव्यवाहश्चभारत ॥ १७ ॥ भगवान्देवयानश्च विश्वावसुमहामुनिः ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥ पितरःश्राद्धदानेन प्रयाताब्रह्मणःपुरम् ॥ उदुम्बरस्यकृत्वातु विधिवद्दर्शनंततः ॥ १९ ॥ अन्तर्द्धानमवाप्नोति तपसादग्धकिल्बिषः ॥ ततोगच्छेन्महाराज शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ २० ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामभिगम्यवृषध्वजम् ॥ लभतेसर्वकामांश्च स्वर्गलोकंहिगच्छति ॥ २१ ॥ नर्म्मदायाम्यभागेतु गोप्याद्गोप्यतरंमहत् ॥ सिद्धलिङ्गंमणिमयंनतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ २२ ॥ नागेन्द्रसुरसिद्धैश्च नागकन्याभिरर्च्यते ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां शङ्करेकुरुनन्दन ॥ २३ ॥ वसूनामाश्रमंपुण्यं मुनीनांब्रह्मचारिणाम् ॥ शिवभक्तिपराणाञ्च कन्दमूलफलाशिनाम् ॥ २४ ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिस्तिलतोयप्रदानतः ॥ मुदापरमयायुक्तो दातायातिशिवालयम् ॥ २५ ॥ ध्रुवोधरश्चसोमश्च सावित्रश्चानलोनिलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोष्टौप्रकीर्तिताः ॥ २६ ॥ शङ्करस्यप्रसादेन दिविदेवत्वमागताः ॥ क

है ॥ २१ ॥ और नर्मदा के दक्षिणतरफ गुप्तसे अतिगुप्त, बड़ाप्रभाववाला, मणियों से बनाहुआ सिद्धलिङ्ग है उसको मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २२ ॥ वह नागोंके राजा, देवता, सिद्ध और नागोंकी कन्याओं से पूजाजाता है हे कुरुनन्दन ! शङ्करजी में सवाकरोड़ तीर्थ हैं ॥ २३ ॥ वहीं वसुनामके देवताओंका और कन्द, मूल व फलोंके खानेवाले शिवके भक्त ब्रह्मचारी मुनियोंका भी पुण्य आश्रम है ॥ २४ ॥ वहां तिल और जलके देनेसे पितरोंकी अक्षयतृप्ति होतीहै और तिलोदक देनेवाला पुरुष बडेआनन्द से युक्त शिवके स्थानको जाता है ॥ २५ ॥ ध्रुव, धर, सोम, सावित्र, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहेगये हैं ॥ २६ ॥ सो सब

महादेवजी के प्रसाद से स्वर्गमें देवताहुये अब नर्मदा के उत्तरतरफ में अत्युत्तम सोमतीर्थ है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोक मे पूजित होताहै हे नृपोत्तम ! तदनन्तर सप्तसारस्वत तीर्थको जावे ॥ २८ ॥ हे पुण्यकीर्ते ! अब ब्रह्माके कियेहुये स्तोत्रको सुनो ब्रह्माजी बोले कि वाणी व शब्दोंके स्वामी वासुदेव हमारी नित्यही गतिहोवें ॥ २६ ॥ सबकहीं प्राप्तहोनेवाले, देवताओं के मालिक, बोलनेवाले, जीवोंके अन्दर रहनेवाले, होमके करनेवाले, स्वर्गके बैठनेवाले, सब के ईश्वर,वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३० ॥ स्वाहा,स्वधा और वषट्काररूपवाले, शाकल्यके खानेवाले,ऋग्वेद,यजुर्वेद और सामवेद जिनकी मूर्त्तियांहैं ऐसे वासुदेव

ल्पगासौम्यभागेतु सोमतीर्थमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्स्वर्गलोकेमहीयते ॥ सप्तसारस्वतंतीर्थं ततोगच्छे न्नृपोत्तम ॥ २८ ॥ ब्रह्मणाचकृतंस्तोत्रं पुण्यकीर्तेनिशामय ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाक्पतिर्वचसांनित्यं वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ २९ ॥ हंसःसुरेशोवक्तावावसूनामन्तरावसन् ॥ होतादिविषदीशानो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३० ॥ स्वाहाकारःस्वधा कारो वषट्कारोहविष्यभुक् ॥ ऋङ्मूर्तिर्यजुषांमूर्तिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३१ ॥ क्षेत्रज्ञःपरमःसूक्ष्मोजगतांतारको हरिः ॥ ईश्वरोहृदयावासो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३२ ॥ श्रवण्यःश्रवणोपायः पुण्यश्लोकश्शुचिश्रवाः ॥ वरदोवासु देवोग्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३३ ॥ पुरुषःपुण्डरीकाक्षःपुराणोभुवनेश्वरः ॥ आदित्यान्तर्गतोवह्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३४ ॥ कंसकालियहन्ताच सुबलोबलमर्दनः ॥ शिशुपालनिहन्ताग्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३५ ॥ कालनेमिनिहन्ता

हमारी गतिहोवें ॥ ३१ ॥ शरीरके जाननेवाले, बहुत सूक्ष्म, संसारके तारनेवाले व हरनेवाले,सबके मालिक,सबके हृदयमें बसनेवाले,वासुदेव हमारी गति होवें॥३२॥ सुननेलायक और सुनने के कारण, पवित्र यशवाले व पवित्र कानोंवाले, वरके देनेवाले,जीवरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३३ ॥ शरीरोंमें रहनेवाले, सफेदकमल से नेत्रोंवाले, सबसे पुराने, चौदहो भुवनों के मालिक, सूर्यके भीतर रहनेवाले, अग्निरूपसे देवताओंके यज्ञमें बुलायेजानेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३४ ॥ कंस व कालियनागके, मारनेवाले, अच्छे बलवाले, बलनाम दैत्यके मारनेवाले व शिशुपालके मारनेवाले, अग्निरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३५ ॥ कालनेमि

के नाश करनेवाले, व्यापकरूपवाले, समयपर यमराजके भी नाश करनेवाले, सैकड़ों दैत्योंके शरीरोंके नाश करनेवाले वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३६ ॥ कंकासुर और मधुकैटभके नाश करनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदा जिनके हाथोंमेंहै ऐसे वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३७ ॥ सफेद रङ्गवाले, जलके सोनेवाले, सबमें रहनेवाले, पापोंका नाश करनेवाला है नाम जिनका, सबसे अधिक ऐश्वर्यवाले और अपने वचनकी सच्चीपालनाके करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३८ ॥ इन्द्रियोंके स्वामी, इन्द्रके पालनेवाले,इन्द्रके छोटेभाई, गरुड़के सवार, हजारों नामोंवाले,धर्मके जाननेवाले,वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३९ ॥ शङ्खवाले,नन्दकनामकी तलवारके बाधनेवाले, चक्रवाले, शार्ङ्गधनुषवाले, गदाके धरनेवाले, धीरजवाले, अच्छीदेहवाले, बुद्धिवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४० ॥ सबसे भारी जगत्के खीचनेवाले

ग्निर्यःकालेनियतान्तकः ॥ शतासुरशरीरघ्नो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३६ ॥ कङ्कासुरनिहन्ताच मधुकैटभनाशनः ॥ शङ्खचक्रगदापाणिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३७ ॥ शुक्लःसलिलशायीच विष्णुःपापक्षयाह्वयः ॥ इन्द्रोवचनसत्पालो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३८ ॥ हृषीकेशश्चेन्द्रपाल उपेन्द्रोगरुडासनः ॥ सहस्रनामाधर्म्मज्ञो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३९ ॥ शङ्खीचनन्दकीचक्री शार्ङ्गधन्वागदाधरः ॥ धीरोवपुष्मान्मेधावी वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४० ॥ बृहत्सङ्कर्षणश्शम्भुः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ निपुणोलक्ष्मणश्शुद्धो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४१ ॥ त्रैकालिकस्त्रिकालज्ञस्त्रयीकर्तात्रिलोचनः ॥ त्रिसामादेवकीसूनुर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४२ ॥ अव्यक्तात्मामहात्माच अन्तरात्माजनार्दनः ॥ प्राणश्चेन्द्रियभूतात्मावासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४३ ॥ परमात्मापरंब्रह्म परमेशःपरागतिः ॥ परमेष्ठीपरंज्योतिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४४ ॥ विश्वात्मा

कल्याणरूप, आपही से प्रकट होनेवाले, सब प्राणियों के पैदा करनेवाले, जगत् के बनाने में प्रवीण, उत्तम लक्षणोंवाले, निर्मल, वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४१ ॥ तीनों कालों में रहनेवाले, तीनों कालोंके जाननेवाले, तीनों वेदोंके रचनेवाले, तीन नेत्रवाले, तीनों कालोंमें शान्तरूपवाले, देवकीके पुत्र वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४२ ॥ अप्रकटरूपवाले, महात्मा, सबके अन्तर्यामी, भक्तोंके मनोरथों के पूरे करनेवाले, प्राणरूप, इन्द्रिय और पृथिवीआदि भूतों के आत्मा, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म,मालिकोंके मालिक, परमगति, सबसे ऊंचीबैठकवाले, परमज्योतिःस्वरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४४ ॥ सब जगत् के आत्मा,

जगत् के बनानेवाले, जगत् के स्वामी, आत्मज्ञानी, आकाश और पृथिवी के रचनेवाले वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४५ ॥ हजारों शिरोंवाले, सब प्रकारके ऐश्वर्यों वाले, हजारों नेत्रोंवाले व हजारों पांवोंवाले और हजारों करोड़ों के धारण करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उत्तम वाणीवाले पूजन किये गये वागीश्वर परमेश्वर जनार्दन विष्णुभगवान् मुझ भक्तपर प्रसन्नहोवें ॥ ४७ ॥ जन्मसे लेकर आजतक जो कुछ मैंने पुण्यको कमायाहो हे पुरुषोत्तम! वह सब मेरा फल अटल होजावे ॥ ४८ ॥ इस स्तोत्रको हमेशा पाठ करनेवाले मनुष्य से परमेश्वर पूजित होजाते हैं और उसके पापों का नाश करदेते हैं व उसके फलको

विश्वकर्ताच विश्वस्यपतिरात्मवान् ॥ द्यावापृथिव्योःकर्ताच वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशीर्षाभगवान्सहस्राक्षस्सहस्रपात् ॥ सहस्रकोटिधारीवावासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४६ ॥ इतिवागीश्वरोवाग्मी पूजितःपरमेश्वरः ॥ भक्तस्यभगवान्विष्णुः प्रीयतांमेजनार्दनः ॥ ४७ ॥ जन्मप्रभृतियत्किञ्चिन्मयासुकृतमर्जितम् ॥ तत्समग्रंफलंचास्तु शाश्वतंपुरुषोत्तम ॥ ४८ ॥ इदमभ्यस्यतोनित्यं पूजितःस्यात्सकेशवः ॥ विनाशयतिपापानि प्रकाशयतितत्फलम् ॥ ४९ ॥ एषनिष्कण्टकःपन्था यत्रसम्पूज्यतेहरिः ॥ कुपथंतंविजानीयाद्यत्रनाराध्यतेहरिः ॥ ५० ॥ वासुदेवपरावेदा वासुदेवपराक्रिया ॥ वासुदेवात्मकाविप्रा वासुदेवपराश्रयः ॥ ५१ ॥ सर्वेदेवावासुदेवंयजन्ते सर्वेदेवावासुदेवात्प्रसूताः ॥ सर्वेषांवावासुदेवोपिदेवो नान्यत्किञ्चिद्वासुदेवातिरिक्तम् ॥ ५२ ॥ नान्यःपुण्यतरोदेवो नास्तिविष्णुपरंतपः ॥ नास्ति विष्णुपरंज्ञानं सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥ ५३ ॥ येपठन्तिनराभक्त्या विष्णुनामाङ्कितस्तवम् ॥ तेयान्तिवैष्णवंलोकं

देते हैं ॥ ४९ ॥ यही बेकांटे की रास्ता है जिसमें हरिभगवान् पूजेजावें व उसको कुमार्ग समझे जिसमें हरिभगवान् नहीं पूजेजाते हैं ॥ ५० ॥ वेद वासुदेवही को कहते हैं, कर्म वासुदेवहीके वास्ते हैं, ब्राह्मण वासुदेवही के रूप हैं, सब से बड़े आश्रय वासुदेवही हैं ॥ ५१ ॥ सब देवता वासुदेवहीको पूजते हैं सब देवता वासुदेवहीसे पैदाहुये हैं सबके देवता वासुदेवही हैं वासुदेवको छोड़कर और कोई चीजही नहीं है ॥ ५२ ॥ और कोई ऐसा पवित्र देवताही नहीं है विष्णु से परे कोई तपस्या नहीं है व विष्णुसे परे कुछ ज्ञान नहीं है और सब जगत् विष्णुका रूपहै ॥ ५३ ॥ विष्णुके नामोंसे चिह्नित इस स्तोत्रको जे मनुष्य भक्तिसे पढ़तेहैं वे सनातन परब्रह्म

रूप विष्णुके लोकको जातेहैं ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ब्रह्माजी के कियेहुये इस स्तोत्रको सुनकर योगनिद्रासे सोतेहुये लक्ष्मीजी से जगायेगये वे कृष्ण देव ॥ ५५ ॥ डरभूते, अनेक रूपवाले सब देवताओ को देखकर बोले कि तुम सबको क्या भय पैदा हुआ है जो हमारे देखने के वास्ते यहां आयेहो ॥ ५६ ॥ तब हे भारत ! विष्णुजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि हे जगन्नाथ ! आपके विना देवताओंको काटे ऐसे दैत्योंसे यहां रक्षा करनेवाला और कौनहै ॥ ५७ ॥ दानवों ने पृथ्वीको लपेट लिया है और स्वर्गको भी नाशकरदियाहै धर्म और काम आदिकों के देनेवाले यज्ञों व वेदों को नाश करदिया है ॥ ५८ ॥ दानवों के भारसे दबीहुई

परंब्रह्मसनातनम् ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदंदेवो ब्रह्मणःसमहात्मनः ॥ श्रियाप्रबोधितःकृष्णश्श यानोयोगनिद्रया ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वाब्रवीत्सुरान्सर्वान्नानारूपान्भयानकान् ॥ किमस्तिवःसमुत्पन्नंमांदिदृक्षुरिहागताः ॥ ५६ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा केशवंप्रतिभारत ॥ त्वांविनात्रजगन्नाथ कस्त्रातादेवकण्टकैः ॥ ५७॥ दानवैर्वेष्टिताधात्री स्व र्गश्चैवविनाशितः ॥ धर्म्मकामादिकायज्ञा वेदाविप्लावितास्तथा ॥ ५८ ॥ दनुभारभराक्रान्ता रसातलतलंगता ॥ ज टासुरश्चजाबालिर्दैत्योमयसुतस्तथा ॥ ५९ ॥ दशकोट्यस्तुदैत्यानां समग्रबलशालिनाम् ॥ शिवप्रसादयुक्तानां स्व र्गविप्लवकारिणाम् ॥ ६० ॥ तस्मात्प्रवर्तितंचक्रमुद्धरस्ववसुन्धराम् ॥ श्रुत्वावाक्यमिदंदेवो भयार्तंप्राणपीडितम् ॥ ६१ ॥ उवाचवचनंदेवा भयन्त्यजतदैत्यजम् ॥ अचिरेणैवकालेन हनिष्यामिमहासुरान् ॥ ६२ ॥ वाराहरूपमास्थाय प्रेषितंकल्पगाजले ॥ दंष्ट्राग्रेणधृताधात्री दानवानांक्षयःकृतः ॥ ६३ ॥ पुनःप्रवर्तितासृष्टिर्यथापूर्वंतथैवच ॥ ब्रह्माद्यामु

पृथ्वी पातालको चलीगई है जटासुर और मयदानव का लड़का जाबालिदैत्य ॥ ५९ ॥ व स्वर्गके तोडनेवाले, महादेवजीके प्रसादसे युक्त सबतरहकी ताक़तवाले दशकरोड़ दैत्योंका ॥ ६० ॥ चक्र इस समय में चलरहा है इससे आप पृथिवीका उद्धार करें विष्णुदेव इस वचन को सुनकर और भयसे विकल व प्राणों से पी- ड़ित ब्रह्माजी को देखकर ॥ ६१ ॥ वचनबोले कि हे देवताओ ! दैत्यों से पैदाहुये भयको तुम सब लोग छोड़देवो क्योंकि थोड़ेही कालमें हम दैत्योंको मारेंगे ॥६२॥ यह कहकर सुवर के रूपको धारणकर नर्मदा के जलमें पैठे अपनी बीरोंपर पृथ्वीको धरा व दानवों का नाश करदिया ॥ ६३ ॥ फिर भी पहलेकी तरह सृष्टि प्रवृत्त हुई

व आनन्दित हुये सब ब्रह्माआदि देवता स्वर्गको लौटआये ॥ ६४ ॥ हे राजन्! यह तुमसे वाराहक्षेत्र जो नर्मदाके तटमें है उसको कहा इसके सुननेव कहनेसे अश्व-मेधके फलको पाताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेवाराहमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ❁ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब देवताओं का रूप देवपथनाम का शुभतीर्थ है उसमें विधिसे स्नान करनेवाला सब यज्ञो के फलको पाताहै ॥ १ ॥ महीना२में जो कुशोंकी पूंछों से सोमयज्ञको करता है वह नर्मदा के जलसे पवित्र हुयेकी सोलहवीं कलाको नहीं पाताहै ॥ २ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार किया

दितादेवाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ६४ ॥ एतत्तेकथितंराजन् वाराहंकल्पगातटे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य हयमेधफलं लभेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे वाराहमहिमानुवर्णनोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोदेवपथंतीर्थंसर्वदेवमयंशुभम् ॥ तत्रस्नातश्चविधिवत्सर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ १ ॥ मासेमासेकुशाग्रेण सोमयागंकरोतियः ॥ सरेवाजलपूतस्य कलांनार्हतिषोडशीम् ॥ २ ॥ लिङ्गंदेवपथंनाम सुरासुरनमस्कृतम् ॥ श्रद्धयातद्दर्शनेनपितॄणांपरमागतिः ॥ ३ ॥ चैत्रेमासेचतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ स्नानार्थंसर्वतीर्थानि जग्मुःकर्तुञ्चसत्क्रियाम् ॥ ४ ॥ यद्देवलोकेदेवानामीप्सितञ्चनृपध्वज ॥ सहस्राणिमुनीन्द्राणां तस्मिञ्छिवमुपासते ॥ ५ ॥ चान्द्रायणपराःकेचिद्ब्रह्मकूर्चपरास्तथा ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहाराजलप्रियाः ॥६॥ अग्निहोत्रपरानित्यं तथाहुतहुताशनाः ॥ उपासतेदेवपथंसंसिद्धिपरमाङ्गताः॥७ ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ सहस्रयज्ञंपरमं

गया देवपथनामका लिङ्गहै श्रद्धासे उसके दर्शन करने से पितरों की परम गति होती है ॥ ३ ॥ चैत्रके महीने के दोनों पाखोंकी चौदसको उसमें स्नान व उसके सत्कार करने को सबतीर्थ आतेहैं ॥ ४ ॥ हे नृपध्वज! जो लिंग देवलोक में देवताओंको भी प्याराहै ऐसे उस शिवलिंगकी हजारों मुनीन्द्र उस स्थानमें उपासना किया करते हैं ॥ ५ ॥ कोई चान्द्रायण के करनेवाले हैं, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवालेहैं, कोई कन्द, मूल और फलोंके खानेवाले हैं, कोई जलाहार के करनेवाले हैं, कोई जलही जिनका प्याराहै ऐसे है ॥ ६ ॥ और कोई नित्य अग्निहोत्र के करनेवाले होम कियाहै अग्निमें जिन्होंने ऐसे है ये सबलोग देवपथ लिंगकी उपासना

करते परमसिद्धि को प्राप्तहुये हैं ॥ ७ ॥ अब पापोंके नाश करनेवाले और तीर्थको कहते हैं वह सब कामफलोंका देनेवाला महस्रयज्ञ नामका परमतीर्थ है ॥ ८ ॥ उसमें अगहन के महीने में एकादशी को जनार्दनजी का पूजनकर मनुष्य अपने कियेहुये हजारयज्ञों के फलको पाताहै ॥ ९ ॥ यमलोक को नहीं देखता है और पशुआदि योनियों को नहीं पाताहै इस तीर्थके प्रभावसे मनुष्य पापरहित होजाताहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे पुण्यवाला अत्युत्तम आख्यान कहागयाहै इस के सुनने व कहनेसे विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ जिसमें हैं ऐसे अच्छे शुक्लतीर्थ को जावे जिसमें स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य दश

सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८ ॥ एकादश्यांमार्गशीर्षे पूजयित्वाजनार्दनम् ॥ सहस्रयज्ञस्येष्टस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ९ ॥ नपश्येद्यमलोकञ्च तिर्य्यग्योनिंनगच्छति ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नरोविगतकल्मषः ॥ १० ॥ एतत्तेकथितंराज न्पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ ११ ॥ शुक्लतीर्थंततोगच्छेत्सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ यत्रस्नातोपिलभतेदशधेनुफलंनरः ॥ १२ ॥ शुक्लीकृतास्तेनदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां शुक्लतीर्थेव्यवस्थिता ॥ १३ ॥ अष्टहस्तप्रमाणञ्च शुक्लतीर्थंयुधिष्ठिर ॥ तत्रकालाग्निरुद्रश्च श्रीकण्ठश्चतथापरः ॥ १४ ॥ तैस्तैस्तपोभिरुग्रैश्च तत्रसिद्धिपराङ्गताः ॥ शुक्लतीर्थप्रभावेणमोदन्तेदिविदेवताः ॥ १५ ॥ शक्रोपिचपुराध्यच्च देवदेवमुमापतिम् ॥ रेवातोयेनसंस्नाप्य बिल्वपत्रैःसमार्चयत् ॥ १६ ॥ पौर्णमास्याममावस्यां सोमःसूर्य्यःप्रभावतीम् ॥ तत्रस्नातो

गोदानों के फलको पाताहै ॥ १२ ॥ व उसने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवआदि देवताओं को सफेद अर्थात् निर्मल करदिया है व सवाकरोडतीर्थ शुक्लतीर्थ में रहा करते हैं ॥ १३ ॥ हे युधिष्ठिर ! शुक्लतीर्थ आठहाथ का प्रमाणवाला है वहां कालाग्निरुद्र और दूसरे श्रीकण्ठभी रहतेहैं ॥ १४ ॥ और वहां उन २ उग्रतपस्याओं से व शुक्लतीर्थ के प्रभावसे बडी सिद्धिको पायेहुये देवतालोग स्वर्गमें आनन्द भोगतेहैं ॥ १५ ॥ अगिले जमाने में इन्द्रभी देवताओं के देवता पार्वतीजी के पतिको नर्मदा के जलसे नहलाकर बेलपत्रों से पूजाथा ॥ १६ ॥ पूर्णमासी व अमावस को ग्रह, नक्षत्र और ध्रुवमण्डल के सहित सूर्य व चन्द्रमाने वहा शुक्लतीर्थ में स्नान

किया इसीसे ये सब प्रकाश करनेवाले हुये ॥ १७ ॥ और इसी शुक्लतीर्थ के प्रभावसे देवता प्रकाश करते हैं वहां देवता और सिद्धोंसे सेवित पुण्यवाला कश्यप जीका आश्रम है ॥ १८ ॥ हे भारत! वहां दशहजार मुनिलोग आपही रहतेहैं उनमें कोई कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले हैं तथा कोई जलाहारी हैं॥१९॥ कोई शाकाहारी, कोई निराहारी, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवाले, कोई चान्द्रायणके करनेवाले और कोई महीनेभरतक उपास के करनेवाले हैं ॥ २० ॥ तेंतीस करोड़ ऋषिलोग शुक्लेश्वर की उपासना किया करतेहैं चन्द्रग्रहण व पूर्णमासी तिथिमें ॥ २१ ॥ वहां सब तीर्थ स्नान करनेको आतेहैं यह शिवजी ने कहाहै सूर्य-

ग्रहैःसार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलैः ॥ १७ ॥ तेनदेवाश्चदीव्यन्तेशुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ कश्यपस्याश्रमंपुण्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ १८ ॥ मुनीनामयुतंतत्र स्वयंतिष्ठतिभारत ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहारास्तथापरे ॥ १९ ॥ शाकाहारानिराहारा ब्रह्मकूर्चास्तथापरे ॥ चान्द्रायणपराःकेचिदन्येमासोपवासिनः ॥२०॥ ऋषिकोट्यस्त्रयस्त्रिंशच्छुक्लेश्वरमुपासते॥ राहुग्रस्तेतथाचन्द्रे पौर्णमास्यांतिथौतथा ॥ २१ ॥ आयान्तिसर्वतीर्थानिस्नातुमेतच्छिवोदितम् ॥ स्थानेश्वरेयत्फलंस्याद्राहुसूर्य्यसमागमे ॥२२॥ तत्फलंप्राप्नुयात्सर्वं शुक्लतीर्थेनसंशयः ॥ हेमधेनुधरादीनि रूप्यदागजास्तथा ॥ २३ ॥ एतद्दत्त्वामहाराज पुण्यसंख्यानविद्यते॥ धनदेनकुबेरेण देवगन्धर्वदानवैः ॥ २४ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे शुक्लतीर्थेमहेश्वरः॥चन्दनागुरुकर्पूरपुष्पमालाभिरर्चितः॥२५॥वितानध्वजमुख्यैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ अस्यतीर्थप्रभावेण यक्षराजोधनेश्वरः॥२६॥भोगानानाविधास्तेन सम्प्राप्तादिविदेवताः॥ सर्वतीर्थमयंतीर्थं सर्वदेवमयञ्चयत् ॥२७॥

ग्रहण में स्थानेश्वर में जो फल होता है ॥२२॥ शुक्लतीर्थ में उसी सम्पूर्ण फलको पाताहै इसमें संशय नहीं है सोना, गौवें, पृथ्वी, चांदी और हाथी ॥ २३ ॥ हे महाराज! इन चीजोंको देकर पुण्यकी गिन्ती नहीं होसक्ती है व धन देनेवाले कुबेर, देवता, गन्धर्व और दानवोंने ॥ २४ ॥ सूर्यग्रहण बिषे शुक्लतीर्थ में चन्दन, अगर, कपूर और फूलोंकी मालाओं से महादेवजीका पूजन किया ॥ २५ ॥ और चांदनी, ध्वजा व दियालियों के जलाने आदिसे भी पूजन किया तो इसी तीर्थ के प्रभाव से धनोंके व यक्षोंके मालिक कुबेर होतेहुये ॥ २६ ॥ और उनको तरह २ के भोग मिलतेहुये इसीतरह और भी देवता स्वर्गमें रहे जिससे कि यह तीर्थ सबतीर्थ व सब

देवताओं का रूपही है ॥ २७ ॥ हजारवर्षों से भी शुक्लतीर्थ का वर्णन करनेको सब देवताओं से भी शक्य नहीं है ऐसा स्कन्दपुराण में कहाहै ॥ २८ ॥ पापयोनि को जो प्राप्तहै अथवा पशुआदि की योनिमें जो पडाहै ब्राह्मण का मारनेवाला, दारूका पीनेवाला और महादेवजी के निर्माल्य का खानेवाला ॥ २९ ॥ इस तीर्थ के प्रभाव से उस पापसे छूटजाता है मनुष्य वहा स्नानकर और महादेवजी का पूजनकर ॥ ३० ॥ हे नरसत्तम ! सब देवता व दैत्योंके गणोंसे पूजाजाताहै हे राजन् ! यह बडे पापों का नाश करनेवाला तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३१ ॥ अगिले जमानेमें जिस तीर्थविषे ब्रह्माजीने यज्ञमें यज्ञेश्वरका पूजन कियाहै देवताओ के देवता

अपिवर्षसहस्रेण शुक्लतीर्थस्यवर्णनम् ॥ नशक्यतेसुरैःकर्तुं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ २८ ॥ पापयोनिगतोयश्च तिर्य्यग्योनिगतश्चयः ॥ ब्रह्महाचसुरापश्च शिवनिर्माल्यभक्षकः ॥ २९ ॥ मुच्यतेतेनपापेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ तत्र स्नानंनरःकृत्वा पूजयित्वावृषध्वजम् ॥ ३० ॥ सुरासुरगणैःसर्वैःपूज्यतेनरसत्तम ॥ एतत्तेकथितंराजन् महापातकनाशनम् ॥ ३१ ॥ पितामहेनयत्रेष्टो यज्ञेयज्ञेश्वरःपुरा ॥ स्तोत्रंकृत्वायथान्यायं देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३२ ॥ पूजयित्वातु शुक्लेशं ब्रह्मास्तोत्रमुदाहरत् ॥ नमःशिवायशान्ताय ज्ञानविज्ञानरूपिणे॥३३॥सूक्ष्मायसूक्ष्मरूपाय सर्वसूक्ष्मायहेतवे॥ सूक्ष्माणामपिसूक्ष्माय नमःसूक्ष्मतमायच ॥ ३४ ॥ दिव्यायदिव्यरूपाय दिव्यदेहायसेतवे ॥ दिव्यानामपिदिव्याय नमोदिव्यतमायच ॥३५॥ व्योमप्रभायभावाय अघोरायनमोनमः ॥ व्योमप्रमाणधामाय वामेशायनमोनमः॥३६॥

त्रिशूलधारी महादेवजी की यथार्थ स्तुतिकरके ॥ ३२ ॥ और शुक्लेशका पूजनकर ब्रह्माजी स्तोत्रको पढ़तेहुये कि ज्ञान और विज्ञानरूपवाले शान्तरूप शिवजीके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सूक्ष्म और सूक्ष्मरूपवाले,सब सूक्ष्मचीजो के एकहीकारण, सूक्ष्मोंसे भी सूक्ष्म, बहुतही सूक्ष्म,शिवजी के लिये नमस्कारहै ॥ ३४ ॥ दिव्य और दिव्यरूपवाले तथा दिव्य देहवाले, मर्यादाके सेतु, दिव्योंसे भी दिव्य, बड़ेही दिव्यके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ आकाश के तुल्य प्रकाशवाले सब जगत् जिन्हीसे होताहै ऐसे अघोररूपवालेके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै आकाशके तुल्य प्रमाणवालाहै स्वरूप जिनका ऐसे पार्वतीके स्वामीजीके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥३६॥

सबसे श्रेष्ठ, सबसे बडे मालिक, परमार्थवाली बातोंके कारण, सबसे बड़े, अखण्डमुक्त, बडेसे बड़ेके लिये नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ एक जिह्वावाले,दो जिह्वावाले, बहुतजिह्वावाले आपकेलिये नमस्कारहै वैसेही अनगिन्ती जिह्वावाले व तीननेत्रवालेके लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ ३८ ॥ पूजनेलायक, पूजनेलायकों से भी पूजने लायक और सब पूजनेलायकों के कारण, नाशरहित, नाशरहितरूपवाले और जो कभी नष्ट नहीं होते उनके भी कारणके लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ नित्योंमें भी नित्य ऐसे बडेही नित्यरूप शिवजी के लिये नमस्कार है सब तरहकी ताकतवाले और शक्तिही जिनका रूपहै, सब प्रकारकी शक्तियोंके मुख्यकारण ॥ ४० ॥ शक्ति-

परायपरमेशाय परमार्थिकहेतवे ॥ परायपरमुक्तायनमःपरतरायच ॥ ३७ ॥ एकजिह्वद्विजिह्वाय बहुजिह्वायते नमः ॥ तथैवासङ्ख्यजिह्वाय त्रिणेत्रायनमोनमः ॥ ३८ ॥ पूज्यायपूज्यपूज्याय सर्वपूज्यैकहेतवे ॥ नित्यायनित्यरूपाय नित्यनित्यैकहेतवे ॥ ३९ ॥ नित्यानामपिनित्याय नमोनित्यतमायच ॥ शक्तायशक्तिरूपाय सर्वशक्त्येकहेतवे ॥ ४० ॥ शक्तानामपिशक्ताय नमःशक्ततमायच ॥ शुद्धायसर्वशुद्धाय सर्वशुद्ध्येकहेतवे ॥ ४१ ॥ कालायकालरूपाय सर्वकालैकहेतवे ॥ कालानामपिकालाय नमःकालतमायते ॥ ४२ ॥ सर्वमन्त्रशरीराय सर्वमन्त्रैकहेतवे ॥ मन्त्राणामपिमन्त्राय नमोमन्त्रतमायच ॥ ४३ ॥ अप्रमेयमहेशाय ईशानायनमोनमः ॥ योगाययोगरूपाय योगपूरुषतेनमः ॥ ४४ ॥ एककण्ठद्विकण्ठाय बहुकण्ठायतेनमः ॥ असङ्ख्यकण्ठयुक्ताय नीलकण्ठायतेनमः ॥ ४५ ॥ अनन्ता

वालोंमें भी शक्तिवाले ऐसे जो बड़ेही शक्तिवाले शिवजीहैं तिनके लिये नमस्कारहै व शुद्धरूपवाले,सबसे शुद्ध, सबतरहकी निर्मलताके मुख्यकारणके लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ काल, कालरूपवाले, सबतरह के कालोंके मुख्यकारण, कालोंके भी काल ऐसे बडेही कालरूप आप के लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ सब मन्त्र जिन का शरीर हैं, और सब मन्त्रोंके एकही कारण, मन्त्रोंके भी मन्त्र ऐसे बड़ेही मन्त्ररूप शिवजीके लिये नमस्कारहै ॥ ४३ ॥ नहीं जिनका प्रमाण है ऐसे बडे मालिक महादेवजी के लिये बार २ नमस्कारहै व हे योगपुरुष ! योग व योगरूपवाले आप के लिये नमस्कारहै ॥ ४४ ॥ एक कण्ठवाले, दो कण्ठवाले तथा बहुत कण्ठवाले

आपके लिये नमस्कार है अनेक कण्ठोंवाले, नीलकण्ठवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ४५ ॥ अन्त से रहित, बडे ईश्वर, संसार के नाश करनेवाले तथा संसार के बनानेवाले आपके लिये नमस्कार है हे महादेव! आपके लिये नमस्कार है हे सदाशिव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे महाशुद्ध ! आपके लिये नमस्कार है फिर भी आपके लिये बार २ नमस्कारहै भस्मही जिनका चन्दनहै ऐसे आपके लिये नमस्कार है खट्वाङ्गके धारणकरनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ ४७ ॥ सबके आत्मा आपके लिये नमस्कारहै संसारके स्वामी शिवजीके लिये बार २ नमस्कार है सबके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है सबलोग जिनसे मांगतेहैं ऐसे आपके लिये बार२ नमस्कारहै ॥ ४८ ॥ व्यक्त (खुलासा) रूप जिनका नहीं है ऐसे आपके लिये नमस्कार है और हमेशा बने रहनेवाले के लिये बार २ नमस्कार है व कैलाश में

यमहेशाय हर्त्रेकर्त्रेनमोस्तुते ॥ नमस्तेस्तुमहादेव नमस्तेस्तुसदाशिव ॥ ४६ ॥ नमस्तेस्तुमहाशुद्ध नमस्तुभ्यंनमो नमः ॥ नमोभस्माङ्गरागाय नमःखट्वाङ्गधारिणे ॥ ४७ ॥ सर्वात्मनेनमस्तुभ्यं विश्वेशायनमोनमः ॥ सर्वज्ञायनमस्तु भ्यं सनाथायनमोनमः ॥ ४८ ॥ अव्यक्तायनमस्तुभ्यं शाश्वतायनमोनमः ॥ कैलासवासिनेतुभ्यं नमःपातालवासि ने ॥ ४९ ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं लोकालोकञ्चराचरम् ॥ अपिवर्षसहस्रेण कःस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ ५० ॥ इतिस्तवे नदिव्येन यःस्तौतिपरमेश्वरम् ॥ विधूयसर्वपापानि रुद्रलोकेमहीयते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे श म्भुस्तुतिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ किमर्थंसंस्तुतोदेवो ब्रह्मणातेनतत्रवै ॥ शुक्लतीर्थमिदंकस्मादास्तेयत्रमहेश्वरः ॥ १ ॥ एतत्सर्वंसमा

वास करनेवाले और पाताल में वास करनेवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ४९ ॥ आपही से यह सब चराचर लोकालोक व्याप्त होरहा है ऐसे आपकी स्तुति करने को हजार वर्षोंसे भी कौन समर्थ होसक्ता है ॥ ५० ॥ जो इस दिव्य स्तोत्रसे परमेश्वर महादेवजीकी स्तुति करताहै वह सब पापोंको नाश करके रुद्रलोकमें पूजाजाता है॥५१॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशम्भुस्तुतिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिर जी बोले कि वहां पर उन ब्रह्माजी ने महादेवजी की भलीभांति स्तुति किस वास्ते की और यह शुक्लतीर्थ किस कारण से हुआ जहां महादेव जी रहते

हैं ॥१॥ हे महामुने ! यह सब पूंछनेवाले जो हमहैं तिनसे कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! स्वर्गकी देनेवाली सबसे उत्तम दिव्य कथाको तुम सुनो ॥२॥ जिसको सुनकर तीर्थ में स्नानकरने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सच्चे धर्म में तत्पर, धर्मात्मा, सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ व सब राजाओं में श्रेष्ठ, चक्रवर्ती, ययाति नामके राजाहुये दूसरे इन्द्र ऐसे वे राजा बड़े २ यज्ञों से देवताओंका पूजन करते हुये ॥ ३ । ४ ॥ जहां पुण्यवाली मधुमती नामकी नदी नर्मदा से मिली हुई है व जहां ऋत्विक् ब्राह्मणों के सहित राजाने यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ और जहां मध्येश्वरनाम का लिङ्ग साक्षात् महादेवही हैं वहां स्नानके करनेवाले स्वर्गको

ख्याहि पृच्छतोमेमहामुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यां स्वर्गार्हण्यामनुत्तमाम् ॥ २ ॥ यांश्रुत्वासर्वपापेभ्यस्तीर्थस्नानेनमुच्यते ॥ ययातिर्नामधर्म्मात्मा सत्यधर्म्मपरायणः ॥ ३ ॥ चक्रवर्तीनृपश्रेष्ठः सर्वधर्म्मभृतांवरः ॥ इयाजसमहायज्ञैश्शतक्रतुरिवापरः ॥ ४ ॥ नदीमधुमतीपुण्या रेवयायत्रसङ्गता ॥ यत्रयज्ञःसमारब्ध ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैःसह ॥ ५ ॥ मध्येश्वरंयत्रलिङ्गं स्वयंदेवोमहेश्वरः ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ६ ॥ चक्रेणविष्णुनातत्र घातितौमधुकैटभौ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ७ ॥ तिलतोयप्रदानेन पिण्डदानेनभारत ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८ ॥ तत्रयज्ञःसमारब्धो हरिशङ्करवर्जितः ॥ जटासुरस्तत्रदैत्यश्छिद्रंदृष्ट्वासमागतः ॥ ९ ॥ ततोविध्वंसितोयज्ञो दानवैर्बलदर्पितैः ॥ यज्ञयूपायज्ञपात्रं दशदिक्षुनिपातिताः ॥१०॥ भुक्तो हुतपुरोडाशः सोमपानञ्चतैःकृतम् ॥ प्रणष्टादेवताःसर्वादानवानांभयेनच ॥ ११ ॥ अष्टोत्तरशतंदेवा मृगरूपेणनिर्ग

जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर जन्म नहीं लेतेहैं ॥ ६ ॥ वहीं विष्णुजीने चक्रसे मधु और कैटभ को माराहै उन देवके पूजन करने से हजार गोदानोके फलको पाता है ॥ ७ ॥ हे भारत ! तिलों के सहित जलदान व पिण्डदान से उसके पितर जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक तृप्त रहते हैं ॥ ८ ॥ वहां विष्णु और महादेवके विना यज्ञ प्रारम्भ कियागया तब वहां जटासुर नामका दैत्य अपना मौका देखकर आताहुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त होरहे दैत्योने यज्ञको विध्वंस करदिया यज्ञके खम्भे व यज्ञके पात्र दशो दिशाओंमें फेकदियेगये ॥ १० ॥ उन दैत्योने होम कियेगये पुरोडाशको भोजन करलिया और सोमको भी

पीगये दानवोंके भयसे सब देवतालोग भागगये ॥ ११ ॥ एकसौ आठ देवता मृगोंके रूपसे निकलगये कुबेर यक्षके रूपसे अपनी पुरीको भागगये ॥ १२ ॥ भैंसेपर सवारहुये धर्मराज, हाथी पर चढ़ेहुये इन्द्र और मेंढ़ेपर सवार अग्नि चुपचाप निकलगये ॥ १३ ॥ और वहांपर आयेहुये वरुण भी मगरपर सवारहुये भागे और अपनी पुरी को चलेगये वायु मृगपर चढ़ेहुये भागे ॥ १४ ॥ ईशान लोकपाल भी महादेव के रूप से बैलपर चढ़ेहुये भागगये दानवों ने लोकपालों के हथियारोंको छीन लिया ॥ १५ ॥ तब हे भारत ! राजाओंमें श्रेष्ठ राजा ने कहा कि अकेले हम सवारी पर चढ़कर स्त्रीके सहित कैसे भागें ऐसे विचारकर धनुष को लिया ॥ १६ ॥

ताः ॥ धनदोयक्षरूपेण प्रणष्टःस्वपुरीङ्गतः ॥ १२ ॥ महिषारूढोधर्म्मराजो गजारूढश्शतक्रतुः ॥ मेषारूढोहव्यवाहो निर्गताव्रतमास्थिताः ॥ १३ ॥ वरुणश्चसमायातः प्रणष्टःस्वपुरींगतः ॥ मकरासनमारूढोवायुश्च मृगमाश्रितः ॥ १४ ॥ ईशानईशरूपेण वृषारूढःपलायितः ॥ अस्त्राणिलोकपालानां हृतानिदनुसम्भवैः ॥ १५ ॥ एकाकीयानमारुह्यकथंयामिस्त्रियासह ॥ चिन्तयित्वानृपश्रेष्ठश्चास्त्रंजग्राहभारत ॥ १६ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिचोक्त्वावै दैत्यसिंहंदुरासदम् ॥ नक्षत्रकुलसञ्जाता जातुदृष्ट्वापलायिताः ॥ १७ ॥ दशद्वादशवर्षाणि विमुखास्तवपूर्वजाः ॥ नचात्राह्वानितोरुद्रो रुद्रभागोनकल्पितः ॥ १८ ॥ यज्ञेस्मिन्यज्ञपुरुषो नाहूतोभगवान्हरिः ॥ तेनदोषेणमेयज्ञो दानवैश्चविनाशितः ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठो रुद्रंध्यात्वामहेश्वरम् ॥ रौद्ररूपंसमास्थायज्याघोषंघोषरूपिणम् ॥ २० ॥ जग्राहकोपान्निस्त्रिंशं निज

और दैत्यों में सिंह ऐसे बड़े जबरदस्त जटासुर से खड़ा हो २ ऐसे कहकर बोले क्षत्रियों के कुलमें उत्पन्नहुये शूरलोग कभी शत्रुओंको देखकर नहीं भागे ॥ १७ ॥ बल्कि तेरे पुरिखालोग दश व बारह वर्षोंतक हमलोगों से विमुख होकर भागेरहे और हमारे इस यज्ञ में महादेव का आवाहन नहीं कियागया और न रुद्रका भाग रक्खागया ॥ १८ ॥ और भगवान् यज्ञपुरुष विष्णु भी इस यज्ञ में नहीं बुलायेगये इसी दोष से यह हमारा यज्ञ दानवों से विध्वंसित करदियागया ॥ १९ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ राजा ने ऐसे कहकर और रुद्ररूप महादेवजीका ध्यानकर करालरूप धारणकर धनुष के रोदा की आवाज करतेहुये ॥ २० ॥ और बड़े क्रोधसे

तलवारको लिया उसीसे दैत्योंको मारा तदनन्तर ब्रह्माआदि सबदेवता बुलायेगये॥ २१ ॥ हे भारत ! तब वे सब देवतालोग राजासे बोले कि हे राजर्षे ! इससंसारमें आपके बराबर न कोई हुआहै व न होगा ॥ २२ ॥ तब देवताओंके वचनको सुनकर राजा ययाति वचन बोले कि महादेव और विष्णुकी दयामे फिरभी हमारा यज्ञ प्रवृत्त होगया ॥ २३ ॥ क्षत्रिय को संग्राम से भागना उचित नहींहै ऐसे कहकर फिर उसी प्रयोजन से त्रिशूल व पिनाक के धरनेवाले महादेवजी की स्तुति को किया ॥२४॥ तब वहां कालानल के तुल्य प्रभावाला पाताल से लिङ्ग प्रकट हुआ हे भारत ! उस लिङ्ग की दीप्ति से सब जगत् सफ़ेद करदियागया ॥ २५ ॥ फिर महादेवजी उन

घानचदानवान्॥आहूताश्चपुनर्देवाःसर्वेब्रह्मपुरोगमाः॥२१॥ऊचुस्तेवचनंदेवा राजानंप्रतिभारत॥त्वयासमोत्रराजर्षे न भूतोनभविष्यति ॥ २२ ॥ देवानांवचनंश्रुत्वा ययातिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ पुनःप्रवर्तितोयज्ञो हरविष्णुप्रसादतः ॥ २३ ॥ युक्तंपलायनंचात्र क्षत्रियस्यनविद्यते ॥ स्तुतस्तुतेनकार्य्येणशूलपाणिःपिनाकधृक् ॥ २४ ॥ पातालादुत्थितंतत्र लिङ्गंकालानलप्रभम् ॥ शुक्लीकृतंजगत्सर्वं प्रभयातस्यभारत॥२५॥वरंवृणीष्वभद्रन्ते तमुवाचवृषध्वजः ॥ ययातिरुवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुंममेच्छसि ॥ २६ ॥ इदंस्थानंनमोक्तव्यमुमयासहशङ्कर ॥ यज्ञदानादिकंसर्वमक्षयञ्चात्रसर्वदा ॥ २७ ॥ तपोहीनानरायेच दानहीनास्सकिल्बिषाः ॥ तेसर्वेत्वत्पुरंयान्तु शुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ २८ ॥ तमुवाचमहादेवः सत्यमेतत्त्वोदितम् ॥ यंयंकामयतेकामं तंतंप्राप्नोतिमानवः ॥ २९ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याल्लिङ्गस्यास्यसमर्चनात् ॥ नरकंनैवपश्यन्ति जन्मजन्मनिभारत ॥ ३० ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथास्कन्दशिवोदितम् ॥ तत्रयेनिहतादै

राजासे बोले कि तुम्हारा कल्याण हो तुम वर को मांगो तब राजा ययाति बोले कि हे देव ! जो आप मुझ से प्रसन्नहो और मुझे वरदेने की इच्छा करते हो ॥ २६ ॥ तो हे शङ्कर ! पार्वती के सहित आप इस स्थानको कभी न छोड़ें और यहां किया हुआ यज्ञ व दानआदि सब कर्म हमेशा अक्षय होवे ॥ २७ ॥ और तपस्या व दान से रहित पापी भी जो मनुष्य होवें वे सब इस शुक्लतीर्थ के प्रभाव से आप के पुर को जावे ॥ २८ ॥ तब उन राजा से महादेवजी ने कहा कि यह सब तुम्हारा कहना सत्य होगा यहां मनुष्य जिस२ कामनाको करेगा उस २ को पावेगा ॥ २९ ॥ इसतीर्थके माहात्म्यसे व इस लिङ्गके पूजन करनेसे हे भारत ! जन्म २ मे मनुष्य

नरक को नहीं देखतेहैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहागया जैसा कुछ स्कन्द व महादेवजी का कहाहुआ है वहां जो दैत्य मारेगये वे भी शिवजी के स्थान को प्राप्तहुये ॥ ३१ ॥ अपनी २ सवारीपर सवार देवतालोग स्वर्ग को चलेगये व बड़े आनन्द से युक्त स्तुति कियेजाते राजाओंमें श्रेष्ठ ॥ ३२ ॥ राजर्षि ययातिजी राज्य को करके स्वर्ग को चलेगये इस इतिहासको सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशुक्लतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्याः प्राप्तास्तेपिशिवालयम् ॥ ३१ ॥ स्वंस्वंयानंसमारूढाययुर्देवास्त्रिविष्टपम् ॥ मुदापरमयायुक्तः स्तूयमानोनृपोत्त
मः ॥ ३२ ॥ ययातिर्नामराजर्षी राज्यंकृत्वादिवङ्गतः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्क
न्दपुराणेरेवाखण्डेशुक्लतीर्थमहिमानुवर्णनोनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ दीप्तकेश्वरदेवेशं सिद्धलिङ्गंप्रकीर्तितम् ॥ नातःपरतरंकिञ्चित्त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ दर्शना
द्दीप्तदेवस्य स्पर्शनादर्चनात्तथा ॥ अनेकभाविकंघोरं क्षणमात्रेणनश्यति ॥ २ ॥ अर्चयेद्दिनमेकन्तु योमुहूर्तन्तुमान
वः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ ३ ॥ मोक्षदानामचामुण्डा विद्धिगौरींसरस्वतीम् ॥ स्तुतेसहस्रनाम्नावै
विष्णुनाब्रह्मणास्वयम् ॥ ४ ॥ स्तुतानितानिलिङ्गानि रेवायाउत्तरेतटे ॥ ॐकारश्चाधिदेवश्च बिल्वाम्रकमहेश्वरः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवताओं का ईश्वर दीप्तकेश्वर नामवाला सिद्धलिङ्ग कहागया है इस से दूसरा और कोई लिङ्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध नहीं है ॥ १ ॥ दीप्तकेश्वरदेव के दर्शन व स्पर्शन व पूजन से अनेक जन्मोंका घोरपाप क्षणमात्रमें नष्ट होजाता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य एक दिन व एक मुहूर्त्तभर पूजनकरे तो उस की इस घोर संसारसमुद्र में फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ वहां विद्यमान मोक्षदा और चामुण्डा नामकी दोनों शक्तियों को गौरी और सरस्वती जानो उन दोनों की आपही विष्णुजी और ब्रह्माजी ने हजार नामों से स्तुति की है ॥ ४ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले तट में विद्यमान जो लिङ्ग है उनकी भी स्तुति की है

वे लिङ्ग ये हैं कि ॐङ्कारनाथ, बिल्वाम्रकमहेश्वर ॥ ५ ॥ शुक्रेश्वर, भृगु, द्वीपेश्वर और त्रिलोचन वैवस्वतमन्वन्तर के प्राप्तहोने पर पहले कल्प के सत्ययुग में ॥ ६ ॥ पहिले विष्णु, दूसरे ब्रह्मा, तीसरे इन्द्र, चौथे सूर्य ॥ ७ ॥ पांचवें चन्द्रमा, छठें राहु, सातवें शनि, आठवें केतु ॥ ८ ॥ नवें अग्नि, दशवें दिशाओं का स्वामी, ग्यारहवें वैक्रम (वामनजीका), बारहवें वारुण (वरुणजी का) ॥ ९ ॥ तेरहवें वायु और चौदहवें कुबेर नामक थे और देवताओं के मालिक विष्णु, ब्रह्मा व देवता और दैत्यों करके अनेक तरह के इन पदों से पार्वतीजी के पति महादेवजी स्तुति कियेगये हैं कि (स्थिर) हमेशा रहनेवाले (स्थाणु) एकरस रहनेवाले (प्रभा) प्रकाशरूप (भानु) प्रकाश करनेवाले (प्रवर) श्रेष्ठ (वरद) वर के देनेवाले (वर) इच्छारूप ॥ १० । ११ ॥ (हरि) दुःखों के हरनेवाले

शुक्रेश्वरोभृगुश्चेति द्वीपेश्वरत्रिलोचनौ ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्तेआदिकल्पेकृतेयुगे ॥ ६ ॥ श्रीपतिःपरमाद्यश्च द्वितीयश्चापितामहः ॥ तृतीयोदेवराजश्च चतुर्थःसूर्य्यएवच ॥ ७ ॥ पञ्चमःकथितःसोमः षष्ठोराहुःप्रकीर्तितः ॥ सप्तमश्चशनिश्चैवत्वष्टमःकेतुकःस्मृतः ॥ ८ ॥ वैश्वानरश्चनवमो दशमश्चादिगीश्वरः ॥ एकादशोवैक्रमश्च द्वादशोवारुणस्तथा ॥ ९ ॥ त्रयोदशश्चवायुर्वैधनदश्चचतुर्दशः ॥ नानापदप्रकारेणस्तुतोदेवउमापतिः ॥ १० ॥ विष्णुनादेवनाथेनब्रह्मणाचसुरासुरैः ॥ स्थिरःस्थाणुःप्रभाभानुः प्रवरोवरदोवरः ॥ ११ ॥ हरिश्चहरिणाख्यश्च सर्वभूतहरःप्रभुः ॥ प्रवृत्तिश्चनिवृत्तिश्च नियमःशाश्वतोध्रुवः ॥ १२ ॥ श्मशानवासीभगवान्खेचरोगोचरस्तथा ॥ अभिवन्द्योमहाकर्म्मा तपस्वीभूतभावनः ॥ १३ ॥ उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ महारूपोमहाकायस्सर्वलोकप्रजापतिः ॥ १४ ॥ परात्मासर्वभूतानां विरूपो

(हरिण) हरियाले (सर्वभूतहर) सब प्राणियों के हरनेवाले (प्रभु) प्रभाव करनेवाले (प्रवृत्ति) संसार का कारण (निवृत्ति) दुनिया से छुटाने का कारण (नियम) अपने २ कामों में सब के लगानेवाले (शाश्वत) सदा रहनेवाले (ध्रुव) अटल ॥ १२ ॥ (श्मशानवासी) श्मशान के रहनेवाले (भगवान्) ऐश्वर्य्यवाले (खेचर) आकाश में चलनेवाले (गोचर) इन्द्रियों में रहनेवाले (अभिवन्द्य) वन्दना करने योग्य (महाकर्मा) बडे कामोंके करनेवाले (तपस्वी) तपस्यावाले (भूतभावन) प्राणियों के रचनेवाले ॥ १३ ॥ (उन्मत्तवेषप्रच्छन्न) मतवाले के वेषसे छिपेहुये (सर्वलोकप्रजापति) सब लोको की प्रजाओंके मालिक (महारूप)

श्रेष्ठरूपवाले (महाकाय) बड़े शरीरवाले (सर्वलोकप्रजापति) सब लोकों की प्रजाओं के पालनेवाले ॥ १४ ॥ (सर्वभूतानांपरात्मा) सब प्राणियों के मुख्यआत्मा (विरूप) अद्भुतरूपवाले (वामन) छोटे रूपवाले (मनु) विचार करनेवाले (लोकपाल) लोकों के पालनेवाले (पिहितात्मा) छिपेरूपवाले (प्रसन्न) खुश (भवनाशन) संसार से छुटानेवाले ॥ १५ ॥ (प्रवृत्त) गृहस्थरूप (महाङ्ग) बड़े अङ्गोंवाले (निचय) समष्टिरूपवाले (नियताश्रय) सबके एकही आधार (सर्वकाम) सब कामों से भरेहुये (स्वयम्भू) आपही से होनेवाले (आदिनादिकर) आदि व अनादि क करनेवाले (निधि) जीवों का स्थान ॥ १६ ॥ (सहस्राक्ष) हजारों नेत्रोंवाले (विरूपाक्ष) डरावने नेत्रोंवाले (सोम) सोमयज्ञका साधन (नक्षत्रसाधक) नक्षत्रों के सिद्ध करनेवाले (चन्द्र) आनन्द देनेवाले (सूर्य्य) प्रकाश करनेवाले (शनि) मन्द चलनेवाले (केतु) श्रेष्ठ (ग्रह) खींचनेवाले (ग्रहपति) ग्रहों के स्वामी (वर) श्रेष्ठ ॥ १७ ॥ (तपोद्रष्टा) तपस्या के साक्षी (बल) व्यापक (स्थातु) खडे रहनेवाले (मृगबाणार्पण) हरिणरूप यज्ञपर बाण के चलानेवाले (अनघ) पापरहित (महातपा) उत्तम तपवाले (दीर्घतपा) बडे तपवाले (आदि) सब से पुराने (दीनाऽनुकम्पन) दीनोंपर दया करनेवाले ॥ १८ ॥ (संवत्सरकर) साल के बनानेवाले (मन्त्र) गुप्तकहनेवाले (प्रमाण) सबूत (परमतप) बडी तपस्या का रूप (योगी) योगवाले (योगमहावीर्य्य) योगरूप ताक़तवाले (महारेता) बडेवीर्य्यवाले (हर) हरनेवाले (हर) भक्तों के अङ्गीकारकरनेवाले ॥ १९ ॥ (महाचेता) बडे चित्तवाले (सर्वज्ञ) सबके जाननेवाले (सबीज) कारणसहित (अपहर) प्रलयकरनेवाले (हर) दुष्टोंके नाशनेवाले (कमण्डलुधर) कमण्डलुके रखनेवाले (धन्वी) धनुषवाले (प्राणहस्त) सबकेप्राण जिनके हाथोंमेंहैं (प्रतापवान्) प्रतापवाले॥ २०॥

वामनोमनुः ॥ लोकपालोपिहितात्मा प्रसन्नोभवनाशनः ॥१५॥ प्रवृत्तश्चमहाङ्गश्चनिचयोनियताश्रयः ॥ सर्वकामःस्वयंभूश्च आदिनादिकरोनिधिः ॥ १६ ॥ सहस्राक्षोविरूपाक्षस्सोमोनक्षत्रसाधकः ॥ चन्द्रस्सूर्य्यश्शनिःकेतुर्ग्रहोग्रहपतिर्वरः ॥ १७ ॥ तपोद्रष्टाबलःस्थातुर्मृगबाणार्पणोनघः ॥ महातपादीर्घतपा आदिर्दीनानुकम्पनः ॥ १८ ॥ संवत्सरकरोमन्त्रः प्रमाणंपरमन्तपः ॥ योगीयोगमहावीर्य्यो महारेताहरोहरः ॥ १९ ॥ महाचेताश्चसर्वज्ञः सबीजोपहरोहरः ॥ कमण्डलुधरोधन्वी प्राणहस्तःप्रतापवान् ॥ २० ॥ अंशोनीशस्तथाशूली खट्वाङ्गीपट्टिशीतथा ॥ शुचिश्चशु

(अंश) जीवरूप (अनीश) जीव होने से परवश (शूली) त्रिशूलवाले (खट्वाङ्गी) खट्वाङ्गवाले (पट्टिशी) पट्टिशवाले (शुचि) पवित्र (शुचिरूप) प-
वित्ररूप (तेजः) तेजोरूप (तेजस्कर) तेज के करनेवाले (निधि) सर्व पदार्थों के स्थान ॥ २१ ॥ (उष्णीषी) पगड़ीवाले (सुवक्त्र) सुन्दर मुहँवाले (उदक्य
जलमें रहनेवाले (वितन) अतिविस्तार करनेवाले (हरि) सूर्यरूप (हरिनेत्र) सूर्य जिनके नेत्र में हैं (सुतीर्थ) अतिपवित्र (कृष्ण) खींचनेवाले ॥ २२ ॥
(शृगालरूपी) सियार के समान रूपवाले (सर्वार्थ) सर्वप्रयोजनरूप (शुण्डी) गणेशरूप (शुद्ध) निर्मल (कमण्डलु) सबका आधार (अज) उत्पत्तिरहित
(गन्धमाली) खुशबूदारमालावाले (मृगरूपी) हरिणरूप (कपालभृत्) खप्पर के रखनेवाले ॥ २३ ॥ (ऊर्ध्वरेता) ब्रह्मचारी (ऊर्ध्वसाक्षी) परलोक के साक्षी
(ऊर्ध्वबाहु) खड़ी भुजावाले (नभःस्थल) आकाश व पृथिवीरूप (त्रिजटी) तीन चोटीवाले (निवास) जीवोंके रहनेका स्थान (रुद्र) रुलानेवाले (सेना-

चिरूपश्च तेजस्तेजस्करोनिधिः ॥ २१ ॥ उष्णीषीचसुवक्त्रश्च उदक्योवितनस्तथा ॥ हरिश्चहरिनेत्रश्च सुतीर्थःकृष्ण
एवच ॥ २२ ॥ शृगालरूपीसर्वार्थश्शुण्डीशुद्धःकमण्डलुः ॥ अजश्चगन्धमालीच मृगरूपीकपालभृत् ॥ २३ ॥ ऊर्ध्व
रेताऊर्ध्वसाक्षी ऊर्ध्वबाहुर्नभ स्थलः ॥ त्रिजटीचनिवासश्चरुद्रस्सेनापतिर्विभुः ॥ २४ ॥ अहश्चरोरात्रिचरस्सुवासश्चदि
शाम्पतिः ॥ राजहादैत्यहाचैव धातारूपगुणात्मकः ॥ २५ ॥ सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्म्मधरोहरः ॥ कालयोगीम
हानादः सर्ववासश्चतुष्पथः ॥ २६ ॥ दुर्वारप्रेतचारीच भूतचारीमहेश्वरः ॥ बहुभूतोबहुधनस्सर्वार्थोरुचिरागतिः ॥ २७ ॥

पति) सेनाके मालिक (विभु) व्यापक ॥ २४ ॥ (अहश्चर) दिनमें घूमनेवाले (रात्रिचर) रातमे घूमनेवाले (सुवास) अच्छास्थान (दिशाम्पति) दिशाओ के
स्वामी (राजहा) राजाओंके मारनेवाले (दैत्यहा) दैत्योंके मारनेवाले (धाता) धारण करनेवाले (रूपगुणात्मक) रूप व गुणोंके आत्मा ॥ २५ ॥ (सिंहशार्दूल-
रूप) सिंह व शार्दूल के ऐसे रूपवाले (आर्द्रचर्मधर) गीलेचमड़ेके धरनेवाले (हर) सबको प्राप्त (काल्योगी) समयपर योगी (महानाद) बड़ी आवाजवा-
ले (सर्ववास) सबका स्थान (चतुष्पथ) चारोंतरफ रास्तावाले ॥ २६ ॥ (दुर्वारप्रेतचारी) जबरदस्त प्रेतोंमे रहनेवाले (भूतचारी) प्राणियों मे रहनेवाले
(महेश्वर) बड़े ईश्वर (बहुभूत) बहुत से भूतोंवाले (बहुधन) बहुत धनवाले (सर्वार्थ) सब काम जिनसे होते हैं (रुचिरागति) उत्तमगति ॥ २७ ॥

(नृत्यप्रिय) नाच जिनको प्याराहै (नृत्यकर्ता) नृत्यकारी(नर्तक)नाचनेवाले (बलाहक) मेघरूप) (घोर) डरावने (महातपा) उत्तमतपस्वी (वास) सबमें बसने वाले (नित्य) सदा रहनेवाले (गिरिधर) पर्वतोंके धारण करनेवाले (नभः) आकाशरूप ॥ २८ ॥ (सहस्रभृत) हजारों भूतोंवाले (विज्ञेय) विशेषकरके जाननेलायक (व्यवसाय) सिद्धान्तरूप (निश्चय) निश्चयरूप (अमर्ष) क्रोधवाले (मर्षण) क्षमावाले (दक्ष) प्रवीण (दक्षक्रतुविनाशन) दक्षके यज्ञको विनाश करनेवाले ॥ २९ ॥ (दक्षयज्ञापहारी) दक्षके यज्ञको नाशनेवाले (सुमह) अच्छे उत्साहवाले (मध्यम) सबमें साधारणरूप (तेजोऽपहारी) शत्रुओं के तेज के नाश करनेवाले (बलिहा) अपने भागके लेनेवाले (मुदित) प्रसन्न (अर्चित) पूजेगये (भव) सब जगत् जिन्हीं से होताहै ॥ ३० ॥ (गम्भीरघोष) गहरी

नृत्यप्रियोनृत्यकर्ता नर्तकश्चबलाहकः ॥ घोरोमहातपावासो नित्योगिरिधरोनभः ॥ २८ ॥ सहस्रभूतोविज्ञेयो व्यवसायश्चनिश्चयः ॥ अमर्षोमर्षणोदक्षो दक्षक्रतुविनाशनः ॥ २९ ॥ दक्षयज्ञापहारीच सुमहोमध्यमस्तथा ॥ तेजोपहारीबलिहा मुदितश्चार्चितोभवः ॥ ३० ॥ गम्भीरघोषोगम्भीरो गभीरोहव्यवाहनः ॥ न्यग्रोधरूपोन्यग्रोध ऋक्षवर्णः प्रभुर्विभुः ॥ ३१ ॥ तीक्ष्णबाणश्चहर्यक्षो महेशःकर्म्मकालवित् ॥ दीक्षःप्रसादितोयज्ञस्समुद्रोवडवानलः ॥ ३२ ॥ हुताशश्चहुताशास्यः प्रसन्नात्माहुताशनः ॥ महातेजास्सुतेजाश्च विजयोजयएवच ॥ ३३ ॥ ज्योतिषामयनंसिद्धि

आवाजवाले (गम्भीर) बेथाह (गभीर) अथाह (हव्यवाहन) अग्निरूप (न्यग्रोधरूप) कैलासमें विद्यमान बरगद जिन्हींका रूपहै (न्यग्रोध) सब जगत् जिनकी नीचेकी शाखा ऐसाहै (ऋक्षवर्ण) नक्षत्ररूप (प्रभु) प्रभाववाले (विभु) समर्थ ॥ ३१ ॥ (तीक्ष्णबाण) पैनेबाणोंवाले (हर्यक्ष) सूर्य जिनके नेत्रोंमेंहैं (महेश) सबके मालिक (कर्मकालवित्) कर्मकाल के जाननेवाले (दीक्ष) सिखलानेवाले(प्रसादित) प्रसन्न कियेगये (यज्ञ) यज्ञरूप (समुद्र) समुद्ररूप (वडवानल) बड़वानलरूप ॥ ३२ ॥ (हुताश) होमीहुई द्रव्यके खानेवाले (हुताशास्य) अग्नि जिनका मुखहै (प्रसन्नात्मा) प्रसन्नमनवाले (हुताशन) अग्निरूप (महातेजा) बड़े तेजवाले (सुतेजा) अच्छे तेजवाले (विजय) विशेषकरके जीतिको प्राप्त (जय) उँचाई को प्राप्त ॥ ३३ ॥ (ज्योतिषामयनम्) प्रकाश करनेवाली

चीजोंका स्थान (सिद्धि) सिद्धिरूप (सन्धि) सुलहरूप (विग्रह) लड़ाईरूप (शिखी) चोटीवाले (दण्डी)दण्डवाले (जटी) जटावाले (ज्वाली) लपटवाले (मूर्तोद) मोह व अभिमान के नाश करनेवाले (दुर्बल) दुबले (बहिः) सबके बाहर ॥ ३४ ॥ (वैणवी) बांसके दण्डवाले (पापवेताल) पापोंको वेताल ऐसे (कालाग्नि) महाप्रलय के अग्निरूप (कालदण्डक) कालही जिनका दण्ड है (नक्षत्रनिग्रह) नाशरहित शरीरवाले (वृद्धि) बढ़तीरूप (अज) जन्मरहित (गन्धवह) वायुरूप (अग्रज) सब से जेठे ॥ ३५ ॥ (प्रजापति) प्रजाओंके मालिक (हरि) विष्णुरूप (बाहु) सबके लेचलनेवाले (विभाग) विशेषकर सब जिनको भजते हैं (सर्वतोमुख) चारोतरफ मुहँवाले (विमोचन) दुःखसे छोड़ानेवाले (सुरगण) देवता हैं गण जिनके (हिरण्यकवच) सोनहले बख्तरवाले (भव) सब जगत् जिन्हीं से होताहै ॥ ३६ ॥ (अरजः) निर्मल (धूलिधारी) भस्मके लगानेवाले (महाचारी) बड़े आचारवाले (श्रुतश्रवा) सुनागया है यश

स्सन्धिर्विग्रहएवच ॥ शिखीदण्डीजटीज्वाली मूर्तोदोदुर्बलोबहिः ॥ ३४ ॥ वैणवीपापवेतालः कालाग्निःकालदण्डकः ॥ नक्षत्रविग्रहोवृद्धिरजोगन्धवहोग्रजः ॥ ३५ ॥ प्रजापतिर्हरिर्बाहुर्विभागस्सर्वतोमुखः ॥ विमोचनस्सुरगणो हिरण्यकवचोभवः ॥ ३६ ॥ अरजोधूलिधारीच महाचारीश्रुतश्रवाः ॥ अनादिःसर्वभूतादिस्सर्वस्याद्यःपितागुरुः ॥३७॥ व्यालरूपोमहावासी हीनमालीतरङ्गवित् ॥ त्रिपदस्त्र्यम्बकोऽव्यक्तस्सर्वबन्धविमोचकः ॥ ३८ ॥ साङ्ख्यप्रसादोदुर्वासास्सर्वसाधुनिषेवितः ॥ प्रस्कन्दनोविभागश्च तुल्योयज्ञविभागवित् ॥ ३९ ॥ सर्ववासीसर्वचारी दुर्वासाभैरवोयमः॥

जिनका (अनादि) आदिरहित (सर्वभूतादि) सब प्राणियों की आदि (सर्वाद्य) सबके आदिरूप (सर्वपिता) सबके पिता (सर्वगुरु) सबके गुरु ॥ ३७ ॥ (व्यालरूप) सर्पों के ऐसे रूपवाले (महावासी) बडे स्थानवाले (हीनमाली) मुण्डोंकी मालावाले (तरङ्गवित) जगत्की तरंगों के जाननेवाले (त्रिपद) तीनोंलोक हैं स्थान जिनका (त्र्यम्बक) तीन नेत्रवाले (अव्यक्त) प्रकट नहीं (सर्वबन्धविमोचक) सब बन्धनों के छुड़ानेवाले ॥ ३८ ॥ (सांख्यप्रसाद) ज्ञानसे प्रसन्न होनेवाले (दुर्वासा) नङ्गे (सर्वसाधुनिषेवित) सब साधुओं से सेवा कियेगये (प्रस्कन्दन) प्रलय में जलके सुखानेवाले (विभाग) पृथक्रूप (तुल्य) सब में एकरस (यज्ञविभागवित) यज्ञोंके हिसाबके जाननेवाले ॥ ३९ ॥ (सर्ववासी) सबमें रहनेवाले (सर्वचारी) सब कहीं जानेवाले (दुर्वासा) दुर्वासारूप (भैरव) भैरवरूप (यम)

यमरूप (हिम) ठण्ढे (हिमकर) चन्द्ररूप (यज्ञ) यज्ञरूप (सर्वधाता) सब के धारण करनेवाले (बुधोत्तम) पण्डितों में उत्तम ॥ ४० ॥ (लोहिताक्ष) लाल नेत्रोंवाले (महाक्ष) बडी आंखोंवाले (विजयाख्य) विजय नामवाले (विशारद) बड़े प्रवीण (संग्रह) सबके ग्रहण करनेवाले (विग्रह) लडाई रूप (कर्म) कर्मरूप (सर्पराजविभूषण) शेष जिनका गहना हैं ॥ ४१ ॥ (मुख्य) सबमे श्रेष्ठ (विमुक्तदेह) जीवन्मुक्त (देहचारी) जीवरूप से सब देहो में चलनेवाले (कर्दम) कर्दमनामके प्रजापति (सर्वाचार) सब तरहके आचारवाले (प्रसाद) प्रसन्नतारूप (खेचर) आकाश में चलनेवाले (बलरूपधृक्) बल व रूपके धारण करनेवाले ॥ ४२ ॥ (आकाशवृत्तिरूप) शब्दरूप (निपात) सब जिसमें गिरते है (उरग) सर्परूप (खल) क्रूरस्वभाववाले (रौद्ररूप) भयानक रूपवाले (सुरादित्य) देवताओं में सूर्यरूप (वसुरश्मि) सबमें वास करनेवाला है तेज जिनका (सुवर्चस) अच्छे तेजवाले ॥ ४३ ॥ (वसुवेग) वायुके

हिमोहिमकरोयज्ञस्सर्वधाताबुधोत्तमः ॥ ४० ॥ लोहिताक्षोमहाक्षश्च विजयाख्योविशारदः ॥ संग्रहोविग्रहःकर्म्म सर्प्प राजविभूषणः ॥ ४१ ॥ मुख्योविमुक्तदेहश्च देहचारीचकर्दमः ॥ सर्वाचारःप्रसादश्च खेचरोबलरूपधृक् ॥ ४२ ॥ आकाश वृत्तिरूपश्च निपातउरगःखलः ॥ रौद्ररूपस्सुरादित्योवसुरश्मिस्सुवर्चसः ॥ ४३ ॥ वसुवेगोमहावेगो मनोवेगोनिशाचरः ॥ सर्वावासःश्रियावास आपदीशकलोहरः ॥ ४४ ॥ मुनिरात्मगतिर्लोकस्सहस्रवदनोविभुः ॥ यक्षीचयक्षराजश्च श्येनो दीप्तिर्विशाम्पतिः ॥ ४५ ॥ उन्मदोमदनाकारोप्यर्थानर्थकरोमहान् ॥ सिद्धयोगोपहारीच सिद्धस्सर्वार्थसाधकः ॥ ४६ ॥

समान वेगवाले (महावेग) बड़े वेगवाले (मनोवेग) मनके तुल्य वेगवाले (निशाचर) रात्रि में चलनेवाले (सर्वावास) सबका स्थान (श्रियावास) लक्ष्मीका स्थान (आपत) व्यापक (ईशकल) ईश्वरहै कला जिनकी (हर) सबको हरनेवाले ॥ ४४ ॥ (मुनि) विचारनेवाले (आत्मगति) आपही अपनी गति हैं (लोक) लोकरूप (सहस्रवदन) हजारमुखवाले (विभु) समर्थ (यक्षी) यक्षोंवाले (यक्षराज) यक्षोकेराजा (श्येन) बाजनामक पक्षीके तुल्य वेगवाले (दीप्ति) प्रकाशरूप (विशाम्पति) प्रजाओं के पति ॥ ४५ ॥ (उन्मद) मदवाले (मदनाकार) कामदेवके तुल्य रूपवाले (अर्थानर्थकर) प्रयोजन और अनर्थ के करने वाले (महान्) बड़े (सिद्धयोग) सिद्धहै योग जिनका (अपहारी) हरनेवाले (सिद्ध) सिद्धरूप (सर्वार्थसाधक) सबकामों के सिद्ध करनेवाले ॥ ४६ ॥

(भिक्षु) संन्यासी (भिक्षुरूप) भिक्षुरूपवाले (षण्णांविभुः) छह प्रकारके ऐश्वर्योंके स्वामी (मृदुत्वच) कोमल खालवाले (महासेन) बडी सेनावाले (विशाख) स्वामिकार्त्तिकरूप (यष्टिभाग) लाठी में बांधा जाताहै भाग जिनका (गवांपति) नन्दीके पालनेवाले ॥ ४७ ॥ (वज्रहस्त) वज्रहै हाथमें जिनके (विष्टम्भि) रोंकनेवाले (विष्ठ) बैठे (स्तम्भन) धारण करनेवाले (ऋक्ष) नक्षत्ररूप (रिपुकर) क्रुद्ध होनेसे शत्रुओंके बढ़ानेवाले (काल) कालरूप (मधु) वसन्तरूप (मधुकलोचन) महुआके ऐसे नेत्रोंवाले ॥ ४८ ॥ (वाचस्पत्य) बृहस्पतिरूप (वाजसेन) अन्नही जिनकी सेनाहै (नैष्ठ) समाधि करनेवाले (आश्रमसूचक) आश्रमो के चेतानेवाले (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (लोकचारी) लोकोंमें चलनेवाले (सर्वचारी) सब में चलनेवाले (सुरत्नवित्) अच्छेरत्नों के जाननेवाले ॥ ४९ ॥ (ईशान)

भिक्षुश्चभिक्षुरूपश्च विभुःषण्णांमृदुत्वचः ॥ महासेनोविशाखश्च यष्टिभागोगवाम्पतिः ॥ ४७ ॥ वज्रहस्तश्चविष्टम्भिर्विष्ठःस्तम्भनएवच ॥ ऋक्षोरिपुकरःकालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ४८ ॥ वाचस्पत्योवाजसेनो नैष्ठश्चाश्रमसूचकः ॥ ब्रह्मचारीलोकचारी सर्वचारीसुरत्नवित ॥ ४९ ॥ ईशानईश्वरःकालो निशाचारीत्वमेकधृक् ॥ अमितश्चाप्रमेयश्च नदीनदकरोऽव्ययः ॥ ५० ॥ नन्दीश्वरस्सुनन्दीच नन्दनोनन्दवर्द्धनः ॥ नागहारीविहारीच कालोब्रह्मविदांवरः ॥ ५१ ॥ चतुर्मुखोमहालिङ्गश्चतुर्लिङ्गस्तथैवच ॥ लिङ्गाध्यक्षस्सुराध्यक्षो कालाध्यक्षोयुगावहः ॥ ५२ ॥ उ

ईशानकोणरूप (ईश्वर) ऐश्वर्यवाले (काल) कालरूप (निशाचारी) रात्रिमें चलनेवाले (त्वम्एकधृक्) आपही एक सबके धारण करनेवाले हो (अमित) बेनाप (अप्रमेय) किसी प्रमाणसे नहीं जानेजाते (नदीनदकर) नदियां व नदोंके करनेवाले (अव्यय) नाशरहित ॥ ५० ॥ (नन्दीश्वर) नन्दीके मालिक (सुनन्दी) भलीभांति आनन्द देनेवाले (नन्दन) आनन्द देनेवाले (आनन्दवर्द्धन) आनन्द बढ़ानेवाले (नागहारी) नागोंकी माला धारण करनेवाले (विहारी) विहार करनेवाले (काल) समयरूप (ब्रह्मविदांवर) ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ ॥ ५१ ॥ (चतुर्मुख) चारमुखवाले (महालिंग) पूजाजाता है लिंग जिनका (चतुर्लिङ्ग) चारो वेदों में है स्वरूप जिनका (लिंगाध्यक्ष) लिंगोंमें आपही की पूजा होती है इससे लिंगोंके ईश्वर हो (सुराध्यक्ष) देवताओं के ईश्वर (कालाध्यक्ष) कालके ईश्वर

(युगावह) युगोंके धारण करनेवाले ॥ ५२ ॥ (उमापति) पार्वती के पति (उमाकान्त) पार्वतीजी के प्यारे (जाह्नवीधृतिमान्) गंगाके धरनेवाले (वर) श्रेष्ठ (सर्वार्थ) सब प्रयोजनरूप (सर्वभूतार्थ) सब प्राणियों के स्वार्थ (नित्य) सदा रहनेवाले (सर्वव्रत) सब व्रतोंवाले (शुचि) पवित्ररूप आपहो ॥ ५३ ॥ हे नाथ ! जो देव ब्रह्माआदि देवता, महर्षियोंसे नहीं जानेजाते ऐसे श्रेष्ठोंसे श्रेष्ठ,परमात्मा आप स्तुति करने योग्य कैसे होसक्तेहो ॥ ५४ ॥ हे परमेश्वर ! हमलोगोंकी जिह्वाकी चञ्चलता को आप क्षमाकरो और हे पुष्टिवर्द्धन ! स्वर्गवासी देवताओं का कल्याण करो ॥५५॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इस स्तोत्रको सुनकर श्रीमान् द्वीपेश्वर

मापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृतिमान्वरः ॥ सर्वार्थस्सर्वभूतार्थो नित्यस्सर्वव्रतश्शुचिः ॥ ५३ ॥ योनब्रह्मादिभिर्देवो ज्ञा यतेनमहर्षिभिः ॥ स्तोतव्यःसकथन्नाथ परमात्मापरात्परः ॥ ५४ ॥ जिह्वाचापल्यमस्माकं क्षमस्वपरमेश्वर ॥ शिवंकुरुष्वदेवानां स्वर्ग्याणांपुष्टिवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवः श्रीमान्द्वीपेश्वरःशिवः॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवान् प्रार्थयध्वंवरंसुराः ॥ ५६ ॥ देवाऊचुः ॥ यदितुष्टोमहेशानो देवानांवरदःप्रभुः ॥ तद्विनाशायदैत्या नां त्राताभवमहेश्वर ॥ ५७ ॥ पापकर्म्माधमश्चैव पञ्चलिङ्गानियोर्चयेत् ॥ सोपितांगतिमाप्नोति दुर्लभायामहाम खैः ॥ ५८ ॥ शक्रेणाभिष्टुतस्तत्र देवदेवउमापतिः ॥ पुरानाम्नांसहस्रेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ ५९ ॥ शिवप्रसादसम्प न्नो देवराजस्ततोभवत् ॥ धनदेनस्तुतस्तत्र देवोलक्षेश्वरःप्रभुः ॥ ६० ॥ मोक्षदानामगौरीञ्च तान्देवींविद्धिभारत ॥

महादेवजी हँसतेहुये देवताओंसे बोले कि हे देवताओ ! तुमलोग वरकोमांगो ॥ ५६ ॥ तब देवताबोले कि हे महेश्वर ! देवताओंको वरके देनेवाले प्रभु महेशान आप जो प्रसन्नहो तो दैत्योंके नाश करने के वास्ते देवताओं की रक्षा करनेवाले होवो ॥ ५७ ॥ पापकर्म का करनेवाला अधमभी जो मनुष्य पांचों लिंगोका पूजन करे तो वह भी उस गतिको प्राप्तहोवे जोकि बड़े यज्ञोंसे भी दुर्लभ है ॥ ५८ ॥ देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये देवताओ के देवता पार्वती के पति महादेवजी की पूर्व कालमें इन्द्रने भी वहां हजारनामों से स्तुतिको कियाहै ॥ ५९ ॥ तब महादेवजीके प्रसादसे युक्त इन्द्र देवताओंके राजा होतेहुये और वहां कुबेरने भी प्रभु लक्षेश्वर

देवकी स्तुति की है ॥ ६० ॥ हे भारत ! वहां मोक्षदानाम की जो शक्तिहै उसीको देवी पार्वतीजी जानो और देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियागया मोक्षेश्वर नामका सिद्धलिंग है ॥ ६१ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य भी पांचों लिंगों के पूजन से देवभावको प्राप्तहुये ॥ ६२ ॥ कुबेर, वायु, वरुण, निर्ऋति, वैवस्वत और नरकोंके राजा यमराज भी उसी पूजनसे अपने२ अधिकारोंको पातेहुये ॥ ६३ ॥ और उस लिंगके माहात्म्य से सूर्यके पुत्र यमराज बड़े यशवाले हुये वहां पूर्वकाल में औरोंने भी द्वीपेश्वर प्रभुकी स्तुतिकी है ॥ ६४ ॥ व वहीं भक्तिपूर्वक सहस्रनाम से चन्द्रमाने बहुत पूजनेलायक महादेवजी की स्तुतिकी इससे चन्द्रमा

मोक्षेश्वरंसिद्धलिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६१ ॥ सिद्धैर्विद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैःकिन्नरैर्नरैः ॥ देवत्वंसमनुप्राप्तं पञ्चलिङ्गसमर्चनात् ॥ ६२ ॥ कुबेरोमारुतश्चैव वरुणोनिर्ऋतिस्तथा ॥ वैवस्वतोयमश्चैव ततश्चनरकेश्वरः ॥ ६३ ॥ तस्यलिङ्गस्य माहात्म्यात्सूर्य्यपुत्रोमहायशाः ॥ अन्यैरभिष्टुतस्तत्र पूर्वंद्वीपेश्वरःप्रभुः ॥ ६४ ॥ भक्त्यानामसहस्रेण स्तुतःपूज्यतमश्शिवः ॥ सोमेनातोभवत्तत्र शम्भोश्शिरसिभूषणम् ॥ ६५ ॥ रोहिण्याभ्यर्चितागौरी सुभगातेनसाभवत् ॥ ऋक्षैर्योगतरैस्तद्वत्स्तुतोदेवःपिनाकधृक् ॥ ६६ ॥ ततस्तैर्भास्करेणैव नभःस्थलमलंकृतम् ॥ व्याधयःकालमृत्युश्च चित्रगुप्तश्चलेखकः ॥ ६७ ॥ तथाशक्रस्सुरगणैरेतैःपरिवृतःप्रभुः ॥ पापिष्ठानांमहारौद्रो धर्म्मिष्ठानांप्रसादवान् ॥ ६८ ॥ कोटयोष्टौचोर्ध्वकेशा रौद्राश्चविकृताननाः ॥ पतिव्रतासहस्रैश्च तथामासोपवासिभिः ॥ ६९ ॥ किलिकिलारवशब्दैश्च धर्म्मराजपुरोत्तमम् ॥ व्याप्तन्तुपरितःश्रीमदसंख्यातैर्मनोरमैः ॥ ७० ॥ श्रुत्वातेषांरवंसार्द्धं धर्म्मराजःसभासदैः ॥ श्वेत

महादेवजी के शिरका भूषण होताहुआ ॥ ६५ ॥ रोहिणी ने पार्वतीजी का पूजन किया इससे वह सौभाग्यवालीहुई इसीतरह नक्षत्र व योगोंने पिनाक के धरनेवाले महादेवजीकी स्तुतिकीहै ॥ ६६ ॥ इससे उन्होंने सूर्यके सहित आकाशको शोभित करदिया है रोग, कालमृत्यु, लिखनेवाले चित्रगुप्त ॥ ६७ ॥ तथा इन देवताओं के गणोंसे युक्त इन्द्रभी स्तुति करतेहुये जो प्रभुजी पापियों को बड़े डेरावने हैं और धर्मिष्ठों को बडे सीधे हैं ॥ ६८ ॥ जिनके पास खडेबालोंवाले, बडे डेरावने मुंहवाले, बड़े भयानक आठ करोड़ गण रहते हैं ऐसे यमराज का उत्तम पुर सब ओर हजारों पतिव्रता स्त्रियो व महीने २ भरतक व्रतोंके करनेवाले पुरुषों व उनके

किलकिलाहटवाली आवाजों व और भी पुण्यवालों के अगणित मनके रमानेवाले विमानों से भरजाता हुआ ॥ ६९ ।७० ॥ उनके शब्दको सुनकर अपने सभासदों के सहित सफेद कपड़ों को पहनेहुये व सफेदमाला व सफेदचन्दन को लगायेहुये धर्मराज ॥ ७१ ॥ बहुतजल्द पैदल वहां गये जहां वे लोग विमानों पर बैठेहुये थे दोनों हाथोंको जोड़कर उन पुण्यात्माओं से पूंछतेहुये ॥ ७२ ॥ कि अपनी शक्तिके अनुसार योगाभ्यास से धर्मोंमें उत्तम बड़े धर्मको आपलोगों ने कमाया है सो आप लोग किस देशसे आयेहो और कैसे पुण्यको कमाया है ॥ ७३ ॥ तब विमानों के सवार बोले कि कुरुक्षेत्र में हमलोगों ने तप किया और गंगामें विशेषकर कियाहै

वस्त्रपरीधानः श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ७१ ॥ पादचारीगतःक्षिप्रं यत्रतेयानसंस्थिताः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा पप्रच्छ शुभकर्म्मणः ॥ ७२ ॥ यथाशक्तेनयोगेन धर्म्मंधर्म्मोत्तरम्महत् ॥ कस्माद्देशात्समायाताः कथम्पुण्यमुपार्ज्जितम् ॥ ७३ ॥ विमानारूढाऊचुः ॥ कुरुक्षेत्रेतपस्तप्तं गङ्गायाञ्चविशेषतः ॥ सर्वेषामेवलोकानां द्वारन्तद्धिप्रतिष्ठितम् ॥ ७४ ॥ धर्म्माधर्म्मंतवबलं कारणंचेतितत्त्वतः ॥ वाराणसीप्रयागश्च गङ्गासागरसङ्गमः ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थंमहापुण्यं पुष्करन्नैमिषन्तथा ॥ केदारंभैरवञ्चैव तथारुद्रमहालयम् ॥ ७६ ॥ सरस्वतीरुद्रकोटिः प्रभासंशशिभूषणम् ॥ नानातीर्थसहस्रेषु दानयज्ञतपःकृतम् ॥ ७७ ॥ एतत्तेकथितंसर्वं सूर्य्यपुत्रमहायशः ॥ अन्येदृष्ट्वायथान्यायं धर्म्मराजंततस्तथा ॥ ७८ ॥ ऊचुस्सर्वेवचःश्लक्ष्णंधर्म्मराजंयथोदितम् ॥ नत्वंप्रभुःसुकृतिनांब्रह्माविष्णुःशिवःप्रभुः ॥ ७९ ॥ पापकर्म्म

क्योंकि वे गंगा तो सब लोकोंका द्वारही हैं ॥ ७४ ॥ धर्म व अधर्मही आपका बल है येही दोनों तत्त्व से सुख व दुःख के कारण हैं और भी बड़े बड़े पवित्रतीर्थ हैं जैसे काशी, प्रयाग, गंगासागरसङ्गम ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थ (गया), बडी पुण्यवाला पुष्कर तथा नैमिष, केदार, भैरव, रुद्रमहालय ॥ ७६ ॥ सरस्वती, रुद्रकोटि, प्रभास और शशिभूषण इत्यादि अनेक प्रकार के हजारों तीर्थों में हमलोगों ने दान, यज्ञ और तपस्या को किया है ॥ ७७ ॥ हे बडेयशवाले, सूर्यपुत्र ! यह अपना वृत्तान्त आपसे हमलोगोंने कहा तब उनमें से और लोग धर्मराज को न्यायपूर्वक देखकर ॥ ७८ ॥ सबलोग धर्मराज से यथोचित स्नेहवाले वचनको बोले कि आप पुण्य

वालोंके मालिक नहीं हो बल्कि उनके मालिक ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी हैं ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य पापकर्मों के करनेवाले हैं उनके राजा यमराज आपही हैं तब यमराज बोले कि हम कैलासको जाकर जबतक लौटआवें तबतक आपलोग ठहरें ॥ ८० ॥ हे राजन् ! ऐसे कहकर वे यमराज पर्वतोंमें उत्तम कैलासको जातेहुये जिस कैलास में शिवआदि देवता व पार्वती और स्वामिकार्त्तिक ये सब बैठे हैं ॥ ८१ ॥ और जहां सब देवतालोग देवताओं के देवता पार्वती के पति महादेवजी की स्तुतिकर रहे हैं व कोई उनके आगे नाचतेहैं और कोई उछलकर फिर गिरते हैं ॥ ८२ ॥ प्रचण्ड तेजवाले, स्तुति कियेजाते, ऐसे उन महादेवजी को देखकर देवताओं के

रतायेतु तेषांशास्तायमःस्वयम् ॥ यमउवाच ॥ गत्वाकैलासमायामि यावत्तावत्प्रतीक्ष्यताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्त्वाय यौराजन् कैलासंसनगोत्तमम् ॥ यस्मिञ्छिवाद्यास्तेसर्वे पार्वतीषण्मुखस्तथा ॥ ८१ ॥ स्तुवन्तिदेवताःसर्वा देवदेवमुमापतिम् ॥ नृत्यन्तिचाग्रतःकेचिदुत्पत्यनिपतन्तिच ॥ ८२ ॥ तंदृष्ट्वाताद्दशंशम्भुंस्तुवन्तंदीप्ततेजसम् ॥ स्तुवन्नामसहस्रेण देवदेवंपिनाकिनम् ॥ ८३ ॥ साष्टाङ्गंचनमस्कृत्य धर्म्मराजोब्रवीदिदम् ॥ येस्मत्पुरींसमायातास्तेषांकागतिरुच्यते ॥ ८४ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवो धर्म्मराजंयुधिष्ठिर ॥ अत्रप्रयान्तुतेसर्वे येरेवातीरवासिनः ॥ ८५ ॥ अन्यतीर्थनिवासाये भोगान्भुञ्जन्तुतेदिवि ॥ शिववाक्यंततःश्रुत्वा ब्रह्माविष्णुर्यथातथम् ॥ ८६ ॥ तुष्टादेवस्यवाक्येन सर्वदेवगणेश्वरः ॥ आगतःक्षणमात्रेण धर्म्मराजःपुरोत्तमम् ॥ ८७ ॥ शिवोक्ताःप्रेषितास्सर्वे शिवलोकंयुधिष्ठिर ॥ यथायथासमादिष्टास्ततोन्ये

देवता पिनाकधनुष के धरनेवाले महादेवजी की हजारनामों से स्तुति करतेहुये ॥ ८३ ॥ साष्टांग प्रणामकर धर्मराज यह बोले कि जो लोग हमारी पुरी में आयेहुये हैं उनकी क्या गति होना चाहिये ॥ ८४ ॥ तब हे युधिष्ठिर ! हँसतेहुये महादेवजी धर्मराज से बोले कि उनमें जो नर्मदातीर के रहनेवाले हैं वे सब यहां चलेआवें ॥ ८५ ॥ और जो और तीर्थों के रहनेवाले हैं वे स्वर्गमें भोगोंको भोगें तब महादेवजी के इस यथार्थ वचन को सुनकर ब्रह्मा व विष्णु और सब देवगणों के मालिक धर्मराज जी उस महादेवजी की बातसे बहुत प्रसन्न हुये फिर धर्मराज एक क्षणमात्र में अपने उत्तमपुर को आतेहुये ॥ ८६ । ८७ ॥ व हे युधिष्ठिर ! महादेवजी के कहेहुये सब

लोगोंको शिवलोक को भेजदिया और औरोंको जैसा २ हुक्म दियाथा उसीतरह वे भी सुखसे युक्त कर दियेगये ॥ ८८ ॥ पूर्वकल्प में कार्त्तिकी को देवताओं के समागम में मैंने इस वार्त्ता को देखाथा अब हे महाराज ! तदनन्तर उत्तम वैष्णवतीर्थको जावे ॥ ८९ ॥ सब पापोंका छुटानेवाला कोकिलानाम से वह तीर्थ प्रसिद्ध है उसको देवताओं के देवता जनार्दनजीने वैष्णवक्षेत्र कहाहै ॥ ९० ॥ हे भारत ! वहां सवा करोड़ तीर्थ रहते हैं जो मनुष्य वहां पवित्र एकादशी का व्रतकरके दियालियो को जलाता है ॥ ९१ ॥ उसकी इस कठिन मनुष्यलोक में फिर आवृत्ति नहीं होती है हे भारत ! बल्कि वह सब कामनाओं से भरेहुये उत्तम विमान से विचरता

पिशुभान्विताः ॥ ८८ ॥ पुराकल्पेमयादृष्टं कार्त्तिक्यांदेवतागमे ॥ ततोगच्छेन्महाराज वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ८९ ॥ कोकिलानामविख्यातं सर्वपापविमोक्षणम् ॥ वैष्णवंक्षेत्रमित्याह देवदेवोजनार्दनः ॥ ९० ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां तत्रास्तेचैवभारत ॥ उपोष्यैकादशींपुण्यां दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ ९१ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ सर्व कामसमृद्धेन विमानाग्रेणभारत ॥ ९२ ॥ असङ्ख्यकालिकातृप्तिःपितॄणांनात्रसंशयः ॥ विप्रेचतोषितेतत्र दानसङ्ख्यान विद्यते ॥ ९३ ॥ अत्रान्तरेत्यजेत्प्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ ९४ ॥ ध्रुवोध्रुवत्वंस्व र्गेतु तारातेजःसमुज्ज्वलन् ॥ मर्त्ययोनिषुसम्भूता भूतग्रामास्तथापरे ॥ ९५ ॥ अर्चनाद्देवदेवस्य दिविदेवत्वमाप्नुवन् ॥ देवपुण्यक्षयेमर्त्या भक्त्यापुण्यैश्चदेवताः ॥ ९६ ॥ स्वर्गमर्त्यप्रभेदोयं धर्म्माधर्म्मप्रभेदतः ॥ केनापितत्प्रकारेण पूजनी

है ॥ ९२ ॥ वहांपर श्राद्धआदि के करने से पितरों की बहुत कालतक तृप्ति होतीहै इस में कुछ संशय नहीं है वहांपर ब्राह्मण के प्रसन्न कियेपर दानकी गिन्ती नहीं रहती है ॥ ९३ ॥ इस क्षेत्रमें परवश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह दश हजारवर्षों तक विद्याधरों के पुरमें राजा होताहै ॥ ९४ ॥ यहीं के पुण्यसे राजा ध्रुव स्वर्गमें नक्षत्रों के तेजसे प्रकाश करतेहुये ध्रुवत्व (अटलभाव) को प्राप्तहुये हैं और मृत्युवाली योनियों में भलीभांति उत्पन्न हुये चारों प्रकार के जीव ॥ ९५ ॥ देवों के देव विष्णु के पूजन करने से स्वर्ग में देवभावको प्राप्तहुये देवताओं की पुण्यके क्षयहोने पर देवता मनुष्य होते हैं और मनुष्यलोग भक्ति व पुण्यसे देवता होते

हैं ॥ ९६ ॥ स्वर्ग और मनुष्यलोक का यह भेद धर्म और अधर्म के भेदसे हुआ है इससे किसी प्रकार से महादेवजी पूजनेलायक हैं ॥ ९७ ॥ भक्तिसे युक्त चित्तसे जैसे तैसे शिवके निमित्त कुछ देना चाहिये अरुन्धती साभरणी तथा सावित्री॥ ९८ ॥ अहल्या, मेनका, मरुत्वती और रम्भा तथा और भी अप्सराओं व देवताओं और सिद्धोंके गणों से महादेवजी पूजेगये हैं ॥ ९९ ॥ परन्तु हे भारत ! नर्मदा के तटमें रहकर जिसने महादेवजी का पूजन कियाहै निश्चयकरके उसीने बडेभोगों व मोक्षको पायाहै ॥ १०० ॥ महादेवजी की मायासे मोहित जो शिवजी का पूजन नहीं करता है उसको स्वर्ग और मोक्ष नहीं होते कैलास होनेकी तो बातही क्या है ॥ १ ॥

योमहेश्वरः ॥ ९७ ॥ यद्वातद्वाशिवेदेयं भक्तियुक्तेनचेतसा॥ अरुन्धत्यासाभरण्या सावित्र्याचतथातथा ॥ ९८ ॥ अहल्ययामेनकया मरुत्वत्याचरम्भया ॥ अप्सरोगणसङ्घैश्चसुरसिद्धगणैस्तथा ॥ ९९ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य पूजितोयेन शङ्करः ॥ तेनवैविपुलाभोगाः प्राप्तामोक्षश्चभारत ॥ १०० ॥ नपूजयेद्धरंयस्तु शिवमायाविमोहितः॥ नतस्यस्वर्गमोक्षौ च कैलासंप्रतिकाकथा ॥ १ ॥ नचस्वर्गस्यराज्यस्य भाजनञ्चनराधिप ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वदेवमयोहरः ॥ २ ॥ सर्वधर्म्ममयीबुद्धिः क्षमासत्यमयंतपः ॥ ब्रह्मचर्य्यंतपोमूलं पञ्चेन्द्रियविनिग्रहः ॥ ३ ॥ क्षमासत्यंजपोधीतं तपःसंयमलक्षणम् ॥ एतत्तेकथितंराजञ्छिवेनकथितंपुरा ॥ ४ ॥ मयाचतवराजेन्द्र भ्रातॄणाञ्चविशेषतः ॥ नसामान्यतरादेवी कथितायामयातव ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वरःकपिलेश्वरस्तथावैनरकेश्वरः ॥ एतान्देवान्समुत्थाय यथावत्परिकीर्तयेत् ॥ ६ ॥ स

और हे नराधिप ! वह पुरुष स्वर्गकी राज्यका पात्र नहीं होताहै क्योंकि नर्मदा सब तीर्थोंका रूपहै महादेवजी सब देवताओं का रूपहैं ॥ २ ॥ बुद्धि सब धर्मोंका रूप है क्षमा व सत्य तपस्या का रूपहै और पांचों इन्द्रियों का वश करना व ब्रह्मचर्य तपस्याकी जड है ॥ ३ ॥ क्षमा, सत्य, जप, पाठ और तप इन्हीं का नाम संयम है हे राजन् ! पूर्वकाल में महादेवजी का कहाहुआ यह वृत्तान्त आपसे कहागया ॥ ४ ॥ और हे राजेन्द्र ! मैंने भी आप व आपके भाइयों से विशेषकर कहा जिस देवीको मैंने आप से कहा है वह साधारण नहीं है ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वर व कपिलेश्वर और नरकेश्वर इन देवों को प्रातःकाल उठकर जो यथावत् कहता है ॥ ६ ॥ वह

सबतीर्थों के फलोंको पाकर शिवलोक में पूजाजाता है पापोंके समूह के नाश होनेपर नर्मदा की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ जिस नर्मदा के समीप शिवजी हमेशा रहते हैं इसी से नर्मदा शिवजी का परमक्षेत्रहैं इसके सुनने व कहने से शिवलोक में पूजाजाता है ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेद्वीपेश्वरवर्णनोनामै कसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवता व सिद्धों से सेवित नर्मदाका सङ्गम बड़ा पवित्र है उसमें स्नानकर और महादेवजीका पूजनकर स्वर्गको जाते हैं ॥ १ ॥ हे भरतर्षभ !

शिवःसंनिहितोयस्यां शिवक्षेत्रं ... वैतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ अघौघेचपरिक्षीणेप्राप्यतेसप्तकल्पगा ॥ ७ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेद्वीपेश्वरवर्णनोनामै कसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्म्मदासङ्गमंपुण्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ १ ॥ स्तुतापूर्वंनमस्कृत्य देवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ २ ॥ आगच्छन्तीपुरालोके नर्म्मदाभरतर्षभ ॥ त्वयापवित्रितंपुण्यं मर्त्यलो कञ्चराचरम् ॥ अपांरूपगतारेवा हरस्यपरमाकला ॥ ३ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनाचसरस्वती ॥ चामुण्डाचर्चिकादेवी रेवात्वंसप्तकल्पगा ॥ ४ ॥ शिवजाप्रवहापुण्या मेकलाद्रिसुतास्तुता ॥ यज्ञयूपाचमूर्द्धाच स्वर्गमोक्षप्रदातथा ॥ ५ ॥ तारिणिसर्वभूतानां पापघ्नीचतरङ्गिणी ॥ लक्ष्मीःस्वाहास्वधाचैव पुरुहूतायशस्विनी ॥ ६ ॥ त्वयाऽव्याप्तंजगत्कृ

पूर्वकाल बिषे मनुष्यलोकमें आतीहुई नर्मदाकी देवता व ब्रह्मर्षियोंने पहले नमस्कारकर स्तुति की है ॥ २ ॥ उन्होंने कहा कि आपने चराचर इस मनुष्यलोकको पवित्र व पुण्यवाला करदियाहै जलके रूपको प्राप्त होगई नर्मदाजी महादेवजीकी पूरी कलाहैं ॥ ३ ॥ उमा, कात्यायनी, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चामुण्डा और चर्चिकादेवी सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा तुम्हींहो ॥ ४ ॥ महादेवसे तुम उत्पन्न हुईहो, प्रवाहरूपहो, पुण्यवालीहो, मेकलपर्वतकी कन्याहो, सबों से स्तुति कीगईहो, यज्ञोके खम्भोंवालीहो, सब तीर्थोंके मस्तककी तरह शोभितहो, स्वर्ग व मोक्षको देनेवालीहो ॥ ५ ॥ सब प्राणियोंको तारनेवालीहो, पापोंको नाश करनेवाली व तरङ्गोंवालीहो,

लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा और यशवाली इन्द्राणी तुम्हींहो ॥ ६ ॥ हे सुव्रते! जलके रूपसे तुम्हींने सम्पूर्ण जगत्को ढांकलियाहै तुम्हारा सङ्गम व सिद्धलिङ्ग देवता व दैत्यों से नमस्कार कियागया है ॥ ७ ॥ यहां जो कुछ दान व होम कियाजावे वह सब अक्षय होताहै हे महाराज! नर्मदाका स्नान व शिवका पूजन बड़ाही अद्भुत है ॥ ८ ॥ हे युधिष्ठिर! एक समयमें अनेकतरहके रत्नोंकी चमकसमूहों से करोड़ों सूर्योंके समान तेजवाले अनेक हजार विमान सितार आदिकी आवाजों से व वेदों के शब्दों से आकाश और पृथ्वीको भरतेहुये यमराजकी पुरीको प्राप्तहुये राजा यमराज उनको देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये परन्तु पूर्वकालमें महादेव, विष्णु और

त्स्नमपांरूपेणसुव्रते ॥ सङ्गमंसिद्धलिङ्गंच सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ७ ॥ अत्रदत्तंहुतंसर्वमेतद्भवतिचाक्षयम् ॥ अत्यद्भुतं महाराज नर्म्मदास्नानमर्चनम् ॥ ८ ॥ अनेकानिसहस्राणि विमानानियुधिष्ठिर ॥ नानारत्नप्रभाजालैः सूर्य्यकोटि समानिच ॥ ९ ॥ गतानिधर्म्मराजस्य पुरींवीणादिनिःस्वनैः ॥ नादयन्तिदिवंभूमिं वेदनिर्घोषणादिभिः ॥ १० ॥ एक स्मिन्समयेदृष्ट्वाश्चर्य्यंवैवस्वतोनृपः ॥ अत्रिश्चैववशिष्ठश्चपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ ११ ॥ इत्याद्याःसप्तमुनयो धर्म्माध र्म्मविचारकाः ॥ शिवेनस्थापिताःपूर्वं हरिणाब्रह्मणातथा ॥ १२ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अक्षीणकर्म्मबन्धस्तु पुरुषोमुनि सत्तम ॥ परंपदमवाप्नोति तन्मेकथयकल्पग ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ विष्णुनाकथितंपूर्वं ब्रह्मणेचमहात्मने ॥ प्रपद्येपुण्डरीकाक्षं देवंनारायणंहरिम् ॥ १४ ॥ लोकनाथंसहस्राक्षमक्षरंपरमंपदम् ॥ भगवन्तंप्रपद्येहं भूतभव्यभ वत्प्रभुम् ॥ १५ ॥ स्रष्टारंसर्वभूतानामनन्तबलपौरुषम् ॥ पद्मनाभंहृषीकेशं प्रपद्येसत्यमव्ययम् ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भं

ब्रह्माजीने धर्म अधर्म के विचार करनेवाले अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि सात मुनियों को यहां स्थापित करदियाहै उन्हीं से पूंछकर यमलोकका काम चलताहै ॥ ९।१०।११।१२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिसत्तम! जिस मनुष्यके कर्मरूपी बन्धन नहीं छूटे हैं वह परमपदको किसतरह प्राप्तहोताहै हे कल्पग! सो आप हमसे कहें ॥ १३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में इसी बातको विष्णुजीने महात्मा ब्रह्माजी से कहाहै कि पुण्डरीकाक्ष, नारायण, हरि, देव की मैं शरणहूं ॥ १४ ॥ लोकोंके नाथ, हजारों नेत्रवाले, नाशरहित, परमपद का रूप, होगई व होरही और होनेवाली बातके प्रभु, भगवान् की मैं शरण हूं ॥ १५ ॥ सब प्राणियों

के रचनेवाले, बेथाह बल व पौरुषवाले, कमल जिनकी नाभिसे निकला है, इन्द्रियों के स्वामी, सत्यरूप, नाशरहित के मैं शरणहूं ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भरूप, पृथिवी जिनके गर्भमें हैं, मृत्यु से रहित, चारों तरफ मुखवाले, नाशरहित, कोई जिनका मालिक नहीं है, सूर्यके समान प्रकाशवाले के मैं शरणहूं ॥ १७ ॥ हजारों शिरोंवाले, वैकुण्ठके रहनेवाले, गरुडके सवार, सूक्ष्मरूपवाले, अटल, सबसे श्रेष्ठ, अभयके देनेवाले, देवके मैं शरणहूं ॥ १८ ॥ नारायण, हरि, योगकी आत्मा, सनातन, सब लोगोंको शरणजाने योग्य, अटल, ईश्वर के मैं शरणहूं ॥ १९ ॥ सब प्राणियों का जो स्वामी है जिससे यह सब विश्व विस्तार कियागया है, जो देव संहारका करनेवाला है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे ॥ २० ॥ पूर्वकालमें कमल जिनकी योनिहै और प्रजाओं के मालिक ऐसे ब्रह्मा जिससे पैदा हुये हैं, ब्रह्माजीसे

भूगर्भममृतंविश्वतोमुखम् ॥ अनश्वरमनाथञ्च प्रपद्येभास्करद्युतिम् ॥ १७ ॥ सहस्रशिरसंदेवं वैकुण्ठंतार्क्ष्यवाहनम् ॥ प्रपद्येसूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ १८ ॥ नारायणंहरिञ्चैव योगात्मानंसनातनम् ॥ शरण्यंसर्वलोकानां प्रपद्येध्रुवमीश्वरम् ॥ १९ ॥ यःप्रभुःसर्वभूतानां येनसर्वमिदंततम् ॥ यःसंहारकरोदेवः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २० ॥ यस्माज्जातःपुराब्रह्मा पद्मयोनिःप्रजापतिः ॥ प्रसीदतुसमेविष्णुः पितामहपरःप्रभुः ॥ २१ ॥ पुरालयेतुसंप्राप्ते नष्टेलोकेचराचरे ॥ एकस्तिष्ठतियोगात्मा समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २२ ॥ जयेद्यःपृथिवींसत्यं कालोधर्म्मःक्रियाफलम् ॥ गुणाकारःसतांवाचो वासुदेवःप्रसीदतु ॥ २३ ॥ योगावासनमस्तुभ्यं सर्वावासवरप्रद ॥ यज्ञभोगिन्पञ्चभोगिन्नारायणनमोस्तुते ॥ २४ ॥ चतुर्मूर्तेजगद्धाम लक्ष्मीवासवरप्रद ॥ विश्वावासनमस्तेस्तु साक्षीभूतजगत्पते ॥ २५ ॥ अजेयःपड्विभा

श्रेष्ठ, सबका मालिक वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें प्रलयके प्राप्तहोनेपर और चराचर लोकके नष्टहोजाने पर योग जिसकी आत्माहै ऐसा एकही जो बाकी रहजाता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे ॥ २२ ॥ जिसने एक पगसे पृथिवी को जीतलिया है व जो सत्यरूप, कालरूप, धर्मरूप और कर्मोका फलरूप सत्त्वआदि गुणों के आकार होनेवाला, महात्माओं की वाणीरूप है वह वासुदेव मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २३ ॥ हे योगावास ! हे सर्वावास ! हे वरप्रद ! आपके लिये नमस्कार है हे यज्ञभोगिन् ! हे पञ्चभोगिन् ! हे नारायण ! आपके लिये नमस्कार है २४ ॥ हे चतुर्मूर्त्ते ! हे जगद्धाम ! हे लक्ष्मीवास ! हे वरप्रद ! हे विश्वावास ! हे सा-

क्षीभूत ! हे जगत्पते ! आपके लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे ज्ञानसागर ! आप किसीके जीतनेलायक नहींहो और छह प्रकारकी ऊर्मियोंसेहै विभाग अर्थात् अलग होना जिनका ऐसेहो और एकही आप विश्वम्भर की मूर्त्तिहो व वृषाकपि, मृगाधिप और कालरूप हो ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ अव्यक्त जो माया है उससे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ और माया से और आप प्रभुहो और जिससे श्रेष्ठ दूसरा नहींहै हम उसीके शरणागतहैं ॥ २७ ॥ जिस प्रभुका ब्रह्मा और महादेवआदि निरन्तर ध्यान किया करते हैं और जो अपने एक हिस्से से सब जगत् को धारणकर व्यापकहो स्थित होरहा है ॥ २८ ॥ व जो किसी से नहीं पकडा जासक्ता है, गुणोंसे रहित, सबका सिखलानेवाला है, हम उसी के शरणागत हैं सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जो ज्योतिरूपसा स्थित होरहाहै ॥ २९ ॥ जिसको क्षेत्रज्ञ ऐसा कहते

गेकविश्वमूर्तिर्वृषाकपिः ॥ मृगाधिपश्चकालश्च नमस्तेज्ञानसागर ॥ २६ ॥ अव्यक्तादण्डमुत्पन्नमव्यक्तादपरःप्रभुः ॥ यस्मात्परतरंनास्ति तमस्मिशरणंगतः ॥ २७ ॥ चिन्तयन्तोहियंनित्यं ब्रह्मेशानादयःप्रभुम् ॥ एकांशेनजगत्सर्वं योवि ष्टभ्यविभुःस्थितः ॥ २८ ॥ अग्राह्योनिर्गुणश्शास्ता तमस्मिशरणंगतः ॥ दिवाकरस्यसोमस्य मध्येज्योतिरिवस्थि तम् ॥ २९ ॥ क्षेत्रज्ञइतियंप्राहुः समहात्माप्रसीदतु ॥ साङ्ख्ययोगेनयेचान्ये सिद्धाश्चैवमहर्षयः ॥ ३० ॥ यंविदित्वाविमु च्यन्ते समहात्माप्रसीदतु ॥ नमस्तेसर्वतोभद्र सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥ ३१ ॥ निर्विकारनमस्तेस्तु आदिकल्पहृदिस्थि त ॥ अतीन्द्रियनमस्तुभ्यं परमात्मन्नमोस्तुते ॥ ३२ ॥ येचत्वामभिजानन्ति संसारेनवसन्तिते ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ता लोभमोहविवर्जिताः ॥ ३३ ॥ अशरीरःसुगुप्तःसन्सर्वदेहेषुतन्मयः ॥ अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारमहाभूतेन्द्रियाणिच ॥ ३४ ॥

हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे जो कोई सिद्ध व महर्षिलोगहैं ये सांख्ययोगसे ॥ ३० ॥ जिसको जानकर संसार से छूटजाते हैं वह महात्मा प्रसन्नहोवे हे सर्वतोभद्र ! हे चारोंतरफ आंख, शिर, मुहँवाले ! आपके लिये नमस्कारहै ॥ ३१ ॥ हे निर्विकार! हे आदिकल्प ! हे हृदयमें बैठनेवाले ! आपके लिये नमस्कारहै हे अतीन्द्रिय ! आप के लिये नमस्कार है व हे परमात्मन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ राग और द्वेषसे छूटेहुये तथा लोभ और मोह से रहित जो लोग आपको जानते हैं वे संसार में नहीं बसते हैं ॥ ३३ ॥ शरीरसे रहित, अत्यन्त छिपेहुये,सब देहों में देहही के तुल्य आप रहते हैं व जो माया,बुद्धि, अहङ्कार, महाभूत और इन्द्रिया हैं ॥३४॥

वे आपही में रहती हैं आप उनमें नहीं रहतेहो आपहीके आश्रित ये सबहैं किन्तु आपहीआप नहीं होसके हैं व आप प्रत्यक्ष नहीं हो और अत्यन्त कूटस्थ भी नहीं हो क्योंकि गुणोंके ईश्वरहो और अपने वशहो ॥ ३५ ॥ संसाररूपहो और कारण से रहितहो सबके स्वामीहो, अपने स्वरूपही में स्थितहो, हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके लिये नमस्कार है हे वासुदेव! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे जगन्नाथ ! आप तो ईश्वरहो इससे बहुत क्या कहाजावे आप भक्तोंको मुक्तिके देनेवालेहो और सबके गुरु व देवताओं के ईश्वरहो ॥ ३७ ॥ सब प्राणियों के मालिक वेही आप हमारे जन्म २ में स्वामी होवें क्योंकि अहङ्कार व सत्त्वआदि गुणोंसे मैं बँधा

त्वयितानिनतेपुत्वन्तेचतानिनतुस्वयम् ॥ अव्यक्तोनातिकूटस्थो गुणानांप्रभुरीश्वरः ॥ ३५ ॥ आवर्तोहेतुरहितः प्रभुःस्वात्मव्यवस्थितः॥नमस्तेपुण्डरीकाक्ष वासुदेवनमोस्तुते ॥३६॥ ईश्वरोसिजगन्नाथ किमतःपरमुच्यते ॥भक्तानांमुक्तिदस्त्वञ्च गुरुश्चत्रिदशेश्वरः ॥३७॥ समेभूतपतिस्त्वंहि प्रभुर्जन्मनिजन्मनि ॥अहङ्कारेणबद्धोवा तथासत्त्वादिभिर्गुणैः॥३८॥पृथिवींयातुमेघ्राणं यातुमेरसनाजलम् ॥ चक्षुर्हुताशनंयातुस्पर्शोमेयातुमारुतम् ॥३९॥ शब्दश्चाकाशमायातु मनोविकारणंतथा॥अहङ्कारश्चमेबुद्धिंत्वयिबुद्धिर्ममास्त्विति ॥४०॥ वियोगःसर्वकरणैर्गुणैर्भूतैस्तथास्तुमे ॥ सत्त्वंरजस्तमश्चैव प्रकृतिंस्वांविशन्तुमे ॥ ४१ ॥ प्रभोःप्रभुमनवद्यं प्रपद्येहंनरःप्रभुम् ॥ सहस्रशिरसंदेवं महर्षिंभूतभावनम् ॥४२॥ ब्रह्मयोनिश्चविश्वस्य समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ब्रह्मपत्न्यांप्रलीयन्ते नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ ४३ ॥ आहूतसंप्लवेचैव लीयते

हुआहूं ॥ ३८ ॥ हमारी नासिका अपने कारण पृथिवी को जावे, हमारी जिह्वा जलको जावे व नेत्र अग्निको जावे, हमारी खाल वायुको प्राप्तहोवे ॥ ३९ ॥ वाणी आकाशको जावे, मन अपने कारणको प्राप्तहोवे, हमारा अहङ्कार बुद्धिको जावे और हमारी बुद्धि आपमें लीनहोवे ॥ ४० ॥ सब इन्द्रिय, गुण और पृथिवीआदि महाभूतोंसे मेरा वियोग होजावे व हमारे सत्त्वगुण व रजोगुण और तमोगुण अपने २ कारण में लीन होजावें ॥ ४१ ॥ मालिको के मालिक, दोषोंसे रहित, हजारो शिरों वाले, महर्षि, प्राणियों के रचनेवाले, देवके मैं मनुष्य शरणहूं ॥ ४२ ॥ वेदो व जगत् के कारण वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे, स्थावर जङ्गमरूप सब जगत्के नष्ट

होनेपर जगत् के सब कारण मायामें लीन होते हैं ॥ ४३ ॥ प्रलय के होनेपर महत्तत्त्व प्रकृति में लीन होताहै वैष्णवसूक्त के सामवेद के दो मन्त्रोंसे जिसके वास्ते होम कियाजाता है वह विष्णु मुझसे प्रसन्न होवे ॥ ४४ ॥ अग्नि, चन्द्र, सूर्य, देवता, ब्रह्मा,रुद्र, इन्द्र और योगियोंके तेजोंको जो बढ़ाताहै वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ ४५ ॥ आप उत्पन्न नहीं होते हैं और इस दुनिया की रास्ता तुम्हींहो आपकी कोई मूर्त्ति अर्थात् देह नहीं है और सब देहोंके जीतनेवालेहो आप पुराने कभी नहीं होते हमेशा नये बनेरहते हो माया व महत्तत्त्वरूपहो चेतन पुरुष आलस्यरहित आपही हो ॥ ४६ ॥ जो चेतनरूप से प्रत्यक्ष विद्यमान और सबसे श्रेष्ठ है उसी के हम शरणागत हैं चन्द्रमा और सूर्यकी तरह जो आपही तेजको फैलाता है ॥ ४७ ॥ जिससे सब दिशायें प्रकट होती हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे गुणवाला

प्रकृतौमहत ॥ हूयतेचद्गुनस्ताभ्यां समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४४ ॥ अग्निसोमार्कदेवानां ब्रह्मरुद्रेन्द्रयोगिनाम् ॥ यस्ते जयतितेजांसि समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४५ ॥ अजस्त्वंजगतःपन्था अमूर्तिर्विश्वमूर्तिजित् ॥ नवंप्रधानञ्चमहान् पुरुषश्चेतनोलसः ॥ ४६ ॥ अगोप्योयःपरतरस्तमेवशरणंगतः ॥ सोमसूर्य्योपमस्तेजो योवतारयतिस्वयम् ॥ ४७ ॥ विजायन्तेदिशोयस्मात्समहात्माप्रसीदतु ॥ गुणवान्निर्गुणश्चैवचेतनोचेतनोस्वगः ॥ ४८ ॥ सूक्ष्मःसर्वगतोदेहः समहात्माप्रसीदतु ॥ सूर्य्यमध्येस्थितस्सोमस्तस्यमध्येतुसंस्मृतः ॥ ४९ ॥ भूतत्वाद्योचलोदीप्तः समहात्माप्रसीदतु ॥ एकत्वात्त्वनानात्वंयेविदुर्यान्तितेपरम् ॥ ५० ॥ समस्सर्वेषुभूतेषुप्रद्वेष्यात्मजनप्रियः ॥ समंभजत्यनाकाङ्क्षी भजतेनन्यचेतसः ॥ ५१ ॥ योयंसर्वात्मनाज्ञेयः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ चराचरमिदंसर्वं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ५२ ॥ त्वयितंतन्तुव

और जो निर्गुणभी है चेतन है और अपने आपको न जानने से अचेतन ऐसाभी है ॥ ४८ ॥ सूक्ष्महै सबमें प्राप्तहै और देहरहित है वह महात्मा प्रसन्न होवे सूर्य्य के बीचमें पार्वती सहित शिवहैं तिनमें चेतनरूपसे जो रहताहै पृथिवीआदि महाभूतोंके तुल्य होनेसे अचलहै परन्तु आप प्रकाशवाला है वह महात्मा प्रसन्न होवे पहले आपके एक होनेसे फिर पीछेसे आपके अनेक होनेको जो जानते हैं वे परमात्मा को प्राप्तहोते हैं ॥ ४९ । ५० ॥ सब प्राणियों में जो एकरस है शत्रु, मित्र और उदासीन को बराबर भजता है आप कुछ इच्छा नहीं करता पर अनन्यभक्तोंको भजता है ॥ ५१ ॥ जो यह सबतरह से जाननेयोग्य है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे चराचर

यह सब चारों प्रकार के प्राणियों का समूह ॥ ५२ ॥ आपमें गुँथाहै जैसे मणियां सूतमें गुँथी होवें आपको धर्म व अधर्म नहीं होताहै और गर्भ व जन्म आपका नहीं है ॥ ५३ ॥ इससे बुढ़ापा व जन्मसे छूटने के वास्ते मैं उसी के शरणागतहूं सब योनियोंमें इन्द्रिय,गुण,श्वास और ऊपरका श्वास होताहै ॥५४॥ देह तो केवल काठकी तरह जड़ व नाशवाली व विपत्तिरूप है और अकेला होना तो हमारा आपही से सिद्धहै परन्तु देहके जन्म से हमारी उत्पत्ति जानपड़ती है ॥ ५५ ॥ इससे आपही में जिसकी बुद्धिहै और आपही में जिसके प्राणहैं व आपहीका भक्त और आपहीमें लगाहुआ मैं मौतके आनेपर आपहीका स्मरण करूंगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्म में किये

त्प्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ॥ नतेधर्म्मोह्यधर्म्मोस्ति नगर्भोजन्मवापुनः ॥ ५३ ॥ जराजन्मविमोक्षार्थं तमेवशरणंगतः ॥ इन्द्रियाणिगुणश्चैव श्वासोच्छ्वासश्चयोनिषु ॥ ५४ ॥ केवलंदारुवद्देहं नश्यंयत्परमापदम् ॥ स्वयमेकाकिभावोमेजन्म तोत्रपुनर्भवः ॥ ५५ ॥ त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ॥ त्वामेवाहंस्मरिष्यामि मरणेपर्य्युपस्थिते ॥ ५६ ॥ पूर्वदेहेकृतायेतु व्याधयःप्रविशन्तुमाम् ॥ वातादयश्चदुःखानिऋणंतन्मुञ्चतात्प्रभो ॥ ५७ ॥ श्रेयसांचपरंश्रेयस्त्व न्येपाञ्चयशस्विनाम् ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं पुण्यंयत्परमंपदम् ॥ ५८ ॥ प्रातरुत्थायसततं मध्याह्नेचदिनक्षये ॥ अज स्रञ्चतथाजप्यं सर्वपापोपशान्तिदम् ॥ ५९ ॥ हरिंकृष्णंहृषीकेशं वासुदेवंजनार्द्दनम् ॥ प्रणतोस्मिजगन्नाथं समेपापं व्यपोहतु ॥ ६० ॥ गोवर्द्धनधरंदेवं गोब्राह्मणहितेरतम् ॥ प्रणतोस्मिगदापाणिं समेपापंव्यपोहतु ॥ ६१ ॥ शङ्खिनंच

हुये पाप रोगरूप से प्रवेशकरें और वात, पित्त,कफआदि व दुःखभी मुझ में पैठें जिससे हे प्रभो ! यह ऋण मेरा छूटजावे ॥ ५७ ॥ और यशवाले महात्माओं को जो पुण्यवाला परमपद कल्याणों में भी कल्याणरूप है सदा प्रातःकाल उठकर व मध्याह्न में व सायङ्काल में सब पापोंकी शान्तिका देनेवाला यह स्तोत्र सब पापोंकी विशुद्धिके लिये निरन्तर जप करनेलायक है ॥५८।५९॥ हरि, कृष्ण, हृषीकेश,वासुदेव, जनार्दन और जगन्नाथको मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे ॥६०॥ गोवर्द्धनके धरनेवाले, गऊ और ब्राह्मणों के हितमें लगेहुये, हाथमें गदाके रखनेवाले, देवको मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको दूरकरे ॥ ६१ ॥ शङ्खवाले,

चक्रवाले, शार्ङ्गधनुष के धरनेवाले, मधुदैत्य के मारनेवाले, लक्ष्मीके पति विष्णु को मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६२ ॥ संसारकी स्थितिके लिये वर्त्तमान, कमलके समान नेत्रवाले, अविनाशी, आनन्दयुक्त, दामोदर भगवान् को मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६३ ॥ नारायण, नर, सौम्य (सीधे), माधव, जनार्दन, श्रीवत्सवाले, शोभा या लक्ष्मीयुक्त देहवाले, लक्ष्मीवाले, लक्ष्मी के धारण करनेवाले, लक्ष्मी के स्थान ॥ ६४ ॥ और लक्ष्मी के पतिको मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे व नाशरहित, सब प्राणियों के जिस मालिकका महात्मा लोग ध्यान करते हैं ॥ ६५ ॥ किसीतरह जो नहीं बत-

क्रिणंविष्णुं शार्ङ्गिणंमधुसूदनम् ॥ प्रणतोस्मिपतिंलक्ष्म्याःसमेपापंव्यपोहतु ॥ ६२ ॥ दामोदरंमुदायुक्तं पुण्डरीकाक्ष मव्ययम् ॥ प्रणतोस्मिस्थितंस्थित्यै समेपापंव्यपोहतु ॥ ६३ ॥ नारायणंनरंसौम्यं माधवञ्चजनार्द्दनम् ॥ श्रीवत्संश्रीवपुः श्रीमच्छ्रीधरंश्रीनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ प्रणतोस्मिश्रियःकान्तं समेपापंव्यपोहतु ॥ यमीशंसर्वभूतानां ध्यायन्तिचतमक्षर म् ॥ ६५ ॥ वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ सर्वबन्धविनिर्मुक्तो यंप्रविश्यपुनर्भवम् ॥ ६६ ॥ पुरुषोनैवप्राप्नोति तमस्मिशरणङ्गतः ॥ कृत्वाब्रह्मवपुस्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ६७ ॥ यःकरोतिपुनस्सृष्टिं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ ब्रह्मरूप धरन्देवं योनिरूपंजनार्द्दनम् ॥ ६८ ॥ सृष्टित्वेसंस्थितान्नित्यं प्रणतोस्मिजनार्द्दनम् ॥ यस्मान्नान्यत्परंकिञ्चिद्यस्मि न्सर्वमिदंजगत् ॥ ६९ ॥ यस्सर्वमध्यगोनन्तस्सर्वगन्तंनमाम्यहम् ॥ योस्तिभूतेषुसर्वेषु स्थावरेजङ्गमेषुच ॥ ७० ॥

लाया जासक्ता है उस वासुदेव की शरण को मैं प्राप्तहूं व जिसको पाकर सब बन्धनों से छूटा पुरुष फिर जन्मको नहीं पाताहै हम उसीके शरणागत हैं व प्रलयमें जो देवता, दैत्य और मनुष्यों के सहित सब जगत् को ब्रह्मरूपकर फिर सृष्टिको करताहै हम उसीके शरणागतहैं व जो देव प्रलय में ब्रह्मरूप का धरनेवाला है और सृष्टि में वही जनार्दन कारणरूप होताहै उसी जनार्दनको मैं सदा प्रणाम करताहूं जिससे परे और कुछ नहीं है और जिसमें यह सब संसार रहताहै ॥ ६६ । ६७ । ६८ । ६९ ॥ जो सबके बीचमें प्राप्तहै और अन्त जिसका नहीं है ऐसे घट २ वासीके हम नमस्कार करते हैं जो सब स्थावर, जङ्गम, प्राणियोंमें विद्यमान है ॥ ७० ॥

वही विष्णु हमारे सब पापोंको नाशकरै जैसे निवृत्तिरूप कियागया कर्म व विष्णुके वास्ते कियागया कर्म निवृत्त होजाताहै ॥ ७१ ॥ इसीतरह अनेक जन्मोंके कर्मोंसे उठाहुआ मेरा पाप नष्ट होजावे व रात्रि तथा प्रातःकाल,मध्याह्न और अपराह्णमें ॥ ७२ ॥ अज्ञानसे मन,वचन और शरीरसे जो कुछ पापमैंने कियाहो वह सब क्षणमात्र में नष्ट होजावे ॥ ७३ ॥ जैसे पानी में लोन पिघलजाताहै वैसेही वह सब पाप नष्ट होजावे, औरों को पीड़ा देतेहुये व औरोंकी निन्दा करतेहुये हमारे जन्मसे जो पाप कमायागया हो ॥ ७४ ॥ व गैरकी द्रव्य व उसके खेत या मकानआदि की इच्छासे व क्रोध से जो पापहुआहो वह सब लीनहोजावे जैसे पानी में लोन पिघलजाता

विष्णुरेवसर्वेपापं ममाशेषंप्रणश्यतु ॥ नवृत्तंनिर्वृतंकर्म्मविष्णोर्यत्कर्म्मवाकृतम् ॥ ७१ ॥ अनेकजन्मकर्म्मोत्थं पापंनश्यतिमेतथा ॥ निशायाञ्चतथाप्रातर्मध्याह्नेचापराह्णयोः ॥ ७२ ॥ अज्ञानाच्चकृतंपापं कर्म्मणामनसागिरा ॥ यत्कृतंचाशुभंकिञ्चित्तत्सर्वंनश्यतुक्षणात् ॥ ७३ ॥ तत्सर्वंविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ परपीडाञ्चनिन्दाञ्च कुर्वतोजन्मनार्ज्जितम् ॥ ७४ ॥ परद्रव्यपरक्षेत्रवाञ्छाक्रोधोद्भवञ्चयत् ॥ तत्सर्वंविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ ७५ ॥ विष्णवेवासुदेवाय हरयेकेशवायच ॥ जनार्द्दनायकृष्णाय नमोभूयोनमोनमः ॥ ७६ ॥ नाभागोनामराजर्षिर्नर्म्मदातीरसङ्गमे ॥ चकारस्तोत्रमतुलं वैष्णवन्तुप्रजापतिः ॥ ७७ ॥ ब्रह्मणोङ्गिरसाप्राप्तं तस्मादिन्द्रेणभारत ॥ वशिष्ठः श्रावयामास नाभागंराजसत्तमम् ॥ ७८ ॥ स्नात्वाचनर्म्मदातोये दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ कामिकंयानमारुह्य नाभागस्स्वपुरींययौ ॥ ७९ ॥ स्तौतिनामसहस्रेण यस्स्तवेनजनार्द्दनम् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे विष्णुस्तुतिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥

है ॥ ७५ ॥ विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन और कृष्णजी के लिये बार २ नमस्कार है ॥ ७६ ॥ नर्मदाके तीर सङ्गम में नाभागनामके राजर्षि प्रजापति इस अतुल प्रभाववाले वैष्णवस्तोत्रको करतेहुये ॥ ७७ ॥ ब्रह्मासे इसको अङ्गिराने पाया हे भारत ! उनसे इन्द्रने पाया और वशिष्ठजीने राजाओंमें श्रेष्ठ नाभागको सुनाया ॥ ७८ ॥ नर्मदा के जलमें स्नानकर और अनेक दानोंको देकर मनमानी सवारी पर सवार होकर नाभाग राजा अपनी पुरीको जातेहुये ॥ ७९ ॥ हजारनामवाले इस

स्तोत्रसे जो जनार्दन देवकी स्तुति करताहै उसकी फिर इस घोर संसारसागरमें आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेविष्णुस्तुतिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! फिर मेघनाद इस नामके तीर्थको जावे जिसमें किसीको देख नहीं पडते ऐसे महादेवजी जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! दक्षिण और उत्तर के किनारे को छोंडकर पानीके बीचमें महादेवजी किस कारणसे रहते है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी फिर बोले कि हे तात ! यह आख्यान बड़ा पुण्यवाला व कानोंको सुख देनेवालाहै इसको जैसे पुराणमें हमने सुनाहै वैसेही आपसे सब कहेंगे ॥ ३ ॥ हे तात ! अगिले जमाने

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र मेघनादमितिस्मृतम् ॥ जलमध्येमहादेवो यत्रतिष्ठत्यदर्शितः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ जलमध्येमहादेवस्तिष्ठतेकेनहेतुना ॥ उत्तरंदक्षिणंकूलं वर्ज्जयित्वाद्विजोत्तम ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एतदाख्यानमतुलं पुण्यंश्रुतिसुखावहम् ॥ पुराणेयच्छ्रुतंतात तत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३ ॥ पुरात्रेतायुगेतात पौलस्त्योदेवकण्टकः ॥ त्रिलोकविजयीरौद्रस्सुरासुरभयङ्करः ॥ ४ ॥ देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ अवध्योवरदानेन यत्रपर्य्यटतेमहीम् ॥ ५ ॥ तत्रदेवगिरौरम्येदानवोबलदर्पितः ॥ मयोनामेतिविख्यातो महानासीन्नृपेश्वर ॥ ६ ॥ रावणस्तन्ततोगत्वा विनयावनतःस्थितः ॥ पूजितोदानसम्मानैर्मयंवचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ कस्येयंपद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ किन्नामधेयायातपते तपउग्रंकथंविभो ॥ ८ ॥ मयउवाच ॥ दानवानाम्पतिःश्रेष्ठो मयोह

में त्रेतायुग विषे देवताओं को कांटासा, तीनोंलोकों का विजय करनेवाला, देवता और दैत्यों को भय करानेवाला, पुलस्ति के वंशवाला (रावण) राक्षस ॥ ४ ॥ वरदान के कारण से देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राक्षसों के नहीं मारने योग्य होताहुआ जहां पृथिवी में घूमरहा था ॥ ५ ॥ हे नृपेश्वर ! उसी रमणीक देवपर्वतपर अपने बलसे अहङ्कारको प्राप्त होरहा मय इस नामसे प्रसिद्ध बडा जबरदस्त दानवभी विद्यमान था ॥ ६ ॥ तब रावण उसके पास जाकर अपनी लियाक़तसे नम्र होकर खड़ाहुआ व दान और सम्मान से पूजन कियागया मयसे वचन बोला ॥ ७ ॥ कि हे विभो ! कमलदल सरीखे नेत्रोंवाली व पूर्णचन्द्रके बराबर

मुखवाली यह कन्या किसकी है और इसका क्या नामहै व किसलिये यह उग्र तपस्याको करतीहै ॥ ८ ॥ तब मय बोला कि दानवोंका श्रेष्ठपति मैं नामसे मय नाम का दानवहूं और यह तेजवती नाम मेरी स्त्रीहै व यह सुन्दरी कन्याभी मेरीहै ॥ ९ ॥ जोकि मन्दोदरी इस नामसे प्रसिद्धहै पतिके वास्ते तपस्या करतीहै तब मदसे अह-ङ्कारवाला रावण उसके वचन को सुनकर ॥ १० ॥ नम्रहोकर खड़ाहुआ मयसे वचन बोला कि देवता और दानवों के अहङ्कारका तोड़नेवाला मैं पौलस्त्य (रावण) नामका राजाहूं ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! मैं आपसे प्रार्थना करताहू कि आप कन्यादेनेको योग्यहो तब ब्रह्माजीका वंश जानकर मय महात्मा भी ॥ १२ ॥ विधिसे रावण

न्नामनामतः ॥ भार्य्यातेजवतीनाम ममेयंतनयाशुभा ॥ ९ ॥ मन्दोदरीतिविख्याता तपतेपतिकारणात् ॥ श्रुत्वातुव चनंतस्य रावणोमददर्पितः ॥ १० ॥ प्रश्रितःप्रणतोभूत्वामयंवचनमब्रवीत् ॥ पौलस्त्योनामराजाहं देवदानवदर्प्प हा ॥ ११ ॥ प्रार्थयामिमहाभाग सुतान्त्वन्दातुमर्हसि ॥ ज्ञात्वापैतामहंवंशंमयेनापिमहात्मना ॥ १२ ॥ सुतादत्ताराव णाय कृत्वाविधिविधानतः ॥ गृहीत्वातान्तदारक्षः पूज्यमानोनिशाचरैः ॥ १३ ॥ दिव्यैर्यानैर्विमानैश्च क्रीडतेतुत यासह ॥ पुत्रंपुत्रवतांश्रेष्ठो जनयामासभारत ॥ १४ ॥ तेनैवजातमात्रेण रवोमुक्तोमहात्मना ॥ संवर्तकस्यमेघस्य येनलोकोजडीकृतः ॥ १५ ॥ श्रुत्वातन्निनदंघोरं त्रस्तोलोकपितामहः ॥ नामचक्रेतदातस्य मेघनादोभविष्यति ॥१६॥ एतन्नामकृतंसोपि परमंव्रतमास्थितः ॥ भावयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ १७ ॥ व्रतैर्नियमदानैश्च होमैर्जाप्यै

को अपनी कन्या देताहुआ तब वह राक्षस और राक्षसोंसे पूजन कियाजाता उस कन्याको लेकर ॥ १३ ॥ दिव्य सवारी व विमानोंसे उस अपनी स्त्रीके सहित विहार करताहुआ और हे भारत ! पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ रावण एक पुत्र पैदा करताहुआ ॥ १४ ॥ उत्पन्न होतेही उस लडके ने महाप्रलयके मेघकासा शब्द किया जिस शब्दसे लोक जड़ करदियागया ॥ १५ ॥ उस घोरशब्द को सुनकर ब्रह्माजी डरगये तब उसका नाम किया कि यह मेघनाद होवेगा ॥ १६ ॥ यह नाम जब उसका कर दियागया तब वह भी बड़ेभारी व्रतमें स्थित होताहुआ और पार्वती के सहित देवेश महादेवजी को प्रसन्न करताहुआ ॥ १७ ॥ व्रत, नियम, दान, होम, जप और

दिव्य कृच्छ्रचान्द्रायणआदिकोंसे अपने शरीरको क्लेश देताहुआ॥ १८ ॥ इसीतरह तप करताहुआ हे तात! एक दिन कैलास पर्वतपर जाकर और महादेवके लिङ्गको लेकर दक्षिणमुख यात्रा करताहुआ ॥ १९ ॥ स्नान करनेकी इच्छा से बडा बलवाला मेघनाद नर्मदा के तटपर उतरकर और लिंगरूपी महादेव को वहां धरकर पूजन करताहुआ व जपको कर फिर वह राजा ॥ २० ॥ बडीदूर लङ्कामें जानेकी इच्छा करताहुआ हे नृपसत्तम ! बायें हाथसे एक पड़ेहुये लिंगको उठाया ॥ २१ ॥ जब रावणका बेटा पहले और दूसरे लिंगको भक्ति से उठानेलगा तो महादेव जीका वह महालिंग नर्मदा के जलमें गिरपड़ा ॥ २२ ॥ फिर उस परमेष्ठी लिंगने

विधानतः ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणैर्दिव्यैः क्लिश्यतेचकलेवरम् ॥ १८ ॥ एवमन्यद्दिनेतात कैलासंधरणीधरम् ॥ गत्वालिङ्गमयंगृह्य प्रस्थितोदक्षिणामुखः ॥ १९ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य स्नातुकामोमहाबलः ॥ निक्षिप्यापूजयद्देवं कृत्वाजाप्यंजनेश्वरः ॥ २० ॥ गन्तुकामःपरंमार्गं लङ्कायांनृपसत्तम ॥ एकंसमुद्धृतंलिङ्गं पतितंसव्यपाणिना॥ २१ ॥ प्रथमञ्च द्वितीयञ्च भक्त्यापौलस्त्यनन्दनः ॥ तदादेवमहालिङ्गं पतितन्नर्म्मदाम्भसि ॥ २२ ॥ पाहिपाहीतितेनोक्तो लिङ्गेनपरमेष्ठिना ॥ द्वितीयंपतितंतावदुत्तरेनर्म्मदातटे ॥ २३ ॥ मेघनादेतिविख्यातं लिङ्गंतत्रसुशोभनम् ॥ मध्यमेश्वरनामेतिजलमध्येव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ यावदुद्धर्तुकामोसौ सप्तपातालमागमत् ॥ देवयोनिश्चयंज्ञात्वा निवृत्तोसौनिशाचरः ॥ २५ ॥ जगामाकाशमाविश्य पूज्यमानोनिशाचरैः ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं मेघनादेतिविश्रुतम् ॥ २६ ॥ मेघारवेतिविख्यातमुत्तरेखेटकःशुभः ॥ पूर्वेतुगर्जनन्नाम सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र यस्तुस्नानंसमाच

कहा कि रक्षाकरो २ तबतक दूसरा लिंग भी नर्मदा के उत्तरवाले तटपर गिरपड़ा ॥ २३ ॥ वह अतिसुन्दर लिंग वहां मेघनाद इस नामसे विदित हुआ मध्यमेश्वर यह भी उसका नाम हुआ वह जलके बीचमें स्थित हुआ ॥ २४ ॥ जबतक मेघनाद उसको उठावे तबतक वह सातों पातालोंमें व्याप्त होगया उन दोनों लिंगोके अभिप्रायको जानकर वह राक्षस लौटगया ॥ २५ ॥ और राक्षसों से पूजाजाता हुआ आकाश होकर चलागया तबसे लेकर वह तीर्थ मेघनाद इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ और उसीका मेघारव यह भी नाम विख्यात हुआ नर्मदाके उत्तरतट में खेटक नामका उत्तम तीर्थ हुआ और पूर्वमें सब पापों का नाश करनेवाला गर्जननाम

का तीर्थहुआ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य एक दिन रात व्रत रहकर इस तीर्थमें स्नान करता है वह बहुत कालतक कल्याणको प्राप्तहोता है ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो पिण्डदान करता है तो उससे उसके पितर स्वर्गमें बारहवर्षतक तृप्तरहते हैं ॥ २९ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है तो जो फल वहां योगियोंको मिलताहै उसी फलको वह भी पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ और जो वहां अग्निप्रवेश व जलप्रवेश व अनशन व्रत करताहै उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है यह महादेवजीने कहाहै ॥ ३१ ॥ हे नरशार्दूल ! इसप्रकार यह उत्तम गर्जितेश्वरतीर्थ आपसे कहागया जो कि स्मरण-

रेत् ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा सलभेच्छाश्वतंशुभम् ॥ २८ ॥ पिण्डदानन्तुयःकुर्य्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ तेनद्वादशवर्षाणि पितरस्तर्प्पितादिवि ॥ २९ ॥ यस्तुभोजयतेविप्रांस्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ यत्फलंयोगिनांतत्र लभतेनात्रसंशयः ॥ ३० ॥ अग्निवेशंजलेवापि अथवापिह्यनाशकम् ॥ अनिवर्तिकागतिस्तस्य स्यादिदंशङ्करोब्रवीत् ॥ ३१ ॥ एवन्तेनरशार्दूलगर्जितेश्वरमुत्तमम् ॥ कथितंस्मरणादेव सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मेघनादेश्वरमहिमानुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेचराजेन्द्र दारुतीर्थमनुत्तमम् ॥ दारुकोयत्रसंसिद्धिमिन्द्रस्यदयितस्सखा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ दारुकेणकथंतात तपश्चीर्णंपुरानघ ॥ विधानंश्रोतुमिच्छामि सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अहन्तेकथयिष्यामि विचित्रंयत्पुरातनम् ॥ वृत्तंसमभवत्तत्र ऋषीणांभावितात्मनाम् ॥ ३ ॥ सूतोवज्रधरस्या

मात्रही से सब पापोंका क्षय करनेवाला है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमेघनादेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम दारुतीर्थको जावे जहां इन्द्रका प्यारा मित्र दारुक सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! हे अनघ ! अगिले जमाने में दारुक ने कैसा तप किया सो सब पापोंके नाश करनेवाले उसके तपके विधान को सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ऋषियों के प्रत्यक्ष जो वहां पुराना विचित्र वृत्तात हुआहै उसको हम तुमसे कहेंगे ॥ ३ ॥ कि नामसे मातलि नामका इन्द्रका सारथि

हुआ सो वह पूर्वकाल में किसी कारण के होनेपर अपने पुत्रको शाप देताहुआ ॥ ४ ॥ तब हे भारत ! शापके कारणसे कांपताहुआ दारुक कल्याणदायक, इन्द्रजी के दोनों पांवोंको पकड़कर वहीं देवेन्द्रजी से कहताहुआ ॥ ५ ॥ कि हे सुरेश्वर ! अपने पितासे शापित कियेगये अनाथ मेरे घोरशापका अन्त किस कर्म से होगा ॥ ६ ॥ तब इन्द्रजी बोले कि तू नर्मदाके तटपर जाकर जबतक युगका अन्तहो तब तक रह और महादेवजी को प्रसन्न कर इससे तेरा जन्म फिर होगा ॥ ७ ॥ फिर से तू यदुकुल में नाम से दारुक नामका होकर वहीं मनुष्ययोनि में विद्यमान शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले देवेश नारायण को रथपर चढाकर उससे सिद्धि को

सीन्मातलिर्नामनामतः ॥ सपुत्रंशप्तवान्पूर्वं कथञ्चित्कारणान्तरे ॥ ४ ॥ शापहेतोर्वेपमान इन्द्रस्यचरणौशुभौ ॥ प्रपीड्यतत्रदेवेन्द्रं विज्ञापयतिभारत ॥ ५ ॥ ममतातामिशप्तस्य अनाथस्यसुरेश्वर ॥ कर्म्मणाकेनशापस्य घोरस्यान्तोभविष्यति ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य तोषयत्वंमहेश्वरम् ॥ तिष्ठयावद्युगस्यान्तं पुनर्जननमाप्स्यसि ॥ ७ ॥ पुनर्भूत्वायदुकुले दारुकोनामनामतः ॥ आरोहयित्वादेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८ ॥ मानुषंतत्रसम्पन्नं ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ एवमुक्तस्तुदेवेन सहस्राक्षेणभारत ॥ ९ ॥ प्रणम्यशिरसाभूमिमागतोसौहतप्रभः ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य कर्शितस्वकलेवरः ॥ १० ॥ व्रतोपवासैर्विविधैर्जपहोमपरायणः ॥ महादेवंमहात्मानं वरदंशूलपाणिनम् ॥ ११ ॥ अभजत्परयाभक्त्या यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ अंशावतरणेविष्णोस्ततोभूत्वामहामतिः ॥ १२ ॥ तोषयित्वाजगन्नाथं ततोयातस्ससद्गतिम् ॥ एषतेसम्भवस्तातदारुतीर्थस्यसुव्रत ॥ १३ ॥ कथितस्तुमयापूर्वं यथामेशङ्क

पावेगा हे भारत ! इस प्रकार इन्द्रदेव से कहा गया दारुक ॥ ८ । ९ ॥ शिर से इन्द्रके नमस्कार कर तेजरहित आप पृथिवी को आताहुआ और नर्मदा के तटपर जाकर जप व होम करनेमें लगा हुआ अनेक तरहके व्रत व उपासों से दुर्बल करदिया है अपने शरीर को जिसने ऐसा दारुक वर के देनेवाले महात्मा शूलपाणि महादेवजी को ॥ १० । ११ ॥ बडी भक्ति से युगान्ततक भजता हुआ तदनन्तर अंशों से विष्णुके अवतारके होनेपर आपभी बडा बुद्धिवाला उत्पन्न होकर ॥ १२ ॥ और जगत् के स्वामी नारायणको प्रसन्नकर तदनन्तर वह उत्तम गतिको प्राप्तहुआ हे तात ! हे सुव्रत ! यह दारुक तीर्थकी उत्पत्ति आप से ॥ १३ ॥ मैंने कही पहले

जैसे शङ्करजी ने मुझसे कही थी तब आश्चर्य से युक्त बुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर ॥ १४ ॥ बार बार रोयें जिनके खड़े होते ऐसे आप घबडाने से देखनेलगे फिर मार्कण्डेयजी ने कहा कि हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में विधिपूर्वक मनुष्य स्नानकर ॥१५॥ और सन्ध्योपासन कर व वहीं पितर और देवताओं का तर्पणकर जो सावधान होता हुआ वहीं देह त्याग करताहै ॥ १६ ॥ वह अश्वमेध के फलको पाकर महादेवजी के समीप रमताहै और उस तीर्थ में जो भक्ति से पवित्र होकर ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ १७ ॥ वह हजार ब्राह्मणो के भोजन कराने के उत्तम फलको पाता है स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितरोंका तर्पण आदि जो कुछ शुभकर्म

रोब्रवीत् ॥ ततोयुधिष्ठिरोराजा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १४ ॥ भ्रान्तोवलोकयामास स्तब्धरोमामुहुर्मुहुः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वा विधिपूर्वंनरेश्वर ॥ १५ ॥ उपास्यसन्ध्यांतत्रैव सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ देहत्यागञ्चतत्रैव यःकरोतिसमाहितः ॥ १६ ॥ सोश्वमेधफलंप्राप्य रमतेशिवसन्निधौ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या भोजयेद्ब्राह्मणंशुचिः ॥ १७ ॥ सतु विप्रसहस्रस्य लभतेफलमुत्तमम् ॥ स्नानंदानंतपोहोमस्स्वाध्यायः पितृतर्प्पणम् ॥ १८ ॥ यत्कृतन्तुशुभंतत्र तत्सर्वंलभतेऽक्षयम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे दारुतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र देवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्तप्त्वासिद्धिपराङ्गताः ॥ १ ॥ पुरा देवासुरेयुद्धे दानवैर्बलदर्पितैः ॥ इन्द्रोदेवगणैस्सार्द्धं स्वराज्याच्च्यावितोभृशम् ॥ २ ॥ हस्त्यश्वरथयानौघैर्मर्द्दयित्वाचवाहिनीम् ॥ विशक्ताभेजिरेमार्गं प्रहारैर्जर्ज्जरीकृताः ॥ ३ ॥ जम्भशुम्भनिशुम्भाद्यैस्तुहुण्डग्रहकैस्सह ॥ बलिभि

वहां कियागया वह सब अक्षय मिलता है ॥ १८ । १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेदारुतीर्थमहिमाऽनुवर्णनेनामचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम देवतीर्थ को जावे जहां तैंतीस देवता तप करके परमसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ १ ॥ आगे देवता और दैत्योंकी लड़ाई में बलके अभिमानी दैत्योंने देवताओ के सहित इन्द्रको उनकी राज्य से भ्रष्टकरदिया ॥ २ ॥ अपने हाथी, घोडे, रथ और भी सवारियों के समूहों से देवताओं की सेना को मर्दनकर उनको अपने प्रहारों से जर्जर करदिया तब अशक्त होकर देवताओं ने भागने की रास्ता ली ॥ ३ ॥ जम्भ, शुम्भ, निशुम्भ और तुहुण्डग्रह आदिके

सहित बली दैत्योंसे दबायेगये सब देवतालोग ब्रह्माजी के समीप जाते हुये ॥ ४ ॥ अपने २ शिरोंसे परमेष्ठी ब्रह्मादेव के प्रणामकर इन्द्र और अग्निआदि देवता अपने स्वामी ब्रह्माजी से अपना हाल कहा ॥ ५ ॥ कि हे महाभाग ! आप हम लोगों को देखो देखो हम दानवों से विकल करदियेगये हैं व दबायेगये हमलोग अपने पुत्रों व स्त्रियोंके सहित आपकी शरण आये हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश ! हे सर्वलोकपितामह ! आप हमको बचावें क्योंकि हे सुरेशान ! सबके ऊपर रहनेवाले आपको छोंड़कर हमारी दूसरी गति नहीं है ॥ ७॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओ ! दानवों के नाशके लिये नर्मदातट में टिककर तुम सबलोग तप करो क्योंकि तपही परमबल

बाधितास्सर्वे ब्रह्माणमुपतस्थिरे ॥ ४ ॥ प्रणम्यशिरसादेवं ब्रह्माणंपरमेष्ठिनम् ॥ व्यज्ञापयन्तदेवेशमिन्द्राग्निकपुरोगमाः ॥ ५ ॥ पश्यपश्यमहाभाग दानवैराकुलीकृताः ॥ बाधिताःपुत्रदाराभ्यां त्वामेवशरणङ्गताः ॥ ६ ॥ परित्रायस्व देवेश सर्वलोकपितामह ॥ नान्यागतिस्सुरेशान मुक्त्वात्वांपरमेष्ठिनम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दानवानांविघातार्थं नर्म्मदातटमाश्रिताः ॥ तपःकुरुतभोदेवास्तपोहिपरमंबलम् ॥ ८ ॥ नान्योपायोनवैमन्त्रो नविद्यानचविक्रमः ॥ विनारेवाजलंपुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ९ ॥ दारिद्र्यव्याधिमरणबन्धनव्यसनानिच ॥ एतानिचैवपापस्य फलानीतिमतिर्मम ॥ १० ॥ एवंज्ञात्वाविधानेन तपःकुरुतदुष्करम् ॥ पूज्यतेशाम्भवंसर्वैः प्राप्नुयाताभयंततः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्देवा ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ नर्म्मदामागतास्सर्वे तदेन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ १२ ॥ विचेरुस्तत्रविपुलं तपःपरमदुस्सहम् ॥ सकल्पैःपरमांराजंस्तत्तेसिद्धिमवाप्नुवन् ॥ १३ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं देवतीर्थमितिश्रुतम् ॥ गीयतेसर्वलोकेषु सर्वपाप

है ॥ ८ ॥ सब पापोंको क्षय करनेवाले व पुण्यवाले नर्मदाजल को छोंडकर और कोई मन्त्र व विद्या और पराक्रम इसका उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ दरिद्र, रोग, मौत, कैद और पीड़ायें ये सब पापही के फलहैं यह हमारी मतिहै ॥ १० ॥ ऐसा जानकर विधान से दुष्कर तप को करो और सबलोग महादेवजी के लिङ्गका पूजन करो तिससे अभय पावोगे ॥ ११ ॥ इन्द्र व अग्नि आदि देवता परमेष्ठी ब्रह्माजीके इस वचन को सुनकर सब नर्मदा को आतेहुये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वहां बड़े दुस्सह बहुत तप को कल्पोंतक किया तिससे उन देवताओं ने बड़ी सिद्धिको पाया ॥ १३ ॥ तबसे लेकर वह तीर्थ देवतीर्थ इस नामसे प्रसिद्ध हुआ सबलोकों में सब पापोंका नाश

करनेवाला वह गायाजाता है ॥ १४ ॥ वहां श्रद्धावाले मनसे व भक्तिसे जो विधि सहित स्नान करता है वह मुक्तिफल को पाताहै ॥ १५ ॥ सब देवताओं से पूजेगये उन देवको जो पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के उत्तम फल को पाताहै ॥ १६ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सदा तृप्त रहता है व वहां पर्वत की बढ़ानेवाली व बड़ी पुण्यवाली रमणीक एक देवशिला है ॥१७॥ उस देवतीर्थ में संन्याससे मरेहुये मनुष्योंकी अक्षयगति होती है और हे युधिष्ठिर ! जो वहां अग्निमें प्रवेश करताहै ॥ १८ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहताहै जबतक सृष्टिका प्रलयहोताहै इसीतरह स्नान,जप,होम, स्वाध्याय, देवताओंका पूजन ॥१९॥

क्षयङ्करम् ॥ १४ ॥ तत्रश्रद्धात्मनायोपि विधिनापिसमन्वितः ॥ स्नानंसमाचरेद्भक्त्या सलभेन्मौक्तिकंफलम् ॥१५॥ यस्तमर्चयतेदेवं सर्वदेवैस्तुपूजितम् ॥ लभतेचाश्वमेधस्यफलंयागस्यचोत्तमम् ॥ १६ ॥ यस्तुभोजयतेविप्रांस्तस्मिं स्तीर्थेनराधिप ॥ तत्रदेवशिलारम्या महापुण्याद्रिवर्द्धिनी ॥ १७ ॥ संन्यासेनमृतानान्तु नराणामक्षयागतिः ॥ अ ग्निप्रवेशंयःकुर्य्याद्देवतीर्थेयुधिष्ठिर ॥ १८ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ एवंस्नानंजपोहोमस्स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥ १९ ॥ सुकृतंदुष्कृतंवापि तत्रतीर्थेऽक्षयम्भवेत् ॥ एतावद्विधिरुद्दिष्टा उत्पत्तिश्चैवभारत ॥ २० ॥ देवती र्थस्यचरितं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदेवतीर्थमहिमानुवर्णनोनाम पञ्चसप्ततित मोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र गुहावासीतिचोत्तमम् ॥ यत्रसिद्धोमहादेवो गुहावासीतिशङ्करः ॥ १ ॥ यु

पुण्य और पाप जो कुछ वहां तीर्थमें कियाजाताहै वह सब अक्षय होताहै हे भारत ! इतनी विधि व तीर्थकी उत्पत्ति कहीगई है ॥२०॥ जिससे कि सब तीर्थोंमें देवतीर्थ का चरित अत्युत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे देवतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ❀ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर गुहावासी इस नामके उत्तम तीर्थ को जावे जहां गुहावासी इस नामसे कल्याण करनेवाले महादेवजी सिद्ध

हुये है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! किस कार्यसे महादेवजी गुहावासी ऐसे कहाये हे अनघ ! यह सब विस्तारसे आप मुझ से कहे ॥ २ ॥ हे देव ! मैं सब सुननेकी इच्छा करताहूं क्योंकि मुझको बडा आश्चर्य है तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! हे नरेश्वर ! आपने जो बड़ा भारी प्रश्न हमसे कियाहै ॥ ३॥ पुराण में इसका बडा विस्तार है बुढ़ापे के कारण से मुझसे वह इस समय नहीं कहाजासक्ता है क्योंकि मैं बहुत कालका हुआहूं ॥ ४ ॥ पहले दारुवन मे देवताओं के समान ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ब्राह्मण रहते थे ॥ ५ ॥ क्योंकि अपने धर्ममें रहनेवालों कोही परमपद कहागयाहै तबतक वसन्तसमय मे किसी

धिष्ठिरउवाच ॥ केनकार्य्येणविप्रेन्द्र गुहावासीतिशङ्करः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वं कथयस्वममानघ ॥ २ ॥ श्रोतुमिच्छा म्यहन्देव सर्वंकौतूहलंहिमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ महाप्रश्नःकृतोमांयो महाप्राज्ञनरेश्वर ॥ ३ ॥ पुराणेविस्तरोप्यस्य नशक्योहिमयाधुना ॥ वृद्धभावात्कथयितुमहञ्चबहुकालिकः ॥ ४ ॥ पूर्वंदारुवनेविप्रा वसन्तिचसुरैस्समाः ॥ ब्रह्म चारीगृहस्थश्च वानप्रस्थोयतिस्तथा ॥ ५ ॥ स्वधर्म्मनिरतानाञ्च कथितंपरमम्पदम् ॥ तावद्वसन्तसमये कस्मिंश्चि त्कारणान्तरे ॥ ६ ॥ विमानस्थोमहादेवो गम्यमानोमयासह ॥ ददर्शचजनावासं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ७ ॥ अग तागतसंवासं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ तद्दृष्ट्वामुदितान्देवीं हर्षगद्गदयागिरा ॥ ८ ॥ उवाचवचनन्देवो दृष्ट्वातापसयोषि तः ॥ नान्यन्देवन्नवैधर्म्मं ध्यायन्तिहिमनन्दिनि ॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वापरंवाक्यं देवदेवेनभाषितम् ॥ कौतूहलसमावि ष्टा शङ्करंपुनरब्रवीत् ॥ १० ॥ यत्त्वयोक्तंमहादेव पतिधर्म्मपराःस्त्रियः ॥ तासामनङ्गोभूत्वात्वं चरित्रंज्ञोप्यप्रभो ॥ ११ ॥

कारण से ॥ ६ ॥ पार्व्वती के सहित महादेवजी विमानपर बैठे जातेहुये वेदों की ध्वनि से भरेहुये उस स्थानको देखा ॥ ७ ॥ सब पापों के क्षय करनेवाले गतागत से रहित उस स्थानको देखकर प्रसन्नहुई देवी पार्वती से खुशीसे घिचघिचाती आवाज से ॥ ८ ॥ तापसों की स्त्रियोको देखकर महादेवजी वचन बोले कि हे हिमनन्दिनि ! अपने पतियों को छोड़कर ये स्त्रियां और देव व और धर्मका नहीं ध्यान करती हैं ॥ ९ ॥ महादेवजी के कहेहुये इस श्रेष्ठ वचनको सुनकर आश्चर्य से युक्त

पर्वतीजी फिर महादेवजी से बोलीं ॥ १०॥ कि हे महादेवजी ! जो आपने कहा कि ये स्त्रियां पतिधर्म में तत्पर हैं तो हे प्रभो ! ॥ ११ ॥ आप कामदेव होकर इनकी चालको विगाडो तब महादेवजी बोले कि हे देवि ! हे प्रिये ! यह तुम्हारा कहाहुआ वचन किसीको नहीं रुचताहै क्योंकि ब्राह्मण बडेमहात्मा होतेहैं कोई उनकी नाराजी का काम न करेगा ॥ १२ ॥ क्रोधरूप अस्त्रवाले ब्राह्मण होते हैं और चक्र जिनका अस्त्र ऐसे विष्णुजी हैं चक्रसे ब्राह्मण का क्रोध पैनाहै इससे कोईभी ब्राह्मणको क्रुद्ध नहीं करसक्ता है ॥ १३ ॥ तीनों लोकोंमे न वे देवता, न वे लोक, न वे नाग और वे असुर देखपडते हैं कि जिनको क्रुद्ध ब्राह्मणों ने नष्ट न करदिया हो ॥ १४ ॥ बहुधा

महादेवउवाच ॥ त्वयोक्तंवचनन्देवि नचैतद्रोचतेप्रिये ॥ ब्राह्मणाहिमहाभागा नतेषांविप्रियञ्चरेत् ॥ १२ ॥ मन्युप्रहरणाविप्राश्चक्रप्रहरणोहरिः ॥ चक्रात्तीक्ष्णतरोमन्युस्तस्माद्विप्रन्नकोपयेत् ॥ १३ ॥ नतेदेवानतेलोकास्ते नागा नासुरास्तथा ॥ दृश्यन्तेचत्रिभिर्लोकैर्येतैरुष्टैर्नवञ्चिताः ॥ १४ ॥ तेषांक्षोभकरःप्रायः स्वर्गभोगफलच्युतः ॥ येषांतुष्टा महाभागा ब्राह्मणाःक्षितिदेवताः ॥ १५ ॥ तेषांधर्म्मस्तथार्थश्च कामोमोक्षोनसंशयः ॥ एवंज्ञात्वामहाभागे आग्रहस्त्यज्यतामयम् ॥१६॥ एतल्लोकविरुद्धंहि यदीच्छसिवशेसुखम् ॥देव्युवाच॥नाहन्तेदयितादेव नाहन्तेवशवर्तिनी ॥ १७ ॥ अन्यायधर्षणांचात्र सर्वासांकुरुसुव्रत॥ लोकालोकेमहादेव अशक्यंनास्तितेविभो ॥१८॥ क्रियतांममदेवैतत्परंकौतूहलंप्रभो ॥ एवमुक्तोमहादेवो देव्याःप्रियहितेरतः ॥ १९॥ कृत्वाकापालिकंरूपं ययौदारुवनंप्रति॥ महाहिनाजटा

ब्राह्मणोंका कोप करानेवाला स्वर्गके भोगरूप फलसे भ्रष्ट होजाताहै और पृथिवीके देवता बड़भागी ब्राह्मण जिनपर खुशरहते हैं ॥ १५ ॥ उनका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष निरसन्देह होताहै हे महाभागे ! ऐसा जानकर इस हठको तुम छोड़देवो ॥ १६ ॥ जो सुखको अपने वश में चाहती हो तो लोकविरुद्ध इस कामको न करो तब पार्वती जी, बोलीं कि हे देव ! न हम तुम्हारी प्यारी हैं और न हम तुम्हारे वशमें रहेंगी ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! तिससे अनीति से इन सब स्त्रियोंका धर्म छुडादेवो क्यों कि हे महादेव ! हे विभो ! इस लोकालोक में आपको कुछ अशक्य नहीं है ॥ १८ ॥ हे देव ! हे प्रभो ! इस कामको आप करैं मुझे बडा तमाशा होगा तब पार्वती के

प्यार व हितमें तत्पर इस प्रकार कहेगये महादेव ॥ १६ ॥ योगीके रूपको बनाकर दारुवन में गये चन्द्रमा जिनका गहनाहै ऐसे महादेव बड़े सांपसे जटाजूट बांध कर ॥ २० ॥ बख्तर व सोनेके कुण्डल पहनकर व्याघ्रचर्मको पहने, हार और बजुल्लाओ से भूषित ॥ २१ ॥ पावोंके गहनोंकी आवाज से पृथिवीको कँपातेहुये वीरों के घण्टाके समान आवाजवाली महाडमरूके शब्द से युक्त ॥ २२ ॥ प्रभातसमय के प्राप्त होनेपर दारुवनको गये तबतक वहां सब ब्राह्मणलोग फूल व मूल व फलों के खानेवाले ॥ २३ ॥ बहुतों के सहित पढ़तेहुये इधर उधर निकलगये हे भारत! महादेवके उस बड़े आश्चर्य्यवाले रूपको देखकर ॥ २४ ॥ स्त्रीलोग मतवाली व

जूटं नियम्यशशिभूषणः ॥ २० ॥ कङ्कत्राणंपरंकृत्वा तथासौवर्णकुण्डले ॥ व्याघ्रचर्म्मपरीधानो हारकेयूरभूषितः॥ २१ ॥ नूपुरारावनिर्घोषैः कम्पयंश्चवसुन्धराम् ॥ महाडमरुघोषेण वीरघण्टानिनादिना ॥२२॥ प्रभातसमयेप्राप्ते तत्रदा रुवनङ्गतः ॥ तावद्विप्रजनस्सर्वः पुष्पमूलफलाशनः ॥ २३ ॥ निर्गतोबहुभिस्सार्द्धं पठ्यमानइतस्ततः ॥ तद्दृष्ट्वामहदा श्चर्य्यरूपंदेवस्यभारत ॥ २४ ॥ युवतीजनःप्रमत्तश्च कामेनकलुषीकृतः ॥ सुरूपंपरमंदृष्ट्वा सर्वास्ताश्चवराननाः ॥ २५ ॥ क्लेशभावंतदागच्छन् याश्चदारुवनेस्त्रियः ॥ विकारावहवस्तासान्देवंदृष्ट्वामनोजवम् ॥ २६ ॥ सञ्जाताविप्रपत्नी नां ताञ्छृणुष्वनृपोत्तम ॥ परिधानन्नजानन्ति परिभ्रष्टंकरोद्यताः ॥ २७ ॥ दातुकामातथाभैक्ष्यं चेष्टितुन्नैवशक्य ते ॥ काचिद्दृष्ट्वामहादेवं रूपयौवनगर्विता ॥ २८ ॥ उत्सङ्गेसंस्थितंबालं पतितंव्यस्मरत्ततः॥ कामबाणहताचान्या बा हुभ्यांपीडतिस्तनौ ॥ २९ ॥ निश्श्वसन्तीतथाचान्या नकिञ्चित्परिजल्पते ॥ एवमक्षोभयत्सर्वा महेशःपतिदे

कामसे मैली करदीगई श्रेष्ठमुखवाली वे सब स्त्रियां बड़े सुन्दर रूपको देखकर॥२५ ॥ उस समय दारुवन में जितनी स्त्रियां थीं वे सब क्लेशभाव को प्राप्तहुई कामरूप महादेवजी को देखकर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके बहुत विकार पैदाहुये हे नृपोत्तम ! उनको तुम सुनो कि हाथ उठाये हुई स्त्रिया देहसे गिरेहुये अपने पहिरने के कपड़े को नहीं जानतीहैं ॥ २६ । २७ ॥ व कोई भिक्षा देने की इच्छा करतीहुई परन्तु हाथ पावँ चलाने को समर्थ न हुई व कोई स्त्री रूप और जवानी से गर्वको प्राप्तहोरही महादेवजी को देखकर ॥ २८ ॥ गोदी मे विद्यमान गिरपडे बालकको भूलगई व कोई कामबाण से मारीगई दोनो हाथों से अपने स्तनोंको दबाती है ॥ २९ ॥ और

अन्तमें अच्छेकुलमें धनवाला पैदाहोताहै व बडेकुलमें वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्व का जाननेवाला व सब शास्त्रोंमें प्रवीण ॥२६॥ राजा व राजाके बराबर पैदाहोताहै इसमें सन्देह नहीं है सब रोगों से रहित और लड़कों व पोतोंसे युक्त रहताहै ॥ २७ ॥ यह सब तुमसे कहागया जो तुमने हमसे पूंछाथा हे भारत ! सब दानोंमें तीर्थका फल युक्तिसे होताहै ॥ २८ ॥ यह उत्तमतीर्थ का माहात्म्य पढ़ने व सुननेवालों को पुण्यका देनेवाला व पापोंका हरनेवाला व धनका देनेवाला व सब दुःखोंका नाश करने वालाहै ॥ २९ ॥ जो पितरों का भक्त श्राद्धमें इसको सुनाताहै उसका सब अक्षय होताहै यह शङ्करजी ने कहाहै ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकरञ्जेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २६ ॥ राजावाराजतुल्योवा जायतेनात्रसंशयः ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तस्सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ २७ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्त्वंमांपरिपृच्छसि ॥ तीर्थस्यतुफलंयुक्त्या सर्वदानेषुभारत ॥ २८ ॥ एतत्पुण्यंपापहरं धन्यंदुःखप्रणाशनम् ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्तुश्रावयतेश्राद्धे सततिपितृपरायणः ॥ अक्षयंतस्यसर्वस्याच्छङ्करस्त्विदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकरञ्जेश्वरमहिमानुवर्णनोनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धिङ्गतोदेवः कुण्डधारोनृपोत्तम ॥ १ ॥ तपःकृत्वातुविपुलं सुरासुरभयङ्करम् ॥ कुण्डधारोमन्दरस्थः क्रीडतेसनृपोत्तम ॥ २ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्यान्वयेसमुत्पन्नः कस्यपुत्रोमहामतिः ॥ तपस्तप्त्वासुविपुलं तोषितोयेनशङ्करः ॥ ३ ॥ एतद्विस्तरतस्तात कथयस्वममानघ ॥ मा

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ को जावे हे नृपोत्तम ! जहां कुण्डधार देव सिद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ देवता और दैत्यों को भी भय करानेवाले भारी तपको कर हे नृपोत्तम ! वह कुण्डधार मन्दरपर्वत पर स्थित हो क्रीड़ा करताहुआ ॥ २ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि वह महामति किसके वंशमें उत्पन्न हुआ और किसका पुत्र था जिसने बहुत भारी तपको कर महादेवको प्रसन्न करदिया ॥ ३ ॥ हे अनघ ! हे तात ! यह विस्तार से मुझ से कहो

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! पहले त्रेतायुग में विश्रवा नाम के पुलस्त्यके पुत्र हुये ॥ ४ ॥ हे महाभाग, नृप! उन्होंने भरद्वाज की कन्या से अपना विवाह किया पुत्रके गुणों से युक्त उस स्त्रीमें धनंजय पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ उत्पन्नहुये, लड़केको जानकर ऋषि व देवताओं के सहित व बड़े प्रसन्न हो लोकों के पितामह ब्रह्मा जीने उसका नाम रक्खा ॥ ६ ॥ कि जिससे विश्रवासे पैदाहुआ हमारा पोता होताहै इससे हे अनघ! मैंने तुमको वैश्रवण नाम दियाहै ॥७ ॥ जो खास सब देवताओं के धनका रखनेवाला होगा और लोकपालों में चौथा नाशरहित यक्षोंका राजा भी होगा ॥ ८ ॥ बस वह पुत्र श्रेष्ठ यक्षोंका राजा कुण्डधार नामका आप भी यक्ष

र्कण्डेयउवाच ॥ पुरात्रेतायुगेराजन्पौलस्त्योनामविश्रवाः ॥ ४ ॥ उपयेमेमहाभाग भरद्वाजसुतान्नृप ॥ पुत्रःपुत्रगुणैर्युक्तस्तस्याञ्जातोधनञ्जयः ॥५ ॥ जातमात्रंसुतंज्ञात्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ चकारनामसुप्रीत ऋषिदेवसमन्वितः ॥ ६ ॥ यस्माद्विश्रवसोजातो ममपौत्रत्वमागतः ॥ तस्माद्वैश्रवणोनाम मयादत्तंतवानघ ॥ ७ ॥ यस्स्वयंसर्वदेवानां धनगोप्ताभविष्यति ॥ चतुर्थोलोकपालानामक्षयोयक्षपोपिवा ॥ ८ ॥ यक्षोयक्षाधिपःश्रेष्ठः कुण्डधारोभवत्सुतः ॥ सुस्वरूपवयःप्राप्य मातापित्रोरनुज्ञया ॥ ९ ॥ तपश्चकारविपुलं नर्म्मदातीरमाश्रितः ॥ यत्रव्याघ्रेश्वरंलिङ्गं व्याघ्रखेटकमुत्तमम् ॥ १० ॥ कुण्डधारेणतत्रैव तपस्तप्तंसुदारुणम् ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षास्वासारधारणः ॥ ११ ॥ शिशिरेजलमध्यस्थो वायुभक्षःशतंसमाः ॥ एवंवर्षशतेपूर्णे एकाङ्गुष्ठोभवत्ततः ॥ १२ ॥ चक्रवद्भ्रमतेसूर्य्यमभितो भरतर्षभ ॥ चतुर्थेपञ्चमेतावत्तुतोषवृषवाहनः ॥ १३ ॥ वरंवृणीष्वहेवत्स यत्तेमनसिरोचते ॥ तद्ददामिनसन्देहो तपसा

ही हुआ अच्छे स्वरूप व अवस्था को पाकर माता व पिताकी आज्ञा से ॥ ९ ॥ नर्मदा तटमें बैठकर बडे भारी तपको करता हुआ जहा उत्तम व्याघ्रेश्वर लिंग व बाघोंके शिकार का स्थान है ॥ १० ॥ वहीं कुण्डधारने अतिदारुण तपको किया है ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ, आषाढ) विषे पञ्चाग्निके बीचमें बैठा वर्षाऋतु (सावन, भादों) में जलधाराओं को धारण किया ॥ ११ ॥ शिशिरऋतु (माघ, फागुन) विषे पानीके बीच में बैठा और सौ वर्ष तक वायुका भोजन किया इस प्रकार सौ वर्षों के पूरे होनेपर एक अँगूठेसे खड़ा होताहुआ तदनन्तर ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ! सूर्यके चारों तरफ चाकसा घूमतारहा तब चौथे व पांचवें महीनामें महादेवजी प्रसन्न हुये ॥१३॥

और कहा कि हे वत्स ! जो तुम्हारे मनमें रुचताहो उस वरको मांगो तपस्या से प्रसन्न कियेगये हम उस वरको निस्सन्देह देंगे ॥ १४ ॥ तब कुण्डधार बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और वर देनेको यहां आयेहो तो मेरे नाम का लिङ्ग व यह तीर्थ होजावे ॥ १५ ॥ तब ऐसाही हो यह कहकर पार्वती सहित महादेव अन्तर्द्धान होगये और आकाश में जाकर कैलासपर्वत को चलेगये ॥ १६ ॥ महादेवजी के अन्तर्द्धान होनेपर उस यक्षनेभी आनन्द से युक्तहो उत्तम कुण्डलेश्वर महादेवजी का स्थापन किया ॥ १७ ॥ एक हाथी व गऊको सजकर दानकिया और धूप, पुष्प, चन्दन, चांदनी, चँवर, छाता और लिंगपूजन से ॥ १८ ॥ महादेवजीको प्रसन्नकर व अन्नपानआदि व भूषणों से ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर फिर अपने मन्दिरको चलागया ॥ १९ ॥ तब से वह तीर्थ तीनोंलोकों में प्रसिद्धहुआ हे युधिष्ठिर ! कुण्डलेश्वर नाम तीर्थ बड़ा पुण्यवाला है ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो कोई व्रतवाला मनुष्य महादेवजी का पूजन करता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २१ ॥ और यहां सोना, चांदी, मणि व मोतियों को जो ब्राह्मणों को देताहै वह मुख्य होकर स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ २२ ॥ उस तीर्थमें स्नानकर ब्राह्मण मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की एक ऋचाका जप करके चारोंवेदों के फलको पाताहै ॥ २३ ॥ और उस तीर्थमें जो गोदान व अन्नदान ब्राह्मणों के वास्ते देताहै हे

तोषितोह्यहम् ॥ १४ ॥ कुण्डधारउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरदित्सुरिहागतः ॥ ततोमन्नामकंलिङ्गं तीर्थंचैतद्भवत्विति ॥ १५ ॥ तथेत्युक्त्वामहादेवः सोमोन्तर्द्धानमागमत् ॥ जगामाकाशमाविश्य कैलासंधरणीधरम् ॥ १६ ॥ गते चादर्शनन्देवे सोपियक्षोमुदान्वितः ॥ स्थापयामासदेवेशंकुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ अलंकृत्वागजंधेनुं धूपपुष्पविलेपनैः ॥ वितानैश्चामरैश्छत्रैस्तथैवलिङ्गपूजनैः ॥ १८ ॥ तर्पयित्वाद्विजान्सम्यगन्नपानादिभूषणैः ॥ प्रीणयित्वामहादेवं ततःस्वभवनंययौ ॥ १९ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ युधिष्ठिरपरंपुण्यं कुण्डलेश्वरसंज्ञकम् ॥ २० ॥ तत्रतीर्थेतुयःकश्चिदुपवासपरायणः ॥ अर्चयेद्देवमीशानं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २१ ॥ सुवर्णंरजतंवापि मणिमौक्तिकमेवच ॥ ब्राह्मणेभ्योददात्यत्र समुख्योमोदतेदिवि ॥ २२ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा ऋग्यजुःसामसुद्विजः ॥ ऋचमेकाञ्जपित्वाच चतुर्वेदफलंलभेत् ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुगोदानमन्नदानमथापिवा ॥ यःप्रयच्छतिविप्रेभ्यस्तत्फलंशृ

पाण्डव ! उसके फलको सुनो ॥ २४ ॥ कि जितने उसके व उसके बच्चों के रोयें होते हैं उतने हजार वर्षोंतक स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ २५ ॥ पुत्र व पौत्रोंके
सहित उसका वास स्वर्गमें होताहै हे महाभाग ! उस तीर्थ के जंगल में प्यासा एक बाघ निषादों के डरसे घूमताथा वह निषादों के डरसे मरगया और नर्मदा के
जलमें गिरपड़ा ॥ २६ । २७ ॥ तो हे महाभाग ! पानी से भीगा वह लिंगरूप होगया तब आकाशवाणी से कहागया कि पूजनेलायक यह उत्तम व्याघ्रेश्वरलिंग
तीनोंलोकों मे निस्सन्देह प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ उस तीर्थमें स्नानकर जो मनुष्य उस लिंगका पूजन करेगा ॥ २९ ॥ वह ब्रह्महत्याआदि पापों से छूटजायगा इसमें

णुपाण्डव ॥ २४ ॥ यावन्तितस्यरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषुच ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २५ ॥ स्वर्गेवा
सोभवेत्तस्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ तस्मिंस्तीर्थेमहाभाग व्याघ्रश्चैवपिपासितः ॥२६॥ निषादानांभयेनैव अटव्यामटति
स्वयम् ॥ निषादानांभयैर्नष्टः पतितोनर्म्मदाजले ॥२७॥ जलप्लुतोमहाभाग लिङ्गरूपधरोभवत् ॥ उक्तश्चाकाशवाण्या
वै व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् ॥२८॥ पूज्यंवैत्रिषुलोकेषु ख्यातिंयास्यत्यसंशयम् ॥ तत्रतीर्थेनरस्स्नात्वा तल्लिङ्गमर्चयेत्तुयः ॥
२९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ एतत्तेकथितंराजन्कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ ३० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य
गोसहस्रफलंलभेत्॥३१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकुण्डलेश्वरमहिमानुवर्णनोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धोमहायोगी पिप्पलादोमहातपाः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरउवाच ॥ पिप्पलादस्यचरितं श्रोतुमिच्छाम्यहंप्रभो ॥ माहात्म्यंतस्यतीर्थस्य यत्रसिद्धोमहातपाः ॥ २ ॥

संशय नहीं है हे राजन् ! यह उत्तम कुण्डलेश्वरतीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३० ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानों का फल पाताहै ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपु
राणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुण्डलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पिप्पलेश्वरतीर्थ को जावे जहां बड़े तपवाले महायोगी पिप्पलादजी सिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी
बोले कि हे प्रभो ! हम पिप्पलाद के चरित को सुना चाहते हैं और उस तीर्थके माहात्म्य को भी सुना चाहते हैं जहां बड़े तपवाले पिप्पलादजी सिद्धहुये हैं ॥ २ ॥

हे महाभाग ! वे किसके पुत्र थे और किसवास्ते तपको किया हे अनघ ! यह सब विस्तारसे मुझसे कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! मिथिलाके रहनेवाले वेद व वेदाङ्गोंके पारगन्ता याज्ञवल्क्यजीने पूर्वकाल मे बडा तप किया ॥ ४ ॥ उन बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीकी एक बहिन तापसी थी वह भी वहीं रहतीहुई व अपने भाईकी सेवा करतीहुई बड़ा तप किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर एक समयमें रजस्वला उनकी बहिन स्नानके दिनमें स्नान किया तो वहां एकान्तमें पड़ेहुये वस्त्रको देखकर उसने पहनलिया ॥६॥ याज्ञवल्क्यजी भी उसी रात्रिमें उसी कपड़ेको पहनेहुये स्वप्नको देखकर अपने वीर्यका त्यागकिया उस अशुद्धवस्त्रको छोड़दिया प्रातःकाल

कस्यपुत्रोमहाभाग किमर्थंतप्तवांस्तपः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वंकथयस्वममानघ ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मिथिलास्थो महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ याज्ञवल्क्यश्चपुरतश्चचारविपुलंतपः ॥ ४ ॥ तापसीतस्यभगिनी याज्ञवल्क्यस्यधीमतः॥ चचारसापितत्रस्था शुश्रूषन्तीमहत्तपः ॥ ५ ॥ ततस्त्वेकस्मिन्समये स्नाताहनिरजस्वला ॥ अन्तर्वासंकृतवती दृष्ट्वाकर्कटकंरहः ॥ ६ ॥ याज्ञवल्क्योपितद्रात्रौ परिधानेनतेनवै ॥ स्वप्नंदृष्ट्वात्यजच्छुक्रं प्रभातेन्वैषयत्पुनः ॥ ७ ॥ ततःसाब्राह्मणीतात किमन्वेष्यसिभारत ॥ केनकार्य्यंतवविभो वदस्वममतत्त्वतः ॥ ८ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ अपवित्रोमयाभद्रे स्वप्नोदृष्टोह्यवैनिशि ॥ शुक्लंमेचात्रवस्त्रंस्वं निक्षिप्तंतन्नदृश्यते ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वाब्राह्मणीवाक्यं भीतभीताभवन्नृप ॥ तद्वस्त्रन्तुमयाब्रह्मन् स्नात्वान्तर्धानकंकृतम् ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा हाहेत्युक्त्वामहातपाः ॥ पपातसहसाभूमौ छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ११ ॥ किमेतदितिजल्पन्तमाकाशाद्वाग्विनिर्गता ॥ तोषयन्तीचतंविप्रं प्रोवाच

में उसको फिर ढूंढ़ा ॥ ७ ॥ तब हे भारत ! उस ब्राह्मणीने उनसे पूछा कि हे तात ! आप क्या ढूंढ़तेहो हे विभो ! किस चीजसे आपका कामहै सो मुझसे ठीक २ कहो ॥ ८ ॥ तब याज्ञवल्क्यजी बोले हे भद्रे ! मैंने आज रातमें बड़े भ्रष्ट स्वप्न को देखा सो अपने सफेद कपडे को मैंने यहां छोडदिया था सो वह नहीं दीखता है ॥ ९ ॥ तब हे नृप ! वह ब्राह्मणी उस वचनको सुनकर डरीसे डरी होगई और बोली कि हे ब्रह्मन् ! उस कपड़ेको तो मैंने स्नानकरके पहन लियाहै ॥ १० ॥ उसके इस वचनको सुनकर बडे तपस्वी याज्ञवल्क्यजी हाहा ऐसे कहकर जड़से कटे पेड़की तरह एकबारगी पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ११ ॥ तब यह क्या हुआ ऐसे कहतेहुये याज्ञवल्क्य को

संतोष करातीहुई आकाश से आवाज निकली और हे नृपते ! उन ब्राह्मण से कहा ॥ १२ ॥ कि इसका दोष मैंने नहीं देखाहै और हे शुभव्रते ! आपका भी कुछ दोष नहीं है जिससे तुम्हारे गर्भका उदय भया है तिससे प्रारब्धही मुख्यहै ॥ १३ ॥ लेकिन जबतक समय न आवे तबतक इस गर्भका नाश करना नहीं ठीकहै तब लज्जित व उदासमनवाली उस स्त्रीने अपमान से कहा कि अच्छा ॥ १४ ॥ फिर उस गर्भकी वह पालना करतीरही जबतक पुत्र नहीं हुआ फिर उत्पन्नमात्रहुये उस गर्भको किसी से न कहकर ॥ १५ ॥ एक पीपल के पास जाकर उसने पृथ्वी में छोड़ दिया और छोड़ देनेके बाद उसने कहा कि लोकोंमें जितने स्थावर व जङ्गम जीव हैं वे सब इस

नृपतेतदा ॥ १२ ॥ नास्यदोषोमयादृष्टस्तवचैवशुभव्रते ॥ तवगर्भोदयोयेन तत्रदैवंपरायणम् ॥ १३ ॥ नविनाशोस्य कर्तव्यो यावत्कालस्यपर्य्ययः ॥ तथेतिव्रीडितासाच दुर्मनेतिविमानतः ॥ १४ ॥ पालयामासतंगर्भं यावत्पुत्रोव्यजा यत ॥ जातमात्रन्तुतंगर्भं कथयित्वानकञ्चन ॥ १५ ॥ अश्वत्थवृक्षमासाद्य सोत्ससर्जमहीतले ॥ यानिसत्त्वानिलोकेषु स्थावराणिचराणिवै ॥ १६ ॥ तानिवैपालयन्त्वेनं बालकंत्यजतिस्मसा ॥ एवमुक्त्वाततःसाध्वी ब्राह्मणीनृपसत्तम ॥ १७ ॥ यथागतंजगामाथ सावस्थित्वामुहूर्तकम् ॥ पादौपाणीविनिक्षिप्य विसृज्यनयनेशुभे ॥ १८ ॥ आस्यञ्चविकृतं कृत्वा रुरोदोच्चैरनाथवत् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताःस्थावराजङ्गमाश्चये ॥ १९ ॥ अकम्पयन्महीन्तात सशैलवनकन्दराम् ॥ ततोज्ञात्वामहद्भूतं क्षुधाविष्टंद्विजर्षभम् ॥ २० ॥ नजहातिनगश्छायामार्पयच्चततःपयः ॥ आप्यायितस्ततस्तेन

बालकको पालें ऐसे कहकर तदनन्तर हे नृपसत्तम ! वह साध्वी ब्राह्मणी ॥ १६ । १७ ॥ दो घडी वहां ठहरकर उसके बाद जहांसे आईथी वहांको चलीगई तब वह बालक अपने पांव व हाथोंको चलाकर और अपने अच्छे नेत्रोंको मीडकर ॥ १८ ॥ अपने मुखको दीन ऐसा बनाकर बड़ीजोर से अनाथ की तरह रोताहुआ उसके रोने के शब्द से जो स्थावर व जङ्गम जीव थे वे सब डरगये ॥ १९ ॥ और हे तात ! पहाड़ व जंगल और कन्दराओं के सहित सब पृथ्वी को उस शब्दने कँपादिया तदनन्तर उस श्रेष्ठब्राह्मण को उत्तमप्राणी व भूंखा जानकर ॥ २० ॥ पीपलके वृक्षने अपनी छायाको नहीं हटाया और उसको अपना दूधभी अर्पण किया तब हे भारत ! उस

अमृतसरीखे दूधसे बढ़ायागया वह बालक चिन्तासे युक्त होकर ग्रहोंका विचार किया ॥ २१ ॥ फिर उसने अपनी क्रूरदृष्टि से क्रूरचालवाले शनैश्चर को देखा तब धीरेसे चलनेवाले शनैश्चर एकबारगी पृथ्वीमें गिरे ॥ २२ ॥ बालकभी शनैश्चरको पाँव से छुवा तब बालक से पीड़ितहुये वे शनैश्चर वचन बोले ॥ २३ ॥ कि हे महा-मुने, विप्र, पिप्पलाद ! मैंने क्या अपकार कियाहै जो आकाश में जाताहुआ मैं पृथ्वीपर गिरादियागया ॥ २४ ॥ शनैश्चर ने जब ऐसे महामुनि पिप्पलादसे कहा तब हे नराधिप ! क्रोधरूप होरहे पिप्पलाद वचन बोले उसको तुम सुनो॥ २५ ॥ पिप्पलादने कहा कि हे दुर्मते, सौरे (शनैश्चर) ! पिता व मातासे रहित बालक जो

अमृतेनैवमारत ॥ ततस्सचिन्तयाविष्टो निर्ममेग्रहगोचरम् ॥ २१॥ तेनक्रूरसमाचारः क्रूरदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥ पपातसहसाभूमौ शनैश्चारीशनैश्चरः ॥ २२ ॥ शनैश्चरंबालकोपि पादेनैवपरामृशत ॥ पीडितःसोपिबालेन उवाचवचनंतदा ॥ २३ ॥ किंमयापकृतंविप्र पिप्पलादमहामुने ॥ निष्कामनुगगनेचैव पातितोधरणीतले ॥ २४ ॥ सौरिणाप्येवमुक्तस्तु पिप्पलादोमहामुनिः ॥ क्रोधरूपोब्रवीद्वाक्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ २५ ॥ पितृमातृविहीनस्य बालभावस्यदुर्मते ॥ पीडाङ्करोषिकस्मात्त्वं सौरेत्वमवशेषितः ॥ २६ ॥ शनैश्चरउवाच ॥ क्रूरस्वभावसंजाता ममदृष्टिर्द्विजोत्तम ॥ मुञ्चत्वं माञ्चकर्ताहं यद्ब्रवीषिनसंशयः ॥ २७ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ अद्यप्रभृतिबालानां जन्मतःषोडशीःसमाः ॥ पीडात्वया नकर्तव्या एषतेसमयःपरः ॥ २८ ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा प्रजगामयथागतः ॥ देवमार्गेशनैश्चारी प्रणम्यऋषिसत्तमम् ॥ २९ ॥ ततश्चादर्शनंतत्र गतवान्समहाग्रहः ॥ विचिन्तयानश्चैकाकी क्रोधेनकलुषीकृतः ॥ ३० ॥ आग्नेयींहिदि

हमहैं तिनको तू क्यों पीडादेताहै अब तू बचगया ?॥२६॥ तब शनैश्चर बोले कि हे द्विजोत्तम ! मेरी दृष्टिही क्रूरस्वभाववालीहै इससे अब आप मुझे छोडदेवो जो आप कहतेहो उसमें कुछ सशय नहीं है मैं जरूर पीड़ाका करनेवालाहूं ॥ २७ ॥ तब पिप्पलाद बोले कि अच्छा अब आजसे जन्मसे सोलह वर्षतक बालकों को पीड़ा तुमको नहीं करना चाहिये यही तुम्हारा समय होगया ॥ २८ ॥ ऐसाही हो यह कहकर और उन ऋषिश्रेष्ठ पिप्पलादजी को प्रणामकर शनैश्चर जैसे आयेथे उसी तरह देवताओ की रास्तेको चलेगये ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे महाग्रह शनैश्चर अन्तर्द्धान होगये फिर वहां क्रोधसे भरेहुये पिप्पलाद अकेले आप विचारकरतेहुये॥ ३० ॥

आग्नेयदिशाको ध्यानकर अग्निको पैदा किया और अपने मांसको काटकर कर्म के तत्त्वसे अग्निमें हवन करतेहुये ॥ ३१ ॥ तबतक लपटों से व्याप्त कृत्या उत्पन्नहुई अग्निके तुल्य आकारवाली उस कृत्याने कहा कि मैं क्या करूं ॥ ३२ ॥ क्या समुद्रों को सुखादेऊं क्या पहाड़ों को चूर्ण करडालूं क्या जमीन को लपेटलेऊं और क्या यहा आकाश को गिरादेऊं ॥ ३३ ॥ मैं किसके शिरपर गिरूं और हे द्विज ! किसको मारडालूं मुझको शीघ्रही कामको बतलादेवो जिसमें समय न टले ॥ ३४ ॥ उस कृत्याके इस वचन को सुनकर क्रोधसे लालनेत्रोंवाले व बड़े तपवाले पिप्पलाद इस वचन को बोले ॥ ३५ ॥ कि हे शुभे ! बड़ेक्रोध के वेगसे मैंने तुम्हारा ध्यान

शंध्यात्वा जनयामासपावकम् ॥ कृत्त्वामांसंजुहावाग्नौ क्रियासम्भवतत्त्वतः ॥ ३१ ॥ तावच्चजनिताकृत्या ज्वाला मालाविभूषिता ॥ हुतभुक्सदृशाकारा किङ्करोमीतिचाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ शोषयामिसमुद्रंकिं चूर्णयामिचपर्वतम् ॥ भूमिं चवेष्टयामीह पातयित्वानभस्तलम् ॥ ३३ ॥ कस्यमूर्द्धिपतिष्यामि घातयामिचकंद्विज ॥ शीघ्रमादिशमेकार्य्यं न कालातिक्रमोभवेत् ॥ ३४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा पिप्पलादोमहातपाः ॥ क्रोधरक्तान्तनयन इदंवचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ महताक्रोधवेगेन मयात्वंचिन्तिताशुभे ॥ पितामेयाज्ञवल्क्यस्तु तन्त्वंघातयमाचिरम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तातुसाशीघ्रं स्फुटन्तीवनभस्तलम् ॥ मिथिलास्थोमहाप्राज्ञो यत्रतेपेमहातपाः ॥ ३७ ॥ यावत्पश्यतिदिङ्मार्गं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ याज्ञवल्क्योमहातेजास्तद्भूतंसमुपस्थितम् ॥ ३८ ॥ तान्दृष्ट्वासहसायान्तीं भीतभीतोमहामुनिः ॥ भूतेनाक्रमितोविप्रो जनकंनृपतिंययौ ॥ ३९ ॥ शरणार्थमनुप्राप्तं विद्धिमांनृपसत्तम ॥ महाभूताच्चमांरक्ष यदिशक्तोऽसिमानद ॥ ४० ॥

किया है सो हमारे पिता याज्ञवल्क्य हैं उनको तुम मारो देर मत करो ॥ ३६ ॥ ऐसे कहीगई वह कृत्या शीघ्र आकाश को फाड़तीसी जहां मिथिला में बैठेहुये बड़े बुद्धिमान् व बड़ेतपस्वी याज्ञवल्क्यजी तपको करतेथे वहां पहुँची ॥ ३७ ॥ महातेजस्वी याज्ञवल्क्यजी जबतक उस दिशाकी तरफ देखें तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला वह भूत भलीभांति उपस्थित होगया ॥ ३८ ॥ सहसा आतीहुई उस कृत्या को देखकर डरेसे भी डरे महामुनि ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी उस भूतसे दबेहुये राजा जनक के समीप जातेहुये ॥ ३९ ॥ और बोले कि हे नृपसत्तम ! अपनी रक्षाके वास्ते आयेहुये मुझको जानो इससे हे मानद ! जो आप समर्थहो तो

मुझे इस महाभूत से बचावो ॥ ४० ॥ तब राजा बोले कि हे महामते ! ब्रह्मतेजसे यह पैदाहुआ भूत बड़ाजबर व निवारण करनेलायक नहीं है इससे आज मैं नहीं समर्थ होसक्ताहूं आप दूसरे के पास जावैं ॥ ४१ ॥ तदनन्तर रक्षा चाहतेहुये महातपस्वी याज्ञवल्क्यजी और श्रेष्ठराजा के समीपगये उससे भी कहेहुये निराशहो इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे देवराज ! आपके नमस्कारहैं इस महाभूत से मुझे बचावो उनके इस वचन को सुनकर तब इन्द्र वचन बोले ॥ ४३ ॥ कि हम रक्षा करने को समर्थ नहीं होसक्ते हैं क्योंकि ब्रह्मतेज बड़ादुःसह होताहै तदनन्तर वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी ब्रह्मलोकको ॥ ४४ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मतेजोभवम्भूतमनिवार्य्यन्दुरासदम् ॥ प्रभुर्नैवाद्यशक्नोमि अन्यंगच्छमहामते ॥ ४१ ॥ ततश्चान्यंनृपश्रेष्ठं शरणार्थीमहातपाः ॥ जगामतेनचैवोक्त इन्द्रस्यशरणंययौ ॥ ४२ ॥ देवराजनमस्तेस्तु महाभूताच्चरक्षमाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाब्रवीदिन्द्रस्तदावचः ॥ ४३ ॥ नचशक्तःपरित्रातुं ब्रह्मतेजोहिदुःसहम् ॥ ततश्चब्रह्मभवनंब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ ४४ ॥ जगामविष्णुभवनं शक्तोपित्यक्तवान्भयात् ॥ ततःसपरमोद्विग्नो निराशोजीवितेनृप ॥ ४५ ॥ अनुगम्यमानोभूतेनअगच्छचमहेश्वरम् ॥ तस्ययोगबलोपेतो महादेवस्यपाण्डव ॥ ४६ ॥ नखमांसान्तरेलुप्तो यथा देवोनपश्यति ॥ अदृष्टमगमद्भूतं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ ४७ ॥ मुञ्चमुञ्चेतिपुरुषं मुञ्चेश्वरमुवाचह ॥ एवमुक्तोमहादेवस्तेनभूतेनभारत ॥ ४८ ॥ योगीन्द्रंदर्शयामास नखमांसान्तरेस्थितम् ॥ संस्थाप्यकृत्याम्भूतेशो ज्वलत्कालान

गये और विष्णुलोक को भी गये वे समर्थ भी रहे परन्तु भयसे नहीं ग्रहण किया तदनन्तर हे नृप ! अपने जीनेमें निराश होरहे और बहुत घबड़ानेहुये वे याज्ञवल्क्यजी ॥ ४५ ॥ पीछे लगेहुये उस भूतसे भगाये जातेहुये महादेवजी के समीप जातेहुये व हे पाण्डव ! अपने योगबलसे युक्त मुनि उन महादेवजी के ॥ ४६ ॥ नाखून के नीचेवाले मांसके भीतर छिपरहे उनको महादेवजी ने भी नहीं देखा तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला नहीं दीखताहुआ वह भूतभी आगया ॥ ४७ ॥ और महादेवजीसे बारबार स्पष्ट बोला कि उस पुरुषको आप छोंड़ो तब उस भूत से ऐसे कहेगये महादेवजी हे भारत ! ॥ ४८ ॥ अपने नाखूनके मांसके भीतर वर्तमान याज्ञवल्क्य

योगीन्द्रको दिखलादिया और जलतेहुये महाप्रलय के अग्निके समान तेजवाली उस कृत्याको रोंककर भूतोंके स्वामी महादेवजी ने ॥ ४९ ॥ कहा कि हे विप्र ! हे महामुने ! तुम मतडरो और कहीं मतजावो तदनन्तर सूक्ष्मदेह में बैठेहुये उस भूतसे महादेवजी यह बोले ॥ ५० ॥ कि हे महाभूत ! इस ब्राह्मण का तुम क्या करोगे सो अपने कार्यको हम से कहो तब कृत्या बोली कि हे देवेश ! क्रोधसे जलतेहुये पिप्पलाद ने मेरा ध्यान कियाहै ॥ ५१ ॥ सो मैं इसकी देहपर गिरूंगी हे प्रभो ! मैं नाश करनेलायक नहीं हूं ऐसा समझो तब उस भूत के मुख से निकले हुये इस वचन को सुनकर महादेवजी ॥ ५२ ॥ याज्ञवल्क्य के मारनेवाले उस

लप्रभाम् ॥ ४९ ॥ उवाचमाभैस्त्वंविप्रमागच्छस्वमहामुने ॥ ततस्तंसूक्ष्मदेहस्थं महादेवोब्रवीदिदम् ॥ ५० ॥ किमस्यत्वंमहाभूत कर्ताकृत्यंवदस्वमे ॥ कृत्योवाच ॥ क्रोधदीप्तेनदेवेश पिप्पलादेनचिन्तिता ॥ ५१ ॥ अस्यदेहेपतिष्यामि अहिंस्यांविद्धिमाम्प्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वामहादेवो भूतस्यवदनाच्च्युतम् ॥ ५२ ॥ वरिष्ठंबन्धयामास याज्ञवल्क्यस्यघातकम् ॥ योगीश्वरंतंविप्रेन्द्रं दत्त्वाभीतिंयुधिष्ठिर ॥ ५३ ॥ विसर्जयित्वादेवस्तं तत्रैवान्तरधीयत ॥ प्रेषयित्वातुतम्भूतं पिप्पलादोपिदुर्मनाः ॥ ५४ ॥ मातापितृविहीनस्तु नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ एकनिष्ठोनिराहारो वर्षाणिषोडशैवतु ॥ ५५ ॥ तोषयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ हरउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेविप्र तपसानेनसुव्रत ॥ ५६ ॥ वरंवृणीष्वतेदद्यां मनसाभीप्सितंशुभम् ॥ पिप्पलादउवाच ॥ यदिमेभगवांस्तुष्टो यदिदेयोवरोमम ॥ ५७ ॥ अत्रसन्निहितोदेव ममनाम्ना

भूतको पोढ़े बांधलिया और हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उन योगीन्द्र को अभय देकर ॥ ५३ ॥ व उनको विदाकरके महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये अब यहां पिप्पलाद भी उस भूतको भेजकर उदास होगये ॥ ५४ ॥ और माता व पिता से रहित आप नर्मदातट के आश्रित होकर सोलह वर्षतक निराहार व एक महादेव का ध्यान करते हुये ॥ ५५ ॥ पार्वती सहित, कल्याण करनेवाले, देवेश महादेवजी को प्रसन्न किया तब महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, विप्र ! तुम्हारे इस तपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ५६ ॥ इससे अपने मनमाने उत्तम वरको तुम मांगो हम तुमको देंगे तब पिप्पलाद बोले कि जो आप भगवान् मुझपर प्रसन्नहो और जो मुझे आपको वर देने

योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो हे शङ्कर, देव ! यहां मेरे नामसे आप विद्यमान बनेरहो ऐसे कहेगये महादेवजी पिप्पलाद महामुनिसे ऐसाही हो यह कहकर अपने भूतोंसे सेवा किये जाते अन्तर्द्धान होगये महादेव के जानेपर वहां उत्तम जलमें स्नानकर पिप्पलादमुनि ॥ ५८ । ५९ ॥ महादेवजीका स्थापनकर उत्तरपर्वत को चलेगये हे नृप-! उस तीर्थमें मन्त्रोंके सहित भक्तिसे मनुष्य स्नानकर ॥ ६० ॥ व पितरों और देवताओं का तर्पणकर और महादेवजीका पूजनकर अत्युत्तम अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ६१ ॥ और पिप्पलेश्वर के समीप जो मराहै वह महादेवजी के पुरको जाताहै अथवा अपने पितरों के नामसे भक्तिसहित ब्राह्मणों को जो भोजन करावे ॥ ६२ ॥

चशङ्कर ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पिप्पलादंमहामुनिम् ॥ ५८ ॥ जगामादर्शनंदेवो भूतसङ्घैर्निषेवितः ॥ पिप्पलादोग तेदेवे स्नात्वातत्रमहाम्भसि ॥ ५९ ॥ स्थापयित्वामहादेवं जगामोत्तरपर्वतम् ॥ तत्रतीर्थेनरोभक्त्या स्नात्वामन्त्रयुतोनृ प ॥ ६० ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवान्पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ अश्वमेधस्ययज्ञस्य फलंप्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६१ ॥ मृतोरुद्रपुरं याति पिप्पलेश्वरसन्निधौ ॥ अथवाभोजयेद्विप्रान्पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ ६२ ॥ द्वादशाब्दसहस्राणि तृप्तागच्छन्तिस द्गतिम् ॥ संन्यासेनतुयःकश्चित्तत्रतीर्थेतनुन्त्यजेत् ॥ ६३ ॥ अनिवर्तिकागतिस्तस्य यथामेशङ्करोब्रवीत् ॥ एतत्सर्वंस माख्यातं यत्त्वंमांपरिपृष्टवान् ॥ ६४ ॥ माहात्म्यंपिप्पलादस्य पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ एतत्पुण्यंपापहरं धन्यंदुःखप्र णाशनम् ॥ ६५ ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपिप्पलेश्वरमहिमानु वर्णनोनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तो बारहहज़ार वर्षतक अघानेहुये पितर उत्तमगति को पाते हैं और जो कोई संन्याससे उस तीर्थमें अपने शरीर को छोड़ता है ॥ ६३ ॥ उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है ऐसा महादेवजी ने मुझसे कहाहै यह सब आपसे कहागया जो तुम ने मुझसे पूंछाथा ॥ ६४ ॥ पिप्पलाद का माहात्म्य और उत्तम पिप्पलेश्वर का यह आख्यान पुण्यवाला, पापोंका हरनेवाला, धन देनेवाला और दुःखोंका नाश करनेवालाहै ॥ ६५ ॥ और पढ़ने व सुननेवालों के सब पापों का छुड़ानेवाला है ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपिप्पलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ● ॥ ● ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर को जावे वहां महादेवजी की बताईहुई एक रमणीक देवशिला है ॥ १ ॥ जहां गर्जन व खेटकनाम का क्षेत्रहै वहीं उत्तम देवशिलाभी है वहां स्नानकर भक्तिसे जो पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ २ ॥ उसके वे बारह वर्षतक अतितृप्त हुये स्वर्ग में आनन्द भोगते हैं और हे नृप ! उस तीर्थमें जो भक्तिपूर्वक थोड़े दानसे भी ब्राह्मणोंका पूजन करताहै उसके फलका अन्त नहीं है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! पृथिवी में कौन दान बहुत अच्छे हैं ॥ ३ । ४ ॥ जिनको देकर मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै तब मार्कण्डेयजी बोले कि सोना, चांदी, तांबा, मणि, मोती ॥ ५ ॥ पृथिवी

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रदेवशिलारम्या महादेवेनभाषिता ॥ १ ॥ गर्जनंखेटकंनाम तत्रदेवशिलाशुभा ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्यातर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ २ ॥ तस्यतेद्वादशाब्दानि सुतृप्तादिविमोदिताः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या ब्राह्मणान्पूजयेन्नृप ॥ ३ ॥ स्वल्पेनापिहिदानेन तस्यचान्तोनविद्यते ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कानिदानानिविप्रेन्द्र शस्तानिधरणीतले ॥ ४ ॥ यानिदत्त्वानरोभक्त्या मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सुवर्णंरजतंताम्रं मणिंमौक्तिकमेवच ॥ ५ ॥ भूमिदानंतथागावो मोचयन्त्यशुभान्नरम् ॥ तत्रतीर्थेतुयः कश्चित्कुरुतेप्राणसंक्षयम् ॥ ६ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्यावदाहूतसंप्लवम् ॥ ततःपुष्करिणींगच्छेत्कुरुक्षेत्रसमांनृप ॥ ७ ॥ पूर्वंपुष्करिणीनाम कुरुक्षेत्रंकलौस्मृतम् ॥ तत्रस्नात्वायजेद्देवं तेजोराशिन्दिवाकरम् ॥ ८ ॥ ऋचमेकांजपेत्सौम्यः सामवेदफलंलभेत् ॥ यजुर्वेदस्यजपनं ऋग्वेदस्यतथैवच ॥ ९ ॥ त्र्यक्षरंवाजपेन्मन्त्रं ध्यायमानोदिवाकरम् ॥ आदि

और गौवें मनुष्य को पापसे छुटाती हैं उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य अपने प्राणों का नाश करताहै ॥ ६ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहता है कि जबतक महाप्रलय होताहै हे नृप ! तदनन्तर कुरुक्षेत्र के समान पुष्करिणीतीर्थ को जावे ॥ ७ ॥ अगिले जमाने में पुष्करिणीही नाम रहा कलियुगमें कुरुक्षेत्र कहागया है वहां स्नानकर तेज की राशि ऐसे सूर्यदेवता का पूजनकरे ॥ ८ ॥ और एक ऋचाको जपकरे तो वह सज्जन सामवेद के फलको पावे इसीतरह यजुर्वेद व ऋग्वेद का भी जपहै ॥ ९ ॥

अथवा सूर्यका ध्यान करताहुआ त्र्यक्षर मन्त्रका जपकरे और आदित्यहृदयको तो जपकर सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १० ॥ उस तीर्थमें स्नानकर जो विधिसे ब्राह्मणों का पूजन करता है उसका दान करोडगुना होजाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ विशेषकर कार्त्तिकी तथा माघी, वैशाखी, अमावास्या, व्यतीपात, संक्रान्ति, वैधृति और रविवार को ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्र मे स्नानकर मनुष्य महादेवजी का गण होताहै अनशन, जल, अग्नि व पञ्चाग्नि से ॥ १३ ॥ जो उस तीर्थमें मराहै वह परमगति को पाताहै हे नृपसत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ॥ १४ ॥ जो वेदोक्त कर्मको करता है वह महात्माओं की गतिको पाताहै तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे

त्यहृदयंजप्त्वा मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ १० ॥ तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा विधिनापूजयेद्द्विजान् ॥ तस्यकोटिगुणंदानं जायतेनात्रसंशयः ॥ ११ ॥ कार्त्तिक्यांचतथामाघ्यां वैशाख्यान्तुविशेषतः ॥ अमावास्यांव्यतीपाते संक्रमेवैधृतौरवौ ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्रेनरःस्नात्वा रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ अनाशकेजलेह्यग्नौ पञ्चाग्नौवातथापिवा ॥ १३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेमृतोयस्तु सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवानृपसत्तम ॥ १४ ॥ विहितंकर्म्मकुर्वाणः सगच्छतिसताङ्गतिम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ किंजपन्मुच्यतेव्याधेर्ज्ञात्वावर्णंद्विजोत्तम ॥ १५ ॥ किंकुर्वन्मुच्यतेप्राणी यातिलोकमनामयम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्नवहित इतिहासंपुरातनम् ॥ १६ ॥ गुह्यतीर्थेसमासाद्य ब्राह्मणोमुक्तवान्यथा ॥ पुराद्विजवरश्चासीद्गोविन्दोनामनामतः ॥ १७ ॥ तस्यभार्य्यासुसम्पन्ना ब्राह्मणीचपतिव्रता ॥ तस्यांसंजनयामास पुत्रमेकंचसुन्दरम् ॥ १८ ॥ सबालएवभवने क्रीडतेशिशुलीलया ॥ कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः काष्ठमानयितुङ्गतः ॥ १९ ॥ वनान्नी

द्विजोत्तम ! अपने वर्णको जानकर क्या जपताहुआ मनुष्य रोगसे छूटजाताहै ॥ १५ ॥ और क्या करताहुआ प्राणी पापसे छूटता व निर्दोषलोक को जाताहै तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे राजन् ! सावधान होकर तुम पुराने इतिहास को सुनो ॥ १६ ॥ कि गुह्यतीर्थ में प्राप्तहोकर जैसे ब्राह्मण छूटगया है अगिले जमाने मे नामसे गोविन्द नाम का एक उत्तम ब्राह्मण होताहुआ ॥ १७ ॥ उसकी स्त्री ब्राह्मणी बड़ी पतिव्रता होतीहुई उसमें बड़े सुन्दर एक पुत्रको उसने उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ वह बालक अपने

घरहीं में लडकों के खेलोंसे खेलताहुआ किसी समयमें वह उत्तम ब्राह्मण लकड़ी लेनेको जाताहुआ ॥१९॥ जंगलसे लकड़ी के बोझको लाकर पिछवाडेसे घरमें फेकदिया वहां खेलताहुआ लडका लकडी के बोझसे चोटहिल होगया ॥ २० ॥ लड़का वहां मरगया परन्तु उससमयमें ब्राह्मणने नहीं जाना और उससमय में ब्राह्मणीभी डरके मारे गोविन्द से नहीं कहा ॥ २१ ॥ वह गोविन्द ब्राह्मण फिरभी जब वनको चलागया तब हे नृप ! अकेली वह ब्राह्मणी विलाप करतीहुई ॥ २२ ॥ ब्राह्मणी बोली कि ब्रह्माका पोता रावण जिसको तीनोंलोक डरतेथे वह पुत्र, मन्त्री और भाइयोंके सहित रामसे मारागया ॥ २३ ॥ ऐसेही पुत्र के विना मनुष्यलोक व स्वर्गलोक

त्वाकाष्ठभारं गृहेपश्चाचत्तिप्तवान् ॥ क्रीडन्नास्तेशिशुस्तत्र काष्ठभारेणपीडितः ॥ २० ॥ ममारबालकस्तत्र द्विजोनज्ञा तवांस्तदा ॥ ब्राह्मण्यपितदातस्मै नशशंसभयात्तथा ॥ २१ ॥ पुनर्द्विजस्सगोविन्दो विपिनंसंजगामह ॥ यदासाब्राह्म णीशून्या विललापतदानृप ॥ २२ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ रावणोब्रह्मणःपौत्रस्त्रैलोक्यंयस्यशङ्कते ॥ सहतोरामचन्द्रेण स पुत्रामात्यबान्धवः ॥ २३ ॥ एवंपुत्रंविनासौख्यं मर्त्येनाकेनविद्यते ॥ यशआख्यायितंयस्य स्वर्गार्थंयस्यभारती ॥२४॥ मिष्टान्नंब्राह्मणस्यार्थे स्वर्गवासोपिविद्यते ॥ पुत्रोत्पत्तिविनाशाभ्यां नापरंसुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां नापरंपापपुण्ययोः ॥ किंब्रवीमीतिहेवत्स नानुसौख्यंसुतंविना ॥ २६ ॥ एवंबहुविधंदुःखं प्रलपित्वापुनःपुनः ॥ बालं गृहगतेविप्रे सङ्गोप्यब्राह्मणीतथा ॥ २७ ॥ एवंतस्यांविलम्पन्त्याङ्गतारात्रिर्युधिष्ठिर ॥ भूम्यांप्रसुप्तंगोविन्दं पुत्रशोके नपीडिता ॥ २८ ॥ यावन्निरीक्षतेभार्य्यां भर्तारंदुःखपीडितम् ॥ कृमिराशिमयन्तावद्गोविन्दंनृपसत्तम ॥ २९ ॥ दुःखा

में सुख नहीं है जिसका यश फैलाहुआ है, और जिसकी वाणी स्वर्गकी देनेवाली है ॥ २४ ॥ और जिसका मीठा अन्न ब्राह्मणों के वास्तेहै उसीको स्वर्गवास भी है पुत्र पैदाहोने के बराबर सुख नहीं है और उसके मरने के बराबर कोई दुःख नहीं है ॥ २५ ॥ ब्रह्महत्या के बराबर कोई पाप नहीं है और अश्वमेध के बराबर कोई पुण्य नहीं है हे वत्स ! मै क्या कहूं पुत्रके विना सुख नहीं है ॥ २६ ॥ ऐसे अनेकप्रकार के दुःखको बार बार कहकर और ब्राह्मण को घरमें आनेपर बालक को छिपाकर ब्राह्मणी रहगई ॥ २७ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसतरह उसके विलाप करतेहुये रात्रि बीतगई पुत्रशोकसे पीडित उनकी स्त्री जमीन में सोरहे गोविन्द अपने मालिकको जबतक

दुःख से पीडित देखे तबतक कीडोंके ढेररूप गोविन्द को देखा हेनृपसत्तम ! ॥ २८ । २९ ॥ पापसे युक्त उन गोविन्द को देखकर अत्यन्त दुःखमें ब्राह्मणी डूबगई तब इस प्रकार दुःखमें डूबीहुई उस ब्राह्मणी की रात बीती ॥ ३० ॥ प्रातःकाल कुशों के वास्ते फिर गोविन्द वनको गये ऐसे लकडी से मरेहुये अपने लड़के को गोविन्द ब्राह्मणने नहीं जाना ॥ ३१ ॥ जिस वार्त्ताको ब्राह्मणी ने छिपाया था उसको पांचदिन होगये पाचवें दिन एक पशुओंका चरानेवाला उत्तम भैंसियों और गौवोंको चराता हुआ ॥ ३२ ॥ वनमें भैंसियों व गौवों को छोड़कर आप खानेके वास्ते घरको गया और गोविन्द ब्राह्मण से उस पशुपालने कहदिया ॥ ३३ ॥ कि हे स्वामिन् ! मैं जबतक भो-

द्दुःखतरेमग्ना दृष्ट्वातंपातकान्वितम् ॥ एवंदुःखनिमग्नायाः शर्वरीविगतातदा ॥३० ॥ पुनःप्रातस्तुगोविन्दो दर्भाय चवनंगतः ॥ एवंनज्ञातवान्विप्रः काष्ठेनचहतंसुतम् ॥ ३१ ॥ गताश्चदिवसाःपञ्च ब्राह्मण्यागोपितञ्चयत् ॥ पशुपालःप ञ्चमेह्नि महिषीरुत्तमाश्चगाः ॥ ३२ ॥ अरण्येमहिषीर्मुक्त्वा गाश्चभोक्तुंगृहंगतः ॥ विज्ञप्तःपशुपालेन गोविन्दोब्राह्मणो त्तमः ॥ ३३ ॥ यावद्भुञ्ज्याम्यहंस्वामिन्महिषीर्गाश्चरक्षय ॥ ततःसत्वरितोगाश्च ब्राह्मणोमहिषीःप्रति॥ ३४॥जगाममहि षीर्गाश्च विप्रस्यतस्यरक्षतः॥ धावमानस्यगावश्च महिष्यःसङ्गमंगताः ॥ ३५ ॥ तत्रप्रविष्टास्तुजले नद्यारेवासुसङ्गमे ॥ तज्जलंपीतमात्रन्तु त्वरयातेनवारिताः ॥ ३६ ॥ अकामात्सलिलंपीत्वा प्रक्षाल्यनयनेशुभे ॥ आजगामततःपश्चाद्ध वनंदिनसंक्षये ॥ ३७ ॥ भुक्त्वादुःखान्वितोरात्रौ गोविन्दश्शयनंययौ ॥ निद्राभिभूतोदुःखेन श्रमेणैवतुखेदितः ॥ ३८ ॥ पुनस्तस्यार्द्धरात्रेतु तस्यभार्य्यानिरीक्षते ॥ कृमिभिर्वेष्टितंगात्रं कचित्पश्यत्यवेष्टितम् ॥ ३९ ॥ पुनःसाविस्मया

जनकरआऊं तबतक आप इन भैंसियों व गौवोंको बचाये रहना तदनन्तर वह ब्राह्मण जल्दहो भैंसियों व गौवों के पास ॥ ३४ ॥ चलागया और भैंसियों व गौवों को चराते व दौडतेहुये उस ब्राह्मण के भैंसें व गौवें संगम को चलीगईं ॥ ३५ ॥ और उस नदी व नर्मदा के संगम के जलमें पैठगईं उस पानीके पीतेही उस ब्राह्मणने उनको जल्दी से हांकदिया ॥ ३६ ॥ आपभी बेप्यास पानीको पीकर और नेत्रोंको धोकर उसके बाद सन्ध्याको घरआया ॥ ३७ ॥ थकाहुआ भोजनकर रातमें गोविन्द सोगया दुःख व थकावट से कष्टित निद्रासे बेहोश होगया ॥ ३८ ॥ आधीरात को फिर उसकी स्त्री उसको देखनेलगी तो उसकी देह कहीं कीड़ोंसे युक्त और कहीं

खाली देखतीहुई ॥ ३६ ॥ फिर गुणवाली वह उसकी स्त्री विस्मय से भरीहुई व डरतीहुई उसका पाप उससे कहतीहुई ॥ ४० ॥ स्त्री बोली कि बीतेहुये आज से पांचवे दिनमें पिछवाडे से लकड़ीको फेंकतेहुये आपसे बेजाना, घरमें वर्तमान, आपका लड़का मारडालागया ॥ ४१ ॥ आपके कियेहुये इस घोरपाप को मैंने प्रकट नहीं किया पर छिपायेहुये उस पापसे मैं दिन रात जलतीहूं ॥ ४२ ॥ और आपके व अपने शरीर के सुखको नहीं देखती हूं हे नाथ ! मेरी नींद व तुम्हारे साथका भोग नष्ट होगयाहै ॥ ४३ ॥ मनुस्मृति में महर्षियों का कहाहुआ श्लोक सुनाजाता है उसको याद कर २ रातमें मेरा सन्ताप शान्त नहीं होताहै ॥ ४४ ॥ उस श्लोक का

विष्टा तस्यभार्य्यागुणान्विता ॥ उवाचदुष्कृतंतस्य साध्वसाविष्टचेतना ॥ ४० ॥ भार्य्योवाच ॥ अतीतेपञ्चमेचाह्नि इन्धनंक्षिपतातुते ॥ गृहेपश्चात्स्थितोबालस्त्वज्ञातोघातितस्त्वया ॥ ४१ ॥ मयातत्पातकंघोरं त्वत्कृतंनप्रकाशितम् ॥ तेनप्रच्छन्नपापेनदह्यमानादिवानिशम् ॥ ४२ ॥ नसुखंतवगात्रस्यनचपश्यामिचात्मनः ॥ निद्राप्रणष्टामेनाथ रतिश्चैवत्वयासह ॥ ४३ ॥ श्रूयतेमानवेशास्त्रे श्लोकोगीतोमहर्षिभिः ॥ स्मृत्वास्मृत्वाचतंरात्रौ परितापोनशाम्यति ॥ ४४ ॥ कीर्तनान्नश्यतेऽधर्म्मो वर्द्धतेऽसौचगूहनात ॥ इहलोकेपरेचैव पापस्यान्तोनविद्यते ॥ ४५ ॥ एवंसञ्चिन्त्यमानाहं स्थितारात्रौभयातुरा ॥ कृमिराशिमयंत्वान्तु पश्यामिकथयामिकिम् ॥ ४६ ॥ पुनश्चकान्तत्वद्देहंभ्रूणहत्याकृमिप्लुतम् ॥ कश्चित्तुदन्तितेचैव कश्चिन्नष्टाःसमन्ततः ॥ ४७ ॥ एतत्संस्मृत्यसंस्मृत्य विमृशन्तीपुनःपुनः ॥ नजानेकारणंकिञ्चित्पृच्छामिकथयस्वमे ॥४८॥ तडागंवापिसरितंतीर्थंवादेवतालयम् ॥ यंगतोसिप्रभावोयं तस्यनान्यस्यमेमतिः॥४९॥

यह मतलब है कि अधर्म (पाप) कहने से घटताहै और छिपाने से बढ़ताहै इस लोक व परलोक में पापका अन्त नहीं है ॥ ४५ ॥ ऐसे विचारतीहुई व डरतीहुई मैं रातमे रहती हूं और आपको कीडोंका ढेररूप देखतीहूं तिसको क्या कहूं॥ ४६ ॥ फिर हे प्यारे! सबओर बालहत्या के कीडोंसे घिरीहुई आपकी देहको कहीं वे कीड़े काटतेहैं और कहीं के नष्टभी होगये हैं ॥ ४७ ॥ इस बातको बार २ यादकर व बार २ विचारती हुई मैं किसी कारणको नहीं जानती सो आपसे पूछतीहू आप मुझसे कहो ॥ ४८ ॥

जिम तड़ाग व नदी व तीर्थ न देवता के स्थानको आप गयेरहो उसीका यह प्रभावहै और का नहीं यह मेरी समझहै ॥ ४६ ॥ हे भारत ! ऐसे कहागया वह ब्राह्मण स्त्री से रमता हुआ हे नृपोत्तम ! पहलेवाले हालको कहा ॥ ५० ॥ कि मे गौवों व भैंसियों के रोकने के वास्ते नर्मदाके सगम को गयाथा सो नाभितक जलमें पैठकर मैंने यथेष्ट जलको पियाहै ॥ ५१ ॥ और तीर्थको मैं नहीं जानताहूं नर्मदाजी सब नदियों में श्रेष्ठहैं इस प्रकार उस सब वृत्तान्त को सुनकर उस उत्तमवर्णवाली स्त्रीने उसी क्षणमें व्रत किया और उस संगममें पतिके सहित जातीहुई और देवताओंसे पूजित उस सङ्गम में विधिसे स्नानकर ॥ ५२ । ५३ ॥ पार्वती के सहित कल्याणकारक

गोलुलायीनिवृत्त्यर्थं नर्म्मदासङ्गमंगतः ॥ नाभिमात्रेजलेमग्नस्तोयंपीतंयथेष्टतः ॥ ५१ ॥ नान्यत्तीर्थंविजानामि नर्म्मदाचसरिद्वरा ॥ एवंश्रुत्वाचतत्सर्वमुपवासःकृतःक्षणात ॥ ५२ ॥ भर्त्रासहगतातत्र सङ्गमेवरवर्णिनी ॥ स्नात्वाविधिप्रयुक्तेन सङ्गमेसुरपूजिते ॥ ५३ ॥ तर्पयामासदेवेशं शङ्करंचसहोमया ॥ पञ्चामृतैःस्नापयित्वा ब्राह्मण्यासहितोद्विजः ॥ ५४ ॥ गन्धमाल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्चसुशोभनैः ॥ अपूजयत्तत्रलिङ्गं देवींकात्यायनींशुभाम् ॥ ५५ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा भर्त्रातेनसहैवसा ॥ ततःप्रभातेविमले द्विजंसम्पूज्ययत्नतः ॥ ५६ ॥ गोदानेनहिरण्येन वस्त्रेणान्नेनभारत ॥ गोविन्दःपूजयामास स्वशक्त्याब्राह्मणंशुभम् ॥ ५७ ॥ उक्तश्चाकाशवाण्यातु तीर्थंगुह्यावतीत्विदम् ॥ गुह्येश्वरंतत्रलिङ्गं पातालादुत्थितंतदा ॥ ५८ ॥ गुह्यावतीनर्मदयोः सङ्गमोगुणवानभूत् ॥ मुक्तपापोगृहंयातः स्वभार्य्यासहितोद्विजः ॥ ५९ ॥ एवमुक्तस्त्वसौविप्रः कथयामासभारत ॥ भार्ययापूर्ववृत्तान्तंरममाणोनृपोत्तम ॥ ५० ॥ एतत्ती

महादेवजी को तृप्त किया ब्राह्मणी के सहित उस ब्राह्मण ने पञ्चामृत से स्नान करवाके ॥ ५४ ॥ चन्दन, फूल, धूप और अत्युत्तम नैवेद्यआदि से वहां लिंग व उत्तम कात्यायनी देवीका पूजन किया ॥ ५५ ॥ उस अपने पतिके सहित वह स्त्री रात्रि में जागरणकर और फिर निर्मल प्रातःकाल मे यत्नसे ब्राह्मणका भी पूजनकर स्वस्थ होगई ॥ ५६ ॥ व हे भारत ! गोविन्द भी अपनी शक्तिसे गऊ, सोना, कपडा और अन्नसे उत्तम ब्राह्मण का पूजन किया ॥ ५७ ॥ और आकाशवाणीसे कहाभी गया कि यह गुह्यावती नामका तीर्थ है उसीसमय में पाताल से वहां गुह्येश्वरलिंग भी प्रकटहुआ ॥ ५८ ॥ गुह्यावती और नर्मदा का सङ्गम गुणवाला होताहुआ छूटे

पापवाला वह ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित घरको गया ॥ ५९ ॥ यह तीर्थ पापों का हरनेवाला व बालहत्या का नाश करनेवाला है उसमें स्नान, जप, दान व ब्राह्मण भोजन करवाके ॥ ६० ॥ और व्रत करके व श्राद्धकरने और तिलोदक देने मे महाप्रलयतक शिवलोक में बसताहै ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगुह्यावतीतीर्थमहिमाऽनुवर्णनेनामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर जावे जहां मेघनाद के समीप नदियों में श्रेष्ठ विश्वरूपा नदी ॥ १ ॥ जगत् के उपकार

र्थंपापहरं बालहत्याप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नात्वाचजप्त्वाच दत्त्वाब्राह्मणभोजनम् ॥ ६० ॥ उपास्यश्राद्धकरणात्तिलोदकप्रदानतः ॥ निवसेच्छिवलोकेहि यावदाहूतसंप्लवम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगुह्यावतीतीर्थमहिमानुवर्णनोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र उत्तरेनर्म्मदातटे ॥ मेघनादसमीपेतु विश्वरूपासरिद्वरा ॥ १ ॥ निर्गताविश्वरूपस्य शरीरादुपकुर्वतः ॥ पुरादारुवनेदेवो लिङ्गहीनः कृतोद्विजैः ॥ २ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य तपःकुर्वंस्तदान्नृप ॥ विश्वरूपोभवद्देवो निर्गतासरितांवरा ॥ ३ ॥ गतासानर्म्मदातोयं सङ्गमोगुणवानभूत् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा सभवेनपुनर्भवेत् ॥४॥ तत्रयत्क्रियतेकर्म्म सर्वंतदक्षयंभवेत् ॥ सारिकासिद्धिमायाता पतितातीर्थसङ्गमे ॥ ५ ॥ पूर्वमप्सरसांश्रेष्ठा शक्रशापादकामतः ॥ चित्राङ्गदेनरमिता काचित्कष्टमवापह ॥ ६ ॥ सारिकाभवकल्याणि वर्षाणांसाग्रविंशतिम् ॥

करनेवाले विश्वरूप महादेव के शरीर से निकली है पूर्वकाल में दारुवनमें ब्राह्मणोंने महादेवजीको लिंगहीन करदियाथा ॥ २ ॥ तब उस समय में हे नृप ! नर्मदाके तटपर बैठकर तपस्याको करतेहुये महादेवजी विश्वरूप होगये उन्हींसे जो श्रेष्ठ नदी निकली है ॥ ३ ॥ वही नर्मदाको गईहै वह संगम गुणवाला होगया उस तीर्थमें स्नान कर वह मनुष्य फिर संसारमें नहीं होताहै ॥ ४ ॥ वहां जो कर्म कियाजाताहै वह सब अक्षय होताहै तीर्थके संगममे गिरीहुई सारिका (मैना) ने सिद्धिको पायाहै ॥ ५ ॥ प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में अप्सराओं मे श्रेष्ठ कोई एक अप्सरा बेमन चित्राङ्गद के साथ रमी सो इन्द्रके शापसे कष्टको प्राप्तहुई ॥ ६ ॥ इन्द्रने कहा कि हे कल्याणि !

तू कुछ अधिक बीस वर्षतक सारिका हो फिर मरकर तू विश्वरूपा के संगममें नर्मदाके जलमें प्रवेशकर उस योनिसे छूटजायगी ॥ ७ ॥ तब हे नृप! उत्तमदेहवाली वह बड़ी विचित्र मैनाहुई अपनी जातिकी याद रखनेवाली देवी नर्मदातट में रहतीरही ॥ ८ ॥ तदनन्तर उत्तम आचरणवाली वह मैना समय के आनेपर उत्तम आगको जलाकर विश्वरूपा के सङ्गम में नहाकर आगमें पैठगई ॥ ९ ॥ तब हे राजन्! दिव्यदेह को धरेहुये इन्द्र के मन्दिर को प्राप्तहुई तबसे वह सारिकातीर्थ कहाजाता है ॥ १० ॥ वहां जो काम कियाजाता है श्राद्ध, यज्ञ व शिवपूजन वह सब करोड़गुना मेघनादके दर्शनसे होताहै ॥ ११ ॥ परवश व अपने वश होकर जो

मृत्वात्वंनर्म्मदातोये विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ७ ॥ विचित्राबहुचार्वङ्गी सञ्जातासारिकान्नृप ॥ जातिस्मरासुराभावा नर्म्मदातटमाश्रिता ॥ ८ ॥ ततःकालेचसंप्राप्ते प्रज्वाल्यपावकंशुभम् ॥ प्रविष्टासाशुभाचारा विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ९ ॥ दिव्यदेहधरीराजन्प्राप्ताशक्रस्यमन्दिरम् ॥ एतदन्तरमासाद्य सारिकातीर्थमुच्यते ॥ १० ॥ तत्रयत्क्रियतेकर्म्म श्राद्धं यज्ञःशिवार्चनम् ॥ सर्वंकोटिगुणंविद्यान्मेघनादस्यदर्शनात् ॥ ११ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ १२ ॥ ख्यातानिपञ्चलिङ्गानि यानिदृष्ट्वाशिवंव्रजेत् ॥ मानवोमनुजश्रेष्ठ शृणु तानियुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ मेघनादंचगोष्ठेशं वागीशंकाक्कडेश्वरम् ॥ लक्षेश्वरंपञ्चलिङ्गान्येकाहेयस्तुपूजयेत् ॥ १४ ॥ अनेनैवशरीरेण सनरोहिशिवंव्रजेत् ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्यपश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि पुरावृत्तंतवानघ ॥ धर्म्मसेनःपुराराजा अयोध्याधिपतिर्बली ॥ १६ ॥ धर्म्मेणराज्यंकृतवान्यज्ञांश्चबहुदक्षिणान् ॥

प्राणोंको छोड़ताहै उसकी फिर इस घोरसंसारसागरमें आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ १२ ॥ वहां पांच लिंग प्रसिद्ध हैं जिनका दर्शनकर मनुष्य शिवको पाताहै हेमनुजश्रेष्ठ, युधिष्ठिर! उनको तुम सुनो ॥ १३ ॥ मेघनाद, गोष्ठेश, वागीश, काकडेश्वर और लक्षेश्वर इन पांचों लिंगोंको जो एक दिनमें पूजता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य इसी शरीर से महादेवजी को पाताहै करोड़ों यज्ञोंके फलको पाकर पीछे मोक्षको पाताहै ॥ १५ ॥ हे अनघ! पूर्वकाल में हुये आख्यानको हम तुमसे कहेंगे अगिले जमाने में अयोध्याके मालिक, बलवाले, राजा धर्मसेनजी हुये ॥ १६ ॥ उन्होंने धर्मसे राज्य व बहुत दक्षिणावाली यज्ञोंको किया व धर्मशास्त्र सुनरहे वे राजा नर्मदाके चरितको

सुनकर नर्मदाके उत्तरवाले तटको चलेगये नर्मदाके जलमें स्नानकर और मेघनादका पूजनकर ॥ १७ । १८ ॥ सूर्यके उदय होतेहुये घोडेपर सवार राजा उत्तरदिशा की तरफ होकर गोष्ठेश्वर महादेवजीको चलेगये ॥ १९ ॥ उनका विधिसे पूजनकर फिर वागीश्वर को गये राजा वहां विधिपूर्वक स्नानकर और चन्दन, अगर, कपूर, धूप और दीपआदि विधानों से शिवका पूजनकर घोडेपर सवार राजाधिराज काकडेश्वरको आये ॥ २० । २१ ॥ व उनको पूजकर तदनन्तर राजा नर्मदाके जलमें विद्यमान लवेश्वरको जाकर व उनका विधिपूर्वक पूजनकर ॥ २२ ॥ फिर मेघनादको गये वहां सूर्यभी अस्त होगये आपही कालरूप महादेवजीका ध्यानकर राजा जब

शृण्वन्सधर्म्मशास्त्राणि नर्म्मदाचरितंतथा ॥ १७ ॥ श्रुत्वाविनिर्गतोराजा रेवायाउत्तरेतटे ॥ मेघनादंसमभ्यर्च्य स्नात्वावैनर्म्मदाजले ॥ १८ ॥ उद्गच्छतिदिनकरे अश्वारूढोनरेश्वरः ॥ उत्तरान्दिशमाश्रित्य गतोगोष्ठेश्वरंशिवम् ॥ १९ ॥ यथाविधानंसम्पूज्य वागीश्वरगतस्ततः ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन पूजयित्वाशिवंनृपः ॥ २० ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपैर्दीपैर्विधानकैः ॥ अश्वारूढोनृपश्रेष्ठः काकडेश्वरमागतः ॥ २१ ॥ तंप्रपूज्यततोराजा गत्वावैनार्म्मदेजले ॥ लवेश्वरंपूजयित्वा स्थितंवैविधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥ मेघनादंततोगत्वा सूर्य्यश्चास्तमुपागमत ॥ ध्यात्वास्वयंकालरूपं यावत्तिष्ठतिवैनृपः ॥ २३ ॥ तावद्धोरोपितुरगोह्यन्तरिक्षचरस्तदा ॥ दिव्यदेहधरस्सोवाप्यप्सरोभिःसमावृतः ॥ २४ ॥ विमानेदेवराजस्य ययाविन्द्रपुरींस्थितः ॥ शुनीपृष्ठेतुयाराज्ञस्तीर्थयात्रांप्रकुर्वती ॥ २५ ॥ दिव्यदेहधरासापि विमानेनगतादिवि ॥ धर्म्मसेनोपितान्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ २६ ॥ अश्वरूपंजगादाथ किमेतदितिभारत ॥ उवाचाकाशगोवाचं कथन्त्वंखिद्यसेनृप ॥ २७ ॥ शरीरजेनकष्टेन तपःसाध्याविभूतयः ॥ पादचारीहिगच्छत्वं परपादैर्गतोह्यसि ॥ २८ ॥ भू

तक ठहरे ॥ २३ ॥ तबतक वह पापी घोडा भी आकाश में चलताहुआ व दिव्य देहको धरेहुये व अप्सराओं से घिराहुआ ॥ २४ ॥ इन्द्रके विमान मे बैठाहुआ इंद्रपुरीको चलागया और राजाके पीछे तीर्थयात्राको कररही जो कुतिया थी ॥ २५ ॥ वह भी दिव्यदेह को धरेहुये विमान से स्वर्गको जातीहुई धर्मसेन भी उसको देखकर विस्मययुक्त होतेहुये ॥ २६ ॥ और हे भारत ! उस घोड़ेसे कहा कि यह क्याहै तब आकाशमें विद्यमान घोड़ा वचन बोला कि हे नृप ! तुम क्यों दीन होतेहो ॥ २७ ॥

अपने शरीर के कष्टसे जो तप होताहै उसीसे सब ऐश्वर्य होते हैं इससे अपने पांवों से चलतेहुये आप जावें अभी तो और के पांवों से आयेथे ॥ २८ ॥ अब जो फिर आप यात्रा करेंगे तो सिद्धिको पावेंगे तब राजा उसके इस वचन को सुनकर ॥ २९ ॥ फिर दूसरे दिन लिंगपूजनके लिये गये और पांचों लिंगोंका भली भांति पूजनकर नर्मदा को आये ॥ ३० ॥ जब मेघनाद को देखा तो दरवाजेपर प्रत्यक्ष महादेवजीको देखतेहुये पांच मुहँवाले, दश भुजावाले, तीन नेत्रवाले, त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ३१ ॥ बैलपर सवार, जगत् जिनके पेटमें है, चन्द्रमा का मुकुट बनायेहुये और इन्द्रादि सब देवताओंके स्वामी परमेश्वर उन महादेवजी को देख

योयात्रांप्रकुरुषे तदासिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ततोराजाचतस्याथ श्रुत्वातद्वचनंतदा ॥ २९ ॥ पुनर्द्वितीयदिवसे प्रस्थितोलिङ्गपूजनम् ॥ पञ्चलिङ्गान्समभ्यर्च्य समायातस्तुनर्म्मदाम् ॥ ३० ॥ मेघनादंयदापश्यद्द्वारेदेवंचदृष्टवान् ॥ पञ्चवक्रं दशभुजं त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ३१ ॥ वृषारूढंजगद्गर्भं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ दृष्ट्वातन्देवदेवेशं तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ ३२ ॥ जयदेवमहादेव महापातकनाशन ॥ संसारसागरेमग्नं मांसमुद्धरसाम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ हरउवाच ॥ वरंवृणु महाभाग यत्तेमनसिवर्तते ॥ तद्ददामिनसन्देहश्शिवभक्तोहिपुत्रक ॥ ३४ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव तन्मांसहचरंकुरु ॥ एकाहेपञ्चलिङ्गानि पूजयिष्यतियोनरः ॥ ३५ ॥ सतवानुचरोदेव भवत्वेषवरोमम ॥ धर्म्मसेनवचःश्रुत्वा भवत्वेवंहरोब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तंगृहीत्वातुराजानं कैलासंसजगामह ॥ स्वदेहस्थंचकारासौ धर्म्मसेनंनृपंनृप ॥ ३७ ॥ एतत्तेकथितंराज

कर स्तुति करतेहुये ॥ ३२ ॥ हे देव ! हे महादेव ! हे बडे पापोंके नाशकरनेवाले ! आपकी जयहो अब संसारसमुद्रमें डूबेहुये मुझको उद्धारकरो ॥ ३३ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें बर्तताहो उस वरको तुम मागलेवो हेपुत्रक ! उसको मैं तुम्हे देऊंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि तुम शिवकेभक्तहो ॥३४॥ तब राजा बोले कि हे देव ! जो आप मुझपर प्रसन्नहोवो तो मुझे आप अपना अनुचरकरो और जो मनुष्य एक दिनमें पांचों लिंगोंका पूजनकरे ॥ ३५ ॥ हे देव ! वह तुम्हारा अनुचर होजावे यही हमारा वरहै धर्मसेन के वचनको सुनकर ऐसाही हो इस प्रकार महादेवजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और उन राजाको लेकर महादेवजी कैलास

को चलेगये और हे नृप ! राजा धर्मसेनजीको अपने शरीरमें मिलालिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास आपसे कहागया इसके सुनने व कहनेसे अश्वमेध के फलको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपञ्चलिङ्गमहिमाऽनुवर्णनोनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और पापों के नाश करनेवाले तीर्थको कहेंगे वह मयूरकुक्कुट नाम का तीर्थ ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥ नर्मदा के दक्षिण तटमें पुण्यवाला मृकण्डका आश्रमहै हे भूपाल ! उसमें बड़े धर्मात्मा मृकण्डनामक ऋषि ॥ २ ॥ हे महाभाग ! देवताओं की हजारोंवर्षोंतक तप करतेहुये रमणीक

न्नितिहासंपुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यअश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चलिङ्गमहिमानुवर्णनोनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मयूरकुक्कुटंनाम ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ १ ॥ मृकण्डस्याश्रमंपुण्यं नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ मृकण्डोनामभूपाल ऋषिःपरमधार्म्मिकः ॥ २ ॥ तपस्तेपेमहाभाग दिव्यैर्वर्षसहस्रकैः ॥ तस्याश्रमपदेरम्ये मुनयःशंसितव्रताः ॥ ३ ॥ वसन्तिस्मजलाहाराः शुष्कपत्रकृताशनाः ॥ केचित्तत्रनिराहारा मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्गन्धर्वौशक्रगायनौ ॥ हेतिप्रहेतिनामानौ गतौशक्रसभांनृप ॥ ५ ॥ वधूरप्सरसांश्रेष्ठा दृष्टाताभ्यांयुधिष्ठिर ॥ दृष्टमात्रौतुगन्धर्वौ कामवाणप्रपीडितौ ॥ ६ ॥ हेतिःकुक्कुटशब्देन प्रहेतिर्बर्हिणस्तथा ॥ घोष्यमाणौसुमधुरं सादयामासतुश्चताम् ॥ ७ ॥ वृत्रहातदभिप्रायं ज्ञात्वाशापंददौत

उनके आश्रममें उत्तमव्रतवाले जल व सूखेपत्तोंके खानेवाले मुनिलोग बसतेहुये मोक्षके उपायोंके विचारनेवाले वहां कोई निराहार भी रहतेथे ॥ ३ । ४ ॥ हे राजन् ! इसी अन्तर में हेति और प्रहेति नामके इन्द्रके यहां के गानेवाले गन्धर्व हे नृप ! इन्द्रकी सभाको गये ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन दोनोंने अप्सराओं में श्रेष्ठ एक नवीन अप्सराको देखा देखतेही दोनों गन्धर्व कामबाणसे अतिपीडितहुये ॥ ६ ॥ तब हेति मुर्गाकी आवाज से और प्रहेति मोरकी बोलीसे अतिमधुर बोलतेहुये उस

अप्सराको रिझाया ॥ ७ ॥ तब उनका अभिप्राय जानकर इन्द्रने शापकोदिया कहा कि तुम दोनों मुर्गा और मोर होजावोगे इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥ फिर देवताओं की सौवर्षोंके पूरे होनेपर यहां आवोगे तब हे युधिष्ठिर ! वे दोनों गन्धर्व पक्षियोंकी योनिको प्राप्तहोगये ॥ ९ ॥ पहले जन्मकी याद रखनेवाले व कुकर्म करनेवाले व देखनेमें प्यारे दोनों पक्षी सब तीर्थोंपर उतरतेहुये नारदजी को देखा ॥ १० ॥ तब दोनो गन्धर्व बोले कि हे शुभाचार ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे तपोधन ! किस कर्मसे ये हम दोनों छूटेंगे सो आप कहें ॥ ११ ॥ तब नारदजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणके तटमें मृकण्डका पुण्यवाला आश्रम है अक्सर वह तीर्थ तिर्यक्योनि से छोडानेवाला

दा ॥ युवांकुक्कुटमयूरौच भविष्येथेनसंशयः ॥ ८ ॥ पूर्णेदिव्यशतेवर्षे पश्चादत्रागमिष्यथः ॥ तिर्य्यग्योनौतुसंप्राप्तौ गन्धर्वौहियुधिष्ठिर ॥ ९ ॥ जातिस्मरौदुराचारौ पक्षिणौप्रियदर्शिनौ ॥ सर्वतीर्थान्युत्तरन्तौ नारदंचददर्शतुः ॥ १० ॥ गन्धर्वावूचतुः ॥ भविष्यावःशुभाचार ब्रह्मपुत्रतपोधन ॥ कर्म्मणाकेनचावांहि मुक्तावेतौवदस्वतत् ॥ ११ ॥ नारदउवाच ॥ नर्म्मदादक्षिणेतीरे मृकण्डस्याश्रमंशुभम् ॥ तिर्य्यग्योनिविमोक्षञ्च तीर्थंहिपरमंमतम् ॥ १२ ॥ जलाप्लुतौनर्म्मदायाः सर्वंतत्रभविष्यति ॥ ततोहेतिःप्रहेतिश्च सुस्नातौदिव्यरूपिणौ ॥ १३ ॥ एकेनस्नानमात्रेण पक्षिणौदिव्यतांगतौ ॥ स्नात्वातुविधिनानेन ध्यात्वादेवंसदाशिवम् ॥ १४ ॥ उच्चार्य्याघोरमन्त्रन्तौ सदाध्यानस्थितौनृप ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्पातालादुत्थितंशुभम् ॥ १५ ॥ शतसूर्य्यप्रकाशंहि लिङ्गंतत्रयुधिष्ठिर ॥ कुक्कुटेश्वरमेकन्तु मयूरेश्वरमेवच ॥ १६ ॥ गन्धर्वौतुविमानस्थौ गतौशक्रस्यमन्दिरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा भवेनैवपुनर्भवेत् ॥ १७ ॥ स्नात्वातिलो

मानागयाहै ॥ १२ ॥ तुम दोनों नर्मदाके जलमें स्नानकरो वहां सब होजायगा तदनन्तर हेति और प्रहेति दोनोंने स्नान किया और दिव्यरूप होगये ॥ १३ ॥ एक स्नानमात्रसे दोनोंपक्षी दिव्यरूप होगये फिर विधिसे स्नानकर व सदाशिवदेवका ध्यानकर ॥ १४ ॥ व अघोरमन्त्रका उच्चारणकर वे दोनो सदा ध्यानमें स्थित होतेहुये इसी अन्तर में हे राजन् , युधिष्ठिर ! वहां सैकड़ों सूर्योंके समान तेजवाले, उत्तम, दो लिंग पातालसे निकले एक कुक्कुटेश्वर और दूसरा मयूरेश्वर ॥ १५ । १६ ॥ फिर विमान पर बैठेहुये दोनों गन्धर्व इन्द्रके मन्दिर को चलेगये उस तीर्थ में मनुष्य स्नानकर फिर संसार में नहीं होताहै ॥ १७ ॥ स्नानकर और तिलोदक

देकर पितरों की परमगति होती है और परवश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ताहै ॥ १८ ॥ उसकी फिर घोर संसारसागर में आवृत्ति नहीं होतीहै वहां के मरे हुये कीडे, पतिंगवे, पत्ती, सांप, मेंढक और पापीवृत्त भी शिवके स्थानको जाते हैं ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमृकण्डाश्रमकीर्तनो नामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर चन्द्रमती के संगम में और उत्तमतीर्थ है वहां चन्द्रेश्वर, सिद्धेश्वर, घण्टेश्वर और महिषेश्वर ये सिद्धलिंग हैं तदनन्तर

दकंदत्त्वा पितॄणांपरमागतिः ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ १८ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ तत्रकीटाःपतङ्गाश्च पक्षिणोथसरीसृपाः ॥ १९ ॥ मण्डूकाःपापवृत्ताश्च मृतायान्तिशिवंपदम् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमृकण्डाश्रमकीर्तनोनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोन्यत्परमंतीर्थं चन्द्रमत्यास्तुसङ्गमे ॥ चन्द्रेश्वरंसिद्धलिङ्गं तथासिद्धेश्वरंपुनः ॥ १ ॥ घण्टेश्वरंमहिषेशमश्वतीर्थमतःपरम् ॥ वृषसेनंहयग्रीवं शुक्रतीर्थमतःपरम् ॥ २ ॥ रमेश्वरंततोगच्छेत्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मेकलायास्तटेराजन्महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ यदादारुवनेपूर्वं महादेवेनमोहिताः ॥ ब्राह्मणानांस्त्रियस्तत्र रममाणाःसमागताः ॥ ४ ॥ चिन्तयन्त्यश्चतामोक्षं मेकलातीरमाश्रिताः ॥ ताभिश्चरममाणाभिरावृत्तंशिवपूजनम् ॥ ५ ॥ नीलोत्पलदलैर्बिल्वैर्मल्लिकाजातिकुन्दकैः ॥ शून्यंप्रपूजितंयावत्तावल्लिङ्गंसमुत्थितम् ॥ ६ ॥ पातालादागतंलिङ्गं

अश्वतीर्थ, वृषसेन, हयग्रीव और शुक्रतीर्थ है ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर पापोंके नाशकरनेवाले रमेश्वरतीर्थ को जावे हे राजन् ! वह महापातकों का नाश करनेवाला नर्मदाके तटमें है ॥ ३ ॥ जब पहले दारुवन मे महादेवजीसे मोहित कीगई ब्राह्मणोंकी स्त्रिया रमतीहुई वहां आईं व वे मोक्षको विचार करतीहुई नर्मदाके तटपर बैठी फिर विहार करतीहुई उन स्त्रियोंने महादेवजी के पूजनका प्रारम्भ किया ॥ ४ । ५ ॥ कालेकमलोंके दलों से व बिल्वपत्र, नेवेली, जाही और कुन्दके फूलोंसे जबतक महादेव से खालीस्थान को पूजे तबतक लिंग प्रकटहुआ ॥ ६ ॥ जलतीहुई कालाग्निके समान तेजवाला लिङ्ग पाताल से आगया और रमेश्वर नाम से प्रसिद्ध उसी

विहारस्थान से प्रकट होगया ॥७॥ फिर महादेवजीने स्त्रियोंसे कहा कि तुम्हारे शापका मोक्ष होजावे अब तुम सब पापसे रहित अपने घरको जावो ॥ ८ ॥ इतना कह कर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये इससे उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर वह फिर संसारमें नहीं होताहै ॥ ९ ॥ तथा अनशनसे व अग्नि में जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न न होवेंगे और पितरों के लिये वहां विधिपूर्वक तिलोदक व पिण्डदान अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वहां श्राद्धके करने व दानसे पितरों की परमगति होती है पूर्व कालमें इन्द्र,ब्रह्मा,विष्णु और कुबेर ॥ ११ ॥ व हे नृप ! राक्षस रावण और मेघनादने जपको जपा व तपको तपा और अनेक प्रकारकी यज्ञोंको ॥ १२ ॥ किया इससे

ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ रमेश्वरेतिविख्यातं रममाणात्समुत्थितम् ॥ ७ ॥ स्त्रीणामुवाचदेवेशः शापमोक्षोभवत्विति ॥ गच्छन्तुसर्वाःस्वगृहं साम्प्रतंगतकल्मषाः ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा सम्भवेन्नपुनर्भवेत् ॥ ९ ॥ अनाशकेनचाग्नौहि येमृतानपुनर्भवाः ॥ तिलोदकंपितॄणान्तु पिण्डदानंयथाविधि ॥ १० ॥ श्राद्धेनैवचदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ इन्द्रेणब्रह्मणापूर्वं विष्णुनाधनदेनच ॥ ११ ॥ रक्षसारावणेनाथ तथाचेन्द्रजितानृप ॥ जपोजप्तस्तपस्तप्तं यज्ञानिविविधानिच ॥ १२ ॥ कृतानिनृपशार्दूल गताहिपरमाङ्गतिम् ॥ अन्यच्चकथयिष्यामि हारिणंतीर्थमुत्तमम् ॥ १३ ॥ हरिणेशंसिद्धलिङ्गं तथावैधनुरीश्वरम् ॥ बाणेश्वरंपरंविद्धि तथावैलुब्धकेश्वरम् ॥ १४ ॥ एतानिलिङ्गरूपाणि पूजयित्वाशिवंव्रजेत् ॥ आख्यानंकथयिष्यामि पुरावृत्तंयुधिष्ठिर ॥ १५ ॥ अर्जुनोलुब्धकोनाम मन्दजातिसमुद्भवः ॥ पर्य्यटन्मृगयांराजन्नर्म्मदातीरमागतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वायूथंमृगाणान्तु धावमानः पुनःपुनः ॥ पलायमानाःसर्वेते एकःपश्चात्स्थितोमृगः ॥ १७ ॥ हतोमध्यदिनेसोध कुरङ्गोनर्म्मदातटे ॥ पतितोसौ

हे नृपशार्दूल ! वे परमगतिको प्राप्तहुये अब और उत्तम हारिणतीर्थको कहेंगे ॥ १३ ॥ सिद्धलिंग हरिणेश तथा धनुरीश्वर,बाणेश्वर और चौथे लुब्धकेश्वरको जानो ॥ १४ ॥ इन लिंगोंका पूजनकर शिवको पाताहै हे युधिष्ठिर ! अब पूर्वकाल में हुये आख्यान को हम कहेंगे ॥ १५ ॥ नीचजाति में पैदाहुआ अर्जुननाम का बहेलिया शिकारको घूमताहुआ हे राजन् ! नर्मदाके तीरआया ॥१६॥ और मृगोंके झुण्डको देखकर बार २ दौड़रहा तबतक वे सब मृग भागगये पीछेसे एक मृग रहगया ॥१७॥

गतप्राणो दिव्यदेहधरः पुनः ॥ १८ ॥ विमानेहंसयुक्तेवै ब्रह्मलोकंजगामह ॥ गतेतुहरिणेसोथ लुब्धकश्चिन्तयान्वितः ॥ १९ ॥ महापापान्यनेकानि कृतानितुमयापुनः ॥ काङ्क्षतिंयाम्यहंचाथ श्रेयसेमरणंमम ॥ २० ॥ चिन्तयित्वाततोरा जन्पतितोनर्म्मदाजले ॥ तत्त्क्षणाद्दिव्यदेहोसौ गन्धर्वपुरमाययौ ॥ २१ ॥ गतेतस्मिन्देवलोके धनुर्बाणौजलेस्थितौ ॥ चत्वार्य्येतानिलिङ्गानि ख्यातानिभुवनत्रये ॥ २२ ॥ हरिणेश्वरंचबाणेशं लुब्धेशंधनुरीश्वरम् ॥ रमेश्वरंपञ्चमन्तु प ञ्चलिङ्गानिकीर्तयेत् ॥ २३ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरोराजन्स्नात्वाशिवपुरंव्रजेत् ॥ २४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विलयंयान्तिपार्थिव ॥ अनाशकेचार्द्धजले मृतःशिवमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे रमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरबाणेश्वरकथनोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥

वह मृग मध्याह्न मे नर्मदाके तटपर मारागया वह मुर्दाहोकर गिरपडा फिर दिव्यदेहको धरेहुये ॥ १८ ॥ हंसोंसे जुते विमानपर चढ़कर ब्रह्मलोक को चलागया उस मृगके चलेजाने पर वह बहेलिया चिन्ता से युक्त हुआ ॥ १९ ॥ कि अनेक महापापों को मैंने कियाहै सो किस गति को मैं जाऊंगा इससे अब मेरा मरजाना अच्छा है ॥ २० ॥ तदनन्तर हे राजन्! इस प्रकार चिन्ताकर वह नर्मदाके जलमें गिरपड़ा उसीक्षण में दिव्य देहवाला वह गन्धर्वपुर को चलागया ॥ २१ ॥ उसके देवलोक में जानेपर धनुष और बाण जलमें पड़ेरहे तब ये चारलिंग तीनों भुवनोंमें प्रसिद्ध हुये ॥ २२ ॥ हरिणेश्वर,बाणेश, लुब्धेश,धनुरीश्वर और पांचवां रमेश्वर इन पांचों लिङ्गोंको जो कहे ॥ २३ ॥ उसका फिर घोरसंसारसागर में आना नहीं होताहै हे राजन्! उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य शिवपुर को जाताहै ॥ २४ ॥ और हे पार्थिव! ब्रह्महत्याआदि पाप नाश को प्राप्तहोते हैं और अनशन व अधजल से मरा शिवको पाता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेरमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरबाणेश्वरकथनोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि यत्नसे व्रतको कियेहुये भक्तिसे जो उसमें स्नानकर रात्रिमे जागरणकरे व दान देवे ॥ १ ॥ व पञ्चामृतसे महादेवजी को स्नान करावे व यथाशक्ति दानकरे और विधानसे पूजनकर ॥ २ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करताहुआ सुपात्र को ढूंढ़कर दानकरे तो उसके पितर बारहवर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३ ॥ और देनेवाला वहां जाताहै जहां निरजन देवहैं व जो इनके नामको अपने मकानमें बैठाहुआ अपनी शक्तिके अनुसार जपताहै ॥ ४ ॥ वह नील पर्वतमें जो पुण्य होती हैं उस सबको पाताहै और शूलभेदविषे जो पर्व २ में श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ और मासान्तमें विशेष से करताहै हे नृप ! उसके पुण्यफल को तुम

मार्कण्डेयउवाच ॥ तत्रस्नात्वातुभक्त्याय उपवासपरायणः ॥ क्षपाजागरणंकुर्य्याद्दद्याद्दानंचयत्नतः ॥ १ ॥ देवस्यस्नपनंकुर्य्यादमृतैःपञ्चभिस्तथा ॥ समालभेद्यथाशक्त्या पूजांकृत्वाविधानतः ॥ २ ॥ पात्रंपरीक्ष्यदातव्यमात्मनःश्रेयइच्छता ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दंनसंशयः ॥ ३ ॥ दाताचगच्छतेतत्र यत्रदेवोनिरञ्जनः ॥ गृहमध्येप्रविष्टस्तु स्मरन्नामास्यशक्तितः ॥ ४ ॥ नीलाद्रौतुचयत्पुण्यं तत्समस्तंलभेतसः ॥ शूलभेदेचयःकुर्य्याच्छ्राद्धं पर्वणिपर्वणि ॥ ५ ॥ विशेषाच्चैवमासान्ते तस्यपुण्यफलंश्रृणु ॥ केदारेचैवयत्पुण्यं कुब्जायाञ्चतथानृप ॥ ६ ॥ कनखलेचैवयत्पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे ॥ सितासितेतुयत्पुण्यमन्यतीर्थेविशेषतः ॥ ७ ॥ अर्बुदेचैवयत्पुण्यं पुण्यंचामरपर्वते ॥ गङ्गाद्यैःसर्वतीर्थैश्च फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ८ ॥ अस्मिंस्तीर्थेतथापुण्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ विधिमन्त्रसमायुक्तं तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ९ ॥ कुलानितारयत्येव दशपूर्वापराणिसः ॥ दक्षिणाञ्चैवमर्त्यश्च शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १० ॥ न्यासंकृत्वातुपूर्वोक्तं प्रदद्यादष्टपुष्पकम् ॥ शास्त्रोक्तैरष्टभिर्मन्त्रैर्मानसैःश्रृणुतांस्तथा ॥ ११ ॥ वारिजंसौम्यमा

सुनो कि केदारमें जो पुण्यहै तथा कुब्जामें जो पुण्य होताहै ॥ ६ ॥ और कनखल व गङ्गासागरसङ्गममें जो पुण्यहै और सितासित व और तीर्थमें विशेषसे जो पुण्यहै ॥ ७ ॥ व अर्बुद व अमरपर्वतमें जो पुण्यहोताहै व गङ्गाआदि सब तीर्थोंसे मनुष्य जो फल पाताहै ॥ ८ ॥ इस तीर्थमें उसी प्रकार पुण्यको पाताहै इसमें कुछ संशय नहीं है व जो विधि और मन्त्रों से युक्त पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ९ ॥ वहआगे व पीछेवाले दशकुलों को तारताहै और पवित्र व सावधान होकर मनुष्य

दक्षिणा को भी देवे ॥ १० ॥ पहिले कहेहुये न्यासको कर फिर शास्त्रमें कहेहुये आठ मानसमन्त्रों से आठ फूलोंको देवे उन आठोंफूलोंको तुम सुनो ॥ ११ ॥ वारिज, सौम्य, आग्नेय, वायव्य, पार्थिव, वानस्पत्य व सातवां प्राजापत्य पुष्पहै ॥ १२ ॥ और आठवां शिवपुष्प है अब इनका निर्णय सुनो वारिज जलको जाने, मिठाई से युक्त दूध सौम्यहै ॥ १३ ॥ धूप व दीप आग्नेय है, चन्दनआदि वायव्य है, कन्द मूलआदि पार्थिवहै,फल वानस्पत्यहै ॥ १४ ॥ अन्नआदि प्राजापत्यहै और उपासना करने को शिवपुष्प कहते हैं अब और फूलोंको कहते हैं कि जीवोंका नहीं मारना पहिला फूलहै, इन्द्रियों का वश करना दूसरा ॥ १५ ॥ और तीसरा फूल दयाहै

ग्नेयं वायव्यंपार्थिवंपुनः ॥ वानस्पत्यंभवेत्पुष्पं प्राजापत्यन्तुसप्तमम् ॥ १२ ॥ अष्टमंशिवपुष्पंच शृणुवेतेषांविनिर्णय म् ॥ वारिजंसलिलंज्ञेयं सौम्यंमधुयुतंपयः ॥ १३ ॥ आग्नेयंधूपदीपंच वायव्यंचन्दनादिकम् ॥ पार्थिवंकन्दमूलाद्यं वानस्पत्यफलात्मकम् ॥ १४ ॥ प्राजापत्यमन्नाद्यञ्च शिवपुष्पमुपासनम् ॥ अहिंसाप्रथमंपुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥ १५ ॥ तृतीयंचदयापुष्पमेभिस्तुष्यन्तिदेवताः ॥ तपसाचार्चयेद्भक्त्या अत्रतीर्थेनराधिप ॥ १६ ॥ छत्रञ्चचामरन्द द्याच्छय्यांचोपानहौतथा ॥ तेनपूजनमात्रेण पूजिताःपुरुषास्त्रयः ॥ १७ ॥ स्वर्गलोकेवसेत्तावद्यावदाहूतसंप्लवम् ॥ शू लपाणेस्तुयोभक्त्या स्नपनञ्चैवकारयेत् ॥ १८ ॥ पञ्चामृतेनयश्चैव यक्षकर्दमकुङ्कुमैः ॥ समालभेच्चदेवेशं श्रीखण्डै रगरादिभिः ॥ १९ ॥ नानाविधैश्चपुष्पैश्च अर्चांकुर्वन्तियेद्विजाः ॥ रुद्रंपुरुषसूक्तञ्च लोकेयःस्वस्वसूत्रकम् ॥ २० ॥ इषेत्त्वादिकमन्त्रादिज्योतिर्ब्राह्मणमेवच ॥ गायत्रीचमधुश्चैव मण्डलब्राह्मणमेवच ॥ २१ ॥ एतज्जपन्तुयेभक्त्या

इन्हीं फूलोसे देवता प्रसन्न होतेहैं तपस्या व भक्तिसे हे नराधिप ! इस तीर्थमें पूजनकरे ॥ १६ ॥ और छाता, चँवर, पलंग और जूताका जोडा देवे इस पूजनमात्र से तीन पुरुष पूजेहोजाते हैं ॥ १७ ॥ और तबतक स्वर्गलोकमें रहता है कि जब तक प्रलय होताहै और जो भक्तिसे महादेवजी को पञ्चामृत से स्नान कराता है और यक्षकर्दम, केसर, चन्दन और अगरआदि से जो महादेवजी को लेपित करता है ॥ १८ । १९ ॥ व जो ब्राह्मण अनेकतरह के फूलों से पूजन करते हैं व संसार में जो रुद्रसूक्त व पुरुषसूक्त जपताहै और अपने २ सूत्र ॥ २० ॥ इषेत्त्वाआदि मन्त्र, ज्योतिर्ब्राह्मण, गायत्री, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण और देवव्रत नामका दैव्यसूक्त इन

यजुर्वेदीय सूक्तोंको जो भक्तिसे जपते हैं वे पुरुष शिवके लोकको जातेहैं ॥ २१ । २२ ॥ हे महाराज ! अगिले जमाने में बडा दुर्जय एक अन्धक नामका दैत्यहुआ
वह बहुत कालतक बैठकर महादेवजी को प्रसन्न करताहुआ ॥२३॥ तब प्रसन्नहुये भगवान् महादेवजीने अन्धक से कहा कि हे सुव्रत ! वर मागो तब वरको पाकर वह
अन्धक दैत्य खुशीसे शीघ्रचला ॥ २४ ॥ उसके पुरमें सबलोग रत्नोंसे भरेहुये पात्रों को लिये और अक्षतों से युक्त पात्रोंको लिये सैकडों व हजारों स्त्रियां देखपडीं ॥
२५ ॥ ब्राह्मणलोग मङ्गलशब्दों के सहित मन्त्रोंको पढते हैं और मन्त्री व सेवक, राज्य, घोडे, रथ और हाथियों के सहित राजाको ॥ २६ ॥ बढाते हैं और जितने

यजुर्वेदसमुद्भवम् ॥ देवव्रतंनामदैत्यं पुरुषास्तत्पुरंययुः ॥ २२ ॥ आसीत्पुरामहाराज अन्धकोनामदुर्जयः ॥ आराध
यामासशिवं चिरकालमुपस्थितः ॥ २३ ॥ प्रसन्नोभगवान्देवो वरंयाचस्वसुव्रत ॥ वरंलब्ध्वातदादैत्योधावत्सहर्षतो
ऽन्धकः ॥ २४ ॥ पुरेजनाश्चदृश्यन्ते भाजनैरत्नपूरितैः ॥ साक्षतैर्भाजनैस्तस्य शतसाहस्रयोषितः ॥ २५ ॥ मन्त्रान्पठ
न्तिविप्राश्च माङ्गल्यनिस्वनेनच ॥ भूपंचामात्यभृत्यैश्च राज्याश्वरथदन्तिभिः ॥ २६ ॥ वर्द्धापयन्तितेसर्वे येकेचित्पु
रवासिनः ॥ हृष्टःपुष्टोवसंस्तत्र ससुरैर्नाभिभूयते ॥ २७ ॥ वरलब्धन्तुतंज्ञात्वा गीर्वाणाःशङ्कितास्तदा ॥ एकीभूताश्च
तेसर्वे शक्रस्यशरणंययौ ॥ २८ ॥ समागतान्सुरान्दृष्ट्वा शक्रोवचनमब्रवीत् ॥ कथंसमागतास्सर्वे यूयञ्चत्रिदिवौक
सः ॥ २९ ॥ कथञ्चभयमुत्पन्नं कथयध्वंमहासुराः ॥ ३० ॥ देवाऊचुः ॥ मृत्युलोकेभवत्पापस्त्वन्धकोनामदुर्मदः ॥
३१ ॥ तस्माच्चभयमापन्ना भवच्छरणमागताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेरौद्रो दानवोबलदर्पितः ॥ ३२ ॥ एकाकीस्यन्दना

कुछ पुरवासी हैं वे भी सब इसी कामको करते हैं इस प्रकार वह असुर हृष्टपुष्ट वहां रहता देवताओं से कभी नहीं हारता हुआ ॥ २७ ॥ वरको पायेहुये उस दैत्यको
जानकर देवतालोग शङ्कितहुये तब वे सब एकत्रित होकर इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ २८ ॥ तब आयेहुये देवताओं को देखकर इन्द्र वचन बोले कि हे देवताओ ! तुम
सबलोग क्यों आयेहो ॥ २९ ॥ हे उत्तम देवताओ ! तुमको कैसे भय पैदाहुआ सो कहो ॥३०॥ तब देवतालोग बोले कि मनुष्यलोकमें एक बड़ापापी व बडा अहङ्कारी
अन्धकनाम का असुर उत्पन्न हुआ है ॥३१॥ उससे डरेहुये हम सब आपकी शरण आयेहैं तबतक इसी अरसेमें बलसे गर्वित होरहा भयानक दानव ॥ ३२ ॥ अकेला

रथपर सवार, अनेक अस्त्रोंसे युक्त अन्धकासुर हे राजशार्दूल ! इन्द्रकी पुरीको जाताहुआ ॥ ३३ ॥ जोकि सोनेके शहरपनाह से युक्त व अनेक मन्दिरों से शोभित और हे पार्थिवसत्तम ! शत्रुओं के जाने को सदा बडी कठिन है ॥ ३४ ॥ सो ऐसी उस पुरीमें लीलापूर्वक अपने घरकी नाईं वह असुर प्रवेश करताहुआ तदनन्तर उठकर इन्द्रने उसे अपना आसन दिया ॥३५॥ तब अन्धक उस इन्द्रके शुभ आसनपर बैठताहुआ तब इन्द्र बोले कि यहां आपका आगमन क्यों हुआ और आप का क्या कार्य है सो मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ हे दानव ! जो मेरे धन है वह मैं तुम्हें देऊंगा तब अन्धक बोला कि मैं धन, हाथी व घोड़ों को नहीं चाहताहूं ॥ ३७ ॥

रूढ आयुधैर्विविधैर्युतः ॥ अन्धकोराजशार्दूल ययौशक्रपुरीन्ततः ॥ ३३ ॥ स्वर्णप्राकारसंयुक्तां शोभितांविविधैर्गृहैः ॥ दुर्गमांशत्रुवर्गस्य सदापार्थिवसत्तम ॥ ३४ ॥ प्रविवेशासुरस्तत्र लीलयास्वगृहंयथा ॥ समुत्थायततश्शक्रस्स्वकीय ञ्चासनन्ददौ ॥ ३५ ॥ उपविष्टोन्धकस्तत्र शक्रस्यैवासनेशुभे ॥ शक्रउवाच ॥ किंवोह्यागमनंचात्र किंकार्यंकथय स्वमे ॥ ३६ ॥ यदस्मदीयंवित्तञ्च तत्तेदास्यामिदानव ॥ अन्धकउवाच ॥ नचाहंकामयेवित्तं नगजान्नतुरङ्गमान् ॥३७॥ स्वकीयन्दर्शयस्वाद्य स्वर्गशृङ्गारभूमिकम् ॥ ऐरावतंमहानागं सैन्धवोच्चैःश्रवोहयम् ॥ ३८ ॥ उर्वश्यादीनिसर्वाणि वा दित्रत्रितयानिच ॥ अन्यास्स्वीयाविभूतीश्च दर्शयस्वशचीपते ॥ ३९ ॥ तस्यैतद्वचनंश्रुत्वा शक्रोपिभयविह्वलः ॥ सर्वा णिचपदार्थानि दर्शयामासचान्धकम् ॥ ४० ॥ तदागत्यसुरैःसार्द्धं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ नृत्यन्त्यप्सरसस्तत्र वादित्रै र्विविधैर्नृप ॥ ४१ ॥ तत्तस्यविभ्रमच्चित्तन्दृष्ट्वाप्यप्सरसस्तदा ॥ तेनदेवगणास्सर्वे त्रस्ताःपार्थिवसत्तम ॥ ४२ ॥ संग्रा

मुझको आज अपने स्वर्गके शृङ्गाररूप पदार्थोंको दिखावो बडा हाथी ऐरावत व समुद्रसे प्राप्त उच्चैःश्रवा घोडा ॥ ३८ ॥ व उर्वशीआदि सब अप्सरायें तीनों प्रकारका त ऽफा और हे शचीपते ! और भी अपनी विभूतियों को दिखावो ॥ ३९ ॥ उसके इस वचन को सुनकर इन्द्रभी भयसे घबडागये और सब पदार्थों को अन्धक को दिखाया ॥ ४० ॥ तब देवता, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरो के सहित आकर हे नृप! अनेक बाजाओं के साथ वहा अप्सरायें नाचनेलगी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अप्सराओंको

देखकर उसका चित्त मोहित होगया तब हे पार्थिवसत्तम ! इसकारण से सब देवता डरगये॥४२॥फिर वहां चक्र और वज्रसे शत्रुओंको डरावनी अनेक तरहकी लड़ाइयों
से सब देवता विकल व बहुत से नष्ट करदियेगये ॥ ४३ ॥ आदित्य और मरुत् आदि देवता संग्राममण्डल में हारगये जैसे सिंहके पञ्जेसे मारेहुये जङ्गलीजीव वन
में भागें ॥ ४४ ॥ इसीतरह उस एक दैत्यसे वे सब देवता भगा दियेगये फिर अपने बलसे देशों व गांवोंमें प्रजाओं को निरन्तर पीड़ित करताहुआ॥ ४५ ॥ जबरद-
स्तीसे दूध, शाक वैसेही वस्त्रोंको छीनलिया प्रजाओं के क्लेशमें लगाहुआ वह असुर उनके सम्मान की बातभी नहीं कहता ॥ ४६ ॥ फिर वह दानव इन्द्रकी स्त्री

मैर्विविधैस्तत्र चक्रवज्रारिभीषणैः ॥ सन्तापितास्सुरास्सर्वेक्षयंनीताह्यनेकशः ॥ ४३ ॥ आदित्यमरुताद्याश्च भग्ना
स्संग्राममण्डले ॥ यथासिंहकराक्रान्ताः श्वापदाव्यचरन्वने ॥ ४४॥ तद्वदेकेनतेदेवाः कृतास्सर्वेपराङ्मुखाः ॥ बला
द्देशेषुग्रामेषु प्रजाःपीडयतेऽनिशम् ॥ ४५ ॥ आकम्प्यगृह्यतेक्षीरं शाकंवासस्तथैवच ॥ नसम्मानेवचस्तेषां प्रजास
न्तापनेरतः ॥ ४६ ॥ गृहीत्वाशक्रभार्य्याञ्च दानवोपिगृहङ्गतः ॥ ततःसुराश्चशक्रश्च ब्रह्माणंशरणंययुः॥४७॥गजैश्च
पर्वताकारैरश्वैश्चैवगजोपमैः ॥ स्यन्दनैर्गगनाकारैस्सिंहशार्दूलयोजितैः ॥ ४८॥ कच्छपैर्मकरैश्चापि मृगमेषैस्तथो
रगैः ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्ता देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वापद्मोद्भवन्देवं प्रणम्येशंप्रतुष्टुवुः ॥ जयदेवजगन्नाथज
यसम्भूतिकारक ॥ ५० ॥पद्मयोनेसुरश्रेष्ठत्वामेवशरणङ्गताः ॥ सोद्वेगंभाषितंश्रुत्वा देवानांभावितात्मनाम् ॥ ५१ ॥ मेघग
म्भीरयावाचा ब्रह्माप्रोवाचवासवम् ॥ किंवोह्यागमनन्देवास्सर्वेषांवैविवर्णता ॥ ५२॥ केनावमानितास्सर्वे तत्सर्वंमेनिवे

को लेकर अपने घरको चलागया तब देवता और इन्द्र ब्रह्माजीकी शरणगये॥४७॥पर्वत ऐसे हाथी, हाथी ऐसे घोडे,सिंह और शार्दूलोंसे जुतेहुये आसमान ऐसे रथ॥
४८ ॥ कछुये, मगर, हन्ना, मेढ़ा और सर्पोंसे इन्द्रआदि देवता ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ ४९ ॥ और देवता व ऐश्वर्यवान् ब्रह्माजी को देख व नमस्कारकर स्तुतिकरते
हुये कि हे जगन्नाथ ! हे सम्भूतिकारक ! हे देव ! आपकी जयहो २ ॥ ५० ॥ हे पद्मयोने ! हे सुरश्रेष्ठ ! हमलोग आपही के शरण आयेहैं आत्मा के जाननेवाले
देवताओं के घबडाहट सहित वचन को सुनकर ॥ ५१ ॥ मेघोंकीसी गहगही आवाजसे ब्रह्माजी इन्द्र से बोले कि हे देवताओ ! तुम सबोंका आगमन क्यों हुआ और

तुम सब तेजरहित क्यों होगयेहो ॥५२॥ किसने तुम सबोंका अपमान कियाहै सो सब मुझसे कहो तब देवता बोले कि बलसे अभिमान को प्राप्तहोरहा नामसे अंधक ऐसे नामका एक दानव हुआहै ॥५३॥ उसीने सब देवताओं को धन व रत्नों से खाली करदिया है हे नाथ ! फरसा, चक्र, तलवार और तोमरों से देवताओं को मारकर ॥ ५४ ॥ इन्द्रकी स्त्रीको जबरदस्ती लेकर वह दानव चलागया तदनन्तर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनके वचनको सुनकर उस राक्षसकी मृत्युका विचार करनेलगे कि यह पापी दानव सब देवता व दैत्यों से मारा नहीं जासक्ताहै ॥ ५५।५६ ॥ फिर इन्द्रआदि सब देवता विष्णुजी की स्तुति करतेहुये कि हे देवदेवेश ! आप

द्यताम् ॥ देवाऊचुः ॥ अन्धकोनामनाम्नेति दानवोबलदर्पितः ॥ ५३ ॥ तेनदेवगणास्सर्वे धनरत्नैर्विवर्जिताः ॥ हत्वा देवगणान्नाथ परशुचक्रासितोमरैः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वाशक्रभार्य्यांवै दानवोविगतोबलात् ॥ ततःश्रुत्वावचस्तेषां ब्रह्मालोकपितामहः ॥५५॥ चिन्तयामासभगवान्वधन्तस्यतुरक्षसः ॥ अवध्योदानवःपापस्सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ५६ ॥ ततःप्रतुष्टुवुस्सर्वे देवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ जयत्वंदेवदेवेश लक्ष्म्याचार्द्धशरीरवान् ॥ ५७ ॥ आशुरक्षयदेवेश तस्मात्तेशरणंगताः ॥ जनार्द्दनउवाच ॥ स्वागतंवोमहाभागा ब्रुवताञ्चैवस्वागतम् ॥ ५८ ॥ किङ्कार्य्यंप्रोच्यतांसर्वं कारणंयन्मयेप्सितम् ॥ पराभवःकृतोयेन सगच्छतुयमालयम् ॥ ५९ ॥ एवमुक्तास्सुरास्सर्वे कथयन्तिस्मतत्त्वतः ॥ प्रदर्शयन्तिचाङ्गानि वेपमानास्त्वधोमुखाः ॥ ६० ॥ हृतराज्याःकृतानाथ अन्धकेनपराजिताः ॥ ६१ ॥ पितेवपुत्रान्परिरक्षदेव जहीहशत्रुं

लक्ष्मी से आधे शरीरवाले हो तुम्हारा जयहो ॥ ५७ ॥ हे देवेश ! बहुत जल्दी आप रक्षाकरो इसी से हम आपके शरण आये हैं तब विष्णुजी बोले कि हे बडभागियो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहुआ अपने आनेका प्रयोजन कहो ॥ ५८ ॥ क्या कार्यहै जिसकी हमसे इच्छा करतेहो सो सब कारण कहो जिसने तुम्हारा पराजय किया है वह यमलोक को जावे ॥ ५९ ॥ ऐसे कहेगये सब देवता ठीक २ सब वृत्तान्त को कहतेहुये औ नीचेको मुहँ कियेहुये व कांपतेहुये अपने अङ्गोंको दिखातेहैं ॥ ६० ॥ और कहते हैं कि हे नाथ ! अन्धक ने हमारी राज्यको हरलिया और हमको पराजित कियाहै ॥ ६१ ॥ इससे हे देव ! इस लोकमें पुत्रोंकी पिताकी

नाई हमारी रक्षाकरो और हमारे शत्रुको पुत्रों व गोत्रियोंके सहित मारो तब देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये हैं चरण जिनके ऐसे भगवान् ऐसाही होगा यह ब्रह्मा
जीसे कहकर मौनहोगये ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽन्धकोपाख्यानेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ❀ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि शङ्ख, चक्र, गदा और पाशको लेकर देवताओं को जयके देनेवाले परमेश्वर शय्यासे जल्द उठतेहुये ॥ १ ॥ और भगवान् बोले कि हे
देवताओ ! पाताल व स्वर्ग व मनुष्यलोक में जहा कहींहो उस अन्धकको हम मारेंगे जिसने देवताओं को सन्तापित कियाहै ॥ २ ॥ इससे सन्तोष में अपने मनको

सहपुत्रगोत्रैः ॥ तथेतिचोक्त्वाकमलासनंप्रभुः सुरासुरैर्वन्दितपादपीठः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽन्धको
पाख्यानेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ शङ्खंचक्रंगदांपाशं संगृह्यपरमेश्वरः ॥ उत्थितश्शयनात्तूर्णं देवानांचजयप्रदः ॥ १ ॥ केशव
उवाच ॥ पातालेयदिवास्वर्गे मर्त्येवायदिवासुराः ॥ अन्धकन्तंवधिष्यामि येनसन्तापितास्सुराः ॥ २ ॥ गच्छन्तुस्व
गृहन्देवास्सन्तोषभावितात्मनः ॥ विष्णोस्तुवचनंश्रुत्वा ब्रह्माद्यास्तुसवासवाः ॥ ३ ॥ स्वंस्वंयानंसमारुह्य हृदितुष्टा
दिवंययुः ॥ ततोदेवोमाधवस्तु यत्रतिष्ठतिचान्धकः ॥ ४ ॥ तत्रगत्वाहृषीकेश आग्नेयास्त्रंमुमोचह ॥ दृष्ट्वाज्वलन्तंचा
ग्नेयं केशवेनविसर्ज्जितम् ॥ ५ ॥ विसर्ज्जयामासतदावारुणास्त्रमनुत्तमम् ॥ वारुणास्त्रेणबाणेन आग्नेयंशोषितं
तदा ॥ ६ ॥ अन्धकश्चिन्तयामास केनबाणोविसर्ज्जितः ॥ कस्येयंपौरुषीशक्तिः कोयास्यतियमालयम् ॥ ७ ॥ ततो

लगायेहुये देवता अपने घरको जावें तब विष्णुके वचन को सुनकर इन्द्रसहित ब्रह्माआदि देवता ॥ ३ ॥ अपनी २ सवारी पर सवार होकर हृदय मे सन्तुष्ट होरहे
स्वर्गको चलेगये तदनन्तर माधव देव जहां अन्धकथा ॥ ४ ॥ वहां जाकर भगवान् आग्नेय अस्त्रको छोडतेहुये जलतेहुये, भगवान् के छोडेहुये, आग्नेय अस्त्रको
देखकर ॥ ५ ॥ अन्धक ने उसीसमय उत्तम वारुण अस्त्रको छोड़ा उस वारुण बाणसे आग्नेयबाण बुझादियागया ॥ ६ ॥ फिर अन्धकने विचार किया कि किसने इस

बाणको छोडाहै यह किस पुरुषकी शक्तिहै कौन यमलोकको जायगा ॥७॥ तदनन्तर क्रोधसे भराहुआ अन्धक चलेहुये बाणकी राहसे आरहा युद्धके मार्गमें खडेहुये विष्णुदेवको देखकर उनसे अन्धक बोला कि ॥८॥ हे हरे ! अब यहां हमारी दृष्टिसे देखे गये तुम कल्याणको नहीं प्राप्तहोवोगे जैसे शार्दूलसे लीलगाव नहीं जीतसक्ता है वैसेही तुम समर्थ नहीं होसक्तेहो ॥ ९ ॥ और जैसे बिलारका भोजन चूहा आयाहो इसीतरह मेरे सामने तुम खडेभीहो पर कुछ सामर्थ्य नहीं करसक्तेहो ॥१०॥ तदनन्तर द्वन्द्वयुद्ध के देनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले, चारभुजाओं से शोभित होरहे देवदेवेश ॥११॥ गदाधर देवको देखकर पृथिवीमें साष्टाङ्ग प्रणाम करताहुआ

न्धकःकोपयुक्तो बाणमार्गस्यसंचरन् ॥ दृष्ट्वायुद्धपथेप्राप्तंदेवंतञ्चान्धकोब्रवीत् ॥ ८ ॥ नशर्म्मंप्राप्नुषेचात्र ममदृष्ट्या निरीक्षितः ॥ तथानशक्नुषेत्वन्तु शार्दूलाद्गवयोहरे ॥ ९ ॥ आगतंचयथाभक्ष्यं मार्जारस्यचमूषकम् ॥ तथानशक्नुषे त्वन्तु संस्थितोपिममाग्रतः ॥ १० ॥ ततस्तुदेवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ चतुर्भुजावदातञ्च द्वन्द्वयुद्धप्रदायिनम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वागदाधरंदेवं साष्टाङ्गंप्रणतोभुवि ॥ अन्धकउवाच ॥ जयकृष्णपरस्त्वंहि विष्णोजिष्णोनमोनमः ॥ १२ ॥ हृषीकेशायकेशाय जगद्धात्रेच्युतायच ॥ नमःपङ्कजनाभाय नमःपङ्कजमालिने ॥ १३ ॥ जनार्द्दनायदेवाय पीताम्बर धरायच ॥ गोविन्दायनमोनित्यं नमश्चोदधिशायिने ॥ १४ ॥ नमःकरालवक्राय नृसिंहायनिनादिने ॥ शार्ङ्गिणे स्मितवक्राय शङ्खचक्रगदाभृते ॥ १५ ॥ नमोवामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयायच ॥ नमोवराहरूपाय यज्ञरूपायतेन

अन्धक बोला कि हे कृष्ण ! आपकी जयहो आपही परमात्माहो इससे हे विष्णो ! हे जिष्णो ! आपके लिये बार २ नमस्कारहै ॥१२॥ इन्द्रियोंके स्वामी, ब्रह्मा व शिव का रूप, जगत् के पालनेवाले, नाशरहित, कमलनाभ व कमलों की मालावाले के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १३ ॥ पीलेवस्त्र धारण करनेवाले, जनार्द्दन, गोवि-न्ददेव के लिये नित्यही नमस्कार है और समुद्रमें सोनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ डरावने मुखवाले के लिये नमस्कार है गर्जनेवाले नृसिंह व मुसकुराते मुखवाले व शार्ङ्गधनुषवाले व शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ तीनों लोकोंके नापनेवाले वामनरूप के लिये नमस्कार है वराहरूप व

यज्ञरूप आपके लिये नमस्कारहै ॥ १६ ॥ हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है कैटभदैत्यके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है हे सुरनायक ! हे ईश ! वसुदेवजी के पुत्र जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे विष्णु ! हे देवाधिदेवेश ! हे जगत् के पालनेवाले ! हे प्रजापते ! जो लोग आपको प्रणाम करते हैं उनके लियेभी नमस्कार है ॥ १८ ॥ सब जीवोंके देवता, वसुदेव के पुत्र, बुद्धिवाले, यज्ञवराहरूप, बडे तेजवाले, विष्णु आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ व गुणोंके रचनेवाले आपके लिये बार २ नमस्कार है तब भगवान् बोले कि हे दानवेन्द्र ! हम आपसे प्रसन्न हैं इससे अपने मनमाने वरको तुम मागो ॥ २० ॥ मागतेहुये

वासुदेवनमस्तुभ्यं नमःकैटभनाशिने ॥ वसुदेवसुतश्रेश नमस्तेसुरनायक ॥ १७ ॥ विष्णोदेवाधिदेवेश मः ॥ १६ ॥ नमस्तेय जगद्धातःप्रजापते ॥ प्रणामंयेपिकुर्वन्ति तेभ्यश्चापिनमोनमः ॥ १८ ॥ समस्तभूतदेवाय वासुदेवायधीमते ॥ तस्मैय ज्ञवराहाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ १९ ॥ गुणानांहिविधानाय नमस्तेस्तुपुनःपुनः ॥ देवउवाच ॥ तुष्टोह्यहंदानवेन्द्र वरं वृणुयथेप्सितम् ॥ २० ॥ ददामितेवरंचाद्य याचमानस्यसाम्प्रतम् ॥ अन्धकउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुमिहे च्छसि ॥ २१ ॥ तदाददस्वमेदेव युद्धंपरमशोभनम् ॥ श्रीभगवानुवाच॥कथंददामितेयुद्धं तोषितोहन्त्वयापुनः॥२२॥ नत्वाम्प्रतिभवेत्कोपः कथंयुध्येहमन्धक ॥ यदितेवर्ततेबुद्धिर्युद्धम्प्रतिनसंशयः ॥ २३ ॥ तर्हित्वंगच्छशीघ्रंवै देवम्प्रति महेश्वरम् ॥ अन्धकउवाच ॥ प्रसादात्तस्यदेवस्य विजयीभुवनत्रये ॥ २४ ॥ कथंयुद्धंचरेतेन शङ्करेणवदस्वनः ॥ एत च्छ्रुत्वादानवस्य भगवानब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ अहंतेकथयिष्यामि येनयुद्धन्त्वयासह ॥ कैलासशिखरंगृह्य धुनुत्वंचपु

तुमको आज अभी हम वरदेतेहैं तब अन्धक बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्न हो और यहां वरदेनेकी इच्छा करतेहो ॥ २१ ॥ तो हे देव ! बहुत अच्छा युद्ध मुझे देवो तब श्रीभगवान् बोले कि तुमने हमको प्रसन्न कियाहै इससे हम तुमको युद्ध कैसे देवें ॥ २२ ॥ हे अन्धक ! तुम्हारे ऊपर हमको क्रोध नहीं होताहै हम कैसे तुमसे लडें परन्तु जो तुम्हारी बुद्धि निस्सदेह युद्धहीको चाहती है ॥ २३ ॥ तो तुम महादेवजीके पास शीघ्र जावो तब अन्धक बोला कि उन्हीं महादेवजीके प्रसादमे तो हम तीनोंलोकों में जीतनेवाले है ॥ २४ ॥ इससे उन्हीं महादेवजी के साथ हम युद्ध कैसे करे सो आप हमसे कहो दानव के इस वचन को सुनकर भगवान् बोले

कि ॥ २५ ॥ हम उस युक्तिको तुमसे कहेंगे जिससे तुम्हारे साथ युद्धहोवे कि तुम कैलास के शिखरको पकड़कर उसे बार २ हिलावो ॥ २६ ॥ उस पर्वत के हिलने पर तीनोंलोक हिलनेलगे और टूटीहुई अनगिन्ती पर्वतकी चोटिया गिरनेलगीं ॥२७॥ और हे राजन् ! चारोंसमुद्र सब तरफसे एक होगये और विहार करतेहुये पार्वती सहित महादेवजी ॥ २८ ॥ कापतेहुये व पार्वती सहित शङ्करजी गिरे तब बडी जोरसे महादेवजीको लिपटकर पार्वतीजी वचन बोलीं ॥ २९ ॥ कि पर्वत क्यों कांपताहै और पृथिवी क्यों कापतीहै व सातो पाताल व सातो स्वर्ग क्यो कापते हैं ॥ ३० ॥ हे देव ! क्या प्रलय आगया सो आप हमसे कहनेको योग्यहो तब महादेवजी बोले कि

नःपुनः ॥ २६ ॥ धुनितेपर्वतेतस्मिन्कम्पितम्भुवनत्रयम् ॥ पतन्तिशिखराग्राणि शीर्य्यमाणान्यनेकशः ॥ २७ ॥ चत्वारस्सागराराजन्नेकीभूताःसमन्ततः ॥ उमयासहितोरुद्रो विषयासक्तचेतनः ॥ २८ ॥ कम्पमानश्चपतितः पार्वत्यासहशङ्करः ॥ गाढमालिङ्गयदेवेशमुमावचनमब्रवीत् ॥२९॥ किमर्थंकम्पतेशैलः कथंवैकम्पतेधरा ॥ पातालानितुसप्तैव कम्पतेस्वर्गसप्तकम् ॥ ३० ॥ किंवायुगक्षयोदेव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ महेश्वरउवाच ॥ कस्यैषादुर्मतिर्जाता अपिपार्श्वचरस्यनुः ॥ ३१ ॥ ललाटेचेदयंभग्नः प्रयास्यतियमालयम् ॥ कैलासेसंस्थितोध्याने सुप्तोहम्प्रतिबोधितः ॥३२॥ वधिष्येतंनसन्देहो षण्मुखोवाभवेद्यदि ॥ ततःसचिन्तयामास जानातीत्यन्धकोप्ययम् ॥ ३३ ॥ उपायंसूचयामास येनासौवध्यतेक्षणात् ॥ ततस्समागतादेवा इन्द्रब्रह्मपुरोगमाः॥३४॥रथंदेवमयंकृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ केचिद्देवाःस्थिताश्चक्रे केचित्तुण्डाग्रसंस्थिताः ॥३५॥ केचिदक्षेस्थिताराजन्युगरश्मिषुसंस्थिताः ॥ रथस्तम्भेध्वजाग्रेतु केचिद्

हमारे समीप रहनेवाले किस मनुष्यकी यह दुर्बुद्धि होगई है ॥ ३१ ॥ जो यह माथेपर माराजावे तो यमलोकको जावेगा कैलासमे ध्यानमे स्थित सोतेहुये हम जगादिये गये ॥ ३२ ॥ इसमे उसको हम मारेंगे चाहे स्वामिकार्त्तिकेय क्यो न हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है तदनन्तर उन महादेवजीने विचारा और जाना कि यह अन्धकहै॥ ३३ ॥ फिर महादेवजी ने उस उपायको सोचा कि जिससे यह क्षणमात्र से मरजावे तदनन्तर इन्द्र व ब्रह्माआदि देवता आतेहुये ॥ ३४ ॥ और सब लक्षणो से युक्त देवताओंसेही रथको बनाया कोई देवता चक्रो मे स्थितहुये कोई रथके अगिले हिस्सेमें स्थित हुये॥३५॥ हे राजन् ! कोई धुरामें, कोई रथके जुवाकी डोरियोंमें, कोई दण्डाओं

में, कोई ध्वजामें और कोई अन्यत्रभी लगे॥ ३६ ॥ इस प्रकार देवमय रथको बनाकर जगत् के मालिक महादेवजी उसपर चढ़े और बड़े क्रोधसे जहां वह दानव था वहांको गये ॥ ३७ ॥ और दानवों को मारा जैसे आकाश में सूर्य तपें उस काल में वहां सूर्य व चन्द्रमा व दिशायें नहीं दीखतीहुईं ॥ ३८ ॥ तदनन्तर दानव राजाने आग्नेयअस्त्र को जोडा उससे निकलेहुये बाणोंसे सब देवमण्डल जलनेलगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार बाणों से जलतेहुये देवता महादेवजी की शरण आये तदनन्तर महादेवजी ने वारुण अस्त्रको छोड़ा ॥ ४० ॥ उसी वारुणअस्त्र से आग्नेयअस्त्र बुझगया हे नृपोत्तम ! तदनन्तर दानव ने वायव्यअस्त्र को छोड़ा ॥ ४१ ॥ तब क्रोधसे

न्यत्रसंस्थिताः ॥ ३६ ॥ एवंदेवमयंकृत्वा समारूढोजगत्प्रभुः ॥ निर्ययौदानवोयत्र क्रोधेनापिमहेश्वरः ॥ ३७ ॥ दानवानर्द्दयामास आकाशञ्चांशुमानिव ॥ नतत्रदृश्यतेसूर्य्यो नकाष्ठानचचन्द्रमाः ॥ ३८ ॥ ततोदानवराजेन आग्नेयास्त्रंसुयोजितम् ॥ दह्यमानंशरैस्तत्र सर्वगीर्वाणमण्डलम् ॥ ३९ ॥ दह्यमानाश्शरैश्चैवं देवंशरणमाययुः ॥ ततोदेवाधिदेवेन वारुणास्त्रंविसर्ज्जितम् ॥ ४० ॥ वारुणास्त्रेणतेनैव आग्नेयास्त्रम्प्रशामितम् ॥ दानवेनततोमुक्तं वायव्यास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४१ ॥ पन्नगास्त्रंचदेवोपि कोपाविष्टःप्रमुक्तवान् ॥ मारुतोभक्षितस्सर्पैः क्रोधाविष्टैर्नसंशयः ॥ ४२ ॥ दानवेन तदामुक्तं गरुडास्त्रंबलीयसा ॥ तेनतच्छतधानीतं पन्नगास्त्रंनदृश्यते ॥ ४३ ॥ ततोदेवाधिदेवेन नारसिंहंविसर्ज्जितम् ॥ अस्त्रैरस्त्राणिसंवार्य्य युध्येतेचपरस्परम् ॥ ४४ ॥ समंयुद्धमभूत्तात सुरासुरभयङ्करम् ॥ चक्रेणालीकनाराचैस्तोमरैःखड्गमुद्गरैः ॥ ४५ ॥ वत्सदन्तैस्तथाभल्लैः कर्णिकारैश्चशोभनैः ॥ एवंनशक्यतेहन्तुं दानवैर्विविधायुधैः ॥ ४६ ॥ ततोदंष्ट्रा

भरेहुये महादेवजीने भी नागबाणको छोड़ा तब छूटतेही क्रोधसे भरेहुये सर्प हवाको पीगये इसमें सन्देह नहीं है ॥४२॥ तब जबरदस्त दानवने गरुड़अस्त्र को चलाया उसने उस नागबाण के सैकड़ों टुकड़े करदिये कि वह अस्त्रहीन देखपड़ा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवाधिदेव (महादेवजी) ने नारसिंहअस्त्रको छोड़ा ऐसे अस्त्रोंसे अस्त्रोंको काटकर आपस में लडतेरहे ॥४४॥ हे तात ! देवता और दैत्योंको भय करानेवाला वह युद्ध बराबर हुआ इस प्रकार चक्र, अलीकबाण, तोमर, खड्ग, मोगदर, वत्सदन्त,

भाला और सुहावने कर्णिकार अस्त्रोंसे जब अनेक तरह के अस्त्रवाले दानवों के कारण वह न माराजासका ॥ ४५ । ४६ ॥ तब डाढ़ ऐसे डरावने खड्ग व बाण व तोमरों से युद्ध हुआ अपनी सासुको देखकर शरमातीहुई नीचेको मुहँ कियेहुये जैसे गौड़वधू जावे और किसीको न छुवे इसी तरह सब अस्त्र दोनों वीरोंके अङ्गोंको नहीं छूतेहैं तब सब अस्त्रोंको छोडकर दोनों बाहुयुद्ध करतेहुये ॥ ४७ । ४८ ॥ हाथोंसे हाथोंको पकड़कर मूठियों से मारतेहुये हाथोंसेही आपसमें युद्ध करते हैं॥ ४९ ॥ दानव भी उन महादेवजीको काखमें मारा तब महादेवजी चेष्टारहित होकर मूर्च्छित होगये ॥ ५० ॥ महादेवजीको मूर्च्छित जानकर दानव अन्धकासुर चिन्ता करता

करालेन खड्गनाराचतोमरैः ॥ श्वश्रून्दृष्ट्वायथायाति लज्जमानाह्यधोमुखी ॥ ४७ ॥ नसंस्पृशन्तिगात्राणि शस्ताणौ डवधूर्यथा ॥ आयुधानिततस्त्यक्त्वा बाहुयुद्धमुपस्थितौ ॥ ४८ ॥ करैःकरांस्तुसंगृह्य प्रहरन्तौहिमुष्टिभिः ॥ बन्धैःकरप्रहाराद्यैर्युध्येतेस्मपरस्परम् ॥ ४९ ॥ दानवोपिचतन्देवं कक्षान्तरमपीडयत् ॥ निश्चेष्टश्चतदादेवो मूर्च्छितस्तुमहेश्वरः ॥ ५० ॥ मूर्च्छागतन्तुतंज्ञात्वा चिन्तयामासदानवः ॥ हाहाकष्टंकृतंवाद्य पापेनचदुरात्मना ॥ ५१ ॥ किन्तुकार्यंमयाचात्र कथंवापिव्रजाम्यहम् ॥ तंगृहीत्वाथदेवेशं गतःकैलासपर्वतम् ॥ ५२ ॥ मुक्त्वाशयानमुचेतमन्धकोपियोक्षणात् ॥ ततस्सचेतनोभूत्वा देवदेवोमहेश्वरः ॥ ५३ ॥ यावत्पश्यतिचात्मानं स्वकीयेभवनेस्थितम्॥तावत्सचिन्तयामास पराभूतोदुरात्मना ॥ ५४ ॥ क्रोधवेगसमाविष्टो निर्ययौदानवम्प्रति ॥ आयसंलगुडंगृह्य प्रभुर्भारसहस्रकम् ॥ ५५ ॥ दानवंदृष्टवान्देवो प्राक्षिपत्तस्यमूर्द्धनि ॥ खड्गेनताडयामास दानवःप्रहसन्रणे ॥ ५६ ॥ गृहीत्वादेवदेवेशः कौबे

हुआ और कहा कि हाय २ मैं दुरात्मा पापीने आज बडाकष्टवाला कामकिया ॥५१॥ अब यहां मुझको क्या करना चाहिये और मैं कैसे जाऊं फिर उन महादेवजी को लेकर कैलास पर्वत को गया ॥ ५२ ॥ सोतेहुये बेहोश महादेवजीको छोड़ अन्धक उसीक्षणमें चलागया तदन्तर देवोंकेदेव महादेवजी भी होशमें होकर ॥ ५३ ॥ जब तक अपने को देखें तबतक अपने मन्दिर में अपने को पड़ा देखा तब आपने विचारा कि हम उस दुरात्मासे पराजित होगये ॥ ५४ ॥ फिर क्रोधके वेगसे भरेहुये प्रभु महादेवजी दानव के समीप जातेहुये हजार भारवाले लोहे के दण्डको लेकर दानवको देखा और उसके शिरमें मारदिया दानवभी हँसताहुआ संग्राम में खड्गसे

महादेवजीको मारा ॥ ५५। ५६ ॥ तब महादेवजी उत्तम कौबेरबाणको लेकर उसीक्षण उसके हृदय में जलतेहुये बाणसे मारा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वहा रक्तको उगलरहा वह दानव औंधे मुहँवाला होकर त्रिशूलसे फाड़ दियागया तदनंतर ॥५८॥ त्रिशूल की नोकसे घायल पापी अन्धक चाककी तरह चक्कर खानेलगा तब उसकी देहसे जो रक्तकेबूंद जमीनमेंगिरे ॥५६॥ उन रक्तके बूंदोंसे शस्त्रोंको हाथोंमें लियेहुये पापी दानव उत्पन्न होगये तदनन्तर दानवों से महादेवजी बार २ व्याकुल होतेहुये ॥ ६० ॥ तब महादेवजी ने भयानक कालीदेवी का स्मरण किया स्मरण करतेही दशहजार हथियारों से युक्त कालीदेवीजी आगई ॥ ६१ ॥ और बड़ी डाढ़ोंवाली, भारी

रंबाणमुत्तमम् ॥ हृदयेताडयामास ज्वलितेनचतत्क्षणात् ॥ ५७ ॥ ततस्सदानवस्तत्र रुधिरोद्गारमुद्गिरन् ॥ अधोमु
खस्ततोभूत्वा शूलेनविदलीकृतः ॥ ५८ ॥ शूलाग्रविक्षतःपापश्चक्रवद्भ्रमतेतदा ॥ येतुभूमौपतन्तिस्म देहतोरक्त
बिन्दवः ॥ ५९ ॥ तेभ्यउदभवन्पापा दानवाःशस्त्रपाणयः ॥ व्याकुलश्चततोदेवो दानवैश्चपुनःपुनः ॥ ६० ॥ देवेनसंस्मृ
तादुर्गा चामुण्डाभीषणातदा ॥ आगताभीषणादेवी आयुधायुतसंयुता ॥ ६१ ॥ महादंष्ट्रामहाकाया पिङ्गाक्षीलम्बक
र्णिका ॥ उवाचदेवीदेवेशं समादिशमहेश्वर ॥ ६२ ॥ देवउवाच ॥ पिबत्वंरुधिरंभद्रे यथेष्टंदानवस्यच ॥ पतितंचपृथि
व्यान्तु दुर्गेयत्नाद्गृहाणतत् ॥ ६३ ॥ दानवस्यवधेचाद्य सहायंकर्तुमर्हसि ॥ ततोहताश्चतेसर्वे खड्गेनापिसहस्रशः ॥
६४ ॥ अन्धकोपिचतान्दृष्ट्वा दानवान्निधनङ्गतान् ॥ ततोवाग्भिस्सुपुष्टाभिस्स्तुवन्देवंमहेश्वरम् ॥ ६५ ॥ तिष्ठतिष्ठेति
देवेशं चण्डीम्प्रतिमहाबलः ॥ शूलविक्षतरन्ध्रेण रक्तंवैस्रावयन्बहु ॥ ६६ ॥ पृथिवींपूरयामास चतुस्सागरमेखलाम् ॥

देहवाली, लालनेत्रवाली, लम्बेकानोंवाली काली महादेवजीसे कहा कि हे महेश्वर! आज्ञाकरो ॥६२॥ तब महादेवजीबोले कि हे दुर्गे! हेभद्रे! पृथिवी में गिरेहुये दानव के रक्तको तुम यथेष्ट पीवो और उसको यत्नमे ग्रहण करो ॥६३॥ आज दानवके मारनेमें सहायकरनेको तुम योग्य होतीहो तदनन्तर उन सब हजारों दानवोंको देवीजीने तलवार से मारडाला ॥ ६४ ॥ अन्धकभी मृत्युको प्राप्तहुये उन दानवोंको देखकर सुन्दरवाणियों से महादेवजी की स्तुति करताहुआ ॥ ६५ ॥ और त्रिशूलके घावसे बहुत रक्तको बहाताहुआ, बड़े बलवाला, अन्धक महादेव और देवीसे खड़ेरहो २ कहताहुआ ॥ ६६ ॥ चारों समुद्रतक पृथिवी को रक्त से भरदिया महादेव के त्रिशूल

में छिदाहुआ इसी से आकाश में लटकरहा ॥ ६७ ॥ महादेवकरके अपने कन्धेपर धर लियागया रक्तके समूह को बरसरहा अन्धकासुरने अपने रक्तमे पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी को भरदिया ॥ ६८ ॥ महादेवजी रक्त से करिहाँवतक डूबगये फिर वह रक्त महादेवजी की छातीतक आगया ॥ ६९ ॥ तब सब देवता व्याकुल हो दिशाओं में भागगये तब महादेवजी ने अपने शरीर के आठ अङ्गोंको घिसा ॥ ७० ॥ तब महादेवजी से आठ भैरव पैदाहुये भयानक डाढ़ोंवाले, हाहाकार कररहे ॥ ७१ ॥ खप्पर, तलवार और कतरनीवाले, उन सब भैरवों से महादेवजी ने कहा कि तुम सब इस सम्पूर्ण रक्तको पीवो ॥ ७२ ॥ उन भैरवों ने

अन्तरिक्षेस्थितेनापि शूलाग्रेसंस्थितेनच ॥ ६७ ॥ स्कन्धेधृतेनदेवेन रुधिरौघप्रवर्षिणा ॥ पृथिवीपूरितातेन सशैल वनकानना ॥ ६८ ॥ रुधिरेणकटिंयावद्वारितोपिमहेश्वरः ॥ ततोहृदयपर्य्यन्तं देवस्यचसमागमत् ॥ ६९ ॥ व्याकुला श्चततोदेवाः प्रणष्टाश्चदिशंगताः ॥ सतुस्वस्यशरीरस्य अङ्गान्यष्टौऽयमर्दयत् ॥ ७० ॥ अष्टौभैरवरूपाश्च समुत्पन्नाम हेश्वरात् ॥ दंष्ट्राकरालिनस्सर्वे हाहाकारम्प्रकुर्वतः ॥ ७१ ॥ खर्पराग्रकरास्सर्वे खड्गिनःकर्तिनस्तथा ॥ पिबन्तुरुधिरंस र्वमित्याहपरमेश्वरः ॥ ७२ ॥ पीतन्तुतैश्चरुधिरं क्षीणंरक्तंस्थितंस्थलम् ॥ शरीरंशोषितंतस्य अस्थिचर्म्मावशेषित म् ॥ ७३ ॥ दानवश्चान्धकःप्राह अन्तरिक्षचरस्तथा ॥ अन्धकउवाच ॥ जयदेवजगन्नाथ उमाङ्गार्द्धशरीरभृत् ॥ ७४ ॥ वृषभासनमारूढ शशाङ्ककृतशेखर ॥ जयखट्वाङ्गहस्ताय गङ्गांशिरसिधारिणे ॥ ७५ ॥ स्मरप्रमथनायेह ईश्व रायनमोस्तुते ॥ पूष्णोदन्तविनाशाय गणनाथनमोनमः ॥ ७६ ॥ जयसुरूपदेहाय अरूपायनमोनमः ॥ ब्रह्मोत्तमा

रक्तको पीलिया तब रक्तक्षीण होगया जमीन निकलआई हड्डी और चमड़ा जिस में रहगया ऐसा उसका शरीर सुखा दियागया ॥ ७३ ॥ तब आकाश में विद्यमान अन्धकासुर बोला कि हे जगन्नाथ ! हे देव ! हे आधे शरीरमें पार्वती के धारण करने वाले ! आपकी जयहो ॥ ७४ ॥ हे बैलके सवार ! हे चन्द्रमाको मुकुटमें रखनेवाले ! तुम्हारी जयहो गङ्गाको शीशमें धारनेवाले और खट्वाङ्गको हाथमें रखनेवाले ॥ ७५ ॥ कामदेव के नाश करनेवाले ईश्वर आपके लिये नमस्कार है हे गणनाथ ! पूषाके दांतों के तोड़नेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ७६ ॥ सुन्दररूप देहवाले की जयहो रूपसे रहित जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है नमस्कार है

हे सदा रहनेवाले ! हे विश्वभर के मालिक ! ब्रह्माके शिर काटनेवाले ॥ ७७ ॥ नित्य श्मशान के रहनेवाले और हमेशा भैरवरूपवाले के लिये नमस्कार है तुम्हीं सबमें विद्यमान हो व तुम्हीं सबके कर्ताहो और तुम्हीं सबके नाश करनेवालेहो और कोई नहीं है ॥ ७८ ॥ पृथिवी, दिशा, तेज, प्रकाश, वायु और सब प्राणियों के जीवरूप महेश्वर तुम्हीहो ॥ ७९ ॥ हे देवेश ! चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और मङ्गल तुम्हीं हो ॥ ८० ॥ हे महेश्वर ! आकाशमें जितने नक्षत्र व सूर्य व चन्द्र जो देख पड़ते हैं ये सब आपही के प्रसादसे हैं ॥ ८१ ॥ ऐसे वह दानव देवोंकेदेव उन महादेवजी की अनेक प्रकार से स्तुतिकर और दोनों हाथोंको जोड़हुये प्रणाम

ङ्गनाशाय विश्वेश्वरसनातन ॥ ७७ ॥ श्मशानवासिनेनित्यं नित्यंभैरवरूपिणे ॥ त्वंसर्वगश्चकर्तात्वं त्वंहर्तानान्यए वच ॥ ७८ ॥ त्वंभूमिस्त्वन्दिशश्चैव ज्योतिस्त्वंतेजसस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जन्तुरूपोमहेश्वरः ॥ ७९ ॥ त्वंसोम स्त्वंबुधश्चैव त्वंगुरुर्भार्गवस्तथा ॥ सौरिस्त्वन्देवदेवेश भूमिपुत्रस्तथैवच ॥ ८० ॥ ऋक्षाणियानिदृश्यन्ते गगनेशशि भास्करौ ॥ एतान्येवचसर्वाणि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ८१ ॥ एवंबहुविधंस्तुत्वा देवदेवंसदानवः ॥ संहताभ्याञ्चहस्ता भ्यान्तम्प्रणम्यमहेश्वरम् ॥ ८२ ॥ शङ्करउवाच ॥ साधुसाधुमहासत्त्व वरंयाचस्वदानव ॥ दाताहंयाचकस्त्वन्तु द दामीतियथेप्सितम् ॥ ८३ ॥ अन्धकउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ तदात्मनस्समीपेहं स्थापितव्यो हिनान्यथा ॥ ८४ ॥ भस्मीजटीत्रिशूलीच त्रिनेत्रीचचतुर्भुजः ॥ व्याघ्रचर्म्मोत्तरीयश्च नागयज्ञोपवीतकः ॥ ८५ ॥ एतदिच्छाम्यहंसर्वं यदिदास्यसिशङ्कर ॥ शूलाग्रस्थोवदद्यावत्तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ८६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ददामितेव

करचुपहोगया ॥ ८२ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे बड़ेबलवाले, दानव ! वाह २ तू वरमांग हम देनेवाले और तू मांगनेवालाहै इससे हम तेरे मनका वर देवेंगे ॥८३॥ तब अन्धक बोला कि हेदेवेश ! जो आप प्रसन्नहो और तुम्हें मुझको वरदेनाहै तो मुझे आप अपने समीपही बनाये रक्खो और कुछ नहीं ॥ ८४ ॥ भस्मवाला, जटावाला, त्रिशूलवाला, तीन नेत्रोंवाला, चार भुजावाला, व्याघ्रचर्म का ओढ़ने वाला और नागोंके यज्ञोपवीतवाला मैं होजाऊं ॥ ८५ ॥ बस यही सब मैं चाहताहूं हे शङ्कर ! जो

आप देवेंगे त्रिशूलकी नोकमें छिदाहुआ जबतक ऐसे कहे तबतक महादेवजी प्रसन्न होगये॥ ८६॥ और बोले कि आज हम तुझको वह वरदेते हैं जिसको तूने कहा है मैंने तुझसे पहले कहाथा कि तू भृङ्गिरीटिनामका गणहोगा॥ ८७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽन्धकवरप्रदानोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अन्धक को वरदेके उसके व पार्वती के सहित महादेव जी कैलास पर्वत को चलेगये॥ १॥ तदनन्तर हृष्टपुष्ट होरहे इन्द्रसहित ब्रह्माआदि देवता वहां आये और वे सब उन महादेवजी को प्रणाम करतेहुये॥ २॥ तब महादेवजी बोले कि हेबड़भागियो! जो लोग यहां आयेहो उनका बहुत अच्छाहुआ

रंचाद्य यस्त्वयापरिभाषितः॥ मयात्वमुदितःपूर्वं भृङ्गिरीटिर्भविष्यति॥ ८७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽन्धक वरप्रदानोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच॥ अन्धकस्यवरन्दत्त्वा तेनैवसहशङ्करः॥ उमयासहितश्चापि कैलासंपर्वतंगतः॥ १॥ ततस्समागतादेवा ब्रह्माद्यास्सहवासवाः॥ हृष्टपुष्टाश्चतेसर्वे महेशंतम्प्रणेमिरे॥ २॥ देवउवाच॥ स्वागतंवोमहाभागा येकेचित्त्विहचागताः॥ निहतोदानवस्तत्र भवदर्थेनसंशयः॥ ३॥रक्तेनतस्यमेशूलं निर्म्मलञ्चनदृश्यते॥ कर्त्तव्यंकिंमयाचाद्य कथ्यतांहिपितामह॥ ४॥ सुतस्तुभवतोब्रह्मन्यश्चासौनिहतोमया॥ कर्तुमिच्छाम्यहंसम्यक्तीर्थयात्रांनसंशयः॥ ५॥ उत्तिष्ठगम्यतांसर्वे येकेचित्त्विहचागताः॥ ततस्सर्वैस्सुरैस्सार्द्धं प्रभासंप्रतिनिर्ययौ॥ ६॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गासागरसङ्गमे॥ अवगाह्यतुसर्वाणि निर्म्मलत्वंनविद्यते॥ ७॥ नीलीभूतंयथावस्त्रं सितत्वंनैवगच्छति॥ तथाकृष्ण

तुम लोगोंके वास्ते मैंने यहां दानव को मारा इसमें सन्देह नहीं है॥३॥ उस के रक्त से मेरा त्रिशूल मैला होगया है इससे हे पितामह! अब मुझको क्या करना चाहिये सो कहो॥ ४॥ हे ब्रह्मन्! मैंने जिसको मारा है वह तुम्हारा पुत्रथा इससे अब हम अच्छे प्रकार तीर्थयात्रा किया चाहते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है॥ ५॥ तब ब्रह्माने कहा कि आप उठें जो लोग यहां आये हैं उन सबको जाना चाहिये तदनन्तर सब देवताओं के सहित महादेवजी प्रभास को गये॥ ६॥ प्रभास से लेकर गङ्गासागरसंगमतक जितने तीर्थरहे उन सब में स्नानकरके भी त्रिशूलकी निर्मलता नहींहुई॥ ७॥ काला होगया कपड़ा जैसे सफेदी को नहीं पाताहै इसी

तरह काले त्रिशूलकी निर्मलता नहीं होतीहै ॥ ८ ॥ तदनन्तर देवताओं के सहित महादेवजी नर्मदा को जाकर और उत्तर व दक्षिणतट में प्रयत्नसे नहाकर ॥ ९ ॥ फिर हे धरापते ! दक्षिणतटमें विद्यमान भृगुपर्वतपर जाकर और वहां देवताओंके सहित बैठकर ॥ १० ॥ सब देवताओं के मनके हरनेवाले उस स्थानको विशेषतीर्थ जानकर वहां महादेवजी ठहरे ॥ ११ ॥ और पर्वत को त्रिशूल से फाड़दिया तिस से फिर रसातल फटगया उससे त्रिशूल निर्मल होगया फिर उसमें लेप कहीं नहीं देखपडा ॥ १२ ॥ पाताल से भोगवती नामकी गङ्गा निकलीं वहां शूलभेद नाम से प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्नहुआ ॥ १३ ॥ सूर्य्यग्रहण में वहां अतिपुण्यवाली सरस्वती

त्रिशूलस्य निर्म्मलत्वंनजायते ॥ ८ ॥ नर्म्मदान्तुततोगत्वा देवोदेवैस्समन्वितः ॥ उत्तरंदक्षिणंकूलमवगाह्यप्रयत्न तः ॥ ९ ॥ गत्वातुदक्षिणेकूले पर्वतेभृगुसंज्ञिते ॥ तत्रस्थित्वामहादेवो देवैस्सहधरापते ॥ १० ॥ मनोहरन्तुतत्स्थानं स र्वेषांहिदिवौकसाम् ॥ ज्ञात्वातीर्थंविशेषन्तु स्थितोदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ गिरिंबिभेदशूलेन तेनभिन्नंरसातलम् ॥ निर्म्म लञ्चाभवच्छूलं नलेपोदृश्यतेक्वचित् ॥ १२ ॥ पातालान्निःसृतागङ्गा नाम्नाभोगवतीतिसा ॥ तत्रतीर्थंसमुत्पन्नंशूलभेदेति विश्रुतम् ॥ १३ ॥ सूर्यैराहुगतेतत्र महापुण्यासरस्वती ॥ द्वितीयंसङ्गमंतत्र यथावेणीसितासितम् ॥ १४ ॥ तत्रब्रह्मास्वयंदे वो ब्रह्मेशंलिङ्गमुत्तमम् ॥ यस्ययाम्यदिशाभागे स्वयंदेवोजनार्द्दनः ॥ १५ ॥ विद्यतेचस्वयंतत्र विष्णुःपीठेषुसंस्थितः ॥ शूलेनचक्रतारेखा तत्रतोयवहानृप ॥ १६ ॥ तत्तोयंचगतंतत्र यत्ररेवानदीजलम् ॥ तत्रलिङ्गंमहापुण्यं चक्रतीर्थेतिविश्रुत म् ॥ १७ ॥ शूलभेदेचदेवेशः स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ आत्मानंमन्यतेशुद्धं नकिञ्चित्कलुषंतनौ ॥ १८ ॥ तस्यचैवोत्त

आतीहुई वहां सितासितवेणी की तरह दूसरा सङ्गम होगया ॥ १४ ॥ वहां साक्षात् ब्रह्मा देवता और उत्तम ब्रह्मेशलिंग भी है जिसके दक्षिण दिशाकी तरफ जनार्दन देव आपही विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ व वहां परिवार देवताओं के पीठमें विष्णुजी आपही स्थितहैं हे नृप ! वहां पानीकी बहानेवाली लीक त्रिशूलसे कीगई है ॥ १६ ॥ वह जल जहां नर्मदानदी का जल है वहांको चलागया है वहां चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध बड़ा पुण्यवाला लिंगहै ॥ १७ ॥ महादेवजी शूलभेद में विधिसे स्नानकर

अपनेको शुद्धमाना शरीर में कुछ भी उनके पाप नहीं रहा ॥१८॥ उसके उत्तरवाले भागमें जगत् के गुरु व देवताओं के देवता शूलपाणिको पाकर तदनन्तर यत्नसे पूजनकिया ॥ १९ ॥ सब तीर्थोंका रूप, सबतीर्थों से अधिक श्रेष्ठ सब पुण्यवालों से अधिक पुण्यवाले, सब दुःखोंके नाश करनेवाले, उत्तमतीर्थ को देवताओं के देवता जगत् के गुरु महादेवजी वहां स्थापनकर तदनन्तर और रक्षकों को छोड वहां गणेशका स्थापनकर॥ २०।२१ ॥ आठ सौ क्षेत्रपालोंका स्थापनकिया जोकि यत्नसे तीर्थ की रक्षा करतेहैं और जो वहां रहनेकी इच्छा करता है उस के विघ्नोंको करते हैं॥२२ ॥ कोई अपने कुटुम्ब की चिन्ता करते हैं और कोई खेतीकी, कोई नौकरी करते हैं

रेभागे देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ शूलपाणिन्ततःप्राप्य पूजयामासयत्नतः ॥ १९ ॥ सर्वतीर्थमयन्तीर्थं सर्वतीर्थाधिकंपरम् ॥ सर्वपुण्याधिकंपुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥ २० ॥ तत्रतीर्थंप्रतिष्ठाप्य देवदेवोजगद्गुरुः ॥ रक्षकांस्तुततोमुक्त्वा तत्रस्थाप्यविनायकम् ॥ २१ ॥ क्षेत्रपालशतञ्चाष्टौ तीर्थंरक्षन्तियत्नतः ॥ विघ्नानितस्यकुर्वन्ति यस्तत्रस्थातुमिच्छति ॥ २२ ॥ केचित्कुटुम्बचिन्तान्तु केचिच्चिन्तांकृषीषुच ॥ सेवांचकुर्वतेकेचिद्द्रव्यार्जनपरायणाः ॥ २३ ॥ परोक्षवादंकुर्वन्ति अन्येहिंसारताजनाः ॥ परदारान्प्रसर्पन्ति अन्येचवित्तचिन्तकाः ॥ २४ ॥ अन्येपिचवदन्त्येवं कथन्तीर्थेषुगम्यते ॥ क्षुधयापीड्यतेभार्य्या ह्यपत्यानितथैवच ॥ २५ ॥ मोहजालेनिपतिताः पापाचाराश्चयेनराः ॥ तेभ्योरक्षन्तितत्तीर्थं देवस्यचगणाश्शुभम् ॥ २६ ॥ पुण्याजनाःस्थिरायेच स्नानंतेषांचजायते ॥ पयोष्ण्यान्देवनद्याञ्च भोगवत्यांविशेषतः ॥ २७ ॥ एतच्चसङ्गमंपुण्यं यथावेण्यांसितासिते ॥ दृष्ट्वातीर्थन्तुतेसर्वे गीर्वाणाहृष्टमानसाः ॥ २८ ॥ दे

कोई द्रव्य कमाने में लगे हैं ॥ २३ ॥ कोई तीर्थफल के प्रत्यक्ष न होने की बातें करते हैं और कोई लोग हिंसामें लगेहैं कोई पराई स्त्रियों में गमन करते है व कोई द्रव्यकी चिन्ता करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ व कोई ऐसा कहते हैं कि स्त्री पुत्र भूखों मर जायँगे इससे तीर्थको कैसे जायाजाने ॥ २५ ॥ ऐसे मोहरूपी जालमें पड़ेहुये जो पाप करनेवाले मनुष्य हैं उनसे महादेवजी के गण उस शुभतीर्थ की रक्षा किया करते हैं ॥ २६ ॥ देवनदी पयोष्णी और भोगवती में विशेषकर स्नान उन्हीका होताहै जोकि पुण्यवाले और धैर्य्यवाले जीव हैं ॥ २७ ॥ यह सङ्गम पुण्यवाला है जैसे सितासितवेणी में सगम पुण्यवाला है अब उस तीर्थको देखकर प्रसन्न मन-

वाले वे सब देवता ॥ २८ ॥ महादेव के समीप होकर आपस में तीर्थका वर्णन करते हैं कि हे देवेश ! इस तीर्थको गयातीर्थ के समान जानते हैं ॥ २९ ॥ गुप्तसे गुप्ततरतीर्थ है ऐसा तीर्थ न हुआ है और न होगा ऐसे कह और महादेवजीका पूजनकर ब्रह्माआदि देवता और देवताओं के सहित ॥ ३० ॥ जो गण देवता हैं तथा गन्धर्व, यमराज, वरुण और इन्द्रआदि सब, सुरासुर नाचने व गाने व स्तोत्रोंसे शिवजीको प्रसन्न किया ॥ ३१ ॥ अब हे नृपोत्तम ! हे नराधिप ! महादेवजीने त्रिशूल की नोकसे जहां पर्वत को फाड़ाथा वहां जलसे भरेहुये तीन कुण्ड होगये ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर भँवरवाले, त्रिशूलके चिन्हों से युक्त वे कुण्ड सब पापों व सब

वस्यसन्निधौभूत्वा वर्णयन्तिपरस्परम् ॥ इदंतीर्थञ्चदेवेश गयातीर्थसमंविदुः ॥ २९ ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नभूतंनभविष्यति ॥ शूलपाणिंसमभ्यर्च्य ब्रह्माद्याश्चसुरैस्सह ॥३०॥ येगणाश्चैवगन्धर्वा यमोवरुणवासवौ ॥ नृत्यगीतैस्तथास्तोत्रैस्सर्वैचैवसुरासुराः ॥ ३१ ॥ देवेनभेदितोयत्र शूलाग्रेणनृपोत्तम ॥ त्रयोगर्तास्तुसंजातास्तोयपूर्णानराधिप ॥ ३२ ॥ आवर्त्तावर्तानरश्रेष्ठ महाकुलिशलाञ्छिताः ॥ सर्वपापक्षयकरास्सर्वदुःखापहारकाः ॥ ३३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वा उपवासपरायणः ॥ दीक्षामन्त्रविहीनोपि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ३४ ॥ यःपुनर्विधिवत्स्नात्वा मन्त्रैःपञ्चभिरेवच ॥ वेदोक्तैःपञ्चभिर्मन्त्रैः सहिरण्यैर्घटैस्तथा ॥ ३५ ॥ अक्षरैर्दशभिश्चैव पञ्चाक्षरैस्त्रिभिस्तथा ॥ पृथग्भूतैर्द्विजातीनां तीर्थंशस्तंनराधिप ॥ ३६ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांनापि शूद्रस्याथस्त्रियास्तथा ॥ ध्यात्वादेवत्रयंराजन् स्नानंचैवयथाविधि ॥३७॥ दशाक्षरेणमन्त्रेण तोयंपिबतियोनरः ॥ केदारेचयथापीतं तथाकुण्डेनसंशयः ॥ ३८ ॥ पञ्चरेफसमायुक्तं क्षकाराक्ष

दुःखोंके हरनेवाले होतेहुये ॥३३॥ दीक्षा और मन्त्रसे रहित भी मनुष्य व्रतको कियेहुये उस तीर्थमें स्नानकर संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ ३४ ॥ व जो मनुष्य पांच मन्त्रों से विधिपूर्वक स्नानकर सुवर्णसहित पांच घटों से व वेदोक्त पांच मन्त्रों से पूजन करता है ॥ ३५ ॥ अथवा अलग २ दशाक्षर व पञ्चाक्षर व त्र्यक्षर मन्त्रों से करता है तो उसको अक्षयफल होताहै हे नराधिप ! यह तीर्थ द्विजातियों को बहुतही अच्छाहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र और स्त्रियोंको भी अच्छाहै हे राजन् ! तीनों देवताओं का ध्यानकर विधिसे स्नानकर ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य दशाक्षर मन्त्रसे तीर्थका जलपीता है वह केदारकुण्ड के जलपीने के बराबर

इस कुण्ड के जलर्पने से फलको पाताहै इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ पांचरेफों से युक्त व वकार तथा दो ॐकारों से युक्त मन्त्रको कहताहुआ ॥ ३९ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये,विधि सेयुक्त जो मनुष्य वहां स्नान करता है और तिलोंसे मिलेहुये जलसे पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ४० ॥ वह दश आगेवाले और दश पीछेवाले ऐसे बीस पुरुषों को तारताहै और जो गङ्गा अथवा पञ्चतीर्थ में श्राद्ध करताहै ॥ ४१ ॥ वह वहां शूलभेदमें श्राद्ध करने से उसी फलको पावता है इसमें संशय नहीं है और जो वहां विधिसे युक्त दानको देताहै ॥ ४२ ॥ तो उसको वहां कियेहुये उस पुण्यका अक्षयफल होताहै जैसे गयाक्षेत्र में सब कामों के करने में

रभूषितम् ॥ ॐकारद्वयसंयुक्त मेतदत्रानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं विधियुक्तोजितेन्द्रियः ॥ तिलमिश्रेणतो येन तर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ ४० ॥ कुलंतारयतेविंशद्दशपूर्वान्दशापरान् ॥ गङ्गायांपञ्चतीर्थेच श्राद्धंवैकुरुतेतुयः ॥४१॥ सतत्रफलमाप्नोति शूलभेदेनसंशयः ॥ यस्तत्रविधिनायुक्तो दानंदद्याच्चभक्तितः ॥ ४२ ॥ तदक्षयंफलंतत्र कृत स्यसुकृतोथवा ॥ गयाक्षेत्रेयथापुण्यं सर्वकार्य्येषुचैवहि ॥ ४३ ॥ शूलभेदेतथापुण्यं स्नानदानादितर्प्पणैः ॥ भक्त्याच योददात्यत्र काञ्चनंगांमहींजलम् ॥ ४४ ॥ अन्नंकृषीभवंशय्यां वासांसिभूषणानिच ॥ अन्नादिभिर्धनैश्चैव गृहंपूर्ण ञ्चसर्वतः ॥ ४५ ॥ युग्ययुग्लाङ्गलंमुख्यं नवंचैवधुरन्धरौ ॥ दानान्येतानियोदद्याद् ब्राह्मणेवेदपारगे ॥४६॥ श्रोत्रियञ्च कुलीनञ्च शुचिंचविजितेन्द्रियम् ॥ ज्ञात्वादानञ्चयोदद्यात्तस्यान्तोनैवविद्यते ॥ ४७॥ त्रयोदशदिनेष्वेकं त्रयोदशगु णम्भवेत् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशूलभेदोत्पत्तिर्नामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * ॥

पुण्यहोता है ॥ ४३ ॥ वैसेही शूलभेद में स्नान, दान और तर्पण करने से पुण्य होताहै और जो वहां भक्तिसे सोना, गौ, पृथिवी, जल॥ ४४ ॥ खेतीसे उत्पन्नहुये अन्न, शय्या, कपडा, गहना, अन्नआदि व धन सब ओर से भराहुआ मकान ॥ ४५ ॥ बैलोंसेयुक्त नयाहल और बैल इन दानोंको वेदपढनेवाले ब्राह्मणको जो देताहै ॥ ४६ ॥ वेदके पढ़नेवाले, कुलीन इन्द्रियों के जीतनेवाले, पवित्र ब्राह्मणको जानकर जो दान देताहै उसकी पुण्यका अन्त नहीं है ॥ ४७ ॥ तेरह दिनके बीच में एक दिन में दियाहुआ तेरहगुना होताहै ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशूलभेदोत्पत्तिर्नामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उत्तानपाद राजा महादेवजी से पूँछतेहुये कि हे महादेव ! सिद्धब्राह्मण कैसे होतेहैं और अपूज्य (नहीं पूजनेलायक) ब्राह्मण कैसे होते हैं ॥ १ ॥ हे देव ! श्राद्ध, पञ्चयज्ञ और दानके विषयमें विशेष से किस को दान नहीं देना चाहिये यह आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे काठका हाथी और जैसे चमड़ेका हन्ना ऐसेही बेपढ़ा ब्राह्मण ये तीनोंनाम मात्रको रखते हैं ॥ ३ ॥ रोगी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, उढ़रा, व्रतका त्याग करनेवाला, कुण्ड (पिताके जीवते दूसरे से पैदाहुआ) और गोलक (पिताके मरजाने के बाद दूसरे से उत्पन्न हुआ) ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध व दानमें पवित्र नहीं

मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तानपादोराजेन्द्र पृच्छतिस्ममहेश्वरम् ॥ सिद्धाश्चकीदृशादेव अपूज्याश्चैवकीदृशाः ॥ १ ॥ श्राद्धेचैवाह्निकेयज्ञे दानेचैवविशेषतः ॥ एतदाख्याहिमेदेव कस्यदानंनदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्म्ममयोमृगः ॥ ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ ३ ॥ रोगीहीनातिरिक्ताङ्गः काणःपौनर्भवस्तथा ॥ अवकीर्णःकुण्डगोलौ श्राद्धेदानेनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥ माहिष्योवृषलःस्तेनो वार्धक्योथविशेषतः ॥ एतेविप्रास्सदा त्याज्याः पश्चान्मानंप्रशंसति ॥५॥ प्रतिग्रहन्तुगृह्णाति कालज्ञानंविनाद्विजः ॥ तस्यदानंनदातव्यं वृथाभवतिनिष्फलम् ॥ ६ ॥ दरिद्रान्देहिराजंस्त्वं मासमृद्धान्कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधंपथ्यं नीरुजस्यकिमौषधम् ॥ ७ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ विधिश्चकीदृशीदेव कथंश्राद्धस्यचक्रिया ॥ दानञ्चदीयतेयेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ८ ॥ देवउवाच ॥ श्रा

होतेहैं ॥ ४ ॥ माहिष्य (ब्राह्मणी में क्षत्रिय से पैदाहुआ) वृषल (शूद्राका रखने वाला) चोर और बढ़ई के कामका करनेवाला ये ब्राह्मण विशेषकरके हमेशा त्याग करनेलायक हैं और जो अपनी तारीफ करता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण समय के विनाजाने दानलेता है उसको दान नहीं देना चाहिये वह दान निष्फल और वृथा होजाताहै ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम गरीबों को ही दानदेवो धनियों को कभी नहीं क्योंकि दवा रोगीही को पथ्यहोती है आराम को क्या औषध ॥ ७ ॥ फिर उत्तानपाद बोले कि हे देव ! श्राद्धकी विधि कैसीहै और क्रिया किस प्रकार की है व दान जिसको करना चाहिये सो आप मुझसे कहने के योग्य हो ॥ ८ ॥ तब महादेवजी बो

कि भक्तिसे घरमें श्राद्धकर स्नान कियेहुये इन्द्रियों को जीतेहुये मौनहोकर पिताके क्रमसे संख्याको नहीं उल्लङ्घन करताहुआ तर्पणकरे ॥ ९ ॥ तदनन्तर शूलभेद को जाकर विधिसे स्नानकर पांच स्थानोंमें हव्यकव्य आदिसे जो श्राद्ध करताहै ॥१०॥ और उस तीर्थमें मिठाई और घीमे मिलीहुई खीरसे जो पिण्डदान करता है उसके फलको वह पाताहै इसमें संशय नहीं है ॥११॥ और जो विशेष से ब्राह्मणों को उपानह देताहै वह देवताओं से घिराहुआ व विमानपर चढ़ाहुआ जाताहै ॥ १२ ॥ सतनजा से भरेहुये अच्छे मकान को जो देताहै वह स्वर्गमें सोनेके उत्तम मन्दिर में रहता है ॥ १३ ॥ और बछड़ा के सहित तिलधेनु को जो विधिपूर्वक देताहै वह

श्राद्धंकृत्वागृहेभक्त्या सुस्नातोविजितेन्द्रियः ॥ वाग्यतस्तर्पयेत्तावद्यावत्सङ्ख्यामलङ्घयन् ॥ ९ ॥ शूलभेदन्ततोगत्वा स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ पञ्चस्थानेषुयःश्राद्धं हव्यकव्यादिभिश्चरेत् ॥ १० ॥ पिण्डदानंचयःकुर्य्यात्पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ तस्यतत्फलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थेनसंशयः ॥११॥ उपानहौचयोदद्याद्ब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ गच्छेद्विमानमारूढस्त्वमरैःपरिवारितः ॥ १२ ॥ उत्तमंचगृहन्दद्यात्सप्तधान्यैश्चपूरितम् ॥ सस्वर्गलोकेवसति काञ्चनेभवनोत्तमे ॥१३॥ तिलधेनुञ्चयोदद्यात्सवत्सांविधिपूर्वकम् ॥ नाकपृष्ठेवसेत्तावद्यावदाहूतसंप्लवम् ॥ १४ ॥ गृहेवायदिवारण्ये तीर्थेवाकुपथेषुच ॥ तोयमन्नञ्चयोदद्याद्यमलोकंनपश्यति ॥ १५ ॥ अक्षयंचान्नदानञ्च तोयभूमिस्तथैवच ॥ अन्नदानात्परंदानं नभूतोनभविष्यति ॥ १६ उत्तानपादउवाच ॥ कन्यादानंकथन्देव कर्तव्यंकथयस्वतत् ॥ प्रतिग्रहन्तथातोष्यं कन्योद्वाहमुपस्करम् ॥ १७ ॥ दातव्यंकस्यवैदानं दत्तम्भवतिचाक्षयम् ॥ उत्तमंमध्यमंवापि कनीयांसंकथञ्चन ॥ १८ ॥

महाप्रलयतक स्वर्गमें रहता है ॥ १४ ॥ घरमें व वनमे व तीर्थमें व कठिन रास्ते में जल व अन्नको जो देताहै वह यमलोक को नहीं देखताहै ॥ १५ ॥ अन्नदान अक्षय होताहै ऐसेही जल व जमीन का दानहै अन्नदान से परे दूसरा दान न हुआ है और न होगा ॥ १६ ॥ उत्तानपाद बोले कि हे देव ! कन्यादान कैसे करना चाहिये सो कहिये और कन्या व दहेजआदि सामान किस प्रकार होनाचाहिये ॥ १७ ॥ दान किसको देना चाहिये दियाहुआ दान अक्षय कैसे होताहै उत्तम, मध्यम और अधम

दान कैसा होताहै ॥ १८ ॥ अथवा राजस व तामस व सात्त्विकदान कैसा होताहै तब महादेवजी बोले कि सब दानोंमें कन्यादान श्रेष्ठहै ॥ १९ ॥ जो मनुष्य विशेष करके सुन्दररूपवाले व गुणी व कुलीन वरके समीप जाकर बड़ी भक्ति व यत्नसे कन्याको देताहै ॥ २० ॥ अच्छीलग्न व अच्छे मुहूर्त्त में गहना पहनाकर कन्याको देताहै और भक्तिसे घोड़े, हाथी और वस्त्रोंको जो देताहै ॥ २१ ॥ उसका वास वहां होताहै जहां निर्दोषस्थान है अपने प्राणोंसे भी प्यारी कन्याको जिसने दियाहै ॥ २२ ॥ उसने इस सब चराचर त्रैलोक्य को मानो देदिया कन्या के वास्ते जो धन दियागया उसको जो दुर्बुद्धि प्रसन्न नहीं करताहै ॥ २३ ॥ वह उस कर्मसे चाण्डाल

राजसन्तामसंवापि निश्रेयसमथापिवा ॥ ईश्वरउवाच ॥ सर्वेषामेवदानानां कन्यादानंविशिष्यते ॥ १९ ॥ योदद्यात्परयाभक्त्या अभिगम्यचयत्नतः ॥ कुलीनस्यस्वरूपस्य गुणज्ञस्यविशेषतः ॥ २० ॥ सुलग्नेचमुहूर्तेचदद्यात्कन्यामलङ्कृताम् ॥ अश्वान्नागांश्चवासांसि योदद्याच्चैवभक्तितः ॥ २१ ॥ तस्यवासोभवेत्तत्र पदंयत्रनिरामयम् ॥ येनसादुहितादत्ता प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ २२ ॥ तेनसर्वमिदंदत्तं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ धनंकन्यार्थतःकल्प्यो नरोचयतिदुर्मतिः ॥ २३ ॥ सभवेत्कर्म्मचाण्डालः कोशकारोभवेन्मृतः ॥ कन्यार्थंयाचतेयस्तु सधनोनिर्धनोपिवा ॥ २४ ॥ अभोज्योभवतेमर्त्यस्सर्ववस्तुषुवर्जितः ॥ गृहेतस्यचयोश्नीयाज्जिह्वालम्पटकोनृप ॥ २५ ॥ चान्द्रायणेनशुद्धिस्स्यात्तप्तकृच्छ्रमथापिवा ॥ राजोवाच ॥ वित्तंनविद्यतेयस्य कन्योद्वाहेऽवतिष्ठति ॥ २६ ॥ कथंचोद्वाहनंकुर्य्यादेतदाचक्ष्वमेप्रभो ॥ देवउवाच ॥ स्ववित्तेनानुकर्तव्यं कन्योद्वाहनमेवच ॥ २७ ॥ कन्यानामसमुच्चार्य्य नदोषोयाचकस्यच ॥ अभिगम्योत्त

होताहै और मरनेपर कुसेहरनाम का कीड़ा होताहै धनी व गरीब जो मनुष्य कन्याके लिये कुछ मांगता है ॥ २४ ॥ वह मनुष्य किसी कार्य में भोजन करानेके योग्य नहीं होताहै सर्वत्र वर्जित है और हे नृप ! जो जिह्वाका चञ्चल मनुष्य उस के घरमें भोजन करता है ॥ २५ ॥ वह चान्द्रायण व तप्तकृच्छ्रव्रत से शुद्धहोता है तब राजा बोले कि कन्या के विवाह के समय में जिसके पास धन नहींहै ॥ २६ ॥ तो वह विवाह कैसे करे हे प्रभो ! यह मुझसे कहो तब महादेवजी बोले कि अपने

ही धनसे कन्याका विवाह करना चाहिये ॥ २७ ॥ अथवा वरको छोड़ और से कन्याका नामलेकर जो धन मांगता है उसको दोष नहीं होताहै ॥ २८ ॥ जायकर दानदेना उत्तमदान है और बुलाके देना मध्यम है कहेपर देना अधम है काम कराके देना निष्फल है तथा असमर्थ वरको कन्यादान नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ और पढ़ाहुआ समर्थ और देनेवाले को तार देता है जैसे जलमें चलादिये हुये काठ को जल तारदेता है जैसे नावपार उतारने में समर्थ है ऐसेही विद्वान् तारसकताहै ॥ ३० ॥ जो अग्निहोत्री होकर शूद्रका दान लेताहै वह इस जन्ममें शूद्र और मरेपर कुत्ता होताहै ॥ ३१ ॥ उस अग्निहोत्री ब्राह्मण को वृथा क्लेश होतेहैं

मंदानमाहूतंचैवमध्यमम् ॥ २८ ॥ अधमंप्रोच्यमानन्तु सेवादानंचनिष्फलम् ॥ असमर्थैनदातव्यं कन्यादानंतथैवच ॥ २९ ॥ समर्थस्तारयेद्विद्वान्काष्ठंक्षिप्तंयथाजले ॥ यथानौकातथाविद्वांस्तारयेत्परमंतटम् ॥ ३० ॥ आहिताग्निस्तुयोभूत्वा गृह्णञ्छूद्रप्रतिग्रहम् ॥ इहजन्मनिशूद्रत्वं मृतःश्वाचोपजायते ॥ ३१ ॥ वृथाक्लेशाश्चजायन्ते ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ असत्प्रतिग्रहंगृह्णन्नापदंचविनाद्विजः ॥ ३२ ॥ तत्सर्वंनाशयेत्तस्य भिन्नानौकायथाम्भसि ॥ अतिक्लेशवशार्जितं विनाशयतितत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ एवंदुःखार्जितंपुण्यं शूद्रेगच्छतिनान्यथा ॥ लक्षदाक्षिण्यलाभाय प्रदानंचापराधकम् ॥ ३४ ॥ कीर्तिपात्रेषुयद्दत्तं वृथाभवतिपार्थिव ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदानमहिमानुवर्णनन्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जो ब्राह्मण विना विपत्तिके दुष्टका दान लेताहै ॥ ३२ ॥ वह दान उसका सब कुछ नाश करदेताहै जैसे टूटीनौका जलमें डूबजाय जैसे बड़े क्लेशसे कमाया धन क्षणमात्र में नष्टहोजावे ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार बड़े दुःखसे कमायाहुआ पुण्य शूद्रके पास चलाजाता है यह झूंठ नहीं है व अपने फायदे के वास्ते जो दान है वह अपराधही है ॥ ३४ ॥ जिससे यशहोवे ऐसे पात्रमें जो दान दियागया है हे पार्थिव ! वह दान वृथा होताहै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेदानमहिमानुवर्णनोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

उत्तानपाद बोले कि हे शङ्कर ! श्राद्ध, दान, तीर्थयात्रा और अतिथिसत्कार किससमय में कियाजाता है सो आप हमलोगों से कहो॥ १॥ तब महादेवजी बोले कि पिताके वास्ते जो पुण्यहै वह सबकाल में अच्छाहै और स्नान, दान व तर्पण के वास्ते यह तीर्थ भी ऐसाही पवित्र है ॥ २ ॥ चारोंयुगों की जो आदि तिथियां हैं उनमें विशेषकर महात्मा लोग श्राद्ध करते हैं अब हे वत्स ! चौदहों मन्वादि तिथियों को तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि कुवार में सुदी नवमी, कार्त्तिक की द्वादशी, चैतमासमें तीज, तथा भादों की तीज ॥ ४ ॥ आषाढ़ की दशमी, माघकी सप्तमी श्रावणकृष्ण की अष्टमी, फिर आषाढ़ की पूर्णमासी ॥ ५ ॥ फागुन की अमावस पूसकी

उत्तानपाद उवाच ॥ कस्मिन्कालेचक्रियते श्राद्धंदानंचशङ्कर ॥ तीर्थयात्राकथंकार्य्या आतिथ्यंकथयस्वनः ॥ १ ॥ शङ्करउवाच ॥ पितुरर्थंयथापुण्यं सार्वकालिकमुत्तमम् ॥ इदंतीर्थंतथापुण्यं स्नानदानादितर्पणैः ॥२॥ विशेषेणचकुर्वन्ति श्राद्धंचतुर्युगादिषु ॥ मन्वन्तरादयोवत्स श्रूयतांचचतुर्दश ॥ ३ ॥ आश्विनेशुक्लनवमी द्वादशीकार्तिकस्यच ॥ तृतीयाचैत्रमासेतु तथाभाद्रपदस्यच ॥ ४ ॥ आषाढस्यचदशमी माघस्यैवचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीतुपूर्णिमा ॥ ५ ॥ फाल्गुनस्यअमावास्या पौषस्यैकादशीशुभा ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्यैष्ठीपञ्चदशीसिता ॥६॥ मन्वन्तरादयश्चैव ह्यनन्तफलदास्स्मृताः ॥ अयनेतूत्तरेचैव दक्षिणेचतथैवहि ॥ ७ ॥ कार्त्तिक्यांचतथामाघ्यां वैशाख्यांचतृतीयया ॥ चैत्र्यांचैवतथाषष्ठ्यां प्रोष्टपद्यान्तथैवच ॥ ८ ॥ श्राद्धकालाश्चतेसर्वे दत्तम्भवतिचाक्षयम् ॥ मधुमासेसितेपक्ष एकादश्यामुपोषितः ॥ ९ ॥ क्षपाजागरणंकुर्य्याद्विष्णोःपदसमीपतः ॥ दद्याद्दानंतथाशक्त्या हिरण्यं

एकादशी और कातिक, फागुन, चैत और जेठकी उजियाली पूर्णमासी ॥ ६ ॥ ये मन्वन्तरादि तिथियां अनन्तफल की देनेवाली कहीगई हैं और उत्तरायण, व दक्षिणायन की संक्रान्ति ॥ ७ ॥ तथा कार्त्तिक, माघ और वैशाख की पूर्णमासी, आखा तीज, चैतकी छठि और भादोंकी पूर्णमासी ॥ ८ ॥ ये सब श्राद्धके कालहैं इनमें दियाहुआ अक्षयहोता है चैत्रमास के उजियारे पाखकी एकादशी को उपासा रह कर ॥ ९ ॥ विष्णु के चरणों के समीप रात्रिको जागरण करे और यथाशक्ति सोना,

गौवें और कपड़ों का दानकरे ॥ १० ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, माला, फूल और चन्दनआदि से जो विष्णुका पूजन करता व पुराणकी कथाको कहताहै ॥ ११ ॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद के सूक्तोंको जपता है वह ब्राह्मण सब पापोंसे छूटाहुआ विष्णुलोक को जाता है ॥ १२ ॥ जो प्रातःकाल श्राद्ध करता है और यत्नसे ब्राह्मणोंको भोजन कराके यथाशक्ति उनको सोना, गौवें और वस्त्रोंको देताहै ॥ १३ ॥ उसके पितर महाप्रलय तक तृप्त रहतेहैं और श्राद्धका देनेवाला भी वहां रहता है कि जहां विष्णुजी रहते हैं ॥ १४ ॥ फिर त्रयोदशी को वहां जावे जहां गुहावासी महादेव हैं वहां मार्कण्डेयेश्वर को देखकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ उत्तानपाद बोले

गोम्बराणिच ॥ १० ॥ धूपंदीपंचनैवेद्यं स्रक्पुष्पचन्दनानिच ॥ अर्चांकरोतियोविष्णोः कथाम्पौराणकीर्तनम् ॥ ११ ॥ ऋग्यजुस्सामाथर्वाणां सूक्तन्तज्जपतिद्विजः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ १२ ॥ प्रभातेकुरुतेश्राद्धं द्विजान्भोज्यप्रयत्नतः ॥ ददेद्दानंयथाशक्त्या हिरण्यंगोम्बराणिच ॥ १३ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाहूतसंप्लवम् ॥ श्राद्धदश्चवसेत्तत्र यत्रदेवोजनार्द्दनः ॥ १४ ॥ त्रयोदश्यांततोगच्छेद्गुहावासीतितिष्ठति ॥ दृष्ट्वामार्कण्डमीशानं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १५ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ गुहामध्येयथादेव लिङ्गंपरमशोभनम् ॥ प्रतिष्ठायेनदेवस्य तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं मार्कण्डेश्वरसंज्ञिकम् ॥ बृहद्रथन्तरंयच्च सामवेदंद्विजोत्तमः ॥ १७ ॥ अथर्वाथर्वशीर्षाणि तथाहृच्चवृषाकपिम् ॥ शिवसङ्कल्पितंजप्त्वा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १८ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ पादशौचंतथातस्य कुर्वतेयेचभक्तितः ॥ १९ ॥ गोदानेनैवयत्पुण्यं लभन्तेनात्रसंशयः ॥

कि हे देव ! गुहा के बीचमें जैसा अतिसुन्दर लिंगहै और जैसे उन देवकी प्रतिष्ठा हुईहो सो आप मुझसे कहने को योग्य होतेहो ॥ १६ ॥ तब महादेवजी बोले कि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मार्कण्डेश्वरनामका लिंग वहां बृहद्रथन्तर नामका साम वेदका जो सूक्तहै उसको तथा अथर्वशीर्ष, वृषाकपि नामका अथर्वहृदय और शिवसङ्कल्पनाम का सूक्त जपकर ब्राह्मण सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १७ । १८ ॥ और वह उत्तम स्थानको जाताहै जहां महादेवजी रहतेहैं और जो लोग वहां महादेवके

चरणों को भक्तिसे धोते हैं वे गोदान से जो पुण्य होताहै उसको पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है वहां घी शक्कर मिलीहुई खीरसे ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१६।२०॥ एक ब्राह्मण के भोजन कराने से हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने का फलहोता है सोना, चांदी और कपड़े ब्राह्मणों को भक्तिसे देवे ॥ २१ ॥ उससे देवता, मनुष्य और पितर तृप्तहोते हैं और चन्द्र व सूर्य के ग्रहण में जो मनुष्य वहां भक्तिसे स्नान करतेहैं ॥ २२ ॥ और जो महादेव का पूजन करता है व विशेषसे जप व होम करता है और वेदपाठी ब्राह्मण को यथाशक्ति दान देताहै ॥ २३ ॥ व अच्छा घोड़ा, उत्तम हाथी, तुलापुरुष, सतनजा से भराहुआ छकड़ा जो वहां देताहै ॥ २४ ॥ व

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ २० ॥ एकेनभोजितेनापि सहस्रन्तेनभोजितम् ॥ सुवर्णंरजतंवस्त्रं दद्याद्भक्त्याद्विजातिषु ॥ २१ ॥ तेनतृप्यन्तितेदेवा मनुष्याःपितरस्तथा ॥ चन्द्रसूर्य्यग्रहेभक्त्या स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥ २२ ॥ देवार्चनं च यःकुर्य्याज्जपंहोमंविशेषतः ॥ दद्याद्दानंयथाशक्त्या ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २३ ॥ अश्वरत्नंगजरत्नं तुलापुरुषमेवच ॥ शकटंयोददेत्तत्र सप्तधान्यप्रपूरितम् ॥ २४ ॥ युक्तं च लाङ्गलंदद्याद्युवानौतुधुरन्धरौ ॥ गोभूतिलहिरण्यञ्च पात्रेदातव्यमीप्सितम् ॥ २५ ॥ अपात्रेविदुषाकिञ्चिन्नदेयंश्रेयइच्छता ॥ सर्वभूतानिचात्मैव यतोधारयतेमही ॥ २६ ॥ ततोविप्रायसादेया सर्वसस्यानुशालिनी ॥ अन्यच्चशृणुराजेन्द्र गोदानस्यचयत्फलम् ॥ २७ ॥ यावद्वत्सस्य पादौद्वौ मुखंयोन्याश्चदृश्यते ॥ तावद्गौःपृथिवीज्ञेया यावद्गर्भंनमुञ्चति ॥ २८ ॥ येनकेनाप्युपायेन ब्राह्मणायसमर्पयेत् ॥ पृथ्वीदत्ताभवेत्तेन सशैलवनकानना ॥ २९ ॥ तारयन्तीचसादत्ता कुलानामेकविंशतिम् ॥ रौप्यखुरींकांस्यदो

अच्छा हल, जवान धुरन्धर बैल, गौवें, पृथिवी, तिल और सोना ये सुपात्रब्राह्मण को उसकी इच्छानुसार देना चाहिये ॥ २५ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करनेवाले विद्वान् को अपात्र में कुछभी न देना चाहिये सब प्राणियों को जिससे पृथिवीही धारण करती है ॥ २६ ॥ इससे सब अन्नों से युक्त पृथिवी ब्राह्मण को देना चाहिये हे राजेन्द्र ! और भी जो गोदान का फलहै उसे तुम सुनो ॥ २७ ॥ जबतक बछड़ाके दोनों पांव औ मुँहयोनि में देखपड़ें तबतक वह गौ पृथिवी के तुल्यहै जबतक गर्भको नहीं छोड़ती है ॥ २८ ॥ इससे ऐसी गऊको जिस किसी उपाय से ब्राह्मण को देवे मानो उसने पर्वत व जलों और जंगलों के सहित सम्पूर्ण पृथिवीको देदिया ॥ २९ ॥

दीहुई वह गऊ इक्कीस कुलोंको तारती है रूपे के खुरोंवाली, कांसेकी दोहनीवाली, बछड़ाके सहित दूधवाली गऊको ॥ ३० ॥ बड़े पुण्यवाले मनुष्य चन्द्रग्रहण में देते हैं हे नराधिप! और सब दानोंके पुण्यकी गिन्ती है ॥ ३१ ॥ पर चन्द्र व सूर्य ग्रहणमें दान के पुण्यकी गिन्ती नहीं है जहां गौवें देख पड़ती हैं वहीं सब तीर्थ हैं ॥ ३२ ॥ और वहीं विष्णुको जानना चाहिये इसमें कुछ विचारना नहीं है जो मनुष्य इस तीर्थका स्मरण करके भी यात्रा करता है ॥ ३३ ॥ अथवा तीर्थका माहात्म्यही सुनता है वह महादेवजी का गणहोता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशूलभेदमाहिमानुकथनन्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

हां सवत्सांचपयस्विनीम् ॥ ३० ॥ प्रयच्छन्तिजनाःपुण्या राहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ सर्वस्यैवतुदानस्य संख्याचास्तिनराधिप ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेच दानसंख्यानविद्यते ॥ यत्रगावःप्रदृश्यन्ते सर्वतीर्थानितत्रवै ॥ ३२ ॥ तत्रयज्ञंविजानीयान्नात्रकार्य्याविचारणा ॥ पुनःस्मृत्वातुतत्तीर्थं गमनंकुरुतेनरः ॥ ३३ ॥ अथवाश्रूयतेयस्तु रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशूलभेदमाहिमानुकथनंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ अन्यच्चाख्यानकंवक्ष्ये पुरावृत्तंनराधिप ॥ सकुटुम्बोगतःस्वर्गमृषिदीर्घतपामहान् ॥ १ ॥ शङ्करउवाच ॥ काशिराजेतिविख्यातश्चित्रसेनोमहाबलः ॥ तस्यपुर्य्यांसवसते सर्वकामसमन्वितः ॥ २ ॥ सापुरीजनसम्पूर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥ वाराणसीतिविख्याता गङ्गातीरेसमाश्रिता ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थसमप्रख्या गौरीगोकुलसंयुता ॥ बहुद्विजसमाकीर्णा वेदध्वनितनिःस्वना ॥ ४ ॥ वणिग्जनैर्बहुविधैः क्रयविक्रयसंयुतैः ॥ अट्टाट्टालैःप्रतोलीभिरुत्सवाद्यै

महादेवजी बोले कि हे नराधिप! अब और अगिले जमाने में हुये आख्यान को कहेंगे जिसमें श्रेष्ठ दीर्घतपा ऋषि कुटुम्ब सहित स्वर्गको गयाहै ॥ १ ॥ महादेवजी कहते हैं कि चित्रसेन नामसे विख्यात बड़े बलवाले काशी के राजाहुये उन्हीं की पुरी में सब कामनाओं से युक्त वे ब्राह्मण रहते थे ॥ २ ॥ वह पुरी मनुष्यों से भरी और अनेक रत्नों से शोभित गङ्गा के तीर बसती हुई वाराणसी इस नाम से प्रसिद्ध होतीहुई ॥ ३ ॥ जोकि इन्द्र प्रस्थ के बराबर शोभावाली कन्या और गौवों से युक्त थी और बहुत से ब्राह्मणों से व्याप्त, वेदों की आवाजों से शब्द करतीहुई ॥ ४ ॥ खरीद और बिक्री करनेवाले अनेक प्रकार के बनियों से युक्त

अएटा, शहरपनाह, सड़के और अनेक जलसाओं से सुहावनी ॥ ५ ॥ देवताओं के दिव्य मन्दिर व बगीचों से शोभित, रमणीक अनेक पुष्प व फलों से युक्त, केला-
ओं की बेंटों से शोभित थी ॥ ६ ॥ उसके उत्तर दिशा के तरफ तीनोंलोकोंमें प्रसिद्ध मन्दारवन नाम का अति सुन्दर बगीचा था ॥ ७ ॥ जो कि अनेक वृक्ष व लताओं
से व्याप्त व अनेक प्रकारके फूलों से सुहावना था बहुतसे मन्दार के वृक्षोंसे युक्त होनेसे मन्दारवन नाम से प्रसिद्ध था ॥ ८ ॥ दीर्घतपा नामका ब्राह्मण वहां सदा
रहता था वह अत्यन्त तप करता था इससे दीर्घतपा कहाजाता था ॥ ९ ॥ वह अपनी स्त्री व पुत्रों से युक्त रहता था उसके समीप रहेनेवाले राब पांचों लडके उस

स्तुमण्डिता ॥ ५ ॥ देवतायतनैर्दिव्यैरारामैरुपशोभिता ॥ नानापुष्पफलैरम्यैः कदलीषण्डमण्डिता ॥ ६ ॥ तस्या
उत्तरदिग्भागे आरामश्चोत्तमश्शुभः ॥ समन्दारवनंनाम त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ७ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पो
पशोभितम् ॥ बहुमन्दारसंयुक्तं तेनमन्दारकंवनम् ॥ ८ ॥ विप्रोदीर्घतपानाम सर्वदातत्रतिष्ठति ॥ तपस्तपतिसोत्यर्थं
तेनदीर्घतपाःस्मृतः ॥ ९ ॥ सतिष्ठतेसपत्नीकस्तिष्ठतेपुत्रसंयुतः ॥ शुश्रूषयन्तितंसर्वे सुताःपञ्चसमीपगाः ॥ १० ॥ त
स्यपुत्रःकनीयांस्तु ऋष्यश्रृङ्गोमहातपाः ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो ब्रह्मचारीगुणान्वितः ॥ ११ ॥ योगाभ्यासरतोनित्यं क
न्दमूलफलाशनः ॥ तिष्ठतेमृगरूपेण मृगमध्येवसन्सदा ॥ १२ ॥ दिनारम्भेदिनान्तेच मातापित्रग्रतःस्थितः ॥ अभि
वादयतेनित्यं भक्तिमान्नृषिपुत्रकः ॥ १३ ॥ पुनर्जगामतत्रैव काननेगिरिगह्वरे ॥ क्रीडन्बालमृगैस्सार्द्धं राजबाणमृतस्तु
सः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ आश्रमेवसतस्तत्र सुदीर्घतपसस्तदा ॥ सूनुस्तस्यकनीयांस्तु कथंमृत्युवशङ्गतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवा

की सेवा करते थे ॥ १० ॥ उसका छोटा लडका वेदके पढ़ने में युक्त व गुणों से युक्त ब्रह्मचारी बड़ा तप करनेवाला ऋष्यश्रृङ्गनाम का होता हुआ ॥ ११ ॥ वह ह-
मेशा योगाभ्यास में लगाहुआ कन्द, मूल और फलोंका खानेवाला हरने के रूप से बना रहता व हरनाओं के बीचमें सदा बास करतारहा ॥ १२ ॥ प्रातःकाल व
सायकाल में पिता व माताके आगे खडा होकर वह ऋषिका पुत्र भक्ति से युक्त उनको नित्यही प्रणाम करता था ॥ १३ ॥ और फिर वहीं पहाड़ी जङ्गल मे चला
जाता था एक दिन हरनाओं के बच्चो के साथ खेलता हुआ वह राजाके बाण से मारागया ॥ १४ ॥ तब राजा बोले कि उस आश्रम मे रहेतेहुये दीर्घतपा का छोटा

लडका कैसे मरगया ॥ १५ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महीपते ! तुम एकाग्रमन होकर इस विचित्र कथा को सुनो इसके सुननेही से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १६ ॥ बड़े बल व पराक्रमवाले काशीके माहाराजा चित्रसेन इस नाम से प्रसिद्ध जोकि काशीमे रहते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार वहां राज्य में रहतेहुये मन्त्रियो से वचन बोले कि हम शिकार को जावेंगे तुम लोग तब तक राज्यमे बनेरहो ॥ १८ ॥ तब मन्त्रियों ने कहा कि आप जाइये ऐसे कहेगये राजा घोडे पर सवारहोकर चलेगये तदनन्तर उन राजाके पीछे सेवक लोग भी गये ॥ १९ ॥ वनको जातेहुये राजाके ऊपर छातोंपर छाते देखपड़ते हैं वहां हाथी व घोडो के पावों

नुवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा कथांचित्रांमहीपते ॥ श्रवणादेवतस्याहि सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १६ ॥ काशिराजोमहाराजा महाबलपराक्रमः ॥ चित्रसेनइतिख्यातो वाराणस्यांवसत्यसौ ॥ १७ ॥ एवंवसंस्तत्रराज्ये मन्त्रिणोवाक्यमब्रवीत् ॥ मृगयांचगमिष्यामि यूयंराज्येप्रतिष्ठिताः ॥ १८ ॥ गम्यतांमन्त्रिभिःप्रोक्तो गतोसौवसुधाधिपः ॥ अश्वारूढोप्यन्वगच्छन् राजानमनुगास्ततः ॥ १९ ॥ छत्रैश्छत्राणिदृश्यन्ते गच्छन्तंकाननंप्रति ॥ रजस्तत्रोत्थितंभूरि गजवाजिपदाहतम् ॥ २० ॥ तेनैवाच्छादितंसर्वं सादित्यंभूमिमण्डलम् ॥ नतत्रदृश्यतेसूर्य्यो नकाष्ठानचचन्द्रमाः ॥ २१ ॥ पादपाश्चनदृश्यन्ते गिरिसानूनिसर्वशः ॥ तत्रापिचमहाराज मृगयूथमदृश्यत ॥ २२ ॥ अधावन्पुरुषास्सर्वे सराजाराजपुत्रकाः ॥ वृन्दलोपोभवत्तेषां शीघ्रंजग्मुर्दिशोदश ॥ २३ ॥ एकमार्गगतोराजा चित्रसेनोमहीपतिः ॥ एकाकीसगतस्तत्र यत्रयत्रचतेमृगाः ॥ २४ ॥ प्रविष्टस्तुततोदुर्गे काननेपक्षिवर्जिते ॥ वल्मीगुल्मलताकीर्णे प्रविष्टोनैवदृश्यते ॥ २५ ॥

से बड़ी गर्द उड़ी ॥ २० ॥ उससे सूर्य सहित सब भूमण्डल झँपगया तब वहां सूर्य व दिशायें व चन्द्रमा नहीं देखपड़ते हैं ॥ २१ ॥ और वृक्ष व पर्वतोंकी चोटियां भी नहीं देखपड़ती हैं तबतक हे महाराज ! वहां हरिणओं का झुण्ड देखपडा ॥ २२ ॥ तब सब मनुष्य और वे राजा व राजपुत्र दौडे तब उनका झुण्ड फूटगया और बहुत जल्दी दशो दिशाओं में आगगये ॥ २३ ॥ और राजा चित्र सेन भी एक रास्तेको चलेगये वे राजा अकेले वहीं २ गये जहां २ वे हरिण गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर

पक्षियों से भी खाली कठिन वनसें राजा पैठ गय बांबी छोटे २ वृक्ष व लताओं से घने वन में पैठे हुये राजा नहीं देखपडते ॥ २५ ॥ राजा ने अकेले आपको देखा और घोडा व पैदलों को नहीं देखा तब राजा ने कहा कि यहां कोई नहीं जानता और न हम दशोदिशाओं को जानते हैं॥ २६ ॥ राजा चित्रसेन ऐसे कष्टको प्राप्तहुये तब वहां छाया में बैठगये और बार २ विश्राम कर ॥ २७ ॥ भूख और प्यास से विकल पर्वतोंसे कठिन घने वन में घूम रहे कमलो से शोभित एक दिव्य तालाब को देखा ॥ २८ ॥ हंस, पनडुब्बी और चकवाओं के शब्दसे गूंज रहे उस तालाबको देखकर राजा प्रसन्न होगये ॥ २९ ॥ और कमलों को लेकर उसमें स्नान किया

एकाक्यपश्यदात्मानं नचाश्वंनपदातिकान् ॥ नकोपिचात्रजानाति नाहंवेद्मिदिशोदश ॥ २६ ॥ एवंकष्टंगतोराजा चित्रसेनोनराधिपः ॥ छायांसमाश्रितस्तत्र विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ २७ ॥ क्षुत्तृषार्तोभ्रमन्दुर्गे काननेगिरिगह्वरे ॥ ततोप श्यत्सरोदिव्यं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ २८ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपकूजितम् ॥ सरोदृष्ट्वातुराजेन्द्रः संप्रह ष्टतनूरुहः ॥ २९ ॥ कुमुदानिगृहीत्वातु तत्रस्नानंसमाचरत् ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवान्मनुष्यांश्चयथाविधि ॥ ३० ॥ पपौ पानीयममलं यथावत्समभीप्सितम् ॥ उत्तीर्यसजलात्तीरे दृष्ट्वावृक्षंसमीपतः ॥ ३१ ॥ चिन्तयानुपविष्टोसौ किंतुक र्मकरोम्यहम् ॥ ततश्छायाश्रितान्पश्यन्वनोद्देशेमृगान्बहून् ॥ ३२ ॥ केचित्पूर्वमुखास्तत्र अपरेदक्षिणामुखाः ॥ वा रुण्यभिमुखाःकेचित्केचित्कौबेरमाश्रिताः ॥ ३३ ॥ केचिन्निद्रांप्रकुर्वन्ति ऊर्द्धकर्णाःस्थिताःपरे ॥ मृगमध्येस्थितोयोगी ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ३४ ॥ मृगान्दृष्ट्वाततोराजा प्रहारार्थमचिन्तयत् ॥ वधित्वाचमृगंचैकंभक्षयामियदृच्छया ॥ ३५ ॥

फिर पितर, देवता, और मनुष्यो का विधिपूर्वक तर्पण कर ॥ ३० ॥ मनमाने निर्मल जलको पिया फिर जलसे निकल किनारे पर समीपही एक वृक्षको देखकर बैठ गये और चिन्तासे कहनेलगे कि अब हम किस कामको करें तदनन्तर वन में छाया में बैठेहुये बहुत से हरिणाओं को देखा ॥ ३१।३२ ॥ वहां कोई पूर्वकीतरफ मुहँ किये हुये और कोई दक्षिण, कोई पश्चिम और कोई उत्तर मुहँ बैठे हैं ॥ ३३ ॥ कोई सोते और कोई ऊपरको कान किये बैठे हैं हरिणाओं के बीचमें बडे तपवाले योगी ऋष्य- शृङ्ग बैठे थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर राजा हरिणाओं को देख उनके मारने का विचार करते हुये अपने मनमे कहा कि एक हरिणा को मारकर हम इच्छा पूर्वक खायँगे ॥ ३५ ॥

हन्ना के मांस के खाने से पुष्ट होंगे तदनन्तर हम रास्ते को ढूँढ़तेहुये काशी को चले जायँगे ॥ ३६ ॥ पेडकी जड़पर बैठे हुये सामर्थ्यवान् राजा ऐसे विचार कर हाथसे धनुष लेकर उसबाण को छोड दिया ॥ ३७ ॥ उसबाण के छोड़तेही सब हन्ना भागगये उनके बीचमें वही एक ऋष्यशृङ्ग बड़े तपवाले ॥ ३८ ॥ बाणसे बिंधेहुये गिरे और कृष्ण २ कहते हुये उन्हों ने कहा हाय! २ मुझको इस समय किसने गिरादिया ॥ ३९ ॥ यह दुर्बुद्धि किसके पैदा होगई जिससे हमारे मारने की बुद्धि होगई क्योंकि हन्नों के बीच में बैठे हुये हमने किसी का अपराध नहीं किया ॥४०॥ इस मनुष्य की आवाज को सुनकर वह राजा विस्मय से युक्त होगया तदनन्तर

स्वस्थावस्थोभविष्यामि मृगमांसस्यभक्षणात् ॥ काशींप्रतिगमिष्यामि मार्गमन्वेषयंस्ततः ॥ ३६ ॥ विचिन्त्यैवंततोराजा वृक्षमूलंसमाश्रितः ॥ चापंगृह्यकराग्रेण प्राक्षिपत्तच्छरंविभुः ॥ ३७॥ क्षिप्तमात्रेशरेतस्मिन्सर्वेनष्टामृगास्ततः ॥ तेषांमध्येसचैवैक ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ३८ ॥ शरेणविद्धःपतितः कृष्णकृष्णेतिचाब्रवीत् ॥ हाहाशब्दंकृतंतेन केनाहंपातितोधुना ॥ ३९ ॥ कस्यैषादुर्मतिर्जाता ययाबुद्धिर्ममोपरि ॥ मृगमध्येस्थितश्चाहं नकिञ्चिदपराधवान् ॥४०॥ वाचांतांमानुषींश्रुत्वा सराजाविस्मयान्वितः ॥ शीघ्रंगत्वाततोपश्यद् ब्राह्मणंब्रह्मवर्चसम् ॥ ४१ ॥ हाहाकष्टंकृतमद्य येनासौघातितोमया ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ नतेसिद्धिर्भवेत्किञ्चिन्मयिपञ्चत्वमागते ॥ ४२ ॥ तवैवविहिताहत्या मयिपञ्चत्वमागते ॥ जननीमेपितावृद्धौ भ्रातरोहितपस्विनः ॥ ४३ ॥ भ्रातृजायामरिष्यन्ति मयिपञ्चत्वमागते ॥ एताहत्याभविष्यन्ति तवशुद्धिःकथंभवेत् ॥ ४४ ॥ एताहत्याभविष्यन्ति कथंशुद्धिर्भवेत्तव ॥ उपायंकथयिष्यामि कर्तुंत्वंयदिमन्यसे ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ उपायःकथ्यतांमद्य यस्तेमनसिवर्तते ॥ करिष्येतदहंसर्वं प्रयत्नेनमहामुने ॥ ४६ ॥

जल्दी वहां जायकर ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण को देखा ॥ ४१ ॥ राजा ने कहा कि हाय! २ आज मैंने बड़ा पाप किया जो मैंने इसको मारा तब वह ब्राह्मण बोला कि मेरे मरने पर तेरी कुछ भी सिद्धि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ मेरे मरनेपर तुम्हही को हत्या होगी मेरी माता व पिता वृद्ध हैं और मेरे भाई तपस्वी हैं ॥ ४३ ॥ मेरे मरने पर मेरी भावजैं मर जायँगी इतनी हत्यायें तुझको होयँगी तेरी शुद्धि कैसे होसक्ती है ॥ ४४ ॥ इस से हम उपाय को कहैं जो तू करने को अङ्गीकार करे ॥ ४५ ॥ तब

राजा बोला कि जो उपाय आपके मनमें हो उसे अब मुझसे कहो हे महामुने ! वह सब बडी यत्न से करेंगे ॥ ४६ ॥ तब शृङ्गी बोले कि हम तुझ से पूछते हैं कि
तू कहां से आया है और कौन है यहां कैसे आगया तू ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्यों के बीच मे कोई है अथवा शूद्र व चाण्डाल है ॥ ४७ ॥ तब राजा बोला कि मैं
ब्राह्मण व वैश्य व शूद्र नहीं हूं मैं क्षत्रिय हूं तब शृङ्गी बोला कि जहां मेरे माता व पिता हैं उस पवित्र आश्रम में मुझे लेकर ॥ ४८ ॥ अपने को प्रसिद्ध कर कि आप
के पुत्र का मारने वाला मैं पापी आया हू वे दोनों मुझको देखकर तुझपर दया करेंगे ॥ ४९ ॥ और उपाय भी करेंगे जिससे शान्ति होगी राजा चित्रसेन उसके इस

राजोवाच ॥ उपायंमनसायस्तेतमाचक्ष्वमहामुने ॥ करिष्यामिप्रयत्नेनतत्सर्वंनात्रसंशयः ॥ ४६ ॥ (see below)

श्रृङ्ग्युवाच ॥ पृच्छामित्वांकुतःकोवा कथंत्वमिहचागतः ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांमध्येन्त्यजश्शूद्रोथवापुनः ॥ ४७ ॥ राजोवा
च ॥ नाहंविप्रोनवैश्योहं नशूद्रःक्षत्रियोह्यहम् ॥ श्रृङ्ग्युवाच ॥ मांगृहीत्वाश्रमंपुण्यं यत्रतौपितरौमम ॥ ४८ ॥ आवे
दयस्वचात्मानं पुत्रपापिनमागतम् ॥ तौदृष्ट्वामांकरिष्येते कारुण्यंचतवोपरि ॥ ४९ ॥ उपायंवाकरिष्येते येनशा
न्तिर्भविष्यति ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चित्रसेनोनृपोत्तमः ॥ ५० ॥ स्कन्धेकृत्वाचतंविप्रं जगामाश्रमकंप्रति ॥ नशक्नो
तिचतंवोढुं विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ ५१ ॥ तावत्पश्यतितंविप्रं मूर्च्छितंविकलेन्द्रियम् ॥ मुमोचचित्रसेनस्तु छायांन्य
ग्रोधकस्यच ५२॥ विश्रामंचततःकृत्वा वाचंकुर्वन्मुहुर्मुहुः॥पश्यतस्तस्यराजेन्द्र ऋष्यश्रृङ्गोमहातपाः ॥ ५३ ॥ पञ्चत्व
मगमच्छीघ्रं ध्यानयोगेनयोगवित् ॥ दाहयामासतंविप्रं विधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ ५४ ॥ स्नानंकृत्वातुशोकार्तो रुरोदचमु
मोहच ॥ ततश्चानन्तरंराजा उद्वेगंपरमंगतः ॥ ५५ ॥ कथंयास्येगृहानद्य वाराणस्यांहतोह्ययम् ॥ ब्रह्महत्यासमाविष्टो

वचन को सुनकर ॥ ५० ॥ अपने कन्धे पर ब्राह्मण को लेकर उस आश्रम को गया उसको ले चलने की सामर्थ्य नहीं है इससे बार२ विश्राम करके चलता है ॥ ५१ ॥
तबतक विकल जिसकी इन्द्रियां हैं ऐसे उस ब्राह्मण को मूर्च्छित देखा तब चित्रसेन उसको बरगद की छाया मे छोड़दिया ॥ ५२ फिर वहां विश्राम कर बारबार उस
को पुकारता हुआ परन्तु हे राजेन्द्र ! उसके देखतेही बडा तपवाला वह ऋष्यशृङ्ग ॥ ५३ ॥ योगका जानने वाला ध्यानयोग से शीघ्रही मरगया तब राजा ने वेदकी
रीति से उस ब्राह्मण को जलादिया ॥ ५४ ॥ फिर शोकमे विकल आप स्नान कर रोता व मोह को प्राप्त हुआ तदनन्तर राजा बड़े घबड़ाहट को प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥

और कहने लगा कि हाय! आज मरा हुआ मैं काशी में अपने घरको कैसे जाऊंगा। ब्रह्महत्या से युक्त मैं अपना शरीर आग में जलादेऊं ॥ ५६ ॥ अथवा इस ऋषिके वचन से उस आश्रमही को जाऊं और वहां जाकर इस महा ऋषिका हाल जैसाकुछ हुआहै वैसा कहूं ॥ ५७ ॥ ऐसे विचारकर वह राजा आश्रमके समीप जाताहुआ ऋष्यशृङ्ग की हड्डियों को लेकर वह राजा ॥ ५८ ॥ उन ब्रह्मर्षि के सामने खड़ाहुआ तब दीर्घतपा बोले कि तुम्हारा आगमन बहुत अच्छा हुआ आओ आसनपर बैठो ॥ ५९ ॥ हम दीर्घ तपानाम के ऋषि हैं यह विष्टर सहित मधुपर्क तुम्हारे वास्ते है तब राजा बोला कि आप महर्षि के अर्घ योग्य मैं नहीं हूं ॥ ६० क्योंकि हे

जुहोम्यग्नौकलेवरम् ॥ ५६ ॥ अथवाऋषिवाक्येन गच्छाम्येवाश्रमंप्रति ॥ कथयामियथावृत्तं गत्वातस्यमहाऋषेः ॥ ५७ ॥ एवंविचिन्त्यराजासौ जगामाश्रमसन्निधौ ॥ ऋष्यशृङ्गस्यचास्थीनि गृहीत्वासनृपोत्तमः ॥ ५८ ॥ दृष्टिमार्गे स्थितस्तस्य ब्रह्मर्षेर्भावितात्मनः ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ आगच्छस्वागतन्तेद्य आसनेउपविश्यताम् ॥ ५९ ॥ दीर्घतपा स्म्यहन्तेद्य मधुपर्कस्सविष्टरः ॥ राजोवाच ॥ अर्घस्यैवनयोग्योहं महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६० ॥ मृगमध्येस्थितोविप्र तवपुत्रोमयाहतः ॥ पुत्रभ्रंशाधिमांविप्र तीव्रदण्डेनदण्डय ॥ ६१ ॥ मृगभ्रान्त्याहतोविप्र ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ इति ज्ञात्वाचमांविप्र कुरुष्वचयथोचितम् ॥ ६२ ॥ मातातस्यवचःश्रुत्वा गृहान्निर्गत्यविह्वला ॥ हाहतास्मीत्युवाचाथ पतिताचमहीतले ॥ ६३ ॥ विललापसुदुःखार्ता पुत्रशोकेनपीडिता ॥ हापुत्रपुत्रेतिवदन्करुणंकुररीयथा ॥ ६४ ॥ श्रुत्यध्ययनसंपूर्णो जपहोमपरायणः ॥ आगतंत्वांगृहद्वारे कदापृच्छामिपुत्रक ॥ ६५ ॥ त्रिलोक्यामपिश्रूयेत चन्दनंकिलशी

विप्र! हत्रों के बीच में बैठा हुआ तुम्हारा पुत्र मुझ से मारा गया है इससे हे विप्र! अपने पुत्र के मारनेवाले मुझ पापी को घोर दण्डसे दण्डित करो ॥ ६१ ॥ हे विप्र! हत्रा के धोखेमें बडे तपवाले ऋष्यशृङ्ग मुझसे मारे गये हे विप्र! ऐसा मुझे जानकरजैसा उचित हो वैसा करो ॥ ६२ ॥ तब उन ऋष्यशृङ्ग की माता उसके वचनको-सुन और घर से निकल कर विह्वल होगई और कहा कि हाय! मैं मरगई तदनन्तर पृथिवीमें गिरपडी ॥ ६३ ॥ पुत्र के शोक से विकल व दुःख से कष्टित हो रही विलाप करती हुई हा पुत्र! २ ऐसे कहरही कुररी चिडियाकी तरह चिचिहा रही है ॥ ६४ ॥ और कहती है कि हे पुत्र! वेद के पढने में जप होम के करने वाले जो तुमहो तिन

को दरवाजे पर आया जान मैं तुम से अब कैसे कुछ पूछूंगी ॥ ६५ ॥ संसार भरमें सुनाजाताहै कि चन्दन बड़ा ठण्ढा होताहै पर पुत्र के शरीर का लपटाना चन्दन से भी ठण्ढा है ॥ ६६ ॥ इससे हे पुत्र ! मै अति प्यारे तुम्हें लपटाया चाहती हूं अबतुम्हारे विना दुखिया मैं भी मरजाऊंगी ॥ ६७ ॥ ऐसे विलाप करती हुई व पुत्रके शोक से पीडित होरही जमीन में दुःखी व विह्वल व मूर्च्छितहो गिरपड़ी ॥ ६८ ॥ स्त्री को गिरी देखकर तब पुत्र के शोकसे पीडित उन मुनिश्रेष्ठ ने राजा चित्रसेन पर बड़ा कोपकिया ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा बोले कि रे महापाप ! तू चलाजा २ मुझको अपना मुहँ मत दिखेला क्या तूने बेमतलब मेरे पुत्र ब्राह्मण को मारडाला ॥ ७० ॥

तलम् ॥ पुत्रगातपरिष्वङ्गश्चन्दनादपिशीतलः ॥ ६६ ॥ परिष्वजितुमिच्छामि त्वामहंपुत्रसुप्रियम् ॥ पञ्चत्वञ्चगमिष्यामि त्वद्विहीनासुदुःखिता ॥ ६७ ॥ एवंविलपतीदीना पुत्रशोकेनपीडिता ॥ मूर्च्छिताविह्वलादीना निपपातमहीतले ॥ ६८ ॥ भार्य्यांचपतितांदृष्ट्वा पुत्रशोकेनपीडितः ॥ चुकोपमुनिश्रेष्ठश्चित्रसेनंनृपंतदा ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ याहियाहि महापाप मामुखंदर्शयस्वमे ॥ किन्त्वयाघातितोविप्र ह्यकामाच्चसुतोमम ॥ ७० ॥ ब्रह्महत्याभविष्यन्ति वहवस्तेनराधिप ॥ सकुटुम्बस्यमेत्वंहि मृत्युरेवमुपागतः ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वाततोविप्रो विचिन्त्यचपुनःपुनः ॥ क्रोधंपरित्यज्यततो मुनिमार्गेजगामह ॥ ७२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ उद्वेगंत्यजभोराजन्दुरुक्तंगदितंमया ॥ पुत्रशोकाभिभूतेन दुःखमाप्तेन मानद ॥ ७३ ॥ किंकरोतिनरःप्राज्ञः प्रेर्य्यमाणस्स्वकर्म्मभिः ॥ प्रायेणहिमनुष्याणां बुद्धिःकर्म्मानुसारिणी ॥ ७४ ॥ अनेनैवप्रकारेण यत्त्वयालिखितंमम ॥ परंतवभविष्यन्ति विप्रहत्यानसंशयः ॥ ७५ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांमध्ये शूद्रोवाचा

हे नराधिप ! तुझे बहुत सी ब्रह्महत्यायें होंगी क्योंकि कुटुम्ब के सहित मुझे तू मौतही आगयाहै ॥ ७१ ॥ ऐसा कह फिर वह ब्राह्मण बार २ विचार कर क्रोध छोड तदनन्तर मुनियों की चाल पर आगया ॥ ७२ ॥ और बोला कि हे राजन् ! अबतुम घबड़ाहट को छोड़दो क्योंकि हे मानद ! पुत्र के शोक व दुःखसे विकल मैंने तुम से कडुई बातें कही ॥ ७३ ॥ अपने कर्मों से प्रेरणा कियाजारहा बुद्धिमान् भी मनुष्य क्या करसक्ता है बहुधा मनुष्यों की बुद्धि कर्मों के अनुसारही होती है ॥ ७४ ॥ इसी रीति से जो हमारे प्रारब्ध में लिखा था वही तुमने किया लेकिन ब्रह्महत्या तो तुमको होगी इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,

और चाण्डालो के बीच में तू कौन है सो मुझ से सत्य कह और किस वास्ते हमारे पुत्रको तूने मारा ॥ ७६ ॥ तब चित्रसेन बोला कि हे विप्रर्षे ! मैं आपसे कहता हूँ आप मेरे ऊपर क्षमा करो मैं ब्राह्मण नही हूँ और हे तात ! वैश्य व शूद्र भी नहीं हूं ॥ ७७ ॥ और चाण्डाल भी नहीं हूं हे द्विजोत्तम ! मैं काशी का राजा क्षत्रिय हूं सो हन्नों के मारने के वास्ते उत्तम बनको आयाथा ॥ ७८ ॥ सो उस वन में घूमतेहुये मुझसे हन्नाके रूपका धरनेवाला आपका पुत्र मुनि मारडालागया हे विप्र ! अब मुझको क्या करना चाहिये सो उस उपायको आप मुझसे कहें ॥ ७९ ॥ तब दीर्घतपा बोले कि हे विभो ! अकेले एक तुम ब्रह्महत्या को नहीं तरसक्ते हो इससे

न्त्यजादिषु ॥ कस्त्वंकथयसत्यंमे कस्माच्चानिहतःसुतः ॥७६॥ चित्रसेन उवाच ॥ विज्ञापयामिविप्रर्षे क्षन्तव्यंचममोपरि ॥ नाहंविप्रोभवेत्तात नशूद्रोनैववैश्यजः ॥ ७७ ॥ नचापिचान्त्यजातीयः क्षत्रियोहंद्विजोत्तम ॥ काशिराजोमृगान्हन्तुमागतोवनमुत्तमम् ॥ ७८ ॥ भ्रमतापातितस्तत्र मृगरूपधरोमुनिः ॥ किंकर्तव्यंमयाविप्र उपायंकथयस्वमे ॥ ७९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ ब्रह्महत्यानशक्येत एकेनतरितुंविभो ॥ देशेकालेयथाशक्त्या तच्छृणुष्वनराधिप ॥ ८० ॥ चत्वारोमेसुताराजन्सभार्य्यामातृपूर्वकाः ॥ मयासहनजीवन्ति ऋष्यश्रृङ्गस्यकारणे ॥ ८१ ॥ उपायंशोभनंतात कथयामि शृणुष्वभोः ॥ शक्यतेयदिचेत्कर्तुं सुखोपायंनरेश्वर ॥ ८२ ॥ सकुटुम्बसमस्तान्नो दाहयस्वानलेनृप ॥ अस्थीनिनर्म्मदातोये शूलभेदेविनिक्षिपेः ॥ ८३ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले शूलभेदेतिविश्रुतम् ॥ सर्वपापहरंतीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ८४ ॥ शुचिर्भूत्वाममास्थीनि क्षिपत्वंशूलभेदके ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो ममवाक्यान्नसंशयः ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ आ

जिसदेश व जिस काल में अपनी शक्तिके अनुसार उसके पार होसक्ते हो हे नराधिप ! सो सुनो ॥ ८० ॥ हे राजन् ! एक ऋष्यश्रृङ्गके पीछे अपनी स्त्रियोंके व माता के व हमारे सहित हमारे चारों लडके नहीं जीसक्ते हैं ॥ ८१ ॥ इससे हे तात ! बहुत अच्छे उपाय को हम तुमसे कहते हैं सो तुम सुनो परन्तु हे नरेश ! जो उस सुखवाले उपाय को तुम करसक्ते हो ॥ ८२ ॥ तो हे नृप ! कुटुम्ब सहित हम सब को अग्नि में जला देवो और हम सबकी हड्डियों को शूल भेद में नर्मदाके जलमें डाल देवो ॥ ८३ ॥ नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सब पापों का हरनेवाला सब तीर्थों में अत्युत्तम शूलभेद नामका तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥ उसी शूलभेद में तुम पवित्र

होकर हमारे हाड़ोंको डाल देवो इससे तुम भी हमारे कहने से सब पापों से छूटजावोगे इसमे संशय नहीं है ॥ ८५ ॥ तब राजा बोला कि हे तात ! आप आज्ञा देवो हम करेंगे इसमें संशय नहीं है राज्य, खजाना, स्त्रियां, और पुत्र आदि जो कुछ हमारे हैं सो सभी ॥ ८६ ॥ आपको दान कर देवेंगे हे विप्र ! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये हे नृप ! उससमय ऐसे मुनि और राजाके आपसमें बतलातेही ॥ ८७ ॥ छाती फटकर शीघ्र मुनिकी स्त्री मरगई पुत्र के शोकसे दबीहुई जीव रहित होकर जमीन में गिरपड़ी ॥ ८८ ॥ लड़के भी सब माताके शोचसे मरगये पुत्रों की स्त्रियां भी अपने पतियों के सहित सब मरगईं ॥ ८९ ॥ मुनिके सहित उन सबको मरादे-

देशोदीयतांतात करिष्यामिनसंशयः ॥ सर्वस्वमपियत्किञ्चिद्राज्यंकोशस्स्त्रियस्सुताः ॥ ८६ ॥ तवदानंप्रयच्छामि विप्रमांत्वंप्रसीदच ॥ परस्परंविवदतोर्मुनिराज्ञोस्तदानृप ॥ ८७ ॥ स्फुटित्वाहृदयंशीघ्रं मुनेर्भार्य्यामृतातदा ॥ पुत्रशोक समाक्रांता निर्ज्जीवापतिताक्षितौ ॥ ८८ ॥ पुत्राश्चमातृशोकेन सर्वेपञ्चत्वमागताः ॥ स्नुषाश्चैवतुतास्सर्वा मृताश्चसह भर्तृभिः ॥ ८९ ॥ पञ्चत्वंतुगतान्सर्वान्मुनिमुख्यान्निरीक्ष्यतान् ॥ विप्राश्चाह्वानितास्तेन तेतत्राश्रमवासिनः ॥ ९० ॥ तेभ्योनिवेदयामास यथावृत्तंनरोत्तमः ॥ संहतैस्तैरनुज्ञातःकथञ्चिद्दाह्ययत्नतः ॥ ९१ ॥ देहंस्वंपावनंकृत्वा गृह्यास्थीनि प्रयत्नतः ॥ याम्यांहिप्रस्थितोराजा पादचारीमहीपतिः ॥ ९२ ॥ नशक्नोतियदागन्तुं छायामाश्रित्यतिष्ठति ॥ विश्रम्य चपुनर्गच्छन्विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ ९३ ॥ सचैलंकुरुतेस्नानमस्थीन्वोढापदेपदे ॥ विनाजलंनिराहारःसोगच्छद्दक्षिणामु खः ॥ ९४ ॥ अचिरेणैवकालेन सगतोनर्मदातटे ॥ आश्रमस्थान्द्विजान्सर्वान् पप्रच्छराजसत्तमः ॥ ९५ ॥ कथ्यतांमे

खकर राजा ने उस आश्रम के रहनेवाले ब्राह्मणों को बुलाया ॥ ९० ॥ और उत्तम राजा ने उनसे जैसा कुछ हाल हुआ सो सब कहा फिर एकत्रित हुये ब्राह्मणो की आज्ञामे किसी तरह यत्न से उन सबको जलाकर ॥ ९१ ॥ और अपनी देहको पवित्र कर और प्रयत्नसे उनके हाडों को लेकर पृथ्वी का स्वामी राजा दक्षिण दिशा को पैदल चलता हुवा ॥ ९२ ॥ जब चलने को नहीं समर्थ होता तब छाया पायकर बैठ जाता है सुस्ताय कर फिर चलता है फिर २ विश्राम करताहै ॥ ९३ ॥ हाडों को लियेहुये पग २ पर कपड़ों सहित स्नान करता, विना जलके निराहार दक्षिण मुखको जाताहुवा ॥ ९४ ॥ थोड़ेही काल मे वह श्रेष्ठ राजा नर्मदा तटमे पहुँचगया,

और उस आश्रमके रहनेवाले सब ब्राह्मणोंसे पूंछा ॥ ६५ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठो ! आप लोग शूलभेदकी रास्ता मुझे बतलावें ॥ ६६ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि नर्मदाके दक्षिण वाले किनारे पर जायकर देखो यह अन्यथा नहींहै ॥ ६७ ॥ इसके बाद उन ऋषियों के कहने के अनुसार वह मनुष्यों का मालिक राजा गया तदनन्तर बहुत ब्राह्मणों से व्याप्त उस तीर्थको देखा ॥ ६८ ॥ जोकि बहुत से वृक्ष व लताओं से व्याप्त बहुत से फूलोंसे सुहावना बहुतसे मूल व फूलोंसे युक्त, और बहुतसे जीवों से शोभित ॥ ६६ ॥ अनेक व्रतों के करनेवाले अनेक उत्तम ऋषियो से युक्त है वहां कोई एक पांव से खड़े हैं, कोई सूर्य के समान तेजवाले हैं ॥ १०० ॥ कोई एकही तरफ

द्विजश्रेष्ठाश्शूलभेदस्यमार्गकः ॥ ९६ ॥ विप्रा ऊचुः॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले गतोद्रक्ष्यसिनान्यथा ॥ ९७॥ ऋषिवाक्येनवै राजागतोथोहिनरेश्वरः ॥ सददर्शततस्तीर्थं बहुद्विजसमाकुलम् ॥ ९८ ॥ बहुद्रुमलताकीर्णं बहुपुष्पोपशोभितम् ॥ बहुमूलफलोपेतं बहुश्वापदशोभितम् ॥ ९९ ॥ ऋषिसंघैःसमाकीर्णं नानाव्रतधरैश्शुभैः ॥ एकपादस्थिताःकेचिदपरेसूर्यवर्चसः ॥ १०० ॥ एकदृष्टिस्थिताःकेचिदूर्द्ध्वबाहुस्थिताःपरे ॥ चान्द्रायणपराकेचित्केचित्पक्षोपवासिनः ॥ १ ॥ मासोपवासिनःकेचित्केचिदृतुमुपोषिताः ॥ शीर्णपर्णाशिनःकेचित्केचिन्मारुतभोजनाः ॥ २ ॥ योगाभ्यासरताःकेचिद्ध्यायन्तःपरमंपदम् ॥ गार्हस्थ्यमास्थिताःकेचित्केचिच्चैवाग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ एवंविधान्द्विजान्दृष्ट्वा जानुभ्यामवनींगतः ॥ प्रणम्यशिरसाराजन्राजावचनमब्रवीत ॥ ४ ॥ कस्मिन्देशेतुतत्तीर्थं कथयध्वंद्विजोत्तमाः ॥ सर्वेषांवाञ्छितांसिद्धिंफलमेवंददेदिति ॥ ५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धन्वन्तरशतंगच्छभृगुतुङ्गस्यमूर्द्धनि ॥ कुण्डंद्रक्ष्यसिविस्तीर्णं तोयपूर्णंसु

देखते हुये खडे हैं, कोई ऊपरको बाहें कियेहुये खडे हैं, कोई चान्द्रायणको करते हैं, कोई एक पाख भर नहीं खाते हैं, ॥ १ ॥ कोई महीना भर नहीं खाते, कोई दो महीने नहीं खाते, कोई गिरे पत्तों को खाते है, कोई वायु का भोजन करते है ॥ २ ॥ कोई योगाभ्यास में लगे हुये परमपदको ध्यावते हैं, कोई गृहस्थी में स्थित और कोई अग्निहोत्रके करनेवाले है ॥ ३ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को देख राजा घुटनुओं से जमीन में गिरा और शिर से प्रणाम कर हे राजन् ! वचन बोला ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! वह तीर्थ कहां है सो आपलोग कहें जोकि सबकी मनोवाञ्छित सिद्धि व फलको देताहै ॥ ५ ॥ तब एक ऋषि बोला कि तुम भृगुतुङ्ग के ऊपर सौ धनुष

चलो तदनन्तर जल से भरेहुये भारी सुन्दर कुण्डको देखोगे ॥ ६ ॥ उनके इस वचन को सुन राजा कुण्डके ऊपर गया पर उस तीर्थको देख राजाको भ्रमहुआ ॥ ७ ॥ बडभागी कुण्ड व गङ्गा देख और विशेष करके प्राची सरस्वती को देख राजाको भ्रान्ति हुई ॥ ८ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्त हुआ व बार २ चिन्ताकरता हुआ राजा मास के सहित एक कुररनामकी चिडिया को आकाश में देखा ॥ ९ ॥ कुरर उस मासको लिये हुये इधर उधर चक्कर खाय रहा और जिनके पास मांस नहीं है उनसे माराजाता है और वे सब मांस के खानेवाले पक्षी आपस में लडते है ॥ १० ॥ फिर कुरर उन चिडियोंकी चोंचों से मारागया पानी में जागिरा अगिले

शोभनम् ॥ ६ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा गतःकुण्डस्यमूर्द्धनि ॥ दृष्ट्वाहिचैवतत्तीर्थं भ्रान्तिर्जातानृपस्यहि ॥ ७ ॥ वीक्ष्यकुण्डंमहाभागं गङ्गाञ्चैवविशेषतः ॥ प्राचींसरस्वतीन्दृष्ट्वा भ्रान्तिर्जातानृपस्यहि ॥८॥ ततोविस्मयमापन्नश्चिन्तयानोमुहुर्मुहुः ॥ आकाशसंस्थितंदृष्ट्वा सामिषंकुररन्तथा ॥ ९ ॥ भ्रममाणंगृहीत्वातं बध्यमानंनिरामिषैः ॥ परस्परंहियुध्यन्ते सर्वेचामिषभक्षकाः ॥१०॥ हतश्चञ्चुप्रहारैस्तु कुररःपतितोम्भसि ॥ शूलेनशूलिनायत्र भूभागंभेदितम्पुरा ॥ ११ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावेण ससद्यःपुरुषोभवत् ॥ विमानस्थन्तुतन्दृष्ट्वा क्रौंचंवैदिव्यरूपिणम् ॥ १२ ॥ अप्सरोभिर्गीयमानं नृपस्तत्तीर्थमागतः ॥ अस्थीनिभूमौनिक्षिप्य स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ १३ ॥ तिलमिश्रेणतोयेन तर्प्पयित्वेष्टदेवताः ॥ गृह्यास्थीनिततोराजा निक्षिप्यान्तर्जलेतथा ॥ १४ ॥ क्षणमेकंततोवीक्ष्य राजाऊर्द्ध्वमुखःस्थितः ॥ तान्ददर्शततस्सर्वान्देवमूर्तिधराञ्छुभान् ॥ १५ ॥ दिव्यवस्त्रैश्चसंवीतान्दिव्याभरणभूषितान् ॥ विमानैःकाञ्चनैर्दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः ॥ १६ ॥

जमाने में जहां महादेवने त्रिशूलसे पर्वतको फोडा था ॥ ११ ॥ उस तीर्थ के प्रभावसे वह कुरर उसी समय में पुरुष होगया दिव्यरूपको धरे व विमान पर बैठेहुये उस क्रौंच पक्षीको देख ॥ १२ ॥ अप्सराओं से गायेजारहे उस तीर्थको राजाआया और हाड़ोंको जमीन में रख व विधि से स्नान कर ॥ १३ ॥ तिल मिले जल से इष्ट देवताओं का तर्पण कर और हाडों को लेकर व जल में उन्हें विसर्जनकर ॥१४॥ तदनन्तर एक क्षण भर देखकर राजा ऊपरको मुँह कियेहुये खडा रहा तदनन्तर देवताओं की उत्तम मूर्तियोको धरेहुये उन सबोंको देखा ॥ १५ ॥ कि दिव्य वस्त्रोंको पहनेहुये व दिव्य गहनोंसे सजे अप्सराओसे युक्त सोनेके दिव्य विमानों से ॥ १६ ॥

अलग २ विमानों पर बैठेहुये उन सबको ऊपरको जातेहुये देख वह राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विमान पर बैठे हुये दीर्घतपा ऋषि राजा चित्रसेनसे बोले कि हे महामते,महाराज चित्रसेन ! वाह२ ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपके प्रसाद से आज हमारी दिव्य गति हुई है यह जो कुछ तुमने बड़े कड़े काम को किया है ॥ १९ ॥ ऐसा काम अपना पुत्रभी अपने पितरों का नहीं करसक्ता है हे राजन् ! अब तुम हमारे वचन से निष्पाप होजावोगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! जिस से तुम अपने मन माने मनोरथ को देखोगे तदनन्तर बुद्धिमान् चित्रसेन को आशीर्वाद देकर ॥ २१ ॥ अपने पुत्रोंके सहित दीर्घतपामुनि स्वर्गको जातेहुये ॥ १२२ ॥

पृथग्भूतांश्चतान्सर्वान्विमानेषुव्यवस्थितान् ॥ उत्पततस्समालोक्य सराजाहर्षितोभवत् ॥१७॥ ऋषिर्विमानमारूढश्चित्रसेनमथाब्रवीत् ॥ भोभोःसाधुमहाराज चित्रसेनमहामते ॥१८॥ त्वत्प्रसादान्नृपश्रेष्ठ गतिर्दिव्यासमाद्यवै ॥ इदंचयत्त्वयाकिञ्चित्कृतंपरमदुष्करम् ॥१९॥ स्वसुतोपिनशक्नोति पितॄणांकर्तुमीदृशम् ॥ मदीयवचनाद्राजन्निष्पापस्त्वंभविष्यसि ॥२०॥ यत्त्वंद्रक्ष्यसिराजेन्द्र कामिकंमनसेप्सितम् ॥ आशीर्वादंततोदत्त्वा चित्रसेनायधीमते ॥२१॥ स्वर्गंजगामसस्वसुतैस्ततोदीर्घतपामुनिः ॥१२२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदीर्घतपआख्यानोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

उत्तानपादउवाच ॥ दृष्ट्वातत्तीर्थमाहात्म्यं चित्रसेनोनरेश्वरः ॥ विपुलंतीक्ष्णधारञ्च कण्ठेचासिंन्नृपोत्तम ॥ १ ॥ देवान्सर्वान्हृदिध्यायन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ विनिक्षिपन्नथात्मानौ प्रत्यक्षौविष्णुशङ्करौ ॥ २ ॥ करेगृह्यतुराजानं रुद्रोवचनमब्रवीत् ॥ हरउवाच ॥ प्राणत्यागंमहाराज अकालेमाकुरुष्वह ॥ ३ ॥ अद्यापितुयुवासित्वं नयुक्तंमरणंतव ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेदीर्घतपआख्यानोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे नृपोत्तम! राजा चित्रसेन उसतीर्थ के माहात्म्य को देखभारी पैनी धार वाली तलवार को ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव आदि सब देवताओंका ध्यान करते हुये अपने गले पर चलावे तबतक अपने प्रत्यक्ष विष्णु और महा देवजी को देखा ॥ १ । २ ॥ तब राजा का हाथ पकड महादेव बोले, महादेवजी कहते है, कि हे महाराज ! अकाल मे अपने प्राणो का त्याग तुम मतकरो ॥ ३ ॥ अभी तुम जवानहो इस से तुम्हारा मरना योग्य नहीं है तिससे तुम अपने स्थान को

जावो और मन माने भोगों को भोगो ॥ ४ ॥ दूसरे इन्द्रकी तरह निष्कण्टक राज्यको भोगौ तब चित्रसेन बोले कि हे देव ! मैं राज्य व पुत्र, व भाइयोंको नहीं चाहता
हूं ॥ ५ और स्त्री, खजाना, गौवें और घोडों को भी नहीं चाहता हूं इस से हे महादेव ! मुझे छोंड़ देवो मेरा विघ्न मत करो ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से
आजही मुझको स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै तब महादेवजी बोले कि जिसके आगे ब्रह्मा व विष्णु व महादेव खडेहों ॥ ७ ॥ उसे स्वर्ग से क्या कामहै और वहां जाकर भी
क्या करेगा इससे हम तीनों देवता आपपर प्रसन्नहैं उत्तम वरको तुम मांगलो ॥ ८ ॥ हे महाराज ! अपने मनका वरमांगो यह सत्यहै इसमें संशय नहीं है तब चित्रसे-

स्वस्थानंगच्छवैशीघ्रं भोगान्भुंक्ष्वयथेप्सितान् ॥ ४ ॥ भुंक्ष्वनिष्कण्टकंराज्यं नाकंशक्रइवापरः ॥ चित्रसेनउवाच ॥
नराज्यंकामयेदेव नपुत्रान्नचवान्धवान् ॥ ५ ॥ नभार्य्यांनचकोशञ्च नगवांनतुरङ्गमान् ॥ मुञ्चस्वमांमहादेव अ
विघ्नंक्रियतांमम ॥ ६ ॥ स्वर्गप्राप्तिर्ममाद्यैव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ देवउवाच ॥ यस्याग्रतोभवेद्विष्णुर्ब्रह्मारुद्रस्तथैव
च ॥ ७ ॥ स्वर्गेणतस्यकिंकार्य्यं गतोसौकिंकरिष्यति ॥ तुष्टावत्वांत्रयोदेवा वृणीष्ववरमुत्तमम् ॥ ८ ॥ यथेप्सितंमहा
राज सत्यमेतन्नसंशयः ॥ चित्रसेनउवाच ॥ यदितुष्टास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९ ॥ अद्यप्रभृतियुष्माभिः स्था
तव्यमिहसर्वदा ॥ गयाशिरंयथापुण्यं कृतंयुष्माभिरेवच ॥ १० ॥ तथैवेदन्तुकर्तव्यं शूलभेदञ्चपावनम् ॥ यत्रयत्र
स्थितायूयं तत्रतत्रवसाम्यहम् ॥ ११ ॥ गणानामिहसर्वेषामवध्योहंसुरेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ अद्यप्रभृतितिष्ठाम शू
लभेदेनरेश्वर ॥ १२ ॥ कलांशेनत्रयोदेवास्त्रिकालंनिवसामहे ॥ नन्दिसंज्ञोगणश्चत्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ १३ ॥

न बोले कि जो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवता प्रसन्नहो ॥ ९ ॥ तो आजसे आप लोगोंको यहां सदा रहना चाहिये जैसे आप लोगोंने गया शिरको पुण्यवाला
बनायाहै ॥ १० ॥ इसीतरह इस शूलभेदको भी पावनकरो और जहां २ आपलोग रहो वहीं २ मैं भी बसाकरू ॥ ११ ॥ और हे सुरेश्वर ! आपके सब गणों में मैं अव-
ध्य होऊं तब महादेवजी बोले कि हे नरेश्वर ! आजसे हम लोग शूलभेद में रहेंगे ॥ १२ ॥ अपने कलांश से हम तीनों देवता तीनों कालों में यहां बसेंगे और तुम

नन्दीनामके गण होवोगे इसमें संशय नहीं होगा ॥ १३ ॥ और हे नृप! हमारे समीप पहले तुम्हारी पूजा सदा होगी जैसे अपने हाड़ों को जलमें डलवाके कुटुम्ब सहित विमानपर बैठेहुये दीर्घतपा चलेगये और स्वर्ग में विराजमानहैं वैसाही तुम भी करो हे पार्थिव! इसप्रकार चित्रसेनको वर देकर तीनो देवता ॥ १४ । १५ ॥ कुण्ड के ऊपर जावेंगे यह विचारकर तब तीनों देवता बैठतेहुये और आपस में ऐसे कहते हैं कि यह तीर्थ ऐसा शुभहै ॥ १६ ॥ कि जैसे सब महीनों में गयाशिर पुण्यवाला कहाजाताहै इसीतरह नर्मदाके किनारेपर शूलभेद पुण्यवालाहै इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे महाराज! यह तीर्थ ऐसा पवित्रहै जैसा गयाशिरहै

भविष्यत्यग्रपूजाते मत्समीपेसदानृप ॥ प्रक्षिप्यचनिजास्थीनि यथादीर्घतपाययौ ॥ १४ ॥ सकुटुम्बोविमानस्थ स्स्वर्गेतिष्ठतितत्कुरु ॥ एवंदेवावरन्दत्त्वा चित्रसेनायपार्थिव ॥ १५ ॥ कुण्डमूर्द्धनियास्यामस्त्रयोदेवास्तदास्थिताः ॥ परस्परंवदन्त्येवमिदंतीर्थंतथाशुभम् ॥ १६ ॥ यथागयाशिरंपुण्यं सर्वमासिचपठ्यते ॥ तथारेवातटेपुण्यं शूलभेदन्न संशयः ॥१७॥ ब्रह्मोवाच॥ इदंतीर्थंमहाराज यथापुण्यंगयाशिरः ॥ स्नात्वाचैवोदकेतस्मिन्नरोनिर्मलतांव्रजेत् ॥ १८ ॥ एकंगयाशिरंमुक्त्वा सर्वतीर्थानिशङ्कर ॥ शूलभेदस्यतीर्थस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ १९ ॥ कुण्डस्यदक्षिणेभागे दशहस्तप्रमाणतः ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्यां प्रमाणन्त्वेकविंशतिः ॥ २० ॥ एतत्प्रमाणंतीर्थस्य पिण्डदानादिकर्मसु ॥ नराःपुण्याश्चतेसर्वे अत्रदानंकृतंचयैः ॥ २१ ॥ विष्णुस्त्रिनेत्ररूपेण ब्रह्मरूपीपितामहः ॥ तस्मिंस्तीर्थेस्थितानित्यं पूजां गृह्णन्तिभक्तितः ॥ २२ ॥ जातंजातंनिरीक्ष्यन्ते स्वपुत्रंहिपितामहाः ॥ कदायास्यतिपुत्रोसौ कदादाताभविष्यति ॥ २३ ॥

इस जलमें स्नानकर मनुष्य निर्मल होजाताहै ॥ १८ ॥ हे शङ्कर! एक गयाशिरको छोड़ और सब तीर्थ शूलभेद तीर्थकी सोलहवीं कलाको नहीं पासक्ते हैं ॥ १९ ॥ कुण्डके दक्षिण तरफ दश हाथ और पूर्व, पश्चिम, वायव्य में इक्कीस हाथ ॥ २० ॥ पिण्डदान आदि कामों में इस तीर्थका इतना प्रमाणहै वे सब मनुष्य बड़े पुण्यात्मा हैं जिन्होंने यहां दानको कियाहै ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में विष्णुजी महादेवके रूपसे और ब्रह्मा अपनेही रूपसे सदा बैठेहुये भक्तिसे करीहुई पूजाको लेते हैं ॥ २२ ॥ पुरि-

खालोग अपने घरमें पैदाहुये हरएक पुत्रको देखा करते हैं कि यह थूलभेदको कब जावेगा और कब हमारे पिण्डोंका देनेवाला होगा ॥ २३ ॥ पांच स्थानोंमें जो भक्ति-
वाला मनुष्य श्राद्धको करताहै वह प्रेतरूप होरहे अपने सब कुलोंको तारदेता है ॥ २४ ॥ पिताकी इक्कीस और माताकी इक्कीस और स्त्री की ग्यारह इनसब पीढ़ियोंको
तारदेताहै ॥ २५ ॥ और देवता व ब्राह्मणों और पितरोंकी दयासे श्राद्धका करनेवाला महादेवके समीप रहताहै ॥ २६ ॥ जो लोग आत्महत्याके करनेवाले हैं, व गोहत्या
के करनेवाले हैं व स्त्री, जल, पशु और बिजुली से मारेगये हैं ॥ २७ ॥ उनका अग्निदाह व शुद्धि व जलदान नहीं होसक्ताहै लेकिन उस तीर्थमें जो कोई अपनी भक्तिसे

पञ्चस्थानेषुयःश्राद्धं कुरुतेभक्तिमान्नरः ॥ स्वकुलानितुसर्वाणि प्रेतभूतानितारयेत् ॥ २४ ॥ एकविंशतिपितृपक्षे
मातृपक्षैकविंशतिम् ॥ भार्य्यायाएकादशैवेति सर्वाण्येतानितारयेत् ॥ २५ ॥ द्विजदेवप्रसादेन पितृणाञ्चतथैवहि ॥
श्राद्धदोवसतेतत्र यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २६ ॥ आत्मनोघातकायेच गोघ्नाःस्त्रैणहताश्चये ॥ दंष्ट्रिभिर्जलपातेन विद्युत्पाते
नयेहताः ॥ २७ ॥ नतेषामग्निसंस्कारो नशौचन्नोदकक्रिया ॥ तत्रतीर्थेतुयःश्राद्धं तेषांकुर्य्यात्स्वभक्तितः ॥ २८ ॥
मोक्षप्राप्तिर्भवेत्तेषां त्रिस्थानेषुनसंशयः ॥ तृप्तिस्तुजायतेतेषां वर्षमेकन्नसंशयः ॥ २९ ॥ अजानताकृतंपापं बालभा
वेषुयत्कृतम् ॥ तत्सर्वन्नश्यतिक्षिप्रं सकृत्स्नानेनभूपते ॥ ३० ॥ रजकेनयथाधौत वस्त्रंनिर्मलतांव्रजेत् ॥ पापोपलिप्त
स्तीर्थेस्मिन् स्नातोनिर्म्मलतांव्रजेत् ॥ ३१ ॥ संन्यासङ्कुरुतेयस्तु तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ ध्यायमानोमहादेवं सगच्छे
त्परमंपदम् ॥ ३२ ॥ क्रीडित्वाचयथाकामं स्वेच्छयाशिवमन्दिरे ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जायतेविपुलेकुले ॥ ३३ ॥ रू

उनका श्राद्धकरे ॥ २८ ॥ तो उनका मोक्ष जरूरही होवे इसमें कुछ संशय नहीं है और एक सालभर वे लोग श्राद्धसे तृप्त रहसक्ते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २९ ॥
और हे भूपते ! जो पाप विना जाने व लड़कपनमें कियागयाहै वह सब एक बार स्नान करने से तुरन्त नाश होजाताहै ॥ ३० ॥ धोबीका धोयाहुआ कपड़ा जैसे नि-
र्मल होजाताहै इसीतरह पापसे भराहुआ मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करतेही निर्मल होजाताहै ॥ ३१ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो महादेवका ध्यान करताहुआ
संन्यास लेताहै वह परमपदको जाताहै ॥३२॥ अपनी इच्छाभर महादेवके मन्दिरमें विहारकर फिर बड़े कुलमें वेद व वेदाङ्गोंके तत्त्वोंका जाननेवाला पैदा होताहै ॥३३॥

और रूपवाला, भाग्यवाला, सब रोगों से रहित, सब धर्मों से युक्त और सब आचारों से युक्त होताहै ॥ ३४ ॥ हे राजन्! यह उत्तम तीर्थका फल तुमसे कहा गया इसको सदा सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ३५ ॥ जो कोई इस आख्यानको हरएक पर्वमें श्राद्धमें व देवताके मन्दिरमें ब्राह्मणों के समीप बैठकर भक्तिसे सुनाताहै ॥ ३६ ॥ उसपर देवता व मनुष्य पितरों के सहित प्रसन्न होते हैं पढ़ने व सुननेवालों के पापोंका समूह नाश होजाताहै ॥ ३७ ॥ और जो इस तीर्थके माहात्म्यको लिखकर ब्राह्मणोंको देताहै वह अपने पिछिले जन्मों की याद रखनेवाला होताहै और अपने मनमाने फलको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा

पवान्सुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्ज्जितः ॥ सर्वधर्म्मसमोपेतस्सर्वाचारसमन्वितः ॥ ३४ ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तीर्थस्यफलमुत्तमम् ॥ तच्छ्रुत्वामानवोनित्यं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ३५ ॥ यश्चैनंश्रावयेद्भक्त्या आख्यानंद्विजसन्निधौ ॥ श्राद्धेदेवगृहेचैव पठेत्पर्वणिपर्वणि ॥ ३६ ॥ गीर्वाणास्तस्यतुष्यन्ति मनुष्याःपितृभिस्सह ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव नश्येद्वैपापसञ्चयः ॥ ३७ ॥ लिखित्वातीर्थमाहात्म्यं ब्राह्मणेभ्योददातियः ॥ जातिस्मरंसलभते प्राप्नोत्यभिमतंफलम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे चित्रसेनकथावर्णनोनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ अन्यच्चश्रोतुमिच्छामि केनगङ्गावतारिता ॥ रुद्रशीर्षस्थितापुण्या देवीकथमिहागता ॥ १ ॥ पुण्यादेवशिलानाम तस्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एतदाख्याहिमेसर्वं प्रसादात्पुरुषोत्तम ॥ २ ॥ रुद्रउवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा यथागङ्गावतारिता ॥ पुरादेवीमहाभाग ब्रह्माद्यैस्सकलैस्सुरैः ॥ ३ ॥ अभ्यर्थयञ्जगन्नाथं देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ घटम

खण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचित्रसेनकथावर्णनोनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

राजा बोले कि और भी हम सुना चाहते हैं कि गङ्गाको किसने उताराहै महादेवके शीशपर बैठीहुई पवित्र गङ्गादेवी यहां कैसे आई ॥ १ ॥ और पुण्यवाली देव-शिला नाम जो है उसका भी माहात्म्य उत्तमहै हे पुरुषोत्तम! सो यह सब अपनी दयासे मुझसे कहो ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे गङ्गा उतरी हैं तिसको तुम एक मन होकर सुनो अगिले जमाने में हे महाभाग! ब्रह्मा आदि सब देवताओंने ॥ ३ ॥ गङ्गाके वास्ते जगद्गुरु भगवान्से प्रार्थनाकी तब घड़े में बैठीहुई गङ्गा

पृथिवीपर छोड दीगई ॥ ४ ॥ फिर महादेव भी अपने शिरसे सरस्वतीको पृथ्वी में छोड़ा उस तीर्थके किनारेपर जो मनुष्य भक्तिसे स्नान करते हैं ॥ ५ ॥ और हमेशा जलको पीते हैं वे यमलोकको नहीं जाते है शूलभेद कुण्ड में जहांपर हे नराधिप ! वे गङ्गागिरी हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं गङ्गाके पश्चिम में प्राची सरस्वती है और दक्षिण में शूलभेद नामक अत्युत्तम तीर्थ है ॥ ७ ॥ वहां खास महादेवजीकी बनाई हुई बडी रमणीक देवशिलाहै हे नृप ! वहा स्नानकर जो भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ८ ॥ उसके थोड़ेही दानका अन्त नहीं होताहै तब उत्तानपाद बोले कि हे देवेश ! पृथिवी में अच्छे दान कौनहैं ॥ ९ ॥ मनुष्य जिनको भक्तिसे देकर सब पापोंसे छूट

ध्येस्थितागङ्गा मोचिताचसुभूतले ॥ ४ ॥ भारतीचततोमुक्ता रुद्रेणशिरसोभुवि ॥ नरास्तीर्थेतटेतस्याःस्नानंकुर्वन्ति भक्तितः ॥ ५ ॥ पिबन्तिचजलंनित्यं नतेयान्तियमालयम् ॥ यत्रसापतिताकुण्डे शूलभेदेनराधिप ॥ ६ ॥ देवनद्याः प्रतीच्याञ्च यत्रप्राचीसरस्वती ॥ याम्याञ्चशूलभेदाख्यमस्तितीर्थमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ तत्रदेवशिलारम्या स्वयन्देवेननिर्म्मिता ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्या ब्राह्मणंभोजयेन्नृप ॥ ८ ॥ अल्पस्यैवतुदानस्य तस्यचान्तोनविद्यते ॥ उत्तानपादउवाच ॥ कानिदानानिशस्तानि देवेशधरणीतले ॥ ९ ॥ यानिदत्त्वानरोभक्त्या मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ देवशिलायामाहात्म्यं स्नानदानाद्धियत्फलम् ॥ १० ॥ व्रतोपवासनियमैर्यत्प्राप्यंतद्वदस्वमे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसीत्पुरामहावीर्य्यश्चेदिनाथोमहाबलः ॥ ११ ॥ वीरसेनइतिख्यातो मण्डलाधिपतीश्वरः ॥ तस्यराज्येरिपुर्नास्ति नव्याधिर्नचतस्करः ॥ १२ ॥ नचाऽधर्म्मोऽभवत्तत्र धर्म्मएवहिसर्वदा ॥ सदामुदान्वितोराजा सभार्य्योबहुपुत्रकः ॥ १३ ॥ एकाच

जाताहै और देवशिलाका माहात्म्य व वहां स्नान व दानसे जो फलहो ॥ १० ॥ अथवा वहां व्रत, उपास और नियमों से जो फलहो वह आप मुझसे कहो तब श्रीभगवान् बोले कि पूर्वकालमें बडा बलवाला एक चंदेलीका राजा होताहुआ ॥ ११ ॥ वीरसेन नामसे प्रसिद्ध देशपति राजाओंका भी स्वामीथा उसकी राज्यमे वैरी, रोग और चोर नहीं थे ॥ १२ ॥ और वहां अधर्म नहींथा बल्कि सदा धर्मही हुआ करता था अपनी स्त्री व बहुत पुत्रोंके सहित राजा सदा आनन्दसे रहता था ॥ १३ ॥ पार्वती

जीके समान सुन्दर रूपवाली उसकी एक कन्याथी उसको उसकी माता व पिता व भाई लोगोंने देखा ॥ १४ ॥ तो हे महेश्वर ! समयके होनेपर राजाने उसका विधानसे बारहवें वर्षमें बिवाह करदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस कन्याका जो भर्ता था वह मरगया अपनी उस कन्याको विधवा देख राजा शोकसे युक्त होताहुआ ॥ १६ ॥ दुःखसे विकल राजा अपनी रानीसे वचन बोला कि हे भद्रे ! यह जिन्दगीभर का दुःसह दुःख पैदा होगया ॥ १७ ॥ क्योंकि रूप और जवानी से भरीहुई यह कन्या कैसे रक्षित होसक्ती है इसमें हे भार्य्ये ! भानुमतीकी रक्षामें कोई उपाय नहीं है ॥ १८ ॥ आपसमें इसभांति बतलातेहुये दोनोंकी बातचीत सुनकर अपने माता

दुहितातस्य सुरूपागिरिजाइव ॥ दृष्टासापितृमातृभ्यांबन्धुवर्गजनैस्सह ॥ १४ ॥ कृत्वावैवाहिकंकार्य्यं कालेप्राप्ते यथाविधि ॥ अनन्तरंचेदिपतिर्द्वादशाब्देमहेश्वरः ॥ १५ ॥ततस्तस्यास्तुयोभर्ता समृत्युवशमागतः ॥ विधवांतांसुतां दृष्ट्वा राजाशोकसमन्वितः ॥ १६ ॥ उवाचवचनंराजा स्वभार्य्यांदुःखपीडितः ॥ भद्रेदुःखमिदंजातं यावज्जीवंसुदुस्सहम् ॥ १७ ॥ नैषारक्षयितुंशक्या रूपयौवनदर्पिता ॥ नोपायोविद्यतेभार्य्ये भानुमत्याश्चरक्षणे ॥ १८ ॥ परस्परंविवदतोस्तच्छ्रुत्वाकन्यकाब्रवीत ॥ भानुमत्युवाच ॥ नव्रीडामितवाग्रेहं ज्वलंतीदाहकेनच ॥ १९ ॥ सत्यंनोत्पद्यतेदोषो मदर्थेचनराधिप ॥ अद्यप्रभृत्यहंतात नवेषंधारयेकचित ॥ २० ॥ स्थूलवस्त्रैर्निजाङ्गानि परिधास्यामिसंयुता ॥ चरिष्यामिव्रतान्सर्वान्पुराणविहितानपि ॥ २१ ॥ आत्मानंशोषयिष्यामि तोषयन्तीजनार्द्दनम् ॥ ममैषावर्ततेबुद्धिर्यदि त्वंतातमन्यसे ॥ २२ ॥ भानुमत्यावचःश्रुत्वा राजास्नेहार्द्दितोभवत ॥ तीर्थयात्रांसमुद्दिश्य कोशंदत्त्वाचपुष्कलम् ॥ २३ ॥

व पितासे भानुमती बोली, भानुमती कहती है--कि मै आपके सामने विरहाग्नि से जलती हुई कुछ भी नही शरमाती हूँ ॥ १९ ॥ हे नराधिप ! मेरे पीछे आपको कुछ भी दोष नहीं होगा यह सत्यही है क्योंकि हे तात ! आज से मै कभी शृंगार को नहीं धारण करूंगी ॥ २० ॥ संयमको कियेहुये मोटे कपडाओं से अपने अंगो को ढाके रहूंगी और पुराणों में कहेहुये सभी व्रतों को मै करूगी ॥ २१ ॥ परमेश्वरको प्रसन्नकरती हुई मै अपने को सुखाडालूंगी हे तात ! जो आपको अंगीकारहो तो मेरी बुद्धि इस तरह की होरही है ॥ २२ ॥ भानुमती के वचन को सुन राजा स्नेह से बड़ा कम्पित होगया और तीर्थयात्रा के वास्ते बडा खजाना देकर ॥ २३ ॥

व उसकी रक्षा के वास्ते वृद्धोंको साथ में भेजकर कन्याको बिदा करता हुआ और भी हथियारबन्द एक सिपाही व ब्राह्मण पुरोहित को साथ में करदिया ॥ २४ ॥ हे नराधिप ! अब वह कन्या गगाके किनारे पर ध्यान करने के वास्ते गंगा में नहाय चन्दन और माला आदि से ब्राह्मणों का नित्य पूजन करती हुई ॥ २५ ॥ फिर दास व दासी आदि जो उस कन्याकी रक्षामें समर्थ थे वे सब कन्याके पिता राजाकी सलाहसे गङ्गाके तीरपर रहतेहुये ॥ २६ ॥ वह कन्या गङ्गाके तीरपर बारह वर्षतक रही फिर किसी समय गङ्गा को छोड़ वह राजपुत्री दक्षिणदिशाको अपने मन्त्रियों के सहित जहा नर्मदा नदी थी वहां पहुँची वहां ॐकार व अमरकण्टकमें छह महीना

विसृज्यराजास्वसुतां वृद्धान्कृत्वातुरक्षणे ॥ पुरुषंसायुधंचान्यं ब्राह्मणंचपुरोहितम् ॥ २४ ॥ अवगाह्यतटेध्यातुं गङ्गायांसानराधिप ॥ नित्यमापूजयद्विप्रान्गन्धमाल्यादिभूषणैः ॥ २५ ॥ दासीदासप्रभृतयस्तस्यायेरक्षणेक्षमाः ॥ ततःपितुर्मतेनैव गङ्गातीरेसमास्थिताः ॥ २६ ॥ द्वादशाब्दानिसातीरे गङ्गायास्समवस्थिता ॥ त्यक्त्वागङ्गांकचिद्राजपुत्रीकाष्ठान्तुदक्षिणाम् ॥ २७ ॥ प्राप्तासासचिवैस्सार्द्धं यत्ररेवामहानदी ॥ षण्मासञ्चस्थितातत्र ॐकारेऽमरकण्टके ॥ २८ ॥ नानाविधेषुतीर्थेषु तीर्थात्तीर्थंजगामह ॥ स्नात्वास्नात्वाद्विजान्पूज्य भक्तियुक्ताह्यधिष्ठिता ॥ २९ ॥ वारुणींचदिशंगत्वा देवनद्याश्चसङ्गमे ॥ ददर्शचाश्रमंपुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऋषिसमूहंसा प्रणिपत्यैदमब्रवीत ॥ माहात्म्यंचास्यतीर्थस्य नामचैवास्यकीर्तय ॥ ३१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चक्रतीर्थन्तुविख्यातं चक्रंदत्तंपुराहरेः ॥ महेश्वरेणतुष्टेन देवदेवेनशूलिना ॥ ३२ ॥ अत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ अनिवर्तिकागतिस्त

रही ॥ २७ । २८ ॥ ऐसे अनेकप्रकारके तीर्थों में एक तीर्थ से दूसरे तीर्थको जातीहुई और उनमें नहाय २ कर भक्तिसे युक्त ब्राह्मणोंका पूजनकर वास करती हुई ॥ २९ ॥ फिर पश्चिमदिशामें जाकर गङ्गाके सङ्गम में ऋषियों से सेवित पुण्यवाले आश्रमको देखा ॥ ३० ॥ उसमें ऋषियों के झुण्डको देख उसको प्रणामकर वह बोली कि इस तीर्थ के माहात्म्य व नामको आप कहें ॥ ३१ ॥ तब ऋषि बोले कि यह चक्रतीर्थ प्रसिद्ध है यहां अगिले जमाने में प्रसन्न होकर देवताओंके देवता त्रिशूलधारी

महादेवजीने विष्णुको चक्र दियाहै ॥ ३२ ॥ इस तीर्थ में स्नानकर जो पितर व देवताओंका तर्पण करताहै उसकी फिर यहां लौटनेवाली गति नहीं होतीहै इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे तपस्विनि! दूसरे दिन यहांसे शूलभेदको जावे वहां रातमें जागरणकर पुराणकी कथा बांचे ॥ ३४ ॥ फूल, दीप और नैवेद्य से विष्णुका पूजनकरे फिर भोरभयेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनको अपनी भक्तिसे दानदेवे ॥ ३५ ॥ फिर चौथे दिन जहां प्राची सरस्वती है वहां जावे हे नराधिप! जोकि पवित्र करने के वास्ते ब्रह्माजीसे निकली है ॥ ३६ ॥ वहां जाय व नहायकर पितर व देवताओंका तर्पणकरे और वहां श्राद्धका करनेवाला जहां ब्रह्मादेव रहते हैं वहां रहता

स्य भवितानात्रसंशयः ॥ ३३ ॥ द्वितीयेह्नितितोगच्छेच्छूलभेदंतपस्विनि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा पठेत्पौराणिकींकथाम् ॥ ३४ ॥ विष्णुपूजांप्रकुर्वीत पुष्पदीपनिवेदनैः ॥ प्रभातेभोजयेद्विप्रान्दानंदद्यात्स्वभक्तितः ॥ ३५ ॥ चतुर्थेह्नितथा गच्छेद्यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ब्रह्मदेवाद्विनिष्क्रान्ता पावनार्थंनराधिप ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वानरोगत्वा तर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ श्राद्धदस्तुवसेत्तत्र यत्रदेवःपितामहः ॥ ३७ ॥ पञ्चमेह्नितितोगच्छेल्लिङ्गंमार्कण्डसंज्ञितम् ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्याअर्चयेत्पितृदेवताः ॥ ३८ ॥ श्राद्धंकृत्वायथान्यायमनिन्द्यान्पूजयेद्द्विजान् ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दन्नसंशयः ॥ ३९ ॥ सर्वदेवमयंस्थानं सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥ कोटितीर्थसमंस्थानं कोटिलिङ्गोत्तमोत्तमम् ॥ ४० ॥ त्रिरात्रंकुरुतेयस्तु शुचिस्स्नानंजितेन्द्रियः ॥ पक्षंमासमृषण्मासमब्दमेकंकदाचन ॥ ४१ ॥ नतस्यवसतिर्मर्त्ये नाकेवासस्सदाक्षयः ॥ नियमस्थस्तुमुच्येत त्रिजन्मजनितादघात् ॥ ४२ ॥ विनापुमांसंयानारी द्वादशाब्दन्तुसुव्रता ॥ ति

है ॥ ३७ ॥ फिर पांचवें दिन मार्कण्डेयनामक लिङ्गको जावे और वहां स्नानकर जो भक्तिसे पितर व देवताओंका पूजन करताहै ॥ ३८ ॥ और रीतिपूर्वक श्राद्धकर उत्तम ब्राह्मणोंका पूजन करताहै उसके पितर बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३९ ॥ सब देवताओं व सब तीर्थोंका रूप अत्युत्तम यह स्थानहै करोड़ों तीर्थोंके बराबर व करोड़ों लिङ्गोंके बराबर उत्तमसे उत्तम यह स्थानहै ॥ ४० ॥ कदाचित् इन्द्रियों को जीतेहुये व पवित्र होकर तीन रात व एक पाख व एक मास व छह मास व एक सालभर जो स्नान करताहै ॥ ४१ ॥ उसका वास मनुष्यलोकमें नहीं किन्तु स्वर्ग में अक्षय वास होताहै और नियममें रहकर जो यहां रहता है वह तीन

जन्मों के पापों से छूटजाता है ॥ ४२ ॥ और विधवा स्त्री जो बारह वर्ष व्रतके साथ यहां रहती है वह अक्षय कालतक महादेवके लोकमें पूजित होतीहै ॥ ४३ ॥ मुनिके वचनको सुन कन्या बड़े आनन्दको प्राप्तहुई तबसे आलस्य छोंड़ दिन रात तीर्थमें स्नान करनेलगी ॥ ४४ ॥ तीर्थके प्रभावको देख रानी वचन बोली कि हे पुरोहित व ब्राह्मणलोगो! आज मेरी बातको सुनो ॥ ४५ ॥ कि मैं अब ऐसे स्थानको जबतक जीऊंगी तबतक दिन रात कभी नहीं छोंडूंगी इसमे आप सज्जन लोगों को मेरी माता व पिता व भाई इन सबों से यह बात कहना चाहिये ॥ ४६ ॥ कि नियम व व्रतोंकी करनेवाली वह आपकी कन्या शूलभेद में रहती है एक दिनके अन्तर से

ष्ठतेसाक्षयंकालं रुद्रलोकेमहीयते ॥ ४३ ॥ मुनेश्चवचनंश्रुत्वा मुदांपरमिकांययौ ॥ ततोवगाहतेतीर्थमहर्निशमतन्द्रितम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वातीर्थप्रभावन्तु राज्ञीवचनमब्रवीत् ॥ श्रूयतांवचनंमेद्य ब्राह्मणास्सपुरोहिताः ॥ ४५ ॥ नत्यजामीदृशंस्थानं यावज्जीवाम्यहर्निशम् ॥ मात्रेपित्रेतथाभ्रात्रे मद्धिर्वाच्यमिदंवचः ॥ ४६ ॥ वर्ततेशूलभेदेसा नियताव्रतचारिणी ॥ एकान्तरोपवासेन शनैर्मासमुपोषिता ॥ ४७ ॥ देवशिलास्थितानित्यं ध्यायमानातुकेशवम् ॥ अहर्निशंस्थितामूमौ दृष्टाराज्ञीशुभानना ॥ ४८ ॥ व्रतस्थानियताहारा नाम्नाभानुमतीशुभा ॥ गतेषुद्विजमुख्येष्वाययौशबरयुग्मकम् ॥ ४९ ॥ उवाचववनंतत्र तान्दृष्ट्वाशबराङ्गना ॥ नैवास्याःसदृशीकाचित्त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ५० ॥ साक्षादसौदेवकन्याह्यवतीर्णामहीतले ॥ भार्य्यायावचनंश्रुत्वा शबरस्तामुवाचह ॥ ५१ ॥ कमलानियथालाभं दत्त्वा

धीरे २ महीनेभर उपास करतीहुई ॥ ४७ ॥ व भगवान्का ध्यान करतीहुई सदा देवशिलापर रहती है तब सबोंने देखा कि सुन्दर मुखवाली वह रानी दिन रात जमीन में बैठी रहती है ॥ ४८ ॥ और व्रतों में लगीहुई व एक और थोडे भोजनकी करनेवाली नामसे सुन्दर भानुमती है इसप्रकार कहतेहुये ब्राह्मणों के चलेगये के बाद एक जोड़ा बहेलिया स्त्री पुरुष वहा आये ॥ ४९ ॥ वहां उस रानीको देख बहेलियाकी स्त्री वचन बोली कि इस रानीके बराबर तीनों लोकों में कोई स्त्री प्रसिद्ध नहीं है ॥ ५० ॥ मानो यह साक्षात् देवताओं की कन्याही जमीनपर अवतार लियाहै स्त्रीके वचनको सुन शबर उससे बोला ॥ ५१ ॥ कि जो कुछ कमल मिलेहों उन्हे मुझे देकर

तू भोजनकर मेरा मन पूजन करने में है इससे मैं आज नहीं खाऊंगा॥ ५२ ॥ क्योंकि हे भद्रे! मैंने कुछ वर्जित नहीं किया किन्तु पापकी बाढ़ि मे अशुभ कर्मको ही कियाहै तब शबरी बोली कि हे स्वामिन्! मैंने तो आपसे पहले कभी नहीं खायाहै ॥ ५३ ॥ जहांतक मैं याद करतीहूं तहांतक मैंने आपही के भोजनमे बचेहुयेका भोजन कियाहै तब स्त्रीका निश्चय जान वह स्नान करनेको गया ॥ ५४ ॥ और आधी धोती से भक्तिसे नहाय व सब देवताओंके नमस्कारकर देवशिलापर गया ॥ ५५ ॥ वहां भगवान्का ध्यान करताहुआ खटके के साथ खड़ाहुआ तबतक शबरीने दासीके हाथमें दो फूल कमलके दिये ॥ ५६ ॥ रानी उन फूलोंको देख दासीसे बोली कि ये

त्वंभुङ्क्ष्वसत्वरम्॥ ममचैवार्चनेबुद्धिर्नभोक्तव्यंमयाद्यवै ॥ ५२ ॥ नमयावर्जितंभद्रे पापवृद्ध्याऽशुभंकृतम् ॥ शबर्युवाच ॥ नपूर्वन्तुमयास्वामिन्भुक्तंकस्मिंस्तुवासरे ॥ ५३ ॥ भुक्तशेषंमयाभुक्तं यावत्कालंस्मराम्यहम् ॥ भार्य्यायानिश्चयंज्ञात्वा स्नानंकर्तुंजगामह ॥ ५४ ॥ अर्द्धोत्तरीयवस्त्रेण स्नानंकृत्वातुभक्तितः ॥ सर्वदेवंनमस्कृत्य गतोदेवशिलाम्प्रति ॥ ५५ ॥ तस्थौसशङ्कमानोपि ध्यायमानोजनार्द्दनम् ॥ कुमुदद्वयंशबर्य्यातु दासीहस्तेनिवेदितम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा राज्ञीतथापुष्पे दासींचैवतदाब्रवीत्॥ क्वेदंपुष्पद्वयंलब्धं कथ्यतांतच्चसाम्प्रतम् ॥ ५७ ॥ शीघ्रंगच्छावगच्छत्वं पुष्पञ्चैवानयापरम्॥ अनेनवसुनाचैवकमलानिसमानय ॥ ५८ ॥ भानुमत्यावचःश्रुत्वा गतासाशबरम्प्रति ॥ श्रीफलानिचपुष्पाणि बहून्यन्यानिदेहिमे ॥ ५९ ॥ शबर्य्युवाच ॥ श्रीफलानिचदास्यामि पुष्पाणिचविशेषतः॥ मूल्येनमेस्पृहानास्ति गत्वाराज्ञींनिवेदय ॥ ६० ॥ गतादासीनिवेद्याथ राज्ञीचस्वयमागता॥ उवाचशबरंराज्ञी पुष्पंमूल्येनदेहिमे ॥६१॥

दो फूल तूने कहां पाये सो जल्दी बतावो ॥ ५७ ॥ और बहुत जल्दी जावो २ और भी फूल लेआवो इस द्रव्य से कमलों को लावो ॥ ५८ ॥ भानुमतीके वचन को सुन वह दासी शबरके तीरगई और बोली कि बेल व फूल और भी बहुत से हमको देवो ॥ ५९ ॥ तब शबरी बोली कि बेल व फूलोंको मैं विशेषकर देऊंगी लेकिन दाम लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है सो तुम जाकर रानी से कहो ॥ ६० ॥ तब दासी गई और रानी से कहा रानी आपही आई और शबर से कहा कि दामों से तुम मुझे

फूलों को देवो ॥ ६१ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि ! मैं फलों व फूलों के मोलको नहीं चाहताहूं इससे येल व फूल आप जितने चाहो उतने मुझसे लेवो ॥ ६२ ॥ और विधान से जगत्के गुरु भगवान्की पूजाकरो तब रानी बोलीं कि विना मोल हम तुम्हारे कमलके फूलोंका नहीं लेवेगी ॥ ६३ ॥ इससे अन्नकी इस एक ढेरी को तुम लेलेवो ॥ ६४ ॥ तब शबर बोला कि हे वरानने ! आज मैं भगवान्को छोंड भोजनकी सुध नहीं करताहूं ॥ ६५ ॥ हे भद्रे ! देवताओं के कामके विना और किसी बातमें मेरी बुद्धि नहीं लगतीहै तब रानी बोली कि तुमको अन्न नहीं छोडने योग्यहै क्योंकि अन्नमें सभी कुछ रहताहै ॥ ६६ ॥ तिससे सब तरह से मेरे अन्नको लेनो

शबरउवाच ॥ नमूल्यंकामयेदेवि फलपुष्पसमुद्भवम् ॥ श्रीफलानिचपुष्पाणि यथेष्टंममगृह्यताम् ॥ ६२ ॥ अर्चांकुरु यथान्यायं वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ राज्युवाच ॥ विनामूल्यन्नगृह्णामि कमलानितवाधुना ॥ ६३ ॥ धान्यस्यखण्डिका मेकामेताम्प्रतिनिगृह्यताम् ॥ ६४ ॥ शबरउवाच ॥ नाहारञ्चिन्तयाम्यद्य मुक्त्वादेवंवरानने ॥ ६५ ॥ देवकार्य्यंविनाभद्रे नान्याबुद्धिःप्रवर्तते ॥ राज्युवाच ॥ नत्वयान्नंपरित्याज्यं सर्वमन्नेप्रतिष्ठितम् ॥ ६६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ममान्नंप्रतिगृह्यताम् ॥ तपस्विनोमहाभागा येचारण्यनिवासिनः ॥ ६७॥ तेमद्द्वारेस्थितास्सर्वे याचन्तेतेन्नकाङ्क्षिणः ॥ शबरउवाच ॥ निषेधोधिकृतःपूर्वं मयासत्यन्नसंशयः ॥ ६८ ॥ सत्यमूलंजगत्सर्वं सत्येचैवप्रतिष्ठितम् ॥ सत्येनतपते सूर्य्यस्सत्येनद्योततेशशी ॥ ६९॥ सत्येनवायवोवान्ति धरासत्येप्रतिष्ठिता ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यंसत्यन्नलोपयेत्॥ ७० ॥ राज्युवाच ॥ आरामोपहृतंपुष्पमारण्यंपुष्पमेवच ॥ क्रीतंप्रहिग्रहाल्लब्धं पुष्पमेवंचतुर्विधम् ॥ ७१ ॥ उत्तमं

देखो बडे भाग्यवाले वनके वासी तपस्वी लोग जो हैं ॥ ६७ ॥ वे सब अन्न की इच्छा करनेवाले मेरे दरवाजेपर खडे अन्न मांगते है तब फिर शबर बोला कि पहले मैंने, सच्ची नाहीं कीरही इसमें संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ सब जगत्की जड सत्यही है और सब जगत् सत्यही में रहता है सत्य से सूर्य तपते हैं और सत्य से चन्द्रमा प्रकाश करता है ॥ ६९ ॥ हवा सत्यही से चलती है जमीन सत्यही में सधी रहती है तिससे सब यत्नों से सत्यको सत्यही न छोंड़े ॥ ७० ॥

तब रानी बोली कि बगीचेसे लायागया, वन से लायागया, खरीदागया और देनेसे मिला ऐसे चार तरहका फूल होताहै ॥ ७१॥ तिनमें उत्तमफलवाला वहहै जो वन से अपने हाथ लाया गयाहो और बगीचे का मध्यम है व खरीद किया अधमहै ॥ ७२ ॥ और देने से जो मिलाहै उसको पण्डितलोग निष्फल जानते हैं तब पुरोहित बोला कि हे राज्ञि ! फूलों को लेवो और नारायण का पूजन करो ॥ ७३ ॥ तब उपकार को करती हुई भानुमती ने विधि से पूजन किया और रातमें जागरण कर पुराणकी कथा सुनी ॥ ७४ ॥ तदनन्तर शबर अपनी स्त्री से बोला कि हे सुन्दरि ! दिया के वास्ते जो कुछ तेल मिले उसे लावो ॥ ७५ ॥ फिर धूप व दीपको देकर

फलमारण्यं गृहीत्वास्वयमेवहि ॥ मध्यमंफलमाराम्यमधमंक्रीतमेवच ॥ ७२ ॥ प्रतिग्रहेणयल्लब्धं निष्फलंतद्विदुर्बुधाः ॥ पुरोहितउवाच ॥ गृहाणराज्ञिपुष्पाणि पूजांकुरुजनार्द्दने ॥ ७३ ॥ उपकारंप्रकुर्वन्ती पूजांचक्रेयथाविधि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा कथापौराणिकीश्रुता ॥ ७४ ॥ शबरस्तुततोभार्य्यामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दीपार्थंगृह्यतांस्नेहो यथालाभेनसुन्दरि ॥ ७५ ॥ दत्त्वादीपंततःकृत्वा धूपंपूजांजनार्द्दने ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ ध्यायमानस्तुकेशवम् ॥ ७६ ॥ ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकञ्जनम् ॥ केचिच्चशूलभेदेतु देवनद्यांतथैवच ॥ ७७ ॥ सरस्वत्यांतथाकेचिन्मार्कण्डेये तथाह्रदे ॥ चक्रतीर्थेतथाकेचित्स्नानंकुर्वन्तिभक्तितः ॥ ७८ ॥ शुचिभूतास्तुतेसर्वे जनादेवशिलोपरि ॥ श्राद्धंकुर्वन्तिवैतत्र प्रयत्नेनद्विजर्षभाः ॥ ७९ ॥ तान्दृष्ट्वाशबरोबिल्वैः पिण्डंनिर्वर्तयेत्ततः ॥ भानुमत्यातथासक्तुपिण्डनिर्वपणं कृतम् ॥ ८० ॥ अनिन्द्यम्भोजयेद्विप्रं दम्भदोषविवर्जितम् ॥ हविष्येणतथदध्ना शर्करामधुसर्पिषा ॥ ८१ ॥ पायसेनच

और भगवान् का पूजन कर नारायण का ध्यान करता हुआ रातमें जागरण करताहुआ ॥ ७६ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में स्नान के वास्ते तैयार होरहे लोगों को देखा कि कोई शूलभेदमें, कोई गङ्गामें ॥ ७७ ॥ कोई सरस्वती में, कोई मार्कण्डेयकुण्ड में और कोई चक्रतीर्थ में भक्तिसे नहायरहे हैं ॥ ७८ ॥ फिर पवित्र होकर वे सब श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग वहां देवशिला के ऊपर यत्न से श्राद्ध को करते हैं ॥ ७९ ॥ उन सबको देख शबरने भी बेलों से पिण्डोंको बनाया और भानुमतीने भी सतुओं के पिण्डों का दानकिया ॥ ८० ॥ और पाखण्डदोष से रहित व निन्दारहित ब्राह्मणको खीर, दही, शक्कर, मिठाई, घी, गऊका दूध और खिचडीसे भोजन कराया व भोजन

करवाकर फिर रानीने उसको विधान से दान दिया ॥ ८१।८२ ॥ खड़ाऊं, जूता, छाता, पलँग, गऊ, बैल और भी सोने व रत्नोंके अनेक दान दिये ॥ ८३ ॥ क्योंकि हे महाराज ! उस तीर्थ में जो कपिला गऊ देताहै मानो उसने पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवीका दान किया ॥ ८४ ॥ उत्तानपाद बोले कि तिलोंका देनेवाला अपने प्यारे पुत्रोंको पाता है, दियाका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको, पृथिवीका देनेवाला स्वर्गको, सोनेका देनेवाला बडी उमरको ॥ ८५ ॥ मकानका देनेवाला आरोग्यको, रूपेका देनेवाला उत्तम रूपको, कपडेका देनेवाला चन्द्रलोकको, घोड़ेका देनेवाला सूर्यलोकको ॥ ८६ ॥ बैलका देनेवाला उत्तम धनको और गोदानसे स्वर्ग

गव्येन कृशरेणविशेषतः ॥ भोजयित्वातथाराज्ञी दानंदत्त्वायथाविधि ॥ ८२ ॥ पादुकोपानहौछत्रं शय्यागोवृषमेव च ॥ विविधानिचदानानि हेमरत्नमयानिच ॥ ८३ ॥ तत्रतीर्थेमहाराज कपिलांयःप्रयच्छति ॥ तेनदत्तामहीराजन्सशैलवनकानना ॥ ८४ ॥ उत्तानपादउवाच ॥ तिलप्रदःप्रजाइष्टादीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ भूमिदःस्वर्गमाप्नोति दीर्घायुश्चहिरण्यदः ॥ ८५ ॥ गृहदोरोगरहितो रौप्यदोरूपमुत्तमम् ॥ वासोदश्चन्द्रलोकंतु अश्वदस्सूर्य्यलोकभाक् ॥ ८६ ॥ वृषदस्तुश्रियंपुण्यां गोदानात्तुत्रिविष्टपम् ॥ शय्यादानञ्चयोदद्यात्सस्वर्गमभयप्रदः ॥ ८७ ॥ धान्यदःशाश्वतंसौख्यं ब्रह्मदोब्रह्मशाश्वतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानंविशिष्यते ॥ ८८ ॥ भार्य्यामश्वंमहींवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषम् ॥ येनयेनहिभावेन दानंविप्राययच्छति ॥ ८९ ॥ तेनतेनहिभावेन प्राप्नोतिपदपूजितम् ॥ दृष्ट्वादानानिसर्वाणि राज्यादत्तानियानिच ॥ ९० ॥ उवाचशबरोभार्य्यां यच्छृणुष्वनराधिप ॥ शबरउवाच ॥ पुराणंपठितंभद्रे ब्राह्मणैर्वेदपार

को पाता है शय्या और अभयको जो देता है वह स्वर्गको पाता है ॥ ८७ ॥ अन्नका देनेवाला सदा रहनेवाले सुखको पाता है वेदका देनेवाला नाशरहित ब्रह्मको पाताहै सब दानों में वेदका दान बडा श्रेष्ठहै ॥ ८८ ॥ स्त्री, घोडा, जमीन, कपडा, तिल, सोना और घी इन चीजोंको जिस २ भावसे ब्राह्मणको देताहै ॥ ८९ ॥ उस २ भाव से उत्तमपदको पाताहै अब भानुमती रानीके दियेहुये दानोंको देख ॥ ९० ॥ शबर अपनी स्त्रीसे जा बोला हे नराधिप ! उसको तुम सुनो शबर बोला कि हे भद्रे ! वेदपाठी

ब्राह्मणों के बांचेहुये पुराणको ॥ ९१ ॥ मैंने सुना और सब शुभ दानधर्म भी सुना और अपने स्नान व दान व व्रतों से पूर्वजन्म में जमा कियाहुआ जो मेरा पाप था हे प्रिये ! वह सब क्षीण होगया क्योंकि यहां कियाहुआ दान, होम और तप सभी अक्षय होताहै ॥ ९२ । ९३ ॥ अब भानुमतीके सहित वे सब ब्राह्मणलोग शूलभेदको गये और शबरको देखा कि स्त्रीके सहित कुण्डमें खड़ाहै ॥ ९४ ॥ फिर ईशानमें जाकर भृगुपर्वतके ऊपर मरनेकी इच्छा करताहुआ स्त्रीके सहित चढगया हे पार्थिव ! ॥ ९५ ॥ तब राजपुत्री बोली कि हे महासत्त्व ! खड़े रहो २ मेरे वचन को सुनो कि अभी आप जवानहो प्राणोंको क्यों छोंड़तेहो ॥ ९६ ॥ क्या आपके सन्ताप

गैः ॥ ९१ ॥ श्रुतञ्चतन्मयासर्वं दानधर्म्मपरंशुभम् ॥ पूर्वजन्मार्जितंपापं स्नानदानव्रतेनच ॥ ९२ ॥ तत्सर्वंचक्षयंजातं मदीयेनप्रियेशृणु ॥ अत्रदत्तंहुतंतप्तं सर्वंभवतिचाक्षयम् ॥ ९३ ॥ तेद्विजाभानुमत्याच शूलभेदंगतास्ततः ॥ ददृशुःशबरंकुण्डे शबर्य्यासहसंस्थितम् ॥ ९४ ॥ ईशान्याञ्चततोगत्वा भृगुपर्वतमूर्द्धनि ॥ मर्तुकामस्तथारूढो भार्य्ययासहपार्थिव ॥ ९५ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ तिष्ठतिष्ठमहासत्त्वशृणुष्ववचनंमम ॥ किमर्थंत्यजसिप्राणानद्यापिचयुवाभवान् ॥ ९६ ॥ किंसन्तापःसमुद्वेगः किंदुःखंव्याधिरेवच ॥ शिशुश्चदृश्यतेऽद्यापि कारणंकथयस्वमे ॥ ९७ ॥ शबरउवाच ॥ कारणंनास्तिमेकिञ्चिन्नदुःखंकिञ्चिदेवहि ॥ संसारसारभूतत्वे नान्याबुद्धिःप्रवर्तते ॥ ९८ ॥ दुःखेनलभतेयस्मान्मनुष्यत्वंवरानने ॥ मानुष्यंजन्मचासाद्य योनधर्म्मंसमाचरेत् ॥ ९९ ॥ सगच्छेन्नरकंघोरमल्पदोषेणसुन्दरि ॥ तस्मात्पतितुमिच्छामि अस्मिंस्तीर्थेतपस्विनि ॥ १०० ॥ राजपुत्र्युवाच॥ अद्यापिवर्ततेकालःस्वधर्म्मादिविधाःक्रियाः॥

व घबडाहट व दुःख व रोगहै आपके पुत्र भी देखपड़ताहै तिसमे मुझे कारण तो बतलावो ॥ ९७ ॥ तब शबर बोला कि कारण कुछ नहीं है और दुःख भी मुझको कुछ नहीं है लेकिन संसारके सार होने में मेरी दूसरी बुद्धि नहीं होतीहै ॥ ९८ ॥ और हे वरानने ! जिससे मनुष्य होना बड़े दुःखमे मिलताहै इससे मनुष्यका जन्म पाकर जो धर्म नहीं करताहै ॥ ९९ ॥ हे सुन्दरि ! वह थोड़ेही दोषसे घोर नरक को जाताहै तिससे हे तपस्विनि ! अब इस तीर्थ मे मैं गिरा चाहताहूं ॥ १०० ॥ तब

फिर राजपुत्री बोली कि अभी तो तुमको बडा समय बाकीहै जिसमें तुम अपने धर्मसे अनेक कर्मोंको करसक्तेहो इससे उचित धर्मोंको कर दानसे शुद्ध होजावोगे ॥ १ ॥
और हम तुमको अन्न, वस्त्र और धन देवेंगी तुम भगवान्‌का ध्यान करतेहुये सदा धर्मोंको करो ॥ २ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि ! मैं अन्न व वस्त्रों को नहीं चाहताहूं
क्योंकि लिखाहै कि जो मनुष्य दूसरेका अन्न खाताहै वह पापही खाताहै ॥ ३ ॥ तब राजपुत्री बोली कि कन्द व मूल व फलोंका आहार करतेहुये व उत्तम भिक्षाका
अन्न खाकर और तीर्थों में स्नानकर सब पापों से छूटजावोगे ॥ ४ ॥ इस कामसे कोई पुरुषहो पापों से छुटाहुआ पवित्र होजाताहै उसी कर्म से तुम भी अच्छी गति

कृत्वाप्रकृतधर्म्माणि तत्रदानेनशुद्ध्यति ॥ १ ॥ अहंदास्यामितेधान्यं वासांसिद्रविणानिच ॥ नित्यंत्वमाचरेर्धर्म्मंध्या
यमानोजनार्द्दनम् ॥ २ ॥ शबरउवाच ॥ नचाहंकामयेदेविधान्यंवस्त्राणिचैवहि ॥ यःपरस्यान्नमश्नाति सनरोश्नाति
किल्बिषम् ॥ ३ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ कन्दमूलफलाहारो भुक्त्वावैभक्ष्यमुत्तमम् ॥ अवगाह्यचतीर्थानि सर्वपापैःप्रमुच्य
से ॥ ४ ॥ ततोविमुक्तपापस्तुयःकश्चित्पुरुषश्शुचिः ॥ कर्म्मणातेनचैवत्वं गतिंसम्प्राप्स्यसेशुभाम् ॥ ५ ॥ शबरउवाच ॥
अत्रमध्येमयात्यक्ताः प्राणादृष्ट्वाहितंचयत् ॥ सत्यन्नलोपयेदेवि इतिमेनिश्चितामतिः ॥ ६ ॥ प्रसादःक्रियतान्देविक्ष
मस्वत्वंजनैस्सह ॥ बद्ध्वोत्तरीयवस्त्रेण आत्मानञ्चप्रयत्नतः ॥ ७ ॥ भार्य्ययासहितस्तत्र हरिन्ध्यात्वापपातह ॥ नगार्द्धग
तितोयावद्गतजीवोनराधिप ॥ ८ ॥ तूष्णींभूतंतुतंदृष्ट्वा कुण्डस्योपरिभूमिप ॥ त्रिमूर्तिगर्तेतत्काले शबरोभार्य्य

को पावोगे ॥ ५ ॥ तब शबर बोला कि अपने हितको देख मैंने यहां प्राणोंको छोंडाहै इमसे हे देवि ! मैं सत्यको नहीं नाश करसक्ताहूं यह मेरी बुद्धिका निश्चयहै ॥ ६ ॥
इमसे हे देवि ! अब आप प्रसन्न हूजिये और सब लोगोंके सहित क्षमा कीजिये इतना कहकर और ऊपरवाले कपडेसे अपनेको यत्नसे बांधकर ॥ ७ ॥ स्त्रीके सहित भग-
वान्‌का ध्यानकर वहां गिरताहुआ हे नराधिप ! आधे पर्वततक जबतक आया तबतक उसका जीव जातारहा ॥ ८ ॥ फिर हे भूमिप ! कुण्डके ऊपर चुप होगये उसको

यासह ॥ ९ ॥ दिव्यंविमानमारूढो गतश्चगतिमुत्तमाम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशबरस्वर्गारोहणन्नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ ततस्तयापिदेवेश भानुमत्याहिकिंकृतम् ॥ एतन्मेसंशयन्देव कथयस्वप्रसादतः ॥ १ ॥ हरउवाच ॥ चिन्तयित्वातुसाराज्ञी गताकुण्डस्यसन्निधौ ॥ दृष्ट्वातीर्थस्यमाहात्म्यं राज्ञीहर्षेणपूरिता ॥ २ ॥ विप्रान्बहून्समाहूय पूजयामासतत्क्षणात् ॥ ददौचविविधन्दानं ब्राह्मणेभ्योनराधिप ॥ ३ ॥ दत्त्वाचदक्षिणामेवं मधुमासेचभूमिप ॥ अमायाञ्चततोराज्ञी गतापर्वतमूर्द्धनि ॥ ४ ॥ नगशृङ्गंसमारुह्य कृत्वातुकरसम्पुटम् ॥ विज्ञाप्यब्राह्मणान्सर्वानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ ममसातापिताभ्राता तथान्येचैवबान्धवाः ॥ सर्वेक्षमन्तुतेसर्वैरिदंवाच्यंतदावचः ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वाशूलभेदेतु तपःकृत्वासुदारुणम् ॥ विसृज्यचैवमात्मानं तस्मिंस्तीर्थेदिवङ्गता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सन्देशंकथयिष्या

देख उसी समयमें तीनों देवताओंके उस कुण्डमें शबर अपनी स्त्रीके सहित ॥ ९ ॥ दिव्य विमानपर चढ़ाहुआ उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशबरस्वर्गारोहणन्नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

राजा बोले कि हे देवेश! फिर उस भानुमतीने क्या किया इस हमारी संशयको अपनी दयासे कहो ॥ १ ॥ तब महादेव बोले कि वह रानी विचारकर कुण्डके समीप गई तीर्थके माहात्म्यको देख रानी आनन्दसे भरगई ॥ २ ॥ उसी क्षणमें बहुत से ब्राह्मणों को बुलाय पूजन किया और हे नराधिप! ब्राह्मणोंको अनेक दानदिये ॥ ३ ॥ हे भूमिप! इसप्रकार दक्षिणा देकर चैतकी अमावसको रानी पर्वतके ऊपर गई ॥ ४ ॥ पर्वतकी चोटीपर चढ़ और दोनो हाथोंको जोड ब्राह्मणो से जाहिरकर फिर सब से इस वचनको बोली ॥ ५ ॥ कि हमारे माता, पिता, भाई और बान्धवलोग सब क्षमाकरें तुम सबको यह कहना चाहिये ॥ ६ ॥ कि भानुमती शूलभेदमें दारुण तपस्याको कर और उसी तीर्थ में अपनी देहको छोंड स्वर्गको चलीगई ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे शोभनव्रते! तुम्हारी माता व पितासे तुम्हारे कहेहुये संदेशको हम

जरूर कहेंगे हे सुश्रोणि! इसमे तुमको सन्देह मत होवे ॥ ८ ॥ तदनन्तर रानी सबको बिदाकर पर्वतपर खड़ीहुई और आधे कपडे से अपने शरीरको खूब पोढा बांध कर ॥ ९ ॥ हे नराधिप! एकही में चित्तको लगायेहुये पर्वत से देहको छोड़ जबतक आधे पर्वतको आई तबतक देवता और दैत्योने देखा ॥ १० ॥ कि दिव्य विमानपर चढ वह कैलासको चलीगई तदनन्तर वह सब लोगोके देखतेही स्वर्गको चलीगई ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेभानुमतीस्वर्गारोहणन्नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मस्त्वयोक्तंशोभनव्रते ॥ मातापित्रोश्चसुश्रोणि मातेभूदत्रसंशयः ॥ ८ ॥ ततोविसृज्यलोकन्तु स्थितापर्वतसन्निधौ ॥ अर्द्धोत्तरीयवस्त्रन्तु गाढंकृत्वापुनःपुनः ॥ ९ ॥ ततोविसृज्यचात्मानमेकचित्तानराधिप ॥ नगार्द्धंपतितायावत्ताव दृष्टासुरासुरैः ॥ १० ॥ दिव्यंविमानमारुह्य कैलासंसाजगामह ॥ ततस्सापश्यतान्तेषां जनानांत्रिदिवङ्गता ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे भानुमतीस्वर्गारोहणन्नामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥

देवउवाच ॥ ततःपुष्करिणींगच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ श्रुत्वातस्याःप्रभावन्तु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ रेवायाउत्त रेकूले तीर्थंपरमशोभनम् ॥ यत्रास्तेसर्वदादेवो दिव्यमूर्तिर्दिवाकरः ॥ २ ॥ कुरुक्षेत्रंयथापुण्यं सर्वकामिकमुत्तमम् ॥ इदंतीर्थंतथापुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रेयथावृद्धिर्दानस्यजगतीपते ॥ पुष्करिण्यांतथावृद्धिर्दानस्यापि नसंशयः ॥ ४ ॥ यवमेकन्तुयोदद्यात्सौवर्णंचात्रवैनृप ॥ पुष्करिण्यांतथास्नानं सर्वस्थानेश्वरेस्मृतम् ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहे

फिर महादेवजी बोले कि तदनन्तर सब पापोंकी नाश करनेवाली पुष्करिणी तीर्थको जावे उसके प्रभावको सुन मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर बड़ा सुन्दर तीर्थहै जिसमें दिव्यमूर्तिको धारणकिये सूर्यदेव सदा रहते हैं ॥ २ ॥ जैसे सब कामनाओंका देनेवाला कुरुक्षेत्र पुण्यवाला है वैसेही यह तीर्थ भी पुण्यवाला व सब कामफलों का देनेवालाहै ॥ ३ ॥ हे जगतीपते! जैसे कुरुक्षेत्रमें दानकी बढती होतीहै ऐसे पुष्करिणी में भी दानकी बढ़ती होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥ हे नृप! इस पुष्करिणीमें जो एक सोनेका जौ देता व स्नान करताहै उसका सब फल स्थानेश्वरके बराबर कहागयाहै ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहण में अपनी

शक्तिके अनुसार विधिसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, मकान, गौवें, बैल इनका दानदेकर ॥ ६ ॥ सोना और चांदीको भी जो ब्राह्मणोंको देता है उसका दियाहुआ तेरह दिन में तेरहगुना होजाताहै ॥ ७ ॥ तिल मिले जलमे पितर व देवताओंका इस तीर्थमें तर्पणकरे तो हे महीपते! पितरोंकी बारह वर्षतक तृप्ति रहती है ॥ ८ ॥ और जो कोई वहा खीर, घी और मिठाई से श्राद्ध करताहै अथवा मघा आदि नक्षत्रों में श्राद्ध करताहै उसके पितरों को वह दियाहुआ अक्षय होताहै ॥ ९ ॥ अक्षत, बेर, बेल इंगुआ और तिलों से उस तीर्थ में श्राद्ध करनेवाला अक्षय फलको पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥ वहां स्नानकर जो सूर्यदेवका पूजन करताहै वह देवताओं

यथाशक्त्या दत्त्वादानंयथाविधि ॥ हस्त्यश्वरथरत्नानि गृहंगाश्चधुरन्धरान् ॥ ६ ॥ सुवर्णरजतंवापि ब्राह्मणेभ्यो ददातियः ॥ त्रयोदशदिनंयावत्त्रयोदशगुणंभवेत् ॥ ७ ॥ तिलमिश्रेणतोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ द्वादशाब्दं भवेत्तृप्तिस्तत्रतीर्थेमहीपते ॥ ८ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ श्राद्धंमघादिऋक्षेषु पितॄणांदत्तमक्षय म् ॥ ९ ॥ अक्षतैर्बदरैर्बिल्वैरिङ्गुदैर्वातिलैःसह ॥ अक्षयंफलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थेनसंशयः ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वातुयोदेवं पूजयेच्चदिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमंलोकं त्रिदशैरपिवन्दितः ॥ ११ ॥ ऋचमेकांपठेद्यस्तु यजुषःसाम्नएवच ॥ समग्रस्यसवेदस्य फलमाप्नोतिवैद्विजः ॥ १२ ॥ त्रिपुष्करंजपेन्मन्त्रं ध्यायमानोदिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमंलोकं त्रिदशैरपिवन्दितम् ॥ १३ ॥ यस्तत्रविधिवत्प्राणांस्त्यजतेनृपसत्तम ॥ सगच्छेत्परमंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ भूयोप्यन्यत्प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् ॥ सर्वदुःखहरंपार्थ सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ १५ ॥ अस्य

से भी नमस्कार कियागया परमलोकको जाताहै ॥ ११ ॥ और जो ब्राह्मण वहां ऋग्वेद व यजुर्वेद व सामवेदकी एक ऋचाको पढ़ताहै वह सम्पूर्ण वेदके फलको पाता है ॥ १२ ॥ सूर्यका ध्यान करताहुआ जो त्रिपुष्कर मन्त्रको जपता है वह देवताओं से भी नमस्कार कियाहुआ परमलोकको जाताहै ॥ १३ ॥ और हे नृपसत्तम! जो वहां विधिसे प्राणोंको छोडताहै वह उस उत्तम स्थानको जाताहै कि जहां सूर्यदेव रहते हैं ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ! अब और आदित्येश्वरनामके उत्तम

तीर्थको कहते हैं जोकि सब विघ्नों व सब पापोंका हरनेवालाहै ॥ १५ ॥ हे कुरुनन्दन ! स्वर्ग, मनुष्य और पाताललोकके और तीर्थ इस तीर्थ की शोभाको नहीं पासके हैं ॥ १६ ॥ हे नृपनन्दन ! कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, काशी और केदार ॥ १७ ॥ ये सब तीर्थ सूर्यतीर्थ की सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं सूर्यतीर्थमें जो दियागया है उसको हे कुरुनन्दन ! तुम सुनो ॥ १८ ॥ तुम्हारे स्नेह से कहताहूं क्योंकि बुढ़ापे में मैं बड़ा पण्डित भी नहीं हूं तपस्याके करनेवाले सब महात्मा ऋषिलोग सुनैं ॥ १९ ॥ स्कन्दजी व और भी रुद्रके गणोंके सहित मैंने महादेवजी के समीपमें सुनाहै पार्वती से प्रार्थना कियेगये महादेवजीने सूर्यतीर्थ के फलको

तीर्थस्यचान्यानि तीर्थानिकुरुनन्दन ॥ नलभन्तेश्रियंनाके मर्त्येपातालगोचरे ॥ १६ ॥ कुरुक्षेत्रंयथागङ्गा नैमिषंपुष्करंतथा ॥ वाराणसीचकेदारं प्रयागोनृपनन्दन ॥ १७ ॥ रवितीर्थस्यसर्वाणि कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ रवितीर्थेचयद्दत्तं शृणुष्वकुरुनन्दन ॥ १८ ॥ स्नेहार्थेकथयिष्यामिवार्द्धक्येनातिपण्डितः ॥ शृण्वन्तुऋषयस्सर्वे तपोनिष्ठामहात्मनः ॥ १९ ॥ श्रुतंमेरुद्रसान्निध्ये स्कन्दरुद्रगणैस्सह ॥ पार्वत्याप्रार्थितःशम्भूरवितीर्थस्ययत्फलम् ॥ २० ॥ शम्भुनापितदाख्यातं गिरिजायाःपुरस्तदा ॥ तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीतंश्रुतंमया ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षोपहताविप्रा नर्म्मदातटमाश्रिताः ॥ उद्दालकोवशिष्ठश्च माण्डव्योगौतमस्तथा ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्योथशाण्डिल्य श्च्यवनोभार्गवस्तथा ॥ नाशकेतुर्विभाण्डश्च बालखिल्यादयस्तथा ॥ २३ ॥शातातपोपिशङ्खश्च जैमिनिर्गोभिलस्तथा ॥ जैगीषव्यःशतानीकऋषिसङ्घास्समागताः ॥ २४ ॥ तीर्थयात्राकृतातैस्तुनर्म्मदायांसमन्ततः ॥ आदित्येशंसमायाताः प्रसङ्गादृषि

कहाहै ॥ २० ॥ महादेवजीने भी पार्वतीजी के सामनेही कहाहै वह सब महादेवजीका कहाहुआ मैंने एकचित्त होकर सुनाहै ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षके मारेहुये ब्राह्मणलोग नर्मदातटको आये उद्दालक, वशिष्ठ, माण्डव्य, गौतम ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, च्यवन, भार्गव, नाशकेतु, विभाण्डक, बालखिल्य ॥ २३ ॥ शातातप, शङ्ख, जैमिनि, गोभिल, जैगीषव्य और शतानीक आदि ऋषियों के गण आतेहुये ॥ २४ ॥ उन ऋषियोंने नर्मदाके चारों तरफके तीर्थोंकी यात्राको किया प्रसङ्ग से आदित्येश्वर

तीर्थको आये ॥ २५ ॥ कैसा वह तीर्थहै कि वृक्षों से सब ढकाहुआहै धाई, तेंदुआ, पंडरिया, जंभीरी, अर्जुन, कुन्द, जटाकेसर, छिपला ॥ २६ ॥ बिजौरा, नारियल और खैर आदि कल्पवृक्षों से व्याप्तहै और अनेक जङ्गली जीवों से भराहै हिरनोंकी मालाओंसे घिराहै ॥ २७ ॥ रीछ और हाथियोंसेयुक्त व चीताओंसे शोभित होरहाहै फूल व फलों से भरेहुये उस वनमें ऋषिलोग पैठतेहुये ॥ २८ ॥ वनके बीचमें एक गोरे रङ्गकी स्त्री को देखा जोकि लालेकपड़े पहनेहुये और लाले फूलोंकी मालाको पहने अच्छीशोभा से युक्त लालचन्दनको लगायेहुये ॥ २९ ॥ लाले जेवरोंसे सजी, चन्द्रमाको हाथमें लिये,भयको करनेवाली जो है उसके समीप एक पुरुष भी देखपड़ा वह भी कालेमेघके

सत्तमाः ॥ २५ ॥ वृक्षैस्सञ्छादितंसर्वं धवैस्तिन्दुकपाटलैः ॥ जम्बीरैरर्ज्जुनैःकुन्दैर्जटाकेसरकिंशुकैः ॥ २६ ॥ पुन्नागनारिकेरैस्तु खदिरैःकल्पपादपैः ॥ अनेकश्वापदाकीर्णंमृगमालासमाकुलम् ॥ २७ ॥ ऋक्षहस्तिसमायुक्तं चित्रकैश्चसुशोभितम् ॥ प्रविश्यऋषयस्सर्वे वनेपुष्पफलाकुले ॥ २८ ॥ वनान्तेचस्त्रियंशुभ्रां दृष्ट्वारक्ताम्बरान्विताम् ॥ रक्तमाल्यांसुशोभाढ्यां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ २९ ॥ रक्ताभरणसंयुक्तां शशिहस्तांभयावहाम् ॥ तस्याःसमीपगोदृष्टःकृष्णजीमूतसन्निभः ॥ ३० ॥ महाकायोभीमवक्त्रः पाशहस्तोभयावहः ॥ अनाधृष्योवयोवृद्ध आतुरःपिङ्गलोचनः ॥ ३१ ॥ दीर्घजिह्वःकरालास्यस्तीक्ष्णदंष्ट्रोदुरासदः ॥ वृद्धांस्त्रियंकुरुश्रेष्ठ तेपश्यन्विप्रपुङ्गवाः ॥ ३२ ॥ ततस्समीपगावृद्धा सचवृद्धश्चभारत ॥ स्वाध्यायनिरतैर्विप्रैस्तौपृष्टौपापकर्मिणौ ॥ ३३ ॥ वृद्धावूचतुः ॥ युष्माकंयमिनस्सर्वे तिष्ठध्वंतीर्थमध्यतः ॥ शीघ्रंप्रविश्यतांसर्वे नर्म्मदाचैवसेव्यताम् ॥ ३४ ॥ तयोःश्रुत्वातुवचनं ब्राह्मणाःशंसितव्रताः ॥ जग्मुस्तेनर्म्मदा

समान काला ॥ ३० ॥ बडी देहवाला व बड़े मुखवाला फँसरीको हाथमें लिये किसीके दबानेलायक नहीं उमरका बूढ़ा रोगी पीले नेत्रोंवाला ॥ ३१ ॥ लम्बी जीभका डरावने मुहँवाला पैनी डाढ़ोंवाला है हे कुरुश्रेष्ठ ! जब ब्राह्मणों ने उस वृद्ध स्त्रीको देखा ॥ ३२ ॥ तब हे भारत ! वह बुड्ढी स्त्री और बुड्ढा ब्राह्मणों के समीप आये तब वेदके पढ़ने वाले ब्राह्मणोंने उन दोनों पापियों से पूंछा ॥ ३३ ॥ तब बुड्ढे बोले कि आप सब महात्मालोग इस तीर्थपर ठहरो जल्दी इस वनमें पैठो और नर्म्मदा का सेवन

करो ॥ ३४ ॥ उन दोनोंकेवचनको सुनकर वे ब्राह्मणलोग नर्मदाके तटको गये और नर्मदाको देख॥ ३५ ॥ कोई नमस्कार करनेलगे और कोई स्तुति करते हैं व कहतेहैं कि हे देवि ! तुम्हारी जयहो आपके नमस्कारहैं ॥ ३६ ॥ ऋषिलोग बोले कि सिद्धगणों से सेवा कीजाती जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और सब तरह से पवित्र व मङ्गलरूप जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं हजारों ब्राह्मणों से पूजी जाती जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और महादेवसे पैदाहुई सबसे श्रेष्ठ जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं ॥ ३७ ॥ सब पवित्रों को भी पवित्र करनेवाली जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और हे देवि ! सबमें श्रेष्ठ जो तुमहो तिनके नमस्कारहैं आप हमलोगों से प्रसन्न हूजिये हे ठण्ढे जलवाली व सुखकी देनेवाली, नदियोंमेंश्रेष्ठ, पापोंकीहरनेवाली, दयावाली, ॥ ३८ ॥ अनेकजीवोंकी देहों से सुहावने प्रवाहवाली, गन्धर्व, यक्ष और सर्पोंकी देहों को पवित्र करने-

कच्छं दृष्ट्वारेवांद्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ नताःकेचित्स्तुवन्त्यन्ये जयदेविनमोस्तुते ॥ ३६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ नमोस्तुतेसिद्धगणैर्निषेविते नमोस्तुतेसर्वपवित्रमङ्गले ॥ नमोस्तुतेविप्रसहस्रपूजिते नमोस्तुतेरुद्रसमुद्भवेपरे ॥ ३७ ॥ नमोस्तुतेसर्वपवित्रपावने नमोस्तुतेदेविवरेप्रसीदनः ॥ नमोस्तुतेशीतजलेसुखप्रदे सरिद्वरेपापहरेदयान्विते ॥ ३८ ॥ अनेकभूताङ्गसुशोभिताङ्गे गन्धर्वयक्षोरगपाविताङ्गे ॥ महागजौघामहिषावराहाः क्रीडन्तितोयेसुमहोर्मिमालैः ॥ ३९ ॥ नमामसर्वे वरदेसुखप्रदे विमोचयास्मान्पशुपाशबद्धान् ॥ पापैरनेकैःपशुपाशबद्धा भ्रमन्तितावन्नरकेषुनित्यम् ॥ ४० ॥ यावत्तवाम्भोनहिसंस्पृशन्ति स्पृष्टंकरैश्चन्द्रमसोरवेश्च ॥ अनेकसंसारभयार्दितानां पापैरनेकैःपरिवेष्टितानाम् ॥ ४१ ॥ गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे द्वन्द्वैरनेकैरभिसंवृतानाम् ॥ नद्यस्तुपूज्याविमलाभवन्ति त्वान्देविचासाद्यनसंशयोत्र ॥ ४२ ॥

वाली ! आपके नमस्कार हैं बड़े २ हाथी व भैंसे व वनके सुवर बडी २ तरङ्गों से आपके जलमें जलविहार करते हैं ॥ ३९ ॥ हे वरों के देनेवाली व सुखोंकी देनेवाली ! हम सब आपको नमस्कार करते हैं पशुओंकीसी फँसरीमें बँधेहुये हमलोगोंको आप छोंडावें अनेकपापोंसे पशुओंकीसी फँसरीमें बँधेहुये जीव नरकोंमें तभीतक सदाभ्रमते हैं ॥ ४० ॥ कि जबतक तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं जोकि चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों से छुवागयाहै संसारके अनेक डरों से डरेहुये और अनेकपापोंसे लपटेहुये ॥४१॥ और सुख दुःख आदिकी जोड़ियों से घिरेहुये जीवोंकी गति हे कमल सरीखे मुखवाली ! आपहीहो और हे देवि ! आपको पाकर और नदियां निर्मल व पूजने लायक

होजाती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ अनेक देवताओं से पूजी जारही जो तुमहो सो दुःखी जीवोंको अभय देतीहो विष्ठा और मूत्रके समुद्ररूप इस देहमें डूबेहुये जीव तभीतक नरकों में रहते हैं ॥ ४३ ॥ कि जबतक भारी हवाके जोरसे उठती हैं तरङ्गें जिसमें ऐसे तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं म्लेच्छ, कञ्जर और राक्षस तुम्हारे पवित्र जलको जो पीते हैं ॥ ४४ ॥ वे भी बडे भारी डरसे छूटजाते हैं पापके डरसे डरेहुये ब्राह्मणों के छूटजानेकी क्या बातहै इस पापी घोर कलियुग में निर्मल जलसे पूरी तुम्हीं प्रकाश करतीहो ॥ ४५ ॥ और हे देवि ! आपही के प्रसाद से आकाश में आकाशगङ्गा विद्यमान होरही हैं ऐसे समय में आप हमारी ठीक २ रक्षाकरो जिससे

दुःखातुराणामभयंददासि देवैरनेकैरभिपूजितासि ॥ विण्मूत्रदेहार्णवमग्नदेहा भवन्तितावन्नरकेषुमर्त्याः ॥ ४३ ॥ महानिलोद्भूततरङ्गभङ्गं जलन्नयावत्तवसंस्पृशन्ति ॥ म्लेच्छाःपुलिन्दास्त्वथयातुधानाः पिबन्तिचाम्भस्तवदेविपुण्यम् ॥ ४४ ॥ तेपिप्रमुञ्चन्तिभयात्तुघोरात्किमत्रविप्राभयपापभीताः ॥ घोरेयुगेस्मिन्कलिनाम्न्यपुण्येत्वंभ्राजसेकालजलौघपूर्णे ॥ ४५ ॥ देव्यत्रनक्षत्रपथेपिगङ्गा तवप्रसादाद्दिविदेव्यतिष्ठत् ॥ कालेयथेष्टंपरिपालयत्वं यास्यामलोकंतवसुप्रसादात् ॥ ४६ ॥ वयंतथात्वंकुरुनःप्रसादं त्वामाश्रितास्त्वांशरणङ्गतावै ॥ गतिस्त्वमेवात्रपितेवपुत्रं त्वमादिदेवप्रभवेविचित्रे ॥ ४७ ॥ कालेप्यनावृष्टिभवंक्षयञ्च रक्षस्वसर्वंजगतःस्वरूपम् ॥ ४८ ॥ एवंस्तुतामहादेवी नर्म्मदासरितांवरा ॥ प्रत्यक्षासापराभूता ब्राह्मणानांयुधिष्ठिर ॥ ४९ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ तुष्टाहंवरदाविप्रा दास्येवोवाञ्छितंफलम् ॥ ततोवर्षन्महामेघा धान्यञ्चप्रचुरन्तथा ॥ ५० ॥ कन्दमूलफलंशाकं सुखंसर्वत्रसंश्रितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पठन्ति

आपके प्रसादसे हमलोग आपके लोकको जावें ॥ ४६ ॥ आप हमलोगोंपर प्रसन्न होवें हम आपहीके आश्रित और शरणागत हैं आपही हमारी गतिहो जैसे पुत्रकी गति पिता होताहै आप आदिदेव (महादेवजी) से पैदाहुईहो और विचित्रहो ॥ ४७ ॥ अब इस समय में वर्षा के न होने के कारणसे होरहे प्रजा के क्षयसे जगत्के रूपकी रक्षाकरो ॥ ४८ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार स्तुति कीगई नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा देवी ब्राह्मणोंके प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ ४९ ॥ नर्मदा बोलीं कि हे विप्रो ! हम प्रसन्न हैं और तुम्हारे मनमाने वरको देवेंगी तदनन्तर मेघोंने जलकी वर्षा की उससे बहुत अन्न ॥ ५० ॥ कन्द, मूल, फल और शाक पैदाहुआ सब कहीं सुख होगया मार्क-

ण्डेयजी कहते हैं कि हे नरेन्द्र ! जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढ़ते व भक्तिसे युक्त सुनते हैं ॥ ५१ ॥ अन्तके समय में नदियों में उत्तम यह नर्मदा उनको उत्तम गति देतीहै प्रातःकाल उठकर स्नानके सहित महादेव, पार्वती और नर्मदाको जो कहता है ॥ ५२ ॥ उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं और बड़े सुख आते है और पापों से छुटे हुये वे मनुष्य स्वर्ग में आनन्द करते हैं क्योंकि महादेवकी वाणी मिथ्या नहीं होसक्तीहै ॥ ५३ ॥ हे भारत ! इस स्तोत्रसे प्रसन्नहुई नर्मदादेवी दक्षिणदिशामे बहनेवाली अपने जलसे ब्राह्मणों को पुष्ट करतीहुई ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि स्नान व देवताओं के पूजन से युक्त, बड़े बलवाले पांचही पुरुष नर्मदाके किनारेपर देख पडे

येस्तोत्रमिदंनरेन्द्र शृण्वन्तिभक्त्यापरयाप्रपन्नाः ॥ ५१ ॥ तेभ्योन्तकालेसरिदुत्तमेयं गतिंविशुद्धान्नितरांददाति ॥ प्रातस्समुत्थायसमानएव संकीर्तयेद्रुद्रमुमाञ्चदेवीम् ॥ ५२ ॥ पापानिसर्वाणिलयंप्रयान्ति समाश्रयन्तेचमहानुभावाः ॥ पापैस्तुमुक्तादिविमोदयन्ते शम्भोर्गिराचैवतुनान्यथाच ॥ ५३ ॥ प्रसन्नानर्म्मदादेवी स्तोत्रेणानेनभारत ॥ जलेनाप्यायितान्विप्रान् दक्षिणापथवाहिनी ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दृष्टास्तेपुरुषानान्या नर्म्मदातटमाश्रिताः ॥ स्नानदेवार्चनैर्युक्ताः पञ्चैवतुमहाबलाः ॥ ५५ ॥ तेदृष्टाब्राह्मणैस्सर्वैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ विप्राऊचुः ॥ दिनान्तेचस्त्रियोर्युग्मं दृष्टंरौद्रंभयावहम् ॥ ५६ ॥ त्रयोवृद्धाश्चपुरुषाः पाशहस्ताभयावहाः ॥ दुर्द्धरादुर्निसंकाशा इतश्चेतश्चचञ्चलाः ॥ ५७ ॥ व्याहरन्तिभियावाचा आकाङ्क्षादर्शनस्यच ॥ अपरस्परिणस्सर्वे निरीक्षन्तेपरस्परम् ॥ ५८ ॥ तेषुसङ्घेषुयत्प्रोक्तं तत्सर्वंकथयामिते ॥ पुरुषाऊचुः ॥ तीर्थावगाहनंसर्वैः पूर्वपश्चिमदक्षिणे ॥ ५९ ॥ उत्तरेचकृतंभक्त्या नपापंतद्व्यपोहि

और कोई नहीं ॥ ५५ ॥ वेद व वेदाङ्गके पढ़नेवाले सब ब्राह्मणोंने उन्हें देखा तब ब्राह्मण बोले कि सन्ध्याको बड़े भयानक एक स्त्री पुरुषके जोड़े को हमने देखा था ॥ ५६ ॥ अब तीन वृद्ध पुरुष औरहैं फँसरीको हाथों में लिये बड़े डरावने पकड़े नहीं जासके, करालरूप, इधर उधर दौड़रहे ॥ ५७ ॥ डरावनी आवाज से बोलतेहुये, देखने की इच्छा कररहे आपस में एकत्रित नहीं होते और आपस में सब देखते हैं ॥ ५८ ॥ उनके झुण्डमें जो बातें हुई हैं उनको हम तुमसे कहते हैं वे पुरुष ब्राह्मणों

से बोले कि हम सबोंने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरवाले सब तीर्थोंमें भक्तिसे स्नानकिया लेकिन हमारा वह पाप नष्ट नहीं हुआ परन्तु इस तीर्थके प्रभाव से यहां हम सब निष्पाप होगये ॥ ५६ । ६० ॥ हे आगकी ज्वालाके समान तेजवाले सब ब्राह्मणलोगो ! हम लोगोंके वृत्तान्तको सुनो कि जिन पापोंको और लोग स्मरण नहीं करते हैं ऐसे २ घोर पापोंको हमलोगोंने किया है ॥ ६१ ॥ इस पापीने अपने गुरुकी स्त्री को भ्रष्ट कियाहै और दूसरेने मित्रका सोना हरलियाहै ॥ ६२ ॥ तीसरेने बड़ा भयानक ब्रह्महत्याको किया व और भी पातकको कियाहै और दूसरेकी इच्छा से इसने मद्य भी पियाहै ॥ ६३ ॥ और इस एकही पापी ने गोहत्याका भी पाप कियाहै हे

तम् ॥ निष्पापाश्चात्रसञ्जातास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ६० ॥ शृण्वन्तुऋषयस्सर्वे अग्निज्वालोपमाद्विजाः ॥ पातकानि चघोराणि यान्यचिन्त्यानिदेहिनाम् ॥ ६१ ॥ पापिष्ठेनतुचानेन गुरोर्दाराविदूषिताः ॥ हृतंचान्येनमित्रस्य सुवर्णंचनथा चवै ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्याकृतारौद्रा कृतञ्चान्येनपातकम् ॥ सुरापानन्तुचाप्यस्य संजातंचान्यकामतः ॥ ६३ ॥ गोवधंपाप मेतेन कृतमेकेनपापिना ॥ अकामतोपिसर्वेषां पातकानिनराधिप ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणास्तांस्तुतेदृष्ट्वा पापिष्ठागतकल्म षाः ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ ६५ ॥ नकश्चित्पातकानांतु प्रवेशश्चात्रजायते ॥ एवंसञ्चिन्त्यतेसर्वे पापिष्ठाश्चपरस्परम् ॥ ६६ ॥ क्षिप्रमेवसमुद्धृत्य विचिन्त्यहृदयेहरिम् ॥ स्नात्वारेवाजलेपुण्ये तर्पित्वापितृदेवताः ॥ ६७ ॥ नत्वातुभास्करंदेवं हृदिध्यात्वाजनार्द्दनम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंभक्त्या ज्वलितेजातवेदसि ॥ ६८ ॥ पतिताःपा ण्डवश्रेष्ठपापोद्विग्नाश्चपापिनः ॥ सात्त्विकींकामनांकृत्वात्यक्त्वाप्राणान्दिवङ्गताः ॥ ६९ ॥ निष्पापास्तेमहाभागैर्नर्मदा

नराधिप ! पाप तो अपनी कामनाके विना भी सबको होतेहैं ॥ ६४ ॥ उन ब्राह्मणोंने उन पापियों को देखा कि इस तीर्थ व नर्मदाके प्रभावसे ये सब अतिपापी लोग पाप से रहित होगये है ॥ ६५ ॥ यहां पापोंका प्रवेश कभी नहीं होसकाहै सब पापी लोग आपस में ऐसे विचारकर ॥ ६६ ॥ और शीघ्रही उठकर व अपने हृदयमे भगवान् को सुधकर व नर्मदाके पवित्र जलमें नहाय पितर व देवताओंका तर्पणकर ॥ ६७ ॥ सूर्यके नमस्कार व भगवान्का ध्यान व उनकी भक्तिसे प्रदक्षिणाकर जलतीहुई आग मे ॥ ६८ ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पापो से डरेहुये वे पापी कूदपडे सत्त्वगुणकी कामना को कर और प्राणोंको छोड़ स्वर्गको चलेगये ॥ ६९ ॥ उस समय मे नर्मदाके उत्तर

तटमें बडभागी ब्राह्मणोंने उन पापियोंको पापसे रहित व विमानोंपर बैठे देखा हे युधिष्ठिर ! ॥ ७० ॥ नर्मदाके तटमें ऋषियोंने बेनजीर आश्चर्यको देखा तबसे वे सब लोग राग और द्वेषसे रहित होगये ॥ ७१ ॥ तबसे मोक्षकी इच्छा से प्रसन्न होरहे ब्राह्मणलोग सूर्यतीर्थ की सेवा किया करते हैं ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेऽर्कतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे नराधिप ! इसतीर्थकी जो पुण्यहै तिसको तुम सुनो हे नरेश्वर ! हम पण्डितहैं बुढ़ापे व भक्तिसे महादेवजीसे रक्षाको पायेहुये हैं ॥ १ ॥

योत्तरेतटे ॥ विमानस्थास्तदादृष्टा ब्राह्मणैस्तेयुधिष्ठिर ॥ ७० ॥ आश्चर्यमतुलंदृष्टमृषिभिर्नर्म्मदातटे ॥ तदाप्रभृति तेसर्वे रागद्वेषविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ रवितीर्थेद्विजादृष्टाः सेवन्तेमोक्षकाङ्क्षया ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽर्कतीर्थमहिमानुवर्णनोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ तीर्थस्यास्यचयत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ पण्डितोवृद्धभावेन भक्त्यात्रातोनरेश्वर ॥ १ ॥ उद्देशंकथयिष्यामि दृष्ट्वावान्तरमेवच ॥ कुरुक्षेत्रंयथापूतंरवितीर्थंश्रुतंतथा ॥ २ ॥ ईश्वरेणपुराख्यातं षण्मुखस्य युधिष्ठिर ॥ श्रुतंरुद्रगणैस्सर्वैरहंतत्रसमीपगः ॥ ३ ॥ मार्तण्डग्रहणेप्राप्ते येव्रजन्तिषडानन ॥ रवितीर्थेकुरुक्षेत्रे तुल्यमेवफलंभवेत् ॥ ४ ॥ स्नानेदानेतथाजाप्ये होमेचैवविशेषतः ॥ कुरुक्षेत्रेतथापुण्यं नात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥ ग्रामेवायदिवारण्येपुण्यासर्वत्रनर्म्मदा ॥ रवितीर्थेविशेषेण रविपर्वणिभूमिप ॥ ६ ॥ तत्रसूर्यदिनेभक्त्याव्यतीपा

अभिप्रायको देखकर साधारण वृत्तान्तको आपसे कहेंगे जैसा कुरुक्षेत्र पवित्रहै वैसाही सूर्यतीर्थ भी पवित्र सुनागयाहै ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! पहले महादेवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयसे कहाहै वहां महादेवके सब गणोंने सुनाहै मै भी वहा समीपही था ॥ ३ ॥ महादेवने कहा कि हे षडानन ! सूर्यग्रहणके प्राप्त होनेपर जो मनुष्य जाते हैं उनको सूर्यतीर्थ और कुरुक्षेत्र में बराबरही फल होताहै ॥ ४ ॥ स्नान, दान, जप और होमसे जैसा कुरुक्षेत्रमें पुण्य होताहै वैसाही यहा भी होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ गांवहो या वनहो नर्मदा सब कहीं पवित्रहै परन्तु हे भूमिप ! सूर्यपर्व मे सूर्यतीर्थ मे ज्यादा है ॥ ६ ॥ इतवार, व्यतीपात, वैधृति, संक्रान्ति,

और ग्रहणमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिसे सूर्यतीर्थ को जाते हैं ॥ ७ ॥ और हे पार्थ ! काम, क्रोध, राग और द्वेषसे छूटेहुये विष्णुकी कथाको सुनते व वेदका पाठ करते हैं ॥ ८ ॥ अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी एक ऋचाका भी जप कर वे सम्पूर्ण वेदके फलको पाते हैं ॥ ९ ॥ और गायत्री से मनुष्य चारों वेदों के फलको पाताहै प्रातःकालमें अन्नके दान व सोनेके दानसे भगवान्का पूजनकरे ॥ १० ॥ वहां स्नानकर योग्य ब्राह्मणको जो कपिला गऊ देताहै उसने मानो पर्वत व जलो और जंगलोके सहित सम्पूर्ण पृथिवीका दानकिया ॥ ११ ॥ और जिसने गोदानको किया उसने भूलोक, भुवर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक

तेचवैधृतौ ॥ संक्रमेग्रहणेवापि येव्रजन्तिजितेन्द्रियाः ॥ ७ ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्ता रागद्वेषैस्तथैवच ॥ कथाञ्चवै ष्णवींपार्थ वेदाध्ययनमेवच ॥ ८ ॥ ऋग्वेदंवायजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् ॥ ऋचमेकान्तुजप्त्वैव समस्तफलमा प्नुयुः ॥ ९ ॥ गायत्र्याचचतुर्वेदफलमाप्नोतिमानवः ॥ प्रभातेपूजयेद्देवमन्नदानहिरण्मयैः ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वाद्वि जेयोग्ये कपिलांयःप्रयच्छति ॥ पृथिवीतेनवैदत्ता सशैलवनकानना ॥ ११ ॥ भूर्लोकश्चभुवर्लोको महर्लोकोजनस्त था ॥ तपःसत्यन्तथालोकं पातालान्येकविंशतिः ॥ १२ ॥ तेनदत्तंभवेत्सर्वं गोदानंयेनवैकृतम् ॥ तेषामब्दकृतंपापंन श्येद्वैनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ पुण्यागतिःकथन्तात एतत्कथयतत्त्वतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुराकृत युगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १४ ॥ उत्पादयित्वासकलं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ आकुलापृथिवीतेनसंजातापाण्डु नन्दन ॥ १५ ॥ ततःपश्चाद्विचिन्त्येदं कथंलोकोभविष्यति ॥ कथंस्वर्गंप्रयास्यन्ति मानवाभक्तिसंयुताः ॥ १६ ॥ भानु

और इक्कीस पाताल इन सबका दान करदिया उनके वर्षोंका कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १२ । १३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! पुण्य-वाली गति किसतरहसे होतीहै सो यह ठीक २ कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सत्ययुगकी आदिमें लोकोंके पितामह ब्रह्माने ॥ १४ ॥ सब चारोंप्रकारके जीवोंके समूहको उत्पन्नकिया हे पाण्डुनन्दन ! उससे पृथिवी भरगई ॥ १५ ॥ तब पीछेसे विचारकिया कि यह लोक कैसे होगा और भक्तिवाले मनुष्य स्वर्गको कैसे जावेंगे ॥१६॥

लोकोंपर सूर्यनारायण कैसे अतिप्रसन्न होंगे ऐसे ब्रह्माके विचार करतेहुये अग्निके कुण्ड से तेजसे भरीहुई व प्रकाश कररही घण्टाके डोलने से शब्दको करती हुई एक गऊ निकली कुण्डके बीचमें विद्यमान उस बडीभाग्यवाली कपिलाको देख ॥ १७।१८ ॥ व उसके प्रणामकर लोकों के गुरु ब्रह्मा उससे यह बोले कि हे मब लोकों में पुण्यवाली,अत्युत्तम,कपिले! तुम्हारे लिये नमस्कारहै॥१९॥ और हे देवि! हे वरानने! हे तीनोंलोकों में वन्दना कीगई, मङ्गलरूप! लक्ष्मी, धृति और निर्मल बुद्धि तुम्हीहो ॥ २० ॥ हे महाभागे! पार्वती व इन्द्राणी तुम्हींहो इसमें संशय नहीं है वैष्णवी और महादेवी ब्रह्माणी (सरस्वती) तुम्हीहो हे वरानने!॥ २१ ॥ कुमारी

श्चैवकथंप्रीतो लोकानांजायतेभृशम् ॥ विरिञ्चेश्चिन्त्यमानस्य अग्निकुण्डात्समुत्थिता ॥ १७ ॥ ज्वलन्तीतेजसापूर्णा घण्टालुलितनिःस्वना ॥ दृष्ट्वातान्तुमहाभागांकपिलांकुण्डमध्यगाम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मालोकगुरुस्तान्तु प्रणम्येदमुवाचह ॥ नमस्तेकपिलेपुण्ये सर्वलोकेष्वनुत्तमे ॥ १९ ॥ माङ्गल्येमङ्गलेदेवि त्रिषुलोकेषुवन्दिते ॥ त्वंलक्ष्मीस्त्वंधृतिर्मेधापवित्रातुवरानने ॥ २० ॥ उमादेवीतिविख्याता त्वंशचीनात्रसंशयः ॥ वैष्णवीत्वंमहादेवी ब्रह्माणीत्वंवरानने ॥ २१ ॥ कुमारीत्वंमहाभागे भक्तिःश्रद्धातथैवच ॥ कालरात्रीतुभूतानां कुमारीपरमेश्वरी ॥ २२ ॥ त्वंत्रुटिस्त्वंघटीचैव मुहूर्त्तक्षणमेवच ॥ संवत्सरर्तवोमासास्त्वंकालःपुरुषस्सदा ॥ २३ ॥ नास्तिकिञ्चित्त्वयाहीनं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ एवंस्तुतातुसातेन कपिलापरमेष्ठिना ॥ २४ ॥ तमुवाचमहाभागा प्रहृष्टापरमेष्ठिनम् ॥ प्रसन्नातववाक्येन देवदेवजगद्गुरो ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जगद्धितायजनितामयात्वंपरमेश्वरि ॥ स्वर्गान्मर्त्यमितोयाहि लोकानांहित

तुम्हीहो और हे महाभागे! भक्ति व श्रद्धा तुम्हींहो सब जीवोंकी कालरात्रि कुमारी परमेश्वरी तुम्हींहो ॥ २२ ॥ त्रुटि कुछ पलोंका नामहै सो और घड़ी व मुहूर्त व क्षण तुम्हींहो वर्ष, ऋतु और महीना तुम्हीहो काल व जीव भी तुम्हींहो॥ २३ ॥ चर व अचररूप तीनों लोको में तुममे खाली कोई चीज नहीं है इसप्रकार जब उन ब्रह्माजीने उस कपिलाकी स्तुतिकी ॥ २४ ॥ तब प्रसन्नहुई बड़भागिनी कपिला ब्रह्माजीसे बोली कि हे देवदेव! हे जगत्के गुरु! तुम्हारे वचन से हम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥

तब ब्रह्मा बोले कि हे परमेश्वरि! मैंने तुमको जगत्के हितके वास्ते पैदा किया है लोकोंके हितकी इच्छा से तुम इस स्वर्ग से मनुष्यलोकको जावो ॥ २६ ॥ और सब देवता व सब लोकोंका रूप जो तुमहो तिनको विधानसे जो देवेंगे उनका वास स्वर्ग में होगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार ब्रह्मासे कहीगई पुण्यवाली वह कपिला देवताओं से भी नमस्कार कीजारही पृथिवीपर आतीहुई ॥ २८ ॥ उसके आने से हे पाण्डुनन्दन! पृथिवी पवित्र होगई उसके अङ्गों में जो देवताहैं उनको हम कहते हैं सो तुम सुनो ॥ २९ ॥ अग्निदेव उसके मुहँमें रहते हैं और दांतो में सांपहैं ओंठों में धाता और विधाता हैं कानों में अश्विनीकुमार हैं ॥ ३० ॥ सींगों में इन्द्र बैठे हैं सींगोंके

काम्यया ॥ २६ ॥ सर्वदेवमयींत्वान्तु सर्वलोकमयींतथा ॥ विधिनायेप्रदास्यन्ति तेषांवासस्त्रिविष्टपे ॥ २७॥ एवमुक्ता ततःपुण्या कपिलापरमेष्ठिना ॥ आजगामभुवःपृष्ठे वन्द्यमानासुरोत्तमैः ॥ २८ ॥ पवित्रानमुघातेन सञ्जातापाण्डु नन्दन ॥ तस्याअङ्गेषुयेदेवास्तान्मेनिगदतःशृणु ॥ २९ ॥ मुखेह्यग्निःस्थितोदेवो दन्तेषुचभुजङ्गमाः ॥ धाताविधाता चोष्ठौचअश्विनौकर्णसंस्थितौ ॥ ३० ॥ वज्रपाणिःस्थितःशृङ्गेशृङ्गमध्येपितामहः ॥ कालोमध्यगतस्तात पाशभृद्द रुणस्तथा ॥ ३१ ॥ यमश्चभगवान्देव आस्यस्योपरिसंस्थितः ॥ नाभिमध्येस्थितश्चन्दो देवाजङ्घासुभारत ॥ ३२ ॥ वसुन्धरास्थितानाभ्यां पर्वतास्सन्धिषुस्थिताः ॥ वृक्षागुल्मानिवल्ल्यश्च सन्धिमार्गेऽव्यवस्थिताः ॥३३॥ ऋषयोरोम कूपेषु संस्थिताःपाण्डुनन्दन ॥ स्नायुस्थाःपितरस्सर्वे प्रस्रवंसर्वतीर्थजम् ॥ ३४ ॥ सर्वेषांगोमयंश्रेष्ठं पवित्रंपापनाश नम् ॥ खुरेषुपन्नगास्सर्वे पुच्छाग्रेसूर्य्यरश्मयः ॥ ३५ ॥ एवंभूतातुकपिला सर्वदेवमयीकिल ॥ येध्यायन्तिगृहेभक्त्या

बीचमें ब्रह्माहैं और हे तात! बीचमें काल और फँसरी के धारण करनेवाले वरुण हैं ॥ ३१ ॥ यमराज भगवान् मुहँके ऊपरवाले भागमें बैठे हैं और हे भारत! तोंदीमें चन्द्रहैं और फीलियों में देवताहैं ॥ ३२ ॥ और पृथिवी भी नाभी में है जोड़ों में पर्वत ठहरे हैं बड़े वृक्ष व छोटे वृक्ष व लतायें जोडोंकी रास्ते में विद्यमानहैं ॥ ३३ ॥ और हे पाण्डुनन्दन! रोवोंके छेदों में ऋषिलोग बैठे हैं नसों में सब पितर व दूधमें सब तीर्थ रहते हैं ॥ ३४ गोबर सबहीका स्थानहै वह बडा श्रेष्ठ व पवित्र व पापोंका नाश करनेवालाहै खुरों मे सब सांप व पूछके अगिले भागमें सूर्यकी किरणें हैं ॥ ३५ ॥ सब देवताओंका रूप कपिला इसप्रकारकी है अपने घरमें भक्तिसे उसका जो ध्यान

करते हैं वे मुक्तही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल नित्य उठकर भक्तिसे जो कपिलाकी प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातोंद्वीपवाली पृथिवी की प्रदक्षिणा करली है ॥ ३७ ॥ कपिला के पञ्चगव्य मे जो महादेव व जगत् के आधार विष्णु व सूर्य्य व और किसी देवताको स्नान कराता है ॥ ३८ ॥ और हे पाण्डव! पञ्चामृत व पञ्चगव्य से भक्तिपूर्वक स्नान करवाकर जो सालभर तक वेदपाठी ब्राह्मणको रोज २ कपिलाका दान करताहै ॥ ३९ ॥ हे युधिष्ठिर! उन दोनोंके फलको शङ्करजीने बराबर कहाहै और जो कोई मनको वशकियेहुये सूर्यतीर्थमें कपिलाको ब्राह्मणके लिये देवेगा॥४०॥ और दूधवाली, जवान, निर्मल, बछडा व कपडोंसे सयुक्त,

तेमुक्तानात्रसंशयः ॥ ३६ ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या नित्यंकुर्य्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ३७ ॥ कपिलापञ्चगव्येन यःस्नापयतिशङ्करम् ॥ विष्णुंवाजगदाधारं सूर्य्यंवात्वन्यदैवतम् ॥ ३८ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य भक्त्यागव्येनपाण्डव ॥ अब्दंवाश्रोत्रियेनित्यंकपिलांयःप्रयच्छति ॥ ३९ ॥ तुल्यमेतत्फलंप्रोक्तंशङ्करेणयुधिष्ठिर ॥ यःप्रदास्यतिविप्राय रवितीर्थेसुयन्त्रितः ॥ ४० ॥ कपिलांवाथकृष्णांवा श्वेतांरक्तांश्चपाटलाम् ॥ क्षीरिणीन्तरुणींशुभ्रां सवत्सांवस्त्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥ स्वर्णशृङ्गींरौप्यखुरीं विष्णुरूपंद्विजंस्मरन् ॥ आत्मानंविष्णुरूपञ्च धेनुमादित्यरूपिणीम् ॥ ४२ ॥ योददातिमहाबाहो तस्यवासस्त्रिविष्टपे ॥ ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तः सुरापानञ्चदारुणम् ॥ ४३ ॥ गुर्वङ्गनागमःस्तेयः स्वामिद्रोहोगवांवधः ॥ मित्रविश्वासघातञ्च गुरुनिन्दासमुद्भवम् ॥ ४४ ॥ स्थितिर्नष्टेचवंशेच निर्माल्यस्यावलङ्घनम् ॥ कन्यागमागमश्चैव अभक्ष्यस्यतुभक्षणम् ॥ ४५ ॥ वृषलीगमनंरौद्रं कुरूपागमनोद्भवम् ॥ अ

सोनेके सींगोवाली, रूपेके खुरोंवाली, कपिला व कृष्णा व सफेद व लाली व लाल और सफ़ेदरङ्गवाली गऊको ब्राह्मणको व अपनेको विष्णुके रूपसे ध्यान करताहुआ और गऊको सूर्यरूपसे जानताहुआ देताहै हे महाबाहो! उसका वास स्वर्गमें होता है और ब्रह्महत्यासे छूटजाता है दारू का पीना ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥ गुरु की स्त्री में गमन करना, चोरी करना, मालिक से वैर करना, गोहत्या करना, मित्रके साथ में विश्वासघात करना, गुरुकी निन्दा करना ॥ ४४ ॥ नष्ट वशमें रहना, महादेव के निर्माल्य का नांघना, कन्या का भोग करना, नहीं खानेलायक चीजका खाना ॥ ४५ ॥ शूद्रकी स्त्री का भोग करना, कुरूप स्त्री का ग्रहण करना, आग लगादेना,

विष देना और गवाही में झूंठ बोलना ॥ ४६ ॥ हे पाण्डव ! इन सब पापोंको गऊ अपने दानसे नष्ट करदेती है और पवित्र गौवों के सङ्गम व पापों के नाशकर-नेवाले उनके गोडे में ॥ ४७ ॥ हे कुन्तिनन्दन ! जो भक्तिसे प्रेतका श्राद्ध करताहै उसपर सूर्य और महादेवजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ४८ ॥ उस सूर्यतीर्थ में सूर्य के नाम से जो भक्तिसे दान दियाजाता है उसका देनेवाला नर्मदा के प्रसाद से सूर्यलोक में सुख से जाता है ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, देवयान और सुखदायी भीमेश्वर में हे कुरुश्रेष्ठ ! बराबरही पुण्य कहाजाता है ॥ ५० ॥ समुद्रपर्यन्त पृथिवी में येही पांचों तीर्थ प्रसिद्ध हैं पृथिवी के रहनेवाले जो इन पांचोंको नहीं जानते हैं वे मरे

ग्निदंगरदञ्चैव कूटसाक्ष्यसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ तत्सर्वंनाशयेत्पापं धेनुदानेनपाण्डव ॥ सुरभीसंगमेपुण्ये निष्ठुतेपापनाशने ॥ ४७ ॥ श्राद्धंप्रेतस्ययोभक्त्या दापयेत्कुन्तिनन्दन ॥ तस्यप्रीतोभवेत्सूर्य्यः सुप्रीतोभवएवच ॥ ४८ ॥ दानंयद्दीयतेतत्र सूर्य्यमुद्दिश्यभक्तितः ॥ मित्रलोकेसुखंयाति नर्म्मदायाःप्रसादतः ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्देमधुच्छन्दे देवयानेसुखप्रदे ॥ भीमेश्वरेकुरुश्रेष्ठ समंपुण्यंप्रशस्यते ॥ ५० ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां प्रख्यातंतीर्थपञ्चकम् ॥ येनजानन्तिभूमिस्था तेमृतानात्रसंशयः ॥ ५१ ॥ स्नानंदेवार्चनंजाप्यं होमंब्राह्मणपूजनम् ॥ भूमिदानेनवस्त्रेण अन्नदानेनभक्तितः ॥ ५२ ॥ उपानच्छत्रशय्यानांगृहदानेनपाण्डव ॥ ग्रामकन्याप्रदानेन गजदानहयेनच ॥ ५३ ॥ विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयप्रदः ॥ सयातिसर्वतीर्थानि रवितीर्थंयुधिष्ठिर ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राप्रभावेण व्याधयोयान्तिसंक्षयम् ॥ शत्रवोमित्रतांयान्ति विषंवाह्यमृतायते ॥ ५५ ॥ ग्रहास्सर्वेभवन्प्रीताः प्रीतस्तस्यदिवाकरः ॥ तीर्थस्याल्पपयःपीत्वा यत्पुण्यं

ही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ सूर्यतीर्थ में भक्ति से स्नान देवताओं का पूजन, जप, होम, ब्राह्मणोंका पूजन, पृथिवी, कपड़े, अन्न ॥ ५२ ॥ व हे पाण्डव ! जूता, छाता, पलंग, मकान, गांव, कन्या, हाथी, घोडे ॥ ५३ ॥ विद्या और छकडाओं के दान से सबका अभय देनेवाला पुरुष मानो सब तीर्थों व सूर्यतीर्थ को जाता है हे युधिष्ठिर ! ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राके प्रभावसे रोग नष्ट होजाते हैं शत्रु मित्र होजाते और विष अमृत होजाताहै ॥ ५५ ॥ सब ग्रह उससे प्रसन्न होतेहैं और सूर्य भी प्रसन्न

होते हैं इस तीर्थके जलको पीकर मनुष्योंको जो पुण्य होता है ॥ ५६ ॥ और सालभर पीपलकी सेवा व कपिलाके दानसे जो पुण्यहै उसके फलको हे महीपते ! तुम से भक्तिपूर्वक हम कहेंगे ॥ ५७ ॥ सब पाप नष्ट होजाते हैं फूटे बासनका पानी जैसे बहजाताहै तीर्थ के सामने जानेवालों का यह हाल होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ हे पार्थिव ! यहां भीतर और बाहरका तीर्थ आपसे कहागया जो पापी और कृतघ्न हैं अथवा अपने मालिक व मित्रके विरोधी हैं ॥ ५९ ॥ उनसे तीर्थोंकी बात कहना नहीं अच्छा किन्तु पण्डितोंको उनसे हमेशा छिपाना चाहिये ॥६०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेआदित्येश्वरतीर्थकीर्तनोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

जायतेनृणाम् ॥ ५६ ॥ अब्दमश्वत्थसेवायां कपिलायास्तुदानतः ॥ तत्फलंकथयिष्यामि भक्त्यातवमहीपते ॥ ५७ ॥ पापास्सर्वेविलीयन्ते भिन्नपात्रेजलंयथा ॥ तीर्थस्याभिमुखंवृत्तं गच्छतांनात्रसंशयः ॥ ५८ ॥ इहबाह्यान्तरन्तीर्थं कथितन्तवपार्थिव ॥ पापिष्ठानांकृतघ्नानांस्वामिमित्रविरोधिनाम् ॥ ५९ ॥ तीर्थाख्यानंशुभन्तेषां गोपितव्यं सदाबुधैः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेआदित्येश्वरतीर्थकीर्तनोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र करञ्जेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रतेनिहतास्तात दानवास्तत्पदानुगैः ॥ १ ॥ इन्द्राद्यैश्चैवसंहृष्टैःस्तुतोयज्ञस्सुबुद्धिभिः ॥ तेषांयेपुत्रपौत्राश्च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २ ॥ तत्रस्थास्तुसुरास्सर्वे स्थापयित्वाह्युमापतिम् ॥ इन्द्रश्चन्द्रयमास्सूर्य्यः स्थापयित्वेष्टसिद्धये ॥ ३ ॥ हृष्टपुष्टास्सुरास्सर्वे जग्मुराकाशसंस्थिताः ॥ दानवानांमहाभाग करोट्यःपतितायतः ॥ ४ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं करोटीतिमहीपते ॥ विख्यातंभारतेलोके भूपृष्ठेपाण्डुनन्द

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम करञ्जेश्वर तीर्थको जावे हे तात ! जहां देवताओंसे वे दानवलोग मारेगये हैं ॥ १ ॥ सुन्दर बुद्धिवाले व प्रसन्न इन्द्र आदि देवताओंने यज्ञकी स्तुति की है उन दानवोंके जो लडके व पोते रहे उनको भी पछिले वैरकी सुध करतेहुये मारा ॥ २ ॥ वहांपर विद्यमान होरहे सब देवता लोग महादेवको स्थापनकर अर्थात् अपने मनकी सिद्धिके वास्ते इन्द्र, चन्द्रमा और यमराज महादेवको थापकर ॥ ३ ॥ प्रसन्न व पुष्ट होरहे सब देवता आकाशमें ठहरे हुये अपने लोकको चलेगये हे महाभाग ! जहां दानवोंकी रीरें गिरीथीं ॥ ४ ॥ हे महीपते ! वहां तबसे वह तीर्थ करोटी नामसे प्रसिद्ध होताहुआ हे पाण्डुनन्दन !

वह तीर्थ भारतखण्डकी पृथिवीपर होताहुआ ॥ ५ ॥ उजियाले पाखकी अष्टमी व चौदसको भक्तिसे उपासकर रातमें महादेवके आगे जागरणकरे ॥ ६ ॥ महादेवकी कथा व वेदोंका उच्चारणकरे निर्मल प्रभातके होनेपर यत्नसे महादेवका पूजनकर ॥ ७ ॥ पञ्चामृतसे नहवाय चन्दन से पूजे और कमलके फूलों से यत्नके साथ पूजन करे ॥ ८ ॥ फिर दक्षिणा देकर बहुरूप मन्त्रको जपे तो उसी फलको पाताहै जोकि नर्मदाके आदित्येश्वर तीर्थमें कहागयाहै ॥ ९ ॥ और हे नराधिप ! सुनेहुये तीर्थके प्रभावको जो पढ़े हे महीपते ! वह सब हम तुम्हारी भक्तिसे कहेंगे ॥ १० ॥ कहेहुये विधान से नाभितक जलमें खड़ा होकर वहीं इन्द्रियोंको जीतेहुये प्रेतका श्राद्ध

न ॥५॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यांशुभेपक्षेतुभक्तितः ॥ उपोष्यशूलिनश्चाग्रे रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ६ ॥ तत्कथालापसंयुक्तं वेदोद्गीतन्तथैवच ॥ प्रभातेविमलेप्राप्ते स्थाणुंसम्पूज्ययत्नतः ॥ ७ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य श्रीखण्डेनैवचार्चयेत् ॥ शतपल्लवपुष्पैश्च पूजयेच्चप्रयत्नतः ॥ ८ ॥ बहुरूपंजपेन्मन्त्रं दक्षिणान्तुप्रदायच ॥ तत्फलंसमवाप्नोति आदित्येश्वरनार्म्मदे ॥ ९ ॥ श्रुततीर्थप्रभावंवै यःपठेच्चनराधिप ॥ तत्सर्वंकथयिष्यामि भक्त्यातवमहीपते ॥ १० ॥ यथोक्तेनविधानेन नाभिमात्रेजलेस्थितः ॥ श्राद्धंतत्रैवप्रेताय कारयेतजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥ विविधैरग्रपाठैश्च वेदाध्ययनतत्परैः ॥ गोहिरण्येन सम्पूज्य वस्त्रताम्बूलभोजनैः ॥ १२ ॥ भूषणैःपट्टदानैश्च ब्राह्मणंपाण्डुनन्दन ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुसम्पूज्यकामिकंभोजनंददेत् ॥ १३ ॥ भवेत्कोटिगुणंतस्य नात्रकार्य्याविचारणा ॥ तत्रतीर्थेयथाभक्त्या त्यजेद्देहञ्चमानद ॥ १४ ॥ तस्य तीर्थेभवेत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ यावदस्थिमनुष्यस्यतिष्ठतेनर्म्मदाम्भसि ॥ १५ ॥ तावद्वसतिधर्म्मात्मा शिव

करे ॥ ११ ॥ बहुत अच्छे अनेक तरहके पाठों व वेदोंके पाठोंसे अथवा गऊ, सोना, कपड़े, ताम्बूल, भोजन ॥ १२ ॥ जेवर और रेशमी कपड़ोंके दानोंसे हे पाण्डुनन्दन ! उस तीर्थ मे ब्राह्मणका पूजनकर उसको इच्छाभोजन देवे ॥ १३ ॥ तो उसको करोड गुना फल होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये और हे मानद ! उस तीर्थ में जो भक्तिसे अपनी देहको छोंड़े ॥ १४ ॥ तो हे नराधिप ! उसको जो पुण्य होताहै तिसको तुम सुनो कि मनुष्यकी हड्डी जबतक नर्मदाके जलमें रहती है ॥ १५ ॥

तबतक वह धर्मात्मा अतिदुर्लभ शिवलोकमें रहताहै तदनन्तर समय आनेपर वहासे गिरकर देवतासे फिर मनुष्य होताहै ॥ १६ ॥ कोटिध्वजोंका मालिक, लक्ष्मीवाला, सब धर्मों से युक्त, बुद्धिवाला, जीवित पुत्रवाला होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ और पृथिवीपर प्रसिद्ध भारी उमरवाला मनुष्य होताहै इन्द्र, चन्द्रमा, यमराज, रुद्र, आदित्य, वसु ॥ १८ ॥ और सब विश्वेदेवोंने लोकों के हितकी इच्छा से नर्मदाके उत्तर किनारेपर महादेवका स्थापन कियाहै ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मरे के नामसे वहा मकान बँनवाताहै तो मनुष्यों में श्रेष्ठ वह मनुष्य उत्तमगतिको पाताहै ॥ २० ॥ और नीतिसे कमायेहुये धनसे जो वहां श्राद्ध करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री

लोकेसुदुर्लभे ॥ ततःकालात्प्रच्युतश्च देवोमानुष्यताङ्गतः ॥ १६ ॥ कोटिध्वजपतिःश्रीमाञ्जायतेनात्रसंशयः ॥ सर्व धर्म्मसमायुक्तो मेधावीजीवपुत्रकः ॥ १७ ॥ विख्यातश्चधराप्रष्ठे दीर्घायुर्मानवोभवेत् ॥ इन्द्रचन्द्रयमैरुद्रैरादित्यैर्वसु भिस्तथा ॥१८॥ विश्वेदेवैस्तथासर्वैः स्थापितस्त्रिदशेश्वरः॥ नर्म्मदोत्तरकूलेतु लोकानांहितकाम्यया ॥ १९ ॥ मानवः प्रेतमुद्दिश्य प्रासादंकारयेत्तुयः ॥ तस्मिन्नरवरश्रेष्ठः ससद्गतिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ न्यायोपार्जितद्रव्येण यःश्राद्धंकुरु तेत्रवै ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः स्त्रियःशूद्राश्चसत्कृताः ॥ २१ ॥ तेपियान्तिपरेलोके शाङ्करेसुरपूजिते ॥ यःश्रृणोतिन रोभक्त्या माहात्म्यंतीर्थजंनृप ॥ २२ ॥ तस्यपापंप्रणश्येतषण्मासेनतुयत्कृतम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र कुमारेश्वरमुत्तमम् ॥ २३ ॥ प्रसिद्धंसर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ षण्मुखेनतपस्तप्तं सर्वपातकनाशन म् ॥ २४ ॥ स्नानंचपरयाभक्त्या सिद्धिःप्राप्तानराधिप ॥ देवसैन्याधिपोराजन्सर्वशत्रुविमर्द्दनः ॥ २५ ॥ उग्रतेजाम

और शूद्र कोईहो सत्कारयुक्त ॥ २१ ॥ वे भी देवताओं से पूजेहुये महादेवके श्रेष्ठलोकको जाते हैं और हे नृप! जो मनुष्य तीर्थके माहात्म्यको भक्तिसे सुनताहै ॥ २२ ॥ उसका छह महीने का कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कुमारेश्वरको जावे ॥ २३ ॥ जोकि सब तीर्थों में प्रसिद्ध अगस्त्येश्वर कहाजाताहै वहा सब पापों के नाश करनेवाले तपको स्वामिकार्त्तिकने कियाहै ॥ २४ ॥ और बड़ी भक्तिसे स्नान भी कियाहै इससे हे नराधिप! सिद्धिको पाते

हुये हे राजन्! जिससे सब देवताओंकी सेनाके मालिक व सब शत्रुओंके मारनेवाले ॥ २५ ॥ तीर्थकी सेवासे बड़े तेजवाले महात्मा होतेहुये तबसे लेकर नर्मदाके तटमें वह तीर्थ प्रसिद्ध होताहुआ ॥ २६ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये अपने मनको एकाग्र कियेहुये उस तीर्थमें जो भक्तिसे विशेषकर कातिककी अष्टमी व चौदसको ॥ २७ ॥ दही व दूध और घी से महादेवको स्नान करावे व गावे और विधिसे पिण्डदान करे ॥ २८ ॥ छह कर्मोंके करनेवाले, वेदपाठी ब्राह्मणों से जो कुछ वहां दियाजाताहै हे पाण्डुनन्दन! हे पार्थ! वह अक्षय होताहै ॥ २९ ॥ हे नृप! यह तीर्थ सब तीर्थोंसे बड़ाहै इसको चन्द्रमाने बनायाहै यह सब कुमारेश्वर तीर्थका फल तुमसे कहागया ॥३०॥

हात्माच संजातस्तीर्थसेवनात् ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं विख्यातंनर्म्मदातटे ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या एकचित्तो जितेन्द्रियः ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां कार्त्तिकस्यविशेषतः ॥ २७ ॥ स्नापयेद्गिरिजानाथं दधिदुग्धेनसर्पिषा ॥ गीतंतत्र प्रकर्तव्यं पिण्डदानंयथाविधि ॥ २८ ॥ ब्राह्मणैःश्रोत्रियैःपार्थ षट्कर्म्मनिरतैःसदा ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेतत्र अक्षयंपाण्डुनन्दन ॥ २९ ॥ सर्वतीर्थात्परंतीर्थं निर्मितंशशिनानृप ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजंफलम् ॥ ३० ॥ कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्यतेपाण्डुनन्दन ॥ मृतःस्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ३१ ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र अगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रसिद्धोमहाभाग अगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथंसिद्धोमहाभाग अगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ कुम्भोद्भवोमहाभाग मित्रावरुणसम्भवः ॥ ३३ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ महाप्रश्नोमहाराज यस्त्वयापरिप्रच्छितः ॥ ३४ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःसदा ॥ पुराकृतयुगेतात

हे पाण्डुनन्दन! कुमारके दर्शनसे पुण्य होताहै और वहां मराहुआ स्वर्गको पाताहै यह महादेवका कहाहुआ सत्यहै ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम अगस्त्येश्वरको जावे वहां हे महाभाग! मुनियोंमे श्रेष्ठ अगस्त्यजी सिद्धहुये हैं ॥ ३२ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि हे महाभाग! मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य वहां कैसे सिद्धहुये जोकि हे महाभाग! मित्र और वरुणके वीर्यसे कलश से पैदाहुये हैं ॥ ३३ ॥ वे नर्मदातटमें बैठकर कैसे सिद्ध हुये सो सब आप मुझसे कहें तब मार्कण्डेय बोले कि हे महाराज! जो

तुमने पूंछाहै वह बडाभारी प्रश्नहै ॥३४॥ सो उसको हम आपसे कहेंगे आप एकाग्रमन होकर सुनो हे तात ! आगे सत्ययुग में भारसे दबीहुई पृथिवी ॥ ३५ ॥ इन्द्र से
अपना हाल कहने के वास्ते स्वर्गको गई और हे नृप ! इन्द्र से दैत्योंके भारसे दबेहुये जगत्को बताया ॥ ३६ ॥ तब इन्द्र बोले कि हे सुन्दरि ! हमारे व तुम्हारे व जगत्
के बनानेवाले ब्रह्माहैं इससे अपने मन्त्री देवताओंके सहित हम ब्रह्मलोकको जावेंगे ॥३७॥ तदनन्तर सबलोग जहां ब्रह्माथे वहांको गये तहां बृहस्पति बोले कि हे ब्रह्मन् !
दैत्यो के भारसे दबीहुई पृथिवी निरालम्ब होरहीहै ॥३८॥ उस भारको नहीं सहसकी यह देवीरसातलको जातीहै इससे हे जगतीपते ! पृथिवीके भारका उपायकरो ॥३९॥

भारार्ताजगतीस्थिता ॥३५॥ विज्ञप्तुकामादेवेशं नाकपृष्ठंगतान्नृप ॥ इन्द्रायकथयामास दैत्यभारार्दितंजगत् ॥ ३६ ॥
इन्द्रउवाच ॥ ब्रह्माचजगतःकर्ता तवैवममसुन्दरि ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यामि मन्त्रिभिर्दैवतैःसह ॥ ३७ ॥ ततस्सर्वेगतास्त
त्रयत्रासौकमलासनः ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ब्रह्मन्निर्लम्बनाजाता दैत्यभाराद्वसुन्धरा ॥ ३८ ॥ असहन्तीतुतंभारं याति
देवीरसातलम् ॥ प्रतीकारंपृथिव्याश्च कुरुष्वजगतीपते ॥ ३९ ॥ सर्वसत्त्वोपकाराय सृष्टिस्त्वयिजगत्पते ॥ पितामह
उवाच ॥ कर्तास्मिसर्वजगतामयोनिकलशोद्भवः ॥ ४० ॥ अगस्त्यस्तपसांराशिः शक्तोदैत्यनिवारणे ॥ एकतःसर्वदे
वानांबलंतेजश्चजायते ॥ ४१ ॥ एकतोऋषिमुख्यस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा सर्वेदेवाःसवासवाः ॥
४२ ॥ तथैवकारणंचान्यत्कथयन्तिस्मभारत ॥ विज्ञातंदेवदेवेश विश्वामित्रचिकीर्षितम् ॥ ४३ ॥ त्रिशङ्कर्थेचयज्ञोयं
विश्वामित्रेणसाधितः ॥ स्पर्द्धयाचवशिष्ठस्य यज्ञाङ्गानिसमासृजत् ॥ ४४ ॥ स्पर्द्धयासृजताकाशं भूमिंचान्यांसमा

हे जगत्पते ! सब जीवोंके उपकारके वास्ते तुम्हारी रचना है तब ब्रह्मा बोले कि सब जगत्के बनानेवाले हमहैं परन्तु विना योनिके कलश से पैदाहुये ॥ ४० ॥
और तपस्याका ढेर ऐसे अगस्त्यमुनि दैत्योंके हटाने में समर्थ है क्योंकि एक तरफ देवताओंका बल और तेजहो ॥ ४१ ॥ और एक तरफ अगस्त्यका तेज व बलहो वह
अधिक होगा इसमें संशय नहीं है ब्रह्माजीके वचनको सुन इन्द्रसहित सब देवता ॥ ४२ ॥ उसीप्रकार अन्य कारणको हे भारत ! कहतेहुये देवताओंने कहा कि हे देव-
देवेश ! विश्वामित्रको जो करनाहै उसको हम जानते हैं ॥ ४३ ॥ कि त्रिशंकु राजाके वास्ते विश्वामित्रने इस यज्ञको सिद्ध कियाहै वशिष्ठको हराय देनेके वास्ते यज्ञके

अङ्गोंको रचतेहुये ॥ ४४ ॥ उसी ईर्षासे आकाश व दूसरी जमीनको रचतेहुये जैसे हिमालय पर्वत पूर्व और पश्चिमके समुद्रको ॥ ४५ ॥ व्यासकर देवताओं के कामोंको करने के वास्ते पृथिवीमें स्थित होरहाहै इसीतरह यह विन्ध्याचल भी विश्वामित्रकी इच्छा से हिमालय से ईर्षा करताहुआ बढ़ाहै ॥ ४६ ॥ हे सुरेश्वर ! विश्वामित्रने देवताओंके कामोंको रोंकाहै इससे हे जगद्गुरो ! दोनों बातोंका उपाय आप सोचें ॥ ४७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि इसचालके चलनेवाले विश्वामित्रके गुरु मुनियों मे श्रेष्ठ ब्राह्मण एक अगस्त्यही है जोकि बडे तेजवाले हैं ॥ ४८ ॥ इससे देवताओं की रास्तेके खोलनेवाले अगस्त्य होवेंगे इसमें संशय नहीं है क्योंकि सब बुद्धिमान्

सृजत् ॥ यथातुहिमवच्छैलः पूर्वापरमहोदधिम् ॥ ४५ ॥ व्याप्यैवसंस्थितोभूम्यां देवकार्य्यार्थसाधकः ॥ तथासौस्पर्द्धतेविन्ध्यः स्पर्द्धयाकौशिकस्यच ॥ ४६ ॥ तिष्ठन्तिदेवकार्य्याणिकौशिकेनसुरेश्वर ॥ कार्य्यद्वयप्रतीकारं चिन्तयस्वजगद्गुरो ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकस्तस्यगुरुर्विप्रोह्यगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ उत्पथेवर्तमानस्य कौशिकस्यदुरासदः ॥ ४८ ॥ अगस्त्योमार्गभेत्तावै भविष्यतिनसंशयः ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता सर्वेषांवैनसंशयः ॥ ४९ ॥ वर्द्धनंपर्वतस्यास्य देवमार्गप्रवर्तनम् ॥ शासःकौशिकविप्रस्य वसुधायांसमन्ततः ॥ ५० ॥ क्षमःसमस्तकार्य्याणां मित्रावरुणनन्दनः ॥ एवंतुनिश्चयंकृत्वा देवाःसेन्द्रपितामहाः ॥ ५१ ॥ ययुर्वसुन्धरासार्द्धं हिमवन्तंनगेश्वरम् ॥ ददृशुस्तेस्थितंविप्रंध्यायमानञ्चयोगिनम् ॥ ५२ ॥ सुदृढंनिश्चलध्यानं मोक्षमार्गनियामकम् ॥ तंदृष्ट्वास्तोतुमारब्धाः सेन्द्रचन्द्रास्सवारुणाः ॥ ५३ ॥ देवाऊचुः ॥ जयमित्रवरस्वदेवानां भगवन्कलशोद्भव ॥ प्रसादसुमुखोभूत्वा देवानांभय

मनुष्योंका सिखानेवाला गुरुही होताहै इसमें सशय नहीं है ॥ ४९ ॥ इससे इस पर्वतको बढ़ने से रोंकना और देवताओंकी रास्तेका खोलना और सब ओर इस पृथिवी पर विश्वामित्रका सिखाना ॥ ५० ॥ इन सब कामों के करने में अगस्त्यही समर्थ हैं ऐसे निश्चयको कर इन्द्र और ब्रह्माके सहित सब देवता ॥ ५१ ॥ पृथिवीके सहित पर्वतों के ईश्वर हिमालयको जातेहुये और उन सबोने वहा ध्यान करते हुये योगी ब्राह्मण अगस्त्यको वर्तमान देखा ॥ ५२ ॥ बहुत पुष्ट निश्चल ध्यानके करनेवाले व मोक्षके वास्ते नियमके करनेवाले उन अगस्त्यको देख इन्द्र, चन्द्रमा और वरुणके सहित सब देवता स्तुति करनेका प्रारम्भ करतेहुये ॥ ५३ ॥ देवता बोले कि

हे कलशोद्भव, भगवन्! आप अपनी दयासे प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं के जयकी इच्छाकरो क्योंकि देवताओं को भय आगया है ॥ ५४ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे देवताओ! क्या काम पैदा होगया है जिससे इतनी दूर सदा एकान्तके रहनेवाले जो हमहैं तिस मेरे पास आप सबलोग आयेहो ॥ ५५ ॥ इससे कहो जो हम को करना होवे वह सब हमकरें तदनन्तर थोडी हवासे डोलतेहुये कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ ५६ ॥ एक हजार नेत्रों से इन्द्रने बृहस्पतिको इशारा किया तब बृहस्पति बोले कि हे महाभाग! आगे देवताओं के कार्य्योंकी सिद्धिके वास्ते आपने ॥ ५७ ॥ सब समुद्रोंको सोखलिया था जैसे ईश्वर जगत्को सुखादेवे अब इस समयमें अपने

मागतम् ॥ ५४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंकार्य्यन्तुसमुत्पन्नं येनदूरंसमागताः ॥ एकान्तवासिनंनित्यं तम्मांयूयंसुरा श्चभोः ॥ ५५ ॥ उच्यतांयन्मयाकार्य्यं तत्सर्वंकरवाण्यहम् ॥ ततोमन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना ॥ ५६ ॥ गुरुंनेत्रसहस्रेण प्रेरयामासवृत्रहा ॥ वाक्पतिरुवाच ॥ त्वयापूर्वंमहाभाग देवकार्य्यार्थसिद्धये ॥ ५७ ॥ समुद्राःक र्षितास्सर्वे ईश्वरेणयथाजगत ॥ विध्वस्तास्त्रिदशास्सर्वे दानवैर्वलदर्प्पितैः ॥ ५८ ॥ जितादेवास्तुतेसर्वे दानवेभ्यः पराङ्मुखाः ॥ तेषांवरापहाराय समुद्राश्शोषिताःपुरा ॥ ५९ ॥ साम्प्रतंदुःखिताधात्री पश्येमांभूतधारिणीम् ॥ दैत्यभारेणदुःखार्ता भूमिर्जातारसातलम् ॥ ६० ॥ गन्तव्यंदक्षिणामाशां तपोराशेद्विजोत्तम ॥ नर्म्मदोदधिमर्या दां कुरुपुण्यांमहाद्विज ॥ ६१ ॥ वृद्धिंविन्ध्यनगस्यापि देवकार्य्यंसमुद्धर ॥ कौशिकोथकनीयांस्ते यउन्मार्गप्र

बलसे अहङ्कारको प्राप्तहोरहे सब दानवोंने देवताओं को हराय दियाहै ॥ ५८ ॥ हारेहुये उन सब देवतालोगोंने दानवोंसे अपने मुखोंको फेरलिया है उन दानवों के वरको नाश करने के लिये आगे आपने समुद्रोंको सोखलिया था ॥ ५९ ॥ सो अब इस समयमें पृथिवी दुःखित होरही है इस प्राणियोंके धारण करनेवाली पृथिवीका आप देखो दैत्यों के भार व दुःख से विकल पृथिवी रसातल को चलीजावेगी ॥ ६० ॥ इस से हे तपोराशे ! हे द्विजोत्तम ! अब आप को दक्षिण दिशा चलना चाहिये हे महाद्विज! नर्मदा और समुद्रकी मर्य्यादा को साफ करदेवो ॥ ६१ ॥ देवताओं के कार्य के वास्ते विन्ध्यपर्वत का बढ़नाभी रोकदेवो जो उसके बढ़ानेवाले विश्वामित्र

हैं वे आपसे छोटे हैं ॥ ६२ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे वसुन्धरे ! हम देवताओं के कार्य को करेंगे तुम सुखसे बैठो हम दक्षिण दिशा को जावेंगे और अपने शिष्य के रोंकने में हम समर्थ हैं ॥ ६३ ॥ इस पर्वत की बाढ़िको हम रोंकेंगे इस में संशय नहीं है तब देवता बोले कि दक्षिण को जाकर देवताओं के सहित इसको जरूर देखो ॥ ६४ ॥ हे विप्र ! सिंह के सूर्य होनेपर जो लोग भक्ति से नहीं जावेंगे उन का धन व धान्य और सुख जरूर नष्ट होगा ॥ ६५ ॥ देवताओं के अधिकार के वास्ते गयेहुये अगस्त्यजी जरूरही देखपड़ेंगे देवतालोग इस प्रतिज्ञा को कर पृथिवी के सहित जातेहुये ॥ ६६ ॥ तपस्याकी राशि जो अगस्त्य है उनके पीछे चारो तरफ

वर्तकः ॥ ६२ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्य्यंकरिष्यामि सुखंतिष्ठवसुन्धरे ॥ गच्छामिदक्षिणामाशां शक्तःशिष्यस्यवारणे ॥ ६३ ॥ वर्द्धनंपर्वतस्यास्य वारयामिनसंशयः ॥ देवाऊचुः ॥ याम्यांगत्वासुरैस्सार्द्धं द्रष्टव्योयन्नसंशयः ॥ ६४ ॥ सिंहस्थेभास्करेविप्र येनयास्यन्तिभक्तितः ॥ नश्यतेचधनंधान्यं तेषांसौख्यन्नसंशयः ॥ ६५ ॥ अधिकारायदेवानां सचदृष्टोभविष्यति ॥ तत्प्रतिज्ञायगीर्वाणाःसमंवसुधयागताः ॥ ६६ ॥ अगस्त्यंतपसांराशिं निर्गच्छन्तस्समन्ततः ॥ अगस्त्यपदविक्षेपाच्चलिताचवसुन्धरा ॥ ६७ ॥ मनोवेगेनसम्प्राप्तः कौशिकोयत्रतापसः ॥ कौशिकोपिगुरुंदृष्ट्वा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ६८ ॥ धन्योहंमुनिशार्दूल प्रीतोहंतवदर्शनात् ॥ अर्घपात्रंसमादाय दध्यक्षतसमन्वितम् ॥ ६९ ॥ दूर्वांचचन्दनंपूज्य भक्त्यापात्रेसमाहितम् ॥ गुरुपादपरिक्षिप्त उवाचमधुरन्तदा ॥ ७० ॥ आदेशोदीयतांतात तवप्रेष्योद्विजोत्तम ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्य्यविघातञ्च कौशिकत्वंविसर्जय ॥ ७१ ॥ देवकार्य्यवि

से सब चले अगस्त्य के पांवों के धरने से पृथिवी डगमगाती हुई ॥ ६७ ॥ मन के वेगसे वहां पहुँचे जहां तपस्वी विश्वामित्र थे विश्वामित्र भी गुरुको देख साष्टाङ्गप्रणामकर बोले ॥ ६८ ॥ कि हे मुनिशार्दूल ! मैं धन्यहूं और आपके दर्शनसे बडा प्रसन्न हुआ ऐसे कह दही और अक्षतों से युक्त अर्घपात्र को लेकर ॥ ६९ ॥ पात्रमें रक्खे हुये दूब व चन्दनसे भक्तिपूर्वक उनका पूजनकर गुरुके चरणोंपर गिरे और तब मीठे वचन बोले ॥ ७० ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञादीजावे हे द्विजोत्तम ! मैं आपका दासहूं तब अगस्त्य बोले कि हे कौशिक ! देवताओं के कामों का रोंकना तुम छोड़देवो ॥ ७१ ॥ हे विश्वामित्र ! जो तुम्हारी निश्चल भक्ति हमारे ऊपर होवे तो देव-

ताओंके कार्य के विरुद्ध कामको तुम मतकरो ॥ ७२ ॥ और इस सब कुमार्गकी चालको तुम छोंडदेवो तब विश्वामित्र बोले कि बुद्धिवालों का सिखानेवाला गुरु होता
है और मूर्खोंका सिखानेवाला राजा होताहै ॥ ७३ ॥ और यहा छिपे पापोंवाले मनुष्यों के सिखानेवाले यमराज हैं वशिष्ठ के विरोधसे त्रिशंकु ने मुझ से अतियाचना
की थी ॥ ७४ ॥ सो आजसे हे द्विजोत्तम ! मैंने उन सब बातों को छोड दिया ऐसे कहे गये अगस्त्यजी अतिदुर्लभ नर्मदा के तटको शीघ्र चलेगये ॥ ७५ ॥ उत्तर
वाले किनारे पर बैठकर वहा तपस्या का प्रारम्भ करतेहुये नर्मदा तो तीनों लोकों में पवित्र व पापोंकी नाश करनेवाली है ॥ ७६ ॥ मित्र और वरुण के पुत्र अगस्त्य

तदात्वंवर्जयेस्सर्वमुन्मार्गस्यप्रवर्तनम् ॥ सृष्टेन कर्मणानप्रवर्तसे ॥ यदितेनिश्चलाभक्तिर्विश्वामित्रममोपरि ॥ ७२ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्तादुरात्मनाम् ॥ ७३ ॥ इहप्रच्छन्नपापानां शास्तावैवस्वतोयमः ॥ स्पर्धयाचवशिष्ठस्य त्रिशङ्कुर्मेसुयाचितः ॥ ७४ ॥ अद्यप्रभृतितत्सर्वं त्यक्तमेवद्विजोत्तम ॥ इत्युक्तःप्रययौशीघ्रं रेवातीरंसुदुर्लभम् ॥ ७५ ॥ उत्तरंतटमासाद्य तपस्तत्रसमारभत् ॥ नर्म्मदात्रिषुलोकेषुपवित्रापापनाशिनी ॥ ७६ ॥ निश्चयंपरमंकृत्वा मित्रावरुणनन्दनः ॥ शिलातलेनिविष्टस्तु चचारविपुलंतपः ॥ ७७ ॥ वायुभक्षस्सदाकालं कुम्भयोनिर्महातपाः ॥ ज्ञातोभक्तियुतःश्रेष्ठ ईश्वरेणयुधिष्ठिर ॥ ७८ ॥ प्रत्यक्षोद्वादशेवर्षे सञ्जातःपार्वतीपतिः ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठ तपसाद्योतितन्नभः ॥ ७९ ॥ निश्चयंतवतुष्टोस्मि मित्रावरुणनन्दन ॥ वर्षायुतसहस्रेण नान्योवरदोह्यहम् ॥ ८० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ संसारपल्वलातीतसृष्टिजन्मविवर्जित ॥ दुर्लक्ष्यासुरसङ्घानां प्रमथेशनमो

जी उत्तम निश्चयको कर चट्टानके ऊपर बैठकर बडे तपको करतेहुये ॥ ७७ ॥ बडे तपवाले अगस्त्यजी हमेशा हवाका भोजन करनेलगे तब हे युधिष्ठिर ! महादेवजी
उनको श्रेष्ठ व भक्ति मे युक्त जाना ॥ ७८ ॥ इस से पार्वतीजी के पति महादेवजी बारहवीं वर्षमें उनको प्रत्यक्ष होकर मिले और महादेवजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ !
वाह २ आपने अपनी तपस्यासे आकाश को उजेरा करदिया है ॥ ७९ ॥ हे मित्रावरुणनन्दन ! हम निश्चय मे आपपर प्रसन्न हैं औरो को हम हजारो वर्षों मे भी
वर के देनेवाले नहीं होसक्ते हैं ॥ ८० ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे संसाररूपी झील से अलग रहनेवाले ! हे ससार मे जन्म के नहीं लेनेवाले ! हे दैत्यों को दुःखसे देख

पडनेवाले ! हे गणो के मालिक ! आप के लिये नमस्कार है ॥ ८१ ॥ नन्दी व स्कन्दआदि गण व देवता मोह को प्राप्त होरहे वृथा क्लेश को प्राप्त होते हैं क्योंकि जो सनत्कुमार आदि उत्तम व्रतवाले बडे २ ऋषिलोग हैं ॥ ८२ ॥ वे भी आपके रूप को नहीं जानते हैं इससे हे शम्भो ! हे नाथ ! आप के लिये नमस्कार है ब्रह्माआदि सब देवता आपको दिन रात ध्यावते हैं ॥ ८३ ॥ फिर भी ये लोग आप के रूपको नहीं देखते हैं इससे हे धातः, देव ! आपके लिये नमस्कार है तब महादेवजी बोले कि ऊपर रहताहै वीर्य जिनका और योनि से नहीं पैदा होनेवाले हे विप्रेन्द्र ! आपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ८४ ॥ पार्वती के सहित आपकी भक्ति से बँधेहुये हम फिर भी

स्तुते ॥ ८१ ॥ नन्दिस्कन्दगणादेवा वृथाक्लिश्यन्तिमोहिताः ॥ सनत्कुमारमुख्याश्च ऋषयःशंसितव्रताः ॥ ८२ ॥ त्वद्रूपन्तेनजानन्ति शम्भोनाथनमोस्तुते ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वे ध्यायन्तित्वामहर्निशम् ॥ ८३ ॥ नैतेपश्यन्तित्वद्रूपं धातर्देवनमोस्तुते ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रसन्नस्तवविप्रेन्द्रऊर्द्ध्वरेतस्त्वयोनिज ॥ ८४ ॥ तवभक्तिगृहीतोहंप्रसन्नउमया सह ॥ अगस्त्यउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ ८५ ॥ प्रत्यक्षोभवतीर्थेस्मिन्यदिसत्यंवरप्रदः ॥ अन्तर्जलेसदाकालं धर्म्माध्यक्षोमहेश्वर ॥ ८६ ॥ शिलायांभवनित्यञ्च नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ देवकार्य्यस्यकर्ताहं त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८७॥ तथेतिचोक्त्वावृषवाहनोपि जगामकैलासनगन्नगेशः ॥ अयोनिजोयोगबलेनयुक्तः प्रविद्ययालिङ्गबलाच्छिवस्य ॥ ८८ ॥ जगामदक्षिणामाशां सुरसङ्घैरभिष्टुतः ॥ तपोवनंयथापुण्यं देवदानवसेवितम् ॥ ८९ ॥ प्रविष्टोमुनिशार्दूलः पवित्रंदेवकम्बलम् ॥ निश्चलासुसमादेवी संस्थिताधरणीतथा ॥ ९० ॥ पुष्पाणिववृषुर्देवा जयश

प्रसन्न हैं तब अगस्त्यजी बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और जो आपको मुझे वरदेने योग्य है ॥ ८५ ॥ तो जो सत्यही वरके देनेवाले हो तो इस तीर्थ मे प्रत्यक्ष होवो हे धर्मके मालिक, महेश्वर ! जल के भीतर हमेशा आप रहो ॥ ८६ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर पत्थरकी शिला में भी हमेशा वासकरो और हे जगत्पते ! आपके प्रसाद से देवताओ के कामके करनेवाले हम होवें ॥ ८७ ॥ कैलास पर्वत के मालिक महादेवजी ऐसाहीहो, यह कहकर कैलास पर्वत को चलेगये और योगबल व महादेव के बल उत्तम विद्या से युक्त अगस्त्य भी ॥ ८८ ॥ देवताओं से स्तुति कियेगये मुनिश्रेष्ठ दक्षिण दिशाको चलेगये देवता व दैत्योंसे सेवित

पुण्यवाले व पवित्र देवकम्बल नाम तपोवन में पैठतेहुये और पृथिवीदेवी निश्चल व अत्यन्त बराबर होकर स्थित होतीहुई ॥ ८६ । ९० ॥ देवतालोग फूलोंकी वर्षा
व जय जयकार को बार २ करतेहुये युधिष्ठिर बोले कि हे मुनिसुव्रत ! उस तीर्थ की जो पुण्यहो उसको कहो ॥ ९१ ॥ क्योंकि हम ब्राह्मण व भाइयों के सहित इस
का पूरा हाल सुना चाहते हैं जिससे यह तीर्थ पितर व सब तीर्थों व सब जीवोंका उपकार करनेवालाहै ॥ ९२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे जनाधिप ! यह तीर्थ सर्व
कालमें पितरों को मोक्षका देनेवाला कहागया है कातिक मास के अँधेरेपाखकी शिवचतुर्दशीको ॥ ९३ ॥ काम और क्रोधको छोड जो मनुष्य भक्तिसे उपासकर व शमी

आदिमध्यावसानेच ब्राह्मणैस्स
ह्वदंपुनःपुनः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ तस्यतीर्थस्ययत्पुण्यं कथ्यतांमुनिसुव्रत ॥ ९१ ॥ पितॄणांमोक्षदंप्रोक्तं सर्वकालेजनाधि
हबान्धवैः ॥ पितॄणांसर्वतीर्थानां सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ ९२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शमीतरुम
प ॥ शिवाख्यांकार्त्तिकेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ९३ ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या कामक्रोधविवर्जितः ॥ गवांघृतेनदेवेशं रात्रौचस्नापये
मास्थाय रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ९४ ॥ तत्कथालापसंयुक्तोधर्म्माख्यानैर्द्विजैस्सह ॥ पञ्चामृतेनगव्ये
त्पुनः ॥ ९५ ॥ घटेनैवघटार्द्धेन तदर्द्धेनस्वशक्तितः ॥ घृतेनबोधयेद्दीपं घृतंविप्रायदापयेत् ॥ ९६ ॥ वेदाभ्यसनशीलांश्च परदारविवर्जितान् ॥
न स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ प्रभातेपूजयेद्विप्रान्स्वदारनिरतान्सदा ॥ ९७ ॥ वेदद्वेषणशीलाश्च कुब्जाश्च
शूद्रसेवारतानित्यं धूर्तकर्म्मरताजनाः ॥ ९८ ॥ पतिताःकूटसाक्ष्येण प्रतिग्रहरताःसदा ॥ पूज्यानित्यंयुधिष्ठिर ॥ १०० ॥
विकलाःसदा ॥ ९९ ॥ हीनातिरिक्तगात्राये द्विजाःश्राद्धेविवर्जिताः ॥ वेदोक्तेनविशुद्धाङ्गाः

वृक्षके नीचे बैठकर रातको जागरण करे ॥ ९४ ॥ और महादेवकी कथाको कहे फिर धर्म के कहनेवाले ब्राह्मणों के सहित गौवों के घी से रातमें महादेव को स्नान
करावे ॥ ९५ ॥ एक घडा व आधे व उसके आधे घीसे अपनी शक्ति के अनुसार दियाको जलावे बाकी बचे घीको ब्राह्मण को देवे ॥ ९६ ॥ फिर गऊके पञ्चामृत से
महादेवको स्नानकरावे प्रातःकाल अपनीही स्त्रीके ग्रहण करनेवाले व वेदके अभ्यास करनेवाले व पराई स्त्रीसे विमुख ब्राह्मणोंका सदा पूजनकरे व हमेशा शूद्रोंकी सेवामें
व छलवाले कामों में लगेहुये ॥ ९७ । ९८ ॥ धर्म से भ्रष्ट व झूंठी साखी देनेवाले व दान के लेनेवाले व वेदों के साथ वैर करनेवाले व कुबरे व विकल ॥ ९९ ॥

व घाट बाढ़ अङ्गोंवाले जो ब्राह्मण हैं वे श्राद्धमें मना होते हैं और वेदोक्त कामोंके करने से जिनके शरीर शुद्ध हैं हे युधिष्ठिर ! ऐसे ब्राह्मण हमेशा पूजने लायक होते हैं ॥ १०० ॥ पृथिवी, कपडे और विशेषकर कन्याओं के दानों से ऐसे ब्राह्मण लोग श्राद्धादि योगों में भक्ति में तत्पर पुरुषों करके पोषण करने योग्य हैं ॥ १ ॥ और अपने कल्याण के वास्ते वहां गोदान करनाचाहिये दूधवाली बछड़ाके सहित मोटी ताजी, सीधी गऊको देवे ॥ २ ॥ व बडीभक्तिसे कम्बल, खडाऊं, जूता, सोनहली सुजनी, पान व भोजन भी उसके साथमें देवे ॥ ३ ॥ गऊभी घण्टा व जेवरोंसे सजी भूल आदि दो कपड़ोंसे युक्त, सोने के सींगों व रूपेके खुरोंवाली व कांसेकी दोहनी

भूमिदानेनवस्त्रेण कन्यादानैर्विशेषतः ॥ श्राद्धकालेषुयोगेषु सर्तव्याभक्तितत्परैः ॥ १ ॥ गोदानंतत्रकर्तव्यं श्रेयोर्थमात्मनस्तथा ॥ सवत्सांक्षीरिणींशुभ्रां पुष्टांवैशीलसंयुताम् ॥ २ ॥ कम्बलंपरयाभक्त्या पादुकोपानहौतथा ॥ हिरण्यरुक्मिणींकन्थां ताम्बूलंभोजनन्तथा ॥ ३ ॥ घण्टाभरणशोभाढ्यां वस्त्रयुग्मावगुण्ठिताम् ॥ स्वर्णशृङ्गींरौप्यखुरीं कांस्यदोहनसंयुताम् ॥ ४ ॥ उच्चार्य्यपरयाभक्त्या यावदाहूतसंप्लवम् ॥ सर्वकोटिगुणंपार्थ शुभंवायदिवाशुभम् ॥ ५ ॥ तीर्थाख्यानञ्चयोभक्त्या पठतेशृणुतेथवा ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शिवलोकेवसत्यपि ॥१०६॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेऽगस्त्यतीर्थवर्णनोनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथानन्देश्वरंगच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ रुद्रस्यपरमानन्दो यत्रजातोयुधिष्ठिर ॥ १ ॥ तत्तीर्थं कथयिष्यामि सर्वपापक्षयंकरम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ आनन्दश्चैवसञ्जातो रुद्रस्यद्विजसत्तम ॥ २ ॥ कथयस्वमहा

से संयुक्त होवे ऐसी गऊको ॥ ४ ॥ संकल्प उच्चारणकर बडीभक्तिसे देवे तो हे पार्थ ! उस तीर्थपर कियागया भला बुरा सब काम प्रलयतक करोडगुना होताहै ॥ ५ ॥ इस तीर्थ की कथाको जो भक्तिसे कहता, सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है व शिवजी के लोक में रहता है ॥ १०६ ॥ इति पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! अब इसके बाद सब देवताओं से नमस्कार किये हुये आनन्देश्वर को जावे जहां महादेवजी को बडा आनन्द हुआहै ॥ १ ॥ सब पापोंके नाश करनेवाले उस तीर्थको हम तुमसे कहेंगे तब युधिष्ठिर बोले कि हे द्विजसत्तम ! जहां महादेवको आनन्द हुआहै ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस तीर्थ

को संक्षेप से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! उत्तम आनन्देश्वर तीर्थको हम कहते हैं ॥ ३ ॥ दानवों को मारकर देवताओं के देवता महादेवजी दे-वता, किन्नर, यक्ष और सांप आदि सबोंसे पूजेगये ॥ ४ ॥ बड़े आनन्द को पाकर व भैरवरूप को धरकर पार्वती को आधे अङ्गमें धरेहुये महादेवजी नाचतेहुये ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! भूत, वेताल, कङ्काल और भैरवों से युक्त नर्मदा के उत्तर व दक्षिणवाले किनारे पर नाचे ॥ ६ ॥ प्रसन्न होरहे देवताओं ने वहा कमल के आसन पर महादेव को स्थापित किया तब से महादेव आनन्देश्वर कहेजाते है ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! अष्टमी व चौदस व पूर्णमासी को विधि से स्नानकर महादेव का पूजन

भागसंक्षेपान्मुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामिनृपश्रेष्ठ आनन्देश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ दानवानांवधंकृत्वा देव देवश्चशङ्करः ॥ पूजितोदैवतैस्सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नगैः ॥ ४ ॥ आनन्दंपरमंप्राप्य ननर्तवृषवाहनः ॥ भैरवंरूपमासाद्य गौरीचार्द्धाङ्गधारिता ॥ ५ ॥ भूतवेतालकङ्कालैर्भैरवैर्भैरवोवृतः ॥ नर्म्मदायोत्तरेतीरे दक्षिणेपाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥ तुष्टैर्म रुद्गणैस्तत्र स्थापितःकमलासनः ॥ तदाप्रभृतिवैदेव आनन्देश्वरउच्यते ॥ ७ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां पौर्णमास्यान्नरा धिप ॥ विधिंस्नात्वार्चयेद्देवं सुगन्धेनविलेपयेत् ॥ ८ ॥ ब्राह्मणान्पूजयेत्तत्र यथाशक्त्यायुधिष्ठिर ॥ गोदानंतत्रकर्तव्यं वस्त्रदानंतथैवच ॥ ९ ॥ वसन्तस्यत्रयोदश्यां श्राद्धंतत्रैवकारयेत ॥ इङ्गुदैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतेनजलेनवा ॥ १० ॥ प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमानन्देश्वरतीर्थके ॥ प्रेताआनन्दिताःस्युस्तेयावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ११ ॥ सन्ततिर्द्धनसौख्यंच सप्तज न्मनिजायते ॥ आनन्दश्चभवेत्तेषां जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र मातृतीर्थं

करे और सुगन्ध से उनको लेपनकरे ॥ ८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! वहां यथाशक्ति ब्राह्मणों का पूजनकरे फिर वहां गोदान वैसेही वस्त्रोका भी दान करना चाहिये ॥ ९ ॥ वसन्तकी तेरस को इंगुआ, बेर, बेल, अक्षत और जलसे भी वहीं श्राद्ध करे ॥ १० ॥ व आनन्देश्वरतीर्थ में प्रेतोंके श्राद्धको करे तो वे प्रेत महाप्रलय तक आनन्दवान् रहते है ॥ ११ ॥ सन्तान और धनका सुख सात जन्मोंतक रहता है और हे युधिष्ठिर ! उनको जन्म २ प्रति आनन्द होता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे

राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम मातृतीर्थको जावे जोकि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सङ्गम के समीपमेंहै ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! नर्मदा के तटमें मातृका रहती थीं जो किसी समय पार्वतीने महादेवसे याचना की ॥ १४ ॥ तब महादेवने उन योगिनियोंसे कहा कि कष्ट २ अच्छा नहींहै परन्तु बोले कि योगियों के वर देनेवाले हम तुम को भी वर देवेंगे ॥ १५ ॥ तब योगिनियां बोलीं कि हे महेश्वर ! आपके प्रसाद से हमलोग सब देवताओं के जीतनेलायक न होवें और तीर्थोंके साथ पृथिवी में हम भी प्रसिद्ध होवें ॥ १६ ॥ तब महादेव ने कहा कि हे योगिनियो ! ऐसाही हो यह कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि उस तीर्थमें नवमी को

मनुत्तमम् ॥ सङ्गमस्यसमीपस्थं नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ मातरस्तत्रराजेन्द्र संजातानर्म्मदातटे ॥ उमयायाचितस्तत्र व्यालयज्ञोपवीतकः ॥ १४ ॥ उवाचयोगिनीवृन्दं कष्टंकष्टन्नशोभनम् ॥ उवाचवरदश्चास्मि योगिवृन्दवरप्रदः ॥ १५ ॥ योगिन्यऊचुः ॥ अजेयास्सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तीर्थानामभिसंख्याने प्रख्यातावसुधातले ॥ १६ ॥ एवंभवतुयोगिन्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१७॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोमर्त्यो नवम्यांविजितेन्द्रियः ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या पूजयेन्मातृमण्डलम् ॥ १८॥ तस्यतामातरःप्रीताःप्रीतोयंवृषवाहनः ॥ वन्ध्यायामृतवत्सायाया अपुत्रायायुधिष्ठिर ॥ १९ ॥ स्नपनंचारभेत्तत्र मन्त्रज्ञैर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ सहिरण्येनकुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वितम् ॥ २० ॥ स्नापयेत्पुत्रकामाच कांस्यपात्रेणमन्त्रतः ॥ पुत्रान्सालभतेनारी वीर्य्ययुक्तान्गुणान्वितान् ॥ २१ ॥ यंयंकाममभिध्यायेत्तंतंसालभतेनृप ॥ मातृतीर्थात्परन्तीर्थं नास्त्यन्यत्पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ तस्यैवानन्तरंतात जलमध्येश्वर

बडी भक्ति से इन्द्रियोंको जीतेहुये जो मनुष्य उपासा रहकर मातृकाओं का पूजन करताहै ॥ १८ ॥ उसपर वे मातृकायें व ये महादेवजी प्रसन्न होतेहैं और हे युधिष्ठिर! बांझ व जिसके लडके मरजाते हैं व जिसके पुत्र नही है ऐसी स्त्री ॥ १९ ॥ वहा वेदके जाननेवाले उत्तम ब्राह्मणों से महादेवजी का सोना व घड़ा व पञ्चरत्न व फलोंसे युक्त स्नान कराना आरम्भ करे ॥ २० ॥ व जो पुत्रकी इच्छावाली स्त्री मंत्रों द्वारा कांसे के पात्रमे महादेव को स्नान करावे तो वह ताकतवाले व गुणोंसे युक्त लड़कों को पावेगी ॥ २१ ॥ हे नृप ! और भी जिस २ कामनाको करे उस २ को वह पातीहै और हे पाण्डुनन्दन ! इस मातृतीर्थ से परे और तीर्थ नही है ॥ २२ ॥

हे तात ! अब उसी तीर्थ के बाद पानीमें शिवजी का उत्तम लिंगहै देवता और दैत्योंसे नमस्कार कियागया लिङ्गेश्वर इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि जिस नर्मदा को महादेवजी ने कभी नहीं छोडा उसको कैसे छोड़ा और जिनके हाथमें त्रिशूल है व जो पिनाक धारण करनेवाले हैं ऐसे महादेव जी पानीके बीचमें कैसे रहतेहै ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! सो हम आपकी वाणीसे सुना चाहतेहैं तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन! इस लोकमें यह आश्चर्य रूप महादेवजी की प्रतिष्ठा है ॥ २५ ॥ हम पण्डित हैं बुढापे के कारण आप से कहते हैं हे नृपोत्तम ! आगे सत्ययुगमें हे तात! अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त एक

म्परम् ॥ लिङ्गेश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अत्यक्तासातुरेवाया कथंत्यक्ताचश म्भुना ॥ जलमध्येहितिष्ठेत शूलपाणिःपिनाकधृक् ॥ २४ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि तववाक्याद्द्विजोत्तम ॥ मा र्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्यभूतालोकेस्मिन्प्रतिष्ठापाण्डुनन्दन ॥ २५ ॥ पण्डितोवृद्धभावेन कथयामिनृपोत्तम ॥ आ दौकृतयुगेतात दानवोबलदर्पितः ॥ २६ ॥ कालबाष्पइतिप्रोक्तो दुर्जयोदेवदानवैः ॥ तपश्चचारविपुलं नर्म्मदायाजले शुभे ॥ २७ ॥ आराधयन्महादेवमुग्रेणतपसाभृशम् ॥ ततस्तुतोषभगवान्सपत्नीकोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ ईश्वरउवा च ॥ भोभोवत्सवरंब्रूहि तुष्टोहंतवभक्तितः ॥ देवस्यवचनंश्रुत्वा कालबाष्पोऽब्रवीद्वचः ॥ २९ ॥ देवाश्चैवमयाभग्नाः प्र सादात्तवशूलिनः ॥ संग्रामेचविषण्णोहं तस्मादाराधनंकृतम् ॥ ३० ॥ हस्तंशिरसियस्यैव दास्यामिचमहेश्वर ॥ नस जीवेत्पुमाँल्लोके वरमेतंददस्वमे ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्तेमिलषितंदैत्य तत्तथैवभविष्यति ॥ इतिश्रुत्वावचोदैत्यः

दानव होताहुआ ॥ २६ ॥ कालबाष्प इस नामसे कहाजाता देवता और दैत्यों से नहीं जीता जासक्ता, नर्मदा के उत्तमजल में बडी तपस्या को करताहुआ ॥ २७ ॥ और उस अतिकठिन तपस्या से महादेवको प्रसन्न करताहुआ तदनन्तर पार्वती सहित महादेवजी उसपर प्रसन्न हुये ॥ २८ ॥ और महादेवजी बोले कि हे वत्स ! तुम वरको मांगो हम तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्नहैं तब महादेवके वचनको सुनकर कालबाष्प वचन बोला ॥ २९ ॥ कि त्रिशूलवाले आपके प्रसाद से मैंने सब देवताओं को जीतलिया है अब लड़ाई से मैं विरक्त हूं इससे आपकी सेवा की है ॥ ३० ॥ इससे हे महेश्वर ! मैं जिसके शिरपर अपना हाथ रखदेऊं वह पुरुष लोकमें न

जीवे बस इस वरको आप मुझे देवें ॥ ३१ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे दैत्य ! जो तेरे मनमेंहै वह वैसाही होगा यह वचन सुनकर वह दैत्य महादेवही के सामने दौड़ा ॥ ३२ ॥ और कहा कि तुम्हारे शिरपर हम हाथ धरेंगे क्योंकि तुम्हारा वचन सच्चा नहीं है तब उससे भागेहुये महादेवजी विष्णुजी की शरण गये ॥ ३३ ॥ विष्णु से सब हाल कहकर फिर उन्हीं में आप लीन होगये विष्णु बोले कि हे महादेव ! दैत्योंके मालिक उस दुष्टको हम मारते है ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर ! हम उसीके शिरपर उसका हाथ रखवाय देवेंगे तदनन्तर बड़े वेगसे युक्त नर्मदातटमें प्रवेश किया ॥ ३५ ॥ स्त्री के रूपको धरेहुये भगवान् दैत्य के सानने आतेहुये बत्तीस लक्षणो से

शम्भुमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ हस्तंतेमूर्द्धिदास्यामि नतत्सत्यंवचस्तव ॥ रुद्रःपलायितस्तेन केशवंशरणङ्गतः ॥ ३३ ॥ निवेद्यकेशवंसर्वं तस्मिन्नेवन्यलीयत ॥ केशवउवाच ॥ हन्म्यहन्तंमहादेव दुष्टंदैत्यजनेश्वरम् ॥ ३४ ॥ हस्तंशिरसि तस्यैवदापयामिमहेश्वर ॥ ततस्त्वरितमापन्नः प्रविष्टोनर्म्मदातटे ॥ ३५ ॥ कृष्णःस्त्रीवेषधारीच दैत्यसम्मुखमागतः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता नियुक्ताकामसायकैः ॥ ३६ ॥ मधुमाधवकेशम्भुं ध्यात्वासर्वत्रकैशवी ॥ वनंबभ्रामसर्वत्रसुशीलाव टपादपम् ॥ ३७ ॥ क्षोभयन्तीवचित्तानि सारेमेधर्म्मनन्दन ॥ रिङ्गमाणश्चदैत्योसौ कालबाष्पस्सुदुर्जनः ॥ ३८ ॥ प्रविष्टस्स वनेरम्ये यत्रसाशुभलोचना ॥ अहंभवामितेभर्तादुर्जयोदेवदानवैः ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यस्वामिनीत्वंच प्रसीदममसुन्दरि ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ यदिमांमन्यसेभार्य्यां प्रत्ययश्चभवेन्मम ॥ ४० ॥ दानवउवाच ॥ स्वयंभवामितन्वङ्गि शपथंममसा

युक्त कामदेवके बाणों से भरीहुई ॥ ३६ ॥ वसन्तऋतुमें महादेवजी का सर्वत्र ध्यानकर उत्तम शीलवाली भगवती वह स्त्री सब कहीं जिसमें एक बडा बरगदका वृक्ष था ऐसे वनमें घूमतीहुई ॥ ३७ ॥ हे धर्मनन्दन ! सबोंके चित्तोंको खलभलाती हुई वह रमण करती थी तबतक वह दुर्जन कालबाष्प दानव भी घूमताहुआ ॥ ३८ ॥ जहां वह सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्री थी उस रमणीक वनमें पैठताहुआ और उस स्त्रीसे बोला कि हम तेरे पति होवेंगे जोकि देवता और दानवोंसे नहीं जीते जासक्ते है ॥ ३९ ॥ तू तीनों लोकोंकी मालकिनी होवेगी इससे हे सुन्दरि ! मुझपर प्रसन्नहो तब भगवान् बोले कि जो आप मुझको अपनी स्त्री मानते हो और मेरा तुम्हें विश्वासहै

तो हमारा कहना करो ॥ ४० ॥ तब दानव बोला कि हे तन्वङ्गि ! मैं खुद आपका दासहूं इसमें मेरी कसमको प्रमाण समझो हम वही करेंगे जो तुम कहोगी यह हमारा कहना सत्यहै ॥४१॥ तब वह स्त्री बोली कि हमारे कहनेको करो हे महाभाग! अपना हाथ अपने शिरपर धरो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उस कामान्धने माथेपर हाथको रक्खा ॥४२॥ तो उसी क्षणमे भस्म होगया जैसे खरही भस्म होजावे उस समय में भगवान् के ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ४३ ॥ जलन जिनकी जातीरही ऐसे सब देवतालोग अपने स्थान स्वर्गको चलेगये कालबाष्पके मरनेपर विष्णुभी क्षीरसमुद्रको चलेगये ॥ ४४ ॥ जो दानवके इस चरित्रको भक्तिसे सुनताहै और काम क्रोध

धनम् ॥ तदहञ्चकरिष्यामि इतिमेसत्यभाषितम् ॥ ४१ ॥स्त्र्युवाच ॥ कुरुष्वत्वंमहाभाग शिरोहस्तेप्रदीयताम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कामान्धेनैवराजेन्द्र निक्षिप्तोमस्तकेकरः ॥ ४२ ॥ तत्क्षणादभवद्भस्म दग्धस्तृणचयोयथा ॥ केशवस्योपरितदा पुष्पवृष्टिःपपातह ॥ ४३ ॥ गतास्सर्वेदिवन्देवास्स्वस्थानंविगतज्वराः ॥ क्षीराब्धिमगमद्विष्णुः कालबाष्पेनिपातिते ॥ ४४ ॥ यइदंशृणुयाद्भक्त्या चरितंदानवस्यच ॥ श्राद्धंतत्रैवयःकुर्य्यात्कामक्रोधविवर्जितः ॥ ४५ ॥ उद्धृतास्तेनसर्वेवै नरकाच्चपितामहाः ॥ क्षेत्रेतस्मिंस्तुयोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ४६ ॥ तस्यदानफलंसर्वं कुरुक्षेत्राद्विशिष्यते ॥ स्पर्शतेयइदंलिङ्गं शङ्करेणचनिर्मितम् ॥ ४७ ॥ स्पर्शमात्रोमनुष्यस्तु रुद्रवासोऽभिजायते ॥ एतस्मात्कारणाद्राजल्लँोकपालाश्चदेवताः ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवीतथाचैव मधुहन्ताचतुर्भुजः ॥ दानवाद्याश्चसर्वेपि रक्षणेचेश्वरस्य च ॥ ४९ ॥ रक्षन्तेचसदाकालं गृहव्यापाररूपतः ॥ पुत्रभ्रातृसमाभूत्वा स्वामिसम्बन्धरूपिणः ॥ ५० ॥ लिङ्गेश्वरन्तु

से रहित होकर जो वहां श्राद्ध करता है ॥ ४५ ॥ उसने मानो नरक से अपने सब पितरों को उद्धार करलिया और उस क्षेत्रमें जो वेदपाठी ब्राह्मण को दान देताहै ॥ ४६ ॥ उसके दानका सब फल कुरुक्षेत्र से विशेष होताहै और महादेव के बनाये हुये इस लिङ्गको जो छूताहै ॥ ४७ ॥ वह मनुष्य छूनेही से रुद्रलोकमें वास करताहै हे राजन् ! इसी कारणसे लोकपाल देवता ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवी, चार भुजावाले विष्णु, दानवआदि सभी महादेवजी की रक्षामें रहते हैं ॥ ४९ ॥ लड़के, भाई और स्वामी

आदि नातेकी तरह होकर घरके कामोंकी नाईं हमेशा रक्षा किया करतेहैं ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! लिङ्गेश्वर आजभी देवताओंसे रक्षा कियाजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेभस्मासुरवधोनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापों के क्षय करनेवाले नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर विद्यमान उत्तम धनद नाम के तीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां सब तीर्थों का फल प्राप्त होताहै इस में संशय नहीं है चैतमास के उजियाले पाखकी तेरसको इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य ॥ २ ॥ उपासकर बड़ी भक्ति से रात

राजेन्द्र देवैरद्यापिरक्ष्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेभस्मासुरवधोनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेन्नृराजेन्द्र धनदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ नर्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सर्वतीर्थफलंतत्रप्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ चैत्रमासेत्रयोदश्यां शुक्लपक्षेजितेन्द्रियः ॥ २ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ पञ्चामृतेनराजेन्द्र स्नापयेद्वरदंविभुम् ॥ ३ ॥ पूजयेद्भक्तियुक्तेन गीतवाद्यंप्रदापयेत् ॥ प्रभातेपूजयेद्विप्रानात्मनःश्रेयइच्छता ॥ ४ ॥ प्रतिग्रहविमुक्ताश्चविद्यासिद्धान्तवादिनः ॥ भर्तव्याहिप्रियैर्भक्त्या परिवादविवर्जिताः ॥ ५ ॥ पूजयेद्गोहिरण्येन वस्त्रालङ्करणेनच ॥ हस्त्यश्वरथदानेन सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ६ ॥ त्रिजन्मजनितंपापं धनदस्य प्रभावतः ॥ स्वर्गदन्दुर्विनीतानां विनीतानांचमुक्तिदम् ॥ ७ ॥ धनवान्सनरव्याघ्र भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ कुलीनत्वं

को जागरण करे और हे राजेन्द्र ! वर के देनेवाले महादेवको पञ्चामृत से नहवावे ॥ ३ ॥ भक्तिसे पूजनकरे और गावे बजावे अपने कल्याणकी इच्छा करता हुआ प्रातःकाल ब्राह्मणों का पूजन करे ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण दान नहीं लेते हैं और विद्याके सिद्धान्तों को जानते है किसी की निन्दा नहीं करते ऐसे ब्राह्मणों का भक्ति और प्यार से भरण पोषण करे ॥ ५ ॥ गौवें, सोना, कपडे, जेवर, हाथी, घोडे और रथों के दानसे उनका पूजन करे तो सब पापोंका नाश होजावे ॥ ६ ॥ धनदतीर्थ के प्रभाव से तीन जन्मोंका पाप नष्ट होजाताहै यह तीर्थ पापियो को स्वर्गका देनेवाला और सज्जनो को मुक्तिका देनेवाला है ॥ ७ ॥ हे नरव्याघ्र ! वह जन्म २ मे धनी

होताहै कुलीन और सुन्दर रूपवाला होताहै दुःख उसको कभी नहीं होताहै ॥ ८ ॥ और धनद तीर्थकी सेवासे सेवकों को रोगका डर नहीं होता बल्कि वह आनन्द रहताहै धनदके तीर्थ में जो विद्या को देताहै ॥ ६ ॥ वह सब दुःखों से छूटा हुआ सूर्य के लोक को जाताहै मार्कण्डेयजी बोले कि हम तुम से पुराने इतिहास को कहेंगे ॥ १० ॥ सब लोकों में उत्तम कश्यपमुनि की दो स्त्रियां होती हुईं विनता के पुत्र गरुड और कद्रूके सर्प होते हुये ॥ ११ ॥ हे तात ! वे दोनों कश्यप के घरमें सन्तोष से रहती थीं उनमें कद्रूकी बहन विनता पतिको प्यारी थी ॥ १२ ॥ कश्यप प्रजापति विनता के साथ विहार किया करते थे तदनन्तर हे पार्थ ! एक दिन

स्वरूपत्वं दुःखंनास्तिनिरन्तरम् ॥ ८ ॥ व्याधेस्तुनभयंतेषां नन्देद्धनदसेवनात् ॥ धनदस्यचयस्तीर्थे विद्यांवैप्रददातिहि ॥ ६ ॥ सयातिभास्करंलोकं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अहंतेकथयिष्यामि चेतिहासम्पुरातनम् ॥ १० ॥ द्वेभार्य्येकश्यपस्यास्तां सर्वलोकेष्वनुत्तमे ॥ गरुत्मान्विनतापुत्रः कद्रूपुत्रोरगाःस्मृताः ॥ ११ ॥ सन्तोषेणद्वयंतात तिष्ठतःकाश्यपेगृहे ॥ कद्रूस्तुभगिनीतत्र इष्टाचविनतातथा ॥ १२ ॥ क्रीडेद्विनतयासार्द्धं कश्यपोपिप्रजापतिः ॥ ततस्त्वेकदिनेपार्थ आश्रमस्थासुशोभना ॥ १३ ॥ उच्चैःश्रवोहयंदृष्ट्वा अतिवेगंनभःस्थितम् ॥ पश्यपश्यचतन्वङ्गि अश्वंसर्वत्रपाण्डुरम् ॥ १४ ॥ धावमानमविश्रान्तं जवेनमानसोपमम् ॥ कद्रूरुवाच ॥ कथमेतत्तुतन्वङ्गि कृष्णंजलपासिपाण्डुरम् ॥ १५ ॥ असत्यंभाषितंभद्रे यमलोकंगमिष्यसि ॥ विनतोवाच ॥ सत्यानृतेतुवचने पणोयंमेस्तुतेऽधुना ॥१६॥ सहस्रंचैववर्षाणामज्ञात्वादास्यतांव्रजेत् ॥ असत्यायदिमेवाणी कृष्णउच्चैःश्रवाहयः ॥ १७ ॥ तदाहंत्वद्गृहेदासी स

आश्रममें बैठीहुई अतिशोभावाली विनता ॥ १३ ॥ आकाशमें टिकेहुये बड़े तेज वाले उच्चैःश्रवा घोड़ेको देखकर बोली कि हे तन्वङ्गि ! सब सफेद घोड़ेको देखो ॥१४॥ विश्राम नहीं लेता दौड़रहा तेजीमें मनके बराबर है तब कद्रू बोली कि हे तन्वङ्गि ! कालेको तुम सफेद कैसे कहती हो ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! तुम्हारा कहना झूठ है तुम यमलोक को जावोगी तब विनता बोली कि अभी हमारी तुम्हारी झूँठी सांची बात में शर्त होजावे ॥ १६ ॥ कि जिसकी बात झूँठहो वह सच्ची बातवाली की एक

हजार वर्षतक लौंडी रहे जो हमारी बात झूंठहोवे कि उच्चैःश्रवा घोड़ा कालाहो ॥ १७ ॥ तो हम तुम्हारे घरमें हमेशा दासी रहेंगी और जो उच्चैःश्रवा सफेद होवे तो तुम हमारे घरमें दासी होवो ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनों आपसमें दासी बननेको कहरही थीं तबतक कद्रू अपने घरको गई और रातमे बड़ी चिन्ता करती रही ॥ १९॥ और हे पार्थ ! अपने पुत्रोंसे कहा कि उस सफेद घोडेको मैंने काला कहदिया और शर्तभी की है ॥ २० ॥ सर्पोंने इस बात व माता की शर्तको भी सुना तब सबोंने कहा कि अब तो तुम दासी होगईहो सन्देह नहीं है क्योकि सूर्यका घोड़ा तो सफेदहीहै ॥ २१ ॥ तब कद्रू बोली कि जिस तरह हम दासी न होवें ऐसा काम सोचाजावे उच्चैःश्रवा

वंदेवभवामिहि ॥ यदितूच्चैःश्रवाःश्वेतो दासीत्वंमद्गृहेपुनः ॥ १८ ॥ एवंपरस्परंताभ्यां दासीयमब्रवीदिति ॥स्वाश्रमंहि गताकद्रूरात्रौचिन्तातुरास्थिता ॥ १९ ॥ श्वेतवर्णन्तुकथितं श्यामन्तमश्वकन्तदा ॥ पुत्राणांकथितंपार्थ पणश्चैवकृतो मया ॥ २० ॥ श्रुतंसर्वैस्तथावाक्यं सर्पैर्मातृपणस्तदा ॥ जातादासीनसन्देहः श्वेतोभास्करवाहनः ॥२१॥ कद्रूरुवाच ॥ यथाहन्नभवेदासी तत्कार्य्यञ्चविचिन्त्यताम् ॥ उच्चैःश्रवोरोमकूपे विशध्वंयूयमेवच ॥ २२ ॥ एकंमुहूर्तंतिष्ठध्वं याव त्कृष्णःप्रदृश्यते ॥ क्षणेनैकेनभवतां दासीसाभवतेमम ॥ २३ ॥ दासीत्वेयातुतन्वङ्गी विनतासत्यगर्विता ॥ ततःस्व स्थानगास्सर्वे भवन्तुसुखिनस्सदा ॥ २४ ॥ सर्पाऊचुः ॥ यथात्वंजननीचैव सर्वेषांभुविपन्नगी ॥ तथासापिविशेषेण वञ्चितव्यानमातृवत् ॥२५॥ ततस्सातेनवाक्येन क्रुद्धाकालानलोपमा ॥ ममवाक्यमकुर्वाणा येकेचिद्भुविपन्नगाः॥२६॥

घोडेके रोवोंके छेदोंमें तुम सब पैठजावो ॥ २२ ॥ जबतक दो घडीहों तबतक स्थित बनेरहो वह काला देखपडेगा तुमलोगों के इस तरह क्षणमात्र रहने से वह हमारी दासी होजावेगी ॥ २३ ॥ सत्य के अहङ्कार को प्राप्तहोरही सूक्ष्माङ्गी विनता दासीपनेको प्राप्त होजावेगी तदनन्तर फिर तुम सब अपने स्थानों को जाकर सुखी होवो ॥ २४ ॥ तब सर्प बोले कि जैसे पृथ्वीमें तुम सब सांपोंकी माता पन्नगीहो ऐसेही वह भी हमारी विशेषसे माताके तुल्य है इससे छल करनेलायक नहीं है ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह उनके उस वचन से प्रलय के अग्नि के समान नाराज होतीहुई और बोली कि हमारे वचन को नहीं करनेवाले पृथिवी में जितने सांप हैं ॥ २६ ॥

वे सब बेविचारवाले आगी के मुहँमें जावेंगे इस बातसे डरेहुये सांप घोडे के रोवों में लपटगये ॥ २७ ॥ और कोई कद्रूके शापके डरसे युक्त दिव्य दिशाओं को भाग गये कोई गङ्गाके जलमें छिपे और कोई सरस्वती में छिपे ॥ २८ ॥ कोई समुद्रको चलेगये कोई विन्ध्यपर्वत की खोहों में छिपरहे और हे नृप ! उत्तम मणिनाग नर्मदाके जलके आश्रित होकर ॥ २९ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर भक्तिसे बडे तपको करताहुआ माताके शापको धरेहुये नर्मदा के जलमें पैठगया ॥ ३० ॥ और महादेव से प्रार्थना करताहुआ कि हे नाथ ! आपके प्रसादसे हम माताके शापको तरजावें हे जगत्पते ! जिससे हम आगके मुखमें न जावें सो करो ॥ ३१ ॥ तब

तेनवाक्येनभीतास्ते हयरोमसुवेष्टिताः ॥ २७ ॥ नष्टाःकेचिद्दिशो दिव्याः कद्रूशापभयान्विताः ॥ केचिद्गङ्गाजलेनष्टाः केचिन्नष्टास्सरस्वतीम् ॥ २८ ॥ केचिन्महोदधिन्नीताः प्रविष्टाविन्ध्यकन्दरे ॥ आश्रित्यनर्म्मदातोयं मणिनागोत्तमोनृप ॥ २९ ॥ चचारविपुलंभक्त्या उत्तरेनर्म्मदातटे ॥ मातृशापधरोनागः प्रविष्टोनर्म्मदाजले ॥ ३० ॥ त्वत्प्रसादेनभोनाथ मातृशापंतराम्यहम् ॥ हव्यवाहमुखंयस्मात्प्रयामिनजगत्पते ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ हव्यवाहमुखंवत्स नयास्यसिममाज्ञया ॥ ममलोकनिवासोपि तवपुत्रभविष्यति॥३२॥ मणिनागउवाच॥अस्मिन्स्थानेमहादेव स्थीयतामंशभागतः ॥ सहस्रांशेनभागेन स्थीयतांनर्म्मदाजले ॥ ३३ ॥ उपकारायलोकानां ममनाम्नाचशङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ स्थापयस्वपरंलिङ्गमाज्ञयाममपन्नग ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्तदैवशिवयासह ॥ तत्रतीर्थेतुयेभक्त्या शुचयोयतमानसाः ॥ ३५ ॥ पञ्चम्याञ्चचतुर्दश्यामष्टम्यांशुक्लपक्षके ॥ अ

महादेव बोले कि हे वत्स ! हमारी आज्ञा से आगके मुखमें तुम नहीं जावोगे और हे पुत्र ! तुम्हारा निवास हमारे लोकमें होगा ॥ ३२ ॥ तब मणिनाग बोला कि हे महादेव ! अपने अंशसे इस स्थान मे आप टिकें हजारवे अंशसे नर्मदाके जलमे आप ठहरे ॥ ३३ ॥ लोकोंके उपकार के वास्ते हे शङ्कर ! मेरे नामसे प्रसिद्ध हूजिये तब महादेव बोले कि हे पन्नग ! हमारी आज्ञासे तुम श्रेष्ठलिङ्गको स्थापितकरो ॥३४॥यह कहकर पार्वतीसहित महादेवजी उसी समय अन्तर्द्धान होगये उस तीर्थमे मन

को वश कियेहुये व पवित्र जो मनुष्य भक्तिसे ॥ ३५ ॥ उजियाले पाखकी पंचमी व चौदस व अष्टमी को हे पार्थ ! सदा पूजन करते हैं वे यमराजके पास नहीं जाते हैं ॥ ३६ ॥ दही, शहद, घी और दूध से जो मनुष्य पार्वतीको आधेअङ्ग में धरेहुये महादेवको नहवाते हैं ॥ ३७ ॥ कामदेव के जलानेवाले व बड़े२ दैत्योंके मारनेवाले शङ्करजी को भक्तिसे जो लोग स्नान करवाते हैं वे परमपदको देखते हैं ॥ ३८ ॥ और हे तात ! जो शूद्रोंकी सेवाको नहीं करते और अपने छहों कर्मों के करनेवाले ब्राह्मण हैं वे भी सब पापोंसे रहित होकर श्रेष्ठलोक को जाते हैं ॥ ३९ ॥ संस्कारहीन, क्षत्रियके कामों के करनेवाले, नपुंसक, सूदके खानेवाले, किसान और नास्तिक

र्चयन्तिसदापार्थ नोपसर्प्पन्तितेयमम् ॥ ३६ ॥ दध्नाचमधुनाचैव घृतेनक्षीरतोजनाः ॥ स्नापयन्तिविरूपाक्षमुमा देहार्द्धधारिणम् ॥ ३७ ॥ कामाङ्गदहनन्देवं महासुरनिषूदनम् ॥ संस्नापयन्तियेभक्त्या पश्यन्तिपरमंपदम् ॥ ३८ ॥ षट्कर्म्मनिरतास्तात शूद्रप्रणयवर्जिताः ॥ तेपियान्तिपरंलोकं सर्वपापविवर्जिताः ॥ ३९ ॥ व्रात्यांश्चदुर्द्धरान्षण्ढा न्वार्द्धुष्यांश्चकृषीवलान् ॥ भिन्नदृष्टिकरान्विप्रान्कश्चिन्नैवचपूजयेत् ॥ ४० ॥ वृषलीमन्दिरेयस्य महिषंयस्तुवाहये त् ॥ तेविप्रादूरतस्त्याज्या व्रतेश्राद्धेनृपेश्वर ॥ ४१ ॥ काणाःकुण्डाश्चगोलाश्च वैद्याश्चैवविवर्जिताः ॥ नैतेपूज्याद्वि जाःपार्थ मणिनागेश्वरेशुभे ॥ ४२ ॥ यदीच्छेदूर्ध्वगमनं पितॄणामात्मनस्तथा ॥ सर्वाङ्गरुचिराङ्गाश्च सदापूज्याद्वि जास्तुवै ॥ ४३ ॥ सयातिपरमंलोकं यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ततःस्वर्गाच्च्युतस्सोपि जायतेविपुलेकुले ॥ ४४ ॥ मणि

ब्राह्मणों को इस तीर्थमें कोई भी न पूजे ॥ ४० ॥ जिसके घरमें सूदिनि बैठी होवे और जो भैंसा लादताहो हे नृपेश्वर ! ऐसे ब्राह्मणों को व्रत और श्राद्ध में दूरही से छोड़देवे ॥ ४१ ॥ काने, कुण्ड (जीतेहुये बापके दूसरे से पैदाहुआ) गोलक (बापके मरजाने पर दूसरे से पैदाहुआ) और वैद्य ये विशेष करके वर्जित है किन्तु हे पार्थ ! ये ब्राह्मण शुभ मणिनागेश्वर में पूजनेयोग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥ जो अपना व पितरों का ऊपर जाना चाहे तो उससे निश्चय करके सब अङ्गोंसे दुरुस्त ब्राह्मण सदा पूजन करनेयोग्य हैं ॥ ४३ ॥ वह उत्तम लोकको जाताहै और प्रलयतक वहां रहता है फिर स्वर्गसे उतर वह बड़ेकुल में पैदा होता है ॥ ४४ ॥ जो मणिनागे.

श्वरदेव के दर्शन करता है और हे नराधिप ! वहां गऊ, पलंग, छाता, कन्या और दासियों को भक्तिसे ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! उत्तम ब्राह्मणों को देवे जो अपने कल्याण की इच्छाकरे सुगन्धवाले फूल, चन्दन और कपड़ों को देवे ॥ ४६ ॥ दिया, अन्न और सब सामानसे भरेहुये सुन्दर मकान को जो मनुष्य भक्तिसे देतेहैं वे स्वर्गको जातहैं ॥ ४७ ॥ हे नृप ! मणिनाग में जो सोने के सांपका दान करते हैं उस दान के प्रभावसे उनका वास स्वर्गमें होताहै ॥ ४८ ॥ और उसके पाप नष्ट होजातेहैं जैसे कच्चेघड़े का पानी जातारहता है नर्मदा के पानीमें पकायाहुआ भोजन जो ब्राह्मण को देतेहैं ॥ ४९ ॥ पापोंसे छूटेहुये वे भी देवताओं के साथ विहार करते हैं दानके

नागेश्वरन्देवं यःपश्यतिनराधिप ॥ धेनुंशय्यांतथाछत्रं कन्यांदासींसुभक्तितः ॥ ४५ ॥ पात्रेदद्यात्तुराजेन्द्र यदीच्छे च्छ्रेयआत्मनः ॥ सुरभीणिचपुष्पाणि गन्धवस्त्राणिदापयेत् ॥ ४६ ॥ दीपंधान्यंगृहंशुभ्रं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ददते येनराभक्त्या तेव्रजन्तित्रिविष्टपम् ॥ ४७ ॥ मणिनागेनृपस्वर्णपन्नगोयैःप्रदीयते ॥ तेषांदानप्रभावेण स्वर्गवासोभवे दध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पातकानिप्रलीयन्त आमपात्रेजलंयथा ॥ नर्म्मदातोयसंसिद्धं भोज्यंविप्रायदीयते ॥ ४९ ॥ तेपिपा पैर्विनिर्मुक्ताः क्रीडन्तेदैवतैस्सह ॥ त्यागिनोभोगसंयुक्ता धर्म्माख्यानरतास्सदा ॥ ५० ॥ देवद्विजगुरोर्भक्तास्तीर्थसेवा परायणाः ॥ मातापितृस्वामिभक्ताः क्रोधद्रोहविवर्ज्जिताः ॥ ५१ ॥ एतैस्सर्वैर्गुणैर्युक्ता येनराःपाण्डुनन्दन ॥ जायन्ते स्वर्गकामाश्च स्वर्गेवासोभविष्यति ॥ ५२ ॥ सर्वतीर्थवरन्तीर्थं मणिनागंनृपोत्तम ॥ तीर्थाख्यानमिदंपुण्यं यःपठेच्छृ णुयादपि ॥ ५३ ॥ सोपिपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ नविषंक्रमतेतेषां विचरन्तियथेच्छया ॥ ५४ ॥ भाद्रपद्या

करनेवाले, सब भोगों से संयुक्त, सदा धर्मशास्त्र में प्रीति के करनेवाले ॥ ५० ॥ देवता, ब्राह्मण और गुरुके भक्त, तीर्थोंकी सेवाके करनेवाले, माता, पिता और स्वामी के भक्त क्रोध और किसी से वैर करने से रहित ॥ ५१ ॥ इन सब गुणों से युक्त हे पाण्डुनन्दन ! जो मनुष्य हैं वेही स्वर्गकी चाह करनेवाले होते हैं और उन्हींका स्वर्गमें वास भी होताहै ॥ ५२ ॥ हे नृपोत्तम ! मणिनागतीर्थ सब तीर्थोंमें उत्तम है इस तीर्थकी पुण्यकथा को जो कहता व सुनता है ॥ ५३ ॥ पापोंसे छूटाहुआ वह

भी शिवलोक मे पूजित होता है उनके ऊपर विषका असर नहीं पडताहै अपनी इच्छा से वे विचरते हैं ॥ ५४ ॥ भादों की पूर्णमासी व छठि व अमावसको जो इस तीर्थ में स्नान करता है उसको पुण्यफल होताहै इसीतरह तीर्थ की कथा से भी होताहै ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमणिनागतीर्थवर्णनो नामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर बड़ा सुन्दर, सबपापोंका हरनेवाला, पवित्र, उत्तम, गोपालेश्वर तीर्थ है ॥ १ ॥ हे नृप ! गऊकी देहसे

अयःषष्ठ्यां भाद्रेस्नायाच्चदर्शके ॥ तस्यपुण्यफलावाप्तिराख्यानकथनेनतु ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमणिनागतीर्थवर्णनोनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेनर्म्मदातीरे तीर्थंपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यं गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ १ ॥ गोदेहान्निःसृतंलिङ्गं पुण्यंभूमितलेन्नृप ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ गोदेहान्निस्सृतंकस्माल्लिङ्गंपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ दक्षिणेनर्म्मदातीरे मणिनागसमीपतः ॥ संक्षेपात्कथ्यतांविप्र गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कामधेनुस्तपस्तत्रपुत्रार्थंचचकारह ॥ ध्यायतीपरयाभक्त्यादेवदेवंमहेश्वरम् ॥ ४ ॥ तुष्टस्तस्याजगन्नाथः कपिलायामहेश्वरः ॥ निस्सृतोदेहमध्यात्तु अक्षयःपरमेश्वरः ॥ ५ ॥ महेश्वरउवाच ॥ तुष्टोदेविजगन्मातःकपिलेपरमेश्वरि ॥ आराधनंकृतंकस्माद्वददेविवरानने ॥ ६ ॥ सुरभिरुवाच ॥ लोकानामुपकाराय सृष्टाहंपरमेष्ठिना ॥ लोकेकार्य्यंहिसर्वंवैमत्प्रसादात्प्र

पृथिवी में पुण्यवाला लिङ्ग निकला है तब युधिष्ठिर जी बोले कि पापोंका नाश करनेवाला लिङ्ग गऊकी देहसे क्यों निकलाहै ॥ २ ॥ दक्षिणवाले नर्मदाके किनारे पर मणिनाग के समीप जो उत्तम गोपालेश्वर लिङ्गहै उसको हे विप्र ! संक्षेप से आप कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि वहां पुत्रके वास्ते कामधेनु तपस्या करतीहुई बड़ीभक्ति से देवताओं के देवता महादेवजीको ध्यावती हुई ॥ ४ ॥ उस कपिला से जगत के नाथ महादेवजी प्रसन्नहुये तब नाशरहित महादेवजी उसकी देहके बीचसे निकले ॥ ५ ॥ और महादेव कामधेनुसे बोले कि हे जगत की माता, परमेश्वरी, कपिला ! हमारी सेवा तुमने किसवास्ते की है सो हे वरानने, देवि !

कहा ॥ ६ ॥ तब कामधेनु बोली कि लोकों के उपकारके वास्ते मुझे ब्रह्माजीने रचाहै लोक में सब काम हमारी दयासे होवेंगे ॥ ७ ॥ आपके प्रसाद से सब लोग यहां आपको देखेंगे इससे हे शम्भो ! लोकों के हितकी इच्छासे इस तीर्थ में आप होवे ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि तब से यह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध होनाहुआ एक बार स्नान करने से हे राजेन्द्र ! सब पापोंको नाश करदेता है ॥ ९ ॥ गोपालेश्वरमें भक्तिसे जो गोदान देताहै परन्तु योग्य उत्तम ब्राह्मणको सोने के सहित योग्य गऊ देना चाहिये ॥ १० ॥ वह दूधवाली, जवान, साफ, बैल व कपडो से युक्त होवे हे युधिष्ठिर ! सब महीनों के अँधियारे पाख की चौदस व अष्टमी को बड़ी भक्ति से वेदपाठी

सिध्यति ॥ ७ ॥ लोकास्सर्वेप्रपश्यन्तित्वत्प्रसादात्त्रिशूलिनम् ॥ तीर्थेत्वंभवभोःशम्भोलोकानांहितकाम्यया ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थेविख्यातंवसुधातले ॥ स्नानेनैकेनराजेन्द्र सर्वपापंव्यपोहति ॥ ९ ॥ गोपालेशे तुगोदानं यस्तुभक्त्याप्रदापयेत् ॥ योग्येद्विजोत्तमेदेयायोग्याधेनुःसकाञ्चनी ॥ १० ॥ सवत्सातरुणीशुभ्राक्षीरिणी वृषसंयुता ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामष्टम्यांवायुधिष्ठिर ॥ ११ ॥ सर्वेषुचैवमासेषुकार्त्तिकेचविशेषतः ॥ दापयेत्परयाभक्त्याद्विजेस्वाध्यायतत्परे ॥ १२ ॥ विधिनाचप्रदास्यन्तिविधिनाप्रतिगृह्णते ॥ उभयोःपुण्यकर्म्माणि प्रेक्षकाःपुण्यभाजनाः ॥ १३ ॥ पिण्डदानंप्रकर्त्तव्यंप्रेतानांभावसंयुतैः ॥ पिण्डेनैकेनराजेन्द्रप्रेतायान्तिपरांगतिम् ॥ १४ ॥ भक्त्याप्रणामंरुद्रस्य येकुर्वन्तिदिनेदिने ॥ तेषांपापंप्रलीयेतभिन्नपात्रेजलंयथा ॥ १५ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोराजन्वृषंचैवसमुत्सृजेत् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ वृषोत्सर्गेकृतेतात यत्फलंभवतेन्नृणाम् ॥ १६ ॥ तत्सर्वंकथयस्वाद्य प्रयत्नेनद्विजोत्तम ॥

ब्राह्मणको देवे और कातिकमें विशेष करदेवे ॥ ११ । १२ ॥ जो विधिसे देते और जो विधिसे लेते हैं दोनोंके काम पुण्यवाले है देखनेवाले भी पुण्यके भागी होते हैं ॥ १३ ॥ प्रेतोंको भक्तिसे पिण्डदान भी करनाचाहिये हे राजेन्द्र ! एकही पिण्ड से प्रेत परमगतिको जाते हैं ॥ १४ ॥ भक्तिसे महादेवका जो रोज २ प्रणाम करते है उनका पाप फूटे घडेका सा पानी जातारहता है ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! जो उस तीर्थ में बैलको छोंडताहै तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! वृषोत्सर्ग के किये पर मनुष्यों

मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ने वृषेचैवतुयत्फलम् ॥ १७ ॥ तदहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुत्वंधर्म्मनन्दन ॥ कार्त्तिकेचैववैशाखे पौर्णमास्यान्नराधिप ॥ १८ ॥ रुद्रस्यसन्निधौभूत्वा शुचिःस्नात्वाजितेन्द्रियः ॥ वृषोत्सर्गंतथाराजन्कारयेद्धरप्रीतये ॥१९॥ स्थानेसंस्थित्वापवित्रेतु चतस्रोवत्सिकाःशुभाः ॥ वृषभायचमुञ्चेत सर्वलक्षणसंयुताः ॥ २०॥ प्रीयतान्मेमहादेवो ब्रह्माविष्णुस्तथापरे ॥ वृषभेरोमसंख्यातु सर्वाङ्गेषुनराधिप ॥ २१ ॥ तावद्वर्षप्रमाणन्तु शिवलोकेमहीयते ॥ शिवलोकेवसित्वातु पश्चान्मर्त्येचजायते ॥ २२ ॥ कुलेमहतिसम्भूतो धनधान्यसमाकुले ॥ सुरूपेरूपवांश्चैव विद्याढ्येसत्यवादिनाम् ॥ २३ ॥ गोपालेश्वरकंपुण्यंमयाख्यातंयुधिष्ठिर ॥ गोदेहान्निस्सृतंलिङ्गं नर्म्मदादक्षिणे तटे ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगोपालेश्वरमहिमानुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ * ॥

को जो फल होताहै ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तम ! आज उस सब फलको यत्नसे आप कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब लक्षणोंसे युक्त बैलमें जो फल होताहै ॥ १७ ॥ हे धर्मनन्दन ! उसको हम तुमसे कहेंगे तुम सुनो हे नराधिप ! कातिक व वैशाखकी पूर्णमासी को ॥ १८ ॥ नहाय व पवित्र और जितेन्द्रिय होकर महादेवके समीप में हे राजन् ! ईश्वर की प्रसन्नता के वास्ते वृषोत्सर्गकरे ॥ १९ ॥ पवित्र जगह में बैठकर सबलक्षणों से संयुक्त अच्छी चार बछिया बैलके वास्ते छोड़े ॥ २० ॥ और कहै कि इस उत्सर्ग से महादेव, ब्रह्मा और विष्णु जी वैसे ही और भी प्रसन्न होवें बैलके सब अङ्गों में रोवों की जितनी संख्या है हे नराधिप ! ॥ २१ ॥ उतने वर्षों तक शिवजी के लोक में पूजित होता है, शिवलोक में रहकर फिर मनुष्यलोकमे पैदा होताहै ॥ २२ ॥ सत्य बोलनेवालों के धन व अन्न से भरेहुये व विद्या से युक्त व अच्छेरूपवाले बडे कुलमें सुन्दररूपवाला पैदा होता है ॥ २३ ॥ हे युधिष्ठिर ! पुण्यवाले गोपालेश्वर लिंग को मैंने कहा जो नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर गऊ की देहमे निकला है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगोपालेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ ⊛ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर सब पापोंका हरनेवाला व पुण्यवाला गौतमेश्वर नामका बडा सुन्दर तीर्थ है ॥१॥ लोकों के हितकी कामना से गौतम ने स्थापित कियाहै हे युधिष्ठिर ! मनुष्यों को वह तीर्थ स्वर्गकी नसेनी है ॥ २ ॥ हे नृप ! पापों के नाश करने के वास्ते व स्वर्गवास मिलने के वास्ते बड़ी भक्तिसे तुम वहा जावो जहा जगत् के गुरु महादेवजी हैं ॥ ३ ॥ सुखका बढ़ानेवाला व जयका देनेवाला व दुःखोंका नाश करनेवाला तीर्थ है एक पिण्ड के देने से तीन कुलों को उद्धार करता है ॥ ४ ॥ जो कुछ वहा थोड़ा या बहुत भक्ति से दियाजाता है वह सब गौतमकी आज्ञा से सौ व हजारगुना होता है ॥ ५ ॥ सब तीर्थों

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्म्मदायोत्तरेकूले तीर्थपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यं नाम्नावैगौतमेश्वरम् ॥ १ ॥ स्थापितंगौतमेनेव लोकानांहितकाम्यया ॥ स्वर्गसोपानरूपेणतीर्थंपुंसांयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ गच्छत्वंपरयाभक्त्या यत्रदेवोजगद्गुरुः ॥ पातकानांविनाशाय स्वर्गवासाप्तयेनृप ॥ ३ ॥ सौख्यस्यवर्द्धनंलिङ्गं जयदंदुःखनाशनम् ॥ पिण्डदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम् ॥ ४ ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेभक्त्यास्वल्पंवायदिवाबहु ॥ तत्सर्वंशतसाहस्रमाज्ञयागौतमस्य च ॥ ५ ॥ तीर्थानांपरमन्तीर्थं स्वयंरुद्रेणभाषितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेनर्म्मदाकूले तीर्थपरमशोभनम् ॥ ६ ॥ शङ्खचूडेश्वरन्तत्र प्रसिद्धंभूमिमण्डले ॥ शङ्खचूडेश्वरस्तत्र संस्थितःपाण्डुनन्दन ॥७॥ वैनतेयभयात्पार्थ संस्थितोनर्म्मदातटे ॥ तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या शुचिर्भूत्वासमाहितः॥ ८ ॥ स्नापयेच्छङ्खचूडन्तु क्षौद्रेणदधिसर्पिषा ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा देवस्याग्रेनराधिप ॥ ९ ॥ दधिभक्तेनसम्पूज्य ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् ॥ गोदानञ्चतथादेयं सर्वपापक्षय

में बड़ा तीर्थ है खास महादेवने कहा है मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर बड़ा सुन्दर तीर्थ है ॥ ६ ॥ वहां शंखचूडेश्वर पृथिवीमण्डल में प्रसिद्ध है हे पाण्डुनन्दन ! शंखचूडेश्वर महादेव वहां विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ हे पार्थ ! गरुड के भय से नर्मदा तट में रहते हैं पवित्र व सावधान होकर उस तीर्थ में भक्ति से ॥ ८ ॥ शहद व दही और घी से शंखचूडेश्वरको नहवावे और हे नराधिप ! रातमें महादेवके आगे जागरण करे ॥ ९ ॥ दही और भात से उत्तमव्रतवाले ब्राह्मणों

का सत्कार कर सब पापोंका नाशकरनेवाला गोदान देनेयोग्य है ॥ १० ॥ हे पार्थ ! उस तीर्थ में जो सांपका डँसाहुआ भी मरे तो वह भी शंखचूडकी आज्ञासे उत्तम लोकको जाता है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशङ्खचूडतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पराशरवर तीर्थ को जावे उत्तम नर्मदा के तट में महात्मा पराशरने ॥१॥ पुत्र के वास्ते हे पाण्डुनन्दन ! बडे तप को किया लक्ष्मी व नारायण के सहित हिमाचल की कन्या गौरीजी को ॥ २ ॥ बड़ी भक्तिसे पराशरऋषिने उत्तरवाले नर्मदाके तटपर प्रसन्न किया तब प्रसन्न हुई

ङ्करम् ॥ १० ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःपार्थ सर्पदष्टोपिनश्यति ॥ सोपियातिपरंलोकं शङ्खचूडस्यचाज्ञया ॥ ११ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डेशङ्खचूडतीर्थमहिमानुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पराशरवरोत्तमम् ॥ पराशरोमहात्माच नर्म्मदायास्तटेशुभे ॥ १ ॥ तप श्चचारविपुलं पुत्रार्थंपाण्डुनन्दन ॥ हिमाचलसुतागौरी लक्ष्मीनारायणान्विता ॥ २ ॥ तोषितापरयाभक्त्या नर्मदा योत्तरेतटे ॥ पराशरेणऋषिणा तस्यतुष्टावरन्ददौ ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ भोभोऋषिवरश्रेष्ठ तुष्टाहन्तवभक्तितः ॥ वरं याचस्वविप्रेन्द्र पराशरमहामते ॥ ४ ॥ पराशरउवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि यदिदेयोवरोमम ॥ पुत्रोमेदीयतांशीघ्रं स र्वशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥ तीर्थंचात्रभवेद्देवि सन्निधानंवरेणतु ॥ लोकोपकारहेत्वर्थं स्थीयतांगिरिनन्दिनि॥६॥पराशरा भिधानेन नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ पराशरवचःश्रुत्वा देवीहिमवतस्सुता ॥ ७ ॥ एवंभवतुतेविप्र इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥

पार्वती उनको वर देती हुई ॥ ३ ॥ देवी बोली कि हे ऋषिवरश्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं हे विप्रेन्द्र,महामते, पराशर ! वर मांगो ॥ ४ ॥ तब पराशरजी बोले कि हे देवि ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और जो मुझे वर देना है तो सब शास्त्रों का जाननेवाला पुत्र मुझे जल्दी दियाजावे ॥ ५ ॥ और हे देवि ! यहां वरके समीप तीर्थ भी होजावे हे गिरिनन्दिनि ! लोकोंके उपकार के वास्ते आप भी यहां स्थित होवें ॥ ६ ॥ पराशर के नाम से नर्मदाके दक्षिणतट में तीर्थ होवे पराशर के वचनको

सुन हिमाचलकी कन्या पार्वती देवी ने कहा ॥ ७ ॥ कि हे विप्र ! तुम्हारा ऐसाही हो यह कहकर अन्तर्द्धान होगई महात्मा पराशर भी पार्वती को थापतेहुये ॥ ८ ॥ देवता और दैत्यों से नमस्कार कियेगये महादेवका भी स्थापन करतेहुये जो कि देवताओं से पूजेगये और दानवों को डरावने हैं ॥ ९ ॥ पराशर महात्मा भी सन्ताप से रहित व कृतार्थ होगये उस तीर्थ मे निर्मलमन व पवित्र होकर भक्तिसे जो ॥ १० ॥ हे नृपनन्दन ! चैत, सावन और अगहन महीने के उजियाले पाखमें सदा ॥ ११ ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ ! महादेव व पार्वती का पूजन करे व अष्टमी, चौदस और सूर्यग्रहण में हमेशा ॥ १२ ॥ काम क्रोध से रहित होकर स्त्री व पुरुष वहां नर्मदा

पराशरोमहात्माच स्थापयामासपार्वतीम् ॥ ८ ॥ शङ्करंस्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् ॥ अर्चितंसर्वदेवानां दानवानान्दुरासदम् ॥ ९ ॥ पराशरोमहात्माच कृतार्थोविगतज्वरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या शुचिःप्रयतमानसः ॥ १० ॥ मासेचैत्रेचविख्याते श्रावणेनृपनन्दन ॥ मासिमार्गशिरेचैव शुक्लपक्षेतुसर्वदा ॥ ११ ॥ शङ्करंपाण्डवश्रेष्ठ गिरिजांपूजयेत्तथा ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां सूर्य्यपर्वणिसर्वदा ॥ १२ ॥ स्त्रियोवापुरुषावापि कामक्रोधविवर्जिताः ॥ तत्र गत्वाशुचौस्थाने नर्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या व्रतंकुर्युर्महामुने ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपदानं स्वशक्तितः ॥ १४ ॥ सपत्नीकानुत्तमांश्च शीलश्रद्धासमन्वितान् ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्पार्थ अन्नदानहिरण्मयैः ॥ १५ ॥ वस्त्रेणच्छत्रदानेन शय्याताम्बूलभोजनैः ॥ श्राद्धंकार्य्यंनृपश्रेष्ठ आमश्राद्धंप्रशस्यते ॥ १६ ॥ आमंचतुर्गुणंप्रोक्तं ब्राह्मणानांयुधिष्ठिर ॥ वेदोक्तेनविधानेन द्विजाःपूज्याःप्रयत्नतः ॥ १७ ॥ हस्तमात्रकुशैश्चैव तिलैश्चवाञ्छितैर्नृप ॥ विप्रंचो

के दक्षिणवाले किनारे पर अच्छी जगह मे जाकर ॥ १३ ॥ उपासकर बड़ी भक्तिसे व्रत करे व हे महामुने ! रात में जागरण कर अपनी शक्तिके अनुसार दीपदान करे ॥ १४ ॥ और शील व श्रद्धा से युक्त उत्तम सपत्नीक ब्राह्मणों का हे पार्थ ! अन्न व सोने के दान से पूजन करे ॥ १५ ॥ कपडा, छाता, पलंग, पान और भोजनों से हे नृपश्रेष्ठ ! श्राद्ध करना चाहिये यहां कच्चे श्राद्धकी तारीफ है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों को कच्चा अन्न उनके खाने से चौगुना कहागया है वेद में कहेहुये

विधान से व बडे यत्न से ब्राह्मणोंका पूजन करनाचाहिये ॥ १७ ॥ और हे नृप ! हाथ २ भरके कुश व साफ तिलों से श्राद्ध करे ब्राह्मण को उत्तर और अपने को दक्षिण मुहँ बिठावे ॥ १८ ॥ अन्नको कुशों पर रखकर ब्राह्मणों के आगे ऐसे कहे कि इस तीर्थ के प्रभाव से प्रेत उत्तम लोक को जावें ॥ १९ ॥ और हमारा पाप नष्ट होजावे सदा कल्याण की वृद्धिहोवे और हे द्विजोत्तम ! वंश व भाईलोग वृद्धिको प्राप्तहोवें ॥ २० ॥ ब्राह्मणसे इस प्रकार कह पराशर के आश्रममें दान देवे हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पराशरके श्रेष्ठआश्रममें गऊ, पृथिवी, बैल, सोना, अन्न और वस्त्रोंको अपनी शक्तिसे देवे जो मनुष्य भक्तिसे इस कथाको सुनता है वह भी पापों से छूटजाता

दक्षुखंचैव आत्मानंदक्षिणामुखम् ॥ १८ ॥ आसन्दमेषुनिःक्षिप्य इत्युच्चार्य्यद्विजाग्रतः ॥ प्रेतायान्तुपरंलोकं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १९ ॥ पापंमेप्रशमंयातु यातुवृद्धिस्सदाशुभम् ॥ वृद्धियातुसदावंशो ज्ञातिवर्गोद्विजोत्तम ॥ २० ॥ एवमुच्चार्य्यविप्रेन्द्रं देयंपाराशराश्रमे ॥ गोभूनीलहिरण्यानि अन्नंवस्त्रंचशक्तितः ॥ २१ ॥ दातव्यंपाण्डवश्रेष्ठ पराशरवराश्रमे ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्या सोपिपापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे पराशरतीर्थमहिमानुवर्णनोनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ भीमेश्वरंततोगच्छेत्सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ सेव्यतेऋषिसङ्घैश्च भीमव्रतधरैरपि ॥ १ ॥ तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ जपंश्चैकाक्षरंमन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवाकरम् ॥ २ ॥ तस्यजन्मार्जितंपापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ सप्तजन्मार्जितंपापं गायत्र्यानश्यतेध्रुवम् ॥ ३ ॥ दशभिर्जन्मजनितंशतेनचपुराकृतम् ॥ त्रिजन्मनासह

है ॥ २१ । २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपराशरतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब पापों के नाश करनेवाले भीमेश्वर को जावे जोकि बड़े भयानक व्रतके करनेवाले भी ऋषियोंके गणोंसे सेया जाताहै ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहायकर उपास किये हुये व इन्द्रियों को जीते हुये जो मनुष्य ऊपरको हाथ किये हुये सूर्य के सामने एक अक्षर के मन्त्र को जपता है ॥ २ ॥ उसके पूर्व जन्म में जमा किया हुआ पाप उसी क्षणमें नष्ट होता है और सात जन्मो का जमा किया हुआ पाप गायत्री से निश्चय करके नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ एक जन्मका पाप

दश गायत्री से और अगिले का सौ से और हजार से तीन जन्मों के पापों को गायत्री नाश करती है ॥ ४ ॥ हे जनेश्वर ! वेद व पुराण के मन्त्रका जप जपागया उसी क्षण में पाप को जलाता है जैसे आग फूसको जलावे ॥ ५ ॥ और जो इसी बलसे कभी अज्ञान से भी पाप करे तो उसको वह फल जल्दी कभी नहीं होता है ॥ ६ ॥ उस तीर्थ में शक्ति के अनुसार गोदान देवे तो हे पाण्डुनन्दन ! उसका सम्पूर्ण फल अक्षय होता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम नारदेश्वर तीर्थ को जावे सब तीर्थों में बडे जिस तीर्थ को नारद ने बनाया है ॥ ८ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! नारद ने किस तीर्थ को बनाया

स्रेण गायत्रीहन्तिकिल्बिषम् ॥ ४ ॥ वैदिकंलौकिकंचापि जाप्यंजप्तंजनेश्वर ॥ तत्क्षणाद्दहतेपापं तृणंचज्वलनोयथा ॥ ५ ॥ तदेवबलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ॥ अज्ञानात्तस्यतत्क्षिप्रं नफलंहिकदाचन ॥ ६ ॥ तत्रतीर्थेतुगोदानं शक्तिमात्रेणदापयेत् ॥ तदक्षयंफलंसर्वं जायतेपाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र नारदेश्वरमुत्तमम् ॥ तीर्थानांपरमन्तीर्थं निर्मितंनारदेनतु ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ नारदेनमुनिश्रेष्ठकस्यतीर्थंविनिर्मितम् ॥ एतदाख्याहिमेसर्वं प्रसन्नोयदिसत्तम ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ परमेष्ठिसुतश्चापि नारदोभगवानृषिः ॥ नर्मदायोत्तरेकूले तपस्तेपेपुराकृते ॥ १० ॥ नवनाडीनिरोधेन काष्ठावस्थाङ्गतेनच ॥ तोषितःश्रीमहादेवो नारदेनयुधिष्ठिर ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तुष्टोहंतवविप्रेन्द्र योगीश्वरअयोनिज ॥ वरंप्रार्थयहेदेव यत्तेमनसिवर्तते ॥ १२ ॥ नारदउवाच ॥ त्वत्प्रसादेनभोदेव योगश्चैवप्रसिद्ध्यतु ॥ ईश्वरउवाच ॥ योगोभवतुभक्तिस्ते सर्वकालंममैवतु ॥ १३ ॥ स्वेच्छाचारो

है हे सत्तम ! जो आप प्रसन्न हो तो यह सब मुझ से कहो ॥ ९ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सतयुग में ब्रह्मा के पुत्र भगवान् नारद ऋषि नर्मदा के उत्तर वाले तटपर तपस्या करते हुये ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! नवो इन्द्रियोंके रोकनेसे काठकीसी हालत को प्राप्त होरहे नारद ने श्रीमहादेव को प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे अयोनिज ! हे योगीश्वर ! हे विप्रेन्द्र ! हम तुम से प्रसन्नहैं इस से हे देव ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ १२ ॥ तब नारद बोले कि हे

देव ! आपके प्रसादसे हमारा योग सिद्ध होवे तब महादेवजी बोले कि तुम्हारे योग होवे और हमेशा हमारी भक्तिरहे ॥ १३ ॥ और इस संसारमें स्वर्ग व पातालमें अपनी इच्छा से घूमो और हे योगिन् ! मनुष्यलोक में भी विचरो किसी से नहीं रोके जासक्तेहो ॥ १४ ॥ सातस्वर, तीनग्राम और इक्कीस मूर्च्छना व हमको खुश करनेवाला दिव्य नाचना व गाना तुम्ह योगीको सदा याद रहेगा ॥ १५ ॥ देवता, दानव और किन्नरों की लडाई को सदा देखोगे और हमारे प्रसादसे तुम्हारा तीर्थ पृथिवी में बडा पुण्यवाला होगा ॥ १६ ॥ इतना कह महादेवजी अन्तर्द्धान होगये तब हे राजेन्द्र ! सब जीवोंके उपकार करनेवाले महादेव का नारदजी ने स्थापन किया ॥ १७ ॥

भवेगच्छ स्वर्गपातालगोचरे ॥ मर्त्येचभ्रमसेयोगिन्नकेनापिनिवार्यसे ॥ १४ ॥ सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ॥ ममप्रियकरंदिव्यं नृत्यङ्गीतञ्चयोगिना ॥ १५ ॥ कलिञ्चपश्यसेनित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥ त्वत्तीर्थंभूतलेपुण्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो नारदस्तत्रलिङ्गिनम् ॥ स्थापयामासराजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पृथिव्यामुत्तमंतीर्थं निर्मितंनारदेनतु ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरश्रेष्ठ नागच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ मासिभाद्रपदेरम्ये कृष्णपक्षेचतुर्द्दशीम् ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ १९ ॥ छत्रंतत्र प्रदातव्यं ब्राह्मणेशुभलक्षणम् ॥ शस्त्रेणनिहतायेतु तेषांश्राद्धंप्रदापयेत् ॥ २० ॥ यान्तितेपरमंलोकं पिण्डदानप्रभावतः ॥ कपिलाचैवदातव्या तत्रदेशेनराधिप ॥ २१ ॥ अस्यश्राद्धप्रभावेण ब्राह्मणानांनराधिप ॥ नर्म्मदातोयपानस्य न्यायार्जितधनस्यच ॥ २२ ॥ एतेषाञ्चप्रभावेण प्रेतायान्तुपराङ्गतिम् ॥ इत्युच्चार्य्यद्विजेदेया दक्षिणाचस्वशक्ति

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि पृथिवी में नारदका बनायाहुआ तीर्थ उत्तमहै हे नरश्रेष्ठ ! इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य उस तीर्थको जावे ॥ १८ ॥ भादोंके अँधियारे पाखकी चौदस को उपासकर बड़ी भक्तिसे रातमे जागरण करे ॥ १९ ॥ अच्छे ब्राह्मणको वहा छातेका दानकरे और जो हथियारों से मारेगये हैं उनका श्राद्ध करे ॥ २० ॥ पिण्डदानके प्रभावसे वे प्रेत उत्तमलोक को जाते हैं और हे नराधिप ! वहां कपिलागऊ देना चाहिये ॥ २१ ॥ और हे नराधिप ! श्राद्धके समय में यह कहना चाहिये कि इस श्राद्धके प्रभावसे व नर्मदा के जलके पीने व ब्राह्मणों व नीति से कमायेहुये धन ॥ २२ ॥ इनके प्रभावसे प्रेतलोग परमगतिको पावे ऐसे कहकर अपनी

शक्तिके अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २३ ॥ और हे विशालाक्ष ! ब्राह्मणों को हविष्यान्न देवे एक विद्याके दानमे अक्षयगति होती है ॥ २४ ॥ और हे राजेन्द्र ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मणके लिये तिलोके सहित सोना देवे वह स्वर्गको जाताहै ॥ २५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम जो दो तीर्थ हैं उनमें जावे सब पापोंका नाश करनेवाला एक दधिच्छन्द और दूसरा मधुच्छन्दहै ॥ २६ ॥ दधिच्छन्द में जो मनुष्य स्नानकर ब्राह्मणको दही देताहै हे भारत ! उसको सात जन्मोंतक दही खानेको मिलताहै ॥२७॥ उसको रोग, बुढ़ापा, शोच और ईर्षा कभी नहीं आते हैं और वह हजारजन्मतक बडेही कुलमें पैदा होता है ॥ २८ ॥

तः ॥ २३ ॥ हविष्यान्नंविशालाक्ष द्विजानाञ्चैवदापयेत् ॥ विद्यादानेनचैकेन अक्षयागतिराप्यते ॥ २४ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र योदद्यादग्रजन्मने ॥ काञ्चनंसतिलंचैव सगच्छेच्चत्रिविष्टपम् ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ दधिच्छन्दंमधुच्छन्दं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २६ ॥ दधिच्छन्देनरःस्नात्वा योदद्याच्चद्विजेदधि ॥ उपतिष्ठतितस्यैतत्सप्तजन्मसुभारत ॥ २७ ॥ नव्याधिर्नजरातस्य नशोकोनचमत्सरः ॥ दशचन्द्रशतंयावज्जायतेविपुलेकुले ॥ २८ ॥ मधुच्छन्देतुमधुना मिश्रितञ्चतिलोदकम् ॥ नचवैवस्वतन्देवं पश्यतेसप्तजन्मसु ॥ २९ ॥ मधुनासहसंमिश्रं तिलंयस्तुप्रयच्छति ॥ तस्यपुत्रस्यपौत्रस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ ३० ॥ मधुनासहसंमिश्रं तिलंयस्तुप्रयच्छति ॥ मधुनासहसंमिश्रं यस्तुपिण्डंप्रदापयेत् ॥ ३१ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःस्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥ पितापितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ॥ ३२ ॥ षोडशाब्दानितुष्यन्ति नात्रकार्य्याविचारणा ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ ततोग

वह सात जन्मोंतक यमराज को नहीं देखता है ॥ २९ ॥ मिठाई से मिलेहुये तिलोंको जो देता है और मधुच्छन्दतीर्थ में मिठाई से मिलेहुये तिलोंको जो देताहै उसके लडके व पोतोंको भी दरिद्र नहीं होताहै ॥ ३० ॥ फिर भी मिठाई से मिले तिलोको जो देताहै अथवा मिठाई से मिलेहुये तिलोंके लड्डूको जो देताहै उसको भी पहले कहाहुआ फल होता है ॥ ३१ ॥ उस तीर्थमें जो विधिसे स्नानकर व दक्षिण मुहँ बैठकर बाप, दादे और परदादेको पिण्ड देताहै ॥३२॥ उसके वे पितर

सोलह वर्षतक सन्तुष्ट रहते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम नन्दितीर्थ को जावे ॥ ३३ ॥ जहां निश्चय से नन्दी सिद्धहुयेहैं वह सब हम कहते हैं आगे नर्मदा को अपने सामनेकर नन्दी ने महादेव के वास्ते ॥ ३४ ॥ तप किया और मन्त्रको जपतेहुये एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को जातेहुये दधिच्छन्द और मधुच्छन्द को छोड जबतक जावें ॥ ३५ ॥ तबतक प्रसन्न होगये महादेवजी उस नन्दी से बोले महादेवजी ने कहा कि हे नन्दीश ! हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनमाने वरको मांगो ॥ ३६ ॥ क्योंकि तुम्हारे उस तपस्या व तीर्थयात्रा के करने से हम सन्तुष्ट हैं तब नन्दी बोले कि धन, कुल

च्छेत्तुराजेन्द्र नन्दितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३३ ॥ यत्रसिद्धश्चवैनन्दी तत्सर्वंकथयाम्यहम् ॥ नर्म्मदांपुरतःकृत्वापुरानन्दी महेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तपस्तप्तंजपंश्चैव तीर्थात्तीर्थंजगामह ॥ दधिच्छन्दंमधुच्छन्दं यावत्त्यक्त्वाचगच्छति ॥ ३५ ॥ तस्तुष्टोमहादेवो नन्दिनन्तमुवाचह ॥ महेश्वरउवाच ॥ भोभोःप्रसन्नोनन्दीश वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ ३६ ॥ तपसातेनतुष्टोहं तीर्थयात्राकृतेनच ॥ नन्द्युवाच ॥ नचाहंकामयेवित्तन्नचाहंकुलसन्ततिम् ॥ ३७ ॥ मुक्तिन्नकामयेचान्यद्देवेश चरणाम्बुजम् ॥ कृमिकीटपतङ्गेषु तिर्य्यग्योनिगतेषुच ॥ ३८ ॥ जन्मजन्मनियास्यामि त्वद्भक्तिरचलाचमे ॥ तथेति चोक्तोदेवेन परमेशेननन्दिकः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वातंकरेशीघ्रं जगामनिलयंहरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःस्नात्वा भक्त्याभ्यर्च्चंप्रपूजयेत ॥ ४० ॥ अग्निष्टोमेचयत्पुण्यं फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ तत्रतीर्थेमहापुण्ये प्राणत्यागंकरोतियः ॥ ४१ ॥ शिवस्यानुचरोभूत्वा मोदतेकल्पमक्षयम् ॥ ततःकालेनमहता जायतेविपुलेकुले ॥ ४२ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जी

और सन्तान को हम नहीं चाहते और न मुक्ति व न औरही कुछ चाहते हैं हे देवेश ! आपके चरणकमलों को हम चाहते हैं कृमि, कीट और पतिंगत्रों की योनिमें अथवा पशु व पक्षियों की योनिमें ॥ ३७।३८ ॥ हम जन्म २ में जावें परन्तु आपकी अचलभक्ति हमको होवे तब महादेवने नन्दी से कहा कि ऐसाहीहो ॥३९॥ और हाथ पकड़कर नन्दी के सहित महादेव अपने स्थानको जल्दी जातेहुये जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नानकर भक्तिसे महादेवका पूजन करता है ॥ ४० ॥ वह अग्निष्टोमयज्ञ में जो पुण्य होता है उस फलको पाता है और बड़े पुण्यवाले उस तीर्थ में जो प्राणोंको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ वह महादेव का सेवक होकर अक्षय कल्पभर

आनन्द करताहै तदनन्तर बहुत कालके बाद वेद व वेदांगों के तत्त्वों के जाननेवाले बड़े कुलमें पैदाहोकर सौवर्ष जीताहै हे पार्थ ! सब सन्तोषों के देनेवाले इस आख्यान को हमने तुमसे कहा ॥ ४२ । ४३ ॥ यह बड़ा दुर्लभहै और सच्चेके सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनन्दितीर्थवर्णनोनामैकाधिकशततमोध्यायः ॥ १०१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम वरुणेश्वर को जावे हे नृपसत्तम ! पहले जहां वरुणदेव सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ मनुष्यलोग पीना, शाक, पत्ता

वेच्चशरदांशतम् ॥ एतत्तेकथितंपार्थ सर्वतुष्टिप्रदंशुभम् ॥ ४३ ॥ दुर्लभंसत्यसंज्ञस्य सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेनन्दितीर्थवर्णनोनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र वरुणेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धोपुरादेवो वरुणोनृपसत्तम ॥ १ ॥ पिण्याकशाकपर्णैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥ आराध्यगिरिजानाथं ततस्सिद्धिङ्गताजनाः ॥ २ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ पूजयेच्छङ्करंभक्त्या सगच्छेत्परमंपदम् ॥ ३ ॥ कुण्डिकांवर्द्धनींवापि महद्वाजलभाजनम् ॥ अन्नेनसहितंपार्थ तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ यत्फलंलभतेमर्त्यस्सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ तत्फलंसमवाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥ ५ ॥ सर्वेषामेवदानानामन्नदानमनुत्तमम् ॥ यद्यत्प्रीतिकरञ्चैव तोयञ्चनृपसत्तम ॥ ६ ॥ तत्रतीर्थेमृता

और कृच्छ्र व चान्द्रायण आदि व्रतोंसे महादेव का सेवनकर तदनन्तर सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ २ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नानकर और पितर व देवताओं का तर्पणकर भक्तिसे महादेवका पूजन करताहै वह परमपदको जाताहै ॥ ३ ॥ और हे पार्थ ! कूंडी व बढ़नी और कोई बड़ापानीका पात्र अन्नके सहित जो दियाजाताहै उसके पुण्य फलको तुम सुनो ॥ ४ ॥ बारह वर्षतक जिममें बैठक रहती है ऐसे सत्र (यज्ञ) में जिस फलको मनुष्य पाताहै उसी फलको पाताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ सब दानोंमें अन्नदान बड़ा उत्तम है व हे नृपसत्तम ! और भी जो जो सबका प्रसन्न करनेवाला पदार्थ जैसे कि जलहै उनको देवे ॥ ६ ॥ उस तीर्थमें मरेहुये

महात्मा मनुष्यों का वरुणलोक में प्रलयतक वास होताहै ॥ ७ ॥ वहां बहुत काल तक भोगोंको भोगकर फिर मनुष्यलोकमें पैदाहोता है अन्नदान का देनेवाला पैदा होकर सौवर्ष बराबर जीताहै ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि फिर हे राजेन्द्र ! अत्युत्तम अग्नितीर्थ को जावे जहां तपस्याको कर बड़े तेजवाले अग्निभगवान् सिद्धहुये हैं ॥ ९ ॥ आगे जिसको मुनिने दण्डकवन में सर्वभक्षी करदिया था वही अग्नि नर्मदा के तटपर बैठकर पवित्र होगये ॥१०॥ मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर और पार्वती के सहित महादेवका पूजनकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर हे नृप ! ब्राह्मणों को जल देकर सोना देता है वह अर्बुगुने फलको

नाञ्च नराणांभावितात्मनाम् ॥ वारुणेचपुरेवासो यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ७ ॥ भुक्त्वातत्रबहुंकालं मर्त्यलोकेभिजायते ॥ अन्नदानप्रदोनित्यं जीवेच्चशरदांशतम् ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धोमहातेजास्तपःकृत्वाहुताशनः ॥ ९ ॥ सर्वभक्षीकृतोयश्च दण्डकेमुनिनापुरा ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य पूतोजातोहुताशनः ॥ १० ॥ तत्रतीर्थेनरस्स्नात्वा समभ्यर्च्यजगद्गुरुम् ॥ उमयासहितंभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ११ ॥ तत्र तीर्थेनरस्स्नात्वा दत्त्वैकाञ्चनंनृप ॥ ब्राह्मणेभ्योजलंदत्त्वालभतेवार्बुदंफलम् ॥ १२ ॥ दधिच्छन्देमधुच्छन्दे नन्दीशे वारुणेतथा ॥ आग्नेयेतत्फलंतात स्नात्वामुच्येतकिल्बिषैः ॥ १३ ॥ तेवन्द्यामानुषेलोके धन्याश्चाप्तमनोरथाः ॥ यैर्हिदृष्टंमहापुण्यंनर्म्मदातीर्थपञ्चकम् ॥ १४ ॥ स्वर्गलोकमवापुस्तेयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ततःस्वर्गाच्च्युताश्चापिराजानस्सन्तिधार्मिकाः ॥ १५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताभुञ्जतेतेऽचलांमहीम् ॥ आखण्डलप्रतापोयंनर्म्मदातटसेवने ॥ १६ ॥

पाता है ॥ १२ ॥ हे तात ! दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, नन्दीश्वर, वारुण और आग्नेय में वह फल होताहै कि स्नान करके सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १३ ॥ मनुष्यलोकमें वे मनुष्य वन्दना करने के योग्य व धन्य हैं और उन्हींको सब मनोरथ मानो मिलगये कि जिन्होंने बड़े पुण्यवाले नर्मदा के पांचों तीर्थोंको देखाहै ॥ १४ ॥ वे जबतक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक स्वर्गलोक में प्राप्त बने रहते हैं तदनन्तर स्वर्गसे उतरेहुये व सब पापोंसे छूटेहुये धर्मात्मा राजा होतेहैं और पृथिवी का अचल

भोग करते हैं नर्मदातट के सेवन से इन्द्रके समान प्रतापवाला होता है ॥ १५ । १६ ॥ कनखल में गङ्गा पुण्यवाली हैं और सरस्वती कुरुक्षेत्र में और गांव व वनमें कहीं भी हों नर्मदा सब कहीं पवित्र हैं ॥ १७ ॥ नर्मदा के किनारे रहताहुआ जो हमेशा उनका जल पीताहै वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान करचुका और उसको रोज रोज सोमलता के पीनेका फल होताहै ॥ १८ ॥ गङ्गाआदि सब नदियां व समुद्र व तालाब कल्पके अन्तमें नष्ट होजाते हैं परन्तु नर्मदा कभी नहीं नष्ट होती हैं ॥१९॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेतीर्थपञ्चकवर्णनोनामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

गङ्गाकनखलेपुण्याकुरुक्षेत्रेसरस्वती ॥ ग्रामेवायदिवारण्येपुण्यासर्वत्रनर्मदा ॥ १७ ॥ रेवातीरंवसन्नित्यं तोयंयस्तुस दापिबेत् ॥ स्नातोसौसर्वतीर्थेषु सोमपानंदिनेदिने ॥ १८ ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्सर्वास्समुद्राश्चसरांसिच ॥ कल्पान्तेसंक्षयं यान्तिनमृतैकाचनर्म्मदा॥१९॥इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेतीर्थपञ्चकवर्णनोनामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ हनूमदीश्वरन्नाम कथंजातंमहामते ॥ ब्रह्महत्याहरंतीर्थं रेवायादक्षिणेतटे ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउ वाच ॥ साधुपृष्टंमहाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातंकस्यचिन्मया ॥ २ ॥ तवस्नेहात्प्रवक्ष्या मि पीडितोवार्द्धकेनतु ॥ जातंपूर्वंमहायुद्धं रामरावणयोरपि ॥ ३ ॥ पुलस्त्योब्रह्मणःपुत्रस्तस्यवैविश्रवास्सुतः ॥ राव णस्तस्यसञ्जातो दशग्रीवोपिराक्षसः ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविजयीजातः प्रसादाच्छूलिनस्तथा ॥ गीर्वाणानिर्जितास्सर्वे रा मस्यगृहिणीहृता ॥ ५ ॥ यद्भ्राताकुम्भकर्णोवै सीतासावनमाश्रिता ॥ विभीषणेनपापोयं मन्दस्त्यक्तोविचार्य्य

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामते ! नर्मदा के दक्षिणवाले तटमें ब्रह्महत्या का हरनेवाला हनूमदीश्वर नामका तीर्थ कैसे हुआ ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे सोमवंशविभूषण ! हे महाबाहो ! आपने बहुतअच्छा पूँछा गुप्तसे अतिगुप्त इस तीर्थको मैंने किसीसे नहीं कहाहै ॥ २ ॥ यद्यपि बुढ़ापे से पीड़ितहूं तथापि तुम्हारे स्नेहसे कहूंगा अगिले जमानेमें राम और रावण का बड़ा युद्ध हुआ ॥ ३ ॥ ब्रह्माके लड़के पुलस्त्य हुये, उनके पुत्र विश्रवा हुये, विश्रवाके दशकण्ठवाला राक्षस रावण हुआ ॥ ४ ॥ वह महादेव के प्रसाद से तीनों लोकोंका जीतनेवाला हुआ उसने सब देवताओंको जीतलिया और रामकी रानी सीताको हरलेगया ॥ ५ ॥ जिसका भाई

कुम्भकर्ण था, सीता अशोकवन में रहती थीं, विभीषण ने विचार करके इस पापी नीचको छोड़दिया ॥ ६ ॥ वह सहस्रबाहु से जीतागया था और सहस्रबाहु को परशुराम ने जीताथा वह रावण रामचन्द्र से मारागया और उसकी राज्यभी हर लीगई ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामने उस बडे बलवाले राक्षसको संग्राम में जीता और हनूमान् ने लङ्कामें जाकर वनको तोड़ा और राक्षसों को मारा ॥ ८ ॥ रावण का लड़का अक्षकुमार भी हनूमान् से संग्राममें मारागया इस प्रकार रामायणके होनेपर और सीताके छूटनेपर ॥ ९ ॥ और रामको अयोध्या जानेपर हे पार्थ ! बड़े बलवाले हनूमान् महादेव के प्रणाम करने के वास्ते कैलासको गये ॥ १० ॥ तब नन्दीने

च ॥ ६ ॥ सजितःकार्त्तवीर्येण सजितोजामदग्निना ॥ सहतोरामचन्द्रेण तस्यराज्यंहृतन्तथा ॥ ७ ॥ ततोरामेणरक्षोऽपि जितस्संख्येमहाबलः ॥ वनंभग्नंहतोरक्षो गत्वावायुसुतेनवै ॥ ८ ॥ रावणस्यसुतस्संख्ये हतश्चाक्षकुमारकः ॥ एवंरामायणेजाते सीतामोक्षेकृतेततः ॥ ९ ॥ अयोध्यायांगतेरामे हनूमांश्चमहाबलः ॥ कैलासंहिगतःपार्थ प्रणामार्थंमहेश्वरे ॥ १० ॥ तिष्ठतिष्ठेतिचोक्तोवै नन्दिनावानरोत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायुतस्त्वंहि राक्षसानांवधेनहि ॥ ११ ॥ भैरवस्यासनंपुण्यं नगन्तासिमहाबल ॥ हनूमानुवाच ॥ नन्दिस्त्वंहिवरंयच्छ पातकस्योपशान्तये ॥ १२ ॥ भूत्वानिष्पातकोहं वै प्रणमामिमहेश्वरम् ॥ नन्द्युवाच ॥ रुद्रदेहोद्भवापुण्या नर्मदासरितांवरा ॥ १३ ॥ श्रवणाज्जन्मचरितं कीर्तनाद्द्विगुणं व्रजेत् ॥ सप्तजन्मार्जितंपापं नश्येद्रेवावगाहनात् ॥ १४ ॥ तस्मात्तीरेवसत्वञ्च रेवासङ्गमदक्षिणे ॥ ध्यायमानोविरूपाक्षं त्रिशूलकरसंस्थितम् ॥ १५ ॥ जटामुकुटसंकाशं व्यालयज्ञोपवीतकम् ॥ उमार्द्धाङ्गधरन्देवं गोराजासनसंस्थि

हनूमान्से कहा कि खड़ेरहो २ तुम राक्षसों के मारने से ब्रह्महत्यासे युक्त होरहेहो ॥ ११ ॥ इससे हे महाबल ! पवित्र भैरवके आसनको तुम मतजावो तब हनूमान् बोले कि हे नन्दिन् ! तुम हमारे पातक शान्त होने के वास्ते वर देवो ॥ १२ ॥ तो हम पापसे रहित होकर महादेवको नमस्कार करें तब नन्दी बोले कि नदियोंमें श्रेष्ठ व पुण्यवाली नर्मदा महादेव की देहमे पैदाहुई है ॥ १३ ॥ जिसके सुनने से एक जन्मका पाप नष्ट होताहै और कहने से उससे दूना और नर्मदा के नहाने से सात जन्मोंका पाप नष्ट होजाताहै ॥ १४ ॥ तिससे तीन नेत्रवाले व त्रिशूल को हाथ में लियेहुये जटामुकुट को धरेहुये सर्पोंके जनेऊ को पहनेहुये व पार्वती को आधेअङ्ग

में धरेहुये व श्रेष्ठबैल के आसनपर बैठेहुये महादेव को ध्यावतेहुये तुम नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर बसो ॥ १५ । १६ ॥ तब हनूमान् ने वही किया वहां बहुत वर्षोंतक ध्यान करतेहुये उन हनूमान् से प्रसन्न हुये पार्वती के सहित महादेवजी वहां आये ॥ १७ ॥ और मेघों कीसी आवाज से मीठीवाणी को बोले कि हे वत्स ! तपस्या में बडेकष्ट से तुमको रहना पडा ॥ १८ ॥ तब पार्वती को आधेअङ्ग में धरेहुये वर्तमान महादेवजी को देख हनूमान् ने सब अङ्गोंसे नम्र होकर कहा कि हे देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ अन्धकके मारनेवाले व बाणासुर के मर्दन करनेवाले के लिये जयहो, भूतों के मालिकके लिये जयहो हे भैरवभूषण !

तम् ॥ १६ ॥ वत्सरान्सुबहून्यावद्ध्यायतस्तस्यतत्रवै ॥ तत्रतुष्टोमहादेव आगतःसहभार्यया ॥ १७ ॥ उवाचमधुरांवाणीं मेघगम्भीरयागिरा ॥ साधुवत्सत्वयाचात्र कष्टंतपसिसंस्थितम् ॥ १८ ॥ हनूमांश्चहरन्दृष्ट्वा उमार्द्धाङ्गधरंस्थितम् ॥ साष्टाङ्गंप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १९ ॥ जयचान्धकघाताय बाणासुरविमर्द्दिने ॥ जयभूतपनाथाय जयभैरवभूषण ॥ २० ॥ जयकामविनाशाय गङ्गांशिरसिधारिणे ॥ एवंस्तुतोमहादेवो वरदोवानरस्यच ॥ २१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंप्रार्थयत्वंवत्स प्रार्थितंरभसंवद ॥ हनूमानुवाच ॥ ब्रह्मरक्षोवधाज्जाता ब्रह्महत्यामहेश्वर ॥ २२ ॥ निष्पापोहंभवेयंवै युष्मत्सम्भाषणेनच ॥ ईश्वरउवाच ॥ नर्म्मदातीर्थमाहात्म्यध्यानयोगप्रभावतः ॥ २३ ॥ मन्मूर्तिदर्शनात्सद्यो निष्पापोनात्रसंशयः ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेव उमासार्द्धंत्रिलोचनः ॥ २४ ॥ हनूमदीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तितः ॥ आ

आपकी जयहो ॥ २० ॥ कामदेव के नाश करनेवाले व गङ्गाको शिरपर धरनेवाले के लिये जयहो इस प्रकार हनूमान् को वर देनेवाले महादेवजी स्तुति कियेगये ॥ २१ ॥ तब महादेव बोले कि हे वत्स ! तुम वरको मांगो जो चाहते हो उसको जल्दी कहो तब हनूमान् बोले कि हे महेश्वर ! ब्रह्मराक्षसों के मारनेसे मुझको ब्रह्महत्या हुई है ॥ २२ ॥ इससे अब आपके सम्भाषण से हम पापसे रहित होजावें तब महादेव बोले कि नर्मदातीर्थ के माहात्म्य व ध्यानयोगके प्रभाव ॥ २३ ॥ व हमारी मूर्त्तिके दर्शनसे तुम शीघ्र पापों से छूटगये इसमें संशय नहीं है इतना कहकर पार्वती के सहित तीन आंखोंवाले महादेवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ २४ ॥ तब वहां

हनूमान् ने हनूमदीश्वर को भक्तिसे स्थापित किया अपने योगबलसे व ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ॥ २५ ॥ व महादेवके प्रभावसे कामनाओं के देनेवाले व जन्म मरणसे रहित व नहीं तर्क करने के योग्य व काटने के अयोग्य शिवको स्थापन किया ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि वहां हनूमदीश्वर में पहिले जो परिचयहुआ व द्वापर की आदिमें व त्रेताके अन्तमें हे नरेश्वर ! जो हालहुआ सो सुनो ॥ २७ ॥ इस पृथिवीमें एक सुपर्णनाम के राजर्षि होतेहुये उनकी राज्य में सदा बड़ी उमरवाले मनुष्य होतेहुये और उनको हमेशा सुख होता हुआ ॥ २८ ॥ उनका पुत्र बड़ा पराक्रमी व सौ हाथोंवाला होताहुआ हे नरेश्वर ! वह जप व ध्यान में हमेशा लगारहता

त्मयोगबलेनैव ब्रह्मचर्य्यप्रभावतः ॥ २५ ॥ ईश्वरस्यप्रभावेण कामदंस्थापितंशिवम् ॥ अच्छेद्यमप्रतर्क्यञ्च विनाशो त्पत्तिवर्जितम् ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हनूमदीश्वरेतत्र प्रत्ययंयत्पुराभवत् ॥ यद्वृत्तंद्वापरस्यादौ त्रेतान्तेचनरे श्वर ॥ २७ ॥ सुपर्णोनामराजर्षिर्बभूववसुधातले ॥ तस्यराज्येसदासौख्यं दीर्घायुर्मानवस्सदा ॥ २८ ॥ शतबाहुर्बभू वास्य पुत्रोभीमपराक्रमः ॥ आसक्तस्ससदाकालं जपध्यानेनरेश्वर ॥ २९ ॥ क्रीडतेपृथिवींसर्वां पर्वतांश्चवनानिच ॥ व धार्थंमृगयूथानामागतोविन्ध्यपर्वते ॥ ३० ॥ मृगजातिसमाकीर्णे हस्तिजातिसमाश्रिते ॥ हस्तिचित्रकशोभाढ्ये मृग वाराहसंकुले ॥ ३१ ॥ क्रीडित्वाचततोराजा चासनेसंस्थितस्सच ॥ वनमध्येतदादृष्ट्वा भ्रमन्तंपिङ्गलंद्विजम् ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ एकोवनेवनेकस्माद्भ्रमसेपुस्तिकाकरः ॥ इतश्चेतोनिरीक्षंस्त्वं कथयस्वद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणउवा च ॥ कान्यकुब्जात्समायातः प्रेषितोराजकन्यया ॥ राजोवाच ॥ कथयस्वप्रसादेन कस्मात्कार्य्यादिदप्रभो ॥ ३४ ॥

था ॥२९॥ और सब पृथिवी व पर्वत व जङ्गलोंमें विहार करता था किसी समय हिरनोंके मारनेके वास्ते विन्ध्यपर्वतपर आया ॥३०॥ जोकि हिरनों व हाथियोंकी जाति से भराहुआ हाथियों के पकड़ने के वास्ते बनेहुये हाथियों के चित्रों की शोभामे युक्त हिरनों व सुवरों से भराहै ॥ ३१ ॥ वह राजा वहां विहारकर आसनपर बैठा तदनन्तर वनके बीचमें घूमतेहुये एक पिङ्गलब्राह्मण को देखा ॥ ३२ ॥ उससे राजा बोला कि हे द्विजोत्तम ! इधर उधर क्या देखतेहुये पुस्तक हाथमें लियेहुये अकेले वन वनमें तुम क्यों घूमतेहो सो कहो ॥३३॥ तब ब्राह्मण बोला कि हम कान्यकुब्ज से राजकन्या के भेजेहुये आये हैं तब राजा बोला कि हे प्रभो ! किस कामके वास्ते

आये हो सो अपनी दयासे कहो ॥ ३४ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि राजा शिखण्डी कान्यकुब्ज देशको भोगताहै वह राजा पुत्रों से खाली है बड़े मनोरथों से उसके एक
कन्या हुई ॥ ३५ ॥ वह कन्या नर्मदाके प्रभाव से पूर्वजन्म की सुध रखनेवाली व उत्तम चालवाली है उसके पिताने उसको विवाहके लायक समझा और उससे कहा
भी है ॥ ३६ ॥ पिता ने कहा कि इस असारसंसारमें हम कन्यादान करेंगे तब कन्या बोली कि जिससमय में मैं इच्छाकरूं उससमय में दीजाऊं ॥ ३७ ॥ तब कन्या के
वचन से राजा विस्मय से युक्त मनवाला होगया और राजा शिखण्डी बोला कि हे महाभागे ! बतावो तो तुमने क्या कहा ॥ ३८ ॥ पिताके वचनसे वह बाला शिरसे

ब्राह्मणउवाच ॥ शिखण्डीचैवराजावै कान्यकुब्जम्बुभुक्त्वते ॥ अपुत्रस्समहीपालः कन्याजातामनोरथैः ॥ ३५ ॥ जा
तिस्मराशुभाचारा नर्मदायाःप्रभावतः ॥ पित्रोक्तासाचकन्यावै विवाहायप्रकल्पिता ॥ ३६ ॥ असारेचाद्यसंसारे क
न्यादानंददाम्यहम् ॥ कन्योवाच ॥ यस्मिन्कालेह्यहंलिप्सेतस्मिन्कालेप्रदीयताम् ॥ ३७ ॥ पुत्रीवाक्येनराजासौविस्म
याविष्टचेतनः ॥ शिखण्डयुवाच ॥ कथ्यतांमेमहाभागे भाषितंहित्वयाकथम् ॥ ३८ ॥ पितृवाक्येनसाबाला शिरसाव
नताभुवि ॥ कथयामासयद्वृत्तं हनूमदीश्वरेनृप ॥ ३९ ॥ कलापिन्यस्म्यहन्तात स्थिताभर्तृसहानुगा ॥ उरङ्गमेशसा
न्निध्ये रेवायाउत्तरेतटे ॥ ४० ॥ हनूमतोवनेपुण्ये क्रीडतिस्मयदृच्छया ॥ भर्तृयुक्तातत्रगुह्ये वञ्जुलेसरलेद्रुमे ॥ ४१ ॥
आगतालुब्धकास्तत्र क्षुधार्तावनमुत्तमम् ॥ भर्तृकोपयुतैःपापैर्हताहंपतिनासह ॥ ४२ ॥ ग्रीवांनिमोटयामासुर्भक्षणो
त्पाटनंकृतम् ॥ हुताशनमुखेतेतु हसन्तश्चाशुलुब्धकाः ॥ ४३ ॥ भर्जयित्वाततोमांसं भक्षयित्वायथेच्छया ॥ सुप्ताः

भुँकीहुई हे नृप ! हनूमदीश्वरमें हुये हालको कहती हुई ॥३९॥ कन्या कहती है कि हे तात ! इससे पहलेवाले जन्ममें मैं मोरकी स्त्री अर्थात् मयूरी अपने पतिके सहित
नर्मदा के उत्तरवाले किनारेपर नागेश्वर के समीप रहती थी ॥ ४० ॥ उस गुप्तपुण्यवाले, हनूमदीश्वर के वनमें मौरसिरी और सरलके दरख्त के ऊपर अपने पति
के सहित इच्छापूर्वक विहार करती थी ॥ ४१ ॥ तबतक उस उत्तम वनमें भूंखे बहेलिया लोग आगये मेरे पति के ऊपर क्रोधसे भरेहुये उन पापियों ने मुझे पतिके
सहित मारडाला ॥ ४२ ॥ मेरे गलेको मरोड़ दिया और खाने के वास्ते उसे तोड़ डाला तदनन्तर हँसतेहुये वे लोग जल्दी आगमें ॥४३॥ भूनकर तदनन्तर इच्छासे

मांसको खाकर सब इन्द्रिया जिनकी ठीकहोगईं ऐसे वे लोग रातमें सोये रात व्यतीत होगई ॥ ४४ ॥ उस मांसका जो कुछ हिस्सा बाकी रहगया वह गीदड़, गीध और कौवों से खाडालागया मास और नसोंसे भरीहुई मेरी देहकी हड्डीको एक चिड़िया लेकर आसमान को उड़गई मासके सहित उस पक्षी को देख और भी पक्षी आगये ॥ ४५।४६ ॥ चिडियों के झुण्डको आयाहुआ देख उसने हड्डी के टुकड़े को छोडदिया दौड़ते व देखतेहुये उन सब चिड़ियोंके ॥४७॥ वह हड्डी हनूमदीश्वर के समीप नर्मदाके पानीमें गिरपड़ी मेरी हड्डीका टुकडा नर्मदाके जलमें गिरा ॥ ४८ ॥ उस तीर्थके प्रभावसे मैं क्षत्रियके कुलमें पैदाहुईहूं किन्तु चन्द्रमा के समान मुखवाली

स्वस्थेन्द्रियारात्रौ विगताशर्वरीक्षयम् ॥ ४४ ॥ तन्मांसशेषंजुष्टंवै जम्बूकैर्गृध्रवायसैः ॥ मच्छरीरोद्भवंचास्थि स्नायुमांसेनसंयुतम् ॥ ४५ ॥ पत्रिणागृह्यचैकेन आकाशात्पततातदा ॥ सामिषंपक्षिणंदृष्ट्वा पक्षिणोन्येसमागताः ॥४६॥ दृष्ट्वापक्षिसमूहन्तु अस्थिखण्डंव्यसर्जयत् ॥ विहगानांसमस्तानां धावताञ्चापिपश्यताम् ॥ ४७ ॥ पतितंनर्म्मदातोये हनूमदीश्वरेन्नृप ॥ मदीयमस्थिखण्डञ्च पतितंनर्म्मदाजले ॥४८॥ तस्यतीर्थप्रभावेण जाताहंक्षत्रियेकुले ॥ भूपकन्याप्यहंजाता सम्पूर्णशशिवन्मुखी ॥ ४९ ॥ जातिस्मरानरेन्द्रास्मि जाताहंक्षात्रियेकुले ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कारणंनृपसत्तम ॥ ५० ॥ मदर्थंविषमस्थानेशकुन्तमृगजातिषु ॥ यदिप्रेषयसेतात कमपिनर्म्मदाजले ॥ ५१ ॥ तस्याहंकथयिष्यामि स्थानचिह्नंसमग्रकम् ॥ कन्यायावचनंश्रुत्वा शिखण्डीह्याहमांनृप ॥ ५२ ॥ ग्रामविंशञ्चदास्यामि गच्छत्वंनर्म्मदातटे ॥ प्रेक्षणंमेप्रतिज्ञातमलक्ष्यापीडितेनतु ॥ ५३ ॥ गच्छत्वंनर्म्मदाम्पुण्यां सर्वपापक्षयंकरीम् ॥ अग्रजांसोमना

मैं राजाकी कन्याहुईहूं ॥ ४९ ॥ हे नरेन्द्र ! मुझको अपने अगिले जन्मकी यादहै क्षत्रियके कुलमें पैदाहुईहूं हे नृपसत्तम ! यह सब कारण आपसे कहागया ॥ ५० ॥ हे तात ! चिड़िया व हिरन जहा रहते है ऐसे कठिन स्थानको जो मेरे वास्ते नर्मदा जल के समीप किसीको भेजोगे ॥ ५१ ॥ तो उस से मैं अपने स्थानका सब चिह्न कहूंगी अपनी कन्या के वचन को सुनकर हे नृप ! शिखण्डी राजाने मुझसे कहा ॥५२॥ कि हम तुमको बीसगांव देवेंगे तुम नर्मदा के तटको जावो हमने जिस बात की प्रतिज्ञा की है उसको तुम बेतकल्लीफ देखो ॥ ५३ ॥ उत्तम हनूमदीश्वर स्थानमें सोमनाथ की बडी बहन सब पापोंकी नाश करनेवाली व पुण्यवाली नर्मदा को

तुम जावो ॥ ५४ ॥ नर्मदा से आधेकोसतक विस्तारवाले बरगद व कदम्ब के वृक्षों से घिरेहुये स्थानमें ॥ ५५ ॥ बरगदके समीप हड्डियोंका ढेर देखपड़ेगा उसमेंसे मिट्टी व हड्डीको लेकर हे द्विजोत्तम ! तुम नर्मदा को जाना ॥ ५६ ॥ कुँवार के उजियाले पाखकी चौदस को महादेव को भक्तिसे स्नान कराने और रातमें जागरण करने ॥ ५७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रातःकाल नाभितक जलमें ठहर उस हड्डी व मिट्टीको पानीमें डालदेना यह कहकर कि जिसकी यह चीजहै उसकी सुगति होवे ॥ ५८ ॥ हड्डी को डालकर फिर पापोंके नाश करनेवाले स्नान को करना चाहिये इसतरह कन्याने जो कुछ कहा वह सब मैंने पुस्तकमें करलिया ॥ ५९ ॥ और हे नृपश्रेष्ठ ! महा-

कदम्बकवनैश्चैव संप्रधानेवनस्यच ॥ ५५ ॥
थस्य हनूमदीश्वरेशुभे ॥ ५४ ॥ अर्द्धक्रोशेतुरेवाया विस्तीर्णवटपादपैः ॥ कदम्बकवनैश्चैव संप्रधानेवनस्यच ॥ ५५ ॥
न्यग्रोधवटसान्निध्ये अस्थिलक्ष्यंप्रदृश्यते ॥ मृत्तिकामस्थिसंगृह्य गच्छरेवान्द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥ आश्विनस्यासितेपक्षे त्रिपुरारितिथौस्थिते ॥ स्नापयशूलिनम्भक्त्या रात्रौकुरुचजागरम् ॥ ५७ ॥ प्रभातेक्षिप्यतांशीघ्रं नाभिमात्रेजले स्थितः ॥ इत्युच्चार्य्यद्विजश्रेष्ठ सुगतिस्तस्यजायते ॥ ५८ ॥ अस्थिक्षिप्त्वापुनस्स्नानं कर्त्तव्यमघनाशनम् ॥ कथितंक न्ययायच्च तत्सर्वंपुस्तकेकृतम् ॥ ५९ ॥ आगतोहंनृपश्रेष्ठ तस्मिंस्तीर्थेमहालये ॥ साभिज्ञानंततोदृष्ट्वा अस्थिगृह्य नृपोत्तम ॥ ६० ॥ पूर्वोक्तेनविधानेन निक्षिप्तंनर्म्मदाजले ॥ पुष्पवृष्टिःपपाताथ साधुसाध्वितिब्राह्मण ॥ ६१ ॥ विमान न्तुततोदिव्यं दृष्टंहनुमदीश्वरे ॥ ततोब्राह्मणराजानौ गृहीत्वाऽनशनंस्थितौ ॥६२॥ आत्मानंशोषयित्वाच ईश्वराराध नेरतौ ॥ एवंसन्ध्यायतोदेवं शतबाहुर्द्विजोत्तमः ॥ ६३ ॥ मासार्द्धात्तुमृतोराजा शतबाहुर्महामतिः ॥ किङ्किणीजाल

लय (पितृपक्ष) में मैं उस तीर्थको आया और हे नृपोत्तम ! कहेहुये चिह्नको देख व हड्डीको लेकर ॥६०॥ पहले कहेहुये विधान से नर्मदाके जलमें डालदी तदनन्तर ब्राह्मणपर फूलोंकी वर्षाहुई और कहागया कि हे ब्राह्मण ! वाह वाह ॥ ६१ ॥ तदनन्तर हनूमदीश्वर में एक दिव्य विमान देखपडा तदनन्तर ब्राह्मण और राजा दोनों अनशनव्रतको करतेहुये ॥ ६२ ॥ अपनेको सुखाकर ईश्वरके भजनमें तत्पर होतेहुये इस प्रकार भगवान्को ध्यावतेहुये शतबाहु राजा और ब्राह्मण दोनोंमें से ॥ ६३ ॥

पन्द्रह दिनके बाद बड़ी बुद्धिवाला राजा शतबाहु मरगया तब क्षुद्रघण्टिकाओं के जालकी शोभायुक्त एक विमान वहां आगया ॥ ६४ ॥ और उससे आवाज आई कि हे नृपश्रेष्ठ ! वाह २ आप विमानपर सवार हूजिये तब राजा बोला कि जबतक यह ब्राह्मण न चढ़ेगा तबतक हम ऊपरी रास्तेको नहीं जावेंगे ॥ ६५ ॥ क्योंकि यह द्विजोत्तम हमको उपदेश देनेवाला गुरुके बराबर है तब देवता बोले कि हे राजन् ! हनूमदीश्वर में जो मनुष्य मरते हैं ॥ ६६ ॥ वे सब पापों के क्षय करनेवाले शिवलोक को जातेहैं इससे हे नरेश्वर ! अभी इस ब्राह्मण के पापों का क्षय नहीं हुआहै ॥ ६७ ॥ अभी इस ब्राह्मण का मन मकान व स्त्री व धनमें

शोभाढ्यं विमानंतत्रचागतम् ॥ ६४ ॥ साधुसाधुनृपश्रेष्ठ विमानारोहणंकुरु ॥ राजोवाच ॥ ऊर्द्ध्वमार्गन्नगच्छामि वि प्रोयावन्नसंस्थितः ॥ ६५ ॥ उपदेशप्रदोमह्यं गुरुरूपोद्विजोत्तमः ॥ देवाऊचुः ॥ हनूमदीश्वरेराजन्ये मृतास्सन्ति मानवाः ॥ ६६ ॥ तेयान्तिशिवलोकंवै सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ नैवपापक्षयश्चास्य ब्राह्मणस्यनरेश्वर ॥ ६७ ॥ गृहञ्चगृ हिणीवित्तं ब्राह्मणस्यप्रवर्त्तते ॥ शतबाहुस्ततोविप्रं भाषयामासभक्तितः ॥ ६८ ॥ त्यजमूलमधर्म्मस्य लोभमेकंद्विजो त्तम ॥ इत्युक्त्वाप्रययौराजा स्वर्गंस्वर्गिजनैस्सह ॥ ६९ ॥ दिनैःकैश्चिद्गतोविप्रः स्वर्गंसुकृतिभिस्सह ॥ वाहिन्याःका शिराजस्य पुत्र्यास्तीर्थप्रभावतः ॥ ७० ॥ आत्मनःकन्ययादत्ते पूर्वजन्मार्जितंतपः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां सर्वका लंमुनीश्वर ॥ ७१ ॥ विशेषादाश्विनेमासे कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ स्नापयेदीश्वरंभक्त्या क्षौद्रक्षीरेणसर्पिषा ॥ ७२ ॥ दध्नाचखण्डयुक्तेन तिलतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन चार्चयेत्तंमहेश्वरम् ॥ ७३ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च वि

लगाहै तब शतबाहु राजाने ब्राह्मणसे कहा ॥ ६८ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! अधर्मकी जड एक लोभ है तिसको तुम छोड़ो इतना कह देवताओं के सहित राजा स्वर्गको चलागया ॥ ६९ ॥ फिर थोड़ेही दिनोंमें और धर्मात्माओंके साथ काशिराज की कन्या नर्मदानदी तीर्थके प्रभावसे व अपनी कन्या के दियेहुये उसके पूर्वजन्मके कमाये हुये तपसे वह ब्राह्मण भी स्वर्गको चलागया इससे हे मुनीश्वर ! अष्टमी व चौदस को हमेशा ॥ ७० । ७१ ॥ परन्तु कुँवारके कालेपाखमें जो चौदसहै उसमें विशेषकरके शहद, दूध और घी से भक्तिपूर्वक महादेवको नहवावे ॥७२॥ और शक्कर मिले दही व तिलोंके जलसे नहवावे फिर खुशबूदार चन्दन से उन महादेव का पूजनकरे ॥७३॥

तदनन्तर सुगन्धवाले फूलों व बेलपत्रों से पूजन करे और जो वेदपाठी व सब लक्षणों से युक्त व कुलीन व अपने कुटुम्ब की पालना करनेवाले ब्राह्मणों से वहां श्राद्धको कराता है और अन्न व वस्त्र व सुवर्ण से भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को तृप्त करता है ॥ ७४ । ७५ ॥ यह कहकर कि हे ब्राह्मणो! नरक में पड़ेहुये मेरे पितर स्वर्गको जावें और स्वर्गवाले और भी उत्तमलोकको जावें ऐसे कह ब्राह्मणो के नमस्कारकरे ॥ ७६ ॥ और पतित ब्राह्मणों को छोडदेवे जिसके घरमें वृषली होवे उस का पूजन न करे अपने वृप (पति) को छोड़ और वृषों (पुरुषों) से जो मैथुनकी इच्छाकरे ॥७७॥ देवता उसीको वृषली जानते है शूद्रा वृषली नहीं होती है इसप्रकार

ल्वपत्रैश्चपूजनम् ॥ श्राद्धंयःकारयेत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ७४ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुलीनैर्गृहपालकैः ॥ तर्पयेद्ब्राह्मणंभक्त्या अन्नवस्त्रहिरण्यकैः ॥ ७५ ॥ नरकस्थादिवंयान्ति इत्युच्चार्य्यद्विजातयः ॥ स्वर्गस्थाःपरमंलोकमित्युक्त्वाप्रणमेद्द्विजान् ॥ ७६ ॥ पतितान्वर्जयेद्विप्रान्वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ स्ववृषन्तुपरित्यज्य वृषैरन्यैर्वृषायते ॥ ७७ ॥ वृषलीन्तांविदुर्देवा नशूद्रावृषलीभवेत् ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ ७८ ॥ सुवर्णहरणंतस्यमित्रद्रोहभवन्तथा ॥ नश्यन्तिपातकास्सर्वे इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ७९ ॥ वाक्प्रलापेनकिंवत्स बहुनोक्तेनकिन्तुवा ॥ सर्वपापसमोपेतो दद्याद्दानंद्विजोत्तमे ॥ ८० ॥ सर्वदेवमयीधेनुस्सर्वदेवात्मिकास्थिता ॥ शृङ्गाग्रेषुमहीपाल शक्रोवसति नित्यशः ॥ ८१ ॥ हरिःस्कन्धेशिरोब्रह्मा ललाटेवृषवाहनः ॥ चन्द्रार्कौलोचनेज्ञेयौ जिह्वायान्तुसरस्वती ॥ ८२ ॥ मरुद्गणास्सदासाध्यास्तस्याङ्गानिनरेश्वर ॥ ॐकारश्चतुरोवेदास्सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ८३ ॥ ऋषयोरोमकूपेषु अस्थिरूया

श्राद्ध करनेवाले के ब्रह्महत्या व शराब पीना व गुरुकी स्त्रीका भोगकरना ॥ ७८ ॥ सुवर्ण चुराना व मित्रसे द्रोह करना ऐसे २ सब पाप नष्ट होजाते हैं ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ७९ ॥ हे वत्स ! बहुत बकबाद व बहुत कहने से क्या है सभी पापोंसे युक्त भी पुरुष ब्राह्मण को दानदेवे तो उसको ऊपर कहा फल होवेगा ॥ ८० ॥ गऊमें सब देवता होते हैं और गऊ सब देवताओं के रूपही से स्थित रहती है हे महीपाल ! उसके सींगोकी नोकोंमें इन्द्र हमेशा रहतेहैं ॥ ८१ ॥ विष्णुभगवान् कन्धेमें रहते हैं शिरमें ब्रह्मा और मस्तकमें महादेव रहते हैं चन्द्रमा और सूर्य नेत्रों में, सरस्वती जिह्वा में रहती है ॥ ८२ ॥ और हे नरेश्वर ! मरुत और साध्य सदा

उसके अङ्गहैं व छहों अङ्ग व पद व क्रमोंके सहित चारोवेद व ॐकार ॥ ८३ ॥ व ऋषिलोग रोवों के छेदोंमें रहते हैं और हड्डियोंमें उत्तम पर्वत हैं कालदण्ड जिनके हाथमेंहै ऐसे भारी देहवाले, काले व भैंसे के सवार ॥ ८४ ॥ यमराज पीठमें हमेशा रहतेहैं जोकि औरोंके पाप व पुण्य के देखनेवाले हैं पुण्यवाले चारो समुद्र दूधकी धाराहो थनों में हैं ॥ ८५ ॥ विष्णुकी देहसे पैदाहुई गङ्गा दर्शनही से पापोंकी हरनेवाली हैं और जो ऐसे विद्यमान होरही गऊ कि जिसकी देहमें सभी देवता हैं वह पण्डितों से क्यों न माननेलायक होवे ॥ ८६ ॥ पवित्र व मङ्गलरूप लक्ष्मी जिसके गोबर में है हे पाण्डुनन्दन ! इसीसे गोबरसे सदा लीपना चाहिये ॥ ८७ ॥ गन्धर्व,

तामहानगाः ॥ दण्डहस्तोमहाकायः कृष्णोमहिषवाहनः ॥ ८४ ॥ पृष्ठभागस्थितोनित्यं शुभाशुभनिरीक्षकः ॥ चत्वारस्सागराःपुण्याः क्षीरधाराःस्तनेषुच ॥ ८५ ॥ विष्णुदेहोद्भवागङ्गा दर्शनात्पापहारिणी ॥ एवंयामंस्थितायस्मात्तस्मादेषासदाबुधैः ॥ ८६ ॥ लक्ष्मीश्चगोमयेयस्याः पवित्रासर्वमङ्गला ॥ गोमयाल्लेपनंतस्मात्कर्तव्यंपाण्डुनन्दन ॥ ८७ ॥ गन्धर्वाप्सरसोगङ्गा गोखुरेषुचसंस्थिताः ॥ अश्विनौकर्णयोर्नित्यं वर्त्तेतेरविपुत्रकौ ॥ ८८ ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां यानितीर्थानिपाण्डव ॥ तानिसर्वाणिप्राप्तानि गवांपादेषुनित्यशः ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ सर्वतीर्थसमागावो गीर्वाणैस्समलंकृताः ॥ एतत्कथयमेतात कस्माद्गोषुसमाश्रिताः ॥ ९० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वदेवमयोविष्णुर्गावोविष्णुशरीरजाः ॥ देयास्तस्मात्सदावन्द्याः कल्पिताविबुधैर्जनैः ॥ ९१ ॥ श्वेतावाकपिलावापि क्षीरिणीपाण्डुनन्दन ॥ सर्वासांक्षीरिणीगावःश्वेतवस्त्रावगुण्ठिताः ॥ ९२ ॥ कांस्यदोहनिकादेयास्स्वर्णशृङ्गीविभूषिताः ॥ हनूमदी

अप्सरा और गङ्गा गौवोंके खुरोंमें रहती हैं और कानोंमें सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार सदा वसते हैं ॥ ८८ ॥ और हे पाण्डव ! समुद्रपर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थहैं वे सब गौवोंके पावोंमें सदा रहतेहैं ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि देवताओं ने सब तीर्थों के समान गौवोंको अपने रहने से शोभित कियाहै हे तात ! गौवों के आश्रित देवता क्यों हुये सो मुझसे कहो ॥ ९० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब देवताओं का रूप विष्णुजी हैं और विष्णुकी देहमे गौवें पैदाहुई हैं इसमे पण्डित लोगोंने उन को देने व हमेशा वन्दना करनेलायक माना है ॥ ९१ ॥ सफेदहो व कपिलाहो परन्तु हे पाण्डुनन्दन ! दूधवाली होवें सब गौवों में दूधकी देनेवाली व सफेदझूल से

सजीहुई ॥ ९२ ॥ कांसेकी दोहनीवाली व सोने से मढ़े सींगोंवाली व अन्य भूषणों से भूषित गऊको हनूमदीश्वर के आगे भक्तिसे ब्राह्मणों को देवे ॥ ९३ ॥ सावधान हो अपने कल्याण की इच्छा करतेहुये पुरुषको ऐसी गऊ देनाचाहिये उनको दण्ड देनेके लिये यमराज समर्थ नहीं हैं किन्तु वे विष्णुलोक को जातेहैं ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकसे उतरकर ब्राह्मणों के मकान को जातेहैं वहीं धन व विद्यासे युक्त पैदा होते हैं ॥ ९५ ॥ सब पापोंका हरनेवाला कल्याणरूप हनूमदीश्वरतीर्थ है उसको जो सुनता है वह वर्णसङ्कर पापसे छूटजाता है ॥ ९६ ॥ जो अमावस को इसकी याद करता है वह भी पापोंसे छूटजाता है ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृत

श्वरस्याग्रे भक्त्याविप्रेषुदापयेत् ॥ ९३ ॥ निसर्गस्थेनसादेया स्वर्गमात्मनइच्छता ॥ असमर्थोयमस्तेषां विष्णुलोकं प्रयान्तिते ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकच्युतस्सोपि प्रयातिद्विजमन्दिरम् ॥ तत्रैवजायतेपुत्रो विद्वान्धनसमन्वितः ॥ ९५ ॥ सर्वपापहरंतीर्थं हनूमदीश्वरंशुभम् ॥ शृणोतिमुच्यतेपापाद्वर्णसङ्करसम्भवात् ॥ ९६ ॥ दर्शेसञ्चिन्तयेद्यस्तु मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्यंकथितंतात यदभून्नर्मदातटे ॥ सोमनाथस्यतीर्थंहि वाराणस्यासमन्नृप ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ निमग्नोदुःखसंसारे हृतराज्योद्विजोत्तम ॥ युष्मद्वाणीजलैस्स्नातो निर्दुःखोहंसबान्धवः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ पृष्टंतेदुर्लभंतीर्थं गुह्याद्गुह्यतरंयथा ॥ ३ ॥ आदौपितामहस्तात समस्तस्यजनस्यच ॥ मनसातस्यसञ्जाता ऋषयोदशपुङ्गवाः ॥ ४ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यःपुलहःक्र

भाषाऽनुवादेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे तात ! जो नर्मदा के तटमें आश्चर्य्य हुआ उसको मैंने कहा हे नृप ! सोमनाथका तीर्थ काशीके बराबरहै ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! राज्य जिसकी छीनलीगई इसी से दुःखरूपी संसार समुद्र में डूबाहुआ भाइयों के सहित मैं आपकी वाणीरूप पानी से नहायाहुआ इससमय में दुःख से रहित होगयाहूं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे सोमवंशविभूषण, महाबाहो ! वाह २ गुप्तसे अतिगुप्त बड़ेदुर्लभतीर्थ को आपने पूंछा ॥ ३ ॥ हे तात !

पहले सबके पितामह जो ब्रह्मा हैं उनके मनसे दश उत्तम ऋषि पैदाहुये ॥ ४ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश पुत्र हुये प्रचेता के बड़े तेजवाले दक्षप्रजापतिहुये और दक्षके पचास कन्याहुईं ॥ ५ । ६ ॥ दक्षने दश कन्याओं को धर्मराज को दिया और तेरह कश्यपको और हे महाभाग ! इसीतरह सत्ताईस चन्द्रमाको दीं ॥ ७ ॥ उन सत्ताईस कन्याओं में रोहिणी चन्द्रमा को अधिक प्यारीहुई उन्हीं के कारण से चन्द्रमा को दक्षने शाप दिया ॥ ८ ॥ चन्द्रमा प्रजापति के वचनसे क्षयरोगवाले होगये दक्षके शापके प्रभावसे चन्द्रमा तेजसे रहित होगये ॥ ९ ॥ तब चन्द्रमा कांपतेहुये ब्रह्माके तीरगये और

तुः ॥ प्रचेताश्चवशिष्ठश्च भृगुर्नारदएवच ॥ ५ ॥ जज्ञेप्रचेतसोदक्षो महातेजाःप्रजापतिः ॥ दक्षस्यापिसुताजाताः पञ्चाशत्कन्यकाःकिल ॥ ६ ॥ ददौसदशधर्म्माय कश्यपायत्रयोदश ॥ तथैवचमहाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ७ ॥ तासांहिरोहिणीचन्द्रस्याभीष्टासामवत्तदा ॥ तस्याश्चकारणंकृत्वाशप्तोदक्षेणचन्द्रमाः ॥ ८ ॥ क्षयरोग्यभवच्चन्द्रो विवक्षायाःप्रजापतेः ॥ दक्षशापप्रभावेण निस्तेजाःशर्वरीपतिः ॥ ९ ॥ गतःपितामहंसोमो वेपमानःप्रणम्यच ॥ ब्रह्मयोने नमस्तुभ्यं वेदगर्भनमोस्तुते ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्वत्रदुर्लभारेवा त्रिषुस्थानेषुभारत ॥ ॐकारेचभृगुक्षेत्रे नर्म्मदा ह्युरगेश्वरे ॥ ११ ॥ काष्ठवत्संस्थितस्सोमो ध्यायतेपरमेश्वरम् ॥ यावद्वर्षशतंपूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षस्सोमनाथस्य वृषासनउमार्द्धगः ॥ साष्टाङ्गंप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १३ ॥ जयशङ्करपापघ्नतान्तनमो जय

प्रणामकर ब्रह्मासे बोले कि हे ब्रह्मयोने, वेदगर्भ ! आपके लिये वारंवार नमस्कार है ॥ १० ॥ तब हे भारत ! ब्रह्माजी बोले कि नर्मदा तो सभी कहीं दुर्लभहैं परन्तु तीन जगह बहुत कठिन है ॐकार, भृगुक्षेत्र और नागेश्वर मे ॥ ११ ॥ यह सुन चन्द्रमा नर्मदाको गये और काठकी तरह स्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करतेहुये जबतक सौवर्ष पूरेहुये तबतक ध्यान किया तब महादेवजी प्रसन्नहुये ॥१२॥ और पार्वती को आधेअङ्ग में लिये व बैलपर सवार चन्द्रमा के प्रत्यक्ष हुये तब चन्द्रमा साष्टाङ्ग प्रणामकर बोला कि हे देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे पापोंको यमराज के समान, शङ्कर ! जयहो आपके लिये नमस्कार है हे ईश्वर !

हे नाथ ! जयहो आपके लिये बार २ नमस्कारहै हे वासुकिनाग के गहनावाले ! हे भूतपते ! तुम्हारी जयहो, त्रिशूल और खप्पर के धारण करनेवाले के लिये नमस्कार है ॥१४॥ हे अन्धकासुर के नाश करनेवाले ! जयहो तुम्हारे लिये नमस्कारहै दानवोंकी देहके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है घटने बढने से रहित व सब कलाओं से संयुक्तकी जयहो व नमस्कार है कालके कर्तब के दमन करनेवालेकी जय हो व नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे उमापते ! हे नीलकण्ठ ! आपकी जयहो हे सूक्ष्मरूप वाले व माया से रहित शब्दरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे सबकी आदि व अपने आदि और अन्त से रहित ! आपके लिये नमस्कार हे हे पिनाक धनुष व त्रिशूल

ईश्वरनाथनमोस्तुनमः ॥ जयवासुकिभूषणभूतपते जयशूलकपालधरायनमः ॥ १४ ॥ जयअन्धकदेहविनाशनमो जयदानवदेहवधायनमः ॥ जयनिष्कलसकलकलायनमोजयकालकलादमनायनमः ॥ १५ ॥ जयनीलकण्ठउमापते जयसूक्ष्मनिरञ्जनशब्दनमः ॥ जयआद्यअनाद्यअनन्तनमो जयपाणिपिनाकत्रिशूलनमः ॥ १६ ॥ एवंस्तुतो महादेवस्सोमनाथेनपाण्डव ॥ तुष्टस्तस्यनृपश्रेष्ठ उमयासहशङ्करः ॥ १७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ सोमउवाच ॥ दक्षशापेनदग्धोहं क्षीणदेहोमहेश्वर ॥ १८ ॥ पापप्रशमनन्देव कुरुसर्वंममैवतु ॥ महेश्वरउवाच ॥ भवद्भक्तिगृहीतोहं तुष्टश्चैवोमयासह ॥ १९ ॥ निष्पापस्सोमनाथस्य सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्सोमोध्यात्वाक्षणंनृप ॥ २० ॥ स्थापयामासलिङ्गन्तुसिद्धिदंप्राणिनांभुवि ॥ सर्वदुःखहरन्देवं ब्रह्महत्याविनाश

हाथों में रखनेवाले ! जयहो व नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! हे नृपश्रेष्ठ ! इसप्रकार चन्द्रमा से स्तुति किये गये पार्वती सहित महादेवजी उनसे प्रसन्न हुये ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण हो जो तुम्हारे मनमें बर्तताहो उस वरको तुम मांगलेवो तब चन्द्रमा बोले कि हे महेश्वर ! दक्षके शाप से मैं जलाहुआ व दुबली देहवाला होगयाहूं ॥ १८ ॥ इस से हे देव ! मेरे सब पापकी शान्ति को आप करें तब महादेव बोले कि आपकी भक्ति से पकडलिया गया मैं पार्वती के सहित प्रसन्नहूं ॥ १९ ॥ तुम सोमनाथ के तीर्थकी सेवा से पापरहित होगये हो यह कहकर महादेव अन्तर्द्धान होगये हे नृप ! चन्द्रमा भी थोड़ीदेर ध्यानकर ॥ २० ॥

पृथिवी में सब प्राणियों को सिद्धिके देनेवाले व सब दुःखों के व ब्रह्महत्या के हरनेवाले लिङ्गरूप महादेव का स्थापन किया ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि सोमनाथ के प्रभावको तुम से संक्षेप से कहते हैं एक शम्बर नामका राजाहुआ उसका त्रिलोचन नामका पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ त्रिलोचन का पुत्र बहुत नीच, बड़ा पापी, कण्ठ नामका हुआ वनमें घूमते हुये उस कण्ठको हिरनों का झुण्ड देखपड़ा ॥ २३ ॥ तब त्रिलोचन के लड़के कण्ठने उस पूरे झुण्डको मारा उस झुण्ड के बीचमें निर्जन वन में विचरता हुआ एक उत्तम ब्रह्मर्षि भी कण्ठ के हथियार से मारागया तब ब्रह्महत्यासे युक्त व तेज से रहित कण्ठ पृथिवी में घूमता हुआ ॥ २४ । २५ ॥

नम् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सोमनाथप्रभावंच संक्षेपात्कथयामिते ॥ शम्बरोनामराजाभूत्तस्यपुत्रस्त्रिलोचनः ॥ २२ ॥ त्रिलोचनसुतःकण्ठः पापनिष्ठोमहाऽधमः ॥ वनेविभ्रमतस्तस्य मृगयूथन्त्वदृश्यत ॥ २३ ॥ मृगयूथंहतंसर्वं त्रिलोचनसुतेनच ॥ मृगरूपीद्विजोमध्ये विचरन्निर्जनेवने ॥ २४ ॥ तदाहतस्तुशस्त्रेण कण्ठेनऋषिसत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायुतःकण्ठो निस्तेजाव्यचरन्महीम् ॥ २५ ॥ विचरन्नपिसंप्राप्तो नर्म्मदानागसङ्गमे ॥ कदम्बपाटलाकीर्णे बिल्वनारङ्गशोभिते ॥ २६ ॥ चिञ्चिनीचम्पकोपेते अगस्तितरुशोभिते ॥ उन्मत्तभृङ्गसंयुक्ते तथासर्वत्रशोभिते ॥ २७ ॥ चित्रकैर्मृगमार्जारैःसिंहैस्सर्वत्रशूकरैः ॥ शशकैर्गवयैर्युक्ते शिखण्डिरवनादिते ॥ २८ ॥ प्रविष्टस्तद्वनेकण्ठस्तृषार्तःश्रमकर्षितः ॥ स्नातोरेवाजलेपुण्ये सङ्गमेपापनाशने ॥ २९ ॥ पत्राणिचविचित्राणि भक्षयन्सहकिङ्करैः ॥ सुप्तःपादपछायायांश्रान्तोमृगव

विचरते हुये नर्मदा और नागेश्वर के सङ्गम में प्राप्तहुआ फिर कदम्ब और पंडरिया के वृक्षों से घने व बेल और नारङ्गी के वृक्षों से शोभित ॥ २६ ॥ अंबिली और चम्पाओं से युक्त, अगस्त्यके वृक्षों से सुहावने, मतवाले भौंरों से युक्त इस प्रकार सबकहीं शोभावाला ॥ २७ ॥ व चीता, हिरन, बिलार, सिंह, सुवर, खरगोश और नीलगायों से युक्त और मोरोंकी आवाजों से भरेहुये ॥ २८ ॥ ऐसे वनमें प्यास के मारे विकल व थकावट से कर्षित कण्ठ पैठताहुआ पापों के नाश करनेवाले सङ्गम में पवित्र नर्मदा के जलमें स्नान करताहुआ ॥ २९ ॥ और अपने सिपाहियों के सहित रङ्ग २ के पत्तों को खाता हुआ व हिरनों के शिकार से थकाहुआ वृक्षकी छाया

धेनच ॥ ३० ॥ आनर्चपरयाभक्त्या सोमनाथंयुधिष्ठिर ॥ पीत्वातोयंकण्ठमात्रं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ ३१ ॥ तावत्तीर्थवरेविप्रस्स्नानार्थंसङ्गमम्प्रति ॥ मार्गगोब्राह्मणोभूयस्ततस्तद्गतमानसः ॥ ३२ ॥ मार्गेवृक्षेसमारूढा स्त्रीचैकाचभयङ्करी ॥ उवाचब्राह्मणंसाहि तिष्ठतिष्ठद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ त्रस्तोनिरीक्षतेयावद्दिशस्सर्वानरेश्वर ॥ तावद्वृक्षसमारूढां स्त्रियंरक्ताम्बरावृताम् ॥ ३४ ॥ रक्तपुष्पधरांबालां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ रक्ताभरणशोभाढ्यां पाशहस्तान्ददर्शह ॥ ३५ ॥ स्त्र्युवाच ॥ सन्देशंश्शृणुमेविप्र यदिगच्छसिसङ्गमम् ॥ मद्भर्तातिष्ठतेतत्र शीघ्रमेवविसर्जय ॥ ३६ ॥ एकाकिनीचतेभार्य्या तिष्ठतेवनमध्यगा ॥ इत्याकर्ण्यगतोविप्रस्सङ्गमंसुरदुर्लभम् ॥ ३७ ॥ वृक्षच्छायास्थितंकण्ठं ब्राह्मणोहिददर्शह ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ वनान्तेचमयादृष्टा बालाकमललोचना ॥ ३८ ॥ रक्ताम्बरधरातन्वी रक्तचन्दनचर्चिता ॥ रक्तमाल्यासुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेक्षणा ॥ ३९ ॥ वृक्षारूढावदद्वाक्यं भर्तारंप्रेषयस्वमाम् ॥ कण्ठउवाच ॥ कस्मि

में सोताहुआ ॥ ३० ॥ फिर हे युधिष्ठिर ! बडी भक्ति से सोमनाथ का पूजन करता हुआ फिर सब पापों के क्षय करनेवाले जलको अच्छी तरह पीताहुआ ॥ ३१ ॥ तब तक उसी श्रेष्ठ तीर्थ में सङ्गम नहाने के वास्ते तीर्थ में मनको लगाये हुये रास्तेमें एक ब्राह्मण आता था ॥ ३२ ॥ रास्तेमें एक वृक्षपर चढ़ीहुई एक बड़ी डरावनी स्त्री थी वह उस ब्राह्मण से बोली कि हे द्विजोत्तम ! खडेरहो खडेरहो ॥ ३३ ॥ हे नरेश्वर ! डराहुआ वह ब्राह्मण जबतक सब दिशाओं में देखे तबतक वृक्षपर चढ़ी हुई, लाले कपडों को पहने, लालेफूलों की मालाको पहने व छोटी उमरवाली व लालचन्दनसे शोभित व लाले जेवरोंकी शोभा से युक्त, फॅसरी को हाथमें लिये हुये एकस्त्री को देखताहुआ ॥ ३४ । ३५ ॥ वह स्त्री बोली कि हे विप्र ! जो तुम सङ्गम को जाते हो तो हमारे सन्देशको सुनो कि हमारा भर्ता वहां है सो उसको बहुत जल्द भेजो ॥ ३६ ॥ उससे कहना कि वनके बीचमें तुम्हारी स्त्री अकेली बैठी है यह सुनकर ब्राह्मण देवताओं के दुर्लभ संगम को गया ॥ ३७ ॥ वहा वृक्षकी छाया म बैठेहुये कण्ठको ब्राह्मण ने देखा तब ब्राह्मण बोला कि वनमें एक स्त्री को मैंने देखा जो कि छोटी उमरवाली व कमल से जिसके नेत्र हैं ॥ ३८ ॥ और लाले कपड़ों को पहने, सूक्ष्मांगी, लालचन्दन को लगाये, लालेफूलों की मालावाली, अतिशोभा से युक्त, हाथ में फॅसरीवाली, हिरनकेसे नेत्रोंवाली ॥ ३९ ॥ और वृक्ष

पर बैठीहुई मुझसे कहा कि हमारे पतिको हमारे पास भेजदेवो तब कण्ठ बोला कि हे विप्रेन्द्र ! वह मृगनयनी स्त्री किस जगह बैठी है ॥ ४० ॥ और किसकी स्त्री है व किस कार्य के वास्ते बुलाया है यह सब मुझसे कहो तब ब्राह्मण बोला कि हेविभो ! संगम से आधेकोस पर सुहावने वनमें ॥ ४१ ॥ तुमको चाहती हुई वह स्त्री बैठी है तब हे युधिष्ठिर ! उस कण्ठ राजाने अपने सेवक से कहा कि ॥ ४२ ॥ तुमजावो और उससे पूंछो कि तू कौन है और कहा से आई है और कहां को जावेगी तब वह बहुत जल्दगया कि जहां वह स्त्री बैठी थी ॥ ४३ ॥ हे नृपसत्तम ! वृक्षपर बैठीहुई स्त्री को देखा और उससे बोला कि हे बाले ! राजा तुझको पूंछता

न्स्थानेतुविप्रेन्द्र तिष्ठतेमृगलोचना ॥ ४० ॥ कस्यसायेनकार्य्येण एतत्सर्वंवदस्वमे ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ सङ्गमादर्द्धक्रोशेच उद्यानान्तेप्रशोभिते ॥ ४१ ॥ तत्रतिष्ठतिसानारी सोत्कण्ठितमनाविभो ॥ ततोभृत्यमुवाचेदं कण्ठोराजायुधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ पृच्छत्वंगच्छकाचासि आगताक्वगमिष्यसि ॥ ततःक्षिप्रंगतस्तत्र यत्रनारीस्थिताभवत ॥ ४३ ॥ वृक्षस्थाददृशेबालामुवाचनृपसत्तम ॥ त्वांराजापृच्छतेबाले कासित्वंक्वगमिष्यसि ॥ ४४ ॥ स्त्र्युवाच ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्तादुरात्मनाम् ॥ इहप्रच्छन्नपापानां शास्तावैवस्वतोयमः ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यास्यसंजाता मृगरूपद्विजोद्धात् ॥ मयायुक्तोपिराजासौ मुक्तस्तीर्थप्रभावतः ॥ ४६ ॥ अत्रार्द्धक्रोशमात्रंवै ब्रह्महत्यानसंविशेत् ॥ सोमनाथप्रभावाच्च तीर्थंवाराणसीसमम् ॥ ४७ ॥ गच्छत्वंप्रेषयेःकण्ठं शीघ्रमेवनसंशयः ॥ समस्तंकथयामास तद्वृत्तान्तंनृपम्प्रति ॥ ४८ ॥ तस्यवाक्येनराजासौ पपातधरणीतले ॥ भृत्यउवाच ॥ कस्मात्त्वंशोचसेनाथ पूर्वजातंशुभाशुभम् ॥ ४९ ॥ इत्या

है कि तू कौनहै और कहां को जावेगी ॥ ४४ ॥ तब वह स्त्री बोली कि बुद्धिवालों का सिखानेवाला गुरु होताहै और दुष्टों का सिखानेवाला राजा होताहै और यहां छिपे पापोवाले पापियों को सिखानेवाले यमराज हैं ॥ ४५ ॥ हिरनके रूपको धरे हुये ब्राह्मण के मारने मे इसको ब्रह्महत्या हुई है सो मुझ ब्रह्महत्या से युक्तभी यह राजा इस तीर्थ के प्रभावसे छूटगया है ॥ ४६ ॥ यहा आधकोस से ब्रह्महत्या नहीं पैठसक्ती है यह तीर्थ सोमनाथके प्रभावसे काशी के समान है ॥ ४७ ॥ इस से तुम जावो और कण्ठ को निस्सन्देह बहुत जल्द भेजो तब वह सेवक गया और राजासे उस सब हालको कहताहुआ ॥ ४८ ॥ उसकी बातसे यह राजा पृथिवी पर गिर

पड़ा तब सेवक बोला कि हे नाथ ! पहलेहुये पाप पुण्य को आप क्यों सोचते हो ॥ ४६ ॥ उसके इस वचन को सुन वह राजा बोला कि यहां सोमनाथ के समीप मैं अपने प्राणों का त्याग करूंगा ॥ ५० ॥ आग व बहुत ईंधनको जल्द लाओ अपने वशमें होरहे सेवकों ने सब सामान झटसे लादिया ॥ ५१ ॥ तब पापों के नाश करनेवाले सङ्गम के अच्छे जलमें स्नानकर और हे नरेश्वर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन ॥ ५२ ॥ व तीनबार प्रदक्षिणाको कर बरतीहुई आगमें राजा कण्ठ पैठगया और पीताम्बर व महामुकुट के धारण करनेवाले स्वामी जनार्दन भगवान्‌को अपने हृदय में करके कहा कि विष्णु के ध्यान से मेरी यहीं सुगति होजावे ॥

कर्णयवचस्तस्य सराजाविदमब्रवीत् ॥ प्राणत्यागंकरोम्यत्र सोमनाथसमीपतः ॥ ५० ॥ शीघ्रमानीयतांवह्निरिन्धनानिबहून्यपि ॥ आनीतंतत्क्षणात्सर्वं भृत्यैःस्वैर्वशवर्तिभिः ॥ ५१ ॥ स्नानंकृत्वाशुभेतोये सङ्गमेपापनाशने ॥ अर्चित्वापरयाभक्त्या सोमनाथंनरेश्वरः ॥ ५२ ॥ त्रिःप्रदक्षिणकंकृत्वा ज्वलितेजातवेदसि ॥ प्रविष्टःकण्ठराजस्तु हृदिकृत्वाजनार्दनम् ॥ ५३ ॥ पीताम्बरधरंदेवं महामुकुटधारिणम् ॥ विष्णोर्ध्यानेनचात्रैव सुगतिर्मेभवत्विति ॥ ५४ ॥ पपातपुष्पवृष्टिश्च साधुसाधुनृपात्मज ॥ आश्चर्य्यमतुलंदृष्ट्वा निरीक्ष्यचपरस्परम् ॥ ५५ ॥ हुतंतैःपावकेभृत्यैर्हृदिध्यात्वागदाधरम् ॥ विमानस्थादिवंसर्वे सङ्गताःपाण्डुनन्दन ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सोमनाथप्रभावोयं शृणुष्वैकमनान्नृप ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां सर्वकालेशुभेदिने ॥ ५७ ॥ विशेषाच्छुक्लपक्षेच सूर्य्यवारेणसप्तमी ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ५८ ॥ पञ्चामृतेनगव्येन स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ श्रीखण्डलेपनंकुर्य्यात्पुष्प

५३ । ५४ ॥ तब उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं ने कहा कि हे नृपात्मज ! वाह वाह फिर इस अतुल आश्चर्य्य को देख व आपसमें देख ॥ ५५ ॥ उन सेवकोंने भी गदाधर भगवान् को अपने मनमें ध्यानकर आग में अपने शरीर को होमदिया तब हे पाण्डुनन्दन ! वे सब विमानोंपर चढ़ेहुये स्वर्गको गये और कण्ठ से सब मिलते हुये ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृप ! यह सोमनाथ का प्रभाव है इस को एकाग्र मन होकर सुनो हमेशा अष्टमी, चौदस व अच्छे दिन मे ॥ ५७ ॥ व उजियाले पाखमें इतवार सप्तमी को विशेषसे उपासकर जो मनुष्य भक्ति से रातमें जागरण करे ॥ ५८ ॥ और गऊ के पञ्चामृत से महादेव को नहवावे तद-

नन्तर चन्दन से लेपन तथा फूल, धूप आदि करे ॥ ५९ ॥ घीसे दिया जलावे और गाना व नाच करावे फिर दूसरे दिन अर्थात् अष्टमी सोमवार को प्रातःकाल में ब्राह्मण का पूजन करे ॥ ६० ॥ वह ब्राह्मण कैसाहोवे कि बुद्धिमान्हो, क्रोधको जीतेहो, किसी की निन्दा न करताहो, सब अङ्गों से सुन्दरहो, शान्तहो, अपनी स्त्री का पालनेवालाहो ॥ ६१ ॥ गायत्री को जपताहो और सदा कुकर्मों से रहित होवे और जिसके घरमें उढ़री व वृषली और सूदिनि रहती हो ऐसे को ॥ ६२ ॥ और घाट बाढ़ अङ्गोंवाले व जिनके आगे पीछे का पता नहीं है ऐसे ब्राह्मणों को व्रत, श्राद्ध व दानमें पण्डित लोग सदा छोंडरहें ॥ ६३ ॥ दूसरे पुरुषके पास रहनेवाली जवान

धूपादिकंतथा ॥ ५९ ॥ घृतेनबोधयेद्दीपं गीतंनृत्यंचकारयेत् ॥ सोमवारेणचाष्टम्यां प्रभातेपूजयेद्द्विजम् ॥ ६० ॥ आत्मवन्तंजितक्रोधं द्विजनिन्दाविवर्जितम् ॥ सर्वाङ्गरुचिरंशान्तं स्वदारपरिपालकम् ॥ ६१ ॥ गायत्रींपठमानञ्च विकर्म्मरहितंसदा ॥ पुनर्भूर्वृषलीशूद्री वर्ततेयस्यमन्दिरे ॥ ६२ ॥ हीनाङ्गास्त्वतिरिक्ताङ्गा येषांपूर्वापरेनहि ॥ व्रतेश्राद्धे तथादाने द्विजावर्ज्याःसदाबुधैः ॥ ६३ ॥ पुंश्चलीतरुणीभार्य्या द्विजःस्वाध्यायवर्जितः ॥ आत्मनासहदातारमधोनयतिपाण्डव ॥ ६४ ॥ शाल्मलीनौकयातुल्याः स्वधर्म्मनिरताद्विजाः ॥ दातारंचैवमात्मानंतारयन्तितरन्तिच ॥ ६५ ॥ श्राद्धंसोमेश्वरेपार्थ यःकुर्य्यादुतमानवः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ६६ ॥ अन्नंवस्त्रंहिरण्यञ्च योदद्यादग्रजन्मने ॥ सयातिशाङ्करंलोकमितिमेसत्यभाषितम् ॥ ६७ ॥ हयंयोवैददात्यत्र सम्पूर्णाभरणान्वितम् ॥ रक्तंवापीतवर्णंवा सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ६८ ॥ कुङ्कुमेनविलिप्ताङ्गमप्रजञ्चददेद्धितिम् ॥ स्रग्दामभूषितंकण्ठे सितव

स्त्री और वेद पढ़ने से खाली ब्राह्मण हे पाण्डव ! ये दोनों अपने के सहित देनेवाले को नरक में भेजते हैं ॥ ६४ ॥ और अपने धर्म में लगेहुये ब्राह्मण सेमरकी नाव के समान होते हैं वे देनेवाले को तारते हैं और आपभी तरते हैं ॥ ६५ ॥ और हे पार्थ ! सोमेश्वरमें जो मनुष्य श्राद्ध करताहै प्रलय तक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ६६ ॥ अन्न, वस्त्र और सोना जो ब्राह्मण को देताहै वह महादेवके लोकको जाताहै यह हमारा कहना सत्यहै ॥ ६७ ॥ और सब जेवरों से सजेहुये घोडे को जो यहा देताहै वह घोड़ा लालहो व पीलाहो सब लक्षणों से युक्तहो ॥ ६८ ॥ उसकी देह केसर से रँगीहो और नकन्दहो ऐसे को देवे और कण्ठाको कण्ठ में पहनेहो और सफेद कपड़े

... ॥ ऐसे घोडेपर चढ़ने के वास्ते ब्राह्मण से कहे कि अपने पांवको हमारे कन्धे पर रक्खो और हमारे घोडेपर चढ़ो जब ब्राह्मण घोडेपर सवार
की भूल ओढे होवे ॥ ६९ ॥ ऐसे घोडेपर चढ़ने के वास्ते ब्राह्मण से कहे कि अपने पांवको हमारे कन्धे पर रक्खो और हमारे घोडेपर चढ़ो जब ब्राह्मण घोडेपर सवार
होजावे तब यह कहे कि सूर्यनारायण प्रसन्न होवें ॥ ७० ॥ वह घोडे का देनेवाला सब पापों से छूटाहुआ शङ्करजी के लोकको जाताहै और उस लोक से उतर फिर
धार्मिक राजा होताहै ॥ ७१ ॥ उसके वंश मे हमेशा राज्य बनी रहती है कभी नष्ट नहीं होती है और उसका लडका पूरी उमरवाला होताहै उसकी स्त्री उसके वशमें
रहती है ॥ ७२ ॥ और सब दुःखों से रहित आपभी कुछ अधिक सौ वर्ष जीता है इन्द्रियों को जीतेहुये चन्द्रग्रहण में जो वहांको जाता है ॥ ७३ ॥ और व्रतको किये

स्त्रावगुण्ठितम् ॥ ६९ ॥ अङ्घ्रिराधीयतांस्कन्धे मदीयंहयमारुह ॥ आरूढेब्राह्मणेभूयो भास्करःप्रीयतामिति ॥७०॥
सयातिशाङ्करंलोकं सर्वपापविवर्जितः ॥ तस्माल्लोकाच्च्युतश्चापि राजाभवतिधार्म्मिकः ॥ ७१ ॥ तस्यवंशेसदाराज्यं
ननश्यतिकदाचन ॥ दीर्घायुर्जायतेपुत्रो भार्य्याचवशवर्तिनी ॥ ७२ ॥ जीवेद्वर्षशतंसाग्रं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सोम
स्यचोपरागेतु योगच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ सोपवासोजितक्रोधो गान्तुदद्याद्द्विजन्मने ॥ सवत्सांक्षीरसंयुक्तांश्वेत
वर्णांबलान्विताम् ॥ ७४ ॥ शबलींपीतवर्णांवाधूम्रांवानीलकन्धराम् ॥ कपिलांवासवर्णांवा घण्टाभरणभूषिताम् ॥
७५ ॥ रौप्यखुरांकांस्यदोहां स्वर्णशृङ्गीन्नरेश्वर ॥ श्वेतयावर्द्धतेवंशो रक्तासौभाग्यवर्द्धिनी ॥ ७६ ॥ शबलीताम्रवर्णा
च दुःखघ्नाचप्रकीर्तिता ॥ कपिलातुहरेत्पापं त्रिजन्मभिरुपार्जितम् ॥ ७७ ॥ तस्यलोकमवाप्नोति मान्धातुश्चजनेश्वर॥

हुये व क्रोधको जीतेहुये ब्राह्मणको गऊ देताहै गऊ कैसी होवे कि बछडाके सहित हो, दूधवालीहो, सफेदहो, ताकतवाली हो ॥ ७४ ॥ चितली व पीली व धुमैली व
काले कन्धेवाली व ... , भूरेवाली, घण्टा आदि जेवरोंसे सजी हो ॥ ७५ ॥ रूपे के खुरोंवाली व कांसे की दोहनीवाली और सोने से मढे सींगोंवाली होवे तो
... वंश बढ़ताहै, लालगऊ भाग्यकी बढ़ानेवाली होती है॥७६॥चितली और तबिकेसे रंगवाली दुःख के हरनेवाली कहीगई है तीन जन्मों के
... कपिला हरती है ॥ ७७ ॥ और हे जनेश्वर ! ऐसी गौवों का देनेवाला मान्धाता राजाके लोक को पाताहै अमावस, पूर्णमासी, व्यतीपात, वैधृति

संक्रान्ति ॥ ७८ ॥ घटादिन, गजच्छाया और सूर्य्यग्रहण में व देवताओं को दुर्लभ,रोहिणी नक्षत्र में निर्मल देहवाले जो वहां जाते हैं ॥ ७९ ॥ तो माताका मारनेवाला, गुरुका मारनेवाला और आत्मघात करनेवाला जो द्रुपदादि मन्त्रको नित्य जपे व हे नृप ! प्राणायाम को करे ॥ ८० ॥ अथवा इच्छानुसारही वैष्णवी व सौरी व शैवी गायत्री को जपे तो वहभी पापो से छूटजाताहै ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ८१ ॥ और जो कर्म करनेवाला वहां सोमनाथकी प्रदक्षिणा करताहै तो हे नरेश्वर ! उसने मानो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा करली ॥ ८२ ॥ ब्रह्महत्या का करनेवाला, दारूपीनेवाला, गुरुकी स्त्री का भोग करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला भी

पक्षान्तेचव्यतीपाते वैधृतौरविसंक्रमे ॥ ७८ ॥ दिनक्षयेगजच्छाया ग्रहणेभास्करस्यच ॥ येव्रजन्तिविशुद्धाङ्गा वैरिञ्च्येसुरदुर्लभे ॥ ७९ ॥ मातृहागुरुहायोहि आत्महातुविशेषतः ॥ द्रुपदाद्यंजपेन्नित्यंप्राणायामंतथान्नृप ॥ ८० ॥ गायत्रींवैष्णवींचैव सौरींशैवींयदृच्छया ॥ सोपिपापैःप्रमुच्येत इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ८१ ॥ यःकुर्य्यात्सोमनाथस्य तत्र कर्ताप्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृतन्तेन जम्बूद्वीपन्नरेश्वर ॥ ८२ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ भ्रूणहाशुद्ध्यतेतत्र एवमेवनसंशयः ॥ ८३ ॥ तीर्थाख्यानमिदंपुण्यं यःशृणोतिजितेन्द्रियः ॥ व्याधितोराजरोगेन अतुलांश्रियमाप्नुयात ॥ ८४ ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रं निष्कामःस्वर्गमाप्नुयात् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्तीर्थंश्रुत्वावरन्नृप ॥८५ एतत्तेसर्वमाख्यातं सोमनाथस्ययत्फलम् ॥ ८६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे सोमनाथतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वहां शुद्ध होजाताहै ऐसाहीहै इस में संशय नहीं है ॥ ८३ ॥ इन्द्रियों को जीतेहुये जो इस तीर्थकी पवित्र कथा को सुनता है वह राजरोगी भी हो परन्तु आराम होकर बड़ी लक्ष्मी को पाताहै ॥ ८४ ॥ और पुत्रका चाहनेवाला पुत्रको पाताहै और जिसकी कोई कामना नहींहै वह स्वर्गको पाताहै इस उत्तम तीर्थ को सुन हे नृप ! सब पापों से छूटजाताहै यह सोमनाथ का जो फलहै वह सब तुम से कहागया ॥ ८५ । ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेसोमनाथतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृप ! तदनन्तर पिङ्गलावर्तक तीर्थको जावे वह नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सङ्गम के समीप में है ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर का स्थापन कियाहै तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! अग्निने ईश्वर का स्थापन कैसे कियाहै ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जब महादेवके वीर्य से अग्नि तृप्त किये गये फिर सीधे स्वभाववाले रुद्र से अपनी देह को पाकर वे अग्नि चलेगये ॥ ३ ॥ अग्नि के मुखमें जब अतुलतेजस्वी महादेव जीने वीर्य को डालदिया तब रुद्रके तेज से जलेहुये अग्नि तीर्थयात्रा करतेहुये ॥ ४ ॥ वायु का भोजन करतेहुये अग्नि कुछ अधिक सौ वर्षतक बड़ी भक्ति से उग्र

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पिङ्गलावर्तकंनृप ॥ सङ्गमस्यसमीपस्थं रेवायाउत्तरेतटे ॥ १ ॥ हव्यवाहे नराजेन्द्र स्थापितःपिङ्गलेश्वरः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ हव्यवाहेनविप्रेन्द्र स्थापितश्चेश्वरःकथम् ॥२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ रेतसायदिरुद्रेण तर्पितोहव्यवाहनः ॥ प्राप्तोरुद्रेणसौम्येन देहंप्राप्यजगामसः ॥ ३ ॥ हव्यवाहमुखेक्षिप्ते रुद्रेणामित तेजसा ॥ रुद्रस्यतेजसादग्धो तीर्थयात्रांकरोतिसः ॥ ४ ॥ चचारपरयाभक्त्या ध्यानमुग्रंहुताशनः ॥ वायुभक्षश्शतं साग्रं यावदासीद्धुताशनः ॥ ५ ॥ तावत्तुष्टोमहादेवो हुताशनमुवाचह ॥ हव्यवाहवरंब्रूहि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ६ ॥ हुताश नउवाच ॥ नमस्तेसर्वलोकेश उग्ररूपनमोस्तुते ॥ युष्मद्रेतेनसम्प्लुष्टः कुब्जोजातोमहेश्वर ॥ ७ ॥ शरीरात्तोद्यहंकृ ष्णस्संस्थितोनर्मदातटे ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो नीरुजस्त्वंभविष्यसि ॥ ८ ॥ हव्यवाहेनराजेन्द्रस्थापितःपिङ्गलेश्वरः ॥ जितक्रोधोपियस्तत्र उपवासंसमाचरेत् ॥ ९ ॥ अतिरात्रफलंतत्र अन्तेरुद्रमवाप्नुयात ॥ गुणान्वितायदीनाय कपि

ध्यान को करतेहुये जबतकध्यान करें ॥ ५ ॥ तबतक महादेवजी प्रसन्नहुये और अग्निसे बोले कि हे हव्यवाह ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको तुम मांगो ॥ ६ ॥ तब अग्नि बोले कि हे सब लोकों के मालिक ! आप के लिये नमस्कारहै हे उग्ररूप ! आप के लिये नमस्कारहै आपके वीर्यसे जला हुआ मैं कुबरा होगयाहूं हे महेश्वर ! ॥ ७ ॥ शरीर से दुःखी काला होगया मैं नर्मदा के तटमें रहताहूं तब महादेवने कहा कि तुम रोग से रहित होजावोगे यह कहकर अन्तर्द्धान होगये ॥ ८ ॥ तब हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर को स्थापन किया क्रोधको जीतेहुये जो वहां उपास करता है ॥ ९ ॥ उसको वहां अतिरात्र यज्ञका फल होताहै और अन्त में रुद्र को

पाताहै और हे भारत ! जो वहां बछडा व रूप से संयुक्त व कपडों से युक्त व जेवरसे सजकर कपिलागऊ को गुणों से युक्त गरीब ब्राह्मण के लिये देताहै वह परमपद को जाताहै ॥ १० । ११ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर ब्रह्मा के वंशमें पैदाहुये ब्रह्मर्षियों के थापेहुये अतिउत्तम तीर्थ को जावे ॥ १२ ॥ जो कि नर्मदा के तटमें विद्यमान ऋणमोचन नाम से प्रसिद्धहै जो मनुष्य वहां भक्ति से छह महीने तक पितरों का तर्पण करताहै ॥ १३ ॥ तो वह नर्मदा के जलमें नहाकर अपने किये हुये देवता, पितर और मनुष्यो के ऋण से उसी क्षण छूटजाताहै ॥ १४ ॥ वहा रूपवाला होकर पाप प्रत्यक्ष देखपड़ता है इस से हे राजन् ! इन्द्रियों को जीतेहुये व एकाग्र

लांतत्रभारत ॥ १० ॥ अलंकृत्वासवस्त्रांच सवत्सांरूपसंयुताम् ॥ यःप्रयच्छतिविप्राय सगच्छेत्परमंपदम् ॥ ११ ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थंपरमशोभनम् ॥ स्थापितंह्यृषिसङ्घैश्च ब्रह्मवंशोद्भवैर्द्विजैः ॥ १२ ॥ ऋणमोचनविख्यातं रेवातटसमाश्रितम् ॥ षण्मासंमनुजोभक्त्या तत्रयस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ १३ ॥ दिव्यैःपित्र्यैर्मनुष्यैश्च ऋणैरात्मकृतैस्सह ॥ मुच्यतेतत्क्षणात्सोथस्नात्वावैनर्मदाजले ॥ १४ ॥ प्रत्यक्षंपातकंतत्र दृश्यतेचैवरूपिच ॥ तत्रतीर्थेतुयोराजन्नेकचित्तोजितेन्द्रियः ॥ १५ ॥ स्नानंदानंनरोधीमान् कारयेद्भक्तितत्परः ॥ ऋणत्रयविमुक्तस्तु नाकेमोदतिवीर्य्यवान् ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्यैवानन्तरंपार्थ कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ स्थापितंकपिलेनैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १७ ॥ अष्टम्यांश्वसितेपक्षे चतुर्दश्यांनरेश्वर ॥ स्नापयेत्परयाभक्त्याकपिलाक्षीरसर्पिषा ॥ १८ ॥ मधुनाखण्डयुक्तेन दध्यक्षतफलेनच ॥ कपिलेशंनृपश्रेष्ठ निशीथेतंजगत्प्रभुम् ॥ १९ ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन गुण्ठयेच्चमहेश्वरम् ॥ ततस्सुगन्ध

मनवाला जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्ति में तत्परहो उस तीर्थ में स्नान व दान को करताहै तो वह बलवान् होकर तीनों ऋणों से छूटा हुआ स्वर्ग मे आनन्द भोगताहै ॥ १५ । १६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! उसके बाद उत्तम कपिला तीर्थ को जावे सब पापों के हरनेवाले उस तीर्थको कपिल ने स्थापन कियाहै ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर ! हे नृपश्रेष्ठ ! उजियालेपाख में अष्टमी व चौदस को शहद, शक्कर व दही, अक्षत और फलों से युक्त कपिलागऊके दूध और घीसे बडी भक्तिसे अर्द्धरात्र में उन जगत्प्रभु, कपिलेश्वर महादेव को नहवावे ॥ १८ । १९ ॥ और सुगन्धित चन्दन से महादेवका लेपनकरे हे नृपनन्दन ! तदनन्तर क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य

सुगन्धित सफेद फूलों से महादेवको पूजते हैं वे यमलोक को नहीं जातेहैं हे पार्थ ! कपिलेश्वर के अच्छी तरह पूजन किये पर घोर असिपत्रवन व दारुण यमवल्ली को वे सुख से निकल जाते हैं व हे भारत ! पुण्यवाले नर्मदाके जलमें नहाकर गऊ, वस्त्र, अन्न, छाता और शय्याके दानसे अच्छे ब्राह्मणका पूजनकरे तो वह पृथिवीमें राजा होताहै ॥ २०।२१।२२।२३ ॥ रोग से रहित व बड़ा तेजवाला व जीतेपुत्रवाला व प्यारी बातोंका कहनेवाला होताहै उसके वैरीभी मित्र होजातेहैं इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकपिलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पुष्पैश्च श्वेतैश्चनृपनन्दन ॥ २० ॥ अर्चयन्तिजितक्रोधा नतेयान्तियमालयम् ॥ असिपत्रवनंघोरं यमवल्लींसुदारुणाम् ॥ २१ ॥ तेव्रजन्तिसुखंपार्थ कपिलेशेसुपूजिते ॥ स्नात्वारेवाजलेपुण्ये पूजयेद्ब्राह्मणंशुभम् ॥ २२ ॥ गोप्रदानेनवस्त्रेण अन्नेनकिलभारत ॥ छत्रशय्याप्रदानेन भूमौराजाभवेत्तुसः ॥ २३ ॥ नीरोगस्तीव्रतेजाश्च जीवत्पुत्रःप्रियंवदः ॥ शत्रवोमित्रतांयान्ति जायतेनात्रसंशयः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे कपिलेश्वरमहिमानुवर्णनोनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पूतकेश्वरमुत्तमम् ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सुस्थापितःशिवस्तत्र लोकानांहितकाम्यया ॥ यस्तत्रमनुजःशम्भुंपूजयेत्पाण्डुनन्दन ॥ २ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नसयातियमालयम् ॥ कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यां सर्वकामानराधिप ॥ ३ ॥ येर्चयन्तिमहाकालं नतेयान्तियमालयम् ॥ नर्म्म

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर विद्यमान सब पापों के हरनेवाले उत्तम पूतकेश्वर को जावे ॥ १ ॥ लोकों के हित की कामना से वहा महादेवजी थापे गये हैं हे पाण्डुनन्दन ! वहां जो मनुष्य महादेवका पूजन करता है ॥ २ ॥ वह सब कामों को प्राप्त होताहै और यमलोक को नहीं जाताहै कृष्णपक्षकी अष्टमी व चौदश को हे नराधिप ! हरएक कामनाओं के करनेवाले ॥ ३ ॥ जो मनुष्य महाकालजी का पूजन करते हैं वे यमलोक को नहीं

जाते हैं नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर उत्तम वैष्णवतीर्थ है जो कि जलशायी इस नामसे पृथिवी में प्रसिद्ध है वहां दानवों को मारकर जनार्दन भगवान् सोये हैं ॥ ४ । ५ ॥ वहां देवताओं के देवता विष्णुजी ने अपने चक्रको धोयाहै नर्मदा के जल के प्रभावसे सुदर्शनचक्र पापों से रहित होगयाहै ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि ऋषियों के समूह से सेये जाते चक्रतीर्थ को कहो और विष्णु का अतुलप्रभाव व नर्मदाका जो फल है उसको कहो ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, युधिष्ठिर ! वाह २ कि गुप्त से गुप्त इस तीर्थ को चक्रधारी विष्णुजी ने आपही बनायाहै ॥ ८ ॥ सो हम तुमसे उस पापों के नाश करनेवाली कथाको कहेंगे अगिले

दायोत्तरेकूले वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥ जलशायीतिनाम्नावै विख्यातंवसुधातले ॥ दानवानांवधंकृत्वा सुप्तस्तत्रज नार्दनः ॥ ५ ॥ चक्रंचक्षालितंतत्र देवदेवेनशौरिणा ॥ सुदर्शनंचनिष्पापं रेवातोयप्रभावतः ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ चक्रतीर्थसमाचक्ष्व ऋषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ विष्णोःप्रभावमतुलंरेवायाश्चैवयत्फलम् ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधु साधुमहाभाग विष्णुनाचयुधिष्ठिर ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं निर्मितंचक्रिणास्वयम् ॥ ८ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि कथांपाप प्रणाशिनीम् ॥ आसीत्पुरामहादैत्यो नलमेघइतिश्रुतः ॥ ९ ॥ तेनदेवाजितास्सर्वे हतराज्यानराधिप ॥ नलमेघभया त्पार्थ विष्णुरुद्रास्सवासवाः ॥ १० ॥ यमस्कन्दजलेशाग्निवायवोवैधनेश्वरः ॥ वसुवाक्पतिसिद्धाश्च प्रचेताश्चपिताम हः ॥ ११ ॥ गतादेवाःपरंलोकं विष्णुरुद्रनमस्कृतम् ॥ स्तुवन्तिविविधैःस्तोत्रैर्वागीशप्रमुखास्सुराः ॥ १२ ॥ नमः शिवमूर्तयेतुभ्यं प्राक्सृष्टेःकेवलात्मने ॥ गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ १३ ॥ इन्द्रादिप्रमुखान्देवान्निवर्णान

जमाने मे एक नलमेघ इस नाम से प्रसिद्ध बडाभारी दैत्य होताहुआ ॥ ९ ॥ हे नराधिप ! राज्य जिनकी हरलीगई ऐसे सब देवता उस दैत्यसे जीतलिये गये हे पार्थ ! नलमेघ के भयसे इन्द्रसहित विष्णु, रुद्र, ॥ १० ॥ यम, स्कन्द, वरुण, अग्नि, वायु, कुबेर, वसु, बृहस्पति, सिद्ध, प्रचेता और ब्रह्मा आदि ॥ ११ ॥ सब देवता, विष्णु और रुद्र से भी नमस्कार किये गये सर्वोत्तम लोक को जाते हुये और बृहस्पति आदि सब देवता अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ कि सृष्टि के प्रहले एकही रूपवाले कल्याण की मूर्ति जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है तीनोंगुणों के विभाग करनेवाले फिर पीछे से भेदको प्राप्त होनेवाले के

लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ तबतक हे अवनीपते ! इन्द्र आदि सब देवताओं को शोभारहित देख प्रसन्नमुखवाले ब्रह्मा देवताओं से बोले ॥ १४ ॥ कि हे देवता लोगो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहै परन्तु तुम्हारी पहली शोभा क्यों जाती रही है जैसे पालासे ढँका हुआ है प्रकाश जिनका ऐसे नक्षत्र देखपड़ें ॥ १५ ॥ आप से आप चिनगारियों को नहीं उगलता हुआ यह इन्द्रका वज्र गोंठिलसा देख पड़ताहै ॥ १६ ॥ और वैरियों के रोंकने से नहीं रुकनेवाली व वरुणके हाथमें रहनेवाली यह फांसी मन्त्रों से ताकत जिसकी हरलीगई ऐसे सांपकी तरह क्यों दीन होरही है ॥ १७ ॥ टूटे बजुल्लावाली यह कुबेरकी भुजा, टूटगईहै शाखा जिसकी ऐसे पेड़की

वनीपते ॥ प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवौकसः ॥ १४ ॥ स्वागतंसुरसङ्घाश्च कान्तिर्नष्टापुरातनी ॥ हिमप्लुष्टप्रभाणीव ज्योतिषाञ्चमुखानिवै ॥ १५ ॥ प्रसभादर्चिषामेतदनुद्गीर्णन्सुरायुधम् ॥ वृत्रस्यहन्तुःकुलिशं कुण्ठितश्रीवलक्ष्यते ॥ १६ ॥ किञ्चायमरिदुर्वारः पाणौपाशःप्रचेतसः ॥ मन्त्रोपहृतवीर्य्यस्य फणिनोदैन्यमागतः ॥ १७ ॥ कुबेरस्यमनश्शल्यं शंसतीवपराभवम् ॥ अपविद्धाङ्गदोबाहुर्भग्नशाखइवद्रुमः ॥ १८ ॥ यमोपिव्यलिखद्भूमिं दण्डेनापिहतत्विषा ॥ कुरुतस्मैनमोदेहनिर्विण्णोयातिलाघवम् ॥ १९ ॥ अमीचद्वादशादित्याः प्रतापक्षयशीतलाः ॥ चित्रन्यस्ताइवगताः प्रकामालोकनीयताम् ॥ २० ॥ मयिसृष्टिश्चलोकानांरक्षायुष्मास्ववस्थिता ॥ ततोमन्दानिलोद्भूतकमलाकरशोभिना ॥ २१ ॥ गुरुन्नेत्रसहस्रेण प्रेरयामासवृत्रहा ॥ सद्विनेत्रोहरस्त्र्यक्षः सहस्रनयनाधिकौ ॥ २२ ॥ वाचस्पतिरु

तरह कुबेर के मनकी फांस व उनकी हारको बतलातीसी है ॥ १८ ॥ चमक जिसकी जाती रही ऐसे कालदण्ड से यमराज भी जमीनको खोदरहे हैं इससे उसके नमस्कार करो क्योंकि जिसको देहसे वैराग्य होताहै वह हलकापन को प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ और ये बारहों सूर्य अपने तेज के क्षीण होजाने से ठण्ढे होरहे चित्रसारी में लिखे सूर्योंकी तरह सबको खुशी से देखने लायक होरहे हैं ॥ २० ॥ लोकों की रचना हमारे अधीन है और उनकी रक्षा तुम लोगों के अधीन है तदनन्तर थोड़ी हवा के चलने से डोलरहे कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ २१ ॥ हजारनेत्रों से इन्द्रने बृहस्पति को इशारा किया क्योंकि दो नेत्रवाले बृहस्पति और तीन नेत्रवाले महादेव येदोनों

इन्द्र से अधिक हैं॥ २२ ॥ इस से हाथ जोडकर बृहस्पति-ब्रह्मा से यह बोले कि हे तात ! बड़ा बलवाला नलमेघ नाम का दानव आप के वंशमे पैदा हुआहै॥ २३ ॥ उस दानवने सब देवताओंको हरादिया है तब ब्रह्मा ने कहा कि मेरे चलने से देवताओ के मारने लायक नलमेघ नहीं होगा॥ २४ ॥ विना विष्णु भगवान्के उसका मारना और किसीको साध्य नही है तब सब देवताओंने विष्णुकी स्तुतिकी कि हे शङ्ख,पद्म और गदाको हाथोंमें रखनेवाले व चक्रके धारनेवाले हेप्रभो! आपकीजयहो॥२५॥ इस देवताओं की स्तुतिको सुन भगवान् जागतेहुये और मेघोंकी तरह गहरीआवाज से मीठी वाणीको बोलतेहुये ॥२६॥ कि हे ब्रह्मन् ! सब देवता व दैत्योंसे हम क्यों जगाये

वाचेदं प्राञ्जलिर्हंसवाहनम् ॥ युष्मद्वंशोद्भवस्तात नलमेघोमहाबलः ॥ २३ ॥ तेनदेवगणास्सर्वे निरस्तादानवेनच॥ नलमेघोनवध्योतश्चलितेनमयासुरैः ॥ २४ ॥ विनामाधवदेवेन साध्योभवतिनैवहि ॥ शङ्खपद्मगदापाणेजयचक्रधर प्रभो ॥ २५ ॥ इतिदेवस्तुतिंश्रुत्वा प्रबुद्धोजलशायिकः ॥ उवाचमधुरांवाणीं मेघगम्भीरयागिरा ॥ २६ ॥ किमर्थंवो धितोब्रह्मन्समस्तैश्चसुरासुरैः ॥ब्रह्मोवाच॥ नलमेघभयेनेहसम्प्राप्तास्तवमन्दिरम् ॥२७॥ नवध्यःकस्यचित्पापो नलमे घोजनार्दन ॥ तवहस्तेनदुष्टात्मा मृत्युंप्राप्स्यतिनान्यथा ॥ २८ ॥ जनार्दनउवाच ॥ स्वस्थानंयान्तुगीर्वाणा वधिष्या मिमहाबलम् ॥ स्थानंशंसन्तुमेदेवा वसतेयत्रदुर्मतिः ॥ २९ ॥ देवाऊचुः ॥ हिमाचलगुहांकृष्ण वसतेदानवेश्वरः ॥ चतुर्विंशत्सहस्रैस्तु कन्याभिस्तुसमावृतः॥ ३० ॥ तुरङ्गैःस्यन्दनैश्चैव संख्यातेषान्नविद्यते ॥ भवनानिविचित्राणि असं ख्यानिबहून्यपि ॥ ३१ ॥ द्विरदाःपर्वताकारा हयाश्चद्विरदोपमाः ॥ महाबलोऽवसत्तत्र गीर्वाणभयदायकः ॥ ३२ ॥ श्रु

गये हैं तब ब्रह्मा बोले कि हे जनार्दन ! नलमेघके भयसे हम लोग यहां आपके मन्दिर में प्राप्तहुये हैं नलमेघ पापी किसी के मारने लायक नही है आपही के हाथसे वह दुष्टात्मा मृत्युको पावेगा और तरह नहीं मरसक्ता है ॥ २७ । २८ ॥ तब भगवान् बोले कि देवतालोग अपने स्थानों को जावें हम उस महाबलवान् दैत्य को मारेंगे जहां वह दुर्बुद्धि रहताहो उस स्थान को देवतालोग हमको बतलावें ॥२९॥ तब देवतालोग बोले कि हे कृष्ण ! चौबीस हजार कन्यायों से युक्त वह दानवों का मालिक हिमाचलकी गुफामें रहताहै ॥ ३० ॥ घोड़े और रथोंकी कोई गिन्ती नहीं है और अनगिन्ती बहुत से चित्रविचित्र मकान बने है ॥ ३१ ॥ हाथी पर्वतों

केसे भारी और घोडे हाथियोंकेसे हैं देवताओं को भयका देनेवाला वह बलवान् दैत्य वहां रहता है ॥ ३२ ॥ विकलबुद्धिवाले उन देवताओं के वचन को सुनकर भगवान् शत्रुओं के नाश करनेवाले गरुड़की याद करतेहुये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जनार्दन भगवान् हाथ से चक्रको लेकर व गदा, शङ्ख, शार्ङ्गधनुष व मूसर और हलको हाथों से लेकर ॥ ३४ ॥ दानवके मारने के वास्ते गरुड पर सवार होतेहुये तब हे पार्थ ! उस दानव के घरमें बड़े डरावने उत्पात होने लगे ॥ ३५ ॥ गीदड और घुग्घू उसके घरमें पैठ आये और हवाके विना उसकी ध्वजाका दण्ड गिरपड़ा ॥ ३६ ॥ मूश और सापकी व हाथी और शेरकी लडाई होती हुई भँवर जिनमें उठते हैं ऐसी

त्वादेवोवचस्तेषां देवानामातुरात्मनाम् ॥ गरुडंचिन्तयामास शत्रुसङ्घविदारणम् ॥ ३३ ॥ चक्रंकरेणसंगृह्य गदांशङ्खंततःप्रभुः ॥ शार्ङ्गंचमुशलंसीरं करैर्गृह्यजनार्दनः ॥ ३४ ॥ आरूढःपक्षिराजंतु वधार्थंदानवस्यच ॥ दानवस्यगृहेपार्थ उत्पाताघोरदर्शनाः ॥ ३५ ॥ गोमायुर्गृहमध्येतु कपोतोगृहमाविशत् ॥ विनावातेनतस्यैव ध्वजदण्डंपपातह ॥ ३६ ॥ सर्प्पमूषकयोर्युद्धं तथाकेशरिनागयोः ॥ उन्मार्गाःसरितस्तत्र वहन्तेचक्रमाश्रिताः ॥ ३७ ॥ अकालेतरुपुष्पाणि दृश्यन्तेतत्रपर्वते ॥ ततःप्राप्तोजगन्नाथो हिमवन्तंनगेश्वरम् ॥ ३८ ॥ पाञ्चजन्यंचकृष्णेन पूरितंपुरसन्निधौ ॥ पाञ्चजन्यस्यशब्देन आरूढोदानवेश्वरः ॥ ३९ ॥ नलमेघउवाच ॥ कोयंमृत्युवशंप्राप्तस्त्वज्ञानेनसमावृतः ॥ धुन्धुमारव्रजशीघ्रं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ ४० ॥ बलादानयतंबद्ध्वाममाग्रेबलशालिनम् ॥ धुन्धुमारउवाच ॥ आनयामिनसन्देहस्सुरपक्षांश्चसाम्प्रतम् ॥ ४१ ॥ स्यन्दनैश्चसमायुक्तो गजवाजिभटैस्सह ॥ दृष्टस्ततोजगद्योनिस्सुपर्णस्थोमहाबलः ॥ ४२ ॥

नदियां रास्ते को छोंड बहनेलगीं ॥ ३७ ॥ और उस पर्वतपर बेममय के फूल देखपडने लगे तदनन्तर जगत् के स्वामी भगवान् पर्वतों मे श्रेष्ठ हिमालय पर्वतपर पहुँचगये ॥ ३८ ॥ और श्रीकृष्णजी ने शहर के समीप मे अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजादिया तब पाञ्चजन्यकी आवाजसे दानवोंका मालिक सजग हुआ ॥ ३९ ॥ नलमेघ बोला कि अज्ञान से युक्त यह कौन पुरुष मौत के वश मे पड़गया है हे धुन्धुमार ! अपनी सेना से युक्त तुम जल्द जावो ॥ ४० ॥ जबरदस्ती उस बलवान् को बांधकर हमारे सामने लावो तब धुन्धुमार बोला कि मैं देवताओं के सहायकों को अभी लाताहूं इस में सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ फिर रथ, हाथी, घोड़े और सिपा-

हियों के सहित उसने गरुड़पर बैठेहुये महाबली भगवान् को देखा ॥ ४२ ॥ इसको पकड़ो २ जब सिपाहीलोग ऐसे कहेगये तब भगवान् के चारों तरफ सिपाही लोग घिरगये ॥ ४३॥ गरुड़ अग्निबाण से टीड़ीकी तरह मारेजाते हैं धुन्धुमार भी कृष्ण से बाणों की मार से मारागया ॥ ४४ ॥ छाती में मारागया वह रथके ऊपर गिरपड़ा तब लड़ने को तैयार सब दानव हाहाकार को करतेहुये ॥४५॥ तब रिससे भराहुआ व रथपर सवार होकर नलमेघ निकला और हे पार्थ ! शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले भगवान् को देखा ॥ ४६ ॥ तब नलमेघ बोला कि हे दानवो ! इस विष्णुको मारो जिसने धुन्धुमारको माराहै मेरे सेनापति को मारकर अब कहां

गृह्यतांगृह्यतामेष इत्युक्तास्तेचकिङ्कराः ॥ चतुर्दिक्षुचवर्तन्ते किङ्कराःकेशवस्यच ॥ ४३ ॥ सुपर्णेनाग्निबाणेन ह्न्यन्तेशलभाइव ॥ धुन्धुमारोपिकृष्णेन शरघातेनताडितः ॥ ४४ ॥ हतोवक्षस्थलोपान्ते पतितस्स्यन्दनोपरि ॥ हाहाकारंततस्सर्वे दानवाश्चक्रुरुद्यताः ॥ ४५ ॥ नलमेघस्ततःक्रुद्धो रथारूढोविनिर्गतः ॥ ददर्शकेशवंपार्थ शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ४६ ॥ नलमेघउवाच ॥ हन्यतांदानवाःकृष्णो निहतोयेनदानवः ॥ हत्वाचमेचमूमुख्यमधुनाचक्वयास्यति ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वादानवःपार्थ धर्षयामाससायकैः ॥ दानवस्यशरांस्तत्रच्छेदयामासकेशवः ॥ ४८ ॥ गरुत्मान्भक्षयामास तत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ कृष्णेनद्विगुणास्तत्र प्रेषिताहिशिलीमुखाः ॥ ४९ ॥ द्विगुणाद्विगुणीकृत्य प्रेषयामासदानवः ॥ तेपिचाष्टगुणाःकृष्णं छादयामासुरोजसा ॥ ५० ॥ ततःक्रुद्धेनदैत्येन आग्नेयंप्रेषितन्तदा ॥ वारुणंप्रतिवायव्यं नलमेघोऽभ्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥ नारसिंहंन्रसिंहोयं प्रेषयामासपाण्डव ॥ नारसिंहंततोदृष्ट्वा नलमेघोमहाबलः ॥ ५२ ॥

जाओगे ॥ ४७ ॥ हे पार्थ ! इतना कहकर वह दानव बाणोंसे मारने लगा वहां दानव के बाणोंको भगवान् काट देतेहुये ॥ ४८ ॥ और गरुडभी उसकी बड़ी डरावनी सेना को खाते हुये और वहां भगवान् ने भी उस दानव के बाणों से दूने बाणों को चलाया ॥ ४९ ॥ तब दानव भी दूने से दूने कर बाणों को चलाता हुआ वे अठगुने बाण अपने तेजसे कृष्ण को ढांक लेतेहुये ॥ ५० ॥ तदनन्तर रिस से भरेहुये दैत्य ने अग्निबाण को चलाया और वरुण व वायव्य बाण को भी नल-

मेघ छोड़ता हुआ ॥ ५१ ॥ हे पाण्डव ! तब भगवान्ने नारसिंह बाणको चलाया बलवान् नलमेघ नारसिंह बाण को देख ॥ ५२ ॥ झट रथसे उतरा और बडाबली दानव हाथसे तलवार लेकर भगवान्के मारने के वास्ते चलाताहुआ ॥ ५३ ॥ तब रिसका भरा हुआ वह दानव हे पार्थ ! कृष्ण के समीप आता हुआ और तलवार से गदा को हाथमें लियेहुये जो भगवान् हैं तिनको मारताहुआ ॥ ५४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले भगवान् मण्डलके अगिले भाग को ग्रहणकर बलवान् नलमेघ दैत्य की छाती मे मारा ॥ ५५ ॥ तब वह दैत्य भगवान् को बाण से मारता हुआ तदनन्तर नलमेघपर बडे क्रुद्ध होकर भगवान् ने हे नृप ! संग्राम में ॥ ५६ ॥ खाली न जावे

क्रुद्धोथदानवःपार्थ आग उत्तीर्णःस्यन्दनाच्छीघ्रं खड्गंगृह्यकरेणतु ॥ प्रेषयामासकृष्णाय तंहन्तुंबलवत्तरः ॥ ५३ ॥ हतोवक्ष तःकेशवंप्रति ॥ खड्गेनघातयामास गदापाणिजनार्दनम् ॥ ५४ ॥ मण्डलाग्रंततोगृह्य केशवोहृष्टमानसः ॥ हतोवक्ष स्थलेदैत्यो नलमेघोमहाबलः ॥ ५५ ॥ जनार्दनंतदादैत्यो नाराचेनजघानह ॥ जनार्दनस्ततःक्रुद्धो नलमेघंमृधेनृप ॥ ५६ ॥ अमोघंचक्रमादाय शिरस्तस्यन्यपातयत् ॥ पतताशिरसातस्य वसुधाचप्रकम्पिता ॥ ५७ ॥ समुद्राःक्षुभिताः पार्थ भयादुन्मार्गगामिनः ॥ पुष्पवृष्टिंततोदेवा ववृषुःकेशवोपरि ॥ ५८ ॥ अवध्यस्सुरसङ्घानां सहतःकेशवेनतु ॥ स्व स्थानमगमद्देवो नलमेघेनिपातिते ॥ ५९ ॥ जनार्दनोपिकौन्तेय नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ लक्ष्मीसमन्वितःकृष्णो वि लीनोनर्मदातटे ॥ ६० ॥ चक्रंविमोचितंपापक्षालनायमलान्वितम् ॥ पतितंनर्मदातोये जलशायिसमन्वितम् ॥ ६१ ॥ निर्धूतकल्मषंजातं नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ नलमेघवधोत्पन्नं यत्पापंमनुजाधिप ॥ ६२ ॥ तत्सर्वंक्षालितंशीघ्रं

ऐसे चक्र को लेकर उसका शिर गिरादिया गिरतेहुये उसके शिरसे पृथिवी कांपनेलगी ॥ ५७ ॥ और हे पार्थ ! खलभलाते हुये समुद्र भयसे उछलने लगे तदनन्तर भगवान् के ऊपर देवतालोग फूलोंकी वर्षा करतेहुये ॥ ५८ ॥ जो सब देवताओं को अवध्यथा वह भगवान् से मारागया नलमेघ के मरनेपर भगवान् अपने स्थान को चलेगये ॥ ५९ ॥ हे कौन्तेय ! जनार्दन भगवान्भी नर्मदा के किनारेपर बैठते हुये लक्ष्मी के सहित विष्णुभगवान् नर्मदा के तट में लीन होगये ॥ ६० ॥ और मलयुक्त चक्रको पापों के धोने के वास्ते छोड़दिया वह चक्र भगवान्के सहित नर्मदा में गिरा ॥ ६१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से चक्र पापों से रहित होगया हे मनुजा-

धिप ! नलमेघके मारने से जो पाप हुआथा ॥ ६२ ॥ वह सब नर्मदा के जल में शीघ्र धोडाला गया हे भारत ! तब से इस लोक व पृथिवी में वह तीर्थ जलशायी कहलाता है ॥ ६३ ॥ अनेक पापों के समूह के नाशकरनेवाले उस तीर्थको कोई चक्रतीर्थ कहते हैं हे महीपते ! इस भारतखण्ड विषे नर्मदा में वह तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ६४ ॥ हे नृप ! उस तीर्थ के प्रभावको एकाग्रचित्त होकर तुम सुनो जैसे नागों में शेषनारायणहैं व देवताओंमें जैसे विष्णुहैं ॥ ६५ ॥ और महीनों में जैसे अगहन है ऐसेही नदियों में पुण्यवाली नर्मदाहै अगहन के उजियाले पाखकी एकादशीको या और अच्छे दिन में ॥ ६६॥ काम और क्रोधसे रहित जो मनुष्य वहां जाकर शहद

रेवायाम्भसिभारत ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिञ्जलशायीमहीतले ॥ ६३ ॥ चक्रतीर्थवदन्त्यन्ये अनेकाघौघनाशनम्॥ विख्यातंभारतेवर्षे नर्म्मदायांमहीपते ॥ ६४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावंवै शृणुष्वैकमनानृप ॥ नागानांचयथानन्तो गीर्वाणानांजनार्दनः ॥ ६५ ॥ मासानांमार्गशीर्षोपि नदीपुण्याहिनर्म्मदा ॥ मासिमार्गेसितेपक्षे एकादश्यांशुभेदिने ॥ ६६ ॥ गत्वायेमनुजास्तत्र कामक्रोधविवर्जिताः ॥ स्नापयन्तिश्रियःकान्तं नागपर्य्यङ्कशायिनम् ॥ ६७ ॥ राजेन्द्रपरयाभक्त्या क्षौद्रसागरसर्पिषा॥ गुडेनतोयमिश्रेण जगद्योनिंजनार्दनम् ॥ ६८ ॥ स्नाप्यमानञ्चपश्यन्ति येलोकागतपातकाः ॥ तेयान्तिपरमंलोकं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६९ ॥ घृतेनबोधयेद्दीपमथवातैलमिश्रितम् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा देवःस्यान्नात्रसंशयः ॥ ७० ॥ कथाञ्चवैष्णवींभक्त्या येशृण्वन्तिनरोत्तमाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ ७१ ॥ प्रदक्षिणंयेकुर्वन्ति जलशायिजगद्गुरुम् ॥ प्रदक्षिणीकृतन्तेन जम्बूद्वीपंनरेश्वर॥ ७२ ॥ ततःप्रभाते

दूध और घीसे व गुडमिले जलसे हे राजेन्द्र ! बडी भक्तिसे लक्ष्मी के पति व नाग की शय्याके सोनेवाले व जगत्की योनि जो भगवान्हैं तिनको नहवाते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ व पापों से रहित जो लोग नहवाये जाते हुये भगवान् को देखते हैं वे सब लोग देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये उत्तम लोकको जातेहैं ॥ ६९ ॥ घीसे दिया को जलावे अथवा तेल मिले घीको जलावे और रातमें जागरण करके देवता होजावे इसमें संशय नहीं है ॥ ७० ॥ और जो उत्तम लोग वहां भक्तिसे विष्णु की कथा को सुनते हैं वे ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटजाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥ जगत् के गुरु जलशायी भगवान्की जो प्रदक्षिणा करते हैं हे नरेश्वर ! वे मानो

जम्बूद्वीपकी प्रदक्षिणा करचुके ॥ ७२ ॥ तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल में यत्न से पितरों का तर्पण कर फिर हे पाण्डवसत्तम ! पूजने लायक ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे ॥ ७३ ॥ वे ब्राह्मण कैसे होवें कि अपनी स्त्री में रतहोवें और शान्तहों, पराई स्त्री से विमुखहों, वेदमें अभ्यास करनेवालेहों, अपने कर्मों के करनेवालेहों, अच्छे हों ॥ ७४ ॥ हमेशा सज्जनों केसे स्वभाववाले हों, तीनों कालोंकी सन्ध्या के करनेवाले हों ऐसे ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे जो अपने भलेको चाहते हों ॥ ७५ ॥ यहां मनुष्य लोक में वे मनुष्य धन्य व पुण्यवाले हैं कि जो सदा ब्रह्मके स्थान कुण्ड में वास करते हैं ॥ ७६ ॥ और देवताओं के मालिक जलशायी भगवान् को प्रत्यक्ष देखते

विमले पितॄन्सन्तर्प्ययत्नतः ॥ श्राद्धंवैब्राह्मणैस्तत्र पूज्यैःपाण्डवसत्तम ॥ ७३ ॥ स्वदारनिरतैःशान्तैः परदारविवर्जितैः ॥ वेदाभ्यसनशीलैश्च स्वकर्म्मनिरतैश्शुभैः ॥ ७४ ॥ नित्यंसज्जनशीलैश्च त्रिसन्ध्यापरिपालकैः ॥ तादृशैः कारयेच्छ्राद्धमिच्छेयुःश्रेयआत्मनाम् ॥ ७५ ॥ तेधन्यामानुषेलोके पुण्याश्चैवात्रमानुषाः ॥ येवसन्तिसदाकालं पदे ब्रह्माश्रयेहृदे ॥ ७६ ॥ जलशायिनञ्चपश्यन्ति प्रत्यक्षंसुरनायकम् ॥ पक्षोपवासंयेकेचिद्व्रतंचान्द्रायणंशुभम् ॥ ७७ ॥ मासोपवासमुग्रंच तथान्यत्परमंव्रतम् ॥ तत्रतीर्थेतुयःपार्थकुर्य्यात्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि तिलधेनोस्तुयत्फलम् ॥ तथायस्मिन्यथादेशं दानंतस्यश्रुतंफलम् ॥ ७९ ॥ एतत्कथान्तरेपुण्ये मुनीन्द्रैःपापनाशनम् ॥ श्रुतंहिनैमिषारण्ये नारदाद्यैरनेकधा ॥ ८० ॥ इदमाख्यानमायुष्यं पुण्यंकीर्तिविवर्द्धनम् ॥ विप्राणांश्रावयेद्यस्तु सर्वं तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ बहूनांनप्रदेयानिगोगृहंशयनंकिल ॥ विभक्तदक्षिणाह्येषा दातारंनोपतिष्ठति ॥ ८२ ॥ ए

हैं और जो लोग एक पाख का व्रत करते व चान्द्रायण करते हैं ॥ ७७ ॥ व बड़ा कड़ा महीने भरका व्रत व और व्रतको उस तीर्थ में जो करताहै हे पार्थ ! वह स्वर्ग को प्राप्त होताहै ॥ ७८ ॥ अब इसके बाद तिलधेनुका जो फलहै उसको हम कहेंगे वह दान जिसको दियाजावे व जो कुछ उसका फल सुना गयाहै उसको हम कहेंगे ॥ ७९ ॥ पापों के नाश करनेवाले इस दानको नैमिपारण्य में नारद आदि मुनीन्द्रोंने अनेक तरह से पवित्र कथा के बीच में सुनाहै ॥ ८० ॥ इस पुण्यवाले व आयुर्दाय और यशके बढ़ानेवाले आख्यानको जो ब्राह्मणोंको सुनाताहै वह इस सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ ८१ ॥ गऊ, मकान और शय्या बहुतों को नहीं देना

चाहिये अगर इनकी दक्षिणा बँटजावे तो देनेवाले को फल नहीं होताहै ॥ ८२ ॥ हे युधिष्ठिर ! वह एकही को देनेलायक है बहुतों को नहीं अगर वह गऊ बेंची जावे तो सात पीढ़ी तकको भस्म करदेती है ॥ ८३ ॥ तिल सफेद, काले और भूरेभी होते हैं गऊ और बछड़े के मोलभर तिलों के प्रमाणको करे ॥ ८४ ॥ बछडा के सहित तिलधेनु देना चाहिये सोभी बहुतों को नही विचारसे गऊके जिस स्थान में तिलोंका जितना प्रमाण हो ॥ ८५ ॥ उसी प्रमाणसे अक्षय फलका चाहनेवाला गऊ को बनावे और हे विभो ! चन्दन, फूल और अक्षतों से उसका यत्नसे पूजन करे ॥ ८६ ॥ गऊकी नाक में सब सुगन्धित चीजें रक्खे और उसकी जीभकी जगह षट्

कस्मैसाप्रदातव्या बहूनांनयुधिष्ठिर ॥ साचविक्रयमापन्नादहेदासप्तमंकुलम् ॥ ८३ ॥ तिलाःश्वेतास्तथाकृष्णास्तिलाःप्रोक्ताश्चवर्णतः ॥ तिलानाञ्चप्रमाणानि धेनोर्वत्सस्यकारयेत् ॥ ८४ ॥ दातव्यावत्सकेनाथ बहूनांकामिनांनतु ॥ यस्मिन्देशेचयन्मानं तिलानाञ्चविचारतः ॥ ८५ ॥ तेनमानेनसाकार्य्या अक्षयंफलमिच्छता ॥ अर्चनीयाप्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतैर्विभो ॥ ८६ ॥ नासायांसर्वगन्धाश्च जिह्वायांषड्रसाधृताः ॥ मुक्ताफलानिवादन्तजङ्घापुच्छेषुयोजयेत् ॥ ८७ ॥ कुक्षौकार्पासकन्देयं नाभ्यांपद्मंसकाञ्चनम् ॥ ओष्ठेमधुघृतंदद्यात्कुर्य्यात्सर्पिषश्चरोमके ॥ ८८ ॥ कम्बलेकम्बलंदद्याल्ललाटेताम्रभाजनम् ॥ स्कन्धेतुशकलादेया लोहदण्डश्चसङ्कटे ॥ ८९ ॥ गुडंचैवगुदेदद्याच्छ्रोण्यांमधुघृते तथा ॥ यवसेपायसंदद्याद् घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥ ९० ॥ स्वर्णशृङ्गीरौप्यखुरी मुक्तालाङ्गूलभूषणा ॥ वस्त्रंसदन्नंदातव्यं कांस्यपात्रसुदोहना ॥ ९१ ॥ यत्तुबालकृतंपापं यद्वाकृतमजानता ॥ वाचाकृतंकर्म्मकृतं मनसायच्चचिन्तितम् ॥ ९२ ॥

रसों को धरे दांत, फीली और पूंछ में मोती लगावे ॥ ८७ ॥ कोखियों में कपास और तोंदी में सोने के सहित कमल को देवे ओंठों में घी और शहद देवे रोवों मे घी लगावे ॥ ८८ ॥ गऊके गलेकी खालकी जगह कम्बल देवे मस्तक में तांबे के पत्रको लगावे कन्धे में उसी के टुकड़े व रीर में लोहे के दण्डको लगावे ॥ ८९ ॥ गुदामें गुड और पीछेवाले पुट्ठों मे घी और शहद देवे घास की जगह खीर, घी और शहद के सहित देवे ॥ ९० ॥ सोने से मढ़े सींगोंवाली व रूपेसे मढ़े खुरोंवाली व मोतियों से गुँधी पूंछवाली गऊ को देवे उसके साथ कपड़े, अन्न और कांसेकी दोहनी को देवे ॥ ९१ ॥ तो लडकपन में कियाहुआ व बेसमझ से कियागया व

वाणी, कर्म और मन से किया गया पाप ॥ ९२ ॥ व जलमें थूकने में व मूसर के नांघने में व वृषली से मैथुन में व गुरुस्त्री के भोग में ॥ ९३ ॥ व कन्या के साथ भोग करनेमें व सोनेकी चोरी में व दारू के पीने में जो पाप होता है उसको तिलधेनु पवित्र करदेती है ॥ ९४ ॥ जो दिन रातके उपाससे मेरे कहनेके अनुसार विधिपूर्वक गऊ दीजावे तो यमराज के पुरमें जो वैतरणी नदी कहीजाती है ॥ ९५ ॥ व बालूकी जगह जहां पापी पचताहै व अवीचिनरक जहां जोरिहीं दो पहाड़ हैं ॥ ९६ ॥ व जहां लोहे के मुँहवाले कौवा हैं व जहां डरावनी जगह है व जहां असिपत्रवन है व जहां ताती बालूहै ॥ ९७ ॥ इन सब स्थानों को सुख से नांघकर धर्म-

जलमात्रेष्ठीवनेच मुशलेवाविलङ्घिते ॥ वृषलीगमनेचैव गुरुदारनिषेवणे ॥ ९३ ॥ कन्यायांगमनेचैव सुवर्णस्तेयएव च ॥ सुरापानञ्चयच्चापि तिलधेनुःपुनातिहि ॥ ९४ ॥ अहोरात्रोपवासेन विधिवत्सामयोदिता ॥ यासौयमपुरेचैव नदी वैतरणीस्मृता ॥ ९५ ॥ बालुकायास्स्थलेचैव पच्यतेयत्रदुष्कृती ॥ अवीचिनरकोपेतौ यौवैयुगलपर्वतौ ॥ ९६ ॥ यत्र लोहमुखाःकाका यत्रस्थानंभयानकम् ॥ असिपत्रवनंयत्र यत्रतप्तंचवालुकम् ॥ ९७ ॥ तत्सुखेनव्यतिक्रम्य धर्म्मराजाश्रमंव्रजेत् ॥ धर्म्मराजस्तुतंदृष्ट्वा सूनृतंवाक्यमब्रवीत् ॥ ९८ ॥ वितानंविततंयोग्यं मणिरत्नविभूषितम् ॥ अत्राग च्छनृपश्रेष्ठ गच्छस्वपरमाङ्गतिम् ॥ ९९ ॥ माचपापरतेदानं नतद्दानंपरंहितम् ॥ माविकालेविरूपेच नव्यङ्गेचतथैवच ॥ १०० ॥ अवेदविदुषेचैव ब्राह्मणेमदविक्लवे ॥ मित्रघ्नेचकृतघ्नेच व्रतहीनेतथैवच ॥ १ ॥ वेदान्तगायदातव्या तस्यतत्त्वं विजानते ॥ वेदान्तगेतुसादेया श्रोत्रियेऽभूतबालका ॥ २ ॥ सर्वाङ्गरुचिरेदेया पवित्रेचप्रियंवदे ॥ पौर्णमास्याममावा

राज के स्थान को जाताहै धर्मराजभी उसको देख मीठी व सच्ची बात कहते हैं ॥ ९८ ॥ कि मणि व रत्नोंसे सजाहुआ बड़ा योग्य सामियाना खडाहै हे नृपश्रेष्ठ ! आप यहां आवें और फिर परमगति को जावो ॥ ९९ ॥ पापी को दान मत देवे क्योंकि वह दान अपना हितू नहीं होताहै और बेसमयमें कुरूप व बिगड़ी देहवाले को मत देवे ॥ १०० ॥ जो ब्राह्मण नशा खाता है और वेद नहीं पढ़ाहै मित्रों का द्रोही व कृतघ्न व व्रतहीन है ऐसेको दान न देवे ॥ १ ॥ वेदान्त के पढ़नेवाले को व उसके तत्त्वके जाननेवाले को गऊ देना चाहिये वेदान्तके पढ़नेवाले व वेदपाठी ब्राह्मण को बेबछड़ाकी नई गऊ देना चाहिये ॥ २ ॥ सब अङ्गोंसे सुन्दर व पवित्र

व प्यारी बातोंके कहनेवाले को गऊ देना चाहिये पूर्णमासी, अमावस, कार्त्तिकी ॥ ३ ॥ वैशाखी, अगहन, चन्द्र व सूर्यका ग्रहण, उत्तरायण व दक्षिणायनका दिन विषुव (जिस समय में दिन और रात बराबर होतेहैं) व्यतीपात, ॥ ४ ॥ षडशीतिमुख नामकी संक्रान्ति और गजच्छाया ये सब दानके समय हैं हे अनघ ! यह मैंने तुम से तिलधेनुके कल्पको कहाहै ॥ ५ ॥ इस दान के करनेवाले सूर्यलोकको भेद कर विष्णुलोकको जाते हैं हे नृप ! चक्रतीर्थ के इस सम्पूर्ण फल को मैंने आपसे कहा ॥ ६॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानके फलको पाताहै ॥ १०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेचक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

स्यां कार्त्तिक्यांचापिभारत ॥ ३ ॥ वैशाख्यांमार्गशीर्षेच ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ अयनेविषुवेचैव व्यतीपातेचसर्वथा ॥ ४ ॥ षडशीतिमुखेचैव गजच्छायासुसर्वदा ॥ एषतेकथितःकल्पस्तिलधेनोर्मयानघ ॥ ५ ॥ भित्त्वाचभास्करंलोकं हरिलोकंव्रजन्तिते ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं चक्रतीर्थफलन्नृप ॥ ६ ॥ श्रवणात्कीर्त्तनाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे चक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थंपरमशोभनम् ॥ चन्द्रादित्यंनृपश्रेष्ठ स्थापितंचण्डमुण्डयोः ॥ १ ॥ आसीत्पुरामहाभागौ चण्डमुण्डौतुदानवौ ॥ तपश्चेरतुस्तत्रनर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ ध्यायतोभास्करन्देवं तमोनाशंजगद्गुरुम् ॥ ताभ्याञ्चतोषितस्सोपि सहस्रांशुरुवाचह ॥ ३ ॥ साधुसाध्वितितौपार्थ नर्मदायास्तटेशुभे ॥ चण्डमुण्डौवरंब्रूतंविशिष्टंमनसेप्सितम् ॥ ४ ॥ चण्डमुण्डावूचतुः ॥ अजेयौचैवदेवेश सर्वेषांदेवतानृणाम् ॥ रोगैश्चैव

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर चण्ड मुण्ड के थापेहुये अतिउत्तम चन्द्रादित्य नाम के तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में बडे भाग्यवाले चण्ड और मुण्ड नामके दो दानव वहां नर्मदामें तपस्या करतेहुये ॥ २ ॥ अन्धकारके नाश करनेवाले व जगत् के गुरु जो सूर्य हैं तिनका ध्यान करतेहुये उन दोनों से प्रसन्न कियेगये सूर्य बोलते हुये ॥ ३ ॥ उत्तम नर्मदा के तटमें हे पार्थ ! सूर्यने कहा कि हे चण्ड, मुण्ड ! वाह वाह तुम दोनों अपने मनके प्यारे वरको मागो ॥ ४ ॥ तब चण्ड मुण्ड बोले कि हे देवेश ! सब देवता व मनुष्यों के जीतने लायक हम न होवें और हे दिनके करनेवाले ! रोगों से रहित

परित्यक्तौ सविकाशंदिवाकर ॥ ५ ॥ तत्तथेतिशुभंवाक्यंभास्करस्तावब्रवीवदत् ॥ ततश्चान्तर्दधेभानुर्दानवाभ्यांचभास्क
रम् ॥ ६ ॥ स्थापितंपरयाभक्त्या पूजयेद्योजितेन्द्रियः ॥गीर्वाणतामनुष्यस्य प्राप्तातत्रैववर्तते ॥ ७ ॥ वसतेभास्करे
लोके वैरिञ्चेदेवसन्निधौ ॥ घृतेनबोधयेद्दीपं षष्ठ्यांषष्ठ्यांनरेश्वर ॥ ८ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो मृतोयातिपुरंरवेः ॥ च
न्द्रादित्यमितिख्यातं तत्रतीर्थंनरोत्तम ॥ ९ ॥ विजयन्तेसदाकालं चन्द्रादित्यंव्रजन्तिये॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डे चन्द्रादित्येश्वरमहिमानुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र यमहासमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंपार्थ रेवायास्तटमाश्रितम् ॥ १ ॥ युधिष्ठि
रउवाच ॥ यमहासंकथंजातं पृथिव्यांमुनिपुङ्गव ॥ एतत्सर्वंसमाख्याहि ममकौतूहलंपरम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच॥
साधुसाधुमहाभाग पृष्टन्तेधर्म्मनन्दन ॥ स्नानार्थंनर्म्मदायान्तु आगतस्तेपितापुरा ॥ ३ ॥ रजकेनयथाधौतं निर्म्म

सदा सुखसे रहें ॥ ५ ॥ तब सूर्यने उन दोनोंसे अच्छे वाक्यको कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर सूर्य अन्तर्द्धान होगये फिर उन दोनों दानवों ने सूर्यका ॥ ६ ॥ स्थापन किया उनका जो कोई इन्द्रियों को जीतेहुये बडी भक्ति से पूजन करताहै वह मनुष्य वही देवभाव को प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥ और सूर्य व ब्रह्मलोक में देवताओं के समीप रहताहै व हे नरेश्वर ! जो प्रत्येक छठिमें घी से दीपक जलाताहै ॥ ८ ॥ वह सब पापों से छूटजाताहै और मरकर सूर्यके पुरको जाता है हे नरोत्तम ! चन्द्रादित्य नामका यह तीर्थ वहां प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ जो लोग चन्द्रादित्य को जाते हैं वे सदा विजयको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेच-
न्द्रादित्येश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर सब पापों के हरनेवाले व नर्मदा के तट में विद्यमान अत्युत्तम यमहास तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि हे मुनिपुङ्गव ! पृथिवी में यमहास कैसे हुआ सो सब आप कहो मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! हे धर्म-

नन्दन ! बहुत अच्छा आपने पूंछा आगे नर्मदा में स्नान करने को आपके पिताभी आयेथे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! धोबी का धोया हुआ कपडा जैसा निर्मल होजावे ऐसाही साफ नर्मदा के अत्युत्तम जलको देखतेहुये ॥ ४ ॥ यमराज ने हँसदिया था तब वहां एक उत्तम लिङ्ग उठता हुआ तदनन्तर हे राजेन्द्र ! वहां आकाशवाणी हुई ॥ ५ ॥ कि यह तीर्थ यमहास नाम से सदा प्रसिद्ध रहेगा यमराज वहां महादेवको स्थापन कर स्वर्गको जातेहुये ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! क्रोध और इन्द्रियों को जीतेहुये यमहास तीर्थ में कुँवारके अँधियारे पाखकी चौदस को ॥ ७ ॥ बड़ी भक्ति से उपास कर सब पापों से छूटजाता है रात में जागरण कर घीसे महादेव का दिया ज-

लंवसनंभवेत् ॥ तथैवपश्यताराजन् रेवाजलमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ हास्यंकृतंयमेनाथ उत्थितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ततस्तदाहि राजेन्द्र वागुवाचाशरीरिणी ॥ ५ ॥ यमहासमिदंतीर्थं ख्यातिंयास्यतिसर्वदा ॥ स्थापयित्वाशिवंतत्र यमःस्वर्गंजगाम ह ॥ ६ ॥ यमहासेतुराजेन्द्र जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ विशेषादाश्विनेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ७ ॥ उपोष्यपर याभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपंदेवस्यबोधयेत् ॥ ८ ॥ घृतेनचैवराजेन्द्र शृणुतस्यैवयत्फल म् ॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तु अगम्यागमनोद्भवैः ॥ ९ ॥ अभक्ष्यभक्षणैःपापैः पापैर्वापेयसम्भवैः ॥ अवाह्यवाहनेयच्च अ द्रोहद्रोहणेतथा ॥ १० ॥ स्नानमात्रेणतच्चैव नश्येत्पापमनेकधा ॥ यमलोकन्नपश्येच्च नत्यजेत्पाण्डुनन्दन ॥ ११ ॥ बहूनांपरमंगुप्तं तीर्थंभूम्यांनृपात्मज ॥ तदक्षयफलंतेषां यमहासेप्रदायिनाम् ॥ १२ ॥ अमावास्यांजितक्रोधो यस्तु पूजयतेद्विजान् ॥ भूमिदानेनयोभक्त्या तिलदानेनभारत ॥ १३ ॥ कृष्णाजिनप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ वसुभे

लावे तो हे राजेन्द्र ! उसके फलको सुनो कि जिस स्त्रीका संग्रह नही उचित है उसके संग्रह से पैदाहुये सब पापो से छूटजाता है ॥ ८ । ९ ॥ नहीं खानेलायक चीज के खाने से व नहीं पीने लायक के पीनेसे व नहीं जोतने लायक के जोतने से व नहीं वैर करने लायक के साथमें वैर करने से जो अनेकप्रकार का पाप होताहै वह स्नानमात्र से नष्ट होजाताहै और हे पाण्डुनन्दन ! नहानेवाला यमलोकको नहीं देखता है चाहे पापको न भी छोड़े ॥ १० । ११ ॥ हे नृपात्मज ! यह तीर्थ पृथिवी में बहुतोंको छिपाहुआ है यमहास में दान करनेवालों को अक्षय फल होता है ॥ १२ ॥ हे भारत ! अमावस को क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य भक्तिसे पृथिवी, तिल,

मृगचर्म और तिलधेनु के दान से ब्राह्मणों का पूजन करता है अथवा धनिष्ठा नक्षत्र व वृद्धियोगमें जो लोग भक्तिसे देवेंगे ॥ १४ ॥ व भात, जल, बैल, बड़े बलवाला घोडा, कन्या, कपड़ा, बोकरी, गऊ, भैस और घोडी को हे नृपश्रेष्ठ ! देते हैं वे यम के पास नहीं जाते हैं और हे युधिष्ठिर ! उनसे जन्म२में यमराजभी प्रसन्न रहते हैं॥ १५ । १६ ॥ और हे भारत, नृप ! यमकी सवारी भैंसा, भैंस और स्त्री के दानसे यमराज निरन्तर प्रसन्न रहते हैं ॥ १७ ॥ वह पापोंसे भी युक्त हो परन्तु यमलोकमें नहीं जाताहै हे पार्थ ! इसी कारणसे भैसका दान बहुत उत्तमहै ॥ १८ ॥ ऊनके दो कपड़े बनावे और उनको लोहेमें लपेटकर यमराजके वास्ते ब्राह्मणको देवे व कहे कि हे

वृद्धियोगेच येप्रदास्यन्तिभक्तितः ॥ १४ ॥ ओदनंवारिधूर्वाहं हयञ्चापिमहाबलम् ॥ कन्यांवस्त्रमजांगांवै महिषीम थवाश्विनीम् ॥ १५ ॥ येयच्छन्तिनृपश्रेष्ठ नोपसर्पन्तितेयमम् ॥ यमोपिभवतिप्रीतो जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १६ ॥ यम स्यवाहनंस्त्रींच महिषींतत्रभारत॥तस्यदानेनसततं यमःप्रीतोभवेन्नृप॥१७॥ नसयातियमेलोके यदिपापैस्समाश्रितः॥ एतस्मात्कारणात्पार्थ महिषीदानमुत्तमम् ॥ १८ ॥ और्णवस्त्रद्वयंकार्य्यं लोहवर्णचवेष्टितम् ॥ दापयेद्धर्म्मराजाय प्री यतांमेद्विजोत्तम ॥ १९ ॥ अनेनैवतुदानेन यमःप्रीतोऽस्तुमेसदा ॥ इत्युच्चार्य्यद्विजस्याग्रे यमलोकंभयावहम् ॥ २० ॥ असिपत्रवनेघोरे यमवल्लीसुदारुणा ॥ रौद्रावैतरणीचेति कुम्भीपाकस्सुदारुणः ॥ २१ ॥ कालसूत्रंमहाभीमं तथायमल पर्वतौ ॥ क्रकचन्तैलयन्त्रञ्च स्थानेगृध्रास्सुदारुणाः॥ २२ ॥ अनिश्वासोमहारौद्रो भीषणोरौरवस्तथा ॥ एतेघोराश्च नरकाः श्रूयन्तेद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ तत्प्रसादेनतेसौम्यास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ दानस्यास्यप्रभावेण यमहासप्रभाव

द्विजोत्तम ! मुझपर प्रसन्नहोवो ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणके आगे यहभी कहे कि इस दानसे मुझपर यमराज सदा प्रसन्न रहें क्योंकि यमलोक बड़ा डरावनाहै ॥ २० ॥ उसमें बड़ा घोर असिपत्रवन व बडी दारुण यमवल्ली व बडी भयानक वैतरणी नदी व अतिदारुण कुम्भीपाक ॥ २१ ॥ व बड़ा भयानक कालसूत्र व जोरिहाँ दो पहाड़ व आरा और कोल्हू व उसी स्थान मे बडे दारुण गीध ॥ २२ ॥ व महारौद्र अनिश्वास व बड़ा डरावना रौरव है हे द्विजसत्तम ! ये जो घोर नरक सुनेजाते हैं ॥ २३ ॥

वे सब यमराज के प्रसाद व इस तीर्थके प्रभाव से सुख के देनेवाले होजाते है इस दानके प्रभावसे व यमहास तीर्थके प्रभाव से ॥ २४ ॥ यमलोक को नहीं जाता है और नरक को नहीं देखताहै ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेयमहासमाहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम कोटीश्वर तीर्थ को जावे हे कुरुनन्दन ! वहां एक करोड़ ऋषिलोग आयेथे ॥ १ ॥ वहां सम्पूर्ण वेद के पढ़नेवाले ब्राह्मणों से मुनिश्रेष्ठ व्यासजी मोक्षके वास्ते विचारकर ॥ २ ॥ श्रद्धा व भक्ति से युक्तहो तिल मिले गऊ के पञ्चामृत से पितरों के तर्पण को कर विधान

तः ॥ २४ ॥ यमलोकन्नवैयाति नरकंनैवपश्यति ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे यमहासमहिमानुवर्णनोनामाष्टाधिकशततमोध्यायः ॥ १०८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र कोटीश्वरमनुत्तमम् ॥ ऋषिकोटिस्समायाता तत्रवैकुरुनन्दन ॥ १ ॥ कृष्णद्वैपायनस्तत्र मोक्षार्थंमुनिपुङ्गवः ॥ मन्त्रयित्वाद्विजैस्सर्वैर्वेदमण्डलपारगैः ॥ २ ॥ पञ्चामृतेनगव्येन तिलमिश्रेण तत्परः ॥ पितृणांतर्पणंकृत्वा पिण्डदानंयथाविधि ॥ ३ ॥ श्रावणस्यतुमासस्य पूर्णिमायांविशेषतः ॥ प्राप्यतेचाक्षयातृप्तिर्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ४ ॥ पितृणांपरमंगुह्यं रेवाजलमुपाश्रितम् ॥ मोक्षदंसर्वभूतानां निर्मितंमुनिपुङ्गवैः ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥ दुर्लभंमनुजैःपार्थ अन्तरिक्षेव्यवस्थितम् ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्माद्वैव्यासतीर्थन्तु अन्तरिक्षेव्यवस्थितम् ॥ एतदाचक्ष्वसंक्षेपान्नचग्रन्थस्यविस्तरः ॥ ७ ॥ मार्कण्डे

से पिण्डदान करतेहुये ॥ ३ ॥ सावनकी पूर्णमासी को विशेषसे इस कामको करे क्योंकि इस से पितरों को प्रलय तक अक्षय तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ पितरों को बड़ा गुप्त नर्मदा का जल है सब प्राणियों के मोक्षका देनेवाला नर्मदाका जल मुनियों से बनायागया है ॥ ५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर आकाश में विद्यमान व मनुष्यों को दुर्लभ व अत्युत्तम व्यासतीर्थ को जावे ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि व्यासका तीर्थ आकाशमें क्यों

रिथत हुआ संक्षेप से इसको आप कहें जिस मे ग्रन्थका विस्तार न होवे ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो ! वाह २ आप बडे धर्मात्मा व गुरु के प्यारे अपने धर्मके प्रेमी व तीर्थयात्रा के आदर करनेवालेहो हे पार्थ ! ॥ ८ ॥ हे नरेश्वर ! सब प्राणियोंको व्यास का तीर्थ बडा दुर्लभहै हम बुढ़ापे व विकलतासे हे नराधिप ! दबेहुये ॥ ६ ॥ व बेहोश होरहे हैं तब भी कहते हैं हे पाण्डुनन्दन ! गुप्त मे अतिगुप्त इस तीर्थ को हमने किसी से नहीं कहा है ॥ १० ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्रकी आज्ञा से वहा काल नहीं रहसक्ता है जिस से यह नर्मदा का चरित्र आकाश में होरहा है ॥ ११ ॥ ब्रह्माभी नर्मदा के गुणों को नहीं कहसक्ते हैं और व्यासतीर्थ को

यउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो धर्म्मवान्गुरुवत्सलः ॥ स्वधर्म्मनिरतःपार्थ तीर्थयात्राकृतादरः ॥ ८ ॥ दुर्लभंसर्वजन्तूनां व्यासतीर्थंनरेश्वर ॥ धर्षितोवृद्धभावेन वैकल्येननराधिप ॥ ६ ॥ गतचेतास्तुसञ्जातस्तथाभोःपाण्डुनन्दन ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातंकस्यचिन्मया ॥ १० ॥ कालस्तत्रैवराजेन्द्र नवसेद्वासवाज्ञया ॥ अन्तरिक्षेचसञ्जातं रेवायाश्चेष्टितंयतः ॥ ११ ॥ विरञ्चिर्नैवशक्नोति रेवायागुणकीर्तनम् ॥ व्यासतीर्थंविशेषेण श्रुतमात्रंवदाम्यहम् ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षःप्रत्ययोयत्र दृश्यतेहिकलौयुगे ॥ विहङ्गोगच्छतेनैव भित्त्वाशूलंसुदारुणम् ॥ १३ ॥ तस्योत्पत्तिंसमासेनकथयामिनृपात्मज ॥ आसीत्पूर्वंमहाराज ऋषिश्चैवपराशरः ॥ १४ ॥ तेनचोग्रंतपस्तप्तं गङ्गाम्भसितुभारत ॥ प्राणायामेनचातिष्ठत्प्रविष्टोजाह्नवीजले ॥ १५ ॥ पूर्णेचद्वादशेवर्षे निष्क्रान्तोजलमध्यतः ॥ भिक्षार्थंचागतोग्रामं नावितत्रैववतिष्ठती ॥ १६ ॥ तत्रदृष्टापरोत्सृष्टा बालातेनमनोरमा ॥ ताञ्चदृष्ट्वासकामार्त उवाचमधुराक्षरम् ॥ १७ ॥ मांरमस्वाद्यत्वं

तो विशेषही नहीं कहसक्ते हैं मैं सुनेमात्र को कहताहूं ॥ १२ ॥ जहा कलियुग में भी प्रत्यक्ष विश्वास देख पड़ता है जिस तीर्थ के अतिदारुण त्रिशूल को नाघकर पक्षी भी नहीं उड़सक्ता है ॥ १३ ॥ हे नृपात्मज ! उस तीर्थकी उत्पत्तिको हम साधारण रीति से कहते हैं हे महाराज ! आगे पराशर नाम के ऋषि होतेहुये ॥ १४ ॥ हे भारत ! उन्होंने गङ्गाके जल में उग्र तपस्या को किया गङ्गा के जलमें प्राणायाम करतेहुये स्थितरहे ॥ १५ ॥ बारहवीं वर्षके पूरे होनेपर पानी के भीतर से निकले और भिक्षाके वास्ते गांवको गये वहां नौकापर बैठी ॥ १६ ॥ व किसी औरसे छोड़ी हुई मनकी रमानेवाली एक स्त्री उन पराशरको देखपड़ी उसको देख कामसे विकल

वे पराशर उससे मीठे अक्षरों से बोले ॥ १७ ॥ हे मृगलोचने ! तुम कौनहो मुझ कामी से आज रमो हे नावारूढे ! नदी के किनारे पर मेरे चित्त को मथरही हो ॥ १८ ॥ उन महात्मासे ऐसे कहीगई वह स्त्री ऋषिको नमस्कारकर बोली कि हे विप्र ! मैं नावकी रक्षा करती हूं और अपने स्वामीको नहीं जानती हूं ॥ १९ ॥ और मेरी यह उमर है बाकी रहे हाल को आप जानो उस स्त्रीसे ऐसे कहेगये वे पराशरभी थोड़ी देर ध्यानकर बोलते हुये ॥ २० ॥ कि हे भद्रे ! हम ज्ञानके बलसे तुम्हारी उत्पत्ति को जानते हैं आप केवटकी कन्या नहीं हो बल्कि सुन्दररूपवाली तुम राजाकी कन्याहो ॥ २१ ॥ तब कन्या बोली कि हे ब्रह्मन् ! हमारा पिता कौनहै उसको आप

कासि कामुकंमृगलोचने ॥ नावारूढेनदीतीरे ममचित्तप्रमाथिनी ॥ १८ ॥ एवमुक्तातुसातेन प्रणम्यऋषिसत्तमम् ॥ नावंरक्षाम्यहंविप्र जानामिस्वामिनन्नतु ॥ १९ ॥ ममेदञ्चवयोब्रह्मञ्च्छेषंत्वंज्ञातुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तयासोपि क्षणंध्यात्वाब्रवीदिदम् ॥ २० ॥ अहंज्ञानबलाद्भद्रे जानामितवसम्भवम् ॥ कैवर्तपुत्रिकानत्वं राजपुत्रीहिसुन्दरी ॥ २१ ॥ कन्योवाच ॥ कःपिताकथ्यतांब्रह्मन्कस्याहमुदरोद्भवा ॥ कस्मिन्वंशेप्रजाताहं कैवर्ततनयाकथम् ॥ २२ ॥ पराशरउवाच ॥ कथयामिचतेतातं यंत्वंमांपरिपृच्छसि ॥ वसुनामाचराजाभूत्सोमवंशेप्रतापवान् ॥ २३ ॥ जम्बूद्वीपाधिपोभद्रे शत्रुसंत्रासनस्तथा ॥ शतानिसप्तभार्य्याणां पुत्राणान्तुदशैवहि ॥ २४ ॥ धर्म्मेणपालितालोकाः शिवपूजारतस्सदा ॥ म्लेच्छास्तस्यविरोधेन शाकद्वीपनिवासिनः ॥ २५ ॥ तेषाञ्चसाधनार्थायगतोलङ्घ्यमहोदधिम् ॥ संयुक्तःपुत्रभृत्यैश्च पौरुषेमहतिस्थितः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तैस्समारब्धश्चार्वङ्गिवसुनासह ॥ जिताम्लेच्छास्समस्ताश्च वसुनाह्यवनीभृता ॥ २७ ॥

कहैं और हम किसके पेटसे पैदा हुई हैं व किस वंश में हम पैदाहुईहैं और केवटकी कन्या हम कैसे हुई हैं ॥ २२ ॥ तब पराशर बोले कि हम तुम्हारे पिताको कहते हैं जिसको तुम हम से पूछती हो सोमवंश में बडे प्रतापवाले वसुनाम के राजा होते हुये ॥ २३ ॥ हे भद्रे ! वे शत्रुओं को डरावनेवाले जम्बूद्वीपके मालिक हुये उनके सातसौ रानी व दश लडके होते हुये ॥ २४ ॥ धर्म से लोकों की पालनाकी और शिवकी पूजा सदा करते थे तब तक शाकद्वीप के रहनेवाले म्लेच्छ उनके विरोधी होतेहुये ॥ २५ ॥ उनके जीतने के लिये समुद्र नाघकर वहां गये लड़के व सिपाहियों के सहित बड़े पराक्रम में स्थित होते हुये ॥ २६ ॥ हे चार्वङ्गि ! उन म्लेच्छों

व तुम्हारे पिता वसु से लड़ाई होतीहुई राजा वसुने सब म्लेच्छोंको जीत लिया ॥ २७ ॥ राजाने सेवक व सेना और सवारियों के समेत उन सबको कर देनेवाला कर लिया राजाकी बड़ीरानी मृगों केसे नेत्रोंवाली तुम्हारी माता ॥ २८ ॥ राजाके परदेश मे होनेपर रजस्वला होतीहुई स्त्रियों को तो सदा कामदेव अधिक रहताहै ॥ २९ ॥ परन्तु ऋतुसमय में काम के बाणोंसे बहुत पीड़ित होती है काम से जलती हुई वह उत्तम नेत्रोंवाली रानी विचार करती हुई ॥ ३० ॥ कि आज हम अपने राजा के समीप दूत को भेजें ऐसे विचार कर बड़े जल्द दूतको बुलाया और कहा कि तुम राजा के तीर जाओ ॥ ३१ ॥ तब दूत ने कहा कि हे देवि ! शत्रुओं के नाश करने

करदास्तेकृतास्तेन सभृत्यबलवाहनाः ॥ प्रधानातस्यमहिषी तवमातामृगेक्षणा ॥ २८ ॥ प्रवासस्थेचभूपालेसं जाताचरजस्वला ॥ नारीणान्तुसदाकालेमन्मथोह्यधिकोभवेत् ॥ २९ ॥ विशेषेणऋतौकाले भिद्यतेकामसायकैः ॥ मन्म थेनतुसन्तप्ताचिन्तयत्साशुभेक्षणा ॥ ३० ॥ दूतंसम्प्रेषयाम्यद्य वसुराजसमीपतः ॥ व्याहृतस्सत्वरोदूतोगच्छत्वंनृपस न्निधौ ॥ ३१ ॥ दूतउवाच ॥ परराज्येवसुर्देवि गतोराजाद्विडन्तकृत् ॥ तत्रगन्तुन्नशक्येत जलयन्त्रैर्विनाशुभे ॥ ३२ ॥ जल यानानिसर्वाणि नेयानिचपरेतटे ॥ तस्यवाक्येनसानारी विषण्णामदपीडिता ॥ ३३ ॥ राज्ञींदृष्ट्वासखीब्रूते कस्मा त्त्वंपरिखिद्यसे ॥ लेखोयंप्रेष्यतान्देवि शुकहस्तेयथातथा ॥ ३४ ॥ समुद्रंलङ्घयित्वातु शकुन्तोयातिसुन्दरि ॥ व्या हृतोलेखकस्तत्रालिखलेखंममाज्ञया ॥ ३५ ॥ त्वांविनापट्टराज्ञीसा वसुराजनजीवति ॥ ऋतुकालश्चसम्प्राप्तस्समस्तं चावधार्य्यताम् ॥ ३६ ॥ लिखितोभूर्जपत्रेच वृत्तस्सलेखकेनतु ॥ शुकःपञ्जरमध्यस्थ आनीतस्तत्रसन्निधौ ॥ ३७ ॥ उ

वाले राजावसु औरकी राज्यमें गये हैं इस से हे शुभे ! विना पानीवाली सवारी के वहां नहीं जाया जासक्ताहै ॥ ३२ ॥ इससे जलकी सब सवारी किनारेपर लगाई जावें तब उसके वचन से वह रानी मदसे पीड़ित होरही उदास होतीहुई ॥ ३३ ॥ तब रानी को देख सखी कहती है कि तुम क्यों उदास होती हो हे देवि ! यह लेख अपने तोते के हाथ भेजो ॥ ३४ ॥ क्योंकि हे सुन्दरि ! पक्षी समुद्र को नांघ जाता है तब रानी ने लेखक को बुलवाया और कहा कि हमारी आज्ञासे हालको लिखो ॥ ३५ ॥ कि हे वसुराजन् ! तुम्हारे विना वह तुम्हारी पटरानी नहीं जीसक्ती है उसके ऋतुका समय प्राप्तहुआ है आप सब जानलेवें ॥ ३६ ॥ लेखकने भोजपत्र पर वह सब

हाल लिखकर रानीको देदिया तब पिंजरामें बैठाहुआ तोता वहां रानी के समीप लाया गया ॥ ३७ ॥ तब रानीने तोते से कहा कि हे शुक! हमारे लेखको लेकर तुम जावो तब वह पक्षी बहुत जल्द वसुराजा के समीप गया ॥ ३८ ॥ सत्यभामा रानी के भेजेहुये पत्रको तोते ने राजा के तीर फेंकदिया तब उसके वास्ते राजाने विचार किया फिर अपने वीर्य्य को लेकर ॥ ३९ ॥ पोढ़ी देनियां बनाकर नामी राजाने तोते को देदी और कहा कि तुम रानी के पास जावो ॥ ४० ॥ तब वह तोता वसु राजाको प्रणामकर और वीर्य को लेकर उड़ा अपनी इच्छासे जाताहुआ सुआ समुद्र के ऊपर प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ मांसके सहित तोते को जान उसके पीछे बाज दौडा

वाचराज्ञीतंतत्र गृह्यलेखंशुकव्रज ॥ गतःपक्षीततःशीघ्रं वसुराजसमीपतः ॥ ३८ ॥ क्षिप्तोलेखःशुकेनैव सत्यभामाविसर्जितः ॥ लेखार्थंचिन्तयामास वीर्य्यंगृह्यनरेश्वरः ॥३९॥ अमोघपुटिकांकृत्वा प्रतिलोकेनविश्रुतः ॥ शुकस्यचार्पयामास गच्छराज्ञीसमीपतः ॥ ४० ॥ वसुराजंप्रणम्याथ वीजंगृह्यपपातह ॥ समुद्रोपरिसम्प्राप्तः शुकोयातियथेच्छया॥ ४१ ॥ सांमिषञ्चशुकंज्ञात्वा श्येनस्तत्रापिधावितः ॥ हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकःश्येनेनभारत ॥ ४२ ॥ मूर्च्छापन्नस्यतद्वीर्य्यं पतितंजलमध्यतः ॥ मत्स्येनगिलितंतत्र तद्वीर्य्यंपार्थिवस्यच ॥ ४३ ॥ दाशैर्मत्स्योगृहीतश्च आनीतस्स्वगृहंप्रति ॥ यावत्तंपाटयामासुर्यमलंददृशेतदा ॥ ४४ ॥ शशिमण्डलसङ्काशं सूर्य्यतेजस्समप्रभम् ॥ दृष्ट्वातेधर्षितास्सर्वे कैवर्ताजाह्नवीतटे ॥ ४५ ॥ हर्षितास्तेगतास्सर्वे प्रधानस्यचमन्दिरम् ॥ पुत्रंराज्ञेप्रदायैव पुत्रींचप्रत्यपालयत् ॥ ४६ ॥ तत्त्वंदेविवरारोहे कैवर्तकन्यकानहि ॥ ततस्सा।चिन्तयामास पराशरवचस्तदा ॥ ४७ ॥ एवमुक्तातुसातेन दत्त्वात्मानं

और हे भारत! बाजने चोंचसे तोतेको मारा ॥४२॥ मारने से मूर्च्छाको प्राप्तहोगये तोतेके मुहँसे छूटगया वीर्य पानी में गिरपडा तब वहा उस राजा के वीर्यको मछली ने खालिया ॥ ४३ ॥ केवट लोग उस मछलीको पकड अपने घरमें लाये जब उसको फाडा तो उसके पेटमें एक जोडा देखपड़ा ॥ ४४ ॥ चन्द्रमाके मण्डल के समान निर्मल व सूर्य के समान तेजवाले लडके को देख सब धीवरलोग गङ्गाके किनारे चकचौंध गये ॥ ४५ ॥ फिर प्रसन्न होकर वे सब राजा के महल को गये पुत्र को राजाको देकर और कन्याको आप पालते हुये ॥ ४६ ॥ इससे हे वरारोहे! हे देवि! तुम केवटकी कन्या नहीं हो तब वह कन्या पराशरके वचनको विचारती हुई ॥४७॥

पराशर से ऐसे कहीगई वह सीधे स्वभाववाली कन्या हे नरेश्वर ! अपने, को पराशर को देकर बोली कि हे ब्रह्मन् ! मेरे शरीरसे मछली का गन्ध जातारहे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपने योगके बलसे उस कन्या को दिव्यगन्धसे बसादिया आगको जलाकर ॥ ४९ ॥ व उसकी प्रदक्षिणाकर कन्याको आगसे निकाललिया और आग के जलतेहुयेही उस स्त्रीके कामके स्थानोंको पराशर छूतेहुये ॥ ५० ॥ हे नृपनन्दन ! तब वह कन्या पराशरको कामसे अपने चाहनेवाले जानकर डरगई और उनसे एकबारगी कहा। कि एकतो दिनहै और दूसरे और लोगोंकी समीपताभी है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर थोड़ीदेर पराशरने ध्यान किया तब हे तात ! दिशा और आकाशको ढांकती

नरेश्वर ॥ उवाचसाध्वीभोब्रह्मन्मत्स्यगन्धोनिवर्त्यताम् ॥ ४८ ॥ ततस्तेनतुसाबाला दिव्यगन्धाभिवासिता ॥ कृता योगबलेनैव ज्वालयित्वाविभावसुम् ॥ ४९ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंवह्नेरुद्धृतातेनसातदा ॥ ज्वलमानस्यमध्येतु कामस्थानानिसोऽस्पृशत् ॥ ५० ॥ ज्ञात्वाकामोत्सुकंविप्रं भीतासानृपनन्दन ॥ उवाचसहसाबाला दिवाचलोकसन्निधौ ॥ ५१ ॥ ततस्तेनक्षणंध्याता पूरयन्तीदिगम्बरम् ॥ आगतातामसीतात ययाव्याप्तंसमन्ततः ॥ ५२ ॥ ततस्सविस्मयन्तेन रहोबालामृगेक्षणा ॥ कामेनैवहितप्तेन स्त्रीसौख्यंक्रीडतातदा ॥ ५३ ॥ ततस्तेनमुहूर्त्तेनापत्यभारेणपीडिता ॥ बालकं तत्रजटिलं सुभगंदण्डधारकम् ॥ ५४ ॥ कमण्डलुधरंशान्तं मेखलाकटिभूषणम् ॥ धृतोपवीतकंस्कन्धे विष्णुमायाविवर्जितम् ॥ ५५ ॥ माताहिशङ्कितातत्र दृष्ट्वापुत्रस्यचापलम् ॥ वेपमानाततोबाला गतासाशरणंमुनेः ॥ ५६ ॥ रक्षरक्षमुनिश्रेष्ठ पराशरमहामुने ॥ जातमत्यद्भुतंविप्रं कौपीनाम्बरमेखलम् ॥ ५७ ॥ दण्डहस्तंजटायुक्तमुत्तरीय

हुई अंधेरी आगई जिससे सब व्याप्त होगया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर पराशर ने एकान्तमें कामसे जलरहे आप उस हिरन कीसी नेत्रवाली स्त्री का भोग किया ॥ ५३ ॥ तब वह उसी समय में पुत्र के भारसे पीडित होतीहुई फिर वहां जटावाले व सुन्दररूपवाले व दण्डके धारण करनेवाले व कमण्डलुके धरनेवाले व शान्त व मेखलाको करिहांव में पहने हुये व कन्धे में जनेऊ पहनेहुये व विष्णुकी मायासे रहित बालक को ॥ ५४ । ५५ ॥ व उसकी चपलताको देख माता बड़ी शङ्कितहुई और कांपती हुई वह स्त्री मुनिकी शरणको प्राप्तहुई ॥ ५६ ॥ और बोली कि हे मुनिश्रेष्ठ, महामुने, पराशर ! कौपीन व मेखला को पहने हुये व दण्डको हाथमें लिये व जटाओंसे युक्त

व अँचला से भूषित उत्पन्नहुये अतिअद्भुत इस ब्राह्मणकी रक्षाकरो २ तब पराशर बोले कि तुम डरो मत यह तुम्हारा पुत्र हुआ है तुम कन्याही बनी रहोगी ॥ ५७ । ५८ ॥ सत्यवती तुम्हारा नाम होगा और दूसरा गन्धयोजनाभी होगा और शन्तनु नाम का राजा तुम्हारा पति होगा ॥ ५९ ॥ तुम उसकी जेठीरानी चन्द्र-वंश का भूषण होवोगी इससे हे भद्रे ! अपने पहलेवाले रूप से युक्त तुम अपने आश्रमको जावो ॥ ६० ॥ तुम इस विकलताको मतप्राप्त होवो मैने सब देख लिया है मुझको ज्ञानका बलहै यह कहकर पराशर चलेगये वह स्त्री जलके बाहर आतीहुई ॥ ६१ ॥ नम्रता व बड़ी भक्तिसे अपने पुत्रको साष्टाङ्ग प्रणामकर फिर जातेहुये

विभूषितम् ॥ पराशरउवाच॥ माभैषीस्त्वंसुतोजातः कन्यैवत्वंभविष्यसि ॥ ५८ ॥ नाम्नासत्यवतीचेति द्वितीयागन्धयोजना ॥ शन्तनुर्नामराजावै सतेभर्ताभविष्यति ॥ ५९ ॥ प्रथमामहिषीतस्य सोमवंशविभूषणा ॥ गच्छत्वंस्वाश्रमंभद्रे पूर्वरूपेणसंस्थिता ॥ ६० ॥ मावैकल्यंकुरुष्वेदं दृष्टंज्ञानस्यमेबलम् ॥ इत्युक्त्वाप्रययौविप्रः साबालास्थलमाश्रिता ॥ ६१ ॥ नत्वापुत्रंपराभक्त्या साष्टाङ्गंप्रणयेनच ॥ तम्प्रयान्तमथालोक्य सत्यवत्यब्रवीत्सुतम् ॥ ६२ ॥ कामोदेयस्त्वया भीष्टस्स्नेहोवैयदिमातरि ॥ किमप्युपादिशत्वंमां येनसिद्धिमवाप्नुयाम् ॥ ६३ ॥ व्यासउवाच ॥ ईश्वराराधनेयत्नं कुरुष्वत्वंसदाम्बिके ॥ ततस्सापुत्रवाक्येन विषणापाण्डुनन्दन ॥ ६४ ॥ योजनगन्धोवाच ॥ त्वद्वियोगादहंपुत्र पञ्चत्वंयामिनान्यथा ॥ नास्तिपुत्रसमःस्नेहो नास्तिभ्रातृसमंबलम् ॥ ६५ ॥ पुत्रउवाच ॥ माविषादंकुरुत्वंहि सत्यंवैपितृभाषितम् ॥ आपत्कालेत्वयाहंवैस्मर्तव्यःकार्यसिद्धये ॥ ६६ ॥ आपदस्तारयिष्यामि त्वम्यतांमातरात्मजे ॥ इत्युक्त्वातु

अपने पुत्रको देख सत्यवती पुत्र से बोली ॥ ६२ ॥ कि जो तुम्हारा अपनी माता में स्नेहहो तो मेरे मनका मनोरथ देनेयोग्य है कुछ मुझको बतावो जिससे मैं सिद्धि को पाऊ ॥ ६३ ॥ तब व्यासजी बोले कि हे अम्बिके ! ईश्वर के आराधन मे तुम हमेशा यत्नकरो हे पाण्डुनन्दन ! तब वह पुत्रके वचनसे बडी उदास होगई ॥ ६४ ॥ और फिर योजनगन्धा बोली कि हे पुत्र ! तुम्हारे वियोगसे मैं मरजाऊंगी यह झूंठ नहीं है क्योंकि पुत्र के बराबर किसी में स्नेह नहीं होता है और भाई के बराबर कोई बल नहीं है ॥ ६५ ॥ तब पुत्र बोला कि तुम विषाद को मतकरो पिताजी का कहना सब सत्य होवेगा और विपत्ति के समय में अपने कार्यकी सिद्धिके लिये

तुम मेरा स्मरण करना ॥ ६६ ॥ मैं विपत्ति से तुमको पार करदेऊंगा हे मातः ! मुझ अपने पुत्रपर क्षमा करना इतना कहकर व्यास चलेगये और वह कन्याभी अपने पिता के घरको चलीगई ॥ ६७ ॥ पराशर के पुत्र व्यासजी वन में बैठते हुये तब त्रेताकी समाप्ति और द्वापर की आदि मे हे नरेश्वर ! ॥ ६८ ॥ नारदने ब्रह्मा से कहा कि पराशर के पुत्र बडे प्रभाववाले व्यासऋषि पैदाहुये ॥ ६९ ॥ केवटकी कन्या से गङ्गाके किनारे पर उत्पन्न हुये हैं यह आप जानें तब नारदके कहने से देवता लोग आतेहुये ॥ ७० ॥ सूर्य, ब्रह्मा और इन्द्र ऋषियों के सहित आशीर्वाद को देकर वाह २ ऐसे कहतेहुये ॥ ७१ ॥ फिर बालकरूप जो व्यास हैं उनके ब्रह्मा ने गर्भा-

ययौव्यासः कन्यासापिपितुर्गृहम् ॥ ६७ ॥ पराशरसुतस्तत्र निषण्णोवनमध्यतः ॥ त्रेतायुगावसानेतु द्वापरादौनरेश्वर ॥ ६८ ॥ व्यासोविरञ्चयेजात आख्यातोनारदेनच ॥ ऋषिर्महानुभावस्तु पुत्रःपाराशरस्यच ॥ ६९ ॥ कैवर्तकन्यकाजातो जानीहिजाह्नवीतटे ॥ वाक्योक्त्यानारदस्यैव आगतास्सुरसत्तमाः ॥ ७० ॥ भानुःपितामहःशक्रऋषिसङ्घैस्समावृतः ॥ आशीर्वादंपृथग्दत्त्वा साधुसाध्वितिभाषितः ॥ ७१ ॥ पितामहेनबालोसौ गर्भाधानादिसंस्कृतः ॥ द्वैपायनोद्वीपजन्मा पाराशर्य्यःपराशरात् ॥ ७२ ॥ कृष्णगात्रात्कृष्णनामा हव्यादातुर्विशिष्यति ॥ विरिञ्चिनाभिषिक्तोसौ ऋषिसङ्घैःपुनःपुनः ॥ ७३ ॥ व्यासस्त्वंसर्वलोकानामित्युक्त्वाप्रययुःपुनः ॥ तीर्थयात्रासमारब्धा कृष्णद्वैपायनेनतु ॥ ७४ ॥ गङ्गावगाहितातेन केदारंपुष्करन्तथा ॥ गयाचनैमिषंतीर्थं कुरुक्षेत्रेसरस्वती ॥ ७५ ॥ उज्जयिन्यांमहाकालं सोमनाथंययौततः ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां स्नातोव्यासोमहामुनिः ॥ ७६ ॥ अटन्वैनर्म्मदांप्राप्तो

धान आदि संस्कार किये रेती में पैदा होने से द्वैपायन व पराशर से पैदा होने से पाराशर्य्य ॥ ७२ ॥ व काली देहवाले होने से कृष्ण नामवाले व्यास हुये और अग्निसे भी विशेष तेजवाले हुये ब्रह्मा और ऋषियों के समूहमे बार२इनका अभिषेक किया गया ॥ ७३ ॥ और तुम सब लोगोंके व्यास हो ऐसे कहकर सबलोग चले गये तब व्यासजी ने फिर तीर्थयात्राका प्रारम्भ किया ॥ ७४ ॥ व्यासने प्रथम गङ्गा स्नान किया फिर केदार, पुष्कर, गया, नैमिष, कुरुक्षेत्र मे सरस्वती ॥ ७५ ॥ और उज्जैन में महाकाल होकर फिर सोमनाथ को गये समुद्रपर्य्यन्त पृथिवी के तीर्थों में महामुनि व्यास नहाते हुये ॥ ७६ ॥ फिर घूमते हुये महादेव की देहसे पैदाहुई

नर्मदा नदी को प्राप्त होते हुये हे पार्थिव ! नर्मदा को देख आनन्द से अपने चित्त को विश्राम देकर ॥ ७७ ॥ व नर्मदाके तटपर बैठकर बड़े तपको करते हुये ग्रीष्म मे पञ्चाग्नि के बीच में और वर्षा में बाहर चौतरेपर बैठते हुये ॥ ७८ ॥ भीगे वस्त्रों को पहनेहुये हेमन्तऋतु में संसारकी रचना व संहारके करनेवाले व नाशरहित सदाशिव का ध्यान कररहे ॥ ७९ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! हमेशा सिद्धेश्वर लिङ्ग का पूजन करते हुये तब सिद्धलिङ्ग के पूजन व ध्यानयोगके प्रभाव से ॥ ८० ॥ व्यास के प्रत्यक्ष महादेवजी होतेहुये और कहा कि हे विप्र ! तुम ने हमको प्रसन्न किया है इस से अच्छे वरको मांग लेवो ॥ ८१ ॥ तब व्यास बोले कि हे देव ! जो मुझसे

रुद्रदेहोद्भवांनदीम् ॥ साह्लादंनर्म्मदांदृष्ट्वा चित्तंविश्राम्यपार्थिव ॥ ७७ ॥ तपश्चचारविपुलं नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासुस्थण्डिलेशयः ॥ ७८ ॥ सार्द्रवासास्तुहेमन्ते ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ सृष्टिसंहारकर्तारमच्छेद्यंचसदाशिवम् ॥ ७९ ॥ नित्यंसिद्धेश्वरंलिङ्गं पूजयन्पाण्डुनन्दन ॥ अर्चनात्सिद्धलिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभावतः ॥ ८० ॥ प्रत्यक्षईश्वरोजातः कृष्णद्वैपायनस्यतु ॥ तोषितोहंत्वयाविप्र वरंप्रार्थयशोभनम् ॥ ८१ ॥ व्यासउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ प्रत्यक्षोनर्म्मदातीरेस्वयंमेद्यभविष्यति ॥ ८२ ॥ अतीतानागतज्ञानं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंभवतुतेविप्र मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ ८३ ॥ त्वयाभक्तिगृहीतोहं प्रत्यक्षोनर्म्मदातटे ॥ इत्युक्त्वाप्रययौदेवः कैलासंनगमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ पत्नीसंग्रहणंजातं पुत्रोजातोयदास्यच ॥ देवैरध्यासितस्सर्वैस्सेन्द्रब्रह्मपुरोगमैः ॥ ८५ ॥ पुत्रजन्मततोज्ञात्वा आगताऋषिसत्तमाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥ ८६ ॥ मन्वत्रि

आप प्रसन्नहो और जो मुझे आपको वरदेनाहै और जो आज नर्मदाके तीर आप खुद मेरे प्रत्यक्ष हुये हो ॥ ८२ ॥ तो हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से मुझको भूत और भविष्यका ज्ञान होजावे तब महादेव बोले कि हे विप्र ! मेरे प्रसाद से तुम्हारे सब ऐसाही होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ तुम्हारी भक्तिमे पकडे हुय हम नर्मदा के तटमें प्रत्यक्षहुये इतना कह महादेव उत्तम कैलास पर्वत को चलेगये ॥ ८४ ॥ फिर जब व्यास के स्त्री का संग्रह व पुत्र भी हुआ तब इन्द्र और ब्रह्मा आदि सब देवताओं से फिरभी युक्त हुये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर व्यास के पुत्र के जन्मको जान तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से पराशर आदि ऋषिश्रेष्ठ आतेहुये ॥ ८६ ॥ मनु, अत्रि

विष्णु,हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम,आपस्तम्ब,संवर्त, कात्यायन और बृहस्पति ॥ ८७ ॥ आदि सब हजारों लाखों करोड़ों ब्राह्मण पुण्यवाले व्यासके सुन्दर आश्रममें प्राप्तहुये ॥ ८८ ॥ व्यासजी उन ब्राह्मणोंको देख उठे और पितापूर्वक सबको प्रणाम कर फिर उनसे बात करतेहुये ॥ ८९ ॥ हाथ जोड़ इस वचनको बोले कि आप से बोल चाल,व दर्शन से मेरा आनन्द उमड़ आया ॥ ९० ॥ अब जङ्गली शाक व फलों को मैं पितापूर्वक आप सबलोगों को देताहूं ॥ ९१ ॥ इतना कह नियमों से युक्त उन सब हरएक ब्राह्मणोंको प्रणाम करतेहुये तदनन्तर वहा प्रणाम करचुके व्यास ब्राह्मणको देख ॥ ९२ ॥ जय और आशीर्वादसे बढ़ाकर फिर आपस

विष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥ यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ८७ ॥ एवमादिसहस्राणि लक्षकोटिरनेकधा ॥ व्यासाश्रमेशुभेपुण्ये प्राप्तास्सर्वेद्विजोत्तमाः ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वाव्यासस्तुविप्रेन्द्रानभ्युत्थायकृतोद्यमः ॥ पितृपूर्वंप्रणम्यादौ तेषांवार्ताप्रदापयन् ॥ ८९ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा इदंवाक्यमुवाचह ॥ उद्धृतन्तुममानन्दं युष्मत्सम्भाषदर्शनात ॥ ९० ॥ आरण्यानिचशाकानि फलान्यारण्यकानिच ॥ तानिदास्यामिसर्वेषां युष्माकंपितृपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ नियमैस्संयुतान्सर्वान्प्रत्येकंप्रणनामच ॥ ततस्तंप्रणतंदृष्ट्वा तत्रद्वैपायनंद्विजम् ॥ ९२ ॥ वर्द्धयित्वाजयाशीर्भिस्ततोवीक्ष्यपरस्परम् ॥ पराशरस्समस्तैश्च वीक्षितोमुनिपुङ्गवैः ॥ ९३ ॥ उत्तरन्दीयतांतात कृष्णद्वैपायनस्यच ॥ एवमुक्तस्तुतैस्सर्वैर्भगवांश्चपराशरः ॥ ९४ ॥ उवाचस्वात्मजंव्यासमृषिभिर्यच्चिकीर्षितम् ॥ नेच्छन्तिदक्षिणेकूले व्रतभङ्गभयात्सुत ॥ ९५ ॥ परंवैभोक्तुकामाश्च तवश्रद्धाविशेषतः ॥ व्यासउवाच ॥ करोमिभवतांयुक्तमत्रैवस्थीयतां

में देख सब मुनिश्रेष्ठों ने पराशर को देखा ॥ ९३ ॥ और कहा कि हे तात ! आप व्यासको उत्तर देवें उन सबों से ऐसे कहेगये भगवान् पराशर ॥ ९४ ॥ अपने पुत्र व्यास से ऋषियों के मनकी वार्ता को कहा कि हे सुत ! अपने व्रतभङ्ग होजाने के कारण ये लोग दक्षिण दिशावाले तटपर तुम्हारे सत्कार की इच्छा नहीं करतेहैं ॥ ९५ ॥ परन्तु तुम्हारी विशेष श्रद्धा के कारणसे खानेकी इच्छा इनको जरूर है तब व्यास बोले कि आपलोग थोडी देर यहीं ठहरें हम आपके उचित कामको करते

हैं ॥ ९६ ॥ नदी के समीप जाकर जब तक हम विधिपूर्वक सब काम को ठीककरें ऐसे कह व पवित्र होकर नर्मदाके तटपर बैठे ॥ ९७ ॥ और सहसा स्तोत्रको पढ़ते हुये हे जनेश्वर ! आप उसको सुनो ॥ ९८ ॥ व्यास बोले कि हे वर व कल्याण की देनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जयहो हे त्रिशूल को हाथमें लिये, पापोंकी नाश करने वाली ! तुम्हारी जयहो हे भैरवकी देहको अपने में लीन करनेवाली, ब्रह्मा से नमस्कार कीगई, हे देवि ! जयहो ॥ ९९ ॥ हे सूर्य और इन्द्र से सदा नमस्कार कीगई, स्वामिकार्त्तिकेय के पिता महादेवकी कन्या, हे वरकी देनेवाली ! तुम्हारी जयहो हे देवताओं के शरीरों का समूहरूपवाली ! तुम्हारी जयहो और हे समुद्र में जाने-

क्षणम् ॥ ९६ ॥ यावदासाद्यसरितं करोमिविधिपूर्वकम् ॥ एवमुक्त्वाशुचिर्भूत्वा नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ ९७ ॥ स्तोत्रं जगादसहसा तन्निबोधजनेश्वर ॥ ९८ ॥ व्यासउवाच ॥ जयदेविनमोवरदेशिवदे जयपापविमर्द्दिनिशूलकरे ॥ जयभैरवदेहविलीनकरे जयदेविपितामहसन्नमिते ॥ ९९ ॥ जयभास्करशक्रपदानमिते जयषण्मुखतातसुतेवरदे ॥ जयदेवशरीरसमूहमये जयसागरगामिनिभूमिसुते ॥ १०० ॥ जयलोकसमस्तकृताभरणे जयदुःखदरिद्रविनाशकरे ॥ जयपुत्रकलत्रविवृद्धिकरे जयदेविसुदर्शनपापहरे ॥१॥ एतद्व्यासकृतंस्तोत्रं यःपठेच्छिवसन्निधौ ॥ गृहेवाशुद्धभावेन कामक्रोधविवर्ज्जितः ॥ व्यासस्तस्यभवेत्प्रीतः प्रीतोयंवृषवाहनः ॥ २ ॥ स्तुताचनर्म्मदादेवी ततोवचनमब्रवीत् ॥ नर्म्मदोवाच ॥ स्तुतिवादेनतुष्टास्मि भोभोव्यासमहामुने ॥ ३ ॥ यमिच्छसिवरंसम्यक् तन्तेसर्वंददाम्यहम् ॥ व्यासउवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि यदिदेयोवरोमम ॥ ४ ॥ आतिथ्यमुत्तरेकूले ममदातुंत्वमर्हसि ॥ नर्म्मदोवाच ॥ अयुक्तंचिन्ति

वाली ! हे भूमिसुते ! तुम्हारी जयहो ॥ १०० ॥ हे सब लोकोंकी शोभा करनेवाली व दुःख और दरिद्रको विनाश करनेवाली ! तुम्हारी जयहो हे स्त्री और पुत्रोंकी बढ़ाने वाली व शुभ दर्शन से पापोंकी हरनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जयहो ॥ १ ॥ व्यास के कियेहुये इस स्तोत्र को जो महादेवके समीप पढ़ताहै व अपने घरमें काम क्रोध से रहित होकर सच्चेभाव से पढ़ताहै उससे व्यास व महादेव दोनों प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ तदनन्तर स्तुति कीगई नर्मदा देवी वचन बोली नर्मदा ने कहा कि हे महामुने ! हे व्यास ! आप के स्तुति करने से हम प्रसन्न हैं ॥ ३ ॥ जिस अच्छे वर को तुम चाहते हो वह सब हम तुम्हें देंगी तब व्यास बोले कि हे देवि ! जो मुझसे

प्रसन्नहो और जो मुझे तुमको वरदेनाहै ॥४॥ तो अपने उत्तरवाले किनारेपर मेरा अतिथि सत्कार करो तब नर्मदा बोलीं कि हे व्यास! तुमने अनुचित कामको विचारा है और उलटे मार्ग में तुम प्रवृत्त होतेहो ॥ ५ ॥ क्योंकि इन्द्र, चन्द्र और यमराज भी उलटे रास्ते से बहाने को समर्थ नहीं होसक्ते हैं इस से हे वत्स (प्यारे)! और जो कुछ इस पृथिवी में दुर्लभ हो उसे मांगो ॥ ६ ॥ तब देवी के ऐसे वचन को सुनकर व्यास मूर्च्छा को प्राप्त होगये क्योंकि उनको वृथा क्लेश हुआ इससे पृथिवी पर गिरपड़े ॥ ७ ॥ तब पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी कांपती हुई और मूर्च्छा को प्राप्त हुये पराशर के पुत्र व्यास को जान सब देवता ॥ ८ ॥

तंव्यास अमार्गेत्वंप्रवर्तसे ॥ ५ ॥ इन्द्रचन्द्रयमाःशक्ता उन्मार्गेणनवाहितुम् ॥ अन्यंयाचस्वहेवत्स यत्किञ्चिद्भुविदुर्लभम् ॥ ६ ॥ एवंश्रुत्वावचोदेव्या व्यासोमूर्च्छाङ्गतस्तदा ॥ वृथाक्लेशश्चसञ्जातः पतितोधरणीतले ॥७॥ धरणीकम्पितासर्वा सशैलवनकानना ॥ मूर्च्छापन्नंततोव्यासं ज्ञात्वादेवाःपराशरम् ॥ ८ ॥ आयातादेवतास्सर्वे हाहाकारंप्रकुर्वतः॥ उत्थापयन्तस्तेव्यासमूचुश्चसरितांवराम् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणार्थन्तुसंक्लिष्टा नामहेतोस्सरिद्वरे ॥ गवार्थेब्राह्मणार्थेच सद्यःप्राणान्परित्यजेत् ॥ १० ॥ एवंसानर्म्मदाप्रोक्ता ब्रह्माद्यैश्चसुरैर्द्रुतम् ॥ विकूलतांवैप्रददौसमन्ताद्देवाभिषिक्तस्सजलेनपूतः ॥ ११ ॥ सचेतनस्सत्यवतीसुतोयं ननामदेवैस्सहनर्म्मदान्तैः ॥ व्यासउवाच ॥ तीर्थसमस्तंत्वयिदेवतानां फलंप्रदिष्टंममन्दभाग्यम् ॥ १२ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ यतोयतोव्यासमहानुभावसुमेरुनाम्नोधरणीधरस्य ॥ विन्ध्यस्य

आतेहुये हाहाकार को करते व व्यासको उठारहे वे सब देवता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा से बोले ॥ ९ ॥ कि हे सरिद्वरे ! नाम के वास्ते ब्राह्मण के लिये बहुतों ने क्लेश को उठायाहै क्योंकि कहाभी है कि गऊ और ब्राह्मणके वास्ते तुरन्त प्राणोंको छोड़देवे ॥ १० ॥ ब्रह्मा आदि देवताओं से ऐसे कहीगई नर्मदा शीघ्रही सब तरफ किनारों से रहित अर्थात् बराबर होगई तब नर्मदा से अभिषेक को प्राप्त व जल से पवित्र ॥ ११ ॥ व होश के सहित व्यास उन सब देवताओं के सहित नर्मदा को नमस्कार करते हुये और व्यास बोले कि सब तीर्थ आपही में हैं देवताओं को आपने फल दिया मेरा भाग्य बड़ा मन्दहै ॥ १२ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे महाऽनुभाव ! हे

व्यास ! धर्म के धारण करनेवाले आपकी सुमेरु व विन्ध्याचल व अन्य पर्वत के समीप हो जिधर से रास्ताहो हम उसी रास्ते से जावेंगी और इसी से हम धन्यभी होवेंगी ॥ १३ ॥ ऐसे कहेगये बडे तेजवाले सत्यवती के पुत्र व्यास अपने आश्रम से दक्षिण की तरफ मुनिश्रेष्ठों को चलाते हुये ॥ १४ ॥ हे नृपनन्दन ! दण्ड को हाथ में लिये बड़े तेजवाले व्यास हुङ्कारों से नर्मदाको चलाया व्यासकी हुङ्कार से डरीहुई नर्मदा चलती हुई ॥ १५ ॥ व्यासजी दण्ड से रास्ते को दिखाते हैं नर्मदा उसी रास्ते से चली जाती हैं व्यासकी रास्ते में प्राप्त होगईं नर्मदाको देख इन्द्र आदि सब देवता ॥ १६ ॥ व्यासके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुये और किन्नर लोग

चान्यस्यचतेहि मार्गेयास्यामिवैधर्मधरस्यधन्या ॥ १३ ॥ एवमुक्तोमहातेजा व्यासस्सत्यवतीसुतः ॥ दक्षिणेचालयामास स्वाश्रमान्मुनिपुङ्गवान् ॥ १४ ॥ दण्डहस्तोमहातेजाहुङ्कारैर्नृपनन्दन ॥ व्यासहुङ्कारभीताच चलितारुद्रनन्दिनी ॥ १५ ॥ दण्डेनदर्शयन्मार्गं देवीतत्रप्रवर्तिता ॥ व्यासमार्गगतान्देवीं दृष्ट्वाचेन्द्रपुरोगमाः ॥ १६ ॥ पुष्पवृष्टिंदद्व्यांसे स्तुतिंकुर्वन्तिकिन्नराः ॥ प्रफुल्लनयनाजाताः पराशरमुखाद्विजाः ॥ १७ ॥ किंकुर्म्मोत्रमहिम्नाते कर्म्मणातवरञ्जिताः ॥ व्यासउवाच ॥ तपःकृत्वासुविपुलंदानंदत्त्वामहत्फलम् ॥ १८ ॥ एतदेवनरैःकार्य्यं साधूनांपरितोषणम् ॥ सुविभक्तामहाभागा अनुग्राह्यस्यसम्प्रति ॥ १९ ॥ तस्मान्ममाश्रमेपुण्ये स्थीयतांनात्रसंशयः ॥ आतिथ्यंशाकपर्णैश्च उदकेनविमिश्रितैः ॥ २० ॥ प्रतिपन्नंसमस्तैश्च पराशरमुखैर्द्विजैः ॥ अयध्वमाश्रमंपुण्यं नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ २१ ॥

स्तुति करते हैं पराशर आदि ब्राह्मण प्रसन्न नेत्रोंवाले होगये ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि यहां तुम्हारी महिमा व तुम्हारे कर्म से राजीहुये हमलोग तुम्हारा क्या काम करें तब व्यास बोले कि बडे तपको कर व बडे फलवाले दान को देकर ॥ १८ ॥ मनुष्यों को यही करना चाहिये कि जिससे साधुवों का परितोष होवे इस से इस समय बडे भाग्यवाले आप लोग अलग २ अनुग्रह करने योग्य जो हम हैं ऐसे मेरे पुण्यवाले आश्रम में निस्सन्देह स्थित होवो हम जल सहित शाक व पत्तियों से आपका अतिथि सत्कार करेंगे ॥ १९ । २० ॥ इस से पराशर आदि सब ब्राह्मणों को उचित है कि नर्मदा के उत्तरवाले तटपर पुण्यवाले हमारे आश्रम के आश्रित

होवें ॥ २१ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि तब ब्राह्मणों ने स्नान और तर्पण आदि कर्मों को किया तदनन्तर व्यासकुण्ड में जाकर अच्छे प्रकार से होम करतेहुये ॥ २२ ॥ ध्यानसे युक्त बेल और बेलपत्रों से हवन करतहुये गौतम, भृगु, माण्डव्य, नारद, लोमश, ॥ २३ ॥ पराशर, शङ्ख, कौशिक, च्यवनमुनि, पिप्पलाद, वशिष्ठ, बड़े तपस्वी नाशिकेतु, ॥ २४ ॥ विश्वामित्र, अगस्त्य, उद्दालक, यम, शाण्डिल्य, जैमिनि, काव्य, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, ॥ २५ ॥ अत्रि, शातातप, भरत, मुद्गल, बडे तेजस्वी वात्स्यायन, संवर्त, शक्ति ॥ २६ ॥ जातूकर्ण, भरद्वाज और बालखिल्य आदि ब्राह्मण एकाग्रमन होकर हे राजन् ! मन्त्र और तन्त्र को करते

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्नानतर्प्पणकृत्यानि कृतानिचद्विजोत्तमैः ॥ व्यासकुण्डंततोगत्वा होमंसम्यगकारयन् ॥ २२ ॥ श्रीफलैर्बिल्वपत्रैश्च ध्यानयुक्ताश्चजुह्वति ॥ गौतमोभृगुमाण्डव्यो नारदोलोमशस्तथा ॥ २३ ॥ पराशरस्तथाशङ्खःकौशिकश्च्यवनोमुनिः॥ पिप्पलादोवशिष्ठश्च नाशिकेतुर्महातपाः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रोह्यगस्त्यश्च उद्दालकयमौतथा ॥ शाण्डिल्योजैमिनिःकाव्यो याज्ञवल्क्योशनाङ्गिराः ॥ २५ ॥ अत्रिःशातातपश्चैव भरतोमुद्गलस्तथा ॥ वात्स्यायनोमहातेजास्संवर्तःशक्तिरेवच ॥ २६ ॥ जातूकर्णोभरद्वाजो बालखिल्यादयस्तथा ॥ एकचित्ताद्विजाराजन्मन्त्रतन्त्रंप्रकुर्वतः ॥ २७ ॥ ततःसमुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ साष्टाङ्गंप्रणतोव्यासो देवंदृष्ट्वात्रिलोचनम् ॥ २८ ॥ आशीर्वादंपुनर्विप्रा दत्त्वाव्यासंतदाययुः ॥ ततःप्रभृतितत्त्वज्ञ तीर्थंख्यातन्तुपाण्डव॥ २९ ॥स्नानदानविधानञ्च यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम् ॥ कथयामिसमस्तन्तेभ्रातॄणाञ्चैवपाण्डव॥ ३० ॥कार्त्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यांनृपोत्तम॥उपोष्ययोनरोभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम्॥३१॥ स्नापयेदीश्वरंभक्त्या क्षौद्रेणक्षीरसर्पिषा ॥ ३२ ॥ दध्नाच

हुये ॥ २७ ॥ तदनन्तर जलतेहुये प्रलय के अग्निके समान लिङ्ग उठता हुआ त्रिनेत्र महादेवजी को देख व्यासजी साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये ॥ २८ ॥ फिर ब्राह्मणलोग व्यासको आशीर्वाद देकर चलेगये हे तत्त्वज्ञ, पाण्डव ! तब से यह व्यासतीर्थ प्रसिद्ध होता हुआ ॥ २९ ॥ अब हे पाण्डव ! जिस समय में स्नान व दानका विधान प्रतिष्ठित है वह सब हम आप व आप के भाइयों से कहते हैं ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम ! कार्त्तिकके अँधियारे पाखकी चौदस को उपासा रहकर जो मनुष्य भक्ति से

रातमें जागरण करे ॥३१॥ और भक्ति से शहद,दूध,घी,दही, शक्कर और कुशों के जल से महादेवको नहवावे और सुगन्धित चन्दन से महादेव का पूजन करे ॥ ३२ ।
३३ ॥ तदनन्तर सुगन्धित फूल व बेलपत्रों से पूजे कोका ,कुन्द, कुश, फूल, अक्षत आदि ॥ ३४ ॥ धतूरे के फूल, रस और अत्युत्तम जङ्गली फूलों व बड़ी भक्ति से
अत्युत्तम द्वीपेश्वर का पूजन करे ॥ ३५ ॥ और मदार आदि के फूलों से परमेश्वर को पूजे गुड और मॉड़ के देने से दिन भरका कमाया हुआ पाप ॥ ३६ ॥ उससे सौ
गुने दानसे महीने भरका, हजारगुने से छहमहीने का,दो हजार गुने से साल भरका पाप नाश होताहै ॥ ३७ ॥ दशहजार गुने से जन्म भरका पाप नष्ट होजाता है हे

खण्डयुक्तेन कुशतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन पूजयेतमहेश्वरम् ॥ ३२ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च बिल्वपत्रैश्चपूज
येत्॥ कुमुदेनचकुन्देन कुशपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ३४॥ उन्मत्तपुष्पैश्चरसैस्सौम्यैश्चैवाप्यनुत्तमैः॥ अर्चयेत्परयाभक्त्या
द्वीपेश्वरमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ मन्दारादिकपुष्पैश्चपूजयेत्परमेश्वरम्॥ गुडमण्डप्रदानेन पातकंदिवसार्जितम् ॥ ३६॥ मा
सार्जितंचनश्येत गुडमण्डशतेनच ॥ षण्मासंचसहस्रेण अर्कांब्दंद्विगुणेनतु ॥ ३७ ॥ आजन्मजनितंपापमयुतेनप्रण
श्यति ॥ पौर्णमास्यांनृपश्रेष्ठ स्नानंकुर्वीतभक्तितः ॥ ३८ ॥मन्त्रोक्तेनविधानेन कृत्वापापक्षयङ्करम् ॥ वारुणंचतथाज्ञेयं
सर्वपापक्षयंकरम् ॥३९॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च विधिवत्तर्पयेन्नृप ॥ ऋचमेकांजपेत्स्नातः सामवेदफलंलभेत् ॥४०॥
यजुर्वेदमथर्वाणंगायत्र्यासर्वमाप्नुयात्॥जपेदष्टाक्षरंमन्त्रंसौरंवाशैवमेवच ॥४१॥ अथवावैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरमेव
च ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ४२ ॥ स्वधर्मनिरतान्विप्रान्दम्भलोभविवर्जितान् ॥ हीनाङ्गा

नृपश्रेष्ठ ! पूर्णमासी को भक्तिसे स्नानकरे ॥ ३८ ॥ वेदमें कहेहुये विधान से किया गया स्नान पापों का क्षय करनेवाला होताहै इसी प्रकार सब पापोंका क्षय करने
वाला वारुण स्नान भी जानना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे नृप ! देवता, पितर और मनुष्यो का विधि से तर्पण करे और नहाकर एक मन्त्रको जपे तो सामवेद के फल को
पाता है ॥ ४० ॥ और गायत्री से यजुर्वेद और अथर्ववेद के सम्पूर्ण फलको पाता है अष्टाक्षर व सौर व शैव ॥ ४१ ॥ व वैष्णव द्वादशाक्षर मन्त्रको जपे और सब
लक्षणों से युक्त ब्राह्मणों का भक्ति से पूजन करे ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण कैसे होवें कि अपने धर्ममें रतहों, दम्भ व लोभसे रहितहों, अङ्गहीन व अधिक अङ्गवाले न हों और जो

पतितहों व शूद्रों के सेवकहों ॥ ४३ ॥ व शूद्रोंके अन्न से युक्तहों व जिसके मकानमें वृषली (शूद्री) रहती हो व उदरीसे पैदाहों व दुष्टहों व गुरुकी निन्दाके करने वाले हों ॥४४॥ व वेदके पढ़ने से रहितहो व तर्क के करनेवाले हों व कौवों कीसी वृत्तिवाले हों ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध,दान और व्रतमें वर्जित रक्खे ॥ ४५ ॥ गायत्री-मात्र के पढ़ने से पढ़ा हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठहै और जो सर्वभक्षी व सब चीजों का बेंचनेवाला हो तो चारोंवेदों का पढ़नेवाला भी हो परन्तु वह नहीं श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध, व्रत और सोने के दानमें छोड़ेरहे व जूता, कपडा, पलँग, छाता और आसन को ॥ ४७ ॥ जो भक्ति से ब्राह्मणको देताहै वहभी स्वर्ग में पूजित होता

नधिकाङ्गाश्चपतिताञ्च्छूद्रसेवितान् ॥ ४३ ॥ शूद्रान्नेनचसंयुक्ता वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ पौनर्भवास्तथादुष्टा गुरुनिन्दा परायणाः ॥ ४४ ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च हेतुकाःकाकवृत्तयः ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दानेचैवव्रतेतथा ॥ ४५ ॥ गायत्री पाठमात्रेण वरंविप्रस्सुपण्डितः ॥ नायंभृतचतुर्विद्यः सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ४६ ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे व्रतेदानेहिर ण्मये ॥ उपानहौचवस्त्रंच शय्यांवाछत्रमासनम् ॥ ४७ ॥ योदद्याद्ब्राह्मणेभक्त्या सोपिस्वर्गेमहीयते ॥ प्रत्यक्षासुर भीतत्र तिलधेनुस्तथामता ॥ ४८ ॥ तिलधेनुप्रदातारः स्वस्वदातारएवच ॥ कृष्णाजिनप्रदातारो दातारःकुञ्जरस्य च ॥ ४९ ॥ कन्याविद्याप्रदातारोऽक्षयंलोकमवाप्नुयुः ॥ धूर्वहौदक्षिणायुक्तौ धान्योपस्करसंयुतौ ॥ ५० ॥ दापयेत्सर्व कामाय इतिमेसत्यभाषितम् ॥ सूत्रेणवेष्टयेदीशमथवाजगतीरुहम् ॥ ५१ ॥ मन्दिरंपरयाभक्त्या अथवापरमेश्वर म् ॥ अथप्रदक्षिणाकार्य्या विनाशूद्रेणमानवैः ॥ ५२ ॥ जम्बूप्लक्षाह्वयौद्वीपौ शाल्मलिश्चभवेन्नृप ॥ कुशःक्रौञ्चस्त

है वहां प्रत्यक्ष गऊ व तिलधेनु देनेको उचितहै ॥ ४८ ॥ तिलधेनु के देनेवाले, अपने धनके देनेवाले, मृगचर्म के देनेवाले, हाथी के देनेवाले, ॥ ४९ ॥ कन्या और विद्याके देनेवाले अक्षयलोकको प्राप्त होते हैं अन्न व और सामान व दक्षिणासे युक्त बैलों को ॥ ५० ॥ सब कामनाओंके वास्ते देवे यह हमारा कहना सत्य है सूतसे महादेव व वृक्ष ॥५१॥ व मन्दिर व परमेश्वर को बड़ी भक्तिसे लपेटे तदनन्तर शूद्र को छोड़ और मनुष्यों को प्रदक्षिणा करना चाहिये ॥ ५२ ॥ जो ऐमा काम करता

है उसने मानो जम्बू, लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्करद्वीप व सातो समुद्रपर्य्यन्त पृथिवी को लपेटलिया है भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर में जितेन्द्रिय मनुष्यों को वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥ ५३ । ५४ ॥ क्योंकि बैल के छोंडनेही से ईश्वरके लोकको पाताहै जिसका मुख, माथा, पांव सफेदहों ॥ ५५ ॥ व पूंछ और थूथुन सफेद होवें वह बैल स्वर्गका दिखानेवाला होताहै ऐसाही बैल नील कहा गयाहै उसको शुभस्वरूप द्वीपेश्वर मे देवे ॥ ५६ ॥ हे पार्थिव ! इसके देनेवाले अनगिन्ती भी नीच लोग स्वर्ग को जाते हैं अथवा सूर्य व चण्डेश्वर व विष्णुके लोक को जाते है ॥ ५७ ॥ व्यासतीर्थ के प्रभावसे वह अपनी इच्छासे इन लोको

थाशाकः पुष्करश्चेतिसप्तमः ॥ ५३ ॥ सप्तसागरपर्य्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्वरेतुराजेन्द्र वृषोत्सर्गोजितेन्द्रियैः ॥ ५४ ॥ वृषस्यमोक्षणेनैव ऐश्वरंलोकमाप्नुयात ॥ यस्तुवैपाण्डुरोवक्त्रे ललाटेचरणेतथा ॥ ५५ ॥ लाङ्गूलेचमुखे शुभ्रस्सवैनाकस्यदर्शनः ॥ नीलोयमीदृशःप्रोक्तो दद्याद्वीपेश्वरेशुभे ॥ ५६ ॥ पामरास्तेप्यसंख्याता नाकंगच्छन्ति पार्थिव ॥ सौरेचण्डेश्वरेलोके पुरेवैचक्रपाणिनः ॥ ५७ ॥ सम्भुङ्क्तेस्वेच्छयालोकं व्यासतीर्थप्रभावतः ॥ सपत्नीकांस्ततोविप्रान्पूजयेत्तत्रभक्तितः ॥ ५८ ॥ सितरत्नानिवस्त्राणि प्रदद्यादग्रजन्मने ॥ कृत्वाप्रदक्षिणायुग्मं प्रीयतांमेजगद्गुरुः ॥ ५९ ॥ नास्तिविप्रसमोबन्धुरिहलोकेपरत्रच ॥ यमलोकेमहाघोरे पतितंयोभिरक्षति ॥ ६० ॥ पुरुषाःपरयाभक्त्या वेदशास्त्रार्थचिन्तकाः ॥ द्वीपेश्वरंमहादेवं संस्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ ६१ ॥ तेषान्नजायतेशोको नहानिर्नचदुष्कृतम् ॥ प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गंसिद्धेश्वरन्नृप ॥ ६२ ॥ यत्रसिद्धोमहाभागस्सत्यवत्याश्चनन्दनः ॥ अस्यैवार्चनतास्सिद्धो

को भोगताहै तदनन्तर वहा भक्तिसे सपत्नीक ब्राह्मणों का पूजनकरे ॥ ५८ ॥ सफेद रत्न व वस्त्रो को ब्राह्मण को देवे और दो प्रदक्षिणा करके कहे कि मुझ से जगत् के गुरु प्रसन्न होवें ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण के बराबर इस लोक व परलोक में कोई हितकारी नहीं है जो महाघोर यमलोक में पड़ेहुये पापोंकी रक्षा करताहै ॥ ६० ॥ वेद और शास्त्र के अर्थ जाननेवाले जे पुरुष अपने घरमे बैठेहुये बड़ी भक्ति से द्वीपेश्वर महादेव को स्मरण करते है ॥ ६१ ॥ उनको शोक हानि और पाप नहीं होता है

हे नृप ! वहा पहले सिद्धेश्वर लिङ्गका पूजनकरे ॥ ६२ ॥ जहां बड़े भाग्यवाले सत्यवतीके पुत्र व्यास सिद्ध हुये हैं इसी लिङ्गके पूजनसे व्यासमुनि सिद्धहुये हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थमें जे अपने प्राणोंका त्याग करतेहैं वे परमलोकको जातेहैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व जो जलमें प्रवेश कर मराहै वह हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहताहै और भृगुपातमें सोलह हजार व युद्धमें साठिहजार और गौवों के पीछे मरने से अस्सीहजार और हे भारत ! अनशनमें अक्षय काल तक स्वर्ग में गति रहती है ॥ ६५ ॥ और योग सेभी अक्षय गति होती है सूर्यलोकको जाकर फिर वे शिवलोक को जाते हैं ॥ ६६ ॥ पिता, दादा और परदादा आते हुये अपने गोत्र

पाराशर्य्योमुनिस्ततः ॥ ६३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयेराजन्प्राणत्यागंप्रकुर्वते ॥ तेयान्तिपरमंलोकं नात्रकार्य्याविचारणा ॥ ६४ ॥ समासहस्राणिमृतोजलेवै योवैनिमग्नःपतनेचषोडश ॥ महाहवेषष्टिरशीतिगोग्रहे त्वनाशकेभारतचाक्षयागतिः ॥ ६५ ॥ अथयोगेनतेनैव प्राप्यतेचाक्षयागतिः ॥ सूर्य्यलोकंततोगत्वा शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ ६६ ॥ पितापितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ॥ अनुभूतानिरीक्षन्ते आगच्छन्तंस्वगोत्रजम् ॥ ६७ ॥ तिष्ठतेचैवगोत्रेषु योदद्याच्चतिलोदकम् ॥ कार्त्तिक्याञ्चतथामाघ्यां वैशाख्याञ्चविशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्गंचतेप्रयान्त्यन्ते स्वस्वपुत्रप्रभावतः ॥ एतत्तेकथितंसर्वं द्वीपेश्वरफलंशुभम् ॥ ६९ ॥ यःपठेत्प्रातरुत्थाय यःशृणोतिनरोनृप ॥ सोपिपापैर्विनिर्मुक्तो मोदतेशिवमन्दिरे ॥ ७० ॥ ईश्वरंसर्वतीर्थानां निर्म्मितंऋषिपुङ्गवैः ॥ कामदंसर्वजन्तूनां रेवायाञ्चनृपोत्तम ॥ १७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेद्वीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनोनामनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥ * ॥

वालेको देखते हैं ॥ ६७ ॥ और कहते है कि है कोई हमारे गोत्र में जो विशेष करके कार्त्तिकी व माघी व वैशाखी को यहां तिलोदक देवे ॥ ६८ ॥ वे लोग अपने २ पुत्रों के प्रभाव से अन्त में स्वर्गको जाते हैं यह सब उत्तम द्वीपेश्वर का फल तुम से कहा गया ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य पढता व सुनताहै पापों से छूटा हुआ वह निश्चय करके शिवके मन्दिर में आनन्द करता है ॥ ७० ॥ हे नृपोत्तम ! सब जीवोंकी कामनाओं का देनेवाला व सब तीर्थोंका राजा ऋषियोंका रचाहुआ नर्मदा पर व्यासतीर्थ है ॥ १७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेद्वीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनोनामनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर तीनो लोकों में प्रसिद्ध व उत्तम स्वर्गकी निसेनी के समान, उत्तम प्रभासेश्वर तीर्थको जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि बड़े फलवाला प्रभास नाम तीर्थ जैसे हुआ हो व जैसे स्वर्ग मार्गकी निसेनी के बराबरहो वैसे संक्षेप से आप मुझ से कहिये ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि प्रभा इस नाम से प्रसिद्ध, कुरूपा सूर्यकी स्त्री होती हुई अगिले जमाने में उसने उग्र तपस्यासे महादेव का आराधन किया ॥ ३ ॥ महादेवके ध्यान में तत्पर सालभर वायुका भोजन करतीहुई बनीरही हे पाण्डुनन्दन ! तब प्रसन्न हुये महादेव उस प्रभा से ॥ ४ ॥ बोले कि हे बाले ! तू क्यों तकलीफ उठाती है अपने मन

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र प्रभासेश्वरमुत्तमम् ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ प्रभासन्नामतीर्थंतु यथाजातंमहाफलम् ॥ स्वर्गसोपानमार्गञ्च संक्षेपात्कथयस्वमे ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दुर्भगारविपत्नीच प्रभानामेतिविश्रुता ॥ तयाचाराधितःशम्भुरुग्रेणतपसापुरा ॥ ३ ॥ वायुभक्षास्थितावर्षं शिवध्यानपरायणा ॥ ततस्तुष्टोमहादेवः प्रभांतांपाण्डुनन्दन ॥ ४ ॥ उवाचक्लिश्यतेकस्माद्बालेत्वंब्रूहिचेष्टितम् ॥ अहञ्चभास्करोपेतश्चान्तरंनैवविद्यते ॥ ५ ॥ प्रभोवाच ॥ नान्योदेवस्तथाशम्भो भर्तापुष्यतिनकचित् ॥ सगुणोवापिचाख्यातो निर्गुणोद्रव्यवर्जितः ॥ ६ ॥ प्रियोवायदिवाद्वेष्यः स्त्रीणांभर्ताहिदेवता ॥ दुर्भगात्वेनदग्धाहं लोकमध्येमहेश्वर ॥ ७ ॥ अलब्धसौख्याभर्तुश्च तेनक्लिश्येमहेश्वर ॥ देवउवाच ॥ वल्लभाभास्करस्यत्वं मत्प्रभावाद्भविष्यसि ॥ ८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ वल्लभा तववाक्येन भास्करेनभविष्यति ॥ वृथाक्लेशोभवेद्देव प्रभायास्तत्रकाकथा ॥ ९ ॥ देवीवाक्येनरुद्रेण ध्यातस्तिमिर

की बातको कह क्योंकि हम सूर्य से युक्त सदा रहते हैं हमारा और सूर्यका अन्तर नहीं है ॥ ५ ॥ तब प्रभा बोली कि हे शम्भो ! चाहे भर्ता अपनी स्त्रीका पोषण कभी न करे परन्तु स्त्रीका और देवता नहीं है चाहे वह सगुणहो व चाहे निर्गुण हो व द्रव्यसे रहितहो ॥ ६ ॥ चाहे प्रियहो और चाहे अप्रिय हो परन्तु स्त्रियोंका पतिही देवताहै हे महेश्वर ! मैंतो कुरूप होने के कारण से संसार में जलरहीहूं ॥ ७ ॥ हे महेश्वर ! पति से सुखको नहीं पातीहूं इससे तपस्यासे क्लिष्ट होरहीहूं तब महादेव बोले कि हमारे प्रभाव से तुम सूर्यकी प्यारी होवोगी ॥ ८ ॥ तब पार्वती ने कहा कि हे देव ! यह तुम्हारे कहने से सूर्यकी प्यारी न होगी आपको वृथा क्लेश होगा वहां

प्रभाकी वार्ताभी नहीं है ॥ ९ ॥ पार्वती के कहने से महादेवने सूर्यका ध्यान किया तब नर्मदा के उत्तरवाले किनारेपर आकाश से सूर्य आते हुये ॥ १० ॥ और सूर्य बोले कि हे अन्धकासुरनाशन, देव ! आपने मुझको क्यों बुलाया है तब महादेव बोले कि हे भानो ! बडे सन्तोष से प्रभाको पालो ॥ ११ ॥ हे हिमनाशन ! प्रभा के मकान में हमेशा रहाकरो ऐसे महादेव से वरको प्राप्तहुई प्रभा महादेव को थापकर बोली ॥ १२ ॥ कि हे अनघ ! अपने अंश से यहां ठहरो और तीर्थ का प्रकाश करो मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! सब देवताओं का रूप जो लिंगहै सो स्थापन किया गया ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वर नाम का यह लिंग सब लोकों में दुर्लभहै और

नाशनः ॥ आगतोगगनाद्भानुर्नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ १० ॥ भानुरुवाच ॥ कस्मादाह्वानितोदेव अन्धकासुरनाशन ॥ देवउवाच ॥ प्रभांपालयहेभानो संतोषेणपरेणच ॥ ११ ॥ प्रभायामन्दिरेनित्यं स्थीयतांहिमनाशन ॥ एवंलब्धवरा देवात्प्रभास्थाप्याहशङ्करम् ॥ १२ ॥ स्वांशेनस्थीयतामत्रतीर्थमुन्मीलयानघ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वदेवमयंलिङ्गं स्थापितंपाण्डुनन्दन ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वरनामेदं सर्वलोकेचदुर्लभम् ॥ अन्यानियानितीर्थानि कालेतेपिफलन्तिवै ॥ १४ ॥ प्रभासश्चापिराजेन्द्र सद्यःपुण्यफलप्रदम् ॥ माघमासेचसप्तम्यां विशेषफलदंभवेत् ॥ १५ ॥ अश्वंयोदापयेत्त त्र यथोक्तंब्राह्मणेनृप ॥ इन्द्रस्यप्राप्यतेलोकमथवाभास्करंव्रजेत् ॥ १६ ॥ दौर्भाग्यंनश्यतेतत्र स्नानमात्रेणपाण्डव॥ तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या कन्यादानंप्रयच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणायविवाहार्थे दापयेत्पाण्डुनन्दन॥ समानवयसेविप्रे कुलीने धनिनेतथा ॥ १८ ॥ योददातिमहाराज महापातकसंयुतः ॥ तस्यपापंचनश्येत उदकेलवणंयथा ॥ १९ ॥ स्वामिद्रोहो

जो तीर्थ हैं वे समय पर फल देते हैं ॥ १४ ॥ और हे राजेन्द्र ! प्रभास तो तत्कालमें पुण्य फलका देनेवाला है और माघ के महीने में सप्तमी को विशेष फलका देने वालाहै ॥ १५ ॥ हे नृप ! जैसा कहाहै वैसे घोडे को जो ब्राह्मण को देताहै वह इन्द्र व सूर्यके लोकको जाता है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! वहां स्नानमात्र से कुरूपता नष्ट होजाती है उस तीर्थ में भक्तिसे जो कन्यादान को देता हैं ॥१७॥ हे पाण्डुनन्दन ! बराबर उमरवाले कुलीन व धनी ब्राह्मण को विवाह के वास्ते ॥ १८ ॥ हे महाराज ! जो कन्याको देता व दिलाता है वह महापातक से युक्तभी हो परन्तु उसका पाप नष्ट होजाताहै जैसे पानी में लोन पिघल जाताहै ॥ १९ ॥ स्वामी के साथ द्रोह

करने से जो पाप होताहै व चोरी से जो होताहै व झूंठी गवाही से व चाण्डालोंकी सी चाल चलनेवालों को जो पाप होता है ॥ २० ॥ व पाखण्डसे व वृक्षों के काटने से व अगम्य स्त्री में गमन करने से व गांव भरके साथ छल करने से व विष के देने से व पाप के छिपाने से ॥ २१ ॥ व विद्याके बेंचने में व पापियों का साथ करने से व स्त्री और सब से वैर करने से हे नृप ! ॥ २२ ॥ व ब्रह्महत्यासे व जमीन छीननेवाले को व गोहत्या में व गुरु, अग्नि और ब्राह्मणके साथ अपराध करनेसे जो पाप होताहै ॥ २३ ॥ व हे नृप ! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्करद्वीपमें जो पाप होताहै ॥ २४ ॥ हे पाण्डव ! वह पाप कन्यादानसे नष्ट

द्भवंपापं यत्पापंस्तेयसम्भवम् ॥ कूटसाक्ष्यप्रदंपापंचाण्डालव्रतचारिणाम् ॥ २० ॥ दाम्भिकंवृक्षकच्छेदमगम्यागमनोद्भवम् ॥ ग्रामकूटोद्भवंयच्च गरदंवाप्रवारकम् ॥ २१ ॥ विद्याविक्रयणेयच्च संसर्गोद्भवपातकम् ॥ पत्नीद्रोहोद्भवंघोरं सर्वद्रोहोद्भवंनृप ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्याचयत्पापं यत्पापंभूमिहारिणः ॥ गोवधेचैवयत्पापं गुर्वग्निब्राह्मणेषुच ॥ २३ ॥ जम्बूप्लक्षाह्वयौद्वीपौ शाल्मलिश्चभवेन्नृप ॥ कुशक्रौञ्चस्तथाशाकः पुष्करश्चैवसप्तमः ॥ २४ ॥ तत्पापंविलयंयाति कन्यादानेनपाण्डव ॥ भित्त्वाथभास्करंलोकं शिवलोकंशुभंव्रजेत् ॥ २५ ॥ क्रीडतेरुद्रलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ सर्वपापक्षयेजाते शिवोभवतिभावतः ॥ २६ ॥ तावद्भ्रमतितत्तीर्थं प्रभासंपाण्डुनन्दन ॥ सोश्वमेधफलंप्राप्य सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ २७ ॥ गोदानंचमहत्पुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ प्रत्यक्षंसुरभींतत्र जलधेनुंतथाद्दतः ॥ २८ ॥ तिलधेनुप्रदाताच अश्वदातातथैवच ॥ कन्याविद्याप्रदाताच अक्षयंलोकमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ भूरिवस्त्रांक्षीरयुक्तां

होजाताहै कन्यादान का करनेवाला सूर्यलोक को भेदकर शुभरूप शिवलोक को जाताहै ॥ २५ ॥ जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक रुद्रलोक में टिकाहुआ विहार करताहै फिर सब पापों के क्षय होजाने पर भावनासे शिवही होजाता है ॥ २६ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तबतक मनुष्य भ्रमता है जबतक प्रभासतीर्थ को नहीं पाताहै उसको पाकर अश्वमेधके फलको पाताहै ईश्वर का कहना सत्यहै ॥ २७ ॥ गोदान सब पापोंका क्षय करनेवाला और बड़ी पुण्यवाला होताहै वहां प्रत्यक्ष गऊ व

जलधेनु को आदरसे देवे ॥ २८ ॥ तिलधेनु, घोड़ा, कन्या व विद्या का देने वाला अक्षयलोक को पाताहै ॥ २९ ॥ हे नृपसत्तम ! बहुत कपडे व दूध व अन्न व और सामान से युक्त गऊको सब कामनाओं के वास्ते देवे ॥ ३० ॥ तो उसने मानो सातो समुद्र पर्य्यन्त पृथिवी को लपेट लिया हे भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर में जितेन्द्रियों को वृषोत्सर्ग सब कालमें करना चाहिये और चौदसको तो विशेषही करना चाहिये ॥ ३१ । ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेप्रभास तीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

धान्योपस्करसंयुताम् ॥ दापयेत्सर्वकामोथ सुरभींनृपसत्तम ॥ ३० ॥ सप्तसागरपर्य्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्व रेतुराजेन्द्र वृषोत्सर्गंजितेन्द्रियैः ॥ ३१ ॥ सर्वकालन्तुकर्तव्यं चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभा सतीर्थमहिमानुवर्णनोनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ स्थापितंवासुकेर्नाम्ना अशेषाघौघनाशनम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ आःकस्मात्कारणात्तात स्थापितंदक्षिणेतटे ॥ तत्त्वंसर्वंममाख्याहि त्वशेषंधर्म्मकारणम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुत्वंकुरुशार्दूल यःप्रश्नःक्रियतेत्वया ॥ भैरवंरूपमास्थाय नृत्यंशम्भुश्चकारह ॥ ३ ॥ तच्छ्र माज्जायतेस्वेदो गङ्गातोयविमिश्रितः ॥ तत्रैवपन्नगःस्नातोहरतोयविमिश्रिते ॥ ४ ॥ मन्दाकिनीततःक्रुद्धा व्यालस्यो

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर सबपापों के समूह के नाश करनेवाले व नाम से वासुकिनागके थापेहुये तीर्थको जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर लिङ्ग क्यों स्थापन कियागया सो सब आप मुझसे कहो क्योंकि यह सब धर्महीका कारणहै ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे कुरुशार्दूल ! जिस प्रश्नको आपने कियाहै उसको सुनो किसी समयमें भैरवरूप को धर महादेवने नाच किया ॥ ३ ॥ उसके थकावट से गंगाजल से मिलाहुआ पसीना आया उस महादेवके जलसे मिलेहुये जल में वासुकिनाग ने नहाया ॥ ४ ॥ हे भारत ! तब उस सर्पपर गंगा ने क्रोध किया और

तब सर्पसे कहा कि तू अजगर होजा ॥ ५ ॥ तब वासुकि बोला कि हे हरसम्भृते ! मैं पापी आपसे दयाकरने के योग्यहूं हे शुभलक्षणे ! तुम तो तीनों लोको की पवित्र करनेवाली पुण्य नदीहो ॥ ६ ॥ और संसारके काटनेवाली व कष्टितों के कष्टकी हरनेवाली हो स्वर्ग के फाटक पर ठहरीहुई हे देवि ! मेरे ऊपर दया करो ॥ ७ ॥ तब गंगा बोलीं कि हे नाग ! तुम महादेव के वास्ते बडी तपस्या करो तब वह ईश्वर का जिसमें परम आराधनहै ऐसे तपको करताहुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर महादेव का ध्यान करताहुआ दम से युक्त होता हुआ तदनन्तर सौ वर्ष पूरे होनेपर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ ९ ॥ आकर उसके समीप खड़े होकर स्नेहकी आवाज से बोले कि हे

परिभारत ॥ आजगरत्वमाप्नोषि उरगश्चाब्रवीत्तदा ॥ ५ ॥ वासुकिरुवाच ॥ अनुग्राह्योस्म्यहंपापो भवत्याहरसम्भृते ॥ त्रैलोक्यपावनीपुण्या सरित्त्वंशुभलक्षणे ॥ ६ ॥ संसारच्छेदनकरी आर्तानामार्तिनाशिनी ॥ स्वर्गद्वारस्थितेदेवि दयां कुरुममोपरि ॥ ७ ॥ गङ्गोवाच ॥ चरत्वंविपुलन्नाग तपोवैशङ्करम्प्रति ॥ ततस्तपश्चचारासावीश्वराराधनंपरम् ॥ ८ ॥ ततश्चध्यायतोदेवं दमयुक्तोभवत्सच ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे उपरुद्धोजगद्गुरुः ॥ ९ ॥ आगत्यतत्समीपस्थः श्लक्ष्णांवाणीमुदाहरत् ॥ वरंवरयतुश्रेष्ठं पन्नगत्वंमहाबल ॥ १० ॥ पन्नगउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुंत्रिशूलभृत् ॥ तदामेदीयतांस्थानं स्वकीयंवृषवाहन ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रसन्नोहंमहाबाहो रेवांगच्छशुभांत्वरम् ॥ याम्येचैवतटेपुण्ये स्नानंकृत्वाविधानतः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो वासुकिस्त्वरितान्वितः ॥ रूपेणाजगरेणाथ विवेशनर्म्मदाजले ॥ १३ ॥ मार्गेणतस्यतज्जातं जाह्नव्याःस्रोतउत्तमम् ॥ निर्धूतकल्मषस्सर्पस्सजातोनर्म्मदाजले ॥ १४ ॥ स्थापि

पन्नग ! हे महाबल ! तुम श्रेष्ठ वरको मागो ॥ १० ॥ तब नाग बोला कि हे त्रिशूलके धारण करनेवाले, देव ! जो आप वर देनेको मुझ से प्रसन्नहो तो हे वृषवाहन ! मुझे अपने स्थान को देवो ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाबाहो ! हम प्रसन्नहैं तुम कल्याणवाली नर्मदाको जल्द जावो और दक्षिणवाले किनारेपर विधान से स्नान करो ॥ १२ ॥ इतना कह महादेव अन्तर्द्धान होगये और बड़ी जल्दी से युक्त वासुकि अजगरके रूप से नर्मदा के जलमे पैठे ॥ १३ ॥ उसकी रास्ते में गंगा

का उत्तम सोता निकल आया नर्मदा के जलमें पाप जिसके धोगये ऐसा वह नाग होगया ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसने वहां नर्मदामें महादेव का स्थापन किया इसी से पृथिवी में नागेश्वर सब पापों के नाश करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ अष्टमी व चौदस को शहद से महादेव को स्नान करावे तो जैसे आग होती है ऐसे सब पापोंसे छूटा हुआ होजाताहै ॥ १६ ॥ और हे पार्थ ! पुत्रसे रहित जो मनुष्य संगममेंस्नान करते हैं वे कार्त्तवीर्य के समान उत्तम पुत्रोंको पाते हैं ॥ १७ ॥ और हे नृपनन्दन ! उपास किये हुये जो मनुष्य भक्ति से श्राद्ध को करते हैं वे अपने पितरों को नरक से तारदेते हैं ॥ १८ ॥ विशेष कर आप के स्नेह से ऐसा मैंने कहा है

तश्चेश्वरस्तत्र नर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ तेननागेश्वरोभूम्यां सर्वपापविनाशनः ॥ १५ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो जायतेह्यनलोयथा ॥ १६ ॥ अपुत्रायेनराःपार्थ स्नानंकुर्वन्तिसङ्गमे ॥ तेलभन्तेशुभान्पुत्रान्कार्त्तवीर्य्योपमानपि ॥ १७ ॥ श्राद्धंतत्रैवयेभक्त्या उपवासपरायणाः ॥ कुर्वन्तितारयन्तिस्वान्नरकान्नृपनन्दन ॥ १८ ॥ एवमाख्यातवानस्मि तवस्नेहाद्विशेषतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेचराजेन्द्र मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ १९ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले गीर्वाणैर्वन्दितंशुभम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातंकस्यचिन्मया ॥ २० ॥ स्थापितञ्चमयापुण्यं स्वर्गभोगञ्चमुक्तिदम् ॥ ज्ञानंतत्रैवमेजातं प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ २१ ॥ अन्यसूक्तंचयोध्यायेद्द्रुपदञ्चजलेजपेत् ॥ सोपिघोरादघौघाच्च मुच्यतेपाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ वाचिकैर्मानसैश्चापि कर्म्मजैरपिपाण्डव ॥ पञ्चेन्द्रियाण्यवष्टभ्य याम्यामाशाञ्चसंस्थितः ॥ २३ ॥ योजपेत्सलिलेभक्त्या इत्येवंशङ्करोब्रवीत ॥ श्राद्धंत

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मार्कण्डेश्वर को जावे ॥ १९ ॥ जो कि नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर देवताओं से भलीभांति नमस्कार किया गया गुप्त से गुप्त तीर्थ है जिसको मैंने किसी से नहीं कहा है ॥ २० ॥ स्वर्ग का भोग और मुक्ति का देनेवाला व पुण्यवाला वह लिंग मेरा थापा हुआहै महादेव के प्रसाद से मुझको वहीं ज्ञान पैदा हुआ है ॥ २१ ॥ अन्य सूक्त को जो ध्यावता है व द्रुपद मन्त्रको जलमें जपताहै हे पाण्डुनन्दन ! वह भी घोर पापों के समूह से छूटजाताहै ॥ २२ ॥ और हे पाण्डव ! पांचो इन्द्रियों को रोंक दक्षिण दिशामें बैठा हुआ ॥ २३ ॥ भक्ति से पानी में जो कहे हुये जपको करता है वह वाणी, मन और

शरीरसे किये हुये पापोंसे छूटजाता है ऐसा शङ्करजीने कहा है और हे नृपनन्दन ! भक्ति से जो वहां श्राद्ध करताहै ॥ २४ ॥ उसके पितर प्रलयतक तृप्त रहतेहैं आंवरा, बेर, बेल, अक्षत और जलसे ॥ २५ ॥ जो प्रेतोंका तर्पण करता है उसके प्रेत शुभगतिको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमार्कण्डेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर यज्ञवाटके बीच में विद्यमान बड़े सुन्दर तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ पापो का नाश करनेवाला

त्रैवयोभक्त्याकुरुते नृपनन्दन ॥ २४ ॥ पितरस्तस्यवैतृप्तायावदाहूतसम्प्लवम् ॥ आमलैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतैर्वाजलेनवा ॥ २५ ॥ तर्पयेत्तत्रयःप्रेतान्प्रेतायान्तिशुभाङ्गतिम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मार्कण्डेश्वरमहिमानुवर्णनो नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्रतीर्थंपरमशोभनम् ॥ उत्तरेनर्म्मदाकूले यज्ञवाटस्यमध्यतः ॥ १ ॥ सङ्कर्षणञ्चविख्यातं पृथिव्यांपापनाशनम् ॥ तपश्चीर्णंपुराराजन्नर्म्मदायास्तटेशुभे ॥ २ ॥ बलभद्रेणराजेन्द्र प्राणिनामुपकारकम् ॥ गीर्वाणैश्चैवतत्रैव सन्निधौनृपनन्दन ॥ ३ ॥ उमयासहितश्शम्भुस्स्थितस्तत्रैवकेशवः ॥ यस्तत्रस्नापयेद्भक्त्या जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ एकादश्यांसितेपक्षेमन्त्रेणस्नापयेच्छिवम् ॥ श्राद्धंतत्रचयोभक्त्या प्रेतानांवैप्रदापयेत् ॥ ५ ॥ सयातिपरमंस्थानं बलभद्रवचोयथा ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र मन्मथेश्वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥ स्नानमात्रो

पृथिवी में वह सङ्कर्षण नाम से प्रसिद्ध है हे राजन् ! आगे नर्मदा के पवित्र तटमें प्राणियों के उपकार करनेवाले तपको बलभद्र ने कियाहै हे राजेन्द्र ! हे नृपनन्दन ! उसके समीपही देवताओं के सहित व पार्वती के सहित महादेव और विष्णु दोनो विद्यमान है जो वहा क्रोध व इन्द्रियोंको जीतेहुये भक्तिसे नहाताहै ॥ २ । ३ । ४ ॥ और उजियाले पाखकी एकादशी को मन्त्रसे शिवको स्नान कराता है व भक्ति से जो प्रेतोंको वहां श्राद्ध देताहै ॥ ५ ॥ वह उत्तम स्थानको जाताहै ऐसा बलभद्र का

नरोराजन्यमलोकन्नपश्यति ॥ अनपत्यातुयानारी स्नापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ पुत्रंसालभतेपार्थ सत्यवन्तंदृढव्रतम् ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्मुनिःप्रयतमानसः ॥ ८ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या गोसहस्रफलंलभेत् ॥ तत्रनृत्यंप्रकुर्वन्तियेनराभक्तिमानसाः ॥ ९ ॥ गीतवादित्रसंयुक्तं रात्रौजागरणंशुभम् ॥ सहाम्बिकोमहादेवस्तुष्टोवैमन्मथेश्वरः ॥ १० ॥ [illegible]करिष्यतिसंरुष्टो यमस्तंनचपश्यति ॥ कामेनस्थापितस्तत्र एतस्मात्कारणान्नृप ॥ ११ ॥ अन्नदानेनभोराजन्की[illegible]मुत्तमम् ॥ सोपानंस्वर्गमार्गस्य पृथिव्यांमन्मथेश्वरः ॥ १२ ॥ विशेषात्तत्रसंख्यातं श्राद्धदानेनभारत ॥ अ[illegible]न्कीर्तितंफलमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं तवभक्त्यातुभारत ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरे[illegible] मन्मथेश्वरमहिमानुवर्णनोनामद्वादशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११२ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र एरण्डीसङ्गमेश्वरम् ॥ प्रख्यातंसर्वलोकेषु ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यु

वचनहै हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मन्मथेश्वर को जावे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य यमलोक को नहीं देखताहै और हे पाण्डुनन्दन ! पुत्र से रहित जो स्त्री महादेव को स्नान करावे ॥ ७ ॥ तो हे पार्थ ! वह सच्चे और पोढ़े व्रतवाले पुत्रको पाती है और हे राजन् ! मन को जीतेहुये व मौन होरहा मनुष्य वहां स्नान कर ॥ ८ ॥ व भक्ति से उपासकर गोसहस्रके फलको पाता है और भक्तिसे युक्त मनवाले जो मनुष्य वहां नाचते हैं ॥ ९ ॥ और गाने बजाने के सहित रात में जागरण करते हैं उनसे पार्वती के सहित मन्मथेश्वर महादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १० ॥ उस पर नाराज होकर यमराज क्या करसक्ते हैं उस को देख भी नहीं सक्ते हैं हे [illegible] ! [illegible] कामदेव ने वहां स्थापन किया है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! अन्नके दानसे उत्तम फल कहा गयाहै पृथिवी में मन्मथेश्वर स्वर्ग मार्गकी निसेनी है ॥ १२ ॥ [illegible] हे राजन् ! वहां श्राद्धदान व अन्नदानसे उत्तम फल विशेषसे कहा गयाहै ॥ १३ ॥ हे भारत ! तुम्हारी भक्ति से यह सब मैंने [illegible] ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे[illegible]भाषाऽनुवादेमन्मथेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ११२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

[illegible]ण्डेयजी बोले कि तदनन्तर हे राजेन्द्र ! [illegible]मेश्वर को जावे जो कि सब लोकों में ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला कहा गयाहै ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिर

बोले कि हम कारण को नहीं जानते हैं सो सब आप मुझसे कहिये बुद्धिवाले युधिष्ठिरसे ऐसे कहेगये धर्मात्मा मार्कण्डेय ॥ २ ॥ ऋषियों के समूहसे युक्त उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको कहते हुये मार्कण्डेयजी बोले कि जो पहले पार्वती,महादेव और ब्रह्माने कहा है ॥ ३ ॥ उसीको हम आपसे कहेगे आप भाइयोंके सहित सुनिये महादेवने कहा है कि हे देव ! ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रिनाम के होते हुये ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र के करनेवाले व देवता और अतिथि के पूजनेवाले हुये इस पर्वत पर उन्ही ब्राह्मण ने चन्द्रमा का स्थापन किया है ॥ ५ ॥ अनसूया नामकी उनकी स्त्री गुणोंसेयुक्त व पतिव्रता व पतिही जिसके प्राण है व पति के काम व हितमे लगी रहने-

धिष्ठिरउवाच ॥ कारणन्नैवजानेहं तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ एवमुक्तस्तुधर्म्मात्मा धर्म्मपुत्रेणधीमता ॥ २ ॥ कथयामासत त्सर्वमृषिसङ्घैस्समावृतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथितंचोमयापूर्वं शम्भुनापरमेष्ठिना ॥ ३ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि श्रू यतांभ्रातृभिस्सह ॥ महेश्वरउवाच ॥ अत्रिर्नामाह्वयोदेवमानसोब्रह्मणस्सुतः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्ररतोनित्यं देवताति थिपूजकः ॥ सोमस्संस्थापितोत्रैव कृतोविप्रेणपर्वते ॥ ५ ॥ अनसूयेतिनाम्नावै तस्यभार्य्यागुणान्विता ॥ पतिव्रतापति प्राणा पत्युःकार्य्यहितेरता ॥ ६ ॥ एवंजातस्सदाकालो नपुत्रोनचपुत्रिका ॥ अपराह्णेमहाबाहो सुखासीनौतुतौक्वचि त् ॥ ७ ॥ वदतःसुखदुःखानि दैवदत्तानियानिच ॥ अत्रिरुवाच ॥ सौम्येशुभेप्रियेकान्ते सुरूपेप्रियभाषिणि ॥ ८ ॥ पू र्णचन्द्रनिभाकारे प्रियकामेनिरालसे ॥ नत्वयासदृशीलोके त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ९ ॥ पतिपुत्रप्रियानारीसुहृज्जनहि तेरता ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयति पुत्रेणपरमागतिः ॥ १० ॥ नास्तिपुत्रसमोबन्धुः पृथिव्याञ्चैवदृश्यते ॥ असिपत्रवनेघोरे

वाली होती हुई ॥ ६ ॥ इसी तरह काल व्यतीत होता रहा उनके लड़का व लड़की कुछ न हुआ किसी समय तीसरे पहर हे महाबाहो ! वे दोनों कहीं सुखसे बैठे थे ॥ ७ ॥ प्रारब्धके दियेहुये सुख दुःखको कह रहेथे अत्रि ने कहा कि हे सौम्ये ! हे शुभे ! हे प्रिये ! हे कान्ते ! हे सुरूपे ! हे प्रियभाषिणि ! ॥ ८ ॥ हे पूर्णचन्द्रमा के समान रूपवाली ! हे प्रियकामे ! हे निरालसे ! इन चराचर तीनो लोकों में तुम्हारे बराबर कोई नहीं है ॥ ९ ॥ स्त्री वही है कि जिसको पति और पुत्र प्यारे होवें और जो अपने सम्बन्धियों के हित में रत होवे पुत्र से लोकों को जीतता है व पुत्रही से परमगति होती है ॥ १० ॥ पुत्र के बराबर पृथिवी में कोई बन्धु नही देख पडता

है जोकि घोर असिपत्रवन में गिरते हुये पिताकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥ दुर्भिक्ष व गरीबी आदि व बुढ़ापे में पुत्रही रक्षा करता है हे भद्रे! पुत्रके विना जीते हुये धनियों से भी क्या होता है ॥ १२ ॥ रोगों से दबा हुआ व घर से विरक्त भी पुत्र लोक लज्जा व नीति से डराहुआ पवित्र करसक्ता है ॥ १३ ॥ इन गुणों से युक्त चाहे निर्गुणहो व सगुणहो पुत्र जरूर होवे पुत्रसे हीन होने में इस लोक व परलोक में सुख कहां से होसक्ता है ॥ १४ ॥ दिन रात इस बातकी चिन्ता कररहे जो हम हैं तिनके अङ्ग सूखेजाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियां सूखें ॥ १५ ॥ तब अनसूया बोली कि हे विप्र! जो आपने मुझ से कहा वह सब मैं शोचा करती हूं आप

पतन्तंयोभिरक्षति ॥ ११ ॥ दुर्भिक्षेष्वपिदैन्यादौ वृद्धकालेपिपुत्रकः ॥ पुत्रंविनाचकिंभद्रे जीवितैःसधनैरपि ॥ १२ ॥ व्याधिभिःपरिभूतोपि निर्विण्णोपियदासुतः ॥ लोकलज्जानयत्रस्तःपवित्रंकर्तुमर्हति ॥ १३ ॥ एतद्गुणसमायुक्तो निर्गुणस्सगुणस्सुतः ॥ पुत्रहीनेकुतस्सौख्यमिहलोकेपरत्रच ॥ १४ ॥ अहश्चमध्यरात्रेच चिन्त्यमानश्चसर्वदा ॥ शुष्यन्तिममगात्राणि ग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ १५ ॥ अनसूयोवाच ॥ यत्त्वयासूचितंविप्र तत्सर्वंशोचयाम्यहम् ॥ तवोद्वेगकरंकार्य्यं तन्मेदहतिचेतसि ॥ १६ ॥ येचपुत्राभविष्यन्तिदीर्घायुर्गुणसंयुताः ॥ तत्कार्य्यंचसमीक्ष्येहं येनतुष्टःप्रजापतिः ॥ १७ ॥ अत्रिरुवाच ॥ तपस्तप्तंमयाभद्रे जन्मप्रभृतिदुष्करम् ॥ व्रतोपवासैर्नियमैश्शाकाहारेणसुन्दरि ॥ १८ ॥ क्षीणन्देहन्तुपश्यामि अशक्तोहंशुभानने ॥ स्थातुंशोचामिचात्मानं रहस्यंकथितंमया ॥ १९ ॥ अनसूयोवाच ॥ भर्तः पतिव्रतानारी पतिपुत्रविवर्द्धिनी ॥ त्रिवर्गसाधनासाच सेव्यासाविपुलेजने ॥ २० ॥ जपस्तपस्तीर्थयात्रापुत्रेज्याम

को घबडा देनेवाला काम मेरे चित्तको जलाता है ॥ १६ ॥ जिससे बड़ी उमरवाले व गुणों से संयुक्त पुत्र होवेंगे उस काम को हम करेंगी जिससे प्रजापति प्रसन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ तब अत्रि बोले कि हे भद्रे! हे सुन्दरि! व्रत, उपास, नियम औरशाक के भोजनसे मैंने जन्म से दुष्कर तप किया है ॥ १८ ॥ अब अपनी देहको मैं क्षीण देखता हूं इससे हे शुभानने! मैं असक्त हूं अब अपने को खडे होने में मुझको शोच विचार है क्योंकि मैंने गुप्त बात तुमसे कहदी है ॥ १९ ॥ तब अनसूया बोली कि हे भर्तः! पतिव्रता जो स्त्रीहै वह पति और पुत्रोंकी बढ़ानेवाली होती है और धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिकी करनेवालीहै इससे वह सबको पालन करने

लायक है ॥ २० ॥ जप, तप, तीर्थयात्रा और पुत्रेष्टि को गुरुलोग पुत्रका साधन कहते हैं बड़े लोगोंका कहना ठीक है ॥ २१ ॥ ऐसे दुःखमें मैं आप से आज्ञा पाऊं तो दुष्कर तप को मैं करूंगी पुत्रकी चाहनेवाली बहुत दिनों के वास्ते अभी मैं विष्णुकी शरण जाती हूँ ॥ २२ ॥ तब अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! मेरे सन्तोष की करनेवाली वाह २ हे भद्रे ! मेरी आज्ञाको पायेहुये तुम पुत्रके वास्ते तप करो ॥ २३ ॥ देवता, मनुष्य और पितरों से मुझको उऋण करो क्योंकि स्त्री के बराबर तीनों लोकों में हितकारी नहीं है ॥ २४ ॥ स्त्री के विना सुखकी देवता तारीफ नहीं करते हैं क्योंकि पति के सम्मुख होने पर आपभी सम्मुख है और उसके विमुख

न्त्रसाधनम् ॥ वदन्तिगुरवस्सर्वे यथोक्तंगुरुभाषितम् ॥ २१ ॥ अनुज्ञाताचदुःखेहं तपस्तप्स्यामिदुष्करम् ॥ पुत्रार्थि नीबहुदिनान्यहंयामिसुरोत्तमम् ॥ २२ ॥ अत्रिरुवाच॥साधुसाधुमहाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि ॥ अनुज्ञातामयाभद्रे पु त्रार्थंतपआचर ॥ २३ ॥ देवानांचमनुष्याणां पितॄणामनृणंकुरु ॥ नभार्य्यासदृशोबन्धुस्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ २४ ॥ न हिदेवाःप्रशंसन्ति भार्य्ययारहितंसुखम् ॥ सम्मुखेसम्मुखायाति विलोमेचपराङ्मुखी ॥ २५ ॥ तेनभार्य्याप्रशंसन्ति स देवासुरमानुषाः ॥ महाव्रतेमहाप्राज्ञे सत्यरूपेशुभेक्षणे ॥ २६ ॥ तपश्चरस्वशीघ्रंत्वं पुत्रार्थंचममाज्ञया ॥ एतद्वाक्या वसानेसा साष्टाङ्गंप्रणताब्रवीत् ॥ २७ ॥ त्वत्प्रसादेनविप्रेन्द्रसर्वमेतदवाप्नुयाम् ॥ हंसलीलागतिर्यान्ती लोलाक्षीवरव र्णिनी ॥ २८ ॥ विषमस्थानसूयातु प्राप्तामौनर्म्मदांनदीम् ॥ सोमनाथेनतत्तुल्यं नात्रकार्य्याविचारणा ॥ २९ ॥ येस्म रन्तिदिवारात्रौ योजनानांशतैरपि ॥ मुच्यन्तेसर्वपापेभ्योरुद्रलोकेवसन्तिते ॥ ३० ॥ नर्म्मदायास्समीपेतु द्वेतटेद्वेचयो

होने में आपभी विमुख है ॥ २५ ॥ इसीसे देवता, असुर और मनुष्य सब स्त्री की बड़ाई करते हैं इससे हे महाव्रते ! हे महाप्राज्ञे ! हे सत्यरूपे ! हे शुभेक्षणे ॥२६॥ मेरी आज्ञासे पुत्र के वास्ते तुम जल्दी तप करो इतनी बात के समाप्त होने पर साष्टांग प्रणामकर अनसूया बोलीं ॥ २७ ॥ कि हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे प्रसादसे यह सब मैं पाऊंगी इतना कह हंसकीसी चालवाली व चपलनेत्रोंवाली व उत्तम वर्णवाली ॥ २८ ॥ सङ्कटमें पड़ी हुई अनसूया नर्मदा नदी को प्राप्तहुई वह स्थान सोमनाथ के बराबर है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ दिन व रात में सौ योजन से भी जो इस स्थानका स्मरण करते हैं वे सब पापोंसे छूटजाते हैं व रुद्र-

लोक में रहते हैं ॥ ३० ॥ नर्मदा के समीप में दो योजनकी दो तरहँटी हैं वहां तप करने को नर्मदा में अनसूया ने प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ जिसके दर्शनही से पापोंका समूह नष्ट होजाताहै तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तट पर पत्तों के भोजन करनेवाली पवित्र ॥ ३२ ॥ व शाकके आहारसे नियमों मे लगी हुई बड नेत्रोंवाली सुन्दरी अनसूया उत्तम स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करती हुई ॥ ३३ ॥ महादेवी अनसूयाने ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि का सेवन किया और वर्षा में भीगे कपड़े पहने हुये चान्द्रायण व्रत को करती हुई ॥ ३४ ॥ फिर हेमन्त के आने पर जलमें वास करती हुई प्रातःकाल व सायङ्काल में स्नान व देवता आदिकों का तर्पण करती हुई ॥ ३५ ॥

प्रविशन्तीतपस्तत्ररेवायांवरवर्णिनी ॥३१॥ यस्यादर्शनमात्रेण नश्यतेपापसंचयम् ॥ ततस्तस्योत्तरेतीरे परेपर्णाशनाशुभा ॥ ३२ ॥ नियमस्थाविशालाक्षी शाकाहारेणसुन्दरी ॥ स्तुवन्तीतुततोदेवाञ्च्छुभैस्स्तोत्रैश्चसंयता ॥ ३३ ॥ ग्रीष्मेषुचमहादेवी पञ्चाग्निंसाधयेत्ततः ॥ वर्षाकालेसार्द्रवासाचरचान्द्रायणंव्रतम् ॥ ३४ ॥ हेमन्तेचततःप्राप्ते तोयवासाभवत्ततः ॥ प्रातस्स्नानंततस्सान्ध्यं कुर्य्याद्देवादितर्प्पणम् ॥ ३५ ॥ देवानामर्चनंकृत्वा होमंकृत्वायथाविधि ॥ एवंवर्षशतेप्राप्ते विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ३६ ॥ सम्प्राप्ताद्विजरूपेण एरण्ड्यास्सङ्गमम्प्रति ॥ संस्थिताअग्रतस्तस्या वेदमभ्युच्चरन्तिते ॥ ३७ ॥ अनसूयाजपंत्यक्त्वा निरीक्षन्तीमुहुर्मुहुः ॥ उत्थितासाविशालाक्षी अर्घंदत्त्वायथाविधि ॥ ३८ ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलंतपः ॥ दर्शनेनतुविप्राणां सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणंततःकृत्वा साष्टाङ्गंप्रणताब्रवीत् ॥ कन्दमूलफलैर्दिव्यैरद्याहंतर्प्पयामिवः ॥ ४० ॥ विप्राऊचुः ॥ तपसातुविचित्रेण तव

देवताओं का पूजन व विधान से होम करती हुई इस प्रकार सौ वर्ष होजानेपर विष्णु, महादेव और ब्रह्मा ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणके रूप से एरण्डी के सङ्गम में प्राप्त होते हुये और अनसूया के आगे खडे होकर वे सब वेदका उच्चारण करने लगे ॥ ३७ ॥ जपको छोड बार २ देखती हुई बड़े नेत्रोंवाली अनसूया विधि मे अर्घ देकर उठीं और बोलीं ॥ ३८ ॥ कि आज मेरा जन्म सफल होगया और आज मेरा तप सफल होगया क्योंकि ब्राह्मणों के दर्शन से सब पापोंमे छूटजाता है ॥ ३९ ॥ फिर प्रदक्षिणा व साष्टाङ्ग प्रणामकर बोलीं कि आज हम दिव्य कन्द, मूल और फलों से आप लोगों को तृप्त करेंगी ॥ ४० ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे सुव्रते !

तुम्हारे विचित्र तप से व तुम्हारे सत्य से हम लोग सब मनोरथों से तृप्त हैं और तपस्विनी जो आपहो तिनके दर्शन से अधिक तृप्त हैं ॥ ४१ ॥ हम लोगों को आश्चर्य हुआहै कि तुम किसवास्ते तप करती हो क्या स्वर्ग और मोक्षकी रक्षाके वास्ते दुष्कर तप करती हो ॥ ४२ ॥ तब अनसूया बोली कि हे ब्राह्मणो ! तपस्या से स्वर्ग सिद्ध होताहै व तपस्याही से परमगति है और तपस्यासे सभी कामो को प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि दुबली देहवाली व थोडी उमरवाली व बडे नेत्रोंवाली व चिकने अङ्गोंवाली व रूपसे भरीहुई व हंसकीसी चालवाली तुम क्यों अपनेको सुखा रहीहो ॥ ४४ ॥ तब अनसूया बोलीं कि जवानी ही से तप करना चाहिये

सत्येनसुव्रते ॥ तृप्तावैसर्वकामैस्तु तपस्विन्याश्चदर्शनात् ॥ ४१ ॥ अस्माकंकौतुकंजातं किमर्थंतप्यतेत्वया ॥ स्वर्ग मोक्षंतुरक्षार्थंतपस्तप्यसिदुष्करम् ॥ ४२ ॥ अनसूयोवाच ॥ तपसासिध्यतेस्वर्गस्तपसापरमागतिः ॥ तपसाचैवभोविप्रा स्सर्वकामसमवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ तन्वीश्यामाविशालाक्षीस्निग्धाङ्गीरूपसंयुता ॥ हंसलीलागतिस्त्वं हि किञ्चात्मानंविशोषसि ॥ ४४ ॥ अनसूयोवाच ॥ युवत्वेचतपःकार्यं युवत्वेपरमागतिः ॥ युवत्वेचसुतोत्पत्तिर्वृद्ध त्वेसर्वमप्रियम् ॥ ४५ ॥ विप्राऊचुः ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे वरंप्रार्थयसुव्रते ॥ यत्त्वयाचाभिलषितं तत्सर्वंप्रददाम्यहम् ॥ ४६ ॥ अहंविष्णुरहंरुद्रो ह्यहंसाक्षात्पितामहः ॥ गूढरूपधरालोके स्वचिह्नैरुपलक्षिताः ॥ ४७ ॥ तस्यावाक्यावसानेतु स्वरूपंदर्शयन्तिते ॥ स्वैःस्वैरूपैस्स्थितादेवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ४८ ॥ चतुर्भुजोवासुदेवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ अतसीपुष्पवर्णस्तु पीतवासाजनार्दनः ॥ ४९ ॥ गरुत्मान्वाहनंयस्य श्रियाचसहितोहरिः ॥ प्रसन्नवदनःश्रीमाञ्छ्रीवत्स

व जवानी ही में परमगति होती है और जवानी ही में पुत्रोंकी उत्पत्ति होती है बुढापे में सबही अप्रिय होजाता है ॥ ४५ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे महाप्राज्ञे ! वाह २ हे सुव्रते ! वरमागो जो तुमने अपने मनमें अभिलाप कियाहो वह सब हम देवेंगे ॥ ४६ ॥ हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं अपने २ चिह्नों से युक्त लोक में गुप्तरूपको धरे हैं ॥ ४७ ॥ अनसूया की बातके समाप्त होने पर उन्होंने अपने २ रूपोंको दिखाया करोडों सूर्यों के समान तेजवाले तीनों देवता अपने २ रूपों से खड़े होगये ॥ ४८ ॥ चारभुजावाले व शंख, चक्र और गदा को धरेहुये, अलसीके फूल के समान रङ्गवाले व पीले वस्त्रवाले जनार्दन, वासुदेव ॥ ४९ ॥ गरुड़ जिन

रूपोऽव्यवस्थितः ॥ ५० ॥ सितवासामहाभागश्चतुर्वदनसंयुतः ॥ हंसोपरिसमारूढो ह्यक्षमालाकरोऽनघ ॥ ५१ ॥ आगतोनर्म्मदातीरे ब्रह्मालोकपितामहः ॥ वृषभन्तुसमारूढो दशबाहुसमन्वितः ॥ ५२ ॥ भस्मोद्धूलितगात्रस्तु पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥ जटामुकुटसंयुक्तश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ५३ ॥ एतद्रूपधरोदेवस्सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ अनसूयातुतत्रैव देवानांदर्शनात्परम् ॥ ५४ ॥ वेपमानारहस्येतु तान्पश्यन्तीमुहुर्मुहुः ॥ अहंब्रह्माह्यहंविष्णुरहंरुद्रःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ आनन्दितातुसादेवी दृष्ट्वैवैतान्महाव्रत ॥ अनसूयोवाच ॥ किंव्यापाराश्चकेयूयं विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ५६ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामीमंप्रश्नंकथयन्तुते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रावृट्कालोह्यहंप्रोक्त आपश्चैवप्रकीर्तितः ॥ ५७ ॥ मेघरूपोह्यहंप्रोक्तो वर्षामिवसुधातले ॥ अहंसर्वाणिभूतानि प्राक्सन्ध्याह्युदितेरवौ ॥ ५८ ॥ एतस्मात्कारणाद्भावरहस्यंकथितंमया ॥ विष्णुरुवाच ॥ हेमन्तस्त्वाचविहितं विष्णुरूपंचराचरम् ॥ ५९ ॥ पालनीयंजगत्सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ रु

का वाहन है और लक्ष्मी के सहित, प्रसन्नमुखवाले व शोभावाले कल्याणरूप विष्णु जी वर्त्तमान देखपड़े ॥ ५० ॥ और हे अनघ ! सफेद कपडेवाले व बड़े भाग्यवाले,चारमुखोंसे युक्त, हंसपर सवार, अक्षमालाको हाथमें लियेहुये ॥५१॥ लोकों के पितामह ब्रह्मा नर्मदाके तीर आतेहुये और बैलपर सवार दश भुजाओंसे सयुक्त ॥ ५२ ॥ भस्म से धुरियाली देहवाले व पाच मुख और तीन नेत्रोंवाले व जटाओं के मुकुट से युक्त आधे चन्द्रमा को शिर पर धरे हुये ॥ ५३ ॥ ऐसे रूपको धरे हुये सर्वव्यापी महादेव देखपडे देवताओं के दर्शन के बाद वहीं एकान्त में कांपती व बार २ उनको देखरहीं अनसूया देवी हम ब्रह्मा, हम विष्णु और हम रुद्रहैं ऐसे कहरहे उन देवताओंको देख आनन्दित होगई हे महाव्रत ! फिर अनसूया बोलीं विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा जो आप लोग हैं तो तुम्हारा क्या व्यापार है और तुम कौनहो ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ सो हम सुनाचाहती हैं इस हमारे प्रश्न को आप कहें तब ब्रह्मा बोले कि हम वर्षाकाल कहेगये हैं और जल हमीं कहेगये हैं ॥ ५७ ॥ और मेघरूप हमीं कहेगये हैं पृथिवी पर जल हमी बरसते हैं सब प्राणी हमीं हैं और सूर्य के उदय होने पर प्रातःकालकी सन्ध्या हमीं हैं ॥ ५८ ॥ इसी कारण से हमने अपने होने का गुप्त वृत्तान्त कहदिया तब विष्णु बोले कि हेमन्तऋतु होने से सब चराचर जगत् विष्णुरूपही है ॥ ५९ ॥ सब जगत् पालना करने के योग्य है यही

विष्णु का उत्तम माहात्म्य है तब महादेव बोले कि सब प्राणियों के क्षयकरनेवाले ग्रीष्मऋतु हमीं कहेगये हैं ॥ ६० ॥ हे तपस्विनि ! रुद्ररूप हम सब जगत् को सुखाते हैं इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रही हे महीपते ॥ ६१ ॥ तीनों सन्ध्या, तीनों देवता, तीनों काल और तीनों अग्नियांहैं फिर एक रूपको प्राप्तहोरहे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बोले ॥ ६२ ॥ कि हे भद्रे ! जो तुम्हारे मन मेंहो उस वरको हम तुम्हे देवेंगे तब अनसूया बोलीं कि दुनिया में लोग मुझे बांझ कहते हैं ॥ ६३ ॥ सो जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अपनी प्रसन्नता से सुमुख हैं अर्थात् बड़ेतेजवाले भी तीनों देवता मुझपर प्रसन्न हैं ॥ ६४ ॥ और इस तीर्थ में मेरे समीप आये हैं तो इस समय में मुझ

द्रउवाच ॥ ग्रीष्मकालोह्यहंप्रोक्तस्सर्वभूतक्षयङ्करः ॥ ६० ॥ शोषयामिजगत्सर्वं रुद्ररूपस्तपस्विनि ॥ एवंब्रह्माचविष्णुश्चरुद्रश्चैवमहीपते ॥ ६१ ॥ तिस्रःसन्ध्यास्त्रयोदेवास्त्रयःकालास्त्रयोऽग्नयः ॥ तथाब्रह्माचविष्णुश्च रुद्रश्चैकत्वमागताः ॥ ६२ ॥ वरंददामितेभद्रे यत्तेमनसिवर्तते ॥ अनसूयोवाच ॥ वन्ध्यालोकैरहंलोके ख्याप्यमानाचसर्वदा ॥ ६३ ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च प्रसादात्सुमुखायतः ॥ परितुष्टास्त्रयोदेवा दुर्द्धर्षापिममोपरि ॥ ६४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेतुसान्निध्यं वरंददतुमेऽधुना ॥ देवाऊचुः ॥ एवंभवतुतेवाक्यं यत्त्वयाप्रार्थितंशुभे ॥ ६५ ॥ प्रत्यक्षावैष्णवीमाया एरण्डीचैवनामतः ॥ अनसूयोवाच ॥ यदितुष्टास्त्रयोदेवा ममभक्तिप्रबोधिताः ॥ ६६ ॥ ममपुत्राभवन्त्वत्र हरिरुद्रपितामहाः ॥ विष्णुरुवाच ॥ अर्थदाःपुत्रतांयान्ति नकदाचिच्छ्रुतंमया ॥ ६७ ॥ भद्रेददामितान्पुत्रान्देवतुल्यपराक्रमान् ॥ पितृतुल्यगुणोपेतान्सोमयाजिबहुश्रुतान् ॥ ६८ ॥ अनसूयोवाच ॥ ईप्सितन्तुप्रदातव्यं यन्मयाप्रार्थितंहरे ॥ नान्यथातत्त्वकर्तव्यं निवसन्तु

को वरदेवें तब देवता बोले कि हे शुभे ! ऐसाहीहो तुम्हारा वचन सत्य होवे जो तुमने प्रार्थना की है वह सब होगी ॥ ६५ ॥ एरण्डी जिसका नाम है ऐसी यह विष्णुकी माया प्रत्यक्ष है तब अनसूया बोलीं कि हमारी भक्ति मे जगेहुये जो तीनों देवता मुझपर प्रसन्न होवें ॥ ६६ ॥ तो विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा मेरे पुत्र होवें तब विष्णु बोले कि वरके देनेवाले पुत्र होते हैं ऐसा हमने कभी नहीं सुनाहै ॥ ६७ ॥ हे भद्रे ! हम ऐसे पुत्र तुमको देवेंगे कि जो देवताओंके तुल्य पराक्रमवाले व पिताके तुल्य गुणोंवाले व सोमयज्ञ के करनेवाले व बहुश्रुत होवें ॥ ६८ ॥ तब अनसूया बोलीं कि हे हरे ! जो मेरे मनमें है व जो मैंने मांगाहै वह देना चाहिये उससे उलटा नहीं

करना चाहिये आप लोग मेरे उदर में वास करें ॥ ६९ ॥ तब भगवान् बोले कि हे शोभने ! आगे भृगुके संवाद में मुझको गर्भवासके वास्ते कहागया था उसका पार हम नहीं देखते हैं ॥ ७० ॥ बल्कि आगे के वृत्तान्त को सुधकररहे हम बार २ चिन्ता किया करते हैं ऐसेही विचार कररहे ब्रह्मा और महादेव ने भी कहा ॥ ७१ ॥ कि हे सुशोभने ! विना योनि से पैदाहुये हम तुम्हारे पुत्र होवेंगे क्योंकि हे वरानने ! देवतालोग योनिवास को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ इतना कह अनसूया के सहित प्रत्यक्ष हुये वे तीनों देवता चलेगये हे पार्थ ! नर्मदाके उत्तरवाले तटपर यह वृत्तान्त हुआ ॥ ७३ ॥ वरको पाये हुई अनसूया अपने पति के तीर माहेन्द्र पर्वत पर

ममोदरे ॥ ६९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पूर्वन्तुभृगुसंवादे गर्भवासउपार्जितः ॥ तस्याहंचैवपारन्तु नचपश्यामिशोभने॥ ७० ॥ स्मरमाणःपुरावृत्तं चिन्तयामिपुनःपुनः ॥ एवंसञ्चिन्त्यमानौहि पितामहमहेश्वरौ ॥ ७१ ॥ अयोनिजाभविष्यामस्तवपुत्रास्सुशोभने ॥ योनिवासञ्चवैदेवा नैवयान्तिवरानने ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वाचतयासार्द्धं प्रत्यक्षास्तेभवंस्तदा ॥ त्रयोदेवागताःपार्थ नर्मदायोत्तरेतटे ॥ ७३ ॥ प्राप्तावरन्तुसादेवी प्रियंमाहेन्द्रपर्वते ॥ क्षीणदेहाचसानारी शुष्कदेहासुदारुणा ॥ ७४ ॥ कृतयज्ञोपवीतासा तपोनिष्ठाशुभेक्षणा ॥ शिलातलेनिषण्णासापश्यत्कान्तंमहाव्रतम् ॥ ७५ ॥ हृष्टातुष्टामहादेवी तिष्ठकान्तेतिचाब्रवीत् ॥ तान्दृष्ट्वासमुनिर्धीमान्पुनःकान्तामुवाचह ॥ ७६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे अनसूयेमहाव्रते ॥ असाध्यंसर्वनारीणां वरंप्राप्तासिदुर्लभम् ॥ ७७ ॥ अनसूयोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्महर्षेहं वरंप्राप्ताचदुर्लभम् ॥ तेनाहंतेप्रयच्छामि पुत्रानृषितपोधनान् ॥ ७८ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी हर्षेणमहतायुता ॥ आ

चलीगई दुबली, सूखी व खरखरी देहवाली व यज्ञोपवीत को पहने हुये तपकरनेवाली व अच्छे नेत्रोंवाली वे अनसूया शिलापर बैठी हुईं बड़े व्रतवाले अपने पति को देखती हुई ॥ ७४।७५ ॥ और बड़ी प्रसन्न व सन्तुष्ट अनसूया देवी हे कान्त ! खड़ेहो ऐसे कहती हुई उनको देख बड़े बुद्धिमान् अत्रिमुनि अपनी स्त्री से बोले ॥७६॥ अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! हे महाव्रते ! हे अनसूये ! वाह २ सब स्त्रियों को असाध्य व दुर्लभ वरको तुमने पाया है ॥ ७७ ॥ तब अनसूया बोलीं कि हे महर्षे ! आपके प्रसादसे दुर्लभ वरको मैंने पायाहै उससे ऋषि व तपस्याके करनेवाले पुत्रोंको हम तुमको देवेंगी ॥७८॥ऐसे कह बड़े आनन्दसे युक्त व मङ्गलरूप अनसूयाने तब

अपने पतिको देखा ॥ ७९ ॥ देखतेही अत्रि के माथे पर एक शुभ मण्डल पैदा होगया जोकि नव हजार योजन तक प्रकाश करनेवाली किरणों के जालसे युक्त ॥ ८० ॥ व कदम्ब के गोलाके समान आकारवाला है उससे तिगुना उसका परिमण्डल होता हुआ उसके बीच में दिव्यरूपको धरेहुये देवताओं का स्वामी व सोने का सा रंगवाला व करोडों सूर्यों के समान प्रकाशवाला पुरुष देखपडा वे साक्षात् ब्रह्माही अनसूया के पहले पुत्र होतेहुये ॥ ८१ । ८२ ॥ हे नृपात्मज ! चन्द्रमा व सोम नाम से प्रसिद्ध सोलह कलाओं से युक्त व सबसे श्रेष्ठ प्यारा पुत्र होताहुआ ॥ ८३ ॥ परेवा, दुइज, तीज, चौथि, पञ्चमी, छठ, सप्तमी तथा अष्टमी ॥ ८४ ॥ नवमी,

लोकयत्तदाक्रान्तं तेनापिशुभदर्शना ॥ ७९ ॥ दर्शनादेवसञ्जातं ललाटेमण्डलंशुभम् ॥ नवयोजनसाहस्ररश्मिजालसमावृतम् ॥ ८० ॥ कदम्बगोलकाकारं त्रिगुणंपरिमण्डलम् ॥ तस्यमध्येतुदेवेशः पुरुषोदिव्यरूपधृक् ॥ ८१ ॥ हेमवर्णस्सवैदेवस्सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ पूर्वपुत्रोऽनसूयायास्साक्षाद्देवःपितामहः ॥ ८२ ॥ चन्द्रमाइतिविख्यातः सोमःपुत्रोनृपात्मज ॥ इष्टःपुत्रोवरीयांस्तु कलाषोडशसंयुतः ॥ ८३ ॥ प्रतिपच्चद्वितीयाच तृतीयाचतथानृप ॥ चतुर्थीपञ्चमीषष्ठी सप्तमीचाष्टमीतथा ॥ ८४ ॥ नवमीदशमीचैव तथाचैकादशीपरा ॥ द्वादशीचत्रयोदशी चतुर्दशीततःपरम् ॥ ८५ ॥ ततःपञ्चदशीदेवी पूर्णमासीप्रकीर्तिता ॥ अमावास्यातुविख्याता अथसाषोडशीकला ॥ ८६ ॥ चतुर्विधस्यलोकस्य सूक्ष्मोभूत्वावरानने ॥ आप्यायतेजगत्सर्वं सोमोऽयंसचराचरम् ॥ ८७ ॥ सुरासुराश्चगन्धर्वा राक्षसाःपन्नगास्तथा ॥ पिशाचाश्चतथादित्याः पितरश्चपितामहाः ॥ ८८ ॥ सर्वेतमुपजीवन्ति हुतंद्रव्यंतुतत्स्थितम् ॥ वनस्पतिगतेसोमे यश्छिन्द्याच्चवनस्पतिम् ॥ ८९ ॥ भुङ्क्तेदुःखंचवैमूढो दहत्यब्दकृतंशुभम् ॥ वनस्पतिगतेसोमे योमदेहन्त

दशमी, एकादशी, द्वादशी, तेरस, चौदस ॥ ८५ ॥ तदनन्तर पन्द्रहवीं पूर्णमासी कहीगईहै और सोलहवीं कला अमावसहै ॥ ८६ ॥ हे वरानने ! यह चन्द्रमा सूक्ष्म होकर चार प्रकार के जीवोंवाले सम्पूर्ण चराचर जगत् को बढाताहै ॥ ८७ ॥ देवता, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पिशाच, आदित्य, पितर और पितामह ॥ ८८ ॥ ये सब इसी से जीते हैं और होमीहुई चीज चन्द्रमाही मे रहती है चन्द्रमा को वनस्पति में प्राप्तहुये पर जो वनस्पति को काटता है ॥ ८९ ॥ वह मूढ अपने सालभर के किये

हुये पुण्यको जलाता है और दुःख भोगता है वे चन्द्रमाको वनस्पति में प्राप्तहुये पर जो दतून करता है॥ ९० ॥ उसने मानो चन्द्रमाको खाडाला और अपने पितरों के वंशको नाश करदिया और हे राजेन्द्र ! अमावस के दिन जो विधि से स्नान करता है॥ ९१ ॥ तो हे विशालाक्षि ! उसके पितरोंकी सालभर तक परमगति रहतीहै सोना, चांदी और कपडेको जो ब्राह्मणोंको देताहै ॥ ९२ ॥ तो हे राजन्! वह सब लाख गुनेको पाताहै इसमें संशय नहींहै ऐसे गुणोंसे युक्त चन्द्रमारूप ब्रह्मा होते हुये ॥ ९३ ॥ अनसूया का आनन्द देनेवाला प्रथम पुत्र यह हुआ अब हे महाभाग ! दूसरा दुर्वासा नामका पुत्र ॥ ९४ ॥ सृष्टिके संहार करनेवाले स्वय साक्षात् महा-

धावनम् ॥ ९० ॥ चन्द्रमाभक्षितस्तेन पितृवंशस्तुघातितः ॥ अमावास्यान्तुराजेन्द्र स्नानंकुर्य्याद्यथाविधि ॥ ९१ ॥ अब्दमेकंविशालाक्षि पितॄणांपरमागतिः ॥ हिरण्यंरजतंवस्त्रं योददातिद्विजातिषु ॥ ९२ ॥ सर्वंलक्षगुणंराजल्लँभते नात्रसंशयः ॥ एतद्गुणविशिष्टोसौ सोमरूपःप्रजापतिः ॥ ९३ ॥ सञ्जातःप्रथमःपुत्रोऽनसूयायास्तुनन्दनः ॥ द्विती यस्तुमहाभाग दुर्वासानामनामतः ॥ ९४ ॥ सृष्टिसंहारकर्ताच स्वयंसाक्षान्महेश्वरः ॥ इन्द्रोपिशापितस्तेन द्वितीये नवरानने ॥ ९५ ॥ द्वितीयस्यतुपुत्रस्य सम्भवःकथितोमया ॥ दत्तात्रेयस्तुनाम्नावै तृतीयोमधुसूदनः ॥ ९६ ॥ जग द्व्यापीजगन्नाथस्स्वयन्देवोजनार्दनः ॥ अवतीर्णोमहाभागब्रह्मशम्भुसमन्वितः ॥ ९७ ॥ पुत्रप्राप्तिपदंतीर्थं नर्म्मदायो त्तरेतटे ॥ अनसूयाकृतंपार्थ सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे एरण्डीतीर्थमहिमानुवर्णनो नामत्रयोदशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवजी आपही होतेहुये उन द्वितीय पुत्र दुर्वासाजी ने इन्द्रको भी शाप दिया है॥ ९५ ॥ दूसरे पुत्रकी उत्पत्ति मैंने कही तीसरे पुत्र दत्तात्रेय नाम से विष्णु होतेहुये ॥ ९६ ॥ जगत् के व्यापी व जगत् के नाथ स्वयं साक्षात् विष्णु भगवान् ब्रह्मा और महादेव समेत अवतार लेतेहुये हे महाभाग ! ॥ ९७ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले तटपर पुत्रप्राप्तिपद नामका तीर्थ है हे पार्थ ! अनसूया का बनाया हुआ वह सब पापोंका क्षय करनेवालाहै ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे एरण्डीतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! इसके बाद तीनों लोको में प्रसिद्ध व सब पापोंका क्षय करनेवाला उत्तम सौवर्ण तीर्थ है ॥ १ ॥ उस सङ्गमके समीप नर्मदा मे स्नान दुर्लभ है और हे नराधिप ! उस पुण्यक्षेत्र में वह स्थान हाथ भर का है ॥ २ ॥ उस सुवर्णशिलक में स्नानकर बडी अच्छी शान्ति को प्राप्त होताहै सूर्य की मूर्तिको बनाकर ॥ ३ ॥ घी मिले बेल व बहुत बेलपत्रों से अग्निमें हवनकरे और यह कहे कि जगत्के नाथ इससे प्रसन्न होवे और मेरा रोग हमेशाको जाता रहे ॥ ४ ॥ अगर ब्राह्मणों से उसका जवाब देदिया जावे तो यज्ञके फलको पावे और वहां के दानसे मरकर प्रसन्नचित्त स्वर्ग को पाता है ॥ ५ ॥ और हे नृदेव ! उपास

मार्कण्डेयउवाच ॥ एतस्यानन्तरंपार्थ सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषु सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ रेवायांदुर्लभंस्नानं सङ्गमस्यसमीपतः ॥ विभक्तंहस्तमात्रञ्च पुण्यक्षेत्रेनराधिप ॥ २ ॥ सुवर्णशिलकेस्नात्वा शान्तिंयाति परांशुभाम् ॥ निर्मित्वाभास्करन्देवं होतव्यन्तुहुताशने ॥ ३ ॥ विल्वेनघृतमिश्रेण विल्वपत्रेणभूरिणा ॥ प्रीयतांहिजगन्नाथो व्याधिर्नश्यतुमेसदा ॥ ४ ॥ द्विजेभ्यश्चेत्प्रयुक्तंस्याद्यागस्यफलमाप्नुयात् ॥ तत्रदानेनप्रीतात्मा मृतःस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ शुक्लपक्षेतथाष्टम्यां सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं नृदेवभक्तितोनरः ॥ ६ ॥ समुद्धरेत्कुलेतत्र दशपूर्वान्दशापरान् ॥ काञ्चनंवापियोदद्याद्धेनुंचैवसुशोभनाम् ॥ ७ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ पूजयित्वाशिवंतत्र शत्रूणांविजयोभवेत् ॥ ८ ॥ पुत्रवान्गुणवांश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ इत्येवंकथितंराजन्सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेतीर्थं करण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रख्यातंसर्वलोकेषु नर्म्मदायो

किये व इन्द्रियो को जीतेहुये जो मनुष्य उजियाले पाखकी अष्टमी को वहां भक्ति से श्राद्ध करता है ॥ ६ ॥ वह वहीं अपने कुलके आगे पीछेवाले दश २ पुरुषों को उद्धार करता है और जो सोना व अच्छी गऊको देता है ॥ ७ ॥ वह अतिउत्तम स्थानको जाता है जहां महादेवजी हैं वहां महादेवका पूजनकरके शत्रुओं का विजय होता है ॥ ८ ॥ और सब रोगो से रहित, पुत्र व गुणोंवाला होता है हे राजन् ! यह उत्तम सौवर्ण तीर्थ कहागया है ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि इसी बीच मे सब

लोकों में प्रसिद्ध नर्मदाके उत्तरवाले तटपर उत्तम करण्डेश्वर तीर्थ है ॥ १० ॥ जोकि सब पापों व सब दुःखोंका हरनेवाला व श्रेष्ठ कहागयाहै हे राजेन्द्र ! तदनन्तर मनुष्यो के पापोंके नाश करनेवाले अतिउत्तम दिव्य सौभाग्यकरण नाम के तीर्थ को जावे हे नृपनन्दन ! वहा जो अभागी स्त्री व पुरुष ॥ ११ । १२ ॥ स्नानकर महादेव और पार्वती का पूजन करता है उसका सौभाग्य होजाता है इन्द्रियों को जीतेहुये व तीजको दिनरातका उपास कियेहुये ॥ १३ ॥ वहां अच्छे रूपवाले सपत्नीक ब्राह्मण को निमन्त्रण करे और सुगन्धित मालाओं से उसे भूषित व फूल और धूप से अधिवासित कर ॥ १४ ॥ खीर व खिचड़ी को भक्ति से खिलावे योग्यता के

त्तरेतटे ॥ १० ॥ सर्वपापहरंप्रोक्तं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र तीर्थपरमशोभनम् ॥ ११ ॥ सौभाग्यकरणं दिव्यं नराणांपापनाशनम् ॥ तत्रयादुर्भगानारी नरोवानृपनन्दन ॥ १२ ॥ स्नात्वार्चयेदुमारुद्रं सौभाग्यंतस्यजायते ॥ तृतीयायामहोरात्रं सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ निमन्त्रयेद्द्विजंतत्र सपत्नीकंसुरूपिणम् ॥ गन्धमाल्यैरलंकृत्य पुष्पधूपाधिवासितम् ॥ १४ ॥ भोजयेत्पायसान्नेन कृशरेणाथभक्तितः ॥ भोजयित्वायथान्यायं प्रदक्षिणमथाचरेत् ॥ १५ ॥ त्वन्तुदेवोमहादेवसपत्नीकोवृषध्वज ॥ यथातेदेवदेवेश नवियोगःकदाचन ॥ १६ ॥ सोमनाथाख्यकार्पण्यात्तंध्यायामीहचिन्तयन् ॥ ज्येष्ठेशुक्लेतृतीयायां सौभाग्येनर्म्मदाजले ॥ १७ ॥ स्नात्वादत्त्वाचसुभगा नप्रियेणावियुज्यते ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ नदौर्भाग्यंनदारिद्र्यं नशोकोनचदुर्गतिः ॥ १८ ॥ एतत्सर्वंभवेद्येन तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दौर्भाग्यंदुर्गतिश्चैव दारिद्र्यंशोकवर्द्धनम् ॥ १९ ॥ वैधव्यंसप्तजन्मानि जायतेनयुधिष्ठिर ॥ कर्म्मणाये

साथ भोजन करवाके फिर उनकी प्रदक्षिणा करे ॥ १५ ॥ और कहे कि हे वृषध्वज, महादेव ! आप तो सपत्नीक देवहो हे देवदेवेश ! जैसे आपका कभी वियोग नहीं होता है वैसेही मेरा भी वियोग मतहोवे ॥ १६ ॥ क्योंकि हे सोमनाथाख्य ! मैं दीनता से आपही की चिन्ता व ध्यान करताहूं जेठ सुदी तीजको सौभाग्य तीर्थबिषे नर्मदाके जलमे ॥ १७ ॥ स्नान व दान कर अपने पतिसे कभी वियोगको नहीं प्राप्त होती है तब युधिष्ठिरजी बोले कि कुरूपता,दरिद्र,शोक और दुर्गति ये सब जिससे नहीं होते हैं वह सब मुझ से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि कुरूपता, दुर्गति, दरिद्र, शोक ॥ १८।१९ ॥ और विधवापन सातजन्मतक नहीं होताहै हे युधिष्ठिर ! जिस कर्म से

पापोंका क्षय होताहै उसको हम तुमसे कहते हैं ॥ २० ॥ विशेष करके जेठ मासके उजियाले पाखकी तीजको वहां जो भक्ति से स्नानकर पञ्चाग्नि तापता है ॥ २१ ॥ वह भी सब पापों से छूटजाता है इसमें संशय नहीं है और महादेव व पार्वती के समीप जो गूगुल जलाता है ॥ २२ ॥ उस कामके करने पर ब्राह्मण को कहेहुये फल होते हैं और मरने पर स्वर्गको प्राप्तहोता है ऐसा शङ्कर जी ने कहाहै ॥ २३ ॥ सफेद, लाल और पीले अनेक अच्छे कपड़ों से ब्राह्मणी व ब्राह्मणो को पहिनाय व अनेक प्रकारके अत्युत्तम फूल, चन्दन, धागा और धूप से यथाविधि पूजन कर व गले में सूत्र (यज्ञोपवीत) पहिनाय उनके केसर लगावे ॥ २४।२५ ॥

नपापानां क्षयस्तच्चवदामिते ॥ २० ॥ ज्येष्ठेमासेसितेपक्षे तृतीयायांविशेषतः ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्या पञ्चाग्निंसाधयेत्तपः ॥ २१ ॥ सोपिपापैरशेषैस्तु मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ गुग्गुलुंदाहयेद्यस्तु गौरीशिवसमीपतः ॥ २२ ॥ तस्मिन्कर्माणिविप्रस्य उक्तानिभवतेततः ॥ देहपातेकृतेस्वर्गमित्येवंशङ्करोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ श्वेतैरक्तैस्तथापीतैर्वस्त्रैश्चविविधैःशुभैः॥ब्राह्मणीर्ब्राह्मणांश्चैव पूजयित्वायथाविधि॥ २४॥पुष्पैर्नानाविधैश्चैव गन्धधूपैःसुशोभनैः ॥ कण्ठेसूत्रंसमाधाय कुङ्कुमेनविलेपयेत् ॥ २५ ॥ कल्पयित्वास्त्रियंगौरीं ब्राह्मणंशिवरूपिणम् ॥ ताभ्यांदद्यात्समादृत्य दानमुत्सृज्यवारिणा ॥ २६ ॥ कर्णवेष्टन्त्वङ्गदंच काञ्चनींमुद्रिकांतथा॥ सप्तधान्यंतथादेयं भोजनंनृपसत्तम ॥ २७॥ अन्यानिचैवदानानि तस्मिंस्तीर्थेनरोत्तम ॥ सर्वदानैश्चयत्पुण्यं तत्पुण्यंत्रिगुणंभवेत् ॥ २८ ॥ तत्रसाहस्रगुणितं नात्रकार्य्याविचारणा ॥ शङ्करेणसमन्तत्र भुङ्क्तेभोगाननुत्तमान् ॥ २९ ॥ सौभाग्यंतस्यविपुलं जायतेनात्रसंशयः ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं निर्धनोधन

स्त्री को पार्वती और ब्राह्मण को महादेव मानकर व भलीभांति आदर करके उनके लिये जल सहित दानको त्यागकरदेवे ॥ २६ ॥ फिर हे नृपसत्तम ! कुण्डल, बजुल्ला, सोनेकी अंगूठी, सतनजा और भोजन देवे ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम ! उस तीर्थमे और दानों को भी देवे सब दानों से जो पुण्य होता है उससे तिगुना पुण्य तीर्थ मे ॥ २८ ॥ और इस तीर्थ मे हजार गुना होता है इसमें कुछ विचार नही करना चाहिये और वह महादेवके समान वहां अत्युत्तम भोगों को भोगताहै ॥ २९ ॥ और

उसका बड़ा सौभाग्य होता है इसमें संशय नहीं है पुत्र से रहित मनुष्य पुत्रको और निर्द्धन धन को पाता है ॥ ३० ॥ कामनाओं का देनेवाला यह तीर्थराज नर्मदा पर वर्त्तमान है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेसौभाग्यतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर दरिद्र के नाशकरनेवाले व इक्कीस पीढ़ियों के तारनेवाले उत्तम भाण्डारतीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां कुबेर ने तप किया उनसे ब्रह्माजी खुश हुये वहीं कुबेर ने अपने धनके दान से अक्षय धनको पाया ॥ २ ॥ वहां जाकर व स्नानकर जो धनका दान करताहै उसके धनका नाश

माप्नुयात् ॥ ३० ॥ कामदंतीर्थराजन्तु नर्म्मदायांव्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेसौभाग्यतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र भाण्डारंतीर्थमुत्तमम् ॥ दारिद्र्यभेदकरणं पुरुषांश्चैकविंशतिम् ॥ १ ॥ धनदेनतपस्तप्तं प्रसन्नःपद्मसम्भवः ॥ तत्रैवस्वस्वदानेन प्राप्तंवित्तमनन्तकम् ॥ २ ॥ तत्रगत्वातुयोभक्त्या स्नात्वावित्तं प्रयच्छति ॥ तस्यवित्तपरिच्छेदो नभवेच्चकदाचन ॥ ३ ॥ तस्यैवानन्तरंराजन्रोहिणीतीर्थमुत्तमम् ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषु सर्वपापहरंपरम् ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ रोहिणीतीर्थमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रोतुमिच्छामितत्त्वेन तन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ तस्योदरेशयानस्य देवदेवस्यपाण्डव ॥ ६ ॥ नाभ्यामभून्महत्पद्मं रविमण्डलसन्निभम् ॥ कर्णिकाकेसरयुतं पत्रैश्चसमलंकृतम् ॥ ७ ॥ तत्रब्रह्मासमुत्पन्न

कभी नहीं होता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उसीके बाद फिर सब पापोंका हरनेवाला व तीनों लोकों में प्रसिद्ध उत्तम रोहिणीतीर्थ है ॥ ४ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि सब पापों के नाश करनेवाले रोहिणीतीर्थ के माहात्म्यको हम तत्त्व से सुना चाहते हैं उसको तुम मुझसे कहने के योग्य होतेहो ॥ ५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि घोर एकार्णव व स्थावर और जङ्गम जीवों के नाश होने पर हे पाण्डव ! उस जलमें सोतेहुये भगवान् की ॥ ६ ॥ नाभि में डब्बी और केसरों से युक्त व पत्रों से सुहावना

सूर्यमण्डलके समान उत्तम कमल पैदाहुआ ॥ ७ ॥ उसमें कमल के समान चार मुखवाले ब्रह्मा पैदाहुये और चिन्ता करतेहुये भगवान्से कहा कि मैं क्या करूं तब तक ब्रह्माकी देहसे ॥ ८ ॥ हे भरताधिप ! वहीं मरीचि भगवान् होतेहुये फिर मरीचि से सब सृष्टिके बनानेवाले कश्यप हुये ॥ ९ ॥ उसी समयमें दक्षके पचास कन्या होतीहुई दक्ष ने उनमें से दश धर्मको और तेरह कश्यप को देदीं ॥ १० ॥ और सत्ताईस कन्या चन्द्रमा को दीं उनके बीच में चन्द्रमा कीसी मुखवाली जो रोहिणी नामकी कन्या थी ॥ ११ ॥ वह सब स्त्रियों को प्यारी और अपने पतिको विशेष प्यारी थी हे नराधिप ! फिर रोहिणी तपस्या के अर्थ निश्चय किये हुये ॥ १२ ॥

श्चतुर्वदनपङ्कजः ॥ किङ्करोमीतिदेवेशं चिन्त्यमानःस्वदेहतः ॥ ८ ॥ भगवानभवत्तत्र मरीचिर्भरताधिप ॥ मरीचेःक श्यपोजातस्सर्वसृष्टिकरस्ततः ॥ ९ ॥ दक्षस्यापितदाजाताः पञ्चाशत्कन्यकास्तुवै ॥ ददौसदशधर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ १० ॥ तथैवचपराःकन्याः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ रोहिणीनामयातासां मध्येताराधिपानना ॥ ११ ॥ अभी ष्टासर्वनारीणां भर्तुश्चापिविशेषतः ॥ ततस्सानिश्चयीभूता तपसेभोनराधिप ॥ १२ ॥ ततस्सानर्म्मदातीरेचचारविपुलं तपः ॥ एकरात्रंद्विरात्रञ्च षड्द्वादशतथापरैः ॥ १३ ॥ पक्षमासोपवासैश्च कर्षयन्तीकलेवरम् ॥ आराधयन्तीसततं महि षासुरमर्द्दिनीम् ॥ १४ ॥ स्नात्वास्नात्वाजलेनित्यं नर्म्मदायाःशुचिस्मिता ॥ ततस्तुष्टामहाभागा देवीनारायणीनृप॥ १५ ॥ प्रसन्नातेमहाभागे व्रतेननियमेनच ॥ ददामितेनसन्देहो वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ १६ ॥ एवंश्रुत्वातुवचनं रोहिणी शशिनःप्रिया ॥ वरंवव्रेततोदेवीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ सर्वासांचसपत्नीनामधिकाशशिनःप्रिया ॥ यथाभवामिह्य

नर्मदा के तटमें बड़े तपको करती हुई एक रात,दो रात, छह दिन, बारह दिन, एक पाख और महीनों के उपासों से अपने शरीर को दुबला कर रही व निरन्तर दुर्गाजीका आराधन कररहीं ॥ १३ । १४ ॥ उस पवित्र मुसक्यानवाली ने नर्मदाके जलमें नित्य नहाय २ कर नियमों को किया हे नृप ! तब बड़े भाग्यवाली देवी भगवती प्रसन्न हुई ॥ १५ ॥ और बोलीं कि हे महाभागे ! तुम्हारे व्रत व नियमोंसे प्रसन्न होरहीं हम तुमको वर देवेंगी इससे तुम अपने मनके वरको निस्संदेह मांगो ॥ १६ ॥ ऐसे वचनको सुन चन्द्रमा की प्यारी रोहिणी ने वरमांगा तदनन्तर देवी से इस बचन को बोली ॥ १७ ॥ कि जैसे सब सौतियों के बीचमें अधिक व चन्द्रमा

की प्यारी आपके प्रसादसे हम जल्द होजावें वैसा करो ॥ १८ ॥ तब पार्वतीसे वे रोहिणी कहीगई कि ऐसाही हो और भक्तिमे परायण देवताओंसे स्तुति कीगई वहीं अन्तर्द्धान होगई ॥ १९ ॥ हे नृपसत्तम ! तब से रोहिणी देवी चन्द्रमा की प्यारी व सब लोकों की प्यारी होगई ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो स्त्री व पुरुष भक्ति से स्नान करता है तो वह स्त्री अपने पतिको रोहिणी की तरह प्यारी होती है ॥ २१ ॥ और उस तीर्थमें जो कोई प्राणों को त्यागकरता है उसका सातजन्मों तक वियोग नहीं होताहै ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापोंके क्षयकरनेवाले व सेनापुर नाम से प्रसिद्ध अत्युत्तम चक्रतीर्थको जावे ॥ २३ ॥ वहां सेना-

चिरात्त्वत्प्रसादात्तथाकुरु ॥ १८ ॥ एवमस्त्वितिसाप्रोक्ता भवान्याभक्तितत्परैः ॥ स्तूयमानासुरगणैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९ ॥ तदाप्रभृतिसादेवी रोहिणीशशिनःप्रिया ॥ संजातासर्वलोकस्य वल्लभानृपसत्तम ॥ २० ॥ तत्रतीर्थेतुयानारी नरोवास्नातिभक्तितः ॥ वल्लभाभवतेसातु भर्तुर्वैरोहिणीयथा ॥ २१ ॥ तत्रतीर्थेषुयःकश्चित्प्राणत्यागंकरोतिच ॥ सप्तजन्मानितस्यैव वियोगोनैवजायते ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ सेनापुरेतिविख्यातं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ २३ ॥ सेनापत्येभिषिक्तेन देवदेवेनचक्रिणा ॥ अभिषिक्तोमहासेनस्सदेवेन्द्रपुरोगमैः ॥ २४ ॥ दानवस्यवधार्थाय विजयायदिवौकसाम् ॥ भूमिदानेनविप्रेन्द्रांस्तर्पयित्वायथाविधि ॥ २५ ॥ शङ्खभेरीनिनादेन पटहानाञ्चनिःस्वनैः ॥ वीणाभिश्चमृदङ्गैश्च झल्लरीकांस्यतालकैः ॥ २६ ॥ तच्छ्रुत्वानिनदंघोरं दानवोबलदर्पितः ॥ सुराणामाविघातार्थमभिषेकस्यचाग्रतः ॥ २७ ॥ हस्त्यश्वरथपत्त्याद्यैः परिपूर्णोरवाकुलैः ॥ २८ ॥ ततस्तुतांरौद्रवरस्य

पति होने के वास्ते अभिषेक को प्राप्त हुये देवताओं के देवता विष्णुजी ने इन्द्र आदि देवताओं के सहित स्वामिकार्त्तिकेय का अभिषेक किया है ॥ २४ ॥ तारकासुर दानव के मारने के वास्ते व देवताओं के विजयके वास्ते पृथिवी के दानसे ब्राह्मणों को विधिपूर्वक तृप्तकर ॥ २५ ॥ शंख, भेरी, पटह, वीणा, मृदङ्ग, झल्लरी, झांझ, और तालियों को बजाया ॥ २६ ॥ अपने बलसे अभिमान को प्राप्त दानव उस घोर बाजोंके शब्दको सुनकर देवों के नाश करनेके वास्ते अभिषेकके आगे ॥ २७ ॥

शब्दोंसे भरेहुये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल आदि से संयुक्त आताहुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस भयानक सेनाको महात्मा विष्णुजी ने शार्ङ्गधनुष से छूटेहुये अति पैने बाणों से हाथी, घोडे और रथोंको विध्वंसकर चक्रको छोड़ा ॥ २९ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी चारों तरफ व्याप्त भयानक चक्रको देख वहां का रहना छोड़ बड़े तपको करतेहुये ॥ ३० ॥ लोकोंके धारण करनेवाले विष्णु ने दैत्योंके नाशके वास्ते चक्रको छोड़ा उसने विह्वल सेनाको जलाया और आप निर्मल जलमें गिरपड़ा ॥ ३१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से वह चक्र पापरहित होगया वर्षाऋतु के उजियाले पाखकी द्वादशी को हे भारत ! ॥ ३२ ॥ क्रोधको जीतेहुये विष्णुजी के प्यारे चक्रतीर्थ

वाहिनीं शरैस्सुशार्ङ्गोज्झितकैस्सुतीक्ष्णैः ॥ विध्वस्यहस्त्यश्वरथान्महात्मा चक्रंविमुक्तंमधुघातिनाच ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तुभीषणंचक्रमभिज्यामंषडाननः ॥ त्यक्त्वातत्राप्यवस्थानंचकारविपुलंतपः ॥ ३० ॥ चक्रंमुक्तंविनाशाय हरिणालोकधारिणा ॥ विह्वलांदाहयामास पपातविमलेजले ॥ ३१ ॥ निष्पापंतच्चसंजातं नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ प्रावृट्कालेशुभे पक्षे द्वादश्यांचैवभारत ॥ ३२ ॥ यश्चयातिजितक्रोधश्चक्रतीर्थंहरिप्रियम् ॥ सोपिपापैःप्रमुच्येत यमंघोरंनपश्यति ॥ ३३ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपंदेवस्यदापयेत ॥ कथाञ्चवैष्णवींतत्र देवदेवंसमाहितः ॥ ३४ ॥ भीमव्रतंचपाराकं कृच्छ्रंचान्द्रायणंतथा ॥ व्रतंसान्तपनंदेवत्रिरात्रव्रतकंभृशम् ॥ ३५ ॥ तरेद्वैतरणीमन्तेभीमंचक्रमहर्निशम् ॥ कूटशाल्मलिवृक्षांश्चकदाचिन्नैवपश्यति ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंसर्वंचक्रतीर्थस्ययत्फलम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ * ॥ * ॥

को जो जाताहै वह भी पापोंसे छूटजाता और घोर यमराजको नहीं देखताहै ॥ ३३ ॥ रातको जागरण कर विष्णु को दीपदान करे और सावधान होकर वहीं विष्णु को स्मरण करताहुआ विष्णु की कथा को सुने ॥ ३४ ॥ और भयानक व्रत पाराक, कृच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपन और देवत्रिरात्रव्रत को अत्यन्त करे ॥ ३५ ॥ तो अन्त में वैतरणी को तरजाता है और दिन रात घूम रहे भयानक चक्र, कूट और यमलोकके शाल्मली वृक्ष को कभी नहीं देखता है ॥ ३६ ॥ यह जो चक्रतीर्थका फल है सो सब तुम से कहागया ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचक्रतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर पूर्वकाल में विष्णु के बनायेहुये चक्रतीर्थ के समीप में महापापों के नाश करनेवाले धूमपात नाम के तीर्थ को जावे॥ १॥ किसी समय में तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली इस श्रेष्ठ देवी नर्मदा को अपने रनिवास के सहित जलके राजा वरुण ॥ २ ॥ हाथों के जेवरों से युक्त व निर्मल छविवाले व पुण्यवाले, सज्जन और प्यारे, अर्घपात्रसे सयुक्त अपने भाइयों के सहित आते हुये ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डल के समान व मोतियों से युक्त व मूंगाओंकी लताओं से युक्त व इन्द्रनीलमणियों से युक्त ॥ ४ ॥ अर्घको नर्मदाके वास्ते नदियों के स्वामी वरुण देतेहुये तब गङ्गा आदि सब नदिया और तापी, पयोष्णी, ॥ ५ ॥ नन्दिनी

मार्कण्डेयउवाच ॥ धूमपातंततोगच्छेन्महापातकनाशनम् ॥ समीपेचक्रतीर्थस्य विष्णुनानिर्मितम्पुरा ॥ १ ॥ मेकलांपरमान्देवीमिमांत्रैलोक्यपावनीम् ॥ कदाचित्पयसांराजा सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ २ ॥ शिष्टैरिष्टैर्बन्धुभिश्च अर्घपात्रेणसंयुतैः ॥ हस्ताभरणसंयुक्तैः पुण्यैरमलकान्तिभिः ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डलमानैश्च युक्तैर्मुक्ताफलैस्तथा ॥ प्रवाललतिकाभिश्च इन्द्रनीलसमन्वितैः ॥ ४ ॥ अर्घंददौतदातस्यैवरुणस्सरितांपतिः ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्सर्वास्तापीचापिपयोष्णिका ॥ ५ ॥ नन्दिनीनलिनीपुण्या सर्वमर्घंददुस्तदा ॥ नर्म्मदोवाच ॥ मदीयेसङ्गमेदिव्ये स्नात्वासन्तर्प्पयन्तिये ॥ ६ ॥ तस्यसप्तकुलोत्पन्नांस्तारयामिनसंशयः ॥ जलाञ्जलिंततोदत्त्वा समुद्रोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ धन्योहंकृतकृत्योहंत्वयादेविवरानने ॥ समायातासिभद्रन्ते मांचात्रपावनंकुरु॥ ८ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ पवित्रोसिमहाभाग एकाकीत्वंमहोदधे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंभगवतीराजन्नर्म्मदामेकलाशुभा ॥ ९ ॥ पूजितासागरेणापि शुभेसिंहासनेस्थिता ॥ पाणिग्रहंष्ट

और पुण्यवाली नलिनी आदि सब नदिया अर्घ देतीहुई तब नर्मदा बोलीं कि हमारे दिव्य सङ्गममें स्नान कर जो तर्पण करते हैं ॥ ६ ॥ उनके सातकुलों में उत्पन्न हुये पुरुषों को हम तारदेती हैं इस में संशय नहीं है तदनन्तर जलाञ्जलि देकर समुद्र वचन बोला कि ॥ ७ ॥ हे वरानने, देवि ! आपसे मैं धन्य और कृतकृत्यहू आप आईहो आपका कल्याण हो यहां मुझको पवित्र करो ॥ ८ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे महाभाग, महोदधे ! तुम आपही पवित्रहो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् !

शुभ, कल्याण देनेवाली, भगवती नर्मदा ॥ ६ ॥ उत्तम सिंहासन पर बैठी हुई समुद्र से भी पूजीगई और हे भारत ! पुरुकुत्स राजासे वे ब्याहीगई ॥ पुरुकुत्सकी स्त्री वे नर्मदा गृहस्थी के धर्मसे युक्त हे राजन् ! उसी श्रेष्ठ सङ्गममें निश्चय करके सदा रहती हैं ॥ ११ ॥ हे पृथिवीपते ! उस बड़े जल्समें देवताओं कीहुई फूलोंकी वर्षा होतीहुई और नर्मदाका वहां स्वयंवरभी हुआ॥ १२ ॥ वहा जो श्राद्ध पितरोंका तर्पण करताहै और स्थान बनवाताहै वह लाख यज्ञों के फलको पाकर मुक्तहोजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥ इसप्रकार तीनोंलोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा तीनोंलोकोसे पूजनेयोग्यहैं हे महाभुज ! उसका अतुल माहात्म्य

हीतासा पुरुकुत्सेनभारत ॥ १० ॥ पुरुकुत्सस्यभार्य्यासागृहधर्म्मेणसंयुता ॥ सदावैवर्त्ततेराजंस्तत्रैवसङ्गमेशुभे ॥ ११ ॥ पुष्पवृष्टिस्तदाह्यासीत्रिदशानांमहोत्सवे ॥ तत्रस्वयंवरश्चासीत्सरितःपृथिवीपते ॥ १२ ॥ तत्रयःकुरुतेश्राद्धं स्थानं चपितृतर्प्पणम् ॥ लक्षयज्ञफलंप्राप्य समुक्तोनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ एवंत्रैलोक्यपूज्याते नर्म्मदालोकपावनी ॥ तस्यामाहात्म्यमतुलं कीर्तितंहिमहाभुज ॥ १४ ॥ भक्त्याश्रुत्वामहाभाग रुद्रलोकेमहीयते ॥ आदिमध्यावसानेषु रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १५ ॥ यःकश्चिच्छृणुयाद्भक्त्या तस्यस्याद्वाञ्छितंफलम् ॥ श्रुत्वामाहात्म्यमतुलं योनरोहिजितेन्द्रियः ॥ १६ ॥ दानंकुर्य्यात्तदातस्य सर्वकामार्थसिद्धयः ॥ पुस्तकंपूजयित्वातु धूपदीपकचन्दनैः ॥ १७ ॥ दानंतत्रप्रकर्तव्यं ब्राह्मणांश्चापिपूजयेत् ॥ श्रवणेनतुदानेन सुप्रीतानर्म्मदाभवेत् ॥ १८ ॥ तीर्थेतीर्थेचकथितं तत्पूर्वंपाण्डुनन्दन ॥ पुण्यंश्रुत्वातुमाहात्म्यं तद्दानेनैवपाण्डव ॥ १९ ॥ एतस्मात्कारणाद्दानं श्रुत्वादानंहिकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वाराजशार्दू

आपसे कहागया ॥ १४ ॥ हे महाभाग ! इस को भक्तिसे सुनकर रुद्रलोकमें सत्कार पाताहै इस खण्डमें आदि, मध्य और अन्तमें नर्मदाहीका उत्तम माहात्म्यहै ॥ १५ ॥ उसको जो कोई भक्तिसे सुनताहै उसको वाञ्छित फल होताहै इन्द्रियोंको जीते हुये जो मनुष्य नर्मदाके अतुलमाहात्म्यको सुनकर ॥ १६ ॥ दान करताहै तब उसकी सब काम और अर्थकी सिद्धियां होती हैं व धूप,दीप और चन्दन आदि से पुस्तक का पूजन कर ॥ १७ ॥ वहां दान करना चाहिये और ब्राह्मणों का भी पूजन कर सुनने और दानमे नर्मदा अतिप्रसन्न होती हैं ॥ १८ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तीर्थ तीर्थ में कहेहुये पुण्य व माहात्म्यको सुनकर हे पाण्डव ! उसको दानही से पूरा

करे ॥ १९ ॥ इसी कारणसे दानको सुन दान अवश्य करे क्योंकि पुण्यका कारण दानही है इस मार्कण्डेय के कहने को सुन राजाओं में उत्तम युधिष्ठिरजी ॥ २० ॥ रीति से अर्घको देकर व ऋषियों का पूजनकर घोडे, हाथी, रत्न और भाइयों के सहित धर्मराज ॥ २१ ॥ राजा युधिष्ठिर नर्मदा में तीर्थयात्रा शीघ्रही करते हुये उत्तर

लो मार्कण्डेयस्यभाषितम् ॥ २० ॥ अर्घंदत्त्वायथान्यायंपूजयित्वाऋषीन्सदा ॥ अश्वैर्गजैस्तथारत्नैर्भ्रातृभिस्सहध र्म्मराट् ॥ २१ ॥ तीर्थयात्रांचकाराशु नर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ उत्तरेदक्षिणेतीरे स्नानपानावगाहनम् ॥ २२ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेरेवाखण्डे युधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादे नर्म्मदाचरित्रवर्णनोनामषोडशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११६ ॥

इति स्कन्दपुराणस्यरेवाखण्डः ॥

और दक्षिणवाले तटपर स्नान, जलपान और अवगाहन करतेहुये ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेयुधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादेनर्मदाचरितवर्णनोनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

श्रुतिरसनवभूमितेऽब्दवृन्दे शुभ इषमास्यसिते दले कतिथ्याम् ॥ गुरुचरणकृतिर्हिमांशुवारेऽवसितिमगाज्जननीगिरा गरिष्ठा ॥ १ ॥

मातृभाषानुवादोऽयं शोधितश्चमुहुर्मुहुः ॥ विद्वद्द्वयप्रसादेन सर्वेषां मोदहेतवे ॥ १ ॥ शुभमस्तु ॥

प्रथमवार

लखनऊ

सुपरिटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
सन् १९०८ ई०।

इति स्कन्दपुराणरेवाखण्डसमाप्तः ॥

अथ स्कन्दपुराणअवन्तीखण्डः प्रारम्भः ॥

स्कन्दपुराणरेवाखण्डान्तर्गताऽवन्तीखण्डस्य सूचीपत्रं व्याख्यायते ॥

इति श्रीमद्द्विजवरपण्डितशालिग्रामसंकलितमवन्तीखण्डस्यसूचीपत्रसमाप्तिमगादितिशिवम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

स्कन्दपुराणरेवाखण्डान्तर्गत

अवन्तीखण्ड सटीक

दोहा ॥ सिद्धिसदन गजवदनके, चरण कमल शिरनाय । यहि अवन्ति माहात्म्य कर, तिलक करहुँ सुखदाय ॥ १ ॥ पूछ्यो व्यास मुनीश सन, महाकाल परभाव । सनतकुमार सोई कह्यो, प्रथम माहिं प्रस्ताव ॥ २ ॥ प्रजाओं के रचनेवाले भी देवता प्रबल संसार के भय से जिनको प्रणाम करते हैं और सावधान मनवाले व ध्यान संयुत चित्तवालों के चित्तमें जो भलीभांति पैठे हुये हैं और वे लोकों के आदिदेव श्रीमहाकाल नामक शिवजी उत्कर्ष को प्राप्तहोवैं जोकि

स्रष्टारोपिप्रजानां प्रबलभवभयाद्यंनमस्यन्तिदेवा यश्चित्तेसम्प्रविष्टोप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनांच ॥ लोकानामादिदेवः सजयतुभगवाञ्छ्रीमहाकालनामा बिभ्राणःसोमलेखामहिवलययुतंव्यक्तलिङ्गंकपालम् ॥ १ ॥ उमोवाच ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पुण्याश्चसरितस्तथा ॥ कथ्यतांतानियत्नेन श्राद्धंयेषुप्रदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अस्तिलोकेषुविख्याता गङ्गात्रिपथगानदी ॥ सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥ ३ ॥ तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ॥ पितॄणांवल्लभादेवि महापातकनाशिनी ॥ ४ ॥ चन्द्रभागावितस्ताच नर्म्मदाऽमरकण्टकम् ॥

चन्द्रमाकी कला व सर्पके कंकण संयुत व प्रकट चिह्नवाले कपाल को धारण कियेहैं ॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि पृथ्वीमें जो तीर्थ व पवित्र नदियांहैं उनको यत्नसे कहिये कि जिनमें श्राद्ध दीजाती है ॥ २ ॥ महादेव जी बोले कि तीन मार्गोंसे चलनेवाली गंगा नदी सब लोकोंमें प्रसिद्ध हैं जोकि देवताओं व गंधर्वों से सेवित तथा मुनियों से सेवित है ॥ ३ ॥ व हे देवि ! लोकों को पवित्र करनेवाली तथा बड़ेभारी पापों को नाशनेवाली सूर्यकी कन्या यमुना देवीजी पितरों को प्यारी हैं ॥ ४ ॥

और हे देवि ! चन्द्रभागा, वितरता, नर्मदा, अमरकण्टक, कुरुक्षेत्र, गया, प्रभास व नैमिष ॥ ५ ॥ हे देवि ! केदार, पुष्कर व कायावरोहण तथा उत्तम महाकालवन अत्यन्त पवित्र है ॥ ६ ॥ जहां पर पापरूपी ईंधन को जलाने के लिये अग्नि श्रीमहाकालीजी हैं वह चार कोस तक क्षेत्र ब्रह्महत्यादि पातकोंका विनाशक है ॥ ७ ॥ और वह क्षेत्र सुखदायक व मुक्तिदायक तथा कलियुग के पातकों का विनाशक है व हे देवि ! प्रलय में अविनाशी तथा देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे महेश्वर देवजी ! इस क्षेत्रके माहात्म्य को कहिये क्योंकि वहां पर जो तीर्थ हैं और जो लिंग हैं ॥ ९ ॥ उनको मैं सुनना चाहता हूं क्योंकि मुझको बहुत

कुरुक्षेत्रंगयांदेवि प्रभासंनैमिषन्तथा ॥ ५ ॥ केदारंपुष्करञ्चैव तथाकायावरोहणम् ॥ तथापुण्यतमन्देविमहाकाल वनंशुभम् ॥ ६ ॥ यत्रास्तेश्रीमहाकालः पापेन्धनहुताशनः ॥ क्षेत्रंयोजनपर्यन्तं ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ७ ॥ भुक्तिदंमुक्तिदंक्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ॥ प्रलयेप्यक्षयंदेवि दुष्प्रापंत्रिदशैरपि ॥ ८ ॥ उमोवाच ॥ प्रभावःकथ्यता न्देव क्षेत्रस्यास्यमहेश्वर ॥ यानितीर्थानिविद्यन्ते यानिलिङ्गानिसन्तिवै ॥ ९ ॥ तान्यहंश्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलंहि मे ॥ १० ॥ महादेवउवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन प्रभावंपापनाशनम् ॥ क्षेत्रमाद्यंमहादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरंरत्नचित्रितम् ॥ वैराजभवनन्नाम ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ १२ ॥ तत्रदिव्याङ्गनागी तमधुरस्वरनादिता ॥ पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥ १३ ॥ बहुवाद्यसमुत्पन्नसुमहास्वननादिता ॥ लय तालयुतानेकगीतवादित्रनादिता ॥ विन्यस्ताकोटिभिःस्तम्भैर्निर्मलादर्शशोभिता ॥ १४ ॥ अप्सरोनृत्यविन्यासवि

आश्चर्य्य है ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पापनाशक प्रभावको बडे यत्नसे सुनिये हे महादेवि ! सम्पस्त पातकों का नाशक वह आदि क्षेत्र है ॥ ११ ॥ श्री सुमेरुगिरि के समीप जो रत्नों से बनाहुआ शिखर परमात्मा ब्रह्माजी का वैराजनामक मन्दिर है ॥ १२ ॥ वहा पर देवांगनाओं के गान से मधुर ध्वनि करके शब्दित व पारिजात वृक्षोसे आच्छादित तथा मंजरी की मालाओं से शोभित ॥ १३ ॥ और बहुत से बाजाओं से उत्पन्न बडे भारी शब्दो से ध्वनित तथा लय व ताल से संयुत अनेक गीतों व बाजनों से शब्दित व करोड़ों खम्भोंसे शोभित तथा निर्मल शीशों से शोभित ॥ १४ ॥ और अप्सराओं के नृत्य करने के विलास (लीला)

लासोल्लासशोभिता ॥ सभाकान्तिमतीनाम्नी देवानांहर्षदायिका ॥ १५ ॥ तस्यांनिविष्टं वागीशशङ्कराराधनेरतम्॥ सनत्कुमारंब्रह्मर्षिं ब्रह्मणोमानसंसुतम् ॥ १६ ॥ मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनोमुनिः ॥ पराशरसुतोव्यासः प्रणिपत्ययथाविधि ॥ १७ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा भवभक्त्यानुभावितः ॥ पप्रच्छपरयातुष्ट्या हृषितांगरुहाननः ॥ १८ ॥ महाकालस्यमाहात्म्यं प्राणिनांमोहनाशनम् ॥ व्यासउवाच ॥ भगवन्क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्यकथ्यताम् ॥ १९ ॥ महाकालवनंकस्मात् प्रोच्यतेसर्वतोवरम् ॥ कथंगुह्यवनंप्रोक्तं पीठंसऊषरन्तथा ॥ २० ॥ फलंयथास्यक्षेत्रस्य मृतानाञ्चगतिर्यथा ॥ स्नानेनयद्भवेत्पुण्यं दानेनापिचयत्फलम् ॥ २१ ॥ कथमेतच्छ्मशानञ्च क्षेत्रंप्रोक्तंयथातथा ॥ पृष्टोमेशङ्करेभक्तिं ब्रूहित्वंशास्त्रकोविद ॥ २२ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ क्षीयतेपातकंयस्मात तेनेदंक्षेत्रमुच्यते ॥ यस्मा न्मृताःपुनर्नजायन्ते तेनेदमूषरंस्मृतम् ॥ गुह्यमेतत्प्रियन्नित्यं क्षेत्रंश स्थानञ्चमातृणां पठिन्तेनैवकथ्यते ॥ २३ ॥

तथा हर्षसे शोभित कांतिमती नामक सभा देवों को आनन्द देनेवाली है ॥१५॥ उस सभामें बैठे हुये व ब्रह्मा तथा शिवजी के आराधन मे परायण ब्रह्मा के मानसी पुत्र ब्रह्मर्षि सनत्कुमार जीको ॥ १६ ॥ मुनियों के मध्य से उठकर पराशरजीके पुत्र कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिने विधिपूर्वक प्रणामकर ॥ १७ ॥ व जुड़ेहुये हाथोंवाले होकर शिवजी की भक्ति से शुद्ध चित्तवाले और प्रसन्न रोम व मुखवाले उन्हों ने बड़ी प्रसन्नतासे प्राणियों के मोहको नाशनेवाले महाकालजी के माहात्म्य को पूंछा ॥ १८ । १९ ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! महाकालजी के क्षेत्र के माहात्म्य को कहिये ॥ १८ । १९ ॥ कि सब से उत्तम महाकालवन किस लिये कहा जाता है और ऊपरसमेत पीठ व गुह्यवन किस कारण कहा गया है ॥ २० ॥ और जिस प्रकार इस क्षेत्र का फलहोवै और मरे प्राणियोंकी जिस भाति गति होती है व स्नान से जो पुण्य होती है और दान से भी जो फलहोताहै उसको कहिये ॥ २१ ॥ और कैसे यह श्मशान क्षेत्र कहा गया है हे शास्त्रकोविद ! जिस प्रकार तुम पूछेगये हो उसी भाति सदाशिवजी में भक्ति को कहिये ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जिस लिये पातक नष्ट होता है उसी कारण यह क्षेत्र कहा जाता है और जिसलिये यहां मरेहुये पुरुष फिर उत्पन्न नहीं होते हैं उससे यह ऊषर कहा गया है और महातमा सदाशिव जी और जिसलिये मातृगणो का स्थान है उस कारण पीठ कहा जाता है ॥ २३ ॥

समेत आकाश हुआ ॥ ७ ॥ उस समय बीचमें पांच मुखोंवाले व चारभुजाओंवाले ब्रह्मा हुये इसके अनन्तर महादेवजीने अनुमानकर इनको सृष्टिमें युक्त किया ॥ ८ ॥ कि हे महाबाहो ! मेरी दयासे विचित्र सृष्टि कीजिये यह कहकर कहीं भी अन्तर्द्धान होगये और ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ९ ॥ प्रेरणा कियेहुये भी ब्रह्मा जी सृष्टि करने के लिये समर्थ न हुये और उन्हो ने शिवदेव जीको चिन्तन किया व ब्रह्मा से ध्यान किये जातेहुये भगवान् शिवजीने ज्ञानके लिये ॥ १० ॥ ब्रह्माकी तपस्यासे प्रसन्न होकर छह अङ्गोंवाले वेद को दिया व वेदके मिलनेपर भी वे ब्रह्माजी बहुत दिनों तक सृष्टि करने के लिये न समर्थ हुये ॥ ११ ॥ फिर ब्रह्माजी ने शिवजी को

श्चतुर्भुजः ॥ महेश्वरोनुमान्यैतमयोजयदनन्तरम् ॥ ८ ॥ कुरुसृष्टिंमहाबाहो विचित्रांमदनुग्रहात् ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितःक्वापि देवोब्रह्मानज्ञातवान् ॥ ९ ॥ प्रेर्यमाणोपिवैस्रष्टुं नाभूद्देवमचिन्तयत् ॥ ब्रह्मणाध्यायमानश्च ज्ञानार्थंभगवान्भवः ॥ १० ॥ ब्रह्मणस्तपसातुष्टः प्रादाद्वेदंषडङ्गकम् ॥ लब्धेवेदेपिनचिरात् सृष्टिंकर्तुंशशाकसः ॥ ११ ॥ तपसाराधयद्भूयः समाराधयितुंभवम् ॥ नापश्यत्सयदादेवं तदातुष्टावभावतः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमःशिवायामलसत्त्वचेतसे गुणत्रयातीतविसारितेजसे ॥ षडङ्गवेदस्यममापिवेधसः परस्यरूपानुभवायचक्षुषे ॥ १३ ॥ नमोस्तुतेसृष्टिविधौरजोजुषे जगत्स्थितौसत्त्वमधिष्ठितायते॥ विनाशहेतौतमसोपयोगिने शिवायनिर्वाणसुखप्रदायिने ॥ १४ ॥ अशेषभूतप्रकृतेःपरायवै परात्मरूपायनमःशिवायवै ॥ नबुद्ध्यहङ्कारमनोविधाय धात्रेचषड्विंशकरूपकाय ॥ १५॥ सूवायु

आराधनके लिये तपस्या से आराधन किया और उन्होंने जब शिवदेवजीको नहीं देखा तब भक्तिसे स्तुति किया ॥१२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि निर्मल व सत्त्वचित्तवाले तथा तीनों गुणों से परे व फैले हुये तेजवाले शिवजी के लिये प्रणाम है और रूपके अनुभव (ज्ञान) के लिये षडङ्गवेद व मुझ परमात्मा ब्रह्मा के नेत्ररूप शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और सृष्टि करने मे रजोगुणसेवी तुम्हारे लिये प्रणाम है व संसार के पालन में सत्त्वगुण में स्थित आप के लिये प्रणाम है और विनाश के लिये तमोगुण से युक्त तथा मोक्षसुखके देनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ समस्त प्राणियों की प्रकृति से परे व परमात्मारूप शिवजी के लिये प्रणामहै

और मनुष्यों की बुद्धि अहङ्कार व मनको विधान करनेवाले विधाता के लिये तथा छब्बीस तत्त्वात्मकरूपवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व पृथ्वी, पवन, अग्नि, आकाश, जल, चन्द्रमा व सूर्य तथा यजमानात्मकरूपी जिनके शरीरों से यह भूत, भविष्य, वर्तमान संसार व्याप्त है उन शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ इस संसार में जो तेज व लोकहैं तथा जो भूत, भविष्य कारण हैं वे सृष्टिमें होते हैं और प्रलयमें जिनके शरीरमें नाशको प्राप्त होतेहैं उनको मैं प्रणाम करताहूं ॥ १७ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! इस प्रकार स्तुति करतेहुये ब्रह्माजी से अन्तर्द्धानमें प्राप्त भगवान् शिवजी यह बोले कि हे ब्रह्मन् ! वरदान को मांगिये ॥ १८ ॥

वह्न्यम्बरवारिचन्द्रसूर्यात्मरूपाभिरिदंतनूभिः ॥ व्याप्तंजगद्यस्यनमोस्तुतस्मै भूतंभविष्यंत्वथवर्तमानम् ॥ १६ ॥ यानीहतेजांसिजगन्तियानि भूतानिभव्यान्यथकारणानि ॥ भवन्तिसृष्टौविलयंविनाशे व्रजन्तियस्यात्मनितंनमामि॥ १७ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंसंस्तुवतोव्यास ब्रह्मणोभगवान्परः ॥ अन्तर्हितउवाचेदं ब्रह्मन्संवाच्यतांवरः ॥१८॥ सवव्रेमनसापुत्रं अवंगौरवकारणात् ॥ विज्ञायान्तर्गतंतस्य परमेशउवाचतम् ॥ १९ ॥ यस्मान्मांमनसापुत्रं चतुर्मुखसमीहसे ॥ कस्मिंश्चित्कारणेतस्मादहंछेत्स्यामितेशिरः ॥ २० ॥ अयाच्यंयाचितंयस्मान्ममांशोनीललोहितः ॥ रुद्रोभविष्यतिसुतः सचतेहिंस्यतिप्रभाम् ॥ २१ ॥ अन्यद्यस्मात्स्मृतोभक्त्या त्वयाहंपितृभावतः ॥ परब्रह्मस्वरूपेण जिज्ञासाममयाकृता ॥२२॥तस्माद्ब्रह्मेतिलोकेत्र नामख्यातंभविष्यति ॥ पितामहत्वंयेनापि ततोह्यसिपितामहः ॥२३॥

उन ब्रह्माजी ने गौरव के कारण शिवजी से मन करके पुत्रको मांगा व उनके चित्तमें प्राप्त कारण को जानकर परमात्मा शिवजी ने उनसे कहा ॥ १९ ॥ कि हे चतुरानन जी ! जिसलिये मुझ से तुम मन करके पुत्रको चाहते हो इस लिये मैं किसी कारण में तुम्हारा मस्तक काटूंगा ॥ २० ॥ जिस लिये न मागने योग्य वर मागा गया इस कारण मेरा अंश नीललोहितरुद्र पुत्र होगा और वह तुम्हारी प्रभाको नाश करैगा ॥ २१ ॥ और जिस लिये तुमने मुझको पिताके भाव से स्मरण किया व परब्रह्म के स्वरूप से जो मेरे जानने की इच्छा कीगई ॥ २२ ॥ उसकारण इस संसार में ब्रह्मा ऐसा नाम प्रसिद्ध होगा और जिस लिये मुझमें पितामह

का भाव किया गया उससे पितामह हो ॥ २३ ॥ इस प्रकार शाप व वरदानको पाकर उन्होंने पुत्रोंकी सृष्टि किया और अपने तेज से पैदाहुई अग्नि में हवन करते हुये इन ब्रह्माजी के पसीना बहचला ॥ २४ ॥ और समिधा संयुत हाथसे मस्तकको पोंछतेहुये इनका मस्तक छिदगया व उससे रक्तका एक बूंद अग्नि में गिरपड़ा ॥ २५ ॥ और वह बड़ाभारी नीललोहित हुआ व तदनन्तर शिवजी की आज्ञा से वह रुद्र पुत्र प्राप्तहोकर समीप उतरता भया ॥ २६ ॥ जोकि पांच मुखोंवाला व दश भुजाओंवाला तथा त्रिशूल, धनुष, तलवार व शक्तिको लिये और पन्द्रह नेत्रोंवाला और भयंकर व सर्पोंके जनेऊ को पहने था ॥ २७ ॥ और चन्द्रमा समेत

लब्ध्वाशापवरावेवं पुत्रसृष्टिंचकारसः ॥ स्वतेजोजनितंवह्निं जुह्वतःस्वेदआवहत् ॥ २४ ॥ समिद्युक्तेनहस्तेन ललाटंमार्जतोभवत् ॥ छिन्नंभृष्टस्ततोरक्तबिन्दुरेकोविभावसौ ॥ २५ ॥ सनीललोहितोभूयात्सचरुद्रोभवाज्ञया ॥ तदनन्तरमासाद्य उत्ततारसुतोन्तिकात् ॥ २६ ॥ पञ्चवक्त्रोदशभुजो शूलचापासिशक्तिमान् ॥ त्रिपञ्चनयनोरौद्रो व्यालयज्ञोपवीतकः ॥ २७ ॥ सेन्दुंकपर्दंबिभ्राणः सिंहचर्मधरोवरः ॥ जातमेवंसुतंदृष्ट्वा ब्रह्मानामाकरोत्तदा ॥ २८ ॥ नीललोहितनामेति भवरुद्रपिनाकधृक् ॥ ततःप्रववृतेसृष्टिः स्रष्टुर्लोकपितामहात् ॥ २९ ॥ सप्तादौमानसाञ्जज्ञे सनकादींस्ततोपरान् ॥ मरीचिदक्षप्रभृतीन्मन्वादींश्चततोसृजत् ॥ ३० ॥ अष्टभेदान्सुरान्कृत्वा तिर्यग्योनिश्चपञ्चधा ॥ मनुष्यानेकभेदांश्च सृष्टिमेवंससर्जह ॥ ३१ ॥ सृष्टिःसुरादिकाजाता कृत्वाब्रह्माणमप्यधः ॥ प्रणम्याथसिषेवुस्ते केवलं

जटाजूटको धारे और सिंहके चर्मको धारण किये व उत्तमथा उस समय पैदा हुये ऐसे पुत्रको देखकर ब्रह्माने नाम किया ॥ २८ ॥ कि हे रुद्र, पिनाकधारी! तुम नील-लोहित ऐसे नामवाले होवो तदनन्तर लोकोंके पितामह ब्रह्माजीसे सृष्टि वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ पहले सात मानसी पुत्रोंको पैदा किया तदनन्तर अन्य सनकादिकोंको उत्पन्नकिया उसके उपरान्त मरीचि व दक्षादिकोंको व मनु आदिकोंको रचा ॥ ३० ॥ और आठ भेदकर देवताओंको रचा व पांच प्रकारकी तिर्यक्योनि याने पशु आदिकों को रचा और एक भेदवाले मनुष्योंको रचा इसभांति सृष्टिको उत्पन्नकिया ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा को भी नीचेकर देवादिक सृष्टि उत्पन्न हुई और उन्होंने केवल नीललोहित

को प्रणाम कर सेवा किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने रुद्रजी से कहा कि तुमने मुझको अपूजनीय किया जिस लिये अपने तेजसे आप पूजनीयहो उसीकारण हिमालयको जाइये ॥ ३३ ॥ नीललोहित भी उन ब्रह्माजी से यह कह कर कि आपने मुझको नहीं पूजा तदनन्तर ये शिवजी वहां गये जहां कि भगवान् शिवजी थे ॥३४॥ तदनन्तर रजोगुणसे बढेहुये ब्रह्माजी मूढ़ होगये और अपकारी सृष्टिको मानते हुये ब्रह्माने तेजसे संतप्त किया ॥ ३५ ॥ मेरे तुल्य देवता नहीं है कि जिसने देवता, दैत्य, गंधर्व,पशु व पक्षियों से व्याप्त सृष्टिको बढ़ाया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार वे पाच मुखोंवाले ब्रह्माजी सृष्टि से गर्वित हुये और उन ब्रह्माजी का सुन्दर शब्दवाला

नीललोहितम् ॥३२॥ ततोब्रह्मावदद्रुद्रमपूज्योहंत्वयाकृतः॥ स्वतेजसाभवान्पूज्यो यतोयाहिहिमालयम् ॥३३॥ तन्नी ललोहितोप्युक्त्वा भवतानार्चितोह्यहम् ॥ ततोजगामरुद्रोसौ सयत्रभगवान्भवः ॥ ३४ ॥ ततोब्रह्माभवन्मूढो रजसा चोपबृंहितः ॥ ततापतेजसासृष्टिं मन्यमानोह्यपाकृताम् ॥ ३५ ॥ मत्तुल्योनास्तिवैदेवो येनसृष्टिःप्रवर्द्धिता ॥ सदेवासु रगन्धर्वपशुपक्षिमृगाकुला ॥ ३६ ॥ एवंमूढस्सपञ्चास्योविरञ्चिःसृष्टिदर्पितः ॥ प्राग्वक्त्रंसुस्वरंतस्य ऋग्वेदस्यप्रवर्त कम् ॥ ३७ ॥ द्वितीयंवदनंतस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् ॥ तृतीयंवदनंतस्य सामवेदप्रवर्तकम् ॥ ३८ ॥ चतुर्थंवदनंचास्या थर्ववेदप्रवर्तकम् ॥ साङ्गोपाङ्गेतिहासांश्च सरहस्यान्ससंग्रहान् ॥ ३९ ॥ वेदानधीत्यवक्त्रेण पञ्चमेनससर्जसः ॥ तस्यासु रास्सुरास्सर्वे वक्त्रस्याद्भुततेजसः ॥ ४० ॥ तेजसानप्रकाशन्ते दीपास्सूर्योदयेयथा ॥ सपुत्राश्चापिसोद्वेगा बभूवुर्नष्टचे तसः ॥ ४१ ॥ नाभिगन्तुन्नद्रष्टुंच चिरन्तेनोपसर्पितुम् ॥ अभिभूतमिवात्मानं मन्यमानाश्चविद्विषः ॥ ४२ ॥ सर्वेते

पहला मुख ऋग्वेद का प्रवर्तक हुआहै ॥ ३७ ॥ और उन ब्रह्माजी का दूसरा मुख यजुर्वेद का प्रवर्तक (उत्पन्न करनेवाला) हुआहै व उनका तीसरा मुख सामवेद का प्रवर्तक हुआ ॥ ३८ ॥ और इन ब्रह्माजीको चौथा मुख अथर्ववेदका प्रवर्तक हुआ है और रहस्यों समेत व संग्रहों सहित तथा अंगों व उपागों समेत इतिहासों को ॥ ३९ ॥ व वेदोंको पांचवें मुखसे पढ़कर उन ब्रह्माजी ने रचाहै और अद्भुततेजवाले उस मुखके तेजसे समस्त देवता व दैत्य नहीं प्रकाशित होतेथे जैसे कि सूर्योदय में दीपक नहीं शोभित होते हैं पुत्रों समेत भी वे देवता नष्ट ज्ञानवाले होकर उद्वेग (दुःख) समेत हुये ॥ ४० । ४१ ॥ और बहुत देरतक वे सामने जाने

के लिये व देखने के लिये तथा समीप में जाने के निमित्त न समर्थ हुये और अपना को तिरस्कृतसे मानते हुये शत्रुवोंसे रहित ॥ ४२ ॥ उन सब देवताओं ने अपने हितकी सम्मति किया कि ब्रह्मा के तेजसे बुद्धिरहित हम लोग सदाशिवजी की शरण में प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ क्या उसके स्थान को हम नहीं जानते हैं कि जहां पर स्थित उन सदाशिवजीको इस समय हम लोग भक्ति से देखेंगे अन्य किसी उपाय से न देखेंगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सम्मति कर उस समय हाथोंको जोडकर उन देवताओं ने उत्तम स्वर की संपदा से शिवजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महेश्वरजी ! आपके लिये नम-

मन्त्रयामासुर्देवावैहितमात्मनः ॥ गच्छामशरणन्देवं निष्प्रज्ञाब्रह्मतेजसा ॥ ४३ ॥ किंतस्यैवनजानीमः स्थानंयत्र व्यवस्थितम् ॥ तम्भीममत्रद्रक्ष्यामो भक्त्यानान्येनकेनचित ॥ ४४ ॥ एवंसंमन्त्र्यतेदेवाः कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ चक्रुःस्तोत्रंमहेशस्य परयास्वरसम्पदा ॥ ४५ ॥ देवाऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेश महेश्वरनमोनमः ॥ नविद्मःपरमंमूढाअभिधानंतवातुलम् ॥ ४६ ॥ यद्योगेनपरंब्रह्म भूतानांत्वंसनातनः ॥ प्रतिष्ठासर्वभूतानां हेतुस्सर्वस्यसर्जने ॥ ४७ ॥ बिभर्तिचैवनेत्रस्थान्सोमसूर्यविभावसून् ॥ नामसङ्कीर्तनादेव मुच्यन्तेजन्तवोऽशुभात् ॥ ४८ ॥ पृथिव्यम्ब्वग्निचन्द्रार्कव्योमवायूपलक्षणाः ॥ मूर्तयस्तेमहादेव व्याप्तमाभिरशेषतः ॥ ४९ ॥ रजःसत्त्वतमोभावैर्भ्राम्यमाणंत्वयाजगत् ॥ नावबुध्यतिसर्वेश सर्वमूर्तिधरोयतः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादीनांसुरेशानां सम्मोहनविमोहनः ॥ त्वङ्करोषियुगावर्तं कालेकालेच

स्कार है नमस्कार है हमलोग मूढ तुम्हारे अमित तथा उत्तम नामको नहीं जानते हैं ॥ ४६ ॥ कि जिसके योग से परब्रह्म से लगाकर प्राणियों के तुम सनातन देव हो और सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा व सबके रचने में कारणहो ॥ ४७ ॥ और नेत्रोंमें टिके हुये चन्द्रमा सूर्य व अग्नि को धारण या पालन करते हो व आपके नाम को कीर्तन करने से प्राणी अशुभमे छूटजाते हैं ॥ ४८ ॥ हे महादेवजी ! पृथ्वी, जल,अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, आकाश व पवन लक्षणोंवाली तुम्हारी मूर्तियां हैं व इन से सब व्याप्त है ॥ ४९ ॥ हे सर्वेश ! तुम से रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुणभावसे भ्रमाया हुआ संसार ज्ञानको नहीं प्राप्तहोता है क्योंकि सब मूर्तियों के धारनेवाले

हो ॥ ५० ॥ और तुम ब्रह्मादिक देवेशों का संमोह व विमोह याने अज्ञान व ज्ञान करते हो और समय समय में असह्य युगावर्तको करते हो ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवता, ऋषि, पितर व मनुष्यों से इस प्रकार भलीभांति स्तुति किये जातेहुये ये सदाशिवजी अन्तर्द्धान होकर यह बोले कि हे देवताओ ! जैसा मनोरथ हो वैसा कहिये ॥ ५२ ॥ देवता लोग बोले कि हे शिवजी ! हमलोग सदैव तुम्हारे प्रत्यक्ष दर्शनकी प्रार्थना करते हैं और दयासे हम लोगोंको आप वरदान भी दीजिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि हम लोगों का वडा प्रभाव था और हमलोगों का जो पराक्रमथा वह सब पांच मुखोंवाले ब्रह्मा के तेज से ग्रसित होगया ॥ ५४ ॥ हे महेश्वर,

दुस्सहम् ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंसंस्तूयमानोसौदेवर्षिपितृमानवैः ॥ अन्तर्हितउवाचेदं देवाब्रूतयथेप्सितम् ॥ ५२ ॥ देवाऊचुः ॥ प्रत्यक्षंदर्शनंस्थाणो प्रार्थयामस्सदातव ॥ त्वयाकारुण्यतोस्माकं वरश्चापिप्रदीयताम् ॥५३॥ यदस्माकंमहद्वीर्यं यश्चास्माकंपराक्रमः ॥ तत्सर्वंब्रह्मणोग्रस्तं पञ्चमास्यस्यतेजसा ॥ ५४ ॥ विनेशुस्सर्वतेजांसि त्वत्प्रसादात्पुनर्विभो ॥ जायन्तेतद्यथापूर्वं तथाकुरुमहेश्वर ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ प्रत्यक्षंदर्शनंदत्त्वादेवानामनुकम्पया ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा देवैश्चापिनमस्कृतः ॥ ५६ ॥ आश्वास्यचसुरान्सर्वान् सहदेवैर्महेश्वरः ॥ प्रत्यक्षमेत्यपश्चाच्च चलितःशर्वएवहि ॥ ५७ ॥ जगामतत्रयत्रासौ रजोहङ्कारमूर्तिमान् ॥ देवाःस्तुवन्तोदेवेशं परिवार्यउपाविशन् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मातमागतन्देवं नजज्ञेतमसावृतः ॥ सूर्यकोटिसहस्राणां तेजसारञ्जयज्जगत् ॥ ५९ ॥ तदादृश्यतविश्वा

विभो ! सब तेज नष्ट होगये जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से पहलेकी नाई फिर तेज उत्पन्न होवैं वैसाही कीजिये ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवताओं को दयासे प्रत्यक्ष दर्शन देकर प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं से प्रणाम कियेगये ॥ ५६ ॥ और सब देवताओं को आश्वासन कर प्रत्यक्ष में प्राप्तहोकर पश्चात् देवताओं समेत महादेवजी चले ॥ ५७ ॥ और ये शिवजी वहां गये जहां कि रजोगुण से अहंकार की मूर्तिको धारण किये ब्रह्माजी थे और देवेश शिवजीकी स्तुति करते हुये देवता घेर कर समीप बैठ गये ॥ ५८ ॥ अज्ञानसे घिरेहुये ब्रह्माजीने उन आयेहुये शिवदेवजीको न जाना और उन शिवजी ने करोड़ों हजार सूर्यों के तेज से संसार

को रंगदिया ॥ ५६ ॥ उस समय विश्वभोगी व विश्वात्मा तथा विश्वभावन शिवजी देख पड़े और उन शिवजी ने बैठे हुये ब्रह्मा व सब देवमण्डल को तेज से तिरस्कार करते हुये ब्रह्माके आगे स्थित हुये और शिवजीके तेजसे तिरस्कृत ब्रह्माका मुख नहीं शोभित होताथा ॥ ६० । ६१ ॥ जैसे कि रात्रिमें प्रकाशसंयुत किरणों वाला चन्द्रमा सूर्योदय में नहीं शोभित होता है इसके अनन्तर अहंकार समेत ब्रह्माजी ने सनातन शिव देव पुत्रको देखकर ॥ ६२ ॥ उनके तेज से घिरेहुये उन्होंने हाथहीं से उन शिवदेवजी को प्रणाम किया तदनन्तर भगवान् चन्द्रभालजीने अट्टहास छोड़ा ॥ ६३ ॥ व सब देवताओं के देखते व सुनतेहुये भयंकर वचन कहा

त्मा विश्वभुग्विश्वभावनः ॥ सपितामहमासीनं सकलन्देवमण्डलम् ॥ ६० ॥ तेजसाभिभवन्रुद्रः स्वयम्मोरग्रतःस्थितः ॥ रुद्रतेजोभिभूतञ्च ब्रह्मवक्त्रंनराजते ॥ ६१ ॥ रात्रौप्रकाशकिरणश्चन्द्रस्सूर्योदयेयथा॥ सगर्वोत्थात्मजंदृष्ट्वा रुद्रन्देवंसनातनम् ॥ ६२ ॥ अभिवन्देकरेणैव देवंतत्तेजसावृतः॥ ततोऽट्टहासंभगवान् मुमोचशशिशेखरः॥ ६३ ॥ पश्यतांसर्वदेवानां शृण्वतांवाचमुत्कटाम् ॥ तेनाट्टहासशब्देन मोहयित्वापितामहम् ॥ ६४ ॥ तेजोराशिःशशाङ्काभः शशाङ्कार्काग्निलोचनः ॥ वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ ६५॥ चकर्तकदलीगर्भं नरःकररुहैरिव ॥ छिद्यमानंचवक्त्रंच बुबुधेनपितामहः ॥ ६६ ॥ रुद्रस्यतेजसातस्मान्मोहितोननतिङ्गतः ॥ छिन्नंतस्यशिरःपश्चाद्रुद्रहस्तेस्थितन्तदा ॥ ६७ ॥ अपश्यद्दैवतैःसार्द्धंरौद्रञ्चातिभयाज्ज्वलत् ॥ महेश्वरकरान्तस्थं नखैर्वक्त्रंविराजते ॥ ६८ ॥ ग्रहमण्डलमध्यस्थो

व उस अट्टहास के शब्द से ब्रह्मा को मोहकर ॥ ६४ ॥ चन्द्रमा के समान शोभावाले व तेजों की राशि तथा चन्द्रमा, सूर्य न अग्नि नेत्रोंवाले शिवजी ने बायें अंगूठे के नखके अग्रभागसे ब्रह्माके पांचवें मस्तकको काटडाला ॥ ६५ ॥ जैसे कि मनुष्य नखों से केला के अन्तर्भागको काटडालता है और काटेजाते हुये मुखको ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ६६ ॥ इसलिये शिवजी के तेजसे मोहित ब्रह्माजी नतिको न प्राप्तहुये याने उन्होंने प्रणाम नहीं किया उस समय उनका कटाहुआ मस्तक शिवजी के हाथमें स्थितहुआ ॥ ६७ ॥ और देवताओं समेत उन्होंने बडे भयसे जलतेहुये उस भयानक मस्तकको देखा कि शिवजीके हाथमें प्राप्त मुख नखोंसे शोभित है ॥ ६८ ॥

मानो ग्रहों के मण्डलके मध्य में स्थित दूसरा चन्द्रमा है कपालसे संयुत चन्द्रभालजी ने उसको ऊपर फेंक नृत्य किया ॥ ६९ ॥ जैसे कि शिखर पै स्थित सूर्यसे कैलास पर्वत होवै तदनन्तर मस्तक कट जाने पर हृष्टपुष्ट देवता वृषध्वज ॥ ७० ॥ देवदेव कपालधारी शिवकी अनेक भांति के स्तोत्रोंसे स्तुति किया देवता लोग बोले कि कपाली व शंखधारी महाकालजीके लिये नित्यही प्रणामहैं ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्य व ज्ञानसे संयुत तथा स सुखोंको देनेवाले व गर्वविनाशक तथा सर्व देवमय के लिये नमस्कारहै ॥ ७२ ॥ तुम कालके संहार करनेवाले हो उसीकारण महाकाल हो और भक्तोंके दुःखोंके करनेवाले हो उसीसे दुःखसे विकल मनुष्य रुचता

द्वितीयइवचन्द्रमाः ॥ उत्क्षिप्यतत्कपालेन ननर्तशशिशेखरः ॥ ६९ ॥ शिखरेनसूर्येण कैलासइवपर्वतः ॥ छिन्नेव क्रेततोदेवा हृष्टपुष्टावृषध्वजम् ॥ ७० ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्देवदेवंकपालिन। देवाऊचुः ॥ नमःकपालिनेनित्यं महाकालायशङ्खिने ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्यज्ञानयुक्ताय सर्वभोगप्रदायिने ॥ नमोदर्पविनाशाय सर्वदेवमयायच ॥ ७२ ॥ कालसंहारकर्तात्वं महाकालस्ततोह्यसि ॥ भक्तानांदुःखशमनो दुःखार्तस्तेनरोचते ॥ ७३ ॥ शङ्करोप्याशुभक्तानां तेनत्वंशङ्करःस्मृतः ॥ छित्त्वाब्रह्मशिरोयस्मात्कपालंचबिभर्तिच ॥ ७४ ॥ तेनदेकपालीत्वं स्तुतोह्यद्यप्रसीदनः ॥ एवंस्तुतःप्रसन्नात्मा देवानुत्थायशङ्करः ॥ ७५ ॥ वृन्दारकेशोभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७६ ॥ शशिशकलमयूखैर्भासितोयत्कपर्दस्त्वमलगगनगङ्गातोयवीचीविचेयः ॥ विधृतसितकपालोमालयप्रश्चकास्ति सजयतिजितवेधाऊर्जितःप्राज्यतेजाः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे ब्रह्मशिरश्छेदोनामद्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥ * ॥

है ॥७३॥ और शीघ्रही भक्तोंका कल्याण करनेवाले हो उसीसे शंकर कहेगये हो और जिस लिये ब्रह्माका मस्तक काटकर कपालको धारण करते हो ॥ ७४ ॥ उस कारण हे देव ! तुम कपालीहो आज स्तुति किये हुये तुम हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवो इसप्रकार स्तुति किये हुये प्रसन्न मनवालेसदाशिवजी देवताओंको उठाकर ॥ ७५ ॥ भगवान् देवेश शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७६ ॥ चन्द्रखण्डकी किरणो से जिनका जटाजूट प्रकाशित है व निर्मल आकाशगंगा के जल की लहरियों में ढूंढ़ने योग्य व श्वेत कपाल को धारे व माला से शोभितहैं ब्रह्मा को जीतेहुये व बढ़ेभये वे बहुत तेजवाले शिवजी जयको प्राप्तहोवें ॥ ७७ ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दो० । ब्रह्मासन जिमि विष्णुजी, प्रायश्चित्त विधान । कह्यो तीसरे में सोई, चरित प्रमोद निधान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर मस्तक कटने पर क्रोध व मोह से घिरे ब्रह्माजी ने मस्तक में उपजेहुये पसीने को लेकर पृथ्वी में पटक दिया॥ १ ॥ और उनके पसीने से कुण्डलों को धारण किये व धनुष समेत तथा बड़े भारी तरकस समेत और सोने की कवच समेत पुरुष पैदा हुआ और वह बोला कि मैं क्या करूं ॥ २ ॥ शिवजी को दिखलते हुये ब्रह्माजीने उससे कहा कि पराक्रम से इस दुर्बुद्धि को मारडालो कि जिस प्रकार फिर न उत्पन्न होवै ॥ ३ ॥ ब्रह्माके वचन को सुनकर बड़े क्रोध को धारण किये व बाण को हाथ में लिये वह वीर

सनत्कुमारउवाच ॥ छिन्नेवक्त्रेततोब्रह्मा क्रोधेनतमसावृतः ॥ ललाटेस्वेदमुत्पन्नं हीत्वाताडयद्भुवि ॥ १ ॥ ततस्वेदात्कुण्डलीजज्ञे सधनुस्समहेषुधिः ॥ सस्वर्णकवचोवीरः किङ्करोमीत्युवाचह ॥ २ ॥ तमुवाचविरञ्चिस्तु दर्शयन्रुद्रमोजसा ॥ वध्यतामेषदुर्बुद्धिर्जायतेनयथापुनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा धनुरुद्यम्यष्ठतः ॥ सप्रतस्थेमहेशस्य बाणहस्तोतिरोषभृत् ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वापुरुषंचोग्रमभवद्विस्मितोभवः ॥ दिव्यबाणधनुर्हस्तं वेगविक्रान्तगामिनम् ॥ ५ ॥ मयानवध्योतिबलो सखाविष्णोर्भविष्यति ॥ अनुग्राह्योह्यहन्तेन सख्यर्थंतपसिस्थि ॥ ६ ॥ चिन्तयन्नित्थमीशोपि विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ हुङ्कारध्वनिनाब्रह्मन् मोहयित्वाततोनरम् ॥ ७ ॥ प्रयावतदाहृष्टः क्रीडांकुर्वञ्जगत्स्थितौ ॥ यत्रनारायणःश्रीमांस्तपस्तेपेप्रतापवान् ॥ ८ ॥ अदृश्यस्सर्वभूतानां विश्वात्माविश्वसृग्विभुः ॥ तत्रप्राप्तोवि

धनुष को चढ़ाकर शिवजीके पीछे चला ॥ ४ ॥ और दिव्य बाण व धनुप को हाथमें धारे तथा वेगसे बहुत चलते भयंकर पुरुषको देखकर सदाशिवजी विस्मित हुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने यह विचार किया यह बड़ा बलवान् मुझ से मारने योग्य नहीं है और यह विष्णुमित्र होगा व उन विष्णुजी से मित्रता के लिये तपस्या में स्थित मैं दया करने के योग्य हूं ॥ ६ ॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुये शिव भी विष्णुजी के आश्रमगये तदनन्तर हे ब्रह्मन् ! हुंकारके शब्दसे नरको मोहित कर ॥ ७ ॥ संसार के पालन में क्रीड़ा करते हुये प्रसन्न शिवजी उस समय चलेही जाते थे जहां कि श्रीव प्रतापवान् नारायणजी ने तप किया है ॥ ८ ॥

जोकि समस्त प्राणियों के अदृश्य व विश्वात्मा तथा संसारको रचनेवाले व समर्थथे वहां पर प्राप्तहोकर रुद्रजी ने विष्णुजीको देखा ॥ ९ ॥ जोकि पृथ्वी में एक अँगूठे से स्थित व तपस्या में परायण तथा व्याधिरहित थे और युगान्त में हजारसूर्यों के तेज से घिरे व अरूप थे ॥ १० ॥ पवित्र आधार (आसन) से संयुत पुराणपुरुषोत्तम नारायणजी को देखकर सदाशिव देवजी ने कपाल को आगे दिखलाकर यह कहा कि भिक्षा दीजिये विष्णुजी ने जलती हुई अग्निके समान स्थित व कपाल को हाथमें लिये रुद्रजी को देखकर चिन्तन किया ॥ ११ । १२ ॥ कि इस समय भिक्षा दानक्य अन्य कौन भिक्षुक है यह योग्य है ऐसा सङ्कल्प

रूपाच्चो ददर्शमधुसूदनम् ॥ ९ ॥ एकाङ्गुष्ठस्थितम्भूमौ तपोरतमनातुरम् ॥युगान्तार्कसहस्रस्य तेजसावृतमद्भुतम् ॥ १० ॥ पुण्याधारसमायुक्तं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥ दृष्ट्वानारायणंदेवो भिक्षांदेहीत्युवाचह ॥ ११ ॥ कपालंदर्शयित्वाग्रे ज्वलज्ज्वलनवत्स्थितम् ॥ कपालपाणिंसम्प्रेक्ष्य रुद्रंविष्णुरचिन्तत् ॥ १२ ॥ कोन्योयोग्योभवेद्भिक्षुर्भिक्षादानस्यसाम्प्रतम् ॥ योग्योयमितिसङ्कल्प्य दक्षिणंभुजमर्पयत् ॥ १३ ॥ भेदान्तर्गतज्ञस्तं शूलेनशशिशेखरः ॥ ततोप्रवाहउत्पन्नश्शोणितस्यविभोर्भुजात् ॥ १४ ॥ जाम्बूनदरसाकारो वह्निज्वालेवनिर्मलः ॥ निष्पपातकपालान्तः शम्भुनासंप्रतीच्छिता ॥ १५ ॥ ऋज्वीवेगवतीक्षिप्रा दीधितीवाम्बरेरवेः ॥पञ्चाशद्योजनादीर्घा विस्तारेदशयोजना ॥ १६ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंसा समुवाहहरेर्भुजात् ॥ कियन्तंकालमीशोहि भिक्षांजग्राहभावितः ॥ १७ ॥ दत्तान्नारायणेनाथ सत्पात्रेपात्रउत्तमे ॥ ततोनारायणःप्राह हरंपरमिदंवचः ॥ १८ ॥ सम्पूर्णंतवपात्रंहि ततोवैपरमेश्वरः ॥

कर दाहिनी भुजाको दिया ॥ १३ ॥ व चित्तके भीतर के जाननेवाले चन्द्रभालजीने त्रिशूल से उस भुजाको छेदन किया तदनन्तर व्यापक विष्णुजी की भुजा से रक्तका प्रवाह पैदाहुआ ॥ १४ ॥ और सुवर्णके समान आकारवाला व अग्निकी ज्वालाके समान निर्मल प्रवाह कपाल केभीतर गिरा और ग्रहण करते हुये उन शिवजीसे ॥ १५ ॥ वह सीधी तथा वेगवती क्षिप्रा नदी पचास योजन लम्बी व दशयोजन चौड़ी आकाश में सूर्यनारायणकी किरणकी नाईं शोभित हुई ॥ १६ ॥ और देवताओं के हजार वर्षतक वह नदी विष्णुजी की भुजा से बही और कितेक समयतक शुद्ध चित्तवाले शिवजी ने नारायण से उत्तम पात्र में दीहुई भिक्षाको ग्रहण

किया तदनन्तर विष्णुजी ने महादेवजी से इस उत्तम वचन को कहा ॥ १७ । १८॥ कि तुम्हारा पात्र पूर्ण होगया तदनन्तर परमेश्वर सदाशिवजी जल समेत मेघके समान विष्णुजी का वचन सुनकर ॥ १९ ॥ व चन्द्रमा सूर्य तथा अग्नि नेत्रोंवाले और मस्तक में चन्द्रमा से शोभित व अंगुली से घोटते हुये शिवजी ने तीनों नेत्रो से दृष्टिको कपाल मे लगाकर विष्णुजी से कहा कि कपाल बहुत पूर्ण होगया विष्णुजीने शिवजी का वचन सुनकर रक्तकी धाराको हरलिया ॥ २० । २१ ॥ व सदा-शिवजी ने कपाल मे स्थित विष्णुजीके रक्तको देवताओं के हज़ार वर्षोंतक दृष्टिपातपूर्वक याने दृष्टिको लगाकर अपनी अंगुली से मथा ॥ २२ ॥ तदनन्तर रुधिर के

सतोयाम्बुदनिर्घोषं श्रुत्वावाक्यंहरेर्हरः ॥ १९ ॥ शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः ॥ कपालेदृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नेत्रैर्जनार्दनम् ॥ २० ॥ अङ्गुल्याघट्टयन्प्राह कपालंचातिपूरितम् ॥ श्रुत्वाहरिशम्भुवाक्यं रक्तधारांसमाहरत् ॥ २१ ॥ कपालस्थंहरेरीशः स्वाङ्गुल्यारुधिरन्तथा॥दिव्यंवर्षसहस्रंच दृष्टिपातममन्थयत् ॥ २२ ॥ मथ्यमानेततोरक्ते कललंबुद्बुदंक्रमात ॥ बभूवचततःपश्चात् किरीटीसशरासनः ॥ २३ ॥ सहस्रबाहुर्धन्वी धनुर्ज्यासंस्पृशन्मुहुः ॥ बभूवतूणीरधरो वृषस्कन्धोऽङ्गुलित्रवान् ॥ २४ ॥ पुरुषोर्जुनसङ्काशो दिव्यमूर्तिर्वह॥तन्दृष्ट्वाभगवान्विष्णुःप्राह रुद्रमिदंवचः ॥ २५ ॥ कपालेभगवन्कोयं प्रादुर्भूतोभवन्नरः ॥ उक्तिंश्रुत्वाहरेरीशम्प्रुवाचहरेश्शृणु ॥ २६ ॥ नरोनामेति पुरुषः परमास्त्रविदांवरः ॥ यस्त्वयोक्तोनरइति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥ २७ ॥ नरनयणौचोभौ युगेख्यातौभविष्यतः॥

मथने पर कलल व बुद्बुद क्रमसे हुआ तदनन्तर पश्चात् किरीट को धारण किये व धनुष समेत पुरुष उत्पन्न ॥ २३ ॥ व धनुषकी पनचको बार २ स्पर्श करता हुआ वह हजार भुजाओंवाला व वृष के समान कन्धेवाला और अरुण नेत्रोंवाला तथा तरकस को धारण वि दस्तानों को धारण किये था ॥ २४ ॥ अर्जुन के समान दिव्य मूर्तिवाला वह पुरुष हुआ व उसको देखकर भगवान् विष्णुजीने रुद्रजी से यह वचन कहा ॥॥ कि हे भगवन् ! कपालमें यह कौन पुरुष प्रकट हुआ है विष्णुजी के वचन को सुनकर उनसे बोले कि हे हरे ! सुनिये ॥ २६ ॥ कि नर नामक ऐसा पुरुष पर का जाननेवाला है जो तुमसे नर ऐसा कहागया

उससे नर होगा ॥ २७ ॥ और नर नारायण दोनों युग में प्रसिद्ध होवैंगे देवकार्योंके होने पर समर में व रक्षे पालन में ॥ २८ ॥ हे नारायणजी ! यह नर तुम्हारा मित्र होगा व तुम्हारे इकल्ले महामुनि की मित्रतामे तपस्याके ॥ २९ ॥ व विज्ञान की परीक्षा के निसार में तेज होगा अधिक तेजवाला यह ब्रह्मा का दिव्य पंचम शिर ॥ ३० ॥ ब्रह्मा के तेज से प्रकाशित है और तुम्हारी भुजाके रक्तसे व मेरी दृष्टिके पड़ने से तीन तेजहैं इस कारण ॥ ३१ ॥ उनके संयोग से उत्पन्न यह युद्धमें शत्रुओं को जीतैगा और जो तुम्हारे अवध्य होंगे और अन्य जो इन्द्र के दुःख से जीतनेय होंगे उन दैत्योंको यह भयंकर होगा इस प्रकार

संग्रामेदेवकार्येषु लोकानांपरिपालने ॥ २८ ॥ एषनारायणसखा नरस्तवभविष्यति ॥ तवएकाकिनःसख्ये तपसश्च महामुनेः ॥ २९ ॥ विज्ञानस्यपरीक्षार्थे तेजोलोकेभविष्यति ॥ तेजोधिकमिदंयं ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ ३० ॥ तेजसाब्रह्मणोदीप्तं भुजस्यतवशोणितात् ॥ ममदृष्टिनिपाताच्चत्रीणितेजांसियान्यत ३१ ॥ तत्संयोगात्समुत्पन्नः शत्रून् युद्धेजयिष्यति ॥ अवध्यायेभविष्यन्ति दुर्जयास्तवचापरे ॥ ३२ ॥ शक्रस्यचामरीणां तेषामेषभयङ्करः ॥ एवमुक्तवतश्शम्भोर्विस्मितस्तस्यतेजसा ॥ ३३ ॥ हरेरपिसतत्रैव तुष्टावहरकेशवौ ॥ नमोहरेतुभ्यं नमःशङ्करविष्णवे ॥३४॥ नमस्तेशूलहस्ताय नमस्तेखड्गपाणये ॥ नमोनमस्तेमेध्याय हृषीकेशनमोस्तुते ३५ ॥ नमोस्तुवाचांपतये श्रीधरायनमोनमः ॥ एवंस्तुवन्तंतंव्यास कृताञ्जलिपुटन्नरम् ॥ ३६ ॥ तथैवाञ्जलिसंबद्धंगृहीत्वासुकरद्वयम् ॥ उद्धृत्याथकपालात्तु पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ३७॥ यएवपुरुषोरौद्रो ब्रह्मणःस्वेदसम्भवः ॥ सतुहुङ्कारशब्देन मोहनिद्रामुपागतः ॥३८॥

कहते हुये उन सदाशिवजी के व विष्णुजी के भी तेज से विस्मय में प्राप्त उसने वहीं पर महादेव व विष्णुजीकी स्तुति किया कि हे हर,हरे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शङ्कर तथा विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ३२ । ३३ । ३४ ॥ त्रिशूल हाथवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व तलवा को हाथ में धारे हुये तुम्हारे लिये नमस्कार है पवित्ररूप आपके लिये प्रणाम है हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥वाचस्पति आपके लिये प्रणाम है व श्रीधर आपके लिये नमस्कार है हे व्यासजी ! हाथोंको जोड़े इस प्रकार स्तुति करते हुये उस नरके ॥ ३६ ॥ वैसेही अंजली में बँधेहुये दोनों हाथों को पकड़कर व कपालसे ऊपर निकालकर फिर शिवजी वचन

बोले ॥ ३७ ॥ कि ब्रह्मा के पसीने से उपजा हुआ जो भयंकर पुरुष है वह हुंकार के शब्द से मोहनिद्राको प्राप्त हुआ है ॥ ३८ ॥ उसको शीघ्रही जगावो ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये और नारायणके सामने शीघ्रही बाये चरण से मारकर उसको जगाया और वह नर क्रोध से उठा व पसीना तथा रक्तसे उपजे हुये उन दोनों का बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ ३९ । ४० ॥ कि जिस युद्धमें चढ़ाये हुये धनुषों के शब्दों से सब भूतल शब्दयमान होगया पसीना से उपजे हुये नरके एक कवच व रक्तसे उपजे हुये पुरुषके दो भुजायें शेष रहीं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हे सुद्विज ! तुल्य होने के कारण पृथ्वी दिव्य युद्ध हुआ व तीन वर्ष कम दश सौ वर्षों

निबोधतंचत्वरितमित्युक्त्वान्तर्दधेहरः ॥ नारायणस्यप्रत्यक्षं बोधयामासस्वाङ्नरम् ॥ ३९ ॥ वामपादेनतंहत्वा समुत्तस्थौनरोरुषा ॥ तयोर्युद्धंसमभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥ ४० ॥ विस्फारितधनुश्शब्दनादिताशेषभूतलम् ॥ कवचंस्वेदजस्यैकं रक्तजस्यतथाभुजौ ॥ ४१ ॥ एवंसमेनवैयुद्धं दिव्यंजातन्तुभूतले ॥ त्रिवर्षोनिवर्षाणां शतानिदशसुद्विज ॥ ४२ ॥ युध्यतोस्समतीतानि स्वेदरक्तजयोर्मुने ॥ रक्तजोद्विभुजोदृष्ट्वा कवचैकेनस्वेदजम् ॥ ४३ ॥ बिभेदबाणवेगेनब्रह्मणःस्वेदजंनरम् ॥ ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणंमधुसूदनः ॥ ४४ ॥ मन्नरेणोच्छ्रितस्तवदीयोविनिपातितः ॥ श्रुत्वा तदाकुलोब्रह्मा बभाषेमधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ हरेन्यजन्मनिनरो मदीयोयदिहीय तदासहाय्यंकर्तव्यं वचनान्मम माधव ॥ ४६ ॥ तेनतुष्टेनसम्प्रोक्तं हरिणैवंभविष्यति ॥ ततस्तयोरणमपि निवार्य्यमुवाचह ॥ ४७ ॥ अथान्यजन्मनि

तक याने नवसै सत्तानवे वर्ष स्वेदज व रक्तज के युद्ध करते हुये बीत गये हे मुने ! रक्त से उपजे हुये दो भुजाले नर ने एक कवच से संयुत पसीना से उपजेहुये पुरुषको देखकर ॥ ४२ । ४३ ॥ बाणों के वेगसे ब्रह्माके स्वेद से उपजे हुये नर को काट डाला और मधुसूदनजीने संभ्रम समेत ब्रह्माजीसे यह कहा ॥ ४४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मेरे नर से तुम्हारा बढ़ा हुआ मनुष्य गिरा दिया गया उस वचन को सुनकर व्याकुल ब्रह्मा विष्णुजी से कहा ॥ ४५ ॥ कि हे माधव ! यदि अन्य जन्म में मेरा नर हीन होवै तो हे माधवजी ! मेरे वचन से तुमको सहाय करना चाहिये ॥ ४६ ॥ उनो विष्णुजीने कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर उन

दोनो के युद्धको मनाकर उन से कहा ॥ ४७ ॥ कि इसके अनन्तर अन्य जन्ममें कलियुगमें मेरा नर होगा तब महासमर होनेपर वहां मैं उसको युक्त करूंगा ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी ने दिनेश (सूर्य) व सुरेश (इन्द्र) जीको बुलाकर तदनन्तर आपही कहा कि पसीना से उत्पन्न व रक्त से पैदा हुये अपने अंशवाले ये भयंकर नर तुम से पृथ्वी में पालन करने योग्य है और द्वापर के अन्तमे अपने अंश से उपजे हुये पृथ्वी में तुमसे युक्त करने योग्य हैं ॥ ४६ । ५० ॥ तदनन्तर उस समय सुरेश इन्द्रजी, विष्णुजी से दुःखित वचन बोले कि हे देव, हरे ! इस मन्वन्तर में त्रेता नामक युगमें ॥ ५१ ॥ सूर्यपुत्र (सुग्रीव) के हितको चाहनेवाले

नरो मदीयोभविताकलौ ॥ ततोमहारणेजाते तत्राहंयोजयामितम् ॥ ४८ ॥ विष्णुनाथसमाहूय दिनेश्वरसुरेश्वरौ ॥ उक्ताविमौनरौरौद्रौ पालनीयौस्वयन्ततः ॥ ४९ ॥ स्वेदजातोप्यसृग्जातः स्वकीयांशोधरातले ॥ स्वांशभूतौद्वापरान्ते नियोज्यौभूतलेत्वया ॥ ५० ॥ ततोब्रवीत्तदाविष्णुं सुरेशोदुःखितंवचः ॥ अस्मिन्मन्वन्तरेदेव त्रेतानाम्नियुगेहरे ॥ ५१ ॥ तद्रूपेणैवमहतासूर्यपुत्रहितार्थिना ॥ वालीनाममहाबाहुस्सुग्रीवार्थेनिपातितः ॥ ५२ ॥ तेनदुःखेनतप्तोहं नाहंगृह्णामितेनरम् ॥ अग्राह्यमाणंदेवेशं कारणान्तरवादिनम् ॥ ५३ ॥ विष्णुःप्रोवाचमघवन् भुवोभारावतारणे ॥ अवतारंकरिष्यामि मर्त्यलोकेप्यहंविभो ॥ ५४ ॥ ततोहृष्टोऽभवच्छक्रो विष्णुभावेनतेनवै ॥ प्रतिगृह्यनरंहृष्टस्सत्यमस्तुवचस्तव ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वातुरवीन्द्रौस प्रेषयित्वाचतौपुनः ॥ गत्वाचपुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणंब्रह्मवेश्मनि ॥ ५६ ॥ उवाचवा

बडे भारी तुम्हारेही रूपसे बालि नामक महाबाहु वानर सुग्रीवके लिये मारा गया है ॥ ५२ ॥ उस दुःख से मैं संतप्तहूं इस लिये तुम्हारे नर को नहीं ग्रहण करूंगा दूसरे कारण को कहते व न ग्रहण करते हुये सुरेशजी से ॥ ५३ ॥ विष्णुजीने कहा कि हे विभो, मघवन् ! पृथ्वी के भार को उतारने मे मैं भी मृत्युलोक में अवतार करूंगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस विष्णुभाव याने विष्णुजी के होनेसे इन्द्रजी प्रसन्न हुये और प्रसन्न होकर नरको पकडकर कहा कि तुम्हारा वचन सत्य होवै ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर उन सूर्यनारायण व इन्द्रजी को पठाकर फिर उन कमललोचन व धर्मज्ञ विष्णुजी ने ब्रह्माके मन्दिर मे जाकर उस पातक की शुद्धि के लिये ब्रह्माजी

से कहा कि हे ब्रह्मन् ! रुद्रको मारनेकी इच्छा करते हुये तुमने निन्दित कर्म किया ॥ ५६ । ५७ ॥ हे देवदेवेश ! तुमने जिस लिये क्रोध से पुरुष से कहा इसकारण पाप की शुद्धिही के लिये उत्तम प्रायश्चित्त को कीजिये ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तीनि अग्नियोंको ग्रहण करते हुये तुम अग्निहोत्रके उपासक होवो एक गार्हपत्य दूसरी हवनीय ॥ ५९ ॥ न तीसरी दक्षिणाग्नि है इनको तीनि खंडों मे कल्पित करो और गोल वेदी पै अपना को व धनुषाकार वेदी पै मुझको स्थापित करो ॥ ६० ॥ और चौकोन वेदी पै ऋग्, यजुः व साम वेदके नामों से सदाशिवजी को स्थापित करो और तपस्या से अग्नि में हवन कर उसी क्षण विष्णु से अर्पण कीजिये ॥ ६१ ॥

चंधर्मज्ञस्तस्यपापविशुद्धये ॥ कृतंजुगुप्सितंकर्म ब्रह्मन्नीशंजिघांसता ॥ ५७॥ यत्त्वयादेवदेवेश पुमान्कोपेनभाषितः ॥ शुद्ध्यर्थमेवपापस्य प्रायश्चित्तंपरंकुरु ॥ ५८ ॥ गृह्णन्वह्नित्रयंब्रह्मन्नग्निहोत्रमुपासकः ॥ एकोवैगार्हपत्यस्तु द्वितीयोह वनीयकः ॥ ५९ ॥ दक्षिणाग्निस्तृतीयस्तु त्रिखण्डेषुप्रकल्पय ॥ वर्तुलेस्थापयात्मानं मामथोधनुषाकृतौ ॥ ६० ॥ चतुष्कोणेहरंदेवं ऋग्यजुःसामनामभिः ॥ हुत्वात्वग्निञ्चतपसा हरावर्पयतत्क्षणात् ॥ ६१ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतु हुत्वाग्निं सिद्धिमाप्स्यसि ॥ प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा प्रतिपद्यमहेश्वरम् ॥ ६२ ॥ ततोनिष्कल्मषोभूत्वा विषादस्तेगमिष्यति ॥ ६३ ॥ इत्येवमुक्त्वाहरिरुग्रतेजा गतःस्वकीयंनिलयंमहात्मा ॥ ब्रह्मापिचित्तंतपसेनिधाय समादधेसर्वमथाच्युतोक्तम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेप्रायश्चित्तंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवताओं के हज़ार वर्षोंतक अग्नि में हवनकर तुम सिद्धि को पावोगे और प्रायश्चित्त से शुद्ध चित्त वाले तुम महादेवजी को प्राप्त होकर तदनन्तर पाप रहित होकर तुम्हारा दुःखजावैगा ॥ ६२ । ६३ ॥ उग्र तेजवाले महात्मा विष्णुजी यह कहकर अपने स्थान को चले गये व ब्रह्माने भी तपस्या के लिये चित्त धरकर इस के अनन्तर विष्णुजीसे कहे हुये सब कर्म को किया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रबिरचितायाभाषाटीकायां ब्रह्मणे विष्णुनाप्रायश्चित्तनिरूपणं नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो• । कह्यो अग्नि उत्पत्ति को, सनतकुमार मुनीश । सोइ चौथे अध्याय में,वर्णित चरित बरीश ॥ व्यासजी बोले कि जो यह नर नामक धनुषधारी पुरुष कपाल में पैदा हुआ था क्या वह विश्वकर्माकी उत्पत्तिमें इस समय ऐसा उत्पन्न हुआहै ॥ १ ॥ व स्वामी शिवजी से बुद्धिपूर्वक कैसे उत्पन्न हुआहै और भगवान् विष्णुजी से ब्रह्मासे भेद के कारण कैसे उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ शिव, विष्णु व ब्रह्माके मध्यमें किससे किस लिये उत्पन्न हुआहै और जो हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीहैं जोकि चार मुखवाले पैदा हुये थे ॥ ३ ॥ उनके भी पांचवां अद्भुत मुख कैसे प्राप्त हुआ है और किसप्रकार रुद्र में मन को धारते हुये वे भगवान् ब्रह्माजी स्थित हुयेहैं ॥ ४ ॥ कि जिन मूढ़

व्यासउवाच ॥ योसौकपालउत्पन्नो नरोनामधनुर्धरः ॥ किमेवंसोधुनाजात उत्पत्तौविश्वकर्मणः॥ १ ॥ कथंरुद्रेण जनितः प्रभुणाबुद्धिपूर्वकम् ॥ विष्णुनावाभगवता ब्रह्मणाभावभेदतः ॥ २ ॥ केनकस्मात्समुत्पन्नः शङ्कराच्युतब्रह्मणाम् ॥ब्रह्माहिरण्यगर्भोयो योजातश्चचतुर्मुखः॥ ३ ॥ अद्भुतंपञ्चमंवक्त्रं कथंतस्याप्युपस्थितम्॥सतस्थौभगवान्ब्रह्मा कथंरुद्रेमनोदधन् ॥ ४ ॥ मूढात्मनानरोयेन हन्तुंसप्रहितोहरम् ॥ सनत्कुमार उवाच॥ महेश्वरहरीएतौद्वावेवव्यासतिष्ठतः ॥ तयोरविदितंनास्ति सिद्धासिद्धंमहात्मनोः ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःपञ्चमंवक्त्रं यत्तदासीन्महात्मनः ॥ तस्यैवमानसोग्निः शिरसातेनवैधृतः॥ ६ ॥ योनरोब्रह्मणाप्रोक्तः सोप्यग्निस्तस्यमानसः॥ दधारतंमहादेवः कृताङ्गुल्यन्तरान्तरे ॥ ७॥ पूर्वंदृष्ट्वासमुत्पत्तिमेवंतस्यमहात्मनः ॥ तस्मात्कपालादङ्गुल्या घृष्यमानादजायत ॥ ८ ॥ सतंहत्वाशरेणा

चित्त वाले ब्रह्माजीने शिवजी को मारने के लिये नर को पठायाहै सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महादेवजी व विष्णुजी दोनों स्थित रहतेहैं और उन महात्माओं को सिद्ध व असिद्ध अविदित (अप्रकट) नहीं होता है ॥ ५ ॥ उस समय महात्मा ब्रह्माजी का जो पंचम मुख था उसी की वह मानसी अग्नि मस्तक से धारण की गई है ॥ ६ ॥ और जो नर ब्रह्माजी से कहा गया है वह भी उनकी मानसी अग्नि है अंगुली के मध्य में किये हुये उस पुरुष को महादेवजी ने धारण किया है ॥ ७ ॥ पुरातन समय उन महात्मा की उत्पत्ति को इसप्रकार देखकर अंगुली से चलाये हुये उस कपाल से नर उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ उसने समर में उसको मारकर

ब्रह्माके रजोगुण धारण किया और रजोगुणसे सत्त्वगुण मोहित हुआ क्योंकि प्रभु स्वच्छन्दतासे कार्य करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनियोंसे प्रणाम किये हुये भगवन् सनत्कुमारजी ! अग्नि कैसे उत्पन्न हुई है जिसको शिवजी ने धारण किया इसको विस्तारसे कहिये ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले अव्यक्तादि-कों को रचा और वह अण्ड होगया और सुवर्ण के समान शोभावाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी पैदा हुये हैं ॥ ११ ॥ वे ब्रह्माजी देवताओं के हजार वर्षोंतक बड़ी तपस्या कर भली भांति स्थित हुये इसके अनन्तर उन्होंने भूर्भुवः स्वः इस श्रुतिको कहा ॥ १२ ॥ पश्चात् श्रुति के योग से मनसे अग्नि उत्पन्न हुई जब पृथ्वी

जो ब्रह्मणोनिहितंरजः ॥ मुमोहरजसासत्त्वं यदृच्छाकृत्प्रभुर्यतः ॥ ९ ॥ व्यासउवाच ॥ कथमग्निःसमुत्पन्नो योनिःशर्वेणधारितः ॥ विस्तरेणसमाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दित ॥ १० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डंहितदजायत ॥ जज्ञेसौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ११ ॥ स्वयम्भूःसतपस्तप्त्वा दिव्यंवर्षशतंमहत् ॥ संतस्थौव्याजहाराथभूर्भुवःस्वरितिश्रुतिः ॥ १२ ॥ श्रुतियोगात्तुमनसः पश्चादग्निरजायत ॥ अधोमुखःपपाताग्निः पृथिवींनिर्दहन्यदा ॥ १३ ॥ पाणिभ्यांब्रह्मणासोग्निर्भूमेरूर्ध्वंनिवेशितः ॥ ततोदक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निःप्रणीयते ॥ १४ ॥ पुरापतन्नधोज्वाल ऊर्ध्वज्वालोयतोधृतः ॥ उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा ॥ १५ ॥ ज्वालाभिःप्रज्वलन्नूर्ध्वं सर्वशब्दःस्फुलिङ्गवान् ॥ हिरण्यवर्णंब्रह्माणं सउवाचाग्निरुत्कटम् ॥ १६ ॥ किमर्थंतुमयादेव भूमिभक्ष्यंनिवारितम् ॥ बुभुक्षयाहमाविष्ट आहारोमेप्रदीयताम् ॥ १७ ॥ एवमुक्तोऽग्नयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः ॥ कुशश्चखादन्नाग्निस्तु सर्वरो

को जलाती हुई अग्नि नीचे मुखकर गिरी ॥ १३ ॥ तब उस अग्निको ब्रह्माने हाथोंसे भूमि के ऊपर धारण किया उसीकारण वेदी के ऊपर दाहिने हाथसे अग्नि लाई जाती है ॥ १४ ॥ पहले गिरती हुई नीचे ज्वालावाली अग्नि जिसलिये ऊपर ज्वालावाली धारण कीगई व जिस लिये उतान कीगई उसीकारण ब्रह्मा से तीन प्रकार की अग्नि निर्माण कीगई ॥ १५ ॥ ज्वालाओं से ऊपर जलती हुई चिनगारियोंवाली व सब शब्दोंवाली अग्नि ने सुवर्ण के समान रंगवाले उन ब्रह्मा से उग्रतापूर्वक कहा ॥ १६ ॥ कि हे देव ! मुझ से भूमि में भक्षण करने योग्य वस्तु किसलिये मना कीगई मैं क्षुधा से संयुतहूँ इस लिये मुझको भोजन

माणिब्रह्मणः॥ १८ ॥ अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः॥ त्वचंजुहावब्रह्मास चखादाग्निस्तमेवच ॥ १९ ॥ अब्रवीत्त ततोवह्निस्तृप्तिर्नास्तिममैवहि॥ जुहावस्वानिमांसानि त्वचोत्कृत्यप्रजापतिः ॥ २० ॥ अब्रवीचनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृ तिः॥ जुहावब्रह्माचास्थीनि तान्यश्नन्सबुभुक्षितः॥ २१ ॥ ततोब्रह्माहुताशेन कृतोदेही विधातुकः॥ तमदेहमथोवह्निर्ब्र ह्माणमवदच्चसः ॥ २२ ॥ अहोब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः॥ क्रुद्धेनब्रह्मणासोग्निर्हुंकारेणद्विधाकृतः ॥ २३ ॥ आह तूरुदतावग्नी आहारार्थंप्रजापतिम् ॥ हुंकारेणपुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकंचकारवै ॥ २४ ॥ त्रयस्तेषांरुदन्तिस्म रुद्रमेकोहिसं श्रितः॥ क्रुद्धेनब्रह्मणाव्यास हुंकारेणैवताडितः॥ २५ ॥ रोरूयमाणेचाग्नौतु पुनर्ब्रह्माकृपान्वितः॥ आहकामाभिभूता नां भुङ्क्ष्वत्वंदेहधातवः॥ २६ ॥ तेकालेलब्धकामस्यसावृत्तिःसंप्रकल्पिता ॥ अकाराग्निसन्निविष्टं दृष्ट्वामनसिमान

और ब्रह्माके सब रोमोको खाते हुये दुबले अग्नि देवजी ॥ १८ ॥ दिया जावै ॥ १७ ॥ इसप्रकार कहे हुये उन ब्रह्माजीने अग्निके लिये अपने रोमो को हवन किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर अग्नि ने उन ब्रह्माजी से कहा कि मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्मा ने त्वचाको हवन किया व अग्नि ने उसको खालिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर अग्नि ने उन बोले कि मेरी न तृप्ति हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्माजी ने त्वचा से काटकर अपने मांसों को हवन किया ॥ २० ॥ अग्नि जी बोले कि मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्माजी ने अस्थियों को हवन किया व उन अस्थियोंको खाते हुये अग्निजी क्षुधित रहे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शरीरधारी ब्रह्माजी अग्नि से धातुवों रहित किये गये इसके अनन्तर उन अग्निजी ने शरीररहित ब्रह्माजी से कहा ॥ २२ ॥ कि अहो ब्रह्मन्! मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीरको आनन्द हुआ क्रोधित ब्रह्माजी ने हुंकार से उस अग्नि को दो खण्ड किये ॥ २३ ॥ और रोते हुए उन अग्नियोंने भोजन के लिये ब्रह्माजी से कहा फिर ब्रह्माजी ने हुंकारसे एक एक के दो दो खण्ड किये ॥ २४ ॥ उनके मध्यमें से तीन रोने लगे व एक शिवजी के आश्रित हुआ हे व्यासजी! क्रोधित ब्रह्माजीने हुंकार से ताड़ित किया ॥ २५ ॥ व अग्नि के बहुत रोनेपर फिर ब्रह्मा जी दयासंयुक्त होकर कहा कि काम से तिरस्कृत पुरुषों की धातुवों को तुम भोजन करो ॥ २६ ॥ समय में पाई हुई

कामनावाले तुम्हारी वह जीविका कल्पित कीगई मन में भलीभांति बैठे हुये मानस अकाराग्नि को देखकर ॥ २७ ॥ उकाराग्नि जल उठी और यह क्या है ऐसा कहा ब्रह्माजीने उससे कहा कि तुम भी इच्छा के अनुकूल जीविका के आश्रित होवो ॥ २८ ॥ उन ब्रह्माजीसे ऐसा कहे हुये उसने देवताओं के मध्यमें या बाहर व मुनियों के आश्रयों में इस वृत्ति (जीविका) की रुचि किया ॥ २६ ॥ तब ब्रह्माजी ने बार २ कहा कि मैं ऐसेही दूंगा जिस लिये कि हुंकार से यह दूसरी अग्नि हुई है ॥ ३० ॥ इसलिये अपमान व अभिमान समेत हुंकार जहां कहा जावै मेरी आज्ञा से तुम्हारी क्षुधा के शान्त होने के लिये वह जीविका होवै ॥ ३१ ॥

सम् ॥ २७ ॥ अकाराग्निःप्रजज्वाल किमेतदितिचाब्रवीत् ॥ ब्रह्मातमाहत्वमपि यथेष्टांवृत्तिमाश्रय ॥ २८ ॥ देवमध्येबहिर्वापि मुनीनामाश्रयेषुच ॥ इत्येवमुक्तस्तेनाशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥ २६ ॥ अहमेवंप्रदास्यामि पुनःपुनरुवाचह ॥ यस्मादेषद्वितीयोग्निर्हुंकारात्समजायत ॥ ३० ॥ साभिमानोऽपमानोवाहुंकारोयत्रकथ्यते ॥ साचवृत्तिर्ममादेशाद्बुभुक्षाशान्तयेतव ॥ ३१ ॥ इकाराग्निंसमाहूयब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ भवतोऽग्नेरियंवृत्तिरन्नंभुक्तंदहेरिति ॥ ३२ ॥ उकाराग्निंसमाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ यत्पृथिव्यांमरुस्थानं भगवंस्तत्त्वमाश्रय ॥ ३३ ॥ अहंतवविधास्यामि स्थानमाहारमेवच ॥ इत्युक्तःसतुतेनाग्निर्यः पृथिव्यांशिलाचयः ॥ ३४ ॥ यतोग्निर्व्यासतेनोक्तो गिरौदुर्गेमहामुने ॥ उकाराग्निःसचाप्येष समुद्रेवडवामुखः ॥ ३५ ॥ सोपिभिन्नःसमाहूतो ब्रह्मणास्थानलिप्सया ॥ त्वञ्चक्षुःसर्वलोकस्य

इकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजीने वचन कहा कि आप अग्नि की यह वृत्ति है कि भोजन किये हुये अग्नि को भस्म कीजिये ॥ ३२ ॥ व उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्मा ने वचन कहा कि हे भगवन् ! पृथ्वी में जो मरु (निर्जल) स्थान हो उसमें तुम आश्रित होवो ॥ ३३ ॥ मैं तुमको स्थान व आहार विधान करूंगा उन ब्रह्माजी से ऐसा कहेहुये वे अग्निदेव जी जो पृथ्वी में शिला समूह था उसमें आश्रित हुये ॥ ३४ ॥ हे महामुने, व्यासजी ! जिस लिये कठिन पर्वत में उन व्यासजी से वह अग्नि कही गई उसी कारण वह उकाराग्नि समुद्र में बडवामुख है ॥ ३५ ॥ स्थान पाने की इच्छा से ब्रह्माने उसको भी भिन्न बुलाया और ब्रह्माजी वचन बोले कि

तुम समस्त मनुष्यों के नेत्रहो ॥ ३६ ॥ इस लिये तुम ब्राह्मणों की संस्कृतवाणी को प्रकाशित करो क्योंकि संस्कार कीहुई वाणी दैवी याने देवताओंवाली व पुण्यदायिनी होती है और असंस्कृतवाणी आयुर्बल को नाश करती है ॥ ३७ ॥ इस लिये ब्राह्मण की प्रकाशित वाणी पुण्यदायिनी जाननेयोग्य है और वाणी ब्राह्मणों की माता है वह मुखमें भलीभांति स्थित है ॥ ३८ ॥ झूंठे अक्षरों के बोलने से अमङ्गल देनेवाली असंस्कृतवाणी वक्ताको नाश करती है इस लिये अग्नि सदैव संस्कृतवचनवाला ब्राह्मण है ॥ ३९ ॥ फिर नेत्ररहित अकाराग्नि को बुलाकर यही कहा और उसने भी नेत्रोंको मूंदकर उस देववाणी को कहा ॥ ४० ॥ और अग्निने

ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वंसंस्कृतांवाणीं द्विजातीनांप्रकाशय ॥ दैवीपुण्यासंस्कृताच आयुष्यंहन्त्यसंस्कृता ॥ ३७ ॥ तस्माद्द्विजातेर्विज्ञेया वाणीपुण्याप्रकाशिता॥वाक्चमाताद्विजातीनां मुखेसासंप्रतिष्ठिता ॥ ३८॥ अन्तताचरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता ॥ वक्तारंहन्त्यतोह्यग्निः सदासंस्कृतवाग्द्विजः ॥ ३९ ॥ आहूयभूयोकाराग्निं प्रजापतिरचक्षुषम् ॥ तांदेववाणीमवदत्सोपिसंमीलितेक्षणः ॥ ४० ॥ ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचोहमुखमास्महे ॥ स्थानंममप्रयच्छस्व सर्वतेजोवरंपरम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मातमाहयस्मात्त्वंतेजःस्थानंसमीहसे ॥ तस्मात्तेजोमयंयत्ते रविस्थानंभविष्यति ॥ ४२ ॥ यस्मात्प्रपद्यतेतेजश्चक्षुर्भवतिदुर्बलम् ॥ तस्मात्त्वांतेजसायुक्तं पश्येदनिमिषश्चकः ॥ ४३ ॥ इकारमथसंभिन्नमग्निमाहपितामहः ॥ सौम्यदृष्ट्यातुब्रह्माणं समुद्वीक्ष्यह्युपागतः ॥ ४४ ॥ यस्माच्छीघ्रंमहासत्त्व सौम्यदृष्टिरिहागतः ॥ तस्माद्दास्याम्यहंस्थानं सर्वभूतमनोरमम् ॥ ४५ ॥ त्वंसितात्माश्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वंभविष्यसि ॥ सर्वतेजो

ब्रह्माजी से कहा कि मैं वाणीके मुखमें स्थितहूं व समस्ततेजों में श्रेष्ठ उत्तमतेजको मुझे दीजिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी ने उससे कहा कि जिसलिये तुम तेजके स्थान को चाहतेहो उसी लिये जो तेजोमय सूर्यनारायणजी का स्थान है वह तुम्हारा स्थान होगा ॥ ४२ ॥ व जिस कारण तुम्हारे तेजको प्राप्त होकर नेत्र दुर्बल होताहै उस लिये तेजसे संयुत तुमको बिन पलकभांजे कौन देखताहै ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर पितामहजी ने भिन्न अग्नि इकार से कहा और वह सौम्यदृष्टि से ब्रह्माको देखकर समीप आया ॥ ४४ ॥ इससे ब्रह्माजी ने उससे कहा कि हे महाबलवान् ! जिसलिये सौम्यदृष्टिवाले तुम शीघ्रही यहां आयेहो इस कारण समस्त प्राणियों के मनोहर

स्थान को मैं दूंगा ॥ ४५ ॥ और तुम श्वेतात्मक सूर्य व चन्द्रमा होगे जोकि समस्त तेजों से अधिक, दिव्य, सौम्य व बहुतही प्रकाशितहै ॥ ४६ ॥ और उसमें स्थित होकर तुम तेजसे सबतेजोंको तिरस्कार करोगे, ऐसा कहकर उसको बिदाकर इसके अनन्तर उकाराग्निको बुलाया ॥ ४७ ॥ व यहां आइये आइये इस प्रकार लेकर मस्तक में बिठाया और वहां स्थित होकर यह पांचवां मुख ऊपर हुआ ॥ ४८ ॥ इसप्रकारके रूपवाली अग्नि यह उकाराग्नि प्रतिष्ठित हुई इसलिये इन अग्नि व सूर्यको रुद्र निर्देश करै ॥ ४९ ॥ शिव व अग्निरूपी उत्तमदेव ने ब्रह्मासे यह कहा कि मुझको भी यथायोग्य सुन्दरस्थान को दीजिये ॥ ५० ॥ ब्रह्माने उससे कहा कि पृथ्वीतलमें

धिकोदिव्यः सौम्यःपरमभासुरः ॥ ४६ ॥ तत्रस्थःसर्वतेजांसि तेजसाभिभविष्यति ॥ इत्युक्त्वातंविसर्ज्याथ उकाराग्नि मथाह्वयत् ॥४७॥ इहेह्येहीतिशिरसि समादायन्यवेशयत् ॥ तत्रस्थःपञ्चमंवक्त्रमूर्ध्वमेतदजायत ॥ ४८ ॥ एषएवंरूपवह्निरुकाराग्निःप्रतिष्ठितः ॥ तस्मादग्निश्चसूर्यश्च रुद्रावेतौविनिर्दिशेत् ॥ ४९ ॥ भवाग्निरूपःपरमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत ॥ ममापिसुचिरंस्थानं प्रयच्छस्वयथातथम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मातमाहकतमत् स्थानंतेरोचतेतले ॥ अग्निस्तुप्रत्युवाचेदं स्थानंकथयमेपरम् ॥५१॥ स्थानंनैवास्तिनोभव्यं ततोह्येवंभविष्यति ॥ अत्रत्वास्थातुमिच्छामि यदिसंरोचतेतव ॥५२॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोकेनित्यसमाचार लोकसंस्थितिहेतुक ॥ सम्भवार्थमिहासत्वं निजसत्त्वपराक्रमः ॥ ५३ ॥ यदिहत्वंमहाज्वालस्ताभिःकलितशोभनः ॥ प्राप्स्यसेसर्वजन्तूनां भासुरन्त्वंसमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तद्वोषधर्मश्चैवाद्यो मायामोहितकाम्यया ॥ इत्युक्तोब्रह्मणासोपि प्रजज्वालसहस्रशः ॥ ५५ ॥ ततोह्यनन्तज्वालाभिर्नानावर्णादिभिःश्रितः ॥ अकारेका

तुमको कौन स्थान रुचताहै तब अग्निने यह कहा कि मुझसे उत्तम स्थानको कहिये ॥ ५१ ॥ मेरे कल्याणदायक स्थान नहींहै उसलिये ऐसा होगा कि मैं यहां टिकने की इच्छा करता हूं यदि तुमको रुचता हो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकमें नित्य आचारवाले, संसारकी मर्यादाके कारण ! अपने सत्त्व व बलवाले तुम उत्पत्ति के लिये यहां स्थित होवो ॥ ५३ ॥ यदि बड़ी ज्वालाओंवाले तुम उन ज्वालाओं से शोभित छविवाले होगे और समस्त प्राणियों के मध्य में तुम प्रकाशित उत्तम स्थान को पावोगे ॥ ५४ ॥ तो मायासे मोहित कामनाके कारण यह आदिवाला धर्महै ब्रह्मासे इस प्रकार कहेहुये वे अग्निदेवभी हज़ारों भांतिसे जलतेभये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर

अनेक रङ्गादिकोंवाली अमित ज्वालाओं से आश्रित हुये इसके अनन्तर ब्रह्माने अकार, इकार व उकारसे उस अग्निको शान्त किया ॥ ५६ ॥ परन्तु यह अग्नि शान्तता को न प्राप्तहुई किन्तु फिरभी बढ़ी और रुद्राग्निसे तिरछा ऊपर व नीचे सब व्याप्तहोगया ॥ ५७ ॥ सब ओर ज्वालाओं से अपना को ऊपर फेंकेहुये देखकर तदनन्तर चिन्तनकर ब्रह्माजी विशेषतासे डरगये ॥ ५८ ॥ और तेजनिधान व सबोंके स्वामी रुद्राग्निजी को जानने की इच्छा करतेहुये ब्रह्माजी ने मस्तक पै अञ्जलीको धरकर प्रणामकर ऋग्,यजुः व सामवेदमें कहेहुये वेदोक्त स्तोत्रोंसे स्तुति किया ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सत्यतेजवाले ! परस्पर महात्मा आपके लिये प्रणाम है और अद्भुत

रोकारैश्चब्रह्मातमथशान्तवान् ॥ ५६ ॥ नैवासौशान्ततांयाति वह्निर्भूयोप्यवर्द्धत ॥ व्याप्तंभवाग्निनासर्वं तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ ५७ ॥ ज्वालाभिरुपरिक्षिप्तं दृष्ट्वात्मानंसमन्ततः ॥ चिन्तयित्वाततोब्रह्मा भीतश्चैवविशेषतः ॥ ५८ ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टावाथप्रणम्यतम् ॥ तेजोनिधिञ्चसर्वेशं ज्ञातुमिच्छन्प्रजापतिः ॥ निगमोक्तरहस्यैश्च ऋग्यजुःसामभाषितैः ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यतेजोनमस्तेस्तु परस्परमहात्मने ॥ अद्भुतानांप्रतिश्रोत्रे तेजसांनिधिरव्ययः ॥ ६० ॥ बीजंयोविश्वभावानां संमोहनविमोहनम् ॥ अन्धकारोयुगावर्तं कालेकालेचदुःसहम् ॥ ६१ ॥ ऊर्ध्ववक्त्रनमस्तेस्तु सत्त्वात्मकधरात्मक ॥ ज्वलज्ज्वालोत्पन्नजल जलजेशजलेश्वर ॥ ६२ ॥ जलजोत्फुल्लपत्राक्ष ज्वलदेवहुताशन ॥ कृष्णकान्तःकृष्णमार्गः स्वर्गमार्गप्रदायकः ॥ ६३ ॥ यज्ञाहुतिसमाचार यज्ञरूपनमोनमः ॥ स्वर्णगर्भशमीगर्भ जयदेवसनातन ॥ ६४ ॥ नमोहारमहाहार स्वाहाप्रियतमोहर ॥ प्रदीप्तरोचिषेदेव चित्रभानोनमोस्तुते ॥ ६५ ॥ वैश्वा

जनोंके प्रतिश्रोता के लिये नमस्कार है तुम तेजनिधान व अविनाशी हो ॥ ६० ॥ जो विश्वभावों का संमोहन व विमोहन बीजहो और अन्धकार व समय समय में दुरसह युगावर्त हो ॥ ६१ ॥ हे सत्त्वात्मक, धरात्मक, ऊर्ध्वानन ! तुम्हारे लिये प्रणामहै हे ज्वाला से उत्पन्न जलवाले, जलजेश, जलेश्वर ! प्रज्वलित होवो ॥ ६२ ॥ हे फूलेहुये कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले, अग्निदेवजी ! प्रज्वलित होवो आप श्याम शोभावाले श्याममार्गवाले तथा स्वर्गमार्ग को देनेवालेहो ॥ ६३ ॥ हे यज्ञाहुतिसमाचार, यज्ञरूप ! आपके लिये नमस्कार है नमस्कार है हे स्वर्णगर्भ, शमीगर्भ, सनातन, देवजी ! आपकी जयहो ॥ ६४ ॥ हे हार, महाहार,स्वाहाप्रिय, अन्धकार !

आपके लिये प्रणाम है हे चित्रभानो, देव ! प्रकाशित ज्वालाओंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ६५ ॥ हे वैश्वानर, अनल, विभो, ऊर्ध्वपावक,सर्वव्यापिन्, विभावसो, महाभाग, कृष्णवर्त्म ! आपके लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि उससमय इसभांति स्तुति कियेहुये वे अग्निदेवजी ब्रह्मासे वचन बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं आपसे प्रसन्न हूं तुम्हारे प्रयोजन का कर्म सिद्धहोवै ॥ ६७ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये ब्रह्माजीने बार २ प्रणामकर कहा कि हे देव ! ऐश्वर्यवान् तुम कौनहो यह मैं जानना चाहता हूं ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर उसने ब्रह्माजी से कहा कि तुम प्रजापति पुरुषहो जो उत्तमरूप जाननेयोग्य है उस योगसे मुझको देखिये ॥ ६९ ॥

नरानलविभो ऊर्ध्वपावकसर्वग ॥ विभावसोमहाभाग कृष्णवर्त्मननमोनमः ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदा सोग्निर्विरञ्चिमब्रवीद्वचः ॥ तुष्टोहंभवताब्रह्मन् भवत्कर्मप्रसिद्ध्यतु ॥ ६७ ॥ एवमुक्तस्तदाब्रह्मा नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यहंदेव कोसित्वंभगवानिति ॥ ६८ ॥ अब्रवीत्सोथब्रह्माणं पुरुषस्त्वंप्रजापतिः ॥ यज्ज्ञेयंपरमंरूपं तेनयोगेनपश्यमे ॥ ६९ ॥ अथापश्यत्सदिव्येन भगवन्तंसनातनम् ॥ सर्वज्ञंविधिकर्तारमीश्वरंसदसत्परम् ॥ ७० ॥ ज्वलनं गगनम्भूमिर्दृश्यादृश्यम्परम्पदम् ॥ भूतम्भव्यंभविष्यञ्चजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ७१ ॥ सदेवःकुरुतेविश्वं भुङ्क्तेसर्वंयतःप्रभुः ॥ ततःसम्भूतिभव्येन स्तोत्रेणापिप्रजापतिः ॥ ७२ ॥ तुष्टावदेवःप्रणतः पुराणमजमव्ययम् ॥ ततोनिरुक्तवर्णञ्च दृष्ट्वादेवःप्रजापतिः ॥ ७३ ॥ विश्वतोबाहुचरणं विश्वतोग्निशिरोमुखम् ॥ व्यक्ताव्यक्तप्रणेतारं प्रणम्यशिरसास्वयम् ॥ ७४ ॥ तुष्टावचनमस्तेस्तु तुभ्यंविश्वभवात्मने ॥ पृथिवीवायुराकाशं यच्चान्यद्भुवनत्रयम् ॥ ७५ ॥ लोकालोके

इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने सर्वज्ञ व विधि (ब्रह्मा) को रचनेवाले तथा कार्यकारण से परे ईश्वर व सनातन अग्निभगवान् को दिव्यदृष्टि से देखा और आकाश, भूमि, दृश्यादृश्य, परमपद, भूत, भव्य, भविष्य और स्थावर, जङ्गम समेत संसार को देखा ॥ ७० । ७१ ॥ जिस लिये वे प्रभुदेवजी सब संसार को रचते व भोगते हैं उसीकारण उत्पत्ति से कल्याणदायक स्तोत्रकरके ब्रह्मादेवजी ने प्रणामकर अज व अविनाशी पुराणपुरुष की स्तुति किया तदनन्तर निरुक्तवर्णवाले तथा सबओर बाहु व चरणोंवाले व सब ओर अग्नि, शिर व मुखोंवाले और प्रकट व अप्रकट के प्रणेता ईश्वरदेवजी को देखकरके आपही मस्तक से प्रणामकर ॥ ७२ । ७३ । ७४ ॥

कि संसारोत्पत्त्यात्मक तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी,पवन, आकाश और जो त्रिलोकहै ॥ ७५ ॥ व लोकालोकेश्वर, स्थावर,जङ्गम संसार, तत्त्वसृष्टि व भूतसृष्टि व भावसृष्टि ॥ ७६ ॥ और आपही से नेत्रके द्वारा ब्रह्मतेजोमयात्मक को भलीभांति देखतेहुये जो कुछ वस्तु उत्पन्न है वह सब चर व अचर आपही का रूपहै ॥ ७७ ॥ उस समय इस प्रकार स्तुति कियेहुये वे ईश अनादि भगवान् प्रभुजी ब्रह्मा से बोले कि तुमने यथायोग्य देखा ॥ ७८ ॥ नम्रतासे संयुत सो तुम इससमय सब प्रजाओं को रचो लोकोंकी स्थिति के कारणमें मैं कर्त्ताहूं और तुम अनुकार करनेवालेहो ॥ ७९ ॥ पहलेही मुझ से रचाहुआ वह ससार वैसाही होनेयोग्य है उसको कीजिये ऐसा

ईश्वरंचैव जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ तत्त्वसर्गंभूतसर्गं भावसर्गंतथैवच ॥ ७६ ॥ ब्रह्मतेजोमयात्मानं सम्पश्यंश्चक्षुषास्वतः ॥ यत्किञ्चिद्वस्तुजातंहि तत्सर्वमचरंचरम् ॥ ७७ ॥ एवंस्तुतःसतुतदा अनादिर्भगवान्प्रभुः ॥ अथेशःप्राहब्रह्माणं त्वयादृष्टंयथातथम् ॥ ७८ ॥ सृजेदानींप्रजाःसर्वाः सचत्वंविनयान्वितः ॥ कर्ताहमनुकर्तात्वं लोकानांस्थितिकारणे ॥ ७९ ॥ कुरुष्वतत्तथाभाव्यं मयापूर्वंविनिर्मितम् ॥ इत्युक्तोदेवदेवेशो ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ८० ॥ नमस्तुभ्यंमहादेव भवशर्व नमोस्तुते ॥ त्वत्प्रसादात्प्रजासर्गं कुर्वतोमेमहेश्वर ॥ ८१ ॥ सखायंप्राप्तुमिच्छामि त्वयादत्तंजगत्पते ॥ महेश्वरउवाच ॥ तुष्टस्तेध्यायतःपुत्रकामस्यभगवन्नहम् ॥ ८२ ॥ विधातःकल्पितांदेव ममोत्पत्तिंयदीच्छसि ॥ पुत्रत्वंप्राप्यहीशस्ते छेत्स्यामिपञ्चमंशिरः ॥ ८३ ॥ तत्रचोत्पादयिष्यामि नरनारायणावुभौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथंनारायणोदेवस्तपसानन्यचेतनः ॥ ८४ ॥ कीर्तयस्वसखाधन्यः समेपूज्योभविष्यति ॥ अथापश्यत्ततोब्रह्मा तेजसाहरिमच्युतम् ॥ ८५ ॥

कहे हुये देवदेवेश ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ८० ॥ कि हे महादेवजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे भव, शर्व ! तुम्हारे लिये प्रणाम है महादेवजी तुम्हारी प्रसन्नता से मेरे ऊपर प्रसन्नहोवैं ॥ ८१ ॥ हे जगत्पते ! तुमसे दियेहुये मित्रको मैं पाने के लिये चाहताहूं महादेवजी बोले कि जिसलिये पुत्रकी कामनावाले व सृष्टिको चाहनेवाले तथा ध्यान करतेहुये तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहूं ॥ ८२ ॥ हे विधाता, देव ! यदि कल्पित कीहुई मेरी उत्पत्तिको चाहतेहो तो पुत्रता को प्राप्तहोकर ईश्वर मैं पांचवे मस्तकको काटूंगा ॥८३॥ व उसमें दोनों नरनारायणको उत्पन्न करूंगा ब्रह्माजी बोले कि तपस्यासे सावधान बुद्धिवाले नारायणदेवजी ॥ ८४ ॥ जोकि पूजनीय व प्रशंसनीय हैं वे

किस प्रकार मेरे मित्र होंगे यह कहिये इसके अनन्तर तेजसे उन अच्युत विष्णुजीको जोकि सर्वव्यापी व जानेयोग्य तथा शिवनारायणात्मक हैं देखा तदनन्तर नारायणप्रभुजी ने महेश्वरजी के सत्त्वतेज को किया तदनन्तर वहांपर श्रीयुक्त व शक्तिसे सम्मित उन देवजी ने अंगुली से स्पर्श करते ब्रह्मासे वचन कहा ॥ ८५ । ८६ । ८७ ॥ कि तुम्हारा उत्तम ब्रह्मा नाम होगा व नारायण का अनुगामी ऋषि मनुष्यों के देखने के लिये होगा जोकि सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ है ॥ ८८ ॥ हे महाबल, नारायणजी! यह मेरी शक्तिहै ऐसा कहकर भगवान् देवजीने उस अग्नि को हाथ से पकड लिया ॥ ८९ ॥ व दाहिने हाथकी अंगुली के नखके मध्यमें स्थित किया

तंसर्वगामिनंगम्यं शिवनारायणात्मकम् ॥ महेश्वरस्यतेजोहि सत्त्वंनारायणःप्रभुः ॥ ८६ ॥ चकारसततस्तत्र श्रीयुक्तःशक्तिसम्मितः ॥ अङ्गुल्यासंस्पृशन्देवो ब्रह्माणमब्रवीद्वचः ॥ ८७ ॥ ब्रह्मातेपरमंनाम ऋषिर्नारायणानुगः ॥ भविता लोकवीक्षार्थं श्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम् ॥ ८८ ॥ नारायणमहावीर्य शक्तिरेषामदीयका ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देवस्तमग्निंपाणिनाग्रहीत् ॥ ८९ ॥ दक्षहस्ताङ्गुलिनखमध्यस्थंसमचीकरत् ॥ इतिसंस्कृत्यसततं नरञ्चैवमहेश्वरम् ॥ ९० ॥ ब्रह्मणो दर्शयित्वाथ तत्रैवान्तरधीयत ॥ अथाब्रवीत्ततोब्रह्मा अग्नितञ्चयुगक्षये ॥ ९१ ॥ स्पृशन्दक्षिणवामाभ्यां शान्तयन्गिरा ॥ पुत्रौचभृग्वङ्गिरसौ भवितारौनसंशयः ॥ ९२ ॥ वंशविख्यातकर्माणावत्रैवभवतांतव ॥ द्विधासम्भज्यतेनाग्निसृष्टेर्यज्ञोभविष्यति ॥ ९३ ॥ भवन्तौतिष्ठतस्तत्र पृथिव्यांदानमाश्रितौ ॥ ९४ ॥ तस्मादेवंविधातव्यौ निर्मथ्यविधिपूर्वकम् ॥ अतोऽश्वत्थेशमीगर्भे संयोगस्तत्रपठ्यते ॥ ९५ ॥ भार्गवोऽङ्गिरसश्चैव द्विविधोदेवउच्यते ॥ तस्मात्सुरहितः

इस प्रकार संस्कार कर सदैव नर व महेश्वरजी को ॥ ९० ॥ ब्रह्माको दिखलाकर वहींपर अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर युगके प्रलयमें दाहिने व बायें हाथसे स्पर्शकरते हुये ब्रह्माजीने वाणीसे शान्त करतेहुये से उस अग्निसे बोले कि भृगु व अङ्गिरा पुत्र होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९१।९२ ॥ और यहींपर वे तुम्हारे वंशके विख्यातकर्म वाले होवैंगे इस लिये अग्निके दो विभागकर सृष्टिकी यज्ञहोगी ॥ ९३ ॥ और उस पृथ्वी में दानमें आश्रित होकर आपलोग स्थित होवो ॥ ९४ ॥ इस लिये विधिपूर्वक मथकर इस प्रकार उन दोनोंको करना चाहिये इसीकारण उस विषय में पीपल व शमीके गर्भमें संयोग पढाजाता है ॥ ९५ ॥ और भार्गव व अङ्गिरस दोप्रकार

का देव कहाजाताहै उसी कारण देवताओंका हित चौथा श्रेष्ठ ऐसा कहाजाताहै ॥९६॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पूर्वजन्ममें यह नर उत्पन्न हुआहै व इस प्रकार ब्रह्माके पाचवां मुख प्राप्तहुआ है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य अतिउत्तम तेजकी सृष्टि को जानताहै वह शान्त,दान्त व जितेन्द्रिय ब्रह्माकी सालोक्य नामक मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ९८ ॥ हे व्यासजी ! चित्तमें उत्तम बुद्धिवाला जो पुरुष पशुपति महादेवजीके माहात्म्य को सूचित करनेवाली इस अग्निकी उत्पत्ति को सुनताहै और जो श्रद्धासे शुद्धचित्तवाला होताहै व जो ब्राह्मणों तथा देवतादिकोंको भक्तिसे सुनाता है वह शिवजी से शुद्धचित्तवाला पुरुष शिवलोक में देवताओं से भलीभाति पूजा

श्रेष्ठश्चतुर्थइतिकथ्यते ॥ ९६ ॥ एवंव्याससमुत्पन्नोनरोसौपूर्वजन्मनि ॥ एवंतुब्रह्मणोवक्त्रं पञ्चमंसमपद्यत ॥ ९७ ॥ एवं विबुध्यतेयोवै तेजःसर्गमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मणोयातिसालोक्यंशान्तोदान्तोजितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥ एतद्योग्निसमुद्भवंपशुपतेर्माहात्म्यसंसूचकं चित्तेसाधुमतिःशृणोतिसततंयःश्रद्धयाभावितः ॥ योव्यासद्विजदेवताप्रमुखतःसंश्रावयेद्भक्तितः सोत्यर्थंभवभावितःशिवपुरेसम्पूज्यतेदैवतैः ॥९९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽग्नेरुत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

व्यासउवाच ॥ युद्धेनिवारितेतत्र रक्तस्वेदजयोःपुरा॥ किंकृतंब्रह्मणातत्र प्रायश्चित्तंह्यकर्मणा ॥ १ ॥ जनार्दनेनाकिं कर्म शङ्करेणचयन्मुने ॥ एतत्सर्वसमाख्याहि प्रसीदवदतावर ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्माकरोदग्निहोत्रं वनौषधिफलच्छदैः ॥ शस्तैःकुशसमिद्भिश्च यथोक्तंहरिणापुरा ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणावृषी ॥ तेपतुस्तौत

जाता है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नेरुत्पत्तिवर्णननामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। कुशस्थली वन मध्य महँ, छोड्यो ईश कपाल। सोइ पंचम अध्याय में वर्णित चरित रसाल॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय वहांपर रक्त व पसीनेसे उपजे हुये नरोंका युद्ध मना करनेपर कर्मरहित ब्रह्माने वहां क्या प्रायश्चित्त कियाहै॥ १ ॥विष्णुजीने क्या कर्म किया है व हे मुने ! शिवजीने जो कर्म कियाहो इस सबको कहिये हे वदतांवर ! प्रसन्न होवो ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय जिसप्रकार विष्णुजीने कहा था उसीभांति वनकी ओषधि, फल व पत्तोंसे तथा उत्तम

कुशों व समिधाओं से ब्रह्माने अग्निहोत्र किया ॥ ३ ॥ और बदरिकाश्रममें प्राप्त होकर उन नरनारायण ऋषियोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये भयंकर तप किया॥ ४ ॥ और इस पृथ्वीमें घूमतेहुये देवेश सदाशिवजी कपालको हाथमें लिये कुशस्थलीमें प्राप्त होकर उसके उत्तम वनमें पैठते भये ॥ ५ ॥ जो कि अनेक भांतिके वृक्षों व लताओंसे व्याप्त तथा अनेकप्रकारके पुष्पोंसे शोभित व अनेक भांतिके पक्षियोंसे व्याप्त और अनेकप्रकारके मृगोंसे संयुतथा ॥ ६ ॥ और जोकि पवनसे वृक्षोंमे पुष्प भारके आमोद (बहुत सुगन्ध) से वासित था और बुद्धिपूर्वक मानो धरेहुये फलों व फूलोंसे पूजित था ॥ ७ ॥ व पके,कच्चे फलोंसे उपजेहुये अनेकप्रकारकी सुगन्ध

पश्चोग्रं हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन्वसुधामिमाम् ॥ कुशस्थलींसमासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् ॥ ५ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ नानापक्षिसमाकीर्णं नानामृगसमाकुलम् ॥ ६ ॥ द्रुमपुष्पभरामोदवासितंयत्सुवायुना ॥ बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तफलपुष्पैस्सुपूजितम् ॥ ७ ॥ नानागन्धरसाद्यैश्च पक्वापक्वफलोद्भवैः ॥ फलैस्सुवर्णरूपाढ्यैरासमन्तान्मनोरमैः ॥ ८ ॥ जीर्णपत्रतृणादीनिशुष्ककाष्ठफलानिच ॥ बहिःक्षिपतिजातानि मारुतोनुग्रहादिव ॥ ९ ॥ नानापुष्पसमूहानां गन्धमादायमारुतः ॥ शीतलोवातितंभूमिदेशंयत्रविवासयन् ॥ १० ॥ हरितस्निग्धनिच्छिद्रद्रुमाणांतत्रकोटरैः ॥ वृक्षैरनेकसङ्ख्यैश्च भूषितंशिखरान्वितैः ॥ ११ ॥ अरोगिदर्शनीयैश्चसुवृत्तैःक्वचिदुद्गतैः ॥ कुटुम्बमिवविप्राणां सिद्धिर्वैभातिसर्वतः ॥ १२ ॥ शोभनैर्वायुसङ्कीर्णैरङ्कुरैश्चावृताद्रुमाः ॥ कुलीनैरिवनिच्छिद्रैः स्वगुणैःप्रावृतानराः ॥ १३ ॥ पवनोद्धूतशिखरैःस्पर्शयन्तिपरस्परम् ॥ आरात्पतन्तिचान्योन्यंपुष्पाःशा

व रसादिकों से तथा सुवर्णस्वरूपसे संयुत फलों से सब ओर घिराथा ॥ ८ ॥ और पुराने पत्तों व तृणादिकों को तथा सूखे काठों व फलोंको पवन मानो दयासे बाहर फेंकता था ॥ ९ ॥ और जहांपर अनेक भांतिके पुष्पसमूहोंकी सुगन्धको लेकर उस भूमिस्थान को वासित करताहुआ शीतल पवन चलता था ॥ १० ॥ और हरित व चिकने छिद्ररहित वृक्षोंके खोढरोंसे और शिखरसे संयुत अनेक संख्यक वृक्षोंसे शोभित था ॥ ११ ॥ और कहीं उत्पन्न हुये रोगरहित मनोहर व गोल वृक्षोसे ब्राह्मणोंके कुटुम्बकी नाईं सब ओर सिद्धि शोभित थी ॥ १२ ॥ व पवनसे व्याप्त सुन्दर अंकुरोंसे वृक्ष घिरेथे जैसे कि छिद्ररहित कुलीन अपने गुणोंसे संयुत मनुष्य होवें ॥१३॥

और पवनसे कँपायेहुये शिखरों से वृक्ष आपस में स्पर्श करते थे व शाखाओंके अवतंस (झुमके) रूपी पुष्प आपसमें लगकर समीपही गिरतेथे ॥ १४ ॥ और कहीं भ्रमरों से संयुत केसरोंवाले पुष्पोंसे नागोंके वृक्ष श्यामतारकावाले श्वेत नयनोंकी नाईं शोभित थे ॥ १५ ॥ व कहीं पुष्पोंसे संयुत शिखरोंवाले कर्णिकारके वृक्ष वैसेही शोभितथे जैसे कि विवाह में स्त्री पुरुष भलीभांति शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ उत्तमपुष्पों के आच्छादनों से मेउढ़ी की पंक्तियां शोभित हैं जैसे कि मूर्तिमान् वनदेवता पूजित होकर शोभित होते हैं ॥ १७ ॥ कहीं २ उत्तम पुष्परूपी गहनों से श्वेत कुन्दकी लतायें शोभित हैं जैसे कि प्रत्येक दिशाओं में उदय हुये बाल चन्द्रमा शोभित

खावतंसकाः ॥ १४ ॥ नागवृक्षाःक्वचित्पुष्पैर्भ्रमरालीनकेशरैः ॥ नयनैरिवशोभन्ते धवलैःकृष्णतारकैः ॥ १५ ॥ पुष्पसम्पन्नशिखराः कर्णिकारद्रुमाःक्वचित ॥ यथैवहिविवाहेच शोभतेसाधुदम्पती ॥ १६ ॥ सुपुष्पविभवाटोपैः सिन्धुवारस्यपङ्क्तयः ॥ मूर्तिमन्त्यइवाभान्ति पूजितावनदेवताः ॥ १७ ॥ क्वचित्क्वचित्कुन्दलताः सुपुष्पाभरणोज्ज्वलाः ॥ दिक्षुदिक्षुचशोभन्ते बालचन्द्राइवोदिताः ॥ १८ ॥ अतीवदुर्गमार्गेषु कान्ताराद्रुत्थितालताः ॥ पुष्पिताःपुष्पविटपैर्वीजयन्तिइवोत्थिताः ॥ १९ ॥ शालार्जुनाःक्वचिद्भान्ति वनोद्देशेषुपुष्पिताः ॥ धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताःपुरुषोत्तमाः॥ २० ॥ अभियुक्ताःसुवल्लीभिः पुष्पितास्तुद्रुमास्तथा ॥ उपगूढाविराजन्ते नारीभिरिवसुप्रियाः ॥ २१ ॥ चूताश्चतिलकाश्चैव मञ्जरीभिःकरैरिव ॥ वायुनुन्नाभिरन्योन्यं ढौकन्तीवहिसज्जनाः ॥ २२ ॥ परस्परञ्चसंयुक्तैस्तिलकाशोकपल्लवैः ॥ हस्तैर्हस्तान्स्पृशन्तीव सुहृदश्चित्तसङ्गताः ॥ २३ ॥ फलपुष्पनतावृक्षाः पैशल्येनेवसज्जनाः ॥ अन्योन्यमर्पयन्तीव

होते हैं ॥ १८ ॥ अत्यन्त कठिन मार्गोंमें दुर्गम मार्गसे उठीहुई फूली लतायें पुष्पवाले वृक्षोंसे पवन डुलातीहुई सी उठी हैं ॥ १९ ॥ व कहींपर वनके स्थानोंमें फूले हुये सांखू व अर्जुनके वृक्ष शोभितहैं जैसे कि धोयेहुये ऊनी वस्त्रोंसे घिरेहुये उत्तम पुरुष होवें ॥ २० ॥ और उत्तम लताओंसे संयुत फूलेहुये वृक्ष शोभित हैं जैसे कि स्त्रियोंसे आलिङ्गित उत्तम प्रिय सोहतेहैं ॥ २१ ॥ और आम्र व तिलक के वृक्ष पवनसे प्रेरित मञ्जरियोंके द्वारा आपसमें चलते हैं जैसे कि हाथोंके द्वारा सज्जन चलते हैं ॥ २२ ॥ आपसमें मिलेहुये तिलक व अशोकके पत्तोंसे मानो चित्तमें प्राप्त मित्र हाथों से हाथोंको स्पर्श करतेहैं ॥ २३ ॥ फलों व फूलोंसे झुकेहुये वृक्ष मानो चतुरता

से सज्जन लोग आपसमें उत्तम फूलों व फलोंको अर्पण करते हैं ॥ २४ ॥ और पवनके मिलापसे छोड़ेहुये ठण्ढेजलों से वृक्ष मानो संसारमें भलीभांति आयेहुये सत् पुरुषोंको प्रीतिके देनेके लिये स्थितहैं ॥ २५ ॥ और पुष्पोंके भारसे मानो अपनी शोभाके लिये प्राप्तहोतेहैं जैसे कि समान प्रभाववाले पुरुषको प्राप्त होकर पुरुष ईर्षासे चलते हैं ॥ २६ ॥ और उत्तम मरतकों से संयुत मतवाले पक्षी पुष्पादिकों के शोभारूपी गहनोंवाले कंपसंयुक्त शिखरों से नाचते हैं ॥ २७ ॥ और अमृतवल्ली याने गुर्चे की लता के आश्रित भ्रमर पवन से चलायेहुये होकर वल्ली समेत नाचते हैं मानो प्यारी समेत मनुष्य हैं ॥ २८ ॥ कहींपर पुष्ट कुन्दलताओं से घिरेहुये वृक्ष वैसेही शोभित

सुपुष्पाणिफलानिच ॥ २४ ॥ मारुताश्लिष्टिनिर्मुक्तैः पादपाःशीतवारिभिः ॥ आर्यान्समागतांल्लोके प्रीतिंदातुमिवस्थिताः ॥ २५ ॥ पुष्पाणामिवभारेण स्वशोभार्थंव्रजन्तिवै ॥ समप्रभावमासाद्य पुरुषाःस्पर्द्धयेवहि ॥ २६ ॥ पुष्पादिशोभाभरणैः शिखरैःकम्पसंयुतैः ॥ नृत्यन्तिपक्षिणोमत्तायुक्ताःशोभनशेखरैः ॥ २७ ॥ भृङ्गाःपवनविक्षिप्तामृतवल्लीलताश्रिताः ॥ सवल्लीकाःप्रनृत्यन्ति मानवाइवसप्रियाः ॥ २८ ॥ पुष्टाभिःकुन्दवल्लीभिः पादपाःक्वचिदावृताः ॥ भान्तितारागणैश्चित्रैः शरदीवनभस्तलम् ॥ २९ ॥ द्रुमाणामप्यथाग्रेषु पुष्पितामाधवीलताः ॥ शिखराइवशोभन्ते रचिताबुद्धिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ हरिताःकाञ्चनच्छायाः फलिताःपुष्पिताद्रुमाः ॥ सौहार्दंदर्शयन्तीवनराःसाधुसमागमे ॥ ३१ ॥ पुष्पकिञ्जल्कबहुलाःकिञ्जल्कबहुलोदराः ॥ किञ्जल्कमत्तभ्रमरा विशदाइवसारिकाः ॥ ३२ ॥ शिरीषपुष्पसङ्काशाः शुकामिथुनतःक्वचित् ॥ कीर्तयन्तिगिरश्चित्राः पूजिताब्राह्मणायथा ॥ ३३ ॥ संयुक्ताःसहचारिण्या मयूराश्चित्रबर्हि

हैं जैसे कि शरदऋतु में विचित्र नक्षत्रगणों से आकाश शोभित होता है ॥ २९ ॥ और वृक्षो के ऊपर भागो में फूलीहुई नेवारीकी लतायें बुद्धिपूर्वक रचेहुये शिखरों की नाई शोभित हैं ॥ ३० ॥ हरित व सुवर्णके समान छायावाले तथा फले व फूले हुये वृक्ष मानो सज्जनके संयोग में पुरुष मित्रता को दिखलाते हैं ॥ ३१ ॥ पुष्पों में बहुत केसरवाले व मध्य में बहुत केसरवाले तथा केसर से मत्त भ्रमरोंवाले वृक्ष उत्तम सारिकाओं की नाई शोभित हैं ॥ ३२ ॥ कहीं पर मिथुन याने स्त्री के संयोग से सिरसा के फूल की नाई सुवा विचित्र वचनों को कहते हैं जैसे कि पूजेहुए ब्राह्मण होवें ॥ ३३ ॥ और विचित्र पंखोंवाले मयूर सहचारिणी याने साथ

चलनेवाली स्त्री समेत वन के मध्य में घूमते हैं मानो लोकों के अन्त में स्थितहैं ॥ ३४ ॥ और अनेक भांति के अद्भुत शब्दोंवाले पक्षियों के समूह बोलते हैं मानो मनोहर उत्तम वनको रमण करने योग्य करते हैं ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त व सदैव प्रसन्न पक्षियोंवाला वह वन नन्दनवन के समान मनको व दृष्टिको बढ़ानेवाला है ॥ ३६ ॥ वैसे रूपवाले तथा नन्दनवन के समान उत्तमवनको कपाल हाथवाले भगवान् शिवजीने सौम्यदृष्टिसे देखा ॥ ३७ ॥ व भलीभांति आयेहुये शिवजीको देखकर उन सब वृक्षकी पंक्तियों ने शिवजी के लिये भक्तिसे पुष्पों की संपदाको निवेदन कर छोड़ा है ॥ ३८ ॥ वृक्षों के पुष्पों को ग्रहणकर उन

णः ॥ वनान्तरेसंचरन्ति लोकान्तइवसंस्थिताः ॥ ३४ ॥ कूजन्तिपत्रिसङ्घाता नानाद्भुतविराविणः ॥ कुर्वन्तिरमणीयं हि रमणीयंवनंशुभम् ॥ ३५ ॥ नानामृगसमाकीर्णं नित्यंसमुदिताण्डजम् ॥ तद्वनंनन्दनसमं मनोदृष्टिविवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥ कपालपाणिर्भगवांस्तथारूपंवनोत्तमम् ॥ ददर्शशङ्करोदृष्ट्या सौम्ययानन्दनोपमम् ॥ ३७ ॥ तावृक्षपङ्क्तयस्सर्वा दृष्ट्वारुद्रंसमागतम् ॥ निवेद्यशम्भवेभक्त्या मुमुचुःपुष्पसम्पदाम् ॥ ३८ ॥ पुष्पप्रतिग्रहंकृत्वा पादपानांमहेश्वरः ॥ वरंवृणीध्वंभद्रंवः पादपानित्युवाचसः ॥ ३९ ॥ एवमुक्तेभगवता तरवोनिरवग्रहाः ॥ ऊचुःप्राञ्जलयस्सर्वे नमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥ ४० ॥ वरंददासिदेवेश प्रपन्नजनवत्सल ॥ इहैवविपिनेनित्यं भगवन्सन्निहितोभव ॥ ४१ ॥ एषनःपरमःकामो देवदेवनमोस्तुते ॥ त्वंचेद्वससिदेवेश वनेऽस्मिन्विश्वभावन ॥ ४२ ॥ सर्वात्मनाप्रसन्नास्त्वां याचामोह्युत्तमंवरम् ॥ इत्युक्तः पादपैस्सर्वैश्शरणागतवत्सलः ॥ ४३ ॥ वरन्ददौपादपेभ्यःप्रोच्यमानंमयाशृणु ॥ महेश्वरउवाच ॥ बाढम्मेमनसावा

महादेवजी ने वृक्षों से यह कहा कि तुम लोगों का कल्याण होवै वरदानको मांगिये ॥ ३९ ॥ शिवजी से ऐसा कहनेपर हठरहित सब वृक्ष हाथों को जोड़ महादेवजी को प्रणाम कर बोले ॥ ४० ॥ कि हे शरणागतजनप्रिय देवेशजी ! यदि वर देतेहो तो हे भगवन् ! इसी वनमें सदैव स्थित होवो ॥ ४१ ॥ हे देवदेव ! हमलोगों की यही उत्तम कामना है हे विश्वभावन, देवेशजी ! यदि तुम इस वनमें बसोगे ॥ ४२ ॥ तो सर्वात्मा से प्रसन्न होतेहुए हमलोग उत्तम वरदान को मांगेंगे सब वृक्षोंसे इस प्रकार कहेहुये उन शरणागतप्रिय शिवजीने ॥ ४३ ॥ वृक्षों के लिये वरदान दिया कि मुझसे कहेहुये वचनको सुनिये महादेवजी बोले कि बहुत अच्छा

इस उत्तम वनमें मेरा सदैव मनसे निवास होगा ॥ ४४ ॥ और फिर तुमलोगोंको मैं वरदान देताहूं क्योंकि मेरा दर्शन वृथा नहीं होताहै न अग्नि, न पवन, न जल, न सूर्यनारायणकी किरणोंका घाम ॥ ४५ ॥ और न बिजली न वज्रपात न शीत तुमलोगोंके रोग उत्पन्न करैगा और इच्छा के अनुकूल जानेवाले व इच्छाके अनुसार रूपवाले तथा इच्छाके अनुकूल फल देनेवाले ॥ ४६ ॥ व तपस्या और संध्यासे ज्वलित लोचनोंवाले पुरुषों को इच्छाके अनुकूल दर्शनवाले तथा मेरी प्रसन्नता से उत्तम शोभासे संयुक्त होगे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार उन वरदायक सदाशिवजीने वृद्धोंके ऊपर दयाकिया और हजारवर्ष टिककर कपालको भूमिमें फेंकदिया ॥ ४८ ॥

सो नित्यमत्रवनोत्तमे ॥ ४४ ॥ वरन्ददामिभूयोवो नवृथादर्शनम्मम ॥ नाग्निर्नवायुर्नजलं नसूर्य्यकिरणातपः ॥ ४५ ॥ नविद्युदशनिश्शीतं रुजंवोजनयिष्यति ॥ कामगाःकामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः ॥ ४६ ॥ कामसन्दर्शनाः पुंसां तपःसन्ध्याज्वलद्दृशाम् ॥ श्रियापरमयायुक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ॥ ४७ ॥ एवंसवरदःशम्भुरनुजग्राहपादपान् ॥ स्थित्वावर्षसहस्रन्तु कपालंचाक्षिपद्भुवि ॥ ४८ ॥ क्षितिन्निपततातेन चकम्पेचरसातलम् ॥ विवशास्तत्यजुर्वेलांसागराःक्षुभितोर्मयः ॥ ४९ ॥ शक्राशनिहतानीव व्याघ्रव्यालान्वितानिच ॥ शिखराणिव्यशीर्यन्तपर्वतानांसहस्रशः ॥ ५० ॥ देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगराणिच ॥ प्रस्फुरन्तिविनिष्पेतुर्विनेशुश्चधरातले ॥ ५१ ॥ कल्पान्तमेघाश्चात्यन्तं जगतसङ्घातदर्शनाः ॥ ज्योतिर्ग्रहाञ्छादयन्तो बभूवुस्तीर्णभास्कराः ॥ ५२ ॥ महतातस्यशब्देन जडान्धवधिरंकृतम् ॥ बभूवव्याकुलंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ५३ ॥ सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसिच ॥ अवसेदुश्चकम्पुश्च

और पृथ्वीमे गिरतेहुये उससे रसातल कांपउठा व चलायमान लहरियोंवाले समुद्रोंने विवश होकर मर्यादाको छोड दिया ॥ ४९ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंसे सयुत पर्वतों के हजारों शिखर इन्द्रके वज्रसे मारेहुयेसे टूटगये और देवताओं व सिद्धोंके विमान तथा चमकते हुये गंधर्वोंके नगर पृथ्वीमे गिरपड़े व नाश होगये ॥ ५०।५१ ॥ और अत्यन्त संसारके नाश में दर्शनवाले कल्पान्त के मेघ ज्योतिर्ग्रहों को आच्छादन करतेहुये सूर्यको उल्लंघन करनेवाले हुये ॥ ५२ ॥ और उसके बडेभारी शब्द से जड अन्ध व बधिर किया हुआ स्थावर जंगम समेत सब संसार व्याकुल होगया ॥ ५३ ॥ और सब देवताओ तथा दैत्योंके शरीर व मन दुःखित हुये व कांपउठे और

यह क्याहै ऐसा उन्होंने कहा ॥ ५४ ॥ और इन्द्र आदिक सब भी देवता धीरज का अवलम्बनकर भलीभांति आकर व ब्रह्मलोक में प्राप्तहोकर ब्रह्मासे यह बोले ॥ ५५ ॥ कि हे भगवन् ! यह कारणसे उत्पातका दर्शन क्या है इसको कहिये कि जिससे काल व कर्म से संयुत समस्त त्रिलोक कँपायागया ॥ ५६ ॥ और समुद्रोंकी भिन्नमर्यादोंवाला कल्पान्त होगया किन्तु न चलनेवाले चारों भी दिग्गज चलायमान होगये ॥ ५७ ॥ और किस कारण सातों समुद्रों के जलसे पृथ्वी घिरगई व हे भगवन् ! बिन प्रयोजन सबकी उत्पत्ति नहीं है ॥ ५८ ॥ जैसा यह शब्द सुनागयाहै वैसा न हुआहै न सुनागयाहै कि जिस बड़ेभारी भयंकर शब्दसे त्रिलोक विकल

किमेतदितिवब्रिरे ॥ ५४ ॥ धैर्यमालम्ब्यसर्वेपि समागम्येन्द्रपूर्वकाः ॥ ब्रह्मलोकंसमासाद्य ब्रह्माणमिदमूचिरे ॥ ५५ ॥ किमेतद्भगवन्ब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥ त्रैलोक्यंकम्पितंयेन संयुक्तंकालकर्मणा ॥ ५६ ॥ जातंकल्पावसानञ्च भिन्नमर्यादसागरम् ॥ चत्वारोदिग्गजाःकिन्तु बभूवुरचलाश्चलाः ॥ ५७ ॥ धरासमावृताकस्मात्सप्तसागरवारिणा ॥ उत्पत्तिर्नास्तिसर्वस्य भगवन्निष्प्रयोजनम् ॥ ५८ ॥ यादृशोयंश्रुतःशब्दो नभूतोनापिविश्रुतः ॥ त्रैलोक्यमाकुलंयेन कृतंरौद्रेणभूयसा ॥ ५९ ॥ एवमुक्तोब्रवीद्ब्रह्मा परमेशानुभावितः ॥ ६० ॥ मत्पृष्टममराःसर्वे शृणुध्वंतत्रकारणम् ॥ निश्चयेनात्रविज्ञेयं श्रद्दधानैर्यथाविधि ॥ ६१ ॥ सुखंछित्त्वानखाग्रेण मद्देहात्पञ्चमंशिरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ ६२ ॥ ययाचेपात्रमादाय भिक्षांनारायणम्प्रति ॥ उत्पपातमुनिस्तत्र नरोनामधनुर्धरः ॥ ६३ ॥ ततःकुशस्थलीमेत्य भगवांस्तद्वनोत्तमम् ॥ विवेशतरुमार्गेण पुष्पामोदाभिनन्दितम् ॥ ६४ ॥ अनुग्राह्याथभगवान् व

होगया ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहेहुये व परमेश सदाशिवजी से बुद्धिका निश्चय कियेहुये ब्रह्माजी बोले ॥ ६० ॥ कि हे देवताओ ! उस विषयमें मुझसे पूछेहुये कारणको सब लोग सुनो और विधिपूर्वक निश्चय से इस विषयमें श्रद्धावानोंको जानना चाहिये ॥ ६१ ॥ कि भगवान् शिवजी नख के अग्रभागसे मेरे शरीर से पांचवें मस्तकको सुखपूर्वक काटकर कपालको हाथमें लिये वे विष्णुजीके आश्रमको गये ॥ ६२ ॥ और उन्होंने पात्रको लेकर नारायणसे भिक्षा मांगा व उस कपालमें धनुषधारी नर नामक मुनि उत्पन्नहुआ ॥ ६३ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजीने द्वारकापुरी में आकर पुष्पोंकी अत्यन्त मनोहर सुगन्धसे प्रशंसित उस उत्तम वन में वृक्षों के

मार्गसे प्रवेशकिया ॥६४॥ और सर्वत्र प्राप्त पक्षियोंवाले उस वनके ऊपर दयाकर संसारके ऊपर कृपा करनेके लिये भगवान् शिवजीने वहांके निवासकी रुचि किया ॥ ६५ ॥ और हाथमें स्थित जो कपालथा उसको भगवान् शिवजीने पृथ्वी में धर दिया उसीसे यह भूमि कँपाईगई व त्रिलोक विकल होगया ॥ ६६ ॥ उसकी रक्षाके लिये तुमलोग मेरे साथ शिवजीके समीप प्राप्त होवो और आराधन कियेहुये वे भगवान् शिवजी तुम लोगों को वरदान देवैंगे ॥ ६७ ॥ ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्माजी उन देवता, दैत्यों समेत उस वनस्थानको गये जहा कि वृषध्वज शिवजी थे ॥ ६८ ॥ और शिवजीको चाहनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले उन सबोंने पुष्पोंसे संयुत

नंतत्सर्वगाण्डजम् ॥ जगतोनुग्रहार्थाय तत्रवासमरोचयत् ॥ ६५ ॥ तत्कपालंकरस्थंयन्न्यस्तंभगवताक्षितौ ॥ तेनैषाकम्पिताभूमिः कृतंत्रैलोक्यमाकुलम् ॥ ६६ ॥ तद्रक्षार्थंविरूपाक्षं प्रापद्यतमयासह ॥ आराध्यमानोभगवान् प्रदास्यतिवरंहिवः ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्ब्रह्मा सहतैर्देवदानवैः ॥ जगामतद्वनोद्देशं यत्रास्तेवृषभध्वजः ॥ ६८ ॥ प्रहृष्टमनसस्सर्वे कोकिलालापलापितम् ॥ पुष्पान्वितंवनंतद्वै विविशुश्शङ्करेप्सवः ॥ ६९ ॥ सम्प्राप्तंसर्वदेवैस्तद्वनंनन्दनसंमितम् ॥ सुवल्लीगृहशोभाढ्यं सुदृढंशुशुभेतदा ॥ ७० ॥ दृष्ट्वातद्वनमुत्तमंतनुभृतां प्रोल्लासकंचेतसां नानासत्फलपुष्पपादपवनैरासेवितं सर्वतः ॥ ब्रह्मन्बर्हिणहंससारसरवैर्मण्डूकमत्स्यान्वितं द्रक्ष्यामोहरमत्रचेतसिसुराः प्रापुर्मुदंतेतदा ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवागमोनामपञ्चमोध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उस वनमें प्रवेश किया ॥ ६९ ॥ नन्दनवनके समान देवताओं से प्राप्तहुआ वह उत्तम लतागृहों की शोभासे संयुत वन उससमय बहुत दृढतापूर्वक शोभित हुआ ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन् ! देहधारियों के चित्तोंको आनन्ददायक व अनेक भांतिके उत्तम फल फूलवाले वृक्षों के वनोंसे सब ओर सेवित तथा मयूर, हंस व सारसोंके शब्दोंसे तथा मेढ़कों व मछलियोंसे संयुत उस उत्तम वनको देखकर उससमय उन देवताओंने चित्तमें आनन्द पाया कि हमलोग यहां सदाशिवजीको देखैंगे ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। छोड्यो ब्रह्म कपाल शिव, डरे सकल सुर वृन्द। सोइ छठें अध्याय मे,कथा ग्रहै सुखकन्द ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर समस्त पुष्पोंसे शोभित वनमें पैठकर देखनेकी इच्छावाले वे देवता यहां शिव देवजी हैं यहा शिव देवजीहैंयह कहकर पैठतेभये ॥ १ ॥ व महादेवजीको ढूंढ़तेहुये उन देवताओंने अद्भुत वन के अन्तको नहीं देखा और देवताओं ने बहुत वनको देखा ॥ २ ॥ उनसे शिवजी बोले कि तुम लोगोंका कल्याण होवै और विना तपस्या के तुम लोग नही देखोगे महादेवजी को ढूंढ़तेहुये भी तुम शंकरजीको नहीं देखोगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर उत्तम योग्य वचनको हृदयमें स्मरणकर ब्रह्माजी देवताओं से बोले कि सदैव उन शिव

सनत्कुमारउवाच ॥ प्रविश्याथवनन्देवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥ इहदेवोत्रदेवोत्र विविशुस्तेदिदृत्तवः ॥ १ ॥ अद्भुतस्यवनस्यान्तं नतेददृशिरेसुराः ॥ विचिन्वन्तोमहादेवं देवैर्बहुविलोकितम् ॥ २ ॥ तानुवाचसुभद्रंवो नद्रक्ष्यथतपोविना ॥ विचिन्वन्तोविरूपाक्षं नैवापश्यतशङ्करम् ॥ ३ ॥ सुयुक्तंहृदयेस्मृत्वा ब्रह्मादेवांस्ततोब्रवीत् ॥ त्रिविधोदर्शनोपायस्तस्यदेवस्यसर्वदा ॥ ४ ॥ श्रद्धाज्ञानेनतपसा योगेनैवनिगद्यते ॥ सकलंनिष्कलंवापि देवंपश्यन्तियोगिनः ॥ ५ ॥ तपस्विनस्तुसकलं ज्ञानिनोनिष्कलंपरम् ॥ समुत्पन्नेपिविज्ञाने मन्दश्रद्धोनपश्यति ॥ ६ ॥ भक्त्यापरमयोपेतः परंपश्यन्तियोगिनः ॥ द्रष्टव्योनिर्विकारोसौ प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ७ ॥ नादीक्षितैरतोदेवाः शैवदीक्षांप्रपद्यथ ॥ कर्मणामनसा वाचा नित्ययुक्तामहेश्वरे ॥ ८ ॥ तपश्चरथभद्रंवो रुद्राराधनतत्पराः ॥ शिवदीक्षांप्रपन्नानां भक्तानांचतपस्विनाम् ॥ ९ ॥

देवजीके दर्शनका उपाय तीनभांतिका है ॥ ४ ॥ याने श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या व योगसे कहा जाता है कला समेत या कलारहित शिव देवजी को योगीलोग देखते हैं ॥ ५ ॥ व तपस्वी लोग कला समेत शिवजीको देखते हैं और ज्ञानीलोग कलारहित शिवजीको देखते हैं और ज्ञान उत्पन्न होने पर भी न्यून श्रद्धावाला पुरुष नहीं देखता है ॥ ६ ॥ और उत्तम भक्तिसे संयुत योगी लोग परम पुरुषको देखते है विकाररहित ये प्रधान पुरुषेश्वर दीक्षारहित जनों से नहीं देखने योग्य है इस लिये हे देवताओ ! शिवजीकी दीक्षामें प्राप्त होवो और कर्म, मन व वचनसे शिवजीमे नित्ययुक्त होकर ॥ ७ । ८ ॥ शिवजी के आराधनमे तत्पर तुम लोग तपस्या

करो तुम लोगोंका कल्याण होवै शिवदीक्षामें प्राप्त भक्तों व तपस्वियोंको ॥ ६ ॥ सब समयमें मुझे दर्शन देना चाहिये ब्रह्माके हित वचनको सुनकर शिवजीके देखनेमें पैठे हुये मनवाले उन्होंने ब्रह्मासे यह कहा कि हे सुरोत्तम, ब्रह्मन् ! सबोंको मार्ग व विधिसे शिवदीक्षाको दीजिये क्योंकि हम लोगों के उस विषयमें आप कारणहो शिवदीक्षासे दीक्षादेनेकी इच्छावाले ब्रह्माने सुनकर इसके अनन्तर विचारेहुये वचनको शीघ्रहीदेवताओंसे कहा कि हेदेवताओ ! शिवयज्ञके लिये बहुतही सामग्रियोंको लाइये॥१०।१३॥ व यहां वेदी बनाइये और अष्टमूर्तिवाले शिवजी पूजने योग्य हैं इसके अनन्तर देवताओं ने ब्रह्मा के वचनको सुनकर सब किया ॥ १४ ॥ नम्रवेशोंवाले देवता

सर्वकालंविशेषेण दातव्यंदर्शनम्मया ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वाहितमेवतदाचते ॥ १० ॥ शिवेच्छाविष्टमतयो ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ॥ मार्गेणविधिनाचैव शिवदीक्षांसुरोत्तम ॥ ११ ॥ प्रयच्छब्रह्मन्सर्वेषां तत्रनःकारणंभवान् ॥ श्रुत्वाथवचनंब्रह्मा प्रत्युवाचविचारितम् ॥ १२ ॥ सन्दिदीक्षयिषुःक्षिप्रममराञ्छिवदीक्षया ॥ शिवयज्ञार्थसम्भारानानयध्वमलंसुराः ॥ १३ ॥ वेदीप्रकल्प्यतामत्र यष्टव्योऽष्टतनुश्शिवः ॥ पद्मयोनिवचःश्रुत्वा चक्रुस्सर्वमतस्सुराः ॥ १४ ॥ विनीतवेशाःप्रणता अनेनोक्तंसमन्वगुः ॥ शिवप्रसादसम्प्राप्त्यैपुष्कलज्ञानमीरितम् ॥ १५ ॥ यज्ञंचकारविधिना दीक्षांचन्द्रार्धधारिणः ॥ पद्मयोनिंपुरस्कृत्य तदादीक्षाप्रयोगतः ॥ १६ ॥ अनुजग्राहदेवांस्तान् परेच्छाप्रेरितःक्वचित् ॥ ततोव्रतानांप्रवरं व्रतंदिव्यंमहाप्रभुः ॥ १७ ॥ तेभ्योददौदेवताभ्यो सतदप्यविरोधवित् ॥ पठ्यतेशिवशाखायां महापाशुपतंव्रतम् ॥ १८ ॥ शैवंयथोदितंयच्च आगमाचारचेष्टितम् ॥ शिवाराधनमुख्यानां मुनीनांतीव्रतेजसाम् ॥ १९ ॥ सदानु

प्रणाम कर इनसे कहेहुये वचन के अनुगामी हुये व शिवजी की प्रसन्नताके लिये बहुत ज्ञान कहागया ॥ १५ विधिसे चन्द्रार्धधारी शिवजीकी यज्ञकिया व दीक्षाको ग्रहणकिया ब्रह्माको अगाडीकर उस समय दीक्षाके प्रयोगसे ॥ १६ ॥ कभी उत्तम इच्छासे प्रेरणा किये हुये शिवजीने उन देवताओं के ऊपर दयाकिया तदनन्तर वैर को न जाननेवाले उन महाप्रभु शिवजीने व्रतोंके मध्यमें उस उत्तम व्रतको उनके लिये दिया शिवशाखा में महापाशुपत व्रत पढ़ा जाता है ॥ १७ । १८ ॥ जो

कि शास्त्रों के आचारमें चेष्टित यथोदित शैवव्रत है और तीव्र तेजवाले व शिवजीके आराधनमें मुख्य मुनियोंके ऊपर ॥ १९ ॥ शिवजी सदैव दया करनेवालेहैं इस लिये साथही बुद्धिसे वह रौद्र शिवव्रत प्रार्थना कियागया ॥ २० ॥ और विस्मयको छोडकर सुवर्ण के अण्डेसे उपजेहुये ब्रह्माने उनके लिये भस्म नामक उस कामिक व्रतको दिया जो कि कहाहुआ सदैव शुभ होता है ॥ २१ ॥ व पापोंका नाशक दुःखविनाशक तथा पुष्टि, लक्ष्मी व बलको बढ़ानेवालाहै और सिद्धिदायक, यशकारक व सुन्दर तथा कलियुग के पापों को छुड़ानेवाला है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यत्नसे भस्मस्नान करतेहुये सावधान मनुष्य इन्द्रियों को दमन करनेवाले व

ग्राहकःशम्भुः सर्वदेवैःप्रकल्पितम् ॥ तदेवंप्रार्थितंबुद्ध्या व्रतंरौद्रंशिवंसमम् ॥ २० ॥ नतेभ्योविस्मयंत्यक्त्वा प्रायच्छत्कनकाण्डजः ॥ कामिकंभस्मनामानं सर्वदाकीर्तितंशुभम् ॥ २१ ॥ पापघ्नंदुःखशमनं पुष्टिमावलवर्द्धनम् ॥ सिद्धिदंकीर्तिकृत्कान्तं कलिकल्मषमोचकम् ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मस्नानंसमाहिताः ॥ कुर्वन्तोमानवादान्ताः शान्ताश्चसुजितेन्द्रियाः ॥ २३ ॥ सर्वेकमण्डलुधरास्सर्वेरुद्राक्षधारिणः ॥ अनिष्टदर्शनालापसङ्गत्यागविवर्जिताः ॥ २४ ॥ एवंव्रतधरास्सर्वे वनेतस्मिन्महेश्वरम् ॥ आराधयंस्तमीशानं व्रतेनैवउमाधवम् ॥ २५ ॥ भक्त्यापरमयायुक्ता विधिनापरमेणच ॥ कालेनमहताध्यानाद्देवंज्ञात्वामनोगतम् ॥ २६ ॥ रुद्रध्यानाग्निनिर्दग्धकल्मषाश्चश्रियान्विताः ॥ तदागत्वासुराञ्छम्भुः प्रत्यक्षोभगवानभूत ॥ २७ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मदत्तवरादेवास्सर्वेशर्वानुभाविताः ॥ समर्चीकरं

शान्त और इन्द्रियोंको जीतनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ सब देवता कमंडलुको धारे व सब रुद्राक्षको धारण किये और अशुभ के दर्शन, वार्तालाप, संग व दानसे रहित हुये ॥ २४ ॥ इस प्रकार उस वनमें व्रतोंको धारण कियेहुये सबों ने पार्वतीके पति शिवजी को व्रतहीसे आराधन किया ॥ २५ ॥ और परमभक्ति से संयुत वे उत्तम विधिसे व बहुत समय के कारण ध्यानसे सदाशिव देवजीको मनमें प्राप्त जानकर ॥ २६ ॥ शिवजीके ध्यान की अग्निसे जलेहुये पापोंवाले व लक्ष्मीसे संयुत हुये तब देवताओं के समीप जाकर भगवान् शिवजी प्रत्यक्ष हुये ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ब्रह्मासे दियेहुये बरदानवाले सब देवताओंने शिवजी से शुद्ध चित्तवाले

होकर वहांपर तपक्रिया व ईशान (सदाशिव) जी से भावित याने शुद्धचित्तवाले ब्रह्माने भी तपस्या किया ॥ २८ ॥ और देवताओंके हज़ारवर्ष बीतनेपर उत्पन्न दया वाले वे देवेश्वरेश्वर शिवजी अनेक भाति के भूषणो से भूषित व अनेक भाति केगणों समेत प्रज्वलित होकर देवताओं के दर्शन को प्राप्तहुये जो गण कि अपने बलसे गर्वको नाश करनेवाले व भयंकर तथा भयानक जंतुवोंको नाश करनेवालेथे ॥ २९ । ३० ॥ व इच्छा के अनुकूल रूपवाले व कामनारहित तथा सब कामनाओंसे संयुत थे व हाथियों के समान शरीरवाले थे ॥ ३१ ॥ और अणिमादिक दिव्यगुणोंवाले और योगैश्वर्य नामवाले व चलतेहुये केश, जिह्वा व दाढ़ों के कट-

स्तपस्तत्र ब्रह्मापीशानभावितः ॥ २८ ॥ गतेवर्षसहस्रेस दिव्येदेवेश्वरेश्वरः ॥ जातानुकम्पोदेवानां दीप्तोदर्शनमेयिवान् ॥ २९ ॥ गणैर्नानाविधैस्सार्द्धं नानाभूषणभूषितैः ॥ स्वबलेनचदर्पघ्नैर्घोरैर्घोरविघातिभिः ॥ ३० ॥ कामरूपैरकामैश्चसर्वकामसमन्वितैः ॥ करीन्द्रकरटाटोपपाटनोसिंहदेहिभिः ॥ ३१ ॥ अणिमादिगुणैर्दिव्यैर्योगैश्वर्यादिनामभिः ॥ व्यालोलकेशरसनादंष्ट्राकटकटोग्रकैः ॥ ३२ ॥ व्याघ्रव्यालाननैरौद्रैः काककङ्कमुखैस्तथा ॥ अरूपैःसमरूपैश्च सुरूपैर्बहुरूपकैः ॥ ३३ ॥ एकद्वित्रिशिरोभिश्च बहुशीर्षैरशीर्षकैः ॥ एकद्वित्रिशिखैश्चैव नानारूपविराजितैः ॥ ३४ ॥ बहुनेत्रैरनेत्रैश्च एकद्वित्रिविलोचनैः ॥ एककर्णैर्द्विकर्णैश्च बहुकर्णैरकर्णकैः ॥ ३५ ॥ एकद्वित्रिसुनासैश्च बहुनासैरनासकैः ॥ एकजङ्घैर्द्विजङ्घैश्च बहुजङ्घैरजङ्घकैः ॥ ३६ ॥ एकपादद्विपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ गौरश्यामैःश्यामगौरैः सितैःकर्बुरकैस्तथा ॥ ३७ ॥

कटाने से भयंकर थे ॥ ३२ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंके समान मुखवाले तथा भयंकर व कौवा और कंक पक्षी के समान मुखवाले थे और रूपरहित व समान रूपवाले तथा सुन्दर रूपवाले व बहुत रूपोंवाले थे ॥ ३३ ॥ और एक, दो, तीन मस्तकोंवाले व बहुत शिरोंवाले तथा शिररहित व एक, दो, तीन शिखाओंवाले व अनेकभाति के रूपों से शोभित थे ॥ ३४ ॥ और बहुत नेत्रोंवाले व नेत्ररहित तथा एक, दो,तीन लोचनोंवाले और एक कानवाले व दो कानोंवाले और बहुत कानोंवाले व कानों से हीनथे ॥ ३५ ॥ ओर एक, दो, तीन नासिकाओंवाले व बहुत नासिकाओंवाले और नासिकारहित थे व एक जङ्घावाले तथा दो जङ्घोंवाले व बहुत जङ्घो

वाले और जङ्घोंसे हीनथे ॥ ३६ ॥ व एक पांववाले, दोपैरोंवाले व बहुतपांववाले और चरणहीनथे व गौर व श्यामरंगवाले तथा श्याम गौररङ्गवाले व श्वेत तथा विचित्ररङ्ग वाले थे ॥३७॥ और सर्पोंके हार व कङ्कणोंवाले व सर्पोंके जनेऊवाले और त्रिशूल, तलवार व पट्टिश अस्त्रको धारे तथा भुशुण्डी (बन्दूक) व परिघ (दहमर्दा) अस्त्रों वालेथे ॥ ३८ ॥ और चक्र, आरा, धनुष, कालदण्ड अस्त्रोंको हाथमें लिये व गदा, मुद्गर, पत्थर व मुसल को हाथमें लियेथे ॥ ३९ ॥ और वज्र, शक्ति, अशनि, प्रास व भाला शस्त्रोंको धारनेवाले और भम्भा व नगारों को बजातेहुये तथा वीणा, पणव व गोमुख बाजोंको बजाते थे ॥ ४० ॥ व मृदङ्ग, मर्दल, ढोल, डमरु, डिंडिम

भुजङ्गहारवलयैर्नागयज्ञोपवीतकैः ॥ शूलासिपट्टिशधरैर्भुशुण्डिपरिघायुधैः ॥ ३८ ॥ चक्रक्रकचकोदण्डकालदण्डास्त्रपाणिभिः ॥ गदामुद्गरपाषाणमुसलायुधहस्तकैः ॥ ३९ ॥ वज्रशक्त्यशनिप्रासकुन्तशस्त्रविधारिभिः ॥ भम्भाभेरीर्वादयद्भिर्वीणापणवगोमुखान् ॥ ४० ॥ मृदङ्गमर्दलान्ढक्कामड्डुडिण्डिमझर्झरान् ॥ हुडुकान्पणवाद्यांश्च वाद्यान्वादद्भिरर्चकैः ॥ ४१ ॥ एवंनानाविधैरौद्रैर्भीमैर्भीमपराक्रमैः ॥ गणेश्वरैःसुदुर्द्धर्षैर्वृतःसूर्योग्रहैरिव ॥ ४२ ॥ आविर्बभूवभगवान् सगणैःपरिवारितः ॥ संपश्यतांतदाऽयासब्रह्मादीनांदिवौकसाम् ॥ ४३ ॥ अथब्रह्मादयोदेवा दृष्ट्वाग्रेगणनायकम् ॥ तेजसाध्यासितास्तस्य बभूवुर्भ्रान्ततेजसः ॥ ४४ ॥ ततोवलम्ब्यतेधैर्यं दृष्ट्वादेवंयथाविधि ॥ षडङ्गवेदयोगेन हृष्टचित्तवपुर्धराः ॥ ४५ ॥ शिरोगतैरञ्जलिभिः पादेभ्यश्चमहीङ्गतैः ॥ तुष्टुवुःसृष्टिसंहारस्थितिकर्तारमीश्वरम् ॥ ४६ ॥ देवाऊचुः ॥ नमःशिवायशान्ताय सगणायसनन्दिने ॥ वृषासनायसौम्याय शक्तिशूलधरायच ॥ ४७ ॥

झांझ, हुडुक व पणवादिक बाजोंको बजातेहुये पूजन करनेवाले थे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके भयङ्कर व भयानक बलवाले दुर्धर्ष शैव गणनायकों से शिव जी घिरेथे जैसे कि ग्रहोंसे घिरेहुये सूर्यनारायण होवे ॥ ४२ ॥ हे व्यासजी ! उस समय देखतेहुये ब्रह्मादिक देवताओं के मध्यमें गणोंसे घिरेहुये वे भगवान् सदाशिव जी प्रकटहुये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवता गणनायक को आगे देखकर उनके तेजसे स्थित होते हुये अमिततेजवाले हुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर धैर्यको अवलम्बनकर सदाशिवजीको देखकर मस्तक पै प्राप्त अञ्जलियोंसे व पृथ्वी में प्राप्त चरणों से उपलक्षित व प्रसन्नचित्त तथा शरीर को धारेहुये उन देवताओं ने सृष्टि

संहार व पालन करनेवाले महादेवजी की स्तुति किया ॥ ४५ । ४६ ॥ देवता बोले कि गणोंसमेत व नन्दीसमेत शान्त शिवजी के लिये नमस्कार है व वृष पै आसन वाले, सौम्य व शक्ति तथा त्रिशूल को धारनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥४७ और दिशायें तथा चर्मवस्त्रवाले व उत्तमचित्त तथा तीव्रतेजवालेके लिये प्रणाम है और ब्रह्म व ब्रह्मशरीरवाले तथा ब्रह्मासे योजित शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ अन्धकविनाशक के लिये व सुरेशजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है और पंच-मुखवाले तथा समस्त रोगोंके हरनेवाले रुद्रजी के लिये प्रणाम है ॥ ४६ ॥ व गिरिश, सुरेश तथा ईशानजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है व भीम, उग्रस्वरूप व विजय के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५० ॥ देवताओं व दैत्योंके स्वामी व संन्यासियों के स्वामीके लिये प्रणाम है और शुण्ड व प्रचण्डदण्डवाले तथा उत्तम

नमोदिक्चर्मवस्त्राय सुचेतस्तीव्रतेजसे ॥ ब्रह्मणेब्रह्मदेहायब्रह्मणायोजितायच ॥ ४८ ॥ नमोऽन्धकविनाशाय सुरेशायनमोनमः ॥ रुद्रायपञ्चवक्त्राय सर्वरोगापहारिणे ॥ ४६ ॥ गिरिशायसुरेशाय ईशानायनमोनमः ॥ भीमायोग्रस्वरूपाय विजयायनमोनमः ॥ ५० ॥ सुरासुराधिपतये यतीनांपतयेनमः ॥ शुण्डायचण्डदण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥ ५१ ॥ विरूपाक्षशुभाख्याय विश्वरूपायवैनमः ॥ शान्तायचनमोज्ञाय त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ ५२ ॥ वेधसेविश्वरूपाय विश्वसंहारिणेनमः ॥ भक्तानुकम्पिनेत्यर्थं रुद्रज्ञानपरायच ॥ ५३ ॥ विरूपायसुरूपाय रूपानांशतधारिणे ॥ पञ्चास्यायशुभास्याय चन्द्रास्यायनमोनमः ॥ ५४ ॥ वरदायवरार्हाय सुकर्मायनमोनमः ॥ त्रिनेत्रत्राणमस्माकं त्रिपुरघ्न विधीयताम् ॥ ५५ ॥ वाङ्मनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नानांमहेश्वर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदादेवैर्विरञ्च्याद्यैस्तथा

खट्वाङ्ग को धारनेवाले शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ५१ ॥ व विरूपाक्ष तथा शुभाख्य के लिये व विश्वरूप के लिये नमस्कारहै व शान्त तथा विद्वान्के लिये प्रणाम है व त्रिलोचनजीके लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५२ ॥ और विश्वरूप ब्रह्माके लिये व संसारके संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है और अत्यन्तही भक्तके ऊपर दया करनेवाले व रुद्रज्ञान में परायणके लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ व विरूप तथा सुरूप और सैकड़ोंरूपो के धारनेवाले के लिये प्रणाम है और पञ्चमुख, शुभानन तथा चन्द्राननजी के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ और वरदायक, वरकेयोग्य व उत्तम कर्मवाले के लिये प्रणाम है प्रणाम है हे त्रिपुरविनाशक, त्रिलोचन, महेश्वरजी !

इस दैवीविधि से मेरा अत्यन्त आराधन कियाहै ॥५६॥ व्रतमें टिकेहुये मनुष्य व देवता भी मुझको देखते हैं यदि मैं तुमलोगों को किसी उत्तम वरदानों को देऊं ॥६०॥
कहा कि हे महाभागो ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम लोगोंने सदैव व्रतकी उपासना कियाहै ॥ ५७।५८ ॥ और मेरे दर्शनकी इच्छा से आपलोगोंने बहुतही श्रद्धासे
५५।५६ ॥ सुरेश्वरजी ईश्वरने ब्रह्मादिक देवताओंके दुबले शरीरों को देखकर और दिव्य प्रतापको धारण कियेहुये तीनप्रकार के अन्तःकरण से आराधन को देखकर
वचन, मन व शरीर की चेष्टाओं से तुम्हारी शरणमें प्राप्त हमलोगोंकी रक्षाकीजिये सनत्कुमारजी बोले कि उस समय ब्रह्मादिक देवताओंसे स्तुति कियेहुये सदाशिव ॥

हरः ॥ ५६ ॥ शरीराणिविलोक्येशः कृशान्यथदिवौकसाम् ॥ दिव्यप्रतापधारेण त्रिविधेनान्तरात्मनाम् ॥ ५७ ॥ आराधनंसमीक्ष्याह ब्रह्मादीनांसुरेश्वरः॥ साधुसाधुमहाभागाःशश्वद्व्रतमुपासितम् ॥ ५८ ॥ देवेनानेनविधिना अशमाराधितोह्यहम्॥भवद्भिःश्रद्धयात्यर्थं ममदर्शनकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥ व्रतस्थामांहिपश्यन्ति मानुषादेवताअपि ॥ यद्यहंच प्रयच्छामि कांश्चिद्दोहिवराञ्छुभान् ॥ ६० ॥ एकैकशोद्वित्रिशोवा समस्तेभ्यस्समेनतत् ॥ सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं दास्याम्यशेषदेवताः ॥ ६१ ॥ हितायभवतान्देवा आगत्योज्जयिनीम्प्रति ॥ क्षिप्तंकपालंचमया किम्पुनर्भद्रमस्तुवः ॥ ६२ ॥ देवाऊचुः ॥ किंकृतंहितमस्माकं कपालंक्षिपतात्वया ॥ किमर्थंकम्पिताभूमिर्लोकंवैव्याकुलीकृतम् ॥ ६३ ॥ नैतंनिरर्थकन्देव कथ्यतामत्रकारणम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ युष्मद्धितार्थमेतद्वै भयंविनिहितंकृतम् ॥ ६४ ॥ देवानामनुरक्षार्थं श्रूयतामत्रकारणम् ॥ असुरेन्द्रोह्ययोनामबलवान्योगमायिकः ॥ ६५ ॥ अवस्थितोन्ववष्टभ्य रसातलतलाश्रयम् ॥ तस्यदे

देवजी बोले कि तुमलोगोंके हितके लिये यह भय नाश कीगई है ॥ ६४ ॥ इस विषयमें देवताओं की रक्षाके लिये कारण को सुनिये कि बलवान् व योगमायावाला
तुमने हमलोगोंका क्या हित किया और किसलिये पृथ्वी कँपाईगई व लोक विकल कियागया ॥ ६३ ॥ हे देव ! यह बिन प्रयोजन नहींहै इस विषयमें कारण कहिये महा-
हितके लिये उज्जयिनीपुरी में आकर मैंने कपालको फेंकदिया तुमलोगोंका कल्याण होवै और फिर क्या चाहतेहो ॥ ६२ ॥ देवता बोले कि कपाल को फेंकतेहुये
तो एक एक या दो तीनको दूंगा इस लिये हे देवताओ ! तुल्यता से सबोंके लिये समस्त कामनाओं की सिद्धिके लिये यह मैं दूंगा ॥ ६१ ॥ हे देवताओ ! आपलोगों के

हयनामक दैत्येन्द्र ॥ ६५ ॥ गर्वित होकर रसातल के नीचे आश्रित होकर स्थित था उस दैत्यके बलवान् व शत्रुपुरों को जीतनेवाले वे बहुत से दैत्य तुमलोगोंको तपस्यामें स्थित जानकर आये व इन्द्रसमेत देवताओंको मारनेके लिये इच्छा करतेहुये मायासे छिपेहुये शरीरोंवाले ॥ ६६।६७ ॥ व अस्त्रोंको उठायेहुये वे दैत्य उद्यतहो कर देवताओंको मारनेके लिये सुवर्णके शृगोंसे संयुत,मुख्य कुशस्थलीपुरीको आये॥६८ ॥ व कपाल गिरनेके कारण बड़े भयङ्कर शब्दसे तथा पृथ्वीके कापनेसे उनके शरीर से प्राण निकलगये ॥ ६९ ॥ संसार की स्थिति के नाशने के लिये उनका उद्यम हुआथा उसी से राज्य के ऐश्वर्य से गर्वित उन दैत्यों को मैंने माराहै ॥ ७० ॥

त्यस्यबलिनो दैत्याःपरपुरञ्जयाः॥ ६६॥ युष्माञ्ज्ञात्वातपःस्थान्वै आययुर्बहवोदिते॥ सेन्द्रान्निहन्तुमिच्छन्तो मायाप्रच्छन्नविग्रहाः ॥ ६७॥ पुरींकनकशृङ्गाढ्यामेकामधिकुशस्थलीम्॥ समुद्ययुस्सुरान्हन्तुमुद्यताउद्यतायुधाः ॥ ६८ ॥ शब्देनचातिघोरेण भूमिनिष्कम्पनेनच॥ तेषांकपालपातेन देहात्प्राणाविनिर्ययुः ॥ ६९ ॥ लोकस्थितिविनाशार्थं तेषामासीत्समुद्यमः॥ राज्यैश्वर्येणदर्पिष्ठास्तेनतेनिहतामया ॥ ७० ॥ देवाऊचुः ॥ विश्वस्तानांत्वयाचैव नोवाचानुग्रहःकृतः ॥ देवानुग्रहकर्त्तात्वं गुणस्मृतिनिषेवितः ॥ ७१ ॥ दिव्यदृष्टिभिरत्यर्थं यशोर्थंभीमपूजितः ॥ इत्युक्त्वाप्रणतान्देवानुत्थाप्योचेपुनर्भवः ॥ ७२ ॥ शिवउवाच ॥ परिचर्याभिसंयुक्तं नित्यमुग्रनिषेविणम् ॥ ध्यानसाधननिष्पन्नं यदन्येषान्नविद्यते ॥ ७३ ॥ मनोवाक्कायभावेन दुष्करंदुश्चरन्तपः ॥ अनेनतपसादेवाः कष्टेनदुस्सहेनच ॥ ७४ ॥ समन्तादभिवर्धन्तां युष्मत्तेजस्तथाधिकम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्तादेवदेवेन देवाब्रह्मपुरोगमाः ॥ ७५॥ ऊचुरुन्नम्यवक्त्रा

देवता बोले कि विश्वासमें प्राप्त हम लोगोंके ऊपर तुमने वचनसे दयाकिया क्योंकि गुणों के स्मरण से सेवित तुम देवताओं के ऊपर दया करनेवालेहो ॥ ७१ ॥ हे भीम ! दिव्यदृष्टिवाले जनोंसे अपयशके लिये बहुतही पूजित होते हो यह कहकर प्रणाम कियेहुये देवताओंको उठाकर फिर शिवजी बोले ॥ ७२ ॥ महादेवजीने कहा कि सेवा से संयुत व ध्यान के साधन से सिद्ध नित्य शिवजी की सेवा जिसलिये अन्यजनों के नहीं विद्यमान है ॥ ७३ ॥ उसीकारण मन, वचन व शरीर के भाव से दुःख से करनेयोग्य तप कठिन है हे देवताओ ! इस तप से व असह्य कष्ट से ॥ ७४ ॥ तुमलोगों का तेज सबओर से बढ़ै व अधिक होवै सनत्कुमारजी बोले कि

देवदेव शिवजी से इसप्रकार कहेहुये ब्रह्मादिक देवता ॥ ७५ ॥ घुटुनुओं से स्थित होकर व मुखोंको ऊपर उठाकर बहुतसमय में इकट्ठा कीहुई बड़ी तपस्या से प्रसन्न शिवजीसे बोले देवता बोले कि हे देव ! तुम तपस्यासे प्राणदायक व कारण देखेजातेहो इसलिये तुम्हारे ध्यानमें परायण हमलोगोंको वरदायक होवो ॥ ७६। ७७ ॥ हे भक्तों को अभयकरनेवाले देवेश ! रक्षाकीजिये महादेवजी बोले कि उपाय व विधिसे तुम लोगोंको प्रकट दर्शन दियागया ॥ ७८ ॥ हे सुरोत्तमो ! कहिये हम तुमलोगों को बहुत वरदानों को देवैंगे भगवान् शिवजीसे ऐसा कहने पर देवताओंके आगे खड़े होकर ब्रह्माजी ने शास्त्रके शब्दसे उपजेहुये वचन को सदाशिवजी

णि स्थिताजानुभिरीश्वरम् ॥ महतातपसातुष्टं बहुकालार्जितेनच ॥ ७६ ॥ देवाऊचुः ॥ प्राणदस्त्वंकारणस्त्वं तपसादेव दृश्यसे ॥ तदस्माकंप्रवृत्तानां तवध्यानेवरप्रदः ॥ ७७ ॥ रक्षांकुरुष्वदेवेश भक्तानामभयङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्नेन विधिनादत्तं सुव्यक्तंदर्शनंहिवः ॥ ७८ ॥ व्रियताम्भोःसुरश्रेष्ठा दास्यामोवोवरान्बहून् ॥ एवमुक्तेभगवता ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ७९ ॥ देवानामग्रतःस्थित्वा श्रुतशब्दोद्भवंभवम् ॥ प्राप्तोयंचाद्यभगवन् सुपर्याप्तोमहावरः ॥ ८० ॥ दीयतान्नस्समैश्वर्यं तेषांस्थानमथाक्षयम् ॥ शिवउवाच ॥ लोकेस्मिन्ममयेभक्ता मयाविनिहताश्चये॥ ८१ ॥ नैवतेदुर्गतिंयान्ति लभन्तेसुगतिंपराम् ॥ सार्द्धतत्रजटाजूटैः शिरोभिश्शूलपाणयः ॥ ८२ ॥ भान्तिमद्वामपार्श्वस्था इमेतेद्रोहिणाङ्गणाः ॥ एषांविनिग्रहार्थाय युष्मत्सम्बोधनायच ॥ ८३ ॥ सविकारंमयाक्षिप्तं कपालंधरणीतले ॥ कृतोमेनुग्रहस्तेषां भक्तानांभक्तिमिच्छताम् ॥८४॥ वनेस्मिन्नित्यवासोमे वृन्दैरभ्यर्थितेनच ॥ महाकालवनेदेवा आगतस्यममानघाः॥८५॥

से कहा कि हे भगवन् ! आज भलीभांति परिपूर्ण यह महावरदान पायागया ॥ ७९।८० ॥ और हमलोगों को ऐश्वर्य्य व उनको अविनाशी स्थान दियाजावै शिवजी बोले कि इस संसारमें जो मेरे भक्तहैं व जो मुझसे मारेगयेहैं ॥ ८१ ॥ वे दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोतेहैं किन्तु वहांपर उत्तम सुगतिको पातेहैं व जटाजूटों समेत मस्तकोंसे उपलक्षित व त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ८२ ॥ मेरे बायेंओर समीपमें स्थित ये वे वैरियों के गण शोभित हैं इनके दण्डके लिये व तुमलोगों के ज्ञानके निमित्त ॥ ८३ ॥ विकार समेत कपालको मैंने पृथ्वीमें फेंकदिया और भक्तिको चाहतेहुये उन भक्तोंके ऊपर मैंने दया किया ॥ ८४ ॥ और वृन्दोंसे याचित मुझसे इस महाकालवनमें

सदैव निवास कियाजायगा हे पापरहित देवताओ! महाकालवनमें आयेहुये मेरे ॥ ८५ ॥ व तपस्या करतेहुये आपलोगोंके उसीकारण दो नामोंसे संयुत गुप्त महाकाल वन संसारमें प्रसिद्ध होगा ॥ ८६ ॥ गुह्यवन व श्मशान क्षेत्रोंके मध्यमें बड़ा श्रेष्ठहै और मैंने इस कपालव्रतचर्याको कहाहै ॥ ८७ ॥ कपालरूपी पात्रमें भोजन करता हुआ व कपालव्रत के भूषणवाला और कपालको हाथमें लिये व भिक्षाव्रतसे संयुत पुरुष सन्तुष्ट होताहै ॥ ८८ ॥ व श्मशान में स्थानवाला, रौद्र तथा व्रत से उन्मत्त व मूढ़बुद्धिवाला नर सदैव समस्त प्राणियों में प्रिय व अप्रिय में समान होकर प्रसन्न होता है ॥ ८९ ॥ और भस्म से भूषित सब अङ्गोंवाला व विशेषकर ज्ञानी,जिते-

तपस्यताश्चभवतां महाकालवनन्ततः ॥ नामद्वययुतंगुह्यं लोकेख्यातंभविष्यति ॥ ८६ ॥ गुह्यंवनंश्मशानञ्चक्षेत्राणांप्रवरंमहत् ॥ कपालव्रतचर्याच मयाह्येषाप्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ कपालपात्रेभुञ्जानः कपालव्रतभूषणः ॥ कपालपाणिस्सन्तुष्टो भिक्षाव्रतसमन्वितः ॥८८॥ श्मशाननिलयोरौद्रो व्रतोन्मत्तविमूढधीः ॥ नन्दितस्सर्वभूतेषु प्रियाप्रियसमस्सदा ॥ ८९ ॥ भस्मभूषितसर्वाङ्गो ज्ञानीचैवविशेषतः ॥ जितेन्द्रियस्सर्वसङ्गी मृद्भस्मोदकसंग्रही ॥ ९० ॥ नित्ययुक्तस्सदाजापी जपार्जितवरासनः ॥ पुण्यतीर्थाश्रमोपेतश्शनैर्देवेसमाहितः ॥ ९१ ॥ लोकातीतंपरंज्ञानं महापाशुपतंव्रतम् ॥ कपालव्रतमास्थाय पुराचीर्णमयास्वयम् ॥ ९२ ॥ कपालंपरमंगुह्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ कपालव्रतमेतद्धि दुर्द्धरंपरमाद्भुतम् ॥ ९३ ॥ अत्यन्तमुत्कटंरौद्रमघोरंरोमहर्षणम् ॥ महाव्रतंद्विषन्मोहात्पापेनैवस्थितोनरः ॥ ९४ ॥ न मुच्यतेसपापेन जन्मकोटिशतैरपि ॥ महापाशुपतंतस्मान्नहन्यान्नचदूषयेत् ॥ ९५ ॥ एकस्मिन्निहतेयस्मात्कोटिर्भ

न्द्रिय,सबका सङ्ग करनेवाला व मिट्टी,भस्म और जलका संग्रह करनेवाला ॥ ९० ॥ तथा सदैव योगमें प्राप्त व सदा जप करनेवाला और जपसे उत्तम आसनोंको इकट्ठा किये व पवित्र तीर्थों तथा आश्रमों से संयुत पुरुष धीरेसे देवमें सावधान होताहै ॥ ९१ ॥ पुरातन समय कपालव्रत में स्थित होकर मैंने आपही लोकोंसे परे ज्ञान व महापाशुपत व्रतको किया है ॥ ९२ ॥ कपालव्रत बहुतही गुप्त, पवित्र व पापनाशक है और यह कपालव्रत दुर्द्धर व बड़ा आश्चर्यमय है ॥ ९३ ॥ और अत्यन्त उग्र, भयंकर, अघोर व लोगों को प्रसन्न करनेवाले महाव्रत को मोह से द्वेष करताहुआ मनुष्य पापही से स्थित होताहै ॥ ९४ ॥ और वह करोड़ों सै वर्षोंसे भी पातक

से नहीं छूटताहै इसलिये महाशैवको न मारै और न दूषितकरै ॥ ९५ ॥ क्योंकि एक के मारने पर करोड़ मारेहुये होतेहैं व श्रद्धासंयुत जो पुरुष एक महाव्रतीको भोजन कराताहै ॥ ९६ ॥ उससे वेददर्शी करोड़ ब्राह्मण भोजन कराये हुये होतेहैं जो मनुष्य यतियोंको कपाल पूर्ण करनेवाली भिक्षा देताहै ॥ ९७ ॥ समस्त पातकोंमे छूटाहुआ यह दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है कपालमें भोजन श्रेष्ठहै और ब्रह्मासे उपजाहुआ यह मार्गहै ॥ ९८ ॥ लोकों व वेदोंमे प्रणाम कियेहुये व देवताओं तथा दानवों से पूजित और प्राणियों के मोह करानेवाले कपाल को जो ब्राह्मण धारण करैंगे ॥ ९९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे तुल्य वे भूतल में भ्रमण करैंगे महाव्रत में परायण व कपाल से किये

वतिघातिता ॥ एकंमहाव्रतंयस्तु भोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥९६ ॥ तेनभुक्ताभवेत्कोटिर्विप्राणांवेददर्शिनाम् ॥ कपाल पूर्णांभिक्षां यतीनांयःप्रयच्छति ॥ ९७ ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो नासौदुर्गतिमाप्नुयात् ॥ कपालभोजनंश्रेष्ठं मार्गोयंब्र ह्मसम्भवः ॥९८॥ वन्दितंलोकवेदेषु पूजितन्देवदानवैः॥धारयिष्यन्तियेविप्राः कपालंभूतमोहनम् ॥ ९९ ॥ ममतुल्या स्तुतेब्रह्मन् विचरन्तिमहीतले ॥ महाव्रतेरताधीराः कपालकृतभूषणाः ॥ १०० ॥ महापाशुपतालोके रुद्रास्संसारतार काः ॥ धर्माधर्मविमुक्ताश्च कृत्याकृत्यविवर्जिताः ॥ १ ॥ दीक्षयानेनयोगेन प्राणिनस्तारयन्तिते ॥ यानितीर्थानिलोके स्मिन् यज्ञकोटिशतानिच ॥ २ ॥ विशुद्धस्यहिज्ञानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ यथाहंसर्वदेवानां सम्पूज्योस्मिपि तामह ॥ ३ ॥ तथैवसर्वयोगेभ्यः सम्पूज्योयंमहाव्रतः ॥ संसारबन्धमोक्षार्थं शिवगुह्यमिदंव्रतम् ॥ ४ ॥ यदेतत्सर्व धर्मेण अपुनर्भवकारणम् ॥ कपालव्रतमादाय यस्त्यजेदजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ रौरवंसप्रयात्याशु प्रणीतोयमकिङ्करैः ॥

हुये भूषणवाले विद्वान् ॥ १०० ॥ महाशैव लोग संसार में रुद्ररूप होकर संसार को तारनेवाले हैं धर्म व अधर्म से छूटेहुये तथा कार्य व अकार्यसे रहित ॥ १ ॥ वे लोग दीक्षासे इस योग करके प्राणियोंको तारते हैं इस संसारमे जो तीर्थ हैं वे और करोडों सै यज्ञ ॥ २ ॥ पवित्र ज्ञानकी सोलहवींमात्रा के योग्य नहीं होते हैं हे पितामह ! सब देवताओं के मध्यमें जैसे मैं भलीभांति पूजनेयोग्य हूं ॥ ३ ॥ वैसेही सब योगों से यह महाव्रत पूजनेयोग्य है संसार के बन्धन व मोक्षके लिये यह शिव गुप्तव्रत है ॥ ४ ॥ क्योंकि सब धर्म से यह फिर न जन्म होनेका कारण है कपालव्रतको लेकर जो अजितेन्द्रियनर त्यागताहै ॥ ५ ॥ यमदूतोंसे लेगयाहुआ वह पुरुष

शीघ्रही रौरवनरक को प्राप्तहोता है जो स्वभाव से आलाप करता है और कर्म नहीं करता है ॥ ६ ॥ वह स्नेहसे शृङ्गारचित्तवाला है धर्मका प्रियकारक नहीं है और एकत्र भोजन करनेवाला व मिष्टभोजी तथा जो निष्कपट प्रिय नहीहै ॥ ७ ॥ और कुगाव व कुनगरमें बसनेवाला तथा कृषी व वाणिज्य का सेवक इत्यादिक उस दुष्ट दोषके सम्भाषण से भी ॥ ८ ॥ मनुष्य नरकगामी होता है क्योंकि वह मेरे व्रतका दूषक होताहै अथवा दुष्टको देखकर महाव्रत को धारनेवाला पुरुष ॥ ९ ॥ अङ्गसे अङ्गको न छुवै और छूकर जलसे स्नानकरै इस प्रकार तुमलोगों से कपालका छोड़ना कहागया ॥ १० ॥ जिस प्रकार कि मैंने यहांपर कपालको छोड़ा व आपही दैत्य

आलापयतिभावेन नतुकर्मकरोतियः ॥ ६ ॥ सरागचित्तशृङ्गारी नचधर्मप्रियङ्करः ॥ एकत्रभोजीमिष्टाशी नाकैतववचःप्रियः ॥ ७ ॥ कुग्रामेनगरेवासी कृषिवाणिज्यसेवकः ॥ इत्यादिदुष्टदोषस्य तस्यसम्भाषणादपि ॥ ८ ॥ नरोनरकगामीस्याद्यतोमद्व्रतदूषकः ॥ दृष्ट्वातुदुष्टमथवा महाव्रतधरोनरः ॥ ९ ॥ नस्पृशेदङ्गमङ्गेन स्पृष्ट्वास्नायातुचाम्बुभिः ॥ एवंवस्सर्वमाख्यातं कपालस्यचमोक्षणम् ॥ १० ॥ यथामयात्रनिक्षिप्तं चासुरानिहताःस्वयम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवान् ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ ११ ॥ क्षेत्रंनिर्वासयामास यथावत्कथयामिते ॥ आद्यमेतच्छ्मशानञ्च पठ्यतेमुनिसत्तमैः ॥ १२ ॥ महाकालवनंव्यासयत्रसन्निहितोहरः ॥ अनुग्रहस्यभुवनं भूमिभागेनशम्भुना ॥ १३ ॥ अनुग्रहार्थंभूतानां क्षेत्रंतन्मृत्युधर्मिणाम् ॥ सुवर्णवज्ररचिता वेदिकाचमहीकृता ॥ १४ ॥ विचित्रकुसुमारत्नैः कारितासर्वशोभना ॥ स्वर्णवज्राङ्किततरा श्रेष्ठाहरितशाद्वला ॥ १५ ॥ त्रिंशच्चत्वारिसम्पूर्णाः कलशाःशोभनाःस्थिताः ॥

मारेगये सनत्कुमारजी बोले कि इस प्रकार कहकर उन भगवान् सदाशिवजी ने ब्रह्मादिक देवताओं समेत ॥ ११ ॥ क्षेत्रको बसाया उसको मैं तुमसे यथायोग्य कहताहूं यह पहला श्मशान मुनिश्रेष्ठों से पढ़ाजाता है ॥ १२ ॥ और जहांपर सदाशिवजी टिके हैं वह महाकालवन है और शिवजी से भूमिभाग करके वह दयाभुवन कियागया है ॥ १३ ॥ और मृत्युधर्मी याने मरनेवाले प्राणियों के ऊपर दयाके लिये वह क्षेत्र कियागया है व सुवर्ण तथा हीरोंसे रचीहुई वेदी व पृथ्वी कीगई है ॥ १४ ॥ जोकि रत्नोंसे विचित्र पुष्पोंवाली सबसे उत्तम है और सोने व हीरोंसे अत्यन्तही चिह्नित तथा श्रेष्ठ व हरित बालतृणोंवाली थी ॥ १५ ॥ और सुन्दर चौतीस

कलश सम्पूर्ण स्थितहैं और उसमें चार अनमोल द्वार तपते हैं ॥ १६ ॥ व उसमें स्थित कलश उदयहुये सूर्यनारायणकी नाईं शोभितहैं वहांपर वनोंके मध्यमें उत्तम वनमें भगवान् शिवजी क्रीडा करते हैं ॥ १७ ॥ त्रेतायुगमें धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी तपस्वीलोग रहते हैं और नन्दीसमेत व कालदण्डीसे संयुत देवगणनायक (स्वामिकार्त्तिकेय) जी हैं ॥ १८ ॥ यह सब सत्ययुगमें प्रत्यक्ष देखपड़ता है और द्वापर में धर्मशील तथा वेद व विज्ञान से शोभित पुरुष वहां देख पड़ते हैं ॥ १९ ॥ और कलियुगमें शुद्ध विज्ञानसे शोभित अधिक तपवाले पुरुष कल्याणकारक व भक्तदुःखहारक देवदेव सदाशिवजी को देखते हैं ॥ २० ॥ जोकि महाकालवन में नित्य

द्वाराणितत्रचत्वारि प्रवर्ग्याणितपन्तिच ॥ १६ ॥ कुम्भाःशोभन्तितत्रस्था उदिताभास्कराइव ॥ रमतेतत्रभगवान् वनानामुत्तमेवने ॥ १७ ॥ त्रेतायांधर्मनिरतास्तापसाब्रह्मचारिणः ॥ सनन्दीदेवगणपः संयुतःकालदण्डिना ॥ १८ ॥ एतत्कृतयुगेसर्वं प्रत्यक्षंदृश्यतेवने ॥ द्वापरेधर्मशीलाश्च श्रुतिविज्ञानशालिनः ॥ १९ ॥ कलौतुशुद्धविज्ञानशालिनःशङ्करंहरम् ॥ तपोधिकाःप्रपश्यन्तिदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ २० ॥ महाकालवनेनित्यं शूलपट्टिशधारिणम् ॥ एतत्तेतथ्यमाख्यातं लोकानुग्रहकारकम् ॥ २१ ॥ संहितानुक्रमेणात्र मन्त्रैश्चविधिपूर्वकम् ॥ समर्चयन्तियेविप्रा भक्त्याशम्भुमघापहम् ॥ २२ ॥ वसन्तीहसमीपन्ते महाकालानुभावतः ॥ २३ ॥ पठतियइहलोके तस्यसंस्थानमेतत प्रथितगुणगणौघैरर्चितंदोषहन्तृ ॥ शुभमतिरभिषिक्तः सोमरैरर्च्यमानो व्रजतिहरपुरंवै यःशृणोत्येकचित्तः ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कपालमोचणन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ही शूल व पट्टिशको धारण कियेहैं तुमसे यह संसारके ऊपर दयाकारक सत्यवृत्तान्तकहागया ॥ २१ ॥ यहांपर संहिता के क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंके द्वारा जो ब्राह्मण भक्तिसे पापविनाशक सदाशिवजीको भलीभांति पूजते हैं ॥ २२ ॥ वे महाकालजीके प्रभावसे यहां मेरे समीप बसते हैं ॥ २३ ॥ इस संसारमें प्रसिद्ध गुणगणोंसे पूजित व दोषोंको नाश करनेवाले उन महादेवजीके इस चरित्रको जो पढ़ताहै देवताओंसे अभिषेक कियाहुआ वह उत्तम बुद्धिवाला पुरुष पूजित होताहै और वह शिवलोक को जाताहै जोकि सावधान चित्त होकर सुनताहै ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकपालमोक्षणंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सृष्टिके लिये प्रधान त्रिगुणात्मकहै साधर्म्य व आत्म्य व ऐश्वर्य व प्रधाध व विधर्मि याने अन्य धर्मवाला ॥ २० ॥ और यह रुद्रका कारणहै व यह काम्यता कहीजातीहै सब कही कर्तृत्व है और रुद्रपुरुप में भी अकर्तृत्व है ॥ २१ ॥ और प्रधानपुरुष में अचैतन्यहै और वह यह तत्त्व कहागया है और अन्य तत्त्वसे कार्य व कारण छूटजाते हैं ॥ २२ ॥ और तत्त्व की संख्यासे प्रयोजक में विधर्मता को देखकर संख्या है यह रुद्रके तत्त्वार्थचिन्तकों से कहाजाता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार उनका तत्त्वभाव है और तत्त्वसे तत्त्वोंकी संख्या है व विद्वानों ने रुद्रतत्त्व से भी अधिक ज्ञानतत्त्व को कहाहै ॥ २४ ॥ उसीकारण सांख्ययोग में यह भक्ति विद्वानों से आध्यात्मिकी मानी

च॥२०॥कारणंतच्चरुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते॥सर्वत्रकर्तृतारुद्रे पुरुषेचाप्यकर्तृता॥२१॥अचैतन्यंप्रधानेच तच्चतत्त्व मिदंस्मृतम्॥तत्त्वान्तरेणमुच्येते कार्यकारणमेवच॥२२॥प्रयोजकेचवैजात्यं ज्ञात्वातत्त्वस्यसंख्यया॥संख्यास्तीत्यु च्यतेप्राज्ञै रुद्रतत्त्वार्थचिन्तकैः॥ २३ ॥ इतितस्यतत्त्वभावंतत्त्वसंख्याचतत्त्वतः॥रुद्रतत्त्वाधिकंचापि ज्ञानतत्त्वंविदुर्बु धाः॥२४॥ सांख्येततोभक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकीमता॥यौगिकीमपिमेभक्त्या शृणुभक्तिमहासुराः॥२५॥ प्राणाया मपरोनित्यं ध्यायेतनियतेन्द्रियः॥धारणांहृदयेधृत्वाध्यायतेयोमहेश्वरम्॥२६॥ हृत्कञ्जकर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रंत्रिलो चनम्॥शशाङ्कद्योतितजटं व्यालावृतकटीतटम्॥२७॥श्वेतंदशभुजंभद्रं वरदाभयहस्तकम्॥ योगजामानसीव्या स रुद्रभक्तिःपरास्मृता ॥ २८ ॥ यएवंभक्तिमान्रुद्रे रुद्रभक्तःसउच्यते ॥ विधिन्तुशृणुमेव्यास यःस्मृतःक्षेत्रवासि नाम्॥२९॥स्वयंरुद्रेणविहितो ब्रह्मादीनांसमागमे॥कथितोविस्तरात्पूर्वं पूर्वेषांतत्रसन्निधौ ॥ ३० ॥ निर्ममानिरहङ्का

गई है और हे महासुरो ! योगवाली भक्तिको भी मुझ से भक्तिसे सुनिये ॥ २५ ॥ कि प्राणायाम में परायण होकर इन्द्रियोंको जीतेहुये पुरुष नित्यही ध्यानकरै हृदय में धारणा धरकर हृदयके कमलपै बैठे पंचमुख त्रिनेत्र और दशभुजाओंवाले व चन्द्रमा से प्रकाशित जटावाले तथा सर्पों से आच्छादित कटितटवाले और गौरवर्ण व वरदायक तथा अभय हाथोंवाले कल्याणरूप सदाशिवजीको जो ध्यान करताहै हे व्यासजी ! उसके योगमे उपजीहुई उत्तम शिवभक्ति कहीगई है ॥ २६ । २७ । २८ ॥ जो इसप्रकार शिवमें भक्तिमान्है वह शिवभक्त कहा जाताहै व हे व्यासजी ! क्षेत्रवासियोंको जो विधि कहीहै उसको मुझसे सुनिये ॥ २९ ॥ जो कि ब्रह्मादिकों

के संयोग में आपही शिवजी से कहीगई है व पुरातन समय वहांपर पहलेवाले जनों के समीप विस्तार से कहीगई है ॥ ३० ॥ ममतारहित, गर्वविहीन, सङ्गरहित तथा स्त्रीआदिकों से रहित और बन्धुवर्गमें स्नेहरहित तथा ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले ॥ ३१ ॥ और नित्य तीनभांति के कर्मोंसे प्राणियों को अभय देनेवाले व सांख्ययोग की विधिको जाननेवाले, धर्मज्ञ तथा संशयरहित ॥ ३२ ॥ जो क्षेत्रवासी ब्राह्मण अनेक भांति के यज्ञोंसे महाकालवन में शिवजी को पूजते हैं मरेहुये उनलोगों को जो फल होता है उसको सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वे पुरुष बहुतही दुर्लभ व अक्षय ब्रह्मसायुज्य मुक्तिको प्राप्तही होतेहैं और अक्षयमोक्ष को प्राप्तहोकर फिर

रा निस्सङ्गानिष्परिग्रहाः ॥ बन्धुवर्गेचनिःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ३१ ॥ भूतानांकर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः ॥ साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥ ३२ ॥ यजन्तेविविधैर्यज्ञैर्येविप्राःक्षेत्रवासिनः ॥ महाकालवनेतेषां मृतानांयत्फलंशृणु ॥ ३३ ॥ व्रजन्त्येवसुदुष्प्रापं ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ॥ सम्प्राप्यनपुनर्जन्म लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥ ३४ ॥ पुनरावर्तनंहित्वा विधिंमाहेश्वरंस्थिताः ॥ पुनरावृत्तिरन्येषां प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ गार्हस्थ्यविधिमासाद्य षट्कर्मनिरतास्सदा ॥ वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिताः ॥ ३६ ॥ अधिकंफलमाप्नोति सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सर्वलोकेषुचान्यत्र गतिस्तस्यनहन्यते ॥ ३७ ॥ दिव्यैनैश्वर्ययोगेन सुरूढःसुपरिग्रहः ॥ बहुसूर्यप्रकाशेन विमानेनसुवर्चसा ॥ ३८ ॥ वृतःस्त्रीणांसहस्रैश्च स्वच्छन्दगमनालयः ॥ विचरत्यविचारेण सर्वलोकान्दिवौकसाम् ॥ ३९ ॥

जन्मको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ ३४ ॥ और वे फिर पुनरागमन को छोड़कर शिवजी की विधिमें स्थित होतेहैं और प्रपञ्चाश्रम में बसनेवाले अन्य नरों का पुनरागमन होताहै ॥ ३५ ॥ और गृहस्थी की विधिमें स्थित होकर वेदोक्तविधि से सदैव षट् (छह) कर्मोंमें परायण और भलीभांति मन्त्रों व स्तोत्रोंसे बँधाहुआ ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण समस्त दुःखों से रहित होकर अधिक फलको प्राप्त होता है और सब लोकोंमें व अन्यत्र उसकी गति नहीं नष्ट होती है ॥ ३७ ॥ और दिव्य ऐश्वर्य के योगसे पुष्ट व उत्तम परिवारवाला तथा इच्छाके अनुसार स्थानोंमें गमनवाला वह पुरुष हजारों स्त्रियोंसे घिरकर बहुत सूर्यों के समान प्रकाशवाले तथा उत्तम तेजवाले विमान के द्वारा

देवताओं के सब लोकोंमें विचाररहित भ्रमण करता है ॥ ३८।३६ ॥ और पुरुषों के मध्यमें बहुतही चाहनेयोग्य और सब जातियों से उत्तम व धनी होताहै और स्वर्ग से भ्रष्टहुआ पुरुष बडेभारी कुलमें उत्पन्न होकर रूपवान् होताहै ॥ ४० ॥ और धर्म का जाननेवाला व शिवभक्त तथा समस्त विद्याओं के अर्थका पारगामी होताहै और ब्रह्मचर्य्य व गुरुकी सेवासे ॥ ४१ ॥ और वैसेही वेदपाठ से संयुत तथा भिक्षासे जीविका करनेवाला और इन्द्रियजित होताहै और नित्यसत्यरूपी व्रत में संयुत और अपने धर्ममें हर्षवान् होताहै ॥४२॥ और मराहुआ वह पुरुष कामनाओं से बढेहुये व समस्तसुखों को अवलम्बन करनेवाले दूसरे सूर्यकी नाईं विमान से शोभित होता

स्पृहणीयतमःपुंसां सर्ववर्णोत्तमोधनी ॥ स्वर्गाच्च्युतःप्रजायेत कुलेमहतिरूपवान् ॥४०॥ धर्मज्ञोरुद्रभक्तश्च सर्वविद्या र्थपारगः ॥ तथैवब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेनच ॥ ४१ ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो भिक्षावृत्तिर्जितेन्द्रियः ॥ नित्यंसत्यव्रतेयु क्तः स्वधर्मेचप्रमोदवान् ॥ ४२ ॥ मृतःकामसमृद्धेन सर्वभोगावलम्बिना ॥ सूर्येणेवद्वितीयेन विमानेनविराजितः ॥४३॥ गुह्यकानामरुद्रस्य गणाःपरमसम्मताः ॥ अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः ॥ ४४ ॥ तेषांचसमतांयाति तुल्यैश्व र्यसमन्वितः ॥ देवदानवमर्त्येषु सचपूज्यतमोभवेत् ॥ ४५ ॥ वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानिच ॥ एवमैश्वर्यसंयु क्तोरुद्रलोकेमहीयते ॥ ४६ ॥ उषित्वासौविभूत्यावै यदावैच्यवतेनरः ॥ रुद्रलोकाच्च्युतोभूमौ वसतेनात्रसंशयः ॥ ४७ ॥ महाकालवनेक्षेत्रे ब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः ॥ महेश्वरपरोनित्यंवसेद्वाम्रियतेथवा ॥ ४८ ॥ मृतोसौयातिदिव्येवै विमानेसू

है ॥ ४३ ॥ और बहुतही मानेहुये तथा अमित बल व ऐश्वर्यवाले और देवताओं तथा दानवों से पूजित जो गुह्यकनामक शिवजीके गणहैं ॥४४॥ उनके तुल्य ऐश्वर्यों से संयुत पुरुष उनकी समता को प्राप्तहोता है और देवता, दानव व मनुष्यों के बीचमें वह अत्यन्त पूजनीय होताहै ॥ ४५ ॥ व करोड़ों हज़ारों वर्षोंतक और करोड़ों सै वर्षोंतक इसीभांति ऐश्वर्य से संयुक्त पुरुष शिवलोक में पूजित होताहै ॥ ४६ ॥ और वहां बसकर यह पुरुष जब ऐश्वर्य से च्युत (पृथक्) होताहै तब शिवलोक से गिराहुआ वह भूमिमें बसता है इसमें सन्देह नहीं है ॥४७॥ और ब्रह्मचर्य के आश्रम में स्थित शिवमें तत्पर वह पुरुष महाकालवन नामक क्षेत्रमें बसताहै या मरता

है ॥ ४८ ॥ और मराहुआ यह पुरुष सूर्यके समान तेजवाले दिव्य विमान पै प्राप्तहोताहै और वह पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश से चन्द्रमा की नाईं प्रियदर्शनोंवाला होताहै ॥ ४९ ॥ और शिवलोक में प्राप्तहोकर वह गुह्यकों के साथ आनन्द करता है और सब संसारका स्वामी वह बड़े ऐश्वर्यको भोग करताहै ॥ ५० ॥ और हज़ारों युगोंतक भोगकर शिवलोक में पूजित होता है और फिर क्रमसे उस शिवलोक से भ्रष्टहुआ पुरुष ॥ ५१ ॥ नित्यही प्रसन्न होताहुआ वहां व्याधिरहित लोकको भोग कर ब्राह्मणों के बड़ेभारी उत्तमवंशमें पैदाहोता है ॥ ५२ ॥ और सब मनुष्यों के बीचमें रूपवान् होकर बसता है और स्त्रियोंके अत्यन्तही चाहनेयोग्य व महासुखों

यंवर्चसि ॥ पूर्णचन्द्रप्रकाशेन शशिवत्प्रियदर्शनः ॥ ४९ ॥ रुद्रलोकंसमासाद्य गुह्यकैस्सहमोदते ॥ ऐश्वर्यंचमहद्भुङ्क्ते सर्वस्यजगतःप्रभुः ॥ ५० ॥ भुक्त्वायुगसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते ॥ प्रच्युतस्तुपुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्क्रमेणतु ॥५१॥ नित्यंप्रमुदितस्तत्र भुक्त्वालोकमनामयम् ॥ द्विजानामुत्तमेचैव कुलेमहतिजायते ॥ ५२ ॥ मानुषेषुचसर्वेषु वसेद्भूत्वासुरूपवान् ॥ स्पृहणीयवपुःस्त्रीणां महाभोगपतिर्भवेत् ॥ ५३ ॥ वानप्रस्थसमाचारो वनौषधिनिषेवकः ॥ शीर्णपत्रसमाहारः फलपुष्पाम्बुभोजनः ॥ ५४ ॥ कणाशेनाश्मकुट्टेन दन्तोलूखलकेनच ॥ येनकेनाप्युपायेन जीर्णवल्कलवस्त्रतः ॥ ५५ ॥ जटीत्रिषवणस्नायी मुक्तकेशश्चदण्डवान् ॥ जलशायीपञ्चतपा वर्षास्वभ्रशयीतथा ॥ ५६ ॥ कीटकण्टकपाषाणभूम्यान्तुशयनंतथा ॥ स्थानवीरासनरतः संविभागीदृढव्रतः ॥ ५७ ॥ अरण्यौषधिभोक्ताच सर्वभूता

का स्वामी होताहै ॥ ५३ ॥ और वानप्रस्थ आश्रम के आचरणवाला पुरुष वनकी ओषधियों को सेवन करनेवाला व गिरेहुये पत्तोंका आहार करनेवाला तथा फल, फूल व जलको भोजन करताहै ॥ ५४ ॥ और कणभोजन व पत्थर में कूटने से और दन्तरूपी ओखली से व जिस किसी उपाय से भी प्राचीन बकलों के वसनसे युक्तहोकर ॥ ५५ ॥ जटावान् व त्रिकाल स्नान करनेवाला तथा बालोंको छोड़ेहुये और दण्ड धारण किये जलमें शयन करनेवाला व पञ्चाग्नि तापनेवाला और वर्षाऋतुमें आकाश में शयन करनेवाला होवै ॥ ५६ ॥ और कीट, कंटक, पत्थर व भूमिमें शयनकरै और स्थानमें वीरासनमें तत्पर होवै और भलीभांति विभाग करने

वाला व दृढ़ नियमोंवाला होवै ॥५७॥ और वनकी ओषधियों को भोजन करनेवाला व समस्त प्राणियोंको अभय देनेवाला व नित्यही धर्ममें तत्पर,मौनी,क्रोधको जीते हुये व इन्द्रियजित् ॥ ५८ ॥ शिवभक्त महाकालवन में बसनेवाला मुनिहोवै युवा सूर्यनारायण के समान प्रकाशवान् व वेदिकाओं के स्तम्भों से शोभित ॥ ५९ ॥ और इच्छा के अनुकूल चलनेवाले विमान के द्वारा शिवभक्त जाता है और वह आकाशमें दूसरे चन्द्रमाकी नाईं शोभित होता है ॥ ६० ॥ और गाने बजाने के शब्द समेत अप्सरासमूहों से घिराहुआ पुरुष कुछ अधिक करोड़ सौ वर्षोंतक शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६१ ॥ और रुद्रलोक से भ्रष्टभी वह पुरुष विष्णुलोक में पूजा

भयप्रदः ॥ नित्यन्धर्मपरोमौनी जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ रुद्रभक्तःक्षेत्रवासी महाकालवनेमुनिः ॥ तरुणार्कप्रकाशेन वेदिकास्तम्भशोभिना ॥ ५९ ॥ रुद्रभक्तोविमानेन यातिकामप्रचारिणा ॥ विराजमानोनभसि द्वितीयइवचन्द्रमाः ॥ ६० ॥ गीतवादित्रशब्देन संवृतोप्सरसाङ्गणैः ॥ वर्षकोटिशतंसाग्रं रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६१ ॥ रुद्रलोकाच्च्युतश्चापि विष्णुलोकेमहीयते ॥ विष्णुलोकात्परिभ्रष्टो ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ ६२ ॥ तस्मादपिच्युतःस्थानाद्द्वीपेषुसहिजायते ॥ स्वर्गेषुचतथान्येषु भोगान्भुङ्क्तेयथेच्छया ॥६३॥ भुक्त्वैश्वर्यंनरस्तेषु मर्त्योमर्त्येषुजायते ॥ राजावाराजतुल्योवा जायतेधनवान्सुखी ॥ ६४ ॥ सुरूपःसुभगःकान्तः कीर्तिमान्रुद्रभावितः ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रावाक्षेत्रवासिनः ॥ ६५ ॥ स्वधर्मनिरताव्यास स्ववृत्त्याचारजीविनः ॥ सर्वात्मनारुद्रभक्ता भूतानुग्रहकारिणः ॥ ६६ ॥ महा

जाताहै व विष्णुलोकसे च्युतहोकर वह पुरुष ब्रह्मलोकको जाताहै ॥६२॥ और उस स्थान से भी भ्रष्टहुआ वह पुरुष द्वीपोंमें उत्पन्न होताहै व स्वर्गोंमें तथा अन्य स्थानों में इच्छा के अनुकूल सुखोंको भोगताहै ॥ ६३ ॥ और पुरुष उनमें ऐश्वर्यको भोगकर मनुष्यलोकों में मनुष्य होताहै व राजा या राजाके समान धनवान् व सुखी होता है ॥ ६४ ॥ और सुन्दर रूपवान् व उत्तम ऐश्वर्यवान,मनोहर, यशस्वी तथा शिवजी से शुद्धचित्तवाला होताहै क्षेत्रमें बसनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी ! अपने धर्ममें परायण व अपनी जीविका व आचार से जीनेवाले तथा सर्वात्मासे शिवभक्त व प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले ॥६६॥ जो मुक्तिकी इच्छावाले महाकालवन

नामक क्षेत्रमें बसते हैं मरेहुये वे पुरुष अप्सरासमूहों से संयुत तथा इच्छा के अनुकूल जानेवाले व इच्छा के अनुसार रूपवाले उत्तम विमानों के द्वारा शिवभवन को प्राप्तहोते हैं अथवा पायेहुये ज्ञानरूपी अग्निमें जो शरीरको हवन करता है ॥६७।६८॥ रुद्राध्याय पढ़नेवाला व महाबलवान् वह शिवभवनमें बसताहै और रुद्र-लोकसे उनका नाश होनेपर गुह्यकों समेत पिशाच ॥ ६९ ॥ सब लोकोंसे उत्तम व मनोहर लोक में प्रिय प्राप्तिका साधन करनेवाला होताहै और महाकालवन में जो मनुष्य अनशनव्रत में प्राणोंको छोड़ते हैं ॥ ७० ॥ हे व्यासजी ! उन महात्माओंको भी अविनाशी शिवलोक होताहै और वे सांख्ययोगवाले पुरुष सब दुःखोंसे

कालवनंक्षेत्रं येवसन्तिमुमुक्षवः ॥ मृतास्तेरुद्रभवनं विमानैर्यान्तिशोभनैः ॥ ६७ ॥ अप्सरोगणसंयुक्तैः कामगैःकामरूपिभिः ॥ अथवाप्तसंविदग्नौ शरीरंविजुहोतियः ॥६८॥ रुद्राध्यायीमहासत्त्वः सरुद्रभवनेवसेत् ॥ रुद्रलोकात्क्षयेतेषां पिशाचोगुह्यकैस्सह ॥ ६९ ॥ सर्वलोकोत्तमेरम्ये भवतीष्टाप्तिसाधकः ॥ येत्यजन्तिमहाकाले प्राणाननशनेनराः ॥ ७० ॥ तेषामप्यक्षयोव्यास रुद्रलोकोमहात्मनाम् ॥ साङ्ख्यास्तिष्ठन्तितेरुद्रं सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ सर्वामरयुतन्देवं नन्दीदेवगणैर्युतम् ॥ अनाशकमृताःशूद्रा महाकालवनेनराः ॥ ७२ ॥ सिंहयुक्तैस्तुतेयान्ति विमानैरर्कसन्निभैः ॥ नानावर्णसुवर्णैश्च पुष्पगन्धादिवासितैः ॥ ७३ ॥ अनौपम्यगुणैरम्यैरप्सरोगीतवाद्यकैः ॥ रुद्रलोकेनरानार्यः सर्वेप्यनशनेमृताः ॥ ७४ ॥ तत्रोषित्वाचिरङ्कालं भोगान्भुक्त्वायथेप्सितान् ॥ धनीविप्रकुलेभोगी जायतेमर्त्यमागतः ॥ ७५ ॥ करीषंसाधयेद्यस्तु महाकालवनेनरः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ ७६ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्या

रहित होकर शिवजी के समीप टिकते हैं ॥ ७१ ॥ जो शिवदेव कि समस्त देवताओं से संयुत व नन्दी तथा देवगणों से युक्तहैं व महाकाल वन में बिन भोजन किये मरेहुये शूद्र मनुष्य ॥ ७२ ॥ वे सिंहसंयुत तथा सूर्यनारायणके समान व अनेक रंगके उत्तम रंगोंसे व पुष्पकी सुगन्धादिकोंसे सुगन्धित विमानोंके द्वारा जाते हैं ॥ ७३ ॥ और अनशनव्रत में मरेहुये सबभी स्त्री पुरुष अनूपगुणवाले और मनोहर अप्सराओं के गीत व बाजाओं समेत शिवलोकमें बसते हैं ॥ ७४ ॥ और वहां बहुत समयतक बसकर व चाहेहुये सुखोंको भोगकर मृत्युलोक में आयाहुआ पुरुष विप्रवंशमें धनी व सुखी उत्पन्न होताहै ॥ ७५ ॥ और जो मनुष्य महाकालवनमें करीष

(सूखे गोमय) को साधन करता है समस्त रोगों से छूटाहुआ वह शिवलोक को जाताहै ॥ ७६ ॥ और तबतक शिवलोकमें बसता है जबतक कल्पका अन्तहोताहै और वहां महासुखोंको भोगकर यहां उत्पन्न होकर मनुष्य सब पृथ्वीका राजा होताहै व रूपवान् और उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ७७।७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहाकालवननिवासविधिवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। कलिनाशन तीरथ यथा भयो अतिहि विख्यात। सो अष्टम अध्याय में वर्णित चरित सुहात ॥ व्यासजी बोले कि आचार मुख्यधर्म है और अपने धर्ममें

वत्कल्पक्षयोभवेत् ॥ तत्रभुक्त्वामहाभोगानिहजातोमहीपतिः ॥ ७७ ॥ पृथिव्यास्सकलायाश्च रूपवान्सुभगोनरः॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकालवननिवासविधिवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❋ ॥

व्यासउवाच ॥ आचारःप्रथमोधर्मस्सर्वधर्मपरायणः ॥ स्वधर्मेनिरतश्चैववजितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ रुद्रलोकेव्रजेदेव नात्रचिन्तामतेर्मम ॥ असंशयञ्चगच्छन्ति लोकानन्याञ्छशिप्रभैः ॥ २ ॥ विनापिक्षेत्रवासेन तथैवनियमेन च ॥ स्त्रियोम्लेच्छाश्चशूद्राश्च पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ३ ॥ मूकाजडान्धवधिरास्तपोनियमवर्जिताः ॥ एतेषांकागतिर्विप्र महाकालवनेमृताः ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ स्त्रियोम्लेच्छाश्चशूद्राश्च पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ कालेनैवमृताव्यास रुद्रलोकंव्रजन्तिते ॥ ५ ॥ शरीरैर्दिव्यरूपैश्च सर्वभोगसमन्विताः ॥ ६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ अस्मिन्महाकालवने

तत्पर तथा क्रोधको जीते व इन्द्रियों को जीतेहुये ॥ १ ॥ पुरुष शिवलोक को जाताही है इस विषय मे मेरी बुद्धिको चिन्ता नहीं है, क्योंकि क्षेत्रवास के विना वैसेही नियम से निरसन्देह पुरुष चन्द्रमाके समान विमानों के द्वारा अन्यलोकोंको जातेहैं और स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी व मृग ॥ २ । ३ ॥ और गूंगे, जड, अन्ध व बधिर जोकि तपस्या व नियम से रहित होकर महाकालवन में मरेहैं हे विप्रजी ! इनकी क्या दशा होती है ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी, मृग कालही से मरेहुये वे सब सुखोंसे संयुत होकर दिव्यरूपवाले शरीरों से शिवलोकको प्राप्तहोते हैं ॥ ५।६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी !

इस महाकालवन में शिवजी सदैव बसते हैं एक दिन लीला करने के लिये उन पार्वती व प्रेतों से संयुत श्मशान में बसतेहुये उन शिवजी ने पार्वती से हे कालि! यहां आइये इत्यादिक वचनों को कहा ॥७।८॥ इसप्रकार जब शिवजी ने पार्वतीको काली ऐसाकहा तब क्रोधित होतीहुई उन पार्वतीने शिवजी से कटुवचन कहा ॥ ९ ॥ इस प्रकार जहांपर शिव व पार्वती का कलहहुआ वहांपर कलकलेश्वरनामक शिवजी उत्पन्न हुयेहैं ॥१०॥ और उस समय कलहनाशन नामक कुण्ड आगे कियागया है हे व्यासजी! उसमें स्नान करनेपर कलहकारिणी स्त्री नहीं होती है ॥११॥ उस तीर्थमें नहाकर व महादेवजीको पूजकर तथा एकरात्रि उपासकर मनुष्य सौ पुश्तियोंको तारता

शिवोवसतिसर्वदा ॥ एकस्मिन्दिवसेदेवो लीलाङ्कर्तुंशिवाम्प्रति ॥ ७ ॥ ऊचेकालिसमागच्छेत्यादीनिवचनानिसः ॥ तयासहवसन्व्यास श्मशानेप्रेतसंकुले ॥ ८ ॥ इत्थमुक्तातुशर्वेण कालीतिपार्वतीयदा ॥ तदासाकुपितादेवी कटूचेश ङ्करम्प्रति ॥ ९ ॥ एवन्तुकलहोजातः शिवगौर्योर्हियत्रतु ॥ देवस्तत्रसमुद्भूतो नाम्नाकलकलेश्वरः ॥ १० ॥ कृतमग्रेत दाकुण्डं नाम्नाकलहनाशनम् ॥ स्नानेतत्रकृतेव्यास नस्यात्कलहिनीप्रिया ॥ ११ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा पूज यित्वामहेश्वरम् ॥ उपोष्यरजनीमेकां कुलानांतारयेच्छतम् ॥ १२ ॥ तत्रयच्छतियोदानं त्रुटिमात्रञ्चचन्दनम् ॥ आत्मनातारितास्तेन दशपूर्वेदशापरे ॥ १३ ॥ भूमिदानंचयस्तत्र प्रदास्यतिनरोमुने ॥ अपिगोचर्ममात्रेण सर्वभूम्य धिपोभवेत् ॥ १४ ॥ गामेकांरक्तकामेवभूमेरप्येकमङ्गुलम् ॥ यःप्रदास्यतिभक्त्याहि सवैराजाभविष्यति ॥ १५ ॥ धे नुमश्वांस्तिलान्वस्त्रं भाजनंताम्रदोहनम् ॥ उपानहश्चछत्रञ्च तथाचैवेष्टपादुके ॥ १६ ॥ येप्रदास्यन्तिविप्रेभ्यस्तेषांलो

है ॥१२॥ व जो पुरुष वहांपर लवमात्र चन्दन दान देताहै उससे अपना समेत दश पहलेवाले व दश पीछेवाले पितर तार दियेजाते हैं ॥१३॥ हे मुने! जो पुरुष वहांपर भूमि दान देवैगा गऊ के चर्ममात्र भूमिसे भी वह समस्त पृथ्वीका स्वामी होताहै ॥ १४॥ और एक अरुणगऊ व भूमिके एक अंगुल को भी जो भक्तिसे देवैगा वह नि- श्चयकर राजा होगा ॥१५॥ और गऊ घोड़े, तिल, वसन व तांबे का दोहनपात्र, पनहीं, छत्र व प्रिय खड़ाउवोंको ॥१६॥ जो ब्राह्मणों के लिये देवैंगे उनके लोक सदैव

अविनाशी होवैंगे और उस कुण्डके दाहिने बगल में पृष्ठमाता देवता हैं ॥ १७ ॥ और वे देवी सब लोकों के पातकों को नाश करनेवाली हैं और वहां मणिकर्णिकनामक उत्तम तीर्थ जाननेयोग्य है ॥ १८ ॥ उस में नहाकर जो पुरुष पृष्ठमाता ऐसे नामवाली भगवती का दर्शन करताहै वह समस्त पातकों से छूटकर चाही हुई सिद्धिको पाताहै ॥ १९ ॥ और उसका दर्शनकर मार्गमें यात्राकरै तो उसको चोरोंसे डर नहीं होताहै और राक्षसों व भूतोंका डर नहीं होताहै ॥ २० ॥ और अपने देशमें व परदेश में तथा पर्वतों व जङ्गलों में और समुद्रमें उसको डर नहीं होताहै और न दुष्टभावना होती है ॥ २१ ॥ और सब ग्रहपीड़ाओं में व राजभयादिकों में जो ब्राह्मण

काःसदाक्षयाः ॥ तस्यदक्षिणपार्श्वेच पृष्ठमाताचदेवता ॥ १७ ॥ साचैवसर्वलोकानां देवीदुरितहारिणी ॥ तत्रतीर्थन्तु विज्ञेयं मणिकर्णिकमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्मिन्स्नात्वातुयःपश्येत्पृष्ठमातेतिसंज्ञिताम् ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यः सिद्धिमाप्नोतिवाञ्छिताम् ॥ १९ ॥ तस्यास्तुदर्शनंकृत्वा मार्गेगमनमाचरेत् ॥ नभयंतस्यचोरेभ्यो रक्षोभूतभयंतथा ॥ २० ॥ स्वदेशे परदेशेवा पर्वतेष्वटवीषुच ॥ नसमुद्रेभयंतस्य तथावैदुष्टभावनाम् ॥ २१ ॥ ग्रहपीडासुसर्वासु तथाराजभयादिषु ॥ बस्तं वायदिवामेषं महिषंवापिघातयेत् ॥ २२ ॥ देवीमुद्दिश्ययोविप्रः सोभीष्टंफलमश्नुते ॥ आश्विनस्यसिताष्टम्यां पूजनं चार्द्धरात्रिके ॥ २३ ॥ यःस्नातिपुरतोदेव्याः ससिद्धिंलभतेपराम् ॥ मृतपुत्रातुयानारी कुण्डेस्नात्वासभर्तृका ॥ २४ ॥ स्नातिवैयदिकुम्भेन अग्रेदेव्याविधानतः ॥ स्नात्वानान्यमुखंपश्येत् कुम्भस्नानंविनामुने ॥ २५ ॥ तस्यास्सञ्जायतेपुत्रो यथादेवःषडाननः ॥ पृष्ठमातुःपुरापुण्यं तीर्थमप्सरसांशुभम् ॥ २६ ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नस्तत्रस्नातोभवेन्नरः॥

देवीको उद्देशकर छाग या मेष (भेंडा) अथवा भैंसेका बलिप्रदान करताहै वह चाहेहुये फलको भोग करता है और कुँवारके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें जो मनुष्य आधीरात को उन भगवती का पूजन करता है ॥ २२।२३ ॥ और जो देवीजी के आगे स्नान करता है वह उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोता है और जिसके पुत्र मरजाते हैं पतिसमेत वह कुण्ड मे नहाकर ॥ २४ ॥ देवीके आगे यदि कुम्भसे विधिपूर्वक स्नान करती है और हे मुने ! कुम्भस्नान के विना अन्यके मुखको नहीं देखती है ॥ २५ ॥ तो जैसे छह मुखोंवाले स्वामिकार्त्तिकेयजी हैं वैसाही पुत्र उसके पैदाहोता है और पृष्ठमाता के आगे अप्सराओं का उत्तमतीर्थ है ॥ २६ ॥ उसमें नहायाहुआ

पुरुष रूप व सौभाग्यसे संयुत होताहै हेव्यासजी ! पुरातन समय इसतीर्थके प्रभाव से उर्वशी ने ॥ २७ ॥ पुरूरवाको पति पायाहै जो ये कि संसार में राजा थे ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थमाहात्म्येकलहनाशनादितीर्थमहिमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

दो० । भयो अप्सराकुण्ड कर यथा अमित परभाव । सोइ नवम अध्यायमें चरित अहै सुखचाव ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! वहांपर अप्सराओं का तीर्थ कैसे उत्पन्नहुआहै जिसप्रकार जिसकारणसे व जिससमयमें प्रतिष्ठित हुआहो ॥ १ ॥ उसको वैसेही विस्तार समेत व रहस्यसमेत वर्णन करिये और जो ये पुरूरवा थे उन्होंने

उर्वश्यावैपुराव्यास तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥२७॥ भर्त्तापुरूरवालब्धो लोकेयोसौमहीपतिः ॥२८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेतीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितीर्थमहिमवर्णनन्नामाष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ कथमप्सरसांतीर्थं तत्रजातंमहामुने ॥ कारणेनयथायेन यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ तथातन्मे सविस्तारं सरहस्यंप्रकीर्तय ॥ कथंपुरूरवाश्चासौ भार्य्यातेनवराप्सराः ॥ २ ॥ उर्वशीनामकासातु केनजातावराङ्गना ॥ सर्वमेतद्यथावृत्तं ब्रूहिकौतूहलंहिमे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ नरनारायणौपूर्वं यत्रवैतेपतुस्तपः ॥ बदरिकाश्रमस्थौ तौ तेनेन्द्रोभयमागतः ॥ ४ ॥ सर्वाश्चाप्सरसोहृद्या रूपयौवनदर्पिताः ॥ आदिष्टायामघवता विघ्नार्थंचसमागताः ॥ ५ ॥ तौदृष्ट्वाप्सरसस्तत्र रमन्त्योमदविह्वलाः ॥ विघ्नार्थंरहआयातास्तदादेवौप्रजल्पतुः ॥ ६ ॥ अस्माकन्नस्त्रियःसन्ति तेनवै विघ्नकारणम् ॥ एवंसंजल्प्यचनरो नारायणमुवाचह ॥ ७ ॥ करिष्याम्यहमेकान्तामासांवैरूपतोधिकाम् ॥ मञ्जर्यास

कैसे उत्तम अप्सराको स्त्रीपाया है ॥ २ ॥ और वह उर्वशीनामक उत्तमस्त्री कौनहै और किससे पैदाहुई है इस यथार्थ वृत्तान्तको कहिये मेरे आश्चर्य है ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातनसमय जहांपर बदरिकाश्रममें स्थित उन नरनारायण ने तप कियाहै उस से इन्द्रजी भयको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ इन्द्रने जिनको आज्ञा दिया वे रूप व यौवन से गर्वित सब अप्सरायें विघ्नके लिये वहां आईं ॥ ५ ॥ मदसे विह्वल तथा क्रीडा करतीहुई व विघ्नके लिये वहां एकान्त में आई अप्सराओं को देखकर उस समय उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ कि हमलोगों के स्त्रियां नहीं है उससे विघ्नका कारणहै इस प्रकार कहकर नरनारायणजीसे बोले ॥ ७ ॥ कि इनके मध्यमें रूपमें अधिक

उस स्त्रीको करूंगा यह कहकर जङ्घों से सहकार (अतिसुगन्धित आम) की मञ्जरीसमेत स्त्रीको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ संसार में रूपसे असमान याने सबसे उत्तम रूपवाली व सब गहनों से शोभित और अग्निके समान प्रकाशवती तथा बढ़ीहुई उस स्त्रीको देखकर उत्तम स्त्रियोंने ॥ ९ ॥ जाकर इन्द्रजी से कहा कि हमलोग उनको लुभाने के लिये न समर्थ हुई उनका वचन सुनकर मस्तक पै अञ्जलीको धरेहुये इन्द्रजी प्रणामसे झुकेहुये होकर जाकर नरनारायण देवताओं से बोले कि मैं इस स्त्रीका याचकहूं यह प्रसन्नता कीजावै ॥१०।११॥ तदनन्तर परमेश्वरदेवजीने उस उर्वशीको इन्द्रकेलिये दिया व कहा कि हमारे वचनकी सामर्थ्यसे तुम इस उर्वशी

हकारस्य स्त्रीमूरुभ्यांचकारह ॥८॥ रूपेणाप्रतिमांलोके सर्वाभरणभूषिताम् ॥ उच्छ्रितांप्रमदांदृष्ट्वा ज्वलनाभांवराङ्गनाम् ॥९॥ गत्वाशशंसुस्ताःशक्रं नतौलोभयितुंक्षमाः ॥ शक्रस्तासांवचःश्रुत्वा गत्वादेवावुवाचह ॥ १० ॥ प्रणामावनतोभूत्वा शिरस्यञ्जलिमादधन् ॥ अहमर्थीस्त्रियश्चास्याःप्रसादःक्रियतामिति ॥११ ॥ ततस्तान्ददतुर्देवाविन्द्रायपरमेश्वरौ ॥ अस्मद्वचनसामर्थ्याद् गृहाणेमांत्वमुर्वशीम्॥१२ ॥ ऊरुभ्यांजनितायस्मान्नरेणेयंवराङ्गना ॥ मञ्जर्यासहकारस्य तेनेयमुर्वशीमता ॥ १३ ॥ पुरन्दरोगृहीत्वातामुर्वशींपरमाङ्गनाम् ॥ शिक्षाञ्चक्रियतांचित्रपथान्नृत्येविचक्षणा ॥ १४ ॥ क्रियतामचिरादेषा यत्नमास्थायशोभनम् ॥ एवमुक्तेतुचित्रेण कृतातेनविचक्षणा ॥ १५ ॥ बहुप्रवीणासाजाता नृत्येगीतेचकोविदा ॥ एवंसान्यवसत्तत्र पुरासद्मनिसुन्दरी ॥ १६ ॥ गतेबहुतिथेकाले तत्रागात्सनरेश्वरः ॥ इलस्यपुत्रोधर्मात्मा नाम्नाचैवपुरूरवाः ॥ १७ ॥ इन्द्रस्यार्द्धासनगतो नृत्यंपश्यतितत्रह ॥ नृत्यन्तींवासवस्याग्रे उर्वशीं

को ग्रहणकरो ॥ १२ ॥ जिसलिये नरसे यह उत्तमस्त्री सहकारकी मञ्जरीसमेत ऊरुवों से पैदाहुई है उससे यह उर्वशी जानीगई ॥ १३ ॥ इन्द्रने उस उत्तमस्त्री उर्वशीको लेकर चित्रगन्धर्वसे कहा कि उस प्रकार शिक्षा कीजावै कि जिसभांति नृत्यमें चतुर होवै ॥१४ ॥ उत्तम यत्नमें स्थित होकर यह शीघ्रही वैसी कीजावै ऐसा कहनेपर उस चित्रसे चतुर कीगई ॥ १५ ॥ और नृत्य व गानमें चतुर वह बहुतही प्रवीण हुई इसप्रकार पुरातन समय वह सुन्दरी वहां मन्दिरमें बसती भई ॥१६ ॥ और बहुत दिनों वाले समयके बीतनेपर वहांपर इनके पुत्र पुरूरवा नामक धर्मात्मा वे राजा आये ॥ १७॥ और इन्द्रके आधे आसनपर बैठेहुये वे नृत्यको देखतेथे व इन्द्रके आगे नाचती

हुई उर्वशीको देखकर कामी ॥ १८ ॥ राजाने उससे हरेहुये चित्तवाले होकर किसी वस्तुको न प्राप्तहुये अर्थात् चित्तके हरजाने से उन्होंने कुछ न जाना और चित्तमें धैर्य धरकर कुछ देरतक बैठेरहे ॥ १९ ॥ और उस समय उनके दर्शन से हरेहुये चित्तवाली उर्वशी उस स्थानसे निकलकर कामसे विकल होतीहुई अत्यन्त विह्वल हुई ॥ २० ॥ और उन्नत सभामण्डल से वह भूमिमें गिरपडी इसके अनन्तर अपना को जानकर वह पृथ्वीमण्डलसे उठी ॥ २१ ॥ और अनाथकी नाईं बहुतही पीड़ित श्रेष्ठ राजाने उसको देखा व उसीको मनसे स्मरण करतेहुये पुरूरवा पृथ्वीपै गये ॥२२॥ व श्रेष्ठ राजा पुरूरवाको स्मरण करतीहुई वहभी घरको चलीगई और चित्रांगद के

वीक्ष्यकामुकः ॥ १८ ॥ हतचित्तस्तयाराजा नकिंचित्प्रत्यपद्यत ॥ धैर्य्यंचित्तेसमावेश्य मुहूर्तंपर्यवस्थितः ॥ १९ ॥ उर्वशीचतदातस्य दर्शनाहृतचेतसा ॥ तत्प्रदेशाद्विनिष्क्रम्यकामार्ताचातिविह्वला ॥ २० ॥ भूमौसापतिताबाला उच्छ्रिताद्रङ्गमण्डलात् ॥ अथात्मानञ्चसंवेद्य उत्थिताभूमिमण्डलात् ॥ २१ ॥ दृष्टासाराजसिंहेन मन्मथेनप्रपीडिता ॥ गतःपुरूरवाभूमिं तामेवमनसास्मरन् ॥ २२ ॥ स्मरन्तीराजशार्दूलं गतासाप्युर्वशीगृहम् ॥ चित्राङ्गदगृहेगत्वा दूतंसाथचकारह ॥ २३ ॥ चित्राङ्गदेनसानीता रात्रौयत्रपुरूरवाः ॥ उर्वश्यारहितःस्वर्गः शून्योप्यासीद्दिवौकसाम् ॥ २४ ॥ रात्रावेवचसातेन आनीतात्रिदिवंपुनः ॥ तयाविरहितस्सोपिशून्यचित्तःपरिभ्रमन् ॥ २५ ॥ उन्मत्ततांगतोऽयास षष्टिवर्षाणिपार्थिवः ॥ परिभ्रमन्सतीर्थानि महाकालवनङ्गतः ॥ २६ ॥ गन्धर्वेणोर्वशीस्वर्गे नीतासापरमाप्सराः ॥ नापिशेतेनचाश्नाति हेराजन्निति जल्पति ॥ २७ ॥ तावदप्सरसस्सर्वास्ताः प्राप्तायत्रचोर्वशी ॥ रम्भाचमेनकाचैव प्रम्लोचा

घरमें जाकर इसके अनन्तर उसने उसको दूत किया ॥ २३ ॥ और चित्रांगद उसको वहां लेगया जहां कि पुरूरवा थे व उर्वशीसे रहित देवताओंका स्वर्गभी शून्य हो गया ॥ २४ ॥ और रात्रिही में फिर वह चित्रांगद उसको स्वर्गको लेआया व उससे रहित घूमतेहुये शून्यचित्तवाले वे पुरूरवा भी ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! उन्मत्तताको प्राप्तहुये और साठ हजार वर्षतक तीर्थों में घूमतेहुये वे महाकालवनको गये ॥ २६ ॥ और गंधर्व से स्वर्ग में लाईहुई वह उत्तम अप्सरा उर्वशी भी न सोतीथी और न

भोजन करतीथी किन्तु हे राजन् ! ऐसा बकतीथी ॥ २७ ॥ तबतक वे सब अप्सरायें वहां प्राप्तहुईं जहां कि उर्वशी थी रंभा, मेनका, प्रम्लोचा व पुंजिकस्थली ॥ २८ ॥ व जलपूर्णा, अंशुकपूर्णा, वसन्ता व चन्द्रिका, सूर्यदत्ता, विशालाक्षी, चन्द्रा व चन्द्रप्रभा ॥ २९ ॥ साथही आकर उन्होंने उर्वशी से वचन कहा कि हे वरारोहे, सुलोचने ! मनुष्य के लिये क्यों रोतीहो ॥ ३० ॥ उनके उस वचन को सुनकर उर्वशी वचन बोली कि स्त्री पुरुषों के सङ्गसे जो सुख होताहै उसको नपुंसक नहीं जानता है ॥ ३१ ॥ इस उपमासे उसके लिये कियेहुये निश्चयवाली मैं जाननेयोग्यहूं उसके इस वचन को सुनकर सावधान होतीहुई वे सम्मतिकर ॥ ३२ ॥ और

पुञ्जिकस्थली ॥ २८ ॥ जलपूर्णांशुकापूर्णावसन्ताचन्द्रिकातथा ॥ सूर्यदत्ताविशालाक्षी चन्द्राचन्द्रप्रभातथा ॥२९॥ आगत्यतास्तुसहिता उर्वशींवाक्यमब्रुवन् ॥ किंरोदिषिवरारोहे मर्त्यहेतोःसुलोचने ॥ ३० ॥ तद्वाक्यमुर्वशीतासां श्रुत्वावचनमब्रवीत् ॥ सौख्यंषण्डोनजानाति सङ्गात्स्त्रीपुंसयोर्हियत् ॥ ३१ ॥ अनयोपमयाज्ञेया तस्यार्थेकृतनिश्चया ॥ श्रुत्वाचेतिवचस्तस्यास्तास्संमन्त्र्यसमाहिताः ॥ ३२ ॥ अज्ञातास्ताश्चदेवानां महाकालवनेगताः ॥ नृपञ्चददृशुस्तत्र वृक्षच्छायानिषेवितम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वागत्यनृपंसर्वा भृशंजातास्सुविह्वलाः ॥ दृष्ट्वातथाविधास्सर्वाः कामार्तास्सुरयोषितः ॥३४॥ मूढचित्ताःप्रहस्यैवमुर्वशीवाक्यमब्रवीत ॥ उर्वश्युवाच ॥ अयंसपुरुषव्याघ्रो विनायेनाहमीदृशी ॥३५॥ ऐलःपुरूरवानाम विख्यातोजगतीपतिः ॥ एवंब्रुवन्त्यांवैतस्यामुर्वश्यामप्सरोगणः ॥ ३६ ॥ मौनीभूतश्चिरंतस्थौ लज्जयानतकन्धरः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्रायाद्भगवांस्तत्रनारदः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वातथागतास्सर्वा उर्वश्यासहितंनृपम् ॥

देवताओंसे न जानीहुई वे महाकालवनमें गईं और वहांपर उन्हों ने वृक्षोंकी छाया से सेवित राजाको देखा ॥ ३३ ॥ और सब आकर राजाको देखकर बहुतही विह्वल होगईं वैसी कामसे विकल तथा मूढ़चित्तवाली व कामसे विकल सब देवस्त्रियोंको देखकर उर्वशी हँसकर ऐसा वचन बोली उर्वशी बोली कि यह वही श्रेष्ठ पुरुष है कि जिसके विना मैं ऐसीहूं ॥ ३४ । ३५ ॥ यह इलाका पुत्र पुरूरवा नामक राजा प्रसिद्धहै उस उर्वशीके इसप्रकार कहनेपर अप्सराओं के गण ॥ ३६ ॥ लज्जासे नीचे झुकेहुये कन्धोवाले व चुप होकर बहुत देरतक खड़ेरहे इसी अवसर में वहांपर भगवान् नारदजी आये ॥ ३७ ॥ व वैसेही आईहुई सब अप्सराओं को देखकर व

उर्वशी समेत राजाको देखकर तदनन्तर उन्होंने कहा कि वैसे मनोहर तथा उत्तम इन्द्रके स्थानको छोड़कर मौन होतीहुई तुम सब यहां किस लिये आईहो और शीघ्र ही वरदानको मांगिये वियोग न होवेगा ॥ ३८ । ३९ ॥ और नारदजीने इस तीर्थका माहात्म्य कहा कि इस तीर्थ में जो दुर्भगास्त्री या पुरुषभी स्नान करता है ॥ ४० ॥ वह भलीभांति सौभाग्यको प्राप्तहोता है व वैसेही सब उत्तम सुखों को पाताहै और जो यहांपर तिलोंसे व लोनसे अपने शरीर को तौलता है ॥ ४१ ॥ और पार्वतीदेवी को उद्देशकर वित्तशाठ्य से रहित पुरुष बहुत शर्करा से और गुड़ व शहद से अपने शरीर को तौलावै ॥ ४२ ॥ लोनसे स्वरूप से संयुत स्त्री होतीहै और तिलों से

सम्प्रेक्ष्यचततःप्राह किंयूयमिहनिःस्वनाः ॥३८॥ त्यक्त्वातथाविधंरम्यमिन्द्रस्यालयमुत्तमम् ॥ वरश्चव्रियतांशीघ्रं वियोगोनभविष्यति ॥ ३९ ॥ माहात्म्यञ्चास्यतीर्थस्य कथयामासनारदः ॥ अस्मिन्यादुर्भगातीर्थे स्नायात्स्त्रीपुरुषोपिवा ॥ ४० ॥ सौभाग्यंलभतेसम्यक् सर्वभोगांस्तथोत्तमान् ॥ आत्मानन्तोलयेद्यस्तु तिलैर्वालवणेनवा ॥ ४१ ॥ शर्कराभिश्चबह्वीभिर्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ गुडेनमधुनावापिदेवीमुद्दिश्यपार्वतीम् ॥ ४२ ॥ लवणेनस्वरूपाढ्या तिलैस्सर्वाङ्गशोभना ॥ द्रव्यवृद्धिःशर्करया गुडेनाङ्गेषुपूर्णता ॥ ४३ ॥ मधुनाचैवसौभाग्यं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ द्वादशैवतु युग्मानि देव्यादेवस्यभोजयेत् ॥ ४४ ॥ काञ्चींमुखरिणींदद्यात् ताटङ्कंमुकुराञ्जनम् ॥ चौमजांकञ्चुकींचैव वस्त्रेकौसुम्भकेतथा ॥ ४५ ॥ श्वेतानुलेपनंपुंसां स्त्रीणांदद्याच्चकुङ्कुमम् ॥ आषाढेश्रावणेवापि मासिभाद्रपदेतथा ॥ ४६ ॥ शुक्लाश्विनतृतीयायामुत्तमंव्रतमाचरेत् ॥ उत्तमाजायतेनारी यथादेवीतथैवच ॥ ४७ ॥ उमामाहेश्वरौकार्यौ सौवर्णौ

सब अङ्गोंमें सुन्दरी होती है और शर्करासे द्रव्यकी बढ़ती होतीहै व गुडसे अङ्गोंमें पूर्णता होतीहै ॥ ४३ ॥ और इस तीर्थके प्रभावसे शहद से सौभाग्य होताहै और देवी पार्वतीजी व शिवदेवजीकी प्रीतिके लिये बारहयुग्म याने चौबीस स्त्री पुरुषोंको भोजनकरावै ॥४४॥ और बजतीहुई क्षुद्रघण्टिका व भूमकोंको व दर्पण,अञ्जन तथा रेशमी वस्त्रसे उपजीहुई कञ्चुकी और कुसुम से रँगेहुये वस्त्रोंको देवै ॥ ४५ ॥ और पुरुषोंको श्वेतचन्दन व स्त्रियोंको कुंकुम देवै और आषाढ, श्रावणमें व भाद्रपद में ॥ ४६ ॥ और कुँवार मे शुक्लपक्षवाली तीजमें उत्तमव्रत करै तो जैसी पार्वतीदेवीजी हैं वैसी ही उत्तम स्त्री होती है ॥ ४७ ॥ और अपनी शक्तिसे सोनेके पार्वती महादेव बनवा ।

चाहिये और स्त्री से उन देवोंको तुलाके शिकहर पै विधिसे धरै ॥ ४८ ॥ और अनेकभांति के शाकों व फलोंको देना चाहिये और वहां दियाहुआ दान व हवन और जप सब कोटिगुना होताहै ॥ ४९ ॥ उस तीर्थ में इस प्रकार सावधान होतीहुई जो स्त्री करती है वह मरकर गन्धर्वों व अप्सराओं के लोकको जाती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ और इस तीर्थमें देवताओं व दानवों से पूजित दो लिंगहैं उनको देखकर स्त्री पुरुष उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोते हैं ॥ ५१ ॥ और वहां कार्त्तिकी में जागरणकर व चन्दन तथा पुष्पों से भलीभांति पूजकर मनुष्य विशेषकर शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ जैसे देवीके स्वरूप से कभी वियोग नहीं देखाजाता है वैसेही

चस्वशक्तितः ॥ धार्य्योनार्य्याहितौदेवौ तुलाशिक्येविधानतः ॥ ४८ ॥ फलानिचैवदेयानि शाकानिविविधानिच ॥ तत्रदत्तंहुतंजप्तं सर्वंकोटिगुणंभवेत् ॥ ४९ ॥ एवंयाकुरुतेतत्रतीर्थेनारीसमाहिता ॥ गन्धर्वाप्सरसांलोके मृतायातिनसंशयः ॥ ५० ॥ अत्रतीर्थेचद्वेलिङ्गे पूजितेदेवदानवैः ॥ दृष्ट्वातेपरमांसिद्धिं प्राप्नुतोदम्पतीतथा ॥ ५१ ॥ कार्त्तिक्यान्तु विशेषेण कृत्वातत्रप्रजागरम् ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ यथादेव्याःस्वरूपेण वियोगो नैवदृश्यते ॥ तथातयोर्वियोगश्च दृश्यतेनकदाचन ॥ ५३ ॥ एवंकृत्वापिताविप्र सर्वाश्चत्रिदिवंगताः ॥ उक्तमप्सरसां तीर्थं तीर्थान्तरमथोच्यते ॥ ५४ ॥ दक्षिणेपृष्ठदेव्यावै माहिषंकुण्डमुच्यते ॥ महिषोदानवःपूर्वं निहतोगणनायकैः ॥ ५५ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मातृस्सम्पूज्ययत्नतः ॥ प्रेतरक्षःपिशाचानां पीडयासविमुच्यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥

उन स्त्री पुरुषों का वियोग कभी नहीं देखपड़ताहै ॥ ५३ ॥ हे विप्रजी! ऐसाकर वे सभी अप्सरायें स्वर्गको चलीगईं यह अप्सराओंका तीर्थ कहागया इसके अनन्तर अन्यतीर्थ कहाजाता है ॥ ५४ ॥ पृष्ठदेवीके दक्षिण ओर माहिषकुण्ड कहाजाता है पुरातन समय जहां गणनायकों ने महिषासुरको माराहै ॥ ५५ ॥ उस तीर्थमें नहाकर वह मनुष्य यत्न से मातृगणों को भलीभांति पूजकर प्रेत, राक्षस व पिशाचोंकी पीड़ासे छूटजाता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰। महिषकुण्ड अरु रुद्रसर तीर्थ भये जिमि दोइ। यहि दशवें अध्यायमें चरित अहै सबसोइ ॥ व्यासजी बोले कि वह महिषकुण्ड किसप्रकार हुआहै और
मातृगणों का आवरण कैसे हुआहै व क्षेत्रमें शिवजी ने कैसे महिषासुर को माराहै ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि क्रीड़ा करतेहुये जगदीश महादेवजी ने अतिप्रका-
शमान व कान्तिसे जलतेहुये से ब्रह्मतेजोमय कपालके दिव्यखण्डको लेकर देवताओं को मोहित किया और योगात्मा शिवजी ने पलभर में योगलीलासे इस लोक
में ॥ २। ३ ॥ प्राप्तहोकर जहां अत्यन्त पवित्र क्षेत्र स्थित था वहां वहां देवताओं के स्वामी महाप्रभु शिवजी ने जलतीहुई प्रभावाले बड़े दिव्यकपाल को गणों के

व्यासउवाच ॥ कथंतन्माहिषंकुण्डं मातॄणामावृतिःकथम् ॥ रुद्रेणतुकथंक्षेत्रे माहिषोदानवोहतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ कापालंखण्डमादाय महादेवोप्यतिप्रभम् ॥ ब्रह्मतेजोमयंदिव्यं ज्वलन्तमिवचत्विषा ॥ २ ॥ क्रीडमानोजगन्नाथो मोहयामासवैसुरान् ॥ निमेषात्सइमंलोकं योगात्मायोगलीलया ॥ ३ ॥ प्राप्यपुण्यतमंक्षेत्रं यत्रातिष्ठन्महाप्रभुः ॥ तत्रतत्रमहादिव्यं कपालंदेवताधिपः ॥ ४ ॥ स्थापयामासदीप्तार्चिर्गणानामग्रतःप्रभुः॥ तत्स्थापितमथोदृष्ट्वागतास्सर्वेमहौजसः ॥ ५ ॥ विनदन्तोमहानादं नादयन्तोदिशोदश ॥ क्षुब्धार्णवाशनिप्रख्यं नभोयेनविदीर्यते ॥ ६ ॥ तेनशब्देनघोरेण दानवोदेवकण्टकः ॥ हालाहलइतिख्यातो देशंतमभिधावितः ॥ ७ ॥ अमृश्यमानःक्रोधातोदुरात्मादुर्जयस्सुरैः ॥ ब्रह्मदत्तवरश्चैव माहिषंवपुरास्थितः ॥ ८ ॥ दैत्यैःपरिवृतोघोरैः कोटिभिःप्रोद्यतायुधैः ॥ तमायान्तन्तुसक्रोधं महिषंदेवकण्टकम् ॥ ९ ॥ समावेक्ष्याहवैदेवो गणान्सर्वान्पिनाकधृक् ॥ मायावीगणपोदैत्यस्त्रैलोक्य

आगे स्थापित किया इसके अनन्तर थापेहुये उस कपाल को देखकर बड़ाशब्द करते व दशों दिशाओं को शब्दायमान करतेहुये बड़े पराक्रमवाले सब गण चले
गये क्षोभित समुद्र व वज्रके समान वह शब्द कि जिससे आकाश फटताथा ॥ ४। ५। ६ ॥ उस भयङ्करशब्दसे देवताओं को कण्टकरूप हालाहल ऐसा प्रसिद्ध दा-
नव उस देशके सामने दौड़ा ॥ ७ ॥ और क्रोध से विकल व दुष्टचित्तवाला तथा देवताओं से दुःखकरके जीतनेयोग्य व ब्रह्मासे दियेहुये वरदानवाला बिन विचारे
हुये वह दैत्य भैंसे के स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ ८ ॥ जोकि उठायेहुये अस्त्रोंवाले करोड़ों भयङ्कर दैत्यों से घिराथा क्रोधसमेत व देवताओं के कण्टकरूप आतेहुये उस

महिषासुर को ॥ ९ ॥ देखकर पिनाकधारी सदाशिवदेवजी सब गणोंसे बोले कि त्रिलोक का भी कण्टकरूप यह मायावी गणनायकदैत्य ॥१०॥ शीघ्रतासंयुत चला आताहै इसलिये कपालकी गति में आश्रित तुम सब गणनायक इसको मारो ॥ ११ ॥ तदनन्तर बड़े शब्दसे गर्जते और महाप्रकाशवान् तथा भ्रमते व उस आतेहुये महादैत्यको डरेहुये देवगणोंने ॥ १२ ॥ त्रिशूलसमूहों से व तलवारों तथा मुसलों से विदारण किया और बाणोंके समूहसे मोहितकर तदनन्तर उन्होंने पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥ उसके मरनेपर उससमय महादेवजी देवताओंसे बोले कि अतिमूर्ख के अहंकारको आश्चर्यहै और गर्व से वह नाशको प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर

स्यापिकण्टकः ॥ १० ॥ आयातित्वरितोयूयं तस्मादेनंविनिघ्नथ ॥ कपालस्यगतिंसर्वे आश्रितागणनायकाः ॥ ११ ॥ ततोदेवगणाभीतास्तमायान्तंमहासुरम् ॥ गर्जमानंमहानादं भ्रममाणंमहाप्रभम् ॥ १२ ॥ विभिदुश्शूलसङ्घातै रसिभिर्मुसलैस्तथा ॥ सम्मोह्यशरजालेन ततोभूमौन्यपातयन् ॥ १३ ॥ हतेतस्मिन्महादेवो देवान्प्रोवाचवैतदा ॥ अहोदर्पोतिमूढस्य दर्पेणनिधनङ्गतः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास तत्कपालात्सुभैरवाः ॥ दीप्तास्यामातरस्सर्वाः प्रचण्डास्त्रामहाबलाः ॥ १५ ॥ अभ्यधावंस्तमुद्देशं महादेवंन्यवेदयन् ॥ दैत्यन्ताभक्षयन्तिस्म भित्त्वाभित्त्वामहाबलम् ॥ १६ ॥ कपालमातरस्तस्मात ख्याताःक्षेत्रेमहाबलाः ॥ महाकपालस्तस्माद्धै सदृशःपरिकीर्तितः ॥ १७ ॥ स्थापितस्यकपालस्य भित्त्वातदभवत्पुरा ॥ ख्यातंशिवतडागञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ तदद्यापिमहादिव्यं सरस्तत्रप्रकाश्यते ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं गन्धर्वगणसेवितम् ॥ १९ ॥ पात्रस्थमुद्धृतंवापि शीतोष्णंकथितंजलम् ॥ पुनातिरौद्र

में हे व्यासजी ! उस कपालसे जलतेहुये आननवाली व प्रचण्ड अस्त्रोंवाली तथा बड़ी बलवती व भयंकर सब मातृकायें ॥ १५ ॥ उस स्थान को दौड़ीं व महादेवजी से निवेदन किया और काटकाटकर उन बड़ी बलवती स्त्रियोंने भक्षण किया ॥ १६ ॥ इसलिये क्षेत्र में महाबलवती कपालमातायें प्रसिद्धहैं और उसीकारण महाकपाल सदृश कहा गया है ॥ १७ ॥ पुरातन समय थापेहुये कपाल को फोडकर समस्त पातकोंका नाशक शिवतडाग प्रसिद्ध हुआहै ॥ १८ ॥ वहांपर गन्धर्वगणोंसे सेवित आज भी वह बड़ा दिव्य तड़ाग प्रकाशितहै जो कि तीनोंलोकोंमें प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ और पात्रमें स्थित व ऊपरलाया हुआ तथा ठंढा व गरम और काथ किया हुआ रुद्र-

तड़ागका जल पवित्र करताहै जैसे कि अश्वमेधयज्ञका अवभृथ (यज्ञान्तस्नान) पवित्र करताहै ॥ २० ॥ सैकडों देवताओंसे घिरेहुये ब्रह्मा भी उस स्थान को आयेहैं और आपही ब्रह्माजीने उसको स्वर्गकी सीढ़ी कहाहै ॥ २१ ॥ जो मनुष्य यहां प्राणों को छोड़तेहैं वे शिवलोकको जातेहैं हे व्यासजी ! महाकालवन में टिकेहुये मनुष्य मृत्युलोक में धन्यहैं ॥ २२ ॥ और रुद्रतड़ाग में जो स्नान करते हैं व जो जलको भी पीते हैं अपने धर्म व आचारमें स्थित वे पुरुष ईश्वर महादेवजी को देखते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण स्वर्गमें प्राप्त देवता नित्यही यह अभिलाष करते हैं ॥२४॥ यह सदैव देवताओं से पूजित तथा उत्तम व दिव्य और महापातकोंका नाशक महाकपाल

सरसोश्वमेधावभृथोयथा ॥ २० ॥ प्रागाद्ब्रह्मापितंदेशं देवतानांशतैर्वृतः ॥ स्वर्गलोकस्यनिश्रेणी कीर्तिताब्रह्मणा स्वयम् ॥ २१ ॥ अत्रत्यजन्तियेप्राणान् रुद्रलोकंव्रजन्तिते ॥ धन्यास्त्व्यासनरामर्त्ये महाकालवनेस्थिताः ॥ २२ ॥ रौद्रेसरसियेस्नान्ति जलंवापिपिबन्तिये ॥ स्वधर्माचारनिरताः पश्यन्तीशानमीश्वरम् ॥ २३ ॥ इतिस्वर्गगतादेवाःस्पृहांकुर्वन्तिनित्यशः ॥ २४ ॥ इदंशुभंदिव्यमधर्मनाशनं महाकपालंसुरपूजितंसदा ॥ महाप्रभंपापहरंसनातनं सुरेशलोकादिषुदुर्लभंसदा ॥ २५ ॥ तपोरतैस्सिद्धगणैरभिष्टुतं यथानभःस्थंदिननाथमण्डलम् ॥ एकाग्रचित्तःशृणुयात्प्रसादतस्त्रिविष्टपंगच्छतिसोभिनन्दितः ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे माहिषकुण्डरुद्रसरोमाहात्म्यन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ स्वयंभूतंमहेशस्य कुटुम्बेश्वरनामकम् ॥ १ ॥

बड़ा प्रभावान् व पापहारक तथा सनातन व सुरेशलोकादिकों में सदैव दुर्लभ है ॥ २५ ॥ जैसे कि तपस्यामें परायण सिद्धगणोंसे स्तुति कियाहुआ आकाशमें सूर्यमण्डलहै इस चरित्रको सावधान चित्तवाला जो पुरुष सुनताहै वह प्रशंसितनर स्वर्ग को प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमाहिषकुण्डरुद्रसरोमहिमवर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । कुटुम्बेश्वरकतीर्थ की महिमा अमित अपार । गेरहवें अध्याय में चरित सोइ सुखकार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर आपही से उपजेहुये कुटुम्बे-

श्वरनामक त्रिलोक में प्रसिद्ध शिवजी के तीर्थको कहूंगा ॥ १ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है वह सातजन्मों में भी कियेहुये पातकों से छूट जाताहै ॥ २ ॥ व पवित्र होकर जो पुरुष विधिपूर्वक श्राद्धकर शिवदेवजी को देखताहै वह सब लोकोंको नांघकर शिवलोक को जाताहै ॥ ३ ॥ और इस तीर्थ के किनारे जो पुरुष सब शाकोंको और अनेक भांति के कन्दोंको देताहै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ पौषमें शुक्लपक्ष की परेवा या अष्टमी तिथिमें सावधान चित्तवाला पुरुष एकही उपाससे अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ और कुँवारकी पौर्णमासी में जो पवित्र मनुष्य शिवजी के पट्टबन्धको देखता है वह पाप

तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नानं करोतिश्रद्धयान्वितः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृतैरपि ॥ २ ॥ शुचिःपश्यतियोदेवं कृत्वाश्राद्धंयथाविधि ॥ सर्वाँल्लोकानतिक्रम्य शिवलोकंसगच्छति ॥ ३ ॥ यस्तुसर्वाणिशाकानि कन्दानिविविधानि च ॥ तीरेचास्यप्रयच्छेत्तु सप्राप्नोतिपराङ्गतिम् ॥ ४ ॥ पौषेसितप्रतिपदे अष्टम्यांवासमाहितः ॥ एकेनैवोपवासेन अश्वमेधफलंलभेत् ॥ ५ ॥ आश्विन्यांपौर्णमास्याञ्च शुचिःपश्यतिमानवः ॥ पट्टबन्धंमहेशस्य सविपाप्मादिवंव्रजेत् ॥ ६ ॥ चैत्रेमासिसितेपक्षे पञ्चम्यांसमुपोषितः ॥ कर्पूरंकुङ्कुमञ्चैव मृगनाभिसचन्दनम् ॥ ७ ॥ निवेदयतिदेवाय नैवेद्यं घृतपायसम् ॥ सुरूपञ्चैवविप्रेन्द्रं सभार्यंभोजयेद्द्विजम् ॥ ८ ॥ रुद्रलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि तीर्थंविद्याधरस्यतु ॥ ९ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

रहित पुरुष स्वर्गको प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ और चैत महीने में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथिमें उपास कियेहुये जो पुरुष कपूर, कुङ्कुम व चन्दन समेत कस्तूरी को ॥ ७ ॥ और घृतसंयुत खीरकी नैवेद्य को शिवदेवजी के लिये निवेदन करता है व स्त्रीसमेत सुन्दर रूपवाले द्विजेन्द्र ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ ८ ॥ वह तबतक शिवलोकको प्राप्तहोता है कि जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं इसके उपरान्त मैं विद्याधरके तीर्थको कहताहूं ॥ ९ ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर पुरुष विद्याधरों का स्वामी होता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥

दो० । अतिमहिमा संयुत कह्यो तीर्थ गन्धरब नाम । बारहवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन्, महामुने ! इस क्षेत्रमें यह तीर्थ कैसे उत्पन्न हुआहै इस समय इसको मुझसे प्रसन्नतासे कहिये मैं सुनाचाहताहूं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय कोई रूपधारी यानी स्वरूपवान् विद्याधरों का स्वामी हुआहै उसने पारिजातकी सुन्दरीमालाको रचा ॥ २ ॥ और वह उस मालाको लेकर इन्द्रके मन्दिरमें गया व इन्द्रके आगे नाचतीहुई मेनकाको उसने देखा॥३॥ और उस समय नाचकी सभामें उसने उस मेनकाके लिये उस मालाको देदिया और वह मेनका उस स्थानमें मालासे मोहित होगई ॥ ४ ॥ तब क्रोधसे संयुत इन्द्र

व्यासउवाच ॥ कथंतीर्थमिदंक्षेत्रे जातमत्रमहामुने ॥ प्रसादाद्ब्रूहिमेब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ विद्याधरपतिःकश्चिदासीद्रूपधरःपुरा ॥ ग्रथितापारिजातस्य मालातेनमनोरमा ॥ २ ॥ गृहीत्वासच तांमालां गतोवासववेश्मनि ॥ नृत्यन्तीवासवस्याग्रेदृष्टातेनचमेनका ॥ ३ ॥ दत्तातस्यैतदातेन सामालानृत्यसंसदि ॥ सामेनकातुतत्स्थाने मालयामोहितासती ॥ ४ ॥ कोपाविष्टेनशक्रेण शप्तोविद्याधरस्तदा ॥ पृथिव्यांगच्छपापिष्ठ नृत्यभङ्गस्त्वयाकृतः ॥ ५ ॥ विद्याधरपदंत्यक्त्वा ममशापाच्चसाम्प्रतम् ॥ एवमुक्तस्तुशक्रेण वाक्यंविद्याधरोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ अजानतामयानाथ अपराधःकृतोधुना ॥ अनुग्रहमतोदेव कुरुमेत्वंप्रसादतः ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्सशक्रोवै विद्याधरमुवाचह ॥ गच्छावन्तींत्वमद्यैव यत्रास्तेगाङ्गटीगुहा ॥ ८ ॥ तस्याश्चोत्तरभागेतु विद्यतेतीर्थमुत्तमम् ॥ ख्यातंतत्रिषुलोकेषु नाम्नाविद्याधरंशुभम् ॥ ९ ॥ भक्त्यातत्रकृतेस्नाने विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ अतस्त्वमपितत्रैव कुरुस्नानंप्रयत्न

ने विद्याधर को शापदिया कि हे पापिष्ठ ! तुम इससमय विद्याधरके स्थान को छोडकर मेरे शापसे पृथ्वीको जावो क्योंकि तुमने नृत्यको भंग करदिया इन्द्रसे इसप्रकार कहेहुये विद्याधर ने वचन कहा ॥ ५ । ६ ॥ कि हे नाथ ! इससमय न जानतेहुये मैंने अपराध किया है इसलिये हे देव ! तुम प्रसन्नतासे मेरे ऊपर दयाकरो ॥ ७ ॥ इसप्रकार कहेहुये वे इन्द्रजी विद्याधरसे बोले कि तुम आजही अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीको जावो जहापर कि गांगटी गुहाहै॥८॥उसके उत्तरभागमें उत्तमतीर्थ विद्यमान

है वह तीनोंलोकोंमें विद्याधर नामक उत्तम तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ भक्ति से उसमें स्नान करनेपर विद्याधरोंका स्वामी होताहै इसीकारण तुम भी यत्नसे उसीमें स्नान
करो ॥ १० ॥ इसप्रकार इन्द्रजीसे कहाहुआ वह अवन्तीके मण्डलमें आया व उसने उस सुन्दर तीर्थ में स्नान किया ॥ ११ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव से वह विद्या-
धरोंका स्वामीहुआ हे व्यासजी ! इसप्रकार उत्तम विद्याधरतीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥ १२ ॥ वहांपर पुष्पों को व चन्दनलेपन को जो पुरुष देता है वह इस लोकमें व
परलोक में सब सुखोंको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविद्याधरतीर्थमहिमवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः १२

तः॥१०॥ एवमुक्तःसशक्रेण आगतोवन्तिमण्डले॥ स्नानंकृतश्चतेनैव तीर्थेतस्मिन्मनोरमे ॥ ११ ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थ
स्य सविद्याधरपोऽभवत् ॥ एवंव्याससमाख्यातं तीर्थंविद्याधरंशुभम् ॥१२॥ तत्रपुष्पाणियोदद्याच्चन्दनञ्चविलेपनम् ॥
लभेत्समस्तभोगान्सइहलोकेपरत्रच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविद्याधरतीर्थमाहात्म्यन्नाम द्वादशो
ऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थंचविख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥ १ ॥ त
स्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा गोशतस्यफलंलभेत् ॥ विस्फोटानांप्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चैवकारणे ॥ २ ॥ माषेणमिश्रिता
न्कृत्वा मसूरांस्तत्रकुट्टयेत् ॥ शीतलायाःप्रभावेण बालाःसन्तुनिरामयाः ॥ ३ ॥ येपश्यन्तिनराभक्त्या शीतलान्दु

दो० । मर्कटेश्वरक तीर्थकर, अहै जौन परभाव । तेरहवें अध्याय में, सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके उपरान्त वहांपर मर्कटेश्वर ऐसे प्रसिद्ध
समस्त कामनाओंको देनेवाले उत्तम तीर्थ को कहूंगा ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गोशतके फल को प्राप्त होताहै और बालकों के कारण विस्फोटकों की शांति
के लिये ॥ २ ॥ उड़दसे मिश्रितकर मसूरोंको वहां कुटावै तो शीतलाके प्रभाव से बालक निरोग होवैंगे ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य पापनाशिनी शीतलाजी को

भक्तिसे देखते हैं उनको कुछ पातक नहीं होताहै और न दरिद्रता होतीहै ॥ ४ ॥ और न उनको रोगका डर होताहै न ग्रहोंकी पीड़ा होती है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशीतलामाहात्म्यंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत, तीरथ स्वर्गद्वार । चौदहयें अध्यायमें, ताकर चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जो मनुष्य स्वर्गद्वारमें नहाकर व भैरवदेवको देखकर और पितरोंको उद्देशाकर वहींपर भक्तिसे श्राद्धकरै ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! वह अपना समेत पितरोंको तारताहै और स्वर्गद्वारसे वह शिवजीके परमपदको प्राप्तहोता

रितापहाम् ॥ नतेषांदुष्कृतंकिञ्चिन्नदारिद्र्यंद्विजोत्तम ॥४॥ नचरोगभयन्तेषां ग्रहपीडातथैवच ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेशीतलामाहात्म्यन्नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवञ्चभैरवम् ॥ श्राद्धंतत्रैवकुर्वीत पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ १ ॥ पितॄंश्चस नरोव्यास तारयेदात्मनासह ॥ स्वर्गद्वारेणसोभ्येति रुद्रस्यपरमंपदम् ॥ २ ॥ भैरवस्याग्रतोदेवी पूर्वेतिष्ठतिचाम्बिका ॥ तान्तुदृष्ट्वानरःस्त्रीवा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ३ ॥ महानवम्यांपुरुषः कृत्वाबस्तमयंबलिम् ॥ महिषंवासुरांमांसं मालाम्बिल्वमयींशुभाम् ॥ ४ ॥ भक्त्यानिवेदयेद्देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या पूजांकृत्वाशिवस्यच ॥ ५ ॥ स्वर्गद्वारेणसोभ्येति रुद्रस्यभवनंद्विज ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे स्वर्गद्वारमाहात्म्यन्नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है ॥ २ ॥ भैरवजी के आगे पूर्वदिशामें अम्बिकादेवी स्थित हैं उनको देखकर स्त्री या पुरुष सब पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ और महानवमी में जो पुरुष छागमय व भैंसेकी बलिकरके मदिरा, मांस व बिल्वमयी उत्तम मालाको ॥ ४ ॥ भक्तिसे देवीजीके लिये निवेदन करताहै वह सब सिद्धिको प्राप्तहोता है उसमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे शिवजी का पूजनकर ॥ ५ ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के द्वारा वह पुरुष शिवजीके मन्दिर को प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांस्वर्गद्वारमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । तीरथ चतुःसमुद्रकर चरित सहित विस्तार । पन्द्रहवें अध्याय में कह्यो पुण्यदातार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चतुःसमुद्र नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य राजस्थल शिवको देखै कि जिसके दर्शनही से मनुष्य पुत्रवान् होता है ॥ १ ॥ क्षार, दुग्ध, दधि व इक्षु ये जो चार समुद्रहैं वे उन शिवजी के समीप सुद्युम्नसे थापे गये हैं ॥२॥ व्यासजी बोले कि लाख योजनतक उत्तम जम्बूद्वीपहै उसकी मर्यादा में यह क्षारनामक समुद्र स्थापितहै ॥ ३ ॥ और दोलक्षयोजन शाकद्वीपमें वह क्षीरसागर प्रतिष्ठितहै और चार लाख कुशद्वीपमें दधिसमुद्र स्थितहै ॥ ४ ॥ और शाल्मलिद्वीप में आठ लाख इक्षुरसका समुद्र प्रतिष्ठित है और वे चार समुद्र पृथ्वीमण्डलमें

सनत्कुमारउवाच॥ स्नात्वाचतुस्समुद्रेतुपश्येद्राजस्थलंशिवम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेणपुत्रवाञ्जायतेनरः ॥१॥ समुद्रास्सन्तिचत्वारः क्षारक्षीरदधीक्षवः ॥ समीपेतस्यदेवस्य सुद्युम्नेनप्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ लक्षयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपंसुशोभनम् ॥ मर्य्यादायांस्थापितोयं समुद्रःक्षारसंज्ञितः ॥ ३ ॥ शाकद्वीपेद्विलक्षेतु क्षीराब्धिस्संप्रतिष्ठितः॥ दध्यब्धिश्चकुशद्वीपे चतुर्लक्षेप्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥ शाल्मलेत्विक्षुजलधिर्ह्यष्टलक्षेप्रतिष्ठितः ॥ चत्वारस्तेसमाख्याताः समुद्राभूमिमण्डले ॥ ५ ॥ राजस्थलसमीपेतु कथमेकत्रताङ्गताः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ सुद्युम्नोनामराजासीत् पुराकल्पेषुधार्मिकः ॥ ६ ॥ तस्यपत्नीवरारोहा नाम्नाख्यातासुदर्शना ॥ सादाल्भ्यंमुनिंदृष्ट्वा पप्रच्छसुतकाम्यया ॥ ७ ॥ भगवन्केनदानेन स्नानेनविधिनाथवा ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णः पुत्रोलभ्योमयाकथम् ॥ ८ ॥ दाल्भ्यउवाच ॥ विहितस्तेपुरापुत्रि सर्वपुत्रेषुसत्तमः ॥ स्वयम्भूतेनदेवेन ब्रह्मणालोककारिणा ॥ ९ ॥ तेभर्ताशङ्करन्देवमाराध्यतत्प्रसा

कहे गये हैं ॥ ५ ॥ और राजस्थल के समीप वे कैसे एकत्रता को प्राप्त हुये हैं सनत्कुमार जी बोले कि पुरातन समय कल्पों में सुद्युम्न नामक धर्मवान् राजा हुआ है ॥ ६ ॥ उसकी उत्तम कटिवाली सुदर्शना नामक स्त्री थी उसने दाल्भ्य मुनिको देखकर पुत्रकी कामना से पूछा ॥ ७ ॥ कि हे भगवन् ! किस दानसे व स्नान या विधि से समस्त लक्षणोंसे संपूर्ण पुत्र मुझको कैसे प्राप्त होने योग्य है ॥ ८ ॥ दाल्भ्यजी बोले कि हे पुत्रि ! लोकों के रचनेवाले व आपही से उपजे हुये ब्रह्माजी ने पहलेही सब पुत्रोंमें उत्तम तुम्हारे पुत्रको किया है ॥ ९ ॥ यदि तुम्हारा पति सदाशिव देवजी को आराधकर उनकी प्रसन्नतासे चारों समुद्रों को स्वरूप से अवन्तीपुरी में

लावैंगा ॥ १० ॥ तो उनमें राजाके स्नान करनेपर तुम्हारे पुत्र होगा इसलिये हे पुत्रि ! शिवजी के आराधन में पतिकी प्रेरणा कीजिये ॥ ११ ॥ दालभ्यके वचन से व विचित्र आख्यान से उसने शंकरजी के आराधन करनेमें पतिको पठाया ॥ १२ ॥ और उसने गंधमादन पर्वत पर जाकर शिवजीको प्रसन्न कराया व प्रसन्न होतेहुये चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि लोचनोंवाले शिवजी बोले ॥ १३ ॥ कि हे राजेन्द्र ! उज्जैनीपुरीको जाइये उत्तम पुत्रको पावोगे और मेरी आज्ञासे समुद्र कुशस्थली (अवन्ती) पुरीको जावेंगे ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ, राजन् ! मरुरूप याने निर्जल स्थल में शंकरजी के समीप तुम भलीभांति प्राप्तहुये समुद्रोंको देखोगे ॥ १५ ॥ और तुमसे याचना

दतः ॥ आनयिष्यत्यवन्त्यांचेचतुरोऽब्धीन्स्वरूपतः ॥ १० ॥ तेषुराज्ञाकृतेस्नाने तवपुत्रोभविष्यति ॥ शङ्कराराधनेपुत्रितस्मात्प्रेरयवल्लभम् ॥ ११ ॥ दालभ्यस्यैववाक्येन विचित्राख्यानकेनच ॥ प्रस्थापयामासपतिं शङ्कराराधनेषुच ॥ १२॥ सगत्वातोषयामास शङ्करंगन्धमादने ॥ सन्तुष्टःशङ्करःप्राह शशिसूर्याग्निलोचनः ॥ १३ ॥ अवन्तींगच्छराजेन्द्र पुत्रंप्राप्स्यसिशोभनम् ॥ मच्छासनाज्जलधरा गमिष्यन्तिकुशस्थलीम् ॥ १४ ॥ मरुरूपेस्थलेराजन् समीपेशङ्करस्यच ॥ द्रक्ष्यसित्वंनरश्रेष्ठ जलधींस्तत्रसङ्गतान् ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितास्त्वयातत्र स्थास्यन्तिकलयासदा ॥ एवमुक्त्वामहादेवो जगामादर्शनंविभुः ॥ १६ ॥ सुद्युम्नोभार्ययासार्द्धमाजगामकुशस्थलीम् ॥ आगतांस्तुकुशस्थल्यां समुद्रांश्चददर्शह ॥ १७ ॥ तांस्तुदृष्ट्वानमश्चक्रे राजस्थलसमीपतः ॥ तंवैदृष्ट्वाचसुद्युम्नं प्रणतंभक्तवत्सलाः ॥ १८ ॥ प्रोचुर्वारिधयस्सर्वे वरंवरयसुव्रत ॥ सवव्रेमनसापुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १९ ॥ उवाचचपुनाराजा यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥

कियेहुये वे वहां सदैव कला से टिकैंगे ऐसा कहकर महादेव स्वामी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ ॥ और सुद्युम्न स्त्री समेत कुशस्थली को आये और कुशस्थली में आये हुये समुद्रोंको उसने देखा ॥ १७ ॥ और राजस्थलके समीप उनको देखकर उसने प्रणाम किया व प्रणाम किये उन सुद्युम्नको देखकर भक्तप्रिय ॥ १८ ॥ सब समुद्र बोले कि हे सुव्रत ! वरदान मांगिये उसने मनके द्वारा समस्त लक्षणो से संयुत पुत्रको मांगा ॥ १९ ॥ और फिर राजा बोले कि जबतक पृथ्वी स्थितरहै तबतक

राजस्थलके समीप तुम सबों को यहींपर टिकना चाहिये ॥ २० ॥ समुद्र बोले कि जबतक कल्पान्त होगा तबतक हम सब यहीं टिकैंगे और इसमें तुम्हारे स्नानमात्र से तुम्हारे समस्त लक्षणोंसे संयुत पुत्रहोगा इसलिये स्नान करिये और हे राजन् ! इस उत्तम स्थलमें कला समेत हम सब टिकैंगे ॥ २१ ।२२ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार सुद्युम्नसे समुद्र उत्पन्न किये गये उनमें जो यात्रा करता है उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ २३ ॥ कि महापुण्यदायक क्षारसमुद्र में स्नानकर तदनन्तर हे व्यासजी ! पितरों की भक्ति में तत्पर पुरुष श्राद्ध करै ॥ २४ ॥ और स्थल में टिके हुये पार्वती जीके पति महादेवजी को पूजै तदनन्तर वेदके पारगामी ब्राह्मण के

स्थातव्यंतावदत्रैव राजस्थलसमीपतः ॥ २० ॥ समुद्राऊचुः ॥ तावत्स्थास्यामएवात्र यावत्कल्पावसानकम् ॥ भविष्यतिचतेपुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २१ ॥ अत्रतेस्नानमात्रेण तस्मात्स्नानंसमाचर ॥ स्थलेचात्रशुभेराजन् स्थास्यामःकलयासह ॥ २२ ॥ एवंव्याससमुद्राश्च सुद्युम्नेनावतारिताः ॥ कुरुतेतेषुयोयात्रां तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २३ ॥ स्नानंकृत्वामहापुण्ये समुद्रेक्षारसंज्ञके ॥ कुर्याच्छ्राद्धंततोव्यास पितॄणांभक्तितत्परः ॥ २४ ॥ पूजयेच्चमहादेवं स्थलस्थंपार्वतीपतिम् ॥ मण्डनानिततोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २५ ॥ पात्रंताम्रमयंकार्यं लवणेनप्रपूरितम् ॥ सहिरण्यञ्चदातव्यं ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २६ ॥ सप्तधान्यसमायुक्तं वेणुजंवस्त्रवेष्टितम् ॥ सदक्षिणंफलैर्युक्तमर्घ्यंदद्यात्प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ क्षीराब्धिंचततोगत्वा स्नानंकुर्याच्चपूर्ववत् ॥ क्षीरंतत्रप्रदातव्यं ताम्रपात्रेप्रपूरितम् ॥ २८ ॥ दध्यब्धौचतथाकृत्वा दद्याद्दध्योदनंशुभम् ॥ इक्ष्वब्धौचतथाकृत्वा दद्याद्विप्रेगुडंशुभम् ॥ २९ ॥ यात्रांकृत्वातुवैव्यास गाञ्च

निमित्त आभूषणोंकोदेवै ॥२५॥ और ताम्रमयपात्र करना चाहिये व लोनसे पूरित तथा सुवर्ण समेत उस पात्रको वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके निमित्त देनाचाहिये ॥२६॥ और सप्तधान्य से संयुत व वसन से लपेटेहुये दक्षिणा समेत व फलों से संयुत बांससे उपजेहुये पात्रका अर्घ्य बड़े यत्नसे देना चाहिये ॥ २७ ॥ तदनन्तर क्षीरसमुद्र को जाकर व पहले की नाईं स्नानकर वहां तांबे के पात्र में भरेहुये दूधको देना चाहिये ॥ २८ ॥ वैसेही दधिसमुद्र में करके उत्तम दही भातको देना चाहिये और ऊखके रसके समुद्र में वैसेही करके ब्राह्मण के निमित्त उत्तम गुड़को देना चाहिये ॥ २९ ॥ व हे व्यासजी ! यात्रा करके दूधवाली गऊको देवै इस प्रकार जो

मनुष्य राजस्थल के समीप यात्रा करता है ॥ ३० ॥ वह कल्याणमयी लक्ष्मी व सुन्दर पुत्रों को पाता है और मरकर स्वर्गको प्राप्त होता है जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांराजस्थलेश्वरसमीपेचतुःसमुद्रमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दो० । कह्यो शङ्करादित्यकर अति अद्भुत परभाव । सोलहवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! शंकरवापिका नामक महातीर्थ को सुनिये कि क्रीड़ा करतेहुये शिवदेवजी ने उत्तम तीर्थका निर्माण कियाहै ॥ १ ॥ देवदेव शिवजी ने कपाल को धोनेवाले जलको फेंक दिया और जिस लिये

दद्यात्पयस्विनीम् ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां राजस्थलसमीपतः ॥ ३० ॥ भव्यांहिलभतेलक्ष्मीं पुत्रांश्चापिमनोरमान् ॥ मृतःस्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे राजस्थलेश्वरसमीपेचतुस्समुद्रमाहात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं नाम्नाशङ्करवापिका ॥ क्रीडमानेनदेवेन निर्मितंतीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रक्षिप्तंदेवदेवेन कपालक्षालनंजलम् ॥ वापीगतंकृतंयस्मादतःशङ्करवापिका ॥ २ ॥ अर्काष्टम्यांनरःस्नात्वा दिशासु विदिशासुच ॥ पूर्वादिक्रमतोयाच वापीमध्येतथैवच ॥ ३ ॥ हविष्यान्नयुतान्व्यास दद्याच्चकरकान्नवान् ॥ शाकमूलांश्चविप्रेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ परत्रचेहयेलोकाः सर्वभोगसमन्विताः ॥ तत्रतत्रसमायान्ति भुक्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ येनराःकीर्त्तयिष्यन्ति माहात्म्यमतिभावुकाः ॥ रुद्रलोकेपितेपूज्यास्तेभ्योस्तुसततन्नमः ॥ ६ ॥ सनत्कुमा

वह बावली में प्राप्त कियागया इसीसे शंकरवापिका हुई ॥ २ ॥ अर्काष्टमीमें बावलीके मध्यमें पूर्वादिक क्रमपूर्वक जल से दिशाओं व विदिशाओं में नहाकर ॥ ३ ॥ हे व्यासजी ! हविष्यान्न से संयुत नवीन कमण्डलुवोंको देवै व ब्राह्मणों के लिये शाकों व मूलोंको देवै उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ ४ ॥ कि परलोकमें व इस लोक में समस्त सुखोंसे संयुत जो लोक हैं वहां वहां अति उत्तम ऐश्वर्य को भोगकर वे मनुष्य भली भांति प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ अत्यन्त कुशल जो मनुष्य इस माहात्म्य

को कहैंगे वे भी शिवलोक में पूजनीय होंगे और उन के लिये सदैव प्रणाम होवै ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले वृषध्वज देवदेवेश जीने पवित्र होकर देवदेव सूर्यनारायणजी की स्तुति किया ॥ ७ ॥ और सूर्यनारायणजी आये व प्रसन्न होते हुये वे सदाशिवजी से बोले सूर्यनारायणजी बोले कि हे भूतेशजी ! वरदानको मांगिये मैं वरदायकहूं तुम्हैं वरदानको दूंगा ॥ ८ ॥ उनसे शिवजी बोले कि यदि तुम वरदायकहो तो मुझ से याचना की हुई वस्तुको कीजिये कि समस्त शरीरधारियों के हितके लिये यहां अंशसे स्थित होवो ॥ ९ ॥ महादेवजी का वचन सुनकर वहांपर सूर्यनारायणजी

रउवाच ॥ ततोवैदेवदेवेशः पिनाकीवृषभध्वजः ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वा देवदेवंदिवाकरम् ॥ ७ ॥ आजगामदिवानाथः सन्तुष्टःप्राहशङ्करम् ॥ सूर्य्यउवाच ॥ वरंवरयभूतेश वरदोस्मिददामिते ॥ ८ ॥ तमाहवरदश्चेत्त्वं याच्यमानंकुरुष्व मे ॥ अंशेनस्थीयतामत्र हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ ९ ॥ अवतीर्णोरविस्तत्र श्रुत्वामाहेश्वरंवचः ॥ ततोदेवाधिदेवेशो य योख्यातिंमहामतिः ॥ १० ॥ शङ्करादित्यनामेति लोकानांशान्तिकारकः ॥ देवादैत्याश्चगन्धर्वा विस्मितास्सह किन्नरैः ॥ ११ ॥ अहोधन्यमिदंस्थानं यत्रास्तेत्रिपुरान्तकः ॥ भास्करोपिचतत्रस्थस्तीर्थमाहात्म्यवर्णने ॥ १२ ॥ ततस्तुष्टाश्चतेसर्वे ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ देवेशंपूजयामासुर्देवमादित्यशङ्करम् ॥ १३ ॥ मूर्त्तिमन्तश्चतेदेवा अवतीर्य्यच शोभनम् ॥ स्थापयित्वाब्रुवन्वाक्यं येत्वांस्तोष्यन्तिमानवाः ॥ १४ ॥ नदुःखंजायतेतेषां जरामरणदुःखजम् ॥ सर्व

ने अवतार लिया उसीकारण देवाधिदेवेश व महाबुद्धिमान् तथा लोकों के शान्तिकारक सूर्यनारायणजी शंकरादित्य ऐसे नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त हुये और देवता, दैत्य व किन्नरों समेत गन्धर्व विस्मयको प्राप्तहुये ॥ १० । ११ ॥ कि अहो यह स्थान धन्य है कि जहांपर त्रिपुरके विनाशक सदाशिवजी हैं और वहां टिकेहुये सूर्यनारायण भी तीर्थ के माहात्म्यके वर्णन में हैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये उन ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठों ने देवेश आदित्य शंकरजी का पूजन किया ॥ १३ ॥ और मूर्त्तिमान् वे देवता अवतार लेकर व उनको स्थापितकर उत्तम वचन बोले कि जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करैंगे ॥ १४ ॥ उनको वृद्धता व मरणसे उपजाहुआ

दुःख नहीं होगा सब यज्ञोंमें जो पुण्य होताहै व समस्त दानों में जो फल होताहै ॥ १५ ॥ उससे अधिक फल यहां शंकरादित्यजी के दर्शन से होताहै और व्याधियां
व मनकी व्यथायें व दरिद्रता कभी नहीं होतीहै ॥ १६ ॥ और पृथ्वीमें उनका सदैव अतुल ऐश्वर्य होताहै और हे मुनिश्रेष्ठ ! शंकरादित्यजी के दर्शनसे न रोग होता
है व न दरिद्रता होती है और न भाइयो से बिछोह होता है हे मुनिश्रेष्ठ ! पुरातन समय इसी कारण त्रिशूल हाथवाले देवदेव सदाशिवजी ने अपने नाम से उत्तम
तीर्थ को स्थापित कियाहै ॥ १७।१८।१९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशंकरादित्यमाहात्म्यवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६॥

यज्ञेषुयत्पुण्यं सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १५ ॥ तस्माच्चैवाधिकंह्यत्र शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ व्याधयोनाधयश्चैव दारिद्र्य
न्नकदाचन ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यञ्चातुलंतेषां जायतेभुविसर्वदा ॥ नरोगोनचदारिद्र्यं वियोगोनचबन्धुभिः ॥ १७ ॥ जायतेमु
निशार्दूल शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ इत्येवदेवदेवेन पुरावैशूलपाणिना ॥ १८ ॥ स्थापितंपरमंतीर्थं स्वनाम्नामुनिसत्त
म ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे शङ्करादित्यमाहात्म्यन्नामषोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एकस्मिन्समयेव्यास कपालक्षालनायवै ॥ शुद्धोदकंगृहीत्वातु कपालेनमहेश्वरः ॥ १ ॥ प्र
क्षाल्यचाक्षिपद्भूमौ तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ नाम्नागन्धवतीपुण्या नदीत्रैलोक्यविश्रुता ॥ २ ॥ ब्रह्मणोरुधिरेणापि परिपू
र्णाभवत्क्षणात् ॥ तस्यांस्नानंसदाशस्तं स्वयन्देवेनभाषितम् ॥ ३ ॥ श्राद्धंकृतंतर्पणञ्च तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् ॥ वायुभू
तास्तुपितरस्तस्यास्तीरेतुदक्षिणे ॥ ४ ॥ तिष्ठन्तिमुनिशार्दूल चिन्तयन्तिस्वगोत्रजम् ॥ आगमिष्यतिपुत्रोनो नप्ता

दो० । पितर तृप्तिदायक चरित गन्धवती कर जौन । सत्रहवें अध्यायमें बरणत हैं सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकसमय महादेवजीने कपाल
को धोने के लिये शुद्ध जलको लेकर व उसको प्रक्षालन कर भूमि में फेंक दिया वहांपर अतिउत्तम तीर्थ होगया नामसे गन्धवती नामक पुण्यदायिनी नदी त्रिलोक
में प्रसिद्ध हुई ॥ १ । २ ॥ वही ब्रह्माके रक्तसे क्षणभरमे पूर्ण होगई उसमें आपही सदाशिवदेवजीने सदैव स्नानको उत्तम कहा है ॥ ३ ॥ और किया हुआ श्राद्ध व
तर्पण वह सब अक्षय होवै है और उसके दक्षिण किनारे पै पवनभूत पितर ॥ ४ ॥ टिके है व हे मुनिश्रेष्ठ ! वे अपने गोत्रसे उपजेहुये पुरुषको चिन्तन करते हैं कि

हम लोगोंकी संतानमें पुत्र या नाती यहां आवैगा ॥ ५ ॥ और वह गुझिया या खीर भी व सांवां और उत्तम तिन्नी फसही को और सत्तू, शहद व तिलोंसे संयुक्त पिंड को कब देवैगा ॥ ६ ॥ उन पिंड के देने से अविनाशिनी तृप्ति होती है और चन्द्रग्रहण में स्नान कर जो मनुष्य वहा पिंड को देता है ॥ ७ ॥ उसके पितर बारह वर्ष तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं हे द्विज ! यहापर जो उत्तम विद्वान् मनुष्य आकर ॥ ८ ॥ पितरों को तृप्त करैंगे उनको सदैव अक्षयस्वर्ग होगा वहा जो लवमात्र सुवर्णदान दिया जाताहै ॥ ९ ॥ उसका वह आपही उपजेहुये ब्रह्माजीसे अक्षय कहागया है और हरिद्वार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १० ॥ और काशी व गया में

वासन्ततांविह ॥ ५ ॥ संयावंपायसंवापि श्यामाकंसन्निवारकम् ॥ सक्तुक्षौद्रतिलैर्युक्तं पिण्डंदास्यतिवैकदा ॥ ६ ॥ तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवतिचाक्षया ॥ यस्तुस्नात्वाचवैपिण्डं दद्याद्वैचन्द्रपर्वणि ॥ ७ ॥ पितरोद्वादशाब्दानि तृप्तिं यास्यन्तितस्यवै ॥ येत्रागत्यसुविद्वांसो मानवावैतथाद्विज ॥ ८ ॥ पितॄन्सन्तर्पयिष्यन्ति स्वर्गस्तेषांसदाक्षयः ॥ तत्रयद्दीयतेदानं त्रुटिमात्रंतुकाञ्चनम् ॥ ९ ॥ अक्षय्यंतस्यतत्प्रोक्तं ब्रह्मणावैस्वयम्भुवा ॥ गङ्गाद्वारेप्रयागेच कुरुक्षेत्रेचपुष्करे ॥ १० ॥ वाराणस्यांगयायाञ्चमासात्तृप्तिर्भविष्यति ॥ तुष्टाश्चपितरोनॄणांदास्यन्तिकाङ्क्षितान्वरान् ॥ ११ ॥ योयमुद्दिश्यवैकाममिहश्राद्धंकरिष्यति ॥ तस्यतज्जायतेसर्वंमृतस्यपरमागतिः ॥ १२ ॥ अष्टमीनवमीचैवामावस्यावाथपूर्णिमा ॥ सर्वास्वेतासुवैव्यास रवेःसंक्रमणेतथा ॥ १३ ॥ ब्रह्मेन्द्ररुद्रदेवांश्च सूर्याग्निब्रह्मदेवताः ॥ विश्वेदेवान्सगन्धर्वान् यक्षांश्च मनुजान्पशून् ॥ १४ ॥ सरीसृपान्पितृगणान् यच्चान्यद्भुविसंस्थितम् ॥ श्राद्धंवैश्रद्धयाकुर्वन् प्रीणय

जो तृप्ति होती है वह तृप्ति होगी और प्रसन्न होते हुये पितर मनुष्यों को चाहे हुये वरदानों को देवैंगे ॥ ११ ॥ जो मनुष्य जिस मनोरथ को उद्देश कर यहां श्राद्ध करैगा उसका वह सब होगा और मरे हुये पुरुष की उत्तम गति होगी ॥ १२ ॥ हे व्यास जी ! अष्टमी, नवमी व अमावस और पूर्णिमा इन सब तिथियों में व सूर्य की संक्रान्ति में ॥ १३ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्र देवताओं को तथा सूर्य, अग्नि व ब्रह्मदेवताओं को और गंधर्वों समेत विश्वेदेवों तथा यक्षों व मनुष्यों और पशुओं

को ॥ १४ ॥ और सर्पों, पितृगणों को व अन्य जो भूमि में स्थित है उसको श्रद्धासे श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब संसार को तृप्त करता है ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक महीने में शुक्लपक्ष में पौर्णमासी में और चन्द्रक्षय (अमावस) में जब अनुराधा, विशाखा व रोहिणी होवै ॥ १६ ॥ तब श्राद्ध में पूजेहुये पितरसमूह तृप्ति को प्राप्त होते हैं और धनिष्ठा व पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में तृप्ति को चाहते हुये पितरोंकी ॥ १७ ॥ भक्तिसे श्राद्ध करै उससे पितर तृप्त होते हैं व यह कहते हैं कि कुल में उपजे हुये भी वे धन्य हैं हमलोगों की तृप्ति के कारण ॥ १८ ॥ कि जो श्राद्धकरते हैं व पिंडों को देते हैं उस पिंडदान से हमलोगों की अक्षय तृप्ति होती

त्यखिलंजगत् ॥ १५ ॥ मासिमासिसितेपक्षे पञ्चदश्यांद्विजोत्तम ॥ इन्दुक्षयेयदामैत्रं विशाखाचैवरोहिणी ॥ १६ ॥ श्राद्धेपितृगणास्तृप्तिं प्रयान्तिचतथार्चिताः ॥ वासवाजेकपादर्क्षे पितॄणांतृप्तिमिच्छताम् ॥ १७ ॥ भक्त्याश्राद्धंप्रकुर्वीत पितरस्तेनतर्पिताः ॥ अपिधन्याःकुलेजाता अस्माकंतृप्तिहेतवे ॥ १८ ॥ येकुर्वन्तिचवैश्राद्धं पिण्डान्येनिर्वपन्तिच ॥ तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्नोभविताक्षया ॥ १९ ॥ इहैत्यवैपुण्यजलेषुसम्यक्स्नात्वानरःस्वान्नुलभेतकामान् ॥ यान् प्राप्यचप्रेतगणैःसमेतः समोदतेदेववृतोर्थसिद्धः ॥ २० ॥ चित्तञ्चवित्तञ्चयशोविशुद्धं देशस्तुकालःकथितोविधिश्च ॥ पात्रंयथोक्तंपरमाञ्चभक्तिं नृणांप्रयच्छन्तिहिवाञ्छितानि ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ दशाश्वमेधिकेस्नात्वादृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ १ ॥

है ॥ १९ ॥ यहां आकर व पवित्र जलों में भली भांति नहाकर मनुष्य अपने मनोरथों को प्राप्त होता है कि जिनको पाकर देवताओं से घिरा हुआ वह सिद्ध प्रयोजन वाला मनुष्य प्रेतगणों समेत प्रसन्न होता है ॥ २० ॥ शुद्धचित्त, धन, यश, देश, काल व कही हुई विधि और यथोक्त पात्र ये सब मनुष्यों को उत्तम भक्ति व चाहे हुये मनोरथों को देते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायानीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो॰ अति उत्तम माहात्म्ययुत तीर्थ दशाश्वकमेध । अठारहें अध्यायमें बरण्यों सोइ सुमेध ॥ सनत्कुमारजी बोले कि दशाश्वमेध तीर्थ में नहाकर व शिवदेवजी को

देखकर मनुष्य दश अश्वमेधों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मनुजेन्द्र मनु व राजा ययाति, रघु, उशना और लोमश महर्षि ने ॥ २ ॥ व अत्रि भृगु तथा बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी व पुण्यरूप पुरूरवा, नहुप और नल ने ॥ ३ ॥ इस तीर्थ में स्नान से दश अश्वमेध यज्ञों के फलको पाया है वैसेही द्वापर का अन्त प्राप्त होने पर बाष्कलि राजाने ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! दश अश्वमेध यज्ञों के फल को पाया है वैसेही कृष्णवर्ण लिंग भक्ति से सदैव पूजित है ॥ ५ ॥ मनुष्य उन देवको देखकर व स्पर्श कर पहले कहे हुये फलको प्राप्त होता है चैत महीने मे शुक्लपक्षकी अष्टमी में भक्ति से उन देव को भलीभांति पूजकर ॥ ६ ॥ सुन्दर रूपवाले व

मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञाचैवययातिना ॥ रघुणोशनसाचैवलोमशेनमहर्षिणा ॥ २ ॥ अत्रिणाभृगुणाचैव दत्तात्रेयेण धीमता ॥ पुरूरवसापुण्येन नहुषेणनलेनच ॥ ३ ॥ अत्रस्नानेनसंप्राप्तं दशाश्वमेधिकंफलम् ॥ संप्राप्तेद्वापरस्यान्ते राज्ञावाष्कलिनातथा ॥ ४ ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्तंद्विजोत्तम ॥ कृष्णवर्णंतथालिङ्गं पूजितंभक्तितःसदा ॥ ५ ॥ दृष्ट्वास्पृष्ट्वाचतंदेवं प्रागुक्तंलभतेफलम् ॥ चैत्रेमासिसिताष्टम्यां देवंसंपूज्यभक्तितः ॥ ६ ॥ अश्वंदद्याच्चविप्राय सुरूपंच गुणान्वितम् ॥ यावन्तितस्यरोमाणि गण्यन्तेसंख्ययाद्विज ७ ॥ तावद्वर्षसहस्राणिशिवलोकेमहीयते ॥ शिवलोकात्परिभ्रष्टःसार्वभौमोभवेद्भुवि ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यंनामाष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एकानंशांनमस्कृत्य देवींत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ पूजांकृत्वाविधानेन सर्वसिद्धिफलंलभेत् ॥ १ ॥ अणिमादिगुणान्सर्वान् गुटिकांसिद्धमञ्जनम् ॥ खड्गंचपादुकेचैवबिलवासंरसायनम् ॥ २ ॥ सर्वंतुष्टाप्रयच्छेत्तु नात्रका

गुणों से संयुक्त घोडे को ब्राह्मण के लिये देवै हे द्विज ! उस अश्वके जितने रोम गिने जाते है ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षो तक वह शिवलोक मे पूजित होता है और शिवलोक से भ्रष्ट हुआ वह पुरुप पृथ्वी में चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दो० । एकानंशा भगवती का उत्तम आख्यान । उनीसवें अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि त्रिलोक में प्रसिद्ध एकानंशा देवीजी को प्रणामकर व विधि से पूजनकर मनुष्य सब सिद्धियों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और अणिमादिक सब गुणों को व गोली तथा सिद्धअञ्जन व तलवार

पादुका तथा बिलमें वास और रसायन ॥ २ ॥ इस सब वस्तुको प्रसन्न होतीहुई वे भगवतीजी देती हैं इस विषय में विचार न करना चाहिये मदिरा व मांस के उपहारों से तथा भक्ष्य व भोजनों से पूजीहुई ॥ ३ ॥ प्रसन्न देवी जी मनुष्योंको सदैव सब कामनाओं को देती हैं और महानवमी में जो पुरुष भैंसे के द्वारा देवी को पूजता है ॥ ४ ॥ व लाभ के अनुकूल मेष (भेंड़) से याने भेंड़ के बलिप्रदान से जो उन देवी जी को पूजता है वह समस्त मनोरथों को प्राप्त होता है व्यासजी बोले कि एकानंशा ऐसी प्रसिद्ध देवी कैसे उत्पन्नहुई हैं ॥ ५ ॥ समस्त पातकों के विनाशक उस वृत्तान्त को मैं सुनाचाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय

र्याविचारणा ॥ सुरामांसोपहारैश्चभक्ष्यभोज्यैश्चपूजिता ॥ ३ ॥ सर्वान्कामान्नृणांदेवी तुष्टादद्याच्चसर्वदा ॥ महानवम्यांयोदेवीं महिषेणप्रपूजयेत ॥ ४ ॥ मेषेणचयथालाभं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ व्यासउवाच ॥ कथंदेवीसमुत्पन्ना एकानंशेतिविश्रुता ॥ ५ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि सर्वपापप्रणाशनम्॥ सनत्कुमारउवाच ॥पुराकृतयुगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ६ ॥ निशांसंस्मारभगवान् स्वांतनुंपूर्वसम्भवाम् ॥ ततोभगवतारात्रिरुपतस्थेपितामहम् ॥ ७ ॥ तांविविक्तेसमालोक्य ब्रह्मोवाचविभावरीम् ॥ विभावरिमहाकाये व्यवधानेह्युपस्थिते ॥ ८ ॥ यत्कर्तव्यंत्वयादेवि शृणुचार्थस्यनिश्चयम् ॥ तारकोनामदैत्येन्द्रः सुरशत्रुरनिर्जितः ॥ ९ ॥ तस्माद्भयेनवैदेवास्त्रस्तास्सर्वेदिवौकसः ॥ तस्माद्रुद्रे महेशोवै जनयिष्यतिचेद्धरम् ॥ १० ॥ सुतंसभवितातस्य तारकस्यान्तकःकिल ॥ शङ्करस्याभवत्पत्नी सतीदक्षसुता

सतयुगके आदिमें लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजीने पहले उपजी हुई अपनी देहरूपिणी रात्रि को स्मरण किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी से स्मरण कीहुई रात्रि ब्रह्माजी के समीप प्राप्त हुई ॥ ६।७ ॥ उस रात्रिको एकान्त में देखकर ब्रह्मा जी बोले कि हे महाशरीरे, विभावरि ! व्यवधान (अंतर्द्धान) प्राप्तहोने पर ॥ ८ ॥ हे देवि ! जो तुमको करना चाहिये उस प्रयोजनके निश्चय को सुनिये कि दैत्येन्द्र तारकनामक देवताओं का शत्रु नहीं जीतागयाहै ॥ ९ ॥ इसकारण स्वर्ग में रहनेवाले सब देवता भय से डरेहुये हैं इसलिये हे भद्रे ! यदि सदाशिवजी उत्तम पुत्र को पैदाकरैंगे तो वह प्रसिद्ध में उस तारक का मारक होगा दक्षजीकी कन्या सती जी जो

शंकरजी की स्त्री हुई हैं ॥ १० । ११ ॥ हे भद्रे ! वे किसी कारण के मध्य मे पिता से क्रोधित हुई थीं और लोकों को पवित्र करनेवाली वे ही हिमाचल की कन्या होवेंगी ॥ १२ ॥ व उनके वियोग से सदाशिवजीने त्रिलोक को शून्य मानकर सिद्धों से सेवित हिमाचल की कन्दरा में तप किया है ॥ १३ ॥ और उसका जन्म परखते हुये वे शिवजी वहा कुछ समय तक बसैंगे भलीभांति तपस्या किये हुये उन शिवजी से जो महाप्रभु होवेंगे ॥ १४ ॥ वे तारक दैत्य के निवारक याने मना करनेवाले होवैंगे पैदा होते ही अल्पसज्ञावाली वे सुन्दरी देवीजी ॥ १५ ॥ वियोग से उत्कंठित होकर शिवजी के संयोग की लालसावाली होवेंगी और भलीभाति

तुया ॥ ११ ॥ सापितुःकुपिताभद्रे कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ भवित्रीहिमशैलस्य दुहितालोकपावनी ॥ १२ ॥ विरहेण हरस्तस्या मत्वाशून्यंजगत्त्रयम् ॥ अतपद्धिमशैलस्य कन्दरेसिद्धसेविते ॥ १३ ॥ प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालंवसिष्यति ॥ तस्मात्सुतप्ततपसो भवितायोमहाप्रभुः ॥ १४ ॥ सभविष्यतिदैत्यस्य तारकस्यनिवारकः ॥ जातमात्रातुसादेवी स्वल्पसंज्ञैवभामिनी ॥ १५ ॥ विरहोत्कण्ठिताबाढं हरसङ्गमलालसा ॥ तयोस्सुतप्ततपसोस्संयोगःस्यात्सुगुप्तयोः ॥ १६ ॥ पार्वतीहरयोस्तस्मात्सुराणांशक्तिकारिणाम् ॥ विघ्नंत्वयाविधातव्यं यथाताभ्यांतथाशृणु ॥ १७ ॥ गर्भस्थितेथतान्देवीं स्वेनरूपेणरञ्जय ॥ ततोरहसिशर्वस्तांविभिन्नानन्दपूर्वकम् ॥ १८ ॥ भर्त्सयिष्यतिकालीति ततस्साकुपितासती ॥ प्रयास्यतितपःकर्तुं ततस्सातपसायुता ॥ १९ ॥ जनयिष्यतियंशर्वादिन्दुवज्ज्योतिमण्डलम् ॥ सभविष्यतिहन्तावै सुरारीणान्नसंशयम् ॥ २० ॥ त्वयापिदानवादेवि हन्तव्यालोकदुर्जयाः ॥ यावच्चनसतीदेहे सं

तपस्या किये व गुप्त पार्वती महादेवजी का संयोग होवेगा इस लिये उन दोनों के लिये तुमको जिस प्रकार देवताओं के शक्तिकारक विघ्न को करना चाहिये वैसेही सुनिये ॥ १६ । १७ ॥ कि गर्भ के स्थित होनेपर इसके अनन्तर तुम उन देवीजी को अपने रूपसे रंग देवो उसी कारण एकान्त में सदाशिवजी उनको बिन आनन्दपूर्वक ॥ १८ ॥ काली है इस कारण से निन्दा करैंगे तदनन्तर क्रोधित होती हुई वे तपस्या करने के लिये जावैंगी उसके उपरान्त तपस्यासे संयुत वे पार्वतीजी ॥ १९ ॥ शिवजी के सकाश से चन्द्रमा की नाईं जिस प्रकाशमंडलवाले पुत्र को पैदा करैंगी वह निस्संदेह देववैरियों का नाशक होगा ॥ २० ॥ व हे देवि !

तुमको भी मनुष्यों से दुर्जय दानवों को मारना चाहिये और जबतक सती जी के शरीर में घिरे हुये गुणगणोंवाला पुत्र उन शिवजी के संगम से न होगा तबतक
दैत्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसा करने पर कालीजी तप करैंगी ॥ २१ । २२ ॥ और समाप्तनियमोंवाली वे कालीजी जब गौरी होवैंगी तब पार्वतीजी तुमको
अपने रूपत्वको देवैंगी ॥ २३ ॥ उसी कारण तुम्हारी भी सहोदरी वे एक अंशरहित होवैंगी और रूप व अंश से रहित तुम पार्वती होवोगी ॥ २४ ॥ हे वरदायिनि !
बहुत भांति के आकारवाले भेदोंसे सर्वव्यापिनी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजैंगे ॥ २५ ॥ ॐकार मुखवाली ब्रह्म-

क्रान्तगुणसंचयः ॥ २१ ॥ तत्सङ्गमेनतावत्तु दैत्यवंशोभविष्यति ॥ एवंकृतेत्वयादेवि तपःकालीकरिष्यति ॥ २२ ॥ स
मासनियमासाच यदागौरीभविष्यति ॥ तदातुचैवसारूप्यंशैलजासम्प्रदास्यति ॥ २३ ॥ ततस्तवापिसहजा सैकानं
शाभविष्यति ॥ रूपांशेनचसंयुक्ता त्वमुमासंभविष्यसि ॥२४॥ एकानंशेतिलोकस्त्वां वरदेपूजयिष्यति ॥ भेदैर्बहुविधा
कारैस्सर्वगांकामसाधनीम् ॥२५॥ ॐकारवक्त्रागायत्रीत्वमेवब्रह्मचारिणी ॥ आक्रान्तरुचिराकारा राज्ञांचाहवशालिना
म् ॥ २६ ॥ विशान्त्वंकमलादेवि शूद्राणांजननीस्वयम् ॥ ज्ञानिनांज्ञेयरूपात्वं त्वङ्गतिस्सर्वदेहिनाम् ॥ २७ ॥ त्वञ्च
कीर्तिमतांकीर्तिस्त्वंभूतिस्सर्वदेहिनाम् ॥ रतिदारक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वंस्नेहवर्तिनाम् ॥ २८॥ त्वंशोभाकृतभूषाणांत्वं
शान्तिःशान्तिकर्मणाम् ॥ त्वंभ्रान्तिस्स्वल्पबोधानां त्वंकीर्तिःक्रमयाजिनाम् ॥२९॥ महावेलासमुद्राणां विलासस्त्वंवि

चारिणी गायत्री तुम्हींहो और युद्ध से शोभित राजाओं के घिरेहुये सुन्दर आकारवाली तुम्हीं हो ॥ २६ ॥ व हे देवि ! वैश्योंकी तुम लक्ष्मीहो और शूद्रोंकी आपही
माताहो व ज्ञानियों के जानने योग्य रूपवाली तुम्हींहो और सब शरीरधारियों की तुम गतिहो ॥ २७ ॥ और यशवाले जनोंकी तुम कीर्तिहो व समस्त शरीरधारियो
की तुम लक्ष्मीहो और अनुरागी चित्तवालों की प्रीतिदायिनी तुम्हींहो और स्नेहसे वर्तमान होनेवाले मनुष्योंकी प्रीति तुम्हींहो ॥ २८ ॥ और कियेहुये भूषणवाले जनो
की तुम शोभाहो व शान्तिकर्मवाले जनोंकी तुम शान्तिहो और थोड़े ज्ञानवाले जनोंकी तुम भ्रांतिहो व क्रमपूर्वक यज्ञ करनेवालोंकी तुम कीर्तिहो ॥ २९ ॥ व

समुद्रोंकी तुम महावेलाहो और विलासी जनोंका तुम विलासहो व पदार्थोंकी तुम उत्पत्तिहो और लोकों से शोभित जनोंकी तुम स्थितिहो ॥ ३० ॥ हे वरदायिनि, देवि ! इस भांति अनेक प्रकार के रूपोंसे तुम लोकों में पूजितहो और जो तुमको देखते हैं व जो पूजन करैंगे ॥ ३१ ॥ वे निश्चयकर सब मनोरथो को पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार ब्रह्मा से भलीभाति स्तुति कीहुई वे देवीजी उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ और वे एकानंशा महादेवी भी भक्ति से ध्यान करने योग्य हैं ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकानंशामाहात्म्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लासिनाम् ॥ सम्भूतिस्त्वंपदार्थानां स्थितिस्त्वंलोकशालिनाम् ॥ ३० ॥ इत्यनेकविधैर्देवि रूपैर्लोकेषुचार्चिता ॥ येत्वां पश्यन्तिवरदे पूजयिष्यन्तिवापिये ॥ ३१ ॥ तेसर्वकामानाप्स्यन्ति नियतन्नात्रसंशयः ॥ इत्येवंसासमुत्पन्ना ब्रह्मणास्स्तुतासती ॥ ३२ ॥ एकानंशामहादेवी ध्यातव्यासापिभक्तितः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेएकानंशामाहात्म्यन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि हरसिद्धिंसुसिद्धिदाम् ॥ पार्वत्याहरणेयत्र सिद्धिःप्राप्ताहरेणच ॥ १ ॥ बलिनौदानवौजातौ नाम्नाचण्डप्रचण्डकौ ॥ उत्साद्यत्रिदिवंसर्वं गिरिंकैलासमागतौ ॥ २ ॥ दृष्ट्वातत्रगिरीशन्तु उद्यताचैकहस्तकम् ॥ पिनाकंवरखट्वाङ्गं गृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ ३ ॥ देविदेवीतिजल्पन्तं दासस्तेस्मीतिवादिनम् ॥ यावदेकन्तुफलकं तावद्द्यूतंप्रवर्तताम् ॥ ४ ॥ ऋणीभूतेतदादेवेतौप्राप्तौदेवकण्टकौ ॥ उत्सादिताःशिवगणानन्दिनाप्रति

दो॰ । अहैं सुभग माहात्म्य युत देवी जिमि हरसिद्धि । सोइ बीस अध्यायमें वर्णित चरित प्रसिद्धि ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इसके उपरान्त उत्तम सिद्धिदायिनी हरसिद्धि देवीजी को कहूंगा जहा पर कि सदाशिव देवजी ने पार्वती के हरने में सिद्धि को पाया है ॥ १ ॥ चण्ड, प्रचण्ड नामक बली दानव हुये हैं वे सब स्वर्गको उजाड़ कर कैलास पर्वत पर आये ॥ २ ॥ वहां पर दाहिने हाथ में पिनाक धनुष व उत्तम खट्वांग को लेकर एक हाथमें उठाये हुये पांसा को लिये सदाशिवजी को देखकर ॥ ३ ॥ जो शिव कि हे देवि ! हे देवि ! ऐसा कहते हुये और जब तक एक पांसा है तबतक द्यूत (जुवा) वर्तमान होवै मै तुम्हारा दासहूं ऐसा कहते थे ॥ ४ ॥

उस समय सदाशिव देवजी के ऋणी होने पर देवताओं के कण्टकरूप वे दैत्य प्राप्त हुये और उन्होंने शिवगणों को क्लेशित किया और नन्दी ने उनको मना किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस समय उन्हों ने शूलों से नन्दीको विदीर्ण किया और दाहिने व बायें अंगसे साथही बहुत रक्त बहचला ॥ ६ ॥ उस समय सत्क्रियके पुत्र नन्दी जीको ताडित देखकर शिवजी से ध्यान की हुई वे देवी प्रणामकर आगे स्थित हुईं ॥ ७ ॥ और वे बड़े भारी दैत्य मारे जावैं शिवजी के ऐसा कहने पर वे देवी वचन बोलीं कि मैं मारती हूं जब उन देवीजी से पराक्रम से गर्वित वे दैत्य मारे हुये देखे गये ॥ ८ ॥ तब शिवजी ने उससे कहा कि हे चण्डि ! तुमने दुष्ट

षेधितौ ॥ ५ ॥ ततस्ताभ्यांतदानन्दी शूलाभ्यांप्रविदारितः ॥ समंसव्यदक्षिणाभ्यां सुस्रावरुधिरंबहु ॥ ६ ॥ नन्दिनंताडितंदृष्ट्वा तदासत्क्रियनन्दनम् ॥ ध्याताहरेणसादेवी प्रणताप्राक्ततःस्थिता ॥ ७ ॥ वध्यतान्तौमहादैत्यौ वधामीति वचोब्रवीत ॥ यदातयाहतौदृष्टौ दानवौबलगर्वितौ ॥ ८ ॥ हरस्तामाहहेचण्डि संहृतौदुष्टदानवौ ॥ हरसिद्धिरतोलोके नाम्नाख्यातिंगमिष्यसि ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतिसादेवीहरसिद्धिप्रदायिनी ॥ हरसिद्धिरितिख्याता महाकालेबभूवह ॥ १० ॥ यःपश्येत्परयाभक्त्या हरसिद्धिन्नरोत्तमः ॥ सोक्षयाल्लँभतेकामान् मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ११ ॥ आदिसिद्धिंमहादेवीं नित्यंव्योमस्वरूपिणीम् ॥ हरसिद्धिंप्रपश्येद्यस्सोभीष्टंलभतेफलम् ॥ १२ ॥ यःस्मरेद्धरसिद्धीति मन्त्रञ्चचतुरक्षरम् ॥ ॥ नवैरिणोभयंतस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ १३ ॥ नरोमहानवम्यांयोहरसिद्धिंप्रपूजयेत् ॥ महिषञ्चबलिंदद्यात्सम

दानवों का संहार किया इसलिये नाम से हरसिद्धि तुम प्रसिद्धिको प्राप्त होगी ॥ ९ ॥ तब से लगाकर हरसिद्धि को देनेवाली वे देवी महाकालवन में हरसिद्धि ऐसी प्रसिद्ध हुई हैं ॥ १० ॥ जो उत्तम मनुष्य हरसिद्धि देवीजी को परम भक्ति से देखता है वह अक्षय मनोरथों को प्राप्त होताहै और मर कर शिवपुर को जाता है ॥ ११ ॥ आदिसिद्धि व आकाशरूपिणी हरसिद्धि महादेवीजी को जो मनुष्य नित्य देखता है वह प्रिय मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ व जो मनुष्य हरसिद्धि ऐसे चार अक्षरोंवाले मंत्र को स्मरण करता है उसके शत्रु का भय नहीं होता है न दरिद्रता होती है ॥ १३ ॥ व महानवमी को जो मनुष्य हरसिद्धि को पूजता है और

भैंसे को बलि देता है वह पृथ्वी में राजा होता है ॥ १४ ॥ हे व्यास जी ! नवमी में पूजी हुई हरप्रिया हरसिद्धि देवीजी प्रसन्न होकर मनुष्यों को सदैव सम्पूर्ण फलको देती हैं ॥ १५ ॥ वे पुण्यरूपिणी हैं और वे पवित्र हैं तथा वे समस्त सुखों को देनेवाली हैं व स्मरण पूजन तथा दर्शन कीहुई वे देवी धन, पुत्र व सुखों को देनेवाली हैं ॥१६॥ हे व्यासजी ! महानवमी में जो महिषादिक मारे जाते हैं वे सब स्वर्ग की गति को प्राप्त होते हैं और मारनेवालों को पातक नहीं होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांहरसिद्धिमाहात्म्यंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ॥

वेद्भूपतिर्भुवि ॥ १४ ॥ नवम्यांपूजितादेवी हरसिद्धिर्हरप्रिया ॥ तुष्टान्नृणांसदाव्यास ददात्यनवमंफलम् ॥ १५ ॥ सापुण्यासापवित्राच सासर्वसुखदायिनी ॥ स्मृतासम्पूजितादृष्टा धनपुत्रसुखप्रदा ॥ १६ ॥ महानवम्यांयेव्यास हन्यन्ते महिषादयः ॥ सर्वेतेस्वर्गतिंयान्ति घ्नतांपापन्नविद्यते ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे हरसिद्धिमाहात्म्यन्नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ मासमेकन्नरोभक्त्या पश्येद्योवटयक्षिणीम् ॥ पूजयेत्स्वर्णपुष्पैश्च तस्यसिद्धिर्महीयते ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेवटयक्षिणीमाहात्म्यन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ पिशाचकेनरःस्नात्वा चतुर्दश्यांविशेषतः॥ तिलान्ददातियोभक्त्या नपिशाचःप्रजायते ॥१॥

दो० । वटयक्षिणि इमि भगवती कर माहात्म्य रसाल । इकीसवें अध्याय में सोइ चरित्र विशाल ॥ सनत्कुमार जी बोले कि जो मनुष्य भक्ति से एक महीने तक वटयक्षिणी भगवतीको देखताहै व धतूर के पुष्पों से पूजता है उसकी सिद्धि नहीं न्यून होती है ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवटयक्षिणीमाहात्म्यंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । अहै चतुर्दश यात्रा कर जिमि परम प्रभाव । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखपाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चौदसि तिथि मे पिशाचक तीर्थ में विशेष

कर नहाकर जो मनुष्य भक्तिसे तिलों को देताहै वह पिशाच नहीं होता है ॥ १ ॥ और जिससे उद्देश कर जो दियाजाता है वह बहुतही अक्षय होताहै और उसका वंश पिशाचता से छूटजाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ जिसके नाम से मनुष्य नहाता है वह पिशाचता से छूट जाता है और जो यहां दही समेत कुंभों व कमंडलुवों को देता है ॥ ३ ॥ उसकी निरंतरवाली मुक्ति होती है और उसके वंशमें प्रेत नहीं होता है व शिवभक्त जितेन्द्रिय नर शिप्रागुप्तेश्वरजी को देखकर ॥ ४ ॥ सब पापों से वैसेही छूट जाता है जैसे कि केंचुलि से सर्प छूटजाता है और स्नान कर बड़ी भक्ति से जो मनुष्य अगस्त्येश्वर जी को देखता है ॥ ५ ॥ हे

येनचोद्दिश्ययद्दत्तं तदक्षयतरंभवेत् ॥ तत्कुलंहिपिशाचत्वान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ २ ॥ यस्यनाम्नानरःस्नाति पिशाचत्वात्समुच्यते ॥ कुम्भान्वाकरकान्वापि योत्रदद्यात्समण्डकान् ॥ ३ ॥ तस्यवैशाश्वतीमुक्तिः कुलेप्रेतोनजायते ॥ शिप्रागुप्तेश्वरंदृष्ट्वा रुद्रभक्तोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ॥ स्नात्वागस्त्येश्वरंपश्येद्योतिभक्त्याथमानवः ॥ ५ ॥ त्यक्त्वायमगृहंव्यासरुद्रलोकंसगच्छति ॥ शिप्रायांयोनरःस्नात्वा पश्येड्ढुण्ढेश्वरंशिवम् ॥ ६ ॥ सोश्वमेधफलंव्यासलभतेनात्रसंशयः ॥ देवेनात्रपुराव्यास वादितोडमरुर्यतः ॥ ७ ॥ देवस्तेनसमाख्यातो नाम्नाडमरुकेश्वरः ॥ भक्त्यापश्येन्नरोयस्तु देवंडमरुकेश्वरम् ॥ ८ ॥ नैवव्याधिभयंतस्य मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ अनादिकल्पेशंयस्तु भक्त्यापश्यतिमानवः ॥ ९ ॥ राज्यंसलभतेस्वर्गे यथादेवःपुरन्दरः ॥ देवानामप्यसौव्या

व्यासजी ! वह यमराज के मन्दिर को छोड़कर शिवलोक को जाताहै व शिप्रा नदी में नहाकर जो मनुष्य ढुण्ढेश्वर शिवजी को देखताहै ॥ ६ ॥ हे व्यासजी ! वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जिस लिये सदाशिवदेवजी ने यहां डमरू को बजाया है ॥ ७ ॥ उसी से डमरुकेश्वर ॥ मक शिवदेवजी कहे गये हैं जो मनुष्य भक्तिसे डमरुकेश्वर देवजी को देखता है ॥ ८ ॥ उसके रोगों का डर नहीं होता है और मरकर वह शिवलोक को जाता । मनुष्य भक्ति से अनादिकल्पेश जी को देखता है ॥ ९ ॥ वह स्वर्ग के राज्य को प्राप्त होताहै जैसे कि इन्द्र देवजी हैं और हे व्यासजी ! यह पुरुष देव-

ताओं के भी ईर्षा करने योग्य होता है ॥ १० ॥ और कुछ अधिक सौ कल्पों तक सुखों से युक्त होकर आनन्द करता है और जो सिद्धेश्वर वीरभद्र व चण्डिकाजी को देखता है ॥ ११ ॥ वह मनुष्य यहीं पर सिद्धि को प्राप्त होता है व सब कहीं जीत को प्राप्त होता है और त्रिविष्टपतीर्थ में नहाकर स्वर्णजालेश्वरजी को देखकर ॥ १२ ॥ धतूर से शिवदेवजी को पूजता है वह सब पापों से छूटजाता है और स्नान कर जो मनुष्य भक्ति से कर्कटेश्वर शिवजी को देखता है ॥ १३ ॥ उस को सर्प से डर नहीं होता है और न दरिद्रता होती है और जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे सनातनी माया को देखता है ॥ १४ ॥ विष्णुजी की माया से छूटकर वह परम

स स्पर्द्धनीयस्सदाभवेत् ॥ १० ॥ कल्पकोटिशतंसाग्रं भोगयुक्तस्तुमोदते ॥ पश्येत्सिद्धेश्वरंयस्तु वीरभद्रञ्चचण्डिकाम् ॥ ११ ॥ सोत्रैवलभतेसिद्धिं जयंसर्वत्रमानवः ॥ स्वर्णजालेश्वरंदृष्ट्वा स्नात्वातीर्थेत्रिविष्टपे ॥ १२ ॥ स्वर्णेनपूजयेद्देवं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ स्नात्वापश्येन्नरोभक्त्या यःशिवंकर्कटेश्वरम् ॥१३॥ सर्पतोनभयंतस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ यःपश्येत्परयाभक्त्या महामायांसनातनीम् ॥ १४ ॥ विष्णुमायाविनिर्मुक्तस्सयातिपरमंपदम् ॥ अर्चयेत्परयाभक्त्या यःकपालेश्वरन्नरः ॥१५॥ समुच्यतेमहापापैर्यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ स्वर्गद्वारेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वादेवञ्चभैरवम् ॥ १६ ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य शतयज्ञफलंलभेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे चतुर्दशयात्रानामद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रिदशपूजितम् ॥ हनुमत्केश्वरन्नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥

पद को प्राप्त होता है और जो मनुष्य उत्तम भक्ति से कपालेश्वर देवजी को देखता है ॥ १५ ॥ वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि महापातकों से छूट जाता है और स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य भैरवदेवजी को देखकर ॥ १६ ॥ उन देव के दर्शन से सौ यज्ञों के फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्दशयात्रानामद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । हनुमत्केश्वरलिंगको थाप्यो जिमि हनुमान । तेइसवें अध्यायमें सोई कीन बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इस के अनन्तर देवताओं से पूजित व भुक्ति

मुक्ति को देनेवाले अन्य हनुमत्केश्वर नामक देवजी को कहूंगा ॥ १ ॥ जो मनुष्य शिवजी के तड़ाग में नहाकर हनुमत्केश्वरजी को देखता है वह करोड़ों हज़ार वर्षों तक पवनलोक में प्रसन्न रहता है ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातन समय तुम ने जिन हनुमत्केश्वरजी को कहा है इनकी पुरातन समय वर्तमान होनेवाली सनातनी कथा को कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्रिलोक का कण्टकरूप रावण नामक राक्षस श्रीरामचन्द्ररूपी विष्णुजी से लंकापुरी में मारा गया है ॥ ४ ॥ उस दुष्ट को मारकर श्रीरामजी श्रीजानकीजी को लेकर ऋक्षों व वानरों समेत अपनी पुरी को आये हैं ॥ ५ ॥ वहां राज्य को

शैवेसरसियःस्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ॥ कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोकेसमोदते ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ हनुमत्केश्वरोयस्तु ह्युक्तःपूर्वस्त्वयानघ ॥ कथांकथयह्येतस्य व्रतपूर्वांसनातनीम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ त्रैलोक्यकण्टकःपूर्वो रावणोनामराक्षसः ॥ विष्णुनारामरूपेण लङ्कायांविनिपातितः ॥ ४ ॥ घातयित्वातुतन्दुष्टं सीतामादायजानकीम् ॥ वानरैस्सहऋक्षैश्च नगरींस्वामुपागतः ॥ ५ ॥ तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिःपरिवारितः ॥ कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६ ॥ पृष्टोधिकोद्वयोर्वापि शम्भुवातजयोस्तुकः ॥ तदादाशरथिंप्राह अगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौर्येमहेश्वरः ॥ ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ८ ॥ एवंश्रुत्वाथहनुमान्यच्छिवेनोपमामम ॥ कृतामुनिवरेणेह प्रत्यक्षंराघवस्यहि ॥ ९ ॥ गमिष्येनगरींलङ्कां लिङ्गमेकंप्रयाचितुम् ॥ राक्षसेन्द्रं

प्राप्त होकर उन श्रीरामचन्द्रजी को ऋषियों ने घेर लिया और कथाओं के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी से ॥ ६ ॥ पूंछा कि शिव व पवनसुत हनूमान्जी इन दोनों के मध्य में कौन अधिक है उस समय मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥ ७ ॥ कि जैसे युद्ध व शूरता में महादेवजी उपमारहित हैं वैसेही पवनपुत्र हनुमान् जी जानने योग्य हैं मैं तुम से यह सत्य कहता हूं ॥ ८ ॥ इस प्रकार सुनकर इसके उपरान्त हनुमान् जी बोले कि जिस लिये यहां मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने श्रीरामचन्द्रजी के सामने मेरी उपमा शिवजीसे किया ॥ ९ ॥ इस लिये महाभाग्यवान् व पापरहित तथा राक्षसोंके राजा

विभीषण जी से एक लिंग को मांगने के लिये मैं लंकापुरी को जाऊंगा ॥ १० ॥ तदनन्तर लंका को गये हुये वे हनुमान्जी विभीषण से बोले कि हे महाभाग ! मुझको तुम एक उत्तम लिंग को देओ ॥ ११ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषण ने कहा कि रुचि के अनुसार इस को ग्रहण कीजिये ये छह लिंग रावण के थापे हुये हैं ॥ १२ ॥ मेरे भाई महात्मा रावण ने त्रिलोक को जीतने के पहले इनको थापा है हे सुव्रत ! इन में तुमको जो प्रिय हो उस लिंग को कहिये ॥ १३ ॥ हे वानर ! उस को मैं तुमको आजही दूंगा यह सत्य है तदनन्तर हनुमान्जीने मोती के समान लिंगको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ व कहा कि हे अनघ,वीर ! जो यह लिंग देख पडता

महाभागं विभीषणमकल्मषम् ॥ १० ॥ ततोगतस्सलङ्कायां विभीषणमुवाचह ॥ देहिमेत्वंमहाभाग लिङ्गमेकञ्चशोभनम् ॥ ११ ॥ उक्तश्चराक्षसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथारुचि ॥ एतानिषड्वैलिङ्गानि रावणस्थापितानिवै ॥ १२ ॥ त्रैलोक्यविजयात्पूर्वं ममभ्रात्रामहात्मना ॥ एतेषुयदभीष्टन्ते लिङ्गंकथयसुव्रत ॥ १३ ॥ तत्प्रयच्छामितेद्यैव सत्यमेतत्प्लवङ्गम ॥ ततोजग्राहहनुमाल्लिँङ्गंमौक्तिकसन्निभम् ॥ १४ ॥ यदेतद्दृश्यतेवीर तत्पप्रच्छममानघ ॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यमथोवाचविभीषणः ॥ १५ ॥ दत्तमेतन्महावीर लिङ्गंयत्कृतवानसि ॥ श्रूयतेहिपुरावृत्तं लिङ्गमेतद्धनेश्वरः ॥ १६ ॥ रुद्रभक्त्यासमायुक्तस्त्रिकालमप्यपूजयत् ॥ रावणेनयदाबद्धस्तदानींहिधनेश्वरः ॥ १७ ॥ लिङ्गस्यास्यप्रभावेण विमुक्तस्समपद्यत ॥ प्रसादात्तस्यलिङ्गस्य धनेशोधनरक्षकः ॥१८॥ गृहीत्वातन्महालिङ्गं स्वस्थोजातोथवानरः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ गृहीत्वातुततोलिङ्गं प्रस्थितोविमलेम्बरे ॥ १९ ॥ सप्तमेदिवसेचैव सम्प्राप्तोवन्तिकांपुरीम् ॥ संस्थाप्यरुद्रसरस

है उसको मुझे दीजिये हनुमान् जी का वचन सुनकर इसके अनन्तर विभीषणजी बोले ॥ १५ ॥ कि हे महावीर ! जिस लिंग को तुमने मागा है यह दिया गया पुरातन का वृत्तांत सुना जाता है कि शिवजी की भक्ति से संयुक्त धनेश कुबेरजी ने इस लिंग को त्रिकाल में भी पूजा है जब रावण ने कुबेर को बांधा है ॥१६।१७॥ तब इस लिंगके प्रभाव से छूटे हुये प्राप्त होगये और उस लिंगके प्रभावसे धनेश कुबेरजी धनके रक्षक हुये हैं ॥ १८ ॥ इस के अनन्तर उस महालिंग को लेकर वानर हनुमान्जी स्वस्थ हुये सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर उस लिंग को लेकर हनुमान्जी निर्मल आकाश में चले ॥ १९ ॥ और सातवें दिन अवन्तीपुरी

में प्राप्त हुये और रुद्रतडाग के किनारे उसको भलीभांति धरकर उन्हों ने स्नान किया ॥ २० ॥ और महाकालजी के पूजन के लिये गमन को चिन्तन किया और उस लिंग को उठाने की इच्छावाले वे उठाने के लिये न समर्थ हुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर विशेषता से टिके हुये शिवदेवजी उन पवनपुत्र हनुमान्जी से बोले कि हे हनुमान्जी ! इस क्षेत्र में तुम अपने नाम से थापकर पूजन करो ॥ २२ ॥ और संसार में यह हनुमत्केश्वर लिंग प्रसिद्ध होगा पवनपुत्र हनुमान्जी ने पर्वत की नाई ऊंचे लिंग को स्थापित किया ॥ २३ ॥ जो मनुष्य शनिवार को हनुमत्केश्वर शिवजी को देखता है उसके शत्रुका भय नहीं होता है और समर में वह जीतको

स्तीरेस्नानमथाकरोत् ॥२०॥ महाकालस्यपूजार्थंगमनंप्रत्यचिन्तयत् ॥ उद्धर्तुकामस्तल्लिङ्गमुद्धर्तुंन्नशशाकसः॥२१॥ ततोऽव्यवस्थितोदेवः प्राहतंवायुनन्दनम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेहनूमंस्त्वं स्वनाम्नास्थाप्यपूजय ॥ २२ ॥ हनुमत्केश्वरश्चाथ लोकेख्यातंभविष्यति ॥ शैलवच्चोन्नतंलिङ्गं स्थापितंवायुसूनुना ॥२३॥ शनौपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वरंशिवम् ॥ तस्यशत्रुभयन्नास्ति संग्रामेजयमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ नचचौरभयंतस्य नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ तैलाभिषेकंयःकुर्याद्धनुमत्केश्वरंशिवम् ॥ २५ ॥ तस्यरोगाःप्रलीयन्ते ग्रहपीडानजायते ॥ येपश्यन्तिनराभक्त्या तेषांमोक्षोभविष्यति ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेहनुमत्केश्वरमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यमेश्वरन्तुयःपश्येत्स्नापयित्वातिलाम्भसा ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्य पूजयेदुत्पलैस्ततः॥१॥

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ और उसके चोरों का भय नहीं होता है व न दरिद्रता होती है और न दुर्गति होती है जो मनुष्य हनुमत्केश्वर शिवजी के तैल का अभिषेक करता है ॥ २५ ॥ उसके रोग नाश होजाते हैं व ग्रहों की पीडा नहीं होती है व जो मनुष्य भक्ति से देखते हैं उनका मोक्ष होगा ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णननामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहै यथा माहात्म्य युत सुभग यमेश्वर देव । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदेव । सनत्कुमारजी बोले कि तिल मिले हुये जलसे स्नान कराकर जो

मनुष्य यमेश्वरजी को देखता है और कुंकुम से भलीभांति लेपन कर तदनन्तर कमलोंसे पूजन करता है ॥ १ ॥ व कालागुरु को जलाता है और तिलों व चावलों को देता है व जो मनुष्य त्रिशूल हाथवाले सदाशिव देवजीको इस प्रकार पूजताहै ॥ २ ॥ जहां कहीं मरे हुये भी उस पुरुष के यमराज पिता के समान होते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो॰ । अति उत्तम माहात्म्य युत तीर्थ रुद्रसर नाम । पचीसवें अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! मैं तीर्थों में उत्तम श्रेष्ठ

दहेत्कृष्णागुरुंधूपं दापयेत्तिलतण्डुलान् ॥ यएवमर्चयेद्देवमीश्वरंशूलहस्तकम् ॥ २ ॥ यत्रकुत्रमृतस्यापि यमःपितृ समोभवेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे यमेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥
सनत्कुमारउवाच ॥ कथयामिपरंव्यास तीर्थंतीर्थेषुचोत्तमम् ॥ नाम्नारुद्रसरःप्रोक्तं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पश्येत्कोटिवरंशिवम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ श्राद्धंतत्रैवकृत्वातु शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ दशानामश्वमेधानांवाजपेयशतस्यच ॥ ३ ॥ फलंकोटिगुणंव्यास लभतेनात्रसंशयः ॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते ॥ ४ ॥ तत्सर्वंकोटिगुणितं जायतेनात्रसंशयः ॥ कोटितीर्थेनरस्स्नात्वा ध्यायेद्यःपरमाक्षरम् ॥ ५ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो निर्मोकेनयथोरगः ॥ प्रातरुत्थाययोविप्र तत्रस्नानंकरोतिवै ॥ ६ ॥ दृष्ट्वादेवं

तीर्थ को कहता हू जो कि नाम से रुद्रसर ऐसा कहा हुआ तीनों लोकों में प्रसिद्धहै ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य कोटिवर शिवजी को देखता है वह सब पापों से छूटता है और शिवलोक को जाता है ॥ २ ॥ और वहीं श्राद्धकर जिस फल को प्राप्त होता है उसको सुनिये कि हे व्यासजी ! वह दश अश्वमेधों के व सौ वाजपेय यज्ञों के कोटिगुने फल को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है पितरोंको उद्देशकर जो कुछ कोटितीर्थ में दियाजाताहै ॥ ३।४॥ वह सब कोटिगुना है इस में सन्देह नहीं है कोटितीर्थ में नहाकर जो मनुष्य परमाक्षर को ध्यान करता है ॥ ५ ॥ वह सब पापों से छूटजाता है जैसे कि केंचुलिसे साँप

छूटजाता है हे विप्र जी ! प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य उसमें स्नान करता है ॥ ६ ॥ वह महाकाल शिव देवजी को देखकर हज़ार गोदान के फल को प्राप्त होता है और कोटितीर्थ में नहाकर सात रात्रियों तक उपास किये पवित्र ॥ ७ ॥ पुरुष हज़ार चान्द्रायण व्रत के फलको प्राप्त होता है और जो पुरुष वहां जागरण करता है वह अनन्त फल को भोगता है ॥ ८ ॥ और उपवास समेत जितेन्द्रिय जो पुरुष महा स्नानपूर्वक चन्दन व पुष्पों से पूजन कर इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करता है ॥ ९ ॥ वह समस्त मनोरथ को प्राप्त होता है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है वहां कार्त्तिकी व वैशाखी में शिवदेवजी को समय में उपजे हुये गंध पुष्पों से व

महाकालं गोसहस्रफलंलभेत् ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा सप्तरात्रोषितश्शुचिः ॥ ७ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलंप्राप्नोति मानवः ॥ जागरंतत्रकुर्याद्यो ह्यनन्तंफलमश्नुते ॥ ८ ॥ गन्धपुष्पार्चनंकृत्वा महास्नपनपूर्वकम् ॥ यएवंनयतेरात्रिं सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ ९ ॥ लभतेसर्वकामित्वं यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ कार्त्तिक्यामथवैशाख्यां देवंतत्रप्रपूजयेत् ॥१०॥ गन्धपुष्पैश्चकालीनैस्तथावस्त्रैस्सुशोभनैः ॥ कर्पूरंकुसुमंचैव श्रीखण्डमगुरुंतथा ॥ ११ ॥ समभागानिकृत्वातु शिलापृष्ठेचपेषयेत् ॥ अनुलिप्यमहाकालं रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे रुद्रसरमाहात्म्यन्नामपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथयात्रांप्रवक्ष्यामि महाकालस्ययत्नतः ॥ शिवश्रेयस्करींपुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥१॥ स्नात्वासरसिरुद्रस्य दृष्ट्वाकोटीश्वरंशिवम् ॥ नमस्कृत्यततोगच्छेन्महाकालंसनातनम् ॥ २ ॥ गन्धैःपुष्पैर्नमस्कारै

सुन्दर बसनों से पूजन करै और कपूर, कुसुम, चन्दन व अगुरु ॥ १० । ११ ॥ इनको बराबर भागवाले कर पत्थरके पृष्ठ पै पीसै और महाकाल जी के अनुलेपन कर शिवजी का दास होवै ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्रसरमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥

दो० । महाकाल शिवदेवकी यात्रा कर सुविधान । छब्बिसवें अध्याय में कीन्हों चरित बखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इस के अनन्तर यत्न से महाकालजी की यात्रा को कहता हूं जो कि कल्याण व पुण्यकारिणी तथा पवित्र व पवित्रलोकों को देनेवाली है ॥ १ ॥ रुद्रसर में नहाकर व कोटीश्वर शिवजी को देखकर

व प्रणाम कर तदनन्तर सनातन महाकालजी के समीप जावै ॥ २ ॥ और चन्दन व पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदशेश्वर जी को भलीभांति पूजकर व प्रणामकर
तदनन्तर कपालमोचन देवजी के समीप जावै ॥ ३ ॥ वहां पर देवदेवेश शिवजीने पृथ्वी में कपाल को धरा है कपाल धरने पर उसी क्षण समस्त पातकों का नाशक
कपालमोचन नामक उत्तम लिंग हुआहै और वहांपर सौ पल घी से स्नान करावै ॥ ४।५ ॥ या वित्तशाठ्यसे रहित पुरुष उसके आधेसे आधे भागकरके व चौथाई भाग
से स्नानकरावै तो हे द्विजेन्द्र ! वह पुरुष पूर्ण समयमें शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रणामकर उत्तम कपिलेश्वरको जावै उन देवजी के दर्शनसे ब्रह्मघाती

स्सम्पूज्यत्रिदशेश्वरम् ॥ प्रणिपत्यततोगच्छेद्देवंकपालमोचनम् ॥ ३ ॥ तत्रवैदेवदेवेशः कपालंन्यस्तवान्क्षितौ ॥ क
पालेतत्क्षणान्न्यस्ते तत्राभूल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥ कपालमोचनन्नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्रवैस्नपनंकुर्यादाज्यंपल
शतन्तुवै ॥ ५ ॥ तदर्धार्धेनपादेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ कालेपूर्णेसविप्रेन्द्र शिवलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ नमस्कृत्यत
तोगच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य मुच्यतेब्रह्मघातकः ॥ ७ ॥ हनुमत्केश्वरन्देवं ततोगच्छेत्समाहि
तः ॥ ऐश्वर्यमतुलंव्यास दर्शनादस्यजायते ॥ ८ ॥ ततोगच्छेन्महादेवं पिप्पलादंसनातनम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मु
क्तिःस्याद्द्विजसत्तम ॥ ९ ॥ स्वप्नेश्वरंततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ दर्शनादस्यदेवस्य दुःस्वप्नञ्चविनश्यति ॥ १० ॥
ततोगच्छेन्महादेवमीशानंविश्वतोमुखम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण विश्वस्यैवपतिर्भवेत् ॥ ११ ॥ सोमेश्वरन्ततोगच्छेज्जि
तक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ कुष्ठरोगादिदोषेभ्यो दर्शनादस्यमुच्यते ॥ १२ ॥ वैश्वानरेश्वरंव्यास ततोगच्छेत्समाहितः ॥

मुक्त होजाता है ॥ ७ ॥ तदनन्तर सावधान चित्तवाला पुरुष हनुमत्केश्वरको जावै हे व्यास जी ! इन के दर्शन से अतुल ऐश्वर्य होता है ॥ ८ ॥ तदनन्तर हे द्विजो-
त्तम ! सनातन पिप्पलाद महादेव जी के समीप जावै जिनके दर्शनही से मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धा से संयुत पुरुष स्वप्नेश्वर को जावै इस
देवता के दर्शन से दुःस्वप्न नष्ट होजाता है ॥ १० ॥ तदनन्तर विश्वतोमुख ईशान महादेव जी को जावै कि जिनके दर्शन ही से संसार भर का स्वामी होता है ॥ ११ ॥
तदनन्तर क्रोध को जीते हुये जितेन्द्रिय पुरुष सोमेश्वर जी के समीप जावै इनके दर्शन से मनुष्य कुष्ठ रोगादिकों के दोषों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ तदनन्तर

हे व्यासजी ! सावधान होता हुआ पुरुष वैश्वानरेश जीके समीप जावै उनके दर्शन से उस मनुष्य की सदैव बढ़ती होती है ॥ १३ ॥ तदनन्तर बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) हाथ वाले लकुलीश्वर जी के समीप जावै उनके दर्शन से रुद्रत्व होता है इस में संदेह नहीं है ॥ १४ ॥ तदनन्तर उत्तम गणपेश्वरजी के समीप जावै जिन के दर्शनही से समस्त सिद्धियां होती हैं ॥ १५ ॥ सिद्धियों के कारण याचना कियेहुये सदैव देवताओं से पूजित हुये हैं उस कारण ये अभ्यर्थित पूरक विघ्ननायक प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वयोवृद्ध सनातन महाकालजी के समीप जावै उनके दर्शन से न रोग होता है न वृद्धता होती है और न व्याधि होती है इसमें सन्देह

तस्यवृद्धिस्सदालोके जायतेतस्यदर्शनात् ॥ १३ ॥ बीजपूरकहस्तन्तु लकुलीशंततोव्रजेत् ॥ रुद्रत्वंदर्शनात्तस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ १४ ॥ ततोगच्छेन्महादेवं गणपेश्वरमुत्तमम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण जायन्तेसर्वसिद्धयः ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितस्सदादेवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ॥ तेनाभ्यर्थितपूरोयं विख्यातोविघ्ननायकः ॥ १६ ॥ वयोवृद्धंततोगच्छेन्महाकालंसनातनम् ॥ नरोगोनजराव्याधिर्दर्शनान्नात्रसंशयः ॥ १७ ॥ विघ्ननाशंततोगच्छेत्प्राणीशन्देवमुत्तमम् ॥ स्नानंशतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्यासमाहितः ॥ १८ ॥ तस्यचैवकृतेस्नाने लभ्यन्तेसर्वसिद्धयः ॥ स्वर्गश्चापिसदाव्यास दर्शनात्तस्यजायते ॥ १९ ॥ मार्गगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणिंततोव्रजेत् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकोनदृश्यते ॥ २० ॥ पुष्पदन्तंततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २१ ॥ गुह्यंचैवमहाकालं ततोगच्छेत्समाहितः ॥ यस्यदर्शनमात्रेणगुह्यपापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ ततोगच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासेश्वरमुत्तमम् ॥ यस्य

नहीं है ॥ १७ ॥ तदनन्तर उत्तम प्राणीश विघ्ननाशक देवजी के समीप जावै व सावधान होता हुआ पुरुष सौ घड़ों से उनका स्नान करावै ॥ १८ ॥ क्योंकि उनके स्नान कराने पर समस्त सिद्धियां मिलती हैं व हे व्यासजी ! इनके दर्शन से स्वर्गभी होता है ॥ १९ ॥ तदनन्तर मार्ग में प्राप्त दण्डपाणि जी को उल्लंघन कर उनके समीप जावै कि जिनके दर्शनमात्र से यमलोक नहीं देखा जाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धासंयुक्त पुरुष पुष्पदन्तजी के समीप जावै जिनके दर्शन ही से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर सावधान होता हुआ पुरुष गुह्य महाकाल जी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से पुरुष गुप्त पातकों से

छूट जाता है ॥ २२ ॥ तदनन्तर समाधि में स्थित मनुष्य उत्तम दुर्वासेश्वरजी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य कृतकृत्य होजाता है ॥ २३ ॥ और दुर्वासेश्वर जीके समीप श्वास को रोंककर और महादुर्गा गौरीजी के समीप जाकर इसके अनन्तर श्वास को छोड़ै ॥ २४ ॥ वहां ऊर्ध्व श्वासको छोड़ना चाहिये और सावधान होता हुआ मनुष्य उन भगवती को पूजै तदनन्तर देवदेव कालेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २५ ॥ जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है तदनन्तर देवदेव बधिरेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २६ ॥ जिनके दर्शनही से बधिरता नहीं होती है तदनन्तर यात्रा के पूर्ण फल को देनेवाले यात्रे-

दर्शनमात्रेण कृतकृत्योनरोभवेत् ॥ २३ ॥ श्वासावरोधनंकृत्वा दुर्वासस्यसमीपतः ॥ गौरीङ्गत्वामहादुर्गां त्यजेच्छ्वासमनन्तरम् ॥ २४ ॥ तत्रोच्छ्वासोविमोक्तव्यस्तामर्चेत्सुसमाहितः ॥ कालेश्वरन्ततोगच्छेद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ २५ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकन्नपश्यति ॥ बधिरेशंततोगच्छेद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ २६ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण बधिरत्वन्नजायते ॥ यात्रेश्वरन्ततोगच्छेद्यात्रापूर्णफलप्रदम् ॥ २७ ॥ कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थानंगोत्रञ्चतत्रवै ॥ नकीर्तयेद्यदानाम सायात्राविफलीभवेत् ॥ २८ ॥ देवस्याग्रेततोव्यास उपविश्यसमाहितः ॥ भक्तियुक्तःस्तुतिंब्रूयान्नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥ २९ ॥ मयासमर्पितायात्रात्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ संसारसागराद्घोरान्मामुद्धरजगत्पते ॥ ३० ॥ अनेनविधिनायस्तु महाकालंप्रदक्षयेत् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ३१ ॥ गोलक्षंद्विजवर्य्याय दत्त्वायल्लभतेफलम् ॥ तत्फलंदेवदेवस्य सकृत्कृत्वाप्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ भक्त्यापरमयायुक्तो महाकालंप्रदक्षयेत् ॥ पदेपदेयज्ञफलमितिमेश

श्वरजी के समीप जावै ॥ २७ ॥ और वहां पर अपने नाम व स्थान व गोत्र को कहै यदि नाम न कहै तो वह यात्रा निष्फल होती है ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे व्यास जी ! सावधान होता हुआ भक्तिसंयुक्त पुरुष उन देव के आगे बैठकर व बार २ प्रणाम कर स्तुति कहै ॥ २९ ॥ कि हे महेश्वरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने यात्रा को समर्पण किया हे जगदीश्वरजी ! भयकर संसारसागर से मुझको उधारिये ॥ ३० ॥ इस विधि से जो मनुष्य महाकाल जी की प्रदक्षिणा करता है उस से सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ ३१ ॥ द्विजोत्तम के लिये लाख गौवों को देकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त होता है उस फलको देवदेव महाकालजी की एक

बार प्रदक्षिणा करके पाता है ॥ ३२ ॥ बड़ी भक्ति से संयुक्त जो पुरुष महाकालजीकी प्रदक्षिणा करता है उसको पग२ पै यज्ञ का फल होता है यह मुझसे सदाशिव जी ने कहा है ॥ ३३ ॥ यहा पर यात्रेश्वर जी के पूजन से साठ करोड़ हज़ार व साठ करोड़ सौ लिंग पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥ शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष इस प्रकार यात्रा को करता है और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देता है उसके पुण्य के फलको सुनिये ॥ ३५ ॥ कि वह सात जन्मों में कियेहुये पातक से छूट जाताहै इस में सन्देह नहीं है इस प्रकार यात्रा को समाप्त कर इसके अनन्तर मनुष्य अपने घरको जाकर ॥ ३६ ॥ यात्रा के देवताओं की संख्यावाले शिवभक्त तथा शिवजी

ङ्करोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ पूजितानिभवन्त्यत्र यात्रेश्वरसमर्चनात् ॥ ३४ ॥ यए वंकुरुतेयात्रां शिवध्यानपरायणः ॥ सवस्त्रान्दक्षिणांदद्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ३५ ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ॥ एवंयात्रांसमाप्याथ गत्वाचस्वगृहन्नरः ॥ ३६ ॥ यात्रादैवतसंख्यान्वै षड्विंशतिद्विजोत्तमान् ॥ भोजये च्छिवभक्तांश्च शिवध्यानपरायणान् ॥ ३७ ॥ सवस्त्रांदक्षिणांदत्त्वा प्राप्यानुज्ञांविसर्जयेत् ॥ यात्राक्रमेणचैकैकं तीर्था न्तरमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥ धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ धेनुंपयस्विनींदद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ३९ ॥ भुञ्जीताथस्वयंव्यास सर्वभृत्यसमन्वितः ॥ दीनानाथदरिद्रान्धविकलांश्चापिभोजयेत् ॥ ४० ॥ यदत्रफलमुद्दिष्टं त द्दामश्शृणुष्वमे ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहितः ॥ ४१ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोकेसमोदते ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेमहाकालयात्रामाहात्म्यंनामषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥

के ध्यान में परायण छब्बीस द्विजोत्तमों को भोजन करावै ॥ ३७ ॥ और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देकर व आज्ञापाकर बिदाकरै व यात्रा के क्रम से एक एक तीर्थ के अन्तर से पश्चात् जावै ॥ ३८ ॥ और पश्चात् वित्तशाठ्य से वर्जित नर धर्मोपदेशक तीर्थ में सब उपस्करों से संयुत दूधवाली गऊ को देवै ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर हे व्यासजी ! समस्त सेवकों समेत आप भी भोजन करै और दीन, अनाथ, निर्धनी, अन्ध व विकल मनुष्यों को भी भोजन करावै ॥ ४० ॥ यहांपर जो फल

कहागया है उसको कहता हूं तुम मुझसे सुनो कि वह सावधान चित्तवाला पुरुष माता व पिताके सौकुलों को उद्धारकर कराड़ों हज़ार कल्पोंतक शिवलोकमें प्रसन्न रहता है ॥ ४१ । ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालयात्रामाहात्म्यवर्णनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❁ ॥

दो० । बाल्मीकि पूज्यो यथा बाल्मीकेश्वर देव । सत्ताइस अध्याय में सोई चरित सुभेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! मौन व ध्यान में तत्पर होकर जो पुरुष भक्ति से बाल्मीकेश्वर देवजी को पूजै वह उत्तम कवित्व को प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यहां वे कैसे उत्पन्न हुये हैं और बाल्मीकेश्वर स्वामी कौन हैं कि जिनके दर्शनही से कवित्व होता है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! पुरातन समय भृगुवंश में उपजे हुये सुमति नामक ब्राह्मण हुये हैं और रूप व

सनत्कुमारउवाच ॥ बाल्मीकेरीश्वरंव्यास भक्त्यादेवंप्रपूजयेत् ॥ मौनीध्यानपरोभूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ कथमत्रसमुत्पन्नो कोबाल्मीकेश्वरःप्रभुः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ आसीद्व्यासपुराविप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः ॥ रूपयौवनसम्पन्ना तस्यभार्याथकौशिकी ॥ ३ ॥ तस्यपुत्रः समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मेतिनामतः ॥ सपित्राप्रोच्यमानोपि वेदाभ्यासंनमन्यते ॥ ४॥ ततोवहुतिथेकाले अनावृष्टिरजायत ॥ तदापिबहवश्चासौ दक्षिणामाश्रितोदिशम् ॥ ५॥ ततोसौसुमतिर्विप्रः सभार्यःससुतस्तथा ॥ विदिशंकाननंप्राप्तः कृत्वाचाश्रममाश्रितः ॥ ६ ॥ आभीरैर्दस्युभिःसार्द्धं सङ्गोभूदग्निशर्मणः ॥ आगच्छतियथातेन यस्तंहन्तिसपापकृत ॥ ७ ॥ स्मृतिर्नष्टागतावेदा गतंगोत्रंगताश्रुतिः ॥ कस्मिंश्चिदथकालेतु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ ८ ॥ सप्तर्षयःपथा

यौवन से सम्पन्न कौशिकी नामक उनकी स्त्री हुई है ॥ ३ ॥ उनके अग्निशर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है पिता से कहा जाता हुआ भी वह वेदाभ्यास को नहीं मानता था ॥ ४ ॥ तदनन्तर बहुत दिनोंवाले समय में अनावृष्टि हुई उस समय भी बहुत से मनुष्य व यह दक्षिण दिशा में आश्रित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्त्रियों समेत व पुत्रों सहित यह सुमति ब्राह्मण विदिशा में वनको प्राप्त होकर आश्रम बनाकर स्थित हुआ ॥ ६ ॥ और अहीरों व चोरों के साथ अग्निशर्मा का संग हुआ उस रस्ता से जो आताथा उसको वह पापकारी अग्निशर्मा मारताथा ॥७॥ स्मरण नष्ट होगया व वेद जातेरहे और गोत्र जातारहा व श्रुति जातीरही इसके अनन्तर किसीसमयमें तीर्थ-

यात्रा के प्रसंग से ॥ ८ ॥ उत्तम व्रतोंवाले सप्तर्षिलोग उसी मार्ग से उपस्थित हुये इसके अनन्तर मारने की इच्छावाला अग्निशर्मा उनको देखकर यह बोला ॥ ९ ॥ कि इन वस्त्रों को व छतुरी तथा पनहियों, को छोड़देवो क्योंकि यमस्थानको जानेवाले तुम लोग मुझसे मारने योग्यहो ॥ १० ॥ उसके उस वचनको सुनकर अत्रिजी वचन बोले कि हमारी पीड़ासे उपजा हुआ पाप तुम्हारे हृदयमें कैसे वर्तमानहै ॥ ११ ॥ हम लोग तपस्वी होकर तीर्थयात्रा में उद्यम कियेहैं अग्निशर्मा बोले कि मेरे माता व पिता तथा पुत्र व प्यारी स्त्री है ॥ १२ ॥ उनको मैं सदैव पोषण करताहूँ यह मेरे हृदयमें स्थित है अत्रि जी बोले कि अपने इकट्ठा किये हुये कर्म के

तेन सुव्रताःसमुपस्थिताः ॥ अग्निशर्माथतान्दृष्ट्वा हन्तुकामोब्रवीदिदम् ॥ ९ ॥ वस्त्राणीमानिमुञ्चध्वं छत्रकोपानहौतथा ॥ हन्तव्याहिमयायूयं गन्तारोयमसादने ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत् ॥ अस्मत्पीडनजंपापं कथंतेहृदिवर्तते ॥ ११ ॥ वयंतपस्विनोभूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः ॥ अग्निशर्मोवाच ॥ ममास्तिमाताथपिता सुतोभार्यागरीयसी ॥ १२ ॥ पोषयामिसदातांस्तु एतन्मेहृदिसंस्थितम् ॥ अत्रिरुवाच ॥ पित्रादीननुपृच्छत्वं स्वकर्मोपार्जितंप्रति ॥ १३ ॥ यद्युष्मदर्थंक्रियते पापंतत्कस्यकथ्यताम् ॥ चेन्नतेकथयन्तिस्म मामृषाप्राणिनोवधीः ॥ १४ ॥ अग्निशर्मोवाच ॥ नकदाचिन्मयातेतु संपृष्टाईदृशंवचः ॥ युष्माकंवचसामेद्य प्रतिबोधःप्रवर्तते ॥ १५ ॥ गत्वापृच्छामितान्सर्वान् कस्यभावश्चकीदृशः ॥ यूयमत्रैवतिष्ठध्वं यावदागमनंमम ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वाताञ्जगामाशु पितरंस्वमुवाचह ॥ धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनांपीडनेनच ॥ १७ ॥ सुमहद्दृश्यतेपापं कस्यैतत्कथ्यतांमम ॥ पिताप्राहाथतन्माता नापु

विषयमें तुम पितादिकोंसे पूछो ॥ १३ ॥ कि तुम लोगों के लिये जो पातक कियाजाता है वह किसको होताहै यह कहिये यदि तुमसे उन्होंने न कहा हो तो वृथा प्राणियों को मतमारिये ॥ १४ ॥ अग्निशर्मा बोले कि मैंने उनसे कभी ऐसे वचन को नहीं पूछाहै आज तुम लोगोंके वचन से मेरे ज्ञान वर्तमान है ॥ १५ ॥ जाकर मैं उन सबोंसे पूछूंगा कि किसका कैसा अभिप्राय है तबतक तुम लोग यहीं टिको कि जबतक मेरा आगमन होवै ॥ १६ ॥ उनसे ऐसा कहकर शीघ्रही गया व अपने पिता से बोला कि धर्मके नाशसे व प्राणियों को दुःख देने से ॥ १७ ॥ बड़ा भारी पाप देख पड़ता है यह किसको होता है उसको मुझ से कहिये इसके अनन्तर

पिता व उसकी माता ने कहा कि हम दोनों को इसमें पाप नहीं है ॥ १८ ॥ जिसको करते हो उसको तुम जानो और किया हुआ कर्म तुमसे भोगने योग्य होगा उन के उस वचन को सुनकर स्त्री से वचन बोला ॥ १९ ॥ व उसने भी कहा कि मुझको पाप नहीं होगा किन्तु यह पातक तुम्हीं को होगा और उस वचन को पुत्र से कहा व उसने कहा कि मैं बालकहूं ॥ २० ॥ उनके वचन व व्यवहारको यथार्थसे जानकर मैं नष्ट होगया और तपस्वीलोग मेरी शरण (रक्षक) हैं यह मानता हुआ वह अग्निशर्मा ॥ २१ ॥ उस दण्डको पृथ्वी में फेंककर जिससे कि प्राणी मारेगये थे हे कृष्ण (व्यास) जी ! बालोंको फैलाकर शीघ्रता संयुत होकर ऋषियों के

एयमावयोरिह ॥ १८ ॥ त्वंजानासिकुरुषे यत्कृतंभोग्यंपुनस्त्वया ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा भार्यांवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ तयाप्युक्तंनमेपापं पापमेतत्त्ववैवतु ॥ तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोहमितिसोब्रवीत् ॥ २० ॥ तज्ज्ञात्वाभाषितन्तेषां चेष्टितञ्चैवतत्त्वतः ॥ नष्टोहमितिमन्वानः शरणंमेतपस्विनः ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वाथलकुटंकृष्ण येनवैजन्तवोहताः ॥ प्रकीर्यकेशांस्त्वरितो ऋषीणामग्रतःस्थितः ॥ २२ ॥ प्रणम्यदण्डपातेन ततोवचनमब्रवीत ॥ नमेमातानचपिता नभार्यानचमेसुतः ॥ २३ ॥ सर्वैस्तैःपरित्यक्तोहं भवतांशरणङ्गतः ॥ सुष्टूपदेशदानान्मां नरकात्त्रातुमर्हथ ॥ २४ ॥ एवंतंवादिनंदृष्ट्वा ऋषयोत्रिमथाब्रुवन् ॥ भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥ २५ ॥ भवतायमनुग्राह्यः शिष्योभवतुतेमुने ॥ तथेत्युक्त्वाथतम्प्राह इमन्ध्यानंसमाचर ॥ २६ ॥ अनेनध्यानयोगेन पापपुञ्जंप्रणाशय ॥ संस्थितोवृक्षमूलेत्वं परासि

आगे स्थित हुआ ॥ २२ ॥ और दण्डवत् गिरकर प्रणामकर तदनन्तर उसने वचन कहा कि न मेरे माताहै न पिता है और न स्त्री है न पुत्र है ॥ २३ ॥ उन सबों से छोड़ा हुआ मैं आपलोगों की शरण में प्राप्त हूं तुमलोग उत्तम उपदेश के दानसे मेरी नरकसे रक्षा करने के योग्यहो ॥ २४ ॥ इसप्रकार कहतेहुये उसको देखकर इसके अनन्तर ऋषियों ने अत्रिजी से कहा कि आपके वचन से इसके ज्ञान आगया ॥ २५ ॥ हे मुने ! आपसे यह दया करने योग्यहै और तुम्हारा यह शिष्य होवै वैसाही होगा यह कहकर अत्रिजी उस अग्निशर्मासे बोले कि तुम इस ध्यानको करो ॥ २६ ॥ और वृक्षकी जड़में भलीभांति बैठेहुये तुम इस ध्यान के योगसे

पापकी राशिको नाश करो और परमसिद्धिको प्राप्त होवोगे ॥२७॥ यह कहकर वे सब चलेगये और कामना समेत वह योगी भी वहां तेरह वर्ष तक उस ध्यान में स्थित हुआ ॥ २८ ॥ और उस मार्गसे लौटेहुये उन मुनियोंने बेंबौरिमें उससे कहेहुये शब्दको सुना व विस्मय से संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस बेंबौरि को देखकर मुनियों ने दारुभूतकीलों के द्वारा उस नीतिसंयुत अग्निशर्मा को देखकर उठाया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर उस अग्निशर्मा मुनि ने उन मुनिश्रेष्ठों को प्रणाम किया व प्रणत होकर तपस्या से प्रकाशित तेजवाले उन मुनियों से कहा ॥ ३१ ॥ कि आप लोगों की प्रसन्नतासे आज मैंने उत्तम ज्ञानको पाया और पातक के

द्धिंगमिष्यसि ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वातेययुस्सर्वे सकामःसोपितत्रवै ॥ तद्ध्यानस्थोभवद्योगी वत्सराणित्रयोदश ॥ २८ ॥ निवृत्तास्तुयथातेन मुनयस्तत्प्रशुश्रुवुः ॥ उदीरितंध्वनिन्तेन बल्मीकेविस्मयान्विताः ॥ २९ ॥ ततस्तुदृष्ट्वाबल्मीकं काष्ठीभूतोरुशङ्कुभिः ॥ तन्दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयोनयसंयुतम् ॥ ३० ॥ नमश्चक्रेथतान्सर्वान् समुनिर्मुनिपुङ्गवान् ॥ तान्प्राहप्रणतोभूत्वा तपसादीप्ततेजसः ॥ ३१ ॥ प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानंलब्धंमयाशुभम् ॥ दीनोहमुद्धृतस्सर्वैर्मग्नोहं पापकर्दमे ॥ ३२ ॥ श्रुत्वातस्येतितद्वाक्यमूचुःपरमधार्मिकाः ॥ बल्मीकेस्मिन्स्थितःपुत्र यतस्त्वमेकचित्ततः ॥३३॥ बाल्मीकिरितितेनाम भुविख्यातंभविष्यति ॥ इत्युक्त्वामुनयोजग्मुः स्वान्दिशंतपसान्विताः ॥ ३४ ॥ गतेषुमुनिमुख्येषु बाल्मीकिस्तपतांवरः ॥ कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्यमहेश्वरम् ॥ ३५ ॥ तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रेकाव्यं मनोरमम् ॥ रामायणञ्चयत्प्राहुः कथासुप्रथमंस्थितम् ॥ ३६ ॥ ततःप्रभृतिदेवेशो बाल्मीकेश्वरसंज्ञकः ॥ ख्यातोव

कीचड़ में डूबा हुआ मैं दीन आप सबों से उधारा गया हूं ॥ ३२ ॥ उसके उस वचन को सुनकर परमधर्मवान् उन ऋषियों ने कहा कि हे पुत्र ! जिसलिये तुम एक चित्तसे इस बंबौरि में स्थितहुये हो ॥ ३३ ॥ इसलिये बाल्मीकि ऐसा तुम्हारा नाम पृथ्वी में प्रसिद्ध होगा यह कहकर तपस्या से संयुत मुनिलोग अपनी दिशा को चलेगये ॥ ३४ ॥ मुख्य मुनियों के जानेपर इसके अनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ बाल्मीकि जीने कुशस्थली में आकर व महादेवजी को आराधकर ॥ ३५ ॥ उनसे कविताको पाकर मनोहर काव्य किया कि जिसको रामायण कहते हैं व जो कथाओं में प्रथम स्थित है ॥ ३६ ॥ हे व्यासजी ! तब से लगाकर बाल्मीकेश्वर नामक

देवेश अवन्ती में प्रसिद्ध हुये और उसी कारण वे मनुष्योंको कवितादायक हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबाल्मीकेश्वरमहिमवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । शुक्रेश्वरलिंगादिकन पूजि मिलत फल जौन । अट्ठाइसवें में कह्यो चरित सुखद सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि श्वेत पुष्पों व विलेपनों से शुक्रेश्वरजी को भलीभांति पूजकर तदनन्तर भक्तिसे प्रणाम कर मनुष्य शिवलोक में पूजा जाताहै ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! भीमेश्वरजी को देखकर व यत्न से भक्तिपूर्वक पूजकर

न्त्यांततोव्यास कवित्वदायकोन्नृणाम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे बाल्मीकेश्वरमहिमवर्णनन्नामसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शुक्रेश्वरंसमभ्यर्च्य सितपुष्पैर्विलेपनैः ॥ प्रणिपत्यततोभक्त्या रुद्रलोकेमहीयते ॥ १ ॥ भीमेश्वरंनरोदृष्ट्वा भक्त्यासम्पूज्ययत्नतः ॥ नभयंलभतेव्यास रणेरात्रौजलेनले ॥ २ ॥ गर्गेश्वरंस्नापयित्वा तिलतैलेनमानवः ॥ बिल्वपत्रैस्तुसम्पूज्य धर्मवृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ उपोषितश्चतुर्दश्यां तिलप्रस्थतिलाम्भसा ॥ स्नापयित्वातिलैरिष्ट्वा सदासौख्यमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ गोसहस्रन्नरोदत्त्वा भावंकृत्वाविशेषतः ॥ भवबन्धविनिर्मुक्तो रुद्रलोकेसगच्छति ॥ ५ ॥ कामेश्वरंसमभ्यर्च्य कुङ्कुमादिविलेपनैः ॥ कामिकेनविमानेन यातिस्वर्गन्नसंशयः ॥ ६ ॥ चूडामणिनमस्कृत्य नवम्यांकार्त्तिकेसिते ॥ नवियोनिन्नरोयाति धर्मबुद्धिस्तुजायते ॥ ७ ॥ चण्डेश्वरंसमभ्यर्च्य कृष्णाष्ट

मनुष्य समर में रात्रिमें जल में व अग्नि में भयको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ २ ॥ और तिलके तैलसे गर्गेश्वरजी को नहवाकर मनुष्य बिल्वपत्रों से पूजकर धर्मकी वृद्धि को प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ और चौदसि में उपास करके मनुष्य प्रस्थ (ढाई पाव) तिलोंसे संयुत तिलोदकसे स्नान कराकर व तिलों से पूजकर मनुष्य सदैव सुखको प्राप्तहोताहै ॥ ४ ॥ और मनुष्य गोसहस्र को देकर व विशेषता से भावकर संसार के बंधनसे छूटाहुआ वह पुरुष शिवलोकमें जाताहै ॥ ५ ॥ और कुंकुमादिक लेपनों से कामेश्वरजी को पूजकर इच्छा के अनुकूल विमान के द्वारा निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है ॥ ६ ॥ और कातिक के शुक्लपक्ष में नवमी तिथि में चूड़ामणि देवजी को

निमर्ल्योल्लङ्घनोत्थेन सशोकेननलिप्यते ॥८॥ इत्यादितीर्थानिमहेश्वरस्य पुण्यानिसर्वाणिनरोभि
गम्य॥विशुद्धचित्तोभुविभावितात्मा प्रयातिशम्भोर्भवनंसुरम्यम् ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेतीर्थमाहात्म्य
न्नामाष्टाविंशतितमोध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ष्ट्यामुपोषितः ॥

व कृष्णपक्षकी अष्टमी में उपास कियेहुये वह मनुष्य चण्डेश्वरजी को पूजकर नि-
र्माल्यके नाँघनेसे उपजे हुये पातकसे नहीं लिप्त होताहै ॥ ८ ॥ महादेवजी के इत्यादिक सब पवित्र तीर्थोंको जाकर पृथ्वीमें शुद्ध आत्मा व विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य सदाशिवजी के मनोहर मन्दिर को प्राप्तहोता है ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

प्रणाम कर मनुष्य वियोनि को नहीं प्राप्तहोताहै और धर्मबुद्धिवाला होता है ॥ ७ ॥

दो० । पंचेशानीयात्राकर विधि सहित प्रभाव । उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥

व्यासउवाच ॥ गुह्यस्थानेपवित्राणि कीर्तितानित्वयामुने ॥ प्रमाणंकथयस्वाद्य महाकालवनस्यमे ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वं गदतोब्रह्मणस्स्वयम् ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुत्वंगदतोमम ॥ २ ॥ योजनस्यैवपर्यन्तं चतुर्दिक्षूपशोभितम् ॥ सौवर्णैस्तोरणैश्चैव मुक्तादामविलम्बिभिः ॥३॥ द्वाराणितत्रशोभन्ते काञ्चनैःकलशैःस्थितैः ॥ सितपद्ममुखैर्द्वारैरनेकैर्मणिमण्डितैः ॥ ४ ॥ महेश्वरप्रयुक्ताश्च द्वाराध्यक्षामहाबलाः ॥ द्वारेपुतेषुशोभन्ते लोकानुग्रहकारकाः ॥ ५ ॥ पिङ्गलेशःस्थितःपूर्वं बालरूपोविभावसुः ॥ तीर्थस्याभिमुखेगौरो गुरुर्गणरथानुगः ॥ ६ ॥ दक्षि

व्यासजी बोले, कि हे मुने ! तुमने गुह्यस्थान में पवित्र तीर्थोंको कहा आज मुझ से महाकालवन का प्रमाण कहिये ॥१॥ सनत्कुमारजी बोले कि मैंने पुरातन समय जिसप्रकार आपही कहतेहुये ब्रह्माजी से सुनाहै उसको मैं तुमसे कहूंगा तुम कहते हुये मुझ से सुनो ॥ २ ॥ कि मोती की झालर जिन में लटकती हैं उन सुवर्ण के बाहरी द्वारों से योजन भरतक चारों दिशाओं में शोभित है ॥ ३ ॥ और उस में धरेहुये सुवर्ण के कलशों से द्वार शोभितहै और अनेक मणियों से शोभित श्वेतकमलमुखद्वारों से शोभित है ॥ ४ ॥ व उन द्वारों में महादेवजीसे नियोजित बड़े बलवान् द्वारपाल हैं जोकि लोकों के ऊपर दयाकरनेवाले हैं ॥ ५ ॥ तीर्थ के सामने बालरूपी विभावसु पिंगलेशजी स्थितहैं जो कि गौरवर्ण व गुरु तथा गणों

के रथों के अनुगामी हैं ॥६॥ व दक्षिण दिशा में भी कायावरोहणनामक महायोगी स्थित हैं और क्षेत्र के सामने स्थित बिल्वेशजी पश्चिम द्वार पै हैं ॥ ७ ॥ जो कि महादेवजी से नियुक्त कियेहुये पश्चिम दिशा में स्थित हैं और उत्तर दिशा में आश्रित होकर उत्तरेश्वर जी स्थितहैं ॥ ८ ॥ शिवजीसे आज्ञा दियेहुये वे समस्त कार्यों के साधन करनेवाले हैं इस क्षेत्र के मध्यमें उत्तम धर्मवान् जो मनुष्य बसते हैं॥ ९ ॥ वे मरकर सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शिवपुर को जाते हैं कृष्णपक्ष की चौदसि व सूर्यनारायण तथा चन्द्रमा के संयोग याने अमावस में ॥ १० ॥ पञ्चेशानीजी को प्रणामकर और महादेवजी को ध्यान करताहुआ एकदिनसे विलोम व

णेपिमहायोगी नाम्नाकायावरोहणः ॥ बिल्वेशःपश्चिमेद्वारे क्षेत्रस्याभिमुखंस्थितः ॥ ७ ॥ नियुक्तोवैमहेशेन वारुणीन्दिशमास्थितः ॥ उत्तरान्दिशमाश्रित्य स्थितश्चैवोत्तरेश्वरः ॥ ८ ॥ साधकस्सर्वकार्याणामादिष्टश्शङ्करेणसः ॥ मानवायेवसन्त्यत्र क्षेत्रमध्येसुधार्मिकाः ॥ ९ ॥ मृतारुद्रपुरंयान्ति विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामथवा कन्दुसङ्गमे ॥ १० ॥ पञ्चेशानींनमस्कृत्य प्रतिलोमानुलोमतः ॥ उपोषितोदिनैकेन ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ ११ ॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तु बहुजन्मकृतैरपि ॥ एवंचविप्रयोयात्रां पञ्चेशानींसमारभेत् ॥ १२ ॥ अनेनैवस्वदेहेन रुद्रलोकंसगच्छति ॥ पञ्चेशानीमथान्यान्ते सुखेनक्रियतेयथा ॥ १३ ॥ तथाशृणुप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ प्रातःस्नात्वारुद्रसरस्येकादश्यांसमाहितः ॥ १४ ॥ श्राद्धंकृत्वामहाकालं नत्वाईशानमीश्वरम् ॥ पिङ्गलेशन्ततःप्राप्य स्नात्वाश्राद्धंसमाचरेत् ॥१५॥ उपगम्यततोदेवं गणेशंपिङ्गलेश्वरम् ॥गन्धैःपुष्पैश्चधूपैश्च तमभ्यर्च्यनिवर्तयेत् ॥ १६ ॥

अनुलोम याने तीनदिन उपासकर मनुष्य ॥११॥ बहुतजन्मों में कियेहुये भी सब पातकों से छूटजाता है इसप्रकार हे विप्रजी ! जो पञ्चेशानी यात्रा को प्रारम्भ करता है ॥ १२ ॥ वह इसी देह से शिवलोक को जाताहै इस के अनन्तर समस्त पातकों को नाशनेवाली अन्य पञ्चेशानी यात्राको तुम से कहता हूं जिसप्रकार वह यात्रा सुख से कीजाती है वैसेही सुनिये कि सावधान होताहुआ पुरुष एकादशीतिथि में प्रातःकाल रुद्रसर में नहाकर ॥ १३ । १४ ॥ श्राद्धकर व महाकालेश्वर ईशानजी को प्रणामकर तदनन्तर पिङ्गलेश्वरजी को प्राप्तहोकर नहाकर श्राद्धकरै ॥ १५ ॥ तदनन्तर पिङ्गलेश्वर गणनायकजी के समीप जाकर और गन्ध, पुष्प व

धूपोंसे उनको पूजकर निवृत्त होवै ॥१६॥ व महाकालेश्वरजीको प्राप्तहोकर फिर स्नान कियेहुये जितेन्द्रिय पुरुष आपही से उपजेहुये सनातन देवदेवेशजी को पूजे ॥ १७ ॥ और ईशान में रात्रिको व्यतीत करै व रात्रि में भोजन कर महेशजी को ध्यान करताहुआ पुरुष भूमि में शरीर को धरकर ॥ १८ ॥ द्वादशी में सब पहले की नाईं करके प्रातःकाल नहाकर मनुष्य गमन करै और कायावरोहण तीर्थ मे जाकर पिङ्गलेश्वर की नाईं पूजै ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर तेरसि में भी इस प्रकार पश्चिममें बिल्वेशजी का पूजन करै वैसेही चौदसि तिथि में उत्तर दिशामें उत्तरेश्वरजी को पूजै ॥ २० ॥ और अमावस तिथि में नहाकर पवित्र होताहुआ पुरुष महा-

महाकालेश्वरम्प्राप्य भूयस्स्नातोजितेन्द्रियः ॥ अर्चयेद्देवदेवेशं स्वयंभूतंसनातनम् ॥ १७ ॥ ईशानेगमयेद्रात्रिं कृत्वावैनक्तभोजनम् ॥ ध्यायमानोमहेशानं भूमौविन्यस्यविग्रहम् ॥ १८ ॥ द्वादश्यांपूर्ववत्सर्वं प्रातस्स्नात्वाव्रजेन्नरः ॥ कायावरोहणेगत्वा पिङ्गलेश्वरवद्यजेत् ॥ १९ ॥ त्रयोदश्यामथाप्येवं बिल्वेशंपश्चिमेर्चयेत् ॥ चतुर्दश्यांतथासौम्ये पूजयेदुत्तरेश्वरम् ॥ २० ॥ अमायान्तुशुचिस्स्नातो महाकालेश्वरंव्रजेत् ॥ गन्धैःपुष्पैश्चधूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ गीतनृत्यादिकंकृत्वा प्रणिपत्यक्षमापयेत् ॥ यात्रांकृत्वातुपूर्वोक्तां ततोनिजगृहंव्रजेत् ॥ २२ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पञ्च शिवभक्तिपरायणान् ॥ प्रणम्यदेवरूपांश्च महाकालेपितान्द्विजान् ॥ २३ ॥ पूजयित्वाहिरण्येन सूक्ष्मवस्त्रैस्तथानवैः ॥ रथंपिङ्गलकेदद्याद्गजंकायावरोहणे ॥२४॥ दत्त्वाबिल्वेश्वरेचाश्वं वृषंदत्त्वाथचोत्तरे ॥ धेनुंदद्यान्महाकाले सर्वोपस्कारसंयुताम् ॥ २५ ॥ यएवंकुरुतेव्यास तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पितृकैर्मातृकैस्सार्द्धं कुलैस्सादिविमो

कालेश्वरजी को जावै और गन्ध, पुष्प, धूप और अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजनकरै ॥ २१ ॥ और गीत नृत्यादिक कर प्रणाम कर क्षमापन करावै व पूर्वोक्त यात्रा करके तदनन्तर अपने घरको जावै ॥ २२ ॥ और शिवजी की भक्तिमे तत्पर पांच ब्राह्मणों को भोजन करावै व महाकालमें भी उन देवरूपी ब्राह्मणों को प्रणाम कर ॥ २३ ॥ और सुवर्ण से व नवीन रेशमी वस्त्रोंसे पूजकर पिङ्गलकमे रथ देवै व कायावरोहण तीर्थ मे हाथी देवै ॥ २४ ॥ व बिल्वेश्वरमें अश्वको देकर और उत्तर में वृषको देकर महाकालमें सब उपस्कारों समेत गऊको देवै ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य इसप्रकार करता है उसके पुण्यका फल सुनिये कि अप्सराओं के गीत

व नृत्य से संयुत सब कामनाओंवाले विमानों से पिता व मातावाले कुलों समेत वह स्वर्ग में आनन्द करता है ॥ २६ । २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चेशानीयात्रामाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो• । कही सात देवीनकी महिमा अतिहिं अमान । सोइ तीस अध्याय में कीन्हों चरित वखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नियम से जो कुशस्थली (उज्जैनी) की प्रदक्षिणा करता है उससे सातद्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ १ ॥ जो मनुष्य पद्मावतीजी के दर्शन करता है व कमलों से पूजता है तथा नैवेद्य समेत

दते ॥ २६ ॥ अप्सरोगीतनृत्याढ्यैर्विमानैस्सार्वकामिकैः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पञ्चेशानीयात्रामाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुप्रदक्षिणांकुर्यान्नियमेनकुशस्थलीम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ १ ॥ यस्तुपद्मावतींपश्येदर्चयेत्पङ्कजैर्नरः ॥ दद्याद्धूपंसनैवेद्यं मृतोब्रह्मपुरंव्रजेत् ॥ २ ॥ स्वर्णशृङ्गाटिकांव्यास कुसुमैस्स्वर्णसन्निभैः ॥ समभ्यर्च्यमहाभक्त्या सयातिशिवमन्दिरम् ॥ ३ ॥ अवन्तिकान्तुयःपश्येद्देवींत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ कामगेनविमानेनयातिपौरन्दरंपदम् ॥ ४ ॥ अर्चयेत्पङ्कजैर्भक्त्यायोदेवीममरावतीम् ॥ अमरैस्सहसंहृष्टो मोदतेदिविसर्वदा॥ ५ ॥ देवीमुज्जयिनींभक्त्या यःपश्यतिसमाहितः ॥ सर्वैश्वर्यसमायुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ विशालांचैवयःपश्ये

धूपको देताहै वह मरकर ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २ ॥ व हे व्यासजी ! सोने के समान पुष्पों से स्वर्णशृंगाटिका देवीजी को बडी भक्ति से भलीभांति पूजकर वह मनुष्य शिवमन्दिर को जाता है ॥ ३ ॥ और त्रिलोक में प्रसिद्ध अवन्तिका देवीजी को जो देखता है वह इच्छा के अनुकूल जानेवाले विमान के द्वारा इन्द्रपुर को जाता है ॥ ४ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से अमरावती देवीजी को कमलों से पूजता है वह देवताओं समेत प्रसन्न होकर सदैव स्वर्ग में आनन्द करताहै ॥ ५ ॥ और सावधान होताहुआ जो पुरुष उज्जयिनी देवीजीको देखताहै सब ऐश्वर्यों से संयुत वह शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ व जो सावधान मनुष्य शिवभक्ति से

त्रिशाला देवीजी को देखता है वह तीनों प्रकार के पातकों से छूटजाता है इस में विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्र
विरचितायाभाषाटीकायासप्तदेवीनांमहिमवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अक्रूरेश्वरदेव को अहै जौन परभाव । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! अक्रूरेश्वर ऐसे नामवाले पवित्र
महातीर्थ को सुनिये जोकि ब्रह्मा से पूजागया है और जहां पर ब्रह्माजी सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमी में उपास कियेहुये इन्द्रियों को जीते व पवित्र तथा

द्रुद्रभक्त्यासमाहितः ॥ मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सप्तदे
वीनांमहिमवर्णनन्नामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं पुण्यंयद्ब्रह्मणार्चितम् ॥ अक्रूरेश्वरमित्याख्यं यत्रसिद्धःपितामहः ॥
१ ॥ तत्रदेवार्चनंकृत्वा कृष्णाष्टम्यामुपोषितः ॥ जितेन्द्रियश्शुचिर्दान्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ नवदेत्केनचि
त्सार्द्धं नरःप्रातस्समुत्थितः ॥ दृष्ट्वाक्रूरेश्वरन्देवं हेमदानफलंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽक्रूरेश्व
रमहिमवर्णनन्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुपश्यतिब्रह्माणं शुचिस्स्नातोजितेन्द्रियः ॥ मुच्यतेपातकाद्घोराद् ब्रह्मलोकमतोव्रजेत् ॥
१ ॥ पद्मासनस्थितोब्रह्मा ध्यायमानःपरम्पदम् ॥ वशिष्ठाद्यैर्मुनिवरैर्विज्ञप्तःकर्मसम्भवात् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ आ

शान्त पुरुष वहां देवपूजन कर शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ किसी के साथ वार्तालाप न करै और प्रातःकाल उठकर मनुष्य अक्रूरेश्वर देवको देखकर सुवर्ण
दान के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामक्रूरेश्वरमहिमवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥

दो० । शिवयाज्ञिक ब्राह्मणन कहँ दीन्हों वर अरु शाप । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित संलाप ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नहाया हुआ पवित्र व जितेन्द्रिय जो
पुरुष ब्रह्मादेवजी को देखता है वह भयंकर पातकसे छूटजाताहै व इसके उपरान्त ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १ ॥ पद्मासन से बैठे व परमपद को ध्यान करतेहुये ब्रह्मा

जी से वशिष्ठादिक मुनिश्रेष्ठों ने कर्मके संभव से विनय किया ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि आदित्य,मरुत,साध्य,वसु व दोनों अश्विनीकुमार तथा जो लोकोंके पितर पृथ्वीमें मनुष्योंसे पूजे जातेहैं ॥३॥ और ग्रह,सूर्यनारायण,तारा,यक्ष,दिग्गज,अग्नि व पवन येदेवता और हम सब तुम्हारे अंशसे पढेजातेहैं ॥ ४ ॥ हे देवेश ! तुम किस को ध्यान करते हो यह सब हमलोगों से कहिये ब्रह्माजी बोले कि तत्त्वरूपिणी जो परा व अपरा दो विद्या है ॥ ५ ॥ वे सदैव मूर्त्ति व मूर्त्तात्मिका मेरे स्वरूपसे जानने योग्य हैं ऋषिलोग बोले कि हे पितामह जी ! आपको परमप्रभु हमलोग कैसे जानैं ॥ ६ ॥ कि जिससे तुम्हारे दर्शन से हम लोगों की उत्तम सिद्धि होवै ॥ ७ ॥

दित्यामरुतस्साध्या वसवश्चाश्विनावुभौ ॥ पितरोयेचलोकानां पूज्यन्तेभुविमानवैः ॥ ३ ॥ ग्रहार्कास्तारकायक्षा दिग्गजाश्चानलानिलाः ॥ अमीदेवावयंसर्वे प्रपठ्यन्तेत्वदंशतः ॥ ४ ॥ कंवैध्यायसिदेवेश एतत्सर्वंब्रवीहिनः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ द्वे विद्येतत्त्वरूपेये पराचैवापरातथा ॥ ५ ॥ ज्ञेयेममस्वरूपेणमूर्त्तेमूर्त्तात्मिकेसदा ॥ ऋषयऊचुः ॥ पितामहकथंविष्णो भवतःपरमंविभुम् ॥ ६ ॥ येनास्माकंपरासिद्धिर्जायतेतवदर्शनात् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ माहेश्वरंपरंक्षेत्रं कुशस्थलीतिशब्दितम् ॥ यज्ञार्थिनामयादेवः श्रीकण्ठःपार्वतीपतिः ॥ ८ ॥ याचितस्तेनदेवेन उक्तोहंतत्रशम्भुना ॥ समन्ताद्योजनंसाग्रं क्षेत्रमेतत्पितामह ॥ ६ ॥ मयादत्तंतवविभो महाकालवनादृते ॥ वारितोपिमयातत्र वनेगुप्तोहिरोषतः ॥ १० ॥ आरब्धोवैततोयज्ञो नारायणपरिग्रहात् ॥ ज्ञातस्तथापिमेयज्ञो देवदेवेनशम्भुना ॥ ११ ॥ यज्ञवाटकपर्दीशस्ततोभिक्षार्थमागतः ॥ याज्ञिकैस्सोथतत्रोक्तो मात्रतिष्ठजुगुप्सित ॥ १२ ॥ कपर्दिनाचतेतत्र उक्तायास्यामतत्पुनः ॥ एवमुक्त्वाक

ब्रह्माजी बोले कि कुशस्थली ऐसा कहाहुआ माहेश्वर उत्तम क्षेत्र है यज्ञके प्रयोजनवाले मैंने पार्वती के पति सदाशिवजी से याचना किया उन शिवदेवजी ने वहां मुझ से कहा कि हे पितामहजी ! सब ओर कुछ अधिक योजन भर यह क्षेत्र ॥ ८।६ ॥ हे विभो ! महाकालवन को छोडकर मैंने तुमको दिया और उस वनमें मुझ से मना किये हुये भी वे क्रोधसे गुप्त होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर नारायणके परिग्रह से मैंने यज्ञका प्रारंभ किया तो भी देवदेव शिवजीने मेरी यज्ञको जाना ॥ ११ ॥ तदनन्तर भिक्षा के लिये शिवजी यज्ञवाट को आये इसके अनन्तर वहां यज्ञ करानेवालों ने उनसे कहा कि हे निन्दित ! यहा मत स्थित होवो ॥ १२ ॥ फिर वहां

शिवजी ने उनसे कहा कि तो हम जाते हैं ऐसा कहकर वहां भूमि में कपाल को धरकर ॥ १३ ॥ जटाधारी परमेश्वरजी नहाने के लिये शिप्रानदी को गये और वे जटाधारी शिवजी जब शिप्रानदी को गये तब ब्राह्मणों ने कहा ॥ १४ ॥ कि सभा में कपाल के स्थित होने पर कैसे होम कियाजाता है क्योंकि पुरातन समय विद्वानों ने कपालरहित अग्नियों को पवित्र कहा है ॥ १५ ॥ उस कपाल को आपही सामाजिक ने फेक दिया व उसके फेंकने पर अन्य हुआ व बार २ फेकने पर फिर हुआ ॥ १६ ॥ इसप्रकार मुनिश्रेष्ठो को कपाल का अन्त नहीं मिलता था वे जटाधारी शिवजी को प्रणाम कर शरण में प्राप्तहुये ॥ १७ ॥ तदनन्तर भक्तिसे प्रसन्न

पालन्तु भूमौसंस्थाप्यतत्रहि ॥ १३ ॥ स्नातुन्नदींययौशिप्रां कपर्दीपरमेश्वरः ॥ उक्तंतस्मिन्गतेशिप्रां कपर्द्दिनिद्विजातिभिः ॥ १४ ॥ कथंहिक्रियतेहोमः कपालेसदसिस्थिते ॥ अकपालानिशौचानि पुराप्रोक्तानिसूरिभिः ॥ १५ ॥ तत्कपालंसदस्येन उत्क्षिप्तंपाणिनास्वयम् ॥ तस्मिन्क्षिप्तेऽभवच्चान्यत्क्षिप्तेक्षिप्तेऽभवत्पुनः ॥ १६ ॥ एवन्नान्तःकपालानांप्राप्यतेमुनिसत्तमैः ॥ रुद्रंकपर्दिनंनत्वा शरणन्तेसमागताः ॥ १७ ॥ ततस्सदर्शनंप्रादाद्भक्त्यातुष्टोमहेश्वरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् मामुवाचपुनःप्रभुः ॥ १८ ॥ वरंवरयभोब्रह्मन् यत्तेमनसिवर्तते ॥ नास्त्यदेयंमयातुभ्यं सर्वदास्यामितत्त्वतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मोत्तरमिदंस्थानं मयादत्तंचतुर्मुख ॥ कारयस्वयथाकामं तथावर्णचतुष्टयम् ॥ २० ॥ एवं वदन्तंवरदमीशानंपरमेश्वरम् ॥ तथेतिचोक्त्वासदसि नममान्योवरोवृतः ॥ २१ ॥ उज्जयिनीतिवैनाम कुशस्थल्यानिवेशितम् ॥ कुण्डंमन्दाकिनीतत्र मयाकृतमनन्तरम् ॥ २२ ॥ तत्रविप्रकृतेस्नाने सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ तस्यांसंस्था

महादेवजी ने दर्शन दिया और कपाल हाथवाले भगवान् सदाशिव प्रभुजी फिर मुझ से बोले ॥ १८ ॥ कि हे ब्रह्मन्! जो तुम्हारे मन में वर्त्तमानहो उस वरदान को मांगिये मुझ से तुम्हारे लिये कुछ न देने योग्य नहीं है मैं सबको तत्त्व से दूंगा ॥ १९ ॥ हे चतुराननजी! मैंने इस ब्रह्मोत्तर स्थान को दिया जैसी इच्छा होवै वैसेही चारों वर्णों को कीजिये ॥ २० ॥ इसप्रकार कहते हुये उन वरदायक परमेश्वर महादेवजी से वैसाही होगा यह कहकर मैंने सभा में अन्य वरदानको नहीं मांगा ॥ २१ ॥ और मैंने कुशस्थली समेत उज्जयिनी ऐसा नाम धरा इसके अनन्तर मैंने वहा मन्दाकिनीकुण्ड निर्माण किया ॥ २२ ॥ हे विप्रजी! उसमें स्नान

करने पर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाता है और उस पुरीमें दिशाओं में चार उत्तम घटों को स्थापित करै ॥ २३ ॥ और तिलों समेत व वसनों सहित व फलो समेत तथा आभूषणों समेत उन घटों को कार्त्तिकी व माघी में चारों वेदों के जाननेवालों के लिये देवै ॥ २४ ॥ पूर्वका घट ऋग्वेद के लिये व दक्षिण घटको यजुर्वेद के लिये और पश्चिम घट सामवेदके लिये व उत्तर का घट अथर्वण वेदके लिये देवै ॥ २५ ॥ वेदोंको इसप्रकार उद्देशकर कि मेरे ऊपर पितामह देवजी प्रसन्न होवैं इस प्रकार करने पर जो पुण्य होताहै उसको सावधान होतेहुये सुनिये ॥ २६ ॥ कि सब तीर्थों में जो पुण्य मिलताहै वैसेही मन्दाकिनी में होताहै और स्नान हज़ार

पर्येद्दिक्षु चतुरोथघटाञ्छुभान् ॥ २३ ॥ सतिलांस्तान्सवस्त्रांश्च सफलान्मण्डनैस्सह ॥ कार्त्तिक्यामथमाघ्याञ्च चतुर्विद्भ्यःप्रदापयेत् ॥ २४ ॥ प्रथमंचऋग्वेदाय यजुर्वेदायदक्षिणम् ॥ पश्चिमंसामवेदाय अथर्वणेतथोत्तरम् ॥ २५ ॥ वेदानुद्दिश्यचाप्येवं प्रीयतांमेपितामहः ॥ कृतेचैवंहियत्पुण्यं तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यं मन्दाकिन्यांतथाभवेत् ॥ सहस्रगुणितंस्नानं जाप्यंलक्षगुणंभवेत् ॥ २७ ॥ दानंकोटिगुणंज्ञेयं मन्दाकिन्यान्नसंशयः ॥ कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्ते गोदानंतत्रकारयेत् ॥ २८ ॥ घृतधेनुश्चकार्त्तिक्यां माघ्यांतिलमयींतथा ॥ जलधेनुन्तुवैशाख्यां दत्त्वामुच्येतपातकात् ॥ २९ ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मजंयच्चदुष्कृतम् ॥ विनश्येत्किल्बिषंसर्वं मन्दाकिन्यास्तुदर्शनात् ॥ ३० ॥ मन्दाकिनीसमन्तीर्थं पृथिव्यान्नैवदृश्यते ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्मलोकेसमोदते ॥ ३१ ॥ मन्दाकिन्यान्तुयस्स्नानं कृत्वाश्राद्धंप्रदास्यति ॥ दर्शेचपूर्णिमायांवा पितृलोकेसमोदते ॥ ३२ ॥ पितामहन्तुयोभक्त्या नित्यं

गुना व जप लाख गुना होवै है ॥ २७ ॥ और मन्दाकिनी में दान कोटिगुना जाननेयोग्यहै इसमें सन्देह नहीं है कातिक महीना प्राप्तहोने पर वहां गोदान करावै ॥ २८ ॥ कार्त्तिकी में घी की गऊ व माघी में तिलमयी गऊ और वैशाखी में जल की गऊको देकर मनुष्य पातक से छूटजाता है ॥ २९ ॥ व वाचिक और मानस पाप तथा कर्म से उपजाहुआ जो पातकहै वह सब पातक मन्दाकिनी जीके दर्शन से नाश होजाता है ॥ ३० ॥ मन्दाकिनी के समान तीर्थ पृथ्वी मे नहीं देखपडता है जिसके दर्शनही से वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें आनन्द करता है ॥ ३१ ॥ और जो मनुष्य मन्दाकिनी में स्नान कर अमावस व पौर्णमासी मे श्राद्ध देताहै वह पितृ-

लोकमें प्रसन्न होताहै ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नित्य ब्रह्माजी को देखताहै वह हज़ार अश्वमेध और सौ राजसूययज्ञ से ॥ ३३ ॥ युक्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे तपोधनो ! यह सत्य है तदनन्तर मन्वन्तर बीतने पर जब फिर वैवस्वत मनु प्राप्तहुआ तब फिर ॥ ३४ ॥ उसी उन्मत्त वेष से ऊर्ध्वजटाओंवाले महादेवजी ब्रह्मा की यज्ञ में पैठे और उन द्विजोत्तमों ने देखा ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणलोग उनको शाप देते थे व कोई निन्दा करते थे व अन्य ब्राह्मण धूलियों से उनके लिंग को मारते थे और कोई ब्राह्मण शाप देते थे ॥ ३६ ॥ और बल से गर्वित कोई मनुष्य उनको ढेलों व दण्डों से मारते थे और अन्य कोई ब्राह्मण जटाओं के

पश्यतिमानवः ॥ अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेनच ॥ ३३ ॥ युज्यतेनात्रसन्देहः सत्यमेतत्तपोधनाः ॥ ततोमन्वन्तरेतीते प्राप्तेवैवस्वतेपुनः ॥ ३४ ॥ तेनैवोन्मत्तवेषेण ऊर्ध्वशेफोमहेश्वरः ॥ प्रविष्टोब्राह्मसत्रेतु दृष्टस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ ३५ ॥ तंब्राह्मणाःशपन्तिस्म निन्दांकुर्वन्तिचापरे ॥ अपरेपांशुभिःशिश्नं घ्नन्तितस्याशपन्द्विजाः ॥ ३६ ॥ लोष्टैर्लगुडकैश्चान्ये घ्नन्तितंबलगर्विताः ॥ जटामुकुटकंकेचिद्धृत्वाकर्षन्तिचापरे ॥ ३७ ॥ पृच्छन्तिव्रतचर्यांवै व्रतंकेनप्रदर्शितम् ॥ अत्रचैवस्त्रियस्सन्ति कथमेवंत्वयाकृतम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मणाचेदृशीचर्य्या विष्णुनावाकृतास्वयम् ॥ गिरिशेनापिदेवेन केनेदंदुष्कृतंकृतम् ॥ ३९ ॥ माविडम्बयदेवेशं बद्धोह्यसित्वमद्यनः ॥ एवन्तैर्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्रशङ्करः ॥ ४० ॥ स्मितंकृत्वाब्रवीत्सर्वान् ब्राह्मणान्परमेश्वरः ॥ ममाभिघ्नन्तिकिंयूयमुन्मत्तंनष्टचेतसम् ॥ ४१ ॥ यूयंकारुणिकास्सर्वे मित्रभावेव्यवस्थिताः ॥ तमेवंवादिनन्देवं जाल्मरूपधरंहरम् ॥ ४२ ॥ माययातस्यदेवस्य मोहितास्तेद्वि

मुकुटको पकड़कर खींचते थे ॥ ३७ ॥ और कोई व्रतचर्याको पूंछते थे कि किससे यह व्रत दिखलाया गया है और यहां स्त्रियां हैं तुमने कैसे ऐसा किया ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा ने व आपही विष्णु या गिरीश शिवजी ने ऐसी चर्या (कर्तव्यता) किया किसने इस पापको कियाहै ॥ ३९ ॥ देवेश शिवजीकी मत विडम्बना कीजिये आज हमलोगों से तुम बँधगये इसप्रकार वहांपर उन ब्राह्मणों से मारेजातेहुये सदाशिव ॥ ४० ॥ परमेश्वरजी मुसकराकर सब ब्राह्मणों से बोले कि नष्टचित्तवाले मुझ उन्मत्तको तुमलोग क्यों मारते हो ॥ ४१ ॥ तुमलोग सब दयावान् व मित्रता में स्थित हो इसप्रकार कहते हुये उन जाल्म (नीच) रूपधारी शिवदेवजी को

देखकर ॥ ४२ ॥ वे ब्राह्मणलोग उन शिवदेवजी की मायासे मोहित हुये और उन ब्राह्मणों ने फिर जटाधारी शिवजी को हाथ व पांवसे मारा ॥ ४३ ॥ उन ब्राह्मणों से मारेजाते हुये शिवजी बड़े क्रोधको प्राप्तहुये तदनन्तर शिवदेवजी ने उनको शाप दिया कि तुमलोग वेदसे रहित होवो ॥ ४४ ॥ और ऊपर जटाजूटवाले व दण्ड समेत तथा पराई स्त्री से जीविकावाले और जुवा व वेश्या में परायण होवो और पिता, मातासे रहित होवो ॥ ४५ ॥ और पुत्र में पिताका धन व विद्याभी न होगी जिन्होंने मेरी जटा को नाश कियाहै वे सब इन्द्रियोंसे रहित होवैं ॥ ४६ ॥ व भिक्षाको मांगतेहुये वे भयंकर पुरुष पराई पीड़ा से जीविकावाले होवैं व धन धान्य

जातयः ॥ पुनःकपर्दिनंजघ्नुः पाणिपादेनवैद्विजाः ॥ ४३ ॥ ताड्यमानस्तुतैर्विप्रैः परंकोपमुपागमत् ॥ ततोदेवेनतेशप्ता यूयंवेदविवर्ज्जिताः ॥ ४४ ॥ ऊर्ध्वजूटास्सलगुडाः परदारोपजीविनः ॥ रताद्यूतेचवेश्यायां पितृमातृविवर्ज्जिताः ॥ ४५ ॥ नपुत्रेपितृवित्तंच विद्यावापिभविष्यति ॥ शेफोममहतोयैश्च तेसर्वेन्द्रियवर्जिताः ॥ ४६ ॥ रौद्राभिक्षान्तु भिक्षन्तः परपीडोपजीविनः ॥ आत्मानंवर्णयिष्यन्ति धनधान्यविवर्जिताः ॥ ४७ ॥ यैश्चतत्रकृताविप्रैर्हन्यमानेकृपा मयि ॥ तेषांधनञ्चपुत्राश्च दासीदासादयश्चवै ॥ ४८ ॥ कुलोत्पन्नाश्चवैनार्यो भविष्यन्तिवरान्मम ॥ एवंशापंवरन्द त्त्वा गतोन्तर्द्धानमीश्वरः ॥ ४९ ॥ ततोद्विजागतेदेवे मत्वातंशङ्करंविभुम् ॥ अन्वेषयन्तोयत्नेन महाकालवनङ्गताः ॥ ५० ॥ स्नात्वासरसिरुद्रस्य जपन्तःशतरुद्रियम् ॥ जाप्यावसानेतान्देवोऽशरीरिण्यागिराब्रवीत् ॥ ५१ ॥ अनृतन्नमया प्रोक्तं क्लेशेष्वपिकुतस्सुखे ॥ भूयोप्यनुग्रहंविप्रा युष्माकंकरवाण्यहम् ॥ ५२ ॥ शान्तादान्ताश्चयेविप्रा भक्तिमन्तोम

से रहित वे लोग अपना को वर्णन करैंगे ॥ ४७ ॥ और वहांपर मारेजाते हुये मेरेऊपर जिन ब्राह्मणों ने दया किया उनके धन, पुत्र, दासी व दासादिक ॥ ४८ ॥ और कुलमें उपजी हुई स्त्रियां मेरे वरदान से होवैंगी इसप्रकार शाप व वरदानको देकर सदाशिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर शंकरदेवजीके चलेजानेपर उन प्रभुको शिव जानकर यत्न से ढूंढ़ते हुये ब्राह्मण महाकालवनको गये ॥ ५० ॥ और रुद्रसर में नहाकर शतरुद्रियको जपते हुये उनसे सदाशिवदेवजी जप के अन्तमें आकाशवाणी से बोले ॥ ५१ ॥ कि मैंने क्लेशों में भी झूंठ नहीं कहाहै फिर सुखमें क्या कहना है हे ब्राह्मणो ! मै फिर भी तुमलोगों के ऊपर दया करता

हूं ॥ ५२ ॥ कि जो इन्द्रियों को दमन किये व शान्त ब्राह्मण मुझ में भक्तिमान् स्थित हैं उनका वंश नहीं नाश होताहै और न धन न सन्तान नाश होतीहै ॥ ५३ ॥ और अग्निहोत्र में परायण जो विष्णुजी में भक्तिमान् हैं व ब्रह्मा तथा तेजराशि दिननायकजी को पूजते हैं ॥ ५४ ॥ उनके अशुभ नहीं विद्यमान होताहै कि जिनकी बुद्धि समतामें स्थित है इतना कहकर जगत् के स्वामी देवेश शिवजी चुपहोगये ॥ ५५ ॥ इसप्रकार देवदेव महादेवजी से शाप व वरदान को पाकर सब साथही वहां आये जहां कि ब्रह्मादेवजी थे ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर जपों से ब्रह्माको प्रसन्नकरातेहुये वे आगे स्थित हुये और प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माजीने उनसे कहा कि मुझसे

यिस्थिताः ॥ नतेषांक्षियतेवंशो नधनंनचसन्ततिः ॥ ५३ ॥ अग्निहोत्ररतायेच भक्तिमन्तोजनार्दने ॥ पूजयन्तिच ब्रह्माणं तेजोराशिन्दिवाकरम् ॥ ५४ ॥ नाशुभंविद्यतेतेषां येषांसाम्येस्थितामतिः ॥ एतावदुक्त्वादेवेशो तूष्णीमासीज्जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ एवंशापंवरंलब्ध्वा देवदेवान्महेश्वरात् ॥ आजग्मुस्सहितास्सर्वे यत्रदेवःपितामहः ॥ ५६ ॥ विरञ्चिमथतेजाप्यैस्तोषयन्तःपुरःस्थिताः ॥ तुष्टस्तानब्रवीद्ब्रह्मा मत्तोपिव्रियतांवरः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणस्तेनवाक्येन तुष्टाःसर्वेद्विजोत्तमाः ॥ कोवरोयाच्यतांविप्राः परितुष्टेपितामहे ॥ ५८ ॥ एकेतत्राब्रुवन्विप्रा वेदान्वैवृणवामहे ॥ ततोन्येश्चधनंधान्यं वृतमेवाविशङ्किताः ॥ ५९ ॥ अन्येप्राहुःकिमस्माकं धनैस्तुष्टेपितामहे ॥ अग्निहोत्रादिवेदाश्च शास्त्राणिविविधानिच ॥ ६० ॥ शान्ताआढ्याश्चयेलोका वरदानाद्भवन्तुनः ॥ एवंप्रजल्पतांतत्र विप्राणांकोपआविशत् ॥ ६१ ॥ परस्परंवरार्थेथ युद्धंकर्तुंसमुद्यताः ॥ युध्यन्तेसायुधाःकेचित्केचित्तत्रोपसर्पकाः ॥ ६२ ॥ उदासीनाश्चयेविप्रास्ते

भी वरदान मांगिये ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा के उस वचन से प्रसन्न होतेहुये सब द्विजोत्तम आपसमें बोले कि हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर कौन वरदान मांगाजावै ॥ ५८ ॥ वहां पर कितेक ब्राह्मणलोग बोले कि हमलोग वेदों को मांगते हैं तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों ने धन धान्यको मांगा ॥ ५९ ॥ और अन्य बोले कि ब्रह्माके प्रसन्न होने पर हमलोगों का धनों से क्या प्रयोजन है और अग्निहोत्रादिक व वेद तथा अनेक प्रकारके शास्त्र ॥ ६० ॥ और शान्त व धनवान् जो लोक हैं वे वरदान से हमलोगों के होवैं वहां इसप्रकार कहते हुये ब्राह्मणों के क्रोध ने प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वर के लिये आपस में युद्ध करने के लिये तैयार हुये अस्त्रों

समेत कोई युद्ध करते थे और कोई वहां भगगये ॥ ६२ ॥ और जो ब्राह्मण उदासीन थे वे मौन से स्थित हुये इसप्रकार युद्ध करतेहुये ब्राह्मणोंको देखकर भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ६३ ॥ कि जिसलिये शाला में बाहर टिकेहुये ब्राह्मण भगगये उसीकारण हे ब्राह्मणो ! वह गुल्म युद्धमें मूलसे लगाकर याने पहलेही से भागनेवाला होवै ॥ ६४ ॥ और जो उदासीन गुल्म (सेनाभेद) वृत्ति (जीविका) हीन होगा उसके वेद होवैंगे जोकि मौन स्थित हुआहै ॥ ६५ ॥ और अस्त्रों समेत व युद्ध करने की इच्छावाला जो तीसरा गुल्म है हे ब्राह्मणो ! जीविकाहीन वह चारप्रकार का होगा ॥ ६६ ॥ कि पराई स्त्रियोंमें, वेश्याओंमें, जुवामें व चोरीमें सदैव परायणहोगा

चमौनेनसंस्थिताः ॥ दृष्ट्वैवंभगवान्प्राह विप्रान्युद्धंप्रकुर्वतः ॥ ६३ ॥ यस्मादुपद्रुतंविप्रैः शालायांबाह्यसंस्थितैः ॥ तस्मा दामूलतोविप्रा गुल्मोयुद्धेविसर्पकः ॥ ६४ ॥ उदासीनस्तुयोगुल्मो वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ वेदास्तस्यभवेयुर्वै यस्त्वा सीन्मौनसंस्थितः ॥ ६५ ॥ तृतीयस्सायुधोगुल्मो योद्धुकामस्तुयःस्थितः ॥ चातुर्विधस्सवैविप्रा वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ ६६ ॥ परदारासुवेश्यायां द्यूतेचौर्येसदारतः ॥ नज्ञानंनचमोक्षःस्यात्तेषांवैदुष्टचेतसाम् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वाययौब्रह्मा वैराजंभवनोत्तमम् ॥ एवंमेपरमंक्षेत्रं मुनयोवन्तिमण्डले ॥ ६८ ॥ यान्देवनगरींलोके प्रवदन्तीहमानवाः ॥ तस्यान्तु येद्विजाश्शान्ता वसन्तिक्षेत्रवासिनः ॥ ६९ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चिन्ममलोकेभविष्यति ॥ कोकामुखेकुरुक्षेत्रे नैमिषेपु ष्करेषुच ॥ ७० ॥ वाराणस्यांप्रयागेच तथाबदरिकाश्रमे ॥ गङ्गाद्वारेप्रभासेच गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ७१ ॥ रुद्रकोट्यांविरू पाक्षे मित्रस्यापितथावने ॥ तीर्थेष्वेतेषुक्षेत्रेषु यासिद्धिर्द्वादशाब्दिका ॥ ७२ ॥ प्राप्यतेमानवैर्लोके यामासेनैवलभ्य

और उन दुष्टचित्तवाले द्विजों के न ज्ञान होगा न मोक्ष होगा ॥ ६७ ॥ यह कहकर ब्रह्माजी उत्तम वैराज मन्दिरको गये इसप्रकार हे मुनियो ! अवन्ती के मण्डल में मेरा उत्तम क्षेत्र है ॥ ६८ ॥ इस लोकमें जिसको मनुष्य देवनगरी कहते हैं उसमें जो क्षेत्रवासी शान्त ब्राह्मण बसते हैं ॥ ६९ ॥ उनको मेरे लोकमें कुछ दुर्लभ न होगा कोकामुख, कुरुक्षेत्र, नैमिष व पुष्कर में ॥ ७० ॥ और काशी, प्रयाग व बदरिकाश्रममें तथा हरिद्वार, प्रभास व गंगासागर के संगम में ॥ ७१ ॥ और रुद्र-कोटि में व विरूपाक्षमें तथा मित्रके भी वन में इन क्षेत्रों में जो बारह वर्षवाली याने बारह वर्ष में सिद्धि होती है ॥ ७२ ॥ वह सिद्धि संसार में मनुष्यों को उज्ज-

यिनी में एकही महीने में मिलती है यदि ब्रह्मचर्यमे मन होताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ७३ ॥ तीर्थोंके मध्य में यह उत्तम तीर्थ है व क्षेत्रोंके बीचमे भी उत्तम है और हे मुनिश्रेष्ठो ! यह तीर्थ मुझको सदैव मनोहर है ॥ ७४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मन्दाकिनी का माहात्म्य व क्षेत्रकी उत्तम उत्पत्ति कहीगई फिर आपलोग अन्य क्या सुनना चाहते हो ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! ब्रह्मा के इस वैसे वचन को सुनकर वे वशिष्ठादिक मुनिलोग उत्तम ध्यानको प्राप्तहुये ॥ ७६ ॥ और बहुत समयतक ध्यानकर उन्हों ने वहा निवास में मनको धारण किया और अग्निहोत्र समेत व स्त्रियों समेत वे अवन्ती के मण्डल में गये ॥ ७७ ॥ और महाकाल-

ते ॥ उज्जयिन्यान्नसन्देहो ब्रह्मचर्येमनोयदि ॥ ७३ ॥ तीर्थानांप्रवरन्तीर्थं क्षेत्राणामपिचोत्तमम् ॥ सदाभिरुचिरंम ह्यमेतद्वैमुनिसत्तमाः ॥ ७४ ॥ मन्दाकिन्यास्तुमाहात्म्यं क्षेत्रस्योत्पत्तिरुत्तमा ॥ भूयःकिमन्यदिच्छन्ति श्रोतुंवैद्विज सत्तमाः ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एतत्तेब्रह्मणोवाक्यं श्रुत्वाव्यासतथाविधम् ॥ वशिष्ठाद्याश्चमुनयः परन्ध्यानम थोगताः ॥ ७६ ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं तत्रवासेमनोदधुः ॥ साग्निहोत्रास्सपत्नीका गताश्चावन्तिमण्डले ॥ ७७ ॥ म हाकालवनंदृष्ट्वा शिप्राञ्चैवमहानदीम् ॥ श्मशानमूखरञ्चैव नदींगन्धवतींतथा ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थमुपस्पृश्य चक्रुर्वा सन्तत्रवै ॥ स्मृत्वातद्ब्रह्मणोवाक्यं रुचिस्तेषांतदाभवत् ॥ ७९ ॥ अरुन्धत्यावशिष्ठश्च गमनंप्रतिमोदितः ॥ उवाच तांमहात्मासौ स्वांभार्यांमुनिसत्तमः ॥ ८० ॥ महाकालःसरिच्छिप्रा गतिश्चैवसुनिर्मला ॥ उज्जयिन्यांविशालाक्षी सःकस्यनरोचते ॥ ८१ ॥ स्नानंकृत्वानरोयस्तु महानद्यांहिदुर्लभम् ॥ महाकालंनमस्कर्ता नैवमृत्युंसशोचयेत्॥८२॥

व शिप्रामहानदी तथा श्मशान, ऊखर व गन्धवती नदीको देखकर ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थ को स्पर्श कर उन्होंने वहां निवास किया व ब्रह्मा के उस वचन उस समय उनकी रुचि हुई ॥ ७९ ॥ और अरुन्धती ने वशिष्ठजीको जाने के लिये प्रेरणा किया व इन महात्मा मुनिश्रेष्ठजीने उस अपनी स्त्री से कहा ॥ हाकाल व शिप्रानदी तथा अतिनिर्मलगति व विशालाक्षीदेवी जहां है उस उज्जयिनी में किसको निवास नहीं रुचता है ॥ ८१ ॥ जो मनुष्य महानदी

में दुर्लभ स्नानकर महाकालजी को प्रणाम करताहै वह मृत्युको नहीं शोचता है ॥ ८२ ॥ और कीट या पतंग मरकर शिवजीका सेवक होताहै जहां पर यह मुक्ति सुनी जाती है वह मुझसे कैसे छोड़ीजावै ॥ ८३ ॥ इसप्रकार कहकर इसके अनन्तर मुनियों में मुख्य वशिष्ठजी ने अचानकही वहीं निवास किया और वनकी संपदा को कहते हुये वे मुख्य मुनियों समेत इसी उज्जयिनी में स्थित हुये ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमन्दाकिनीमाहात्म्य वर्णनंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मृतःकीटःपतङ्गोवा रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ यत्रैषाश्रूयतेमुक्तिः कथंसात्यज्यतेमया ॥ ८३ ॥ एवंप्रजल्प्याथमुनिप्रधानस्तत्रैववासंसहसाचकार ॥ वनस्यव्युष्टिंपरिकीर्तयंस्तुस्थितस्सहैवात्रमुनिप्रधानैः ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेमन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनन्नाम द्वात्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अवन्त्यामङ्कपादाख्ये पश्येद्रामजनार्द्दनौ ॥ ययोर्दर्शनमात्रेण यमलोकन्नपश्यति ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ कथंतावङ्कपादाख्ये यातावत्रमहामुने ॥ नपश्येद्यमलोकंस यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ भारावतारणार्थाय देवौरामजनार्दनौ ॥ अवतीर्णौयदोर्वंशे दिव्यरूपौमहाद्युती ॥ ३ ॥ कंसंहत्वाथचाणूरमुग्रसेनंनराधिपम् ॥ अभिषिच्यस्वयंराज्ये यदुसिंहउवाचतम् ॥ ४ ॥ किंकार्यंतेमयाब्रूहि कर्तव्यन्तेसुतेहते ॥ एवमुक्तस्स

दो० । आन्यो मृत गुरुपुत्र को यथा कृष्ण बलदेव । तेंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अवन्ती में अंकपाद नामक क्षेत्र में मनुष्य बलराम व जनार्दन (श्रीकृष्ण) जी को देखै कि जिनके दर्शनही से पुरुष यमलोकको नहीं देखताहै ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! यहां अङ्कपादनामक क्षेत्रमें वे किस प्रकार प्राप्तहुयेहैं कि जिनके देखनेसे मनुष्य यमलोकको नहीं देखताहै यद्यपि वह ब्रह्मघाती होवै ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि भारको उतारने के लिये दिव्यरूपवाले व महाछविवाले बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने यदु के वंशमें अवतार लियाहै ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर कंस व चाणूर को मारकर तथा उग्रसेन राजा

को राज्यपै अभिषेककर आपही यदुवंशमें सिंहरूप श्रीकृष्णजी उनसे बोले ॥ ४ ॥ कि मुझसे तुम्हारे पुत्रके मारने पर मुझको तुम्हारा क्याकार्य करना चाहिये यह कहिये इस प्रकार कहेहुये उस राजा उग्रसेनने यह कहा ॥ ५ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! आपको सब वस्तु प्राप्तहै कुछ दुर्लभ नहीं है और तुम दोनों भी विशेष कर जाने हुये समस्त विज्ञानवाले होवोगे ॥ ६ ॥ तुम दोनों उज्जयिनी पुरीको जावो और विद्यावान् होवोगे तदनन्तर बलराम व श्रीकृष्णजी सांदीपनि ब्राह्मण के समीप गये ॥ ७ ॥ और वेदोंको कण्ठस्थ किया व उन्होंने समस्त आचार व रहस्य समेत तथा संहार समेत धनुर्वेद को पढ़ा ॥ ८ ॥ हे द्विज ! चौंसठ दिनरातों से वह अद्भुत

राजावै उग्रसेनोब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥ सर्वंसम्पत्स्यतेकृष्ण भवतोहिनदुर्लभम् ॥ विज्ञाताखिलविज्ञानौ भवितारावुभावपि ॥ ६ ॥ गच्छेतामुज्जयिन्यांवै कृतविद्यौभविष्यथः ॥ ततस्सान्दीपनिंविप्रं जग्मतूरामकेशवौ ॥ ७ ॥ कण्ठस्थांश्चक्रतुर्वेदानाचारमखिलञ्चतौ ॥ सरहस्यंधनुर्वेदं ससंहारंतथैवच ॥ ८ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभूद्द्विज ॥ सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोःकर्मातिमानुषम् ॥ ९ ॥ विचिन्त्यतौतदामेने प्राप्तौचन्द्रदिवाकरौ ॥ ततःकिञ्चित्सनोवाचस्नातुंतीर्थमथोययौ ॥ १० ॥ शिष्यैस्तुसहितोविप्रो महाकालमथाविशत् ॥ शिष्यैस्सहप्रविष्टौद्वौ तदातौरामकेशवौ ॥ ११ ॥ वन्द्यमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् ॥ त्वयानाथेनदेवानां मनुष्यत्वेहितिष्ठता ॥ १२ ॥ सुखमासीच्चसाधूनामज्ञानानाञ्चसर्वदा ॥ जनपीडाकरायेतु सदाबलदर्पिताः ॥ १३ ॥ युवाभ्यांतेहतास्सर्वे कंसप्रमुखतोनृपाः ॥ मुनिसिद्धसुरा

होगया और सांदीपनि ने मनुष्यों के न करने योग्य व संभावना के अयोग्य उनदोनोंके कर्मको देखकर ॥ ९ ॥ व चिन्तन कर उससमय उनको प्राप्तहुये चन्द्रमा व सूर्य माना तदनन्तर वे कुछ न बोले इसके अनन्तर नहाने के लिये चले गये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर शिष्यों समेत वे विप्रजी ! महाकालवन में पैठे और उस समय शिष्यों समेत वे बलभद्र व श्रीकृष्णजी दोनों ने प्रवेश किया ॥ ११ ॥ व प्रणाम कियेजाते हुये महाकालजी उस समय कृष्णजीसे बोले कि मनुजता में टिके हुये तथा देवताओं के स्वामी तुम से ॥ १२ ॥ साधुवों को व अज्ञानियों को सदैव सुखहुआ है और जो मनुष्यों के पीड़ाकारक व सदैव बल से गर्वित थे ॥ १३ ॥

वे कंसादिक सब राजा तुम दोनोंसे मारेगये हे अनघ ! तुमको मुनि व सिद्ध तथा देवतादिकों की स्थिति (पालन) करना चाहिये ॥ १४ ॥ करूंगा उनसे यह कह कर प्रणाम करने योग्य वे चलेगये सांदीपनि को देखकर प्रतिदिन शिष्यलोग ऐसा कहते थे ॥ १५ ॥ परन्तु कोई भी नहीं श्रद्धा करता था क्योंकि उनके वचन बहुत ही अद्भुत थे तदनन्तर शिष्यों से कहेहुये आश्चर्यको देखने के लिये आपही गये॥ १६ ॥ तदनन्तर वैसाही शब्द उठा व उन दोनों को मिलाप हुआ और वहां घर में आये हुये उन दोनोंसे गुरुजी वचन बोले ॥ १७ ॥ कि यदि यदुवंश में उपजे हुये तुम दोनों वीर हो तो मुझसे नहीं जानेगये तदनन्तर कृतकृत्य श्रीकृष्णजी

दीनां स्थितिःकार्यात्वयानघ॥१४॥करिष्यामितमित्युक्त्वासनमस्यस्ततोययौ ॥ दृष्ट्वासान्दीपनिंशिष्या ऊचुरेवंदिनेदिने ॥ १५ ॥ कोपिनाश्रद्दधत्तेषां वचस्त्वत्यद्भुतंयतः ॥ स्वयंययौततोद्रष्टुमाश्चर्यंशिष्यभाषितम् ॥ १६ ॥ ततस्तथोत्थितःशब्दः संश्लेषश्चतथातयोः ॥ तावागतौगृहंतत्रगुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ नवैज्ञातौमयावीरौ यदिवृष्णिकुलोद्भवौ ॥ ततस्सान्दीपनिंकृष्णः कृतकृत्योब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥ गुर्वर्थंकिन्ददामीति सहरामेणहर्षितः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंहृद्यं गुरुःप्रोवाचहर्षितः ॥ १९ ॥ पुत्रमिच्छाम्यहंत्वत्तो योमृतोलवणाम्भसि ॥ पुत्रएकोहिमेजातस्सचापितिमिनाहतः ॥ २० ॥ प्रभासेतीर्थयात्रायां त्वमेवतमिहानय ॥ तथेतिचाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगतः ॥ २१ ॥ तंसमुद्रउवाचेदं दैत्यःपञ्चजनोमहान् ॥ तिमिरूपेणतंबालं ग्रस्तवान्मयिसंस्थितः ॥ २२ ॥ ततःपञ्चजनंहत्वा ग्राहरूपंमहाबल

सांदीपनि से वचन बोले ॥ १८ ॥ कि बलभद्र समेत प्रसन्न मैं गुरुके लिये क्या देऊं उस मनोहर वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुये गुरुजी बोले ॥ १९ ॥ कि जो क्षारसमुद्र में मरगया है उस पुत्रको मैं तुमसे चाहता हूं मेरे एक पुत्र पैदा हुआ था उसको भी तीर्थयात्रा में तिमिनामक मत्स्यने प्रभासक्षेत्र में मारडाला उसको तुम्हीं यहां ले आवो बलभद्रजीके मत में प्राप्त श्रीकृष्णजी ने यह कहा कि वैसाही होगा ॥ २० । २१ ॥ उनसे समुद्र ने यह कहा कि पंचजन नामक बड़े भारी दैत्य ने तिमिमत्स्य के रूपसे उस बालक को ग्रस लियाहै जोकि मुझ में टिकाहै ॥ २२ ॥ तदनन्तर ग्राहरूपी बड़े बलवान् पंचजन दैत्यको मारकर उसके

बीचमें स्थित शंखको ग्रहण किया जोकि पहले जल के बीचमें स्थित ग्राहसे बड़ीलीला से ग्रसित हुआ था जब उसके पेटमें श्रीकृष्णजी ने बालक को न देखा ॥ २३ । २४ ॥ तब यममन्दिर में प्राप्त मानकर वरुण से कहा कि हे जलजन्तुवोंके स्वामी, भगवन्! मुझको बड़ा भारी रथ दीजिये ॥ २५ ॥ कि जिससे समर में उनको मारकर प्रेतों के पति यमराज को देखूं पुरातम समय मैंने जिस रथ से संग्राम में बलसे गर्वित दैत्यों व दानवों को माराहै आज मुझको उसी रथ को दीजिये हे जलोंके स्वामी! जब समर समाप्त होगया था तब मैंने न्यासभूत याने धरोहर की नाईं जिस रथको तुम्हारे समीप धरा है उसको दीजिये यह सुनकर

म् ॥ तन्मध्यस्थंचजग्राह शङ्खंग्रस्तोहियःपुरा ॥ २३ ॥ जलमध्यस्थितेनैव ग्राहेणातीवलीलया ॥ तस्योदरेयदाबालं नददर्शजनार्द्दनः ॥ २४ ॥ यमालयगतंमत्वा तदावरुणमब्रवीत् ॥ भगवन्यादसामीश रथोमेदीयताम्महान् ॥ २५ ॥ येनाहवेहिताञ्जित्वा पश्येयंप्रेतपंयमम् ॥ पुराजिरेहतादैत्या दानवाबलदर्पिताः ॥ २६ ॥ मयायेनरथेनाद्य समद्यंदीयतांरथः ॥ न्यासभूतोरथोयस्ते विधृतोपरतेरणे ॥ २७ ॥ मयाधर्मंपुरस्कृत्य दीयतांसद्यपाम्पते ॥ एतच्छ्रुत्वाप्रहृष्टात्मा ज्ञात्वाकार्यार्थिनंहरिम् ॥ २८ ॥ ददौतुरथमक्षोभ्यं रणेतस्मैसुरासुरैः ॥ ततोहरिस्समालोक्य रथंरत्नपरिष्कृतम् ॥ २९ ॥ द्वीपिचर्मपरीधानं वैयाघ्रपरिवारितम् ॥ नानाचित्रविचित्राङ्गं गरुडध्वजराजितम् ॥ ३० ॥ संयुक्तंशैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ अजेयन्देवदेवेन्द्रदानवासुरराक्षसैः ॥ ३१ ॥ अनेकायुधसम्पूर्णं मणिविद्रुमभूषितम् ॥ सहस्रसूर्यप्रतिमं चारुवक्रंचतुर्युगम् ॥ ३२ ॥ किङ्किणीशतशोभाढ्यं घण्टाचामरचन्द्रिकम् ॥ संवर्त्ताकारविषमं खगे

प्रसन्न चित्तवाले वरुणजी ने कार्यार्थी श्रीकृष्णजी को जानकर ॥ २६ । २७ । २८ ॥ समर में देवताओं व दैत्यों से क्षोभरहित रथको उन श्रीकृष्णजी के लिये दिया तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने रत्नों से जटित रथको देखकर ॥ २९ ॥ जोकि चीते के चर्म से नीचे बिछौनेवाला व व्याघ्रचर्म से घिरा था व अनेक प्रकार के चित्र विचित्र अगोंवाला तथा गरुड के ध्वजा से शोभित ॥ ३० ॥ व शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प व बलाहक नामक घोड़ोंसे संयुत था और देवता, देवेन्द्र, दानव, असुर व राक्षसों से न जीतने योग्य था ॥ ३१ ॥ व अनेक अस्त्रों से संपूर्ण तथा मणियों व मूंगों से भूषित था और हज़ार सूर्यों के समान प्रकाशमान तथा सुन्दर धुरी व चार

जुआँवोंवाला था ॥ ३२ ॥ व सैकड़ों घंटियों से शोभासंयुत व घंटा और चामरकी चन्द्रिकावाला था व प्रलय के समान आकार से विषम और उत्तम गरुड़ के ध्वजावाला था ॥ ३३ ॥ उस रथको देखकर बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी विस्मयरहित होकर प्रसन्न हुये और प्रदक्षिणापूर्वक जाकर व देवताओं के लिये प्रणाम कर ॥ ३४ ॥ जन्मरहित श्रीकृष्णजी बड़े भाई समेत विमान के समान रथ पै चढ़े ॥ ३५ ॥ तदनन्तर संसार के निवासभूत श्रीकृष्णजी शीघ्रतासंयुत होकर यम-लोकके आश्रित दिशाको गये और उन अच्युत श्रीकृष्णजी ने हज़ारों किरणों से घिरीहुई पुरीको देखा और शंखको लेकर ॥ ३६ ॥ तलवार व धनुषको धारण किये

न्द्रवरकेतनम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदेवीतविस्मयः ॥ प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यःप्रणम्यच ॥ ३४ ॥ आरुरोहरथंविष्णुर्विमानंसाग्रजोऽजनः ॥ ३५ ॥ ततोजगामत्वरितोजनार्द्दनो जगन्निवासोयमलोकमाश्रिताम् ॥ दिशं सहस्रैःकिरणैर्वृताम्पुरीं ददर्शशङ्खंपरिगृह्यचाच्युतः ॥ ३६ ॥ तत्रप्रध्मापयामास शङ्खंखड्गधनुर्धरः ॥ तेनशब्देनवित्र स्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥ ३७ ॥ नरकान्तर्गतामर्त्याः पापाचारपरायणाः ॥ सुखमापुःप्रशान्ताश्च वह्नयःकृष्णद र्शनात् ॥ ३८ ॥ शस्त्राणिकुण्ठतांप्रापुर्यन्त्राणिविविधानिच ॥ विदीर्णानितदाचाशु देवदेवस्यदर्शनात् ॥ ३९ ॥ असिपत्रवनन्नाम शीर्णपर्णमजायत ॥ रौरवन्नामनरकमभैरवमभूत्तदा ॥ ४० ॥ अभैरवंभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचि कम् ॥ शृङ्गाटंशृङ्गसदृशं लोहसूच्यप्यसूचिका ॥ ४१ ॥ दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणीनृणाम् ॥ नरकान्तेतदाजाते

श्रीकृष्णजी ने शंख को बजाया उस शब्दसे यमलोकनिवासी डरगये ॥ ३७ ॥ और पापके आचरण में परायण नरकमध्यगामी पुरुषों ने श्रीकृष्णजी के दर्शन से सुख पाया व अग्नियां शान्त होगईं ॥ ३८ ॥ और उस समय देवदेव श्रीकृष्णजीके दर्शन से शीघ्रही शस्त्र कुण्ठताको प्राप्तहुये और अनेक भांतिके यन्त्र फटगये॥३९॥ व असिपत्र नामक वन गिरेहुये पत्तोंवाला याने पत्तों से हीन होगया और उस समय रौरव नामक नरक अभयानक होगया ॥ ४० ॥ व भैरव नामक नरक अभैरव हुआ और कुंभीपाक बिन पचानेवाला हुआ तथा शृगाट नरक शिखर के समान व लोहसूची नरक सूचीरहित हुआ ॥ ४१ ॥ और दुःख से उतरे योग्य वैतरणी नदी

मनुष्योंको सुखसे उतरनेवाली हुई उस समय जब व्यापक जगदीशजी वहां गये तब नरकों का अन्त होनेपर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर पापोंके क्षय होने के कारण वे सब मनुष्य नरक से छूटगये अविनाशी स्थान पै प्राप्तहोकर अज्ञाननाशक श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४३ ॥ वे पुरुष सब ओर हजारों विमानो पै चढ़े और कमललोचन श्रीकृष्णजी को देखकर वे सब पाप से छूट गये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे मुने ! उन विश्वरूपी श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब नरकमण्डल शून्य होगया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर विकलतारहित यमराज के दूतों ने नरकों में पैठते हुये युद्धकारक श्रीकृष्णजी को मना किया ॥ ४६ ॥ दूत बोले कि हे वीर ! इस मार्ग से रथ

गतेविश्वेश्वरेविभौ ॥ ४२ ॥ पापक्षयात्ततस्सर्वे तेमुक्तानरकान्नराः ॥ पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वाविष्णुंतमोपहम् ॥४३॥ विमानेषुसहस्रेषु ह्यारूढास्तेसमन्ततः ॥ समीक्ष्यपुण्डरीकाक्षं मुक्तास्तेसर्वपातकात् ॥४४॥ ततश्शून्यंमुनेजातं सर्वंनिरयमण्डलम् ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिणः ॥ ४५ ॥ ततोदूताःकृतान्तस्य कृष्णञ्चयुद्धकारिणम् ॥ वारयामासुरव्यग्रा विशन्तंनरकान्प्रति ॥ ४६ ॥ किङ्कराऊचुः ॥ मावीरानेनमार्गेण रथमानयमानवाः ॥ प्रयान्त्यधोगतिंपापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥ ४७ ॥ यमादिष्टानराःपापाद्येमोच्यावर्षकोटिभिः ॥ दृष्ट्वातएवसद्यस्त्वां गतास्स्वर्गमघावृताः ॥ ४८ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तेषां कृपयापीडितोभृशम् ॥ पुनःप्रोवाचमधुहा मोक्षायाहमुपागतः ॥ ४९ ॥ सर्वेषां स्वर्गदाताहं यमलोकनिवारकः ॥ अञ्जसायमराड्दूता यमायाख्यातमेवच ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वावचोदूतास्सत्वरायममागताः ॥ सर्वमाचख्युरेवृत्तं यथानारकिमोक्षणम् ॥ ५१ ॥ ततोयमोरुषाविष्टःप्राहतान्यमकिङ्करान् ॥ यःकश्चिदागतोम

को मत लाइये क्योंकि पराई स्त्री व धन को हरनेवाले मनुष्य पाप से अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ यमराज से आज्ञा दियेहुये जो मनुष्य पाप से करोड़ों वर्षों में छोड़ने योग्य थे पापों से घिरे हुये वेही तुमको देखकर उसी क्षण स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ उनके इस वचन को सुनकर दया से बहुतही पीड़ित मधुदैत्यनाशक श्रीकृष्णजी फिर बोले कि मैं मोक्ष के लिये आया हूं ॥ ४९ ॥ और मैं यमलोक का निवारक व सबों को स्वर्गदायक हूं हे यमराज के दूतो ! तुमलोग शीघ्रही मेरे वचन को यमराज से कहिये ॥ ५० ॥ इस वचनको सुनकर शीघ्रता समेत दूत यमराजके समीप आये व उन्होने नारकी जनोंके मोक्षवाले सब वृत्तान्त

को कहा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर क्रोध से संयुत यमराजजी उन यमदूतों से बोले कि जो कोई मर्यादा का भेदकारक मृत्युलोकवाला मनुष्य आया हो ॥ ५२ ॥ उसको जाकर मना करिये और पकड़ कर यहां ले आइये और दूतों समेत यह नरांतक नामक दूत जावै ॥ ५३ ॥ यमराज से इसप्रकार कहे हुये उस नरांतक दूत ने जाकर उग्र बचनों से उन श्रीकृष्णजी को मनाकिया ॥ ५४ ॥ जब मनाकिये हुये श्रीकृष्णजी न स्थित हुये तब नरान्तक क्रोधित हुआ और उसने बहुतही उग्र बाणों से श्रीकृष्णजी को मारा ॥ ५५ ॥ और समर में बलभद्र भी अनेक भांतिके बाणों से ताड़ित हुये व भयंकर यमराजके दूतों से सब ओर वे दोनों ताड़ित

र्त्यो मर्यादाभेदकृन्नरः ॥ ५२ ॥ तंगत्वावारयध्वंवै गृहीत्वानीयतामिह ॥ अयन्नरान्तकोयातु किङ्करस्सहकिङ्करैः ॥ ५३ ॥ एवमुक्तोयमेनाथ किङ्करस्सनरान्तकः ॥ गत्वातंवारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥ ५४ ॥ यदानवारितस्त स्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तकः ॥ तदाशरैरतीवोग्रैस्ताडितस्तेनकेशवः ॥ ५५ ॥ बलदेवोपिसमरे ताडितोविविधैश्शरैः ॥ तावुभौताडितौघोरैःसमन्ताद्यमकिङ्करैः ॥ ५६ ॥ आदायधनुषीदिव्ये जघ्नतुर्यमकिङ्करान् ॥ बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरा मजनार्द्दनौ ॥ ५७ ॥ नरान्तकोपिसमरे बलेनबलिनार्द्दितः ॥ पपातगदयाभिन्नो मूर्ध्निनिर्गतलोचनः ॥ ५८ ॥ ततोन रान्तकेवीरे पतितेयमकिङ्करे ॥ किङ्कराणामभूत्सैन्यमार्तंरणपराङ्मुखम् ॥ ५९ ॥ तेद्रूतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभ यातुराः ॥ यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपातनम् ॥ ६० ॥ ततोयमोययौक्रुद्धः समन्तात्किङ्करैर्वृतः ॥ततःप्राहयमःक्रु द्धोनोजितोहंपुरापरैः ॥ ६१ ॥ ततोवादित्रघोषैस्तु मुरजानकगोमुखैः ॥ नानाडमरुकाद्यैश्चचित्रगुप्तेचगच्छति ॥६२॥

हुये ॥ ५६ ॥ और दिव्य धनुषोंको लेकर उन क्रोधित बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने अनेक हज़ार बाणों से यमदूतों को मारा ॥ ५७ ॥ और बलिष्ठ बलभद्रजी से युद्ध में नरांतक भी विकल हुआ व गदा से भिन्नमस्तकवाला व निकले हुये लोचनोंवाला वह गिरपडा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर यमदूत नरांतक वीर के गिरनेपर दूतों की विकल सेना युद्ध से विमुख हुई ॥ ५९ ॥ बलभद्र व श्रीकृष्णजी से मारे हुये भय से विकल उन दूतों ने यमराज से नरांतक का नाश कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर सब ओर दूतों से घिर हुये क्रोधित यमराजजी गये उसके उपरान्त क्रोधित यमराज ने कहा कि पुरातन समय शत्रुओं ने मुझको नहीं जीताहै ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त

मुरज, ढोल व गोमुख और अनेक भांति के डमरू आदिक बाजाओं के शब्दों से चित्रगुतके जाने पर॥ ६२ ॥ देवता, विद्याधर व सिद्ध यमराज के समर में क्षोभ-रहित व कामपालक जगदीश व बड़े बलवान् श्रीकृष्णजी को देखने के लिये प्राप्तहुये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर चित्रगुप्तसे प्रेरणा किये हुये दूतोंने शरसमूहों से सब ओर रथको घेरकर समर में बलभद्र व श्रीकृष्णजी को पीड़ित किया और चित्रगुप्त के देखते हुये समर में अनेक भांतिके बाणोंसे उन दोनों ने भी मारा ॥ ६४ । ६५ ॥ और सब ओर से हज़ारों दूतों को विदारण कर यमराजकी सेनाके बीच में समर में दुर्धर्ष व काम से पालित श्रीकृष्णजी यमराजकी नाई घूमने लगे ॥६६।६७॥

देवाविद्याधराःसिद्धाद्रष्टुं प्राप्तामहाबलम् ॥ कृतान्तस्यरणेऽक्षोभ्यंकामपालंजगत्पतिम् ॥ ६३ ॥ ततस्तेकिङ्कराःसर्वे चित्रगुप्तेननोदिताः ॥ रथमावृत्यबाणौघैः प्रबबाधुस्समन्ततः ॥ ६४ ॥ बलञ्चकेशवंसंख्ये जघ्नतुस्तावुभावपि ॥ रणे चविविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्यपश्यतः ॥ ६५ ॥ विदार्यचसहस्राणि किङ्कराणांसमन्ततः ॥ कृन्ताताानीकिनीमध्ये कृतान्त इवकेशवः ॥ ६६ ॥ चचाररणदुर्द्धर्षः कामपालेनपालितः ॥ ६७ ॥ ततश्चित्रगुप्तोरणेकिङ्करौघं विदीर्णंनिरीक्ष्यार्त नादंचकार ॥ शरैःपञ्चभिःकृष्णमायान्तमाजौ जघानाष्टभिर्वक्त्रदेशेसभिन्नः ॥ ६८ ॥ शरार्तोरथोपस्थआसीत्तदानीं तमालोक्यभिन्नंरणेनष्टसंज्ञम् ॥ रथंस्वंसमादाययातःकृतान्तस्ततश्चित्रगुप्तेशरार्तेप्रसुप्ते॥ ६९ ॥ रणेकीर्त्तिलुप्तेभयक्षो भयुक्ताः स्वसैन्यैश्चयुक्ताभयार्तानिषण्णाः ॥ प्रधानाश्चभग्नाविचित्राश्चभग्नास्ततश्चित्रगुप्तंनिशम्याथभग्नम्॥ ७० ॥

तदनन्तर युद्ध में दूतगणों को विदीर्ण देखकर चित्रगुप्त ने दुःखित शब्दको किया और समर में आतेहुये श्रीकृष्णजी को पांच बाणों से मारा और वे चित्रगुप्त आठ बाणों से मुख में भेदितहुये ॥ ६८ ॥ और बाणों से विकल चित्रगुप्त रथ पै स्थितहुये उस समय समर में नष्टचेतनावाले व विदीर्ण उन चित्रगुप्त को देखकर अपने रथको लेकर यमराजजी प्राप्तहुये तदनन्तर समर में लुप्त यशवाले व बाण से विकल चित्रगुप्त के मूर्च्छित होने पर भय व क्षोभ से संयुत व अपनी सेनाओं से युक्त मुख्य यमदूत भग्न व भय से विकल होकर स्थित होगये व विचित्र गण विदीर्ण हुये तदनन्तर चित्रगुप्त को विदीर्ण देखकर इसके अनन्तर ॥ ६९ । ७० ॥

उन यमराजजी ने दूरही से आते हुये देवारिशत्रु श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तमसेना को लेकर युद्ध किया जैसे कि प्रलय में प्रजाओं के नाश के लिये ज्वालाओंसे बढाहुआ वडवानल वर्तमान होवै ॥ ७१ ॥ आतेहुये उन करालकाल को देखकर श्रीकृष्णजी ने कालके समान बाणों से यमराजको आच्छादित किया और उन यमराजजी ने भयंकर दण्डको लेकर सब देवताओं के देखते हुये श्रीकृष्णजी के ऊपर छोड़ा ॥ ७२ ॥ तदनन्तर प्रजाओं का नाशकारक वह कालदण्ड श्रीकृष्ण जीके समीप प्राप्तहुआ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, यक्ष व मुनीन्द्रोंने बलभद्रजी को देखकर बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ७३ ॥ और शेषमूर्तिवाले उन बलभद्रजीने जलते

सकालस्तमायान्तमालोक्यदूराद्दरंसैन्यमादाय देवारिशत्रुम् ॥ विनाशाययुद्ध्यद्युगान्तेप्रजानां यथावाडवो ज्वालवृद्धःप्रवृत्तः ॥ ७१ ॥ तमायान्तमालोक्यकालंकरालं शरैराववृणोदन्तकंकालकल्पैः ॥ सकालःकरालंसमादायदण्डं मुमोचाच्युतेपश्यतान्देवतानाम् ॥ ७२ ॥ ततःकालदण्डःप्रजानांविनाशो हरेस्सन्निकाशंसमभ्याजगाम ॥ ततोदेवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः परंविस्मयंप्रापुरन्वीक्ष्यरामम् ॥ ७३ ॥ ज्वलन्तञ्जग्राहकालस्यदण्डं सरामोवरंलीलयानन्तमूर्तिः ॥ कालदण्डेगृहीतेबलेनाहवे मोक्तुकामेपुनःकालनाशायवै ॥ ७४ ॥ तूर्णमध्येत्यतत्रान्तरेपद्मजस्तं रणेवारयामासकृष्णंतदा ॥७५॥ मांमुञ्चेत्यब्रवीद्वेधाः कालंकालायुधंबल ॥ त्वयाबलवतावीर चराचरधराधर ॥ धार्यतेशिरसादेव संसारेनास्तितेसमः ॥ ७६ ॥ त्वयाविश्वपतिर्विष्णुस्तसङ्गेनसदोह्यते ॥ कोन्योस्तित्वत्समोराम यो जगद्वहनेक्षमः ॥७७॥ जगत्स्रष्टाजगद्गोप्ता जगद्धर्ताजगत्पतिः ॥ पाल्यतेयस्त्वयासोपि विष्णुर्विश्वैकनायकः ॥ ७८ ॥

हुये उस कालके उत्तम दण्डको खेलही से पकड लिया जब समर में बलभद्र ने कालदण्डको ग्रहण किया व फिर यमराजके लिये छोड़ने की इच्छा किया ॥ ७४ ॥ तब उसी मध्य में शीघ्रही ब्रह्माजी ने आकर उस समय समर में उन श्रीकृष्णजीको मना किया ॥ ७५ ॥ कि हे बलभद्रजी ! कालके समान अस्त्रको यमराज के ऊपर मत छोड़िये ऐसा ब्रह्माजी ने कहा हे चराचर समेत पृथ्वी को धारनेवाले,वीर,देव ! तुम बलवान् से शिरके द्वारा सब पृथ्वी धारण कीजाती है संसारमें तुम्हारे समान कोई नहीं है ॥ ७६ ॥ तुम सदैव गोदीसे जगदीश विष्णुजी को धारण करते हो हे राम ! अन्य कौन है जोकि संसार के धारण करने में समर्थ है ॥ ७७ ॥ तुम संसार

को रचनेवाले व संसार की रक्षा करनेवाले तथा संसार को हरनेवाले और संसारकेस्वामी हो जो तुम से पालन किये जाते हैं वे विष्णु भी संसार के एकही स्वामी हैं॥ ७८॥ यहा तुम्हारी स्तुति करनेवाला कौनहै और कौन गुणोंको जानने के लिये योग्यहै और उसी कारण विष्णुजी की नाभि से उपजे हुये कमल स्थानवाले हम लोग तुम्हारी गोदी में स्थित हैं ॥ ७९ ॥ ऐसा बलभद्रजीसे कहकर फिर देवताओं से घिरेहुये चतुराननजी स्तुतिपूर्वक श्रीकृष्णजी से वचन बोले ॥ ८० ॥ कि हे भयानक मुखवाले कृष्ण ! हे श्रीकृष्णजी ! इस काल के ऊपर दया कीजिये क्योंकि हे जगदीशजी ! आतेहुये आपको यह संसारके एकही स्वामी व नरकसमुद्र से

कस्तेस्तुतिकरोऽस्तीह कोगुणान्वेत्तुमर्हति ॥ ततोवयंत्वदङ्कस्था विष्णुनाभिभवायनाः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वाबलदेवञ्च वासुदेवंपुनर्वचः ॥ उवाचचतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्वंवृतस्सुरैः ॥ ८० ॥ कृष्णकृष्णकरालास्य कालस्यास्यकृपांकुरु ॥ यतोभवन्तमायान्तं विष्णुंविश्वैकनायकम् ॥ ८१ ॥ वेत्तिनायंजगन्नाथ नरकार्णवतारकम् ॥ त्वयावैभगवन्पूर्वं यमःसंस्थापितःपदे ॥ ८२ ॥ नृणांदुष्कृतकर्तॄणां नरकाययमःप्रभो ॥ तस्मादस्यजगन्नाथ क्षम्यतांपुरुषोत्तम ॥८३॥ विभोकृतापराधस्य ब्रूहियत्तेविवक्षितम् ॥ एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्कृष्णो धातःशृणुगुरोर्मम ॥ ८४ ॥ सान्दीपनेस्समानीतस्सुतस्तेनागताविह ॥ समर्प्यतांगुरुश्रेष्ठ श्रेष्ठायगुरुदक्षिणा ॥ ८५ ॥ आवाभ्यांयाप्रतिज्ञाता तस्मात्सापाल्यतांविभो ॥ एतत्पितामहःश्रुत्वा यमंसमरनिर्जितम् ॥ ८६ ॥ समाहूयाब्रवीद्विष्णुर्यद्ब्रवीतिकुरुष्वतत ॥ तच्छ्रुत्वाधर्म्म

तारनेवाले विष्णु नहीं जानता है हे भगवन् ! पहले तुम ने यमराजको स्थान पै भलीभांति स्थापित किया है ॥ ८१ । ८२ ॥ हे प्रभो ! जो यमराजजी पाप करनेवाले मनुष्यों के नरकके लिये हैं इसलिये हे पुरुषोत्तम, जगदीशजी ! इनका अपराध क्षमाकीजिये ॥ ८३ ॥ हे विभो ! कियेहुये अपराधवाले यमराज से जो तुम्हारे कहने की इच्छा होवै उसको कहिये इस वचन को सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे विधाता ! सुनिये मेरे गुरु ॥ ८४ ॥ सांदीपनि का पुत्र लायागयाहै उसी से हम दोनो यहा आये हैं श्रेष्ठ गुरुवों के मध्य में उत्तम सांदीपनि के लिये गुरुदक्षिणा दीजावै ॥ ८५ ॥ हे विभो ! हम दोनों से जो प्रतिज्ञा कीगई वह उसीकारण पालन कीजावै

इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने युद्धमें जीतेहुये यमराजको बुलाकर कहा कि जो श्रीकृष्णजी कहते हैं उसको कीजिये उस वचनको सुनकर धर्मराजने ब्रह्मासे यह कहा ॥ ८६। ८७ ॥ कि हे विश्वकृत, भगवन्! यह मार्ग तुमसे नहीं कियागया है कि यमलोक को प्राप्त शरीररहित प्राणी ॥ ८८ ॥ शरीर समेत जावै यह यहां नहीं प्राप्तहोताहै उसकोसुनकर फिर इस संसारके स्वामी आपही ब्रह्माजी बोले ॥८६॥ कि जिस लिये ये संसार को रचनेवाले व संसारको हरनेवालेहैं उसकारण जो चाहते हैं उसको करैं और तुम सांदीपनि मुनि के पुत्रको अर्पण कीजिये ॥ ९० ॥ व हे महामते! फिर मनुष्य शरीर करके उनको ले आइये उस वचन को सुनकर धर्मराज

राजस्तुविरञ्चिमिदमब्रवीत् ॥ ८७ ॥ भगवन्विश्वकृल्लोकेनैपमार्गस्त्वयाकृतः ॥ यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनःशरी रवान् ॥ ८८ ॥ शरीरसहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते ॥ तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुःस्वयम् ॥ ८९ ॥ विश्व कृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छतिकरोतुतत् ॥ तस्मादर्पयपुत्रंत्वं मुनेस्सान्दीपनेश्चवै ॥ ९० ॥ नरकायंपुनःकृत्वा तश्चानयम हामते ॥ तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तथा ॥ ९१ ॥ ससर्जबालरूपञ्च तदात्मानंतदुद्भवम् ॥ अर्पयामासकृष्णा य बालंरूपसमन्वितम् ॥ ९२ ॥ समक्षन्देवतानाञ्च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततःप्राप्यगुरोःपुत्रं प्रभुःप्रीतःप्रजापतिम् ॥ ९३ ॥ प्राहप्राप्तोमयाब्रह्मन् स्वरूपोद्विजदारकः ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ अद्यप्रभृतिलोकेश देशेमच्चरणाङ्किते ॥ ९४ ॥ अ वन्त्यामङ्कपादाख्ये मृतानेक्षन्तितेयमम् ॥ महाकालोत्तरेदेवमाद्यंवैपुरुषोत्तमम् ॥ ९५ ॥ विश्वरूपञ्चगोविन्दं शङ्खो द्धारंचकेशवम् ॥ येपश्यन्तिकुशस्थल्यामेतेषांमूर्तिपञ्चकम् ॥ ९६ ॥ तेनरानगमिष्यन्ति विरञ्चेनिरयंक्वचित् ॥ तथै

ने सांदीपनि के पुत्र ॥ ९१ ॥ जोकि तदात्मक थे उन से उपजा हुआ था उस बालकरूपी पुत्रको विदा किया व रूपसे संयुत बालक को श्रीकृष्णजी के लिये अर्पण किया ॥ ९२ ॥ देवताओं के सामने वह अद्भुतसा होगया तदनन्तर गुरुजी के पुत्रको पाकर प्रसन्न होतेहुये प्रभु श्रीकृष्णजी ब्रह्माजी से ॥ ९३ ॥ बोले कि हे ब्रह्मन्! मैंने स्वरूपवाले द्विज बालक को पायाहै श्रीकृष्णजी बोले कि हे लोकेश! आजसे लगाकर उज्जयिनी में मेरे चरणों से चिह्नित अंकपाद नामक देश (स्थान) में जो मरै वे पुरुष यमराज को न देखैं और महाकालजी के उत्तरमें पुरुषोत्तम आदिदेवको ॥ ९४। ९५ ॥ व विश्वरूप, गोविन्द तथा शङ्खोद्धार व केशव

मूर्तियों को जो पुरुष कुशस्थली याने उज्जयिनी में देखते हैं ॥ ९६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे पुरुष कभी नरक को न जावैंगे वैसेही मेरे व बलभद्रजी के यहां आने से नरक वाले जो लोग हैं ॥ ९७ ॥ वे सब तुमसे भयंकर नरक से छूटकर स्वर्गको प्राप्त होवैं ऐसा वचन कहने पर प्रसन्न ब्रह्माजी श्रीकृष्णजी से बोले ॥ ९८ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! तुमने जो कहा है वह सब सदैव होवै और जो आदिपुरुष व श्रेष्ठ तुम पुरुषोत्तमजी को ॥ ९९ ॥ प्रणामकर और जो रुद्रसर में नहाकर देखैंगे व जो अधोज्वल महाकालजी को देखताहै वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होताहै ॥ १०० ॥ इसप्रकार कहेहुये श्रीकृष्णजी पुत्र को लेकर बलभद्र समेत ॥ १ ॥ श्रीब्रह्मादेवनी

वागमनादत्र ममरामस्यनारकाः ॥ ९७ ॥ विमुक्तास्तेत्वयाघोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ॥ इत्युक्तेवचनेवेधाः प्रोवाचप्रीतिमान्हरिम् ॥ ९८ ॥ यत्त्वयोक्तंवचःकृष्ण तदस्तुसकलंसदा ॥ येचत्वामादिपुरुषं प्रथमंपुरुषोत्तमम् ॥ ९९ ॥ प्रणम्ययेचद्रक्ष्यन्ति स्नात्वाशिवसरस्यपि ॥ अधोज्वलंमहाकालं सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ १०० ॥ एवमुक्तोहरिःपुत्रमादायबलेनसह ॥ १ ॥ आपृच्छ्यवेधसन्देवमारुरोहरथंततः ॥ शङ्खमापूरयामास कृतकार्योजनार्दनः ॥ २ ॥ मोक्षायनिरयस्थानं नृणांवैपापकर्मणाम् ॥ ततस्तेशङ्खशब्देन स्मरणेनाच्युतस्यच ॥ ३ ॥ दिव्यान्विमानानारुह्य दिवमेवाखिलागताः ॥ शून्यंतन्मण्डलंजातं नारायणसमागमे ॥ ४ ॥ कालोपिदण्डमासाद्य बलदेवात्पुरःपुरम् ॥ प्रविवेशततोधाता तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५ ॥ कृष्णोपिबलवान्वीरः प्राप्तउज्जयिनींपुरीम् ॥ बलदेवसहायस्तु सरथेनाशुगामिना ॥ ६ ॥ ततस्सान्दीपनेःपुत्रमर्पयामासकेशिहा ॥ गुरवेयत्प्रतिज्ञातं सतस्मादनृणोभवत् ॥ ७ ॥ एवंसान्दीपनेः

से पूंछकर तदनन्तर रथ पै सवार हुये और कार्य किये हुये श्रीकृष्णजी ने नरक में टिकेहुये पापकर्मी जनों के मोक्षके लिये शङ्खको बजाया तदनन्तर शङ्ख के शब्द से व श्रीकृष्णजी के स्मरणसे वे पुरुष ॥ २ । ३ ॥ उत्तम विमानों पै चढ़कर सब स्वर्गही को चलेगये और नारायण के समागम में उस नरकका मण्डल शून्य हो गया ॥ ४ ॥ और यमराज ने भी दण्डको लेकर बलभद्र से पहले नगर में प्रवेश किया तदनन्तर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ५ ॥ और बलभद्रकी सहायवाले बलवान् वीर वे श्रीकृष्णजी शीघ्रगामी रथ के द्वारा उज्जयिनी पुरीको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर केशवजी ने सांदीपनि के पुत्र को अर्पण किया और गुरु से जो

प्रतिज्ञा किया था उससे वे श्रीकृष्णजी उऋण हुये ॥ ७ ॥ इसप्रकार फिर आये हुये सांदीपनि के पुत्रको देखकर वहां नगरवासी व राजा बड़े विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और उन्होंने देवोत्तमों में उत्तम मानकर उन वीरों का पूजन किया और सांदीपनिने उन बलभद्र व श्रीकृष्णजी से यह कहा ॥ ९ ॥ कि कल्पपर्यन्त यहांपर तुम्हारा यश स्थित रहैगा और हे यदुपुत्रो ! हमलोग इस स्थान में टिकैंगे ॥ १० ॥ मैंने यदुवंश में उपजे देवकार्य के लिये आयेहुये तुम दोनों नर नारायण देव वीरों को नहीं जाना ॥ ११ ॥ और यदि यहां जो पुरुष नहाता है तो उसकी अल्पमृत्यु नहीं होती है और न रोग होताहै न दुर्दशा होती है तथा स्वर्ग में प्राप्त होताहै और स्वर्ग-

पुत्रं दृष्ट्वाचपुनरागतम् ॥ नागरास्तत्रराजाच विस्मयंपरमंययुः ॥ ८ ॥ तौवीरावर्चयामासुर्मत्वादेवोत्तमोत्तमौ ॥ सान्दीपनिरुवाचेदं तौचरामजनार्द्दनौ ॥ ९ ॥ इहस्थास्यतिवःकीर्तिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ स्थानेतुवयमेतस्मिन् स्थास्यामोयदुनन्दनौ ॥ १० ॥ नविज्ञातौमयावीरौ यदुवृष्णिकुलोद्भवौ ॥ नरनारायणौदेवौ देवकार्यार्थमागतौ ॥ ११ ॥ नाल्पमृत्युर्भवेत्तस्य नव्याधिर्नचदुर्गतिः ॥ प्राप्नोत्यत्रचस्नातश्चेत् स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ शङ्खिनंविश्वरूपञ्च माधवञ्चक्रिणंतथा ॥ चत्वारिविष्णुक्षेत्राणि अङ्कपादस्तुपञ्चमः ॥ १३ ॥ एषांयात्रांप्रवक्ष्यामि यथाकार्यामनीषिभिः ॥ मन्दाकिन्यांकृतस्नानो दृष्ट्वारामजनार्दनौ ॥ १४ ॥ शङ्खोद्धारेततस्स्नात्वा प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानंकृत्वाततःकुण्डे गोविन्दञ्चसमर्चयेत् ॥ १५ ॥ चक्रिणञ्चततोदृष्ट्वा विश्वरूपंततोव्रजेत् ॥ तस्याग्रतःकरीकुण्डे स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ १६ ॥ पुनस्तेनप्रकारेण प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानंकृत्वाततःकुण्डे गोविन्दञ्चसमर्चयेत् ॥ १७ ॥

लोकमे पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और शङ्खी, विश्वरूप, माधव व चक्री चार विष्णुजी के क्षेत्र हैं व अंकपाद पांचवा क्षेत्र है ॥ १३ ॥ इनकी यात्रा को कहताहूं कि जिस प्रकार वह विद्वानो को करना चाहिये कि मन्दाकिनी मे स्नानकर राम व जनार्दन जी को देखकर ॥ १४ ॥ तदनन्तर शङ्खोद्धार मे नहाकर बलराम व केशवजी को देखै उसके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को भलीभांति पूजै ॥ १५ ॥ तदनन्तर चक्रीजी को देखकर उसके उपरान्त विश्वरूपजी के समीपजावै उनके आगे करीकुण्ड मे विधिपूर्वक नहाकर ॥ १६ ॥ फिर उसी विधि से बलभद्र और केशवजी को देखै उसके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को पूजै ॥ १७ ॥

वैसेही चक्र हाथोंवाले उन दोनोंको देखकर केशवजी के समीपजावै व शिप्रानदीके जलमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे केशवजीको पूजकर ॥ १८ ॥ अंकपादमें लौटकर वह पवित्र पुरुष उसरात्रिको व्यतीतकरै और प्रातःकाल उत्तम व्रतोंवाले पांच ब्राह्मणोंको भोजनकरावै ॥ १९ ॥ व शङ्खी के लिये गऊ दक्षिणा व विश्वरूपजी के लिये अश्व तथा गोविन्दजी के लिये हाथी कहागयाहै और केशवजी को सब कुछ देवै ॥ २० ॥ ॥ व हे विप्रजी ! जो पुरुष द्वादशी को उपासकर अंकपादजी को चन्दन, पुष्प, धूप व अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजता है ॥ २१ ॥ व जो श्राद्ध करता है उसके सब पुण्यके फलको सुनिये कि सौ कुलोंको उद्धारकर सब कामनाओंवाले विमानों

तथैवचक्रहस्तौतौ दृष्ट्वाकेशवमाव्रजेत् ॥ शिप्राम्भसिनरस्स्नात्वा भक्त्यासम्पूज्यकेशवम् ॥ १८ ॥ परावृत्याङ्कपादेतु तांरात्रिंगमयेच्छुचिः ॥ प्रातर्वैभोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांश्चसुव्रतान् ॥ १९ ॥ गोदक्षिणाश्शङ्खिनेतु विश्वरूपायवैहयः ॥ गोविन्दायगजःप्रोक्तस्सर्वंदद्याच्चकेशवम् ॥ २० ॥ उपोष्यद्वादशींविप्रायाङ्कपादंसमर्चयेत् ॥ गन्धपुष्पैश्चधूपैश्चनैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ श्राद्धंयःकुरुतेसर्वं तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य विमानैस्सार्वकामिकैः ॥२२॥ गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठेसुचिरंवसेत् ॥ पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रेजायतेकुले ॥ २३ ॥ प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णुलोकंपुनर्व्रजेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽङ्कपादमाहात्म्यन्नामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ चन्द्रादित्यमितिख्यातं चन्द्रादित्यार्चितम्पुरा॥ १ ॥ यस्तंसमर्चयेद्देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ गन्धैःपुष्पैस्तथाधूपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २ ॥ चन्द्रादित्यादिसालोक्यं

के द्वारा जाकर ॥ २२ ॥ वह गीत नृत्यादिके भोगोंसे वैकुण्ठमें सदैव बसताहै फिर इस लोकको प्राप्तहोकर पवित्र कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥ व अमितसन्तानको प्राप्तहोताहै फिर विष्णुलोकको जाताहै॥२४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामङ्कपादमाहात्म्यवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

दो० । चंद्रादित्य महात्म्य जिमि अहै अनंत अपार । चौंतिसवे अध्याय में सोई चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर पुरातन समय चन्द्रमा व सूर्य से पूजे चन्द्रादित्य ऐसे कहेहुये त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्यदेवको कहताहूं ॥ १ ॥ देवता व दैत्यों से प्रणाम किये हुये उन देव को गंध, पुष्प, धूप व अनेक प्रकार के

नैवेद्योंसे जो पुरुष पूजता है ॥ २ ॥ वह सब कामनाओंवाले तथा सूर्य के समान विमानों के द्वारा चन्द्रमा व सूर्यादिकों की सलोकताको तबतक प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभापाटीकायांचन्द्रादित्यमाहात्म्यंनामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥

दो० । करभेश्वर नामक यथा भये सदाशिवदेव। पैंतिसवें अध्यायमें सोई है सब भेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवदेव करभेश महेश्वरजी के समीप जावै कि जिनके दर्शनहीं से मनुष्य दुष्टयोनि में नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे देव ! मैं यथार्थ से करभेशजी की कथा को सुना चाहताहूं कि कर-

प्रयातिसार्वकामिकैः ॥ विमानैस्सूर्यसङ्काशैर्यावच्चेन्दुदिवाकरौ ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेचन्द्रादित्यमाहात्म्यन्नामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ करभेशंततोगच्छेद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण कुयोनौनैवजायते ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ करभेशकथान्देव श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ कथन्देवस्समुत्पन्नः करभेशेतिसंज्ञितः ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरादेवगणैस्सार्द्धं देवदेवोमहेश्वरः ॥ वनेस्मिन्क्रीडयामास परमाह्लादसंयुतः ॥ ३ ॥ क्रीडन्बहुतिथेकाले शङ्करःकरभोभवत् ॥ नज्ञायतेसर्वदेवैः शङ्करःकरभाकृतिः ॥ ४ ॥ अन्वेषयन्तितन्देवास्ततोविस्मयसंयुताः ॥ नपश्यन्तियदातत्र तन्देवंशूलपाणिनम् ॥ ५ ॥ देवैःपृष्टस्ततोब्रह्मा क्वास्तिदेवोमहेश्वरः ॥ ध्यातोपिब्रह्मणादृष्टो गुप्तयोगप्रभुर्हरः ॥ ६ ॥ देवैस्सार्द्धंततोब्रह्मा पप्रच्छगणनायकम् ॥ नदृष्टश्शङ्करोस्माभिर्गतःकुत्रविनायक ॥ ७ ॥ कथयस्वनमस्तुभ्यं

भेश ऐसे संज्ञक देव कैसे उत्पन्नहुये हैं ॥२॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय देवगणों समेत बड़े आनन्द से संयुत देवदेव महेश्वरजी ने इस वनमें क्रीड़ा किया है ॥ ३ ॥ और बहुत दिनोंवाले समयके बीतने पर खेलतेहुये शङ्करजी करभ याने ऊंट के बच्चे के समान हुये और करभआकारवाले शिवजी को समस्त देवताओं ने नहीं जाना ॥ ४ ॥ तदनन्तर विस्मयसे संयुत देवता उनको ढूंढ़ने लगे और जब वहां पर त्रिशूल हाथवाले उन शिवदेवजी को नहीं देखा ॥ ५ ॥ तब देवताओं ने ब्रह्मा से पूंछा कि महेश्वरदेवजी कहां हैं ब्रह्मासे ध्यान कियेहुये भी गुप्तयोगवाले महादेव स्वामीजी न देखेगये ॥ ६ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने गणेश

जीमे पूंछा कि हे विनायकजी ! हमलोगों ने शिवजी को यहीं देखा वे कहा गये ॥ ७ ॥ हे विभो ! यह कहिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हमलोग तुम्हें लड्डुवों को देवैंगे उस समय ऐसा कहेहुये गणेशजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ८ ॥ कि हे देवोत्तमो ! इन करभरूपी महादेवजी को देखिये ऐसे वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुये देवता ऊंटके बच्चे के समीपगये ॥ ९ ॥ और हमलोगों ने आपही महादेवजी को जानलिया यह कहते हुये वे सब जाकर तदनन्तर आपही चारों दिशाओं में स्थित हुये ॥ १० ॥ मैं कैसे जानागया यह चिन्तन कर शिवजी विस्मयको प्राप्तहुये इस के अनन्तर ऊंटके बच्चे के रूपको छोड़कर देवदेव महेश्वरजी ने ॥ ११ ॥ जो कर-

दास्यामोलड्डुकान्विभो ॥ एवमुक्तस्तदाहृष्टः प्रोवाचगणनायकः ॥ ८ ॥ करभोयंमहादेवो दृश्यतांविबुधोत्तमाः ॥ श्रुत्वाचैवंवचोदेवाः प्रहृष्टाःकरभंययुः ॥ ९ ॥ ज्ञातोस्माभिर्महादेवो जल्पन्तइतितेस्वयम् ॥ गत्वाचैवततःसर्वे चतुर्दिक्षुस्थितास्स्वयम् ॥ १० ॥ विचिन्त्येतिकथंज्ञातः शङ्करोविस्मयङ्गतः ॥ त्यक्त्वाथकारभंरूपं देवदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ लिङ्गमुत्पादयामास देवंयत्करभेश्वरम् ॥ तन्दृष्ट्वाथसुरास्सर्वे साष्टाङ्गंप्रणतिंस्थिताः ॥ १२ ॥ ततःप्रभृतिविख्यातश्शङ्करःकरभेश्वरः ॥ स्नात्वाचैवशुचिर्भूत्वा यस्तमर्चयतेशिवम् ॥ १३ ॥ गन्धपुष्पैश्चनैवेद्यैः शृणुतेषाञ्चयत्फलम् ॥ सर्वमेधेषुयत्पुण्यं सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १४ ॥ ततोधिकंसलभते नात्रकार्याविचारणा ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे करभेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भेश्वर देव हैं उस लिंगको उत्पन्न किया उसको देखकर इसके अनन्तर सब देवता साष्टांग प्रणाम में स्थित हुये ॥ १२ ॥ तब से लगाकर करभेश्वर शिवजी प्रसिद्ध हुये हैं नहाकर व पवित्र होकर जो पुरुष उन शिवजीको गन्ध, पुष्प व नैवेद्यों से पूजताहै उनको जो फल होताहै उसको सुनिये कि सबयज्ञोंमें जो पुण्य होताहै और समस्त दानों में जो फल होताहै ॥ १३।१४ ॥ उससे अधिक फलको वह पाताहै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकरभेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

दो० । अति उत्तम माहात्म्य युत अहैं यथा गणनाथ । छत्तिसवें अध्यायमें सोई वरणत गाथ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवताओंने लड्डुवोंसे गणेशजी को भलीभांति पूजा है तब से लगाकर लड्डुकप्रिय विघ्नेश जी प्रसिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ जो पुरुष उनको भक्तिसे पूजता है उसके विघ्न नहीं होताहै व प्रसन्न होतेहुये गणेशजी उसके लिये समस्त अभिलाषों को देते हैं ॥२॥ और चौथि तिथि में रात्रिको भोजन करनेवाला मनुष्य शिप्रानदी में विशेष कर नहाकर और अरुणवसन-धारी होकर मन्त्रों के द्वारा लाल चन्दन से मिलेहुये जल से स्नानपूर्वक उन गणेशजीके लाल चन्दन से विलेपन कर लाल लाल फूलों से पूजन करै ॥ ३।४ ॥ व

सनत्कुमारउवाच ॥ लड्डुकैश्चततोदेवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः ॥ तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशोलड्डुकप्रियः ॥ १ ॥ यस्समर्चयतेभक्त्या तस्यविघ्नन्नजायते ॥ तस्मैददातिसन्तुष्टस्सर्वकामान्विनायकः ॥ २ ॥ नक्ताहारश्चतुर्थ्यांच स्नात्वाशिप्रांविशेषतः॥रक्ताम्बरधरोभूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥ ३ ॥ रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रैस्स्नपनपूर्वकम् ॥ चन्दनेनापिरक्तेन तंविलेप्यप्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ धूपंदद्यात्तथादिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम् ॥ नैवेद्येलड्डुकादेया आज्यखण्डपरिप्लुताः ॥ ५ ॥ नतस्यजायतेव्यास भयंविघ्नंकदाचन ॥ लभतेचतथाभीष्टं मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥ ६ ॥ अवतीर्णःपुनर्लोके जायतेवसुधाधिपः ॥ मतिमान्पुत्रवाञ्छूरो नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गणेशमाहात्म्यन्नामषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुसुमेशंसुरद्वारे सुरासुरनमस्कृतम् ॥ श्रद्धयापूजयेद्यस्तु शिवलोकेसमोदते ॥ १ ॥ जयेश्व

लड्डुकप्रिय गणेशजी को उत्तम गन्धवाली दिव्य धूप देवै और नैवेद्य में घी व शक्करसे संयुत लड्डुवों को देना चाहिये ॥५॥ हे व्यासजी ! उसके कभी विघ्न नहीं होता है और वैसेही मनोरथको प्राप्तहोताहै व मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ६ ॥ और फिर जगतमें अवतार लेकर वह पुरुष भूपति होता है व बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होताहै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणेशमाहात्म्यवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो० । सोमेश्वर आदिकन कर अहै यथा परभाव । सैंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुरद्वार में देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये

हुये कुसुमेशजी को जो मनुष्य श्रद्धा से पूजता है वह शिवलोक में आनन्द करताहै ॥ १ ॥ जो मनुष्य देवदेव जयेश्वर महेश्वरजी को देखताहै वह समस्त कार्यों में जयवान् होताहै और शिवलोकको प्राप्तहोताहै ॥ २ ॥ और यदि शिवद्वारमें मनुष्य शिवलिङ्गको पूजता है तो विमानके द्वारा स्वर्ग को प्राप्तहोताहै और गणाध्यक्षताको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर अन्य उत्तम मार्कण्डेश्वरजी को कहताहूं जहांपर कि मार्कण्डेयजी ने बहुत तप कियाहै ॥ ४ ॥ उन शङ्करदेवजी को देखकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फलको प्राप्तहोता है और सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला पुरुष बहुत आयुर्बलवान् होता है ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! इस पुरी में उत्तम महास्थानको सुनिये

शिवद्वारेशिवलिङ्गमर्चयेन्मानवो यदि ॥ त्रिदिवंयातियानेन गाणपत्यञ्चविन्दति ॥ ३ ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेयो मुनिर्यत्र तप्तवान्सुमहत्तपः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वातंशङ्करन्देवं वाजपेयफलंलभेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायतेनरः ॥ ५ ॥ शृणुव्यासमहास्थानमस्यांपुर्यांसमुत्तमम् ॥ यत्रतिष्ठतिसादेवी ब्रह्माणीहंसवाहिनी ॥ ६ ॥ भक्तानांपूरयेदाशां पुत्रवत्परिपालयेत् ॥ यथामातातथादेवी दृष्टाशान्तिपरैरपि ॥ ७ ॥ अर्चिताब्रह्मणासातु स्तुतादेवीसुरोत्तमैः ॥ अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैस्सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८ ॥ अपियाब्रह्मणःपूर्वमभूद्देवीसुसिद्धिदा ॥ यस्स्नात्वाब्रह्मसरसि पश्येद्ब्रह्मेश्वरंशिवम् ॥ ९ ॥ भवबन्धविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेसमोदते ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि यज्ञवापीमनुत्तमाम् ॥ १० ॥ यत्र वैब्रह्मणापूर्वमिष्टोयज्ञस्सदक्षिणः ॥ यज्ञार्थंयत्कृतंकुण्डं यज्ञवापीचसास्मृता ॥ ११ ॥ पशुश्चपातितोयस्मात्तस्मात्प

जहां पर कि हंसवाहिनी ब्रह्माणीजी स्थित हैं ॥ ६ ॥ शान्ति में तत्पर पुरुषों से देखीहुई वे देवी माता की नाईं भक्तोंकी आशाको पूर्ण करती हैं और पुत्रकी नाईं पालन करती हैं ॥ ७ ॥ उन देवीजी को ब्रह्माने पूजा है व सुरोत्तमोंने स्तुति किया है उन सब सिद्धिदायिनी को गन्ध, पुष्पों से व नैवेद्योंसे पूजन करै ॥ ८ ॥ पहले जो कि ब्रह्माको भी उत्तम सिद्धिदायिनी हुई है ब्रह्मसर मे नहाकर जो पुरुष ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखताहै ॥ ९ ॥ वह संसारके बन्धन से छूटकर ब्रह्मलोक में प्रसन्न होताहै इसके अनन्तर अति उत्तम अन्य यज्ञवापीको मैं कहताहूं ॥ १० ॥ जहां पर कि पुरातन समय दक्षिणा समेत यज्ञ किया है यज्ञके लिये जो कुण्ड कियागया था

वह देववापी कहीगई है ॥ ११ ॥ और जिसलिये पशु पातित कियागया है उसी कारण वे पशुपति कहेगये हैं उसमें नहाकर पवित्र होकर जो पुरुष पशुपतिजी को देखता है ॥१२॥ वह पशुयोनिमें प्राप्त भी पितरोंको उद्धारताहै और सुवर्ण, मणि व मूंगाओं से संयुत व सब कामना प्राप्तवाले विमानों के द्वारा ॥ १३ ॥ दिव्य शिवपुर को जाता है जहां कि महेश्वर देवजी हैं वैसेही मनुष्य रूपकुंड में नहाकर सुरूपवान् होता है ॥ १४ ॥ और स्वर्ग में सदैव गंधर्वों से चाहने योग्य शरीरवाला होताहै और अनंगकुंड में नहाकर व पवित्र होकर जो सावधान मनुष्य ॥ १५ ॥ पहले कामदेव से पूजेहुये देवदेवेश शिवजी को देखता है वह चाहेहुये मनोरथ को प्राप्त

शुपतिःस्मृतः ॥ तस्यांस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पश्येत्पशुपतिन्तुयः ॥ १२ ॥ उद्धरेत्सपितॄन्व्यास पशुयोनिगतानपि ॥ सुवर्णमणिमुक्ताढ्यैर्विमानैस्सर्वकामगैः ॥ १३ ॥ यातिरुद्रपुरन्दिव्यं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ रूपकुण्डेनरस्स्नात्वा सुरूपोजायतेतथा ॥ १४ ॥ स्वर्गेसदैवगन्धर्वैस्स्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ कुण्डेस्नात्वाप्यनङ्गेयश्शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १५ ॥ पश्येच्चदेवदेवेशमनङ्गेनार्चितम्पुरा ॥ कामंसलभतेभीष्टं मृतोयातिशिवालयम् ॥ १६ ॥ आषाढेतुसिताष्टम्यां जागरंयस्तुकारयेत् ॥ केदारेयत्फलंप्रोक्तं तत्समानमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ करीकुण्डेनरस्स्नात्वा विश्वरूपन्तुयोर्चयेत् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ १८ ॥ अजागन्धेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाब्रह्मेश्वरंशिवम् ॥ ब्रह्महत्यासमंपापं तत्क्षणात्सव्यपोहति ॥ १९ ॥ चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा चक्रस्वामिनमर्चयेत् ॥ जायतेसनरोव्यास चक्रवर्तीसदाभुवि ॥ २० ॥ सिद्धेश्वरञ्चयःपश्येत् स्नात्वासुविधिपूर्वकम् ॥ कामिकेनविमानेन रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २१ ॥ सोमव

होता है और मरकर शिवजी के स्थान को जाताहै ॥ १६ ॥ और वहापर आषाढ़ महीने में शुक्लपक्षकी अष्टमी में जो जागरण करता है वह केदारक्षेत्र में जो फल कहा गयाहै उसके समान फल को पाता है ॥ १७ ॥ व जो पुरुष करीकुण्ड में नहाकर विश्वरूप शिवजी को पूजता है वह सब पापों से छूट जाता है और विष्णु जी के लोकको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ व अजागन्ध नामक तीर्थ में नहाकर व ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखकर वह ब्रह्महत्या के समान पातक को उसीक्षण नाश करता है ॥ १९ ॥ और जो पुरुष चक्रतीर्थ मे नहाकर चक्रस्वामी शिवजी को पूजता है वह हे व्यास जी ! सदैव चक्रवर्ती के समान पृथ्वी में होता है ॥ २० ॥ और जो

मनुष्य भलीभांति विधिपूर्वक नहाकर सिद्धेश्वरजी को देखता है वह कामनासंयुत विमान के द्वारा शिवलोक को जाता है ॥ २१ ॥ और सोमवतीतीर्थ में नहा कर इसके अनन्तर जो पुरुष सोमेश्वर जी को देखता है वह चन्द्रमा के समान निर्मल होकर चन्द्रलोक में प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख एडेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसोमेश्वरादिवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥

दो॰। सोमवती नामक यथा भयो तीर्थ विख्यात। अर्तिसवें अध्याय में सोइ चरित आख्यात ॥ व्यास जी बोले कि सोमवती नामक तीर्थ व सोमेश्वर नामक

त्यान्नरस्स्नात्वा सोमेश्वरमथार्चयेत् ॥ सोमवन्निर्मलोभूत्वा सोमलोकेसमोदते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सोमेश्वरादिवर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमोध्यायः॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ तीर्थंसोमवतीनाम लिङ्गंसोमेश्वरन्तथा ॥ अभूदेतत्कथन्नाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थंसुशोभनम् ॥ सोमेश्वरन्तथालिङ्गमेतत्सत्यंवदामिते ॥ २ ॥ योदेवो भगवान्सोमो लोकस्याप्यायनंपरम् ॥ आसीत्तस्यपुराव्यास पिताविप्रोमहातपाः ॥ ३ ॥ अवन्त्याञ्चमहाभागो यो त्रिनामातपोनिधिः ॥ वर्षाणांत्रीणिदिव्यानि सहस्राणितपोमहत् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वबाहुस्सवैतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः ॥ ऊर्ध्वंगतंततोव्यास ब्राह्मंतेजोमहात्मनः ॥ ५ ॥ नेत्राभ्यांतस्यसुस्राव काशयंश्चादिशोदश ॥ तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा त

लिंग यह कैसे नाम हुआ है इसको मैं यथार्थ सुना चाहता हूं ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार अति उत्तम सोमतीर्थ उत्पन्न हुआ है व जिस भांति सोमेश्वर लिंग हुआ है यह तुमसे सत्य कहता हूं ॥ २ ॥ हे व्यास जी ! जो भगवान् सोमदेवजी लोक के परमतृप्तिकारक हैं पुरातन समय उनके पिता विप्र बड़े तपस्वी हुयेहैं ॥ ३ ॥ जो तपस्या के निधान महाभाग अत्रि नामक उज्जैनी पुरीमें हुये हैं ब्रह्मध्यान में तत्पर उन ऊर्ध्वबाहु मुनिने देवताओं की तीन हज़ार वर्षोंतक बड़ी तपस्या कियाहै तदनन्तर हे व्यास जी ! उन महात्मा का ब्रह्मतेज ऊपर गया ॥ ४ । ५ ॥ और दशों दिशाओं को शोभित करता हुआ

वह तेज उनके नेत्रों से बह चला तदनन्तर आपही से देशों में उपजे हुये उस तेज को देखकर अचानकही ॥ ६ ॥ जब उस सबको धारण करने के लिये दिशायें न समर्थ हुई तब हे व्यास जी ! वह असह्य तेज दिशाओं से बह चला ॥ ७ ॥ और सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ वह पृथ्वी मे गिर पड़ा तदनन्तर उससे शीतल किरणोंवाला तथा मनुष्यों को प्यारा चन्द्रमा पैदा हुआ ॥ ८ ॥ व हे व्यास जी ! उसी तेजसे सोमानदी उत्पन्न हुई और अमृत से बहुतही पूरित वह नदी शिप्रा नदी में पैठ गई ॥ ९ ॥ उसी कारण बहुत पुण्यदायिनी सोमवती शिप्रा प्रसिद्ध है सोम से युक्त शिप्रा नदी को देखकर मनुष्य पातक को नाश करता

तोदेशोद्भवंस्वतः ॥ ६ ॥ दिशश्चतद्यदाव्यास सर्वान्धर्तुमशक्नुवन् ॥ सुस्रावचतदादिग्भ्यस्तद्धितेजोतिदुस्सहम् ॥ ७ ॥ लोकांश्चभासयन्सर्वान् धरण्यांवैपपातह ॥ सोमोजातस्ततस्तेन शीतांशुश्चजनप्रियः ॥ ८ ॥ सरित्सोमासमुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा ॥ प्रविष्टासानदींशिप्राममृतेनातिपूरिता ॥ ९ ॥ ततस्सोमवतीशिप्रा विख्याताह्यतिपुण्यदा ॥ सोमयुक्तांनदींशिप्रां दृष्ट्वापापंव्यपोहति ॥ १० ॥ ख्याताचत्रिषुलोकेषु पापिनांपुण्यदायिनी ॥ ब्रह्महावासुरापोवा स्तेयोवागुरुतल्पगः ॥ ११ ॥ चत्वारोप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्ध्रुवम् ॥ अमासोमौयदायुक्तौ सोमवत्यांतदामुने ॥ १२ ॥ स्नानंदानंचयोधीमाञ्जपहोमंसमाचरेत् ॥ अक्षयंतस्यतत्सर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डदानेनकालिज ॥ अकालेकालिकींतृप्तिं पितॄणाञ्चयथोदिता ॥ १४ ॥ सर्वत्रदुर्लभाशिप्रा सोमस्सोमग्रहस्तथा॥

है ॥ १० ॥ और पापियों को पुण्यदायिनी वह नदी तीनों लोको में प्रसिद्ध है ब्रह्मघाती या मदिरा पीनेवाला व चोर अथवा गुरुकी शय्या पर बैठनेवाला या गुरु की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला मनुष्य ॥ ११ ॥ चारों भी यहां दर्शन से निश्चय कर पातक से छूट जाते हैं हे मुने ! अमावस व सोमवार जब युक्त होवैं तब सोमवती में ॥ १२ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य स्नान व दान, जप तथा होम करता है उसका वह सब तबतक अक्षय होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १३ ॥ हे कालिज ! यहांपर असमय मे तिल व जल के दान से तथा पिंडदान से पितरों की समयवाली यथोक्त तृप्ति होती है ॥ १४ ॥ सब कहीं शिप्रा नदी दुर्लभ है

हे व्यासजी ! शिप्रानदी व सोमतीर्थ का जल कोटितीर्थों के फलको देनेवाला है और सोम व सोमग्रह तथा सोमेश्वर व सोमवार पांच सकार दुर्लभ है ॥ १५ ॥ यदि अमावस तिथिमें सोमवार व व्यतीपात होवै तो गयासे सौगुना फल सोमवती और अमावस व सोमवार के संयोगमें पितृतीर्थ के समान कहा गया है ॥ १६ ॥ इस प्रकार हे महामुने ! यहां पर सोमवतीतीर्थ उत्पन्न हुआहै इसके अनन्तर पृथ्वी में गिरेहुये सोम को देखकर हे व्यासजी ! उन जगद्गुरु व में कहा गयाहै ॥ १७ ॥ इस प्रकार हे महामुने ! यहां पर सोमवतीतीर्थ उत्पन्न हुआहै इसके अनन्तर पृथ्वी में गिरेहुये सोम को देखकर हे व्यासजी ! उन जगद्गुरु व वेदमय तथा धर्मज्ञ और सत्यसंग्रह ब्रह्माजी ने लोकों के हितकी कामना से उनको रथपै स्थापित किया ॥ १८ । १९ ॥ उस समय हजार घोड़ों से संयुत रथ ब्रह्माजी

शिप्रासोमजलंव्यास कोटितीर्थफलप्रदम् ॥ अमासोमसमायोगे सोमेश्वरस्सोमवारस्सकाराःपञ्चदुर्लभाः ॥ १५ ॥ शतगुणंगयायास्तु सोमवत्यांप्रकीर्तितः॥ पितृतीर्थसमंस्मृतम् ॥ १६ ॥ अमायांसोमवारश्चेद् व्यतीपातोयदाभवेत् ॥ रथेतंस्थापयामास १७॥ एवंसोमवतीतीर्थं जातमत्रमहामुने ॥ सोमंदृष्ट्वाथपतितं क्षितौब्रह्माजगद्गुरुः ॥ १८ ॥ युक्तोवाजिसहस्रेण ब्रह्मणाप्रेरितस्तदा ॥ दृ लोकानांहितकाम्यया ॥ सतुवेदमयोव्यास धर्मज्ञस्सत्यसंग्रहः ॥ १९ ॥ तस्यसंस्तूयमानस्यतेजस्सो ष्ट्वासोमंततोदेवा रथेतंब्रह्मणायुतम् ॥ २० ॥ तुष्टुवुस्सर्वभावेन हृष्टाःसर्वेसमाहिताः ॥ मस्यभास्वरम् ॥ २१ ॥ आप्यायमानंत्रीँल्लोकान् पपातधरणीतले ॥ ब्रह्मातेनरथेनाथ सागरान्तांवसुन्धराम् ॥ २२ ॥ त्रिसप्तकृत्वोतिशयाच्चकारसप्रदक्षिणम् ॥ तस्ययत्पतितंतेजो व्याससोमस्यशीतलम् ॥ २३ ॥ तदेवौषधयोदिव्या जाताभुविसुनिर्मलाः ॥ याभिर्धार्योह्ययंलोकः प्रजाश्चैवचतुर्विधाः ॥ २४ ॥ तुष्टोथभगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने ॥

से प्रेरित हुआ तदनन्तर रथपै ब्रह्मा से संयुत चन्द्रमा को देखकर सावधान होतेहुये सब देवताओंने समस्तभाव से प्रसन्न होकर स्तुति किया स्तुति किये जातेहुये उन चन्द्रमा का प्रकाशवान् तेज ॥ २० । २१ ॥ जो कि तीनो लोकों को तृप्तिकारक था वह पृथ्वी में गिरपडा इसके अनन्तर उस रथ से समुद्र अन्तवाली पृथ्वीकी ॥ २२ ॥ अतिशय से इक्कीसबार उन्हों ने प्रदक्षिणा किया हे व्यासजी ! उन चन्द्रमा का गिरा हुआ जो शीतल तेज था ॥ २३ ॥ वही पृथ्वी में बहुत निर्मल व दिव्य ओषधिया हुई जिनसे कि यह संसार व चार प्रकार के प्रजा धारण किये जाते हैं ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर हे मुने ! ससार को सब कुछ देनेवाले भगवान्

चन्द्रमाजी ने प्रसन्न होकर दश हज़ार वर्षोंतक बड़ा असह्य तप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह (ब्रह्मा)जी ने उन चन्द्रमाके लिये स्वामिताको दिया और बीजों व ओषधियों का चन्द्रमा राजा हुआ ॥ २६ ॥ और प्रचेता के पुत्र दक्ष जीने चन्द्रमा के लिये नक्षत्रसंज्ञक महाव्रतवाली सत्ताईस दाक्षायणी स्त्रियों को दिया ॥ २७ ॥ उस समय उस बड़ी भारी राज्यको पाकर स्त्रियों से संयुत चन्द्रमा ने हजारों व सैकड़ों दक्षिणावाले राजसूय यज्ञका प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥ उस में भगवान् अत्रिजी होता व भगवान् भृगुजी अध्वर्य्यु (यजुर्वेदी) और हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी उद्गाता (सामवेदी) व ब्रह्मा ब्रह्मता को प्राप्तहुये ॥ २९ ॥ और सनका-

दशवर्षसहस्राणि तेपेतिदुस्सहंतपः ॥ २५ ॥ ततस्तस्मैददौस्वाम्यं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ बीजौषधीनांविप्राणां सोमोराजाबभूवह ॥ २६ ॥ सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः ॥ पत्न्यःप्राचेतसोदक्षो ददौनक्षत्रसंज्ञकाः ॥ २७ ॥ सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा ॥ समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २८ ॥ होताचभगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः ॥ हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥ २९ ॥ सदस्योभगवान्विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृतः ॥ ददौसदक्षिणांसोमस्त्रीँल्लोकान्सुसमाहितः ॥ ३० ॥ सिनीवालीकुहूश्चैव द्युतिःपुष्टिःप्रभावसुः ॥ कीर्तिर्धृतिश्चलक्ष्मीस्तं देव्योदिव्यास्सिषेविरे ॥ ३१ ॥ प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ अतीवराजतेचन्द्रो दशप्रोद्भासयन्दिशः ॥ ३२ ॥ तस्यतत्प्राप्यदुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम् ॥ विबभ्राममतिर्व्यास तदामृतमयस्यच ॥ ३३ ॥ बृहस्पतेस्तदाभार्यां तारानाम्नींयशस्विनीम् ॥ जहारतमसासाध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥ ३४ ॥ वाच्यमानस्तदासोमो

दिकों से संयुत भगवान् विष्णुजी सदस्य हुये उन चन्द्रमा ने सावधान होकर तीन लोक दक्षिणा दिया ॥ ३० ॥ और सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति व लक्ष्मी इन दिव्य देवियों ने उन चन्द्रमा की सेवा किया ॥ ३१ ॥ और सब देवर्षियों से पूजित तथा विकलतारहित चन्द्रमा ने अवभृथ याने यज्ञान्त स्नानको पाकर दशों दिशाओंको प्रकाशित करताहुआ शोभित भया ॥ ३२ ॥ हे व्यास जी! ऋषियों से संस्कार कियेहुये उस दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त होकर उससमय उन अमृतमय चन्द्रमा की बुद्धि भ्रमित होगई ॥ ३३ ॥ तब अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिजी को अपमान कर उन बृहस्पति की तारा नामक यशस्विनी तथा उत्तम आचरण

वाली स्त्रीको अज्ञान से हरलिया ॥ ३४ ॥ उस समय देवताओं तथा देवर्षियों से निन्दा किये जातेहुये चन्द्रमा ने उन अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति जी के लिये तारा को नहीं बिदाकिया ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त इन्द्र ने क्रोधसे बृहस्पति का पक्ष लिया क्योंकि वे बडे तेजस्वी इन्द्रजी पितापूर्वक बृहस्पतिजी के शिष्य थे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! वहा पर इन्द्र व बृहस्पति का तथा देवताओं व दैत्यों का भयानक तथा भयकारक बड़ा भारी युद्धहुआ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर डरहुये सब देवता ब्रह्मा के शरणमें गये और उन्हों ने ब्रह्माके आगे चन्द्रमा व इन्द्र के युद्धको कहा ॥ ३८ ॥ देवताओं के वचन को सुनकर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने युद्धके समय में

देवैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ नैवव्यसर्जयत्तारां तस्माआङ्गिरसायच ॥ ३५ ॥ बृहस्पतेस्ततःपक्षं शक्रोजग्राहकोपतः ॥ सहि शिष्योमहातेजाः पितुःपूर्वंबृहस्पतेः ॥ ३६ ॥ ततोयुद्धमभूत्तत्र सुघोरंशक्रसोमयोः ॥ देवानांदानवानाञ्च व्यासत्रास ङ्करंमहत् ॥ ३७ ॥ सर्वेभीतास्ततोदेवा ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ अग्रतोब्रह्मणोयुद्धं कथितंसोमशक्रयोः ॥ ३८ ॥ देवानां वचनंश्रुत्वा सार्द्धंदेवैःपितामहः ॥ आगत्ययुद्धसमयेवारयद्देवदानवान् ॥ ३९ ॥ वारितास्तेस्थितास्तत्र युद्धंत्यक्त्वासु रासुराः ॥ तारामादायसतदा ददावाङ्गिरसेद्विज ॥४०॥ ताञ्चसप्रसवांदृष्ट्वा आहभार्यांबृहस्पतिः ॥ अन्यदीयोनतेयोन्यां गर्भोधार्यःकथञ्चन ॥ ४१ ॥ उत्ससर्जततस्तारा कुमारन्देवरूपिणम् ॥ ऐषिकास्त्रंसमादाय ज्वलन्तमिवपावकम् ॥ ४२ ॥ सतेजोजातमात्रोपि देवानामाक्षिपद्यशः ॥ ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारान्दिवौकसः ॥ ४३ ॥ कस्यायंब्रूहिसु

आकर देवताओं तथा दानवों को मना किया ॥ ३९ ॥ वहां पर मना कियेहुये वे देवता व दैत्य युद्धको छोडकर स्थित हुये और हे द्विज ! उस समय उन चन्द्रमा ने तारा को लेकर बृहस्पति के लिये दिया ॥ ४० ॥ और प्रसव समेत याने गर्भिणी उस स्त्री को देखकर बृहस्पति जी बोले कि अन्य पुरुष का गर्भ तुमको योनि में किसी प्रकार न धारण करना चाहिये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर देवरूपी कुमार को ताराने त्याग दिया जैसे कि ऐषिक अस्त्रको लेकर जलतेहुये अग्निजी होवैं ॥ ४२ ॥ पैदा होतेही उस बालक ने देवताओं के तेज व यशको आक्षेप किया तदनन्तर संशय को प्राप्त होतेहुये देवताओंने तारासे कहा ॥ ४३ ॥ कि हे सुभगे ! यह पुत्र किसकाहै

भगे सोमस्याथबृहस्पतेः ॥ नाचचक्षेदेवतानां वेधाःपप्रच्छताम्पुनः ॥ ४४ ॥ यदत्रसत्यंतद्ब्रूहि तारेकस्यसुतोह्ययम् ॥ साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणंवरदंविभुम् ॥ ४५ ॥ सोमस्येतिमहासौम्यः कुमारोदेवसन्निभः ॥ सोमस्यतंसुतंज्ञात्वा परिष्वज्यपितामहः ॥ ४६ ॥ बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्यवैतदा ॥ परदारापहाराच्च यत्पापंतनुदुस्सहम् ॥ ४७ ॥ तेन सोमोभवत्कुष्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ॥ ततोराज्येस्वकंपुत्रंस्थापयित्वायथाविधि ॥ ४८ ॥ अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेवदिदृक्षया ॥ सोमाहेसोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥ स्नात्वासम्पूजयामास सोमस्सोमेश्वरंततः ॥ तस्यभक्त्याचसन्तुष्टः प्राहसोमंमहेश्वरः ॥ ५० ॥ मत्प्रसादाद्वपुःकान्तं तवसोमभविष्यति ॥ सोमेश्वरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥ एवन्तुव्यासतत्तीर्थं लिङ्गंचैवातिदुर्लभम् ॥ कथितंतथ्यभावेन मयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ श्रावणंप्राप्ययोमासं सोमनाथंजितेन्द्रियः ॥ नित्यंपश्येन्नरोव्यास तस्यपुण्यफलंश्रृणु ॥ ५३ ॥ सौराष्ट्रेसोमना

चन्द्रमाका या बृहस्पति काहै ताराने देवताओं से न कहा फिर ब्रह्माने उससे पूंछा ॥ ४४ ॥ कि हे तारे ! इस विषयमे जो सत्य हो उसको कहिये कि यह किसका पुत्रहै हाथों को जोड़े हुई वह तारा वरदायक व व्यापक ब्रह्मा जी से यह बोली ॥ ४५ ॥ कि देवताओंके समान यह महासौम्य कुमार चन्द्रमा का है ब्रह्मा जीने चन्द्रमा के उस पुत्र को जानकर लिपटाकर ॥ ४६ ॥ उससमय उस पुत्र का बुध ऐसा नाम किया पराई स्त्रीके हरने से जो शरीर को असह्य पाप था ॥ ४७ ॥ उससे चन्द्रमा जी उससमय क्षयरोगसे संयुत होकर कुष्ठी हुये तदनन्तर विधिपूर्वक राज्यपै अपने पुत्रको स्थापितकर ॥ ४८ ॥ जितेन्द्रिय सोमजी सोमवारके दिन अमावसके संयोग में सोमवती में शिवदेवजी के दर्शनकी इच्छासे अवन्ती (उज्जैनी) पुरीमें शीघ्रही गये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सोमवती तीर्थ मे नहाकर चन्द्रमाने सोमेश्वरजीको पूजन किया उनकी भक्तिसे प्रसन्न होतेहुये महेश्वर देवजी चन्द्रमा से बोले ॥ ५० ॥ कि हे सोमजी ! मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा सुन्दर शरीर होगा भुक्ति व मुक्ति का देनेवाला सोमेश्वर ऐसा लिङ्ग प्रसिद्ध है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! उस तीर्थ व अतिदुर्लभ लिङ्गको प्रसन्न होतेहुये मैंने इस समय सत्यता से कहा है ॥ ५२ ॥ हे व्यास जी ! श्रावणमास को प्राप्त होकर जो जितेन्द्रिय पुरुष नित्य सोमनाथजीको देखताहै उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ५३ ॥ कि सौराष्ट्रदेश में सोमनाथ के प्रतिदिन

पूजन के फलको वह मनुष्य पाता है हे व्यासजी ! इस विषय में विचार न करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषा टीकायांसोमवतीतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पापीजन जेहि नरक में जो दुख पावत जाय । उन्तालिसवें में कह्यो सोइ चरित सुखदाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इससमय इस नरकतीर्थ के माहात्म्य को सुनिये कि नरकतीर्थ में नहाकर व महेश्वर देव जी को देखकर ॥ १ ॥ मनुष्य कभी नरक को नहीं देखता है यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै व्यास जी बोले कि

थस्य पूजायाःप्रत्यहंफलम् ॥ लभतेसनरोव्यास नात्रकार्याविचारणा ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेसोमवतीतीर्थमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थस्यनरकस्यास्य माहात्म्यंशृणुसाम्प्रतम् ॥ तीर्थेचनरकेस्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥१॥ नपश्येन्नरकंकापि यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥व्यासउवाच ॥ कियन्तोनरकास्तात कस्मिन्स्थानेप्रतिष्ठिताः ॥२॥ पतन्तिकेनपापेन पापिनस्तेषुदुःखिताः ॥ तत्कथंप्राणिनस्तत्र गच्छन्तिपापकारिणः ॥ ३ ॥ एतत्सर्वंसमाख्याहि यदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुष्वनरकान्व्यास यावन्तोयत्रसंस्थिताः ॥ नलभ्यन्तेयथातेतु सत्यमेतद्वदामिते ॥ ५ ॥ पातालनिलयास्सर्वे विख्याताद्दुःखदास्सदा ॥ पुण्यप्लावेनतेसर्वे तिर्यग्यान्तिस्वकर्मभिः ॥ ६ ॥ रौरवश्शूकरोरौद्रस्तालोविनशकस्तथा ॥ तप्तकुम्भस्तुतप्तायो महाज्वालस्तथैवच ॥ ७ ॥ कुम्भीपाकःक्रकचनस्तथा

हे तात ! कितने नरक हैं व किस स्थान में प्रतिष्ठित हैं ॥ २ ॥ और किस पाप से दुःखित पापीलोग उन में गिरते हैं और वह कैसा है कि पापकारी प्राणी वहां को जाते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो इस सब वृत्तान्तको कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! जहांपर जितने स्थित हैं उन नरकों को सुनिये कि जिस प्रकार वे नहीं मिलते हैं यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ५ ॥ कि पातालमें स्थानवाले वे सब सदैव दुःखदायक प्रसिद्ध हैं और पुण्य के नाश से वे सब अपने कर्मों से तिर्यग्योनि में प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ रौरव, शूकर, रौद्र, ताल, विनशक, तप्तकुंभ, तप्ताय और महाज्वाल ॥ ७ ॥ व कुंभीपाक, क्रकचन और

अतिदारुण, कृमिभुक्ति, रक्ताख्य, लालाभक्ष्क व गंडक ॥ ८ ॥ अधोमुख, अस्थिभंग, यंत्रपीड़नक, संदंश, रुधिरांग, असिपत्र व कुभोजन ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब नरक बहुतही भयङ्कर हैं जो कि यमराज के स्थान में भयदायक प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥ उन में वे पुरुष गिरते हैं जो कि पापकर्मों में परायण होते हैं और गिरेहुये वे पुरुष कर्मों के अनुसार पचते हैं ॥ ११ ॥ व विचित्र पीडाओं से बहुतही भयङ्कर कर्मका नाश होता है तचीहुई शृङ्खला (ज़ंजीर) से हाथों को दृढ़ता-पूर्वक बाँधकर मनुष्य ॥ १२ ॥ बड़े भारी वृक्ष के शिखरों में यमदूतों से लटकाये जाते हैं और अपने कर्मों को शोचते हुये वे पुरुष निश्चल होकर चुप-

चैवातिदारुणः ॥ कृमिभुक्तिश्चरक्ताख्यो लालाभक्षश्चगण्डकः ॥ ८ ॥ अधोमुखश्चास्थिभङ्गो यन्त्रपीडनकस्तथा ॥ सन्दंशोरुधिराङ्गश्च असिपत्रकुभोजनौ ॥ ९ ॥ इत्येवमादयस्सर्वेनरकाभृशदारुणाः ॥ यमस्यविषयेसन्ति श्रुताहिभयदायिनः ॥ १० ॥ पतन्तिपुरुषास्तेषु पापकर्मरताश्चये ॥ पतिताश्चप्रपच्यन्ते नराःकर्मानुरूपतः ॥ ११ ॥ यातनाभिर्विचित्राभीरौद्रकर्मक्षयोभृशम् ॥ सुगाढंहस्तयोर्बद्ध्वा तप्तशृङ्खलयानराः ॥ १२ ॥ महावृक्षस्यशृङ्गेषु लम्ब्यन्तेयमकिङ्करैः ॥ शोचन्तःस्वानिकर्माणि तूष्णींतिष्ठन्तिनिश्चलाः ॥ १३ ॥ अग्निवर्णैःशङ्कुभिश्चलोहदण्डैस्सकण्टकैः ॥ हन्यन्तेकिङ्करैर्घोरैस्समन्तात्पापकारिणः ॥ १४ ॥ ततःक्षणात्प्रतप्यन्तेवह्निनाचविशेषतः ॥ समन्ततःप्रक्षिप्यन्ते कृत्ताश्चजर्जरीकृताः ॥ १५ ॥ कूटसाक्ष्यंतथासम्यक्पक्षपातेनयोवदेत् ॥ यश्चान्यदनृतंब्रूयात्सनरोयातिरौरवम् ॥ १६ ॥ सुरापोब्रह्महाहर्ता सुवर्णस्यचशूकरम् ॥ प्रयान्तिनरकञ्चैव तैस्संसर्गमुपैतियः ॥ १७ ॥ भ्रूणहागुरुहन्ताच गोघ्नश्चमुनिसत्तम ॥

चाप स्थित होते हैं ॥ १३ ॥ और पापकारी पुरुष अग्नि के समान कीलों से व काँटों समेत दण्डों के द्वारा भयानक यमदूतों से सब ओर मारेजाते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर क्षण भरमें विशेषकर अग्निसे तचाये जाते हैं व काटे तथा जर्जर कियेहुये वे नर सब ओर फेंके जाते हैं ॥ १५ ॥ वैसेही जो पुरुष पक्षपात से झूठी गवाही कहता है और जो अन्य झूँठ कहता है वह पुरुष रौरव नरक को प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥ और मदिरा पीनेवाला व ब्रह्मघाती तथा सुवर्ण को चुरानेवाला और जो पुरुष उनसे संसर्ग (मेल) को प्राप्त होताहै वे नर शूकर नामक नरकको जाते हैं ॥ १७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! गर्भघाती, गुरुघाती व गोघाती ये पुरुष रौद्रनामक नरकको जाते

हैं और जो विश्वासघाती हैं वे भी रौद्रनरकको प्राप्तहोतेहैं ॥ १८ ॥ और स्वर्णको चुरानेवाला व गुरुकी शय्या पै बैठनेवाला नर वैतालनामक नरक में जाताहै और
जो निन्दितकर्म करता है व जो गौवों को मना करता है ॥ १९ ॥ वह पुरुष अतिभयानक विनशक नामक नरक में जाता है और जो स्वामी से द्रोह करनेवाला
भयंकर पुरुषहै वह तप्तकुम्भ नरक में गिराया जाता है ॥ २० ॥ और जो भक्तको छोडता है वह तप्तलोह नरक में पचता है व जो पतोहू तथा कन्या से संग करता है
वह महाज्वाल नामक नरक में गिराया जाताहै ॥ २१ ॥ और देवताओंके दूषक व वेदों के बेंचनेवाले पुरुष ऊपर पांवों से उपलक्षित होकर नीचे मुखकरके कुम्भीपाक

**यान्त्येतेनरकंरौद्रं येचविश्वासघातकाः ॥ १८ ॥ स्वर्णस्तेयीचवैताले तथैवगुरुतल्पगः॥ करोतिकर्मवैनिन्द्यं यश्चगाःप्रति
षेधयेत् ॥ १९ ॥ नरोविनशकेयाति नरकेभृशदारुणे ॥ स्वामिद्रोहीचयोरौद्रस्तप्तकुम्भेसपात्यते ॥ २० ॥ तप्तलोहेषुप
च्येत यस्तुभक्तंपरित्यजेत् ॥ स्नुषांसुताञ्चयोगच्छेन्महाज्वालेसपात्यते ॥ २१ ॥ कुम्भीपाकेप्रयात्येव पादैरूर्ध्वैर
धोमुखः ॥ देवदूषयितारश्च वेदविक्रयकास्तथा ॥ २२ ॥ परस्त्रीगामिनोयेच यान्तिक्रकचनेतुते ॥ चौरोतिदारुणेयाति
मर्यादाभेदकस्तथा ॥ २३ ॥ देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिताचयः ॥ सयातिकृमिभक्षेवै रक्ताख्येचपतन्तिवै ॥ २४ ॥ पि
तृदेवगुरूणाञ्च सपर्यांनकरोतियः ॥ लालाभक्षेसयात्युग्रेकूटकर्मकरोतियः ॥ २५ ॥ अन्त्यजेभ्योग्रहीताच नरकेया
त्यधोमुखे ॥ अस्थिभङ्गेप्रयात्येव एकोमिष्टान्नभुङ्नरः ॥ २६ ॥ कृतघ्नःपिशुनःक्रूरः कूटमानीविडम्बकः ॥ यन्त्रपी**

नरक में जाता है ॥ २२ ॥ और जो पराई स्त्री के निकट जानेवाले हैं वे क्रकचन नामक नरक को जाते हैं और मर्यादा को तोडनेवाला व चोर अतिदारुण नरक में
प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ और देवता, ब्राह्मण व पितरों से वैर करनेवाला और जो रत्नोंको दूषण देनेवाला होता है वह कृमिभक्ष नरक में और रक्तनामक नरकमें प्राप्तहोता
है ॥ २४ ॥ और पितर, देवता व गुरुवोंकी जो सेवा नहीं करता है व जो कूट याने कपटके कर्मको करता है वह लालाभक्ष नामक उग्र नरक में जाताहै ॥ २५ ॥ और
चाण्डालों से धन ग्रहण करनेवाला पुरुष अधोमुख नामक नरक में जाता है और एकही मिष्टान्न भोजन करनेवाला पुरुष अस्थिभग नामक नरक में जाता है ॥ २६ ॥

और कृतघ्न, चुगुल, क्रूर व कपटसे मान करनेवाला, विडम्बना करनेवाला और अन्यकी छिपीहुई वस्तुको प्रकाश करनेवाला पुरुष यन्त्रपीडन नामक नरक में प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ और लाख,मास व रसोंको बेंचनेवाला और तिलोंका व रसका बेंचनेवाला ब्राह्मण संदंश नरकमें जाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥२८॥ और मधुहा याने शहद की मक्खियों को मारनेवाला व ग्रामनाशक पुरुष वैतरणी नदी में प्राप्तहोता है और जो नर कर्म, मन व वचन से वर्ण व आश्रम के विरुद्ध कर्मको करते है वे महानदी में प्राप्तहोते हैं और गुरुवों को अपमान करनेवाला व जो शास्त्रोंका दूषण देनेवालाहै ॥ २९ । ३० ॥ वैसेही पर्वोंका उल्लंघन करनेवाला पुरुष असिप-

डनकेयाति परगुह्यप्रकाशकः ॥ २७ ॥ लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानाञ्चरसस्यच ॥ विक्रयीब्राह्मणोयाति सन्दंशे नात्रसंशयः ॥ २८ ॥ मधुहाग्रामहन्ताच यातिवैतरणींनदीम् ॥ वर्णाश्रमविरुद्धंच कर्मकुर्वन्तियेनराः ॥ २९ ॥ कर्मणामनसावाचा महानद्यांप्रयान्तिते ॥ गुरूणामवमन्ताचशास्त्रदूषयिताचयः ॥ ३० ॥ असिपत्रेप्रयात्येवतथापर्वविलङ्घकः ॥ धनयौवनमत्ताये मर्यादाभेदिनोनराः ॥ ३१ ॥ तेयान्तिनरकेघोरे असिपत्रेतिदारुणे ॥ असंस्कृतश्चयो विप्रो वृषलींसेवतेतुवै ॥ ३२ ॥ वृषलीमिथुनाच्चैव पततस्तावुभावपि ॥ उच्छिष्टायेस्पृशन्तीह गामग्निंजननींद्विजान् ॥ ३३ ॥ तेपच्यन्तेकुभोज्येहि मित्रद्वेषीविशेषतः ॥ पङ्क्तिभेदंदिवास्वप्नं येनराब्रह्मचारिणः ॥ ३४ ॥ पुत्रैरध्यापितायेवै तेपतन्तिकुभोजने ॥ एतेचान्येचनरकाःशतशोथसहस्रशः ॥ ३५ ॥ तत्रदुष्कृतकर्माणः पच्यन्तेया

त्रननामक नरक में प्राप्तहोता है और धन न यौवनसे मत्त व मर्यादाको तोडनेवाले जो पुरुष होते हैं ॥ ३१ ॥ वे असिपत्र नामक बड़े भयंकर व घोर नरक में प्राप्तहोते हैं और संस्काररहित जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्री को सेवता है ॥ ३२ ॥ शूद्राके मैथुनसे वे दोनों भी नरक में पतित होते है और इस ससारमें जो जूंठे पुरुष गऊ, अग्नि, माता व ब्राह्मणों का स्पर्श करते हैं ॥ ३३ ॥ वे कुभोज्य नामक नरक में पचते हैं और मित्रसे द्वेष करनेवाला नर विशेषकर उस नरक में पचताहै और जो ब्रह्मचारी पुरुष पंक्तिभेद व दिनमे शयन करते हैं ॥ ३४ ॥ और जो पुत्रों से पढ़ाये जाते हैं वे कुभोजन नामक नरकमें पतितहोते है ये और अन्य सैकड़ों व हजारों नरक

हैं ॥ ३५ ॥ वहांपर पीड़ाओं में प्राप्त पापकर्मी पुरुष पचते हैं मनुष्यो के जितने स्वर्ग हैं उतनेही उनके नरक हैं ॥ ३६ ॥ जोकि बहुत पातकको कर प्रायश्चित्तसे
विमुख होतेहैं और पापकरने पर जिस पुरुषके सन्ताप होवै ॥ ३७ ॥ उसको शिव जीका भलीभांति स्मरण करना एक उत्तम प्रायश्चित्तहै इसलिये दिनरात पुरुषो-
त्तम शिवजी को भलीभांति स्मरण करताहुआ ॥ ३८ ॥ समस्त नष्ट पातकोंवाला पुरुष पवित्र होकर नरकको नहीं जाताहै कातिकके कृष्णपक्ष में जो चौदशि होती
है ॥ ३९ ॥ उसमें देवदेव शिवजीके आगे दीप देना चाहिये ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनरकेश्वरनरकतीर्थमाहात्म्यंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

पापंकृत्वातुबहुलं प्रायश्चित्तपराङ्मुखाः ॥ कृतेपापेच
तनागताः ॥ नृणांस्वर्गाश्चयावन्तस्तावन्तोनिरयास्तथा ॥ ३६ ॥ पापंकृत्वातुबहुलं प्रायश्चित्तपराङ्मुखाः ॥ कृतेपापेच
वैतापो यस्यपुंसःप्रजायते ॥ ३७ ॥ प्रायश्चित्तन्तुतस्यैकं शिवसंस्मरणंपरम् ॥ तस्मादहर्निशंशम्भुं संस्मरन्पुरुषो
त्तमम् ॥ ३८ ॥ नयातिनरकंशुद्धस्संक्षीणाखिलपातकः ॥ कार्त्तिकस्यासितेपक्षे याभवेच्चचतुर्दशी ॥ ३९ ॥ तस्यान्दी
पःप्रदातव्यो देवदेवस्यचाग्रतः ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नरकेश्वरनरकतीर्थमाहात्म्यन्नामैको
नचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ दीपेस्मिन्यत्फलंदत्तं विधिनायेनदीयते ॥ तत्सर्वंब्रूहिमेतात दीपोत्पत्तिञ्चशोभनम् ॥ १ ॥ सन
त्कुमारउवाच ॥ पुराकृतयुगेशम्भुः पार्वतींशङ्करोयदा ॥ अभिप्रयाचितुंयातस्तयापिसोभियाचितः ॥ २ ॥ पार्वत्युवा
च ॥ शरीरेकृष्णताशम्भो ममास्तेरूपहारिणी ॥ तस्माद्याचेभृशंशम्भो प्रसीददिव्यलोचन ॥ ३ ॥ भवेनवर्णितासावे

दो० । अहै दीपके दानकर जौन सुभग माहात्म्य । चालिसवें अध्यायमें सोइ चरित सर्वात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे तात ! इस दीप में जो फल दिया गया है
और जिस विधि से वह दियाजाताहै उस सब उत्तम चरित्र व दीपक की उत्पत्तिको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय सतयुग में जब
शिवजी पार्वतीजी से याचना करने के लिये गये तब उन पार्वतीने भी उन सदाशिवजी से याचना किया ॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे शंभो ! मेरे शरीर में रूप

को हरनेवाली श्यामता है इसलिये हे दिव्यनयन, शङ्करजी ! मैं बहुतही याचना करतीहूं कि प्रसन्न हूजिये ॥ ३ ॥ शिवजी ने उनसे कहा कि तुम मुझको बहुतही उत्तम लगती हो जैसे कि पक्ष्म याने पलकों की पंक्तिसे सदैव लोचन बहुतही शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ व जैसे श्वेत कमल पै भलीभांति बैठाहुआ भ्रमर उसको शोभित करता है उन पार्वतीजी वृषासन धूर्जटि इन शिवजी से वैसेही याचना किया॥ ५ ॥ कि विरूप व रूपके करनेवाले तुम जब मेरे वचन को न सुनोगे तब मैं उत्तम वैराग्यसे कठिन तप करूंगी ॥ ६ ॥ उन पार्वतीजी से कहेहुये शिवजीने भी उसके हाथको पकड़लिया और कभी शिवदेवजी ने उन प्यारी पार्वतीजी से रति

अतीवशोभनामम ॥ लोचनेपक्ष्मपङ्क्त्येव शोभतेतितरांसदा ॥ ४ ॥ सिताब्जसंस्थितोभृङ्गो यथाशोभयतेचतम् ॥ तयातथायाचितोसौ धूर्ज्जटिर्वृषभासनः ॥ ५ ॥ विरूपरूपकर्तात्वं नश्रृणोषिवचोयदा ॥ तदात्वहंसुवैराग्याच्चरेयंदुष्करन्तपः ॥ ६ ॥ भवस्तयापिचोक्तस्तु तस्यावैपाणिमग्रहीत ॥ कदाचिच्छङ्करोदेवो रतिंयाचितवान्प्रियाम् ॥७॥ रतिंदत्तवतीसातु जहासनामकीर्तयन् ॥ सुदुःखिताभवत्सातु तंविहायपराङ्मुखी ॥ ८ ॥ उवाचरोषसंयुक्ता स्मरन्तीदेवभाषितम् ॥ तपोवनंव्रजाम्यद्य सुगौरत्वोपलब्धये ॥ ९ ॥ सुवर्णरूपरूपिणी यदापुनर्भवामिचेत्तदातवानुरागिणी भवामिचैवनान्यथा ॥ १० ॥ इतीदमेवजल्पती जगामविन्ध्यपर्वतं हरश्शुशोचतान्ततो गताकसाविहायमाम् ॥ ११॥ स्मरत्तदेवचेष्टितं यदेवपूर्वभाषितं तदैवमेवृथामतिर्मुदायदानमानिता ॥ १२ ॥ यतोमयाहिमाद्रिजा समस्तलोकसुन्दरी

मांगा ॥ ७ ॥ और उन पार्वतीजीने रति दिया व नाम कहतेहुये शिवजी हँसे और बहुत दुःखित होतीहुई वे पार्वतीजी उनको छोडकर विमुख हुई ॥ ८ ॥ और शिवदेवजी के वचन को स्मरण करती हुई क्रोधसंयुत पार्वतीजी बोलीं कि आजही मैं उत्तम गौरताको पानेके लिये तपोवनको जातीहूं ॥९॥ यदि मैं सोनेके समान रूपवती फिर जब होऊंगी तब तुम्हारी प्रेमवती होऊंगी अथवा न होऊंगी ॥ १० ॥ इसप्रकार इसी वचनको कहतीहुई पार्वतीजी विन्ध्याचल पर्वत पै गईं तदनन्तर शिवजीने उनका शोचकिया कि वे पार्वतीजी मुझको छोड़कर कहांगईं ॥ ११ ॥ शिवजीने उसी कर्मका स्मरणकिया जोकि पहले कहा था तभी मेरी बुद्धि वृथा होगई थी जब कि

मैंने हर्षसे उनको नहीं मानाथा ॥ १२ ॥ जिसलिये मैंने सब लोकों में सुन्दरी हिमालयकी कन्याकी पहलेही प्रशंसा नहीं किया इसीकारण मुझको छोड़कर वे चलीगई ॥ १३ ॥ उन शिवजी ने यहीं कहा तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये कि मैं प्यारी पार्वतीजी के ऐसे भारी वियोग को सहने के लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय संसार बडे भय से सयुत हुआ और देवता, दैत्य व महर्षिलोग बड़े विपादको प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ और घरोंको छोडकर वे बडे दुःखको प्राप्त हुये तथा उन्होंने विष्णुजी की अद्भुत उपमावाली उत्तम स्तुति किया ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जब बालचन्द्रमा भालवाले शिवदेवजी न देखपड़े तब

पुरैवनाभिनन्दिता गताविहायमामिति ॥१३॥ इतीदमेवसोवदद्गतस्त्वदर्शनंततः ॥ प्रियावियोगमीदृशं गुरुन्नसोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥ ततोजगत्तदाभवन्महाभयेनसंयुतम् ॥ सुरासुरामहर्षयः परंविषादमभ्ययुः ॥ १५ ॥ विहायमन्दिराणिते परंविषादमागताः ॥ हरेस्स्तुतिंपराञ्चते प्रचक्रुरद्भुतोपमाम् ॥१६॥ सनत्कुमारउवाच ॥ नदृश्यतेयदारुद्रो देवोबालेन्दुशेखरः ॥ नष्टालोकंजगत्सर्वं कान्तारमभवत्तदा ॥ १७ ॥ त्रीणिनेत्राणिरुद्रस्य यतस्सूर्येन्दुवह्नयः ॥ गतेरुद्रेनतेभान्ति जगत्यस्मिंश्चराचरे ॥ १८ ॥ ततस्तमसिदुस्तारे सम्भूतेलोमहर्षणे ॥ अन्योन्यंहिनपश्यन्ति सुरादैत्यास्तमोवृताः ॥ १९ ॥ एषाबुद्धिस्ततस्तेषामुत्पन्नाकार्यसिद्धये ॥ ययाबुद्ध्याजगन्नाथो ज्ञायतेपार्वतीपतिः ॥ २० ॥ नह्यालोकोविनातेनशशिसूर्याग्निचक्षुषा ॥ परस्परंब्रुवन्तिस्मदुःखितास्तेविसंज्ञया ॥ २१ ॥ हेदेवहेमुनेसिद्ध हेऋषेहेनिशा

नष्ट प्रकाशवाला समस्त संसार वन होगया ॥ १७ ॥ जिसलिये कि सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि ये तीन शिवजी के नेत्र हैं उसीकारण शिवजीके अन्तर्द्धान होनेपर इस चराचर संसार में वे नहीं प्रकाश करते थे ॥ १८ ॥ तदनन्तर रोमहर्षण व दुःखसे पार होनेवाले अन्धकार के उत्पन्न होनेपर अन्धकार से घिरेहुये देवता, दैत्य आपस में नहीं देखते थे ॥ १९ ॥ तदनन्तर कार्यकी सिद्धिके लिये उनके वह बुद्धि उत्पन्न हुई कि जिस बुद्धि से जगदीश व पार्वतीजी के पति शिवजी जाने जाते हैं ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रवाले उन शिवजी के विना प्रकाश नहीं है इसप्रकार अचैतन्यतासे दुःखित होतेहुये उन्होंने आपस में ऐसा कहा ॥ २१ ॥

कि हे देव, हे मुने, हे सिद्ध, हे ऋषे, हे निशाचर, हे दैत्य, हे दनुश्रेष्ठ, हे मनुष्यनिदेशक ! ॥ २२ ॥ हे तात ! तुम किस दिशाको चलेगये हे विभो ! तुम ने किस को पाया और तुम्हारे विश्राम का स्थान कहीं है व तुम्हारा क्या अवलम्ब है ॥२३॥ और तुम्हारे कुछ मार्गव्ययहै और कहां तुम स्थानवालेहो और प्रकाश, वाहन, छत्र, भोजन, शयन व घर ॥ २४ ॥ व निवास कहां है और तुम्हारे चित्तको आनन्द किसप्रकार होता है व हे तात ! बन्धु या पुत्र है और उत्तम व शीतल वृक्षों की छाया है ॥ २५ ॥ इसप्रकार आपस में करुणापूर्वक वचन भलीभांति कहकर फिर इन्द्र आदिक सब देवता चिन्तामें तत्परहुये ॥ २६ ॥ पृथ्वी के बिलमें आश्रित

चर ॥ हेदैत्यहेदनुश्रेष्ठ हेमनुष्यनिदेशक ॥ २२ ॥ गतोसिकान्दिशंतात कोवालम्बस्त्वयाविभो ॥ क्वचविश्राममभूमिस्ते किंस्विदालम्बनन्तव ॥ २३ ॥ पाथेयमस्तिकिञ्चित्तेदेशिकोवाथकुत्रचित ॥ प्रकाशंवाहनंछत्रमशनंशयनंगृहम् ॥ २४ ॥ क्वचवासःकथन्तेचाप्यथवाचित्तनिर्वृतिः ॥ बन्धुःपुत्रोस्तिवातात वृक्षच्छायासुशीतला ॥ २५ ॥ एवंप्रकारंकरुणं समाभाष्यपरस्परम् ॥ भूयश्चिन्तापरास्सर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ २६ ॥ भूमेर्विवरमाश्रित्य प्राणिनोयेवसन्त्यपि ॥ रसातलेचदैतेयास्संस्थिताःपन्नगाश्चये ॥ २७ ॥ नतेषांविद्यतेसूर्यो नेन्दुर्नान्येमहाग्रहाः ॥ नाग्निर्देवमुखंविद्युन्नैवतारककोटयः ॥ २८ ॥ केनालोकेनपश्यन्ति समानिविषमाणिच ॥ नरकस्थानरालोकं केनपश्यन्त्यलोकनात ॥ २९ ॥ विचरंस्तुसनःकोवा मनोरथशतप्रदः ॥ तृष्णाम्भःक्षुधितान्नञ्च श्रान्तानामथवाहनम् ॥ ३० ॥ श्रमेशय्याजलेनौश्च रागेसत्परिचारकः ॥ श्रेष्ठौषधिरसद्रोगे सम्पदोव्याधिसङ्कटे ॥ ३१ ॥ सुहृद्विदेशेछायोष्णे निर्धूमश्शिशिरि

होकर जो प्राणी बसते हैं व रसातल में जो दैत्य व नाग भलीभांति टिके थे ॥२७॥ उनके सूर्य, चन्द्रमा व बडेभारी ग्रह नहीं विद्यमानहैं व देवताओं का मुख अग्नि प्रकाशित नहीं है और न बिजली प्रकाशित है और न करोडों नक्षत्र प्रकाशित हैं ॥ २८ ॥ तो वे सम व विषम वस्तुवोंको किससे देखते हैं और न देखपडने के कारण नरकमें टिकेहुये पुरुष किससे लोकको देखते हैं ॥ २९ ॥ व भ्रमण करताहुआ वह कौन सैकड़ों मनोरथों को देनेवालाहै और तृषाका जल व क्षुधितका अन्न व थकेहुये पुरुषोंका जो वाहनहै ॥३०॥ और परिश्रममें शय्या व जल में नौका व स्नेहमें उत्तम सेवक तथा दुष्ट रोगमें उत्तम ओषधि व व्याधि के संकट में संपदा ॥३१॥

व विदेश में मित्र तथा धूप में छाया व शिशिर ऋतु में धूमरहित अग्नि व बड़े डर में रक्षा और महारात्रि में प्रकाश ॥ ३२ ॥ और सदैव हम सबों को सैकड़ों मनोरथों को देनेवाला जो एकही है उसको हमलोग नहीं जानते हैं ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कहतेहुये उन्होंने आकाश के मध्य से अतुलकर्मवाले विष्णु जी की पहले सुनीहुई मीठी वाणी को सुना ॥ ३४ ॥ और वे यह नहीं जानते थे कि व्यापक विष्णुजी कहां स्थित होकर कहते हैं इस वचन को उन्होंने सुना कि सावधान होतेहुये तुम सब लोग सुनो ॥ ३५ ॥ कि सदैव चिन्तामणिके समान एक दान भलीभांति कहागया है कि सबही दानों के मध्यमें दीपदान उत्तमहै ॥ ३६ ॥

रेशिखी ॥ महाभयेपरित्राणं प्रकाशश्चमहानिशि ॥ ३२ ॥ सर्वदाचैवसर्वेषां मनोरथशतप्रदः ॥ एकएवभवेद्योनस्तन्न जानीमहेवयम् ॥ ३३ ॥ ब्रुवन्तस्तइतिव्यास शुश्रुवुर्मधुराङ्गिरम् ॥ श्रुतपूर्वांनभोमध्याद्विष्णोरतुलकर्मणः ॥ ३४ ॥ नजानन्तिस्थितःकुत्र भाषतेकेशवोविभुः ॥ शृणुध्वमितिमेवाक्यं सर्वेचैवसमाहिताः ॥ ३५ ॥ दानमेकंसदासम्यक् चिन्तामणिसमंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां दीपदानंप्रशस्यते ॥ ३६ ॥ तच्चदेयमतस्सर्वे शृणुध्वंतत्त्वतोभृशम् ॥ मयारसातलेपूर्वं नागानामनुकम्पया ॥ ३७ ॥ उत्पादितोदीपवरो येनध्वस्तमिदन्तमः ॥ एवंभूतस्तुवायूनामप्रधृष्योमहाप्रभः ॥ ३८ ॥ निष्कम्पोनिर्मलोहृद्यः सुन्दरोभास्करप्रभः ॥ नात्युष्णोनातिशीतश्च दिव्ययोगसमुद्भवः ॥ ३९ ॥ तेनदीपप्रकाशेन गोकर्णानिर्वृतिंययुः ॥ नागाश्शेषादयस्सर्वे नोद्यमानाश्चसङ्घशः ॥ ४० ॥ तदादीपसहस्राणि ददुस्तेवैशिवाग्रतः ॥ पर्वतेषुसमुद्रेषु वनेषूपवनेषुच ॥ ४१ ॥ नदीतीरेषुसर्वत्र दीपान्प्रज्वाल्यरेमिरे ॥ भुञ्जानाःफलमू

इसलिये उसको देना चाहिये और सबलोग यथार्थता से सुनिये कि पुरातन समय मैंने रसातलमें नागों के ऊपर बहुतही दयासे ॥ ३७ ॥ उत्तम दीपको उत्पन्न किया कि जिससे यह अन्धकार नाश होगया जो दीप ऐसाथा कि पवनोंसे धर्षणा न करने योग्य व महाप्रकाशवान् ॥ ३८ ॥ तथा कम्परहित व निर्मल,मनोहर,सुन्दर व सूर्य के समान प्रभावान् और न अति उष्ण व न बहुत शीत और दिव्य योगसे उपजा हुआथा ॥ ३९ ॥ उस दीपके प्रकाश से गोकर्ण (सर्पविशेष) आनन्द को प्राप्त हुये और प्रेरणा कियेहुये शेषादिक उन सर्पसमूहों ने ॥ ४० ॥ उससमय शिवजी के आगे हज़ारों दीपोंको दिया पर्वतों में व समुद्रोंमें तथा वनो व उपवनों मे ॥ ४१ ॥

लानि दिव्यानीक्षुरसन्तथा ॥४२॥ परमान्नञ्चमांसानि मकरन्दंघृतोदनम् ॥ चन्द्रशालिभवंभक्तं ताम्बूलंसप्तधागतम् ॥ ४३ ॥ मद्यमष्टप्रकारन्तु भार्यापीतावशेषकम् ॥ शयनेषुमहार्हेषु हृद्यासुवनराजिषु ॥ ४४ ॥ वृक्षमूलेषुसर्वेषु वनच्छायोपशोभिषु ॥ रमन्तेस्मचतेसर्वे उद्वेष्टन्तःपरस्परम् ॥४५ ॥ कामतन्त्रोपदिष्टैस्तु चेष्टितैश्चुम्बनादिभिः ॥ सूर्यतापभयान्मुक्ताश्चन्द्ररश्मिभयाच्चते ॥ ४६ ॥ विमुक्ताश्चभयाद्घोरात पिपीलिकोद्भवात्तथा ॥ सूर्यतापेनदाहस्स्याच्छीतंचन्द्रमरीचिभिः ॥ ४७ ॥ मयूरनकुलाद्यैश्च पिपीलीसरणाद्भयम् ॥ सौवर्णान्दीपकान्कृत्वा द्विजेभ्यस्तेददुःपुनः ॥ ४८ ॥ तेनपातालमाश्रित्य कृत्वाभोगवतीम्पुरीम् ॥ वसन्तिसुखिनस्तत्र स्वर्गादष्टगुणान्सदा ॥ ४९ ॥ एवमन्धतमोदेवाः पातालाद्दीपतोगतम् ॥ एतद्गुह्यंमयाख्यातं भवतांचानुकम्पया ॥ ५० ॥ दीपदानमतोयूयं कुरुध्वंसुसमाहि

और नदी के किनारों म सब कहीं दीपों को जलाकर दिव्य फलों व मूलों को तथा ऊखके रसको भोजन करतेहुये उन्होंने क्रीडा किया ॥ ४२ ॥ और परमान्न याने खीर पूरी व मास मकरन्द (पुष्पमधु) तथा घी भात व चन्द्रमाके समान शाली (जडहनधान) से उपजेहुये भात व सात प्रकार को प्राप्त तांबूल ॥ ४३ ॥ और स्त्री से पीकर बचीहुई आठ प्रकारकी मदिरा को पीकर आपस में उद्वेष्टन करते हुये उन सब सांपोंने बडी मोलवाली शय्याओं पै व मनोहर वनकी पंक्तियो मे तथा वनकी छाया से समीप शोभित वृक्षोंकी जड़ों में रमण किया ॥ ४४ । ४५ ॥ व कामतन्त्रमे कहेहुये चुम्बनादिक व्यवहारों से क्रीडा किया और वे सूर्यनारायण के तापसे व चन्द्रमा की किरणों के भयसे छूटेहुयेथे ॥४६॥ और पिपीलिकासे उपजेहुये भयंकर भयसे मुक्त थे सूर्यनारायण के तापसे दाह (जलन) होतीहै व चन्द्रमा की किरणों से शीत होता है ॥ ४७ ॥ और मयूर व नेउलाआदिक तथा पिपीलिकाके गमन से भय होताहै फिर उन नागों ने सुवर्ण क दीपोंको बनाकर ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ४८ ॥ उसी से पाताल में आश्रित होकर स्वर्ग से अठगुने सुखोंवाली भोगवती नामक पुरी को बनाकर उसमें सदैव सुखी नाग बसते हैं ॥ ४९ ॥ इसप्रकार हे देवताओ ! दीपके कारण पाताल से बहुत अन्धकार जातारहा मैंने आपलोगोंके ऊपर दयाके कारण इस गुप्त चरित्रको कहाहै ॥ ५० ॥ इसलिये साव-

धान होतेहुये तुमलोग दीपदान करो क्योंकि दीपरूपी अग्निके विना अन्धकाररूपी अग्नि नहीं जलती है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर नारायण में परायण देवतालोग सुनकर प्रसन्न व सावधान होतेहुये फिर उन सबोंने व्यापक विष्णुजीसे पूंछा ॥५२॥ कि हे जगदीश ! हमलोगों से अग्नि को कहिये कि जिससे वह दीप उत्पन्न होता है भयंकर अन्धकार में डूबेहुये हमलोग अग्निको नहीं जानते हैं ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजीने देवताओंसे मानसी अग्निको कहा व उससे दीपकको जला कर शिवजीमें परायण उनदेवताओं ने समस्त मनोरथों के फलको देनेवाले सदाशिवजीको उद्देश कर दिया तदनन्तर दीप देनेपर अदृश्य शिवजी प्रसन्न हुये ॥५४।५५॥

ताः ॥ दीपाग्निनाविनान्नैव तमोदारुप्रदह्यते ॥ ५१ ॥ नारायणपरादेवा निशम्याथसमाहिताः ॥ पप्रच्छुस्तेपुनस्सर्वे हृष्टादामोदरंविभुम् ॥ ५२ ॥ ब्रूहिनोऽग्निंजगन्नाथ सदीपोयेनजायते ॥ घोरेतमसिवैमग्ना नाग्निंजानीमहेवयम् ॥ ५३ ॥ देवानांमानसोवह्निरथकृष्णेनकीर्तितः ॥ तेनदीपंचप्रज्वाल्य देवाःशिवपरायणाः ॥ ५४ ॥ ददुस्तेशिवमुद्दिश्यसर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ दत्तेदीपेततोदेवैर्नष्टोहृष्टोमहेश्वरः ॥ ५५ ॥ तिमिरंतद्गतंचापि जगद्येनजडीकृतम् ॥ ततोदेवास्सुखंप्रापुस्स्वर्गेसेन्द्रपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दीपदानफलंज्ञात्वादैतेयाश्चापिविस्मिताः ॥ राज्यंभोगान्वितम्प्राप्य सार्द्धंस्त्रीभिश्चरेमिरे ॥ ५७ ॥ तथैवतत्फलंज्ञात्वा व्यासयक्षाश्चविस्मिताः ॥ पूजयित्वामहादेवं पुष्पैश्चनिर्मलैर्जलैः ॥ ५८ ॥ ददुर्दीपसहस्राणि सर्वेशिवपरायणाः ॥ स्वस्थानेचाभवन्सर्वे दीपदानाच्चशोभनात् ॥ ५९ ॥ स्वेच्छयाभुञ्जतेभोगान् बन्धुभृत्यादिसंयुताः ॥ निराहारास्ततोव्यास पिशाचावैनिराश्रयाः ॥ ६० ॥ दीपदानफलंज्ञात्वा सर्वेतेपरिविस्मिताः॥

और वह अन्धकार भी जातारहा कि जिससे संसार जड करदिया गया था तदनन्तर इन्द्र समेत देवताओंने स्वर्ग में सुख पाया ॥ ५६ ॥ और दीपदान के फलको जानकर दैत्य भी विस्मित हुये और सुखों से सयुत राज्यको पाकर उन्हों ने स्त्रियों समेत रमण किया ॥ ५७ ॥ हे व्यासजी ! वैसेही उस फलको जानकर यक्ष लोग विस्मितहुये और पुष्पों तथा निर्मल जलों से महादेवजी को पूजकर ॥ ५८ ॥ शिवजी में परायण उन सबों ने हजारों दीपोंको दिया और उत्तम दीपके दान से सब अपने स्थान में हुये ॥ ५९ ॥ और बंधुवों व सेवकों से सयुत वे अपनी इच्छा से सुखोंको भोगते हैं उसके उपरान्त हे व्यासजी ! आश्रयरहित व निराहार

पिशाच ॥ ६० ॥ दीपदानके फलको जानकर वे सब विस्मितहुये और चाण्डाल से अग्निको मँगाकर शिवजी में तत्पर उन्होंने दीपको दिया ॥ ६१ ॥ और दीपदान के फलसे वे पुत्रों व स्त्रियों से संयुतहुये व निरस भोजन किये जातेहुये अन्नको व दुर्गन्धिसंयुत तथा पर्युषित ॥ ६२ ॥ व उच्छिष्ट तथा सूतिका याने सॅवरिवाली स्त्री से छुयेहुये व अशुद्ध तथा नाँघेहुये अन्नको भोजन करतेहुये वे प्रसन्न राक्षस सदैव दुष्ट भूमियों में रमण करते हैं ॥ ६३ ॥ और शिवजी में मनको लगायेहुये विद्याधर, मनुष्य व सिद्धोंने दीपदान के फलको जानकर शिवजीके आगे दीपको दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर दीपदान से सब समस्त सुखों से संयुत होकर सुखी व

चाण्डालादग्निमानीय ददुर्दीपंशिवेरताः ॥ ६१ ॥ दीपदानफलात्तेवै पुत्रदारसमन्विताः ॥ लिह्यमानंगतरसं पूति पर्युषितंतथा ॥ ६२ ॥ उच्छिष्टंसूतिकास्पृष्टममेध्यञ्चातिलङ्घितम् ॥ भुञ्जानास्तेसदाहृष्टा रमन्तेदुष्टभूमिषु ॥६३॥ विद्याधरास्तथामर्त्याः सिद्धाश्चशिवमानसाः ॥ दीपदानफलंज्ञात्वा ददुर्दीपंशिवाग्रतः ॥ ६४ ॥ दीपदानात्ततस्सर्वे सर्वभोगसमन्विताः ॥ स्थानेषुमुदितास्स्वेषु रमन्तेसुखिनस्सदा ॥ ६५ ॥ तिमिरंतद्गतञ्चैव व्यासलोकेषुदीपतः ॥ ततोघोरंस्थितंसम्यक् प्रेतलोकेषुसर्वदा ॥ ६६ ॥ प्रेतलोकन्तदादृष्ट्वा घोरेणतमसावृतम् ॥ दामोदरंजगन्नाथमूचुस्सर्वे सुरोत्तमाः ॥ ६७ ॥ घोरंचैवतमोहत्वा प्रसन्नास्तेसदाविभो ॥ गन्धर्वाश्चतथायक्षाः सिद्धाविद्याधरोरगाः ॥ ६८ ॥ वयञ्चैवतथामर्त्यास्सर्वेभोगैश्चसंयुताः ॥ स्थानेषुचसदास्वेषु रमन्तेसुखिनोभृशम् ॥ ६९ ॥ प्रेतलोकेनरायेवै घोरेणतमसावृताः ॥ वसन्तिचजगन्नाथ वर्तन्तेचातिदुःखिताः ॥ ७० ॥ नतैःकृतंशुभंकर्म कृष्णालंपापमोहितैः ॥ नतेषांविद्यतेकिञ्चि

प्रसन्न होते हुये सदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी ! लोकों में दीपसे वह अन्धकार जातारहा तदनन्तर वह घोर अन्धकार सदैव प्रेतलोकों मे भलीभांति स्थितहुआ ॥ ६६ ॥ उससमय भयंकर अन्धकार से घिरेहुये प्रेतलोकको देखकर सब सुरोत्तमों ने संसारके स्वामी विष्णुजीसे कहा ॥ ६७ ॥ कि हे विभो ! भयंकर अन्धकार को नाशकर वे गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध व विद्याधर सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥ ६८ ॥ और सुखों से संयुत हमलोग व मनुष्य बहुतही सुखी होकर सदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६९ ॥ हे जगदीश ! प्रेतलोकमें जो मनुष्य बसते हैं भयंकर अन्धकारसे घिरेहुये वे बहुतही दुःखी वर्तमानहैं ॥ ७० ॥ हे श्रीकृष्णजी !

बहुतही पापसे मोहित उन्होंने शुभ कर्म नहीं किया है और उनके कुछ नहीं वर्तमान है जोकि प्रकाश करै ॥ ७१ ॥ वे घोर अन्धकार में मग्न हैं क्योंकि वहां सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि नहीं हैं और न सहाय है न यह स्त्री है और न आलम्ब है न देशवाला है ॥ ७२ ॥ और न वाहन है न शय्याहै केवल बड़ा अन्धकार है और वहां पर अट्ठाईस नरकभूमिया प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ और वे सब अन्धकारमय तथा पापियों को सदैव भयदायक हैं हे श्रीकृष्णजी ! वहां पर दुःखित मनुष्य किस प्रकार सुखको पाते हैं ॥ ७४ ॥ जोकि दरिद्रता, दुःख. रोग, माया व मोहसे सदैव संयुत होते हैं ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार देवताओं की प्रार्थना को

द्यत्प्रकाशंकरोतिच ॥ ७१ ॥ घोरेतमसितेमग्नास्तत्रनार्केन्दुवह्नयः ॥ नसहायोनजायेयं नालम्बोनचदैशिकः ॥ ७२ ॥ नवाहनन्नशय्याच केवलन्तुमहत्तमः ॥ तत्राष्टाविंशतिःख्याता घोरानरकभूमयः ॥ ७३ ॥ तमोमयाश्चतास्सर्वाः पापिनांभयदास्सदा ॥ सुखंतत्रकथंकृष्ण लभन्तेदुःखितानराः ॥ ७४ ॥ दारिद्र्यदुःखरोगैश्च मायामोहैश्चसर्वदा ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इतिश्रुत्वातुदेवानां प्रार्थनांगरुडध्वजः ॥ उवाचवचनंहृद्यं मनोरथफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ शृणुध्वंत्रिदशास्सर्वे यत्प्रवक्ष्यामिवोवचः ॥ अवन्त्यांवर्ततेतीर्थं सद्यःपापहरंपरम् ॥ ७७ ॥ अनर्काख्यंमहापुण्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ कार्त्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यांसमाहितः॥७८ ॥ तत्रस्नात्वानरोयस्तु यमध्यानपरायणः ॥ संगृह्यवै तिलान्कृष्णान् पितृभक्तोजितेन्द्रियः ॥ ७९ ॥ दक्षिणाभिमुखोभूत्वा मध्याह्नेसुरसत्तमाः ॥ अपसव्यन्तथाभूत्वा मन्त्रैस्सन्तर्पयेद्यमम् ॥ ८० ॥ यमायधर्मराजाय मृत्यवेचान्तकायच ॥ वैवस्वतायकालाय दत्तायमनवेतथा ॥ ८१ ॥

सुनकर विष्णुजी मनोरथ के फलको देनेवाले व मनोहर वचनको बोले ॥७६॥ कि हे समस्त देवताओ ! मैं जिस वचन को तुमलोगों से कहताहूं उसको सुनिये कि अवन्ती पुरी में शीघ्रही पापहारक उत्तम तीर्थ वर्तमान है ॥ ७७ ॥ जोकि अनर्क नामक व महापवित्र तथा समस्त तीर्थोत्तमोंमें उत्तमहै कातिकके कृष्णपक्ष में चौदसितिथि में सावधान होताहुआ ॥ ७८ ॥ यमराजके ध्यान मे तत्पर व पितरों का भक्त तथा जितेन्द्रिय जो मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर काले तिलों को लेकर ॥ ७९ ॥ हे सुरोत्तमो ! दुपहरके समय में दक्षिण मुख होकर व अपसव्य होकर मन्त्रों से यमराजको भलीभांति तर्पण करै ॥ ८० ॥ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत,

काल, दक्ष व मनुके लिये ॥ ८१ ॥ और कृष्ण व प्रेतलोक में परायण कृष्णगुप्त हरि व यमुनाजी के सहोदर भाई सूर्यपुत्र के लिये ॥ ८२ ॥ वैसेही श्राद्धदेव व पितरों के पति के लिये इन नमः अन्तवाले व ॐकार आदिवाले उत्तम मन्त्रोंके द्वारा ॥ ८३ ॥ तिलोंसे संयुत व कुश समेत जलकी अञ्जली को देवै और यमदेव को भलीभांति तर्पण करै और सावधान होताहुआ विद्वान् पुरुष वित्तशाठ्य से रहित होकर तिलके पात्रको ब्राह्मणके लिये देवै इस विधि से जो पुरुष यमराज स्वामी को तर्पण करताहै ॥ ८४।८५ ॥ उसके वे पितर मुक्त होजाते हैं कि जो नरक में भी होते हैं इसके अनन्तर वहा यश संयुत मनुष्य रात्रि को भलीभांति पाकर ॥ ८६ ॥

कृष्णायकृष्णगुप्ताय प्रेतलोकपरायच ॥ हरयेरविपुत्रायकालिन्दीसोदरायच ॥ ८२ ॥ तथावैश्राद्धदेवाय पितृणांप तयेतथा ॥ मन्त्रैरेभिर्नमःप्रान्तैरोङ्कारादैस्सुशोभनैः ॥ ८३ ॥ जलाञ्जलिंसदर्भांवै दद्यात्तिलसंयुताम्॥ सन्तर्पये द्यमन्देवं तिलपात्रंसमाहितः ॥ ८४ ॥ प्राज्ञोविप्रायवैदद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ अनेनविधिनायस्तु तर्पयेच्चयमं विभुम् ॥ ८५ ॥ पितरस्तस्यमुच्यन्ते निरयेयेगताअपि ॥ रात्रिंतत्राथसम्प्राप्य मानवःकीर्तिसंयुतः ॥ ८६ ॥ नमःपि तृभ्यःप्रेतेभ्यो नमोधर्मायविष्णवे ॥ नमस्सूर्यायरुद्राय कान्तारपतयेनमः ॥ ८७ ॥ एभिर्मन्त्रैर्यमन्दीपं योदद्याद्घृत पूरितम् ॥ कार्त्तिकन्तुसमग्रन्तु वर्द्धन्तेतस्यसम्पदः ॥८८॥ सम्पूर्णेकार्त्तिकेचैवदीपोद्यापनमारभेत् ॥८९॥दिवाकराहेस्त मितेचसूर्ये दीपस्यवृत्तिंपुरुषप्रमाणम् ॥ यूपाकृतियज्ञियदारुणाच करोतिधीमान्यमभक्तिचित्तः ॥ ९० ॥ निक्षिप्य भूमावथहस्तमात्रं मूर्ध्निद्विहस्ताष्टदलान्विताश्च ॥ धार्याश्चतस्रश्शुभपट्टिकाश्च छिद्रेप्रयुक्ताश्चतुरङ्गुलेन ॥ ९१ ॥ त

पितरों के लिये प्रणाम है व धर्म के लिये तथा विष्णुजी के लिये नमस्कार है और सूर्य व रुद्र के लिये प्रणाम है और कांतारपति के लिये नमस्कार है ॥ ८७ ॥ इन मन्त्रों से जो पुरुष समस्त कार्त्तिक मासभर घृत से भरेहुये दीपको यमराज को देताहै उसकी समस्त संपदायें बढ़ती हैं ॥ ८८ ॥ और सब कातिक भर दीपोद्यापन का प्रारम्भ करै ॥ ८९ ॥ रविवारके दिन सूर्यनारायण अस्तहोनेपर दीपको वर्तमानकरै और यमराज की भक्तिमें चित्तवाला बुद्धिमान् मनुष्य यज्ञवाले काष्ठ से पुरुषके प्रमाण भर याने तीन हाथ यूपाकार याने खम्भा का आकार बनावै ॥ ९० ॥ इसके अनन्तर भूमि में हाथ भर गाड़कर दो हाथ ऊपर रक्खै और आठदलोंसे संयुत

चार उत्तम पट्टिकाओं को चार अंगुल छिद्रमें युक्त करै ॥ ९१ ॥ और उसकी कर्णिका (गुजरी) में महाप्रकाशवान् दीपको परमभक्ति से देना चाहिये और उस के दलों में घीसे भरेहुये आठ उत्तम दीप दिशाओं के सामने धरना चाहिये ॥ ९२॥ और अनंगवल्ली से चिह्नित वसनका खण्ड नवीन व अरुण अथवा श्वेत वस्त्र बाती के लिये देना चाहिये उसके उपरान्त चिकनी व समस्त तथा समान व उत्तम दो वर्तिकाओं को देवै ॥ ९३ ॥ और उस दीपको जड़हन चावलों के पिसानके ऊपर वैसेही धरकर कि जिसप्रकार न निकलै और न कॉपै और सब से तिगुने प्रमाणभर दीपराजको मध्य में स्थित करना चाहिये ॥ ९४॥ और दलोंमें बहुतही शोभा

त्कर्णिकायान्तुमहाप्रकाशो देयोहिदीपःपरयाचभक्त्या ॥ दिशुन्मुखादीपवरास्तथाष्टौ दलेषुतस्याघृतपूर्यमाणाः ॥ ९२ ॥ अनङ्गवल्ल्यङ्कितवस्त्रखण्डं नवंसुरक्तंह्यथवासुशुक्लम् ॥ वर्त्यैप्रदेयञ्चततोहिदद्यात्स्निग्धेत्वखण्डेसुसमेप्रशस्ते ॥ ९३ ॥ तच्छालिपिष्टोपरिसन्निधाय यथाननिर्यातिनकम्पतेच ॥ कृत्स्नात्प्रकार्यस्त्रिगुणप्रमाणोमध्यस्थितःस्यादथ दीपराजः ॥ ९४ ॥ दलेषुशोभार्थमतीवकुर्यान्मनोरथप्रत्युपलब्धयेच ॥ घण्टाष्टकंलम्बितपुष्पदामसवस्त्रशोभान्वितमत्रकार्यम् ॥ ९५ ॥ संलिप्यभूमिंत्वथगोमयेन पुनःसुगन्धेनजलेनलिप्त्वा ॥ कुर्याद्विचित्रंत्वथमण्डलञ्च दलाष्टकंपद्ममनुत्तमम् ॥ ९६ ॥ ततोजलंशीतलमानयित्वाआपूर्यचाष्टौकलशांस्तुरम्यान् ॥ निधायमूर्ध्निक्रमशोहिधीमान् फलानिमूलानितथेक्षुकाणि ॥ ९७ ॥ मध्वाज्ययुक्तादधिदुग्धपूपा नैर्ऋत्यकोणादथदक्षिणान्तम् ॥ धर्माय दद्यादथशङ्कराय दामोदरायाप्यथवेधसेच ॥ ९८ ॥ प्रजापतिभ्यःक्रमशोहिभक्त्या प्रेतेभ्यइन्द्रायतथापितृभ्यः ॥ हे

[illegible] और इसमें लटकाये हुये फूलोंकी मालावाले तथा वस्त्र समेत व शोभासे संयुत आठ घण्टोंको करना चाहिये ॥ [illegible] सुगन्धित जल से लीपकर इसके उपरान्त आठ दलवाला मण्डल व सुन्दर कमल को बनावै ॥ ९६ ॥ उसके [illegible] को भरकर बुद्धिमान् मस्तक पै धरकर क्रमसे फल, मूल व ऊंख ॥ ९७ ॥ तथा शहद व घीसे संयुक्त [illegible] दक्षिण दिशाके अन्ततक धरे इसके अनन्तर धर्म, सदाशिव, विष्णु व ब्रह्मा के लिये देवै ॥ ९८ ॥ और भक्तिसे

क्रमपूर्वक प्रजापतियों के लिये व प्रेतों के निमित्त तथा इन्द्र व पितरोंके लिये देवै और दक्षिणा समेत तिलोंसे भरेहुये सुवर्णादि के पात्रको ब्राह्मणों को देवै ॥ ९९ ॥ गौवें, सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, फल, मूल, यव, धान्य, गृह, रथ हाथी, घोड़ा और ऐसे ही हृदय में जो अन्य सुन्दर वस्तु होवै ॥ १०० ॥ उसको अधिक विद्यावाले द्विजोत्तमों के लिये व पुराण बाचनेवाले ब्राह्मणों के लिये देवै और यहां पर दलों में स्थित दीपों से यमादिकों के मध्यमें एक एक को तर्पण करै ॥ १ ॥ इसके अनन्तर अपने गुरुके सकाशसे आज्ञाको पाकर धर्मराजके लिये मध्यवाला दीप देना चाहिये और नृत्य व उत्तम गान तथा उत्तम बाजन से संयुत उत्साहको करावै ॥ २ ॥

मादिपात्रंतिलपूर्णमेव दद्याद्द्विजानांचसदक्षिणञ्च॥ ९९ ॥ गावोहिरण्यंरजतंचवस्त्रं फलानिमूलानियवाश्चधान्यम् ॥ गृहंरथंकुञ्जरमश्वमेव मनोज्ञमन्यंहृदयेहियच्च ॥१००॥ विद्याधिकेभ्योद्विजसत्तमेभ्यः पौराणिकेभ्यश्चतथाद्विजेभ्यः॥ एकैकसंप्रीणनमत्रकुर्याद्दीपैर्दलस्थैश्चयमादिकानाम् ॥ १ ॥ धर्मायदेयस्त्वथमध्यदीप आज्ञांचलब्ध्वास्वगुरोःसकाशात् ॥ नृत्येनगीतेनसुशोभनेन युक्तंसुवाद्येनचकारयेच्च ॥ २ ॥ एतत्समग्रंविधिवच्चकुर्यात्स्वशक्तिमादौस्वधनंसमीक्ष्य ॥ आहूयविप्राञ्छुभभावयुक्तान् वदेच्चधीमान्परयाचभक्त्या ॥ दीपान्समग्रानपिवर्जयित्वा सर्वंनयेयुःस्थितमत्रविप्राः ॥ ३ ॥ प्रदक्षिणीकृत्यविसृज्यविप्रांस्ततोभवेद्वैसचनक्तभोजी ॥ एवंकृतेनागलोकाद्विशिष्टं सुखंभवेत्प्रेतलोकेस्थितानाम् ॥ ४ ॥ एवमेवनरोव्यास दीपदानंकरोतियः ॥ तस्यैवयत्फलंप्रोक्तं तदिहैकमनाःशृणु ॥ ५ ॥ विमानैःका

पहले अपनी शक्ति व अपने धनको देखकर विधिपूर्वक इस सब वस्तु को करै और सुन्दर भावसे संयुत ब्राह्मणोंको बुलाकर बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम भक्तिसे कहै और समस्त दीपोंको वर्जितकर सब स्थित वस्तुको यहां ब्राह्मणलोग लावैं ॥ ३ ॥ और प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणों को बिदा करके तदनन्तर वह रात्रिभोजी होवै ऐसा करने पर प्रेतलोकमें स्थित मनुष्यों को नागलोकसे विशेष सुख होताहै ॥ ४ ॥ इसीप्रकार हे व्यासजी ! जो मनुष्य दीपदान करताहै उसको जो फल कहागयाहै उसको यहां

एकमनवाले होकर सुनिये ॥ ५ ॥ कि अप्सराओं के गणों से सेवित व कामनाओंवाले दिव्य विमानो पै चढा हुआ पुरुष तबतक स्वर्गमें प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायादीपदानमाहात्म्यंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॐ ॥

दो० । जिमि रामेश्वर तीर्थ कर अहै सुभग परभाव । इकतालिसवे में कह्यो सोइ चरित सुखपाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर मैं अन्य उत्तम केदारेश्वरजी को कहूंगा जोकि समस्त तीर्थोंमे उत्तम व तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य महादेवजीको देखताहै वह उस

मिकैर्दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः ॥ उह्यमानोदिवंयातियावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे दीपदानमाहात्म्यंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रवरंसर्वतीर्थानांसर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा यःपश्यतिमहेश्वरम् ॥ केदारेयत्फलंप्रोक्तं तदत्रापिलभेन्नरः ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः ॥ विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकेसमोदते ॥ ३ ॥ जटाशृङ्गेनरःस्नात्वा शुचिर्भूत्वाजितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वाजटेश्वरं देवं ततःपापाद्विमुच्यते ॥ ४ ॥ महास्नपनमादौच कृत्वागच्छेच्छिवम्प्रति ॥ मातृकंपैतृकंचैव कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाचेन्द्रेश्वरंशिवम् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यः शक्रलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ कुण्डेश्वरंतु यःपश्येच्छिवध्यानपरायणः ॥ लभतेसनरोव्यास शिवदीक्षाफलंशुभम् ॥ ७ ॥ गोपतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागोपेश्व

फलको यहां भी पाताहै जोकि केदारक्षेत्रमें कहागया है ॥ २ ॥ और सब पापों से छूटा हुआ वह मनुष्य अपने वंशसे संयुत होकर सूर्य वर्ण (रंग) वाले विमान समेत शिवलोकमें प्रसन्न होताहै ॥ ३ ॥ व जटाशृङ्गतीर्थ में नहाकर जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्रहोकर जटेश्वर देवजी को देखकर तदनन्तर पातक से छूटजाताहै ॥ ४ ॥ जो मनुष्य पहले महास्नान कर शिवजी के समीप जाताहै वह माता व पिता के सौ कुलोंको तारता है ॥ ५ ॥ व इन्द्रतीर्थ में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजीको देखकर मनुष्य समस्त पापों से छूटकर इन्द्रलोकमें पूजाजाता है ॥ ६ ॥ और हे व्यासजी ! शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष कुण्डेश्वरजी को देखताहै वह शिवजी

की दीक्षाके उत्तम फलको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ व गोपतीर्थ में नहाकर गोपेश्वर शिवजी को देखकर वह पुरुष शिवलोकको जाता है जैसे कि अमृत से देवता स्वर्ग को प्राप्तहोताहै ॥ ८ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! चिपिटातीर्थ मे नहाकर व शिवदेवजी को प्रणामकर पुरुष तिर्यग्योनि में नहीं जाताहै ॥ ९ ॥ व विजय नामक तीर्थ में नहाकर आनन्देश्वरजी के पूजनसे समस्त पापों से छूटाहुआ पुरुष स्वर्गलोक में विजयवान् होताहै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे व्यासजी ! कुशस्थली याने उज्जयिनी पुरी में निर्मित व भुक्ति, मुक्तिको देनेवाले अन्य रामेश्वर देवजी को मैं कहताहूं ॥ ११ ॥ कि पुरातन समय जानकी व लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी ने चित्रकूट से

रंशिवम् ॥ शिवलोकंसवैयाति ह्यमृतादमरोयथा ॥ ८ ॥ स्नात्वातुचिपिटातीर्थे शिवंदेवंप्रणम्यच ॥ तिर्यग्योनिंनरो नैव प्रयातिमुनिपुङ्गव ॥ ९ ॥ विजयेचनरःस्नात्वा आनन्देश्वरपूजनात् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यःस्वर्लोकेविजयीभवेत् ॥ १० ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि कुशस्थल्यांविनिर्मितम् ॥ देवंरामेश्वरंव्यास भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥ चित्रकूटात्पुरारामो मैथिल्यालक्ष्मणेनच ॥ अत्ररामंसमागत्य पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १२ ॥ रामोवाच ॥ कानितीर्थानिपुण्यानि किंवाक्षेत्रंमहामुने ॥ यत्रगत्वानचाप्नोति वियोगःसहबान्धवैः ॥ १३ ॥ अनेनवनवासेन मरणेनपितुःप्रभो ॥ भरतस्यवियोगेन प्रतप्येहंत्रिभिर्मुने ॥ १४ ॥ तद्वाक्यंराघवेणोक्तंश्रुत्वाविप्रर्षभस्तदा ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ साधुपृष्टन्त्वयावीर रघूणांवंशवर्धन ॥ ममपित्राकृतंक्षेत्रं प्रयाच्यशिवमादरात् ॥ १६ ॥ अवन्तीविषये राम पुरातस्मिन्कुशस्थली ॥ उज्जयिनीतिवैनाम्ना ख्यातिंलोकेगताविभो ॥ १७ ॥ तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेन

यहां आकर मुनिश्रेष्ठ परशुरामजी से पूंछा ॥ १२ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे महामुने ! कौन क्षेत्र व कौन तीर्थ पुण्यदायक है कि जहां जाकर मनुष्य बन्धुवोंके साथ वियोगको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ हे प्रभो,मुने ! इस वनवास व पिताका मरण तथा भरत का वियोग इन तीनों से मैं संतप्तहूं ॥ १४ ॥ श्रीरामजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर उस समय द्विजश्रेष्ठ ने बहुत समय तक ध्यानकर इस वचन को कहा ॥ १५ ॥ कि हे रघुवोंके वंशको बढ़ानेवाले,वीर ! तुमने बहुत अच्छा पूंछा मेरे पिताने शिवजीसे आदर समेत याचना कर क्षेत्रको रचाहै ॥ १६ ॥ हे विभो ! श्रीरामजी ! पुरातन समय उस अवन्ती देशमे कुशस्थली उज्जयिनी ऐसे नाम से

संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्तहुई है ॥ १७ ॥ उस पुरी में जाकर दशरथजी को पिण्डदान से तृप्तकरो वहां पर देवताओं व दैत्योंके गुरु महाकालजी टिके हैं ॥ १८ ॥ जो सदाशिवदेवजी चाहेहुये फलको देनेवाले हैं उन जगदीशजी के देखनेपर वियोग नहीं होता है ॥ १९ ॥ वहां जो ब्राह्मण व बड़े बलवान् राजा लोग जातेहैं वे उत्तम स्थान को पाते हैं जहां कि सदाशिवदेवजी हैं ॥ २० ॥ हे विष्णो ! अवन्ती के मण्डल में वह तीर्थोंके मध्य में भी तीर्थ है तदनन्तर श्रीरामजी अवन्ती पुरीको गये जहां कि वह पुण्यदायिनी शिप्रानदी है ॥ २१ ॥ उसमे नहाकर तदनन्तर श्रीरामजीने पहले उपजेहुये पितरोंको तर्पण किया जब श्रीरामजी ने महाकालजी को

तर्पय ॥ सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोऽव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ देवःसदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते ॥ १९ ॥ तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः ॥ लभन्तेतेपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २० ॥ तीर्थानामपितत्तीर्थं भोविष्णोवन्तिमण्डले ॥ आजगामततोवन्तीं साशिप्रायत्रपुण्यदा ॥ २१ ॥ तस्यांस्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् ॥ महाकालंयदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दनः ॥ २२ ॥ वाण्याततोशरीरिण्या देवदेवेनभाषितम् ॥ भोभोराघवभद्रन्ते स्वनाम्नास्थापयस्वमाम्॥२३ ॥ अत्रस्थानंमयादत्तं माविचारयराघव ॥ ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ अनुगृहीतःसौमित्रे देवदेवेनशम्भुना ॥ तस्मात्स्थापयतीर्थेस्मिल्लिँङ्गंरामेश्वरंशुभम् ॥ २५ ॥ वाक्यंतल्लक्ष्मणःश्रुत्वा स्थापयामासशङ्करम् ॥ दृष्ट्वादेवंपुरोरामो लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय ॥ करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनंशुभम् ॥ २७ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वा

देखने के लिये प्रयाण किया ॥ २२ ॥ तब देवदेव शिवजीने आकाशवाणीसे कहा अहो राघवजी ! तुम्हारा कल्याण होवै अपने नामसे मुझको स्थापन करिये॥२३॥ मैंने यहां पर स्थानको दिया हे राघवजी ! मत विचारिये तदनन्तर प्रसन्नमनवाले श्रीरामजी लक्ष्मणजी से वचन बोले ॥ २४ ॥ कि हे सौमित्रे ! देवदेव शिवजी ने मेरे ऊपर दयाकियाहै इसलिये इस तीर्थ में रामेश्वर देवजी को स्थापित कीजिये ॥ २५ ॥ उस वचनको सुनकर लक्ष्मणजीने शिवजीको स्थापित किया आगे शिवदेवजी को देखकर श्रीरामजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ २६ ॥ कि हे लक्ष्मण जी ! शीघ्रही आइये और तुम शिप्रानदी के जलको लावो क्योंकि हे भाई ! मैं शिवदेव

जीको उत्तम स्नान कराऊंगा ॥ २७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि सीता से तुम क्या करोगे हे श्रीरामजी ! मैं सदैव तुम्हारी सेवकाई नहीं करूंगा ॥ २८ ॥ यह सीता पुष्ट व दृढ़ तथा मुझसे भी मोटीहै इसलिये हे राघवजी ! सत्यतासे कहिये कि तुम इससे क्या करोगे ॥ २९ ॥ पहले लक्ष्मणजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर उदासीन राघवजी व उत्तम मुखवाली सीताजी स्थितहुईं ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर जो लक्ष्मणजीने कहा उसको जानकीजी ने किया और नहाकर व भोजनकर वे वीर महाकालजी के समीप आये ॥ ३१ ॥ और वहां रात्रिको व्यतीतकर जाने के लिये मन धारण किया व कहा कि हे वत्स, सौमित्रे ! उठिये हम दक्षिण दिशाको जाते

क्यं सीतयाकिंकरिष्यसि ॥ रामनाहंसर्वकालं दासभावंकरोमिते ॥ २८ ॥ इयंचपुष्टासुदृढा पीवराचममाप्यतः ॥ वदराघवसत्येन अनयाकिंकरिष्यसि ॥ २९ ॥ श्रुत्वापूर्वंहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् ॥ विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना ॥ ३० ॥ यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसीताचकारह ॥ स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ ॥ ३१ ॥ नीत्वाविभावरींतत्र गमनायमनोदधे ॥ उत्तिष्ठवत्ससौमित्रेव्रजामोदक्षिणांदिशम् ॥ ३२ ॥ सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाहंगन्ताकथञ्चन ॥ व्रजत्वमनयासार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण ॥ ३३ ॥ नाहमग्रेवनंयामि नवायोध्यांकथञ्चन ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः ॥ ३४ ॥ कथंपूर्वमयोध्याया निर्गतोसिमयासह ॥ वनेवसाम्यहंराम नववर्षाणिपञ्चच ॥ ३५ ॥ प्रसादःक्रियतांमह्यं नयमामपिराघव ॥ इदानींत्वमर्द्धपथे कथंस्थातासिशत्रुहन् ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाहंगन्तावनंपुनः ॥ लक्ष्मणंविकृतंज्ञात्वा रामोवचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ मामनुव्रजसौमित्रे एकोयास्यामिकाननम् ॥ द्विती

हैं ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं किसीप्रकार नहीं जाऊंगा हे कमललोचन ! तुम इस स्त्री समेत जावो ॥ ३३ ॥ मैं आगे न वनको जाऊंगा और न किसी प्रकार अयोध्याको जाऊंगा ऐसा कहतेहुये लक्ष्मणजी से श्रीरामजी बोले ॥ ३४ ॥ कि पहले मेरे साथ अयोध्या से क्यों निकले थे हे रामजी ! मै नव व पांच वर्ष तक वन में बसूंगा ॥ ३५ ॥ हे श्रीरघुनाथजी ! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजाय मुझ को भी ले चलिये हे शत्रुहन ! इस समय तुम आधेमार्ग में कैसे टिकोगे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं फिर वनको न जाऊंगा विकार में प्राप्त लक्ष्मणजी को जानकर श्रीरामजी वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हे सौमित्रे ! मेरे पीछे चलिये मैं

अकेले वनको जाऊंगा और दूसरी यह जानकीजी हैं इसप्रकार श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी से कहा ॥ ३८ ॥ और उस समय धनुषको लेकर उदासीन लक्ष्मणजी उठे व शत्रुओं के सन्तापक वे दोनों क्षेत्रकी सीमाको प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ और श्रीरामजी बोले कि हे सौमित्रे ! मुझको धनुष देवो तुम लौटजावो श्रीरामजी के वचन को सुनकर लक्ष्मणजी सीतासे बोले ॥ ४० ॥ कि मैं किसलिये छोडागया और मैंने क्या अपराध कियाहै श्रीरामजीसे छोडाहुआ मैं निरसन्देह प्राणोंको त्यागूंगा॥४१॥ तदनन्तर जानकीजी श्रीरामजीसे बोलीं कि हे देव ! सुमित्राजीके आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी को तुम किसलिये छोड़तेहो ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी ने सीताजी से

याचत्वियंसीता उक्तोरामेणलक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ धनुःसंगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा ॥ प्राप्तौप्राकारमर्यादां क्षेत्रसी मांपरंतपौ ॥ ३९ ॥ त्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयचमेधनुः ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतांवैलक्ष्मणोब्रवीत् ॥ ४० ॥ किमर्थं हिपरित्यक्तः कोपराधःकृतोमया ॥ रामेणचपरित्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ ४१ ॥ रामंततोब्रवीत्सीता किम र्थंलक्ष्मणस्त्वया ॥ देवसन्त्यज्यतेवीरः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ४२ ॥ राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहंत्यक्ष्यामिलक्ष्मण म् ॥ नकदाचिदपिस्वप्ने लक्ष्मणस्येदृगप्रियम् ॥ ४३ ॥ श्रुतपूर्वन्तुसुश्रोणि क्षेत्रस्यास्यविचेष्टितम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे न सौभ्रात्रं सर्वोहिस्वार्थतत्परः ॥ ४४ ॥ परस्परंनमन्यन्ते स्वार्थैनिष्ठैकहेतवः ॥ नशृण्वन्तिपितुःपुत्राः पुत्राणाञ्चतथा पिता ॥ ४५ ॥ नचशिष्योगुरोर्वाक्यं गुरुर्वाशिष्यकर्मच ॥ अर्थानुबन्धिनीप्रीतिर्नकश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ ४६ ॥ एव मुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणोजानकीतथा ॥ लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नारघुनन्दनः ॥ ४७ ॥ रामतीर्थेनरःस्नात्वा दृ

कहा कि मैं लक्ष्मणजी को नहीं छोडूगा हे सुन्दर कटिवाली, जानकीजी ! मैंने कभी स्वप्नमें भी लक्ष्मणजीके ऐसे अप्रिय वचनको नहीं सुनाथा इस क्षेत्रके व्यवहार को मैंने पहले सुना था कि इस क्षेत्रमें सुबन्धुता नहीं है क्योंकि सब मनुष्य स्वार्थमें तत्पर होताहै ॥ ४३ । ४४ ॥ और स्वार्थ में केवल सिद्धिरूप कारणवाले मनुष्य आपस में नहीं मानते हैं पिताके वचन को पुत्र नहीं मानते हैं और न पुत्रोंके वचन को पिता सुनते हैं ॥ ४५ ॥ और शिष्य गुरु के वचन को नहीं सुनता है न गुरु शिष्य के कर्मको सुनताहै प्रयोजनके सम्बन्धवाली प्रीति होती है कोई किसी का प्यारा नहीं है ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर वहांपर अपने नामसे लिङ्गको स्थापितकर श्री-

राम, लक्ष्मण व जानकीजी ने यात्रा किया ॥ ४७ ॥ रामतीर्थ में मनुष्य स्नानकर व रामेश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोंसे छूटाहुआ वह विष्णुलोकको जाता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरतीर्थमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि सौभाग्यक तीर्थ कर अहै अतुल परभाव । बयालीसवें में कह्यो सोइ चरित्र सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सौभाग्यतीर्थ में नहाकर व सौभाग्येश्वरजीको देखकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष उत्तम सौभाग्यको पाताहै ॥ १ ॥ व घृततीर्थमें नहाकर मनुष्य घृतसे शिवजीको नहवावै इसके अनन्तर घृतको अग्नि में हवनकर शिवलोक में पूजित होताहै ॥ २ ॥ देवताओं व दैत्यों से प्रणाम कीहुई योगेश्वरी देवीजी को पूजकर समस्त पातकोंसे छूटकर उत्तम योगको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ और शंखावर्त तीर्थ में नहाकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष धन धान्य से संयुत होकर निर्मल कुलमें पैदा होताहै ॥ ४ ॥ और शुद्धोदक तीर्थ में चौदसि तिथि में नहानेवाला पुरुष सुरेश्वर शिवजीको देखकर तदनन्तर मोक्षकी गतिवाला होताहै ॥ ५ ॥ वैसेही त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्यतीर्थ को कहताहूं जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ानेवाला किंपुनः ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ पुरातन समय हे व्यासजी ! सुनेत्रनामक ब्राह्मण हुआहै उनका पुत्र विश्वावसु ऐसा कहा हुआ उत्पन्न भयाहै ॥ ७ ॥

ष्ट्वारामेश्वरंशिवम् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेरामेश्वरतीर्थमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थेसौभाग्यकेस्नात्वा दृष्ट्वासौभाग्यकेश्वरम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यंपरमंलभेत् ॥ १ ॥ घृततीर्थेनरःस्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् ॥ घृतमग्नावथोहुत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥ २ ॥ देवींयोगेश्वरींप्राच्य सुरासुरनमस्कृताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परंयोगमवाप्नुयात ॥ ३ ॥ शङ्खावर्तेनरःस्नात्वा सर्वपापविवर्जितः ॥ धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥ ४ ॥ शुद्धोदकेचतुर्दश्यां मुक्त्यर्थंस्नानवान्नरः ॥ शिवंसुरेश्वरंदृष्ट्वा ततोमोक्षगतिर्भवेत् ॥ ५ ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ किंपुनरितिविख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ६ ॥ पूर्वंत्रेतायुगेव्यास सुनेत्रोनामवैद्विजः ॥ तस्यपुत्रःसमुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः ॥ ७ ॥ यवक्रीतस्यशापेन सपिताते

यवक्रीत के शाप से वह पिता उनसे मारागया और हे व्यासजी ! तीर्थ से तीर्थमें घूमतेहुये ब्रह्महत्यासे संयुत ॥ ८ ॥ वे ब्राह्मण किंपुनक तीर्थ में नहाकर धारातीर्थ में गये तदनन्तर कपिलधारा मे आपही चित्तसे चिन्तनकर ॥ ९ ॥ कि मेरा ब्रह्महत्याका पाप कैसे शान्तिताको प्राप्तहोगा इसप्रकार चिन्तन करताहुआ वह ब्राह्मण फिर अवन्ती पुरी में आया ॥ १० ॥ और जबतक इस तीर्थ में स्नान करै तबतक उसने इस वाणी को सुना कि हे ब्रह्मन् ! जिसलिये कि तुमने स्नान किया है इसकारण फिर क्या ध्यान करते हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे ब्रह्महत्या नहींहै क्योंकि वह तीर्थस्नानसे नाश कीगई हे विप्रजी ! पापहीन तुम सुखपूर्वक घरको जावो॥१२॥

नघातितः ॥ ब्रह्महत्यान्वितोव्यास तीर्थात्तीर्थंपरिभ्रमन् ॥८॥ तीर्थेकिंपुनकेस्नात्वा धारातीर्थेगतोद्विजः ॥ ततःकपिल धारायां चिन्तयित्वात्मनास्वयम् ॥ ९ ॥ कथंमेब्रह्महत्याया यायात्पापंप्रशान्तिताम् ॥ एवंहिचिन्तयन्सोथ पुनरा यादवन्तिकाम् ॥ १० ॥ अत्रतीर्थेपुनःस्नाति यावद्वाणींततोऽशृणोत् ॥ किंपुनर्ध्यायसेब्रह्मन् येनस्नातोद्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ नतेस्तिब्रह्महत्यावै तीर्थस्नानेननाशिता ॥ गच्छशीघ्रंगृहंविप्र पापहीनोयथासुखम् ॥ १२ ॥ पुनरन्यंप्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रस्थित्वामहेशेन पुनःपत्तनमीक्षितम् ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वरइत्याख्यो देवदेवोमहेश्वरः ॥ यस्तु गन्धैश्चपुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्मनोरमैः ॥ १४ ॥ भावयुक्तोनरोव्यास पूजयेद्विधिवत्सदा ॥ यथावत्तिष्ठतेलिङ्गं वंशच्छेदोनजा यते ॥ १५ ॥ हंसयुक्तेनयानेन शिवलोकंसगच्छति ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६ ॥ दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ पुरादिवाकरोव्यास चक्रेदुर्धर्षनामतः ॥ १७ ॥ तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातंसूर्यसं

फिर मैं अन्य उत्तम पत्तनेश्वरजी को कहताहूं वहां पर टिककर सदाशिवजी ने फिर नगरको देखाहै ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वर ऐसे नामक देवदेव महेशजी हैं हे व्यासजी ! भक्तिसंयुत जो मनुष्य सदैव उस लिंगको विधिपूर्वक सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप व दीपोंसे पूजता है वह यथायोग्य स्थित रहता है और उसके वंशका नाश नहीं होता है ॥ १४ । १५ ॥ व हंसोंसे संयुत विमान के द्वारा वह शिवलोकको जाताहै वैसेहीत्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्य तीर्थको मैं कहताहूं ॥ १६ ॥ जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ाने-वाला दुर्धर्ष ऐसा प्रसिद्ध है पुरातन समय हे व्यासजी ! सूर्यनारायणजी ने दुर्धर्ष ऐसे नाम से ॥ १७ ॥ तीर्थ किया है सूर्यनारायण से संस्कार कियाहुआ जोकि इस

नदीके किनारे प्रसिद्ध है गन्धर्वगणों से पूजित वह तेजराशि लिंग हुआहै ॥ १८ ॥ सप्तमी, अष्टमी, संक्रान्ति व रविवारको उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर तीन रातों तक उपास कियेहुये पुरुष ॥ १९ ॥ वहां शिप्रानदी के किनारे स्थित महादेवजी को देखकर व भक्तिभाव से पूजनकर जिस फलको प्राप्तहोताहै उसको मुझ से सुनिये ॥ २० ॥ कि समस्त पिता व माताके वंशको भलीभांति उधारकर शिवजी के समीप प्राप्तहोताहै वहांपर जो विशेषकर गऊ व सुवर्णादिक दान को देताहै ॥ २१ ॥ उसका वह तबतक अक्षय होताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं वैसेही अन्य उत्तम गोपीन्द्रतीर्थ को कहताहूं ॥ २२ ॥ जहां पर गौतमजी ने शाप से

स्कृतम् ॥ तेजःपुञ्जोभवल्लिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम् ॥ १८ ॥ सप्तम्यामथवाष्टम्यां संक्रान्तौरविवासरे ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा सुत्रिरात्रमुपोषितः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वामहेश्वरंतत्र शिप्राकूलेऽव्यवस्थितम् ॥ पूजयित्वातुभावेन यत्फलंतच्छृणुष्व मे ॥ २० ॥ पितृमातृकुलंसर्वं समुद्धृत्यशिवंव्रजेत् ॥ तत्रयच्छतियोदानं गोहेमादिविशेषतः ॥ २१ ॥ तावत्तदक्षयं लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रंतीर्थमुत्तमम् ॥ २२ ॥ गौतमेनपुरायत्र इन्द्रःशापाद्भगीकृतः ॥ भगव्रीडायुतःशक्रः प्रविश्यवनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ अतोषयत्तदोग्रेण तपसाशङ्करम्पुरा ॥ तुष्टेनशम्भुनाविप्र ये भगास्तच्छरीरगाः ॥ २४ ॥ गोसहस्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रमितिकथ्यते ॥ तत्रस्नात्वादिवंयातिशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २५ ॥ येमृतास्तेपुनर्जन्म नाप्नुवन्तिमहीतले ॥ गङ्गातीर्थेनरःस्नात्वापुण्यंप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ २६ ॥ ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु गङ्गायाःफलमादिशेत् ॥ गङ्गातीर्थेनरःस्नात्वादृष्ट्वापुष्कररण्डकम् ॥ २७ ॥ पुष्पकेणविमानेन प्रयाति

इन्द्र के भग कियाहै और भगकी लज्जा से संयुत इन्द्रजी ने उत्तम वन में पैठकर ॥ २३ ॥ पुरातन समय तब उग्र तपसे शङ्करजीको प्रसन्न कियाहै हे विप्रजी ! उन इन्द्र के शरीर मे जो भग प्राप्त थे वे उन प्रसन्न शिवजी से हजार नेत्र किये गये इससे वह गोपीन्द्र ऐसा तीर्थ कहाजाता है उस तीर्थ में नहाकर इन्द्र के तुल्य बलवाला मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥२४।२५॥ और जो वहा मरजाते हैं वे फिर पृथ्वीतल मे जन्म नहीं पाते है और गङ्गा नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य बड़े पुण्य को प्राप्तहोताहै ॥ २६ ॥ और ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तिथि मे गङ्गाजी के फलको आदेश करै है और गङ्गातीर्थ मे नहाकर व पुष्कररण्डक तीर्थको देखकर मनुष्य ॥ २७ ॥

पुष्पक विमान के द्वारा प्रयाण करता है व स्वर्ग में प्रसन्न होताहै और उत्तरेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही पितरों को नरक से उधारता है ॥ २८ ॥ और प्रियपुष्पों से संयुत वह मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है और भूतेश्वर तीर्थ में नहाकर इस के अनन्तर भूतेश्वर जी को चंदन पुष्पादिक व नैवेद्यों से पूजै तो मरकर सुरपुर को जाता है और शिप्रा नदी में नहाकर जो मनुष्य कैलास को प्रणाम करता है ॥ २९ । ३० ॥ उसका पाप वैसेही नाश होजाता है जैसे कि सूर्यनारायणसे नष्ट किया हुआ अन्धकार होवे और जो पुरुष समाधि के नियम से अंबालिका देवी जी को देखता है ॥ ३१ ॥ वह सब पापों से वैसेही छूट

दिविमोदते ॥ नरकादुद्धरत्याशु नरःस्नात्वोत्तरेश्वरे ॥२८॥ इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गनसंशयः ॥ भूतेश्वरेनरःस्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत ॥ २९ ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्मृतःसुरपुरंव्रजेत् ॥ शिप्रायान्तुनरःस्नात्वा कैलासन्तुनमस्यति ॥ ३० ॥ सूर्याहतंतमोयद्वत्तद्वत्पापंप्रणश्यति ॥ अम्बालिकांचयःपश्येत् समाधिनियमेनच ॥ ३१ ॥ समुक्तःसर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ॥ घण्टेश्वरंप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥ ३२ ॥ यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलंलभेत् ॥ अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥ ३३ ॥ शिवलोकेवसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पुण्येश्वरन्तुयःपश्येच्छुचिःस्नातोजितेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ सगाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वा समभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ ३५ ॥ नयातिनरकंमर्त्यः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ पूजितंत्र

जाता है जैसे कि केंचुलि से सांप छूटता है व घटेश्वर जी को मैं कहताहूं जोकि देवताओं से भी पूजित हैं ॥ ३२ ॥ और जहां कूपका जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त होता है और जो मनुष्य क्रमसे चन्दन तथा पुष्पों से देवेश जी को पूजता है ॥ ३३ ॥ वह तबतक शिवलोक में बसता है कि जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं और इन्द्रियों को जीतेहुये नहाकर जो पवित्र पुरुष पुण्येश्वरजी को देखताहै ॥ ३४ ॥ वह गणपतित्व को प्राप्तहोताहै जोकि देवताओंको भी दुर्लभहै और लुम्पेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य महादेवजी को भलीभांति पूजकर ॥ ३५ ॥ नरकको नहीं जाताहै और वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाजाताहै वैसेही अन्य तीर्थको कहता

हूं जोकि देवताओं को भी दुर्लभ हैं ॥ ३६ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने स्थविर नामक गणेशजीको पूजाहै उस तीर्थमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य विनायकजी को गन्ध,धूप,पुष्प,भक्ष्य व भोज्योंसे पूजताहै उसके फलको सुनिये कि चाही हुई सिद्धि होती है और मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ३७।३८ ॥ जो विद्वान् मनुष्य नवनदी के समीप पार्वतीजी को गन्ध, पुष्प व धूपों से पूजै वह अतुल सौभाग्यको पावै ॥ ३९ ॥ और कामोदक तीर्थ में नहाकर रतिके प्यारे कामदेवजी को देखकर मनुष्य स्वर्ग में देवता व गन्धर्वों के चाहने योग्य शरीरवाला होताहै ॥ ४० ॥ और प्रयागतीर्थ में नहाकर जो मनुष्य प्रयागेशजीको देखताहै वह सब लोकोंको नांघ कर शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसौभाग्यतीर्थमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२॥

ह्मणापूर्वं स्थविराख्यंविनायकम् ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वापूजयेद्योविनायकम् ॥ ३७ ॥ गन्धधूपैश्चपुष्पैश्च भक्ष्यैर्भोज्यैःफलंशृणु ॥ समीहिताभवेत्सिद्धिर्मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ३८ ॥ नवनद्याःसमीपेतु पार्वतीम्पूजयेद्बुधः ॥ गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमतुलंलभेत् ॥ ३९ ॥ कामोदकेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाकामंरतिप्रियम् ॥ स्वर्गेचदेवगन्धर्वस्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ ४० ॥ प्रयागेतुनरःस्नात्वा प्रयागेशन्तुपश्यति ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य शिवलोकेमहीयते ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेसौभाग्यतीर्थमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यंसंप्रवक्ष्यामि नरादित्यंदिवाकरम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥ १ ॥ स्थापनान्तेप्रवक्ष्यामि नरादित्यस्ययादृशी ॥ युद्धेनिवारितेतस्मिन् रक्तस्वेदजयोःपुरा ॥२॥ नरंनारायणौदेवाववतीर्णौ धरातले ॥ कुन्त्यान्देव्यांसुदेवक्यां मथुरायांसमागतौ ॥ ३ ॥ एवंतौभवतोलोके कान्तौवृद्धिम्पराङ्गतौ ॥ अन्यस्मा

दो॰। नरादित्यको थप्यो जिमि स्तुति करि अर्जुनवीर। तैंतालिसवें में सोई कह्यो चरित मतिधीर ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर अन्य नरादित्य नामक सूर्यनारायणको कहताहूं कि जिनके दर्शनही से मनुष्य सब रोगों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ नरादित्यजी की जैसी स्थापना है वैसी मैं तुमसे कहूंगा पुरातन समय रक्त व पसीने से उपजेहुये पुरुषों का युद्ध निवारण करने पर ॥ २ ॥ नरनारायणदेवजीने पृथ्वी में अवतार लियाहै जोकि कुन्तीदेवी में व मथुरामें देवकीजीमें भलीभांति

प्राप्तहुये हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार परम वृद्धिको प्राप्त वे लोकमें मनोहर हुये श्रीकृष्णजी अन्य हेतुसे उत्पन्नहुये और अर्जुनजी अन्य कारणसे पैदाहुये ॥ ४ ॥ उन श्री-कृष्णजी ने युद्धमें कंसादिक सब दानवों को माराहै तदनन्तर पृथाके पुत्र अर्जुन जी इन्द्र से अस्त्रोंकी सिद्धिके लिये स्वर्ग में प्राप्तहुये हैं ॥ ५ ॥ और अस्त्रोंको सीखे हुये अर्जुन वीरने सुरराजसे दक्षिणाको कहा और देवताओंके राजा इन्द्रने उस दक्षिणाको मांगा ॥ ६ ॥ कि हे अर्जुनजी ! हिरण्यपुरमें बसनेवाले उग्र निवातकवच नामक दैत्यों को शीघ्रही मारिये यह मेरी गुरुदक्षिणा है ॥ ७ ॥ अर्जुन ने उन दुष्टात्मा दैत्यों के मारनेकी प्रतिज्ञा किया और भयंकर रथ पै चढ़कर व बाण समेत

त्कारणात्कृष्णोन्यस्माज्जातोधनञ्जयः ॥ ४ ॥ कंसादीन्दानवान्सर्वान् निजघानरणेहिसः ॥ स्वर्गंगतस्ततःपार्थो वासवादस्त्रसिद्धये ॥ ५ ॥ कृतास्त्रेणतुवीरेण देवराजस्तुदक्षिणाम् ॥ संस्तुतोदेवराजेन दक्षिणासातुयाचिता ॥ ६ ॥ निवातकवचाह्युग्रा हिरण्यपुरवासिनः ॥ वध्यतामर्जुनक्षिप्रमेषामेगुरुदक्षिणा ॥ ७ ॥ अर्जुनेनप्रतिज्ञातो वधस्तेषांदुरात्मनाम् ॥ रौद्रंसरथमास्थाय गृहीत्वासशरंधनुः ॥ ८ ॥ निहत्यतांस्ततःपार्थः कृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ प्रीतिमुत्पादयामास सर्वेषांचदिवौकसाम् ॥ ९ ॥ कृतकार्यंतदाशक्रस्त्वर्जुनंवाक्यमब्रवीत् ॥ यत्तेभिरुचिरंवीर मर्त्यलोकेसुदुर्लभम् ॥१०॥ मनसाकाङ्क्षितम्पार्थ वरन्तंवरयोत्तमम् ॥ सवव्रेप्रतिमेद्वेतुयेर्चितेब्रह्मणास्वयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणाप्रीतियुक्तेन दक्षायप्रतिपादिते ॥ दक्षेणापियुगंसाग्रं पूजितेतिमिरापहे ॥ १२ ॥ सुराणामसुराणाञ्च विग्रहेसमुपस्थिते ॥ दानवैर्निर्जितःश

धनुषको लेकर उन ॥ ८ ॥ अर्जुनजीने उन दैत्योंको मारकर व कठिन कर्म करके तदनन्तर सब देवताओं के प्रीति उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ उस समय कार्यको कियेहुये अर्जुनजी से इन्द्र ने वचन कहा कि हे वीर, अर्जुनजी ! मृत्युलोकमें दुर्लभ व मनोहर जो तुम्हारे ॥ १० ॥ मनसे चाहागयाहो उस उत्तम वरदान को मांगिये उन्होंने दो प्रतिमाओंको मांगा कि जिनको आपही ब्रह्माजीने पूजा था ॥ ११ ॥ व प्रीतिसंयुत ब्रह्माजीने दक्षजीके लिये उन मूर्तियोंका प्रतिपादन किया और दक्षजीने भी कुछ अधिक युग भरतक अन्धकारनाशक (दिननायक) की मूर्तियों का पूजन किया ॥ १२ ॥ जब देवताओं व दैत्योंका वैर उपस्थित हुआ तब दानवोंसे जीते व

हरीहुई राज्यवाले इन्द्रजी वनको चलेगये ॥ १३ ॥ व इन्द्रजीने एक चरणसे स्थिताहोकर देवताओं के हज़ार वर्षोंतक असह्य तप किया और बृहस्पतिजीने उनको देखा ॥ १४ ॥ व उन इन्द्रको देखकर बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्रजी ! स्वर्ग को छोड़कर तुम क्यों इस वन में आयेहो ॥ १५ ॥ अकेले वन में टिकेहुये तुमसे शत्रु साधन योग्य नहीं हैं ऐसा जानकर हे सुरराज ! तुम शीघ्रही दक्षजी के आश्रमको जावो ॥ १६ ॥ पूजन के लिये पारिजात से उपजीहुई जिन मूर्तियों को ब्रह्माने दिया है व जिनको विश्वकर्माने रचा है उनको प्रजापति (दक्ष) जी से मांगिये ॥ १७ ॥ उन मूर्तियोंके पूजन व प्रसाद से शत्रुवोंका विनाशहोगा बृहस्पतिजी के उस वचन

क्रोहृतराज्योवनंगतः ॥ १३ ॥ तपश्चचारदुर्धर्षमेकपादःशतक्रतुः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु धिषणस्तंददर्शह ॥ १४ ॥ दृष्ट्वातन्देवराजन्तु बृहस्पतिरुवाचह ॥ हित्वात्रिदिवमायातः कथंशक्रत्विदंवनम् ॥ १५ ॥ एकाकिनावनस्थेन नसाध्याःशत्रवस्त्वया ॥ ज्ञात्वैवन्देवराजत्वं शीघ्रंदक्षाश्रमंव्रज ॥ १६ ॥ पूजार्थंब्रह्मणादत्ते पारिजातसमुद्भवे ॥ चकार विश्वकर्मायेते याचस्वप्रजापतिम् ॥ १७॥ शत्रूणांचक्षयोभावी प्रसादादर्चनात्तयोः ॥ गुरोस्तुतेनवाक्येन हृष्टोदेवश्शतक्रतुः ॥ १८ ॥ जगामसत्वरस्तत्र यत्रदक्षःप्रजापतिः ॥ विनयावनतोभूत्वा ययाचेप्रतिमेशुभे ॥ १९ ॥ ददौतस्मैततोदक्षः शक्रायप्रतिमेशुभे ॥ पूजितेप्रतिमेव्यास शक्रेणशरदांशतम् ॥ २० ॥ तयोस्तुतेजसासर्वे विनाशंदानवागताः ॥ प्रतिमेचोचतुःशक्रं वरयस्ववरोत्तमम् ॥ २१ ॥ भक्त्यानयापरन्तुष्टा आवांजानीहिवासव ॥ वरंवव्रेतदाशक्रःप्रसन्नात्माद्विजोत्तम ॥ २२ ॥ अस्माकंप्रतिपक्षाये दानवाःपापचेतसः ॥ सर्वेतेनाशमायान्तु वरएषमतोमम ॥२३॥

से इन्द्रदेवजी प्रसन्नहुये ॥ १८ ॥ और जहां पर दक्षप्रजापति थे वहां शीघ्रही गये व विनयसे झुँकेहुये होकर उन्होंने दोनों प्रतिमाओंको मांगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर दक्षजी ने उन इन्द्र के लिये उत्तम प्रतिमाओं को दिया व हे व्यासजी ! सौ वर्ष तक उन प्रतिमाओं को इन्द्र ने पूजा ॥ २० ॥ और उनके तेजसे सब दानव नाश को प्राप्तहुये व प्रतिमाओंने इन्द्रजीसे कहा कि उत्तम वरदानको मांगिये ॥ २१ ॥ हे वासवजी! इस भक्तिसे हम दोनोंको बहुत प्रसन्न जानो तदनन्तर हे व्यासजी ! उस समय प्रसन्न चित्तवाले इन्द्रजीने वरदानको मांगा ॥ २२ ॥ कि पाप चित्तवाले जो दानव हम लोगों के शत्रुहैं वे सब नाशको प्राप्तहोवैं यह वरदान मेरा सम्मतहै ॥२३॥

और जबतक मैं इन्द्र होऊं तबतक मैं तुम दोनों को पूजना चाहताहूं बहुतअच्छा ऐसा कहकर वे प्रतिमायें स्वर्गको चलीगई ॥ २४ ॥ वरके लिये उन दोनों प्रतिमाओं को मांगना चाहिये इन्द्रजी बोले कि हे अर्जुनजी ! बहुत अच्छा बहुतअच्छा क्योंकि तुम ऐसा कहतेहो ॥ २५ ॥ व हे अर्जुनजी ! इन प्रतिमाओं को महात्मा सदाशिवजीने अरुण कमलोंसे ब्रह्माके दिन पर्यन्त पूजाहै ॥ २६ ॥ व पुरातन समय श्रीविष्णुजी ने त्रिलोककी रक्षाके लिये कमलों व सुगन्धों से हज़ारों वर्ष तक इन दो मूर्तियों को पूजाहै ॥ २७ ॥ तदनन्तर सावधान होतेहुये सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्माजी ने उत्तम लाल कमलोंसे प्रतिमाओं का पूजन कियाहै ॥ २८ ॥

युवांपूजितुमिच्छामि यावदिन्द्रोभवाम्यहम् ॥ तथेतिचोक्त्वाप्रतिमे तेनाकंप्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥ तत्तुयाच्यमव श्यार्थे वरार्थेप्रतिमाद्वयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ साधुपार्थपुनस्साधु यतश्चेत्थंत्वयोच्यते ॥ २५ ॥ इमेचप्रतिमेपार्थ शङ्करेणमहात्मना ॥ सुरक्तैःशतपत्रैश्च पूजितेब्रह्मणोदिनम् ॥ २६ ॥ त्रैलोक्यपालनार्थंच पूजितेविष्णुनापुरा ॥ नीलोत्पलैस्सुगन्धैश्च सहस्रपरिवत्सरान् ॥ २७ ॥ ततःप्रजापतिस्सृष्टिं कर्तुकामस्समाहितः ॥ पूजयामासप्रतिमे पद्मैरक्तोत्पलैश्शुभैः ॥ २८ ॥ त्वमेवहिकथंपार्थ मृत्युलोकन्नयिष्यसि ॥ एताभ्यांरहितस्स्वर्गस्तृणतुल्योभविष्यति ॥ २९ ॥ आदातुकामंदेवेन्द्रं प्रणिपत्यतमर्ज्जुनः ॥ उवाचचाहमर्थ्यस्मि वरेणानेनवैप्रभो ॥ ३० ॥ ततःशक्रःपुनःपार्थमुवाचमुनिपुङ्गव ॥ गृहीत्वात्वमिमेवीर कुशस्थल्यांनिवेशय ॥ ३१ ॥ शिप्रायाउत्तरेतीरे केशवार्कन्तुकेशवः ॥ स्थापयिष्यतिवैतत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ भविष्यतिसदायात्रा आषाढीचाथकार्त्तिकी ॥ आगमिष्याम्यहंतत्र सहितो

हे पार्थ ! तुम्हीं कैसे मृत्युलोकको ले जावोगे इन दो मूर्तियोंसे रहित स्वर्गलोक तिनुका के समान होगा ॥ २९ ॥ लेनेकी इच्छावाले सुरेन्द्र को प्रणामकर अर्जुनजी बोले कि हे प्रभो ! मैं इसी वरदान से अर्थी (प्रयोजनवान्) हूं ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठ ! इन्द्रजीने फिर अर्जुनजी से कहा कि हे वीर ! तुम इन मूर्तियोंको लेकर उज्जयिनी पुरीमें स्थापितकरो ॥ ३१ ॥ वहां शिप्रानदी के उत्तर किनारे पै विष्णुजी समस्त पापोंके विनाशक केशवार्कजीको थापैंगे ॥ ३२ ॥ और सदैव आषाढ़ी व

कार्त्तिकी यात्रा होगी और वहां पर अप्सराओंके गणों समेत मैं आऊंगा॥३३॥ और बिजलियों समेत मेघ व पवन आवैंगे व मेघोंके समूह में उत्पन्न मेरे वहां बरसने पर ॥ ३४ ॥ मनुष्य कहैंगे कि इन्द्रदेवजी प्राप्तहुये ब्रह्मादिक देवताओं से पूजित व्यापक सूर्यनारायणजी को प्रणामकर ॥ ३५ ॥ हे अर्जुनजी ! फिर भी जिस प्रकार आया था उसीभांति लौटजाऊंगा इसप्रकार विष्णुकी दोनों प्रतिमाओंको अर्जुनजीके लिये देकर ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवजी ! पुत्र समेत पृथ्वीलोकको पठाया और श्रीकृष्ण जीके बुलाने के कारण द्वारकापुरी में नारदजी ने ॥ ३७॥ सुरराज के चरित्र समेत उस वचन को श्रीकृष्णजी को सुनाया व हे द्विजेन्द्र ! यह कहा कि हे कृष्णजी!

प्सरसाङ्गणैः ॥ ३३ ॥ मरुतश्चागमिष्यन्ति मेघाश्चैवसविद्युतः ॥ मेघखण्डेसमुद्भूते मयितत्रप्रवर्षति ॥ ३४ ॥ प्रवदिष्यन्तिवैलोकाः प्राप्तोदेवःपुरन्दरः ॥ भास्करन्तुनमस्कृत्यब्रह्माद्यैःपूजितंविभुम् ॥ ३५ ॥ प्रतियामितुबीभत्सो पुनरेव यथागतम् ॥ एवंमूर्त्तिद्वयंशौरिर्दत्त्वापार्थायवासवः ॥ ३६ ॥ भूर्लोकंप्रेषयामास सुतेनसहपाण्डव ॥ नारदोद्वारकायान्तु कृष्णस्याह्वानकारणात् ॥ ३७ ॥ देवराजस्यतद्वाक्यं सरहस्यञ्चकेशवम् ॥ श्रावयामासविप्रेन्द्र एहिकृष्णकुशस्थलीम् ॥ ३८ ॥ अर्चस्वपारिजातस्य विश्वकर्मसुकारिते ॥ इन्द्रेणाथप्रदत्तेवै तेतुभ्यंपाण्डवायच ॥ ३९ ॥ श्रुत्वाशौरिस्तुतद्वाक्यं प्रतस्थेवन्तिकाम्पुरीम् ॥ अवातरच्चह्याकाशात्तमालिङ्ग्यचपाण्डवम् ॥ ४० ॥ प्रीतःप्रोवाचवचनं परिष्वज्यचफाल्गुनम् ॥ जन्ममेसफलंजातं प्रीतिर्मेह्यतुलार्जुन ॥ ४१ ॥ यतोमेप्रीतिरतुला क्रियतांकार्यमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वातौतदाव्यास समायातौकुशस्थलीम् ॥ ४२ ॥ पार्थंप्राहतदाकृष्णस्सुसम्पूर्णमनोरथः ॥ गत्वार्जुनदिशंप्राचीं मूर्त्ति

अवन्तीपुरीको आइये ॥ ३८ ॥ व विश्वकर्मासे रचीहुई पारिजातकी प्रतिमाओंको पूजिये क्योंकि इन्द्रने उन मूर्तियोंको तुम्हारे व पाण्डवजीके लिये दियाहै ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णजी उस वचनको सुनकर उज्जयिनी पुरीको चले व आकाशमे नीचे उतरे और उन पाण्डव (अर्जुन) जी को लिपटाकर ॥ ४० ॥ प्रसन्नहुये व अर्जुनजी को लिपटाकर यह वचन बोले कि हे अर्जुनजी ! मेरा जन्म सफल होगया और मेरे बहुत प्रीति हुई ॥ ४१ ॥ जिस लिये मेरे बहुत प्रीति है उसीकारण उत्तम कार्य को कीजिये ऐसा कहकर उस समय हे व्यासजी ! वे दोनों अवन्ती पुरीको भलीभांति आये ॥ ४२ ॥ उस समय सम्पूर्ण मनोरथवाले श्रीकृष्णजी अर्जुनजी से बोले

मेकान्निवेशय ॥ ४३ ॥ पूर्वाह्णेहिशुभंलग्नं भविष्यतिमनोरमम् ॥ अहमप्युत्तरांयास्ये स्थापनार्थंनदींमुने ॥ ४४ ॥ म मशङ्खस्यनादेन प्रतिष्ठापयभास्करम् ॥ पूर्वाङ्गत्वाततःपार्थः शुभंस्थानंव्यलोकयत् ॥ ४५ ॥ व्यासतांस्थापयामास दिननाथस्यसुस्थिरः ॥ कदेवंस्थापयामीति यावद्ध्यौचपाण्डवः ॥ ४६ ॥ तावत्साह्यब्रवीद्देवस्थानंकारणशोभनम् ॥ दर्शयामासपार्थाय तेजसास्वेनदुस्सहम् ॥ ४७ ॥ सव्यसाचीततोभीतो दृष्ट्वार्चान्तांप्रजल्पतीम् ॥ तेजस्त्वसहमानो वै देवंवचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ कदेवत्वांप्रमुञ्चामि किंस्थानंतवरोचते ॥ सौम्यरूपस्सुदर्शश्च प्रजाभ्योभवगोपते ॥ ४९ ॥ दिविसंस्थाश्चयेदेवा नागाःपातालसंश्रयाः ॥ भुविस्थामानवाःपूता भवन्तुतवदर्शनात् ॥ ५० ॥ सोर्जुनमब्रवी द्देवो माभैस्त्वंममदर्शनात् ॥ दक्षिणेनकरेणाथ ह्यभयेनाभयप्रदः ॥ ५१ ॥ समाश्वास्याथतंशान्तस्सौम्यमूर्तिर्बभू व ह ॥ प्रभाकरेणदेवेन निजन्तेजःप्रदर्शितम् ॥ ५२ ॥ ततस्सूर्योऽब्रवीत्स्थानमेतदेवाचलंमम ॥ प्राप्तेलग्नेचहरिणा श

कि हे अर्जुनजी ! पूर्वदिशाको जाकर एक मूर्तिको स्थापित कीजिये ॥ ४३ ॥ हे मुने ! दुपहरके इसपार उत्तम मनोहर लग्न होगी मैं भी स्थापनाके लिये उत्तरदिशा को नदीके समीप जाऊंगा ॥ ४४ ॥ और तुम मेरे शंखके शब्दसे सूर्यनारायणको स्थापितकरो तदनन्तर पूर्वदिशाको जाकर अर्जुनजीने उत्तम स्थानको देखा ॥ ४५॥ व हे व्यासजी ! सुस्थिर अर्जुनजीने दिननायककी उस मूर्तिको स्थापित किया जबतक पाण्डव अर्जुनजी ने यह ध्यान किया कि देवको कहां स्थापितकरूं ॥ ४६ ॥ तबतक उस मूर्तिने कारणसे उत्तम देवस्थानको कहा व अर्जुनजीके लिये अपने तेजसे असह्य स्थानको दिखलाया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बोलतीहुई उस मूर्तिको देख कर तेजको न सहतेहुये डरेहुये अर्जुनजी सूर्यदेवजीसे वचन बोले ॥ ४८ ॥ कि हे देव ! मैं तुमको कहां स्थापित करूं तुमको कौन स्थान रुचताहै हे गोपते ! सौम्य रूपवाले और सुन्दर दर्शनोंवाले होवो ॥ ४९ ॥ स्वर्ग में स्थित जो देवता हैं और पाताल में टिकेहुये जो नाग हैं वे और पृथ्वी में टिकेहुये मनुष्य तुम्हारे दर्शन से पवित्र होवैं ॥ ५० ॥ उन सूर्यदेवजी ने अर्जुनजी से कहा कि मेरे दर्शन से तुम मत डरो इसके अनन्तर दाहिने अभय हाथ से अभय देनेवाले ॥ ५१ ॥ सूर्यनारा- यणजी उनको भलीभांति आश्वासन कर शान्त व सौम्य मूर्तिवालेहुये सूर्यदेवजीने अपने तेजको दिखलाया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणजीने कहा कि मेरा यह

अचल स्थानहै और लग्न प्राप्तहोनेपर विष्णुजीने बड़ेभारी शङ्खको बजाया ॥ ५३ ॥ और नर (अर्जुन) जी ने देवताओं से प्रशंसा किये हुये सूर्यनारायणको स्थापित किया ॥ ५४ ॥ अर्जुनजी बोले कि प्रकाशमान सूर्यनारायणजी जयको प्राप्तहोवैं जो कि सात घोड़ोंवाले व सब लोकों में तेजवाले तथा पूर्वदिशा के अन्त में अट्टहासवाले हैं और जिनके कीर्तन से बहुत दोषों से ग्रसेहुये मनुष्योंका अंग पापरहित होता है ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादिक मुनियों से स्तुति कियेहुये सूर्यनारायणजीका पूर्ण स्तुति करने के लिये कौन पुरुष चाहता है तौ भी उत्तम ज्ञानवाला मैं विस्तारसे स्तुति करताहूं क्या चन्द्रमाके उदय होनेपर दीप जलता है ॥ ५६ ॥ शास्त्रोके अर्थ

ङ्खश्चापूरितोमहान् ॥ ५३ ॥ नरेणचसवैसूर्यस्स्थापितोमरसंस्तुतः ॥ ५४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ नयतिकिरणमाली भासुरस्सप्तसप्तिस्सकलभुवनधामा प्राग्दिगन्ताट्टहासः ॥ भवतिविगतपापं कीर्तनादेवयस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गंनराणाम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्माद्यैर्मुनिभिरभिष्टुतंपतङ्गं कस्स्तोतुंकविरभिवाञ्छतिप्रकामम् ॥ स्तोष्येहंतदपिसुविस्तरात्सुबुद्धः किं दीपोज्वलतिहिप्रोदितेशशाङ्के ॥ ५६ ॥ शास्त्रार्थकामनिपुणैर्मुनिभिःस्तुतस्य किंवस्तुयन्नरचितंविविधैःप्रयोगैः ॥ द्वैपायनप्रभृतिभिर्मुनिभिःपुराणैरापीतसारमिहभातिजगत्समस्तम् ॥ ५७ ॥ कामंतथाप्यहमतीवविचार्यबुद्ध्या भानोस्त्रिलोकगुरुपूजितपादयुग्मम् ॥ वृत्तैस्स्फुटार्थमधुराक्षरसन्धियुक्तैस्त्वांवैविचित्रगतिभिःपरिकीर्तयिष्ये ॥ ५८ ॥ तावज्जगद्भवतिनिश्चलमेवसर्वं तावत्क्रियाश्चविविधानचयान्तिसिद्धिम् ॥ यावच्चनाथकमलामलमण्डलस्त्वं नोत्तिष्ठसेव्यपनयन्किरणैस्तमांसि ॥ ५९ ॥ यावन्नभान्तिशिखराणिमहीरुहाणां गुच्छान्यफुल्लतनुमीलितलोचनानि ॥ सुप्तानिबोधयसि

में चतुर मुनियों से स्तुति कियेहुये सूर्यनारायणजी की वह कौन वस्तु है जोकि अनेक भांतिके प्रयोगों से नहीं रचित है और व्यासादिक मुनियो से पियेहुये सारांशवाला सब संसार यहां शोभित है ॥ ५७ ॥ तौ भी हे सूर्यनारायणजी ! त्रिलोक मे गुरुवों से पूजित युगल चरणोंवाले तुमको बहुतही बुद्धि से विचारकर प्रकट अर्थ व मीठे अक्षरों से संधिसंयुत व विचित्र गतियोंवाले श्लोकों से तुम्हारा कीर्तन करताहूं ॥ ५८ ॥ तबतक सब संसार अचलही होताहै और तबतक अनेक भांतिके कर्म सिद्धिको नहीं प्राप्तहोते हैं जबतक कि हे नाथ ! किरणों से अन्धकारोंको दूर करतेहुये कमलके समान निर्मल मण्डलवाले तुम नहीं उदय होतेहो ॥ ५९ ॥ जब

तक कि वृक्षोंके शिखर नहीं शोभित होतेहैं व जबतक बिनफूले हुये शरीररूप मूंदेहुये नेत्रोंवाले व भ्रमरोंसे व्याप्त व सोतेहुये गुच्छोंको अतिउत्तम प्रकाशोंसे नहीं जगाते तब तक यह संसार नहीं शोभित होता है ॥ ६० ॥ आकाशमें उदयको प्राप्त तुमको देवताओं व सिद्धों के समूह व ब्रह्मा समेत दैत्य, मुनि,किन्नर,नाग और यक्ष तथा देवता प्रणाम कियेहुये मस्तकों से व शोभित किरीट की मणियो को अति उत्तम प्रकाशों से पूजते हैं ॥ ६१ ॥ तुम्हारे अस्त होजानेपर संसार सुप्त होजाताहै और फिर तुम्हारे तपने पर बोधको प्राप्तहोताहै इसप्रकार हे भगवन्, वरदायक ! सदैव लोकोंके हितके लिये एक तुम्हीं अन्धकार के नाशकहो ॥ ६२ ॥ उत्साह, शक्ति,

षट्चरणाकुलानि यावन्नभाभिरमलाभिरनुत्तमाभिः॥६०॥उद्यन्तमम्बरतलेसुरसिद्धसङ्घास्सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनाग यक्षाः॥त्वामर्चयन्तिविबुधाःप्रणतैःशिरोभिश्चञ्चत्किरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः॥ ६१ ॥ अस्तंगतेत्वयिजगद्भवतिप्रसुप्तं भूयस्त्वयिप्रतपतिप्रातिबोधमेति ॥ एवंसदावरदलोकहितार्थहेतोरेकस्त्वमेवभगवंस्तिमिरस्यहन्ता ॥ ६२ ॥ उत्साहशक्तिनयशौर्यसमन्वितानां सेवाप्रयोगरचनाविधितत्पराणाम् ॥ कार्याणियन्नफलदानिभवन्तिपुंसां हेतुस्त्वभक्तिरिहनाथतवेतिनूनम् ॥ ६३ ॥ यत्संयुगेषुरथकुञ्जरकुन्तशक्तिनाराचचक्रशरतोमरभीमखड्गैः ॥ क्षिप्रंनरास्समुपयान्तिविजित्यशत्रून्सर्वंसदाप्रणतवत्सलचेष्टितन्ते ॥ ६४ ॥ कान्तारदुर्गविषमेष्वपिवर्तमाना ऋक्षेभसिंहबहुकण्टकतस्करेषु ॥ कष्टान्विताश्चबहुशोकविमूढचित्तास्त्वत्कीर्तनाद्विगतमृत्युभयाभवन्ति ॥ ६५ ॥ तेजोराशेत्वमिहशरणं स

नीति व शूरता से संयुत तथा सेवाप्रयोगकी रचनाकी विधि में तत्पर मनुष्यों के जो कार्य फलदायक नहीं होते हैं इस विषय मे हे नाथ ! निश्चय कर तुम्हारी अभक्ति कारण है ॥ ६३ ॥ और युद्धों में जो रथ, हाथी, भाला, शक्ति, नाराच,चक्र, बाण, तोमर व भयंकर तलवारों से मनुष्य शीघ्रही शत्रुवोंको जीतकर सब वस्तु को प्राप्तहोते हैं हे प्रणतप्रिय ! वह तुम्हारी चेष्टा है ॥ ६४ ॥ ऋक्ष, हाथी, सिंह व बहुत कांटों तथा चोरों से संयुत दुर्गम पन्थ व किला और विषम स्थानों मे वर्तमान तथा कष्ट से संयुत व बहुत शोचसे मूढचित्तवाले पुरुष तुम्हारे कीर्तनसे मृत्युके भयसे रहित होजाते है ॥ ६५ ॥ हे तेजराशि ! इस संसारमे सब ओरसे दुःखितजनोंके

तुम रक्षकहो और सब संसार में तुम्हारे समान अन्य कोई दयालु नहीं है और खोजी जातीहुई सब भक्ति तुम्हीं एक में होतीहै और तुमको प्राप्तहोकर मनुष्यों को रोगोंका दुःख कहां से होताहै याने कहीं से भी नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ कौन कुष्ठ से पीड़ित मनुष्य व शत्रुओं से भी तथा रोगादिकों से पीड़ित कौन नर और लँगडे, अन्ध व जड़ तथा नष्ट चरणोंवाले कौन व कौन निर्धन तथा कौन क्रियारहित पुरुष इसीप्रकार देखकर हे देव ! दयाके कारण दोषसे रक्षा करतेहो जैसी तुम्हारी पराये उपकार में परायण यह चेष्टाहै वैसी अन्य कौनकी है ॥ ६७ ॥ सेवा कियाहुआ यह धर्म प्रसिद्धि में परलोकमें टिकताहै व देवता अन्य समय से वरदायक होते हैं

र्वतोदुःखितानां त्वत्तुल्योन्योजगतिसकलेनास्तिकश्चिद्दयालुः ॥ त्वय्येकस्मिन्भवतिसकला भक्तिरन्विष्यमाणा त्वामासाद्यप्रभवतिकुतोव्याधिदुःखन्नराणाम् ॥ ६६ ॥ कःकुष्ठाभिहतोनरोरिभिरपिव्याध्यादिभिःपीडितःकेपङ्गवन्धजडाश्चशीर्णचरणाःकोवाधनःकोक्रियः ॥ इत्येवंप्रसमीक्ष्यदेवकृपयादोषात्परित्रायसे कस्यान्यस्यपरोपकारनिरता चेष्टायथैषातव ॥ ६७ ॥ धर्मःपरत्रकिलतिष्ठतिसेवितोसौ कालान्तरेणविबुधावरदाभवन्ति ॥ त्वंसेवितःप्रणतवत्सलभूतिकामैस्सद्यःप्रयच्छसिफलंयदभीप्सितन्तैः ॥ ६८ ॥ विभ्रान्तकान्तहरिणीसदृशेक्षणाभिरङ्गेषुहारमणिकुण्डलमेखलाभिः ॥ तेषांभवन्तिभवनानिविलासिनीभिर्येषांनृणांत्वमसिवैवरदःप्रसन्नः ॥ ६९ ॥ यैस्त्वन्नरैस्सकृदपिप्रणतःकथंचिद्ध्यातोऽथवाभुवननाथतथान्तकाले ॥ निष्कल्मषाजगतिदुष्कृतिनोभवन्ति तेनिर्मलास्सुकृतिनोगतिमाप्नुवन्ति ॥ ७० ॥ येत्वांकुतर्कमतिभिर्ननमन्तिभक्त्या रोमाञ्चकञ्चुकशताकुलितैश्शरीरैः ॥ तेनिर्धनाःपरगृहेष्ववधूतम

व हे प्रणतप्रिय ! ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुषों से सेवित तुम शीघ्रही उस फलको देतेहो जोकि उनसे चाहाजाता है ॥ ६८ ॥ जिन मनुष्यों के ऊपर वरदायक तुम प्रसन्न होतेहो उनके मन्दिर भ्रमित व सुन्दरी मृगी के समान नेत्रोंवाली तथा अंगों में हार, मणि, कुण्डल व क्षुद्रघण्टिकाओंवाली स्त्रियों से संयुत होते हैं ॥६९॥ हे भुवननाथ ! जिन मनुष्यों ने किसीप्रकार एकबार भी तुम्हारा प्रणाम किया है व अन्तकालमें ध्यान किया है वे पापी पातकोंसे रहित होतेहैं व निर्मल होकर पुण्यवान् की गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ७० ॥ जो मनुष्य भक्तिसे कुतर्कवाली बुद्धियों के द्वारा रोमांचरूपी सैकड़ों कवचों से आकुल शरीरों से तुमको नहीं प्रणाम करते हैं

क्षुधा से दुबले कण्ठवाले वे निर्धनी पुरुष पराये घरों में अपमान कियेहुये अन्न की याचना करते हैं ॥ ७१ ॥ व समुद्र के जलकी लहरियों के क्षोभकी नाईं चञ्चल युगल नेत्रोंवाले और सैकड़ों उत्तम मणियों की किरणों से शोभित व जिह्वाओंको लपलपातेहुये प्रणाम किये शिरोंवाले मुख्य नागों से तुम अनुपम व बड़ीभारी स्तुतियों से सदैव स्तुति कियेजातेहो ॥ ७२ ॥ हे सुरोत्तम, सूर्यनारायणजी! जब तुम उदयको प्राप्तहोतेहो तब सुरनदी गंगाजी के कमलोंसे उत्पन्न व पवनों के द्वारा सोने के समान कमलों की धूरिसे रंगेहुये भ्रमरोंके समूह उड़ते हैं ॥ ७३ ॥ हे भगवन्! तत्त्व का ध्यान करने के लिये समुद्र के मध्य में स्थितहोकर जीविका

नं क्षुत्क्षामकण्ठवदनाःपरितङ्कयन्ति ॥ ७१ ॥ उदधिजलतरङ्गक्षोभलोलाक्षियुग्मैस्सुमणिशतमयूखोद्भासितैर्लोलिह
…िः ॥ प्रणिपतितशिरोभिर्नागमुख्यैरजस्रं श्रुतिभिरनुपमाभिस्स्तूयसेपुष्कलाभिः॥७२॥ तवसुरवरगच्छतोप्युदेतुंत्रिद
…कमलोद्भवानिवातैः॥ कनककमलरेणुरञ्जितानिभ्रमरकुलानिपतङ्गउत्पतन्ति ॥७३॥ तत्त्वध्यानंकर्तुंजलनिधि
…किरणकनिवहैः ॥ आजीवार्थेप्रतपासिभगवन्कस्तेतुल्यस्त्रिभुवनमध्ये ॥ ७४ ॥ उदयाद्रिनितम्बसंस्थित
…मयेषुचाप्यतस्य ॥ किरणास्तपनीयसम्प्रभास्ते विलसन्तस्तडितोविडम्बयन्ति ॥ ७५ ॥ यथायथात्र
…विपाटयन्घनतिमिरौघसञ्चयान्॥ तथातथाक्षुभितमहानिलेरितः प्रतीयतेमुहुरिवदुन्दुभिर्यथा॥७६॥
…चक्रवाककलहंससमेखलाम् ॥ कामिनीमिवरतिश्रमालसान्तां विबोधयसिपद्मिनीङ्करैः ॥
… भृङ्गतुङ्गचरणाकुलीकृतम् ॥ त्वत्प्रभाभिरनुरागरञ्जितं पद्मरागमिवशोभतेभृश

… मध्य में कौनहै ॥ ७४॥ उदयोंमें उदयाचल के पृष्ठभाग में स्थित व अस्तमयों में विरेहुये तुम्हारी सोने के
… करती है ॥ ७५ ॥ घने अन्धकार के समूहकी राशियों को विदारण करताहुआ तुम्हारा रथ ज्यों ज्यों
… नाईं प्रतीत होताहै ॥ ७६ ॥ सुन्दर कमलोंकी नाईं मूँदेहुये नेत्रोंवाली व चक्रवाक तथा
… कमलिनी को किरणोंसे जगाते हो ॥ ७७ ॥ भ्रमर के उन्नत चरणों से आकुल किया

होवो
णजीके लिये न
इस स्तोत्र से प्रसन्नहूं व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस
योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तम।

हुआ तथा नील व चञ्चल और अतिसुन्दर और तुम्हारी प्रभाओं से अनुराग समेत रंगाहुआ कमल पद्मरागकी नाईं बहुत शोभित होताहै ॥ ७८ ॥ शोभायमान चन्द्रमा के समान हारकी नाईं निर्मल व तुम्हारी किरणों से पूर्ण आकाश बहुतही शोभित होताहै जोकि बडाभारी व श्वेत तथा अरुणवर्ण है ॥ ७९ ॥ इस संसारमे तबतक तुम उदय होकर मनुष्यों के सन्ताप को हरतेहो जबतक कि तुम्हारी किरणों से यह संसार पूर्ण होताहै हे वरदायक ! सदैव वेदके मार्ग में तत्पर उदार बुद्धिवाले ऋषि मुनियों से तुम्हारे गुणोंकी स्तुति नहीं आश्रय कीजासक्ती है ॥ ८०॥ तुम विष्णुहो तुम चन्द्रमाहो और दैत्यों के मथनेवाले स्वामिकार्त्तिकेयहो और तुम

म् ॥ ७८ ॥ स्फुरच्छशाङ्कहारनिर्मलंत्वदंशुपूरितम् ॥ विभात्यतीवकान्तमम्बरंबृहच्चपाटलम् ॥७९ ॥ हरसित्वमेवताप मिहतावदुदेत्यनृणां भवतिचयावदेवकिरणैस्तवपूर्णमिदम् ॥ ऋषिमुनिभिरुदारधीभिरनिशंश्रुतिमार्गपरैर्वरदनशक्य तेतवगुणस्तुतिराश्रयितुम् ॥ ८० ॥ त्वंविष्णुस्त्वंशशाङ्कस्त्वमसुरमथनःषण्मुखस्त्वंधनेशस्त्वंकालस्त्वञ्चधाताक्षि तिधरमृदपामाश्रयस्त्वंहुताशः ॥ ॐकारस्त्वंद्विजानां त्वमिहजलनिधिस्त्वं यमस्त्वंचरुद्रस्त्वं शक्रस्त्वंपयोदो व्रतयम नियमास्त्वंजगत्सर्वमेव ॥ ८१ ॥ त्वमनिन्द्यगोपतेत्रिपुरमथनमन्मथदाहकस्त्वमसुरभीमदर्पहा ॥ त्रिदशाधिपकम लवराननस्त्वमिहदेवगुरुर्भगवंस्त्रिभुवनमण्डलेस्तिकतमस्तवतुल्यगुणः ॥ ८२ ॥ आदित्यभास्करदिवाकरसप्तसप्ते मार्तण्डसूर्यहरिदश्वपतङ्गभानो ॥ अश्रान्तवाहनस्वरूपगभस्तिमालिंस्त्वांलोकनाथशरणंप्रणिपद्यतेसो ॥ ८३ ॥

कुबेरहो व तुम कालहो और तुम विधाता, पर्वत, मिट्टी व जलोंके आश्रयहो और तुम अग्निहो व तुम ब्राह्मणोंके मध्यमें ॐकारहो और इस संसार मे तुम समुद्रहो, तुम यमहो, तुम रुद्रहो और तुम इन्द्रहो व मेघहो और तुम व्रत, यम व नियमहो और तुम सब संसारहो ॥ ८१ ॥ और हे त्रिपुरमथन, गोपते, अनिन्दनीय ! तुम कामदेवके सन्तापकारकहो और तुम भयंकर दैत्यों के गर्वविनाशकहो हे सुराधीश, भगवन् ! कमल के समान उत्तम मुखवाले तुम यहां देवताओंके गुरुहो त्रिलोक के मध्यमें तुम्हारे समान गुणवाला कौन पुरुष है ॥ ८२ ॥ हे आदित्य, भास्कर, दिवाकर, सप्ताश्व, मार्तण्ड, सूर्य, हरिदश्व, पतंग, भानो, अश्रान्तवाहनस्वरूप,

किरणमालिन्, लोकनाथ ! यह संसार तुम्हारी शरणमें प्राप्तहै ॥ ८३ ॥ हे पूर्वदिशा रूपी स्त्री के तिलकरूप ! व हे प्रकाशमान कर्णपूर! हे मन्दाकिनीप्रिय,नाथ, संसार-दीपक, कनकाचलतापन, आकाश के हारके रत्न ! हे सन्ध्यारूपी स्त्रीके वदनराग! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ८४ ॥ हे ब्रह्मण्य, सत्य, शुभ, मंगल, जगदीश, आकाश व कमलेश ! हे मुनियों से स्तुति कियेहुये, विश्वमूर्ते ! हे दुःखित जनके शोकहारक, सेवकपालक! हे भगवन् ! शरण में आयेहुये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ८५ ॥ हे देव, प्रभो ! जिसलिये कमलकलीरूपी हाथों से मस्तक पै अंजली करके तुम भलीभांति भक्ति से यहां आज स्तुति कियेगये उसी कारण मेरे ऊपर

प्राग्दिग्वधूतिलकभासुरकर्णपूरमन्दाकिनीदयितनाथजगत्प्रदीप ॥ हेमाद्रितापननभस्तलहाररत्नसन्ध्याङ्गनावदनरागनमोनमस्ते ॥ ८४ ॥ ब्रह्मण्यसत्यशुभमङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेशमुनिसंस्तुतविश्वमूर्ते ॥ आर्तस्यशोकहरकिङ्करपालकश्च त्वम्मेप्रसीदभगवञ्छरणागतस्य ॥ ८५॥ कृत्वाञ्जलिंशिरसिपङ्कजकुड्मलाभ्यां यत्संस्तुतस्त्वमिहदेवमयाद्यभक्त्या ॥ तेनप्रभोभवममोपरिसौम्यमूर्त्तिर्धर्मेमतिंकुरुसदाश्रियमूर्जिताञ्च ॥ ८६ ॥ नमस्सवित्रेजगदेकचक्षुषेजगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ॥ त्रयीमयायत्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ ८७ ॥ सूर्यउवाच ॥ तुष्टोहमधुनापार्थ स्तोत्रेणानेनसुव्रत ॥ वरंदास्यामियत्नेनयत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ८८ ॥ मद्दर्शनंहिविफलं नकदाचित्प्रजायते ॥ शूराणाञ्चविशेषेण ह्यदेयंनास्तियत्नतः ॥ ८९ ॥ अर्जुनउवाच ॥ एषोथवरोमह्यं वराणामुत्तमोत्तमः ॥ अत्र सन्निहितोदेव सर्वकालंभवप्रभो ॥ ९० ॥ येचत्वांमानवाभक्त्या स्तोष्यन्तेप्रणतास्सदा ॥ तेषान्धनञ्चधान्यञ्च पुत्रदा

सौम्यमूर्ति होवो व धर्म में बुद्धि करो और सदैव बढ़ीहुई लक्ष्मी कीजिये ॥ ८६ ॥ संसार के एक नेत्ररूपी व संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश के कारणरूप सूर्यनारायणजीके लिये नमस्कारहै व वेदत्रयीमय, त्रिगुणात्मधारी, ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मकके लिये प्रणामहै ॥ ८७ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे सुव्रत,पार्थ ! इस समय मैं इस स्तोत्र से प्रसन्नहूं व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस वरदान को यत्न से दूंगा ॥ ८८ ॥ कभी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता है और शूरोंको विशेषकर यत्न से न देने योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तमोत्तम यही मेरा वरदानहै कि हे देव, प्रभो ! सब समयमें तुम यहां स्थित होवो ॥ ९० ॥ और

जो मनुष्य सदैव भक्तिसे प्रणामकर सदा तुम्हारी स्तुति करैं उनको धन, धान्य व पुत्र, स्त्री आदिक धन ॥ ९१ ॥ और मनका सम्पूर्ण अभिलाष देना चाहिये यह मेरा वरदान है इसके उपरान्त सूर्यनारायणजी नर (अर्जुन) जी से उत्तम वचन बोले ॥ ९२ ॥ कि हे अर्जुन ! बड़ी भक्तिसे मुझको पूजकर जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करैंगे उनको लक्ष्मीजी से वियोग न होगा यह मेरा वरदान है ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांनरादित्यमाहात्म्यंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

रादिकंवसु ॥ ९१ ॥ मनसश्चेप्सितंसर्वं दातव्यंहिवरोमम ॥ अथादित्योनरन्देव उवाचवचनंशुभम् ॥ ९२ ॥ येमांस्तुवन्त्यनेनाङ्ग पूजयित्वातिभक्तितः ॥ श्रियानविच्युतिस्तेषांभवेदेषवरोमम ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नरादित्यमाहात्म्यन्नामत्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ नारायणोपिसंस्थाप्य शङ्खंप्रधमाययत्नतः ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वा स्तोत्रेणानेनभास्करम् ॥ १ ॥ आदित्यंभास्करंभानुं रविंसूर्यंदिवाकरम् ॥ प्रभाकरन्दिनानाथं तपनंतपतांवरम् ॥ २ ॥ वरेण्यंवरदंविष्णुमनघंवासवानुजम् ॥ बलंवीर्य्यंसहस्रांशुं सहस्रकिरणद्युतिम् ॥ ३ ॥ मयूखमालिनंविश्वं मार्तण्डंचण्डरोचिषम् ॥ सदागतिंसुभास्वन्तं सप्तसप्तिंसुखोदयम् ॥ ४ ॥ देवदेवमहिर्बुध्न्यं धाम्नान्निधिमनुत्तमम् ॥ तपोब्रह्ममयालोकं लोकपालमपाम्पतिम् ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधकन्देवं जगद्दीपंजगत्प्रभुम् ॥ अर्कन्निःश्रेयसपरं कारणंश्रेयसाम्परम् ॥ ६ ॥ इनंप्रभाविनं

दो• । यथा केशवादित्य कर अहै सुभग माहात्म्य । चवालिसैं अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि विष्णुजी ने भी यत्न से शङ्खको बजाकर व भलीभांति स्थापनकर पवित्र होकर इस स्तोत्र से सूर्यनारायणकी स्तुति किया ॥ १ ॥ कि आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, सूर्य, दिवाकर, प्रभाकर, दिनानाथ, तपन, तपतांवर ॥ २ ॥ व वरेण्य, वरद, विष्णु, अनघ, वासवानुज, बल, वीर्य, सहस्रांशु, सहस्रकिरणद्युति ॥ ३ ॥ मयूखमाली, विश्व, मार्तण्ड, चण्डरोचि, सदागति, सुभास्वान्, सप्तसप्ति, सुखोदय ॥ ४ ॥ देवदेव, अहिर्बुध्न्य, धामनिधि, अनुत्तम, तप, ब्रह्ममयालोक, लोकपाल व अपांपति ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधक, देव, जगद्दीप, जगत्प्रभु,

अर्क, निःश्रेयसपर, कारण, श्रेयसांपर ॥ ६ ॥ इन, प्रभावी, पुण्य, पतंग, पतगेश्वर व चाहेहुये अर्थोंके दायक और देखे व नदेखेहुये फलों के दायक ॥ ७ ॥ ग्रह, ग्रहकर, हंस, हरिदश्व, हुताशन, मंगल्य, मंगल, मेध्य, ध्रुव, धर्मप्रबोधन ॥ ८ ॥ भवसंभावित, भाव, भूतभव्य, भवात्मक, दुर्गम, दुर्गतिहारक, हरनेत्र, त्रयीमय ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यतिलक, तीर्थ, तरणि, सर्वतोमुख, तेजराशि, सुनिर्वाण, विश्वेश, शाश्वत धाम ॥ १० ॥ कल्प, कल्पानल, काल, कालचक्र, क्रतुप्रिय, भूषण, मरुत, सूर्य, मणिरत्न, सुलोचन ॥ ११ ॥ त्वष्टा, विष्टर, विश्व, सदसत्कर्मसाक्षी, सविता, सहस्रलोचन, प्रजापाल, अधोक्षज ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, वासरारम्भ, रक्तवर्ण, महाद्युति व मध्य

पुण्यं पतङ्गपतगेश्वरम् ॥ दातारंवाञ्छितार्थानां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥ ७ ॥ ग्रहंग्रहकरंहंसं हरिदश्वंहुताशनम् ॥ मङ्गल्यंमङ्गलंमेध्यं ध्रुवंधर्मप्रबोधनम् ॥ ८ ॥ भवसम्भावितंभावं भूतभव्यंभवात्मकम् ॥ दुर्गमंदुर्गतिहरं हरनेत्रंत्रयीमयम् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यतिलकंतीर्थं तरणिंसर्वतोमुखम् ॥ तेजोराशिंसुनिर्वाणं विश्वेशन्धामशाश्वतम् ॥ १० ॥ कल्पंकल्पानलंकालं कालचक्रंक्रतुप्रियम् ॥ भूषणंमरुतंसूर्य्यं मणिरत्नंसुलोचनम् ॥ ११ ॥ त्वष्टारंविष्टरंविश्वं सदसत्कर्मसाक्षिणम् ॥ सवितारंसहस्राक्षं प्रजापालमधोक्षजम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माणंवासरारम्भं रक्तवर्णमहाद्युतिम् ॥ सूक्ष्मंमध्यदिनेमध्ये श्यामंविष्णुंदिनक्षये ॥ १३ ॥ नाम्नामष्टशतंदिव्यं विष्णुनासमुदाहृतम् ॥ यइदंप्रयतोभूत्वा पठेद्भक्त्यासमाहितः ॥ १४ ॥ नतस्यविपदःक्वापि सर्वत्रापिशुभागतिः ॥ धनधान्यसुखावाप्तिः पुत्रलाभश्चजायते ॥ १५ ॥ तेजःप्रज्ञापरंज्ञानं वृद्धिश्चपरमागतिः ॥ एवंश्रुत्वाजगन्नाथो जगामादर्शनन्ततः ॥ १६ ॥ केशवार्कमुखंदृष्ट्वा पद्मरागसमप्रभम् ॥

सूक्ष्म, मध्य व दिनान्त में श्याम, विष्णु ॥ १३ ॥ इन एकसौआठ दिव्यनामोंको श्रीविष्णुजी ने कहा है पवित्रहोकर सावधान होताहुआ जो मनुष्य भक्तिसे इस स्तोत्रको पढ़ताहै ॥ १४ ॥ उसको कहीं पर भी विपत्तियां नहीं होतीहैं और सब कहीं उत्तम गति होतीहै व धन, अन्न और सुखोंकी प्राप्ति व पुत्रलाभ होताहै ॥ १५ ॥ तेज, प्रज्ञा, ज्ञान और वृद्धि व उत्तम गति होतीहै ऐसा सुनकर तदनन्तर जगदीशजी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ ॥ पद्मरागके समान प्रभावान् केशवार्कजी के

मुखको देखकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष सूर्यलोकमें पूजाजाताहै ॥ १७ ॥ और दशाश्वमेधतीर्थ के मध्य में रेणुतीर्थ कहाजाता है उसको देखकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ केशवार्कजी के समीप रेणुतीर्थ कहागया है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकेशवादित्यमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

दो० । शक्तिभेद अस तीर्थ जिमि भयो भूमि विख्यात । पैंतालिस अध्याय में सोइ चरित है ख्यात ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शक्तिभेद ऐसे कहेहुये अन्य तीर्थ

॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सूर्यलोकेमहीयते ॥ १७ ॥ दशाश्वमेधमध्येतु रेणुतीर्थंप्रचक्ष्यते ॥ तद्दृष्ट्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ १८ ॥ केशवार्कसमीपेतु रेणुतीर्थंप्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवन्तीखण्डेकेशवादित्यमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थमन्यत्तथावक्ष्ये शक्तिभेदमितिस्मृतम् ॥ स्कन्दस्यचजटाभद्रं चक्रेथात्रपुराशिवः ॥ १ ॥ तारकञ्चतथादैत्यं हत्वातत्रसुरद्विषम् ॥ शक्तिंस्कन्दस्स्वयंक्रुद्धो निचिक्षेपमहीतले ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ भगवन्ब्रूहि यत्नेन संशयोमेमहामुने ॥ कथंस्कन्दस्समुत्पन्न एतदिच्छामिवेदितुम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे निर्जितादानवैस्सुराः ॥ दिवंत्यक्त्वादिशोजाताः शक्राद्याभयविह्वलाः ॥ ४ ॥ ततस्तुदेवराजेन तपसोग्रेणकालिज ॥ आराधितोमहादेवस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ ५ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवः शक्रस्याभिमुखःस्थितः ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं व

को मैं कहूंगा यहांपर सदाशिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी का जटाभद्र (क्षौर) कियाहै ॥ १ ॥ और वहां पर देवताओं के वैरी तारकासुर को मारकर क्रोधित होते हुये आपही स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको भूतल में फेंकदिया ॥ २ ॥ व्यास जी बोले कि हे भगवन्, महामुने ! यत्नसे कहिये मेरे सन्देह है और मैं यह जाननेकी इच्छा करताहूं कि स्वामिकार्त्तिकेयजी कैसे उत्पन्नहुये हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय देवासुरसंग्राम में दानवों ने देवताओं को जीता भय से विकल इन्द्रादिक देवता स्वर्गको छोड़कर दिशाओंको चलेगये ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे कालिज ! सुरराज इन्द्रजी ने उग्र तपस्या से त्रिपुरविनाशक त्रिलोचन महादेवजी की

आराधना किया है॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी इन्द्रके सामने स्थितहोकर कोमल वचन बोले कि मैं तुमको प्यारे वरदान को दूंगा ॥६॥ इन्द्रजी बोले कि हे भगवन्, शङ्करजी ! दयासे यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो हे परमेश्वर, देव ! महासेनापतिको दीजिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेन्द्र ! सब अर्थ से बढ़ेहुये पुत्रको उत्पन्न करो जोकि महासेन नामक देवताओं के भयहारक हैं ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ऐसा कहकर समस्त प्राणियों के स्वामी शिवदेवजी अन्तर्द्धान होगये और पुत्रकी चिन्ता में परायण सदाशिवदेवजी हिमाचलको चलेगये ॥ ९ ॥ व देवदारु के वन में टिकतेभये और ज्ञान व ध्यान में तत्परहुये हे मुने !

रमिष्टंददामिते ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवन्कारुण्यान्ममशङ्कर ॥ महासेनापतिन्देव प्रयच्छपरमेश्वर ॥ ७ ॥ हरउवाच ॥ उत्पादयामिदेवेन्द्रं सर्वार्थाद्र्जितंसुतम् ॥ नामतोयोमहासेनस्सुराणांभयहारकः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्सर्वभूतपतिर्हरः ॥ सुतचिन्तापरोदेवो जगामचहिमालयम् ॥ ९ ॥ देवदारुवनेतस्थौ ज्ञानध्यानपरोभवत् ॥ ब्रह्मादयोपियन्देवं योगिनोध्यानचिन्तकाः ॥ १० ॥ ध्यायन्तिनियतात्मानः प्राणायामपरा मुने ॥ लिङ्गमूर्तिश्चयोनित्यं पूज्यतेसर्वजन्तुभिः ॥ ११ ॥ सध्यायतिकिमर्थन्तं नविद्मःपरमार्थतः ॥ एवंध्यानपरेदेवे देवीहिमवतोगृहे ॥ १२ ॥ मध्येवयसिवर्तन्ती यासीद्दाक्षायणीसती ॥ पितुर्गृहेनिजोदेहो ययायोगाद्विसर्जितः ॥ १३ ॥ निमन्त्रितोनमेभर्ता इतिकोपंचकारया ॥ तान्देवींहिमवाञ्छ्रुत्वा पूर्वन्देवर्षिनारदात ॥ १४ ॥ भवभार्याभवित्रीति

प्राणायाम में परायण पवित्र चित्तवाले व ध्यान के चिन्तन करनेवाले ब्रह्मादिक योगी भी जिनको ध्यान करते हैं और लिंगमूर्तिवाले जो नित्य समस्त प्राणियों से पूजेजाते हैं ॥ १० । ११ ॥ वे किसलिये उनको ध्यान करते हैं हम परमार्थ से उसको नहीं जानते हैं इसप्रकार जब सदाशिवदेवजी ने ध्यान किया तब देवी पार्वती जी हिमाचलके घरमें ॥ १२ ॥ मध्य (युवा) अवस्था में वर्तमान थीं जोकि दक्षजी की कन्या सती जी हुई हैं और जिन्होंने पिताके घरमें योग से अपने शरीर को त्याग दियाथा ॥ १३ ॥ मेरे पतिका निमन्त्रण नहीं कियागया इसकारण जिन्होंने क्रोध कियाथा उन पार्वती देवीजीको पहले देवर्षि नारदजीसे यह सुनकर कि शिव

जी की स्त्री होवैंगी उन्होंने अन्य वरदानको नहीं चिन्तन किया जोकि शिवजी के लिये तप करती थीं वे सखियों से संयुक्त थीं ॥ १४।१५॥ किसप्रकार शङ्कर देवजी मेरे पति होवैंगे जबतक इसप्रकार हिमवान्‌की कन्या पार्वतीदेवी शिवदेवजीके समीप गईं ॥ १६॥ तबतक बलसूदन (इन्द्र) जी को आगेकर देवता भली भांति प्राप्तहुये और अविनाशी ब्रह्माजी को देखने के लिये पवित्र ब्रह्मसभाको गये ॥ १७॥ और उन देवताओंने स्तुतिकर इस वचनको कहा कि दानवोंसे जीते हुये देवताओंके रक्षक होवो ॥ १८ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि मैंने समस्त कार्यको जाना परन्तु इन शंभुजीके वीर्यके विना कार्यकी सिद्धि न होगी ॥१९॥

नान्यंवरमचिन्तयत ॥ यातपस्यतिरुद्राय सासखिभ्यांसमन्विता ॥ १५ ॥ कथंहिशङ्करोदेवो ममभर्ताभविष्यति ॥ यावदेवंगतादेवं देवीहिमवतस्सुता ॥ १६ ॥ ततस्समागतादेवाः कृत्वाग्रेबलसूदनम् ॥ जग्मुर्ब्रह्मसदःपुण्यं द्रष्टुंब्रह्माणमव्ययम् ॥ १७ ॥ तेसुराश्चस्तुतिंकृत्वा वाक्यमेतत्समब्रुवन् ॥ शरणंभवदेवानां दानवैर्विजितात्मनाम् ॥ १८ ॥ ततोवोचत्सुरान्ब्रह्मा ज्ञातंकार्यंमयाखिलम् ॥ नैतच्छम्भोर्विनावीर्यात्कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ १९ ॥ तथापतध्वन्देवेशो यथावाञ्छतिपार्वतीम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेब्रह्मा स्वप्नेलब्धंधनंयथा ॥ २० ॥ ततोमेरुंसमागत्य पुनर्मन्त्रंप्रचक्रिरे ॥ तेषामाहेदृशंशक्रस्तुष्टोशम्भुःपुरामम ॥ २१ ॥ प्रतिज्ञातश्चदेवेन स्वाङ्गात्सेनापतिम्प्रति ॥ तस्मादेवङ्कृतेकार्ये कारणंमकरध्वजम् ॥ २२ ॥ इतिसञ्चिन्त्यदेवेशो काममाहूयसत्वरम् ॥ उवाचवचनंहृद्यं देवानामनुकम्पया ॥ २३ ॥ यथादेवो

तुमलोग उस प्रकार यत्न करो कि जिस भांति देवेश सदाशिवजी पार्वतीजी की इच्छा करैं ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये जैसे कि स्वप्न में पाया हुआ धन अन्तर्द्धान होजाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर सुमेरु गिरिपै भलीभांति आकर उन देवताओं ने सम्मति किया और इन्द्रजी ने उन देवताओं से ऐसा वचन कहा कि पुरातन समय मेरे ऊपर शिवजी प्रसन्न हुये ॥ २१ ॥ और शिवदेवजी ने अपने अंग से सेनापति के विषयमें प्रतिज्ञा कियाहै इसलिये इसप्रकार कार्य के प्राप्तहोने पर मकरध्वज (कामदेव) कारण है ॥ २२ ॥ ऐसा भलीभांति चिन्तनकर देवताओं के ऊपर दया की कामनासे सुरेश (इन्द्र) जीने शीघ्रही कामदेवको बुलाकर

मनोहर वचन कहा ॥ २३ ॥ कि हे कामदेव ! जिसप्रकार सदाशिवदेवजी देवी पार्वती जीको भजैं वैसाहीं कीजिये क्योंकि देवताओं का यह बडाभारी कारण प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इन्द्रका वचन सुनकर कामदेव ने हँसकर कहा कि मैं सब ऐसा करूंगा यदि वसंत मेरा मित्र होवे ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस क्षणमें कामदेवजी के वचन के उपरान्त इन्द्र ने वसंत को आज्ञादिया कि शीघ्रही कामदेवके सेवक होवो ॥ २६ ॥ कामदेव वसन्तको मित्र पाकर स्त्री समेत चला और पुष्पोंके धनुष को चढ़ाकर व बाणको हाथ में लेकर सावधान हुआ ॥ २७ ॥ जिस देवदारुवन में देवाधिदेवेश शिवजी स्थित थे वहांपर ध्यान किये नन्दीश्वर द्वारपालजी टिके

भजेद्देवीं तथाकामंविधीयताम् ॥ कारणंमहदेतद्वै देवानांसमुपस्थितम् ॥ २४ ॥ कामोवाक्यंहरेःश्रुत्वा प्रहस्यैवमुवाच ह ॥ करिष्येसर्वमेवंहि सखाचेन्मेभवेन्मधुः ॥ २५ ॥ तस्मिन्क्षणेथशक्रेण कामवाक्यादनन्तरम् ॥ समादिष्टोमधुःक्षिप्रं कामस्यानुचरोभव ॥ २६ ॥ लब्ध्वाकामोमधुंमित्रं प्रतस्थेभार्ययासह ॥ कृत्वासज्जंधनुर्बाणं पौष्पंपाणौसमाहितः ॥ २७ ॥ यत्रदेवाधिदेवेशो देवदारुवनेस्थितः ॥ नन्दीश्वरःप्रतीहारः कृतध्यानोवतिष्ठते ॥ २८ ॥ चूतवृक्षाश्रितः कामो यावद्बाणंसमोहनम् ॥ सन्दधत्यन्तरेचास्मिन् देवीप्रापभवाश्रमम् ॥ २९ ॥ त्यक्तध्यानव्रतोदेवो हृष्टश्चाह्लादचेतनः ॥ ततोविलोकयामास दिशस्सर्वाःप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ चूतवृक्षाश्रितंकाममपश्यत्सरुषान्वितः ॥ भस्मीकृतस्तृतीयाक्ष्णा वह्निज्वालाकुलेनसः ॥ ३१ ॥ देवोप्यन्तर्दधेतस्मात् स्थानादाशुगणैस्सह ॥ पार्वतीविस्मितासाध्वी लज्जितादुःखिताभवत् ॥ ३२ ॥ हिमवांस्तांसमुत्थाप्य निनायाशुनिजंगृहम् ॥ गतेदेवेचदेव्याञ्च कामपत्नीसुदुःखिता ॥ ३३ ॥

थे ॥ २८ ॥ आमके वृक्षके आश्रित कामदेव जबतक मोहनबाणको संधानकरै उसी समय में देवी पार्वतीजी शिवजी के आश्रम मे प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर ध्यान व व्रतोंको छोडेहुये आनन्द बुद्धिवाले प्रसन्न शिवजी ने बडे यत्न से सब दिशाओंको देखा ॥ ३० ॥ और क्रोधसंयुत उन्होंने आम्रवृक्षके आश्रित कामदेवजीको देखा और अग्निकी ज्वालामे आकुल तीसरे नेत्रसे उसको भस्म करदिया ॥ ३१ ॥ और गणोंसमेत सदाशिवदेवजी भी उस स्थान से अन्तर्द्धान होगये और पतिव्रता पार्वती जी विस्मित होकर लज्जित व दुःखितहुई ॥ ३२ ॥ हिमाचलजी उन पार्वतीजीको उठाकर शीघ्रही अपने घरको लेआये सदाशिवजीके जानेपर जब पार्वतीजी

चलीगई तब कामदेवकी स्त्री रति दुःखित हुई ॥ ३३ ॥ और भस्म कियेहुये पति को देखकर बहुत दुःखित होतीहुई रति ने विलाप किया व दुःख से विकल रति को देखकर आकाशवाणी ने कृपासे दुःखित सखी की नाईं समझातीहुईसी कहा कि हे उत्तमापांगि ! तुम मत रोवो तुम्हारा पति बिन अंगवाला भी होकर मित्रके कार्यकी विधि से सब कार्योंको करैगा और जब ये महादेवजी पार्वतीजी का ब्याह करैंगे ॥ ३४।३५।३६ ॥ तब शिवजी के ध्यान से उठैगा इसमें सन्देह नहीं है और द्वापरके अन्तमें जब श्रीकृष्णजी द्वारकामें बसैंगे ॥ ३७ ॥ तब हे देवि ! उनका पुत्र प्रद्युम्न नामक तुम्हारा पति होगा इसप्रकार कहीहुई उस रतिने आकाशसे पैदाहुई

भस्मीकृतंपतिन्दृष्ट्वा विललापसुदुःखिता ॥ दृष्ट्वारतिंसुदुःखार्तां वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३४ ॥ आश्वासयन्तीकृपया सखीमिवसुदुःखिताम् ॥ मारोदीस्त्वंशुभापाङ्गितवभर्ताकरिष्यति ॥ ३५ ॥ सर्वकार्याण्यनङ्गोपि मित्रकार्यविधानतः ॥ यदाचापंमहादेवः परिणेष्यतिपार्वतीम् ॥ ३६ ॥ तदाशम्भोरनुध्यानादुत्थास्यतिनसंशयः ॥ द्वारकायां यदाकृष्णो द्वापरान्तेनिवत्स्यति ॥ ३७ ॥ तत्पुत्रोभवितादेवि प्रद्युम्नोनामतेपतिः ॥ इत्युक्त्वासाजहाच्छोकमाकाशाज्जातयागिरा ॥ ३८ ॥ अचिन्तयत्तदादेवी उमापिहिमवद्गृहे ॥ कामस्यदहनंतेजश्शम्भोर्यत्तदनुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कथंभर्ताभवेदीशः कामस्योत्थापनंकथम् ॥ नैतत्तपोविनाकार्यं कचित्कस्यापिसिद्धये ॥ ४० ॥ एवंसञ्चिन्तयित्वाथ सखीभिस्सहिताततः ॥ तपश्चकारसुमहत् पित्रादेशाच्छुभव्रता ॥ ४१ ॥ वर्षास्वभ्रावकाशस्था हेमन्तेजलशायिनी ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्नितप्ताङ्गी तपस्युग्रेसमास्थिता ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वातपसोपेतां ब्रह्मचारिवपुर्हरः ॥ आजगामाश्रमन्देव्याः कृता

वाणी से शोकको त्यागदिया ॥ ३८ ॥ और उस समय हिमवान् के घरमें पार्वती देवी ने भी चिन्तन किया कि शिवजी का जो तेज कि कामदेवको जलानेवाला है वह बहुत उत्तम है ॥ ३९ ॥ और ईश्वर शिवजी कैसे पति होवैंगे व कामदेवका उत्थापन (उठाना) किस भांति होगा कहीं पर यह कार्य विना तपके किसी की भी सिद्धिके लिये नहीं हुआहै ॥ ४० ॥ इसप्रकार चिन्तन कर तदनन्तर सखियों समेत उत्तम व्रतवाली पार्वती जीने पिताकी आज्ञासे बड़ीभारी तपस्या किया ॥ ४१ ॥ कि वर्षाऋतु में आकाशस्थ व हेमन्तमें जलशायिनी तथा ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि से तचेहुये अंगोंवाली पार्वती जी उग्र तपस्यामें स्थितहुई ॥ ४२ ॥ तपस्या से संयुत

उन पार्वती जी को देखकर ब्रह्मचारी शरीरवाले महादेवजी महादेवी पार्वतीजीके आश्रम को आये व किये आतिथ्य (पहुनई) वाले शिवजी यह बोले ॥ ४३ ॥ कि हे सूक्ष्मकटिवाली, कृशापांगि, नवयौवने, कल्याणि ! तुम किसके लिये व क्यों तप करतीहो कारण को कहिये ॥ ४४ ॥ उन पार्वतीजी ने सत्य व मीठे उत्तर को कहा कि हे ब्रह्मचारी जी ! मुझ से तपस्या का प्रारम्भ शिवजी की प्राप्ति के लिये कियाजाता है ॥ ४५ ॥ यह सुनकर व विचारकर अपने कर्मकी निन्दा करते हुये शिवजी ने विचार किया कि पर्वतकी कन्या पार्वतीजी भक्तिकी परीक्षा के प्रयोजन को नहीं सहैंगी ॥ ४६ ॥ उस स्थान से जानेकी इच्छावाली पार्वतीजी के समीप

तिथ्योब्रवीदिदम् ॥ ४३ ॥ कृशमध्येकृशापाङ्गि किमर्थन्नवयौवने ॥ तपःकरोषिकल्याणि कस्यार्थेकारणंवद ॥४४॥ उवाचचोत्तरंसावै सत्यञ्चमधुरन्तथा ॥ वटोतपस्समारम्भःक्रियतेशङ्कराप्तये ॥ ४५ ॥ विचार्यचहरःश्रुत्वा निन्दयन् स्वंव कार्यमात्मनः ॥ उमाभक्तिपरीक्षार्थंन्नसहेतगिरेस्सुता ॥ ४६ ॥ गन्तुकामामुमांमत्वा तस्मात्स्थानान्महेश्वरः ॥ स्वंव पुर्द्दर्शयामास त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ४७ ॥ लज्जिताभूद्भवानीशं दृष्ट्वातस्थावधोमुखी ॥ विवाहायार्थयागेन्द्रं यथा मेत्वांसयच्छति ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो देव्यगाच्चपितुर्गृहम् ॥ देवीलाभायसप्तर्षीन् सस्मारस्मरशासनः ॥४९॥ प्रणेमुस्तेतथागम्य संस्मृताःपरमेश्वरम् ॥ ऊचुश्चप्राञ्जलिपुटाः कुर्मःकिंशाधिनोद्रुतम् ॥ ५० ॥ ततोब्रवीन्मुनीनीश स्समस्तांश्चगिरेर्गृहम् ॥ गत्वातथाकुरुध्वम्मे पार्वतीस्याद्यथाप्रिया ॥ ५१ ॥ तथेतिचप्रतिज्ञाय सङ्केतंशम्भुनास्वयम्॥

जाकर तीन नेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले अपने शरीर को दिखलाया ॥ ४७ ॥ व शिवजी को देखकर लज्जितहुई और नीचे मुखकरके खड़ी होगई विवाह के लिये हिमाचलजीसे प्रार्थना करिये कि जिसप्रकार मुझे तुमको देवैं ॥ ४८ ॥ ऐसा कहकर शिवदेवजी अन्तर्द्धान होगये और पार्वती देवीजी पिताके घरको गई व कामदेव-विनाशक शिवजीने पार्वतीदेवीजी के मिलने के लिये सप्तर्षियों को स्मरण किया ॥ ४९ ॥ वैसेही स्मरण कियेहुये वे सप्तर्षिलोग आकर शिवजी को प्रणाम करते भये व हाथों को जोडकर बोले कि हमलोग क्या करैं शीघ्रही हमलोगों को आज्ञा दीजिये ॥ ५० ॥ तदनन्तर शिवजी सब मुनियोंसे बोले कि हिमाचलके घर

जाकर तुमलोग वैसाही कीजिये कि जिस प्रकार पार्वतीजी मेरी प्यारी होवैं ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर व आपही शिवजीसे सकेत कर स्त्रियोंसमेत वे सप्तर्षि हिमाचलके स्थानको गये ॥ ५२ ॥ व हिमाचलसे दिये अर्घवाले तथा आसनों को ग्रहण कियेहुये वे सप्तर्षि हिमालयसे बोले कि याचना करते हुये शिवजी के लिये प्यारी पार्वतीजी को दीजिये ॥ ५३ ॥ दीगई ऐसा हिमाचलसे कहेहुये सप्तर्षिलोग विवाह के दिनको निरूपणकर व आज्ञाको पाकर वहा आये जहा कि महादेवजी थे ॥ ५४ ॥ और उन्हों ने शिवदेवजीसे कहा कि हिमवान् ने पार्वतीजी को देदिया और कियेहुये कार्यवाले वे सब जिसभांति आये थे वैसेही चलेगये ॥ ५५ ॥ और

कृत्वाजग्मुस्सपत्नीका गिरीन्द्रस्यनिवेशनम् ॥ ५२ ॥ दत्तार्घाम्भूधरेन्द्रेण कृतासनपरिग्रहाः ॥ ऊचुरद्रिमुमांयच्छ श ङ्करायार्थिनेप्रियाम् ॥ ५३ ॥ दत्तेत्युक्तागिरीन्द्रेणनिरूप्योद्वाहवासरम् ॥ लब्ध्वानुज्ञांसमायाता यत्रास्तेसमहेश्वरः ॥ ५४ ॥ ऊचुस्तेशङ्करंसर्वे दत्ताहिमवताशिवा ॥ कृतकार्याश्चसर्वेपि वव्रजुस्तेयथागताः ॥ ५५ ॥ चक्रुर्विवाहसामग्रीं ब्रह्म वस्विन्द्रनारदाः ॥ वृषासनंजगामाशु नन्दीशप्रमुखैर्गणैः ॥ ५६ ॥ मातृदुन्दुभिनादैश्च ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ प्राप्यागे न्द्रालयंशम्भुः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ५७ ॥ विवाह्यैनांविधानेन जगामस्वालयम्पुनः ॥ तत्रैकान्तरतिर्देवो यावत्तिष्ठति कामवान् ॥ ५८ ॥ तावत्त्रस्तैस्सुरैरग्निः प्रेषितोगान्महेश्वरम् ॥ अग्नौतत्रगतेदेवो रतिंत्यक्त्वामहेश्वरः ॥ ५९ ॥ नि चिक्षेपमुखेवह्नेः स्वरेतोव्रीडितोभृशम् ॥ रेतसातेनतप्तोग्निर्गङ्गातोयेऽभ्यचिक्षिपत् ॥ ६० ॥ हररेतोग्निनोद्गीर्णं गङ्गाम

ब्रह्मा, वसु, इन्द्र व नारद ने विवाहकी सामग्री को किया व नन्दीश आदिक गणों समेत शिवजी वृष के आसन पै शीघ्रही गये ॥ ५६ ॥ व माताओं की दुन्दुभियों के शब्दोंसे ब्रह्मादिक देवताओं समेत कियेहुये कौतुकपूर्वक मंगलवाले शिवजी हिमाचल के स्थान को प्राप्तहोकर ॥ ५७ ॥ विधिसे इन पार्वतीजी को व्याहकर फिर अपने स्थान को चलेगये वहां पर एकान्त में रतिवाले कामी शिवदेवजी जबतक स्थितहुये ॥ ५८ ॥ तबतक डरेहुये देवताओं से पठायेहुये अग्निजी महादेवजी के समीप गये वहां अग्निके जानेपर रतिको छोडकर महादेवजी ने ॥ ५९ ॥ बहुतही लज्जित होकर अपने वीर्यको अग्नि के मुखमें फेंकदिया और उस वीर्य से तचेहुये

अग्निजी ने गंगाजी के जल में फेंकदिया ॥ ६० ॥ व अग्निजी से उगिलाहुआ शिवजीका वीर्य गंगाजी के बीचमें गिरा और उसके तेजसे जलीहुई उन गंगाजी ने उसको अपने किनारे पै धरदिया ॥ ६१ ॥ और सप्तर्षियों की छह स्त्रियां नहाने के लिये गंगाजी के समीपगई व स्नान कियेहुई शीत से विकल वे किनारे पै जलते हुये तेजको देखकर ॥ ६२ ॥ अग्नि मानकर तापने की इच्छावाली वे सब भलीभांति प्राप्तहुई व उन स्त्रियोंके तापने पर हे मुने ! वह वीर्य छह मुखवाला होगया और कटिके द्वार से शीघ्रही चढ़गया और अग्नि के आगे स्थित वे स्त्रिया जब आपसमें ऊपर फेंकने के लिये न समर्थ हुई ॥ ६३ । ६४ ॥ तब उस भयसे मुनियों के

ध्येपपातह ॥ तयातुस्वतटेन्यस्तं दग्धयातस्यतेजसा ॥ ६१ ॥ सप्तर्षीणांचषट्पत्न्यःस्नानार्थंजाह्नवींययुः ॥ शीतार्तास्ताःकृतस्नाना दृष्ट्वातेजस्तटेज्वलत् ॥ ६२ ॥ मत्वाग्निमितितास्सर्वास्तप्तुकामास्समाययुः ॥ तपन्तीनाञ्चवैतासां तद्वीर्यमभवन्मुने ॥ ६३ ॥ षडाननंसमारूढं श्रोणिद्वारेणसत्वरम् ॥ यदान्योन्यमुत्पतितुं शक्तानाग्नेःपुरःस्थिताः ॥ ६४ ॥ चिन्तामगुस्तदासर्वा मुनित्रासात्ततोभयात् ॥ ततश्चतपसोवीर्याद्विकृष्यस्वोदरात्ततः ॥ ६५ ॥ षड्भिरेकत्वमापन्नं श्वेतपर्वतमस्तके ॥ मध्येशराणांवैकृत्स्नं निक्षिप्तंवीर्यमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ शुक्लायांप्रतिपद्यासीद्द्वितीयायांसमीकृतः ॥ तृतीयायांवसाकारस्सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६७ ॥ चतुर्थ्यांपरिपूर्णाङ्गः षण्मुखोद्वादशेक्षणः ॥ अलंकृतस्तुपञ्चम्यां षष्ठ्यांच ससमुत्थितः ॥ ६८ ॥ तेजसास्वेनतीव्रेण ततापसजगत्त्रयम् ॥ जातमित्थंसमाकर्ण्य सर्वेशक्रमुखाःसुराः ॥ ६९ ॥ समा

डरके कारण वे सब चिन्ताको प्राप्तहुई तदनन्तर तपस्या के बल से अपने पेटसे खींचकर उसके उपरान्त ॥ ६५ ॥ श्वेतपर्वत (कैलास) के बीचमें छहों ने एकता में प्राप्तकिया और रामसरों के बीच में समस्त उत्तम वीर्य को शुक्लपक्षवाली परेवामें फेंकदिया और दुइज में सम कियागया व तीज में समस्त लक्षणों से लक्षित वह वसा के आकारवाला होगया ॥ ६६ । ६७ ॥ और चौथि में छह मुख व बारह नेत्रोंवाला वह पूर्ण अंगोंवाला होगया व पञ्चमी में अलंकार कियाहुआ वह छठि में उठताभया ॥ ६८ ॥ और उसने अपने तीव्र तेजसे त्रिलोकको सन्तप्त किया इस प्रकार पैदाहुये उनको सुनकर इन्द्रादिक सब देवताओं ने ॥ ६९ ॥ आकर ब्रह्मा ने

इनका विधिपूर्वक संस्कार किया और प्रसन्न पार्वतीश शिवजी ने उत्तम व दृढ़ शक्ति दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर पार्वतीजी ने मयूर को वाहन में कल्पित किया व अग्निने छाग दिया व समुद्र ने कुक्कुट (मुर्गा) को दिया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर पुत्र की कामना से कृत्तिकाओं ने उसको बढ़ाया उसके उपरान्त संस्कारको प्राप्त व ब्रह्मादिक देवताओं से प्रणाम कियेहुये ॥ ७२ ॥ शक्ति हाथवाले व सुरसेनासे घिरे हुये उनका अभिषेक हुआ और वित्ताधिप,महासेन,पावक,षण्मुख व अंशज ॥७३॥ गांगेय, कार्त्तिकेय, गुह, स्कन्द, उमासुत, देवसेनापति, स्वामी, सेनानी व शिखिध्वज ॥ ७४ ॥ कुमार और शक्तिधारी उनके सोलह नामोंको जो मनुष्य भक्तिसे

गत्यास्यसंस्कारं ब्रह्माचक्रेयथाविधि ॥ तुष्टेनपार्वतीशेनशक्तिर्दत्तादृढाशुभा ॥ ७० ॥ ततोगौर्य्यामयूरश्च वाहनेपरिकल्पितः ॥ छागश्चैवाग्निनादत्तः कुक्कुटंसरिताम्पतिः ॥ ७१ ॥ ततस्सकृत्तिकाभिश्च वर्द्धितःपुत्रकाम्यया ॥ ततस्तुप्राप्तसंस्कारो ब्रह्माद्यैरभिवन्दितः ॥ ७२ ॥ शक्तिहस्तोभिषिक्तस्तु देवसेनासमावृतः ॥ वित्ताधिपोमहासेनः पावकःषण्मुखोंशजः ॥ ७३ ॥ गाङ्गेयःकार्त्तिकेयश्च गुहस्स्कन्दउमासुतः ॥ देवसेनापतिःस्वामी सेनानीचशिखिध्वजः ॥ ७४ ॥ कुमारःशक्तिधारीच तस्यनामानिषोडश ॥ यःपठेन्मानवोभक्त्या बाधातस्यनजायते ॥ ७५ ॥ एवंजातोमहासेनोदानवानांक्षयङ्करः ॥ कुशस्थल्यांसमानीतः शम्भुनास्थानकारणात् ॥ ७६ ॥ अभिषिक्तःसतेनासौ भद्रितस्सजटःपुरा ॥ तेनभद्रजटोनाम देवतीर्थंचकथ्यते ॥ ७७ ॥ कृताभिषेकंलब्धास्त्रं महासेनंमहेश्वरः ॥ तमुवाचसमधुरंसर्वदेवसमागमे ॥ ७८ ॥ रक्षाकार्यात्वयापुत्र सामरस्यशतक्रतोः ॥ देवानांबाधकास्सर्वे निहन्तव्याःसुरद्विषः ॥ ७९ ॥ इत्थं

पढ़ताहै उसके बाधा नहीं होतीहै ॥ ७५ ॥ इसप्रकार दानवों के क्षयकारक महासेनजी पैदाहुयेहैं और स्थान के कारण शिवजी से कुशस्थली उज्जैनीमे लायेगये हैं ॥ ७६ ॥ और पुरातन समय उन शिवजी से ये महासेनजी अभिषेक कियेगये और जटाओ समेत भद्रित (मुण्डित) हुये उस कारण भद्रजट नाम हुआ और देवतीर्थ कहाजाता है ॥ ७७ ॥ अभिषेक किये व अस्त्रों को पायेहुये उन स्वामिकार्त्तिकेयजीसे महादेवजी ने सब देवताओं के संयोग में मधुरतापूर्वक कहा ॥ ७८ ॥

कि हे पुत्र ! तुमको देवताओं समेत इन्द्रकी रक्षा करना चाहिये और देवताओं को बाधा करनेवाले सब दैत्योंको मारना चाहिये ॥ ७९ ॥ इसप्रकार उस प्रथमसागर में बड़ा उत्सव होने पर पातालतल में टिकीहुई सब मातायें आईं ॥ ८० ॥ और सदाशिवजी ने उनके भोजनों की संज्ञासे जिन नामों को किया है हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको तुम सुनो ॥ ८१ ॥ कि बरगदको भोजनकी इच्छावाली जो माताथीं वे वटमाताहुईं और जिन्होंने चिर्भटी (ककड़ी) को खाया वे चिर्भटमातृका हुईं ॥ ८२ ॥ व शिवजी के साथ क्रीडा के लिये जो मांस भोजन में प्राप्तहुईं वे सब छानबे मातायें पलमाता हुईं ॥ ८३ ॥ हे मुने ! उन सबोंका पुण्यदर्शन गृह के भूतों का

महोत्सवेजाते तत्रप्रथमसागरे ॥ मातरोन्वागतास्सर्वाः पातालतलसंस्थिताः ॥ ८० ॥ तासामाहारसंज्ञाभिश्चक्रे नामा निशङ्करः ॥ यानितानिप्रवक्ष्यामि शृणुत्वंमुनिपुङ्गव ॥ ८१ ॥ वटभोजनकामाया ज्ञेयास्तावटमातरः ॥ भुक्तातुचिर्भटीयाभिस्तावैचिर्भटमातरः ॥ ८२ ॥ क्रीडार्थंशम्भुनाचाथप्राप्तायाःपलभोजनैः ॥ षण्णवतिर्मातरश्चासन् सर्वास्ताःपलमातरः ॥ ८३ ॥ सर्वासान्दर्शनंपुण्यं गृहभूतविनाशकम् ॥ तायत्नतस्सदादेव्यो द्रष्टव्यामानवैर्मुने ॥ ८४ ॥ लब्ध्वा शक्तिमहासेनो देवसेनासमावृतः ॥ जघानदानवेन्द्रन्तंतारकंतरसातदा ॥ ८५ ॥ दत्त्वाराज्यंतथेन्द्राय स्फीतंनिहतकण्टकम् ॥ कुशस्थलींसमागम्य तत्रवासंसमाचरेत् ॥ ८६ ॥ एवंनिहत्यदैत्येन्द्रं सगाङ्गेयोमहाबलः ॥ शक्तिंशिप्राजलेमुञ्चत्पातालंचबिभेदसा ॥ ८७ ॥ ततोभोगवतीव्यास शक्तिभेदेननिर्गता ॥ वन्दितासर्वदेवैश्च मुनिभिश्चतपोधनैः ॥ ८८ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि समुद्रादिगतानिच ॥ शक्तिभेदेतुन्यस्तानि शतकोटिसहस्रशः ॥ ८९ ॥ अतो

विनाशक है सदैव यत्न से उन देवियोंको मनुष्यों को देखना चाहिये ॥ ८४ ॥ देवताओं की सेनासे घिरेहुये स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको पाकर उस समय वेग से असुरेन्द्र तारक को मारा है ॥ ८५ ॥ व नष्टकण्टकोंवाली तथा समृद्धराज्यको इन्द्र के लिये देकर उज्जैनी में आकर उन स्वामिकार्त्तिकेयजीने वहां निवास किया ॥ ८६ ॥ इसप्रकार असुरेन्द्र तारकको मारकर उन महाबलवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको शिप्रानदी के जलमें फेंकदिया और उसने पातालको विदारण किया ॥८७॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! शक्तिके भेदसे भोगवती (सर्पपुरी) निकली जोकि सब देवताओं व तपस्यारूपी धनवाले मुनियों से प्रणाम कीहुई थी ॥८८॥

समुद्रादिको में प्राप्त जो तीर्थ पृथ्वी में हैं वे सैकड़ों करोड़ हजार तीर्थ शक्तिभेद तीर्थ मे न्यास किये गये हैं ॥ ८९ ॥ इसलिये त्रिलोकमें कोटितीर्थ अतिपवित्र कहा गया है और ब्रह्माने वहां कोटितीर्थेश्वर सदाशिवजी को थापा है ॥ ९० ॥ कोटि तीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोंसे छूटजाता है जैसे कि केंचुलि से सांप छूटजाता है ॥ ९१ ॥ हे मुने ! पितरों का भक्त जो मनुष्य वहा श्राद्ध करता है वह दश अश्वमेधों के समस्त फलको प्राप्तहोता है ॥ ९२ ॥ व पितरों को उद्देश कर जो कुछ कोटितीर्थ में दियाजाता है वह सब कोटिगुना होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९३ ॥ उस तीर्थ में जो मनुष्य दूधवाली गऊको

तिपुण्यंत्रैलोक्ये कोटितीर्थमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मणास्थापितस्तत्र कोटितीर्थेश्वरःशिवः ॥ ९० ॥ कोटितीर्थेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वाकोटीश्वरंशिवम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो निर्मोकादिवपन्नगः ॥ ९१ ॥ श्राद्धंकरोतियस्तत्र पितृभक्तोनरोमुने ॥ दशानामश्वमेधानां प्राप्नोतिसकलंफलम् ॥ ९२ ॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते ॥ तत्सर्वंकोटिगुणितं जायतेनात्रसंशयः ॥ ९३ ॥ तत्रतीर्थेनरोयस्तु गान्ददातिपयस्विनीम् ॥ सर्वंलोकानतिक्रम्य सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥ ९४ ॥ यावन्त्यङ्गेपिरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषुच ॥ तावद्युगसहस्राणिब्रह्मलोकेमहीयते ॥ ९५ ॥ पौर्णमास्याममावस्यां पश्येच्छक्तिधरन्तुयः ॥ नापुत्रीनाधनोरोगी सप्तजन्मनिजायते ॥ ९६ ॥ जलप्रवेशंयःकुर्यात्तत्रतीर्थेनरोत्तमः ॥ सोक्षयंलभते लोके यावच्चन्द्रार्कयोस्सुखम् ॥ ९७ ॥ वृषोत्सर्गन्तुयःकुर्यात् पितृभक्तोनरोमुने ॥ सोक्षयंलभतेस्थानं यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे शक्तिभेदमाहात्म्यन्नामपञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥

देता है वह सब लोकों को नॉघकर उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ९४ ॥ व उसकी सन्तानके वंशोंमें जितने रोम होते हैं उतने हजार युगों तक वह ब्रह्मलोकमें पूजा जाताहै ॥ ९५ ॥ पौर्णमासी व अमावसमें जो मनुष्य शक्तिधर (महासेन) जीको देखताहै वह सातजन्मोंतक पुत्ररहित व निर्धनी नहीं होताहै ॥ ९६ ॥ व उसतीर्थ में जो उत्तम मनुष्य जलमें प्रवेश करताहै वह संसारमें तबतक अविनाशी सुखको प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहतेहैं ॥ ९७ ॥ हे मुने! जो पितरोंका भक्त मनुष्य वहा वृषोत्सर्ग करताहै याने बैलको छोड़ताहै वह अक्षय स्थानको प्राप्तहोताहै जोकि देवताओं को भी दुर्लभहै ॥ ९८ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अगस्त्येश शिव देखकर अति अद्भुत परभाव । छियालिसें अध्याय में कह्यो मुनीश सचाव ॥ सनत्कुमार जी बोले कि स्वर्णक्षुर तीर्थमें नहाकर व महेश्वर देवजी को देखकर सौ कपिलादान से भी अधिक फल होताहै ॥ १ ॥ और जो जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्माकी बावली में स्नान करता है वह हंसों से संयुत विमान के द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है ॥ २ ॥ व रात्रि में तैल नामक मातृगणों को जो बलि देता है उसकी शीघ्रही सिद्धि होती है व मरकर वह शिवलोक को जाताहै ॥ ३ ॥ और चैत व फागुन में विष्णुवापी में नहाकर उपवास समेत जो जितेन्द्रिय पुरुष जागरण करता है ॥ ४ ॥ वह सब पापों से छूटजाता है व विष्णुलोक को प्राप्त होता है

सनत्कुमारउवाच ॥ स्वर्णक्षुरेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ कपिलाशतदानस्य फलमप्यधिकंभवेत् ॥ १ ॥ वाप्यांपितामहस्यापि यस्स्नायाद्विजितेन्द्रियः ॥ हंसयुक्तेनयानेन ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ तैलाभिधानमातॄणां रात्रौयोयच्छतेबलिम् ॥ तस्यसिद्धिर्भवेत्सद्यो मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ३ ॥ विष्णुवाप्यान्नरस्स्नात्वा चैत्रेवाफाल्गुनेतथा ॥ जागरंयस्तुकुर्वीत सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ अभयेश्वरदेवस्य भक्त्यानियतमानसः ॥ ५ ॥ पट्टबन्धमथोदृष्ट्वा रुद्रलोकंसगच्छति ॥ लोकेतुजायतेदाता सार्वभौमोमहीपतिः ॥ ६ ॥ यस्त्वगस्त्येश्वरंगच्छेदेकचित्तोनरोमुने ॥ दृष्ट्वागस्त्येश्वरन्देवं सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ ७ ॥ अगस्त्योदयवेलायां मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ कृत्वागस्त्यञ्चसौवर्णं रौप्यंवाथस्वशक्तितः ॥ ८ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेणचसमन्वितम् ॥ तत्कालीनैःफलैःपुष्पैः पूजनीयोविधानतः ॥ ९ ॥ विधानंतस्यवक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यंद्विजोत्तम ॥ सप्तधान्यानिमुख्यानि ता

और मनको रोके हुये पुरुष भक्तिसे अभयेश्वर देवजी के ॥५॥ पट्टबन्धको देखकर इसके उपरान्त वह शिवलोक को जाता है और लोक में वह दाता व चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ६ ॥ व हे मुने ! सावधानचित्तवाला जो मनुष्य अगस्त्येश्वरजी के समीप जाताहै वह उपवास समेत जितेन्द्रिय पुरुष अगस्त्यजी के उदयकी वेला में अगस्त्येश्वर देवजी को देखकर समस्त पातकों से छूटजाता है व अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण व चांदी के अगस्त्यजी को निर्माणकर ॥ ७ । ८ ॥ व पंचरत्न से संयुत व वस्त्रसे संयुत कर उस समय वाले फलों व फूलों से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तम ! उन अगस्त्यजी की चारों वर्णोंवाली विधि

को कहता हूं कि सात धान्य व उतनेही फल मुख्य हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! पहले एक धान्य व एक फल त्यागने योग्य होता है इसी प्रकार सात वर्षोंतक ऐसाही व्रत करै ॥ ११ ॥ व हे काशपुष्पके समान, अग्नि व पवनसे उत्पन्न, मित्रावरुण के पुत्र, कुम्भयोने ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ इस मन्त्र से अर्घ देने पर हे व्यासजी ! जो फल होता है उसको सावधानचित्तवाले होकर सुनिये कि वह पुत्रवान् व धनवान् होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ और मरकर वह स्वर्ग को जाता है व फिर मृत्युलोकमें प्राप्त होकर सम्पन्न (धनवान्) कुल में पैदा होता है और महायोगीश्वर होताहै ॥ १४ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस

वन्त्येवफलानिच ॥ १० ॥ एकंधान्यंफलंचैकमग्रेत्याज्यंभवेन्मुने ॥ यावद्वैसप्तवर्षाणि व्रतमेवंसमाचरेत् ॥ ११ ॥ काशपुष्पप्रतीकाशवह्निमारुतसम्भव ॥ मित्रावरुणयोःपुत्र कुम्भयोनेनमोस्तुते ॥ १२ ॥ दत्तेर्घेयत्फलंव्यास तद्वैह्येकमनाःशृणु ॥ पुत्रवान्धनवांश्चैव जायतेनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ मृतस्स्वर्गमवाप्नोति सम्पन्नेजायतेकुले ॥ मर्त्यलोके पुनःप्राप्य महायोगीश्वरोभवेत् ॥ १४ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वासुसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मुनिलोकेस मोदते ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽगस्त्येश्वरमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

व्यासउवाच ॥ महाकालंकिमर्थन्तु किंवाशिवपदंस्मृतम् ॥ कोटीश्वरंकिमर्थन्तु पावकंततकिमुच्यते ॥ १ ॥ नरदीपःकिमर्थन्तु द्वितीयावटमातरः ॥ अभयेश्वरंकिमर्थन्तुशङ्खोद्धारणमेवच ॥ २ ॥ शूलेश्वरंकिमर्थन्तु किमोङ्कार

चरित्र को नित्य सुनता व पढ़ता है समस्त पापों से छूटा हुआ वह पुरुष मुनि (अगस्त्य) जीके लोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामगस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नरदीपक नामक यथा भे दिननायक देव । सैंतालिसवें में कह्यो सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यासजी बोले कि महाकाल किस लिये हैं और कौन शिवस्थान कहागया है व कोटीश्वर किस लिये हैं और वह पावक क्या कहाजाता है ॥ १ ॥ व नरदीप किस लिये हैं और दूसरी वटमातृका किस लिये हैं और अभयेश्वर

किस लिये हैं व शखोद्धारण किस लिये हैं ॥ २ ॥ व शूलेश्वर किस लिये हैं और ॐकार क्यों कहाजाता है व धूतपाप किस लिये है वैसेही अंगारेश्वर किस नि-
मित्त हैं ॥ ३ ॥ और दिव्य उज्जयिनी पुरी किस लिये सात कल्पोंवाली कही गई है हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके जो नाम हैं उनको कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि
हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार दिव्य पुरी उत्तम पुण्यदायिनी है पहले मे स्वर्णशृङ्गा व दूसरे कल्प में कुशस्थली ॥ ५ ॥ तीसरे में अवन्तिका कही गई है व
चौथे कल्पमें अमरावती और पांचवें में चूड़ामणि ऐसी पुरी प्रसिद्ध हुई है ॥ ६ ॥ व छठे में पद्मावती जानने योग्यहै व सातवें कल्प में उज्जयिनी पुरी कहीगई है और

स्तुकथ्यते ॥ धूतपापंकिमर्थन्तु किमङ्गारेश्वरन्तथा ॥ ३ ॥ पुरीचोज्जयिनीदिव्या सप्तकल्पाकथंस्मृता ॥ कथयस्वमु
निश्रेष्ठ तस्यानामानियानिच ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथाख्याता पुरीदिव्यासुपुण्यदा ॥ स्वर्णशृङ्गा
तुप्रथमे द्वितीयेतुकुशस्थली ॥ ५ ॥ तृतीयेवन्तिकाप्रोक्ता चतुर्थेत्वमरावती ॥ विख्यातापञ्चमेकल्पे पुरीचूडामणीति
च ॥ ६ ॥ षष्ठेपद्मावतीज्ञेयोज्जयिनीसप्तमेपुरी ॥ पुनरन्तेतुकल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिकास्मृता ॥ ७ ॥ एतानिसप्तना
मानि प्रातरुत्थाययःपठेत् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ उज्जयिन्यांपुरोराजा वभूवकिलचा
न्धकः ॥ तस्यपुत्रोमहावीर्यो नाम्नाकनकदानवः ॥ ९ ॥ युद्धार्थेसमहावीर्यः शक्रंयुद्धेसमाह्वयत् ॥ क्रोधादिन्द्रेणसंग्रामे
युध्यमानोनिपातितः ॥ १० ॥ निहत्यदानवंशक्रो भयादन्धासुरस्यतु ॥ जगामशङ्करान्वेषी कैलासंशङ्करालयम् ॥
११ ॥ दृष्ट्वाप्रणम्यदेवेशं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ भीतोविज्ञापयामास सहस्राकुललोचनः ॥ १२ ॥ अभयन्देहिमेदेव

फिर कल्प के अन्त में स्वर्णशृङ्गादिका कही गई है ॥ ७ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इन सात नामों को पढ़ता है वह सात जन्मों में किये हुये पातक से छूट
जाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ पुरातन समय उज्जयिनी में अन्धक राजा हुआ है उसका बड़ा बलवान् पुत्र कनकदानव नामक हुआ है ॥ ९ ॥ उस महा-
बलवान् ने युद्ध के लिये समर में इन्द्र को बुलाया और संग्राम में युद्ध करते हुये उसको इन्द्रने क्रोधसे गिरा दिया ॥ १० ॥ व दानव को मारकर अन्धक के डर
से शिवजी को ढूंढ़नेवाले इन्द्रजी कैलास नामक शिवजी के स्थान को गये ॥ ११ ॥ व अर्द्धचन्द्रमा को मस्तक में किये देवेश शिवजी को देखकर तदनन्तर

हज़ार विकल लोचनों वाले इन्द्र ने विनय किया ॥ १२ ॥ कि हे देव! अन्धक दानव से मुझको अभय दीजिये इस प्रकार इन्द्र के वचन को सुनकर शरणागत-प्रिय इन शिवजी ने ॥ १३ ॥ अभय दिया कि तुम अन्धक से मत डरो और महादेवजीने विश्वरूप व भयङ्कर रूप कर ॥ १४ ॥ जो कि भयङ्कर शब्द करते हुये व पातालकी नांई उदररूपवाले तथा विष से उग्र व पैनी दाढ़ोंवाले व अतिभयंकर और जिह्वाओं को लपलपाते हुये सर्पोंसे उपलक्षित था ॥ १५ ॥ व बहुत शस्त्रों को धारेहुये अनेक हजार भुजाओं से संयुत था और सिंहचर्मको पहने व व्याघ्रचर्म को कॉंधासूती दुपट्टा डाले ॥ १६ ॥ व हाथीके चर्मको आच्छादन किये तथा चन्द्रमा

दानवादन्धकाच्चवै ॥ शक्रस्येत्थंवचःश्रुत्वा शरणागतवत्सलः ॥ १३ ॥ ददावभयमेवासौ माभैस्त्वमन्धकाद्विवै ॥ कृत्वारूपंमहादेवो विश्वरूपंसुभैरवम् ॥ १४ ॥ सर्पैर्लिहद्भिरत्युग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥ पातालोदररूपैश्च भैरवारावनादिभिः ॥ १५ ॥ भुजैरनेकसाहस्रैर्बहुशस्त्रधृतैस्तथा ॥ सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् ॥ १६ ॥ गजाजिनकृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम् ॥ महामहीध्रतुल्याभिर्जङ्घाभिर्भूषितंसदा ॥ १७ ॥ क्षोभयंश्चालयन्सर्वान् पातालस्यतलावधि ॥ ईदृग्रूपंविधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥ १८ ॥ अवातरन्महींभीमः पादेनैकेनशङ्करः ॥ तत्रैवहिहृदोजातः सर्वदैवतवन्दितः ॥ १९ ॥ ख्यातंशिवपदंतद्धियत्पदाक्रान्तवान्विभुः ॥ यस्मादत्रपुराकोटिः पादाङ्गुष्ठस्यधारिता ॥ २० ॥ कोटितीर्थमतःख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ अगस्त्येनतथाकोटिस्तीर्थानामत्रधारिता ॥ २१ ॥ अतोपीदृक्शुभंलोके कोटितीर्थंसदास्मृतम् ॥ दृष्ट्वातुत्रिदशास्सर्वे स्नातावैहितकाम्यया ॥ २२ ॥ महाकालंकृतंरूपं महाकालस्ततः

अग्नि व सूर्य लोचनोंवाले और सदैव महापर्वतोंके समान जंघाओं से भूषित ॥ १७ ॥ और पाताल के नीचे तक सब जन्तुवों को क्षोभित करते व कँपाते थे दानवों व दैत्यों के भय कारक ऐसे रूपको बनाकर ईश्वर ॥ १८ ॥ सदाशिवजी एक चरणसे पृथ्वीमें उतरे वहीं पर सब देवताओं से प्रणाम कियाहुआ कुण्ड हुआ ॥ १९ ॥ वह शिवपद कहागया जिसको कि व्यापक शिवजी ने चरण से आक्रमण किया जिसलिये पहले चरण के अंगूठेकी कोटि धारण कीगई ॥ २० ॥ इसी कारण सब पापों का विनाशक कोटितीर्थ कहागया है वैसेही यहांपर अगस्त्य जीने कोटितीर्थों को धारण किया है ॥ २१ ॥ इसीकारण संसार में सदैव ऐसा उत्तम कोटितीर्थ

कहागया है उसको देखकर सब देवता हितकी कामना से नहाते भये॥ २२ ॥ जिस लिये महाकालरूप कियागया उसीकारण महाकाल कहेगये हैं अन्धकासुर दैत्य ने भी युद्धमें मरेहुये पुत्रको सुनकर ॥ २३ ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर समर में तुरुहियों को बजाया और सेना समेत निकलकर वहां प्राप्तहुआ जहां कि रथों व हाथियोंसे संयुत बड़ी सेना समेत वे देवता स्थित थे उसी समय महायुद्धमें किये हुये उद्यमवाले दानवों को देखकर ॥ २४ । २५ ॥ कांपतेहुये वे तैयार देवता शिव जी की शरण में गये व त्रिलोचन महाकालजी ने देवताओं से कहा कि मत डरो ॥ २६ ॥ क्रोध के कारण दाढ़ों से ओष्ठों को काटतेहुये शिवजी त्रिशूल को लेकर

स्मृतः ॥ अन्धासुरोपिदनुजःपुत्रंश्रुत्वाहतंयुधि ॥ २३॥ क्रोधेनमहताविष्टो रणतूर्याण्यवादयत् ॥ ससैन्योनिर्गतःप्राप्तो यत्रतेत्रिदशाःस्थिताः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्द्धं रथवारणयुक्तया ॥ तदेवदानवान्वीक्ष्य महाहवकृतोद्यमान् ॥ २५ ॥ वेपन्तस्तेसुसन्नद्धाः शम्भुंशरणमाययुः ॥ माभैषतमहाकालो देवानूचेत्रिलोचनः ॥ २६ ॥ गृहीत्वाशूलमातिष्ठ द्दंष्ट्रादष्टाधरोरुषा ॥ कोपयुक्तेविरूपाक्षे ज्वालाभिःपूरितन्नभः ॥ २७॥ अन्धकेनाथरुष्टेन शरकोटिस्तुदुस्सहा ॥ मुक्ता जगामदेवानां नाशायशलभाकृतिः ॥ २८ ॥ विस्फुलिङ्गार्चिषंवह्निं मुञ्चमानःपिनाकधृक् ॥ शतशश्शकलीचक्रे त ञ्चबाणैरताडयत् ॥ २९ ॥ अन्धकोपिहियुद्धस्थो शिथिलःशिथिलायुधः ॥ निरुद्धश्शम्भुनाबाणैरलिभिःपङ्कजंयथा ॥ ३० ॥ तस्यसैन्यञ्चबहुधा स्वगणैर्युद्धयोधिभिः ॥ योधृवरैर्हतंदिव्यैस्स्थाणुसान्निध्यमाश्रितैः ॥ ३१ ॥ ततोन्धकेनसै

स्थित हुये जब शिवजी क्रोध से संयुक्त हुये तब ज्वालाओंसे आकाश पूर्ण होगया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित अन्धक से छोड़ेहुये असह्य करोड़ बाण जोकि पांखी के समान आकारवाले थे देवताओं के नाशके लिये गये ॥ २८ ॥ चिनगारी व ज्वालाओंवाली अग्निको छोड़तेहुये पिनाकधारी शिवजीने सैकड़ों खण्ड किये और उस अन्धक को बाणोंसे ताडित किया ॥ २९ ॥ और शिथिल अस्त्रोंवाला व युद्धमें टिकाहुआ अन्धक भी शिथिल हुआ और शिवजीसे बाणोंके द्वारा आच्छादित कियागया जैसे कि भ्रमरों से कमल आच्छादित होताहै ॥ ३० ॥ और निज गण व शिवजी की समीपता में आश्रित तथा युद्धमें लड़नेवाले दिव्य उत्तम

योधाओं से उस अन्धककी सेना बहुत खण्ड कीगई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अन्धकने देवताओं से कटीहुई अपनी सेनाको देखकर व शिवजी से करोड़ों बाणों करके अपना को वेधित देखकर सैकड़ों मायावों में चतुर व विकल कीहुई देहवाले इसने भय में प्राप्तहोकर वेगसे तामसी (अन्धकारवाली) माया किया ॥ ३२।३३ ॥ व उस मायासे अन्तर्द्धान शरीरवाला यह दैत्य उत्तर दिशाको चलागया व शिवजीके भयहारक रूपको धारण करताहुआ भिन्नहृदयवाला यह दैत्य पृथ्वी में भ्रमता भया ॥ ३४ ॥ जिस मार्गसे दैत्य (अन्धक) गया था उसीसे बार २ यह कहतेहुये शिव देवजी गये कि यह दुष्ट नहीं देखपड़ताहै कहां गया ॥ ३५ ॥ और जिसभांति

न्यंस्वं भिन्नंदृष्ट्वातथासुरैः ॥ आत्मानञ्चमहेशेन विद्धंचबाणकोटिभिः ॥ ३२ ॥ विकलीकृतदेहोसौ भयमाश्रित्यवे गतः ॥ चकारतामसींमायां मायाशतविशारदः ॥ ३३ ॥ तयान्तर्हितदेहोसौ जगामदिशमुत्तराम् ॥ शम्भोर्भीतिहरं बिभ्रद्भ्रामभुविभिन्नहृत ॥ ३४ ॥ येनाध्वनागतोदैत्यस्तेनदेवोजगामह ॥ वदन्नदृश्यतेक्वासौ गतोदुष्टःपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ उवाचचान्धकश्शब्दं तथोवाचमहेश्वरः ॥ तत्रतीर्थमथोत्पन्नं वागन्धकमितिश्रुतम् ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा योवैदद्यात्सशर्करम् ॥ नवम्यांमार्गशीर्षस्य शुक्लायांश्रद्धयान्वितः ॥ ३७ ॥ अक्षयंतद्भवेत्सर्वं दाताशिवपुरंव्रजेत ॥ पितृनुद्दिश्ययत्किञ्चिद्दीयतेभक्तितश्शिवे ॥ ३८ ॥ तृप्तास्तिष्ठन्तितेतावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तमसाच्छादितादेवास्संबभूवुस्समाकुलाः ॥ ३९ ॥ सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे नकिञ्चिदपिमेनिरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास नरादित्यस्स्वतेजसा ॥ ४० ॥ उत्तस्थौनररूपेण कुर्वन्वितिमिरादिशः ॥ नष्टेतमसिदैत्येपि प्रकाशेप्रकटेसति ॥ ४१ ॥ देवामुदमवा

अन्धक बोला वैसेही महादेवजी ने शब्दको कहा वहांपर वागन्धक ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्न हुआ ॥३६॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर श्रद्धासंयुत जो पुरुष अगहनकी शुक्लपक्षवाली नवमी में शर्करा समेत दान देताहै ॥३७॥ वह सब अक्षयहोताहै और दाता शिवपुरको जाता है शिवजी में भक्ति से पितरों को उद्देशकर जो कुछ दिया जाताहै ॥ ३८ ॥ तो वे पितर तृप्तहोकर तबतक स्थित होते हैं जबतक कि प्रलय होती है व अज्ञानसे आच्छादित देवता विकलहुये ॥ ३९ ॥ और भ्रमितमनवाले सबों ने कुछ भी नहीं जाना इसी अवसर में हे व्यासजी ! अपने तेज से दिशाओंको अन्धकार रहित करते हुये नरादित्यजी मनुष्य के रूपसे उठे अन्धकार व दैत्य

के भी नाश होनेपर व प्रकाश प्रकट होनेपर ॥ ४० । ४१ ॥ नेत्रों से अनन्तजीको देखकर अनेक भांति के स्तोत्रों से मनुष्यरूपी सूर्यनारायणजी की स्तुति करते हुये उन देवताओं ने आनन्द पाया ॥ ४२ ॥ जिसलिये प्रकाशित सूर्यनारायणजी नररूप से उठे उसी कारण उन समर्थ देवताओं ने इनका नरदीप ऐसा नाम किया ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नरदीप सूर्यनारायणजी को देखता है वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि समस्त पापोंसे छूटजाताहै ॥ ४४ ॥ हे विप्रजी ! रविवार में छठि व सप्तमी तिथि में उपवास करनेवाला पुरुष दिनक्षय मे संक्रान्ति में व ग्रहण तथा विषुवत (दिन रात बराबरवाले समय) मे ॥ ४५ ॥ कुण्ड में नहाकर

पुस्ते दृष्ट्वानन्तन्तुलोचनैः ॥ स्तुवन्तोविविधैस्स्तोत्रैर्नररूपंदिवाकरम् ॥ ४२ ॥ उत्तस्थौनररूपेण दीप्तोयस्माद्दिवाकरः ॥ तेनास्यनामतेचक्रुर्नरदीपइतीश्वराः ॥ ४३ ॥ यःपश्यतिनरोभक्त्या नरदीपंदिवाकरम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ ४४ ॥ षष्ठ्यामर्कदिनेविप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ॥ दिनक्षयेथसंक्रान्तौ ग्रहणेविषुवत्यथ ॥ ४५ ॥ कुण्डेस्नात्वाशुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः ॥ नरदीपंनरःपश्येत् स्तोत्रवादित्रमङ्गलैः ॥ ४६ ॥ गन्धैर्धूपैस्तथादीपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा॥ गीतंवाद्यंपुराकृत्वाप्रणम्याष्टाङ्गमेवच॥४७॥ प्रातर्मध्येपराह्णेवा कृत्वार्कस्यप्रदक्षिणाम् ॥ समुक्तस्सर्वपापैस्तु सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ४८ ॥ सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैस्सार्वकामिकैः ॥ सूर्यलोकंप्रयात्याशु यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ ४९ ॥ शक्रात्प्राप्यपुरायस्माद्भानुरत्रप्रतिष्ठितः ॥ नरेणैवप्रसादेन नरदीपस्ततोह्ययम् ॥ ५० ॥ तदेवास्यपुराव्यास या

व पवित्र होकर नियम में प्राप्त मनवाला पुरुष जपताहुआ मनुष्य स्तोत्र व वाद्यादिक मंगलों से नरदीपजी को देखै ॥ ४६ ॥ और गंध, धूप, दीप व अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजकर व आगे गीतवाद्यकर व अष्टाग प्रणामकर ॥ ४७ ॥ प्रातःकाल मध्याह्न व दुपहरके उसपार सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणाकर वह सातजन्मों मे भी कियेहुये सब पातकों से छूटजाता है ॥ ४८ ॥ और करोडों सूर्योंके समान सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शीघ्रही सूर्यलोकको जाता है जोकि देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ४९ ॥ पुरातन समय जिसलिये इन्द्र से पाकर नरजी ने वहांपर प्रसन्नतासे सूर्यनारायण को थापाहै उसकारण ये नरदीपजी है ॥ ५० ॥ हे व्यासजी !

पुरातन समय तभी इन्द्र ने यात्रा किया है और यह कहा कि हे पार्थ ! ज्येष्ठ बीतने पर सदैव सावधान होताहुआ मैं देवताओं समेत आऊंगा और संसार में देवकी वृष्टि से वहा आयाहुआ मैं जानने योग्य हूं ॥ ५१।५२ ॥ उसके उपरान्त देवालय मे जो देवता प्राप्तथे वे आकर प्रकाशकारक वैसे नरदीप देवजी को पूजकर ॥ ५३ ॥ और यात्राकर तदनन्तर देवयात्रा के अन्त में वे जाते थे जो मनुष्य रथ पै स्थित नरदीपदेवजी को देखता है ॥ ५४ ॥ सब पापोंसे छूटाहुआ वह सूर्यलोक में पूजाजाता है इसके उपरान्त फिर जो नरदीपजी की रथयात्रा है उसको कहताहूं ॥ ५५ ॥ कि उसको करके उस पुण्यको मनुष्य प्राप्तहोता है जोकि मुनियों से

त्राशक्रेणनिर्मिता ॥ आगमिष्याम्यहंपार्थ सार्द्धन्देवैस्समाहितः ॥ ५१ ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां नरदीपेतुसर्वदा ॥ तत्राहमागतोज्ञेयो लोकैर्देवस्यवर्षणात् ॥ ५२ ॥ ततोनन्तरमागम्य देवायेत्रिदशालये ॥ इष्ट्वादेवंतथारूढं नरदीपं सुदीपनम् ॥ ५३ ॥ कृत्वायात्राञ्चतेयान्ति देवयात्रात्ययेततः ॥ यःपश्येन्मानवोभक्त्या नरदीपंरथस्थितम् ॥ ५४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्सूर्यलोकेमहीयते ॥ रथयात्रामथोवक्ष्ये नरदीपस्ययापुनः ॥ ५५ ॥ तांकृत्वाचैवयत्पुण्यं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां रथस्थोहिदिवाकरः ॥ ५६ ॥ कुशस्थल्यांद्विजश्रेष्ठैर्बाहुक्षेपैःप्रणीयते ॥ उत्तरान्दिशमायान्तं यःपश्यतिदिवस्पतिम् ॥ ५७ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य लभतेसोखिलंफलम् ॥ निवृत्तंकेशवार्काद्यो रथंपश्यतिमानवः ॥ ५८ ॥ मुण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसंशयः ॥ रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षणवैमुने ॥ ५९ ॥ कुलमुद्धरतेसोपि पूर्वान्पितृपितामहान् ॥ दक्षिणाभिमुखंयान्तं नरदीपंद्विजोत्तम ॥ ६० ॥ येसंयताःप्रपश्यन्ति तेया

कहागयाहै ज्येष्ठ बीतने पर द्वितीया तिथिमें रथपै स्थित सूर्यनारायणजी ॥ ५६ ॥ उज्जैनीपुरी में द्विजोत्तमों से भुजाक्षेपके द्वारा प्राप्तकियेजाते हैं उत्तर दिशामें आते हुये सूर्यनारायणजी को जो देखताहै ॥ ५७ ॥ वह अग्निष्टोम यज्ञके समस्त फलको प्राप्तहोताहै व केशवार्कजीसे लौटेहुये रथको जो मनुष्य देखताहै ॥ ५८ ॥ उसने मुंडीर स्वामीकी यात्राकिया इसमें सन्देह नहीं है व हे मुने ! जो मनुष्य रस्सीके आकर्षणसे रथको खींचता है ॥ ५९ ॥ वह भी वंशको उद्धारता है व पहलेवाले पिता

पितामहादिकों को उद्धारता है हे द्विजोत्तम ! दक्षिण दिशाके सामने जातेहुये नरदीपजी को ॥ ६० ॥ संयम में प्राप्त जो पुरुष देखते हैं वे स्वर्गको प्राप्तहोते हैं व जो मनुष्य सूत्र से क्षेत्र, रथ व देव (नरदीप) जी को घेरताहै ॥ ६१ ॥ वह सब मनोरथों को प्राप्तहोताहै व कीहुई पुण्यवाला होताहै और जो मनुष्य भक्तिसे सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ६२ ॥ उनसे सात द्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई व प्रातःकाल उठकर मौनहो जो मनुष्य सूर्यनारायणजी के समीप जाता है ॥ ६३ ॥ व हे द्विजोत्तम ! पूर्वद्वारसे देखकर और प्रणामकर और दक्षिणही द्वार से प्रवेश कर रथचक्रको पूजै ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उस द्वारसे निकल कर गमन

न्तिचत्रिविष्टपम् ॥ सूत्रेणवेष्टतेक्षेत्रं रथन्देवमथापिवा ॥ ६१ ॥ सर्वकामानवाप्नोति कृतपुण्यस्सजायते ॥ प्रदक्षिणान्तुसूर्यस्य भक्त्याकुर्वन्तियेनराः ॥ ६२ ॥ प्रदक्षिणीकृतातैस्तु सप्तद्वीपवसुन्धरा ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या मौनीयातिदिवाकरम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वातुपूर्वद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ॥ प्रविश्यदक्षिणेनैव रथचक्रंप्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥ तेनद्वारेणनिष्क्रम्य प्रणिपत्यव्रजेत्ततः ॥ पश्चिमंद्वारमाश्रित्य रथस्थंसूर्यमर्चयेत् ॥ ६५ ॥ चामरेचवितानञ्च घण्टांवापिनिवेदयेत् ॥ पूर्वद्वारेतुगौर्देया तथाश्वश्चैवदक्षिणे ॥ ६६ ॥ पश्चिमेचगजःप्रोक्त उत्तरेरथएवच ॥ कुर्यादेवन्तुयोयात्रां रथदीपस्यमानवः ॥ ६७ ॥ गोसूर्यशिवशक्राणां स्वालोक्यंलभतेसुखम् ॥ प्रदक्षिणामहामेरोः कृतातेनभवेन्मुने ॥ ६८ ॥ दद्याद्गवांसहस्रंयो व्यतीपातशतेनच ॥ अश्वानाञ्चसहस्रेण यात्रायांतत्फलंलभेत् ॥ ६९ ॥ नरदीपेरथारूढे व

करै व पश्चिम द्वार में प्राप्तहोकर रथ पै स्थित सूर्यनारायण का पूजन करै ॥ ६५ ॥ चौर दो चँवर, वितान (चँदोवा) व घण्टाको भी निवेदन करै और पूर्वद्वार में गऊ देनाचाहिये वैसेही दक्षिणद्वार में अश्वदेनाचाहिये ॥ ६६ ॥ व पश्चिम में हाथी कहागया है और उत्तर में रथही देना चाहिये जो मनुष्य इसप्रकार नरदीपजी की रथयात्रा करता है ॥ ६७ ॥ वह गोलोक तथा सूर्य, शिव व इन्द्रकी सलोकतावाले सुखको पाताहै व हे मुने ! इससे महामेरुकी प्रदक्षिणा कीहुई होतीहै ॥ ६८ ॥ और जो मनुष्य सौ व्यतीपात योगों में गोसहस्र देताहै और हजार घोड़ों के दान से जो फल होताहै उस फलको मनुष्य यात्रासे पाताहै ॥ ६९ ॥ व नरदीप

जीके रथ पै चढ़ने पर जो मनुष्य चौर कराता है उसका लक्ष्मीजी से विछोह नहीं होताहै और वह सूर्यलोक में पूजाजाता है ॥ ७० ॥ और जो मनुष्य सूर्यनारायण जी के आगे बावली में महीनाभरतक नित्यस्नान कर उन नरदेवजी को देखता है उसका दुःस्वप्न नाश होजाताहै ॥ ७१ ॥ हे व्यासजी ! भक्तिसे प्रतिदिन जो मनुष्य नरदीपजी को देखता है वह उत्तम स्थानको प्राप्तहोकर पुत्रों व पौत्रों से संयुक्तहोता है ॥ ७२ ॥ और भाइयों समेत क्रीड़ा कर मरकर वह मनुष्य सूर्यलोक को जाता है हे विप्रजी ! अन्धकार नाशहोनेपर व सब कहीं उत्तम प्रकाश होने पर ॥ ७३ ॥ व तीन शिखावाले शूल याने त्रिशूल से अन्धकासुर को महादेवजी

पनंकारयेत्तुयः ॥ श्रियानविच्युतिस्तस्य सूर्यलोकेमहीयते ॥ ७० ॥ सूर्य्यस्यपुरतोवाप्यां मासन्नित्यंविगाह्यच ॥ यस्त मालोकतेमर्त्यो दुस्स्वप्नंतस्यनश्यति ॥ ७१ ॥ भक्त्यायोनुदिनंव्यास नरदीपंप्रपश्यति ॥ उत्तमंस्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ प्रक्रीड्यबन्धुभिस्सार्द्धं मृतस्सूर्यपुरंव्रजेत् ॥ प्रणष्टेतिमिरेविप्र जातेसर्वत्रसुप्रभे ॥ ७३ ॥ हतेन्धके महेशेन शूलेनत्रिशिखेनवै ॥ प्रहृष्टाश्चसुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥ ७४ ॥ शङ्खंदध्मौतदाविष्णुस्सुराणांहितकाम्यया ॥ तत्रतीर्थमथोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसंज्ञकम् ॥ ७५ ॥ तत्रसन्निहितोविष्णुर्लिङ्गंचैवचतुर्मुखम् ॥ अनाद्यञ्चैवविप्रेन्द्रलिङ्गस्यचसमीपतः ॥ ७६ ॥ देवस्यदक्षिणेभागे शूलेनालक्षितःस्थितः ॥ चतुर्द्दश्यान्तथाष्टम्यां येपश्यन्तिजितेन्द्रियाः ॥ ७७ ॥ तेक्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ योगिनीनांबलिंयस्तु यथावत्संप्रदास्यति ॥ ७८ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासौकेनापिबाध्यते ॥ द्वादशींसमुपोष्यैव स्नात्वादेवंजनार्द्दनम् ॥ ७९ ॥ यःपश्येच्छङ्खिनन्देवं सो

के मारने पर उस समय ब्रह्मा व इन्द्रादिक सब देवता प्रसन्न हुये ॥ ७४ ॥ तब देवताओंके हितकी कामना से विष्णुजी ने शंख को बजाया इसके अनन्तर वहांपर शंखोद्धारण नामक तीर्थ उत्पन्नहुआ ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वहांपर विष्णुजी भलीभांति स्थित हैं व अनादि चतुर्मुख लिंग है और लिंगके समीप ॥ ७६ ॥ देवजी के दक्षिण भाग में त्रिशूल से लक्षित शिवजी स्थितहैं जो जितेन्द्रिय पुरुष चौदसि व अष्टमीमें उनको देखते हैं ॥ ७७ ॥ वे नष्ट समस्त पातकोंवाले पुरुष उत्तमगति को प्राप्त होते हैं और जो मनुष्य योगिनियों को यथायोग्य बलि देता है ॥ ७८ ॥ यह भूत, प्रेत, पिशाचादिकों से व किसी से भी नहीं पीड़ित होता हैं और द्वादशी

को उपासकर व नहाकर जनार्द्दन देवजी को ॥ ७६ ॥ व शंखधारी देवजीको जो देखताहै वह अच्युतजीके स्थानको प्राप्तहोताहै ॥ ८० ॥ जो स्थूल व सूक्ष्म वस्तुवोंमें प्रकट प्रकाशवान् है और जो सर्वभूतमय है और सर्वभूत नहीं है व जिससे संसारहोताहै व जो जगत् का कारण है उस पुरुषोत्तमके लिये नमस्कार है ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांविष्णुमाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अंगारेश्वर कर अहै अति अद्भुत माहात्म्य । अर्तालिसवें में कह्यो सोइचरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शिवजी के त्रिशूलसे जब अन्धकासुर

च्युतंस्थानमाप्नुयात् ॥ ८० ॥ यस्स्थूलसूक्ष्मप्रकटप्रकाशोयस्सर्वभूतोनचसर्वभूतः ॥ विश्वंयतश्चैवहिविश्वहेतुर्नमोस्तु तस्मैपुरुषोत्तमाय ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविष्णुमाहात्म्यन्नामसप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ भिन्नेन्धकेत्रिशूलेन ध्वनीरुद्रस्यनिर्गतः ॥ तत्रोङ्कारस्समुत्पन्नो देवदेवोमहेश्वरः ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा समाधिनियमेनच ॥ दृष्ट्वोङ्कारंमहादेवं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ हत्वान्धकंत्रिशूलस्तु भोगवत्या जलेययौ ॥ दृष्ट्वाशूलंसुतेजस्कं हाटकोविस्मयङ्गतः ॥ ३ ॥ पप्रच्छकेनकार्येण भवानिहसमागतः ॥ कथयामासशू लोसौ शङ्करेणाहमीरितः ॥ ४ ॥ अन्धकस्यवधार्थाय पापवृत्तेस्सुदुर्मतेः ॥ भित्त्वातमहमायातो भोगवत्याजलेशुभे ॥ ५ ॥ गमिष्यामिपुनस्तत्र यत्रतिष्ठतिशङ्करः ॥ शूलोक्तंवचनंश्रुत्वा परमेशदिदृक्षया ॥ ६ ॥ हाटकश्शूलमार्गेण निर्ज

विदारण कियागया तब शब्द निकला वहां पर देवदेव ॐकार महेश्वरजी उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ वहां नहाकर व पवित्रहोकर समाधि तथा नियम से ॐकार महादेवजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ अन्धकासुर को मारकर त्रिशूल भोगवती के जलमें प्राप्तहुआ और उत्तम तेजस्वी त्रिशूल को देखकर हाट- केश्वरजी विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ और उन्होंने पूंछा कि आप यहां किस कार्य से आयेहो इस शूल ने कहा कि पाप आचरणवाले व दुर्बुद्धि अन्धकासुर के मारने के लिये शिवजीने मुझको पठाया था उसको काटकर मैं भोगवतीके उत्तम जलमें आयाहूं ॥ ४।५ ॥ और फिर वहां जाऊंगा जहां कि सदाशिवजी स्थित हैं त्रिशूलसे

कहेहुये वचन को सुनकर परमेश्वर शिवजीके देखनेकी इच्छा से ॥ ६ ॥ वे हाटकेश्वरजी वेग से त्रिशूल मार्ग के द्वारा निकले बहुत मुखो से संयुत व उत्तम प्रभा-वान् तथा मनोहर ॥ ७ ॥ उन शूलेश हाटकेश्वरजी को फूले कमलकी नाईं देखकर सब देवता प्रसन्न रोमोंवाले होगये ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता-ओं ने अनेक भांति के स्तोत्रोंसे स्तुति किया जो हाटकेश्वर नामक पातालमें टिकेथे ॥ ६ ॥ वे शूल के मार्ग से निकले उसीकारण शूलेश्वर कहेगये हैं और देवदेव जी के उत्तर में धूतपाप नामक तीर्थ है ॥ १० ॥ वहां पर वह पराक्रमी व पापी दैत्येन्द्र शूल से मारागया है उसकारण हे व्यासजी ! यह धूतपाप तीर्थ कहाजाता

गामजवेनसः ॥ बहुवक्त्रसमाकीर्णं सुप्रभंसुमनोरमम् ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वात्रिदशास्सर्वे शूलेशंहाटकेश्वरम् ॥ प्रणम्यहृष्टरोमाणो यथाप्रोत्फुल्लपङ्कजम् ॥ ८ ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ हाटकेश्वरनामासीत्पातालेयोऽव्यवस्थितः ॥ ९ ॥ निर्गतश्शूलमार्गेण तेनशूलेश्वरस्स्मृतः ॥ धूतपापञ्चतीर्थञ्च देवदेवस्यचोत्तरे ॥ १० ॥ तत्रपापस्स दैत्येन्द्रो धूतश्शूलेनवीर्यवान् ॥ तेनतीर्थमिदंव्यास धूतपापंप्रचक्ष्यते ॥ ११ ॥ अष्टम्यांवापौर्णमास्यां चतुर्दश्यांशनौ तथा ॥ उपोष्यरजनीमेकां शिवभक्तोजितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ धूतपापन्तुयःपश्येद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृतैरपि ॥ १३ ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति ॥ कृत्वाभिषेकंयःपश्येत् पौषेमासिसवैनरः ॥ १४ ॥ शूलेश्वरप्रभावेण मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ विमानानांसहस्रेण मृतोयातिपरम्पदम् ॥ १५ ॥ इतिचान्धकशूलोयं यावद्भोगवतीङ्गतः ॥ तावत्समुत्थिताघोरा असुरारुधिरोद्भवाः ॥ १६ ॥ खड्गहस्तामहावीर्या अनेकशतसंख्यया ॥ च

है ॥ ११ ॥ अष्टमी, पौर्णमासी, चौदसि व शनैश्चर दिन में एकरात्रि उपास कर शिवभक्त व जितेन्द्रिय ॥ १२ ॥ जो पुरुष धूतपाप नामक देवदेव महेश्वरजी को देखता है वह सातजन्मों में कियेहुये पातको से छूटजाता है ॥ १३ ॥ और सौ कुलों को उद्धारकर वह शिवलोकको जाताहै और स्नानकर जो मनुष्य पौष महीने में उन शिवजी को देखताहै वह पुरुष ॥ १४ ॥ शूलेश्वरजी के प्रभाव से ब्रह्महत्याकरके छूटजाता है और मरकर वह हजार विमानों के द्वारा परमपदको प्राप्तहोता है ॥ १५ ॥ इसप्रकार अन्धकासुरका यह शूल जबतक भोगवती को गया तबतक रक्तोंसे उपजेहुये भयकर दैत्य उठे ॥ १६ ॥ जोकि बडे बलवान् व तलवार हाथो-

वाले अनेक सौ संख्यकथे चारों दिशाओं में स्थित भयंकर दानवों से मारेजातेहुये व उन दुष्टात्माओं से पीडित महादेवजी ने सिंहनाद छोड़ा याने गरजे और सिंह-
नाद से मूर्च्छित होकर वे पापी पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १७ । १८ ॥ और फिर उठकर वे देवदेव महेश्वरजीके समीपगये तदनन्तर डरेहुये ब्रह्मा व विष्णु आदिक हितैषी
देवता उनको असाध्य मानकर सम्मतिकर तदनन्तर विचार कर स्त्रीको रचैं यह आपही ॥ १९ । २० ॥ कहकर ब्रह्मा ने हंस पै बैठीहुई व चारमुखोंवाली तथा चार
हाथोंवाली और ब्रह्माणी के रूपको धारनेहारी उत्तम स्त्रीको पैदा किया ॥ २१ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजीने उत्तम मयूरवाहनवाली कौमारी स्त्री को उत्पन्न किया जो

तुर्दिक्षुस्थितैर्घोरैर्हन्यमानोमहेश्वरः ॥ १७ ॥ सिंहनादंमुमोचाथपीडितस्तैर्दुरात्मभिः ॥ सिंहनादेनतेपापा मूर्च्छिताः
पतिताभुवि ॥ १८ ॥ पुनस्समुत्थिताजग्मुर्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ वित्रस्ताश्चततोदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १९ ॥ असा
ध्यांस्तांस्तथामत्वा मन्त्रंकृत्वाहितैषिणः ॥ ततोदेवाविचार्याथ स्त्रींसृजामइतिस्वयम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वोत्पादयामास
ब्रह्माहंसासनांशुभाम् ॥ चतुर्वक्त्रांचतुर्हस्तां ब्रह्माणीरूपधारिणीम् ॥ २१ ॥ कुमारश्चैवकौमारीं मयूरवरवाहनाम् ॥ र
क्तमाल्याम्बरधरां शक्तिखड्गंचधारिणीम् ॥ २२ ॥ पुनःकुमारःकौमारीं पक्षीन्द्रवरवाहनाम् ॥ कृष्णांकरालदशनां ध
र्मराजस्तथासृजत ॥ २३ ॥ दैत्यदेहप्रमथिनींदण्डमुद्गरधारिणीम् ॥ ललाटलोचनांनीलां कपालकरभूषिताम् ॥ २४ ॥
सिंहाननधरांकृष्णां सर्वभूषणभूषिताम् ॥ कर्तृहस्तांसखट्वाङ्गां खड्गखेटकधारिणीम् ॥ २५ ॥ चर्मास्थिकेशवपुषं चा
मुण्डामसृजत्प्रभुः ॥ वटस्यनिकटेपूर्वं निर्मितालोकमातरः ॥ २६ ॥ ततोलोकेषुविख्याताः प्रत्यक्षावटमातरः ॥ त

कि अरुणमालाओं व वसनों को धारे तथा शक्ति व तलवारको धारण किये थीं ॥ २२ ॥ और फिर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने काली व कराल दांतोंवाली तथा उत्तम ग-
रुड़ वाहनवाली कौमारी शक्तिको रचा और वैसेही धर्मराज ने रचा ॥ २३ ॥ और दैत्योंके देहको मथनेवाली तथा दण्ड व मुद्गरको धारनेहारी व मस्तकमें नेत्रवाली
और नीलवर्ण व कपाल से शोभित हाथवाली ॥ २४ ॥ व सिंहमुखधारिणी, काली तथा सब भूषणोंसे भूषित व कतरनी हाथवाली और खट्वाङ्ग समेत व तलवार और
खेटक अस्त्रको धारनेहारी ॥ २५ ॥ और चर्म, अस्थि व केश संयुत शरीरवाली चामुण्डाजी को प्रभु (शिव) जीने रचा पहले बरगदके समीप लोकमातृकाओं को

चाहिये ॥ ४७ ॥ और ताम्र पात्रसे संयुक्त पांच कमंडलु बनवानाचाहिये और उनको गुडपिंडमय व लालवसनों से संयुत करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और उनको लाल चन्दन से संयुत व लाल फूलों से पूजितकरै व उनमें एक कमंडलुको तिलों व चावलों से पूर्णकरै ॥ ४९ ॥ और दूसरेको लड्डुवों से पूर्णकरै व तीसरे को दुग्ध से और चौथे को तीर्थों के जलों से व पांचवेंको मूलों से पूर्णकरै ॥ ५० ॥ इसप्रकार करके विधिपूर्वक इस मन्त्रसे अर्घ निवेदनकरै कि कुजके लिये व लोहितांग तथा ग्रहों के मध्य में स्थित के लिये ॥ ५१ ॥ और कार्त्तिकेयानुरूप व सुरूपवान् के लिये बार २ नमस्कार है हे शिवजी के ललाट से उपजेहुये, पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न ! ॥ ५२ ॥

पञ्चवैकरकाःकार्यास्ताम्रपात्रेणसंयुताः ॥ गुडापिण्डमयाःकार्या रक्तवस्त्रसमन्विताः ॥ ४८ ॥ रक्तचन्दनसंयुक्ता रक्तपुष्पैश्चपूजिताः ॥ तिलतण्डुलसम्पूर्णमेकंतत्रैवकारयेत् ॥ ४९ ॥ द्वितीयंलड्डुकैश्चैव तृतीयंपयसातथा ॥ तीर्थाम्बुभिश्चतुर्थञ्च पञ्चमंमूलकैस्तथा ॥ ५० ॥ कृत्वाह्येवंविधानेन मन्त्रेणार्घ्यंनिवेदयेत् ॥ कुजायलोहिताङ्गाय ग्रहमध्यस्थितायच ॥ ५१ ॥ कार्त्तिकेयानुरूपाय सुरूपायनमोनमः ॥ शिवललाटसम्भूत धरणीगर्भसम्भव ॥ ५२ ॥ रूपार्थन्त्वांप्रपन्नोस्मि गृहाणार्घ्यंनमोस्तुते ॥ ज्वलिताङ्गारवर्णाभस्निग्धविद्रुमभासुर ॥ ५३ ॥ पुत्रार्थन्त्वांप्रपन्नोस्मि गृहाणार्घ्यंधरात्मज ॥ आवन्त्यमण्डलेजातो धरण्याञ्चशिवेनवै ॥ ५४ ॥ धनन्देहियशोदेहि रूपन्देहिनमोस्तुते ॥ एवंसम्पूजितेभौमे चतुर्थ्यांद्विजसत्तम ॥ ५५ ॥ भुक्त्वाभोगांस्तथापुत्रान् प्राप्यवैक्षितिमण्डले ॥ मृतस्स्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवन्तीखण्डेङ्गारेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥

मैं रूपके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं अर्घको ग्रहण कीजिये हे जलतेहुये अंगारके समान वर्णवाले, चिक्कण मूगों के समान प्रकाशवान् ! ॥ ५३ ॥ हे पृथ्वी-पुत्र ! मैं पुत्रके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं, अर्घको ग्रहणकीजिये अवन्ती के मडल में शिवजीसे पृथ्वी मे पैदाहुयेहो ॥ ५४ ॥ धनको दीजिये, यशको दीजिये व रूपको दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे द्विजोत्तम ! मंगलचतुर्थी मे इसप्रकार पूजनेपर ॥ ५५ ॥ पृथ्वीमंडल मे भोगो को भोगकर व पुत्रोंको प्राप्तहोकर मरकर तबतक स्वर्गको प्राप्तहोताहै जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायामङ्गारेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । दियो अन्धकासुरहिं जिमि श्री शिवजी वरदान । उंचसवें अध्याय में सोई कियोबखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि राक्षसों का पियाजाताहुआ रक्त जब शेषनरहा तब चामुण्डाका अरुणमुख प्रकाशितहुआ ॥ १ ॥ जो कि कृष्णवर्ण व प्राणियों का अन्तकारक कराल दांतों व ओंठोंवाला और जलतीहुई अग्निके समान केशान्तवाला तथा प्रज्वलित अग्निके समान लोचनोंवाला था ॥ २ ॥ और भयंकरघुर्घुर शब्द से बढ़ेहुये फेत्कार से विस्वरथा व गरुड़पक्षका मुकुट किये तथा पैनी दाढ़ों के अंकुरों से उज्ज्वल था ॥ ३ ॥ उस मुखमें कपाल के अग्रभाग को धरकर क्रोधित मुखवाली व प्रचण्ड भुजदण्डों से शोभित चण्डिका ने रक्त पिया ॥ ४ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ नास्तिशेषंयदारक्तं पीयमानञ्चरक्षसाम् ॥ चामुण्डायास्ततोरक्त मभूदास्यञ्चभास्वरम् ॥ १ ॥ कृष्णंभूतान्तकल्पान्तकरालदशनाधरम् ॥ प्रज्वलद्वह्निकेशान्तं ज्वलज्ज्वलनलोचनम् ॥ २ ॥ घोरघुर्घुरनिर्घोषस्फीतफेत्कारविस्वरम् ॥ तार्क्ष्यपक्षकृतापीडं तीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरोज्ज्वलम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्मुखेकपालाग्रं निधायरुषिताननाः ॥ अपिबद्रुधिरञ्चण्डी चण्डदोर्दण्डमण्डिता ॥ ४ ॥ तयापिबन्त्यादैत्येन्द्रश्शरीरेकृशताङ्गतः ॥ सर्वासंहृत्यमायाया बलक्षीणमथाकरोत् ॥ ५ ॥ तीव्रंभयंसमासाद्य प्राणत्राणपरायणः ॥ दृष्ट्वानान्याङ्गतिंलोके दैत्यस्तुष्टावशङ्करम् ॥६॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा रोमाञ्चितशरीरकः ॥ सात्त्विकंभावमापन्नस्त्यक्त्वाचैवरजस्तमः॥ ७॥लोकानांकारणन्देवं विबुधाधिपतिंविभुम् ॥ शश्वद्बुध्यान्वितोभक्त्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥ श्लाघ्यंशिवंचतुष्टाव देवंचन्द्रार्द्धशेखरम् ॥ ८ ॥ कृत्स्नस्ययोऽस्यजगतःसचराचरस्य कर्ताकृतस्यचतथासुखदुःखदाता॥संसारहेतुरपियःपुनरन्तकाल

पीती हुई उन चण्डिका से दैत्येन्द्र अन्धक शरीर में दुर्बलताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर जो मायाथीं उन सबोंको संहारकर बलको क्षीणकिया ॥ ५ ॥ व तीक्ष्ण भयको प्राप्तहोकर प्राणों की रक्षा में तत्पर दैत्य ने अन्यगति को न देखकर शिवजी की स्तुति किया ॥ ६ ॥ हाथोंको जोड़कर रोमांचित देहवाला वह दैत्य रजोगुण व तमोगुणको छोड़कर सात्त्विक भावको प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ व निरन्तर बुद्धि से संयुत उस दैत्य ने निर्मल चित्तसे लोकों के कारण, देवपति,प्रशंसनीय व व्यापक तथा अर्द्धचन्द्रभाल शिवदेवजी की स्तुति किया ॥ ८ ॥ कि समस्त चराचर इस संसार का जो कर्ता है व किये कर्म का जो सुख दुःखदायक है व संसारका कारण भी हो-

कर जो अन्तकाल है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ ९ ॥ सावधान मनवाले व निवृत्त कामनाओंवाले और मोह, तम व रजसे रहित समस्त बुद्धिवाले योगी लोग जिन अमित व दिव्य मूर्तिवाले शिवजी का ध्यान करते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १० ॥ और शोभित किरणोंवाले निर्मल चन्द्रखण्डको बांधकर जो सदैव मस्तक से गंगाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने वाये अंग में गिरिराजकुमारी को धारणकिया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मै प्राप्तहोताहूं ॥ ११ ॥ और सिद्धों व चारणों से सेवित चरणकमलवाले जिन्हो ने बडी लहरियोंसे विषम व आकाशसे गिरती तथा त्रि-

स्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ ९ ॥ यंयोगिनोविगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसोविनिवृत्तकामाः ॥ ध्यायन्तिचाखिलधियोमितदिव्यमूर्त्तिं तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १० ॥ यश्चन्द्रखण्डममलंविलसन्मयूखं वद्धा सदासुरधुनींशिरसाविभर्ति॥वामाङ्ककेविधृतवान्गिरिराजपुत्रीं तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि॥ ११॥ यस्सिद्धचारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गांमहोर्मिविषमांगगनात्पतन्तीम् ॥ मूर्द्धादधेस्रजमिवत्रिजगत्पुनन्तींतंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि॥ १२ ॥ कैलासगोत्रशिखरेपरिकम्पमाने कैलासश्रृङ्गसदृशेनदशाननेन ॥ यःपादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १३ ॥ दक्षाध्वरेतुनयनेचतथाभगस्य पूष्णस्तथादशनपङ्क्तिमशातयद्यः ॥ व्यस्तम्भयत्कुलिशहस्तमथेन्द्रमीशं तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि॥ १४ ॥ येनासकृद्दितिसुताश्चदनोस्सुताश्च विद्याधरोरगगणाश्चव

लोकको पवित्र करतीहुई गंगाजी को मस्तक से मालाकी नाई धारण किया है उनशरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १२ ॥ और सब ओर से कांपते हुये कैलासपर्वत के शिखर पै कैलास शिखर के समान दशमस्तकोंवाले रावण से जो चरणकमल के पीडन से सेवा किये जाते हैं उन शरणदायक शंकरजीकी शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १३ ॥ व जिन्होंने दक्ष के यज्ञमें भगदेवता के नेत्रों को व पूषाके दातों की पंक्तिको गिरादिया है व वज्रहाथवाले ईश्वर इन्द्रजी को स्तंभित किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूं ॥ १४ ॥ व जिन्होंने दिति के पुत्र (दैत्य) व दनु के पुत्र (दानव) तथा विद्याधर व नाग-

गण सब उत्तम वरदानों से युक्त कियेगये व फल मूल खानेवाले मुनीश्वरवरों से संयुक्त कियेगये हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होताहूं ॥ १५ ॥
व ऐसा करने पर भी विषयोंमें लगेहुए भाववाले पुरुष जिनसे ज्ञान व शास्त्रों के गुणों से भी युक्त होकर जिनके भलीभांति आश्रित मनुष्य सुखके भोगी होते हैं
उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मै प्राप्त होताहू ॥ १६ ॥ और स्वामिकार्तिकेय समेत ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु व मरुत देवताओं को जिन भगवान् महेशजी ने
बहुत वरदानोंको दिया है व जिन्हों ने सूतको मृत्युके मुखसे फिर उद्धारा है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १७ ॥ और हिमाचल के कुञ्जमें

॥ १५ ॥ एवंकृतेपिविषयेष्वपिसक्तभावा

रैस्समग्राः॥ संयोजितामुनिवराःफलमूलभक्षास्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १५ ॥ एवंकृतेपिविषयेष्वपिसक्तभावा
ज्ञानेनचश्रुतगुणैरपियेनयुक्ताः ॥ यंसंश्रितास्सुखभुजःपुरुषाःभवन्ति तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १६ ॥ ब्रह्मेन्द्रवि
ष्णुमरुतांचसषण्मुखानां योदाद्वरान्सुबहुशोभगवान्महेशः ॥ सूतञ्चमृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तंशङ्करंशरणदंशरणंव्र
जामि ॥ १७ ॥ आराधितस्तुतपसाहिमवन्निकुञ्जे धूम्राव्रतेनतपसापिपरैरगम्यः ॥ सञ्जीविनीमदितयोभृगवेमहा
त्मा तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १८ ॥ क्रीडार्थमेवभगवान्भुवनानिसप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ॥ स
ब्रह्मकानिसमृजेसुकृताभिधानि तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १९ ॥ यस्सव्यपाणिकमलाग्रनखेनदेवस्तत्पञ्चमंप्रस
भमेवकरालरन्ध्रम् ॥ ब्राह्मयंशिरस्तरणिपद्मनिभश्चकर्त तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ २० ॥ येत्वांसुरोत्तमगुरुंपुरु

तपस्या से आराधना कियेहुये व धूम्र से घिरे से तप से भी अन्यजनों से अगम्य जिन महात्मा ने भृगुजी के लिये संजीविनी विद्याको दिया है उन शरणदायक
शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहू ॥ १८ ॥ व जिन भगवान् शिवजी ने अनेक प्रकारकी नदी, पक्षी व वृक्षों से शोभित तथा पुण्यनामवाले ब्रह्मलोक समेत सात
लोकोंको क्रीड़ाही के लिये रचाहै उन शरणदायक शकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १९ ॥ व जिनदेवजी ने बांये हस्तकमल के अग्रनख से सूर्य व कमलके
समान तथा भयंकर छिद्रवाले उस ब्रह्माके पांचवें शिरको हठही से काटडाला है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्तहोताहू ॥ २० ॥ हे सुरोत्तम ! जो मूढ

पुरुष चराचर समेत इस संसार के गुरु तुमको नहीं जानते हैं हे महेशजी ! ऐश्वर्य व मान के विनाशके कारण वे पश्चात् पीडाको भोगते हैं जैसे कि मैं हूं ॥ २१ ॥ पवित्र कर्मोंवाला जो शिवभक्त पुरुष सदैव इस स्तोत्रकोपढ़ता है ब्राह्मणों की सभा में सदैव शुभ कर्मवाला वह अखण्ड शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करतेहुये उनके पूर्ण सौ वर्षके अन्तमें शूल हाथ वाले वृषध्वज शिवदेवजी प्रसन्न होकर बोले ॥ २३ ॥ कि हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूं तुम्हारा कल्याणहोवै इस समय तुम निर्मल हुयेहो तुमको मैं दिव्यनेत्रको देताहूं ज्वररहित तुम मुझको देखो ॥ २४ ॥ हे दानवोत्तम ! तुम्हारे मन से भी जो कुछ

षाविमूढा जानन्तिनास्यजगतस्सचराचरस्य ॥ ऐश्वर्यमानविगमेनमहेशपश्चात्तेयातनामनुभवन्तियथाहमेव ॥२१॥ यःपठेत्स्तवमिदंशुचिकर्मा यःशृणोतिसततंशिवभक्तः ॥ विप्रसंसदिसदाशुभकर्मा सप्रयातिशिवलोकमखण्डम् ॥ २२ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ तस्यैवंस्तुवतोदेवः शूलपाणिर्वृषध्वजः ॥ पूर्णेवर्षशतस्यान्ते प्रीतःप्रोवाचशङ्करः ॥ २३ ॥ पुत्रतुष्टोस्मिभद्रन्ते जातस्त्वंनिर्मलोऽधुना ॥ दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमांविगतज्वरः ॥ २४ ॥ यच्चतेमनसावापि किञ्चिच्चाकाङ्क्षितंफलम् ॥ तत्तेसर्वंप्रदास्यामि ब्रूहिदानवसत्तम ॥ २५ ॥ अन्धकउवाच ॥ ब्राह्मयंवैष्णवमैन्द्रंवापद्माह्यक्षिलक्षणम् ॥ विदितंममतत्सर्वं मनागपिनकाङ्क्षये ॥ २६ ॥ यदितुष्टोसिदेवेश गाणपत्यंददस्वमे ॥ सविशेषंविशुद्धञ्च तदक्षरञ्चसर्वदा ॥ २७ ॥ शिवउवाच ॥ अमरोजरयात्यक्तस्सर्वदुःखविवर्जितः ॥ भविष्यसिगणाध्यक्षस्सर्वलोकनमस्कृतः ॥२८॥ कामरूपीमहायोगी महासत्त्वोमहाबलः ॥ अणिमादिगुणैर्युक्तः प्रियश्चममसर्वदा ॥ २९ ॥ सनत्कुमा

चाहाहुआ फल होवै उस सब को तुम्हें दूंगा कहिये ॥ २५ ॥ अन्धक बोला कि ब्रह्मा, विष्णु, व इन्द्रका जो आवृत्तिलक्षणवाला स्थान है उस सबको मैं जानता हूं इससे कुछभी नहीं चाहताहूं ॥ २६ ॥ हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो तो मुझको गणाध्यक्षता को दीजिये जोकि विशेषता समेत तथा पवित्र और सदैव अक्षयहो ॥ २७ ॥ शिवजी बोले कि अमर व वृद्धतासे छोड़ेहुये तथा सब दुःखों से रहित और सब मनुष्यों से नमस्कार कियेहुये गणाध्यक्ष होवो ॥ २८ ॥ व कामरूपी महा-

योगी, महाप्रभाववान् व महाबलवान् और अणिमादि गुणों से संयुत व मुझको सदैव प्रियहोवोगे ॥ २९ ॥ [illegible]
वह श्रीमान् अन्धक महादेवजीका गणहोकर वहीं अन्तर्द्धान होगया ॥ ३० ॥ अन्धक के जानेपर तदनन्तर ब्रह्माणी आदिक देवियां वहां भलीभांति आईं जहां कि अन्धक के वरदायक वे भगवान् शिवदेवजी थे ॥ ३१ ॥ और उन्होंने महादेवजी की स्तुति किया इसके अनन्तर महादेवजी प्रसन्नहुये और महेशजी से समझाई हुई चामुण्डा भी कल्याणदायिनी हुई ॥ ३२ ॥ व उनके आगे स्थित तथा प्रणाम किये हुये शङ्करजीको देखकर ब्रह्मादिक देवताओं ने भी विविध स्तुतियों से स्तुति

गतेऽन्धकेततो रउवाच ॥ ततश्चसोऽन्धकःश्रीमान्वराँल्लब्ध्वासुदुर्लभान् ॥ महादेवगणोभूत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥ देव्यो ब्रह्माण्याद्यास्समागताः ॥ सदेवोयत्रभगवानन्धकस्यवरप्रदः ॥ ३१ ॥ तास्तुष्टुवुर्महादेव मथतुष्टोमहेश्वरः ॥ चामुण्डापिमहेशेन समाश्वस्ताशिवाभवत् ॥ ३२ ॥ शङ्करंप्रणतंदृष्ट्वा तासामग्रेव्यवस्थितम् ॥ ब्रह्मादयोपितेदेवास्तु ष्टुवुर्विविधैस्स्तवैः ॥ ३३ ॥ प्रशान्तास्तायदाहृष्टाः शम्भुनारुधिराशनाः ॥ तदावोचदिदंवाक्यं तासांस्थित्यर्थमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ आवन्त्यविषयेसर्वा यस्माज्जातामहाबलाः ॥ आवन्त्यमातरस्तस्मात् ख्यातालोकेभविष्यथ ॥ ३५ ॥ अवन्त्यांप्रीतिसम्पन्नास्सर्वपापप्रणाशिकाः ॥ स्थिरावसन्त्योलोकानां वरदाश्चभविष्यथ ॥ ३६ ॥ श्रावणस्यतुमासस्यामावस्यायांसमाहिताः ॥ येद्रक्ष्यन्तिसदाभक्त्या तेषांलोकामहोदयाः ॥ ३७ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान् धनार्थीलभते धनम् ॥ रूपवान्सुभगोभोगी सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३८ ॥ हंसयुक्तेनयानेन पितृलोकेमहीयते ॥ पुरीमिमाञ्चरक्षध्वं कल्पे

किया ॥ ३३ ॥ जब रक्तभोजनवाली वे शान्तदेवियां शिवजी से प्रसन्न हुई तब उनकी स्थिति के लिये शिवजी यह उत्तम वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि जिस लिये आवन्ती देश में तुम सब महाबलवती उत्पन्न हुईहो इस कारण संसार में आवन्त्यमातृका प्रसिद्ध होवोगी ॥ ३५ ॥ व सब पातकों को विनाशनेवाली तथा प्रीति से [illegible] आवन्ती में स्थिर होकर बसतीहुई तुम सब मनुष्योंको वरदायिनी होवोगी ॥ ३६ ॥ और श्रावण महीनेकी अमावस में सावधान होतेहुये जो मनुष्य सदैव भक्ति [illegible] को देखेंगे उनको बड़े ऐश्वर्यवाले लोक होवेंगे ॥ ३७ ॥ और बिन पुत्रवाला पुरुष पुत्रों को पाता है व धनको चाहनेवाला धन पाताहै और रूपवान्

उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुखी व सब शास्त्रों में चतुर होताहै ॥ ३८ ॥ और वह पुरुष हंससंयुत विमान के द्वारा जाकर पितृलोकमें पूजा जाताहै प्रति कल्पमें क्रमसे तुम सब इस पुरी की रक्षाकरो ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर दैत्यों व देवताओं के गणेश्वरों तथा रुद्रगणों से स्तुति कियेजातेहुये देवेश शिवजी कैलासपर्वत को चले गये ॥ ४० ॥ जो पुरुष कहनेयोग्य इस कीर्ति को श्रद्धा से कहता व सुनताहै वह दैत्यों व देवगणों का नायक होताहै और देवगणों व दनुजनाथोंसे पूजित तथा समस्त सुखोंके निधान अनन्त शिवलोक को जाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामन्धकवृत्तान्तंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

कल्पेक्रमेणतु ॥३९॥ एवमुक्त्वाचदेवेशो गतःकैलासपर्वतम् ॥ स्तूयमानोगणै रौद्रैर्दैत्यामरगणेश्वरैः ॥ ४० ॥ असुरसुरगणानां नायकस्यानुकीर्त्तिं कथयतिकथनीयां श्रद्धयायःशृणोति ॥ सकलसुखनिधानं रुद्रलोकंसकान्तं सुरगणदनुनाथैरर्चितंयात्यनन्तम् ॥४१॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेअन्धकवृत्तान्तंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

व्यासउवाच ॥ भगवन्क्षेत्रमाहात्म्यं कथितञ्चयथातथम् ॥ तीर्थानामुत्तमन्तीर्थं पुण्यानांपुण्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥ कतिसन्त्यत्रतीर्थानि लिङ्गानिचतथाकति ॥ कथयस्वप्रसादेन पृच्छतोममसाम्प्रतम् ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ महाकालवनेव्यास लिङ्गसंख्यानविद्यते ॥ ३ ॥ अकामोवासकामोवा जायतेयोत्रमानवः ॥ महाकालवनेरम्ये शिवलोकेमहीयते ॥ ४ ॥ कर्कराजादितीर्थानि प्रासादायतनानिच ॥ तेषुस्ना

दो० । महाकाल शिव देवकर अति अद्भुत माहात्म्य । पचासवें अध्यायमे सोइ चरितयाथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! आपने क्षेत्र के माहात्म्य को यथायोग्य कहा जो कि पवित्र तीर्थों के मध्यमें उत्तम तीर्थ है व पुण्य को बढानेवाला है ॥ १ ॥ यहां पर कितने तीर्थ व कितने लिङ्गहैं इस समय पूंछते हुये मुझसे इस को प्रसन्नतासे कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! साठकरोड़ हजार व साठकरोड सौ महाकाल वन में तीर्थ है और लिंगों की संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ३ ॥ जो कामना रहित व कामना समेत मनुष्य इस सुन्दर महाकाल वन में उत्पन्न होताहै वह शिवलोकमे पूजाजाताहै ॥ ४ ॥ जो कर्कराजादिक तीर्थ व देव

मन्दिर हैं उनमें नहाकर व पवित्रहोकर मनुष्य शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ५॥ जो पवित्र सब तीर्थ हैं व सम्पूर्णता से सिद्धक्षेत्र हैं उनमें इसको बहुत मुख्यक्षेत्र
व उत्तम तीर्थ जानिये ॥ ६ ॥ जो बड़ी भक्तिसे इस चरित्रको सुनता है वह उत्तमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि
तायांभाषाटीकायांमहाकालमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। भयो अवन्ती पुरी कर कनक शृंग जिमि नाम। इक्यावनवें में कह्यो सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! संसारके भयको नाशनेवाले

त्वाशुचिर्भूत्वा शिवलोकेमहीयते ॥ ५ ॥ पुण्यानिसर्वतीर्थानि सिद्धक्षेत्राणिसर्वतः ॥ तेषांमुख्यतमंविद्धि क्षेत्रंती
र्थंतथोत्तमम् ॥ ६ ॥ यःशृणोतिमहाभक्त्या सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकाल
माहात्म्यन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं भवभीतिविनाशकम् ॥ १ ॥ ईश्वरस्थानमाख्यातं समंतात्साग्रयोजनम् ॥ यत्रक्षे
त्रेमृतामर्त्यास्सदाचारास्तथेतरे ॥ २ ॥ विमानस्थापुरेनूनमैश्वरेतेवसन्तिच ॥ यत्रकीटपतङ्गाद्या मृतायान्तिपराङ्ग
तिम् ॥ ३ ॥ किंतीर्थंपुण्यमन्यच्च महाकालवनादृते ॥ तस्माद्ब्रूहिममैकन्तु प्रश्नंतथ्येनसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ कथंकन
कशृङ्गेति ख्याताह्येषापुरामुने ॥ कुशस्थलीकथन्नाम तथाऽवन्तीकथंस्मृता ॥ ५ ॥ पद्मावतीकथंसाधो कथमुज्जयि
नीतथा ॥ नाम्नांहेतुमथाप्येषां ब्रूहित्वंमुनिसत्तम ॥ ६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासप्रवक्ष्यामि यथापूर्वंविरञ्चि

सब शिवस्थानको कहा जोकि सब ओरसे कुछ अधिक योजन भर है उत्तम आचारवाले व अन्य मनुष्य जिस क्षेत्रमें मरकर ॥ १ । २ ॥ विमानों पै स्थित होकर
निश्चयकर शिवलोक में बसते हैं व कीट पतंगादिक जहां मरकर उत्तम गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ३ ॥ महाकाल वन के सिवाय अन्य कौन पवित्र तीर्थ है इसलिये इस
समय मुझ से एक प्रश्नको सत्यता से कहिये ॥ ४ ॥ हे मुने ! पुरातन समय यह कनकशृंगा ऐसी कैसे प्रसिद्ध हुई व कैसे कुशस्थली नाम हुआ और किस कारण
अवन्ती कहीगई है ॥ ५ ॥ हे साधो ! कैसे पद्मावती और कैसे उज्जयिनी कहीगईहै हे मुनिश्रेष्ठ ! इन नामोंका तुम कारणकहो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्या-

सजी ! सुनिये मैं कहताहूं कि जिसप्रकार पहले ब्रह्मा ने पुरातन गौरकल्पमें वामदेवजी के लिये कहा है ॥७॥ और भगवान् महादेवजी ने व ब्रह्माजी ने इन हेतुवों मे कहाहै व्यासजी बोले कि पृथ्वी में स्वर्ग से गिरे व निवसतेहुये मनुष्यों को किस कारण सुखहोताहै ॥८॥ और अपनी इच्छाके अनुकूल आचार व विहारवाले पुरुषों को किस प्रकार स्वर्ग की प्राप्तिहोती है और बहुत पुण्यवान् और पापहारी कौन श्रेष्ठ देश है ॥ ९ ॥ व हे भगवन् ! कहा बसते हुये मनुष्यों को किस कारण सुख होताहै व हे लोकेश ! कहा बसतेहुये मनुष्यों को इस लोक व परलोकवाला आनन्द होताहै ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सब देहधारियोके हितके लिये मुझसे यह कहिये

ना ॥ कथितंवामदेवाय गौरकल्पेपुरातने ॥ ७ ॥ महेश्वरश्चभगवान् विधाताचात्रहेतुषु ॥ व्यासउवाच ॥ जगत्यांस्वश्च्युतानाञ्च कुतोनिवसतांसुखम् ॥ ८ ॥ स्वर्गप्राप्तिश्चभवति स्वेच्छाचारविहारिणाम् ॥ कोतिपुण्यतमःश्रेष्ठः प्रदेशःपापहारकः ॥ ९ ॥ कुतोनिर्वृतिर्भगवन् जायतेवसतांकचित ॥ वसतामपिलोकेश ऐहिकीपारलौकिकी ॥ १० ॥ एतन्मेभगवन्ब्रूहि हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवमादौपुराकल्पे प्रोक्तःपृष्टस्सशम्भुना ॥ ११ ॥ प्रोवाचपार्वतीकान्तं प्रभुःप्रीतःपितामहः ॥ भगवन्सर्वकर्तात्वंसर्वदर्शीसदाशिवः ॥ १२ ॥ अजानन्निवत्वंसर्वं मांपृच्छसि सनातन ॥ यत्रकल्पान्तकोवह्नि रधोज्वालःप्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥ सत्वमेवमहाकाल सर्वंचज्ञायतेत्वया ॥ नाथयेमानवास्तत्र सदाचारास्तथापरे ॥ १४ ॥ निवसन्तिनतेमर्त्यास्सुरास्तेनचमानुषाः ॥ लभन्तेचपुनःस्वर्गं मृतावैकालपर्यये ॥ १५ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसीप्रकार पहले कल्प में शिवजी से पूंछे हुये जब उन ब्रह्मा ने कहा है ॥ ११ ॥ प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मा स्वामी ने पार्वती के पति शिवजी से कहा कि हे भगवन् ! आप सदाशिवजी सब करनेवाले व सब को देखनेवाले हो ॥ १२ ॥ हे सनातन ! न जानतेहुये से तुम मुझ से सब पूंछतेहो नीचे ज्वालावाली कल्पान्तक अग्नि जिसमें प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ हे महाकालजी ! वह तुम्हींहो और तुम से सब जाना जाताहै हे नाथ ! उत्तम आचारवाले तथा अन्य जो मनुष्य वहां ॥ १४ ॥ बसते हैं वे मनुष्य नहीं हैं किन्तु वे देवता हैं मनुज नहीं हैं और कालके उल्लंघन में मरकर वे फिर स्वर्गको पाते हैं ॥ १५ ॥

और वहां पर सुन्दर मन्दिरोंवाली उत्तम पुरी वर्तमान है उसमें अनेक भांति के बिचित्र मन्दिर शोभित हैं ॥ १६ ॥ और सोने के शिखरवाले मन्दिरों को विश्वकर्मा ने रचाहै व जहां पर कि देवता तथा अनेक भांति के तीर्थ सदैव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ मैं पहले कल्प में वहा स्थित था जहां कि तुम व केशवजी थे और उसी अवन्ती पुरी को देखनेके लिये सब लोग ॥ १८ ॥ व देवर्षि, सिद्ध, यक्ष, किन्नर, व दानव कमलयोनि ब्रह्मा व शिवजी समेत आये ॥ १९ ॥ वैसेही देवताओं की प्यारी सुन्दरीभी हज़ारों स्त्रियां अति अद्भुत पुरीको देखनेके लिये आईं ॥ २० ॥ उससमय देवताओं समेत महेशदेवजीने सुन्दरी नगरीको देखने के लिये आकर

वर्ततेचपुरीतत्र रम्यहर्म्यासुशोभना ॥ तस्यांभान्तिविचित्राणि हर्म्याणिविविधानिच ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गाश्चप्रासादाः विहिताविश्वकर्मणा ॥ देवास्सन्तिसदायत्र तीर्थानिविविधानिच ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पेस्थितोहञ्च यत्रत्वंकेशवस्तथा ॥ तामेवचपुरींद्रष्टुं सर्वेलोकाह्यवन्तिकाम् ॥ १८ ॥ तथादेवर्षयःसिद्धा यक्षकिन्नरदानवाः ॥ आजग्मुस्स्थाणुना सार्द्धं वेधसापद्मयोनिना ॥ १९ ॥ तथैवचवरानार्य्यो देवानामपिवल्लभाः ॥ समापेतुस्सहस्राणि द्रष्टुमत्यद्भुताम्पुरीम् ॥ २० ॥ आगत्यचतदादेवस्सहदेवैर्महेश्वरः ॥ वीक्षितुंनगरींरम्या मपश्यदावृतान्तथा ॥ २१ ॥ प्रासादैस्स्वर्णशृङ्गाढ्यैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ विश्वरूपोहिभगवान् राजाविश्वैकनायकः ॥ २२ ॥ तत्रास्तेशोभनेदिव्ये प्रासादेमणिभूषिते ॥ सेव्यमानस्सुरैस्सिद्धैर्मुनिविद्याधरोरगैः ॥ २३ ॥ ततोमहेशश्चपितामहश्च समेत्यतंविश्वपतिंववन्दतुः ॥ समर्चितौतौविधिनासमादरात् सहानुगावागमनंत्वपृच्छत् ॥ २४ ॥ किमागतौवैत्रिदिवान्महीतलं सहानुगावीशकजेश

॥ २१ । २२ ॥ वहा मणियों से वैसेही सोने के शृंगों से संयुत व मणियों तथा रत्नों से मन्दिरों से घिरी हुई देखा और संसार के एकही स्वामी भगवान् विश्वरूप राजा भूषित दिव्य उत्तम मन्दिर में स्थित हैं जोकि देवता, सिद्ध, मुनि, विद्याधर व नागों से सेवा कियेजाते थे ॥ २३ ॥ तदनन्तर महादेव व ब्रह्माजी ने भलीभांति आकर उन जगदीशजी को प्रणाम किया और सेवकों समेत विधि से आदरपूर्वक पूजेहुये उनसे आगमन पूंछा ॥ २४ ॥ कि हे ईश ! हे जलजेश ! अनुगामियों समेत

तुम दोनों आकाश से पृथ्वी में किसलिये आये हो यह कहिये तदनन्तर वे कमल से उपजेहुये ब्रह्मा व ईश्वर बोले कि जहां एकान्त में आपहो वहां हम दोनों को स्नेह है ॥ २५ ॥ और तुम्हारे विना देवालय (स्वर्ग) व पृथ्वी तथा रसातलमें सुख नहीं है और तुमने स्वर्ण शिखरवाली तथा मन्दिरोंवाली विचित्र पुरीको कब स्थापित कियाहै ॥ २६ ॥ हे ईश ! मैंने तुम्हारेही लिये समस्त गुणोंकी खानि व विशेष कर शोभित पुरीको रचाहै तुम यहांपर हम दोनोंको स्थान दीजिये तदनन्तर प्रसन्न मनवाले शिवजी शीघ्रही बोले ॥ २७ ॥ कि तुम दोनों को मैं यहांपर प्रियस्थानको दूंगा कि ब्रह्माके उत्तर ओर तुम्हारी स्थिति होगी हे महेश्वरजी ! तुम दक्षिणस्थान

कथ्यताम् ॥ ततस्तुतावुचतुरब्जजेश्वरौ भवान्नहोयत्रचतत्रनौरतिः ॥ २५ ॥ त्वयाविनानैवसुरालयेसुखं महीतलेवापि रसातलेस्ति ॥ कदात्वयाकाञ्चनशेखरापुरी निवेशितावेश्मवतीविचित्रा ॥ २६ ॥ त्वदर्थमेवेशविशेषशालिनी सृष्टाहिवैसर्वगुणाकरामया ॥ प्रयच्छस्थानंत्वमिहावयोरिह ततोजगादाशुप्रसन्नमानसः ॥ २७ ॥ ददाम्यभीष्टंयुवयोरिहालयं प्रजापतेरुत्तरतस्तवस्थितिः ॥ महेश्वरत्वंव्रजदक्षिणालयं स्थानंसुदत्तंयुवयोस्सुशोभनम् ॥ २८ ॥ महाकालोह्यधोज्वाल आगादात्मप्रभुस्सदा ॥ गणैरनेकसाहस्रैरावृतःपरमेश्वरः ॥ २९ ॥ क्रीडितानगरीसृष्टा सर्वभूतहितैषिणा ॥ मयायद्युवयोर्दत्ता विवाहालयमात्मनः ॥ ३० ॥ भवद्भ्यांहेमशृङ्गेति यस्माचसमुदीरिता ॥ पुरीकनकशृङ्गेति लोकेख्याताभविष्यति ॥ ३१ ॥ एवंकनकशृङ्गेति प्रथमन्नामकथ्यते॥जपन्तश्चस्थितायत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३२॥ नित्यंरमन्तिभक्तानां सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीकनकशृङ्गाभिधानन्नामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥

को जावो मैंने तुम दोनों को उत्तम स्थानदिया ॥ २८ ॥ और अनेकों हज़ार गणों से घिरेहुये व सदैव नीचे ज्वालाओंवाले तथा आत्मस्वामी सदाशिव परमेश्वरजी आये ॥ २९ ॥ और समस्त प्राणियों के हितैषी तथा क्रीड़ा करतेहुये मैंने नगरी को रचा है और मैंने जिसलिये अपने विवाह स्थानको तुम दोनों को दिया ॥ ३० ॥ और आप दोनोंसे जिसलिये हेमशृंगा कहीगई उस कारण संसारमें कनकशृंगा ऐसी पुरी प्रसिद्ध होगी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कनकशृंगा ऐसा पहला नाम कहाजा-

ताहै और जपतेहुये ब्रह्मा, विष्णु व महादेवजी जहां पर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ और भक्तोंको समस्त मनोरथोंके देनेवाले ये नित्यही रमण (क्रीड़ा) करते हैं ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाकनकशृङ्गाभिधानंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कुशस्थली जिमि नाम । बावनवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जिसप्रकार यह कुशस्थली कहीजाती है उसको सुनिये ॥ १ ॥ कि ब्रह्मा ने दैत्यों व दानवों तथा राक्षसोंवाले संसारको रचा है जोकि आपस में अहंकार से मत्त व परस्पर में सदैव द्वेषकारक है ॥ २ ॥ देवता, दानव व राक्षस नित्यही ईर्षा संयुत हुये व मनुष्यों के साथ तथा सिद्ध विद्याधरों के साथ ईर्षा संयुक्त हुये ॥ ३ ॥ व चारण किन्नरों के साथ

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथेयन्तु प्रोच्यतेहिकुशस्थली ॥ १ ॥ वेधसासृजितंविश्वं दैत्यदानवराक्षसम् ॥ अन्योन्यमदसंमत्त मन्योन्यद्वेषिणंसदा ॥ २ ॥ देवाश्चदानवारक्षो नित्यंस्पर्द्धासमन्विताः ॥ मनुष्यामनुजैस्सार्द्धं सिद्धाविद्याधरैस्सह ॥ ३ ॥ चारणाःकिन्नरैस्सार्द्ध मेवन्तेद्वेषतत्पराः ॥ युद्धंकुर्वन्तिसततं संविस्पष्टार्थयागिरा ॥ ४ ॥ सर्वेचैवन्तुबलिनो दुर्बलैर्मनुजैस्सह ॥ पशवःपशुभिस्सार्द्धंपक्षिणस्सहपक्षिभिः ॥ ५ ॥ एवमन्योन्यमन्यैश्च निर्मर्यादमिदंजगत् ॥ तस्माद्विश्वस्यकर्तारं विष्णुंविश्वेश्वरंपरम् ॥ ६ ॥ व्रजामिशरणन्देवं शरणार्त्तिहरंहरिम् ॥ एवंमनसिसन्धाय दध्यौध्यानेनमाधवम् ॥ ७ ॥ ततोध्यातोमहायोगी विश्वरूपधरोहरिः ॥ लोहदण्डधरःश्रीमानिदमाह पितामहम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मन्ध्यातस्त्वयासम्यक् ध्यानयोगेनपश्यमाम् ॥ समायातंयथाध्यातं जनतांपातुमुद्यतम् ॥ ९ ॥

स्पर्द्धा संयुक्त हुये इसप्रकार शत्रुता में तत्पर वे सदैव प्रकटवाणी से युद्ध करतेथे ॥ ४ ॥ इसी प्रकार सब बलवान् दुर्बल मनुष्यों के साथ व पशुवों से पशु तथा पक्षियों से पक्षी युद्ध करते थे ॥ ५ ॥ इस प्रकार आपस में अन्य प्राणियों से भी यह संसार मर्याद रहित होगया इसलिये ब्रह्माने चिन्तवन किया कि मैं संसार के रचनेवाले परम विश्वेश्वर विष्णुजी की ॥ ६ ॥ शरण मे प्राप्तहोऊं जो विष्णुदेवजी कि शरणागत दुःखहारक हैं इसप्रकार मन में विचारकर उन्होंने ध्यान से विष्णुजीका ध्यान किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर ध्यान कियेहुये विश्वरूपधारी श्रीमान् विष्णु महायोगीने लोहके दण्डको धारण कर ब्रह्माजी से यह कहा ॥ ८ ॥ कि हेब्रह्मन् ! तुम

ने मुझको ध्यान योगसे भलीभांति ध्यान किया इस लिये भलीभांति आये व ध्यान किये हुये तथा प्राणिगणों की रक्षा करने के लिये उद्यत मुझको देखिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने इस वचन को सुनकर व ध्यानको छोड़ देखकर सावधान मन से आगे पूजन करते हुये उठकर प्रणाम किया ॥ १० ॥ पाद्य आचमनीय व मधुपर्क से अच्युत विष्णुजी को पूजकर फिर कमल से उपजेहुये ब्रह्माजी ने कहा ॥ ११ ॥ कि हे देवदेव, जगदीशजी ! मुझ से रचाहुआ यह संसार हे विष्णो, हरे ! स्थित होने के लिये नहीं योग्य है ॥ १२ ॥ इस पवित्र संसारके तुम्हीं पालकहो अन्य नहीं है तुमसे यह समस्त संसार है इसलिये तुम पालन करो ॥ १३ ॥ यक्ष,

ततोधातानिशम्यैतत्त्यक्त्वाध्यानमवेक्ष्यच ॥ समुत्थायैकमनसा नमश्चक्रेऽर्चयन्पुरः ॥ १० ॥ पाद्येनाचमनीयेन मधुपर्केणकेशवम् ॥ पूजयित्वापुनर्वाक्य मुवाचाच्युतमब्जजः ॥ ११ ॥ देवदेवजगन्नाथ जगत्सृष्टमिदंमया ॥ ऋतेत्वयाहरेविष्णो नैवावस्थातुमर्हति ॥ १२ ॥ शास्तात्वमस्यविश्वस्य विशुद्धस्यचनापरः ॥ त्वत्तोस्तीदंजगत्सर्वं तस्मात्त्वमनुशासय ॥ १३ ॥ देवदानवगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ॥ परस्परंविनिघ्नन्ति तांश्चत्वंरक्षितुंक्षमः ॥ त्वामृते पुण्डरीकाक्ष व्यापिताशेषविग्रहम् ॥ १४ ॥ त्वमस्यविश्वस्यचराचरस्य स्थितस्सदाप्राणभृदात्मरूपी ॥ त्वयाधृतंसर्वमिदंजगद्वै यतस्ततोसित्वमुपेन्द्रसञ्ज्ञः ॥ १५ ॥ प्रवेशनव्याप्तिविधायकोसि त्वमुच्यसेविष्णुरतोमुनीन्द्रैः ॥ निवासितंविश्वमिदंत्वयायद्वसेश्चधातोरितिवासुदेवः ॥ १६ ॥ तवानुगंविश्वमिदंविभुस्त्व मशेषविश्वस्यविभासिराजा ॥ सेनानुरूपंजगदेवयस्मादतस्स्मृतस्त्वंकिलविश्वसेनः ॥ १७ ॥ विलेखनादस्यचराचरस्य कृषेश्चधातोस्त्वमतोसिकृष्णः ॥

नाग व राक्षसों समेत देवता, दानव व गन्धर्व आपस में युद्ध करते हैं उनको तुमरक्षा करने के लिये योग्यहो हे कमललोचन ! व्यापित समस्त शरीरवाले तुम्हारे बिना इस संसार का कोई रक्षक नहीं है ॥ १४ ॥ इस चराचर संसारके प्राणधारी व आत्मरूपी तुम स्थितहो और जिसलिये इस संसारको तुमने धारणकियाहै उसी कारण तुम उपेन्द्र संज्ञकहो ॥ १५ ॥ और तुम प्रवेश व व्याप्ति करनेवाले हो इसी कारण मुनीन्द्रोंसे विष्णु कहेजातेहो ॥ और जिसलिये तुमसे यह संसार निवासित है उसी कारण वसि धातु से वासुदेवहो ॥ १६ ॥ यह संसार तुम्हारा अनुगामी है और तुम व्यापकहो व समस्त संसारके राजा प्रकाशित हो जिस लिये संसार सेना

के अनुरूप है इसीसे तुम विश्वसेन कहे गयेहो ॥ १७ ॥ इस चराचर संसारके विलेखन (आकर्षण या विदारण) के कारण कृषि धातुसे तुम कृष्ण हो व हे देव ! जिस लिये तुमने त्रिलोकको जीता है उसी कारण जिधातु से तुम जिष्णुहो ॥ १८ ॥ इसलिये ग्रहों व लोकपालों वाला तथा सब समय में नाशवाला यह सब संसार तुम्हारा है व इस सब संसार के तुम आदि राजा होवो और तुम्हारा अद्वितीय सिंहासन होवै ॥ १९ ॥ दक्षिणावर्तवाला शंख तुम्हारे हाथ में स्थित है इसलिये तुम पुरुषोत्तमहो और सुदर्शन नामक तुम्हारा चक्र है इसलिये तुम चक्रीहो अन्य अचक्री (चक्र रहित) है ॥ २० ॥ और विष्णुदेवजी का

जितन्त्वयादेवजगत्त्रयंयज्जयेश्चधातोस्त्वमतोसिजिष्णुः ॥ १८ ॥ तस्मात्समस्तंग्रहलोकपालं जगत्तवैतल्लयसर्वकालम् ॥ त्वमस्यसर्वस्यभवादिराजा तवास्तुभद्रासनमद्वितीयम् ॥ १९ ॥ प्रदक्षिणावर्त्तनआस्तिशङ्खःकरस्थितोतःपुरुषोत्तमोसि ॥ सुदर्शनन्नामतवास्तिचक्रं चक्रीह्यतस्त्वंह्यपरस्त्वचक्री ॥ २० ॥ ध्वजोस्तिदेवस्यसुपर्णसेवितस्तथासुवर्णच्छदनोस्तिवाहनः ॥ तुरङ्गमास्सन्तितवारिसंहरास्तथाहृषीकेशसुमत्तदन्तिनः ॥ २१ ॥ किरीटनिष्काङ्गदकर्णपूर केयूरहारोत्तमहेमसूत्रैः ॥ विचित्रवस्त्रोत्तररक्तमाल्यैर्विभूषितस्त्वंभवभीमसेन ॥ २२ ॥ श्रियाकदाचिन्नसुच्यतेभवान् भवन्तितेनित्यमनन्तसम्पदः ॥ तवानुगाभक्तिरिहास्तुवैसतां मुकुन्दभक्तेत्वमतःप्रसीद ॥ २३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ सएवमुक्तस्तुपुरादिवौकसां विभुःप्रसन्नस्त्विदमब्रवीद्धरिः ॥ विरिञ्चमेदर्शयशुद्धमण्डलं त्वयाविमुक्तं

ध्वजा गरुड से सेवित है व सुवर्णके समान पंखोंवाले गरुड़वाहन हैं और हे हृषीकेश ! तुम्हारे शत्रु विनाशक अश्व हैं व मतवाले हाथी हैं ॥ २१ ॥ हे भव, भीमसेन ! किरीट, अशर्फी, बजुल्ला, कर्णपूर,केयूर व उत्तमहार स्वर्ण सूत्रोंसे और विचित्र उत्तरीय वस्त्र और लाल मालाओंसे तुम भूपितहो ॥ २२ ॥ आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होतेहो और तुम्हारे सदैव अमित संपदायें होतीहैं इस संसार में सज्जनों के तुम्हारी अनुगामिनी भक्ति होवै इसलिये हे मुकुन्द ! भक्त के ऊपर तुम प्रसन्न होवो ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसप्रकार कहेहुये व्यापक विष्णुजी प्रसन्न होकर देवताओं के मध्यमें यह बोले कि हे विभो,ब्रह्मन् !

सुझको शुद्ध मण्डल दिखलाइये जोकि तुम से न छोड़ाहुआहो व सदैव कल्याणमय होवै ॥ २४ ॥ जहां पर कि स्थिर स्थित होकर मैं संसारको रचूं तदनन्तर ब्रह्मा ने कुशों की मूठीको लिया और उस समय पवित्र देशके दिखलाने के लिये पवित्र वनाश्रमको गमन किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत सम्मति कर व अति उन्नत स्थली को पाकर ब्रह्मा ने आदरसे विष्णुजी से कहा कि तुम्हारी उत्पत्ति के लिये यहां पवित्र मण्डल है ॥ २६ ॥ सदैव देवताओं से पूजित तुम्हीं विष्णुहो और मुनीन्द्रों से वही तुम विष्टरश्रवा कहेगये हो हे कुशेश्वर, जगदीश ! कुशों समेत बैठिये इस प्रकार कहेहुये विष्णुजी उस समय बैठगये ॥ २७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा व

चसदाशिवंविभो ॥ २४ ॥ स्थिरःस्थितोयत्रजगत्करोम्यहंततोविरञ्चिःकुशमुष्टिमाददे॥ पवित्रदेशस्यनिदर्शनायजगामपुण्यञ्चवनाश्रमन्तदा ॥ २५ ॥ संमन्त्र्यदेवैस्सहितोमुकुन्दस्ततःस्थलीमुच्चतरामवाप्यवै ॥ पितामहःकेशवमाहचादरात्त्वदुद्भवायात्रपवित्रमण्डलम् ॥ २६ ॥ त्वमेवविष्णुर्विबुधार्चितस्सदास्मृतोमुनीन्द्रैस्सचविष्टरश्रवाः ॥ निषीदविश्वेशकुशैःकुशेश्वर तदाश्रितोमाधवएवमुक्तः ॥ २७ ॥ ततोविधाताभगवान् पुराणःपुरुषोत्तमः ॥ कुशस्थलीतुतस्यास्तु चक्रतुर्नामतावुभौ ॥ २८ ॥ तत्रविश्वपतिःश्रीमान् विश्वेशोविश्वकृद्विभुः ॥ विश्वंशशासविश्वात्मा सर्वविश्वविनायकः ॥ २९ ॥ एवंकुशस्थलीख्याता हेमशृङ्गेतियापुरा ॥ व्याप्ताकुशैर्यतोधात्रा कुशस्थलीततःस्मृता॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कुशस्थलीनामहेतुकथनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥

भगवान् पुराण पुरुषोत्तमजी उन दोनों ने उसका कुशस्थली नाम किया ॥ २८ ॥ वहां पर विश्वपति, श्रीमान्, विश्वेश व व्यापक विश्वकारी, विश्वात्मा तथा सब संसार के स्वामी विष्णुजीने संसार का पालन किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार वह कुशस्थली प्रसिद्ध हुई है जोकि पहले हेमशृंगा नामक थी व जिसलिये विधाताने कुशों से व्याप्त किया उसी कारण कुशस्थली कहीगई है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुशस्थलीनामहेतुकथनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी कर भयो अवन्ती नाम । तिरपनवें अध्यायमें सोइचरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय ईशानकल्पमें जिसप्रकार अवन्ती पुरी कहीगई है वैसेही सुनिये कि दैत्योंकीसेनासे पराजित सब देवता ॥ १ ॥ वन के कुञ्ज व गुहाओं से घिरेहुये सुमेरु गिरि के शिखर पै प्राप्तहुये और वहां जाकर हे द्विजोत्तम ! उद्यत होतेहुये उन्होंने सम्मति किया ॥ २ ॥ व आपस में प्राप्तहोकर और परस्पर भलीभांति पूजकर सब देवगण वहां गये जहां कि ब्रह्मा देवजी थे ॥ ३ ॥ और वहां आने के सब कारण को उन्होंने कहा उन देवताओं के उस वचन को सुनकर वे ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ देवताओं समेत देवदेव शिवजीके समीप

सनत्कुमारउवाच ॥ पुराचेशानकल्पेतु स्मृतावन्तीयथापुरी ॥ तथाशृणुसुरैस्सर्वैर्दैत्यसैन्यपराजितैः ॥ १ ॥ आश्रितम्मेरुशिखरं वनकुञ्जगुहावृतम् ॥ तत्रगत्वाद्विजश्रेष्ठ मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ २ ॥ अन्योन्यञ्चसमासाद्य समभ्यर्च्यपरस्परम् ॥ जग्मुस्सर्वेसुरगणा यत्रब्रह्माप्रजापतिः ॥ ३ ॥ वेदयाञ्चक्रिरेसर्वं तत्रागमनकारणम् ॥ तेषांतद्वचनं श्रुत्वा देवानांसप्रजेश्वरः ॥ ४ ॥ जगामत्रिदशैस्साकं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ सचापिह्यगमत्तत्र वैकुण्ठेधामयत्रवै ॥ ५ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदन्नित्यं मुनिचारणसेवितम् ॥ किन्नरैर्गीयमानञ्च ह्यप्सरोगणसेवितम् ॥ ६ ॥ ऋषिभिर्भार्गवाद्यैश्च देवर्षिनारदादिभिः ॥ सिद्धगन्धर्वमुख्यैश्च कुमारैस्सनकादिभिः ॥ ७ ॥ प्रजापतिगणाकीर्णं मानवैश्चचतुर्दशैः ॥ वसुभिर्विश्वदेवैश्च पितॄणामुत्तमैर्गणैः ॥ ८ ॥ सदासेव्यंसदाचारैःपुण्यवद्भिर्जनैस्तथा ॥ दिव्यंदिव्याद्यभिप्रायैर्दिव्यपादपशोभितम् ॥ ९ ॥ मणिभीरत्नसोपानैस्सरोदिव्यंसुशोभितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं यत्रतिष्ठतिभास्वरम् ॥ १० ॥ षड्भिर्मि

गये और वे भी वहा गये जहां कि वैकुण्ठ में मन्दिर था ॥ ५ ॥ जोकि ऋद्धियों व सिद्धियों का दायक तथा नित्यही मुनियों व चारणों से सेवित और किन्नरों से गाया जाता हुआ व अप्सरा समूहों से सेवित था ॥ ६ ॥ व भार्गवादिक ऋषियों तथा नारदादिक देवर्षियों और मुख्य सिद्धों व गन्धर्वों से तथा सनकादिक कुमारों से संयुत था ॥ ७ ॥ व प्रजापति गणों से व्याप्त तथा चौदह मनुवों से संयुत व वसु विश्वेदेवता तथा पितरों के उत्तमगणों से सयुक्त था ॥ ८ ॥ और उत्तम आचारवाले व पुण्यवान् जनोंसे सदैव सेवनीय था व दिव्यादिक अभिप्रायोंसे दिव्य तथा दिव्य वृक्षोंसे शोभित था ॥ ९ ॥ और मणियों तथा रत्नों के सोपानों से दिव्य

व सुशोभित व हंसों तथा कारंड व पक्षियोंसे व्याप्त तथा प्रकाशवान् तड़ाग जहां स्थित था ॥ १० ॥ व छाऊर्मियों से रहित तथा वैर विहीन पशु पक्षियोंवाला स्थान था वहा विष्णुजी के देखने की इच्छा से सब देवताओं ने जाकर ॥ ११ ॥ देवदेव जगदीशजी की स्तुति करने के लिये प्रारम्भ किया देवता बोले कि बृहत् व अनंतजी के नमस्कार है तथा कूर्मजी (कच्छपजी) के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १२ ॥ व उग्र नृसिंहरूपके लिये प्रणाम है और वाराहरूपधारीके लिये नमस्कार है व राघव श्रीरामचन्द्रजी के लिये तथा अनंतशक्तिवाले ब्रह्माके लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ व शान्त वासुदेवजीके लिये तथा पशुपतिके लिये प्रणामहै व शुद्ध बुद्धजी

रहितंस्थानं निर्वैरपशुपक्षिकम् ॥ तत्रगत्वासुरास्सर्वे वासुदेवदिदृक्षया ॥ ११ ॥ स्तुतिमारेभिरेकर्तुं देवदेवजगत्पतेः॥ देवाऊचुः ॥ नमोनन्तायबृहते कूर्मायवैनमोनमः ॥ १२ ॥ नृसिंहरूपायोग्राय नमोवाराहरूपिणे ॥ राघवायचरामाय ब्रह्मणेनन्तशक्तये ॥ १३ ॥ वासुदेवायशान्ताय पशूनाम्पतयेनमः ॥ नमोबुद्धायशुद्धाय कल्किम्लेच्छान्तकारिणे ॥ १४ ॥ इतिस्तवाभियुक्तानां वागुवाचाशरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोसुरास्सर्वे सम्भूयैकाग्रमानसाः ॥ १५ ॥ महाकालवनं रम्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ तत्रपुण्यापुरीह्येका सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ नाम्नाकुशस्थलीरम्या सिद्धगन्धर्वसेविता॥ कल्पादौकल्पमध्येवा यत्रसन्निहितोहरः ॥ १७ ॥ कल्पक्षयेक्षयंयान्ति स्थावराणिचराणिच ॥ तीर्थानिचैवसर्वाणिपुण्यान्यायतनानिच॥ १८ ॥सरितस्सागरास्सर्वे सरांस्युपवनानिच॥ औषधिवृक्षवल्यश्च यन्त्रमन्त्रशुभाशुभम् ॥ १९॥

के लिये प्रणाम है और म्लेच्छों के अन्तकारक कल्कीजीके लिये प्रणामहै ॥ १४ ॥ इसप्रकार स्तुति से संयुत देवताओं से आकाशवाणी बोली कि हे सब देवताओ ! एकाग्रमनवाले होकर तुम लोग सुनो ॥ १५ ॥ कि ब्रह्मर्षियों के गणों से सेवित सुन्दर महाकाल वन है वहां समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली एक पवित्रपुरी है ॥ १६ ॥ जो सुन्दरी व नाम से कुशस्थली ऐसी प्रसिद्ध और सिद्धों व गन्धर्वों से सेवित है और जहां पर कि कल्पके आदि व मध्यमें महादेवजी टिकेरहते है ॥ १७ ॥ कल्पान्त में स्थावर व जंगम प्राणी क्षयको प्राप्तहोते हैं और सब तीर्थ व पवित्रदेव मन्दिर नाशहोजाते हैं ॥ १८ ॥ नदियां व सब समुद्र तथा तड़ाग, उपवन, औषधी,

वृक्ष, लता, यन्त्र, मन्त्र, शुभाशुभ वस्तु ॥ १६ ॥ प्रकाश, चन्द्रमा, सूर्य सब संसार विष्णुमय है व उन सबों का बीज, पुण्य व जीव तथा कर्मका आशय ॥ २० ॥ सबको लेकर भगवान् शिवजी वहा स्थित रहते हैं गगा समस्त तीर्थ मयी हैं और विष्णुजी समस्त देवमय है ॥ २१ ॥ व वेद सर्वयज्ञमय है व दया समस्त धर्ममयी है और पृथ्वी में नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी अधिक पुण्यमयी है ॥ २२ ॥ हे सुरोत्तमो ! उससे हितकारक कुरुवों का क्षेत्र है उससे दशगुना उत्तम प्रयाग तीर्थको मैं मानताहूं ॥ २३ ॥ व उससे दशगुनी काशी और काशीसे दशगुनी गया और उससे दशगुनी अति पुण्यदायिनी कुशस्थली कही गई है ॥ २४ ॥ हजार ग्रहण

ज्योतींषिचन्द्रसूर्यौच सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥ तेषांबीजंचपुण्यञ्च जीवकर्माशयन्तथा ॥ २० ॥ सर्वमादायभगवाञ्छंकरस्तत्रतिष्ठति ॥ सर्वतीर्थमयीगङ्गा सर्वदेवमयोहरिः ॥ २१ ॥ सर्वयज्ञमयोवेदस्सर्वधर्ममयीदया ॥ रेवाच सरितांश्रेष्ठा भुविपुण्यमयाधिका ॥ २२ ॥ तस्माद्धितकरंक्षेत्रं कुरूणांवैसुरोत्तमाः ॥ तस्माद्दशगुणंमन्ये प्रयागंतीर्थमुत्तमम् ॥ २३ ॥ तस्माद्दशगुणाकाशी काश्यादशगुणागया ॥ ततोदशगुणाप्रोक्ता कुशस्थल्यतिपुण्यदा ॥ २४ ॥ उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानिच ॥ अमालक्षंकुशस्थल्याः कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ २५ ॥ लक्षमिन्दुक्षये दानं सहस्रंचायनद्वये ॥ व्यतीपातेचकोटिस्स्याद्राकायाञ्चह्यनन्तकम् ॥ २६ ॥ तस्माद्धितकरीदेवाः पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ अनन्तानन्तसङ्ख्यातं दानंकिञ्चित्कृतन्नरैः ॥ २७ ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठास्सर्वंतच्चाक्षयंभवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यूयंयातहिमाचिरम् ॥ २८ ॥ क्षीणपुण्याभवन्तोवैबाधन्तेतेनवोसुराः ॥ महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ २९ ॥

व दश हज़ार व्यतीपात और लक्ष अमावस तिथियां कुशस्थली की सोलहवीं कलाके योग्य नहीं होती हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि वहां अमावस में लक्ष दान और दोनों अयनों में हज़ार तथा व्यतीपात में करोड़ और पौर्णमासी में अनन्त दान होताहै ॥ २६ ॥ इसलिये हे देवताओ ! यह कुशस्थली पुरी हितकारिणी है क्योंकि यहां मनुष्यों से कुछ भी कियाहुआ दान अनन्तानन्त संख्यक होताहै ॥ २७ ॥ व हे सुरोत्तमो ! सुनिये कि वह सब दान अक्षयहोताहै इसलिये तुम लोग सब यत्न से वहां जाओ देर मत करो ॥ २८ ॥ आप लोग क्षीण पुण्यवाले हो इसलिये दैत्य तुम लोगो को पीड़ित करते हैं सुन्दर महाकाल वन में यह कुशस्थली पुरी है ॥ २९ ॥

पृथ्वी में वहां जाकर आप लोग उत्तम विधि से स्नान दानादिकको कीजिये तब पुण्य सेस्वर्गको पावोगे ॥ ३० ॥ उस आकाशवाणी के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा व शिव अग्रगामीवाले सब देवता उस वाणी के लिये मस्तक से प्रणामकर फिर वहांगये जहां कि महादेवजी का वन था और हे द्विजोत्तमो ! समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली पुरी को गये ॥ ३१।३२ ॥ जोकि चारों वर्णोंसे व्याप्त व ऋषियों तथा गन्धर्वों से सेवित व पुण्यवान् जनों से पूर्ण तथा सिद्धों व चारणों से सेवित थी ॥ ३३ ॥ और कहीं निर्धनी, अन्ध, जड़, मूर्ख नहीं देख पड़ता था और न रोगी न ईर्षावान् न मानसी पीड़ा समेत और न अपकारी देख पड़ता था ॥ ३४ ॥

तत्रगत्वाभवन्तोवै स्नानदानादिकम्भुवि ॥ आचरध्वंसुविधिना पुण्यात्स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्याः वाण्याश्चाकाशगाहितं ॥ प्रणम्यशिरसातस्यैब्रह्माभवपुरोगमाः ॥ ३१ ॥ पुनर्जग्मुस्सुरास्सर्वे यत्रमाहेश्वरंवनम् ॥ पुरीञ्चैवद्विजश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ३२ ॥ चतुर्वर्णसमाकीर्णामृषिगन्धर्वसेविताम् ॥ पुण्यवद्भिर्जनैःपूर्णां सिद्धचारणसेविताम् ॥ ३३ ॥ दरिद्रोन्धजडोमूर्खो नरोगीनचमत्सरी ॥ नसाधिर्नापकारीच जनःकचित्प्रदृश्यते ॥३४॥ दान्तास्शान्तास्सुशीलाश्च जरारोगविवर्जिताः ॥ स्वधर्मनिरतानित्यं सदाचारातिथिप्रियाः ॥ ३५ ॥ निवसन्तिनरा यत्र नार्यश्चैवपतिव्रताः ॥ महोत्सवसुगीतानि हव्यकव्यंगृहेगृहे ॥ ३६ ॥ ईदृशीञ्चपुरीन्दृष्ट्वा देवाहर्षपरङ्गताः ॥ तत्र तीर्थसमाख्यातं नाम्नापैशाचमोचनम् ॥ ३७ ॥ पुण्यवद्भिस्सदासेव्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ तस्मिन्स्नात्वाचजप्त्वा च हुत्वादत्त्वाचदेवताः ॥ ३८ ॥ पुण्यंचाप्यत्तयंलब्ध्वा पुनर्यातासुरालयम् ॥ जित्वासुरान्महादुष्टान् स्थानंप्राप्तास्स्व

और इन्द्रियों को दमन किये व शान्त, सुशील और वृद्धता व रोगसे रहित तथा नित्य अपने धर्ममें तत्पर व उत्तम आचार व अतिथि प्रिय लोग जहां बसते थे ॥ ३५ ॥ व पतिव्रता स्त्रियां जहां बसतीथीं और बड़े उत्साह के उत्तम गीत और हव्य कव्य घर घर में होते थे ॥ ३६ ॥ ऐसी पुरी को देखकर देवता बड़े हर्षको प्राप्तहुये वहां पर पिशाच मोचन नामक कहाहुआ तीर्थ है ॥ ३७ ॥ जोकि पुण्यवानोंसे सदैव सेवनीय व समस्त तीर्थों से सेवित है उसमें नहाकर जपकर और हवन व दानकर

देवता ॥ ३८ ॥ अक्षय पुण्यको पाकर फिर सुरालय (स्वर्ग) को चलेगये और बड़े दुष्ट दानवों को जीतकर अपने २ स्थान को प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ जो महाभाग्यवान् पुरुष अवन्ती पुरी में स्नान, दान व पूजन, हवन और तर्पण करते हैं उनका वह सब अनन्त होताहै ॥ ४० ॥ इसलिये सब यत्नसे विद्वानों को यह सदैवकरना चाहिये जिसलिये कि देवता, तीर्थ, औषधि, बीज व प्राणियों का पालन ॥ ४१ ॥ कल्प कल्प में जिसमें होताहै उसीसे वह अवन्ती पुरी कहीगई है आज से लगाकर यह कुशस्थली पुरी अवन्ती नामक होवै ॥ ४२ ॥ यह कहकर उस समय देवता अपने उत्तम स्थानको चलेगये तब से लगाकर हे द्विजोत्तम ! पृथ्वी में अवन्ती

कंस्वकम् ॥ ३९ ॥ येवन्त्यान्तुमहाभागास्स्नानंदानंतथार्चनम् ॥ हवनंतर्पणंचैव तत्सर्वंस्यादनन्तकम् ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन एतत्कार्यंसदाबुधैः ॥ देवतीर्थौषधीबीजं भूतानाञ्चैवपालनम् ॥ ४१ ॥ कल्पेकल्पेचयस्यांवै तेनावन्ती पुरीस्मृता ॥ अद्यारभ्यपुरीह्येषा नाम्नावन्तीकुशस्थली ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वावैतदादेवास्स्वधामपरमङ्गताः ॥ तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ ह्यवन्तीभुविविश्रुता ॥ ४३ ॥ यएताञ्चकथांदिव्यां पुण्यांवैपापहारिणीम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्योवै सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४४ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रमधनोधनमाप्नुयात् ॥ वाजपेयसहस्राणां राजसूयशताधिकम् ॥ ४५ ॥ पुण्यं लब्ध्वानरोनित्यं शिवलोकेमहीयते ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्त्यभिधानकथनन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास यथासोज्जयिनीस्मृता ॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतांतत्समाहितः ॥१॥

प्रसिद्ध हुई है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष इस पापहारिणी तथा पुण्यदायिनी दिव्य कथाको सुनता है और जो सुनाता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और बिन पुत्रवाला पुरुष पुत्रको पाताहै व निर्धनी धनको प्राप्तहोता है व हज़ार वाजपेय और सौ राजसूय यज्ञों से अधिक ॥ ४५ ॥ पुण्यको पाकर मनुष्य नित्य शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामवन्त्यभिधानकथनंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर भो उज्जयिनी नाम । चौवनवें अध्यायमें सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! इसी अवसरमें जिस भांति वह

उज्जयिनी कहीगई है वैसेही मैं भलीभांति कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ १॥ कि सब दैत्य जनोंके स्वामी त्रिपुरनामक महादैत्यने ब्रह्माजी की प्रसन्नताके लिये बड़ा कठिनतप किया है ॥ २ ॥ कि आतप (धूप) में वह अग्निसेवी हुआ और वर्षा में आकाश में टिका याने मन्दिरादिको के बाहर रहा और शीतकाल मे उस समय चित्तको दमनकर जलाशय में रहा ॥ ३ ॥ गिरेहुये पत्तों को व जलको भोजन करनेवाला वह पवनभक्षी होकर आश्रय रहित हुआ और गायत्री के व्रत में टिककर सब परिवार को उसने छोड़ दिया ॥ ४ ॥ इसप्रकार हजार वर्षतक उसने कठिन तप किया और हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर प्रसन्न मनवाले ब्रह्माजी बोले ॥ ५॥

त्रिपुराख्योमहादैत्यो सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ तपस्तेपेसुदुर्द्धर्षं ब्रह्मणस्तुष्टिकारणात् ॥ २ ॥ आतपेचाग्निसेवीवै प्रावृष्याकाशसुस्थिरः ॥ दमयित्वातदात्मानं शीतकालेजलाशये ॥ ३ ॥ शीर्णपत्रजलाहारो वायुभक्षीनिराश्रयः ॥ गायत्रीव्रतमास्थाय त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ४ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तु तपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतु ब्रह्माप्रीतमनाब्रवीत् ॥ ५ ॥ व्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिकाङ्क्षितम्॥ तत्सर्वंसाम्प्रतंलोके वरंतुभ्यंददामिते ॥ ६ ॥ एवमुक्तस्सविधिना दैत्यस्त्रिपुरसञ्ज्ञितः ॥ उवाचवचनंसद्यो ब्रह्माणंशंसितव्रतम् ॥ ७ ॥ त्रिपुरउवाच ॥ यदितुष्टमनाःब्रह्मन्वरम्मे दातुमिच्छसि ॥ देवदानवगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसैः ॥ ८ ॥ अवध्योहंभवेयंवै वरमेतद्वृणोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवंभवतुभोवत्स विचरस्वाकुतोभयम् ॥ ९ ॥ एत्युक्त्वासहसाब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यमहादैत्यो देवानांकदनंमहत् ॥ १० ॥ चकारकोपपूर्णोवै पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ वासयित्वायत्रतत्र ग्रामाणिनगराणिच ॥ ११ ॥ तत्रयेन्यवस

कि हे सुरोत्तम ! मुझ से चाहे हुये वरदान को मांगिये उस सब वर को मैं इस समय संसार में तुमको दूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा से कहाहुआ वह त्रिपुरनामक दैत्य प्रशंसितव्रतवाले ब्रह्मा से शीघ्रही वचन बोला ॥ ७ ॥ त्रिपुर बोला कि हे ब्रह्मन् ! यदि प्रसन्न मनवाले तुम मुझको वर देना चाहते हो तो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच,नाग व राक्षसों से ॥ ८ ॥ मैं अवध्य होऊं इस वरदानको मैं मांगता हूं ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! ऐसा होवै तुम सब कहीं से निडर होकर भ्रमण करो ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर अचानकही ब्रह्माजी वहीं पर अन्तर्द्धान होगये तब से लगाकर पहले के वैरको स्मरण करतेहुये कोपसे पूर्ण त्रिपुरमहासुरने देवताओं का

बड़ा विनाश किया और जहां तहां ग्रामो व नगरों को बसाकर ॥ १० । ११ ॥ वहां जो सब वर्णों व आश्रमों में तत्पर मनुष्य बसते थे उनको पापबुद्धिवाले उस त्रिपुर ने अनेकों उपाय से नाशकिया ॥ १२ ॥ उस दुष्टवासी पुर में वेदके पारगामी ब्राह्मण हवन नहीं करतेथे और न कभी अग्निहोत्र व सोमपान होताथा ॥ १३ ॥ और भयंकर दैत्य किसी कारण से पुण्यकर्मको नहीं करते थे जोकि स्वाहाकार स्वधाकार व वषट्कारसे वर्जित थे ॥ १४ ॥ और किसीके घरमें विस्तारको प्राप्त उत्सव नहीं देखपड़ता था व जहा पर देव मन्दिर नहीं था और न शिवपूजन होता था ॥१५॥ और न यज्ञ, न दान और न गऊ ब्राह्मण का पूजन होता था और उत्तम

न्सर्वे वर्णाश्रमपराजनाः ॥ तेषांवैकदनञ्चक्रे नानोपायेनपापधीः ॥ १२ ॥ तस्मिन्पुरेदुष्टवासे ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ नजुह्वत्यग्निहोत्रंवै सोमपानन्नकर्हिचित् ॥ १३ ॥ कुताश्चित्सुकृतंकर्म नैवकुर्वन्तिभैरवाः ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारविवर्जिताः ॥ १४ ॥ नोत्सवंदृश्यतेगेहे कस्यचिद्भुविविस्तृतम् ॥ देवतायतनन्नास्ति यत्रनोशिवपूजनम् ॥ १५ ॥ नास्तियज्ञोनदानानि नगोब्राह्मणपूजनम् ॥ सदाचारोजनोनास्ति दयादानविवर्जितः ॥१६॥ नदानीनोपकारीचतपस्वी नैवदृश्यते ॥ एवंव्यासपुरेतस्मिन्नष्टप्रायमिदंजगत् ॥ १७ ॥ प्रजानांब्राह्मणोमूलं वेदमूलाहिब्राह्मणाः ॥ वेदमूलपरायज्ञा यज्ञमूलाहिदेवताः ॥ १८ ॥ तस्माद्व्यासहतंसर्वं कृतन्तेनदुरात्मना ॥ तेनदेवगणास्सर्वे हतप्रायाहतौजसः ॥ १९ ॥ विचरन्तियथामर्थ्या भुवितेनपराजिताः ॥ अन्योन्यकृतसन्धाना मन्त्रंकृत्वासमाहिताः ॥ २० ॥ जग्मुस्तेतत्रयत्रास्ते प्रजापतिरकल्मषः ॥ त्रिदशाःकथयामासुरात्मव्यसनकारणम् ॥ २१ ॥ तज्ज्ञात्वासहसोत्थाय ब्रह्मालोकपितामहः ॥

आचारवाला मनुष्य न था व दया और दान से रहित था ॥ १६ ॥ और न दानी न उपकारी और न तपस्वी देख पड़ता था हे व्यासजी ! उस नगर के ऐसा होने पर यह संसार नष्टसा होगया ॥ १७ ॥ प्रजाओं की जड़ ब्राह्मण हैं और वेदमूलवाले ब्राह्मण होते हैं व वेदमूल में तत्पर यज्ञ हैं व यज्ञमूलवाले देवता होते हैं ॥१८॥ इसलिये हे व्यासजी ! उस दुष्टात्मा तारकने सब नाशकिया और उससे मारेहुये सब देवगण नष्टबलवाले हुये ॥ १९ ॥ और उससे हारे हुये देवता पृथ्वी में मनुष्यों की नाईं विचरनेलगे व आपस में मेलकर सावधान होतेहुये वे देवता सम्मतिकर वहां गये जहां कि पाप रहित ब्रह्माजी थे और देवताओं ने अपनी विपत्ति का

कारण कहा ॥ २० । २१ ॥ उसको जानकर व अचानकही उठकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी देवताओं समेत उत्तम महाकाल वनको गये ॥ २२ ॥ जहां कि पार्वती समेत सदाशिवदेवजी सदैव टिके रहते हैं व जहां पर समस्त तीर्थोंसे सेवित दिव्यअवन्ती पुरी है ॥ २३ ॥ वहां देवताओं समेत चतुर्मुख ब्रह्माजी आकर उस समय रुद्रसरमे स्नान, दान, जप व हवन कर ॥ २४ ॥ और महाकालजी को पूजकर ब्रह्माजी वचन बोले ब्रह्मा बोले कि हे भक्तों को अभय करनेवाले, देवदेव, महादेव जी ! ॥ २५ ॥ हे सुरोत्तम ! अति उत्तम देवकार्य को सुनिये कि त्रिपुरनामक दैत्येन्द्र देवताओं का बड़ा विनाश ॥ २६ ॥ सदैव करता है और वेदों व ब्राह्मणों का

जगामत्रिदशैस्सार्द्धं महाकालवनोत्तमम् ॥ २२ ॥ यत्रास्तेसततन्देवो उमयासहितश्शिवः ॥ यत्रावन्तीपुरीदिव्या स र्वतीर्थनिषेविता ॥ २३ ॥ तत्रागत्यसुरैस्साकं स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ स्नानंदानंजपंहोमं कृत्वारुद्रसरेतदा ॥ २४ ॥ पू जयित्वामहाकालं ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवमहादेव भक्तानामभयङ्कर ॥ २५ ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठ देवकार्यमनुत्तमम् ॥ त्रिपुरोनामदैत्येन्द्रो देवानांकदनंमहत् ॥ २६ ॥ करोतिसततन्दैत्यो वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ वास यित्वापुरत्रीणि विस्तीर्णानिचरत्यथ ॥ २७ ॥ तत्रस्थितानिभूतानि नाशंयान्तिदुरात्मना ॥ एवंकृत्वाप्रजास्सर्वा त्त यंनीताश्चराचराः ॥ २८ ॥ उद्वासितानिद्वीपानि ग्रामाणिनगराणिच ॥ ऋषीणामाश्रमास्सर्वे यतीनामाश्रमास्तथा ॥ २९ ॥ एवंकृत्वासुरास्सर्वे भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ विचरन्तियथामर्त्यास्त्रिपुरेणदुरात्मना ॥ ३० ॥ ब्रह्मलब्धवरोनि त्यं व्रजत्येवाकुतोभयम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वधस्तस्यविचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ इति श्रुत्वावचस्तस्य ब्रह्मणश्शंसिता

निन्दक वह दैत्य तीन विस्तारित पुरों को बसाकर इसके अनन्तर भ्रमण करताहै ॥ २७ ॥ और वहां टिकेहुये प्राणी दुष्टात्मा तारक से नाशको प्राप्तहोतेहैं और ऐसा करके चराचर सब प्रजा नाश कियेगये ॥ २८ ॥ और द्वीप ग्राम व नगर उजाडदिये गये व ऋषियों के सब आश्रम और संन्यासियों के आश्रम उजाड़ दिये गये ॥ २९ ॥ ऐसा कर दुष्टात्मा त्रिपुरसे हारेहुये व भ्रष्टराज्यवाले सब देवता मनुष्यों की नाईं घूमते हैं ॥ ३० ॥ और ब्रह्मा से पाये हुये वरदानवाला वह सब कहीं से निडर होकर विचरता है इसलिये सब उपायसे उसका वध विचार कियाजावै ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उन प्रशंसित चित्तवाले ब्रह्मा का वचन सुनकर महादेवजी बहुत देर

तक ध्यानकर उन ब्रह्मासे बोले ॥ ३२ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन्! व इन्द्रादिक सुरोत्तमो! सुनिये इस दुष्टात्मा दैत्यको जीतने का उपाय करूंगा ॥ ३३ ॥ और अपने जयको चाहनेवाले तुम लोग तपस्या करो अवन्ती पुरीमें जो हवन व दियाहुआ दान होताहै वह सब अक्षय होवै है ॥ ३४ ॥ सब देवताओं से यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और भूतों व प्रेतों से सेवित श्मशानस्थान में जाकर ॥ ३५ ॥ उस दुष्टात्मा त्रिपुर दैत्यको जीतने के लिये वहां सुरोत्तमों ने चामुण्डा, जी की उपासना किया ॥ ३६ ॥ और भैंसों व महामेषों (बड़े भेड़ों)से तथा पशु (बलि) पुष्प, और अनेकभांति की बलियों से व धूप, दीप और अग्निहोत्रों से ॥

तमनः ॥ चिरन्ध्यात्वामहादेवो ब्रह्माणन्तमुवाचह ॥ ३२ ॥ महादेवउवाच ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठा ब्रह्मइन्द्रपुरोगमाः ॥ जयोपायंकरिष्यामि दैत्यस्यास्यदुरात्मनः ॥ ३३ ॥ तपश्चरतयूयंवै आत्मनोजयकाङ्क्षिणः ॥ अवन्त्यांयद्धुतंदत्तं तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वासर्वदेवानां तत्रैवान्तर्हितश्शिवः ॥ गत्वाश्मशाननिलये भूतप्रेतनिषेविते ॥३५॥ जयार्थंतस्यदैत्यस्य त्रिपुरस्यदुरात्मनः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतत्र चामुण्डायास्सुरेश्वराः ॥ ३६ ॥ महिषैश्चमहामेषैः पशुपुष्पार्घतर्पणैः ॥ बलिभिर्विविधैर्दानैर्धूपदीपाग्निहोत्रकैः ॥ ३७ ॥ पूजयित्वातदादेवीं तामीडेवृषभध्वजः ॥ दुर्गांभगवतींभद्रां दुर्गसंसारतारिणीम् ॥ ३८ ॥ त्रिपुरान्तकरींकृत्यांचण्डमुण्डवधोद्यमाम् ॥ दैत्यान्तकांमदोन्मत्तां रक्ताख्यांरक्तदन्तिकाम् ॥ ३९ ॥ रक्ताम्बरधरान्धीरांरक्तपुष्पावतंसिनीम् ॥ महिषवाहिनींश्यामां पद्मासनपरिग्रहाम् ॥ ४० ॥ द्वीपिचर्मपरीधानां शुष्कमांसातिभैरवाम् ॥ पूजयित्वाप्रसन्नात्मा ध्यानमादायसंस्थितः ॥ ४१ ॥ तदाभगवतीभद्राय

३७ ॥ उन देवीजी को पूजकर उस समय वृषध्वज शिवजी ने स्तुति किया और कल्याणकारिणी तथा दुर्गरूपी संसार से तारनेवाली दुर्गाजी को ॥ ३८ ॥ व चण्ड मुण्ड के वध में उद्यमवाली त्रिपुरान्तकारिणी कृत्या व दैत्यों को नाशनेवाली और मद से उन्मत्त व रक्तनामवाली रक्तदंतिकाजी को ॥ ३९ ॥ तथा लाल पुष्पोंसे कर्णभूषणवाली व अरुण बसनों को धारे हुई भैंसे पर सवार व चतुर तथा श्यामा व पद्मासन से बैठी हुई ॥ ४० ॥ व व्याघ्र चर्मको पहने और सूखे मांस से बहुतही

भयकारिणी भगवतीजी को पूजकर प्रसन्न चित्तवाले शिवजी ध्यानको ग्रहण कर भलीभांति बैठे ॥४१॥ तब जो इस संसारको धारे हैं उन प्रसन्न मुखवाली कल्याण कारिणी भगवती चण्डिकाजी ने प्रत्यक्षहोकर कहा ॥ ४२ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझ से चाहेहुये वरदानको मांगिये मैं लोकों के उपकारक तुमसेकहेहुये उस सब वरको दूंगी ॥ ४३॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! यदि तुम प्रसन्नहोतो मुझको उत्तम वर दीजिये कि जिससे देवताओं के कण्टकरूपी त्रिपुर महादैत्य को मारूं ॥ ४४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझसे दियेहुये दैत्यों के नाशकारक उत्तम पाशुपत अस्त्रको ग्रहण कीजिये इस महादैत्य को तुम जीतोगे ॥४५॥

येदंधार्यतेजगत् ॥ प्रसन्नवदनाभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहचण्डिका ॥ ४२ ॥ देव्युवाच ॥ व्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिवाञ्छितम् ॥ ददामिसर्वंत्वयोक्तं जगतामुपकारकम् ॥ ४३ ॥ श्रीहरउवाच ॥ परितुष्टासिचेद्देवि देहिमेवरमुत्तमम् ॥ येनहन्मिमहादैत्यं त्रिपुरन्देवकण्टकम् ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जयस्येनंमहादैत्यं गृहाणपाशुपतंपरम् ॥ मयादत्तंसुरश्रेष्ठ दैत्यनाशकरम्परम् ॥ ४५ ॥ महापाशुपतंशस्त्रं करेकृत्वाचशङ्करः ॥ उज्जहारतदाशम्भुर्दैत्यनाशायसत्वरम् ॥ ४६ ॥ महाडम्बरकोभूत्वा सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ स्तुतिंकृत्वाजयैश्शब्दैः पृष्ठतोनुययुस्सुराः ॥ ४७ ॥ शरेणैकेनवैरुद्रो जघानतंमहासुरम् ॥ मायिनन्तंत्रिधाभित्त्वा मायायुद्धेनशङ्करः ॥ ४८ ॥ पुनरागात्पुरीमेतामवन्तींसुरसेविताम् ॥ जयाशिषंप्रयुंजाना ऋषयस्सिद्धचारणाः ॥ ४९ ॥ तुष्टुवुश्चतदादेवं जयशब्देनहर्षिताः ॥ अप्सरानन्तुस्तत्र गन्धर्वाललितंजगुः ॥ ५० ॥

महापाशुपत शस्त्रको हाथमें धारणकर उस समय कल्याण कारक शिवजीने दैत्य के नाशने के लिये शीघ्रही ऊपर उठाया ॥ ४६ ॥ और समस्त प्राणियों को भयकारक जुझाऊ नगाड़ा की गर्जन होकर देवता लोग जय शब्दों से स्तुति कर पीछेसे चले ॥ ४७ ॥ और शिवजी ने एक बाण से उस महादैत्यको मारा व मायाके युद्धसे उस मायावी के तीन खण्डकर शंकरजी ॥ ४८ ॥ फिर देवताओं से सेवित इस अवन्ती पुरी को आये व जयपूर्वक आशीर्वादको युक्त करतेहुये ऋषि, सिद्ध व चारणोंने ॥४९ ॥ उस समय शिवदेवजीकी स्तुति किया और जयके शब्दसे प्रसन्न होतीहुई अप्सरायें वहां नाचने लगीं और गन्धर्व लोगोंने सुन्दर गान किया ॥ ५० ॥

व उस समय मनुष्यों को सुखदायक अति पवित्र पवन चलनेलगा और प्राणियों के घर घर में उस समय जयका शब्द हुआ ॥ ५१ ॥ और अग्नियां शान्त होगई व दिशाओंमे उत्पन्न शब्द शान्त होगये और उस समय बड़े उत्सव व दक्षिणाओंवाले यज्ञ वर्तमान हुये ॥ ५२ ॥ और देवता छिपेहुये अपने स्थानको फिर प्राप्त हुये जिसलिये कि दानव उच्चप्रकारसे जीतागया व जिससे त्रिलोक स्थापन किया गया ॥ ५३ ॥ इसलिये सब सुरोत्तमों व सनकादिक ऋषियों से भक्तोंके पापका विनाशक अवन्तीनामक स्थान स्थापित कियागया ॥ ५४ ॥ और पुरातन समय सबकामनाओं व वरों को देनेवाली अवन्ती पुरी कहीगई है हे व्यासजी ! तब से

ववौतदापुण्यतमो वायुस्सुखप्रदोनृणाम् ॥ जयशब्दस्तदाजातः प्राणिनाञ्चगृहेगृहे ॥ ५१ ॥ जज्वलुश्चाग्नय श्शान्ताश्शान्तादिग्जनितस्वनाः ॥ प्रवर्तन्तेतदायज्ञा महोत्सवसदक्षिणाः ॥ ५२ ॥ देवाप्रपेदिरेस्थानं स्वकीयंपुन रावृतम् ॥ उज्जितोदानवोयस्मात् त्रैलोक्यंस्थापितंयतः ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्वैस्सुरश्रेष्ठ ऋषिभिस्सनकादिभिः ॥ स्था पितंनामावन्त्याख्यं सात्त्वतांपापनाशनम् ॥ ५४ ॥ अवन्तीचपुराप्रोक्ता सर्वकामवरप्रदा ॥ तत्प्रभृतिपुरीव्यास उ ज्जयिनीसमाश्रिता ॥ ॥ ५५ ॥ येमुष्यांस्नानदानानि भुविकुर्वन्तिमानवाः ॥ नतेषांदुष्कृतंकिञ्चिद्देहेतिष्ठतिपापजम् ॥ ५६ ॥ विद्यार्थीगिरीशंधनार्थीधनेशं सुतार्थीसुरेशंदिनेशंसुखार्थी ॥ धियोर्थीगणेशंप्रियार्थीचशेषं गिरापूजमानोज नश्चोज्जयिन्याम् ॥ ५७ ॥ यएतस्यांमहाभागस्सदावसतिमानवः ॥ भुक्त्वाकामान्मनोभीष्टान्मृतश्शिवपुरंव्रजे त् ॥ ५८ ॥ तत्रैववसतेनित्यं कल्पकोटिशताधिकम् ॥ येनैषाचकथापुण्या पठ्यतेश्रूयतेथवा ॥ ५९ ॥ मुच्यतेसर्वपा

लगाकर उज्जयिनी भलीभाति स्थितहुई है ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीपर इसमें स्नानदानादिक करते हैं उनके शरीर में पापसे उपजा हुआ कुछ दुष्कृत नहीं होताहै ॥ ५६ ॥ विद्याको चाहनेवाला पुरुष महादेवजी को व धन चाहनेवाला नर धनेश कुबेरजी व पुत्र चाहनेवाला मनुष्य सुरेश (इन्द्रजी) को और सुख चाहनेवाला पुरुष सूर्यनारायणजी को व बुद्धि चाहनेवाला नर गणेश को तथा प्रिय चाहनेवालापुरुष शेषजी को वाणी से पूजता हुआ उज्जयिनी पुरी में बसै ॥ ५७ ॥ जो बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष इसमें सदैव बसता है वह मन से चाहीहुई कामनाओं को भोगकर मरकर शिवपुर को जाता है ॥ ५८ ॥ और वहीं पर वह सदैव करोड़ों सौ कल्पों

से भी शधिकतक बसता है और जो मनुष्य इस पवित्र कथा को पढ़ता या सुनताहै ॥ ५९ ॥ वह सब पापोंसे छूटजाता है और गौ सहस्र के फलको प्राप्तहोता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुज्जयिन्यभिधानकथनंनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर जिमि पद्मावति नाम । पचपनवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर जिस प्रकार वह पद्मावती ऐसी हुई है उसको मैं भलीभाति कहताहूं हे व्यासजी ! बहुत पुण्य करनेवाली कथाको आदर से सुनिये ॥ १ ॥ कि एक समय उन दुष्टात्मा दुष्ट दानवों से सब रत्नों

पेभ्यो गोसहस्रफलंलभेत ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे उज्जयिन्यभिधानकथनन्नामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि यथापद्मावतीतिसा ॥ श्रूयतामादृतोव्यास बहुपुण्यकृताङ्कथाम् ॥ १ ॥ एकदासर्वरत्नानां हानिर्जातादुरात्मभिः ॥ धर्मग्लानिंनिरोधश्चजातस्तैर्दुष्टदानवैः ॥ २ ॥ तदासुरासुरैस्सर्वैर्मिलित्वामथितोर्णवः ॥ मेरुर्वंशोर्णवःपात्रं रज्जुर्वासुकिपन्नगः ॥ ३ ॥ कूर्मपृष्ठेऽचलंकृत्वा रत्नानिदुदुहुस्तदा ॥ आदौलक्ष्मीविनिर्याता कृष्णायप्रतिपादिता ॥ ४ ॥ तेनैवचविवादोभूद्देवदानवयोस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोनारदोदेवदर्शनः ॥ ५ ॥ वारितःकलहस्तेन देवदैत्यसमुद्भवः ॥ महाकालवनेतत्र पद्मासिन्धुसमुद्भवा ॥ ६ ॥ सागरान्तेचरत्नानि तिष्ठन्ति विविधानिच ॥ तानिसर्वाणिचादाय यावत्तुभ्यंददाम्यहम् ॥ ७ ॥ मथ्यतामुदधिश्शीघ्रं नात्रकार्याविचारणा ॥ पुनस्ते

का नाशहोगया और धर्मकी हानि व बिनाश हुआ ॥ २ ॥ तब सब देवता व दैत्योंने मिलकर समुद्र को मथा और सुमेरु वंश (मथानी) हुआ व समुद्र पात्र हुआ और वासुकिसर्प रज्जु याने नेती हुआ ॥ ३ ॥ उस समय उन्होंने कच्छपके पृष्ठपै पर्वत को करके रत्नों को दुहा पहले लक्ष्मीजी निकलीं और वे श्रीकृष्णजी को दी-गई ॥ ४ ॥ उसी कारण उस समय देवताओं व दानवों का विवादहुआ इसी अवसर में देवदर्शन नारदजी प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने देवताओं व दैत्यों से उपजा हुआ कलह (झगड़ा) मना किया व कहा कि उस महाकाल वन में समुद्र में उपजी हुई लक्ष्मी हैं ॥ ६ ॥ और समुद्र के मध्य में अनेक भांति के रत्न हैं उन

सबों को लेकर जबतक मैं तुमको देऊं ॥ ७ ॥ तबतक शीघ्रही समुद्र मथाजावै इस विषय में विचार न करना चाहिये फिर उन देवताओं व दैत्यों ने रत्नों के लिये उद्यम किया ॥ ८ ॥ और उनके समुद्र मथने पर कौस्तुभ मणि प्राप्तहुई पश्चात् पारिजात वृक्ष हुआ तदनन्तर मदिरा उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त धन्वंतरि पैदाहुये तदनन्तर चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसके उपरान्त कामधेनु प्राप्तहुई तदनन्तरउत्तम हाथी हुआ ॥ १० ॥ और उत्तम घोडा उच्चैःश्रवा तदनन्तर सुधा उसके उपरान्त रंभा अप्सराहुई तदनन्तर सब अस्त्रोंकी उत्पत्तिवाला शार्ङ्ग धनुष हुआ ॥ ११ ॥ और मुरदानवके वैरी विष्णुजी के हाथमें पाचजन्य नामक शख स्थितहुआ

तूद्यमंचक्रूरत्नार्थंवैसुरासुराः ॥ ८ ॥ मथ्यमानेनिधौतेषां मणिःप्राप्तश्चकौस्तुभः ॥ पारिजाततरुःपश्चात् सुराजाताततः परम् ॥ ९ ॥ धन्वन्तरिरथोत्पन्नश्चन्द्रोजातोपिवैततः ॥ कामधेनुस्समाप्राप्ता गजरत्नंततःपरम् ॥ १० ॥ उच्चैःश्रवाहय श्रेष्ठस्सुधारम्भाततस्ततः ॥ ततःपरञ्चशारङ्गं धनुस्सर्वास्त्रसम्भवम् ॥ ११ ॥ पाञ्चजन्यनामाशङ्खः करेतिष्ठन्मुरद्विषः ॥ निधिरेषमहापद्मो विषंहालाहलन्ततः ॥ १२ ॥ चतुर्द्दशानिरत्नानि प्राप्तानिविविधानिच ॥ समादायगतास्तत्र यत्रमाहेश्वरंवनम् ॥ १३ ॥ गत्वातेतुसमासीना मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमितितेसमयंत्रिताः ॥ १४ ॥ कोलाहलोह्यथोत्पन्नः पुनर्नारदअभ्यगात् ॥ तेषांकलिमलंदृष्ट्वा विष्णुमाराधयत्ततः ॥ १५ ॥ मोहिनीरूपमास्थाय नारीभूत्वाभ्यगाद्धरिः ॥ अतिरूपवतींतन्वीं तामालोक्यमहासुराः ॥ १६ ॥ विह्वलाङ्गाः कृतास्सर्वे कामबाणवशंगताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतेषां सुरान्दत्वासुरेश्वरः ॥ १७ ॥ हस्तलाघवयोगेन देवानाममृतन्ददौ ॥ एतस्मिन्नन्तरेऽन्यास रा

चौदह रत्नो को लेकर देवता वहां गये जहां कि माहेश्वर वन था ॥ १३ ॥ और जाकर बैठहुये उन्होंने उद्यत होकर सम्मति किया व मैं पहले मैं पहले इसप्रकार कहकर वे साथही यंत्रितहुये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर कोलाहल पैदाहुआ और फिर नारदजी आये तदनन्तर उनके कालिमल (विवाद) को देखकर उन्होने विष्णुजी का आराधन किया ॥ १५ ॥ और मोहनीरूपमें टिककर स्त्री होकर विष्णुजी आये व अतिरूपवती उस स्त्रीको देखकर महादैत्य ॥ १६ ॥ विह्वलअंगवाले होकर सब कामदेवके बाण के वशमें प्राप्तहुये इसी अवसर में उन

व यह महापद्म निधिहुई और तदनन्तर हलाहल विष पैदा हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार प्राप्तहुये अनेक भांतिके

को मदिरा देकर सुरेश्वर विष्णुजी ने ॥ १७ ॥ हस्त लाघव याने हाथोंकी शीघ्रता के संयोग से देवताओं को अमृत दिया इसी अवसर में हे व्यासजी ! उन देवताओं के रूपको धरनेवाले राहुने ॥ १८ ॥ उनके बीचमें प्राप्तहोकर उत्तम अमृतको पीलिया उसको जानकर विष्णुजी ने शीघ्रही चक्रसे मस्तक को काटडाला ॥ १९ ॥ उस समय अमृतके स्पर्श के प्रसंग से असुर राहु नहीं मरा व हे सत्तम व्यासजी ! पृथ्वी में इस क्षेत्रमें राहु व केतु ऐसा प्रसिद्धहुआ ॥ २० ॥ और राहुके शरीर से उपजाहुआ बहुत रुधिर बहा व उस क्षेत्रमें उस दोषको नाशनेवाला महातीर्थ हुआ ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर पवित्रहोकर जो राहुके दर्शन में तत्पर होताहै उसके कभी

हुस्तद्रूपधारकः ॥ १८ ॥ तेषामन्तरतोभूत्वा पपौचामृतमुत्तमम् ॥ तज्ज्ञात्वाचद्रुतंविष्णुश्शिरश्चक्रेणप्राच्छिनत् ॥ १९ ॥ सुधास्पर्शप्रसङ्गेन नममारासुरस्तदा ॥ राहुःकेतुरितिख्यातो क्षेत्रेस्मिन्भुविसत्तम ॥ २० ॥ राहुकायात्समुद्भूतं बहुसुस्रावशोणितम् ॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहातीर्थं जातंतद्दोषनाशनम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा राहोर्दर्शनतत्परः ॥ नतस्यजायतेकाचिद् राहुपीडाकदाचन ॥ २२ ॥ वाञ्छितार्थमवाप्नोति गोसहस्रफलंभवेत् ॥ ततस्तानिचरत्नानि महाकालवनेसुराः ॥ २३ ॥ विभज्यभागन्तेसर्वे ततोरत्नभुजोऽभवन् ॥ मणिंपद्मांधनुश्शङ्खं ददौसातत्रविष्णवे ॥ २४ ॥ सूर्यायचददौचाश्वं मोहिनीसाब्धिसम्भवम् ॥ ऐरावतंगजश्रेष्ठं वासवायसमर्पयत् ॥ २५ ॥ दिविषद्गणांश्चपीयूषं ददौचन्द्रंचशम्भवे ॥ पारिजातंतरुश्रेष्ठं रम्भाञ्चैववराङ्गनाम् ॥ २६ ॥ इन्द्रःक्रीडावनेरम्ये नन्दनेचसमर्पयत् ॥ ऋषी

कोई राहुकी पीडा नहीं होती है ॥ २२ ॥ और चाहेहुये प्रयोजन की प्राप्ति होतीहै व गोसहस्र का फल होता है तदनन्तर महाकाल वन में देवता उन रत्नों को लेकर ॥ २३ ॥ व भागको बाटकर तदनन्तर वे सब रत्न भोगीहुये और वहां पर उनमोहनीजीने मणि, लक्ष्मी, धनुष और शंखको विष्णुजी के लिये दिया ॥ २४ ॥ और उन मोहनीजी ने समुद्र से उपजेहुये अश्वको सूर्यनारायणजी के लिये दिया और इन्द्रजी के लिये उत्तम हाथी ऐरावत को दिया ॥ २५ ॥ और देवगणों को अमृत व शिवजी के लिये चन्द्रमाको दिया और वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात को व उत्तम स्त्री रंभाको ॥ २६ ॥ इन्द्र ने सुन्दर क्रीड़ावन नन्दन में भलीभांति अर्पण

किया और यज्ञकी सिद्धिके लिये ऋषियों को कामधेनु गऊ दिया ॥ २७ ॥ और यह महापद्मनिधि कुबेरजीके घरको गई और जो हलाहल विष कहागयाहै उसको किसीने भी आदर न किया ॥ २८ ॥ क्योंकि जहा जहा वह फैलता था वहा वहां प्राणी नाशको प्राप्तहोते थे लोकोंके हितकी कामनासे उस विषको शिवजीने धारण किया ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर महादेवजी नीलकण्ठ ऐसे कहेगये जो मनुष्य रत्नकुण्ड में नहाकर नीलकण्ठजी को देखताहै ॥ ३० ॥ वह सब पापों से छूटकर सब रत्नों का भोगी होताहै और सौ अश्वमेध यज्ञों के पुण्यको पाकर शिवलोकको जाताहै ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उस समय हर्षसे पूर्ण मनवाले ब्रह्मा व विष्णु आदिक

णाञ्चाददाद्धेनुं कामदोग्ध्रींयज्ञसिद्धये ॥ २७ ॥ निधिरेषमहापद्मः कुबेरभवनेगतः ॥ यत्तद्धालाहलंप्रोक्तं विषंकेनापिनादृतम् ॥ २८ ॥ यतोयतःप्रसरति प्रलयंयान्तिजन्तवः ॥ दधारतद्विषंशम्भुर्जगतांहितकाम्यया ॥ २९ ॥ तत्प्रभृतिमहादेवो नीलकण्ठइतिस्मृतः ॥ रत्नकुण्डेनरस्स्नात्वा नीलग्रीवञ्चपश्यति ॥ ३० ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यो भवेचसर्वरत्नभुक् ॥ शताश्वमेधिकंपुण्यं लब्ध्वाशिवपुरंव्रजेत् ॥ ३१ ॥ तदादायसुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ स्वयमूचुस्तदाव्यास हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ३२ ॥ उज्जयिनींसमासाद्य जातारत्नभुजोवयम् ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु पद्मावसतिनिश्चला ॥ ३३ ॥ अद्यप्रभृतिपुर्य्येषा पद्मावतिरितिस्मृता ॥ यएतस्यांमहाभागास्स्नानंदानंतथार्चनम् ॥ ३४ ॥ तर्पणंचैवदेवानां पितॄणांवाविशेषतः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिन्नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ ३५ ॥ शतंकुलानिसर्वाणि तारयेन्निरयार्णवात् ॥ धनार्थीवाचपुत्रार्थी विद्यार्थीबहुकामुकः ॥ ३६ ॥ यत्रकुत्रस्थितोभूत्वा पद्मावतिरितिस्मरेत् ॥ सर्वान्

सब देवताओं ने उसको लेकर आपही कहा कि ॥ ३२ ॥ उज्जयिनी को भलीभांति प्राप्तहोकर हमलोग रत्नोंके भोगीहुये और जिसलिये यहां सब समयों में अचल लक्ष्मी बसती है ॥ ३३ ॥ इस कारण आजसे लगाकर यह पुरी पद्मावती ऐसी कहीजावै बड़े ऐश्वर्यवाले जो पुरुष इस पुरी में स्नान, दान व पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ और देवताओं व विशेषकर पितरों का तर्पण करते हैं उसके कुछ पाप व दरिद्रता और दुर्गति नहीं होतीहै ॥ ३५ ॥ और वह नरकों के समुद्र से सौ कुलों को तारता है व धन चाहनेवाला तथा पुत्रों को चाहनेवाला और विद्यार्थी व बहुत कामनाओंवाला पुरुष ॥ ३६ ॥ जहां कहीं स्थित होकर पद्मावति ऐसा स्मरण करता

है वह मनुष्य समस्त कामनाओं को पाताहै व साक्षात् शिवहोताहै ॥ ३७ ॥ हेव्यासजी ! यह नाम का फल है और बहुत दिनोंके सेवने से क्या कहनाहै जो पुरुष इस पवित्र कथाको सुनते हैं और जो नित्य सुनाताहै ॥ ३८ ॥ उसके कुछ पातक नहीं रहताहै और वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्तहोताहै ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायापद्मावतीनामकथनंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । भयो अवन्ती पुरीकर कुमुद्वती जिमि नाम । छप्पनवें अध्याय में सोइचरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! सावधान होकर पापहारिणी

कामानवाप्नोति शिवस्साक्षाद्भवेन्नरः ॥ ३७ ॥ एतद्व्यासफलंनाम्नः किञ्चिरंसेवनेनवै ॥ येशृण्वन्तिकथांपुण्यां यःश्रावयतिनित्यशः ॥ ३८ ॥ नतस्यपातकंकिञ्चिदश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पद्मावतीनाम कथनन्नामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुष्वावहितोव्यास कथांपापहरांपराम् ॥ एषाकुमुद्वतीजाता यथापद्मावतीपुरा ॥ १ ॥ लोमशउवाच ॥ एकदातीर्थयात्रायां गतोहंवैकुशस्थलीम् ॥ गुह्याद्गुह्यतमंस्थानं यत्रसन्निहितोहरः ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ यत्रतत्रास्थिताविप्रा ब्रह्मघोषंचकुर्वते ॥ ३ ॥ यज्ञांश्चैवतथाचित्रानृत्विजोद्वारकर्मच ॥ ऋषयश्चयहाभागा प्रकुर्वन्तिसमाहिताः ॥ ४ ॥ ऋषिपत्न्यस्तथासाध्व्यः परिचारंप्रकुर्वते ॥ दशविष्णवश्चप्रख्याता स्तत्रैववनिवसन्तिते ॥ ५ ॥ रुद्राह्येकादशप्रोक्ता द्वादशार्कास्तथैवच ॥ अष्टौच वसवःख्याता विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ ६ ॥

उत्तम कथा को सुनिये जिस प्रकार कि पुरातन समय यह पद्मावतीपुरी कुमुद्वतीहुई है ॥ १ ॥ लोमश ऋषि बोले कि एक समय मैं तीर्थ यात्रामें कुशस्थलीपुरी को गया जो कि गुप्तसे भी अत्यन्त गुप्तस्थानहै और जहां पर सदाशिवजी टिके हुये हैं ॥ २ ॥ जिनके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है और जहा तहां पै टिके हुये ब्राह्मणलोग वेदध्वनि करते हैं ॥ ३ ॥ और ऋत्विक् लोग विचित्र यज्ञों को व द्वारकर्मको करतेहैं व बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषिलोग सावधान होकर यज्ञोंको करतेहैं ॥ ४ ॥ वैसेही पतिव्रता ऋषियोंकी स्त्रियां सेवा करतीहैं और वहींपर वे प्रसिद्ध दशविष्णु बसतेहैं ॥ ५ ॥ और गेरह रुद्र कहे गयेहैं व बारह सूर्य तथा आठ वसु व तेरह विश्वे-

देवा प्रसिद्धहैं ॥ ६॥ और वे आठ दिग्गज तथा चौदहमनु और वेसब पवनगण तथा इन्द्रादिक देवता वहां बसतेहैं ॥७॥ और हे व्यासजी ! गंधर्व अप्सरा, किन्नर,नाग व राक्षस,सिद्ध व तपस्वी वहीं पर भलीभांति प्राप्त हैं ॥ ८ ॥ व आठ भैरव कहेगयेहैं और चार पवनपुत्र तथा ये छः विनायक व चौबिस देवियाँहैं ॥ ९ ॥ ये देवताओंके गण व रुद्रगण कहे गयेहैं और वेदों के जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा,मरीचि, और कश्यप आदिक ॥१०॥ और प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्षजी व देवताओंकी माता अदिति और श्रुतियों से सम्मत गाइयां व स्थावर जंगम प्राणी ॥ ११ ॥ व जो सब तीर्थहैं व नदियां, झरना और पृथ्वी में जो अति पवित्र सब क्षेत्र हैं ॥ १२ ॥ और सातपुरी, तीन ग्राम व

अष्टौतेदिग्गजाश्चैव मनवश्चचतुर्दश ॥ मरुद्गणाश्चतेसर्वेतत्रचेन्द्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नरोरगरा राक्षसाः ॥ सिद्धास्तपस्विनोव्यास तत्रैवसमुपस्थिताः ॥ ८ ॥ अष्टौचभैरवाःख्याताश्चत्वारःपवनात्मजाः ॥ विनायकाः षडेतेच देव्यश्चचतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥ एतेदेवगणाःप्रोक्ता रौद्राश्चैवतथैवच ॥ ब्रह्मावेदविदांश्रेष्ठो मरीचिःकश्यपादयः ॥ १० ॥ दक्षःप्रजापतिश्रेष्ठोऽदितिर्वैदेवमातृका ॥ श्रुतिभिस्संमतागावः स्थावराणिचराणिच ॥ ११ ॥ तीर्थानियानिस र्वाणि नद्यप्रस्रवणानिच ॥ क्षेत्राणिचैवसर्वाणि भुविपुण्यतमानिवै ॥ १२ ॥ सप्तपुर्य्यस्त्रयोग्रामा नवारण्यानिचैवतु॥ चतुर्दशानिगुह्यानि मुक्तिद्वाराणिभूतले ॥ १३ ॥ समुद्राश्चैवचत्वारो रत्नानिविविधानिच ॥ राजर्षयोऽमलाश्शान्ता ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ १४ ॥ वेदाःपुराणस्मृतयो गाथागीतिःप्रहेलिकाः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य तदानींचाप्युमापतेः ॥ १५ ॥ तस्यदर्शनमात्रेण जातोहंविज्वरोऽमलः ॥ दीर्घायुर्दीर्घतपसा जरारोगविवर्जितः ॥ १६ ॥ स्नातोहंसर्वतीर्थेषु शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ प्रसन्नमानसोजातस्सर्वपापपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वापद्मावतींशुभ्रां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ न

नववन और चौदहगुप्त पृथ्वी में मुक्ति के द्वार हैं ॥ १३ ॥ व चार समुद्र तथा अनेक भांति रत्न व निर्मल राजर्षि और वेदों के पारगामी शान्तब्राह्मण ॥ १४ ॥ व वेद, पुराण, स्मृतियां और कथाओं का गान व पहेलिकाओंने उस समय उन उमानाथ की उपासना किया ॥ १५ ॥ उनके दर्शनही से मैं निर्मल व ज्वर रहित होगया और बड़े तप से बहुत आयुर्बलवाला व वृद्धता तथा रोग से रहित हुआ ॥ १६ ॥ और सावधान होता हुआ प्रसन्नमनवाला मैं समस्त तीर्थों में नहाकर

व पवित्र होकर समस्त पापों से रहित हुआ ॥ १७ ॥ जहांपर समस्त कामनाओं व वरोंको देनेवाली उत्तम पद्मावतीजी को देखकर कोई मनुष्य शोक व रोगसे संयुक्त नहीं देख पडता है ॥ १८ ॥ और न दुःखी न दरिद्री न मूर्ख न अजितेन्द्रिय होताहै व जहां पर आपस में वैरी और न व्रतहीन देख पड़ता है ॥ १९ ॥ और जहां पर आपस में सब मित्र व परस्पर में उपकारी व इन्द्रियोंको दमन करनेवाले व सब विद्याके उपदेशक हैं ॥ २० ॥ और सुन्दर बगीचे व वन तथा उपवन और सब सुन्दर मन्दिर पंक्तियों से बँधे हुये हैं ॥ २१ ॥ जो कि अनेक भांतिके रत्नों से संयुक्त सुन्दर स्वर्ण घंटोंसे और गीतों व बाजाओं के बड़े भारी उछाहों से विचित्र

यत्रदृश्यतेकश्चिच्छोकरोगपरोनरः ॥ १८ ॥ नदुःखीनचदारिद्री नमूर्खोनाजितेन्द्रियः ॥ परस्परंविरोधीच नाव्रती यत्रदृश्यते ॥ १९ ॥ अन्योन्यंसर्वमित्राणि अन्योन्यैश्चोपकारिणः ॥ सवेदान्ताश्चशान्ताश्च सर्वेविद्योपदेशिनः॥२०॥ उद्यानानिचरम्याणि वनान्युपवनानिच ॥ हर्म्याणिचैवशुभ्राणिश्रेणिबद्धानिसर्वशः ॥ २१ ॥ नानारत्नसमाकीर्णैर्हेम कुम्भैस्सुशोभनैः ॥ विराजन्तेविचित्राणि गीतवाद्यमहोत्सवैः ॥ २२ ॥ सदैववसतेयत्र उमयासहशङ्करः ॥ चन्द्रचूडाकृतिर्व्यास चिताभस्माङ्गलेपनः ॥ २३ ॥ चन्द्रज्योत्स्नाकलापूर्णमरीचिस्सर्वतोबभौ ॥ नयत्रकृष्णपक्षोभून्नामावस्यानवैतमः ॥ २४ ॥ सदैवपुष्पिताश्यामा बाल्येरूपवतीयथा ॥ हर्म्यपृष्ठेगवाक्षेच द्वाराजिरगृहांतरे॥ २५ ॥ गिरिगह्वरकुञ्जेषु गुहाध्वान्तान्तरेषुच ॥ आश्रमेषुचरम्येषु वनेषूपवनेषुच ॥ २६ ॥ गृहदीर्घिकासुरम्यासु शालामालासुस

शोभित हैं ॥ २२ ॥ और जहांपर पार्वती समेत सदाशिवजी सदैव बसते हैं जोकि हे व्यासजी ! चन्द्रचूड़ आकारवाले व चिताके भस्मसे अंग लेपवाले हैं ॥ २३ ॥ और जो कि सब ओर से चन्द्रमा की चन्द्रिका से संयुक्त कलाओं से पूर्ण किरणोंवाले शोभित थे और जहांपर न कृष्णपक्ष हुआ न अमावस हुई और न अन्धकार हुआ ॥ २४ ॥ और जो पुरी सदैव प्रफुल्लित थी जैसे कि बाल्यावस्था में रूपवती श्यामा स्त्री होवै और मन्दिरके पृष्ठ पै व झरोखा में तथा द्वार अंगनाई और घरके भीतर ॥ २५ ॥ व पर्वतोंकी गुफाओं व कुंजों तथा कन्दराओं के अन्धकारके मध्योंमें व सुन्दर आश्रमों और वनों व उपवनों में ॥ २६ ॥ व सुन्दरी घरकी बावलियों में और

सब ओर से शालाओं की मालाओं में चन्द्रमाकी उजियाली से भलीभांति पूर्ण दिशायें देख पड़ती हैं ॥ २७ ॥ और जिन में फूलेहुये कुमुदवाले तड़ाग शोभित
हैं जैसे कि शरदऋतु में नक्षत्र गणों से व्याप्त आकाशस्थल होवे ॥ २८ ॥ और नदियां व सब तड़ाग तथा छोटे तड़ाग कुमुद्वती (कुमुदिनी) से व्याप्त होकर पृ-
थ्वी मानो चन्द्रमा से संयुत हुई ॥ २९ ॥ जिसलिये सब समयों में कुमुदिनी प्रफुल्लित हुई उसी कारण यह कुमुदिनी पुरी हुई ॥ ३० ॥ सावधान होते हुये जो
मनुष्य कुमुद्वती पुरी में श्राद्ध करते हैं उनके पितर कभी स्वर्ग से नहीं अलग होते हैं ॥ ३१ ॥ व अक्षय श्राद्धको प्राप्त होता है और पितरोंको दियाहुआ दान अक्षय

वेतः ॥ चन्द्रज्योत्स्नासमापूर्णा दृश्यन्तेधवलीदिशः ॥२७॥ कुमुद्वतीप्रफुल्लानि तडागानिविरेजिरे ॥ ज्योतिर्गणसमा
कीर्णं शरदीवनभःस्थलम् ॥ २८ ॥ नद्यःसरांसिसर्वाणि वापीकूपसुपल्वलाः ॥ कुमुद्वत्यासमाकीर्णा आसीच्चन्द्रमसी
मही ॥ २९ ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु प्रफुल्लाचकुमुद्वती ॥ तस्मात्पद्मावतीह्येषा पुरीजाताकुमुद्वती ॥ ३० ॥ कुमुद्वत्यां
नरायेतु श्राद्धंकुर्युःसमाहिताः ॥ नतेषांपितरःस्वर्गाच्च्यवन्तेवैकदाचन ॥ ३१ ॥ अक्षयंलभतेश्राद्धंपितॄणांदत्तमक्षय
म् ॥ स्नानंदानंतथाहोमं देवताराधनंतथा ॥ ३२ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् ॥ एवंकुमुद्वतीजाता पु
रीव्याससनातना ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुमुद्वतीप्रभावकथनंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
सनत्कुमारउवाच ॥ अमरावतीयथाजाता पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ शृणुव्यासमहाप्राज्ञ यथाब्रह्माब्रवीत्सुरान् ॥१॥
तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि विस्तरेणतपोधन ॥ एकदाब्रह्मणादिष्टो प्रजार्थेऋषिसत्तमः ॥ २ ॥ मारीचःकश्यपस्तेपे तपःप

होताहै व स्नान, दान, होम तथा देवता का आराधन ॥ ३२ ॥ जो कुछ कर्म इस कुमुद्वती पुरी में किया जाता है वह सब अक्षय होता है हे व्यासजी ! इस प्रकार
सनातन कुमुद्वती पुरी हुई है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमुद्वतीप्रभावकथनंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

दो॰ । भयो अवन्तीपुरीकर जिमिअमरावति नाम । सत्तावनवें में कह्यो सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ,व्यासजी ! जिसप्रकार यह
कुशस्थलीपुरी अमरावती हुई है उसको सुनिये और जिसप्रकार ब्रह्माने देवताओं से कहा है ॥ १ ॥ हे तपोधन ! उसीप्रकार मैं विस्तार से भलीभाति कहूंगा एक

समय सन्तान के लिये ब्रह्मा से आज्ञा दियेहुये ऋषिश्रेष्ठ ॥ २ ॥ मरीचि के पुत्र कश्यपजीने बड़ा कठिन तप किया है व मनोहर महाकाल वनमें देवी समेत महर्षि कश्यप जीने ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिय व पवन भक्षी तथा गिरेहुये पत्तोंको भोजन करनेवाले होकर तपस्या किया है और हज़ारवर्ष पूर्णहोनेपर आकाशवाणी बोली ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मेरे अतिउत्तम वचनको सुनिये हे सुव्रत ! जिसलिये फलको उद्योग कर तुम्हारी तपस्या तीव्रहुई है ॥ ५ ॥ उसीकारण तुम्हारी सन्तान तबतक रहैगी जबतक कि चन्द्रमा सूर्यरहैंगे व तुम्हारी सन्तान तबतक यश समेत व पुत्रों तथा पौत्रों समेत पृथ्वी में रहैगी ॥ ६ ॥ और जिसलिये तुम्हारी पति-

रमदुष्करम् ॥ महाकालवनेरम्ये देव्यासहमहानृषिः ॥ ३ ॥ शीर्णपत्राशनस्तेपे वायुभक्षीजितेन्द्रियः ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतु वाग्वाचाशरीरिणी ॥ ४ ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ ममवाक्यमनुत्तमम् ॥ यस्मात्तेस्तितपस्तीव्रं फलमुद्यम्यसुव्रत ॥ ५ ॥ तस्मात्तेसन्ततिस्तावद् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तावत्तिष्ठतिमेदिन्यां यशसापुत्रपौत्रकैः ॥ ६ ॥ अदितिस्तेसतीभार्या त्वयासहाचरत्तपः ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु छायाभूतायशस्विनी ॥ ७ ॥ भविष्यन्तिसुराःसर्वे विष्णुचन्द्रपुरोगमाः ॥ अमरानिर्ज्जरादेवा दिविख्याताभवन्तिवति ॥ ८ ॥ त्वंचापीहिऋषिश्रेष्ठ प्रजापतिरकल्मषः ॥ भविष्यसिनसन्देहो ममवाक्याद्द्विजोत्तम ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वाचपुनर्देवीतत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यपुर्य्यांव्यास कुशस्थलीमनुत्तमाम् ॥ १० ॥ कश्यपःसहदाक्षिण्यासाग्निकःसमुपाश्रितः ॥ प्रजापिवद्धेतस्मात्सदेवासुरमानुषा ॥ ११ ॥ मरीचेःकश्य

व्रता स्त्री अदितिजीने तुम्हारे साथ तप किया है उसीकारण सब समयों में वे यशस्विनी छायाभूत याने छायाकी नाईं अनुगामिनी होवैंगी ॥ ७ ॥ और विष्णु व चन्द्रमादिक सब देवता अमर व वृद्धतारहित होवैंगे और देवता स्वर्ग में प्रसिद्ध होवैंगे ॥ ८ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ, द्विजोत्तम ! तुम भी मेरे वचनसे पाप रहित प्रजापति होवोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर फिर वहीं पर देवी अन्तर्द्धान होगई तबसे लगाकर हे व्यासजी ! अतिउत्तम कुशस्थली पुरी में ॥ १० ॥ दक्ष की कन्या अदिति समेत व अग्निसहित कश्यप जी आश्रित हुये हैं उसी कारण देवता दैत्य व मनुष्यों समेत प्रजा बढ़ते भये ॥ ११ ॥ मरीचि से कश्यप पैदाहुये

अव॰ अ॰

पोजज्ञे ततःसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ सुधापानकरादेवा व्यासतेनामराःकृताः ॥ १२ ॥ नन्दनंप्राप्यतत्रैव महाकालवनोत्तमे॥ कामधेनुःसमाख्याता मनोरथवरप्रदा ॥ १३ ॥ साप्यत्रैवसदासेवेन्महाकालंमहेश्वरम् ॥ पारिजातंतरुश्रेष्ठं तथाचाम्लानपङ्कजम् ॥ १४ ॥ बिन्दुसरःसमाख्यातंमानसंसरउत्तमम् ॥ हंससारससंकीर्णं सदासिद्धनिषेवितम् ॥ १५ ॥ मुक्तामणिगणासक्तं रत्नसोपानशोभितम् ॥ निधिरेषमहापद्मः कल्हारकुमुदोज्ज्वलः ॥ १६ ॥ यानियानिचदिव्यानि सन्तिब्रह्माण्डगोलके ॥ तानिसर्वाणितिष्ठन्ति महाकालवनेशुभे ॥ १७ ॥ तेनतेनात्मयोगेन मानवाश्चात्रसंस्थिताः ॥ तत्तद्देहास्तदाचारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यंचसमाकीर्णाः सर्वेचामरसन्निभाः ॥ विचरन्तियथा देवाः पुरीमेतांजनाभुवि ॥ १९ ॥ सुराङ्गनासमानार्यः सदैवस्थिरयौवनाः ॥ ईदृशींचपुरींदृष्ट्वा भुविव्याससनातनाम् ॥ २० ॥ देवदानवगन्धर्वः किन्नरोरगराक्षसाम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदानित्या बहुकालफलप्रदा ॥ २१ ॥ अमराणांस्थिति

व उन से सब प्रतिष्ठित हुआ हे व्यासजी ! जिसलिये देवताओं ने अमृत को पियाहै उसीकारण अमर कियेगये हैं ॥ १२ ॥ और उसी उत्तम महाकाल वन में नन्दनवन को प्राप्त होकर मनोरथ के वरदान को देनेवाली कामधेनु भलीभांति कही गईहै ॥ १३ ॥ और वह भी सदैव यहांपर महाकाल महेश्वर जी को सेवती है और वृक्षों में श्रेष्ठ पारिजात व प्रफुल्लित कमलोंवाला ॥ १४ ॥ बिन्दुसर कहा गयाहै और उत्तम मानस तड़ागहै जो कि हंसो व सारसों से व्याप्त तथा सदैव सिद्धोंसे सेवितहै ॥ १५ ॥ व जो कि मोती व मणिगणोंसे संयुत तथा रत्नों के सोपानों से शोभितहै और लालकमलों व कोकाबेलीसे उज्ज्वल यह महापद्म निधिहै ॥ १६ ॥ और ब्रह्माण्ड गोलकमें जो जो दिव्य वस्तुयें हैं वे सब उत्तम महाकाल वनमें स्थितहैं ॥ १७ ॥ और उस उस आत्मयोगसे मनुष्य यहांपर भलीभांति स्थितहैं जो कि उस उस देहवाले और उनके आचारवाले तथा उनके रूपवाले और उनके पराक्रमवाले हैं ॥ १८ ॥ और आपसमें मिलेहुये सब देवताओं के समानहैं पृथ्वी पै इस पुरी में मनुष्य वैसेही घूमते हैं जैसे कि देवता होवैं ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी में ऐसी सनातन पुरी को देखकर सदैव निश्चल यौवनवाली स्त्रियां देवांगनाओं के समानहैं ॥ २० ॥ और देवता, दानव, गंधर्व, किन्नर, नाग व राक्षसोंको यह सनातन पुरी भुक्ति, मुक्ति दायिनी व बहुत कालतक फलको देनेवाली है ॥ २१ ॥ जिस

लिये यहां अमरों (देवताओं) की स्थितिहै उसीकारण अमरावतीहुई प्रसंग से आयाहुआ बहुत ऐश्वर्यवाला जो पुरुष इस पुरी में ॥ २२ ॥ स्नान दानादिक करके सदाशिवदेवजीको देखताहै उसको पुत्र से या धनसे भी कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ २३ ॥ और समस्त सुखोंको पाताहै व मरकर वह पुरुष शिवलोकको जाताहै और इस चरित्रके पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य शतरुद्रीके फलको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामम रावतीनामकथनन्नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

ह्यत्र तस्माज्जातामरावती ॥ एतस्यांमहाभागः प्रसङ्गेनसमागतः ॥ २२ ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा पश्येद्देवंमहेश्वरम् ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चित् पुत्रतोधनतोपिवा ॥ २३ ॥ सर्वभोगानवाप्नोति मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापिशत रुद्रीफलंलभेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽमरावतीनामकथनन्नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाभाग पुरीह्येषामरावती ॥ विशालाचसमाख्याता सर्वलोकेषुगीयते ॥ १ ॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाकथितम्पुरा ॥ गुह्याद्गुह्यतरंक्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥ उमयासहितोदेव एकएवाभवद्वने ॥ ततोभूतगणास्सर्वे पश्चात्सर्वेसुरासुराः ॥ ३ ॥ विष्णुर्दशाकृतिर्यत्र देव्यस्त्रैलोक्यमातरः ॥ विनायकाश्चवैतालाः कूष्माण्डाभैरवादयः ॥ ४ ॥ कल्पोद्भेदाश्चलिङ्गाश्च चतुराशीतिज्यौतिषाः ॥ क्षेत्राणिक्षेत्रपालाश्च ऋद्धिस्सिद्धिस्त

दो० । यथा अवन्ती पुरीकर भयो विशाला नाम । अट्ठावन अध्याय में सोइ चरित शिवधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि महाभाग, व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार विशाला ऐसी कहीहुई यह अमरावतीपुरी सब लोकों में गानकी जातीहै ॥ १ ॥ वैसेही मैं कहूंगा पुरातन समय ब्रह्माने सब पापोंको नाशनेवाले व गुप्तसे भी अधिक गुप्तक्षेत्र को कहाहै ॥ २ ॥ पार्वती समेत एकही शिवदेवजी वनमें हुये हैं तदन्तर समस्त भूतगण पश्चात् सब देवता व दैत्य हुए हैं ॥ ३ ॥ और जहापर दश आकारवाले विष्णुजी व त्रिलोक की माताएं देवियांहैं व विनायक, वैताल, कूष्मांड व भैरवादिकहै ॥ ४ ॥ व कल्पोद्भेद तथा चौरासी ज्यौतिर्लिंगहैं और क्षेत्र,क्षेत्रपाल-

ऋद्धि व सिद्धि हैं ॥ ५ ॥ और पितर, लोकपाल, सिद्ध व जो सिद्धिदायक हैं वे और बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषि व निर्मल आशयवाली ऋषियों की स्त्रियांहैं ॥ ६ ॥ और कि-
न्नर, देवता, गंधर्व व वरांगना अप्सराएं तथा जो सब पवनगण हैं व जो साध्यों के गण हैं ॥ ७ ॥ और यक्ष व गुह्यक संज्ञक तथा पिशाच, नाग, राक्षस, चर व अचर
प्राणियों ने ध्यान व मौन में भलीभांति आश्रित होकर ॥ ८ ॥ उन देवदेव पार्वती के पति शिवजीकी उपासना किया है उस समय उनको देखकर तब वे गि-
रिनन्दिनी पार्वती जी ॥ ९ ॥ संसारके आश्रयरूप शिवजीसे नम्र वचनसे बोलीं पार्वती जी बोलीं कि हे संसारधारक, संसारस्वामिन्, देवदेव, जगदीशाजी ! ॥ १० ॥

कि
थैवच ॥ ५ ॥ पितरोलोकपालाश्च सिद्धास्सिद्धिप्रदाश्चये ॥ ऋषयश्चमहाभागा ऋषिपत्न्योमलाशयाः ॥ ६ ॥ कि
न्नरादेवगन्धर्वा अप्सरसोवराङ्गनाः ॥ मरुद्गणाश्चयेसर्वे साध्यानांचगणाश्चये ॥ ७ ॥ यक्षागुह्यकसंज्ञाश्च पिशाचोरग
राक्षसाः ॥ स्थावराजङ्गमास्सर्वे ध्यानमौनंसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य देवदेवस्योमापतेः ॥ तान्दृष्ट्वासात
दादेवी पार्वतीगिरिजातदा ॥ ९ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा शङ्करंजगदाश्रयम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेवजगन्नाथजगद्धा
रजगत्प्रभो ॥ १० ॥ पश्यएतान्महाभागान् ध्यायमानांस्तवाश्रितान् ॥ नतूपेक्ष्यान्पितात्वञ्च तपमानांस्तपोर्दिता
न् ॥ ११ ॥ कल्पयत्वंमहाभाग एतेषामात्मनोहितम् ॥ यथायोग्यंवासनार्थं स्थानंपरमशोभनम् ॥ १२ ॥ पुरींकल्प
यमेनाथ वासार्थंसर्वकामदाम् ॥ एपामेवासनास्वामिन् भवतांयदिरोचते ॥ १३ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्याः पार्वत्याःप
रमेश्वरः ॥ कल्पयामासचपुरीं रम्यांसर्वमनोरमाम् ॥ १४ ॥ आत्मनोपमितांपुण्यां शम्भुस्सर्वात्मनातदा ॥ बहुयो

तुम पिताहो इन बहुत ऐश्वर्यवाले व ध्यान करतेहुए प्राणियों को देखिये जो कि छोड़ने योग्य नहीं हैं और तपस्या करते हुये व तपसे विकल हैं ॥ ११ ॥ हे
महाभाग ! इनके व अपने बसने के लिये अतिउत्तम व हितकारक यथायोग्य स्थानको कल्पित कीजिये ॥ १२ ॥ व हे नाथ ! मेरे बसने के लिये सब कामनाओं
को देनेवाली पुरी को कल्पित कीजिये हे स्वामिन् ! यदि आपको रुचै तो यह मेरी इच्छाहै ॥ १३ ॥ उन पार्वतीजी के ऐसे वचन को सुनकर उस समय सब यत्न

से परमेश्वर शिवजीने सबसे मनोहर सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि अपने समान व पुण्यदायिनी तथा बहुत योजन चौड़ी व दिव्य और दिव्यजनोंको प्यारी ॥ १४ । १५ ॥ व दिव्य अभिप्रायसे संयुत और दिव्य स्थानोंसे सुन्दरी तथा समस्त दिव्यगुणों से संयुक्त व विशाल तथा निर्मल और उत्तम है ॥ १६ ॥ व क्रय विक्रय (मोल व बेंच) से संयुत व बाज़ार, और अटारी चौतरोंवालीहै और मन्दिर वगृहोंसे व्याप्त तथा राजमन्दिरों की पंक्तियों से शोभितहै ॥ १७ ॥ व स्फटिक मणि-यों की भित्तियों से रचित तथा वैदूर्यमणिकी भूमिवाले और मूंगाओंके खम्भों से श्रेष्ठ तथा स्वर्ण के भूषणों से पूर्ण है ॥ १८ ॥ व कुछ अरुण मणिकी देहलीवाली

जनविस्तीर्णां दिव्यांदिव्यजनप्रियाम् ॥ १५ ॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्तां दिव्यस्थानमनोरमाम् ॥ दिव्यसर्वगुणोपेतां विशालांविरजांशुभाम् ॥ १६ ॥ क्रयविक्रयसम्पन्नां हट्टाट्टालकचत्वराम् ॥ बहुहर्म्यगृहाकीर्णां सौधपङ्क्तिविराजिताम् ॥ १७ ॥ स्फाटिकाभित्तिरचितां वैडूर्यमणिभूमिकाम् ॥ प्रवालस्तम्भप्रवरां हेमाभरणसम्भराम् ॥ १८ ॥ आरक्तमणिदेहल्यां द्वारशाखाभिमण्डिताम् ॥ जाम्बूनदकपाटाभ्यां वज्रार्गलसुसंस्कृताम् ॥ १९ ॥ मणिरत्नसमाभूमिद्वाराजिरगृहान्तराम् ॥ घोषजालानिरम्याणि मुक्तादामविलम्बिनीम् ॥ २० ॥ हेमस्तम्भध्वजोपेतां पताकाचगृहेगृहे ॥ कलशाश्चविराजन्ते मणिहेमयुतागृहे ॥ २१ ॥ वापीकूपतडागानि सरांसिविमलानिच ॥ पद्मकिञ्जल्कगन्धीनिराजन्ते जलजन्तुभिः ॥ २२ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णां शिखण्डिगणसेविताम् ॥ जलयन्त्रकृताधारां गृहवापीवनाकराम् ॥ २३ ॥

व द्वारशाखाओं से शोभित तथा सुवर्णके कपाटों से व हीरेकी अर्गला (जञ्जीर) से संस्कार की हुई है ॥ १९ ॥ और मणियों व रत्नोंके समान भूमि, द्वार, अंगनाई व घरके भीतरवाली है और जहां सुन्दर व्रजसमूह हैं और जिसमें मोतियोंकी झालर लटकी है ॥ २० ॥ और सुवर्ण के खम्भोंसे व ध्वजाओं से संयुक्त है और घर घर में पताका हैं व घर में मणियों व सुवर्णसे संयुत कलश शोभित हैं ॥ २१ ॥ और बावली, कूप तड़ाग व कमलके केसरसे सुगन्धवाले निर्मल तड़ाग जल जन्तुओं से शोभित हैं ॥ २२ ॥ और हंसों व कारण्डव पक्षियोंसे व्याप्त तथा मयूरगणोंसे सेवित और जलयंत्रों (फुहारों) से कियेहुये आधारवाली तथा गृह, बावली

व वनोंकी खानिवाली है ॥ २३ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं व कहीं कोकिलायें कूजती हैं व भ्रमरोंसे भक्षित पुष्पगुच्छोंवाली वनकी पंक्तियां हैं ॥ २४ ॥ व पुरुषों तथा स्त्रियों के समूहोंसे व्याप्त व वर्णों और आश्रमों से सेवित है और सुन्दर मन्दिरों के भीतर प्राप्त स्त्रियां देखने में तत्पर होकर शोभितहुईं ॥ २५ ॥ और चन्द्रशाला याने अटारी के ऊपर बनेहुये मन्दिरों से कीहुई पंक्ति बन्दनवारोंकी नाईं शोभितहै हे व्यासजी ! इसप्रकार अपने योगसे बसाईहुई सुंदरी पुरी है ॥ २६ ॥ जहां पर कुबेरके मन्दिर से चिह्नित व सुन्दरी तथा श्वेत अलका पुरी है जोकि राक्षसों से व्याप्त व पक्षियों से शोभित है ॥ २७ ॥ और वहापर उत्तम वरुणजी का स्थान व भयंकर

क्वचिन्मयूरान्नृत्यन्ति क्वचित्कूजन्तिकोकिलाः ॥ भ्रमरावलीढपुष्पस्तवकावनराजयः ॥ २४ ॥ नरनारीगणाकीर्णां वर्णाश्रमनिषेविताम् ॥ सुहर्म्यान्तर्गतानार्यो विलोकनपराबभुः ॥ २५ ॥ चन्द्रशालाकृताश्रेणी तोरणानीवशोभते ॥ एवंव्यासपुरीरम्या आत्मयोगेनवासिता ॥ २६ ॥ यत्रालकापुरीरम्या कुबेरभवनाङ्किता ॥ धवलापुण्यजनैःकीर्णा पक्षिभीरुपशोभिता ॥ २७ ॥ तत्रभोगवतीदिव्या वरुणालयमुत्तमम् ॥ नागकन्याभीरुद्राभिर्नागस्त्रीभिश्चसंकुला ॥ २८ ॥ संयमिनीपुरीश्रेष्ठा धर्मराजेनपालिता ॥ अनाचारजनैःपूर्णा कृताभूतविगर्हितैः ॥ २९ ॥ देवतानांपुरीरम्या वामवेनाभिपालिता ॥ पुण्यस्त्रीनृगणाकीर्णा किन्नरोद्गीतमण्डिता ॥ ३० ॥ एवंविधानिरम्याणि बहुपुण्यतराणिच ॥ क्वचिद्रम्भाकृतद्वारा यवाङ्कुरघटाशुभा ॥ ३१ ॥ क्वचिद्गायन्तिगन्धर्वाः क्वचिन्नृत्यतिनर्तकी ॥ क्वचिद्बालाःपठन्तिस्म वेदाध्ययनकाद्विजाः ॥ ३२ ॥ क्वचित्यज्ञान्यजन्तिस्म यजमानास्सऋत्विजः ॥ क्वचिच्चावभृथस्नाने तद्दानानिप्र

मन्दिर से चिह्नित व सुन्दरी तथा श्वेत अलका पुरी है जोकि राक्षसों से व्याप्त व पक्षियों से शोभित है ॥ २७ ॥ और वहापर उत्तम वरुणजी का स्थान व भयंकर नागकन्याओं तथा नागपत्नियों से संयुत नागपुरी है ॥ २८ ॥ और धर्मराज से पालित उत्तम यमपुरी है जोकि प्राणियों से निन्दित व आचार रहित जनोंसे पूर्ण है ॥ २९ ॥ व इन्द्र से पालित सुन्दरी देवताओं की पुरीहै जोकि पवित्र स्त्रियों व मनुष्यगणों से व्याप्त तथा किन्नरों के उच्चप्रकार के गानसे शोभित है ॥ ३० ॥ इस प्रकार के बहुत पवित्र व सुन्दर स्थान हैं और कहीं कदली से किये द्वारवाली व यवों के अंकुरों से संयुत कलशोंवाली उत्तम पुरीहै ॥ ३१ ॥ कहीं गन्धर्व गाते हैं व कहीं नर्तकी (नाचनेवाली वेश्या) नाचती हैं और कहीं वेदाध्ययनवाले बालक ब्राह्मण पढ़ते हैं ॥ ३२ ॥ और कहीं ऋत्विजो समेत यजमान यज्ञोंको करते हैं व

कहीं यज्ञान्त स्नान में उसके दानों को करते हैं ॥ ३३ ॥ कहीं यज्ञोपवीत कर्महोताहै व कहीं विवाह और अग्निका परिग्रहण होताहै व कहीं बगीचादिक तथा पूर्त (तड़ागादि खनन) होताहै और कहीं यात्राका निश्चय होताहै ॥ ३४॥ वैसेही कहीं पर विधिपूर्वक बावली,कूप व तड़ागोंका कर्म होताहै और कहीं वाचक कथाके प्रसंगों को कहताहै ॥ ३५ ॥ व उत्तम नगर में कहीं पर कविलोग कथा कहते हैं व कहीं मल्ल विरोध करते हैं कहीं नट नाचने में तत्पर हैं ॥ ३६ ॥ और मणियोंकी सोपान पंक्तियोंवाले तडाग शोभित है व सोलह वर्षवाली चञ्चल चपल बाला ॥ ३७ ॥ वहां जलके हरने में तत्पर है जोकि मणियों व सुवर्णके घटोंसे शोभित है हे व्यास

कुर्वते ॥ ३३ ॥ क्वचित्तूपनयनंक्वचिद्विवाहाग्निपरिग्रहम् ॥ क्वचिदारामपूर्तंवै क्वचिद्यात्रावधारणम् ॥ ३४ ॥ वापीकूपतडागानां तथैवविधिपूर्वकम् ॥ क्वचित्कथाप्रसङ्गाश्च वाचकःपरिशंसति ॥ ३५ ॥ क्वचिद्गाथाःप्रकुर्वन्ति कवयःपुरउत्तमे ॥ क्वचिन्मल्लाविरुध्यन्ति नटानाट्यपराःक्वचित् ॥ ३६ ॥ तडागाश्चविराजन्ते मणिसोपानपङ्क्तयः ॥ चञ्चलाचपलाबालाश्यामाषोडशवार्षिकी ॥ ३७ ॥ वारिहारपरातत्र मणिहेमघटोत्कटा ॥ एवंव्यासपुरीरम्या निर्मितायोगमायया ॥ ३८ ॥ शम्भुनासर्वपापघ्नी प्रियाप्रियचिकीर्षया ॥ विशालाबहुविस्तीर्णा पुण्यापुण्यजनाश्रया ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु सर्वलोकेषुगीयते ॥ विशालेतिसमाख्याता पुरीरम्यासनातनी ॥ ४० ॥ यत्रकुत्रस्थितोवापि सर्वावस्थाङ्गतोपिवा ॥ विशालेतिवदन्नित्यं शिवलोकेमहीयते ॥ ४१ ॥ ईदृशीनपुरीव्यास भुविब्रह्माण्डगोलके ॥ विशालासदृशीचान्या भुक्तिमुक्तिप्रदानृणाम् ॥ ४२ ॥ पितॄनुद्दिश्यकुर्वन्ति श्राद्धकालेनरास्तुयत् ॥ तदक्षयंभवेत्तेषां पितृकल्पे

जी ! इसप्रकार शिवजी ने प्रिय करने की इच्छा से योगमायाके द्वारा सब पापों को नाशनेवाली व प्यारी सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि विशाल व बहुत चौंडी तथा पवित्र व पवित्रजनों से आश्रयवाली है ॥ ३८ । ३९ ॥ इसलिये सब कालोंमे विशाला ऐसी कहीहुई सुन्दरी व सनातनी पुरी सब लोकोंमें गानकीजाती है ॥४०॥ जहां कहां भी स्थित व सब दशामें प्राप्तभी नित्य विशाला ऐसा कहताहुआ मनुष्यशिवलोक में पूजाजाता है ॥ ४१ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी पै ब्रह्माण्ड गोलक में विशाला के समान मनुष्यों को भुक्ति मुक्तिदायिनी ऐसी अन्य पुरी नहीं है ॥ ४२ ॥ श्राद्धके समयमें पितरोंको उद्देश कर मनुष्य जो करते हैं उनका वह अक्षय होताहै

चगीयते ॥ ४३ ॥ स्नानदानादिकंयैस्तु विशालायांप्रसङ्गतः ॥ यत्रकुत्रगतास्तेवै मृतायान्तिशिवक्षयम् ॥ ४४ ॥ धन्याःपुण्यतमालोके प्रीतिर्येषांसदाचला: ॥ विशालायाःफलंशश्वच्छेषोवक्तुन्नशक्नुयात् ॥ ४५ ॥ कथाश्रवणमात्रेण वाच्यमानेनतत्क्षणात् ॥ महापापोद्भवंपापं मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ४६ ॥ एवंव्यासपुरीजाता विशालाचकुशस्थली ॥ प्रतिकल्पंयथाजाता तथामेशृणुभाषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे विशालाभिधानकथनन्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुष्वावहितोव्यास कथामेकाग्रमानसः ॥ मयाव्यासमुखात्प्राप्ता कल्पभेदकथाशुभा ॥ १ ॥ गुह्याद्गुह्यतराश्रेष्ठा देयायस्यनकस्यचित् ॥ नास्तिकायकृतघ्नाय नाशिष्यायकदाचन ॥ २ ॥ एषापुण्यतमा व्यास कथापापहरापरा ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण कल्पदोषोनबाधते ॥ ३ ॥ प्रमाणंकल्पपर्यन्तं ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ म

और पितृकल्प मे गान कियाजाता है ॥ ४३ ॥ जिन्होंने विशाला पुरी में प्रसंग से स्नान दानादिक किया है जहा कहीं भी प्राप्त वे मनुष्य मरकर शिवजी के स्थान को प्राप्तहोते हैं ॥ ४४ ॥ वे धन्य व अत्यन्त पवित्रहैं कि जिनकी प्रीति सदैव विशालापुरीमें निश्चल रहतीहै और विशालाके फलको कहनेके लिये सदैव शेषजी भी नहीं समर्थ हैं ॥ ४५ ॥ कथाके सुननेही से व कहे जाने से उसीक्षण महापातकसे उपजाहुआ पाप छूटजाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ४६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार कुशस्थली पुरी विशाला हुईहै और प्रति कल्पमें जिसप्रकार हुई है वैसेही कहते हुये मुझसे सुनिये ॥४७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर प्रतिकल्पा भो नाम । उनसठिवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकाग्रमनवाले होकर व सावधान होतेहुये तुम कथाको सुनो मैंने व्यासजी के मुखसे कल्पके भेदकी उत्तम कथाको पायाहै ॥ १ ॥ जोकि गुप्त से भी अधिक गुप्त व श्रेष्ठ है और जिस किसी को देने योग्य नहीं है और नास्तिक, कृतघ्न व विनाशिष्य के लिये कभी न देना चाहिये ॥ २ ॥ हे व्यासजी ! यह कथा अति पवित्र व उत्तम तथा पापहारिणी है

कि जिसके सुननेहीसे कल्पका दोष बाधा नहीं करता है ॥ ३ ॥ सब मन्वन्तरों में व कल्पों तथा कल्पान्तरों में परमेष्ठी ब्रह्माका कल्पपर्यन्त प्रमाण है ॥ ४ ॥ हेसत्तम ! जितनी संख्या प्रमाण कीगई है उसको सुनिये कि सूर्यनारायणजी मनुष्यों व देवताओं के दिनरात्रिका विभाग करते हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस गणना को ग्रहण कर संख्याको सुनिये कि पन्द्रह निमेषों की काष्ठा होतीहै और उनतीस काष्ठाओं की कलाहोती हैं ॥ ६ ॥ व तीस कलाओं का मुहूर्त होताहै और उन तीस मुहूर्तोंसे विद्वानोंने दिनरात ऐसा कहा है व चन्द्रमा सूर्यकी गति कहीगई है ॥ ७ ॥ नित्य इन सबों में सूर्यनारायणकी गतिके भेदसे मनुष्यों का वह दिनहोता है और वैसेही

न्वन्तरेषुसर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषुच ॥ ४ ॥ यावत्सङ्ख्यापरिमिता तावतींशृणुसत्तम ॥ अहोरात्रंविभजते सूर्योमानुषदैवतम् ॥ ५ ॥ तामुपादायगणनां शृणुसङ्ख्यांद्विजोत्तम ॥ निमिषैःपञ्चदशभिः काष्ठात्रिंशत्तुताःकलाः ॥ ६ ॥ त्रिंशत्कलोमुहूर्तस्तु त्रिंशद्भिस्तैर्मनीषिणः ॥ अहोरात्रमितिप्राहुश्चन्द्रादित्यगतिस्तथा ॥ ७ ॥ रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषुनित्यशः ॥ तदहस्तुमनुष्याणां रात्रिश्चैवतुतादृशी ॥ ८ ॥ पक्षामासाऋतूरब्दमयनंचप्रकीर्तितम् ॥ पितॄणाञ्चैवदेवानां ब्रह्मणश्चयथातथम् ॥ ९ ॥ यावत्सङ्ख्यासमाख्याता आयुरन्तश्चतादृशः ॥ अहोरात्राःपञ्चदश पक्षइत्यभिशब्दितः ॥ १० ॥ पक्षौद्वौतौकृतोमासो मासौद्वावृतुरुच्यते ॥ अयनंतैस्त्रिभिःप्रोक्तमब्देद्वेअयनेस्मृतः ॥ ११ ॥ दक्षिणंचोत्तरञ्चैवंसङ्ख्यातत्त्वविशारदैः ॥ मानेनानेनयोमासःपक्षद्वयसमन्वितः ॥ १२ ॥ पितॄणांतदहोरात्रमितिकालविदोविदुः ॥ शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्तुशर्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णपक्षेत्विहश्राद्धं पितॄणांवर्ततेततः ॥ मानुषेनतुमानेन योवैसंवत्स

रात्रि होती है ॥ ८ ॥ और पितरो, देवताओं व ब्रह्माका पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष व अयन यथायोग्य कहागयाहै ॥ ९ ॥ व जितनी संख्या कहीगई हैं वैसाही आयुर्बल का अन्त है पन्द्रह दिनरात्रोंका पक्ष ऐसा कहागया है ॥ १० ॥ और उन दो पक्षोंका मास कहागया है व दो महीनों की ऋतु कहीजाती है और उन तीन ऋतुवों से अयन कहा गयाहै व संख्याके यथार्थ जाननेमें चतुर लोगोंने दक्षिण व उत्तर दो अयनों का वर्ष कहाहै इस प्रमाणसे दो पक्षोंसे संयुक्त जो महीनाहै ॥ ११ । १२ ॥ वह पितरों का दिन रात होता है ऐसा कालके जाननेवालोंने कहा है शुक्लपक्ष उन पितरों का दिन है व कृष्णपक्ष रात्रि है ॥ १३ ॥ उसीकारण इस संसार मे

कृष्णपक्ष में पितरों की श्राद्ध वर्तमान होती है मनुष्योंवाले प्रमाण से जो वर्ष कहा गया है ॥ १४ ॥ वह देवताओं का दिन रात्रि होताहै और उत्तरायण दिन है व यथार्थ जाननेवाले विद्वानों से दक्षिणायन रात्रि कहीगई है ॥ १५ ॥ और देवताओंवाला सौगुना वर्ष मनुका दिनरात्रि कहागया है व दशगुना दिनरात्रि मनुका पक्ष कहाजाताहै ॥ १६ ॥ पक्षसे दशगुना महीना होता है और बारहगुने महीनों से यथार्थ दर्शी विद्वानों ने मनुवों की ऋतु कहाहै ॥ १७ ॥ और उन छा ऋतुवों से वर्ष कहीगई है उसीसे संख्या बांधी जातीहै व चारही हज़ार वर्ष सतयुग होताहै ॥ १८ ॥ और उतनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होताहै और

रस्स्मृतः ॥ १४ ॥ देवानांतदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ॥ दक्षिणायनंस्मृतारात्रिःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ १५ ॥ दिव्यमब्दंशतगुणमहोरात्रंमनोस्स्मृतम् ॥ अहोरात्रंदशगुणं मानवःपक्षउच्यते ॥ १६ ॥ पक्षाद्दशगुणोमासो मासैर्द्वादशभिर्गुणैः ॥ ऋतुर्मनूनांसम्प्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥ १७ ॥ षड्भिस्तैर्वर्षआख्यातस्तेनसङ्ख्यानिबध्यते ॥ चत्वार्यैवसहस्राणि वर्षाणान्तुकृतंयुगम् ॥ १८ ॥ तावतीतुभवेत्सन्ध्या सध्यांशश्चतथाविधः ॥ त्रीणिवर्षसहस्राणि त्रेतायाःपरिमाणतः ॥ १९ ॥ तस्याश्चतावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ तथावर्षसहस्रेद्वे द्वापरंपरिकीर्तितम् ॥ २० ॥ तस्यापितावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ कलिर्वर्षसहस्रन्तु संख्यातोत्रमनीषिभिः ॥ २१ ॥ तस्यतावतिकासन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ एषाद्वादशसाहस्री युगसंख्याप्रकीर्तिता ॥ २२ ॥ दिव्येनानेनमानेन युगसंख्यानिबोधमे ॥ ससर्जसपुनस्तात जगत्सर्वमिदंततम् ॥ २३ ॥ कृतंत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चैवचतुर्युगम् ॥ युगंतदेकसप्त

तीनहज़ार वर्ष त्रेताका प्रमाण है ॥ १९ ॥ और उसकी उतनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होताहै और दो हजार वर्ष द्वापर कहागया है ॥ २० और उसकी भी उतनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है और इस विषय में विद्वानों ने हजार वर्ष कलियुगकी संख्या कियाहै ॥ २१ ॥ और उसकी उतनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है यह बारहहज़ार युगकी संख्या कहीगई है ॥ २२ ॥ इस दिव्य याने देवतावाले प्रमाणसे मुझसे युगकी संख्या को जानिये हे तात ! फिर उन ब्रह्मा ने

इस सब विस्तारित संसारको रचा है ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग यह चारों युग हैं और इकहत्तरसे गुना कियाहुआ वह युग ॥ २४ ॥
गणना के प्रयोजन में चतुर मनुष्यों से मन्वन्तर ऐसा कहागयाहै और वह अयनभी कहागया है व दक्षिण, उत्तर दो अयन होते हैं ॥ २५ ॥ हे संसारके स्वामी !
इसके भलीभांति प्राप्तहोने पर मनु नाश होजाते हैं तदनन्तर इतनेही समयतक अन्य मनु होताहै ॥ २६ ॥ और नृपेन्द्र मनुके बीतने पर वह संवत्सर कहागया है
और यथार्थदर्शी मनुने उसीको अयन कहाहै ॥ २७ ॥ और वही ब्रह्मा का दिन कहागया है व कल्प ऐसा कहाजाता है और विद्वानों से हजार युगतक वह रात्रि

त्या गुणितंद्विजसत्तम ॥ २४ ॥ मन्वन्तरमितिप्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः ॥ अयनंचापितत्प्रोक्तं द्व्ययनेदक्षिणोत्तरे ॥ २५ ॥ मनुःप्रलीयतेह्यत्र सम्प्राप्तेजगतःप्रभो ॥ ततोपरोमनुःकालमेतावन्तंभवत्युत ॥ २६ ॥ समतीतेतुराजेन्द्रे प्रोक्तस्संवत्सरस्सवै ॥ तदेवचायनंप्रोक्तं मुनिनातत्त्वदर्शिना ॥ २७ ॥ ब्रह्मणस्तदहःप्रोक्तः कल्पश्चेतिसमुच्यते ॥ सहस्रयुगपर्य्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेबुधैः ॥ २८ ॥ निमज्जत्यथतत्रोर्वी सशैलवनकानना ॥ तस्मिन्युगसहस्रेतु पूर्णेभरतसत्तम ॥ २९ ॥ ब्राह्मयोदिवसपर्यन्तं कल्पोनिश्शेषउच्यते ॥ युगानिसमतीतानि साग्राणिकथितानिते ॥ ३० ॥ कृतत्रेतानियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ॥ चतुर्दशैतेमनवःकथिताःकीर्तिवर्द्धनाः ॥ ३१ ॥ वेदेषुसपुराणेषु सर्वेषुप्रभविष्णवः ॥ प्रजानाम्पतयोव्यास धन्यमेषांप्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरेषुसंहारास्संहारान्तेषुसम्भवाः ॥ नशक्यमन्तस्तेषांवै वक्तुंवर्षशतैरपि ॥ ३३ ॥ विसर्गाश्चप्रजनांवै संहारोस्यचभारत ॥ मन्वन्तरेषुसंहारः श्रूयतेभरतर्षभ ॥ ३४ ॥

कहीजाती है ॥ २८ ॥ हे भरतोत्तम ! इसके अनन्तर उस रात्रि में पर्वत, जल व वनों समेत पृथ्वी डूबजाती है और उस हजार युगके पूर्ण होने पर ॥ २९ ॥ दिन
पर्यन्त ब्रह्माका समस्त कल्प कहाजाता है कुछ अधिक बीते हुये युग तुमसे कहेगये ॥ ३० ॥ और सतयुग व त्रेता संयुक्त युग मन्वन्तर कहाजाता है यशके बढ़ाने-
वाले ये चौदह मनु कहेगये ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! पुराणों समेत सब वेदों में प्रजाओं के पति समर्थ हैं और इनका कीर्तन धन्य है ॥ ३२ ॥ व मन्वन्तरों में संहार
और संहार के अन्तों में उत्पत्तियां होती हैं व उनका अन्त सैकड़ों वर्षोंसे भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३३ ॥ हे भारत ! प्रजाओंकी सृष्टियां व उनका संहार होताहै और

हे भरतर्षभ ! मन्वन्तरों में संहार सुनाजाताहै ॥ ३४ ॥ जहां कि तपस्या,ब्रह्मचर्य व शास्त्र से संयुक्त सब देवता सप्तर्षियों समेत स्थित होते हैं ॥ ३५ ॥ व हज़ार युग पूर्णहोने पर सब कल्प कहाजाता है उसमें समस्तप्राणी सूर्यनारायणकी किरणों से जलजाते हैं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्माको आगे कर आदित्यगणों समेत ब्राह्मण (सप्तर्षि) सुरोत्तम प्रभु नारायण विष्णुजी में प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ वे अव्यक्त तथा सनातन देवजी कल्पान्तोंमें बार २ सब प्राणियों के रचनेवाले हैं और उनका यह सब संसारहै ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी ! महादेव व ब्रह्मा संयुक्त वही विष्णुजी विद्यमान रहते हैं व उस ईश्वरने मनोहर महाकाल वन में निवास कियाहै ॥ ३९ ॥ हे व्यास

यत्रतिष्ठन्तिवैदेवास्सर्वेसप्तर्षिभिस्सह ॥ तपसाब्रह्मचर्येण श्रुतेनचसमन्विताः ॥ ३५ ॥ पूर्णयुगसहस्रेतु कल्पोनिश्शेषउच्यते ॥ तत्रसर्वाणिभूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६ ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ॥ प्रविशन्तिसुरश्रेष्ठं हरिन्नारायणंप्रभुम् ॥ ३७ ॥ सस्रष्टासर्वभूतानां कल्पान्तेषुपुनःपुनः ॥ अव्यक्तश्शाश्वतोदेवस्तस्यसर्वमिदंजगत् ॥ ३८ ॥ सएवविद्यतेव्यास महेशविधिसंयुतः ॥ महाकालवनेरम्ये वासंचक्रेसईश्वरः ॥ ३९ ॥ प्रलयोनबाधतेव्यास महाकालवनोत्तमे ॥ कल्पेकल्पेचवैरम्या पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ ४० ॥ निरामयानिरातङ्का निर्विकारायुगेयुगे ॥ मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानिसम्भवन्तिच ॥ ४१ ॥ अत्रैवचवनेरम्ये ब्रह्मालोकपितामहः ॥ प्रजानांपतयोयेते दक्षःप्राचेतसस्तथा ॥ ४२ ॥ मरीचिःकश्यपोरुद्रो येचान्येभार्गवादयः ॥ कल्पादौसृजतेलोकाञ्चराचरयथातथान् ॥ ४३ ॥ एवमादौपुराव्यास कल्पंकल्पान्तकंसदा ॥ वाराहोवामनोविष्णुः पितृणांवैतथैवच ॥ ४४ ॥ कल्पभेदा

जी ! महाकाल नामक उत्तम वनमें प्रलय बाधा नहीं करताहै और प्रतिकल्पमें यह कुशस्थली पुरी सुन्दरी होतीहै ॥ ४० ॥ व युग २ में व्याधिरहित व शंकाहीन तथा विकार रहित होती है और मार्कण्डेयजी से आज्ञा दियेहुये कल्पहोते हैं ॥ ४१ ॥ इसी सुन्दर वनमें लोकोंके पितामह ब्रह्माजी हैं और जो प्रजाओंके पति हैं वे प्रचेताओं के पुत्र दक्षजी हैं ॥ ४२ ॥ व मरीचि, कश्यप, रुद्र व जो अन्य रुद्रादिकहैं वे वर्तमान हैं कल्पके आदि में वे ब्रह्माजी यथायोग्य चराचरलोकों को रचते हैं ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय इसीप्रकार पहले सदैव कल्प व कल्पान्त होता है वाराह, वामन व विष्णु ये पितरों के ॥ ४४ ॥ कल्प भेद उत्तम महाकाल

वनमें कहेगये हैं हे द्विजोत्तम! चौरासी कल्प हुये हैं ॥ ४५ ॥ व हे सत्तम! उतनेही ज्योतिर्लिङ्ग वन में स्थित हैं और मही सागर व पर्वत फिर उत्पन्न होते हैं व फिर नाश होजाते हैं ॥ ४६ ॥ और बार २ होवैंगे व यह पुरी अचल कहीगई है उसीकारण सब कालों में व सब लोकोंमें गान कीजाती है ॥ ४७ ॥ व हे व्यासजी! पृथ्वी में प्रतिकल्पा संज्ञक ऐसी वह पुरी होवैगी कि जिसमें इन्द्रियों के दमन करनेवाले मनुष्य हैं व स्नान, दानादिक ॥ ४८ ॥ और जप व होम तथा जिन पितरों को उद्देश कर श्राद्ध दियाजाता है करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उनकी आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ ४९ ॥ वैशाख महीने में पूर्णमासी तिथिमें मनुष्य प्रतिकल्पा पुरीमें प्राप्तहोकर

स्समाख्याता महाकालवनेशुभे ॥ चतुराशीतिकल्पानि सञ्जातानिद्विजोत्तम ॥ ४५ ॥ तावन्तिज्योतिर्लिङ्गानि वनेतिष्ठन्तिसत्तम ॥ पुनर्जातापुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥ ४६ ॥ पुनःपुनर्भविष्यन्ति पुरीह्येषाचलास्मृता ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु सर्वलोकेषुगीयते ॥ ४७ ॥ प्रतिकल्पेतिसंज्ञासा भुविव्यासभविष्यति ॥ यस्याञ्चमानवादान्ताःस्नानदानादिकंतथा ॥ ४८ ॥ जपंहोमंतथाश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यदीयते ॥ नतेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि ॥ ४९ ॥ प्रतिकल्पामनुप्राप्य दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ वैशाखेपूर्णमास्यांवैस्नापयेदेकवासरम् ॥ ५० ॥ प्रसङ्गतोरजःक्रान्तो क्षिप्राम्भसिचमानवः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ५१ ॥ मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेनयत्फलम् ॥ तत्फलंप्राप्नुतेजन्तुः प्रतिकल्पाक्षणादपि ॥ ५२ ॥ प्रतिकल्पेचकल्पान्ते सदैवासीत्पुरीशुभा ॥ तस्मात्सर्वजनैःख्याता प्रतिकल्पाद्विजो म ॥ ५३ ॥ यएतस्यांमहाभागाः प्रीतिंकुर्वन्तिमानवाः ॥ नतेषांकल्पभेदोयं स्वप्नवज्जायतेक्षणात् ॥ ५४ ॥

न तक नहवावै ॥ ५० ॥ और धूलिसे ग्लानिको प्राप्त जो मनुष्य प्रसंग से शिप्रानदीके जलमें स्नान करता है उसके कुछ पातक नहीं ताहै ॥ ५१ ॥ हज़ारों मन्वन्तरोंमे काशीवाससे जोफल मिलता है उसी फलको प्राणी प्रतिकल्पा पुरी क्षणभर से भी प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ कल्पान्त में सदैव यह उत्तम पुरी हुई है उसी कारण सब मनुष्यों से प्रतिकल्पा कही गई है ॥ ५३ ॥ बहुत ऐश्वर्यवाले जो

पुरुष इसमें प्रीति करते हैं उनके यह कल्पभेद नहीं होता है और क्षणभर में स्वप्न की नाईं होता है ॥ ५४ ॥ और प्रतिकल्पा से उपजी हुई पवित्र व उत्तम कथा को जो मनुष्य सुनता है व बड़े यत्न से सुनाता है वह ब्रह्महत्या को नाश करताहै ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणऽवन्तीखण्डदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाप्रतिकल्पाभिधानकथनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा । वैष्णव अरु माहेश ज्वर भे शिप्रा महं शान्त । सोइ साठि अध्याय में वर्णित चरित सुकान्त ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ व्यास जी ! इसप्रकार

यःशृणोतिकथांपुण्यां प्रतिकल्पोद्भवांशुभाम् ॥ श्रावयेद्वाप्रयत्नेन ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेप्रतिकल्पाभिधानकथनन्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एवंव्यासपुरीरम्या नामभूतासनातनी ॥ युगेयुगेयथाजाता तथाख्यातामयानघ ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोवेदविदांवर॥शिप्रायाश्चकथांपुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ २ ॥ सुन्दरकण्डंसमाख्यातं पिशाचमोचनंतथा ॥ नीलगङ्गाइतिप्रोक्ता कर्कराजमतःपरम् ॥ ३ ॥ पुष्कराणिचसर्वाणि गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातं नाम्नाधर्मसरस्तथा ॥ ४ ॥ ख्यातंसङ्गमजंतीर्थं शनेर्जन्मकथाशुभा ॥ च्यवनाश्रमेचयावार्ता तथानागालयेशुभे ॥ ५ ॥ पुरुषोत्तममहिमानंकालेकेनकथंभवेत् ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ६ ॥

हुयेनामवाली व मनोहर तथा सनातनी पुरी प्रतियुग में जिसप्रकार हुई है उसी भांति मुझसे कहीगई ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदांवर ! मैं पवित्र व पुण्यदायिनी तथा पापहारिणी शिप्रा की कथा को तुमसे फिर सुनना चाहता हूं ॥ २ ॥ कि सुन्दरकंड व पिशाचमोचन तीर्थ कहागया है और नीलगंगा ऐसी कही हुई व इसके उपरान्त कर्कराज तीर्थ कहा गया है ॥ ३ ॥ और सब पुष्कर व अतिउत्तम गयातीर्थ तथा गोमती कुंड कहागया है व धर्मसर नामक है ॥ ४ ॥ और संगम से उपजाहुआ तीर्थ कहागया है व शनिश्चर के जन्म की उत्तम कथा और च्यवन के आश्रम में व उत्तम नागस्थान में जो वार्ता हुई है ॥ ५ ॥ और पुरुषोत्तम

की महिमा को कहिये कि वह समय में किससे किसप्रकार होती है मैं इसको जानना चाहता हूं जो कि तुम्हारे मनमें वर्तमान है ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग व्यासजी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये कि जिसप्रकार उत्तम महाकाल वनमें शिप्रानदी हुई है ॥ ७ हे वत्स ! भूतल में शिप्राके समान नदी नहीं है कि जिसके किनारे क्षणभर में मुक्ति होजाती है बहुत दिनोंतक सेवा से क्या है ॥ ८ ॥ वैकुंठ में क्षिप्रा व स्वर्ग में ज्वरघ्नी नामक होती है और यमद्वार में पापघ्नी व पाताल में अमृत संभवा नामक है ॥ ९ ॥ और वाराहकल्प में विष्णुदेहा ऐसे नाम से कही गई है व अवन्तीपुरी में कामधेनु से उपजीहुई शिप्रानदी कहीगई है ॥ १० ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाभाग कथांपापहरांपराम् ॥ यस्मिन्कालेयथाजाता महाकालवनेशुभे ॥ ७ ॥ नास्तिवत्समहीपृष्ठे शिप्रायाःसदृशीनदी ॥ यस्यास्तीरेक्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनवै ॥ ८ ॥ वैकुण्ठेजायतेक्षिप्रा ज्वरघ्नीचसुरालये ॥ यमद्वारेचपापघ्नी पातालेमृतसम्भवा ॥ ९ ॥ वाराहकल्पेवैप्रोक्ता विष्णुदेहेतिनामतः ॥ शिप्रावन्त्यांसमाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्नृषिसत्तम ॥ वक्तुमर्हसिक्षिप्रायास्समासेनकथांशुभाम् ॥ ११ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मकपालमादाय भिक्षार्थंव्यचरन्महीम् ॥ महादेवोविशुद्धात्मा सर्वलोकेषुसर्वतः ॥ १२ ॥ अप्राप्तभिक्षोभिक्षार्थी वैकुण्ठमगमद्विभुः ॥ गतस्त्वातिथ्यवेलायां अमन्देवोयतस्ततः ॥ १३ ॥ लोकनिन्दापरःक्रुद्धः क्षुधितोबहुवासरैः ॥ भिक्षान्देहीतिभोब्रह्मन् क्षुधितोहंसमागतः ॥ १४ ॥ कपालंचकरेकृत्वा इत्युवाचपुनःपुनः ॥ गृह्यतांहरभिक्षान्ते ददामीतिहरिस्तदा ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वाकरमुद्यम्य तर्जन्यङ्गुलिमद

व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, भगवन् ! यह विचित्र कहागया और तुम क्षिप्रानदी की उत्तम कथा को संक्षेप से कहने योग्य हो ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पवित्र चित्तवाले महादेव जी ब्रह्मा के कपाल को लेकर भिक्षा के लिये सब लोकों में सब ओर भ्रमतेभये ॥ १२ ॥ और भिक्षा को न पायेहुये भिक्षार्थी स्वामी शिवदेवजी जहां तहां घूमते हुये आतिथ्य समय में वैकुण्ठ को गये ॥ १३ ॥ जो कि लोक की निन्दा में तत्पर व क्रोधित तथा बहुत दिनो से क्षुधित थे उन्होने यह कहा कि हे ब्रह्मन् ! भिक्षा को दीजिये मैं क्षुधित आया हूं ॥ १४ हाथ मे कपाल को कर के यह बार २ कहा व हे शिवजी ! ग्रहण कीजिये मै भिक्षा तुम को देता हूं उस

समय विष्णुजी ने ॥ १५ ॥ यह कहकर व हाथ को उठाकर तर्जनी (अंगूठेके पासवाली) अंगुली को दिखलाया तब क्रोधित शिवजीने क्रोधसे त्रिशूलसे मारा ॥ १६ ॥ तब अंगुली से उपजाहुआ बहुत रक्त बहचला और उससे शिवजीके हाथ में स्थित पात्र शीघ्रही पूर्ण होगया ॥ १७ ॥ तब उबलते हुये पात्रसे सब ओर धारा उत्पन्न हुई और उस स्थानसे रक्त की धारसे उपजी हुई शिप्रानदी उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ और त्रिलोक को पवित्र करनेवाली नदी शीघ्रही वैकुण्ठ से उत्पन्नहुई इसप्रकार नदियों में श्रेष्ठ शिप्रानदी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहुई ॥ १९ ॥ व हे व्यासजी ! जिस प्रकार ज्वरघ्नी कही गईहै मैं वैसेही कहताहूं कि जब अनिरुद्ध से अपमान किये

शयत् ॥ तदारुद्रस्समाध्मातस्त्रिशूलेनाहनद्रुषा ॥ १६ ॥ तदाङ्गुलिसमुद्भूतं बहुशुश्राव शोणितम् ॥ पूर्णपात्रंचतेनाशु शङ्करस्यकरेस्थितम् ॥ १७ ॥ तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमन्ततः ॥ तत्रस्थानात्समुद्भूता च्छिप्रासृग्धारसम्भवा ॥ १८ ॥ वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ एवंशिप्रासरिच्छ्रेष्ठा त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ १९ ॥ ज्वरघ्नीचयथा प्रोक्ता तथाव्यासब्रवीम्यहम् ॥ यदाबाणासुरोदैत्यः कृष्णेनसहसंयुगे ॥ २० ॥ योधयामासदैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेलनः ॥ सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥ २१ ॥ तस्मात्क्रुद्धोवासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ॥ चिच्छेददोस्सहस्रन्तु क्षुरप्रेणाशुगामिना ॥ २२ ॥ सतदाभग्नसङ्कल्पश्छिन्नदोश्चरणार्दितः ॥ युद्धात्पराङ्मुखोभूत्वा शङ्करंशरणंययौ ॥ २३ ॥ तदागतंमहादैत्यं समीपेभयविह्वलम् ॥ विलोक्यकृपयाविष्टो गतस्सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥ २४ ॥ छित्वाबाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे ॥ क्रुद्धःकृष्णोमहाबाहुः परसेनान्तकोबली ॥ २५ ॥ स्थितोयत्राचलोव्यास गतस्तत्रमहेश्वरः ॥

हुये बाणासुर दैत्यने समर में कृष्णके साथ हज़ार भुजाओं से युद्ध किया जो कि दैत्यों में श्रेष्ठ व वीर तथा अनेक भांतिके अस्त्रों को उठाये था ॥ २० । २१ ॥ तब उसी कारण शीघ्रता समेत क्रोधित वासुदेवजी ने चक्रको लेकर शीघ्रगामी क्षुरप्र अस्त्र से हज़ार भुजाओं को काटडाला ॥ २२ ॥ तब नष्ट संकल्पवाला व कटी भुजाओंवाला व पादपीडित तथा समर से विकल बाणासुर युद्धसे विकल होकर शकरजी की शरण में गया ॥ २३ ॥ तब डरसे विकल समीप आयेहुये महादैत्य को देखकर दया संयुत महादेवजी समर शिरमे गये ॥ २४ ॥ दैत्यराज बाणासुर की हज़ार भुजाओंको काटकर शत्रु सेनाके नाशक व बलवान् महाभुज श्रीकृष्णजी क्रोधितहुये ॥ २५ ॥

हे व्यासजी ! जहांपर निश्चल श्रीकृष्णजी स्थित थे वहांपर महादेवजी गये और शरसमूहों को फेंकतेहुये उन्हों ने श्रीकृष्णजी को मनाकिया ॥ २६ ॥ वे दोनों प्राप्तहोकर समस्त प्राणियों को भयंकर तथा बड़ेविकराल शस्त्रास्त्रों से आपसमें भयानक युद्धकर ॥ २७ ॥ उस समय श्रीकृष्णजी ने शिवजी को मारने की इच्छा से वैष्णव अस्त्र को संधानकिया तब श्रीकृष्णजी के प्राणोंको हरने में उत्कण्ठित शिवजीने सबको संहार करनेवाले पाशुपत नामक अस्त्रको सन्धान किया तब सब लोकों में हाहाकार उत्पन्न हुआ सुनाजाता था ॥ २८ । २९ ॥ फिर श्रीकृष्णजी ने महादेवजी के ऊपर मोहन अस्त्र को छोड़ा तब देवमाया के कारण उस अस्त्र से शिवजी

वारयामासकृष्णंवै शरौघांश्चसमाकिरन् ॥ २६ ॥ अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धंकृत्वाचदारुणम् ॥ शस्त्रास्त्रैश्चमहाघोरैस्सर्वप्राणिभयङ्करैः ॥ २७॥ वैष्णवास्त्रंतदाकृष्णस्सन्दधेहरजिघांसया ॥ पाशुपतञ्चनामास्त्रं सर्वसंहारकारकम् ॥२८॥ सन्दधेचैतदाशम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ॥ हाहाकारस्तदाजातस्सर्वलोकेषुश्रूयते ॥ २९ ॥ मोहनास्त्रंपुनःकृष्णो हरोपरिमुमोचह ॥ तेनास्त्रेणतदाशम्भुर्मोहितोदेवमायया ॥ ३० ॥ जृम्भमाणःस्थितस्संख्ये किञ्चित्कालंमुहुर्मुहुः ॥ लब्धसंज्ञःपुनर्जातो यदारुद्रोमहाहवे ॥ ३१ ॥ तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः ॥ ललाटफलकात्सद्यो वीरभद्रोमहाबलः ॥ ३२ ॥ त्रिनेत्रस्त्रिशिरोह्रस्वस्त्रिपादोबर्कराकृतिः ॥ क्षुद्रोजटिलभस्माङ्गो महाव्याधिर्दुरत्ययः ॥ ३३ ॥ कृष्णसेनांसमासाद्य महादेवेनप्रेरितः ॥ प्राणिनांकदनंचक्रे सर्वेषांकृष्णसङ्गिनाम् ॥ ३४ ॥ पराङ्मुखपराभग्ना ज्वराभिघातपीडिता ॥ बभूवसहसाव्यास सेनाकृष्णेनपालिता ॥ ३५ ॥ तथाभूतांसमालोक्य जृम्भमाणांरुजार्दिताम् ॥ स्व

मोहित हुये ॥ ३० ॥ व बार बार जमुहातेहुये शिवजी समर में कुछ समय तक स्थितरहे और जब महायुद्धमें शिवजी फिर प्राप्त चैतन्यतावाले हुये ॥ ३१ ॥ तब क्रोध से तिरस्कृत शिवजी ने माहेश्वरज्वर को निर्माण किया व मस्तक से शीघ्रही महाबलवान् वीरभद्रजी उत्पन्न हुये ॥ ३२ ॥ और त्रिलोचन, त्रिभाल, लघु,त्रिचरण व अजाकार, क्षुद्र तथा जटावान् व भस्म अंगवाले और दुःखसे उल्लंघन करने योग्य महारोग ने ॥ ३३ ॥ महादेवजी से प्रेरित होकर श्रीकृष्णजी की सेना में प्राप्त होकर समस्त श्रीकृष्णजी के साथी प्राणियों का विनाश किया ॥३४॥ हे व्यासजी ! श्रीकृष्णजी से पालित व ज्वरकी चोटसे पीड़ित सेना भग्न होकर अचानकही विमुख

में तत्परहुई ॥ ३५ ॥ रोगसे विकल व नष्ट संकल्पवाली, जमुहातीहुई तथा शिवजीके ज्वरसे पीडित वैसी सेना को देखकर ॥ ३६ ॥ बड़े क्रोधी श्रीकृष्णजीने वैष्णव ताप को रचा और विष्णुजी के उस ज्वरसे व माहेश्वर ज्वरसे ॥ ३७ ॥ आपस में बहुतही भयंकर युद्धहुआ व बहुत सग्रामकर माहेश्वर ज्वर विकलहुआ ॥ ३८ ॥ व समस्त लोकों में जाकर शान्ति को न प्राप्त हुआ और उससे पीड़ित वह सुन्दर महाकाल वनमें प्राप्तहुआ ॥३९॥ व क्षिप्रानदी में मग्नहोगया तदनन्तर उत्तम शान्तिको प्राप्तहुआ और बड़े क्रोधी माहेश्वरज्वरको शान्तदेखकर ॥ ४० ॥ वैष्णव ज्वर ने भी प्राप्तहोकर उस नदी मे स्नानकिया और उसके प्रभावसे विष्णु व शिवजी से उपजे

सेनांभग्नसङ्कल्पां माहेशज्वरपीडिताम् ॥ ३६ ॥ ससर्जवैष्णवन्तापं कृष्णःपरमकोपनः ॥ तेनसहवैष्णवस्य माहेश्व रज्वरेणच ॥ ३७ ॥ अन्योन्यमभवद्युद्धं घोरंघोरतरंमहत् ॥ सङ्ग्रामंबहुलंकृत्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वरः॥३८॥ स र्वलोकेषुगत्वावै नशान्तिंप्रतिजग्मिवान् ॥ महाकालवनेरम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥ ३९ ॥ निमग्नश्चैवक्षिप्रायां त तश्शान्तिंपरांययौ ॥ दृष्ट्वामाहेश्वरंशान्तं ज्वरंपरमकोपनम् ॥ ४० ॥ वैष्णवोपिसमासाद्य तस्यांमज्जनमाचरत् ॥ तस्याःप्रभावसन्नष्टौ ज्वरौहरिहरोद्भवौ॥४१॥तस्मात्सर्वेषुकालेषुज्वरघ्नीसाभवत्क्षणात्॥ ज्वराभिभूताह्यासाद्यजनाः परमदुःखिताः ॥ ४२ ॥ निमज्जन्तिचशिप्रायां वसन्तिचसमाहिताः ॥ नतेषांबाधतेपीडा ज्वरोद्भूताकदाचन ॥ ४३ ॥ सत्यमुक्तंतदाव्यास ब्रह्मन्हरिहरेणच ॥ येशृण्वन्तिकथांदिव्यां नराश्चैकाग्रमानसाः ॥४४॥ नतेषांजायतेकिञ्चिज्ज्व रसन्तापजंभयम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्येज्वरानुग्रहोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

हुये ज्वर नष्ट होगये ॥ ४१ ॥ उस कारण सब कालोंमे वह क्षणभरमें ज्वरघ्नी हुई ज्वर से विकल व बडे दुःखित जो मनुष्य वहा प्राप्त होकर ॥ ४२ ॥ सावधान् होकर क्षिप्रा नदीमें स्नानकरतेहैं व बसतेहैं उनको कभी ज्वर से उपजी हुई बाधापीडा नहीं करती हैं ॥ ४३ ॥ उस समय हे ब्रह्मन्, व्यासजी ! विष्णु व महादेवजी ने सत्य कहाहै व सावधानमनवाले जो मनुष्य इस उत्तम कथा को सुनते हैं ॥ ४४ ॥ उनको ज्वर व सन्ताप से उपजा हुआ कुछ भय नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ इतिश्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांक्षिप्रामाहात्म्येज्वरानुग्रहोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । क्षिप्रानदी प्रभाव सन भई दमन की मुक्ति । इकसठिके अध्याय में सोइ कथा की उक्ति ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे परंतप ! जिसप्रकार क्षिप्रानदी पापनाशिनी प्रसिद्ध हुई है वैसेही मैं संक्षेप से कहताहूं ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय सतयुग में बड़ा क्रोधी दमन राजा कीकट देशों में हुआ है ॥ २ ॥ जो कि सब धर्मों का नाशनेवाला व गऊ तथा ब्राह्मणों का निन्दक व मदिरा पीनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला और गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला तथा अन्य के शुभमें द्वेष करनेवाला था ॥ ३ ॥ और प्रजाओंका सर्वस्व हरनेवाला व पराई स्त्रीसे प्रसंग करनेवाला तथा धूर्त व कपटी को संग करनेवाला, चुगुल व चोर के आकारवाला था ॥ ४ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ पापनाशिनीविख्याता यथाक्षिप्रापयस्विनी ॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि समासेनपरन्तप ॥ १ ॥ पुराकृतयुगेव्यास दमनोनामवैनृपः ॥ कीकटेषुसमाख्यातोराजापरमकोपनः ॥ २ ॥ उत्थायीसर्वधर्माणां गोब्राह्मणनिन्दकः ॥ सुरापानीहेमहारी गुरुतल्पगमत्सरी ॥ ३ ॥ प्रजासर्वस्वहर्ताच परदाराभिमर्शकः ॥ धूर्तकोधूर्तसङ्गीच पिशुनस्तस्कराकृतिः ॥ ४ ॥ गोगृहपुरभेदीच निन्द्योनिन्द्यजनप्रियः ॥ कुत्सितःकोपपूर्णश्च वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ५ ॥ साधुसङ्गपरित्यागी दुष्टोदुष्टजनप्रियः ॥ कुलाङ्गनापरित्यागी परस्त्रीवृषलीपतिः ॥ ६ ॥ धर्मनिन्दाकरोनित्यमधर्मेरमतेमतिः ॥ नहूयन्तेनपूज्यन्ते नश्रूयन्तेकथाबुधैः ॥ ७ ॥ वेदायज्ञाश्चदेवानां पुरंहट्टंचताड्यते ॥ एवंदुष्टतरोराजा नभूतोनभविष्यति ॥ ८ ॥ सएकदावनेघोरे मृगयावनगोचरः ॥ इतस्ततोभ्रममाणो व्याधैःपरिवृतःखलः ॥ ९ ॥ नल

और गऊ गृह व नगरों को भेदन करनेवाला तथा निन्दनीय व निन्द्यजन उसको प्रिय थे और निन्दित व क्रोध से परिपूर्ण तथा वेद शास्त्र से रहित था ॥ ५ ॥ व साधु के साथ को छोड़नेवाला, दुष्ट व दुष्टलोग उसको प्यारे थे और कुल स्त्री को त्याग करनेवाला तथा पराई स्त्री व शूद्रा का पति था ॥ ६ ॥ और धर्म की निन्दा करनेवाला व नित्यही अधर्म में उसकी बुद्धि रमती थी और हवन नहीं कियेजाते थे व देवता नहीं पूजे जाते थे और विद्वान् लोग कथाओं को नहीं सुनते थे ॥ ७ ॥ और वेद व यज्ञ तथा देवताओं का नगर व बाज़ार नाश की जाती थी ऐसा अधिक दुष्ट राजा न हुआ है और न होगा ॥ ८ ॥ इधर उधर घूमता हुआ व बहेलियों से

घिरा वह दुष्ट राजा एकसमय भयकर बनमे शिकार के लिये वनगोचर हुआ ॥ ९ ॥ कुछ शिकार न मिला और क्षुधार्त, दुःखित व दुष्ट तथा संगरहित वह अकेला राजा महाकालवन के समीप आया ॥ १० ॥ वहां भयंकर प्राणियों से सेवित व भयानक रात्रि प्राप्तहुई तब क्षुधा से विकल व सोने की इच्छावाला राजा वृक्ष की जडमें लौटकर ॥ ११ ॥ उस वृक्षमे घोड़े को बांधकर आप भी बैठगया उसी समय वृक्ष से उसके मस्तक पै सर्प गिरपडा ॥ १२ ॥ यह क्या है व कहां से आश्चर्य प्राप्त हुआ यह कहकर हाथ से मनाकिया व उससमय उस दुष्ट सांपने राजा के अंगूठे में काट खाया ॥ १३ ॥ और काटनेहीपर दुःखित होताहुआ राजा पृथ्वी में प्राप्त हुआ

न्धंखेटकंकिञ्चित्क्षुधार्तोदुःखितःखलः ॥ एकाकीसङ्गविगतो महाकालवनान्तिके ॥ १० ॥ रात्रिस्समागतातत्र घोरा घोरनिषेविता ॥ वृक्षमूलमुपावृत्य शयनार्थीक्षुधार्दितः ॥ ११ ॥ तत्राश्वंविटपेबध्वा स्वयमेवन्यषीदत ॥ तदैवकाले वृक्षाद्वै तस्यशीर्ष्णयुरगोपतत॥ १२॥ किमिदंकुतआश्चर्यं कृत्वाहस्तेनवारितः ॥ तेनदुष्टेनवैराजा दष्टोङ्गुष्ठेतदाहिना ॥ १३ ॥ दष्टमात्रेतुनृपतिर्व्यथितःक्षितिमागतः ॥ कियत्कालेव्यथाविष्टो मुमोहक्षीणमङ्गलः ॥ १४ ॥ तत्क्षणात्प्रेतभूतोसौघोरेनरकसञ्चये ॥ यमदूतैस्ताड्यमानो विविधास्त्रैस्स्वकर्मजैः ॥ १५ ॥ हर्षिताश्चगणास्सर्वे यमराजस्यकिङ्कराः॥ दृष्टोबहुतरेकाले पापिष्ठोयममन्दिरे ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास क्रव्यादैःखादितंशवम् ॥ किञ्चिच्छेषतरंप्राप्तं वायसेनाभिलक्षितम्॥१७॥ तत्रगत्वानयन्मांसंतुण्डेनवियतङ्गतः॥ ततोन्यैर्वायसैर्भग्नो भ्राम्यमाणइतस्ततः॥ १८॥तत्राग

व कुछ समयतक पीड़ा संयुत व नष्ट मंगलवाला राजा मोहित हुआ ॥ १४ ॥ व उसीक्षण मरकर यह राजा भयंकर नरक में यमदूतों से अपने कर्मों से उपजेहुये अनेक भांति के अस्त्रों के द्वारा ताड़ित हुआ ॥ १५ ॥ और यमराजके सेवक सब गण प्रसन्न हुये कि बहुतही समय में यह पापी यमराज के मन्दिर में देख पड़ा ॥ १६ ॥ इसी अवसर में हे व्यासजी ! मांसभक्षी प्राणियों ने मुर्दे को खाडाला और कुछ बचेहुये मुर्दे को कौवा ने देखा ॥ १७ ॥ व वहां जाकर चोंचसे मांस को ग्रहण करताहुआ वह कौवा आकाश में प्राप्तहुआ तदनन्तर अन्य कौवों से इधर उधर भ्रमाया जाताहुआ वह कौवा ताडित हुआ उसके उपरान्त ॥ १८ ॥ वहां आया जहां

कि चिप्रानदी थी और कुछकर्म के फल से उस कौवा का मांस जातारहा ॥ १९ ॥ और उस राजा के शरीर से उपजाहुआ वह मांस उस क्षिप्रानदी में गिरपड़ा व उस पुण्य के प्रभाव से वह उसीक्षण शिव होगया ॥ २० ॥ त्रिलोचन व जटाजूट तथा व्याघ्र चर्म से घिरा और त्रिशूल हाथवाला व बैलपै चढ़ाहुआ, चन्द्रभाल, पार्वती-पति शिवरूप होगया ॥ २१ ॥ इस आश्चर्यमय रूप को देखकर उन शिवजी के गणों से मारे व भगेहुये तिरस्कृत दूतोंने सभा मे यमराज से कहा ॥ २२ ॥ कि हे महाराज, धर्मराज ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै दूतों का बहुत आश्चर्यमय व परम सुन्दर जो वचन है उसको सुनिये ॥ २३ ॥ कि कीकट देशों का स्वामी, मूर्ख,

तोहियत्रास्ते दिव्याचिप्रापयस्विनी ॥ किञ्चित्कर्मविपाकेन वायसस्यगतंपलम् ॥ १९ ॥ पतितंवैजलेतस्याः चिप्रायास्तस्यकायजम् ॥ तेनपुण्यप्रभावेन तत्त्वणात्सोभवच्छिवः ॥ २० ॥ त्रिनेत्रश्चजटाजूटव्याघ्राम्बरपरीवृतः ॥ शूलहस्तोवृषारूढो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ २१ ॥ इत्याश्चर्यमयंरूपं दृष्ट्वादूताश्चधर्षिताः ॥ तद्गणैस्ताडिताभग्ना धर्मराजायसंसदि ॥ २२ ॥ श्रूयताम्भोमहाराज धर्मराजनमोस्तुते ॥ दूतानांयद्वचोरम्यं बह्वाश्चर्यमयम्परम् ॥ २३ ॥ कीकटाधिपतिर्मन्दो पापिष्ठोवृषलीपतिः ॥ मदनोनामराजाभूत्समस्तेचितिमण्डले ॥ २४ ॥ यानिकानिचपापानि ब्रह्महत्यासमानिच ॥ तानिसर्वाणितेनापि कृतानिभुविसत्तम ॥ २५ ॥ मर्यादाभेदकोमूढो वर्णाश्रमविभेदकः ॥ कुसङ्गीधूर्तकोन्मादी बहुव्यङ्गभरःखलः ॥ २६ ॥ यमदण्डपरःपापी ह्यस्माकंहर्षवर्द्धनः ॥ सकथंशिवरूपीस्यात् किमाश्चर्यमतःपरम् ॥ २७ ॥ यावन्तःपतिताःपूर्वं पापिनस्सर्वएवहि ॥ कृष्णेनतारितास्सर्वे ब्रह्मपुत्रार्थिनातदा ॥ २८ ॥ तदाप्र

पापी व शूद्रा का पति मदन नामक समस्त पृथ्वी में राजा हुआहै ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! ब्रह्महत्याके समान जो कोई पातकहै उन सबोंको भी उसने पृथ्वीमे कियाहै ॥ २५ ॥ और जो मर्यादा का नष्ट करनेवाला, मूर्ख तथा वर्णो व आश्रमो का निन्दक, दुष्टसगी, कपटी, मतवाला व बहुत व्यंगोंको धारण करनेवाला और दुष्ट था ॥ २६ ॥ और यमराज के दण्ड से पूर्ण व पापी तथा हमलोगों के आनन्दको बढ़ानेवाला था वह कैसे शिवरूपी होवेहै इससे अन्य क्या आश्चर्य होवे ॥ २७ ॥ पहले जितने

पापी पतित हुयेथे वे सबही उस समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकों को चाहनेवाले श्रीकृष्णजी से तारेगये ॥ २८ ॥ बड़े खेदकी बातहै कि तबसे लगाकर नरकके सब कुंड सूखे देखपड़तेहैं जैसे कि ग्रीष्म ऋतु के अन्तमें कुण्ड होवें ॥ २९ ॥ तुम्हारे मन्दिर में दुःखित लोगों का कोई शब्द नहीं सुनपड़ताहै हम लोगोंका जीवन नहीं है इससे हम सबों से किसी उपाय को कहिये ॥ ३० दैवके बलसे संसार में एकही हमलोगों की जीविका को देनेवाला आया था वह भी शिवताको प्राप्त होगया तो हमलोगों का जीवन किससे व किसप्रकार होगा ॥ ३१ ॥ उस समय धर्मराजने दूतों के उत्तम वचन को सुनकर व बहुत देरतक ध्यानकर अपने गणों से देश व

भृतिसर्वाणि कुण्डानिनरकस्यवै ॥ शुष्काणिवतदृश्यन्ते ग्रीष्मान्तेवैह्रदायथा ॥ २९ ॥ नैवार्तानांरवःकश्चिच्छ्रूयते तवमन्दिरे ॥ अस्माकंजीवनंनास्ति कमुपायंवदस्वनः ॥ ३० ॥ एकएवागतोलोके वृत्तिदोनोविधेर्बलात् ॥ सोपिशिवत्वमापन्नः कस्मान्नोजीवितंकथम् ॥ ३१ ॥ धर्मराजस्तदाश्रुत्य किङ्कराणांपरंवचः ॥ चिरन्ध्यात्वास्वकान्प्रोचे देशकालोचितंवचः ॥ ३२ ॥ धर्मराजोवाच ॥ शृण्वन्तुभोगणास्सर्वे भूत्वाचैकाग्रमानसाः ॥ येनपुण्यप्रभावेन पापिष्ठश्शिवताङ्गतः ॥ ३३ ॥ भुविपुण्यतमेदेशे महाकालवनेशुभे ॥ क्षिप्रानामसरिच्छ्रेष्ठा सर्वपापहरापरा ॥ ३४ ॥ येषांक्षिप्रोदकस्पर्शो जायतेभुविकिङ्कराः ॥ नतेषांपातकंकिञ्चिन्मृतस्सुरपुरंव्रजेत् ॥ ३५ ॥ मनसावपुषावाचा पापानिविविधानिच ॥ तत्क्षणात्प्रलयंयान्ति क्षिप्रासरिन्निषेवणात् ॥ ३६ ॥ क्षिप्राक्षिप्रेतियोब्रूते यत्रकुत्रापिमानवः ॥ सएवाशिवतांयाति न

समय के योग्य वचन को कहा ॥ ३२ ॥ धर्मराज बोले कि हे समस्तगणो ! सावधान मनवाले होकर सुनिये कि जिस पुण्य के प्रभाव से पापी शिवत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ कि पृथ्वीपै अत्यन्त पवित्र देश में महाकाल नामक उत्तम वनमें समस्त पापों को हरनेवाली क्षिप्रानामक उत्तम श्रेष्ठ नदी है ॥ ३४ ॥ हे दूतो ! पृथ्वी में जिनको क्षिप्रानदी के जलका स्पर्श होताहै उनके कुछ पातक नहीं रहता है और वह मरकर स्वर्ग को जाता है ॥ ३५ ॥ क्षिप्रानदी के सेवन से मन, देह व वचन से किये हुये अनेकभांति के पातक उसीक्षण नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥ जहा कहीं भी जो मनुष्य क्षिप्रा क्षिप्रा ऐसा कहताहै वही शिवता को प्राप्तहो-

ताहै और स्नान से उपजे हुये फलको मैं नहीं जानताहूं ॥ ३७ ॥ जहांपर कीट पतंगादिक व जो क्षिप्रानदी के जलचारी जन्तुहैं और जो महापातकी होतेहैं वे भी यहां मरकर शिवस्थान में प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ वैशाख महीना प्राप्तहोनेपर जो उत्तम मनुष्य क्षिप्रानदीमें स्नान करतेहैं उनको कोई नरक नहीं होताहै और वे शिवरूप होकर विचरते हैं ॥ ३९ ॥ अपराध कियेहुये उस राजा के मांस को कौवाने हरलिया और क्षिप्रानदी के गहरे जलमें फेंकदिया उस विषयमें क्या शोच है ॥ ४० ॥ बावली, कूप व तड़ागादिकों में जो, अधिक फल कहागया है उससे दशगुना पुण्य नदियों में होता है ॥ ४१ ॥ उससे दशगुनी तापी नदी है और उससे अधिक

जानेस्नानजंफलम् ॥ ३७ ॥ यत्रकीटपतङ्गाद्याः क्षिप्रावारिचराश्चये ॥ महापातकिनोयेते मृतायान्तिशिवालये ॥३८॥ माधवेमासिसम्प्राप्ते निमज्जन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषान्निरयःकश्चिच्छिवरूपाश्चरन्तिते ॥ ३९ ॥ वायसेनाहृतंमांसं तस्यराज्ञःकृतागसः ॥ क्षिप्रागाधजलेक्षिप्तं कातत्रपरिदेवना ॥ ४० ॥ वापीकूपतडागादिष्वधिकंयत्फलंस्मृतम् ॥ तस्माद्दशगुणंपुण्यंनदीषुह्युपजायते ॥ ४१ ॥ तस्माद्दशगुणातापी गोदापुण्याततोधिका ॥ तस्माद्दशगुणारेवा गङ्गापुण्याततोधिका ॥ ४२ ॥ तस्माद्दशगुणाक्षिप्रा पवित्रापापनाशिनी ॥ दमनस्यशरीरस्य मांसंक्षिप्रासमागतम् ॥ ४३ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन शिवरूपधरोभवत् ॥ ईदृशीचनदीरम्या अवन्त्यांभुविवर्तते ॥ ४४ ॥ वाञ्छन्तिदेवतास्सर्वा दुर्लभंतस्यदर्शनम् ॥ धर्मराजवचश्श्रुत्वा गणाविस्मयमागताः ॥ ४५ ॥ मनसाचनिरातङ्काः क्षिप्राशरणमागताः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ तदाप्रभृतिसमाख्याता क्षिप्रेयंपापनाशिनी ॥ ४६ ॥ गीयतेचपुराणेषु तस्यामाहात्म्यमुत्त

पुण्यदायिनी गोदावरीहै उससे दशगुनी रेवा (नर्मदा) और उससे अधिक पुण्यदायिनी गगा नदी है ॥ ४२ ॥ व उससे दशगुनी पवित्र व पाप नाशिनी क्षिप्रानदी है दमनके शरीर का मांस क्षिप्रानदीमें प्राप्तहुआ ॥ ४३ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे वह शिवरूपधारी हुआ पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी नदी अवन्ती पुरीमें वर्तमान है ॥ ४४ ॥ और सब देवता उसके दुर्लभ दर्शन की इच्छा करते हैं धर्मराज के वचन को सुनकर गण विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ४५ ॥ और मन से निश्शंक होकर क्षिप्रा नदी की शरण में आये सनत्कुमारजी बोले कि तबसे लगाकर यह क्षिप्रा पापनाशिनी कहीगई है ॥ ४६ ॥ और उसका उत्तम माहात्म्य व दमन राजा की मुक्ति पुराणोंमे

उत्तम माहात्म्य को सुनिये कि जिसप्रकार नागों से संमत पाताल में अमृतभवा कहीगई है ॥ १ ॥ एक समय क्षुधित शिवजी भिक्षाके लिये हाथमें कपालको लेकर

दो० । क्षिप्रा नदिकर भयोजिमि अमृतोद्भवा सुनाम । बासठि के अध्याय में सोइ कथा अभिराम । सनत्कुमारजी बोले कि हे महाबुद्धे, व्यासजी ! क्षिप्रानदी के

अविरचितायांभाषाटीकायांक्षिप्रामाहात्म्यवर्णनन्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

गाई जातीहै और क्षिप्रा नदीके उत्तम माहात्म्यको ॥ ४७ ॥ यमदूतोंके संवादमें सुनकर निरसंदेह मुक्ति होती है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमि

मम् ॥ दमनस्यचनिर्मुक्तिः क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ संवादयमदूतानां श्रुत्वामुक्तिर्नसंशयः ॥ ४८ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्रामाहात्म्यवर्णनन्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाबुद्धे क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यथामृतभवाख्याता पातालेनागसम्मते ॥ १ ॥ एकदारुद्रोभिक्षार्थं नागलोकेबुभुक्षितः ॥ करेकपालमादाय भोगवत्यांसमागतः ॥ २ ॥ भिक्षांदेहिवचोदीनमित्युवाचगृहेगृहे ॥ भिक्षाकेनापिनोदत्ता क्षुधितस्यचधूर्जटेः ॥ ३ ॥ तदाक्रोधाभिरक्ताक्षः शूलपाणिःक्षुधार्दितः ॥ भ्रमित्वाचपुरींसर्वां शनैर्बहिर्विनिर्ययौ ॥ ४ ॥ एकविंशतिकुण्डानि पीयूषस्यद्विजोत्तम ॥ यत्रतिष्ठन्तिसर्वाणि नागलोकस्यरक्षणे ॥ ५ ॥ तत्रगत्वासभगवाञ्छम्भुस्सर्वात्मसम्भवः ॥ अपिबन्नेत्रमार्गेण तृतीयेनचशङ्करः ॥ ६ ॥ रिक्तान्यमृतकुण्डानि कृत्वातत्रैवसोत्थितः ॥ कम्पितश्चतदालोकंनागानांसर्वतोमुखम् ॥ ७ ॥ कस्येदंकर्मकिञ्जातं सुधाय

मृतकुण्डानि कृत्वातत्रैवसोत्थितः ॥ कम्पितश्चतदालोकंनागानांसर्वतोमुखम् ॥ ७ ॥ कस्येदंकर्मकिञ्जातं सुधाय

नागलोकमें भोगवती पुरीमें भलीभांति आये ॥ २ ॥ और भिक्षाको दीजिये ऐसे दीनवचन को उन्होंने घर २ मे कहा व क्षुधित शिवजी को किसीने भी भिक्षा नहीं दिया ॥ ३ ॥ तब क्रोध से लालनेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले तथा क्षुधा से विकल शिवजी सब पुरी में धीरे धीरे घूमकर बाहर निकले ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! जहांपर नागलोक की रक्षामें अमृतके सब इक्कीस कुण्ड स्थित हैं ॥ ५ ॥ वहां जाकर सर्वात्मसम्भव (सर्वव्यापी) उन कल्याणकारक शिव भगवान् ने तीसरे नेत्रमार्ग से अमृत के कुंडोंको पी लिया ॥ ६ ॥ और वहीं पर अमृत के कुंडों को शून्य कर वे शिवजी उठे और उस समय सब ओर मुखवाला नागों का लोक कंपित हुआ ॥ ७ ॥

और किस का यह कर्म है व क्या हुआ। कि जिससे यहां से अमृत जातारहा यह कह कर तदनन्तर वासुकि आदिक सब नाग ॥ ८ ॥ बड़े अति क्रमसे शंकित होकर वे नगरसे बाहर निकले व यह बोले कि क्याकरैं व कहां जावैं किसने यह अपमान किया ॥ ९ ॥ कि जिस क्रोधित ने उत्तम अमृत को व हमलोगों के जीवन को नाश किया इसलिये हे नागो! हमलोग कैसे जियैंगे ॥ १० ॥ यह कहकर स्त्री बालक व परिवार समेत सब नाग शंकित होकर मनसे विष्णुजी की शरण में गये ॥ ११ ॥ उनके अनुग्रह के लिये आकाशवाणी बोली कि हे सब नागो! सुनिये तुम लोगों ने देवता का अपमान किया ॥ १२ ॥ क्षुधा से विकल व कपाल

स्मादितोगता ॥ इत्युक्त्वाचततस्सर्वे नागावासुकिपुरोगमाः ॥ ८ ॥ महदतिक्रमाशङ्काः पुरात्तेचबहिर्ययुः ॥ किंकुर्मः क्वचगच्छामः केनेदंहेलनंकृतम् ॥ ९ ॥ येनास्माकंप्रकुपेन हतंचामृतमुत्तमम् ॥ अस्माकंजीवनंतस्मात्कथंजीवाम पन्नगाः॥१०॥इत्युक्त्वापन्नगास्सर्वे सस्त्रीबालपरिग्रहाः॥हरिंप्रजग्मुश्शरणं मनसापरिशङ्किताः॥११॥तेषामनुग्रहार्था य वागुवाचाशरीरिणी ॥ श्रूयतांचोरगास्सर्वे युष्माभिर्देवहेलनम् ॥ १२ ॥ भिक्षार्थमागतश्शम्भुः क्षुधार्तश्चगृहेगृहे ॥ विदित्वातिथिवेलांस कपालकरभिक्षुकः ॥ १३ ॥ सादत्ताहिनकेनापि भोगवत्यांपिनाकिनः ॥ तदाबहिर्गतोनाथः क्षुधितोधर्मविग्रहः ॥ १४ ॥ तेननष्टासुधासर्वा कुण्डान्तेपन्नगोत्तमाः ॥ यूयंप्रयातपातालान्महाकालवनोत्तमे ॥ १५ ॥ तत्रैकावैसरिच्छ्रेष्ठा क्षिप्रानामेतिविश्रुता ॥ त्रैलोक्यपावनीह्येषा सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ यस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ तत्रगत्वाभवद्भिश्च स्नानंकार्यंयथाविधि ॥ १७ ॥ भजनन्देवदेवस्य ततःपूताभविष्यथ ॥ भजनाद्दे

हाथवाले वे भिक्षुक शिवजी अतिथि समय को जानकर घर घर में भिक्षाके लिये आयेथे ॥ १३ ॥ जब पिनाकधारी शिवजी को भोगवती पुरीमें किसी ने भी उस भिक्षा को नहींदिया तब क्षुधित व धर्मशरीरवाले शिवजी बाहर चलेगये ॥ १४ ॥ हे नागोत्तमो! इसीसे कुण्डों के मध्यमें सब अमृत नाश होगया तुम लोग पाताल से महाकाल नामक उत्तम वनमें जावो ॥ १५ ॥ वहां क्षिप्रा ऐसे नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठनदी है और यह नदी त्रिलोक को पवित्र करनेवाली व सब कामनाओंके फल को देनेवालीहै ॥ १६ ॥ जिसके दर्शनहीं से सब पापों का क्षय होताहै वहां जाकर आप लोगोंको विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये ॥ १७ ॥ व देवदेव शिवजी का भजन करो

तदनन्तर पवित्र होवोगे देवदेव शिवजीके भजनसे व क्षिप्रा नदी के जलमें स्नान से ॥ १८ ॥ हे नागो ! उसके उपरान्त तुम लोगोंके लोकमें अमृत होगा उन नागों से ऐसा कहकर हे व्यासजी ! उस समय लोकसाक्षिणी दिव्यवाणी अचानकही वहीं अन्तर्द्धान होगई देवतासे कही हुई वाणीको सुनकर व वैसाही होगा यह कहकर स्त्री, बालक व वृद्धों समेत नाग महाकालवन को गये और वहां जाकर त्रिलोकसे प्रणाम की हुई नदी को उन्हों ने देखा ॥ १९ । २० । २१ ॥ जो कि सब कहीं कुशों से व्याप्त व वृक्षों की छाया से परिश्रम रहित तथा हंसों व कारण्डव पक्षियों से पूर्ण व मणि, मोती और मूंगाओंवाली थी ॥ २२ ॥ और मणियों के सोपानों से

वदेवस्य शिप्रासलिलमज्जनात् ॥ १८ ॥ भविष्यतिततस्सद्यस्सुधालोकेतुवोरगाः ॥ इतिसम्भाष्यतान्नागान् तत्रैवान्तर्धीयत ॥ १९ ॥ वाणीव्यासतदा दिव्या सहसालोकसाक्षिणी ॥ श्रुत्वादेवेरितांवाणीं तथेत्युक्त्वाचपन्नगाः ॥ २० ॥ सस्त्रियोबालवृद्धाश्च महाकालवनंययुः ॥ तत्रगत्वाददृशुस्तेनदीं त्रैलोक्यवन्दिताम् ॥ २१ ॥ सर्वत्रकुशसमाकीर्णां तरुच्छायागतश्रमाम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णां मणिमुक्ताप्रवालकाम् ॥ २२ ॥ मणिसोपानरचितां पद्मखण्डैश्चमण्डिताम् ॥ सायंप्रातःस्थिताविप्रास्सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ २३ ॥ ऋषयश्चमहाभागा भृगुराङ्गिरसादयः ॥ सगन्धर्वाश्चतत्रैव नारदाद्यास्सुरर्षयः ॥ २४ ॥ वसवश्चतथादित्यावश्विनौमरुतस्तथा ॥ रुद्रास्साध्याश्चदेवाश्च पितरोविमलाशयाः ॥ २५ ॥ उपासतेचक्षिप्रांवै सन्ध्याकालेसमाहिताः ॥ ऋषिपत्नीमहाभागा देवकन्याप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ पतिव्रतामहाभागास्तत्रैवपतिनासह ॥ उपासन्तेसदाचारा वर्णाश्रमपुरोगमाः ॥ २७ ॥ राजर्षयस्समासीना निर्वाणपदवीङ्गताः ॥

रचित व कमलसमूहों से शोभित थी और वहां सायंकाल व प्रातःकाल में सन्ध्योपासन में परायण ब्राह्मण स्थित थे ॥ २३ ॥ व बड़े ऐश्वर्यवाले भृगु व आंगिरस आदिक ऋषिलोग स्थित थे और वहीं पर गंधर्वोंसमेत नारदादिक देवर्षि थे ॥ २४ ॥ वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार व पवन, रुद्र, साध्य, देवता और निर्मल आशयवाले पितर ॥ २५ ॥ सावधान होकर संध्या समय क्षिप्रानदी की उपासनाकरते हैं और ऋषिस्त्रियां व बड़े ऐश्वर्यवाली देवकन्या व अप्सराओं के समूह ॥ २६ ॥ और महाऐश्वर्यवती पतिव्रता स्त्रियां पतिसमेत वहीं उपासना करती हैं व वर्णों तथा आश्रमों के अग्रगामी उत्तम आचारवाले ॥ २७ ॥ बैठेहुये राजर्षिलोग

मोक्षकी पदवी को प्राप्त होकर वहां धर्मों को व सब महादानोंको करते हैं ॥ २८ ॥ और सिद्ध व शान्त योगेश्वर तथा प्रशंसित नियमोंवाले तपस्वी व अनेक प्रकार के देशों में उपजे हुये यात्रीलोग आकर ॥ २९ ॥ पुरुषों व स्त्रियों से संयुत वे क्षिप्रानदी के किनारे बैठे हैं हे व्यासजी ! त्रिलोक से बन्दित ऐसी अमृतमयी सब नदी को देखकर नाग बड़े प्रसन्न हुये और स्नान, दानादिक को करके उन्होंने महादेवकी उपासना किया ॥ ३० । ३१ ॥ और सब नागोत्तमों ने वेदोक्त विधि से यक्ष-कर्दम (कपूर अगुरु,कस्तूरी व कंकोल से रचित वस्तु) का लेपन व पंचांगपूर्वक स्नानकिया ॥ ३२ ॥ और अनेक प्रकार के पुष्पों व अक्षतों समेत और बसन, माला,

कुर्वंतेतत्रधर्माणि महादानानिसर्वशः ॥ २८ ॥ सिद्धायोगेश्वराश्शान्तास्तापसास्संशितव्रताः ॥ नानादेशोद्भवालोका यात्रिणास्समुपागताः ॥ २९ ॥ क्षिप्राकूलेसमासीना नरनारीसमन्विताः ॥ एवंविधांसमालोक्य व्यासत्रैलोक्यवंदिताम् ॥ ३० ॥ नदींसुधामयींसर्वां नागाःपरमहर्षिताः ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा महादेवमुपासिरे ॥ ३१ ॥ वेदोक्तविधिनासर्वे चक्रुःपन्नगसत्तमाः ॥ पञ्चाङ्गपूर्वकंस्नानं यक्षकर्दमलेपनम् ॥ ३२ ॥ अम्लानपङ्कजांमालां नानापुष्पाक्षतैस्तथा ॥ वासःस्रगनुलेपाद्यैश्चन्दनैर्गन्धधूपकैः ॥ ३३ ॥ दीपदानादिनैवेद्यैस्ताम्बूलमथदक्षिणाम् ॥ कर्पूरार्तिकरास्सर्वे महादेवमुपागताः ॥ ३४ ॥ स्तुतिमारेभिरेकर्तुं सुधाकामास्तदोरगाः ॥ सर्पाऊचुः ॥ नमोनन्तायबृहते सर्वदेवनमोनमः ॥ ३५ ॥ चन्द्रचूडनमस्तेस्तु जटामुकुटधारिणे ॥ शेषहारनमस्तेस्तु चिताभस्माङ्गधारिणे ॥ ३६ ॥ कृत्तिवासनमस्तेस्तु घस्मरायनमोनमः ॥ त्रिपुरघ्ननमस्तेस्तु स्मरान्तकनमोस्तुते ॥ ३७ ॥ मृगव्याधनमस्तेस्तु गिरीशायनमोनमः ॥

अनुलेपनादिकों से व चन्दन, गंध तथा धूपोंसहित प्रफुल्लित कमलोंवाली माला को लेकर ॥ ३३ ॥ और दीप दानादिक नैवेद्यों समेत तांबूल व दक्षिणा को लेकर कपूर की आरतीको हाथमें लिये सब नाग महादेवजीके समीप आये ॥ ३४ ॥ व उस समय अमृत की इच्छावाले नागोंने स्तुतिकरने के लिये प्रारंभ किया सर्प बोले कि बृहत् व अनन्तके लिये नमस्कारहै व हे सर्वदेव ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ हे चन्द्रचूड ! जटा मुकुटको धारनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे शेषहार ! चिताभस्मांगधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ हे कृत्तिवास ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व घस्मर के लिये नमस्कार है नमस्कार है हे त्रिपुर

नाशक ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कामदेवविनाशक ! आपके लिये नमस्कारहैं हे मृगव्याध ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै व गिरीशजीके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै हे सर्वकामफलप्रद, शङ्करात्मन् ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे सर्वबीजसमुद्भव, सर्वसाक्षिन् ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे दिव्यहास ! तुम्हारे लिये नमस्कार है और अमृतस्रवके लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे काम्य काम, सर्व कामवरप्रद ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै व शान्तरूप शिवजीके लिये प्रणाम है तथा पशुपतिजी के लिये नमस्कारहै ॥ ४० ॥ दान्त मृड (शिव) जी के लिये प्रणामहै व शान्तरूप के लिये प्रणामहै इसप्रकार नागोंसे प्रसन्न करायेहुये भगवान् शिवजी ॥ ४१ ॥ प्रत्यक्षही प्रसन्न

शङ्करात्मन्नमस्तेस्तु सर्वकामफलप्रद ॥३८॥ सर्वसाक्षिन्नमस्तेतु सर्वबीजसमुद्भव ॥ दिव्यहासनमस्तेस्तु नमोमृतस्रवाय च ॥ ३९ ॥ काम्यकामनमस्तेस्तु सर्वकामवरप्रद ॥ नमश्शिवायशान्ताय पशूनांपतयेनमः ॥ ४० ॥ नमोमृडायदान्ताय शान्तरूपायवैनमः ॥ एवंप्रसादितोनागैर्भगवान्वृषभध्वजः ॥ ४१ ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहपन्नगान् ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ श्रूयतामुरगास्सर्वे वचस्तथ्यंवदामिवः ॥ ४३ ॥ एकदानागलोकेतु भिक्षणार्थंगतोस्म्यहम् ॥ गृहेगृहेभोगवत्यां विचरन्क्षुधितोभृशम् ॥ ४४ ॥ कपालंचकरेकृत्वा धृत्वाकन्थांसुचीरकाम् ॥ अप्राप्तभिक्षोभिक्षार्थी पुनरागात्ततोगृहम् ॥ ४५ ॥ तेनपापप्रसङ्गेन सुधानष्टातदालयात ॥ किञ्चित्पुण्यप्रसङ्गेन महाकालवनोत्तमे ॥ ४६ ॥ यूयंप्राप्तामहाभागा हित्वानागालयोत्तमम् ॥ बालवृद्धैःस्त्रिभिस्साकं दृष्टाशिप्रासरिद्वरा ॥ ४७ ॥ यस्या

मुखहोकर नागोंसे बोले ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हेसमस्तनागो ! सुनिये मैं तुमलोगोंसे सत्य वचनको कहताहूं ॥ ४३ ॥ एक समय नाग लोकमें मैं भिक्षा के लिये गया व भोगवती पुरी में घर घर घूमताहुआ मैं बहुतही क्षुधित हुआ ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कपालको हाथमें कर व उत्तम बसनवाली गुदडी को धरकर भिक्षा को न पाकर भिक्षा को चाहनेवाला मैं फिर घरको आया ॥ ४५ ॥ तब उसी पापके प्रसंग से अमृत स्थान से नष्ट होगया और कुछ पुण्यके प्रसंग से बड़े ऐश्वर्य-वाले तुमलोग उत्तम नागस्थान को छोड़कर महाकाल नामक उत्तम वन मे प्राप्त हुये और बालक, वृद्ध व स्त्रियोंसमेत तुम सभो ने क्षिप्रानामक उत्तम नदी को

देखा ॥ ४६।४७ ॥ कि पुरातन समय जिसके दर्शनही मे मैं पाप रहित हुआ हूं क्षिप्रा के स्नान से उपजा हुआ पुण्य किसी से नहीं कहाजासक्ता है ॥ ४८ ॥ हे नागो ! पृथ्वी में इसके दर्शन से मनुष्य उसी क्षण शिवहोजाता है उसी कारण सब नागोत्तमों ने क्षिप्रा नदी में स्नानकिया ॥ ४९ ॥ और उस पुण्यके प्रभाव से तुमलोगों के घर घरमें अमृत होवैगा क्षिप्रा नदी के पवित्र जलको लेकर कुंडो में छिड़क दीजिये ॥ ५० ॥ उससे हे नागोत्तमो ! ये इक्कीस स्थिर कुण्ड अमृतसे पूर्ण होजावैंगे ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह कहकर वे सब महादेवजी को प्रणाम कर व हाथोंसे क्षिप्रानदी के जलको धरकर अपने लोकको चलेगये ॥ ५२ ॥ तबसे लगाकर वह

दर्शनमात्रेण निष्पापोस्मिअहंपुरा ॥ क्षिप्रायाःस्नानजंपुण्यं वक्तुंशक्यन्नकेनचित् ॥ ४८ ॥ दर्शनाज्जायतेशम्भुस्तत्क्षणाद्भुविपन्नगाः ॥ तस्मात्स्नानंकृतंसर्वैः क्षिप्रायांपन्नगोत्तमैः ॥ ४९ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन सुधावोस्तुगृहेगृहे ॥ नीत्वाक्षिप्रोदकंपुण्यं कुण्डेषुपरिषेचय ॥५०॥ तेनैतानिहिकुण्डानि अमृतेनैकविंशतिः ॥ सम्पूर्णानिभविष्यन्ति स्थिराणिपन्नगोत्तमाः ॥ ५१ ॥ तथेत्युक्त्वाचतेसर्वे धृत्वाक्षिप्रोदकंकरैः ॥ गतास्तेवैस्वकंलोकं नमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥५२॥ ततःप्रभृतिसाक्षिप्रा जातानागेमृतोद्भवा ॥ सर्वलोकेषुविख्याता व्यासक्षिप्रामृतोद्भवा ॥ ५३ ॥ यएतस्यांप्रकुर्वन्ति नराःस्नानादिकंभुवि ॥ नतेपान्दुष्कृतंकिञ्चिन्नापदोनचदुर्गतिः ॥ ५४ ॥ नवियोगोभवेत्तेषां पुत्रदारादिकैःकदा ॥ नचमित्राणिदुष्यन्ति नरोगोनदरिद्रता ॥ ५५ ॥ कथापापहरापुण्या सर्वकामवरप्रदा ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्राया अमृतोद्भवानामकथनंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

क्षिप्रा अमृतोद्भवा हुई और हे व्यासजी ! क्षिप्रा सबलोकों में अमृतोद्भवा प्रसिद्ध हुई ॥ ५३ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इसमें स्नान,दानादिक करतेहैं उनके कुछपातक नहीं रहताहै और न आपत्तियां होतीहैं न दुर्दशा होतीहै ॥ ५४ ॥ और पुत्रों व स्त्री आदिकों से उनका कभी वियोग नहीं होताहै और मित्र विकारको नहीं प्राप्तहोते हैं व रोग तथा दरिद्रता नहीं होती है ॥ ५५ ॥ यह कथा पापहारिणी व पवित्र तथा सब कामनाओं को देनेवाली है इसके पढ़ने व सुनने से मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितयांभाषाटीकायांक्षिप्रायाअमृतोद्भवानामकथनंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥ ❀ ॥

दो॰। विष्णु भूमि उद्धरन हित धर्यो वराहस्वरूप। तिरसठिवें अध्याय में सोईचरितअनूप॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग! क्षिप्राके उत्तम माहात्म्यको फिर सुनिये कि जिसके सुननेही से अश्वमेध यज्ञका फल होताहै॥ १॥ क्षिप्रा नदी सबकहीं पुण्यदायिनी व अतिपवित्र तथा पापहारिणी है और अवन्ती पुरीमें क्षिप्रा नदी विशेष कर पाप हारिणी है॥ २॥ तथापि उसकी उत्पत्ति को विस्तार से कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जिसप्रकार विष्णुजी की देहसे उपजी हुई कल्याणकारिणी क्षिप्रानदी वाराह की कन्या हुईहै॥ ३॥ हे व्यासजी! पुराणवाली पवित्र व उत्तम कथा को सुनिये पुरातनसमय बड़ा बलवान् हिरण्याक्ष महादैत्य हुआहै॥ ४॥

सनत्कुमार उवाच॥ भूयःशृणुमहाभाग क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम्॥ यस्यश्रवणमात्रेण हयमेधफलंलभेत॥ १॥ क्षिप्रासर्वत्रपुण्यातिपवित्रापापहारिणी॥ अवन्त्यांचविशेषेण क्षिप्रावैपापहारिणी॥ २॥ तथापितत्समुत्पत्तिं विस्तराद्वदतोमम॥ यथावाराहतनया विष्णुदेहोद्भवाशिवा॥ ३॥ शृणुव्यासमहापुण्यां कथाम्पौराणिकींशुभाम्॥ पुरा महासुरोजातो हिरण्याक्षोमहाबलः॥ ४॥ सइमांसकलांपृथ्वीं वशीकृत्वाचकारह॥ राज्यंचसार्वभौमानां दानवैश्च दुरात्मभिः॥ ५॥ जित्वाचसकलाँल्लोकान् सुरानिन्द्रपुरोगमान्॥ दिक्पालान्वसुपालांश्च तिरस्कृत्यासुराधिपः॥६॥ सर्वांश्चसर्वकामेभ्यः स्वयमेवाधितिष्ठति॥ स्वर्गान्निराकृताःसर्वे तेनदेवगणाभुवि॥ ७॥ विचरन्तियथामर्त्या भ्रष्टराज्याःपराजिताः॥ अलब्धशरणाःसर्वे ब्रह्माणंशरणंययुः॥ ८॥ तत्रगत्वानमस्कृत्वा दैत्यकृत्यंन्यवेदयन्॥ भगवन् किमिदंकार्यं भवतापरमेष्ठिना॥ ९॥ येनदेवगणाःसर्वे नष्टप्रायाश्चतत्क्षणात॥ हिरण्याक्षेणदैत्येन हतंस्वर्गमकण्ट

और सबलोकों को जीतकर व इन्द्रादिक दिक्पाल देवताओं को तथा सब दुष्ट दानवों समेत उसने इस सब पृथ्वी को वशकर सार्वभौमों की राज्य कियाहै॥ ५॥ और छूटेहुये राज्यवाले वसुपालों को तिरस्कार कर वह असुरेश समस्त कामनाओं समेत स्थित हुआ है उसने देवगणों को स्वर्गसे भूमि में निकाल दिया॥ ६।७॥ वे पराजित देवता मनुष्यों की नाईं विचरने लगे व शरणको न पाकर सब ब्रह्माकी शरण में गये॥ ८॥ वहांजाकर प्रणामकर उन्होंने दैत्यकी कर्तव्यताको कहा कि

हे भगवन् ! आपब्रह्मा ने यह क्या कार्य्यकिया ॥ ९ ॥ कि जिससे सब देवगण उसी क्षण नष्ट होगये हिरण्याक्षने निष्कंटक स्वर्ग को नष्ट करदिया ॥ १० ॥ और जो सब यज्ञभाग है उनको वह दैत्य भिन्न भिन्न भोजन करताहै हमलोग किस उपाय से जियें व कैसे पृथ्वी में स्थित होवैं ॥ ११ ॥ देवताओं के ऐसे विकलता में प्राप्त वचन को सुनकर उन ब्रह्माजी ने उस समय समयके योग्य सुन्दर वचन को कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तम ! पुरातन समय अतुल तेजवाले विष्णुजी के मनोहर वैकुंठभवन में विजय से संयुत सावधान होता हुआ यह महाबाहु जय नामक श्रेष्ठ पार्षद द्वारपालक था ॥ १३ । १४ ॥

कम् ॥ १० ॥ यज्ञभागाश्चयेसर्वे उपाश्नातिपृथक्पृथक् ॥ केनोपायेनजीवाम कथंतिष्ठामभूतले ॥ ११ ॥ इतिविक्लवितंश्रुत्वा देवानांसपितामहः ॥उवाचवचनंरम्यं तत्कालेसमयोचितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तुभोसुरश्रेष्ठा यूयं सर्वेसमाहिताः॥पुरायंपार्षदश्रेष्ठो द्वारपालःसमाहितः॥ १३॥वैकुण्ठभवनेरम्ये विष्णोरतुलतेजसः॥जयोनाममहाबाहु र्विजयेनचसंयुतः ॥ १४॥ द्वावेवसचिवौदान्तौ विष्णुवेषधरावुभौ ॥ आत्तयष्टीचविक्रान्तौ तिष्ठतोद्वारिसर्वदा ॥ १५ ॥ एकदावैमुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोमानसात्मजाः ॥ स्वैरंचरन्तोलोकेषु विष्णोर्भवनमागताः ॥ १६ ॥ सनकादयोमहाभागा विष्णुदर्शनलालसाः ॥ ताभ्यांनिवारिताःसर्वे प्रपेतुर्धरणीतले ॥ १७ ॥ मुमुहुश्चतदाव्यास कुमाराभृशदुःखिताः॥ ततोगात्समहाबाहुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥ १८ ॥ ददर्शसहसाविष्णुः कुमारान्भुविदुःखितान् ॥ उत्थाप्यैकंसमारोप्य

इन्द्रियों को दमन किये हुये दोनोंही मंत्री व दोनों विष्णुवेषधारी थे और दण्ड को लिये हुये वे दोनों पराक्रमी सदैव द्वार पै टिके रहते थे ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! एक समय लोकों में अपनी इच्छा से घूमते हुए ब्रह्मा के मानसी पुत्र विष्णुजी के मन्दिर को आये ॥ १६ ॥ और विष्णुजी के दर्शन की लालसावाले बड़े ऐश्वर्यवान् सब सनकादिक उन दोनों से निवारित होकर पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १७ ॥ व हे व्यासजी ! उस समय बहुतही दुःखित सनकादिक कुमार मोहित हुये तदनन्तर वे कमललोचन महाबाहु विष्णु भगवान् आये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में दुःखित बालकों को श्रीविष्णुजी ने अचानकही देखा व एकको उठाकर मधुसूदनजी ने गोदी

में बिठाकर लिपटा लिया ॥ १९ ॥ व मस्तकमें सूंघकर तथा भुजाओं से लिपटाकर विष्णुजी बोले कि किसकारण तुम लोगोंको यह कष्टहुआ व किससे बहुत दुःखी हो ॥ २० ॥ हे धर्मज्ञ श्रेष्ठ बालको ! उस सब कारणको हम से कहिये कुमार बोले कि हे महाराज ! हम लोगोंके ऐसे दुःखको सुनिये ॥ २१ ॥ कि जिससे हे सुव्रत, भगवान ! हमलोग इस दशाको प्राप्त हुये हे रमानाथ ! आपके दर्शन के लिये अभिलाष समेत व दैत्यों से विकल ये चारोंभाई जो कि लोकों में प्रसिद्धहैं आये और [illegible] उग्र द्वारपालों से अचानकही मना किये गये ॥ २२।२३ ॥ उसी कारण आप से परिपालित यह दशा प्राप्त हुई अब से लगाकर इस स्थान में इनकी सनातनी

[illegible]मधुसूदनः ॥ १९ ॥ मूर्ध्निचाघ्रायबाहुभ्यां परिष्वज्यउवाचह ॥ कस्माद्वःकश्मलमिदं केनापिदुःखिताभृशम ॥ २० ॥ मद्वैतत्कारणंबाला ब्रूतनोधर्मवित्तमाः ॥ कुमाराऊचुः ॥ श्रूयताम्भोमहाराज अस्माकंदुःखमीदृशम् ॥ २१ ॥ येनप्राप्तावयंब्रह्मन् दशामेतांसुसुव्रत ॥ आयाताभ्रातरोह्येते चत्वारोलोकविश्रुताः ॥ २२ ॥ दर्शनार्थंरमानाथ [illegible]नामुग्रदिनाः ॥ निवारिताश्चसहसा द्वारपालैर्बलोत्कटैः ॥ २३ ॥ तेनचेयंदशाप्राप्ता भवतापरिपालिता ॥ अद्यप्रभृतिनस्थानेऽस्मिन् स्थितिर्नास्तिचशाश्वती ॥ २४ ॥ एतस्मादासुरींयोनिं प्राप्नुतांसुसमाहितौ ॥ सद्यःप्राप्तौतदा[illegible]याम आसुरींयोनिंकुत्सिताम् ॥ २५ ॥ जयश्चविजयाख्यश्च दुष्टभावंसमाश्रितौ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण तपोदानसमाधिभिः ॥ २६ ॥ नराणांक्षीणपापानां कृष्णेभक्तिःप्रजायते ॥ दुष्टभावेनवैसद्यो जन्मभिर्जायतेत्रिभिः ॥ २७ ॥ भ[illegible]स्माद्विष्णुभक्तिःपरास्मृता ॥ जन्मजन्मान्तरेजातौ तामसींयोनिमुद्धतौ ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव

[illegible] ॥ २४ ॥ [illegible] सावधान ये आसुरी योनिको प्राप्त होवैं उस समय हे व्यासजी ! शीघ्रही वे दोनों निन्दित आसुरी योनिको प्राप्त [illegible] प्राप्त हुये हजारों जन्मान्तरों से तपस्या, दान व समाधिसे ॥ २६ ॥ क्षीण पापोंवाले मनुष्यों की श्रीकृष्णजी में [illegible] ॥ २७ ॥ उसीकारण उत्तम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुमदोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरों

में तामसी (आसुरी) योनि को प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपु व महाबलवान् हिरण्याक्ष वैसेही कुंभकर्ण नामक और लोकों को रुलानेवाला रावण ॥ २९ ॥ और दन्तवक्र व शिशुपाल इसप्रकार तीनजन्मों में कहेगये हैं व जो यह महाबलवान् दैत्य हिरण्याक्ष ऐसा कहा गयाहै ॥ ३० ॥ देवता व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व दुष्टभाव में प्राप्त वह सब देवताओं को जीतकर आपही स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ और छूटे राज्यवाले व उससे पराजित सब देवता स्वर्ग से निकाल दिये गये और वे मनुष्यों की नाईं घूमते थे ॥ ३२ ॥ व स्वधाकार, वषट्कार और स्वाहाकार नहीं देख पड़ता है और देवताओं का पूजन अर्चन नहीं होताहै व विशेषकर ब्राह्मणों

हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ तथैवकुम्भकर्णाख्यो रावणोलोकरावणः ॥ २९ ॥ दन्तवक्रःशिशुपाल एवंजन्मत्रयेस्मृताः ॥ योसौमहाबलोदैत्यो हिरण्याक्षइतिस्मृतः ॥ ३० ॥ दुष्टभावंसमापन्नो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ जित्वाचसकलान्देवान् स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ३१ ॥ स्वर्गान्निराकृताःसर्वे भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ विचरन्तियथामर्त्यास्तेनदेवगणाभुवि ॥ ३२ ॥ स्वधाकारोवषट्कारः स्वाहाकारोनदृश्यते ॥ देवपूजार्चनंनास्ति ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ ३३ ॥ नैवतीर्थानिकाशन्ते पुण्यान्यायतनानिच ॥ आश्रमेषुचसर्वेषु ऋषीणांचमहात्मनाम् ॥ ३४ ॥ अत्यद्भुतंप्रकुर्वन्ति दुष्टदैत्याःप्रहारिणः ॥ वर्णाश्रमवतांधर्माः स्त्रीणांचैवसुशीलता ॥ ३५ ॥ उच्छिन्नाहितदाजाता तस्मिन्राज्ञिदुरात्मनि ॥ दुष्टाचारादुरात्मानो मायिनो बहुमानिनः ॥ ३६ ॥ पाखण्डिनोविक्रमिणः सर्वधर्मबहिर्मुखाः ॥ पशुधर्मगताह्येते सर्वंब्रह्मेतिशंसिनः ॥ ३७ ॥ बहुम्लेच्छाबहुक्लेशा बहुबाधावनिष्कृता ॥ कोवेदःकास्मृतिःपुण्याकोयज्ञःकाचदक्षिणा ॥ ३८ ॥ तमोभूतंजगत्सर्वं दृश्यते

का पूजन नहीं होता था ॥ ३३ ॥ और तीर्थ व पवित्र देव मन्दिर नहीं शोभित होते थे व ऋषियों तथा महात्माओंके सब आश्रमों में ॥ ३४ ॥ प्रहार करनेवाले दुष्ट दैत्य अतिअद्भुत कर्मको करते थे और वर्ण व आश्रमवाले जनों के धर्म व स्त्रियोंकी सुशीलता ॥ ३५ ॥ तब नष्ट होगई जब कि वह दुष्टराजा हुआ और दुष्ट आचारवाले व दुरात्मा, मायावी तथा बहुत मानी ॥ ३६ ॥ पाखण्डी, पराक्रमी व सब धर्मोंसे विमुख तथा सब ब्रह्महै ऐसा कहनेवाले ये दैत्य पशुधर्मत्वको प्राप्त हुये ॥ ३७ ॥ और बहुम्लेच्छ बहुत क्लेश व बहुत पीड़ाओंवाली पृथ्वी कीगई कौन वेद व कौन पवित्रस्मृति, कौन यज्ञ और कौन दक्षिणा है ॥ ३८ ॥ पृथ्वी तलमें सब संसार

अन्धकारभूत देख पडता था हे व्यासजी ! जब देखा सब त्रिलोक ऐसा होगया ॥ ३९ ॥ तब जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म की बढ़ती होती है तब हे अर्जुनजी ! मैं अपना को रचता हूं याने अवतार को धारण करता हूं ॥ ४० ॥ ऐसा जानकर आत्मवान् महाविष्णुजीने लीला से श्वेतद्वीप के समान दिव्य व उत्तम वाराहशरीर को धारण किया ॥ ४१ ॥ जो कि यज्ञ स्तंभरूपी दाढ़ोंवाला व हव्य गन्धिवाला और बीज व औषधीरूप रोमोंवाला तथा वेदरूपी चरणोंवाला था स्मृति इन वाराहजी की नासिकाथी व जिह्वा अग्नि और तालु आहुतिथी ॥ ४२ ॥ और वे वाराहजी भीतर मुख के प्रकाश से आटोप (गर्व) वाले व यज्ञशरीर

वसुधातले ॥ एवंव्यासयदाजातं दृष्टंसर्वंजगत्त्रयम् ॥ ३९ ॥ यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥ ४० ॥ इतिज्ञात्वामहाविष्णुर्वाराहंवपुरात्मवान् ॥ दधारलीलयादिव्यं श्वेतद्वीपोपमंशुभम् ॥ ४१ ॥ यूपदंष्ट्रोहविर्गन्धो बीजौषधितनूरुहः ॥ वेदपादःस्मृतिर्घोणाजिह्वाग्निस्तालुचाहुतिः ॥ ४२ ॥ अन्तरास्यरुचाटोपोयज्ञकायःसुदक्षिणः ॥ उद्गमोघुर्घुरोनादो विहारोऋत्विजाकृतिः ॥ ४३ ॥ श्वेतःश्वासपरोदक्षःसदस्यावयवःस्मृतः ॥ पुच्छःकर्मासनोनित्यं यजतांबहुमानदः ॥ ४४ ॥ वेदीपल्वलसंतारो ब्रह्माध्वर्य्युर्वनाकरे ॥ लोककल्पोलोकसाक्षी परावरवहःशुचिः ॥ ४५ ॥ आद्यःपुरुषईशानः पुरुहूतःपुरुष्टुतः ॥ तेनासौनिहतोदैत्यो हिरण्याक्षोदुरासदः ॥ ४६ ॥ संग्रामान्सुबहून्कृत्वा बहुकष्टेनविष्णुना ॥ दैत्येनपीडितापृथ्वी रसातलतलंगता ॥ ४७ ॥ उद्धृताचवराहे

तथा उत्तम दक्षिणावाले थे इनका घुर्घुर शब्द उच्चगान था व विहार ऋत्विज के समान आकारवाला था ॥ ४३ ॥ व ये वाराहजी श्वेत श्वास में तत्पर व प्रवीण और सामाजिक अंगोंवाले कहेगये हैं व इनकी पुच्छ कर्म का आसन है जो कि पूजन करनेवालों को बहुत मानदायक है ॥ ४४ ॥ और वाराहजीका छोटे तड़ागों का उतरना वेदी है और वन व खानि ब्रह्मा अध्वर्यु (यजुर्वेदी) है व लोकों की कल्पना करनेवाले तथा लोकसाक्षी तथा कार्य व कारण के धारनेवाले और पवित्र हैं ॥ ४५ ॥ जो वाराहजी आदि पुरुष व ईशान तथा बहुत नामोंवाले व बहुतों से स्तुति किये हुये हैं उन विष्णुजी से बहुत संग्रामों को कर बड़े कष्ट से यह

हिरण्याक्ष दुरासद दैत्य मारा गया दैत्य से पीड़ित पृथ्वी रसातल के नीचे चलीगई थी ॥ ४६।४७ ॥ उसको वाराहजी चन्द्रमा की रेखा के समान दाढ़ से ऊपरलाये हैं और वे सब दानव मारेगये व शेष पाताल को प्राप्तहुये ॥ ४८ ॥ तब पवित्र पवन चलने लगे व सूर्य सुन्दर प्रकाशवाले हुये और शान्त हुई अग्नियां जल उठीं व दिशाओं में उत्पन्न शब्द शान्त होगये ॥ ४९ ॥ और नदियां मार्ग में बहनेलगीं व समुद्र प्रकृति को प्राप्तहुये याने जैसे कि पहले थे वैसेही होगये हे व्यासजी ! वाराहदेवजी ! सब संसार को देखकर प्रसन्न चित्तहुये ॥ ५० ॥ वाराहमूर्तिवाले भगवान् सब कामनाओं के फलों को देनेवाले हैं और आनन्द से पूर्ण वाराहदेवजी

णादंष्ट्रयाचन्द्ररेखया ॥ हतास्तेदानवाःसर्वेशेषाः पातालमाययुः ॥ ४८ ॥ ववुःपुण्यास्तदावाताः सुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥ जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः शान्तादिग्जनितस्वनाः ॥४९॥ सरितोमार्गवाहिन्यः सागराःप्रकृतिंगताः ॥ दृष्ट्वादेवोखिलं व्यासप्रसन्नात्माबभूवह ॥ ५० ॥ वाराहमूर्त्तिर्भगवान् सर्वकामफलप्रदः ॥ आनन्दनिर्भरोदेवो हतदैत्योवरप्रदः॥५१॥ तस्यापिहृदयाज्जाता नदीह्येषासनातनी ॥ आनन्दजलसम्पूर्णा सर्वानन्दवरप्रदा ॥ ५२ ॥ बहुयोजनविस्तारा बहुलाकामचारिणी ॥ पद्माकरसमाकीर्णा हंसकारण्डवाकुला ॥ ५३ ॥ सरत्नातरलामाया यक्षगन्धर्वसेविता ॥ किन्नरीभिर्गीयमाना गीयमानाखगालिभिः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्त्यप्सरसोनित्यं स्तूयमानामहर्षिभिः ॥ हुताग्निभिर्युतानित्यं राजर्षिभिस्समाश्रिता ॥ ५५ ॥ तुङ्गस्तनभराक्रान्तवरस्त्रीभिःसमावृता ॥ क्वचित्करिवरापोतै रम्यमाणाविराजिता ॥ ५६ ॥

दैत्यों को मारनेवाले व वरदायक हैं ॥ ५१ ॥ उनके भी हृदय से यह सनातनी नदी उत्पन्न हुई है जो कि आनन्द जल से पूर्ण व सब आनन्दों तथा वरोंको देनेवाली है ॥ ५२ ॥ और बहुत योजन चौड़ी बहुत व इच्छा के अनुकूल चलनेवाली है और कमलों की खानि से व्याप्त व हंसों तथा कारंडव पक्षियों से संयुक्त है ॥ ५३ ॥ और रत्नों समेत व चंचला माया रहित तथा यक्षों व गंधर्वों से सेवित है और किन्नरों से गाई जाती व पक्षियों तथा भ्रमरों से गान की जाती है ॥ ५४ ॥ जहांपर सदैव अप्सरायें नृत्य करती हैं व महर्षियों से स्तुतिकी जाती तथा हवन की हुई अग्नियों से नित्यही संयुत व राजर्षियों से भलीभांति आश्रितहै ॥ ५५ ॥ और उन्नत

रतनों के भारसे घिरीहुई स्त्रियोंसे भलीभांति घिरीहै और कहींपर उत्तम हाथियों के बच्चोंसे क्रीड़ा की जातीहुई वह नदी शोभित है ॥ ५६ ॥ और प्रशंसित चित्तवाले ऋषियों व वेदज्ञ ब्राह्मणों से सदैव सेवने योग्य तथा मनुष्यों को सब समय में ऋद्धि, सिद्धि, दायिनीहै ॥ ५७ ॥ मनोहर महाकाल पुरी में सुन्दरी पद्मावती पुरी है व हे व्यासजी ! उत्तम सुन्दर कुण्ड बहुत सुन्दर व प्राचीन है ॥ ५८ ॥ जिसमें नहाकर मनुष्य सनातन शिवलोक को जातेहैं हे व्यासजी ! लोकोंको पवित्र करनेवाली उत्तम क्षिप्रा नदी उसमें लीन होगई है ॥ ५९ ॥ वाराहजीने सब दुष्ट दैत्यों का विनाश किया है और उन वाराहमूर्त्तिवाले विष्णुजी ने देवताओं को ताप व शङ्का

वेदविद्भिर्द्विजैस्सेव्या ऋषिभिश्शंसितात्मभिः ॥ सर्वदासर्वकालेच ऋद्धिसिद्धिप्रदान्नृणाम् ॥ ५७ ॥ महाकालपुरे रम्येरम्यापद्मावतीपुरी ॥ सुन्दरकुण्डंपरंव्यास रम्यंप्राचीनकंशुभम् ॥ ५८ ॥ यत्रस्नात्वानरायांति शिवलोकंसनातनम् ॥ तत्रलीनापराव्यास क्षिप्रात्रैलोकपावनी ॥ ५९ ॥ वाराहेणकृतंसर्वं दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ तेनदेवानिरातंकाः कृता वाराहमूर्त्तिना ॥ ६० ॥ भूत्वाप्राञ्जलयःसर्वे देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिंकृत्वामहाविष्णुं सन्नताःपुरतःस्थिताः ॥ ६१ ॥ देवाऊचुः ॥ देवदेवजगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ किंदानंकिंतपःपुण्यं किंतीर्थंकाचदेवता ॥ ६२ ॥ येनपुण्यप्रभावेन पुनःस्वर्गोह्यवाप्यते ॥ एवंनिश्चित्यनोब्रूहि सर्वगुह्यतरंविभो ॥ ६३ ॥ श्रीवाराह उवाच ॥ श्रूयतांभोसुराःसर्वे युष्माकंसिद्धिकारणम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरंपुण्यं महाकालवनेशुभम् ॥ ६४ ॥ ममदेहोद्भवाक्षिप्रा यत्रलीनापयस्विनी ॥ नीलगङ्गासरिच्छ्रेष्ठा यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ६५ ॥ पुष्करं च गयातीर्थं पुरुषोत्तमसरःशुभम् ॥ तद्यूयंगच्छतक्षिप्रां पुनर्लोका

रहित किया है ॥ ६० ॥ व इन्द्रादिक सब देवता हाथों को जोड़ आगे स्थित होकर स्तुति कर महाविष्णुजी को भलीभांति प्रणाम करते भये ॥ ६१ ॥ देवता बोले कि हे पवित्र श्रवण व कथनवाले देवदेव जगदीशजी ! कौन दानहै कौन तपहै व कौन पवित्र तीर्थ है और कौन देवताहै ॥ ६२ ॥ कि जिस पुण्य के प्रभाव से फिर स्वर्ग मिलै हे विभो ! ऐसा निश्चय कर अत्यन्त गुप्त सब वृत्तान्त को कहिये ॥ ६३ ॥ श्री वाराहजी बोले कि हे समस्तदेवताओ ! सुनिये कि गुप्त से भी गुप्त व पवित्र तथा उत्तम तुमलोगों की सिद्धि का कारण महाकाल वनमें है ॥ ६४ ॥ मेरे शरीर से उत्पन्न क्षिप्रानदी जिसमें लीनहुई है वह नीलगंगा उत्तम नदी है जहां कि

प्राची सरस्वती है ॥ ६५ ॥ व पुष्कर, गया तीर्थ और उत्तम पुरुषोत्तम तड़ाग है इसलिये तुमलोग क्षिप्रानदी को जावो फिर लोकोंको प्राप्त होवोगे ॥ ६६ ॥ वहां देव-
देव जगद्गुरु वाराहजी के इस प्रकार उत्तम वचन को सुनकर ब्रह्मा इन्द्रादिक सब देवगण ॥ ६७ ॥ जहां क्षिप्रा उत्तम नदी थी वहां सुन्दर महाकाल वनमें गये
और स्नान दानादिक कर यथा योग्य श्राद्ध कर ॥ ६८ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से देवता अपने लोकों को गये इस प्रकार हे व्यासजी ! क्षिप्रा लोकपावनी कही
गई है ॥ ६९ ॥ व अतुल तेजवाले वाराहविष्णुजी का तड़ाग हुआ है कि जिसके दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्या नाश होजाती है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर जल पीकर व

नवाप्स्यथ ॥ ६६ ॥ इतिश्रुत्वापरं वाक्यं देवदेवजगद्गुरोः ॥ तत्रदेवगणाःसर्वे ब्रह्मइन्द्रपुरोगमाः ॥ ६७ ॥ महाकालवनेर
म्ये यत्रक्षिप्रासरिद्वरा ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा श्राद्धंकृत्वायथोचितम् ॥ ६८ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन स्वकाँल्लोकान्गताः
सुराः ॥ एवंव्याससमाख्याता क्षिप्रात्रैलोकपावनी ॥ ६९ ॥ जातंसरोवराहस्य विष्णोरतुलतेजसः ॥ यस्यदर्शनमात्रे
ण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ ७० ॥ तत्रस्नात्वापयःपीत्वा श्राद्धं कृत्वायथोचितम् ॥ पयस्विनींचगांदत्वा विष्णुलोकेम
हीयते ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्रामाहात्म्यंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि तानिसर्वाणिसुव्रत ॥ अवन्त्यांसुन्दरेतीर्थे तिष्ठन्तिसर्वदाभुवि ॥ १ ॥
व्यास उवाच ॥ किमिदंसुन्दरंकुण्डं कदाकालेभवत्क्षितौ ॥ निर्मितंकेनकोदेवः किंवातस्यफलंस्मृतम् ॥ २ ॥ सनत्कु

यथायोग्य श्राद्धकर और दूधवाली गऊ को देकर मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाताहै ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीका
यां क्षिप्रामाहात्म्यंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि पिशाच मोचन तथा सुन्दर कुण्डप्रभाव । चौसठिवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले हे सुव्रत ! पृथ्वीमें जो तीर्थ हैं वे सब पृथ्वी
पर अवन्ती पुरीमें सुन्दर कुण्ड में सदैव स्थित रहते हैं ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यह कौन सुन्दरकुण्ड पृथ्वी में किस समय हुआ है और किसने निर्माण किया है व

उसका कौन फल कहागयाहै ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुनिये कि जब अत्यन्त पवित्र तीर्थ में सब पापों का नाशक व चाहेहुए मनोर्थके फलदायक सुन्दर नामक कुण्ड हुआ है ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है व अश्व मेध से अधिक तथा सौ वाजपेय यज्ञों से अधिक पुण्य होताहै ॥ ४ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय जब कल्पान्त में प्रचण्ड पवन व बरसने से पृथ्वी नष्ट होगई और सुमेरु गिरि कांपउठा ॥ ५ ॥ तब इस भयंकर, गुप्त, विकार रहित व अचल महाकाल वनमें वैकुंठनामक वह उत्तम शिखर गिराहै ॥ ६ ॥ शिखर गिरने पर उसी क्षण रत्नों के सोपानों से निर्मल व मोतियों की बालू से पूर्ण निश्चित कुण्ड हुआ ॥ ७ ॥

मार उवाच ॥ शृणुपुण्यतमेक्षेत्रे सुन्दराख्यंयदाभवत् ॥ सर्वपापप्रशमनं वाञ्छितार्थफलप्रदम् ॥ ३ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ अश्वमेधाधिकंपुण्यं वाजपेयशताधिकम् ॥ ४ ॥ पुराकल्पक्षयेव्यास नष्टकल्पाचमेदिनी ॥ प्रचण्डवातवर्षाभ्यां घूर्णितोमेरुपर्वतः ॥ ५ ॥ तदात्रपतितंवैकुण्ठाख्यंतच्छिखरोत्तमम् ॥ महाकालवनेघोरे गुह्येचैवाव्ययेध्रुवे ॥ ६ ॥ तत्क्षणात्पतितेशृङ्गे कुण्डंजातंसुनिश्चितम् ॥ रत्नसोपानसुस्वच्छं मुक्तासैकतपूरितम् ॥ ७ ॥ जाम्बूनदकृतारोहं हेमपद्मविराजितम् ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायं चिन्तामणिसमुच्छ्रितम् ॥ ८ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं महर्षिगणसेवितम् ॥ बीजौषधिगणाकीर्णं सर्वतत्त्वाभिसंयुतम् ॥ ९ ॥ कल्पक्षयेनक्षीयन्ते यानितत्त्वानिसर्वदा ॥ तानितत्रप्रतिष्ठन्ति मूर्त्तिमन्तिपराणिच ॥ १० ॥ वेदशास्त्रपुराणानि गाथागीत्यक्षराःस्वराः ॥ ॐकारश्चवषट्कारः गायत्रीत्रिपदीपरा ॥ ११ ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तानि लवत्रुटिपलकाघटिः ॥ अहर्निशश्चयामाश्च पक्षौमासोऋतुस्तथा ॥ १२ ॥ संव

जो कि सुवर्ण मे रचित आरोहवाला व सुवर्ण के समान कमलों से शोभित तथा कल्पवृक्ष से की हुई छायावाला और चिन्तामणि से उन्नत था ॥ ८ ॥ व हंसों तथा कारंडव पक्षियों से व्याप्त तथा महर्षिगणोंसे सेवित और बीजों व औषधियोंसे पूर्ण तथा सब तत्त्वों से संयुत था ॥ ९ ॥ जो तत्त्व कल्पान्त में नहीं नष्ट होतेहैं वे मूर्त्तिमान् उत्तम तत्त्व सदैव उसमें प्रतिष्ठित रहतेहैं ॥ १० ॥ और वेद, शास्त्र,पुराण, गाथा, गान, अक्षर, स्वर, ॐकार, वषट्कार व त्रिपदी परम गायत्री ॥ ११ ॥

और कला, काष्ठा, मुहूर्त, लव, त्रुटि, पल, घटी, दिनरात, पहर, पक्ष, महीना व ऋतु ॥ १२ ॥ और मूर्त्तिमान् संवत् व युग कुंड में स्थितहैं और देवता, यक्ष, नाग, गुह्यक व किन्नर ॥ १३ ॥ कल्प के दोष के भयसे आतुर गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध व किंपुरुषोंने उस कुण्ड की उपासना कियाहै ॥ १४ ॥ और ब्रह्मा, रुद्र, काल व बड़े पराक्रमी लोकपाल तथा ध्यान में परायण कोई सिद्ध व प्रशंसित नियमोंवाला तपस्वी ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! ये बहुत युगोंतक तब तक उसमें टिकते हैं जबतक कि कल्प समाप्त होता है और सुदर्शन चक्र के समान आकारवाला व अमृत जलों से पूर्ण ॥ १६ ॥ व दिव्य अभिप्रायों से संयुत और पारिजात के गुणोंसे

त्सरोयुगश्चैव कुण्डेतिष्ठतिमूर्तिमान् ॥ देवायक्षाश्चनागाश्चगुह्यकाःकिन्नरास्तथा ॥ १३ ॥ गन्धर्वाप्सरसोयक्षाः सिद्धाः किंपुरुषास्तथा ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य कल्पदोषभयातुराः ॥ १४ ॥ ब्रह्मारुद्रश्चकालश्च लोकपालामहौजसः ॥ केचिद्ध्यानपराःसिद्धास्तपस्वीशंसितव्रतः ॥ १५ ॥ तिष्ठन्तिबहुयुगंव्यास यावत्कल्पःसमाप्यते ॥ सुदर्शनसमाकारं पूरितंचामृताम्बुभिः ॥ १६ ॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्तं पारिजातगुणान्वितम् ॥ दिव्यस्त्रीस्नानगन्धोदैर्वासितंतुसदैवहि ॥ १७ ॥ क्वचिन्मयूरान्नृत्यन्ति क्वचित्कूजन्तिकोकिलाः ॥ क्वचिच्चकेकाभिरवाः क्वचिद्घोषसमाकुलं ॥ १८ ॥ सुन्दरंसुन्दराकारं सुन्दरंतत्तथोच्यते ॥ बहुपुण्यकरंव्यास सर्वपापहरंपरम् ॥ १९ ॥ यत्रसन्निहितोविष्णुः शिवःशक्त्यायुतोवशी ॥ उपासाञ्चक्रिरेशश्वत् सर्वकालेषुसर्वदा ॥ २० ॥ क्षणार्द्धंक्षणमेकंच सुन्दरकुण्डेनरोवसेत् ॥ वैकुण्ठेनियतंवासः यावत्कल्पशतंभवेत् ॥ २१ ॥ पतङ्गाःपक्षिणःकीटा मृतायान्तिशिवालयम् ॥ किंपुनर्मानवालोके स्नानपूतास्तुतज्जले ॥ २२ ॥

संयुत तथा दिव्यस्त्रियों के स्नान के कारण सुगन्धित जलों से सदैव वासित है ॥ १७ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं और कहीं कोकिलाएं कूजती हैं कहीं मयूर की वाणी होरही हैं, कहीं सब्दों से संयुत है ॥ १८ ॥ सुन्दर व सुन्दर आकारवाला वह तड़ाग सुन्दर कहाजाता है हे व्यासजी ! जो कि बहुत पुण्यकारक व समस्त पातकों का हारक तथा उत्तम है ॥ १९ ॥ जहापर विष्णुजी स्थितहैं व शक्तिसे संयुत कान्तिमान् शिवजी सदैव रहते है इन सबोंने सदैव सब समयों मे उसकी उपासना कियाहै ॥ २० ॥ आधा क्षण व क्षणभर जो मनुष्य सुन्दर कुण्डमें बसताहै उसको तबतक वैकुण्ठमें निश्चय कर निवास होताहै कि जबतक सौ कल्प होतेहैं ॥ २१ ॥

और पतंग, पक्षी व कीट वहां मरकर शिवजीके स्थान को प्राप्त होते हैं फिर संसार में उसके जल में स्नान से पवित्र मनुष्यों को क्या कहना है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य तिल, धेनु, हाथी, घोड़ा, रथ व पृथ्वी को देता है और दासी, दास, सुवर्ण व अनेक भांति के रत्नों को देता है ॥ २३ ॥ और शय्यादान, विमान व अनेक भांति के दानों को देता है हे व्यासजी ! मैं नहीं जानताहूं कि उसके दान से उपजाहुआ क्या फल होता है ॥ २४ ॥ हे व्यासजी ! कहे हुये सुन्दरकुंडके उत्तम फलको फिर सुनिये कि एक समय बहुत पाप से पापी योनियों में पतित ॥ २५ ॥ पिशाच मोक्षको प्राप्त होकर शिवरूपधारी वह चलागया पिशाचमोचन तीर्थ में नहाकर व सदा-

योददातितिलान्धेनुं गजंवाजिरथावनीम् ॥ दासीदाससुवर्णंच रत्नानिविविधानिच ॥ २३ ॥ शय्यादानविमानानि दानानिविविधानिच ॥ नतस्यदानजंवेद्मि कीदृग्व्यासफलंभवेत ॥ २४ ॥ भूयःशृणुपरंव्यास सुन्दरकुण्डफलं स्मृतम् ॥ एकदाबहुपापेन पतितःपापयोनिषु ॥ २५ ॥ पिशाचोमोक्षमापन्नः शिवरूपधरोगतः ॥ पिशाचमोचने स्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ २६ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योयद्यपिब्रह्महाभवेत ॥ व्यासउवाच ॥ कःपिशाचइतिख्यातः किंतेनदुष्कृतंकृतम् ॥ २७ ॥ येनपापप्रसङ्गेन पिशाचत्वंसमागतः॥कथंतीर्थेप्रसङ्गोस्य जातोवैद्विजसत्तम ॥ २८ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाख्यानं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ब्राह्मणोदेवलोनाम दाक्षिणात्योद्विजाधमः ॥ ३० ॥ सदापापरतोलोभी कूटसाक्षीचलम्पटः ॥ गुरुध्रुक्कैतवोधूर्तो भ्रूणहागुरुतल्पगः ॥ ३१ ॥ हेमहारीसुरापीच ब्रह्महास्वामिद्रोहकः ॥ अभक्ष्य

शिव देवजीको देखकर ॥ २६ ॥ यद्यपि ब्रह्मघाती होवै तथापि वह मनुष्य सब पापों से छूट जाताहै व्यासजी बोले कि पिशाच ऐसा कहाहुआ कौन है व उसने क्या पाप किया था ॥ २७ ॥ कि जिस पाप के प्रसंग से पिशाचत्व को प्राप्त हुआ है व हे द्विजोत्तम ! तीर्थ में इसका कैसे प्रसंग हुआ है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे इसको जानना चाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! उत्तम तीर्थमाहात्म्यरूप महाकथानक को सुनिये ॥ २९ ॥ कि जिसके सुननेही से सब पातकों का नाश होता है ब्राह्मणों में नीच देवल नामक दक्षिण में रहनेवाला ब्राह्मण हुआ है ॥ ३० ॥ जो कि सदैव पाप मे परायण, लोभी, झूंठी गवाही देनेवाला

भक्षकश्चैव वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ३२ ॥ बहुजन्मार्जितपापी सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ विश्वासघातकोमानी चोरसङ्गरतः खलः ॥ ३३ ॥ देशान्तरगतोमन्दश्चौरकार्यार्थसाधकः ॥ बहवोनिहतामार्गे पापचारेणजन्तुना ॥ ३४ ॥ मगधेषु गतो दुष्टः प्रसङ्गात्पापकारिणाम् ॥ तत्रैकोब्राह्मणोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३५ ॥ साग्निकःशुद्धसत्त्वस्थो ब्रह्मकर्मरतःसदा ॥ श्वशुरगृहस्थितांभार्यां तामादाययशस्विनीम् ॥ ३६ ॥ चलितोमार्गमारुह्य तेनपापेनघातितः ॥ तस्यस्त्रीचवरारोहारूपलावण्यशालिनी ॥ ३७ ॥ पतिव्रतामहाभागा पूतचित्ताशुचिस्मिता ॥ हतेभर्तरिदुःखार्ता पत्युर्विरहकातरा ॥ ३८ ॥ वनेघोरेपरिभ्रष्टा काष्ठमादायभामिनी ॥ आरुरोहचितांदीप्तां पतिनाशुद्धमानसा ॥ ३९ ॥ सचदुष्टतरःसर्वं तस्यविप्रस्यजीवनम् ॥ गृहीत्वाचलितोमार्गे गृहीतोराजकिङ्करैः ॥ ४० ॥ निगडित्वातुवित्तेन वेदितोराजसन्निधौ ॥ घातितो

लम्पट, गुरुद्रोही, कपटी, धूर्त्त, गर्भघाती व गुरुशय्यागामी था ॥ ३१ ॥ व सुवर्ण को चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला और ब्रह्मघाती व स्वामिद्रोही, अभक्ष्य को भोजन करनेवाला और वेदों व शास्त्रोंसे रहित था ॥ ३२ ॥ और बहुत जन्मोंसे इकट्ठाकिये पापवाला व सब धर्मोंसे अलग कियाहुआ, विश्वासघाती, मानी व चोरों के साथमें लगाहुआ तथा दुष्टथा ॥ ३३ ॥ चोरोंके कार्यके प्रयोजन को साधन करनेवाला वह मूर्ख अन्यदेश को चलागया और मार्गमें उस पाप आचरणवाले प्राणी से बहुत लोग मारेगये ॥ ३४ ॥ और पापकारी लोगोंके प्रसङ्गसे वह दुष्ट मगधदेशोंमें गया वहांपर वेदो व वेदाङ्गों का जाननेवाला एक दान्त (इन्द्रियों को दमन करनेवाला) ब्राह्मण रहताथा ॥ ३५ ॥ जोकि साग्निक व शुद्ध सत्त्वमें स्थित और सदैव ब्रह्मकर्म में परायण था वह श्वशुरके घरमें स्थित उस यशस्विनी स्त्रीको लेकर ॥ ३६ ॥ चला और मार्गको रोंककर उसको उस पापीने मारडाला उसकी स्त्री उत्तम कटिवाली व रूप तथा लावण्यसे शोभितथी ॥ ३७ ॥ और पतिव्रता,महाभाग्यवाली, पवित्र चित्तवाली व पवित्र मुसक्यानवाली थी पतिके मरजानेपर वह पतिके वियोगसे डरकर दुःख से विकलहुई ॥ ३८ ॥ भयङ्करवन में छूटी हुई वह शुद्धमनवाली स्त्री ईंधनको लेकर पतिसमेत जलतीहुई चिता पै चढ़ी ॥ ३९ ॥ और वह अत्यन्त दुष्ट उस ब्राह्मण के सब प्राणको लेकर चला व मार्ग में राजदूतों से पकड़

लियागया ॥ ४० ॥ और द्रव्यके कारण ज़ंजीरोंसे बाँधकर राजाके समीप बतलाया गया व वृक्षके खोढ़रमें रस्सीसे गलेमें बाँधकर मारागया ॥ ४१ ॥ और कुत्तेको पचाने वाले चाण्डालों ने उसको इधर उधर भूमिमें घिसलाया व उस कर्मके फलसे वह रौरवनरकको गया ॥ ४२ ॥ साठिहज़ार वर्षतक विष्ठामें कीटता को प्राप्तहुआ तदनन्तर यमराजकी आज्ञा करनेवालों से नरकमें प्राप्तहोनेपर ॥ ४३ ॥ वैतरणी से पीडित व कुम्भीपाकमें प्राप्त वह रोताथा इस भांति वह पापी बहुत प्रकार के नरकोंको दुःखसे भोगकर ॥ ४४ ॥ तदनन्तर पचहत्तरि युगोंतक प्रेतयोनिमें प्राप्त हुआ जोकि सूजीके समान मुखवाला तथा बड़े शरीरवाला, बड़ीध्वनिवाला व बड़े पेटवाला

वेगलेबद्धा रज्जुनावृक्षकोटरे ॥ ४१ ॥ चाण्डालैर्घृष्टितोभूमावितश्चेतःश्वपाकिभिः ॥ तेनकर्मविपाकेन रौरवंनरकंगतः ॥ ४२ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायांकृमितांगतः ॥ ततोहिनरकंप्राप्ते यमशासनकारकैः ॥ ४३ ॥ कुम्भीपाकगतो रौति वैतरण्याप्रपीडितः ॥ एवंबहुविधान्नरकान्भुक्त्वापापीसदुःखतः ॥ ४४ ॥ ततःप्रेतत्वमापन्नो युगानांपञ्चसप्ततिम् ॥ सूचीमुखोमहाकायो महारावोमहोदरः ॥ ४५ ॥ क्षुधातृषापराक्रान्तो मरुदेशसमाश्रितः ॥ ततःकष्टतरंप्राप्य पिशाचींतनुमाश्रितः ॥ ४६ ॥ कुटिलोदुष्टभावश्च दुष्टाचारीदिगम्बरः ॥ विष्ठामूत्रकृताहारो पूतिपर्यक्तभोजनः ॥४७॥ श्मशानेविट्प्रभोजीच कृत्तिवासाविलोचनः ॥ भग्नवाप्यांतडागेच शुष्कवृक्षेचनिर्जले ॥ ४८ ॥ प्राकारपरिघाकारे शून्यागारेनदीतटे ॥ निवासोरोचतेतस्य सर्वदासर्वसन्धिषु ॥ ४९ ॥ एवंबहुयुगेयाते महाकालवनेगतः ॥ यत्रमाहेश्वरो

था ॥ ४५ ॥ और क्षुधा व प्यास से आक्रमित वह मरुदेशमें प्राप्तहुआ तदनन्तर बहुत कष्टको पाकर पिशाचवाले शरीर में प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ जो कि कुटिल व दुष्टस्वभाव दुष्ट आचरणोंवाला तथा दिगम्बर (वसनहीन) और विष्ठा मूत्रको आहार करनेवाला व दुर्गन्धिसंयुत वस्तुको भोजन करनेवाला हुआ ॥ ४७ ॥ और श्मशानमें विष्ठा खानेवाला व चर्मवसनवाला, नेत्रहीन था व फूटीबावली व तड़ाग में और सूखेवृक्ष व निर्जल स्थान में ॥ ४८ ॥ और छहरदिवाली व परिघ के समान आकारवाले तथा शून्य घरमें व नदीके किनारे सदैव सब सन्धियों (सन्ध्याओं) में उसको निवास रुचताथा ॥ ४९ ॥ इस प्रकार बहुत युग बीतनेपर वह महाकालवनमें गया जहां

कि शिवजी का लिंग व अद्भुत सुन्दरकुण्डथा ॥ ५० ॥ वहांपर भी क्षणभर में सिंहने मारडाला और उस पापीको मारकर जलको चाहनेवाला सिंह कुण्ड में पैठ गया॥५१॥ और दाढ़ोंके बीचमें प्राप्त अस्थि (हड्डी) उसके मुख से जलमें गिरपडी उस पुण्यके प्रभावसे सब पाप नाशको प्राप्तहुआ ॥ ५२ ॥ और उस समय मरनेही पर वह लिंग नेत्रोंके मध्यमें प्राप्तहुआ व पिशाचके शरीर को छोड़कर ज्योति उस लिंगमें पैठगई ॥५३॥ तब से लगाकर हे व्यासजी ! उत्तम पिशाचमोचन तीर्थहुआ और पिशाचमोचनेश नामक शिवजी पृथ्वीमें प्रसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ मदसे मतवाले हाथियों की नाईं पातक तबतक गरजते हैं जबतक कि मनुष्य क्षिप्रानदी

लिङ्गः सुन्दरंकुण्डमद्भुतम् ॥ ५० ॥ तत्रापिक्षणमात्रेणसिंहेनविनिपातितः ॥ घातयित्वाचतंपापं जलार्थीकुण्डमा विशत् ॥ ५१ ॥ दंष्ट्रान्तरगतंचास्थिपतितंतन्मुखाज्जले ॥ तेनपुण्यप्रभावेण सर्वपापंक्षयंगतम् ॥ ५२ ॥ मृतमात्रेच लिङ्गन्तन्नेत्रान्तरगतंतदा ॥ हित्वापैशाचकंदेहं ज्योतिस्तल्लिङ्गमाविशत् ॥ ५३ ॥ तदारभ्यपरंव्यास तीर्थंपैशाचमो चनम् ॥ पिशाचमोचनेशाख्यो भुविविख्याततांगतः ॥ ५४ ॥ तावद्गर्ज्जन्तिपापानि मदोन्मत्तागजाइव ॥ याव न्नायातिक्षिप्रायां तीर्थेपैशाचमोचने ॥ ५५ ॥ पिशाचमोचनेस्नात्वा शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ पिशाचमोचनेशाख्यं पू जयित्वायथाविधि ॥५६॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायतेनात्रसंशयः॥ पिशाचमोचनेव्यास महादानानिकारयेत् ॥५७॥ नतस्यपुनरावृत्तिः शिवलोकात्कदाचन ॥ पिशाचमोचनकथां पवित्रांपापहारिणीम् ॥५८॥ पठनाच्छ्रवणाच्चैव हयमेध फलंलभेत्॥५९॥इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेसुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

में पिशाचमोचनतीर्थ में नहीं आताहै ॥ ५५ ॥ सावधान होताहुआ मनुष्य पिशाचमोचनतीर्थ में नहाकर और विधिपूर्वक पिशाचमोचनेश्वर नामक शिवजीको पूज कर ॥ ५६ ॥ सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जो नर पिशाचमोचनतीर्थ में महादानोंको करै ॥ ५७ ॥ उसकी कभी शिवलोकसे पुनरावृत्ति नहीं होती है याने वह शिवलोकसे फिर कभी नहीं लौटताहै पवित्र व पापहारिणी पिशाचमोचन की कथा के ॥ ५८ ॥ पढ़ने व सुनने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्तहोता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायांसुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यवर्णनंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ❀ ॥

दो० । कह्यो नीलगङ्गा यथा ब्रह्मा सों निजहाल । पैंसठियें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदांवर, ब्रह्मन् ! मैं फिर तुमसे यह सुना चाहताहूं कि नीलगंगा किस समय क्षिप्राकुण्ड में भलीभांति प्राप्तहुई हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! समस्त तीर्थोंके फलको देनेवाले महातीर्थ को सुनिये कि नीलगंगा में नहाकर मनुष्य संगमेश्वरजीको पूजै ॥ २ ॥ तो उसके दुष्टसंगसे उपजेहुये दोष कभी नहीं होते हैं एक समय तीनों लोकोंको पवित्र करतीहुई त्रिपथगा (तीनमार्गोंसे गमन करनेवाली) श्रीगंगानदी नीलवसनवाली तथा शोचसे विकल होकर ब्रह्मलोकमें गईं व बोली कि हे ब्रह्मन् ! पहले मेरा कियाहुआ यह

व्यासउवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ नीलगङ्गाकदाब्रह्मन् क्षिप्राकुण्डेसमागता ॥१॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नीलगङ्गान्नरःस्नात्वा सङ्गमेश्वरमर्चयेत् ॥ २ ॥ दुष्टसङ्गोद्भवादोषा नभवन्तिकदाचन ॥ एकदाब्रह्मलोकेवै गङ्गात्रिपथगानदी ॥ ३ ॥ गतापुनन्तीत्रीँल्लोकान्नीलवासाशुचार्दिता ॥ भगवन्किमिदंजातं पातकंमेकृतम्पुरा ॥ ४ ॥ दुष्टाचारपरामेद्य येनैषाप्रापितादशा ॥ सर्वलोकेषुयत्किञ्चिज्जनानांपातकम्भुवि ॥५॥ तत्सर्वम्मयितिष्ठेत्तु सर्वेषामपिदेहिनाम् ॥ तेनाहंवैभराक्रान्ता नोशक्ताचलितुन्धराम् ॥ ६ ॥ नीलवासाविवर्णाच सर्वधर्मबहिर्मुखैः ॥यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म शुभंवायदिवाशुभम् ॥ ७ ॥ मयित्यक्त्वापुनन्तीमे जन्तवःसर्वशोमलाः ॥ तिष्ठन्तिपुण्यलोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदेषुच ॥ ८ ॥ अस्माकंचमहत्कष्टं जातंधातःपरम्मलम् ॥ नहिशर्मनैवशान्तिर्ननिद्रानचनिर्वृतिः ॥ ९ ॥ नहिलोकेस्थितिर्मेद्य पापिष्ठायासनातनी ॥ दुष्टसङ्गोद्भवैर्दोषैः प्लावि

क्या पाप उत्पन्न हुआहै ॥ ३ । ४ ॥ कि जिससे आज दुष्टआचारमें तत्पर यह दशा प्राप्तकीगई पृथ्वीपर सब लोकोंमें मनुष्यों का जो कुछ पातक होताहै ॥ ५ ॥ सबभी प्राणियोंका वह सब पाप मुझमें स्थित होताहै उस कारण भारसे घिरीहुई व नीलवसनवाली व उदासीन मैं पृथ्वीमें चलने के लिये नहीं समर्थहूं क्योंकि सब धर्मोंसे पृथक्जनों से जो कुछ शुभ या अशुभकर्म कियाजाता है ॥ ६ । ७ ॥ उसको मुझमें छोडकर ये सब निर्मल प्राणी पवित्र होतेहैं व भुक्ति, मुक्तिदायक पुण्यलोको में स्थित होतेहैं ॥ ८ ॥ हे विधातः ! हमको बड़ा कष्ट है क्योंकि बहुत मल होगया इससे न कल्याण है न शान्ति है न निद्रा आती है और न सुख होता है ॥ ९ ॥ हे

जगद्गुरो ! जो सनातनी स्थितिथी वह आज मेरी पापिनी स्थिति संसार में न होगी क्योंकि दुष्टसंग से उपजेहुये दोषोंसे मैं डूबीहुई हूं ॥ १० ॥ क्या करूं व कहांजाऊं कि जिमसे मेरी शान्तिहोवै मेरे लिये क्या तपहै व क्या दान, कौनतीर्थ और कौन यत्नहै ॥ ११ ॥ कि जिससे पापसे संयुत अंगवाली मैं पहलेकी प्रकृति (दशा) को प्राप्तहोऊं ऐसा जानकर हे महायोगिन् ! जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ॥ १२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे सरिदुत्तमे ! पापनाशक कारणको सुनिये कि महाकालनामक सुन्दर वन में यह अमरावती पुरी है ॥ १३ ॥ भूमिमें वहा क्षिप्रानामक पवित्रकारिणी नदी वर्त्तमान है उसके दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका क्षयहोवै है ॥ १४ ॥ हे महाभागे !

ताहंजगद्गुरो ॥ १० ॥ किङ्करोमिकगच्छामि येनशान्तिर्भवेन्मम ॥ किंतपःकिञ्चदानम्मे किंतीर्थंकिंचसाधनम् ॥ ११ ॥ येनाहंपापलिप्ताङ्गी पूर्वप्रकृतिमाप्नुयाम् ॥ एवंज्ञात्वामहायोगिन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसरिच्छ्रेष्ठे कारणंपापनाशनम् ॥ महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषामरावती ॥ १३ ॥ तत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा वर्तते भुविपावनी ॥ तस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ १४ ॥ तत्रगच्छमहाभागे सद्यश्चात्मविशुद्धये ॥ ब्रह्मणेदंसमाख्यातं श्रुत्वागङ्गासरिद्वरा ॥ १५ ॥ तमभिज्ञायसंप्राप्ता महाकालवनंशुभम् ॥ पुष्करस्याग्रमार्गेच यत्रदेवोमरुत्सुतः ॥ १६ ॥ विन्ध्यस्यचोत्तरेभागे अञ्जन्याश्रममुत्तमम् ॥ सापुत्रेणतपस्तेपे पवित्राब्रह्मचारिणी ॥ १७ ॥ पतिव्रताभिःसर्वाभिः पतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥ देवाङ्गनाभिर्बहुभिः क्रीडद्भिर्बालकुञ्जरैः ॥ १८ ॥ सरसीफुल्लकह्लारैर्मत्तालिकुलनादितम् ॥ निर्वैरजन्तुभिःसेव्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ १९ ॥ मनआह्लादकंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ तत्रप्रवेशमात्रेण

अपनी शुद्धिके लिये वहा शीघ्रही जावो ब्रह्मासे इस कहेहुये वचन को सुनकर श्रेष्ठनदी श्रीगंगाजी ॥ १५ ॥ उसको जानकर उत्तम महाकालवनमें प्राप्तहुई पुष्कर के आगे मार्गमे जहां पवनसुत (हनुमान्) जी हैं ॥ १६ ॥ वहां विन्ध्याचल के उत्तरभागमें उत्तम अञ्जनीका आश्रम है पुत्रसमेत ब्रह्मचारिणी व पवित्र उस अंजनी ने वहा तप कियाहै ॥ १७ ॥ जो आश्रम कि ब्रह्मचारी पतियों समेत सब पतिव्रता स्त्रियों से संयुत व खेलतेहुये बहुत बालगजों व देवांगनाओं से संयुत था ॥ १८ ॥ व तड़ाग में फूलेहुये कमलों से व मतवाले भ्रमरसमूहों से शब्दितथा और वैररहित प्राणियों से सेवनेयोग्य व ब्रह्मर्षिगणों से सेवित ॥ १९ ॥ व मनको आनन्द-

दायक, पुण्यदायक, पवित्र व पापनाशक था वहां प्रवेशमात्र से नीलवसनवाली श्रेष्ठ नदी वे यशस्विनी गंगाजी श्वेत वसनवाली, नष्टपापरूपी मलोंवाली तथा
शरदृतुके चन्द्रमा के समान आकारवाली, कम्पित पातकोंवाली व उत्तम होगई ॥ २० । २१ ॥ और वहींपर उन्होंने मनके हर्ष कारणवाले आश्रम को किया तब
से लगाकर वह सब लोकों में पुण्यदायक कहागया है ॥ २२ ॥ हे व्यासजी ! नीलगंगा ऐसा वह तीर्थ सब पातकों का नाशक है इस तीर्थ में नहाकर इसके उप-
रान्त जो मनुष्य श्रीहनुमान्‌जी को पूजता है ॥ २३ ॥ उसके हाथ में सिद्धि प्राप्त होती है इस में सन्देह नहीं है कुँवार महीना भलीभांति प्राप्त होनेपर सावधान

धूतपापायशस्विनी ॥ २१ ॥
नीलवासासरिद्वरा ॥ २० ॥ शुक्लवासाभवत्सातु नष्टपापमलाशुभा ॥ शरच्चन्द्रनिभाकारा
तत्रैवचाश्रमंचक्रे मनसोहर्षकारणम् ॥ ततःप्रभृतिसमाख्यातं सर्वलोकेषुपुण्यदम् ॥ २२ ॥ नीलगङ्गेतितत्तीर्थं व्यासकि
ल्बिषनाशनम् ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा हनुमन्तमथार्चयेत् ॥ २३ ॥ तस्यसिद्धिःकरगता भविष्यतिनसंशयः ॥ आश्वि
नेमासिसंप्राप्ते कृष्णपक्षेसमाहितः ॥ २४ ॥ दर्शेपितॄन्समुद्दिश्यश्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ तारितंतेनस्वकुलंसर्वमेको
त्तरंशतम् ॥ २५ ॥ सप्तगोत्रेषुयेजाताः पूर्वजाःपितरस्तथा ॥ तेसर्वेसद्गतिंयान्ति तेषांलोकाःसनातनाः ॥ २६ ॥ स्नात्वा
तिलाञ्जलिन्दद्यात् पितॄनुद्दिश्यतत्परः ॥ अक्षयाजायतेतृप्तिः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २७ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्सप्त श्रा
द्धंकृत्वातुपायसैः ॥ अक्षयंलभतेश्राद्धमश्वमेधफलंभवेत् ॥ २८ ॥ तीर्थंपुण्यतरंव्यास शृणुपुण्यतरंस्मृतम् ॥ दुग्ध

होताहुआ जो पुरुष ॥ २४ ॥ अमावस में पितरों को उद्देश कर महालय श्राद्ध करता है उसने अपने सब एक सौ एक कुल को तार दिया ॥ २५ ॥ और उसके
सात कुलों मे जो पहले पैदा हुये पितर हैं वे सब उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और उनको सनातन (सदा रहनेवाले) लोक होते हैं ॥ २६ ॥ और उसमें
परायण पुरुष नहाकर व पितरों को उद्देश कर तिलांजलि देवै तो अक्षया तृप्ति होती है व स्वर्गलोक में वह पूजाजाताहै ॥ २७ ॥ श्राद्ध कर खीर से सात ब्राह्मणों
को भोजन करावै तो अक्षय श्राद्ध को प्राप्त होता है व अश्वमेधयज्ञ का फल होताहै ॥ २८ ॥ हे व्यासजी ! अधिक पवित्र व कहेहुये अत्यन्त पुण्यदायक तीर्थ को सुनिये

जोकि दुग्धकुंड ऐसा कहाहुआ तीनों लोकोमें प्रसिद्धहै ॥ २९ ॥ जो कि सब पापोंको हरनेवाला व समस्त कामनाओंके वरको देनेवालाहै पुरातन समय धर्म की मूर्ति पृथु ने पृथ्वी देवीको दुहाहै ॥ ३० ॥ सब हव्यों को उपजानेवाले व सबों को जीवनदायक दुग्धको इस कुंडमें धरकर उन्होंने दियाहै उसीकारण दुग्धतडाग कहागया है ॥ ३१ ॥ इस कुंडमें नहाकर जलको पीकर व दूधवाली गऊको देकर मनुष्य सब पीड़ाओं से छूट जाताहै सब समयों में धन, धान्य से संयुत होताहै और मरकर स्वर्गलोक को जाता है तदनन्तर पुष्करतीर्थ को प्राप्त होकर स्नान दानादिक करै ॥ ३२ । ३३ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष पुष्कर के फल को प्राप्त होता

कुण्डमितिख्यातं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २९ ॥ सर्वपापहरंपुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ पुरादुग्धाधरादेवी पृथुनाधर्ममूर्तिना ॥ ३० ॥ दुग्धंसर्वहविर्भाव्यं सर्वेषांजीवनप्रदम् ॥ दत्तंनिधायकुण्डेस्मिंस्तेनदुग्धसरःस्मृतम् ॥ ३१ ॥ कुण्डे स्नात्वापयःपीत्वा दत्त्वागाश्चपयस्विनीम् ॥ सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ ३२ ॥ जायतेसर्वकालेषु मृतःस्वर्गपुरंव्रजेत् ॥ ततःपुष्करमासाद्य स्नानदानादिकंचरेत् ॥ ३३ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पुष्करस्यफलंलभेत् ॥ ३४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेवन्तीखण्डेनीलगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ कोसौविन्ध्यगिरिर्ब्रह्मन् कदाकालेसमागतः ॥ महाकालवनेरम्ये केनवाप्रेषितःपुरा ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरारेवाजलैर्व्यास प्लावितेषावसुन्धरा ॥ तदासर्वसुरैरेवमगस्तिर्मुनिसत्तमः ॥ २ ॥ आराधितोमहाभाग धरणीत्राणकारणात् ॥ तदागत्यागिरौरम्ये विन्ध्येसमुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ एकाग्रमानसोभूत्वा भवानींविन्ध्यवासिनी

है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां नीलगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी महँ विन्ध्यवासिनी देवि । आई छाछठि में कह्यो सोइ चरित सुखसेवि ॥ व्यास जी बोले कि हे ब्रह्मन् ! यह विन्ध्याचल कौन है व सुन्दर महाकालवन में किस समय आया है व पहले किससे पठाया गया है ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पुरातन समय जब नर्मदा के जलों से यह पृथ्वी डुबाईगई तब सब देवताओं ने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको ॥ २ ॥ पृथ्वी की रक्षा के कारण आराधन किया तब हे महाभाग ! सुन्दर विन्ध्याचल पै

आकर उन मुनिश्रेष्ठ ने ॥ ३ ॥ एकाग्रमनवाले होकर उससमय उन देवीजी से वरदान की इच्छा से विन्ध्यवासिनी भगवती का आराधन किया ॥ ४ ॥ जो कि कंस को भगानेवाली व दैत्यों को नाश करनेवाली तथा भार उतारनेवाली, पुण्यरूपिणी व उत्तम और बलदेव जीकी बहन हैं ॥ ५ ॥ व यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न और चाणूर के बल को मर्दन करनेवाली, बिजली के समान रूपवती, आकाश में स्थित, कृष्ण और कालिय सर्प को मर्दनेवाली हैं ॥ ६ ॥ और स्वामि-कार्त्तिकेय जीकी माता, कवियों की वाणी की देवता, मुख्य ब्राह्मणों की गायत्री व छंदों के मध्य में उत्तम बृहतीछन्द हैं ॥ ७ ॥ और सुरेन्द्र की सहस्रनयना व ऋषि

म् ॥ आराधनंतदाचक्रे तस्यादेव्यावरेप्सया ॥ ४ ॥ कंसविद्रावणकरीमसुराणांक्षयंकरीम् ॥ भारावतारणींपुण्यां बलस्यभगिनींशुभाम् ॥ ५ ॥ यशोदागर्भसम्भूतां चाणूरबलमर्दिनीम् ॥ विद्युद्रूपांनभस्थान्तु कृष्णांकृष्णाहिमर्दिनीम् ॥ ६ ॥ जननींदेवसेनस्य कवीनांवाक्यदेवताम् ॥ गायत्रींद्विजमुख्यानां बृहतींछन्दसांवराम् ॥ ७ ॥ सहस्राक्षीं सुरेन्द्रस्य ऋषेश्चारुन्धतीम्पराम् ॥ गवांकामदुघांश्यामांलतांमधुतमप्रियाम् ॥ ८ ॥ अदितिंसर्वमातॄणां पार्वतींसर्वयोषिताम् ॥ ज्योत्स्नाञ्चान्द्रमसींबालां सर्वकामवरप्रदाम्॥ ९ ॥ शारदांक्रतुवेलायां वृन्दावनचरींवराम् ॥ मायिनां वैष्णवींमायां सर्वदैत्यविमोहिनीम् ॥ १० ॥ महालक्ष्मींश्रीमभीष्टां यक्षिणींधनदार्चिताम् ॥ महोदधीप्सितांवेलां राज्ञां कायेषुचक्रिणीम्॥ ११ ॥वेदिकांयज्ञशालानां वराहस्यावनींशुभाम् ॥ दक्षिणांसर्वदीक्षाणां सर्वकामफलप्रदाम् ॥ १२॥

की उत्तम अरुंधती स्त्री हैं तथा गौवों के मध्य में कामदुघा श्यामा स्त्री व अत्यन्त मधुप्रिया लता हैं ॥ ८ ॥ व सब माताओंके मध्यमें अदिति और सब स्त्रियों के मध्य में पार्वती, चन्द्रमा की चन्द्रिका, बाला व सब कामनाओं के वरको देनेवालीहैं ॥ ९ ॥ व यज्ञसमय में शारदा, वृंदावनचारिणी, उत्तमा व सब दैत्यों को मोहने वाली मायावियोंकी वैष्णवी माया हैं ॥ १० ॥ व महालक्ष्मी, लक्ष्मी व कुबेर से पूजित प्यारी यक्षिणी, समुद्रकी प्रियवेला (मर्यादा) और राजाओं के शरीरों में चक्रधारिणी हैं ॥ ११ ॥ व यज्ञमन्दिरोंकी वेदी व वराहजीकी उत्तम पृथ्वी तथा सब दीक्षाओंकी दक्षिणा व समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली हैं ॥ १२ ॥

उस समय इसप्रकार स्तुतिकी हुई व प्रसन्नता से सुमुखी विन्ध्यवासिनी देवी प्रत्यक्ष होकर ऋषियों के मध्यमें श्रेष्ठऋषि अगस्त्यजी से बोलीं ॥ १३ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! जो तुमको प्रियहो उस मनोरथ को मुझ से मांगिये क्योंकि हे वत्स ! तुमने बहुत दिनोंतक मेरी स्तुति की है ॥ १४ ॥ अगस्तिजी बोले कि हे देवताओं का उपकार करनेवाली, मातः ! यदि वरदेने योग्य है तो संसार में सबलोकों को भयदायिनी यह नर्मदा बढ़ीहै ॥ १५ ॥ उसने इस संसारको डुबादिया उस को निग्रह (दण्ड) कीजिये उस समय महर्षि अगस्तिजी से इसप्रकार प्रार्थना कीहुई वे ॥ १६ ॥ उत्तम आचरणवाली विन्ध्यवासिनी देवी उस समय हे व्यासजी !

एवंस्तुतातदादेवी प्रत्यक्षाविन्ध्यवासिनी ॥ प्राहप्रसादसुमुखी ऋषीणांप्रवरंऋषिम् ॥ १३ ॥ व्रियताम्भोद्विज श्रेष्ठ तदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ॥ यदीप्सितंत्वयावत्स स्तुतिर्मेसुचिरंकृता ॥ १४ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ यदिमातर्वरोदेयो देवानामुपकारिणि ॥ रेवेयंवर्द्धितालोके सर्वलोकभयप्रदा ॥ १५ ॥ तयेदंप्लावितंविश्वं तस्यानिग्रहणंकुरु ॥ इतिसाप्रा र्थितातेन तदाकालेमहर्षिणा ॥ १६ ॥ अगात्साध्वीतदाव्यास महाकालवनंशुभम् ॥ सान्त्वपूर्ववचःपथ्यमगस्तिमिद मब्रवीत् ॥ १७ ॥ वारयिष्येपरान्देवीं वर्द्धमानांद्रुतंऋषे ॥ तावत्त्वंऋषिभिःसाकं विन्ध्यस्यचमहागिरेः ॥ १८ ॥ परमे त्रिकुटेद्वारे स्थास्यसिऋषिसत्तम ॥ पुरीह्येषामुनिश्रेष्ठ त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ १९ ॥ अत्रैवसुचिरंकालं मातृभिर्निवसा म्यहम् ॥ तत्रापित्वंसदासिद्धक्षेत्राधिपतिमाप्नुहि ॥ २० ॥ मत्सरोनिर्मलंपुण्यं विमलोदन्तुविश्रुतम् ॥ यत्रपुण्यवतां वासो देव्यस्तिष्ठन्तिकोटिशः ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनराःस्नात्वा भूत्वाचैवसमाहिताः ॥ यजन्तिचैवमाम्भक्त्या धूप

उत्तम महाकालवनको गईं व प्रियवचनपूर्वक अगस्तिजी से इस पथ्य वचनको बोलीं ॥ १७ ॥ कि हे ऋषे ! मैं बढ़तीहुई उत्तम देवीजी को शीघ्रही मनाकरूंगी और तब तक तुम ऋषियों समेत विन्ध्य नामक महापर्वत के ॥ १८ ॥ उत्तमत्रिकुट द्वारपै स्थित होवो हे ऋषिसत्तम, मुनिश्रेष्ठ ! यह पुरी तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ यहींपर मैं बहुत समय तक मातृकाओं समेत बसूंगी और वहांपर तुम भी सदैव सिद्धक्षेत्राधिपति को प्राप्त होवोगे ॥ २० ॥ और पवित्र व निर्मल विमलोद ऐसा प्रसिद्ध मेरा तड़ागहै जहां कि पुण्यवानों का निवासहै व करोड़ों देविया स्थितहैं ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व सावधान होकर जो पुरुष मुझको भक्तिसे

धूप, दीप व अग्नितर्पण (हवन) से पूजतेहैं ॥ २२ ॥ और दूध, शक्कर व घी के भोजनों से विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ २३ ॥ और वह मनुष्य धन, धान्य, पृथ्वी, ऐश्वर्य व पुत्र स्त्रीआदि की संपदा और देवताओं को भी दुर्लभ अनेक भांति के सुखों को प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ और उनको शत्रुसे व चोरों से तथा राजा से भय नहीं होताहै और न शस्त्र, अग्नि व जलराशि से कभी भय होवेगा ॥ २५ ॥ और दीर्घ आयुर्बलवाला व बुद्धिमान् तथा सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह मनुष्य संसार में सैकड़ों वर्षोंतक निवासकर मरकर शिवपुर को जाताहै ॥ २६ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मनो-

दीपाग्नितर्पणैः ॥ २२ ॥ क्षीरखण्डाज्यभोज्यैश्च भोजयेद्विधिवद्द्विजान् ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ २३ ॥ धनधान्यधरैश्वर्यपुत्रदारादिसम्पदः ॥ प्राप्नोतिविविधान्भोगान् देवानामपिदुर्लभान् ॥ २४ ॥ नशत्रुतोभयं तेषान्दस्युभ्योवानराजतः ॥ नशस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्बुद्धिमाँल्लोके उषित्वाशा श्वतीःसमाः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ २६ ॥ एवंव्यासपुरीम्प्राप्य रम्यांचोज्जयिनींशुभाम् ॥ समा श्रितातदादेवी सततंविन्ध्यवासिनी ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ स्त्रियोवारजदोषाक्ता व न्ध्यावैकाकबन्ध्यका ॥ २८ ॥ दुर्भगाशीलहीनाच सर्वकामविवर्जिता ॥ विमलोदेपिताःस्नात्वा दृष्ट्वावैविन्ध्यवासि नीम् ॥ २९ ॥ मुच्यतेसर्वदोषैस्तु नात्रकार्याविचारणा ॥ अपुत्राःप्राप्नुयुःपुत्रान् कन्यावीरंपतिंवरा ॥ ३० ॥ प्राप्यते सर्वसौभाग्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ विद्यावाञ्जायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ ३१ ॥ वैश्यश्चबहुलाभाढ्यः शूद्रस्तु

हर व उत्तम उज्जयिनी पुरी को प्राप्तहोकर उस समय विन्ध्यवासिनी देवी सदैव स्थितहुई ॥ २७ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै रज के दोष से संयुत स्त्रियां, बंध्या व काकवंध्या ॥ २८ ॥ दुर्भगा, शीलरहित व जो सब कामनाओं से रहितहैं वे भी विमलोद कुण्ड में नहाकर व विन्ध्यवासिनी देवी जी को देखकर ॥ २९ ॥ सब दोषों से छूटजातीहैं इस विषय में विचार न करनाचाहिये व बिन पुत्रवाली स्त्रियां पुत्रों को प्राप्तहोतीहैं और पतिको स्वीकार करने वाली कन्या पतिको पाती है ॥ ३० ॥ व सब कामनाओं के वरदायक समस्त सौभाग्य को पाती है व ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता

है ॥ ३१ ॥ और वैश्य बहुत लाभ से संयुत होता है व शूद्र सुखको भोगता है इस समस्त कामनाओं के वरोंको देनेवाली कथा के ॥ ३२ ॥ पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायांविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दो० । क्षातासंगम तीर्थकर जो माहात्म्य विचित्र । सरसठिवें अध्याय में सोइ रसाल चरित्र ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! क्षातानदी के संगम से उपजा हुआ अन्य तीर्थ है कि जिसके स्नानही से पुरुष बड़े पातकों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ जब शनैश्चरदिन समेत अमावस तिथि आवै तब सावधान होता हुआ

सुखमश्नुते ॥ कथाम्पुण्यवतीमेतां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ३२ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थमन्यतरंव्यास क्षातासङ्गमसम्भवम् ॥ यस्यतुस्नानमात्रेण महापापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ अमावैशनिवारेण यदायातिसमाहितः ॥ पितॄनुद्दिश्ययःकुर्याच्छ्राद्धंचैवतिलोदकम् ॥ २ ॥ पश्येच्छनैश्चरंदेवं स्थावरंलिङ्गमुत्तमम् ॥ तस्यशानिश्चरीपीडा नभवेत्तुकदाचन ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ महातीर्थसमाख्यातं महाकाल वनेशुभे ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ ४ ॥सनत्कुमारउवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ कथांपौराणिकींशु भाम् ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ ५ ॥ रेवाचर्मण्वती क्षातातिस्रोनद्यःपुरानघ ॥ त्रैलोक्यपावनी र्जाताभुविचामरकण्टकात् ॥६॥ पुण्याःपुण्यजलारम्याःपवित्राःपापहारिणीः ॥ पुनन्त्यःसर्वलोकान्हि पापिनःपाप

जो पुरुष तिलोदक श्राद्धको करता है ॥ २ ॥ व उत्तम शनैश्चरदेव स्थावर लिंग को देखता है उसके शनैश्चर से उपजीहुई पीडा कभी नहीं होती है ॥ ३ ॥ व्यास जी बोले कि हे तपोधन ! महाकालवन में महातीर्थ ऐसे कहेहुये तीर्थको मैं फिर विस्तार से सुनना चाहताहूं ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पुराण वाली उत्तम कथाको सुनिये कि जिसके सुननेहीसे बड़े पातकों का नाश होताहै ॥ ५ ॥ हे अनघ ! तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली नर्मदा, चर्मण्वती व क्षाता तीन नदियां पुरातन समय अमरकण्टक से पृथ्वीपर हुई हैं ॥ ६ ॥ जोकि पुण्यदायिनी व पवित्रजलवाली तथा मनोहर, पवित्र व पापोंको हरनेवाली हैं और पापकारी व

पापी सब मनुष्यों को पवित्र करती हैं ॥ ७ ॥ एक समय मान्धाता के उत्तमक्षेत्र में सुन्दर उपवन में आपस में जीतने की इच्छा से प्रसन्न होतीहुई वे परस्पर में क्रीडा करती थीं ॥ ८ ॥ और कुछ दोषके प्रसङ्गसे आपस में भेदहुआ व नर्मदासंग को छोड़कर व उत्तम विन्ध्याचल को भेदनकर ॥ ९ ॥ सुन्दर महाकालवन में भलीभाति आई जहां कि नदियों में उत्तम व महापुण्यदायिनी क्षिप्रानदी व यह अमरावतीपुरी है ॥ १० ॥ वहां सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व रुद्रसर ऐसा कहाहुआ उत्तमतीर्थ है जोकि भुक्ति, मुक्तिका दायक व नित्य सिद्धर्षिगणों से सेवित है ॥ ११ ॥ जहां पुरातन समय आकर क्षातानदी क्षिप्राके सङ्गम से घिरीहै वहां क्षातासङ्गम संज्ञक

कारिणः ॥ ७ ॥ एकदोपवनेरम्ये मान्धातृक्षेत्रउत्तमे ॥ मिथोरमन्तिसंहृष्टाः परस्परजिगीषया ॥ ८ ॥ किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन मिथोभेदोह्यजायत ॥ रेवासङ्गंपरित्यज्य भित्त्वाविन्ध्यगिरिंवरम् ॥ ९ ॥ महाकालवनेरम्ये समायातासरिद्वरा ॥ यत्रक्षिप्रामहापुण्या पुरीह्येषामरावती ॥ १० ॥ सर्वतीर्थवरंश्रेष्ठं नाम्नारुद्रसरःस्मृतम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंनित्यं सिद्धर्षिगणसेवितम् ॥ ११ ॥ यत्रागत्यपुराक्षाता क्षिप्रासङ्गसमावृता ॥ तत्रतीर्थपरंजातं क्षातासङ्गमसंज्ञितम् ॥ १२ ॥ यत्र धूतरजोजातः सद्यःप्रोक्तोविभावसुः ॥ व्यासउवाच ॥ कथंसूर्यस्त्वयाप्रोक्तो विरजोस्मिन्पुराभवत् ॥ १३ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरातुसंज्ञांसावित्रीं त्वष्टास्वतनयान्ददौ ॥ १४ ॥ पतिधर्मरतांनित्यं सवित्रेलोकचक्षुषे ॥ तस्यांवैमिथुनंजज्ञेलोकसाक्षिविभावसोः ॥ १५ ॥ यमोवैवस्वतोजातो यमुनालोकपावनी ॥ ततःसंज्ञाब्रवीच्छायां स्वकीयांसूनृतांगिरम् ॥ १६ ॥ मिथुनंमेतवोत्सङ्गे धृतंतत्परिपालय ॥ यावत्त्वहमितश्छा

उत्तमतीर्थ उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ जहां कि उसीक्षण रजरहित कहेहुये सूर्यनारायणजी हुये हैं व्यासजी बोले कि तुमसे कहेहुये सूर्यनारायणजी पुरातनसमय इस क्षेत्रमें किस प्रकार रजरहित हुयेहैं ॥ १३ ॥ हे वेदविदांवर ! मैं तुमसे यह जानना चाहताहूं सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्वष्टा (विश्वकर्मा) जीने अपनी कन्या सावित्री संज्ञाजी को लोकोंके नेत्ररूप सूर्यनारायणजी के लिये दिया जोकि नित्यही पतिके धर्ममें परायणथीं उन संज्ञामें लोकसाक्षी सूर्यनारायणजी के एक कन्या व एक पुत्र पैदाहुआ ॥ १४ । १५ ॥ याने वैवस्वत यमराज व लोकोंको पवित्र करनेवाली यमुनानदी हुई तदनन्तर संज्ञाने अपनी छायासे प्रिय व सत्य वचन

को कहा ॥ १६ ॥ कि तुम्हारी गोदीमें मेरे घरेहुये उस कन्या व पुत्रको परिपालन कीजिये हे छाये ! जबतक मैं यहां अपने पिताके घरमें बसूं ॥ १७ ॥ तबतक सूर्य-नारायणकी भक्तिमे तत्पर होतीहुई तुम मेरे घरमें रहो और पिताके मकान में गई हुई मैं कभी सूर्यनारायण से कहनेयोग्य नहींहूं ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर वे सावित्रीजी उस समय चलीगईं सूर्यनारायणके भयसे विकल वे बालासंज्ञाजी पिता के घरको चलीगईं ॥ १९ ॥ और पितासे मनाकीहुई उन संज्ञाने घोड़ीके रूपको धारणकर बहुत जलवाले व घास से हरित मनोहरवनमें भ्रमण किया ॥ २० ॥ एक समय उन क्षुधित यमराजजी से याचना कीहुई उन संज्ञाने मांगतेहुये यमराज के

ये वत्स्यामिस्वपितुर्गृहे ॥ १७ ॥ रविभक्तिरताताववचरत्वंममवेश्मनि ॥ नोवाच्याहंकदाछाये पितुर्वेश्मगतारवेः ॥ १८ ॥ एवंसासमयंकृत्वा सावित्रीह्यगमत्तदा ॥ पितुर्वेश्मगताबाला सवितुर्भयविह्वला ॥ १९ ॥ पित्रानिवारितासातु वडवारूपधारिणी ॥ विचचारवनेरम्ये बहुलोदकशाद्वले ॥ २० ॥ एकदायाचितातेन सायमेनबुभुक्षुणा ॥ नौदनंवैत यादत्तं याचमानायतत्क्षणात् ॥ २१ ॥ तदापदाहतातेनछायातंचशशापह ॥ यस्मात्पादेनमेघातं कृतवान्बलभावतः ॥ २२ ॥ तस्मात्त्वन्तुपदाखञ्जो भविष्यसिनसंशयः ॥ एवंशप्तोरुजाक्रान्तो विललापशुचार्दितः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास परिभूयवसुन्धराम् ॥ भावयन्सकलाँल्लोकान् ग्रहचारीविभावसुः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाचतनयम्पङ्गुमित्युवाचतदायमम् ॥ किमिदंवत्सतेकष्टं कुतःप्राप्तंत्वयानघ ॥ २५ ॥ इतिपृष्टोयदातेन सवित्रालोकभावनः ॥ उवाचग

लिये उसीक्षण भातको नहीं दिया ॥ २१ ॥ तब उन यमराज से पांवसे मारीहुई छायाने उनको शापदिया कि जिसलिये बलहोने के कारण तुमने चरणसे मेरे प्रहार किया ॥ २२ ॥ उस कारण तुम पैरसे खंज होजावोगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार शापित व रोगसे आक्रामित तथा शोचसे विकल यमराज ने विलाप किया ॥ २३ ॥ इसी अवसर मे हे व्यासजी ! पृथ्वीको तिरस्कारकर सब लोकोंकी भावना करतेहुये ग्रहचारी सूर्यनारायणजी ने ॥ २४ ॥ पुत्रको पंगु देखकर उस समय यह कहा कि हे अनघ,वत्स ! यह तुम्हारे क्या कष्टहै व तुमको कहासे प्राप्तहुआ ॥२५॥ जब इस प्रकार लोकोंकी भावना करनेवाले यमराजजीसे सूर्यनारायणजी ने पूछा

तब सयमिनीपुरी के स्वामी व गद्गद वचनवाले यमराजजी बोले ॥ २६ ॥ कि हे नाथ ! मैंने माताके समीप प्रातःकाल भोजन के लिये मांगा और उसने शीघ्रही भोजन न दिया व मैंने शिशुता से मारा ॥ २७ ॥ और माताके शापसे तिरस्कृत मेरे चरण शीघ्रही गिरपड़े उस वचन को सुनकर ध्यान में तत्पर सूर्यनारायणजी मोहको प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व माताके शापका कारण यह विचित्र कहागया इस प्रकार बहुत समयतक ध्यानकर किरणोंवाले सूर्यनारायणजी ने जाना ॥ २९ ॥ कि लोक को पवित्र करनेवाली यह वह सुन्दर नेत्रान्तोवाली त्वष्टाकी कन्या नहीं है यह कौनहै व कहांसे आई है हे शुचिस्मिते ! तुम कौनहौ यह कहिये ॥ ३० ॥ छाया बोली कि

द्गदवचा यमःसंयमिनीपतिः ॥ २६ ॥ प्रातराशायमेनाथ याचितंमातुरन्तिकात् ॥ नोदत्तम्भोजनंक्षिप्रं बालभावेनता डिता ॥ २७ ॥ पादौमेगलितौसद्यो मातुःशापतिरस्कृतौ ॥ तच्छ्रुत्वामोहमापन्नो रविर्ध्यानपरायणः ॥ २८ ॥ विचित्र मिदमाख्यातं मातुःशापस्यकारणम् ॥ एवंध्यात्वाचिरङ्कालं ज्ञातवान्रविरंशुमान् ॥ २९ ॥ नेयंसारुचिरापाङ्गी त्वा ष्ट्रीलोकस्यपावनी ॥ केयंवाकुतआयाता कात्वंवदशुचिस्मिते ॥ ३० ॥ छायोवाच ॥ नसासंज्ञामहाराज छायातादात्म्यस म्भवा ॥ गतावैसापितुर्गेहे वारिताहंतयानघ ॥ ३१ ॥ सवित्रेनैववक्तव्यं छायेकिञ्चित्कथञ्चन ॥ एषमेसमयोनाथ ते नाहंमौनमास्थिता ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवांस्त्वष्टुः समीपंरथमास्थितः ॥ जगामसहसाभानुर्बहुरोषसमन्वितः ॥ ३३ ॥ तन्दृष्ट्वासहसोत्थाय त्वष्टालोकपितामहः ॥ पाद्यार्घाचमनीयादिमधुपर्कैरपूजयत् ॥ ३४ ॥ नत्वापादौपरिक्रम्य बहुमानपुरःसरम् ॥ ऊचेमधुरयावाचा प्रियन्तेकरवामकिम् ॥ ३५ ॥ रविरुवाच ॥ क्वसातुसंज्ञासावित्री ममविप्रियका

हे महाराज ! वह संज्ञा नहीं है और उसके शरीर से उपजीहुई मैं छायाहूं हे अनघ ! वह पिताके घरको गई और उसने मुझको मना कियाथा ॥ ३१ ॥ कि हे छाये ! सूर्यनारायण के लिये कुछ किसी प्रकार न कहना चाहिये हे नाथ ! यह मेरी प्रतिज्ञा है उससे मैं मौनमें स्थितहूं ॥ ३२ ॥ उस वचन को सुनकर बहुत क्रोधसे संयुत सूर्यनारायणजी रथपै बैठकर अचानकही त्वष्टा के समीप गये ॥ ३३ ॥ उनको देखकर अचानकही उठकर लोकोंके पितामह त्वष्टाजी ने पाद्य, अर्घ, आचमनीय व मधुपर्क से पूजन किया ॥ ३४ ॥ और बहुत मानपूर्वक परिक्रमाकर चरणों को प्रणामकर मधुर वचन से कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं ॥ ३५ ॥ सूर्यनारायणजी

बोले कि हे तात ! मेरा अप्रिय करनेवाली व मेरे मार्गको भेदन करनेवाली वह संज्ञा कहां है जोकि तुम्हारे घरआईथी ॥ ३६ ॥ त्वष्टाजी बोले कि हे तात ! हम तुम्हारी प्यारी के गमन व आगमन को नहीं जानते हैं त्वष्टाजी से ऐसा वचन कहनेपर दुःखित मनवाले सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ३७ ॥ कि क्या करूं कहांजाऊं और कहां मेरा अधिक प्रियहोगा सूर्यनारायण के ऐसा कहनेपर इसके अनन्तर त्वष्टा ने वचन कहा ॥ ३८ ॥ कि तुम्हारे तेजसे भ्रष्टहोकर कहीं वह स्त्री भगगई है यदि तुमको स्त्री प्रियहो तो तेजको शान्तकरो ॥ ३९ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे पितामहजी ! यदि मेरा ऐसा अपूर्व दुःसह तेजहै तो जैसा तुमको भलीभाति रुचता

रिणी ॥ आगतातेगृहंतात ममभार्गानुभेदिनी ॥ ३६ ॥ त्वष्टोवाच ॥ नहिजानीमहेतात प्रियायास्तेगतागतम् ॥ इत्युक्ते वचनेत्वष्ट्रा रविर्दुःखितमानसः ॥ ३७ ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामि क्वचप्रियतरोमम ॥ इतिसम्भाषमाणेतुत्वष्टा वाक्यमथा ब्रवीत् ॥ ३८ ॥ तवतेजःपरिभ्रष्टा भग्नाक्वापिगताबला ॥ यदितेवल्लभाभार्या तेजस्त्वम्परिशामय ॥ ३९ ॥ सूर्यउवा च ॥ यद्येवन्दुःसहंतेजो ममापूर्वंपितामह ॥ यथातेरोचतेसम्यक् तथामेघर्षणंकुरु ॥४०॥ इतिसूर्यवचःश्रुत्वा शाणंकृत्वा सुदर्शनम् ॥ घृषितःक्षुरधारेण लघीयान्निर्मलोभवत् ॥ ४१ ॥ तस्यघर्षितमात्रेण त्वष्टालोकविवस्वतः ॥ शाणंसुद र्शनंचक्रे सैकतामणिजातयः ॥ ४२ ॥ तदात्वष्टाब्रवीद्वाक्यंमधुरंसूर्यसन्निधौ ॥ महाकालवनेरम्ये वडवारूपधारिणी ॥ ४३ ॥ गृह्यतांभोःसुरश्रेष्ठ शीघ्रंगच्छतुशाड्वले ॥ यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा यत्रचाताससमागता ॥ ४४ ॥ उभयोःसङ्गमोयत्र तत्रमुक्तिर्नसंशयः ॥ तत्रसासुभगापत्नी प्राप्यतेतेनसंशयः ॥ ४५ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा सवितासर्वतापनः ॥ तत्रागच्छ

होवैसाही घर्षण कीजिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार सूर्यके वचनको सुनकर उत्तम दर्शनवाली शानको कर छुरेकी धारसे घिसा तो सूर्यनारायणजी अत्यन्त लघु व निर्मल हुये ॥ ४१ ॥ लोकोंके विवस्वत सूर्यनारायण के घिसेहुये तेजसे त्वष्टाने शान व सुदर्शनचक्र को बनाया व बालू सम्बन्धिनी मणिजातियोंको निर्माण किया ॥ ४२ ॥ उस समय त्वष्टाने सूर्यनारायणके समीप मधुरवचन कहा कि सुन्दर महाकालवनमें घोडीके रूपको धारण करनेवाली ॥ ४३ ॥ संज्ञाको हे सुरश्रेष्ठ ! शीघ्रही ग्रहण कीजिये और घाससे हरितस्थानमें जाइये जहा नदियोंमें श्रेष्ठ क्षिप्रानदी व जहां क्षातानदी भलीभांति आई है ॥४४॥ व जहां दोनोंका सङ्गमहै वहां निस्सन्देह मुक्तिहै और वहांपर

वह सुभगासंज्ञा तुमको प्राप्तहोगी इसमें सन्देह नहींहै ॥ ४५ ॥ उनके इस वचनको सुनकर सबको सन्ताप करानेवाले सूर्यनारायणजी वहां आये जहां कि महाकाल जीका पवित्रकारकवन है ॥ ४६ ॥ क्षाताके सङ्गम से संयुत क्षिप्रानदी जहां है वहां भुक्ति व मुक्ति और धन, धान्यका सङ्गम होताहै ॥ ४७ ॥ वहांपर अश्वरूपधारी सूर्यनारायणजीने घोड़ीके रूपको धारण करनेवाली उन प्यारी, श्यामासंज्ञा स्त्रीको देखा फिर ॥ ४८ ॥ नासिकाके सूंघनेहीसे जो उत्पन्नहुये देखनेयोग्य व सुकुमार अङ्गोंवाले वे दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुये ॥ ४९ ॥ और हे द्विजोत्तम! वहांपर संज्ञाने एक पुत्र व कन्याको पैदा किया और उस छायानेभी सब लोकोंको

द्वनंयत्र महाकालस्यपावनम् ॥ ४६ ॥ क्षातासङ्गमसंयुक्तायत्रक्षिप्राप्रयस्विनी ॥ तत्रभुक्तिश्चमुक्तिश्च धनधान्यसमागमः ॥ ४७ ॥ तत्रागत्यप्रियाम्भार्यां वडवारूपधारिणीम् ॥ ददर्शताम्पुनःश्यामां हरिरूपधरोहरिः ॥ ४८ ॥ नासिकाघ्राणमात्रेण यौजातावाश्विनावुभौ ॥ दर्शनीयसुकुमाराङ्गौ भिषजौतौदिवौकसाम् ॥ ४९ ॥ संज्ञाचसुषुवेतत्र मिथुनंद्विजसत्तम ॥ सापिशनैश्चरंचैव सर्वलोकप्रतापनम् ॥ ५० ॥ शनियोगेयदामावै जायतेसर्वकामदा ॥ तदास्नानंतदादानं श्राद्धंचैवतुकारयेत् ॥ ५१ ॥ तस्यहस्तगतालक्ष्मीर्जायतेसर्वदाभुवि ॥ यःक्षातासङ्गमेस्नात्वा दानंदद्याच्चशक्तितः ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्वरमभ्यर्च्य तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ सौरिःशनैश्चरोमन्दः कृष्णोनन्तोन्तकोयमः ॥ ५३ ॥ पिङ्गश्छायासुतोबभ्रुः स्थावरःपिप्पलायनः ॥ एतानिशनिनामानि प्रातःकालेपठेन्नरः ॥ ५४ ॥ तस्यशानैश्चरीपीडा नभवेत्तुकदाचन ॥ धर्मोपिसाक्षादत्रैव तपस्तेपेसुदुस्तरम् ॥ ५५ ॥ यज्ञकुण्डोत्तरेभागे यत्रतिष्ठतिमारुतिः ॥ धर्मसरइतिख्यातं

ताप करानेवाले शनैश्चर को उत्पन्न कियाहै ॥ ५० ॥ जब शनैश्चरके योगमें सबकामनाओंको देनेवाली अमावसहोतीहै तब स्नान व तब दान व श्राद्धको जो पुरुष करता है ॥ ५१ ॥ पृथ्वीपर सदैव उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्तहोती है जो मनुष्य क्षातानदी के सङ्गममें नहाकर शक्तिके अनुसार दान देताहै ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्वरजी को पूजकर उसके पातकोंका नाश होता है और सौरि, शनैश्चर, मन्द, कृष्ण, अनन्त, अन्तकव यम ॥ ५३ ॥ पिंग, छायासुत, बभ्रु, स्थावर, पिप्पलायन इन शनैश्चर के नामोंको जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर पढ़ता है ॥ ५४ ॥ उसके शनैश्चरसे उपजीहुई पीड़ा कभी नहीं होतीहै और साक्षात् धर्मराज ने भी यहां कठिन तप

कियाहै ॥ ५५ ॥ जहां यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में पवनपुत्र हनुमान्जी स्थित हैं वहां नामसे धर्मसेर ऐसा प्रसिद्ध अतिउत्तम तीर्थहै ॥ ५६ ॥ जहांपर पवनपुत्र हनुमान्जी तपस्या से उत्तम सिद्धि को प्राप्तहुये हैं उस तीर्थ में नहाकर कांस्यपात्र को देकर ॥ ५७ ॥ व मणियों तथा मोतियों समेत सुवर्ण से भूषित उत्तम वसनको आदर समेत जो पुरुष भूषित ब्राह्मणोंके लिये व वेद जाननेवाले द्विजों के लिये देताहै ॥ ५८ ॥ वह मातृलोक से उत्तीर्ण होकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है श्रावण महीने में शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में उत्तम आचारवाला जो पुरुष धर्मतीर्थ में स्नान व दानादिक कर्मों को करता है उसको सदैव सनातन विष्णुलोक होता

नाम्नातीर्थमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥ यत्रसिद्धिम्परांप्राप्तस्तपमापवनात्मजः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा दत्त्वावैकांस्य भाजनम् ॥ ५७ ॥ सुवासोमणिमुक्ताभिः काञ्चनालंकृतंवरम् ॥ ब्राह्मणेभ्योलंकृतेभ्यो वेदविद्भ्यश्चसादरात् ॥ ५८ ॥ मातृलोकसमुत्तीर्णो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ श्रावणेधवलेपक्षे एकादश्यान्तुयोनरः ॥ ५९ ॥ धर्मतीर्थेसदाचारी स्नानंदानादिकाःक्रियाः ॥ करोतिसततंतस्य विष्णुलोकंसनातनम् ॥ ६० ॥ च्यवनाश्रमेनरःस्नात्वा च्यवनेशंविलोकयेत्॥ यत्रसिद्धिंगतौपुण्यावाश्विनौभिषजांवरौ ॥ ६१ ॥ च्यवनस्यप्रसादेन देवपङ्क्तिमवापतुः ॥ च्यवनेनपुरादृष्टिः प्राप्तावैदेवभेषजात् ॥ ६२ ॥ तस्मिंस्तीर्थेद्विजश्रेष्ठ देवदृष्टिर्भवेन्नरः ॥ अत्रैवप्राप्तवान्सूर्यः साग्निहोत्राश्रमम्परम् ॥ ६३ ॥ ततःसंज्ञामहाभागा सावित्रीलोकविश्रुता ॥ सूर्यलोकंसमासाद्य बुभुजेविपुलांश्रियम् ॥ ६४ ॥ तस्माद्व्यासपरंतीर्थं ज्ञातासङ्गमसंज्ञितम् ॥ सर्वपापहरम्पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ यएतांसुकथाम्पुण्यां शृणोतिसुविभक्तितः ॥ पठेद्वा

है ॥ ५९।६० ॥ च्यवनजी के आश्रममें मनुष्य नहाकर च्यवनेशजीको देखै जहापर कि वैद्योंमें श्रेष्ठ व पुण्यरूप अश्विनीकुमार सिद्धिको प्राप्तहुयेहैं ॥ ६१ ॥ व च्यवनजीकी प्रसन्नता मे उन्होंने देवपंक्ति को पाया है और पुरातन समय वहांपर च्यवन जीने देवताओ के वैद्य अश्विनीकुमार जीसे दृष्टि को पाया है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस तीर्थ मे मनुष्य देवदृष्टि होता है यहींपर सूर्यनारायण जी ने उत्तम साग्निहोत्राश्रम को पाया है ॥ ६३ ॥ उसीकारण महाभाग्यवती व लोक मे प्रसिद्ध संज्ञा सावित्री जीने सूर्यलोक को प्राप्तहोकर बड़ी लक्ष्मी को भोग किया है ॥ ६४ ॥ उसी कारण हे व्यासजी ! ज्ञाता सगम संज्ञक उत्तम तीर्थ है जो कि सब पापो को

हरनेवाला व पवित्र तथा समस्त कामनाओं के वरदान का देनेवाला है ॥ ६५ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इस पवित्र उत्तम कथा को भक्ति से सुनता है व जो प्रातःकाल उठकर पढ़ता है उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ ६६ ॥ कि हज़ार कपिला गऊ दान का जो फल पर्व में होता है उस फल को वह मनुष्य प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षातासङ्गममाहात्म्यंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ❀ ॥

दो० । गयातीर्थ माहात्म्य जिमि अहै अमित सुखदाय । अरसठिवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! इसके उपरान्त एक

प्रातरुत्थाय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ६६ ॥ कपिलागोसहस्रेण फलम्भवतिपर्वणि ॥ तत्फलंसमवाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षातासङ्गममाहात्म्यंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासप्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतःपरम् ॥ १ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं गयानामेतिनामतः ॥ यत्रस्नात्वानरोनित्यं मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥ २ ॥ देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य विष्णुलोकंसगच्छति ॥ व्यासउवाच ॥ कीकटेषुगयापुण्या नदीपुण्यापुनःपुनः ॥ ३ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं पुण्योराजगिरिस्तथा ॥ सकथंविदितोदेशे महाकालवनेशुभे ॥ ४ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासकथाम्पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५ ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥ पुराकृतयुगेपुण्ये युगादिदेवनामतः ॥ ६ ॥ राजा

तीर्थ को कहता हूं उसको सुनिये ॥ १ ॥ जो कि तीर्थों के मध्य में नामसे गया नामक तीर्थ है कि जिसमें नित्य स्नान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ २ ॥ और देवताओं व पितरों को भलीभांति पूजकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाता है व्यास जी बोले कि कीकट देशों में गया पुण्यदायिनी है व पुनःपुनः नदी पुण्यरूपिणी है ॥ ३ ॥ व तीर्थों के मध्य में उत्तम तीर्थ पुण्यरूप राजागिरि है वह कैसे उत्तम महाकालवनमें विदित हुआहै ॥ ४ ॥ हे तपोधन ! मैं इसको विस्तार से जानना चाहता हूं सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पवित्र व पापहारिणी तथा पुण्यरूपिणी कथा को सुनिये ॥ ५ ॥ कि जिसके सुननेही से पितर उत्तम

गति को प्राप्त होते हैं पुरातन समय पुण्यरूप सत्ययुगमें युगादिदेव नाम से ॥ ६ ॥ राजाहुआ है वह धर्मात्मा पवित्र श्रवण व कीर्तनवाला था और सपुत्रों की नाई भलीभांति पालतेहुये उसके प्रजालोग ॥ ७ ॥ सब ओर से बढते हुये सब वस्तुमे संपन्न हुये और उस राजा के पालन करनेपर नित्यही धर्म चारों चरणों से वर्तमान था ॥ ८ ॥ और मेघ समय में बरसते थे व ऋतुयें अपने धर्म से आचरण करती थी और बहुत अन्न व फलोंवाली पृथ्वी थी व गाइयां बहुत दुग्ध देनेवाली थीं ॥ ९ ॥ और ब्राह्मण वेद के बाद में तत्पर थे व क्षत्रिय भुजाओं से शोभित थे और वैश्य नित्यही धनमें परायण थे और शूद्र सेवा में तत्पर थे ॥ १० ॥ और सब

सीत्सतुधर्मात्मा पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ ७ ॥ बभूवुःसर्वसम्पन्ना वर्द्धमानाःसमन्ततः ॥ धर्मश्चतुष्पदोनित्यं तस्मिन्राज्ञिप्रशासति ॥८॥ कालेवर्षीचपर्ज्जन्यो ऋतवःस्वाङ्गचारिणः ॥ बहुसस्यफलापृथ्वी गावश्चबहुदुग्धदाः ॥ ९ ॥ वेदवादरताविप्राः क्षत्रियाबाहुशालिनः ॥ वैश्याधनपरानित्यं शूद्राःशुश्रूषणेरताः ॥ १० ॥ वर्णाश्रमरताःसर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः ॥ श्रुतिस्मृतिपरोधर्मो हृष्टपुष्टजनाकरः ॥ ११ ॥ नाधिव्याध्यभिसम्भूता लक्ष्यन्तेकेपिमानवाः ॥ दुःशीलादुर्भगानार्यो विधवानोतथैवच ॥ १२ ॥ बहुपुत्राल्पपुत्राश्च मृतपुत्रानबन्ध्यकाः ॥ रूपशीलगुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥ १३ ॥ सुमार्गकरसंकीर्णो दस्युदोषविवर्जितः ॥ हूयताम्भुज्यतांशश्वद्दीयताञ्चगृहेगृहे ॥ १४ ॥ जपदानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापराः ॥ जनाःसर्वत्रदृश्यन्ते सर्वधर्मपरायणाः ॥ १५ ॥ च

लोग वर्णों व आश्रमों में रत तथा सब धर्म के उपदेश करनेवाले थे और जनों को हृष्टपुष्ट करनेवाला धर्म श्रुतियों व स्मृतियो में तत्पर था ॥ ११ ॥ और आधि व व्याधि से तिरस्कृत कोई भी प्राणी नहीं देखपड़ते थे व दुःशीलवती और दुर्भगा स्त्रियां नहीं देखपड़ती थीं न विधवा देखी जाती थी ॥ १२ ॥ और बहुत पुत्र व थोड़ पुत्रोंवाली तथा मरे पुत्रोंवाली व बंध्या स्त्री नहीं होती थीं और रूप शील व गुणो से संयुत तथा पतिव्रतधर्म में परायण थीं ॥ १३ ॥ और उत्तम मार्ग करने वाले जनों से व्याप्त तथा चोरों के दोष से रहित धर्म था और हवन किया जाय, भोजन कियाजावे व सदैव दियाजाय यह शब्द घर २ में सुन पड़ता था ॥ १४ ॥

और जप, दान, तपस्या, हवन, स्तुति व यज्ञकर्मों में तत्पर तथा सब धर्मों में परायण मनुष्य सब कहीं देख पड़ते थे ॥ १५ ॥ और धर्म चार चरण से चलता था व अधर्म एक चरण संयुत शरीरवाला था इसप्रकार युगादिदेव संज्ञक वह राजा धर्मात्मा था ॥ १६ ॥ जिसने इस पृथ्वी को पालन किया और धर्म से प्रजाओं को बढ़ाया व हे व्यास जी ! उसने पुरातनसमय अवन्तीपुरी मे कोटियज्ञों को किया है ॥ १७ ॥ उससमय अतिपराक्रमी तुहुण्ड नामक दानव हुआ है उसने इस सब चराचर संसार को वश किया ॥ १८ ॥ और उस दुष्ट ने भयंकर व पुण्यरूप तपस्या कर ब्रह्मासे वरदानको पायाहै और न देवता न यज्ञ हुये तथा वह दानव वेद-

तुष्पदचरोधर्मोह्यधर्मःपादविग्रहः ॥ एवंराजासधर्मात्मा युगादिदेवसंज्ञितः ॥ १६ ॥ येनेयंपालितापृथ्वी धर्मेणवर्द्धिताःप्रजाः ॥ अवन्त्यांचपुराव्यास यज्ञकोटिंसमाचरत् ॥ १७ ॥ तस्मिन्कालेतिविक्रान्तस्तुहुण्डोनामदानवः ॥ तेनसर्वंवशंनीतं चराचरमिदंजगत् ॥ १८ ॥ घोरंतप्त्वातपःपुण्यं ब्रह्मलब्धवरःखलः ॥ नैवदेवानयज्ञाश्च वेदमार्गविवर्जितः ॥ १९ ॥ देवतापूजनंनास्ति स्वधास्वाहानदृश्यते॥उत्सन्नोधर्ममार्गोयं शाश्वतोवैदुरासदः ॥ २० ॥ नष्टप्रायाःसुरास्तेन कृताःसर्वोत्तमोत्तमाः ॥ ब्रह्माणंशरणंजग्मुः पितॄणांसहसाधुभिः ॥ २१ ॥ किंकुर्मःक्वचगच्छामस्तुहुण्डेनपराजिताः ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषां ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥ समुत्थायततःसर्वैर्विष्णुलोकंजगामह ॥ तत्रगत्वा समाराध्य विष्णुंदेवगणैःसह ॥ २३ ॥ स्तुतिंपुरुषसूक्तेनविष्णोरतुलतेजसः ॥ प्रचक्रुस्तुसर्वएतेह्यात्मनोभ्युदयाय च ॥ २४ ॥ तदातेषांशमिच्छन्तीं वैष्णवीचाशरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोःसुरश्रेष्ठा भवतांश्रेयउत्तमम् ॥ २५ ॥ यूयंयात

मार्ग से रहित था ॥ १९ ॥ न देवताओं का पूजन होता था और न स्वधा, स्वाहा देखपड़ता था सनातन व कठिन यह धर्म का मार्ग त्याग कियागया ॥ २० ॥ उस से नष्ट से किये हुये सब से उत्तमोत्तम देवता पितरों व साधुवों समेत ब्रह्मा की शरण मे गये ॥ २१ ॥ व यह बोले कि तुहुण्ड से पराजित हमलोग क्या करैं व कहां जावैं उनके इसप्रकार वचन को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ २२ ॥ उठकर तदनन्तर सबों समेत विष्णुलोक को गये और वहां जाकर देवगणों समेत विष्णु जी को भलीभांति आराधन कर ॥ २३ ॥ अपने ऐश्वर्य के लिये इन सबों ने अतुल तेजवाले विष्णु जी की पुरुषसूक्त से स्तुति किया ॥ २४ ॥ उससमय

उनके कल्याण को चाहतीहुई विष्णु जीकी अशरीरिणी (आकाशवाणी) बोली कि हे सुरोत्तमो ! जो आपलोगों का उत्तम कल्याण है उसको सुनिये ॥ २५ ॥ कि तुमलोग शीघ्रही पृथ्वी में महाकालवन को जावो जो कि गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त व पुण्यरूप तथा पवित्र व पापनाशक है ॥ २६ ॥ पृथ्वी में जहांपर मायावियों की माया नहीं प्रकाशित होती है वह समस्त तीर्थमय तीर्थ कोटितीर्थों के वरको देनेवाला है ॥ २७ ॥ जहां कि सब कामनाओं के फलों को देनेवाली श्रेष्ठ क्षिप्रानदी है जो कि दैत्यों का अन्त करनेवाली, दिव्य, महाकाली व कुलेश्वरी है ॥ २८ ॥ कोटि कोटि गणो से व्याप्त वह मातृकाओं की शक्ति को बढ़ानेवाली है व जहांपर महा-

क्षितौक्षिप्रं महाकालवनंप्रति ॥ गुह्याद्गुह्यतरंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ २६ ॥ नयत्रमायिनांमाया प्रकाशयतिभूतले ॥ सर्वतीर्थमयंतीर्थं कोटितीर्थवरप्रदम् ॥ २७ ॥यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा सर्वकामफलप्रदा ॥ दैत्यान्तकारिणीदिव्या महाकालीकुलेश्वरी ॥ २८ ॥ कोटिकोटिगणाकीर्णा मातॄणांशक्तिवर्द्धनी ॥ गयायत्रमहापुण्या फल्गुश्चैवमहानदी ॥ २९ ॥ पुरुषोत्तमगिरिःश्रेष्ठो यत्रबुद्धगयास्मृता ॥ तथैवचगयाख्याता त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ३० ॥ विष्णोःषोडशपदीतीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ॥ सर्वपापहरापुण्या यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ३१ ॥ महासुरनदीप्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्तिपुण्यदाः ॥ न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुराप्रोक्तोमहर्षिणा ॥ ३२ ॥ तत्रैवसाशिलाप्रोक्ता प्रेतमोक्षकरीशुभा ॥ तत्रैववसतेसर्वा देवताःपितृकल्पजाः ॥ ३३ ॥ सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयोहरिः ॥ सर्वतीर्थमयंदेवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

पुण्यदायिनी गया व फल्गू महानदी है ॥ २९ ॥ और जहांपर श्रेष्ठ पुरुषोत्तमगिरि व बुद्धगया कही गई है वैसेही तीनों लोकों में प्रसिद्ध गया कहीगई है ॥ ३० ॥ और गदाधर से निर्माण कियाहुआ विष्णु जी का षोडशपदी तीर्थ है और जहांपर सब पापों को हरनेवाली व पुण्यदायिनी प्राची सरस्वती है ॥ ३१ ॥ और महासुरनदी कहीगई है ये पांच पुण्यदायक स्थित हैं व पुरातनसमय महर्षि जीने अक्षय व सनातन वट कहाहै ॥ ३२ ॥ और वहींपर प्रेतों को मोक्ष करनेवाली वह उत्तम शिला कहीगई है व वहींपर पितृकल्प में उपजेहुये समस्त देवता बसते हैं ॥ ३३ ॥ हे देवताओ ! ॐकार सब अक्षरमयहै व विष्णुजी सब देवमय हैं और अतिउत्तम गया

तीर्थ समस्ततीर्थमय है ॥ ३४ ॥ वहींपर तुमलोग शीघ्रही जावो क्योंकि उत्तम सिद्धिको पावोगे जहां कि प्रवेशमात्र से जो नरकगामी पितरहैं ॥ ३५ ॥ वे सर्व स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और वह ब्रह्म होने के लिये समर्थ होताहै ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयातीर्थमाहात्म्ये गयातीर्थप्रशंसावर्णनंनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पितरन की उत्तम कथा गया श्राद्ध सुविधान । उनहत्तरि अध्याय में कीन्हों सुखद बखान ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! इस विचित्र गयाजी के माहात्म्य

शीघ्रंगच्छततत्रैव परांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयगामिनः ॥ ३५ ॥ तेसर्वेस्वर्गमायान्ति ब्रह्मभूयायकल्पते॥३६॥इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगयातीर्थमाहात्म्येगयातीर्थप्रशंसानामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

व्यासउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं गयामाहात्म्यमुत्तमम्॥भगवन्भवतासर्वं विदितंविश्वमूर्तिना ॥१॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि श्राद्धस्यफलमुत्तमम् ॥ क्षेत्रस्यचद्विजश्रेष्ठ विस्तरेणतपोधन ॥ २॥ कियन्तःपितरोनित्यं तृप्तायान्ति सुरालयम् ॥ केषांकेपितरःप्रोक्ताः केतआसन्पुरानघ ॥३॥ सनत्कुमारउवाच ॥ धन्योसिकृतकृत्योसि यस्यतेनैष्ठिकी मतिः ॥ तथापिश्रूयतांवत्स श्राद्धस्यविधिमुत्तमम् ॥ ४ ॥ श्राद्धेप्रकल्पितालोकाः श्राद्धेधर्मःप्रतिष्ठितः॥श्राद्धेयज्ञाहितिष्ठन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥५॥श्राद्धेयद्दीयतेकिञ्चिद्देवविप्राग्नितर्पणम् ॥ श्राद्धंतद्धिविजानीयात्पुराप्रोक्तंमहर्षिणा ॥६॥

को आपने कहा व आपही विश्वमूर्त्ति से सब जानागयाहै ॥ १ ॥ हे तपोधन, द्विजोत्तमजी ! श्राद्धके उस उत्तम फलको व क्षेत्रके फलको मैं विस्तार से सुनाचाहता हूं॥ २ ॥ हे अनघ ! कितने पितर नित्य तृप्त होकर देवालय को जाते हैं और किनके कौन पितर कहे गये हैं व पहले वे कौन हुयेहैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि तुम धन्य व कृतकृत्यहो कि जिनकी तुम्हारी नैष्ठिकी बुद्धिहै तथापि हे वत्स ! श्राद्धकी उत्तम विधिको सुनिये ॥ ४ ॥ श्राद्ध में लोक कल्पितहै व श्राद्ध में धर्म स्थितहै और श्राद्ध में सब कामनाओं के फलको देनेवाले यज्ञ स्थितहैं ॥ ५ ॥ कि श्राद्ध में जो कुछ देवता, ब्राह्मण व अग्नि को तृप्तिकारक दियाजाता है उसको श्राद्ध जानै

यह पहिले महर्षि जी ने कहाहै ॥ ६ ॥ मनुष्य, सब ऋषि, देवता, सिद्ध,मनुष्य, गन्धर्व,किन्नर,नाग, ब्रह्मा शिव व सुरेश ॥ ७ ॥ सावधान होकर तीन तीन पिंडों को उद्देश कर श्राद्ध देकर हे व्यासजी ! मनमें प्राप्त सब कामनाओं को प्राप्तहोते है ॥ ८ ॥ व इसप्रकार परापर सनातन मार्ग में वर्तमान होतेहैं तथापि ये पितर तपस्वियो समेत कहेगयेहै ॥ ९ ॥ उस सब को मै कहूंगा जिसप्रकार सुनागयाहै वैसेही उससब को मै भलीभांति कहूंगा जैसे ये पितर देवताहैं वैसेही देवता भी पितर होतेहैं ॥ १० ॥ ये देवता पितृगणों समेत आपस मे पितर हैं हे द्विजोत्तम ! पुरातन समय मार्कण्डेयजीने इस प्रश्नको पूछाहै ॥ ११ ॥ हे व्यासजी ! पहलेसे लगाकर उससब को तुमसे

मनुष्याऋषयःसर्वे सुरसिद्धाश्चमानवाः ॥ गन्धर्वाःकिन्नरानागा ब्रह्मभवसुरेश्वराः ॥ ७ ॥ त्रींस्त्रीन्पिण्डानस मुद्दिश्य श्राद्धंदत्त्वासमाहिताः ॥ प्राप्नुवन्त्यखिलान्कामान् सर्वान्व्यासमनोगतान् ॥ ८ ॥ एवंपरापरम्मार्गं प्रवर्त न्तेसनातनम् ॥ तथापिपितरोह्येते समाख्यातास्तपस्विभिः॥९॥ तत्सर्वंसंप्रवक्ष्यामि यथाश्रुतंतथाशृणु ॥ यथैतेपितरो देवा देवाश्चपितरस्तथा ॥ १० ॥ अन्योन्यंपितरोह्येते देवाःपितृगणैःसह ॥ मार्कण्डेनपुरापृष्टं प्रश्नमेतंद्विजोत्तम ॥ ११ ॥ निबोधयामितेव्यास निखिलंसर्वमादितः ॥ यावन्तस्तेपितृगणास्तस्मिँल्लोकेचतेगताः ॥ १२ ॥ सनत्कुमारउ वाच ॥ सप्तैतेयजतांश्रेष्ठाः सर्वेपितृगणाःस्मृताः ॥ चत्वारोमूर्तिमन्तोवै त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥ १३ ॥ तेषांलोकंविसर्गञ्च कीर्तयिष्यामितच्छृणु ॥ प्रभावत्वंमहत्त्वञ्च विस्तरेणतपोधन ॥ १४ ॥ धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयोयेपरमागणाः ॥ ते षांनामानिलोकांश्च कीर्तयिष्यामितच्छृणु ॥ १५ ॥ लोकाःसनातनानाम यत्रतिष्ठन्तिभास्वराः ॥ अमूर्तयःपितृगणा

बोध कराताहूं कि जितने वे पितरों के गणहैं वे उस लोक मे प्राप्त हुयेहैं ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि यज्ञ करनेवालो में श्रेष्ठ ये सात पितरगण कहेगये है उन से चार मूर्त्तिमान्हैं व तीन मूर्त्तिरहितहैं ॥ १३ ॥ हे तपोधन ! उनके लोक, उत्पत्ति, प्रभावत्व व महत्त्व को मै विस्तारसे कहताहूं उसको सुनिये ॥ १४ ॥ उनके मध्य में जो मूर्तिधारी तीन उत्तम गणहैं उनके नामों व लोकोंको कहताहूं उसको सुनिये ॥ १५ ॥ कि प्रसिद्ध मे वे सनातन लोक है जहां कि प्रकाशवान् वे पितर टिके है

और जो मूर्तिरहित पितरों के गणहैं वे हे द्विजोत्तम ! विराज प्रजापति के पुत्र वैराज हैं ऐसा हमलोगोंने सुनाहै उनको देवगण विधि से देखेहुये कर्मसे पूजते हैं ॥ १६ । १७ ॥ योग से भ्रष्ट ये सनातन लोकों को प्राप्त होकर फिर हज़ार युगों के अन्त में ब्रह्मवादी होतेहैं ॥ १८ ॥ फिर उस स्मरणको प्राप्त होकर व अतिउत्तम सांख्ययोग को पाकर पुनरावृत्ति याने पुनर्जन्म दुर्लभवाले व सिद्धयोगकी गति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ हे तात ! योगियों के योगको बढ़ानेवाले ये पितर हैं जो कि पहले योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! इसलिये योगियों को श्राद्ध दीजाती हैं सोमपान ऐसा प्रसिद्ध यह प्रथम कल्प है ॥ २१ ॥

स्तेवैपुत्राःप्रजापतेः ॥ १६ ॥ विराजस्यद्विजश्रेष्ठ वैराजाइतिनःश्रुतम् ॥ यजन्तेतान्देवगणा विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ १७ ॥ एतेवैयोगविभ्रष्टा लोकान्प्राप्यसनातनान् ॥ पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्तेब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥ तेप्राप्यतांस्मृति म्भूयःसांख्ययोगमनुत्तमम् ॥ यान्तियोगगतिंसिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥ १९ ॥ एतेस्युःपितरस्तात योगिनांयोगवर्द्धनाः ॥ आप्याययन्तियेपूर्वं सोमंयोगबलेनवै ॥ २० ॥ तस्माच्छ्राद्धानिदीयन्ते योगिनांद्विजसत्तम ॥ एषवैप्रथमःकल्पः सोमपानमितिश्रुतम् ॥ २१ ॥ एतेषांमानसीकन्या मेनानाममहागिरेः ॥ पत्नीहिमवतःश्रेष्ठा यस्यामैनाकउच्यते ॥ २२ ॥ मैनाकस्यसुतःश्रीमान् क्रौञ्चोनाममहागिरिः ॥ अग्निष्वात्ताःपितृगणास्तत्रतिष्ठन्तिभास्कराः ॥ २३ ॥ याम्यां बर्हिषदाआसन् यमाद्याश्चैवपश्चिमाम् ॥ सोमपाश्चोत्तराम्प्राप्ता दिशंधनदपालिताम् ॥ २४ ॥ अमूर्तिमन्तश्चाकाशे कव्यवाडनलाःक्षितौ ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च यजन्तेभावितात्मनः ॥ २५ ॥ साध्यादेवान्यजन्तिस्म विश्वेदेवान्

इनकी मेना नामक मानसी कन्या हिमवान् महाचल की श्रेष्ठ स्त्री हुई है जिसका पुत्र मैनाक कहा जाताहै ॥ २२ ॥ और मैनाक का पुत्र श्रीमान् क्रौंचनामक महाचल है उसपै प्रभाकर अग्निष्वात्त नामक पितृगण टिके हैं ॥२३॥ बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा मे प्राप्तहुये हैं व यमादिक पश्चिम दिशा मे तथा सोमपानामक पितरों के गण कुबेर से पालित उत्तर दिशाको प्राप्त हुये हैं ॥ २४ ॥ और बिन मूर्तिवाले पितरों के गण आकाश मे व कव्यवाड और नलनामक पितरगण पृथ्वी में

ऋषींस्तथा ॥ मनवःश्राद्धदेवञ्च ऋषयोब्रह्मसनातनम् ॥ २६ ॥ एवंपरम्पराप्राप्तं श्राद्धंधर्मंसनातनम् ॥ देवकार्यात्परं कार्य्यं पितृकार्यंविशिष्यते ॥ २७ ॥ भरद्वाजात्मजाःसप्त श्राद्धधर्मपरायणाः ॥ जातिस्मरत्वमापन्ना निर्वाणपदवींगताः ॥ २८ ॥ गुरोर्दोग्ध्रीन्तुगांहत्वा सप्तैतेवैद्विजाधमाः ॥ पितॄनुद्दिश्यतेसर्वं भक्षयन्तःक्षुधार्दिताः ॥ २९ ॥ तेनपुण्यप्रभावेण योगभ्रष्टादिवङ्गताः ॥ सप्तजातिषुसर्वेते योगयुक्तास्तथैवते ॥ ३० ॥ तस्माच्छ्राद्धंपरम्प्रोक्तं सूरिभिःपरमात्मभिः ॥ श्राद्धम्प्रतिष्ठितालोकाः श्राद्धंयोगःपरंतपः ॥३१॥ एवंतेपितरःप्रोक्ताः श्राद्धस्यचविधिंशृणु॥ ब्रह्मचर्यरतोदान्तो नक्रोधीनचमत्सरी ॥ ३२॥ शौचाचारपरोधीरः शास्त्रदृष्टिर्जितेन्द्रियः ॥ एवंयःकुरुतेश्राद्धं तीर्थेचैवविशेषतः ॥ ३३ ॥ ततोधिकतराप्रोक्ता तृप्तिर्व्यासक्षयेहनि ॥ वृद्धिश्राद्धंतथाप्रोक्तं महालयशताधिकम् ॥ ३४ ॥ ततोदशगुणाप्रोक्ता

प्राप्त हुये हैं व शुद्ध चित्तवाले यक्ष, राक्षस व पिशाच ॥ २५ ॥ और साध्यदेवता देवताओं को व विश्वेदेवों तथा ऋषियों को पूजते हैं और मनुलोग श्राद्धदेव को ऋषि सनातन ब्रह्मको पूजते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्राद्ध सनातन धर्ममें परम्परा से प्राप्त है और पितृकार्य देवकार्य से उत्तम कार्य है व विशेष है ॥ २७ ॥ श्राद्ध के धर्म में तत्पर भरद्वाज जी के सात पुत्र जातिकी स्मरणता को प्राप्त होकर मोक्ष की पदवी को प्राप्त हुये हैं ॥ २८ ॥ और दूध देनेवाली गुरुकी गऊ को मारकर ये सातों ब्राह्मणों में नीचहुये और पितरों को उद्देशकर सब मांसको भक्षण करते हुये वे क्षुधासे विकल सब ॥ २९ ॥ योग से भ्रष्ट होकर उस पुण्यके प्रभाव से स्वर्गको प्राप्तहुये हैं और वैसेही वे सब सात जातियों में योगसंयुत हुये हैं ॥ ३० ॥ इसलिये उत्तम चित्तवाले विद्वानों ने श्राद्ध को उत्तम कहाहै व श्राद्ध मे लोक प्रतिष्ठितहैं और श्राद्ध योगहै व श्राद्ध उत्तम तपहै ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे पितर कहेगयेहैं और श्राद्ध की विधिको सुनिये कि ब्रह्मचर्य में परायण व इन्द्रियों को दमन करनेवाला पुरुष क्रोधी न होवै और न ईर्षावान् होवै ॥ ३२ ॥ और शौच के आचार में परायण, विद्वान् व शास्त्रदृष्टिवाला तथा जितेन्द्रिय जो पुरुष तीर्थ में विशेषकर श्राद्ध करताहै ॥ ३३ ॥ उससे बहुतही अधिक हे व्यासजी ! क्षयाह में तृप्ति होतीहै वैसेही सौ महालय श्राद्धों से अधिक वृद्धिश्राद्ध कहागयाहै ॥ ३४ ॥

और तीर्थों के मध्य में जो गया कहीगईहै वह उससे दशगुना कहीहै हे व्यासजी! उससे दशगुना अधिक श्राद्ध उत्तम महाकालवनमें कहागयाहै ॥ ३५ ॥ अवन्ती पुरी में सबओर से गयातीर्थ सदैव पुण्यदायकहै क्योंकि जन्म जन्म में जो पितर नरक में प्राप्त हुयेहैं ॥ ३६ ॥ उनके उधारने के लिये यह दुर्लभ तीर्थहै यहां एकही बार स्मरण करने से पितरों को दियाहुआ अक्षय होताहै ॥ ३७ ॥ चौथे आश्रम के मध्यमें टिकेहुये जो पिताके वंशसे रहितहैं और जो गर्भपात में मरेहैं और जो नाम व गोत्रसे अलगहैं ॥ ३८ ॥ और अपने गोत्र व पराये गोत्रमें व जो अन्य आत्मघातसे मरतेहैं उनके उधारनेकेलिये यहां श्राद्धकीजावै ॥३९॥ ऊपरके बंधन से जो मरेहैं

यातीर्थेषुगयास्मृता ॥ ततोदशाधिकंव्यास महाकालवनेशुभे ॥३५॥ अवन्त्यांसर्वतःपुण्यं गयातीर्थंचसर्वदा ॥ येवैनिरयमापन्नाः पितरोजन्मजन्मनि ॥ ३६ ॥ तेषामुद्धरणार्थायतीर्थमेतत्सुदुर्लभम् ॥ सकृत्स्मरणमात्रेण पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ ३७ ॥ चतुर्थाश्रममध्यस्थाः पितृवंशविवर्जिताः ॥ गर्भपातेमृतायेच नामगोत्रच्युतास्तथा ॥ ३८ ॥ स्वगोत्रेपरगोत्रेवा आत्मघातमृताःपरे ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्रश्राद्धंविधीयताम् ॥ ३९ ॥ उद्बन्धनमृतायेच विषशस्त्रहताश्चये ॥ दंष्ट्रिभिश्चहतायेवै ब्राह्मणैश्चार्दिताश्चये ॥ ४० ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्रश्राद्धंविधीयताम् ॥ अग्निदग्धाश्चयेजीवा नाग्निदग्धास्तथापरे ॥ ४१ ॥ विद्युद्घातेनयेकेचिन्मुद्गरैश्चहताःपरे ॥ते०॥४२॥ रौरवेचान्धतामिस्रे कालसूत्रेचयेगताः ॥ अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकेचयेगताः ॥ ते० ॥ ४३ ॥ असिपत्रवनेघोरे कुम्भीपाकेषुयेगताः ॥ पशुयोनिगतायेच पक्षिकीटसरीसृपाः ॥ ते० ॥ ४४ ॥ उदकेषुमृतायेच नार्यःसूतिमृतास्तथा ॥ अश्वशूकरकैश्चैव शृङ्गिभिः

व विष तथा शस्त्रों से जो मारेगयेहैं और शूकरों से जो मारेगयेहैं व ब्राह्मणों से जो दुःखित होतेहैं ॥ ४० ॥ उनके उधारने के लिये यहा श्राद्ध कीजावे और जो प्राणी अग्नि में जलेहैं व अन्य जो अग्नि में नहीं जलेहैं ॥ ४१ ॥ और बिजली के गिरनेसे जो कोई मरेहैं व अन्य जो मुद्गरों से मारेगयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावे ॥ ४२ ॥ और रौरव, अन्धतामिस्र व कालसूत्र में जो प्राप्त हैं व अनेक पीड़ाओं में स्थित जो प्रेतलोक में प्राप्तहैं उनके उधारने के लिये यहां पर श्राद्ध कीजावे ॥ ४३ ॥ भयंकर असिपत्रवन में व कुंभीपाक में जो प्राप्तहैं और पशुयोनिमें जो प्राप्तहैं व पक्षी, कीट और जो क्षुद्रसर्प हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की

जावै ॥ ४४ ॥ और जो जलों में मरगयेहैं व पुत्र पैदा होनेपर जो स्त्रियां मरीहैं और घोडा, शूकर व सींगवाले प्राणियों से तथा गाड़ियों से जो मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४५ ॥ और वनके दौरहा में शस्त्रादिकों से व व्याघ्र, सर्प,हाथी, राजा और शलभों (पाखियों) से तथा बीछू व शूकर तथा राक्षसों से जो मारे गयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्धकीजावै ॥ ४६ ॥ और अटारीपर शय्यापै जो मरेहैं और जो शौच व आचार से रहितहैं व विसूचिकारोग से जो मरेहैं व जो भ्रम तथा अतीसार से मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै॥ ४७ ॥ व जो शाकिनी आदिक ग्रहों से ग्रस्त हुयेहैं और जो जलके मध्य में मरेहैं व न छूने के योग्य पुरुष के स्पर्श से जिन्हो ने संसर्ग कियाहै व जो पतित व सन्तान से रहितहैं ॥ ४८ ॥ और अपने कर्म से जो हज़ारों जन्मोंतक भ्रमते हैं व जिनको मनुज

शकटैर्हताः ॥ ते० ॥ ४५ ॥ वनदावेचशस्त्राद्यैर्व्याघ्राहिगजभूमिपैः ॥ शलभैर्वृश्चिकैर्दंष्ट्रिचौरक्रव्यादघातिताः ॥ ते० ॥ ४६ ॥ अट्टशय्यामृतायेच शौचाचारविवर्जिताः ॥ विसूचिकामृतायेच भ्रमातीसारतोमृताः ॥ ते० ॥ ४७ ॥ शाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता जलमध्येचयेमृताः ॥ अस्पर्श्यस्पर्शसंसृष्टाः पतितापत्यवर्जिताः ॥ ४८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि भ्रमन्तिस्वेनकर्म्मणा ॥ मानुषंदुर्ल्लभंयेषां तेभ्यःश्राद्धंविधीयताम् ॥ ४९ ॥ येबान्धवाबान्धवाये येन्यजन्मनिबान्धवाः ॥ यानिमित्राण्यमित्राये मित्रमित्रास्तथापरे ॥ ते० ॥ ५० ॥ पितृवंशेमृतायेच मातृवंशेतथैवच ॥ गुरुश्वशुरबन्धूनां येचान्येबान्धवाःस्मृताः ॥ ते० ॥ ५१ ॥ येमेकुलेलुप्तपिण्डाः पुत्रदारादिवर्ज्जिताः ॥ क्रियालोपगतायेच जात्यन्धाःपङ्गवस्तथा ॥ ५२ ॥ काणाःकुब्जाविरूपाश्च आमगर्भाश्चयेमृताः ॥ येज्ञातायेपिचाज्ञाता ज्ञाताज्ञाताःकुलेमम ॥

शरीर दुर्लभहै उनके लिये श्राद्धकीजावै ॥ ४९ ॥ और जो बांधव तथा अबांधवहैं व जो अन्य जन्म में बांधव हुयेहैं और जो मित्रहै व जो अमित्रहैं तथा अन्य जो मित्रो के मित्रहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्धकीजावै ॥ ५० ॥ और जो पिता के वंश में मरेहैं व जो माता के वंशमें मरे हुयेहैं और जो गुरु व श्वशुर के बंधुवों के अन्य बांधव कहेगयेहै उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५१ ॥ और पुत्र व स्त्री से रहित जो मेरे वंशमें लुप्तपिंडवालेहैं व जो कर्म के लोप को प्राप्त हुयेहैं और जो जाति से अन्ध व पंगु हैं ॥ ५२ ॥ व जो काने, कुबडे, कुरूप और जो कच्चे गर्भवाले मरेहुये हैं व जो जानेहुये और जो बिनजाने हुयेहैं तथा जो

मेरे वंश में ज्ञात व अज्ञातहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै॥ ५३ ॥ और ब्रह्मसदन तक जो अन्य दुर्मरणों से मरेहुयेहैं व प्यास से विकल तथा भूंखे व त्यागे हुये जो मरेहैं ॥ ५४ ॥ व जो प्रेतयोनि मे प्राप्तहैं और जो म्लेच्छ की योनिमें प्राप्तहुयेहैं उनके उधारने के लिये यहांपर श्राद्ध कीजावै ॥ ५५ ॥ हे व्यासजी ! जो पुरुष इसप्रकार जिसतीर्थ में श्राद्धकी विधिको करताहै तीनोंऋणों से छूटाहुआ वह चाहेहुये मनोरथ को प्राप्तहोताहै ॥ ५६ ॥ इन्द्रादिक सब देवताओं ने गयातीर्थ में प्राप्तहोकर विधिपूर्वक उसको किया जोकि देववाणी से कहागया ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयामाहात्म्येश्रा

ते० ॥ ५३ ॥ आब्रह्मभुवनेयेचाप्यन्यैर्दुर्मरणैर्मृताः ॥ तृषार्त्ताःक्षुधिताश्चैव हापिताश्चैवयेमृताः ॥ ५४ ॥ प्रेतयोनिङ्गता श्चैव म्लेच्छयोनिंगताश्चये ॥ ते० ॥ ५५ ॥ एवंश्राद्धविधिंव्यास यस्मिंस्तीर्थेसमाचरेत् ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तो वाञ्छि तार्थंलभेत्तुसः ॥ ५६ ॥ गयायाञ्चसमासाद्य सुराइन्द्रपुरोगमाः ॥ चक्रुश्चविधिवत्सर्वं यदुक्तंदेवभाषया ॥ ५७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगयामाहात्म्येश्राद्धविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ ततःसुरगणाःसर्वे धूतपापाःसमाहिताः ॥ पुनर्योगबलंप्राप्य स्वाधिकारान्ययुःपुरा ॥ १ ॥ एवं व्यासगयातीर्थं कुमुद्वत्यांसुनिश्चितम् ॥ गयायांयानितीर्थानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ २ ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरःस्ना त्वा तत्तत्तीर्थफलंलभेत् ॥ तथैवचगयाक्षेत्रं गयाश्राद्धफलप्रदम् ॥ ३ ॥ फल्गुश्चसरितांश्रेष्ठा तथैवफलदायिनी ॥ आ

द्धविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । गयातीर्थ के तीर्थ सब अरु उत्तम परभाव । सत्तरिके अध्याय में कह्यो कथा सतिभाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर पापरहित सब देवगण सावधान होकर फिर योगबलको पाकर पुरातन समय अपने अधिकारोंको प्राप्तहुये हैं ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कुमुद्वती पुरीमें भलीभांति निश्चित गयातीर्थहै और गया में जो तीर्थ व पवित्र देवमन्दिर हैं वे हैं ॥ २ ॥ इस तीर्थ में नहाकर मनुष्य उस उस तीर्थ के फलको प्राप्तहोताहै और वैसेही गयाक्षेत्र गया में श्राद्ध के फलको देने

वालाहै ॥ ३ ॥ वैसेही नदियों में श्रेष्ठ व फलदायिनी फल्गूनदी है व आदिगया, बुद्धगया व विष्णुपदी कहीगई है ॥ ४ ॥ और वैसेही कोष्ठक कहागयाहै व गदाधर-पद और सोलह वेदिका वैसेही अक्षयवट कहागयाहै ॥ ५ ॥ वैसेही नित्यही प्रेतों को मुक्ति करनेवाली शिला कहीगई है और अच्छोदा नदी कहीगई है व पितरों का उत्तम आश्रम कहा गयाहै ॥ ६ ॥ वैसेही किन्नरों समेत देवता, दानव, यक्ष व सबनागों का उत्तम आश्रम कहा गया है ॥ ७ ॥ इन सब स्थानों में स्नान दानादिक कर्म करना चाहिये व विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये जो ऐसा करता है उसको तीर्थ का फल होताहै ॥ ८ ॥ पितरलोकों के मध्य में गयाजी में आपही विष्णुजी

दिगयाबुद्धगया तथाविष्णुपदीस्मृता ॥ ४ ॥ कोष्ठकस्तुतथाप्रोक्तो गदाधरपदानिच ॥ वेदिकाःषोडशप्रोक्तास्तथैव चाक्षयोवटः ॥ ५ ॥ प्रेतमुक्तिकरीनित्यं शिलाचोक्तातथैवच ॥ अच्छोदानिम्नगाप्रोक्ता पितृणाञ्चाश्रमोत्तमः ॥ ६ ॥ देवानांदानवानाञ्च यक्षाणांसहकिन्नरैः ॥ पन्नगानाञ्चसर्वेषां तथैवाश्रममुत्तमम् ॥ ७ ॥ एतत्स्थानेषुसर्वेषु स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ श्राद्धञ्चविधिवद्देयं तस्यतीर्थफलम्भवेत् ॥ ८ ॥ गयायांपितृलोकेषु स्वयमेवजनार्द्दनः ॥ तन्ध्यात्वापुण्डरीकाक्षं मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥ ९ ॥ एवंव्यासगयातीर्थं पुरावन्त्यांप्रतिष्ठितम् ॥ पश्चात्तुकाककेजातं यत्र सन्निहितोसुरः ॥ १० ॥ तदारभ्यद्विजश्रेष्ठ गयातत्रप्रतिष्ठिता ॥ गदाधरपदाघातैर्महादैत्यनिपातितः ॥ ११ ॥ तत्पदे महिमानंच जनार्द्दनसमर्पितम् ॥ पञ्चक्रोशंगयाक्षेत्रं क्रोशमेकंगयाशिरः ॥ १२ ॥ यत्रयत्रस्मरिष्यामि पितृणांदत्तमक्षयम् ॥ सर्वदासर्वकालेषु गयाश्राद्धंविधीयते ॥ १३ ॥ संवत्सरेपरंव्यास पक्षमेकंप्रतिष्ठितम् ॥ कन्यास्थेचदिवानाथे

हैं उन कमललोचनजी को ध्यानकर मनुष्य तीनों ऋणों से छूटजाता है ॥ ९ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पुरातन समय अवन्ती पुरी में गयातीर्थ प्रतिष्ठित हुआ है पश्चात् काकक देशमें हुआहै जहां कि असुर भलीभांति टिका है ॥ १० ॥ तब से लगाकर हे द्विजश्रेष्ठ ! वहां पर गया प्रतिष्ठित हुई है गदाधरजी के चरणप्रहारों से जहा महादैत्य मारा गया है ॥ ११ ॥ उसी स्थान पै जनार्दनजी से समर्पित महिमाहै गयाक्षेत्र पांच कोस है व एक कोस गयाशिर है ॥ १२ ॥ उसको जहा जहां मैं स्मरण करूं वहा वहां पितरों का दिया हुआ अक्षय होता है सदैव सब समयों में गया श्राद्ध कीजानी है ॥ १३ ॥ परन्तु हे व्यासजी ! वर्षभर में एक दिन प्रतिष्ठित

है कि हस्तनक्षत्र से संयुत जब दिननाथ सूर्यनारायण कन्याराशि में स्थित होवें ॥ १४ ॥ तब वह महालय ऐसा कहा गया है उसमें पितरों को दिया हुआ अक्षय होताहै सदैव सब समयोंमे गयाश्राद्ध कीजाती है ॥ १५ ॥ परन्तु हे व्यास जी ! वर्षभर में एक पक्ष प्रतिष्ठित है इसप्रकार हे व्यासजी ! स्नान दानादिक कर्मों में अवन्तीपुरी मनोहर है ॥ १६ ॥ फिर मैं बड़े अद्भुत माहात्म्यको कहताहूं मुझमे कहेहुये उस पवित्र व पापनाशक माहात्म्यको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सप्तर्षियों की जो सात पतिव्रता स्त्रियांथीं भाग्यसे भ्रष्टहुई वे अग्नि से दूषित हुई ॥ १८ ॥ और ऋषियों से छोड़ी हुई वे वनसे वनमें भ्रमती भई इस भांति बहुत समय बीतने

हस्तनक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ महालयेतितत्प्रोक्तं पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ सर्वदासर्वकालेषु गयाश्राद्धंविधीयते ॥ १५ ॥ संवत्सरेपरंव्यास पक्षमेकंप्रतिष्ठितम् ॥ एवंव्यासपुरीरम्या स्नानदानादिकर्मसु ॥ १६ ॥ भूयस्तुसंप्रवक्ष्यामि माहात्म्यंपरमाद्भुतम् ॥ तच्छृणुष्वमयाख्यातं पवित्रम्पापनाशनम् ॥ १७ ॥ सप्तर्षीणान्तुयाभार्या सप्तपत्न्यःपतिव्रताः ॥ तास्तुदैवपरिभ्रष्टा दूषिताःपावकेनच ॥ १८ ॥ ऋषिभिःपरित्यक्तास्ता बभ्रमुश्चवनाद्वनम् ॥ एवंबहुगतेकाले नारदो देवदर्शनः ॥ १९ ॥ तासान्तुप्रियमन्विच्छन् समायातोवनान्तरे ॥ ताभिःससत्कृतोनित्यं समासीनोधृतव्रतः ॥२०॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा देशकालोचितंवचः ॥ किमिदंक्रियतेजातो भवतीनाम्पराभवः ॥२१॥ कस्मात्तुऋषिभिस्त्यक्ता लोकमातृपतिव्रताः ॥ ऋषिपत्न्यऊचुः ॥ नजानेहिवयंतातयेनदोषेणतापसैः ॥ २२ ॥ विमुक्ताःसाग्निकैर्विप्रैः कार्त्तिकेय प्रसङ्गतः ॥ लोकापवादजंकिञ्चिज्जातंदिष्टवशादघम् ॥२३॥ किंकुर्मःक्वगच्छामः किंतपःकाचदेवता ॥ यस्याराधनपु

पर देवदर्शन नारदजी ॥ १९ ॥ उनके प्रिय को चाहतेहुये वनके मध्यमें भलीभांति आये और उन सबों से सत्कार कियेहुये वे नित्य धारेहुये नियमवाले नारदजी बैठगये ॥ २० ॥ और देश व समय के योग्य वचनको नम्रवाणी से बोले कि यह क्या किया जाताहै जो कि आप सबोंका अनादर हुआ ॥ २१ ॥ और किस कारण ऋषियों से लोकों की माता व पतिव्रता तुम सब छोड़ी गई हो ऋषियों की स्त्रिया बोलीं कि हे तात ! हम सब यह नहीं जानती हैं कि जिस दोषसे हमलोग साग्निक ब्राह्मणों से छोड़ीगई हैं भाग्यके वशसे कार्त्तिकेय जी के प्रसंग से कुछ संसारके अपवाद (कलंक) से उपजाहुआ पातक हुआहै ॥ २२।२३ ॥ हम सब क्याकरैं व

कहांजावें क्या तप व कौन देवता है कि जिसके आराधन के पुण्य से फिर आश्रमको जावें ॥ २४ ॥ यह निश्चय कर हे ब्रह्मन् ! कहिये क्योंकि तुम यथार्थ जानते हो उस समय इस भांति उन ऋषिस्त्रियों से पूछे हुये नारदजी ॥ २५ ॥ बहुत देरतक ध्यानकर उनके कल्याण के लिये बोले नारदजी बोले कि हे ऋषिस्त्रियो ! आप सबोंके लिये जो श्रेष्ठतप है उसको सुनिये ॥ २६ ॥ कि मनोहर महाकालवनमें अतिउत्तम गयातीर्थ है वहींपर वृक्षों में श्रेष्ठ अक्षय नामक वट है ॥ २७ ॥ वहां आगमनमात्रसे पापरहित होवोगी क्योंकि वह तीर्थ सब दोषोंका हरनेवाला व सब कामनाओं के वरदान को देनेवाला है ॥ २८ ॥ और सब सुखों का करनेवाला

एयेन व्रजामःपुनराश्रमम् ॥ २४ ॥ एतन्निश्चित्यभोब्रह्मन् ब्रूहित्वंवेत्सितत्त्वतः ॥ इतिपृष्टस्तदाताभिर्ऋषिस्त्रीभिश्चना रदः ॥ २५ ॥ उवाचसुचिरंध्यात्वा तासांशर्मस्यहेतवे ॥ नारदउवाच ॥ श्रूयताम्भोस्तपःश्रेष्ठम्भवतीनाञ्चकारणम् ॥ २६ ॥ महाकालवनेरम्ये गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रैवचाक्षयोनाम न्यग्रोधःशाखिनांवरः ॥ २७ ॥ तत्रागमनमात्रेण धूतदोषाभविष्यथ ॥ सर्वदोषहरंतीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ २८ ॥ सर्वसौख्यकरंपुण्यं तत्रगच्छतमाचिरम् ॥ नारदस्य वचःश्रुत्वा ऋषिपत्न्यःसुचोदिताः ॥२९॥ महाकालवनेऽयास इच्छन्त्यःप्रियमात्मनः ॥ जग्मुस्तास्तुतदातत्र यत्रतीर्थं गयाभिधम् ॥ ३० ॥ तत्रगत्वाशुचिर्भूत्वा स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ कृतास्ताभिश्चपुण्याभिर्नभस्यस्यासितेतरे ॥ ३१ ॥ गयायांऋषिपत्नीभिः पञ्चम्यांसुचिरंकृतम् ॥ उपोष्यचैकरात्रञ्च जागरंचैवयोगतः ॥ ३२ ॥ कृतमात्रेव्रतेऽया स निष्पापाह्यभवन्क्षणात् ॥ भर्तृकोपपरिभ्रष्टा सद्यःप्राप्तागृहाश्रमम् ॥ ३३ ॥ ऋषिभिःस्वागतंदत्तं पूर्ववद्दाषिसत्त

व पवित्र है वहा शीघ्रही जावो नारदजी के वचन को सुनकर अपने प्रियको चाहतीहुई भलीभांति प्रेरित वे ऋषियों की स्त्रियां उस समय हे व्यासजी ! उस महाकाल वनमें गईं जहां कि गया नामक तीर्थहै ॥ २९।३० ॥ वहां जाकर पवित्र होकर उन पुण्यरूपिणी ऋषिस्त्रियोंने पवित्र होकर गयातीर्थमें भाद्रपदके शुक्लपक्षमें पंचमी तिथि में स्नान दानादिक कर्मों को किया और एक रात्रि उपासकर योग से बहुत दिनों तक जागरण किया ॥ ३१।३२ ॥ हे व्यासजी ! व्रत के करनेहीपर क्षणभर में पाप-रहित होगई और पतिके क्रोध से भ्रष्ट वे ऋषिस्त्रियां शीघ्रही गृह के आश्रम को प्राप्तहुईं ॥ ३३ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठजी ! ऋषियों ने पहले की नाईं स्वागत दिया तब

से लगाकर इस संसार में वह तिथि ऋषिपंचमी प्रसिद्ध हुई ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! उस तिथिमें जो मनुष्य इस व्रत को करता है और जो सावधान होता हुआ पवित्र होकर नीवार (तिन्नीफसही) का आहार करता है ॥ ३५ ॥ उसको कुछ आपत्तिका दुःख कभी नहीं होताहै व स्त्रियों की दुर्भगता नहीं होती है और न पतियों से वियोग होता है ॥ ३६ ॥ और न कभी पुत्र व धन से भी वियोग होवैगा हे व्यासजी ! जो तुमने उत्तम पूंछा वह इसप्रकार भलीभांति कहागया ॥ ३७ ॥ हे सत्तम ! पृथ्वीपर अवन्तीपुरी में ऐसा तीर्थ वर्तमान है कि वैसा पुण्यदायक कोई तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ३८ ॥ इस तीर्थ में जो कोई मनुष्य महादानोंको करता है

म ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिन् सातिथिर्ऋषिपञ्चमी ॥ ३४ ॥ योनरोव्यासतस्यांवै व्रतमेतत्करोतिच ॥ नीवाराहारकंकुर्याच्छुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ३५ ॥ नतस्यजायतेकिञ्चिदापद्दुःखंकदाचन ॥ दुर्भगत्वंननारीणां नवियोगश्चभर्तृभिः ॥ ३६ ॥ पुत्रतोधनतोवापि कदाचित्सम्भविष्यति ॥ एवंव्याससमाख्यातं यत्त्वयापृष्टमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ अवन्त्यामीदृशंतीर्थं वर्त्ततेभुविसत्तम ॥ तादृशंपुण्यदंकिञ्चिन्नास्तिब्रह्माण्डगोलके ॥ ३८ ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरःकश्चिन्महादानानिकारयेत् ॥ अक्षयंतस्यभवति विष्णुलोकेमहीयते ॥ ३९ ॥ योवैनियतवान्भूत्वा कथामेतांशृणोतिवा ॥ पर्वेचसततंव्यास हयमेधफलंलभेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगयातीर्थमाहात्म्यन्नामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यासउवाच ॥ पुरुषोत्तमकंतीर्थन्त्वयाप्रोक्तंपुरानघ ॥ महिमातस्यतीर्थस्य विस्तराद्वदमेप्रभो ॥ १ ॥ एतत्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ श्रूयताम्भोद्विजश्रेष्ठ कथांपापहराम्पराम् ॥ २ ॥ यस्याःश्रवणमा

उसका वह अक्षय होताहै और वह विष्णुलोक में पूजा जाताहै ॥ ३९ ॥ हे व्यासजी ! जो पुरुष नियमवान् होकर इस कथा को सुनता है व सदैव जो पर्व में सुनता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयातीर्थमाहात्म्यंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

दो० । पूजै जिमि मलमास में श्रीपुरुषोत्तम देव । इकहत्तरि अध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यासजी ! बोले कि हे अनघ, प्रभो ! पुरातन समय तुमने पुरुषोत्तम तीर्थको कहा है मुझसे उस तीर्थ की महिमा को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे यह सुनना चाहताहूं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम !

पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये ॥ २ ॥ कि जिसके सुननेही से महापातकोंका नाश होता है हे ब्रह्मन् ! पहले कल्पों में निर्मल व उत्तम वैकुंठ में पार्षद तथा उत्तम वर्णवाले सनकादिक महर्षियों व पितामह आदिक देवताओं समेत रमानाथ विष्णुजी बैठेथे ॥ ३ । ४ ॥ जो कि ऋद्धि, सिद्धियों के गुणों से संयुत उन महदादिक तत्त्वों से व गण तथा गन्धर्वसमूहों से सब ओर सेवित थे ॥ ५ ॥ और किन्नरों के उच्चप्रकार के गान व सम्मान से उत्तम आगन में नृत्य होनेपर और चिन्तामणि के गृहद्वार व सुन्दर अँगनाई की भूमियों में ॥ ६ ॥ कल्पवृक्ष से कीहुई छायावाले मुरशत्रु विष्णुजी के बैठनेपर ब्रह्ममार्ग में भलीभांति निश्चय किये हुये सब धर्म

त्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ पुराकल्पेपुरैब्रह्मन् वैकुण्ठेविमलेशुभे ॥ ३ ॥ समासीनोरमानाथः पार्षदैःसनकादिभिः ॥ महर्षिभिश्चसद्वर्णैः पितामहपुरोगमैः ॥ ४ ॥ ऋद्धिसिद्धिगुणोपेतैस्तत्त्वैस्तैर्महदादिभिः ॥ गणगन्धर्वसङ्घैश्च सेव्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥ किन्नरोद्गानसम्मानैर्नृत्यमानेवराङ्गणे ॥ चिन्तामणिगृहद्वारललिताङ्गणभूमिषु ॥ ६ ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायआसीनेहिमुरद्विषि ॥ धर्मवादरताःसर्वे ब्रह्ममार्गसुनिश्चिताः ॥ ७ ॥ तेषांमध्येपराम्भाषां कमलातमपृच्छत॥ पुण्यकानांविधिंनाथ श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ८ ॥ सर्वज्ञोसिमहाप्राज्ञ प्रोच्यतांयदिरोचते ॥ श्रीभगवानुवाच॥ दानंस्नानंतपस्तप्तं सदाशस्तंहिशोभने ॥ ९ ॥ तथापिविधिनाप्राप्तं तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ देशेकालेचपर्वेच तीर्थेप्राप्तेचगोपदे ॥ १० ॥ दानंस्नानंतपःश्राद्धं मुनिभिःपरिकीर्तितम् ॥ पूर्णिमायाममावास्यां संक्रान्तौग्रहणेतथा ॥११॥ वैधृतौचव्यतीपाते दानमृद्धिपरंस्मृतम् ॥ गङ्गायांभास्करक्षेत्रेरुणक्षेत्रेचपुष्करे ॥ १२ ॥ गोदावर्य्यांगयायाञ्च तीर्थेचामरक

के वाद में परायण थे ॥ ७ ॥ उनके मध्य में लक्ष्मीजी ने उन विष्णुजी से उत्तमवचन को पूंछा कि हे नाथ ! मैं पुण्यों की विधिको यथार्थ सुनना चाहतीहूं ॥ ८ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तुम सर्वज्ञ हो यदि तुमको रुचता हो तो कहिये श्रीभगवान् बोले कि हे शोभने ! दान, स्नान व किया हुआ तप सदैव शुभ होताहै ॥ ९ ॥ तथापि विधि से प्राप्त वह सब अक्षय होता है देश, काल व पर्व में गोपदतीर्थ प्राप्त होनेपर ॥ १० ॥ दान, स्नान, तप व श्राद्ध मुनियों से कहा गयाहै पौर्णमासी, अमावस, संक्रान्ति व ग्रहण में ॥ ११ ॥ और वैधृति व व्यतीपातयोग में दान ऋद्धिदायक कहा गया है व गंगा, भास्करक्षेत्र, अरुणक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १२ ॥ और गोदा-

वरी व गयातीर्थ में तथा अमरकंटक व अवन्तीपुरी में जो हवन किया व दियाहुआ होता है वह सब अक्षय होता है ॥ १३ ॥ इसलिये सब यत्न से पर्वतीर्थ करै क्योंकि तीर्थ पर्व से भ्रष्ट मनुष्य निश्चयकर कुवसनों, दुर्भग, मूर्ख, जड व रोगसे संयुत होता है लक्ष्मीजी बोलीं कि कौन योग व कौन कर्म है इस सबको सम्पूर्णता मे कहिये ॥ १४ । १५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे अनघे, भद्रे, प्रिये ! तुमने पुण्यों के मध्य में बहुत अच्छा पूंछा मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य व्रतसे रहित होते है ॥ १६ ॥ हे शोभने ! उनके जन्म जन्म में दरिद्रता होती है लक्ष्मीजी बोलीं कि मलमास कैसा होता है और किस योगसे होता है ॥ १७ ॥ व किस समय

एटके ॥ अवन्त्याश्चहुतंदत्तं तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पर्वतीर्थंसमाचरेत् ॥ कुचैलोदुर्भगोमूर्खो जडोरोगसमन्वितः ॥ १४ ॥ तीर्थपर्वपरिभ्रष्टो नरोभवतिनिश्चितम् ॥ श्रीरुवाच ॥ केचयोगाश्चकर्माणि ब्रूहिसर्वंविशेषतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुपृष्टन्त्वयाभद्रे पुण्यकानांप्रियेनघे ॥ मलमासेसमायाते येनराव्रतवर्जिताः ॥ १६ ॥ जन्मजन्मनिदारिद्र्यं तेषाम्भवतिशोभने ॥ श्रीरुवाच ॥ कीदृशोहिमलोमासः केनयोगेनजायते ॥ १७ ॥ कदाकालेसमायाति एतन्नोवदविस्तरात् ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ युक्तमुक्तन्त्वयादेवि प्रश्नकालोयमीदृशः ॥ १८ ॥ देवतापितृकार्याणि विधिनाहिमलिम्लुचे ॥ चौरंमौञ्जीविवाहादिव्रतोपवासकंतथा ॥ १९ ॥ विशेषेणगृहस्थानां वर्ज्यंमुनिवरोत्तमैः ॥ संवत्सरत्रयान्तेच मासोयमधिगच्छति ॥ २० ॥ असंक्रमणंरवेरस्मिंस्तस्मादधिकमासकः ॥ अधिमासाधिपत्योहं सदैवपुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ ममाभिधानंमेतीर्थं महाकालवनेशुभम् ॥ पुरुषोत्तमाख्यंमेधाम सदैवात्रसुतिष्ठ

प्राप्त होता है इसको मुझसे विस्तार से कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे देवि ! तुमने योग्य कहा यह ऐसाही प्रश्न का समय है ॥ १८ ॥ मलमास में विधिसे देवता व पितरों के कार्य, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाहादिक, व्रत व उपास ॥ १९ ॥ गृहस्थोंको विशेष कर वर्जित करना चाहिये यह मुनिश्रेष्ठों ने कहा है और तीन वर्ष के अन्त में यह मास आताहै ॥ २० ॥ इस महीने में सूर्यका संक्रमण नहीं होताहै इसी कारण अधिक मास होताहै मैं पुरुषोत्तम सदैव अधिमासका स्वामी हूं ॥ २१ ॥

महाकालवनमें मेरे नामवाला मेरा उत्तम तीर्थ है यहांपर सदैव पुरुषोत्तम नामक मेरा स्थान स्थित रहताहै ॥ २२ ॥ इसलिये सब यत्नसे तुम समेत जाना चाहिये जहां महाकालवनहै वहा मेरे नामवाला तीर्थ है ॥ २३ ॥ हे प्रिये, देवि ! जो मनुष्य स्नान के लिये वहां भलीभांति आते हैं उनको कुछ मेरे न देने योग्य कभी न होवैगा ॥ २४ ॥ और धन, धान्य व स्त्री आदिक तथा पुत्रों का सुख सदैवही रहताहै संक्रान्तिरहित मास प्राप्त होनेपर मनुष्य मुझको उद्देशकर व्रत करै ॥ २५ ॥ पुरुषोत्तम मै सदैव अधिमास का स्वामी हूं स्नान, दान, जप, होम, निज वेदपाठ व पितरों का तर्पण ॥ २६ ॥ व जो उत्तम मनुष्य दुपहर में देवता का पूजन करते

ति ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यंहित्वयासह ॥ महाकालवनंयत्र तत्रतीर्थंममाभिधम् ॥ २३ ॥ प्राणिनोयेसमायान्ति मज्जनार्थंप्रियेध्रुवम् ॥ तेषांदेविममादेयं नकदापिभविष्यति ॥ २४ ॥ धनधान्यकलत्रादिपुत्रसौख्यंसदैवहि ॥ असंक्रान्तेपिसंप्राप्ते मामुद्दिश्यव्रतंचरेत् ॥ २५ ॥ अधिमासाधिपत्योहं सदावैपुरुषोत्तमः ॥ स्नानंदानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥ २६ ॥ देवार्चनंचमध्याह्ने येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ अक्षयंस्यात्तुतत्सर्वं तेषांवैकमलेध्रुवम् ॥ २७ ॥ मलमासोगतःशून्यो येषांदेविप्रमादतः ॥ दारिद्र्यञ्चसदातेषां शोकरोगविवर्द्धनम् ॥ २८ ॥ अधिमासेनरायेचाप्यवन्त्यांव्रतकारकाः ॥ तेषान्ददाम्यहंप्रीत्या त्वामेवतुनसंशयः ॥ २९ ॥ स्वल्पंदानम्मलेकार्यं यत्किञ्चिदिहयत्कृतम् ॥ तत्सर्वंमत्प्रसादेन ह्यनन्तंप्रियदर्शने ॥ ३० ॥ श्रीरुवाच ॥ ईदृशोहित्वयाप्रोक्तस्त्वधिमासस्यसुव्रत ॥ महिमाह्यपिलोकानां सर्वकामवरप्रदः ॥ ३१ ॥ अधिमासव्रतम्पुण्यंकथयस्वप्रसादतः ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ असंक्रान्तोयदामासः

हैं हे लक्ष्मी जी ! उनका वह सब निश्चय कर अक्षय होता है ॥ २७ ॥ हे देवि ! असावधानतासे जिनका मलमास शून्य व्यतीत होताहै उनके सदैव दरिद्रता होती है और शोक व रोगों की वृद्धि होती है ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य अवन्तीपुरी में मलमास मे व्रत करनेवाले हैं उनको मैं प्रीति से तुम्हीं को देताहूं इस में सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ मलमास मे यहा जो कुछ थोडा भी होवै उसको दान करै क्योंकि हे प्रियदर्शने ! यहा जो दान किया होताहै वह सब मेरी प्रसन्नता से अनन्त होता है ॥ ३० ॥ लक्ष्मी जी बोली कि हे सुव्रत ! तुमने मनुष्यों को सब कामनाओं को वरदायक ऐसी मलमास की महिमाको कहा ॥ ३१ ॥ और मलमास के पुण्यदायक

व्रतको प्रसन्नतासे कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे प्रिये ! बिन संक्रान्तिवाला (मलमास) जब मनुष्यों को प्राप्त होवै ॥ ३२ ॥ तब आगमन में हित चाहनेवाले पुरुषों को बडा भारी उत्सव करना चाहिये हे सुरेश्वरि ! कृष्णपक्ष में चौदसि व नवमी में ॥ ३३ ॥ और अष्टमी में यथालाभ उपहार से शोकविनाशक व्रत करना चाहिये व मलमासमें ॥ ३४ ॥ पुण्य दिनमें प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्णवाले कर्मको करके न नियम ग्रहणकर पश्चात् हृदयमें विष्णुजी को स्मरण करताहुआ पुरुष ॥ ३५ ॥ हे मानिनि ! उपवास, नक्तव्रत व एकभुक्त व्रतों में से एकका निश्चयकर तदनन्तर ब्राह्मणों का निमन्त्रण करे ॥ ३६ ॥ जो कि सपत्नीक, उत्तम आचारशाले

प्राप्यतेमानवैःप्रिये ॥ ३२ ॥ महोत्सवस्तदाकार्य आगमेहितकाङ्क्षिभिः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नवम्यांवासुरेश्वरि ॥ ३३ ॥ अष्टम्याञ्चाथकर्तव्यं व्रतंशोकविनाशनम् ॥ यथालाभोपहारेण मासेचापिमलिम्लुचे॥३४॥पुण्याहेप्रातरुत्थाय कृत्वापूर्वाह्णिकींक्रियाम् ॥ गृहीत्वानियमंपश्चाद्वासुदेवंहृदिस्मरन् ॥ ३५ ॥ उपवासश्चनक्तञ्च एकभुक्तश्चमानिनि ॥ एकस्यनिश्चयंकृत्वा ततोविप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ ३६ ॥ सपत्नीकान्सदाचारान् कुलीनाञ्ज्ञातिसम्भवान् ॥ ततोमध्याह्नसमये लक्ष्मीयुक्तंसनातनम् ॥ ३७ ॥ स्थापयेदव्रणेकुम्भे वेदमन्त्रैर्द्विजातिभिः ॥ पूजयेत्परयाभक्त्या गोत्रभित्सपितामहम् ॥ ३८ ॥ गन्धतोयेनसंस्थाप्य पञ्चामृतैस्तथैवच ॥ मिष्टान्नैर्विविधैश्चैव नैवेद्यैर्धूपदीपकैः ॥ ३९ ॥ आच्छादनैश्चवस्त्रैश्च पीतकौशेयकैस्तथा ॥ घण्टामृदङ्गनिर्ह्रादैर्दिव्यघोषसमन्वितैः ॥ ४० ॥ आरातिकंव्रतीकुर्यात कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ अलाभेतूलकैश्चापि फलस्यानन्तहेतवे ॥ ४१ ॥ ताम्रपात्रस्थितैस्तोयैश्चन्दनाक्षतपुष्पकैः ॥ अर्घंदद्यात्सप

कुलीन व ज्ञाति में उत्पन्न होवैं तदनन्तर मध्याह्न समय में लक्ष्मी समेत सनातन पुरुष को ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणों से वेदमंत्रों के द्वारा व्रणरहित (बिनफूटे) कुंभमें स्थापित करावै और इन्द्र व ब्रह्मा समेत बडी भक्ति से पूजन करै ॥ ३८ ॥ व भलीभांति स्थापित कर सुगन्धजल व पंचामृतों से तथा अनेक भांति के नैवेद्यों व धूप दीपों से ॥ ३९ ॥ और आच्छादन व पीत रेशमी वस्त्रों से तथा दिव्य शब्द से संयुत घंटा व मृदंग के शब्दों से ॥४०॥ व्रती पुरुष कर्पूर, अगुरु व चन्दन से आरती करै और इनके न मिलनेपर अनन्त फलके कारण रुई की बत्तियों से आरती करै॥ ४१ ॥ और स्त्री समेत व्रती पुरुष प्रसन्नचित्त से चन्दन, अक्षत व पुष्पों समेत

तांबे के पात्र में स्थित जल से अर्घ देवै ॥ ४२ ॥ याने घुटनुवों को पृथ्वी में कर शिवभक्ति से संयुत पुरुष हाथों से उसको लेकर पंचरत्नों से संयुत जलों से अर्घ देवै ॥ ४३ ॥ हे देव ! तुम सब प्राणियों में दयावान् व संसार को आनन्दकारकहो अर्घ को ग्रहण कीजिये व सम्पूर्ण फलों के दायक हूजिये यह अर्घ का मंत्र है ॥४४॥ अमिततेजवाले आप स्वयंभू व ब्रह्माके लिये नमस्कार है व हे श्रियानन्द,ब्रह्मानन्द, कृपाकर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है यह प्रार्थना का मंत्र है ॥ ४५ ॥ नहाकर व पवित्र होकर इसप्रकार गोविन्दजी की प्रार्थना कर लक्ष्मीनारायण को स्मरण करताहुआ पुरुष आपही पत्नी समेत ब्राह्मणों को पूजै ॥ ४६ ॥ विधि से पूजकर घी

नीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥ पञ्चरत्नैःसमायुक्तैर्जानुनीकृत्यभूतले ॥ समादायचपाणिभ्यां सर्वभक्तिसमन्वितः ॥ ४३ ॥ कृपावान्सर्वभूतेषु जगदानन्दकारकः ॥ गृहाणार्घ्यमिदंदेव सम्पूर्णफलदोभव ॥ इत्यर्घ्यमन्त्रः ॥ ४४ ॥ स्वयम्भुवेनमस्तुभ्यं ब्रह्मणेमिततेजसे ॥ नमोस्तुतेश्रियानन्द ब्रह्मानन्दकृपाकर ॥ इति प्रार्थनामन्त्रः ॥ ४५ ॥ एवंसंप्रार्थ्यगोविन्दं पूजयेद्ब्राह्मणान्स्वयम् ॥ सपत्नीकाञ्छुचिःस्नात्वा लक्ष्मीनारायणौस्मरन् ॥४६॥ पूजयित्वाविधानेन भोजयेद्घृतपायसैः ॥ भोजयित्वाविधानेन सपत्नीकंयथोचितम् ॥ ४७ ॥ विद्याविनयसम्पन्नं स्वयापत्न्यासमन्वितम् ॥ परिस्थाप्ययथाशक्त्या वस्त्रालङ्कारकुङ्कुमैः ॥४८॥ गोस्तन्यासकपित्थैश्च खर्ज्जूरैःकदलीफलैः ॥ पनसैर्नारिकेलैश्चनारङ्गैर्दाडिमैस्तथा ॥ ४९ ॥ घृतपक्वान्नगोधूमैः शुभैर्मिष्टान्नकैरपि ॥ शर्कराघृतपूरैश्च फाणितैःखण्डमण्डितैः ॥ ५० ॥ उर्वारुकर्कटीशाकैः शृङ्गवेरैःसमूलकैः ॥ अन्यैश्चविविधैःशाकैरामैःपक्वैःपृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥ भक्ष्यभो

व खीर से भोजन करावै और विद्या व विनय से संयुत अपनी स्त्री समेत सपत्नीक ब्राह्मण को विधि से यथोचित भोजन कराकर व बिठाकर यथाशक्ति से वसन, अलंकार व कुकुम से पूजन करै ॥ ४७।४८ ॥ व मुनक्का और कैथा समेत खजूर व केला के फलों से तथा कटहर, नारियल, नारंगी व अनारों से पूजन करै ॥ ४९ ॥ और घी में पकेहुये गोधूमान्न व उत्तम मिष्टान्नों से और शर्करा व घृत से पूर्ण भोजनों से और राब व खांड से शोभित नैवेद्यों से ॥ ५० ॥ और ककड़ी के शाको से व

मूली समेत अदरखों से तथा अनेक भांति के अन्य कच्चे व पक्के अलग अलग शाकों से भोजन करावै ॥ ५१ ॥ व विशेष कर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य (चाटने योग्य पदार्थ) व पीनेयोग्य वस्तुवोंको और कंद व सुवासित गोरसों को परोसकर कोमल वचन कहताहुआ पुरुष यह कहै ॥ ५२ ॥ कि हे प्रभो ! यह स्वादुरसवाला भोजन आपके लिये रचागया है जो रुचताहोवै उसको मांगिये जो कि मैंने पकाया है ॥ ५३ ॥ मैं धन्यहूं व अनुग्रह कियागयाहूं और मन्दिर सार्थ कियागया तदनन्तर तांबूल व दक्षिणा को देकर ब्राह्मणों को बिदाकरै ॥ ५४ ॥ हे देवि ! चार वस्तुवों से मिलेहुये, प्रिय तांबूल को जो पुरुष मुझको देता है हे द्विजोत्तम ! वह मनुष्य

ज्यलेह्यपेयकन्दकानिविशेषतः ॥ सुवासितान्गोरसांश्च परिवेष्यमृदुब्रुवन् ॥ ५२ ॥ इदंस्वादुरसंभोज्यम्भवदर्थंप्रकल्पितम् ॥ याच्यतांरोचयेद्यच्च यन्मयापाचितंप्रभो ॥ ५३ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि कृतंसार्थञ्चमन्दिरम् ॥ विसर्जयेत्ततोविप्रान् दत्त्वाताम्बूलदक्षिणाः ॥ ५४ ॥ चतुर्भिर्मिलितन्देवि ताम्बूलम्ममवल्लभम् ॥ योददातिद्विजश्रेष्ठ स भवेत्सुभगोनरः ॥ ५५ ॥ सुभगाचसदाचारा वल्लभास्वजनेसदा ॥ पुत्रसौभाग्ययुक्ताच ताम्बूलैर्जायतेप्रिये ॥ ५६ ॥ पत्रैस्तुकेशवःप्रीतः पूगैरीशःसहोमया ॥ चूर्णकेनरमाप्रीताखादिरेणचमन्मथः ॥ ५७ ॥ चतुर्भिर्विश्वरूपोसौ यःपुष्णातिजगत्त्रयम्॥ परितोष्यसपत्नीकान् हस्तेदेयाश्चमोदकाः ॥ ५८ ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य भुञ्जीतसहबन्धुभिः ॥ असंक्रान्तिव्रतंनारी याकरोतीहसुप्रिये ॥ ५९ ॥ दारिद्र्यंपुत्रशोकञ्च वैधव्यंनाप्नुयात्कचित् ॥ नरोवायदिवानारी यः

उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ५५ ॥ व हे प्रिये ! तांबूलों से स्त्री सुभगा व उत्तम आचारवाली तथा सदैव अपने जनों में प्रिय और पुत्र व सौभाग्य से संयुत होती है ॥ ५६ ॥ पत्तों से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और सुपारी से पार्वती समेत महादेवजी प्रसन्न होते है व चून से लक्ष्मीजी प्रसन्न होती हैं और खैर से कामदेव प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ और चारो से ये विश्वरूप विष्णुजी प्रसन्न होते हैं जो कि त्रिलोक को पालन करते हैं स्त्री समेत ब्राह्मणों को प्रसन्नकर हाथ में लड्डुओं को देना चाहिये ॥ ५८ ॥ और हद्दके अन्ततक उनके पीछे जाकर भाइयों समेत भोजन करै हे सुप्रिये ! इस संसार में जो स्त्री संक्रान्तिरहित (मलमास) व्रतको करती है ॥ ५९ ॥ वह

कभी दरिद्रता, पुत्रशोक व वैधव्यता को नहीं प्राप्त होती है व जो पुरुष या स्त्री मलमास में व्रत करती है वह सब मनोरथों को प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ इस संसार में मलमास को प्राप्त होकर जिन मनुष्यों ने मुझ नारायण को परम भक्ति से नहीं पूजा है उनके सुख व पुत्र संपत्ति और मित्र तथा स्त्री अपने गुणों से संयुत कैसे होवैंगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायापुरुषोत्तममाहात्म्यंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पुरुषोत्तम सर की अहै महिमा अमित अपार । बहत्तरिवें अध्याय में सोई चरित सुखार । सनत्कुमारजी बोले कि मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य महाकाल

कुर्याच्चमलिम्लुचे ॥ ६० ॥ मलिम्लुचंप्राप्यनपूजितोयैर्नारायणोहंपरयेहभक्त्या ॥ कथम्भवेयुःसुखपुत्रसम्पत्सुहृत्सु भार्याःस्वगुणैरुपेताः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेपुरुषोत्तममाहात्म्यंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अधिमासेसमायाते यश्चान्यत्रस्थितिंनरः ॥ करोतिसनरोमूर्खो महाकालवनादृते ॥ १ ॥ अधिमासेनरोव्यास तीर्थेपुरुषोत्तमाभिधे ॥ स्नात्वादद्याच्चदानानि तस्यलोकाःसनातनाः ॥ २ ॥ पुरुषोत्तमंसमभ्यर्च्य रमालालितपादकम् ॥ तथैवचउमांदेवीं शङ्करेणचपूजयेत् ॥ ३ ॥ वाञ्छितार्थशतान्प्राप्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ भाद्रपदेसितेपक्ष एकादश्यांसमाहितः ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तमसरःस्नाति तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पुत्रदाराधनंसम्यगायुरारोग्यसम्पदः ॥ ५ ॥ नतेषान्दुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ तस्यपूर्वतटेभागे जलेश्वरमहेश्वरौ ॥ ६ ॥ तिष्ठतस्त

वनके सिवाय अन्यत्र स्थिति करता है वह मूर्खहै ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! मलमास में जो मनुष्य पुरुषोत्तम नामक तीर्थ में नहाकर दानों को देता है उसके सनातन लोक होते हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मीजी से लालित चरणवाले पुरुषोत्तमजी को भलीभांति पूजकर वैसेही शिवजी समेत पार्वती देवी को पूजै ॥ ३ ॥ तो सैकड़ों चाहेहुये मनोरथों को प्राप्त होकर वह विष्णुलोक में पूजाजाता है भाद्रपदके शुक्लपक्ष मे एकादशीतिथि मे सावधान होताहुआ जो पुरुष ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तम तडाग को नहाता है उसके पुण्य के फलको सुनिये कि पुत्र, स्त्री, धन व भलीभांति आयुर्बल, आरोग्य व संपदा होती हैं ॥ ५ ॥ और उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होता है उसके पूर्व

वाले भाग में जलेश व महेशजी ॥ ६ ॥ तपती नदी के किनारे टिके हैं जहां कि पुण्यवानों में श्रेष्ठ भगीरथराजा ने तपस्या कर उत्तम पुण्य को पाया है ॥ ७ ॥ और
सब लोकोंके सुख के लिये वे गगाजी को पृथ्वीमे लाये हैं उनके तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य तिलकी गऊ को देताहै ॥ ८॥ वह नर सब यज्ञों के फलको पाकर पुत्रवान्
हाता है और उमके ईशानभाग में भृगुश्रेष्ठ व धर्मात्मा परशुरामजी ने अपने कार्य की शुद्धि के लिये तप किया है और वहींपर सब तीर्थों के वर को देनेवाली व
नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नदीहै ॥ ९।१० ॥ उममें नहाकर मनुष्य हत्या के दोपमे रहित होता है और रामेश्वरजी को भलीभांति देखकर मनुष्य पापरहित होताहै ॥११॥

गङ्गाम्भूतलमानिन्येसर्वलोकसुखायवै ॥
पतीतीरे यत्रराजाभगीरथः ॥ तपस्तप्त्वापरंलेभेपुण्यम्पुण्यवतांवरः ॥ ७ ॥
तस्यतीर्थेनरःस्नात्वा तिलधेनुंप्रदापयेत ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञफलंप्राप्य पुत्रवाञ्जायतेनरः ॥ तस्येशानतरेभागे रामोभार्गव
सत्तमः ॥ ९ ॥ तपस्तेपेचधर्मात्मा आत्मकार्यविशुद्धये ॥ कौशिकीचसरिच्छ्रेष्ठासर्वतीर्थवरप्रदा ॥ १० ॥ तत्रस्ना
त्वानरोजातिहत्यादोषविवर्जितः ॥ रामेश्वरंसमालोक्य धूतपापोभवेन्नरः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख
ण्डेपुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स
व्यासउवाच ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातं पुराब्रह्मसनातनम् ॥ कस्मिन्कालेकदाजातं तन्नोवदसुविस्तरात् ॥ १ ॥
नत्कुमारउवाच ॥ शृणुध्वम्भोमहाप्राज्ञ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ गोमतीकुण्डजाम्पुण्यां पुरारुद्रेणभाषिताम् ॥ २ ॥
नैमिषारण्यआसीना ऋषयःशौनकादयः ॥ कथयन्तिकथाम्पुण्यां सर्वतीर्थोद्भवांशुभाम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्नवसरेपुण्ये
॥ ७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

दो० । अहै गोमतीकुण्ड की महिमा यथा अनन्त । तिहतरवे अध्याय में सोई कथा भनन्त ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय मनातन ब्रह्म गोमतीकुण्ड कहा
गयाहै वह कब और किसममय हुआहै उसको हमसे विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये जो कि गोमतीकुण्ड
से उपजी हुई व पुण्यदायिनी तथा पहले शिवजी से कही गई है ॥ २ ॥ नैमिषारण्यमें बैठहुये शौनकादिक ऋषि सब तीर्थोंसे उपजी हुई व पुण्यदायिनी उत्तम कथाको

कहते थे ॥ ३ ॥ उस पुण्यदायक समय में नारदजी ने पवित्र व पापहारक, उत्तम काशीजी के माहात्म्य को कहा ॥ ४ ॥ कि पुण्य व पापोंकी ऊषर भूमि काशीपुरी धन्य है जहां कि चाण्डाल व पण्डित निश्चयकर उत्तम मोक्षको पाते है ॥ ५ ॥ असी व वरणाके बीचमें पांच कोसका क्षेत्र बड़ा फलदायक है जहां कि देवता मरने की इच्छा करते हैं फिर अन्य मनुष्यों को क्या कहनाहै ॥६॥ ऐसा सुनकर उस समय हे व्यासजी ! सब देवताओं व ऋषियों के सुनतेहुये परंतप ब्रह्माजीने कहा ॥७॥ कि गोमती के समान नदी नहीं है और कृष्ण के समान देवता नहीं है और सब पाताल व पृथ्वी के बीचमें द्वारका के समान पुरी नहीं है ॥ ८ ॥ ऐसा निश्चय

काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कथितंवैनारदेन पवित्रंपापहारकम् ॥ ४ ॥ ऊषरःपुण्यपापानां धन्यावाराणसीपुरी ॥ ध्रुवं लभन्तेमोक्षञ्च शुभंचाण्डालपण्डिताः ॥ ५ ॥ असीवरणयोर्म्मध्ये पञ्चक्रोशंमहत्फलम् ॥ अमरामरणमिच्छन्ति काकथाइतरेजनाः ॥ ६ ॥ इतिश्रुत्वातदाव्यास स्वयम्भूःप्रत्यभाषत ॥ शृण्वतांसर्वदेवानां ऋषीणाञ्चपरन्तपः ॥ ७ ॥ नदीनगोमतीतुल्या कृष्णतुल्योनदेवता ॥ सर्वपातालभूमध्ये द्वारकानसमापुरी ॥८॥ इतितेनिश्चयंज्ञात्वा ऋषयः शौनकादयः ॥ यत्रतत्रस्थिताःसर्वे प्रातःसन्ध्यामुपासनम्॥ ९ ॥ तत्रैवगोमतीतीरे चक्रुस्तेवैधृतव्रताः ॥ सान्दीपनोपि तत्रैव प्रातःसन्ध्यांसमाचरत् ॥ १० ॥ एवंबहुतिथेकाले चरतस्तस्यवैव्रतम् ॥ सान्दीपनस्यप्राग्व्यास अवन्तीपुरवासि नः ॥ ११ ॥ तस्यैवकामपूर्णार्थं वीरौरामजनार्द्दनौ ॥ आयातौ सुकुमाराङ्गौ सततंब्रह्मचारिणौ ॥ १२ ॥ निवासंचक्रतु स्तस्य गुरोर्गेहेपरंतप ॥ तस्यपाठस्यतौसम्यग्विद्यांजगृहतुःपराम् ॥ १३ ॥ उषस्युषसितत्रैव दृश्यतेनयदागुरुः ॥

जानकर व्रत को धारण किये जहां तहां बैठेहुये उन सब शौनकादिक ऋषियों ने प्रातःकाल सन्ध्योपासन किया और सान्दीपनने भी वहीं प्रातःकाल सन्ध्या किया ॥ ९ । १० ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार बहुत समयतक पहले अवन्तीपुरवासी उन सांदीपनजीके व्रत करनेपर ॥११॥ उन्हींकी कामनाके पूर्ण होनेके लिये सुकुमार अङ्गवाले व सदैव ब्रह्मचारी बलभद्र व श्रीकृष्णजी आये ॥ १२ ॥ व हे परंतप ! उन्होंने उन सांदीपन गुरु के घर में निवास किया व उन अध्यापक के सकाश से भलीभांति उत्तम विद्या को ग्रहण किया ॥ १३ ॥ और जब नित्य प्रातःकाल के समय में वहीं गुरुजी न देखपड़ते थे तब यह पूंछते थे कि यह विद्या के उपदेश

का समयहै हमारे श्रेष्ठ गुरुजी कहां गये ॥ १४ ॥ उनके इस प्रकार पूंछने पर गुरुकी स्त्री बोली कि हे वत्स ! वे सदैव प्रातःकाल सन्ध्योपासन करते हैं ॥ १५ ॥ और वहीं पर तुम्हारे गुरु नित्य स्नान के लिये जाते हैं द्वारका में पवित्रकारिणी श्रेष्ठ गोमती नदी है ॥ १६ ॥ ऐसा सुनकर उस समय बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी ने विचार किया कि हमको यहां क्या अपना उत्तम हित करना चाहिये ॥ १७ ॥ मैं यहीं पर स्थित होकर गुरु का आगमन चाहताहूं इसी समय में सांदीपनिजी घर को आये ॥ १८ ॥ तदनन्तर उठकर गुरु का प्रणाम करने पर वे वीर नम्रता से झुँक कर गुरु से वचन बोले ॥ १९ ॥ कि हे महायोगिन् ! हमारे निवास का

विद्योपदेशकालोयं क्वगतोनोगुरुर्वरः ॥ १४ ॥ इतिपृष्टेतयोरेवं गुरुपत्नीउवाचह ॥ सदैवकुरुतेवत्स प्रातःसन्ध्यामुपासनम् ॥ १५ ॥ नित्यंगच्छतितत्रैव गुरुस्तेस्नानकारणात् ॥ गोमतीवैसरिच्छ्रेष्ठा द्वारकायांचपावनी ॥ १६ ॥ इतिश्रुत्वा तदाकृष्णो रामेणसहसंयुतः ॥ किंकर्त्तव्यमिहास्माभिरात्मनोहितमुत्तमम् ॥ १७ ॥ गुरोरागमनंकाङ्क्षे अत्रैवस्थितिमाश्रितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सान्दीपनिरगाद्गृहम् ॥ १८ ॥ ततउत्थायतौवीरौ गुरोरावन्दनेकृते ॥ प्रश्रयावनतौभूत्वा ह्यब्रूतांवचनंगुरोः ॥ १९ ॥ श्रूयताम्भोमहायोगिन्नस्माकंवासकारणम् ॥ विद्यार्थमिहसंप्राप्तो युष्माकञ्चगृहोत्तमे ॥ २० ॥ प्रातःकालेचतेब्रह्मन् समयोनास्तिवैप्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य कृष्णस्यचबलस्यच ॥ २१ ॥ उवाचभगवन्व्यास आत्मनोव्रतकारणम् ॥ अस्माकंपरमंवत्स व्रतंतच्छाश्वतंगतम् ॥ २२ ॥ कर्त्तव्यंगोमतीस्नानं प्रातःकालेसदाबुधैः ॥ तत्रैवोपासनंपुण्यं सन्ध्यायामितिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ इतिविश्वस्यभगवन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥

कारण सुनिये कि तुम्हारे उत्तम घरमें मै विद्याके लिये प्राप्त हुआहूं ॥ २० ॥ व हे ब्रह्मन्, प्रभो ! प्रातःकालमें तुमको समय नहीं होताहै उन श्रीकृष्ण व बलभद्रजी के इस वचन को सुनकर ॥ २१ ॥ हे भगवन्, व्यासजी ! उन सांदीपनिने अपने व्रतका कारण कहा कि हे वत्स ! हमारा वह उत्तम व्रत शाश्वत (सदैववाला) माना गयाहै ॥ २२ ॥ सदैव प्रातःकाल में पण्डितों को गोमती स्नान करना चाहिये और वहींपर सन्ध्यासमय में पुण्यदायिनी उपासना करना चाहिये यह निश्चय

किियागया है॥ २३ ॥ हे भगवन् ! ऐसा विश्वासकर जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ऐसा सुनकर कारण से मनुजरूपवाले भगवान् विष्णुजी ने ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! कुशस्थली में गोमतीजीका आराधन किया जहांकि विश्वेश्वर देव और अतिउत्तम यज्ञकुण्डहै॥ २५॥ और कुण्डेश्वर के उत्तरभाग में वे गोमतीजी भलीभांति प्राप्तहुई और पातालतल को भेदनकर सरस्वतीजी से संयोग को प्राप्तहुई ॥ २६ ॥ प्रातःकाल उठकर उन सबोंने व्यासजी के आश्रम में प्राप्त नदियोंमें श्रेष्ठ सुन्दर नेत्रान्तों वाली गोमतीजी को देखा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! नदियों में श्रेष्ठ गोमतीजी यहींपर प्राप्तहुई हैं व यहींपर मनुष्य स्नान, दानादिक सब करते हैं ॥ २८ ॥ और यज्ञकुण्ड

तच्छ्रुत्वाभगवान्विष्णुःकारणमानुषरूपवान् ॥ २४ ॥ गोमत्याराधनंचक्रे कुशस्थल्यांद्विजोत्तम ॥ यत्रविश्वेश्वरोदेवो यज्ञकुण्डमनुत्तमम् ॥ २५ ॥ कुण्डेश्वरस्योत्तरेभागे गोमतीसासमागता ॥ पातालतलमाभेद्य सरस्वत्यातुसङ्गता ॥ २६ ॥ प्रातरुत्थायतेसर्वे गोमतींसरितांवराम् ॥ ददर्शरुचिरापाङ्गीं व्यासस्याश्रमभागिनीम् ॥ २७ ॥ अत्रैवचागताब्रह्मन् गोमतीसरितांवरा ॥ स्नानदानादिकंसर्वमत्रैवसमुपासते ॥ २८ ॥ गोमतीचसमालीना यज्ञकुण्डेसरस्वती ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिन् गोमतीकुण्डमुच्यते ॥ २९ ॥ सर्वेषामपिलोकानां मार्गोत्रैवचविद्यते ॥ तस्माद्व्यासमहापुण्यम्भुवितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ भाद्रपदेऽसिताष्टम्यां कृष्णजन्मसमुद्भवे॥ ३१ ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं रात्रौजागरणंचरेत्॥उपोष्यविधिवद्व्यास सशिष्यंव्यासमर्चयेत् ॥ ३२ ॥ वैष्णवांश्चनरांश्चैव कृष्णजन्मोत्सुकान्वरान् ॥ नानासुगन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रालङ्कारसंयुतैः ॥ ३३ ॥ गोब्राह्मणानांपूजाञ्च कुर्वते

में गोमती व सरस्वतीजी मिली हैं तब से लगाकर इस संसार में गोमतीकुण्ड कहाजाता है ॥ २९ ॥ और यहींपर सब लोकोंका मार्ग विद्यमान है इसलिये हे व्यासजी ! पृथ्वीमें अतिउत्तम तीर्थ महापुण्यदायक है ॥ ३० ॥ सब पापोंका विनाशक गोमतीकुण्ड कहागया है भाद्रपदमें कृष्णपक्ष की अष्टमी में कृष्णजी का जन्म होनेपर ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर सदैव मनुष्य रात्रिमें जागरण करै और विधिपूर्वक उपासकर शिष्य समेत व्यासको पूजनकरै ॥ ३२ ॥ और श्रीकृष्णजन्ममें उत्कण्ठित उत्तम वैष्णवनरों को अनेक भांतिके सुगन्धवाले पुष्पोंसे संयुत व वस्त्रों तथा आभूषणों से युक्त वस्तुवों से पूजनकरै ॥ ३३ ॥ और सावधान होते

हुये जो पुरुष गौ व ब्राह्मणों का पूजन करते हैं उनको सब लोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ और गोमती के स्नान से उपजाहुआ पुण्य व वासुदेवजी का समागम तथा मनोरथकी प्राप्ति होतीहै इसमें सन्देह नहीं है ॥३५॥ और चैत्रके शुक्लपक्षमें जब एकादशी होवै उस दिन गोमतीमें विशेषकर स्नानकर मनुष्य ॥३६॥ रात्रिमें जागरण कर विष्णुजी का पूजन करै तदनन्तर आमलकी यात्राकरै तो प्रदक्षिणा के पग २ पै उनको गोसहस्रका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है जो मनुष्य इस पवित्र व पापहारिणी कथाको सुनताहै ॥ ३७ । ३८ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजाजाता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे

येसमाहिताः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् सर्वलोकेषुविद्यते ॥ ३४ ॥ गोमतीस्नानजम्पुण्यं वासुदेवसमागमम् ॥ मनोरथस्यसंप्राप्तिर्जायतेनात्रसंशयः ॥ ३५ ॥ तथाचैत्रसितेपक्षेयदाचैकादशीभवेत् ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा गोमत्यांचविशेषतः ॥ ३६ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा विष्णुपूजांतथैवच ॥ आमलकीततोयात्राप्रदक्षिणपदेपदे ॥ ३७ ॥ गोसहस्रफलंतेषांप्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ यःशृणोतिकथाम्पुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ ३८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगोमतीकुण्डमाहात्म्यन्नामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुण्डेश्वरइतिख्यातं यत्तुतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ १ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शुचिःप्रयतमानसः ॥ विमानशतसंयुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ २ ॥ भुविधन्यतरंतीर्थं सर्वपापहरम्परम् ॥ स्वर्गङ्गासङ्गमोयत्र गङ्गेश्वरसमीपतः ॥ ३ ॥ महापापहरम्पुण्यं महापुण्यफलप्रदम् ॥ आकाशात्पतिता य

देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमतीकुण्डमाहात्म्यंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । वामनकुण्ड कथा तथा सहस विष्णुके नाम । चौहत्तरि अध्यायमें वर्णित चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि कुण्डेश्वर ऐसा प्रसिद्ध जो अतिउत्तम तीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर मनुष्य ॥ १ ॥ सब पापों से छूटजाताहै व पवित्र तथा शुचिमनवाला वह पुरुष सौ विमानों से संयुत होकर शिवलोकमें पूजाजाता है ॥२॥ और पृथ्वीमें वहां सब पापोंको हरनेवाला बड़ा धन्य व उत्तमतीर्थ है जहां कि गङ्गेश्वरजी के समीप आकाशगङ्गाजीका संगमहै॥३॥ वह

तीर्थ महापापहारक व पवित्र तथा महापुण्य के फलको देनेवाला है जहां कि त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी आकाश मे गिरी हैं ॥ ४ ॥ उनको शम्भु महादेवजीने उसीक्षण मस्तकपै धारण कियाहै उस तीर्थमें नहाकर मनुष्य गंगेश्वरजीको देखै ॥५॥ तो गंगाजीके स्नानके फलको पाकर वह विष्णुलोकमें पूजा जाताहै व विश्वेश्वरजीको प्राप्त होकर जो मनुष्य उस तीर्थमें निवास करै वह सब पातकों से शुद्धचित्त होकर विष्णुजी के लोकको प्राप्तहोता है और महर्षियो से पृथ्वीमें महापवित्र अन्यतीर्थ कहागयाहै ॥ ६।७ ॥ वामनकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध जोकि तीनोंलोकोंमें प्रसिद्धहै और जिसके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है ॥८॥ व सैकडों

त्रगङ्गात्रैलोक्यपावनी ॥ ४ ॥ विधृताशिरसासद्यो महादेवेनशम्भुना ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा गङ्गेशमवलोकये त् ॥ ५ ॥ गङ्गास्नानफलंप्राप्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ विश्वेश्वरमनुप्राप्य तस्मिंस्तीर्थेनरोवसेत् ॥ ६ ॥ सर्वपापवि शुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ तीर्थमन्यन्महापुण्यंभुविख्यातंमहर्षिभिः ॥ ७ ॥ वामनकुण्डेतिविख्यातं त्रिषु लोकेषुविश्रुतम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याऽव्यपोह्यते ॥ ८ ॥ मनोरथशतम्प्राप्य पश्चाद्विष्णुपुरंव्रजेत् ॥ व्यासउ वाच ॥ कदाकालेसमुत्पन्नं वामनाख्यम्पुरानघ ॥ ९ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवा च ॥ श्रूयताम्भोद्विजश्रेष्ठ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ १० ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ दैत्येन्द्रश्चपुराप्रो क्तो विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ११ ॥ प्रह्लादइतिविख्यातः सर्वधर्मभृतांवरः ॥ आचारविजितोधर्मःसत्येनविजितारमा ॥ १२ ॥ धैर्येणचधृतालोकाः क्षमयाविधृतामही ॥ गाम्भीर्येणार्णवादिव्याः शौर्येणशत्रुसङ्घकाः ॥ १३ ॥ प्रश्रयेणाभ्या

मनोरथों को पाकर पश्चात् वह विष्णुलोक को जाताहै व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातनसमय वामननामक कुण्ड किस समय उत्पन्न हुआहै ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं इस सबको तुमसे सुना चाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ १० ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै पुरातन समय सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ व विष्णुजीकी भक्तिमें तत्पर प्रह्लाद ऐसे प्रसिद्ध दैत्येन्द्र कहेगये हैं उनसे आचारसे धर्म जीतागया व सत्यसे लक्ष्मीजी जीतीगई ॥ ११।१२ ॥ व धैर्य से लोक धारण कियेगयेहैं व क्षमामे पृथ्वी धारण कीगईहै और गम्भीरतासे दिव्य समुद्र व शूरतासे शत्रुओंके समूह जीतेगये ॥ १३ ॥

और उन महात्माने नम्रता से अतिथियों को जीता और दक्षिणाओं से यज्ञ जीतीगई व हव्यसे अग्नि जीतीगई ॥ १४ ॥ और पवित्रता व आचार से वे शुद्धचित्तवाले तथा तपस्यासे नष्ट अमङ्गलवाले थे और उन प्रह्लादजी से भोजन व आच्छादनादिकों से व दान, मानसे ब्राह्मण जीतेगये ॥ १५ ॥ व संस्कार से जन्म जीतागया और दमसे सनातन आत्मा जीतागया तथा प्राणायामसे पवन जीतागया व योग और ध्यान से विष्णुजी जीतेगये ॥ १६ ॥ और इन्द्रके तुल्य वे महायोगी सत्य व धर्ममें तत्पर हुये प्रह्लादके समान ज्ञानी न हुआहै और न होगा ॥ १७ ॥ कि जिनके उत्तम आचारवाले पौत्र बलि ऐसे कहेजाते हैं भलीभांति पालन करते

गताश्च जितास्तेनमहात्मना ॥ दक्षिणानिर्जितोयज्ञो हविषाहव्यवाहनः ॥ १४ ॥ शौचाचारविशुद्धात्मा तपसाचहता शुभः ॥ दानमानजिताविप्रा भोजनाच्छादनादिभिः ॥ १५ ॥ संस्कारेणजितंजन्म दमेनात्मासनातनः ॥ प्राणायामजितोवायुर्योगध्यानजितोहरिः ॥ १६ ॥ इन्द्रतुल्योमहायोगी सत्यधर्मपरायणः ॥ प्रह्लादेनसमोधीरो नभूतोनभविष्यति ॥ १७ ॥ यस्यपौत्रःसदाचारी बलिरित्यभिधीयते ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजानित्यंविवर्द्धिताः ॥ १८ ॥ नाल्पायुर्नजडोमूर्खो नरोगीनचमत्सरी ॥ अपुत्रोधनहीनश्च कोपिनास्तिमहीतले ॥ १९ ॥ महाराजोमहीपालो यज्वाविपुलदक्षिणः ॥ सप्तद्वीपवतीतेन पालितावसुधासदा ॥ २० ॥ एकदाचसमासीने सभामध्येवरानने ॥ जयशब्देवर्त्तमाने गन्धर्वाललितंजगुः ॥ २१ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु नन्नृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ कथ्यमानेकथांदिव्यांपौराणस्मृतिसम्मिताम् ॥ २२ ॥ सूतावैतालिकाःसिद्धाश्चारणाश्चबहुश्रुताः ॥ ऋषयश्चसमायातास्तत्रैवद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ सुन्दोप

हुये उनके प्रजा नित्यही बढ़तेभये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में कोईभी मनुष्य न थोड़ीआयुवाला, जड़, मूर्ख, रोगी और न ईर्षावान् था और कोई पुत्ररहित व धनसे हीन न था ॥ १९ ॥ और यज्ञकर्त्ता व बहुत दक्षिणावाले वे प्रह्लाद भूपति महाराजथे और उनसे सात द्वीपोंवाली पृथ्वी सदैव पालन कीगई ॥ २० ॥ एक समय उत्तममुखवाले वे बलि जब सभाके बीचमें बैठेथे तब जयशब्द वर्तमान होनेपर गन्धर्वलोग प्रियपूर्वक गानेलगे ॥ २१ ॥ और बाजनों के बजनेपर अप्सराओंके गण नाचनेलगे व पुराणों व स्मृतियों में कहीहुई दिव्यकथा के कहने पर ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! सूत, बोधकर, सिद्ध व चारण तथा बहुत शास्त्रोंवाले ऋषिलोग वहींपर भली

भांति आये ॥ २३ ॥ और सुंद, उपसुंद, हुंडादिक व भयङ्कर महिषासुर और शुम्भ,निशुम्भ, धूम्राक्ष व कालकेय दानव ॥ २४ ॥ व कालनेमि, विक्रान्तसौहृद, मूषक, यम, निकुम्भ, कुम्भ, विपद व महाबलवान् अन्धक ॥ २५ ॥ और शङ्ख, जलंधर, रौद्र व अधिक बलवाला वातापी, सर्वजिह्व, हंता, कामचारी, हलायुध ॥ २६ ॥ ये व दानवों के वंशको बढ़ानेवाले अन्य बहुतसे दानव उन पापरहित बलि राजाकी उपासना करतेभये ॥ २७ ॥ व सिद्ध, नाग, यक्ष, किन्नर व किंपुरुष, आकाशचारी, भूमिचारी, बाल व भयङ्कर राक्षस ॥ २८ ॥ ये व अन्य बहुतसे लोग राजा बलिकी उपासना करते थे हे द्विजोत्तम ! वहांपर महादिव्य सभा शोभित हुई ॥ २९ ॥

सुन्दहुण्डाद्या महिषासुरकोल्बणः ॥ शुम्भनिशुम्भधूम्राक्षकालकेयाश्चदानवाः ॥ २४ ॥ कालनेमिश्चविक्रान्तसौहृदोमूषकोयमः ॥ निकुम्भकुम्भौविपदोह्यन्धकश्चमहाबलः ॥ २५ ॥ शङ्खोजलंधरोरौद्रो वातापीचबलाधिकः ॥ सर्वजिह्वश्चहन्ताच कामचारीहलायुधः ॥ २६ ॥ एतेचान्येचबहवोदनुवंशविवर्द्धनाः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतंवै बलिराजमकल्मषम् ॥ २७ ॥ सिद्धानागाश्चयक्षाश्च किंपुरुषास्तुकिन्नराः ॥ खेचराभूचराबाला राक्षसाश्चैवदारुणाः ॥ २८ ॥ एते चान्येचबहवो राजानंपर्युपासते ॥ सभातत्रमहादिव्या शुशुभेचद्विजोत्तम ॥ २९ ॥ ग्रहैरुज्ज्वलितैःकीर्णं शरदीवनभस्थलम् ॥ तस्यांसभायामासीनो रराजबलिराट्तथा ॥ ३० ॥ महद्भिरिवसंवीतो वासवोदिविदैवतैः ॥ एकदाचसभामध्ये नारदोदेवदर्शनः ॥ ३१ ॥ आगतस्तेषुसर्वेषु दानवेषुसभाङ्गणे ॥ दृष्ट्वातमागतंसर्वे उत्तस्थुर्दितिनन्दनाः ॥ ३२ ॥ ववन्दुः सर्वशःपूर्वं बलिनःकिन्नरोत्तमाः ॥ सतकृत्यचासनंदत्त्वा पप्रच्छकुशलंनृपः ॥ ३३ ॥ कृतातिथ्यःसमासीनो नारदः

जैसे कि शरदृऋतुमें उज्ज्वल ग्रहों से व्याप्त आकाशस्थल होवै वैसेही उस सभामें बैठाहुआ राजा बलि शोभित भया ॥ ३० ॥ जैसे कि स्वर्ग में पवन देवताओं से घिरेहुये इन्द्रहोवैं एक समय सभाके बीचमें देवदर्शन नारदजी ॥ ३१ ॥ सभा के आंगन में उन सब दानवों के मध्यमें आये व आयेहुये उन नारदजी को देख कर सब दैत्य उठे ॥ ३२ ॥ और पहलेही सब बलवान् दैत्य व किन्नरोत्तमोंने प्रणाम किया और सत्कारकर आसन देकर राजाने कुशल पूछा ॥ ३३ ॥ और कीहुई पहु-

नईवाले बैठेहुये नारदजीने सत्तम बलिजी से कहा नारदजी बोले कि हे दितिजोत्तम ! सुनिये कि मैं इन्द्रके मन्दिर में गयाथा ॥ ३४ ॥ वहां सुन्दरी देवसभा थी और उत्तम अभिप्रायसे संयुत गन्धर्वों समेत इन्द्रादिक देवता वहां ॥ ३५ ॥ बैठे हुये आपसमें पवित्र कथाको कहतेथे तदनन्तर मुझसे कहीहुई उत्तम कथाको उन्हों ने नहीं सहा ॥ ३६ ॥ कि पुरातन समय हिरण्यकशिपु प्रजापति दैत्य नेता व त्रिलोकको जीतनेवाला हुआहै कि जिसने इस पृथ्वीको जीताहै ॥ ३७ ॥ और सब लोकों को वशकरके उसने पृथ्वीको भोगाहै बड़ेतेज से संयुत महाबलवान् व पराक्रमी ॥ ३८ ॥ और सुन्दर व सब कहीं जानेवाला और कामी वह हिरण्यकशिपु नृसिंह

प्राहसत्तमम् ॥ नारदउवाच ॥ श्रूयतांदितिजश्रेष्ठगतोहंवृषमन्दिरे ॥ ३४ ॥ तत्रदेवसभारम्या दिव्याभिप्रायसंयुताः ॥ तत्रदेवाःसगन्धर्वाः पुरन्दरपुरोगमाः ॥ ३५ ॥ समासीनाःकथाम्पुण्यां कथयन्तःपरस्परम् ॥ ततस्तेतुकथांशुभ्रां म याख्यातान्नसेहिरे ॥ ३६ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यः पुरासीत्तुप्रजापतिः ॥ त्रैलोक्यविजयीनेता येनेयंवसुधाजिता ॥ ३७ ॥ सर्वलोकान्वशीकृत्य बुभुजेचवसुन्धराम् ॥ अतीवतेजःसम्पन्नो महाबलपराक्रमी ॥ ३८ ॥ वशीचसर्वगःकामी नृसिं हेननिपातितः ॥ बलिःकियद्बलीलोके नारदत्वंप्रशंससि ॥ ३९ ॥ इतिमान्धर्षयित्वाच विडौजालोकसंग्रही ॥ बहुधा चाकरोद्वादान् कटुकान्दानवोत्तम ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वंदानवश्रेष्ठ पितृपर्यागतांमहीम् ॥ विजित्वासार्वभौमत्वं लभस्व वसुधाधिप ॥ ४१ ॥ कियद्बलयुतालुब्धा देवाश्चदनुजोत्तम ॥ पलायनपरादान्ताः सदासमरभीरवः ॥ ४२ ॥ ममवा क्यपरोभूत्वा त्रैलोक्याधिपतिर्भव ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा बलिर्वैरोचनस्तदा ॥ ४३ ॥ चकारकोपमतुलं त्रैलोक्यविजये

जीसे मारागया है हे नारदजी ! बलि कितना बलवान् है कि जिसकी तुम प्रशंसा करतेहो ॥ ३९ ॥ हे दानवोत्तम ! इस प्रकार मेरी धर्षणाकर लोकोंका संग्रह करने वाले इन्द्रजी ने बहुत से कटुवादों को किया ॥ ४० ॥ इसलिये हे दानवश्रेष्ठ, भूपते ! पितरोंकी परंपरासे आईहुई पृथ्वीको जीतकर चक्रवर्तित्वको प्राप्त होवो ॥ ४१ ॥ हे दानवोत्तम ! लोभी दानव कितने बलवान् हैं जोकि भागने में तत्पर व इन्द्रियोंको दमन किये तथा सदैव समर से डरते हैं ॥ ४२ ॥ मेरे वचन में तत्पर होकर त्रिलोक के स्वामी होवो उस समय नारदजी के वचन को सुनकर विरोचन के पुत्र बलिने ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक के विजय के निमित्त बड़ा क्रोध किया सब

दैत्योंसे सम्मतिकर समस्त दैत्योंके स्वामी बलिने ॥ ४४ ॥ बलवान् इन्द्रके साथ बड़ा तीव्र समर किया और इन्द्रसमेत सब देवताओंको जीतकर वशकिया ॥ ४५ ॥ व विरोचन का पुत्र बलि सबलोकोंका स्वामी हुआ और देवता छूटे राज्यवाले व हारेहुये तथा हरे हुये अधिकारवाले हुये ॥ ४६ ॥ उस समय देवताओंके गण मनुष्यों की नाईं पृथ्वी में विचरनेलगे और कुछ समयतक प्राप्तहोकर ब्रह्माजी की शरणमें गये ॥ ४७ ॥ व बोले कि हे परंतप, ब्रह्मन् ! हमलोग बलिसे सुरलोक से अलग किये गये क्या करैं व कहां जावैं और क्या यत्न करैं ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तमो ! तुमलोगों का जो उत्तम यत्न है उसको सुनिये कि हे सुरोत्तमो ! तुम

द्विज ॥ मन्त्रयित्वाऽसुरान्सर्वान् सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ ४४ ॥ संग्राममकरोत्तीव्रंवासवेनबलीयसा ॥ जित्वाचसकलान्देवान् वशीचक्रेसवासवान् ॥ ४५ ॥ सर्वलोकेश्वरोजातो बलिर्वैरोचनोऽसुरः ॥ हृताधिकारास्त्रिदशा भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ ४६ ॥ विचरन्तियथामर्त्यास्तदादेवगणाभुवि ॥ किञ्चित्कालंसमासाद्य ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मन्हिबलिनाभ्रष्टा देवलोकात्परंतप ॥ किंकुर्मःक्वगच्छामः किमुपायञ्चकुर्महे ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसुरश्रेष्ठा युष्माकंसाधनंपरम् ॥ पद्मावतीम्पुरींरम्यांयूयंयातामरोत्तमाः ॥ ४९ ॥ तत्रतीर्थवरंश्रेष्ठं नाम्नाचोत्तरमानसम् ॥ यत्राष्टसिद्धिदाख्याता महासिद्धिप्रदानृणाम् ॥ ५० ॥ निधिश्चपद्मप्रभृतिस्तत्रातिष्ठतिसत्तम ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तत्रस्नात्वानरःपश्येत्सिद्धेशींयःसुसिद्धिदाम् ॥ ऋद्धिसिद्धिपरोभूत्वा विष्णुलोकेमहीयते ॥ ५२ ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे दशम्यांदिवसेतथा ॥ अष्टसिद्धिंशमीमूले गणेशमभिपूजयेत् ॥ ५३ ॥ विजयीसर्वकामेषु जाय

लोग सुन्दरी पद्मावतीपुरी को जावो ॥ ४९ ॥ वहां उत्तरमानस नामक तीर्थों में श्रेष्ठ उत्तमतीर्थ है जहां कि मनुष्यों को महासिद्धियों को देनेवाली अष्टसिद्धिदा भगवती प्रसिद्ध हैं ॥ ५० ॥ व हे सत्तम ! वहां पद्मादिक निधि स्थित हैं और उसी के दक्षिणभाग में अतिउत्तम विष्णुतीर्थ है ॥ ५१ ॥ उसमें नहाकर जो मनुष्य सुसिद्धिदायिनी सिद्धेशीजी को देखता है वह ऋद्धि सिद्धि से संयुत होकर विष्णुलोक मे पूजाजाता है ॥ ५२ ॥ कुँवार के शुक्लपक्ष में दशमी के दिन जो मनुष्य अष्टसिद्धि व शमीवृक्ष की जड़ में गणेशजी को पूजता है ॥ ५३ ॥ वह सब कामों में विजयवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है शमीवृक्षके मूलमें स्थित

ऋद्धि, सिद्धियों के वरको देनेवाली सनातनी भगवती जी को ॥ ५४ ॥ और समस्त कामनाओं के देनेवाले गणेशजी को जो मनुष्य नित्य पूजता है वह समस्त कामनाओं के वरको पाकर पुत्रवान् व धनवान् होताहै ॥ ५५ ॥ इसलिये सब यत्नसे महाकालवन को जावै जहां कि विष्णुसर तीर्थ है वहां शीघ्रही जाइये ॥ ५६ ॥ हे सुरोत्तमो ! अतुल तेजवाले विष्णुजी की उपासना कीजिये वे सुरश्रेष्ठ विष्णुजी सब दुःखोंसे रक्षक होंगे ॥ ५७ ॥ यहां आकर व पवित्र होकर विष्णुजी की भक्तिमें परायण सिद्धोंने स्नान दानादिक कर्मोंसे उपासना कियाहै ॥ ५८ ॥ उन महात्मा ब्रह्माजी के इस प्रकार वचन को सुनकर उस समय उन सुरोत्तमों ने उन ब्रह्मादेव

शमीमूलस्थितांनित्यां ऋद्धिसिद्धिवरप्रदाम् ॥ ५४ ॥ पूजयेद्यैनरोनित्यं गणेशंसर्वकामदम् ॥ सर्वकामवरंलब्ध्वा पुत्रवान्धनवान्भवेत् ॥ ५५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाकालवनंव्रजेत् ॥ यत्रविष्णुसरस्तीर्थं तत्रगच्छथमाचिरम् ॥ ५६ ॥ उपासनांसुरश्रेष्ठा विष्णोरतुलतेजसः ॥ सतुवैसर्वदुःखेभ्यस्त्राताभावीसुरोत्तमः ॥ ५७ ॥ अत्रागत्यशुचिर्भूत्वा स्नानदानादिकर्मभिः ॥ उपासाञ्चक्रिरेसिद्धाविष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ५८ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य ब्रह्मणःशंसितात्मनः ॥ ब्रह्माणंततदादेवमूचुःसर्वेसुरोत्तमाः ॥ ५९ ॥ देवाऊचुः ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण विष्णुभक्तिपरोभवेत् ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामस्त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयतांभोःसुरश्रेष्ठा विष्णुभक्तिमनुत्तमाम् ॥ शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णंचतुर्भुजम् ॥ ६१ ॥ प्रसन्नवदनंध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ लाभस्तेषांजयस्तेषां कुतस्तेषाम्पराजयः ॥ ६२ ॥ येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थोजनार्द्दनः ॥ अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थम्पूज्यतेयःसुरैरपि ॥ ६३ ॥ सर्वविघ्नहर

जीसे कहा ॥ ५९ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! किस विधिसे मनुष्य विष्णुजीकी भक्तिमें तत्पर होवै हे वेदविदों में उत्तम ! उससबको मैं तुमसे सुना चाहताहूं ॥ ६० ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तमो ! अतिउत्तम विष्णुजी की भक्तिको सुनिये कि श्वेतवसनको धारे व चन्द्रमा के समान वर्णवाले तथा चार भुजाओंवाले व प्रसन्नमुखवाले विष्णुजी को सब विघ्नोंके शान्त होनेके लिये ध्यान करै क्योंकि उनको लाभ होताहै व उनकी जीत होतीहै और उनका पराजय कहां से होताहै ॥ ६१ । ६२ ॥ कि जिन के हृदयमें श्यामकमल की नाईं श्याम विष्णुजी स्थितहैं चाहेहुये प्रयोजन की सिद्धिके लिये जो देवताओं से भी पूजेजाते हैं ॥ ६३ ॥ और जो सब विघ्नोंको

नाशनेवाले हैं उन गणेशजी के लिये प्रणाम है, कल्प के आदिमें सृष्टिकी इच्छावाले विष्णुजी ने मेरी प्रेरणा किया ॥ ६४ ॥ और विष्णुजी के ध्यानमें लगाहुआ मैं प्रजाओं के रचने के लिये न समर्थ हुआ इसी अवसर में मार्कण्डेय महर्षिजी शीघ्रही आगये ॥ ६५ ॥ जोकि सब सिद्धोंके स्वामी, दान्त, दीर्घायु व इन्द्रियों को जीतनेवाले थे वे प्रफुल्लित लोचनोंवाले होकर और अन्योन्य सत्कारकर ॥ ६६ ॥ और उत्तम कल्याण को पूंछतेहुये वे सुरोत्तम सुखपूर्वक बैठे तब मैंने पूंछा कि हे भगवन् ! मुझसे कीहुई प्रजा किस प्रकार होवैगी ॥ ६७ ॥ हे मुनिवन्दित, भगवन् ! वह सब मैं सुना चाहताहूं श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि सब दुःखोंको नाशनेवाली

स्तस्मै गणाधिपतयेनमः ॥ कल्पादौसृष्टिकामेन प्रेरितोहञ्च शौरिणा ॥ ६४ ॥ नशक्तोहंप्रजाःकर्तुं विष्णुध्यानपराय णः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसद्यो मार्कण्डेयोमहाऋषिः ॥ ६५ ॥ सर्वसिद्धेश्वरोदान्तो दीर्घायुर्विजितेन्द्रियः ॥ प्रफुल्लनयनो भूत्वा सत्कृत्यचेतरेतरम् ॥ ६६ ॥ पृच्छमानौपरम्भद्रं सुखासीनौसुरोत्तमौ ॥ भगवन्केनप्रकारेण प्रजामेविहिताभ वेत ॥ ६७ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि भगवन्मुनिवन्दित ॥ श्रीमार्कण्डेयउवाच ॥ विष्णुभक्तिःपरानित्या सर्वार्तिदुःख नाशिनी ॥ ६८ ॥ सर्वपापहरापुण्या सर्वप्रीतिप्रदायिनी ॥ एषाब्राह्मीमहाविद्या नदेयायस्यकस्यचित् ॥ ६९ ॥ कृत घ्नायह्यशिष्याय नास्तिकायानृतायच ॥ ईर्षकायचरूक्षायकामुकायकदाचन ॥ ७० ॥ तद्गतंहन्तितज्ज्ञानं यतोधर्मं सनातनम् ॥ एतद्गुह्यतमंशास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७१ ॥ पवित्रञ्चपवित्राणांपावनानाञ्चपावनम् ॥ विष्णोर्नामसह स्रञ्च विष्णुभक्तिकरंशुभम् ॥ ७२ ॥ सर्वसिद्धिकरंनृणाम्भुक्तिमुक्तिप्रदंशुभम् ॥ ॐअस्यश्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य

उत्तम विष्णुभक्ति है ॥ ६८ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाली व पुण्यदायिनी तथा सब आनन्दों को देनेवाली है यह ब्राह्मीविद्या जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ६९ ॥ कृतघ्न,अशिष्य,नास्तिक व असत्य तथा ईर्षावान्, अविनीत व कामीके लिये कभी न देना चाहिये ॥ ७० ॥ क्योंकि उसमें प्राप्त वह ज्ञान सनातनधर्मको नाश करता है यह शास्त्र सब पापोंको नाशनेवाला व अत्यन्त गुप्तहै ॥ ७१ ॥ और पवित्रों के मध्यमें पवित्र व पवित्र करनेवालों में पवित्रकारकहै और विष्णुसहस्रनाम उत्तम व विष्णुभक्तिकारकहै ॥ ७२ ॥ जोकि मनुष्योंको सब सिद्धिकारक व भुक्ति, मुक्तिका दायक तथा उत्तमहै इस विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रके ब्रह्माऋषि हैं विष्णु देवता हैं अनुष्टुप्

छन्द है और सब कामनाओं की प्राप्तिके लिये जप में विनियोग कियाजाता है ॥ अब ध्यान कहते हैं कि जलसमेत मेघके समान नीलवर्णवाले और उदारस्वभावको दिखलानेहारे, हाथमें पर्वत को लिये व वेणु के बजानेमें प्रवीण तथा व्रजवासीजनोंके पालक व कामिनी स्त्रियोंकी क्रीड़ामें चञ्चल और नवीन तुलसीकी मालाको पहने हुये गोपालबालक श्रीकृष्णजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ७३ ॥ संसारमें व्यापक, जयशीलवाले, इन्द्रियोंके स्वामी, सबोंकी आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, रात्रिनाथ, प्राणीगणों के आशय के आशय ॥ ७४ ॥ आदिअन्तरहित, क्रीड़ा करनेवाले, सर्वज्ञाता, सबोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, संसारको पोषणकरने

ब्रह्माऋषिर्विष्णुर्देवता अनुष्टुप्छन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थंजपे विनियोगः ॥ अथ ध्यानम् ॥ सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं करतलधृतशैलं वेणुवाद्यैरसालम् ॥ व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं तरुणतुलसिमालं नौमिगोपालबालम् ॥ ७३ ॥ ॐविष्णुर्जिष्णुर्हृषीकेशः सर्वात्मासर्वभावनः ॥ सर्वगःशर्वरीनाथो भूतग्रामाशयाशयः ॥ ७४ ॥ अनादिनिधनोदेवः सर्वज्ञःसर्वसम्भवः ॥ सर्वव्यापीजगद्धाता सर्वशक्तिधरोनघः ॥ ७५ ॥ जगद्बीजंजगत्स्रष्टा जगदीशोजगत्पतिः ॥ जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाताजगन्मयः ॥ ७६ ॥ सर्वाकृतिधरःसर्वो विश्वरूपीजनार्दनः ॥ अजन्माशाश्वतोनित्यो विश्वाधारोविभुःप्रभुः ॥ ७७ ॥ बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरोहरः ॥ महार्णवोमहामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ॥ संस्कृतोविकृतोमत्स्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिलः ॥ ७८ ॥ अनन्तोवासुकिःशेषो वाराहोधरणीधरः ॥ पयःक्षीरविवेक्षा

वाले, सब शक्तियोंके धारनेवाले, पापरहित ॥ ७५ ॥ संसार के बीज, संसारको रचनेवाले, जगदीश व जगत् के स्वामी, संसार के गुरु, जगन्नाथ, जगत् को धारनेवाले, संसारमय ॥ ७६ ॥ सब आकृतियों के धारनेवाले, सर्व, संसाररूपी, जनोंके दुःखहारक, जन्मरहित, सनातन, नित्य, संसार के आधार, व्यापक, समर्थ ॥ ७७ ॥ बहुतरूपोंवाले, एक रूपवाले, सब रूपोंको धारनेवाले, भक्तदुःखहारक, महासमुद्र, महामेघ, जलके बुल्लेसे उत्पत्तिवाले, संस्कार कियेहुये, विकार को प्राप्त, मत्स्यरूप, महामत्स्यस्वरूपवाले व तिमिंगिल नाम बड़ीभारी मछली के स्वरूपवाले ॥ ७८ ॥ अनन्त, वासुकि, शेष, वाराहरूप, पृथ्वीको धारनेवाले व पानी और दूधके अलग

करनेमें हंसरूप और कनकाचल पै आसन करनेवाले ॥ ७९ ॥ हयग्रीव, विशाललोचन, अश्वकर्ण, अश्वाकार, मथन, रत्नहारी, कूर्मरूप, अधरधराधर ॥ ८० ॥ निद्रा-रहित, निद्रामें प्राप्त, अनन्त, सुनन्दी, नन्दन, प्रिय ॥ ८१ ॥ और नाभिमें कमलनालवाले, आपही से उत्पन्न, चतुर्मुख, प्रजापतियों में परायण, दक्ष, सृष्टिकारक, प्रजाकारक ॥ ८२ ॥ मरीचि, कश्यप, वत्स व देवता और दैत्योंके गुरु, कवि, वामनरूप, वामभागी, कर्मोंके कर्मरूप और बड़े शरीरवाले ॥ ८३ ॥ और त्रिलोक को नापनेवाले, दयावान्, बलिके यज्ञके विनाशक, यज्ञहर्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञके स्वामी, यज्ञको भोगनेवाले, व्यापक ॥ ८४ ॥ हज़ार किरणोंवाले, भगदेवरूप, प्रकाश-

यां हंसोहैमगिरासनः ॥ ७९ ॥ हयग्रीवोविशालाक्षो हयकर्णोहयाकृतिः ॥ मथनोरत्नहारीच कूर्मोऽधरधराधरः ॥ ८० ॥ विनिद्रोनिद्रितोनन्तः सुनन्दीनन्दनःप्रियः ॥ ८१ ॥ नाभिनालमृणालीच स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ताप्रजाकरः ॥ ८२ ॥ मरीचिःकश्यपोवत्सः सुरासुरगुरुःकविः ॥ वामनोवामभागीच कर्मकर्माबृहद्वपुः ॥ ८३ ॥ त्रैलोक्यक्रमणोदायो बलियज्ञविनाशनः ॥ यज्ञहर्तायज्ञकर्ता यज्ञेशोयज्ञभुग्विभुः ॥ ८४ ॥ सहस्रांशुर्भगोभानुर्विवस्वान्रविरंशुमान् ॥ तिग्मतेजाल्पतेजाश्च कर्मसाक्षीमनुर्यमः ॥ ८५ ॥ देवराजोसुरपतिर्दानवारिःशचीपतिः ॥ रविर्वायुसखोवह्निर्वरुणोयादसाम्पतिः ॥ ८६ ॥ नैर्ऋतोनन्दनोनादी रक्षोयक्षोधनाधिपः ॥ कुबेरोवित्तवान्वेगो वसुपालविलासकृत् ॥ ८७ ॥ अमृतःश्रावणःसोमः सोमपानकरःसुधीः ॥ सर्वौषधिकरःश्रीमान् निशाकारोदिवाकरः ॥ ८८ ॥ विषहाविषहर्ताच विषकण्ठधरोगिरिः ॥ नीलकण्ठोवृषीरुद्रो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ ८९ ॥ शिवःशान्तोवशी

कारक, विवस्वान्, सूर्यनारायण, किरणोंवाले, तीक्ष्ण तेजवान्, थोड़े तेजवाले, कर्मोंके साक्षी, मनुरूप, यमराजरूप ॥ ८५ ॥ देवताओंके राजा, दैत्योंके स्वामी, दानवों के शत्रु, इन्द्राणीके पति, रवि, पवनमित्र, अग्नि, वरुण व जलजन्तुवोंके स्वामी ॥ ८६ ॥ निर्ऋति, आनन्दको देनेवाले, शब्दकारक, राक्षस, यक्ष व धनके स्वामी, कुबेर, धनवान्, वेग और वसुपालकोंसे विलास करनेवाले ॥ ८७ ॥ मोक्षरूप, श्रावण, सोम व सोमपान करनेहारे तथा भलीभांति ध्यान करनेवाले, सब ओषधियोंको करनेवाले, लक्ष्मीवान्, रात्रिकारक, दिनकारक ॥ ८८ ॥ विषनाशक, विषहारक, विषकंठधारी, पर्वतरूप, नीलकण्ठ, वृषवाले, रुद्र, चन्द्रभाल, पार्वती के पति ॥ ८९ ॥ कल्याण-

कारक, शान्तरूप, सुन्दरस्वरूपवाले, वीर, ध्यान करनेवाले, मान करनेहारे व मानदायक, कृमिकीटस्वरूप, मृगको बेधनेवारे, मृगहन्ता, मृगप्रिय ॥ ९० ॥ बटुक, भैरव, बाल, कपालधारी, दण्डसंयुत शरीरवाले, श्मशानमें बसनेवाले, मांसभोजी, खप्पर में भोजन करनेवाले व कामदेवनाशक ॥ ९१ ॥ योगिनियों को डरपानेवाले, योगी, ध्यानमें स्थित व ध्यान वासनावाले, सेनाध्यक्ष, सेननाशक, स्वामिकार्त्तिकेय, महाकालस्वरूप, गणनायक ॥ ९२ ॥ आदिदेव, गणेश, विघ्ननायक व विघ्नविनाशन, नित्य ऋद्धिसिद्धिदायक, हस्ती, गजमुख ॥ ९३ ॥ नृसिंह, उग्र दाढ़ोंवाले, नखोंवाले, दानवोंको नाश करनेवाले, प्रह्लादका पोषण करनेवाले व सबदैत्यजनोंके

वटुकोभैरवोबालः कपालीदण्ड
वीरो ध्यानीमानीचमानदः ॥ कृमिकीटोमृगव्याधो मृगहामृगवत्सलः ॥ ९० ॥ वटुकोभैरवोबालः कपालीदण्ड
विग्रहः ॥ श्मशानवासीमांसाशी खर्पराशीस्मरान्तकृत् ॥ ९१ ॥ योगिनीत्रासकोयोगी ध्यानस्थोध्यानवासनः ॥ से
नानीसेनहास्कन्दो महाकालोगणाधिपः ॥ ९२ ॥ आदिदेवोगणपतिर्विघ्नहाविघ्ननाशनः ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदोनित्यं द
न्तीचैवगजाननः ॥ ९३ ॥ नृसिंहउग्रदंष्ट्रश्च नखीदानवनाशकृत् ॥ प्रह्लादपोषकर्ताच सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ ९४ ॥ श
लभःसागरःसाक्षी कल्पद्रुमविकल्मषी ॥ हेमदोहेमभागीच हिमकर्ताहिमाचलः ॥ ९५ ॥ भूधरोभूमिदोमेरुः कैला
सःशिखरोगिरिः ॥ लोकालोकान्तरालोकी विलोकीभुवनेश्वरः ॥ ९६ ॥ दिक्पालोदिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायोजिते
न्द्रियः ॥ विरूपोरूपवान्रागी नृत्यगीतविशारदः ॥ ९७ ॥ हाहाहूहूश्चित्ररथो देवर्षिर्नारदःसखा ॥ विश्वेदेवाःसाध्यदे
वा घृताशीचाचलश्चलः ॥ ९८ ॥ कपिलोजल्पकोवादी दत्तोहैहयहंसराट् ॥ वसिष्ठःकामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरोभृगुः ॥ ९९ ॥

स्वामी ॥ ९४ ॥ शलभ, सागररूप, साक्षी, कल्पवृक्ष, पापरहित, स्वर्णदायक, स्वर्णभागी, पालाको करनेवाले, हिमाचलरूप ॥ ९५ ॥ पृथ्वीको धरनेवाले, भूमिदायक, सुमेरु, कैलास, शिखररूप, पर्वतरूप और जो लोकालोक के मध्यको देखनेवाले, लोकरहित, लोकोंके स्वामी ॥ ९६ ॥ दिशाओं के पालक, दिशाओं के स्वामी, दिव्य व दिव्य शरीरवाले, इन्द्रियजीत, रूपरहित, रूपवान्, अनुराग करनेवाले व नाचने और गानेमें चतुर ॥ ९७ ॥ और हाहा, हूहू व चित्ररथ गन्धर्व स्वरूप, देवर्षि, नारदरूप, सखारूप, विश्वेदेवा, साध्यदेवता, घृतभोजी, अचल, चल ॥ ९८ ॥ कपिलदेवरूप, व्यक्तवचन कहनेवाले, वाद करनेहारे, दत्तात्रेयस्वरूप, हैहयार्जुनरूप व हंसराज,

वसिष्ठस्वरूप, कामदेवरूप व सप्तर्षियों में श्रेष्ठ, भृगु ॥ ९९ ॥ जमदग्निरूप, महावीरस्वरूप, क्षत्रियों का विनाश करनेवाले, सत्यवादी, हिरण्यकशिपुस्वरूप, हिरण्याक्षरूप, हरिप्रिय ॥ १०० ॥ अगस्ति, पुलह, रक्ष, पौलस्ति, रावण, घट, देवताओंके शत्रु, तपस्वी, ताप करनेवाले व हरिप्रिय विभीषणस्वरूप ॥ १ ॥ तेजवाले, तेजनाशक, तेजराशि, राजाओं के स्वामी, प्रभु, दशरथ के पुत्र, राघव, श्रीरामचन्द्र, रघुवंश को बढ़ानेवाले ॥ २ ॥ जानकीनाथ, रक्षक, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों को माननेवाले, भक्तप्रिय, संनद्ध, कवचधारी, तलवारको धारनेवाले, चीर वसन पहने व दिगम्बर याने नग्न ॥ ३ ॥ किरीट को धारनेवाले, कुण्डलों को धारे बाणको

जमदग्निर्महावीरः क्षत्रियान्तकरोऋषिः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षोहरिप्रियः ॥ १०० ॥ अगस्तिःपुलहोरक्षः पौलस्तीरावणोघटः ॥ देवारिःतापसस्तापी विभीषणहरिप्रियः ॥ १ ॥ तेजस्वीतेजहातेजराशीराजपतिःप्रभुः ॥ दाशरथीराघवोरामो रघुवंशविवर्द्धनः ॥ २ ॥ सीतापतिःपतिःश्रीमान् ब्रह्मण्योभक्तवत्सलः ॥ संनद्धःकवचीखड्गी चीरवासादिगम्बरः ॥ ३ ॥ किरीटीकुण्डलीचापि शरीचक्रीगदाधरः ॥ कौशल्यानन्दनोरामोभूमिशायीगुरुप्रियः ॥ ४ ॥ सौमित्रोभरतोवालः शत्रुघ्नोभरताग्रजः ॥ लक्ष्मणःपरवीरघ्नः स्त्रीसहायःकपीश्वरः ॥ ५ ॥ हनूमानृक्षराजश्च सुग्रीवोबालिनाशनः ॥ दीनप्रियोदानवारिरङ्गदोगदतांवरः ॥ ६ ॥ वनध्वंसीवनीवेगी वानरोवानरध्वजः ॥ लाङ्गूलीचनखीदंष्ट्री लङ्काहाहाकरोवरः ॥७॥ भवसेतुर्महासेतुर्बद्धसेतूरमेश्वरः ॥ जानकीवल्लभःकामी किरीटीकुण्डलीखगः ॥८ ॥

लिये, चक्रको धारेहुये और गदाको धारण करनेवाले, कौशल्याजी के पुत्र, रमण करनेवाले, भूमिमें सोनेवाले व गुरुवों को प्यारे ॥ ४ ॥ सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणरूप, भरत, बालक, शत्रुघ्न व भरत के जेठेभाई, लक्ष्मण, शत्रुवीरनाशक, स्त्रीसहायवाले, वानरों के स्वामी ॥ ५ ॥ हनूमान्, ऋक्षराज (जाम्बवान्), सुग्रीवरूप व बालिको नाशनेवाले, दुःखीजनप्रिय, दानवों के शत्रु, अङ्गदरूप व कहनेवालों में श्रेष्ठ ॥ ६ ॥ वनविनाशक, वनवाले, वेगवान्, वानर व वानर के ध्वजावाले, पुच्छवाले, नखवाले, दाढ़ोंवाले व लङ्कामें हाहाकार करनेवाले, श्रेष्ठ ॥ ७ ॥ संसार के सेतु (पुल) रूप, महासेतु, सेतु बांधनेवाले, रमानाथ, जानकीजी के प्यारे, कामी,

किरीटधारक,कुण्डल धारनेवाले,आकाशगामी ॥ ८ ॥ कमलके नाईं चौड़नेत्रवाले,महाभुज,मेघस्वरूप,चञ्चल,चपल,कामी, सुन्दरतावाले व वामाङ्गप्रिय ॥ ६ ॥ स्त्रीप्रिय, स्त्रीमें तत्पर, स्त्रैण व स्त्री के बायेंअङ्ग में बसनेवाले, शत्रुवोंको जीतनेवाले,क्रोधकोजीतेहुये, कामदेव को जीतनेहारे और इन्द्रियोंको जीतनेवाले ॥ १० ॥ शान्तस्वरूप, इन्द्रियों को दमन किये दयामें रमण करनेवाले, एक स्त्रीके नियमको धारनेवाले, सत्त्वगुणवाले व सत्त्वगुणमें टिकेहुये, कामदेव,क्रोधी,कठोर ॥ ११॥ बहुत राक्षसोंसे घिरे व सब राक्षसोंको नाशकरनेवाले रावणकेवैरी व समरमें क्षुद्र दश मस्तकोंको काटनेवाले ॥१२॥ राज्य करनेवाले,यज्ञ करनेवाले,दानी,भोगी व तपस्यारूपधनवाले,अयो-

पुण्डरीकविशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥ चञ्चलश्चपलःकामी वामीवामाङ्गवत्सलः ॥ ६ ॥ स्त्रीप्रियःस्त्रीपरःस्त्रैणः स्त्रियोवामाङ्गवासकः ॥ जितवैरीजितक्रोधोजितकामोजितेन्द्रियः ॥ १० ॥ शान्तोदान्तोदयाराम एकस्त्रीव्रतधारकः ॥ सात्त्विकःसत्त्वसंस्थानो मदनःक्रोधनःखरः ॥ ११ ॥ बहुराक्षससंवीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥ रावणारिरणक्षुद्रदशमस्तकच्छेदकः ॥ १२ ॥ राज्यकारीयज्ञकारी दाताभोक्तातपोधनः ॥ अयोध्याधिपतिःकान्तो वैकुण्ठोकुण्ठविग्रहः ॥ १३ ॥ सत्यव्रतोव्रतीशूरस्तपीसत्यःफलप्रदः ॥ सर्वसाक्षीसर्वसङ्गः सर्वप्राणहरोऽव्ययः ॥ १४ ॥ प्राणोपानःसमानश्च व्यानोदानःसमानकः ॥ नागःकृकलकूर्मश्च देवदत्तोधनञ्जयः ॥ १५ ॥ सर्वप्राणविदव्यापी योगधारणधारकः ॥ तत्त्ववित्तत्त्वदस्तत्त्वी सर्वतत्त्वविशारदः ॥१६॥ ध्यानस्थोध्यानशीलीच मनस्वीयोगवित्तमः ॥ ब्रह्मज्ञोब्रह्मज्ञानीच ब्रह्महा ब्रह्मसम्भवः ॥ १७ ॥ अध्यात्मविज्जगद्दीपो ज्योतीरूपोनिरञ्जनः ॥ज्ञानदोज्ञानहाज्ञानी गुरुशिष्योपदेशकः ॥ १८ ॥

ध्याके स्वामी, सुन्दर, वैकुण्ठस्वरूप व कुण्ठशरीरवाले ॥ १३ ॥ सत्यव्रतवाले, नियमवान्, शूर, तपस्वी, सत्य, फलदायक, सबोंके साक्षी, सबके सङ्गवाले, सबोंके प्राण-नाशक, विकाररहित ॥ १४ ॥ व प्राणरूप, अपानस्वरूप, समानस्वरूप, उदानरूप, समानस्वरूप, नागरूप, कृकलरूप, कूर्मस्वरूप, देवदत्तरूप व धनञ्जयस्वरूप ॥ १५ ॥ सबोंके प्राणोंको जाननेवाले, अव्यापी, योगकी धारणा को धारनेवाले, तत्त्वज्ञ, तत्त्वदायक, तत्त्ववान्, सब तत्त्वोंके जानने में चतुर ॥ १६ ॥ ध्यानमें स्थित, ध्यानस्वभाववाले, मनस्वी व योगके ज्ञाता, ब्रह्मको जाननेवाले, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्महा, ब्रह्म से उत्पत्तिवाले ॥ १७ ॥ अध्यात्म को जाननेवाले, संसार के दीपक,

ज्योतिस्वरूप,निरञ्जन, ज्ञानदायक, ज्ञाननाशक, ज्ञानवान्, गुरु व शिष्यको उपदेश करनेवाले ॥ १८ ॥ उत्तम शिक्षा के योग्य,शिक्षाको प्राप्त,शोभित व सीखने योग्य शिक्षामें चतुर,मन्त्रको देनेवाले, मंत्रनाशक, मन्त्रवाले, तन्त्रवाले और तन्त्रवाले लोगोंके प्रिय ॥ १९ ॥ उत्तम मन्त्रवाले, मन्त्रके ज्ञाता, मन्त्री व यन्त्रों तथा मन्त्रों को एकही तोड़नेवाले, मारण, मोहन, मोहवाले, स्तम्भनवाले, उच्चाटन करनेवाले, खल ॥ २० ॥ बहुत मायाओंवाले, मायारहित,महामायावाले, मोहरहित, मोक्षदायक, बाधनेवाले, कारागृह व आकर्षण, विकर्षण ॥ २१ ॥ ह्रींकार, बीजस्वरूप, क्लींकारवाले, कीलक के स्वामी, सौंकार, शक्तिमान्, शक्ति, सब शक्तियों को धारनेवाले, पर्वत

सुशिक्ष्यःशिक्षितःशाली शिक्ष्यशिक्षाविशारदः ॥ मन्त्रदोमन्त्रहामन्त्री तन्त्रीतन्त्रजनप्रियः ॥ १९ ॥ सन्मन्त्री मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ॥ मारणोमोहनोमोहीस्तम्भ्युच्चाटकरःखलः ॥ २० ॥ बहुमायोविमायश्च महामायीविमोहकः ॥ मोक्षदोबन्धकोवन्दी ह्याकर्षणविकर्षणः ॥ २१ ॥ ह्रींकारोबीजरूपीच क्लींकारीकीलकाधिपः ॥ सौङ्कारःशक्तिमाञ्छक्तिः सर्वशक्तिधरोधरः ॥ २२ ॥ अकारोकारईकार छन्दोगायत्रिसम्भवः ॥ वेदोवेदविदोवेदी वेदाध्यायीसदाशिवः ॥ २३ ॥ ऋग्यजुःसामचाथर्वः सामगानकरःकरी ॥ त्रिपदोबहुपादीच सत्पथःसर्वतोमुखः ॥ २४ ॥ प्राकृतःसंस्कृतोयोगी गीतग्रन्थप्रहेलिकः ॥ सगुणोविगुणोच्छन्दः निःसङ्गोविगुणोगुणी ॥ २५ ॥ निर्गुणोगुणवान्सङ्गी कर्मधर्मीत्वकर्मदः ॥ निष्कर्माकामकामीच निःसङ्गःसङ्गवर्जितः ॥ २६ ॥ निर्लोभीनिरहङ्कारी निष्किञ्चनजनप्रियः ॥ २७ ॥

स्वरूप ॥ २२ ॥ अकार, उकार, ईकार स्वरूप व गायत्री से उत्पन्न छन्दस्वरूप, वेदरूप, वेदज्ञ, वेदवान्, वेदाध्ययन करनेवाले, सदाशिवस्वरूप ॥ २३ ॥ ऋक्, यजुः, साम व अथर्वस्वरूप, सामगान करनेवाले, हस्तीस्वरूप, तीन चरणोंवाले, बहुत चरणोवाले, उत्तममार्ग व सबओर मुखवाले ॥ २४ ॥ और प्राकृत (बनाहुआ) संस्कृत (संस्कार कियाहुआ) योगी व गीता ग्रन्थ के चलानेवाले, गुणोंसमेत, निर्गुण, स्वच्छन्द, सङ्गरहित, गुणरहित, गुणवान् ॥ २५ ॥ निर्गुण, गुणवान्, सङ्ग करनेवाले,कर्म धर्मवाले व अकर्मदायक,कर्मरहित,कामनाओं को चाहनेवाले,सङ्गरहित व सङ्गसे वर्जित ॥ २६ ॥ लोभरहित, अभिमानहीन व अकिञ्चनजनप्रिय ॥ २७ ॥

व सबोंसे साथ करनेवाले, अनुरागी, सबको छोडनेवाले, बाहर चलनेवाले, एकचरणवाले, दोचरणवाले, बहुत चरणोंवाले, थोड़े चरणोंवाले ॥ २८ ॥ द्विचरण, त्रिचरण, चरणोंवाले व चरणोंसे रहित, चरणोंके संग्रहवाले, आकाशगामी, भूमिगामी, ऐश्वर्यवान् व भृंगकीटमधुप्रिय ॥ २९ ॥ ऋतुरूप, वर्षस्वरूप, मासरूप, अयनस्वरूप, पक्षरूप, दिनरात्रिस्वरूप, ॥ ३० ॥ सत्ययुगरूप, त्रेतास्वरूप, कलियुगरूप, द्वापरस्वरूप व चारों आकारवाले, देशकालको करनेवाले, कालस्वरूप, वंशके धर्मरूप, सदैव रहनेवाले ॥ ३१ ॥ कलारूप, काष्ठास्वरूप, पलारूप व नाड़ीस्वरूप, प्रहररूप, पक्षस्वरूप, श्वेतकृष्णरूप, युगस्वरूप, युगको धारनेवाले, योग्य व युगोंके धर्मको

सर्वसङ्गकरोरागी सर्वत्यागीबहिश्चरः ॥ एकपादोद्विपादश्च बहुपादोल्पपादकः ॥ २८ ॥ द्विपदस्त्रिपदःपादी विपादीपादसंग्रहः ॥ खेचरोभूचरोभागी भृङ्गकीटमधुप्रियः ॥ २९ ॥ ऋतुःसंवत्सरोमासोऽयनःपक्षोह्यहर्निशः ॥ ३० ॥ कृतस्त्रेताकलिश्चैव द्वापरश्चतुराकृतिः ॥ देशकालकरःकालःकुलधर्मःसनातनः ॥ ३१ ॥ कलाकाष्ठापलानाड्यो यामःपक्षःसितासितः ॥ युगोयुगन्धरोयोग्यो युगधर्मप्रवर्तकः ॥ ३२ ॥ कुलाचारःकुलकरः कुलदेवकरोकुली ॥ चतुराश्रमचारीच गृहस्थोह्यतिथिप्रियः ॥ ३३ ॥ वनस्थोवनचारीच वानप्रस्थाश्रमाश्रमी ॥ वटुकोब्रह्मचारीच शिखासूत्रःकमण्डलुः ॥ ३४ ॥ त्रिजटीध्यानवान्ध्यानी बद्रिकाश्रमवासकृत् ॥ हेमाद्रिप्रभवोहेमा हेमराशिर्हिमाकरः ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थानकोविप्रो विरागीरागवान्गृही ॥ नरनारायणोरागीकेदारोदारविग्रहः ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्वारतपःपारो तपोवनतपोनि

वर्तमान करनेवाले ॥ ३२ ॥ कुलके आचारस्वरूप वंशकारक, कुलदेवकारक व कुलरहित, चारों आश्रमों में गमन करनेवाले, गृहस्थरूप व अतिथिप्रिय ॥ ३३ ॥ वनमें स्थित, वनमे चलनेवाले, वानप्रस्थाश्रम के आश्रमवाले, वटुस्वरूप, ब्रह्मचारीरूप, शिखासूत्रस्वरूप, कमण्डलुरूप ॥ ३४ ॥ तीन जटाओंवाले, ध्यानवाले, ध्यानी व बद्रिकाश्रम में निवास करनेवाले, कनकाचल से उत्पन्न, सुवर्णरूप, सुवर्णकी राशि, हिमखानि ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थान करनेवाले, विप्ररूप, अनुरागरहित, अनुरागी, गृहवाले, नर व नारायणस्वरूप, अनुरागवान्, क्षेत्रस्वरूप, स्त्रीरूपवाले ॥ ३६ ॥ व हरिद्वार में तपस्या में तत्पर, तपोवन व तपस्या के

निधान, यह महापद्म निधि व तडाग की लक्ष्मी के स्थान ॥ ३७॥ कमलनाभ, सर्वव्यापी, संन्यासीरूप, पुरुषों में उत्तम, पुराण,परमानन्दरूप, सम्राट् व राजर्षियों के राजा ॥ ३८ ॥ चक्रमें स्थित, चक्रपालों में स्थित, चक्रवर्ती, नरेश, आयुर्वेद के जाननेवाले, वैद्य, चलनेवाले, धन्वन्तरिस्वरूप व ग्रहण करनेवाले ॥ ३९ ॥ और ओषधी व बीजोंको उत्पन्न करनेवाले व रोगीके रोगको नाश करनेवाले, चैतन्यरूप, अचेत, चिन्तन के योग्य, चित्तकी चिन्ता के विनाश करनेवाले ॥ ४० ॥ इन्द्रियों से परे, सुखको स्पर्श करनेवाले, चर प्राणियों में गमन करनेवाले, आकाशगामी, गरुड़स्वरूप,पक्षियोंके राजा, प्रशस्त लोचनोंवाले, विनताके पुत्र ॥ ४१ ॥

धिः ॥ निधिरेषमहापद्मः पद्माकरश्रियालयः ॥ ३७ ॥ पद्मनाभःपरीतात्मा परिव्राट्पुरुषोत्तमः॥पुराणःपरमानन्दः स म्राट्राजर्षिराजकः॥ ३८ ॥ चक्रस्थश्चक्रपालस्थश्चक्रवर्तीनराधिपः ॥ आयुर्वेदविदोवैद्यश्चरो धन्वन्तरिर्ग्रहः ॥ ३९ ॥ ओषधीबीजसम्भूतो रोगिरोगविनाशकृत ॥ चेतनोचेतकोचिन्त्यश्चित्तचिन्ताविनाशकृत ॥ ४० ॥ अतीन्द्रियःसुख स्पर्शश्चरचारीविहङ्गमः ॥ गरुडःपक्षिराजश्च चाक्षुषोविनतात्मजः ॥ ४१ ॥ विष्णुर्यानविमानस्थो मनोमयतुरङ्गमः॥ बहुवृष्टिकरोवर्षी ऐरावणविरावणौ ॥ ४२ ॥ उच्चैःश्रवाहयोगामी हरिदश्वोहरिप्रियः ॥ प्रावृषोमेघमालीच गजरत्नंपुर न्दरः ॥ ४३ ॥ वसुदोवसुधारश्च निद्रालुःपन्नगाशनः ॥ शेषशायीजलेशायी व्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४४ ॥ वेदव्यास करोवाग्मी बहुशाखाविकल्पकः ॥ स्मृतिःपुराणधर्मार्थी पारावरकविःकृतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशीर्षासहस्राक्षः सहस्र

व्यापक, वाहन व विमान पै स्थित, मनोमय अश्वरूप, बहुत वृष्टि करनेवाले, न बरसनेवाले, ऐरावतस्वरूप, शब्द करनेवाले ॥ ४२ ॥ व उच्चैःश्रवा अश्वरूप, गमन करनेवाले, हरित् अश्वोंवाले, इन्द्रप्रिय, वर्षाके समय में मेघोंकी पङ्क्तिवाले, गजोंमें रत्नरूप, इन्द्रस्वरूप ॥ ४३ ॥ धनको देनेवाले, धनको धारनेवाले, निद्रा-वान, सर्पभोजी, शेषजी के ऊपर शयन करनेवाले, जलमें सोनेवाले, सत्यवतीजी के पुत्र व्यासस्वरूप ॥ ४४ ॥ वेदोंका विस्तार करनेवाले व प्रशस्त वचनवाले,ब-हुत शाखाओं के भेदकारक,स्मृतिरूप,प्राचीन धर्मको चाहनेवाले, कार्य व कारण के विद्वान्, पुण्यवान्रूप ॥ ४५ ॥ हज़ार मस्तकोंवाले,हज़ार लोचनोंवाले व हज़ार

मुखोंसे उज्ज्वल, हज़ार भुजाओंवाले, हज़ार किरणोंवाले व हज़ार किरणोंसे उन्नत ॥४६॥ बहुत मस्तकोंवाले, एक मस्तकवाले, तीन मस्तकोंवाले, शिररहित, शिखावान्, जटाधारी, भस्ममें अनुराग करनेवाले, दिव्य वसनों को धारे व पवित्र ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मस्वरूप, स्थूलरूप, रूपरहित, विकराके आकारवाले, समुद्रको मथानेवाले, मथने वाले, सब रत्नोंको हरनेवाले, भक्तदुःखहारक ॥ ४८ ॥ हीरा व वैडूर्यमणिवाले, वज्रको धारनेवाले व चिन्तामणिमहामणिस्वरूप, मूल्यरहित, बड़े मूल्यवाले, निर्मूल्य, सरभ (मृगभेद) स्वरूप व सुखी ॥ ४९ ॥ पितारूप व मातास्वरूप, बालकरूप, बन्धुस्वरूप, विधातारूप, त्वष्टा देवतारूप, अग्निरूप, भीतर स्थित, बाहर कार्य

दनोज्ज्वलः ॥ सहस्रबाहुःसहस्रांशुः सहस्रकिरणोन्नतः ॥ ४६ ॥ बहुशीर्षैकशीर्षश्च त्रिशिराविशिराःशिखी ॥ जटिलोभस्मरागीच दिव्याम्बरधरःशुचिः ॥४७॥ अणुरूपोबृहद्रूपो विरूपोविकराकृतिः ॥ समुद्रमाथकोमाथी सर्वरत्नहरो हरिः ॥ ४८ ॥ वज्रवैडूर्यकोवज्री चिन्तामणिमहामणिः ॥ अनिर्मूल्योमहामूल्यो निर्मूल्यःसरभःसुखी ॥ ४९ ॥ पितामाताशिशुर्बन्धुर्धातात्वष्टाहुताशनः ॥ अन्तःस्थोबाह्यकारीच बहिःस्थोवैबहिश्चरः ॥ ५० ॥ पावनःपावकःपाकी सर्वभक्षीहुताशनः ॥ भगवान्भगहाभागी भगभञ्जभयङ्करः ॥ ५१ ॥ कायस्थोह्यर्थकारीच कार्यतर्कीकरप्रदः ॥ एकधर्माद्विधर्माच सुखीदूतोपजीवकः ॥ ५२ ॥ पालकोजारकस्त्राता कालमूषकभक्षकः ॥ संजीवनोजीवकर्ता सजीवो जीवसम्भवः ॥ ५३ ॥ षड्विंशकोमहाविष्णुः सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ दिव्याङ्गदोमुक्तमाली श्रीवत्सोमकरध्वजः ॥५४॥

करनेवाले, बाहर स्थित व बाहर विचरनेवाले ॥ ५० ॥ पवित्रकारक, अग्नि, पचानेवाले, सब कुछ भोजन करनेवाले, हुतभोजी, ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यनाशक, अंशवाले, ऐश्वर्यको भञ्जन करनेवाले व भयङ्कर ॥ ५१ ॥ शरीर में स्थित व अच्छ अर्थको करनेवाले, कार्यमें तर्क करनेवाले, करदायक, एक धर्मवाले, दो धर्मोंवाले, सुखी व दूतों को जीविका देनेवाले ॥ ५२ ॥ पालक, परस्त्री भोग करनेवाले, रक्षक व कालरूपी मूसको भक्षण करनेवाले, भलीभांति जिलानेवाले, जीव करनेवाले, जीव समेत व जीवको उत्पन्न करनेवाले ॥ ५३ ॥ व छब्बीसवें महाविष्णु, सब में व्याप्त, महेश्वररूप, उत्तम बजुल्ले को धारण किये व मोतियों की मालाको पहने

व भृगुलताको धारे व मकरध्वजावाले ॥ ५४ ॥ श्याम शरीरवाले, घन के समान श्यामरंगवाले, पीले वसनवाले, उत्तम मुखवारे, चीर वसनवाले, वसनरहित व भूतों तथा दानवों को प्यारे ॥ ५५ ॥ अमृतरूप, अमृतके अंशवाले, मोहनीरूपको धारनेवाले, दिव्यदृष्टिवाले, समानदृष्टिवाले व देवताओं तथा दानवों को छलने वाले ॥ ५६ ॥ कबंध याने शिरके विहीन शरीररूप, केतुको करनेवाले, राहुरूप, चन्द्रमा को सन्तापकारक, ग्रहोंके राजा, ग्रहण करनेवाले, ग्राहस्वरूप, सब ग्रहों को छुड़ानेवाले ॥ ५७ ॥ दान, मान, जप व होमस्वरूप, अनुकूलता समेत शुभग्रहस्वरूप, विघ्नकारक व हारक, विघ्ननाशक, विनायकस्वरूप ॥ ५८ ॥ अपकार

श्याममूर्तिर्घनश्यामः पीतवासाःशुभाननः ॥ चीरवासाविवासाश्चभूतदानववल्लभः ॥ ५५ ॥ अमृतोमृतभागीच मोह नीरूपधारकः ॥ दिव्यदृष्टिःसमदृष्टिर्देवदानववञ्चकः ॥ ५६ ॥ कबन्धःकेतुकारीच स्वर्भानुश्चन्द्रतापनः ॥ ग्रहराजो ग्रहीग्राहः सर्वग्रहविमोचकः ॥ ५७ ॥ दानमानजपोहोमः सानुकूलशुभग्रहः ॥ विघ्नकर्तापहर्ताचविघ्ननाशोविनायकः॥ ५८ ॥ अपकारोपकारीच सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥ सेवकःसामदानीच भेदीदण्डीचमत्सरी ॥ ५९ ॥ दयावान्दानशीलश्च दानीचैवप्रतिग्रही ॥ हविरग्निश्चरुस्थाली समिधश्चतिलोयवः ॥ ६० ॥ होतोद्गाताशुचिःकुण्डःसामगोवैकृतिःसवः ॥ द्रव्यम्पात्राणिसाकल्यो मूसलोह्यरणिःकुशः ॥ ६१ ॥ दीक्षितोमण्डपोदेवो यजमानपशुःक्रतुः ॥ दक्षिणास्वस्तिमा नस्वस्तिराशीर्वादःशुभप्रदः ॥ ६२ ॥ आदिवृक्षोमहावृक्षोदेववृक्षोवनस्पतिः ॥ प्रयागोवेणिमान्वेणी न्यग्रोधश्चाक्षयो

रूप व अपकार करनेवाले, सब सिद्धियोंके फलों को देनेवाले, सेवकरूप, साम व दाम करनेवाले, भेदकरनेवाले, दंडदेनेवाले, अन्यके शुभमें द्वेषकरनेवाले ॥ ५९ ॥ दयावान्, दानकेस्वभाववाले, दानी व दानको ग्रहण करनेवाले, हविरूप, अग्निस्वरूप, चरुस्थालीस्वरूप, समिधारूप, तिलरूप व यवस्वरूप ॥ ६० ॥ हवनकरने वाले, उद्गाता (सामवेदी), पवित्र कुंड, सामवेदको गानकरनेवाले, विकृतिरूप, यज्ञरूप, द्रव्यरूप, पात्ररूप, साकल्यस्वरूप, मूसलरूप, अरणिस्वरूप, कुशारूप ॥ ६१ ॥ दीक्षितरूप, मंडपस्वरूप, क्रीड़ा करनेवाले यजमानके पशुरूप, यज्ञस्वरूप, दक्षिणारूप, कल्याणवान्, कल्याणस्वरूप, आशीर्वादस्वरूप, मंगलदायक ॥ ६२ ॥

आदिवृक्ष, बड़ेभारी वृक्षरूप, देववृक्षस्वरूप, वनस्पतिरूप, प्रयागरूप, वेणीवान् व वेणीस्वरूप, बरगदरूप व अक्षयवटस्वरूप ॥ ६३ ॥ उत्तम तीर्थ व तीर्थ करनेवाले, तीर्थों के राजा, व्रतवान् व व्रतस्वरूप, व्रतवाले, दानस्वरूप, पृथुरूप, पात्ररूप, दुहनेवाले, गऊ व बछड़ास्वरूपवाले ॥ ६४ ॥ दुग्धरूप व दूधको बहानेवाले, दूधवाले व दूध और पानीके विभाग को जाननेवाले, राज्यके भागको जाननेवाले, ऐश्वर्यवाले व सब भागों के भेद करनेवाले ॥ ६५ ॥ प्राप्तकरनेवाले, प्राप्त करानेवाले, वेगरूप, पदको कहनेवाले, चैतन्यमें विचरनेवाले, गोचरणरूप, रक्षाकरानेवाले, रक्षाकरनेवाले व गोपोंकी कन्याओं से विहार करनेवाले ॥ ६६ ॥ वसुदेव के पुत्र, विशाललोचन, कृष्णरूप, गोपीजनों को प्रिय, देवकीजीके पुत्र, समृद्धिकरनेवाले, नन्द गोपके घरमें आश्रम करनेवाले ॥ ६७ ॥ यशोदाजीके पुत्र, मालाओं

वटः ॥ ६३ ॥ सुतीर्थस्तीर्थकारीच तीर्थराजोव्रतीव्रतः ॥ व्रतीदानंपृथुःपात्रो दोग्धागौर्वत्सएवच ॥ ६४ ॥ क्षीरंक्षीरवहःक्षीरी क्षीरनीरविभागवित् ॥ राज्यभागविदोभागी सर्वभागविकल्पकः ॥ ६५ ॥ वहनोवाहकोवेगः पदवाचीचितश्चरः ॥ गोपदोगोपकोगोपी गोपकन्याविहारकृत् ॥ ६६॥ वासुदेवोविशालाक्षः कृष्णोगोपीजनप्रियः ॥ देवकीनन्दनोनन्दी नन्दगोपगृहाश्रमी ॥ ६७ ॥ यशोदानन्दनोदामी दामोदरउलूखली ॥ पूतनारिस्तृणावर्तहारीशकटभञ्जकः ॥ ६८ ॥ नवनीतप्रियोवाग्मी वत्सपालकबालकः ॥ वत्सरूपधरोवत्सी वत्सहाधेनुकान्तकृत् ॥ ६९ ॥ बकारिर्वनवासीच वनक्रीडाविशारदः ॥ कृष्णवर्णाकृतिःकान्तो वेणुवेत्रविधारकः ॥ ७० ॥ अन्धमोक्षकरोमोक्ष्यो यमुनापुलिनेचरः ॥ मायावत्सकरोमायी ब्रह्ममायापमोहकः ॥ ७१ ॥ आत्मसारविहारश्च गोपदारकदारकः ॥ गोचरोगोपतिर्गोपो गोवर्द्ध

को पहने, दामोदर, उलूखलवाले, पूतनाकेशत्रु, तृणावर्तको हरनेवाले, शकटविनाशक ॥ ६८ ॥ नवनीत (नैनू) प्रियवाले, प्रशस्त वचनवाले, वत्सपालक के बालक, वत्सरूप को धरनेवाले, वत्सवान्, वत्सनाशक, धेनुक को नाशकरनेवाले ॥ ६९ ॥ बकासुरके शत्रु, वनमें बसनेवाले, वनकी क्रीड़ा में चतुर श्यामवर्णके आकारवाले, सुन्दर व वेणु तथा बेंत को धारनेवाले ॥ ७० ॥ अन्धकासुर को मोक्ष करनेवाले, मोक्ष के योग्य, यमुनाजी के किनारे चलनेवाले, माया के बछड़ों को करनेवाले, मायावाले व ब्रह्मा की माया को मोहनेवाले ॥ ७१ ॥ व अपनेही सारांशमें विहार करनेवाले, गोपपुत्र के बालक, इन्द्रियों के सामने प्राप्त होनेवाले, गौवों

नधरोबली ॥ ७२ ॥ इन्द्रद्युम्नमखध्वंसी वृष्टिहागोपरक्षकः ॥ सुराणांत्राणकर्ताच दावपानकरःकलिः ॥ ७३ ॥ कालीयमर्दनःकाली यमुनाहृदक्रीडकः ॥ सङ्कर्षणोबलश्लाघ्यो बलदेवोहलायुधः ॥ ७४ ॥ लाङ्गलीमूसलीचक्री रामोरोहिणिनन्दनः ॥ यमुनाकर्षणोद्धारो नीलवासाहलीतथा ॥ ७५ ॥ रेवतीरमणोलोलो बहुमानकरःपरः ॥ धेनुकारिर्महावीरो गोपकन्याविदूषकः ॥ ७६ ॥ काममानकरःकामी गोपीवासोपतस्करः ॥ वेणुवादीचनादीच नृत्यगीतविशारदः ॥ ७७ ॥ गोपीमोहकरोगानी रासकोरजनीचरः ॥ दिव्यमालीविमालीच वनमालाविभूषितः ॥ ७८ ॥ कैटभारिश्चकंसारिर्मधुहामधुसूदनः ॥ चाणूरमर्दनोमल्लो मुष्टिमुष्टिकनाशकृत् ॥ ७९ ॥ मुरहामोदकोमोदो मानीचनरकान्तकृत ॥ विद्याध्यायीभूमिशायी सुदाम्नश्चसखासखा ॥ ८० ॥ शकलोविकलोविद्यः कलितोवैकलानिधिः ॥ विशालशा

के स्वामी, गौवों की रक्षा करनेवाले, गोवर्धन को धारनेहारे व बलवान् ॥ ७२ ॥ इन्द्रद्युम्न के यज्ञको विध्वंस करनेवाले, वृष्टिनाशक, गोपोंके रक्षक, देवताओंकी रक्षा करनेवाले, दवके पानकरनेवाले,कलिस्वरूप ॥ ७३ ॥ कालियनाग को मर्दनकरनेवाले, कालीरूप व यमुनाजीके कुण्ड में विहार करनेवाले, बलभद्ररूप, बलसे प्रशंसा करनेयोग्य, बलदेवस्वरूप, हल अस्त्रवाले ॥ ७४ ॥ हल धारण करनेवाले,मुसल धारनेवाले, चक्रको धारण करनेवाले, योगियोंके रमणकरने योग्य, रोहिणी जी के पुत्र, यमुनाजी को खींचनेवाले व उधारनेवाले, नीलवसनवारे व हल को धारण करनेहारे ॥ ७५ ॥ रेवतीजीमें रमण करनेवाले, चंचल,बहुत मान करनेवाले उत्तम व धेनुकासुर के शत्रु, महावीर व गोपकन्याओं के विदूषक ॥ ७६ ॥ कामदेव का मान करनेवाले, कामी व गोपियों के वसनों के चुरानेवाले, वेणु को बजानेवाले, नाद करनेवाले व नाचने तथा गाने में चतुर ॥ ७७ ॥ गोपियोंको मोहकरनेवाले, गान करनेवाले, रासकरनेहारे व रात्रि में चलनेवाले, दिव्य मालाओं को पहने व मालाओं से रहित तथा वनमाला से शोभित ॥ ७८ ॥ कैटभ दैत्यके शत्रु, कंस के शत्रु, मधुदैत्यको मारनेवाले व मधुसूदन, चाणूर को मर्दन करनेवाले, मल्लरूप व मुष्टिक को घूंसा से नाशकरनेवाले ॥ ७९ ॥ मुर दैत्य को नाशकरनेवाले, आनन्द करनेवाले, आनन्दरूप, मानी व नरकासुर को नाशनेवाले, विद्याके पढ़नेवाले, पृथ्वी में सोनेवाले व सुदामा के मित्र व सखारूप॥ ८० ॥खण्डरूप, कलाओं से रहित, विद्यावान्, शोभित व कलाओं के निधिरूप, विशाल

से शोभित व शोभावान् तथा माता, पिताको छुडानेवाले ॥ ८१ ॥ रुक्मिणी जी में रमण करनेवाले, रमणीय व यमुनाजी के पति तथा शंखदैत्यको नाशनेवाले, पांचजन्यरूप, महापद्मनिधिरूप व बहुत नायकों के स्वामी ॥ ८२ ॥ धुंधु दैत्य को मारनेवाले, निकुंभ के नाशक, कामदेव को नाश करनेवाले, रतिप्रिय, प्रद्युम्नरूप, अनिरुद्धस्वरूप, देवनाओं के स्वामी अर्जुनरूप ॥ ८३ ॥ फाल्गुन, गुडाकेश, सव्यसाची व धनंजयरूप, किरीटमाली, धनुष को हाथ में लिये व धनुष विद्या में चतुर ॥ ८४ ॥ शिखंडीरूप, सात्यकिस्वरूप, सेवा के योग्य, भयंकररूप व भयंकर पराक्रमवाले, पांचालरूप, भयंकर क्रोधवाले, सौभद्ररूप व द्रौपदी के

लीशालीच मातृपितृविमोक्षकः ॥ ८१ ॥ रुक्मिणीरमणोरम्यः कालिन्दीपतिशङ्खहा ॥ पाञ्चजन्योमहापद्मो बहुनायकनायकः ॥ ८२ ॥ धुन्धुमारोनिकुम्भघ्नः स्मरान्तकरातिप्रियः ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सात्वताम्पतिरर्जुनः ॥ ८३ ॥ फाल्गुनश्चगुडाकेशः सव्यसाचीधनञ्जयः ॥ किरीटमालीधनुष्पाणिर्धनुर्वेदविशारदः ॥ ८४ ॥ शिखण्डीसात्यकिःसेव्यो भीमोभीमपराक्रमः ॥ पाञ्चालोभीममन्युश्च सौभद्रोद्रौपदीपतिः ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिरोधर्मराजः सत्यवादीशुचिव्रतः ॥ नकुलःसहदेवश्च कर्णोदुर्योधनोघृणी ॥ ८६ ॥ गाङ्गेयश्चगदापाणिर्भीष्मोभागीरथीसुतः ॥ प्रज्ञाचक्षुर्धृतराष्ट्रो भारद्वाजोथगौतमः ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामाविकर्णश्च जह्नुर्युद्धविशारदः ॥ सीमन्तकिर्गदीगाल्वो विश्वामित्रोदुरासदः ॥ ८८ ॥ दुर्वासादुर्विनीतश्च मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ लोमशोनिर्मलोलोमी दीर्घायुश्चचिरोचिरी ॥ ८९ ॥ पुनर्जीव्यमृतो भावी भूतोभव्योभविष्यता ॥ त्रिकालज्ञस्त्रिलिङ्गश्च त्रिनेत्रस्त्रिपदीपतिः ॥ ९० ॥ यादवोयाज्ञवल्क्यश्च यदुवंशविवर्द्धनः ॥

पति ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिररूप, धर्मराजस्वरूप, सत्य बोलनेवाले, पवित्र नियमवाले, नकुलरूप, सहदेवस्वरूप, कर्णरूप, दुर्योधनरूप, दयावान् ॥ ८६ ॥ गंगाजी के पुत्र, गदा को हाथ में लिये, भीष्मरूप, भागीरथीजीके पुत्र, बुद्धिरूपी नेत्रवाले, धृतराष्ट्रस्वरूप, भारद्वाजरूप व गौतमस्वरूप ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामास्वरूप, विकर्णरूप, जह्नुस्वरूप व युद्धमें चतुर, सीमन्तकिरूप, गदाको धारनेवाले, गाल्वरूप, विश्वामित्रस्वरूप, दुरासद ॥ ८८ ॥ दुर्वासारूप, दुर्विनीत, मार्कंडेयरूप, महामुनि, लोमशस्वरूप, निर्मल, लोमोंवाले, दीर्घआयुर्बलवाले, चिर व अचिरवाले ॥ ८९ ॥ फिर जीनेवाले, अमृतस्वरूप, होनेवाले, भूतरूप, कल्याणरूप व भविष्य समेत तीनों

काल के जाननेवाले, तीन लिङ्गोंवाले, तीननेत्रोंवाले, तीनचरणोंवाले व रक्षा करनेवाले ॥ ९० ॥ यदुवंश में उत्पन्न, याज्ञवल्क्यस्वरूप, यदुवंश को बढ़ाने वाले, शल्य से क्रीडा करनेवाले, क्रीडारहित, यादवों के विनाशक, कलिस्वरूप ॥ ९१ ॥ दया समेत व दुष्टहृदयवाले के द्रोही, भागरहित व उत्तम भाग के भागी समुद्ररूप, पृथ्वीरूप, नीलवर्णवाले व पर्व्वत पै निवासकरनेवाले ॥ ९२ ॥ एक रंगवाले, वर्णरहित व सब वर्णों से बाहर चलनेवाले, यज्ञकी निन्दा करनेवाले, वेदनिन्दक, वेद से बाहर, बलभद्ररूप, बलिस्वरूप ॥ ९३ ॥ बौद्धरूप, बाधाकरनेवाले, बाधी, जगदीश व संसार के स्वामी, भक्तिरूप, भगवान्के सम्बन्धी, अंशवाले, विशेषकर भक्त व ऐश्वर्यवानों को प्रिय ॥ ९४ ॥ तीनग्रामरूप, नववनस्वरूप व गुप्त उपनिषदों से आसनवाले, शालिग्राम शिला से युक्त, वि-

शल्यक्रीडीविक्रीडश्च यादवान्तकरःकलिः ॥ ९१ ॥ सदयोहृदयोदग्रद्रोह्यदायःसुदायभाक् ॥ महोदधिर्महीपृष्ठो नीलः पर्वतवासकृत् ॥ ९२ ॥ एकवर्णोविवर्णश्च सर्ववर्णबहिश्चरः ॥ यज्ञनिन्दोवेदनिन्दो वेदबाह्योबलोबलिः ॥ ९३ ॥ बौद्धश्चबाधकोबाधी जगन्नाथोजगत्पतिः ॥ भक्तिर्भागवतोभागी विभक्तोभगवत्प्रियः ॥ ९४ ॥ त्रिग्रामश्चनवारण्यो गुह्योपनिषदासनः ॥ शालिग्रामशिलायुक्तो विशालोगण्डकाश्रमः ॥ ९५ ॥ श्रुतदेवःश्रुतःश्रावी श्रुतबोधःश्रुतश्रवाः ॥ कल्किःकालःकल्को दुष्टम्लेच्छविनाशकृत् ॥ ९६ ॥ कुङ्कुमीधवलोधीरः क्षमाकरवृषाकपिः ॥ किङ्करःकिन्नरःकाण्वः केकीकिंपुरुषाधिपः ॥ ९७ ॥ एकरोमाविरोमाच बहुरोमाबृहत्कविः ॥ वज्रप्राणहरोवज्री वृत्रहावासवानुजः ॥ ९८ ॥ बहुतीर्थकरोतीर्थः सर्वतीर्थजनेश्वरः ॥ व्यतीपातःप्रयागश्च दानवृद्धिकरःशुभः ॥ ९९ ॥ असंख्येयोप्रमेयश्च संख्याकारो

शाल व गंडकी नदी में आश्रमवाले ॥ ९५ ॥ प्रसिद्ध देवता, सुनेहुये व सुनानेवाले, शास्त्र के बोधवाले, सुनेहुये यशवाले, कल्किस्वरूप, काल के विनाशक, कल्करूप व दुष्ट म्लेच्छों के नाश करनेवाले ॥ ९६ ॥ कुंकुम रंगवाले, श्वेत, बुद्धिदायक, क्षमा करनेवाले व कामनाओं को देनेवाले तथा पातकों को नाशनेवाले, किंकर, किन्नररूप, कण्वसंबन्धी व मयूर वचनवाले तथा किंपुरुषों के स्वामी ॥ ९७ ॥ एकरोमवाले, रोमरहित, बहुत रोमोंवाले, बडेभारी कवि, वज्र से प्राणों को हरनेवाले, वज्र को धारनेवाले, वृत्रासुरविनाशक, इन्द्रानुज ॥ ९८ ॥ बहुत तीर्थों को करनेवाले, तीर्थरहित व सब तीर्थों तथा मनुष्यों के स्वामी, व्यतीपातयोगस्वरूप, प्रयागतीर्थरूप,

द्धानकी वृद्धि करनेवाले, शुभ ॥ ९९ ॥ संख्या से रहित, अप्रमाण, संख्या करनेवाले व संख्याविहीन, मिहिर (सूर्य) स्वरूप, तारनेवाले, ॐकारस्वरूप, ब-
लिरूप, चन्द्रस्वरूप, अमृतकी खानि ॥ २०० ॥ किंवर्ण, कीदृश, किंचितस्वरूप, किंस्वभाव, किमाश्रय, लोकसे रहित, आकारहीन, बहुत आकारवाले व एकही
करनेवाले ॥ १ ॥ नाती के पुत्ररूप, पौत्रस्वरूप, नातीरूप, वंश को धारनेवाले, न धारनेवाले, नम्रभूत, दयावान्, सब सिद्धियों के देनेवाले, मणिस्वरूप ॥ २ ॥
आधारभूत, धारनेवाले, पृथ्वी के पुत्र, सुमंगलरूप, मंगलमय, मंगल आकारवाले, मंगलरूप व सर्वमंगलस्वरूप ॥ ३ ॥ अतुल तेजवाले विष्णुजी के इस

विसंख्यकः ॥ मिहिरस्तारकस्तारो बलिश्चन्द्रःसुधाकरः ॥ २०० ॥ किंवर्णःकीदृशःकिञ्चित्किंस्वभावःकिमाश्रयः ॥
निर्लोकश्चनिराकारी बह्वाकारैककारकः ॥ १ ॥ दौहित्रपुत्रकःपौत्रो नप्तावंशधरोधरः ॥ द्रवीभूतोदयालुश्च सर्वसिद्धि
प्रदोमणिः ॥ २ ॥ आधारभूतोधारश्च धरासूनुःसुमङ्गलः ॥ मङ्गलोमङ्गलाकारो माङ्गल्यःसर्वमङ्गलः ॥ ३ ॥ नाम्नांसह
स्रकमिदंविष्णोरतुलतेजसः ॥ सर्वसिद्धिकरंकाम्यं पुण्यंहरिहरैःकृतम् ॥ ४ ॥ यःपठेत्प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वासमाहि
तः ॥ यश्चेदंशृणुयान्नित्यं नरोनिश्चलमानसः ॥ ५ ॥ त्रिसन्ध्यंश्रद्धयायुक्तः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ मोदतेपुत्रपौत्रैश्च दा
रभृत्यैश्चपूजितः ॥ ६ ॥ प्राप्यतेविपुलांलक्ष्मीम्मुच्यतेसर्वसङ्कटात् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति लभतेविपुलंयशः ॥ ७ ॥ वि
द्यावाञ्जायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ वैश्योधनसुलाभाढ्यः शूद्रःसुखमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ रणेघोरेविवादेचव्यापा

पुण्यदायक सहस्रनाम को हरिहरने किया है जो कि समस्त सिद्धियों को देनेवाला व मनोरथों का दायक है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल उठकर सावधान होताहुआ जो
मनुष्य पवित्र होकर इसको पढ़ता है व अचल मनवाला जो श्रद्धासंयुत मनुष्य इसको तीनों संध्याओं में नित्य सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है और स्त्रियों
व सेवकों से पूजित होकर पुत्रों व पौत्रो समेत आनन्द करताहै ॥ ५ । ६ ॥ और बहुत लक्ष्मी को प्राप्त होता है व सब दुःख से छूटजाता है व सब मनोरथों
को प्राप्त होता है और बहुत यशको पाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता है तथा वैश्य धनके उत्तम लोभ से संयुत होता है और

शूद्र सुखको पाता है ॥ ८ ॥ और भयंकर समर व विवाद तथा पराये अधीन व्यापार में विजयवान् मनुष्य सदैव सब कर्मों में जीत को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ और एकबार, दशबार, सौबार व हज़ार बार जो मनुष्य इसको नित्य पढ़ता है वह वैसेही फलको भोगता है ॥ १० ॥ पुत्रको चाहनेवाला नर पुत्रों को पाता है व धन को चाहनेवाला पुरुष अविनाशी धनको पाता है व मोक्ष को चाहनेवाला पुरुष मोक्ष को पाता है और धर्म को चाहनेवाला मनुष्य धर्मसंचय को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ और कन्या को चाहनेवाला पुरुष कन्या को प्राप्त होता है व ज्ञानी देवताओं को भी जो दुर्लभ है उस ज्ञान को पाता है और योगी योगों में युक्त होता है ॥ १२ ॥

रेपारतन्त्रके ॥ विजयीजयमाप्नोति सर्वदासर्वकर्मसु ॥ ९ ॥ एकधादशधाचैव शतधाचसहस्रधा ॥ पठेच्चयोनरोनित्यं तथैवफलमश्नुते ॥ १० ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रान् धनार्थीधनमव्ययम् ॥ मोक्षार्थीलभतेमोक्षं धर्मार्थीधर्मसञ्चयम् ॥ ११॥ कन्यार्थीलभतेकन्यां दुर्लभांयत्सुरैरपि ॥ ज्ञानंचलभतेज्ञानीयोगीयोगेषुयुज्यते ॥१२॥ महोत्पातेषुघोरेषु दुर्भिक्षेराजविग्रहे ॥ महामारीसमुद्भूते दारिद्र्यदुःखपीडिते ॥ १३ ॥ अरण्येप्रान्तरेवापि दावाग्निपरिवारिते॥ सिंहव्याघ्राभिभूतेपि वनहस्तिसमाकुले ॥ १४ ॥ राज्ञाक्रुद्धेनचाज्ञप्तो दस्युभिस्सहसङ्गमे ॥ विद्युत्पातेषुघोरेषु स्मर्तव्यंहिसदानरैः ॥ १५ ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासु वधबन्धगतोपिवा ॥ महार्णवेमहानद्यां पोतस्थेषुचनापदः ॥ १६ ॥ रोगग्रस्ताविवर्णाश्च गतकेशनखत्वचः ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि दिव्यकायाभवन्तिवै ॥ १७ ॥ तुलसीवनसंस्थाने तडागेचसुरालये ॥ बद्रिका

बड़े भयंकर उत्पातों में व दुर्भिक्ष तथा राजाओं के वैर में और महामारी उत्पन्न होनेपर व दरिद्रता तथा दुःख से पीड़ित होनेपर ॥ १३ ॥ वनमें व दूरतक शून्य मार्ग में व दावाग्नि से घिरनेपर और सिंहों व व्याघ्रों से तिरस्कृत होनेपर व वन के हाथियों से आकुल होने में ॥ १४ ॥ और क्रोधित राजा से आज्ञा देनेपर व चोरों से समागम होनेपर और भयंकर बिजली के गिरने में मनुष्यों को सदैव स्मरण करना चाहिये ॥ १५ ॥ ग्रहों की उग्र पीड़ाओं में व वध या बंधन में प्राप्त होनेपर और महासमुद्र व महानदी में जहाज़ पै स्थित होनेपर विपत्तियां नहीं होतीहैं ॥ १६ ॥ रोग से गँसे व रंगहीन तथा केश, नख व त्वचा से रहित पुरुष इसके

पढ़ने व सुनने से भी उत्तम शरीरवान् होते हैं ॥ १७ ॥ और तुलसीजी के वनस्थान में व तड़ाग तथा देवालय में व उत्तम बद्रिकाश्रम स्थान में और हरिद्वार में तपोवन में ॥ १८ ॥ व मधुवन, प्रयाग और द्वारका व महाकालवनमें सावधान होकर सब कामनाओंवाले व जितेन्द्रिय भक्तिमान् जो पुरुष नियम में प्राप्त होकर इसको सौबार पढ़ते हैं वे सिद्ध पुरुष संसार में सिद्धिदायक होकर पृथ्वीमें घूमतेहैं॥१९।२०॥ और आपसमें भेदके भेदोंका यह उत्तम मैत्रीकरणहै और मोहनोंका मोहन है व पवित्र तथा पापनाशक है ॥ २१ ॥ और बालकों के ग्रहोंके नाशनेकेलिये उत्तम शान्तिकारकहै व दुष्ट आचरणों तथा पापों की बुद्धिका नाशक उत्तमहै ॥ २२ ॥

अमेशुभेदेशे गङ्गाद्वारेतपोवने ॥ १८ ॥ मधुवनेप्रयागेचद्वारकायांसमाहिताः ॥ महाकालवनेचैव नियतास्सर्वकामुकाः ॥ १९ ॥ येपठन्तिशतावर्तं भक्तिमन्तोजितेन्द्रियाः ॥ तेसिद्धाःसिद्धिदालोके विचरन्तिमहीतले ॥ २० ॥ अन्योन्यभेदभेदानां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ मोहनंमोहनानाञ्च पवित्रंपापनाशनम् ॥ २१ ॥ बालग्रहविनाशाय शान्तीकरणमुत्तमम् ॥ दुर्वृत्तानाञ्चपापानां बुद्धिनाशकरंपरम् ॥ २२ ॥ पतद्गर्भाचवन्ध्याच स्राविणीकाकवन्ध्यका ॥ अनायासेनसततं पुत्रमेवप्रसूयते ॥ २३ ॥ पयःपुष्कलदागावो बहुधान्यफलाकृषिः ॥ स्वामिधर्मपराभृत्या नारीपतिव्रताभवेत ॥ २४ ॥ अकालमृत्युनाशाय तथादुःस्वप्नदर्शने ॥ शान्तिकर्मणिसर्वत्र स्मर्तव्यश्चसदानरैः ॥ २५ ॥ यःपठेत्त्वन्वहंमर्त्यः शुचिमान्विष्णुसन्निधौ ॥ एकाकीचजिताहारोजितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ २६ ॥ गरुडारूढसम्पन्नः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ वाञ्छितंप्राप्यलोकेस्मिन् विष्णुलोकंसगच्छति ॥ २७ ॥ एकतस्सकलाविद्या एकतस्सकलन्तपः ॥

और पतित गर्भवाली, वन्ध्या व जिसके रक्त बहताहो व काकवंध्या बिन परिश्रमके सदैव पुत्रहीको पैदा करती है ॥ २३ ॥ गौवें बहुत दूध देनेवाली व खेती बहुत धान्य फलवाली और सेवक स्वामीके धर्ममें तत्पर व स्त्री पतिव्रता होती है ॥ २४ ॥ अकालमृत्युके नाश होनेके लिये व दुःस्वप्न के देखने में और शान्तिकर्म में सब कहीं मनुष्योंको इसका स्मरण करना चाहिये ॥ २५ ॥ आहारको जीते व क्रोधको जीते और जितेन्द्रिय जो पवित्र पुरुष अकेले विष्णुजी के समीप इस सहस्रनामको प्रतिदिन पढ़ताहै ॥ २६ ॥ इस लोकमें मनोरथको पाकर गरुड़जी पै चढ़कर पीतवसन पहने व चार भुजाओंको धारण किये वह विष्णुजीके लोकको जाताहै ॥२७॥

एकओर सब विद्याहै व एकओर सब तपहैं तथा एकओर सब धर्महैं और एकओर विष्णुजी का नामहै ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण मुझको हजार नामों से स्तुति कियाचाहै सो मैं एकही श्लोकसे स्तुति किया होताहूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ हे सहस्रभुज ! आप हजार लोचनोंवाले व हज़ार चरणोंवाले तथा हज़ार मुखों से उज्ज्वल हो व अनन्त लोचनोंवाले और हज़ार नामोंवालेहो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ यह विष्णुसहस्रनाम प्राचीन व वेदों से संमित है सब मंगलोंका मंगलमय यह स्तोत्र भक्तिसे पढ़ना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! इस स्तोत्रसे युक्त देवताओंसे वहां वरदायकोंको भी वरदेनेवाले भगवान् विष्णुजीने प्रत्यक्ष होकर कहा ॥ ३२ ॥

एकतस्सकलोधर्मो नामविष्णोश्चएकतः ॥ २८ ॥ योमांनामसहस्रेणस्तोतुमिच्छतिवैद्विजः ॥ सोहमेकेनश्लोकेन स्तुतएवनसंशयः ॥ २९ ॥ सहस्राक्षस्सहस्राङ्घ्रिस्सहस्रवदनोज्ज्वलः ॥ सहस्रनामानन्ताक्षः सहस्रभुजतेनमः ॥ ३० ॥ विष्णोर्नामसहस्रन्तु पुराणंवेदसम्मितम् ॥ पठितव्यंसदाभक्त्या सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ३१ ॥ इतिस्तवाभियुक्तानां देवानांतत्रवैद्विज ॥ प्रत्यक्षंप्राहभगवान् वरदोवरदानपि ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ व्रियताम्भोःसुरास्सर्वे वरंमत्तोभिवाञ्छितम् ॥ तत्सर्वंसम्प्रदास्यामि नात्रकार्याविचारणा ॥ ३३ ॥ देवाऊचुः ॥ वरदोसियदाविष्णो वरमेतंददस्वनः ॥ अदितेर्गर्भसम्भूतः शक्रस्याप्यनुजोभव ॥ ३४ ॥ इतिसम्प्रार्थितोदेवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ॥ तथेत्युक्त्वाचभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३५ ॥ ततःकतिपयेकाले भगवानदितिनन्दनः ॥ विष्णुरूपधरोनन्तो वामनत्वाच्चवामनः ॥ ३६ ॥ बलिर्वैरोचनोऽयास वाजिमेधशतेनच ॥ ईजेद्विजवरश्रेष्ठ इन्द्रराज्यजिहीर्षया ॥ ३७ ॥ ऋत्विजंकश्यपंकृत्वा होतारं

श्रीभगवान् बोले कि हे सब देवताओ ! मुझसे चाहेहुये वरदान को मांगिये मैं उस सबको दूंगा इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ देवता बोले कि हे विष्णो! यदि वरदायकहो तो हमलोगों को यह वर दीजिये कि अदितिजी के गर्भ में उत्पन्न होकर तुम इन्द्रके भी छोटेभाई होवो ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवताओं से इसप्रकार प्रार्थना कियेहुये भगवान् वैसाही होगा यह कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर कुछ समयमें विष्णुरूपधारी अनन्त भगवान् अदितिजी के पुत्र होकर वामन (लघुरूप)होने के कारण वामन नामक हुये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तम ! विरोचनके पुत्र बलिने इन्द्र का राज्य हरने की इच्छासे सौ अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन

किया ॥ ३७ ॥ कश्यप को ऋत्विक् व भृगुश्रेष्ठ शुक्राचार्यजी को होता (ऋग्वेदी) करके उस यज्ञ में आपही पितामहजी ब्रह्मा हुये ॥ ३८ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् अत्रिजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) हुये और नारदजी उद्गाता (सामवेदी) हुये व वसिष्ठजी सभासद हुये ॥ ३९ ॥ जो जिस स्थानमें कियेगये थे वे सब मुनीश्वर वहां वहां बैठे व हे व्यासजी ! राजाओंमें श्रेष्ठ बलिजी वहां दीक्षित हुये ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इसप्रकार यज्ञों के वर्तमान होनेपर हवन कियाजाय,भोजन कियाजावै, दियाजावै व धराजावै ॥ ४१ ॥ ये उत्तम वचन वहांपर सुनपडतेथे व हे द्विजोत्तम ! उस विचित्र समय में पवित्र मुसक्यानवाले वामनजी आये ॥ ४२ ॥ हे नृपेन्द्र ! मुखसे

भृगुसत्तमम् ॥ ब्रह्मातत्राभवच्चैव स्वयमेवपितामहः ॥ ३८ ॥ अध्वर्युर्भगवानत्रिर्बभूवमुनिसत्तम ॥ उद्गातानारदश्चैवव सिष्ठश्चसभासदः ॥ ३९ ॥ येयत्रविहितास्सर्वे तत्रतत्रमुनीश्वराः ॥ बलिस्तत्राभवद्व्यास दीक्षितोराजसत्तमः ॥ ४० ॥ एवंप्रवर्तमानेषु यज्ञेषुमुनिसत्तम ॥ हूयतांभुज्यतांचैव दीयतांधीयतान्तथा ॥ ४१ ॥ इतिवाचश्शुभास्तत्र श्रूयन्तेच द्विजोत्तम ॥ तस्मिन्कालेसुचित्रेतु वामनोगाच्छुचिस्मितः ॥ ४२ ॥ पठमानोमुखाग्रेण चतुरोवेदपारगः ॥ द्वारेतिष्ठ तिराजेन्द्र वामनोद्विजसत्तमः ॥ ४३ ॥ प्रतीहारेणतुव्यास सर्वं राज्ञेनिवेदितम् ॥ उत्थायचमहाराजो बलिर्वैरोचनस्त दा ॥ ४४ ॥ अर्घ्यमादायतत्सर्वं तंजगामसभासदैः ॥ पूजयित्वायथान्यायं वामनंलोकभावनम् ॥ ४५ ॥ आनयित्वा सभामध्ये दत्त्वासनपरिग्रहम् ॥ कुतआगमनंब्रह्मन् किन्तेभीष्टंददाम्यहम् ॥ ४६ ॥ वामनउवाच ॥ राजराजाखिला सृष्टिर्ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ ततोहमागतोभूमन् यज्ञन्तेवैदिदृक्षया ॥ ४७ ॥ वरुणस्यचयज्ञोवै सुदृष्टोमेपुरानघ ॥ यक्षा

चारों वेदों को पढ़ताहुआ वेदों का पारगामी वामनरूप द्विजोत्तम द्वार पै स्थित है ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! जब इसप्रकार द्वारपालने सब वृत्तान्त को राजा से निवेदन किया तब विरोचनकेपुत्र महाराज बलिजी उठकर ॥४४॥ अर्घ्य व उस सबवस्तुको लेकर सभासदों समेत उनके समीप गये व लोकोंको उत्पन्न करनेवाले वामनजी को यथायोग्य पूजकर ॥ ४५ ॥ सभा के बीचमें आनकर व आसन को देकर बलि बोले कि हे ब्रह्मन् ! कहांसे तुम्हारा आगमन हुआ और तुमको क्या प्रिय वस्तु देऊं ॥ ४६ ॥ वामनजी बोले कि हे राजराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजीकी सब सृष्टिहै उसी कारण हे भूमन् ! तुम्हारे यज्ञके देखने की इच्छासे मैं आयाहूं ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! पुरातन

समय मैंने वरुण के यज्ञको भलीभांति देखाहै और वैसेही यक्षोंके स्वामी कुबेरजीके यज्ञको मैंने देखाहै ॥ ४८ ॥ और राजर्षियों के यज्ञोंको मैंने देखाहै और वे बड़े नियमवान् थे परन्तु हे महाराज ! जैसे इस तुम्हारे यज्ञको मैंने देखाहै ॥ ४९ ॥ हे राजराजेन्द्र ! ऐसा यज्ञ न हुआहै न होगा इसलिये हे अनघ, राजन् ! मांगने के लिये मैं यहा आयाहूं ॥ ५० ॥ बलि बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुम मांगो तुम्हारा क्या मनोरथहै उसको मैं देऊं वामनजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! यदि तुमको रुचता हो तो हे नृपोत्तम ! बसनेके लिये आज मुझको तीन पग पृथ्वीको दीजिये बलिबोले कि हे विप्रजी ! तुमने यह थोड़ा क्या मांगा मुझको नहीं अच्छा लगा ॥ ५१।५२ ॥

धिपस्यचतथा यज्ञश्चदृष्टवानहम् ॥ ४८ ॥ राजर्षीणाञ्चमेयज्ञा दृष्टास्तेतिमहाव्रताः ॥ यादृशोयंमहाराज यज्ञस्तेदृष्टवानहम् ॥ ४९ ॥ ईदृशोराजराजेन्द्र नभूतोनभविष्यति ॥ तस्मादिहागतोराजन् याचनार्थंत्वथानघ ॥ ५० ॥ बलिरुवाच ॥ याचस्वत्वंद्विजश्रेष्ठ किन्तेभीष्टंददाम्यहम् ॥ वामनउवाच ॥ देहिमेराजराजेन्द्र पादानित्रीणिमेदिनीम् ॥ ५१ ॥ वासार्थंरोचतेतेद्य यदिपार्थिवसत्तम ॥ बलिरुवाच ॥ किमिदंयाचितंविप्र स्वल्पन्तेनाहिमेपरम् ॥ ५२ ॥ रत्नानिविविधानित्वं गजवाजिरथान्भुवम् ॥ दासदासीर्वरारोहाःस्त्रीर्यानानिवसूनिच ॥ ५३ ॥ द्रव्याणिवाससीशुक्ले याचस्वत्वंद्विजोत्तम ॥ पात्रोसिकृतकृत्योसि वेदवेदाङ्गपारग ॥ ५४ ॥ वामनउवाच ॥ नमेकिञ्चित्स्पृहाराजन् विद्यतेभुविमानद ॥ देहित्वंत्रिपदाम्भूमिं यदिश्रद्धास्तितेधुना ॥ ५५ ॥ गृहाणत्रिपदांभूमिं वासस्यार्थंहिमानद ॥ इत्युक्त्वावैसराजर्षिर्ददौभूमिंद्विजायवै ॥ ५६ ॥ वारितोयंतदाव्यास भृगुणादैवनोदितः ॥ दत्तमात्रेजलेसद्यो ब्रह्माण्डमाक्रमद्धरिः ॥ ५७ ॥

तुम अनेकों प्रकारके रत्न, हाथी, घोड़े, रथ व पृथ्वी, दास, दासी और उत्तम कटिवाली स्त्री, सवारी व धनोंको मांगो ॥ ५३ ॥ हे वेदवेदांगपारग, द्विजोत्तम ! द्रव्य व श्वेत वसनोंको तुम मुझसे मांगो क्योंकि पात्रहो और कृतकृत्यहो ॥ ५४ ॥ वामनजी बोले कि हे मानद, राजन् ! पृथ्वी में मेरी कुछ इच्छा नहीं है यदि इससमय तुम्हारे श्रद्धा होवे तो तीन पग पृथ्वीको दीजिये ॥ ५५ ॥ हे मानद ! निवास के लिये तीनपग पृथ्वीको लीजिये यह कहकर उन राजर्षि बलिने ब्राह्मण के लिये पृथ्वीको दिया ॥५६॥ तब हे व्यासजी! शुक्राचार्यजीने दैवसे प्रेरित इन बलिको मना किया और जल देनेहीपर उसीक्षण विष्णुजीने ब्रह्माण्डका आक्रमण किया ॥५७॥

हे व्यासजी ! पर्वत, वन व काननों समेत यह पृथ्वी उससमय ढाईपग हुई और बलिने शरीर को अर्पणकिया ॥ ५८ ॥ वामनरूपधारी विष्णुजीने सब असुरगणोंको जीतकर व इन्द्रको राज्यदेकर पश्चात् कुमुद्वतीपुरी में प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ हे व्यासजी ! ऋद्धि सिद्धिदायक उस पवित्र स्थान पै अपना से उपजेहुये तीर्थको करके सुरश्रेष्ठ वामनजी ने वहीं निवास किया ॥ ६० ॥ वामनजी से कियाहुआ तीर्थ वामनकुण्ड कहाजाताहै भादों महीने में शुक्लपक्षमें श्रवण नक्षत्र से संयुत द्वादशी तिथि ॥ ६१ ॥ कोटि हत्याओं को नाशनेवाली वामनद्वादशी कहीगई है इस तीर्थमें नहाकर मनुष्य एकादशी व्रतकर ॥ ६२ ॥ व रात्रि में जागरणकर ब्रह्म

सार्द्धपादद्वयंजाता सशैलवनकानना ॥ वसुधेयंतदाव्यास बलिनार्पितंवपुः ॥ ५८ ॥ जित्वासुरगणान्सर्वान् राज्यंदत्त्वाशतक्रतोः ॥ पश्चात्कुमुद्वतींप्राप्तो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ५९ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदेपुण्ये तीर्थंकृत्वात्मसम्भवम् ॥ निवासमकरोद्व्यास तत्रैवसुरसत्तमः ॥ ६० ॥ वामनेनकृतंतीर्थं वामनंकुण्डमुच्यते ॥ भाद्रेमासिसितेपक्षे द्वादशीश्रवणान्विता ॥ ६१ ॥ वामनद्वादशीप्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ॥ अस्मिन्तीर्थेनरस्स्नात्वा उपोष्यैकादशींतिथिम् ॥ ६२ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ द्वादश्यांवैविशेषेण महादानानिकुर्वते ॥ ६३ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ व्यासैवंवामनंतीर्थं पुराप्रोक्तंमहर्षिणा ॥ ६४ ॥ सर्वपापहरंपुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे वामनकुण्डमहिमावर्णनन्नामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि वीरेश्वरमथोशृणु ॥ तस्मिन्तीर्थेनरस्स्नात्वा वीरलोकमवाप्नुयात् ॥१॥

होनेके लिये समर्थ होताहै जो मनुष्य द्वादशी तिथिमें विशेषकर महादानोंको करताहै ॥ ६३ ॥ तीनोंलोकों में उसको कुछ दुर्लभ नहीं होताहै हे व्यासजी ! पुरातन समय इसप्रकार व्यासजीने वामनतीर्थ को कहाहै ॥ ६४ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाला व पवित्र तथा सब कामनाओं के वरको देनेवालाहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । कह्यो भैरवाष्टक यथा तीरथ भैरव नाम । पचहत्तरि अध्यायमें सोई चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अब इसके उपरान्त वीरेश्वर तीर्थको कहूंगा उस

को सुनिये कि उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य वीरलोकको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और सब कामनाओं का वरदायक नागों का उत्तम तीर्थ है व जो कालभैरवजी कहेगये हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ २ ॥ कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब दुःखोंसे छूटजाता है व्यासजी बोले कि हे मुनिवर ! श्रेष्ठ कालभैरव संज्ञक तीर्थ किस समय प्रसिद्ध हुआ है इसको विस्तार से कहिये सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय यह भैरव योगी योगिनियों को भयकारक था ॥ ३ । ४ ॥ उस समय कालचक्र से की हुई कृत्या व जो योगिनीगण थे उनके मध्य में काली ऐसी प्रसिद्ध योगिनी अति उत्तम थी ॥ ५ ॥ उससे यह भैरव उस समय नित्य पुत्रकी नाईं पा-

नागानांप्रवरन्तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ कालभैरवआख्यातस्तस्यतीर्थंपरंस्मृतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वदुःखातिगोभवेत् ॥ व्यासउवाच ॥ कस्मिन्कालेहिविख्यातं कालभैरवसंज्ञितम् ॥ ३ ॥ तीर्थंमुनिवरश्रेष्ठमेतद्विस्तरतोवद ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरायंवैभैरवोयोगी योगिनीत्रासकारकः ॥ ४ ॥ कालचक्रकृताकृत्या योगिनीनांगणास्तदा ॥ तासांकालीतिविख्याता योगिनीपरमोत्तमा ॥ ५ ॥ तयायंपालितोनित्यं पुत्रवद्भैरवस्तदा ॥ तेनैतेवैविनिर्धूतादोषोत्पाताश्चसत्तम ॥ ६ ॥ त्रिविधाभुविविख्यातास्सर्वविघ्नकराःपराः ॥ कालकृत्याखिलातेन भ्रंशितापरमात्मना ॥७॥ महामारीपूतनाच कृत्याशकुनिरेवच ॥ कोटरीतामसीमाया एतेमातृगणास्स्मृताः ॥ ८ ॥ दुष्टदोषवहादुष्टास्सर्वप्राणिभयङ्कराः ॥ वशीचक्रेसधर्मात्मा सर्वकामवरप्रदः ॥ ९ ॥ क्षिप्रातीरेस्थितोनित्यं कूलेचोत्तरतश्शुभे ॥ आखरस्यपरेपूर्वे सोपितिष्ठतिसर्वदा ॥१०॥ आषाढस्यसितेपक्षे रविवारेसमाहिताः ॥ नवमीञ्चाष्टमींप्राप्य चतुर्दश्यांविशेषतः॥११॥

लित रहताथा हे सत्तम ! उसी से ये दोषों के उत्पात नष्ट कियेजाते थे ॥ ६ ॥ पृथ्वी में सब विघ्नों को करनेवाले श्रेष्ठ तीनप्रकार के प्रसिद्ध हैं उस परमात्मा से सबकाल कृत्या भ्रष्ट की गई ॥ ७ ॥ महामारी, पूतना, कृत्या, शकुनि, कोटरी, तामसी, माया ये मातृगण कहेहैं ॥ ८ ॥ जो कि दुष्टदोषों को प्राप्त करनेवाले व दुष्ट तथा सब प्राणियों को भयंकर हैं सब कामनाओं के वरदायक उस धर्मात्मा ने इन सबों को वशकिया ॥ ९ ॥ और क्षिप्रानदी के उत्तर ओर उत्तम किनारे पै वे नित्य स्थित हैं और आखर स्थान के पश्चिम व पूर्व में भी वे भैरवजी सदैव टिकेरहतेहैं ॥ १० ॥ आषाढ़ के शुक्लपक्ष में रविवार को नवमी व अष्टमी तिथिको पाकर

सावधान होतेहुये जो कोई निश्चल मनवाले मनुष्य पूजन करते हैं वे अपने मनोरथ को प्राप्त होते हैं और विवाह, पुत्र जन्म व उत्तम मंगल कार्य में ॥ ११ । १२ ॥
पत्र, पुष्प, अर्घ, गध व अनेक भांति के नैवेद्यों से तथा सुगन्ध संयुत तांबूलों से वरदरूपी भैरवजी को पूजै ॥ १३ ॥ और ब्राह्मणों के भोजनों से तथा हवनों से
सदैव व्यापक भैरवजी को तृप्तकरै तदनन्तर परम कल्याण व परम मंगल को प्राप्त होवैहै ॥ १४ ॥ और उन देवको प्रणामकर व स्तुतिकर सब कामनाओं की अर्थ
सिद्धिके लिये होता है ॥ १५ ॥ सब पातकों के हरनेवाले व धूर्तों तथा दुष्टोंके नाशक व उत्तम आचार व चरित पै चलनेवाले तथा मुंडों की माला को धारण कर-

पूजांकुर्वन्तियेकेचिन्नरानिश्चलमानसाः ॥ विवाहेपुत्रजनने माङ्गल्येचशुभेतथा ॥ १२ ॥ पत्रपुष्पार्घगन्धैश्च नैवे
द्यैर्विविधैस्तथा ॥ ताम्बूलैर्वासुगन्धाढ्यैः पूजयेद्वरदरूपिणम् ॥ १३ ॥ विप्राणांभोजनैर्होमैस्तर्पयेत्सततंविभुम् ॥ त
तःपरमकल्याणमियात्परममङ्गलम् ॥ १४ ॥ नत्वास्तुत्वाचतन्देवं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ सकलकलुषहारी धूर्त
दुष्टान्तकारी सुचरचरितचारी मुण्डमालांप्रधारी ॥ करकलितकपाली कुण्डलीदण्डपाणिस्सभवतुसुखकारी भैरव
स्त्रासहारी ॥ १६ ॥ विविधरासविलासविलासितं नववधूप्रविधूतपराक्रमम् ॥ मदविघूर्णितयुग्मविलोचनं भयहरंसत
तंभवजंस्मरे ॥ १७ ॥ अमलकमलनेत्रंचारुचन्द्रावतंसं सकलगुणवरिष्ठं कामिनीकामरूपम् ॥ परिधुतपरितापं डा
किनीनाशहेतुं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ १८ ॥ सकलबलविघातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकटिकरालं साट्ट

नेवाले व जिनके हाथ में कपाल शोभित है और कुण्डलों को धारण किये व दण्डको हाथ में लिये हैं वे भयहारक भैरवजी सुखकारक होवैं ॥ १६ ॥ अनेक भांति
के रास व विलास से शोभित और नवीन नारियों से कंपित पराक्रमवाले तथा मदसे घूमतेहुये युगल लोचनोंवाले, भयहारक, शिवपुत्र (भैरव) जी को मैं सदैव
स्मरण करताहूं ॥ १७ ॥ निर्मल कमल के नाईं नेत्रवाले व सुन्दर चन्द्रमारूपी अवतंस (शिरोभूषण) को धारण किये, सबगुणों से श्रेष्ठ व कामिनियों के लिये
कामदेवरूप व सब ओर से सन्ताप को नाशकरनेवाले, और डाकिनियों के नाश के कारण व सेवकों के लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १८ ॥

सब बलों को नष्ट करनेवाले व क्षेत्रपाल के एकही पालक तथा विकट कटि से करालरूप, अट्टहास समेत विशालरूप व हाथ में तलवार को लिये तथा सांपोंका यज्ञोपवीत पहनेहुये जनके लिये शिवरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १९ ॥ संसार के भयको हरनेवाले, योगिनियों को भयकारक, सब सुरगणों के स्वामी व सुन्दर चन्द्रमा, सूर्य नेत्रवाले, मस्तकपै मुकुट को रचेहुये व विशाल मोतियों की मालको पहने जनके लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ २० ॥ चार भुजाओं को धारे व शंख तथा गदा इत्यादिक अस्त्रों को धारण किये, पीतवसनवाले तथा सघन मेघों के समान सुन्दर, श्रीवत्स चिह्नवाले, जिनके गल में कौस्तुभ

हासंविशालम् ॥ करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ १९ ॥ भवभयपरिहारं योगिनीत्रासकारं सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम् ॥ मुकुटरचितभालं मुक्तमालंविशालं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ २० ॥ चतुर्भुजंशङ्खगदाधरायुधं पीताम्बरंसान्द्रपयोदसौभगम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मङ्गलशोभिकौस्तुभं शिवप्रदंशङ्कररक्षकम्भजे ॥ २१ ॥ लोकाभिरामंवचनाभिरामं प्रियाभिरामंयशसाभिरामम् ॥ कीर्त्याभिरामंतपसाभिरामं तम्भूतनाथंशरणंप्रपद्ये ॥ २२ ॥ आद्यंब्रह्मसनातनंशुचिपरं सिद्धिप्रदंकामदं सेव्यंभक्तिसमन्वितंसुरवरं सेव्यंसुभक्त्यासदा ॥ योग्यंयोगविचारितंयुगधरं योग्याननंयोगिनं वन्देहंसकलंकलङ्करहितं सत्सेवितम्भैरवम् ॥ २३ ॥ भैरवाष्टकमिदंपुण्यं प्रातःकालेपठेन्नरः ॥ दुःस्वप्ननाशनंतस्य वाञ्छितार्थफलंभवेत् ॥ २४ ॥ राजद्वारेविवादेच सङ्ग्रामेसङ्कटेतथा ॥ राज्ञा

शोभित है उन कल्याण दायक व शंकरजी को रक्षा करनेवाले भैरवजी की मैं भजताहूं ॥ २१ ॥ देखने में सुन्दर व वचन से मनोहर तथा प्रियसे सुन्दर व यश से मनोहर, कीर्ति से सुन्दर, तपस्या से मनोहर उन भूतनाथजी के शरण में मैं प्राप्त होताहूं ॥ २२ ॥ आदिमें होनेवाले सनातन ब्रह्म, पवित्रता में तत्पर, सिद्धि दायक, कामनाओं को देनेवाले, सेवा के योग्य व भक्ति से संयुत, सुरश्रेष्ठ तथा सदैव उत्तम भक्ति से सेवने योग्य व यथार्थ योग को विचारनेवाले, युगधारी व योग्य मुखवाले, कलाओं समेत व कलंकरहित, उत्तम जनों से सेवित भैरवयोगी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ २३ ॥ इस पवित्र भैरवाष्टक को जो मनुष्य प्रातःकाल प-

दृता है उसके दुःस्वप्नकानाश होता है और चाहेहुये अर्थ का फल होता है ॥ २४ ॥ राजद्वार, विवाद समर व संकट में तथा क्रोधित राजा से आज्ञा देनेपर व शत्रु के बंधन में प्राप्त होनेपर सदैव ॥ २५ ॥ दरिद्रता व दुःख के नाश होने के लिये सावधान होतेहुये मनुष्यों को यह भैरवाष्टक पढ़ना चाहिये जो मनुष्य इसको पढ़ते हैं उनको कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २६ ॥ इस तीर्थ में मनुष्योंको स्नान, दानादिक करना चाहिये क्यों कि संसार के भ्रमसे डरेहुये मनुष्यों से श्रेष्ठभैरव देवजी पूजित हुयेहैं ॥ २७ ॥ इसलिये सब यत्न से उत्तम तीर्थ करना चाहिये ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकालभैरव

क्रुद्धेनचाज्ञप्ते शत्रुबन्धगतेसदा ॥ २५ ॥ दारिद्र्यदुःखनाशाय पठितव्यंसमाहितैः ॥ नतेषांजायतेकिञ्चिद्दुर्लभंयेपठन्तिवै ॥ २६ ॥ अस्मिन्तीर्थेप्रकर्तव्यं स्नानदानादिकन्नरैः ॥ संसारभ्रमभीतैश्च पूजितोभैरवोवरः ॥ २७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कालभैरवतीर्थयात्रामाहात्म्यन्नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ नागतीर्थंत्वयाब्रह्मन् पुराप्रोक्तंयशस्विना ॥ तस्यतीर्थवरस्यापि महिमानञ्चसत्तम ॥ १ ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ किञ्चित्कालेसमाख्यातमेतद्विस्तरतोवद ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि तवाग्रेनागतीर्थजाम् ॥ कथाम्पुण्यतमांव्यास भुविपापहरांपराम् ॥ ३ ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण शापमुक्तोभ

तीर्थयात्रामाहात्म्यन्नामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत नागतीर्थ परभाव । छिहत्तरि अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे सत्तम ! पुरातन समय आप यशस्वी ने नागतीर्थ को कहाहै उस उत्तम तीर्थ की महिमाको भी ॥ १ ॥ मैं फिर तुमसे सुना चाहताहूं हे ब्रह्मविदांवर ! समय में कुछ कहेहुये इस चरित्रको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे ब्रह्मन्, व्यासजी ! सुनिये नागतीर्थ से उपजीहुई अत्यन्त पवित्र व पृथ्वी में पापोंको हरनेवाली उत्तम कथाको मैं तुम्हारे

आगे कहूंगा ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य शाप से छूटजाताहै हे परंतप! पुरातन समय माता के शाप से जो नागभ्रष्टहुये ॥ ४ ॥ जनमेजय से जलायेहुये वे आस्तिक से छुड़ायेगये उस समय उन्हों ने जरत्कारुके पुत्र द्विजोत्तम आस्तिकजी से पूछा ॥ ५ ॥ नाग बोले कि हे ब्रह्मन्! सुरराज के समीप जनमेजय के इस यज्ञमें हमलोग तुम्हारी प्रसन्नतासे अग्निसे छुड़ायेगये ॥ ६ ॥ हे परंतप, ब्रह्मन्! जब जिस स्थान में अभय निवासहोवै हमारे निवास के लिये ऐश्वर्य को चाहते हुये तुम वहां निवास बतलावो ॥ ७ ॥ आस्तिकजी बोले कि हे मातुलोंमें श्रेष्ठ! तुम लोगोंका जो उत्तम हितहै उसको सुनिये कि मनोहर महाकाल वनमें जो कुशस्थली

वेन्नरः ॥ पुरानागाःपरिभ्रष्टा मातुश्शापात्परन्तप ॥ ४ ॥ जनमेजयेनदग्धास्ते मोचिताह्यास्तिकेनच ॥ पप्रच्छुस्तेद्विज श्रेष्ठं जरत्कार्वात्मजंतदा ॥ ५ ॥ नागाऊचुः ॥ हेब्रह्मन्त्वत्प्रसादेन मोचिताहव्यवाहनात् ॥ जनमेजयस्ययज्ञेस्मिन्देव राजस्यसन्निधौ ॥ ६ ॥ अस्माकंभूतिमन्विच्छन् वासस्यार्थेपरन्तप ॥ यस्मिन्स्थानेयदाब्रह्मन् निवासोजायतेभयः ॥ ७ ॥ आस्तिकउवाच ॥ श्रूयतांमातुलश्रेष्ठा युष्माकंहितमुत्तमम् ॥ महाकालवनेरम्ये यावैकुशस्थलीस्मृता ॥ ८ ॥ तस्याहिदक्षिणेभागे पूर्वंतीर्थंसनातनम् ॥ नागालयःपुराप्रोक्तो यत्रसन्निहितोहरः ॥ ९ ॥ योगनिद्रांसमासाद्य शेतेब्रह्म सनातनः ॥ बकदाल्भ्योऋषिस्तत्र तपस्तेपेधृतव्रतः ॥ १० ॥ लोमशश्चमहातेजास्तत्रैवंसतुतिष्ठति ॥ दीर्घायुस्त्वंसमापन्नो मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ ११ ॥ कालचक्रप्रवर्ताच महाकालप्रतापनः ॥ कपिलःसिद्धिमापन्नो यत्रतीर्थवरोत्तमे ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्रोविमुक्तोभूचाण्डालात्तुयगर्हणात् ॥ सप्तर्षिप्रवराह्येते निर्वाणपदवींगताः ॥ १३ ॥ एतस्मात्कार

पुरी कहीगई है ॥ ८ ॥ उसके दक्षिण भाग में पहले सनातन तीर्थहुआ है पुरातन समय वहा नागस्थान कहागया है जहां कि महादेवजी भलीभांति टिके हैं ॥ ९ ॥ और वहीं पर सनातन ब्रह्म योगनिद्राको प्राप्तहोकर सोते हैं व व्रतको धारण किये बकदाल्भ्य ऋषिने वहां तपस्याकिया है ॥ १० ॥ और इसी भांति बड़े तेजस्वी वे लोमशजी वहां टिके हैं व महामुनि मार्कण्डेयजी बड़े आयुर्बल को प्राप्तहुये हैं ॥ ११ ॥ व महाकालको सन्ताप करनेवाले व कालचक्र के प्रवर्तक कपिलदेव जो जिस उत्तमोत्तम तीर्थ में सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १२ ॥ व जहांपर हरिश्चन्द्रजी निन्दित चाण्डाल के घरसे मुक्त हुये हैं और ये श्रेष्ठ सप्तर्षिलोग जहां मोक्ष

पदवीको प्राप्तहुये हैं ॥ १३ ॥ इसीकारण हे नागो! वहींपर विरामकियाजावै क्योंकि वहां पर माताके शाप से उपजाहुआ दोष तुमलोगों को नहीं पीड़ितकरैगा ॥ १४ ॥ आस्तिक ऋषि के इस वचनको सुनकर उस समय वे नागोत्तम निवास के लिये गये ॥ १५ ॥ एलापत्र, मल, कर्कोटक, धनंजय व नागों में श्रेष्ठ वासु कि, तक्षक व नील ॥ १६ ॥ पद्मक और प्रसिद्ध अर्बुद बहुत दिनोंतक नियमोंवाले उनसबों ने यहां आकर अपने स्थानों को किया ॥ १७ ॥ हे सत्तम! वहां पर उत्तम व मनोहर तीर्थहुये हैं और तीर्थभूत नवीनकुण्ड हुये हैं ॥ १८ ॥ जो कि विद्वानों से महापुण्यदायक व महापातकों के हरनेवाले कहेजाते हैं और जहां पर सिद्ध,

णान्नागास्तत्रैवचविरम्यताम् ॥ मातुःशापोद्भवोदोषोयुष्माकन्नैवबाधते ॥ १४ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वा ऋषेरास्तिकस्यच ॥ आगच्छन्तुतदातेवै वासार्थंपन्नगोत्तमाः ॥ १५ ॥एलापत्रोमलश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ वासुकिःपन्नगश्रेष्ठस्तक्षकोनीलएवच ॥ १६ ॥ पद्मकोर्बुदविख्यातो नागास्तेसर्वएवहि ॥ अत्रागत्यस्वस्थानानि चक्रुस्तेसुचिरव्रताः ॥ १७ ॥ तत्ररम्याणितीर्थानि जातानिपरमाणिच ॥ नवानिचसुकुण्डानि तीर्थभूतानिसत्तम ॥ १८ ॥ महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणिच ॥ यत्रसिद्धाश्चगन्धर्वा ऋषयःशंसितव्रताः ॥ १९ ॥ अप्सरोगणसङ्घैश्च सेवितंचसदावरैः ॥ यत्रशेषोमहानागः पुराप्रोक्तोमहर्षिभिः ॥ २० ॥ शेषशायीस्वयंविष्णुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥ तत्रसर्वाणितीर्थानि तिष्ठन्ति भुविसर्वदा ॥ २१ ॥ श्वेतद्वीपेतिविख्याता मणिविक्रान्तभूमिका ॥ यत्रपुण्यानिवृक्षाणि पुष्पितानिचसर्वशः ॥ २२ ॥ हंसकारण्डकाकादि पिककोकिलसारसाः ॥ मयूराणांगणास्तत्र नृत्यन्तिचरमन्तिच ॥ २३ ॥ निधिभिर्व्याप्तमाखिलं

गंधर्व व प्रशंसित नियमोंवाले ऋषिलोग हैं ॥ १९ ॥ व जो तीर्थ सदैव अप्सराओं के गणों से सेवित हैं और जहां पर पहले महर्षियों से महानागशेषजी कहे गये हैं ॥ २० ॥ व ये कमललोचन शेषशायी भगवान् विष्णुजी जहां पर हैं वहां सदैव सब तीर्थ पृथ्वी में स्थित हैं ॥ २१ ॥ मणियों से आक्रमित भूमिवाली श्वेतद्वीपा ऐसी पृथ्वी प्रसिद्धहै जहां सब ओर फूलेहुये पुण्यमय वृक्षहैं ॥ २२ ॥ और वहांपर हंस, कारण्डव, काकादि, पिक, कोकिल, सारस व मयूरों के गण नाचते व

रमण करतेहैं ॥ २३ ॥ और जो सब स्थान निधियों से व्याप्त व कमलों की सुगन्धसे वासित तथा उत्तमता से किन्नरों के उच्चशब्द से संयुत है ॥ २४ ॥ व जहांपर संस्कार कियेहुई स्त्रियां मित्रगणों के साथ विहार करतीं हैं व सुन्दरी नागकन्याओं से जोबड़ा अद्भुतस्थान शोभित है ॥ २५ ॥ जिस तीर्थ में नहाकर मनुष्य वैकुंठनामक उत्तम स्थान को प्राप्त होताहै व उसमें नित्य नहाकर मनुष्य श्रीमान् होता है अन्यथा नहीं होता था ॥ २६ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! सब पापोंको हरनेवाला उत्तम स्थान है व यहीपर उत्तमतीर्थरूप बलिका अद्भुत आश्रम है ॥ २७ ॥ यहां स्नानादिक करना चाहिये जहां कि विष्णुजी स्थितहैं क्योंकि उसीद्वारा मनुष्य सब

नीलोत्पलसुगन्धिना ॥ वासितंवायुनाशुभ्रं किन्नरोच्चविनादितम् ॥ २४ ॥ यत्रवैसंस्कृतानार्यो विहरन्तिसुहृद्गणैः ॥ रम्याभिर्नागकन्याभिर्मण्डितम्परमाद्भुतम् ॥ २५ ॥ यत्रस्नात्वानरोयाति वैकुण्ठाख्यंचशोभनम् ॥ तत्रस्नात्वानरो नित्यं श्रीमान्भवतिनान्यथा ॥ २६ ॥ एवंव्यासपरंस्थानंसर्वपापहरंपरम् ॥ अत्रैवचपरंतीर्थं बलेराश्रममद्भुतम् ॥ २७ ॥ अत्रस्नानादिकंकार्यं यत्रसन्निहितोहरिः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवतितत्क्षणात ॥ २८ ॥ कियत्प्रमाण मात्राञ्च योददातिवसुन्धराम् ॥ तनूरुहाणियावन्ति तावन्तिकालसङ्ख्यया ॥ २९ ॥ असङ्ख्यांलभतेवृद्धिं तस्यलोकःसनातनः ॥ श्रावणेमासिशुक्लेच पञ्चम्यांसोमवासरे ॥ ३० ॥ नागानांपूजनङ्कार्यं श्राद्धंदर्शेविधीयते ॥ अक्षयञ्जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थोभवेत्ततः ॥ ३१ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनागतीर्थमहिमानामषट्सप्ततितमोध्यायः ॥ ७६ ॥

पापों से शुद्ध चित्त होताहै ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य कुछ प्रमाणभर पृथ्वीको देताहै तो जितने रोम होते हैं उतनेही वर्षोंतक कालकी संख्यासे ॥ २९ ॥ वह असंख्य वृद्धि को प्राप्त होता है और उसको सनातन लोक होता है श्रावण के महीने में शुक्लपक्ष में पंचमी व सोमवार में ॥ ३० ॥ नागों का पूजन करना चाहिये और अमावस में श्राद्धकिया जाता है तो अक्षय श्राद्ध होताहै व उससे चाहाहुआ प्रयोजन होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनागतीर्थमहिमावर्णननामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰। अहै अतुल माहात्म्य युत तीर्थ नृसिंहक नाम। सतहत्तरि अध्याय में सोइ चरित सुख धाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! तीर्थों के मध्य में जो उत्तम तीर्थ है वह सब पापों का नाशक तीर्थ महात्मा नृसिंहजी का है ॥ १ ॥ जिस के दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है पुरातन समय हिरण्यकशिपु दैत्यराज कहागया है ॥ २ ॥ उस दुष्टात्मा ने इस सब पृथ्वी को पाया है और दुष्टदैत्यसेनाओं से व्याप्त तथा भारसे आक्रमित तथा शोच से विकल ॥ ३ ॥ दुःखित पृथ्वी आंसुओं से संयुत मुखवाली गऊ होकर ब्रह्मा की शरण में गई भार से आक्रमित पृथ्वी को देखकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ उसके परिश्रम

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुपरं व्यास तीर्थानांमुत्तमंचयत् ॥ तत्तीर्थंसर्वपापघ्नं नृसिंहस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ दैत्यराजःसमाख्यातोहिरण्यकशिपुःपुरा ॥ २ ॥ तेनेयंवसुधासर्वा संप्राप्ताचदुरात्मना ॥ दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ताशुचार्दिता ॥ ३ ॥ गौर्भूत्वाश्रुमुखीखिन्ना ब्रह्माणंशरणंययौ ॥ भाराक्रान्तान्धरांदृष्ट्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा तच्छ्रमञ्चव्यपोहितुम् ॥ श्रूयतांभोवनेपुण्ये भवत्याउपकारकम् ॥ ५ ॥ वचोददामितेतथ्यं देशकालोचितन्तथा ॥ पुरानेनतपश्चीर्णं दुष्करंसर्वदेहिनाम् ॥ ६ ॥ गायत्र्युपासनं तेनकृतञ्चावहितात्मना ॥ ब्रह्मणाचवरोदत्तः प्रीतियुक्तेनचेतसा ॥ ७ ॥ नदिवानतथारात्रौ नान्तरिक्षेनभूतले ॥ नातिशुष्केणचार्द्रेण नचशस्त्रास्त्रघातिकैः ॥ ८ ॥ मानवैःपक्षिसङ्घैश्च न मेमृत्युर्भवेदिति ॥ एकपाणितलाघातैः सामात्यबलवाहनम् ॥ ९ ॥ मारयिष्यतियोवीरः समेमृत्युर्भविष्यति ॥ तथेत्युक्त्वातिहृष्टात्मा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १० ॥

को नाशकरने के लिये नम्र वचन से बोले कि हे पुण्यरूपे, पृथ्वि ! जो तुम्हारा उपकारक है उसको सुनिये ॥ ५ ॥ मैं देश व समय के योग्य सत्यवचन को तुम्हें देताहूं कि पहले इस दैत्यने सब देहधारियों के कठिन तप को किया है ॥ ६ ॥ व सावधान मनवाले इसने गायत्री की उपासना किया है और प्रीतिसंयुत चित्त से ब्रह्मा ने वरदान दियाहै ॥ ७ ॥ न दिनमें न रात्रि में न आकाश में न पृथ्वी में न बहुत सूखे से न भीगे से और न शस्त्रास्त्रों के मारने से ॥ ८ ॥ और मनुष्यों तथा पक्षीगणों से मेरीमृत्यु न होवै और एकही चपाटे के मारने से मंत्री, सेना व सवारी समेत मुझको ॥ ९ ॥ जो वीर मारै वही मेरीमृत्यु होवै बहुत अच्छा ऐसा

में मनुष्य नहाकर व उत्तम दानको देकर आठ सौभाग्यों से सम्पूर्ण व बसन समेत वांसेके पात्रको ॥ ३१ ॥ जो कि सप्तधान्य से संयुत व पंचरत्नों से शोभित होवै और ऊनीसूत्र से संयुत मालाओं व सुगन्धि इत्यादिकों को ॥ ३२ ॥ व हे परंतप ! शक्तिके अनुसार सोने की सावित्री बनाकर जो मनुष्य वेदवेदांग के जाननेवाले ब्राह्मण के लियेदेता है ॥ ३३ ॥ वह बहुत सुखों को करनेवाली बहुत उत्तम लक्ष्मीको प्राप्तहोकर और अनेक भांति के भोगों को भोगकर फिर स्वर्गको पावैगा ॥ ३४ ॥ सावित्रीजी का व्रत करनेवाली स्त्री पति को प्यारी होती है और पतिव्रता व बड़े ऐश्वर्यवाली होती है व कभी विधवा नहीं होती है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख

त्वा दत्त्वादानञ्चसौभगम् ॥ अष्टसौभाग्यसम्पूर्णं वंशपात्रंसवस्त्रकम् ॥ ३१ ॥ सप्तधान्यसमोपेतं पञ्चरत्नपरिष्कृतम् ॥ सौगन्ध्यादीनिमाल्यानि ऊर्णसूत्रसमायुतम् ॥ ३२ ॥ सावित्रींहाटकींकृत्वा यथाशक्तिपरन्तप ॥ योवैददातिविप्राय वेदवेदाङ्गज्ञानिने ॥ ३३ ॥ लभतेविपुलांलक्ष्मीं बहुभोगकरींशुभाम् ॥ भुक्त्वावैविविधान्भोगान् पुनःस्वर्गमवाप्स्यते ॥ ३४ ॥ सावित्रीव्रतकृन्नारी जायतेपतिवल्लभा ॥ पतिव्रतामहाभागा विधवानकदाचन ॥ ३५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनृसिंहतीर्थयात्रामहिमानामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुव्यासपरंतीर्थं भुविविख्यातिकारकम् ॥ कुटुम्बेश्वरविख्यातः फलदोयोमहेश्वरः ॥ १ ॥ तस्यतीर्थवरंतीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ यस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा कुटुम्बंलभतेध्रुवम् ॥ २ ॥ कुटुम्बार्थंतपस्तेपे पुरा दक्षःप्रजापतिः ॥ नारदेनपुराव्यास पुत्राःषष्टिर्विनाशिताः ॥ ३ ॥ प्रजाकामःसधर्मात्मा सुचिरंव्रतमाचरत् ॥ सपत्नीको

ण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनृसिंहतीर्थयात्रामहिमावर्णनंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कुटुंबेश तीरथ महँ मिलत अहै फल जौन । अठहत्तरि अध्याय में कथित कथा सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पृथ्वी में प्रसिद्धकारक उत्तम तीर्थ को सुनिये कि कुटुंबेश्वर ऐसे प्रसिद्ध जो फलदायक महादेवजी हैं ॥ १ ॥ उनका सब तीर्थों के फलको देनेवाला, तीर्थों में उत्तम तीर्थ है कि जिस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर कुटुंब को पाता है ॥ २ ॥ पुरातन समय दक्षप्रजापतिजी ने कुटुंब के लिये तप किया है हे व्यासजी ! पहले नारदजी ने उनके साठ पुत्रों को

विदेश भेजदिया ॥ ३ ॥ सन्तान की इच्छावाले, बड़े तेजवान् व जितेन्द्रिय उन धर्मात्मा दक्षजी ने स्त्रीसमेत निराहार होकर बहुत दिनोंतक यहां व्रत किया है ॥ ४ ॥ इस तीर्थ में नहाकर पवित्र होकर उन्होंने सनातनब्रह्म को जपा और हे व्यासजी ! दशहज़ार वर्षतक कठिन तप किया है ॥ ५ ॥ उस तीर्थ के प्रसाद से उन दक्ष जी ने बहुत प्रजा को पाया है व प्रतापवान् दक्षजी प्रजापति ऐसे प्रसिद्ध हुये ॥ ६ ॥ और ब्रह्मा ने भी वहीं बहुतकठिन तपस्या कर उसीक्षण निष्कलंक व निर्मल रूप को पाया है ॥ ७ ॥ और वहींपर महादेव ने भी ब्रह्मा के स्थान को पाया है हेसत्तम ! चतुर्मुखधारी लिंग आजभी देखपड़ता है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! वहींपर सिं-

महातेजा निराहारोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेशुचिस्नातोजयद्ब्रह्मसनातनम् ॥ वर्षाणामयुतंव्यास तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥ तेनतीर्थप्रसादेन सलेभेबहुलांप्रजाम् ॥ प्रजापतिरितिख्यातो जातोदक्षःप्रतापवान् ॥ ६ ॥ ब्रह्मापि तत्रैवतपः कृत्वासुबहुदुष्करम् ॥ निष्कलङ्कामलंरूपं प्राप्तवानेवतत्क्षणात् ॥ ७ ॥ महादेवोपितत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणःपदम् ॥ चतुर्मुखधरंलिङ्गं दृश्यतेद्यापिसत्तम ॥ ८ ॥ भद्रपीठस्थितादेवी भद्रकालीतिविश्रुता ॥ तत्रैवचसदाव्यास क्रीडतेस्मधृतव्रता ॥ ९ ॥ द्वारेतिष्ठतितत्रैव भैरवःक्षेत्रपालकः ॥ पादेनखञ्जतांयातः पुरादैत्यवरार्दितः ॥ १० ॥ पुत्रवत्पालितोदेव्या सदातिष्ठतिचत्वरे ॥ येतेदेवगणाःसर्वे तस्मिंस्तीर्थेप्रतिष्ठिताः ॥ ११ ॥ ऋषयोपिमहाभागाः सदापर्वणिपर्वणि ॥ आयान्तिचैवसन्ध्यार्थं बहुपुत्रप्रदेसरे ॥ १२ ॥ अस्मिंस्तीर्थेसदाचाराः स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चिज्जायते जन्मजन्मनि ॥ १३ ॥ महाव्याधिषुघोरासु महामारीषुतत्रवै ॥ हवनंक्रियतेनित्यं सर्वपौरार्जितैर्य

हासन पै स्थित व्रतको धारण किये भद्रकाली ऐसी प्रसिद्ध देवी सदैव क्रीडा करती है ॥ ९ ॥ वहींपर क्षेत्रपालक भैरवजी द्वारपै टिकेहैं जो कि उत्तम दैत्य से दुःखित होकर पुरातन समय चरण से खंजता को प्राप्तहुये हैं ॥ १० ॥ देवीजी से पुत्रकी नाईं पालेहुये वे सदैव चौतरे पै स्थित हैं और जो देवगण हैं वे सब उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥ ११ ॥ व महात्मा ऋषिलोग भी सदैव पर्व पर्व में बहुत पुण्यदायकतड़ाग में संध्या करने के लिये आते हैं ॥ १२ ॥ इस तीर्थ में उत्तम आचारवाले जो पुरुष स्नान करते हैं उनको जन्म जन्म में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ १३ ॥ और भयंकर बड़ी व्याधियों में व महामारियों में वहां सबपुर वासियों से इकट्ठा कि-

येहुये यवों से व पायस (खीर) से नित्य हवन कियाजाता है और अनेक भांतिके रोगों से उनको दोष नहीं होता है दुर्भिक्ष व राज्य के भ्रष्ट होनेपर तथा बहुत ही कठिन युद्ध होनेपर ॥ १४।१५ ॥ व सब आपत्तियों में सावधान होताहुआ जो मनुष्य क्षेत्रपालजी को पूजता है वह सब दुःखों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ कुटुंबकतीर्थ में नहाकर व महादेवजी को पूजकर तपस्वी ब्राह्मणके लिये सुवर्ण, मणि,मुक्ता व वसन समेत कूष्माडको दान देवै तो मनुष्य कुटुंबमें धन व अन्न से संयुत होता है ॥ १७ । १८ ॥ हे व्यासजी ! फागुन में कृष्णपक्ष में तेरसिसंयुत जो चौदसि होती है वह शिवरात्रि कहीजाती है ॥ १९ ॥ उसदिन मनुष्य

वैः ॥ १४ ॥ पायसैर्विविधैरोगैस्तेषांदोषोनजायते ॥ दुर्भिक्षेराज्यभ्रंशेच सङ्ग्रामेभृशदारुणे ॥ १५ ॥ पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदिसमाहितः ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जायतेनात्रसंशयः ॥ १६ ॥ स्नात्वाकुटुम्बकेतीर्थे पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ दानंकूष्माण्डकंदद्याद्ब्राह्मणायतपस्विने ॥ १७ ॥ सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोलङ्कारसंयुतैः ॥ धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बेजायतेनरः ॥ १८ ॥ फाल्गुनेचासितेपक्षे भवेद्यावैचतुर्दशी ॥ त्रयोदशीयुताव्यास शिवरात्रिस्तुप्रोच्यते ॥ १९ ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा रात्रौजागरणंचरेत् ॥ विल्वोदकसुगन्धेन वहुपुष्पफलेनवा ॥ २० ॥ धूपदीपैश्चनैवेद्यैर्वासोलङ्कारकादिभिः ॥ पूजयेद्योनरोनित्यं गिरिशंसगणंपरम् ॥ २१ ॥ तस्यपापंक्षयंयाति शिवलोकेमहीयते ॥ अश्वमेधाधिकंपुण्यं लभतेभुविमानवः ॥ २२ ॥ अश्वमेधफलंतस्यजागरेचक्षणेक्षणे ॥ ततस्तुप्रातरुत्थायस्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २३ ॥ कृत्वातुविधिवद्व्यास शिवपूजार्चनंतथा॥ विप्रांश्चभोजयेत्सप्त तस्यपुण्यफलंशृणु॥२४॥ कपिलायाः

उस तीर्थ में नहाकर रात्रि में जागरण करै और बिल्वपत्र व सुगन्धित जलसे तथा बहुत पुष्प व फलसे ॥ २० ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, वसन व अलंकारादिकों से जो मनुष्य नित्य गणोंसमेत उत्तम शिवदेवजी को पूजता है ॥ २१ ॥ उसका पाप नाशहोजाता है और वह शिवलोक में पूजाजाता है और पृथ्वी में मनुष्य अश्वमेध से अधिक फलको प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ और जागरण में उसको क्षण क्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल होताहै तदनन्तर प्रातःकाल उठकर स्नान दानादिक कार्य ॥ २३ ॥ करके हे व्यासजी ! विधिपूर्वक शिवजीका पूजनकरै और सातब्राह्मणों को भोजन करावै उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ २४ ॥ कि बछड़ा समेत चौदह

हज़ार कपिलागौवों के दान का फल व हज़ार वाजपेय यज्ञका फल होता है अन्यथानहीं है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांकुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । है खण्डेश्वर देवकी महिमा अमित अपार । उन्नासी अध्यायमें चरित सहित विस्तार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महापुण्यवान् व अति उत्तम तीर्थको सुनिये जो कि सब पातकों का विनाशक देवप्रयाग ऐसा कहागया है ॥ १ ॥ हे परंतप ! जहां तीर्थ है वहां देवताओं का उत्तम स्थान है सोमतीर्थ के उत्तर भागमें व प्रयाग के दक्षिण में ॥ २ ॥ व क्षिप्रानदी के पूर्वभागमें वहां तीर्थ प्रतिष्ठित है उसतीर्थ में नहाकर व सुरोत्तमजी को देखकर ॥ ३ ॥ पृथ्वी में सब फलको देनेवाले देवमाधव ऐसे प्रसिद्ध जगदीश देवेन्द्रजी उसको चाहेहुये मनोरथ को देते है ॥ ४ ॥ वहींपर सब देवताओंसे प्रणाम कियेहुये आनन्द भैरवजी है कि जिनके दर्शनहीमे सब पातकों का नाशहोता है ॥ ५ ॥ और उसको कभी भैरवजी की पीड़ा नहीं होती है व हे व्यासजी ! स्वर्गद्वारमें मनुष्य निर्भय होताहै ॥ ६ ॥ हे व्यासजी ! जेठमहीने में शुक्लपक्ष में दशमी तिथि को बुधदिन व हस्तनक्षत्र का योग होनेपर दशहरा होता है उसदिन गंगा जन्म में परायण व पवित्र मनुष्य श्री गंगाजी में

सवत्सायाः सहस्राणिचतुर्दश ॥ वाजपेयसहस्रस्य फलंभवतिनान्यथा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यन्नामाष्टसप्ततितमोध्यायः ॥ ७८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुव्यासमहापुण्यं तीर्थंपरमशोभनम् ॥ देवप्रयागमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ देवानाञ्चपरंस्थानं यत्रतीर्थंपरंतप ॥ सोमतीर्थोत्तरेभागेप्रयागस्यचदक्षिणे ॥ २ ॥ क्षिप्रायाःपूर्वभागेच तत्रतीर्थंप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाचैवसुरोत्तमम् ॥ ३ ॥ देवमाधवविख्यातो भुविसर्वफलप्रदः ॥ ददातितस्यदेवेन्द्रो वाञ्छितार्थंजगत्पतिः ॥ ४ ॥ आनन्दभैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ५ ॥ नतस्यजायतेव्यास यातनाभैरवीकदा ॥ स्वर्गद्वारेसदाव्यासजायतेनिर्भयःपुमान् ॥ ६ ॥ ज्येष्ठमासेसितेपक्षे दशम्यांबुधहस्तयोः ॥ दशहराजायतेव्यास गङ्गाजन्मपरःशुचिः ॥ ७ ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा सर्वतीर्थफलंलभेत ॥ अपरञ्चपरंतीर्थं

नहाकर सब तीर्थोंके फल को पाताहै इसके उपरान्त हे व्यासजी ! अन्य उत्तम तीर्थ को सुनिये ॥ ७।८ ॥ कि जिसके सुननेहीसे व्रतका भंग नहीं होता है हे ब्रह्मन् ! पुरातन समय ब्रह्मविदोत्तम व उत्तम आचारवाला धर्मशर्मा ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था जो कि पवित्र व बहुत व्रतों को धारण करनेवाला तथा दान्त व वेद-वेदाङ्गों का पारगामी था ॥ ९।१० ॥ कुछदोष के प्रसंगसे उसका व्रत पूर्ण नहीं होताथा इसप्रकार बहुत दिनोंवाले समय में देव दर्शन नारदजी ॥ ११ ॥ महा तपस्वी पहुनई के लिये हे ब्रह्मन् ! उसके घरको आये तब शीघ्रही उठकर ब्राह्मणने बहुत मानपूर्वक ॥ १२ ॥ सत्कार कर हे भूमन् ! विधिसे देखेहुये कर्म से मुनिश्रेष्ठ नारद

शृणुव्यासअतःपरम् ॥ ८ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण व्रतभङ्गोनजायते ॥ एकएवपुराब्रह्मन् ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ ९ ॥ धर्मशर्मेतिविख्यातः सदाचाररतःशुचिः ॥ बहुव्रतधरोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १० ॥ किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन व्रतंपूर्णंनजायते ॥ एवंबहुतिथेकाले नारदोदेवदर्शनः ॥ ११ ॥ तस्यगेहागतोब्रह्मन्नातिथ्यार्थंमहातपाः ॥ तदोत्थायद्विजःशीघ्रं बहुमानपुरःसरम् ॥ १२ ॥ सत्कृत्यनारदंभूमन् विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ पूजयित्वाद्विजश्रेष्ठः पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १३ ॥ भगवन्भवतासर्वं विदितंज्ञानचक्षुषा ॥ अस्माकंचपरोदोषःकश्चिज्जातःपुरानघ ॥ १४ ॥ येनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोभवेद्ध्रुवम् ॥ कारणंब्रूहिमेनाथ कोदोषोत्रतुगण्यते ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ भवद्भिश्चपुराकृतम् ॥ महाराष्ट्रेसुविख्यातो ब्राह्मणोधनसञ्चकः ॥ १६ ॥ ब्रह्मदत्तेतिनाम्नावै वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ धनलोभपराक्रान्तः सर्वधर्मबहिर्मुखः ॥ १७ ॥ नास्तिकोदेवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ॥ परस्त्रींरमतेनित्यं द्यूतवादीचतस्करः ॥ १८ ॥ एवमा

जी को पूजकर द्विजोत्तमने पूछा ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! आपने ज्ञानदृष्टि से सबजाना है हे अनघ ! पुरातन समय मेरा कोई बडा दोष हुआ है ॥ १४ ॥ कि जिस पाप के प्रसंग से निश्चयकर व्रतका भंग होता है हे नाथ ! इसकारण को कहिये कि इसमें मेरा कौन दोष गिनाजाता है ॥ १५ ॥ नारदजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पहले जो तुमसे कियागयाहै उसको सुनिये कि महाराष्ट्र देशमें धनका संचयकरनेवाला ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण रहताथा जो कि वेदों व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व धन के लोभ से घिरा तथा सब धर्मों से विमुख ॥ १६।१७ ॥ व नास्तिक और देवतीर्थों में पराये द्रव्यको हरनेवाला था वह नित्यही पराई स्त्री से

रमित तथा द्यूतवादी व चोरथा ॥ १८ ॥ इसप्रकार आयुर्बल से क्षीण वह धनहीन होगया तब इधर उधर घूमताहुआ भ्रष्ट होकर गोदानदी के किनारे प्राप्त वह चोरके कर्म व आचारवाला द्विज यात्रिकों के साथ संयोगको प्राप्तहुआ व कुछ समय में रोग से विकल वह मोह (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ १९।२० ॥ उसी समय हे द्विज ! वह यमदूतों से यमपुरी में प्राप्त कियागया और यमराज के पुर में प्राप्त बहुत पापकारी व पाप में परायण इस ब्राह्मण को उस समय यमराज ने देखा व देखकर अचानकही दूतों से धर्मदायक वचन को कहा ॥ २१ । २२ ॥ कि हे दूतो ! सावधान मनवाले होकर तुमलोग सब सुनो कि इसने सब पातक व दुष्कर्म

युःपरिक्षीणो धनहीनोभवत्तदा ॥ इतस्ततोभ्रमन्भ्रष्टो गोदातीरेसुविह्वलः ॥ १९ ॥ गतश्चोरक्रियाचारी यात्रिकैःसहसङ्गतः ॥ किञ्चित्कालेषुदुःशीलो मोहंप्राप्तोरुजार्दितः ॥ २० ॥ नीतःसंयमिनींविप्र तत्कालंयमकिङ्करैः ॥ यमराजपुरंप्राप्तो बहुपापकरोद्विज ॥ २१ ॥ दृष्टोसौधर्मराजेन तदापापपरायणः ॥ निरीक्ष्यसहसोवाच किङ्करान्धर्मदंवचः ॥ २२ ॥ श्रूयतांकिङ्कराःसर्वे यूयमेकाग्रमानसाः ॥ अनेनाचरितंसर्वं दुष्कर्मसर्वकिल्बिषम् ॥ २३ ॥ गोदातीरेमृतःपापी तत्रैवकारणम्महत् ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च यानितीर्थानिभूतले ॥ २४ ॥ आयान्तिगौतमीतीरे सिंहस्थेपिबृहस्पतौ ॥ तेषान्तुवायुस्पर्शेन जातोस्यान्तःकलेवरे ॥ २५ ॥ तस्यपुण्यप्रभावेन नोस्माकङ्कारणंकचित् ॥ नोग्राह्योभवताचायं मुच्यतांभोपुरस्सराः ॥ २६ ॥ एवंतैर्मोचितोविप्रः पुनर्ब्रह्मगतिङ्गतः ॥ तेनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गीगतोभुवि ॥ २७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ किंतपःकिंचदानञ्च किंतीर्थंव्रतसेवनम् ॥ २८ ॥ येनपुण्य

को किया है ॥ २३ ॥ और यह पापी गोदा के किनारे मराहै उसमें बडा कारणहै क्योंकि तीनकरोड व अर्धकरोड़ याने साढ़ेतीन करोड़ जो तीर्थ पृथ्वी में हैं ॥ २४ ॥ वे बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर गौतमी नदी के किनारे आते हैं इसके शरीर में उनके पवन के स्पर्श से यह नाशहोगया ॥ २५ ॥ उसके पुण्य केप्रभावसे हमलोगों का कहीं कारण नहीं है हे अग्रगामियो ! आपको इसे पकडना न चाहिये छोड़ दीजिये ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन दूतोंसे छोड़ाहुआ ब्राह्मण फिर ब्रह्मकी गति को प्राप्तहुआ उसी पाप के प्रसंग से तुम पृथ्वी में व्रतभंग करनेवाले हुये ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे ब्रह्मन् ! किस भांति से सब पापों का नाश होगा क्या तपहै

क्या दान है कौन तीर्थ है व कौन व्रतसेवन है ॥ २८ ॥ कि जिस पुण्यके प्रभावसे व्रतभंग नहीं होता है नारदजी बोले कि हे द्विजवरश्रेष्ठ ! सुनिये जो महाकाल वन कहागया है ॥ २९ ॥ जहांपर तत्त्वदर्शी ऋषिने रुद्रसर कहा है व हे द्विजोत्तम ! यहांपर करोड़ों करोड़ तीर्थ वर्तमान हैं ॥ ३० ॥ हे द्विज ! वहांपर कोटितीर्थ ऐसा कहाहुआ सनातन तीर्थ है और उसके उत्तर ओर सब कामनाओं को देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ३१ ॥ जोकि खण्डेश्वर के समीप में प्राप्त नामसे खंडसरकहागया है जिसके दर्शनमात्र से मनुष्य सब तीर्थों के फलको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ इसलिये हे वत्स ! तुम सब प्रकार से वहां शीघ्रही जावो इस भांति उनके वचन

प्रभावेन व्रतभङ्गोनजायते ॥ नारदउवाच ॥ शृणुद्विजवरश्रेष्ठ महाकालवनंस्मृतम् ॥ २९ ॥ यत्ररुद्रसरःप्रोक्तं ऋषिणा तत्त्वदर्शिना ॥ कोटिकोटिश्चतीर्थानि वर्तन्तेत्रद्विजोत्तम ॥ ३० ॥ कोटितीर्थमितिख्यातं तत्रद्विजसनातनम् ॥ तस्यचो त्तरभागेच सुतीर्थंसर्वकामदम् ॥ ३१ ॥ नाम्नाखण्डसरःख्यातं खण्डेश्वरसमीपगम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ ३२ ॥ तस्मात्त्वंसर्वथावत्स गच्छस्वतत्रमाचिरम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा सद्विजोगात्कुमुद्वतीम् ॥ ३३ ॥ स्नात्वा खण्डसरेव्यास दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ सद्यःपुण्यवतांलोकान् प्राप्तःसचद्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥ एवंव्यासमहातीर्थं खण्डे श्वरमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेखण्डेश्वरमहिमावर्णनन्नामैकोनाशीतितमोध्यायः ॥ ७९ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुपरंतीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ कीर्तितंब्रह्मणापूर्वं मार्कण्डेयस्यपृच्छतः ॥ १ ॥ शृ

को सुनकर वह ब्राह्मण कुमुद्वती पुरीको गया ॥ ३३ ॥ व हे व्यासजी ! खंडसर में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर वह द्विजोत्तम ! शीघ्रही पुण्यवानों के लोकों को प्राप्तहुआ ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! ऐसा महातीर्थ व अति उत्तम खंडेश्वरदेवजी हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांखण्डेश्वरमहिमावर्णनंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कर्क राज इमि तीर्थ जिमि है महिमा सयुक्त । सो अस्सी अध्यायमे अहै कथा सब उक्त ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सब तीर्थों के फलको देनेवाले उत्तम

तीर्थको फिर सुनिये जिसको पहले पूंछते हुये मार्कण्डेयजी से ब्रह्माने कहाहै ॥ १ ॥ हे वत्स ! सुनिये कि महीतल पै जो अनूपम क्षिप्रानदी है उसके किनारे पै कर्कराज ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ २ ॥ कि जिसके भलीभांति दर्शनही से महापातकोंका नाश होताहै मनके सब विकार होते हैं और चंद्रमा मनसे उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥ उसके स्थान (कर्कराशि) में प्राप्त उत्तम सूर्यनारायणजी याम्यायन करते हैं वे तीन ऋतुवें धूम्र व प्रकाशरहित कहीगई हैं ॥ ४ ॥ उस दक्षिणायन में मरेहुये योगी भी संसारमें वर्तमान होते हैं हे परंतप ! चौमासेमें विष्णुजी के सोने पर जे मनुष्य व्रत से रहित होते हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! उनकी उत्तमगति नहीं होती है यह मैं

णुवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायासदृशीनदी ॥ तस्यास्तीरेवरंतीर्थं कर्कराजेतिविश्रुतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ विकारामानसास्सर्वे चन्द्रोमानससम्भवः ॥ ३ ॥ तस्यस्थानेगतोभानुर्याम्यायनकरःपरः ॥ ऋतुत्रयंसमाख्यातं धूम्रोनार्चिस्तदुच्यते ॥ ४ ॥ तत्रमृत्वाप्रवर्तन्ते योगिनोपिपरन्तप ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते येनराव्रतवर्जिताः ॥ ५ ॥ नतेषांसद्गतिर्वत्स सत्यमेवब्रवीमिते ॥ चातुर्मास्येमृतायेच येमृतादक्षिणायने ॥ ६ ॥ तेषामुद्धारणार्थाय तीर्थमेतद्विनिर्मितम् ॥ कर्कराजइतिख्यातं सर्वलोकेपुगीयते ॥ ७ ॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वंनिर्मितंविश्वमूर्त्तिना ॥ चराचरमिदंविश्वं जगत्सर्वंजगत्पते ॥ ८ ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते धर्माचारविधिःस्मृतः ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुवत्सपरंपुण्यं चातुर्मास्यफलंशुभम् ॥ यच्छ्रुत्वाभारतेखण्डे नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा ॥ १० ॥ मुक्तिप्रदोयंभगवान् संसारोत्तमकारणः ॥ यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ११ ॥ मानुषंदुर्लभंलोके

तुम से सत्य कहताहूं जो चौमासे में मरे हैं और जो दक्षिणायन में मरे हैं ॥ ६ ॥ उनके उधारने के लिये यह तीर्थ बनाया गया है जो कि कर्कराज ऐसा प्रसिद्ध सबलोकों में गायाजाता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन् ! विश्वमूर्त्ति आपने सब निर्माण कियाहै व हे जगत्पते ! चराचर ! यह सबसंसार आपहीसे होता है ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जो धर्म व आचारकी विधि कहीगई है उसको मैं तुमसे सुना चाहताहूं ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! परम पुण्यवाला चौमासे का उत्तम फल सुनिये कि जिसको सुनकर भरतखण्ड में मनुष्यों को मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ १० ॥ क्योंकि संसार के उत्तम कारण-

भूत ये भगवान् मुक्तिदायक हैं जिनके स्मरणही से सब पातकों का नाश होताहै ॥ ११ ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है व उसमें भी कुलीनता दुर्लभ है और उस कुलीनता में भी संयम होना व उसमें भी सज्जनों का उत्तम समागम दुर्लभहै ॥ १२ ॥ जहांपर सज्जनों का समागम व विष्णुजीकी भक्तिके व्रत नहीं हैं वहां चौमासेमें विशेषकर विष्णुजी के व्रतको करनेवाला उत्तम होताहै ॥ १३ ॥ चौमासेमें जो नियमरहित होताहै उसका पुण्य निरर्थक होताहै सब तीर्थ, दान व पवित्र देवमन्दिर ॥ १४ ॥ चौमासा आनेपर विष्णुजीके आश्रित होकर टिकते हैं और वे विष्णुजी सदैव कर्कराजनामक उत्तमतीर्थ में टिकेहैं ॥ १५ ॥ उत्तम पुष्टिवाले शरीरसे

तत्रापिचकुलीनता ॥ तत्रापिसंयमत्वञ्च तत्रसत्सङ्गमःशुभः ॥ १२ ॥ सत्सङ्गमोनयत्रास्ति विष्णुभक्तिव्रतानिच ॥ चातुर्मास्येविशेषेण विष्णुव्रतकरःशुभः॥ १३ ॥चातुर्मास्येऽव्रतीयस्तु तस्यपुण्यंनिरर्थकम् ॥ सर्वतीर्थानिदानानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ १४ ॥ विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्ति चातुर्मास्येसमागते ॥ सविष्णुराश्रितोनित्यं कर्कराजेसुतीर्थके ॥ १५ ॥ सुपुष्टिकेनदेहेन जीवितंतस्यशोभनम् ॥ चातुर्मास्येसमायाते हरिर्येनार्चितस्तदा ॥ १६ ॥ कृतार्थास्तस्यविबुधा यावज्जीवंवरप्रदाः ॥ सम्प्राप्यमानुषन्देहं चातुर्मास्येपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ तस्यपापशतान्याहुर्देहस्थानिनसंशयः ॥ मानुषंदुर्लभंलोके हरिभक्तिश्चदुर्लभा ॥ १८ ॥ चातुर्मास्येविशेषेण सुप्तेदेवेजनार्दने ॥ चातुर्मास्येनराःस्नात्वा कर्कराजेद्विजोत्तम ॥ १९ ॥ सर्वक्रतुफलंप्राप्य देववद्दिविमोदते ॥ विशेषेणतुतत्स्नानं कर्कस्थेपिदिवाकरे ॥ २० ॥ दु

उसका जीवन उत्तम है कि जिसने उस चौमासे में विष्णुजीको पूजा है ॥ १६ ॥ उसके ऊपर जीवनपर्यंत प्रसन्न होतेहुये देवता वरदायक होते हैं मनुष्य के शरीरको प्राप्त होकर जो चौमासे में नियम से विमुख होता है ॥ १७ ॥ उसके शरीर में स्थित सैकड़ों पाप कहेगये हैं इसमें सन्देह नहीं है संसार में मनुष्य होना व विष्णुजी की भक्ति दुर्लभ है, ॥ १८ ॥ और चौमासे में विष्णुदेवजी के सोनेपर विशेषकर दुर्लभहै हे द्विजोत्तम ! चौमासे में कर्कराजतीर्थ मे नहाकर मनुष्य ॥ १९ ॥ सब यज्ञों के फलको पाकर स्वर्ग में देवताओं की नाईं प्रसन्न रहता है और सूर्यनारायणजी के कर्कराशि में टिकनेपर विशेषकर उसका स्नान करना चाहिये ॥ २० ॥ देवता,

दैत्यों व मनुष्योंसमेत सब प्राणियोंको उसका स्नान दुर्लभ है क्योंकि पहले देहकी पवित्रता करके मनुष्य मुक्तिके मार्ग को पाता है ॥ २१ ॥ तथापि झरना, कूप, तड़ाग व सरोवर में भी जो मनुष्य नित्य नहाता है उसके पाप का नाश होता है ॥ २२ ॥ इसलिये देवताओं व दैत्यों से बावली पुण्यदायिनी नहीं कही गई है किन्तु पुष्कर व प्रयागमें और जहां कहीं बहुत जलमें ॥ २३ ॥ जो पुरुष चार महीनोंमें नहाताहै उसके पुण्यकी संख्या उससे अधिक होतीहै और नर्मदामें व भास्कर-क्षेत्र में तथा प्राचीसरस्वती व गंगासागर के सङ्गम में ॥ २४ ॥ चौमासे में जो मनुष्य एक दिन भी स्नान करता है वह दुःखभागी नहीं होता है जगदीशदेवजी

दुर्लभंसर्वजन्तूनां ससुरासुरमानुषैः ॥ देहशुद्धिंविधायादौ मुक्तिमार्गमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥ तथापिनिर्झरेकूपे तडागेवासरस्यपि ॥ यःस्नातिवैनरोनित्यं तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ २२ ॥ तस्मान्नदीर्घिकापुण्या समाख्यातासुरासुरैः ॥ पुष्करेचप्रयागेच यत्रक्वापिमहाजले ॥ २३ ॥ चातुर्मास्येषुयःस्नाति पुण्यसङ्ख्याततोधिका ॥ रेवायांभास्करेक्षेत्रे प्राच्यांसागरसङ्गमे ॥ २४॥ एकाहमपियस्स्नाति चातुर्मास्येनदुःखभाक् ॥ दिनत्रयञ्च यस्स्नाति नर्मदायांसमाहितः ॥ २५ ॥ सुप्तेदेवेजगन्नाथे पापंयातिसहस्रधा ॥ पक्षमेकञ्च यस्स्नाति गोदावर्य्यांदिनोदये ॥ २६ ॥ सभित्त्वाकर्मजंदेहं यातिविष्णोःसलोकताम् ॥ अवन्त्याङ्कर्कराजेतु साक्षाद्विष्णुर्भवेन्नरः ॥ क्षणमेकंक्षणार्द्धंवा चातुर्मास्येनलङ्घयेत् ॥ २७ ॥ तिलोदकेनामलसंयुतेन बिल्वोदकेनापिचमज्जयेद्यः ॥ नतस्यजानामिफलाधिकंवै किन्तस्यकीदृङ्मुनिभिःप्रणीतम् ॥ २८ ॥ गङ्गांस्मरतियोनित्यमुदपानसमीपतः ॥ तद्गाङ्गेयञ्जलंजातं तेनस्नानंसमाचरेत् ॥ २९ ॥ गङ्गापिदेवदेवस्य चरणाङ्गुष्ठ

के सोने पर सावधान होताहुआ जो मनुष्य तीन दिनतक नर्मदा में स्नान करताहै उसका पाप सहस्रखंड होजाता है और दिनके उदय में जो मनुष्य एक पक्षभर गोदावरी में स्नान करता है ॥ २५ । २६ ॥ वह कर्म से उपजेहुये शरीरको नाशकर विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है अवन्तीपुरी में कर्कराजतीर्थ में मनुष्य साक्षात् विष्णु होताहै एक क्षण व आधा क्षण चौमासे में नियम से उल्लङ्घन करना न चाहिये ॥ २७ ॥ ऑवलासे संयुत तिल मिलेहुये जलसे व बिल्व से मिश्रित जलसे जो मनुष्य स्नान करताहै उसके अधिक फलको मैं नहीं जानता हूं कि मुनियों से वह कैसा कहागया है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य नित्य कूप के समीप

ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा है इस लिये सब यत्न से महाकालवनको जाइये ॥ ४८ ॥ वहीं पर हमलोगों का भी अति उत्तम स्थान है चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जब तक बोधिनी एकादशी नहीं आती है ॥ ४९ ॥ उतने समय तक वहां मुक्ति है इस में सन्देह नहीं है व चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर यदि वहां जो मनुष्य शरीर को छोड़ता है ॥ ५० ॥ तो यमलोक में इसका निवास नहीं होताहै इस में सन्देह नहीं है इसलिये तुलसी के समीप व शालग्राम के समीप तथा देवालय में ॥ ५१ ॥ आत्माको प्रणयन कर उसी में जबतक योजित करै जब तक कि प्रबोधिनी द्वादशी होवै ॥ ५२ ॥ पश्चात् घृत व सुवर्ण से आत्माको छुड़ाकर

तत्रैव स्थानम्परमशोभनम् ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते यावन्नायातिबोधिनी ॥ ४९ ॥ तावत्कालंहितत्रास्ति मुक्तिरेवनसंशयः ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते जहातिचेत्कलेवरम् ॥ ५० ॥ यमलोकेनास्यवासो जायतेनात्रसंशयः ॥ तस्मात्तुलसीसमीपे शालग्रामेसुरालये ॥ ५१ ॥ आत्मानंप्रणयीकृत्य तत्रैवसन्नियोजयेत् ॥ यावत्प्रबोधिनीचेति द्वादशीद्विजसत्तम ॥ ५२ ॥ पश्चाद्घृतसुवर्णेन मोचयित्वास्वकन्नयेत् ॥ चातुर्मास्योद्भवोदोषो बाधतेमुन्नमानवम् ॥ ५३ ॥ यस्यक्षिप्रोदके स्नानं कर्कराजेषुजायते ॥ एवंव्यासवरन्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ५४ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि सरितस्सागराश्चये ॥ तेचसर्वेसमायान्ति चातुर्मास्येद्विजोत्तम ॥ ५५ ॥ तस्माच्चतद्वरन्तीर्थं कर्कराजेतियत्स्मृतम् ॥ यएतांवैकथाम्पुण्यां शृण्वन्तिश्रावयन्तिच ॥ ५६ ॥ नतेषांजायतेदोषश्चातुर्मास्योद्भवःकदा ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकर्करजतीर्थमहिमवर्णनन्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ले आवै चातुर्मास्य से उपजाहुआ दोष इस मनुष्यको नहीं पीड़ित करताहै ॥ ५३ ॥ कि जिसका स्नान क्षिप्रानदी के जलमें व कर्कराजतीर्थोंमें स्नान होताहै हे व्यास जी ! इसप्रकार सब तीर्थोंके फलको देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ५४ ॥ पृथ्वी में जो तीर्थ व नदियां और जो समुद्र हैं हे द्विजोत्तम ! वे सब चौमासेमें इस तीर्थ में भली भांति आतेहैं ॥ ५५ ॥ उसीकारण वह उत्तम तीर्थ है जो कि कर्कराज ऐसा कहागयाहै जो मनुष्य इस पुण्यकथाको सुनते व सुनाते हैं ॥ ५६ ॥ उनको कभी चौमासेसे उपजा हुआ दोष नहीं होताहै ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकर्कराजतीर्थमहिमवर्णनन्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दो० । देवतीर्थ यात्रा किये जो फल होत अनूप । इक्यासी अध्याय में कह्योसोइ मुनिभूप ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुमेरुगिरिके दक्षिणभाग में व दुग्धकुंडके उत्तर में ऋषभनामक श्रेष्ठपर्वत देवताओं व गंधर्वों से सेवित है ॥ १ ॥ जहांपर हे द्विज ! सदैव सुन्दरी देवांगना क्रीड़ा करती हैं वहांपर सब कामनाओं को देने-वाला रम्यनामक तड़ाग स्थित है ॥ २ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है जहांपर देवता क्रीड़ा करते हैं वह उत्तमतीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ भादों महीने में अनुराधा नक्षत्र से संयुत शुक्लपक्ष की अष्टमी में उसदिन यहां आकर जो मनुष्य स्नान दानादिक कर्मों को ॥ ४ ॥ सदैव करते हैं

सनत्कुमारउवाच ॥ मेरोश्चदक्षिणेभागे दुग्धकुण्डोत्तरेतथा ॥ ऋषभाख्योगिरिश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः ॥ १ ॥ यत्रदेवाङ्गनारम्याः क्रीडन्तिसततंद्विज ॥ तत्ररम्यंसरोनाम तिष्ठतिसर्वकामदम् ॥ २ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सुभगो जायतेध्रुवम् ॥ यत्रदेवाश्चक्रीडन्ति भुविविख्यातकंपरम् ॥ ३ ॥ भाद्रेमासिसिताष्टम्यां युक्तायामनुराधया ॥ तद्दिनेत्र समागम्य स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ ४ ॥ कुर्वन्तिसततंव्यास तेषांलोकाःसनातनाः ॥ मेरोश्चसानुकेतीर्थं दिव्यम्प रमशोभनम् ॥ ५ ॥ बिन्दुसारेतिविख्यातं सर्वकामवरप्रदम् ॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या सरयूश्चतपस्विनी ॥ ६ ॥ एताःस रिद्वराःप्राप्ता राजन्सत्यवतीसुत ॥ येसिद्धायेचसाध्याश्च महात्मानस्तपस्विनः ॥ ७ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्मिंस्तत्रती र्थेहिसर्वदा ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वार्थान्प्राप्नुतेध्रुवम् ॥ ८ ॥ भाद्रेमासिचशुक्लावै चतुर्थीयाप्रकीर्त्तिता ॥ सिद्धासा सर्वदाप्रोक्ता यत्रजातोगणाधिपः ॥ ९ ॥ कामेश्वरइतिख्यातः सर्वकामवरप्रदः ॥ तस्यतीरेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवंगणे

हे व्यासजी ! उनको सनातन लोक होते हैं और सुमेरुगिरिके शिखरपै, अति उत्तम दिव्यतीर्थ है ॥ ५ ॥ बिन्दुसार ऐसा प्रसिद्ध वह सब कामनाओं के वरों को देनेवाला है गंगा व सरस्वती तथा तपस्विनी व पुण्यदायिनी सरयूजी ॥ ६ ॥ हे सत्यवती के पुत्र, राजन् ! ये उत्तम नदियां वहां पर प्राप्त हैं जो सिद्ध, साध्य व महात्मा तपस्वी लोग हैं ॥ ७ ॥ उन्होंने सदैव वहां उसतीर्थ में उपासना किया है उसतीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब अर्थों को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ भादो महीने में जो शुक्लपक्षवाली चौथि कहीगई है वह सदैव सिद्ध कही गई है जिसमें कि गणेशजी पैदा हुए हैं ॥ ९ ॥ और कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध सब कामनाओं के वरों

को देनेवाले हैं उनके तीर्थ में मनुष्य नहाकर व गणेशदेवजी को देखकर ॥ १० ॥ सैकड़ों मनोरथों को पाकर मनुज कामचारी होता है ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, व्यास जी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये हे महामुने ! उज्जयिनी पुरी में जो तीर्थ हैं ॥ १२ ॥ उन सबों को साठहज़ार वर्षों से भी कहने के लिये चारमुखवाले ब्रह्मा भी कभी समर्थ नहीं हैं ॥ १३ ॥ मेघमालाओं के जितने जलके बूंद गिरते हैं व पृथ्वी में जितनी तृणकी संख्याहै व भूमि में जितने बालू के किनके हैं ॥ १४ ॥ और आकाश के नक्षत्रों की संख्या को कहने के लिये कोई भी नहीं समर्थ है वैसेही हे तपोधन ! अवन्तीपुरी में तीर्थों की संख्या नहीं

श्वरम् ॥ १० ॥ मनोरथशतम्प्राप्य कामचारीभवेन्नरः ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुव्यासऋषिश्रेष्ठ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ उज्जयिन्याश्चतीर्थानि यानिसन्तिमहामुने ॥ १२ ॥ तानिसर्वाण्यसौदेवः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ वर्षाणामयुतैःषड्भिर्नचवक्तुंकदाचन ॥ १३ ॥ यावन्तिमेघमालानांपतन्तिजलबिन्दवः ॥ धरित्र्यांतृणसंख्यावै पृथिव्यांसिकतास्तथा ॥ १४ ॥ नभसोज्योतिषांसङ्ख्यां वक्तुंकोपिनशक्नुयात् ॥ नतीर्थानांतथासङ्ख्या संत्यवन्त्यांतपोधन ॥ १५ ॥ अन्तरिक्षेचमेदिन्यां तीर्थभूतापुरीत्वियम् ॥ वापीकूपतडागादि प्रस्रावोभ्फरणानिच ॥ १६ ॥ नदीसरांसिखाताश्च तीर्थभूतंहिसर्वशः ॥ तथापिदेवयात्रांत्वं प्रसङ्गेननिबोधमे ॥ १७ ॥ यानिकानिचमुख्यानि तानितुभ्यंवदाम्यहम् ॥ यज्ज्ञात्वामोक्ष्यसे नित्यंसर्वाचारैः शुभाशुभैः ॥ १८ ॥ प्रातरुत्थाययोनित्यंशुचिःप्रयतमानसः ॥ श्रुत्वावैसर्वगंधादि तिलाक्षतसमन्वितः ॥ १९ ॥ स्नात्वारुद्रसरेतात तथैवव्रतमाचरेत् ॥ ऊर्जेचमाघमासेवै वैशाखाषाढयोस्तथा ॥ २० ॥ शिवरा

है ॥ १५ ॥ आकाश व पृथ्वीमें यह पुरी तीर्थभूतहै बावली, कूप,तडागादिकों का प्रवाह व भ्फरना ॥ १६ ॥ और नदी,तडाग व खात ये सब वहां तीर्थभूत हैं तौ भी तुम प्रसंग से तीर्थयात्रा को मुझसे सुनो ॥ १७ ॥ जो कोई मुख्य हैं उनको मैं तुमसे कहताहूं कि जिसको जानकर नित्य शुभाशुभ सब आचारोंसे छूटोगे ॥ १८ ॥ नित्य प्रातःकाल उठकर पवित्रमनवाला जो पवित्र मनुष्य इसको सुनकर सब गंधादिक, तिल व अक्षतोंसे संयुत होकर ॥ १९ ॥ हे तात ! रुद्रसर में नहाकर वैसे

ही व्रत करता है वह सब पापों से छूटजाता है और कार्त्तिक व माघ महीने में तथा वैशाख व आषाढ में ॥ २० ॥ व विशेषकर शिवरात्रि में देवयात्रा प्रशस्त है जिस
देवता का जो तीर्थ है उस देवता के समीप ॥ २१ ॥ वहां अभिषेक व देवता का पूजन करना चाहिये जो विधिपूर्वक यात्रा करता है वह सब फलको भोगता है ॥
२२ ॥ इसलिये सब यत्न से मनुष्य देवयात्रा करै ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मनुष्य किसप्रकारसे देवयात्रा करै हे तपोधन ! उस सबको मैं विस्तार से
सुना चाहताहूं ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जैसा सुनागया है वैसेही परम गुप्तचरित्र को मैं कहूंगा उसको सुनिये ॥ २५ ॥ पार्वती व महादेव

त्र्यांविशेषेण देवयात्राप्रशस्यते ॥ यस्यदेवस्ययत्तीर्थंतस्यदेवस्यसन्निधौ ॥२१॥ तत्राभिषेकंकार्यं देवतायाश्चपूज
जनम् ॥ विधिवदाचरेद्यस्तु सकलंफलमश्नुते ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवयात्रांसमाचरेत् ॥ २३ ॥ व्यास
उवाच ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण देवयात्राञ्चरेन्नरः ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥
शृणुव्यासपरंगुह्यं प्रवक्ष्यामियथाश्रुतम् ॥ २५ ॥ उमामहेशसंवादं देवयात्रादिकर्मसु ॥ उमोवाच ॥ प्रभावः कथ्यतां
देव क्षेत्रस्यास्यमहेश्वर ॥ २६ ॥ यानितीर्थानिविद्यन्ते यानिलिङ्गानिसन्तिवै ॥ तान्यादृतोदेवभूमन् वदस्ववदतांवर ॥
२७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन प्रभावंपापनाशनम् ॥ चैत्रमाद्यंमहादेवि ममातीवप्रियंसदा ॥ २८ ॥ यत्रक्षिप्रा
महापुण्या दिव्यानवनदीप्रिया ॥ नीलगङ्गाप्रियामेच तथागन्धवतीनदी ॥ २९ ॥ चत्वारोमेप्रियानद्यः कुमुद्वत्यांहिसु
व्रते ॥ ईश्वराश्चतुराशीतिस्तथाष्टौसन्तिभैरवा ॥ ३० ॥ एकादशतथारुद्रा आदित्याद्वादशस्मृताः ॥ षड्वैविनाय

जी का जो संवाद कि देव यात्रादिक कर्मों में हुआ है पार्वतीजी बोलीं कि हे महेश्वर, देवजी ! इस क्षेत्र के प्रभाव को कहिये ॥ २६ ॥ हे भूमन्, देव ! जो तीर्थ व
जो लिंग विद्यमान हैं हे वदतांवर ! उनको आदर से कहिये ॥ २७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! बड़े यत्नसे पापनाशक प्रभाव को सुनिये हे महादेवि ! वह
आदितीर्थ मुझको सदैव बड़ा प्यारा है ॥ २८ ॥ जहां कि महापुण्यदायिनी दिव्यक्षिप्रानदी व प्यारी नवनदी है नीलगंगा व गंधवती नदी मुझको प्यारी है ॥ २९ ॥
हे सुव्रते ! कुमुद्वती पुरी में मुझको प्यारा चार नदियां हैं व चौरासी महादेव तथा आठ भैरव हैं ॥ ३० ॥ वैसेही गेरह रुद्र व बारह आदित्य (सूर्य) कहेगये हैं और

यहां छा विनायक व चौबिस देवियां हैं ॥ ३१ ॥ हे भद्रे ! जिसलिये उत्तम महाकाल वनमें मैं आया उसी कारण हे शुभे ! यहींपर विष्णु व ब्रह्मादिक सब उपस्थित हुये ॥ ३२ ॥ हे देवि ! योजन भरकी प्रमाण को प्राप्त यह क्षेत्र देवातओं से व्याप्त है जो दशविष्णु कहेगये हैं उनके नामों को मुझसे सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वासुदेव, अनन्त, बलराम, जनार्दन, नारायण, हृषीकेश, वाराह, धरणीधर, ॥३४॥ व वामनरूप से विष्णुजी तथा लक्ष्मीजी के स्थान शेषशायी भगवान् ये उत्तम दश विष्णु सब पातकों के हरनेवाले कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे भगवन् ! मनोहर महाकाल वनमें जो देवेश बसते हैं उन देवताओं के चरित्रों को क्रमसे

काश्चात्र देव्यश्चचतुर्विंशतिः ॥ ३१ ॥ यतोहमागतोभद्रेमहाकालवनोत्तमे ॥ विष्णुब्रह्मादयःसर्वे ह्यत्रैवनिहिताःशुभे ॥ ३२ ॥ देवैर्व्याप्तमिदंक्षेत्रं देवियोजनमागतम् ॥ दशविष्णवआख्यातास्तेषांनामानिमेशृणु ॥ ३३ ॥ वासुदेवो ह्यनन्तश्च बलरामोजनार्दनः ॥ नारायणोहृषीकेशो वाराहोधरणीधरः ॥ ३४ ॥ विष्णुर्वामनरूपेण शेषशायीरमालयः ॥ दशैतेविष्णवःप्रोक्ताः सर्वपापहराःपराः ॥ ३५ ॥ उमोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देवानामनुपूर्वशः ॥ महाकालवनेरम्ये येवसन्तिसुरेश्वराः ॥ ३६ ॥ विनायकाभैरवाश्च दैत्यायेपवनात्मजाः ॥ रुद्रादित्यास्तथाचान्ये तेषांनामानिमेप्रभो ॥ ३७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ऋद्धिदःसिद्धिदोनित्यं कामदोवैगणाधिपः ॥ विघ्नहाचप्रमोदीच चतुर्थीव्रतकप्रियः ॥ ३८ ॥ षडेतेवैसमाख्याता विघ्ननाशकराःपराः ॥उमाचण्डीश्वरीगौरी ऋद्धिदासिद्धिदानृणाम्॥३९॥वटयक्षिणीवीरभद्रेत्यष्टौतामातरःस्मृताः॥ महामायासतीख्याता कपालमातृकातथा ॥ ४० ॥ अम्बिकाशीतलाचैव एका

लगाकर सुनना चाहताहूं ॥ ३६ ॥ विनायक, भैरव, दैत्य व जो पवन कुमार हैं व रुद्र, आदित्य तथा अन्य जो कोई हैं हे प्रभो ! मुझसे उनके नामोंको कहिये ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि ऋद्धिदायक, सिद्धिदायक व नित्यही कामदायक, गणनायक, विघ्ननाशक, आनन्दी व चतुर्थी व्रतप्रिय ॥ ३८ ॥ ये छा उत्तम विघ्ननाशक कहेगये हैं और उमा, चंडी, ईश्वरी, गौरी व मनुष्यों को ऋद्धिदायिनी तथा सिद्धिदायिनी ॥ ३९ ॥ और वटयक्षिणी व वीरभद्रा ये आठ वे मातृका कहीगई हैं महा-

माया सती कही गई हैं और कपाल मातृका ॥ ४० ॥ व अंबिका शीतला तथा एका, अनन्ता, अष्टसिद्धिदायिनी, ब्रह्माणी, पार्वती व योगसे शोभित योगिनी ॥ ४१ ॥ कौमारी, भगवती व छः कृत्तिकाएं ये चर्पटमातृका व वटमातृका कहीगई हैं ॥ ४२ और सरस्वती कहीगई हैं व प्रसिद्ध महालक्ष्मी ये योगिनी मातृका कहीगई हैं और चौंसठिमातृका कहीगई हैं ॥ ४३ ॥ और कालिका, महाकाली, ब्रह्मचारिणी, चामुण्डा व वैष्णवी कहीगई है और वाराही, विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ और अंबा अम्बालिका ये उत्तम चौबीस मातृकाएं हैं व हनूमान्, ब्रह्मचारी, कुमारेश व महाबली ॥ ४५ ॥ इनचार पवनपुत्रोंको मैंने तुमसे कहा और पराक्रमी दंडपाणि व

नन्ताष्टसिद्धिदा ॥ ब्रह्माणीपार्वतीचैव योगिनीयोगशालिनी ॥ ४१ ॥ कौमारीभगवतीचैव षट्कृत्तिकास्तथैवच ॥ चर्पटमातृकाःख्याता वटमातरस्तथैवच ॥ ४२ ॥ सरस्वतीतथाख्याता महालक्ष्मीश्चविश्रुता ॥ योगिनीमातृकाःख्याताश्चतुःषष्टमातृकाःस्मृताः ॥ ४३ ॥ कालिकाचमहाकाली चामुण्डाब्रह्मचारिणी ॥ वैष्णवीचसमाख्याता वाराही विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ अम्बाचाम्बालिकाचैव चतुर्विंशतिकाःपराः ॥ हनूमान्ब्रह्मचारीच कुमारेशोमहाबली ॥ ४५ ॥ चत्वारोवैसमाख्याता मयातेपवनात्मजाः ॥ दण्डपाणिश्चविक्रान्तो महाभैरवसंज्ञितः ॥ ४६ ॥ वटुकोबालकोनन्दी षट्पञ्चाशतकोपरः ॥ कालभैरवविख्यातो महापापहरःपरः ॥ ४७ ॥ कपर्दीचकपालीच कलानाथोवृषासनः ॥ त्र्यम्बकःशूलपाणिश्च चीरवासादिगम्बरः ॥ ४८ ॥ गिरीशःकामचारीच शर्वःसर्वाङ्गभूषणः ॥ रुद्राश्चैकादशप्रोक्ताः सर्वशत्रुविनाशनाः ॥ ४९ ॥ अरुणःसूर्यवेदाङ्गो भानुश्चरविरंशुमान् ॥ सुवर्णरेताहःकर्ता मित्रोविष्णुःसनातनः ॥ ५० ॥ इत्येतेद्वादशादित्याः सर्वरोगहराःपराः ॥ अगस्त्येश्वरमुख्यानां लिङ्गानाश्चतुराशिनाम् ॥ ५१ ॥ हिमाचल

महाभैरव नामक ॥ ४६ ॥ वटुक, बालक,नन्दी व अन्य षट्पंचाशतक तथा प्रसिद्ध कालभैरव व अन्य महापापहारक हैं ॥ ४७ ॥ और कपर्दी, कपाली, कलानाथ, वृषासन, त्रिलोचन, शूलपाणि, चीरवासा, दिगंबर ॥ ४८ ॥ गिरीश, कामचारी व शर्व, सर्वांगभूषण ये सब शत्रुवों के विनाशकारक गेरह रुद्र कहेगये हैं ॥ ४९ ॥ अरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, रवि, अंशुमान्, सुवर्णरेता, दिनकर्ता, मित्र, विष्णु, सनातन ॥ ५० ॥ ये सब रोगोंके हरनेवाले उत्तम बारह आदित्य हैं हे हिमालय-

कन्यके ! अगस्त्येश्वर जिनमें मुख्य हैं उन चौरासी लिंगों के नामों को कहतेहुये मुझसे सदैव सुनिये कि अगस्त्येश्वर कहेगये हैं तदनन्तर गुहेश्वर ॥ ५१।५२ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! ढुंढेश्वर व डमरुकेश्वर कहेगये हैं और अनादिकल्पेश शिवजी हैं व अन्य स्वर्णजालेश्वर हैं ॥ ५३ ॥ और त्रिविष्टपेश्वर देव व कपालेश्वरसंज्ञक तथा कर्कोटकेश्वर शिव तदनन्तर सिद्धेशजी ॥ ५४ ॥ व स्वर्गद्वारेश रुद्र तथा अन्य लोकपालेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं तदनन्तर कुटुंबेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर इंद्रद्युम्नेश्वर कहेगये हैं व ईशानेशजी तथा अप्सरेश्वर विख्यात हैं व उसके उपरान्त कलकलेश्वरजी हैं ॥ ५६ ॥ व दिनके पाप को हरने-

मुतेनित्यं नामानिगदतःशृणु ॥ अगस्त्येश्वरआख्यातोगुहेश्वरस्ततःपरम् ॥ ५२ ॥ ढुण्ढेश्वरस्ततःप्रोक्तो डमरुकेशश्चभामिनि ॥ अनादिकल्पेशःशम्भुः स्वर्णजालेश्वरःपरः ॥ ५३ ॥ त्रिविष्टपेश्वरोदेवः कपालेश्वरसंज्ञकः ॥ कर्कोटकेश्वरःशम्भुः सिद्धेशश्चततःपरम् ॥ ५४ ॥ स्वर्गद्वारेश्वरोरुद्रो लोकपालेश्वरःपरः ॥ कामेश्वरइतिख्यातः कुटुम्बेशस्ततःपरम् ॥ ५५ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरःख्यात ईशानेशस्ततःपरम् ॥ अप्सरेश्वरविख्यातः कलकलेशस्ततःपरम् ॥ ५६ ॥ नागचण्डेश्वरोदेवो दिवापापहरःपरः ॥ प्रतिहारेश्वरश्चैव कुक्कुटेशोह्यतःपरम् ॥ ५७ ॥ मेघनादेश्वरः पुण्यः महाकालेश्वरःपरः ॥ मुक्तेश्वरःसमाख्यातः सोमेशश्चततःपरम् ॥ ५८ ॥ खण्डेश्वरःसमाख्यातः पतनेशः परःस्मृतः ॥ आनन्देशस्ततःप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ ५९ ॥ इन्द्रेश्वरइतिख्यातो मार्कण्डेयेश्वरःपरः ॥ शिवेश्वरइतिप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ ६० ॥ अक्रूरेशइतिप्रोक्तः कुण्डेशश्चततःपरम् ॥ लुम्पेश्वरःसमाख्यातस्ततो

वाले अन्य नागचण्डेश्वरजी हैं व प्रतिहारेश्वर तथा इसके उपरान्त कुक्कुटेशजीहैं ॥ ५७ ॥ व पुण्यदायक मेघनादेश्वर व अन्य महाकालेश्वरजी हैं और मुक्तेश्वर कहेगये हैं व तदनन्तर सोमेशजी हैं ॥ ५८ ॥ और खण्डेश्वर कहेगये हैं व अन्य पतनेशजी कहेगये हैं तदनन्तर आनन्देश व उसके उपरान्त कुसुमेशजी कहेगये हैं ॥ ५९ ॥ व इन्द्रेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा अन्य मार्कंडेयेश्वरजी व शिवेश्वर ऐसे कहेगये हैं उसके उपरान्त कुसुमेशजी कहेगये हैं ॥६०॥ और अक्रूरेश ऐसे कहेगये हैं

तदनन्तर कुंडेशजी व लुंवेश्वरजी कहेगये उसके उपरान्त गंगेश्वरजी हुयेहैं ॥ ६१ ॥ व शूलेश्वर ऐसे प्रसिद्धहैं तदनन्तर ॐकारेशजी कहेगयेहैं व कंटकेश महारुद्र व उसके उपरान्त सिंहेशजी कहेगये हैं ॥ ६२ ॥ व घटेश्वरपूर्वक उत्तम रेवन्तेश्वर देवजी हैं व प्रयागेश्वर महादेवजी और तदनन्तर सिद्धेश्वरजी हैं ॥ ६३ ॥ व अन्य मातंगेश्वर देव तदनन्तर सौभाग्येशदेवजी कहेगये और प्रसिद्ध रूपेश्वरदेवजी व इसके उपरान्त ब्रह्मेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६४ ॥ और षष्टिजल्पेश्वरदेव व केदारेश्वरजी कहेगये हैं और पिशाचेश्वर शंभु तदनन्तर संगमेशजी कहेगये हैं ॥ ६५ ॥ और प्रसिद्ध दुर्धर्षेश्वर व चन्द्रादित्येश्वर कहेगये हैं तदनन्तर पुष्पदन्तेश्वर

गङ्गेश्वरोभवत ॥ ६१ ॥ शूलेश्वरेतिविख्यात ॐकारेशस्ततःस्मृतः ॥ कण्टकेशोमहारुद्रः सिंहेशश्चततःपरम् ॥ ६२ ॥ रेवन्तेशःपरोदेवो घण्टेश्वरपुरस्सरः ॥ प्रयागेशोमहादेवः सिद्धेश्वरस्ततःपरम् ॥ ६३ ॥ मातङ्गेशःपरोदेवः सौभाग्येशस्ततःपरः ॥ रूपेश्वरेतिविख्यातो ब्रह्मेश्वरोह्यतःपरम् ॥ ६४ ॥ षष्टिजल्पेश्वरोदेवः केदारेश्वरएवच ॥ पिशाचेश्वरशम्भुश्च सङ्गमेशस्ततःपरः ॥ ६५ ॥ दुर्धर्षेश्वरविख्यातश्चन्द्रादित्येश्वरःस्मृतः ॥ पुष्पदन्तेश्वरोदेवश्चाविमुक्तेश्वरस्ततः ॥ ६६ ॥ करभेश्वरःपरःप्रोक्तो राजस्थलेश्वरःशिवः ॥ वटेश्वरस्ततःप्रोक्तो ऋद्धेश्वरस्ततःपरम् ॥ ६७ ॥ नीलकण्ठइतिख्यातः स्थानेश्वरोह्यतःपरम् ॥ कामेश्वरइतिप्रोक्तः प्रतिहारेश्वरःपरः ॥ ६८ ॥ पाशुपतेश्वरःप्रोक्तो विश्वेश्वरस्ततःपरः ॥ सुवर्णेशइतिख्यातः कामनेशस्ततःपरः ॥ ६९ ॥ दुर्वासेशःपरंलिङ्गं सौभाग्येशमतःपरम् ॥ खर्परेशःपरःशम्भुर्ब्रह्मचारीश्वरस्ततः ॥ ७० ॥ पातालेशःसमाख्यातो ह्यतोगुप्तेश्वरःस्मृतः ॥ कपिलेश्वरइ

देवजी और अविमुक्तेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६६ ॥ अन्य करभेश्वरजी कहेगये व राजस्थलेश्वर शिवजी कहेगये हैं तदनन्तर वटेश्वरजी कहेगये उसके उपरान्त सिद्धेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६७ ॥ व नीलकंठ ऐसे कहेगये और इसके उपरान्त स्थानेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे कहेगये तथा अन्य प्रतिहारेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६८ ॥ तदनन्तर पाशुपतेश्वर व अन्य विश्वेश्वरजी कहेगये उसके उपरान्त सुवर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कामनेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६९ ॥ और उत्तम दुर्वासेश्वर लिंग व इसके उपरान्त सौभाग्येश लिंग है व अन्य खर्परेश्वर शिव और तदनन्तर ब्रह्मचारीश्वर कहेगये हैं ॥ ७० ॥ व इसके उपरान्त पातालेश्वर कहेगये व गुप्तेश्वरजी

कहेगये हैं व कपिलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा इसके उपरान्त योगेश्वर कहेगये हैं ॥ ७१ ॥ व भीमेश्वर ऐसे कहेगये और धनुःसाहस्रनामक हैं व तदनन्तर अग्नीश्वर और तदनन्तर देवेशजी कहेगये हैं ॥ ७२ ॥ व द्वादशार्कजी कहेगये हैं और दशाश्वमेधिकेश्वर व गदाधरेश्वर तथा वैजनाथ ऐसे शंभुराज कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ और तदनन्तर सोमनाथेश्वर व कुसुमेशजी कहेगये हैं उसके उपरान्त भीमशंकरनामक तथा घंटेशजी कहेगये हैं ॥ ७४ ॥ तदनन्तर औषधेश्वर शंभु व नरादित्य जी कहेगये हैं और अन्य केशवार्क व शक्तिभेदेश्वर कहेगये हैं ॥ ७५ ॥ अन्य रामेश्वरदेव व बाल्मीकेश्वर शिव कहेगये तदनन्तर जालेश्वर शिव व अभयेश्वर

तिख्यातो ह्यतोयोगेश्वरःस्मृतः ॥ ७१ ॥ भीमेश्वरइतिख्यातो धनुःसाहस्रनामकः ॥ अग्नीश्वरःपरःप्रोक्तो देवेशश्च ततःपरम् ॥ ७२ ॥ द्वादशार्कःसमाख्यातो दशाश्वमेधिकेश्वरः ॥ गदाधरेश्वरःख्यातो वैजनाथेतिशम्भुराट् ॥ ७३ ॥ सोमनाथेश्वरःख्यातः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ भीमशङ्करनामाच घण्टेशश्चततःपरम् ॥ ७४ ॥ औषधेश्वरशम्भुश्च नरादित्यस्ततःपरम् ॥ केशवार्कःसमाख्यातः शक्तिभेदेश्वरःपरः ॥ ७५ ॥ रामेश्वरःपरोदेवो बाल्मीकेश्वरशङ्करः ॥ जालेश्वरःशिवःप्रोक्तोऽभयेश्वरस्ततःपरम् ॥ ७६ ॥ विघ्नहर्तेश्वरःप्रोक्तश्चञ्चलेश्वरनामकः ॥ पुरुषोत्तमेतिविख्यातो विश्वेशश्चततःपरम् ॥ ७७ ॥ कर्णेश्वरइतिख्यातःपृथुकेशस्ततःपरम् ॥ अनन्तेश्वरविख्यातःकोटेशश्चततः परम् ॥ ७८ ॥ अविमुक्तेश्वरःप्रोक्तो हनुमत्केश्वरःपरः ॥ विमलेश्वरेतिविख्यातश्चन्द्रेशश्चततःपरम् ॥ ७९ ॥ बिन्दुकेशस्ततःप्रोक्तो बालकेश्वरसंज्ञकः ॥ सहस्रलिङ्गकोदेवःसङ्ख्यासङ्ख्येश्वरःपरः ॥ ८० ॥ यानिकानिचतीर्थानि या

जी कहेगये हैं ॥ ७६ ॥ और विघ्नहर्तेश्वर व चंचलेश्वर नामक कहेगये हैं तदनन्तर पुरुषोत्तम ऐसे प्रसिद्ध व विश्वेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ७७ ॥ तदनन्तर कर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व पृथुकेश्वरजी कहेगये हैं उसके उपरान्त अनंतेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कोटेश्वरजी कहेगये ॥ ७८ ॥ और अविमुक्तेश्वर व अन्य हनुमत्केश्वरजी कहेगये तदनन्तर विमलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व चन्द्रेश्वरजी हैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बिंदुकेश्वर व बालकेश्वर संज्ञक कहेगये हैं व सहस्रलिंगके देव और अन्यसंख्यासंख्येश्वर

निलिङ्गानिसत्तम ॥ तिष्ठन्तितत्रपूज्यानि तानिवन्द्यानिमर्वशः ॥ ८१ ॥ चत्वारोविदिताःसर्वे द्वारपालामहात्मभिः ॥ पिङ्गलेश्वरआख्यातः पश्चिमद्वारमाश्रितः ॥ ८२ ॥ उत्तरेशस्ततःप्रोक्तो द्वारेचोत्तरसंज्ञके ॥ एतेचान्येचवहवो लिङ्गानिभुवनेश्वराः ॥ ८३ ॥ महाकालवनेरम्ये समाख्याताहिपावनाः ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ ८४ ॥ महाकालवनेऽथास लिङ्गसङ्ख्यानविद्यते ॥ तथापिचप्राधान्येन मयात्रपरिकीर्तितम् ॥ ८५ ॥ यस्यदेवस्यथत्तीर्थंतन्नाम परिकीर्तितम् ॥ स्नात्वादत्त्वाच तद्दानंतस्यतीर्थफलंभवेत् ॥ ८६ ॥ तथानवग्रहाःपुण्यास्समाख्याताःपुरानघ ॥ तेषान्नामानिपुण्यानि तीर्थानिचैवमेशृणु ॥ ८७ ॥ शङ्करादित्यविख्यातः सोमेशश्चततःपरम् ॥ मङ्गलेश्वरआख्यातो बुधेशश्चततःपरम् ॥ ८८ ॥ बृहस्पतीश्वरःप्रोक्तस्तथाशुक्रेश्वरःशिवः ॥ शनीश्वरोमहादेवः समाख्यातोमुनीश्वर ॥ ८९॥ राहुकेतूसमाख्यातौ तयोस्तीर्थेहिसत्तम ॥ तयोःखलुनरःस्नात्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥९० ॥

जी कहेगये हैं ॥ ८० ॥ हे सत्तम ! जो कोई तीर्थ व जो लिंग हैं वे सब पूजनीय व प्रणाम करने योग्य वहां स्थित हैं ॥ ८१ ॥ और सब चार द्वारपाल महात्माओं को विदित हैं उनमें पिंगलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध द्वारपाल पश्चिम के द्वार पै टिकेहैं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर उत्तरसंज्ञक द्वारपै उत्तरेशजी हैं ये व अन्य बहुत से भुवनेश्वर लिंग ॥ ८३ ॥ मनोहर महाकालवनमें पवित्रकारक कहेगये हैं जो कि साठकरोड़हज़ार व साठकरोड़ सौ हैं ॥ ८४ ॥ हे व्यासजी ! महाकालवनमें लिंगों की संख्या नहीं है तौ भी मैंने यहां मुख्यता से कहा है ॥ ८५ ॥ जिस देवताका जो तीर्थ है उसका नाम कहागया है उनमें नहाकर व उस दानको देकर उसको तीर्थ का फल होता है ॥ ८६ ॥ वैसेही हे अनघ ! पुरातन समय पुण्यदायक नवग्रह कहेगये हैं उनके पवित्रनामों व तीर्थों को मुझसे सुनिये ॥ ८७ ॥ कि शंकरादित्य ऐसे प्रसिद्ध हैं व तदनन्तर सोमेशजी और मंगलेश्वर व तदनन्तर बुधेशजी कहेगये हैं ॥ ८८ ॥ और बृहस्पतीश्वर व शुक्रेश्वर शिवजी कहेगये हैं व हे मुनीश्वर ! शनीश्वर महादेवजी कहेगये हैं ॥ ८९ ॥ हे सत्तम ! जो राहु, केतु कहेगये हैं उनके जो तीर्थ हैं उनमें नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ९० ॥ अह राज्यको

देतेहैं व ग्रह राज्यको हरतेहैं और चराचर समेत सब त्रिलोक ग्रहोंसे व्याप्तहै ॥९१॥ ग्रहोंके तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य ग्रहों का पूजन करता है उसको कभी ग्रहों की पीड़ा बाधा नहीं करती है ॥ ९२ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मैंने तुमसे अत्यन्तपवित्र, श्रेष्ठ, पवित्र व पापनाशिनी देवतीर्थ से उपजीहुई यात्रा को कहा ॥ ९३ ॥ उग्र ग्रहों की पीड़ाओं में तथा दरिद्रता व भयंकर संकट में उन मनुष्यों के उधारने के लिये देवयात्रा कहीगई ॥ ९४ ॥ जो उत्तम मनुष्य इन तीर्थों में स्नान करते हैं उनको तीनोंलोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ पुत्ररहित मनुष्य पुत्रको पाताहै और निर्धनी धनको पाताहै और ब्राह्मण विद्यावान् होताहै व क्षत्रिय विजयवान्

ग्रहाराज्यंप्रयच्छन्ति ग्रहाराज्यंहरन्तिच ॥ ग्रहैस्तुव्यापितंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ९१ ॥ ग्रहतीर्थेनरःस्नात्वा ग्रहाणामर्चनञ्चरेत् ॥ नतस्यग्रहपीडावै बाधतेनकदाचन ॥ ९२ ॥ एवंव्याससमाख्याता मयातेदेवतीर्थजा ॥ यात्रापुण्यतराश्रेष्ठा पवित्रापापनाशिनी ॥ ९३ ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासु दारिद्र्येघोरसङ्कटे ॥ तेषामुद्धारणार्थाय देवयात्राप्रकीर्तिता ॥ ९४ ॥ अवगाहनमेतेषु येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ ९५ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं निर्धनोधनमाप्नुयात् ॥ विद्यावाञ्जायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ ९६ ॥ अक्षयासन्ततिस्तस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवतीर्थयात्रामहिमवर्णनन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

व्यास उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं कथितंदेवमूर्तिना ॥ अवन्तीतीर्थमाहात्म्यं यद्विप्रवेदसम्मतम् ॥ १ ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ महाकालवनेरम्ये अवन्त्यांभुविसत्तम ॥ २ ॥ तीर्थानिकतिसंख्यानि विद्यन्तेह्यत्र

होताहै ॥ ९६ ॥ और उसकी अविनाशिनी सन्तान होती है व शिवलोक में वह पूजाजाता है ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांदेवतीर्थयात्रामहिमवर्णनंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ • ॥ • ॥ • ॥ • ॥ • ॥

दो० । तीर्थ अवन्ती यान करहि फल अतिसुखदाइ । बयासिवें अध्यायमें सोइ चरित सुहाइ ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! देवमूर्तिधारी आपने सब अवन्ती तीर्थ के माहात्म्यको कहा जोकि ब्राह्मणों व वेदोंसे संमत है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर, सत्तम ! मैं तुमसे फिर यह सुनना चाहताहूं कि पृथ्वीमें अवन्तीपुरी में सुन्दर महा-

कालवन में ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! यहां कितने संख्यक तीर्थ विद्यमान हैं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! बुद्धिमान् नारदजी का व पार्वती, शिवजी का संवाद हुआहै पुरातन समय नारदजीने इस प्रश्न को पूछा है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन् ! उत्तम महाकालवनमें जो तीर्थ विद्यमान हैं उनको मुझसे विस्तार से कहिये मैं सुनना चाहताहूं ॥ ५ ॥ हे अनघ, विप्रजी ! पहले उस समय इसप्रकार पूछेहुये पार्वती समेत सदाशिवजी नम्रवाणी से बोले ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सुव्रत, ऋषिश्रेष्ठ ! सुनिये कि उत्तम महाकालवनमें जो तीर्थ स्थित हैं उनको मैं कहूंगा ॥ ७ ॥ पृथ्वी

सुव्रत ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ कथांपापहरांपराम् ॥ ३ ॥ उमामहेशसंवादो नारदस्यचधीमतः ॥ नारदेनपुरापृष्टे प्रश्नमेतंद्विजोत्तम ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि महाकालवनेशुभे ॥ तीर्थानियानि विद्यन्ते तानिनोवदविस्तरात् ॥ ५ ॥ इतिपृष्टस्तदाविप्र नारदेनपुरानघ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा उमयासहितोहरः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणुष्वभोऋषिश्रेष्ठ महाकालवनेशुभे ॥ तीर्थानियानितिष्ठन्ति तानिवक्ष्यामिसुव्रत ॥ ७ ॥ पुष्कराद्यानितीर्थानि यानिकानिमहीतले ॥ तानिसर्वाणिवर्तन्ते महाकालवनोत्तमे ॥ ८ ॥ असङ्ख्यातसहस्राणि कोटिकोटीनिसत्तम ॥ रुद्रसरेनिमज्जन्ति कोटितीर्थंतथोच्यते ॥ ९ ॥ नीहारकर्णिकांवृष्टिङ्गिरौवर्षतिकिन्नरः ॥ हिमान्तेचैवदृश्यन्ते तीर्थेपैशाचमोचने ॥ १० ॥ नहिसङ्ख्यांविजानामि तीर्थानांमुनिसत्तम ॥ कियन्तिसन्तितीर्थानि लिङ्गानिचतथैवच ॥ ११ ॥ तथापितुप्राधान्येन कथयिष्यामिसत्तम ॥ संवत्सरस्ययावन्ति अहानिचद्विजोत्तम ॥ १२ ॥

में पुष्करादिक जो कोई तीर्थ हैं वे सब उत्तम महाकालवन में वर्तमान हैं ॥ ८ ॥ हे सत्तम ! असंख्य हज़ार व करोड़ों कोटितीर्थ रुद्रसर में स्नान करते हैं इससे वह कोटितीर्थ कहाजाता है ॥ ९ ॥ और पर्वतपै किन्नर कुहर से व्याप्त वृष्टिको करते हैं और हेमन्त ऋतुके अन्तमें सब तीर्थ पिशाचमोचन नामक तीर्थ में देख पड़ते हैं ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तीर्थों की संख्या को नहीं जानताहूं कि कितने तीर्थ व लिंग हैं ॥ ११ ॥ तथापि हे सत्तम ! प्रधानता से कहूंगा। हे द्विजोत्तम ! वर्षभर

के जितने दिन होते हैं ॥ १२ ॥ हे परंतप ! उतने प्रसिद्ध तीर्थों को मनुष्य नित्य प्राप्त होता है और वर्षपूर्ण होनेपर अवन्तीपुरी की यात्रा होती है ॥ १३ ॥ उसको विधिपूर्वक जो करता है वह साक्षात् देवताओं में उत्तम होता है और हज़ारों मन्वन्तरों तक काशीजी के निवास में जो फल होता है ॥ १४ ॥ वह फल वैशाख महीने में अवन्तीपुरी में पांच दिनों से होता है इसलिये मोक्ष चाहनेवाले पुरुषको बड़े यत्न से अवन्तीपुरी को जाना चाहिये ॥ १५ ॥ और वैशाख महीने में विशेषकर मनुष्य अवन्ती में स्नानकरै हे व्यासजी ! जो मनुष्य अवन्तीपुरीमें वैशाख महीनेको प्राप्त होकर ॥ १६ ॥ विधिपूर्वक वर्षभरतक प्रत्येक तीर्थमें नहाताहै वह सब दानों

तावन्तिप्राप्नुते नित्यंप्रसिद्धानिपरंतप ॥ संवत्सरपरिपूर्णेजायतेवन्तियात्रिका ॥ १३ ॥ विधिवत्कुरुतेयस्तु साक्षात्स विबुधोत्तमः ॥ मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेचयत्फलम् ॥ १४ ॥ तत्फलंजायतेवन्त्यां वैशाखेपञ्चभिर्दिनैः ॥ तस्माद वन्तीगन्तव्या प्रयत्नेनमुमुक्षता ॥ १५ ॥ माधवेपिविशेषेणह्यवन्तीस्नानमाचरेत् ॥ योवैवैशाखमासाद्य ह्यवन्त्यांव्या समानवः ॥ १६ ॥ संवत्सरंप्रतिस्नातस्तीर्थेतीर्थेयथाविधि ॥ दत्त्वादानानिसर्वाणि सकलंफलमश्नुते ॥ १७ ॥ भु क्त्वाभोगान्सविपुलाञ्छिवलोकेमहीयते ॥ यत्रकुत्रापियोनित्यं नरोनिश्चलमानसः ॥ १८ ॥ शृणोत्येकमनाःपुण्यां पूजयित्वाचवाचकम् ॥ सत्कृत्यविधिवद्वत्स वासोलङ्कारभूषणैः ॥ १९ ॥ अन्यैश्चविविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेणच ॥ नत स्यदुर्लभंकिञ्चिद्विद्यतेभुविसत्तम ॥ २० ॥ एवंव्यासपुराशम्भुर्नारदायसुधीमते ॥ उवाचपरमाख्यानमवन्तीव्रत मुत्तमम् ॥ २१ ॥ तेनप्रख्यापितंपुण्यं सर्वलोकेषुसत्तम ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं मयासत्यव्रतीसुत ॥ २२ ॥ अवन्तीतीर्थ

को देकर समस्त फल को भोगता है ॥ १७ ॥ और बहुत सुखों को भोगकर वह शिवलोकमें पूजा जाताहै व जहां कहीं भी नित्य अचल मनवाला जो मनुष्य ॥ १८ ॥ सावधान मन होकर बांचनेवाले को पूजकर पुण्यदायिनी कथा को सुनता है व हे वत्स ! विधिपूर्वक, वसन, अलंकार व भूषणों से सत्कार कर ॥ १९ ॥ व अनेक प्रकार के अन्य भोगों के दानों से जो वाचक को पूजता है हे सत्तम ! उसको पृथ्वीमें सालभर में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २० ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! पुरातन समय सदाशिवजी ने बुद्धिमान् नारदजी से अवन्ती पुरी के उत्तम व्रतरूपी परमकथानक को कहा है ॥ २१ ॥ व उन्होंने हे सत्तम ! सब लोकों में इस पुण्यमय

कथानकको कहाहै हे सत्यवतीसुत ! मैंने इस सब चरित्रको तुमसे कहा ॥ २२ ॥ जोकि अवन्तीतीर्थ यात्राका सनातन आख्यान था हे द्विजोत्तम ! फिर तुम्हारे क्या सुनने की इच्छाहै ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यवर्णनंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२ ॥

दो०। जेहि तीरथ में जौन फल मिलत अवन्ती मध्य। तिरासिवें अध्यायमें सोइ चरित सुख मध्य ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मविदांवर ! अवन्ती पुरीकी बहुतपुण्यवाली महिमा को मैंने तुम से सुना और तुमसे फिर सुना चाहता हूं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम ! ब्रह्म के जाननेवाले तुमने ब्रह्मचारियों के इस तीर्थ के वर्षभर व्रत के पा-

यात्रायाः कथाख्यानंसनातनम् ॥ भूयःकिंश्रोतुमिच्छातेवर्ततेद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ अवन्त्याश्चपरंपुण्यं महिमानंश्रुतंमया ॥ १ ॥ त्वया ब्रह्मविदाप्रोक्तं वत्सरव्रतपारणम् ॥ तीर्थस्यास्यसुविस्तारात्स्नातकानांद्विजोत्तम ॥ २ ॥ अचिरेणतुकालेन तीर्थस्यफलमश्नुते ॥ सिद्धोभूत्वानरोयाति तद्वदस्वद्विजोत्तम ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ गुह्याद्गुह्यतरंवत्स पृच्छसित्वंममानघ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वत्वंसमाहितः ॥ ४ ॥ महाकालंततोगच्छेन्नियतोनियतात्मना ॥ कोटितीर्थेनरस्स्नात्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ५ ॥ नास्तिवत्समहीपृष्ठे चिप्रायास्सदृशीनदी ॥ यस्यानिरीक्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेन वै ॥ ६ ॥ माधवेमासियोदेवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ मोचनेमुच्यतेनित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥ ७ ॥ अवन्त्यामङ्गपा

रण को विस्तारसे कहा है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिससे मनुष्य थोड़ेही समयमें तीर्थ के फल को भोगताहै व सिद्ध होकर शिवलोकको जाताहै उसको कहिये ॥३॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ, वत्स ! तुम मुझसे गुप्तसे भी अधिक गुप्त चरित्रको पूछते हो उसको मैं तुमसे कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ कि तदनन्तर नियम में प्राप्त मनुष्य सावधान चित्त से महाकाल वनको जावै क्यों कि नियम मेंप्राप्त चित्त से कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ हे वत्स ! पृथ्वी में क्षिप्रा के समान नदी नहीं है कि जिसके देखनेही से मुक्तिहोती है बहुत दिनों के सेवन से क्या है ॥ ६ ॥ वैशाख महीने में जो पुरुष पुरुषो-

त्तम (विष्णु) जी को सदैव पूजता है वह मोचनतीर्थ में एकही दिनके तर्पण करने से पातकों से छूट जाता है ॥ ७ ॥ अवन्तीपुरी में अंगपात नामक विष्णुजी को जे मनुष्य देखते हैं उनकी सैकड़ों करोड़ कल्पों से पुनरावृत्ति (फिर जन्म) नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी इस वचनको वाराह, मत्स्य, कन्दादिक व लोमश महामुनि ये सब महात्मा कहते हैं ॥ ९ ॥ तथापि पुण्य के समान तीर्थ की विधि को फिर सुनिये कि जो पुरुष थोड़ेपुण्य से तीर्थ के फलको चाहता है ॥ १० ॥ हे तपोधन ! उस सबके फलको कहूंगा इसको सुनिये कि पवित्रमन व सब तीर्थों के फलको चाहनेवाला पवित्र पुरुष ॥ ११ ॥ जोकि स्नान के नियमवाला होवै वह

तारूयं येपश्यन्तिजनार्दनम् ॥ नतेषांपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥ इतिव्यासवचस्सर्वे वदन्तिनियतात्मनः ॥ वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ॥ ९ ॥ विधिंतथापितीर्थस्य शृणुपुण्यसमम्पुनः ॥ योवैस्वल्पेनपुण्येन तीर्थस्यफलमिच्छति ॥ १० ॥ तस्यसर्वस्यवक्ष्यामिशृणुष्वेदंतपोधन ॥ सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचिःप्रयतमानसः ॥ ११ ॥ अवगाहव्रतीयाति तीर्थानिचाष्टविंशतिः ॥ ऊर्जेमाघेतथाषाढे वैशाखेचविशेषतः ॥ १२ ॥ यदाकदापुरींप्राप्य कर्तव्यंतीर्थमज्जनम् ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ १३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ क्षिप्रातीरेहिवर्तन्ते पुराख्यातानिसूरिभिः ॥ पुण्यानितीर्थमुख्यानि तानिमेगदतःशृणु ॥ १४ ॥ पापार्दितश्शुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरितिस्मरन् ॥ आदायनियमंसर्वं स्नातकानांचसत्तम ॥ १५ ॥ स्नात्वारुद्रसरेनित्यं कृत्वाश्राद्धादिकंतथा ॥ यथाशक्तिपरांवत्स गान्दत्त्वाचैवकाञ्चनीम् ॥ १६ ॥ तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थावगाहने ॥ अनुज्ञान्देहिमेनित्यं करिष्यामितवा

अट्ठाईस तीर्थोंको जावै कार्तिक, माघ, आषाढ वै विशेषकर वैशाख मे ॥१२॥ व जब कभी पुरीको पाकर तीर्थस्नान करना चाहिये क्योंकि इस तीर्थमें स्नान करने वाला पुरुष सब तीर्थोंके फलको पाकर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥१३॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले विद्वानों से कहेहुये जो पवित्र व मुख्यतीर्थ क्षिप्रानदी के तटपै वर्तमान हैं उनको कहतेहुये मुझसे सुनिये ॥ १४ ॥ हे सत्तम ! पापसे विकल मनुष्य पवित्र होकर विष्णु, विष्णु ऐसा स्मरण करताहुआ ब्रह्मचारियों के सब नियमको ग्रहणकर ॥ १५ ॥ रुद्रतड़ागमें नित्य नहाकर तथा श्राद्धादिक करके हे वत्स ! शक्तिके अनुसार सोने की गऊ को देकर ॥ १६ ॥ हे तीर्थराज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है अपने तीर्थ

के नहान म मुझको नित्य आज्ञा दीजिये मैं तुम्हारा पूजन करूंगा ॥ १७ ॥ यह प्रार्थना का मंत्र है ॥ तदनन्तर कर्कराज नामक उस तीर्थभूत तड़ाग को जावै और उसमें स्नानादिक करके घृत पात्रको देवै ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो नृसिंह नामक उत्तमतीर्थ है उसमें स्नान करै तदनन्तर अपने कार्य की शुद्धि के लिये कृष्णाजिन (मृगचर्म) को देवै ॥ १९ ॥ व हे सत्तम ! नीलगंगा और क्षिप्रानदी का जो संगम है उसमें नहाकर पवित्र होकर व संगमेश्वरजी को देखकर ॥ २० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों के लिये अलंकार कियेहुये वाहन को देना चाहिये और भूषण व अनेकभांति की सवारियोंको देना चाहिये ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त व्रतवान् पुरुष

चनम् ॥ १७ ॥ इति प्रार्थनामन्त्रः ॥ ततःप्रयातितत्तीर्थं कर्कराजाभिधंसरः ॥ तत्रस्नानादिकंकृत्वा घृतपात्रंप्रदापये त् ॥ १८ ॥ नृसिंहाख्यंपरन्तीर्थं तत्रस्नायाद्विजोत्तम ॥ कृष्णाजिनंततोदद्यादात्मकार्यविशुद्धये ॥ १९ ॥ सङ्गमेनी लगङ्गायाःक्षिप्रायाश्चैवसत्तम ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा दृष्ट्वाचसङ्गमेश्वरम् ॥ २० ॥ वाहनञ्चततोदेयं द्विजातिभ्यः स्वलंकृतम् ॥ भूषणानिचदेयानि यानानिविविधानिच ॥ २१ ॥ ततःप्रायाद्व्रतीसम्यक् तीर्थंपैशाच्यमोचनम् ॥ त त्रस्नात्वाचविधिव दाह्निकादिचकारयेत् ॥ २२ ॥ गांसवत्सांततोदद्याद्वेदवेदाङ्गपारिणे ॥ सीदत्कुटुम्बिनेनित्यं द्विजाय मुनिसत्तम ॥ २३ ॥ महादानानिसर्वाणि तत्रदेयानिसत्तम ॥ पिशाचेशंततोदृष्ट्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २४ ॥ गन्धर्व तीर्थंगच्छेच्च नियमीव्रतकारकः ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वाश्राद्धंकुर्यात्समाहितः ॥ २५ ॥ षष्टिजलपेश्वरन्देवं पूजयेद्वि धिवद्द्विज ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्गेहदानादिकंपरम् ॥ २६ ॥ दासीदासंततोदेयं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ धनवान्पुत्रवाँ

कृष्णाजिन (मृगचर्म) को देवै ॥ १९ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणों के लिये अलंकार कियेहुये वाहन को देना चाहिये और भूषण व अनेकभांति की सवारियोंको देना चाहिये ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त व्रतवान् पुरुष भलीभांति पिशाचमोचन तीर्थ को जावै और उसमें नहाकर विधिपूर्वक दिनकेकार्यादिक करै ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठजी ! क्लेशित कुटुंबी तथा वेदवेदांग के पारगामी ब्राह्मण के लिये नित्यही बछड़ा समेत गऊको देवै ॥ २३ ॥ हे सत्तम ! वहांपर सब महादानों को देना चाहिये उसके उपरान्त पिशाचेशजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २४ ॥ और व्रत करनेवाला नियमवान् पुरुष गंधर्वतीर्थ को जावै और उसमें नहाकर पवित्र होकर सावधान होताहुआ पुरुष श्राद्धकरै ॥ २५ ॥ व हे द्विज ! षष्टिजलपेश्वर देवजी को विधिपूर्वक पूजन करै उसके उपरान्त उत्तम गृहदानादिक को ब्राह्मणों के लिये देवै ॥ २६ ॥ तदनन्तर

सब कार्यों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये दासी व दास को देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष संसारमें धनवान् व पुत्रवान् होकर मरकर मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥२७॥ तदनन्तर हे विप्रजी ! व्रतवान् पुरुष केदारनामक उत्तमतीर्थ को जावै व उसमें नहाकर ब्राह्मणों के लिये महादान को देवै ॥ २८ ॥ और उत्तम गऊ के युग याने एक गऊ व एक बैल को देकर वहां विधिपूर्वक कार्य करै हे सत्तम ! वहांपर कंबल मृगचर्म व बसनों को देना चाहिये ॥ २९ ॥ ऐसा करके मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर शिवलोक में पूजा जाता है व चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य चक्रपाणिजी को भलीभाति पूजै ॥ ३० ॥ हे सत्तम ! वहापर शंख, शस्त्र व वि-

ल्लोके मृतोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ ततोगच्छेद्व्रतीविप्रकेदारंतीर्थमुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वामहादानं ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् ॥२८॥ शुभङ्गोमिथुनंदत्त्वा विधिवत्तत्रकारयेत्॥कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्तम ॥२९॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा चक्रपाणिंसमर्चयेत् ॥ ३० ॥ शङ्खशस्त्रविमानानि तत्रदेयानिसत्तम॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते॥ ३१ ॥ सोमतीर्थेनरःस्नात्वा द्रष्ट्वासोमेश्वरंशिवम् ॥ निर्मलाङ्गोनरोभाति कुष्ठरोगोनबाधते ॥ ३२ ॥ इक्षुधेन्वादिकंदानं तत्रदेयंद्विजातये ॥ देवप्रयागंगच्छेच्च स्नानार्थंद्विजसत्तम ॥ ३३ ॥ तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवंमाधवमर्चयेत् ॥ गुडधेनुःप्रदातव्याविधिदृष्टेनकर्मणा ॥ ३४ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोकेमहीयते ॥ प्रयागेपरमंव्यास वेणीतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३५॥ तत्रस्नानंचकर्तव्यं तिलामलकसंयुतम् ॥ प्रयागेशमथाभ्यर्च्य

मानोंको देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूटजाता है व विष्णुलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३१ ॥ व सोमतीर्थ में नहाकर मनुष्य सोमेश्वर शिवजीको देखकर निर्मल अंगवाला मनुष्य शोभित होता है और उसको कुष्ठरोग बाधा नहीं करता है ॥ ३२ वहां ब्राह्मण के लिये ऊख व गऊ आदिक दानको देना चाहिये व हे द्विजोत्तम ! स्नान के लिये देवप्रयागजी को जावै ॥ ३३ ॥ उस तीर्थ मे नहाकर पवित्र होके मनुष्य माधवदेवजीको पूजै और वहांपर विधिसे देखेहुये कर्मसे गुड़ की गऊको देना चाहिये ॥ ३४ ॥ ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध चित्तवाला होकर देवलोक में पूजाजाता है हे व्यासजी ! प्रयाग में अतिउत्तम वेणी-

तीर्थ है ॥ ३५ ॥ वहांपर तिलों व आंवलों से संयुक्त स्नान करना चाहिये इसके उपरान्त प्रयागेशजी को पूजकर मनुष्य सब फलको प्राप्तहोता है ॥ ३६ ॥ और वहांपर विधिपूर्वक द्विजोत्तम के लिये तिलकी गऊ देना चाहिये जो ऐसा करताहै वह सब कामनाओं के वरको पाकर विष्णुलोकमें पूजाजाता है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर फिर व्रतवान् पुरुष अति उत्तम योगतीर्थ को जावै व उसमें स्नानकर पवित्र होकर योगिनीश्वरजी को पूजे ॥ ३८ ॥ उसके उपरान्त जलकी गऊको देवै तो दीर्घ आयुर्बलवाला व सुखी होता है तदनन्तर मनुष्य कपिलाश्रम नामक उत्तम तीर्थको जावै ॥ ३९ ॥ और स्नान दानादिक करके कपिलेश्वरजीको पूजै तो वह सबपापों

सकलंफलमश्नुते ॥ ३६ ॥ तिलधेनुःप्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे ॥ सर्वकामवरंप्राप्य विष्णुलोकेसमोदते ॥ ३७ ॥ ततोगच्छेद्व्रतीभूयो योगतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥ ३८ ॥ जलधेनुंततोदद्याद्दीर्घा युश्चसुखीभवेत् ॥ कपिलाश्रमंपरन्तीर्थं नरोगच्छेत्ततःपरम् ॥ ३९ ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोकेसगच्छति ॥ ४० ॥ घृतकुल्यापरन्तीर्थं क्षिप्राकूलेचपश्चिमे ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं घृतधारेश्व रंशिवम् ॥ ४१ ॥ पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनुंसमर्पयेत् ॥ प्राप्यपुण्यकृताँल्लोकान् सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४२ ॥ मधु कुल्यांनरस्स्नात्वा पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ मधुदानंप्रकुर्वीत इक्षुधेनुंततःपरम् ॥ ४३ ॥ ऊषरंपरमंतीर्थं सर्वतीर्थफ लप्रदम् ॥ तत्रस्नात्वानरःपश्येन्महेशमूषरेश्वरम् ॥ ४४ ॥ फलमूलादिकंदेयं प्राप्यतेमोक्षउत्तमः ॥ नरादित्यःस्थि

से छूटजाता है और तपोलोक में जाता है ॥ ४० ॥ और क्षिप्रा नदी के पश्चिम किनारे पै घृतकुल्या नामक उत्तमतीर्थ है उसमें नित्य नहाकर मनुष्य घृतधारेश्वर शिवजी को ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक पूजै व हे विप्रजी ! घृत की गऊको देवै तो वहपुण्य से कियेहुये लोकों को प्राप्तहोकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ४२ ॥ मधुकुल्या तीर्थ में नहाकर व महेश्वरजी को पूजकर मनुष्य शहदका दान करै उसके उपरान्त ऊंखकी गऊको देवै ॥ ४३ ॥ और सब तीर्थों के फलको देनेवाला उत्तम ऊषर तीर्थ है उसमें नहाकर मनुष्य ऊषरेश्वर महादेवजी को देखे ॥ ४४ ॥ और वहां फल, मूलादिक देना चाहिये ऐसा करनेपर उत्तममोक्ष मिलती है और जहां नरा-

दित्यजी स्थितहैं वहां उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ ४५ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य श्रेष्ठचेत्रादित्येश्वरजीको पूजै तदनन्तर रथ दानको देकर वह नर लोकमें जाताहै ॥ ४६ ॥ व अन्य केशवार्क देवजी हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है उसमें स्नान व केशवार्कजी का पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस तीर्थ में बहुत प्रकार का अन्न देना चाहिये उस तीर्थ में कालभैरवजी कहेगये हैं महाव्रती ॥ ४८ ॥ पुरुष उसमें नित्य नहाकर कालभैरवजी देखकर पूर्ण महादान को देवै तो वह यमलोक को नहीं जाता है ॥ ४९ ॥ और क्षिप्रानदी के दक्षिण किनारे पै द्वादशार्क ऐसा प्रसिद्धतीर्थ सब पापों को हरनेवाला व सब कामनाओंके वरको देनेवाला

तोयत्र तत्रतीर्थंपरंस्मृतम् ॥ ४५ ॥ तत्रस्नात्वापरःपश्येत् चेत्रादित्येश्वरंपरम् ॥ रथदानंततोदत्त्वा नरलोकेसगच्छति ॥ ४६ ॥ केशवार्कोपरोदेवस्तस्यतीर्थंपरंस्मृतम् ॥ तत्रस्नानंविधेयञ्च केशवार्कसमर्चनम् ॥ ४७ ॥ अन्नंबहुविधं देयं तत्रतीर्थेद्विजोत्तम ॥ कालभैरवआख्यातस्तत्रतीर्थेमहाव्रती ॥ ४८ ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं दृष्ट्वाभैरवमन्तकम् ॥ दद्यात्पूर्णंमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥ ४९ ॥ द्वादशार्केतिविख्यातंक्षिप्राकूलेचदक्षिणे ॥ तीर्थञ्चसर्वपापघ्नं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ५० ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वाद्वादशार्कंसमर्चयेत् ॥ अजादानंचदेयंवै वासोलङ्कारसंयुतम् ॥ ५१ ॥ आरोग्यंसर्वदादेहे तस्यसम्पत्पदेपदे ॥ तत्रापिऋषयोदेवाःसन्ध्योपासनतत्पराः ॥ ५२ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य प्रातःकालेसदैवहि ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥५३॥ एकानंशेतिविख्याता भवानीपापनाशिनी ॥ तामर्चयेद् द्विजश्रेष्ठ दशाश्वमेधपंशिवम् ॥५४॥ तत्रदेयंमहादानं श्वेताश्वंसमलङ्कृतम् ॥ विप्रायवेदविदुषेविधिवद्द्विपसत्तम॥५५॥

है ॥ ५० ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर द्वादशार्कजी को पूजै और वसनों व भूषणों से संयुत छागदान देना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य ऐसा करता है उसके शरीरमें सदैव निरोगता होती है व पग पगपै संपत्ति होती है और वहांपर भी संध्योपासन में परायण ऋषियों व देवताओं ने ॥ ५२ ॥ सदैव प्रातःकाल में उसकी उपासना कियाहै उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर सावधान होता हुआ मनुष्य ॥ ५३ ॥ जो एकानंशा ऐसी प्रसिद्ध पापनाशिनी भवानीहै उनको पूजै व हे द्विजोत्तम ! दशाश्वमेधेश शिवजीको पूजै ॥ ५४ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ ! वहां वेदज्ञद्विजके लिये भलीभांति अलंकार किया हुआ श्वेतघोड़ा विधिपूर्वक देना चाहिये ॥ ५५ ॥

क्योंकि सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह पुरुष स्वर्गलोक में पूजा जाता है और पृथ्वीके पुत्र जो ये मंगलदेवजी प्रसिद्ध हैं ॥ ५६ ॥ हे व्यासजी ! सब तीर्थों के फल को देनेवाला उनका उत्तमतीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य मंगलेश्वरजी को पूजै ॥ ५७ ॥ और गुड़, अन्न व वसन समेत अलकार किया हुआ लाल बैल अलंकृत ब्राह्मणों के लिये जो सावधान होकर देताहै ॥ ५८ ॥ उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्त होतीहै और पुत्र, दारादिक संपदाएं होती हैं गङ्गाजीके भेद से संयुत आकाश गंगा संगमतीर्थ है ॥ ५९ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गंगेश्वर शिवजीको देखकर सब पापोंसे छूटजाताहै और वह विष्णुलोक में पूजा जाताहै ॥ ६० ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ योसावङ्गारकोदेवो विख्यातोवैधरात्मजः ॥ ५६ ॥ तस्यतीर्थंपरंव्यास सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥ ५७ ॥ गुडान्नंवृषभंरक्तं सवासःसमलङ्कृतम् ॥ स्वलङ्कृतेभ्योविप्रेभ्यो योददातिसमाहितः ॥ ५८ ॥ तस्यहस्तगतालक्ष्मीः पुत्रदारादिसम्पदः ॥ खगङ्गासङ्गमंतीर्थं गङ्गोद्भेदसमन्वितम् ॥ ५९ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरंशिवं ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ६० ॥ तिलपात्रंप्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् ॥ सर्वसौख्यकरंदानं सर्वपापहरंपरम् ॥ ६१ ॥ ऋणमोचनकंतीर्थं सर्वपापहरंस्मृतम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नत्वा ऋणतेश्वरमर्चयेत ॥ ६२ घृतश्राद्धंप्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णंचशक्तितः ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ६३ ॥ ततोगच्छेन्नरोनित्यं शक्तिभेदमकल्मषम् ॥ तीर्थानाञ्चैवसर्वेषामुत्तमंपापनाशनम् ॥ ६४ ॥ तत्रस्नात्वानरोव्यास शुचिःप्रयतमानसः ॥ मातृकानाञ्चसर्वेषां दर्शनंकारयेद्बुधः ॥ ६५ ॥ को

वहां सुवर्णसंयुत तिलका पात्र विधिपूर्वक देना चाहिये क्योंकि यह दान सब सुखोंको करनेवाला व सब पापोंका हरनेवाला कहागयाहै ॥ ६१ ॥ व सब पापों को हरनेवाला ऋणमोचन तीर्थ कहागयाहै उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य ऋणतेश्वरजी को पूजै ॥ ६२ ॥ और शक्तिके अनुसार सुवर्ण को देकर घृतका श्राद्ध करै तो तीनों ऋणों से छूटाहुआ वह स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मनुष्य नित्यही पापरहित शक्तिभेद तीर्थ को जावै जो कि सब तीर्थोंके मध्य में उत्तम व

पापनाशक है ॥६४॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर पवित्र मनवाला, पवित्र व बुद्धिमान् पुरुष सब मातृकाओं का दर्शन करै ॥६५॥ कौमारी व कार्त्तिकी माता, चर्पटा व वट मातृका वैसेही भगवती देवी व स्वामिकार्त्तिकेयजी को पूजै ॥ ६६ ॥ हे सत्तम ! वहां विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये और शय्यादिक दान व कांस की गऊ और अन्य दान को देकर ॥ ६७ ॥ माता के ऋण को उल्लंघनकर मनुष्य सायुज्य मुक्तिको पाता है और जो वह पापमोचन नामक श्रेष्ठ व उत्तमतीर्थ है ॥ ६८ ॥ उसमें नहाकर हे सत्तम ! मनुष्यों को छायादान देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध चित्तवाला होता है ॥ ६९ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! त्रिलोक में प्रसिद्ध

मारीकार्त्तिकीमाता चर्पटावटमातरः ॥ तथाभगवतींदेवीं स्कन्दंचैवसमर्चयेत् ॥ ६६ ॥ तत्रश्राद्धानिदेयानि विधिवद् द्विजसत्तम॥ दत्त्वाशय्यादिकंदानं कांस्यधेनुंतथेतरद् ॥६७॥ मातुर्ऋणंसमुत्तीर्य सायुज्यंलभतेनरः ॥ यत्तत्तीर्थवरंश्रेष्ठं पापमोचनसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥ तत्रस्नात्वानरैर्देयं छायादानंचसत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायतेभुविमानवः ॥ ६९ ॥ ततःपरंपरंव्यास तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ प्रेतशिलेतिविख्यातं प्रेतमोक्षकरम्परम् ॥ ७० ॥ तत्रस्नात्वानरोदद्या च्छ्राद्धंद्विजसमाहितः ॥ तिलोदकप्रदानेन पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥७१॥ घटदानंततोदेयं छत्रोपानत्समन्वितम् ॥ महिषींश्चततोदद्याद्वासांसिविविधानिच ॥ ७२ ॥ अन्नदानंततोदेयं रसेनलवणान्वितम् ॥ यमेश्वरंसमभ्यर्च्य निरये नाधिगच्छति ॥ ७३ ॥ पितरस्तस्यसन्तुष्टा यान्तिब्रह्मसनातनम् ॥ पितृदोषानबाधन्ते तेषाञ्चद्विजसत्तम ॥ ७४ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं भुवित्रैलोक्यवन्दितम् ॥ नवनदीसङ्गमोयत्र तत्रतिष्ठतिपार्वती ॥ ७५ ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं शु

प्रेतशिला नामक तीर्थ प्रेतों को मोक्षकारक व श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर हे द्विज ! सावधान होताहुआ पुरुष श्राद्ध को देवै क्योंकि तिलसमेत जलके देनेसे पितर उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ उसके उपरान्त छत्र व पनही समेत घटदान देवै तदनन्तर भैंस व अनेकभांतिके वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ७२ ॥ उसके उपरान्त रस व लोन से संयुत अन्नदान देना चाहिये यमेश्वरजीको पूजकर मनुष्य नरक में नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ और प्रसन्न होतेहुये उसके पितर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं और हे द्विजोत्तम ! उनको पितरों के दोष नहीं बाधा करते हैं ॥ ७४ ॥ और पृथ्वी में त्रिलोक से प्रणाम कियाहुआ तीर्थों के मध्य में उत्तम

तीर्थ है जहांपर नवनदी का संगम है वहापर पार्वतीजी स्थित हैं ॥ ७५ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर पवित्र होकरके सावधान होताहुआ पुरुष कल्याणकारिणी भगवती पार्वतीजी को विधिपूर्वक पूजै ॥ ७६ ॥ और महादानों को करै व हाथी की सवारी, पृथ्वी और तिलोंको व दुग्धसमेत गऊको द्विजोत्तम के लिये देवै ॥ ७७ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष साक्षात् शिव होता है उसके उपरान्त अपने कार्य की शुद्धि के लिये मन्दाकिनीजीको जावै ॥ ७८ ॥ व उसमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य सदाशिवजी को पूजता है व गाड़ी तथा अन्नादि को देकर द्रोणप्रमाण भर तिल देवै ॥ ७९ ॥ तो सब पापों से शुद्धचित्तवाला पुरुष कुबेर के समान

चिर्भूत्वासमाहितः ॥ पूजयेद्भगवतींभद्रां पार्वतींविधिवत्ततः ॥ ७६ ॥ महादानानिकुर्याच्च हस्तिपान्नधरान्तिलान् ॥ सुरभींदुग्धसहितां दद्याद्द्विजवरायच ॥ ७७ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ॥ मन्दाकिनींततोगच्छेदा त्मकार्यविशुद्धये ॥ ७८ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पूजयेद्यःसदाशिवम् ॥ दत्त्वाशकटमन्नाद्यं तिलद्रोणंप्रदापयेत् ॥ ७९ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमोभवेत् ॥ ततोगच्छेद्व्रतीविप्र तीर्थंपैतामहंपरम् ॥ ८० ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ॥ दत्त्वादानानिसर्वाणि त्रीणितत्रविशेषतः ॥ ८१ ॥ यथाशक्तिप्रदेयानि पृथ्वीगावस्सुवर्णक म् ॥ विप्रांश्चभोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणैः ॥ ८२ ॥ ततस्तुपुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ॥ तस्मिन्स्नात्वाचनत्वा च दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ ८३ ॥ पूजयित्वायथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ तुलसीबिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः ॥ ८४ ॥ धूपदीपादिनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः ॥ पूजयित्वामहादेवं यात्रेश्वरमुमापतिम् ॥ ८५ ॥ प्रार्थयेद्देवदेवेशं व्रत

होता है तदनन्तर हे विप्रजी! व्रतवान् पुरुष पितामहजी के उत्तमतीर्थ को जावै ॥ ८० ॥ और उसमें स्नानकर व पवित्र होकर विधिपूर्वक स्नान करै व सब दानों को देकर वहां तीन दानों को विशेषकर ॥ ८१ ॥ शक्तिके अनुकूल देना चाहिये याने पृथ्वी, गऊ व सुवर्ण को देवै और विधिपूर्वक बहुत दक्षिणाओं समेत नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ ८२ ॥ तदनन्तर फिर अतिउत्तम रुद्रसर को आकर व उसमें स्नानकर व महेश्वर देवको देखकर के प्रणाम कर ॥ ८३ ॥ न्यायपूर्वक अतिउत्तम यात्रेश्वर को [illegible]सी, बिल्वपत्र व अनेकभांति के सुगंधित पुष्पों से पूजकर ॥ ८४ ॥ और धूप दीपादिक व नैवेद्यों तथा तांबूल व चादर

परन्तु इससमयमें पितरोंका तीर्थ (गया) तो लोकों करके देखाही नहीं जाता है और आपका शाप हटाने के योग्य नहीं होसक्ता है इससे हमारे अभिप्राय को इस समय पूर्णकरो ॥ ५४ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हे पितामह ! आपके वचन से मैंने अपने शापको निवृत्त करदिया वहां गयामें पितरों का दर्शन होगा गया पितरोंके विसर्जन करनेवाली होगी ॥ ५५ ॥ हे पितामह ! आपके प्रसादसे उस तीर्थमें यह सब काम होगा हे नृप ! ब्रह्माजी उन दुर्वासाजी से ऐसाही हो यह कहकर स्वर्गको चलेगये ॥ ५६ ॥ देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजीके नमस्कारकर बड़े आनन्दसे युक्त उत्तम ब्राह्मणोंसे पूजन कियेगये ॥ ५७ ॥ मुनियों

पितृतीर्थन्तु जनैर्नेहोपदृश्यते ॥ अनिवर्त्यस्तुशापस्ते तत्पूर्णंकुरुसाम्प्रतम् ॥ ५४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ मयानिवर्तितःशापो वचनात्तेपितामह ॥ पितॄणांदर्शनंतत्र गयापितृविसर्ज्जिनी ॥ ५५ ॥ भविष्यतिप्रसादात्ते तस्मिंस्तीर्थेपितामह ॥ एवमस्त्विततिंचोक्त्वा दिवंब्रह्मायर्यौनृप ॥ ५६ ॥ नमस्कृत्यमहेशानं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ हर्षेणमहताविष्टःपूज्यमानोद्विजोत्तमैः ॥ ५७ ॥ दुर्वासास्तुमुनिश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तेनपुण्यतमंलोके तत्रैरण्डीसमागता ॥ ५८ ॥ एरण्डीश्वरलिङ्गन्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ पुण्यकर्मानुपश्येद्वा अमासोमसमागमे ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वातत्परमंलिङ्गं यमलोकंनपश्यति ॥ एतत्तुकथितंराजन् मयात्वांप्रतिभारत ॥ ६० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गच्छेन्माहेश्वरंपुरम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदुर्वासश्चरित्रेएरण्डीतीर्थवर्णनोनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥

में श्रेष्ठ दुर्वासाजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तिससे बड़ा पवित्र यह तीर्थहै यहां एरण्डी आईहै॥५८॥ देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये एरण्डीश्वर लिंगको सोमवती अमावस में बड़े पुण्यकर्मवाला मनुष्य देखता है ॥ ५९ ॥ इस उत्तम लिंगके दर्शनकर फिर मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है हे राजन्, भारत ! यह तुमसे मैंने कहा ॥ ६० ॥ इसके सुनने व कहने से महादेवजी के पुरको जाताहै ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेदुर्वासश्चरित्रेएरण्डीतीर्थवर्णनोनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा में विद्यमान शल्या और विशल्या तीर्थोंको जावे वहां स्नानकर स्वर्गको जाना है यह यज्ञेश्वर की आज्ञासे
फल कहागयाहे ॥ १ ॥ वहा अत्युत्तम यज्ञेश्वर व धूपेश्वरलिंग है उनको सिद्धि व मोक्षके देनेवाले जानो उन्हें मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २ ॥ तिलोदक व अन्नके देने
से हे भारत ! पितर तृप्तहोते हैं जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहते हैं ॥ ३ ॥ पूर्णमासी, सोमवार, व्यतीपात और संक्रान्ति में वहां जो दान कियाजाता उसके
पुण्यफल को सुनो ॥ ४ ॥ भरतने पूर्वकालमें वहां अश्वमेधयज्ञ को जिस प्रकार किया सो हम तुमसे इससमय कहेंगे हे कौन्तेय ! तुम सुनो ॥ ५ ॥ हे विशा-

तत्रस्नात्वादिवंयाति फलंयज्ञेश्वराज्ञया ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेन्महाभाग रेवाशल्याविशल्ययोः ॥ तत्रस्नात्वादिवंयाति फलंयज्ञेश्वराज्ञया ॥
१ ॥ तत्रयज्ञेश्वरंलिङ्गं धूपेश्वरमनुत्तमम् ॥ सिद्धिदंमोक्षदंविद्धि नतेपश्यन्तिमानवाः ॥ २ ॥ तिलोदकप्रदानेन चान्न
दानेनभारत ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥३॥ पौर्णमास्यान्तुसोमेवै व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ दानंयत्क्रि
यतेतत्र तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ भरतेनकृतस्तत्र हयमेधःपुरायथा ॥ तत्तेहंकथयिष्यामि शृणुकौन्तेयसाम्प्रतम्॥
५ ॥ भरतोनामराजासीत् सूर्यवंशेविशाम्पते ॥ प्रशशासमहाराज कृत्स्नंवैसमहीतलम् ॥ ६ ॥ यावत्तृणंविजानीया
यावत्कीर्तिश्चभास्करः ॥ तावद्वैभरतक्षेत्रं सशैलवनकाननम् ॥ ७ ॥ एकदासनृपश्रेष्ठो यज्ञकर्मपरायणः ॥ भृगोर्द
क्षिणभागेतु कुण्डमण्डपमण्डिताम् ॥ ८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णां यज्ञभूमिञ्चकारह ॥ गवांहिदशलक्षाणि सवत्सा
नांपयोमुचाम् ॥ ९ ॥ लक्षमेकंहयानांच दन्तिनामयुतंतथा ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि वासांसिविविधानिच ॥ १० ॥

म्पते ! सूर्यवंशमें भरत राजा हुये सो हे महाराज ! वे सब पृथिवीतल की राज्य करते हुये ॥ ६ ॥ जहांतक तिनका व जहांतक यश व सूर्य हैं तहांतक पर्वत, जलों
व जङ्गलों के सहित भरतही का क्षेत्र जानो ॥ ७ ॥ एक समय में वेही भरत राजा यज्ञकर्म करनेमें तत्पर हो भृगुपर्वतके दक्षिणतरफ कुण्ड और मण्डपोंसे शोभित ॥
८ ॥ दश योजनकी लम्बी चौड़ी यज्ञके वास्ते भूमि बनातेहुये और बछड़ोंसहित दूधदेनेवाली दशलाख गौवें ॥ ९ ॥ एकलाख घोडे वैसेही दशहजार हाथी, मणि,

माणिक रत्न और अनेकतरहके कपड़े ॥ १० ॥ यह सब यज्ञका सामान लेकर सब सामान के सहित वेदकी ध्वनिने स्वर्ग और पृथ्वीको छूतेहुये गये ॥ ११ ॥ होमसे सातोलोकों के रहनेवाले देवताओं को तृप्त किया इस प्रकार बड़े तेजवाले राजा के यज्ञको वर्तमान होनेपर ॥ १२ ॥ यज्ञके बिगाडनेके वास्ते बड़े डरावने रूपवाले राक्षस माल्यवान्, सुमाली, सुकेशी, शङ्ख और दूषण ॥ १३ ॥ हजारों राक्षसों को लेकर शीघ्र आतेहुये तीनों लोकोंमें दारुण उन राक्षसोंने सब यज्ञकी चीजों को तोड़फोड दिया ॥ १४ ॥ व सब देवताओं और यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको नाश करदिया हे अनघ ! इस प्रकार राक्षसों ने जब यज्ञको बिगाड़ दिया तब ॥ १५ ॥

यज्ञोपरकरमादाय सर्वसम्भारसंवृतः ॥ वेदध्वनिनिनादेन दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ११ ॥ होमेनदेवतास्तृप्ताः सप्तलोकनिवासिनः ॥ एवंप्रवर्तितेयज्ञे राज्ञश्चामिततेजसः ॥ १२ ॥ यज्ञविध्वंसनार्थन्तु राक्षसारौद्ररूपिणः ॥ माल्यवांश्चसुमालीच सुकेशीशङ्खदूषणौ ॥ १३ ॥ राक्षसानांसहस्राणि समायातास्तुसत्वरम् ॥ भग्नानियज्ञवस्तूनि त्रिपुलोकेषुदारुणैः ॥ १४ ॥ प्रणष्टादेवताःसर्वा ऋत्विजश्चनिपातिताः ॥ एवंविनाशितेयज्ञे रक्षोभिश्चततोनघ ॥ १५ ॥ कोपाज्जज्वालराजापि हुताशनइवाहुतः ॥ जघानराक्षसान्सर्वान् गिरीन्वज्रधरोयथा ॥ १६ ॥ प्रणष्टान्भयभीतांश्च पतितान्धरणीतले ॥ राक्षसैर्निहतान्दृष्ट्वा ब्राह्मणानृत्विजस्तथा ॥ १७ ॥ शोकाविष्टस्ततःप्राह भरतोदेवमन्त्रिणम् ॥ गुरुस्त्वंसर्वदेवानां त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं ममार्थेदेवकण्टकैः ॥ प्रायश्चित्तंमयाकार्यं किन्त्वंब्रूहिबृहस्पते ॥ १९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ विद्यासंजीवनीतेहं ददामिनृपसत्तम ॥ जीविताब्राह्मणादेवाः शशंसुर्देवमन्त्रिणम् ॥ २० ॥

बड़े कोपसे होमीहुई आगकी तरह राजा जलनेलगे और सब राक्षसों को मारा जैसे पहाडोंको इन्द्र ने माराहै ॥ १६ ॥ वैसेही मरे और भयसे डरेहुये पृथ्वीपर गिरे व राक्षसों से मारेहुये यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणों को देखकर ॥ १७ ॥ शोकसे भरेहुये भरत राजा बृहस्पति से बोले कि तुम सब देवताओं के गुरुहो और तीनों काल व तीनों वेदों के जाननेवालेहो ॥ १८ ॥ यह हमारे पीछे देवताओं के कण्टकरूप राक्षसोंसे ब्रह्महत्या आदि पाप होगयाहै सो हे बृहस्पते ! इसका क्या प्रायश्चित्त हमको करना चाहिये सो आप कहे ॥ १९ ॥ तब बृहस्पतिजी बोले कि हे नृपसत्तम ! हम तुमको संजीविनी विद्या देतेहैं उसी विद्यासे राजाने सबको जिला दिया

जियेहुये ब्राह्मण व देवता बृहस्पति की प्रशंसा (तारीफ़) करनेलगे ॥ २० ॥ तदनन्तर सब अच्छी दक्षिणावाली यज्ञ समाप्तहुई वहीं यज्ञके खम्भा की जड़से शल्या और विशल्या ये दो नदी उत्पन्न हुईं ॥ २१ ॥ सो हे महाराज ! लोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा में प्रवेशकिया तदनन्तर देवतालोग अपनी २ सवारीपर सवार होकर स्वर्गको चलेगये ॥ २२ ॥ भरतभी ब्राह्मणों के सहित अपनीपुरी में प्रवेश किया इसीसे शल्या विशल्या तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुईं ॥ २३ ॥ ब्रह्मयोनि में भरतेश्वर लिंग विद्यमान है हे राजन् ! यह तुमसे देखे व सुनेके अनुसार कहा गया ॥ २४ ॥ इसके सुनने व कहनेसे योनिके सङ्कटमें नहीं आताहै ॥ २५ ॥ इति

ततोनिवर्तितोयज्ञः समग्रवरदक्षिणः ॥ यूपमूलसमुद्भूता शल्याचैवविशल्यका ॥ २१ ॥ प्रविवेशमहाराज नर्म्मदांलोकपावनीम् ॥ ततोदेवाःसमारुह्य स्वंस्वंयानंदिवंययुः ॥२२॥ भरतोपिद्विजैःसार्द्धं प्रविवेशपुरींततः ॥ तेनशल्याविशल्याच विख्याताभुवनत्रये ॥ २३ ॥ भरतेश्वरलिङ्गञ्च ब्रह्मयोन्यांसमास्थितम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ २४ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य नविशेद्योनिसङ्कटे ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे शल्याविशल्यामाहात्म्यानुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ भृगुंपतन्तियेशूराः काङ्गतिंप्राप्नुवन्तिते ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्त्वेतत् कथयस्वमहामुने ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अनाशकेनभोराजन् भृगुगोग्रहसङ्गरैः ॥ प्राणांस्त्यजन्तियेशूरा गतिंतेषांनिबोधमे ॥ २ ॥ पृथक्पृथङ्निवासांश्च तेषांकर्म्माणिभारत ॥ चतुर्विंशतिकोट्यस्तु सप्तविंशतिरेवच ॥ ३ ॥ उमयातुपुराज्ञप्ता मध्यमोत्तम

श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशल्याविशल्यामाहात्म्याऽनुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

राजा युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! भृगुके ऊपर चढ़कर जो शूर गिरते हैं वे किस गतिको प्राप्त होतेहैं सो हम सुना चाहते हैं आप कहें ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! अनशन, भृगुपात, गौवोंके पीछे और संग्राम से जो शूर प्राणोंको छोड़ते हैं उनकी गतिको मुझसे जानो ॥ २ ॥ उनके रहने के वास्ते जुदे २ स्थान और हे भारत ! उनके कार्मोंको कहते हैं चौबीस करोड़ और सत्ताईस ॥ ३ ॥ अव्वल और दोयम दर्जेवाली कन्याओंको पार्वतीजीने आगे आज्ञादीथी

कि इस तरहसे जो मनुष्य अपने प्राणोंको छोड़ें ॥ ४ ॥ मेरी दीहुई तुम सब उनके साथ अपनी खुशीसे भोगकरो अमरेश्वरमें जो मरेहैं अथवा अपने शरीर नाशकरने के वास्ते जो गिरतेहैं वे लोग ॥ ५ ॥ भृगुको देखकर ब्रह्महत्यासे छूटजातेहैं हे नृपश्रेष्ठ ! चौरासी भृगु जम्बूद्वीप में कहेगये हैं ॥ ६ ॥ उसी प्रकार और भी सात भृगु कहेगयेहैं ये सब स्वर्गकी उत्तम नसेनीहैं भैरवनामका उत्तम भृगु अमरकण्टकमें जाननेयोग्य है ॥ ७ ॥ उस भृगुमें शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल और नीचलोग येही प्राणोंको छोड़ते हैं हे नृप ! वहां ब्राह्मणको मनाहै ॥ ८ ॥ जो वहां ब्राह्मण गिरताहै तो ब्रह्महत्या और अपनी हत्याका पाप उसे होताहै ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! चन्द्रग्रहण

कन्यकाः ॥ अनेनविधिनायेतु प्राणांस्त्यक्ष्यन्तिमानवाः ॥ ४ ॥ तांश्चभुङ्ध्वंमयादत्ता युष्माकंसुप्रसादतः ॥ अमरेश प्रमीताश्च भ्रंशितुंयेपतन्तिते ॥ ५ ॥ भृगुन्दृष्ट्वानृपश्रेष्ठ मुच्यन्तेब्रह्महत्यया ॥ चतुरशीतिभृगवो जम्बूद्वीपेप्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥ तथान्येसप्तनिर्दिष्टाः स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ भैरवस्तुभृगुश्रेष्ठो ज्ञेयस्त्वमरकण्टके ॥ ७ ॥ शूद्राश्चक्षत्रियावैश्या अन्त्यजाश्चाधमास्तथा ॥ एतेत्यजन्तिप्राणान्वै वर्जयित्वाद्विजंनृप ॥ ८ ॥ पतितोब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महाचात्महाभवेत् ॥ ९ ॥ द्वाविंशतिसहस्राणि राहुसोमसमागमे ॥ वर्षाणांजायतेराजन् राजावैद्याधरेपुरे ॥ १० ॥ ग्रस्तेतुराहुणासूर्ये द्विगुणंफलमश्नुते ॥ अवशःस्ववशोवापि जलपूरानलाहतः ॥ ११ ॥ म्रियतेयोभृगुंप्राप्य सविद्याधरराड्भवेत् ॥ भृगुर्भैरवरूपेण विन्ध्यकैलाससन्निभः ॥ १२ ॥ गर्हयन्तिभृगुंयेतु तेलिङ्गब्रह्मभेदिनः ॥ भैरवःक्षमतेतेषां नेतिस्कन्देनकीर्तितम् ॥ १३ ॥ संन्यासाच्चच्युतोविप्रो मातृहापितृहातथा ॥ स्वसृगःस्वस्नुषागश्च तथास्वज्ञातिगस्तथा ॥ १४ ॥ एते

में भृगुके ऊपरसे गिरने में बाईस हजार वर्षतक विद्याधरोंके पुरमें राजा होताहै ॥ १० ॥ और सूर्यग्रहण में इससे दूने फलको पाताहै और के वश व अपने वश हो कर जो जल व अग्निसे मारागया ॥ ११ ॥ वह भृगुको पाकर जो मरता है तो विद्याधरों का राजा होताहै भैरवके रूपसे विन्ध्याचल और कैलासके समान भृगुपर्वत है ॥ १२ ॥ उस भृगुकी जो निन्दा करतेहैं वे लिंगब्रह्मके तोड़नेवाले होते हैं उनका अपराध भैरवजी नहीं क्षमाकरतेहैं यह स्वामिकार्त्तिकेयजीने कहाहै ॥ १३ ॥ जिस ब्राह्मणने संन्यासको छोड़दियाहै व माता पिताका मारनेवालाहै, बहिन, बहू तथा अपने घरानेकी कन्याओंमें जो गमन करताहै ॥ १४ ॥ इन लोगोंका भृगुके ऊपर

से गिरना अथवा अग्निमें जलना अच्छा है इसके करने से उस पापसे छूटजाता है और वह शिवलोक को जाता है ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुर, चन्द्र, श्रीशैल, त्रिपुरान्तिक, पापों को धोनेवाले त्रैयम्बक, वाराहपर्वत, विन्ध्यपर्वत ॥ १६ ॥ और इसीतरह कावेरीनदी का कुण्ड इनमें गिरने से स्वर्गको पाताहै भृगुके दक्षिण तरफ चपलेश्वर लिङ्गहै ॥ १७ ॥ यहां क्षेत्रकी रक्षाके वास्ते पापोंका नाश करनेवाला प्रसिद्ध साठिधनुष तक चपलेश्वर का क्षेत्र जाननेयोग्यहै ॥ १८ ॥ जो मनुष्य विना उन चपलेश्वरजी के दर्शन किये पहाडपर चढ़ता है उसके सब पुण्यफल को वे चपलेश्वरजी लेलेते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ कपड़े में सूर्य की तसवीर

षांपतनंशस्तं करीषाग्नौप्रसाधनम् ॥ मुच्यतेतेनपापेन शिवलोकंमगच्छति ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुरेचन्द्रे श्रीशैलेत्रिपुरान्तिके ॥ त्रैयम्बकेधौतपापे वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ १६ ॥ कावेर्यास्तुतथाकुण्डे पतनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ भृगोर्दक्षिणभागेतु लिङ्गंवैचपलेश्वरम् ॥ १७ ॥ क्षेत्रसंरक्षणायेह विख्यातंपापनाशनम् ॥ धनुःषष्ट्यांततःक्षेत्रं विज्ञेयंचापलेश्वरम् ॥ १८ ॥ आरोहतिगिरिंयस्तु तमदृष्ट्वातुमानवः ॥ तस्यपुण्यफलंसर्वं सगृह्णातिनसंशयः ॥ १९ ॥ आलेख्यचपटेसूर्यं पताकादण्डमण्डितम् ॥ वलयंचकरेकृत्वा वीज्यमानस्तुचामरैः ॥ २० ॥ वीरस्तुपतितुङ्गच्छेदारोहेद्भृगुपर्वतम् ॥ पदेपदेयज्ञफलं तस्यस्याच्छङ्करोब्रवीत् ॥ २१ ॥ प्रतीक्षन्तेसर्वकालेऽप्सरसःकाममोहिताः ॥ दिव्यंयानंसमारूढा दिव्याभरणभूषिताः ॥ २२ ॥ वीरस्तुपतितस्तत्र स्वंचत्यक्त्वाकलेवरम् ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २३ ॥ कामदंयानमारुह्य विवादेनपरस्परम् ॥ गच्छेच्छिवपुरंसार्द्धमप्सरोभिःसमन्वितः ॥ २४ ॥ क्लीबस्य

लिखकर उस पताका को सुन्दर छर्डामें पोहकर उसको और एक चूड़ाको हाथमें लेकर चामरों की हवा खाताहुआ ॥ २० ॥ जो वीर गिरने के वास्ते भृगुपर्वत पर चढ़ता है उसको एक २ पगपर यज्ञका फल होताहै यह शङ्करजीने कहाहै ॥ २१ ॥ दिव्य सवारियों पर सवार और दिव्य गहने से शोभायमान, कामसे मोहित अप्सरायें सदा उसकी राह देखाकरती हैं ॥ २२ ॥ वहां जो वीर भृगुपर्वत से गिराहै वह अपने देहको छोंडकर उसीसमयमें दिव्यदेहवाला होकर इन्द्रके बराबर पराक्रम वाला ॥ २३ ॥ मनमाने फल देनेवाली सवारीपर सवार होकर आपस में झगड़ा करती हुई अप्सराओंके साथ शिवजीके पुरको जाताहै ॥ २४ ॥ जो मनका कच्चाहै

और मनका पक्का नहीं है व भृगुपर्वत पर चढ़कर फिर उतर आताहै उसको पग २ पर ब्रह्महत्या होतीहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ कोई मनुष्य अमर नहीं होसक्ता फिर किसकारण से गिरने में डरता है अपने कालआनेपर मौतके वशमें होरहे मनुष्य को कोई नहीं बचासक्ता है ॥ २६ ॥ जो संन्यास आदि उत्तमदर्जा पर चढ़कर गिरपड़ता है वह मनुष्य बडापापी व बुरी चालवाला व चाण्डाल व संसारमें निन्दित होताहै ॥ २७ ॥ संन्यास को जिसने छोडदियाहै ऐसे ब्राह्मणको देखकर सब यत्नपूर्वक स्नानकर सूर्यका दर्शनकरै तब पवित्र होताहै और जो उस को छूताहै उसके वास्ते चान्द्रायणव्रत करना कहाहै ॥ २८ ॥ उसके साथ झूठ

सत्त्वहीनस्य उत्तीर्णस्यभृगोःपुनः ॥ पदेपदेब्रह्महत्या भवेत्तस्यनसंशयः ॥ २५ ॥ नाचिरायुर्भवेन्मर्त्यः कस्मान्मृत्यो र्बिभेत्यसौ ॥ नकोपिरक्षितुंशक्तः कालमृत्युवशङ्गतम् ॥ २६ ॥ सपापिष्ठोदुराचारश्चण्डालोलोकगर्हितः ॥ संन्यासा दिकमारुह्य च्यवतेयस्तुमानवः ॥ २७ ॥ संन्यासात्प्रच्युतंविप्रं दृष्ट्वास्नानार्कवीक्षणम् ॥ कुर्यात्सर्वप्रयत्नेन स्पर्शा च्चान्द्रायणंस्मृतम् ॥ २८ ॥ ऋतानृतंनवक्तव्यं तेनसार्द्धंकदाचन ॥ स्थातव्यंचैवमौनेन नोचेत्पापमवाप्नुयात् ॥२९॥ निश्चितेमरणेप्राप्ते कथंमृत्युरुपेक्ष्यते ॥ जरामृत्युश्चरोगाश्चसंसारोदधिसम्प्लवे ॥ ३० ॥ एवंज्ञात्वानृपश्रेष्ठ ह्यारोहेद्भृगु पर्वतम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् भृगोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ नब्रूयाद्दुष्टबुद्धीनां कलौपाखण्डकर्म्मणाम् ॥ दिगम्ब रश्वेतपटबौद्धादीनांविशेषतः ॥ ३२ ॥ असम्भाष्यादुराचाराः पुराणस्मृतिनिन्दकाः ॥ नतैःसहप्रकर्तव्यः संवादो

सांच कुछभी कभी न बोलना चाहिये किन्तु चुपचाप रहना ठीकहै नहीं तो पाप को पाताहै ॥ २९ ॥ मरना तो निश्चयसे होगाही तो फिर मौतके छोड़ने की क्यों इच्छा करताहै बुढ़ापा,मौत और रोग तो इस संसारसमुद्रमें भरेही पड़ेहैं ॥ ३० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसा जानकर भृगुपर्वत पर जरूर चढना चाहिये हे राजन् ! यह भृगु-पर्वतका उत्तम माहात्म्य मैंने तुमसे कहाहै ॥ ३१ ॥ इसको कलियुगमें पाखण्डवाले कामों के करनेवाले दुष्टबुद्धियों से नहीं कहै क्योंकि उनके विश्वास नहीं हो सक्ता और जो नङ्गे रहते हैं व सफेद कपड़े पहिनते हैं व बौद्धमजहब के मनुष्य हैं उनसे तो कभी नहीं कहै ॥ ३२ ॥ ऐसे दुराचारी मनुष्य पुराण और स्मृतियों की

निन्दा करनेवाले जो हैं वे सम्भाषण करनेयोग्य नहीं हैं इससे उनके साथ कभी बातभी न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हरएक देवताओंसे महादेवजीने आपही कहाहै कि जो मूढ़ मेरे कहेहुये तीर्थराज को नहीं मानते व जो भृगुपर्वत से उतर आतेहैं वे घोरनरकको जातेहैं ॥ ३४ । ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! ॐकारनाथ का वर्णन, दान, यज्ञ, तप, पांचमुहँकी उत्पत्ति वैसेही लिंगोंकी उत्पत्ति ॥ १ ॥ युगोंका प्रमाण, शिवजी की कला

हिकदाचन ॥ ३३ ॥ प्रत्येकंसर्वदेवानां स्वयमाहवृषध्वजः ॥ नमन्यन्तेतुयेमूढास्तीर्थराजंमयोदितम् ॥ ३४ ॥ प्रयान्ति नरकंघोरं भृगोर्येवतरन्तिते ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोनाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ ॐकारकीर्तनंविप्र दानंयज्ञस्तपस्तथा ॥ सम्भवंपञ्चवक्राणां लिङ्गानांसम्भवंतथा ॥ १ ॥ युगसंख्यां कलांचैव चरितंचमहामुने ॥ कथयस्वप्रसादेन यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतांराजराजेन्द्र पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ द्वात्रिंशतिसहस्राणि लक्षाण्यष्टादशैवच ॥ ३ ॥ एषाकृतयुगेसंख्या सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ लक्ष्याण्यष्टौतथाचाष्टौ सहस्राणियुधिष्ठिर ॥ ४ ॥ द्वापरेमानमिच्छन्ति सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ सहस्राणिचचत्वारितथालक्षचतुष्टयम् ॥ ५ ॥ मानंकलियुगस्यैतत् सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ अल्पक्षीरप्रदागावो ह्यल्पसस्याचमे

और चरित्रों को हे महामुने ! अपनी प्रसन्नता से कहिये जैसा कुछ महादेवजी ने कहाहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! स्कन्दजीके कहेहुये पुराण को सुनो अठारहलाख बत्तीस हजार ॥ ३ ॥ यह सत्ययुग का प्रमाण है और उस की सन्ध्या और सन्ध्यांश का भी प्रमाण इतनेही सौ वर्षका होताहै और हे युधिष्ठिर ! आठलाख आठहजार वर्षका ॥ ४ ॥ प्रमाण द्वापरमें इच्छा करते हैं इतनेही सौवर्ष की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशहै चारलाख चारहजार वर्षका ॥५॥ कलियुग

का प्रमाण है इसीतरह सन्ध्या और सन्ध्यांश का मानहै कलियुगमें थोड़े दूधकी देनेवाली गौवें होंगी और थोडे अन्नकी पैदा करनेवाली पृथिवी होगी ॥ ६ ॥ वैसेही थोडे पानीके मेघ और थोडी विद्यावाले ब्राह्मण होंगे सोलहवीं वर्षके पूरे होनेपर मनुष्योंकी जवानी जाती रहेगी ॥ ७ ॥ दशवें व बारहवे वर्ष में स्त्री गर्भको धारण करेगी कलिकालमें नंगेहोकर शूद्रलोग धर्ममें तत्परहोंगे ॥ ८ ॥ सब प्रजा एकही वर्णवाली होजावेगी और म्लेच्छ राजा होगा कलियुग के प्राप्तहोनेपर उसीरूप में नारायण भी होजायँगे ॥ ९ ॥ तब न अग्निहोत्र, न वेद, न धर्म, न यज्ञकरना, न सत्य, न तप, न दान, न सतोगुण और न देवता कहीं रहेंगे ॥ १० ॥ ब्राह्मणलोग वेदोंके

दिनी ॥ ६ ॥ अल्पोदकास्तथामेघाः स्वल्पविद्यास्तथाद्विजाः ॥ पूर्णेतुषोडशेवर्षे नराःपलितयौवनाः ॥ ७ ॥ दशमे द्वादशेवर्षे नारीगर्भधराभवेत् ॥ शूद्राधर्म्मपरानित्यं कलौकालेदिगम्बराः ॥ ८ ॥ एकवर्णाःप्रजाःसर्वा राजाम्लेच्छो भविष्यति ॥ कलौयुगेतथाप्राप्ते कलिरूपेचमाधवे ॥ ९ ॥ नाग्निहोत्रंनवेदाश्च नधर्म्मोनचयाजनम् ॥ नसत्यंनतपो दानं नसत्त्वंनचदेवताः ॥ १० ॥ वेदविक्रयिणोविप्रा अन्त्यजानांगृहेगृहे ॥ वेदादेशंकरिष्यन्ति वेदविप्लवकारकाः ॥ ११ ॥ कन्याविक्रयिणःपापास्तथाकन्योपजीविनः ॥ सहस्रांशोनधर्म्मस्य कलाचैकाप्रवर्तिता ॥ १२ ॥ यत्रसिद्धस्त त्रतीर्थं जलेस्नास्यन्तिमानवाः ॥ शूद्रापत्नीद्विजानान्तु भविष्यतिगृहेगृहे ॥ १३ ॥ अधरोत्तरभावेन भविष्यन्तिकलौ नराः ॥ बौद्धाःक्षपणकाःपापा नग्नामलिनकश्मलाः ॥ १४ ॥ विडम्बयन्तिबालानां मोहिताःपापकर्म्मणाम् ॥ नगुरुंमन्य तेशिष्यः पुत्रश्चपितरंतथा ॥ १५ ॥ स्ववंशद्रव्यहर्तारः प्रव्रज्यावेषधारिणः ॥ लिङ्गोपजीविनःपापास्तथाभस्मोपजी

बेंचनेवालेहोंगे, शूद्रोंके घर २ मे वेदोंको सुनावेंगे, वेदोंके नाश करनेवाले होंगे ॥ ११ ॥ पापीलोग लडकियों को बेंचगे और उन्हींसे अपनी जीविका करेंगे धर्मका हजारहवां अंशभी न रहेगा एक कला रहजायगी ॥ १२ ॥ जहां कोई फकीर रहेगा वहीं तीर्थहोगा उसी जलमें सब मनुष्य स्नानकरेंगे ब्राह्मणोंके घर २में शूद्रोंकी स्त्रियां व लडकियां स्त्री होंगी ॥ १३ ॥ कलियुग में छोटे बड़ेमनुष्य बनेंगे बौद्ध, क्षपणक, नागा और अघोरी येही पापी पन्थवाले मनुष्य होंगे ॥ १४ ॥ ये लोग पापकर्मी मूर्ख मनुष्योंको छलेंगे और आपभी मोहको प्राप्त बने रहेंगे चेला गुरूको नहीं मानेगा और पुत्र पिताको नहीं मानेगा ॥ १५ ॥ अपनेही वंशके धनको हरेंगे और

संन्यासियों के रूपको बनावेंगे अनेक वेषोंको बनाकर जीवेंगे इसीतरह भस्मको लगाकर जीविका करेंगे ॥ १६ ॥ वैवस्वत मन्वन्तर के कलियुग में यह सब होगा हे राजन्! यह आपसे कहागया जो २ कलियुग में होगा ॥ १७ ॥ हे अनघ! अब ॐकारकी उत्पत्ति व रचना विधिपूर्वक आपसे थोड़ेमें कहते हैं जो आपने पूछा था ॥ १८ ॥ इन देवके कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै ॐम् यह एक अक्षर ब्रह्मका नामहै इसको कहतेहुये और सुध करतेहुये ॥ १९ ॥ देहको छोडताहुआ जो जाताहै वह परमगति को प्राप्तहोताहै वेदोंकी माता गायत्री ॐकारही से पैदाहुई है ॥ २० ॥ ॐकार जो एक अक्षरका तत्त्वहै उसीमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जी हैं

विनः ॥ १६ ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते कलौसर्वम्भविष्यति ॥ एतत्तेकथितंराजन् कलौयद्यद्भविष्यति ॥ १७ ॥ ॐकारस्यै वचोत्पत्तिं विधानंविधिपूर्वकम् ॥ कथयामिसमासेन यत्पृष्टोहन्त्वयानघ ॥ १८ ॥ कीर्तनादस्यदेवस्य मुच्यतेभवब न्धनात् ॥ ॐमित्येकाक्षरंराजन् व्याहरन्समनुस्मरन् ॥ १९ ॥ यःप्रयातित्यजन्देहं सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ वेदमाता चगायत्री ॐकारप्रभवातथा ॥ २० ॥ ॐमित्येकाक्षरेतत्त्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ॐकारोवेदमूलन्तु श्रुतिशाखःप्रति ष्ठितः ॥ २१ ॥ फलंचैवतुपुष्पञ्च पर्णानिस्मृतिरागमः ॥ यथादौसर्वविद्यानामोंकारःपरिपठ्यते ॥ २२ ॥ तथादौसर्वदे वानामादिदेवोमहेश्वरः ॥ सन्ध्यात्रयंत्रिकालादि ॐकारेपरिकीर्तितम् ॥ २३ ॥ अग्नित्रयंत्रयोलोकास्त्रिवर्गश्चप्रति ष्ठितः ॥ अष्टषष्टिश्चतीर्थानां ब्रह्मणोशिवकीर्तितम् ॥ २४ ॥ एकेनचशतंपूर्णं रुद्राणाम्परिकीर्तितम् ॥ केदारेशतमे कन्तुॐकारेकोत्तरंशतम् ॥ २५ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रमोंकारंलिङ्गमुत्तमम् ॥ पृथिव्यांयानिलिङ्गानि आसमुद्रान्तगो

ॐकारही वेदकी जड़है वेद उसकी शाखायें हैं ॥ २१ ॥ स्मृति और शास्त्र ये सब फल, फूल और पत्तेहैं जैसे सब विद्याओंकी आदिमें ॐकार पढ़ाजाताहै ॥ २२ ॥ इसी तरह सब देवताओंके आदिदेवता महादेवजी है तीनों सन्ध्या और तीनों कालआदि ॐकारही में कहेगये हैं ॥ २३ ॥ तीनोंअग्नि और तीनोंलोक तथा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) ये ॐकारही मे रहते हैं अरसठ तीर्थ ब्रह्मासे शिवजीने कहेहैं ॥ २४ ॥ और एकसौएक रुद्र कहेहै केदारनाथमे सौरुद्र और ॐकारनाथमें एकसौएक रुद्र

हैं ॥ २५ ॥ पांच वेद जिनसे निकलेहैं ऐसे पांच मुखवाला उत्तम ॐङ्कार लिंगहै चारोंसमुद्रतक पृथिवीमें जितने लिंगहैं ॥ २६ ॥ उनमें ॐङ्कारनाथ को छोड़कर पांचमुख किसी लिंगके नहीं हैं हे युधिष्ठिर ! स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्राप्तहोनेपर आदिकल्पके सत्ययुगमें ॥ २७ ॥ नर्मदा के तीरमें रहनेवाले देवताओं को दानवोंने जीतलिया, कंकोल, कालिकेय और कालक नाम के दैत्योंने देवताओंको भगादिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा सहित वे सब देवता ईश्वरकी शरण जातेहुये हे भारत ! तदनन्तर बृहस्पति ब्रह्मासे बोले ॥ २९ ॥ कि आप दानवों के नाश करनेवाली यज्ञको करो जो बड़ी भयानक हो तब उन बृहस्पतिजी से ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ३० ॥ कि दानवों के

चरे ॥ २६ ॥ नतेषांपञ्चवक्त्राणि त्यक्त्वोंकारंयुधिष्ठिर ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ २७ ॥ दानवैर्निर्जिता देवानर्म्मदातीरमाश्रिताः ॥ अवद्रुताःकङ्कोलैस्तु कालिकेयैश्चकालकैः ॥ २८ ॥ तेदेवाब्रह्मसहिता ईश्वरंशरणङ्गताः ॥ बृहस्पतिस्ततःप्राह ब्रह्माणम्प्रतिभारत ॥ २९ ॥ इष्टिंकुरुमहारौद्रीं दानवानांक्षयंकरीम् ॥ उवाचवचनंब्रह्मा तदातंदेवमन्त्रिणम् ॥ ३० ॥ ममैवविस्मृतामन्त्रा दानवानांभयेनच ॥ एतस्मिन्नन्तरेभित्त्वा पातालानिचसप्तच ॥ ३१ ॥ ॐकारपूर्वकंराजन् भूर्भुवस्स्वश्चकीर्तयन् ॥ पर्वतादुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ ३२ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं ज्वालामालासमाश्रितम् ॥ आदिमध्यान्तहीनञ्च नदृष्टंपरमंक्वचित् ॥ ३३ ॥ चतुर्वर्गैश्चतुर्वेदैर्वेदाङ्गनिगमैःस्वयम् ॥ उवाचवचनंशम्भुर्ब्रह्माणंलोकभावनम् ॥ ३४ ॥ सौम्यांचैवतुभोब्रह्मँल्लोकानांशान्तिकारिणीम् ॥ मयासमर्पितावेदा इष्टिं

भयसे हमको आपही मन्त्र भूलगये हैं इसी अन्तर में सातो पातालों को फाड़कर ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! ॐकारपूर्वक भूर्भुवःस्वः इन तीनों व्याहृतियों को कहता हुआ जलतेहुये महाप्रलयके अग्निके समान पर्वत से एक लिंग उठताहुआ ॥ ३२ ॥ करोड़ सूर्योंके बराबर तेजवाला हजारों लपटोंसे व्याप्त ऊपर, बीच और नीचा जिसका नहीं जानपडता है और ऐसा श्रेष्ठलिग कभी देखा नहीं गयाथा ॥ ३३ ॥ सो वेही लिंगरूप शिवजी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारोंवेद, वेदांग और शास्त्रों के सहित संसारके बनानेवाले ब्रह्माजी से वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! लोकोंकी शांति करनेवाली व सौम्य यज्ञको तुम स्वेच्छापूर्वक करो मैने तुमको वेदोंको

दियाहै ॥ ३५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने प्रथम तो दैत्यों के नाश करनेवाले भयानक यज्ञको किया फिर लोकोंकी शान्ति करनेवाली सौम्ययज्ञ को किया॥ ३६ ॥ तब हे महाराज ! वे सब दैत्यलोग भयङ्कर यज्ञ को देखकर ब्रह्माके शापके भयसे डरे हुये दशो दिशाओं को भागगये ॥ ३७ ॥ ॐङ्कार के प्रभाव से सब देवता निर्भय होगये फिर महादेवजी का पूजनकर वे सब देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ३८ ॥ हे पार्थिव ! कल्पके अन्ततक रहनेवाले देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियेगये इस महालिंग ॐङ्कार को काम और मोक्षका देनेवाला जानो ॥ ३९ ॥ कल्पके अन्तमें उस लिङ्गमें सब देवता लीन होजाते हैं इसीसे इस लिङ्गको अमर, ब्रह्म,

कुरुयथेप्सया ॥ ३५ ॥ ततोब्रह्माचकारेष्टिं रौद्रींदैत्यक्षयङ्करीम् ॥ इष्टिंचैवततःसौम्यां लोकानांशान्तिकारिणीम् ॥ ३६ ॥ ततोऽसुरामहाराज दृष्ट्वाचेष्टिंभयङ्करीम् ॥ ब्रह्मशापभयोद्विग्ना गतास्तेतुदिशोदश ॥ ३७ ॥ ॐकारस्यप्रभावेण सर्वेदेवास्तुनिर्भयाः ॥ ततोभ्यर्च्यसुरेशानं देवास्तेत्रिदिवंययुः ॥ ३८ ॥ कल्पान्तगंमहालिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ कामदंमोक्षदंचैव ॐकारंविद्धिपार्थिव ॥ ३९ ॥ तस्मिल्लिँङ्गेतुलीयन्ते कल्पान्तेसर्वदेवताः ॥ अमरंब्रह्मवेत्याहुर्हरिंसिद्धेश्वरंतथा ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वरमादित्यं सोमंपित्रीश्वरंतथा ॥ यत्रसिद्धास्त्रयोवेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ४१ ॥ तेनसिद्धेश्वरंविद्धि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ कथितंपर्वतस्याग्रेलिङ्गकोटिसमन्वितम् ॥ ४२ ॥ अर्चनात्तस्यलिङ्गस्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ ॥ कल्पेकल्पेमहाराज क्षीयन्तेसर्वदेवताः ॥ ४३ ॥ मुक्तातुपञ्चलिङ्गानि मार्कण्डंनार्म्मदंनृप ॥ अविमुक्तंचकेदारमोङ्कारममरेश्वरम् ॥ ४४ ॥ तथैवचमहाकालमेवंलिङ्गन्तुभारत ॥ पुण्यानिपञ्चलिङ्गानि प्रातरुत्था

हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वर नामके सूर्य और पित्रीश्वर चन्द्रमा, छहोअङ्ग, पद और क्रमकरके सहित तीनोंवेद जहां सिद्ध हुये हैं ॥ ४१ ॥ इससे सब सिद्धियों के देनेवाले इस लिंगको सिद्धेश्वर जानो पर्वत के ऊपर करोड़ों लिङ्गोंसे युक्त यह लिङ्ग कहागया है ॥४२ ॥ इस लिङ्गके पूजन करनेसे विष्णुलोक में पूजित होता है हे महाराज ! कल्प २ में सब देवता नहीं रहते हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप ! इन पांचों लिंगोंको छोड़कर अर्थात् इनका नाश नहीं होताहै नर्मदा के तटमें विद्यमान मार्कण्डेयलिंग, अविमुक्त (विश्वनाथ), केदारनाथ, अमरेश्वर ॐङ्कारनाथ ॥४४॥ इसीतरह महाकाललिंग हे भारत ! इसप्रकार इन पवित्र पांचों लिंगोंको प्रातः-

काल उठकर जो पढ़ता है ॥ ४५ ॥ वह सब तीर्थों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होताहै महाकालमें एक कालीशक्ति हमेशा व्यापकरूप से रहतीहै ॥ ४६ ॥ और हे नृप ! सवाकरोड़ तीर्थ महाकाल में रहते हैं और हे नृप ! कावेरीनदी शिवलोक में नहीं है किन्तु यहा शिवक्षेत्रमें स्थित है ॥ ४७ ॥ चारकोस के भीतर ब्रह्महत्या नहीं आती है उस कावेरीनदी के किनारे पर आग्नेयनाम का सिद्धलिंग विद्यमान है ॥ ४८ ॥ और हे कुरुनन्दन ! शिवख्यात नाम से प्रसिद्ध तीर्थहै उसमें स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य फिर संसार में नहीं होता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कीडा, चिड़िया, पतिंगवा आदि तिर्य्यग्योनियों मे प्राप्त होगये है वे भी वहा पाप

ययःपठेत् ॥ ४५ ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ एकाकालीमहाकाले वसेद्वैव्यापिनीसदा ॥ ४६ ॥ सपाद कोटिस्तीर्थानां महाकालेवसेन्नृप ॥ शिवलोकेनकावेरी शिवक्षेत्रेस्थितान्नृप ॥ ४७ ॥ चतुःक्रोशाभ्यन्तरतो ब्रह्मह त्यानसर्प्पति ॥ आग्नेयंसिद्धलिङ्गंच तस्यास्तीरेसमाश्रितम् ॥ ४८ ॥ शिवख्यातमितिख्यातं तीर्थंतुकुरुनन्दन ॥ स्ना तमात्रोनरस्तत्र सभवेनपुनर्भवेत् ॥४९॥ कीटपक्षिपतङ्गादितिर्यग्योनिगतानराः ॥ मुच्यन्तेतत्रपापेन शिवस्यवचनंय था ॥ ५० ॥ तत्रयःकुरुतेश्राद्धं पितृणांचतिलोदकम् ॥ युगकोटिसहस्रन्तु पितरस्तेनतर्पिताः ॥ ५१ ॥ सर्वेषामेवलिङ्गा नां दिव्यंवात्रप्रकीर्तितम् ॥ तत्रस्नातोदिवंयाति नविशेद्योनिसङ्कटे ॥ ५२ ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ अष्टकोटिस्तुतीर्थानां केदारेकथितान्नृप ॥ ५३ ॥ दर्शनादर्चनात्तस्य स्पर्शान्मोक्षफलंन्नृणाम् ॥ केदारस्योदकेपीते पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ५४ ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा पयःपानंकरोतियः ॥ तस्योदरेभवेल्लिङ्गं षण्मासाद्ब्रह्मचारिणः ॥ ५५ ॥

से छूटजाते हैं ऐसा शिवजी का वचन है ॥ ५० ॥ वहां जो कोई श्राद्ध व पितरों के वास्ते तिलोदक देताहै उसने मानो करोडो हजारयुग तक पितरोंको तृप्त कर दिया ॥ ५१ ॥ सब लिंगों में जो दिव्यलिंगहै वह यहां कहागयाहै इससे इस तीर्थ में स्नान-करनेवाला स्वर्गको जाताहै व योनिके संकट में नहीं आताहै ॥ ५२ ॥ और करोडयज्ञों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होताहै हे नृप ! आठ करोड़ तीर्थ केदारनाथमे कहेगये हैं ॥५३॥ उन केदारनाथके दर्शन व पूजन व स्पर्शनसे मनुष्योंको मोक्षफल होताहै व केदारनाथ के चरणोदक पीने से फिर जन्म नहीं होताहै ॥ ५४ ॥ दिन रात व्रत करनेवाला होकर जो केवल दूध पीता है उस ब्रह्मचारी

के पेटमें छह महीना में एक लिङ्ग उत्पन्न होजाता है ॥ ५५ ॥ केदारजी के दर्शनही से शिवलोक में पूजित होता है काशी तीनों लोकोंमे महापुण्यवाली प्रसिद्धहै ॥ ५६ ॥ वह पुरी आकाश में है और मनुष्यलोक के बाहर है उसके पांचकोसतक चारो तरफ ब्रह्महत्या नहीं आती है ॥ ५७ ॥ हे भारत ! वहां अट्ठाईस करोडलिङ्ग हैं गङ्गा और वरुणाके बीचमें यथोचित स्नान करके ॥ ५८ ॥ सब पापों से छूटाहुआ देवताओं की तरह स्वर्ग में आनन्द करता है वहां जो शिवजी का ध्यानकर प्राणों को छोडताहै ॥ ५९ ॥ वह अपने हजारकुलों को उद्धारकर शिवलोक को जाताहै वहा जो दान दियाजाता है उसकी संख्या नहीं है ॥६०॥ तिलोदक के देनेसे पितरों

केदारदर्शनादेव शिवलोकेमहीयते ॥ वाराणसीमहापुण्या त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ५६ ॥ अन्तरिक्षेपुरीसातु मृत्युलोकस्यबाह्यतः ॥ पञ्चक्रोशान्तरेयावद्ब्रह्महत्यानसर्प्पति ॥ ५७ ॥ अष्टाविंशतिकोट्यस्तु लिङ्गानांतत्रभारत ॥ गङ्गावरुणयोर्मध्येस्नानंकृत्वायथोदितम् ॥ ५८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देववन्मोदतेदिवि ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणाञ्छिवंध्यात्वातुमानवः ॥ ५९ ॥ सहस्रकुलमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांप्रीतिरक्षया ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ ६१ ॥ त्रिनेत्रःशूलपाणिस्तु शिवस्यानुचरोभवेत ॥ अविमुक्तस्यलिङ्गस्य स्पर्शनान्मुक्तिराप्यते ॥ ६२ ॥ कलात्रयन्तुतत्रास्ते काशीपुर्यांनसंशयः ॥ गङ्गासागरसंभेदे चतस्रस्तुकलाःस्मृताः ॥ ६३ ॥ गङ्गासहस्रवक्त्रेण प्रविष्टायत्रसागरम् ॥ स्नानावगाहनात्पानात् पिण्डदानाच्चतर्पणात ॥ ६४ ॥ गच्छेच्छिवपुरंतत्र पितृभिस्सहमानवः ॥ अपरंकालरुद्रन्तु सप्तपातालवासिनम् ॥ ६५ ॥ हाटकंविद्धितं

की अक्षय प्रीतिहोती है वहां जो कोई परवश व अपने वशहो प्राणों को छोड़ताहै ॥ ६१ ॥ वह त्रिशूलको हाथमें लियेहुये तीन नेत्रवाला शिवका सेवक होताहै अविमुक्तलिङ्ग (विश्वनाथ) के स्पर्शसे मुक्ति होती है ॥ ६२ ॥ वहां काशीपुरीमें तीन कला हैं इसमें कुछ संशय नहीं है और गङ्गासागर के संगम में चार कला कहीगई हैं ॥६३॥ जहां हजारों मुखसे गंगाजीने समुद्रमें प्रवेश कियाहै वहा स्नान,तैरना, जलपीना, पिण्डदान और तर्पण से पितरों के सहित मनुष्य शिवपुरको जाताहै

देवं नतुपश्यन्तिमानवाः ॥ पूज्यतेसुरदैत्यैश्च सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ ६६ ॥ गङ्गेश्वरंद्वितीयन्तु तृतीयंसागरेश्वरम् ॥ चतुर्थंशूलपाणिन्तु चतस्रश्चकलाइति ॥ ६७ ॥ कलापञ्चात्मकंरुद्रमासमुद्रान्तगोचरे ॥ वर्जयित्वामहेशानमोंकारंकामरूपिणम् ॥ ६८ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रं नवशक्तिसमन्वितम् ॥ ॐकारंकल्पगातीरे शिवेनकथितम्पुरा ॥ ६९ ॥ तेनपुण्यात्मकेलोके लोकत्रितयपूजितम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुसंकाशं सद्योवक्त्रन्तुपश्चिमम् ॥ ७० ॥ ऋग्वेदोनिर्गतोयस्माद्ब्रह्मातत्राधिदेवता ॥ उत्तरंवामदेवन्तु पीताभंसुमनोहरम् ॥ ७१ ॥ यजुर्वेदोद्भवंविद्धि विष्णुस्तत्राधिदेवता ॥ अघोरंमेघवर्णाभं याम्याञ्चदिशिचास्थितम् ॥ ७२ ॥ सामवेदोद्भवंविद्धि सूर्यकालाग्निदैवतम् ॥ पूर्वेतत्पुरुषंज्ञेयं कुङ्कुमारुणसन्निभम् ॥ ७३ ॥ अथर्वनिर्गतन्तुर्यमापस्तत्राधिदेवताः ॥ ईशानस्तववक्त्रन्तु पञ्चवर्णमहातनुम् ॥ ७४ ॥ श्रुतिसिद्धा

सात पातालतक रहनेवाले एक कालरुद्रलिंग को ॥ ६४ । ६५॥ हाटकेश्वर जानो उन देवको मनुष्य नहीं देखतेहैं देवता और सिद्धोंकरके सेवाकियेजाते वे देव, देवता और दैत्योंकरके पूजन कियेजाते हैं ॥६६॥ दूसरे गंगेश्वर और तीसरे सागरेश्वर और चौथे शूलपाणि येही चारों कला हैं ॥ ६७॥ और मनमाने रूपके धारनेवाले ॐकारनाथ महादेव को छोड़कर और समुद्रपर्यन्त पांच कलावाला कोई रुद्र नहीं है ॥ ६८ ॥ पांचों वेद पांचों जिनके मुखहैं और नवशक्तियोंसे युक्त नर्मदा के तीर में विद्यमान ॐकारही को महादेवजी ने पूर्वकाल में कहा है ॥ ६९ ॥ इसीसे इस पुण्यवाले लोकमें तीनोलोकों से पूजेगये ॐकारही हैं उनका पश्चिमवाला मुख सद्योजात नाम का है जोकि शंख,कुन्द और चन्द्रमा के समान सफेद है ॥ ७० ॥ जिससे ऋग्वेद निकलाहै उसके देवता ब्रह्माजी हैं और उत्तरवाला मनका हरनेवाला पीलेरंगका वामदेव नामका मुखहै ॥ ७१ ॥ उससे यजुर्वेद की उत्पत्ति जानो उस के देवता विष्णुजी हैं मेघोंके समान रंगवाला दक्षिण दिशा में विद्यमान अघोरनाम का मुखहै ॥ ७२ ॥ उसे सामवेद का उत्पन्न करनेवाला जानो उसके सूर्य व काल और अग्नि देवता हैं व पूर्वमें केसरके समान लाल व पीला तत्पुरुषनाम का मुख जानना चाहिये ॥ ७३ ॥ उससे चौथा अथर्ववेद निकला है उसका जल देवता है व पाचरंग का बडाभारी ईशाननाम का मुखहै ॥ ७४ ॥ वेदोंके सिद्धान्त उस मुखसे

गायेगये हैं उसके देवता सोमहैं छठा सदाशिव नाम का मुखहै जिसके हिस्सा नहीं होसक्ते दोषोंसे रहितहै ॥ ७५ ॥ उसमें कोई चिह्न नहीं हैं और वह किसीसे लखा नहीं जाताहै उसको जानकर मुक्त होसक्ताहै इसमें कुछ संशय नहीं है हे राजन्! यह ॐकारका वर्णन तुमसे मैंने कहा॥ ७६ ॥ हजार मुहँवालेकी नहीं ताकतहै एक मुहँवालेकी क्या बातहै जलसे स्नानकराके बिल्वपत्रसे जो पूजा करताहै ॥ ७७ ॥ वह चारहजार वर्षतक रुद्रलोकमें रहताहै दक्षिणामूर्त्ति जो ॐकारजी हैं उनके पास जो अपने प्राणोंको छोडता है ॥ ७८ ॥ वह करोडहजार वर्षतक महादेवजीके पुरमें रहता है जो कोई चूना और ईटसे जुड़ाहुआ महल व मठ ॥ ७९ ॥ पताका और

न्तसङ्गीतंसोमंतत्राधिदेवता ॥ षष्ठंसदाशिवंनाम निर्भागंचनिरामयम् ॥ ७५ ॥ निर्लक्षंलक्षहीनन्तु ज्ञात्वामोक्षेन्नसंश यः ॥ एतत्तेकथितंराजन्नोङ्कारस्यतुवर्णनम् ॥ ७६ ॥ सहस्रास्यस्यनोशक्तिरेकवक्त्रस्यकाकथा ॥ स्नापयित्वोदकेनै व बिल्वपत्रेणपूजयेत् ॥ ७७ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते ॥ ॐकारदक्षिणामूर्तौ प्राणत्यागंकरोतियः॥७८॥ वर्षकोटिसहस्राणि वसेन्माहेश्वरेपुरे ॥ प्रासादञ्चमठंचापि सुधयेष्टकसंयुतम् ॥ ७९ ॥ चित्रमालेख्यमूलेच पताका ध्वजशोभितम् ॥ वितानंकिङ्किणीयुक्तं नेत्रंवंशोद्भवंशुभम् ॥ ८० ॥ पञ्चवर्णकशोभाढ्यमोंकारस्यतुकारयेत् ॥ पञ्चामृ तैस्स्नापयित्वा चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ ८१ ॥ समावेष्ट्यपरीधानैर्नानावस्त्रैःसुशोभनैः ॥ हेममौक्तिकरत्नैश्च सघृतंगुग्गु लुंदहेत् ॥ ८२ ॥ घण्टांचदीपकंचैव विधूमारार्तिकंचयत् ॥ मृदङ्गान्पटहांश्चैव वेणुंवीणाञ्चगीतकम् ॥ ८३ ॥ काहलीं शङ्खवाद्यानि कांस्यतालाद्यमेवच ॥ व्यजनंगेडुकंछत्रं चामरंध्वजदण्डकम् ॥ ८४ ॥ हेमचान्नधरादीनि गृहांश्चग्राम

ध्वजाओं मे शोभित दीवार में चित्रसारी खिंचवाकर बनवाताहै अथवा क्षुद्रघण्टिकाओं की झालरें जिसमें टकीहुई उम्दा कपडा व उत्तम बांस जिसमें लगेहुये ऐसे चँदोवा को लगाता है ॥ ८० ॥ जोकि पांचों रंगोंकी शोभासे युक्तहै अथवा पञ्चामृतसे स्नान कराके चन्दन, अगर और केसरसे लेपन करताहै ॥ ८१ ॥ अनेकतरह के उत्तमकपड़ों से मूर्त्तिको लपेटकर सोना, मोती और रत्नोंसे पूजनकर घीसहित गूगुलको जलाताहै ॥ ८२ ॥ घण्टा, दिया और धुआंरहित आरती करता है मृदङ्ग, पटह, बेन, सितारको बजाता और गाताहै ॥ ८३ ॥ काहली, शङ्ख, झांझ, मंजीरा और तारीआदि वाजाओं को जो बजाता है वेना, गड्डुवा, छाता, चँवर, ध्वजा,

लाठी ॥ ८४ ॥ सोना, अन्न, पृथिवी, मकान, गांव और शहरआदि पदार्थोंका जो अर्पण करता है जैसे तैसे किसी तरह ॥ ८५ ॥ उसके दानके फलकी संख्या नहीं कीजासक्ती है चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें सिद्धेश्वर व ॐकारको ॥ ८६ ॥ ध्वजाओंसे चारोंतरफ घेरे तो उसकी पुण्यके फलको सुनो कि कपड़ेमें जितनी सूतकी संख्या है और वे सूत वायुसे हिलतेहैं ॥ ८७ ॥ हे नृप ! उतने हजार युगतक शिवलोकमें रहताहै करोड़ों हजारयुग और करोड़ों सौ युग तक ॥ ८८ ॥ सब कामोंसे भराहुआ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके स्थानमें रहताहै हे राजन् ! यह तुमसे ॐकारकी उत्पत्ति व लक्षण कहा॥ ८९ ॥ अब ब्रह्माके कियेहुये ॐकारके स्तोत्रको तुमसुनो॥९०॥

पत्तनम् ॥ यद्वातद्वान्नृपश्रेष्ठ ॐङ्कारायनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥ तस्यदानफलस्येह संख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ सिद्धेश्वरोङ्कारयोस्तु चन्द्रसूर्य्यग्रहग्रहे ॥ ८६ ॥ ध्वजमालाकुलंकुर्य्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावतीतन्तुसंख्यास्ति वायुनोद्धूयते पुनः ॥ ८७ ॥ तावद्युगसहस्राणि शिवलोकेवसेन्नृप ॥ युगकोटिसहस्राणियुगकोटिशतानिच ॥ ८८ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ एतत्तेकथितंराजन्नोङ्कारोत्पत्तिलक्षणम् ॥ ८९ ॥ ब्रह्मणातुकृतंतस्य स्तोत्रन्त्वंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेॐङ्कारमहिमानुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ब्रह्मणेकथितोमन्त्र ॐङ्कारेणततोनघ ॥ ब्रह्मापितद्वचःश्रुत्वा स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ १ ॥ ॐ व्योमसंख्यायितेव्योमहरायसर्वव्यापिने ॥ अनन्तायअनाथाय अमृतायध्रुवायच ॥ २ ॥ शम्भवायशाश्वताय यो

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेॐङ्कारमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे अनघ ! तदनन्तर ब्रह्माजीसे ॐकारजीने मन्त्रकोकहा व ब्रह्माभी उनके वचनको सुनकर इस स्तोत्रको पढ़तेहुये ॥ १ ॥ कि आकाशके बनानेवाले ॐकारही हैं क्योंकि वेदमें पहले नादही की उत्पत्ति कहीगई है उससे आकाश हुआ इसी से आकाशका शब्द गुण है तो आकाशकी नाईं सबमें व्याप्त जो ॐकाररूप शिवजीहैं उनके लिये नमस्कार है अन्त जिनका नहीं है और कोई जिनका मालिक नहीं है, मोक्षरूप, हमेशा अटल रहनेवाले ॥ २ ॥ सुखके

पैदा करनेवाले,हमेशा रहनेवाले, योगासनसे बैठनेवाले,हमेशा योगाभ्यास करने से योगीरूप होरहे, आकाश की नाईं सब वस्तुको अपनेही में हरलेनेवाले ॥ ३ ॥ ॐकाररूप शिवजीकेलिये नमस्कारहै सबकी उत्पत्तिके स्थान, सबके मालिक, कल्याणस्वरूप,शिवजीकेलिये नमस्कारहै "फिर उन्हीं शब्दोंका उच्चारणकरना आदर के लिये है" ॥ ४ ॥ तत्पुरुषनाम मुख जिनका शिरकी जगहपरहै, अघोरनामकी कला विष्णुरूप जिनके हृदयकी जगहपरहै, सद्योजात नामकी कला जिनके गुप्तस्थान की जगहपर है ऐसे ॐकारमूर्त्ति शिवजी के लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ५ ॥ घटाबढ़ीसे रहित, नाशरहित, जाननेवाले, वज्रके बराबर पोढ़ी देहवाले, सब जगत् के संहार करनेवाले ॥ ६ ॥ सब इन्द्रियों के मालिक, संसारके बनानेवाले व सिखानेवाले, पिनाक धनुषके धरनेवाले, देवताओंके मालिक, महाप्रलय के अग्निरूप,

गपीठसंस्थितायनित्यंयोगयोगिनेऽयोमहराय ॥ ३ ॥ ॐनमःशिवायसर्वप्रभवायशिवायईशानाय शिवायसर्वप्रभवा यशिवायईशानाय ॥ ४ ॥ मूर्द्धायतत्पुरुषायवक्रायअघोरायहृदयायवासुदेवायगुह्यायसद्योजातायमूर्तये ॐकाराय नमोनमः ॥ ५ ॥ कलातीतोऽव्ययोबुद्धो वज्रदेहोपमर्दनः ॥ ६ ॥ अध्यक्षश्चविधुःशास्ता पिनाकीत्रिदशाधि पः ॥ अग्नीरुद्रोहुताशश्च पिङ्गलःपावनोहरः ॥ ७ ॥ ज्वलनोदहनोवस्तुर्भस्मान्तश्चक्षमान्तकः ॥ अपमृत्युहरोधाता विधाताकर्तृसंज्ञकः ॥ ८ ॥ कालोधर्म्मपतिःशास्ता वियोक्तानवमःप्रियः ॥ निमित्तोवारुणोहन्ता क्रूरदृष्टिर्भयावहः ॥ ९ ॥ ऊर्द्धदृष्टिर्विरूपाक्षो दंष्ट्रावान्धूम्रलोचनः ॥ बालोह्यतिबलश्चैव पाशहस्तोमहाबलः ॥ १० ॥ श्वेतोविरूपोरुद्रश्च दी

उत्पन्न होनेपर रोनेवाले, होमेहुये पदार्थ के भोजन करनेवाले, भस्मके योगसे कपिसैलेरूपके धारण करनेवाले, सबके पवित्र करनेवाले व हरनेवाले ॥ ७ ॥ प्रकाश करनेवाले व जलानेवाले इस जगत् में जो सत्यहै वह आपही हैं, अन्तमें सबको भस्म करनेवाले,क्रोधरूप, अकालमृत्युके हरनेवाले,धाता और विधाता इन दोनों प्रजापतियोंके रूपके धारण करनेवाले और सबके कर्त्ता॥८॥सब चीजको पुरानी करनेवाले, कालरूप, धर्मके मालिक, जगत्के सिखानेवाले अर्थात् ईश्वररूप, सबके वियोग के करानेवाले, कुछभी कम नहीं होनेवाले, आत्मारूप होनेसे सबके प्यारे, सबके कारणरूप, जलमूर्त्तिके धारण करनेवाले, सबके नाश करनेवाले, डरावनी नजरवाले, भय करानेवाले ॥ ९ ॥ ऊपर यानी माथेपर आंखवाले, बिगड़ेरूप-की आंखोंवाले, बड़ी २ दाढ़ोंवाले, धुमैले नेत्रवाले, बालकरूपसे रहनेवाले व बड़े

बलवाले, फँसरी को हाथमें पकड़नेवाले और महाबलवाले ॥ १० ॥ सफेद जिनका रूपहै और विकरालरूपवाले भी हैं, सबके रुलानेवाले, बडे २ हाथोंवाले, जड़ोंके नाश करनेवाले, बड़ेजल्द,बहुत हलके, वायुके बराबर वेगवाले, बडे डरावने, वड़वामुख अग्नि जिनका रूपहै ॥ ११ ॥ पांच शिरवाले, जटाजूट के धारण करनेवाले, बहुत सूक्ष्म और बड़ेपैने, अज्ञानरूप रात्रिके नाश करनेवाले, खजानेके मालिक, रौद्ररसवाले, धनुषके धरनेवाले, सुन्दरदेहवाले,दुष्टोंके नाश करनेवाले ॥ १२ ॥ शेष-नारायणकी पालना करनेवाले, सबके धारण करनेवाले, पातालके मालिक, बैल की ध्वजावाले, धुमैलेरंग से युक्त, सर्वदा रहनेवाले, संहार करनेवाले, सब कहीं कपिसैले रंगवाले,करालरूपवाले ॥ १३ ॥ सबमें व्याप्त रहनेवाले, सबके मालिक, बड़ी बुद्धिवाले, सुखरूप, मौतसे रहित, कल्याणरूपसे रहनेवाले,सब कहीं व्याप्त

घंबाहुर्जडान्तकः ॥ शीघ्रोलघुर्वायुवेगो भीमश्चवडवामुखः ॥ ११ ॥ पञ्चशीर्षाकपर्दीच सूक्ष्मस्तीक्ष्णःक्षपान्तकः ॥ निधीशोरौद्रवान्धन्वी सौम्यदेहःप्रमर्दनः ॥ १२ ॥ अनन्तपालकोधारः पातालेशोवृषध्वजः ॥ सधूम्रःशाश्वतश्शर्वः सर्वपिङ्गःकरालवान् ॥ १३ ॥ विष्णुरीशोमहात्माच सुखोमृत्युविवर्ज्जितः ॥ शम्भुर्विभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षश्चैवादिवस्पतिः ॥ १४ ॥ संवादश्चविवादश्च प्रभविष्णुर्विवर्धनः ॥ शतमेकोत्तरंयावद्रुद्राणांसंख्ययास्मृतम् ॥ १५ ॥ शतमेकोत्तरंसर्वमोङ्कारेचप्रतिष्ठितम् ॥ स्तोत्रंकृत्वातथाब्रह्मा देवदेवंमहेश्वरम् ॥ १६ ॥ भूमौप्रणम्यसाष्टाङ्गं कृत्वाचैवप्रदक्षिणम् ॥ मनसासंस्मरन्देवं तस्थौलोकपितामहः ॥ १७ ॥ स्तोत्रंश्रुत्वाभगवतो ब्रह्मणोलोमहर्षणम् ॥ देवदेवोब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणंप्रतिभारत ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेनदिव्येन तुष्टोहन्तेवरंवृणु ॥ ददामितेनसन्देहो दुष्प्राप्यान्त्रिदशैरपि ॥ १९ ॥

रहनेवाले, गणों के मालिक, तीन नेत्रवाले, स्वर्ग के मालिक ॥ १४ ॥ सलाह व झगड़ा जिनका रूपहै सबके ऊपर प्रभाव करनेवाले व बढ़ानेवाले हैं एक सौ एक रुद्र जो संख्या से कहेगये हैं ॥ १५ ॥ वे सब एकसौ एक रुद्र ॐकारही में स्थितहैं तथा ब्रह्माजी देवताओं के देवता महादेवजी के स्तोत्रको कर ॥ १६ ॥ पृथिवी में साष्टाङ्ग प्रणामकर और प्रदक्षिणाकर मनसे महादेवजी की सुध करतेहुये लोकों के पितामह ब्रह्माजी खडे होरहे ॥१७॥ तब भगवान् ब्रह्माजीके इस रोयें खडे करने वाले स्तोत्रको सुनकर हे भारत ! महादेवजी ब्रह्माजीसे वचन बोले ॥ १८ ॥ कि इस तुम्हारे दिव्यस्तोत्र से हम बहुत प्रसन्नहैं,इससे तुम वरको मांगो देवताओं को भी

जो नहीं मिलसक्ता वह हम तुमको देवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ तब ब्रह्माजीबोले कि हे देवेश ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझे आपको वरदेना योग्य ही है तो संसार बिषे आपके पाचोंमुखों में मेरे नामसे पूजन हुआकरै ॥ २० ॥ तब महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! ऐसाहो यह तुम्हारा कहना सचहो हे भारत ! तबसे ब्रह्माजीकी धर्मपूजा होनेलगी ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्माजी बोले कि इस रुद्रके स्तोत्रको ॐकार जो आपहो तिनके आगे सदा आपहीमें मनको लगायेहुये ब्राह्मण,क्षत्रिय और बनियें जो पढ़ेंगे ॥ २२ ॥ तो इस लोक व परलोकमें सब कामोंको पावेंगे व इसका पढ़नेवाला मनुष्य जिस २ कामना को करेगा उस २ को पावेगा ॥ २३ ॥ व

ब्रह्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ पञ्चवक्त्रेषुयजनं ब्रह्मनामभवत्विह ॥ २० ॥ हरउवाच ॥ एवम्भवतुवैब्रह्मन्सत्यमेतत्त्वोदितम् ॥ ब्रह्मणोधर्म्मपूजावै तदाप्रभृतिभारत ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पठिष्यन्तिस्तवंरौद्रमोङ्कारस्यतवाग्रतः ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः सदातद्गतमानसाः ॥ २२ ॥ सर्वकाममवाप्स्यन्ति चेहलोकेपरत्रच ॥ यंयं कामयतेकामं तंतंप्राप्नोतिमानवः ॥ २३ ॥ शतमेकोत्तरंनित्यं पठित्वाचदिवंव्रजेत् ॥ एवमुक्त्वातदाब्रह्मा नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ २४ ॥ दिव्ययानसमारूढो ब्रह्मलोकंमुदाययौ ॥ चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणोहःप्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ अनेनैवतु मानेन शतंब्रह्माहिजीवति ॥ पितामहशतंयावद्विष्णोर्मानंविधीयते ॥ २६ ॥ ॐकारनिमिपार्द्धेन सहस्राणिचतुर्दश ॥ विनश्यन्तिपरंविष्णोरसंख्याताःपितामहाः ॥ २७ ॥ एवंब्रह्मगतिंज्ञात्वा शिवमन्तःसदार्चयेत् ॥ शिवाज्ञावर्ततेलिङ्गे तस्माल्लिङ्गंसदार्चयेत् ॥ २८ ॥ द्वेष्टिलिङ्गन्तुयोमोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सयातिनरकंघोरं शिवस्यवचनंयथा ॥ २९ ॥

नित्य एकसौ एकबार पढ़कर स्वर्गको जावेगा उस समय ब्रह्माजी इस प्रकार कहकर और महादेव के नमस्कारकर ॥ २४ ॥ दिव्य सवारीपर सवार खुशीसे ब्रह्मलोक को जातेहुये चारोंयुगों के हजारबार बीतने से ब्रह्माका एक दिन होताहै ॥ २५ ॥ इसी हिसाबसे सौ वर्षतक ब्रह्माजीते है व ब्रह्माके सौवर्ष का विष्णुका एक दिन होताहै ॥ २६ ॥ परन्तु ॐकारके आधेपलमें चौदहहजार विष्णु और अनगिन्ती ब्रह्मा नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥ इसतरह ब्रह्माका हाल जानकर शिवका पूजन अन्तःकरण से हमेशा कियाकरे लिंगमें शिवजीकी आज्ञाहै इससे लिङ्गका पूजन हमेशा करे ॥ २८ ॥ सब देवताओं से नमस्कार कियेहुये लिंगमे जो मूढ़तासे वैर करताहै

वह घोरनरकको जाताहै ऐसा शिवजीका वचन है ॥ २९ ॥ झूठतत्त्व के माननेवाले बौद्ध, क्षपणक और पाखण्डी जो अलग करदियेगये हैं व शिवके पूजन से रहित होगये उनको नष्ट समझो ॥ ३० ॥ अनेकजन्मों के अभ्याससे वे रसातल को जाते हैं पुराणों में शिवके कहेहुये धर्मको जानकर करै ॥ ३१ ॥ वह दुष्ट और बड़ापापबुद्धिहै जो और धर्मको करताहै हे राजन् ! इसस्कन्दके कहेहुये पुराणको मैंने तुमसेकहा ॥ ३२ ॥ इसके सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

बौद्धक्षपणपाखण्डा मिथ्यातत्त्वविचक्षणाः ॥ नष्टास्तुनाशितायेवै शिवाराधनवर्ज्जिताः ॥ ३० ॥ जन्मजन्मान्तराभ्यासात्तेप्रयान्तिरसातलम् ॥ पुराणेषुतथाबुद्ध्वा शिवोक्तंधर्म्ममाचरेत् ॥ ३१ ॥ सदुष्टःपापबुद्धिस्तु योन्यंधर्म्मंसमाचरेत् ॥ एतत्तेकथितंराजन् पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेन्महाभाग रेवाकपिलसङ्गमम् ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ १ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ दिनानिनवसार्द्धानिराहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ २ ॥ वृद्धिंयातिमहाराज पुण्यवृद्ध्या नसंशयः ॥ ग्रस्तेतुराहुणासूर्य्ये दिनानिचदशैवतु ॥ ३ ॥ वर्द्धतेकपिलाभेदस्तद्वदेवनिशाम्पते ॥ रेवायाःकपिलायोगे वाराणस्याःसमागमे ॥ ४ ॥ समानंफलमुद्दिष्टं तिलोदेनापिविद्यते ॥ वाराणसीसमारेवा कपिलायाश्चसङ्गमे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा और कपिला के संगम को जावे वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो वहां मरेहैं वे फिर नहीं उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥ तिलोदक देनेसे पितरों की परमगति होती है चन्द्रग्रहण में साढ़े नव दिनतक ॥ २ ॥ हे महाराज ! पुण्यकी बाढ़िसे वह संगम बढताहै इस में कुछ संशय नहीं है और सूर्य्यग्रहण में दशदिनतक ॥ ३ ॥ कपिलाका संगम हे निशाम्पते ! उसीतरह बढ़ता है नर्मदा व कपिला के संगममें और काशीमें ॥ ४ ॥ बराबरही फल कहागयाहै जो तिलोदकके देनेसेही होताहै क्योंकि कपिलाके सगम में काशीके बराबर नर्मदाहै ॥ ५ ॥ व स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर ब्रह्माके

वरसे जिनकी उत्पत्तिहै ऐसे ब्रह्मावर्त्त, रुद्रावर्त्त और सूर्यावर्त्तहैं ॥ ६ ॥ कपिला और नर्मदाके योगमें ये तीनों जाननेयोग्य हैं जहां कि चार हाथके प्रमाणसे नर्मदाका सङ्गम है ॥ ७ । हे राजन्! उसी नर्मदा और कपिलाके संगममें दो आवर्त कहे गयेहैं वहां सात पातालोंकी रहनेवाली पिप्पला नदी है ॥ ८ ॥ वहीं कपिलावर्त और पिप्पलावर्तहै अपनी तृप्तिके देनेवाले इस तीर्थकी पितर इच्छा किया करतेहैं ॥ ९ ॥ इससे लड़का बड़े उपाय से पितरों के वास्ते तिलोंसे मिली हुई जलाञ्जली व पिण्ड विधिपूर्वक यत्नसे देवे ॥ १० ॥ नर्मदा और कपिलाके संगममें स्नानकर पवित्र होकर मनुष्य पितरोंको श्राद्ध करके घोरनरकसे उद्धार करै ॥ ११॥ जो कोई वहा

स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते ब्रह्मलब्धवरोद्भवाः ॥ रुद्रावर्तंब्रह्मावर्तं सूर्य्यावर्ततथापरम् ॥ ६ ॥ कपिलानर्म्मदायोगे ज्ञेयमेतत्त्र यंपुनः ॥ नर्मदाभेदनंयत्र चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥ ७ ॥ रेवाकपिलयोराजंस्तत्रावर्तद्वयंस्मृतम् ॥ पिप्पलावाहिनीतत्र स प्तपातालवासिनी ॥ ८ ॥ तत्रैवकपिलावर्तं पिप्पलावर्तमेवच ॥ कामयन्तिहितीर्थंच पितरस्तृप्तिदायकम् ॥ ९ ॥ तस्मा त्पुत्रःप्रयत्नेन पितृभ्यश्चयथाविधि ॥ जलाञ्जलिंतिलैर्मिश्रं दद्यात्पिण्डंचयत्नतः ॥ १० ॥ पितॄन्समुद्धरेद्घोराच्छ्रा द्धंकृत्वातुमानवः ॥ रेवाकपिलयोर्योगेशुचिःस्नात्वातुमानवः ॥ ११ ॥ यःपश्येदमरंतत्र फलंतस्याश्वमेधिकम् ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेतु पर्वकालेविशेषतः ॥ १२ ॥ गन्धंधूपंचनैवेद्यं दीपमालाञ्चकारयेत् ॥ तिलतण्डुलमिश्रैर्यः कुर्य्या ल्लिङ्गस्यचार्चनम् ॥ १३ ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्यरक्तवस्त्रैःप्रवेष्टयेत ॥ पुष्पमालार्चनंकृत्वा हेमरत्नादिभिस्तथा ॥ १४ ॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्य्यश्च हिमवांश्चमहोदधिः ॥ तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते ॥ १५ ॥ कौशेयंपट्टसूत्रञ्च कार्पासंर

अमरनाथको देखताहै उसको अश्वमेधयज्ञ का फल होताहै उसमें भी चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें व पर्वमें विशेषकरके फल होताहै ॥ १२ ॥ चन्दन, धूप और नैवेद्य तथा दियालियोंको जलावे और तिलचौरीसे जो लिंगका पूजन करताहै ॥ १३ ॥ केसरसे लिंगका लेपनकर लालकपड़ों से लपेटे, फूलोंकी माला तथा सोना व रत्नों से पूजनकर ॥ १४ ॥ जबतक चन्द्रमा, सूर्य, हिमाचल और समुद्र रहतेहैं उतने हजार युगभर रुद्रलोकमें पूजित होताहै ॥ १५ ॥ कुसेहरी कीडेका सूत, रेशम का सूत,

कपासका सूत.लालसूत, वैजयन्तीमाला और चँदोवा इन सब चीजोंको मन्दिरके कलशके ऊपर बांधे॥ १६॥ और उसको पञ्चरत्न व क्षुद्रघण्टिकाओंसे युक्त करे उन सूतोंकी जितनी गिनती हो हे भारत ! उतने मुहूर्त्त काल तक स्वर्ग व पार्वती और महादेवजी के पुरमें रहताहै और एक ईशान लिंगहै जिसको हम पहले साधारण रीतिसे कहचुके हैं ॥ १७ । १८ ॥ वह कपिला के पूर्वतरफ थोड़ीही दूरपर वर्तमान है उस लिङ्ग के पूजन से गणोंका स्वामी होताहै कातिक के उजियाले पाखकी अष्टमीको इससे सौगुना फल होताहै संक्रान्ति और व्यतीपात में तो उसकी कुछ संख्याही नहीं है ॥ १९ ।२० ॥ वहां धन आदिके बांटनेसे व कपिलेश्वर के पूजन

क्षतान्तवम् ॥ वैजयन्तीवितानञ्च कलशोपरिवर्द्धयेत् ॥ १६ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं किङ्किणीरवसंयुतम् ॥ तत्तन्तुसंख्य यायावन्मुहूर्तमिहभारत ॥ १७ ॥ तावत्कालंवसेत्स्वर्गे उमामाहेश्वरेपुरे ॥ ईशानमपरंचैव सामान्यात्कथितम्पुरा ॥ १८ ॥ कपिलापूर्वभागेतु नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ अर्चनात्तस्यलिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ शुक्लाष्टम्यांका र्त्तिकेतु फलंशतगुणोत्तरम् ॥ संक्रमेचव्यतीपाते तस्यसंख्यानविद्यते ॥ २० ॥ उपहारप्रदानेन कपिलेश्वरपूजना त् ॥ वर्षाणामयुतंसार्द्धं लोकेक्रीडतिभास्करे ॥ २१ ॥ मृतवत्सातथाबन्ध्या गर्भस्रावाचयाभवेत् ॥ रक्तवस्त्रैःपञ्चरत्नैः स्नानंसाचसमाचरेत् ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यांतथाष्टम्यां कपिलायांयुधिष्ठिर ॥ सुभगाजीवपुत्राच सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ २३ ॥ उमयाचवरोदत्तो नारीभ्यश्चप्रसादतः ॥ कपिलानिर्गतायस्मान्नर्म्मदायांप्रसर्पति ॥ २४ ॥ तीर्थानामष्टसाह स्रं कामभोगफलप्रदम् ॥ आस्तेतत्रमहाराज शिवेनकथितम्पुरा ॥ २५ ॥ कपिलाचततोदेया सर्वाभरणभूषिता ॥ ब्रा

से पन्द्रहहजार वर्षतक सूर्यलोकमें विहार करताहै ॥ २१ ॥ जिस स्त्रीका लड़का मरजाताहै व जो बांझहै व गर्भ जिसका गिरजाताहै वह लालकपड़ा व पञ्चरत्नके सहित चतुर्दशी व अष्टमी को कपिला में स्नान करे तो हे युधिष्ठिर ! वह सौभाग्यवती और जीनेवाले पुत्रवाली होवे यह शिवका कहाहुआ सत्य है ॥ २२ । २३ ॥ पार्वतीजी ने अपनी खुशीसे स्त्रियोंके वास्ते वरदान को दियाहै कपिलानदी जहां से निकली और नर्मदा में मिलीहै ॥ २४ ॥ वहां आठहजार तीर्थहैं वे मनमाने भोग व फलोंके देनेवाले हैं हे महाराज ! यह शिवजीने पूर्वकाल में कहा है ॥ २५ ॥ वहां सब आभूषणों से युक्त कपिला गौ दान करनेयोग्य है और अपनी शक्तिके

अनुसार वहां ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ २६ ॥ आप व्रतकरे और देवता व पितरों को तृप्तकरे वहीं सिद्धिका देनेवाला हेमजालेश्वर नामका लिंगहै ॥ २७ ॥ उस देवके पूजन से यमलोक को नहीं देखताहै पुरानेसमय में धुन्धुदैत्य के मारनेवाले वसुदान चक्रवर्त्ती राजा हुये ॥ २८ ॥ वे इस तीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गमें देवता होते हुये अनेकहजार क्षत्रिय हे नृपश्रेष्ठ ! इस कोटितीर्थके प्रभावसे बड़ी सिद्धिको पातेहुये व उल्लूनामके पक्षियोंने कौवोंके सैकड़ों व हजारों शिरकाटके यहां कोटितीर्थ के पानीमें डाल दिये वे कौवा उसीक्षण दिव्यदेहहोकर विमानपर सवार ॥ २९ । ३० । ३१ ॥ विद्याधरोंके राजाहुये हे अनघ ! मैंने उनको पूर्वकालमें देखाहै और सियारों

ह्मणान्भोजयेत्तत्र यथाविभवविस्तरैः ॥ २६ ॥ उपवासपरोनित्यं तर्पिताःपितृदेवताः ॥ हेमजालेश्वरंनाम लिङ्गन्तत्रै वसिद्धिदम् ॥ २७ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य यमलोकंनपश्यति ॥ वसुदानोधुन्धुमारश्चक्रवर्तीपुराभवत् ॥ २८ ॥ अस्य तीर्थस्यमाहात्म्याद्दिविदेवत्वमाप्तवान् ॥ अनेकानिसहस्राणि संसिद्धिंपरमाङ्गताः ॥ २९ ॥ क्षत्रियाणांनृपश्रेष्ठ कोटि तीर्थप्रभावतः ॥ उलूकैःपातितान्यत्र कोटितीर्थेशिरांस्यथ ॥ ३० ॥ काकानांजलमध्येतु शतशोथसहस्रशः ॥ त त्क्षणाद्दिव्यदेहास्तु तेकाकायानमाश्रिताः ॥ ३१ ॥ विद्याधराणांराजानो मयादृष्टाःपुरानघ ॥ वृन्दाश्चजम्बुकानान्तु व्याघ्राणांचभयेनवै ॥ ३२ ॥ तथामेघावृतेकाले नर्म्मदाजलमाविशन् ॥ यक्षलोकन्तुतेप्राप्ताः सर्वकामफलोदयम् ॥ ३३ ॥ जम्बुकेश्वरमित्येवं तिर्यग्योनिविमोक्षणम् ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ ३४ ॥ वाराणसीप्रया गंच त्रैलोक्येत्वमरेश्वरम् ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिस्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ३५ ॥ तत्रस्नातश्चराजेन्द्र हयमेधफलंलभे

के झुण्ड बाघोंके भयसे ॥ ३२ ॥ चौमासे में नर्मदा के जलमें पैठगये वे सब यक्षोंके लोकको प्राप्तहुये जहां सब मनमाने फल मिलते हैं ॥ ३३ ॥ वहां जम्बुकेश्वर इस नामका लिङ्ग तिर्यग्योनि से छुड़ानेवालाहै पृथिवी में नैमिषतीर्थ है और अन्तरिक्षमें पुष्करतीर्थहै ॥ ३४ ॥ काशी और प्रयाग है व अमरेश्वरतीर्थ तीनोंलोकमेंहै जो तेंतीस करोड़ देवता और दैत्यों से नमस्कार कियागयाहै ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! वहां स्नान करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको पाताहै व इसी तीर्थके प्रभावसे वहां

सरस्वती सिद्धहुई है ॥ ३६ ॥ पितरों की प्रीतिके बढ़ानेवाले श्राद्धको जो कोई करताहै वह मनुष्य पितरोंके सहित परमस्थान को जाताहै ॥ ३७ ॥ सारस्वत नामका लिङ्ग ब्रह्महत्या का नाश करनेवालाहै अब पुराने इतिहास व आख्यान अर्थात् कथाको कहते हैं ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पहले कल्पके सत्ययुगमें बड़े लक्ष्मी वाले इन्द्रके बराबर पराक्रम (ताकत) वाले सत्यवचन के बोलनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, यज्ञोंके करनेवाले, दानके देनेवाले, देवता और अतिथि के सत्कार करनेवाले धुन्धुमार इस नामसे प्रसिद्ध अयोध्या के राजा होतेहुये ॥ ३६ । ४० ॥ उन राजाकी प्रजा दोष व भय और दरिद्रसे रहित होतीहुई और हे भारत ! वे सब

त ॥ सिद्धासरस्वतीतत्र तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ३६ ॥ यःकश्चित्कुरुतेश्राद्धं पितॄणांप्रीतिवर्द्धनम् ॥ सयातिपरमंस्थानं पितृभिःसहमानवः ॥ ३७ ॥ लिङ्गंसारस्वतंनाम ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ आख्यानंकथयिष्यामि इतिहासम्पुरातनम् ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ३९ ॥ धुन्धुमारइतिख्यातः सत्यवादीजितेन्द्रियः ॥ यज्ञयाजीदानशीलो देवतातिथिपूजकः ॥ ४० ॥ निरवद्याःप्रजास्तस्य भयदारिद्र्यवर्जिताः ॥ सपादलक्षवर्षाणि प्रजाजीवन्तिभारत ॥ ४१ ॥ यज्ञोत्सवविवाहैश्च वेदमङ्गलनिस्स्वनैः ॥ स्वयंकामदुघाधेनुः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि प्राकृताइतरेजनाः ॥ कौशेयपट्टवृक्षेषु बद्धंसर्वत्रभारत ॥ ४३ ॥ यज्ञहोमसहस्रैस्तु सदादोहमयींनृप ॥ एवंशशासपृथिवीं यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ४४ ॥ एकस्मिन्समयेराजा प्रतीहारमुवाचह ॥ आदेशयनृपान्सर्वान्नानादेशसमुद्भवान् ॥ ४५ ॥ प्रतीहारसमादिष्टाः समायातास्ततोनृपाः ॥ मृग

प्रजा सवालाख वर्ष जीतीरहीं ॥ ४१ ॥ यज्ञ, उत्सव (जल्सा),विवाह, वेदपाठ और मङ्गलशब्दोंसे सब प्रजा युक्तरही गौ आपही मनमाने समयपर दूधकी देनेवाली व पृथिवी अन्नसे भरी होतीहुई ॥ ४२ ॥ चारहजार वर्षतक नीचलोग जीतेरहे और हे भारत ! रेशमी कपडे सर्वत्र वृक्षोंमें बँधेरहते थे ॥ ४३ ॥ हे नृप ! यज्ञ और हजारों होमों के कारण से हमेशा कामधेनु के बराबर होरही पृथिवीकी राजा इस प्रकार रक्षाकरतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी रक्षाकरे ॥ ४४ ॥ एक समयमें राजा अपने चोबदार से बोले कि अनेकदेशों के सब राजाओं को बुलावो ॥ ४५ ॥ तदनन्तर चोबदारोंसे आज्ञा पायेहुये राजालोग आतेहुये उन सब राजाओं के सहित शिकार

करनेके वास्ते विन्ध्याचलको वे राजा जातेहुये ॥ ४६ ॥ जहां अग्निहोत्री ब्राह्मणों के वेदोंकी ध्वनियों के शब्दोंसे नादित हुई तीनोंलोकोंमें प्रसिद्ध नर्मदा विद्यमान है ॥ ४७ ॥ वहां बडा शोभायमान, रमणीक, विचित्र, सघन जंगल था हे भारत ! उसीमें क्षत्रियोंके सहित उन राजाने हज़ारों जीवोंको मारकर ॥ ४८ ॥ तदनन्तर बडे दारुण सब वनमें प्रवेश किया तो वहां डरावने रूपवाले, बडेघोर, दुःखसे देखने योग्य, अतिदुस्सह ॥ ४९ ॥ मेघोंकी आवाजसे गर्जिरहे, अत्यन्त रोयें खडेकरने वाले, सफेद रंगवाले, अपनी दोनों दाड़ोंसे डरावने होरहे एक सुवरको देखा ॥ ५० ॥ वहां श्रेष्ठ राजाने उस वैसे सुवरको देखकर और सब क्षत्रियोंसे कहा कि रोयें खड़े

यान्तुसतैःसर्वैः कर्तुंविन्ध्यंजगामह ॥ ४६ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्द्विजानामग्निहोत्रिणाम् ॥ नादितात्रिषुलोकेषु विख्याता सप्तकल्पगा ॥ ४७ ॥ तत्रोपशोभितंरम्यं विचित्रंवनमण्डलम् ॥ हत्वाजीवसहस्राणि क्षत्रियैःसहभारत ॥ ४८ ॥ विवेशचवनंसर्वं ततःपरमदारुणम् ॥ भीमरूपंमहाघोरं दुष्प्रेक्ष्यंचसुदुस्सहम् ॥ ४९ ॥ मेघनादेनगर्जन्तं सुतरांलोमहर्षणम् ॥ वाराहंश्वेतवर्णञ्च दंष्ट्रायुगलभीषणम् ॥ ५० ॥ तंदृष्ट्वाताद‍ृशंतत्र वाराहंनृपसत्तमः ॥ उवाचक्षत्रियान्सर्वान्नदृष्टंनमयाश्रुतम् ॥ ५१ ॥ एताद‍ृशंवराहस्य रूपंवैलोमहर्षणम् ॥ इत्युक्त्वापाशमादाय यावद्धन्तुंसमुद्यतः ॥ ५२ ॥ तावद्वायुवपुर्भूत्वा निर्यातःप्राणपीडितः ॥ विवेशजलमध्येच कोटितीर्थेनराधिप ॥ ५३ ॥ पृष्ठतोनुजगामाथ सराजाहयवाहनः ॥ प्रविष्टमात्रःपयसि वराहस्तुविशाम्पते ॥ ५४ ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु कामिकंयानमास्थितः ॥ किमिदंप्राहतंराजा वाराहंदेवरूपिणम् ॥ ५५ ॥ हृदिविस्मयमापन्नोसत्यमेतच्चब्रूहिमे ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वाराहोदेवरूपधृक् ॥ ५६ ॥

करनेवाले सुवरके ऐसे रूपको मैंने कभी देखा व सुना नहीं था यह कहकर फॅसरीको लेकर उसके मारनेको जबतक राजा तैयारहों ॥ ५१।५२ ॥ तबतक वह अपने प्राणों के डरसे हवाकी तरहहो उड़ा हे नराधिप ! कोटितीर्थके जलके बीचमें पैठगया ॥ ५३ ॥ वह राजा घोडेपर सवार उसके पीछे चला हे विशाम्पते ! वह सुवर पानी में पैठतेही ॥ ५४ ॥ उसीक्षण दिव्यदेह होकर मनमानी सवारीपर सवार होगया उस देवरूप होगये सुवर से राजा बोले कि यह क्या हुआ ॥ ५५ ॥ मेरे हृदयमें बड़ा

विस्मय होरहा है इससे मुझसे यह सत्य कह तो देवता के रूपको धरेहुये वह सुवर उन राजाके इस वचनको सुनकर ॥ ५६ ॥ हँसताहुआ राजा से वाक्य बोला कि हे महामते, राजन्! तुम सुनो कि मुझको अंगद नाम का महादेवजी का गण समझो ॥ ५७ ॥ किसी समयमें अपने गण व देवता व पार्वती के सहित महादेव जी विहार करते रहे हे नृपसत्तम! उनके आगे ॥ ५८ ॥ मैंने दण्डक नामका बहुत अच्छा गानागया परन्तु वहां उर्वशी और रम्भाको देखकर मै कामसे मोहित होगया ॥ ५९ ॥ और सुवरकी वाणीको बोलताहुआ मैं बिगडी आवाजवाला व बिगड़े मुहँवाला होगया और वहां बेहोशहुये मैंने अप्सराओंके साथ विहारको किया ॥ ६० ॥

प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं शृणुराजन्महामते ॥ अङ्गदंनामतुगणं विद्धिमांशङ्करस्यतु ॥ ५७ ॥ गणैश्चदेवमुख्यैश्च उमयाचमहेश्वरः ॥ क्रीडन्नाऽऽस्तेकदाचित्तु तस्याग्रेनृपसत्तम ॥ ५८ ॥ तत्रगीतंमयागीतं रम्यंदण्डकलक्षणम् ॥ दृष्ट्वोर्वशींतथारम्भामभूवंकाममोहितः ॥ ५९ ॥ व्याहरञ्छूकरींवाणीं विस्वरोविकृताननः ॥ विह्वलेनमयातत्र ह्यप्सरोभिस्तुक्रीडितम् ॥ ६० ॥ तादृशंमान्तुदृष्ट्वावै कामक्रीडावशङ्गतम् ॥ शशापनन्दीकोपात्मा शूकरोमेध्यभुग्भव ॥ ६१ ॥ दशवर्षसहस्राणि भ्रमिष्यसिमहीतले ॥ ब्रह्मापिनैवशक्नोति शिवस्यतुप्रकीर्तितम् ॥ ६२ ॥ त्वंतुगामटमानोपि किङ्करस्यापिकिङ्करः ॥ कुपितंनन्दिनंज्ञात्वा भयभीतान्तरात्मना ॥ ६३ ॥ प्रसादितोमयानन्दी शापान्तंवरमादिशत् ॥ दर्शनाद्धुन्धुमारस्य कोटितीर्थप्रभावतः ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वातुशूकरींयोनिं पुनःप्रत्यागमिष्यसि ॥ एतत्तेकथितंराजन्वाराहींयोनिमाश्रितः ॥ ६५ ॥ यथाहिकिल्बिषान्मुक्तस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ॐकारदर्शनाद्राजन् रेवातोयपरिष्कृतः ॥ ६६ ॥

कामके विहारमें आसक्त होरहे वैसे मुझको देखकर बड़े क्रोधवाले नन्दीश्वरजी ने शाप देदिया कि तू मैला खानेवाला सुवरहो ॥ ६१ ॥ दशहजार वर्षतक पृथिवी में घूमाकरेगा महादेवके कहेहुयेको ब्रह्माभी नहीं हटासक्तेहैं ॥ ६२ ॥ गुलामका गुलाम तू पृथिवी में घूमता रहेगा तब नन्दीश्वरजीको क्रोधयुक्त जानकर भयसे डरेहुये ॥ ६३ ॥ मैंने नन्दीश्वरजीको प्रसन्नकिया तब उन्होंने शाप समाप्त होजानेका मुझे वरदिया कि धुन्धुमार राजाके दर्शनसे व कोटितीर्थके प्रभावसे ॥ ६४ ॥ सुवर की योनिको छोड़कर फिर तू यहीं आवेगा हे राजन्! यह आपसे कहा कि सुवरकी योनिमें पड़ाहुआ ॥ ६५ ॥ जैसे इस तीर्थके प्रभावकरके पापसे छूटगया हे राजन्!

ॐकारके दर्शनसे व नर्मदाके जलसे शुद्ध हुआ ॥ ६६ ॥ व आपके दर्शनसे हे सुव्रत ! मैं गन्धर्वयोनिको प्राप्तहुआ इससे हे राजेन्द्र ! आप शोचको छोड़ो कर्मोकी गति बड़ी कठिनहै ॥ ६७ ॥ धर्ममें अपनी बुद्धिको लगाकर सब जीवोंके हितके करनेवाले होवो क्योंकि हे राजन् ! पैदाहोने से मरना होताहै और मरनेसे पैदाहोना होता है ॥ ६८ ॥ इससे पाप व पुण्यवाले कामोंको जानकर तुम अपनेको उद्धारकरो अपनाही कमाया कर्म आपही भोगता है ॥ ६९ ॥ भले बुरेकर्मों का करनेवाला व भोगनेवाला आपहीहै अब आपका भलाहो मैं जाताहूं यह कहकर चलागया ॥ ७० ॥ छाताको लगायेहुये अप्सराओंसे चँवर ढुरायाजारहा ऐसा आप शिवके ध्यानमें

प्राप्तोगन्धर्वयोनिन्तु दर्शनात्तवसुव्रत ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्म्मणाङ्गतिः ॥ ६७ ॥ धर्म्मेबुद्धिंसमाधाय सर्वभूतहितोभव ॥ जन्मतोमरणंराजन्मरणाज्जन्मसम्भवः ॥ ६८ ॥ ज्ञात्वाशुभाशुभंकर्म्मत्वमात्मानंसमुद्धर ॥ स्वयमेवार्जितंकर्मस्वयमेवोपभुज्यते ॥ ६९ ॥ स्वयंकर्ताचभोक्ताच शुभस्याप्यशुभस्यच ॥ स्वस्तिवोस्तिगमिष्यामि एवमुक्त्वाजगामह ॥ ७० ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ शिवध्यानपरोभूत्वा कैलासेन्यवसत्सुखम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेवाराहस्वर्गारोहणंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ सतस्मिन्नृपतिश्रेष्ठस्तृषितःश्रान्तवाहनः ॥ हयंमुमोचराजावै सर्वोपस्करमेवच ॥ १ ॥ स्मरन्नूर्द्ध्वगतिन्तावदुपविष्टःशिलातले ॥ रेणुध्वस्तस्ततोश्वोवैप्रविष्टःसप्तकल्पगाम् ॥ २ ॥ पानस्नानादिकंकृत्वा ह्यन्तरिक्षस्थितोहयः ॥ ब्रह्मतेजःस्थितोभूत्वा ब्रह्मयानंसमाश्रयत् ॥ ३ ॥ अत्यद्भुतंतुतन्दृष्ट्वा परंविस्मयमागतः ॥ उवाचवचनंरा

परायण होकर कैलास में सुखसे रहताहुआ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेवाराहस्वर्गारोहणंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि राजाओं में श्रेष्ठ वे धुन्धुमार राजा थकी सवारीवाले और प्यासे उसी स्थानमें घोड़ेको छोंडदिया और उसका साजभी सब उतार लिया ॥ १ ॥ राजा परलोक की गतिको सुध करताहुआ चट्टान पर बैठगया तदनन्तर धूलिसे भराहुआ घोड़ा नर्मदा में पैठगया ॥ २ ॥ पानी पीके व स्नानकरके घोड़ा आकाश में स्थित हुआ और ब्रह्मतेज में स्थित होकर ब्राह्मणोंकी सवारीपर सवार हुआ ॥ ३ ॥ राजा उसका बड़ा अजबहाल देखकर बड़े अचम्भेमें होगये व ब्राह्मण

होगये उस अपने घोड़ेसे राजा वचन बोले ॥ ४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! यह क्या कारण है सो मुझसे आज ठीक २ कहो तब यह सुनकर ब्राह्मण होरहा वह घोड़ा वचन बोला ॥ ५ ॥ कि पूर्वकाल में कुरुक्षेत्र बिषे रहनेवाला मैं गालवनाम का ब्रह्मर्षिहूं सो घोड़े के दान लेने से मैं जलगया व घोड़ेकी योनि में आपड़ा ॥ ६ ॥ दावानल से जो जलाहुआ है वह पानी से फिर जमआता है और दुष्टदान के लेनेसे जो जलगयाहै वह कभी नहीं जमता है ॥ ७ ॥ पहिले जमाने में अयोध्या के मालिक, बड़े धर्मात्मा, बड़े बलवाले, चक्रवर्ती द्रुमसेन राजा होतेहुये ये राजा सूर्यग्रहण में ब्राह्मणों के वास्ते देने को हाथी, घोड़े, सोना, गौवें, माणिक, हीरा, पन्ना और

जा तुरङ्गंतंद्विजर्षभम् ॥ ४ ॥ किमेतत्कारणंब्रह्मन्ब्रूहिमेद्ययथोचितम् ॥ उवाचतद्वचःश्रुत्वा हयरूपोद्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ ब्रह्मर्षिर्गालवश्चाहं कुरुक्षेत्रेपुरास्थितः ॥ अश्वप्रतिग्रहाद्दग्धस्त्वश्वयोनिंसमाश्रितः ॥ ६ ॥ दावाग्निनाचयद्दग्धमुदका त्तत्प्ररोहति ॥ दुष्टप्रतिग्रहाद्दग्धो नप्ररोहेत्कदाचन ॥ ७ ॥ द्रुमसेनःपुराचासीद्राजापरमधार्म्मिकः ॥ अयोध्याधिप तिश्चासौ चक्रवर्तीमहाबलः ॥ ८ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ गजानश्वान्समादाय हिरण्यञ्चास्तथैवच ॥ ९ ॥ माणिक्यवज्रवैदूर्य्यंवासांसिविविधानिच ॥ ब्राह्मणार्थेनृपश्रेष्ठ मुदापरमयायुतः ॥ १० ॥ गृहाणिसाष्टभौमानि धूपितानितुकाञ्चनैः ॥ सर्वकामसमृद्धानि ब्राह्मणेभ्योयथाविधि ॥ ११ ॥ दत्त्वासयाचयामास सक्तुप्रस्थव्रतेस्थितम् ॥ राजोत्तमकुलंविप्रमुञ्छवृत्तिंसमाश्रितम् ॥ १२ ॥ श्राद्धकालःपितॄणांमे भोजनंक्रियतामिति ॥ ऋषिरुवाच ॥ राज्ञोहि दर्शनंघोरं मेधामथनमक्षमम् ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाचैवमहीपालमादित्यंचावलोकयेत् ॥ द्विजात्परतरोनास्ति प्रतिग्रहपरा

अनेक तरह के कपड़े लेकर बड़ी खुशीसे युक्त हे नृपश्रेष्ठ ! कुरुक्षेत्र को जातेहुये ॥ ८ । ९ । १० ॥ और वहां सात २ चौकवाले सोने के कामवाले, सब चीजों से भरेहुये मकान ब्राह्मणों को विधिसे ॥ ११ ॥ देकर फिर सेरभर सत्तूके ऊपर दान नहीं लेना इस व्रतमें स्थित होरहे शीला बीनकर खानेवाले, उत्तमकुलवाले, एक ब्राह्मण से उन राजाने प्रार्थना की ॥ १२ ॥ कि मेरे पितरों के श्राद्धका समयहै सो आप भोजन करें तब वह ऋषि बोला कि राजाका दर्शन बड़ाघोर होताहै बुद्धि को नाश कर देताहै ठीक नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाको देखकर सूर्यका दर्शनकरे तब शुद्ध होता है और दानके नहीं लेनेवाले ब्राह्मण से कोई श्रेष्ठ नहीं

होताहै ॥१४॥ दुष्टदानके लेनेसे जरूर नरकको जाताहै इससे स्त्रीके दानका लेनेवाला तू और किसी ब्राह्मणसे प्रार्थनाकर ॥ १५ ॥ ऋषिके वचनको सुनकर राजाने अपने चोबदार से कहा कि कुरुक्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मणों के वास्ते तू शीघ्र पुकारकरदे ॥ १६ ॥ कि जिस किसीको दान लेनाहो वह यहां शीघ्रआवे हे नृप ! पुकार करने परभी कोई दानका लेनेवाला नहीं हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर राजा बड़ा नाराज हुआ और उस स्थानकी निन्दाकी कि यह स्थान ब्राह्मणो का नहीं है और न यहां वेदहै न यज्ञका कराना है ॥ १८ ॥ ऐसे उन सबकी निन्दाकर फिर चुपहोरहा उस के इस वचनको सुनकर राजासे मैंने यह कहा ॥ १९ ॥ कि चारों वेदोंका पढ़ने

ऋुखात् ॥ १४ ॥ असत्प्रतिग्रहंगृह्णन्नरकंयातिवैध्रुवम् ॥ भार्य्याप्रतिग्रहग्राही याचस्वान्यंद्विजोत्तमम् ॥ १५ ॥ ऋषे राजावचःश्रुत्वा प्रतीहारंतथाब्रवीत् ॥ घोषणाक्रियतांशीघ्रंस्थानेश्वरनिवासिनाम् ॥ १६ ॥ प्रतिग्रहाययःकश्चित् स चायात्विहसत्वरम् ॥ कृतेतुघोषणेकश्चिन्नासीन्नृपप्रतिग्रही ॥ १७ ॥ ततस्तुकुपितोराजा स्थानन्तच्चनिनिन्दच ॥ अब्रह्मण्यमिदंस्थानं नवेदोनचयाजनम् ॥ १८ ॥ जुगुप्सित्वातुतान्सर्वांस्तूष्णींचैवबभूवह ॥ तस्यवाक्यन्तुतच्छ्रुत्वा राजानंचेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ गालवोहंद्विजश्रेष्ठश्चतुर्वेदीमहातपाः ॥ यज्ञयाजीतपस्वीच सर्वभूतहितेरतः ॥ २० ॥ अनुग्रहमिमंविद्धि उद्धरिष्येभवार्णवात् ॥ राजोवाच ॥ ददामितेनसन्देहस्त्वमेकोमुनिसत्तमः ॥ २१ ॥ मुद्गलाद्यैर्द्विजैः सर्वैर्वार्य्यमाणोपिचानघ ॥ गृहीतोश्वरथस्तत्र मयाभरणभूषितः ॥ २२ ॥ ततःसमांनमस्कृत्य द्रुमसेनोययौनृप ॥ मयापिचाग्निहोत्रादिकर्म्मत्यक्त्वायथासुखम् ॥ २३ ॥ नानाविधानिदिव्यानि स्त्रीभिःसार्द्धंसुखानितु ॥ क्रीडतोपित

वाला, बड़ेतप का करनेवाला, यज्ञोंका करनेवाला, सब जीवोंके हितका करनेवाला, तपस्वी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मैं गालवनाम का ब्राह्मण हूं ॥ २० ॥ इसको तू मेरी दया समझ मैं तुझे संसारसमुद्र से उद्धार करूंगा तब राजा बोला कि मैं आपको दान देऊंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है आपही एक मुनियो में श्रेष्ठहो ॥ २१ ॥ हे अनघ! यहां मुद्गलआदि सब ब्राह्मणोंसे मैं रोंकाभी गया परन्तु सब साज से सजेहुये घोड़रथको मैंने लेलिया ॥ २२ ॥ हे नृप ! तदनन्तर वह द्रुमसेन राजा मुझको नमस्कारकर चलागया मैंनेभी अग्निहोत्रआदि कर्मको छोड़कर सुखसे ॥ २३ ॥ अनेक तरह के दिव्यसुखों को स्त्रियोंके साथ भोगे व मुझको विहार करतेहुये वह सब

द्रव्य नाश (खर्च) होगई ॥ २४ ॥ ऐसे कहकर वह ब्राह्मण सनातन ब्रह्मलोकको चलागया तदनन्तर हे भारत! अकेला वह राजा सोचनेलगा ॥ २५ ॥ कि अब जो मैं अकेला व घोड़ा न होनेसे पैदलही चलाजाऊं तो राजालोग आपसमें यह कहकर कि डाकुओंने इनके घोडेको मारडाला ऐसी २ अपनी बातोंसे मुझे हँसेंगे घोड़ेके साजको अपने शिरपर लेकर मुझको कैसे ॥ २६ । २७ ॥ शहरमें पैठना योग्यहै यह बात मुझको बड़ी शर्मकी है और आजतक मैंने ब्राह्मणके ऊपर सवारीकी ॥ २८ ॥ इससे अब इस पापके छूटने के वास्ते मैं आगीमें प्रवेश करूंगा इसतरह राजाने वहां विचार किया और बड़ीजल्दी से ॥ २९ ॥ दक्षिण दिशामें टिककर सूखी लकड़ी

दर्थैवै यावन्मेचक्षयङ्गतम् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वाययौविप्रो ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ एकाकीचततोराजा चिन्तयामासभारत ॥ २५ ॥ एकाकीयदियास्यामि गताश्वश्चरणेनतु ॥ राजानोमांहसिष्यन्ति वचनैःस्वैःपरस्परम् ॥ २६ ॥ दस्युभिर्निहतश्चास्य हयइत्येवमादिभिः ॥ अश्वोपस्करमादायशिरसाचकथंमया ॥ २७ ॥ प्रवेष्टव्यंपुरंचैतन्महालज्जाकरंमम ॥ अद्ययावन्मयातावद्ब्राह्मणारोहणंकृतम् ॥ २८ ॥ पापस्यास्यविशुद्ध्यर्थं प्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ एवंविचिन्तयामास राजातत्रैवसत्वरम् ॥ २९ ॥ दक्षिणान्दिशमाश्रित्यशुष्ककाष्ठानिचाहरत् ॥ ततःप्रज्वाल्यकाष्ठानि कृत्वाचत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥ नमस्कृत्यहुताशञ्च विवेशस्वगृहंयथा ॥ निर्जित्यतेजसातेजः पावकस्यतदान्नृपः ॥ ३१ ॥ चतुर्भुजात्रिनेत्रातु मुक्ताभरणभूषिता ॥ तंगृहीत्वाकरेणैव इदंवचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अप्राप्तंमरणंराजन्नकालोविहितस्तव ॥ अकस्मात्साहसन्देव युक्तंनप्रतिभातिमे ॥ ३३ ॥ कालप्राप्तंपुमांसन्तु नरश्चेदीश्वरःस्वयम् ॥ राजोवाच ॥

को जमा किया तदनन्तर लकडी को जलाकर तीनबार प्रदक्षिणाकर ॥ ३० ॥ और आगीको नमस्कारकर अपने मकानकी तरह आगीमें पैठगया उससमयमें अपने तेजसे आगीके तेजको जीतकर राजा स्थितहुआ ॥ ३१ ॥ तबतक चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, सब गहनेसे सजीहुई एक स्त्री उन राजाको हाथसे पकड़कर इस वचन को बोली ॥ ३२ ॥ कि हे राजन्! अभी आपकी मौत नहीं है और अभी आप का समय नहीं है हे देव! यह एकाएकी जबरदस्ती करना आपका मुझको ठीक

नहीं समझ पडता है ॥ ३३ ॥ जिसका समय आगया उस पुरुषको साक्षात् ईश्वरभी नहीं बचासक्ता है तब राजा बोला कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो पार्वती व गङ्गा व लक्ष्मीहो ॥ ३४ ॥ हे महाभागे ! सो कहो मुझको तुम बडीभक्तिकी देनेवाली हो तब वह स्त्री बोली कि हे नृप ! न मैं गङ्गाहूं और न सरस्वतीहूं इस मुझको आप महादेव से निकलीहुई, नर्मदा के भीतर बहनेवाली कपिला नदी जानो व वसुदान राजा की यज्ञ में नर्मदा और कपिलाका संगम हुआ ॥ ३५ । ३६ ॥ उसी यज्ञ मे उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ३७ ॥ शतद्रू, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता और देवीचर्मण्वती

कासित्वंचवरारोहे ह्युमागङ्गाथवारमा ॥ ३४ ॥ कथयस्वमहाभागे ममत्वंभक्तिदायिनी ॥ स्त्र्युवाच ॥ नाहंगङ्गानवाणी वाकपिलांविद्धिमांनृप ॥ ३५ ॥ एनांरुद्राद्विनिष्क्रान्तां नर्म्मदातलवाहिनीम् ॥ वसुदानस्ययज्ञेतु रेवाकपिलसङ्गमः ॥ ३६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा ॥ सरस्वतीतथाशिप्रा वरणाचशुभापगा ॥ ३७ ॥ शतद्रूश्चन्द्रभागाच सिन्धूरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्म्मण्वादेवी सोमावभृथमध्यतः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्नानार्थंहृतवारिभिः ॥ तिलोदकैर्मुनीनान्तु प्रणीतःकलशोदकैः ॥ ३९ ॥ तथासोमरसैश्चैव घृतखण्डादिमिश्रितैः ॥ बभूवातिप्रवाहो वै इज्याजन्योमहान्पुरा ॥ ४० ॥ एतद्भूतंमहत्पुण्यमुदयाचलमाश्रितम् ॥ रुद्रावर्तपदंचात्र विद्यतेनृपसत्तम ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोययौराजा देवीचान्तरधीयत ॥ हृष्टस्तुष्टश्चक्रवर्तीमार्कण्डेयाश्रमंययौ ॥ ४२ ॥ गत्वाप्रणम्यतमृषिमुपविष्टस्तथाग्रतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कुशलंतेनृपश्रेष्ठ धर्म्माचारविदांवर ॥ ४३ ॥ सन्त्यज्यचकथंसैन्यमेकाकीत्व

ये सब नदियां सोमयज्ञ के यज्ञान्तस्नानमें ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा व विष्णु और महादेवके स्नानके वास्ते आई सो इनके जलोंसे व तिलोंसे मिलेहुये मुनियों के कलशों के जलोंसे प्राप्त ॥ ३९ ॥ व इसीतरह घी और शक्करआदि से मिलेहुये सोमलता के रसोंसे यज्ञसे पैदाहुआ बडाभारी जलोंका प्रवाह पूर्वकाल में होताहुआ ॥ ४० ॥ हे नृपसत्तम ! यह उदयाचलके आश्रित महापुण्यतीर्थ हुआ और यहां रुद्रावर्त नामका भी तीर्थहै ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहागया राजा चलागया व देवीभी अन्तर्द्धानहो गई बड़े खुश और सन्तुष्ट चक्रवर्त्ती राजा मार्कण्डेयमुनिके आश्रमको चलेगये ॥ ४२ ॥ वहां जाकर उन ऋषिको नमस्कारकर आगे बैठगये तब मार्कण्डेयजी बोले

कि हे नृपश्रेष्ठ ! हे धर्मके आचार के जाननेवालों में श्रेष्ठ ! आपकी कुशलहै ॥४३॥ अपनी सेनाको छोड़कर अकेले तुम यहां कैसे आये तब राजा बोले कि आज आप के चरणकमलोंके दर्शनसे मेरा जन्म सफल होगया ॥ ४४ ॥ फिर धुन्धुमार राजाने सब पहलेवाला हाल कहा तदनन्तर मार्कण्डेयजी राजासे हालको सुनकर ॥ ४५ ॥ नर्मदा और कपिला के संगम में स्नानकर स्तुति करतेहुये इस नर्मदा और कपिलाके संगम में स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं ॥ ४६ ॥ उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ४७ ॥ शतद्रू, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता, चर्मण्वती, बाहुदा, वारुणी ॥ ४८ ॥ सरयू, गण्डकी,

मिहागतः ॥ राजोवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ ४४ ॥ धुन्धुमारस्तथाराजा कथयामासपूर्व कम् ॥ मार्कण्डेयस्ततःश्रुत्वा वृत्तान्तंपृथिवीपतेः ॥ ४५ ॥रेवाकपिलयोर्योगे स्नात्वास्तोत्रंचकारह ॥ तत्रस्नातादि वंयान्ति रेवाकपिलसङ्गमे ॥ ४६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा ॥ सरस्वतीतथाशिप्रा वरणाचशुभाप गा ॥ ४७ ॥ शतद्रूश्चन्द्रभागाच सिन्धूरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्म्मणादेवी बाहुदावारुणीतथा ॥ ४८ ॥ सरयूर्गण्डकी चैव घर्घराबदरीतथा ॥ गोमतीवेणुकीचैव पारावेत्रवतीशुभा ॥ ४९ ॥ विपाशाचतथावाहा शङ्खिनीचपयोष्णिका ॥ गोदावरीचकावेरी भीमाकृष्णातथाशुभा ॥ ५० ॥ सुभद्राचतथाभद्रा करतोयाथमालिनी ॥ एतास्सर्वास्त्वमेवासि सर्व गेत्वांनमाम्यहम् ॥ ५१ ॥ लोकत्रयन्त्वयाव्याप्तमपांरूपेणसुव्रते ॥ प्रसीदत्वंमहाभागे लोकत्रितयपावनी ॥ ५२ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदंदेवी मार्कण्डेयात्तपोधनात् ॥ पुष्पकंयानमारुह्य सर्वाभरणभूषिता ॥ ५३ ॥ चतुर्भुजात्रिनेत्राच चन्द्र

घाघरा तथा बदरी, गोमती, वेणुकी, पारा और शुभ वेत्रवती ॥ ४९ ॥ विपाशा वैसेही वाहा, शङ्खिनी, पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भीमा तथा शुभ कृष्णा ॥ ५० ॥ सुभद्रा तथा भद्रा, करतोया और मालिनी ये सब नदियां तुम्हींहो हे सर्वगे ! तुम्हारे हम नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥ हे सुव्रते ! पानीके रूपसे तीनों लोक तुम्हींसे व्याप्तहैं व तीनोंलोकों को पवित्र करनेवालीहो हे महाभागे ! तुम प्रसन्न होवो ॥ ५२ ॥ तपोधन मार्कण्डेयजीसे देवीजी इस स्तोत्रको सुनकर सब गहनेसे सजी हुई

पुष्पक विमानपर सवार होकर ॥ ५३ ॥ चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, चन्द्रमाके बिम्बके समान मुखवाली देवी महामुनि मार्कण्डेयजीसे वचन बोलीं ॥ ५४ ॥ कि इस स्तोत्रसे हम प्रसन्नहैं तुम अपने मनका वर मांगो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे देवेशि ! जो तुम प्रसन्नहो और वर देनेकी इच्छा करती हो तो हे हरसम्भवे ! हे कल्याणि ! लोकोंके पापको हरो जे कोई स्नानकर आपकी स्तुतिको करें वे शिव की आज्ञासे उत्तम लोकोंको प्राप्तहोवें ॥ ५५ । ५६ ॥ और हे देवि ! अब इससमय तुम धुन्धुमार राजाको वर देवो कि राज्यको कर अपने रनिवास सहित स्वर्गको जावें ॥ ५७ ॥ और हे सुव्रते ! जिस २ कामनाको राजाकरें उस २ को पावें तब

बिम्बनिभानना ॥ उवाचवचनंदेवी मार्कण्डेयंमहामुनिम् ॥ ५४ ॥ स्तोत्रेणानेनतुष्टाहं वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ परितुष्टासिदेवेशि वरंदातुंत्वमिच्छसि ॥ ५५ ॥ कलुषंहरकल्याणि लोकानांहरसम्भवे ॥ स्नानंकृत्वास्तुवन्तोये लोकानापुःशिवाज्ञया ॥ ५६ ॥ वरंददस्वदेवित्वं धुन्धुमारायसाम्प्रतम् ॥ राज्यंकृत्वादिवंयातु सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ५७ ॥ यंयंचिन्तयतेकामं तंतंप्राप्नोतिसुव्रते ॥ एवंभवतुविप्रेन्द्र मत्तोयद्वाञ्छितंत्वया ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वा ययौदेवी कपिलालोकपावनी ॥ मार्कण्डेयंमुनिंराजा मुनिभिःपरिवारितम् ॥ ५९ ॥ प्रणिपत्ययथान्यायं गतश्चस्वपुरं तदा ॥ ततःकालेनमहता राजाधर्म्मपरायणः ॥ ६० ॥ राज्यंकृत्वाक्रतूनिष्ट्वा धुन्धुमारोदिवङ्गतः ॥ एतत्तेकथितंसर्वं मयादृष्टम्पुरानघ ॥ ६१ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकपिलामाहात्म्येधुन्धुमारस्वर्गारोहणंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवीने कहा कि हे विप्रेन्द्र ! मुझसे जो तुमने इच्छाकी वह ऐसाहीहो ॥ ५८ ॥ ऐसे कहकर लोकोंको पवित्र करनेवाली कपिलादेवी चलीगई राजाभी मुनियोंसे घिरेहुये मार्कण्डेयमुनिको ॥ ५९ ॥ उचित रीतिसे नमस्कारकर उसीसमय अपने शहरको चलेगये तदनन्तर बड़े समयतक धर्मात्मा धुन्धुमार राजा राज्य व यज्ञोंकोकर स्वर्गको जातेहुये हे अनघ ! अगले जमाने में यह सब अपना देखाहुआ हाल आपसे कहा गया ॥ ६० । ६१ ॥ इसके सुनने व कहने से संसारके बन्धन से छूटजाताहै ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकपिलामाहात्म्येधुन्धुमारस्वर्गारोहणंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि द्वीपोंकी गिन्ती व पृथिवी की नाप व समुद्रों का हाल व नीचेके लोकोंकी गिन्ती यह सब मुझको विदित करो ॥ १ ॥ नरक और स्वर्ग का प्रमाण और भी जो कुछ ऐसा हालहो मेरा पूंछा व अनपूंछा जो कुछ शुभ व अशुभकर्मों का वृत्तान्तहो ॥ २ ॥ यह सब संक्षेपसे मुझसे कहो जिसतरह स्वामि-कार्त्तिकजी से पूँछेगये महादेवजी ने पुराण को कहाहो व जैसा कुछ पुराना हालहो ॥ ३ ॥ आप होनेवाले और होगये जमानेके तत्त्वके जाननेवालेहो व तीनों कालों के जाननेवाले हो और तीनों वेदोंके जाननेवाले हो आपही सब कुछ जानते हो इससे अपनी प्रसन्नता से मुझपर कहने को आप योग्य होतेहो ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय

युधिष्ठिरउवाच ॥ द्वीपसंख्यामुवोमानं सागराणाञ्चकीर्तनम् ॥ पाताललोकसंख्यानं सर्वतोविदितंकुरु ॥ १ ॥ नरकंस्वर्गमानञ्च यत्किञ्चिदन्यदीदृशम् ॥ उक्तानुक्तन्तुयत्किञ्चित्कर्म्माकर्म्मशुभावहम् ॥ २ ॥ एतत्सर्वंसमासेन स्कन्दपृष्टेनशम्भुना ॥ कथितंतुपुराणंवै यथावृत्तंपुरातनम् ॥ ३ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञस्त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ त्वमेववेत्सिसर्वंच प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ अनेकानिसहस्राणि मयादृष्टानिभारत ॥ ५ ॥ युगेयुगेक्षत्रियाणां दानयज्ञक्रियाणिच ॥ नान्यस्तुत्वादृशोराजा दृष्टस्तेषान्तुमध्यतः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वंसमासेन स्कन्दपृष्टेनशम्भुना ॥ कथितंतुपुराणंवै तत्तेहंकथयाम्यहम् ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीपःप्रभासेतुस्ताम्रपर्णीगभस्तिमान् ॥ नागद्वीपश्चसौम्यश्च गन्धर्वोवरुणस्तथा ॥ ८ ॥ नवमःकुमारिकाख्यस्तु इतिद्वीपाःप्रकीर्तिताः ॥ नवखण्डवतीचैषा कथितातेसमासतः ॥ ९ ॥ खण्डेष्वेतेषुसर्वेषु प्रवाहोनाम्मदस्स्मृतः ॥ जम्बूशाककुशक्रौञ्चशाल्मल्यश्चयु

जी बोले कि हे महाभाग ! हे राजन् ! मैं आपके पूंछेहुये हालको कहताहूं उसको आप सुनो और समझो क्योंकि हे भारत ! मैंने युग २ में दान व यज्ञोंके करनेवाले अनेक हजार क्षत्रियोंको देखाहै परन्तु उनके बीचमें तुम्हारा ऐसा और राजा नहीं देखा ॥ ५।६ ॥ यह सब संक्षेप रीतिसे स्वामिकार्त्तिकेयसे पूंछेगये महादेवजी करके पुराण कहागया था उसीको मैं आपसे कहताहूं ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीप, प्रभासेतु, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण ॥ ८ ॥ और नवमां कुमारिका नामहै ये तो द्वीप कहेगये हैं नवखण्डवाली यह पृथिवी आपसे साधारण रीति से कहीगई ॥ ९ ॥ इन सब खण्डोंमें नर्मदाजी का प्रवाह वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर !

जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मली ॥ १० ॥ प्लक्ष और पुष्कर ये सातद्वीप कहे गयेहैं क्षार, क्षीर, दधि, घृत वैसेही इक्षुरस ॥ ११ ॥ सुरोद और मधुरोद ये सात समुद्र कहे गये हैं भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक ॥ १२ ॥ जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सातलोक ऊपरके हैं और हे युधिष्ठिर ! भूलोक और सूर्यका जो बीच है उसका प्रमाण चारलाख योजन व इतनेही प्रमाणवाला पाताल भी जानो हे भारत ! यहां रुद्र और आठ वसुनामके देवता रहतेहैं ॥ १३ । १४ ॥ इन लोकोंको मैंने कहा अब पातालोंको मुझसे जानो अतल, वितल शर्कर, गभस्तिक ॥ १५ ॥ महातल, सुतल, रसातल इसकेबाद सब कामनाओंसे भराहुआ आठवां सौवर्ण जानो ॥ १६ ॥

धिष्ठिर ॥ १० ॥ प्लक्षश्चपुष्करश्चैव सप्तद्वीपाःप्रकीर्तिताः ॥ क्षारंक्षीरंदधिसर्पिस्तथैवेक्षुरसोपिच ॥ ११ ॥ सुरोदोमधुरोदश्च समुद्रास्सप्तकीर्तिताः ॥ भूर्लोकश्चभुवर्लोकस्स्वर्लोकश्चमहस्तथा ॥ १२ ॥ जनलोकस्तपोलोकस्सत्यलोकस्तथापरः ॥ भूर्लोकादित्ययोर्विद्धि त्वन्तरालंयुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ योजनानांचतुर्लक्षं पातालंयत्प्रमाणतः ॥ रुद्राश्चवसवश्चाष्टौ निवसन्त्यत्रभारत ॥ १४ ॥ कथिताश्चमयालोकाः पातालानिनिबोधमे ॥ अतलंवितलंचैव शर्करंचगभस्तिकम् ॥ १५ ॥ महातलंचसुतलं रसातलमतःपरम् ॥ सौवर्णमष्टमंविद्धि सर्वकामसमन्वितम् ॥ १६ ॥ वह्नेर्दाहोह्यपांशैत्यं मरुतांवहनंतथा ॥ काठिन्यंचतथाधात्र्या गगनेशुषिरंतथा ॥ १७ ॥ स्वभावएवभूतानां स्वस्वभावानुसारतः ॥ प्रकृतिंयान्तिभूतानि नात्रकार्य्याविचारणा ॥ १८ ॥ लक्षाणिचतुरशीतिर्योनीनांपापकर्म्मणाम् ॥ नरकेषुचघोरेषु दारुणायमयातनाः ॥ १९ ॥ निरुद्धाःप्राणिनःसर्वे नीतास्तुयमकिङ्करैः ॥ यातनाविविधारौद्रास्तत्रस्थैरनुभूयते ॥ २० ॥ स्वक

आगमें जलाना, पानी में ठण्ढापन, हवामें चलना, जमीन में कड़ापन और आसमान में पोल ॥ १७ ॥ यह अपनी २ तासीर के अनुसार महाभूतों का स्वभावही है सब जीव अपने कारणमें मिलजाते है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ पापीजीवों की चौरासीलाख योनि हैं घोरनरकों में यमयातना बड़ी कठिन है ॥ १९ ॥ यमराज के दूतोंसे लायेगये सब प्राणी कैद कियेजाते हैं वहां ठहरनेवाले प्राणियों करके अनेक तरह की भयानक यातनायें (यमलोककी तकलीफें)

भोगीजाती हैं ॥ २० ॥ अपने कर्मोंके फलोंके कारणसे भलेबुरे फलोंको पातेहैं इसीके वास्ते तप,होम, दान और पवित्र करनेवाला ध्यान ॥ २१ ॥ व सब प्राणियों पर दया व नर्मदाके तटमें वास व नर्मदाकी स्तुति व सूर्यकी पूजा करना चाहिये जिससे कल्याण होवे ॥ २२ ॥ अब हम कथाको कहेंगे जैसा कुछ हाल अगिले जमाने में हुआहै हे भारत ! दानवों के राजा मुचुकुन्द का संवादहै ॥ २३ ॥ हे राजन् ! प्रसिद्धहै कि चाक्षुप मन्वन्तर के सत्ययुग में कुवलयाश्व नामके बडे यश वाले चक्रवर्त्ती राजर्षि हुये ॥ २४ । २५ ॥ उन बड़े तेजवाले राजाकी राज्य इन्द्रसे आठगुनी होतीहुई उन राजाने अनेकतरहके अनेकहजार अत्युत्तम दानोंको सब तीर्थों में

र्म्मफलयोगेन प्राप्नुवन्तिशुभाशुभम् ॥ एतदर्थंतपोहोमंदानंध्यानंचपावनम् ॥ २१ ॥ कारुण्यंसर्वभूतेषु नर्म्मदाश्रयणंतथा॥ रेवायारस्तवनंपूजा सूर्य्यस्यप्रभवोयथा ॥ २२॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथावृत्तम्पुरातनम् ॥ मुचुकुन्दस्यसंवादो दानवेन्द्रस्यभारत ॥ २३ ॥ कुवलयाश्वोथराजर्षिश्चक्रवर्तीमहायशाः॥ आसीत्कृतयुगेराजन्नन्तरेचाक्षुषेकिल ॥ २४ ॥ शक्रादष्टगुणंराज्यं राज्ञश्चामिततेजसः ॥ अनेकानिसहस्राणि दानानिविविधानिच॥ २५ ॥ दत्तानितेनराज्ञा वै सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ इष्टाश्चक्रतवश्चापि वर्जयित्वातुकल्पगाम् ॥ २६ ॥ दानवोमुचुकुन्दश्चसर्वधर्म्मपरायणः ॥ ब्रह्मण्यश्शिवभक्तश्च विष्णुभक्तोजितेन्द्रियः ॥ २७ ॥ राहुसोमसमायोगे वैदूर्य्येसिद्धपर्वते ॥ ॐकारनाथसहिता यत्रास्तेकल्पगासरित् ॥ २८ ॥ अन्यानियानिलिङ्गानि लोकेचैवचराचरे ॥ कल्पान्तेतानिलीयन्त ॐकारेवैनसंशयः ॥ २९ ॥ शिवेनकथितंह्येतद्विष्णोश्चैवशतक्रतोः ॥ पार्वत्याःषण्मुखस्यापि पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ ३० ॥ आगतोकल्पगान्दे

दिया और अनेक यज्ञोंको भी किया परन्तु नर्मदाको छोडकर अर्थात् नर्मदामें कुछ न किया ॥ २६ ॥ सब धर्मोंका करनेवाला ब्राह्मण,शिव और विष्णुका भक्त इन्द्रियोंका जीतनेवाला मुचुकुन्द दानव भी ॥ २७ ॥ चन्द्रग्रहणमें सिद्धवैदूर्य्य पर्वत पर जहां ॐकारनाथ के सहित नर्मदा नदी विद्यमानहै ॥ २८ ॥ क्योंकि और जितने इस स्थावरजङ्गमरूप संसार में लिङ्गहैं वे सब महाप्रलयमें ॐकार में मिलजाते हैं इस में कुछ संदेह नहीं है ॥ २९ ॥ इस बातको स्कन्दपुराण में महादेवजी ने विष्णु,

इन्द्र, पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहाहै ॥ ३० ॥ सो वह राजा नर्मदादेवी के पास कोटितीर्थमें आया नर्मदा और कपिला के सङ्गममें सब सामानके सहित ॥ ३१ ॥ हे नृप ! एक लाख दुधारी गौवें, दशहजार घोडे, एक हजार हाथियों को लेकर ॥ ३२ ॥ व सोनेके कामवाले मनके प्यारे एक हजार रथ, धन, अन्न, कपड़े और अनेक तरहके रत्नोंको लेकर ॥ ३३ ॥ और स्नानकर उसीसमय यथायोग्य ब्राह्मणों को देताहुआ और हे नराधिप ! ॐङ्कारकी मूर्त्तिमें दक्षिणाको भी चढ़ाता हुआ ॥ ३४ ॥ जिसने जिस कामनाको किया उसके लिये वह राजा वही देताहुआ और धर्म कर्मका करनेवाला राजा कुवलयाश्वभी ॥ ३५ ॥ सूर्यग्रहण मे अपने

वीं कोटितीर्थेनराधिपः ॥ नर्म्मदाकपिलायोगे सर्वसम्भारसंवृतः ॥ ३१ ॥ लक्षमेकन्तुदोग्ध्रीणां समादायगवांनृप ॥ अयुतंचहयानाञ्च सहस्रंदन्तिनान्तथा ॥ ३२ ॥ कामिकानान्तुयानानां सहस्रंहेममालिनाम् ॥ धनंधान्यञ्चवासांसि रत्नानिविविधानिच ॥ ३३ ॥ स्नानंकृत्वायथान्यायं ब्राह्मणेभ्योददौतदा ॥ मूर्त्तौतुदक्षिणाश्चापि ॐकारस्यनराधिप॥ ३४ ॥ योयंकामयतेकामं तंतस्मैसप्रयच्छति ॥ राजाकुवलयाश्वस्तु धर्म्मकर्म्मपरायणः ॥ ३५ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंययौकिल ॥ सान्तःपुरपरीवारो ह्ययोध्याधिपतिस्स्वयम् ॥ ३६ ॥ राजपुत्रसहस्रैस्तु वृतःस्नानेप्सयाकिल ॥ लक्षमेकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतंतथा ॥ ३७ ॥ हेममाणिक्यरत्नानि वासांसिविविधानिच ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो ब्राह्मणेभ्योददौनृप ॥ ३८ ॥ शेषंनिर्वापितंक्षेत्रे स्थानेवायनपूर्वकम् ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते कुरुक्षेत्रप्रभावतः ॥ ३९ ॥ नानायानसहस्रैस्तु सान्तःपुरपरिग्रहः ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ ४० ॥ शङ्खवादित्रघोषेण नानाभ

रनिवास व परिवारके सहित साक्षात् अयोध्याका मालिक हजारों राजपुत्रों से युक्त स्नान करनेकी इच्छा से कुरुक्षेत्र को जाताहुआ वह राजा एकलाख घोडे दशहजारहाथी ॥ ३६ । ३७ ॥ सोना, माणिक, रत्न और अनेकतरह के कपड़े बड़ीश्रद्धासे युक्त हे नृप ! ब्राह्मणों को देताहुआ ॥ ३८ ॥ जो धन देनेसे बाकी रहा वह उसी क्षेत्रस्थान में बैनेकी तरह बांट दियागया तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर कुरुक्षेत्र के प्रभाव से ॥ ३९ ॥ अपने रनिवास व अमलाके सहित अनेक प्रकारकी

हजारों सवारियों से युक्त छाताको लगायेहुये व अप्सरा लोग जिनके ऊपर चँवर को ढुरारही हैं ॥ ४० ॥ अनेक गहनों से सजेहुये शङ्खआदि बाजाओं की आवाज
से युक्त दूसरे विद्याधरकी तरह वहां स्थितहो विचरतेहुये ॥ ४१ ॥ और दैत्योंके राजा मुचुकुन्द भी सब कामनाओं से युक्त सोने और रत्नोंके गहनों को पहनेहुये
मनमानी सवारियों पर सवार सोहतेहुये ॥ ४२ ॥ हे विशाम्पते ! हजारों बाजोंको सुनकर धर्मराज बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये और कहा कि यह क्याहै ॥ ४३ ॥ तद-
नन्तर कुवलयाश्व राजाभी उसी दिन उस शहर में प्राप्तहुये दोनोंको दूतोंने बुद्धिमान् धर्मराजसे प्रसिद्ध किया ॥ ४४ ॥ कि राजर्षि कुवलयाश्व और बड़ेबली मुचु-

रणभूषितः ॥ विचचारचतत्रस्थो विद्याधरइवापरः ॥ ४१ ॥ मुचुकुन्दोपिदैत्येन्द्रः सर्वकामसमन्वितः ॥ कामिकैश्चमहा
यानैर्हैमरत्नविभूषणैः ॥ ४२ ॥ श्रुत्वावाद्यसहस्राणि धर्म्मराजोविशाम्पते ॥ जगामविस्मयंघोरं किमेतदितिचाब्रवी
त ॥ ४३ ॥ ततःकुवलयाश्वोपितस्मिन्नहनितत्पुरम् ॥ उभौनिवेदितौदूतैर्धर्म्मराजस्यधीमतः ॥ ४४ ॥ कुवलयाश्वोथ
राजर्षिर्मुचुकुन्दोमहाबलः॥ लोकान्तरमुभावेतौविमानस्थौसमागतौ ॥ ४५ ॥ तावदुत्पतितंयानंमुचुकुन्दस्यचोपरि ॥
योजनानांसहस्रेणह्युपर्युपरिसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ अयोध्याधिपतेर्यानमधोभागेऽव्यवस्थितम् ॥ पप्रच्छधर्म्मराजोपिचि
त्रगुप्तंतुलेखकम् ॥ ४७ ॥ किंतुयानंसमासाद्यअर्घपाद्येनपूजये ॥ सप्तर्षीन्नृपिमुख्यांश्चधर्माधर्म्मविचारकान् ॥ ४८ ॥
चित्रगुप्तोब्रवीद्वाक्यंतथासप्तर्षयोब्रुवन् ॥ मुचुकुन्दंसमासाद्यत्वर्घपाद्येनपूजय ॥ ४९ ॥ दानेनकापिलेनेज्योदानवेन्द्रो
नचापरः ॥ अधःकुवलयाश्वश्चमुचुकुन्दस्तथोपरि ॥५०॥ एवमुक्तोधर्म्मराजोदानवेन्द्रमुपाश्रयत् ॥ श्वेतवस्त्रपरीधा

कुन्द ये दोनों विमानपर सवार अपने लोकसे दूसरे लोकको प्राप्तहुये हैं ॥ ४५ ॥ तबतक मुचुकुन्द की सवारी ऊपरको उडी व हजारों योजनके ऊपर २ स्थित होती
हुई ॥ ४६ ॥ अयोध्याके राजा कुवलयाश्वका विमान नीचे रहगया तब धर्मराज ने अपने लेखक (मुनशी) चित्रगुप्त से पूछा ॥ ४७ ॥ कि हम किस विमानके पास
जाकर अर्घ और पाद्यसे पूजन करें और धर्म व अधर्म के विचारनेवाले ऋषियों मे बडे सप्तर्षियों से भी पूछा ॥ ४८ ॥ तब चित्रगुप्त और राजर्षियों ने जवाब दिया
कि मुचुकुन्द के पास जाकर तुम अर्घ और पाद्यसे पूजनकरो ॥ ४९ ॥ कपिला नदीके तीर दान देनेसे दैत्योंका राजा मुचुकुन्दही पूजाके योग्यहै दूसरा नहीं क्योंकि

कुवलयाश्व नीचे पडाहै और मुचुकुन्द ऊपरहै ॥ ५० ॥ ऐसे कहेगये, सफेद कपड़ों को पहनेहुये दगदगाते हैं कुण्डल और गहने जिनके ऐसे धर्मराजजी दानवेन्द्र मुचुकुन्द के पास जातेहुये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर मुचुकुन्दकी सवारी के आगे खडेहुये और बोले कि हे सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! हे दैत्येन्द्र ! आज आपकी कुशल है ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! आपने इस दानसे तीनोंलोकों को जीतलियाहै क्योंकि कपिलाके सङ्गममें दक्षिणामूर्त्ति जो ॐङ्कारनाथहैं उनके पास ॥ ५३ ॥ नर्मदाके तीरमें दानकी गिन्ती नहीं है तब मुचुकुन्द बोले कि धर्म अधर्मके मामिलेमें मुखिया आपही हो जिससे कि आपही स्वर्गके फाटकके बेलन

नो ज्वलत्कुण्डलभूषणः ॥ ५१ ॥ अञ्जलिञ्चततोबद्ध्वा यानस्याग्रेव्यवस्थितः ॥ कुशलन्तेद्यदैत्येन्द्र सर्वधर्म्मभृतांवर ॥ ५२ ॥ निर्जितास्तेत्रयोलोका दानेनानेनसुव्रत ॥ ॐकारदक्षिणस्यान्ते मूर्तौकापिलसङ्गमे ॥ ५३ ॥ सप्तकल्पवहातीरे दानसंख्यानविद्यते ॥ मुचुकुन्दउवाच ॥ धर्म्माधर्मेत्वमेवाद्यः स्वर्गद्वारार्गलोयतः ॥ ५४ ॥ एवमुक्तोयमस्तत्र दैत्येन्द्रेणमहात्मना ॥ पन्थानन्दर्शयामास दैत्येन्द्रस्ययुधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ ततस्तुप्रेषितस्तेन मुचुकुन्दोजगामह ॥ मुदापरमयायुक्त उमामाहेश्वरंपुरम् ॥ ५६ ॥ संस्मारयित्वाविधिवद्दैत्येन्द्रंधर्म्मराट्ततः ॥ आसाद्यकुवलयाश्वन्धर्म्मराजोब्रवीदिदम् ॥ ५७ ॥ स्वागतन्तेमहाराज कुशलन्तवसर्वदा ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ परस्परविरोधत्वं देवदानवयोःसदा ॥ ५८ मान्त्यक्त्वादानवेन्द्रस्तु पाद्यार्घेणत्वयार्चितः ॥ विपरीतश्चतत्सर्वं धर्म्मराजकृतंकथम् ॥ ५९ ॥ यम

हो ॥ ५४ ॥ ऐसे जब दैत्येन्द्र महात्मा मुचुकुन्दने यमराजसे कहा तब हे युधिष्ठिर ! यमराज ने मुचुकुन्द को राह दिखादी ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उन यमराजने मुचुकुन्दको बिदा किया मुचुकुन्द बड़े आनन्द से युक्त पार्वती व महादेव जीके पुरको चलेगये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर विधिसे धर्मराज दैत्येन्द्र मुचुकुन्द को सब याद दिला के फिर धर्मराज उन कुवलयाश्व के पास जाकर यह बोले ॥ ५७ ॥ कि हे महाराज ! आपका आना बहुतही अच्छा हुआ आपकी हमेशा कुशलहै तब कुवलयाश्व बोले कि देवता और दैत्योंका आपसमें विरोध तो सदा चलाआयाहै ॥ ५८ ॥ फिर हमको छोड़कर आपने पाद्य अर्घसे दानवेन्द्र मुचुकुन्द का पूजनकिया हे धर्म-

राज ! यह सब आपने उलटा क्यों किया ॥ ५९ ॥ तब यमराज बोले कि हे राजेन्द्र ! आप शोचमत करो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है हम भलेबुरे फलके न देनेवाले हैं और न लेनेवालेहैं ॥ ६० ॥ हे नृप! हम तो केवल देवता,दैत्य और मनुष्य सबोंके कर्मोंके साखीमात्र हैं हे अनघ ! कुरुक्षेत्र में सरस्वतीनदी के किनारे आपने दानको दिया ॥ ६१ ॥ परन्तु द्वापरयुगके अन्तमें नर्मदा के तटमें जो दानहै उसके बराबर और कहींका दान नहीं होसकाहै यह महादेवजीने ब्रह्मा, विष्णु और मरुत् देवताओंसे कहाहै कोई तीर्थ नर्मदाकी एक कला को भी नहीं पासकेहैं मैंने झूठ नहीं कहाहै क्योंकि पुराण वेदसे मिलाहुआहै ॥ ६२ । ६३ ॥ हे राजन् !

उवाच ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्म्मणाङ्गतिः ॥ नाहंदाताचहर्त्ताच शुभाशुभफलस्यवै ॥ ६० ॥ कर्म्मसाक्षीचसर्वेषान्देवासुरनृणांनृप ॥ सरस्वत्यांकुरुक्षेत्रे दानंदत्तन्त्वयानघ ॥ ६१ ॥ द्वापरान्तेतुदानंवै रेवादानंसमंनहि ॥ शिवेनकथितंचासीद्ब्रह्मविष्णुमरुद्गणान् ॥ ६२ ॥ कलांनार्हन्तितीर्थानि सार्द्धकल्पगयाक्वचित् ॥ अनृतंनमयाचोक्तं पुराणंश्रुतिसम्मतम् ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन् द्वयोःसंवदतोस्तयोः ॥ उक्तःकुवलयाश्वस्तु तदाकाशगिरास्वयम् ॥ ६४ ॥ धर्म्मश्चेत्थंमहाराज माकृथास्त्वंकथञ्चन ॥ कल्पगातोयसंस्पृष्टो दैत्यःशिवमवाप्तवान् ॥ ६५ ॥ सराजाविस्मयापन्नः पुनर्व्यावृत्यचागतः ॥ नर्म्मदांस्नातुकामोपि कपिलासङ्गमम्प्रति ॥ ६६ ॥ तत्रप्लुतस्ततोराजा शिवलोकंजगामह ॥ ६७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मुचुकुन्दकुवलयाश्वस्वर्गारोहणंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥

इसी अन्तर में उन दोनों के बतलातेही हुये आकाशवाणी ने राजा कुवलयाश्व से आपही कहा ॥ ६४ ॥ कि हे महाराज ! धर्म ऐसाहीहै तुम किसीतरहकी तर्क मत करो नर्मदा के जलसे छुवागया दैत्य शिवजी को प्राप्तहुआ ॥ ६५ ॥ आश्चर्य को प्राप्तहुआ वह राजा फिर लौटकर नर्मदामें स्नान करनेकी इच्छा करताहुआ कपिला के संगम को आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वहां स्नानकर राजा शिवजी के लोकको जाताहुआ ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमुचुकुन्दकुवलयाश्वस्वर्गारोहणन्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ® ॥ ® ॥ ® ॥ ® ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! यमराजके पास कौन जातेहैं और वे नरक कैसेहैं यह सब आप मुझसे कहो और देवलोकको कौन जातेहैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जो पुखराजके देनेवाले है वे पुष्पकविमानसे जातेहैं व जो देवताओंके मकान बनवानेवालेहैं वे शिवलोकको जातेहैं ॥ २ ॥ जो अनाथोंके मकानोंको बनवा देते हैं वे उत्तम मकानोंमें विहार करतेहैं व जो देवता, अग्नि, गुरु,ब्राह्मण,माता और पिताके पूजनेवालेहैं ॥ ३ ॥ वे मनुष्य औरोंसे पूजेजातेहुये मनमानी सवारियोंसे सुखसे जातेहैं व दियाके देनेसे दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये जातेहैं ॥४॥ सभाके देनेसे सुखसे यमलोकको जातेहैं व पानीका देनेवाला सब कामनाओंसे युक्त

युधिष्ठिरउवाच ॥ केव्रजन्तियमंविप्र कीदृशानरकास्तुते ॥ एतन्मेसर्वमाख्याहि देवलोकंव्रजन्तिके ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यान्तिपुष्पकयानेन पुष्परागप्रदायिनः ॥ देवायतनकर्तारः शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ २ ॥ अनाथमण्डपानान्तु तेक्रीडन्तिगृहोत्तमैः ॥ देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्चपूजकाः ॥ ३ ॥ पूज्यमानानरायान्ति कामिकैश्चयथासुखम् ॥ द्योतयन्तोदिशःसर्वा यान्तिदीपप्रदानतः ॥४॥ प्रतिश्रयप्रदानेन सुखंयान्तियमालयम् ॥ सर्वकामसमृद्धेन तथागच्छतितोयदः ॥ ५ ॥ अन्नंपानंप्रयच्छन्ति सुखंयान्तिनिराकुलाः ॥ दीपमालांहिप्रच्छन्ति गुरुशुश्रूषणेरताः॥ ६ ॥ पादाभ्यङ्गञ्चयःकुर्य्यात्सोश्वपृष्ठेनगच्छति ॥ हेमरत्नप्रदानेन यान्तिरत्नविभूषिताः ॥ ७ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेनगच्छति ॥ अन्नपानप्रदानेन पिबन्खादंश्चगच्छति ॥ ८ ॥ इत्येवमादिभिर्दानैः सुखंयान्तिशिवालयम् ॥ स्वर्गेचविपुलान्भोगान् प्राप्नोत्यन्नप्रदानतः ॥ ९ ॥ सर्वेषामेवदानानामन्नदानंपरंविदुः ॥ सर्वप्रीतिकरंपुण्यं बलपुष्टिविव

सवारी से जाताहै ॥ ५ ॥ अन्न व पानीको जो देतेहैं वे व्याकुलतारहित हो सुखसे जाते हैं व जो दियालियों को देतेहैं और गुरुकी सेवामें प्रेम करते हैं ॥ ६ ॥ और गुरुके पैरोंको दाबतेहैं वे घोड़ेकी पीठपर सवार होकर जातेहै सोने व रत्नोंके देनेसेरत्नों से सजेहुये जातेहै ॥ ७ ॥ पृथ्वीके देनेसे सब कामनाओंसे भराहुआ जाताहै अन्न व जलके देनेसे खाता पीताहुआ जाताहै ॥ ८ ॥ ऐसे २ दानोंसे सुखसे शिवलोक को जातेहैं और अन्नके देनेसे स्वर्गमें अनेक भोगोंको पाताहै ॥ ९ ॥ सब दानोंमें

हैं कहीं टेढ़े बैंचे गड्ढोंसे व ताते ढेले और ईटोंसे युक्तहै व कहीं २ अतिताती बालू पैनीमेखैं और अनेक टूटीहुई डालोंसे व्याप्तहै ॥ ३०।३१ ॥ कोई बडे अँधियारेसे यमलोकको जातेहैं कहीं राहमें पडेहुये अङ्गारों से तपे व दावानलसे गँसेहुयेजातेहैं ॥३२ ॥ कहीं ताती पत्थरकी चट्टानोंसे कहीं करिहांवतक कीचमे,कही गन्दे पानीसे और कहीं गन्देगोबर की आगसे व्याप्तहै ॥ ३३ ॥ कहीं गीध, बगुला, बाघ, अतिदारुण दुष्टकीडोंसे व कहीं बडे २ बिच्छुवोंसे व कहीं अजगरोंसे ॥ ३४ ॥ व कही भयानक मच्छड़, जहरीले साप, चारोंतरफसे मारनेवाले बड़े बलवाले पैने दांतोंसे राहको खोदरहे मतवाले हाथियोंके झुण्ड, सिंह,बड़े सींगवाले भैंसे और मतवाले,

तप्तबालुकामिश्र तथातीक्ष्णैश्चशङ्कुभिः ॥ अनेकभग्नशाखाभिरावृतेनकचित्कचित् ॥ ३१ ॥ कष्टेनतमसाकेचिद्ग च्छन्तिहियमालयम् ॥ मार्गस्थाङ्गारकैस्तप्तैर्ग्रस्तादावाग्निभिस्तथा ॥ ३२ ॥ कचित्तप्तशिलामिश्र पङ्केनकटिमान तः ॥ कचिद्दुष्टाम्बुनाव्याप्तंदुष्करीषाग्निनाकचित् ॥ ३३ ॥ कचिद्गृध्रैर्बकैर्व्याघ्रैर्दुष्टैःकीटैस्सुदारुणैः ॥ कचिन्महा कुलीराद्यैः कचित्त्वजगरैःपुनः ॥ ३४ ॥ मक्षिकाभिश्चरौद्राभिः कचित्सर्पैर्विषोल्बणैः ॥ मत्तमातङ्गयूथैश्च समन्तात्त्वप्र माथिभिः ॥ ३५ ॥ पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महाबलैः ॥ सिंहैर्विषाणमहिषैरौद्रैर्मत्तैश्चश्वापदैः ॥ ३६ ॥ डाकि नीभिश्चरौद्राभिर्विकरालैश्चराक्षसैः ॥ व्याधिभिश्चमहाघोरैःपावकैश्चदुरासदैः ॥ ३७ ॥ महानलविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥ महापाषाणवर्षेण भिद्यमानानिराश्रयाः ॥ ३८ ॥ कचित्कचित्प्रतप्तेन दीप्यमानाव्रजन्तिहि ॥ महताबाणवर्षे ण भिद्यमानाःसमन्ततः ॥ ३९ ॥ पतद्भिर्वज्रसङ्घातैरुल्कापातैश्चदारुणैः ॥ प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण हन्यमानाव्रजन्तिहि ॥ ४० ॥ महाघोररवैर्घोरैर्वित्रस्यन्तोमुहुर्मुहुः ॥ निशितायुधवर्षेण पूर्यमाणाश्चसर्वशः ॥ ४१ ॥ महाक्षाराम्बुधाराभिः

जीवोंकेखानेवाले भेंडियाआदि जीवोंमे व्याप्तहै ॥ ३५।३६ ॥ कहीं बड़ी भयानक डाकिनी,विकराल राक्षस,बडेघोररोग, प्रचण्ड आग ॥ ३७ ॥ लपटसे मिलीहुई बडी प्रचण्डवायु और बडे२ पत्थरोंकी वर्षामे मारेजातेहुये निराधार जातेहैं ॥ ३८ ॥ कहीं२ताताीराह से जलतेहुये जातेहैं कही बडीबाणोंकी वर्षासे चारोंतरफसे मारेहुये जाते हैं ॥ ३९ ॥ कही गिरतीहुई बिजलियोंके समूह, भयानक ऊंक और प्रचण्ड अङ्गारोंकी वर्षासे मारेहुये जातेहैं ॥ ४० ॥ और कहीं बड़ीघोर आवाजवाले डरानेने जीवों

से बार२ डरवायेजाते और पैने हथियारोंकी वर्षासे चारोंतरफ से तोपेहुये ॥ ४१ ॥ व बहुत खारीपानी की धाराओंसे बारबार भिगोयेगये,बडेघोर जाड़से और छूरोंकी धारआदिकोंसे दुःखी जातेहैं ॥ ४२ ॥ और अनेकतरहके सैकड़ों हजारों दुःखोंसे व्याप्त,ताती, भयानक, खाली, ऊंची, सहॆतावटसे रहित बड़ीभारी बहुतदूरवाली, ॥ ४३ ॥ बहुत नगीच, बहुत कष्टवाली और सब दुखों से भरीहुई राहसे हे भारत ! ॥ ४४ ॥ सब पापी मूढ़ जीव यमराजकी आज्ञा करनेवाले बड़ेघोर यमदूतों से जबरदस्ती लायेजाते हैं ॥ ४५ ॥ अकेले हैं, पराये अधीनहैं, मित्र और भाइयों से रहितहैं, अपने कर्मोंको सोचते हैं, बार २ जलेजाते हैं ॥ ४६ ॥ भूत और प्रेतोंके

सिच्यमानामुहुर्मुहुः ॥ महाशीतेनरौद्रेण क्षुरधारादिभिस्तथा ॥ ४२ ॥ अन्यैर्बहुविधाकारैः शतशोथसहस्रशः ॥ इत्थ
म्भतप्तरौद्रेण मार्गेणविषमेणच ॥ ४३ ॥ अविश्रान्तेनमहताह्यविदूरेणभारत ॥ अविदूरेणकष्टेन सर्वदुःखाश्रयेणच ॥४४॥
नीयन्तेदेहिनस्सर्वे मूढाःपापपरायणाः ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्यमाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥ ४५ ॥ एकाकिनःपराधीना मित्रब
न्धुविवर्जिताः ॥ शोचन्तःस्वानिकर्म्माणि दह्यन्तेचमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ प्रेतभूतविमिश्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥
कृशाङ्गाभीतभीताश्च दह्यमानाहुताग्निना ॥ ४७ ॥ बद्धाःशृङ्खलयाकेचिन्मज्जन्तःपापिनोभृशम् ॥ कृष्यन्तेदह्यमा
नास्तु यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ ४८ ॥ उरस्यधोमुखस्थाने तथैवखलुदुःखिताः ॥ केशपाशेविबद्धाश्च कृष्यन्तेपापिनस्त
था ॥ ४९ ॥ ललाटेचाशुगैर्विद्धा कृष्यन्तेदेहिनःकचित् ॥ उत्तानादुष्टपन्थानं नीयन्तेपापकर्म्मणा ॥ ५० ॥ पार्श्व
बाहुविबद्धाश्च जठरेपरिपीडिताः ॥ ग्रीवापाशविकृष्याश्च केऽपियान्तिसुदुःखिताः ॥ ५१ ॥ जिह्वाशङ्कुप्रदानेन समा

साथमें हैं, गला, ओंठ और तालु जिनके सूख गये हैं, दुबली देहवाले हैं, डरेसे ज्यादा डरेहैं, होमीहुई आगसे जलेजातेहैं ॥ ४७ ॥ कोई पापी जंजीर से बँधेहैं और गन्देपानी में गोतेखाते हैं बड़े जबरदस्त यमदूतों से जलतेहुये खींचेजाते हैं ॥ ४८ ॥ उसी प्रकार कोई दुःखी पापी छातीमें बँधेहैं व कोई मुहॅके नीचे बँधेहैं और कोई बालोंमे बँधे खींचेजाते हैं ॥ ४९ ॥ कोई प्राणियोंके माथेमें बाण नाथ दियेगये हैं उन्हींमें बँधे कहीं खींचेजाते हैं कोई अपने पापकर्मसे उताने दुष्ट सड़क पर खींचेजाते हैं ॥ ५० ॥ कोई पसुली और हाथोंमें बँधेहैं कोई पेटमें नथेहैं व कोई गलेमें फँसरीसे खींचेजाते बड़े दुःखी जातेहैं ॥ ५१ ॥ जीभमें कीलसे नथेहुये कोई कण्ठ

मेंनथेहुये अर्द्धचन्द्रसे इधर उधर झटकाखाते खींचेजाते है ॥ ५२ ॥ कोई रस्सीमे लिङ्ग और अण्डकोश में बँधहुये खींचेजाते हैं व कोई हाथ, पांव, कान, ओंठ और नाक जिनके काटिडालेगये हैं ऐसे जातेहैं लिंग, अण्डकोश और शिरआदि अङ्ग जिनके कटगये हैं आंगुसों से छेदेजाते और बिच्छुओं से काटेजातेहुये जाते हैं ॥ ५३।५४ ॥ इधर उधर दौड़तेहैं विलाप करते हैं निरालम्ब मुगदर और लोहेके दण्डोंसे वार २ मारेजातेहुये जातेहैं ॥ ५५ ॥ अनेकतरह के घोर कोडाओं से और भिन्दिपालों से चारोंतरफ से मारेजाते वार २ रक्तको उगिलतेहुये जातेहैं ॥ ५६ ॥ पानीमें डालेजाते छाहीको मांगते हैं इस प्रकार पापके करनेवाले व दानसे रहित

नीयक्तकाटिकाः ॥ अर्द्धचन्द्रेणगृह्यन्ते क्षिप्यमाणाइतस्ततः ॥ ५२ ॥ शिश्नेचवृषणेचैव रज्ज्वाबद्धास्तथापरे ॥ विच्छिन्नहस्तपादाश्च छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः ॥ ५३ विच्छिन्नशिश्नवृषणाश्छिन्नशीर्षाङ्गसञ्चयाः ॥ अङ्कुशैर्भिद्यमानास्तु खाद्यमानाःसरीसृपैः ॥ ५४ ॥ इतश्चेतश्चधावन्ति क्रन्दमानानिराश्रयाः ॥ मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमानामुहुर्मुहुः ॥ ५५ ॥ कशाभिर्विविधाभिश्च घोराभिश्चसमन्ततः ॥ भिन्दिपालैश्चतुद्यन्ते वमन्तःशोणितंमुहुः ॥ ५६ ॥ पात्यमानाश्च सलिले छायांवैप्रार्थयन्तिच ॥ दानहीनाःप्रयान्त्येवं प्रायश्चित्तकृतोनराः ॥ ५७ ॥ गृहीत्वाचैवपाथेयं सुखंयान्तियमालयम् ॥ एवंपथानिकृष्टेन प्राप्तायमपुरंनराः ॥ ५८ ॥ प्राज्ञापितैस्तथादूतैः प्रवेश्यन्तेयमाग्रतः ॥ तत्रयेशुभकर्म्माणस्तान्वैसंस्मारयेद्यमः ॥ ५९ ॥ स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेणप्रियेणच ॥ धन्यायूयंमहात्मान आत्मनोहितकारिणः ॥ ६० ॥ यैस्तुदिव्यसुखार्थंहि भवद्भिःसुकृतंकृतम् ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य पर्वतेमरकण्टके ॥ ६१ ॥ दानंदत्तंतपस्तप्तं हुतं

मनुष्य जाते हैं ॥ ५७ ॥ और सफ़रखर्च को लेकर जो जातेहैं वे सुखसे यमलोक को जातेहैं इस प्रकार बुरी राहसे मनुष्य यमलोक को प्राप्तहोते हैं ॥ ५८ ॥ आज्ञा को पायेहुये दूतोंकरके यमराज के आगे पापी खड़े कियेजाते हैं वहां जो शुभकर्मों के करनेवाले हैं उनका यमराज स्वागतप्रश्न अर्थात् आपका आना बहुत अच्छा हुआ यह कहना. आसन, पाद्य और अर्घ व प्रियवचन से सत्कार करते हैं और कहते हैं कि अपने हितके करनेवाले आपलोग बड़े महात्माहो और धन्यहो ॥५९। ६० ॥ जिन आपलोगों ने दिव्यसुख के वास्ते पुण्यको कियाहै नर्मदातट में व अमरकण्टक में बैठकर ॥ ६१ ॥ दानको दियाहै, तपको कियाहै विधान से होम

और यज्ञोंको कियाहै इसीतरह इन सब कामोंको काशी, कुरुक्षेत्र,प्रयाग,पुष्कर ॥ ६२ ॥ गया, नैमिषारण्य, गङ्गासागरसङ्गम, केदार, भैरव, प्रभास, शशिभूषण ॥ ६३ ॥ रमणीक महाकालवन, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक, पापोंके धोनेवाले त्रैयम्बक वैसेही नीलकण्ठ ॥ ६४ ॥ गङ्गाद्वार, हिमद्वार और कालञ्जर पर्वत इनमें व और तीर्थों व क्षेत्रोंमें जिन्होंने यथाक्रम कियाहै ॥ ६५ ॥ ऐसे आपलोगों ने अपने जन्मके फल को पाया इसमें कोई सन्देह नहीं है अब आपलोग दिव्य स्त्रियोंके भोगसे युक्त इस विमानपर सवार होकर ॥ ६६ ॥ सुखके देनेवाले सब कामों से भरेहुये स्वर्गको जावो वहा अपनी पुण्यकी संख्या से अनगिन्ती बड़े भोगोंको भोगकर ॥ ६७ ॥ फिर

चेष्टंविधानतः ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे प्रयागेपुष्करेतथा ॥ ६२ ॥ गयायांनैमिषारण्ये गङ्गासागरसङ्गमे ॥ केदारेभैरवेचापि प्रभासेशशिभूषणे ॥ ६३ ॥ महाकालवनेरम्ये श्रीशैलेत्रिपुरान्तके॥त्रैयम्बकेधौतपापे नीलकण्ठेतथैवच ॥६४॥ गङ्गाद्वारेहिमद्वारे तथाकालञ्जरेगिरौ ॥ एतेष्वन्येषुतीर्थेषु क्षेत्रेषुचयथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ लब्धंजन्मफलञ्चैव भवद्भिर्नात्रसंशयः ॥ इदंविमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ॥ ६६ ॥ सङ्गच्छध्वंशिवंस्वर्गं सर्वकामसमन्वितम् ॥ तत्रभुक्त्वामहाभोगाननन्तान्पुण्यसंख्यया ॥ ६७ ॥ यत्किञ्चिदन्यदशुभं स्वल्पंतदपिभोक्ष्यथ ॥ आख्यातन्तुमयातावत्कल्पगातीरवासिनः ॥ ६८ ॥ आरोहन्तिविमानानि सर्वेषामुपरिस्थिताः ॥ सर्वतीर्थेषुसंख्यास्ति ह्युक्तंब्रह्मादिभिःपुरा ॥ ६९ ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तेनस्वर्गेमहीयते ॥ म्रियतेतत्रयःकश्चिद्व्रतेनानशनेनच ॥ ७० ॥ दिव्ययानंसमाश्रित्य सप्रयाति शिवालयम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् कल्पगापुण्यमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ पश्यन्तिपुण्यकर्म्माणो यमंमित्रमिवात्मनः ॥ येपु

जो कुछ तुम्हारा थोड़ा पाप भी होगा उसको भी भोगडालोगे पहले मैंने इस बातको तो कहाही है कि नर्मदातीर के रहनेवाले ॥ ६८ ॥ विमानों पर सवार सबके ऊपर रहते हैं क्योंकि सबतीर्थों में पुण्यकी गिन्ती ब्रह्माआदि देवताओं करके अगिले जमानेमें कहीगई है ॥ ६९ ॥ और वहां नर्मदातीर में जो दान दियाजाता है और स्वर्गमें पूजाजाताहै और जो कोई वहा अनशनव्रतसे मरताहै ॥ ७० ॥ वह दिव्यसवारीपर सवारहोकर शिवके स्थानको जाताहै हे राजन् ! यह नर्मदाका उत्तम

पुण्य तुमसे कहागया ॥ ७१ ॥ पुण्यकर्मों के करनेवाले यमराज को अपना मित्र ऐसा देखते हैं और जो पापकर्मों के करनेवाले हैं वे यमराज को भयानक देखतेहैं कि दाढ़ोंसे डरावना जिनका मुँहहै और टेढ़ी भौंहोंवाले जिनके नेत्रहैं खड़ेबालोंवाले, बड़ीदाढ़ीवाले, फड़फड़ाते हैं नीचे और ऊपरवाले होंठ जिनके ॥ ७२। ७३ ॥ अठारह भुजावाले, बड़े क्रूरस्वभाववाले, काले काजलके समान जिनका रूपहै सब हथियारों को हाथों में लियेहुये गर्जते हैं कालदण्ड को हाथमें लिये हैं ॥ ७४ ॥ बड़े भारी भैंसेपर सवारहैं व जलतीहुई आगके ऐसे नेत्रवाले हैं व लालेमाला व कपड़ों को पहनेहुये हैं व बड़े सुमेरुपर्वत की नाईं ऊंचेहैं ॥ ७५ ॥ प्रलयकाल के मेघोंकी

नःक्रूरकर्म्माणस्तेपश्यन्तिभयानकम् ॥ ७२ ॥ दंष्ट्राकरालवदनंभ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ॥ ऊर्द्ध्वकेशंमहाश्मश्रुं स्फुरदोष्ठाधरोत्तरम् ॥ ७३ ॥ अष्टादशभुजंक्रूरं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ सर्वायुधोद्यतकरं गर्ज्जन्तंदण्डपाणिनम् ॥ ७४ ॥ महामहिषमारूढं तप्ताग्निसमलोचनम् ॥ रक्तमाल्याम्बरधरंमहामेरुमिवोत्थितम् ॥ ७५ ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्तमिववारिधीन् ॥ ग्रसन्तमिवत्रैलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ ७६ ॥ मृत्युस्तस्यसमीपस्थः कालानलसमप्रभः ॥ कालश्चाञ्जनसंकाशः कृतान्तश्चभयानकः ॥ ७७ ॥ विविधाव्याधयस्तीक्ष्णा नानारूपाभयानकाः ॥ शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिपाणयः ॥ ७८ ॥ वज्रदंष्ट्राधरारौद्राः क्रूराश्चाञ्जनसन्निभाः ॥ सर्वायुधोद्यतकरा यमदूताश्चघातकाः ॥ ७९ ॥ एवंविधंयमंतत्र पश्यन्तिपापचारिणः ॥ निर्भयोयातिचात्यर्थं यमोवापापकारिणम् ॥८०॥ चित्रगुप्तश्च

तरह बोलते हैं मानो समुद्रों को पियेजाते हैं तीनोंलोकों को मानो खायेजाते हैं मानो आगको उगिल रहेहैं ॥ ७६ ॥ मौत उनके तीर खड़ीहै जोकि महाप्रलय के समान तेजवाली है काले काजल के समान रूपवाला बड़ा भयानक काल भी तीर वर्तमानहै ॥ ७७ ॥ अनेक रूपवाले बड़े भयानक अनेक रोग विद्यमानहैं, सांग, त्रिशूल, आंगुसको धरेहुये फँसरी, चक्र और तलवारको हाथमें लियेहुये॥ ७८ ॥ वज्रके समान दाढ़ोंवाले, बड़े डरावने, क्रूरस्वभाववाले, काजलसे काले,सब हथियारों को हाथोंमें उठायेहुये,मारनेवाले,यमदूत भी वर्तमानहैं ॥ ७९ ॥ इस तरहके यमराजको वहां पापीलोग देखते हैं यमराज भी पापीके पास बिल्कुलही निर्भय चलेजाते

हैं ॥ ८० ॥ भगवान् चित्रगुप्त भी पापियोंको धर्म सिखातेहुये तीर जातेहैं और कहते हैं कि हे पापकर्मों के करनेवाले ! हे पराई द्रव्यके हरनेवाले ! ॥ ८१ ॥ रूप और ताकत से गर्जनेवाले, पराई स्त्रियोंके भ्रष्ट करनेवाले तुम नहीं जानतेहो कि जो कोई जिस कर्म को करताहै वह उसके फलको भोगता है ॥ ८२ ॥ सो तुमलोगों ने अपने नाश करने के वास्ते पापको क्यों कियाहै अब क्यो सन्ताप करतेहो अपने कर्मोंसे पीड़ित होरहेहो ॥ ८३ ॥ अपनेही कर्म भोग कियेजाते हैं इसमें किसी का कुछ दोष नहीं है फिर चित्रगुप्त यमराजसे कहते है कि हे महीपते ! ये राजालोग दुर्बुद्धिके बलसे गर्वको प्राप्त होरहे हैं अपने घोरकर्मोंसे यहां प्राप्त हुयेहैं यह कह

भगवान् धर्म्मन्तेषांप्रबोधयन् ॥ भोभोदुष्कृतकर्म्माणः परद्रव्यापहारकाः ॥ ८१ ॥ गर्जितारूपवीर्येण परदारोपमर्द्दकाः ॥ यस्तुयत्कुरुतेकर्म्म तेनतद्भुज्यतेपुनः ॥ ८२ ॥ तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतंकृतम् ॥ किमर्थंपरितप्यध्वं पीड्यमानाःस्वकर्म्मभिः ॥ ८३ ॥ भुज्यन्तेस्वानिकर्म्माणिनास्तिदोषोत्रकस्यचित् ॥ एतेचपृथिवीपालाः संप्राप्ताश्च महीपते ॥ ८४ ॥ स्वकीयैःकर्म्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञाबलगर्विताः ॥ भोभोनृपादुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः ॥ ८५ ॥ स्वल्पकालस्यराज्यस्य किंवैतद्दुष्कृतंकृतम् ॥ भवद्भीराज्यलोभेन मोहेनान्यायवृत्तिभिः ॥ ८६ ॥ यद्गृहीतंफलन्तस्य यूयंभुङ्ग्ध्वंयथातथम् ॥ कुत्रराज्यंकलत्रंवायदर्थमशुभंकृतम् ॥ ८७ ॥ तत्सर्वस्वंपरित्यज्य यूयमेकाकिनस्तथा ॥ त्वद्बान्धवानपश्यन्ति येनविध्वंसिताःप्रजाः ॥ ८८ ॥ यमदूतैःपात्यमाना अधुनाकीदृशम्भवेत् ॥ एवंबहुविधैर्वाक्यैरुप

कर फिर राजाओं से कहतेहैं कि हे प्रजाओंके नाश करनेवाले, बुरी चालवाले, राजालोगो ! ॥ ८४ ।८५ ॥ तुमलोगोंने थोडे दिनकी राज्यके लिये ऐसा पाप क्यों किया मूढ़ता के कारण अनीति से चलनेवाले आपलोगोंने राज्यके लोभसे ॥ ८६ ॥ जो पाप कियाहै अब उसके फलको ठीक २ तुमलोग भोगो कहां राज्यहै और स्त्री कहां है जिनके वास्ते तुमलोगोंने पापको कियाहै ॥ ८७ ॥ सो अब तुमलोग अपने सर्वस्वको छोड़कर अकेले यहां आयेहो अब तुम्हारे भाई लोग तुमको नहीं देखते हैं जिनके वास्ते तुमलोगोंने प्रजाओं का नाश करदिया ॥ ८८ ॥ अब इससमय में यमदूत तुमको गिरारहेहैं कहो अब क्या होसक्ताहै ऐसी २ अनेक बातोंसे यमराजसे

रिसवाये गये वे ॥ ८९ ॥ हे पार्थिव ! चुपचाप होरहे अपने कर्मोंको शोचते है धर्मराज उनराजाओं से ऐसी बातें कहकर तदनन्तर उनके पापोके छोड़ानेके वास्ते यमराज दूतोंसे बोले कि हे चण्ड ! और हे महाचण्ड ! इन राजाओं को लेकर ॥ ९०।९१ ॥ नरकरूपी आगसे इनको पापोंसे क्रमसे शुद्धकरो तदनन्तर बड़ीजल्दी से उठकर उनराजाओं के पावोंको पकड़कर और बड़ेजोरसे घुमाकर यमराज के दूत फेंकतेहुये सब दूत बडेजोर से लोहेके ऐसे वृक्ष जिसमें हैं ऐसे ताते बडेभारी पृथिवीतल मे उनको फेकते है तदनन्तर वे सब राजालोग मारसे शीघ्र चूर्ण करदियेगये ॥ ९२।९३।९४ ॥ हे युधिष्ठिर ! तब वेहोश हाथ पांव चलाने की चेष्टासे रहितमूर्च्छित होजातेहैं

लब्धायमेनते ॥ ८९ ॥ शोचन्तिस्वानिकर्म्माणि तूष्णींभूताश्चपार्थिव ॥ इतिवाक्यैःसमादिश्य नृपांस्तान्धर्म्मराट्तत: ॥ ९० ॥ तेषांपापविशुद्ध्यर्थं यमोदूतानथाब्रवीत् ॥ भोभोश्चण्डमहाचण्ड गृहीत्वानृपतीनिमान् ॥ ९१ ॥ विशोधयध्वंपापेभ्यः क्रमेणनरकाग्निना ॥ ततश्शीघ्रंसमास्थाय नृपान्संगृह्यपादयोः ॥९२॥ भ्रामयित्वातुवेगेन चिक्षिपुर्यमकिङ्कराः ॥ सर्वेवेगेनमहता सुप्रतप्तेमहीतले॥९३॥ आस्फालयन्तिमहति चाश्मसारमयद्रुमे ॥ ततस्तेसर्वएवाशु प्रहारैर्जर्ज्जरीकृताः ॥ ९४ ॥ विसंज्ञाश्चतदासन्ति निश्चेष्टाश्चयुधिष्ठिर ॥ ततस्तेवायुनास्पृष्टाः शनैस्तुजीविताःपुनः ॥९५॥ तानानीयविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्तिनरकार्णवे ॥ अष्टाविंशतिरेवाद्यास्तीव्रानरककोटयः ॥ ९६ ॥ सप्तमस्यतलस्यान्ते घोरेतमसिसंस्थिताः ॥ अतिघोराचरौद्राच तथाघोरतमास्थिता ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी घोररूपाचपञ्चमी ॥ षष्ठीतरणताराख्या सप्तमीचभयानका ॥ ९८ ॥ अष्टमीकालरात्रिश्च नवमीचघटोत्कटा ॥ दशमीचैवचण्डाच महाचण्डाततोप्यधः ॥ ९९ ॥ चण्डकोलाहलाचैव प्रचण्डाचवराग्निका ॥ जघन्याह्यवरालोमा भीषणीचैवनायिका ॥ १०० ॥

तदनन्तर फिर हवाके लगने से धीरे २ वे जीआते है ॥ ९५ ॥ फिर उनको शुद्धकरनेके वास्ते लेकर नरकसमुद्रमें डालते हैं पुराने अट्ठाईस करोड विकराल नरक ॥ ९६ ॥ सातवे पाताल के नीचे घोर अन्धकार में भलीभांति स्थित हैं उन एक २ कोटि के ये नामहैं अतिघोरा १ रौद्रा २ घोरतमा ३ ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी ४ पांचवीं घोररूपा ५ छठीं तरणतारा ६ सातवीं भयानका ७ ॥ ९८ ॥ आठवीं कालरात्रि ८ नवीं घटोत्कटा ९ दशवीं चण्डा १० तिसके नीचे महाचण्डा ११ ॥ ९९ ॥

चण्डकोलाहला १२ प्रचण्डा १३ वराग्निका १४ जघन्या १५ अवरालोमा १६ भीषणी १७ नायिका १८ ॥१००॥ कराला १९ विकराला २० वज्रविंशति २१ अस्ता २२ पञ्चकोणा २३ सुदीर्घा २४ परिवर्तुला २५॥१॥ सप्तभौमा २६ अष्टभौमा २७ और अट्ठाईसवीं दीर्घमाया २८ये घोर नरककोटि नामोंसे कहीगईहैं ॥२॥ पापीप्राणियों के वास्ते ये अट्ठाईस कोटि गिन्तीसे कहीगई हैं तिनके क्रमसे पाच पाच नायक जाननेयोग्य हैं ॥३॥ हे विशाम्पते ! उन हरएक कोटिके नायकोंको नामसे कहतेहैं उनमें पहला रौरवहै जहां प्राणी रोते हैं ॥ ४ ॥ दूसरा महारौरव है जिसमें पीड़ाओंसे बड़े २ भी रोतेहैं तदनन्तर तम, शीत, उष्ण ये पांच पहली कोटि के नायक

करालाविकरालाच वज्रविंशतिराश्रिता ॥ अस्ताचपञ्चकोणाच सुदीर्घापरिवर्तुला ॥ १ ॥ सप्तभौमाष्टभौमाच दीर्घमायेतिहापरा ॥ इतितानामतःप्रोक्ता घोरानरककोटयः ॥ २ ॥ अष्टाविंशतिरेतास्तु भूतानांमानत स्मृताः ॥ तासांक्रमेणविज्ञेयाः पञ्चपञ्चैवनायकाः ॥ ३ ॥ प्रत्येकंसर्वकोटीनां नामतस्तुविशाम्पते ॥ रौरवःप्रथमस्तेषां रुदन्तियत्रदेहिनः ॥ ४ ॥ महारौरवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्तिहि ॥ तमःशीतंतथाचोष्णं पञ्चैतेनायकाःस्मृताः ॥ ५ ॥ अघोरःप्रथमस्तीक्ष्णः पद्मःसंजीवनःशठः ॥ महामायोविलोमश्च करटकःकटकःस्मृतः ॥ ६ ॥ तीव्रोवामःकरालश्च किङ्करालः प्रकम्पनः ॥ महाचक्रःसुपद्मश्च कालसूत्रःप्रगर्ज्जनः ॥ ७ ॥ सूचीमुखःसुनेमिश्च खादकःसुप्रपीडितः ॥ कुम्भीपाकःसुपाकश्च क्रकचश्चसुदारुणः ॥ ८ ॥ अङ्गारराशिःपचनः असृक्पूयभवस्तथा ॥ सुतीक्ष्णःशुण्डशकुनी महासंवर्तकःक्रतुः ॥ ९ ॥ तप्तजन्तुःपङ्कलेपः पूतिमांश्चह्रदस्त्रपुः ॥ उच्छ्वासश्चनिरुच्छ्वासः सुदीर्घःकूरशाल्मली ॥ १० ॥ उच्छ्रितस्तुम

कहेगये हैं ॥ ५ ॥ अब दूसरी आदि कोटियों के नायकों को कहते हैं तिसमें दूसरी कोटि का पहला अघोर है फिर तीक्ष्ण, पद्म, सञ्जीवन, शठ, महामाय, विलोम, करटक, कटक ॥ ६ ॥ तीव्र, वाम, कराल, किङ्कराल, प्रकम्पन, महाचक्र, सुपद्म, कालसूत्र, प्रगर्ज्जन ॥ ७ ॥ सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रपीडित, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, सुदारुण ॥ ८ ॥ अङ्गारराशि, पचन, असृक्पूयभव, सुतीक्ष्ण, शुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु ॥ ९ ॥ तप्तजन्तु, पङ्कलेप, पूतिमान्, ह्रद, त्रपु, उच्छ्वास,

निरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूरशाल्मली ॥ १० ॥ उष्ट्रित, महानाद, प्रवाह, सुप्रवाहन, वृषाश्रय, वृषाश्व, सिंहानन, व्याघ्रानन, गजानन ॥ ११ ॥ श्वानन, शूकरानन, अ-
जानन, महिपानन, मेषानन, मूषानन, खरानन, ग्राहानन, कुम्भीरानन, नक्रानन, महाघोर, भयानक ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्य, स्वभक्ष्य, सर्वकर्मा, अश्व, वायस, गृध्रोलूक,
उलूक, शार्दूल, कपि, कच्छुर ॥ १३ ॥ गण्डक, पूतिवक्त्र, रक्तास्य, पूतिमूत्रिक, कणधूम, तुषाराग्नि, कृमिमान्, निरय ॥ १४ ॥ आतोद्य, प्रतोद्य, रुधिरोद्य, भोजन,

हानादः प्रवाहःसुप्रवाहनः ॥ वृषाश्रयोवृषाश्वश्च सिंहव्याघ्रगजाननाः ॥ ११ ॥ श्वशूकराजमहिषमेषमूषखरान
नाः ॥ ग्राहकुम्भीरनक्रास्या महाघोराभयानकाः ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्याःस्वभक्ष्याश्च सर्वकर्माश्ववायसाः ॥ गृध्रोलूक
उलूकश्च शार्दूलकपिकच्छुराः ॥ १३ ॥ गण्डकःपूतिवक्त्रश्च रक्तास्यःपूतिमूत्रिकः ॥ कणधूम्रस्तुषाराग्निः कृमिमा
न्निरयस्तथा ॥ १४ ॥ आतोद्यश्चप्रतोद्यश्च रुधिरोद्यश्चभोजनम् ॥ कालात्मगोनुभक्तश्च सर्वभक्तस्सुदारुणः ॥ १५ ॥ क
र्कटस्तुविशालश्च विकटःकटपूतनः ॥ अम्बरीषःकटाहश्च कष्टावैतरणीनदी ॥ १६ ॥ सुतप्तोलोहशङ्कुश्च एकपादोश्रुपू
रणः ॥ असिपत्रवनंघोरमस्थिलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ तिलातसीक्षुयन्त्राणि कूटपापप्रमर्द्दनाः ॥ महाचुल्लीविचुल्लीच
तप्तलोहमयीशिला ॥ १८ ॥ पर्वतःक्षुरधाराख्यो मयोयमलपर्वतः ॥ सूचीविष्ठान्धकूपाश्च पतनःपातनस्तथा ॥ १९ ॥
मुशलीवृषलीचैवाशिवासङ्कटलातथा ॥ तालपत्रासिगहनंमहामोहकएवच ॥ २० ॥ संमोहनोस्थिभङ्गश्च तप्ताचलम

कालभक्त, आत्मभक्ष, गोऽनुभक्त, सर्वभक्ष, सुदारुण ॥ १५ ॥ कर्कट, विशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीप, कटाह, कष्टवाली वैतरणी नदी ॥ १६ ॥ सुतप्त, लोहशङ्कु,
एकपाद, अश्रुपूरण, घोर असिपत्रवन, प्रतिष्ठित अस्थिलिंग ॥ १७ ॥ तिलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इक्षुयन्त्र, कूट, पाप, प्रमर्दन, महाचुल्ली, विचुल्ली, तातेलोहेकी चट्टान॥१८॥
क्षुरधारनामका पर्वत, मय, यमलपर्वत, सूचीकूप, विष्ठाकूप, अन्धकूप, पतन, पातन ॥१९॥ मुशली, वृषली, अशिवा, सङ्कटला, तालपत्रवन, असिपत्रवन, महामोहक ॥ २० ॥

संमोहन, अस्थिभङ्ग, तप्ताचलमय, अगुण, बहुदुःख, महादुःख, कश्मल,यमल ॥२१॥ हालाहल,विरूप,स्वरूप,च्युतमानस,एकपाद, त्रिपाद और सबको प्रकट होरहा तीव्र भी है ॥ २२ ॥ ये क्रमसे अट्ठाईस पँचकड़ी कहीगई हैं ॥१२३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनरकवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि कोटियों के सदृश पांचहीं पांच नायक भी हैं रौरव से लेकर मरीचि तक सौ नरक कहेगये हैं ॥ १ ॥ उसमें चालीस और अधिक हैं ऐसा महानरकों का मण्डलहै अपने कर्मों के हिसाब से मनुष्य लोग एक २ के क्रमसे नरकोंको भोगते हैं ॥२॥ दुष्ट कामनाओंसे जो कुकर्म जमा कियेगये उनसे शीघ्रही

योगुणः ॥ बहुदुःखोमहादुःखः कश्मलोयमलस्तथा ॥२१॥ हालाहलोविरूपश्च स्वरूपश्च्युतमानसः ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चविदितस्ततः ॥ २२॥ अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशःपञ्चकाःस्मृताः ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे नरकवर्णनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ कोटीनामनुरूपाश्च पञ्चपञ्चैवनायकाः ॥ रौरवाद्यंमरीच्यन्तं नरकानांशतंस्मृतम् ॥ १ ॥ चत्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ॥ एकक्रमात्प्रभुज्यन्ते नरैःकर्म्मानुरूपतः ॥ २ ॥ कामनाभिर्विरूपाभिरकर्म्मप्रचयाद्द्रुतम् ॥ सुगूढयाततोध्वान्ते तप्तश्शृङ्खलयानराः ॥ ३ ॥ महावृक्षस्यशाखायां लम्बयन्तेयमकिङ्करैः ॥ ततस्तान्सर्वतश्चैव दोलयन्तिहिकिङ्कराः ॥ ४ ॥ दोलिताश्चातिवेगेन निःसंज्ञांयान्तिपापिनः ॥ अन्तरिक्षेस्थितानाञ्च लोहभारशतंतदा ॥ ५ ॥ पादयोर्बध्यतेतेषां यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ तेनभारेणमहता भृशंसन्तापितानराः ॥ ६ ॥ ध्याय

बहुत पोढ़ी तपीहुई जंजीरसे बांधकर अँधियारेमें ॥३॥ बड़े वृक्षकी डालमें मनुष्योंको यमदूत लटकातेहैं तदनन्तर फिर दूतलोग उनसबको बड़ेजोरसे झुलातेहैं बडेजोर से झुलायेगये वे पापी बेहोश होजाते हैं आसमान में लटकतेहुये उन पापियोंके पावोंमें सौ भार लोहा जबरदस्त यमदूत बांध देतेहैं तब उस बड़ेभारसे मनुष्य बडे

१ भार चौंसठ अढ़ैया को कहते हैं ॥

न्तिस्वानिकर्म्माणि तूष्णीन्तिष्ठन्तिनिश्चलाः ॥ ततःक्रमादग्निवर्णैर्लोहदण्डैःसकण्टकैः ॥ ७ ॥ निहन्यन्तेप्रयत्नेन यमदूतैश्चमस्तके ॥ विष्ठापूर्णेततःकूपे कृमीणांनिलयेततः ॥ ८ ॥ समन्तात्किङ्करैर्घोरैः पच्यन्तेपापकारिणः ॥ ततः क्षारेणनीरेण वह्नावपिविशेषतः ॥ ९ ॥ वार्ताकवत्प्रपच्यन्तेतप्तेलोहकटाहके ॥ अमेध्यकूपेप्रक्षिप्य जलजन्तुसमाकुले ॥ १० ॥ मेदोसृक्पूयपूर्णायां वाप्यांक्षिप्तास्तुतेततः ॥ भक्ष्यन्तेकृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्चवायसैः ॥ ११ ॥ पच्यन्तेमांसवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु ॥ प्रोताःशूलेषुतीक्ष्णेषु नराःपापसमन्विताः ॥ १२ ॥ पच्यन्तेपापिनस्तेवै यमदूतैरनेकधा ॥ तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषुततःपुनः ॥ १३ ॥ तेषांचोत्पाट्यतेजिह्वा असत्याप्रियवादिनाम् ॥ सुहढेनसुतप्तेन प्रपीड्योरसिपादतः ॥ १४ ॥ मिथ्यागमप्रयुक्तस्य द्विजस्यागितथैवच ॥ यज्ञार्थंकोशविस्तीर्णं भल्लैस्तीक्ष्णैःप्रतोद्यते ॥ १५ ॥ निर्भर्त्सयन्तियेमूढा मातरंपितरंगुरुम् ॥ तेषांवक्त्रंवालुकाभिर्मुहुरापूर्य्यसिच्यते ॥ १६ ॥ ततःक्षारेणदीप्तेन पय

सन्तापको प्राप्त होते हैं ॥ ४।५।६ ॥ अपने कर्मोंको याद करते हैं और वेतहाशे चुप रहजाते हैं तदनन्तर फिर क्रमसे कांटेवाले आगसे धँधेहुये लोहेके डण्डाओंसे ॥ ७ ॥ यमदूत यत्नसे पापियों के माथे में मारते हैं तदनंतर विष्ठासे भरेहुये कीडे जिसमें पड़े हैं ऐसे कुयें में डालते हैं ॥ ८ ॥ चारोंतरफ से घोर यमदूत पाप करनेवालों को पकाते हैं तदनन्तर खारीपानी से आगमें विशेष औटते हैं ॥ ९ ॥ व तातेलोहे के कड़ाहमें बैंगन की तरह पकाते हैं व जलके जीवोंसे भरेहुये गन्दे कुयें में डालकर ॥ १० ॥ तदनन्तर चर्बी, रक्त और पीवसे भरीहुई बावली में डाले गये वे पापीलोग कीडों और पैनी लोहेकीसी चोंचवाले कौवोंसे खायेजाते हैं ॥ ११ ॥ बहुत पैने त्रिशूलों में पोहेहुये पापी मनुष्य दगदगाते हुये अङ्गारोंके ऊपर कबाब की तरह पकायेजातेहैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर फिर तेलसे भरेहुये ताते कडाहोंमें यमदूत अनेकप्रकारसे उन पापियोंको चुराते हैं ॥ १३ ॥ पांवसे छातीमें दबाकर बडी पोढ़ी ताती सँगसी से झूठ और कडुई बातों के कहनेवाले उन पापियों की जीभ निकाली जातीहैं ॥ १४ ॥ बहुत द्रव्यको यज्ञके वास्ते झूंठेशास्त्र से जो ब्राह्मण खर्च करताहै उसकी भी जीभ पैने भालाओंसे छेदीजाती है ॥ १५ ॥ जो मूर्ख माता,

पिता और गुरुको धमकाते हैं उनका मुहँ बालू से भरके फिर पानीसे सींचाजाता है ॥ १६ ॥ तदनन्तर खारी व गर्मपानीसे उनका मुहँ बारबार जल्दीसे भरते हैं फिर जलतेहुये तेलमे अत्यन्त भरतेहैं ॥१७॥ कीडोसे भरीहुई विष्ठापर से कुत्तोंकी तरह यमदूतों करके निकालेजाते हैं डण्डेसे मारकर लोहेके सेमर में बांधेजातेहैं ॥१८॥ फिर बडे जबर डरावने दूत उनको पीछेसे मारतेहैं व दँतीले पोढ़े गोंठिले आरासे ॥१९॥ शिरसे लेकर नीचेतक अपने घोरकर्मो के कारणसे फाड़दिये जातेहैं यमदूत पापियों को उन्हींके मांसको खिलाते और उन्हीके रक्तको पिलातेहैं ॥ २० ॥ जिन मूर्खोंने अन्न व जलको नहीं दियाहै और न इसके देनेकी तारीफ ही की है वे पापी मुगदरों

सातुपुनःपुनः ॥ द्रुतंसम्पूर्य्यतेत्यर्थं तप्ततैलेनतन्मुखम् ॥ १७ ॥ विष्ठाभिः कृमिपूर्णाभिः श्वानवच्चरणैर्भटैः ॥ परिपी ड्यविषाणेन प्रविष्टालोहशाल्मलीम् ॥ १८ ॥ हन्यन्तेपृष्ठदेहेषु पुनर्भीमैर्महाबलैः ॥ दन्तुरेणातिकुण्ठेन क्रकचेनब लीयसा ॥ १९ ॥ शिरःप्रभृतिपाट्यन्ते घोरैःकर्म्मभिरात्मजैः ॥ खादयन्तिस्वमांसानि पाययन्तिस्वशोणितम्॥२०॥ अन्नंपानंनदत्तंयैर्मूढैर्नाप्यनुमोदितम् ॥ इक्षुवत्तेप्रपीड्यन्ते जर्ज्जरीकृत्यमुद्गरैः ॥ २१ ॥ असितालवनेघोरे छिद्यन्तेख ण्डखण्डशः ॥ सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्ततःशूलेप्ररोपिताः ॥ २२ ॥ चाचल्यमानाःकृष्यन्ते नम्रियन्तेतथापिच ॥ देहा दुत्पाट्यतेमांसं तेषामस्थीनिमुद्गरैः ॥ २३ ॥ बहुशःकृष्यतेतूर्णं यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥ तेनुच्छ्वासेनानुच्छ्वासास्तिष्ठन्तिन रकेचिरम् ॥ २४ ॥ उच्छ्वासेचसदोच्छ्वासा बालुकावदनावृताः ॥ रौरवेपुतुदन्तेवै पीड्यन्तेविविधैश्चरैः ॥ २५ ॥ महारौ

से चूरकरके ईखकी तरह पेरेजाते हैं ॥ २१ ॥ तलवार सरीखे जिनके पत्तेहैं ऐसे ताडके वृक्षोंके घोर जंगलमें टुकड़े २ कर काटेजाते हैं व सूजाओंसे सब अंग जिनके छेदेगये ऐसे पापी पीछेसे सूलीपर चढ़ायेजाते हैं ॥ २२ ॥ हिलायेजाते और खींचेभी जाते पर मरते नहीं हैं उनका मांस देहसे निकालाजाता है और हड्डियां मुगदरों से चूर कीजाती है ॥ २३ ॥ बड़े जबरदस्त यमदूत इसीतरह बहुतबार जल्द उनके मांसको खींचते हैं इससे वे लोग बेसांक बहुत कालतक नरक में पडे रहते हैं ॥ २४ ॥ बालूमे ठमेमुहँवाले पापी श्वास नहीं लेसक्के हैं रौरवनरक में बड़ी तकलीफ पाते हैं और वहां अनेकप्रकार के दूतभी उनको बडी पीडादेते है ॥ २५ ॥ महारौरव

की तकलीफों से बड़े २ भी रोतेहैं मुख, लिंग, गुदा, पसुली, पांव, छाती और माथे में ॥ २६ ॥ बड़े पैने तातेलोहे के मुगदरों से यमदूत उनको मारते हैं जो अपने रूप से औरोंकी निन्दा करते हैं व पराई स्त्रियोंको हँसते हैं ॥ २७ ॥ और जो स्त्रियां और पुरुषों को लपटाती हैं अपने पतियोंके पास नहीं रहतीं व जो पुरुष स्त्रियोंसे कहते हैं कि कहां बड़ी जल्दीसे जारही हो हमारी याद नहीं करती हो हमारी तुम्हारी प्रीति बहुत पुरानी है ॥ २८ ॥ ऐसी स्त्रियोंसे यमदूत कहते हैं कि तुमने अपने पतिको धोखादिया और पापों से अन्धे अन्य पुरुषको सुखसे ग्रहण किया ऐसे कहकर उनको लोहे के बटुआ में डालकर धीरे २ पकाते हैं ॥ २९ ॥ बड़ेजोर आग में उनको

रवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्तिहि ॥ उपस्थास्येगुदेपार्श्वे पादेचोरसिमस्तके ॥ २६ ॥ निहन्यन्तेभटैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहमुद्गरैः ॥ निन्दन्तियेस्वरूपेण परदारान्हसन्तिच ॥ २७ ॥ आलिङ्गन्तिपतीनन्यान्नविन्दन्तिस्वकान्स्त्रियः ॥ किंसुधावसिवेगेन नस्मरेरतिशाश्वतीम् ॥ २८ ॥ वञ्चितश्चत्वयासर्ता पापान्धश्चयथासुखम् ॥ लोहकुम्भेविनिक्षिप्ताः पाचिताश्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ समृद्धाग्नौप्रपाच्यन्ते प्रवेश्यन्तेशिलासुच ॥ क्षिप्यन्तेचान्धकूपेषु दश्यन्तेजगरैर्भृशम् ॥ ३० ॥ येनिन्दन्तिमहात्मानमाचार्य्यंधर्म्मदर्शिनम् ॥ शिवभक्तंचविप्रञ्च शिवधर्म्मंचशाश्वतम् ॥ ३१ ॥ तेषामुरसिकण्ठेच जिह्वायान्देहसन्धिषु ॥ कीलकैरोष्ठपुटके कील्यन्तेयमकिङ्करैः ॥ ३२ ॥ एवमादिमहाघोरा यातनाःपापकर्म्मिणाम् ॥ एकैकनरकेज्ञेयाः शतशोथसहस्रशः ॥ ३३ ॥ यातनागहनाराजन् सर्वेषांपापकर्म्मिणाम् ॥ इत्येवंयातनानन्ताःसर्वेषुनरकेषुच॥३४॥कस्तावर्षशतेनापि वक्तुंशक्नोतिमानवः ॥ इत्येवंविविधैर्घोरैः पात्यमानाःस्वकर्म्मभिः॥३५॥

भूंजतेहैं और ताती पत्थरों की चट्टानों पर बिठाते हैं अंधवाकुवों में उनको डालते हैं और अजगर सांपोंसे अत्यन्त कटाते हैं ॥ ३० ॥ जो धर्मके जाननेवाले महात्मा आचार्य्य की निन्दा करतेहैं अथवा शिवजी के भक्त ब्राह्मण व पुराने शिवधर्म की निन्दा करते हैं ॥ ३१ ॥ उनके छाती, गला, जीभ, देहके जोड और ओठोंको यमदूत कीलोंसे कीलते है ॥ ३२ ॥ ऐसी २ बडीघोर पाप करनेवाले प्राणियों को एक २ नरकमे सैकडों हजारों तकलीफें जाननेयोग्य हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन्! सब पापकर्मियो को बड़ी कठिन तकलीफै है ऐसी २ अनन्त पीडा सब नरकों मे हैं ॥ ३४ ॥ सौ वर्षसे भी उनको कहनेको कौन पुरुष समर्थ होसक्ता है ऐसे २ बडेघोर अनेकतरह

के अपने कर्मोंसे क्रमसे सब नरकोंमें डालेजाते और पकायेजाते है इसमें कुछ सन्देह नहीं है महापातक करनेवाले जो पापी हैं वे सब नरकों में ॥ ३५ । ३६ ॥ जबतक चन्द्रमा और नक्षत्र रहतेहैं तबतक अनेकतरह के दूतोंसे पीड़ाको पातेहैं इसीतरह सब पातकी भी इन्हीं नरकों में हमेशा पड़े रहते हैं और उपपातकी जो मनुष्य हैं वे इनसे आधे समयतक को जाते हैं व चारों दिशाओं के नरकों में पचा करतेहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३७ । ३८ ॥ हे तात ! यह नहीं जानपड़ता है कि कब किसकी मौत होगी अकस्मात् मौतके आजानेपर फिर वर्ष दिन कौन मनुष्य पासक्ता है ॥ ३९ ॥ जिससे सब छोड़कर निश्चय अकेलेही जावोगे इससे सब

क्रमात्सर्वेषुपच्यन्ते नरकेषुनसंशयः ॥ महापातकिनश्चापि सर्वेषुनरकेषुच ॥ ३६ ॥ आचन्द्रतारकंयावत् पीड्यन्ते विविधैश्चरैः ॥ तथापातकिनस्सर्वे निरयेष्वेषुसर्वदा ॥ ३७ ॥ चतुर्दिक्षुसुपच्यन्ते नरकेषुनसंशयः ॥ उपपातकिनश्चापि तदर्द्धंयान्तिमानवाः ॥ ३८ ॥ मृत्युर्नज्ञायतेतात कदाकस्यभविष्यति ॥ प्राप्तेचाकस्मिकेमृत्यौ वर्षंविन्दतिकोनरः ॥ ३९ ॥ परित्यज्ययतःसर्वमेकाकीयास्यसिध्रुवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यधर्म्मपरोभव ॥ ४० ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं नरकाणान्तुलक्षणम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनरकयातनानुवर्णनोनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ तीर्य्यतेकेनधर्म्मेणसंसाराब्धिःसुदुस्तरः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तेननिर्भर्त्सितैःपापैः कथ्यमानां कथांशृणु ॥ १ ॥ रक्तोमूढश्चलोकोयमकार्य्येसंप्रवर्तते ॥ नचात्मानंविजानाति नपरंनचदैवतम् ॥ २ ॥ नशृणोतिपरं

यत्नोंसे सच्चेधर्म में तत्पर हूजिये ॥ ४० ॥ यह सब तुमसे नरकों का लक्षण कहा गयाहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनरकयातनाऽनुवर्णनोनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि किस धर्म से यह दुस्तर संसारसमुद्र तरा जासक्ता है, तब मार्कण्डेयजी बोले कि यमराजजी से धमकाये गये पापियों की कहीहुई कथा को सुनो ॥ १ ॥ पापी कहते हैं कि यह लोक विषयोंमें फँसाहुआ इसीसे मूढ़ होरहा सो कुकर्ममें फँसता है आत्मा को नहीं जानताहै व न परमेश्वर और न देवताही को

जानताहै ॥ २ ॥ उत्तम अपने कल्याण की बातको नहीं सुनता है और आंखें भी हैं पर नहीं देखता है व बराबर सड़कपर धीरे २ भी चलाजाताहै परन्तु पग२ पर गिरताहै ॥ ३ ॥ ऐसे कहेगये धर्मराजजीने उन पापियोंसे जिस वृत्तान्तको थोड़े में कहाहै उसीको इस समय मुझसे विस्तारसे तुम सुनो ॥ ४ ॥ पापियोंसे यमराज बोले कि हमारा छोड़ाहुआ मनुष्य पण्डितों से भी समझाया जाता परन्तु नहीं जानता इस संसार में अनेकतरह के राग और लोभों के वशसे मनुष्य बड़ा क्लेश पाता है ॥ ५ ॥ गर्भ में पड़ने से फिर कहेहुये शास्त्र को नहीं समझता है और स्वर्ग व मोक्षके देनेवाले कर्म को मनुष्य नहीं सुनता है ॥ ६ ॥ इस लोकमे सब

श्रेयः सतिचक्षुषिनेक्षते ॥ समेपथिशनैर्गच्छन् प्लवतेस्मपदेपदे ॥ ३ ॥ एवमुक्तोधर्म्मराजः संक्षेपात्पापदेहिनाम् ॥ विस्तरेणयदाचख्यौ तेषांतच्छृणुसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ यमउवाच ॥ मयामुक्तोनजानाति बोध्यमानोबुधैरपि ॥ संसारे क्लिश्यतेनाना रागलोभवशान्नरः ॥ ५ ॥ गर्भपातेनभावेनशास्त्रमुक्तंनबुध्यते ॥ नरोनश्रूयतेकर्म्म स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥ ६ ॥ सन्तप्यतिशिवध्याने सर्वकामार्थसाधने ॥ नरकादात्मनःश्रेयो यदत्रमहदद्भुतम् ॥ ७ ॥ प्रेतभूतानरास्सर्वे यमलोकंसमागताः ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथोद्दिष्टम्पुरातनम् ॥ ८ ॥ सूर्य्येणकथितंत्वासीन्नर्म्मदाख्यानमुत्तमम् ॥ देवतानांपितॄणाञ्च ममपित्रानुकम्पया ॥ ९ ॥ सपादलक्षमधिकं ब्रह्मणाकथितंरवेः ॥ तत्रश्रुतंमयाकृत्स्नं ब्रह्मणातुशिवाच्छ्रुतम् ॥ १० ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यतु ॥ जम्बूद्वीपंसमासाद्य मानुषींयोनिमाश्रितः ॥ ११ ॥

इच्छा और सब प्रयोजनों के सिद्धकरनेवाले शिवजी के ध्यान में तकलीफ पाता है जोकि नरक से छुडानेवाला अपना परम अद्भुत कल्याण है ॥ ७ ॥ प्रेतरूप सब मनुष्य यमलोक को आते हैं अब हम कथा को कहते हैं जैसी अगिले जमाने में कहीगई है ॥ ८ ॥ हमारे पिता सूर्यने कृपाकरके देवता और पितरोंसे नर्मदा के उत्तम आख्यान को कहाथा ॥ ९ ॥ वहां ब्रह्माजीने सवालाख श्लोकका पुराण सूर्य से कहाथा व हम अपने पितासे सब सुना और पिताने ब्रह्माजी से सुना व ब्रह्माजी ने शिवजी से सुना ॥ १० ॥ शिवजी ने पहिले पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेय से कहा इस जम्बूद्वीप में आकर और मनुष्यजन्मको पाया ॥ ११ ॥

फिर भी सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदादेवी के जो आश्रित नहीं होता है अर्थात् स्नान, तैरना, जलपीना और दानआदि कामों को नहीं करता है ॥ १२ ॥ तो इस लोकमें पापी मनुष्यों को गति देनेवाली और कौन होसक्ती है पापों की हरनेवाली महादेवी नर्मदा का जो ध्यान करते हैं ॥ १३ ॥ उनके पाप नाश होजाते हैं जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होजाता है जो नर्मदा को याद करताहै अथवा जो अपनी वाणी से कहताहै ॥ १४ ॥ परलोकमें गयेहुये उस मनुष्य को यमदूत नहीं सताते हैं जो पापी नीच मनुष्य नर्मदा को कहता है ॥ १५ ॥ वह हमारे कहे हुये नरकोंको कभी नहीं जाताहै व वहां गङ्गाआदि नदियां और अनेक प्रकार के

लोकेस्मिन्गतिदा नाश्रयेन्नर्म्मदान्देवीं सप्तकल्पवहान्तुयः ॥ स्नानावगाहनात्पानात्तथादानक्रियादिभिः ॥ १२ ॥ लोकेस्मिन्गतिदा कान्या पापोपहतचेतसाम् ॥ येध्यायन्तिमहादेवीं नर्मदांपापहारिणीम् ॥ १३ ॥ अघानितेषांनश्यन्ति तमःसूर्य्योदये यथा ॥ नर्म्मदांसंस्मरेद्यस्तु कीर्तयेद्यस्तुवागिरा ॥ १४ ॥ परलोकंसमायातो यमदूतैर्नबाध्यते ॥ नर्म्मदांकीर्तयेद्यस्तु पापकर्म्मानराधमः ॥ १५ ॥ नरकान्समयोद्दिष्टान्नचक्रामतिकर्हिचित् ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्तत्र तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १६ ॥ रेवातेजःप्रतापेन शुद्धिङ्गच्छन्तितत्क्षणात् ॥ नरकस्थस्स्मरेद्यस्तु मेकलान्तुहरंहरिम् ॥ १७ ॥ मुच्यतेयमदूतैस्सतत्क्षणान्नात्रसंशयः ॥ यदितिष्ठतिवैदूर्य्यपर्वतेमरकण्टके ॥ १८ ॥ ॐकारःपरमेशानो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ किमर्थंत्विहशोचन्ति पापोपहतचेतसः ॥ १९ ॥ सिद्धेश्वरंसिद्धलिङ्गं लोकानुग्रहकारकम् ॥ यज्ञेश्वरंचमध्येतु तत्रैवशशिभूषणम् ॥ २० ॥ नर्म्मदादक्षिणेभागे लिङ्गञ्चैवमहेश्वरम् ॥ चतुर्थंकपिलेशञ्चशिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥ २१ ॥ येर्चयन्तिस

करोड़ों तीर्थ ॥ १६ ॥ नर्मदा के तेज व प्रताप से उसीक्षण शुद्धिको प्राप्त होते हैं व नरक में पडाहुआ भी जो नर्मदा अथवा हरिहर का स्मरण करता है ॥ १७ ॥ वह उसीक्षण यमदूतों से छूटजाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है और जो वैदूर्यपर्वत व अमरकण्टक पर भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले सबके मालिक ॐकारजी वर्त्तमानहैं तो पापीलोग यहां क्यों शोच करते हैं ॥ १८ । १९ ॥ लोकोंपर दया करनेवाला सिद्धलिंग सिद्धेश्वर तथा यज्ञेश्वर वहीं बीचमें शशिभूषण ॥ २० ॥ नर्मदा

के दक्षिण तरफ महेश्वर लिंग चौथे कपिलेश्वर जहां विद्यमान हैं उसको विद्वान् लोग शिवक्षेत्र जानते हैं ॥ २१ ॥ इनका जो सदा फूल, धूप, आरती और तर्पण से भक्तिपूर्व्वक पूजन करते हैं वे नरकसे भी शिवलोकको जातेहैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २२ ॥ हे अनघ ! यह सब आपसे कहा जो आपने पूछाथा हे भारत ! इसीतरह अतिपापी अधर्मी पुरुषों से यमराज ने कहाहै ॥ २३ ॥ गोदान, सोनेका दान, तिलोंका दान, अन्नका दान, दूधका दान, सब सामानों का दान ॥ २४ ॥ महलों का दान और बगीचोंका दान जो बड़े मनुष्य करते हैं वे घोररूप नरक व यमलोकको नहीं जाते हैं ॥ २५ ॥ व सब पापोंसे छूटजातेहैं ऐसा शिवजीका वचन

दाभक्त्या पुष्पधूपार्त्तितर्पणैः॥ शिवलोकन्तुतेयान्तिनरकान्नात्रसंशयः ॥२२॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथापृष्टन्त्वयानघ॥ पापिष्ठान्नृनधर्मस्थान्कथयामासभारत ॥ २३ ॥ गोदानंहेमदानञ्च तिलदानंतथैवच ॥ अन्नदानंपयोदानं सर्वोपस्करमे वच ॥२४॥ प्रासादारामदानञ्च येकुर्वन्तिनरोत्तमाः॥ यमलोकंनतेयान्तिनरकंघोररूपिणम् ॥ २५ ॥ मुच्यन्तेसर्वपापे भ्यः शिवस्यवचनंयथा ॥ सन्मानञ्चापमानेन वियोगेनेष्टसङ्गमम् ॥२६॥ यौवनंजरयाग्रस्तंकष्टात्सौख्यमुपद्रुतम् ॥ ब लिभिःपलितैश्चापि जर्जरीकृतविग्रहः ॥२७॥ किङ्करोतिनरःप्राज्ञो जरयाजर्ज्जरीकृतः ॥ स्त्रीपुंसोर्यौवनंरूपं यदन्योन्यं प्रियङ्करम् ॥ २८ ॥ तदेवजरयाग्रस्तमुभयोरपिनप्रियम् ॥ अपूर्ववत्तथात्मानं शैथिल्येनसमन्वितम् ॥ २९ ॥ यःपश्य न्नविरज्येत कोन्यस्तस्मादचेतनः ॥ जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः ॥ ३० ॥ अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च

है सन्मान के साथ अपमान लगाहुआ है और प्यारीवस्तु के संयोगमें वियोग लगा हुआहै ॥ २६ ॥ जवानी के साथ बुढापा लगाहै तब सुख तो बड़े कष्ट से होसक्ता है क्योंकि सुखमें उपद्रव बहुत हैं सिमिटा और बालों के सफेद होजाने से जांजर होगयाहै शरीर जिसका ॥ २७ ॥ ऐसा बुद्धिमान् पुरुष बुढ़ापेसे जीर्ण होरहा क्या करसक्ता है स्त्री और पुरुषका आपस में प्यार करानेवाली जवानी व रूपही होता है ॥ २८ ॥ वही जब बुढ़ापे से बिगाड दियागया तब दोनोंको दोनों नहीं प्यारे लगते हैं तथा पहले से और तरह का व शिथिलतासे युक्त अपने को ॥ २९ ॥ देखताभी जो मनुष्य वैराग्य को नहीं प्राप्त होता उससे अधिक और कौन मूर्ख है

बुढ़ापेसे दबेहुये मनुष्य का स्त्री, पुत्र और भाईलोग ॥ ३० ॥ व बुरेआचरणवाले सेवकलोग भी बेकाम होनेमे अनादर करते हैं बुढ़ापे से युक्त मनुष्य धर्म,अर्थ, काम और मोक्षके सिद्ध करनेको नहीं समर्थ होसकाहै तिससे पहलेही धर्मको करलेवे हे युधिष्ठिर ! इस शरीरमें वात,पित्त और कफकी घटाबढ़ी हुआ करती है॥ ३१ । ३२ ॥ और वायुआदि का समूह शरीरही से पैदा होताहै तिससे यह अपना शरीर सदा रोगवालाही जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ जब वातकी बढ़ती अधिक होतीहै तब ज्वरसे पीडित होताहै ऐसे अनेक तरहसे पैदाहुये रोगोंसे बहुत अनेकतरहके दुःख होते हैं ॥ ३४ ॥ उनको आपही जानसक्ताहै और हम क्या कहें इस देहमें एकसौ एक

परिभूयते ॥ धर्म्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षंनजरयायुतः ॥ ३१ ॥ शक्तःसाधयितुन्तस्मात्पुराधर्म्मंसमाचरेत् ॥ वात पित्तकफादीनां वैषम्यञ्चयुधिष्ठिर ॥ ३२ ॥ वातादीनांसमूहश्च देहजःपरिकीर्तितः ॥ तस्माद्व्याधिपरंज्ञेयं शरीरमिद मात्मनः ॥ ३३ ॥ वातोत्पत्त्यतिरेकेण बाधितोवैज्वरेणच ॥ रोगैर्नानाविधिभवैर्बहुदुःखान्यनेकधा ॥ ३४ ॥ तानिचस्वा त्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ एकोत्तरंमृत्युशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठितम् ॥ ३५ ॥ तत्रैकंकालरूपञ्च शेषास्त्वाग न्तवःस्मृताः ॥ येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्तिभेषजैः ॥ ३६ ॥ जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ अपमृ त्युश्चसर्वस्य विषमद्यादिसम्भवः ॥ ३७ ॥ नचातिपुरुषस्तस्मादपमृत्योर्बिभेतिवै ॥ विविधाव्याधयःकष्टाः सर्पाद्याःप्रा णिनस्तथा ॥ ३८ ॥ विषाणित्वभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणिदेहिनाम् ॥ पीडितंरोगसर्पाद्यैरपिधन्वन्तरिःस्वयम् ॥ ३९ ॥ स्वस्थंकर्तुंनशक्नोति कालप्राप्तंहिदेहिनम् ॥ नौषधंनतपोदानं नमित्राणिनबान्धवाः ॥ ४० ॥ परित्रातुंनोसमर्थाः का

मौतें लगी हुई हैं ॥ ३५ ॥ तिनमें एक तो कालरूपही है और बाकी आने जानेवाली कहीगई हैं यहां जो आनेजानेवाली कहीगई हैं वे दवाइयों से शान्त होजाती हैं ॥ ३६ ॥ जप,होम और दानोंसे कालरूपी मौत नहीं शान्तहोतीहै और सबकी अकालमृत्यु विष और दारूआदिसे होती है॥३७॥इसीसे मनुष्य अकालमृत्युसे बहुत नहीं डरता है अनेकतरह के रोग, तकलीफें तथा सांपआदि जीव ॥ ३८ ॥ व विष और मारणआदि प्राणियों की मौतके दरवाजे हैं रोग और सांपआदि से पीड़ित, कालको प्राप्तहोरहे, प्राणीको आराम करनेके लिये साक्षात् धन्वन्तरि भी नहीं समर्थ होसक्ते हैं और कालसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षाकरनेके लिये न औषध, न तपस्या, न

लेनपरिपीडितम् ॥ नास्तिमृत्युसमंदुःखं नास्तिमृत्युसमोरिपुः ॥ ४१ ॥ नास्तिमृत्युसमःकालः सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥ सद्भार्य्यापुत्रमित्राणि राज्यैश्वर्य्यसुखानिच ॥ ४२ ॥ मृत्युश्छिनत्तिसर्वाणि विविधान्यपिभारत ॥ इदंतेकथितंराज ज्ञातिसंसारदुस्तरम् ॥ ४३ ॥ परिणामइतिज्ञात्वा सर्वङ्कालस्यभोजनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यासप्तकल्पगा ॥ ४४ ॥ सर्वदुःखापहानित्यं सर्वशोकविनाशिनी ॥ योयान्कामयतेकामांस्तांस्तान्देवीप्रयच्छति ॥ ४५ ॥ इदंज्ञानमिदंध्यानं पाण्डित्यंवेदवेदनम् ॥ निवासस्सर्वभूतानां सेव्यतेसप्तकल्पगा ॥ ४६ ॥ यज्ञोदानंतपस्सत्यं स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥ सफलंलभतेतेषां योरेवाम्बुनिषेवते ॥ ४७ ॥ ब्रह्मकूर्चसहस्राणि सोमपानायुतंतथा ॥ नर्म्मदातोयपानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ४८ ॥ संयुक्तोपिमहापापैर्नानाजन्मकृतैरपि ॥ ॐकारदक्षिणेघोरं मुच्यतेतत्क्षणाज्जपन् ॥ ४९ ॥ गोदानान्नपरंदानं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ नर्म्मदापयसिस्नात्वा योदद्याद्गान्द्विजन्मने ॥ ५० ॥ संख्यांकर्तुंयथा

दान, न मित्र और न भाईलोगही समर्थ होसक्ते हैं इससे मौतके बराबर कोई दुःख नहीं है व मौतके बराबर कोई शत्रु नहीं है ॥ ३९ ।४० । ४१ ॥ और सब प्राणियो को मौतके बराबर काल नहीं है हे भारत ! सुन्दर स्त्रियां, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य (हुकूमत) और अनेकतरहके सब सुखोंको मौत छुडादेती है हे राजन् ! यह तुमसे भाईबन्धुरूप दुस्तर संसार कहागया ॥ ४२।४३ ॥ यह सब नाशवालाहै और कालका भोजनहै ऐसा जानकर सब प्रयत्नसे नर्मदाका भलीभांति सेवन करना चाहिये ॥ ४४ ॥ सदा सब दुःखोंकी नाश करनेवाली व सब शोकोंकी नाश करनेवाली नर्मदा देवी जो जिस२ कामनाको करताहै उसके लिये उसी२ कामनाको देती हैं ॥ ४५॥ यही ज्ञान, यही ध्यान व बुद्धिमानी और वेदोंका जाननाहै जो सब प्राणियों का आधार नर्मदा सेवन कीजावे ॥ ४६ ॥ यज्ञ, दान, तप, सत्य, वेदपाठ और पितरों का तर्पण इन सबोंका फल वही पाताहै जो नर्मदाके जलका सेवन करताहै ॥ ४७ हजारों ब्रह्मकूर्च और दशहजार सोमपान यज्ञ नर्मदा के जल पीनेकी सोलहवी कलाको नहीं पासक्ते हैं ॥ ४८ ॥ अनेकजन्मों के किये हुये महापापों से संयुक्त भी मनुष्य ॐङ्कारनाथ के दक्षिण तरफ अघोर मन्त्र का जप करताहुआ उसीक्षण में छूटजाता है ॥ ४९ ॥ गोदान से परे तीनोंलोको मे नामूद और कोई दान नहीं है जो नर्मदा के जलमें स्नानकरके ब्राह्मण के लिये गौ देवे ॥ ५० ॥ तो उसके

पुण्य की यथायोग्य गिन्ती देवताओं करके भी करने को अशक्य है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे कर्म्मगतियमवाक्यन्नाम च तुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि गौ कितनी तरहकी होतीहै और किस समय में सब सामानसे संयुक्त दीजातीहै यह आपसे हम जाना चाहते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो, राजन् ! मुझसे कहेजाते वृत्तान्त को तुम सुनो व समझो तुमसे मैं एक आख्यानको कहताहूं कि पहिले कल्पके सत्ययुगमें ॥ २ ॥ सब धर्म-

वच्च नदेवैरपिशक्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकर्म्मगतियमवाक्यंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ धेनुःकतिविधाप्रोक्ता कस्मिन्कालेपिदीयते ॥ सर्वोपस्करसंयुक्ता त्वत्तइच्छामिवेदितुम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो कथ्यमानंनिबोधमे ॥ कथयामितवाख्यानमादिकल्पेकृतेयुगे ॥ २ ॥ चक्रवर्तीशशाङ्कोभूत्सर्वधर्म्मभृतांवरः ॥ नचवर्णयितुंशक्यः सत्यधर्म्मव्रतेस्थितः ॥ ३ ॥ बुभुजेसमहीमेतामेकच्छत्रां समाहितः ॥ नवखण्डांसप्तद्वीपां यथाशक्रोमरावतीम् ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्रस्यतस्यापि संवादश्चक्रवर्तिनः ॥ हरिश्चन्द्रः कुरुक्षेत्रे गवामयुतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ हेमभारमलङ्कारसर्वरत्नविभूषितम् ॥ ब्रह्मर्षिर्मुद्गलोनाम स्वयंब्रह्मप्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥ मुद्गलाश्चद्विजास्सर्वे सत्यधर्म्मपरायणाः ॥ शतमष्टोत्तरंसाग्रं ब्राह्मणाब्रह्मवादिनः ॥ ७ ॥ हरिश्चन्द्रोददौतेभ्यो राहुसू

धारियों में श्रेष्ठ, सत्य और धर्ममें स्थित शशाङ्कनाम का एक चक्रवर्ती राजा हुआ जिसकी बड़ाई नहीं कीजासक्ती है ॥ ३ ॥ सावधान वह राजा सातद्वीप और नव खण्डवाली इस पृथिवी को अकेला भोगताहुआ जैसे इन्द्र अमरावती को भोगै ॥ ४ ॥ उस चक्रवर्ती राजा और हरिश्चन्द्र राजाका संवाद है कि हरिश्चन्द्र राजा कुरुक्षेत्र में सोने और रत्नोंके जेवरों से सजीहुई उत्तम दशहजार गौवों को देतेहुये वहां स्वयंब्रह्म की पदवी पायेहुये एक मुद्गल नामके ब्रह्मर्षिथे ॥ ५।६ ॥ जिनके वंश वाले सत्य और धर्ममें तत्पर सब ब्राह्मण मुद्गलही कहाते थे उन्हीं ब्राह्मणों में ब्रह्मके जाननेवाले कुछ अधिक एकसौ आठ ब्राह्मण थे ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणों को

बड़ी श्रद्धासे युक्त राजा हरिश्चन्द्रजी विधिसे पूजन कर उन्हीं के लिये सूर्यग्रहण में गौवोंको देतेहुये ॥ ८ ॥ परमसिद्धि के देनेवाले स्थानेश्वर महादेव का पूजनकर और बडे आनन्द से युक्त चक्रपाणि हृषीकेश भगवान् का भी पूजन करके ॥ ९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! सरस्वती के तटमें तिल और कुशोंसे संयुक्त इस दानके प्रभावसे उन हरिश्चन्द्र राजा ने सब लोकोंको जीतलिया ॥ १० ॥ सब लोकों के मनकी हरनेवाली आसमान में हरिश्चन्द्र को पुरी मिलतीहुई वह इस चराचर लोकमें हरिश्चन्द्रपुरी इस नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ११ ॥ सत्य, दान और सब छोड़ देना ऐसे २ उत्तम कामोंसे भूषित राजा हरिश्चन्द्रके बराबर दूसरा राजा न हुआहै और न होने

र्य्यसमागमे ॥ द्विजान्सम्पूज्यविधिवच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ ८ ॥ अर्चयित्वामहेशानं स्थानंपरमसिद्धिदम् ॥ चक्रपाणिंहृषीकेशं मुदापरमयायुतः ॥ ९ ॥ सरस्वत्यांनृपश्रेष्ठतिलदर्भान्वितस्यतु ॥ दानस्यास्यप्रभावेण लोकास्तेनाखिलाजिताः ॥ १० ॥ अन्तरिक्षेपुरीप्राप्ता सर्वलोकमनोहरा ॥ हरिश्चन्द्रपुरीख्याता सास्मिँल्लोकेचराचरे ॥ ११ ॥ सत्यदानसर्वत्यागैरित्यादिभिरलंकृतः ॥ हरिश्चन्द्रसमोराजा नभूतोनभविष्यति ॥ १२ ॥ एवंगाथापुरागीता शक्राद्यैस्सुरसत्तमैः ॥ शशाङ्कोऽप्यकरोत्सर्वं नर्म्मदातीरमाश्रितः ॥ १३ ॥ दानंयज्ञंतपःसत्यं पर्वतेमरकण्टके ॥ ददौचार्द्धप्रसूताङ्गां ब्राह्मणायमहात्मने ॥ १४ ॥ दानस्यास्यप्रभावेण हरिश्चन्द्राधिकोभवत् ॥ अनेकभाविकंपापं दग्ध्वातूलौघवच्छिखी ॥ १५ ॥ यावद्वत्सस्यपादौद्वौ मुखंयोनौप्रदृश्यते ॥ तावद्गौःपृथिवीज्ञेया सशैलवनकानना ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गीरौप्यखुरी सवत्साकांस्यदोहना ॥ नर्म्मदास्नानयुक्तातु सकुशातिलसंयुता ॥ १७ ॥ ॐकारामरयोर्मध्ये कोटितीवालाहै ॥ १२ ॥ ऐसी गाथाको पूर्वकाल विषे देवताओं में उत्तम इन्द्रआदि देवताओंने गायाहै और शशाङ्क राजाभी नर्मदा के तटमें बैठकर दान, यज्ञ, तपस्या और सत्यवचन आदि सब काम करतेहुये व अमरकण्टक पर्वतपर आधी ब्याई गौ महात्मा ब्राह्मण को देतेहुये ॥ १३ । १४ ॥ इस दानके प्रभावसे अनेक जन्मोंके पापको रुईकी राशिको आगकी तरह जलाकर हरिश्चन्द्रसे अधिक होतेहुये ॥१५॥ जबतक बछड़ाके दोनों पांव और मुहँ गौकी योनिमें देखपड़े तबतक वह गौ पर्वत व जलो और जङ्गलो के सहित पृथिवी के बराबर जाननेयोग्य है ॥ १६ ॥ सोने के सीगोंवाली, चांदीके खुरोंवाली, बछडासे युक्त, कांसेकी दोहनीवाली, नर्मदा में

राजा हरिश्चन्द्र भी शशाङ्कराजा के ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ २१ ॥ आश्चर्य्य से युक्त आप कुरुक्षेत्रकी निन्दा करके कहा कि सूर्यग्रहण विषे नर्मदामें इन शशाङ्क के चढ़नेवाले देवताओं से स्तुति कियेजाते,सुवर्णके छातेको लगायेहुये, चामरोंसे ढुराये जारहे राजा शशाङ्क सोहतेहुये ॥ २० ॥ और उनके हजारयोजन नीचे स्थित १८ ॥ इसी बीचमें देवताओंके नक्कारे आकाशमें बाजतेहुये उसीक्षणमें सवारीपर सवार, मणियों से दगदगाते हुये ॥ १९ ॥ अपने पास वर्त्तमान अनगिन्ती विमान नहलाईहुई और कुश व तिलोंसे संयुक्त ॥ १७ ॥ ऐसी हजार गौवें ॐकार और अमरकण्टक के बीचमें जो कोटितीर्थ है उसीमें ब्राह्मणों के लिये राजा देतेहुये ॥

थैंनराधिपः ॥ एताःसहस्रसंख्याता ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेनेदुर्देवदुन्दुभयोदिवि ॥ तत्क्षणाद्या नमारूढो ज्वलन्मणिगणैरिव ॥ १९ ॥ स्तूयमानःसमीपस्थैरसंख्यातैर्विमानिभिः ॥ धृतस्वर्णातपत्रस्तु वीज्यमान स्तुचामरैः ॥ २० ॥ योजनानांसहस्रेण हरिश्चन्द्रोप्यधःस्थितः ॥ तद्दृष्ट्वातादृशंकर्म्म शशाङ्कस्यविशाम्पतेः ॥ २१ ॥ सविनिन्द्यकुरुक्षेत्रं विस्मयाविष्टचेतनः ॥ महानद्यांशशाङ्केन राहुसोमसमागमे ॥ २२ ॥ दत्तंदानंनसामान्यं भवेदितिसमासतः ॥ विषण्णवदनोभूत्वा हरिश्चन्द्रोनृपोत्तमः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकंगतःक्षिप्रं यत्रलोकेश्वरःप्रभुः ॥ अभि वाद्ययथान्यायं पप्रच्छसपितामहम् ॥ २४ ॥ दानेननिर्जितादेवाः शशाङ्केनमहात्मना ॥ किञ्चपुण्यमिदंब्रह्मन्कुरु क्षेत्राद्विशिष्यते ॥ २५ ॥ अमरेश्वरतीर्थन्तु नामरेवासमुद्भवम् ॥ केनापिनसमम्भूतमुपर्य्युपरिदीप्यते ॥ २६ ॥ इति श्रुत्वावचस्तस्य हरिश्चन्द्रस्यधीमतः ॥ उवाचवचनंब्रह्मा हरिश्चन्द्रंनृपोत्तमम् ॥ २७ ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहना

ने ॥ २२ ॥ दानको दियाहै सो वह साधारण नहीं है ऐसे संक्षेपसे कहकर उदासमुहँवाले होकर राजाओंमें उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी ॥ २३ ॥ बहुतजल्दी ब्रह्मलोक को जातेहुये जहां लोकों के मालिक प्रभु ब्रह्माजी विद्यमान हैं वहा वे राजा ब्रह्माजीको यथायोग्य नमस्कार कर पूंछतेहुये ॥ २४ ॥ कि महात्मा शशाङ्क राजाने दान से देवताओं को जीतलिया सो हे ब्रह्मन् ! यह पुण्य क्या कुरुक्षेत्र से भी विशेष है ॥ २५ ॥ नर्मदा से उत्पन्न हुआ अमरेश्वरनाम का तीर्थ किसी तीर्थके बराबर नहीं है सबके ऊपरही ऊपर प्रकाश करता है ॥ २६ ॥ उन बुद्धिमान् हरिश्चन्द्रजीके इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी राजाओं में उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी से वचन

बोले ॥ २७ ॥ कि हे राजेन्द्र ! विषादको छोड़ो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है शशाङ्कराजा के बराबर दूसरे राजाको मैंने न देखाहै और न सुनाहै ॥ २८ ॥ हम और इन्द्रआदि सब देवताभी राजा इतनी पुण्यवाला है ऐसा नहीं कहसक्ते क्योंकि आगिले समय में इस चक्रवर्ती राजाने अनेक हजारयज्ञों को अमरकण्टक पर्वतपर विधानसे कियाहै हे भारत ! सूर्यग्रहणमें लाखो तीर्थ ॥ २९ । ३० ॥ सरस्वती, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषआदि ये व और भी तीर्थ हे नराधिप, हरिश्चन्द्र ! नर्मदा के कोटितीर्थ में स्नान करने के वास्ते आते हैं तिससे हे राजेन्द्र ! नर्मदाके साथ और तीर्थोंकी बराबरी को छोड़देवो ॥ ३१ । ३२ ॥ आगिले जमाने में हमने

कर्म्मणाङ्गतिः ॥ शशाङ्कसदृशोराजा नदृष्टोनश्रुतोमया ॥ २८ ॥ एवंवक्तुंनयोग्योहं नदेवापिसवासवाः ॥ अनेकानिस हस्राणि पुरावैचक्रवर्तिना ॥ २९ ॥ इष्टानिचविधानेन पर्वतेमरकण्टके ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे तीर्थलक्षाणिभारत ॥ ३० ॥ सरस्वतींकुरुक्षेत्रं पुष्करंनैमिषंतथा ॥ तीर्थान्येतानिचान्यानि स्नानंकर्तुंसमाययुः ॥ ३१ ॥ मेकलायांहरिश्चन्द्र कोटितीर्थेनराधिप ॥ तीर्थानान्त्यजराजेन्द्र साम्यंमेकलयासह ॥ ३२ ॥ वाराणस्याकुरुक्षेत्रं तोलितञ्चमयापुरा ॥ तीर्थानिनसमंयान्ति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ३३ ॥ ख्यातमात्रंकुरुक्षेत्रं लोकयात्राप्रवर्तकम् ॥ पुराणंनश्रुतंयैस्तु मि थ्याज्ञानसमन्वितैः ॥ ३४ ॥ सेव्यतांकल्पगादेवी यदीच्छेत्परमंपदम् ॥ नमस्कृत्यविधातारमयोध्याधिपतिस्तदा ॥ ३५ ॥ मुदापरमयायुक्तो सययावमरेश्वरम् ॥ एतत्सर्वंसमाख्यातं यथावत्तवसुव्रत ॥ ३६ ॥ यःशृणोतिनरोराजन्गो सहस्रफलंलभेत् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगोदानमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५॥

काशीके साथ कुरुक्षेत्रको तौलाथा परन्तु इस तीर्थके प्रभावकी बराबरी कोई तीर्थ नहीं करसक्तेहैं ॥ ३३ ॥ कुरुक्षेत्र तो प्रसिद्धमात्रहै लोगोंकी यात्राका करानेवालाहै सोभी उन्हींलोगोंकी कि जिन मिथ्याज्ञानियोंने पुराणको नहीं सुनाहै ॥३४॥ इससे जो परमपदकी इच्छाकरे तो नर्मदादेवीका सेवनकरे इतनासुनकर अयोध्याके राजा वे हरिश्चन्द्रजी ब्रह्माजी के नमस्कार कर बड़ेआनन्द से युक्त उसी समय अमरेश्वर को चलेगये हे सुव्रत ! यह सब आपसे यथावत् कहागया ॥ ३५ । ३६ ॥ हे राजन् ! इसको जो मनुष्य भक्तिसे सुनताहै वह हजार गोदान के फल को पाता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि माहिष्मतीपुरी के पश्चिम तरफ पापोंका हरनेवाला और सब शोचों का छुड़ानेवाला अशोकवनिका नामका तीर्थ है ॥ १ ॥ वहां स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार विस्तार से पार्वती का पूजनकरे इसीतरह सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित वहां मातङ्गका भी आश्रमहै ॥ २ ॥ अँधियारे व उजियाले पाख की तीज विषे चन्दन, धूप, केसरआदि का लेपन, अनेक बलि और दियालियों के जलाने आदि से ॥ ३ ॥ जो स्त्री वहां भक्तिसे युक्तहो पार्वतीका पूजनकरे वह रूप और सुन्दरभाग्य से युक्त अच्छे पतिको पाती है ॥ ४ ॥ कातिक की पूर्णमासी को प्रसन्नमन व इन्द्रियों को वश कियेहुये जो स्त्री अपने प्राणों का त्याग करती है

मार्कण्डेयउवाच ॥ माहिष्मत्याःपश्चिमेवै तीर्थपापहरंपरम् ॥ अशोकवनिकानाम सर्वशोकविनाशनम् ॥ १ ॥ स्नात्वातत्रार्चयेद्गौरीं यथाविभवविस्तरैः ॥ मातङ्गस्याश्रमंतद्वत्सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥२॥ शुक्लकृष्णातृतीयायाङ्गन्धधूपविलेपनैः ॥ उपहारैरनेकैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ ३ ॥ तत्रयापूजयेन्नारी गौरीम्भक्तिसमन्विता ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नं लभतेसत्पतिन्तुसा ॥ ४ ॥ कार्त्तिक्यान्तुगतप्राणा मोदमानातुसंयता ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्प्राप्तामाहेश्वरंपुरम् ॥ ५ ॥ मातङ्गोनामदेवर्षिः पुराकल्पेयुधिष्ठिर ॥ नर्म्मदातीरमाश्रित्य तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ ६ ॥ पुराजन्मनिषादःस जातिंस्मरतिपूर्विकाम् ॥ अघमर्षणदेशस्थः सर्वधर्म्मंबुबोध च ॥ ७ ॥ महर्षीणांप्रसङ्गेन नर्म्मदादर्शनेन च ॥ पापबुद्धिंपरित्यज्य धर्म्मबुद्धिञ्चकारसः ॥ ८ ॥ निर्विण्णोहञ्चभिक्षुश्चाधुनाश्वपचयोनिषु ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्नशोकवनिकाङ्गतः ॥ ९ ॥ जटावल्कलधारीच कन्दमूलफलाशनः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु शिवाराधनतत्परः ॥ १० ॥ शिवध्या

वह इस तीर्थके माहात्म्य से महादेव के पुरको प्राप्तहोती है ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर! आगे के कल्प में मातङ्ग नामके देवर्षि नर्मदा के तीर बैठकर बड़े कड़ेतपको करते हुये ॥ ६ ॥ वे पहिले जन्ममें निषादरहे सो अपनी पहिली जातिको जानतेरहे और उस अघमर्षण (पापोंके नाश करनेवाले) स्थान में बैठेहुये मातङ्ग सब धर्मों को जानते थे ॥ ७ ॥ महर्षियों की सङ्गति से और नर्मदा के दर्शनसे वे पापबुद्धिको छोड़कर धर्ममें बुद्धिको करतेहुये ॥ ८ ॥ और कहा कि इस समयमें मैं विरक्त व भिक्षुक हूं और चाण्डालयोनि में पड़ाहूं ऐसे कहकर तदनन्तर हे राजन्! अशोकवनिका को चलेगये ॥ ९ ॥ जटा और भोजपत्रों को धारण किये कन्द, मूल और

फलोंके खानेवाले देवताओं के हजारवर्षतक शिवजी के पूजन में लगेरहे ॥ १० ॥ वे शिवजी के ध्यानमें परायण व कड़ीतपस्या में स्थित होतेहुये इसीतरह देवताओं के हजारवर्षतक तपस्या करतेहुये उस महात्मा की ॥ ११ ॥ जटाओं के अग्रभाग से उसी क्षणमें निकलीं और आपही आप नर्मदाके जलमें गिरतीहुई अनेकप्रकार की व बेप्रमाण की, अनन्त, कालेरङ्गवाली, बड़ेतेजवाली, सब गहनोंसे सजीहुई इक्यासी हजार यक्षिणी ॥ १२ । १३ ॥ इसतीर्थके प्रभावसे बहुत जल्दी यक्षलोकों को चलीगई अब मातङ्ग यद्यपि मन्त्रयन्त्र से खालीरहे परन्तु महादेवजी की भक्तिमें तत्परहो ॥ १४ ॥ सब मन्त्रोंमें उत्तम "ॐनमः शिवाय" इस षडक्षरमन्त्र

नपरस्सोभूद्दुश्चेतपसिसंस्थितः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंहि तथातस्यतपस्यतः ॥ ११ ॥ एकाशीतिसहस्राणि जटाग्रेभ्योवि निस्सृताः ॥ स्वयंपतन्तिविविधा नर्म्मदातोयमध्यतः ॥ १२ ॥ तत्क्षणाद्यक्षिणीरूपा अनन्ताश्चाप्रमाणिकाः ॥ श्याम वर्णास्सुतेजस्कास्सर्वाभरणभूषिताः ॥ १३ ॥ यक्षलोकंव्रजन्त्याशुतीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ मन्त्रयन्त्रविहीनोपि शि वभक्तिपरायणः ॥ १४ ॥ षडक्षरमिमंमन्त्रं हृदिचक्रेदिवानिशम् ॥ ॐनमःशिवायइति सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ १५ ॥ तस्यभक्तिंपरांज्ञात्वा देवदेवउमापतिः ॥ प्रत्यक्षरूपोभगवाञ्छूलपाणिःसमागतः ॥ १६ ॥ उवाचवचनन्देवो मात ङ्गम्प्रतिभारत ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते ध्यानेनानेनसुव्रत ॥ १७ ॥ मातङ्गउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरंदातुमिहेच्छ सि ॥ मातङ्गनाम्नाविख्यातिं तीर्थमेतत्प्रयातुवै ॥ १८ ॥ चाण्डालाःश्वपचाश्चैव पापयोनिगताश्चपि ॥ जपादिरहि ताश्चापि मुच्यन्तेत्रापिकिल्बिषात् ॥ १९ ॥ मातङ्गनामलिङ्गन्तु नर्म्मदातीरमाश्रितम् ॥ स्नात्वायोत्रार्चयेत्तस्य भवे

को दिन रात अपने मनमें रखतेहुये ॥ १५ ॥ तब उनकी पराभक्ति को जानकर देवताओं के देवता, पार्वतीजी के पति, त्रिशूलको हाथमें लिये, भगवान् महादेवजी प्रत्यक्षरूप आगये ॥ १६ ॥ हे भारत ! मातङ्गसे महादेवजी वचन बोले कि हे सुव्रत ! इस ध्यानसे तुम्हारा कल्याण हो तुम वरको मांगो ॥ १७ ॥ तब मातङ्ग बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और यहां वर देनेकी इच्छा करतेहो तो यह तीर्थ मातङ्ग के नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १८ ॥ चाण्डाल, श्वपच और भी पापयोनि जीव जप आदिकों से खाली भी हों परन्तु यहांपर पापसे छूटजावे ॥ १९ ॥ नर्मदा के तीर विद्यमान मातङ्ग नाम के लिङ्गका स्नानकर जो पूजनकरे उसका बन्धन

छूटजावे ॥ २० ॥ हे महेश्वर ! हम आपके प्रसादसे इसी वर को चाहते हैं उन मातङ्गके इस वचन को सुनकर फिर महादेवजी बोले ॥ २१ ॥ कि हमारे प्रसाद से ऐसाही हो इसमें कुछ संशय नहीं है ऐसे कहकर महादेवजी उत्तम कैलासपर्वत को चलेगये ॥ २२ ॥ मातङ्ग वरदान को पाकर सब आभूषणों से भूषित, मनमानी सवारीपर सवार बहुत कालतक स्नान के प्रभाव से भोगोंके भोगने के वास्ते पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये चैत्र महीने में कृष्णपक्ष की जो अमावस है अथवा चतुर्दशी है ॥ २३ । २४ ॥ उसमें जो कुछ वहा होम कियाजावे व दान दियाजावे वह अनन्तफल को देताहै तिलोदक के देनेसे पापयोनि भी जीव कृतार्थ

न्धविमोक्षणम् ॥ २० ॥ इदंवरमहंमन्ये त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा प्रत्युवाचशिवापतिः ॥ २१ ॥ एवम्भवतुतत्सर्वं मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ २२ ॥ वरंसम्प्राप्यमातङ्ग उमामाहेश्वरम्पुरम् ॥ कामिकंयानमारूढः सर्वाभरणभूषितः ॥ २३ ॥ जगामाशुचिरम्भोक्तुं भोगान्स्नानप्रभावतः ॥ चैत्रमासेमावास्या कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ २४ ॥ तस्यांतत्रहुतंदत्तमनन्तफलमश्नुते ॥ तिलोदकप्रदानेन पापयोनिगताअपि ॥ २५ ॥ सक्त्वाढ्यगुडपिण्डेन पितॄन्मोदयतेतुयः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २६ ॥ तिलतण्डुलमिश्रंयः कुर्य्याल्लिङ्गस्यपूजनम् ॥ सोपिवर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ २७ ॥ अशोकवनिकानाम मातङ्गंतीर्थमुच्यते ॥ रेवायाउत्तरेकूले कथितन्तवभारत ॥ २८ ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि याम्यभागेव्यवस्थितम् ॥ तीर्थंमृगवनंनाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ तत्रस्नात्वार्चयेद्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ एकादश्यांमहाराज निराहारोनिशांन

होजाते हैं ॥ २५ ॥ सत्तू और गुड़के पिण्डोंसे जो पितरों को प्रसन्न करता है उसके पितर जबतक चौदहों इन्द्र रहते तबतक तृप्त रहते है ॥ २६ ॥ तिलचौरी से जो लिङ्गका पूजन करता है वह भी हजार वर्षतक शिवलोक में पूजाजाता है ॥ २७ ॥ अशोकवनिका मातङ्गनाम का तीर्थ कहाजाता है वह नर्मदा के उत्तरतट में है सो हे भारत आपसे कहागया ॥ २८ ॥ अब और दक्षिण के तरफमें विद्यमान सब पापोंके नाश करनेवाले मृगवन नामके तीर्थको कहेंगे ॥ २९ ॥ वहा स्नान

कर शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले विष्णुका पूजनकरे और हे महाराज ! एकादशीमें निराहारहो रातको बितावे ॥ ३० ॥ मृगवन में चन्दन और फूलोंसे हरिका पूजनकरे वहां एक ब्राह्मण को भोजन कराने से लाख ब्राह्मण भोजन करानेका फल होता है॥ ३१ ॥ तिलोदक के देनेसे पितरों को वैष्णवपद होताहै वहीं उत्तम वाराहतीर्थ भी है ॥ ३२ ॥ जहां वाराहरूपसे पृथिवी उद्धार कीगई है इसीतरह बड़ेतेजवाले विष्णुने और भी वहा विश्वरूप को धारण कियाहै ॥ ३३ ॥ पतिव्रता स्त्री अथवा महीनेभर व्रतकी करनेवाली स्त्री वहां विधान से स्नानकर निश्चय विष्णु के लोकको प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे

येत् ॥ ३० ॥ हरिंमृगवनेतत्र गन्धपुष्पैश्चपूजयेत् ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे लक्षम्भवतुभोजितम् ॥ ३१ ॥ तिलोदक प्रदानेन पितॄणांवैष्णवंपदम् ॥ तत्रैवसन्निविष्टन्तु वाराहंतीर्थमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ यत्रवाराहरूपेण धराचैवसमुद्धृता ॥ विश्वरूपंतथाचान्यद्धरिणामिततेजसा ॥ ३३ ॥ पतिव्रताचनारीवै तथामासोपवासिनी ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन लोकंप्राप्नोतिवैष्णवम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ आख्यानंकथयिष्यामि ख्यातंमृगवनंयथा ॥ व्याधःकश्चिद्दुराचारः सर्वभूतेषुनिर्दयः ॥ १ ॥ पाशहस्तोधनुष्पाणिर्विचरन्गिरिकन्दरे ॥ आजघानमृगान्सर्वान्कुटुम्बार्थेनृपोत्तम ॥ २ ॥ ज्येष्ठेमासितुसंप्राप्ते निदाघेज्वलनप्रभे ॥ भ्रमतिस्मतृषार्तश्च वृक्षमूलेसमाश्रितः ॥ ३ ॥ रात्रौस्वपितिनिश्चेष्टो दुःखार्तश्चक्षुधान्वितः ॥ वनसं

मातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और आख्यान को कहते हैं जैसे मृगवन प्रसिद्ध हुआ एक बहेलिया सब प्राणियोंमें दयासे खाली ॥ १ ॥ फँसरी और धनुष को हाथमें लिये पहाड़ की कन्दरा में घूमताहुआ अपने कुटुम्ब के वास्ते हे नृपोत्तम ! बहुत से मृगोंको मारताहुआ ॥ २ ॥ ज्येष्ठके महीनेको प्राप्तहुये पर और आगके बराबर घाम होनेपर प्यासके मारे विकलहोरहा वह बहेलिया घूमताहुआ व एक पेड़की जड़पर बैठगया ॥ ३ ॥ और रातमें दुःख व क्षुधासे विकल बेहोश सोगया तब

तक वनकी रगड़से पैदाहुई आग पर्वत की खोहसे उठी ॥ ४ ॥ उसने हरिण और बाघआदि पशुओंसे युक्त वनको जलादिया वह सब वन अच्छीतरह जलकर खाक
होगया ॥ ५ ॥ वर्षाकाल विषे कन्याराशिमें सूर्यके आनेपर श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीविषे पुण्यवाले नर्मदा के प्रवाह में जलाहुआ वह सब जंगल बहगया ॥६॥ वहां
जितने सांप जले वे सब नर्मदाके जलके छूनेसे यक्ष होगये उसी क्षणमें दिव्यदेहको धारणकिये विष्णुलोकके विमानोंपरसवार होतेहुये ॥ ७ ॥ और वह बहेलिया इस
तीर्थके प्रभावसे राजा होताहुआ व दशहजार वर्षतक मनोहर भोगोंको भोगताहुआ ॥ ८ ॥ और जितने वहां मृग जले वे सभी गन्धर्व होकर वैष्णवही विमानसे विष्णुलोक

घर्षजोवह्निरुत्थितोगिरिकन्दरात् ॥ ४ ॥ प्रदग्धंचवनंतेन मृगव्याघ्रसमावृतम् ॥ भस्मीभूतश्चतत्सर्वं रेणुभूतश्चक्रु
स्त्नशः ॥ ५ ॥ मेघागमोक्तकालेतु प्रवाहेनाम्र्मदेशुभे ॥ कन्याराशिगतेभानौ द्वादश्यांश्रवणेनतु ॥ ६ ॥ नर्म्मदातोय
संसर्गाद्यक्षाजातास्तुपन्नगाः ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहास्तु वैष्णवंयानमास्थिताः॥७॥सव्याधश्चाभवद्राजा तीर्थस्यास्यप्रभा
वतः ॥ दशवर्षसहस्राणि भोगान्भुङ्क्तेमनोहरान् ॥ ८ ॥ येपिदग्धामृगास्तत्र तेपिगन्धर्वतांगताः ॥ वैष्णवेनैवयानेन
प्राप्तास्तुवैष्णवम्पदम् ॥ ९ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु विष्णुलोकेसमोदते ॥
१० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ मनोरथंनामतीर्थमन्यत्परमसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं
रेवातीरसमुद्भवम् ॥ यंयंप्रार्थयतेकामं तंतंस्नात्वापिमानवः ॥ १२ ॥ सर्वंचसमवाप्नोति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ अ
ङ्गारावर्तसंभेदो गोसहस्रफलप्रदः ॥ १३ ॥ अङ्गारेश्वरदेवश्च तत्रतिष्ठतिसङ्गमे ॥ स्नानमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यमवा

को जातेहुये ॥ ९ ॥ परवश व अपने वश होकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह देवताओंके हजार वर्षतक विष्णुलोक में आनन्द करता है ॥ १० ॥ तिलोदक के देने
से पितरों की परमगति होती है परमसिद्धिका देनेवाला एक और मनोरथनाम का तीर्थहै जोकि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध व नर्मदा के तटमें उत्पन्न हुआहै उस तीर्थमें
मनुष्य स्नानकर जिस जिस मनोरथ को चाहता है उस उस ॥ ११ । १२ ॥ सबको इस तीर्थके प्रभाव से पाताहै अंगारावर्त नामका जो संगमहै वह हजार गोदान

के फलका देनेवालाहै ॥ १३ ॥ उस संगम में अंगारेश्वर देवभी विद्यमानहैं वहां स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य गणोंका मालिक होताहै ॥ १४ ॥ हे भारत! जब चौथि के दिन मंगलवार होवे तब सोनेकी नराकार मूर्त्तिको बनवाकर लालेकपडेसे लपेटे ॥ १५ ॥ घी और गुड़से भरेहुये तांबेके पात्रको और उस मूर्त्तिआदि सबसामानको विधिपूर्वक विशेषकरके वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणको देवे ॥ १६ ॥ इस तीर्थपर इस दानके प्रभावसे इन्द्रके आधे आसन का भोगनेवाला होताहै जिससे पाप बडेकड़े व बहुत दुःखोंके देनेवाले हैं ॥ १७ ॥ इससे पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि वह अपने को बड़ी तकलीफ का देनेवालाहै जिस समयमें व जिस जगहपर जैसी उमर

प्नुयात् ॥ १४ ॥ अङ्गारश्चचतुर्थ्यांञ्च यदाभवतिभारत ॥ हिरण्यपुरुषंकृत्वा रक्तवस्त्रेणवेष्टयेत् ॥ १५ ॥ घृतपूर्णताम्रपात्रं गुडेनापिप्रपूरितम् ॥ तत्सर्वंविधिवद्दद्याच्छ्रोत्रियायविशेषतः ॥ १६ ॥ दानतीर्थप्रभावेण शक्रार्द्धासनभाग्भवेत् ॥ यस्मात्पापानिदुःखानि तीव्राण्यपिबहून्यपि ॥ १७ ॥ तस्मात्पापंनकर्तव्यमात्मपीडाकरंहितत् ॥ यस्मिन्कालेच देशेच वयसायादृशेनच ॥ १८ ॥ कृतंशुभाशुभंकर्म्मं तत्तथातेनभुज्यते ॥ तस्मात्सदैवदातव्यमविच्छिन्नतयार्थिने ॥ १९ ॥ विच्छिद्यन्तेन्यथाभोगा ग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ संसेव्यतेयथादेवी सप्तकल्पवहाशुभा ॥ २० ॥ संसारस्यसमुच्छित्त्यै ज्ञानयोगंब्रवीमिते ॥ शिवप्रकाशकंज्ञानं योगस्तत्रैवचिन्तितः ॥ २१ ॥ दुर्विज्ञेयगतिर्योगो नर्म्मदाशिवसान्निधौ ॥ शिवाज्ञावर्ततेतत्र स्नानपूजाविधिर्यथा ॥ २२ ॥ ससिद्धान्ताविरोधेन पुस्तकैर्नविरोधयेत् ॥ धर्म्मज्ञानापवर्गार्थ

से ॥ १८ ॥ भला बुरा कर्म कियागया है वह वैसेही उस करके भोगाजाता है तिससे हमेशा निरन्तर मांगनेवालेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार कुछ देना चाहिये ॥ १९ ॥ विना दानके दिये सब भोग कटजाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियां सूखजाती हैं जिससे सात कल्पतक बहनेवाली और पुण्यवाली नर्मदादेवी सेई जातीहै ॥ २० ॥ संसारसे छुड़ाने के वास्ते उस ज्ञानयोगको हम तुमसे कहते हैं वह ज्ञान शिवका कहाहुआहै और योगभी वहीं विचारागयाहै ॥ २१ ॥ नर्मदा और शिवके विषयका जो योगहै उसकी गति किसी के जाननेयोग्य नहीं है नर्मदामें स्नान और पूजाकी जैसी विधिहै उसमें शिवकी आज्ञाही प्रमाण है ॥ २२ ॥ वह

सिद्धान्त और पुस्तकों से जिसतरह विरोध न हो उस तरह होना चाहिये ऐसे करने से मनुष्य धर्म, अर्थ, ज्ञान और मोक्षको साथही पाताहै ॥ २३ ॥ आगे पीछे के विरोधमें कहीं भी प्रयोजन नहीं होताहै पहले से तर्कको देखकर भी वेदके साथ में न करे ॥ २४ ॥ तिससे विद्वान् पुरुष करके शास्त्र और युक्ति इन दोनों से सदा सिद्धान्तका विचार करने योग्य है अकेले अन्दाजही से सिद्धान्तका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ जिसका फल छोटा बड़ा कहागया है उसका विचार अनेकतरह से कहागया है तिससे परीक्षाको करे कि कौन बड़ेफलवाला और पुण्यवाला उत्तम कर्म है ॥ २६ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य पाखण्डी, कुकर्मी, वैडाल-

सहितंविन्दतेनरः ॥ २३ ॥ पूर्वोत्तरविरोधेन कुत्रार्थोभिमतोभवेत् ॥ दृष्ट्वाद्यमूलतस्तर्कं श्रुत्यासहविवर्जयेत् ॥ २४ ॥ तस्मादागमयुक्तेन सदात्मार्थविचारणम् ॥ कर्तव्यंनानुमानेन केवलेनविपश्चिता ॥ २५ ॥ हीनोत्तमाद्यस्यफलं बहुधास्वञ्चतस्मृतम् ॥ तस्मात्परीक्षांकुर्वीत पुण्यंसाधुमहत्फलम् ॥ २६ ॥ पाखण्डिनोविकर्म्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान् ॥ वर्जयेद्दूरतोधीमान् हैतुक्यांस्तीर्थनिन्दकान् ॥ २७ ॥ दिगम्बराञ्छ्वेतपटान् येचान्येहेतुवादिनः ॥ एतैस्सहनसंवादं संसर्गंनकथञ्चन ॥ २८ ॥ विपरीतंकलौधर्म्मं नग्नामुण्डामलाशिनः ॥ तस्मात्तञ्चपरित्यज्य त्रेताधर्म्मं समाचरेत् ॥ २९ ॥ प्रमाणंसर्वधर्म्मेषु ब्रह्मविष्णुशिवोदितम् ॥ अन्यथाकुरुतेयस्तु नरकेपततिध्रुवम् ॥ ३० ॥ सर्वेषामेवशास्त्राणामेवंशास्त्रविनिश्चयः ॥ सेव्यतांकल्पगादेवी शिवपूजारतैस्सदा ॥ ३१ ॥ पितॄणांतर्पणंकुर्य्याद्भिक्षांदद्याच्चभिक्षवे ॥ कारुण्यंसर्वभूतेषु नर्म्मदाख्यानचिन्तनम्॥ ३२ ॥ इदंज्ञानमशेषञ्च सर्वकर्म्मविशोधनम् ॥ आदिम

व्रतिक, शठ, तर्कवाले, नागा, सफेद कपड़ेवाले और तीर्थोंके निन्दकों को दूरसे छोड़देवे व और जो तर्कसे बात करतेहों उनके साथ बात और उनका संसर्ग कभी न करे ॥ २७ । २८ ॥ नागा, मुण्डा और अघोरियोंने कलियुग में धर्मको उलटा करदियाहै तिससे उसको छोड़कर बाकीरहे तीन युगों का धर्मकरे ॥ २९ ॥ सब धर्मोंके बीचमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकाही कहाहुआ धर्म प्रमाणहै जो और तरहसे करताहै वह निश्चय नरक में गिरता है ॥ ३० ॥ सभी शास्त्रोंका यही निश्चय है कि महादेव के पूजन करनेवाले नर्मदा का सेवन हमेशा कियाकरें ॥ ३१ ॥ पितरोंका तर्पणकरे और भिखारी को भीख देवे, सब प्राणियोंपर दयाकरे और नर्मदा

की कथाको विचारे सब कर्मोंका अतिशुद्ध करनेवाला यही पूरा ज्ञानहै आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अपने स्वभावहीसे निर्मल, प्रभु॥ ३२ । ३३ ॥ सबके जानने वाले और सबतरह से पूर्ण शिवशास्त्र में शिवजी जानने योग्यहैं उनका कहाहुआ ज्ञान निःसन्देह सब प्रयोजनोंका सिद्ध करनेवालाहै ॥ ३४ ॥ जो सबका जानने वाला, सम्पूर्ण, स्वभाव से निर्मल और सब दोषोंसे रहित शिवहै वह मिथ्या कैसे कहसक्ता है ॥ ३५ ॥ और विना शिवजी की आज्ञा संसार की सृष्टि कैसे होसक्ती है जो मायासे कहो तो वह जड़वस्तु है और जीवसे कहो तो वह भी अज्ञानी है ॥३६ ॥ परमाणु आदि जो माया है वह जड़है वह बुद्धिवाले दूसरे सहायक के विना

ध्यान्तरहितः स्वभावविमलःप्रभुः ॥ ३३ ॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च शिवोज्ञेयःशिवागमे ॥ सर्वार्थसाधकंज्ञानं तत्प्रणीतमसंशयम् ॥ ३४ ॥ यःसर्वज्ञस्सुसम्पूर्णः स्वभावविमलःशिवः ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तः सब्रूयात्कथमन्यथा ॥ ३५ ॥ शिवाज्ञामन्तरेणापि जगत्सृष्टिःकथम्भवेत् ॥ अचैतन्यात्प्रधानेन अज्ञत्वात्पुरुषस्यच ॥ ३६ ॥ प्रधानंपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ॥ तन्नकर्तृस्वयंद्रष्टृ बुद्धिमत्कारणंविना ॥ ३७ ॥ नयथाघटमानेन मृत्पिण्डःस्वयमृच्छति ॥ तथाज्ञाबुद्धिभावेन नतिष्ठेत्प्रकृतिःस्वयम् ॥ ३८ ॥ धर्म्माधर्म्मोपदेशोन धर्म्माधर्म्मविचारणम् ॥ सर्वज्ञेनविनाजातु नादिसर्गेप्रसिद्ध्यति ॥ ३९ ॥ यथानादिप्रवृत्तोयं घोरःसंसारसागरः ॥ शिवोपिहितथानादिः संसारान्मोचकःस्मृतः ॥ ४० ॥ व्याधीनांभेषजंयद्वत् प्रतिपक्षंस्वभावतः ॥ तद्वत्संसारघोराणां प्रतिपक्षःशिवःस्मृतः ॥ ४१ ॥ वैद्यंविनानिराक्रन्दाः

आपही करनेवाली व देखनेवाली नहीं होसक्ती है ॥ ३७ ॥ जैसे विना किसी चेष्टा करनेवाले के मट्टी का पिण्ड आपही कुछ काम नहीं करसक्ता इसीतरह बुद्धिवाली वस्तु के विना जड़ माया आपही नहीं रहसक्ती है ॥ ३८ ॥ इससे इस अनादि संसार में धर्म और अधर्म का सिखलाना व धर्म और अधर्म का विचार सब जानने वाले के विना कभी नहीं होसक्ता है ॥ ३९ ॥ जैसा यह घोर अनादि संसारसागर बनाहै इसीतरह इस संसारसे छुड़ानेवाले अनादि शिवभी कहेगये हैं ॥ ४० ॥ जैसे दवा रोगों का वैरी अपने स्वभावही से है इसीतरह जन्म मरणरूपवाले घोर संसार के शत्रु शिवभी कहेगये हैं ॥ ४१ ॥ वैद्यके विना जैसे आनन्दरहित रोगी

दुःख पाते हैं इसीतरह शिवजी के विना सब जगत् दुःख पाताहै ॥ ४२ ॥ तिससे चारोंतरफ से पूर्ण, सबके जाननेवाले, सबसे श्रेष्ठ और अनादि शिवजीही हैं इन से और कोई पुरुष इस संसारसागर में रक्षा करनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥ अपने हृदयमें शिवको धरेहुये जो लोग शिवके कहेहुये ज्ञानका अभ्यास करते हैं तिनको जो वेदप्रमाण है तो ज्ञान जरूर होता है ॥ ४४ ॥ सब जीवोंकी रक्षा करनेवाली पृथिवी में यह नर्मदाही है जोकि पानी के रूपसे विद्यमान होरही लोकोंपर दया करनेवाली देवी है ॥ ४५ ॥ व नरकमे गिरतेहुये स्थावर और जंगम चारों प्रकारके जीवोंके समूह को यही भगवती निश्चय से उद्धार करती हैं ॥ ४६ ॥ हे नरश्रेष्ठ !

क्लिश्यन्तेरोगिणोयथा ॥ शिवेनतुविनासर्वं निराक्रन्दंजगत्तथा ॥ ४२ ॥ तस्मादनादिःसर्वज्ञः परिपूर्णःपरःशिवः ॥ अस्तिनातःपरित्राता पुमान्संसारसागरे ॥ ४३ ॥ येभ्यसन्तिशिवज्ञानं हृदयेशिवभाविताः ॥ यदिवेदाःप्रमाणन्तु ते षांज्ञानंप्रजायते ॥ ४४ ॥ इयञ्चसर्वभूतानां शरणम्भुविनर्म्मदा ॥ अपांरूपतयादेवी लोकानुग्रहकारिणी ॥ ४५ ॥ स्थावरंजङ्गमंचैव भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ भगवत्युद्धरत्येषा पतन्तंनरकेध्रुवम् ॥ ४६ ॥ एवंज्ञात्वानरश्रेष्ठ शिवमन्वीक्ष्य कल्पगाम् ॥ उच्चैर्गृहाणिदिव्यानि धनधान्यान्वितानिच ॥ ४७ ॥ सर्वोपस्करदिव्यानि ब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् ॥ अना थायातिवृद्धाय विकलायकुटुम्बिने ॥ ४८ ॥ काष्ठमृन्मयगेहञ्च योद्विजायप्रयच्छति ॥ एवंविधान्गृहान्रम्यान् सर्व तोमरकण्टके ॥ ४९ ॥ कारयेद्यःपुमान्दिव्यांस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ किंतस्यबहुभिर्दत्तैर्दानैर्भवतिभारत ॥ ५० ॥ एत देवपरंदानंसर्वकामार्थसाधकम् ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्यासर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५१ ॥ इति सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७॥

ऐसा जानकर नर्मदाको महादेवही समझकर धन और अन्नसे भरेहुये, सब दिव्य सामानसे सजेहुये बड़े ऊंचे दिव्य मकान ब्राह्मणोंको देवे अनाथ, विकल, कुटुम्ब वाले और अतिवृद्ध ॥ ४७ । ४८ ॥ ब्राह्मणके लिये जो काठ व मट्टीके मकानको देताहै व ऐसेही रमणीक दिव्य मकानोंको जो पुरुष अमरकण्टकमें बनवाताहै उस की पुण्यके फलको तुम सुनो उसको बहुत दानोंके देनेसे क्या है हे भारत ! ॥ ४९ । ५० ॥ सब मनोरथ व सब प्रयोजनों का सिद्ध करनेवाला यही श्रेष्ठ दान है जो मनुष्य इसको भक्तिसे सुनता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वैतत्परमंगुह्यं गवान्देवसमुद्भवम् ॥ ब्रह्मकूर्चस्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ १ ॥ आख्याहिभगवन्सर्वं गोलोकःकीदृशःस्मृतः ॥ प्राप्यतेकर्म्मणाकेन केतस्मिन्ननिशंस्थिताः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ गोमातृलोकंपरमं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३ ॥ यथावत्सर्वलोकानामुपर्युपरिसंस्थितम् ॥ पातालानिततःसप्त पातालंचततस्तथा ॥ ४ ॥ यावत्प्रमाणंपरितः परिच्छिन्नंमहीतलम् ॥ तावत्प्रमाणंतस्याधःसमुद्रास्तानिचैवतु ॥ ५ ॥ तेषांप्रत्येकमुत्सेधप्रमाणंपरिकीर्तितम् ॥ योजनानांसहस्राणिदशार्द्धानिततस्ततः ॥ ६ ॥ सहस्रयोजनोत्सेधस्तस्याभ्यन्तरतस्तथा ॥ विवराणांसमस्तानां सहस्राणिनवस्मृतम् ॥ ७ ॥ तेषांरुचिरमाहात्म्यं नामतस्तुमहीतले ॥ दिव्यदिव्योपसम्पन्नः श्रीमच्चामीकरद्युतिः ॥ ८ ॥ नागराजस्सदैवास्ते तस्मिन्कृतनिकेतनः ॥ अनन्तोनन्तधामाच मुकुन्दोनृपशैवलः ॥ ९ ॥ ततोरसातलंनाम शिवसंतोषभूमिकम् ॥ वासुकेर्नागराज

युधिष्ठिरजी बोले कि हे देव ! इस बड़े गुप्त वृत्तान्त को सुनकर अब गौवोंकी उत्पत्ति और ब्रह्मकूर्चके माहात्म्यको हम आपसे तत्त्वपूर्वक सुना चाहते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आप सब कहो कि गोलोक कैसा कहागया है और किस कर्म करनेसे मिलताहै और उसमें हमेशा कौन रहा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महादेवजी को नमस्कार करके सब कामोंसे भरेहुये, सब लोकोंके ऊपर २ विद्य मान उत्तम मातारूप गौवोंके लोकको हम यथावत् कहतेहैं तुम सुनो पहले सब से नीचे सात पाताल हैं तिसमें पहला पाताल पातालही कहलाताहै ॥ ३।४ ॥ चारोंतरफसे जितनी नापवाली पृथिवीहै उसके नीचे उतनेही प्रमाणवाले वे पाताल और समुद्र हैं ॥ ५ ॥ उन हरएक पातालों की ऊँचाई की प्रमाण पांच हजार योजनकी कहीगई है और वैसेही उनके अन्दरभी हजार योजनकी ऊँचाईहै तदनन्तर जितने पाताल हैं वे सब नव २ हजार योजन के विस्तारवाले हैं ॥ ६ । ७ ॥ उन सबकी उत्तम तारीफ़ उनके नामोंसे पृथिवी में प्रसिद्ध है व जो उम्दासे उम्दा शोभासे युक्त सोनहला चमकवालाहै ॥ ८ ॥ उस पहले पातालमें अपने स्थानको बनायेहुये शेषनाग हमेशा रहते हैं हे नृप ! और भी वहां अनन्त, अनन्तधाम,

मुकुन्द और शैवलआदि नाग रहतेहैं ॥ ९ ॥ तिसके नीचे महादेवजी जिसकी जमीनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसा दूसरा रसातल नाम का पातालहै वहां वासुकिनाम के नागराजका बहुत अच्छा पुरहै ॥ १० ॥ और दानवोंके राजा सुरलोमा का भी वहां बड़ाभारी शहरहै व गरुड़का पुरहै औरभी सब बड़े महात्मा दैत्योंके शहरहैं ॥ ११ ॥ फिर उसके नीचे सुतलनामका पातालहै जिसकी जमीन कँकरीली है वहीं सदा स्वस्तिक आदि नागराजोंकी बस्ती है ॥ १२ ॥ और वहीं वैरोचन और हिरण्यआदि महात्मा दानवों के राजाओं का उत्तम स्थान है ॥ १३ ॥ उसके नीचे उन सब पातालों में बड़ा अतल इस नामका पाताल कहागया है उसकी जमीन केवल

स्य तत्रचारुमहापुरम् ॥ १० ॥ पुरंचसुरलोम्नस्तु दानवाधिपतेर्महत् ॥ सुपर्णस्यचदैत्यानामशेषाणांमहात्मनाम् ॥ ११ ॥ ततःसुतलनामास्ति शर्कराञ्चितभूमिकम् ॥ नागादीनांस्वस्तिकानां तत्रैववसतिःसदा ॥ १२ ॥ दानवाधिपतीनाञ्च तत्रैवनिलयःपरः ॥ वैरोचनहिरण्याख्यप्रभृतीनांमहात्मनाम् ॥ १३ ॥ ततश्चातलमित्युक्तं पातालानान्तुतस्यवै ॥ तेषामूर्द्ध्वस्तुसर्वेषां मृन्मयंचतलंञ्चितेः ॥ १४ ॥ असुराधिपतेस्तावत्कालनेमेर्महापुरम् ॥ चारुचामीकराभासं वैनतेयस्यचापरम् ॥ १५ ॥ ततश्चवितलंनाम पातालंरक्तभूतलम् ॥ तस्मिन्महान्तकोनाम दानवेन्द्रकृतालयः ॥ १६ ॥ तालकोग्निमुखस्तस्मिन्नलह्रादश्चदानवाः ॥ निवसन्तिकृतागारास्तथाप्रह्लादवर्च्चसः ॥ १७ ॥ पातालंवितलंनाम शुक्लंचितितलंततः ॥ कम्बलाश्वतरौनागौ सहितौतत्रतिष्ठतः ॥ १८ ॥ महाजम्भहयग्रीवप्रभृतीनांमहात्मनाम् ॥ वाराणस्यसुरेन्द्राणां निवासस्तत्रकल्पितः ॥ १९ ॥ कृष्णंचितितलंतस्मात्पातालतलसंज्ञकम् ॥ शङ्कुकर्णम

मिट्टीकी है ॥ १४ ॥ उसमें पहले दैत्योंके राजा कालनेमि का बड़ा शहर है और अच्छे सोनेके कामवाला दूसरा गरुडका भी शहर है ॥ १५ ॥ उसके नीचे लाल जमीनवाला वितलनाम का पाताल है, उसमें महान्तक नामका दानवेन्द्र मकान को बनाये हुये ॥ १६ ॥ और वहीं तालक, अग्निमुख, नलह्राद तथा प्रह्लाद वर्चा आदि दानवलोग मकान बनायेहुये बसते हैं ॥ १७ ॥ उसके नीचे फिर वितल नामका पाताल है उसकी जमीन सफेद है वहां कम्बल और अश्वतर ये दोनों नागराज साथही रहतेहैं ॥ १८ ॥ और महाजम्भ और हयग्रीवआदि काशीके महात्मा दानवोंका भी वहीं निवासहै ॥ १९ ॥ उसके नीचे पातालतल नामका पाताल

है उसकी जमीन कालीहै उसमें शंकुकर्ण, महानाद और नमुचिका मकान है ॥ २० ॥ और सातवें पाताल के ऊपर सातद्वीपवाली पृथिवी विद्यमान है जो कि सात समुद्र और पर्वतों से युक्त शोभित होरहीहै ॥ २१ ॥ उसके बीच में जम्बूद्वीपहै तिसके बीचमें लक्षद्वीप है उससे परे शाल्मलीद्वीपहै उसके बाहर कुशद्वीप है ॥ २२ ॥ उसकेबाद क्रौञ्चद्वीप है तिसके बाहर शाकद्वीपहै उससे परे सातवां पुष्करद्वीप कहागयाहै ॥ २३ ॥ इन्हीं द्वीपोंमें सात समुद्रभीहैं जैसे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, दधितोय, क्षीरोद और सातवां स्वादूद समुद्र कहागया है ॥ २४ ॥ सातोंद्वीप और सातों समुद्र एक से दूसरा दूनाहै यही उनके विस्तारका प्रमाण है

हानादनमुचीनांनिकेतनम् ॥ २० ॥ पातालात्सप्तमादूर्द्ध्वं सप्तद्वीपामहीस्थिता ॥ समुद्रैस्सप्तभिर्युक्ता पर्वतैस्समलंकृता ॥ २१ ॥ जम्बूद्वीपश्चतन्मध्ये प्लक्षद्वीपस्ततःपरः ॥ ततश्चशाल्मलीद्वीपः कुशद्वीपश्चतद्बहिः ॥ २२ ॥ क्रौञ्चद्वीपश्चपरतः शाकद्वीपश्चतद्बहिः ॥ परतःपुष्करद्वीपःसप्तमःपरिकीर्तितः ॥ २३ ॥ क्षारोदकश्चेक्षुरसः सुरोदश्चघृतोदधिः ॥ दधितोयःक्षीरपूर्णः स्वादूदःसप्तमःस्मृतः ॥ २४ ॥ सप्तद्वीपसमुद्राणां द्विगुणद्विगुणान्तरः ॥ प्रमाणविस्तरोज्ञेयो नियुतःप्रथमःस्मृतः ॥ २५ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चेतिदक्षिणे ॥ नीलश्चश्वेतःशृङ्गश्च मेरोरुत्तरतःस्मृताः ॥ २६ ॥ मेरुरास्तिस्थितोमध्ये जम्बूद्वीपस्यभारत ॥ माल्यवान्पूर्वतोज्ञेयः पश्चिमेगन्धमादनः ॥ २७ ॥ एतेपर्वतराजानो जम्बूद्वीपेनवस्मृताः ॥ प्लक्षद्वीपादिषुज्ञेयास्सप्तसप्तैवपर्वताः ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपमध्येतु पर्वतोवलयाकृतिः ॥ एकःस्मृतस्समन्ताच्च नामतोमानसःस्मृतः ॥ २९ ॥ विन्ध्योनाममहाभागो जम्बूद्वीपेव्यवस्थितः ॥ यत्रैषानर्म्मदादेवी प्लवन्ती

तिसमें पहला एक लाख योजनका है ॥ २५ ॥ सुमेरुपर्वत के दक्षिण में हिमवान् हेमकूट और निषध ये तीन पर्वतहैं और सुमेरु के उत्तरमें नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये तीन पर्वत कहेगयेहैं ॥ २६ ॥ हे भारत ! सुमेरुपर्वत जम्बूद्वीपके बीचमें वर्तमानहै और उसकेपूर्वमें माल्यवान् और पश्चिममें गन्धमादन जाननेयोग्यहै ॥ २७ ॥ और जम्बूद्वीपमें ये नव पर्वत पर्वतोंके राजा कहेगयेहैं और लक्षआदि द्वीपोंमें सातही सात पर्वत जाननेयोग्यहैं ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपके बीचमें एकही पर्वत कहागया है जोकि चारोंतरफ से कड़ा के आकार बनाहुआ है उसका नाम मानस है ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीप में बडेभाग्यवाला विन्ध्यनाम का पर्वत वर्तमान है जहां लोकोंके

तारनेवाली यह नर्मदादेवी बहती है ॥ ३० ॥ विन्ध्यपर्वतका छोटाभाई दक्षिण में सह्यनामका पर्वतहै यह पृथिवी कछुये की पीठि ऐसी बनीहुईहै जिसके चारोंतरफ सोनहला मण्डल है ॥ ३१ ॥ वह पृथिवी ज्ञानी के वास्ते परमाणुरूप कहीगई है वैसेही उसका प्रमाण दशकरोड योजन का कहागया है ॥ ३२ ॥ उसके किनारे चारोंतरफ लोकालोक इस नामसे प्रसिद्ध पर्वत है वह बडाभारी और सोनेका बनाहुआ बडी शोभावाला सीधा गोलहै ॥ ३३ ॥ अद्धा उसका हजार योजन का है इसी हिसाब से विस्तार भी है उसके अद्धामें सूर्य हैं ॥ ३४ ॥ वे इधर उजियाला करते हैं और पिछली तरफ नहीं करसकतेहैं इसीसे यह श्रेष्ठ पर्वत लोकालोक ऐसा

लोकतारिणी ॥ ३० ॥ विन्ध्यस्यचानुजोभ्राता सह्योदक्षिणतःस्मृतः ॥ उर्वीकूर्म्मतलाकारा काञ्चनीपरिमण्डला ॥ ३१ ॥ अणुरेवतथासातु निर्दिष्टातिविदःक्षितिः ॥ तस्याःप्रमाणंनिर्दिष्टं दशयोजनकोटयः ॥ ३२ ॥ लोकालोकइति ख्यातस्तस्याःप्रान्तेसमन्ततः ॥ स्फीतोहेममयःश्रीमान्सरलःपरिमण्डलः ॥ ३३ ॥ योजनानांसहस्राणि चार्द्धम स्यव्यवस्थितम् ॥ तावदेवचविस्तीर्णं तदर्द्धेभानुराहितः ॥ ३४ ॥ प्रकाशयतिसज्योतिः परभागेऽयहन्यते ॥ लोका लोकइतिप्रोक्तस्ततोसावचलोमहान् ॥ ३५ ॥ लोकालोकावसानोयं भूर्लोकःपरिकीर्तितः ॥ गन्धर्वयक्षरक्षोभिः पिशा चैश्चनिषेवितः ॥ ३६ ॥ मानुषैःपशुभिश्चैव मृगपक्षिसरीसृपैः ॥ स्थावरैर्विविधाकारैर्भूतैरेतैश्चषड्विधैः ॥ ३७ ॥ भूर्लोक श्चभुवर्लोको यावदादित्यमण्डलम् ॥ वसन्तिसततंरुद्रास्सततंवक्त्रभास्कराः ॥ ३८ ॥ आदित्यमण्डलादूर्ध्वं स्मृता स्वर्लोकसंस्थितिः ॥ विमानकोटयस्तस्मिन्नष्टाविंशतिराशयः ॥ ३९ ॥ मेढीभूतोविमानानां सर्वेषामुपरिध्रुवः ॥ नि

कहागया है अर्थात् उसके इधर लोकहै और उधर लोक नहीं है ॥ ३५ ॥ बस लोकालोक पर्वत तक यह भूलोक कहागया है जोकि गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पशु, हरिण, पक्षी सांप इन अनेक प्रकारके आकारवाले स्थावर और छह प्रकारके जीवों से सेवितहै ॥ ३६ । ३७ ॥ यह भूलोकहै इसके बाद सूर्यमण्डलतक भुवर्लोकहै उसमें निरन्तर सूर्य जिनके मुँहमेंहैं ऐसे रुद्र हमेशा रहा करतेहैं ॥३८॥ सूर्यमण्डल के ऊपर स्वर्लोक की स्थिति कहीगई है उसमें अट्ठाईस करोड़ विमान

हैं ॥ ३९ ॥ सब विमानों के ऊपर कोल्हूकी जाटकी तरह ध्रुवहैं इन्हींमें वायुके सात पर्त लगेहुये हैं ॥ ४० ॥ पहला पर्त पृथिवी से मेघमण्डल तक है उनका नाम आह्व है जितनी चीजें इकट्ठी रहतीहैं वह उनका एकत्रित करनेवालाहै ॥ ४१ ॥ दूसरा पर्त प्रवह नाम का है वह सूर्यमण्डल में बँधाहुआहै व यह तीसरा सुन्दर पर्त संवह नाम का प्रतिष्ठितहै ॥ ४२ ॥ चौथा पर्त सोद्वह नाम का नक्षत्रमण्डल में वर्तमान है तदनन्तर पांचवें और छठवें इन दोनों पर्तोंका विमानों को उड़ाना यही कामहै ॥ ४३ ॥ ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊंचेपर महर्लोक है परिवह नाम का सातवां वायुका पर्त ध्रुव में बँधाहुआ है ॥ ४४ ॥ सब पर्तोंके ऊपरवाला यह

युताअनिलस्कन्धास्सप्तास्मिन्नन्तरेस्थिताः ॥ ४० ॥ पृथिव्याःप्रथमःस्कन्धः स्थितश्चामेघमण्डलम् ॥ आहवोनाम वैवातो व्यूहानांव्यूहकृत्तथा ॥ ४१ ॥ द्वितीयःप्रवहोनाम निबद्धःसूर्यमण्डले ॥ तृतीयःसंवहोनाम सुस्कन्धोसौप्रतिष्ठितः ॥ ४२ ॥ चतुर्थस्सोद्वहस्स्कन्धः स्थितोनक्षत्रमण्डले ॥ ततोद्वयोर्विनिर्दिष्टा विमानोद्वहनक्रिया ॥ ४३ ॥ योजनानांध्रुवःकोटिर्महर्लोकःसमुच्छ्रितः ॥ स्कन्धःपरिवहोनाम निबद्धःसप्तमोध्रुवे ॥ ४४ ॥ अन्नादीनिकरोत्येष पर्वणामुपरिस्थितः ॥ विनिर्वृत्तविकाराणामधिवासोमहात्मनाम् ॥ ४५ ॥ तत्राधिकारिदेवानामष्टाविंशतिकोटयः ॥ जनात्स्वर्लोकमागत्य नियोगात्पद्मजन्मनः ॥ ४६ ॥ स्थितामन्वन्तरंतत्र स्वव्यापारावसायिनः ॥ आरुह्यचमहर्लोकमागच्छन्तिततःपुनः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मणोदिवसैकेन देवास्स्वर्गेचतुर्दश ॥ क्रमेणकृत्वाकर्म्माणि महर्लोकेवसन्तिते ॥ ४८ ॥ कोटिद्वयंमहर्लोकाज्जनलोकःसमुच्छ्रितः ॥ साध्यानामसुगस्तत्र वसन्तिसुखिनःसदा ॥ ४९ ॥ योजनानांचतुष्कोट्यो

पर्त अन्नआदि को पैदा करता है बिगड़नेवाली चीजों के स्थान होचुके अब आगे महात्माओं के स्थानहैं ॥ ४५ ॥ महर्लोक में हुकूमत करनेवाले अट्ठाईस करोड़ देवता रहते हैं वे देवता ब्रह्माकी आज्ञासे जनलोक से स्वर्गलोक को आकर ॥ ४६ ॥ अपने कामकी समाप्तिपर्यन्त एक मन्वन्तर तक वहां रहतेहैं फिर वहांसे चढ़कर महर्लोक को चलेजाते हैं ब्रह्मा के एक दिनमें चौदह देवता स्वर्गमें आते हैं व क्रमसे अपने कामोंको कर फिर वे महर्लोक में बसते हैं ॥ ४७ । ४८ ॥ महर्लोक से

जनलोक दो करोड़ योजन ऊंचेपर है वहां साध्य नाम के देवता सदा सुखी रहते हैं ॥ ४६ ॥ जनलोक से चार करोड़ योजन ऊंचेपर तपलोकहै वहां ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति लोग रहतेहैं ॥ ५० ॥ तपलोक से सत्यलोक छह करोड योजन ऊंचेपरहै वहां देवता और दैत्योंसे युक्त ब्रह्मा रहतेहैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे विष्णुलोक दूना ऊंचाहै ब्रह्मलोक के ऊपर विस्तार से युक्त वह बड़ा दिव्यलोकहै ॥५२ ॥ उसके ऊपर विष्णुलोक के बाद बाईस करोड़ योजनका विस्तारवाला श्रीमान् शिवजीका श्रेष्ठलोकहै ॥ ५३ ॥ जोकि हजारों सूर्योंके समान तेजवालाहै और सब कामनाओंसे संयुक्त है अनेक जिसमें जङ्गल हैं और गङ्गाजीसे शोभायमान होरहा है ॥ ५४ ॥

जनादप्युच्छ्रितन्तपः ॥ प्रजानांपतयस्तत्र स्थितास्तुब्रह्मणःसुताः ॥ ५० ॥ सत्यलोकस्तपोलोकात्कोटिषट्कंस मुच्छ्रितम् ॥ आस्तेपरिवृतस्तत्र देवासुरगणैर्विराट् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणेनसमुच्छ्रितः ॥ विस्तरेणत दूर्ध्वेच दिव्यलोकस्समन्वितः ॥ ५२ ॥ विष्णुलोकाच्चपरतःश्रीमच्छिवपुरम्महत् ॥ द्वाविंशत्कोटिविस्तीर्णं तदूर्ध्वेसमु पस्थितम् ॥ ५३ ॥ सूर्यायुतप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥ अनेकारण्यविन्यासं स्वर्गनद्युपशोभितम् ॥ ५४ ॥ स र्वरत्नान्वितैर्दिव्यैस्तप्तजाम्बूनदप्रभैः ॥ सहस्रखण्डभौमैश्च सर्वशोभासमन्वितैः ॥ ५५ ॥ विमानैःसर्वतोव्याप्तं चन्द्रै रिवनभस्तलम् ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वविद्याधरान्वितम् ॥ ५६ ॥ नृत्यगीतरवोपेतैरप्रमेयगुणान्वितैः ॥ मनोजवै रसंख्यातैः परिवारसमन्वितैः ॥ ५७ ॥ क्वचिद्दोलागृहैरम्यैःकिङ्किणीरवकान्वितैः ॥ उद्धतैरर्द्धचन्द्रैश्च घण्टाभरणभूषि तैः ॥ ५८ ॥ मणिमुक्तावितानैश्च मणिरत्नचयैःशुभैः ॥ सर्वरत्नार्चितैर्द्रव्यैर्मुक्तादामसुशोभनैः ॥ ५९ ॥ महासिंहासनैर्दि

सब रत्नोंसे युक्त, आगसे निकलेहुये सोनेके समान तेजवाले, हजारों खण्डवाले, सब शोभाओं से युक्त, दिव्य ॥ ५५ ॥ विमानों से सबओर व्याप्तहै मानो चन्द्रमाओंसे आसमान भराहोवे अप्सराओं के गणोंसे भराहुआ और सब विद्याधरोंसे युक्तहै ॥५६ ॥ नाच और गानेकी आवाजोंसे युक्त,बे प्रमाण गुणोंसे भरेहुये,मनके बराबर चलने अर्थात् उड़ानेवाले,अनगिन्ती, सब सामानों से भरेहुये ॥ ५७ ॥ क्षुद्रघण्टिकाओं की आवाजोंसे युक्त, घण्टाआदि साजोंसे सजेहुये, मणि और मोतियोंसे सजी हुई चांदनीवाले, उत्तम मणि और रत्नों के ढेरोंसे भरेहुये, बड़े ऊंचे, आधे चन्द्रमा के आकार बनेहुये और रमणीक झूलावाले मकानों से कहीं २ शोभित होरहा है

सब रत्न व सब द्रव्यों से शोभित, मोतियों की झालरों से सुहावने ॥ ५८ । ५९ ॥ व सब रत्नोंसे सजेहुये और दिव्यरूप बड़े २ सिंहासनों से युक्त होरहा है कहीं अनगिन्नी गुणवाले पवित्र मकानों से व्याप्त है ॥ ६० ॥ कहीं हमेशा फूलने व फलनेवाले मनके रमानेवाले वृक्षोंसे व्याप्त है सैकड़ों व हजारों बडी रमणीक फुलवारियों से युक्त है ॥ ६१ ॥ वहीं नदियों में श्रेष्ठ, सात कल्पतरु बहनेवाली, पवित्र नर्मदा भी वर्तमान हैं उनकी एक कलाका हजारहवां हिस्सा जम्बूद्वीप में दीखता है ॥ ६२ ॥ लोकोंपर दया करने की इच्छा से पृथिवीपर उतरी हैं और गंगाआदि नदियों का यहां पूरा अवतार हैं ॥ ६३ ॥ और भी अमृतकी बहानेवाली नदियों से

व्यैः सर्वरत्नविभूषितैः ॥ कचित्पुण्यगृहैर्व्याप्तमसंख्येयगुणान्वितैः ॥ ६० ॥ सदापुष्पफलैर्वृक्षैः कचिद्व्याप्तंमनोरमैः ॥
पुष्पोद्यानैर्महारम्यैः शतशोथसहस्रशः ॥ ६१ ॥ सप्तकल्पवहापुण्या तत्रैवास्तेसरिद्वरा ॥ तत्कलायास्सहस्रांशो जम्बू
द्वीपेप्रदृश्यते ॥ ६२ ॥ अवतीर्णामहीपृष्ठे लोकानुग्रहकाम्यया ॥ सर्वात्मनावतारश्च गङ्गादिसरितामिह ॥ ६३ ॥ अमृत
स्यन्दिनीभिश्च नदीभिरुपशोभितम् ॥ हेमरत्नाञ्चितावाप्यःसोपानैःस्फाटिकैर्युताः ॥ ६४ ॥ सितरक्तासितैःपीतैस्सरोजै
र्याःसुगन्धिभिः ॥ पञ्चवर्णैश्चगुरुभिः शोभिताःकाञ्चनाकुलैः॥ ६५॥ महाविकाशिसंस्निग्धैः श्रीमद्भिःपञ्चहस्तकैः ॥
दशद्वादशहस्तैश्च तथाविंशतिहस्तकैः ॥ ६६ ॥ नालैर्मरकतप्रख्यैर्मनोहरदलान्वितैः ॥ पूर्णानीलोत्पलैश्चान्यैर्दीर्घिका
श्चकचित्कचित् ॥ ६७ ॥ सिंहव्याघ्रमुखैर्दिव्यैर्गजवाजिमृगाननैः ॥ गोमुखैश्छागवदनैः कपिपक्षिमुखैस्तथा ॥ ६८ ॥
एकवक्त्रैर्महावक्त्रैर्बहुवक्त्रैरवक्त्रकैः ॥ एकपादैस्त्रिपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ ६९ ॥ वामनैर्ऊर्जटिलैर्मुण्डैर्दीर्घग्रीवैर्महोद

शोभित होरहा है सोने और रत्नोंसे सोहिरहीं व बिल्लौर की सीढ़ियों से युक्त जहां बावलियां विद्यमानहैं ॥ ६४ ॥ जोकि सफेद, लाले, काले,पीले, पँचरंगा और सोनहले सुगन्धिवाले उत्तम कमलों से सोहिरही हैं ॥ ६५ ॥ बड़े प्रकाशवाली, चिकनी, सुहावनी, पांच हाथकी, दश हाथ की, बारह हाथ की, वैसेही बीसहाथकी ॥ ६६ ॥ और पन्नाकी सी चमकवाली डांड़ियों से युक्त, मनकी हरनेवाली पँखुरियोंवाले नीले कमलों से तथा और तरह के भी कमलो से भरीहुई कहीं २ बावलिया विद्यमान हैं ॥ ६७ ॥ सिंह, बाघ, हाथी, घोड़े, हरिन, गौ, बकरा, वानर और पक्षियों के ऐसे हैं मुहँ जिनके ऐसे शिवजी के गण ॥ ६८ ॥ तथा एक मुहँवाले,

बड़े मुहँके, बहुत मुहँवाले, बेमुहँके, एक पावँवाले, तीनपावँवाले, बहुत पावँवाले और बेपावँके ॥ ६९ ॥ बौना, जटावाले, मुण्डा, लम्बे गलेवाले, बडेपेटवाले, भारी देहवाले, बड़ी नाकवाले,बड़े २ कानवाले और बेकानके ॥ ७० ॥ अनेकतरहकेरूप और आकारोंके धारण करनेवाले अनेक प्रकारके गहने पहरनेवाले,अनेकतरहके दिव्य वेषोंके भरनेवाले, मनमानेरूपके बनानेवाले, बड़ेबली ॥ ७१ ॥ अनेक प्रकारके प्रभाववाले और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले गणोंरोयुक्तहोरहाहै और भी अनेक तरहकी जातिवाले जीव इसीतरहके वहां रहते हैं ॥ ७२ ॥ और कुबरी,बौनी, लम्बी,अच्छी देहवाली, अच्छे मुहँवाली, मुण्डिनी,डरावनी, ठमकी,छोटी,लम्बी ॥ ७३ ॥ लम्बे

रैः ॥ महाकायैर्महानासैर्महाकर्णैरकर्णकैः ॥ ७० ॥ नानारूपाकृतिधरैर्नानाभरणभूषितैः ॥ नानावेषधरैर्दिव्यैः कामरूपैर्महाबलैः ॥ ७१ ॥ नानाप्रभावसंयुक्तैर्नानाशास्त्रविशारदैः ॥ असंख्याजातयश्चान्यानिवसन्तितथाविधाः ॥ ७२ ॥ कुब्जावामनकादीर्घा वरदेहावराननाः ॥ मुण्डाश्चविकटानीचा ह्रस्वदीर्घाश्चतादृशाः ॥ ७३ ॥ लम्बोदराह्रस्वभुजा विनताह्रस्वजानुकाः ॥ मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवाजिमुखास्तथा ॥ ७४ ॥ ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दरप्रियदर्शनाः ॥ पञ्चाशत्कोटयस्तत्र शिवस्यपरिचारिकाः ॥ ७५ ॥ मणिमाणिक्यगेहेषु रमन्तेताबहिःकचित् ॥ तत्रगेहेपुयद्द्वारिसहस्रशतभूमिषु ॥ ७६ ॥ विचित्राभूमयस्तत्रवज्रवैदूर्य्यभूषिताः ॥ इतिसर्वगुणोपेतैः स्त्रीसहस्रैर्वराननैः ॥ ७७ ॥ असंख्यातैःपुरंव्याप्तमीश्वरस्यसमन्ततः ॥ तन्मध्येसर्वतोभद्रं दिव्यमायतनंमहत् ॥ ७८ ॥ शुद्धस्फटिकसं

पेटवाली, छोटे हाथोंवाली, लचेकरिहांववाली, छोटी घुटनूवाली, सिंह, हाथी और घोडोंके ऐसे मुहँवाली ॥७४॥ छोटे छल्लेदार बालोंवाली और देखनेमें सुन्दर और प्यारी पचास करोड़ शिवजीकी दासियां वहां विद्यमानहैं ॥ ७५ ॥ वे दासियां मणि व माणिकसे जड़ेहुये मकानोंमें कहीं विहार करतीहैं और कहीं बाहर क्रीड़ा किया करती हैं वहां हजार २ और सौ २ चौकवाले मकानों के दरवाजों के ॥ ७६ ॥ सहनकी जमीनें बड़ी विचित्र हीरा और पन्नाओं से जड़ी हैं इस तरह का महादेवजीका पुर सब गुणोंसे युक्त उत्तम मुहँवाली अनगिन्ती हजारों स्त्रियोंसे चारोंतरफ भराहुआ है वहां उस पुरके बीचमें नौकोर बड़ा दिव्य, सफेद बिल्लौर के समान

पार्वतीपति महादेवजी का सनातन मन्दिर है उसीमें गणोंके मालिकोंसे पूजेजारहे पार्वतीजी के सहित भगवान् महादेवजी बैठेहैं ॥ ७७।७८।७९॥ और अपने स्थान में विद्यमान सिद्ध, ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओं से भी पूजेजाते हैं उस महादेवजी के मन्दिर में श्रीमान् धर्मभी विद्यमानहैं हे अनघ ! ॥ ८० ॥ जहां उनका पति धर्महै वहीं गोमाताभी नित्य रहती है और वहीं देवता और दैत्योंसे पूजी जातीहुई वे नर्मदा देवीभी हैं ॥ ८१ ॥ हे पापरहित ! उन्हीं के जलसे गौवें, बछडे और सब देवता तृप्तहोते हैं और वहां ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, पार्वतीसहित शिव ॥ ८२ ॥ देवता, ऋषि, भूत, पितर और मातृगण रहतेहैं यहां वही गोलोक व शिवलोक और नर्मदा-

काशं स्थानमाद्यमुमापतेः ॥ तत्रास्तेभगवान्सोमः पूज्यमानोगणेश्वरैः ॥ ७९ ॥ सिद्धैस्स्वस्थानसंप्राप्तैर्ब्रह्मविष्णवादिभिस्तथा ॥ धर्म्मस्तत्रस्थितःश्रीमानीश्वरायतनेनघ ॥ ८० ॥ यत्रवीरवृषस्तत्र नित्यंगोमातरस्स्थिताः ॥ तत्रसानर्म्मदादेवी पूज्यमानासुरासुरैः ॥ ८१ ॥ तेनोदकेनतृप्यन्तिगोवत्साःसर्वदेवताः ॥ ब्रह्माविष्णुस्सुरेशान उमयासहितोनघ ॥ ८२ ॥ सुराश्चऋषयोभूताः पितरोमातरस्तथा ॥ सलोकश्शिवलोकोत्र नर्म्मदालोकएवच ॥ ८३ ॥ येगुणारुद्रलोकस्य गोलोकस्यतथैवच ॥ नन्दाभद्रासुभद्राच सुशीलासुरभिस्तथा ॥ ८४ ॥ इतिगोमातरःपञ्च शिवलोकविनिर्गताः ॥ षष्ठीतुनर्म्मदादेवी लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ८५ ॥ एतास्सर्वाजगत्सर्वं सर्वलोकस्यमातरः ॥ तर्प्पयन्तिमहाराज नित्यमत्रात्मिकैर्गुणैः ॥ ८६ ॥ कारणाच्चशिवस्थानादीश्वरेच्छावशानुगा ॥ ॐकारात्सर्वलोकानामिमंलोकंसमाश्रिताः ॥ ८७ ॥ तृणानिखादन्तिचरन्त्यरण्ये पिबन्तितोयानिसुनिर्मलानि ॥ दुग्धंप्रयच्छन्तिपुनन्तिदेहं गावोयतो

लोकभी है ॥ ८३ ॥ जो गुण शिवलोकमें हैं वेही गोलोक में भी हैं नन्दा, भद्रा, सुभद्रा व सुशीला और सुरभि ॥ ८४ ॥ ये पांच गोमाता शिवलोकहीसे निकली हैं और लोकोंपर दया करनेकी मनसा से छठवीं नर्मदादेवी भी वहीं से निकली हैं ॥ ८५ ॥ ये सब संपूर्ण लोकोंकी माताहैं सो हे महाराज ! अपने गुणोंसे यहां सब जगत्को नित्यही तृप्त किया करती हैं ॥ ८६ ॥ शिवजी की इच्छाके अनुसार चलनेवाली सब लोकोंका कारण ॐकाररूप शिवजी के स्थान से इस लोकको आई हैं ॥ ८७ ॥

ये गौवें घासको खाती हैं, जङ्गल में चरती हैं ,अतिनिर्मल पानी पीतीहैं, दूधको देतीहैं और देहको पवित्र करतीहैं इन्हींसे सब जीवलोक जीताहै ॥ ८८ ॥ जिनके मकान आपही छोटे २ बछड़ेवाली गौवोंसे हमेशा सोहते हैं जैसे स्त्रियोंसे सोहते हैं उनके पापकहाहैं ॥ ८९ ॥ जो लोग ॐकार और नर्मदाको शिवरूपसे सदास्मरण किया करते हैं इस घोरसंसारसमुद्र में उनका फिर जन्म नहीं होताहै ॥९०॥ और जो लोग चारा पानी देनेसे गौवोंकी बड़ी भक्तिकरते हैं वे उनकी प्रसन्नतासे शिवलोकको जातेहैं ॥९१॥ये गोमाता सदा अपनी प्रसन्नतासे सब कामनाओंकी देनेवालीहैं जो इन पवित्र गौवोंकी रक्षा करतेहैं वे शिवलोकको जातेहैं ॥ ९२ ॥ और जो

जीवतिजीवलोकः ॥ ८८ ॥ कुतस्तेषांहिपापानि येषांगृहमलङ्कृतम् ॥ सततंबालवत्साभिर्गोभिस्स्त्रीभिरिवस्वयम् ॥ ८९ ॥ येस्मरन्तिसदोंकारं नर्म्मदाञ्चशिवात्मना ॥ नतेषांपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ ९० ॥ येकुर्वन्तिपरांभक्तिं तृणतोयप्रदानतः ॥ प्रसादात्तुगवांतासां शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ ९१ ॥ एतास्सदानुकूलेन मातरस्सर्वकामदाः ॥ येरक्षन्ति शुभागाश्च शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ ९२ ॥ येर्चयन्तिशिवम्भक्त्या सद्विधानैस्समाहिताः ॥ तेविन्दन्तिमहाभोगान्पुरंयान्तिशिवस्यवै ॥ ९३ ॥ येशिवाश्रयतीर्थानि श्रद्धयायान्तिमानवाः ॥ कल्पगांचविशेषेण शैलञ्चामरकण्टकम् ॥९४॥ तेक्रीडन्तिमहाभोगैर्ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ पयोमृतंघृतंक्षीरं मधुदध्यादिकंतुयत ॥९५ ॥ नपश्यतिमहाभाग कल्पगायांविमोहितः ॥ एतत्तेकथितंराजन्रेवावतरणंशुभम् ॥ ९६ ॥ अस्याख्यानेनभगवान् प्रीयतांमेशिवःस्वयम् ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशिवलोकवर्णनोनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥

अच्छे विधानपूर्वक भक्तिसे,सावधान होकर शिवका पूजन करतेहैं वे मनुष्य बड़ेभोगोंको पातेहैं और निश्चयसे शिवजीके पुरको जातेहैं ॥ ९३ ॥ जहां शिवजी विद्यमानहैं ऐसे तीर्थोंको जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जातेहैं और नर्मदा व अमरकण्टकपर्वतको विशेषकरके जातेहैं ॥ ९४ ॥ वे मनुष्य बड़ेभोगोंके साथ ब्रह्मा,विष्णु और शिवके लोकमें विहार करतेहैं जल, अमृत,घी,दूध,मिठाई और दहीआदि जो नर्मदामें वर्तमानहैं ॥९५॥ उनको हे महाभाग! मोहको प्राप्तहोरहा यह मनुष्य नहीं देखसक्ताहै हे राजन्! यह मङ्गलरूप नर्मदाका अवतार तुमसे कहा ॥९६॥ इसके कहनेसे आपही भगवान् शिवजी मुझसे प्रसन्नहोवें॥९७॥ इति स्कन्दपुराणेरेवाखण्डेष्टपञ्चाशत्तमोध्यायः॥५८॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे कल्पग ! हम दानधर्म के विधान को सुना चाहते है गरीब भिक्षुक लोग कैसे शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ १ ॥ किस विधिसे और किस दान से पाप छूटता है सो लोकोंके हितके वास्ते हे महामुने ! आप कहें ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! हे निष्पाप ! हम आपसे यथार्थ कहतेहै सो तुम सुनो कमल, बिल्वपत्र, कुश और नर्मदाका जल ॥ ३ ॥ इनको भगवान् ब्रह्माजी ने साधारण धर्मका कारण कहाहै सब धर्म विश्वासही से पवित्र होतेहैं उन के चेतानेवाले पुराण और वेदही हैं ॥ ४ ॥ उन्हीं से सिखलायेहुये धर्म से मनुष्य स्वर्गको जातेहैं जो मनुष्य रुईका छीरके सहित लालकपड़ा व बाघकी खालका

युधिष्ठिरउवाच ॥ दानधर्म्मविधानञ्च श्रोतुमिच्छामिकल्पग ॥ दरिद्राभिक्षवोवापि कथंयान्तिशिवालयम् ॥ १ ॥ विधिनाकेनदानेन मुच्यतेदुष्कृतन्तथा ॥ लोकानाञ्चहितार्थाय कथयस्वमहामुने ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु राजन्यथान्यायं कथयामितवानघ ॥ पुष्करंबिल्वपत्रञ्चकुशास्तोयंचनार्म्मदम् ॥ ३ ॥ स्वयम्भूर्भगवानाह सामा न्यंधर्म्मकारणम् ॥ श्रद्धापूताःसर्वधर्म्माः पुराणंश्रुतयस्तथा ॥ ४ ॥ तस्योपदेशधर्म्मेण नरायान्तित्रिविष्टपम् ॥ य स्तूलपूर्णविस्तीर्णंरक्तवस्त्रंससूत्रकम् ॥ ५ ॥ व्याघ्रचर्म्मकृतंवापिनववस्त्रावगुण्ठितम् ॥ कृष्णाजिनोपवीतञ्चपुण्यधूपाधि वासितम् ॥ ६ ॥ शिवध्यानाभियुक्ताय श्रद्धयाविनिवेदयेत् ॥ तत्तूलवस्त्रतन्तूनां रोमसंख्यास्तियावती ॥ ७ ॥ तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ मोदतेसर्वलोकेषु भुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ ८ ॥ पुनश्चक्षितिमासाद्य सिंहासनपतिर्भ वेत् ॥ तृणवल्कलपर्णानि शय्याप्रावरणादिकम् ॥ ९ ॥ दत्त्वातदर्थिनेभूमौशिवलोकेमहीयते ॥ शिवमुद्दिश्यनैवेद्यं यो

बनाहुआ अथवा मृगचर्म व पवित्रधूप से बसायाहुआ व नवीनवस्त्रसे लपेटाहुआ यज्ञोपवीत ॥ ५ । ६ ॥ शिवजी के ध्यान करनेवाले ब्राह्मण को श्रद्धासे देताहै वह उस रुईके कपड़ेके सूतों के जितने रेशाहैं ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षतक शिवलोक में पूजित होताहै औरभी सब लोकोंमें अनेक भोगोंको भोगकर आनन्द करता है ॥ ८ ॥ और फिर पृथिवी में आकर राजा होताहै तिनका, भोजपत्र, पत्ते, पलँग और ओढ़ने के कपड़े आदिको ॥ ९ ॥ पृथिवी में उस २ चीज की चाह करनेवाले

के लिये देकर शिवलोक में पूजित होताहै महादेवजी के नामसे जो शिवभक्तको नैवेद्य देताहै ॥ १० ॥ व जो शाक, जड और फल देताहै उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि चावलआदिकों की जो गिन्ती है अथवा फलों व दलोंकी जो गिन्ती है ॥ ११ ॥ उतने हजार वर्षोंतक शिवलोकमें पूजित होताहै व मनुष्य भक्तिसे शिव के भक्तको व्यञ्जनों के सहित भिक्षा देकर ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! लाखवर्षतक शिवलोक में पूजित होताहै दही और भातसे अत्यन्त भराहुआ सुन्दर भिक्षाका पात्र ॥ १३ ॥ जो शिवभक्त को देताहै उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि करोड़ वर्षतक बड़ेभोगों से युक्त ॥ १४ ॥ दिव्य महादेवजी के पुरमें रहकर पीछे से राजा

दद्याच्छिवदर्शिने ॥ १० ॥ शाकंमूलंफलंवापि तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावत्स्यात्तण्डुलादीनां संख्याफलदलेषुच ॥ ११ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ भिक्षांसव्यञ्जनान्दत्त्वा शिवभक्तायभक्तितः ॥ १२ ॥ वर्षलक्षंमहाभाग शिवलोकेमहीयते ॥ दधिभक्तंसुसम्पूर्णं भिक्षापात्रंसुशोभनम् ॥ १३ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ वर्षकोटिसमन्दिव्यं महाभोगैःसमन्वितम् ॥ १४ ॥ स्थित्वाशिवपुरेदिव्ये तस्यान्तेचमहीपतिः ॥ सुशीतलेनतोयेन शिवभक्तंसितायुजा ॥ १५ ॥ तर्पयित्वाशम्भुलोके वर्षलक्षंचमोदते ॥ कलशंशर्करोपेतं वस्त्रपूताम्बुपूरितम् ॥ १६ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं विमानंसर्वकामिकम् ॥ १७ ॥ संप्राप्यशिवलोकेतु वर्षकोटिंसमोदते ॥ पलाशपर्णैःपत्रैर्वा यः कुर्यात्पुटकानितु ॥ १८ ॥ प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्ताम्रपात्रप्रदोहिसः ॥ यस्ताम्रपात्रंसुकृतं प्रदद्याच्छिवयोगिने ॥ १९ ॥ कोटिषट्कंसकल्पानां शिवलोकेमहीयते ॥ शूलंवहतियः

होताहै बहुत ठण्ढेपानी से कियेहुये मिश्री के शर्बत से महादेवजी के भक्तको ॥ १५ ॥ तृप्तकर लाख वर्षतक शिवलोक मे आनन्द करता है व शक्करका शर्बत कपड़े से छनाहुआ उससे भरेहुये कलशको ॥ १६ ॥ जो शिवभक्त को देताहै उसके पुण्यफल को सुनो कि निर्मल बिल्लौर के तरह सफेद सब भोगोंसे युक्त विमान को ॥ १७ ॥ पाकर वह करोड वर्षतक शिवलोकमें आनन्द करताहै व जो ढांखे व और पत्तोंसे दोने बनाताहै ॥ १८ ॥ और शिवयोगियों को देताहै वह तांबेके पात्रों के देनेके फलको पाताहै व जो अच्छे बनेहुये तांबेके पात्रको शिवयोगी को देता है ॥ १९ ॥ वह छह करोड़ कल्पभर शिवलोक में पूजित होताहै व जो हाथमें

त्रिशूल रखता है और पीठपर सागको रखता है और कमण्डलु भी रखताहै ॥ २० ॥ऐसे शैवको यत्नसे भोजन कराकर शिवलोक को प्राप्तहोताहै अपनी शक्तिसे जो शैवको भोजन कराता है ॥ २१ ॥ वह शिवलोकमें स्थित होकर श्रेष्ठभोगो से विहार करता है व जो बुद्धिमान् मनुष्य शैवधर्म मे स्थित गृहस्थ को भोजन कराता है ॥ २२ ॥ वह बडे २ अनेकभोगों से युक्त शिवलोकमें पूजाजाताहै अथवा शैव आश्रम के जो व्रतहैं उनमें स्थित मनुष्य को कन्दमूल आदिसे जो मनुष्य भोजन कराता है ॥ २३ ॥ वह महादेवजी के पुरमें स्थित होकर दिव्यभोगो को पाताहै इसीतरह महादेवजीके भक्तको भोजन कराकर और प्रणामकर ॥ २४ ॥ अनेकतरह

पाणौ शक्तिंपृष्ठेकमण्डलुम् ॥ २० ॥ तंभोजयित्वायत्नेन शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ भोजयेच्चयथाशक्त्यायःशिवव्रतचारिणम् ॥ २१ ॥ भोगैःसक्रीडतिश्रेष्ठैः शिवलोकेव्यवस्थितः ॥ यःशिवाश्रमधर्म्मञ्च गृहस्थम्भोजयेद्बुधः ॥ २२ ॥ विपुलैःसमहाभोगैः शिवलोकेमहीयते ॥ शिवाश्रमव्रतस्थंयः कन्दाद्यैर्भोजयेन्नरः ॥ २३ ॥ सदिव्यानाप्नुयाद्भोगानीश्वरस्यपुरेस्थितः ॥ एवंपाशुपतंभक्तं भोजयित्वाप्रणम्यच ॥ २४ ॥ नानाविधैर्महाभोगैः शिवलोकेमहीयते ॥ महाव्रतधरायैव भिक्षांयःप्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥ सदिव्यैश्शोभनैर्भोगैः शिवलोकेमहीयते ॥ अत्यन्तयमनाचारं शिवभक्तिपरंनरम् ॥ २६ ॥ भोजयित्वायथाशक्त्या शिवलोकेमहीयते ॥ ज्ञानयोगबहिःस्थाये लोकसामान्यधर्मिणः ॥ २७ ॥ पूजयन्तिशिवम्भक्त्या शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ २८ ॥ अनाशिकेनापिकरीषवह्निनापयःप्रदानेनतपोभिरुग्रैः ॥ प्रयान्तियज्ञैश्चनतांगतिंनरा नीचोपियांयातिहिरुद्रभक्तः ॥ २९ ॥ यथारेवाजलस्पर्शाल्लभन्तेसद्गतिंनराः ॥ नत

के भोगों से शिवलोक मे पूजाजाता है व महाव्रत के करनेवाले को जो भिक्षाही देता है ॥ २५ ॥ वह बहुत अच्छे दिव्यभोगों से युक्त शिवलोक में पूजाजाता है अत्यन्त यम और नियमों के करनेवाले शिवभक्त मनुष्य को ॥ २६ ॥ यथाशक्तिसे भोजन कराकर शिवलोक में पूजाजाता है जो लोग ज्ञानयोग को नहीं जानतेहैं और दुनियाबी साधारण धर्मों के करनेवालेहैं ॥ २७ ॥ वे भी भक्तिसे शिव का जो पूजन करते हैं तो शिवलोक को जातेहैं ॥ २८ ॥ अनशनव्रत, कण्डे की अग्निसे जलना, दूधका दान, कड़ीतपस्या और यज्ञोंकरके भी मनुष्य उस गति को नहीं प्राप्तहोते हैं जिस गतिको नीचभी शिवका भक्त प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

हे भरतर्षभ ! मनुष्य जैसे नर्मदा के जलके स्पर्शसे उत्तमगति को पातेहैं ऐसे यज्ञ और दानआदि उपायों से उस गति को नहीं पातेहैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रसंग से यह शिवलोक, गोलोक और नर्मदाजी का लोक भलीभाति कहागया है जोकि शिवजी के भक्तोंसे युक्तहै ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोग से शान्त होरहे जो मनुष्य परमशिव को जपतेहैं सब दुःखोंसे छुटेहुये वे हमेशा सुखी रहतेहैं ॥ ३२ ॥ पञ्चभूत (पृथिवी,जल, तेज, वायु, आकाश) अहङ्कार, सत्त्वगुण और आठवीं प्रकृति इन आठ परदोंवाला शिवलोक जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ ऐसे हजारों करोड नाग भी जाननेयोग्य हैं माया के सबही अङ्गहैं इससे इधर, उधर, नीचे और ऊपर प्रधानही

थायज्ञदानाद्यैरुपायैर्भरतर्षभ ॥ ३० ॥ इत्येषशिवलोकस्तुप्रसङ्गात्समुदाहृतः ॥ गोलोकःकल्पगालोकः शिवभक्तैस्सम न्वितः ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगेनयेशान्ता जपन्तिपरमंशिवम् ॥ तेसर्वदुःखनिर्मुक्ता भवन्तिसुखिनःसदा ॥ ३२ ॥ शिवलो कश्चविज्ञेयो मण्डलावरणात्मकः ॥ पञ्चभूतान्यहंकारः सत्त्वंप्रकृतिरष्टमी ॥ ३३ ॥ ईदृशानान्तुनागानां कोट्योज्ञेयाः सहस्रशः ॥ सर्वाङ्गत्वात्प्रधानस्य तिर्य्यगूर्ध्वमधःस्थितम् ॥ ३४ ॥ विष्णुलोकात्परंस्थानं कुमारस्यमहात्मनः ॥ स्व च्छमौक्तिकसंकाशं परमाश्रीसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ स्कन्दलोकात्परंस्थानमुमादेव्याःप्रकीर्तितम् ॥ तप्तचामीकरप्र ख्यमशेषगुणसंयुतम् ॥ ३६ ॥ उमास्थानात्परंचैव हरस्थानन्तदुत्तमम् ॥ सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम्॥ ३७ ॥ गणैरध्युषितंसर्वैरसंख्यैर्योगतत्परैः ॥ हिरण्यगर्भकूर्म्माद्यैर्वसुरुद्रदिवाकरैः ॥ ३८ ॥ स्तूयतेभगवान्नित्यं तस्या

विद्यमान है ॥ ३४ ॥ विष्णुलोक से ऊपर निर्मल मोतीके समान, बड़ी शोभासे युक्त, महात्मा स्वामिकार्त्तिकजी का स्थानहै ॥ ३५ ॥ व स्वामिकार्त्तिकजी के लोक के ऊपर पार्वतीदेवी का स्थान कहागयाहै जोकि पिघले सोने के समान रङ्गवाला और सब गुणोंसे युक्तहै ॥ ३६ ॥ और पार्वतीजी के स्थान से परे महादेवजी का उससे उत्तमस्थान है वह करोड सूर्योंके समान तेजवाला और सब कामनाओंसे भराहुआ है ॥ ३७ ॥ जिसमें अनगिन्ती योगाभ्यास के करनेवाले सब गण रहते हैं हिरण्यगर्भ, कूर्मआदि, वसु, रुद्र और आदित्यनाम के देवता ॥ ३८ ॥ महादेवजीके पास रहनेकी इच्छा करनेवाले भगवान् महादेवजी की नित्यही स्तुति किया

न्तिप्रतिकाङ्क्षिभिः ॥ ज्ञानध्यानपरैश्शान्तैर्भिक्षाहारैर्जितेन्द्रियैः ॥ ३९ ॥ प्राप्यन्तैश्चपरंस्थानं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ तत्सत्कर्म्मकरैर्नित्यं ब्राह्मणैर्दग्धकल्मषैः ॥ ४० ॥ वसन्तियद्दतंसिद्धाशयास्तक्केशवर्जिताः ॥ नर्म्मदासेव्यमानाश्च लभन्तेतत्पदंनराः ॥ ४१ ॥ एतत्तेकथितंपार्थ यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ यन्मयाकथितंदानं नर्म्मदातीरमाश्रितम् ॥ ४२ ॥ गच्छन्तियेन्यत्तीर्थन्तु सहस्रांशोविशिष्यते ॥ सर्वज्ञास्सर्वगाःशुद्धाः परिपूर्णाभवन्तिते ॥ ४३ ॥ शुद्धकर्म्मकरायेतु परमैश्वर्य्यसंयुताः ॥ सदेहाश्चविदेहाश्च भवन्तिस्वेच्छयापुनः ॥ ४४ ॥ इतिनित्यंविशुद्धञ्च स्थानमाद्यमुमापतेः ॥ दिव्यंश्रीकण्ठनाथस्य जगद्भर्तुःसमंस्थितम् ॥ ४५ ॥ स्थानंनवकमित्येवं निर्गतायत्रकल्पगा ॥ परमाष्टगुणैश्वर्य्यनित्यमक्षयमव्ययम् ॥ ४६ ॥ शश्वद्गुरुप्रणीतेन ध्यानयोगेनयेनराः ॥ ध्यायन्तिदेवतांनित्यन्ते सिद्धायान्तित

करते हैं ज्ञान और ध्यानमें लगेहुये, भिक्षासे भोजन करनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, उन उत्तम कर्मोंके करनेवाले, पाप जिनके जलगये हैं ऐसे शान्त ब्राह्मण लोगोंसे वह दशहजार सूर्योंके समान तेजवाला श्रेष्ठस्थान पानेयोग्यहै ॥ ३९।४० ॥ जिस सत्यस्थान में क्लेशसे रहित,निर्मल मनवाले, महात्मालोग रहते हैं और जो मनुष्य नर्मदा का सेवन करते हैं वे उस पदको पाते हैं ॥ ४१ ॥ हे पार्थ ! जैसा महादेवजी ने कहाथा वैसेही इस वृत्तान्त को मैंने तुमसे कहा नर्मदा के तीर जिस दानको मैंने कहा है ॥ ४२ ॥ उस दानका हजारहवां हिस्साभी और तीर्थ को जो जाते हैं उनके दानसे विशेष है और जो हमारे कहने के अनुसार दान आदि करते हैं वे सबके जाननेवाले, सब कहीं जानेवाले, निर्मल और सब मनोरथों से भरेपुरे रहते हैं ॥ ४३ ॥ जो निर्मलकर्मों के करनेवाले हैं वे बडे ऐश्वर्य से संयुक्त होते हैं और अपनी इच्छा से चाहे देहसहित रहें और चाहे देहरहित होजावें ॥ ४४ ॥ पार्वतीपति, जगत् के मालिक, महादेवजीका यह नाशरहित निर्मल सब से पहलेका दिव्य स्थान सदा एकरस बनारहताहै ॥ ४५ ॥ इसप्रकार नव स्थान हैं जहां से नर्मदाजी निकली हैं जहां आठों उत्तम सिद्धियों के ऐश्वर्य, नाशरहित सदा अक्षय बनेरहते है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य गुरुके बतायेहुये ध्यानयोग से देवता का नित्यही ध्यान किया करते हैं वे सिद्धलोग उस पदको प्राप्त

होते हैं ॥ ४७ ॥ मनोरथों की तृष्णा से रहित नर्मदा के तटमें बैठकर जो लोग शिवजी के ज्ञानका अभ्यास करते हैं वे भी उस पुरको प्राप्तहोते हैं ॥ ४८ ॥ व जो एक दिनभर भी शिवजी के ध्यान और शिवजी के धर्ममें परायण होवे उसके धर्मका अन्त नहीं है ॥ ४९ ॥ योगधर्म सबका सारहै इसमे वह पापरूपी मुगदरों से तोडा नही जासक्ता है वज्रके चावल के समान उसको जानना चाहिये इससे उसका बडाफल है ॥ ५० ॥ देहके अन्ततक कमायेहुये धर्मसे सनातन महादेवजी का स्थान प्राप्त होताहै जहा बहुत से भोगोंमे दशहजार कल्पोंतक मनुष्य विहार करता हुआ रहताहै ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दशहजार कल्पोंके बाद स्वामिकार्त्तिकजीके स्थान

त्पदम् ॥ ४७ ॥ येभ्यसन्तिशिवज्ञानं नर्म्मदातीरमाश्रिताः ॥ कामतृष्णाविनिर्मुक्तास्तेपियान्तिचतत्पुरम् ॥ ४८ ॥ अप्येकदिवसंयावच्छिवध्यानपरायणः ॥ शिवधर्म्मपरस्तस्य धर्म्मस्यान्तोनविद्यते ॥ ४९ ॥ योगधर्म्मसुसारत्वादभेद्यंपापमुद्गरैः ॥ वज्रतण्डुलवज्ज्ञेयं तस्मात्तस्यफलंमहत् ॥ ५० ॥ देहान्तेनैवधर्म्मेण स्थानमाद्यंशिवालयम् ॥ यत्रास्तेविपुलैर्भोगैः क्रीडन्कल्पायुतंनरः ॥ ५१ ॥ ततःकल्पायुतस्यान्ते स्थानंकौमारमाप्नुयात् ॥ तत्रार्द्धसम्मितंकालंसक्रीडन्ससुखंवसेत् ॥ ५२ ॥ तदन्तेविष्णुलोकञ्च संप्राप्यवसतेपुनः ॥ ब्रह्मलोकंगतश्चान्ते तत्रापिवसतेनरः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मलोकपरिभ्रष्टो वसेच्छिवपुरेसुखम् ॥ तत्तस्माद्ब्रह्मविष्ण्वाद्याल्ँलोकान्प्राप्नोत्यनुक्रमात् ॥ ५४ ॥ इत्येवंसर्वलोकेषुरमित्वाक्रमशस्ततः ॥ मनुष्यलोकमासाद्य शिवंरेवांसमाश्रयेत् ॥ ५५ ॥ मयातेकथितान्यत्र यानिदानानिभारत ॥ तानिसर्वेप्रशंसन्ति पर्वतेमरकण्टके ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदामाहात्म्येशिवमहिमानुवर्णनोनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९॥

को पाताहै वहां उस कालके आधे कालतक विहार करताहुआ वह सुखसे रहता है ॥ ५२ ॥ उसके पीछे फिर मनुष्य विष्णुलोक को भलीभांति प्राप्तहोकर वहां रहता है और अन्तमे ब्रह्मलोकको प्राप्तहो वहाभी रहता है ॥ ५३ ॥ व ब्रह्मलोक से छुटाहुआ फिर शिवजी के पुरमें सुखसे रहता है इसीतरह उस २ लोकसे ब्रह्मा और विष्णुआदि के लोकोंको क्रमसे प्राप्तहोताहै ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सब लोकोंमें क्रमसे विहारकर तदनन्तर मनुष्यलोकको प्राप्तहोकर फिर शिव व नर्मदा का सेवनकरे ॥ ५५ ॥ हे भारत ! यहां अमरकण्टक पर्वतमें जो दान मैंने तुमसे कहे हैं उनकी सबलोग प्रशंसा करते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेएकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब मुझसे कहेजारहे विष्णुके दानधर्म को समझो सब दुःखोंके नाश करने के वास्ते विष्णुयोग को अभ्यासकर ॥ १ ॥ व घी स्नान और स्तोत्र पाठआदि से विधिपूर्वक विष्णुको भलीभांति पूजकर द्वादशी विषे नर्मदाके तटको प्राप्तहोकर जो विष्णुके नामसे एक दुधारी गौको देवे उसकी पुण्यके फलको तुम सुनो कि धर्मराज से जैसे विष्णु पूजेजाते हैं वैसेही वह भी पूजाजाता है ॥ २ । ३ ॥ चन्दन और फूलोआदि से पूजेहुये, सोनेके गहने और कपड़ो से सजेहुये दश बैलोंके सहित एक हजार गाभिन गौवो से मिलेहुये एकहजार शैव व वैष्णवो को जो भोजन कराताहै और "ॐनमोभगवतेवासुदेवाय" इस मंत्रराज

मार्कण्डेयउवाच ॥ वैष्णवंदानधर्म्मञ्च कथ्यमानंनिबोधमे ॥ विष्णुयोगंसमभ्यस्य सर्वक्लेशापनुत्तये ॥ १ ॥ विष्णुंसम्पूज्यविधिना घृतस्नानादिभिःस्तवैः ॥ द्वादश्यांविष्णुमुद्दिश्य दद्यादेकाम्पयस्विनीम् ॥ २ ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पूज्यतेधर्म्मराजेन यथाविष्णुस्तथैवसः ॥ ३ ॥ शैवानांवैष्णवानाञ्च सहस्रम्भोजयेत्तुयः ॥ गर्भिणीधेनुसंमिश्रं वृषभैर्दशभिर्युतम् ॥ ४ ॥ अर्चितंगन्धपुष्पाद्यैर्हेमवस्त्रैरलंकृतम् ॥ प्रदक्षिणमुपाक्रम्य मन्त्रराजंचभक्तितः ॥ ५ ॥ ॐनमोभगवतेवासुदेवायेतिसमुच्चरन् ॥ वेदविद्भिःसमाकीर्णं विष्णोराराधनैःशुभैः ॥ ६ ॥ नर्म्मदातोयमासाद्य दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ गावोममाग्रतोनित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ ७ ॥ गावोमेहृदयेवापि गवांमध्येवसाम्यहम् ॥ इमंमन्त्रंसमुत्थाय जपेदासांपुरोगवाम् ॥ ८ ॥ गन्धतोयाक्षतैर्मिश्रैर्गृहीत्वाताम्रभाजनम् ॥ शृङ्गपुच्छजलस्नातःशुक्लवस्त्रसमन्वितः ॥ ९ ॥ नर्म्मदास्नानपानेन गवांपुच्छाम्भसातथा ॥ सर्वकल्मषनिर्मुक्तः सुसिद्धःसुचिरव्रतः ॥ १० ॥

को उच्चारण करताहुआ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणाकर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों से व्याप्त और पवित्र विष्णुके पूजनों से शोभित ॥ ४ । ५ । ६ ॥ नर्मदा के जलको प्राप्त होकर दियाली जलावे और उन गौवोंके सामने भलीभांति खडाहोकर इस मन्त्रको पढ़े कि "गावोममाग्रतोनित्यंगावःपृष्ठतएवच। गावोमेहृदयेवापिगवांमध्ये वसाम्यहम्" इसका यह अर्थहै कि गौवें सदा मेरे आगे रहें और गौवें मेरे पीछेभी रहें और गौवें मेरे हृदयमें रहें और गौवोंके बीचमें मैं रहूं ॥ ७ । ८ ॥ गौवोंके सींग और पूंछके जलसे स्नान कियेहुये और सफेद कपडों को पहने, मिलेहुये चन्दन, जल और अक्षतों से युक्त तांबेके पात्रको लेकर ॥ ९ ॥ नर्मदाके स्नान व उसके

जल पीने से व गौवोंके पूंछके जलसे सब पापोंसे छुटाहुआ बहुत दिनके व्रतका करनेवाला अत्यन्त सिद्ध होरहा वह यजमान ॥ १० ॥ गौवोंको नहलाकर ब्राह्मणों के सहित वहां नर्मदा के किनारेपर जाकर पूर्णमासी बिषे चन्द्रमा के पूरे होनेपर अथवा चन्द्रग्रहण में ॥ ११ ॥ उन्हीं ब्राह्मणों के सहित विष्णुका भलीभांति पूजन कर स्मरणकरे अपने सेवक, पुत्र, स्त्री, भाई और वन्धुओंसे युक्त ॥ १२ ॥ और श्रद्धासे युक्त इस मन्त्रसे गौवोंको कृष्णके वास्ते अर्पणकरे "मन्त्रः—श्राद्धेदानेचहोमे चविवाहेमङ्गलेतथा । गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवायैतामयादत्ताविष्णवेचमहात्मने " इसका यह अर्थहै कि श्राद्ध, दान, होम, विवाह और

स्नापयित्वागतस्तत्र सविप्रोनर्म्मदातटे ॥ पौर्णमास्यांपूर्णचन्द्रे राहुसोमसमागमे ॥ ११ ॥ तैरेवसार्द्धंविप्रेन्द्रैःसंप्रपूज्यहरिंस्मरेत्॥ भृत्यपुत्रकलत्राद्यैर्युक्तःस्वजनबान्धवैः॥ १२ ॥ निवेदयेत्तुकृष्णाय मन्त्रेणश्रद्धयान्वितः ॥ श्राद्धेदानेचहोमेच विवाहेमङ्गलेतथा ॥ १३॥ गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवायैतामयादत्ता विष्णवेच महात्मने ॥ १४ ॥ एवंविप्राययोदद्याद्यज्ञार्थंसमलंकृताः ॥ एवंनिवेद्यपुरुषो गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कुलानित्रिंशदुत्तार्य्य नरकाद्भृत्यबान्धवान् ॥ स्थापयेद्वैष्णवेलोके शिवस्यचमहात्मनः ॥ १६ ॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च विशुद्धःसर्वगःप्रभुः ॥ संसारसागरान्मुक्तो हरितुल्यःप्रजायते ॥ १७ ॥ अनेनैवविधानेन गृहस्थाःप्राप्नुयुर्दिवम् ॥ विनापिज्ञानयोगेन गोसहस्रप्रदानतः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापि शूद्रोवापिचभक्तितः ॥ नर्म्मदाकपिलायोगे यथाविभववि

भी मङ्गलकार्य में गऊमाता हमेशा रहती हैं जोकि मङ्गलरूप विष्णुलोककी रहनेवाली हैं इनको मैंने शिव अथवा महात्मा विष्णुजी के वास्ते दियाहै ॥ १३ । १४ ॥ इस प्रकार सजीहुई गौवोंको यज्ञके वास्ते जो पुरुष ब्राह्मण को देवे तो ऐसे देकर वह हजार गौवोंके दानके फलको पाताहै ॥ १५ ॥ और अपनी तीस पीढ़ियों को तथा सेवक और भाइयोंको नरकसे उद्धारकर विष्णु व महात्मा शिवजीके लोक में स्थापित करताहै ॥ १६ ॥ और आप विष्णुकी तरह सर्वज्ञ, सबसे पूर्ण, निर्मल, सब में व्याप्त, सबका मालिक और संसारसमुद्र से छुटाहुआ होजाता है ॥ १७ ॥ बस इसी विधानसे गृहस्थलोग स्वर्गको प्राप्तहोतेहैं ज्ञानयोग के न होनेपर भी केवल

एकहजार गौवों के देनेही से ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र कोईहो भक्तिसे नर्मदा और कपिलाके संगममें अपने विभव के अनुसार ॥ १९ ॥ यज्ञके करने वाले ब्रह्मतेज से शोभित दरिद्री ब्राह्मण को चन्द्र व सूर्य के ग्रहण अथवा व्यतीपात, संक्रान्ति ॥ २० ॥ षडशीतिमुख, सोमवती अमावस, कार्त्तिकी, युगादितिथि में व हे भारत ! औरही किसी पुण्यवाले दिनमें कहेहुये दानको देवे ॥ २१ ॥ जिससे कि हे नराधिप ! पितरलोग ऐसी गाथाको गाया करतेहैं कि ऐसाभी कोई हमारे कुलमें बड़ा धर्मात्मापुत्र होगा ॥ २२ ॥ जोकि नर्मदा और कपिलाके योगमें अथवा मुक्तिके देनेवाले कोटितीर्थ मे राब सामान से संयुत गौवोंको देकर हमलोगों

स्तरैः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणायदरिद्राय दीक्षितायोपशोभिने ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेतु व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ २० ॥ षडशीति मुखेदद्यादमासोमसमागमे ॥ कार्त्तिक्यांवायुगादौवा पुण्येवाहनिभारत ॥ २१ ॥ यद्धिगायन्तिपितरो गाथामेतान्नरा धिप ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं पुत्रःपरमधार्म्मिकः ॥ २२ ॥ नर्म्मदाकपिलायोगे कोटितीर्थेचमुक्तिदे ॥ नरकादुद्धरेद स्मान्दत्त्वागायस्तुसंयुताः ॥ २३ ॥ दशवर्षसहस्राणिलोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र गोसहस्रप्रदोभव ॥ २४ ॥ देववद्दिविमोदन्ते येनतेपितरस्सदा ॥ कथयामितवाथाहमितिहासंपुरातनम् ॥ २५ ॥ युवनाश्वःपुराराजा च क्रवर्तीमहायशाः ॥ शक्राच्छतगुणंपुण्यं प्रजापालनतत्परः ॥ २६ ॥ अयोध्यानगरीयस्य ब्रह्मलोकसमप्रभा ॥ त स्यांकृतयुगेचादौ सर्वधर्म्मपरायणः ॥ २७ ॥ बृहस्पतिब्रह्मसमं वशिष्ठंस्वपुरोहितम् ॥ अभिवाद्ययथान्यायमुवाचमु

को नरकसे उद्धार करेगा ॥ २३ ॥ इस दानका देनेवाला दशहजार वर्षतक वैष्णवलोकमें विहार करताहै तिससे हे राजेन्द्र ! तुमभी हजारगौवो के देनेवाले हूजिये ॥ २४ ॥ जिस से तुम्हारे पितरलोग देवताओं की तरह स्वर्ग में सदा आनन्द करें अब यहां पर तुमसे पुराने इतिहास को कहते हैं ॥ २५ ॥ अगिले जमाने में बड़े यशवाले चक्रवर्त्ती युवनाश्वराजा होतेहुये उनका पुण्य इन्द्रसे सौगुना था वे राजा अपनी प्रजाके पालनमें तत्पर होतेहुये उन राजाकी अयोध्यापुरी ब्रह्मलोकके समान शोभावाली होतीहुई उसी अयोध्यामें आगे सत्ययुगमें सब धर्मोंके करनेवाले राजा युवनाश्व ॥ २६ । २७ ॥ बृहस्पति व ब्रह्माके समान अपने पुरोहित मुनि-

श्रेष्ठ वशिष्ठजीको यथारीति नमस्कार कर उनसे बोले ॥२८॥ कि किस स्थानमें व किस तीर्थ व देशमें व किस देवालयमें यज्ञ करनाचाहिये तब वशिष्ठआदि सब मुनि लोग यह बोले कि॥ २९ ॥ पृथिवीमें सब तीर्थोंका स्थान,नैमिषतीर्थ बहुत अच्छाहै वहां करनेसे अश्वमेधयज्ञ करोड़से करोड़गुना अधिक फलवाला होसक्ताहै ॥३०॥ हे राजन्! यह तीर्थ मत्स्यपुराण में मछली के रूप को धरेहुये भगवान् विष्णुजी करके कहागयाहै और हे राजन्! अपने पुत्र मनुजी से सूर्यने भी कहाहै ॥ ३१ ॥ सब पुराणों में मत्स्यपुराण श्रेष्ठ कहागया है अगिले जमाने में वेद नष्ट होगये रहे सो वे मत्स्यरूपसे उद्धार कियेगये ॥ ३२ ॥ जब वेद नहीं रहे थे तब सब ब्राह्मण

निसत्तमम् ॥ २८ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेयज्ञं तीर्थेदेशेसुरालये ॥ वशिष्ठप्रमुखास्सर्वे मुनयश्चेदमब्रुवन् ॥ २९ ॥ पृथिव्यां नैमिषंतीर्थं सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ सफलोहयमेधस्तु कोटिकोटिगुणोत्तरः ॥ ३० ॥ पुराणेकीर्तितंराजन्मत्स्यरूपेणविष्णुना ॥ सूर्य्येणकीर्तितंराजन्मनुपुत्रायचात्मनः ॥ ३१ ॥ सर्वेषान्तुपुराणानां पुराणंमत्स्यकीर्तितम् ॥ वेदाश्चैवपुरा नष्टा मत्स्यरूपेणचोद्धृताः ॥ ३२ ॥ वेदहीनाश्चवर्तन्ते द्विजावैयज्ञकर्म्मसु ॥ एवंविधन्तुतत्तीर्थं युवनाश्वतवोदितम्॥ ३३ ॥ एवंश्रुत्वाततोवाक्यं वशिष्ठस्यपुरोधसः ॥ आदिदेशततोमात्यान्धर्म्मिष्ठान्सत्यवादिनः ॥ ३४ ॥ यज्ञोपस्करमादाय समागच्छतसत्वरम् ॥ घोषणंक्रियतांराष्ट्रे दण्डहस्तैश्चकिङ्करैः ॥ ३५ ॥ आहूतास्तुततोदेवा नृपतेर्यज्ञकर्म्मणि॥ ब्रह्माविष्णुःसुरेशश्च स्कन्दोवैश्रवणस्तथा ॥ ३६ ॥ शम्भुश्चैवविशेषेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ धेनूनांदशलक्षाणि हेमरत्नान्वितानिच ॥ ३७ ॥ लक्षमेकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतत्रयम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च हिरण्यञ्चाप्यनन्तकम् ॥ ३८॥

वेदों से रहित होगये इससे वे लोग यज्ञकर्म को नहीं करसक्ते थे हे युवनाश्व! ऐसा यह नैमिष तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अपने पुरोहित वशिष्ठ जी के ऐसे वचन को सुनकर तदनन्तर धर्मात्मा व सत्यके बोलनेवाले अपने मन्त्रियों को राजाने आज्ञादी ॥ ३४ ॥ कि यज्ञका सामान लेकर आपलोग जल्दी चलें और देशमें चोबदारों करके पुकार करदीजावे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर राजा के यज्ञकर्म के वास्ते देवता बुलायेगये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, स्वामिकार्त्तिक तथा कुबेर॥ ३६ ॥ और देवताओं व असुरों करके नमस्कार कियेगये महादेवजीभी विशेषकरके बुलायेगये सोने और रत्नोंसे युक्त दशलाख गौवें ॥ ३७ ॥ एक लाख घोडे, तीसहजार

हाथी,मणि,माणिक,मोती,बहुतसा सुवर्ण ॥ ३८॥ और भी अनेक तरहकी चीजें चबाने और खाने योग्य अन्न व गहना और भी जो कुछ यज्ञके लायक सामानहै उस सबके सहित राजाने ॥ ३९ ॥ अनेकप्रकारके हजारों विमानों से व अनेक देशके राजाओं से युक्त हो अनेक तरहके हजारों बाजों व अनेक प्रकार के मनोहर गीतों से ॥ ४० ॥ व बड़ीभारी वेदकी ध्वनि से आकाश और पृथिवी को भरतेहुये नैमिष तीर्थ में प्रवेश किया जहां महादेवजी देवता हैं ॥ ४१ ॥ जहां प्रभु विष्णुजी को देखकर पापसे शीघ्र छूटजाता है यह नैमिपतीर्थ देवलोक की तरह खुलासा स्वर्ग की सीढ़ी के समान है ॥ ४२ ॥ वहां स्नानकर और हरिहर का पूजनकर मनुष्य

नानाविधानिद्रव्याणि भक्ष्यभोज्यमलंकृतम् ॥ यज्ञद्रव्यञ्चयच्चान्यत्तत्सर्वंसहितोनृपः ॥ ३९ ॥ नानासहस्रया नैस्तु नानादेशगतैर्नृपैः ॥ नानावाद्यसहस्रैस्तु नानागीतैर्मनोहरैः ॥ ४० ॥ वेदघोषेणमहता दिवंभूमिंविनादयन् ॥ वि वेशनैमिषंतीर्थं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ४१ ॥ हरिंसद्यःप्रभुंदृष्ट्वा मुच्यतेयत्रकिल्बिषात् ॥ स्वर्गसोपानमेतत्तु प्रत्यक्षन्दे वलोकवत् ॥ ४२ ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यहरिं हरंस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ कीर्तनान्नैमिषस्यास्य नरोदहतितत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ अनेकभाविकंघोरं तूलराशिमिवानलः ॥ दीक्षिताब्राह्मणादेवाः कुतश्चित्तुसमागताः ॥ ४४ ॥ आर्तानामयुतंतेभ्यो द दौदेवायचानघ ॥ सहस्रमेकंनृपतिर्भूषणानांचभारत ॥ ४५ ॥ ॐ नमःशंकरायेतिमाधवायेतिचोत्तमः ॥ जलदर्भौसमा दाय पात्रेराजाहिरण्मये ॥ ४६ ॥ एवंसङ्कल्प्यराजेन्द्रयज्ञवाटमकारयत ॥ दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञयूपांश्चहेमजान् ॥ ४७ ॥ ततोनिर्वर्तितोयज्ञो वशिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥ मुदितादेवतास्सर्वा दिव्ययानसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ जयशब्दंप्रचक्रुस्ता

स्वर्ग को प्राप्त होताहै और इस नैमिषतीर्थ के कहने से उसी क्षण अनेक जन्मों के घोर पापको जलादेता है जैसे आग रुई के समूहको जला देती है ऐसे माहात्म्य-वाले नैमिष में दीक्षा को लियेहुये कहींसे ब्राह्मण और देवता भलीभांति आगये ॥ ४३।४४ ॥ और भी दशहजार दीन मनुष्य आये राजाने उन सबको और देवताओं को हे निष्पाप, भारत ! एक हजार गहने दिये ॥ ४५ ॥ " ॐनमःशङ्कराय,ॐनमो माधवाय " ऐसे कहकर वे उत्तम राजा सोने के पात्रमें जल व कुशों को लेकर ॥ ४६ ॥ और इसी तरह सङ्कल्प कर हे राजेन्द्र ! यज्ञस्थान को बनवाते हुये व दश योजन तक सोने के यज्ञके खम्भे गड़वाये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों

ने यज्ञको कराया उससमय दिव्य सवारियों पर चढेहुये सब देवता लोग आनन्दित होतेहुये ॥ ४८ ॥ और उन्हीं देवताओं ने जयशब्द को किया और कहा कि आप के बराबर दूसरा राजा नहीं है व राजा भी मेरे बराबर कोई और नहीं है ऐसे अहङ्कारवाला होताहुआ ॥ ४९ ॥ जबतक अपने रनिवास व सामान के सहित सवारी पर सवार होकर नैमिषारण्य से राजा निकले तबतक एक वानरको देखा ॥ ५० ॥ इसके बाद वह वानर राजासे बोला कि हे राजन्! खड़ेरहो खड़ेरहो हमारी बातको सुनो कि तुम्हारी इस यज्ञके करने से क्या हुआ इस कर्म में केवल देवताओं को भाग दियागया है ॥ ५१ ॥ तुम अहङ्कार से मूढ़बुद्धिवाले होरहे हो अपने को मैं यज्ञका करनेवालाहूं ऐसा मानरहे हो अगिले जमाने में सत्यधर्म राजाके अमरेश्वर में कियेहुये यज्ञमें ॥ ५२ ॥ मेरे मुहँको छोड़कर और गले के नीचे का

राजानान्योभवत्समः ॥ नान्योममसमःकश्चिदित्यहङ्कारवान्नृपः ॥ ४९ ॥ यावद्यानंसमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ निस्सृतोनैमिषारण्यात्तावत्पश्यतिवानरम् ॥ ५० ॥ तिष्ठतिष्ठेत्युवाचाथ शृणुराजन्वचोमम ॥ किन्तेयज्ञविधानेन देवतादानकर्म्मणि ॥ ५१ ॥ अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहामितिमन्यसे ॥ पुरामरेश्वरेयज्ञे सत्यधर्म्मस्यभूपतेः ॥ ५२ ॥ वर्जयित्वामुखम्मेभूत्कण्ठाधोहेमवर्णकम् ॥ येगताश्शिशवस्तेषां सर्वाङ्गाश्चहिरण्मयाः ॥ ५३ ॥ कपिलानर्म्मदायोगे यज्ञतोयप्रवाहतः ॥ स्नानावगाहनात्पानाल्लोडनात्कर्दमेतथा ॥ ५४ ॥ गन्धर्वलोकंसम्प्राप्तो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ त्वदीयेलुलितंयज्ञे नैमिषारण्यसम्भवे ॥ ५५ ॥ पङ्केनलिप्तंगात्रम्मे क्षालितंचाम्बुनातथा ॥ नकिञ्चित्फलमासीन्मे तवयज्ञोनिरर्थकः ॥ ५६ ॥ गवांत्वयायुतंदत्तं धनंधान्यंतथाबहु ॥ भूभुजासत्यधर्म्मेण किन्तुतावन्निरर्थकम् ॥ ५७ ॥ दा

सब अङ्ग सोनहला होगया और जो हमारे बच्चेलोग वहां गये रहे उनके भी सब अङ्ग सोनहले होगये ॥ ५३ ॥ यह हाल हमलोगों का कपिला और नर्मदा के योग में जो यज्ञका जल बहकर मिला उसमें स्नान व मँझाने व पीने व कीचड़ में लोटने से होता हुआ ॥ ५४ ॥ और वहां के चारोंतरह के जीवसमूह गन्धर्वलोक को भलीभांति प्राप्त होतेहुये और तुम्हारे इस नैमिषारण्य के यज्ञ में मैंने लोट लगाई ॥ ५५ ॥ सो कीचड़से मेरा शरीर भरगया फिर उसको पानी से धोया किंतु मुझे फल कुछ भी न हुआ इससे तुम्हारा यज्ञ बेकाम हुआ ॥ ५६ ॥ इस यज्ञ में सच्चे धर्मवाले पृथ्वीपति आपने दशहजार गौवों को दिया और बहुतसा धन व अन्न

दिया परन्तु यह सब निरर्थक है ॥ ५७॥ दान व तपस्यासे तुमने तीनों लोकों को कमाया है परन्तु तुम यह नहीं जानतेहो कि निश्चयकरके नर्मदाही सब तीर्थों की माता कही गई हैं ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहा जैसा कुछ अमरेश्वर में हुआ अब आपका कल्याण हो मैं जाताहूं आपभी अयोध्या को जाइये ॥ ५९ ॥ और मैं भी सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा को जाऊंगा आपकी यज्ञको सुनकर नैमिषारण्य को आयाथा ॥ ६० ॥ अब मैं निराश जाताहूं मेरा मुहँ सोनेका नहीं हुआ ऐसे वानर के वचनको सुनकर राजा युवनाश्व वानर से वचन बोले कि वानरके रूपसे आप कौनहो सो हमसे सत्य कहो तब वानर बोला कि मैं जाबालि

नेनतपसावापि त्रयोलोकास्समर्जिताः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां मातावैमेकलास्मृता ॥ ५८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथा भूदमरेश्वरे ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि त्वंवायोध्यांप्रतिव्रज ॥ ५९ ॥ अहमेवगमिष्यामि नर्म्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ श्रुत्वात्वदीयंयज्ञंहि नैमिषारण्यमागतः ॥ ६० ॥ निराशोहंगमिष्यामि नाभून्मेकाञ्चनस्मुखम् ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा युवनाश्वोब्रवीद्वचः ॥ ६१ ॥ कस्त्वंवानररूपेण सत्यमेतद्ब्रवीषिमे ॥ वानरउवाच ॥ अहंजाबालिनःपुत्रः कदम्बोना मविश्रुतः ॥ ६२ ॥ तिर्य्यग्योनौप्रविष्टश्च प्राक्तैःकर्म्मभिःस्वकैः ॥ भ्रान्तानिसर्वतीर्थानिवेषेणानेनसुव्रत ॥ ६३ ॥ प रित्राणंपरन्नाभूत्सत्यधर्म्मसखोत्तमे ॥ वपुर्हिरण्मयंसर्वं मुखवर्जममाभवत् ॥ ६४ ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा सन्निवृत्यनृ पोत्तमः ॥ आराध्यदेवदेवेशं नैमिषेयज्ञपूरुषम् ॥ ६५ ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं प्रणिपत्यप्रसाद्यच ॥ मदीययज्ञेदानेन

का लड़का कदम्ब नाम प्रसिद्ध था ॥ ६१।६२ ॥ सो अपने स्वाभाविक कर्मों से वानरकी योनि को प्राप्त हुआ हे सुव्रत! मैं इसी वानर के रूपसे सब तीर्थोंमें घूमता रहा ॥ ६३ ॥ परन्तु मेरा भला कहीं नहीं भया केवल सत्यधर्म राजाके उत्तम यज्ञमें इतना हुआ कि मेरे मुहँ को छोड़कर और सब देह सोनहली होगई ॥ ६४ ॥ वानर के वचन को सुनकर श्रेष्ठ राजा फिर लौटकर नैमिष मे देवताओं के देवता भगवान् यज्ञपुरुष का आराधन कर ॥ ६५ ॥ प्रणाम और प्रसन्न करके रसीले वचन को बोले कि हे भगवन् ! यह एक जीव वानर के रूपको धरेहुये मेरे यज्ञ में कियेहुये दान व तपस्या व नियमसे अपने कल्याण को चाहताहुआ अपने हाल

को मुझे सुनाया सो जैसे इसका मुहँ सोने का होजावे वैसा आप करें ॥ ६६ । ६७ ॥ तब करोड़ों सूर्य्यों के समान तेजवाले नैमिष तीर्थ देव प्रत्यक्ष हो राजायुवनाश्व से वचन बोले ॥ ६८ ॥ कि पृथिवी में नैमिष तीर्थ है और पुष्करतीर्थ आकाशमें है और अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥ हे तात ! तुमने स्वामिकार्त्तिकजी के कहेहुये पुराणको नहीं सुना है जहां सब नदी व तीर्थों की माता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी विद्यमान हैं ॥ ७० ॥ इनके नाममात्रके कहने से मनुष्य संसार बन्धन से छूटजाता है तिससे विषाद को छोड़ो तीर्थों में अमरकण्टक मुख्यहै ॥ ७१ ॥ अब सत्यधर्म राजा फिर भी वहां उत्तम यज्ञको करेंगे नर्मदा और

तपसानियमेनच ॥ ६६ ॥ शमिच्छञ्छ्रावयामास एकोवानररूपधृक् ॥ हिरण्मयंमुखंचास्य यथास्यात्त्वन्तथाकुरु ॥ ६७ ॥ उवाचवचनंदेवो युवनाश्वंमहीपतिम् ॥ प्रत्यक्षंनैमिषंतीर्थं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥ ६८ ॥ पृथिव्यांनैमिषं तीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातो गिरिश्चामरकण्टकः ॥ ६९ ॥ नचश्रुतंत्वयातात पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ मातासायत्रसरितां तीर्थानांचसरिद्वरा ॥ ७७ ॥ नामसंकीर्तनादस्या मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ विषादंत्यज तीर्थानां प्रधानोमरकण्टकः ॥ ७१ ॥ सत्यधर्म्मःपुनस्तत्रकरिष्यतिमखोत्तमम् ॥ रेवाकपिलयोर्योगे मुखंतत्रहिरण्मयम् ॥ ७२ ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तववानरसत्तम ॥ नैमिषंसनमस्कृत्य आदिदेवंहरंहरिम् ॥ ७३ ॥ स्थानंस्वञ्चजगाम मुदापरमयायुतः ॥ नैमिषस्यवचःश्रुत्वा अयोध्याधिपतिस्तथा ॥ ७४ ॥ विवेशनगरींपुण्यां यथाशक्रोमरावतीम् ॥ वानरोपिगतस्तत्र सत्यधर्म्मोयतःस्वयम् ॥ ७५ ॥ प्रणम्यसत्यधर्म्माख्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥ रेवाकपिलयोर्योगे त्व

कपिला के योगमें वहीं तुम्हारा मुहँ सोनेका होजायगा हे वानरसत्तम ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है वह वानर नैमिष व आदिदेव हरिहरके नमस्कारकर ॥ ७२ । ७३ ॥ बड़े आनन्द से युक्त अपने स्थान को चलागया इसके बाद वैसेही नैमिष देवके वचन को सुनकर अयोध्याके राजा युवनाश्व भी ॥ ७४ ॥ जैसे इन्द्र अमरावती में प्रवेश करें वैसेही अपनी पुण्यवाली अयोध्यापुरी में प्रवेश करते हुये व वानरभी वहां को चलागया जहां राजा सत्यधर्म विद्यमान थे ॥ ७५ ॥ और सत्य-

धर्मनाम राजाके नमस्कार कर इस वचनको बोला कि नर्मदा और कपिला के योग बिषे आपके महायज्ञ में ॥ ७६ ॥ यज्ञान्तस्नान से उत्पन्न हुये कीचड़ में मेरे लोटने से मेरा शरीर सोनेका होगया अकेला मुहँ ही बाकी रहगया है ॥ ७७ ॥ सो अब आप फिर भी वहां यज्ञ करके मेरा मुहँ सोनेका करदीजिये जिससे फिर भी वानर की योनि से छूटाहुआ गन्धर्वों का राजा होजाऊं ॥ ७८ ॥ उसके कहनेसे जब राजाने वहां यज्ञको किया तब वह श्रेष्ठ वानर सोनहली देहवाला होगया व देवताओंके बाजोंकी आवाज के साथही अनेक आभूषणों से सजा हुआ ॥ ७९ ॥ हंस जिसमें जुतेहुये हैं ऐसे विमान से अप्सराओं के गणों करके हवा कियाजाता हुआ इस तीर्थ के प्रभावसे शङ्करजी के लोकको चलागया ॥ ८० ॥ और भी जो हिंसक जीव वहां थे वे सभी स्नानकर स्वर्गको जातेहुये हे पार्थ ! यह पुराना हाल

दीयेचमहामखे ॥ ७६ ॥ अवभृथस्नानजनिते कर्द्दमेलुठनान्मम ॥ शरीरंकाञ्चनीभूतं मुखमेवावशिष्यते ॥ ७७ ॥ यज्ञमिष्ट्वापुनस्तत्र मुखंमेकाञ्चनंकुरु ॥ गन्धर्वाधिपतिर्भूयोमुक्तोवानरयोनितः ॥ ७८ ॥ हेमीभूतवपुस्तत्र यदावानरसत्तमः ॥ देवदुन्दुभिनादेन नानालङ्कारभूषितः ॥ ७९ ॥ हंसयुक्तेनयानेन वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ जगामशाङ्करंलोकं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ८० ॥ तत्रयेश्वापदास्सर्वे तेपिस्नात्वादिवङ्गताः ॥ एतत्तेकथितंपार्थ यथावृत्तंपुरातनम् ॥ ८१ ॥ श्रवणात्कीर्तनाच्चास्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्मदामाहात्म्येषष्टितमोध्यायः ६० ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वानानाविधान्धर्म्मांस्त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ नाहंतृप्तिन्तुगच्छामि नर्म्मदाख्यानकीर्तनात् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ गावःपवित्रमतुलं गावःसर्वार्थसाधकाः ॥ तस्माद्धिगोप्रदानेन शिवभक्त्याप्रमुच्यते ॥ २ ॥

जैसा कुछ हुआ सो आपसे कहागया ॥ ८१ ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंका फल पाता है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे नर्मदामाहात्म्येषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! आपके प्रसादसे अनेक तरह के धर्मों को सुनकर इस नर्मदाके आख्यानके कीर्त्तन से हम तृप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि गौवें बड़ी पवित्र वस्तुहैं और गौवें सब अर्थोंकी सिद्धि करनेवालीहैं तिससे गौवोंके देने व महादेवकी भक्तिसे मनुष्य पापसे छूटताहै ॥ २ ॥

जिस देशमें महादेवजी की नित्य भक्तिसे युक्त मनुष्य होताहै वह देशही पवित्र होजाता है फिर भाइयों के सहित वह पवित्र होता है इस बातको क्या कहना है ॥ ३ ॥ इस पुराण में छह हजार श्लोक नर्मदा माहात्म्य के कहेगये हैं ज्ञानयोग व धर्मयोगके तत्त्वके जाननेवाले ने इस बातको कहाहै ॥ ४ ॥ धर्म और अधर्मों से जो गतियां होती हैं उनका हाल इस पुराण में कहागया है और तीर्थोंकी कथाके साथ उत्तम नर्मदा की कथा कहीगईहै ॥ ५ ॥ उस कथाके सुनने व कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै वसन और फूलों से युक्त पुराणविद्याको सिंहासन पर स्थापित कर ॥ ६ ॥ और महादेव तथा विष्णुका पूजन कर पुराण को

यस्मिन्देशेभवेन्नित्यं शिवभक्तिसमन्वितः ॥ सोपिदेशोभवेत्पूतः किम्पुनश्चसबान्धवः ॥ ३ ॥ उक्तानिषट्सहस्राणि पुराणेमेकलातटे ॥ इत्याहज्ञानयोगस्य धर्म्मयोगस्यतत्त्ववित् ॥ ४ ॥ धर्म्माधर्म्मगतीनाञ्च स्वरूपमुपवर्णितम् ॥ तीर्थाख्यानसमायुक्तं नर्म्मदाख्यानमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कीर्तनाच्छ्रवणात्तस्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ विद्यांसिंहासनेदिव्ये वस्त्रपुष्पाधिवासिताम् ॥ ६ ॥ पूजयित्वाहरंविष्णुंशृणुयाद्वाचयेत्तथा ॥ श्रीमत्सिंहासनंवापि क्लृप्तंहैमंसुशोभनम् ॥ ७ ॥ हेमवस्त्रोपरिच्छन्नं नानारत्नविभूषितम् ॥ राजतंताम्रकंकांस्यं ब्रह्मचारिविनिर्मितम् ॥ ८ ॥ तत्तुतारसमुद्भूतं शृङ्गवद्रत्नभूषितम् ॥ दिव्यंसिंहासनंवापि पूजांकृत्वाप्रयत्नतः ॥ ९ ॥ गन्धाधिवासितकरः श्रीमदासनसंस्थितः॥ शम्भ्वायतनतीर्थेषु नरेन्द्रभवनेषुच ॥ १० ॥ बोधयेत्परमंधर्म्मं गृहग्रामपुरेषुच ॥ नर्म्मदाकीर्तनाच्छ्रोता शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥ इदंतीर्थमिदंतीर्थं पर्य्यटन्नेतिवैनरः ॥ नर्म्मदैवपरन्तीर्थमित्याहभगवाञ्छिवः ॥ १२ ॥ अस्मि

सुने और वक्तासे बँचावे व सुवर्ण का बनाहुआ अतिशोभन चमकीला सिंहासन हो ॥ ७ ॥ जिसके ऊपरका भाग सोनहले वस्त्रोंसे ढका होवे और अनेक प्रकार के रत्नों से शोभितहो अथवा चांदी व तांबे व कांसेहीका होवे परन्तु ब्रह्मचारीका बनाया हुआ होवे ॥ ८ ॥ अथवा रत्नोंसे विभूषित, पीतलका शिखरवाला सिंहासन होवै उस दिव्य सिंहासनका अतियत्नसे पूजनकर ॥ ९ ॥ चन्दनसे महकीले हाथवाला उत्तम आसनपर बैठाहुआ महादेवके स्थानोंसे युक्त तीर्थोंमें अथवा राजभवनोंमें ॥ १० ॥ व अपने घर व गांव व शहरमें पुराण में कहेहुये परमधर्मको श्रोताओंको समझावे नर्मदा की कथासे श्रोता शिवलोकमें पूजित होता है ॥ ११ ॥ यह तीर्थ है

यह तीर्थहै ऐसेही मनुष्य भ्रमा करता है परन्तु निश्चय करके सबसे श्रेष्ठ तीर्थ नर्मदाही है यह भगवान् महादेवजी ने कहाहै ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! इस तीर्थमें विधि से श्राद्ध करना चाहिये श्राद्ध में जो स्वागत कियाजाता है उससे यमराज प्रसन्न होतेहैं और श्राद्ध में जो आसन दियाजाता है उससे इन्द्र प्रसन्न होतेहैं और पादार्घ से पितर प्रसन्न होते हैं और अन्नआदि के देनेसे प्रजापतिजी प्रसन्न होतेहैं व ब्राह्मणों के चरणोदक से जबतक पृथिवी भीगी रहती है ॥ १३ । १४ ॥ तबतक पितरलोग कमलदलों के पात्रों में जल पीते हैं विद्याके पढ़नेवाले को व संन्यासी को व वेदपाठीको व दण्डरहित परमहंसको और वैष्णव भिक्षुकको श्राद्ध का सब

स्तीर्थेनरश्रेष्ठ श्राद्धंकार्य्यंविधानतः ॥ स्वागतेनयमःप्रीतश्चासनेनशतक्रतुः ॥ १३ ॥ पितरःपादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ विप्रपादोदकक्लिन्नायावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ १४ ॥ तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्तिपितरोजलम् ॥ विद्यावतेस्नातकाय भिक्षवेश्रोत्रियायच ॥ १५ ॥ तथापरमहंसाय विष्णुव्रतधरायच ॥ सर्वोपस्करणंदत्त्वा शिवलोकेमहीयते ॥ १६ ॥ अनाहिताग्निंयोविप्रमाहिताग्निंकरोतिच ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः स्ववित्तेनैवकारयेत् ॥ १७ ॥ अर्द्धार्द्धंसफलंतस्य यावज्जीवन्नसंशयः ॥ विष्णुलोकेन्तकालेच भोगान्भुङ्क्तेचपुष्कलान् ॥ १८ ॥ स्वद्रव्येणचयोयज्ञं करोति विधिवद्द्विजः ॥ नर्म्मदातीरमासाद्य ब्रह्मलोकेसमोदते ॥ १९ ॥ धात्रींहिरण्मयींकृत्वा ब्राह्मणायप्रकल्पयेत् ॥ कपिलातीरमाश्रित्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ २० ॥ तिलतण्डुलकर्पूरसुसम्भोज्यविमिश्रितैः ॥ कुङ्कुमैर्वस्त्रधान्यैश्च नि

सामान देकर शिवलोक में पूजाजाताहै ॥ १५ । १६ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्र नहीं करता है उसको जो ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य अपने धन से अग्निहोत्री करता या करवाताहै ॥ १७ ॥ वह उस अग्निहोत्री ब्राह्मणके जिन्दगी भरके फलके आधेका आधा (चतुर्थांश) फलपाता है इसमें कुछ सन्देह नहींहै और अन्तसमय में विष्णुजी के लोकमें पूरे भोगोंको भोगताहै ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण नर्मदाके किनारे जाकर अपने धनसे यज्ञको विधिसे करताहै वह ब्रह्मलोकमें आनन्द करताहै ॥ १९ ॥ सोनेका आंवला बनवाकर जो नर्मदा के किनारे जाकर ब्राह्मणको देताहै वह विष्णुलोक में पूजित होताहै ॥ २० ॥ और जो मनुष्य वस्त्र व धान्योंसे युक्त, तिल व

चावल, कपूर, सुन्दर भोज्य पदार्थों से मिलेहुये कुंकुम से बनाये हुये आंवले को शिवजी के निकटमें व ग्रहणके समय में व अमरकण्टक पर्वत पर व नर्मदा के किनारेपर देताहै वह विष्णुलोक व स्वर्गमें बसताहै इसमें संशय नहींहै॥२१।२२॥ व जो उत्तम पुरुष सोने व रत्नोंके गहनोंसे सजीहुई प्रत्यक्षगौ व घृतधेनु व गुड-धेनु और शर्कराधेनुको नर्मदा और कपिला के योग में देता है वह इन गौवों को देकर सब पापो से छुटाहुआ विष्णुलोक में विहार करता है ॥ २३ । २४ ॥ व हे महाराज ! जो वहां नर्मदा व कपिलाके संगममें अपनी मांगीहुई भिक्षाका अन्न दियाजावे तो उसके पुण्यकी गिन्ती नहीं है किन्तु हे नृप ! जबतक वह संगम रहे

मितंशिवसन्निधौ ॥ २१ ॥ पर्वकालेचयोदद्यात्पर्वतेमेकलातटे ॥ वसेत्सविष्णुलोकेषु नरःस्वर्गेनसंशयः ॥ २२ ॥ प्रत्यक्षधेनुंयोदद्याद्धेमरत्नविभूषिताम् ॥ घृतधेनुंगुडधेनुं शर्कराधेनुमेवच ॥ २३ ॥ रेवाकपिलयोर्योगे दत्त्वैतानरसत्तमः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ २४ ॥ यदितत्रमहाराज भिक्षान्नञ्चनिवेदितम् ॥ तस्यसंख्यानविद्येत सयावत्संगमोनृप ॥ २५ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं कथितन्तवसुव्रत ॥ वैवस्वतेन्तरेथान्यच्छृणुत्वंनृपसत्तम ॥ २६ ॥ वीरणस्यतुराजर्षेर्मैत्रेयोभूत्पुरोहितः ॥ तेनचायतनंविष्णोःकारितंनर्म्मदातटे ॥ २७ ॥ पुर्य्याश्चैवामरावत्या दिशियाम्यांव्यवस्थितम् ॥ तदायतनमाहात्म्यान्नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ २८ ॥ मोदतेवैष्णवेलोके युगस्यार्द्धंद्विजोत्तमः ॥ शृणुत्वंयानितीर्थानिरेवायाःपश्चिमोत्तरे ॥ २९ ॥ वनंमेघवनन्नाम यज्ञपर्वतमाश्रितम् ॥ रन्तिदेवःपुरातत्र चक्रवर्तीयुधिष्ठिर ॥ ३० ॥ गविनीतंकुलंयेन सदेवासुरमानुषम् ॥ पितरोमोचितायेन गोभिर्विनिहताःपुरा ॥ ३१ ॥ चाण्डालैश्च

तबतक वह विष्णुलोक में विहार करताहै ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! यह सब यथार्थ आपसे कहागया अब हे नृपसत्तम ! और वृत्तान्त तुम सुनो कि वैवस्वतमन्वन्तरमें॥२६॥ वीरणनामक राजर्षि के मैत्रेय नामके पुरोहित होतेहुये उन्हों ने नर्मदा के तट में ठाकुरद्वारा बनवाया ॥ २७ ॥ वह अमरावती पुरीके दक्षिण दिशा में विद्यमान है उस मन्दिरके माहात्म्यसे और नर्मदाके प्रभावसे ॥ २८ ॥ वे उत्तम ब्राह्मण आधे युगभर विष्णुके लोकमें आनन्द करते रहे अब नर्मदाके पछाँह और उत्तर में जो तीर्थहैं उनको तुम सुनो ॥ २९ ॥ कि मेघवन नामका वन यज्ञपर्वत पर वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में वहां चक्रवर्त्ती राजा रन्तिदेव होतेहुये ॥ ३० ॥

जिन्होंने देवता, दैत्य और मनुष्योंके सहित अपने कुलको गोलोकमें प्राप्तकरदिया गौवोंसे पूर्वकालमें मारेगये अपने पितरोंको पापसे छुटादिया ॥ ३१ ॥ जो चाण्डालों से मारेगये थे वे भी परमगतिको प्राप्तहुये चाण्डाल व जल व सांप व बिजली व ब्राह्मण ॥ ३२ ॥ व दांतोंवाले पशुओं से पापियों की मौत होती है वे लोग नारायणबलि से क्रिया करने से व तीर्थों में पिण्डोंके देनेसे परमगतिको प्राप्तहोतेहैं अवन्तीपुरके मालिक दधीचि नामके राजर्षि ॥ ३३ । ३४ ॥ सब धर्मधारियों मे श्रेष्ठ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले होतेहुये अगिले जमाने में देवता और दैत्यों के युद्धमें दैत्यों ने देवताओंको जीतलिया ॥ ३५ ॥ देवता और ब्राह्मणोंके मारनेवाले

हतायेच प्राप्नुवन्तिपराङ्गतिम् ॥ चाण्डालादुदकात्सर्पाद्विद्युतोब्राह्मणादपि ॥ ३२ ॥ दन्तिभ्यश्चपशुभ्यश्च मरणंपाप शालिनाम् ॥ विष्णोर्बलिप्रदानेन क्रियाणांकरणेनच ॥ ३३ ॥ तीर्थपिण्डप्रदानेन तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ दधीचि र्नामराजर्षिरवन्त्यधिपतिस्तथा ॥ ३४ ॥ सर्वधर्म्मभृतांश्रेष्ठश्शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे दैत्यैर्देवाविनिर्जि ताः ॥ ३५ ॥ देवानांब्राह्मणानाञ्च हन्तारोदैत्यकण्टकाः ॥ नष्टाःस्वपापदोषेण सभृत्यकुलबान्धवाः ॥ ३६ ॥ देवास्स मुदितास्सर्वे लोकपालास्सवासवाः ॥ निर्विघ्नंपृथिवींकृत्वा लोकञ्चैवचराचरम् ॥ ३७ ॥ विंध्यंगिरिङ्गतास्तेतु यस्मि न्वहतिकल्पगा ॥ समर्थंभूपतिंज्ञात्वा दधीचिंकुरुसत्तम ॥ ३८ ॥ दत्तान्यस्त्राणिरक्षार्थं तस्यराज्ञस्सुरोत्तमैः ॥ वज्रंश क्तिंतथापाशं दण्डंखड्गंध्वजंगदाम् ॥ ३९ ॥ त्रिशूलंचेतिदेवानामायुधानिप्रचक्षते ॥ तानिदत्त्वायथान्यायं नाक पृष्ठंमुदाययुः ॥ ४० ॥ पुराणमतमाज्ञाय दधीचिस्सत्यविक्रमः ॥ शापस्यैवभयाद्भीतो नमस्कृत्यप्रगृह्यच ॥ ४१ ॥

काटे ऐसे वे दैत्यलोग अपनेही पापके दोपसे अपने सेवक और परिवार व भाइयोंके सहित नष्टहोगये ॥ ३६ ॥ तब सब देवता व इन्द्रसहित सब लोकपाल आनन्दित होगये फिर पृथिवी और सब चराचर लोकको बेखटके करके ॥ ३७ ॥ वे सब देवतालोग विन्ध्याचलको चलेगये जहां नर्मदाजी बहती हैं वहां हे कुरुसत्तम ! राजा दधीचिको समर्थ जानकर ॥ ३८ ॥ उनकी रक्षाके वास्ते उत्तम देवताओंने राजाको अस्त्रोंको देदिया वज्र, शक्ति, फँमरी, दण्ड, तलवार, ध्वजा, गदा ॥ ३९ ॥ और त्रिशूल ये ही देवताओ के हथियार कहेजाते हैं इनको रीतिपूर्वक राजा को देकर प्रसन्नतासे देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ४० ॥ पुराने मतको जानकर सच्ची

ताक़तवाले राजा दधीचि देवताओंके शापके भयसे डरेहुये देवताओंके नमस्कार कर और हथियारोंको लेकर ॥ ४१॥ अपने प्रभावसे उन हथियारोंको पानी बनाकर अपने शरीरके भीतर करलिया तदनन्तर फिर और समय के होने पर फिर दानव लोग अपने बल से अहंकार को प्राप्त होतेहुये ॥ ४२ ॥ जम्भ, कुम्भ और हय-ग्रीव आदि दानवलोग फिर उठतेहुये दानवोंके बलको जानकर इन्द्रसहित सब देवता डरगये ॥ ४३ ॥ समय लगे पर देवता लोग अपने हथियारों की यादकर हे भारत ! नारद को दधीचि के पास भेजतेहुये ॥ ४४ ॥ उन देवताओं के ऋषि नारद जीने उज्जैनीपुरीको प्राप्तहोकर मणि और सोनेकी वेदी बनीहैं जिसमें ऐसे

प्रभावात्तोयतांनीत्वा शरीरान्तर्न्यवेशयत ॥ ततःकालान्तरेप्राप्ते दानवाबलदर्पिताः ॥ ४२ ॥ जम्भकुम्भहयग्रीवप्रमुखाःपुनरुत्थिताः ॥ दानवानांबलंज्ञात्वा त्रस्तादेवास्सवासवाः ॥ ४३ ॥ कार्य्यकालेसमुत्पन्ने संस्मृत्यास्त्रायुधानि च ॥ नारदंप्रेषयामास दधीचिंप्रतिभारत ॥ ४४ ॥ अवन्तींसपुरीम्प्राप्य देवर्षिर्नारदस्तथा ॥ विवेशभवनंराज्ञो मणिकाञ्चनवेदिकम् ॥ ४५ ॥ उत्थितोनृपशार्दूलो मुनिन्दृष्ट्वासुतेजसम् ॥ पूजयित्वायथान्यायं हेमकासनसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ तन्तुदृष्ट्वासुखासीनं राजावचनमब्रवीत् ॥ किमर्थंमानुषेलोके देवलोकात्समागतः ॥ ४७ ॥ नारदउवाच ॥ युद्धंमहत्समुत्पन्नं देवानांदानवैस्सह ॥ समर्पयत्वंशस्त्राणिक्षीयन्तेदानवायथा ॥ ४८ ॥ कुरुकार्य्यञ्चदेवानां सत्यधर्म्मव्रतेस्थितः ॥ दधीचिरुवाच ॥ शृणुकार्य्यञ्चदेवर्षे देवानांहितकाम्यया ॥ ४९ ॥ अचिरेणैवकालेन क्षयंयास्यन्ति

राजाके मकान में प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ दधीचि राजा सुन्दर तेजवाले मुनिको देखकर उठे और सोने के सिंहासन पर बैठेहुये मुनिका यथार्थ रीति से पूजनकर ॥ ४६॥ फिर सुखसे बैठेहुये उन मुनिजीको देखकर राजा वचन बोले कि आप देवलोक से मनुष्यलोकको किस वास्ते भलीभांति आयेहो ॥४७॥ तब नारदजी बोले कि देवताओंका दानवों के साथ बड़ा युद्ध पड़गया है सो अब आप उन हथियारों को दीजिये जिनसे दानवलोग क्षीण होजावें ॥ ४८ ॥ आप सच्चे धर्मके व्रतमें स्थितहो इससे देवताओं के कामको करो तब दधीचि बोले कि हे देवर्षे ! अब देवताओंके हितकी कामनासे जो काम करनाहै उसको तुम सुनो ॥४९॥

थोडेही कालमें सब दानवलोग नष्ट होजायँगे मैंने उन्हीं हथियारों की रक्षाके वास्ते हे महामुने ॥ ५० ॥ उनको पानी करके पीलिया है सो वे मेरी देहके भीतर वर्त्तमान हैं अब इनको देवतालोग उपाय से लेलेवें मैं इनको फिर देवताओं को देदूंगा ॥ ५१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इतना कहकर पूर्वकाल में राजा दधीचि गौवों को बुलातेहुये तब हे विशाम्पते ! गौवोंने दधीचि का मांस आदि सब चाटलिया केवल हड्डियों को छोड़दिया ॥ ५२ ॥ तब लोकपालोंने जैसे तैसे अपने हथियारों को पाया वह स्थान गोनर्द नाम से लोकों में प्रसिद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ फिर देवताओं ने दैत्योंको मारा और फिर संसार भी अपने कामों में प्रवृत्त हुआ तदनन्तर वहां

दानवाः ॥ मयातान्येवशस्त्राणि रक्षणार्थंमहामुने ॥ ५० ॥ आपोभूतानिपीतानि शरीरेसन्तितानिवै ॥ उपायेनहिगृह्णन्ति दास्याम्येतानिवैपुनः ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वाचनृपश्रेष्ठ आजुहावचगाःपुरा ॥ मांसादिभक्षितंगोभिरस्थिवर्ज्जंविशाम्पते ॥ ५२ ॥ अस्त्रग्रामस्ततःप्राप्तो लोकपालैर्यथातथा ॥ गोनर्दंनामनगरं तत्तुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ५३ ॥ दानवानिहतादेवैः पुनःसृष्टिःप्रवर्तिता ॥ अचिन्तयत्तदातत्र रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ५४ ॥ गोविद्युत्पशुचाण्डालसर्पैर्विनिहतानराः ॥ देवलोकंनतेयान्ति नतेषामुदकक्रिया ॥ ५५ ॥ शोचयित्वाचिरंकालं सान्तःपुरपरिग्रहः ॥ प्रक्षाल्यनर्म्मदातोये तदस्थीनि्व्यसर्जयत ॥ ५६ ॥ लिङ्गंब्रह्मेश्वरंतत्र यज्ञपर्वतसन्निधौ ॥ धर्म्मसंशयमापन्नो रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ पप्रच्छमुनिशार्दूलान्वशिष्ठप्रमुखान्द्विजान् ॥ त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य यथान्यायमिदंवचः ॥ ५७ ॥ केदेशाःपर्वताःपुण्या नद्यःकाःकीर्तिताश्शुभाः ॥ नरकस्थान्पितॄन्यत्र तद्ददेयुःसमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ अक्षयंचपितृश्राद्धं पितॄणामक्षयाग ॥ ५९ ॥

राजा रन्तिदेवने विचार किया ॥ ५४ ॥ कि गौ, बिजली, पशु, चाण्डाल और सर्पों से मारे हुये मनुष्य स्वर्ग को नहीं जाते हैं और न उनको जलदान होसक्ता है ॥ ५५ ॥ ऐसे बहुत काल तक अपनी रानियों के साहित राजा रन्तिदेव जी ने विचार कर फिर दधीचि की हड्डियों को धोयकर नर्मदा के जल में विसर्जन कर दिया ॥ ५६ ॥ वहां यज्ञपर्वत के तीर ब्रह्मेश्वर लिङ्ग है अब यहां धर्मकी सन्देह में पड़ेहुये राजा रन्तिदेव ने वशिष्ठ आदि उत्तम ब्रह्मर्षियों से पूँछा उनकी तीन बार प्रदक्षिणाकर नीति के अनुकूल इस वचन को कहा ॥ ५७ ५८ ॥ कि कौन देश व कौन पर्वत व कौन नदियां बहुत पवित्र कही गई हैं जहां पर नरकोंमें पडेहुये पितरोंको

मनुष्य उद्धार करसके सो आपलोग हम से कहें ॥ ५९ ॥ जहांपर करने से पितरोंका श्राद्ध अक्षयफलवाला होवे और पितरोंकी अक्षयगति भी हो तब ऋषिलोग बोले कि हे भूपते ! हमलोगों के सहित आप मार्कण्डेयमुनि के आश्रमको चलो ॥ ६० ॥ क्योंकि नर्मदाके तट में बैठेहुये वे मार्कण्डेयजी भी सब कुछ जानते हैं मुनियों से ऐसे कहेगये रन्तिदेव भी उनके उसवचनको सुनकर ॥ ६१ ॥ मुनियोंके सहित नर्मदा तटके रहनेवाले मार्कण्डेयजीके पास जातेहुये और ब्राह्मणोंके सहित उनके नमस्कारकर पूजन करतेहुये ॥ ६२ ॥ तब कुशासन पर बैठेहुये मार्कण्डेयजी खड़े होकर वचनबोले मार्कण्डेयजीनेकहा कि नर्मदाजी किन पापी पितरोंको संसारसमुद्र

तिः ॥ ऋषयऊचुः ॥ मार्कण्डेयाश्रमंगच्छ अस्माभिस्सहभूपते ॥ ६० ॥ सोपिसर्वंविजानीयात्कल्पगातीरमाश्रितः ॥ तच्छ्रुत्वारन्तिदेवोपि मुनिभिःपरिभाषितः ॥ ६१ ॥ जगाममुनिभिस्सार्द्धंकल्पगातीरवासिनम् ॥ सराजाब्राह्मणैस्सार्द्धं प्रणिपत्यतथार्चयत् ॥ ६२ ॥ समुत्थायाब्रवीद्वाक्यमुपविष्टःकुशासने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कान्नमोचयतेघोरान्पितॄन्संसारसागरात् ॥ ६३ ॥ शृण्वन्तुममवाक्यानि मुनयोविदितात्मनः ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वार्थात्ममयीशुभा ॥ ६४ ॥ शिवेनैतन्निगदितं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ कुब्जारेवासमायोगे विशेषात्सुरपूजिते ॥ ६५ ॥ तत्रस्नातादिवं यान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ तत्रश्राद्धेनयोगेन पितॄणांपरमागतिः ॥ ६६ ॥ इदन्तेकथितंराजन्कुब्जारेवासमागमे ॥ अर्चयित्वामहेशानं तत्रबिल्वाम्रकाह्वयम् ॥ ६७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ सार्द्धकोटिस्तुकन्या

से नहीं छुटासक्ती हैं ॥ ६३ ॥ यहांके बड़े बड़े आत्मज्ञानी मुनिलोग मेरी बातोंको सुनें कि ये नर्मदा सब तीर्थोंका रूपहैं और सब पदार्थ इन्हीं में वर्त्तमानहैं व पवित्र हैं ॥ ६४ ॥ यह स्कन्दपुराणमें महादेवजी ने कहाहै तिसमें देवपूजित कुब्जा और नर्मदा के संगम में विशेष फल होताहै ॥ ६५ ॥ वहां जिन्हों ने स्नान किया है वे स्वर्ग को जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर पैदा नहीं होसक्ते वहां श्राद्ध के करने से पितरों की परमगति होती है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! यह तुम से कहा गया कुब्जा और नर्मदा के समागम में बिल्वाम्रक नाम के महादेव का पूजनकर ॥ ६७ ॥ सब पापोंसे छुटा हुआ गणों की राज्य को पाताहै वहीं पर डेढ़ करोड़ कन्यायें

परम सिद्धिको प्राप्त हुई हैं ॥ ६८ ॥ हे भारत ! कामदेव के दोष से उन कन्याओंको पूर्वकाल के मुनियों ने शापदिया था और भी कुबेरपुर के रहनेवाले विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर भी उसी दोषसे शापित हुये थे परन्तु वे सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में सिद्धि को प्राप्त हुये ॥ ६९ । ७० ॥ सोमवती अमावस, कार्त्तिकी और ग्रहण आदि पर्वों में काशी, प्रयाग, पुष्कर और नैमिष ॥ ७१ ॥ ये सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में स्नान करने को भलीभाँति आते हैं इसके सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेरन्तिदेवोपाख्यानंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥

नां तत्रसिद्धिंपराङ्गता ॥ ६८ ॥ शप्तास्ताःपूर्वमुनिभिः कामदोषेणभारत ॥ विद्याधराश्चयक्षाश्च गन्धर्वाःकिन्नरास्तथा ॥ ६९ ॥ शप्तास्तेनैवदोषेणकुबेरपुरवासिनः ॥ सर्वेतेसिद्धिमापन्नाःकुब्जारेवासमागमे ॥ ७० ॥ अमासोमसमायोगे कार्त्तिक्यांचैवपर्वणि ॥ वाराणसीप्रयागश्च पुष्करन्नैमिषंतथा ॥ ७१ ॥ एतेस्नातुंसमायान्तिकुब्जारेवासमागमे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ७२ ॥ इति श्रीरेवाखण्डेरन्तिदेवोपाख्यानन्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

रन्तिदेवउवाच ॥ यथाशप्तास्तुताःकन्यास्तासान्नामानिकल्पग ॥ श्रोतुमिच्छामितत्त्वेनकेषुस्थानेषुपूजिताः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ वाराणस्यांविशालाक्षी नैमिषेलिङ्गधारिणी ॥ प्रयागेललितादेवी कामुकागन्धमादने ॥ २ ॥ मानसेकुमुदानाम विश्वयोनिस्तथाम्बरे ॥ गोमन्तेगोमतीनाम मन्दरेकामचारिणी ॥ ३ ॥ मदोत्कटाचैत्ररथे तपन्तीहस्तिनापुरे ॥ कान्यकुब्जेतथागौरी प्रभाकमलपर्वते ॥ ४ ॥ एकाग्रेकीर्तिमत्याख्या विश्वाविश्वेश्वरेतथा ॥ पुष्करेपुरु

राजा रन्तिदेवजी बोले कि हे कल्पग ! जैसे उन कन्याओं को शाप दिया गयाहो और उनके जो जो नामहों उनको हम तत्त्वसे सुना चहते है और वे किन स्थानों में पूजीजाती हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि काशीमें विशालाक्षी और नैमिषमें लिङ्गधारिणी पूजीजाती हैं इसीप्रकार प्रयाग में ललितादेवी, गन्धमादन में कामुका ॥ २ ॥ मानस में कुमुदानाम उसीप्रकार अम्बरमें विश्वयोनि, गोमन्त में गोमती नाम, मन्दर में कामचारिणी ॥ ३ ॥ चैत्ररथ में मन्दोत्कटा, हस्तिनापुर मे

तपन्ती, कान्यकुब्ज में गौरी, कमलपर्वतपर प्रभा ॥ ४ ॥ एकाम्र में कीर्तिमती नाम, विश्वेश्वर में विश्वा, पुष्करमें पुरुहूता, केदारमें मार्गदायिनी ॥ ५ ॥ हिमालय में नन्दा, गोकर्ण में भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर में भवानी, बिल्वकमे बिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलमें माधवी उसीप्रकार भद्रेश्वर में भद्रा, वाराहपर्वत मे जया, कमलालयमें कमला ॥ ७ ॥ रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालञ्जर मे कोटि, महालिङ्ग में कपिला, माकोट में मुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्राम में महादेवी, शिवलिङ्ग में जलप्रिया, मायापुरी में कुमारी वैसेही सन्तानमें ललिता ॥ ९ ॥ उत्पलनाम स्थानमें सहस्राक्षी, हिरण्याक्षमें महोत्पला, तीर्थों में मङ्गलानाम, पुरुषोत्तम में विमला ॥ १० ॥

हूतेति केदारेमार्गदायिनी ॥ ५ ॥ नन्दाहिमवतःपृष्ठे गोकर्णेभद्रकर्णिका ॥ स्थानेश्वरेभवानीति बिल्वकेबिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलेमाधवीनाम भद्राभद्रेश्वरेतथा ॥ जयावाराहशैलेतु कमलाकमलालये ॥ ७ ॥ रुद्रकोट्यान्तुरुद्राणी कोटिःकालञ्जरेतथा ॥ महालिङ्गेतुकपिला माकोटेमुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्रामेमहादेवी शिवलिङ्गेजलप्रिया ॥ मायापुर्य्यांकुमारीतु सन्तानेललितातथा ॥ ९ ॥ उत्पलाख्येसहस्राक्षी हिरण्याक्षेमहोत्पला ॥ तीर्थायांमङ्गलानाम विमलापुरुषोत्तमे ॥ १० ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाटलापुण्ड्रवर्द्धने ॥ नारायणीसुपार्श्वेच त्रिकूटेभद्रसुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलेविपुलानाम कल्याणीप्रलयाचले ॥ कोटीविकोटितीर्थेतु यमुनायांमृगावती ॥ १२ ॥ करवीरेमहालक्ष्मीरुमादेवीविनायके ॥ आरोग्यावैद्यनाथेतु महाकालेमहेश्वरी ॥ १३ ॥ अभयाकृष्णतीर्थेतु अमृताविन्ध्यकन्दरे ॥ माण्डव्येमाण्डुकानाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे ॥ १४ ॥ छागलम्बाप्रचण्डेच चण्डिकामरकण्टके ॥ सोमेश्वरेवराहीतु प्रभासे पुष्करावती ॥ १५ ॥ देवमातासरस्वत्यां पारापारावतेतथा ॥ महालयेमहाभागा पयोष्ण्यांपिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ संहि

विपाशा में अमोघाक्षी, पुण्ड्रवर्द्धनमें पाटला, सुपार्श्व में नारायणी, त्रिकूट में भद्रसुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलमें विपुला, प्रलयाचल में कल्याणी, विकोटितीर्थ में कोटी, यमुना में मृगावती ॥ १२ ॥ करवीर में महालक्ष्मी, विनायक में उमादेवी, वैद्यनाथ में आरोग्या, महाकालमें महेश्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णतीर्थ में अभया, विन्ध्यकन्दर में अमृता, माण्डव्यमें माण्डुकानाम, माहेश्वरपुर में स्वाहा ॥ १४ ॥ प्रचण्डमें छागलम्बा, अमरकण्टकमें चण्डिका, सोमेश्वरमें वराही, प्रभासमें पुष्करावती ॥ १५ ॥

सरस्वती में देवमाता, वैसेही पागवत में पारा, महालय में महाभागा. पयोष्णी में पिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ कृतशौच में संहिता, कार्त्तिकेय में शाङ्करी, उत्पलावर्षमें लोला, शोणसङ्गम में सुभद्रा ॥ १७ ॥ मालासिद्धतल में लक्ष्मी, भारताश्रम में अनन्ता, जालन्धर में सिद्धमुखी, किष्किन्धापुरी के पर्वतपर तारा ॥ १८ ॥ देवदारुवन में पुष्टि, कश्मीरमण्डल में मेधा, हिमालय-में भीमादेवी, वस्त्रेश्वर में तुष्टि ॥ १९ ॥ कपालमोचन में सिद्धि, कायावरोहण में माता, शङ्खोद्धारमें धृति नाम, पिण्डारकमें ध्वनि ॥ २० ॥ चन्द्रभागा में कला, अच्छोदमें शिवधारिणी, वैजयन्ती में अमृता, बदरी में ओषधी ॥ २१ ॥ उत्तरकुरुमें भी ओषधी ही है, कुरा-

ताकृतशौचेतु कार्त्तिकेयेतुशाङ्करी ॥ उत्पलावर्षकेलोला सुभद्राशोणसङ्गमे ॥ १७ ॥ मालासिद्धतलेलक्ष्मीरनन्ताभारताश्रमे ॥ जालन्धरेसिद्धमुखी ताराकिष्किन्धपर्वते ॥ १८ ॥ देवदारुवनेपुष्टिर्मेधाकश्मीरमण्डले ॥ भीमादेवीहिमाद्रौतु तुष्टिर्वस्त्रेश्वरेतथा ॥ १९ ॥ कपालमोचनेसिद्धिर्माताकायावरोहणे ॥ शङ्खोद्धारेधृतिर्नाम ध्वनिःपिण्डारकेतथा ॥ २० ॥ कलातुचन्द्रभागायामच्छोदेशिवधारिणी ॥ वैजयन्त्यमृतानाम बदर्य्यामोषधीतथा ॥ २१ ॥ ओषधीचोत्तरकुरौ कुशद्वीपेकुशोदका ॥ मन्मथाहिमकूटेतु प्रमतेसत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थेवन्दिनीनाम निधिर्वैश्रवणेतथा ॥ गायत्रीवेदवदने पार्वतीशिवसन्निधौ ॥ २३ ॥ देवलोकेतथेन्द्राणी ब्रह्मास्येसरस्वती ॥ सूर्य्यबिम्बेप्रभानाम मातृकावैष्णवीतथा ॥ २४ ॥ अरुन्धतीसतीनांच अप्सरस्सुतिलोत्तमा ॥ चितिर्ब्रह्मकलानाम शक्तिस्सर्वशरीरिणाम् ॥ २५ ॥ एतदुद्देशतःप्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ अष्टोत्तरन्तुतीर्थानां शतमेकंह्युदाहृतम् ॥ २६ ॥ यःपठेत्प्रातरु

द्वीपमें कुशोदका, हिमकूटमें मन्मथा, प्रमतमें सत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थ में वन्दिनी, वैश्रवण में निधि, वेदों के मुखमें गायत्री, महादेव जी के समीप पार्वती ॥ २३ ॥ उसीप्रकार देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माजी के मुखमें सरस्वती, सूर्यबिम्ब में प्रभा, मातृका और वैष्णवी ॥ २४ ॥ सती स्त्रियोंमें अरुन्धती, अप्सराओंमें तिलोत्तमा और सब देहवाले जीवों में ब्रह्मकला नामकी चिति शक्ति रहती है ॥ २५ ॥ ये संक्षेपसे उत्तम एकसौ आठ नाम कहेगये कहीहुई एकसौ आठ तीर्थोंकी शक्तियों

का ॥ २६ ॥ जो प्रातःकाल उठकर पाठ करताहै वह परमगति को प्राप्त होताहै इन तीर्थोंमें स्नानकर जो मनुष्य इन शक्तियोंको दर्शन करते हैं ॥ २७ ॥ सब पापों से छूटेहुये वे परमगतिको प्राप्त होते हैं और जो कोई मनुष्य इन देवीजीके स्थानोंमें अपने शरीर को छोड़ताहै ॥२८॥ वह ब्रह्मलोक को नांघकर महादेवजी के स्थान को जाताहै तीज व अष्टमी को महादेवजीके समीप जो मनुष्य इन एकसौ आठ नामों को सुनाता है वह मनुष्य बहुत पुत्रोंवाला होताहै गोदानके समय मे, श्राद्ध के समय में, विवाह व मङ्गलकार्य में ॥ २९ । ३० ॥ और देवताओं के पूजनविधान में इसका पढ़नेवाला ब्रह्माहोता है इस बड़ी महिमावाले स्तोत्र को सुनकर

स्थायसश्यातिपरमाङ्गतिम् ॥ एषुतीर्थेषुयेस्नात्वा एताःपश्यन्तिमानवः ॥ २७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ यःकरोतितनुत्यागमुमास्थानेषुमानवः ॥ २८ ॥ सभित्त्वाब्रह्मसदनं पदमाप्नोतिशाङ्करम् ॥ नामाष्टकशतंयस्तुश्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥ २९ ॥ तृतीयायान्तथाष्टम्यां बहुपुत्रोभवेन्नरः ॥ गोदानेश्राद्धकालेच विवाहेमङ्गलेतथा ॥ ३० ॥ देवार्चनविधौवापि पठन्ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ श्रुत्वैतत्स्तोत्रमतुलं नमस्कृत्यचपर्वतम् ॥ ३१ ॥ राजास्वपितृमोक्षाय यज्ञार्थंप्राहकल्पगम् ॥ कस्मिंस्तीर्थेभवेद्यज्ञः पितॄणांमोक्षदायकः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मातृस्तुतिर्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ रेवातटेमहापुण्ये पितॄणांमोक्षणम्प्रति ॥ कुरुयज्ञंमहाभाग मुच्यन्तेपितरोयथा ॥ १ ॥ इति श्रुत्वामहाराज नमस्कृत्यचकल्पगाम् ॥ वशिष्ठप्रमुखैस्सार्द्धं जगामस्वपुरन्नृपः ॥ २ ॥ सवत्सानाञ्चलक्षैकमप्रसूता

और पर्वत के नमस्कारकर राजारन्तिदेव अपने पितरों के मोक्षके वास्ते यज्ञ के लिये मार्कण्डेयजी से बोले कि पितरों को मोक्ष देनेवाला यज्ञ किस तीर्थ में होना चाहिये ॥ ३१ । ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमातृस्तुतिर्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॥ ॥

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! अतिपवित्र नर्मदातट में पितरोंको नरकसे छुटाने के लिये आप यज्ञ करो जिससे तुम्हारे पितर पापसे छूटजावें ॥ १ ॥ हे महाराज ! इतनी बात को सुनकर और नर्मदा के नमस्कार कर वशिष्ठ आदि ऋषियों के सहित राजा रन्तिदेव अपने शहर को आतेहुये ॥ २ ॥ और वहा आकर

बछड़ोंवाली एकलाख गौवें और दशहजार बेबियानी गौवें, बीसहजार श्यामकर्ण घोड़े, मणि, माणिक और मोती आदि से सजेहुये उच्चैःश्रवा घोड़ेकीसी शोभा-
वाले और भी दशहजार घोड़े व घण्टाआदि आभूषणों से सोहतेहुये दशहजार हाथी ॥ ३।४ ॥ और मणि, माणिक आदि रत्नों की तो गिन्तीही नहीं करीजासक्ती
है इतना सामान लेकर अनेक देशों के राजाओं व पूरे वेदोंके पढ़नेवाले ब्राह्मणों के सहित ॥ ५ ॥ बीन, सितार और वेदों की ध्वनियों से चारों तरफ़ सब दिशाओं
को गुञ्जारते हुये व पृथ्वी और आसमान को आवाज से छूतेहुये ॥ ६ ॥ बड़े आनन्द व यज्ञ के सामान से युक्त राजारन्तिदेव नर्मदा के तीर आतेहुये ॥ ७ ॥

युतन्तथा ॥ विंशतिःश्यामकर्णानांहयानाञ्चदशायुतम् ॥ ३ ॥ मणिमाणिक्यमुक्तादिभूषितोच्चैःश्रवस्त्विषाम् ॥ अयु
तञ्चकरीन्द्राणां घण्टाभरणशोभिनाम् ॥ ४ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानां संख्यांकर्तुन्नशक्यते ॥ नानादेशनृपैस्सार्द्धं ब्रा
ह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥ वेणुवीणानिनादेन ब्रह्मघोषरवेणच ॥ आपूरयन्दिशस्सर्वा दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ६ ॥ हर्षेण
महतायुक्तो यज्ञसम्भारसंवृतः ॥ रन्तिदेवोमहीपालः कल्पगातीरमाश्रितः ॥ ७ ॥ अनेकभक्ष्यभोज्यानां तत्रसंख्यान
विद्यते ॥ अष्टयोजनपर्य्यन्तं यज्ञयूपाश्चमण्डपाः ॥ ८ ॥ हेमरत्नमयास्स्तम्भा मणिमौक्तिकभूषिताः ॥ हिरण्मयानि
कुण्डानिवेदिकाश्चसहस्रशः ॥ ९ ॥ स्रुवश्चयज्ञपात्राणिसर्वंस्वर्णमयन्तथा ॥ समाहूतास्ततोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
१० ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ सिद्धाविद्याधरायक्षास्सुरासुरमहोरगाः ॥ ११ ॥ देवराजश्चदेवाश्च
बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ततोयज्ञस्समारब्धो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ १२ ॥ होमेनतर्पितादेवाः सर्वलोकनिवासिनः ॥ नि

वहां खाने व चबाने की चीजों की गिन्ती नहीं थी आठ योजन तक यज्ञों के खम्भे व मण्डप बने थे ॥ ८ ॥ मणि और मोतियों से सजेहुये रत्नों से जड़े सोने
के खम्भे बनायेगये और सोने के कुण्ड व वेदी हजारों बनाई गईं ॥ ९ ॥ स्रुवा आदि यज्ञ के पात्र सब सोनेही के बने थे तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव
आदि देवता बुलायेगये ॥ १० ॥ ग्रहों के सहित चन्द्रमा व सूर्य, नक्षत्रोंके सहित ध्रुवमण्डल, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, देवता, दैत्य, उत्तम नाग ॥ ११ ॥ इन्द्र, बृ-
हस्पति आदि और भी सब देवता बुलाये गये तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मणों ने यज्ञ का प्रारम्भ किया ॥१२॥ होम से सब लोकोंके रहनेवाले देवताओं को तृप्त किया

और अपनी सातों जीभों से युक्त विना धुवांके अग्नि जलते हुये ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! यज्ञ में अग्निदेव आपही प्रत्यक्षरूप से वर्त्तमान रहे तदनन्तर दक्षिणा को पायेहुये ब्राह्मणोंने यज्ञ को समाप्त किया ॥ १४ ॥ हजारों चोबदारों ने देशमें डुगडुगी पिटवादी कि जो जिस बातकी इच्छा करता हो वह उसको यहां पावेगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और वहां माता व पिताके कुलवाले पुरिखा बुलायेगये जो लोग अकाल मौतसे मरे व पशुओंकी योनि में पड़ेथे ॥ १६ ॥ वे सब यज्ञ के प्रभाव से उत्तम योनियोंको पातेहुये और खुलासा रूप को धरेहुये नर्मदा देवी वहां पूजीगईं ॥ १७ ॥ और वहां पार्वतीजी के सहित भगवान् महादेवजी का भी

धूमश्चज्वलद्वह्निस्सप्तजिह्वासमन्वितः ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च स्वयंयज्ञेनराधिप ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो ब्राह्मणै राप्तदक्षिणैः ॥ १४ ॥ घोषणाश्रामिताराष्ट्रे प्रतीहारैस्सहस्रशः ॥ योयंकामयतेकामं सोऽत्रतन्त्वेत्यसंशयः ॥ १५ ॥ आहूताःपूर्वजास्तत्रमातृकाःपैतृकास्तथा ॥ अपमृत्युवशंप्राप्तास्तिर्य्यग्योनिगताश्चये ॥ १६ ॥ तेसर्वेशुभयोनित्व मापन्नायज्ञयोगतः ॥ अर्चितानर्म्मदादेवी प्रत्यक्षारूपधारिणी ॥ १७ ॥ अर्चितोभगवांस्तत्र पार्वत्यासहितोहरः ॥ श्रीपतिश्चश्रियासार्द्धं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १८ ॥ शक्रादयस्तथादेवास्सपत्नीकाअलंकृताः ॥ गाश्चाश्वांश्चकरीन्द्रांश्च ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत् ॥ १९ ॥ यच्चान्यद्विद्यतेकिञ्चिद्धनंधान्यंपयोदधि ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि सर्वंतेभ्योन्यवेद यत् ॥ २० ॥ युगपत्पूजितादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अर्चितानर्मदादेवी शैलमूलेव्यवस्थिता ॥ २१ ॥ प्रवाहोनिर्ग तोयत्र कुब्जारेवासमागमे ॥ पितरस्तर्पितादेवाः प्राप्ताश्चपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ दिव्ययानसमारूढो दधीचिश्चनृपो

पूजन किया गया और लक्ष्मीजीके सहित शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले विष्णु भी पूजेगये ॥ १८ ॥ वैसेही इन्द्र आदि देवता अपनी स्त्रियों के सहित गहने व कपड़ों से शोभित कियेगये गौवें, घोड़े और हाथियों को राजा ने ब्राह्मणों को दिया ॥ १९ ॥ और भी जो कुछ वहां धन, अन्न, दूध व दही व अग्निसे साफ कियेहुये कपड़े रहगये वह सब पदार्थ उन ब्राह्मणों कोही देदिया गया ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि सब देवता एक साथही पूजेगये और पर्वत की जड़पर विराजमान नर्मदा देवी भी पूजीगईं ॥ २१ ॥ जहां कुब्जा और नर्मदा के संगम में धारा निकली थी उसमें पितर और देवताओं का तर्पण कियागया इसी से वे सब

परमगति को पातेहुये ॥ २२ ॥ और अपने आगेवाले एकसौ आठ व पीछेवाले एक सौ आठ पुरुषों से युक्त महाराज दधीचि दिव्य सवारी पर सवार होतेहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! देवताओं की सवारियां जिस रास्तेसे जाती हैं उसी रास्ते में विद्यमान जो सैकडों ब्रह्मा आदि देवताये वे सब राजा रन्तिदेवसे बोलते हुये ॥ २४ ॥ कि हे भूमिप ! आपका कल्याण हो हम सबलोग आपके इस सच्चे कर्म से बहुत प्रसन्न हैं अब जो चाहो सो वर आप मागलो आप अपने पितरों व माताओं के सहितपरमलोक को प्राप्तहुये हो ॥ २५ ॥ तब राजा रन्तिदेव बोले कि जो आपलोग मुझको वरदेनेवाले हो तो जहां सम्पूर्ण वेदके पढनेवाले ब्राह्मणों ने कलश को स्थापन किया है ॥ २६ ॥ जो कि चारों वेदों के धारण करनेवाले और भक्त हैं उसी स्थानमें पांचों वेद जिसके शरीरहीमें वर्त्तमान हैं ऐसा शिवजी

त्तमः ॥ शतमष्टोत्तरंपूर्वं पश्चिमंतदनन्तरम् ॥ २३ ॥ देवयानपथेसन्तः शतशोथनृपोत्तम ॥ ऊचुश्चदेवास्तेसर्वे ब्रह्मा द्यारन्तिदेवकम् ॥ २४ ॥ वृणीष्वभद्रन्तेप्रीतास्सत्येनानेनभूमिप ॥ प्राप्तोसिपरमंलोकं पितृभिर्मातृभिस्सह ॥ २५ ॥ रन्तिदेवोब्रवीद्वाक्यं यूयम्मेवरदायदि ॥ कलशःस्थापितोयत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २६ ॥ चतुर्वेदधरैर्भक्तैः पञ्चब्रह्मत नुस्स्वयम् ॥ शिवलिङ्गंभवेत्तत्र ज्वालामालासमप्रभम् ॥ २७ ॥ यज्ञपर्वतमासाद्य प्रवाहोयज्ञनिर्गतः ॥ स्नानेविनिर्ग ताकुब्जा चरुकेचरुकातथा ॥ २८ ॥ चर्मिलाचाङ्घ्रिमूलेतु शिल्पेशिल्पाविनिर्गता ॥ धनदोदेवताश्चान्यास्सम्पूज्यप्र णिपत्यच ॥ २९ ॥ कल्पगाञ्चनमस्कृत्य कामिकंयानमाश्रिताः ॥ स्तोत्रंचक्रेमहाभाग लिङ्गरूपस्यशूलिनः ॥ ३० ॥ लोकनाथोजगत्स्रष्टा प्रणिपत्ययथाविधि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्तिरुद्रसमोदेवो नास्तिरुद्रसमोगुरुः ॥ ३१ ॥ नित्यदासल

का लिङ्ग लपटके समान तेजवाला प्रकट होजावे ॥ २७ ॥ अगिले जमाने में जो यज्ञ पर्वतके तीर यज्ञहुआ था वहां से प्रवाह अर्थात् एक धारा निकली और जो यज्ञ के अन्त में स्नान कियागया उस से कुब्जा निकली यज्ञमें जो चरु होताहै उनसे चरुका निकली ॥ २८ ॥ पर्वत की जडमें चर्मिला निकली और पर्वत से जहां कुछ खोदखाद हुई वहां से शिल्पा निकली ये पांचों धारायें नर्मदा में मिली हैं अब कुबेर व और सब देवतालोग महादेवजी का पूजन व प्रणामकर ॥ २९ ॥ और नर्मदा के नमस्कार कर मनमानी सवारी पर सवार होतेहुये तदनन्तर हे महाभाग ! लोकों के मालिक व जगत् के बनानेवाले ब्रह्माजी लिङ्गरूप महादेवजी

को विधि से प्रणामकर स्तुति करते हुये ब्रह्माजी बोले कि रुद्र के बराबर कोई देवता नहीं है और न रुद्र के बराबर कोई गुरु है ॥ ३० । ३१ ॥ हमेशा निर्मल शरीर जिनका रहता है और अपनेही प्रकाश से निर्मल जिनकी मूर्त्ति है और मङ्गल के देनेवाली भस्मही जिनका चन्दन है ऐसे देवताओं के मालिक आप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ काले गलेवाले, सबका रूप, अनेकमूर्त्तिवाले, बहुतरूपवाले, शोभावाले, सब से पुराने देव जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सब से बडे परमेश्वर, सबके जाननेवाले आपके लिये नमस्कारहै व सब जिनकी देह के नमस्कार करते हैं और आप किसी के नमस्कार नहीं करते ॥ ३४ ॥ और पूजा करनेलायकों को भी पूजाकरने लायक, तीननेत्रवाले और त्रिशूल के धारण करनेवाले, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु करके जानने योग्य, संसार की उत्पत्ति व रक्षा के

कायायस्वप्रभामलमूर्तये ॥ शिवभस्माङ्गरागाय देवेशायनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ नीलकण्ठायदेवाय सर्वायामितमूर्तये ॥ बहुरूपायकान्ताय शाश्वतायनमोस्तुते ॥ ३३ ॥ परायपरमेशाय सर्वज्ञायनमोस्तुते ॥ सर्वप्रणतदेहाय स्वयमप्रणतायच ॥ ३४ ॥ पूज्यानामपिपूज्याय नमस्त्र्यक्षायशूलिने ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुवेद्याय उत्पत्तिस्थितिहेतवे ॥ ३५ ॥ देवस्तुतनमस्तेस्तुभुक्तिमुक्तिप्रदायच ॥ वामायवामरूपाय वामोमारोपभासिने ॥ ३६ ॥ वामकान्तार्द्धदेहाय ईशानायनमोस्तुते ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवो ब्रह्मणस्सोमितद्युतिः ॥ ३७ ॥ ब्रूहीष्टवाञ्छितंयज्ञे वरमित्याहशङ्करः ॥ ददामिते नसन्देहो यस्त्वयावरईप्सितः ॥ ३८ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा शङ्करंसर्वगंप्रभुम् ॥ पञ्चवक्त्रंपञ्चलिङ्गं ब्रह्मपूज्यंप्रकीर्तितम् ॥ ३९ ॥ बिल्वानिवेदितायस्मिन्नाम्नाश्चविनिवेदिताः ॥ बिल्वाम्रकन्नामलिङ्गंसंसारार्णवतारणम् ॥ ४० ॥ प्रसिद्धिंपर

कारण आपके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ व हे देवस्तुत ! भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले आपके लिये नमस्कार है उत्तमस्वभाववाले, सुन्दररूपवाले, बायें तरफपार्वतीजी के धारण करने से प्रकाशवाले ॥ ३६ ॥ बायें तरफ स्त्रीवाली है आधी देह जिनकी, ऐसे ईश्वर जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है इसतरह बडे तेजवाले महादेवजी ब्रह्माजी के इस स्तोत्र को सुनकर ॥ ३७ ॥ शङ्कर जीने यह कहा कि इस यज्ञमें जो तुम्हारे मनमें हो वह वर मागो जो वर तुम चाहते हो वह हम तुम को देंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ तब सबमें व्यापिरहे, सबके मालिक, शङ्करजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि पांचमुहँवाला पञ्चलिङ्ग ब्रह्मा के पूजने

मांयातु भगवंस्त्वत्प्रसादतः ॥ वामनामेकलायत्र यत्रेदंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ तत्रस्नात्वानरव्याघ्र शिवलोकमवाप्य ते ॥ इदंवरमहंमन्ये लोकानुग्रहकारकम् ॥४२॥ शङ्करस्तुतथेत्येवं प्राहब्रह्माणमव्ययम् ॥ एवमुक्त्वामहेशानो गण कोटिसमावृतः ॥ ४३ ॥ स्तूयमानस्सुरैस्सर्वैर्जगामभवनंस्वकम् ॥ब्रह्माद्यादेवताश्चैव गताःस्वंस्वंनिवेशनम् ॥ ४४ ॥ रन्तिदेवःप्रतुष्टाव लिङ्गरूपधरंशिवम् ॥ निशम्यरन्तिदेवस्यस्तोत्रंप्राहमहेश्वरः ॥ ४५ ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते स्तोत्रे णानेनसुव्रत ॥ रन्तिदेवोब्रवीद्वाक्यं यदिमेवरदःशिवः ॥ ४६ ॥ इदंतीर्थन्नमोक्तव्यं महादेवसदात्वया ॥ अघौघसम्पु तायेतु तिर्य्यग्योनिगतानराः ॥ ४७ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्तेयान्तुपरमाङ्गतिम् ॥ अत्रयद्दीयतेदानं सर्वंभवतिचा क्षयम् ॥ ४८ ॥ इदंवरमहंमन्येयदितुष्टोसिशङ्कर ॥ शङ्करउवाच ॥ अमासोमसमायोगेकार्त्तिक्यांचैवपर्वणि ॥ ४९ ॥

योग्य कहागया है ॥ ३९ ॥ और उसपर बेल व आंब चढ़ायेगये हैं इससे संसारसमुद्र का तारनेवाला वह लिङ्ग आपके प्रसाद से बिल्वाम्रक नाम से पूरा प्रसिद्ध होवे हे भगवन् ! जहां छोटी नर्मदा है और जहां यह उत्तम बिल्वाम्रक लिङ्ग है॥ ४० । ४१ ॥ हे नरव्याघ्र ! वहां स्नानकर शिवलोक को पावे संसार के भलेकरने वाले इसी वर को हम चाहते हैं ॥ ४२ ॥ तब नाशरहित ब्रह्माजी से शङ्करजी ने कहा कि ऐसाही हो ऐसे कहकर करोड़ों गणों के सहित महादेवजी सब देवताओं से स्तुति कियेजाते अपने मन्दिर को चलेगये और ब्रह्मा आदि देवता भी अपने अपने स्थानों को चलेगये ॥ ४३ । ४४ ॥ तदनन्तर लिङ्ग के रूप को धरेहुये शङ्कर जी की राजारन्तिदेवजी स्तुति करतेहुये रन्तिदेवजी के स्तोत्रको सुनकर महादेवजी बोले ॥ ४५ ॥ कि हे सुव्रत ! इस स्तोत्र से तुम्हारा कल्याणहो तुम वर को मांगो तब रन्तिदेवजी वचन बोले कि जो मुझको शिवही वरके देनेवाले हैं ॥ ४६ ॥ तो हे महादेवजी ! यह तीर्थ आप को सदा नहीं छोड़ना चाहिये जो मनुष्य पापों के समूह में डूबेहुये हैं और पशुओं की योनि में प्राप्त होरहे हैं ॥ ४७ ॥ वे सब इस तीर्थ के माहात्म्य से परमगति को प्राप्त होवें और यहां जो कुछ दान दिया जावे वह सब अक्षय होजावे ॥ ४८ ॥ हे शङ्कर ! जो आप प्रसन्नहो तो हम इसी वर को चाहते हैं तब महादेवजी बोले कि सोमवती अमावास्या को अथवा

कार्त्तिकी व और किसी पर्व में ॥ ४९॥ यहां जो कुछ दान दियाजावे वह अनन्त होजावे हे राजन् ! पापों का नाश करनेवाला यह तीर्थ आप से कहागया ॥ ५० ॥ इस तीर्थ में विश्वेदेव उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये अगस्त्य, शौनक, पाराशर, अघमर्षण ॥ ५१ ॥ और भी अनेक मुनिलोग परमसिद्धिको प्राप्तहुये यहांपर हजारों मुनि तपस्या से स्वर्ग को जातेहुये ॥ ५२॥ संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्र व सूर्यग्रहण, सोमवती अमावास्या और पडशीतिमुख में ॥ ५३ ॥ कियेहुये पुण्यको दशगुना वृद्धियुक्त समझो यह महादेवजी ने सत्य कहा है कुब्जा और नर्मदा के समागम में सवाकरोड़ तीर्थ रहते हैं ॥ ५४ ॥ वह जगह नर्मदा के दक्षिण उत्तर एक कोस

अत्रयद्दीयतेदानं तदनन्तंसमश्नुते ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ ५० ॥ विश्वेदेवाःपरांसिद्धिमस्मिंस्तीर्थेसमागताः ॥ अगस्त्यश्शौनकश्चैव पाराशरोघमर्षणः ॥ ५१ ॥ संसिद्धिंपरमाम्प्राप्ता नानामुनिगणास्तथा ॥ अत्रायुतंमुनीनांच तपसादिवमारुहत् ॥ ५२ ॥ संक्रमेचव्यतीपाते ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ अमासोमसमायोगे पडशीतिमुखेतथा ॥ ५३ ॥ पुण्यंदशगुणंवृद्धिं सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां कुब्जारेवासमागमे ॥ ५४ ॥ दक्षिणोत्तरभागेतु क्रोशमात्रंप्रतिष्ठितम् ॥ अवशःस्ववशोवापि प्राणान्यस्तुपरित्यजेत् ॥ ५५ ॥ राजावर्षसहस्राणि विद्याधरपुरेभवेत ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तीर्थेस्मिन्प्राणमोक्षणे ॥ ५६ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु राजाविद्याधरेपुरे ॥ बिल्वाम्रकंसिद्धलिङ्गं कामभोगफलप्रदम्॥५७॥ कुब्जेश्वरंमहच्चान्यद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ अत्रान्तरेमहाराजशिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥५८॥ रेवाकुब्जासमायोगेयवानांसप्ततिस्तथा ॥ अमासोमसमायोगेस्नानाच्छान्तिःप्रकीर्तिता॥५९॥

तक प्रतिष्ठित है इस क्षेत्र में परवश व अपने वश होकर जो प्राणों को छोंड़ताहै ॥ ५५ ॥ वह हजारों वर्षतक विद्याधरोंके पुर में राजा होताहै कृमि, कीट, पतिंगना आदि भी इस तीर्थ में प्राणों के छोड़ने पर ॥ ५६ ॥ देवताओं की हजारवर्ष तक विद्याधरों के पुर में राजा होता है यह बिल्वाम्रक नामका सिद्धलिङ्ग मनमाने भोग व फलों का देनेवाला है ॥ ५७ ॥ और दूसरा कुब्जेश्वर भी महालिंग ब्रह्महत्याको नाश करताहै हे महाराज ! इसी बिल्वाम्रक और कुब्जेश्वरके बीचमें विद्वान्लोग शिवजी का क्षेत्र जानते हैं ॥५८॥ नर्मदा और कुब्जाके समागम में सत्तर जौभरे का प्रमाणवाला वह क्षेत्र है उसमें सोमवती को स्नान करने से शान्ति होती है ॥५९॥

काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गया और उत्तम केदारतीर्थ ॥ ६० ॥ इन मे सोमवती अमावास्या को साधारण फल होताहै और कुब्जा व नर्मदाके संगम में अक्षय फल कहागया है ॥ ६१ ॥ तिलोदक देने से लड़का अपने माता व पिता के कुलवाले इधर उधर के सब पुरुषोंको नरकसे उद्धार करताहै ॥ ६२ ॥ अब वे राजा रन्तिदेवभी अपने सब पुरिखोंको उद्धारकर अपने घरको जातेहुये हे राजन् ! यह कुब्जा और नर्मदाका समागम तुमसे कहागया ॥ ६३ ॥ रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, पुरुहूत और पुरूरवा यहां अनेक यज्ञों को करके स्वर्ग में देवताओं की नाईं विहार करते हैं ॥ ६४ ॥ हे नरसत्तम ! इस तीर्थ के कहने व सुननेसे सब पापोंसे निर्मल

वाराणसीकुरुक्षेत्रं प्रयागोनैमिषंतथा ॥ पुष्करंचगयाचैवकेदारंतीर्थमुत्तमम् ॥ ६० ॥ फलमेतेषुसामान्यममासोमसमागमे ॥ अक्षयञ्चफलंप्रोक्तं कुब्जारेवासमागमे ॥ ६१ ॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकंपैतृकंसुतः ॥ नरकादुद्धरेत्सर्वान्पूर्वानपिपरानपि ॥ ६२ ॥ सोपिराजागृहंप्राप्तः सर्वानुद्धृत्यपूर्वजान् ॥ अयन्तेकथितोराजन्कुब्जारेवासमागमः ॥ ६३ ॥ रन्तिदेवोहरिश्चन्द्रः पुरुहूतःपुरूरवाः ॥ अत्रेष्ट्वाविविधैर्यज्ञैर्दीव्यन्तिदिविदेववत् ॥ ६४ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यतीर्थस्यनरसत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे कुब्जामाहात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थंतीर्थवरंशुभम् ॥ याम्यप्रदेशेरेवाया आश्रमस्सुरपूजितः ॥ १ ॥ सुवर्णद्वीपविख्यातो देवद्रोणीसमावृतः ॥ हारीतोगौतमोविष्णुस्सावर्णिःकौशिकस्तथा ॥ २ ॥ एतेचान्येचबहवो

होगया है आत्मा जिसका ऐसा मनुष्य शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुब्जामाहात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और भी सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व शुभ तीर्थ को कहते हैं नर्मदा के दक्षिण तरफ देवताओं से भी पूजागया ऐसा आश्रम है ॥ १ ॥ सुवर्णद्वीप इस नामसे प्रसिद्ध है और देवताओं की गुफाओं से युक्तहै वहां हारीत, गौतम, विष्णु, सावर्णि तथा कौशिक ॥ २ ॥ ये व और भी तारीफ़ी व्रतवाले मुनिलोग

रहते हैं उनमें कोई एक महीने के व्रत करनेवाले, कोई एक पाख के व्रत करनेवाले ॥ ३ ॥ कोई चान्द्रायण के करनेवाले, कोई कृच्छ्र के करनेवाले, कोई फल व जड़ोंके खानेवाले,कोई वायुके खानेवाले ॥ ४ ॥ कोई धुवांके कणोंको पीतेहैं और कोई जलाहारी हैं व कोई एक पांवसे खड़ेहैं और कोई आधेपांव से खड़ेहैं ॥ ५ ॥ कोई दांतों व ओखली से काटकूट के खानेवाले है कोई सूर्यही को देखते हैं ऐसे २ ब्रह्मके जाननेवाले वेद व स्मृतियों में प्रवीण ब्राह्मण वहां रहते हैं ॥ ६ ॥ इतिहास और पुराणों के जाननेवाले व मोक्षके उपायों के विचारनेबाले और नित्य अग्निहोत्र व जप और यज्ञकर्म्म में तत्पर रहनेवाले ॥ ७ ॥ अपने वेदोंके शब्दसे

मुनयश्शंसितव्रताः ॥ मासोपवासिनःकेचिदन्येपक्षोपवासिनः ॥ ३ ॥ चान्द्रायणपराश्चान्ये तथान्येकृच्छ्रचारिणः॥ फलमूलाशिनःकेचित्तथान्येवायुभक्षकाः ॥ ४ ॥ कणधूमंपिबन्त्यन्ये जलाहारास्तथापरे ॥ एकपादास्स्थिताःकेचिदन्येचार्द्धपदास्स्थिताः ॥ ५ ॥ दन्तोलूखलिनःकेचिदन्येसूर्य्यावलोकिनः ॥ ब्राह्मणाश्चब्रह्मविदः श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ ६ ॥ इतिहासपुराणानि मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ अग्निहोत्रपरानित्यं जपयज्ञक्रियापराः ॥ ७ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैस्तारयन्तिजगत्त्रयम् ॥ नतस्मिन्सञ्चरेत्पापं तमस्सूर्य्योदयेयथा ॥ ८ ॥ मेकलादक्षिणेतीरे ब्रह्मलोकइवास्थितः ॥ आम्रजम्बूकदम्बैश्च कपित्थैर्बिल्वदाडिमैः ॥ ९ ॥ कदलीबीजपूराद्यैर्जम्बीरैःपनसैस्तथा ॥ न्यग्रोधबदरैर्मुख्यैर्बहुवृक्षविभूषितम् ॥ १० ॥ पुन्नागैर्नागबकुलैरशोकैस्तिलकैस्तथा ॥ मन्दारैश्चम्पकैश्चाम्रातकैर्नीलोत्पलोत्पलैः ॥ ११ ॥ पत्रपुष्पफलोपेतैर्वृक्षैस्सर्वैरलंकृतम् ॥ नानापक्षिगणोपेतं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १२ ॥ व्याहरन्त्यण्डजास्सर्वे

तीनों लोकोंको ताररहे हैं उस स्थान में पाप कभी नहीं आताहै जैसे सूर्यके उदय में अँधेरा नहीं आता है ॥ ८ ॥ मानो नर्मदा के दक्षिणवाले तटमें ब्रह्मलोक विद्यमानहै आंब, जमुनी, कदम्ब, कैथा, बेल, अनार ॥ ९ ॥ केला, बिजौरा, जम्भीरी, कटहर, बरगद और बेरीआदि भारी अनेक वृक्षों से भूषित है ॥ १० ॥ और भी पुन्नाग, नाग, मौलसिरी, अशोक, तिलक, मदार, चम्पा, आंवला और नीले कमल व और कमल आदि ॥ ११ ॥ पत्ते व फूल और फलों से युक्त सब तरह के वृक्षों से सुहावना होरहा है अनेकतरह के पक्षियों से युक्त और सिद्ध व गन्धर्वोंसे सेवित है ॥ १२ ॥ हे नृप ! जहांपर सब पक्षी मनुष्यों की आवाज से बोलते हैं ऐसे

गुणोंसे युक्त सबसे उत्तम सुवर्णद्वीप था ॥ १३ ॥ अब हे राजन् ! पहले कल्प में स्वायम्भुव मन्वन्तर के सत्ययुगमें इसी सुवर्णद्वीपके रहनेवाले मनुष्य महादेवजी के पूजनसे ॥ १४ ॥ सब अज्ञानको छोड़कर शिवजीके लोकमें विहार करते हैं पितरोंको अन्न व तिलोदक देनेसे ॥ १५ ॥ पापोंको छोड़कर ब्रह्माजी के पुरमें रहते हैं हे भूप ! पुण्यवाली कार्त्तिकी में यह तीर्थ सब तीर्थोंके फलका देनेवाला होताहै ॥ १६ ॥ परन्तु कलियुगमें माया से मोहित होरहे मनुष्य इसको नहीं देखते है नर्मदा के दक्षिणतरफ करोड़ों तीर्थ अनेक प्रकार के ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध हैं परन्तु वह स्थान केवल सिद्ध व मुनियों से जानाजाता है और जो नास्तिक व मर्यादाके बिगाडने

मानुषाणांगिरानृप ॥ एतद्गुणसमायुक्तंसुवर्णद्वीपमुत्तमम् ॥ १३ ॥ स्वायम्भुवेन्तरेराजन्नादिकल्पेकृतेयुगे ॥ अर्चनाद्दे वदेवस्य सुवर्णद्वीपवासिनः ॥ १४ ॥ अपहायतमःकृत्स्नंलोकेक्रीडन्तिशाङ्करे ॥ पितॄणामन्नदानेन तिलतोयप्रदान तः ॥ १५ ॥ मलापकर्षणंकृत्वा वसन्तिब्रह्मणःपुरे ॥ पुण्यायांभूपकार्त्तिक्यांसर्वतीर्थफलप्रदः ॥ १६ ॥ नैतत्पश्यन्ति मनुजाः कलौमायाविमोहिताः ॥ कल्पगायाम्यभागेतु तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १७ ॥ प्रसिद्धंसिद्धमुनिभिर्ज्ञायतेकेवलं हितत ॥ नास्तिकैर्भिन्नमर्यादैः पुराणस्मृतिनिन्दकैः ॥ १८ ॥ तैलाभ्यक्तैर्नवेदोक्तकरैरेवातटेतथा ॥ कलिमायाविमू ढैश्चस्थानंतन्नप्रदृश्यते ॥ १९ ॥ हिरण्यगर्भास्थानेतु यस्मिन्वहतिकल्पगा ॥ यज्ञगर्भेश्वरन्नाम शिवलिङ्गंप्रकीर्ति तम् ॥ २० ॥ पूज्यतेसिद्धगन्धर्वैस्सुरासुरमहोरगैः ॥ यत्रवैवस्वतोराजा सूर्य्यपुत्रोमहायशाः ॥ २१ ॥ तस्यतीर्थस्य माहात्म्याच्चन्द्रबिम्बाननोभवत् ॥ चैत्रस्यैवतुमासस्य शुक्लपक्षेनराधिप ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यांपौर्णमास्यां यत्रसन्निहि

वाले पुराण व स्मृतियों के निन्दा करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ अथवा तेलियापण्डा हैं व नर्मदाके किनारे वेदमें कहेहुये कर्मोके नहीं करनेवाले व कलियुगकी मायासे मूढ़ हैं वे उस स्थानको नहीं देखते हैं ॥ १९॥ जिस स्थानमें सुवर्ण जिसमें भराहुआहै ऐसी नर्मदा बहती है और वहां यज्ञगर्भेश्वर नाम शिवजी का लिङ्ग कहागयाहै ॥ २० ॥ उस लिङ्गका सिद्ध, गन्धर्व, देवता, दैत्य और नाग पूजन करते हैं जहां सूर्यके पुत्र बडे यशवाले राजा वैवस्वत ॥ २१ ॥ उसी तीर्थके माहात्म्य से चन्द्र-बिम्बके समान मुँहवाले होगये हे नराधिप ! चैत महीने के उजियाले पाखमें ॥ २२ ॥ चौदस व पूर्णमासी बिषे जहां महादेवजी विद्यमान हैं वहा हे भारत !

तिलोदक व पिण्डदानसे भारी दक्षिणाका देनेवाला मनुष्य अपने पितरों को नरक से उद्धार करता है और आप जबतक सूर्य्य व चन्द्रमा देख पडते हैं तबतक विष्णुलोक में वास करता है ॥ २३ । २४ ॥ वहा जो कुछ दान दिया जाताहै वह कुरुक्षेत्र के बराबर होताहै वहां प्राणों के छोडनेपर जीव यमलोक को नहीं देखते हैं ॥ २५ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर पर्यङ्कनाम का पर्वत है वह शोभावान् शुभरूप पर्वत कि जिसमें सब देवतालोग रहते हैं विन्ध्याचलका पुत्र है ॥ २६ ॥ उसपर पापों के हरनेवाले विष्णुभगवान् आपही बैठे हैं जोकि मनुष्यों के पापोंके हरनेवाले हैं और नर्मदाके तटपर विद्यमान होरहे हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज ! वहा

तोहरः ॥ तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनभारत ॥ २३ ॥ पितॄन्समुद्धरेत्तत्र नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥ निवसेद्वैष्णवेलोके यावच्चन्द्रार्कदर्शनम् ॥ २४ ॥ तत्रयद्दीयतेदानं कुरुक्षेत्रसमंहितत् ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र नपश्यन्तियमालयम् ॥ २५ ॥ रेवायाउत्तरेकूले पर्य्यङ्कोनामपर्वतः ॥ सचविन्ध्यसुतःश्रीमान्सर्वदेवमयश्शुभः ॥ २६ ॥ तत्रपापहरोविष्णुः स्वयंतिष्ठतिकेशवः ॥ नरपापहरोयस्तु नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज गोसहस्रफलंलभेत् ॥ तर्पिताःपितरस्तस्य तृप्तायान्तिहरेःपुरम् ॥ २८ ॥ एकादशीन्द्वादशींवा तत्रयःकुरुतेनरः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ २९ ॥ क्रोशमात्रप्रमाणश्च हरिक्षेत्रंप्रकीर्तितम् ॥ अपमृत्युमृतायेच तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेविष्णुकीर्तनन्नामचतुःषष्टितमोध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्म्मदायाम्यभागेतु तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ माण्डव्यस्याश्रमंपुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥१॥

स्नानकर एक हजार गोदान के फलको पाताहै वहांपर तर्पण जिनका कियागया ऐसे उसके पितर तृप्तहुये विष्णुजीके पुरको जातेहैं ॥ २८ ॥ और वहां जो मनुष्य एकादशी व द्वादशीका व्रत करता है उसकी फिर इस कठिन संसारमें आवृत्ति नहीं होती है ॥ २९ ॥ एक कोस का प्रमाण जिसका है ऐसा विष्णुजी का क्षेत्र कहागयाहै वहां जो अकालमीच से मरेहुये हैं वे परमगति को पाते हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेविष्णुकीर्तननामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदा के दक्षिणतरफ में पापोंका नाश करनेवाला तीर्थहै वहां सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित,पुण्यवाला,माण्डव्यमुनि का आश्रमहै ॥१॥

उसमें विभाण्डक, गार्ग्य और ऋष्यशृङ्गआदि उत्तम व्रतवाले हजारों मुनिलोग रहते हैं ॥ २ ॥ ऐसे अशोकवनिका नाम के उत्तमतीर्थ को हे राजन्! इससमय में तुम सुनो वहां पार्वतीजी के सहित महादेवजी रहते हैं ॥ ३ ॥ और उस आश्रम में शोकरहित निर्मल महादेवजी अपना आवेश रखतेहैं जहां विशोकानदी के साथमें नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी मिली हैं वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर नहीं होतेहैं और वहां अशोकेश्वरलिंग है जोकि प्रत्यक्षही सिद्धि व कल्याण करनेवाला है ॥ ४।५ ॥ वहां शापसे भ्रष्ट होगये ब्राह्मणोंको नारदजी ने छुटाया है उस तीर्थके माहात्म्य से वे देवता होकर स्वर्गमें आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥

विभाण्डकश्चगार्ग्यश्च ऋष्यशृङ्गादयस्तथा ॥ तस्मिन्सहस्रसंख्याता मुनयश्शंसितव्रताः ॥ २ ॥ अशोकवनिकांराजञ्छृणुसाम्प्रतमुत्तमम् ॥ तत्रसन्निहितोदेव उमयासहितोहरः ॥ ३ ॥ आविष्टश्चाश्रमेतत्र विशोकोविमलश्शिवः ॥ विशोकयासरिच्छ्रेष्ठा नर्म्मदायत्रसङ्गता ॥ ४ ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ अशोकेश्वरलिङ्गंच प्रत्यक्षंसिद्धिशङ्करम् ॥ ५ ॥ शापभ्रष्टाद्विजास्तत्र नारदेनविमोचिताः ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मोदन्तेदिविदेवताः ॥ ६ ॥ नानावृक्षफलैःपुष्पैस्सर्वकामसमन्वितैः ॥ नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानावृक्षनिषेवितम् ॥ ७ ॥ सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ वेणुवीणानिनादेन शङ्खवादित्रनिस्स्वनैः ॥ ८ ॥ शोभतेसर्वदाराजन्नर्म्मदाविन्ध्यसङ्गमः ॥ अशोकादेवतायत्रब्रह्मशक्रपुरोगमाः ॥ ९ ॥ विश्वेदेवाश्रमन्तद्धिसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ विश्वायाश्चतथापुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥ अशोकवनिकायाञ्चजनयामासकश्यपः ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते त्रेतायान्नरसत्तम ॥ ११ ॥ पञ्चायु

और वह स्थान सब कामनाओं के देनेवाले अनेक वृक्षोंके फलों व फूलोंसे युक्तहै और अनेक प्रकार के पक्षियों व अनेकप्रकार के वृक्षोंसे भी सेवितहै ॥ ७ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के बेन व सितारकी आवाज से व शङ्ख व और बाजाओंके शब्दसे ॥ ८ ॥ हे राजन्! वह नर्मदा और विन्ध्याचल का सङ्गम हमेशा शोभायमान रहता है जहां ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता बेसोच रहते हैं ॥ ९ ॥ सब देवताओं से नमस्कार कियागया वह विश्वेदेवों का आश्रम है विश्वाके लड़के विश्वेदेव कहेगये हैं ॥ १० ॥ उनको अशोकवनिका में कश्यपजी ने पैदा किया है वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेतामें यह हाल हुआ था हे नरसत्तम! ॥ ११ ॥ वहां बहुत

अच्छे पचास हजारतीर्थ वास करते हैं और वहां सावित्री तथा देवताओंकी माताअदिति सिद्धहुई हैं॥ १२ ॥ व देवयानी, इन्द्राणी, रोहिणी, सम्मरायणी, दाक्षायणी, लोकोंके नमस्कार करनेयोग्य बड़े यशवाली लोपामुद्रा ॥ १३ ॥ सूर्यकी स्त्री रत्नावली, ध्रुवा, तारा और गणेश्वरी ये भी सब वहां सिद्ध होती हुई और भी वहांकी रहनेवाली सैकड़ों स्त्रियां उस स्थानकरके बेसोच करदीगई ॥ १४ ॥ इस तीर्थके माहात्म्य से मनुष्य पापसे छूट जाता है हे भारत! कुआर के महीने के उजियाले पाखकी चतुर्दशी को ॥ १५ ॥ जिसके पुत्र नहीं जीते अथवा बांझस्त्री वं कुरूप व विधवा स्त्री स्नानको कियेहुये पञ्चरत्न व फलों से युक्त घटों से महादेवजी का

तानितीर्थानि निवसन्तिशुभानिच ॥ तत्रसिद्धाचसावित्री देवमातादितिस्तथा ॥ १२ ॥ देवयानीतथेन्द्राणी रोहिणीसम्मरायणी ॥ दाक्षायणीलोकवन्द्या लोपामुद्रामहायशा ॥ १३ ॥ रत्नावलीसूर्य्यभार्य्या ध्रुवातारागणेश्वरी ॥ अशोकास्तेनविहितास्तत्रस्थाश्शतसंख्यकाः ॥ १४ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेकिल्बिषान्नरः ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यामाश्विनेमासिभारत ॥ १५ ॥ अपुत्रिणीतथावन्ध्या दुर्भगाभर्तृवर्जिता ॥ पञ्चरत्नफलैःस्नाता दिव्यकुम्भैस्समर्चयेत् ॥ १६ ॥ सहस्रजन्मसाभूयः पुत्रिणीसुभगाभवेत् ॥ अशोकवनिकाक्षेत्रे तत्रगौर्य्यावरःकृतः ॥ १७ ॥ यस्मिन्वहतिसादेवी नर्म्मदासप्तकल्पगा ॥ तत्रेष्टंधर्म्मराजेन वरुणेनमहात्मना ॥ १८ ॥ नैर्ऋत्येनतथान्यैश्च लोकपालैर्यथाविधि ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च लोकपालानुपागतः ॥ १९॥ अत्रिर्मरीचिःकश्यपश्चक्रुस्तत्रमखोत्तमम् ॥ अन्यक्षेत्राच्छतगुणा तत्रदानादिकाक्रिया ॥ २० ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं गयावैनैमिषंतथा ॥ मायापुरीपुष्करञ्च प्रयागःशशिभूष

पूजनकरे ॥ १६ ॥ तो वह हजारजन्मतक लडकोंवाली व सोहागिल रहती है यह फल अशोकवनिका के क्षेत्रमें होताहै क्योंकि वहांको पार्वतीजी ने वरदान किया है ॥ १७ ॥ जिस स्थानमें सातकल्प तक रहनेवाली नर्मदादेवी बहती हैं वहां धर्मराज, महात्मा वरुण और नैर्ऋत्य इसीतरह और भी लोकपालोंने विधि से यज्ञको कियाहै अग्नि भी लोकपालोंके पास प्रत्यक्ष होकर आये हैं ॥ १८ । १९ ॥ अत्रि, मरीचि और कश्यप ने भी वहा उत्तम यज्ञको किया है और क्षेत्रमे सौगुना वहां

दान आदि कर्मोंका फल होताहै ॥ २० ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, गया, नैमिष, मायापुरी, पुष्कर, प्रयाग, शशिभूषण ॥ २१ ॥ और काश्यपी आदि सब तीर्थ वहीं हैं जहां नर्मदा जी बहती हैं इससे अशोकवनिका के बराबर और तीर्थको जाननेवाले नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ अगिले जमाने में हे राजन् ! जहां ब्रह्माजीने यज्ञों में उत्तम अश्वमेध यज्ञको कियाहै और पूर्वकालमें इस तीर्थ के माहात्म्यसे पटनाके रहनेवाले ब्राह्मणोंको कुत्तेकी योनिसे छोंड़ादियाहै तब राजायुधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! ब्रह्माजीने सौ यज्ञोंको कैसे किया ॥२३॥२४॥ और पूर्वकालमें कुत्तेकी योनि से ब्राह्मणोंको कैसे छोंड़ादिया और अगिले जमानेमें इन्द्रके बराबर कौन राजा होताहुआ ॥२५॥

णम् ॥ २१ ॥ काश्यपीसर्वतीर्थानि यत्रतिष्ठतिकल्पगा ॥ अशोकवनिकायास्तु नान्यत्तीर्थसमंविदुः ॥ २२ ॥ इष्टंयत्र पुराराजन्हयमेधंमखोत्तमम् ॥ ब्रह्मणामोचिताःपूर्वं विप्राःकौलेययोनितः ॥ २३ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यात्पाटलीपुत्रवासिनः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ हयमेधशतेनेष्टं कथंतातस्वयम्भुवा ॥ २४ ॥ कथञ्चमोचिताविप्राः पूर्वंकौलेययोनितः ॥ कोवाराजापुराब्रह्मन्देवराजसमोभवत् ॥ २५ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं शंसमेमुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग समाख्यानंपुरातनम् ॥ २६ ॥ अशोकवनिकातीर्थं कल्पगातटमाश्रितम् ॥ नजानन्तिमहामूढा मनुजाःपापमोहिताः ॥ २७ ॥ गुप्ताद्गुप्ततरन्तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ विशोकेश्वरलिङ्गन्तु तस्मिन्परमसिद्धिदम् ॥ २८ ॥ पूज्यतेसिद्धगन्धर्वैर्नतत्पश्यन्तिमानुषाः ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ रविश्चन्द्रोमहाराज चक्रवर्तीमहायशाः ॥ ३० ॥ सोमवंशजनिप्राप्तः काञ्चीपुरपतिस्त

हे मुनिसत्तम ! यह सब ठीक ठीक आप मुझ से कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! अब तुम पुराने आख्यानको सुनो ॥ २६ ॥ नर्मदाके किनारेपर विद्यमान अशोकवनिका तीर्थको पापों से मोहित महामूढ मनुष्य नहीं जानते हैं ॥ २७ ॥ गुप्तसे अतिगुप्त वह तीर्थ है और सब तीर्थोंसे उत्तमोत्तम है उसमें बड़ी सिद्धिका देनेवाला विशोकेश्वर लिङ्गहै ॥२८॥ उसको सिद्ध व गन्धर्वलोग पूजतेहैं और मनुष्य उसको नहीं देखतेहैं उसके दर्शन व स्पर्श से ब्रह्महत्याको मनुष्य नाश कर देताहै ॥ २९॥ स्वायम्भुवमन्वन्तरके प्राप्तहोनेपर पहले कल्पके सत्ययुग में हे महाराज ! बड़े यशवाले चक्रवर्ती रविश्चन्द्र राजाहुये ॥ ३० ॥ उन्होंने सोमवंश

में जन्मको पायाथा और काञ्चीपुर के मालिकहुये सब पृथिवी की राज्य करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी राज्य करतेहैं ॥ ३१ ॥ सो वे राजा अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और अनेक पक्षियों से युक्त व अनेक मुनियोंसे सेवित ॥ ३२ ॥ जहां अगस्त्येश्वरनाम का महादेवजीका शुभ मन्दिर था वहां को जातेहुये जिस स्थानको अगस्त्य आदि बड़े तपस्वी सब मुनिलोग सेवन करते हैं ॥ ३३ ॥ जहां सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदा व अमरकण्टक पर्वतहै वहीं सूर्यग्रहणमें राजाओंमें उत्तम राजा रविश्चन्द्र ॥ ३४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, खजाना, फौज और सवारियोंके सहित मुनियों के समूहसे घिरे व तपस्याको करतेहुये और आग ऐसे जलतेहुये महात्मा अगस्त्य नाम

था ॥ शशासपृथिवींसर्वां यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ३१ ॥ गतस्तुपृथिवीपालो नानावृक्षसमाकुलम् ॥ नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानामुनिनिषेवितम् ॥ ३२ ॥ यत्रागस्त्येश्वरन्नाम शम्भोरायतनंशुभम् ॥ सेव्यतेमुनिभिःसर्वैरगस्त्याद्यैस्तपोधनैः ॥ ३३ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे रविश्चन्द्रोनृपोत्तमः ॥ सप्तकल्पवहायत्र शैलश्चामरकण्टकः ॥ ३४ ॥ हस्त्यश्वरथपादातैः सकोशबलवाहनैः ॥ तपस्यन्तंमहात्मानं मुनिसङ्घैस्समावृतम् ॥ ३५ ॥ मैत्रावरुणिकन्नाम ज्वलन्तमितिपावकम् ॥ तेषांमध्येसमुत्थाय शाण्डिल्यश्चमहातपाः ॥ ३६ ॥ उरसापृथिवींगत्वा सोगस्तिंपरिपृच्छति ॥ रविश्चन्द्रोमहातेजास्समायातस्तवाश्रमम् ॥ ३७ ॥ पुरोहितोहमस्यास्मि जानीहित्वन्तपोनिधे ॥ त्वत्पादार्चनमाकाङ्क्षी मन्यसेचेदनुग्रहः ॥ ३८ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ आगच्छतुनृपश्रेष्ठश्शीघ्रंसिंहासनेस्थितः ॥ आगतस्तदनुज्ञातः पादौजग्राहतस्यच ॥ ३९ ॥ अर्घपाद्यैश्चसम्पूज्य पप्रच्छकुशलंमुनिः ॥ कुशलन्तेमहाभाग सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ४० ॥ उवाचवचनंराजा मुनी

मुनिके पास जातेहुये तब वहां बड़े तपवाले शाण्डिल्यजी उन मुनियों के बीच में उठकर ॥ ३५।३६ ॥ और छातीसे पृथ्वीको जाकर अर्थात् साष्टांग प्रणामकर उन्होंने अगस्त्यसे पूंछा कि बड़े तेजवाले राजा रविश्चन्द्र आपके आश्रमको आयेहैं ॥ ३७ ॥ मैं इनका पुरोहितहूं हे तपोनिधे ! ऐसा आप जानें यह राजा आपके चरणोंकी पूजा को चाहताहै सो जो आपको अङ्गीकारहो तो बड़ी कृपा है ॥ ३८ ॥ तब अगस्त्यजी बोले कि राजाओंमें श्रेष्ठ रविश्चन्द्र जल्द आवें और सिंहासनपर बैठें इसप्रकार अगस्त्यकी आज्ञाको पायेहुये राजा आये और उनके पांवोंको छूतेहुये ॥ ३९ ॥ तब अगस्त्यमुनिजी अर्घ और पाद्य से राजाका भलीभांति पूजनकर कुशल पूंछतेहुये

कहा कि हे महाभाग ! आपकी परिवार सहित कुशल है ॥ ४० ॥ तब हे भारत ! मुनीन्द्र अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि आज मेरा जन्म व राज्य व जीवन सफलहुआ ॥ ४१ ॥ आपके कमलसमान पांवों के इस दर्शन से मैं पापसे छूटगया सब तीर्थ जिसमें हैं ऐसी शुभ नर्मदाजी तो सब कहीं पवित्र हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु हे मुनिसत्तम ! हम किस स्थानमें यज्ञको करें सो मुझ से कहिये जिससे यज्ञ सिद्ध होजावे और देवताओंको अक्षयतृप्ति होवे ॥ ४३ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! यह सब ठीकठीक कहिये तब अगस्त्यजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! सुनिये और कहेजारहे वृत्तांत को समझिये ॥ ४४ ॥ अगिले जमानेमें महादेवजीने पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से

न्द्रंप्रतिभारत ॥ अद्यमेसफलंजन्म राज्यंजीवनमेवच ॥ ४१ ॥ मुक्तश्चकिल्बिषादस्मात्त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ सर्वत्रकल्पगापुण्या सर्वतीर्थमयीशुभा ॥ ४२ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेयज्ञं शंसमेमुनिसत्तम ॥ यथासंसिद्ध्यतेयज्ञस्सुराणांतृप्तिरक्षया ॥ ४३ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायं त्रिकालज्ञनिवेदय ॥ अगस्त्यउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानन्निबोधच ॥ ४४ ॥ शिवेनकथितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानामन्येषाञ्चदिवौकसाम् ॥ ४५ ॥ मयातत्रश्रुतंराजन्मार्कण्डेनचिरायुषा ॥ तत्तेहंकथयिष्यामिमेकलातीर्थसम्भवम् ॥ ४६ ॥ शृणुध्वंमुनयस्सर्वे यत्प्रष्टव्यावतारणम् ॥ कस्यशक्तिर्महाराज वर्जयित्वामहेश्वरम् ॥ ४७ ॥ प्रमाणंसर्वतीर्थानां संख्यांवाकर्तुमादितः ॥ उद्देशमात्रवक्ताहं मार्कण्डस्यमहामुनेः ॥ ४८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथावृत्तम्पुरातनम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्म्मदामाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कहा है और भी ब्रह्मा व विष्णु आदि देवताओं से कहाहै ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! वहीं हम और भारी उमरवाले मार्कण्डेयजी ने सुना है वही नर्मदा तीर्थका सम्भव हम तुम से कहेंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनियो ! आप सबलोग पूँछनेलायक बातकी भूमिका को सुनो कि हे महाराज ! वैसे महादेवजी को छोडकर सब तीर्थोंकी आठमे गिन्ती व प्रमाण करनेकी किसको सामर्थ्य है महामुनि मार्कण्डेय जी के उद्देश (इशारे) मात्रका कहनेवाला मैं हूं ॥ ४७ । ४८ ॥ हे राजन् ! यह तो पुराना हाल जैसा था वह तुमसे कहागया ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में ऐसे बुद्धिमान् राजा रविश्चन्द्र ने सुना तदनन्तर मुनियों में श्रेष्ठ श्रीमान् अगस्त्यजी फिर वचन बोले कि सरस्वती, गङ्गा, यमुना, समुद्र व और भी प्रयागआदि तीर्थ ऐसे पवित्र नहीं हैं ॥ १ । २ ॥ सात कल्पतक बहनेवाली एक नर्मदाही पुण्यवाली व शुभ है एकलाख योजनतक जम्बूद्वीप कहागया है ॥ ३ ॥ उसमें जितना चराचर लोकहै तिसमें जो तपस्या से हीनभी मनुष्य हैं वे भी नर्मदा के जल पीने से शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ ४ ॥ जो जिस कामना को करता है वह उस पूरी कामनाको पाता है हे महाभाग, पापरहित ! वाह २ आपने जो हमसे पूंछा ॥ ५ ॥ उन नर्मदाजी को हमने कहा मनकी

मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंश्रुतंपुराराज्ञा रविश्चन्द्रेणधीमता ॥ उवाचवचनंश्रीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ १ ॥ सरस्वतीनगङ्गाच यमुनावानसागराः ॥ नचैवान्यानितीर्थानि प्रयागप्रमुखान्यपि ॥ २ ॥ एकैवनर्म्मदापुण्या सप्तकल्पवहाशुभा ॥ लक्षयोजनपर्य्यन्तं जम्बूद्वीपंप्रकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥ नर्म्मदातोयपानेन लोकालोकेचराचरे ॥ तपोहीनानराश्चैव तेपियान्तिशिवालयम् ॥ ४ ॥ योयंकामयतेकामंसतंप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ साधुसाधुमहाभाग पृष्टोहंयत्त्वयानघ ॥ ५ ॥ नर्म्मदाकथितादिव्या हृद्याकस्यनरोचते ॥ सन्तितीर्थानियावन्ति दक्षिणोत्तरकूलयोः ॥ ६ ॥ त्वत्प्रीतिदानितावन्ति कथयामिनृपोत्तम ॥ अन्यानिग्रन्थलक्षेणनचकीर्तयितुंक्षमः ॥ ७ ॥ त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्तिस्रस्सन्ध्यास्त्रयोग्नयः ॥ सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ विद्याधराश्चाप्सरसः कल्पगातटमाश्रिताः ॥ ॐकारादीनिलिङ्गानि वैदूर्य्यादिनगाःपुरा ॥ ९ ॥ द्वापरेचकलिंप्राप्य पावनत्वमवाप्नुयुः ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां मर्य्या

प्यारी दिव्य नर्मदाजी किसको नहीं रुचती हैं अब नर्मदा के दक्षिण और उत्तरवाले किनारोंपर तुम्हारे प्रसन्न करनेवाले जितने तीर्थ हैं हे नृपोत्तम ! उन सबको हम कहते हैं बाकी और तीर्थोंको एकलाख ग्रन्थसे हम कहने को समर्थ नहीं हैं ॥ ६।७ ॥ तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों सन्ध्यायें, तीनों अग्नियां, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग ॥ ८ ॥ विद्याधर और अप्सरायें ये सब नर्मदा के पास रहतेहैं ॐकारआदि लिंग और वैदूर्यआदि पर्वत अगिले जमानेमें ॥ ९ ॥ तथा द्वापर में और कलियुग

को भी पाकर औरों के पवित्र करनेवाले होतेरहे अब ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओं की भी मर्यादा को कहते हैं ॥ १० ॥ अपने तेजों से प्रकाश करतीहुई नर्मदा के दक्षिण और उत्तर में जो जमीन है वह यज्ञभूमि कहीगई है जिसको देवता व दैत्यभी नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ वहां अशोकवनिका है उसमें महादेवजी हैं वहां यज्ञ निर्विघ्न सिद्ध होताहै यह महादेवजी ने कहा है ॥ १२ ॥ तब मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि हे महामुने ! आपका कल्याण हो अब हम आपके सहित वहीं चलेंगे ॥ १३ ॥ ऐसे कहकर वे राजा मुनियोंसे युक्त अशोकवनिका को प्राप्तहुये नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर उत्तम जो पुण्य-

दाकथ्यतेधुना ॥ १० ॥ प्रभाभिर्द्योतमानाया रेवायादक्षिणोत्तरे ॥ यज्ञभूमिरियंख्याता सुरासुरनमस्कृता ॥ ११ ॥ अशोकवनिकातत्र तस्यान्देवोमहेश्वरः ॥ तत्रसिद्ध्यतिनिर्विघ्नो यज्ञइत्याहशङ्करः ॥ १२ ॥ उवाचवचनंराजा अगस्त्यंमुनिसत्तमम् ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि त्वयासहमहामुने ॥ १३ ॥ अशोकवनिकांप्राप्तस्सराजामुनिभिर्वृतः ॥ रेवायादक्षिणेकूले पुण्यतीर्थेसुशोभने ॥ १४ ॥ दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञयूपाश्चमण्डपम् ॥ मणिमाणिक्यरत्नौघैस्स र्वद्वारेषुशोभिताः ॥ १५ ॥ पताकाध्वजशोभाढ्या नानावस्त्रावगुण्ठिताः ॥ विश्वामित्रोभरद्वाजः कश्यपोभार्गवस्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्महृदयोलोमशश्च तथान्येमुनिसत्तमाः ॥ बालखिल्यामहाभागा मानसाब्रह्मणस्सुताः ॥ १७ ॥ एतेचान्येच बहवो मुनयश्शंसितव्रताः ॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञो ब्राह्मणैरापदक्षिणैः ॥ १८ ॥ तृप्ताश्चदेवतास्सर्वाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ जग्मुस्सर्वेचमुदिता मुनयःस्वाश्रमम्प्रति ॥ १९ ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो दुर्वासाःकुपितोगतः ॥ नात्रवैवस्वतोनाहं

वाला तीर्थ है उसमें ॥ १४ ॥ दशयोजनतक यज्ञके खम्भे गडाये व मण्डपको बनाया सब दरवाजों में मणि, माणिक और रत्नसमूहों से खम्भे शोभित कियेगये ॥ १५॥ वे खम्भे अनेक प्रकार के कपड़ों से लपेटेहुये पताका और ध्वजाओं की शोभासे युक्त हुये अब विश्वामित्र,भरद्वाज, कश्यप तथा भार्गव॥१६॥ ब्रह्महृदय,लोमश तथा और भी श्रेष्ठ२ मुनिलोग जैसे ब्रह्माजी के मानसपुत्र बड़े भाग्यवाले बालखिल्य ॥१७॥ये सब व और भी उत्तम व्रतवाले बहुतसे मुनिलोग आतेहुये तदनन्तर पूरीदक्षिणावाले ब्राह्मणों ने यज्ञको प्रवृत्त किया ॥१८॥ सब देवता तृप्तहोकर स्वर्गको लौटगये और सब मुनिलोग भी आनन्दित होकर अपने२ आश्रमोंको चलेगये ॥१९॥

तदनन्तर यज्ञ समाप्त हुआ तब वहां बड़े क्रोधी दुर्वासा आये और कहा कि न यहां हम आये और न यमराज व नारद तथा पर्वत आये ॥ २० ॥ कैसे पापकर्मी अधम मनुष्यों ने यज्ञको समाप्त करदिया तबतक वहां यमराज, नारद तथा पर्वत ॥ २१ ॥ लिखनेवाले चित्रगुप्त, काल और मृत्युभी आगये और अपने यज्ञभाग के विना इन सबों ने कोपको किया है नृप ! ॥ २२ ॥ तब उन सबको नाराज देखकर राजा रविश्चन्द्र वचन बोले कि अशोकेश्वर देव और नर्मदाजीके प्रसाद से ॥ २३ ॥ देवता और दैत्यों के बीचमें मेरे विघ्न करनेको कौन समर्थ होसक्ता है इसी तरह और जीवोंमें भी यज्ञविघ्न के वास्ते कौन समर्थ होसक्ता है ॥ २४ ॥ यज्ञके

नारदःपर्वतस्तथा ॥ २० ॥ कथन्निर्वर्तितोयज्ञः पापकर्म्मिनराधमैः ॥ आगतस्तुयमस्तत्र नारदःपर्वतस्तथा ॥ २१ ॥ लेखकश्चित्रगुप्तश्चकालोमृत्युस्तथैवच ॥ एतेचकुपितास्सर्वे यज्ञभागंविनानृप ॥ २२ ॥ तान्सर्वान्कुपितान्दृष्ट्वा रविश्चन्द्रोब्रवीद्वचः ॥ अशोकेश्वरदेवस्य नर्म्मदायाःप्रसादतः ॥ २३ ॥ कोमेसमर्थोविघ्नाय सुरासुरगणेष्वपि ॥ तथैवकोन्योजन्तूनां यज्ञविघ्नस्यहेतवे ॥ २४ ॥ यज्ञकालेचसम्प्राप्तो यःकश्चिदपिमानवः ॥ पूजनीयस्तथाच्चर्यश्च यथा देवश्चतुर्भुजः ॥ २५ ॥ यथायातामहाभागा ब्रह्मपुत्रामहौजसः ॥ ददामिवोनसन्देहो मनसायदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ परिपूज्यश्चनःपुत्रो नारदःपर्वतस्तथा ॥ एकाकीप्रार्थयेनाहं मिलित्वाप्रार्थयामहे ॥ २७ ॥ रविश्चन्द्रउवाच ॥ योयंकामयतेकामं तंतस्मैप्रददाम्यहम् ॥ इतिसर्वेपितेनैव प्रस्तुतामुनिपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सुप्रीताविहिताराजन्नर्घपाद्यप्रदानतः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ मुनयःकेनकार्य्येणपाटलीपुत्रवासिनः ॥ २९ ॥ देव्याशप्ताःश्वयोनिंच गता

समय में जो कोई मनुष्यभी आवे तो वह हमको वैसे पूजा करने के योग्य है कि जैसे चार भुजावाले विष्णुजी पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जैसे बड़े तेजवाले और बड़े भाग्यवाले ब्रह्माजी के पुत्र आये उसीतरह आप लोगोंको भी जो मनसे चाहो वह हम देवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हमारे पुत्र नारद और पर्वत भी पूजनेलायकहैं हम अकेले नहीं मांगते किन्तु मिलकर मांगेंगे ॥ २७ ॥ तब राजा रविश्चन्द्रजी बोले कि आपलोगों में जो जिस कामनाको चाहेगा उसको वही हम देवेंगे इसतरह उन्हीं राजा करके वे मुनिश्रेष्ठलोग खुशामद किये गये ॥ २८ ॥ और अर्घ व पाद्यके देनेसे हे राजन् ! प्रसन्न कियेगये युधिष्ठिरजी

पूछते हैं कि पटना के रहनेवाले मुनियोंको किस कारणसे ॥ २९ ॥ देवीजीने शापदिया और कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये वे लोग फिर किसतरह उससे छूटे तब मार्कण्डेयजी बोले कि अगिले जमानेमें जटा और भोजपत्रोंको धारण किये सब तपस्वी लोग ॥ ३० ॥ नैपालमें देवताओं के देवता, कल्याणरूप, महेश्वर, पशुपति महादेवजी का बिना पार्वती के भक्तिसे पूजन करते थे ॥ ३१ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार कियेगये महादेवजी तो अर्द्धनारीश्वर देव हैं इसीकारण से लिङ्गके भेद करनेवाले ब्राह्मणों को पार्वतीजी ने शाप दिया ॥ ३२ ॥ पार्वतीजी ने कहा कि हे महादेवकी चढ़ीहुई द्रव्य व उनके पार्षद जो चण्डहैं उनकी द्रव्य के खानेवाले पापीलोगो !

मुक्ताश्चतेकथम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुरातपोधनास्सर्वेजटावल्कलधारिणः ॥ ३० ॥ नैपालेवैपशुपतिं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ पूजयन्तिशिवंभक्त्या गौर्य्याविरहितंहरम् ॥३१॥ अर्द्धनारीश्वरंदेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ संशप्तास्तेनकार्य्येण पार्वत्यालिङ्गभेदिनः ॥ ३२ ॥ वर्षसहस्रंहिमितंश्वयोनिंव्रजमिष्यथ ॥ निर्माल्यभक्षकाःपापाश्चण्डद्रव्यस्यभक्षकाः ॥ ३३ ॥ तेषांकृतेमहाराज दुर्वासानृपमब्रवीत् ॥ श्वयोनिंसमनुप्राप्तास्तत्रकालेमुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ मोचयत्वंततोराजन्नस्मत्प्रियचिकीर्षया ॥ पार्वत्यातेभिशप्ताश्च नरकेमज्जन्तिदारुणे ॥ ३५ ॥ उवाचवचनंराजा मुनिंदुर्वाससंततः ॥ मोचयामिनसन्देहो तस्मात्पापाद्विजोत्तमान् ॥ ३६ ॥ प्रेषिताःकिङ्करास्तेन सीदन्तोयत्रतेवने ॥ प्रणिपत्यचतेसर्वे तानूचुश्चवनेचरान् ॥ ३७ ॥ स्मारयन्तिपूर्वजातिमादिष्टाःप्रभुणायथा ॥ ततस्तद्वचनात्प्राप्तास्तेऽशोकवनिकांद्रुत

एक हजार वर्षप्रमाण तक तुम कुत्तेकी योनिको पावोगे ॥ ३३ ॥ हे महाराज! उन्हीं ब्राह्मणों के वास्ते राजासे दुर्वासाने कहा कि उससमय में मुनीश्वरलोग कुत्ते की योनिको प्राप्त होगयेथे ॥ ३४ ॥ सो हे राजन्! अब हमारे प्रिय करनेकी इच्छा से तुम उनको उस शापसे छुटादेवो वे लोग पार्वतीसे शापको पायेहुये दारुण नरक में डूबरहे हैं ॥ ३५ ॥ तब दुर्वासामुनि से राजा वचन बोले कि हम उन उत्तम ब्राह्मणों को उस पापसे छुटादेवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ यह कहकर उन राजाने उस वनमें अपने दूतोंको भेजा जहां वे ब्राह्मण दुःखित होरहे थे वे सब दूत उन जङ्गली मुनियों के नमस्कार कर बोले ॥ ३७ ॥ और उनके पूर्वजन्मकी

सुध करातेहुये जैसे मालिक ने कहाथा वैसेही कहा तब वे उनके कहनेसे अशोकवनिकाको शीघ्र आये ॥ ३८ ॥ तब चक्रवर्ती राजा रविश्चन्द्र उन तपस्वियोंको देख कर बड़े आनन्द से युक्त हँसतेहुये ऐसे उनसे बोले ॥ ३९ ॥ कि अशोकेश्वरदेव व नर्मदा के प्रभाव से व हमारे दानके प्रभाव से व महर्षियों के प्रसाद से ॥ ४० ॥ ये सब मुनिलोग कुत्तेकी योनिको छोड़कर निश्चय से शिवके लोकको जावें और इनका यह सब महाघोर पाप मुझमें बैठे ॥ ४१ ॥ उसीक्षण शापसे छुटेहुये वे सब महर्षिलोग मनमानी सवारी पर सवार होकर सौयज्ञों के करनेवाले राजा रविश्चन्द्र से वचन बोले ॥ ४२ ॥ कि आपही हमारे माता व आपही पिता और आपही

म् ॥ ३८ ॥ रविश्चन्द्रश्चक्रवर्ती तान्विलोक्यतपोधनान् ॥ मुदापरमयायुक्तः प्राहतान्प्रहसन्निव ॥ ३९ ॥ अशोकेश्वर देवस्य मेकलायाःप्रभावतः ॥ ममदानप्रभावेण महर्षीणांप्रसादतः ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाश्वयोनिंमुनयः शिवलोकंप्रया न्तुवै ॥ एतत्पापंमहाघोरं मयिसर्वंनिषीदतु ॥ ४१ ॥ तत्क्षणान्मुक्तशापास्ते कामिकंयानमास्थिताः ॥ ऊचुर्महर्षयो वाक्यं रविश्चन्द्रंशतक्रतुम् ॥ ४२ ॥ त्वंमातात्वंपिताऽस्माकंत्वंगुरुर्मोक्षदायकः ॥ एवमुक्त्वाययुस्तेतु उमामाहेश्वरंपु रम् ॥ ४३ ॥ साधुसाधुमहाभाग त्वन्तुयज्ञतपोनिधिः ॥ नान्यस्त्वयासमःकश्चित्सोमवंशेमहीपतिः ॥ ४४ ॥ त्वयाहि निर्जितंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ एवमुक्त्वासुरश्रेष्ठास्साधुवादैस्तमार्चयन् ॥ ४५ ॥ देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपा तच ॥ दुर्वासाउवाच ॥ क्षत्रियेषुत्वयातुल्यो नदृष्टोनश्रुतोमया ॥ ४६ ॥ प्राणत्यागोहिसुकरोधर्म्मत्यागोहिदुष्करः ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते ॥ ४७ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं राजादुर्वाससंमुनिम् ॥ ममदानप्रभावेण नरादुष्कृतवु

गुरुहो जिन्होंने हमको छोड़ादिया है ऐसे कहकर वे सब पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! वाह २ आप तो यज्ञ व तपस्या के खजाने हो चन्द्रवंशमें तुम्हारे बराबर और कोई राजा नहीं हुआ ॥ ४४ ॥ तुमने सब चराचर तीनों लोकोंको जीतलिया ऐसे कहकर उत्तम देवता तारीफ़वाली बातोंसे उन राजाकी पूजा करतेहुये ॥ ४५ ॥ और देवताओं के नगाड़े बजे व फूलों की वर्षा हुई तब दुर्वासाजी बोले कि क्षत्रियों में तुम्हारे बराबर दूसरे क्षत्रियको न मैंने देखाहै और न सुना है ॥ ४६ ॥ क्योंकि प्राणोंका भी छोड़देना सहजमें होसक्ता है परन्तु अपने कमायेहुये धर्मका छोडदेना बहुतही कठिनहै इस से तुम्हारा कल्याण हो अब

जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ ४७ ॥ तब राजा हँसतेहुये दुर्वासामुनि से वचन बोले कि हमारे दानके प्रभावसे पापबुद्धिवाले भी मनुष्य ॥ ४८ ॥ परम स्थानको प्राप्तहोवैं यही वर हमको प्याराहै ऐसाही हो ऐसे उन राजाके आगे कहकर मुनियों में श्रेष्ठ वे दुर्वासाजी बड़े आनन्द से युक्त वहीं अन्तर्धान होगये बड़े तेजवाले राजाके ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ ४९ । ५० ॥ बड़ी शङ्का से युक्त धर्मराज यह कहतेहुये कि यज्ञभागसे बाहर करदियेगये हम आपको वर देतेहैं आपका कल्याणहो ॥ ५१ ॥ जिन्होंने कुत्तेकी योनिको प्राप्तहोरहे ब्राह्मणों को कर्मबन्धन से छोड़ादिया हे नृपोत्तम ! आपकी ऐसी सामर्थ्यको हम जानते हैं ॥ ५२ ॥ पृथिवी

द्यः ॥ ४८ ॥ प्राप्नुवन्तुपरंलोकं वरएषममप्रियः ॥ एवमस्त्वितितस्याग्रेऽभिधायमुनिपुङ्गवः ॥ ४९ ॥ समुदापरयायुक्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तद्दृष्ट्वाताहृशंकर्म्म राज्ञश्चामिततेजसः ॥ ५० ॥ शङ्कयापरयायुक्तो धर्म्मराजोब्रवीदिदम् ॥ वरंददामिभद्रन्ते यज्ञभागबहिष्कृतः ॥ ५१ ॥ श्वयोनित्वंगताविप्रा मोचिताःकर्म्मबन्धनात ॥ ईदृशंतवसामर्थ्यं जानामिचनृपोत्तम ॥ ५२ ॥ पृथिव्यांदुष्करंकर्म्म यज्ञश्चैवविशेषतः ॥ योददादिमहाभाग स्वकीयंपुण्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ यमलोकोजितस्तेन देवलोकोजितस्तथा ॥ वरयोग्योसिराजेन्द्र सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५४ ॥ रविश्चन्द्र उवाच ॥ यदितुष्टस्सूर्य्यपुत्र वरंदातुंममेच्छसि ॥ ममयज्ञशतेनैव दानेनतपसातथा ॥ ५५ ॥ पापयोनिगतायेतु येच दुष्कृतकारिणः ॥ प्रयान्तुत्वत्प्रसादेन धर्म्मराजशिवालयम् ॥ ५६ ॥ इमंवरमहंमन्ये प्रसादःक्रियतांमयि ॥ यमउवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्र सत्यधर्म्मपरायण ॥५७॥ प्राप्नुहित्वंपरंलोकं सत्येनानेनसुव्रत ॥ यतस्तेमोचिताःसर्वाः कश्म

में बड़े दुष्करकर्म को आपने किया और विशेषसे यज्ञको किया हे महाभाग ! जिसने अपनी उत्तमपुण्य को देदिया ॥ ५३ ॥ उसने यमलोक को जीतलिया उसी प्रकार देवलोक को जीतलिया इससे हे राजेन्द्र ! आप वरदान के योग्यहो मैंने आपसे यह सत्य कहा है ॥ ५४ ॥ तब राजा रविश्चन्द्र बोले कि हे सूर्यपुत्र ! आप मुझ से प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करतेहो तो हमारे सौयज्ञों से व दान और तपस्यासे ॥५५॥ पापके करनेवाले या पापयोनि में पड़ेहुये जो जीवहों हे धर्मराज ! वे सब आपके प्रसादसे शिवजी के स्थानको जावें ॥ ५६ ॥ बस हम इसी वरको चाहते हैं आप मेरे ऊपर दयाकरें तब यमराज बोले कि हे सच्चेधर्म में तत्पर ! हे

राजेन्द्र ! ऐसाही हो ॥ ५७ ॥ हे सुव्रत ! आपने इस सत्यापन से तुम उत्तमलोक को प्राप्तहोवो जिससे सब पापयोनियों को तुमने कष्टसे छोड़ादिया है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! सैकड़ों क्षत्रिय या और भी हजारों जीव जिनको आपने पापसे उद्धार किया है उनकी गिन्ती नहीं है ॥ ५९ ॥ बड़ी २ भुजावाले धर्मराज श्रेष्ठ राजासे ऐसे कहकर और देवता व दैत्यों से नमस्कार कीगई अपनी सवारीपर सवार होकर ॥ ६० ॥ अपने मकान को चलेगये और हे राजन् ! नारद व पर्वत भी चलेगये हे नरसत्तम ! उस अशोकवनिकामें अस्सी लाख तीर्थहैं ॥ ६१ ॥ हे अनघ ! अशोकवनिका में विद्यमान होरहे तीर्थोंको आपसे कहा उनके सुनने व कहने से हजार

त्तात्पापयोनयः ॥ ५८ ॥ क्षत्रियाश्शतशोराजन्नन्येचैवसहस्रशः ॥ पापात्समुद्धृतायेच तेषांसङ्ख्यानविद्यते ॥ ५९ ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठं धर्म्मराजोमहाभुजः ॥ कामिकंयानमारुह्य सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६० ॥ ययौस्वभवनंराजन्नारदःपर्वतस्तथा ॥ तस्यामशीतिलक्षाणि तीर्थानांनरसत्तम ॥ ६१ ॥ अशोकवनिकायान्तु कीर्तितानितवानघ ॥ श्रवणात्कीर्तनात्तेषां गोसहस्रफलंभवेत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽशोकवनिकावर्णनोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथातःकथयिष्यामि तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ रेवायाउत्तरेकूले पुरंवागीश्वराभिधम् ॥ १ ॥ वागुर्नामनदीतत्र रेवयासहसङ्गता ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २ ॥ वागीशातत्रचामुण्डा दानवक्षयकारिणी ॥ मणिभद्रोवीरभद्रस्तथान्येशतशोनृपाः ॥ ३ ॥ बभूवुर्मुक्तशापास्ते तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ तिलपिण्डप्रदा

गोदानोंका फल होता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽशोकवनिकावर्णनोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

* ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके बाद पापों के नाश करनेवाले और तीर्थको हम कहेंगे नर्मदा के उत्तरवाले तटपर वागीश्वर नाम का पुर है ॥ १ ॥ वहां वागु नामकी नदी नर्मदा के साथमें मिली है उसमें स्नान करनेवाले स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर नहीं होतेहैं ॥ २ ॥ वहां दानवों के नाश करनेवाली वागीशानाम की काली रहती हैं इस तीर्थके प्रभावसे मणिभद्र, वीरभद्र तथा और भी सैकड़ों राजा शापसे छूटगये यहां तिलोंके सहित पिण्डों के देनेसे पितरों की परम

गति होती है ॥ ३ । ४ ॥ सूर्यवंश में इन्द्रके बराबर ताकतवाले श्रीमान् अयोध्याके मालिक चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्तजी हुये ॥ ५ ॥ जोकि धन व अन्नसे युक्त, भय और दरिद्र से रहित होतेहुये उन राजाके होनेपर सब प्रजा बड़े आनन्द से युक्त होतीहुई ॥ ६ ॥ उन्होंने नर्मदा और वागुनदीके सङ्गममें उत्तमयज्ञको किया उसयज्ञमें ब्रह्माआदि सब देवता व इन्द्र और विष्णुआदि देवता आतेहुये ॥ ७ ॥ और गणेशजीके सहित महादेवजी भी प्रत्यक्ष हुये लोकपाल, मरुत, चन्द्रमा, सूर्य तथा ध्रुव ॥ ८ ॥ नक्षत्र, योग, सिद्ध और सोमआदि सब आतेहुये मुनियों के सहित वशिष्ठ तथा जनकपुर के राजा जनक ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब बुलायेगये मित्र और वरुण

नेन पितॄणांपरमागतिः ॥४॥ ब्रह्मदत्तश्चक्रवर्त्ती सूर्य्यवंशेमहीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ५ ॥धनधान्यसमायुक्तो भयदारिद्र्यवर्जितः ॥ प्रजास्तस्मिन्महीपाले सर्वाअपिमुदान्विताः ॥ ६ ॥ इष्टःक्रतुवरस्तेन नर्म्मदावागुसङ्गमे ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वाः शक्रविष्णुपुरोगमाः ॥ ७ ॥ प्रत्यक्षश्चमहेशानो गणेश्वरसमन्वितः ॥ लोकपालाश्चमरुतश्चन्द्रादित्यौध्रुवस्तथा ॥ ८ ॥ ऋक्षाणियोगसिद्धाश्च सोममुख्याश्चसर्वशः ॥ वशिष्ठोमुनिभिस्सार्द्धं विदेहाधिपतिस्तथा ॥ ९ ॥ एवमाद्याःसमाहूता मित्रावरुणएवच ॥ सर्वेहिरण्मयास्तत्र यज्ञयूपाश्चमण्डपाः ॥ १० ॥ दशयोजनपर्य्यन्तं यज्ञभूमिर्महीभृतः ॥ स्वारोचिषेन्तरेराजन्नादिकल्पेकृतेयुगे ॥ ११ ॥ गवांशतसहस्राणि हेमभारान्वितानिच ॥ हयानांश्यामकर्णानामयुतंसाग्रमेवच ॥ १२ ॥ दन्तिनामयुतंचैव घण्टाभरणभूषितम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च भक्ष्यभोज्यान्यनेकधा ॥ १३ ॥ एवंराजाब्रह्मदत्तःसर्वभूपालसत्तमः ॥ यज्ञंप्रवर्तयामास सर्वसम्भारसंभृतः ॥ १४ ॥

भी बुलायेगये वहां सब यज्ञके खम्भे, व मण्डप सोनेही के थे ॥ १० ॥ राजा ब्रह्मदत्तजी की यज्ञभूमि चालीस कोसतक होतीहुई हे राजन् ! यह वृत्तान्त पहले कल्पके स्वारोचिष मन्वन्तर के सत्ययुग में हुआथा ॥ ११ ॥ सोनेके भारसे लदीहुई एक लाख गौवें, कुछ अधिक दशहजार श्यामकर्णवाले घोड़े ॥ १२ ॥ घण्टाआदि जेवरों से सजेहुये दशहजार हाथी, मणि, माणिक, मोती और अनेकतरह के चबाने व खानेलायक अन्न ॥ १३ ॥ इस प्रकार सब राजाओं मे अत्युत्तम राजा ब्रह्म-

से यथार्थ कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! तुम ठीक २ पुराने इतिहासको सुनो ॥ १८ ॥ कि कार्त्तिकी को ज्येष्ठपुष्कर जो पुष्करतीर्थ है उसमें जलसे जी बोले कि ब्रह्मदत्तजी का नर्मदा के तीर यज्ञका करना कैसे हुआ व प्रेतलोग कैसे छूटे और वे किस कर्म से प्रेतहुये थे ॥ १७ ॥ हे तपोधन! यह सब आप हम ब्रह्मदत्तजीकी स्तुतिको किया ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तजी की यज्ञसे व वागीशके प्रसादसे व नर्मदा के प्रसाद से प्रेतलोग बड़ी तृप्तिको पातेहुये ॥ १६ ॥ तब राजा युधिष्ठिर दत्तजी सब सामानसे युक्तहो यज्ञको रचतेहुये ॥ १४ ॥ वेदके शब्दोंसे व गाने व बाजाओं के शब्दोंसे युक्त, अनेक सवारियों पर सवार देवताओं के गणोंने राजा

वेदनिर्घोषशब्देन गीतवाद्यरवेणच ॥ नानायानसमारूढैःस्तूयमानोमरुद्गणैः ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तस्ययज्ञेन वागीशस्य प्रसादतः ॥ नर्म्मदायाःप्रसादेन प्रेतास्तृप्तिंपराङ्गताः ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथन्तुब्रह्मदत्तस्य कल्पगातीरया जनम् ॥ कथंप्रेताविनिर्मुक्ताःप्रेतास्तेकेनकर्म्मणा ॥ १७ ॥ एतत्सर्वंयथान्यायंकथयस्वतपोधन ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ शृणुराजन्यथान्यायमितिहासम्पुरातनम् ॥ १८ ॥ कार्त्तिक्यामुत्सवंप्राप्य पुष्करेज्येष्ठपुष्करे ॥ अयोगन्धःस्वयंभूश्च पुण्डरीकाक्षएवच ॥ १९ ॥ पितामहस्स्वयंतत्र सुरासुरगुरुःपिता ॥ काव्यश्चहोतृसदनौवेदगर्भःकृतध्वनः ॥२०॥ स्वस्तिकश्चैवसावित्रो वामदेवोघमर्षणः ॥ एतेचान्येचमुनयो ब्रह्मतेजोंशसम्भवाः ॥ २१ ॥ तथातेहियथाशक्त्या ऋतुकालाभिगामिनः॥गार्हस्थ्येचस्थिताभार्य्याभर्तृशुश्रूषणेरताः ॥ २२ ॥ चीरवल्कलधारिण्यः शाकश्यामाकभक्षिकाः ॥ विषण्णास्तेनधर्म्मेण सत्यस्ताअप्यगर्हयन् ॥२३ ॥ द्विजस्यषट्चकर्म्माणि यजनंयाजनंतथा॥अध्यापनंचाध्य

को पायकर अयोगन्ध, स्वयम्भू, पुण्डरीकाक्ष ॥ १९ ॥ देवता और दैत्योंके गुरु व पिता आपही ब्रह्माजी, काव्य, होतृ, सदन, वेदगर्भ, कृतध्वन ॥ २० ॥ स्वस्तिक, सावित्र, वामदेव और अघमर्षण ये व और भी ब्रह्मतेज व अंशों से पैदाहुये मुनिलोग आये और वहीं रहतेरहे ॥ २१ ॥ वे सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार ऋतुसमय में अपनी स्त्रियों के ग्रहण करनेवाले रहे और उनकी स्त्रियांभी गृहस्थ के धर्ममें स्थित अपने पतियों की सेवामें लगी रहतीरहीं ॥ २२ ॥ चीर व भोजपत्रों की पहरनेवाली और शाक व सांवांआदि की खानेवालीरहीं अब वे स्त्रियां उस वानप्रस्थधर्म से दुःखित होरहीं तो यद्यपि वे पतिव्रताथीं पर उस क्लेशमें अपने पतियों की

निन्दा करनेलगीं ॥ २३ ॥ स्त्रियोंने कहा कि ब्राह्मण के छह कर्म होतेहैं यज्ञकरना १यज्ञकराना २ वेदपढ़ना ३ वेदपढ़ाना ४ दानदेना ५ दानलेना ६ ॥ २४ ॥ और स्त्रियोंको गहने व कपड़ोंका पहिरना और अपने पतियों की सेवाकरना यही कर्म है हे राजन् ! इस प्रकार स्त्रियोने अपने पतियोंकी निन्दाकी ॥ २५ ॥ तब उनके वे पति डरगये और सब आश्चर्य को प्राप्तहुये व उदासमुहँवाले होगये उसीसमय में एक राजा हरिश्चन्द्र रहे जिनके समान दूसरा राजा न हुआहै और न होगा ॥ २६ ॥ जिसने अपने दानसे चराचरों के सहित तीनो लोकोंको जीतलिया वे राजा सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र को जातेहुये ॥ २७ ॥ तब वे सब ब्राह्मण भी धनके लोभसे मोहित होरहे सो पुष्करतीर्थ को छोड़कर अपनी स्त्रियों व पुत्रोंके सहित हजारों मुनिलोग ॥ २८ ॥ दानलेने की इच्छा से जहां राजा हरिश्चन्द्र थे वहां पहुँचगये तब

यनं दानञ्चैवप्रतिग्रहः ॥ २४ ॥ भूषणंपरिधानञ्च योषितांभर्तृसेवनम् ॥ एवंचगर्हिताराजन्योषिद्भिःपतयस्तथा ॥ २५ ॥ भीतास्तेविस्मितास्सर्वे विषण्णवदनास्तथा ॥ हरिश्चन्द्रःपुराराजानभूतोनभविष्यति ॥ २६ ॥ दानेननिर्जितंयेन त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ २७ ॥ त्यक्त्वातेपुष्करंतीर्थं धनलोभेनमोहिताः ॥ सहस्रसंख्यामुनयः सभार्य्यास्ससुताश्चते ॥ २८ ॥ यत्रराजाहरिश्चन्द्रःप्रतिग्रहविलिप्सया ॥ मुनीनाहहरिश्चन्द्रोमुदापरमयायुतः ॥ २९ ॥ धन्यामेसफलायात्राकुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ क्षुधार्त्तादुःखिताश्चैव बालावृद्धाःकृशातुराः ॥ ३० ॥ वल्कलाजिनवस्त्राश्च यौवनेप्रेतरूपिणः ॥ यन्नोयूयमभिप्राप्ताः पत्नीपुत्रैश्चसंयुताः ॥ ३१ ॥ उवाचवचनंराजा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ आदेशोदीयतांमह्यं किंकरोमिभवत्कृते ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वाददौश्रीमानेकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ लक्षंलक्षंहिर

राजा हरिश्चन्द्र बड़े आनन्द से युक्त मुनियों से बोले ॥ २९ ॥ कि सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्रकी यह मेरी यात्रा धन्य है और सफलहुई क्योंकि जिससे क्षुधासे विकल, दुःखित, बालक, वृद्ध और बीमार, भोजपत्र व मृगचर्म के जिनके कपड़े हैं और जवानी में प्रेतोंके ऐसे रूपोंको धारण किये स्त्री व पुत्रोंके सहित आपलोग हमारे तीर प्राप्तहुयेहो ॥ ३० । ३१ ॥ फिर साष्टाङ्ग प्रणामकर ब्राह्मणों से राजा वचन बोले कि आपलोग मुझको आज्ञादेवें मैं आपलोगोंके वास्ते क्या करूं ॥ ३२ ॥ ऐसे कहकर श्रीमान् राजा हरिश्चन्द्रजी एक २ को जुदे २ एक २ लाख अशर्फियां तथा हजार २ गौवें, हजार २ घोड़े, सौ २ हाथी, सोनेके हाता व सोनेके फाटकवाले

सात २ चौकवाले रमणीक महल और भी अनेक तरहके भोगोंको देतेहुये जैसे कुबेरजी आपही देवें वे सब ब्राह्मण दानको लेकर कालान्तर में जब मरे तब बड़े भयङ्कर लम्बेओठोंवाले व लम्बे अण्डकोशोंवाले और डरावने मुहँवाले प्रेतरूप होगये दानलेने के प्रभाव से ब्राह्मण का नरकमें गिरना ज़रूरही होताहै ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ अब वे ब्राह्मण अपने पहले जन्मकी सुध करनेवाले अकेले बाहर अपने को शोचते हैं और कहतेहैं कि हमारी स्त्री, पुत्र, सेवक और भाई लोग कोई दानके लेनेसे नहीं जले सब पहलेहीकी तरह बनेहैं और हमलोग अकेलेही जलगये जैसे आगसे वृक्ष जलजावें ॥ ३७ । ३८ ॥ राजाओंके दानलेने से

एयस्य तथागावःसहस्रशः ॥ ३३ ॥ सहस्रंतुरगाणांच दन्तिनांशतमेवच ॥ सप्तभौमान्गृहान्रम्यान्हेमप्राकारतोरणान् ॥ ३४ ॥ नानाविधविलासांश्च यथाधनपतिःस्वयम् ॥ कल्पान्तरेमृताजाताः प्रेतरूपाभयङ्कराः ॥३५॥ लम्बोष्ठालम्बवृषणा विकृताननसंयुताः ॥ प्रतिग्रहप्रभावेण द्विजस्यपतनंध्रुवम् ॥ ३६ ॥जातिस्मराःस्वंशोचन्ति एकाकिनास्तुतेबहिः ॥ नभार्य्यानचमेपुत्रा नभृत्यानचबान्धवाः ॥ ३७ ॥ नतेप्रतिग्रहैर्दग्धा यथापूर्वंतथैवच ॥ वयमेकाकिनोदग्धा वृक्षाइवहविर्भुजा ॥ ३८ ॥ राजप्रतिग्रहैर्दग्धानप्ररोहन्तिमानवाः ॥ वैश्वानरेणदग्धानां पुनर्जन्मप्रजायते॥३९॥ नमातानपितापुत्रो द्रविणंनचबान्धवाः ॥ यमदूतैर्गृहीतानांधर्म्मएकःसहानुगः ॥ ४० ॥ शोचित्वासुचिरंकालं भार्य्यापुत्रविवर्ज्जिताः ॥ भ्रमित्वाचमहींसर्वां पुष्करंतीर्थमागताः ॥ ४१ ॥ प्रेतरूपान्मुनीन्दृष्ट्वा विषादंपरमंगतः ॥ तानुवाचमुनिश्रेष्ठः कथंप्रेतत्वमागताः ॥ ४२ ॥ प्रेताऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रःसत्यधर्म्मस्सूर्यवंशेमहीपतिः॥अयोध्याधिपतिःश्रीमा

जलेहुये मनुष्य फिर कभी नहीं जमते हैं और आगसे जलीहुई चीजोंका फिर जमना होता है ॥ ३९ ॥ यमदूतों से पकड़ेगये हमलोगों के माता, पिता, पुत्र, धन और भाई ये कोई सहायक नहीं हैं एक हमारा धर्मही सहायकहै ॥ ४० ॥ इसतरह स्त्री और पुत्रोंसे रहित वे लोग बहुत कालतक शोचकर और सब पृथिवी में घूमकर पुष्करतीर्थ को आतेहुये ॥ ४१ ॥ वहां नारदजी प्रेतरूपवाले उन मुनियोंको देखकर बड़े विषादको प्राप्तहुये तब मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी उन मुनियों से बोले कि तुमलोग प्रेतभावको कैसे प्राप्तहुये ॥ ४२ ॥ तब प्रेत बोले कि सच्चेधर्मवाले, अयोध्याके मालिक, देवताओं के बराबर ताकतवाले, सूर्यवंशमें श्रीमान्, राजा हरि-

श्चन्द्रजीहुये ॥ ४३ ॥ उन राजाका दान सूर्यग्रहणमें हमलोगोंने लिया इसीसे हे मुने! हम सब ब्रह्मर्षिलोग प्रेतभावको प्राप्तहुये ॥४४॥ हे ब्रह्मन्! यह आप से कहा अब हमलोगोंका इस योनिसे छुटकारा कियाजावे क्योंकि आप तीनोंकालके तत्त्वके जाननेवाले, ब्रह्माके पुत्र और तपस्याके खजानाहो ॥ ४५ ॥ तब श्रीमान् नारदजी उन तपोधनों से वचन बोले कि किसी पुण्यवाले दिव्यपर्व कार्त्तिकी के समयमें ४६ ॥ महादेवजी ने पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से पूर्वकाल में कहाथा वहीं स्कन्दके कहेहुये पुराण को हमने भी सुनाहै ॥ ४७ ॥ उसमें कहाहै कि हे नृप! नर्मदाको छोड़कर और पापोंके नाश करनेको कौन समर्थ होसक्ती है हे विप्रो! यद्यपि गङ्गा

न्देवतुल्यपराक्रमः ॥ ४३ ॥ तस्यप्रतिग्रहोऽस्माभिराप्तस्सूर्यग्रहेस्थिते ॥ तेनप्रेतत्वमापन्नास्सर्वेब्रह्मर्षयोमुने॥४४॥ एतत्तेकथितंब्रह्मन्मोक्षोस्माकंविधीयताम् ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञो ब्रह्मपुत्रस्तपोनिधिः ॥ ४५ ॥ उवाचवचनंश्रीमान्नारदस्तांस्तपोधनान् ॥ कस्मिन्नवसरेपुण्ये कार्त्तिक्यांदिव्यपर्वणि ॥ ४६ ॥ शिवेनकीर्तितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ श्रुतंमयैवतत्रैव पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४७ ॥ कान्यापापक्षयंकर्तुं शक्तारेवांविनानृप ॥ गङ्गाद्यास्सरितोविप्राः पुण्यतीर्थास्तथापिच ॥ ४८ ॥ वागीशंचपुरंतत्र नर्म्मदातटमाश्रितम् ॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मोक्षणंतुभविष्यति ॥ ४९ ॥ उद्देशंतुततोदत्त्वा नारदस्त्रिदिवंगतः ॥ तेपिप्रेतामहाभाग ध्यात्वाशिवमुमापतिम् ॥ ५० ॥ अभिजग्मुस्तमुद्देशं वागीशपुरमुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यशिवं हरिंभास्करमेवच॥५१॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मुक्तास्सर्वेपिकिल्बिषात् ॥ ब्रह्मयानंसमारुह्य ब्रह्मलोकंसमागताः ॥ ५२ ॥ प्रतपन्तियथादित्याब्रह्मतेजोवपुर्द्धराः ॥ तस्योपरिनरेशस्य पुष्पवृष्टिःपपात

आदि नदियां व और भी पुण्यवाले तीर्थ विद्यमान हैं तथापि वे नहीं समर्थ हैं ॥ ४८ ॥ नर्मदा के किनारे पर वागीशपुर है वहां ब्रह्मदत्त की यज्ञमें तुमलोगों का मोक्षहोगा ॥ ४९ ॥ ऐसे सूचनाको देकर तदनन्तर नारदजी स्वर्गको चलेगये हे महाभाग! वे प्रेतभी पार्वतीजी के पति महादेवजी का ध्यानकर ॥ ५० ॥ उसी उत्तम वागीशपुर को चलेगये वहां स्नानकर और महादेव, विष्णु और सूर्यका पूजनकर ॥ ५१ ॥ ब्रह्मदत्तकी यज्ञमें वे सब पापीलोग पाप से छूटगये ब्रह्माजीकी सवारीपर

सवारहोकर ब्रह्माजीके लोकको प्राप्तहो ॥ ५२ ॥ ब्रह्मतेजके शरीरको धरेहुये सूर्य्यके समान तपतेहैं, उस राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! यह आपसे कहागया जैसा कुछ पूर्वकाल में होताहुआ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंके फलको पाताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे वागीश्वराख्यानन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि दानलेना यह बड़ाभारी मगर है इससे ग्रसेहुये और लोभ व मोहसे मोहित होरहे ब्राह्मण घोरनरक में डूबते हैं जहां पड़कर फिर नहीं

वै ॥ ५३ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथावृत्तंपुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यगोसहस्रफलंलभेत् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेवागीश्वराख्यानंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ प्रतिग्रहग्रहग्रस्ता लोभमोहविमोहिताः ॥ मज्जन्तिनरकेघोरे यत्रगत्वानानिर्गताः ॥ १ ॥ सफलावेदयज्ञाश्च तीर्थयात्राचभारत ॥ तथाक्लिश्यन्तिचात्मानं प्रतिग्रहपरानराः ॥ २ ॥ दाताचयाचकश्चैव कराभ्यामेवसूचितौ ॥ अधोगच्छेद्ग्रहीतातु दातागच्छतिचोर्द्ध्वतः ॥ ३ ॥ सहस्रावर्तकंनाम तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नातस्यविधिवद्वृषोत्सर्गफलंभवेत् ॥ ४ ॥ आसप्तमंकुलञ्चैवपुनीतेनात्रसंशयः ॥ रेवायाउत्तरेकूले सहस्रायुधसंख्यया ॥ ५ ॥ ततश्चान्तेमहाभाग कारायावनमुत्तमम् ॥ अग्निष्टोमफलंयत्र स्नात्वास्वर्गंचगच्छति ॥ ६ ॥ रेवायाउत्तरेभागे

निकलसक्ते हैं ॥ १ ॥ हे भारत ! यद्यपि वेदोंमें कहीहुई यज्ञें व तीर्थयात्रा ये सब फलवाली हैं तथापि दानके लेनेवाले मनुष्य अपने आत्माको क्लेश देते है ॥ २ ॥ देनेवाले और लेनेवाले दोनों हाथोंसेही कामकरतेहैं परन्तु दानका लेनेवाला नीचेको जाताहै और देनेवाला ऊपरको जाताहै ॥ ३ ॥ सबपापोंका छोडानेवाला एक सहस्रावर्तकनाम का तीर्थ है उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले को वृषोत्सर्गका फल होताहै ॥ ४ ॥ और अपनी सातपीढ़ीतकको पवित्र करताहै इसमें कुछ संशय नहीं है यह तीर्थ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सौ धनुषका लम्बाहै ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! उसके अन्तमें कारा का वनहै वह बड़ा उत्तम है जहां अग्निष्टोमयज्ञ का फल

होताहै और स्नानकर स्वर्गको जाताहै ॥ ६ ॥ नर्मदा के उत्तरतरफ परमसुहावन तीर्थ सौगन्धिक नामका वनहै उसको पवित्र व्रतवाले ब्रह्मचारी, पितर, ब्रह्माआदि देवता, श्रेष्ठ तपस्वी, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व्व, किन्नर और नागोंने सींचाहै ॥ ७ । ८ ॥ उस वनमें पैठकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है तदनन्तर नदियों में उत्तम सरस्वतीनदी है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! वह देवताओं की कन्या है व उन्हीं के देखनेलायक है और महापवित्र कही गई है हे नृपते ! मनुष्य उसके जलमें स्नान करे ॥ १० ॥ और पितर व देवताओं का तर्पणकर अश्वमेधके फलको पाता है वहां ईशानाध्युषित नामका अतिदुर्लभ तीर्थ है ॥ ११ ॥ उसमें व्यतीपात व संक्रान्ति

तीर्थंपरमशोभनम् ॥ सौगन्धिकंवनंनाम ब्रह्मचारिशुचिव्रताः ॥ ७ ॥ सिषिचुःपितरस्तत्तु ब्रह्माद्यास्सुतपोधनाः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ प्रविश्यतद्वनंमर्त्यः सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ ततःसरस्वतीचास्ति नदीनामुत्तमानदी ॥ ९ ॥ लक्ष्यादेवसुताराजन्महापुण्याप्रकीर्त्तिता ॥ तत्रस्नानंप्रकुर्वीत मानवोनृपतेजले ॥ १० ॥ तर्पयित्वापितृन्देवानश्वमेधफलंलभेत् ॥ ईशानाध्युषितंनाम तत्रतीर्थंसुदुर्लभम् ॥ ११ ॥ तत्रस्नात्वाव्यतीपाते संक्रान्तौग्रहणे नरः ॥ सहस्रकपिलादाने वाजिमेधेचयत्फलम् ॥ १२ ॥ सुगन्धाञ्छातकुम्भांश्च पञ्चयज्ञांश्चभारत ॥ अभिगम्य नरश्रेष्ठ स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १३ ॥ त्रिशूलाख्यन्तुतत्रैवतीर्थमासाद्यभारत ॥ तत्राभिषेकंयःकुर्य्यादर्चयेत्पितृदैवतम् ॥ १४ ॥ गणेशत्वंसलभतेत्यक्त्वादेहंनसंशयः ॥ ततोगच्छेन्महाराज ब्रह्मस्थानमनुत्तमम् ॥ १५ ॥ रेवायाउत्तरे कूले कामभोगफलप्रदम् ॥ ब्रह्मोदमितिविख्यातंप्रकाश्यंभुविभारत ॥ १६ ॥ तत्रसप्तर्षयःप्राप्ताःस्नानार्थंभरतर्षभ ॥

और ग्रहण में मनुष्य स्नानकर हजार कपिलागौवों के देनेमें व अश्वमेध में जो पुण्य होता है उसको पाताहै ॥ १२ ॥ और हे नरश्रेष्ठ, भारत ! सुगन्ध व शातकुम्भ और पञ्चयज्ञनाम के तीर्थोंमें जाकर स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ १३ ॥ हे भारत ! फिर वहीं त्रिशूलनाम के तीर्थको पाकर उसमें जो स्नान करता है और पितर व देवताओं का पूजन करता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य देहको छोड़कर गणों के राज्यको पाताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है हे महाराज ! तदनन्तर सबसे उत्तम ब्रह्मस्थान को जावे ॥ १५ ॥ नर्मदाके उत्तरतट मे मनमाने भोगोका देनेवाला ब्रह्मोदनामसे प्रसिद्ध तीर्थ है हे भारत ! वह पृथिवीमे प्रकाश करनेके लायकहै ॥ १६ ॥

हे भरतर्षभ ! वहां स्नान करने के वास्ते सातों ऋषि प्राप्तहुये हे भारत ! और भी मुनियों में श्रेष्ठ कपिञ्जल, हव्यवाह ॥ १७ ॥ भगवान् देवयान और महामुनि विश्वावसु ये सब इस तीर्थ के माहात्म्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हुये ॥ १८ ॥ और यहांपर श्राद्ध के देनेसे पितालोग ब्रह्माजीके पुरको प्राप्त हुये तदनन्तर एक गूलर का वृक्षहै विधिसे उसका दर्शनकर ॥ १९ ॥ तपस्या से पाप जिसके जलगये ऐसा मनुष्य अन्तर्द्धान को पाता है हे महाराज ! तदनन्तर लोकों के कल्याण करनेवाले शङ्करजीको प्राप्तहोवे ॥ २० ॥ अँधियालेपाखकी चौदसिको महादेवजी के समीप जाकर सब कामोंको पाताहै और निश्चय करके स्वर्गलोकको जाता

कपिञ्जलोमुनिश्रेष्ठोहव्यवाहश्चभारत ॥ १७ ॥ भगवान्देवयानश्च विश्वावसुमहामुनिः ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥ पितरःश्राद्धदानेन प्रयाताब्रह्मणःपुरम् ॥ उदुम्बरस्यकृत्वातु विधिवद्दर्शनंततः ॥ १९ ॥ अन्तर्द्धानमवाप्नोति तपसादग्धकिल्बिषः ॥ ततोगच्छेन्महाराज शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ २० ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्याम भिगम्यवृषध्वजम् ॥ लभतेसर्वकामांश्च स्वर्गलोकंहिगच्छति ॥ २१ ॥ नर्म्मदायाम्यभागेतु गोप्याद्गोप्यतरंमहत् ॥ सिद्धलिङ्गंमणिमयंनतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ २२ ॥ नागेन्द्रसुरसिद्धैश्च नागकन्याभिरर्च्यते ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां शङ्करेकुरुनन्दन ॥ २३ ॥ वसूनामाश्रमंपुण्यं मुनीनांब्रह्मचारिणाम् ॥ शिवभक्तिपराणाञ्च कन्दमूलफलाशिनाम् ॥ २४ ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिस्तिलतोयप्रदानतः ॥ मुदापरमयायुक्तो दातायातिशिवालयम् ॥ २५ ॥ ध्रुवोधरश्चसोमश्च सावित्रश्चानलोनिलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोष्टौप्रकीर्तिताः ॥ २६ ॥ शङ्करस्यप्रसादेन दिविदेवत्वमागताः ॥ क

है ॥ २१ ॥ और नर्मदा के दक्षिणतरफ गुप्तसे अतिगुप्त, बड़ाप्रभाववाला, मणियों से बनाहुआ सिद्धलिङ्ग है उसको मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २२ ॥ वह नागोंके राजा, देवता, सिद्ध और नागोंकी कन्याओं से पूजाजाता है हे कुरुनन्दन ! शङ्करजी में सवाकरोड़ तीर्थ हैं ॥ २३ ॥ वहीं वसुनामके देवताओंका और कन्द, मूल व फलोंके खानेवाले शिवके भक्त ब्रह्मचारी मुनियोंका भी पुण्य आश्रम है ॥ २४ ॥ वहां तिल और जलके देनेसे पितरोंकी अक्षयतृप्ति होतीहै और तिलोदक देनेवाला पुरुष बडेआनन्द से युक्त शिवके स्थानको जाता है ॥ २५ ॥ ध्रुव, धर, सोम, सावित्र, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहेगये हैं ॥ २६ ॥ सो सब

लपगासौम्यभागेतु सोमतीर्थमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्स्वर्गलोकेमहीयते ॥ सप्तसारस्वतंतीर्थं ततोगच्छे
न्नृपोत्तम ॥ २८ ॥ ब्रह्मणाचकृतंस्तोत्रं पुण्यकीर्तेनिशामय ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाक्पतिर्वचसांनित्यं वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥
२९ ॥ हंसःसुरेशोवक्तावावसूनामन्तरावसन् ॥ होतादिविषदीशानो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३० ॥ स्वाहाकारःस्वधा
कारो वषट्कारोहविष्यभुक् ॥ ऋङ्मूर्तिर्यजुषांमूर्तिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३१ ॥ क्षेत्रज्ञःपरमःसूक्ष्मोजगतांतारको
हरिः ॥ ईश्वरोहृदयावासो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३२ ॥ श्रवण्यःश्रवणोपायः पुण्यश्लोकश्शुचिश्रवाः ॥ वरदोवासु
देवोग्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३३ ॥ पुरुषःपुण्डरीकाक्षःपुराणोभुवनेश्वरः ॥ आदित्यान्तर्गतोवह्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥
३४ ॥ कंसकालियहन्ताच सुबलोबलमर्दनः ॥ शिशुपालनिहन्ताग्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३५ ॥ कालनेमिनिहन्ता

महादेवजी के प्रसाद से स्वर्गमें देवताहुये अब नर्मदा के उत्तरतरफ में अत्युत्तम सोमतीर्थ है ॥ २७ ॥ हे राजन्! वहां स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होताहै हे नृपोत्तम! तदनन्तर सप्तसारस्वत तीर्थको जावे ॥ २८ ॥ हे पुण्यकीर्ते! अब ब्रह्माके कियेहुये स्तोत्रको सुनो ब्रह्माजी बोले कि वाणी व शब्दोंके स्वामी वासुदेव हमारी नित्यही गतिहोवें ॥ २९ ॥ सबकहीं प्राप्तहोनेवाले, देवताओं के मालिक, बोलनेवाले, जीवोंके अन्दर रहनेवाले, होमके करनेवाले, स्वर्गके बैठनेवाले, सब के ईश्वर, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३० ॥ स्वाहा, स्वधा और वषट्काररूपवाले, शाकल्यके खानेवाले, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनकी मूर्त्तियांहैं ऐसे वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३१ ॥ शरीरके जाननेवाले, बहुत सूक्ष्म, संसारके तारनेवाले व हरनेवाले, सबके मालिक, सबके हृदयमें बसनेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३२ ॥ सुननेलायक और सुनने के कारण, पवित्र यशवाले व पवित्र कानोंवाले, वरके देनेवाले, जीवरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३३ ॥ शरीरोंमें रहनेवाले, सफेदकमल से नेत्रोंवाले, सबसे पुराने, चौदहो भुवनों के मालिक, सूर्यके भीतर रहनेवाले, अग्निरूपसे देवताओंके यज्ञमें बुलायेजानेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३४ ॥ कंस व कालियनागके, मारनेवाले, अच्छे बलवाले, बलनाम दैत्यके मारनेवाले व शिशुपालके मारनेवाले, अग्निरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३५ ॥ कालनेमि

के नाश करनेवाले, व्यापकरूपवाले, समयपर यमराजके भी नाश करनेवाले, सैकड़ों दैत्योंके शरीरोंके नाश करनेवाले वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३६ ॥ कंकासुर और मधुकैटभके नाश करनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदा जिनके हाथोंमेंहै ऐसे वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३७ ॥ सफेद रङ्गवाले, जलके सोनेवाले, सबमें रहनेवाले, पापोंका नाश करनेवाला है नाम जिनका, सबसे अधिक ऐश्वर्यवाले और अपने वचनकी सच्चीपालनाके करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३८ ॥ इन्द्रियोंके स्वामी, इन्द्रके पालनेवाले,इन्द्रके छोटेभाई, गरुड़के सवार, हजारों नामोंवाले,धर्मके जाननेवाले,वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३९ ॥ शङ्खवाले,नन्दकनामकी तलवारके बाधनेवाले, चक्रवाले, शार्ङ्गधनुषवाले, गदाके धरनेवाले, धीरजवाले, अच्छीदेहवाले, बुद्धिवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४० ॥ सबसे भारी जगत्के खींचनेवाले

ग्निर्यःकालेनियतान्तकः ॥ शतासुरशरीरघ्नो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३६ ॥ कङ्कासुरनिहन्ताच मधुकैटभनाशनः ॥ शङ्खचक्रगदापाणिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३७ ॥ शुक्लःसलिलशायीच विष्णुःपापक्षयाह्वयः ॥ इन्द्रोवचनसत्पालो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३८ ॥ हृषीकेशश्चेन्द्रपाल उपेन्द्रोगरुडासनः ॥ सहस्रनामाधर्म्मज्ञो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३९ ॥ शङ्खीचनन्दकीचक्री शार्ङ्गधन्वागदाधरः ॥ धीरोवपुष्मान्मेधावी वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४० ॥ बृहत्सङ्कर्षणश्शम्भुः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ निपुणोलक्ष्मणश्शुद्धो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४१ ॥ त्रैकालिकस्त्रिकालज्ञस्त्रयीकर्तात्रिलोचनः ॥ त्रिसामादेवकीसूनुर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४२ ॥ अव्यक्तात्मामहात्माच अन्तरात्माजनार्दनः ॥ प्राणश्चेन्द्रियभूतात्मावासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४३ ॥ परमात्मापरंब्रह्म परमेशःपरागतिः ॥ परमेष्ठीपरंज्योतिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥४४॥ विश्वात्मा

कल्याणरूप, आपही से प्रकट होनेवाले, सब प्राणियों के पैदा करनेवाले, जगत् के बनाने में प्रवीण, उत्तम लक्षणोंवाले, निर्मल, वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४१ ॥ तीनों कालों में रहनेवाले, तीनों कालोंके जाननेवाले, तीनों वेदोंके रचनेवाले, तीन नेत्रवाले, तीनों कालोंमें शान्तरूपवाले, देवकीके पुत्र वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४२ ॥ अप्रकटरूपवाले, महात्मा, सबके अन्तर्यामी, भक्तोंके मनोरथों के पूरे करनेवाले, प्राणरूप, इन्द्रिय और पृथिवीआदि भूतों के आत्मा, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म,मालिकोंके मालिक, परमगति, सबसे ऊंचीबैठकवाले, परमज्योतिःस्वरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४४ ॥ सब जगत् के आत्मा,

जगत् के बनानेवाले, जगत् के स्वामी, आत्मज्ञानी, आकाश और पृथिवी के रचनेवाले वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४५ ॥ हजारों शिरोंवाले, सब प्रकारके ऐश्वर्यों वाले, हजारों नेत्रोंवाले व हजारों पांवोंवाले और हजारों करोड़ों के धारण करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उत्तम वाणीवाले पूजन किये गये वागीश्वर परमेश्वर जनार्दन विष्णुभगवान् मुझ भक्तपर प्रसन्नहोवें ॥ ४७ ॥ जन्मसे लेकर आजतक जो कुछ मैंने पुण्यको कमायाहो हे पुरुषोत्तम! वह सब मेरा फल अटल होजावे ॥ ४८ ॥ इस स्तोत्रको हमेशा पाठ करनेवाले मनुष्य से परमेश्वर पूजित होजाते हैं और उसके पापों का नाश करदेते हैं व उसके फलको

विश्वकर्ताच विश्वस्यपतिरात्मवान् ॥ द्यावापृथिव्योःकर्ताच वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशीर्षाभगवान्सहस्राक्षस्सहस्रपात् ॥ सहस्रकोटिधारीवावासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४६ ॥ इतिवागीश्वरोवाग्मी पूजितःपरमेश्वरः ॥ भक्तस्यभगवान्विष्णुः प्रीयतांमेजनार्दनः ॥ ४७ ॥ जन्मप्रभृतियत्किञ्चिन्मयासुकृतमर्जितम् ॥ तत्समग्रंफलंचास्तु शाश्वतंपुरुषोत्तम ॥ ४८ ॥ इदमभ्यस्यतोनित्यं पूजितःस्यात्सकेशवः ॥ विनाशयतिपापानि प्रकाशयतितत्फलम् ॥ ४९ ॥ एषनिष्कण्टकःपन्था यत्रसम्पूज्यतेहरिः ॥ कुपथंतंविजानीयाद्यत्रनाराध्यतेहरिः ॥ ५० ॥ वासुदेवपरावेदा वासुदेवपराक्रिया ॥ वासुदेवात्मकाविप्रा वासुदेवपराश्रयः ॥ ५१ ॥ सर्वेदेवावासुदेवंयजन्ते सर्वेदेवावासुदेवात्प्रसूताः ॥ सर्वेषांवावासुदेवोपिदेवो नान्यत्किञ्चिद्वासुदेवातिरिक्तम् ॥ ५२ ॥ नान्यःपुण्यतरोदेवो नास्तिविष्णुपरंतपः ॥ नास्ति विष्णुपरंज्ञानं सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥ ५३ ॥ येपठन्तिनराभक्त्या विष्णुनामाङ्कितस्तवम् ॥ तेयान्तिवैष्णवंलोकं

देते हैं ॥ ४९ ॥ यही बेकांटे की रास्ता है जिसमें हरिभगवान् पूजेजावें व उसको कुमार्ग समझे जिसमें हरिभगवान् नहीं पूजेजाते हैं ॥ ५० ॥ वेद वासुदेवही को कहते हैं, कर्म वासुदेवहीके वास्ते हैं, ब्राह्मण वासुदेवही के रूप हैं, सब से बड़े आश्रय वासुदेवही हैं ॥ ५१ ॥ सब देवता वासुदेवहीको पूजते हैं सब देवता वासुदेवहींसे पैदाहुये हैं सबके देवता वासुदेवही हैं वासुदेवको छोड़कर और कोई चीजही नहीं है ॥ ५२ ॥ और कोई ऐसा पवित्र देवताही नहीं है विष्णु से परे कोई तपस्या नहीं है व विष्णुसे परे कुछ ज्ञान नहीं है और सब जगत् विष्णुका रूपहै ॥ ५३ ॥ विष्णुके नामोंसे चिह्नित इस स्तोत्रको जे मनुष्य भक्तिसे पढ़तेहैं वे सनातन परब्रह्म

रूप विष्णुके लोकको जातेहैं ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ब्रह्माजी के कियेहुये इस स्तोत्रको सुनकर योगनिद्रासे सोतेहुये लक्ष्मीजी से जगायेगये वे कृष्ण देव ॥ ५५ ॥ डरभूते, अनेक रूपवाले सब देवताओ को देखकर बोले कि तुम सबको क्या भय पैदा हुआ है जो हमारे देखने के वास्ते यहां आयेहो ॥ ५६ ॥ तब हे भारत ! विष्णुजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि हे जगन्नाथ ! आपके विना देवताओंको काटे ऐसे दैत्योंसे यहां रक्षा करनेवाला और कौनहै ॥ ५७ ॥ दानवों ने पृथ्वीको लपेट लिया है और स्वर्गको भी नाशकरदियाहै धर्म और काम आदिकों के देनेवाले यज्ञों व वेदों को नाश करदिया है ॥ ५८ ॥ दानवों के भारसे दबीहुई

परंब्रह्मसनातनम् ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदंदेवो ब्रह्मणःसमहात्मनः ॥ श्रियाप्रबोधितःकृष्णश्शयानोयोगनिद्रया ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वाब्रवीत्सुरान्सर्वान्नानारूपान्भयानकान् ॥ किमस्तिवःसमुत्पन्नंमांदिदृक्षुरिहागताः ॥ ५६ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा केशवंप्रतिभारत ॥ त्वांविनात्रजगन्नाथ कस्त्राताद्देवकण्टकैः ॥ ५७॥ दानवैर्वेष्टिताधात्री स्वर्गश्चैवविनाशितः ॥ धर्म्मकामादिकायज्ञा वेदाविप्लाविताास्तथा ॥ ५८ ॥ दनुभारभराक्रान्ता रसातलतलंगता ॥ जटासुरश्चजाबालिर्दैत्योमयसुतस्तथा ॥ ५९ ॥ दशकोट्यस्तुदैत्यानां समग्रबलशालिनाम् ॥ शिवप्रसादयुक्तानां स्वर्गविप्लवकारिणाम् ॥ ६० ॥ तस्मात्प्रवर्तितंचक्रमुद्धरस्ववसुन्धराम् ॥ श्रुत्वावाक्यमिदंदेवो भयार्तंप्राणपीडितम् ॥ ६१ ॥ उवाचवचनंदेवा भयन्त्यजतदैत्यजम् ॥ अचिरेणैवकालेन हनिष्यामिमहासुरान् ॥ ६२ ॥ वाराहरूपमास्थाय प्रेषितंकल्पगाजले ॥ दंष्ट्राग्रेणधृताधात्री दानवानांक्षयःकृतः ॥ ६३ ॥ पुनःप्रवर्तितासृष्टिर्यथापूर्वंतथैवच ॥ ब्रह्माद्यामु

पृथ्वी पातालको चलीगई है जटासुर और मयदानव का लड़का जाबालिदैत्य ॥ ५९ ॥ व स्वर्गके तोडनेवाले, महादेवजीके प्रसादसे युक्त सबतरहकी ताक़तवाले दशकरोड़ दैत्योंका ॥ ६० ॥ चक्र इस समय में चलरहा है इससे आप पृथिवीका उद्धार करें विष्णुदेव इस वचन को सुनकर और भयसे विकल व प्राणों से पीड़ित ब्रह्माजी को देखकर ॥ ६१ ॥ वचनबोले कि हे देवताओ ! दैत्यों से पैदाहुये भयको तुम सब लोग छोड़देवो क्योंकि थोड़ेही कालमें हम दैत्योंको मारेंगे ॥६२॥ यह कहकर सुवर के रूपको धारणकर नर्मदा के जलमें पैठे अपनी बीरोंपर पृथ्वीको धरा व दानवों का नाश करदिया ॥ ६३ ॥ फिर भी पहलेकी तरह सृष्टि प्रवृत्त हुई

व आनन्दित हुये सब ब्रह्माआदि देवता स्वर्गको लौटआये ॥ ६४ ॥ हे राजन्! यह तुमसे वाराहक्षेत्र जो नर्मदाके तटमें है उसको कहा इसके सुननेव कहनेसे अश्व-मेधके फलको पाताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेवाराहमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ❀ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब देवताओं का रूप देवपथनाम का शुभतीर्थ है उसमें विधिसे स्नान करनेवाला सब यज्ञो के फलको पाताहै ॥ १ ॥ महीना२में जो कुशोंकी पूंछों से सोमयज्ञको करता है वह नर्मदा के जलसे पवित्र हुयेकी सोलहवीं कलाको नहीं पाताहै ॥ २ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार किया

दितादेवाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ६४ ॥ एतत्तेकथितंराजन् वाराहंकल्पगातटे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य हयमेधफलं लभेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे वाराहमहिमानुवर्णनोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोदेवपथंतीर्थंसर्वदेवमयंशुभम् ॥ तत्रस्नातश्चविधिवत्सर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ १ ॥ मासेमासेकुशाग्रेण सोमयागंकरोतियः ॥ सरेवाजलपूतस्य कलांनार्हतिषोडशीम् ॥ २ ॥ लिङ्गंदेवपथंनाम सुरासुरनमस्कृतम् ॥ श्रद्धयातद्दर्शनेनपितॄणांपरमागतिः ॥ ३ ॥ चैत्रेमासेचतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ स्नानार्थंसर्वतीर्थानि जग्मुःकर्तुञ्चसत्क्रियाम् ॥ ४ ॥ यद्देवलोकेदेवानामीप्सितञ्चनृपध्वज ॥ सहस्राणिमुनीन्द्राणां तस्मिंल्लिङ्गमुपासते ॥ ५ ॥ चान्द्रायणपराःकेचिद्ब्रह्मकूर्चपरास्तथा ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहाराजलप्रियाः ॥६॥ अग्निहोत्रपरानित्यं तथाहुतहुताशनाः ॥ उपासतेदेवपथंसंसिद्धिंपरमाङ्गताः॥७ ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ सहस्रयज्ञंपरमं

गया देवपथनामका लिङ्गहै श्रद्धासे उसके दर्शन करने से पितरों की परम गति होती है ॥ ३ ॥ चैत्रके महीने के दोनों पाखोंकी चौदसको उसमें स्नान व उसके सत्कार करने को सबतीर्थ आतेहैं ॥ ४ ॥ हे नृपध्वज ! जो लिंग देवलोक में देवताओंको भी प्याराहै ऐसे उस शिवलिंगकी हजारों मुनीन्द्र उस स्थानमें उपासना किया करते हैं ॥ ५ ॥ कोई चान्द्रायण के करनेवाले हैं, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवालेहैं, कोई कन्द, मूल और फलोंके खानेवाले हैं, कोई जलाहार के करनेवाले हैं, कोई जलही जिनका प्याराहै ऐसे है ॥ ६ ॥ और कोई नित्य अग्निहोत्र के करनेवाले होम कियाहै अग्निमें जिन्होंने ऐसे है ये सबलोग देवपथ लिगकी उपासना

करते परमसिद्धि को प्राप्तहुये हैं ॥ ७ ॥ अब पापोंके नाश करनेवाले और तीर्थको कहते हैं वह सब कामफलोंका देनेवाला महस्रयज्ञ नामका परमतीर्थ है ॥ ८ ॥ उसमें अगहन के महीने में एकादशी को जनार्दनजी का पूजनकर मनुष्य अपने कियेहुये हजारयज्ञों के फलको पाताहै ॥ ९ ॥ यमलोक को नहीं देखता है और पशुआदि योनियों को नहीं पाताहै इस तीर्थके प्रभावसे मनुष्य पापरहित होजाताहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे पुण्यवाला अत्युत्तम आख्यान कहागयाहै इस के सुनने व कहनेसे विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ जिसमें हैं ऐसे अच्छे शुक्लतीर्थ को जावे जिसमें स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य दश

सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८ ॥ एकादश्यांमार्गशीर्षे पूजयित्वाजनार्दनम् ॥ सहस्रयज्ञस्येष्टस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ९ ॥ नपश्येद्यमलोकञ्च तिर्य्यग्योनिंनगच्छति ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नरोविगतकल्मषः ॥ १० ॥ एतत्तेकथितंराज न्पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ ११ ॥ शुक्लतीर्थंततोगच्छेत्सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ यत्रस्नातोपिलभतेदशधेनुफलंनरः ॥ १२ ॥ शुक्लीकृतास्तेनदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां शुक्लती र्थेव्यवस्थिता ॥ १३ ॥ अष्टहस्तप्रमाणञ्च शुक्लतीर्थंयुधिष्ठिर ॥ तत्रकालाग्निरुद्रश्च श्रीकण्ठश्चतथापरः ॥ १४ ॥ तैं स्तैस्तपोभिरुग्रैश्च तत्रसिद्धिपराङ्गताः ॥ शुक्लतीर्थप्रभावेणमोदन्तेदिविदेवताः ॥ १५ ॥ शक्रोपिचपुराध्यच्र्चं देवदेवमु मापतिम् ॥ रेवातोयेनसंस्नाप्य बिल्वपत्रैःसमार्चयत ॥ १६ ॥ पौर्णमास्याममावस्यां सोमःसूर्य्यःप्रभावतीम् ॥ तत्रस्नातो

गोदानों के फलको पाताहै ॥ १२ ॥ व उसने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवआदि देवताओं को सफेद अर्थात् निर्मल करदिया है व सवाकरोडतीर्थ शुक्लतीर्थ में रहा करते हैं ॥ १३ ॥ हे युधिष्ठिर ! शुक्लतीर्थ आठहाथ का प्रमाणवाला है वहां कालाग्निरुद्र और दूसरे श्रीकण्ठभी रहतेहैं ॥ १४ ॥ और वहां उन २ उग्रतपस्याओं से व शुक्लतीर्थ के प्रभावसे बडी सिद्धिको पायेहुये देवतालोग स्वर्गमें आनन्द भोगतेहैं ॥ १५ ॥ अगिले जमाने में इन्द्रभी देवताओं के देवता पार्वतीजी के पतिको नर्मदा के जलसे नहलाकर बेलपत्रों से पूजाथा ॥ १६ ॥ पूर्णमासी व अमावस को ग्रह, नक्षत्र और ध्रुवमण्डल के सहित सूर्य व चन्द्रमाने वहां शुक्लतीर्थ में स्नान

किया इसीसे ये सब प्रकाश करनेवाले हुये ॥ १७ ॥ और इसी शुक्रतीर्थ के प्रभावसे देवता प्रकाश करते हैं वहां देवता और सिद्धोंसे सेवित पुण्यवाला कश्यप जीका आश्रम है ॥ १८ ॥ हे भारत ! वहां दशहजार मुनिलोग आपही रहतेहैं उनमें कोई कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले हैं तथा कोई जलाहारी हैं॥१९॥ कोई शाकाहारी, कोई निराहारी, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवाले, कोई चान्द्रायणके करनेवाले और कोई महीनेभरतक उपास के करनेवाले हैं ॥ २० ॥ तेंतीस करोड़ ऋषिलोग शुक्रेश्वर की उपासना किया करतेहैं चन्द्रग्रहण व पूर्णमासी तिथिमें ॥ २१ ॥ वहां सब तीर्थ स्नान करनेको आतेहैं यह शिवजी ने कहाहै सूर्य-

ग्रहैःसार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलैः ॥ १७ ॥ तेनदेवाश्चदीप्यन्तेशुक्रतीर्थप्रभावतः ॥ कश्यपस्याश्रमंपुण्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ १८ ॥ मुनीनामयुतंतत्र स्वयंतिष्ठतिभारत ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहारास्तथापरे ॥ १९ ॥ शाकाहारानिराहारा ब्रह्मकूर्चास्तथापरे ॥ चान्द्रायणपराःकेचिदन्येमासोपवासिनः ॥२०॥ ऋषिकोट्यस्त्रयस्त्रिंशच्छुक्रेश्वरमुपासते॥ राहुग्रस्तेतथाचन्द्रे पौर्णमास्यांतिथौतथा ॥ २१ ॥ आयान्तिसर्वतीर्थानिस्नातुमेतच्छिवोदितम् ॥ स्थानेश्वरेयत्फलंस्याद्राहुसूर्य्यसमागमे ॥२२॥ तत्फलंप्राप्नुयात्सर्वं शुक्रतीर्थेनसंशयः ॥ हेमधेनुधरादीनि रूप्यदागजास्तथा ॥ २३ ॥ एतद्दत्त्वामहाराज पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ धनदेनकुबेरेण देवगन्धर्वदानवैः ॥ २४ ॥ राहुसूर्य्यसमायोगे शुक्रतीर्थेमहेश्वरः॥चन्दनागुरुकर्पूरपुष्पमालाभिरर्चितः॥२५॥वितानध्वजमुख्यैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ अस्यतीर्थप्रभावेण यक्षराजोधनेश्वरः॥२६॥भोगानानाविधास्तेन सम्प्राप्तादिविदेवताः॥ सर्वतीर्थमयंतीर्थं सर्वदेवमयञ्चयत् ॥२७॥

ग्रहण में स्थानेश्वर में जो फल होता है ॥२२॥ शुक्रतीर्थ में उसी सम्पूर्ण फलको पाताहै इसमें संशय नहीं है सोना, गौवें, पृथ्वी, चांदी और हाथी ॥ २३ ॥ हे महाराज! इन चीजोंको देकर पुण्यकी गिन्ती नहीं होसक्ती है व धन देनेवाले कुबेर, देवता, गन्धर्व और दानवोंने ॥ २४ ॥ सूर्यग्रहण बिषे शुक्रतीर्थ में चन्दन, अगर, कपूर और फूलोंकी मालाओं से महादेवजीका पूजन किया ॥ २५ ॥ और चांदनी, ध्वजा व दियालियों के जलाने आदिसे भी पूजन किया तो इसी तीर्थ के प्रभाव से धनोंके व यक्षोंके मालिक कुबेर होतेहुये ॥ २६ ॥ और उनको तरह २ के भोग मिलतेहुये इसीतरह और भी देवता स्वर्गमें रहे जिससे कि यह तीर्थ सबतीर्थ व सब

देवताओं का रूपही है ॥ २७ ॥ हजारवर्षों से भी शुक्लतीर्थ का वर्णन करनेको सब देवताओं से भी शक्य नहीं है ऐसा स्कन्दपुराण में कहाहै ॥ २८ ॥ पापयोनि को जो प्राप्तहै अथवा पशुआदि की योनिमें जो पडाहै ब्राह्मण का मारनेवाला, दारूका पीनेवाला और महादेवजी के निर्माल्य का खानेवाला ॥ २९ ॥ इस तीर्थ के प्रभाव से उस पापसे छूटजाता है मनुष्य वहा स्नानकर और महादेवजी का पूजनकर ॥ ३० ॥ हे नरसत्तम ! सब देवता व दैत्योंके गणोंसे पूजाजाताहै हे राजन् ! यह बडे पापों का नाश करनेवाला तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३१ ॥ अगिले जमानेमें जिस तीर्थविषे ब्रह्माजीने यज्ञमें यज्ञेश्वरका पूजन कियाहै देवताओ के देवता

अपिवर्षसहस्रेण शुक्लतीर्थस्यवर्णनम् ॥ नशक्यतेसुरैःकर्तुं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ २८ ॥ पापयोनिगतोयश्च तिर्यग्योनिगतश्चयः ॥ ब्रह्महाचसुरापश्च शिवनिर्माल्यभक्षकः ॥ २९ ॥ मुच्यतेतेनपापेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ तत्र स्नानंनरःकृत्वा पूजयित्वावृषध्वजम् ॥ ३० ॥ सुरासुरगणैःसर्वैःपूज्यतेनरसत्तम ॥ एतत्तेकथितंराजन् महापातकनाशनम् ॥ ३१ ॥ पितामहेनयत्रेष्टो यज्ञेयज्ञेश्वरःपुरा ॥ स्तोत्रंकृत्वायथान्यायं देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३२ ॥ पूजयित्वातु शुक्लेशं ब्रह्मास्तोत्रमुदाहरत् ॥ नमःशिवायशान्ताय ज्ञानविज्ञानरूपिणे॥३३॥सूक्ष्मायसूक्ष्मरूपाय सर्वसूक्ष्मायहेतवे॥ सूक्ष्माणामपिसूक्ष्माय नमःसूक्ष्मतमायच ॥ ३४ ॥ दिव्यायदिव्यरूपाय दिव्यदेहायसेतवे ॥ दिव्यानामपिदिव्याय नमोदिव्यतमायच ॥३५॥ व्योमप्रभायभावाय अघोरायनमोनमः ॥ व्योमप्रमाणधामाय वामेशायनमोनमः॥३६॥

त्रिशूलधारी महादेवजी की यथार्थ स्तुतिकरके ॥ ३२ ॥ और शुक्लेशका पूजनकर ब्रह्माजी स्तोत्रको पढ़तेहुये कि ज्ञान और विज्ञानरूपवाले शान्तरूप शिवजीके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सूक्ष्म और सूक्ष्मरूपवाले,सब सूक्ष्मचीजो के एकहीकारण, सूक्ष्मोंसे भी सूक्ष्म, बहुतही सूक्ष्म,शिवजी के लिये नमस्कारहै ॥ ३४ ॥ दिव्य और दिव्यरूपवाले तथा दिव्य देहवाले, मर्यादाके सेतु, दिव्योंसे भी दिव्य, बड़ेही दिव्यके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ आकाश के तुल्य प्रकाशवाले सब जगत् जिन्हीसे होताहै ऐसे अघोररूपवालेके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै आकाशके तुल्य प्रमाणवालाहै स्वरूप जिनका ऐसे पार्वतीके स्वामीजीके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥३६॥

सबसे श्रेष्ठ, सबसे बडे मालिक, परमार्थवाली बातोंके कारण, सबसे बड़े, अखण्डमुक्त, बडेसे बड़ेके लिये नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ एक जिह्वावाले,दो जिह्वावाले, बहुतजिह्वावाले आपकेलिये नमस्कारहै वैसेही अनगिन्ती जिह्वावाले व तीननेत्रवालेके लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ ३८ ॥ पूजनेलायक, पूजनेलायकों से भी पूजने लायक और सब पूजनेलायकों के कारण, नाशरहित, नाशरहितरूपवाले और जो कभी नष्ट नहीं होते उनके भी कारणके लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ नित्योंमें भी नित्य ऐसे बडेही नित्यरूप शिवजी के लिये नमस्कार है सब तरहकी ताकतवाले और शक्तिही जिनका रूपहै, सब प्रकारकी शक्तियोंके मुख्यकारण ॥ ४० ॥ शक्ति-

परायपरमेशाय परमार्थिकहेतवे ॥ परायपरमुक्तायनमःपरतरायच ॥ ३७ ॥ एकजिह्वद्विजिह्वाय बहुजिह्वायते नमः ॥ तथैवासङ्ख्यजिह्वाय त्रिणेत्रायनमोनमः ॥ ३८ ॥ पूज्यायपूज्यपूज्याय सर्वपूज्यैकहेतवे ॥ नित्यायनित्यरूपाय नित्यनित्यैकहेतवे ॥ ३९ ॥ नित्यानामपिनित्याय नमोनित्यतमायच ॥ शक्तायशक्तिरूपाय सर्वशक्त्येकहेतवे ॥ ४० ॥ शक्तानामपिशक्ताय नमःशक्ततमायच ॥ शुद्धायसर्वशुद्धाय सर्वशुद्ध्येकहेतवे ॥ ४१ ॥ कालायकालरूपाय सर्वकालैकहेतवे ॥ कालानामपिकालाय नमःकालतमायते ॥ ४२ ॥ सर्वमन्त्रशरीराय सर्वमन्त्रैकहेतवे ॥ मन्त्राणामपिमन्त्राय नमोमन्त्रतमायच ॥ ४३ ॥ अप्रमेयमहेशाय ईशानायनमोनमः ॥ योगाययोगरूपाय योगपूरुषतेनमः ॥ ४४ ॥ एककण्ठद्विकण्ठाय बहुकण्ठायतेनमः ॥ असङ्ख्यकण्ठयुक्ताय नीलकण्ठायतेनमः ॥ ४५ ॥ अनन्ता

वालोंमें भी शक्तिवाले ऐसे जो बड़ेही शक्तिवाले शिवजीहैं तिनके लिये नमस्कारहै व शुद्धरूपवाले,सबसे शुद्ध, सबतरहकी निर्मलताके मुख्यकारणके लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ काल, कालरूपवाले, सबतरह के कालोंके मुख्यकारण, कालोंके भी काल ऐसे बडेही कालरूप आप के लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ सब मन्त्र जिन का शरीर हैं, और सब मन्त्रोंके एकही कारण, मन्त्रोंके भी मन्त्र ऐसे बड़ेही मन्त्ररूप शिवजीके लिये नमस्कारहै ॥ ४३ ॥ नहीं जिनका प्रमाण है ऐसे बडे मालिक महादेवजी के लिये बार २ नमस्कारहै व हे योगपुरुष ! योग व योगरूपवाले आप के लिये नमस्कारहै ॥ ४४ ॥ एक कण्ठवाले, दो कण्ठवाले तथा बहुत कण्ठवाले

आपके लिये नमस्कार है अनेक कण्ठोंवाले, नीलकण्ठवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ४५ ॥ अन्त से रहित, बडे ईश्वर, संसार के नाश करनेवाले तथा संसार के बनानेवाले आपके लिये नमस्कार है हे महादेव! आपके लिये नमस्कार है हे सदाशिव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे महाशुद्ध ! आपके लिये नमस्कार है फिर भी आपके लिये बार २ नमस्कारहै भस्मही जिनका चन्दनहै ऐसे आपके लिये नमस्कार है खद्वाङ्गके धारणकरनेवाले के लिये नमस्कारहै ॥ ४७ ॥ सबके आत्मा आपके लिये नमस्कारहै संसारके स्वामी शिवजीके लिये बार २ नमस्कार है सबके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है सबलोग जिनसे मांगतेहैं ऐसे आपके लिये बार२ नमस्कारहै ॥ ४८ ॥ व्यक्त (खुलासा) रूप जिनका नहीं है ऐसे आपके लिये नमस्कार है और हमेशा बने रहनेवाले के लिये बार २ नमस्कार है व कैलास में

यमहेशाय हर्त्रेकर्त्रेनमोस्तुते ॥ नमस्तेस्तुमहादेव नमस्तेस्तुसदाशिव ॥ ४६ ॥ नमस्तेस्तुमहाशुद्ध नमस्तुभ्यंनमो नमः ॥ नमोभस्माङ्गरागाय नमःखद्वाङ्गधारिणे ॥ ४७ ॥ सर्वात्मनेनमस्तुभ्यं विश्वेशायनमोनमः ॥ सर्वज्ञायनमस्तु भ्यं सनाथायनमोनमः ॥ ४८ ॥ अव्यक्तायनमस्तुभ्यं शाश्वतायनमोनमः ॥ कैलासवासिनेतुभ्यं नमःपातालवासि ने ॥ ४९ ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं लोकालोकञ्चराचरम् ॥ अपिवर्षसहस्रेण कःस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ ५० ॥ इतिस्तवे नदिव्येन यःस्तौतिपरमेश्वरम् ॥ विधूयसर्वपापानि रुद्रलोकेमहीयते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे श म्भुस्तुतिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ किमर्थंसंस्तुतोदेवो ब्रह्मणातेनतत्रवै ॥ शुक्लतीर्थमिदंकस्मादास्तेयत्रमहेश्वरः ॥ १ ॥ एतत्सर्वंसमा

वास करनेवाले और पाताल में वास करनेवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ४९ ॥ आपही से यह सब चराचर लोकालोक व्याप्त होरहा है ऐसे आपकी स्तुति करने को हजार वर्षोंसे भी कौन समर्थ होसक्ताहै ॥ ५० ॥ जो इस दिव्य स्तोत्रसे परमेश्वर महादेवजीकी स्तुति करताहै वह सब पापोंको नाश करके रुद्रलोकमें पूजाजाता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशम्भुस्तुतिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

युधिष्ठिर जी बोले कि वहां पर उन ब्रह्माजी ने महादेवजी की भलीभांति स्तुति किस वास्ते की और यह शुक्लतीर्थ किस कारण से हुआ जहां महादेव जी रहते

हैं ॥१॥ हे महामुने ! यह सब पूंछनेवाले जो हमहैं तिनसे कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! स्वर्गकी देनेवाली सबसे उत्तम दिव्य कथाको तुम सुनो ॥२॥ जिसको सुनकर तीर्थ में स्नानकरने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सच्चे धर्म में तत्पर, धर्मात्मा, सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ व सब राजाओं में श्रेष्ठ, चक्रवर्ती, ययाति नामके राजाहुये दूसरे इन्द्र ऐसे वे राजा बड़े २ यज्ञों से देवताओंका पूजन करते हुये ॥ ३ । ४ ॥ जहां पुण्यवाली मधुमती नामकी नदी नर्मदा से मिली हुई है व जहां ऋत्विक् ब्राह्मणों के सहित राजाने यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ और जहां मध्येश्वरनाम का लिङ्ग साक्षात् महादेवही हैं वहां स्नानके करनेवाले स्वर्गको

ख्याहि पृच्छतोमेमहामुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्यां स्वर्गार्हण्यामनुत्तमाम् ॥ २ ॥ यांश्रुत्वासर्वपापेभ्यस्तीर्थस्नानेनमुच्यते ॥ ययातिर्नामधर्म्मात्मा सत्यधर्म्मपरायणः ॥ ३ ॥ चक्रवर्तीनृपश्रेष्ठः सर्वधर्म्मभृतांवरः ॥ इयाजसमहायज्ञैश्शतक्रतुरिवापरः ॥ ४ ॥ नदीमधुमतीपुण्या रेवयायत्रसङ्गता ॥ यत्रयज्ञःसमारब्ध ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैःसह ॥ ५ ॥ मध्येश्वरंयत्रलिङ्गं स्वयंदेवोमहेश्वरः ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ६ ॥ चक्रेणविष्णुनातत्र घातितौमधुकैटभौ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ७ ॥ तिलतोयप्रदानेन पिण्डदानेनभारत ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८ ॥ तत्रयज्ञःसमारब्धो हरिशङ्करवर्जितः ॥ जटासुरस्तत्रदैत्यश्छिद्रंदृष्ट्वासमागतः ॥ ९ ॥ ततोविध्वंसितोयज्ञो दानवैर्बलदर्पितैः ॥ यज्ञयूपायज्ञपात्रं दशदिक्षुनिपातिताः ॥१०॥ भुक्तोहुतपुरोडाशः सोमपानञ्चतैःकृतम् ॥ प्रणष्टादेवताःसर्वादानवानांभयेनच ॥ ११ ॥ अष्टोत्तरशतंदेवा मृगरूपेणनिर्ग

जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर जन्म नहीं लेतेहैं ॥ ६ ॥ वहीं विष्णुजीने चक्रसे मधु और कैटभ को माराहै उन देवके पूजन करने से हजार गोदानोंके फलको पाता है ॥ ७ ॥ हे भारत ! तिलों के सहित जलदान व पिण्डदान से उसके पितर जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक तृप्त रहते हैं ॥ ८ ॥ वहां विष्णु और महादेवके विना यज्ञ प्रारम्भ कियागया तब वहां जटासुर नामका दैत्य अपना मौका देखकर आताहुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त होरहे दैत्योंने यज्ञको विध्वंस करदिया यज्ञके खम्भे व यज्ञके पात्र दशो दिशाओंमें फेंकदियेगये ॥ १० ॥ उन दैत्योंने होम कियेगये पुरोडाशको भोजन करलिया और सोमको भी

पीगये दानवोंके भयसे सब देवतालोग भागगये ॥ ११ ॥ एकसौ आठ देवता मृगोंके रूपसे निकलगये कुबेर यक्षके रूपसे अपनी पुरीको भागगये ॥ १२ ॥ भैंसेपर सवारहुये धर्मराज, हाथी पर चढ़ेहुये इन्द्र और मेंढ़ेपर सवार अग्नि चुपचाप निकलगये ॥ १३ ॥ और वहांपर आयेहुये वरुण भी मगरपर सवारहुये भागे और अपनी पुरी को चलेगये वायु मृगपर चढ़ेहुये भागे ॥ १४ ॥ ईशान लोकपाल भी महादेव के रूप से बैलपर चढ़ेहुये भागगये दानवों ने लोकपालों के हथियारोंको छीन लिया ॥ १५ ॥ तब हे भारत ! राजाओंमें श्रेष्ठ राजा ने कहा कि अकेले हम सवारी पर चढ़कर स्त्रीके सहित कैसे भागें ऐसे विचारकर धनुष को लिया ॥ १६ ॥

ताः ॥ धनदोयक्षरूपेण प्रणष्टःस्वपुरीङ्गतः ॥ १२ ॥ महिषारूढोधर्म्मराजो गजारूढश्शतक्रतुः ॥ मेषारूढोहव्यवाहो निर्गताव्रतमास्थिताः ॥ १३ ॥ वरुणश्चसमायातः प्रणष्टःस्वपुरींगतः ॥ मकरासनमारूढोवायुश्च मृगमाश्रितः ॥ १४ ॥ ईशानईशरूपेण वृषारूढःपलायितः ॥ अस्त्राणिलोकपालानां हृतानिदनुसम्भवैः ॥ १५ ॥ एकाकीयानमारुह्यकथंयामिस्त्रियासह ॥ चिन्तयित्वानृपश्रेष्ठश्चास्त्रंजग्राहभारत ॥ १६ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिचोक्त्वावै दैत्यसिंहंदुरासदम् ॥ नक्षत्रकुलसञ्जाता जातुदृष्ट्वापलायिताः ॥ १७॥ दशद्वादशवर्षाणि विमुखास्तवपूर्वजाः ॥ नचात्राह्वानितोरुद्रो रुद्रभागोनकल्पितः ॥ १८ ॥ यज्ञेऽस्मिन्यज्ञपुरुषो नाहूतोभगवान्हरिः ॥ तेनदोषेणमेयज्ञो दानवैश्चविनाशितः ॥ १९॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठो रुद्रंध्यात्वामहेश्वरम् ॥ रौद्ररूपंसमास्थायज्याघोषंघोषरूपिणम् ॥ २० ॥ जग्राहकोपान्निस्त्रिंशं निज

और दैत्यों में सिंह ऐसे बड़े जबरदस्त जटासुर से खड़ा हो २ ऐसे कहकर बोले क्षत्रियों के कुलमें उत्पन्नहुये शूरलोग कभी शत्रुओंको देखकर नहीं भागे ॥ १७ ॥ बल्कि तेरे पुरिखालोग दश व बारह वर्षोंतक हमलोगों से विमुख होकर भागेरहे और हमारे इस यज्ञ में महादेव का आवाहन नहीं कियागया और न रुद्रका भाग रक्खागया ॥ १८ ॥ और भगवान् यज्ञपुरुष विष्णु भी इस यज्ञ में नहीं बुलायेगये इसी दोष से यह हमारा यज्ञ दानवों से विध्वंसित करदियागया ॥ १९ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ राजा ने ऐसे कहकर और रुद्ररूप महादेवजीका ध्यानकर करालरूप धारणकर धनुष के रोदा की आवाज करतेहुये ॥ २० ॥ और बड़े क्रोधसे

तलवारको लिया उसीसे दैत्योंको मारा तदनन्तर ब्रह्माआदि सबदेवता बुलायेगये॥ २१ ॥ हे भारत ! तब वे सब देवतालोग राजासे बोले कि हे राजर्षे ! इससंसारमें आपके बराबर न कोई हुआहै व न होगा ॥ २२ ॥ तब देवताओंके वचनको सुनकर राजा ययाति वचन बोले कि महादेव और विष्णुकी दयामे फिरभी हमारा यज्ञ प्रवृत्त होगया ॥ २३ ॥ क्षत्रिय को संग्राम से भागना उचित नहींहै ऐसे कहकर फिर उसी प्रयोजन से त्रिशूल व पिनाक के धरनेवाले महादेवजी की स्तुति को किया ॥२४॥ तब वहां कालानल के तुल्य प्रभावाला पाताल से लिङ्ग प्रकट हुआ हे भारत ! उस लिङ्ग की दीप्ति से सब जगत् सफ़ेद करदियागया ॥ २५ ॥ फिर महादेवजी उन

घानचदानवान्॥आहूताश्चपुनर्देवाःसर्वेब्रह्मपुरोगमाः॥२१॥ऊचुस्तेवचनंदेवा राजानंप्रतिभारत॥त्वयासमोत्रराजर्षे न भूतोनभविष्यति ॥ २२ ॥ देवानांवचनंश्रुत्वा ययातिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ पुनःप्रवर्तितोयज्ञो हरविष्णुप्रसादतः ॥ २३ ॥ युक्तंपलायनंचात्र क्षत्रियस्यनविद्यते ॥ स्तुतस्तुतेनकार्य्येणशूलपाणिःपिनाकधृक् ॥ २४ ॥ पातालादुत्थितंतत्र लिङ्गंकालानलप्रभम् ॥ शुक्लीकृतंजगत्सर्वं प्रभयातस्यभारत॥२५॥वरंवृणीष्वभद्रन्ते तमुवाचवृषध्वजः ॥ ययातिरुवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुंममेच्छसि ॥ २६ ॥ इदंस्थानंनमोक्तव्यमुमयासहशङ्कर ॥ यज्ञदानादिकंसर्वमक्षयञ्चात्रसर्वदा ॥ २७ ॥ तपोहीनानरायेच दानहीनास्सकिल्बिषाः ॥ तेसर्वेत्वत्पुरंयान्तु शुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ २८ ॥ तमुवाचमहादेवः सत्यमेतत्त्वोदितम् ॥ यंयंकामयतेकामं तंतंप्राप्नोतिमानवः ॥ २९ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याल्लिङ्गस्यास्यसमर्चनात् ॥ नरकंनैवपश्यन्ति जन्मजन्मनिभारत ॥ ३० ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथास्कन्दशिवोदितम् ॥ तत्रयेनिहतादै

राजासे बोले कि तुम्हारा कल्याण हो तुम वर को मांगो तब राजा ययाति बोले कि हे देव ! जो आप मुझ से प्रसन्नहो और मुझे वरदेने की इच्छा करते हो ॥ २६ ॥ तो हे शङ्कर ! पार्वती के सहित आप इस स्थानको कभी न छोड़ें और यहां किया हुआ यज्ञ व दानआदि सब कर्म हमेशा अक्षय होवे ॥ २७ ॥ और तपस्या व दान से रहित पापी भी जो मनुष्य होवें वे सब इस शुक्लतीर्थ के प्रभाव से आप के पुर को जावे ॥ २८ ॥ तब उन राजा से महादेवजी ने कहा कि यह सब तुम्हारा कहना सत्य होगा यहां मनुष्य जिस२ कामनाको करेगा उस २ को पावेगा ॥ २९ ॥ इसतीर्थके माहात्म्यसे व इस लिङ्गके पूजन करनेसे हे भारत ! जन्म २ मे मनुष्य

नरक को नहीं देखतेहैं ॥ ३० ॥ हे राजन्! यह तुमसे कहागया जैसा कुछ स्कन्द व महादेवजी का कहाहुआ है वहां जो दैत्य मारेगये वे भी शिवजी के स्थान को प्राप्तहुये ॥ ३१ ॥ अपनी २ सवारीपर सवार देवतालोग स्वर्ग को चलेगये व बडे आनन्द से युक्त स्तुति कियेजाते राजाओंमें श्रेष्ठ ॥ ३२ ॥ राजर्षि ययातिजी राज्य को करके स्वर्ग को चलेगये इस इतिहासको सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशुक्लतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्याः प्राप्तास्तेपिशिवालयम् ॥ ३१ ॥ स्वंस्वंयानंसमारूढाययुर्देवास्त्रिविष्टपम् ॥ मुदापरमयायुक्तः स्तूयमानोनृपोत्तमः ॥ ३२ ॥ ययातिर्नामराजर्षी राज्यंकृत्वादिवङ्गतः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशुक्लतीर्थमहिमानुवर्णनोनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ दीप्तकेश्वरदेवेशं सिद्धलिङ्गंप्रकीर्तितम् ॥ नातःपरतरंकिञ्चित्रिषुलोकेपुविश्रुतम् ॥ १ ॥ दर्शनाद्दीप्तदेवस्य स्पर्शनादर्चनात्तथा ॥ अनेकभाविकंघोरं क्षणमात्रेणनश्यति ॥ २ ॥ अर्चयेद्दिनमेकन्तु योमुहूर्तन्तुमानवः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ ३ ॥ मोक्षदानामचामुण्डा विद्धिगौरींसरस्वतीम् ॥ स्तुतेसहस्रनाम्नावैविष्णुनाब्रह्मणास्वयम् ॥४॥ स्तुतानितानिलिङ्गानि रेवायाउत्तरेतटे ॥ ॐकारश्चाधिदेवश्च बिल्वाम्रकमहेश्वरः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवताओं का ईश्वर दीप्तकेश्वर नामवाला सिद्धलिङ्ग कहागया है इस से दूसरा और कोई लिङ्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध नहीं है ॥ १ ॥ जो मनुष्य एक दिन व एक मुहूर्त्तभर पूजनकरे तो उस दीप्तकेश्वरदेव के दर्शन व स्पर्शन व पूजन से अनेक जन्मोंका घोरपाप क्षणमात्रमें नष्ट होजाता है ॥ २ ॥ उनकी इस घोर संसारसमुद्र में फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ वहां विद्यमान मोक्षदा और चामुण्डा नामकी दोनों शक्तियों को गौरी और सरस्वती जानो उन दोनों की आपही विष्णुजी और ब्रह्माजी ने हजार नामों से स्तुति की है ॥ ४ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले तट में विद्यमान जो लिङ्ग है उनकी भी स्तुति की है

वे लिङ्ग ये हैं कि ॐकारनाथ, बिल्वाम्रकमहेश्वर ॥ ५ ॥ शुक्रेश्वर, भृगु, द्वीपेश्वर और त्रिलोचन वैवस्वतमन्वन्तर के प्राप्तहोने पर पहले कल्प के सत्ययुग में ॥ ६ ॥ पहिले विष्णु, दूसरे ब्रह्मा, तीसरे इन्द्र, चौथे सूर्य्य ॥ ७ ॥ पांचवें चन्द्रमा, छठें राहु, सातवें शनि, आठवें केतु ॥ ८ ॥ नवें अग्नि, दशवें दिशाओं का स्वामी, ग्यारहवें वैक्रम (वामनजीका), बारहवें वारुण (वरुणजी का) ॥ ९ ॥ तेरहवें वायु और चौदहवें कुवेर नामक थे और देवताओं के मालिक विष्णु, ब्रह्मा व देवता और दैत्यों करके अनेक तरह के इन पदों से पार्वतीजी के पति महादेवजी स्तुति कियेगये हैं कि (स्थिर) हमेशा रहनेवाले (स्थाणु) एकरस रहनेवाले (प्रभा) प्रकाशरूप (भानु) प्रकाश करनेवाले (प्रवर) श्रेष्ठ (वरद) वर के देनेवाले (वर) इच्छारूप ॥ १० । ११ ॥ (हरि) दुःखों के हरनेवाले

शुक्रेश्वरोभृगुश्चेति द्वीपेश्वरत्रिलोचनौ ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्तेआदिकल्पेकृतेयुगे ॥ ६ ॥ श्रीपतिःपरमाद्यश्च द्वितीयश्चापितामहः ॥ तृतीयोदेवराजश्च चतुर्थःसूर्य्यएवच ॥ ७ ॥ पञ्चमःकथितःसोमः षष्ठोराहुःप्रकीर्तितः ॥ सप्तमश्चशनिश्चैवत्वष्टमःकेतुकःस्मृतः ॥ ८ ॥ वैश्वानरश्चनवमो दशमश्चादिगीश्वरः ॥ एकादशोवैक्रमश्च द्वादशोवारुणस्तथा ॥ ९ ॥ त्रयोदशश्चवायुर्वैधनदश्चचतुर्दशः ॥ नानापदप्रकारेणस्तुतोदेवउमापतिः ॥ १० ॥ विष्णुनादेवनाथेनब्रह्मणाचसुरासुरैः ॥ स्थिरःस्थाणुःप्रभाभानुः प्रवरोवरदोवरः ॥ ११ ॥ हरिश्चहरिणाख्यश्च सर्वभूतहरःप्रभुः ॥ प्रवृत्तिश्चनिवृत्तिश्च नियमःशाश्वतोध्रुवः ॥ १२ ॥ श्मशानवासीभगवान्खेचरोगोचरस्तथा ॥ अभिवन्द्योमहाकर्म्मा तपस्वीभूतभावनः ॥ १३ ॥ उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ महारूपोमहाकायस्सर्वलोकप्रजापतिः ॥ १४ ॥ परात्मासर्वभूतानां विरूपो

(हरिण) हरियाले (सर्वभूतहर) सब प्राणियों के हरनेवाले (प्रभु) प्रभाव करनेवाले (प्रवृत्ति) संसार का कारण (निवृत्ति) दुनिया से छुटाने का कारण (नियम) अपने २ कामों में सब के लगानेवाले (शाश्वत) सदा रहनेवाले (ध्रुव) अटल ॥ १२ ॥ (श्मशानवासी) श्मशान के रहनेवाले (भगवान्) ऐश्वर्य्यवाले (खेचर) आकाश में चलनेवाले (गोचर) इन्द्रियों में रहनेवाले (अभिवन्द्य) वन्दना करने योग्य (महाकर्मा) बडे कामोंके करनेवाले (तपस्वी) तपस्यावाले (भूतभावन) प्राणियों के रचनेवाले ॥ १३ ॥ (उन्मत्तवेषप्रच्छन्न) मतवाले के वेषसे छिपेहुये (सर्वलोकप्रजापति) सब लोको की प्रजाओंके मालिक (महारूप)

वामनोमनुः ॥ लोकपालोपिहितात्मा प्रसन्नोभवनाशनः ॥१५॥ प्रवृत्तश्चमहाङ्गश्चनिचयोनियताश्रयः ॥ सर्वकामःस्व
यंभूश्च आदिनादिकरोनिधिः ॥ १६ ॥ सहस्राक्षोविरूपाक्षस्सोमोनक्षत्रसाधकः ॥ चन्द्रस्सूर्य्यश्शनिःकेतुर्ग्रहोग्रह
पतिर्वरः ॥ १७ ॥ तपोद्रष्टाबलःस्थातुर्मृगबाणार्पणोनघः ॥ महातपादीर्घतपा आदिर्दीनानुकम्पनः ॥ १८ ॥ संवत्स
रकरोमन्त्रः प्रमाणंपरमन्तपः ॥ योगीयोगमहावीर्य्यो महारेताहरोहरः ॥ १९ ॥ महाचेताश्चसर्वज्ञः सबीजोपहरोह
रः ॥ कमण्डलुधरोधन्वी प्राणहस्तःप्रतापवान् ॥ २० ॥ अंशोनीशस्तथाशूली खट्वाङ्गीपट्टिशीतथा ॥ शुचिश्चशु

श्रेष्ठरूपवाले (महाकाय) बड़े शरीरवाले (सर्वलोकप्रजापति) सब लोकों की प्रजाओं के पालनेवाले ॥ १४ ॥ (सर्वभूतानांपरात्मा) सब प्राणियों के मुख्यआ
त्मा (विरूप) अद्भुतरूपवाले (वामन) छोटे रूपवाले (मनु) विचार करनेवाले (लोकपाल) लोकों के पालनेवाले (पिहितात्मा) छिपेरूपवाले (प्रसन्न)
खुश (भवनाशन) संसार से छुटानेवाले ॥ १५ ॥ (प्रवृत्त) गृहस्थरूप (महाङ्ग) बड़े अङ्गोंवाले (निचय) समष्टिरूपवाले (नियताश्रय) सबके एकही आधार
(सर्वकाम) सब कामों से भरेहुये (स्वयम्भू) आपही से होनेवाले (आदिनादिकर) आदि व अनादि क करनेवाले (निधि) जीवों का स्थान ॥ १६ ॥ (सह-
स्राक्ष) हजारों नेत्रोंवाले (विरूपाक्ष) डरावने नेत्रोंवाले (सोम) सोमयज्ञका साधन (नक्षत्रसाधक) नक्षत्रों के सिद्ध करनेवाले (चन्द्र) आनन्द देनेवाले
(सूर्य्य) प्रकाश करनेवाले (शनि) मन्द चलनेवाले (केतु) श्रेष्ठ (ग्रह) खींचनेवाले (ग्रहपति) ग्रहों के स्वामी (वर) श्रेष्ठ ॥ १७ ॥ (तपोद्रष्टा) तपस्या
के साक्षी (बल) व्यापक (स्थातु) खड़े रहनेवाले (मृगबाणार्पण) हरिणरूप यज्ञपर बाण के चलानेवाले (अनघ) पापरहित (महातपा) उत्तम तपवाले
(दीर्घतपा) बड़े तपवाले (आदि) सब से पुराने (दीनाऽनुकम्पन) दीनोंपर दया करनेवाले ॥ १८ ॥ (संवत्सरकर) साल के बनानेवाले (मन्त्र) गुप्तकहने
वाले (प्रमाण) सबूत (परमतप) बड़ी तपस्या का रूप (योगी) योगवाले (योगमहावीर्य्य) योगरूप ताक़तवाले (महारेता) बड़ेवीर्य्यवाले (हर) हरने
वाले (हर) भक्तों के अङ्गीकारकरनेवाले ॥ १९ ॥ (महाचेता) बड़े चित्तवाले (सर्वज्ञ) सबके जाननेवाले (सबीज) कारणसहित (अपहर) प्रलयकरनेवाले
(हर) दुष्टोंके नाशनेवाले (कमण्डलुधर) कमण्डलुके रखनेवाले (धन्वी) धनुषवाले (प्राणहस्त) सबकेप्राण जिनके हाथोंमेंहैं (प्रतापवान्) प्रतापवाले ॥ २० ॥

(अंश) जीवरूप (अनीश) जीव होने से परवश (शूली) त्रिशूलवाले (खट्वाङ्गी) खट्वाङ्गवाले (पट्टिशी) पट्टिशवाले (शुचि) पवित्र (शुचिरूप) प-
वित्ररूप (तेजः) तेजोरूप (तेजस्कर) तेज के करनेवाले (निधि) सर्व पदार्थों के स्थान ॥ २१ ॥ (उष्णीषी) पगड़ीवाले (सुवक्त्र) सुन्दर मुहँवाले (उदक्य
जलमें रहनेवाले (वितन) अतिविस्तार करनेवाले (हरि) सूर्यरूप (हरिनेत्र) सूर्य जिनके नेत्र में हैं (सुतीर्थ) अतिपवित्र (कृष्ण) खींचनेवाले ॥ २२ ॥
(शृगालरूपी) सियार के समान रूपवाले (सर्वार्थ) सर्वप्रयोजनरूप(शुण्डी) गणेशरूप (शुद्ध) निर्मल (कमण्डलु) सबका आधार (अज) उत्पत्तिरहित
(गन्धमाली) खुशबूदारमालावाले (मृगरूपी) हरिणरूप (कपालभृत्) खप्पर के रखनेवाले ॥ २३ ॥ (ऊर्ध्वरेता) ब्रह्मचारी (ऊर्ध्वसाक्षी) परलोक के साक्षी
(ऊर्ध्वबाहु) खड़ी भुजावाले (नभःस्थल) आकाश व पृथिवीरूप (त्रिजटी) तीन चोटीवाले (निवास) जीवोंके रहनेका स्थान (रुद्र) रुलानेवाले (सेना-

चिरूपश्च तेजस्तेजस्करोनिधिः ॥ २१ ॥ उष्णीषीचसुवक्त्रश्च उदक्योवितनस्तथा ॥ हरिश्चहरिनेत्रश्च सुतीर्थःकृष्ण
एवच ॥ २२ ॥ शृगालरूपीसर्वार्थश्शुण्डीशुद्धःकमण्डलुः ॥ अजश्चगन्धमालीच मृगरूपीकपालभृत् ॥ २३ ॥ ऊर्ध्व
रेताऊर्ध्वसाक्षी ऊर्ध्वबाहुर्नभ स्थलः ॥ त्रिजटीचनिवासश्चरुद्रस्सेनापतिर्विभुः ॥ २४ ॥ अहश्चरोरात्रिचरस्सुवासश्चदि
शाम्पतिः ॥ राजहादैत्यहाचैव धातारूपगुणात्मकः ॥ २५ ॥ सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्म्मधरोहरः ॥ कालयोगीम
हानादः सर्ववासश्चतुष्पथः ॥ २६ ॥ दुर्वारप्रेतचारीच भूतचारीमहेश्वरः ॥ बहुभूतोबहुधनस्सर्वार्थोरुचिरागतिः ॥ २७ ॥

पति) सेनाके मालिक (विभु) व्यापक ॥ २४ ॥ (अहश्चर) दिनमें घूमनेवाले (रात्रिचर) रातमे घूमनेवाले (सुवास) अच्छास्थान (दिशाम्पति) दिशाओ के
स्वामी (राजहा) राजाओंके मारनेवाले (दैत्यहा) दैत्योंके मारनेवाले (धाता) धारण करनेवाले (रूपगुणात्मक) रूप व गुणोंके आत्मा ॥ २५ ॥ (सिंहशार्दूल-
रूप) सिंह व शार्दूल के ऐसे रूपवाले (आर्द्रचर्मधर) गीलेचमड़ेके धरनेवाले (हर) सबको प्राप्त (कालयोगी) समयपर योगी (महानाद) बडी आवाजवा-
ले (सर्ववास) सबका स्थान (चतुष्पथ) चारोंतरफ रास्तावाले ॥ २६ ॥ (दुर्वारप्रेतचारी) जबरदस्त प्रेतोंमे रहनेवाले (भूतचारी) प्राणियों मे रहनेवाले
(महेश्वर) बड़े ईश्वर (बहुभूत) बहुत से भूतोंवाले (बहुधन) बहुत धनवाले (सर्वार्थ) सब काम जिनसे होते हैं (रुचिरागति) उत्तमगति ॥ २७ ॥

(नृत्यप्रिय) नाच जिनको प्याराहै (नृत्यकर्ता) नृत्यकारी(नर्तक)नाचनेवाले (बलाहक) मेघरूप) (घोर) डरावने (महातपा) उत्तमतपस्वी (वास) सबमें बसने वाले (नित्य) सदा रहनेवाले (गिरिधर) पर्वतोंके धारण करनेवाले (नभः) आकाशरूप ॥ २८ ॥ (सहस्रभूत) हजारों भूतोंवाले (विज्ञेय) विशेषकरके जाननेलायक (व्यवसाय) सिद्धान्तरूप (निश्चय) निश्चयरूप (अमर्ष) क्रोधवाले (मर्षण) क्षमावाले (दक्ष) प्रवीण (दक्षक्रतुविनाशन) दक्षके यज्ञको विनाश करनेवाले ॥ २९ ॥ (दक्षयज्ञापहारी) दक्षके यज्ञको नाशनेवाले (सुमह) अच्छे उत्साहवाले (मध्यम) सबमें साधारणरूप (तेजोऽपहारी) शत्रुओं के तेज के नाश करनेवाले (बलिहा) अपने भागके लेनेवाले (मुदित) प्रसन्न (अर्चित) पूजेगये (भव) सब जगत् जिन्हीं से होताहै ॥ ३० ॥ (गम्भीरघोष) गहरी

नृत्यप्रियोनृत्यकर्ता नर्तकश्चबलाहकः ॥ घोरोमहातपावासो नित्योगिरिधरोनभः ॥ २८ ॥ सहस्रभूतोविज्ञेयो व्यवसायश्चनिश्चयः ॥ अमर्षोमर्षणोदक्षो दक्षक्रतुविनाशनः ॥ २९ ॥ दक्षयज्ञापहारीच सुमहोमध्यमस्तथा ॥ तेजोपहारीबलिहा मुदितश्चार्चितोभवः ॥ ३० ॥ गम्भीरघोषोगम्भीरो गभीरोहव्यवाहनः ॥ न्यग्रोधरूपोन्यग्रोध ऋक्षवर्णः प्रभुर्विभुः ॥ ३१ ॥ तीक्ष्णबाणश्चहर्यक्षो महेशःकर्म्मकालवित् ॥ दीक्षःप्रसादितोयज्ञस्समुद्रोवडवानलः ॥ ३२ ॥ हुताशश्चहुताशास्यः प्रसन्नात्माहुताशनः ॥ महातेजास्सुतेजाश्च विजयोजयएवच ॥ ३३ ॥ ज्योतिषामयनंसिद्धि

आवाजवाले (गम्भीर) बेथाह (गभीर) अथाह (हव्यवाहन) अग्निरूप (न्यग्रोधरूप) कैलासमें विद्यमान बरगद जिन्हींका रूपहै (न्यग्रोध) सब जगत् जिनकी नीचेकी शाखा ऐसाहै (ऋक्षवर्ण) नक्षत्ररूप (प्रभु) प्रभाववाले (विभु) समर्थ ॥ ३१ ॥ (तीक्ष्णबाण) पैनेबाणोंवाले (हर्यक्ष) सूर्य जिनके नेत्रोंमेंहैं (महेश) सबके मालिक (कर्मकालवित्) कर्मकाल के जाननेवाले (दीक्ष) सिखलानेवाले(प्रसादित) प्रसन्न कियेगये (यज्ञ) यज्ञरूप (समुद्र) समुद्ररूप (वडवानल) बड़वानलरूप ॥ ३२ ॥ (हुताश) होमीहुई द्रव्यके खानेवाले (हुताशास्य) अग्नि जिनका मुखहै (प्रसन्नात्मा) प्रसन्नमनवाले (हुताशन) अग्निरूप (महातेजा) बड़े तेजवाले (सुतेजा) अच्छे तजवाले (विजय) विशेषकरके जीतिको प्राप्त (जय) उँचाई को प्राप्त ॥ ३३ ॥ (ज्योतिषामयनम्) प्रकाश करनेवाली

स्सन्धिर्विग्रहएवच ॥ शिखीदण्डीजटीज्वाली मूर्तोदोदुर्बलोबहिः ॥ ३४ ॥ वैणवीपापवेतालः कालाग्निःकालदण्डकः ॥ नक्षत्रविग्रहोवृद्धिरजोगन्धवहोग्रजः ॥ ३५ ॥ प्रजापतिर्हरिर्बाहुर्विभागस्सर्वतोमुखः ॥ विमोचनस्सुरगणो हिरण्यकवचोभवः ॥ ३६ ॥ अरजोधूलिधारीच महाचारीश्रुतश्रवाः ॥ अनादिःसर्वभूतादिस्सर्वस्याद्यःपितागुरुः ॥३७॥ व्यालरूपोमहावासी हीनमालीतरङ्गवित् ॥ त्रिपदस्त्र्यम्बकोऽव्यक्तस्सर्वबन्धविमोचकः ॥ ३८ ॥ साङ्ख्यप्रसादोदुर्वासास्सर्वसाधुनिषेवितः ॥ प्रस्कन्दनोविभागश्च तुल्योयज्ञविभागवित् ॥ ३९ ॥ सर्ववासीसर्वचारी दुर्वासाभैरवोयमः॥

चीजोंका स्थान (सिद्धि) सिद्धिरूप (सन्धि) सुलहरूप (विग्रह) लड़ाईरूप (शिखी) चोटीवाले (दण्डी)दण्डवाले (जटी) जटावाले (ज्वाली) लपटवाले (मूर्तोद) मोह व अभिमान के नाश करनेवाले (दुर्बल) दुबले (बहिः) सबके बाहर ॥ ३४ ॥ (वैणवी) बांसके दण्डवाले (पापवेताल) पापोंको वेताल ऐसे (कालाग्नि) महाप्रलय के अग्निरूप (कालदण्डक) कालही जिनका दण्ड है (नक्षत्रनिग्रह) नाशरहित शरीरवाले (वृद्धि) बढ़तीरूप (अज) जन्मरहित (गन्धवह) वायुरूप (अग्रज) सब से जेठे ॥ ३५ ॥ (प्रजापति) प्रजाओंके मालिक (हरि) विष्णुरूप (बाहु) सबके लेचलनेवाले (विभाग) विशेषकर सब जिनको भजते हैं (सर्वतोमुख) चारोतरफ मुहँवाले (विमोचन) दुःखसे छोड़ानेवाले (सुरगण) देवता हैं गण जिनके (हिरण्यकवच) सोनहले बख्तरवाले (भव) सब जगत् जिन्हीं से होताहै ॥ ३६ ॥ (अरजः) निर्मल (धूलिधारी) भस्मके लगानेवाले (महाचारी) बड़े आचारवाले (श्रुतश्रवा) सुनागया है यश जिनका (अनादि) आदिरहित (सर्वभूतादि) सब प्राणियों की आदि (सर्वाद्य) सबके आदिरूप (सर्वपिता) सबके पिता (सर्वगुरु) सबके गुरु ॥ ३७ ॥ (व्यालरूप) सर्पों के ऐसे रूपवाले (महावासी) बडे स्थानवाले (हीनमाली) मुण्डोंकी मालावाले (तरङ्गवित) जगत्की तरंगों के जाननेवाले (त्रिपद) तीनोंलोक हैं स्थान जिनका (त्र्यम्बक) तीन नेत्रवाले (अव्यक्त) प्रकट नहीं (सर्वबन्धविमोचक) सब बन्धनों के छुड़ानेवाले ॥ ३८ ॥ (सांख्यप्रसाद) ज्ञानसे प्रसन्न होनेवाले (दुर्वासा) नङ्गे (सर्वसाधुनिषेवित) सब साधुओं से सेवा कियेगये (प्रस्कन्दन) प्रलय में जलके सुखानेवाले (विभाग) पृथक्रूप (तुल्य) सब में एकरस (यज्ञविभागवित्) यज्ञोंके हिसाबके जाननेवाले ॥ ३९ ॥ (सर्ववासी) सबमें रहनेवाले (सर्वचारी) सब कहीं जानेवाले (दुर्वासा) दुर्वासारूप (भैरव) भैरवरूप (यम)

यमरूप (हिम) ठण्ढे (हिमकर) चन्द्ररूप (यज्ञ) यज्ञरूप (सर्वधाता) सब के धारण करनेवाले (बुधोत्तम) पण्डितों में उत्तम ॥ ४० ॥ (लोहिताक्ष) लाल नेत्रोंवाले (महाक्ष) बडी आंखोंवाले (विजयाख्य) विजय नामवाले (विशारद) बड़े प्रवीण (संग्रह) सबके ग्रहण करनेवाले (विग्रह) लडाई रूप (कर्म) कर्मरूप (सर्पराजविभूषण) शेष जिनका गहना हैं ॥ ४१ ॥ (मुख्य) सबमे श्रेष्ठ (विमुक्तदेह) जीवन्मुक्त (देहचारी) जीवरूप से सब देहो में चलनेवाले (कर्दम) कर्दमनामके प्रजापति (सर्वाचार) सब तरहके आचारवाले (प्रसाद) प्रसन्नतारूप (खेचर) आकाश में चलनेवाले (बलरूपधृक्) बल व रूपके धारण करनेवाले ॥ ४२ ॥ (आकाशवृत्तिरूप) शब्दरूप (निपात) सब जिसमें गिरते है (उरग) सर्परूप (खल) क्रूरस्वभाववाले (रौद्ररूप) भयानक रूपवाले (सुरादित्य) देवताओं में सूर्यरूप (वसुरश्मि) सबमें वास करनेवाला है तेज जिनका (सुवर्चस) अच्छे तेजवाले ॥ ४३ ॥ (वसुवेग) वायुके

हिमोहिमकरोयज्ञस्सर्वधाताबुधोत्तमः ॥ ४० ॥ लोहिताक्षोमहाक्षश्च विजयाख्योविशारदः ॥ संग्रहोविग्रहःकर्म्म सर्प्प राजविभूषणः ॥ ४१ ॥ मुख्योविमुक्तदेहश्च देहचारीचकर्दमः ॥ सर्वाचारःप्रसादश्च खेचरोबलरूपधृक् ॥ ४२ ॥ आकाश वृत्तिरूपश्च निपातउरगःखलः ॥ रौद्ररूपस्सुरादित्योवसुरश्मिस्सुवर्चसः ॥ ४३ ॥ वसुवेगोमहावेगो मनोवेगोनिशाचरः ॥ सर्वावासःश्रियावास आपदीशकलोहरः ॥ ४४ ॥ मुनिरात्मगतिर्लोकस्सहस्रवदनोविभुः ॥ यक्षीचयक्षराजश्च श्येनो दीप्तिर्विशाम्पतिः ॥ ४५ ॥ उन्मदोमदनाकारोप्यर्थानर्थकरोमहान् ॥ सिद्धयोगोपहारीच सिद्धस्सर्वार्थसाधकः ॥ ४६ ॥

समान वेगवाले (महावेग) बड़े वेगवाले (मनोवेग) मनके तुल्य वेगवाले (निशाचर) रात्रि में चलनेवाले (सर्वावास) सबका स्थान (श्रियावास) लक्ष्मीका स्थान (आपत) व्यापक (ईशकल) ईश्वरहै कला जिनकी (हर) सबको हरनेवाले ॥ ४४ ॥ (मुनि) विचारनेवाले (आत्मगति) आपही अपनी गति हैं (लोक) लोकरूप (सहस्रवदन) हजारमुखवाले (विभु) समर्थ (यक्षी) यक्षोंवाले (यक्षराज) यक्षोंकेराजा (श्येन) बाजनामक पक्षीके तुल्य वेगवाले (दीप्ति) प्रकाशरूप (विशाम्पति) प्रजाओं के पति ॥ ४५ ॥ (उन्मद) मदवाले (मदनाकार) कामदेवके तुल्य रूपवाले (अर्थानर्थकर) प्रयोजन और अनर्थ के करने वाले (महान्) बड़े (सिद्धयोग) सिद्धहै योग जिनका (अपहारी) हरनेवाले (सिद्ध) सिद्धरूप (सर्वार्थसाधक) सबकामों के सिद्ध करनेवाले ॥ ४६ ॥

(भिक्षु) संन्यासी (भिक्षुरूप) भिक्षुरूपवाले (षण्णांविभुः) छह प्रकारके ऐश्वर्योंके स्वामी (मृदुत्वच) कोमल खालवाले (महासेन) बडी सेनावाले (विशाख) स्वामिकार्त्तिकरूप (यष्टिभाग) लाठी में बांधाजाताहै भाग जिनका (गवांपति) नन्दीके पालनेवाले ॥ ४७ ॥ (वज्रहस्त) वज्रहै हाथमें जिनके (विष्टम्भि) रोंकनेवाले (विष्ठ) बैठे (स्तम्भन) धारण करनेवाले (ऋक्ष) नक्षत्ररूप (रिपुकर) क्रुद्ध होनेसे शत्रुओंके बढ़ानेवाले (काल) कालरूप (मधु) वसन्तरूप (मधुकलोचन) महुआके ऐसे नेत्रोंवाले ॥ ४८ ॥ (वाचस्पत्य) बृहस्पतिरूप (वाजसेन) अन्नही जिनकी सेनाहै (नैष्ठ) समाधि करनेवाले (आश्रमसूचक) आश्रमो के चेतानेवाले (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (लोकचारी) लोकोंमें चलनेवाले (सर्वचारी) सब में चलनेवाले (सुरत्नवित्) अच्छेरत्नों के जाननेवाले ॥ ४९ ॥ (ईशान)

भिक्षुश्चभिक्षुरूपश्च विभुःषण्णांमृदुत्वचः ॥ महासेनोविशाखश्च यष्टिभागोगवाम्पतिः ॥ ४७ ॥ वज्रहस्तश्चविष्टम्भिर्विष्ठःस्तम्भनएवच ॥ ऋक्षोरिपुकरःकालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ४८ ॥ वाचस्पत्योवाजसेनो नैष्ठश्चाश्रमसूचकः ॥ ब्रह्मचारीलोकचारी सर्वचारीसुरत्नवित ॥ ४९ ॥ ईशानईश्वरःकालो निशाचारीत्वमेकधृक् ॥ अमितश्चाप्रमेयश्च नदीनदकरोऽव्ययः ॥ ५० ॥ नन्दीश्वरस्सुनन्दीच नन्दनोनन्दवर्द्धनः ॥ नागहारीविहारीच कालोब्रह्मविदांवरः ॥ ५१ ॥ चतुर्मुखोमहालिङ्गश्चतुर्लिङ्गस्तथैवच ॥ लिङ्गाध्यक्षस्सुराध्यक्षो कालाध्यक्षोयुगावहः ॥ ५२ ॥ उ

ईशानकोणरूप (ईश्वर) ऐश्वर्यवाले (काल) कालरूप (निशाचारी) रात्रिमें चलनेवाले (त्वम्एकधृक्) आपही एक सबके धारण करनेवाले हो (अमित) बेनाप (अप्रमेय) किसी प्रमाणसे नहीं जानेजाते (नदीनदकर) नदियां व नदोंके करनेवाले (अव्यय) नाशरहित ॥ ५० ॥ (नन्दीश्वर) नन्दीके मालिक (सुनन्दी) भलीभांति आनन्द देनेवाले (नन्दन) आनन्द देनेवाले (आनन्दवर्द्धन) आनन्द बढ़ानेवाले (नागहारी) नागोंकी माला धारण करनेवाले (विहारी) विहार करनेवाले (काल) समयरूप (ब्रह्मविदांवर) ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ ॥ ५१ ॥ (चतुर्मुख) चारमुखवाले (महालिंग) पूजाजाता है लिंग जिनका (चतुर्लिङ्ग) चारो वेदों में है स्वरूप जिनका (लिंगाध्यक्ष) लिंगोंमें आपही की पूजा होती है इससे लिंगोंके ईश्वर हो (सुराध्यक्ष) देवताओं के ईश्वर (कालाध्यक्ष) कालके ईश्वर

(युगावह) युगोंके धारण करनेवाले ॥ ५२ ॥ (उमापति) पार्वती के पति (उमाकान्त) पार्वतीजी के प्यारे (जाह्नवीधृतिमान्) गंगाके धरनेवाले (वर) श्रेष्ठ (सर्वार्थ) सब प्रयोजनरूप (सर्वभूतार्थ) सब प्राणियों के स्वार्थ (नित्य) सदा रहनेवाले (सर्वव्रत) सब व्रतोंवाले (शुचि) पवित्ररूप आपहो ॥ ५३ ॥ हे नाथ ! जो देव ब्रह्माआदि देवता, महर्षियोंसे नहीं जानेजाते ऐसे श्रेष्ठोंसे श्रेष्ठ,परमात्मा आप स्तुति करने योग्य कैसे होसक्तेहो ॥ ५४ ॥ हे परमेश्वर ! हमलोगोंकी जिह्वाकी चञ्चलता को आप क्षमाकरो और हे पुष्टिवर्द्धन ! स्वर्गवासी देवताओं का कल्याण करो ॥५५॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इस स्तोत्रको सुनकर श्रीमान् द्वीपेश्वर

मापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृतिमान्वरः ॥ सर्वार्थस्सर्वभूतार्थो नित्यस्सर्वव्रतश्शुचिः ॥ ५३ ॥ योनब्रह्मादिभिर्देवो ज्ञायतेनमहर्षिभिः ॥ स्तोतव्यःसकथन्नाथ परमात्मापरात्परः ॥ ५४ ॥ जिह्वाचापल्यमस्माकं क्षमस्वपरमेश्वर ॥ शिवंकुरुष्वदेवानां स्वर्ग्याणांपुष्टिवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवः श्रीमान्द्वीपेश्वरःशिवः ॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवान् प्रार्थयध्वंवरंसुराः ॥ ५६ ॥ देवाऊचुः ॥ यदितुष्टोमहेशानो देवानांवरदःप्रभुः ॥ तद्दिनाशायदैत्यानां त्राताभवमहेश्वर ॥ ५७ ॥ पापकर्म्माधमश्चैव पञ्चलिङ्गानियोर्चयेत ॥ सोपिताङ्गतिमाप्नोति दुर्लभायामहामखैः ॥ ५८ ॥ शक्रेणाभिष्टुतस्तत्र देवदेवउमापतिः ॥ पुरानाम्नांसहस्रेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ ५९ ॥ शिवप्रसादसम्पन्नो देवराजस्ततोभवत ॥ धनदेनस्तुतस्तत्र देवोलक्षेश्वरःप्रभुः ॥ ६० ॥ मोक्षदानामगौरीञ्च तान्देवींविद्धिभारत ॥

महादेवजी हँसतेहुये देवताओंसे बोले कि हे देवताओ ! तुमलोग वरकोमांगो ॥ ५६ ॥ तब देवताबोले कि हे महेश्वर ! देवताओंको वरके देनेवाले प्रभु महेशान आप जो प्रसन्नहो तो दैत्योंके नाश करने के वास्ते देवताओं की रक्षा करनेवाले होवो ॥ ५७ ॥ पापकर्म का करनेवाला अधमभी जो मनुष्य पांचों लिंगोका पूजन करे तो वह भी उस गतिको प्राप्तहोवे जोकि बड़े यज्ञोंसे भी दुर्लभ है ॥ ५८ ॥ देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये देवताओ के देवता पार्वती के पति महादेवजी की पूर्व कालमें इन्द्रने भी वहां हजारनामों से स्तुतिको कियाहै ॥ ५९ ॥ तब महादेवजीके प्रसादमे युक्त इन्द्र देवताओंके राजा होतेहुये और वहां कुबेरने भी प्रभु लक्षेश्वर

देवकी स्तुति की है ॥ ६० ॥ हे भारत ! वहां मोक्षदानाम की जो शक्तिहै उसीको देवी पार्वतीजी जानो और देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियागया मोक्षेश्वर नामका सिद्धलिंग है ॥ ६१ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य भी पांचों लिंगों के पूजन से देवभावको प्राप्तहुये ॥ ६२ ॥ कुबेर, वायु, वरुण, निर्ऋति, वैवस्वत और नरकोंके राजा यमराज भी उसी पूजनसे अपने२ अधिकारोंको पातेहुये ॥ ६३ ॥ और उस लिंगके माहात्म्य से सूर्यके पुत्र यमराज बड़े यशवाले हुये वहां पूर्वकाल में औरोंने भी द्वीपेश्वर प्रभुकी स्तुतिकी है ॥ ६४ ॥ व वहीं भक्तिपूर्वक सहस्रनाम से चन्द्रमाने बहुत पूजनेलायक महादेवजी की स्तुतिकी इससे चन्द्रमा

मोक्षेश्वरंसिद्धलिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६१ ॥ सिद्धैर्विद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैःकिन्नरैर्नरैः ॥ देवत्वंसमनुप्राप्तं पञ्चलिङ्गसमर्चनात् ॥ ६२ ॥ कुबेरोमारुतश्चैव वरुणोनिर्ऋतिस्तथा ॥ वैवस्वतोयमश्चैव ततश्चनरकेश्वरः ॥ ६३ ॥ तस्यलिङ्गस्य माहात्म्यात्सूर्य्यपुत्रोमहायशाः ॥ अन्यैरभिष्टुतस्तत्र पूर्वंद्वीपेश्वरःप्रभुः ॥ ६४ ॥ भक्त्यानामसहस्रेण स्तुतःपूज्यतमश्शिवः ॥ सोमेनातोभवत्तत्र शम्भोश्शिरसिभूषणम् ॥ ६५ ॥ रोहिण्याभ्यर्चितागौरी सुभगातेनसाभवत् ॥ ऋक्षैर्योगतरैस्तद्वत्स्तुतोदेवःपिनाकधृक् ॥ ६६ ॥ ततस्तैर्भास्करेणैव नभःस्थलमलंकृतम् ॥ व्याधयःकालमृत्युश्च चित्रगुप्तश्चलेखकः ॥ ६७ ॥ तथाशक्रस्सुरगणैरेतैःपरिवृतःप्रभुः ॥ पापिष्ठानांमहारौद्रो धर्म्मिष्ठानांप्रसादवान् ॥ ६८ ॥ कोटयोष्टौचोर्ध्वकेशा रौद्राश्चविकृताननाः ॥ पतिव्रतासहस्रैश्च तथामासोपवासिभिः ॥ ६९ ॥ किल्किलारवशब्दैश्च धर्म्मराजपुरोत्तमम् ॥ व्याप्तन्तुपरितःश्रीमदसंख्यातैर्मनोरमैः ॥ ७० ॥ श्रुत्वातेषांरवंसार्द्धं धर्म्मराजःसभासदैः ॥ श्वेत

महादेवजी के शिरका भूषण होताहुआ ॥ ६५ ॥ रोहिणी ने पार्वतीजी का पूजन किया इससे वह सौभाग्यवालीहुई इसीतरह नक्षत्र व योगोंने पिनाक के धरनेवाले महादेवजीकी स्तुतिकीहै ॥ ६६ ॥ इससे उन्होंने सूर्यके सहित आकाशको शोभित करदिया है रोग, कालमृत्यु, लिखनेवाले चित्रगुप्त ॥ ६७ ॥ तथा इन देवताओं के गणोंसे युक्त इन्द्रभी स्तुति करतेहुये जो प्रभुजी पापियों को बड़े डेरावने हैं और धर्मिष्ठों को बडे सीधे हैं ॥ ६८ ॥ जिनके पास खडेबालोंवाले, बडे डेरावने मुहँवाले, बड़े भयानक आठ करोड़ गण रहते है ऐसे यमराज का उत्तम पुर सब ओर हजारों पतिव्रता स्त्रियों व महीने २ भरतक व्रतोंके करनेवाले पुरुषों व उनके

किलकिलाहटवाली आवाजों व और भी पुण्यवालों के अगणित मनके रमानेवाले विमानों से भरजाता हुआ ॥ ६९ ।७० ॥ उनके शब्दको सुनकर अपने सभासदों के सहित सफेद कपड़ों को पहनेहुये व सफेदमाला व सफेदचन्दन को लगायेहुये धर्मराज ॥ ७१ ॥ बहुतजल्द पैदल वहां गये जहां वे लोग विमानों पर बैठेहुये थे दोनों हाथोंको जोड़कर उन पुण्यात्माओं से पूंछतेहुये ॥ ७२ ॥ कि अपनी शक्तिके अनुसार योगाभ्यास से धर्मोंमें उत्तम बड़े धर्मको आपलोगों ने कमाया है सो आप लोग किस देशसे आयेहो और कैसे पुण्यको कमाया है ॥ ७३ ॥ तब विमानों के सवार बोले कि कुरुक्षेत्र में हमलोगों ने तप किया और गंगामें विशेषकर कियाहै

वस्त्रपरीधानः श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ७१ ॥ पादचारीगतःक्षिप्रं यत्रतेयानसंस्थिताः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा पप्रच्छ शुभकर्म्मणः ॥ ७२ ॥ यथाशक्तेनयोगेन धर्म्मंधर्म्मोत्तरम्महत् ॥ कस्माद्देशात्समायाताः कथम्पुण्यमुपार्ज्जितम् ॥ ७३ ॥ विमानारूढाऊचुः ॥ कुरुक्षेत्रेतपस्तप्तं गङ्गायाञ्चविशेषतः ॥ सर्वेषामेवलोकानां द्वारन्तद्धिप्रतिष्ठितम् ॥ ७४ ॥ धर्म्माधर्म्मेतवबलं कारणंचेतितत्त्वतः ॥ वाराणसीप्रयागश्च गङ्गासागरसङ्गमः ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थंमहापुण्यं पुष्कर न्नैमिषन्तथा ॥ केदारंभैरवञ्चैव तथारुद्रमहालयम् ॥ ७६ ॥ सरस्वतीरुद्रकोटिः प्रभासंशशिभूषणम् ॥ नानातीर्थसहस्रेषु दानयज्ञतपःकृतम् ॥ ७७ ॥ एतत्तेकथितंसर्वं सूर्य्यपुत्रमहायशः ॥ अन्येदृष्ट्वायथान्यायं धर्म्मराजंततस्तथा ॥ ७८ ॥ ऊचुस्सर्वेवचःश्लक्ष्णंधर्म्मराजंयथोदितम् ॥ नत्वंप्रभुःसुकृतिनांब्रह्माविष्णुःशिवःप्रभुः ॥ ७९ ॥ पापकर्म्म

क्योंकि वे गंगा तो सब लोकोंका द्वारही हैं ॥ ७४ ॥ धर्म व अधर्मही आपका बल है येही दोनों तत्त्व से सुख व दुःख के कारण हैं और भी बड़े बडे पवित्रतीर्थ हैं जैसे काशी, प्रयाग, गंगासागरसङ्गम ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थ (गया), बडी पुण्यवाला पुष्कर तथा नैमिष, केदार, भैरव, रुद्रमहालय ॥ ७६ ॥ सरस्वती, रुद्रकोटि, प्रभास और शशिभूषण इत्यादि अनेक प्रकार के हजारों तीर्थों में हमलोगों ने दान, यज्ञ और तपस्या को किया है ॥ ७७ ॥ हे बडेयशवाले, सूर्यपुत्र ! यह अपना वृत्तान्त आपसे हमलोगोंने कहा तब उनमें से और लोग धर्मराज को न्यायपूर्वक देखकर ॥ ७८ ॥ सबलोग धर्मराज से यथोचित स्नेहवाले वचनको बोले कि आप पुण्य

वालोंके मालिक नहीं हो बल्कि उनके मालिक ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी हैं ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य पापकर्मों के करनेवाले हैं उनके राजा यमराज आपही हैं तब यमराज बोले कि हम कैलासको जाकर जबतक लौटआवें तबतक आपलोग ठहरें ॥८०॥ हे राजन् ! ऐसे कहकर वे यमराज पर्वतोंमें उत्तम कैलासको जातेहुये जिस कैलास में शिवआदि देवता व पार्वती और स्वामिकार्त्तिक ये सब बैठे हैं ॥ ८१ ॥ और जहां सब देवतालोग देवताओं के देवता पार्वती के पति महादेवजी की स्तुतिकर रहे हैं व कोई उनके आगे नाचतेहैं और कोई उछलकर फिर गिरते हैं ॥ ८२ ॥ प्रचण्ड तेजवाले, स्तुति कियेजाते, ऐसे उन महादेवजी को देखकर देवताओं के

रतायेतु तेषांशास्तायमःस्वयम् ॥ यमउवाच ॥ गत्वाकैलासमायामि यावत्तावत्प्रतीक्षताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्त्वाय यौराजन् कैलासंसनगोत्तमम् ॥ यस्मिञ्छिवाद्यास्तेसर्वे पार्वतीषण्मुखस्तथा ॥ ८१ ॥ स्तुवन्तिदेवताःसर्वा देवदेवमु मापतिम् ॥ नृत्यन्तिचाग्रतःकेचिदुत्पत्यनिपतन्तिच ॥८२॥ तंदृष्ट्वाताद्दशंशम्भुंस्तुवन्तंदीप्ततेजसम्॥ स्तुवन्नामसहस्रे ण देवदेवंपिनाकिनम् ॥८३॥ साष्टाङ्गंचनमस्कृत्य धर्म्मराजोब्रवीदिदम् ॥ येस्मत्पुरींसमायातास्तेषांकागतिरुच्यते ॥ ८४॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवो धर्म्मराजंयुधिष्ठिर ॥ अत्रप्रयान्तुतेसर्वे येरेवातीरवासिनः ॥८५॥ अन्यतीर्थनिवासाये भोगान्भु ञ्जन्तुतेदिवि ॥ शिववाक्यंततःश्रुत्वा ब्रह्माविष्णुर्यथातथम् ॥ ८६ ॥ तुष्टादेवस्यवाक्येन सर्वदेवगणेश्वरः ॥ आगतः क्षणमात्रेण धर्म्मराजःपुरोत्तमम् ॥ ८७ ॥ शिवोक्ताःप्रेषितास्सर्वे शिवलोकंयुधिष्ठिर ॥ यथायथासमादिष्टास्ततोन्ये

देवता पिनाकधनुष के धरनेवाले महादेवजी की हजारनामों से स्तुति करतेहुये ॥ ८३ ॥ साष्टांग प्रणामकर धर्मराज यह बोले कि जो लोग हमारी पुरी में आयेहुये हैं उनकी क्या गति होना चाहिये ॥ ८४ ॥ तब हे युधिष्ठिर ! हँसतेहुये महादेवजी धर्मराज से बोले कि उनमें जो नर्मदातीर के रहनेवाले हैं वे सब यहां चलेआवें ॥ ८५ ॥ और जो और तीर्थों के रहनेवाले हैं वे स्वर्गमें भोगोंको भोगें तब महादेवजी के इस यथार्थ वचन को सुनकर ब्रह्मा व विष्णु और सब देवगणों के मालिक धर्मराज जी उस महादेवजी की बातसे बहुत प्रसन्न हुये फिर धर्मराज एक क्षणमात्र में अपने उत्तमपुर को आतेहुये ॥ ८६ । ८७ ॥ व हे युधिष्ठिर ! महादेवजी के कहेहुये सब

लोगोंको शिवलोक को भेजदिया और औरोंको जैसा २ हुक्म दियाथा उसीतरह वे भी सुखसे युक्त कर दियेगये ॥ ८८ ॥ पूर्वकल्प में कार्त्तिकी को देवताओं के समागम में मैंने इस वार्त्ता को देखाथा अब हे महाराज ! तदनन्तर उत्तम वैष्णवतीर्थको जावे ॥ ८९ ॥ सब पापोंका छुटानेवाला कोकिलानाम से वह तीर्थ प्रसिद्ध हैं उसको देवताओं के देवता जनार्दनजीने वैष्णवक्षेत्र कहाहै ॥ ९० ॥ हे भारत ! वहां सवा करोड़ तीर्थ रहते हैं जो मनुष्य वहां पवित्र एकादशी का व्रतकरके दियालियो को जलाता है ॥ ९१ ॥ उसकी इस कठिन मनुष्यलोक में फिर आवृत्ति नहीं होती है हे भारत ! बल्कि वह सब कामनाओं से भरेहुये उत्तम विमान से विचरता

पिशुभान्विताः ॥ ८८ ॥ पुराकल्पेमयादृष्टं कार्त्तिक्यांदेवतागमे ॥ ततोगच्छेन्महाराज वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ८९ ॥ कोकिलानामविख्यातं सर्वपापविमोक्षणम् ॥ वैष्णवंक्षेत्रमित्याह देवदेवोजनार्दनः ॥ ९० ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां तत्रास्तेचैवभारत ॥ उपोष्यैकादशींपुण्यां दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ ९१ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ सर्वकामसमृद्धेन विमानाग्रेणभारत ॥ ९२ ॥ असङ्ख्यकालिकातृप्तिःपितृणांनात्रसंशयः ॥ विप्रेचतोषितेतत्र दानसङ्ख्यानविद्यते ॥ ९३ ॥ अत्रान्तरेत्यजेत्प्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ ९४ ॥ ध्रुवोध्रुवत्वंस्वर्गेतु तारातेजःसमुज्ज्वलन् ॥ मर्त्ययोनिषुसम्भूता भूतग्रामास्तथापरे ॥ ९५ ॥ अर्चनाद्देवदेवस्य दिविदेवत्वमाप्नुवन् ॥ देवपुण्यक्षयेमर्त्या भक्त्यापुण्यैश्चदेवताः ॥ ९६ ॥ स्वर्गमर्त्यप्रभेदोयं धर्म्माधर्म्मप्रभेदतः ॥ केनापितत्प्रकारेण पूजनी

है ॥ ९२ ॥ वहांपर श्राद्धआदि के करने से पितरों की बहुत कालतक तृप्ति होतीहै इस में कुछ संशय नहीं है वहांपर ब्राह्मण के प्रसन्न कियेपर दानकी गिन्ती नहीं रहती है ॥ ९३ ॥ इस क्षेत्रमें परवश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह दश हजारवर्षों तक विद्याधरों के पुरमें राजा होताहै ॥ ९४ ॥ यहीं के पुण्यसे राजा ध्रुव स्वर्गमें नक्षत्रों के तेजसे प्रकाश करतेहुये ध्रुवत्व (अटलभाव) को प्राप्तहुये हैं और मृत्युवाली योनियों में भलीभांति उत्पन्न हुये चारों प्रकार के जीव ॥ ९५ ॥ देवों के देव विष्णु के पूजन करने से स्वर्ग में देवभावको प्राप्तहुये देवताओं की पुण्यके क्षयहोने पर देवता मनुष्य होते हैं और मनुष्यलोग भक्ति व पुण्यसे देवता होते

हैं ॥ ९६ ॥ स्वर्ग और मनुष्यलोक का यह भेद धर्म और अधर्म के भेदसे हुआ है इससे किसी प्रकार से महादेवजी पूजनेलायक हैं ॥ ९७ ॥ भक्तिसे युक्त चित्तसे जैसे तैसे शिवके निमित्त कुछ देना चाहिये अरुन्धती साभरणी तथा सावित्री ॥ ९८ ॥ अहल्या, मेनका, मरुत्वती और रम्भा तथा और भी अप्सराओं व देवताओं और सिद्धोंके गणों से महादेवजी पूजेगये हैं ॥ ९९ ॥ परन्तु हे भारत ! नर्मदा के तटमें रहकर जिसने महादेवजी का पूजन कियाहै निश्चयकरके उसीने बडेभोगों व मोक्षको पायाहै ॥ १०० ॥ महादेवजी की मायासे मोहित जो शिवजी का पूजन नहीं करता है उसको स्वर्ग और मोक्ष नहीं होते कैलास होनेकी तो बातही क्या है ॥ १ ॥

योमहेश्वरः ॥ ९७ ॥ यद्वातद्वाशिवेदेयं भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ अरुन्धत्यासाभरण्या सावित्र्याचतथातथा ॥ ९८ ॥ अहल्ययामेनकया मरुत्वत्याचरम्भया ॥ अप्सरोगणसङ्घैश्चसुरसिद्धगणैस्तथा ॥ ९९ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य पूजितोयेन शङ्करः ॥ तेनवैविपुलाभोगाः प्राप्तामोक्षश्चभारत ॥ १०० ॥ नपूजयेद्धरंयस्तु शिवमायाविमोहितः ॥ नतस्यस्वर्गमोक्षौ च कैलासंप्रतिकाकथा ॥ १ ॥ नचस्वर्गस्यराज्यस्य भाजनञ्चनराधिप ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वदेवमयोहरः ॥ २ ॥ सर्व धर्म्ममयीबुद्धिः क्षमासत्यमयंतपः ॥ ब्रह्मचर्य्यंतपोमूलं पञ्चेन्द्रियविनिग्रहः ॥ ३ ॥ क्षमासत्यंजपोधीतं तपःसंयम लक्षणम् ॥ एतत्तेकथितंराजञ्छिवेनकथितंपुरा ॥ ४ ॥ मयाचतवराजेन्द्र भ्रातॄणाञ्चविशेषतः ॥ नसामान्यतरादेवी कथितायामयातव ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वरःकपिलेश्वरस्तथावैनरकेश्वरः ॥ एतान्देवान्समुत्थाय यथावत्परिकीर्तयेत् ॥ ६ ॥ स

और हे नराधिप ! वह पुरुष स्वर्गकी राज्यका पात्र नहीं होताहै क्योंकि नर्मदा सब तीर्थोंका रूपहै महादेवजी सब देवताओं का रूपहैं ॥ २ ॥ बुद्धि सब धर्मोंका रूप है क्षमा व सत्य तपस्या का रूपहै और पांचों इन्द्रियों का वश करना व ब्रह्मचर्य तपस्याकी जड है ॥ ३ ॥ क्षमा, सत्य, जप, पाठ और तप इन्हीं का नाम संयम है हे राजन् ! पूर्वकाल में महादेवजी का कहाहुआ यह वृत्तान्त आपसे कहागया ॥ ४ ॥ और हे राजेन्द्र ! मैंने भी आप व आपके भाइयों से विशेषकर कहा जिस देवीको मैंने आप से कहा है वह साधारण नहीं है ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वर व कपिलेश्वर और नरकेश्वर इन देवों को प्रातःकाल उठकर जो यथावत् कहता है ॥ ६ ॥ वह

पूजाजाता है पापोंके समूह के नाश होनेपर नर्मदा की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ जिस नर्मदा के समीप शिवजी हमेशा रहते हैं सबतीर्थों के फलोंको पाकर शिवलोक में पूजाजाता है ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेद्वीपेश्वरवर्णनोनामै इसीसे नर्मदा शिवजी का परमक्षेत्रहैं इसके सुनने व कहने से शिवलोक में पूजाजाता है ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेद्वीपेश्वरवर्णनोनामै कसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवता व सिद्धों से सेवित नर्मदाका सङ्गम बड़ा पवित्र है उसमें स्नानकर और महादेवजीका पूजनकर स्वर्गको जाते हैं ॥ १ ॥ हे भरतर्षभ !

शिवःसंनिहितोयस्यां शिवक्षेत्रं ततःपरम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ७ ॥ अघौघेचपरिक्षीणेप्राप्यतेसप्तकल्पगा ॥ वेतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेद्वीपेश्वरवर्णनोनामै कसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्म्मदासङ्गमंपुण्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ १ ॥ त्वयापवित्रितंपुण्यं मर्त्यलो आगच्छन्तीपुरालोके नर्म्मदाभरतर्षभ॥ स्तुतापूर्वंनमस्कृत्य देवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ २ ॥ कञ्चराचरम् ॥ अपांरूपगतारेवा हरस्यपरमाकला ॥ ३ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनाचसरस्वती ॥ चामुण्डाचर्चि कादेवी रेवात्वंसप्तकल्पगा ॥ ४ ॥ शिवजाप्रवहापुण्या मेकलाद्रिसुतास्तुता ॥ यज्ञयूपाचमूर्द्धाच स्वर्गमोक्षप्रदातथा ॥ ५ ॥ तारिणिसर्वभूतानां पापघ्नीचतरङ्गिणी॥ लक्ष्मीःस्वाहास्वधाचैव पुरुहूतायशस्विनी ॥ ६ ॥ त्वयाव्याप्तंजगत्कृ

उन्होंने कहा कि आपने चराचर इस मनुष्यलोकको पवित्र पूर्वकाल बिषे मनुष्यलोकमें आतीहुई नर्मदाकी देवता व ब्रह्मर्षियोंने पहले नमस्कारकर स्तुति की है ॥ २ ॥ व पुण्यवाला करदियाहै जलके रूपको प्राप्त होगई नर्मदाजी महादेवजीकी पूरी कलाहैं ॥ ३ ॥ उमा, कात्यायनी, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चामुण्डा और चर्चिकादेवी सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा तुम्हींहो ॥ ४ ॥ महादेवसे तुम उत्पन्न हुईहो, प्रवाहरूपहो, पुण्यवालीहो, मेकलपर्वतकी कन्याहो, सबों से स्तुति कीगईहो, यज्ञोंके खम्भोंवालीहो, सब तीर्थोंके मस्तककी तरह शोभितहो, स्वर्ग व मोक्षको देनेवालीहो ॥ ५ ॥ सब प्राणियोंको तारनेवालीहो, पापोंको नाश करनेवाली व तरङ्गोंवालीहो,

लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा और यशवाली इन्द्राणी तुम्हींहो ॥ ६ ॥ हे सुव्रते! जलके रूपसे तुम्हींने सम्पूर्ण जगत्को ढांकलियाहै तुम्हारा सङ्गम व सिद्धलिङ्ग देवता व दैत्यों से नमस्कार कियागया है ॥ ७ ॥ यहां जो कुछ दान व होम कियाजावे वह सब अक्षय होताहै हे महाराज! नर्मदाका स्नान व शिवका पूजन बड़ाही अद्भुत है ॥ ८ ॥ हे युधिष्ठिर! एक समयमें अनेकतरहके रत्नोंकी चमकसमूहों से करोड़ों सूर्योंके समान तेजवाले अनेक हजार विमान सितार आदिकी आवाजों से व वेदों के शब्दों से आकाश और पृथ्वीको भरतेहुये यमराजकी पुरीको प्राप्तहुये राजा यमराज उनको देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये परन्तु पूर्वकालमें महादेव, विष्णु और

त्स्नमपांरूपेणसुव्रते ॥ सङ्गमंसिद्धलिङ्गंच सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ७ ॥ अत्रदत्तंहुतंसर्वमेतद्भवतिचाक्षयम् ॥ अत्यद्भुतं महाराज नर्म्मदास्नानमर्चनम् ॥ ८ ॥ अनेकानिसहस्राणि विमानानियुधिष्ठिर ॥ नानारत्नप्रभाजालैः सूर्यकोटि समानिच ॥ ९ ॥ गतानिधर्म्मराजस्य पुरींवीणादिनिःस्वनैः ॥ नादयन्तिदिवंभूमिं वेदनिर्घोषणादिभिः ॥ १० ॥ एक स्मिन्समयेदृष्ट्वाश्चर्यंवैवस्वतोनृपः ॥ अत्रिश्चैववशिष्ठश्चपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ ११ ॥ इत्याद्याःसप्तमुनयो धर्म्माध र्म्मविचारकाः ॥ शिवेनस्थापिताःपूर्वं हरिणाब्रह्मणातथा॥ १२ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अक्षीणकर्म्मबन्धस्तु पुरुषोमुनि सत्तम ॥ परंपदमवाप्नोति तन्मेकथयकल्पग ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ विष्णुनाकथितंपूर्वं ब्रह्मणेचमहात्मने ॥ प्रपद्येपुण्डरीकाक्षं देवंनारायणंहरिम् ॥ १४ ॥ लोकनाथंसहस्राक्षमक्षरंपरमंपदम् ॥ भगवन्तंप्रपद्येहं भूतभव्यभ वत्प्रभुम् ॥ १५ ॥ स्रष्टारंसर्वभूतानामनन्तबलपौरुषम् ॥ पद्मनाभंहृषीकेशं प्रपद्येसत्यमव्ययम् ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भं

ब्रह्माजीने धर्म अधर्म के विचार करनेवाले अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि सात मुनियों को यहां स्थापित करदियाहै उन्हीं से पूछकर यमलोकका काम चलताहै ॥ ९।१०।११।१२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिसत्तम! जिस मनुष्यके कर्मरूपी बन्धन नहीं छूटे हैं वह परमपदको किसतरह पासक्ताहै हे कल्पग! सो आप हमसे कहें ॥ १३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में इसी बातको विष्णुजीने महात्मा ब्रह्माजी से कहाहै कि पुण्डरीकाक्ष, नारायण, हरि, देव की मैं शरणहूं ॥ १४ ॥ लोकोंके नाथ,हजारों नेत्रवाले, नाशरहित, परमपद का रूप,होगई व होरही और होनेवाली बातके प्रभु,भगवान् की मैं शरण हूं ॥ १५ ॥ सब प्राणियों

के रचनेवाले, बेथाह बल व पौरुषवाले, कमल जिनकी नाभिसे निकला है, इन्द्रियों के स्वामी, सत्यरूप, नाशरहित के मैं शरणहूं ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भरूप,
पृथिवी जिनके गर्भमें हैं, मृत्यु से रहित, चारों तरफ मुखवाले, नाशरहित, कोई जिनका मालिक नहीं है, सूर्यके समान प्रकाशवाले के मैं शरणहूं ॥ १७ ॥ हजारों
शिरोंवाले, वैकुण्ठके रहनेवाले, गरुडके सवार, सूक्ष्मरूपवाले, अटल, सबसे श्रेष्ठ, अभयके देनेवाले, देवके मैं शरणहूं ॥ १८ ॥ नारायण, हरि, योगकी आत्मा, सना-
तन, सब लोगोंको शरणजाने योग्य, अटल, ईश्वर के मैं शरणहूं ॥ १९ ॥ सब प्राणियों का जो स्वामी है जिससे यह सब विश्व विस्तार कियागया है, जो देव सं-
हारका करनेवाला है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे ॥ २० ॥ पूर्वकालमें कमल जिनकी योनिहै और प्रजाओं के मालिक ऐसे ब्रह्मा जिससे पैदा हुये हैं, ब्रह्माजीसे

**भूगर्भममृतंविश्वतोमुखम् ॥ अनश्वरमनाथञ्च प्रपद्येभास्करद्युतिम् ॥ १७ ॥ सहस्रशिरसंदेवं वैकुण्ठंतार्क्ष्यवा
हनम् ॥ प्रपद्येसूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ १८ ॥ नारायणंहरिञ्चैव योगात्मानंसनातनम् ॥ शरण्यंसर्वलोका
नां प्रपद्येध्रुवमीश्वरम् ॥ १९ ॥ यःप्रभुःसर्वभूतानां येनसर्वमिदंततम् ॥ यःसंहारकरोदेवः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २० ॥
यस्माज्जातःपुराब्रह्मा पद्मयोनिःप्रजापतिः ॥ प्रसीदतुसमेविष्णुः पितामहपरःप्रभुः ॥ २१ ॥ पुरालयेतुसंप्राप्ते नष्टेलो
केचराचरे ॥ एकस्तिष्ठतियोगात्मा समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २२ ॥ जयेद्यःपृथिवींसत्यं कालोधर्म्मःक्रियाफलम् ॥ गुणा
कारःसतांवाचो वासुदेवःप्रसीदतु ॥ २३ ॥ योगावासनमस्तुभ्यं सर्वावासवरप्रद ॥ यज्ञभोगिन्पञ्चभोगिन्नारायणनमो
स्तुते ॥ २४ ॥ चतुर्मूर्तेजगद्धाम लक्ष्मीवासवरप्रद ॥ विश्वावासनमस्तेस्तु साक्षीभूतजगत्पते ॥ २५ ॥ अजेयःपड्विमा**

श्रेष्ठ, सबका मालिक वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें प्रलयके प्राप्तहोनेपर और चराचर लोकके नष्टहोजाने पर योग जिसकी आत्माहै ऐसा एकही
जो बाकी रहजाता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे ॥ २२ ॥ जिसने एक पगसे पृथिवी को जीतलिया है व जो सत्यरूप, कालरूप, धर्मरूप और कर्मोंका फलरूप
सत्त्वआदि गुणों के आकार होनेवाला, महात्माओं की वाणीरूप है वह वासुदेव मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २३ ॥ हे योगावास! हे सर्वावास ! हे वरप्रद ! आपके लिये नम-
स्कार है हे यज्ञभोगिन् ! हे पञ्चभोगिन् ! हे नारायण ! आपके लिये नमस्कार है २४ ॥ हे चतुर्मूर्त्ते ! हे जगद्धाम ! हे लक्ष्मीवास ! हे वरप्रद ! हे विश्वावास ! हे सा-

त्तीभूत ! हे जगत्पते ! आपके लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे ज्ञानसागर ! आप किसीके जीतनेलायक नहींहो और छह प्रकारकी ऊर्मियोंसेहै विभाग अर्थात् अलग होना जिनका ऐसेहो और एकही आप विश्वम्भर की मूर्त्तिहो व वृषाकपि, मृगाधिप और कालरूप हो ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ अव्यक्त जो माया है उससे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ और माया से और आप प्रभुहो और जिससे श्रेष्ठ दूसरा नहींहै हम उसीके शरणागतहैं ॥ २७ ॥ जिस प्रभुका ब्रह्मा और महादेवआदि निरन्तर ध्यान किया करते हैं और जो अपने एक हिस्से से सब जगत् को धारणकर व्यापकहो स्थित होरहा है ॥ २८ ॥ व जो किसी से नहीं पकड़ा जासक्ता है, गुणोंसे रहित, सबका सिखलानेवाला है, हम उसी के शरणागत हैं सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जो ज्योतिरूपसा स्थित होरहाहै ॥ २९ ॥ जिसको क्षेत्रज्ञ ऐसा कहते

गैकविश्वमूर्त्तिर्वृषाकपिः ॥ मृगाधिपश्चकालश्च नमस्तेज्ञानसागर ॥ २६ ॥ अव्यक्तादण्डमुत्पन्नमव्यक्तादपरःप्रभुः ॥ यस्मात्परतरंनास्ति तमस्मिशरणंगतः ॥ २७ ॥ चिन्तयन्तोहियंनित्यं ब्रह्मेशानादयःप्रभुम् ॥ एकांशेनजगत्सर्वं योवि ष्टभ्यविभुःस्थितः ॥ २८ ॥ अग्राह्योनिर्गुणश्शास्ता तमस्मिशरणंगतः ॥ दिवाकरस्यसोमस्य मध्येज्योतिरिवस्थि तम् ॥ २९ ॥ क्षेत्रज्ञइतियंप्राहुः समहात्माप्रसीदतु ॥ साङ्ख्ययोगेनयेचान्ये सिद्धाश्चैवमहर्षयः ॥ ३० ॥ यंविदित्वाविमु च्यन्ते समहात्माप्रसीदतु ॥ नमस्तेसर्वतोभद्र सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥ ३१ ॥ निर्विकारनमस्तेस्तु आदिकल्पहृदिस्थि त ॥ अतीन्द्रियनमस्तुभ्यं परमात्मन्नमोस्तुते ॥ ३२ ॥ येचत्वामभिजानन्ति संसारेनवसन्तिते ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ता लोभमोहविवर्ज्जिताः ॥ ३३ ॥ अशरीरःसुगुप्तःसन्सर्वदेहेषुतन्मयः ॥ अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारमहाभूतेन्द्रियाणिच ॥ ३४ ॥

हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे जो कोई सिद्ध व महर्षिलोगहैं ये सांख्ययोगसे ॥ ३० ॥ जिसको जानकर संसार से छूटजाते हैं वह महात्मा प्रसन्नहोवे हे सर्वतोभद्र ! हे चारोंतरफ आंख, शिर, मुहँवाले ! आपके लिये नमस्कारहै ॥ ३१ ॥ हे निर्विकार! हे आदिकल्प ! हे हृदयमें बैठनेवाले ! आपके लिये नमस्कारहै हे अतीन्द्रिय ! आप के लिये नमस्कार है व हे परमात्मन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ राग और द्वेषसे छूटेहुये तथा लोभ और मोह से रहित जो लोग आपको जानते हैं वे संसार में नहीं बसते हैं ॥ ३३ ॥ शरीरसे रहित, अत्यन्त छिपेहुये, सब देहों में देहही के तुल्य आप रहते हैं व जो माया, बुद्धि, अहङ्कार, महाभूत और इन्द्रिया हैं ॥ ३४ ॥

वे आपही में रहती हैं आप उनमें नहीं रहतेहो आपहीके आश्रित ये सबहैं किन्तु आपहीआप नहीं होसक्ते हैं व आप प्रत्यक्ष नहीं हो और अत्यन्त कूटस्थ भी नहीं हो क्योंकि गुणोंके ईश्वरहो और अपने वशहो ॥ ३५ ॥ संसाररूपहो और कारण से रहितहो सबके स्वामीहो, अपने स्वरूपही में स्थितहो, हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके लिये नमस्कार है हे वासुदेव! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे जगन्नाथ ! आप तो ईश्वरहो इससे बहुत क्या कहाजावे आप भक्तोंको मुक्तिके देनेवालेहो और सबके गुरु व देवताओं के ईश्वरहो ॥ ३७ ॥ सब प्राणियों के मालिक वेही आप हमारे जन्म २ में स्वामी होवें क्योंकि अहङ्कार व सत्त्वआदि गुणोंसे मैं बँधा

त्वयितानिनतेपुत्वन्तेचतानिनतुस्वयम् ॥ अव्यक्तोनातिकूटस्थो गुणानांप्रभुरीश्वरः ॥ ३५ ॥ आवर्तोहेतुरहितः प्रभुःस्वात्मव्यवस्थितः॥नमस्तेपुण्डरीकाक्ष वासुदेवनमोस्तुते॥३६॥ ईश्वरोसिजगन्नाथ किमतःपरमुच्यते॥भक्तानांमुक्तिदस्त्वञ्च गुरुश्चत्रिदशेश्वरः॥३७॥ समेभूतपतिस्त्वंहि प्रभुर्जन्मनिजन्मनि॥अहङ्कारेणबद्धोवा तथासत्त्वादिभिर्गुणैः॥३८॥पृथिवींयातुमेघ्राणं यातुमेरसनाजलम्॥ चक्षुर्हुताशनंयातुस्पर्शोमेयातुमारुतम् ॥३९॥ शब्दश्चाकाशमायातु मनोवैकारणंतथा॥अहङ्कारश्चमेबुद्धिंत्वयिबुद्धिर्ममास्त्विति॥४०॥ वियोगःसर्वकरणैर्गुणैर्भूतैस्तथास्तुमे॥ सत्त्वंरजस्तमश्चैव प्रकृतिंस्वांविशन्तुमे ॥ ४१ ॥ प्रभोःप्रभुमनवद्यं प्रपद्येहंनरःप्रभुम्॥ सहस्रशिरसंदेवं महर्षिंभूतभावनम्॥४२॥ ब्रह्मयोनिश्चविश्वस्य समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ब्रह्मपत्न्यांप्रलीयन्ते नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ ४३ ॥ आहूतसंप्लवेचैव लीयते

हुआहूं ॥ ३८ ॥ हमारी नासिका अपने कारण पृथिवी को जावे, हमारी जिह्वा जलको जावे व नेत्र अग्निको जावे, हमारी खाल वायुको प्राप्तहोवे ॥ ३९ ॥ वाणी आकाशको जावे, मन अपने कारणको प्राप्तहोवे, हमारा अहङ्कार बुद्धिको जावे और हमारी बुद्धि आपमें लीनहोवे ॥ ४० ॥ सब इन्द्रिय, गुण और पृथिवीआदि महाभूतोंसे मेरा वियोग होजावे व हमारे सत्त्वगुण व रजोगुण और तमोगुण अपने २ कारण में लीन होजावें ॥ ४१ ॥ मालिकों के मालिक, दोषोंसे रहित, हजारों शिरोंवाले, महर्षि, प्राणियों के रचनेवाले, देवके मैं मनुष्य शरणहूं ॥ ४२ ॥ वेदों व जगत् के कारण वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे, स्थावर जङ्गमरूप सब जगत्के नष्ट

होनेपर जगत् के सब कारण मायामें लीन होते हैं ॥ ४३ ॥ प्रलय के होनेपर महत्तत्त्व प्रकृति में लीन होताहै वैष्णवसूक्त के सामवेद के दो मन्त्रोंसे जिसके वास्ते होम कियाजाता है वह विष्णु मुझसे प्रसन्न होवे ॥ ४४ ॥ अग्नि, चन्द्र, सूर्य, देवता, ब्रह्मा,रुद्र, इन्द्र और योगियोंके तेजोंको जो बढ़ाताहै वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ ४५ ॥ आप उत्पन्न नहीं होते हैं और इस दुनिया की रास्ता तुम्हींहो आपकी कोई मूर्त्ति अर्थात् देह नहीं है और सब देहोंके जीतनेवालेहो आप पुराने कभी नहीं होते हमेशा नये बनेरहते हो माया व महत्तत्त्वरूपहो चेतन पुरुष आलस्यरहित आपही हो ॥ ४६ ॥ जो चेतनरूप से प्रत्यक्ष विद्यमान और सबसे श्रेष्ठ है उसी के हम शरणागत हैं चन्द्रमा और सूर्यकी तरह जो आपही तेजको फैलाता है ॥ ४७ ॥ जिससे सब दिशायें प्रकट होती हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे गुणवाला

प्रकृतौमहत ॥ हूयतेचश्रुनस्ताभ्यां समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४४ ॥ अग्निसोमार्कदेवानां ब्रह्मरुद्रेन्द्रयोगिनाम् ॥ यस्ते जयतितेजांसि समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४५ ॥ अजस्त्वंजगतःपन्था अमूर्तिर्विश्वमूर्तिजित् ॥ नवंप्रधानञ्चमहान् पुरुषश्चेतनोलसः ॥ ४६ ॥ अगोप्योयःपरतरस्तमेवशरणंगतः ॥ सोमसूर्य्योपमस्तेजो योवतारयतिस्वयम् ॥ ४७ ॥ विजायन्तेदिशोयस्मात्समहात्माप्रसीदतु ॥ गुणवान्निर्गुणश्चैवचेतनोचेतनोस्वगः ॥ ४८ ॥ सूक्ष्मःसर्वगतोदेहः समहात्माप्रसीदतु ॥ सूर्य्यमध्येस्थितस्सोमस्तस्यमध्येतुसंस्मृतः ॥ ४९ ॥ भूतत्वाद्योचलोदीप्तः समहात्माप्रसीदतु ॥ एकत्वात्त्वनानात्वंयेविदुर्यान्तितेपरम् ॥ ५० ॥ समस्सर्वेषुभूतेषुप्रद्वेष्यात्मजनप्रियः ॥ समंभजत्यनाकाङ्क्षी भजतेनन्यचेतसः ॥ ५१ ॥ योयंसर्वात्मनाज्ञेयः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ चराचरमिदंसर्वं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ५२ ॥ त्वयितंतन्तुव

और जो निर्गुणभी है चेतन है और अपने आपको न जानने से अचेतन ऐसाभी है ॥ ४८ ॥ सूक्ष्महै सबमें प्राप्तहै और देहरहित है वह महात्मा प्रसन्न होवे सूर्य्य के बीचमें पार्वती सहित शिवहैं तिनमें चेतनरूपसे जो रहताहै पृथिवीआदि महाभूतोंके तुल्य होनेसे अचलहै परन्तु आप प्रकाशवाला है वह महात्मा प्रसन्न होवे पहले आपके एक होनेसे फिर पीछेसे आपके अनेक होनेको जो जानते हैं वे परमात्मा को प्राप्तहोते हैं ॥ ४९ । ५० ॥ सब प्राणियों में जो एकरस है शत्रु, मित्र और उदासीन को बराबर भजता है आप कुछ इच्छा नहीं करता पर अनन्यभक्तोंको भजता है ॥ ५१ ॥ जो यह सबतरह से जाननेयोग्य है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे चराचर

यह सब चारों प्रकार के प्राणियों का समूह ॥ ५२ ॥ आपमें गुँथाहै जैसे मणियां सूतमें गुँथी होवें आपको धर्म व अधर्म नहीं होताहै और गर्भ व जन्म आपका नहीं है ॥ ५३ ॥ इससे बुढ़ापा व जन्मसे छूटने के वास्ते मैं उसी के शरणागतहूं सब योनियोंमें इन्द्रिय,गुण,श्वास और ऊपरका श्वास होताहै ॥५४॥ देह तो केवल काठकी तरह जड़ व नाशवाली व विपत्तिरूप है और अकेला होना तो हमारा आपही से सिद्धहै परन्तु देहके जन्म से हमारी उत्पत्ति जानपड़ती है ॥ ५५ ॥ इससे आपही में जिसकी बुद्धिहै और आपही में जिसके प्राणहैं व आपहीका भक्त और आपहीमें लगाहुआ मैं मौतके आनेपर आपहीका स्मरण करूंगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्म में किये

त्प्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ॥ नतेधर्म्मोह्यधर्म्मोस्ति नगर्भोजन्मवापुनः ॥ ५३ ॥ जराजन्मविमोक्षार्थं तमेवशरणंगतः ॥ इन्द्रियाणिगुणश्चैव श्वासोच्छ्वासश्चयोनिषु ॥ ५४ ॥ केवलंदारुवद्देहं नश्यंयत्परमापदम् ॥ स्वयमेकाकिभावोमेजन्म तोत्रपुनर्भवः ॥ ५५ ॥ त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ॥ त्वामेवाहंस्मरिष्यामि मरणेपर्य्युपस्थिते ॥ ५६ ॥ पूर्वदेहेकृतायेतु व्याधयःप्रविशन्तुमाम् ॥ वातादयश्चदुःखानिऋणंतन्मुञ्चतात्प्रभो ॥ ५७ ॥ श्रेयसांचपरंश्रेयस्त्व न्येपाञ्चयशस्विनाम् ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं पुण्यंयत्परमंपदम् ॥ ५८ ॥ प्रातरुत्थायसततं मध्याह्नेचदिनक्षये ॥ अज स्रञ्चतथाजप्यं सर्वपापोपशान्तिदम् ॥ ५९ ॥ हरिंकृष्णंहृषीकेशं वासुदेवंजनार्दनम् ॥ प्रणतोस्मिजगन्नाथं समेपापं व्यपोहतु ॥ ६० ॥ गोवर्द्धनधरंदेवं गोब्राह्मणहितेरतम् ॥ प्रणतोस्मिगदापाणिं समेपापंव्यपोहतु ॥ ६१ ॥ शङ्खिनंच

हुये पाप रोगरूप से प्रवेशकरें और वात, पित्त,कफआदि व दुःखभी मुझ में पैठें जिससे हे प्रभो ! यह ऋण मेरा छूटजावे ॥ ५७ ॥ और यशवाले महात्माओं को जो पुण्यवाला परमपद कल्याणों में भी कल्याणरूप है सदा प्रातःकाल उठकर व मध्याह्न में व सायङ्काल में सब पापोंकी शान्तिका देनेवाला यह स्तोत्र सब पापोंकी विशुद्धिके लिये निरन्तर जप करनेलायक है ॥५८॥५९॥ हरि, कृष्ण, हृषीकेश,वासुदेव, जनार्दन और जगन्नाथको मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे ॥६०॥ गोवर्द्धनके धरनेवाले, गऊ और ब्राह्मणों के हितमें लगेहुये, हाथमें गदाके रखनेवाले, देवको मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको दूरकरे ॥ ६१ ॥ शङ्खवाले,

चक्रवाले, शार्ङ्गधनुष के धरनेवाले, मधुदैत्य के मारनेवाले, लक्ष्मीके पति विष्णु को मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६२ ॥ संसारकी स्थितिके लिये वर्त्तमान, कमलके समान नेत्रवाले, अविनाशी, आनन्दयुक्त, दामोदर भगवान् को मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६३ ॥ नारायण, नर, सौम्य (सीधे), माधव, जनार्दन, श्रीवत्सवाले, शोभा या लक्ष्मीयुक्त देहवाले, लक्ष्मीवाले, लक्ष्मी के धारण करनेवाले, लक्ष्मी के स्थान ॥ ६४ ॥ और लक्ष्मी के पतिको मैं प्रणाम करताहूं वह मेरे पापको नाशकरे व नाशरहित, सब प्राणियों के जिस मालिकका महात्मा लोग ध्यान करते हैं ॥ ६५ ॥ किसीतरह जो नहीं बत-

क्रिणंविष्णुं शार्ङ्गिणंमधुसूदनम् ॥ प्रणतोस्मिपतिंलक्ष्म्याःसमेपापंव्यपोहतु ॥ ६२ ॥ दामोदरंमुदायुक्तं पुण्डरीकाक्ष मव्ययम् ॥ प्रणतोस्मिस्थितंस्थित्यै समेपापंव्यपोहतु ॥ ६३ ॥ नारायणंनरंसौम्यं माधवञ्चजनार्दनम् ॥ श्रीवत्संश्रीवपुः श्रीमच्छ्रीधरंश्रीनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ प्रणतोस्मिश्रियःकान्तं समेपापंव्यपोहतु ॥ यमीशंसर्वभूतानां ध्यायन्तिचतमक्षर म् ॥ ६५ ॥ वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ सर्वबन्धविनिर्मुक्तो यंप्रविश्यपुनर्भवम् ॥ ६६ ॥ पुरुषोनैवप्राप्नोति तमस्मिशरणङ्गतः ॥ कृत्वाब्रह्मवपुस्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ६७ ॥ यःकरोतिपुनस्सृष्टिं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ ब्रह्मरूप धरन्देवं योनिरूपंजनार्दनम् ॥ ६८ ॥ सृष्टित्वेसंस्थितन्नित्यं प्रणतोस्मिजनार्दनम् ॥ यस्मान्नान्यत्परंकिञ्चिद्यस्मि न्सर्वमिदंजगत् ॥ ६९ ॥ यस्सर्वमध्यगोनन्तस्सर्वगन्तंनमाम्यहम् ॥ योस्तिभूतेषुसर्वेषु स्थावरेजङ्गमेषुच ॥ ७० ॥

लाया जासक्ता है उस वासुदेव की शरण को मैं प्राप्तहूं व जिसको पाकर सब बन्धनों से छूटा पुरुष फिर जन्मको नहीं पाताहै हम उसीके शरणागत हैं व प्रलयमें जो देवता, दैत्य और मनुष्यों के सहित सब जगत् को ब्रह्मरूपकर फिर सृष्टिको करताहै हम उसीके शरणागतहैं व जो देव प्रलय में ब्रह्मरूप का धरनेवाला है और सृष्टि में वही जनार्दन कारणरूप होताहै उसी जनार्दनको मैं सदा प्रणाम करताहूं जिससे परे और कुछ नहीं है और जिसमें यह सब संसार रहताहै ॥ ६६ । ६७ । ६८ । ६९ ॥ जो सबके बीचमें प्राप्तहै और अन्त जिसका नहीं है ऐसे घट २ वासीके हम नमस्कार करते हैं जो सब स्थावर, जङ्गम, प्राणियोंमें विद्यमान है ॥ ७० ॥

वही विष्णु हमारे सब पापोंको नाशकरै जैसे निवृत्तिरूप कियागया कर्म व विष्णुके वास्ते कियागया कर्म निवृत्त होजाताहै ॥ ७१ ॥ इसीतरह अनेक जन्मोंके कर्मोंसे उठाहुआ मेरा पाप नष्ट होजावे व रात्रि तथा प्रातःकाल,मध्याह्न और अपराह्णमें ॥ ७२ ॥ अज्ञानसे मन,वचन और शरीरसे जो कुछ पापमैंने कियाहो वह सब क्षणमात्र में नष्ट होजावे ॥ ७३ ॥ जैसे पानी में लोन पिघलजाताहै वैसेही वह सब पाप नष्ट होजावे, औरों को पीड़ा देतेहुये व औरोंकी निन्दा करतेहुये हमारे जन्मसे जो पाप कमायागया हो ॥ ७४ ॥ व गैरकी द्रव्य व उसके खेत या मकानआदि की इच्छासे व क्रोध से जो पापहुआहो वह सब लीनहोजावे जैसे पानी में लोन पिघलजाता

विष्णुरेवसर्वैपापं ममाशेषंप्रणश्यतु ॥ नवृत्तंनिर्वृतंकर्म्मविष्णोर्यत्कर्म्मवाकृतम् ॥ ७१ ॥ अनेकजन्मकर्म्मोत्थं पापंनश्यतिमेतथा ॥ निशायाञ्चतथाप्रातर्मध्याह्नेचापराह्णयोः ॥ ७२ ॥ अज्ञानाच्चकृतंपापं कर्म्मणामनसागिरा ॥ यत्कृतंचाशुभंकिञ्चित्तत्सर्वंनश्यतुक्षणात् ॥ ७३ ॥ तत्सर्वंविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ परपीडाञ्चनिन्दाञ्च कुर्वतोजन्मनार्ज्जितम् ॥ ७४ ॥ परद्रव्यपरक्षेत्रवाञ्छाक्रोधोद्भवञ्चयत् ॥ तत्सर्वंविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ ७५ ॥ विष्णवेवासुदेवाय हरयेकेशवायच ॥ जनार्द्दनायकृष्णाय नमोभूयोनमोनमः ॥ ७६ ॥ नाभागोनामराजर्षिर्नर्म्मदातीरसङ्गमे ॥ चकारस्तोत्रमतुलं वैष्णवन्तुप्रजापतिः॥७७ ॥ ब्रह्मणोङ्गिरसाप्राप्तं तस्मादिन्द्रेणभारत ॥ वशिष्ठः श्रावयामास नाभागंराजसत्तमम् ॥ ७८ ॥ स्नात्वाचनर्म्मदातोये दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ कामिकंयानमारुह्य नाभागस्स्वपुरींययौ ॥ ७९ ॥ स्तौतिनामसहस्रेण यस्स्तवेनजनार्द्दनम् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे विष्णुस्तुतिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥

है ॥ ७५ ॥ विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन और कृष्णजी के लिये बार २ नमस्कार है ॥ ७६ ॥ नर्मदाके तीर सङ्गम में नाभागनामके राजर्षि प्रजापति इस अतुल प्रभाववाले वैष्णवस्तोत्रको करतेहुये ॥ ७७ ॥ ब्रह्मासे इसको अङ्गिराने पाया हे भारत ! उनसे इन्द्रने पाया और वशिष्ठजीने राजाओंमें श्रेष्ठ नाभागको सुनाया ॥ ७८ ॥ नर्मदा के जलमें स्नानकर और अनेक दानोंको देकर मनमानी सवारी पर सवार होकर नाभाग राजा अपनी पुरीको जातेहुये ॥ ७९ ॥ हजारनामवाले इस

स्तोत्रसे जो जनार्दन देवकी स्तुति करताहै उसकी फिर इस घोर संसारसागरमें आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेविष्णुस्तुतिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेचराजेन्द्र मेघनादमितिस्मृतम् ॥ जलमध्येमहादेवो यत्रतिष्ठत्यदर्शितः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ जलमध्येमहादेवस्तिष्ठतेकेनहेतुना ॥ उत्तरंदक्षिणंकूलं वर्ज्जयित्वाद्विजोत्तम ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एतदाख्यानमतुलं पुण्यंश्रुतिसुखावहम् ॥ पुराणेयच्छ्रुतंतात तत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३ ॥ पुरात्रेतायुगेतात पौलस्त्योदेवकण्टकः ॥ त्रिलोकविजयीरौद्रस्सुरासुरभयङ्करः ॥ ४ ॥ देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ अवध्योवरदानेन यत्रपर्य्यटतेमहीम् ॥ ५ ॥ तत्रदेवगिरौरम्येदानवोबलदर्पितः ॥ मयोनामेतिविख्यातो महानासीन्नृपेश्वर ॥ ६ ॥ रावणस्तन्ततोगत्वा विनयावनतःस्थितः ॥ पूजितोदानसम्मानैर्मयंवचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ कस्येयंपद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ किन्नामधेयातपते तपउग्रंकथंविभो ॥ ८ ॥ मयउवाच ॥ दानवानाम्पतिःश्रेष्ठो मयोह

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! फिर मेघनाद इस नामके तीर्थको जावे जिसमें किसीको देख नहीं पडते ऐसे महादेवजी जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! दक्षिण और उत्तर के किनारे को छोंडकर पानीके बीचमें महादेवजी किस कारणसे रहते है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी फिर बोले कि हे तात ! यह आख्यान बड़ा पुण्यवाला व कानोंको सुख देनेवालाहै इसको जैसे पुराणमें हमने सुनाहै वैसेही आपसे सब कहेंगे ॥ ३ ॥ हे तात ! अगिले जमाने में त्रेतायुग विषे देवताओं को कांटासा, तीनोंलोकों का विजय करनेवाला, देवता और दैत्यों को भय करानेवाला, पुलस्ति के वंशवाला (रावण) राक्षस ॥ ४ ॥ वरदान के कारण से देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राक्षसों के नहीं मारने योग्य होताहुआ जहां पृथिवी में घूमरहा था ॥ ५ ॥ हे नृपेश्वर ! उसी रमणीक देवपर्वतपर अपने बलसे अहङ्कारको प्राप्त होरहा मय इस नामसे प्रसिद्ध बडा जबरदस्त दानवभी विद्यमान था ॥ ६ ॥ तब रावण उसके पास जाकर अपनी लियाक़तसे नम्र होकर खड़ाहुआ व दान और सम्मान से पूजन कियागया मयसे वचन बोला ॥ ७ ॥ कि हे विभो ! कमलदल सरीखे नेत्रोंवाली व पूर्णचन्द्रके बराबर

मुखवाली यह कन्या किसकी है और इसका क्या नामहै व किसलिये यह उग्र तपस्याको करतीहै ॥ ८ ॥ तब मय बोला कि दानवोंका श्रेष्ठपति मैं नामसे मय नाम का दानवहूं और यह तेजवती नाम मेरी स्त्रीहै व यह सुन्दरी कन्याभी मेरीहै ॥ ६ ॥ जोकि मन्दोदरी इस नामसे प्रसिद्धहै पतिके वास्ते तपस्या करतीहै तब मदसे अहङ्कारवाला रावण उसके वचन को सुनकर ॥ १० ॥ नम्रहोकर खड़ाहुआ मयसे वचन बोला कि देवता और दानवों के अहङ्कारका तोड़नेवाला मैं पौलस्त्य (रावण) नामका राजाहूं ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! मैं आपसे प्रार्थना करताहू कि आप कन्यादेनेको योग्यहो तब ब्रह्माजीका वंश जानकर मय महात्मा भी ॥ १२ ॥ विधिसे रावण

न्नामनामतः ॥ भार्य्यातेजवतीनाम ममेयंतनयाशुभा ॥ ६ ॥ मन्दोदरीतिविख्याता तपतेपतिकारणात् ॥ श्रुत्वातुवचनंतस्य रावणोमददर्प्पितः ॥ १० ॥ प्रश्रितःप्रणतोभूत्वामयंवचनमब्रवीत् ॥ पौलस्त्योनामराजाहं देवदानवदर्प्पहा ॥ ११ ॥ प्रार्थयामिमहाभाग सुतान्त्वन्दातुमर्हसि ॥ ज्ञात्वापैतामहंवंशंमयेनापिमहात्मना ॥ १२ ॥ सुतादत्ताराबणाय कृत्वाविधिविधानतः ॥ गृहीत्वातान्तदारक्षः पूज्यमानोनिशाचरैः ॥ १३ ॥ दिव्यैर्यानैर्विमानैश्च क्रीडतेतुतयासह ॥ पुत्रंपुत्रवतांश्रेष्ठो जनयामासभारत ॥ १४ ॥ तेनैवजातमात्रेण रवोमुक्तोमहात्मना ॥ संवर्तकस्यमेघस्य येनलोकोजडीकृतः ॥ १५ ॥ श्रुत्वातन्निनदंघोरं त्रस्तोलोकपितामहः ॥ नामचक्रेतदातस्य मेघनादोभविष्यति ॥१६॥ एतन्नामकृतंसोपि परमंव्रतमास्थितः ॥ भावयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ १७ ॥ व्रतैर्नियमदानैश्च होमैर्जाप्यै

को अपनी कन्या देताहुआ तब वह राक्षस और राक्षसोंसे पूजन कियाजाता उस कन्याको लेकर ॥ १३ ॥ दिव्य सवारी व विमानोंसे उस अपनी स्त्रीके सहित विहार करताहुआ और हे भारत ! पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ रावण एक पुत्र पैदा करताहुआ ॥ १४ ॥ उत्पन्न होतेही उस लड़के ने महाप्रलयके मेघकासा शब्द किया जिस शब्दसे लोक जड़ करदियागया ॥ १५ ॥ उस घोरशब्द को सुनकर ब्रह्माजी डरगये तब उसका नाम किया कि यह मेघनाद होवेगा ॥ १६ ॥ यह नाम जब उसका कर दियागया तब वह भी बड़ेभारी व्रतमें स्थित होताहुआ और पार्वती के सहित देवेश महादेवजी को प्रसन्न करताहुआ ॥ १७ ॥ व्रत, नियम, दान, होम, जप और

दिव्य कृच्छ्रचान्द्रायणआदिकोंसे अपने शरीरको क्लेश देताहुआ ॥ १८ ॥ इसीतरह तप करताहुआ हे तात ! एक दिन कैलास पर्वतपर जाकर और महादेवके लिङ्गको लेकर दक्षिणमुख यात्रा करताहुआ ॥ १९ ॥ स्नान करनेकी इच्छा से बडा बलवाला मेघनाद नर्मदा के तटपर उतरकर और लिंगरूपी महादेव को वहां धरकर पूजन करताहुआ व जपको कर फिर वह राजा ॥ २० ॥ बडीदूर लङ्कामें जानेकी इच्छा करताहुआ हे नृपसत्तम ! बायें हाथसे एक पड़ेहुये लिंगको उठाया ॥ २१ ॥ जब रावणका बेटा पहले और दूसरे लिंगको भक्ति से उठानेलगा तो महादेव जीका वह महालिंग नर्मदा के जलमें गिरपड़ा ॥ २२ ॥ फिर उस परमेष्ठी लिंगने

विधानतः ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणैर्दिव्यैः क्लिश्यतेचकलेवरम् ॥ १८ ॥ एवमन्यद्दिनेतात कैलासंधरणीधरम् ॥ गत्वालिङ्गमयंगृह्य प्रस्थितोदक्षिणामुखः ॥ १९ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य स्नातुकामोमहाबलः ॥ निक्षिप्यापूजयद्देवं कृत्वाजाप्यंजनेश्वरः ॥ २० ॥ गन्तुकामःपरंमार्गं लङ्कायांनृपसत्तम ॥ एकंसमुद्धृतंलिङ्गं पतितंसव्यपाणिना ॥ २१ ॥ प्रथमञ्चद्वितीयञ्च भक्त्यापौलस्त्यनन्दनः ॥ तदादेवमहालिङ्गं पतितन्नर्म्मदाम्भसि ॥ २२ ॥ पाहिपाहीतितेनोक्तो लिङ्गेनपरमेष्ठिना ॥ द्वितीयंपतितंतावदुत्तरेनर्म्मदातटे ॥ २३ ॥ मेघनादेतिविख्यातं लिङ्गंतत्रसुशोभनम् ॥ मध्यमेश्वरनामेतिजलमध्येव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ यावदुद्धर्तुकामोसौ सप्तपातालमागमत् ॥ देवयोनिश्चयंज्ञात्वा निवृत्तोसौनिशाचरः ॥ २५ ॥ जगामाकाशमाविश्य पूज्यमानोनिशाचरैः ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं मेघनादेतिविश्रुतम् ॥ २६ ॥ मेघारवेतिविख्यातमुत्तरेखेटकःशुभः ॥ पूर्वेतुगर्जनन्नाम सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र यस्तुस्नानंसमाच

कहा कि रक्षाकरो २ तबतक दूसरा लिंग भी नर्मदा के उत्तरवाले तटपर गिरपड़ा ॥ २३ ॥ वह अतिसुन्दर लिंग वहां मेघनाद इस नामसे विदित हुआ मध्यमेश्वर यह भी उसका नाम हुआ वह जलके बीचमें स्थित हुआ ॥ २४ ॥ जबतक मेघनाद उसको उठावे तबतक वह सातों पातालोंमें व्याप्त होगया उन दोनों लिंगोके अभिप्रायको जानकर वह राक्षस लौटगया ॥ २५ ॥ और राक्षसों से पूजाजाता हुआ आकाश होकर चलागया तबसे लेकर वह तीर्थ मेघनाद इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ और उसीका मेघारव यह भी नाम विख्यात हुआ नर्मदाके उत्तरतट में खेटक नामका उत्तम तीर्थ हुआ और पूर्वमें सब पापों का नाश करनेवाला गर्जननाम

का तीर्थहुआ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य एक दिन रात व्रत रहकर इस तीर्थमें स्नान करता है वह बहुत कालतक कल्याणको प्राप्तहोता है ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो पिण्डदान करता है तो उससे उसके पितर स्वर्गमें बारहवर्षतक तृप्तरहते है ॥ २९ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है तो जो फल वहां योगियोंको मिलताहै उसी फलको वह भी पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ और जो वहां अग्निप्रवेश व जलप्रवेश व अनशन व्रत करताहै उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है यह महादेवजीने कहाहै ॥ ३१ ॥ हे नरशार्दूल ! इसप्रकार यह उत्तम गर्जितेश्वरतीर्थ आपसे कहागया जो कि स्मरण·

रेत् ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा सलभेच्छाश्वतंशुभम् ॥ २८ ॥ पिण्डदानन्तुयःकुर्य्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ तेनद्वाद शवर्षाणि पितरस्तर्प्पितादिवि ॥ २९ ॥ यस्तुभोजयतेविप्रांस्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ यत्फलंयोगिनांतत्र लभतेनात्रसं शयः ॥ ३० ॥ अग्निवेशंजलेवापि अथवापिह्यनाशकम् ॥ अनिवर्तिकागतिस्तस्य स्यादिदंशङ्करोब्रवीत् ॥ ३१ ॥ एवन्तेनरशार्दूलगर्जितेश्वरमुत्तमम् ॥ कथितंस्मरणादेव सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मेघनादेश्वरमहिमानुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेचराजेन्द्र दारुतीर्थमनुत्तमम् ॥ दारुकोयत्रसंसिद्धिमिन्द्रस्यदयितस्सखा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ दारुकेणकथंतात तपश्चीर्णंपुरानघ ॥ विधानंश्रोतुमिच्छामि सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अहन्तेकथयिष्यामि विचित्रंयत्पुरातनम् ॥ वृत्तंसमभवत्तत्र ऋषीणांभावितात्मनाम् ॥ ३ ॥ सूतोवज्रधरस्या

मात्रही से सब पापोंका क्षय करनेवाला है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमेघनादेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम दारुतीर्थको जावे जहां इन्द्रका प्यारा मित्र दारुक सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! हे अनघ ! अगिले जमाने में दारुक ने कैसा तप किया सो सब पापोंके नाश करनेवाले उसके तपके विधान को सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ऋषियों के प्रत्यक्ष जो वहां पुराना विचित्र वृत्तात हुआहै उसको हम तुमसे कहेंगे ॥ ३ ॥ कि नामसे मातलि नामका इन्द्रका सारथि

हुआ सो वह पूर्वकाल में किसी कारण के होनेपर अपने पुत्रको शाप देताहुआ ॥ ४ ॥ तब हे भारत ! शापके कारणसे कांपताहुआ दारुक कल्याणदायक, इन्द्रजी के दोनों पांवोंको पकड़कर वहीं देवेन्द्रजी से कहताहुआ ॥ ५ ॥ कि हे सुरेश्वर ! अपने पितासे शापित कियेगये अनाथ मेरे घोरशापका अन्त किस कर्म से होगा ॥ ६ ॥ तब इन्द्रजी बोले कि तू नर्मदाके तटपर जाकर जबतक युगका अन्तहो तब तक रह और महादेवजी को प्रसन्न कर इससे तेरा जन्म फिर होगा ॥ ७ ॥ फिर से तू यदुकुल में नाम से दारुक नामका होकर वहीं मनुष्ययोनि में विद्यमान शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले देवेश नारायण को रथपर चढाकर उससे सिद्धि को

सीन्मातलिर्नामनामतः ॥ सपुत्रंशप्तवान्पूर्वं कथञ्चित्कारणान्तरे ॥ ४ ॥ शापहेतोर्वेपमान इन्द्रस्यचरणौशुभौ ॥ प्रपीड्यतत्रदेवेन्द्रं विज्ञापयतिभारत ॥ ५ ॥ ममतातामिशप्तस्य अनाथस्यसुरेश्वर ॥ कर्म्मणाकेनशापस्य घोरस्यान्तोभविष्यति ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य तोपयत्वंमहेश्वरम् ॥ तिष्ठयावद्युगस्यान्तं पुनर्जननमाप्स्यसि ॥ ७ ॥ पुनर्भूत्वायदुकुले दारुकोनामनामतः ॥ आरोहयित्वादेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८ ॥ मानुषंतत्रसम्पन्नं ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ एवमुक्तस्तुदेवेन सहस्राक्षेणभारत ॥ ९ ॥ प्रणम्यशिरसाभूमिमागतोसौहतप्रभः ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य कर्शितस्वकलेवरः ॥ १० ॥ व्रतोपवासैर्विविधैर्जपहोमपरायणः ॥ महादेवंमहात्मानं वरदंशूलपाणिनम् ॥ ११ ॥ अभजत्परयाभक्त्या यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ अंशावतरणेविष्णोस्ततोभूत्वामहामतिः ॥ १२ ॥ तोषयित्वाजगन्नाथं ततोयातस्ससद्गतिम् ॥ एषतेसम्भवस्तातदारुतीर्थस्यसुव्रत ॥ १३ ॥ कथितस्तुमयापूर्वं यथामेशङ्क

पावेगा हे भारत ! इस प्रकार इन्द्रदेव से कहा गया दारुक ॥ ८ । ९ ॥ शिर से इन्द्रके नमस्कार कर तेजरहित आप पृथिवी को आताहुआ और नर्मदा के तटपर जाकर जप व होम करनेमें लगा हुआ अनेक तरहके व्रत व उपासों से दुर्बल करदिया है अपने शरीर को जिसने ऐसा दारुक वर के देनेवाले महात्मा शूलपाणि महादेवजी को ॥ १० । ११ ॥ बडी भक्ति से युगान्ततक भजता हुआ तदनन्तर अंशों से विष्णुके अवतारके होनेपर आपभी बडा बुद्धिवाला उत्पन्न होकर ॥ १२ ॥ और जगत् के स्वामी नारायणको प्रसन्नकर तदनन्तर वह उत्तम गतिको प्राप्तहुआ हे तात ! हे सुव्रत ! यह दारुक तीर्थकी उत्पत्ति आप से ॥ १३ ॥ मैंने कही पहले

जैसे शङ्करजी ने मुझसे कही थी तब आश्चर्य से युक्त बुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर ॥ १४ ॥ बार बार रोयें जिनके खड़े होते ऐसे आप घबडाने से देखनेलगे फिर मार्कण्डेयजी ने कहा कि हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में विधिपूर्वक मनुष्य स्नानकर ॥१५॥ और सन्ध्योपासन कर व वहीं पितर और देवताओं का तर्पणकर जो सावधान होता हुआ वहीं देह त्याग करताहै ॥ १६ ॥ वह अश्वमेध के फलको पाकर महादेवजी के समीप रमताहै और उस तीर्थ में जो भक्ति से पवित्र होकर ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ १७ ॥ वह हजार ब्राह्मणो के भोजन कराने के उत्तम फलको पाता है स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितरोंका तर्पण आदि जो कुछ शुभकर्म

रोऽब्रवीत् ॥ ततोयुधिष्ठिरोराजा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १४ ॥ भ्रान्तोवलोकयामास स्तब्धरोमामुहुर्मुहुः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वा विधिपूर्वंनरेश्वर ॥ १५ ॥ उपास्यसन्ध्यांतत्रैव सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ देहत्यागञ्चतत्रैव यःकरोतिसमाहितः ॥ १६ ॥ सोऽश्वमेधफलंप्राप्य रमतेशिवसन्निधौ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या भोजयेद्ब्राह्मणंशुचिः ॥ १७ ॥ सतु विप्रसहस्रस्य लभतेफलमुत्तमम् ॥ स्नानंदानंतपोहोमस्स्वाध्यायः पितृतर्प्पणम् ॥ १८ ॥ यत्कृतन्तुशुभंतत्र तत्सर्वंलभतेऽक्षयम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे दारुतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र देवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्तप्त्वासिद्धिपराङ्गताः ॥ १ ॥ पुरा देवासुरेयुद्धे दानवैर्बलदर्पितैः ॥ इन्द्रोदेवगणैस्सार्द्धं स्वराज्याच्च्यावितोभृशम् ॥ २ ॥ हस्त्यश्वरथयानौघैर्मर्द्दयित्वाचवाहिनीम् ॥ विशक्ताभेजिरेमार्गं प्रहारैर्जर्ज्जरीकृताः ॥ ३ ॥ जम्भशुम्भनिशुम्भाद्यैस्तुहुण्डग्रहकैस्सह ॥ बलिभि

वहां कियागया वह सब अक्षय मिलता है ॥ १८ । १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेदारुतीर्थमहिमाऽनुवर्णनेनामचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम देवतीर्थ को जावे जहां तैंतीस देवता तप करके परमसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ १ ॥ आगे देवता और दैत्योंकी लड़ाई में बलके अभिमानी दैत्योंने देवताओं के सहित इन्द्रको उनकी राज्य से भ्रष्टकरदिया ॥ २ ॥ अपने हाथी, घोडे, रथ और भी सवारियों के समूहों से देवताओं की सेना को मर्दनकर उनको अपने प्रहारों से जर्जर करदिया तब अशक्त होकर देवताओं ने भागने की रास्ता ली ॥ ३ ॥ जम्भ, शुम्भ, निशुम्भ और तुहुण्डग्रह आदिके

सहित बली दैत्योंसे दबायेगये सब देवतालोग ब्रह्माजी के समीप जाते हुये॥ ४ ॥ अपने २ शिरोंसे परमेष्ठी ब्रह्मादेव के प्रणामकर इन्द्र और अग्निआदि देवता अपने स्वामी ब्रह्माजी से अपना हाल कहा॥ ५॥ कि हे महाभाग ! आप हम लोगों को देखो देखो हम दानवों से विकल करदियेगये हैं व दबायेगये हमलोग अपने पुत्रों व स्त्रियोंके सहित आपकी शरण आये हैं॥ ६॥ हे देवेश ! हे सर्वलोकपितामह ! आप हमको बचावें क्योंकि हे सुरेशान ! सबके ऊपर रहनेवाले आपको छोंड़कर हमारी दूसरी गति नहीं है॥ ७॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओ ! दानवों के नाशके लिये नर्मदातट में टिककर तुम सबलोग तप करो क्योंकि तपही परमबल

बाधितास्सर्वे ब्रह्माणमुपतस्थिरे ॥ ४ ॥ प्रणम्यशिरसादेवं ब्रह्माणंपरमेष्ठिनम् ॥ व्यज्ञापयन्तदेवेशमिन्द्राग्निकपुरोगमाः ॥ ५ ॥ पश्यपश्यमहाभाग दानवैराकुलीकृताः॥ बाधिताःपुत्रदाराभ्यां त्वामेवशरणङ्गताः ॥ ६ ॥ परित्रायस्व देवेश सर्वलोकपितामह ॥ नान्यागतिस्सुरेशान मुक्त्वात्वांपरमेष्ठिनम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दानवानांविघातार्थं नर्म्मदातटमाश्रिताः ॥ तपःकुरुतभोदेवास्तपोहिपरमंबलम् ॥ ८ ॥ नान्योपायोनवैमन्त्रो नविद्यानचविक्रमः ॥ विनारेवाजलंपुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ९ ॥ दारिद्र्यव्याधिमरणबन्धनव्यसनानिच ॥ एतानिचैवपापस्यफलानीतिमतिर्मम ॥ १० ॥ एवंज्ञात्वाविधानेन तपःकुरुतदुष्करम् ॥ पूज्यतेशाम्भवंसर्वैः प्राप्नुयाताभयंततः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वावचनन्देवा ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ नर्म्मदामागतास्सर्वे तदेन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ १२ ॥ विचेरुस्तत्रविपुलं तपःपरमदुस्सहम् ॥ सकल्पैःपरमांराजंस्तत्तेसिद्धिमवाप्नुवन् ॥ १३ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं देवतीर्थमितिश्रुतम् ॥ गीयतेसर्वलोकेषु सर्वपाप

है॥ ८॥ सब पापोंको क्षय करनेवाले व पुण्यवाले नर्मदाजल को छोंडकर और कोई मन्त्र व विद्या और पराक्रम इसका उपाय नहीं है॥ ९॥ दरिद्र, रोग, मौत, कैद और पीड़ायें ये सब पापही के फलहैं यह हमारी मतिहै॥ १०॥ ऐसा जानकर विधान से दुष्कर तप को करो और सबलोग महादेवजी के लिङ्गका पूजन करो तिससे अभय पावोगे॥ ११॥ इन्द्र व अग्नि आदि देवता परमेष्ठी ब्रह्माजीके इस वचन को सुनकर सब नर्मदा को आतेहुये॥ १२॥ हे राजन् ! वहां बड़े दुस्सह बहुत तप को कल्पोंतक किया तिससे उन देवताओं ने बड़ी सिद्धिको पाया॥ १३॥ तबसे लेकर वह तीर्थ देवतीर्थ इस नामसे प्रसिद्ध हुआ सबलोकों में सब पापोंका नाश

करनेवाला वह गायाजाता है ॥ १४ ॥ वहां श्रद्धावाले मनसे व भक्तिसे जो विधि सहित स्नान करता है वह मुक्तिफल को पाताहै ॥ १५ ॥ सब देवताओं से पूजेगये उन देवको जो पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के उत्तम फल को पाताहै ॥ १६ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सदा तृप्त रहता है व वहां पर्वत की बढ़ानेवाली व बड़ी पुण्यवाली रमणीक एक देवशिला है ॥१७॥ उस देवतीर्थ में संन्याससे मरेहुये मनुष्योंकी अक्षयगति होती है और हे युधिष्ठिर ! जो वहां अग्निमें प्रवेश करताहै ॥ १८ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहताहै जबतक सृष्टिका प्रलयहोताहै इसीतरह स्नान,जप,होम, स्वाध्याय, देवताओंका पूजन ॥१९॥

क्षयङ्करम् ॥ १४ ॥ तत्रश्रद्धात्मनायोपि विधिनापिसमन्वितः ॥ स्नानंसमाचरेद्भक्त्या सलभेन्मौक्तिकंफलम् ॥१५॥ यस्तमर्चयतेदेवं सर्वदेवैस्तुपूजितम् ॥ लभतेचाश्वमेधस्यफलंयागस्यचोत्तमम् ॥ १६ ॥ यस्तुभोजयतेविप्रांस्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ तत्रदेवशिलारम्या महापुण्याद्रिवर्द्धिनी ॥ १७ ॥ संन्यासेनमृतानान्तु नराणामक्षयागतिः ॥ अग्निप्रवेशंयःकुर्य्याद्देवतीर्थेयुधिष्ठिर ॥ १८ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ एवंस्नानंजपोहोमस्स्वाध्यायोदेवतार्चनम् ॥ १९ ॥ सुकृतंदुष्कृतंवापि तत्रतीर्थेऽक्षयम्भवेत् ॥ एतावद्विधिरुद्दिष्टा उत्पत्तिश्चैवभारत ॥ २० ॥ देवतीर्थस्यचरितं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदेवतीर्थमहिमानुवर्णनोनाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र गुहावासीतिचोत्तमम् ॥ यत्रसिद्धोमहादेवो गुहावासीतिशङ्करः ॥ १ ॥ गु

पुण्य और पाप जो कुछ वहां तीर्थमें कियाजाताहै वह सब अक्षय होताहै हे भारत ! इतनी विधि व तीर्थकी उत्पत्ति कहीगई है ॥२०॥ जिससे कि सब तीर्थोंमें देवतीर्थ का चरित अत्युत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे देवतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ❁ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर गुहावासी इस नामके उत्तम तीर्थ को जावे जहां गुहावासी इस नामसे कल्याण करनेवाले महादेवजी सिद्ध

हुये है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! किस कार्यसे महादेवजी गुहावासी ऐसे कहाये हे अनघ ! यह सब विस्तारसे आप मुझ से कहे ॥ २ ॥ हे देव ! मैं सब सुननेकी इच्छा करताहूं क्योंकि मुझको बडा आश्चर्य है तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! हे नरेश्वर ! आपने जो बड़ा भारी प्रश्न हमसे कियाहै ॥ ३॥ पुराण में इसका बडा विस्तार है बुढ़ापे के कारण से मुझसे वह इस समय नहीं कहाजासक्ता है क्योंकि मैं बहुत कालका हुआहूं ॥ ४ ॥ पहले दारुवन मे देवताओं के समान ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ब्राह्मण रहते थे ॥ ५ ॥ क्योंकि अपने धर्ममें रहनेवालों कोही परमपद कहागयाहै तबतक वसन्तसमय मे किसी

धिष्ठिरउवाच ॥ केनकार्य्येणविप्रेन्द्र गुहावासीतिशङ्करः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वं कथयस्वममानघ ॥ २ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्देव सर्वंकौतूहलंहिमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ महाप्रश्नःकृतोमांयो महाप्राज्ञनरेश्वर ॥ ३ ॥ पुराणेविस्तरोप्यस्य नशक्योहिमयाधुना ॥ वृद्धभावात्कथयितुमहञ्चबहुकालिकः ॥ ४ ॥ पूर्वंदारुवनेविप्रा वसन्तिचसुरैस्समाः ॥ ब्रह्मचारीगृहस्थश्च वानप्रस्थोयतिस्तथा ॥ ५ ॥ स्वधर्म्मनिरतानाञ्च कथितंपरमम्पदम् ॥ तावद्वसन्तसमये कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ६ ॥ विमानस्थोमहादेवो गम्यमानोमयासह ॥ ददर्शचजनावासं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ७ ॥ अगतागतसंवासं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ तद्दृष्ट्वामुदितान्देवीं हर्षगद्गदयागिरा ॥ ८ ॥ उवाचवचनन्देवो दृष्ट्वातापसयोषितः ॥ नान्यन्देवन्नवैधर्म्मं ध्यायन्तिहिमनन्दिनि ॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वापरंवाक्यं देवदेवेनभाषितम् ॥ कौतूहलसमाविष्टा शङ्करंपुनरब्रवीत् ॥ १० ॥ यत्त्वयोक्तंमहादेव पतिधर्म्मपराःस्त्रियः ॥ तासामनङ्गोभूत्वात्वं चरित्रंज्ञोप्ययप्रभो ॥ ११ ॥

कारण से ॥ ६ ॥ पार्वती के सहित महादेवजी विमानपर बैठे जातेहुये वेदों की ध्वनि से भरेहुये उस स्थानको देखा ॥ ७ ॥ सब पापों के क्षय करनेवाले गतागत से रहित उस स्थानको देखकर प्रसन्नहुई देवी पार्वती से खुशीसे घिघघिघाती आवाज से ॥ ८ ॥ तापसों की स्त्रियोंको देखकर महादेवजी वचन बोले कि हे हिमनन्दिनि ! अपने पतियों को छोड़कर ये स्त्रियां और देव व और धर्मका नहीं ध्यान करती हैं ॥ ९ ॥ महादेवजी के कहेहुये इस श्रेष्ठ वचनको सुनकर आश्चर्य से युक्त

पर्वतीजी फिर महादेवजी से बोलीं ॥ १० ॥ कि हे महादेवजी ! जो आपने कहा कि ये स्त्रियां पतिधर्म में तत्पर हैं तो हे प्रभो ! ॥ ११ ॥ आप कामदेव होकर इनकी चालको विगाडो तब महादेवजी बोले कि हे देवि ! हे प्रिये ! यह तुम्हारा कहाहुआ वचन किसीको नहीं रुचताहै क्योंकि ब्राह्मण बडेमहात्मा होतेहैं कोई उनकी नागजी का काम न करेगा ॥ १२ ॥ क्रोधरूप अस्त्रवाले ब्राह्मण होते हैं और चक्र जिनका अस्त्र ऐसे विष्णुजी हैं चक्रसे ब्राह्मण का क्रोध पैनाहै इससे कोईभी ब्राह्मणको क्रुद्ध नहीं करसक्ता है ॥ १३ ॥ तीनो लोकोंमे न वे देवता, न वे लोक, न वे नाग और वे असुर देखपडते हैं कि जिनको क्रुद्ध ब्राह्मणों ने नष्ट न करदिया हो ॥ १४ ॥ बहुधा

महादेवउवाच ॥ त्वयोक्तंवचनन्देवि नचैतद्रोचतेप्रिये ॥ ब्राह्मणाहिमहाभागा नतेषांविप्रियञ्चरेत् ॥ १२ ॥ मन्युप्रहरणाविप्राश्चक्रप्रहरणोहरिः ॥ चक्रात्तीक्ष्णतरोमन्युस्तस्माद्विप्रन्नकोपयेत् ॥ १३ ॥ नतेदेवानतेलोकास्ते नागा नासुरास्तथा ॥ दृश्यन्तेचत्रिभिर्लोकैरतैरुष्टैर्नवञ्चिताः ॥ १४ ॥ तेषांक्षोभकरःप्रायः स्वर्गभोगफलच्युतः ॥ येषांतुष्टा महाभागा ब्राह्मणाःक्षितिदेवताः ॥ १५ ॥ तेषांधर्म्मस्तथार्थश्च कामोमोक्षोनसंशयः ॥ एवंज्ञात्वामहाभागे आग्रहस्त्यज्यतामयम् ॥१६॥ एतल्लोकविरुद्धंहि यदीच्छसिवशेसुखम् ॥ देव्युवाच॥नाहन्तेदयितादेव नाहन्तेवशवर्तिनी ॥ १७ ॥ अन्यायधर्षणांचात्र सर्वासांकुरुसुव्रत ॥ लोकालोकेमहादेव अशक्यंनास्तितेविभो ॥१८॥ क्रियतांममदेवैतत्परंकौतूहलंप्रभो ॥ एवमुक्तोमहादेवो देव्याःप्रियहितेरतः ॥ १९ ॥ कृत्वाकापालिकंरूपं ययौदारुवनंप्रति॥ महाहिनाजटा

ब्राह्मणोंका कोप करानेवाला स्वर्गके भोगरूप फलसे भ्रष्ट होजाताहै और पृथिवीके देवता बड़भागी ब्राह्मण जिनपर खुशरहते हैं ॥ १५ ॥ उनका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष निरसन्देह होताहै हे महाभागे ! ऐसा जानकर इस हठको तुम छोड़देवो ॥ १६ ॥ जो सुखको अपने वश में चाहती हो तो लोकविरुद्ध इस कामको न करो तब पार्वती जी, बोलीं कि हे देव ! न हम तुम्हारी प्यारी हैं और न हम तुम्हारे वशमें रहेंगी ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! तिससे अनीति से इन सब स्त्रियोंका धर्म छुडादेवो क्यों कि हे महादेव ! हे विभो ! इस लोकालोक में आपको कुछ अशक्य नहीं है ॥ १८ ॥ हे देव ! हे प्रभो ! इस कामको आप करैं मुझे बडा तमाशा होगा तब पार्वती के

प्यार व हितमें तत्पर इस प्रकार कहेगये महादेव ॥ १९ ॥ योगीके रूपको बनाकर दारुवन में गये चन्द्रमा जिनका गहनाहै ऐसे महादेव बड़े सांपसे जटाजूट बांध कर ॥ २० ॥ बख्तर व सोनेके कुण्डल पहनकर व्याघ्रचर्मको पहने, हार और बजुल्लाओं से भूषित ॥ २१ ॥ पावोंके गहनोंकी आवाज से पृथिवीको कँपातेहुये वीरों के घण्टाके समान आवाजवाली महाडमरूके शब्द से युक्त ॥ २२ ॥ प्रभातसमय के प्राप्त होनेपर दारुवनको गये तबतक वहां सब ब्राह्मणलोग फूल व मूल व फलों के खानेवाले ॥ २३ ॥ बहुतों के साहित पढ़तेहुये इधर उधर निकलगये हे भारत! महादेवके उस बड़े आश्चर्य्यवाले रूपको देखकर ॥ २४ ॥ स्त्रीलोग मतवाली व

जूटं नियम्यशशिभूषणः ॥ २० ॥ कङ्कत्राणंपरंकृत्वा तथासौवर्णकुण्डले ॥ व्याघ्रचर्म्मपरीधानो हारकेयूरभूषितः ॥ २१ ॥ नूपुरारावनिर्घोषैः कम्पयंश्चवसुन्धराम् ॥ महाडमरुघोषेण वीरघण्टानिनादिना ॥ २२ ॥ प्रभातसमयेप्राप्ते तत्रदारुवनङ्गतः ॥ तावद्द्विप्रजनस्सर्वः पुष्पमूलफलाशनः ॥ २३ ॥ निर्गतोबहुभिस्सार्द्धं पठ्यमानइतस्ततः ॥ तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्यरूपंदेवस्यभारत ॥ २४ ॥ युवतीजनःप्रमत्तश्च कामेनकलुषीकृतः ॥ सुरूपंपरमंदृष्ट्वा सर्वास्ताश्चवराननाः ॥ २५ ॥ क्लेशभावंतदागच्छन् याश्चदारुवनेस्त्रियः ॥ विकारावहवस्तासान्देवंदृष्ट्वामनोजवम् ॥ २६ ॥ सञ्जाताविप्रपत्नीनां ताञ्छृणुष्वनृपोत्तम ॥ परिधानन्नजानन्ति परिभ्रष्टंकरोद्यताः ॥ २७ ॥ दातुकामातथाभैक्ष्यं चेष्टितुन्नैवशक्यते ॥ काचिद्दृष्ट्वामहादेवं रूपयौवनगर्विता ॥ २८ ॥ उत्सङ्गेसंस्थितंबालं पतितंव्यस्मरत्ततः ॥ कामबाणहताचान्या बाहुभ्यांपीडतिस्तनौ ॥ २९ ॥ निश्श्वसन्तीतथाचान्या नकिञ्चित्परिजल्पते ॥ एवमक्षोभयत्सर्वा महेशःपतिदे

कामसे मैली करदीगई श्रेष्ठमुखवाली वे सब स्त्रियां बडे सुन्दर रूपको देखकर ॥ २५ ॥ उस समय दारुवन में जितनी स्त्रियां थीं वे सब क्लेशभाव को प्राप्तहुई कामरूप महादेवजी को देखकर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके बहुत विकार पैदाहुये हे नृपोत्तम ! उनको तुम सुनो कि हाथ उठाये हुई स्त्रिया देहसे गिरेहुये अपने पहिरने के कपड़े को नहीं जानतीहैं ॥ २६ । २७ ॥ व कोई भिक्षा देने की इच्छा करतीहुई परन्तु हाथ पावँ चलाने को समर्थ न हुई व कोई स्त्री रूप और जवानी से गर्वको प्राप्तहोरही महादेवजी को देखकर ॥ २८ ॥ गोदी मे विद्यमान गिरपडे बालकको भूलगई व कोई कामबाण से मारीगई दोनो हाथों से अपने स्तनोंको दबाती है ॥ २९ ॥ और

अन्तमें अच्छेकुलमें धनवाला पैदाहोताहै व बडेकुलमें वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्व का जाननेवाला व सब शास्त्रोंमें प्रवीण ॥२६॥ राजा व राजाके बराबर पैदाहोताहै इसमें सन्देह नहीं है सब रोगों से रहित और लड़कों व पोतोंसे युक्त रहताहै ॥ २७ ॥ यह सब तुमसे कहागया जो तुमने हमसे पूंछाथा हे भारत ! सब दानोंमें तीर्थका फल युक्तिसे होताहै ॥ २८ ॥ यह उत्तमतीर्थ का माहात्म्य पढ़ने व सुननेवालों को पुण्यका देनेवाला व पापोंका हरनेवाला व धनका देनेवाला व सब दुःखोंका नाश करने वालाहै ॥ २९ ॥ जो पितरों का भक्त श्राद्धमें इसको सुनाताहै उसका सब अक्षय होताहै यह शङ्करजी ने कहाहै ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनु

सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २६ ॥ राजावाराजतुल्योवा जायतेनात्रसंशयः ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तस्सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ २७ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यत्त्वंमांपरिपृच्छसि ॥ तीर्थस्यतुफलंयुक्त्या सर्वदानेषुभारत ॥ २८ ॥ एतत्पुण्यंपापहरं धन्यंदुःखप्रणाशनम् ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्तुश्रावयतेश्राद्धे सततिपितृपरायणः ॥ अक्षयंतस्यसर्वस्याच्छङ्करस्त्विदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकरञ्जेश्वरमहिमानुवर्णनोनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धिङ्गतोदेवः कुण्डधारोनृपोत्तम ॥ १ ॥ तपःकृत्वातुविपुलं सुरासुरभयङ्करम् ॥ कुण्डधारोमन्दरस्थः क्रीडतेसनृपोत्तम ॥ २ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्यान्वयेसमुत्पन्नः कस्यपुत्रोमहामतिः ॥ तपस्तप्त्वासुविपुलं तोषितोयेनशङ्करः ॥ ३ ॥ एतद्विस्तरतस्तात कथयस्वममानघ ॥ मा

वादेकरञ्जेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ को जावे हे नृपोत्तम ! जहां कुण्डधार देव सिद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ देवता और दैत्यों को भी भय करानेवाले भारी तपको कर हे नृपोत्तम ! वह कुण्डधार मन्दरपर्वत पर स्थित हो क्रीड़ा करताहुआ ॥ २ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि वह महामति किसके वंशमें उत्पन्न हुआ और किसका पुत्र था जिसने बहुत भारी तपको कर महादेवको प्रसन्न करदिया ॥ ३ ॥ हे अनघ ! हे तात ! यह विस्तार से मुझ से कहो

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्! पहले त्रेतायुग में विश्रवा नाम के पुलस्त्यके पुत्र हुये ॥ ४ ॥ हे महाभाग, नृप ! उन्होंने भरद्वाज की कन्या से अपना विवाह किया पुत्रके गुणों से युक्त उस स्त्रीमें धनंजय पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ उत्पन्नहुये, लड़केको जानकर ऋषि व देवताओं के सहित व बड़े प्रसन्न हो लोकों के पितामह ब्रह्माजीने उसका नाम रक्खा ॥ ६ ॥ कि जिससे विश्रवासे पैदाहुआ हमारा पोता होताहै इससे हे अनघ ! मैंने तुमको वैश्रवण नाम दियाहै ॥७ ॥ जो खास सब देवताओं के धनका रखनेवाला होगा और लोकपालों में चौथा नाशरहित यक्षोंका राजा भी होगा ॥ ८ ॥ बस वह पुत्र श्रेष्ठ यक्षोंका राजा कुण्डधार नामका आप भी यक्ष

र्कण्डेयउवाच ॥ पुरात्रेतायुगेराजन्पौलस्त्योनामविश्रवाः ॥ ४ ॥ उपयेमेमहाभाग भरद्वाजसुतान्नृप ॥ पुत्रःपुत्रगुणैर्युक्तस्तस्याञ्जातोधनञ्जयः ॥५ ॥ जातमात्रंसुतंज्ञात्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ चकारनामसुप्रीत ऋषिदेवसमन्वितः ॥ ६ ॥ यस्माद्विश्रवसोजातो ममपौत्रत्वमागतः ॥ तस्माद्वैश्रवणोनाम मयादत्तंतवानघ ॥ ७ ॥ यस्स्वयंसर्वदेवानां धनगोप्ताभविष्यति ॥ चतुर्थोलोकपालानामक्षयोयक्षपोपिवा ॥ ८ ॥ यक्षोयक्षाधिपःश्रेष्ठः कुण्डधारोभवत्सुतः ॥ सुस्वरूपवयःप्राप्य मातापित्रोरनुज्ञया ॥ ९ ॥ तपश्चकारविपुलं नर्म्मदातीरमाश्रितः ॥ यत्रव्याघ्रेश्वरंलिङ्गं व्याघ्रखेटकमुत्तमम् ॥ १० ॥ कुण्डधारेणतत्रैव तपस्तप्तंसुदारुणम् ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षास्वासारधारणः ॥ ११ ॥ शिशिरेजलमध्यस्थो वायुभक्षःशतंसमाः ॥ एवंवर्षशतेपूर्णे एकाङ्गुष्ठोभवत्ततः ॥ १२ ॥ चक्रवद्भ्रमतेसूर्य्यमभितो भरतर्षभ ॥ चतुर्थेपञ्चमेतावत्तुतोषवृषवाहनः ॥ १३ ॥ वरंवृणीष्वहेवत्स यत्तेमनसिरोचते ॥ तद्ददामिनसन्देहो तपसा

ही हुआ अच्छे स्वरूप व अवस्था को पाकर माता व पिताकी आज्ञा से ॥ ९ ॥ नर्मदा तटमें बैठकर बड़े भारी तपको करता हुआ जहा उत्तम व्याघ्रेश्वर लिंग व बाघोंके शिकार का स्थान है ॥ १० ॥ वहीं कुण्डधारने अतिदारुण तपको किया है ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ, आषाढ) विषे पञ्चाग्निके बीचमें बैठा वर्षाऋतु (सावन, भादों) में जलधाराओं को धारण किया ॥ ११ ॥ शिशिरऋतु (माघ, फागुन) विषे पानीके बीच में बैठा और सौ वर्ष तक वायुका भोजन किया इस प्रकार सौ वर्षों के पूरे होनेपर एक अँगूठेसे खड़ा होताहुआ तदनन्तर ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ ! सूर्यके चारों तरफ चाकसा घूमतारहा तब चौथे व पांचवें महीनामें महादेवजी प्रसन्न हुये ॥१३॥

और कहा कि हे वत्स ! जो तुम्हारे मनमें रुचताहो उस वरको मांगो तपस्या से प्रसन्न कियेगये हम उस वरको निरसन्देह देंगे ॥ १४ ॥ तब कुण्डधार बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और वर देनेको यहां आयेहो तो मेरे नाम का लिङ्ग व यह तीर्थ होजावे ॥ १५ ॥ तब ऐसाही हो यह कहकर पार्वती सहित महादेव अन्तर्द्धान होगये और आकाश में जाकर कैलासपर्वत को चलेगये ॥ १६ ॥ महादेवजी के अन्तर्द्धान होनेपर उस यक्षनेभी आनन्द से युक्तहो उत्तम कुण्डलेश्वर महादेवजी का स्थापन किया ॥ १७ ॥ एक हाथी व गऊको सजकर दानकिया और धूप, पुष्प, चन्दन, चांदनी, चॅवर, छाता और लिंगपूजन से ॥ १८ ॥ महादेवजीको प्रसन्नकर व अन्नपानआदि व भूषणों से ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर फिर अपने मन्दिरको चलागया ॥ १९ ॥ तब से वह तीर्थ तीनोंलोकों में प्रसिद्धहुआ हे युधिष्ठिर ! कुण्डलेश्वर नाम तीर्थ बड़ा पुण्यवाला है ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो कोई व्रतवाला मनुष्य महादेवजी का पूजन करता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २१ ॥ और यहां सोना, चांदी, मणि व मोतियों को जो ब्राह्मणों को देताहै वह मुख्य होकर स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ २२ ॥ उस तीर्थमें स्नानकर ब्राह्मण मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की एक ऋचाका जप करके चारोंवेदों के फलको पाताहै ॥ २३ ॥ और उस तीर्थमें जो गोदान व अन्नदान ब्राह्मणों के वास्ते देताहै हे

तोषितोस्म्यहम् ॥ १४ ॥ कुण्डधारउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरदित्सुरिहागतः ॥ ततोमन्नामकंलिङ्गं तीर्थंचैतद्भवत्विति ॥ १५ ॥ तथेत्युक्त्वामहादेवः सोमोन्तर्द्धानमागमत् ॥ जगामाकाशमाविश्य कैलासंधरणीधरम् ॥ १६ ॥ गते चादर्शनन्देवे सोपियक्षोमुदान्वितः ॥ स्थापयामासदेवेशंकुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ अलंकृत्वागजंधेनुं धूपपुष्पविलेपनैः ॥ वितानैश्चामरैश्छत्रैस्तथैवलिङ्गपूजनैः ॥ १८ ॥ तर्पयित्वाद्विजान्सम्यगन्नपानादिभूषणैः ॥ प्रीणयित्वामहादेवं ततःस्वभवनंययौ ॥ १९ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ युधिष्ठिरपरंपुण्यं कुण्डलेश्वरसंज्ञकम् ॥ २० ॥ तत्रतीर्थेतुयःकश्चिदुपवासपरायणः ॥ अर्चयेद्देवमीशानं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २१ ॥ सुवर्णंरजतंवापि मणिमौक्तिकमेवच ॥ ब्राह्मणेभ्योददात्यत्र समुख्योमोदतेदिवि ॥ २२ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा ऋग्यजुःसामसुद्विजः ॥ ऋचमेकाञ्जपित्वाच चतुर्वेदफलंलभेत् ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुगोदानमन्नदानमथापिवा ॥ यःप्रयच्छतिविप्रेभ्यस्तत्फलंशृ

पाण्डव ! उसके फलको सुनो ॥ २४ ॥ कि जितने उसके व उसके बच्चों के रोयें होते हैं उतने हजार वर्षोंतक स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ २५ ॥ पुत्र व पौत्रोंके सहित उसका वास स्वर्गमें होताहै हे महाभाग ! उस तीर्थ के जंगल में प्यासा एक बाघ निषादों के डरसे घूमताथा वह निषादों के डरसे मरगया और नर्मदा के जलमें गिरपड़ा ॥ २६ । २७ ॥ तो हे महाभाग ! पानी से भीगा वह लिंगरूप होगया तब आकाशवाणी से कहागया कि पूजनेलायक यह उत्तम व्याघ्रेश्वरलिंग तीनोंलोकों मे निस्सन्देह प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ उस तीर्थमें स्नानकर जो मनुष्य उस लिंगका पूजन करेगा ॥ २९ ॥ वह ब्रह्महत्याआदि पापों से छूटजायगा इसमें

णुपाण्डव ॥ २४ ॥ यावन्तितस्यरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषुच ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २५ ॥ स्वर्गवा सोभवेत्तस्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ तस्मिंस्तीर्थेमहाभाग व्याघ्रश्चैवपिपासितः ॥२६॥ निषादानांभयेनैव अटव्यामटति स्वयम् ॥ निषादानांभयैर्नष्टः पतितोनर्म्मदाजले ॥२७॥ जलप्लुतोमहाभाग लिङ्गरूपधरोभवत् ॥ उक्तश्चाकाशवाण्या वै व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् ॥२८॥ पूज्यंवैत्रिषुलोकेषु ख्यातिंयास्यत्यसंशयम् ॥ तत्रतीर्थेनरस्स्नात्वा तल्लिङ्गमर्चयेत्तुयः ॥ २९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ एतत्तेकथितंराजन्कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ ३० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलंलभेत् ॥३१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकुण्डलेश्वरमहिमानुवर्णनोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धोमहायोगी पिप्पलादोमहातपाः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ पिप्पलादस्यचरितं श्रोतुमिच्छाम्यहंप्रभो ॥ माहात्म्यंतस्यतीर्थस्य यत्रसिद्धोमहातपाः ॥ २ ॥

संशय नहीं है हे राजन् ! यह उत्तम कुण्डलेश्वरतीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३० ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानों का फल पाताहै ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुण्डलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पिप्पलेश्वरतीर्थ को जावे जहां बड़े तपवाले महायोगी पिप्पलादजी सिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे प्रभो ! हम पिप्पलाद के चरित को सुना चाहते हैं और उस तीर्थके माहात्म्य को भी सुना चाहते हैं जहां बड़े तपवाले पिप्पलादजी सिद्धहुये हैं ॥ २ ॥

हे महाभाग ! वे किसके पुत्र थे और किसवास्ते तपको किया हे अनघ ! यह सब विस्तारसे मुझसे कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! मिथिलाके रहनेवाले वेद व वेदाङ्गोंके पारगन्ता याज्ञवल्क्यजीने पूर्वकाल मे बडा तप किया ॥ ४ ॥ उन बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीकी एक बहिन तापसी थी वह भी वहीं रहतीहुई व अपने भाईकी सेवा करतीहुई बड़ा तप किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर एक समयमें रजस्वला उनकी बहिन स्नानके दिनमें स्नान किया तो वहां एकान्तमें पड़ेहुये वस्त्रको देखकर उसने पहनलिया ॥६॥ याज्ञवल्क्यजी भी उसी रात्रिमें उसी कपड़ेको पहनेहुये स्वप्नको देखकर अपने वीर्यका त्यागकिया उस अशुद्धवस्त्रको छोड़दिया प्रातःकाल

कस्यपुत्रोमहाभाग किमर्थंतप्तवांस्तपः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वंकथयस्वममानघ ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मिथिलास्थो महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ याज्ञवल्क्यश्चपुरतश्चचारविपुलंतपः ॥ ४ ॥ तापसीतस्यभगिनी याज्ञवल्क्यस्यधीमतः॥ चचारसापितत्रस्था शुश्रूषन्तीमहत्तपः ॥ ५ ॥ ततस्त्वेकस्मिन्समये स्नाताहनिरजस्वला ॥ अन्तर्वासंकृतवत्ती दृष्ट्वाकर्कटकंरहः ॥ ६ ॥ याज्ञवल्क्योपितद्रात्रौ परिधानेनतेनवै ॥ स्वप्नंदृष्ट्वात्यजच्छुक्रं प्रभातेन्वैषयत्पुनः ॥ ७ ॥ ततःसाब्राह्मणीतात किमन्वेष्यसिभारत ॥ केनकार्य्यंतवविभो वदस्वममतत्त्वतः ॥ ८ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ अपवित्रोमयाभद्रे स्वप्नोदृष्टोह्यवैनिशि ॥ शुक्रंमेचात्रवस्त्रंस्वं निक्षिप्तंतन्नदृश्यते ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वाब्राह्मणीवाक्यं भीतभीताभवन्नृप ॥ तद्वस्त्रन्तुमयाब्रह्मन् स्नात्वान्तर्धानकंकृतम् ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा हाहेत्युक्त्वामहातपाः ॥ पपातसहसाभूमौ छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ ११ ॥ किमेतदितिजल्पन्तमाकाशाद्वाग्विनिर्गता ॥ तोषयन्तीचतंविप्रं प्रोवाच

में उसको फिर ढूंढ़ा ॥ ७ ॥ तब हे भारत ! उस ब्राह्मणीने उनसे पूछा कि हे तात ! आप क्या ढूंढ़तेहो हे विभो ! किस चीजसे आपका कामहै सो मुझसे ठीक २ कहो ॥ ८ ॥ तब याज्ञवल्क्यजी बोले हे भद्रे ! मैंने आज रातमें बड़े भ्रष्ट स्वप्न को देखा सो अपने सफेद कपडे को मैंने यहां छोडदिया था सो वह नहीं दीखता है ॥ ९ ॥ तब हे नृप ! वह ब्राह्मणी उस वचनको सुनकर डरीसे डरी होगई और बोली कि हे ब्रह्मन् ! उस कपड़ेको तो मैने स्नानकरके पहन लियाहै ॥ १० ॥ उसके इस वचन को सुनकर बडे तपस्वी याज्ञवल्क्यजी हाहा ऐसे कहकर जड़से कटे पेड़की तरह एकबारगी पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ११ ॥ तब यह क्या हुआ ऐसे कहतेहुये याज्ञवल्क्य को

संतोष करातीहुई आकाश से आवाज निकली और हे नृपते ! उन ब्राह्मण से कहा ॥ १२ ॥ कि इसका दोष मैंने नहीं देखाहै और हे शुभव्रते ! आपका भी कुछ दोष नहीं है जिससे तुम्हारे गर्भका उदय भया है तिससे प्रारब्धही मुख्यहै ॥ १३ ॥ लेकिन जबतक समय न आवे तबतक इस गर्भका नाश करना नहीं ठीकहै तब लज्जित व उदासमनवाली उस स्त्रीने अपमान से कहा कि अच्छा ॥ १४ ॥ फिर उस गर्भकी वह पालना करतीरही जबतक पुत्र नहीं हुआ फिर उत्पन्नमात्रहुये उस गर्भको किसी से न कहकर ॥ १५ ॥ एक पीपल के पास जाकर उसने पृथ्वी में छोड़ दिया और छोड़ देनेके बाद उसने कहा कि लोकोंमें जितने स्थावर व जङ्गम जीव हैं वे सब इस

नृपतेतदा ॥ १२ ॥ नास्यदोषोमयादृष्टस्तवचैवशुभव्रते ॥ तवगर्भोदयोयेन तत्रदैवंपरायणम् ॥ १३ ॥ नविनाशोस्य कर्तव्यो यावत्कालस्यपर्य्ययः ॥ तथेतिव्रीडितासाच दुर्मनेतिविमानतः ॥ १४ ॥ पालयामासतंगर्भं यावत्पुत्रोव्यजा यत ॥ जातमात्रन्तुतंगर्भं कथयित्वानकञ्चन ॥ १५ ॥ अश्वत्थवृक्षमासाद्य सोत्ससर्जमहीतले ॥ यानिसत्त्वानिलोकेषु स्थावराणिचराणिवै ॥ १६ ॥ तानिवैपालयन्त्वेनं बालकंत्यजतिस्मसा ॥ एवमुक्त्वाततःसाध्वी ब्राह्मणीनृपसत्तम ॥ १७ ॥ यथागतंजगामाथ सावस्थित्वामुहूर्तकम् ॥ पादौपाणीविनिक्षिप्य विसृज्यनयनेशुभे ॥ १८ ॥ आस्यञ्चविकृतं कृत्वा रुरोदोच्चैरनाथवत् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताःस्थावराजङ्गमाश्चये ॥ १९ ॥ अकम्पयन्महीन्तात सशैलवनकन्दराम् ॥ ततोज्ञात्वामहद्भूतं क्षुधाविष्टंद्विजर्षभम् ॥ २० ॥ नजहातिनगश्छायामार्पयच्चततःपयः ॥ आप्यायितस्ततस्तेन

बालकको पालें ऐसे कहकर तदनन्तर हे नृपसत्तम ! वह साध्वी ब्राह्मणी ॥ १६ । १७ ॥ दो घडी वहां ठहरकर उसके बाद जहांसे आईथी वहांको चलीगई तब वह बालक अपने पावँ व हाथोंको चलाकर और अपने अच्छे नेत्रोंको मीडकर ॥ १८ ॥ अपने मुखको दीन ऐसा बनाकर बड़ीजोर से अनाथ की तरह रोताहुआ उसके रोने के शब्द से जो स्थावर व जङ्गम जीव थे वे सब डरगये ॥ १९ ॥ और हे तात ! पहाड़ व जंगल और कन्दराओं के सहित सब पृथ्वी को उस शब्दने कँपादिया तदनन्तर उस श्रेष्ठब्राह्मण को उत्तमप्राणी व भूंखा जानकर ॥ २० ॥ पीपलके वृक्षने अपनी छायाको नहीं हटाया और उसको अपना दूधभी अर्पण किया तब हे भारत ! उस

अमृतसरीखे दूधसे बढ़ायागया वह बालक चिन्तासे युक्त होकर ग्रहोंका विचार किया ॥ २१ ॥ फिर उसने अपनी क्रूरदृष्टि से क्रूरचालवाले शनैश्चर को देखा तब धीरेसे चलनेवाले शनैश्चर एकबारगी पृथ्वीमें गिरे ॥ २२ ॥ बालकभी शनैश्चरको पाँव से छुवा तब बालक से पीड़ितहुये वे शनैश्चर वचन बोले ॥ २३ ॥ कि हे महामुने, विप्र, पिप्पलाद ! मैंने क्या अपकार कियाहै जो आकाश में जाताहुआ मैं पृथ्वीपर गिरादियागया ॥ २४ ॥ शनैश्चर ने जब ऐसे महामुनि पिप्पलादसे कहा तब हे नराधिप ! क्रोधरूप होरहे पिप्पलाद वचन बोले उसको तुम सुनो॥ २५ ॥ पिप्पलादने कहा कि हे दुर्मते, सौरे (शनैश्चर)! पिता व मातासे रहित बालक जो

अमृतेनैवमारत॥ ततस्सचिन्तयाविष्टो निर्ममेग्रहगोचरम् ॥ २१॥ तेनक्रूरसमाचारः क्रूरदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥ पपातसहसाभूमौ शनैश्चारीशनैश्चरः ॥ २२ ॥ शनैश्चरंबालकोपि पादेनैवपरामृशत् ॥ पीडितःसोपिबालेन उवाचवचनंतदा ॥ २३ ॥ किंमयापकृतंविप्र पिप्पलादमहामुने ॥ निष्कामन्गगनेचैव पातितोधरणीतले ॥ २४ ॥ सौरिणाप्येवमुक्तस्तु पिप्पलादोमहामुनिः ॥ क्रोधरूपोब्रवीद्वाक्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ २५ ॥ पितृमातृविहीनस्य बालभावस्यदुर्मते ॥ पीडाङ्करोषिकस्मात्त्वं सौरेत्वमवशेषितः ॥ २६ ॥ शनैश्चरउवाच ॥ क्रूरस्वभावसंजाता ममदृष्टिर्द्विजोत्तम ॥ मुञ्चत्वं माञ्चकर्ताहं यद्ब्रवीषिनसंशयः ॥ २७ ॥ पिप्पलादउवाच ॥ अद्यप्रभृतिबालानां जन्मतःषोडशीःसमाः ॥ पीडात्वया नकर्तव्या एषतेसमयःपरः ॥ २८ ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा प्रजगामयथागतः ॥ देवमार्गेशनैश्चारी प्रणम्यऋषिसत्तमम् ॥ २९ ॥ ततश्चादर्शनंतत्र गतवान्समहाग्रहः ॥ विचिन्तयानश्चैकाकी क्रोधेनकलुषीकृतः ॥ ३० ॥ आग्नेयींहिदि

हमहैं तिनको तू क्यों पीडादेताहै अब तू बचगया ?॥२६॥ तब शनैश्चर बोले कि हे द्विजोत्तम ! मेरी दृष्टिही क्रूरस्वभाववालीहै इससे अब आप मुझे छोडदेवो जो आप कहतेहो उसमें कुछ संशय नहीं है मैं जरूर पीड़ाका करनेवालाहूं ॥ २७ ॥ तब पिप्पलाद बोले कि अच्छा अब आजसे जन्मसे सोलह वर्षतक बालकों को पीड़ा तुमको नहीं करना चाहिये यही तुम्हारा समय होगया ॥ २८ ॥ ऐसाही हो यह कहकर और उन ऋषिश्रेष्ठ पिप्पलादजी को प्रणामकर शनैश्चर जैसे आयेथे उसी तरह देवताओं की रास्तेको चलेगये ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे महाग्रह शनैश्चर अन्तर्द्धान होगये फिर वहां क्रोधसे भरेहुये पिप्पलाद अकेले आप विचारकरतेहुये॥ ३० ॥

आग्नेयदिशाको ध्यानकर अग्निको पैदा किया और अपने मांसको काटकर कर्म के तत्त्वसे अग्निमें हवन करतेहुये ॥ ३१ ॥ तबतक लपटों से व्यास कृत्या उत्पन्नहुई अग्निके तुल्य आकारवाली उस कृत्याने कहा कि मैं क्या करूं ॥ ३२ ॥ क्या समुद्रों को सुखादेऊं क्या पहाड़ों को चूर्ण करडालूं क्या जमीन को लपेटलेऊं और क्या यहा आकाश को गिरादेऊं ॥ ३३ ॥ मैं किसके शिरपर गिरूं और हे द्विज ! किसको मारडालूं मुझको शीघ्रही कामको बतलादेवो जिसमें समय न टले ॥ ३४ ॥ उस कृत्याके इस वचन को सुनकर क्रोधसे लालनेत्रोंवाले व बड़े तपवाले पिप्पलाद इस वचन को बोले ॥ ३५ ॥ कि हे शुभे ! बड़ेक्रोध के वेगसे मैंने तुम्हारा ध्यान

शंध्यात्वा जनयामासपावकम् ॥ कृत्त्वामांसंजुहावाग्नौ क्रियासम्भवतत्त्वतः ॥ ३१ ॥ तावच्चजनिताकृत्या ज्वालामालाविभूषिता ॥ हुतभुक्सदृशाकारा किङ्करोमीतिचाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ शोषयामिसमुद्रंकिं चूर्णयामिचपर्वतम् ॥ भूमिंचवेष्टयामीह पातयित्वानभस्तलम् ॥ ३३ ॥ कस्यमूर्द्धिपतिष्यामि घातयामिचकंद्विज ॥ शीघ्रमादिशमेकार्य्यं न कालातिक्रमोभवेत् ॥ ३४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा पिप्पलादोमहातपाः ॥ क्रोधरक्तान्तनयन इदंवचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ महताक्रोधवेगेन मयात्वंचिन्तिताशुभे ॥ पितामेयाज्ञवल्क्यस्तु तन्त्वंघातयमाचिरम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तातुसाशीघ्रं स्फुटन्तीवनभस्तलम् ॥ मिथिलास्थोमहाप्राज्ञो यत्रतेपेमहातपाः ॥ ३७ ॥ यावत्पश्यतिदिङ्मार्गं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ याज्ञवल्क्योमहातेजास्तद्भूतंसमुपस्थितम् ॥ ३८ ॥ तान्दृष्ट्वासहसायान्तीं भीतभीतोमहामुनिः ॥ भूतेनाक्रमितोविप्रो जनकंनृपतिंययौ ॥ ३९ ॥ शरणार्थमनुप्राप्तं विद्धिमांनृपसत्तम ॥ महाभूताच्चमांरक्ष यदिशक्तोऽसिमानद ॥ ४० ॥

किया है सो हमारे पिता याज्ञवल्क्य हैं उनको तुम मारो देर मत करो ॥ ३६ ॥ ऐसे कहीगई वह कृत्या शीघ्र आकाश को फाड़तीसी जहां मिथिला में बैठेहुये बड़े बुद्धिमान् व बड़ेतपस्वी याज्ञवल्क्यजी तपको करतेथे वहां पहुँची ॥ ३७ ॥ महातेजस्वी याज्ञवल्क्यजी जबतक उस दिशाकी तरफ देखें तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला वह भूत भलीभांति उपस्थित होगया ॥ ३८ ॥ सहसा आतीहुई उस कृत्या को देखकर डरेसे भी डरे महामुनि ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी उस भूतसे दबेहुये राजा जनक के समीप जातेहुये ॥ ३९ ॥ और बोले कि हे नृपसत्तम ! अपनी रक्षाके वास्ते आयेहुये मुझको जानो इससे हे मानद ! जो आप समर्थहो तो

मुझे इस महाभूत से बचावो ॥ ४० ॥ तब राजा बोले कि हे महामते ! ब्रह्मतेजसे यह पैदाहुआ भूत बड़ाजबर व निवारण करनेलायक नहीं है इससे आज मैं नहीं समर्थ होसकाहूं आप दूसरे के पास जावें ॥ ४१ ॥ तदनन्तर रक्षा चाहतेहुये महातपस्वी याज्ञवल्क्यजी और श्रेष्ठराजा के समीपगये उससे भी कहेहुये निराशहो इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे देवराज ! आपके नमस्कारहैं इस महाभूत से मुझे बचावो उनके इस वचन को सुनकर तब इन्द्र वचन बोले ॥ ४३ ॥ कि हम रक्षा करने को समर्थ नहीं होसके हैं क्योंकि ब्रह्मतेज बड़ादुःसह होताहै तदनन्तर वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी ब्रह्मलोकको ॥ ४४ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मतेजोभवम्भूतमनिवार्य्यन्दुरासदम् ॥ प्रभुर्नैवाद्यशक्नोमि अन्यंगच्छमहामते ॥ ४१ ॥ ततश्चान्यंनृपश्रेष्ठं शरणार्थीमहातपाः ॥ जगामतेनचैवोक्त इन्द्रस्यशरणंययौ ॥ ४२ ॥ देवराजनमस्तेस्तु महाभूताच्चरक्षमाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाब्रवीदिन्द्रस्तदावचः ॥ ४३ ॥ नचशक्तःपरित्रातुं ब्रह्मतेजोहिदुःसहम् ॥ ततश्चब्रह्मभवनं ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥४४॥ जगामविष्णुभवनं शक्तोपित्यक्तवान्भयात् ॥ ततःसपरमोद्विग्नो निराशोजीवितेनृप ॥४५॥ अनुगम्यमानोभूतेनअगच्छचमहेश्वरम् ॥ तस्ययोगबलोपेतो महादेवस्यपाण्डव ॥ ४६ ॥ नखमांसान्तरेलुप्तो यथादेवोनपश्यति ॥ अदृष्टमगमद्भूतं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ ४७ ॥ मुञ्चमुञ्चेतिपुरुषं मुञ्चेश्वरमुवाचह ॥ एवमुक्तोमहादेवस्तेनभूतेनभारत ॥ ४८ ॥ योगीन्द्रंदर्शयामास नखमांसान्तरेस्थितम् ॥ संस्थाप्यकृत्याम्भूतेशो ज्वलत्कालान

गये और विष्णुलोक को भी गये वे समर्थ भी रहे परन्तु भयसे नहीं ग्रहण किया तदनन्तर हे नृप ! अपने जीनेमें निराश होरहे और बहुत घबड़ानेहुये वे याज्ञवल्क्यजी ॥ ४५ ॥ पीछे लगेहुये उस भूतसे भगाये जातेहुये महादेवजी के समीप जातेहुये व हे पाण्डव ! अपने योगबलसे युक्त मुनि उन महादेवजी के ॥ ४६ ॥ नाखून के नीचेवाले मांसके भीतर छिपरहे उनको महादेवजी ने भी नहीं देखा तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला नहीं दीखताहुआ वह भूतभी आगया ॥ ४७ ॥ और महादेवजीसे बारबार स्पष्ट बोला कि उस पुरुषको आप छोड़ो तब उस भूत से ऐसे कहेगये महादेवजी हे भारत ! ॥ ४८ ॥ अपने नाखूनके मांसके भीतर वर्तमान याज्ञवल्क्य

योगीन्द्रको दिखलादिया और जलतेहुये महाप्रलय के अग्निके समान तेजवाली उस कृत्याको रोंककर भूतोंके स्वामी महादेवजी ने ॥ ४९ ॥ कहा कि हे विप्र ! हे महामुने ! तुम मतडरो और कहीं मतजावो तदनन्तर सूक्ष्मदेह में बैठेहुये उस भूतसे महादेवजी यह बोले ॥ ५० ॥ कि हे महाभूत ! इस ब्राह्मण का तुम क्या करोगे सो अपने कार्यको हम से कहो तब कृत्या बोली कि हे देवेश ! क्रोधसे जलतेहुये पिप्पलाद ने मेरा ध्यान कियाहै ॥ ५१ ॥ सो मैं इसकी देहपर गिरूंगी हे प्रभो ! मैं नाश करनेलायक नहीं हू ऐसा समझो तब उस भूत के मुख से निकले हुये इस वचन को सुनकर महादेवजी ॥ ५२ ॥ याज्ञवल्क्य के मारनेवाले उस

लप्रभाम् ॥ ४९ ॥ उवाचमाभैस्त्वंविप्रमागच्छस्वमहामुने ॥ ततस्तंसूक्ष्मदेहस्थं महादेवोब्रवीदिदम् ॥ ५० ॥ किमस्यत्वंमहाभूत कर्ताकृत्यंवदस्वमे ॥ कृत्योवाच ॥ क्रोधदीप्तेनदेवेश पिप्पलादेनचिन्तिता ॥ ५१ ॥ अस्यदेहेपतिष्यामि अहिंस्यांविद्धिमाम्प्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वामहादेवो भूतस्यवदनाच्च्युतम् ॥ ५२ ॥ वरिष्ठंबन्धयामास याज्ञवल्क्यस्यघातकम् ॥ योगीश्वरंतंविप्रेन्द्रं दत्त्वाभीतिंयुधिष्ठिर ॥ ५३ ॥ विसर्जयित्वादेवस्तं तत्रैवान्तरधीयत ॥ प्रेषयित्वातुतम्भूतं पिप्पलादोपिदुर्मनाः ॥ ५४ ॥ मातापितृविहीनस्तु नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ एकनिष्ठोनिराहारो वर्षाणिषोडशैवतु ॥ ५५ ॥ तोषयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ हरउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेविप्र तपसानेनसुव्रत ॥ ५६ ॥ वरंवृणीष्वतेदद्यां मनसाभीप्सितंशुभम् ॥ पिप्पलादउवाच ॥ यदिमेभगवांस्तुष्टो यदिदेयोवरोमम ॥ ५७ ॥ अत्रसन्निहितोदेव ममनाम्ना

भूतको पोढ़े बांधलिया और हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उन योगीन्द्र को अभय देकर ॥ ५३ ॥ व उनको बिदाकरके महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये अब यहां पिप्पलाद भी उस भूतको भेजकर उदास होगये ॥ ५४ ॥ और माता व पिता से रहित आप नर्मदातट के आश्रित होकर सोलह वर्षतक निराहार व एक महादेव का ध्यान करते हुये ॥ ५५ ॥ पार्वती सहित, कल्याण करनेवाले, देवेश महादेवजी को प्रसन्न किया तब महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, विप्र ! तुम्हारे इस तपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ५६ ॥ इससे अपने मनमाने उत्तम वरको तुम मांगो हम तुमको देंगे तब पिप्पलाद बोले कि जो आप भगवान् मुझपर प्रसन्नहो और जो मुझे आपको वर देने

योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो हे शङ्कर, देव ! यहां मेरे नामसे आप विद्यमान बनेरहो ऐसे कहेगये महादेवजी पिप्पलाद महामुनिसे ऐसाही हो यह कहकर अपने भूतोंसे सेवा किये जाते अन्तर्द्धान होगये महादेव के जानेपर वहां उत्तम जलमें स्नानकर पिप्पलादमुनि ॥ ५८ । ५९ ॥ महादेवजीका स्थापनकर उत्तरपर्वत को चलेगये हे नृप-! उस तीर्थ में मन्त्रोंके,सहित भक्तिसे मनुष्य स्नानकर ॥ ६० ॥ व पितरों और देवताओं का तर्पणकर और महादेवजीका पूजनकर अत्युत्तम अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ६१ ॥ और पिप्पलेश्वर के समीप जो मराहै वह महादेवजी के पुरको जाताहै अथवा अपने पितरों के नामसे भक्तिसहित ब्राह्मणों को जो भोजन करावे ॥ ६२ ॥

चशङ्कर ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पिप्पलादंमहामुनिम् ॥ ५८ ॥ जगामादर्शनंदेवो भूतसङ्घैर्निषेवितः ॥ पिप्पलादोग तेदेवे स्नात्वातत्रमहाम्भसि ॥ ५९ ॥ स्थापयित्वामहादेवं जगामोत्तरपर्वतम् ॥ तत्रतीर्थेनरोभक्त्या स्नात्वामन्त्रयुतोनृ प ॥ ६० ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवान्पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ अश्वमेधस्ययज्ञस्य फलंप्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६१ ॥ मृतोरुद्रपुरं याति पिप्पलेश्वरसन्निधौ ॥ अथवाभोजयेद्विप्रान्पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ ६२ ॥ द्वादशाब्दसहस्राणि तृप्तागच्छन्तिस द्गतिम् ॥ संन्यासेनतुयःकश्चित्तत्रतीर्थेतनुन्त्यजेत् ॥ ६३ ॥ अनिवर्तिकागतिस्तस्य यथामेशङ्करोब्रवीत् ॥ एतत्सर्वंस माख्यातं यत्त्वंमांपरिपृष्टवान् ॥ ६४ ॥ माहात्म्यंपिप्पलादस्य पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ एतत्पुण्यंपापहरं धन्यंदुःखप्र णाशनम् ॥ ६५ ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपिप्पलेश्वरमहिमानु वर्णनोनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तो बारहहज़ार वर्षतक अघानेहुये पितर उत्तमगति को पाते हैं और जो कोई संन्याससे उस तीर्थमें अपने शरीर को छोड़ता है ॥ ६३ ॥ उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है ऐसा महादेवजी ने मुझसे कहाहै यह सब आपसे कहागया जो तुम ने मुझसे पूंछाथा ॥ ६४ ॥ पिप्पलाद का माहात्म्य और उत्तम पिप्पलेश्वर का यह आख्यान पुण्यवाला, पापोंका हरनेवाला, धन देनेवाला और दुःखोंका नाश करनेवालाहै ॥ ६५ ॥ और पढ़ने व सुननेवालों के सब पापों का छुड़ानेवाला है ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपिप्पलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर को जावे वहां महादेवजी की बताईहुई एक रमणीक देवशिला है ॥ १ ॥ जहां गर्जन व खेटकनाम का क्षेत्रहै वहीं उत्तम देवशिलाभी है वहां स्नानकर भक्तिसे जो पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ २ ॥ उसके वे बारह वर्षतक अतितृप्त हुये स्वर्ग में आनन्द भोगते हैं और हे नृप ! उस तीर्थमें जो भक्तिपूर्वक थोड़े दानसे भी ब्राह्मणोंका पूजन करताहै उसके फलका अन्त नहीं है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! पृथिवी में कौन दान बहुत अच्छे हैं ॥ ३ । ४ ॥ जिनको देकर मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै तब मार्कण्डेयजी बोले कि सोना, चांदी, तांबा, मणि, मोती ॥ ५ ॥ पृथिवी

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रदेवशिलारम्या महादेवेनभाषिता ॥ १ ॥ गर्जनंखेटकंनाम तत्रदेवशिलाशुभा ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्यातर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ २ ॥ तस्यतेद्वादशाब्दानि सुतृप्तादिविमोदिताः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या ब्राह्मणान्पूजयेन्नृप ॥ ३ ॥ स्वल्पेनापिहिदानेन तस्यचान्तोनविद्यते ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कानिदानानिविप्रेन्द्र शस्तानिधरणीतले ॥ ४ ॥ यानिदत्त्वानरोभक्त्या मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सुवर्णंरजतंताम्रं मणिंमौक्तिकमेवच ॥ ५ ॥ भूमिदानंतथागावो मोचयन्त्यशुभान्नरम् ॥ तत्रतीर्थेतुयः कश्चित्कुरुतेप्राणसंक्षयम् ॥ ६ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्यावदाहूतसंप्लवम् ॥ ततःपुष्करिणींगच्छेत्कुरुक्षेत्रसमांनृप ॥ ७ ॥ पूर्वंपुष्करिणीनाम कुरुक्षेत्रंकलौस्मृतम् ॥ तत्रस्नात्वायजेद्देवं तेजोराशिन्दिवाकरम् ॥ ८ ॥ ऋचमेकांजपेत्सौम्यः सामवेदफलंलभेत् ॥ यजुर्वेदस्यजपनं ऋग्वेदस्यतथैवच ॥ ९ ॥ त्र्यक्षरंवाजपेन्मन्त्रं ध्यायमानोदिवाकरम् ॥ आदि

और गौवें मनुष्य को पापसे छुटाती हैं उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य अपने प्राणों का नाश करताहै ॥ ६ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहता है कि जबतक महाप्रलय होताहै हे नृप ! तदनन्तर कुरुक्षेत्र के समान पुष्करिणीतीर्थ को जावे ॥ ७ ॥ अगिले जमाने में पुष्करिणीही नाम रहा कलियुगमें कुरुक्षेत्र कहागया है वहां स्नानकर तेज की राशि ऐसे सूर्यदेवता का पूजनकरे ॥ ८ ॥ और एक ऋचाको जपकरे तो वह सज्जन सामवेद के फलको पावे इसीतरह यजुर्वेद व ऋग्वेद का भी जपहै ॥ ९ ॥

अथवा सूर्यका ध्यान करताहुआ त्र्यक्षर मन्त्रका जपकरे और आदित्यहृदयको तो जपकर सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १० ॥ उस तीर्थमें स्नानकर जो विधिसे ब्राह्मणों का पूजन करता है उसका दान करोडगुना होजाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ विशेषकर कार्त्तिकी तथा माघी, वैशाखी, अमावास्या, व्यतीपात, संक्रान्ति, वैधृति और रविवार को ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्र मे स्नानकर मनुष्य महादेवजी का गण होताहै अनशन, जल, अग्नि व पञ्चाग्नि से ॥ १३ ॥ जो उस तीर्थमें मराहै वह परमगति को पाताहै हे नृपसत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ॥ १४ ॥ जो वेदोक्त कर्मको करता है वह महात्माओं की गतिको पाताहै तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे

त्यहृदयंजप्त्वा मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ १० ॥ तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा विधिनापूजयेद्द्विजान् ॥ तस्यकोटिगुणंदानं जाय
तेनात्रसंशयः ॥ ११ ॥ कार्त्तिक्यांचतथामाघ्यां वैशाख्यान्तुविशेषतः ॥ अमावास्यांव्यतीपाते संक्रमेवैधृतौरवौ ॥
१२ ॥ कुरुक्षेत्रेनरःस्नात्वा रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ अनाशकेजलेह्यग्नौ पञ्चाग्नौवातथापिवा ॥ १३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेमृतो
यस्तु सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवानृपसत्तम ॥ १४ ॥ विहितंकर्म्मकुर्वाणः सगच्छतिसताङ्ग
तिम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ किंजपन्मुच्यतेव्याधेर्ज्ञात्वावर्णद्विजोत्तम ॥ १५ ॥ किंकुर्वन्मुच्यतेप्राणी यातिलोकमना
मयम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्नवहित इतिहासंपुरातनम् ॥ १६ ॥ गुह्यतीर्थेसमासाद्य ब्राह्मणोमुक्तवान्यथा ॥
पुराद्विजवरश्चासीद्गोविन्दोनामनामतः ॥ १७ ॥ तस्यभार्य्यासुसम्पन्ना ब्राह्मणीचपतिव्रता ॥ तस्यांसंजनयामास पुत्रमे
कंचसुन्दरम् ॥ १८ ॥ सबालएवभवने क्रीडतेशिशुलीलया ॥ कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः काष्ठमानयितुङ्गतः ॥ १९ ॥ वनान्नी

द्विजोत्तम ! अपने वर्णको जानकर क्या जपताहुआ मनुष्य रोगसे छूटजाताहै ॥ १५ ॥ और क्या करताहुआ प्राणी पापरो छूटता व निर्दोषलोक को जाताहै तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे राजन् ! सावधान होकर तुम पुराने इतिहास को सुनो ॥ १६ ॥ कि गुह्यतीर्थ में प्राप्तहोकर जैसे ब्राह्मण छूटगया है अगिले जमाने मे नामसे गोविन्द नाम का एक उत्तम ब्राह्मण होताहुआ ॥ १७ ॥ उसकी स्त्री ब्राह्मणी बड़ी पतिव्रता होतीहुई उसमें बड़े सुन्दर एक पुत्रको उसने उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ वह बालक अपने

घरही में लडकों के खेलोंसे खेलताहुआ किसी समयमें वह उत्तम ब्राह्मण लकड़ी लेनेको जाताहुआ ॥१९॥ जंगलसे लकड़ी के बोझको लाकर पिछवाडेसे घरमें फेकदिया वहां खेलताहुआ लडका लकडी के बोझसे चोटहिल होगया ॥ २० ॥ लड़का वहां मरगया परन्तु उससमयमें ब्राह्मणने नहीं जाना और उससमय में ब्राह्मणीभी डरके मारे गोविन्द से नहीं कहा ॥ २१ ॥ वह गोविन्द ब्राह्मण फिरभी जब वनको चलागया तब हे नृप ! अकेली वह ब्राह्मणी विलाप करतीहुई ॥ २२ ॥ ब्राह्मणी बोली कि ब्रह्माका पोता रावण जिसको तीनोंलोक डरतेथे वह पुत्र, मन्त्री और भाइयोंके सहित रामसे मारागया ॥ २३ ॥ ऐसेही पुत्र के विना मनुष्यलोक व स्वर्गलोक

त्वाकाष्ठभारं गृहेपश्चाच्चिक्षिप्तवान् ॥ क्रीडन्नास्तेशिशुस्तत्र काष्ठभारेणपीडितः ॥ २० ॥ ममारबालकस्तत्र द्विजोनज्ञातवांस्तदा ॥ ब्राह्मण्यपितदातस्मै नशशंसभयात्तथा ॥ २१ ॥ पुनर्द्विजस्सगोविन्दो विपिनंसंजगामह ॥ यदासाब्राह्मणीशून्या विललापतदानृप ॥ २२ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ रावणोब्रह्मणःपौत्रस्त्रैलोक्यंयस्यशङ्कते ॥ सहतोरामचन्द्रेण सपुत्रामात्यबान्धवः ॥ २३ ॥ एवंपुत्रंविनासौख्यं मर्त्येनाकेनविद्यते ॥ यशश्राख्यायितंयस्य स्वर्गार्थयस्यभारती ॥२४॥ मिष्टान्नंब्राह्मणस्यार्थे स्वर्गवासोपिविद्यते ॥ पुत्रोत्पत्तिविनाशाभ्यां नापरंसुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां नापरंपापपुण्ययोः ॥ किंब्रवीमीतिहेवत्स नानुसौख्यंसुतंविना ॥ २६ ॥ एवंबहुविधंदुःखं प्रलपित्वापुनःपुनः ॥ बालं गृहगतेविप्रे सङ्गोप्यब्राह्मणीतथा ॥ २७ ॥ एवंतस्यांविलम्पन्त्याङ्गतारात्रिर्युधिष्ठिर ॥ भूम्यांप्रसुप्तंगोविन्दं पुत्रशोकेनपीडिता ॥ २८ ॥ यावन्निरीक्षतेभार्य्यां भर्तारंदुःखपीडितम् ॥ कृमिराशिमयन्तावद्गोविन्दंनृपसत्तम ॥ २९ ॥ दुःखा

में सुख नहीं है जिसका यश फैलाहुआ है और जिसकी वाणी स्वर्गकी देनेवाली है ॥ २४ ॥ और जिसका मीठा अन्न ब्राह्मणों के वास्तेहै उसीको स्वर्गवास भी है पुत्र पैदाहोने के बराबर सुख नहीं है और उसके मरने के बराबर कोई दुःख नहीं है ॥ २५ ॥ ब्रह्महत्या के बराबर कोई पाप नहीं है और अश्वमेध के बराबर कोई पुण्य नहीं है हे वत्स ! मै क्या कहूं पुत्रके विना सुख नहीं है ॥ २६ ॥ ऐसे अनेकप्रकार के दुःखको बार बार कहकर और ब्राह्मण को घरमें आनेपर बालक को छिपाकर ब्राह्मणी रहगई ॥ २७ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसतरह उसके विलाप करतेहुये रात्रि बीतगई पुत्रशोकसे पीडित उनकी स्त्री जमीन में सोरहे गोविन्द अपने मालिकको जबतक

दुःख से पीडित देखे तबतक कीडोंके ढेररूप गोविन्द को देखा हेनृपसत्तम ! ॥ २८ । २९ ॥ पापसे युक्त उन गोविन्द को देखकर अत्यन्त दुःखमें ब्राह्मणी डूबगई तब इस प्रकार दुःखमे डूबीहुई उस ब्राह्मणी की रात बीती ॥ ३० ॥ प्रातःकाल कुशों के वास्ते फिर गोविन्द वनको गये ऐसे लकडी से मरेहुये अपने लड़के को गोविन्द ब्राह्मणने नहीं जाना ॥ ३१ ॥ जिस वार्त्ताको ब्राह्मणी ने छिपाया था उसको पांचदिन होगये पाचवें दिन एक पशुओंका चरानेवाला उत्तम भैंसियो और गौवोंको चराता हुआ ॥ ३२ ॥ वनमें भैंसियों व गौवों को छोड़कर आप खानेके वास्ते घरको गया और गोविन्द ब्राह्मण से उस पशुपालने कहदिया ॥ ३३ ॥ कि हे स्वामिन् ! मै जबतक भो-

दृदुःखतरेमग्ना दृष्ट्वातंपातकान्वितम् ॥ एवंदुःखनिमग्नायाः शर्वरीविगतातदा ॥३० ॥ पुनःप्रातस्तुगोविन्दो दर्भाय चवनंगतः ॥ एवंनज्ञातवान्विप्रः काष्ठेनचहतंसुतम् ॥ ३१ ॥ गताश्चदिवसाःपञ्च ब्राह्मण्यागोपितञ्चयत् ॥ पशुपालःप ञ्चमेह्नि महिषीरुत्तमाश्चगाः ॥ ३२ ॥ अरण्येमहिषीर्मुक्त्वा गाश्चभोक्तुंगृहंगतः ॥ विज्ञप्तःपशुपालेन गोविन्दोब्राह्मणो त्तमः ॥ ३३ ॥ यावद्भक्ष्याम्यहंस्वामिन्महिषीर्गाश्चरक्षय ॥ ततःसत्वरितोगाश्च ब्राह्मणोमहिषीःप्रति॥ ३४॥जगाममहि षीर्गाश्च विप्रस्यतस्यरक्षतः॥ धावमानस्यगावश्च महिष्यःसङ्गमंगताः ॥ ३५ ॥ तत्रप्रविष्टास्तुजले नद्यारेवासुसङ्गमे ॥ तज्जलंपीतमात्रन्तु त्वरयातेनवारिताः ॥ ३६ ॥ अकामात्सलिलंपीत्वा प्रक्षाल्यनयनेशुभे ॥ आजगामततःपश्चाद्ध वनंदिनसंक्षये ॥ ३७ ॥ भुक्त्वादुःखान्वितोरात्रौ गोविन्दश्शयनंययौ ॥ निद्राभिभूतोदुःखेन श्रमेणैवतुखेदितः ॥ ३८ ॥ पुनस्तस्त्वार्द्धरात्रेतु तस्यभार्य्यानिरीक्षते ॥ कृमिभिर्वेष्टितंगात्रं कचित्पश्यत्यवेष्टितम् ॥ ३९ ॥ पुनःसाविस्मया

जनकरआऊं तबतक आप इन भैंसियों व गौवोंको बचाये रहना तदनन्तर वह ब्राह्मण जल्दहो भैंसियों व गौवों के पास ॥ ३४ ॥ चलागया और भैंसियों व गौवों को चराते व दौडतेहुये उस ब्राह्मण के भैंसें व गौवें संगम को चलीगई ॥ ३५ ॥ और उस नदी व नर्मदा के संगम के जलमें पैठगई उस पानीके पीतेही उस ब्राह्मणने उनको जल्दी से हांकदिया ॥ ३६ ॥ आपभी बेप्यास पानीको पीकर और नेत्रोंको धोकर उसके बाद सन्ध्याको घरआया ॥ ३७ ॥ थकाहुआ भोजनकर रातमें गोविन्द सोगया दुःख व थकावट से कष्टित निद्रासे बेहोश होगया ॥ ३८ ॥ आधीरात को फिर उसकी स्त्री उसको देखनेलगी तो उसकी देह कहीं कीड़ोंसे युक्त और कहीं

विष्टा तस्यभार्य्यागुणान्विता ॥ उवाचदुष्कृतंतस्य साध्वसाविष्टचेतना ॥ ४० ॥ भार्य्योवाच ॥ अतीतेपञ्चमेचाह्नि इन्धनंक्षिपतातुते ॥ गृहेपश्चात्स्थितोबालस्त्वज्ञातोघातितस्त्वया ॥ ४१ ॥ मयातत्पातकंघोरं त्वत्कृतंनप्रकाशितम् ॥ तेनप्रच्छन्नपापेनदह्यमानादिवानिशम् ॥ ४२ ॥ नसुखंतवगात्रस्यनचपश्यामिचात्मनः ॥ निद्राप्रणष्टामेनाथ रतिश्चैवत्वयासह ॥ ४३ ॥ श्रूयतेमानवेशास्त्रे श्लोकोगीतोमहर्षिभिः ॥ स्मृत्वास्मृत्वाचतंरात्रौ परितापोनशाम्यति ॥ ४४ ॥ कीर्तनान्नश्यतेऽधर्म्मो वर्द्धतेऽसौचगूहनात ॥ इहलोकेपरेचैव पापस्यान्तोनविद्यते ॥ ४५ ॥ एवंसञ्चिन्तयमानाहं स्थितारात्रौभयातुरा ॥ कृमिराशिमयंत्वान्तु पश्यामिकथयामिकिम् ॥ ४६ ॥ पुनश्चकान्तत्वद्देहंभ्रूणहत्याकृमिप्लुतम् ॥ कचित्तुदन्तितेचैव कचिन्नष्टाःसमन्ततः ॥ ४७ ॥ एतत्संस्मृत्यसंस्मृत्य विमृशन्तीपुनःपुनः ॥ नजानेकारणंकिञ्चित्पृच्छामिकथयस्वमे ॥४८॥ तडागंवापिसरितंतीर्थंवादेवतालयम् ॥ यंगतोसिप्रभावोयं तस्यनान्यस्यमेमतिः॥४९॥

खाली देखतीहुई ॥ ३९ ॥ फिर गुणवाली वह उसकी स्त्री विस्मय से भरीहुई व डरतीहुई उसका पाप उससे कहतीहुई ॥ ४० ॥ स्त्री बोली कि बीतेहुये आज से पांचवे दिनमें पिछवाडे से लकड़ीको फेंकतेहुये आपसे बेजाना, घरमें वर्तमान, आपका लड़का मारडालागया ॥ ४१ ॥ आपके कियेहुये इस घोरपाप को मैंने प्रकट नहीं किया पर छिपायेहुये उस पापसे मैं दिन रात जलतीहूं ॥ ४२ ॥ और आपके व अपने शरीर के सुखको नहीं देखती हूं हे नाथ ! मेरी नींद व तुम्हारे साथका भोग नष्ट होगयाहै ॥ ४३ ॥ मनुस्मृति में महर्षियों का कहाहुआ श्लोक सुनाजाता है उसको याद कर २ रातमें मेरा सन्ताप शान्त नहीं होताहै ॥ ४४ ॥ उस श्लोक का यह मतलब है कि अधर्म (पाप) कहने से घटताहै और छिपाने से बढ़ताहै इस लोक व परलोक में पापका अन्त नहीं है ॥ ४५ ॥ ऐसे विचारतीहुई व डरतीहुई मैं रातमे रहती हूं और आपको कीडोंका ढेररूप देखतीहूं तिसको क्या कहूं॥ ४६ ॥ फिर हे प्यारे! सबओर बालहत्या के कीडोंसे घिरीहुई आपकी देहको कहीं वे कीड़े काटतेहै और कहीं के नष्टभी होगये हैं ॥ ४७ ॥ इस बातको बार २ यादकर व बार २ विचारती हुई मैं किसी कारणको नहीं जानती सो आपसे पूछतीहू आप मुझसे कहो ॥ ४८ ॥

जिस तड़ाग व नदी व तीर्थ न देवता के स्थानको आप गयेरहो उसीका यह प्रभावहै और का नहीं यह मेरी समझहै ॥ ४६ ॥ हे भारत ! ऐसे कहागया वह ब्राह्मण स्त्री से रमता हुआ हे नृपोत्तम ! पहलेवाले हालको कहा ॥ ५० ॥ कि मै गौवों व भैंसियों के रोकने के वास्ते नर्मदाके सगम को गयाथा सो नाभितक जलमें पैठकर मैने यथेष्ट जलको पियाहै ॥ ५१ ॥ और तीर्थको मै नही जानताहूं नर्मदाजी सब नदियो में श्रेष्ठहैं इस प्रकार उस सब वृत्तान्त को सुनकर उस उत्तमवर्णवाली स्त्रीने उसी क्षणमें व्रत किया और उस संगममें पतिके सहित जातीहुई और देवताओंसे पूजित उस सङ्गम में विधिसे स्नानकर ॥ ५२ । ५३ ॥ पार्वती के सहित कल्याणकारक

गोलुलायीनिवृत्त्यर्थं नर्म्मदासङ्गमंगतः ॥ नाभिमात्रेजलेमग्नस्तोयंपीतंयथेष्टतः ॥ ५१ ॥ नान्यत्तीर्थंविजानामि नर्म्मदाचसरिद्वरा ॥ एवंश्रुत्वाचतत्सर्वमुपवासःकृतःक्षणात ॥ ५२ ॥ भर्त्रासहगतातत्र सङ्गमेवरवर्णिनी ॥ स्नात्वाविधिप्रयुक्तेन सङ्गमेसुरपूजिते ॥ ५३ ॥ तर्पयामासदेवेशं शङ्करंचसहोमया ॥ पञ्चामृतैःस्नापयित्वा ब्राह्मण्यासहितोद्विजः ॥ ५४ ॥ गन्धमाल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्चसुशोभनैः ॥ अपूजयत्तत्रलिङ्गं देवींकात्यायनींशुभाम् ॥ ५५ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा भर्त्रातेनसहैवसा ॥ ततःप्रभातेविमले द्विजंसम्पूज्ययत्नतः ॥ ५६ ॥ गोदानेनहिरण्येन वस्त्रेणान्नेनभारत ॥ गोविन्द पूजयामास स्वशक्त्याब्राह्मणंशुभम् ॥ ५७ ॥ उक्तश्चाकाशवाण्यातु तीर्थंगुह्यावतीत्विदम् ॥ गुह्येश्वरंतत्रलिङ्गं पातालादुत्थितंतदा ॥ ५८ ॥ गुह्यावतीनर्मदयोः सङ्गमोगुणवानभूत् ॥ मुक्तपापोगृहंयातः स्वभार्य्यासहितोद्विजः ॥ ५९ ॥ एतत्ती

एवमुक्तस्त्वसौविप्रः कथयामासभारत ॥ भार्ययापूर्ववृत्तान्तंरममाणोनृपोत्तम ॥ ५० ॥

महादेवजी को तृप्त किया ब्राह्मणी के सहित उस ब्राह्मण ने पञ्चामृत से स्नान करवाके ॥ ५४ ॥ चन्दन, फूल, धूप और अत्युत्तम नैवेद्यआदि से वहां लिंग व उत्तम कात्यायनी देवीका पूजन किया ॥ ५५ ॥ उस अपने पतिके सहित वह स्त्री रात्रि में जागरणकर और फिर निर्मल प्रातःकाल मे यत्नसे ब्राह्मणका भी पूजनकर ॥ ५६ ॥ व हे भारत ! गोविन्द भी अपनी शक्तिसे गऊ, सोना, कपडा और अन्नसे उत्तम ब्राह्मण का पूजन किया ॥ ५७ ॥ और आकाशवाणीसे कहाभी गया कि यह गुह्यावती नामका तीर्थ है उसीसमय में पाताल से वहां गुह्येश्वरलिंग भी प्रकटहुआ ॥ ५८ ॥ गुह्यावती और नर्मदा का सङ्गम गुणवाला होताहुआ छूटे स्वस्थ होगई

पापवाला वह ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित घरको गया ॥ ५९ ॥ यह तीर्थ पापों का हरनेवाला व बालहत्या का नाश करनेवाला है उसमें स्नान, जप, दान व ब्राह्मण भोजन करवाके ॥ ६० ॥ और व्रत करके व श्राद्धकरने और तिलोदक देने मे महाप्रलयतक शिवलोक में बसताहै ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगुह्यावतीतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर जावे जहां मेघनाद के समीप नदियों में श्रेष्ठ विश्वरूपा नदी ॥ १ ॥ जगत् के उपकार

र्थंपापहरं बालहत्याप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नात्वाचजप्त्वाच दत्त्वाब्राह्मणभोजनम् ॥ ६० ॥ उपास्यश्राद्धकरणात्तिलोदकप्रदानत ॥ निवसेच्छिवलोकेहि यावदाहूतसंप्लवम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगुह्यावतीतीर्थमहिमानुवर्णनोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र उत्तरेनर्म्मदातटे ॥ मेघनादसमीपेतु विश्वरूपासरिद्वरा ॥ १ ॥ निर्गताविश्वरूपस्य शरीराद्रुपकुर्वतः ॥ पुरादारुवनेदेवो लिङ्गहीनःकृतोद्विजैः ॥ २ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य तप कुर्वंस्तदानृप ॥ विश्वरूपोभवद्देवो निर्गतासरितांवरा ॥ ३ ॥ गतासानर्म्मदातोयं सङ्गमोगुणवानभूत् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा सभवेनपुनर्भवेत् ॥४॥ तत्रयत्क्रियतेकर्म्म सर्वंतदक्षयंभवेत् ॥ सारिकासिद्धिमायाता पतितातीर्थसङ्गमे ॥ ५ ॥ पूर्वमप्सरसांश्रेष्ठा शक्रशापादकामतः ॥ चित्राङ्गदेनरमिता काचित्कष्टमवापह ॥ ६ ॥ सारिकाभवकल्याणि वर्षाणांसाग्रविंशतिम् ॥

करनेवाले विश्वरूप महादेव के शरीर से निकली है पूर्वकाल में दारुवनमें ब्राह्मणोंने महादेवजीको लिंगहीन करदियाथा ॥ २ ॥ तब उस समय में हे नृप ! नर्मदाके तटपर बैठकर तपस्याको करतेहुये महादेवजी विश्वरूप होगये उन्हींसे जो श्रेष्ठ नदी निकली है ॥ ३ ॥ वही नर्मदाको गईहै वह संगम गुणवाला होगया उस तीर्थमें स्नान कर वह मनुष्य फिर संसारमें नहीं होताहै ॥ ४ ॥ वहां जो कर्म कियाजाताहै वह सब अक्षय होताहै तीर्थके संगममे गिरीहुई सारिका (मैना) ने सिद्धिको पायाहै ॥ ५ ॥ प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में अप्सराओं मे श्रेष्ठ कोई एक अप्सरा बेमन चित्राङ्गद के साथ रमी सो इन्द्रके शापसे कष्टको प्राप्तहुई ॥ ६ ॥ इन्द्रने कहा कि हे कल्याणि !

तू कुछ अधिक बीस वर्षतक सारिका हो फिर मरकर तू विश्वरूपा के संगममें नर्मदाके जलमें प्रवेशकर उस योनिसे छूटजायगी ॥ ७ ॥ तब हे नृप! उत्तमदेहवाली वह बड़ी विचित्र मैनाहुई अपनी जातिकी याद रखनेवाली देवी नर्मदातट में रहतीरही ॥ ८ ॥ तदनन्तर उत्तम आचरणवाली वह मैना समय के आनेपर उत्तम आगको जलाकर विश्वरूपा के सङ्गम में नहाकर आगमें पैठगई ॥ ९ ॥ तब हे राजन्! दिव्यदेह को धरेहुये इन्द्र के मन्दिर को प्राप्तहुई तबसे वह सारिकातीर्थ कहाजाता है ॥ १० ॥ वहां जो काम कियाजाता है श्राद्ध, यज्ञ व शिवपूजन वह सब करोड़गुना मेघनादके दर्शनसे होताहै ॥ ११ ॥ परवश व अपने वश होकर जो

मृत्वात्वंनर्म्मदातोये विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ७ ॥ विचित्राबहुचार्वङ्गी सञ्जातासारिकानृप ॥ जातिस्मरासुराभावा नर्म्मदातटमाश्रिता ॥ ८ ॥ ततःकालेचसंप्राप्ते प्रज्वाल्यपावकंशुभम् ॥ प्रविष्टासाशुभाचारा विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ९ ॥ दिव्यदेहधरीराजन्प्राप्ताशक्रस्यमन्दिरम् ॥ एतदन्तरमासाद्य सारिकातीर्थमुच्यते ॥ १० ॥ तत्रयत्क्रियतेकर्म्म श्राद्धं यज्ञःशिवार्चनम् ॥ सर्वंकोटिगुणंविद्यान्मेघनादस्यदर्शनात् ॥ ११ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ १२ ॥ ख्यातानिपञ्चलिङ्गानि यानिदृष्ट्वाशिवंव्रजेत् ॥ मानवोमनुजश्रेष्ठ शृणु तानियुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ मेघनादंचगोष्ठेशं वागीशंकाक्कडेश्वरम् ॥ लक्षेश्वरंपञ्चलिङ्गान्येकाहेयस्तुपूजयेत् ॥ १४ ॥ अनेनैवशरीरेण सनरोहिशिवंव्रजेत् ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्यपश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि पुरावृत्तंतवानघ ॥ धर्म्मसेनःपुराराजा अयोध्याधिपतिर्बली ॥ १६ ॥ धर्म्मेणराज्यंकृतवान्यज्ञांश्चबहुदक्षिणान् ॥

प्राणोंको छोडताहै उसकी फिर इस घोरसंसारसागरमें आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ १२ ॥ वहां पांच लिंग प्रसिद्ध हैं जिनका दर्शनकर मनुष्य शिवको पाताहै हेमनुजश्रेष्ठ, युधिष्ठिर! उनको तुम सुनो ॥ १३ ॥ मेघनाद, गोष्ठेश, वागीश, काकडेश्वर और लक्षेश्वर इन पांचों लिंगोंको जो एक दिनमें पूजता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य इसी शरीर से महादेवजी को पाताहै करोड़ों यज्ञोंके फलको पाकर पीछे मोक्षको पाताहै ॥ १५ ॥ हे अनघ! पूर्वकाल में हुये आख्यानको हम तुमसे कहेंगे अगिले जमाने में अयोध्याके मालिक, बलवाले, राजा धर्मसेनजी हुये ॥ १६ ॥ उन्होंने धर्मसे राज्य व बहुत दक्षिणावाली यज्ञोंको किया व धर्मशास्त्र सुनरहे वे राजा नर्मदाके चरितको

सुनकर नर्मदाके उत्तरवाले तटको चलेगये नर्मदाके जलमें स्नानकर और मेघनादका पूजनकर ॥ १७ । १८ ॥ सूर्यके उदय होतेहुये घोडेपर सवार राजा उत्तरदिशा की तरफ होकर गोष्ठेश्वर महादेवजीको चलेगये ॥ १९ ॥ उनका विधिसे पूजनकर फिर वागीश्वर को गये राजा वहां विधिपूर्वक स्नानकर और चन्दन, अगर, कपूर, धूप और दीपआदि विधानों से शिवका पूजनकर घोडेपर सवार राजाधिराज काकडेश्वरको आये ॥ २० । २१ ॥ व उनको पूजकर तदनन्तर राजा नर्मदाके जलमें विद्यमान लवेश्वरको जाकर व उनका विधिपूर्वक पूजनकर ॥ २२ ॥ फिर मेघनादको गये वहां सूर्यभी अस्त होगये आपही कालरूप महादेवजीका ध्यानकर राजा जब

शृण्वन्सधर्म्मशास्त्राणि नर्म्मदाचरितंतथा ॥ १७ ॥ श्रुत्वाविनिर्गतोराजा रेवायाउत्तरेतटे ॥ मेघनादंसमभ्यर्च्य स्नात्वावैनर्म्मदाजले ॥ १८ ॥ उद्गच्छतिदिनकरे अश्वारूढोनरेश्वरः ॥ उत्तरान्दिशमाश्रित्य गतोगोष्ठेश्वरंशिवम् ॥ १९ ॥ यथाविधानंसम्पूज्य वागीश्वरगतस्ततः ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन पूजयित्वाशिवंनृपः ॥ २० ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपैर्दीपैर्विधानकैः ॥ अश्वारूढोनृपश्रेष्ठः काकडेश्वरमागतः ॥ २१ ॥ तंप्रपूज्यततोराजा गत्वावैनार्म्मदेजले ॥ लवेश्वरंपूजयित्वा स्थितंवैविधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥ मेघनादंततोगत्वा सूर्य्यश्चास्तमुपागमत ॥ ध्यात्वास्वयंकालरूपं यावत्तिष्ठतिवैनृपः ॥ २३ ॥ तावद्धोरोपितुरगोह्यन्तरिक्षचरस्तदा ॥ दिव्यदेहधरस्सोवाप्यप्सरोभिःसमावृतः ॥ २४ ॥ विमानेदेवराजस्य ययाविन्द्रपुरींस्थितः ॥ शुनीपृष्ठेतुयाराज्ञस्तीर्थयात्रांप्रकुर्वती ॥ २५ ॥ दिव्यदेहधरासापि विमानेनगतादिवि ॥ धर्म्मसेनोपितान्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ २६ ॥ अश्वरूपंजगादाथ किमेतदितिभारत ॥ उवाचाकाशगोवाचं कथन्त्वंखिद्यसेनृप ॥ २७ ॥ शरीरजेनकष्टेन तपःसाध्याविभूतयः ॥ पादचारीहिगच्छत्वं परपादैर्गतोह्यसि ॥ २८ ॥ भू

तक ठहरे ॥ २३ ॥ तबतक वह पापी घोडा भी आकाश में चलताहुआ व दिव्य देहको धरेहुये व अप्सराओं से घिराहुआ ॥ २४ ॥ इन्द्रके विमान मे बैठाहुआ इंद्रपुरीको चलागया और राजाके पीछे तीर्थयात्राको कररही जो कुतिया थी ॥ २५ ॥ वह भी दिव्यदेह को धरेहुये विमान से स्वर्गको जातीहुई धर्मसेन भी उसको देखकर विस्मययुक्त होतेहुये ॥ २६ ॥ और हे भारत ! उस घोड़ेसे कहा कि यह क्याहै तब आकाशमें विद्यमान घोड़ा वचन बोला कि हे नृप ! तुम क्यों दीन होतेहो ॥ २७ ॥

अपने शरीर के कष्टसे जो तप होताहै उसीसे सब ऐश्वर्य होते हैं इससे अपने पांवों से चलतेहुये आप जावें अभी तो और के पांवों से आयेथे ॥ २८ ॥ अब जो फिर आप यात्रा करेंगे तो सिद्धिको पावेंगे तब राजा उसके इस वचन को सुनकर ॥ २९ ॥ फिर दूसरे दिन लिंगपूजनके लिये गये और पाचों लिंगोंका भली भांति पूजनकर नर्मदा को आये ॥ ३० ॥ जब मेघनाद को देखा तो दरवाजेपर प्रत्यक्ष महादेवजीको देखतेहुये पांच मुहँवाले, दश भुजावाले, तीन नेत्रवाले, त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ३१ ॥ बैलपर सवार, जगत् जिनके पेटमें है, चन्द्रमा का मुकुट बनायेहुये और इन्द्रादि सब देवताओंके स्वामी परमेश्वर उन महादेवजी को देख

योयात्रांप्रकुरुषे तदासिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ततोराजाचतस्याथ श्रुत्वातद्वचनंतदा ॥ २९॥ पुनर्द्वितीयदिवसे प्रस्थितोलिङ्गपूजनम् ॥ पञ्चलिङ्गान्समभ्यर्च्य समायातस्तुनर्म्मदाम् ॥ ३० ॥ मेघनादंयदापश्यद्वारेदेवंचदृष्टवान् ॥ पञ्चवक्रं दशभुजं त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ३१ ॥ वृषारूढंजगद्गर्भं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ दृष्ट्वातन्देवदेवेशं तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ ३२ ॥ जयदेवमहादेव महापातकनाशन ॥ संसारसागरेमग्नं मांसमुद्धरसाम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ हरउवाच ॥ वरंवृणु महाभाग यत्तेमनसिवर्तते ॥ तद्ददामिनसन्देहश्शिवभक्तोहिपुत्रक ॥ ३४ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव तन्मांसहचरंकुरु ॥ एकाहेपञ्चलिङ्गानि पूजयिष्यतियोनरः ॥ ३५ ॥ सतवानुचरोदेव भवत्वेषवरोमम ॥ धर्म्मसेनवचःश्रुत्वा भवत्वेवंहरोब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तंगृहीत्वातुराजानं कैलासंसजगामह ॥ स्वदेहस्थंचकारासौ धर्म्मसेनंनृपंनृप ॥ ३७॥ एतत्तेकथितंराज

कर स्तुति करतेहुये ॥ ३२ ॥ हे देव ! हे महादेव ! हे बडे पापोंके नाशकरनेवाले ! आपकी जयहो अब संसारसमुद्रमें डूबेहुये मुझको उद्धारकरो ॥ ३३ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें बर्तताहो उस वरको तुम मागलेवो हेपुत्रक ! उसको मैं तुम्हे देऊंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि तुम शिवकेभक्तहो ॥३४॥ तब राजा बोले कि हे देव ! जो आप मुझपर प्रसन्नहोवो तो मुझे आप अपना अनुचरकरो और जो मनुष्य एक दिनमें पांचों लिंगोंका पूजनकरे ॥ ३५ ॥ हे देव ! वह तुम्हारा अनुचर होजावे यही हमारा वरहै धर्मसेन के वचनको सुनकर ऐमाही हो इस प्रकार महादेवजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और उन राजाको लेकर महादेवजी कैलास

को चलेगये और हे नृप ! राजा धर्मसेनजीको अपने शरीरमें मिलालिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास आपसे कहागया इसके सुनने व कहनेसे अश्वमेध के फलको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपञ्चलिङ्गमहिमाऽनुवर्णनोनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और पापों के नाश करनेवाले तीर्थको कहेंगे वह मयूरकुक्कुट नाम का तीर्थ ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥ नर्मदा के दक्षिण तटमें पुण्यवाला मृकण्डका आश्रमहै हे भूपाल ! उसमें बड़े धर्मात्मा मृकण्डनामक ऋषि ॥ २ ॥ हे महाभाग ! देवताओं की हजारोंवर्षोंतक तप करतेहुये रमणीक

न्नितिहासंपुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यअश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चलिङ्गमहिमानुवर्णनोनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मयूरकुक्कुटंनाम ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ १ ॥ मृकण्डस्याश्रमंपुण्यं नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ मृकण्डोनामभूपाल ऋषिःपरमधार्म्मिकः ॥ २ ॥ तपस्तेपेमहाभाग दिव्यैर्वर्षसहस्रकैः ॥ तस्याश्रमपदेरम्ये मुनयःशंसितव्रताः ॥ ३ ॥ वसन्तिस्मजलाहाराः शुष्कपत्रकृताशनाः ॥ केचित्त्वनिराहारा मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्गन्धर्वौशक्रगायनौ ॥ हेतिप्रहेतिनामानौ गतौशक्रसभांनृप ॥ ५ ॥ वधूरप्सरसांश्रेष्ठा दृष्टाताभ्यांयुधिष्ठिर ॥ दृष्टमात्रौतुगन्धर्वौ कामबाणप्रपीडितौ ॥ ६ ॥ हेतिःकुक्कुटशब्देन प्रहेतिर्बर्हिणस्तथा ॥ घोष्यमाणौसुमधुरं सादयामासतुश्चताम् ॥ ७ ॥ वृत्रहातदभिप्रायं ज्ञात्वाशापंददौत

उनके आश्रममें उत्तमव्रतवाले जल व सूखेपत्तोंके खानेवाले मुनिलोग बसतेहुये मोक्षके उपायोंके विचारनेवाले वहां कोई निराहार भी रहतेथे ॥ ३ । ४ ॥ हे राजन् ! इसी अन्तर में हेति और प्रहेति नामके इन्द्रके यहां के गानेवाले गन्धर्व हे नृप ! इन्द्रकी सभाको गये ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन दोनोंने अप्सराओं में श्रेष्ठ एक नवीन अप्सराको देखा देखतेही दोनों गन्धर्व कामबाणसे अतिपीडितहुये ॥ ६ ॥ तब हेति मुर्गाकी आवाज से और प्रहेति मोरकी बोलीसे अतिमधुर बोलतेहुये उस

अप्सराको रिझाया ॥ ७ ॥ तब उनका अभिप्राय जानकर इन्द्रने शापकोदिया कहा कि तुम दोनों मुर्गा और मोर होजावोगे इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥ फिर देवताओं की सौवर्षोंके पूरे होनेपर यहां आवोगे तब हे युधिष्ठिर ! वे दोनों गन्धर्व पक्षियोंकी योनिको प्राप्तहोगये ॥ ९ ॥ पहले जन्मकी याद रखनेवाले व कुकर्म करनेवाले व देखनेमें प्यारे दोनों पक्षी सब तीर्थोंपर उतरतेहुये नारदजी को देखा ॥ १० ॥ तब दोनो गन्धर्व बोले कि हे शुभाचार ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे तपोधन ! किस कर्मसे ये हम दोनों छूटेंगे सो आप कहें ॥ ११ ॥ तब नारदजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणके तटमें मृकण्डका पुण्यवाला आश्रम है अक्सर वह तीर्थ तिर्यक्योनि से छोडानेवाला

दा ॥ युवांकुक्कुटमयूरौच भविष्येथेनसंशयः ॥ ८ ॥ पूर्णेदिव्यशतेवर्षे पश्चादत्रागमिष्यथः ॥ तिर्यग्योनौतुसंप्राप्तौ गन्धर्वौहियुधिष्ठिर ॥ ९ ॥ जातिस्मरौदुराचारौ पक्षिणौप्रियदर्शिनौ ॥ सर्वतीर्थान्युत्तरन्तौ नारदंचददर्शतुः ॥ १० ॥ गन्धर्वावूचतुः ॥ भविष्यावःशुभाचार ब्रह्मपुत्रतपोधन ॥ कर्म्मणाकेनचावांहि मुक्तावेतौवदस्वतत् ॥ ११ ॥ नारदउवाच ॥ नर्म्मदादक्षिणेतीरे मृकण्डस्याश्रमंशुभम् ॥ तिर्य्यग्योनिविमोक्षञ्च तीर्थंहिपरमंमतम् ॥ १२ ॥ जलाप्लुतौनर्म्मदायाः सर्वंतत्रभविष्यति ॥ ततोहेतिःप्रहेतिश्च सुस्नातौदिव्यरूपिणौ ॥ १३ ॥ एकेनस्नानमात्रेण पक्षिणौदिव्यतांगतौ ॥ स्नात्वातुविधिनानेन ध्यात्वादेवंसदाशिवम् ॥ १४ ॥ उच्चार्य्याघोरमन्त्रन्तौ सदाध्यानस्थितौनृप ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्पातालादुत्थितंशुभम् ॥ १५ ॥ शतसूर्य्यप्रकाशंहि लिङ्गंतत्रयुधिष्ठिर ॥ कुक्कुटेश्वरमेकन्तु मयूरेश्वरमेवच ॥ १६ ॥ गन्धर्वौतुविमानस्थौ गतौशक्रस्यमन्दिरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा भवेनैवपुनर्भवेत् ॥ १७ ॥ स्नात्वातिलो

मानागयाहै ॥ १२ ॥ तुम दोनों नर्मदाके जलमें स्नानकरो वहां सब होजायगा तदनन्तर हेति और प्रहेति दोनोंने स्नान किया और दिव्यरूप होगये ॥ १३ ॥ एक स्नानमात्रसे दोनोंपक्षी दिव्यरूप होगये फिर विधिसे स्नानकर व सदाशिवदेवका ध्यानकर ॥ १४ ॥ व अघोरमन्त्रका उच्चारणकर वे दोनो सदा ध्यानमें स्थित होतेहुये इसी अन्तर में हे राजन् , युधिष्ठिर ! वहां सैकड़ों सूर्योंके समान तेजवाले, उत्तम, दो लिंग पातालसे निकले एक कुक्कुटेश्वर और दूसरा मयूरेश्वर ॥ १५ । १६ ॥ फिर विमान पर बैठेहुये दोनों गन्धर्व इन्द्रके मन्दिर को चलेगये उस तीर्थ में मनुष्य स्नानकर फिर संसार में नहीं होताहै ॥ १७ ॥ स्नानकर और तिलोदक

देकर पितरों की परमगति होती है और परवश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ताहै ॥ १८ ॥ उसकी फिर घोर संसारसागर में आवृत्ति नहीं होतीहै वहां के मरे हुये कीडे, पतिंगवे, पक्षी, सांप, मेंढक और पापीवृक्ष भी शिवके स्थानको जाते हैं ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमृकण्डाश्रमकीर्तनो नामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर चन्द्रमती के संगम में और उत्तमतीर्थ है वहां चन्द्रेश्वर, सिद्धेश्वर, घण्टेश्वर और महिषेश्वर ये सिद्धलिंग हैं तदनन्तर

दकंदत्त्वा पितॄणांपरमागतिः ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ १८ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ तत्रकीटाःपतङ्गाश्च पक्षिणोथसरीसृपाः ॥ १९ ॥ मण्डूकाःपापवृक्षाश्च मृतायान्तिशिवंपदम् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमृकण्डाश्रमकीर्तनोनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोन्यत्परमंतीर्थं चन्द्रमत्यास्तुसङ्गमे ॥ चन्द्रेश्वरंसिद्धलिङ्गं तथासिद्धेश्वरंपुनः ॥ १ ॥ घण्टेश्वरंमहिषेशमश्वतीर्थमतःपरम् ॥ वृषसेनंहयग्रीवं शुकतीर्थमतःपरम् ॥ २ ॥ रमेश्वरंततोगच्छेत्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मेकलायास्तटेराजन्महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ यदादारुवनेपूर्वं महादेवेनमोहिताः ॥ ब्राह्मणानांस्त्रियस्तत्र रममाणाःसमागताः ॥ ४ ॥ चिन्तयन्त्यश्चतामोक्षं मेकलातीरमाश्रिताः ॥ ताभिश्चरममाणाभिरावृतंशिवपूजनम् ॥ ५ ॥ नीलोत्पलदलैर्बिल्वैर्मल्लिकाजातिकुन्दकैः ॥ शून्यंप्रपूजितंयावत्तावल्लिङ्गंसमुत्थितम् ॥ ६ ॥ पातालादागतंलिङ्गं

अश्वतीर्थ, वृषसेन, हयग्रीव और शुकतीर्थ है ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर पापोंके नाशकरनेवाले रमेश्वरतीर्थ को जावे हे राजन्! वह महापातकों का नाश करनेवाला नर्मदाके तटमें है ॥ ३ ॥ जब पहले दारुवन मे महादेवजीसे मोहित कीगई ब्राह्मणोंकी स्त्रिया रमतीहुई वहां आईं व वे मोक्षको विचार करतीहुईं नर्मदाके तटपर बैठी फिर विहार करतीहुई उन स्त्रियोंने महादेवजी के पूजनका प्रारम्भ किया ॥ ४ । ५ ॥ कालेकमलोंके दलों से व बिल्वपत्र, नॅवेली, जाही और कुन्दके फूलोंसे जबतक महादेव से खालीस्थान को पूजे तबतक लिंग प्रकटहुआ ॥ ६ ॥ जलतीहुई कालाग्निके समान तेजवाला लिङ्ग पाताल से आगया और रमेश्वर नाम से प्रसिद्ध उसी

विहारस्थान से प्रकट होगया ॥७॥ फिर महादेवजीने स्त्रियोंसे कहा कि तुम्हारे शापका मोक्ष होजावे अब तुम सब पापसे रहित अपने घरको जावो ॥ ८ ॥ इतना कह कर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये इससे उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर वह फिर संसारमें नहीं होताहै ॥ ९ ॥ तथा अनशनसे व अग्नि में जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न न होवेंगे और पितरों के लिये वहां विधिपूर्वक तिलोदक व पिण्डदान अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वहां श्राद्धके करने व दानसे पितरों की परमगति होती है पूर्व कालमें इन्द्र,ब्रह्मा,विष्णु और कुबेर ॥ ११ ॥ व हे नृप ! राक्षस रावण और मेघनादने जपको जपा व तपको तपा और अनेक प्रकारकी यज्ञोंको ॥ १२ ॥ किया इससे

ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ रमेश्वरेतिविख्यातं रममाणात्समुत्थितम् ॥ ७ ॥ स्त्रीणामुवाचदेवेशः शापमोक्षोभवत्विति ॥ गच्छन्तुसर्वाःस्वगृहं साम्प्रतंगतकल्मषाः ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा सम्भवेनपुनर्भवेत् ॥ ९ ॥ अनाशकेनचाग्नौहि येमृतानपुनर्भवाः ॥ तिलोदकंपितॄणान्तु पिण्डदानंयथाविधि ॥ १० ॥ श्राद्धेनैवचदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ इन्द्रेणब्रह्मणापूर्वं विष्णुनाधनदेनच ॥ ११ ॥ रक्षसारावणेनाथ तथाचेन्द्रजितानृप ॥ जपोजप्तस्तपस्तप्तं यज्ञानिविविधानिच ॥ १२ ॥ कृतानिनृपशार्दूल गताहिपरमाङ्गतिम् ॥ अन्यच्चकथयिष्यामि हारिणंतीर्थमुत्तमम् ॥ १३ ॥ हरिणेशंसिद्धलिङ्गं तथावैधनुरीश्वरम् ॥ बाणेश्वरंपरंविद्धि तथावैलुब्धकेश्वरम् ॥ १४ ॥ एतानिलिङ्गरूपाणि पूजयित्वाशिवंव्रजेत् ॥ आख्यानंकथयिष्यामि पुरावृत्तंयुधिष्ठिर ॥ १५ ॥ अर्जुनोलुब्धकोनाम मन्दजातिसमुद्भवः ॥ पर्य्यटन्मृगयांराजन्नर्म्मदातीरमागतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वायूथंमृगाणान्तु धावमानः पुनःपुनः ॥ पलायमानाःसर्वेते एकःपश्चात्स्थितोमृगः ॥ १७ ॥ हतोमध्यदिनेसोथ कुरङ्गोनर्म्मदातटे ॥ पतितोसौ

हे नृपशार्दूल ! वे परमगतिको प्राप्तहुये अब और उत्तम हारिणतीर्थको कहेंगे ॥ १३ ॥ सिद्धलिंग हरिणेश तथा धनुरीश्वर,बाणेश्वर और चौथे लुब्धकेश्वरको जानो ॥ १४ ॥ इन लिंगोंका पूजनकर शिवको पाताहै हे युधिष्ठिर ! अब पूर्वकाल में हुये आख्यान को हम कहेंगे ॥ १५ ॥ नीचजाति में पैदाहुआ अर्जुननाम का बहेलिया शिकारको घूमताहुआ हे राजन् ! नर्मदाके तीरआया ॥१६॥ और मृगोंके झुण्डको देखकर बार २ दौड़रहा तबतक वे सब मृग भागगये पीछेसे एक मृग रहगया ॥१७॥

गतप्राणो दिव्यदेहधरःपुनः ॥ १८ ॥ विमानेहंसयुक्तेवै ब्रह्मलोकंजगामह ॥ गतेतुहरिणेसोथ लुब्धकश्चिन्तयान्वितः ॥ १९ ॥ महापापान्यनेकानि कृतानितुमयापुनः ॥ काङ्क्षतियाम्यहंचाथ श्रेयसेमरणंमम ॥ २० ॥ चिन्तयित्वाततोरा जन्पतितोनर्म्मदाजले ॥ तत्क्षणाद्दिव्यदेहोसौ गन्धर्वपुरमाययौ ॥ २१ ॥ गतेतास्मिन्देवलोके धनुर्बाणौजलेस्थितौ ॥ चत्वार्य्येतानिलिङ्गानि ख्यातानिभुवनत्रये ॥ २२ ॥ हरिणेश्वरंचबाणेशं लुब्धेशंधनुरीश्वरम् ॥ रमेश्वरंपञ्चमन्तु प ञ्चलिङ्गानिकीर्तयेत् ॥ २३ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरोराजन्स्नात्वाशिवपुरंव्रजेत् ॥ २४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विलयंयान्तिपार्थिव ॥ अनाशकेचार्द्धजले मृतःशिवमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे रमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरबाणेश्वरकथनोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥

वह मृग मध्याह्न मे नर्मदाके तटपर मारागया वह मुर्दाहोकर गिरपडा फिर दिव्यदेहको धरेहुये ॥ १८ ॥ हंसोंसे जुते विमानपर चढ़कर ब्रह्मलोक को चलागया उस मृगके चलेजाने पर वह बहेलिया चिन्ता से युक्त हुआ ॥ १९ ॥ कि अनेक महापापों को मैंने कियाहै सो किस गति को मैं जाऊंगा इससे अब मेरा मरजाना अच्छा है ॥ २० ॥ तदनन्तर हे राजन्! इस प्रकार चिन्ताकर वह नर्मदाके जलमें गिरपड़ा उसीक्षण में दिव्य देहवाला वह गन्धर्वपुर को चलागया ॥ २१ ॥ उसके देवलोक में जानेपर धनुष और बाण जलमें पड़ेरहे तब ये चारलिंग तीनों भुवनोंमें प्रसिद्ध हुये ॥ २२ ॥ हरिणेश्वर,बाणेश, लुब्धेश,धनुरीश्वर और पांचवां रमेश्वर इन पांचों लिङ्गोंको जो कहे ॥ २३ ॥ उसका फिर घोरसंसारसागर में आना नहीं होताहै हे राजन्! उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य शिवपुर को जाताहै ॥ २४ ॥ और हे पार्थिव! ब्रह्महत्याआदि पाप नाश को प्राप्तहोते हैं और अनशन व अधजल से मरा शिवको पाता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेरमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरबाणेश्वरकथनोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि यत्नसे व्रतको कियेहुये भक्तिसे जो उसमें स्नानकर रात्रिमे जागरणकरे व दान देवे ॥ १ ॥ व पञ्चामृतसे महादेवजी को स्नान करावे व यथाशक्ति दानकरे और विधानसे पूजनकर ॥ २ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करताहुआ सुपात्र को ढूंढ़कर दानकरे तो उसके पितर बारहवर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नही है ॥ ३ ॥ और देनेवाला वहां जाताहै जहां निरजन देवहैं व जो इनके नामको अपने मकानमें बैठाहुआ अपनी शक्तिके अनुसार जपताहै ॥ ४ ॥ वह नील पर्वतमें जो पुण्य होती हैं उस सबको पाताहै और शूलभेदविषे जो पर्व २ में श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ और मासान्तमें विशेष से करताहै हे नृप ! उसके पुण्यफल को तुम

मार्कण्डेयउवाच ॥ तत्रस्नात्वातुभक्त्याय उपवासपरायणः ॥ क्षपाजागरणंकुर्य्याद्दद्याद्दानंचयत्नतः ॥ १ ॥ देवस्यस्नपनंकुर्य्यादमृतैःपञ्चभिस्तथा ॥ समालभेद्यथाशक्त्या पूजांकृत्वाविधानतः ॥ २ ॥ पात्रंपरीक्ष्यदातव्यमात्मनःश्रेयइच्छता ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दंनसंशयः ॥ ३ ॥ दाताचगच्छतेतत्र यत्रदेवोनिरञ्जनः ॥ गृहमध्येप्रविष्टस्तु स्मरन्नामास्यशक्तितः ॥ ४ ॥ नीलाद्रौतुचयत्पुण्यं तत्समस्तंलभेतसः ॥ शूलभेदेचयःकुर्य्याच्छ्राद्धं पर्वणिपर्वणि ॥ ५ ॥ विशेषाच्चैवमासान्ते तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ केदारेचैवयत्पुण्यं कुब्जायाञ्चतथानृप ॥ ६ ॥ कनखलेचैवयत्पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे ॥ सितासितेतुयत्पुण्यमन्यतीर्थेविशेषतः ॥ ७ ॥ अर्बुदेचैवयत्पुण्यं पुण्यंचामरपर्वते ॥ गङ्गाद्यैःसर्वतीर्थैश्च फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ८ ॥ अस्मिंस्तीर्थेतथापुण्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ विधिमन्त्रसमायुक्तं तर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ ९ ॥ कुलानितारयत्येव दशपूर्वापराणिसः ॥ दक्षिणाञ्चैवमर्त्यश्च शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १० ॥ न्यासंकृत्वातुपूर्वोक्तं प्रदद्यादष्टपुष्पकम् ॥ शास्त्रोक्तैरष्टभिर्मन्त्रैर्मानसैःशृणुतांस्तथा ॥ ११ ॥ वारिजंसौम्यमा

सुनो कि केदारमें जो पुण्यहै तथा कुब्जामें जो पुण्य होताहै ॥ ६ ॥ और कनखल व गङ्गासागरसङ्गममें जो पुण्यहै और सितासित व और तीर्थमें विशेषसे जो पुण्यहै ॥ ७ ॥ व अर्बुद व अमरपर्वतमें जो पुण्यहोताहै व गङ्गाआदि सब तीर्थोंसे मनुष्य जो फल पाताहै ॥ ८ ॥ इस तीर्थमें उसी प्रकार पुण्यको पाताहै इसमें कुछ संशय नही है व जो विधि और मन्त्रों से युक्त पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ९ ॥ वहआगे व पीछेवाले दशकुलों को तारताहै और पवित्र व सावधान होकर मनुष्य

दक्षिणा को भी देवे ॥ १० ॥ पहिले कहेहुये न्यासको कर फिर शास्त्रमें कहेहुये आठ मानसमन्त्रों से आठ फूलोंको देवे उन आठोंफूलोंको तुम सुनो ॥ ११ ॥ वारिज, सौम्य, आग्नेय, वायव्य, पार्थिव, वानरपत्य व सातवां प्राजापत्य पुष्पहै ॥ १२ ॥ और आठवां शिवपुष्प है अब इनका निर्णय सुनो वारिज जलको जाने, मिठाई से युक्त दूध सौम्यहै ॥ १३ ॥ धूप व दीप आग्नेय है, चन्दनआदि वायव्य है, कन्द मूलआदि पार्थिवहै,फल वानरपत्यहै ॥ १४ ॥ अन्नआदि प्राजापत्यहै और उपासना करने को शिवपुष्प कहते हैं अब और फूलोंको कहते हैं कि जीवोंका नहीं मारना पहिला फूलहै, इन्द्रियों का वश करना दूसरा ॥ १५ ॥ और तीसरा फूल दयाहै

ग्नेयं वायव्यंपार्थिवंपुनः ॥ वानस्पत्यंभवेत्पुष्पं प्राजापत्यन्तुसप्तमम् ॥ १२ ॥ अष्टमंशिवपुष्पंच शृणुवेतेषांविनिर्णयम् ॥ वारिजंसलिलंज्ञेयं सौम्यंमधुयुतंपयः ॥ १३ ॥ आग्नेयंधूपदीपंच वायव्यंचन्दनादिकम् ॥ पार्थिवंकन्दमूलाद्यं वानस्पत्यफलात्मकम् ॥ १४ ॥ प्राजापत्यमन्नाद्यञ्च शिवपुष्पमुपासनम् ॥ अहिंसाप्रथमंपुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥ १५ ॥ तृतीयंचदयापुष्पमेभिस्तुष्यन्तिदेवताः ॥ तपसाचार्चयेद्भक्त्या अत्रतीर्थेनराधिप ॥ १६ ॥ छत्रञ्चचामरन्द द्याच्छय्यांचोपानहौतथा ॥ तेनपूजनमात्रेण पूजिताःपुरुषास्त्रयः ॥ १७ ॥ स्वर्गलोकेवसेत्तावद्यावदाहूतसंप्लवम् ॥ शूलपाणेस्तुयोभक्त्या स्नपनञ्चैवकारयेत् ॥ १८ ॥ पञ्चामृतेनयश्चैव यत्तकर्दमकुङ्कुमैः ॥ समालभेच्चदेवेशं श्रीखण्डैरगरादिभिः ॥ १९ ॥ नानाविधैश्चपुष्पैश्च अर्चांकुर्वन्तियेद्विजाः ॥ रुद्रंपुरुषसूक्तञ्च लोकेयःस्वस्वसूत्रकम् ॥ २० ॥ इषेत्वादिकमन्त्रादिज्योतिर्ब्राह्मणमेवच ॥ गायत्रीचमधुश्चैव मण्डलब्राह्मणमेवच ॥ २१ ॥ एतज्जपन्तुयेभक्त्या

इन्हीं फूलोंसे देवता प्रसन्न होतेहैं तपस्या व भक्तिसे हे नराधिप ! इस तीर्थमें पूजनकरे ॥ १६ ॥ और छाता, चँवर, पलंग और जूताका जोडा देवे इस पूजनमात्र से तीन पुरुष पूजेहोजाते हैं ॥ १७ ॥ और तबतक स्वर्गलोकमें रहता है कि जब तक प्रलय होताहै और जो भक्तिसे महादेवजी को पञ्चामृत से स्नान कराता है और यक्षकर्दम, केसर, चन्दन और अगरआदि से जो महादेवजी को लेपित करता है ॥ १८ । १९ ॥ व जो ब्राह्मण अनेकतरह के फूलों से पूजन करते हैं व संसार में जो रुद्रसूक्त व पुरुषसूक्त जपताहै और अपने २ सूत्र ॥ २० ॥ इषेत्वाआदि मन्त्र, ज्योतिर्ब्राह्मण, गायत्री, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण और देवव्रत नामका दैव्यसूक्त इन

यजुर्वेदीय सूक्तोंको जो भक्तिसे जपते हैं वे पुरुष शिवके लोकको जातेहैं ॥ २१ । २२ ॥ हे महाराज ! अगिले जमाने में बडा दुर्जय एक अन्धक नामका दैत्यहुआ वह बहुत कालतक बैठकर महादेवजी को प्रसन्न करताहुआ ॥२३॥ तब प्रसन्नहुये भगवान् महादेवजीने अन्धक से कहा कि हे सुव्रत ! वर मागो तब वरको पाकर वह अन्धक दैत्य खुशीसे शीघ्रचला ॥ २४ ॥ उसके पुरमें सबलोग रत्नोंसे भरेहुये पात्रों को लिये और अक्षतों से युक्त पात्रोंको लिये सैकडों व हजारों स्त्रियां देखपडीं ॥ २५ ॥ ब्राह्मणलोग मङ्गलशब्दों के सहित मन्त्रोंको पढते हैं और मन्त्री व सेवक, राज्य, घोडे, रथ और हाथियों के सहित राजाको ॥ २६ ॥ बढ़ाते हैं और जितने

यजुर्वेदसमुद्भवम् ॥ देवव्रतंनामदैव्यं पुरुषास्तत्पुरंययुः ॥ २२ ॥ आसीत्पुरामहाराज अन्धकोनामदुर्जयः ॥ आराध यामासशिवं चिरकालमुपस्थितः ॥ २३ ॥ प्रसन्नोभगवान्देवो वरंयाचस्वसुव्रत ॥ वरंलब्ध्वातदादैत्योधावत्सहर्षतो ऽन्धकः ॥ २४ ॥ पुरेजनाश्चदृश्यन्ते भाजनैरत्नपूरितैः ॥ साक्षतैर्भाजनैस्तस्य शतसाहस्रयोषितः ॥ २५ ॥ मन्त्रान्पठ न्तिविप्राश्च माङ्गल्यनिस्वनेनच ॥ भूपंचामात्यभृत्यैश्च राज्याश्वरथदन्तिभिः ॥ २६ ॥ वर्द्धापयन्तितेसर्वे येकेचित्पु रवासिनः ॥ हृष्टःपुष्टोवसंस्तत्र ससुरैर्नाभिभूयते ॥ २७ ॥ वरलब्धन्तुतंज्ञात्वा गीर्वाणाःशङ्कितास्तदा ॥ एकीभूताश्च तेसर्वे शक्रस्यशरणंययौ ॥ २८ ॥ समागतान्सुरान्दृष्ट्वा शक्रोवचनमब्रवीत् ॥ कथंसमागतास्सर्वे यूयञ्चत्रिदिवौक सः ॥ २९ ॥ कथञ्चभयमुत्पन्नं कथयध्वंमहासुराः ॥ ३० ॥ देवाऊचुः ॥ मृत्युलोकेभवत्पापस्त्वन्धकोनामदुर्मदः ॥ ३१ ॥ तस्माच्चभयमापन्ना भवच्छरणमागताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेरौद्रो दानवोबलदर्पितः ॥ ३२ ॥ एकाकीस्यन्दना

कुछ पुरवासी हैं वे भी सब इसी कामको करते हैं इस प्रकार वह असुर हृष्टपुष्ट वहां रहता देवताओं से कभी नहीं हारता हुआ ॥ २७ ॥ वरको पायेहुये उस दैत्यको जानकर देवतालोग शङ्कितहुये तब वे सब एकत्रित होकर इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ २८ ॥ तब आयेहुये देवताओं को देखकर इन्द्र वचन बोले कि हे देवताओ ! तुम सबलोग क्यों आयेहो ॥ २९ ॥ हे उत्तम देवताओ ! तुमको कैसे भय पैदाहुआ सो कहो ॥३०॥ तब देवतालोग बोले कि मनुष्यलोकमें एक बड़ापापी व बडा अहङ्कारी अन्धकनाम का असुर उत्पन्न हुआ है ॥३१॥ उससे डरेहुये हम सब आपकी शरण आयेहैं तबतक इसी अरसेमें बलसे गर्वित होरहा भयानक दानव ॥ ३२ ॥ अकेला

रथपर सवार, अनेक अस्त्रोसे युक्त अन्धकासुर हे राजशार्दूल ! इन्द्रकी पुरीको जाताहुआ ॥ ३३ ॥ जोकि सोनेके शहरपनाह से युक्त व अनेक मन्दिरों से शोभित और हे पार्थिवसत्तम ! शत्रुओं के जाने को सदा बडी कठिन है ॥ ३४ ॥ सो ऐसी उस पुरीमें लीलापूर्वक अपने घरकी नाईं वह असुर प्रवेश करताहुआ तदनन्तर उठकर इन्द्रने उसे अपना आसन दिया ॥३५॥ तब अन्धक उस इन्द्रके शुभ आसनपर बैठताहुआ तब इन्द्र बोले कि यहां आपका आगमन क्यों हुआ और आप का क्या कार्य है सो मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ हे दानव ! जो मेरे धन है वह मैं तुम्हें देऊंगा तब अन्धक बोला कि मैं धन, हाथी व घोड़ों को नहीं चाहताहूं ॥ ३७ ॥

रूढ आयुधैर्विविधैर्युतः ॥ अन्धकोराजशार्दूल ययौशक्रपुरीन्ततः ॥ ३३ ॥ स्वर्णप्राकारसंयुक्तां शोभितांविविधैर्गृहैः ॥ दुर्गमांशत्रुवर्गस्य सदापार्थिवसत्तम ॥ ३४ ॥ प्रविवेशासुरस्तत्र लीलयास्वगृहंयथा ॥ समुत्थायततश्शक्रस्स्वकीयञ्चासनन्ददौ ॥ ३५ ॥ उपविष्टोन्धकस्तत्र शक्रस्यैवासनेशुभे ॥ शक्रउवाच ॥ किंवोह्यागमनंचात्र किंकार्य्यंकथयस्वमे ॥ ३६ ॥ यदस्मदीयंवित्तञ्च तत्तेदास्यामिदानव ॥ अन्धकउवाच ॥ नचाहंकामयेवित्तं नगजान्नतुरङ्गमान् ॥३७॥ स्वकीयन्दर्शयस्वाद्य स्वर्गशृङ्गारभूमिकम् ॥ ऐरावतंमहानागं सैन्धवोच्चैःश्रवोहयम् ॥ ३८ ॥ उर्वश्यादीनिसर्वाणि वा दित्रत्रितयानिच ॥ अन्यास्स्वीयाविभूतीश्च दर्शयस्वशचीपते ॥ ३९ ॥ तस्यैतद्वचनंश्रुत्वा शक्रोपिभयविह्वलः ॥ सर्वाणिचपदार्थानि दर्शयामासचान्धकम् ॥ ४० ॥ तदागत्यसुरैःसार्द्धं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ नृत्यन्त्यप्सरसस्तत्र वादित्रैर्विविधैर्नृप ॥ ४१ ॥ तत्तस्यविभ्रमञ्चित्तन्दृष्ट्वाप्यप्सरसस्तदा ॥ तेनदेवगणास्सर्वे त्रस्ताःपार्थिवसत्तम ॥ ४२ ॥ संत्रा

मुझको आज अपने स्वर्गके शृङ्गाररूप पदार्थोंको दिखावो बडा हाथी ऐरावत व समुद्रसे प्राप्त उच्चैःश्रवा घोडा ॥ ३८ ॥ व उर्वशीआदि सब अप्सरायें तीनों प्रकारका त ऽका और हे शचीपते ! और भी अपनी विभूतियो को दिखावो ॥ ३९ ॥ उसके इस वचन को सुनकर इन्द्रभी भयसे घबडागये और सब पदार्थों को अन्धक को दिखाया ॥ ४० ॥ तब देवता, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरो के सहित आकर हे नृप! अनेक बाजाओं के साथ वहा अप्सराये नाचनेलगी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अप्सराओंको

मैर्विविधैस्तत्र चक्रवज्रारिभीषणैः ॥ सन्तापितास्सुरास्सर्वेक्षयंनीताह्यनेकशः ॥ ४३ ॥ आदित्यमरुताद्याश्च भग्नास्संग्राममण्डले ॥ यथासिंहकराक्रान्ताः श्वापदाव्यचरन्वने ॥ ४४ ॥ तद्वदेकेनतेदेवाः कृतास्सर्वेपराङ्मुखाः ॥ बलाद्देशेषुग्रामेषु प्रजाःपीडयतेऽनिशम् ॥ ४५ ॥ आकम्प्यगृह्यतेक्षीरं शाकंवासस्तथैवच ॥ नसम्मानेवचस्तेषां प्रजासन्तापनेरतः ॥ ४६ ॥ गृहीत्वाशक्रभार्याञ्च दानवोपिगृहङ्गतः ॥ ततःसुराश्चशक्रश्च ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ४७ ॥ गजैश्च पर्वताकारैरश्वैश्चैवगजोपमैः ॥ स्यन्दनैर्गगनाकारैस्सिंहशार्दूलयोजितैः ॥ ४८ ॥ कच्छपैर्मकरैश्चापि मृगमेषैस्तथोरगैः ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्ता देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वापद्मोद्भवन्देवं प्रणम्येशंप्रतुष्टुवुः ॥ जयदेवजगन्नाथजयसम्भूतिकारक ॥ ५० ॥ पद्मयोनेसुरश्रेष्ठत्वामेवशरणङ्गताः ॥ सोद्वेगंभाषितंश्रुत्वा देवानांभावितात्मनाम् ॥ ५१ ॥ मेघगम्भीरयावाचा ब्रह्माप्रोवाचवासवम् ॥ किंवोह्यागमनन्देवास्सर्वेषांवैविवर्णता ॥ ५२ ॥ केनावमानितास्सर्वे तत्सर्वंमेनिवे

देखकर उसका चित्त मोहित होगया तब हे पार्थिवसत्तम ! इसकारण से सब देवता डरगये॥ ४२ ॥ फिर वहां चक्र और वज्रसे शत्रुओंको डरावनी अनेक तरहकी लड़ाइयों से सब देवता विकल व बहुत से नष्ट करदियेगये ॥ ४३ ॥ आदित्य और मरुत् आदि देवता संग्राममण्डल में हारगये जैसे सिंहके पञ्जेसे मारेहुये जङ्गलीजीव वन में भागें ॥ ४४ ॥ इसीतरह उस एक दैत्यसे वे सब देवता भगा दियेगये फिर अपने बलसे देशों व गांवोंमें प्रजाओं को निरन्तर पीड़ित करताहुआ ॥ ४५ ॥ जबरदस्तीसे दूध, शाक वैसेही वस्त्रोंको छीनलिया प्रजाओं के क्लेशमें लगाहुआ वह असुर उनके सम्मान की बातभी नहीं कहता ॥ ४६ ॥ फिर वह दानव इन्द्रकी स्त्री को लेकर अपने घरको चलागया तब देवता और इन्द्र ब्रह्माजीकी शरणगये॥ ४७ ॥ पर्वत ऐसे हाथी, हाथी ऐसे घोड़े, सिंह और शार्दूलोंसे जुतेहुये आसमान ऐसे रथ॥ ४८ ॥ कछुये, मगर, हन्ना, मेढ़ा और सर्पोंसे इन्द्रआदि देवता ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ ४९ ॥ और देवता व ऐश्वर्यवान् ब्रह्माजी को देख व नमस्कारकर स्तुतिकरते हुये कि हे जगन्नाथ ! हे सम्भूतिकारक ! हे देव ! आपकी जयहो २ ॥ ५० ॥ हे पद्मयोने ! हे सुरश्रेष्ठ ! हमलोग आपही के शरण आयेहैं आत्मा के जाननेवाले देवताओं के घबड़ाहट सहित वचन को सुनकर ॥ ५१ ॥ मेघोंकीसी गहगही आवाजसे ब्रह्माजी इन्द्र से बोले कि हे देवताओ ! तुम सबोंका आगमन क्यों हुआ और

तुम सब तेजरहित क्यों होगयेहो ॥५२॥ किसने तुम सबोंका अपमान कियाहै सो सब मुझसे कहो तब देवता बोले कि बलसे अभिमान को प्राप्तहोरहा नामसे अंधक ऐसे नामका एक दानव हुआहै ॥५३॥ उसीने सब देवताओं को धन व रत्नों से खाली करदिया है हे नाथ ! फरसा, चक्र, तलवार और तोमरों से देवताओं को मारकर ॥ ५४ ॥ इन्द्रकी स्त्रीको जबरदस्ती लेकर वह दानव चलागया तदनन्तर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनके वचनको सुनकर उस राक्षसकी मृत्युका विचार करनेलगे कि यह पापी दानव सब देवता व दैत्यों से मारा नहीं जासक्ताहै ॥ ५५।५६ ॥ फिर इन्द्रआदि सब देवता विष्णुजी की स्तुति करतेहुये कि हे देवदेवेश ! आप

द्यताम् ॥ देवाऊचुः ॥ अन्धकोनामनाम्नेति दानवोबलदर्पितः ॥ ५३ ॥ तेनदेवगणास्सर्वे धनरत्नैर्विवर्जिताः ॥ हत्वा देवगणान्नाथ पर्शुचक्रासितोमरैः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वाशक्रभार्य्यांवै दानवोविगतोबलात् ॥ ततःश्रुत्वावचस्तेषां ब्रह्मालोकपितामहः ॥५५॥ चिन्तयामासभगवान्वधन्तस्यतुरक्षसः ॥ अवध्योदानवःपापस्सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ५६ ॥ ततःप्रतुष्टुवुस्सर्वे देवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ जयत्वंदेवदेवेश लक्ष्म्याचार्द्धशरीरवान् ॥ ५७ ॥ आशुरक्षयदेवेश तस्मात्तेशरणंगताः ॥ जनार्द्दनउवाच ॥ स्वागतंवोमहाभागा ब्रुवताञ्चैवस्वागतम् ॥ ५८ ॥ किङ्कार्य्यंप्रोच्यतांसर्वं कारणंयन्मयेप्सितम् ॥ पराभवःकृतोयेन सगच्छतुयमालयम् ॥ ५९ ॥ एवमुक्तास्सुरास्सर्वे कथयन्तिस्मतत्त्वतः ॥ प्रदर्शयन्तिचाङ्गानि वेपमानास्त्वधोमुखाः ॥ ६० ॥ हृतराज्याःकृतानाथ अन्धकेनपराजिताः ॥ ६१ ॥ पितेवपुत्रान्परिरक्षदेव जहीहशत्रुं

लक्ष्मी से आधे शरीरवाले हो तुम्हारा जयहो ॥ ५७ ॥ हे देवेश ! बहुत जल्दी आप रक्षाकरो इसी से हम आपके शरण आये हैं तब विष्णुजी बोले कि हे बडभागियो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहुआ अपने आनेका प्रयोजन कहो ॥ ५८ ॥ क्या कार्यहै जिसकी हमसे इच्छा करतेहो सो सब कारण कहो जिसने तुम्हारा पराजय किया है वह यमलोक को जावे ॥ ५९ ॥ ऐसे कहेगये सब देवता ठीक २ सब वृत्तान्त को कहतेहुये औ नीचेको मुहँ कियेहुये व कांपतेहुये अपने अङ्गोंको दिखातेहैं ॥ ६० ॥ और कहते हैं कि हे नाथ ! अन्धक ने हमारी राज्यको हरलिया और हमको पराजित कियाहै ॥ ६१ ॥ इससे हे देव ! इस लोकमें पुत्रोंकी पिताकी

नाई हमारी रक्षाकरो और हमारे शत्रुको पुत्रों व गोत्रियोंके सहित मारो तब देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये हैं चरण जिनके ऐसे भगवान् ऐसाही होगा यह ब्रह्मा
जीसे कहकर मौनहोगये ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽन्धकोपाख्यानेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ⊛ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि शङ्ख, चक्र, गदा और पाशको लेकर देवताओं को जयके देनेवाले परमेश्वर शय्यासे जल्द उठतेहुये ॥ १ ॥ और भगवान् बोले कि हे
देवताओ ! पाताल व स्वर्ग व मनुष्यलोक में जहा कहींहो उस अन्धकको हम मारेंगे जिसने देवताओ को सन्तापित कियाहै ॥ २ ॥ इससे सन्तोष में अपने मनको

सहपुत्रगोत्रैः ॥ तथेतिचोक्त्वाकमलासनंप्रभुः सुरासुरैर्वन्दितपादपीठः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽन्धको
पाख्यानेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ शङ्खंचक्रंगदाम्पाशं संगृह्यपरमेश्वरः ॥ उत्थितश्शयनात्तूर्णं देवानांचजयप्रदः ॥ १ ॥ केशव
उवाच ॥ पातालेयदिवास्वर्गे मर्त्येवायदिवासुराः ॥ अन्धकन्तंवधिष्यामि येनसन्तापितास्सुराः ॥ २ ॥ गच्छन्तुस्व
गृहन्देवास्सन्तोषभावितात्मनः ॥ विष्णोस्तुवचनंश्रुत्वा ब्रह्माद्यास्तुसवासवाः ॥ ३ ॥ स्वंस्वंयानंसमारुह्य हृदितुष्टा
दिवंययुः ॥ ततोदेवोमाधवस्तु यत्रतिष्ठतिचान्धकः ॥ ४ ॥ तत्रगत्वाहृषीकेश आग्नेयास्त्रंमुमोचह ॥ दृष्ट्वाज्वलन्तंचा
ग्नेयं केशवेनविसर्ज्जितम् ॥ ५ ॥ विसर्ज्जयामासतदावारुणास्त्रमनुत्तमम् ॥ वारुणास्त्रेणबाणेन आग्नेयंशोषितं
तदा ॥ ६ ॥ अन्धकश्चिन्तयामास केनबाणोविसर्ज्जितः ॥ कस्येयंपौरुषीशक्तिः कोयास्यतियमालयम् ॥ ७ ॥ ततो

लगायेहुये देवता अपने घरको जावें तब विष्णुके वचन को सुनकर इन्द्रसहित ब्रह्माआदि देवता ॥ ३ ॥ अपनी २ सवारी पर सवार होकर हृदय मे सन्तुष्ट होरहे
स्वर्गको चलेगये तदनन्तर माधव देव जहां अन्धकथा ॥ ४ ॥ वहां जाकर भगवान् आग्नेय अस्त्रको छोडतेहुये जलतेहुये, भगवान् के छोडेहुये, आग्नेय अस्त्रको
देखकर ॥ ५ ॥ अन्धक ने उसीसमय उत्तम वारुण अस्त्रको छोड़ा उस वारुण बाणसे आग्नेयबाण बुझादियागया ॥ ६ ॥ फिर अन्धकने विचार किया कि किसने इस

बाणको छोडाहै यह किस पुरुषकी शक्तिहै कौन यमलोकको जायगा ॥७॥ तदनन्तर क्रोधसे भराहुआ अन्धक चलेहुये बाणकी राहसे आरहा युद्धके मार्गमें खडेहुये विष्णुदेवको देखकर उनसे अन्धक बोला कि ॥८॥ हे हरे! अब यहां हमारी दृष्टिसे देखे गये तुम कल्याणको नहीं प्राप्तहोवोगे जैसे शार्दूलसे लीलगाव नहीं जीतसक्ता है वैसेही तुम समर्थ नहीं होसक्तेहो ॥ ९ ॥ और जैसे बिलारका भोजन चूहा आयाहो इसीतरह मेरे सामने तुम खडेभीहो पर कुछ सामर्थ्य नहीं करसक्तेहो ॥१०॥ तदनन्तर द्वन्द्वयुद्ध के देनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले, चारभुजाओं से शोभित होरहे देवदेवेश ॥११॥ गदाधर देवको देखकर पृथिवीमें साष्टाङ्ग प्रणाम करताहुआ

न्धकः कोपयुक्तो बाणमार्गस्यसंचरन् ॥ दृष्ट्वायुद्धपथेप्राप्तंदेवंतञ्चान्धकोब्रवीत् ॥ ८ ॥ नशर्म्मंप्राप्नुषेचात्र ममदृष्ट्या निरीक्षितः ॥ तथानशक्नुषेत्वन्तु शार्दूलाद्गवयोहरे ॥ ९ ॥ आगतंचयथाभक्ष्यं मार्जारस्यचमूषकम् ॥ तथानशक्नुषे त्वन्तु संस्थितोपिममाग्रतः ॥ १० ॥ ततस्तुदेवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ चतुर्भुजावदातञ्च द्वन्द्वयुद्धप्रदायिनम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वागदाधरंदेवं साष्टाङ्गंप्रणतोभुवि ॥ अन्धकउवाच ॥ जयकृष्णपरस्त्वंहि विष्णोजिष्णोनमोनमः ॥ १२ ॥ हृषीकेशायकेशाय जगद्धात्रेच्युतायच ॥ नमःपङ्कजनाभाय नमःपङ्कजमालिने ॥ १३ ॥ जनार्द्दनायदेवाय पीताम्बर धरायच ॥ गोविन्दायनमोनित्यं नमश्चोदधिशायिने ॥ १४ ॥ नमःकरालवक्राय नृसिंहायनिनादिने ॥ शार्ङ्गिणे स्मितवक्राय शङ्खचक्रगदाभृते ॥ १५ ॥ नमोवामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयायच ॥ नमोवराहरूपाय यज्ञरूपायतेन

अन्धक बोला कि हे कृष्ण! आपकी जयहो आपही परमात्माहो इससे हे विष्णो! हे जिष्णो! आपके लिये बार २ नमस्कारहै ॥१२॥ इन्द्रियोंके स्वामी, ब्रह्मा व शिव का रूप, जगत् के पालनेवाले, नाशरहित, कमलनाभ व कमलों की मालावाले के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १३ ॥ पीलेवस्त्र धारण करनेवाले, जनार्द्दन, गोवि-न्ददेव के लिये नित्यही नमस्कार है और समुद्रमें सोनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ डरावने मुखवाले के लिये नमस्कार है गर्जनेवाले नृसिंह व मुसकुराते मुखवाले व शार्ङ्गधनुषवाले व शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ तीनों लोकोंके नापनेवाले वामनरूप के लिये नमस्कार है वराहरूप व

यज्ञरूप आपके लिये नमस्कारहै ॥ १६ ॥ हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है कैटभदैत्यके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है हे सुरनायक ! हे ईश ! वसुदेवजी के पुत्र जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे विष्णु ! हे देवाधिदेवेश ! हे जगत के पालनेवाले ! हे प्रजापते ! जो लोग आपको प्रणाम करते हैं उनके लियेभी नमस्कार है ॥ १८ ॥ सब जीवोंके देवता, वसुदेव के पुत्र, बुद्धिवाले, यज्ञवराहरूप, बडे तेजवाले, विष्णु आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ व गुणोंके रचनेवाले आपके लिये बार २ नमस्कार है तब भगवान् बोले कि हे दानवेन्द्र ! हम आपसे प्रसन्न हैं इससे अपने मनमाने वरको तुम मागो ॥ २० ॥ मागतेहुये

वासुदेवनमस्तुभ्यं नमःकैटभनाशिने ॥ वसुदेवसुतश्रेश नमस्तेसुरनायक ॥ १७ ॥ विष्णोदेवाधिदेवेश जगद्धातःप्रजापते ॥ प्रणामंयेपिकुर्वन्ति तेभ्यश्चापिनमोनमः ॥ १८ ॥ समस्तभूतदेवाय वासुदेवायधीमते ॥ तस्मैय ज्ञवराहाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ १९ ॥ गुणानांहिविधानाय नमस्तेस्तुपुनःपुनः ॥ देवउवाच ॥ तुष्टोह्यहंदानवेन्द्र वरं वृणुयथेप्सितम् ॥ २० ॥ ददामितेवरंचाद्य याचमानस्यसाम्प्रतम् ॥ अन्धकउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुमिहे च्छसि ॥ २१ ॥ तदाददस्वमेदेव युद्धंपरमशोभनम् ॥ श्रीभगवानुवाच॥कथंददामितेयुद्धं तोषितोहन्त्वयापुनः॥२२॥ नत्वाम्प्रतिभवेत्कोपः कथंयुध्येहमन्धक ॥ यदितेवर्ततेबुद्धिर्युद्धम्प्रतिनसंशयः ॥ २३ ॥ तर्हित्वंगच्छशीघ्रंवै देवम्प्रति महेश्वरम् ॥ अन्धकउवाच ॥ प्रसादात्तस्यदेवस्य विजयीभुवनत्रये ॥ २४ ॥ कथंयुद्धंचरेतेन शङ्करेणवदस्वनः ॥ एत च्छ्रुत्वादानवस्य भगवानब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ अहंतेकथयिष्यामि येनयुद्धन्त्वयासह ॥ कैलासशिखरंगृह्य धुनुत्वंचपु

तुमको आज अभी हम वरदेतेहैं तब अन्धक बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्न हो और यहां वरदेनेकी इच्छा करतेहो ॥ २१ ॥ तो हे देव ! बहुत अच्छा युद्ध मुझे देवो तब श्रीभगवान् बोले कि तुमने हमको प्रसन्न कियाहै इससे हम तुमको युद्ध कैसे देवें ॥ २२ ॥ हे अन्धक ! तुम्हारे ऊपर हमको क्रोध नहीं होताहै हम कैसे तुमसे लडें परन्तु जो तुम्हारी बुद्धि निस्सदेह युद्धहीको चाहती है ॥ २३ ॥ तो तुम महादेवजीके पास शीघ्र जावो तब अन्धक बोला कि उन्हीं महादेवजीके प्रसादसे तो हम तीनोंलोकों में जीतनेवाले है ॥ २४ ॥ इससे उन्हीं महादेवजी के साथ हम युद्ध कैसे करे सो आप हमसे कहो दानव के इस वचन को सुनकर भगवान् बोले

कि ॥ २५ ॥ हम उस युक्तिको तुमसे कहैंगे जिससे तुम्हारे साथ युद्धहोवे कि तुम कैलास के शिखरको पकड़कर उसे बार २ हिलावो ॥ २६ ॥ उस पर्वत के हिलने पर तीनोंलोक हिलनेलगे और टूटीहुई अनगिन्ती पर्वतकी चोटिया गिरनेलगीं ॥२७॥ और हे राजन् ! चारोंसमुद्र सब तरफसे एक होगये और विहार करतेहुये पार्वती सहित महादेवजी ॥ २८ ॥ कापतेहुये व पार्वती सहित शङ्करजी गिरे तब बडी जोरसे महादेवजीको लिपटकर पार्वतीजी वचन बोलीं ॥ २९ ॥ कि पर्वत क्यो कांपताहै और पृथिवी क्यों कापतीहै व सातो पाताल व सातो स्वर्ग क्यो कापते हैं ॥ ३० ॥ हे देव ! क्या प्रलय आगया सो आप हमसे कहनेको योग्यहो तब महादेवजी बोले कि

नःपुनः ॥ २६ ॥ धुनितेपर्वतेतस्मिन्कम्पितम्भुवनत्रयम् ॥ पतन्तिशिखराग्राणि शीर्य्यमाणान्यनेकशः ॥ २७ ॥ च त्वारस्सागराराजन्नेकीभूताःसमन्ततः ॥ उमयासहितोरुद्रो विषयासक्तचेतनः ॥ २८ ॥ कम्पमानश्चपतितः पार्वत्या सहशङ्करः ॥ गाढमालिङ्गयदेवेशमुमावचनमब्रवीत् ॥२९॥ किमर्थंकम्पतेशैलः कथंवैकम्पतेधरा ॥ पातालानितुसप्तै व कम्पतेस्वर्गसप्तकम् ॥ ३० ॥ किंवायुगक्षयोदेव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ महेश्वरउवाच ॥ कस्यैषादुर्मतिर्जाता अपि पार्श्वचरस्यनुः ॥ ३१ ॥ ललाटेचेदयंभग्नः प्रयास्यतियमालयम् ॥ कैलासेसंस्थितोध्याने सुप्तोहम्प्रतिबोधितः ॥३२॥ वधिष्येतंनसन्देहो षण्मुखोवाभवेद्यदि ॥ ततःसचिन्तयामास जानातीत्यन्धकोप्ययम् ॥ ३३ ॥ उपायंसूचयामास येनासौवध्यतेक्षणात् ॥ ततस्समागतादेवा इन्द्रब्रह्मपुरोगमाः॥३४॥रथंदेवमयंकृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ केचिद्देवाः स्थिताश्चक्रे केचित्तुण्डाग्रसंस्थिताः ॥३५॥ केचिदक्षेस्थिताराजन्युगरश्मिषुसंस्थिताः ॥ रथस्तम्भेध्वजाग्रेतु केचिद्

हमारे समीप रहनेवाले किस मनुष्यकी यह दुर्बुद्धि होगई है ॥ ३१ ॥ जो यह माथेपर माराजावे तो यमलोकको जावेगा कैलासमे ध्यानमे स्थित सोतेहुये हम जगादिये गये ॥ ३२ ॥ इसमे उसको हम मारेंगे चाहे स्वामिकार्त्तिकेय क्यो न हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है तदनन्तर उन महादेवजीने विचारा और जाना कि यह अन्धकहै ॥ ३३ ॥ फिर महादेवजी ने उस उपायको सोचा कि जिसमे यह क्षणमात्र से मरजावे तदनन्तर इन्द्र व ब्रह्माआदि देवता आतेहुये ॥ ३४ ॥ और सब लक्षणो से युक्त देवताओं सेही रथको बनाया कोई देवता चक्रो मे स्थितहुये कोई रथके अगिले हिस्सेमें स्थित हुये ॥३५॥ हे राजन् ! कोई धुरामें, कोई रथके जुवाकी डोरियोंमें, कोई दण्डाओ

में, कोई ध्वजामें और कोई अन्यत्रभी लगे॥ ३६ ॥ इस प्रकार देवमय रथको बनाकर जगत् के मालिक महादेवजी उसपर चढ़े और बड़े क्रोधसे जहां वह दानव था वहांको गये ॥ ३७ ॥ और दानवों को मारा जैसे आकाश में सूर्य तपें उस काल में वहां सूर्य व चन्द्रमा व दिशायें नहीं दीखतीहुई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर दानव राजाने आग्नेयअस्त्र को जोडा उससे निकलेहुये बाणोंसे सर्व देवमण्डल जलनेलगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार बाणों से जलतेहुये देवता महादेवजी की शरण आये तदनन्तर महादेवजी ने वारुण अस्त्रको छोड़ा ॥ ४० ॥ उसी वारुणअस्त्र से आग्नेयअस्त्र बुझगया हे नृपोत्तम ! तदनन्तर दानव ने वायव्यअस्त्र को छोड़ा ॥ ४१ ॥ तब क्रोधसे

न्यत्रसंस्थिताः ॥ ३६ ॥ एवंदेवमयंकृत्वा समारूढोजगत्प्रभुः ॥ निर्ययौदानवोयत्र क्रोधेनापिमहेश्वरः ॥ ३७ ॥ दानवानर्दयामास आकाशञ्चांशुमानिव ॥ नतत्रदृश्यतेसूर्य्यो नकाष्ठानचचन्द्रमाः ॥ ३८ ॥ ततोदानवराजेन आग्नेयास्त्रंसुयोजितम् ॥ दह्यमानंशरैस्तत्र सर्वगीर्वाणमण्डलम् ॥ ३९ ॥ दह्यमानाश्शरैश्चैवं देवंशरणमाययुः ॥ ततोदेवाधिदेवेन वारुणास्त्रंविसर्ज्जितम् ॥ ४० ॥ वारुणास्त्रेणतेनैव आग्नेयास्त्रम्प्रशामितम् ॥ दानवेनततोमुक्तं वायव्यास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४१ ॥ पन्नगास्त्रंचदेवोपि कोपाविष्टःप्रमुक्तवान् ॥ मारुतोभक्षितस्सर्पैः क्रोधाविष्टैर्नसंशयः ॥ ४२ ॥ दानवेन तदामुक्तं गरुडास्त्रंबलीयसा ॥ तेनतच्छतधानीतं पन्नगास्त्रंनदृश्यते ॥ ४३ ॥ ततोदेवाधिदेवेन नारसिंहंविसर्ज्जितम् ॥ अस्त्रैरस्त्राणिसंवार्य्य युध्येतेचपरस्परम् ॥ ४४ ॥ समंयुद्धमभूत्तात सुरासुरभयङ्करम् ॥ चक्रेणालीकनाराचैस्तोमरैःखड्गमुद्गरैः ॥ ४५ ॥ वत्सदन्तैस्तथाभल्लैः कर्णिकारैश्चशोभनैः ॥ एवंनशक्यतेहन्तुं दानवैर्विविधायुधैः ॥ ४६ ॥ ततोदंष्ट्रा

भरेहुये महादेवजीने भी नागबाणको छोड़ा तब छूटतेही क्रोधसे भरेहुये सर्प हवाको पीगये इसमें सन्देह नहीं है ॥४२॥ तब जबरदस्त दानवने गरुड़अस्त्र को चलाया उसने उस नागबाण के सैकड़ों टुकड़े करदिये कि वह अस्त्रहीन देखपड़ा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवाधिदेव (महादेवजी) ने नारसिंहअस्त्रको छोड़ा ऐसे अस्त्रोंसे अस्त्रोंको काटकर आपस में लडतेरहे ॥४४॥ हे तात ! देवता और दैत्योंको भय करानेवाला वह युद्ध बराबर हुआ इस प्रकार चक्र, अलीकबाण, तोमर, खड्ग, मोगदर, वत्सदन्त,

भाला और सुहावने कर्णिकार अस्त्रोंसे जब अनेक तरह के अस्त्रवाले दानवों के कारण वह न माराजासका ॥ ४५ । ४६ ॥ तब डाढ़ ऐसे डरावने खड्ग व बाण व तोमरों से युद्ध हुआ अपनी सासुको देखकर शरमातीहुई नीचेको मुहँ कियेहुये जैसे गौड़वधू जावे और किसीको न छुवे इसी तरह सब अस्त्र दोनों वीरोंके अङ्गोंको नहीं छूतेहैं तब सब अस्त्रोंको छोडकर दोनों बाहुयुद्ध करतेहुये ॥ ४७ । ४८ ॥ हाथोंसे हाथोंको पकड़कर मूठियों से मारतेहुये हाथोंसेही आपसमें युद्ध करते हैं ॥ ४९ ॥ दानव भी उन महादेवजीको काखमें मारा तब महादेवजी चेष्टारहित होकर मूर्च्छित होगये ॥ ५० ॥ महादेवजीको मूर्च्छित जानकर दानव अन्धकासुर चिन्ता करता

करालेन खड्गनाराचतोमरैः ॥ श्वश्रूंन्दृष्ट्वायथायाति लज्जमानाह्यधोमुखी ॥ ४७ ॥ नसंस्पृशन्तिगात्राणि शस्त्राणौडवधूर्यथा ॥ आयुधानिततस्त्यक्त्वा बाहुयुद्धमुपस्थितौ ॥ ४८ ॥ करैःकरांस्तुसंगृह्य प्रहरन्तौहिमुष्टिभिः ॥ बन्धैःकरप्रहाराद्यैर्युध्येतेस्मपरस्परम् ॥ ४९ ॥ दानवोपिचतन्देवं कक्षान्तरमपीडयत् ॥ निश्चेष्टश्चतदादेवो मूर्च्छितस्तुमहेश्वरः ॥ ५० ॥ मूर्च्छागतन्तुतंज्ञात्वा चिन्तयामासदानवः ॥ हाहाकष्टंकृतंवाद्य पापेनचदुरात्मना ॥ ५१ ॥ किन्तुकार्य्यं मयाचात्र कथंवापिव्रजाम्यहम् ॥ तंगृहीत्वाथदेवेशं गतःकैलासपर्वतम् ॥ ५२ ॥ मुक्त्वाशयानमुच्चेतमन्धकोपियौक्षणात् ॥ ततस्सचेतनोभूत्वा देवदेवोमहेश्वरः ॥ ५३ ॥ यावत्पश्यतिचात्मानं स्वकीयेभवनेस्थितम्॥तावत्सचिन्तयामास पराभूतोदुरात्मना ॥ ५४ ॥ क्रोधवेगसमाविष्टो निर्ययौदानवम्प्रति ॥ आयसंलगुडंगृह्य प्रभुर्भारसहस्रकम् ॥ ५५ ॥ दानवंदृष्टवान्देवो प्राक्षिपत्तस्यमूर्द्धनि ॥ खड्गेनताडयामास दानवःप्रहसन्रणे ॥ ५६ ॥ गृहीत्वादेवदेवेशः कौबे

हुआ और कहा कि हाय २ मैं दुरात्मा पापीने आज बडाकष्टवाला कामकिया ॥५१॥ अब यहां मुझको क्या करना चाहिये और मैं कैसे जाऊं फिर उन महादेवजी को लेकर कैलास पर्वत को गया ॥ ५२ ॥ सोतेहुये बेहोश महादेवजीको छोड़ अन्धक उसीक्षणमें चलागया तदन्तर देवोंकेदेव महादेवजी भी होशमें होकर ॥ ५३ ॥ जब तक अपने को देखें तबतक अपने मन्दिर में अपने को पड़ा देखा तब आपने विचारा कि हम उस दुरात्मासे पराजित होगये ॥ ५४ ॥ फिर क्रोधके वेगसे भरेहुये प्रभु महादेवजी दानव के समीप जातेहुये हजार भारवाले लोहे के दण्डको लेकर दानवको देखा और उसके शिरमें मारदिया दानवभी हँसताहुआ संग्राम में खड्गसे

महादेवजीको मारा ॥ ५५ । ५६ ॥ तब महादेवजी उत्तम कौबेरबाणको लेकर उसीक्षण उसके हृदय में जलतेहुये बाणसे मारा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वहा रक्तको उगलरहा वह दानव औंधे मुहँवाला होकर त्रिशूलसे फाड़ दियागया तदनंतर ॥५८॥ त्रिशूल की नोकसे घायल पापी अन्धक चाककी तरह चक्कर खानेलगा तब उसकी देहसे जो रक्तकेबूंद जमीनमेंगिरे ॥५९॥ उन रक्तके बूंदोंसे शस्त्रोंको हाथोंमें लियेहुये पापी दानव उत्पन्न होगये तदनन्तर दानवों से महादेवजी बार २ व्याकुल होतेहुये ॥ ६० ॥ तब महादेवजी ने भयानक कालीदेवी का स्मरण किया स्मरण करतेही दशहजार हथियारों से युक्त कालीदेवीजी आगईं ॥ ६१ ॥ और बड़ी डाढ़ोंवाली, भारी

रंबाणमुत्तमम् ॥ हृदयेताडयामास ज्वलितेनचतत्क्षणात् ॥ ५७ ॥ ततस्सदानवस्तत्र रुधिरोद्गारमुद्गिरन् ॥ अधोमु खस्ततोभूत्वा शूलेनविदलीकृतः ॥ ५८ ॥ शूलाग्रविक्षतःपापश्चक्रवद्भ्रमतेतदा ॥ येतुभूमौपतन्तिस्म देहतोरक्त बिन्दवः ॥ ५९ ॥ तेभ्यउदभवन्पापा दानवाःशस्त्रपाणयः ॥ व्याकुलश्चततोदेवो दानवैश्चपुनःपुनः ॥ ६० ॥ देवेनसंस्मृ तादुर्गा चामुण्डाभीषणातदा ॥ आगताभीषणादेवी आयुधायुतसंयुता ॥ ६१ ॥ महादंष्ट्रामहाकाया पिङ्गाक्षीलम्बक र्णिका ॥ उवाचदेवीदेवेशं समादिशमहेश्वर ॥ ६२ ॥ देवउवाच ॥ पिबत्वंरुधिरंभद्रे यथेष्टंदानवस्यच ॥ पतितंचपृथि व्यान्तु दुर्गेयत्नाद्गृहाणतत् ॥ ६३ ॥ दानवस्यवधेचाद्य सहायंकर्तुमर्हसि ॥ ततोहताश्चतेसर्वे खड्गेनापिसहस्रशः ॥ ६४ ॥ अन्धकोपिचतान्दृष्ट्वा दानवान्निधनङ्गतान् ॥ ततोवाग्भिस्सुपुष्टाभिस्स्तुवन्देवंमहेश्वरम् ॥ ६५ ॥ तिष्ठतिष्ठेति देवेशं चण्डीम्प्रतिमहाबलः ॥ शूलविक्षतरन्ध्रेण रक्तंवैस्रावयन्बहु ॥ ६६ ॥ पृथिवींपूरयामास चतुस्सागरमेखलाम् ॥

देहवाली, लालनेत्रवाली, लम्बेकानोंवाली काली महादेवजीसे कहा कि हे महेश्वर! आज्ञाकरो ॥६२॥ तब महादेवजीबोले कि हे दुर्गे! हेभद्रे! पृथिवी में गिरेहुये दानव के रक्तको तुम यथेष्ट पीवो और उसको यत्नमे ग्रहण करो ॥६३॥ आज दानवके मारनेमें सहायकरनेको तुम योग्य होतीहो तदनन्तर उन सब हजारों दानवोंको देवीजीने तलवार से मारडाला ॥ ६४ ॥ अन्धकभी मृत्युको प्राप्तहुये उन दानवोंको देखकर सुन्दरवाणियों से महादेवजी की स्तुति करताहुआ ॥ ६५ ॥ और त्रिशूलके घावसे बहुत रक्तको बहाताहुआ, बड़े बलवाला, अन्धक महादेव और देवीसे खड़ेरहो २ कहताहुआ ॥ ६६ ॥ चारों समुद्रतक पृथिवी को रक्त से भरदिया महादेव के त्रिशूल

में छिदाहुआ इसी से आकाश में लटकरहा ॥ ६७ ॥ महादेवकरके अपने कन्धेपर धर लियागया रक्तके समूह को बरसरहा अन्धकासुरने अपने रक्तमे पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी को भरदिया ॥ ६८ ॥ महादेवजी रक्त से करिहाँवतक डूबगये फिर वह रक्त महादेवजी की छातीतक आगया ॥ ६९ ॥ तब सब देवता व्याकुल हो दिशाओं में भागगये तब महादेवजी ने अपने शरीर के आठ अङ्गोंको घिसा ॥ ७० ॥ तब महादेवजी से आठ भैरव पैदाहुये भयानक डाढ़ोंवाले, हाहाकार कररहे ॥ ७१ ॥ खप्पर, तलवार और कतरनीवाले उन सब भैरवों से महादेवजी ने कहा कि तुम सब इस सम्पूर्ण रक्तको पीवो ॥ ७२ ॥ उन भैरवों ने

अन्तरिक्षेस्थितेनापि शूलाग्रेसंस्थितेनच ॥ ६७ ॥ स्कन्धेधृतेनदेवेन रुधिरौघप्रवर्षिणा ॥ पृथिवीपूरितातेन सशैल वनकानना ॥ ६८ ॥ रुधिरेणकटिंयावद्वारितोपिमहेश्वरः ॥ ततोहृदयपर्य्यन्तं देवस्यचसमागमत् ॥ ६९ ॥ व्याकुला श्चततोदेवाः प्रणष्टाश्चदिशंगताः ॥ सतुस्वस्यशरीरस्य अङ्गान्यष्टौव्यमर्दयत् ॥ ७० ॥ अष्टौभैरवरूपाश्च समुत्पन्नाम हेश्वरात् ॥ दंष्ट्राकरालिनस्सर्वे हाहाकारम्प्रकुर्वतः ॥ ७१ ॥ खर्परग्रकरास्सर्वे खड्गिनःकर्तिनस्तथा ॥ पिबन्तुरुधिरंस र्वमित्याहपरमेश्वरः ॥ ७२ ॥ पीतन्तुतैश्चरुधिरं क्षणंरक्तांस्थितंस्थलम् ॥ शरीरंशोषितंतस्य अस्थिचर्म्मावशेषित म् ॥ ७३ ॥ दानवश्चान्धकःप्राह अन्तरिक्षचरस्तथा ॥ अन्धकउवाच ॥ जयदेवजगन्नाथ उमाङ्गार्द्धशरीरभृत् ॥ ७४ ॥ वृषभासनमारूढ शशाङ्ककृतशेखर ॥ जयखट्वाङ्गहस्ताय गङ्गांशिरसिधारिणे ॥ ७५ ॥ स्मरप्रमथनायेह ईश्व रायनमोस्तुते ॥ पूष्णोदन्तविनाशाय गणनाथनमोनमः ॥ ७६ ॥ जयसुरूपदेहाय अरूपायनमोनमः ॥ ब्रह्मोत्तमा

रक्तको पीलिया तब रक्तक्षीण होगया जमीन निकलआई हड्डी और चमड़ा जिस में रहगया ऐसा उसका शरीर सुखा दियागया ॥ ७३ ॥ तब आकाश में विद्यमान अन्धकासुर बोला कि हे जगन्नाथ ! हे देव ! हे आधे शरीरमें पार्वती के धारण करने वाले ! आपकी जयहो ॥ ७४ ॥ हे बैलके सवार ! हे चन्द्रमाको मुकुटमें रखनेवाले ! तुम्हारी जयहो गङ्गाको शीशमें धारनेवाले और खट्वाङ्गको हाथमें रखनेवाले ॥ ७५ ॥ कामदेव के नाश करनेवाले ईश्वर आपके लिये नमस्कार है हे गणनाथ ! पूषाके दांतों के तोड़नेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ७६ ॥ सुन्दररूप देहवाले की जयहो रूपसे रहित जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है नमस्कार है

है सदा रहनेवाले ! हे विश्वभर के मालिक ! ब्रह्माके शिर काटनेवाले ॥ ७७ ॥ नित्य श्मशान के रहनेवाले और हमेशा भैरवरूपवाले के लिये नमस्कार है तुम्हीं सबमें विद्यमान हो व तुम्हीं सबके कर्ताहो और तुम्हीं सबके नाश करनेवालेहो और कोई नहीं है ॥ ७८ ॥ पृथिवी, दिशा, तेज, प्रकाश, वायु और सब प्राणियों के जीवरूप महेश्वर तुम्हींहो ॥ ७९ ॥ हे देवेश ! चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और मङ्गल तुम्हीं हो ॥ ८० ॥ हे महेश्वर ! आकाशमें जितने नक्षत्र व सूर्य व चन्द्र जो देख पड़ते हैं ये सब आपही के प्रसादमे हैं ॥ ८१ ॥ ऐसे वह दानव देवोंकेदेव उन महादेवजी की अनेक प्रकार से स्तुतिकर और दोनों हाथोंको जोड़हुये प्रणाम

ङ्गनाशाय विश्वेश्वरसनातन ॥ ७७ ॥ श्मशानवासिनेनित्यं नित्यंभैरवरूपिणे ॥ त्वंसर्वगश्चकर्तात्वं त्वंहर्तानान्यए वच ॥ ७८ ॥ त्वंभूमिस्त्वन्दिशश्चैव ज्योतिस्त्वंतेजसस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जन्तुरूपोमहेश्वरः ॥ ७९ ॥ त्वंसोम स्त्वंबुधश्चैव त्वंगुरुर्भार्गवस्तथा ॥ सौरिस्त्वन्देवदेवेश भूमिपुत्रस्तथैवच ॥ ८० ॥ ऋक्षाणियानिदृश्यन्ते गगनेशशि भास्करौ ॥ एतान्येवचसर्वाणि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ८१ ॥ एवंबहुविधंस्तुत्वा देवदेवंसदानवः ॥ संहताभ्याञ्चहस्ता भ्यान्तम्प्रणम्यमहेश्वरम् ॥ ८२ ॥ शङ्करउवाच ॥ साधुसाधुमहासत्त्व वरंयाचस्वदानव ॥ दाताहंयाचकस्त्वन्तु द दामीतियथेप्सितम् ॥ ८३ ॥ अन्धकउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ तदात्मनस्समीपेहं स्थापितव्यो हिनान्यथा ॥ ८४ ॥ भस्मीजटीत्रिशूलीच त्रिनेत्रीचचतुर्भुजः ॥ व्याघ्रचर्म्मोत्तरीयश्च नागयज्ञोपवीतकः ॥ ८५ ॥ एतदिच्छाम्यहंसर्वं यदिदास्यसिशङ्कर ॥ शूलाग्रस्थोवदद्यावत्तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ८६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ददामितेव

कर चुपहोगया ॥ ८२ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे बड़ेबलवाले, दानव ! वाह २ तू वरमांग हम देनेवाले और तू मांगनेवालाहै इससे हम तेरे मनका वर देवेंगे ॥ ८३ ॥ तब अन्धक बोला कि हेदेवेश ! जो आप प्रसन्नहो और तुम्हें मुझको वरदेनाहै तो मुझे आप अपने समीपही बनाये रक्खो और कुछ नहीं ॥ ८४ ॥ भस्मवाला, जटावाला, त्रिशूलवाला, तीन नेत्रोंवाला, चार भुजावाला, व्याघ्रचर्म का ओढ़ने वाला और नागोंके यज्ञोपवीतवाला मैं होजाऊं ॥ ८५ ॥ बस यही सब मैं चाहताहूं हे शङ्कर ! जो

आप देवेंगे त्रिशूलकी नोकमें छिदाहुआ जबतक ऐसे कहे तबतक महादेवजी प्रसन्न होगये ॥ ८६ ॥ और बोले कि आज हम तुझको वह वरदेते हैं जिसको तूने कहा है मैंने तुमसे पहले कहाथा कि तू भृङ्गिरीटिनामका गणहोगा ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽन्धकवरप्रदानोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अन्धक को वरदेके उसके व पार्वती के सहित महादेव जी कैलास पर्वत को चलेगये ॥ १ ॥ तदनन्तर हृष्टपुष्ट होरहे इन्द्रसहित ब्रह्माआदि देवता वहां आये और वे सब उन महादेवजी को, प्रणाम करतेहुये ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि हेबड़भागियो ! जो लोग यहां आयेहो उनका बहुत अच्छाहुआ

रंचाद्य यस्त्वयापरिभाषितः ॥ मयात्वमुदितःपूर्वं भृङ्गिरीटिर्भविष्यति ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽन्धकवरप्रदानोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अन्धकस्यवरन्दत्त्वा तेनैवसहशङ्करः ॥ उमयासहितश्चापि कैलासंपर्वतंगतः ॥ १ ॥ ततस्समागतादेवा ब्रह्माद्यास्सहवासवाः ॥ हृष्टपुष्टाश्चतेसर्वे महेशंतम्प्रणेमिरे ॥ २ ॥ देवउवाच ॥ स्वागतंवोमहाभागा येकेचित्त्विहचागताः ॥ निहतोदानवस्तत्र भवदर्थेनसंशयः ॥ ३ ॥ रक्तेनतस्यमेशूलं निर्म्मलञ्चनदृश्यते ॥ कर्तव्यंकिंमयाचाद्य कथ्यतांहिपितामह ॥ ४ ॥ सुतस्तुभवतोब्रह्मन्यश्चासौनिहतोमया ॥ कर्तुमिच्छाम्यहंसम्यक्तीर्थयात्रांनसंशयः॥ ५ ॥ उत्तिष्ठगम्यतांसर्वे येकेचित्त्विहचागताः ॥ ततस्सर्वैस्सुरैस्सार्द्धं प्रभासंप्रतिनिर्ययौ ॥ ६ ॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गासागरसङ्गमे ॥ अवगाह्यतुसर्वाणि निर्म्मलत्वंनविद्यते ॥ ७ ॥ नीलीभूतंयथावस्त्रं सितत्वंनैवगच्छति ॥ तथाकृष्ण

तुम लोगोंके वास्ते मैंने वहां दानव को मारा इसमें सन्देह नहीं है ॥३॥ उस के रक्त से मेरा त्रिशूल मैला होगया है इससे हे पितामह ! अब मुझको क्या करना चाहिये सो कहो ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने जिसको मारा है वह तुम्हारा पुत्रथा इससे अब हम अच्छे प्रकार तीर्थयात्रा किया चाहते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ५ ॥ तब ब्रह्माने कहा कि आप उठें जो लोग यहां आये हैं उन सबको जाना चाहिये तदनन्तर सब देवताओं के सहित महादेवजी प्रभास को गये ॥ ६ ॥ प्रभास से लेकर गङ्गासागरसंगमतक जितने तीर्थरहे उन सब में स्नानकरके भी त्रिशूलकी निर्मलता नहीहुई ॥ ७ ॥ काला होगया कपड़ा जैसे सफेदी को नहीं पाताहै इसी

तरह काले त्रिशूलकी निर्मलता नहीं होतीहै ॥ ८ ॥ तदनन्तर देवताओं के सहित महादेवजी नर्मदा को जाकर और उत्तर व दक्षिणतट में प्रयत्नसे नहाकर ॥ ६ ॥ फिर हे धरापते ! दक्षिणतटमें विद्यमान भृगुपर्वतपर जाकर और वहां देवताओंके सहित बैठकर ॥ १० ॥ सब देवताओं के मनके हरनेवाले उस स्थानको विशेषतीर्थ जानकर वहां महादेवजी ठहरे ॥ ११ ॥ और पर्वत को त्रिशूल से फाड़दिया तिस से फिर रसातल फटगया उससे त्रिशूल निर्मल होगया फिर उसमें लेप कहीं नहीं देखपड़ा ॥ १२ ॥ पाताल से भोगवती नामकी गङ्गा निकलीं वहां शूलभेद नाम से प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्नहुआ ॥ १३ ॥ सूर्य्यग्रहण में वहां अतिपुण्यवाली सरस्वती

त्रिशूलस्य निर्म्मलत्वंनजायते ॥ ८ ॥ नर्म्मदान्तुततोगत्वा देवोदेवैस्समन्वितः ॥ उत्तरंदक्षिणंकूलमवगाह्यप्रयत्नतः ॥ ६ ॥ गत्वातुदक्षिणेकूले पर्वतेभृगुसंज्ञिते ॥ तत्रस्थित्वामहादेवो देवैस्सहधरापते ॥ १० ॥ मनोहरन्तुतत्स्थानं सर्वेषांहिदिवौकसाम् ॥ ज्ञात्वातीर्थंविशेषन्तु स्थितोदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ गिरिंबिभेदशूलेन तेनभिन्नंरसातलम् ॥ निर्म्मलञ्चाभवच्छूलं नलेपोदृश्यतेक्वचित् ॥ १२ ॥ पातालान्निःसृतागङ्गा नाम्नाभोगवतीतिसा ॥ तत्रतीर्थंसमुत्पन्नंशूलभेदेति विश्रुतम् ॥ १३ ॥ सूर्येराहुगतेतत्र महापुण्यासरस्वती ॥ द्वितीयंसङ्गमंतत्र यथावेणीसितासितम् ॥ १४ ॥ तत्रब्रह्मास्वयंदेवो ब्रह्मेशंलिङ्गमुत्तमम् ॥ यस्ययाम्यदिशाभागे स्वयंदेवोजनार्द्दनः ॥ १५ ॥ विद्यतेचस्वयंतत्र विष्णुःपीठेषुसंस्थितः ॥ शूलेनचकृतारेखा तत्रतोयवहानृप ॥ १६ ॥ तत्तोयंचगतंतत्र यत्ररेवानदीजलम् ॥ तत्रलिङ्गंमहापुण्यं चक्रतीर्थेतिविश्रुतम् ॥ १७ ॥ शूलभेदेचदेवेशः स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ आत्मानंमन्यतेशुद्धं नकिञ्चित्कलुषंतनौ ॥ १८ ॥ तस्यचैवोत्त

आतीहुई वहां सितासितवेणी की तरह दूसरा सङ्गम होगया ॥ १४ ॥ वहां साक्षात् ब्रह्मा देवता और उत्तम ब्रह्मेशलिंग भी है जिसके दक्षिण दिशाकी तरफ जनार्दन देव आपही विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ व वहां परिवार देवताओं के पीठमें विष्णुजी आपही स्थितहैं हे नृप ! वहां पानीकी बहानेवाली लीक त्रिशूलसे कीगई है ॥ १६ ॥ वह जल जहां नर्मदानदी का जल है वहांको चलागया है वहां चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध बड़ा पुण्यवाला लिंगहै ॥ १७ ॥ महादेवजी शूलभेद में विधिसे स्नानकर

अपनेको शुद्धमाना शरीर में कुछ भी उनके पाप नहीं रहा ॥१८॥ उसके उत्तरवाले भागमें जगत् के गुरु व देवताओं के देवता शूलपाणिको पाकर तदनन्तर यत्नमे पूजनकिया ॥ १९ ॥ सब तीर्थोंका रूप, सबतीर्थों से अधिक श्रेष्ठ सब पुण्यवालों से अधिक पुण्यवाले, सब दुःखोंके नाश करनेवाले, उत्तमतीर्थ को देवताओं के देवता जगत् के गुरु महादेवजी वहां स्थापनकर तदनन्तर और रक्षकों को छोड वहा गणेशका स्थापनकर ॥ २०।२१ ॥ आठ सौ क्षेत्रपालोंका स्थापनकिया जोकि यत्नसे तीर्थ की रक्षा करतेहैं और जो वहा रहनेकी इच्छा करता है उस के विघ्नोंको करते हैं ॥२२ ॥ कोई अपने कुटुम्ब की चिन्ता करते हैं और कोई खेतीकी, कोई नौकरी करते हैं

रेभागे देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ शूलपाणिन्ततःप्राप्य पूजयामासयत्नतः ॥ १९ ॥ सर्वतीर्थमयन्तीर्थं सर्वतीर्थाधिकंपरम् ॥ सर्वपुण्याधिकंपुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥ २० ॥ तत्रतीर्थंप्रतिष्ठाप्य देवदेवोजगद्गुरुः ॥ रक्षकांस्तुततोमुक्त्वा तत्रस्थाप्यविनायकम् ॥ २१ ॥ क्षेत्रपालशतञ्चाष्टौ तीर्थंरक्षन्तियत्नतः ॥ विघ्नानितस्यकुर्वन्ति यस्तत्रस्थातुमिच्छति ॥ २२ ॥ केचित्कुटुम्बचिन्तान्तु केचिच्चिन्तांकृषीषुच ॥ सेवांचकुर्वतेकेचिद्द्रव्यार्जनपरायणाः ॥ २३ ॥ परोक्षवादंकुर्वन्ति अन्येहिंसारताजनाः ॥ परदारान्प्रसर्पन्ति अन्येचवित्तचिन्तकाः ॥ २४ ॥ अन्येपिचवदन्त्येवं कथन्तीर्थेषुगम्यते ॥ क्षुधयापीड्यतेभार्य्या ह्यपत्यानितथैवच ॥ २५ ॥ मोहजालेनिपतिताः पापाचाराश्चयेनराः ॥ तेभ्योरक्षन्तितत्तीर्थं देवस्यचगणाःशुभम् ॥ २६ ॥ पुण्याजनाःस्थिरायेच स्नानंतेषांचजायते ॥ पयोष्ण्यान्देवनद्याञ्च भोगवत्यांविशेषतः ॥ २७ ॥ एतच्चसङ्गमंपुण्यं यथावेण्यांसितासिते ॥ दृष्ट्वातीर्थन्तुतेसर्वे गीर्वाणाहृष्टमानसाः ॥ २८ ॥ दे

कोई द्रव्य कमाने में लगे हैं ॥ २३ ॥ कोई तीर्थफल के प्रत्यक्ष न होने की बातें करते हैं और कोई लोग हिंसामें लगेहैं कोई पराई स्त्रियों में गमन करते है व कोई द्रव्यकी चिन्ता करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ व कोई ऐसा कहते हैं कि स्त्री पुत्र भूखों मर जायँगे इससे तीर्थको कैसे जायाजाने ॥ २५ ॥ ऐसे मोहरूपी जालमें पड़ेहुये जो पाप करनेवाले मनुष्य हैं उनसे महादेवजी के गण उस शुभतीर्थ की रक्षा किया करते हैं ॥ २६ ॥ देवनदी पयोष्णी और भोगवती मे विशेषकर स्नान उन्हीका होताहै जोकि पुण्यवाले और धैर्य्यवाले जीव हैं ॥ २७ ॥ यह सङ्गम पुण्यवाला है जैसे सितासितवेणी में सगम पुण्यवाला है अब उस तीर्थको देखकर प्रसन्न मन-

वाले वे सब देवता ॥ २८ ॥ महादेव के समीप होकर आपस में तीर्थका वर्णन करते हैं कि हे देवेश ! इस तीर्थको गयातीर्थ के समान जानते हैं ॥ २९ ॥ गुप्तसे गुप्ततहतीर्थ है ऐसा तीर्थ न हुआ है और न होगा ऐसे कह और महादेवजीका पूजनकर ब्रह्माआदि देवता और देवताओं के सहित ॥ ३० ॥ जो गण देवता हैं तथा गन्धर्व, यमराज, वरुण और इन्द्रआदि सब, सुरासुर नाचने व गाने व स्तोत्रोंसे शिवजीको प्रसन्न किया ॥ ३१ ॥ अब हे नृपोत्तम ! हे नराधिप ! महादेवजीने त्रिशूल की नोकसे जहां पर्वत को फाड़ाथा वहां जलसे भरेहुये तीन कुण्ड होगये ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर भँवरवाले, त्रिशूलके चिन्हों से युक्त वे कुण्ड सब पापों व सब

वस्यसन्निधौभूत्वा वर्णयन्तिपरस्परम् ॥ इदंतीर्थञ्चदेवेश गयातीर्थसमंविदुः ॥ २९ ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नभूतंनभविष्यति ॥ शूलपाणिंसमभ्यर्च्य ब्रह्माद्याश्चसुरैस्सह ॥३०॥ येगणाश्चैवगन्धर्वा यमोवरुणवासवौ ॥ नृत्यगीतैस्तथास्तोत्रैस्सर्वैश्चैवसुरासुराः ॥ ३१ ॥ देवेनभेदितोयत्र शूलाग्रेणनृपोत्तम ॥ त्रयोगर्तास्तुसंजातास्तोयपूर्णानराधिप ॥ ३२ ॥ आवर्तावर्तानरश्रेष्ठ महाकुलिशलाञ्छिताः ॥ सर्वपापक्षयकरास्सर्वदुःखापहारकाः ॥ ३३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वा उपवासपरायणः ॥ दीक्षामन्त्रविहीनोपि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ३४ ॥ यःपुनर्विधिवत्स्नात्वा मन्त्रैःपञ्चभिरेवच ॥ वेदोक्तैःपञ्चभिर्मन्त्रैः सहिरण्यैर्घटैस्तथा ॥ ३५ ॥ अक्षरैर्दशभिश्चैव पञ्चाक्षरैस्त्रिभिस्तथा ॥ पृथक्भूतैर्द्विजातीनां तीर्थशस्तंनराधिप ॥ ३६ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांनापि शूद्रस्याथस्त्रियास्तथा ॥ ध्यात्वादेवत्रयंराजन् स्नानंचैवयथाविधि ॥३७॥ दशाक्षरेणमन्त्रेण तोयंपिवतियोनरः ॥ केदारेचयथापीतं तथाकुण्डेनसंशयः ॥ ३८ ॥ पञ्चरेफसमायुक्तं क्षकाराक्ष

दुःखोंके हरनेवाले होतेहुये ॥३३॥ दीक्षा और मन्त्रसे रहित भी मनुष्य व्रतको कियेहुये उस तीर्थमें स्नानकर संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ ३४ ॥ व जो मनुष्य पांच मन्त्रों से विधिपूर्वक स्नानकर सुवर्णसहित पांच घटों से व वेदोक्त पांच मन्त्रों से पूजन करता है ॥ ३५ ॥ अथवा अलग २ दशाक्षर व पञ्चाक्षर व त्र्यक्षर मन्त्रों से करता है तो उसको अक्षयफल होताहै हे नराधिप ! यह तीर्थ द्विजातियों को बहुतही अच्छाहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र और स्त्रियोंको भी अच्छाहै हे राजन् ! तीनों देवताओं का ध्यानकर विधिसे स्नानकर ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य दशाक्षर मन्त्रसे तीर्थका जलपीता है वह केदारकुण्ड के जलपीने के बराबर

इस कुण्ड के जलर्पाने से फलको पाताहै इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ पांचरेफों से युक्त व वकार तथा दो ॐकारों से युक्त मन्त्रको कहताहुआ ॥ ३९ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये,विधि सेयुक्त जो मनुष्य वहां स्नान करता है और तिलोंसे मिलेहुये जलसे पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ४० ॥ वह दश आगेवाले और दश पीछेवाले ऐमे बीस पुरुषों को तारताहै और जो गङ्गा अथवा पञ्चतीर्थ में श्राद्ध करताहै ॥ ४१ ॥ वह वहां शूलभेदमें श्राद्ध करने से उसी फलको पावता है इसमें सशय नहीं है और जो वहां विधिसे युक्त दानको देताहै ॥ ४२ ॥ तो उसको वहां कियेहुये उस पुण्यका अक्षयफल होताहै जैसे गयाक्षेत्र में सब कामों के करने में

रभूषितम् ॥ ॐकारद्वयसंयुक्त मेतदत्रानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं विधियुक्तोजितेन्द्रियः ॥ तिलमिश्रेणतोयेन तर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ ४० ॥ कुलंतारयतेविंशद्दशपूर्वान्दशापरान् ॥ गङ्गायांपञ्चतीर्थेच श्राद्धंवैकुरुतेतुयः ॥४१॥ सतत्रफलमाप्नोति शूलभेदेनसंशयः ॥ यस्तत्रविधिनायुक्तो दानंदद्याच्चभक्तितः ॥ ४२ ॥ तदक्षयंफलंतत्र कृतस्यमुक्ततोथवा ॥ गयाक्षेत्रेयथापुण्यं सर्वकार्य्येषुचैवहि ॥ ४३ ॥ शूलभेदेतथापुण्यं स्नानदानादितर्प्पणैः ॥ भक्त्याच योददात्यत्र काञ्चनंगांमहींजलम् ॥ ४४ ॥ अन्नंकृषीभवंशय्यां वासांसिभूषणानिच ॥ अन्नादिभिर्धनैश्चैव गृहंपूर्णञ्चसर्वतः ॥ ४५ ॥ युग्ययुग्लाङ्गलंमुख्यं नवंचैवधुरन्धरौ ॥ दानान्येतानियोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥४६॥ श्रोत्रियञ्च कुलीनञ्च शुचिंचविजितेन्द्रियम् ॥ ज्ञात्वादानञ्चयोदद्यात्तस्यान्तोनैवविद्यते ॥ ४७॥ त्रयोदशदिनेष्वेकं त्रयोदशगुणम्भवेत् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशूलभेदोत्पत्तिर्नामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * ॥

पुण्यहोता है ॥ ४३ ॥ वैसेही शूलभेद में स्नान, दान और तर्पण करने से पुण्य होताहै और जो वहां भक्तिसे सोना, गौ, पृथिवी, जल ॥ ४४ ॥ खेतीसे उत्पन्नहुये अन्न, शय्या, कपडा, गहना, अन्नआदि व धन सब ओर से भराहुआ मकान ॥ ४५ ॥ बैलोंसेयुक्त नयाहल और बैल इन दानोंको वेदपढनेवाले ब्राह्मणको जो देताहै ॥ ४६ ॥ वेदके पढ़नेवाले, कुलीन इन्द्रियों के जीतनेवाले, पवित्र ब्राह्मणको जानकर जो दान देताहै उसकी पुण्यका अन्त नहीं है ॥ ४७ ॥ तेरह दिनके बीच में एक दिन में दियाहुआ तेरहगुना होताहै ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशूलभेदोत्पत्तिर्नामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ⊛ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उत्तानपाद राजा महादेवजी से पूँछतेहुये कि हे महादेव ! सिद्धब्राह्मण कैसे होतेहैं और अपूज्य (नहीं पूजनेलायक) ब्राह्मण कैसे होते हैं ॥ १ ॥ हे देव ! श्राद्ध, पञ्चयज्ञ और दानके विषयमें विशेष से किस को दान नहीं देना चाहिये यह आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे काठका हाथी और जैसे चमड़ेका हरिन ऐसेही बेपढ़ा ब्राह्मण ये तीनोंनाम मात्रको रखते हैं ॥ ३ ॥ रोगी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, उढ़रा, व्रतका त्याग करनेवाला, कुण्ड (पिताके जीवते दूसरे से पैदाहुआ) और गोलक (पिताके मरजाने के बाद दूसरे से उत्पन्न हुआ) ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध व दानमें पवित्र नहीं

मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तानपादोराजेन्द्र पृच्छतिस्ममहेश्वरम् ॥ सिद्धाश्चकीदृशादेव अपूज्याश्चैवकीदृशाः ॥ १ ॥ श्राद्धेचैवाह्निकेयज्ञे दानेचैवविशेषतः ॥ एतदाख्याहिमेदेव कस्यदानंनदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्म्ममयोमृगः ॥ ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ ३ ॥ रोगीहीनातिरिक्ताङ्गः काणःपौनर्भवस्तथा ॥ अवकीर्णःकुण्डगोलौ श्राद्धेदानेनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥ माहिष्योवृषलःस्तेनो वार्धक्योथविशेषतः ॥ एतेविप्रास्सदात्याज्याः पश्चान्मानंप्रशंसति ॥५॥ प्रतिग्रहन्तुगृह्णाति कालज्ञानंविनाद्विजः ॥ तस्यदानंनदातव्यं वृथाभवतिनिष्फलम् ॥ ६ ॥ दरिद्रान्देहिराजंस्त्वं मासमृद्धान्कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधंपथ्यं नीरुजस्यकिमौषधम् ॥ ७ ॥ उत्तानपादउवाच ॥ विधिश्चकीदृशीदेव कथंश्राद्धस्यचक्रिया ॥ दानञ्चदीयतेयेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ८ ॥ देवउवाच ॥ श्रा

होतेहैं ॥ ४ ॥ माहिष्य (ब्राह्मणी में क्षत्रिय से पैदाहुआ) वृषल (शूद्राका रखने वाला) चोर और बढ़ई के कामका करनेवाला ये ब्राह्मण विशेषकरके हमेशा त्याग करनेलायक हैं और जो अपनी तारीफ करता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण समय के विनाजाने दानलेता है उसको दान नहीं देना चाहिये वह दान निष्फल और वृथा होजाताहै ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम गरीबों को ही दानदेवो धनियों को कभी नहीं क्योंकि दवा रोगीही को पथ्यहोती है आराम को क्या औषध ॥ ७ ॥ फिर उत्तानपाद बोले कि हे देव ! श्राद्धकी विधि कैसीहै और क्रिया किस प्रकार की है व दान जिसको करना चाहिये सो आप मुझसे कहने के योग्य हो ॥ ८ ॥ तब महादेवजी बो

कि भक्तिसे घरमें श्राद्धकर स्नान कियेहुये इन्द्रियों को जीतेहुये मौनहोकर पिताके क्रमसे संख्याको नहीं उल्लङ्घन करताहुआ तर्पणकरे ॥ ९ ॥ तदनन्तर शूलभेद को जाकर विधिसे स्नानकर पांच स्थानोंमें हव्यकव्य आदिसे जो श्राद्ध करताहै ॥१० ॥ और उस तीर्थमें मिठाई और घीमे मिलीहुई खीरसे जो पिण्डदान करता है उसके फलको वह पाताहै इसमें संशय नहीं है ॥११॥ और जो विशेष से ब्राह्मणों को उपानह देताहै वह देवताओं से घिराहुआ व विमानपर चढ़ाहुआ जाताहै ॥ १२ ॥ सतनजा से भरेहुये अच्छे मकान को जो देताहै वह स्वर्गमें सोनेके उत्तम मन्दिर में रहता है ॥ १३ ॥ और बछड़ा के सहित तिलधेनु को जो विधिपूर्वक देताहै वह

द्धंकृत्वागृहेभक्त्या सुस्नातोविजितेन्द्रियः ॥ वाग्यतस्तर्पयेत्तावद्यावत्सङ्ख्यामलङ्घयन् ॥ ९ ॥ शूलभेदन्ततोगत्वा स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ पञ्चस्थानेषुयःश्राद्धं हव्यकव्यादिभिश्चरेत् ॥ १० ॥ पिण्डदानंचयःकुर्य्यात्पायसैर्मधुस र्पिषा ॥ तस्यतत्फलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थेनसंशयः ॥११॥ उपानहौचयोदद्याद्ब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ गच्छेद्विमानमा रूढस्त्वमरैःपरिवारितः ॥ १२ ॥ उत्तमंचगृहन्दद्यात्सप्तधान्यैश्चपूरितम् ॥ सस्वर्गलोकेवसति काञ्चनेभवनोत्तमे॥१३॥ तिलधेनुञ्चयोदद्यात्सवत्सांविधिपूर्वकम् ॥ नाकपृष्ठेवसेत्तावद्यावदाहूतसंप्लवम् ॥ १४ ॥ गृहेवायदिवारण्ये तीर्थेवाकुप थेषुच ॥ तोयमन्नञ्चयोदद्याद्यमलोकंनपश्यति ॥ १५ ॥ अक्षयंचान्नदानञ्च तोयभूमिस्तथैवच ॥ अन्नदानात्परंदानं नभूतोनभविष्यति ॥ १६ उत्तानपादउवाच ॥ कन्यादानंकथन्देव कर्तव्यंकथयस्वतत् ॥ प्रतिग्रहन्तथातोऽयं कन्यो द्वाहमुपस्करम् ॥ १७ ॥ दातव्यंकस्यवैदानं दत्तम्भवतिचाक्षयम् ॥ उत्तमंमध्यमंवापि कनीयांसंकथञ्चन ॥ १८ ॥

महाप्रलयतक स्वर्गमें रहता है ॥ १४ ॥ घरमें व वनमे व तीर्थमें व कठिन रास्ते में जल व अन्नको जो देताहै वह यमलोक को नहीं देखताहै ॥ १५ ॥ अन्नदान अक्षय होताहै ऐसेही जल व जमीन का दानहै अन्नदान से परे दूसरा दान न हुआ है और न होगा ॥ १६ ॥ उत्तानपाद बोले कि हे देव ! कन्यादान कैसे करना चाहिये सो कहिये और कन्या व दहेजआदि सामान किस प्रकार होनाचाहिये ॥ १७ ॥ दान किसको देना चाहिये दियाहुआ दान अक्षय कैसे होताहै उत्तम, मध्यम-और अधम

दान कैसा होताहै ॥ १८ ॥ अथवा राजस व तामस व सात्त्विकदान कैसा होताहै तब महादेवजी बोले कि सब दानोंमें कन्यादान श्रेष्ठहै ॥ १९ ॥ जो मनुष्य विशेष करके सुन्दररूपवाले व गुणी व कुलीन वरके समीप जाकर बड़ी भक्ति व यत्नसे कन्याको देताहै ॥ २० ॥ अच्छीलग्न व अच्छे मुहूर्त्त में गहना पहनाकर कन्याको देताहै और भक्तिसे घोड़े, हाथी और वस्त्रोंको जो देताहै ॥ २१ ॥ उसका वास वहां होताहै जहां निर्दोषस्थान है अपने प्राणोंसे भी प्यारी कन्याको जिसने दियाहै ॥ २२ ॥ उसने इस सब चराचर त्रैलोक्य को मानो देदिया कन्या के वास्ते जो धन दियागया उसको जो दुर्बुद्धि प्रसन्न नहीं करताहै ॥ २३ ॥ वह उस कर्मसे चाण्डाल

राजसन्तामसंवापि निश्रेयसमथापिवा ॥ ईश्वरउवाच ॥ सर्वेषामेवदानानां कन्यादानंविशिष्यते ॥ १९ ॥ योदद्यात्पर याभक्त्या अभिगम्यचयत्नतः ॥ कुलीनस्यस्वरूपस्य गुणज्ञस्यविशेषतः ॥ २० ॥ सुलग्नेचमुहूर्तेचदद्यात्कन्यामलं ङ्कृताम् ॥ अश्वान्नागांश्चवासांसि योदद्याच्चैवभक्तितः ॥ २१ ॥ तस्यवासोभवेत्तत्र पदंयत्रनिरामयम् ॥ येनसादुहि तादत्ता प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ २२ ॥ तेनसर्वमिदंदत्तं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ धनंकन्यार्थतःकल्प्यो नरोचयतिदुर्म तिः ॥ २३ ॥ सभवेत्कर्म्मचाण्डालः कोशकारोभवेन्मृतः ॥ कन्यार्थयाचतेयस्तु सधनोनिर्धनोपिवा ॥ २४ ॥ अभोज्यो भवतेमर्त्यस्सर्ववस्तुषुवर्जितः ॥ गृहेतस्यचयोश्नीयाज्जिह्वालम्पटकोनृप ॥ २५ ॥ चान्द्रायणेनशुद्धिस्स्यात्तप्तकृ च्छ्रमथापिवा ॥ राजोवाच ॥ वित्तंनविद्यतेयस्य कन्योद्वाहेऽवतिष्ठति ॥ २६ ॥ कथंचोद्वाहनंकुर्य्यादेतदाचक्ष्वमेप्रभो ॥ देवउवाच ॥ स्ववित्तेनानुकर्तव्यं कन्योद्वाहनमेवच ॥ २७ ॥ कन्यानामसमुच्चार्य्य नदोषोयाचकस्यच ॥ अभिगम्योत्त

होताहै और मरनेपर कुसेहरनाम का कीड़ा होताहै धनी व गरीब जो मनुष्य कन्याके लिये कुछ मांगता है ॥ २४ ॥ वह मनुष्य किसी कार्य में भोजन करानेके योग्य नहीं होताहै सर्वत्र वर्जित है और हे नृप ! जो जिह्वाका चञ्चल मनुष्य उस के घरमें भोजन करता है ॥ २५ ॥ वह चान्द्रायण व तप्तकृच्छ्रव्रत से शुद्धहोता है तब राजा बोले कि कन्या के विवाह के समय में जिसके पास धन नहींहै ॥ २६ ॥ तो वह विवाह कैसे करे हे प्रभो ! यह मुझसे कहो तब महादेवजी बोले कि अपने

ही धनसे कन्याका विवाह करना चाहिये ॥ २७ ॥ अथवा वरको छोड़ और से कन्याका नामलेकर जो धन मांगता है उसको दोष नहीं होताहै ॥ २८ ॥ जायकर दानदेना उत्तमदान है और बुलाके देना मध्यम है कहेपर देना अधम है काम कराके देना निष्फल है तथा असमर्थ वरको कन्यादान नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ और पढ़ाहुआ समर्थ वर देनेवाले को तार देता है जैसे जलमें चलादिये हुये काठ को जल तारदेता है जैसे नावपार उतारने में समर्थ है ऐसेही विद्वान् तारसकताहै ॥ ३० ॥ जो अग्निहोत्री होकर शूद्रका दान लेताहै वह इस जन्ममें शूद्र और मरेपर कुत्ता होताहै ॥ ३१ ॥ उस अग्निहोत्री ब्राह्मण को वृथा क्लेश होतेहैं

मंदानमाहूतंचैवमध्यमम् ॥ २८ ॥ अधमंप्रोच्यमानन्तु सेवादानंचनिष्फलम् ॥ असमर्थेनदातव्यं कन्यादानंतथैवच ॥ २९ ॥ समर्थस्तारयेद्विद्वान्काष्ठंक्षिप्तंयथाजले ॥ यथानौकातथाविद्वांस्तारयेत्परमंतटम् ॥ ३० ॥ आहिताग्निस्तुयोभूत्वा गृह्णञ्छूद्रप्रतिग्रहम् ॥ इहजन्मनिशूद्रत्वं मृतःश्वाचोपजायते ॥ ३१ ॥ वृथाक्लेशाश्चजायन्ते ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ असत्प्रतिग्रहंगृह्णन्नापदंचविनाद्विजः ॥ ३२ ॥ तत्सर्वंनाशयेत्तस्य भिन्नानौकायथाम्भसि ॥ अतिक्लेशार्जितं विनाशयतितत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ एवंदुःखार्जितंपुण्यं शूद्रेगच्छतिनान्यथा ॥ लक्षदाक्षिण्यलाभाय प्रदानंचापराधकम् ॥ ३४ ॥ कीर्तिपात्रेषुयद्दत्तं वृथाभवतिपार्थिव ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदानमहिमानुवर्णनन्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

जो ब्राह्मण विना विपत्तिके दुष्टका दान लेताहै ॥ ३२ ॥ वह दान उसका सब कुछ नाश करदेताहै जैसे टूटीनौका जलमें डूबजाय जैसे बड़े क्लेशसे कमाया धन क्षणमात्र में नष्टहोजावे ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार बड़े दुःखसे कमायाहुआ पुण्य शूद्रके पास चलाजाता है यह झूंठ नहीं है व अपने फायदे के वास्ते जो दान है वह अपराधही है ॥ ३४ ॥ जिससे यशहोवे ऐसे पात्रमें जो दान दियागया है हे पार्थिव ! वह दान वृथा होताहै ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेदानमहिमानुवर्णनोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे शङ्कर ! श्राद्ध, दान, तीर्थयात्रा और अतिथिसत्कार किससमय में कियाजाता है सो आप हमलोगों से कहो॥ १ ॥ तब महादेवजी बोले कि पिताके वास्ते जो पुण्यहै वह सबकाल में अच्छाहै और स्नान, दान व तर्पण के वास्ते यह तीर्थ भी ऐसाही पवित्र है ॥ २ ॥ चारोंयुगों की जो आदि तिथियां हैं उनमें विशेषकर महात्मा लोग श्राद्ध करते हैं अब हे वत्स ! चौदहों मन्वादि तिथियों को तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि कुवार में सुदी नवमी, कार्तिक की द्वादशी, चैतमासमें तीज, तथा भादों की तीज ॥ ४ ॥ आषाढ़ की दशमी, माघकी सप्तमी श्रावणकृष्ण की अष्टमी, फिर आषाढ़ की पूर्णमासी ॥ ५ ॥ फागुन की अमावस पूसकी

उत्तानपाद उवाच ॥ कस्मिन्कालेचक्रियते श्राद्धंदानंचशङ्कर ॥ तीर्थयात्राकथंकार्य्या आतिथ्यंकथयस्वनः ॥ १ ॥ शङ्करउवाच ॥ पितुरर्थंयथापुण्यं सार्वकालिकमुत्तमम् ॥ इदंतीर्थंतथापुण्यं स्नानदानादितर्प्पणैः ॥२॥ विशेषेणचकुर्वन्ति श्राद्धंचतुर्युगादिषु ॥ मन्वन्तरादयोवत्स श्रूयतांचचतुर्दश ॥ ३ ॥ आश्विनेशुक्लनवमी द्वादशीकार्तिकस्यच ॥ तृतीयाचैत्रमासेतु तथाभाद्रपदस्यच ॥ ४ ॥ आषाढस्यचदशमी माघस्यैवचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीतुपूर्णिमा ॥ ५ ॥ फाल्गुनस्यअमावास्या पौषस्यैकादशीशुभा ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्यैष्ठीपञ्चदशीसिता ॥६॥ मन्वन्तरादयश्चैव ह्यनन्तफलदास्स्मृताः ॥ अयनेतूत्तरेचैव दक्षिणेचतथैवहि ॥ ७ ॥ कार्त्तिक्यांचतथामाघ्यां वैशाख्यांचतृतीयया ॥ चैत्र्यांचैवतथाषष्ठ्यां प्रोष्ठपद्यान्तथैवच ॥ ८ ॥ श्राद्धकालाश्चतेसर्वे दत्तम्भवतिचाक्षयम् ॥ मधुमासेसितेपक्ष एकादश्यामुपोषितः ॥ ९ ॥ क्षपाजागरणंकुर्य्याद्विष्णोःपदसमीपतः ॥ दद्याद्दानंतथाशक्त्या हिरण्यं

एकादशी और कातिक, फागुन, चैत और जेठकी उजियाली पूर्णमासी ॥ ६ ॥ ये मन्वन्तरादि तिथियां अनन्तफल की देनेवाली कहीगई हैं और उत्तरायण, व दक्षिणायन की संक्रान्ति ॥ ७ ॥ तथा कार्त्तिक, माघ और वैशाख की पूर्णमासी, आखा तीज, चैतकी छठि और भादोंकी पूर्णमासी ॥ ८ ॥ ये सब श्राद्धके कालहैं इनमें दियाहुआ अक्षयहोता है चैत्रमास के उजियारे पाखकी एकादशी को उपासा रह कर ॥ ९ ॥ विष्णु के चरणों के समीप रात्रिको जागरण करे और यथाशक्ति सोना,

गौवें और कपड़ों का दानकरे ॥ १० ॥ धूप, दीप, नैवेद्य,माला,फूल और चन्दनआदि से जो विष्णुका पूजन करता व पुराणकी कथाको कहताहै ॥ ११ ॥ ऋक्,यजुः, साम और अथर्ववेद के सूक्तोंको जपता है वह ब्राह्मण सब पापोंसे छूटाहुआ विष्णुलोक को जाता है ॥ १२ ॥ जो प्रातःकाल श्राद्ध करता है और यत्नसे ब्राह्मणोंको भोजन कराके यथाशक्ति उनको सोना, गौवें और वस्त्रोंको देताहै ॥ १३ ॥ उसके पितर महाप्रलय तक तृप्त रहतेहैं और श्राद्धका देनेवाला भी वहां रहता है कि जहां विष्णुजी रहते हैं ॥ १४ ॥ फिर त्रयोदशी को वहां जावे जहां गुहावासी महादेव हैं वहां मार्कण्डेयेश्वर को देखकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ उत्तानपाद बोले

गोम्बराणिच ॥ १० ॥ धूपंदीपंचनैवेद्यं स्रक्पुष्पचन्दनानिच ॥ अर्चाङ्करोतियोविष्णोः कथाम्पौराणकीर्तनम् ॥ ११ ॥ ऋग्यजुस्सामाथर्वाणां सूक्तन्तज्जपतिद्विजः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ १२ ॥ प्रभातेकुरुतेश्राद्धं द्विजान्भोज्यप्रयत्नतः ॥ ददेद्दानंयथाशक्त्या हिरण्यंगोम्बराणिच ॥ १३ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाहूतसंप्लवम् ॥ श्राद्धदश्चवसेत्तत्र यत्रदेवोजनार्द्दनः ॥ १४ ॥ त्रयोदश्यांततोगच्छेद्गुहावासीतितिष्ठति ॥ दृष्ट्वामार्कण्डमीशानं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १५ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ गुहामध्येयथादेव लिङ्गंपरमशोभनम् ॥ प्रतिष्ठायेनदेवस्य तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं मार्कण्डेश्वरसंज्ञिकम् ॥ बृहद्रथन्तरंयच्च सामवेदंद्विजोत्तमः ॥ १७ ॥ अथर्वाथर्वशीर्षाणि तथाहृच्चवृषाकपिम् ॥ शिवसङ्कल्पितंजप्त्वा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १८ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ पादशौचंतथातस्य कुर्वतेयेचभक्तितः ॥ १९ ॥ गोदानेनैवयत्पुण्यं लभन्तेनात्रसंशयः॥

कि हे देव ! गुहा के बीचमें जैसा अतिसुन्दर लिंगहै और जैसे उन देवकी प्रतिष्ठा हुईहो सो आप मुझमे कहने को योग्य होतेहो ॥ १६ ॥ तब महादेवजी बोले कि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मार्कण्डेश्वरनाम का लिंग वहां बृहद्रथन्तर नामका साम वेदका जो सूक्तहै उसको तथा अथर्वशीर्ष, वृषाकपि नामका अथर्वहृदय और शिवसङ्कल्पनाम का सूक्त जपकर ब्राह्मण सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १७ । १८ ॥ और वह उत्तम स्थानको जाताहै जहां महादेवजी रहतेहैं और जो लोग वहां महादेवके

चरणों को भक्तिसे धोते हैं वे गोदान से जो पुण्य होताहै उसको पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है वहां घी शक्कर मिलीहुई खीरसे ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१९।२०॥ एक ब्राह्मण के भोजन कराने से हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने का फलहोता है सोना, चांदी और कपडे ब्राह्मणों को भक्तिसे देवें ॥ २१ ॥ उससे देवता, मनुष्य और पितर तृप्तहोते हैं और चन्द्र व सूर्य के ग्रहण में जो मनुष्य वहां भक्तिसे स्नान करतेहैं ॥ २२ ॥ और जो महादेव का पूजन करता है व विशेषसे जप व होम करता है और वेदपाठी ब्राह्मण को यथाशक्ति दान देताहै ॥ २३ ॥ व अच्छा घोड़ा, उत्तम हाथी, तुलापुरुष, सतनजा से भराहुआ छकड़ा जो वहां देताहै ॥ २४ ॥ व

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ २० ॥ एकेनभोजितेनापि सहस्रन्तेनभोजितम् ॥ सुवर्णरजतंवस्त्रं दद्याद्भक्त्याद्विजातिषु ॥ २१ ॥ तेनतृप्यन्तितेदेवा मनुष्याःपितरस्तथा ॥ चन्द्रसूर्य्यग्रहेभक्त्या स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥ २२ ॥ देवार्चनं च यःकुर्य्याज्जपंहोमंविशेषतः ॥ दद्याद्दानंयथाशक्त्या ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २३ ॥ अश्वरत्नंगजरत्नं तुलापुरुषमेवच ॥ शकटंयोददेत्तत्र सप्तधान्यप्रपूरितम् ॥ २४ ॥ युक्तं च लाङ्गलंदद्याद्युवानौतुधुरन्धरौ ॥ गोभूतिलहिरण्यञ्च पात्रेदातव्यमीप्सितम् ॥ २५ ॥ अपात्रेविदुषाकिञ्चिन्नदेयंश्रेयइच्छता ॥ सर्वभूतानिचात्मैव यतोधारयतेमही ॥ २६ ॥ ततोविप्रायसादेया सर्वसस्यानुशालिनी ॥ अन्यच्चशृणुराजेन्द्र गोदानस्यचयत्फलम् ॥ २७ ॥ यावद्वत्सस्य पादौद्वौ मुखंयोन्याश्चदृश्यते ॥ तावद्गौःपृथिवीज्ञेया यावद्गर्भंनमुञ्चति ॥ २८ ॥ येनकेनाप्युपायेन ब्राह्मणायसमर्पयेत् ॥ पृथ्वीदत्ताभवेत्तेन सशैलवनकानना ॥ २९ ॥ तारयन्तीचसादत्ता कुलानामेकविंशतिम् ॥ रौप्यखुरींकांस्यदो

अच्छा हल, जवान धुरन्धर बैल, गौवें, पृथिवी, तिल और सोना ये सुपात्रब्राह्मण को उसकी इच्छानुसार देना चाहिये ॥ २५ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करनेवाले विद्वान् को अपात्र में कुछभी न देना चाहिये सब प्राणियों को जिससे पृथिवीही धारण करती है ॥ २६ ॥ इससे सब अन्नों से युक्त पृथिवी ब्राह्मण को देना चाहिये हे राजेन्द्र ! और भी जो गोदान का फलहै उसे तुम सुनो ॥ २७ ॥ जबतक बछडाके दोनों पांव औ मुँहयोनि में देखपड़ें तबतक वह गौ पृथिवी के तुल्यहै जबतक गर्भको नहीं छोड़ती है ॥ २८ ॥ इससे ऐसी गऊको जिस किसी उपाय से ब्राह्मण को देवे मानो उसने पर्वत व जलों और जंगलों के सहित सम्पूर्ण पृथिवीको देदिया ॥ २९ ॥

दीहुई वह गऊ इक्कीस कुलोंको तारती है रूपे के खुरोंवाली, कांसेकी दोहनीवाली, बछड़ाके सहित दूधवाली गऊको ॥ ३० ॥ बड़े पुण्यवाले मनुष्य चन्द्रग्रहण में देते हैं हे न राधिप! और सब दानोंके पुण्यकी गिन्ती है ॥ ३१ ॥ पर चन्द्र व सूर्य ग्रहणमें दान के पुण्यकी गिन्ती नहीं है जहां गौवें देख पड़ती हैं वही सब तीर्थ हैं ॥ ३२ ॥ और वहीं विष्णुको जानना चाहिये इसमें कुछ विचारना नहीं है जो मनुष्य इस तीर्थका स्मरण करके भी यात्रा करता है ॥ ३३ ॥ अथवा तीर्थका माहात्म्यही सुनता है वह महादेवजी का गणहोता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशूलभेदमाहिमानुकथनन्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

हां सवत्सांचपयस्विनीम् ॥ ३० ॥ प्रयच्छन्तिजनाःपुण्या राहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ सर्वस्यैवतुदानस्य संख्याचास्तिनराधिप ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्य्योपरागेच दानसंख्यानविद्यते ॥ यत्रगावःप्रदृश्यन्ते सर्वतीर्थानितत्रवै ॥ ३२ ॥ तत्रयज्ञंविजानीयान्नात्रकार्य्याविचारणा ॥ पुनःस्मृत्वातुतत्तीर्थं गमनंकुरुतेनरः ॥ ३३ ॥ अथवाश्रूयतेयस्तु रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशूलभेदमाहिमानुकथनंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ अन्यच्चाख्यानकंवक्ष्ये पुरावृत्तंनराधिप ॥ सकुटुम्बोगतःस्वर्गमृषिर्दीर्घतपामहान् ॥ १ ॥ शङ्करउवाच ॥ काशिराजेतिविख्यातश्चित्रसेनोमहाबलः ॥ तस्यपुर्य्यांसवसते सर्वकामसमन्वितः ॥ २ ॥ सापुरीजनसम्पूर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥ वाराणसीतिविख्याता गङ्गातीरेसमाश्रिता ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थसमप्रख्या गौरीगोकुलसंयुता ॥ बहुद्विजसमाकीर्णा वेदध्वनितनिःस्वना ॥ ४ ॥ वणिग्जनैर्बहुविधैः क्रयविक्रयसंयुतैः ॥ अट्टाट्टालैःप्रतोलीभिरुत्सवाद्यै

महादेवजी बोले कि हे नराधिप! अब और अगिले जमाने में हुये आख्यान को कहेंगे जिसमें श्रेष्ठ दीर्घतपा ऋषि कुटुम्ब सहित स्वर्गको गया है ॥ १ ॥ महादेवजी कहते हैं कि चित्रसेन नामसे विख्यात बड़े बलवाले काशी के राजाहुये उन्हीं की पुरी में सब कामनाओं से युक्त वे ब्राह्मण रहते थे ॥ २ ॥ वह पुरी मनुष्यों से भरी और अनेक रत्नों से शोभित गङ्गा के तीर बसती हुई वाराणसी इस नाम से प्रसिद्ध होतीहुई ॥ ३ ॥ जोकि इन्द्र प्रस्थ के बराबर शोभावाली कन्या और गौवों से युक्त थी और बहुत से ब्राह्मणों से व्याप्त, वेदों की आवाजों से शब्द करतीहुई ॥ ४ ॥ खरीद और बिक्री करनेवाले अनेक प्रकार के बनियों से युक्त

अएटा, शहरपनाह, सड़के और अनेक जलसाओं से सुहावनी ॥ ५ ॥ देवताओं के दिव्य मन्दिर व बगीचों से शोभित, रमणीक अनेक पुष्प व फलों से युक्त, केला-
ओं की बेंटों से शोभित थी ॥ ६ ॥ उसके उत्तर दिशा के तरफ तीनोंलोकोंमें प्रसिद्ध मन्दारवन नाम का अति सुन्दर बगीचा था ॥ ७ ॥ जो कि अनेक वृक्ष व लताओं
से व्याप्त व अनेक प्रकारके फूलों से सुहावना था बहुतसे मन्दार के वृक्षोंसे युक्त होनेसे मन्दारवन नाम से प्रसिद्ध था ॥ ८ ॥ दीर्घतपा नामका ब्राह्मण वहां सदा
रहता था वह अत्यन्त तप करता था इससे दीर्घतपा कहाजाता था ॥ ९ ॥ वह अपनी स्त्री व पुत्रों से युक्त रहता था उसके समीप रहेनेवाले सब पांचों लडके उस

स्तुमरिडता ॥ ५ ॥ देवतायतनैर्दिव्यैरारामैरुपशोभिता ॥ नानापुष्पफलैरम्यैः कदलीषराडमरिडता ॥ ६ ॥ तस्या उत्तरदिग्भागे आरामश्चोत्तमश्शुभः ॥ समन्दारवनंनाम त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ७ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ बहुमन्दारसंयुक्तं तेनमन्दारकंवनम् ॥ ८ ॥ विप्रोदीर्घतपानाम सर्वदातत्रतिष्ठति ॥ तपस्तपतिसोत्यर्थं तेनदीर्घतपाःस्मृतः ॥ ९ ॥ सतिष्ठतेसपत्नीकस्तिष्ठतेपुत्रसंयुतः ॥ शुश्रूषयन्तितंसर्वे सुताःपञ्चसमीपगाः ॥ १० ॥ तस्यपुत्रःकनीयांस्तु ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो ब्रह्मचारीगुणान्वितः ॥ ११ ॥ योगाभ्यासरतोनित्यं कन्दमूलफलाशनः ॥ तिष्ठतेमृगरूपेण मृगमध्येवसन्सदा ॥ १२ ॥ दिनारम्भेदिनान्तेच मातापित्रग्रतःस्थितः ॥ अभिवादयतेनित्यं भक्तिमान्त्रृषिपुत्रकः ॥ १३ ॥ पुनर्जगामतत्रैव काननेगिरिगह्वरे ॥ क्रीडन्बालमृगैस्सार्द्धं राजबाणमृतस्तु सः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ आश्रमेवसतस्तत्र सुदीर्घतपसस्तदा ॥ सूनुस्तस्यकनीयांस्तु कथंमृत्युवशङ्गतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवा

की सेवा करते थे ॥ १० ॥ उसका छोटा लडका वेदके पढ़ने में युक्त व गुणों से युक्त ब्रह्मचारी बड़ा तप करनेवाला ऋष्यशृङ्गनाम का होता हुआ ॥ ११ ॥ वह ह-
मेशा योगाभ्यास में लगाहुआ कन्द, मूल और फलोंका खानेवाला हरिन के रूप से बना रहता व हरिनाओं के बीचमें सदा बास करतारहा ॥ १२ ॥ प्रातःकाल व
सायकाल में पिता व माताके आगे खडा होकर वह ऋषिका पुत्र भक्ति से युक्त उनको नित्यही प्रणाम करता था ॥ १३ ॥ और फिर वहीं पहाड़ी जङ्गल मे चला
जाता था एक दिन हरिनाओं के बच्चो के साथ खेलता हुआ वह राजाके बाण से मारागया ॥ १४ ॥ तब राजा बोले कि उस आश्रम मे रहतेहुये दीर्घतपा का छोटा

लडका कैसे मरगया ॥ १५ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महीपते ! तुम एकाग्रमन होकर इस विचित्र कथा को सुनो इसके सुननेही से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १६ ॥ बड़े बल व पराक्रमवाले काशीके माहाराजा चित्रसेन इस नाम से प्रसिद्ध जोकि काशीमे रहते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार वहां राज्य में रहतेहुये मन्त्रियो से वचन बोले कि हम शिकार को जावेंगे तुम लोग तब तक राज्यमे बनेरहो ॥ १८ ॥ तब मन्त्रियों ने कहा कि आप जाइये ऐसे कहेगये राजा घोडे पर सवारहोकर चलेगये तदनन्तर उन राजाके पीछे सेवक लोग भी गये ॥ १९ ॥ वनको जातेहुये राजाके ऊपर छातोंपर छाते देखपड़ते हैं वहां हाथी व घोडो के पावों

नुवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा कथांचित्रांमहीपते ॥ श्रवणादेवतस्याहि सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १६ ॥ काशिराजोमहाराजा महाबलपराक्रमः ॥ चित्रसेनइतिख्यातो वाराणस्यांवसत्यसौ ॥ १७ ॥ एवंवसंस्तत्रराज्ये मन्त्रिणोवाक्यमब्रवीत् ॥ मृगयांचगमिष्यामि यूयंराज्येप्रतिष्ठिताः ॥ १८ ॥ गम्यतांमन्त्रिभिःप्रोक्तो गतोसौवसुधाधिपः ॥ अश्वारूढोप्यन्वगच्छन् राजानमनुगास्ततः ॥ १९ ॥ छत्रैश्छत्राणिदृश्यन्ते गच्छन्तंकाननंप्रति ॥ रजस्तत्रोत्थितंभूरि गजवाजिपदाहतम् ॥ २० ॥ तेनैवाच्छादितंसर्वं सादित्यंभूमिमण्डलम् ॥ नतत्रदृश्यतेसूर्य्यो नकाष्ठानचचन्द्रमाः ॥ २१ ॥ पादपाश्चनदृश्यन्ते गिरिसानूनिसर्वशः ॥ तत्रापिचमहाराज मृगयूथस्सदृश्यत ॥ २२ ॥ अधावन्पुरुषास्सर्वे सराजाराजपुत्रकाः ॥ वृन्दलोपोभवत्तेषां शीघ्रंजग्मुर्दिशोदश ॥ २३ ॥ एकमार्गंगतोराजा चित्रसेनोमहीपतिः ॥ एकाकीसगतस्तत्र यत्रयत्रचतेमृगाः ॥ २४ ॥ प्रविष्टस्तुततोदुर्गे काननेपक्षिवर्जिते ॥ वल्मीगुल्मलताकीर्णे प्रविष्टोनैवदृश्यते ॥ २५ ॥

से बड़ी गर्द उड़ी ॥ २० ॥ उससे सूर्य सहित सब भूमण्डल झँपगया तब वहां सूर्य व दिशायें व चन्द्रमा नहीं देखपड़ते हैं ॥ २१ ॥ और वृक्ष व पर्वतोंकी चोटियां भी नहीं देखपड़ती हैं तबतक हे महाराज ! वहां हन्नाओं का झुण्ड देखपडा॥२२ ॥ तब सब मनुष्य और वे राजा व राजपुत्र दौडे तब उनका झुण्ड फूटगया और बहुत जल्दी दशो दिशाओं में आगगये ॥ २३ ॥ और राजा चित्र सेन भी एक रास्तेको चलेगये वे राजा अकेले वहीं २ गये जहां २ वे हन्ना गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर

पक्षियों से भी खाली कठिन वनसें राजा पैठ गय बांबी छोटे २ वृक्ष व लताओंसे घने वन में पैठे हुये राजा नहीं देखपडते ॥ २५ ॥ राजा ने अकेले आपको देखा और घोडा व पैदलों को नहीं देखा तब राजा ने कहा कि यहां कोई नहीं जानता और न हम दशोदिशाओं को जानते हैं॥ २६ ॥ राजा चित्रसेन ऐसे कष्टको प्राप्तहुये तब वहां छाया में बैठगये और बार २ विश्राम कर ॥ २७ ॥ भूख और प्यास से विकल पर्वतोंसे कठिन घने वन में घूम रहे कमलो से शोभित एक दिव्य तालाब को देखा ॥ २८ ॥ हंस, पनडुब्बी और चकवाओं के शब्दसे गूंज रहे उस तालाबको देखकर राजा प्रसन्न होगये ॥ २९ ॥ और कमलों को लेकर उसमें स्नान किया

एकाक्यपश्यदात्मानं नचाश्वंनपदातिकान् ॥ नकोपिचात्रजानाति नाहंवेद्मिदिशोदश ॥ २६ ॥ एवंकष्टंगतोराजा चित्रसेनोनराधिपः ॥ छायांसमाश्रितस्तत्र विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ २७ ॥ क्षुत्तृषार्तोभ्रमन्दुर्गे काननेगिरिगह्वरे ॥ ततोप श्यत्सरोदिव्यं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ २८ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपकूजितम् ॥ सरोदृष्ट्वातुराजेन्द्रः संप्रहृ ष्टतनूरुहः ॥ २९ ॥ कुमुदानिगृहीत्वातु तत्रस्नानंसमाचरत् ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवान्मनुष्यांश्चयथाविधि ॥ ३० ॥ पपौ पानीयममलं यथावत्समभीप्सितम् ॥ उत्तीर्यसजलात्तीरे दृष्ट्वावृक्षंसमीपतः ॥ ३१ ॥ चिन्तयानुपविष्टोसौ किंतुक र्म्मकरोम्यहम् ॥ ततश्छायाश्रितान्पश्यन्वनोद्देशेमृगान्बहून् ॥ ३२ ॥ केचित्पूर्वमुखास्तत्र अपरेदक्षिणामुखाः ॥ वा रुण्यभिमुखाःकेचित्केचित्कौबेरमाश्रिताः ॥ ३३ ॥ केचिन्निद्रांप्रकुर्वन्ति ऊर्द्ध्वकर्णाःस्थिताःपरे ॥ मृगमध्येस्थितोयोगी ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ३४ ॥ मृगान्दृष्ट्वाततोराजा प्रहारार्थमचिन्तयत् ॥ वधित्वाचमृगंचैकंभक्षयामियदृच्छया ॥ ३५ ॥

फिर पितर, देवता, और मनुष्यो का विधिपूर्वक तर्पण कर ॥ ३० ॥ मनमाने निर्मल जलको पिया फिर जलसे निकल किनारे पर समीपही एक वृक्षको देखकर बैठ गये और चिन्तासे कहनेलगे कि अब हम किस कामको करें तदनन्तर वन में छाया में बैठेहुये बहुत से हरिणों को देखा ॥ ३१।३२ ॥ वहां कोई पूर्वकीतरफ मुहँ किये हुये और कोई दक्षिण, कोई पश्चिम और कोई उत्तर मुहँ बैठे हैं ॥ ३३ ॥ कोई सोते और कोई ऊपरको कान किये बैठे हैं हरिणों के बीचमें बडे तपवाले योगी ऋष्य-शृङ्ग बैठे थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर राजा हरिणों को देख उनके मारने का विचार करते हुये अपने मनमे कहा कि एक हरिण को मारकर हम इच्छा पूर्वक खायँगे ॥ ३५ ॥

हन्ना के मांस के खाने से पुष्ट होंगे तदनन्तर हम रास्ते को ढूँढ़तेहुये काशी को चले जायँगे ॥ ३६ ॥ पेडकी जड़पर बैठे हुये सामर्थ्यवान् राजा ऐसे विचार कर हाथसे धनुष लेकर उसबाण को छोड दिया ॥ ३७ ॥ उसबाण के छोड़तेही सब हन्ना भागगये उनके बीचमें वही एक ऋष्यशृङ्ग बड़े तपवाले ॥ ३८ ॥ बाणसे बिंधेहुये गिरे और कृष्ण २ कहते हुये उन्हों ने कहा हाय! २ मुझको इस समय किसने गिरादिया ॥ ३९ ॥ यह दुर्बुद्धि किसके पैदा होगई जिससे हमारे मारने की बुद्धि होगई क्योंकि हन्नों के बीच में बैठे हुये हमने किसी का अपराध नहीं किया ॥४०॥ इस मनुष्य की आवाज को सुनकर वह राजा विस्मय से युक्त होगया तदनन्तर

स्वस्थावस्थोभविष्यामि मृगमांसस्यभक्षणात् ॥ काशींप्रतिगमिष्यामि मार्गमन्वेषयंस्ततः ॥ ३६ ॥ विचिन्त्यैवंततोराजा वृक्षमूलंसमाश्रितः ॥ चापंगृह्यकराग्रेण प्राक्षिपत्तच्छरंविभुः ॥ ३७ ॥ क्षिप्तमात्रेशरेतस्मिन्सर्वेनष्टामृगास्ततः ॥ तेषांमध्येसचैवैक ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ३८ ॥ शरेणविद्धःपतितः कृष्णकृष्णेतिचाब्रवीत् ॥ हाहाशब्दंकृतंतेन केनाहंपातितोधुना ॥ ३९ ॥ कस्यैषादुर्मतिर्जाता ययाबुद्धिर्ममोपरि ॥ मृगमध्येस्थितश्चाहं नकिञ्चिदपराधवान् ॥४०॥ वाचांतांमानुषींश्रुत्वा सराजाविस्मयान्वितः ॥ शीघ्रंगत्वाततोपश्यद् ब्राह्मणंब्रह्मवर्चसम् ॥ ४१ ॥ हाहाकष्टंकृतमद्य येनासौघातितोमया ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ नतेसिद्धिर्भवेत्किञ्चिन्मयिपञ्चत्वमागते ॥ ४२ ॥ तवैवविहिताहत्या मयिपञ्चत्वमागते ॥ जननीमेपितावृद्धौ भ्रातरोहितपास्विनः ॥ ४३ ॥ भ्रातृजायामरिष्यन्ति मयिपञ्चत्वमागते ॥ एताहत्याभविष्यन्ति तवशुद्धिःकथंभवेत् ॥ ४४ ॥ एताहत्याभविष्यन्ति कथंशुद्धिर्भवेत्तव ॥ उपायंकथयिष्यामि कर्तुंत्वंयदिमन्यसे ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ उपायःकथ्यतांमद्य यस्तेमनसिवर्तते ॥ करिष्येतदहंसर्वं प्रयत्नेनमहामुने ॥ ४६ ॥

जल्दी वहां जायकर ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण को देखा ॥ ४१ ॥ राजा ने कहा कि हाय! २ आज मैंने बड़ा पाप किया जो मैंने इसको मारा तब वह ब्राह्मण बोला कि मेरे मरने पर तेरी कुछ भी सिद्धि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ मेरे मरनेपर तुम्हहीं को हत्या होगी मेरी माता व पिता वृद्ध हैं और मेरे भाई तपस्वी हैं ॥ ४३ ॥ मेरे मरने पर मेरी भावजें मर जायँगी इतनी हत्यायें तुमको होयँगी तेरी शुद्धि कैसे होसक्ती है ॥ ४४ ॥ इस से हम उपाय को कहें जो तू करने को अङ्गीकार करे ॥ ४५ ॥ तब

राजा बोला कि जो उपाय आपके मनमें हो उसे अब मुझसे कहो हे महामुने! वह सब बडी यत्न से करेंगे ॥ ४९ ॥ तब शृङ्गी बोले कि हम तुझ से पूछते हैं कि तू कहां से आया है और कौन है यहां कैसे आगया तू ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्यों के बीच मे कोई है अथवा शूद्र व चाण्डाल है ॥ ४७ ॥ तब राजा बोला कि मैं ब्राह्मण व वैश्य व शूद्र नहीं हूं मैं क्षत्रिय हूं तब शृङ्गी बोला कि जहां मेरे माता व पिता हैं उस पवित्र आश्रम में मुझे लेकर ॥ ४८ ॥ अपने को प्रसिद्ध कर कि आप के पुत्र का मारने वाला मैं पापी आया हूं वे दोनों मुझको देखकर तुझपर दया करेंगे ॥ ४९ ॥ और उपाय भी करेंगे जिससे शान्ति होगी राजा चित्रसेन उसके इस

शृङ्ग्युवाच ॥ पृच्छामित्वांकुतःकोवा कथंत्वमिहचागतः ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांमध्येन्त्यजश्शूद्रोथवापुनः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ नाहंविप्रोनवैश्योहं नशूद्रःक्षत्रियोह्यहम् ॥ शृङ्ग्युवाच ॥ मांगृहीत्वाश्रमंपुण्यं यत्रतौपितरौमम ॥ ४८ ॥ आवेदयस्वचात्मानं पुत्रपापिनमागतम् ॥ तौदृष्ट्वामांकरिष्येते कारुण्यंचतवोपरि ॥ ४९ ॥ उपायंवाकरिष्येते येनशान्तिर्भविष्यति ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा चित्रसेनोनृपोत्तमः ॥ ५० ॥ स्कन्धेकृत्वाचतंविप्रं जगामाश्रमकंप्रति ॥ नशक्नोतिचतंवोढुं विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ ५१ ॥ तावत्पश्यतितंविप्रं मूर्च्छितंविकलेन्द्रियम् ॥ मुमोचचित्रसेनस्तु छायांन्यग्रोधकस्यच ५२॥ विश्रामंचततःकृत्वा वाचंकुर्वन्मुहुर्मुहुः॥पश्यतस्तस्यराजेन्द्र ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ५३ ॥ पञ्चत्वमगमच्छीघ्रं ध्यानयोगेनयोगवित् ॥ दाहयामासतंविप्रं विधिदृष्टेनकर्म्मणा ॥ ५४ ॥ स्नानंकृत्वातुशोकार्तो रुरोदचमुमोहच ॥ ततश्चानन्तरंराजा उद्वेगंपरमंगतः ॥ ५५ ॥ कथंयास्येगृहानद्य वाराणस्यांहतोह्ययम् ॥ ब्रह्महत्यासमाविष्टो

वचन को सुनकर ॥ ५० ॥ अपने कन्धे पर ब्राह्मण को लेकर उस आश्रम को गया उसको ले चलने की सामर्थ्य नहीं है इससे बार२ विश्राम करके चलता है ॥ ५१ ॥ तबतक विकल जिसकी इन्द्रियां हैं ऐसे उस ब्राह्मण को मूर्च्छित देखा तब चित्रसेन उसको बरगद की छाया मे छोड़दिया ॥ ५२ फिर वहां विश्राम कर बारबार उस को पुकारता हुआ परन्तु हे राजेन्द्र ! उसके देखतेही बडा तपवाला वह ऋष्यशृङ्ग ॥ ५३ ॥ योगका जानने वाला ध्यानयोग से शीघ्रही मरगया तब राजा ने वेदकी रीति से उस ब्राह्मण को जलादिया ॥ ५४ ॥ फिर शोकमे विकल आप स्नान कर रोता व मोह को प्राप्त हुआ तदनन्तर राजा बड़े घबड़ाहट को प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥

और कहने लगा कि हाय! आज मरा हुआ मैं काशी में अपने घरको कैसे जाऊंगा ब्रह्महत्या से युक्त मैं अपना शरीर आग में जलादेऊं ॥ ५६ ॥ अथवा इस ऋषिके वचन से उस आश्रमही को जाऊं और वहां जाकर इस महा ऋषिका हाल जैसाकुछ हुआहै वैसा कहूं ॥ ५७ ॥ ऐसे विचारकर वह राजा आश्रमके समीप जाताहुआ ऋष्यशृङ्ग की हड्डियों को लेकर वह राजा ॥ ५८ ॥ उन ब्रह्मर्षि के सामने खड़ाहुआ तब दीर्घतपा बोले कि तुम्हारा आगमन बहुत अच्छा हुआ आओ आसनपर बैठो ॥ ५९ ॥ हम दीर्घ तपानाम के ऋषि हैं यह विष्टर सहित मधुपर्क तुम्हारे वास्ते है तब राजा बोला कि आप महर्षि के अर्घ योग्य मैं नहीं हूं ॥ ६० क्योंकि हे

जुहोम्यग्नौकलेवरम् ॥ ५६ ॥ अथवाऋषिवाक्येन गच्छाम्येवाश्रमंप्रति ॥ कथयामियथावृत्तं गत्वातस्यमहाऋषेः ॥ ५७ ॥ एवंविचिन्त्यराजासौ जगामाश्रमसन्निधौ ॥ ऋष्यशृङ्गस्यचास्थीनि गृहीत्वासनृपोत्तमः ॥ ५८ ॥ दृष्टिमार्गे स्थितस्तस्य ब्रह्मर्षेर्भावितात्मनः ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ आगच्छस्वागतन्तेद्य आसनेउपविश्यताम् ॥ ५९ ॥ दीर्घतपा स्म्यहन्तेद्य मधुपर्कस्सविष्टरः ॥ राजोवाच ॥ अर्घस्यैवनयोग्योहं महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६० ॥ मृगमध्येस्थितोविप्र तवपुत्रोमयाहतः ॥ पुत्रभ्रंशाधिमांविप्र तीव्रदण्डेनदण्डय ॥ ६१ ॥ मृगभ्रान्त्याहतोविप्र ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ इति ज्ञात्वाचमांविप्र कुरुष्वचयथोचितम् ॥ ६२ ॥ मातातस्यवचःश्रुत्वा गृहान्निर्गत्यविह्वला ॥ हाहतास्मीत्युवाचाथ पतिताचमहीतले ॥ ६३ ॥ विललापसुदुःखार्ता पुत्रशोकेनपीडिता ॥ हापुत्रपुत्रेतिवदन्करुणंकुररीयथा ॥ ६४ ॥ श्रुत्यध्य यनसंपूर्णो जपहोमपरायणः ॥ आगतंत्वांगृहद्वारे कदाद्रक्ष्यामिपुत्रक ॥ ६५ ॥ त्रिलोक्यामपिश्रूयेत चन्दनंकिलशी

विप्र! हरनों के बीच में बैठा हुआ तुम्हारा पुत्र मुझ से मारा गया है इससे हे विप्र! अपने पुत्र के मारनेवाले मुझ पापी को घोर दण्डसे दण्डित करो ॥ ६१ ॥ हे विप्र! हरना के धोखेमे बडे तपवाले ऋष्यशृङ्ग मुझसे मारे गये हे विप्र! ऐसा मुझे जानकरजैसा उचित हो वैसा करो ॥ ६२ ॥ तब उन ऋष्यशृङ्ग की माता उसके वचनको- सुन और घर से निकल कर विह्वल होगई और कहा कि हाय! मैं मरगई तदनन्तर पृथिवीमें गिरपडी ॥ ६३ ॥ पुत्र के शोक से विकल व दुःख से कष्टित हो रही विलाप करती हुई हा पुत्र! २ ऐसे कहरही कुररी चिडियाकी तरह चिचिहा रही है ॥ ६४ ॥ और कहती है कि हे पुत्र! वेद के पढ़ने में जप होम के करने वाले जो तुमहो तिन

को दरवाजे पर आया जान मैं तुम से अब कैसे कुछ पूछूंगी ॥ ६५ ॥ संसार भरमें सुनाजाताहै कि चन्दन बड़ा ठण्ढा होताहै पर पुत्र के शरीर का लपटाना चन्दन से भी ठण्ढा है ॥ ६६ ॥ इससे हे पुत्र ! मैं अति प्यारे तुम्हें लपटाया चाहती हूं अबतुम्हारे बिना दुखिया मैं भी मरजाऊंगी ॥ ६७ ॥ ऐसे विलाप करती हुई व पुत्रके शोक से पीडित होरही जमीन में दुःखी व विह्वल व मूर्च्छितहो गिरपड़ी ॥ ६८ ॥ स्त्री को गिरी देखकर तब पुत्र के शोकसे पीडित उन मुनिश्रेष्ठ ने राजा चित्रसेन पर बड़ा कोपकिया ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा बोले कि रे महापाप ! तू चलाजा २ मुझको अपना मुहँ मत दिखला क्या तूने बेमतलब मेरे पुत्र ब्राह्मण को मारडाला ॥ ७० ॥

तलम् ॥ पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपिशीतलः ॥ ६६ ॥ परिष्वजितुमिच्छामि त्वामहंपुत्रसुप्रियम् ॥ पञ्चत्वञ्चगमिष्यामि त्वद्विहीनासुदुःखिता ॥ ६७ ॥ एवंविलपतीदीना पुत्रशोकेनपीडिता ॥ मूर्च्छिताविह्वलादीना निपपातमहीतले ॥ ६८ ॥ भार्य्यांचपतितांदृष्ट्वा पुत्रशोकेनपीडितः ॥ चुकोपमुनिश्रेष्ठश्चित्रसेनंनृपंतदा ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ याहियाहि महापाप मामुखंदर्शयस्वमे ॥ किन्त्वयाघातितोविप्र ह्यकामाच्चसुतोमम ॥ ७० ॥ ब्रह्महत्याभविष्यन्ति वहवस्तेनराधिप ॥ सकुटुम्बस्यमेत्वंहि मृत्युरेवमुपागतः ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वाततोविप्रो विचिन्त्यचपुनःपुनः ॥ क्रोधंपरित्यज्यततो मुनिमार्गंजगामह ॥ ७२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ उद्वेगंत्यजभोराजन्दुरुक्तंगदितंमया ॥ पुत्रशोकाभिभूतेन दुःखमाप्तेन मानद ॥ ७३ ॥ किंकरोतिनरःप्राज्ञः प्रेर्य्यमाणस्स्वकर्म्मभिः ॥ प्रायेणहिमनुष्याणां बुद्धिःकर्म्मानुसारिणी ॥ ७४ ॥ अनेनैवप्रकारेण यत्त्वयालिखितंमम ॥ परंतवभविष्यन्ति विप्रहत्यानसंशयः ॥ ७५ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांमध्ये शूद्रोवाचा

हे नराधिप ! तुझे बहुत सी ब्रह्महत्यायें होंगी क्योंकि कुटुम्ब के सहित मुझे तू मौतही आगयाहै ॥ ७१ ॥ ऐसा कह फिर वह ब्राह्मण बार २ विचार कर क्रोध छोड तदनन्तर मुनियों की चाल पर आगया ॥ ७२ ॥ और बोला कि हे राजन् ! अबतुम घबड़ाहट को छोड़दो क्योंकि हे मानद ! पुत्र के शोक व दुःखसे विकल मैंने तुम से कडुई बातें कही ॥ ७३ ॥ अपने कर्मों से प्रेरणा कियाजारहा बुद्धिमान् भी मनुष्य क्या करसक्ता है बहुधा मनुष्यों की बुद्धि कर्मों के अनुसारही होती है ॥ ७४ ॥ इसी रीति से जो हमारे प्रारब्ध में लिखा था वही तुमने किया लेकिन ब्रह्महत्या तो तुमको होगी इसमें संशय नही है ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,

और चाण्डालो के बीच में तू कौन है सो मुझ से सत्य कह और किस वास्ते हमारे पुत्रको तूने मारा ॥ ७६ ॥ तब चित्रसेन बोला कि हे विप्रर्षे ! मैं आपसे कहता हूँ आप मेरे ऊपर क्षमा करो मैं ब्राह्मण नहीं हूँ और हे तात ! वैश्य व शूद्र भी नहीं हूं ॥ ७७ ॥ और चाण्डाल भी नहीं हूं हे द्विजोत्तम ! मैं काशी का राजा क्षत्रिय हूं सो हन्नों के मारने के वास्ते उत्तम बनको आयाथा ॥ ७८ ॥ सो उस वन में घूमतेहुये मुझसे हन्नाके रूपका धरनेवाला आपका पुत्र मुनि मारडालागया हे विप्र ! अब मुझको क्या करना चाहिये सो उस उपायको आप मुझसे कहें ॥ ७९ ॥ तब दीर्घतपा बोले कि हे विभो ! अकेले एक तुम ब्रह्महत्या को नहीं तरसक्ते हो इससे

न्त्यजादिषु ॥ कस्त्वंकथयसत्यंमे कस्माच्चानिहतःसुतः ॥७६॥ चित्रसेन उवाच ॥ विज्ञापयामिविप्रर्षे क्षन्तव्यंचममोपरि ॥ नाहंविप्रोभवेत्तात नशूद्रोनैववैश्यजः ॥ ७७ ॥ नचापिचान्त्यजातीयः क्षत्रियोहंद्विजोत्तम ॥ काशिराजोमृगान्हन्तुमागतोवनमुत्तमम् ॥ ७८ ॥ भ्रमतापातितस्तत्र मृगरूपधरोमुनिः ॥ किंकर्तव्यंमयाविप्र उपायंकथयस्वमे ॥ ७९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ ब्रह्महत्यानशक्येत एकेनतरितुंविभो ॥ देशेकालेयथाशक्त्या तच्छृणुष्वनराधिप ॥ ८० ॥ चत्वारोमेसुताराजन्सभार्य्यामातृपूर्वकाः ॥ मयासहनजीवन्ति ऋष्यशृङ्गस्यकारणे ॥ ८१ ॥ उपायंशोभनंतात कथयामि शृणुष्वभोः ॥ शक्यतेयदिचेत्कर्तुं सुखोपायंनरेश्वर ॥ ८२ ॥ सकुटुम्बसमस्तान्नो दाहयस्वानलेनृप ॥ अस्थीनिनर्म्मदातोये शूलभेदेविनिक्षिपेः ॥ ८३ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले शूलभेदेतिविश्रुतम् ॥ सर्वपापहरंतीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ८४ ॥ शुचिर्भूत्वाममास्थीनि क्षिपत्वंशूलभेदके ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो ममवाक्यान्नसंशयः ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ आ

जिसदेश व जिस काल में अपनी शक्तिके अनुसार उसके पार होसक्ते हो हे नराधिप ! सो सुनो ॥ ८० ॥ हे राजन् ! एक ऋष्यशृङ्गके पीछे अपनी स्त्रियोंके व माता के व हमारे सहित हमारे चारों लडके नहीं जीसक्ते हैं ॥ ८१ ॥ इससे हे तात ! बहुत अच्छे उपाय को हम तुमसे कहते हैं सो तुम सुनो परन्तु हे नरेश ! जो उस सुखवाले उपाय को तुम करसक्ते हो ॥ ८२ ॥ तो हे नृप ! कुटुम्ब सहित हम सब को अग्नि में जला देवो और हम सबकी हड्डियों को शूल भेद में नर्मदाके जलमें डाल देवो ॥ ८३ ॥ नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सब पापों का हरनेवाला सब तीर्थों में अत्युत्तम शूलभेद नामका तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥ उसी शूलभेद में तुम पवित्र

होकर हमारे हाड़ोंको डाल देवो इससे तुम भी हमारे कहने से सब पापों से छूटजावोगे इसमे संशय नहीं है ॥ ८५ ॥ तब राजा बोला कि हे तात ! आप आज्ञा देवो हम करेंगे इसमें संशय नहीं है राज्य, खजाना, स्त्रियां, और पुत्र आदि जो कुछ हमारे हैं सो सभी ॥ ८६ ॥ आपको दान कर देवेंगे हे विप्र ! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये हे नृप ! उससमय ऐसे मुनि और राजाके आपसमें बतलातेही ॥ ८७ ॥ छाती फटकर शीघ्र मुनिकी स्त्री मरगई पुत्र के शोकसे दबीहुई जीव रहित होकर जमीन में गिरपडी ॥ ८८ ॥ लडके भी सब माताके शोचसे मरगये पुत्रों की स्त्रियां भी अपने पतियों के सहित सब मरगईं ॥ ८९ ॥ मुनिके सहित उन सबको मरादे-

देशोदीयतांतात करिष्यामिनसंशयः ॥ सर्वस्वमपियत्किञ्चिद्राज्यंकोशस्स्त्रियस्सुताः ॥ ८६ ॥ तवदानंप्रयच्छामि विप्रमांत्वंप्रसीदच ॥ परस्परंविवदतोर्मुनिराज्ञोस्तदानृप ॥ ८७ ॥ स्फुटित्वाहृदयंशीघ्रं मुनेर्भार्य्यामृतातदा ॥ पुत्रशोक समाक्रांता निर्ज्जीवापतिताक्षितौ ॥ ८८ ॥ पुत्राश्चमातृशोकेन सर्वेपञ्चत्वमागताः ॥ स्नुषाश्चैवतुतास्सर्वा मृताश्चसह भर्तृभिः ॥ ८९ ॥ पञ्चत्वंतुगतान्सर्वान्मुनिमुख्यान्निरीक्ष्यतान् ॥ विप्राश्चाह्वानितास्तेन तेतत्राश्रमवासिनः ॥ ९० ॥ तेभ्योनिवेदयामास यथावृत्तंनरोत्तमः ॥ संहतैस्तैरनुज्ञातःकथञ्चिद्दह्यतत्नतः ॥ ९१ ॥ देहंस्वंपावनंकृत्वा गृह्यास्थीनि प्रयत्नतः ॥ याम्यांहिप्रस्थितोराजा पादचारीमहीपतिः ॥ ९२ ॥ नशक्नोतियदागन्तुं छायामाश्रित्यातिष्ठति ॥ विश्रम्य चपुनर्गच्छन्विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ ९३ ॥ सचैलंकुरुतेस्नानमस्थीन्वोढापदेपदे ॥ विनाजलंनिराहारःसोगच्छद्दक्षिणामुखः ॥ ९४ ॥ अचिरेणैवकालेन सगतोनर्मदातटे ॥ आश्रमस्थान्द्विजान्सर्वान् पप्रच्छराजसत्तमः ॥ ९५ ॥ कथ्यतांमे

खकर राजा ने उस आश्रम के रहनेवाले ब्राह्मणों को बुलाया ॥ ९० ॥ और उत्तम राजा ने उनसे जैसा कुछ हाल हुआ सो सब कहा फिर एकत्रित हुये ब्राह्मणो की आज्ञामे किसी तरह यत्न से उन सबको जलाकर ॥ ९१ ॥ और अपनी देहको पवित्र कर और प्रयत्नसे उनके हाडों को लेकर पृथ्वी का स्वामी राजा दक्षिण दिशा को पैदल चलता हुवा ॥ ९२ ॥ जब चलने को नहीं समर्थ होता तब छाया पायकर बैठ जाता है सॅहॅताय कर फिर चलता है फिर २ विश्राम करताहै ॥ ९३ ॥ हाडों को लियेहुये पग २ पर कपड़ों सहित स्नान करता, विना जलके निराहार दक्षिण मुखको जाताहुवा ॥ ९४ ॥ थोड़ेही काल मे वह श्रेष्ठ राजा नर्मदा तटमे पहुँचगया,

और उस आश्रमके रहनेवाले सब ब्राह्मणोंसे पूछा ॥ ९५ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठो ! आप लोग शूलभेदकी रास्ता मुझे बतलावें ॥ ९६ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि नर्मदाके दक्षिण वाले किनारे पर जायकर देखो यह अन्यथा नहींहै ॥ ९७ ॥ इसके बाद उन ऋषियों के कहने के अनुसार वह मनुष्यों का मालिक राजा गया तदनन्तर बहुत ब्राह्मणों से व्याप्त उस तीर्थको देखा ॥ ९८ ॥ जोकि बहुत से वृक्ष व लताओं से व्याप्त बहुत से फूलोंसे सुहावना बहुतसे मूल व फूलोंसे युक्त, और बहुतसे जीवों से शोभित ॥ ९९ ॥ अनेक व्रतों के करनेवाले अनेक उत्तम ऋषियो से युक्त है वहां कोई एक पांव से खड़े हैं, कोई सूर्य के समान तेजवाले हैं ॥ १०० ॥ कोई एकही तरफ

द्विजश्रेष्ठाश्शूलभेदस्यमार्गकः ॥ ९६ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले गतोद्रक्ष्यसिनान्यथा ॥ ९७ ॥ ऋषिवाक्येनवै राजागतोथोहिनरेश्वरः ॥ सददर्शततस्तीर्थं बहुद्विजसमाकुलम् ॥ ९८ ॥ बहुद्रुमलताकीर्णं बहुपुष्पोपशोभितम् ॥ बहुमूलफलोपेतं बहुश्वापदशोभितम् ॥ ९९ ॥ ऋषिसंघैःसमाकीर्णं नानाव्रतधरैश्शुभैः ॥ एकपादस्थिताःकेचिदपरेसूर्य्यवर्चसः ॥ १०० ॥ एकदृष्टिस्थिताःकेचिदूर्द्ध्वबाहुस्थिताःपरे ॥ चान्द्रायणपराकेचित्केचित्पक्षोपवासिनः ॥ १ ॥ मासोपवासिनःकेचित्केचिदृतुमुपोषिताः ॥ शीर्णपर्णाशिनःकेचित्केचिन्मारुतभोजनाः ॥ २ ॥ योगाभ्यासरताःकेचिद्ध्यायन्तःपरमंपदम् ॥ गार्हस्थ्यमास्थिताःकेचित्केचिच्चैवाग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ एवंविधान्द्विजान्दृष्ट्वा जानुभ्यामवनींगतः ॥ प्रणम्यशिरसाराजन्राजावचनमब्रवीत ॥ ४ ॥ कस्मिन्देशेतुतत्तीर्थं कथयध्वंद्विजोत्तमाः ॥ सर्वेषांवाञ्छितांसिद्धिं फलमेवंददेदिति ॥ ५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धन्वन्तरशतंगच्छभृगुतुङ्गस्यमूर्द्धनि ॥ कुण्डंद्रक्ष्यसिविस्तीर्णं तोयपूर्णंसु

देखते हुये खडे हैं, कोई ऊपरको बाहें कियेहुये खडे हैं, कोई चान्द्रायणको करते हैं, कोई एक पाख भर नहीं खाते हैं, ॥ १ ॥ कोई महीना भर नहीं खाते, कोई दो महीने नहीं खाते, कोई गिरे पत्तों को खाते है, कोई वायु का भोजन करते है ॥ २ ॥ कोई योगाभ्यास में लगे हुये परमपदको ध्यावते हैं, कोई गृहस्थी में स्थित और कोई अग्निहोत्रके करनेवाले है ॥ ३ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को देख राजा घुटनुओं से जमीन में गिरा और शिर से प्रणाम कर हे राजन् ! वचन बोला ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! वह तीर्थ कहां है सो आपलोग कहें जोकि सबकी मनोवाञ्छित सिद्धि व फलको देताहै ॥ ५ ॥ तब एक ऋषि बोला कि तुम भृगुतुङ्ग के ऊपर सौ धनुप

चलो तदनन्तर जल से भरेहुये भारी सुन्दर कुण्डको देखोगे ॥ ६ ॥ उनके इस वचन को सुन राजा कुण्डके ऊपर गया पर उस तीर्थको देख राजाको भ्रमहुवा ॥ ७ ॥ बडभागी कुण्ड व गङ्गा देख और विशेष करके प्राची सरस्वती को देख राजाको भ्रान्ति हुई ॥ ८ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्त हुवा व बार २ चिन्ताकरता हुवा राजा मास के सहित एक कुररनामकी चिडिया को आकाश में देखा ॥ ९ ॥ कुरर उस मासको लिये हुये इधर उधर चक्कर खाय रहा और जिनके पास मांस नहीं है उनसे माराजाता है और वे सब मांस के खानेवाले पक्षी आपस में लडते हैं ॥ १० ॥ फिर कुरर उन चिडियोंकी चोंचों से मारागया पानी में जागिरा अगिले

शोभनम् ॥ ६ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा गतःकुण्डस्यमूर्द्धनि ॥ दृष्ट्वाहिचैवतत्तीर्थं भ्रान्तिर्जातान्नृपस्यहि ॥ ७ ॥ वीक्ष्यकुण्डंमहाभागं गङ्गाञ्चैवविशेषतः ॥ प्राचींसरस्वतीन्दृष्ट्वा भ्रान्तिर्जातान्नृपस्यहि ॥८॥ ततोविस्मयमापन्नश्चिन्तयानो मुहुर्मुहुः ॥ आकाशसंस्थितंदृष्ट्वा सामिषंकुररन्तथा ॥ ९ ॥ भ्रममाणंगृहीत्वातं बध्यमानंनिरामिषैः ॥ परस्परंहियुध्यन्ते सर्वेचामिषभक्षकाः ॥१०॥ हतश्चञ्चुप्रहारैस्तु कुररःपतितोम्भसि ॥ शूलेनशूलिनायत्र भूभागंभेदितम्पुरा ॥ ११ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावेण ससद्यःपुरुषोभवत् ॥ विमानस्थन्तुतन्दृष्ट्वा क्रौंचंवैदिव्यरूपिणम् ॥ १२ ॥ अप्सरोभिर्गीयमानं नृपस्तत्तीर्थमागतः ॥ अस्थीनिभूमौनिक्षिप्य स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ १३ ॥ तिलमिश्रेणतोयेन तर्प्पयित्वेष्टदेवताः ॥ गृह्यास्थीनिततोराजा निक्षिप्यान्तर्जलेतथा ॥ १४ ॥ क्षणमेकंततोवीक्ष्य राजाऊर्द्ध्वमुखःस्थितः ॥ तान्ददर्शततस्सर्वान्देवमूर्तिधराञ्छुभान् ॥ १५ ॥ दिव्यवस्त्रैश्चसंवीतान्दिव्याभरणभूषितान् ॥ विमानैःकाञ्चनैर्दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः ॥ १६ ॥

जमाने में जहां महादेवने त्रिशूलसे पर्वतको फोडा था ॥ ११ ॥ उस तीर्थ के प्रभावसे वह कुरर उसी समय में पुरुष होगया दिव्यरूपको धरे व विमान पर बैठेहुये उस क्रौंच पक्षीको देख ॥ १२ ॥ अप्सराओं से गायेजारहे उस तीर्थको राजाआया और हाड़ोंको जमीन में रख व विधि से स्नान कर ॥ १३ ॥ तिल मिले जल से इष्ट देवताओं का तर्पण कर और हाडों को लेकर व जल में उन्हें विसर्जनकर ॥१४॥ तदनन्तर एक क्षण भर देखकर राजा ऊपरको मुँह कियेहुये खडा रहा तदनन्तर देवताओं की उत्तम मूर्तियोंको धरेहुये उन सबोंको देखा ॥ १५ ॥ कि दिव्य वस्त्रोंको पहनेहुये व दिव्य गहनोंसे सजे अप्सराओसे युक्त सोनेके दिव्य विमानों से ॥ १६ ॥

अलग २ विमानों पर बैठेहुये उन सबको ऊपरको जातेहुये देख वह राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विमान पर बैठे हुये दीर्घतपा ऋषि राजा चित्रसेनसे बोले कि हे महामते,महाराज चित्रसेन ! वाह२ ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपके प्रसाद से आज हमारी दिव्य गति हुई है यह जो कुछ तुमने बड़े कड़े काम को किया है ॥ १९ ॥ ऐसा काम अपना पुत्रभी अपने पितरों का नहीं करसक्ता है हे राजन् ! अब तुम हमारे वचन से निष्पाप होजावोगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! जिस से तुम अपने मन माने मनोरथ को देखोगे तदनन्तर बुद्धिमान् चित्रसेन को आशीर्वाद देकर ॥ २१ ॥ अपने पुत्रोंके सहित दीर्घतपामुनि स्वर्गको जातेहुये ॥ १२२ ॥

पृथग्भूतांश्चतान्सर्वान्विमानेषुव्यवस्थितान् ॥ उत्पततस्समालोक्य सराजाहर्षितोभवत् ॥१७॥ ऋषिर्विमानमारूढश्चित्रसेनमथाब्रवीत् ॥ भोभोःसाधुमहाराज चित्रसेनमहामते ॥१८॥ त्वत्प्रसादान्नृपश्रेष्ठ गतिर्दिव्यासमाद्यवै ॥ इदंचयत्त्वयाकिञ्चित्कृतंपरमदुष्करम् ॥१९॥ स्वसुतोपिनशक्नोति पितॄणांकर्तुमीदृशम् ॥ मदीयवचनाद्राजन्निष्पापस्त्वंभविष्यसि ॥२०॥ यत्त्वंद्रक्ष्यसिराजेन्द्र कामिकंमनसेप्सितम् ॥ आशीर्वादंततोदत्त्वा चित्रसेनायधीमते ॥२१॥ स्वर्गंजगामस्वसुतैस्ततोदीर्घतपामुनिः ॥१२२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदीर्घतपआख्यानोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

उत्तानपादउवाच ॥ दृष्ट्वातत्तीर्थमाहात्म्यं चित्रसेनोनरेश्वरः ॥ विपुलंतीक्ष्णधारञ्च कण्ठेचासिंनृपोत्तम ॥ १ ॥ देवान्सर्वान्हृदिध्यायन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ विनिक्षिपन्नथात्मानौ प्रत्यक्षौविष्णुशङ्करौ ॥ २ ॥ करेगृह्यतुराजानं रुद्रोवचनमब्रवीत् ॥ हरउवाच ॥ प्राणत्यागंमहाराज अकालेमाकुरुष्वह ॥ ३ ॥ अद्यापितुयुवासित्वं नयुक्तंमरणंतव ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेदीर्घतपआख्यानोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे नृपोत्तम! राजा चित्रसेन उसतीर्थ के माहात्म्य को देखभारी पैनी धार वाली तलवार को ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव आदि सब देवताओंका ध्यान करते हुये अपने गले पर चलावे तबतक अपने प्रत्यक्ष विष्णु और महा देवजी को देखा ॥ १ । २ ॥ तब राजा का हाथ पकड महादेव बोले, महादेवजी कहते है, कि हे महाराज ! अकाल मे अपने प्राणो का त्याग तुम मतकरो ॥ ३ ॥ अभी तुम जवानहो इस से तुम्हारा मरना योग्य नहीं है तिससे तुम अपने स्थान को

जावो और मन माने भोगों को भोगो ॥ ४ ॥ दूसरे इन्द्रकी तरह निष्कण्टक राज्यको भोगौ तब चित्रसेन बोले कि हे देव ! मैं राज्य व पुत्र, व भाइयोंको नहीं चाहता
हूं ॥ ५ और स्त्री, खजाना, गौवें और घोडों को भी नहीं चाहता हूं इस से हे महादेव ! मुझे छोंड़ देवो मेरा विघ्न मत करो ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से
आजही मुझको स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै तब महादेवजी बोले कि जिसके आगे ब्रह्मा व विष्णु व महादेव खडेहों ॥ ७ ॥ उसे स्वर्ग से क्या कामहै और वहां जाकर भी
क्या करेगा इससे हम तीनों देवता आपपर प्रसन्नहैं उत्तम वरको तुम मांगलो ॥ ८ ॥ हे महाराज ! अपने मनका वरमांगो यह सत्यहै इसमें संशय नहीं है तब चित्रसे-

स्वस्थानंगच्छवैशीघ्रं भोगान्भुंक्ष्वयथेप्सितान् ॥ ४ ॥ भुंक्ष्वनिष्कण्टकंराज्यं नाकंशक्रइवापरः ॥ चित्रसेनउवाच ॥
नराज्यंकामयेदेव नपुत्रान्नचबान्धवान् ॥ ५ ॥ नभार्य्यांनचकोशञ्च नगवांनतुरङ्गमान् ॥ मुञ्चस्वमांमहादेव अ
विघ्नंक्रियतांमम ॥ ६ ॥ स्वर्गप्राप्तिर्ममाद्यैव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ देवउवाच ॥ यस्याग्रतोभवेद्विष्णुर्ब्रह्मारुद्रस्तथैव
च ॥ ७ ॥ स्वर्गेणतस्यकिंकार्य्यं गतोसौकिंकरिष्यति ॥ तुष्टावत्वांत्रयोदेवा वृणीष्ववरमुत्तमम् ॥ ८ ॥ यथेप्सितंमहा
राज सत्यमेतन्नसंशयः ॥ चित्रसेनउवाच ॥ यदितुष्टास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९ ॥ अद्यप्रभृतियुष्माभिः स्था
तव्यमिहसर्वदा ॥ गयाशिरंयथापुण्यं कृतंयुष्माभिरेवच ॥ १० ॥ तथैवेदन्तुकर्तव्यं शूलभेदञ्चपावनम् ॥ यत्रयत्र
स्थितायूयं तत्रतत्रवसाम्यहम् ॥ ११ ॥ गणानामिहसर्वेषामवध्योहंसुरेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ अद्यप्रभृतितिष्ठाम शू
लभेदेनरेश्वर ॥ १२ ॥ कलांशेनत्रयोदेवास्त्रिकालंनिवसामहे ॥ नन्दिसंज्ञोगणश्चत्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ १३ ॥

न बोले कि जो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवता प्रसन्नहो ॥ ९ ॥ तो आजसे आप लोगोंको यहां सदा रहना चाहिये जैसे आप लोगोंने गया शिरको पुण्यवाला
बनायाहै ॥ १० ॥ इसीतरह इस शूलभेदको भी पावनकरो और जहां २ आपलोग रहो वहीं २ मैं भी बसाकरू ॥ ११ ॥ और हे सुरेश्वर ! आपके सब गणों में मैं अव-
ध्य होऊं तब महादेवजी बोले कि हे नरेश्वर ! आजसे हम लोग शूलभेद में रहेंगे ॥ १२ ॥ अपने कलांश से हम तीनों देवता तीनों कालों में यहां बसेंगे और तुम

नन्दीनामके गण होवोगे इसमें संशय नहीं होगा ॥ १३ ॥ और हे नृप! हमारे समीप पहले तुम्हारी पूजा सदा होगी जैसे अपने हाड़ों को जलमें डलवाके कुटुम्ब सहित विमानपर बैठेहुये दीर्घतपा चलेगये और स्वर्ग में बिराजमानहैं वैसाही तुम भी करो हे पार्थिव ! इसप्रकार चित्रसेनको वर देकर तीनों देवता ॥ १४ । १५ ॥ कुण्ड के ऊपर जावेंगे यह विचारकर तब तीनों देवता बैठतेहुये और आपस में ऐसे कहते हैं कि यह तीर्थ ऐसा शुभहै ॥ १६ ॥ कि जैसे सब महीनों में गयाशिर पुण्यवाला कहाजाताहै इसीतरह नर्मदाके किनारेपर शूलभेद पुण्यवालाहै इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे महाराज ! यह तीर्थ ऐसा पवित्रहै जैसा गयाशिरहै

भविष्यत्यग्रपूजाते मत्समीपेसदान्नृप ॥ प्रक्षिप्यचनिजास्थीनि यथादीर्घतपाययौ ॥ १४ ॥ सकुटुम्बोविमानस्थ स्स्वर्गेतिष्ठतितत्कुरु ॥ एवंदेवावरन्दत्त्वा चित्रसेनायपार्थिव ॥ १५ ॥ कुण्डमूर्द्धनियास्यामस्त्रयोदेवास्तदास्थिताः ॥ परस्परंवदन्त्येवमिदंतीर्थंतथाशुभम् ॥ १६ ॥ यथागयाशिरंपुण्यं सर्वमासिचपठ्यते ॥ तथारेवातटेपुण्यं शूलभेदन्न संशयः ॥१७॥ ब्रह्मोवाच॥ इदंतीर्थंमहाराज यथापुण्यंगयाशिरः ॥ स्नात्वाचैवोदकेतस्मिन्नरोनिर्मलतांव्रजेत् ॥ १८ ॥ एकंगयाशिरंमुक्त्वा सर्वतीर्थानिशङ्कर ॥ शूलभेदस्यतीर्थस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ १९ ॥ कुण्डस्यदक्षिणेभागे दशहस्तप्रमाणतः ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्यां प्रमाणन्त्वेकविंशतिः ॥ २० ॥ एतत्प्रमाणंतीर्थस्य पिण्डदानादिकर्मसु ॥ नराःपुण्याश्चतेसर्वे अन्नदानंकृतंचयैः ॥ २१ ॥ विष्णुस्त्रिनेत्ररूपेण ब्रह्मरूपीपितामहः ॥ तस्मिंस्तीर्थेस्थितानित्यं पूजां गृह्णन्तिभक्तितः ॥ २२ ॥ जातंजातंनिरीक्ष्यन्ते स्वपुत्रंहिपितामहाः ॥ कश्चिद्गयाङ्गयतिपुत्रोसौ कदादाताभविष्यति ॥ २३ ॥

इस जलमें स्नानकर मनुष्य निर्मल होजाताहै ॥ १८ ॥ हे शङ्कर ! एक गयाशिरको छोड़ और सब तीर्थ शूलभेद तीर्थकी सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं ॥ १९ ॥ कुण्डके दक्षिण तरफ दश हाथ और पूर्व, पश्चिम, वायव्य में इक्कीस हाथ ॥ २० ॥ पिण्डदान आदि कामों में इस तीर्थका इतना प्रमाणहै वे सब मनुष्य बड़े पुण्यात्मा हैं जिन्होंने यहां दानको कियाहै ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में विष्णुजी महादेवके रूपसे और ब्रह्मा अपनेही रूपसे सदा बैठेहुये भक्तिसे करीहुई पूजाको लेते हैं ॥ २२ ॥ पुरि-

खालोग अपने घरमें पैदाहुये हरएक पुत्रको देखा करते हैं कि यह थूलभेदको कब जावेगा और कब हमारे पिण्डोंका देनेवाला होगा ॥ २३ ॥ पांच स्थानोंमें जो भक्ति-
वाला मनुष्य श्राद्धको करताहै वह प्रेतरूप होरहे अपने सब कुलोंको तारदेता है ॥ २४ ॥ पिताकी इक्कीस और माताकी इक्कीस और स्त्री की ग्यारह इनसब पीढ़ियोंको
तारदेताहै ॥ २५ ॥ और देवता व ब्राह्मणों और पितरोंकी दयासे श्राद्धका करनेवाला महादेवके समीप रहताहै ॥ २६ ॥ जो लोग आत्महत्याके करनेवाले हैं व गोहत्या
के करनेवाले हैं व स्त्री, जल, पशु और बिजुली से मारेगये हैं ॥ २७ ॥ उनका अग्निदाह व शुद्धि व जलदान नहीं होसक्ताहै लेकिन उस तीर्थमें जो कोई अपनी भक्तिसे

पञ्चस्थानेषुयःश्राद्धं कुरुतेभक्तिमान्नरः ॥ स्वकुलानितुसर्वाणि प्रेतभूतानितारयेत् ॥ २४ ॥ एकविंशतिपितृपक्षे
मातृपक्षैकविंशतिम् ॥ भार्य्यायाएकादशैवेति सर्वाण्येतानितारयेत् ॥ २५ ॥ द्विजदेवप्रसादेन पितृणाञ्चतथैवहि ॥
श्राद्धदोवसतेतत्र यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २६ ॥ आत्मनोघातकायेच गोघ्नाःस्त्रैणहताश्चये ॥ दंष्ट्रिभिर्जलपातेन विद्युत्पाते
नयेहताः ॥ २७ ॥ नतेषामग्निसंस्कारो नशौचन्नोदकक्रिया ॥ तत्रतीर्थेतुयःश्राद्धं तेषांकुर्य्यात्स्वभक्तितः ॥ २८ ॥
मोक्षप्राप्तिर्भवेत्तेषां त्रिस्थानेषुनसंशयः ॥ तृप्तिस्तुजायतेतेषां वर्षमेकन्नसंशयः ॥ २९ ॥ अजानताकृतंपापं बालभा
वेषुयत्कृतम् ॥ तत्सर्वन्नश्यतिक्षिप्रं सकृत्स्नानेनभूपते ॥ ३० ॥ रजकेनयथाधौत वस्त्रंनिर्मलतांव्रजेत् ॥ पापोपलिप्त
स्तीर्थेस्मिन् स्नातोनिर्म्मलतांव्रजेत ॥ ३१ ॥ संन्यासङ्कुरुतेयस्तु तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ ध्यायमानोमहादेवं सगच्छे
त्परमंपदम् ॥ ३२ ॥ क्रीडित्वाचयथाकामं स्वेच्छयाशिवमन्दिरे ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जायतेविपुलेकुले ॥ ३३ ॥ रू

उनका श्राद्धकरे ॥ २८ ॥ तो उनका मोक्ष जरूरही होवे इसमें कुछ संशय नहीं है और एक सालभर वे लोग श्राद्धसे तृप्त रहसक्ते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २९ ॥
और हे भूपते ! जो पाप विना जाने व लड़कपनमें कियागयाहै वह सब एक बार स्नान करने से तुरन्त नाश होजाताहै ॥ ३० ॥ धोबीका धोयाहुआ कपड़ा जैसे नि-
र्मल होजाताहै इसीतरह पापसे भराहुआ मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करतेही निर्मल होजाताहै ॥ ३१ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो महादेवका ध्यान करताहुआ
संन्यास लेताहै वह परमपदको जाताहै ॥३२॥ अपनी इच्छाभर महादेवके मन्दिरमें विहारकर फिर बड़े कुलमें वेद व वेदाङ्गोंके तत्त्वोंका जाननेवाला पैदा होताहै ॥३३॥

पवान्सुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्ज्जितः ॥ सर्वधर्म्मसमोपेतस्सर्वाचारसमन्वितः ॥ ३४ ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तीर्थस्यफलमुत्तमम् ॥ तच्छ्रुत्वामानवोनित्यं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ३५ ॥ यश्चैनंश्रावयेद्भक्त्या आख्यानंद्विजसन्निधौ ॥ श्राद्धेदेवगृहेचैव पठेत्पर्वणिपर्वणि ॥ ३६ ॥ गीर्वाणास्तस्यतुष्यन्ति मनुष्याःपितृभिस्सह ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव नश्येद्वैपापसञ्चयः ॥ ३७ ॥ लिखित्वातीर्थमाहात्म्यं ब्राह्मणेभ्योददातियः ॥ जातिस्मरंसलभते प्राप्नोत्यभिमतंफलम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे चित्रसेनकथावर्णनोनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ अन्यच्चश्रोतुमिच्छामि केनगङ्गावतारिता ॥ रुद्रशीर्षस्थितापुण्या देवीकथमिहागता ॥ १ ॥ पुण्यादेवशिलानाम तस्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एतदाख्याहिमेसर्वं प्रसादात्पुरुषोत्तम ॥ २ ॥ रुद्रउवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा यथागङ्गावतारिता ॥ पुरादेवीमहाभाग ब्रह्माद्यैस्सकलैस्सुरैः ॥ ३ ॥ अभ्यर्थयञ्जगन्नाथं देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ घटम

और रूपवाला, भाग्यवाला, सब रोगों से रहित, सब धर्मों से युक्त और सब आचारों से युक्त होताहै ॥ ३४ ॥ हे राजन्! यह उत्तम तीर्थका फल तुमसे कहा गया इसको सदा सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ३५ ॥ जो कोई इस आख्यानको हरएक पर्वमें श्राद्धमें व देवताके मन्दिरमें ब्राह्मणों के समीप बैठकर भक्तिसे सुनाताहै ॥ ३६ ॥ उसपर देवता व मनुष्य पितरों के सहित प्रसन्न होते हैं पढ़ने व सुननेवालों के पापोंका समूह नाश होजाताहै ॥ ३७ ॥ और जो इस तीर्थके माहात्म्यको लिखकर ब्राह्मणोंको देताहै वह अपने पिछिले जन्मों की याद रखनेवाला होताहै और अपने मनमाने फलको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचित्रसेनकथावर्णनोनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁

राजा बोले कि और भी हम सुना चाहते हैं कि गङ्गाको किसने उताराहै महादेवके शीशपर बैठीहुई पवित्र गङ्गादेवी यहां कैसे आई ॥ १ ॥ और पुण्यवाली देवशिला नाम जो है उसका भी माहात्म्य उत्तमहै हे पुरुषोत्तम! सो यह सब अपनी दयासे मुझसे कहो ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे गङ्गा उतरी हैं तिसको तुम एक मन होकर सुनो अगिले जमाने में हे महाभाग! ब्रह्मा आदि सब देवताओंने ॥ ३ ॥ गङ्गाके वास्ते जगद्गुरु भगवान्से प्रार्थनाकी तब घड़े में बैठीहुई गङ्गा

पृथिवीपर छोंड दीगई ॥ ४ ॥ फिर महादेव भी अपने शिरसे सरस्वतीको पृथ्वी में छोंड़ा उस तीर्थके किनारेपर जो मनुष्य भक्तिसे स्नान करते हैं ॥ ५ ॥ और हमेशा जलको पीते हैं वे यमलोकको नहीं जाते हैं शूलभेद कुण्ड में जहांपर हे नराधिप ! वे गङ्गागिरी हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं गङ्गाके पश्चिम में प्राची सरस्वती है और दक्षिण में शूलभेद नामक अत्युत्तम तीर्थ है ॥ ७ ॥ वहां खास महादेवजीकी बनाई हुई बडी रमणीक देवशिलाहै हे नृप ! वहा स्नानकर जो भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ८ ॥ उसके थोड़ेही दानका अन्त नहीं होताहै तब उत्तानपाद बोले कि हे देवेश ! पृथिवी में अच्छे दान कौनहैं ॥ ९ ॥ मनुष्य जिनको भक्तिसे देकर सब पापोंसे छूट

ध्येस्थितागङ्गा मोचिताचसुभूतले ॥ ४ ॥ भारतीचततोमुक्ता रुद्रेणशिरसोभुवि ॥ नरास्तीर्थेतटेतस्याःस्नानंकुर्वन्ति भक्तितः ॥ ५ ॥ पिबन्तिचजलंनित्यं नतेयान्तियमालयम् ॥ यत्रसापतिताकुण्डे शूलभेदेनराधिप ॥ ६ ॥ देवनद्याः प्रतीच्याञ्च यत्रप्राचीसरस्वती ॥ याम्याञ्चशूलभेदाख्यमस्तितीर्थमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ तत्रदेवशिलारम्या स्वयन्देवे ननिर्म्मिता ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्या ब्राह्मणंभोजयेन्नृप ॥ ८ ॥ अल्पस्यैवतुदानस्य तस्यचान्तोनविद्यते ॥ उत्तान पादउवाच ॥ कानिदानानिशस्तानि देवेशधरणीतले ॥ ९ ॥ यानिदत्त्वानरोभक्त्या मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ देवशि लायामाहात्म्यं स्नानदानाद्धियत्फलम् ॥ १० ॥ व्रतोपवासनियमैर्यत्प्राप्यंतद्वदस्वमे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसीत्पु रामहावीर्य्यश्चेदिनाथोमहाबलः ॥ ११ ॥ वीरसेनइतिख्यातो मण्डलाधिपतीश्वरः ॥ तस्यराज्येरिपुर्नास्ति नव्याधि र्नचतस्करः ॥ १२ ॥ नचाऽधर्म्मोऽभवत्तत्र धर्म्मएवहिसर्वदा ॥ सदामुदान्वितोराजा सभार्य्योबहुपुत्रकः ॥ १३ ॥ एकाच

जाताहै और देवशिलाका माहात्म्य व वहां स्नान व दानसे जो फलहो ॥ १० ॥ अथवा वहां व्रत, उपास और नियमों से जो फलहो वह आप मुझसे कहो तब श्रीभगवान् बोले कि पूर्वकालमें बडा बलवाला एक चंदेलीका राजा होताहुआ ॥ ११ ॥ वीरसेन नामसे प्रसिद्ध देशपति राजाओंका भी स्वामीथा उसकी राज्यमे वैरी, रोग और चोर नहीं थे ॥ १२ ॥ और वहां अधर्म नहींथा बल्कि सदा धर्मही हुआ करता था अपनी स्त्री व बहुत पुत्रोंके सहित राजा सदा आनन्दसे रहता था ॥ १३ ॥ पार्वती

जीके समान सुन्दर रूपवाली उसकी एक कन्याथी उसको उसकी माता व पिता व भाई लोगोंने देखा ॥ १४ ॥ तो हे महेश्वर ! समयके होनेपर राजाने उसका वि-
धानसे बारहवें वर्षमें बिवाह करदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस कन्याका जो भर्ता था वह मरगया अपनी उस कन्याको विधवा देख राजा शोकसे युक्त होताहुआ ॥
१६ ॥ दुःखसे विकल राजा अपनी रानीसे वचन बोला कि हे भद्रे ! यह जिन्दगीभर का दुःसह दुःख पैदा होगया ॥ १७ ॥ क्योंकि रूप और जवानी से भरीहुई यह
कन्या कैसे रक्षित होसक्ती है इसमें हे भार्ये ! भानुमतीकी रक्षामें कोई उपाय नहीं है ॥ १८ ॥ आपसमें इसभांति बतलातेहुये दोनोंकी बातचीत सुनकर अपने माता

दुहितातस्य सुरूपागिरिजाइव ॥ दृष्टासापितृमातृभ्यांबन्धुवर्गजनैस्सह ॥ १४ ॥ कृत्वावैवाहिकंकार्य्यं कालेप्राप्ते
यथाविधि ॥ अनन्तरंचेदिपतिर्द्वादशाब्देमहेश्वरः ॥ १५ ॥ततस्तस्यास्तुयोभर्ता समृत्युवशमागतः ॥ विधवांतांसुतां
दृष्ट्वा राजाशोकसमन्वितः ॥ १६ ॥ उवाचवचनंराजा स्वभार्य्यांदुःखपीडितः ॥ भद्रेदुःखमिदंजातं यावज्जीवंसुदु
स्सहम् ॥ १७ ॥ नैषारक्षयितुंशक्या रूपयौवनदर्पिता ॥ नोपायोविद्यतेभार्य्ये भानुमत्याश्चरक्षणे ॥ १८ ॥ परस्परंवि
वदतोस्तच्छ्रुत्वाकन्यकाब्रवीत ॥ भानुमत्युवाच ॥ नव्रीडामितवाग्रेहं ज्वलंतीदाहकेनच ॥ १९ ॥ सत्यंनोत्पद्यतेदोषो
मदर्थेचनराधिप ॥ अद्यप्रभृत्यहंतात नवेषंधारयेक्वचित ॥ २० ॥ स्थूलवस्त्रैर्निजाङ्गानि परिधास्यामिसंयुता ॥ चरि
ष्यामिव्रतान्सर्वान्पुराणविहितानपि ॥ २१ ॥ आत्मानंशोषयिष्यामि तोषयन्तीजनार्द्दनम् ॥ ममैषावर्ततेबुद्धिर्यदि
त्वंतातमन्यसे ॥ २२ ॥ भानुमत्यावचःश्रुत्वा राजास्नेहार्द्दितोभवत ॥ तीर्थयात्रांसमुद्दिश्य कोशंदत्त्वाचपुष्कलम् ॥ २३ ॥

व पितासे भानुमती बोली, भानुमती कहती है--कि मे आपके सामने बिरहाग्नि से जलती हुई कुछ भी नहीं शरमाती हूँ ॥ १९ ॥ हे नराधिप ! मेरे पीछे आपको कुछ
भी दोष नहीं होगा यह सत्यही है क्योंकि हे तात ! आज से मैं कभी शृंगार को नहीं धारण करूंगी ॥ २० ॥ संयमको कियेहुये मोटे कपडाओं से अपने अंगो को
ढाके रहूंगी और पुराणों में कहेहुये सभी व्रतों को मैं करूंगी ॥ २१ ॥ परमेश्वरको प्रसन्नकरती हुई मैं अपने को सुखाडालूंगी हे तात ! जो आपको अंगीकारहो तो
मेरी बुद्धि इस तरह की होरही है ॥ २२ ॥ भानुमती के वचन को सुन राजा स्नेह से बड़ा कष्टित होगया और तीर्थयात्रा के वास्ते बडा खजाना देकर ॥ २३ ॥

व उसकी रक्षा के वास्ते वृद्धोंको साथ में भेजकर कन्याको बिदा करता हुआ और भी हथियारबन्द एक सिपाही व ब्राह्मण पुरोहित को साथ में करदिया ॥ २४ ॥ हे नराधिप ! अब वह कन्या गगाके किनारे पर ध्यान करने के वास्ते गंगा में नहाय चन्दन और माला आदि से ब्राह्मणों का नित्य पूजन करती हुई ॥ २५ ॥ फिर दास व दासी आदि जो उस कन्याकी रक्षामें समर्थ थे वे सब कन्याके पिता राजाकी सलाहमे गङ्गाके तीरपर रहतेहुये ॥ २६ ॥ वह कन्या गङ्गाके तीरपर बारह वर्षतक रही फिर किसी समय गङ्गा को छोड़ वह राजपुत्री दक्षिणदिशाको अपने मन्त्रियों के सहित जहा नर्मदा नदी थी वहां पहुँची वहां ॐङ्कार व अमरकण्टकमें छह महीना

विसृज्यराजास्वसुतां वृद्धान्कृत्वातुरक्षणे ॥ पुरुषंसायुधंचान्यं ब्राह्मणंचपुरोहितम् ॥ २४ ॥ अवगाह्यतटेध्यातुं गङ्गायांसानराधिप ॥ नित्यमापूजयद्विप्रान्गन्धमाल्यादिभूषणैः ॥ २५ ॥ दासीदासप्रभृतयस्तस्यायेरक्षणेक्षमाः ॥ ततःपितुर्मतेनैव गङ्गातीरेसमास्थिताः ॥ २६ ॥ द्वादशाब्दानिसातीरे गङ्गायास्समवस्थिता ॥ त्यक्त्वागङ्गांकचिद्राजपुत्रीकाष्ठान्तुदक्षिणाम् ॥ २७ ॥ प्राप्तासासचिवैस्सार्द्धं यत्ररेवामहानदी ॥ षण्मासञ्चस्थितातत्र ॐङ्कारेऽमरकण्टके ॥ २८ ॥ नानाविधेषुतीर्थेषु तीर्थात्तीर्थंजगामह ॥ स्नात्वास्नात्वाद्विजान्पूज्य भक्तियुक्ताह्यधिष्ठिता ॥ २९ ॥ वारुणींचदिशंगत्वा देवनद्याश्चसङ्गमे ॥ ददर्शचाश्रमंपुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऋषिसमूहंसा प्रणिपत्य्वेदमब्रवीत ॥ माहात्म्यंचास्यतीर्थस्य नामचैवास्यकीर्तय ॥ ३१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चक्रतीर्थन्तुविख्यातं चक्रंदत्तंपुराहरेः ॥ महेश्वरेणतुष्टेन देवदेवेनशूलिना ॥ ३२ ॥ अत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ अनिवर्तिकागतिस्त

रही ॥ २७ । २८ ॥ ऐसे अनेकप्रकारके तीर्थों में एक तीर्थ से दूसरे तीर्थको जातीहुई और उनमें नहाय २ कर भक्तिसे युक्त ब्राह्मणोंका पूजनकर वास करती हुई ॥ २९ ॥ फिर पश्चिमदिशामें जाकर गङ्गाके सङ्गम में ऋषियों से सेवित पुण्यवाले आश्रमको देखा ॥ ३० ॥ उसमें ऋषियों के झुण्डको देख उसको प्रणामकर वह बोली कि इस तीर्थ के माहात्म्य व नामको आप कहें ॥ ३१ ॥ तब ऋषि बोले कि यह चक्रतीर्थ प्रसिद्धहै यहां अगिले जमाने में प्रसन्न होकर देवताओंके देवता त्रिशूलधारी

महादेवजीने विष्णुको चक्र दियाहै ॥ ३२ ॥ इस तीर्थ में स्नानकर जो पितर व देवताओंका तर्पण करताहै उसकी फिर यहां लौटनेवाली गति नहीं होतीहै इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे तपस्विनि ! दूसरे दिन यहांसे शूलभेदको जावे वहां रातमें जागरणकर पुराणकी कथा बांचे ॥ ३४ ॥ फूल, दीप और नैवेद्य से विष्णुका पूजन करे फिर भोरभयेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनको अपनी भक्तिसे दानदेवे ॥ ३५ ॥ फिर चौथे दिन जहां प्राची सरस्वती है वहां जावे हे नराधिप ! जोकि पवित्र करने के वास्ते ब्रह्माजीसे निकली है ॥ ३६ ॥ वहां जाय व नहायकर पितर व देवताओंका तर्पणकरे और वहां श्राद्धका करनेवाला जहां ब्रह्मादेव रहते हैं वहां रहता

स्य भवितानात्रसंशयः ॥ ३३ ॥ द्वितीयेह्नितितोगच्छेच्छूलभेदंतपस्विनि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा पठेत्पौराणिकींकथाम् ॥ ३४ ॥ विष्णुपूजांप्रकुर्वीत पुष्पदीपनिवेदनैः ॥ प्रभातेभोजयेद्विप्रान्दानंदद्यात्स्वभक्तितः ॥ ३५ ॥ चतुर्थेह्नितथा गच्छेद्यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ब्रह्मदेवाद्विनिष्क्रान्ता पावनार्थंनराधिप ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वानरोगत्वा तर्प्पयेत्पितृदेवताः ॥ श्राद्धदस्तुवसेत्तत्र यत्रदेवःपितामहः ॥ ३७ ॥ पञ्चमेह्नितितोगच्छेल्लिङ्गंमार्कण्डसंज्ञितम् ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्याअर्चयेत्पितृदेवताः ॥ ३८ ॥ श्राद्धंकृत्वायथान्यायमनिन्द्यान्पूजयेद्द्विजान् ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दन्नसंशयः ॥ ३९ ॥ सर्वदेवमयंस्थानं सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥ कोटितीर्थसमंस्थानं कोटिलिङ्गोत्तमोत्तमम् ॥ ४० ॥ त्रिरात्रंकुरुतेयस्तु शुचिस्स्नानंजितेन्द्रियः ॥ पक्षंमासञ्चषण्मासमब्दमेकंकदाचन ॥ ४१ ॥ नतस्यवसतिर्मर्त्ये नाकेवासस्सदाक्षयः ॥ नियमस्थस्तुमुच्येत त्रिजन्मजनितादघात् ॥ ४२ ॥ विनापुमांसंयानारी द्वादशाब्दन्तुसुव्रता ॥ ति

है ॥ ३७ ॥ फिर पांचवें दिन मार्कण्डेयनामक लिङ्गको जावे और वहां स्नानकर जो भक्तिसे पितर व देवताओंका पूजन करताहै ॥ ३८ ॥ और रीतिपूर्वक श्राद्धकर उत्तम ब्राह्मणोंका पूजन करताहै उसके पितर बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३९ ॥ सब देवताओं व सब तीर्थोंका रूप अत्युत्तम यह स्थानहै करोडों तीर्थोंके बराबर व करोडों लिङ्गोंके बराबर उत्तमसे उत्तम यह स्थानहै ॥ ४० ॥ कदाचित् इन्द्रियों को जीतेहुये व पवित्र होकर तीन रात व एक पाख व एक मास व छह मास व एक सालभर जो स्नान करताहै ॥ ४१ ॥ उसका वास मनुष्यलोकमें नहीं किन्तु स्वर्ग में अक्षय वास होताहै और नियममें रहकर जो यहां रहता है वह तीन

जन्मों के पापों से छूटजाता है ॥ ४२ ॥ और विधवा स्त्री जो बारह वर्ष व्रतके साथ यहां रहती है वह अक्षय कालतक महादेवके लोकमें पूजित होतीहै ॥ ४३ ॥ मुनिके वचनको सुन कन्या बड़े आनन्दको प्राप्तहुई तबसे आलस्य छोंड़ दिन रात तीर्थमें स्नान करनेलगी ॥ ४४ ॥ तीर्थके प्रभावको देख रानी वचन बोली कि हे पुरोहित व ब्राह्मणलोगो ! आज मेरी बातको सुनो ॥ ४५ ॥ कि मैं अब ऐसे स्थानको जबतक जीऊंगी तबतक दिन रात कभी नहीं छोंडूंगी इसमे आप सज्जन लोगों को मेरी माता व पिता व भाई इन सबों से यह बात कहना चाहिये ॥ ४६ ॥ कि नियम व व्रतोंकी करनेवाली वह आपकी कन्या शूलभेद में रहती है एक दिनके अन्तर से

ष्ठतेसाक्षयंकालं रुद्रलोकेमहीयते ॥ ४३ ॥ मुनेश्चवचनंश्रुत्वा मुदांपरमिकांययौ ॥ ततोवगाहतेतीर्थमहर्निशमतन्द्रितम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वातीर्थप्रभावन्तु राज्ञीवचनमब्रवीत् ॥ श्रूयतांवचनंमेद्य ब्राह्मणास्सपुरोहिताः ॥ ४५ ॥ नत्यजामीदृशंस्थानं यावज्जीवाम्यहर्निशम् ॥ मात्रेपित्रेतथाभ्रात्रे मद्विर्वाच्यमिदंवचः ॥ ४६ ॥ वर्ततेशूलभेदेसा नियताव्रतचारिणी ॥ एकान्तरोपवासेन शनैर्मासमुपोषिता ॥ ४७ ॥ देवशिलास्थितानित्यं ध्यायमानातुकेशवम् ॥ अहर्निशंस्थिताभूमौ दृष्टाराज्ञीशुभानना ॥ ४८ ॥ व्रतस्थानियताहारा नाम्नाभानुमतीशुभा ॥ गतेषुद्विजमुख्येष्वाययौशबरयुग्मकम् ॥ ४९ ॥ उवाचववनंतत्र तान्दृष्ट्वाशबराङ्गना ॥ नैवास्याःसदृशीकाचित्त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ५० ॥ साक्षादसौदेवकन्याह्यवतीर्णामहीतले ॥ भार्य्यायावचनंश्रुत्वा शबरस्तामुवाचह ॥ ५१ ॥ कमलानियथालाभं दत्त्वा

धीरे २ महीनेभर उपास करतीहुई ॥ ४७ ॥ व भगवान्का ध्यान करतीहुई सदा देवशिलापर रहती है तब सबोंने देखा कि सुन्दर मुखवाली वह रानी दिन रात जमीन में बैठी रहती है ॥ ४८ ॥ और व्रतों में लगीहुई व एक और थोडे भोजनकी करनेवाली नामसे सुन्दर भानुमती है इसप्रकार कहतेहुये ब्राह्मणों के चलेगये के बाद एक जोड़ा बहेलिया स्त्री पुरुष वहां आये ॥ ४९ ॥ वहां उस रानीको देख बहेलियाकी स्त्री वचन बोली कि इस रानीके बराबर तीनों लोकों में कोई स्त्री प्रसिद्ध नहीं है ॥ ५० ॥ मानो यह साक्षात् देवताओं की कन्याही जमीनपर अवतार लियाहै स्त्रीके वचनको सुन शबर उससे बोला ॥ ५१ ॥ कि जो कुछ कमल मिलेहों उन्हें मुझे देकर

तू भोजनकर मेरा मन पूजन करने में है इससे मैं आज नहीं खाऊंगा ॥ ५२ ॥ क्योंकि हे भद्रे ! मैंने कुछ वर्जित नहीं किया किन्तु पापकी बाढ़ि मे अशुभ कर्मको ही कियाहै तब शबरी बोली कि हे स्वामिन् ! मैंने तो आपसे पहले कभी नहीं खायाहै ॥ ५३ ॥ जहांतक मैं याद करतीहूं तहांतक मैंने आपही के भोजनमे बचेहुयेका भोजन कियाहै तब स्त्रीका निश्चय जान वह स्नान करनेको गया ॥ ५४ ॥ और आधी धोती से भक्तिसे नहाय व सब देवताओंके नमस्कारकर देवशिलापर गया ॥ ५५ ॥ वहां भगवान्का ध्यान करताहुआ खटके के साथ खड़ाहुआ तबतक शबरीने दासीके हाथमें दो फूल कमलके दिये ॥ ५६ ॥ रानी उन फूलोंको देख दासीसे बोली कि ये

त्वंभुङ्क्ष्वसत्वरम् ॥ ममचैवार्चनेबुद्धिर्नभोक्तव्यंमयाद्यवै ॥ ५२ ॥ नमयावर्जितंभद्रे पापवृध्याऽशुभंकृतम् ॥ शबर्य्युवाच ॥ नपूर्वन्तुमयास्वामिन्भुक्तंकस्मिंस्तुवासरे ॥ ५३ ॥ भुक्तशेषंमयाभुक्तं यावत्कालंस्मराम्यहम् ॥ भार्य्यायानिश्चयंज्ञात्वा स्नानंकर्तुंजगामह ॥ ५४ ॥ अर्द्धोत्तरीयवस्त्रेण स्नानंकृत्वातुभक्तितः ॥ सर्वदेवंनमस्कृत्य गतोदेवशिलाम्प्रति ॥ ५५ ॥ तस्थौसशङ्कमानोपि ध्यायमानोजनार्द्दनम् ॥ कुमुदद्वयंशबर्य्यातु दासीहस्तेनिवेदितम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा राज्ञीतथापुष्पे दासींचैवतदाब्रवीत् ॥ क्वेदंपुष्पद्वयंलब्धं कथ्यतांतच्चसाम्प्रतम् ॥ ५७ ॥ शीघ्रंगच्छावगच्छत्वं पुष्पञ्चैवानयापरम् ॥ अनेनवसुनाचैवकमलानिसमानय ॥ ५८ ॥ भानुमत्यावचःश्रुत्वा गतासाशबरम्प्रति ॥ श्रीफलानिचपुष्पाणि बहून्यन्यानिदेहिमे ॥ ५९ ॥ शबर्य्युवाच ॥ श्रीफलानिचदास्यामि पुष्पाणिचविशेषतः ॥ मूल्येनमेस्पृहानास्ति गत्वाराज्ञींनिवेदय ॥ ६० ॥ गतादासीनिवेद्याथ राज्ञीचस्वयमागता ॥ उवाचशबरंराज्ञी पुष्पंमूल्येनदेहिमे ॥६१॥

दो फूल तूने कहां पाये सो जल्दी बतावो ॥ ५७ ॥ और बहुत जल्दी जावो २ और भी फूल लेआवो इस द्रव्य से कमलों को लावो ॥ ५८ ॥ भानुमतीके वचन को सुन वह दासी शबरके तीरगई और बोली कि बेल व फूल और भी बहुत से हमको देवो ॥ ५९ ॥ तब शबरी बोली कि बेल व फूलोंको मैं विशेषकर देऊंगी लेकिन दाम लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है सो तुम जाकर रानी से कहो ॥ ६० ॥ तब दासी गई और रानी से कहा रानी आपही आई और शबर से कहा कि दामों से तुम मुझे

फूलों को देवो ॥ ६१ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि! मैं फलों व फूलों के मोलको नहीं चाहताहूं इससे वेल व फूल आप जितने चाहो उतने मुझसे लेवो ॥ ६२ ॥ और विधान से जगत्के गुरु भगवान्की पूजाकरो तब रानी बोलीं कि विना मोल हम तुम्हारे कमलके फूलोंका नहीं लेवेंगी ॥ ६३ ॥ इससे अन्नकी इस एक ढेरी को तुम लेलेवो ॥ ६४ ॥ तब शबर बोला कि हे वरानने ! आज मैं भगवान्को छोंड भोजनकी सुध नहीं करताहूं ॥ ६५ ॥ हे भद्रे ! देवताओं के कामके विना और किसी बातमें मेरी बुद्धि नहीं लगतीहै तब रानी बोली कि तुमको अन्न नहीं छोडने योग्यहै क्योंकि अन्नमें सभी कुछ रहताहै ॥ ६६ ॥ तिससे सब तरह से मेरे अन्नको लेनो

शबरउवाच ॥ नमूल्यंकामयेदेवि फलपुष्पसमुद्भवम् ॥ श्रीफलानिचपुष्पाणि यथेष्टंममगृह्यताम् ॥ ६२ ॥ अर्चांकुरु यथान्यायं वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ राज्ञ्युवाच ॥ विनामूल्यन्नगृह्णामि कमलानितवाधुना ॥ ६३ ॥ धान्यस्यखण्डिका मेकामेताम्प्रतिनिगृह्यताम् ॥ ६४ ॥ शबरउवाच ॥ नाहारञ्चिन्तयाम्यद्य मुक्त्वादेवंवरानने ॥ ६५ ॥ देवकार्य्यंविनाभद्रे नान्याबुद्धिःप्रवर्तते ॥ राज्ञ्युवाच ॥ नत्वयान्नंपरित्याज्यं सर्वमन्नेप्रतिष्ठितम् ॥ ६६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ममान्नंप्रतिगृह्यताम् ॥ तपस्विनोमहाभागा येचारण्यनिवासिनः ॥ ६७ ॥ तेमद्द्वारेस्थितास्सर्वे याचन्तेतेन्नकाङ्क्षिणः ॥ शबरउवाच ॥ निषेधोधिकृतःपूर्वं मयासत्यन्नसंशयः ॥ ६८ ॥ सत्यमूलंजगत्सर्वं सत्येचैवप्रतिष्ठितम् ॥ सत्येनतपते सूर्य्यस्सत्येनद्योततेशशी ॥ ६९ ॥ सत्येनवायवोवान्ति धरासत्येप्रतिष्ठिता ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यंसत्यन्नलोपयेत् ॥ ७० ॥ राज्ञ्युवाच ॥ आरामोपहृतंपुष्पमारण्यंपुष्पमेवच ॥ क्रीतंप्रहिग्रहाल्लब्धं पुष्पमेवंचतुर्विधम् ॥ ७१ ॥ उत्तमं

देखो बडे भाग्यवाले वनके वासी तपस्वी लोग जो हैं ॥ ६७ ॥ वे सब अन्न की इच्छा करनेवाले मेरे दरवाजेपर खडे अन्न मांगते है तब फिर शबर बोला कि पहले मैंने, सच्ची नाहीं कीरही इसमें संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ सब जगत्की जड सत्यही है और सब जगत् सत्यही में रहता है सत्य से सूर्य तपते हैं और सत्य से चन्द्रमा प्रकाश करता है ॥ ६९ ॥ हवा सत्यही से चलती है जमीन सत्यही में सधी रहती है तिससे सब यत्नों से सत्यको सत्यही न छोंड़े ॥ ७० ॥

तब रानी बोली कि बगीचेसे लायागया, वन से लायागया, खरीदागया और देनेसे मिला ऐसे चार तरहका फूल होताहै ॥ ७१॥ तिनमें उत्तमफलवाला वहहै जो वन से अपने हाथ लाया गयाहो और बगीचे का मध्यम है व खरीद किया अधमहै ॥ ७२ ॥ और देने से जो मिलाहै उसको पण्डितलोग निष्फल जानते हैं तब पुरोहित बोला कि हे राज्ञि ! फूलों को लेवो और नारायण का पूजन करो ॥ ७३ ॥ तब उपकार को करती हुई भानुमती ने विधि से पूजन किया और रातमें जागरण कर पुराणकी कथा सुनी ॥ ७४ ॥ तदनन्तर शबर अपनी स्त्री से बोला कि हे सुन्दरि ! दिया के वास्ते जो कुछ तेल मिले उसे लावो ॥ ७५ ॥ फिर धूप व दीपको देकर

फलमारण्यं गृहीत्वास्वयमेवहि ॥ मध्यमंफलमाराम्यमधमंक्रीतमेवच ॥ ७२ ॥ प्रतिग्रहेणयल्लब्धं निष्फलंतद्विदुर्बुधाः ॥ पुरोहितउवाच ॥ गृहाणराज्ञिपुष्पाणि पूजांकुरुजनार्द्दने ॥ ७३ ॥ उपकारंप्रकुर्वन्ती पूजांचक्रेयथाविधि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा कथापौराणिकीश्रुता ॥ ७४ ॥ शबरस्तुततोभार्य्यामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दीपार्थंगृह्यतांस्नेहो यथालाभेनसुन्दरि ॥ ७५ ॥ दत्त्वादीपंततःकृत्वा धूपंपूजांजनार्द्दने ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ ध्यायमानस्तुकेशवम् ॥ ७६ ॥ ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकञ्जनम् ॥ केचिच्चशूलभेदेतु देवनद्यांतथैवच ॥ ७७ ॥ सरस्वत्यांतथाकेचिन्मार्कण्डेये तथाह्रदे ॥ चक्रतीर्थेतथाकेचित्स्नानंकुर्वन्तिभक्तितः ॥ ७८ ॥ शुचिभूतास्तुतेसर्वे जनादेवशिलोपरि ॥ श्राद्धंकुर्वन्तिवैतत्र प्रयत्नेनद्विजर्षभाः ॥ ७९ ॥ तान्दृष्ट्वाशबरोबिल्वैः पिण्डंनिर्वर्तयेत्ततः ॥ भानुमत्यातथासक्तुपिण्डनिर्वपणं कृतम् ॥ ८० ॥ अनिन्द्यम्भोजयेद्विप्रं दम्भदोषविवर्जितम् ॥ हविष्येणतथदध्ना शर्करामधुसर्पिषा ॥ ८१ ॥ पायसेनच

और भगवान् का पूजन कर नारायण का ध्यान करता हुआ रातमें जागरण करताहुआ ॥ ७६ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में स्नान के वास्ते तैयार होरहे लोगों को देखा कि कोई शूलभेदमें, कोई गङ्गामें ॥ ७७ ॥ कोई सरस्वती में, कोई मार्कण्डेयकुण्ड में और कोई चक्रतीर्थ में भक्तिसे नहायरहे हैं ॥ ७८ ॥ फिर पवित्र होकर वे सब श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग वहां देवशिला के ऊपर यत्न से श्राद्ध को करते हैं ॥ ७९ ॥ उन सबको देख शबरने भी बेलों से पिण्डोंको बनाया और भानुमतीने भी सतुओं के पिण्डों का दानकिया ॥ ८० ॥ और पाखण्डदोष से रहित व निन्दारहित ब्राह्मणको खीर, दही, शक्कर, मिठाई, घी, गऊका दूध और खिचडीसे भोजन कराया व भोजन

करवाकर फिर रानीने उसको विधान से दान दिया ॥ ८१।८२ ॥ खड़ाऊं, जूता, छाता, पलँग, गऊ, बैल और भी सोने व रत्नोंके अनेक दान दिये ॥ ८३ ॥ क्योंकि हे महाराज ! उस तीर्थ में जो कपिला गऊ देताहै मानो उसने पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवीका दान किया ॥ ८४ ॥ उत्तानपाद बोले कि तिलोंका देनेवाला अपने प्यारे पुत्रोंको पाता है, दियाका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको,पृथिवीका देनेवाला स्वर्गको, सोनेका देनेवाला बडी उमरको ॥ ८५ ॥ मकानका देनेवाला आरोग्यको, रूपेका देनेवाला उत्तम रूपको, कपडेका देनेवाला चन्द्रलोकको,घोड़ेका देनेवाला सूर्यलोकको ॥ ८६ ॥ बैलका देनेवाला उत्तम धनको और गोदानसे स्वर्ग

गव्येन कृशरेणविशेषतः ॥ भोजयित्वातथाराज्ञी दानंदत्त्वायथाविधि ॥ ८२ ॥ पादुकोपानहौछत्रं शय्यागोवृषमेव च ॥ विविधानिचदानानि हेमरत्नमयानिच ॥ ८३ ॥ तत्रतीर्थेमहाराज कपिलांयःप्रयच्छति ॥ तेनदत्तामहीराजन्सशैलवनकानना ॥ ८४ ॥ उत्तानपादउवाच ॥ तिलप्रदःप्रजाइष्टादीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ भूमिदःस्वर्गमाप्नोति दीर्घायुश्चहिरण्यदः ॥ ८५ ॥ गृहदोरोगरहितो रौप्यदोरूपमुत्तमम् ॥ वासोदश्चन्द्रलोकंतु अश्वदस्सूर्य्यलोकभाक् ॥ ८६ ॥ वृषदस्तुश्रियंपुण्यां गोदानात्तुत्रिविष्टपम् ॥ शय्यादानञ्चयोदद्यात्सस्वर्गमभयप्रदः ॥ ८७ ॥ धान्यदःशाश्वतंसौख्यं ब्रह्मदोब्रह्मशाश्वतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानंविशिष्यते ॥ ८८ ॥ भार्य्यामश्वंमहींवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषम् ॥ येनयेनहिभावेन दानंविप्राययच्छति ॥ ८९ ॥ तेनतेनहिभावेन प्राप्नोतिपदपूजितम् ॥ दृष्ट्वादानानिसर्वाणि राज्यादत्तानियानिच ॥ ९० ॥ उवाचशबरोभार्य्यां यच्छृणुष्वनराधिप ॥ शबरउवाच ॥ पुराणंपठितंभद्रे ब्राह्मणैर्वेदपार

को पाता है शय्या और अभयको जो देता है वह स्वर्गको पाता है ॥ ८७ ॥ अन्नका देनेवाला सदा रहनेवाले सुखको पाता है वेदका देनेवाला नाशरहित ब्रह्मको पाताहै सब दानों में वेदका दान बडा श्रेष्ठहै ॥ ८८ ॥ स्त्री, घोडा,जमीन, कपडा, तिल, सोना और घी इन चीजोंको जिस २ भावसे ब्राह्मणको देताहै ॥ ८९ ॥ उस २ भावसे उत्तमपदको पाताहै अब भानुमती रानीके दियेहुये दानोंको देख ॥ ९० ॥ शबर अपनी स्त्रीसे जा बोला हे नराधिप ! उसको तुम सुनो शबर बोला कि हे भद्रे ! वेदपाठी

ब्राह्मणों के बांचेहुये पुराणको ॥ ६१ ॥ मैंने सुना और सब शुभ दानधर्म भी सुना और अपने स्नान व दान व व्रतों से पूर्वजन्म में जमा कियाहुआ जो मेरा पाप था हे प्रिये ! वह सब क्षीण होगया क्योंकि यहां कियाहुआ दान, होम और तप सभी अक्षय होताहै ॥ ६२ । ९३ ॥ अब भानुमतीके सहित वे सब ब्राह्मणलोग शूलभेदको गये और शबरको देखा कि स्त्रीके सहित कुण्डमें खड़ाहै ॥ ६४ ॥ फिर ईशानमें जाकर भृगुपर्वतके ऊपर मरनेकी इच्छा करताहुआ स्त्रीके सहित चढगया हे पार्थिव ! ॥ ६५ ॥ तब राजपुत्री बोली कि हे महासत्त्व ! खड़े रहो २ मेरे वचन को सुनो कि अभी आप जवानहो प्राणोंको क्यों छोड़तेहो ॥ ६६ ॥ क्या आपके सन्ताप

गैः ॥ ९१ ॥ श्रुतञ्चतन्मयासर्वं दानधर्म्मपरंशुभम् ॥ पूर्वजन्मार्जितंपापं स्नानदानव्रतेनच ॥ ६२ ॥ तत्सर्वंचक्षयंजातं मदीयेनप्रियेशृणु ॥ अत्रदत्तंहुतंतप्तं सर्वंभवतिचाक्षयम् ॥ ९३ ॥ तेद्विजाभानुमत्याच शूलभेदंगतास्ततः ॥ ददृशुःशबरंकुण्डे शबर्य्यासहसंस्थितम् ॥ ६४ ॥ ईशान्याञ्चततोगत्वा भृगुपर्वतमूर्द्धनि ॥ मर्तुकामस्तथारूढो भार्य्ययासहपार्थिव ॥ ६५ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ तिष्ठतिष्ठमहासत्त्वश्शृणुष्ववचनंमम ॥ किमर्थंत्यजसिप्राणानद्यापिचयुवाभवान् ॥ ६६ ॥ किंसन्तापःसमुद्वेगः किंदुःखंव्याधिरेवच ॥ शिशुश्चदृश्यतेऽद्यापि कारणंकथयस्वमे ॥ ९७ ॥ शबरउवाच ॥ कारणंनास्तिमेकिञ्चिन्नदुःखंकिञ्चिदेवहि ॥ संसारसारभूतत्वे नान्याबुद्धिःप्रवर्तते ॥ ९८ ॥ दुःखेनलभतेयस्मान्मनुष्यत्वंवरानने ॥ मानुष्यंजन्मचासाद्य योनधर्म्मंसमाचरेत् ॥ ९९ ॥ सगच्छेन्नरकंघोरमल्पदोषेणसुन्दरि ॥ तस्मात्पतितुमिच्छामि अस्मिंस्तीर्थेतपस्विनि ॥ १०० ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ अद्यापिवर्ततेकालःस्वधर्म्मादिविधाःक्रियाः ॥

व घबडाहट व दुःख व रोगहै आपके पुत्र भी देखपड़ताहै तिससे मुझे कारण तो बतलावो ॥ ९७ ॥ तब शबर बोला कि कारण कुछ नहीं है और दुःख भी मुझको कुछ नहीं है लेकिन संसारके सार होने में मेरी दूसरी बुद्धि नहीं होतीहै ॥ ९८ ॥ और हे वरानने ! जिससे मनुष्य होना बड़े दुःखसे मिलताहै इससे मनुष्यका जन्म पाकर जो धर्म नहीं करताहै ॥ ९९ ॥ हे सुन्दरि ! वह थोड़ेही दोषसे घोर नरक को जाताहै तिससे हे तपस्विनि ! अब इस तीर्थ में मैं गिरा चाहताहूं ॥ १०० ॥ तब

फिर राजपुत्री बोली कि अभी तो तुमको बडा समय बाकीहै जिसमें तुम अपने धर्मसे अनेक कर्मोंको करसक्तेहो इससे उचित धर्मोंको कर दानसे शुद्ध होजावोगे ॥ १ ॥
और हम तुमको अन्न, वस्त्र और धन देवेंगी तुम भगवान्का ध्यान करतेहुये सदा धर्मोंको करो ॥ २ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि! मैं अन्न व वस्त्रों को नहीं चाहताहूं
क्योंकि लिखाहै कि जो मनुष्य दूसरेका अन्न खाताहै वह पापही खाताहै ॥ ३ ॥ तब राजपुत्री बोली कि कन्द व मूल व फलोंका आहार करतेहुये व उत्तम भिक्षाका
अन्न खाकर और तीर्थों में स्नानकर सब पापों से छूटजावोगे ॥ ४ ॥ इस कामसे कोई पुरुषहो पापों से छुटाहुआ पवित्र होजाताहै उसी कर्म से तुम भी अच्छी गति

कृत्वाप्रकृतधर्म्माणि तत्रदानेनशुध्यति ॥ १ ॥ अहंदास्यामितेधान्यं वासांसिद्रविणानिच ॥ नित्यंत्वमाचरेर्धर्म्मंध्या
यमानोजनार्द्दनम् ॥ २ ॥ शबरउवाच ॥ नचाहंकामयेदेविधान्यंवस्त्राणिचैवहि ॥ यःपरस्यान्नमश्नाति सनरोश्नाति
किल्बिषम् ॥ ३ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ कन्दमूलफलाहारो भुक्त्वावैभक्ष्यमुत्तमम् ॥ अवगाह्यचतीर्थानि सर्वपापैःप्रमुच्य
से ॥ ४ ॥ ततोविमुक्तपापस्तुयःकश्चित्पुरुषश्शुचिः ॥ कर्म्मणातेनचैवत्वं गतिंसम्प्राप्स्यसेशुभाम् ॥ ५ ॥ शबरउवाच ॥
अत्रमध्येमयात्यक्ताः प्राणादृष्ट्वाहितंचयत ॥ सत्यन्नलोपयेदेवि इतिमेनिश्चितामतिः ॥ ६ ॥ प्रसादःक्रियतान्देविक्ष
म्स्वत्वंजनैस्सह ॥ बद्ध्वोत्तरीयवस्त्रेण आत्मानञ्चप्रयत्नतः ॥ ७ ॥ भार्य्ययासहितस्तत्र हरिन्ध्यात्वापपातह ॥ नगार्द्धग
तितोयावद्गतजीवोनराधिप ॥ ८ ॥ तूष्णींभूतंतुतंदृष्ट्वा कुण्डस्योपरिभूमिप ॥ त्रिमूर्तिंगतेंतत्काले शबरोभार्य्य

को पावोगे ॥ ५ ॥ तब शबर बोला कि अपने हितको देख मैंने यहां प्राणोंको छोंडाहै इससे हे देवि! मैं सत्यको नहीं नाश करसक्ताहूं यह मेरी बुद्धिका निश्चयहै ॥ ६ ॥
इससे हे देवि! अब आप प्रसन्न हूजिये और सब लोगोंके सहित क्षमा कीजिये इतना कहकर और ऊपरवाले कपडेसे अपनेको यत्नसे बांधकर ॥ ७ ॥ स्त्रीके सहित भग-
वान्का ध्यानकर वहां गिरताहुआ हे नराधिप! आधे पर्वततक जबतक आया तबतक उसका जीव जातारहा ॥ ८ ॥ फिर हे भूमिप! कुण्डके ऊपर चुप होगये उसको

देख उसी समयमें तीनों देवताओंके उस कुण्डमें शबर अपनी स्त्रीके सहित ॥ ९ ॥ दिव्य विमानपर चढ़ाहुआ उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥११०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशबरस्वर्गारोहणन्नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

राजा बोले कि हे देवेश! फिर उस भानुमतीने क्या किया इस हमारी संशयको अपनी दयासे कहो ॥ १॥ तब महादेव बोले कि वह रानी विचारकर कुण्डके समीप गई तीर्थके माहात्म्यको देख रानी आनन्दसे भरगई ॥ २ ॥ उसी क्षणमें बहुत से ब्राह्मणों को बुलाय पूजन किया और हे नराधिप! ब्राह्मणोंको अनेक दानदिये ॥ ३ ॥

यासह ॥ ९ ॥ दिव्यंविमानमारूढो गतश्चगतिमुत्तमाम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेशबरस्वर्गारोहणन्नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ ततस्तयापिदेवेश भानुमत्याहिकिंकृतम् ॥ एतन्मेसंशयन्देव कथयस्वप्रसादतः ॥ १ ॥ हरउवाच ॥ चिन्तयित्वातुसाराज्ञी गताकुण्डस्यसन्निधौ ॥ दृष्ट्वातीर्थस्यमाहात्म्यं राज्ञीहर्षेणपूरिता ॥ २ ॥ विप्रान्बहून्समाहूय पूजयामासतत्क्षणात् ॥ ददौचविविधन्दानं ब्राह्मणेभ्योनराधिप ॥ ३ ॥ दत्त्वाचदक्षिणामेवं मधुमासेचभूमिप ॥ अमायाञ्चततोराज्ञी गतापर्वतमूर्द्धनि ॥ ४ ॥ नगशृङ्गंसमारुह्य कृत्वातुकरसम्पुटम् ॥ विज्ञाप्यब्राह्मणान्सर्वानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ ममर्माता पिताभ्राता तथान्येचैवबान्धवाः ॥ सर्वेक्षमन्तुतेसर्वैरिदंवाच्यंतदावचः ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वाशूलभेदेतु तपःकृत्वासुदारुणम् ॥ विसृज्यचैवमात्मानं तस्मिंस्तीर्थेदिवङ्गता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ सन्देशंकथयिष्या

हे भूमिप! इसप्रकार दक्षिणा देकर चैतकी अमावसको रानी पर्वतके ऊपर गई ॥ ४ ॥ पर्वतकी चोटीपर चढ़ और दोनो हाथोंको जोड ब्राह्मणो से जाहिरकर फिर सब से इस वचनको बोली ॥ ५ ॥ कि हमारे माता, पिता, भाई और बान्धवलोग सब क्षमाकरें तुम सबको यह कहना चाहिये ॥ ६ ॥ कि भानुमती शूलभेदमें दारुण तपस्याको कर और उसी तीर्थ में अपनी देहको छोंड स्वर्गको चलीगई ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे शोभनव्रते! तुम्हारी माता व पितासे तुम्हारे कहेहुये संदेशको हम

जरूर कहेंगे हे सुश्रोणि! इसमें तुमको सन्देह मत होवे ॥ ८ ॥ तदनन्तर रानी सबको बिदाकर पर्वतपर खडीहुई और आधे कपडे से अपने शरीरको खूब पोढा बांध कर ॥ ९ ॥ हे नराधिप! एकही में चित्तको लगायेहुये पर्वत से देहको छोड़ जबतक आधे पर्वतको आई तबतक देवता और दैत्योंने देखा ॥ १० ॥ कि दिव्य विमानपर चढ वह कैलासको चलीगई तदनन्तर वह सब लोगोंके देखतेही स्वर्गको चलीगई ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेभानुमतीस्वर्गारोहणन्नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मस्त्वयोक्तंशोभनव्रते ॥ मातापित्रोश्चसुश्रोणि मातेभूदत्रसंशयः ॥ ८ ॥ ततोविसृज्यलोकन्तु स्थितापर्वतसन्निधौ ॥ अर्द्धोत्तरीयवस्त्रन्तु गाढंकृत्वापुनःपुनः ॥ ९ ॥ ततोविसृज्यचात्मानमेकचित्तानराधिप ॥ नगार्द्धंपतितायावत्ताव द्दृष्टासुरासुरैः ॥ १० ॥ दिव्यंविमानमारुह्य कैलासंसाजगामह ॥ ततस्सापश्यतान्तेषां जनानांत्रिदिवङ्गता ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे भानुमतीस्वर्गारोहणन्नामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥

देवउवाच ॥ ततःपुष्करिणींगच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ श्रुत्वातस्याःप्रभावन्तु सर्वपापैःप्रमुच्यते॥ १ ॥रेवायाउत्तरेकूले तीर्थंपरमशोभनम् ॥ यत्रास्तेसर्वदादेवो दिव्यमूर्तिर्दिवाकरः ॥ २ ॥ कुरुक्षेत्रंयथापुण्यं सर्वकामिकमुत्तमम् ॥ इदंतीर्थंतथापुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रेयथावृद्धिर्दानस्यजगतीपते ॥ पुष्करिण्यांतथावृद्धिर्दानस्यापि नसंशयः ॥ ४ ॥ यवमेकन्तुयोदद्यात्सौवर्णंचात्रवैनृप ॥ पुष्करिण्यांतथास्नानं सर्वंस्थानेश्वरेस्मृतम् ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहे

फिर महादेवजी बोले कि तदनन्तर सब पापोंकी नाश करनेवाली पुष्करिणी तीर्थको जावे उसके प्रभावको सुन मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर बड़ा सुन्दर तीर्थहै जिसमें दिव्यमूर्तिको धारणकिये सूर्यदेव सदा रहते हैं ॥ २ ॥ जैसे सब कामनाओंका देनेवाला कुरुक्षेत्र पुण्यवाला है वैसेही यह तीर्थ भी पुण्यवाला व सब कामफलों का देनेवालाहै ॥ ३ ॥ हे जगतीपते! जैसे कुरुक्षेत्रमें दानकी बढती होतीहै ऐसे पुष्करिणी में भी दानकी बढ़ती होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥ हे नृप! इस पुष्करिणीमें जो एक सोनेका जौ देता व स्नान करताहै उसका सब फल स्थानेश्वरके बराबर कहागयाहै ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहण में अपनी

शक्तिके अनुसार विधिसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, मकान, गौवें, बैल इनका दानदेकर ॥ ६ ॥ सोना और चांदीको भी जो ब्राह्मणोंको देता है उसका दियाहुआ तेरह दिन में तेरहगुना होजाताहै ॥ ७ ॥ तिल मिले जलमे पितर व देवताओंका इस तीर्थमें तर्पणकरे तो हे महीपते! पितरोंकी बारह वर्षतक तृप्ति रहती है ॥ ८ ॥ और जो कोई वहा खीर, घी और मिठाई से श्राद्ध करताहै अथवा मघा आदि नक्षत्रों में श्राद्ध करताहै उसके पितरों को वह दियाहुआ अक्षय होताहै ॥ ९ ॥ अक्षत, बेर, बेल इंगुआ और तिलों से उस तीर्थ में श्राद्ध करनेवाला अक्षय फलको पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥ वहां स्नानकर जो सूर्यदेवका पूजन करताहै वह देवताओ

यथाशक्त्या दत्त्वादानंयथाविधि ॥ हस्त्यश्वरथरत्नानि गृहंगाश्चधुरन्धरान् ॥ ६ ॥ सुवर्णरजतंवापि ब्राह्मणेभ्यो ददातियः ॥ त्रयोदशदिनंयावत्त्रयोदशगुणंभवेत् ॥ ७ ॥ तिलमिश्रेणतोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ द्वादशाब्दं भवेत्तृप्तिस्तत्रतीर्थेमहीपते ॥ ८ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ श्राद्धंमघादिऋक्षेषु पितॄणांदत्तमक्षय म् ॥ ९ ॥ अक्षतैर्बदरैर्बिल्वैरिङ्गुदैर्वातिलैःसह ॥ अक्षयंफलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थेनसंशयः ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वातुयोदेवं पूजयेच्चदिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमंलोकं त्रिदशैरपिवन्दितः ॥ ११ ॥ ऋचमेकांपठेद्यस्तु यजुषःसाम्नएवच ॥ समग्रस्यसवेदस्य फलमाप्नोतिवैद्विजः ॥ १२ ॥ त्रिपुष्करंजपेन्मन्त्रं ध्यायमानोदिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमंलोकं त्रिदशैरपिवन्दितम् ॥ १३ ॥ यस्तत्रविधिवत्प्राणांस्त्यजतेनृपसत्तम ॥ सगच्छेत्परमंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ भूयोप्यन्यत्प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् ॥ सर्वदुःखहरंपार्थ सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ १५ ॥ अस्य

से भी नमस्कार कियागया परमलोकको जाताहै ॥ ११ ॥ और जो ब्राह्मण वहां ऋग्वेद व यजुर्वेद व सामवेदकी एक ऋचाको पढ़ताहै वह सम्पूर्ण वेदके फलको पाता है ॥ १२ ॥ सूर्यका ध्यान करताहुआ जो त्रिपुष्कर मन्त्रको जपता है वह देवताओ से भी नमस्कार कियाहुआ परमलोकको जाताहै ॥ १३ ॥ और हे नृपसत्तम! जो वहां विधिसे प्राणोंको छोडताहै वह उस उत्तम स्थानको जाताहै कि जहां सूर्यदेव रहते हैं ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ! अब और आदित्येश्वरनामके उत्तम

तीर्थको कहते हैं जोकि सब विघ्नों व सब पापोंका हरनेवालाहै ॥ १५ ॥ हे कुरुनन्दन! स्वर्ग, मनुष्य और पाताललोकके और तीर्थ इस तीर्थ की शोभाको नहीं पासके हैं ॥ १६ ॥ हे नृपनन्दन! कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, काशी और केदार ॥ १७ ॥ ये सब तीर्थ सूर्यतीर्थ की सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं सूर्यतीर्थमें जो दियागया है उसको हे कुरुनन्दन! तुम सुनो ॥ १८ ॥ तुम्हारे स्नेह से कहताहूं क्योंकि बुढ़ापे में मैं बड़ा पण्डित भी नहीं हूं तपस्याके करनेवाले सब महात्मा ऋषिलोग सुनैं ॥ १९ ॥ स्कन्दजी व और भी रुद्रके गणोंके सहित मैंने महादेवजी के समीपमें सुनाहै पार्वती से प्रार्थना कियेगये महादेवजीने सूर्यतीर्थ के फलको

तीर्थस्यचान्यानि तीर्थानिकुरुनन्दन ॥ नलभन्तेश्रियंनाके मर्त्येपातालगोचरे ॥ १६ ॥ कुरुक्षेत्रंयथागङ्गा नैमिषंपुष्करंतथा ॥ वाराणसीचकेदारं प्रयागोनृपनन्दन ॥ १७ ॥ रवितीर्थस्यसर्वाणि कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ रवितीर्थेचयद्दत्तं शृणुष्वकुरुनन्दन ॥ १८ ॥ स्नेहार्थेकथयिष्यामिवार्द्धक्येनातिपण्डितः ॥ शृण्वन्तुऋषयस्सर्वे तपोनिष्ठामहात्मनः ॥ १९ ॥ श्रुतंमेरुद्रसान्निध्ये स्कन्दरुद्रगणैस्सह ॥ पार्वत्याप्रार्थितःशम्भूरवितीर्थस्ययत्फलम् ॥ २० ॥ शम्भुनापितदाख्यातं गिरिजायाःपुरस्तदा ॥ तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीतंश्रुतंमया ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षोपहताविप्रा नर्म्मदातटमाश्रिताः ॥ उद्दालकोवशिष्ठश्च माण्डव्योगौतमस्तथा ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्योथशाण्डिल्य श्च्यवनोभार्गवस्तथा ॥ नाशकेतुर्विभाण्डश्च बालखिल्यादयस्तथा ॥ २३ ॥ शातातपोपिशङ्खश्च जैमिनिर्गोभिलस्तथा ॥ जैगीषव्यःशतानीकऋषिसङ्घास्समागताः ॥ २४ ॥ तीर्थयात्राकृतातैस्तुनर्म्मदायांसमन्ततः ॥ आदित्येशंसमायाताः प्रसङ्गादृषि

कहाहै ॥ २० ॥ महादेवजीने भी पार्वतीजी के सामनेही कहाहै वह सब महादेवजीका कहाहुआ मैंने एकचित्त होकर सुनाहै ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षके मारेहुये ब्राह्मणलोग नर्मदातटको आये उद्दालक, वशिष्ठ, माण्डव्य, गौतम ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, च्यवन, भार्गव, नाशकेतु, विभाण्डक, बालखिल्य ॥ २३ ॥ शातातप, शङ्ख, जैमिनि, गोभिल, जैगीषव्य और शतानीक आदि ऋषियों के गण आतेहुये ॥ २४ ॥ उन ऋषियोंने नर्मदाके चारों तरफके तीर्थोंकी यात्राको किया प्रसङ्ग से आदित्येश्वर

तीर्थको आये ॥ २५ ॥ कैसा वह तीर्थहै कि वृक्षों से सब ढकाहुआहै धाई, तेंदुआ, पंडरिया, जंभीरी, अर्जुन, कुन्द, जटाकेसर, छिउला ॥ २६ ॥ बिजौरा, नारियल और खैर आदि कल्पवृक्षों से व्याप्तहै और अनेक जङ्गली जीवों से भराहै हिरनोंकी मालाओंसे घिराहै ॥ २७ ॥ रीछ और हाथियोंसेयुक्त व चीताओंसे शोभित होरहाहै फूल व फलों से भरेहुये उस वनमें ऋषिलोग पैठतेहुये ॥ २८ ॥ वनके बीचमें एक गोरे रङ्गकी स्त्री को देखा जोकि लालेकपड़े पहनेहुये और लाले फूलोंकी मालाको पहने अच्छीशोभा से युक्त लालचन्दनको लगायेहुये ॥ २९ ॥ लाले जेवरोंसे सजी, चन्द्रमाको हाथमें लिये,भयको करनेवाली जो है उसके समीप एक पुरुष भी देखपड़ा वह भी कालेमेघके

सत्तमाः ॥ २५ ॥ वृक्षैस्सञ्छादितंसर्वं धवैस्तिन्दुकपाटलैः ॥ जम्बीरैरर्जुनैःकुन्दैर्जटाकेसरकिंशुकैः ॥ २६ ॥ पुन्नागनारिकेरैस्तु खदिरैःकल्पपादपैः ॥ अनेकश्वापदाकीर्णंमृगमालासमाकुलम् ॥ २७ ॥ ऋक्षहस्तिसमायुक्तं चित्रकैश्चसुशोभितम् ॥ प्रविश्यऋषयस्सर्वे वनेपुष्पफलाकुले ॥ २८ ॥ वनान्तेचस्त्रियंशुभ्रां दृष्ट्वारक्ताम्बरान्विताम् ॥ रक्तमाल्यांसुशोभाढ्यां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ २९ ॥ रक्ताभरणसंयुक्तां शशिहस्तांभयावहाम् ॥ तस्याःसमीपगोदृष्टःकृष्णजीमूतसन्निभः ॥ ३० ॥ महाकायोभीमवक्त्रः पाशहस्तोभयावहः ॥ अनाधृष्योवयोवृद्ध आतुरःपिङ्गलोचनः ॥ ३१ ॥ दीर्घजिह्वःकरालास्यस्तीक्ष्णदंष्ट्रोदुरासदः ॥ वृद्धांस्त्रियंकुरुश्रेष्ठ तेपश्यन्विप्रपुङ्गवाः ॥ ३२ ॥ ततस्समीपगावृद्धा सचवृद्धश्चभारत ॥ स्वाध्यायनिरतैर्विप्रैस्तौपृष्टौपापकर्मिणौ ॥ ३३ ॥ वृद्धावूचतुः ॥ युष्माकंयमिनस्सर्वे तिष्ठध्वंतीर्थमध्यतः ॥ शीघ्रंप्रविश्यतांसर्वे नर्म्मदाचैवसेव्यताम् ॥ ३४ ॥ तयोःश्रुत्वातुवचनं ब्राह्मणाःशंसितव्रताः ॥ जग्मुस्तेनर्म्मदा

समान काला ॥ ३० ॥ बड़ी देहवाला व बड़े मुखवाला फँसरीको हाथमें लिये किसीके दबानेलायक नहीं उमरका बूढ़ा रोगी पीले नेत्रोंवाला ॥ ३१ ॥ लम्बी जीभका डरावने मुहँवाला पैनी डाढ़ोंवाला है हे कुरुश्रेष्ठ ! जब ब्राह्मणों ने उस वृद्ध स्त्रीको देखा ॥ ३२ ॥ तब हे भारत ! वह बुड्ढी स्त्री और बुड्ढा ब्राह्मणों के समीप आये तब वेदके पढ़ने वाले ब्राह्मणोंने उन दोनों पापियों से पूंछा ॥ ३३ ॥ तब बुड्ढे बोले कि आप सब महात्मालोग इस तीर्थपर ठहरो जल्दी इस वनमें पैठो और नर्मदा का सेवन

करो ॥ ३४ ॥ उन दोनोंकेवचनको सुनकर वे ब्राह्मणलोग नर्मदाके तटको गये और नर्मदाको देखा॥ ३५ ॥ कोई नमस्कार करनेलगे और कोई स्तुति करते हैं व कहतेहैं कि हे देवि ! तुम्हारी जयहो आपके नमस्कारहैं ॥ ३६ ॥ ऋषिलोग बोले कि सिद्धगणों से सेवा कीजाती जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और सब तरह से पवित्र व मङ्गलरूप जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं हजारों ब्राह्मणों से पूजी जाती जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और महादेवसे पैदाहुई सबसे श्रेष्ठ जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं ॥ ३७ ॥ सब पवित्रों को भी पवित्र करनेवाली जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और हे देवि ! सबमें श्रेष्ठ जो तुमहो तिनके नमस्कारहैं आप हमलोगों से प्रसन्न हूजिये हे ठण्ढे जलवाली व सुखकी देनेवाली, नदियोंमेंश्रेष्ठ, पापोंकीहरनेवाली, दयावाली, ॥ ३८ ॥ अनेकजीवोंकी देहों से सुहावने प्रवाहवाली, गन्धर्व, यक्ष और सर्पोंकी देहों को पवित्र करने-

कच्छं दृष्ट्वारेवांद्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ नताःकेचित्स्तुवन्त्यन्ये जयदेविनमोस्तुते ॥ ३६ ॥ ऋषयऊचुः ॥ नमोस्तुतेसिद्धगणैर्निषेविते नमोस्तुतेसर्वपवित्रमङ्गले ॥ नमोस्तुतेविप्रसहस्रपूजिते नमोस्तुतेरुद्रसमुद्भवेपरे ॥ ३७ ॥ नमोस्तुतेसर्वपवित्रपावने नमोस्तुतेदेविवरेप्रसीदनः ॥ नमोस्तुतेशीतजलेसुखप्रदे सरिद्वरेपापहरेदयान्विते ॥ ३८ ॥ अनेकभूताङ्गसुशोभिताङ्गे गन्धर्वयक्षोरगपाविताङ्गे ॥ महागजौघामहिषावराहाः क्रीडन्तितोयेसुमहोर्मिमालैः ॥ ३९ ॥ नमामसर्वे वरदेसुखप्रदे विमोचयास्मान्पशुपाशबद्धान् ॥ पापैरनेकैःपशुपाशबद्धा भ्रमन्तितावन्नरकेषुनित्यम् ॥ ४० ॥ यावत्तवाम्भोनहिसंस्पृशन्ति स्पृष्टंकरैश्चन्द्रमसोरवेश्च ॥ अनेकसंसारभयार्दितानां पापैरनेकैःपरिवेष्टितानाम् ॥ ४१ ॥ गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे द्वन्द्वैरनेकैरभिसंवृतानाम् ॥ नद्यस्तुपूज्याविमलाभवन्ति त्वान्देविचासाद्यनसंशयोत्र ॥ ४२ ॥

वाली ! आपके नमस्कार हैं बड़े २ हाथी व भैंसे व वनके सुवर बड़ी २ तरङ्गों से आपके जलमें जलविहार करते हैं ॥ ३९ ॥ हे वरों के देनेवाली व सुखोंकी देनेवाली ! हम सब आपको नमस्कार करते हैं पशुओंकीसी फँसरीमें बँधेहुये हमलोगोंको आप छोड़ावें अनेकपापोंसे पशुओंकीसी फँसरीमें बँधेहुये जीव नरकोंमें तभीतक सदाभ्रमते हैं ॥ ४० ॥ कि जबतक तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं जोकि चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों से छुवागयाहै संसारके अनेक डरों से डरेहुये और अनेकपापोंसे लपेटेहुये ॥४१॥ और सुख दुःख आदिकी जोड़ियों से घिरेहुये जीवोंकी गति हे कमल सरीखे मुखवाली ! आपहीहो और हे देवि ! आपको पाकर और नदियां निर्मल व पूजने लायक

होजाती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ अनेक देवताओं से पूजी जारही जो तुमहो सो दुःखी जीवोंको अभय देतीहो विष्ठा और मूत्रके समुद्ररूप इस देहमें डूबेहुये जीव तभीतक नरकों में रहते हैं ॥ ४३ ॥ कि जबतक भारी हवाके जोरसे उठती हैं तरङ्गें जिसमें ऐसे तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं म्लेच्छ, कञ्जर और राक्षस तुम्हारे पवित्र जलको जो पीते है ॥ ४४ ॥ वे भी बडे भारी डरसे छूटजाते हैं पापके डरसे डरेहुये ब्राह्मणों के छूटजानेकी क्या बातहै इस पापी घोर कलियुग में निर्मल जलसे पूरी तुम्हीं प्रकाश करतीहो ॥ ४५ ॥ और हे देवि ! आपही के प्रसाद से आकाश में आकाशगङ्गा विद्यमान होरही हैं ऐसे समय में आप हमारी ठीक २ रक्षाकरो जिससे

दुःखातुराणामभयंददासि देवैरनेकैरभिपूजितासि ॥ विण्मूत्रदेहार्णवमग्नदेहा भवन्तितावन्नरकेषुमर्त्याः ॥ ४३ ॥ महानिलोद्भूततरङ्गभङ्गं जलन्नयावत्तवसंस्पृशन्ति ॥ म्लेच्छाःपुलिन्दास्त्वथयातुधानाः पिबन्तिचाम्भस्तवदेविपुण्यम् ॥ ४४ ॥ तेपिप्रमुञ्चन्तिभयात्तुघोरात्किमत्रविप्राभयपापभीताः॥ घोरेयुगेस्मिन्कलिनाम्न्यपुण्येत्वंभ्राजसेकालजलौघपूर्णे ॥ ४५ ॥ देव्यत्रनक्षत्रपथेपिगङ्गा तवप्रसादाद्दिविदेव्यतिष्ठत् ॥ कालेयथेष्टंपरिपालयत्वं यास्यामलोकंतवसुप्रसादात् ॥ ४६ ॥ वयंतथात्वंकुरुनःप्रसादं त्वामाश्रितास्त्वांशरणङ्गतावै ॥ गतिस्त्वमेवात्रपितेवपुत्रं त्वमादिदेवप्रभवेविचित्रे ॥ ४७ ॥ कालेप्यनावृष्टिभवंक्षयञ्च रक्षस्वसर्वंजगतःस्वरूपम् ॥ ४८ ॥ एवंस्तुतामहादेवी नर्म्मदासरितांवरा ॥ प्रत्यक्षासापराभूता ब्राह्मणानांयुधिष्ठिर ॥ ४९ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ तुष्टाहंवरदाविप्रा दास्येवोवाञ्छितंफलम् ॥ ततोवर्षन्महामेघा धान्यञ्चप्रचुरन्तथा ॥ ५० ॥ कन्दमूलफलंशाकं सुखंसर्वत्रसंश्रितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पठन्ति

आपके प्रसादसे हमलोग आपके लोकको जावें ॥ ४६ ॥ आप हमलोगोंपर प्रसन्न होवें हम आपहीके आश्रित और शरणागत हैं आपही हमारी गतिहो जैसे पुत्रकी गति पिता होताहै आप आदिदेव (महादेवजी) से पैदाहुईहो और विचित्रहो ॥ ४७ ॥ अब इस समय में वर्षा के न होने के कारणसे होरहे प्रजा के क्षयस जगत्के रूपकी रक्षाकरो ॥ ४८ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार स्तुति कीगई नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा देवी ब्राह्मणोंके प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ ४९ ॥ नर्मदा बोलीं कि हे विप्रो ! हम प्रसन्न हैं और तुम्हारे मनमाने वरको देवेंगी तदनन्तर मेघोंने जलकी वर्षा की उससे बहुत अन्न ॥ ५० ॥ कन्द, मूल, फल और शाक पैदाहुआ सब कहीं सुख होगया मार्क-

एडेयजी कहते हैं कि हे नरेन्द्र! जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढ़ते व भक्तिसे युक्त सुनते हैं ॥ ५१ ॥ अन्तके समय में नदियों में उत्तम यह नर्मदा उनको उत्तम गति देतीहै प्रातःकाल उठकर मानके सहित महादेव, पार्वती और नर्मदाको जो कहता है ॥ ५२ ॥ उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं और बड़े सुख आते है और पापों से छुटे हुये वे मनुष्य स्वर्ग में आनन्द करते हैं क्योंकि महादेवकी वाणी मिथ्या नहीं होसक्तीहै ॥ ५३ ॥ हे भारत! इस स्तोत्रसे प्रसन्नहुई नर्मदादेवी दक्षिणदिशामे बहनेवाली अपने जलसे ब्राह्मणों को पुष्ट करतीहुई ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि स्नान व देवताओं के पूजन से युक्त, बड़े बलवाले पांचही पुरुष नर्मदाके किनारेपर देख पड़े

येस्तोत्रमिदंनरेन्द्र शृण्वन्तिभक्त्यापरयाप्रपन्नाः ॥ ५१ ॥ तेभ्योन्तकालेसरिदुत्तमेयं गतिंविशुद्धान्नितरांददाति ॥ प्रा तस्समुत्थायसमानएव संकीर्तयेद्रुद्रमुमाञ्चदेवीम् ॥ ५२ ॥ पापानिसर्वाणिलयंप्रयान्ति समाश्रयन्तेचमहानुभावाः ॥ पापैस्तुमुक्तादिविमोदयन्ते शम्भोर्गिराचैवतुनान्यथाच ॥ ५३ ॥ प्रसन्नानर्म्मदादेवी स्तोत्रेणानेनभारत ॥ जलेनाप्या यितान्विप्रान् दक्षिणापथवाहिनी ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दृष्टास्तेपुरुषानान्या नर्म्मदातटमाश्रिताः ॥ स्ना नदेवार्चनैर्युक्ताः पञ्चैवतुमहाबलाः ॥ ५५ ॥ तेदृष्टाब्राह्मणैस्सर्वैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ विप्राऊचुः ॥ दिनान्तेचस्त्रियोर्यु ग्मं दृष्टंरौद्रंभयावहम् ॥ ५६ ॥ त्रयोवृद्धाश्चपुरुषाः पाशहस्ताभयावहाः ॥ दुर्द्धरादुर्निसंकाशा इतश्चेतश्चचञ्चलाः ॥ ५७ ॥ व्याहरन्तिभियावाचा आकाङ्क्षादर्शनस्यच ॥ अपरस्परिणस्सर्वे निरीक्षन्तेपरस्परम् ॥ ५८ ॥ तेषुसङ्घेषुयत्प्रो क्तं तत्सर्वंकथयामिते ॥ पुरुषाऊचुः ॥ तीर्थावगाहनंसर्वैः पूर्वपश्चिमदक्षिणे ॥ ५९ ॥ उत्तरेचकृतंभक्त्या नपापंतद्व्यपोहि

और कोई नहीं ॥ ५५ ॥ वेद व वेदाङ्गके पढ़नेवाले सब ब्राह्मणोंने उन्हें देखा तब ब्राह्मण बोले कि सन्ध्याको बड़े भयानक एक स्त्री पुरुषके जोड़े को हमने देखा था ॥ ५६ ॥ अब तीन वृद्ध पुरुष औरहैं फँसरीको हाथों में लिये बड़े डरावने पकड़े नहीं जासक्के, करालरूप, इधर उधर दौड़रहे ॥ ५७ ॥ डरावनी आवाज से बोलतेहुये, देखने की इच्छा कररहे आपस में एकत्रित नहीं होते और आपस में सब देखते हैं ॥ ५८ ॥ उनके झुण्डमें जो बातें हुई हैं उनको हम तुमसे कहते हैं वे पुरुष ब्राह्मणों

से बोले कि हम सबोंने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरवाले सब तीर्थोंमें भक्तिसे स्नानकिया लेकिन हमारा वह पाप नष्ट नहीं हुआ परन्तु इस तीर्थके प्रभाव से यहां हम सब निष्पाप होगये ॥ ५९ । ६० ॥ हे आगकी ज्वालाके समान तेजवाले सब ब्राह्मणलोगो ! हम लोगोंके वृत्तान्तको सुनो कि जिन पापोंको और लोग स्मरण नहीं करते हैं ऐसे २ घोर पापोंको हमलोगोंने किया है ॥ ६१ ॥ इस पापीने अपने गुरुकी स्त्री को भ्रष्ट कियाहै और दूसरेने मित्रका सोना हरलियाहै ॥ ६२ ॥ तीसरेने बड़ी भयानक ब्रह्महत्याको किया व और भी पातकको कियाहै और दूसरेकी इच्छा से इसने मद्य भी पियाहै ॥ ६३ ॥ और इस एकही पापी ने गोहत्याका भी पाप कियाहै हे

तम् ॥ निष्पापाश्चात्रसञ्जातास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ६० ॥ शृण्वन्तुऋषयस्सर्वे अग्निज्वालोपमाद्विजाः ॥ पातकानि चघोराणि यान्यचिन्त्यानिदेहिनाम् ॥ ६१ ॥ पापिष्ठेनतुचानेन गुरोर्दाराविदूषिताः ॥ हृतंचान्येनमित्रस्य सुवर्णंचनथा चवै ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्याकृतारौद्रा कृतश्चान्येनपातकम् ॥ सुरापानन्तुचाप्यस्य संजातंचान्यकामतः ॥ ६३ ॥ गोवधंपाप मेतेन कृतमेकेनपापिना ॥ अकामतोपिसर्वेषां पातकानिनराधिप ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणास्तांस्तुतेदृष्ट्वा पापिष्ठागतकल्म षाः ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ ६५ ॥ नकाचित्पातकानांतु प्रवेशश्चात्रजायते ॥ एवंसञ्चिन्त्यतेसर्वे पापिष्ठाश्चपरस्परम् ॥ ६६ ॥ क्षिप्रमेवसमुद्धृत्य विचिन्त्यहृदयेहरिम् ॥ स्नात्वारेवाजलेपुण्ये तर्पित्वापितृदेवताः ॥ ६७ ॥ नत्वातुभास्करंदेवं हृदिध्यात्वाजनार्द्दनम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंभक्त्या ज्वलितेजातवेदसि ॥ ६८ ॥ पतिताःपा ण्डवश्रेष्ठपापोद्विग्नाश्चपापिनः ॥ सात्त्विकींकामनांकृत्वात्यक्त्वाप्राणान्दिवङ्गताः ॥ ६९ ॥ निष्पापास्तेमहाभागैर्नर्मदा

नराधिप ! पाप तो अपनी कामनाके विना भी सबको होतेहैं ॥ ६४ ॥ उन ब्राह्मणोंने उन पापियों को देखा कि इस तीर्थ व नर्मदाके प्रभावसे ये सब अतिपापी लोग पाप से रहित होगये है ॥ ६५ ॥ यहां पापोंका प्रवेश कभी नहीं होसक्ताहै सब पापी लोग आपस में ऐसे विचारकर ॥ ६६ ॥ और शीघ्रही उठकर व अपने हृदयमे भगवान् को सुधकर व नर्मदाके पवित्र जलमें नहाय पितर व देवताओंका तर्पणकर ॥ ६७ ॥ सूर्यके नमस्कार व भगवान्का ध्यान व उनकी भक्तिसे प्रदक्षिणाकर जलतीहुई आग मे ॥ ६८ ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पापो से डरेहुये वे पापी कूदपडे सत्त्वगुणकी कामना को कर और प्राणोंको छोंड़ स्वर्गको चलेगये ॥ ६९ ॥ उस समय मे नर्मदाके उत्तर

तटमें बडभागी ब्राह्मणोंने उन पापियोंको पापसे रहित व विमानोंपर बैठे देखा हे युधिष्ठिर ! ॥ ७० ॥ नर्मदाके तटमें ऋषियोंने बेनजीर आश्चर्यको देखा तबसे वे सब लोग राग और द्वेषसे रहित होगये ॥ ७१ ॥ तबसे मोक्षकी इच्छा से प्रसन्न होरहे ब्राह्मणलोग सूर्यतीर्थ की सेवा किया करते हैं ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेऽर्कतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे नराधिप ! इसतीर्थकी जो पुण्यहै तिसको तुम सुनो हे नरेश्वर ! हम पण्डितहैं बुढ़ापे व भक्तिसे महादेवजीसे रक्षाको पायेहुये हैं ॥ १ ॥

योत्तरेतटे ॥ विमानस्थास्तदादृष्टा ब्राह्मणैस्तेयुधिष्ठिर ॥ ७० ॥ आश्चर्यमतुलंदृष्टमृषिभिर्नर्म्मदातटे ॥ तदाप्रभृति तेसर्वे रागद्वेषविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ रवितीर्थेद्विजादृष्टाः सेवन्तेमोक्षकाङ्क्षया ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेऽर्कतीर्थमहिमानुवर्णनोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ तीर्थस्यास्यचयत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ पण्डितोवृद्धभावेन भक्त्याज्ञातोनरेश्वर ॥ १ ॥ उद्देशंकथयिष्यामि दृष्ट्वावान्तरमेवच ॥ कुरुक्षेत्रंयथापूतंरवितीर्थंश्रुतंतथा ॥ २ ॥ ईश्वरेणपुराख्यातं षण्मुखस्य युधिष्ठिर ॥ श्रुतंरुद्रगणैस्सर्वैरहंतत्रसमीपगः ॥ ३ ॥ मार्तण्डग्रहणेप्राप्ते येव्रजन्तिषडानन ॥ रवितीर्थेकुरुक्षेत्रे तुल्य मेवफलंभवेत् ॥ ४ ॥ स्नानेदानेतथाजाप्ये होमेचैवविशेषतः ॥ कुरुक्षेत्रेतथापुण्यं नात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥ ग्रामेवायदिवारण्येपुण्यासर्वत्रनर्म्मदा ॥ रवितीर्थेविशेषेण रविपर्वणिभूमिप ॥ ६ ॥ तत्रसूर्यदिनेभक्त्याव्यतीपा

अभिप्रायको देखकर साधारण वृत्तान्तको आपसे कहेंगे जैसा कुरुक्षेत्र पवित्रहै वैसाही सूर्यतीर्थ भी पवित्र सुनागयाहै ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! पहले महादेवजी ने स्वामि-कार्त्तिकेयसे कहाहै वहां महादेवके सब गणोंने सुनाहै मैं भी वहा समीपही था ॥ ३ ॥ महादेवने कहा कि हे षडानन ! सूर्यग्रहणके प्राप्त होनेपर जो मनुष्य जाते हैं उनको सूर्यतीर्थ और कुरुक्षेत्र में बराबरही फल होताहै ॥ ४ ॥ स्नान, दान, जप और होमसे जैसा कुरुक्षेत्रमें पुण्य होताहै वैसाही यहा भी होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ गांवहो या वनहो नर्मदा सब कहीं पवित्रहै परन्तु हे भूमिप ! सूर्यपर्व मे सूर्यतीर्थ मे ज्यादा है ॥ ६ ॥ इतवार, व्यतीपात, वैधृति, संक्रान्ति,

और ग्रहणमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिसे सूर्यतीर्थ को जाते हैं ॥ ७ ॥ और हे पार्थ ! काम, क्रोध, राग और द्वेषसे छूटेहुये विष्णुकी कथाको सुनते व वेदका पाठ करते हैं ॥ ८ ॥ अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी एक ऋचाका भी जप कर वे सम्पूर्ण वेदके फलको पाते हैं ॥ ९ ॥ और गायत्री से मनुष्य चारों वेदों के फलको पाताहै प्रातःकालमें अन्नके दान व सोनेके दानसे भगवान्‌का पूजनकरे ॥ १० ॥ वहां स्नानकर योग्य ब्राह्मणको जो कपिला गऊ देताहै उसने मानो पर्वत व जलो और जंगलोंके सहित सम्पूर्ण पृथिवीका दानकिया ॥ ११ ॥ और जिसने गोदानको किया उसने भूलोक, भुवर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक

तेचवैधृतौ ॥ संक्रमेग्रहणेवापि येव्रजन्तिजितेन्द्रियाः ॥ ७ ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्ता रागद्वेषैस्तथैवच ॥ कथाश्च वैष्णवींपार्थ वेदाध्ययनमेवच ॥ ८ ॥ ऋग्वेदंवायजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् ॥ ऋचमेकान्तुजप्त्वैव समस्तफलमाप्नुयुः ॥ ९ ॥ गायत्र्याचचतुर्वेदफलमाप्नोतिमानवः ॥ प्रभातेपूजयेद्देवमन्नदानहिरण्मयैः ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वाद्विजेयोग्ये कपिलांयःप्रयच्छति ॥ पृथिवीतेनवैदत्ता सशैलवनकानना ॥ ११ ॥ भूर्लोकश्चभुवर्लोको महर्लोकोजनस्तथा ॥ तपःसत्यन्तथालोकं पातालान्येकविंशतिः ॥ १२ ॥ तेनदत्तंभवेत्सर्वं गोदानंयेनवैकृतम् ॥ तेषामब्दकृतंपापंनश्येद्वैनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ पुण्यागतिःकथन्तात एतत्कथयतत्त्वतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुराकृतयुगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १४ ॥ उत्पादयित्वासकलं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ आकुलापृथिवीतेनसंजातापाण्डुनन्दन ॥ १५ ॥ ततःपश्चाद्विचिन्त्येदं कथंलोकोभविष्यति ॥ कथंस्वर्गंप्रयास्यन्ति मानवाभक्तिसंयुताः ॥ १६ ॥ भानु

और इक्कीस पाताल इन सबका दान करदिया उनके वर्षोंका कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १२ । १३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! पुण्यवाली गति किसतरहसे होतीहै सो यह ठीक २ कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सत्ययुगकी आदिमें लोकोंके पितामह ब्रह्माने ॥ १४ ॥ सब चारोंप्रकारके जीवोंके समूहको उत्पन्नकिया हे पाण्डुनन्दन ! उससे पृथिवी भरगई ॥ १५ ॥ तब पीछेसे विचारकिया कि यह लोक कैसे होगा और भक्तिवाले मनुष्य स्वर्गको कैसे जावेंगे ॥१६॥

लोकोंपर सूर्यनारायण कैसे अतिप्रसन्न होंगे ऐसे ब्रह्माके विचार करतेहुये अग्निके कुण्ड से तेजसे भरीहुई व प्रकाश कररही घण्टाके डोलने से शब्दको करती हुई एक गऊ निकली कुण्डके बीचमें विद्यमान उस बडीभाग्यवाली कपिलाको देख ॥ १७।१८ ॥ व उसके प्रणामकर लोकों के गुरु ब्रह्मा उससे यह बोले कि हे सब लोकों में पुण्यवाली,अत्युत्तम,कपिले! तुम्हारे लिये नमस्कारहै॥१९॥ और हे देवि! हे वरानने! हे तीनोंलोकों में वन्दना कीगई, मङ्गलरूप! लक्ष्मी, धृति और निर्मल बुद्धि तुम्हीहो ॥ २० ॥ हे महाभागे! पार्वती व इन्द्राणी तुम्हींहो इसमें संशय नहीं है वैष्णवी और महादेवी ब्रह्माणी (सरस्वती) तुम्हींहो हे वरानने!॥ २१ ॥ कुमारी

श्चैवकथंप्रीतो लोकानांजायतेभृशम् ॥ विरिञ्चेश्चिन्त्यमानस्य अग्निकुण्डात्समुत्थिता ॥ १७ ॥ ज्वलन्तीतेजसापूर्णा घण्टाललितनिःस्वना ॥ दृष्ट्वातान्तुमहाभागांकपिलांकुण्डमध्यगाम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मालोकगुरुस्तान्तु प्रणम्येदमुवाचह ॥ नमस्तेकपिलेपुण्ये सर्वलोकेष्वनुत्तमे ॥ १९ ॥ माङ्गल्येमङ्गलेदेवि त्रिषुलोकेषुवन्दिते ॥ त्वंलक्ष्मीस्त्वंधृतिर्मेधापवित्रातुवरानने ॥ २० ॥ उमादेवीतिविख्याता त्वंशचीनात्रसंशयः ॥ वैष्णवीत्वंमहादेवी ब्रह्माणीत्वंवरानने ॥ २१ ॥ कुमारीत्वंमहाभागे भक्तिःश्रद्धातथैवच ॥ कालरात्रीतुभूतानां कुमारीपरमेश्वरी ॥ २२ ॥ त्वंत्रुटिस्त्वंघटीचैव मुहूर्त्तक्षणमेवच ॥ संवत्सरर्तवोमासास्त्वंकालःपुरुषस्सदा ॥ २३ ॥ नास्तिकिञ्चित्त्वयाहीनं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ एवंस्तुतातुसातेन कपिलापरमेष्ठिना ॥ २४ ॥ तमुवाचमहाभागा प्रहृष्टापरमेष्ठिनम् ॥ प्रसन्नातववाक्येन देवदेवजगद्गुरो ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जगद्धितायजनितामयात्वंपरमेश्वरि ॥ स्वर्गान्मर्त्यमितोयाहि लोकानांहित

तुम्हींहो और हे महाभागे! भक्ति व श्रद्धा तुम्हींहो सब जीवोंकी कालरात्रि कुमारी परमेश्वरी तुम्हींहो ॥ २२ ॥ त्रुटि कुछ पलोंका नामहै सो और घड़ी व मुहूर्त व क्षण तुम्हींहो वर्ष, ऋतु और महीना तुम्हीहो काल व जीव भी तुम्हींहो॥ २३ ॥ चर व अचररूप तीनों लोकों में तुममें खाली कोई चीज नहीं है इसप्रकार जब उन ब्रह्माजीने उस कपिलाकी स्तुतिकी ॥ २४ ॥ तब प्रसन्नहुई बड़भागिनी कपिला ब्रह्माजीसे बोली कि हे देवदेव! हे जगत्के गुरु! तुम्हारे वचन से हम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥

तब ब्रह्मा बोले कि हे परमेश्वरि ! मैंने तुमको जगत्के हितके वास्ते पैदा किया है लोकोंके हितकी इच्छा से तुम इस स्वर्ग से मनुष्यलोकको जाओ ॥ २६ ॥ और सब देवता व सब लोकोंका रूप जो तुमहो तिनको विधानसे जो देवेंगे उनका वास स्वर्ग में होगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार ब्रह्मासे कहीगई पुण्यवाली वह कपिला देवताओं से भी नमस्कार कीजारही पृथिवीपर आतीहुई ॥ २८ ॥ उसके आने से हे पाण्डुनन्दन ! पृथिवी पवित्र होगई उसके अङ्गों में जो देवताहैं उनको हम कहते हैं सो तुम सुनो ॥ २९ ॥ अग्निदेव उसके मुहँमें रहते हैं और दांतो में सांपहैं ओंठों में धाता और विधाता हैं कानों में अश्विनीकुमार हैं ॥ ३० ॥ सींगों में इन्द्र बैठे हैं सींगोंके

काम्यया ॥ २६ ॥ सर्वदेवमयींत्वान्तु सर्वलोकमयींतथा ॥ विधिनायेप्रदास्यन्ति तेषांवासस्त्रिविष्टपे ॥ २७॥ एवमुक्ता ततःपुण्या कपिलापरमेष्ठिना ॥ आजगामभुवःपृष्ठे वन्द्यमानासुरोत्तमैः ॥ २८ ॥ पवित्रानभुघातेन सञ्जातापाण्डुनन्दन ॥ तस्याअङ्गेषुयेदेवास्तान्मेनिगदतःशृणु ॥ २९ ॥ मुखेह्यग्निःस्थितोदेवो दन्तेषुचभुजङ्गमाः ॥ धाताविधाता चोष्ठौचअश्विनौकर्णसंस्थितौ ॥ ३० ॥ वज्रपाणिःस्थितःशृङ्गेशृङ्गमध्येपितामहः ॥ कालोमध्यगतस्तात पाशभृद्वरुणस्तथा ॥ ३१ ॥ यमश्चभगवान्देव आस्यस्योपरिसंस्थितः ॥ नाभिमध्येस्थितश्छन्दो देवाजङ्घासुभारत ॥ ३२ ॥ वसुन्धरास्थितानाभ्यां पर्वतास्सन्धिषुस्थिताः ॥ वृक्षागुल्मानिवल्ल्यश्च सन्धिमार्गेऽव्यवस्थिताः ॥३३॥ ऋषयोरोमकूपेषु संस्थिताःपाण्डुनन्दन ॥ स्नायुस्थाःपितरस्सर्वे प्रस्रवंसर्वतीर्थजम् ॥ ३४ ॥ सर्वेषांगोमयंश्रेष्ठं पवित्रंपापनाशनम् ॥ खुरेषुपन्नगास्सर्वे पुच्छाग्रेसूर्यरश्मयः ॥ ३५ ॥ एवंभूतातुकपिला सर्वदेवमयीकिल ॥ येध्यायन्तिगृहेभक्त्या

बीचमें ब्रह्माहै और हे तात ! बीचमें काल और फँसरी के धारण करनेवाले वरुण हैं ॥ ३१ ॥ यमराज भगवान् मुहँके ऊपरवाले भागमें बैठे हैं और हे भारत ! तोदीं में छन्दहैं और फीलियो में देवताहैं ॥ ३२ ॥ और पृथिवी भी नाभी में है जोड़ों में पर्वत ठहरे हैं बडे वृक्ष व छोटे वृक्ष व लतायें जोडोकी रास्ते में विद्यमानहैं ॥ ३३ ॥ और हे पाण्डुनन्दन ! रोवोंके छेदों में ऋषिलोग बैठे हैं नसो में सब पितर व दूधमें सब तीर्थ रहते हैं ॥ ३४ गोबर सबहीका स्थानहै वह बडा श्रेष्ठ व पवित्र व पापोका नाश करनेवालाहै खुरों मे सब सांप व पूछके अगिले भागमें सूर्यकी किरणें हैं ॥ ३५ ॥ सब देवताओंका रूप कपिला इसप्रकारकी है अपने घरमें भक्तिसे उसका जो ध्यान

करते हैं वे मुक्तही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल नित्य उठकर भक्तिसे जो कपिलाकी प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातोद्वीपवाली पृथिवी की प्रदक्षिणा करली है ॥ ३७ ॥ कपिला के पञ्चगव्य मे जो महादेव व जगत् के आधार विष्णु व सूर्य्य व और किसी देवताको स्नान कराता है ॥ ३८ ॥ और हे पाण्डव! पञ्चामृत व पञ्चगव्य से भक्तिपूर्वक स्नान करवाकर जो सालभर तक वेदपाठी ब्राह्मणको रोज २ कपिलाका दान करताहै ॥ ३९ ॥ हे युधिष्ठिर! उन दोनोके फलको शङ्करजीने बराबर कहाहै और जो कोई मनको वशकियेहुये सूर्यतीर्थमें कपिलाको ब्राह्मणके लिये देवेगा॥४०॥ और दूधवाली,जवान,निर्मल,बछडा व कपडोंसे सयुक्त,

तेमुक्तानात्रसंशयः ॥ ३६ ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या नित्यंकुर्य्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ३७ ॥ कपिलापञ्चगव्येन यःस्नापयतिशङ्करम् ॥ विष्णुंवाजगदाधारं सूर्य्यंवाप्यन्यदैवतम् ॥ ३८ ॥ पञ्चामृतेन संस्नाप्य भक्त्यागव्येनपाण्डव ॥ अब्दंवाश्रोत्रियेनित्यंकपिलांयःप्रयच्छति ॥ ३९ ॥ तुल्यमेतत्फलंप्रोक्तंशङ्करेणयुधिष्ठिर ॥ यःप्रदास्यतिविप्राय रवितीर्थेसुयन्त्रितः ॥ ४० ॥ कपिलांवाथकृष्णांवा श्वेतांरक्ताञ्चपाटलाम् ॥ क्षीरिणीन्तरुणींशुभ्रां सवत्सांवस्त्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥ स्वर्णशृङ्गींरौप्यखुरीं विष्णुरूपंद्विजंस्मरन् ॥ आत्मानंविष्णुरूपञ्च धेनुमादित्यरूपिणीम् ॥ ४२ ॥ योददातिमहाबाहो तस्यवासस्त्रिविष्टपे ॥ ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तः सुरापानञ्चदारुणम् ॥ ४३ ॥ गुर्वङ्गनागमःस्तेयः स्वामिद्रोहोगवांवधः ॥ मित्रविश्वासघातञ्च गुरुनिन्दासमुद्भवम् ॥ ४४ ॥ स्थितिर्नष्टेचवंशेच निर्माल्यस्यावलङ्घनम् ॥ कन्यागमागमश्चैव अभक्ष्यस्यतुभक्षणम् ॥ ४५ ॥ वृषलीगमनंरौद्रं कुरूपागमनोद्भवम् ॥ अ

सोनेके सींगोवाली, रूपेके खुरोंवाली, कपिला व कृष्णा व सफेद व लाली व लाल और सफ़ेदरङ्गवाली गऊको ब्राह्मणको व अपनेको विष्णुके रूपसे ध्यान करताहुआ और गऊको सूर्यरूपसे जानताहुआ देताहै हे महाबाहो! उसका वास स्वर्गमें होता है और ब्रह्महत्यासे छूटजाता है दारू का पीना ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥ गुरु की स्त्री में गमन करना, चोरी करना, मालिक से वैर करना, गोहत्या करना, मित्रके साथ में विश्वासघात करना, गुरुकी निन्दा करना ॥ ४४ ॥ नष्ट वशमें रहना, महादेव के निर्माल्य का नांघना, कन्या का भोग करना, नहीं खानेलायक चीजका खाना ॥ ४५ ॥ शूद्रकी स्त्री का भोग करना, कुरूप स्त्री का ग्रहण करना,आग लगादेना,

विष देना और गवाही में झूंठ बोलना ॥ ४६ ॥ हे पाण्डव ! इन सब पापोंको गऊ अपने दानसे नष्ट करदेती है और पवित्र गौवों के सङ्गम व पापों के नाशकर-नेवाले उनके गोडे में ॥ ४७ ॥ हे कुन्तिनन्दन ! जो भक्तिसे प्रेतका श्राद्ध करताहै उसपर सूर्य और महादेवजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ४८ ॥ उस सूर्यतीर्थ में सूर्य के नाम से जो भक्तिसे दान दियाजाता है उसका देनेवाला नर्मदा के प्रसाद से सूर्यलोक में सुख से जाता है ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, देवयान और सुखदायी भीमेश्वर में हे कुरुश्रेष्ठ ! बराबरही पुण्य कहाजाता है ॥ ५० ॥ समुद्रपर्यन्त पृथिवी में येही पांचों तीर्थ प्रसिद्ध हैं पृथिवी के रहनेवाले जो इन पांचोंको नहीं जानते हैं वे मरे

ग्निदंगरदञ्चैव कूटसाक्ष्यसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ तत्सर्वंनाशयेत्पापं धेनुदानेनपाण्डव ॥ सुरभीसंगमेपुण्ये निष्ठुतेपापनाशने ॥ ४७ ॥ श्राद्धंप्रेतस्ययोभक्त्या दापयेत्कुन्तिनन्दन ॥ तस्यप्रीतोभवेत्सूर्य्यः सुप्रीतोभवएवच ॥ ४८ ॥ दानंयद्दीयतेतत्र सूर्य्यमुद्दिश्यभक्तितः ॥ मित्रलोकेसुखंयाति नर्म्मदायाःप्रसादतः ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्देमधुच्छन्दे देवयानेसुखप्रदे ॥ भीमेश्वरेकुरुश्रेष्ठ समंपुण्यंप्रशस्यते ॥ ५० ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां प्रख्यातंतीर्थपञ्चकम् ॥ येनजानन्तिभूमिस्था तेमृतानात्रसंशयः ॥ ५१ ॥ स्नानंदेवार्चनंजाप्यं होमंब्राह्मणपूजनम् ॥ भूमिदानेनवस्त्रेण अन्नदानेनभक्तितः ॥ ५२ ॥ उपानच्छत्रशय्यानांगृहदानेनपाण्डव ॥ ग्रामकन्याप्रदानेन गजदानहयेनच ॥ ५३ ॥ विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयप्रदः ॥ सयातिसर्वतीर्थानि रवितीर्थंयुधिष्ठिर ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राप्रभावेण व्याधयोयान्तिसंक्षयम् ॥ शत्रवो मित्रतांयान्ति विषंवाह्यमृतायते ॥ ५५ ॥ ग्रहास्सर्वेभवन्प्रीताः प्रीतस्तस्यदिवाकरः ॥ तीर्थस्याल्पपयःपीत्वा यत्पुण्यं

ही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ सूर्यतीर्थ में भक्ति से स्नान देवताओं का पूजन, जप, होम, ब्राह्मणोंका पूजन, पृथिवी, कपड़े, अन्न ॥ ५२ ॥ व हे पाण्डव ! जूता, छाता, पलंग, मकान, गांव, कन्या, हाथी, घोडे ॥ ५३ ॥ विद्या और छकडाओं के दान से सबका अभय देनेवाला पुरुष मानो सब तीर्थों व सूर्यतीर्थ को जाता है हे युधिष्ठिर ! ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राके प्रभावसे रोग नष्ट होजाते हैं शत्रु मित्र होजाते और विष अमृत होजाताहै ॥ ५५ ॥ सब ग्रह उससे प्रसन्न होतेहैं और सूर्य भी प्रसन्न

होते हैं इस तीर्थके जलको पीकर मनुष्योंको जो पुण्य होता है ॥ ५६ ॥ और सालभर पीपलकी सेवा व कपिलाके दानसे जो पुण्यहै उसके फलको हे महीपते ! तुम से भक्तिपूर्वक हम कहेंगे ॥ ५७ ॥ सब पाप नष्ट होजाते हैं फूटे बासनका पानी जैसे बहजाताहै तीर्थ के सामने जानेवालों का यह हाल होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ हे पार्थिव ! यहां भीतर और बाहरका तीर्थ आपसे कहागया जो पापी और कृतघ्न हैं अथवा अपने मालिक व मित्रके विरोधी हैं ॥ ५९ ॥ उनसे तीर्थोंकी बात कहना नहीं अच्छा किन्तु पण्डितोंको उनसे हमेशा छिपाना चाहिये ॥६०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेआदित्येश्वरतीर्थकीर्तनोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

जायतेनृणाम् ॥ ५६ ॥ अब्दमश्वत्थसेवायां कपिलायास्तुदानतः ॥ तत्फलंकथयिष्यामि भक्त्यातवमहीपते ॥ ५७ ॥ पापास्सर्वेविलीयन्ते भिन्नपात्रेजलंयथा ॥ तीर्थस्याभिमुखंवृत्तं गच्छतांनात्रसंशयः ॥ ५८ ॥ इहबाह्यान्तरन्तीर्थं कथितन्तवपार्थिव ॥ पापिष्ठानांकृतघ्नानांस्वामिमित्रविरोधिनाम् ॥ ५९ ॥ तीर्थाख्यानंशुभन्तेषां गोपितव्यं सदाबुधैः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेआदित्येश्वरतीर्थकीर्तनोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र करञ्जेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रतेनिहतास्तात दानवास्तत्पदानुगैः ॥ १ ॥ इन्द्राद्यैश्चैवसंहृष्टैःस्तुतोयज्ञस्सुबुद्धिभिः ॥ तेषांयेपुत्रपौत्राश्च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २ ॥ तत्रस्थास्तुसुरास्सर्वे स्थापयित्वाह्युमापतिम् ॥ इन्द्रश्चन्द्रयमास्सूर्य्यः स्थापयित्वेष्टसिद्धये ॥ ३ ॥ हृष्टपुष्टास्सुरास्सर्वे जग्मुराकाशसंस्थिताः ॥ दानवानांमहाभाग करोट्यःपतितायतः ॥ ४ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं करोटीतिमहीपते ॥ विख्यातंभारतेलोके भूपृष्ठेपाण्डुनन्द

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम करञ्जेश्वर तीर्थको जावे हे तात ! जहां देवताओंसे वे दानवलोग मारेगये हैं ॥ १ ॥ सुन्दर बुद्धिवाले व प्रसन्न इन्द्र आदि देवताओंने यज्ञकी स्तुति की है उन दानवोंके जो लडके व पोते रहे उनको भी पछिले वैरकी सुध करतेहुये मारा ॥ २ ॥ वहांपर विद्यमान होरहे सब देवता लोग महादेवको स्थापनकर अर्थात् अपने मनकी सिद्धिके वास्ते इन्द्र, चन्द्रमा और यमराज महादेवको थापकर ॥ ३ ॥ प्रसन्न व पुष्ट होरहे सब देवता आकाशमें ठहरे हुये अपने लोकको चलेगये हे महाभाग ! जहां दानवोंकी रीरें गिरीथीं ॥ ४ ॥ हे महीपते ! वहां तबसे वह तीर्थ करोटी नामसे प्रसिद्ध होताहुआ हे पाण्डुनन्दन !

वह तीर्थ भारतखण्डकी पृथिवीपर होताहुआ ॥ ५ ॥ उजियाले पाखकी अष्टमी व चौदसको भक्तिसे उपासकर रातमें महादेवके आगे जागरणकरे ॥ ६ ॥ महादेवकी कथा व वेदोंका उच्चारणकरे निर्मल प्रभातके होनेपर यत्नसे महादेवका पूजनकर ॥ ७ ॥ पञ्चामृतसे नहवाय चन्दन से पूजे और कमलके फूलों से यत्नके साथ पूजन करे ॥ ८ ॥ फिर दक्षिणा देकर बहुरूप मन्त्रको जपे तो उसी फलको पाताहै जोकि नर्मदाके आदित्येश्वर तीर्थमें कहागयाहै ॥ ९ ॥ और हे नराधिप ! सुनेहुये तीर्थके प्रभावको जो पढ़े हे महीपते ! वह सब हम तुम्हारी भक्तिसे कहेंगे ॥ १० ॥ कहेहुये विधान से नाभितक जलमें खड़ा होकर वहीं इन्द्रियोंको जीतेहुये प्रेतका श्राद्ध

न ॥५॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यांशुभेपक्षेतुभक्तितः ॥ उपोष्यशूलिनश्चाग्रे रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ६ ॥ तत्कथालापसंयुक्तं वेदोद्गीतन्तथैवच ॥ प्रभातेविमलेप्राप्ते स्थाणुंसम्पूज्ययत्नतः ॥ ७ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य श्रीखण्डेनैवचार्चयेत् ॥ शतपत्रपुष्पैश्च पूजयेच्चप्रयत्नतः ॥ ८ ॥ बहुरूपंजपेन्मन्त्रं दक्षिणान्तुप्रदायच ॥ तत्फलंसमवाप्नोति आदित्येश्वरनर्म्मदे ॥ ९ ॥ श्रुततीर्थप्रभावंवै यःपठेच्चनराधिप ॥ तत्सर्वंकथयिष्यामि भक्त्यातवमहीपते ॥ १० ॥ यथोक्तेनविधानेन नाभिमात्रेजलेस्थितः ॥ श्राद्धंतत्रैवप्रेताय कारयेतजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥ विविधैरग्रपाठैश्च वेदाध्ययनतत्परैः ॥ गोहिरण्येन सम्पूज्य वस्त्रताम्बूलभोजनैः ॥ १२ ॥ भूषणैःपट्टदानैश्च ब्राह्मणंपाण्डुनन्दन ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुसम्पूज्यकामिकंभोजनंददेत् ॥ १३ ॥ भवेत्कोटिगुणंतस्य नात्रकार्य्याविचारणा ॥ तत्रतीर्थेयथाभक्त्या त्यजेद्देहञ्चमानद ॥ १४ ॥ तस्य तीर्थेभवेत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ यावदस्थिमनुष्यस्यतिष्ठतेनर्म्मदाम्भसि ॥ १५ ॥ तावद्वसतिधर्म्मात्मा शिव

करे ॥ ११ ॥ बहुत अच्छे अनेक तरहके पाठों व वेदोंके पाठोंसे अथवा गऊ, सोना, कपड़े, ताम्बूल, भोजन ॥ १२ ॥ जेवर और रेशमी कपड़ोंके दानोंसे हे पाण्डुनन्दन ! उस तीर्थ मे ब्राह्मणका पूजनकर उसको इच्छाभोजन देवे ॥ १३ ॥ तो उसको करोड़ गुना फल होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये और हे मानद ! उस तीर्थ में जो भक्तिसे अपनी देहको छोड़े ॥ १४ ॥ तो हे नराधिप ! उसको जो पुण्य होताहै तिसको तुम सुनो कि मनुष्यकी हड्डी जबतक नर्मदाके जलमें रहती है ॥ १५ ॥

तबतक वह धर्मात्मा अतिदुर्लभ शिवलोकमें रहताहै तदनन्तर समय आनेपर वहासे गिरकर देवतासे फिर मनुष्य होताहै ॥ १६ ॥ कोटिध्वजोंका मालिक, लक्ष्मीवाला, सब धर्मों से युक्त, बुद्धिवाला, जीवित पुत्रवाला होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ और पृथिवीपर प्रसिद्ध भारी उमरवाला मनुष्य होताहै इन्द्र,चन्द्रमा, यमराज, रुद्र, आदित्य, वसु ॥ १८ ॥ और सब विश्वेदेवोंने लोकों के हितकी इच्छा से नर्मदाके उत्तर किनारेपर महादेवका स्थापन कियाहै ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मरे के नामसे वहा मकान बँनवाँताहै तो मनुष्यों में श्रेष्ठ वह मनुष्य उत्तमगतिको पाताहै ॥ २० ॥ और नीतिसे कमायेहुये धनसे जो वहां श्राद्ध करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री

लोकेसुदुर्लभे ॥ ततःकालात्प्रच्युतश्च देवोमानुष्यताङ्गतः ॥ १६ ॥ कोटिध्वजपतिःश्रीमाञ्जायतेनात्रसंशयः ॥ सर्व धर्म्मसमायुक्तो मेधावीजीवपुत्रकः ॥ १७ ॥ विख्यातश्चधराप्रष्ठे दीर्घायुर्मानवोभवेत् ॥ इन्द्रचन्द्रयमैरुद्रैरादित्यैर्वसु भिस्तथा ॥१८॥ विश्वेदेवैस्तथासर्वैः स्थापितस्त्रिदशेश्वरः॥ नर्म्मदोत्तरकूलेतु लोकानांहितकाम्यया ॥ १९ ॥ मानवः प्रेतमुद्दिश्य प्रासादंकारयेत्तुयः ॥ तस्मिन्नरवरश्रेष्ठः सद्गतिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ न्यायोपार्जितद्रव्येण यःश्राद्धंकुरु तेत्रवै ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः स्त्रियःशूद्राश्चसत्कृताः ॥ २१ ॥ तेपियान्तिपरेलोके शाङ्करेसुरपूजिते ॥ यःशृणोतिन रोभक्त्या माहात्म्यंतीर्थजंन्नृप ॥ २२ ॥ तस्यपापंप्रणश्येतषण्मासेनतुयत्कृतम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र कुमारेश्वरमुत्तमम् ॥ २३ ॥ प्रसिद्धंमवर्तीर्थानामगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ षण्मुखेनतपस्तप्तं सर्वपातकनाशन म् ॥ २४ ॥ स्नानंचपरयाभक्त्या सिद्धिःप्राप्तानराधिप ॥ देवसैन्याधिपोराजन्सर्वशत्रुविमर्द्दनः ॥ २५ ॥ उग्रतेजाम

और शूद्र कोईहो सत्कारयुक्त ॥ २१ ॥ वे भी देवताओं से पूजेहुये महादेवके श्रेष्ठलोकको जाते हैं और हे नृप ! जो मनुष्य तीर्थके माहात्म्यको भक्तिसे सुनताहै ॥ २२ ॥ उसका छह महीने का कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुमारेश्वरको जावे ॥ २३ ॥ जोकि सब तीर्थों में प्रसिद्ध अग-स्त्येश्वर कहाजाताहै वहा सब पापों के नाश करनेवाले तपको स्वामिकार्त्तिकने कियाहै ॥ २४ ॥ और बड़ी भक्तिसे स्नान भी कियाहै इससे हे नराधिप ! सिद्धिको पाते

हुये हे राजन्! जिससे सब देवताओंकी सेनाके मालिक व सब शत्रुओंके मारनेवाले ॥ २५ ॥ तीर्थकी सेवासे बड़े तेजवाले महात्मा होतेहुये तबसे लेकर नर्मदाके तटमें वह तीर्थ प्रसिद्ध होताहुआ ॥ २६ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये अपने मनको एकाग्र कियेहुये उस तीर्थमें जो भक्तिसे विशेषकर कातिककी अष्टमी व चौदसको ॥ २७ ॥ दही व दूध और घी से महादेवको स्नान करावे व गावे और विधिसे पिण्डदान करे ॥ २८ ॥ छह कर्मोंके करनेवाले, वेदपाठी ब्राह्मणों से जो कुछ वहां दियाजाताहै हे पाण्डुनन्दन! हे पार्थ! वह अक्षय होताहै ॥ २९ ॥ हे नृप! यह तीर्थ सब तीर्थोंसे बड़ाहै इसको चन्द्रमाने बनायाहै यह सब कुमारेश्वर तीर्थका फल तुमसे कहागया ॥ ३० ॥

हात्माच संजातस्तीर्थसेवनात् ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं विख्यातंनर्म्मदातटे ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या एकचित्तो जितेन्द्रियः ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां कार्त्तिकस्यविशेषतः ॥ २७ ॥ स्नापयेद्गिरिजानाथं दधिदुग्धेनसर्पिषा ॥ गीतंतत्र प्रकर्तव्यं पिण्डदानंयथाविधि ॥ २८ ॥ ब्राह्मणैःश्रोत्रियैःपार्थ षट्कर्म्मनिरतैःसदा ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेतत्र अक्षयंपाण्डुनन्दन ॥ २९ ॥ सर्वतीर्थात्परंतीर्थं निर्मितंशशिनानृप ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजंफलम् ॥ ३० ॥ कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्यतेपाण्डुनन्दन ॥ मृतःस्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ३१ ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र अगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रसिद्धोमहाभाग अगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथंसिद्धोमहाभाग अगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ कुम्भोद्भवोमहाभाग मित्रावरुणसम्भवः ॥ ३३ ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ महाप्रश्नोमहाराज यस्त्वयापरिप्रच्छितः ॥ ३४ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःसदा ॥ पुराकृतयुगेतात

हे पाण्डुनन्दन! कुमारके दर्शनसे पुण्य होताहै और वहां मराहुआ स्वर्गको पाताहै यह महादेवका कहाहुआ सत्यहै ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम अगस्त्येश्वरको जावे वहां हे महाभाग! मुनियोंमे श्रेष्ठ अगस्त्यजी सिद्धहुये हैं ॥ ३२ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि हे महाभाग! मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य वहां कैसे सिद्धहुये जोकि हे महाभाग! मित्र और वरुणके वीर्यसे कलश से पैदाहुये हैं ॥ ३३ ॥ वे नर्मदातटमें बैठकर कैसे सिद्ध हुये सो सब आप मुझसे कहें तब मार्कण्डेय बोले कि हे महाराज! जो

तुमने पूंछाहै वह बडाभारी प्रश्नहै ॥३४॥ सो उसको हम आपसे कहेंगे आप एकाग्रमन होकर सुनो हे तात! आगे सत्ययुग में भारसे दबीहुई पृथिवी ॥ ३५॥ इन्द्र से अपना हाल कहने के वास्ते स्वर्गको गई और हे नृप! इन्द्र से दैत्योंके भारसे दबेहुये जगत्को बताया ॥ ३६ ॥ तब इन्द्र बोले कि हे सुन्दरि! हमारे व तुम्हारे व जगत् के बनानेवाले ब्रह्माहैं इससे अपने मन्त्री देवताओंके सहित हम ब्रह्मलोकको जावेंगे ॥३७॥ तदनन्तर सबलोग जहां ब्रह्माथे वहांको गये तहां बृहस्पति बोले कि हे ब्रह्मन्! दैत्यो के भारसे दबीहुई पृथिवी निरालम्ब होरहीहै ॥३८॥ उस भारको नहीं सहसकी यह देवीरसातलको जातीहै इससे हे जगतीपते! पृथिवीके भारका उपायकरो॥३९॥

भारार्ताजगतीस्थिता ॥३५॥ विज्ञप्तुकामादेवेशं नाकपृष्ठंगतान्नृप ॥ इन्द्रायकथयामास दैत्यभारार्दितंजगत् ॥ ३६ ॥ इन्द्रउवाच ॥ ब्रह्माचजगतःकर्ता तवैवममसुन्दरि ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यामि मन्त्रिभिर्दैवतैःसह ॥ ३७ ॥ ततस्सर्वेगतास्त त्रयत्रासौकमलासनः ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ब्रह्मन्निर्लम्बनाजाता दैत्यभाराद्वसुन्धरा ॥ ३८ ॥ असहन्तीतुतंभारं याति देवीरसातलम् ॥ प्रतीकारंपृथिव्याश्च कुरुष्वजगतीपते ॥ ३९ ॥ सर्वसत्त्वोपकाराय सृष्टिस्त्वयिजगत्पते ॥ पितामह उवाच ॥ कर्तास्मिसर्वजगतामयोनिकलशोद्भवः ॥ ४० ॥ अगस्त्यस्तपसांराशिः शक्तोदैत्यनिवारणे ॥ एकतःसर्वदे वानांबलंतेजश्चजायते ॥ ४१ ॥ एकतोऋषिमुख्यस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ४२ ॥ तथैवकारणंचान्यत्कथयन्तिस्मभारत ॥ विज्ञातंदेवदेवेश विश्वामित्रचिकीर्षितम् ॥ ४३ ॥ त्रिशङ्कर्थेचयज्ञोयं विश्वामित्रेणसाधितः ॥ स्पर्द्धयाचवशिष्ठस्य यज्ञाङ्गानिसमासृजत् ॥ ४४ ॥ स्पर्द्धयासृजताकाशं भूमिंचान्यांसमा

हे जगत्पते! सब जीवोंके उपकारके वास्ते तुम्हारी रचना है तब ब्रह्मा बोले कि सब जगत्के बनानेवाले हमहैं परन्तु बिना योनिके कलश से पैदाहुये ॥ ४० ॥ और तपस्याका ढेर ऐसे अगस्त्यमुनि दैत्योंके हटाने में समर्थ हैं क्योंकि एक तरफ देवताओंका बल और तेजहो ॥ ४१ ॥ और एक तरफ अगस्त्यका तेज व बलहो वह अधिक होगा इसमें संशय नहीं है ब्रह्माजीके वचनको सुन इन्द्रसहित सब देवता ॥ ४२ ॥ उसीप्रकार अन्य कारणको हे भारत! कहतेहुये देवताओंने कहा कि हे देव-देवेश! विश्वामित्रको जो करनाहै उसको हम जानते हैं ॥ ४३ ॥ कि त्रिशंकु राजाके वास्ते विश्वामित्रने इस यज्ञको सिद्ध कियाहै वशिष्ठको हराय देनेके वास्ते यज्ञके

अङ्गोंको रचतेहुये ॥ ४४ ॥ उसी ईर्षासे आकाश व दूसरी जमीनको रचतेहुये जैसे हिमालय पर्वत पूर्व और पश्चिमके समुद्रको ॥ ४५ ॥ व्यापकर देवताओं के कामोंको करने के वास्ते पृथिवीमें स्थित होरहाहै इसीतरह यह विन्ध्याचल भी विश्वामित्रकी इच्छा से हिमालय से ईर्षा करताहुआ बढ़ाहै ॥ ४६ ॥ हे सुरेश्वर ! विश्वामित्रने देवताओंके कामोंको रोंकाहै इससे हे जगद्गुरो ! दोनों बातोंका उपाय आप सोचें ॥ ४७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि इसचालके चलनेवाले विश्वामित्रके गुरु मुनियों मे श्रेष्ठ ब्राह्मण एक अगस्त्यही है जोकि बडे तेजवाले हैं ॥ ४८ ॥ इससे देवताओं की रास्तेके खोलनेवाले अगस्त्य होवेंगे इसमें संशय नहीं है क्योंकि सब बुद्धिमान्

सृजत् ॥ यथातुहिमवच्छैलः पूर्वापरमहोदधिम् ॥ ४५ ॥ व्याप्यैवसंस्थितोभूम्यां देवकार्य्यार्थसाधकः ॥ तथासौस्पर्द्धतेविन्ध्यः स्पर्द्धयाकौशिकस्यच ॥ ४६ ॥ तिष्ठन्तिदेवकार्य्याणिकौशिकेनसुरेश्वर ॥ कार्य्यद्वयप्रतीकारं चिन्तयस्वजगद्गुरो ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकस्तस्यगुरुर्विप्रोह्यगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ उत्पथेवर्तमानस्य कौशिकस्यदुरासदः ॥ ४८ ॥ अगस्त्योमार्गभेत्तावै भविष्यतिनसंशयः ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता सर्वेषांवैनसंशयः ॥ ४९ ॥ वर्द्धनंपर्वतस्यास्य देवमार्गप्रवर्तनम् ॥ शास्तःकौशिकविप्रस्य वसुधायांसमन्ततः ॥ ५० ॥ क्षमःसमस्तकार्य्याणां मित्रावरुणनन्दनः ॥ एवंतुनिश्चयंकृत्वा देवाःसेन्द्रपितामहाः ॥ ५१ ॥ ययुर्वसुन्धरासार्द्धं हिमवन्तंनगेश्वरम् ॥ ददृशुस्तेस्थितं विप्रंध्यायमानञ्चयोगिनम् ॥ ५२ ॥ सुदृढंनिश्चलध्यानं मोक्षमार्गनियामकम् ॥ तंदृष्ट्वास्तोतुमारब्धाः सेन्द्रचन्द्राःसवारुणाः ॥ ५३ ॥ देवाऊचुः ॥ जयमिच्छस्वदेवानां भगवन्कलशोद्भव ॥ प्रसादसुमुखोभूत्वा देवानांभय

मनुष्योंका सिखानेवाला गुरुही होताहै इसमें सशय नहीं है ॥ ४९ ॥ इससे इस पर्वतको बढ़ने से रोंकना और देवताओंकी रास्तेका खोलना और सब ओर इस पृथिवी पर विश्वामित्रका सिखाना ॥ ५० ॥ इन सब कामों के करने में अगस्त्यही समर्थ हैं ऐसे निश्चयको कर इन्द्र और ब्रह्माके सहित सब देवता ॥ ५१ ॥ पृथिवीके सहित पर्वतों के ईश्वर हिमालयको जातेहुये और उन सबोंने वहां ध्यान करते हुये योगी ब्राह्मण अगस्त्यको वर्तमान देखा ॥ ५२ ॥ बहुत पुष्ट निश्चल ध्यानके करनेवाले व मोक्षके वास्ते नियमके करनेवाले उन अगस्त्यको देख इन्द्र, चन्द्रमा और वरुणके सहित सब देवता स्तुति करनेका प्रारम्भ करतेहुये ॥ ५३ ॥ देवता बोले कि

हे कलशोद्भव, भगवन्! आप अपनी दयासे प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं के जयकी इच्छाकरो क्योंकि देवताओं को भय आगया है ॥ ५४ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे देवताओ! क्या काम पैदा होगया है जिससे इतनी दूर सदा एकान्तके रहनेवाले जो हमहैं तिस मेरे पास आप सबलोग आयेहो ॥ ५५ ॥ इससे कहो जो हम को करना होवे वह सब हमकरें तदनन्तर थोडी हवासे डोलतेहुये कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ ५६ ॥ एक हजार नेत्रों से इन्द्रने बृहस्पतिको इशारा किया तब बृहस्पति बोले कि हे महाभाग! आगे देवताओं के कार्य्योंकी सिद्धिके वास्ते आपने ॥ ५७ ॥ सब समुद्रोंको सोखलिया था जैसे ईश्वर जगत्को सुखादेवे अब इस समयमें अपने

मागतम् ॥ ५४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंकार्य्यन्तुसमुत्पन्नं येनदूरंसमागताः ॥ एकान्तवासिनंनित्यं तम्मांयूयंसुराश्चभोः ॥ ५५ ॥ उच्यतांयन्मयाकार्य्यं तत्सर्वंकरवाण्यहम् ॥ ततोमन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना ॥ ५६ ॥ गुरुंनेत्रसहस्रेण प्रेरयामासवृत्रहा ॥ वाक्पतिरुवाच ॥ त्वयापूर्वंमहाभाग देवकार्य्यार्थसिद्धये ॥ ५७ ॥ समुद्राःकर्षितास्सर्वे ईश्वरेणयथाजगत ॥ विध्वस्तास्त्रिदशास्सर्वे दानवैर्बलदर्प्पितैः ॥ ५८ ॥ जितादेवास्तुतेसर्वे दानवेभ्यः पराङ्मुखाः ॥ तेषांवरापहाराय समुद्राश्शोषिताःपुरा ॥ ५९ ॥ साम्प्रतंदुःखिताधात्री पश्येमांभूतधारिणीम् ॥ दैत्यभारेणदुःखार्ता भूमिर्जातारसातलम् ॥ ६० ॥ गन्तव्यंदक्षिणामाशां तपोराशेद्विजोत्तम ॥ नर्म्मदोदधिमर्यादां कुरुपुण्यांमहाद्विज ॥ ६१ ॥ वृद्धिंविन्ध्यनगस्यापि देवकार्य्यंसमुद्धर ॥ कौशिकोथकनीयांस्ते यउन्मार्गप्र

बलसे अहङ्कारको प्राप्तहोरहे सब दानवोंने देवताओं को हराय दियाहै ॥ ५८ ॥ हारेहुये उन सब देवतालोगोंने दानवोंसे अपने मुखोंको फेरलिया है उन दानवों के वरको नाश करने के लिये आगे आपने समुद्रोंको सोखलिया था ॥ ५९ ॥ सो अब इस समयमें पृथिवी दुःखित होरही है इस प्राणियोंके धारण करनेवाली पृथिवीका आप देखो दैत्यों के भार व दुःख से विकल पृथिवी रसातल को चलीजावेगी ॥ ६० ॥ इस से हे तपोराशे! हे द्विजोत्तम! अब आप को दक्षिण दिशा चलना चाहिये हे महाद्विज! नर्मदा और समुद्रकी मर्य्यादा को साफ करदेवो ॥ ६१ ॥ देवताओं के कार्य के वास्ते विन्ध्यपर्वत का बढ़नाभी रोंकदेवो जो उसके बढ़ानेवाले विश्वामित्र

हैं वे आपसे छोटे हैं ॥ ६२ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे वसुन्धरे ! हम देवताओं के कार्य को करेंगे तुम सुखसे बैठो हम दक्षिण दिशा को जावेंगे और अपने शिष्य के रोंकने में हम समर्थ हैं ॥ ६३ ॥ इस पर्वत की बाढ़िको हम रोंकेंगे इस में संशय नहीं है तब देवता बोले कि दक्षिण को जाकर देवताओं के सहित इसको जरूर देखो ॥ ६४ ॥ हे विप्र ! सिंह के सूर्य होनेपर जो लोग भक्ति से नहीं जावेंगे उन का धन व धान्य और सुख जरूर नष्ट होगा ॥ ६५ ॥ देवताओं के अधिकार के वास्ते गयेहुये अगस्त्यजी जरूरही देखपड़ेंगे देवतालोग इस प्रतिज्ञा को कर पृथिवी के सहित जातेहुये ॥ ६६ ॥ तपस्याकी राशि जो अगस्त्य है उनके पीछे चारो तरफ

वर्तकः ॥ ६२ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्य्यंकरिष्यामि सुखंतिष्ठवसुन्धरे ॥ गच्छामिदक्षिणामाशां शक्तःशिष्यस्यवारणे ॥ ६३ ॥ वर्द्धनंपर्वतस्यास्य वारयामिनसंशयः ॥ देवाऊचुः ॥ याम्यांगत्वासुरैस्सार्द्धं द्रष्टव्योयन्नसंशयः ॥ ६४ ॥ सिंहस्थेभास्करेविप्र येनयास्यन्तिभक्तितः ॥ नश्यतेचधनंधान्यं तेषांसौख्यन्नसंशयः ॥ ६५ ॥ अधिकारायदेवानां सचदृष्टोभविष्यति ॥ तत्प्रतिज्ञायगीर्वाणाःसमंवसुधयागताः ॥ ६६ ॥ अगस्त्यंतपसांराशिं निर्गच्छन्तस्समन्ततः ॥ अगस्त्यपदविक्षेपाच्चलिताचवसुन्धरा ॥ ६७ ॥ मनोवेगेनसम्प्राप्तः कौशिकोयत्रतापसः ॥ कौशिकोपिगुरुंदृष्ट्वा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ६८ ॥ धन्योहंमुनिशार्दूल प्रीतोहंतवदर्शनात् ॥ अर्घपात्रंसमादाय दध्यक्षतसमन्वितम् ॥ ६९ ॥ दूर्वांचचन्दनंपूज्य भक्त्यापात्रेसमाहितम् ॥ गुरुपादपरिक्षिप्त उवाचमधुरन्तदा ॥ ७० ॥ आदेशो दीयतांतात तवप्रेष्योद्विजोत्तम ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्य्यविघातञ्च कौशिकत्वंविसर्जय ॥ ७१ ॥ देवकार्य्यवि

से सब चले अगस्त्य के पांवों के धरने से पृथिवी डगमगाती हुई ॥ ६७ ॥ मन के वेगसे वहां पहुँचे जहां तपस्वी विश्वामित्र थे विश्वामित्र भी गुरुको देख साष्टाङ्गप्रणामकर बोले ॥ ६८ ॥ कि हे मुनिशार्दूल ! मैं धन्यहूं और आपके दर्शनसे बडा प्रसन्न हुआ ऐसे कह दही और अक्षतों से युक्त अर्घपात्र को लेकर ॥ ६९ ॥ पात्रमें रक्खे हुये दूब व चन्दनसे भक्तिपूर्वक उनका पूजनकर गुरुके चरणोंपर गिरे और तब मीठे वचन बोले ॥ ७० ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञादीजावे हे द्विजोत्तम ! मैं आपका दासहूं तब अगस्त्य बोले कि हे कौशिक ! देवताओं के कामों का रोंकना तुम छोड़देवो ॥ ७१ ॥ हे विश्वामित्र ! जो तुम्हारी निश्चल भक्ति हमारे ऊपर होवे तो देव-

ताओंके कार्य के विरुद्ध कामको तुम मतकरो ॥ ७२ ॥ और इस सब कुमार्गकी चालको तुम छोंडदेवो तब विश्वामित्र बोले कि बुद्धिवालों का सिखानेवाला गुरु होता
है और मूर्खोंका सिखानेवाला राजा होताहै ॥ ७३ ॥ और यहा छिपे पापोंवाले मनुष्यों के सिखानेवाले यमराज हैं वशिष्ठ के विरोधसे त्रिशंकु ने मुझ से अतियाचना
की थी ॥ ७४ ॥ सो आजसे हे द्विजोत्तम ! मैंने उन सब बातों को छोड दिया ऐसे कहे गये अगस्त्यजी अतिदुर्लभ नर्मदा के तटको शीघ्र चलेगये ॥ ७५ ॥ उत्तर
वाले किनारे पर बैठकर वहा तपस्या का प्रारम्भ करतेहुये नर्मदा तो तीनों लोकों में पवित्र व पापोंकी नाश करनेवाली है ॥ ७६ ॥ मित्र और वरुण के पुत्र अगस्त्य

सृष्टेन कर्मणानप्रवर्तसे ॥ यदितेनिश्चलाभक्तिर्विश्वामित्रममोपरि ॥ ७२ ॥ तदात्वंवर्जयेस्सर्वमुन्मार्गस्यप्रवर्तनम् ॥
विश्वामित्रउवाच ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्तादुरात्मनाम् ॥ ७३ ॥ इहप्रच्छन्नपापानां शास्तावैवस्वतोय
मः ॥ स्पर्धयाचवशिष्ठस्य त्रिशङ्कुर्मेसुयाचितः ॥ ७४ ॥ अद्यप्रभृतितत्सर्वं त्यक्तमेवद्विजोत्तम ॥ इत्युक्तःप्रययौशीघ्रं
रेवातीरंसुदुर्लभम् ॥ ७५ ॥ उत्तरंतटमासाद्य तपस्तत्रसमारभत् ॥ नर्म्मदात्रिषुलोकेषुपवित्रापापनाशिनी ॥ ७६ ॥
निश्चयंपरमंकृत्वा मित्रावरुणनन्दनः ॥ शिलातलेनिविष्टस्तु चचारविपुलंतपः ॥ ७७ ॥ वायुभक्षस्सदाकालं कुम्भ
योनिर्महातपाः ॥ ज्ञातोभक्तियुतःश्रेष्ठ ईश्वरेणयुधिष्ठिर ॥ ७८ ॥ प्रत्यक्षोद्वादशेवर्षे सञ्जतःपार्वतीपतिः ॥ ईश्वरउवा
च ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठ तपसाद्योतितन्नभः ॥ ७९ ॥ निश्चयंतवतुष्टोस्मि मित्रावरुणनन्दन ॥ वर्षायुतसहस्रेण नान्ये
षांवरदोह्यहम् ॥ ८० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ संसारपल्वलातीतसृष्टिजन्मविवर्जित ॥ दुर्लक्ष्यासुरसङ्घानां प्रमथेशनमो

जी उत्तम निश्चयको कर चट्टानके ऊपर बैठकर बडे तपको करतेहुये ॥ ७७ ॥ बडे तपवाले अगस्त्यजी हमेशा हवाका भोजन करनेलगे तब हे युधिष्ठिर ! महादेवजी
उनको श्रेष्ठ व भक्ति मे युक्त जाना ॥ ७८ ॥ इस से पार्वतीजी के पति महादेवजी बारहवीं वर्षमें उनको प्रत्यक्ष होकर मिले और महादेवजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ !
वाह २ आपने अपनी तपस्यासे आकाश को उजेरा करदिया है ॥ ७९ ॥ हे मित्रावरुणनन्दन ! हम निश्चय मे आपपर प्रसन्न हैं औरो को हम हजारो वर्षो मे भी
वर के देनेवाले नहीं होसके हैं ॥ ८० ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे संसाररूपी झील से अलग रहनेवाले ! हे ससार मे जन्म के नहीं लेनेवाले ! हे दैत्यों को दुःखसे देख

पडनेवाले ! हे गणो के मालिक ! आप के लिये नमस्कार है ॥ ८१ ॥ नन्दी व स्कन्दआदि गण व देवता मोह को प्राप्त होरहे वृथा क्लेश को प्राप्त होते हैं क्योंकि जो सनत्कुमार आदि उत्तम व्रतवाले बडे २ ऋषिलोग हैं ॥ ८२ ॥ वे भी आपके रूप को नहीं जानते हैं इससे हे शम्भो ! हे नाथ ! आप के लिये नमस्कार है ब्रह्माआदि सब देवता आपको दिन रात ध्यावते हैं ॥ ८३ ॥ फिर भी ये लोग आप के रूपको नहीं देखते हैं इससे हे धातः, देव ! आपके लिये नमस्कार है तब महादेवजी बोले कि ऊपर रहताहै वीर्य जिनका और योनि से नहीं पैदा होनेवाले हे विप्रेन्द्र ! आपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ८४ ॥ पार्वती के सहित आपकी भक्ति से बँधेहुये हम फिर भी

स्तुते ॥ ८१ ॥ नन्दिस्कन्दगणादेवा वृथाक्लिश्यन्तिमोहिताः ॥ सनत्कुमारमुख्याश्च ऋषयःशंसितव्रताः ॥ ८२ ॥ त्वद्रूपन्तेनजानन्ति शम्भोनाथनमोस्तुते ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वे ध्यायन्तित्वामहर्निशम् ॥ ८३ ॥ नैतेपश्यन्तित्वद्रूपं धातर्देवनमोस्तुते ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रसन्नस्तवविप्रेन्द्रऊर्द्ध्वरेतस्त्वयोनिज ॥ ८४ ॥ तवभक्तिगृहीतोहंप्रसन्नउमया सह ॥ अगस्त्यउवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ ८५ ॥ प्रत्यक्षोभवतीर्थेस्मिन्यदिसत्यंवरप्रदः ॥ अन्तर्जलेसदाकालं धर्म्माध्यक्षोमहेश्वर ॥ ८६ ॥ शिलायांभवनित्यञ्च नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ देवकार्य्यस्यकर्ताहं त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८७॥ तथेतिचोक्त्वावृषवाहनोपि जगामकैलासनगन्नगेशः ॥ अयोनिजोयोगबलेनयुक्तः प्रविद्ययालिङ्गबलाच्छिवस्य ॥ ८८ ॥ जगामदक्षिणामाशां सुरसङ्घैरभिष्टुतः ॥ तपोवनंयथापुण्यं देवदानवसेवितम् ॥ ८९ ॥ प्रविष्टोमुनिशार्दूलः पवित्रंदेवकम्बलम् ॥ निश्चलासुसमादेवी संस्थिताधरणीतथा ॥ ९० ॥ पुष्पाणिववृषुर्देवा जयश

प्रसन्न हैं तब अगस्त्यजी बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और जो आपको मुझे वरदेने योग्य है ॥ ८५ ॥ तो जो सत्यही वरके देनेवाले हो तो इस तीर्थ मे प्रत्यक्ष होवो हे धर्मके मालिक, महेश्वर ! जल के भीतर हमेशा आप रहो ॥ ८६ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर पत्थरकी शिला में भी हमेशा वासकरो और हे जगत्पते ! आपके प्रसाद से देवताओ के कामके करनेवाले हम होवें ॥ ८७ ॥ कैलास पर्वत के मालिक महादेवजी ऐसाहीहो, यह कहकर कैलास पर्वत को चलेगये और योगबल व महादेव के बल उत्तम विद्या से युक्त अगस्त्य भी ॥ ८८ ॥ देवताओं से स्तुति कियेगये मुनिश्रेष्ठ दक्षिण दिशाको चलेगये देवता व दैत्योंसे सेवित

पुण्यवाले व पवित्र देवकम्बल नाम तपोवन में पैठतेहुये और पृथिवीदेवी निश्चल व अत्यन्त बराबर होकर स्थित होतीहुई ॥ ८९ । ९० ॥ देवतालोग फूलोंकी वर्षा व जय जयकार को बार २ करतेहुये युधिष्ठिर बोले कि हे मुनिसुव्रत ! उस तीर्थ की जो पुण्यहो उसको कहो ॥ ९१ ॥ क्योंकि हम ब्राह्मण व भाइयों के सहित इस का पूरा हाल सुना चाहते हैं जिससे यह तीर्थ पितर व सब तीर्थों व सब जीवोंका उपकार करनेवालाहै ॥ ९२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे जनाधिप ! यह तीर्थ सर्व कालमें पितरों को मोक्षका देनेवाला कहागया है कातिक मास के अँधेरेपाखकी शिनचतुर्दशीको॥ ९३ ॥ काम और क्रोधको छोड जो मनुष्य भक्तिसे उपासकर व शमी

आदिमध्यावसानेच ब्राह्मणैस्स ॥ ९१ ॥ ठदंपुनःपुनः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ तस्यतीर्थस्ययत्पुण्यं कथ्यतांमुनिसुव्रत ॥ ९१ ॥ आदिमध्यावसानेच ब्राह्मणैस्स हबान्धवैः ॥ पितृणांसर्वतीर्थानां सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥९२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पितृणांमोक्षदंप्रोक्तं सर्वकालेजनाधि प ॥ शिवाख्यांकार्त्तिकेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ९३॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या कामक्रोधविवर्जितः ॥ शमीतरुम मास्थाय रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ९४ ॥ तत्कथालापसंयुक्तोधर्म्माख्यानैर्द्विजैस्सह ॥ गवांघृतेनदेवेशं रात्रौचस्नापये त्पुनः ॥ ९५ ॥ घटेनैवघटार्द्धेन तदर्द्धेनस्वशक्तितः ॥ घृतेनबोधयेद्दीपं घृतंविप्रायदापयेत् ॥ ९६ ॥ पञ्चामृतेनगव्ये न स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ प्रभातेपूजयेद्विप्रान्स्वदारनिरतान्सदा ॥ ९७ ॥ वेदाभ्यसनशीलांश्च परदारविवर्जितान् ॥ शूद्रसेवारतानित्यं धूर्तकर्म्मरताजनाः ॥ ९८ ॥ पतिताःकूटसाक्ष्येण प्रतिग्रहरताःसदा ॥ वेदद्वेषणशीलाश्च कुब्जाश्च विकलाःसदा ॥ ९९ ॥हीनातिरिक्तगात्राये द्विजाःश्राद्धेविवर्जिताः ॥ वेदोक्तेनविशुद्धाङ्गाः पूज्यानित्यंयुधिष्ठिर॥१००॥

वृक्षके नीचे बैठकर रातको जागरण करे ॥ ९४ ॥ और महादेवकी कथाको कहे फिर धर्म के कहनेवाले ब्राह्मणों के सहित गौवों के घी से रातमें महादेव को स्नान करावे ॥ ९५ ॥ एक घडा व आधे व उसके आधे घीसे अपनी शक्ति के अनुसार दियाको जलावे बाकी बचे घीको ब्राह्मण को देवे ॥ ९६ ॥ फिर गऊके पञ्चामृत से महादेवको स्नानकरावे प्रातःकाल अपनीही स्त्रीके ग्रहण करनेवाले व वेदके अभ्यास करनेवाले व पराई स्त्रीसे विमुख ब्राह्मणोंका सदा पूजनकरे व हमेशा शूद्रोंकी सेवामें व छलवाले कामों में लगेहुये ॥ ९७ । ९८ ॥ धर्म से भ्रष्ट व झूंठी साखी देनेवाले व दान के लेनेवाले व वेदों के साथ वैर करनेवाले व कुबरे व विकल ॥ ९९ ॥

व घाट बाढ़ अङ्गोंवाले जो ब्राह्मण हैं वे श्राद्धमें मना होते हैं और वेदोक्त कामोंके करने से जिनके शरीर शुद्ध हैं हे युधिष्ठिर ! ऐसे ब्राह्मण हमेशा पूजने लायक होते हैं ॥ १०० ॥ पृथिवी, कपडे और विशेषकर कन्याओं के दानों से ऐसे ब्राह्मण लोग श्राद्धादि योगों में भक्ति में तत्पर पुरुषों करके पोषण करने योग्य हैं ॥ १ ॥ और अपने कल्याण के वास्ते वहां गोदान करना चाहिये दूधवाली बछड़ाके सहित मोटी ताजी, सीधी गऊको देवे ॥ २ ॥ व बडीभक्तिसे कम्बल, खडाऊं, जूता, सोनहली सुजनी, पान व भोजन भी उसके साथमें देवे ॥ ३ ॥ गऊभी घण्टा व जेवरोंसे सजी झूल आदि दो कपड़ोंसे युक्त, सोने के सींगों व रूपेके खुरोंवाली व कांसेकी दोहनी

भूमिदानेनवस्त्रेण कन्यादानैर्विशेषतः ॥ श्राद्धकालेषुयोगेषु मर्तव्याभक्तितत्परैः ॥ १ ॥ गोदानंतत्रकर्तव्यं श्रेयोर्थमात्मनस्तथा ॥ सवत्सांक्षीरिणींशुभ्रां पुष्टांवैशीलसंयुताम् ॥ २ ॥ कम्बलंपरयाभक्त्या पादुकोपानहौतथा ॥ हिरण्यरुक्मिणींकन्थां ताम्बूलंभोजनन्तथा ॥ ३ ॥ घण्टाभरणशोभाढ्यां वस्त्रयुग्मावगुण्ठिताम् ॥ स्वर्णशृङ्गींरौप्यखुरीं कांस्यदोहनसंयुताम् ॥ ४ ॥ उच्चार्यपरयाभक्त्या यावदाहूतसंप्लवम् ॥ सर्वंकोटिगुणंपार्थ शुभंवायदिवाशुभम् ॥ ५ ॥ तीर्थाख्यानञ्चयोभक्त्या पठतेशृणुतेथवा ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शिवलोकेवसत्यपि ॥१०६॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेऽगस्त्यतीर्थवर्णनोनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथानन्देश्वरंगच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ रुद्रस्यपरमानन्दो यत्रजातोयुधिष्ठिर ॥ १ ॥ तत्तीर्थं कथयिष्यामि सर्वपापक्षयंकरम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ आनन्दश्चैवसञ्जातो रुद्रस्यद्विजसत्तम ॥ २ ॥ कथयस्वमहा

से संयुक्त होवे ऐसी गऊको ॥ ४ ॥ संकल्प उच्चारणकर बडीभक्तिसे देवे तो हे पार्थ ! उस तीर्थपर कियागया भला बुरा सब काम प्रलयतक करोडगुना होता है ॥ ५ ॥ इस तीर्थ की कथाको जो भक्तिसे कहता, सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है व शिवजी के लोक में रहता है ॥ १०६ ॥ इति पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! अब इसके बाद सब देवताओं से नमस्कार किये हुये आनन्देश्वर को जावे जहां महादेवजी को बडा आनन्द हुआ है ॥ १ ॥ सब पापोंके नाश करनेवाले उस तीर्थको हम तुमसे कहेंगे तब युधिष्ठिर बोले कि हे द्विजसत्तम ! जहां महादेवको आनन्द हुआ है ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस तीर्थ

को संक्षेप से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! उत्तम आनन्देश्वर तीर्थको हम कहते हैं ॥ ३ ॥ दानवों को मारकर देवताओं के देवता महादेवजी देवता, किन्नर, यक्ष और सांप आदि सबोंसे पूजेगये ॥ ४ ॥ बड़े आनन्द को पाकर व भैरवरूप को धरकर पार्वती को आधे अङ्गमें धरेहुये महादेवजी नाचतेहुये ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! भूत, वेताल, कङ्काल और भैरवों से युक्त नर्मदा के उत्तर व दक्षिणवाले किनारे पर नाचे ॥ ६ ॥ प्रसन्न होरहे देवताओं ने वहा कमल के आसन पर महादेव को स्थापित किया तब से महादेव आनन्देश्वर कहेजाते है ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! अष्टमी व चौदस व पूर्णमासी को विधि से स्नानकर महादेव का पूजन

भागसंक्षेपान्मुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामिनृपश्रेष्ठ आनन्देश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ दानवानांवधंकृत्वा देवदेवश्चशङ्करः ॥ पूजितोदैवतैस्सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नगैः ॥ ४ ॥ आनन्दंपरमंप्राप्य ननर्तवृषवाहनः ॥ भैरवंरूपमासाद्य गौरीचार्द्धाङ्गधारिता ॥ ५ ॥ भूतवेतालकङ्कालैर्भैरवैर्भैरवोवृतः ॥ नर्म्मदायोत्तरेतीरे दक्षिणेपाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥ तुष्टैर्मरुद्गणैस्तत्र स्थापितःकमलासनः ॥ तदाप्रभृतिवैदेव आनन्देश्वरउच्यते ॥ ७ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां पौर्णमास्यान्नराधिप ॥ विधिस्नात्वार्चयेद्देवं सुगन्धेनविलेपयेत् ॥ ८ ॥ ब्राह्मणान्पूजयेत्तत्र यथाशक्त्यायुधिष्ठिर ॥ गोदानंतत्रकर्त्तव्यं वस्त्रदानंतथैवच ॥ ९ ॥ वसन्तस्यत्रयोदश्यां श्राद्धंतत्रैवकारयेत् ॥ इङ्गुदैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतेनजलेनवा ॥ १० ॥ प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमानन्देश्वरतीर्थके ॥ प्रेताआनन्दिताःस्युस्तेयावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ११ ॥ सन्ततिर्द्धनसौख्यंच सप्तजन्मनिजायते ॥ आनन्दश्चभवेत्तेषां जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र मातृतीर्थं

करे और सुगन्ध से उनको लेपनकरे ॥ ८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! वहां यथाशक्ति ब्राह्मणों का पूजनकरे फिर वहां गोदान वैसेही वस्त्रोंका भी दान करना चाहिये ॥ ९ ॥ वसन्तकी तेरस को इंगुआ, वेर, बेल, अक्षत और जलसे भी वहीं श्राद्ध करे ॥ १० ॥ व आनन्देश्वरतीर्थ में प्रेतोंके श्राद्धको करे तो वे प्रेत महाप्रलय तक आनन्दवान् रहते है ॥ ११ ॥ सन्तान और धनका सुख सात जन्मोंतक रहता है और हे युधिष्ठिर ! उनको जन्म २ प्रति आनन्द होता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे

राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम मातृतीर्थको जावे जोकि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सङ्गम के समीपमेंहै ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! नर्मदा के तटमें मातृका रहती थीं जो किसी समय पार्वतीने महादेवसे याचना की ॥ १४ ॥ तब महादेवने उन योगिनियोंसे कहा कि कष्ट २ अच्छा नहींहै परन्तु बोले कि योगियों के वर देनेवाले हम तुम को भी वर देवैंगे ॥ १५ ॥ तब योगिनियां बोलीं कि हे महेश्वर ! आपके प्रसाद से हमलोग सब देवताओं के जीतनेलायक न होवें और तीर्थोंके साथ पृथिवी में हम भी प्रसिद्ध होवें ॥ १६ ॥ तब महादेव ने कहा कि हे योगिनियो ! ऐसाही हो यह कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि उस तीर्थमें नवमी को

मनुत्तमम् ॥ सङ्गमस्यसमीपस्थं नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ मातरस्तत्रराजेन्द्र संजातानर्म्मदातटे ॥ उमयायाचितस्तत्र व्यालयज्ञोपवीतकः ॥ १४ ॥ उवाचयोगिनीवृन्दं कष्टंकष्टन्नशोभनम् ॥ उवाचवरदश्चास्मि योगिवृन्दवरप्रदः ॥ १५ ॥ योगिन्यऊचुः ॥ अजेयास्सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तीर्थानामभिसंख्याने प्रख्यातावसुधातले ॥ १६ ॥ एवंभवतुयोगिन्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोमर्त्यो नवम्यांविजितेन्द्रियः ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या पूजयेन्मातृमण्डलम् ॥ १८ ॥ तस्यतामातरःप्रीताःप्रीतोयंवृषवाहनः ॥ बन्ध्यायामृतवत्साया अपुत्रायायुधिष्ठिर ॥ १९ ॥ स्नपनंचारभेत्तत्र मन्त्रज्ञैर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ सहिरण्येनकुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वितम् ॥ २० ॥ स्नापयेत्पुत्रकामाच कांस्यपात्रेणमन्त्रतः ॥ पुत्रान्सालभतेनारी वीर्य्ययुक्तान्गुणान्वितान् ॥ २१ ॥ यंयंकाममभिध्यायेत्तंतंसालभतेनृप ॥ मातृतीर्थात्परन्तीर्थं नास्त्यन्यत्पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ तस्यैवानन्तरंतात जलमध्येश्वर

बडी भक्ति से इन्द्रियोंको जीतेहुये जो मनुष्य उपासा रहकर मातृकाओं का पूजन करताहै ॥ १८ ॥ उसपर वे मातृकायें व ये महादेवजी प्रसन्न होतेहैं और हे युधिष्ठिर! बांझ व जिसके लडके मरजाते हैं व जिसके पुत्र नहीं है ऐसी स्त्री ॥ १९ ॥ वहां वेदके जाननेवाले उत्तम ब्राह्मणों से महादेवजी का सोना व घड़ा व पञ्चरत्न व फलोंसे युक्त स्नान कराना आरम्भ करे ॥ २० ॥ व जो पुत्रकी इच्छावाली स्त्री मंत्रों द्वारा कांसे के पात्रमे महादेव को स्नान करावे तो वह ताकतवाले व गुणोंसे युक्त लड़कों को पावेगी ॥ २१ ॥ हे नृप ! और भी जिस २ कामनाको करे उस २ को वह पातीहै और हे पाण्डुनन्दन ! इस मातृतीर्थ से परे और तीर्थ नहीं है ॥ २२ ॥

हे तात ! अब उसी तीर्थ के बाद पानीमें शिवजी का उत्तम लिंगहै देवता और दैत्योंसे नमस्कार कियागया लिङ्गेश्वर इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि जिस नर्मदा को महादेवजी ने कभी नहीं छोडा उसको कैसे छोड़ा और जिनके हाथमें त्रिशूल है व जो पिनाक धारण करनेवाले हैं ऐसे महादेव जी पानीके बीचमें कैसे रहतेहै ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! सो हम आपकी वाणीसे सुना चाहतेहैं तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन! इस लोकमें यह आश्चर्य रूप महादेवजी की प्रतिष्ठा है ॥ २५ ॥ हम पण्डित हैं बुढापे के कारण आप से कहते हैं हे नृपोत्तम ! आगे सत्ययुगमें हे तात! अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त एक

म्परम् ॥ लिङ्गेश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अत्यक्तासातुरेवाया कथंत्यक्ताचश म्भुना ॥ जलमध्येहितिष्ठेत शूलपाणिःपिनाकधृक् ॥ २४ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि तववाक्याद्द्विजोत्तम ॥ मा र्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्यभूतालोकेस्मिन्प्रतिष्ठापाण्डुनन्दन ॥ २५ ॥ पण्डितोवृद्धभावेन कथयामिनृपोत्तम ॥ आ दौकृतयुगेतात दानवोबलदर्पितः ॥ २६ ॥ कालबाष्पइतिप्रोक्तो दुर्जयोदेवदानवैः ॥ तपश्चचारविपुलं नर्म्मदायाजले शुभे ॥ २७ ॥ आराधयन्महादेवमुग्रेणतपसाभृशम् ॥ ततस्तुतोषभगवान्सपत्नीकोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ ईश्वरउवा च ॥ भोभोवत्सवरंब्रूहि तुष्टोहंतवभक्तितः ॥ देवस्यवचनंश्रुत्वा कालबाष्पोऽब्रवीद्वचः ॥ २९ ॥ देवाश्चैवमयाभग्नाः प्र सादात्तवशूलिनः ॥ संग्रामेचविषण्णोहं तस्मादाराधनंकृतम् ॥ ३० ॥ हस्तंशिरसियस्यैव दास्यामिचमहेश्वर ॥ नस जीवेत्पुमाँल्लोके वरमेतंददस्वमे ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्तेमिलषितंदैत्य तत्तथैवभविष्यति ॥ इतिश्रुत्वावचोदैत्यः

दानव होताहुआ ॥ २६ ॥ कालबाष्प इस नामसे कहाजाता देवता और दैत्यों से नहीं जीता जासक्ता, नर्मदा के उत्तमजल में बडी तपस्या को करताहुआ ॥ २७ ॥ और उस अतिकठिन तपस्या से महादेवको प्रसन्न करताहुआ तदनन्तर पार्वती सहित महादेवजी उसपर प्रसन्न हुये ॥ २८ ॥ और महादेवजी बोले कि हे वत्स ! तुम वरको मांगो हम तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्नहैं तब महादेवके वचनको सुनकर कालबाष्प वचन बोला ॥ २९ ॥ कि त्रिशूलवाले आपके प्रसाद से मैंने सब देवताओं को जीतलिया है अब लड़ाई से मैं विरक्त हूं इससे आपकी सेवा की है ॥ ३० ॥ इससे हे महेश्वर ! मैं जिसके शिरपर अपना हाथ रखदेऊं वह पुरुष लोकमें न

जीवे बस इस वरको आप मुझे देवें ॥ ३१ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे दैत्य ! जो तेरे मनमेंहै वह वैसाही होगा यह वचन सुनकर वह दैत्य महादेवही के सामने दौडा ॥ ३२ ॥ और कहा कि तुम्हारे शिरपर हम हाथ धरेंगे क्योंकि तुम्हारा वचन सच्चा नहीं है तब उससे भागेहुये महादेवजी विष्णुजी की शरण गये ॥ ३३ ॥ विष्णु से सब हाल कहकर फिर उन्हीं में आप लीन होगये विष्णु बोले कि हे महादेव ! दैत्योंके मालिक उस दुष्टको हम मारते है ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर ! हम उसीके शिरपर उसका हाथ रखवाय देवेंगे तदनन्तर बड़े वेगसे युक्त नर्मदातटमें प्रवेश किया ॥ ३५ ॥ स्त्री के रूपको धरेहुये भगवान् दैत्य के सामने आतेहुये बत्तीस लक्षणो से

शम्भुमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३२ ॥ हस्तंतेमूर्द्धिदास्यामि नतत्सत्यंवचस्तव ॥ रुद्रःपलायितस्तेन केशवंशरणङ्गतः ॥ ३३ ॥ निवेद्यकेशवंसर्वं तस्मिन्नेवन्यलीयत ॥ केशवउवाच ॥ हन्म्यहन्तंमहादेव दुष्टंदैत्यजनेश्वरम् ॥ ३४ ॥ हस्तंशिरसि तस्यैवदापयामिमहेश्वर ॥ ततस्त्वरितमापन्नः प्रविष्टोनर्म्मदातटे ॥ ३५ ॥ कृष्णःस्त्रीवेषधारीच दैत्यसम्मुखमागतः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता नियुक्ताकामसायकैः ॥ ३६ ॥ मधुमाधवकेशम्भुं ध्यात्वासर्वत्रकैशवी॥वनंवभ्रामसर्वत्रसुशीलाव टपादपम् ॥ ३७॥ क्षोभयन्तीवचित्तानि सारेमेधर्म्मनन्दन॥ रिङ्गमाणश्चदैत्योसौ कालबाष्पस्सुदुर्जनः॥ ३८ ॥प्रविष्टस्स वनेरम्ये यत्रसाशुभलोचना ॥ अहंभवामितेभर्तादुर्जयोदेवदानवैः ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यस्वामिनीत्वंच प्रसीदममसुन्दरि ॥ श्रीकृष्णउवाच॥ यदिमांमन्यसेभार्य्यां प्रत्ययश्चभवेन्मम॥ ४० ॥ दानवउवाच ॥ स्वयंभवामितन्वङ्गि शपथंममसा

युक्त कामदेवके बाणों से भरीहुई ॥ ३६ ॥ वसन्तऋतुमें महादेवजी का सर्वत्र ध्यानकर उत्तम शीलवाली भगवती वह स्त्री सब कहीं जिसमें एक बडा वरगदका वृक्ष था ऐसे वनमें घूमतीहुई ॥ ३७ ॥ हे धर्मनन्दन ! सबोंके चित्तोंको खलभलाती हुई वह रमण करती थी तबतक वह दुर्जन कालबाष्प दानव भी घूमताहुआ ॥ ३८ ॥ जहां वह सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्री थी उस रमणीक वनमें पैठताहुआ और उस स्त्रीसे बोला कि हम तेरे पति होवेंगे जोकि देवता और दानवोंसे नहीं जीते जासक्ते है ॥ ३९ ॥ तू तीनों लोकोंकी मालकिनी होवेगी इससे हे सुन्दरि ! मुझपर प्रसन्नहो तब भगवान् बोले कि जो आप मुझको अपनी स्त्री मानते हो और मेरा तुम्हें विश्वासहै

तो हमारा कहना करो ॥ ४० ॥ तब दानव बोला कि हे तन्वङ्गि ! मैं खुद आपका दासहूं इसमें मेरी कसमको प्रमाण समझो हम वही करेंगे जो तुम कहोगी यह हमारा कहना सत्यहै ॥४१॥ तब वह स्त्री बोली कि हमारे कहनेको करो हे महाभाग! अपना हाथ अपने शिरपर धरो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उस कामान्धने माथेपर हाथको रक्खा ॥४२॥ तो उसी क्षणमे भस्म होगया जैसे खरही भस्म होजावे उस समय में भगवान् के ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ४३ ॥ जलन जिनकी जातीरही ऐसे सब देवतालोग अपने स्थान स्वर्गको चलेगये कालबाष्पके मरनेपर विष्णुभी क्षीरसमुद्रको चलेगये ॥ ४४ ॥ जो दानवके इस चरित्रको भक्तिसे सुनताहै और काम क्रोध

धनम् ॥ तदहञ्चकरिष्यामि इतिमेसत्यभाषितम् ॥ ४१ ॥स्त्र्युवाच ॥ कुरुष्वत्वंमहाभाग शिरोहस्तेप्रदीयताम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कामान्धेनैवराजेन्द्र निक्षिप्तोमस्तकेकरः ॥ ४२ ॥ तत्क्षणादभवद्भस्म दग्धस्तृणचयोयथा ॥ केशवस्योपरितदा पुष्पवृष्टिःपपातह ॥ ४३ ॥ गतास्सर्वेदिवन्देवास्स्वस्थानंविगतज्वराः ॥ क्षीराब्धिमगमद्विष्णुः कालबाष्पेनिपातिते ॥ ४४ ॥ यइदंशृणुयाद्भक्त्या चरितंदानवस्यच ॥ श्राद्धंतत्रैवयःकुर्य्यात्कामक्रोधविवर्जितः ॥ ४५ ॥ उद्धृतास्तेनसर्वेवै नरकाच्चपितामहाः ॥ क्षेत्रेतस्मिंस्तुयोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ४६ ॥ तस्यदानफलंसर्वं कुरुक्षेत्राद्विशिष्यते ॥ स्पर्शतेयइदंलिङ्गं शङ्करेणचनिर्मितम् ॥ ४७ ॥ स्पर्शमात्रोमनुष्यस्तु रुद्रवासोऽभिजायते ॥ एतस्मात्कारणाद्राजल्लोकपालाश्चदेवताः ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवीतथाचैव मधुहन्ताचतुर्भुजः ॥ दानवाद्याश्चसर्वेपि रक्षणेचेश्वरस्य च ॥ ४९ ॥ रक्षन्तेचसदाकालं गृहव्यापाररूपतः ॥ पुत्रभ्रातृसमाभूत्वा स्वामिसम्बन्धरूपिणः ॥ ५० ॥ लिङ्गेश्वरन्तु

से रहित होकर जो वहां श्राद्ध करता है ॥ ४५ ॥ उसने मानो नरक से अपने सब पितरों को उद्धार करलिया और उस क्षेत्रमें जो वेदपाठी ब्राह्मण को दान देताहै ॥ ४६ ॥ उसके दानका सब फल कुरुक्षेत्र से विशेष होताहै और महादेव के बनाये हुये इस लिङ्गको जो छूताहै ॥ ४७ ॥ वह मनुष्य छूनेही से रुद्रलोकमें वास करताहै हे राजन् ! इसी कारणसे लोकपाल देवता ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवी, चार भुजावाले विष्णु, दानवआदि सभी महादेवजी की रक्षामें रहते हैं ॥ ४९ ॥ लड़के, भाई और स्वामी

आदि नातेकी तरह होकर घरके कामोंकी नाईं हमेशा रक्षा किया करतेहैं ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! लिङ्गेश्वर आजभी देवताओंसे रक्षा कियाजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेभस्मासुरवधोनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापों के क्षय करनेवाले नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर विद्यमान उत्तम धनद नाम के तीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां सब तीर्थों का फल प्राप्त होताहै इस में संशय नहीं है चैतमास के उजियाले पाखकी तेरसको इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य ॥ २ ॥ उपासकर बड़ी भक्ति से रात

राजेन्द्र देवैरद्यापिरक्ष्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेभस्मासुरवधोनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र धनदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ नर्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सर्वतीर्थफलंतत्रप्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ चैत्रमासेत्रयोदश्यां शुक्लपक्षेजितेन्द्रियः ॥ २ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ पञ्चामृतेनराजेन्द्र स्नापयेद्वरदंविभुम् ॥ ३ ॥ पूजयेद्भक्तियुक्तेन गीतवाद्यंप्रदापयेत् ॥ प्रभातेपूजयेद्विप्रानात्मनःश्रेयइच्छता ॥ ४ ॥ प्रतिग्रहविमुक्ताश्चविद्यासिद्धान्तवादिनः ॥ भर्तव्याहिप्रियैर्भक्त्या परिवादविवर्जिताः ॥ ५ ॥ पूजयेद्गोहिरण्येन वस्त्रालङ्करणेनच ॥ हस्त्यश्वरथदानेन सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ६ ॥ त्रिजन्मजनितंपापं धनदस्यप्रभावतः ॥ स्वर्गदन्दुर्विनीतानां विनीतानांचमुक्तिदम् ॥ ७ ॥ धनवान्सनरव्याघ्र भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ कुलीनत्वं

को जागरण करे और हे राजेन्द्र ! वर के देनेवाले महादेवको पञ्चामृत से नहवावे ॥ ३ ॥ भक्तिसे पूजनकरे और गावे बजावे अपने कल्याणकी इच्छा करता हुआ प्रातःकाल ब्राह्मणों का पूजन करे ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण दान नहीं लेते हैं और विद्याके सिद्धान्तों को जानते है किसी की निन्दा नहीं करते ऐसे ब्राह्मणों का भक्ति और प्यार से भरण पोपण करे ॥ ५ ॥ गौवें, सोना, कपडे, जेवर, हाथी, घोडे और रथों के दानसे उनका पूजन करे तो सब पापोंका नाश होजावे ॥ ६ ॥ धनदतीर्थ के प्रभाव से तीन जन्मोंका पाप नष्ट होजाताहै यह तीर्थ पापियो को स्वर्गका देनेवाला और सज्जनो को मुक्तिका देनेवाला है ॥ ७ ॥ हे नरव्याघ्र ! वह जन्म २ मे धनी

होताहै कुलीन और सुन्दर रूपवाला होताहै दुःख उसको कभी नहीं होताहै ॥ ८ ॥ और धनद तीर्थकी सेवासे सेवकों को रोगका डर नहीं होता बल्कि वह आनन्द रहताहै धनदके तीर्थ में जो विद्या को देताहै ॥ ९ ॥ वह सब दुःखों से छूटा हुआ सूर्य के लोक को जाताहै मार्कण्डेयजी बोले कि हम तुम से पुराने इतिहास को कहेंगे ॥ १० ॥ सब लोकों में उत्तम कश्यपमुनि की दो स्त्रियां होती हुई विनता के पुत्र गरुड और कद्रूके सर्प होते हुये ॥ ११ ॥ हे तात ! वे दोनों कश्यप के घरमें सन्तोष से रहती थीं उनमें कद्रूकी बहन विनता पतिको प्यारी थी ॥ १२ ॥ कश्यप प्रजापति विनता के साथ विहार किया करते थे तदनन्तर हे पार्थ ! एक दिन

स्वरूपत्वं दुःखंनास्तिनिरन्तरम् ॥ ८ ॥ व्याधेस्तुनभयंतेषां नन्देद्धनदसेवनात् ॥ धनदस्यचयस्तीर्थे विद्यांवैप्रददा तिहि ॥ ९ ॥ सयातिभास्करंलोकं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अहंतेकथयिष्यामि चेतिहासम्पुरातनम् ॥ १० ॥ द्वेभार्य्येकश्यपस्यास्तां सर्वलोकेष्वनुत्तमे ॥ गरुत्मान्विनतापुत्रः कद्रूपुत्रोरगाःस्मृताः ॥ ११ ॥ सन्तोषेणद्वयंता त तिष्ठतःकाश्यपेगृहे ॥ कद्रूस्तुभगिनीतत्र इष्टाचविनतातथा ॥ १२ ॥ क्रीडेद्दिनतयासार्द्धं कश्यपोपिप्रजापतिः ॥ त तस्त्वेकदिनेपार्थ आश्रमस्थासुशोभना ॥ १३ ॥ उच्चैःश्रवोहयंदृष्ट्वा अतिवेगंनभःस्थितम् ॥ पश्यपश्यचतन्वङ्गि अ श्वंसर्वत्रपाण्डुरम् ॥ १४ ॥ धावमानमविश्रान्तं जवेनमानसोपमम् ॥ कद्रूरुवाच ॥ कथमेतत्तुतन्वङ्गि कृष्णंजलपासिपा ण्डुरम् ॥ १५ ॥ असत्यंभाषितंभद्रे यमलोकंगमिष्यसि ॥ विनतोवाच ॥ सत्यानृतेतुवचने पणोयंमेस्तुतेऽधुना ॥१६॥ सहस्रंचैववर्षाणामज्ञात्वादास्यतांव्रजेत् ॥ असत्यायदिमेवाणी कृष्णउच्चैःश्रवाहयः ॥ १७ ॥ तदाहंत्वद्गृहेदासी स

आश्रममें बैठीहुई अतिशोभावाली विनता ॥ १३ ॥ आकाशमें टिकेहुये बड़े तेज वाले उच्चैःश्रवा घोड़ेको देखकर बोली कि हे तन्वङ्गि ! सब सफेद घोड़ेको देखो ॥१४॥ विश्राम नहीं लेता दौड़रहा तेजीमें मनके बराबर है तब कद्रू बोली कि हे तन्वङ्गि ! कालेको तुम सफेद कैसे कहती हो ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! तुम्हारा कहना झूँठ है तुम यमलोक को जावोगी तब विनता बोली कि अभी हमारी तुम्हारी झूँठी सांची बात में शर्त होजावे ॥ १६ ॥ कि जिसकी बात झूँठहो वह सच्ची बातवाली की एक

हजार वर्षतक लौंडी रहे जो हमारी बात झूठहोवे कि उच्चैःश्रवा घोड़ा कालाहो ॥ १७ ॥ तो हम तुम्हारे घरमें हमेशा दासी रहेंगी और जो उच्चैःश्रवा सफेद होवे तो तुम हमारे घरमें दासी होवो ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनों आपसमें दासी बननेको कहरही थीं तबतक कद्रू अपने घरको गई और रातमे बड़ी चिन्ता करती रही ॥ १९॥ और हे पार्थ ! अपने पुत्रोंसे कहा कि उस सफेद घोडेको मैंने काला कहदिया और शर्तभी की है ॥ २० ॥ सर्पोंने इस बात व माता की शर्तको भी सुना तब सबोंने कहा कि अब तो तुम दासी होगईहो सन्देह नहीं है क्योंकि सूर्यका घोड़ा तो सफेदहीहै ॥ २१ ॥ तब कद्रू बोली कि जिस तरह हम दासी न होवें ऐसा काम सोचाजावे उच्चैःश्रवा

वैदैवभवामिहि ॥ यदितूच्चैःश्रवाःश्वेतो दासीत्वंमद्गृहेपुनः ॥ १८ ॥ एवंपरस्परंद्वाभ्यां दासीयमब्रवीदिति ॥स्वाश्रमंहि गताकद्रूरात्रौचिन्तातुरास्थिता ॥ १९ ॥ श्वेतवर्णन्तुकथितं श्यामन्तमश्वकन्तदा ॥ पुत्राणांकथितंपार्थ पणश्चैवकृतो मया ॥ २० ॥ श्रुतंसर्वैस्तथावाक्यं सर्पैर्मातृपणस्तदा ॥ जातादासीनसन्देहः श्वेतोभास्करवाहनः ॥२१॥ कद्रूरुवाच ॥ यथाहन्नभवेदासी तत्कार्यञ्चविचिन्त्यताम् ॥ उच्चैःश्रवोरोमकूपे विशध्वंयूयमेवच ॥ २२ ॥ एकंमुहूर्त्ततिष्ठध्वं याव त्कृष्णःप्रदृश्यते ॥ क्षणेनैकेनभवतां दासीसाभवतेमम ॥ २३ ॥ दासीत्वेयातुतन्वङ्गी विनतासत्यगर्विता ॥ ततःस्व स्थानगास्सर्वे भवन्तुसुखिनस्सदा ॥ २४ ॥ सर्पाऊचुः ॥ यथात्वंजननीचैव सर्वेषांभुविपन्नगी ॥ तथासापिविशेषेण वञ्चितव्यानमातृवत् ॥२५॥ ततस्सातेनवाक्येन क्रुद्धाकालानलोपमा ॥ ममवाक्यमकुर्वाणा येकेचिद्भुविपन्नगाः॥२६॥

घोडेके रोवोंके छेदोंमें तुम सब पैठजावो ॥ २२ ॥ जबतक दो घडीहों तबतक स्थित बनेरहो वह काला देखपडेगा तुमलोगों के इस तरह क्षणमात्र रहने से वह हमारी दासी होजावेगी ॥ २३ ॥ सत्य के अहङ्कार को प्राप्तहोरही सूक्ष्माङ्गी विनता दासीपनेको प्राप्त होजावेगी तदनन्तर फिर तुम सब अपने स्थानों को जाकर सुखी होवो ॥ २४ ॥ तब सर्प बोले कि जैसे पृथ्वीमें तुम सब सांपोंकी माता पन्नगीहो ऐसेही वह भी हमारी विशेषसे माताके तुल्य है इससे छल करनेलायक नहीं है ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह उनके उस वचन से प्रलय के अग्नि के समान नाराज होतीहुई और बोली कि हमारे वचन को नहीं करनेवाले पृथिवी में जितने सांप हैं ॥ २६ ॥

वे सब बेविचारवाले आगी के मुहँमें जावेंगे इस बातसे डरेहुये सांप घोडे के रोवों में लपटगये ॥ २७ ॥ और कोई कद्रूके शापके डरसे युक्त दिव्य दिशाओं को भाग गये कोई गङ्गाके जलमें छिपे और कोई सरस्वती में छिपे ॥ २८ ॥ कोई समुद्रको चलेगये कोई विन्ध्यपर्वत की खोहों में छिपरहे और हे नृप ! उत्तम मणिनाग नर्मदाके जलके आश्रित होकर ॥ २९ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर भक्तिसे बडे तपको करताहुआ माताके शापको धरेहुये नर्मदा के जलमें पैठगया ॥ ३० ॥ और महादेव से प्रार्थना करताहुआ कि हे नाथ ! आपके प्रसादसे हम माताके शापको तरजावें हे जगत्पते ! जिससे हम आगके मुखमें न जावें सो करो ॥ ३१ ॥ तब

हव्यवाहमुखंसर्वे यास्यन्तीत्यविचारिणः ॥ तेनवाक्येनभीतास्ते हयरोमसुवेष्टिताः ॥ २७ ॥ नष्टाःकेचिद्दिशो दिव्याः कद्रूशापभयान्विताः ॥ केचिद्गङ्गाजलेनष्टाः केचिन्नष्टास्सरस्वतीम् ॥ २८ ॥ केचिन्महोदधिन्नीताः प्रविष्टावि न्ध्यकन्दरे ॥ आश्रित्यनर्म्मदातोयं मणिनागोत्तमोनृप ॥ २९ ॥ चचारविपुलंभक्त्या उत्तरेनर्म्मदातटे ॥ मातृशा पधरोनागः प्रविष्टोनर्म्मदाजले ॥ ३० ॥ त्वत्प्रसादेनभोनाथ मातृशापंतराम्यहम् ॥ हव्यवाहमुखंयस्मात्प्रयामिनज गत्पते ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ हव्यवाहमुखंवत्स नयास्यसिममाज्ञया ॥ ममलोकनिवासोपि तवपुत्रभविष्यति॥३२॥ मणिनागउवाच॥अस्मिन्स्थानेमहादेव स्थीयतामंशभागतः ॥ सहस्रांशेनभागेन स्थीयतांनर्म्मदाजले ॥ ३३ ॥ उप कारायलोकानां ममनाम्नाचशङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ स्थापयस्वपरंलिङ्गमाज्ञयाममपन्नग ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदे वस्तदैवशिवयासह ॥ तत्रतीर्थेतुयेभक्त्या शुचयोयतमानसाः ॥ ३५ ॥ पञ्चम्याञ्चचतुर्दश्यामष्टम्यांशुक्लपक्षके ॥ अ

महादेव बोले कि हे वत्स ! हमारी आज्ञा से आगके मुखमें तुम नहीं जावोगे और हे पुत्र ! तुम्हारा निवास हमारे लोकमें होगा ॥ ३२ ॥ तब मणिनाग बोला कि हे महादेव ! अपने अंशसे इस स्थान मे आप टिकें हजारवे अंशसे नर्मदाके जलमे आप ठहरे ॥ ३३ ॥ लोकोंके उपकार के वास्ते हे शङ्कर ! मेरे नामसे प्रसिद्ध हूजिये तब महादेव बोले कि हे पन्नग ! हमारी आज्ञासे तुम श्रेष्ठलिङ्गको स्थापितकरो ॥३४॥ यह कहकर पार्वतीसहित महादेवजी उसी समय अन्तर्द्धान होगये उस तीर्थमे मन

को वश कियेहुये व पवित्र जो मनुष्य भक्तिसे ॥ ३५ ॥ उजियाले पाखकी पंचमी व चौदस व अष्टमी को हे पार्थ ! सदा पूजन करते हैं वे यमराजके पास नहीं जाते हैं ॥ ३६ ॥ दही, शहद, घी और दूध से जो मनुष्य पार्वतीको आधेअङ्ग में धरेहुये महादेवको नहवाते हैं ॥ ३७ ॥ कामदेव के जलानेवाले व बड़े२ दैत्योंके मारनेवाले शङ्करजी को भक्तिसे जो लोग स्नान करवाते हैं वे परमपदको देखते हैं ॥ ३८ ॥ और हे तात ! जो शूद्रोंकी सेवाको नहीं करते और अपने छहों कर्मों के करनेवाले ब्राह्मण हैं वे भी सब पापोंसे रहित होकर श्रेष्ठलोक को जाते हैं ॥ ३९ ॥ संस्कारहीन, क्षत्रियके कामों के करनेवाले, नपुंसक, सूदके खानेवाले, किसान और नास्तिक

र्चयन्तिसदापार्थ नोपसर्प्पन्तितेयमम् ॥ ३६ ॥ दध्नाचमधुनाचैव घृतेनक्षीरतोजनाः ॥ स्नापयन्तिविरूपाक्षमुमा देहार्द्धधारिणम् ॥ ३७ ॥ कामाङ्गदहनन्देवं महासुरनिषूदनम् ॥ संस्नापयन्तियेभक्त्या पश्यन्तिपरमंपदम् ॥ ३८ ॥ षट्कर्म्मनिरतास्तात शूद्रप्रणयवर्जिताः ॥ तेपियान्तिपरंलोकं सर्वपापविवर्जिताः ॥ ३९ ॥ व्रात्यांश्चदुर्द्धरान्षण्ढा न्वार्द्धुक्यांश्चकृषीवलान् ॥ भिन्नदृष्टिकरान्विप्रान्कश्चिन्नैवचपूजयेत् ॥ ४० ॥ वृषलीमन्दिरेयस्य महिषंयस्तुवाहये त् ॥ तेविप्रादूरतस्त्याज्या व्रतेश्राद्धेनृपेश्वर ॥ ४१ ॥ काणाःकुण्डाश्चगोलाश्च वैद्याश्चैवविवर्जिताः ॥ नैतेपूज्याद्वि जाःपार्थ मणिनागेश्वरेशुभे ॥ ४२ ॥ यदीच्छेदूर्ध्वगमनं पितॄणामात्मनस्तथा ॥ सर्वाङ्गरुचिराङ्गाश्च सदापूज्याद्वि जास्तुवै ॥ ४३ ॥ सयातिपरमंलोकं यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ततःस्वर्गाच्च्युतस्सोपि जायतेविपुलेकुले ॥ ४४ ॥ मणि

ब्राह्मणों को इस तीर्थमें कोई भी न पूजे ॥ ४० ॥ जिसके घरमें सूदिनि बैठी होवे और जो भैंसा लादताहो हे नृपेश्वर ! ऐसे ब्राह्मणों को व्रत और श्राद्ध में दूरही से छोड़देवे ॥ ४१ ॥ काने, कुण्ड (जीतेहुये बापके दूसरे से पैदाहुआ) गोलक (बापके मरजाने पर दूसरे से पैदाहुआ) और वैद्य ये विशेष करके वर्जित हैं किन्तु हे पार्थ ! ये ब्राह्मण शुभ मणिनागेश्वर में पूजनेयोग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥ जो अपना व पितरों का ऊपर जाना चाहे तो उससे निश्चय करके सब अङ्गोंसे दुरुस्त ब्राह्मण सदा पूजन करनेयोग्य हैं ॥ ४३ ॥ वह उत्तम लोकको जाताहै और प्रलयतक वहां रहता है फिर स्वर्गसे उतर वह बड़ेकुल में पैदा होता है ॥ ४४ ॥ जो मणिनागे.

श्वरदेव के दर्शन करता है और हे नराधिप ! वहां गऊ, पलंग, छाता, कन्या और दासियों को भक्तिसे ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! उत्तम ब्राह्मणों को देवे जो अपने कल्याण की इच्छाकरे सुगन्धवाले फूल, चन्दन और कपड़ों को देवे ॥ ४६ ॥ दिया, अन्न और सब सामानसे भरेहुये सुन्दर मकान को जो मनुष्य भक्तिसे देतेहैं वे स्वर्गको जातेहैं ॥ ४७ ॥ हे नृप ! मणिनाग में जो सोने के सांपका दान करते हैं उस दान के प्रभावसे उनका वास स्वर्गमें होताहै ॥ ४८ ॥ और उसके पाप नष्ट होजातेहैं जैसे कच्चेघड़े का पानी जातारहता है नर्मदा के पानीमें पकायाहुआ भोजन जो ब्राह्मण को देतेहैं ॥ ४९ ॥ पापोंसे छूटेहुये वे भी देवताओं के साथ विहार करते हैं दानके

नागेश्वरन्देवं यःपश्यतिनराधिप ॥ धेनुंशय्यांतथाछत्रं कन्यांदासींसुभक्तितः ॥ ४५ ॥ पात्रेदद्यात्तुराजेन्द्र यदीच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ सुरभीणिचपुष्पाणि गन्धवस्त्राणिदापयेत् ॥ ४६ ॥ दीपंधान्यंगृहंशुभ्रं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ददते येनराभक्त्या तेव्रजन्तित्रिविष्टपम् ॥ ४७ ॥ मणिनागेनृपस्वर्णपन्नगोयैःप्रदीयते ॥ तेषांदानप्रभावेण स्वर्गवासोभवेद्ध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पातकानिप्रलीयन्त आमपात्रेजलंयथा ॥ नर्म्मदातोयसंसिद्धं भोज्यंविप्रायदीयते ॥ ४९ ॥ तेपिपापैर्विनिर्मुक्ताः क्रीडन्तेदैवतैस्सह ॥ त्यागिनोभोगसंयुक्ता धर्म्माख्यानरतास्सदा ॥ ५० ॥ देवद्विजगुरोर्भक्तास्तीर्थसेवापरायणाः ॥ मातापितृस्वामिभक्ताः क्रोधद्रोहविवर्ज्जिताः ॥ ५१ ॥ एतैस्सर्वैर्गुणैर्युक्ता येनराःपाण्डुनन्दन ॥ जायन्ते स्वर्गकामाश्च स्वर्गेवासोभविष्यति ॥ ५२ ॥ सर्वतीर्थवरन्तीर्थं मणिनागंनृपोत्तम ॥ तीर्थाख्यानमिदंपुण्यं यःपठेच्छृणुयादपि ॥ ५३ ॥ सोपिपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ नविषंक्रमतेतेषां विचरन्तियथेच्छया ॥ ५४ ॥ भाद्रपद्या

करनेवाले, सब भोगों से संयुक्त, सदा धर्मशास्त्र में प्रीति के करनेवाले ॥ ५० ॥ देवता, ब्राह्मण और गुरुके भक्त, तीर्थोंकी सेवाके करनेवाले, माता, पिता और स्वामी के भक्त क्रोध और किसी से वैर करने से रहित ॥ ५१ ॥ इन सब गुणों से युक्त हे पाण्डुनन्दन ! जो मनुष्य हैं वेही स्वर्गकी चाह करनेवाले होते हैं और उन्हींका स्वर्गमें वास भी होताहै ॥ ५२ ॥ हे नृपोत्तम ! मणिनागतीर्थ सब तीर्थोंमें उत्तम है इस तीर्थकी पुण्यकथा को जो कहता व सुनता है ॥ ५३ ॥ पापोंसे छूटाहुआ वह

भी शिवलोक मे पूजित होता है उनके ऊपर विषका असर नहीं पडताहै अपनी इच्छा से वे विचरते हैं ॥ ५४ ॥ भादों की पूर्णमासी व छठि व अमावसको जो इस तीर्थ में स्नान करता है उसको पुण्यफल होताहै इसीतरह तीर्थ की कथा से भी होताहै ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमणिनागतीर्थवर्णनोनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर बड़ा सुन्दर, सबपापोंका हरनेवाला, पवित्र, उत्तम, गोपालेश्वर तीर्थ है ॥ १ ॥ हे नृप ! गऊकी देहसे

अयःषष्ठ्यां भाद्रेस्नायाच्चदर्शके ॥ तस्यपुण्यफलावाप्तिराख्यानकथनेनतु ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमणिनागतीर्थवर्णनोनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेनर्म्मदातीरे तीर्थंपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यं गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ १ ॥ गोदेहान्निःसृतंलिङ्गं पुण्यंभूमितलेनृप ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ गोदेहान्निस्सृतंकस्माल्लिङ्गंपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ दक्षिणेनर्म्मदातीरे मणिनागसमीपतः ॥ संक्षेपात्कथ्यतांविप्र गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कामधेनुस्तपस्तत्रपुत्रार्थंचचकारह ॥ ध्यायतीपरयाभक्त्यादेवदेवंमहेश्वरम् ॥ ४ ॥ तुष्टस्तस्याजगन्नाथः कपिलायामहेश्वरः ॥ निस्सृतोदेहमध्यात्तु अक्षयःपरमेश्वरः ॥ ५ ॥ महेश्वरउवाच ॥ तुष्टोदेविजगन्मातःकपिलेपरमेश्वरि ॥ आराधनंकृतंकस्माद्वददेविवरानने ॥ ६ ॥ सुरभिरुवाच ॥ लोकानामुपकाराय सृष्टाहंपरमेष्ठिना ॥ लोकेकार्य्यंहिसर्वंवैमत्प्रसादात्प्र

पृथिवी में पुण्यवाला लिङ्ग निकला है तब युधिष्ठिर जी बोले कि पापोंका नाश करनेवाला लिङ्ग गऊकी देहसे क्यों निकलाहै ॥ २ ॥ दक्षिणवाले नर्मदाके किनारे पर मणिनाग के समीप जो उत्तम गोपालेश्वर लिङ्गहै उसको हे विप्र ! संक्षेप से आप कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि वहां पुत्रके वास्ते कामधेनु तपस्या करतीहुई बड़ीभक्ति से देवताओं के देवता महादेवजीको ध्यावती हुई ॥ ४ ॥ उस कपिला से जगत के नाथ महादेवजी प्रसन्नहुये तब नाशरहित महादेवजी उसकी देहके बीचसे निकले ॥ ५ ॥ और महादेव कामधेनुसे बोले कि हे जगत की माता, परमेश्वरी, कपिला ! हमारी सेवा तुमने किसवास्ते की है सो हे वरानने, देवि !

कहा ॥ ६ ॥ तब कामधेनु बोली कि लोकों के उपकारके वास्ते मुझे ब्रह्माजीने रचाहै लोक में सब काम हमारी दयासे होवेंगे ॥ ७ ॥ आपके प्रसाद से सब लोग यहां आपको देखेंगे इससे हे शम्भो ! लोकों के हितकी इच्छासे इस तीर्थ में आप होवे ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि तब से यह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध होताहुआ एक बार स्नान करने से हे राजेन्द्र ! सब पापोंको नाश करदेता है ॥ ९ ॥ गोपालेश्वरमें भक्तिसे जो गोदान देताहै परन्तु योग्य उत्तम ब्राह्मणको सोने के सहित योग्य गऊ देना चाहिये ॥ १० ॥ वह दूधवाली, जवान, साफ, बैल व कपडा से युक्त होवे हे युधिष्ठिर ! सब महीनों के अँधियारे पाख की चौदस व अष्टमी को बड़ी भक्ति से वेदपाठी

सिध्यति ॥ ७॥ लोकास्सर्वेप्रपश्यन्तित्वत्प्रसादात्त्रिशूलिनम् ॥ तीर्थेत्वंभवभोःशम्भोलोकानांहितकाम्यया॥ ८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थेविख्यातंवसुधातले ॥ स्नानेनैकेनराजेन्द्र सर्वपापंव्यपोहति ॥ ९ ॥ गोपालेशे तुगोदानं यस्तुभक्त्याप्रदापयेत् ॥ योग्येद्विजोत्तमेदेयायोग्याधेनुःसकाञ्चनी ॥ १० ॥ सवत्सातरुणीशुभ्रात्क्षीरिणी वृषसंयुता ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामष्टम्यांवायुधिष्ठिर ॥ ११ ॥ सर्वेषुचैवमासेषुकार्त्तिकेचविशेषतः ॥ दापयेत्परयाभ क्त्याद्विजेस्वाध्यायतत्परे ॥ १२ ॥ विधिनाचप्रदास्यन्तिविधिनाप्रतिगृह्णते ॥ उभयोःपुण्यकर्म्माणि प्रेक्षकाःपुण्य भाजनाः ॥ १३ ॥ पिण्डदानंप्रकर्तव्यंप्रेतानांभावसंयुतैः ॥ पिण्डेनैकेनराजेन्द्रप्रेतायान्तिपरांगतिम् ॥ १४ ॥ भ क्त्याप्रणामंरुद्रस्य येकुर्वन्तिदिनेदिने ॥ तेषांपापंप्रलीयेतभिन्नपात्रेजलंयथा ॥ १५ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोराजन्वृषंचैव समुत्सृजेत ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ वृषोत्सर्गेकृतेतात यत्फलंभवतेनृणाम् ॥ १६ ॥ तत्सर्वंकथयस्वाद्य प्रयत्नेनद्विजोत्तम॥

ब्राह्मणको देवे और कातिकमें विशेष करदेवे ॥ ११ । १२ ॥ जो विधिसे देते और जो विधिसे लेते हैं दोनोंके काम पुण्यवाले है देखनेवाले भी पुण्यके भागी होते हैं ॥ १३ ॥ प्रेतोंको भक्तिसे पिण्डदान भी करनाचाहिये हे राजेन्द्र ! एकही पिण्ड से प्रेत परमगतिको जाते हैं ॥ १४ ॥ भक्तिसे महादेवका जो रोज २ प्रणाम करते है उनका पाप फूटे घडेका सा पानी जातारहता है ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! जो उस तीर्थ में बैलको छोंडताहै तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! वृषोत्सर्ग के किये पर मनुष्यों

को जो फल होताहै ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तम ! आज उस सब फलको यत्नसे आप कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब लक्षणोसे युक्त बैलमें जो फल होताहै ॥ १७ ॥ हे धर्मनन्दन ! उसको हम तुमसे कहेगे तुम सुनो हे नराधिप ! कातिक व वैशाखकी पूर्णमासी को ॥ १८ ॥ नहाय व पवित्र और जितेन्द्रिय होकर महादेवके समीप में हे राजन् ! ईश्वर की प्रसन्नता के वास्तें वृषोत्सर्गकरे ॥ १९ ॥ पवित्र जगह में बैठकर सबलक्षणों से संयुक्त अच्छी चार बछिया बैलके वास्ते छोड़ ॥ २० ॥ और कहै कि इस उत्सर्ग से महादेव, ब्रह्मा और विष्णु जी वैसे ही और भी प्रसन्न होवें बैलके सब अङ्गों में रोवों की जितनी संख्या है हे नराधिप ! ॥ २१ ॥ उतने वर्षों

मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वलक्षणसम्पन्ने वृषेचैवतुयत्फलम् ॥ १७ ॥ तदहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुत्वंधर्म्मनन्दन ॥ कार्त्तिकेचैववैशाखे पौर्णमास्यान्नराधिप ॥ १८ ॥ रुद्रस्यसन्निधौभूत्वा शुचिःस्नात्वाजितेन्द्रियः ॥ वृषोत्सर्गंतथाराजन्कारयेद्धरप्रीतये ॥१९॥ स्थानेस्थित्वापवित्रेतु चतस्रोवत्सिकाःशुभाः ॥ वृषभायचमुञ्चेत सर्वलक्षणसंयुताः ॥ २० ॥ प्रीयताञ्चमहादेवो ब्रह्माविष्णुस्तथापरे ॥ वृषभेरोमसंख्यातु सर्वाङ्गेषुनराधिप ॥ २१ ॥ तावद्वर्षप्रमाणन्तु शिवलोकेमहीयते ॥ शिवलोकेवसित्वातु पश्चान्मर्त्येचजायते ॥ २२ ॥ कुलेमहतिसम्भूतो धनधान्यसमाकुले ॥ सुरूपेरूपवांश्चैव विद्याढ्येसत्यवादिनाम् ॥ २३ ॥ गोपालेश्वरकंपुण्यंमयाख्यातंयुधिष्ठिर ॥ गोदेहान्निस्सृतंलिङ्गं नर्म्मदादक्षिणे तटे ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगोपालेश्वरमहिमानुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ * ॥

तक शिवजी के लोक में पूजित होता है शिवलोक में रहकर फिर मनुष्यलोकमे पैदा होताहै ॥ २२ ॥ सत्य बोलनेवालों के धन व अन्न से भरेहुये व विद्या से युक्त व अच्छेरूपवाले बडे कुलमें सुन्दररूपवाला पैदा होता है ॥ २३ ॥ हे युधिष्ठिर ! पुण्यवाले गोपालेश्वर लिंग को मैंने कहा जो नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर गऊ की देहमे निकला है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगोपालेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर सब पापोंका हरनेवाला व पुण्यवाला गौतमेश्वर नामका बडा सुन्दर तीर्थ है ॥१॥ लोकों के हितकी कामना से गौतम ने स्थापित कियाहै हे युधिष्ठिर ! मनुष्यों को वह तीर्थ स्वर्गकी नसेनी है ॥ २ ॥ हे नृप ! पापों के नाश करने के वास्ते व स्वर्गवास मिलने के वास्ते बड़ी भक्तिसे तुम वहा जावो जहा जगत् के गुरु महादेवजी हैं ॥ ३ ॥ सुखका बढ़ानेवाला व जयका देनेवाला व दुःखोंका नाश करनेवाला तीर्थ है एक पिण्ड के देने से तीन कुलों को उद्धार करता है ॥ ४ ॥ जो कुछ वहा थोड़ा या बहुत भक्ति से दियाजाता है वह सब गौतमकी आज्ञा से सौ व हजारगुना होता है ॥ ५ ॥ सब तीर्थों

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्म्मदायोत्तरेकूले तीर्थंपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यं नाम्नावैगौतमेश्वरम् ॥ १ ॥ स्थापितंगौतमेनेव लोकानांहितकाम्यया ॥ स्वर्गसोपानरूपेणतीर्थंपुंसांयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ गच्छत्वंपरयाभक्त्या यत्रदेवोजगद्गुरुः ॥ पातकानांविनाशाय स्वर्गवासाप्तयेनृप ॥ ३ ॥ सौख्यस्यवर्द्धनंलिङ्गं जयदंदुःखनाशनम् ॥ पिण्डदानेनचैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम् ॥ ४ ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेभक्त्यास्वल्पंवायदिवाबहु ॥ तत्सर्वंशतसाहस्रमाज्ञयागौतमस्य च ॥ ५ ॥ तीर्थानांपरमन्तीर्थं स्वयंरुद्रेणभाषितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेनर्म्मदाकूले तीर्थंपरमशोभनम् ॥ ६ ॥ शङ्खचूडेश्वरन्तत्र प्रसिद्धंभूमिमण्डले ॥ शङ्खचूडेश्वरस्तत्र संस्थितःपाण्डुनन्दन ॥७॥ वैनतेयभयात्पार्थ संस्थितोनर्म्मदातटे ॥ तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या शुचिर्भूत्वासमाहितः॥ ८ ॥ स्नापयेच्छङ्खचूडन्तु क्षौद्रेणदधिसर्पिषा ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा देवस्याग्रेनराधिप ॥ ९ ॥ दधिभक्तेनसम्पूज्य ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् ॥ गोदानञ्चतथादेयं सर्वपापक्षय

में बड़ा तीर्थ है खास महादेवने कहा है मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर बड़ा सुन्दर तीर्थ है ॥ ६ ॥ वहां शंखचूडेश्वर पृथिवीमण्डल में प्रसिद्ध है हे पाण्डुनन्दन ! शंखचूडेश्वर महादेव वहां विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ हे पार्थ ! गरुड के भय से नर्मदा तट में रहते हैं पवित्र व सावधान होकर उस तीर्थ में भक्ति से ॥ ८ ॥ शहद व दही और घी से शंखचूडेश्वरको नहवावै और हे नराधिप ! रातमें महादेवके आगे जागरण करे ॥ ९ ॥ दही और भात से उत्तमव्रतवाले ब्राह्मणों

का सत्कार कर सब पापोंका नाशकरनेवाला गोदान देनेयोग्य है ॥ १० ॥ हे पार्थ ! उस तीर्थ में जो सांपका डँसाहुआ भी मरे तो वह भी शंखचूडकी आज्ञासे उत्तम लोकको जाता है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेशङ्खचूडतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पराशरवर तीर्थ को जावे उत्तम नर्मदा के तट में महात्मा पराशरने ॥१॥ पुत्र के वास्ते हे पाण्डुनन्दन ! बड़े तप को किया लक्ष्मी व नारायण के सहित हिमाचल की कन्या गौरीजी को ॥ २ ॥ बड़ी भक्तिसे पराशरऋषिने उत्तरवाले नर्मदाके तटपर प्रसन्न किया तब प्रसन्न हुई

ङ्करम् ॥ १० ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःपार्थ सर्पदष्टोपिनश्यति ॥ सोपियातिपरंलोकं शङ्खचूडस्यचाज्ञया ॥ ११ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डेशङ्खचूडतीर्थमहिमानुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पराशरवरोत्तमम् ॥ पराशरोमहात्माच नर्म्मदायास्तटेशुभे ॥ १ ॥ तप श्चचारविपुलं पुत्रार्थंपाण्डुनन्दन ॥ हिमाचलसुतागौरी लक्ष्मीनारायणान्विता ॥ २ ॥ तोषितापरयाभक्त्या नर्मदा योत्तरेतटे ॥ पराशरेणऋषिणा तस्यतुष्टावरन्ददौ ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ भोभोऋषिवरश्रेष्ठ तुष्टाहन्तवभक्तितः ॥ वरं याचस्वविप्रेन्द्र पराशरमहामते ॥ ४ ॥ पराशरउवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि यदिदेयोवरोमम ॥ पुत्रोमेदीयतांशीघ्रं स र्वशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥ तीर्थंचात्रभवेद्देवि सन्निधानंवरेणतु ॥ लोकोपकारहेत्वर्थं स्थीयतांगिरिनन्दिनि॥६॥पराशरा भिधानेन नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ पराशरवचःश्रुत्वा देवीहिमवतस्सुता ॥ ७ ॥ एवंभवतुतेविप्र इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥

पार्वती उनको वर देती हुई ॥ ३ ॥ देवी बोली कि हे ऋषिवरश्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं हे विप्रेन्द्र,महामते, पराशर ! वर मांगो ॥ ४ ॥ तब पराशरजी बोले कि हे देवि ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और जो मुझे वर देना है तो सब शास्त्रों का जाननेवाला पुत्र मुझे जल्दी दियाजावे ॥ ५ ॥ और हे देवि ! यहां वरके समीप तीर्थ भी होजावे हे गिरिनन्दिनि ! लोकोंके उपकार के वास्ते आप भी यहां स्थित होवें ॥ ६ ॥ पराशर के नाम से नर्मदाके दक्षिणतट में तीर्थ होवे पराशर के वचनको

सुन हिमाचलकी कन्या पार्वती देवी ने कहा ॥ ७ ॥ कि हे विप्र ! तुम्हारा ऐसाही हो यह कहकर अन्तर्द्धान होगई महात्मा पराशर भी पार्वती को थापतेहुये ॥ ८ ॥ देवता और दैत्यों से नमस्कार कियेगये महादेवका भी स्थापन करतेहुये जो कि देवताओं से पूजेगये और दानवों को डरावने हैं ॥ ९ ॥ पराशर महात्मा भी सन्ताप से रहित व कृतार्थ होगये उस तीर्थ मे निर्मलमन व पवित्र होकर भक्तिसे जो ॥ १० ॥ हे नृपनन्दन ! चैत, सावन और अगहन महीने के उजियाले पाखमें सदा ॥ ११ ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ ! महादेव व पार्वती का पूजन करे व अष्टमी, चौदस और सूर्यग्रहण में हमेशा ॥ १२ ॥ काम क्रोध से रहित होकर स्त्री व पुरुष वहां नर्मदा

पराशरोमहात्माच स्थापयामासपार्वतीम् ॥ ८ ॥ शङ्करंस्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् ॥ अर्चितंसर्वदेवानां दानवानान्दुरासदम् ॥ ९ ॥ पराशरोमहात्माच कृतार्थोविगतज्वरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या शुचिःप्रयतमानसः ॥ १० ॥ मासेचैत्रेचविख्याते श्रावणेनृपनन्दन ॥ मासिमार्गशिरेचैव शुक्लपक्षेतुसर्वदा ॥ ११ ॥ शङ्करंपाण्डवश्रेष्ठ गिरिजांपूजयेत्तथा ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां सूर्य्यपर्वणिसर्वदा ॥ १२ ॥ स्त्रियोवापुरुषावापि कामक्रोधविवर्जिताः ॥ तत्र गत्वाशुचौस्थाने नर्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या व्रतंकुर्युर्महामुने ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपदानं स्वशक्तितः ॥ १४ ॥ सपत्नीकानुत्तमांश्च शीलश्रद्धासमन्वितान् ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्पार्थ अन्नदानहिरण्मयैः ॥ १५ ॥ वस्त्रेणच्छत्रदानेन शय्याताम्बूलभोजनैः ॥ श्राद्धंकार्य्यंनृपश्रेष्ठ आमश्राद्धंप्रशस्यते ॥ १६ ॥ आमंचतुर्गुणंप्रोक्तं ब्राह्मणानांयुधिष्ठिर ॥ वेदोक्तेनविधानेन द्विजाःपूज्याःप्रयत्नतः ॥ १७ ॥ हस्तमात्रकुशैश्चैव तिलैश्चवाञ्छितैर्नृप ॥ विप्रंचो

के दक्षिणवाले किनारे पर अच्छी जगह मे जाकर ॥ १३ ॥ उपासकर बड़ी भक्तिसे व्रत करे व हे महामुने ! रात में जागरण कर अपनी शक्तिके अनुसार दीपदान करे ॥ १४ ॥ और शील व श्रद्धा से युक्त उत्तम सपत्नीक ब्राह्मणों का हे पार्थ ! अन्न व सोने के दान से पूजन करे ॥ १५ ॥ कपडा, छाता, पलंग, पान और भोजनों से हे नृपश्रेष्ठ ! श्राद्ध करना चाहिये यहा कच्चे श्राद्धकी तारीफ है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों को कच्चा अन्न उनके खाने से चौगुना कहागया है वेद में कहेहुये

विधान से व बड़े यत्न से ब्राह्मणोंका पूजन करनाचाहिये ॥ १७ ॥ और हे नृप ! हाथ २ भरके कुश व साफ तिलों से श्राद्ध करे ब्राह्मण को उत्तर और अपने को दक्षिण मुहँ बिठावे ॥ १८ ॥ अन्नको कुशों पर रखकर ब्राह्मणों के आगे ऐसे कहे कि इस तीर्थ के प्रभाव से प्रेत उत्तम लोक को जावें ॥ १६ ॥ और हमारा पाप नष्ट होजावे सदा कल्याण की वृद्धिहोवे और हे द्विजोत्तम ! वंश व भाईलोग वृद्धिको प्राप्तहोवें ॥ २० ॥ ब्राह्मणसे इस प्रकार कह पराशर के आश्रममें दान देवे हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पराशरके श्रेष्ठआश्रममें गऊ, पृथिवी, बैल, सोना, अन्न और वस्त्रोंको अपनी शक्तिसे देवे जो मनुष्य भक्तिसे इस कथाको सुनता है वह भी पापों से छूटजाता

दक्षमुखंचैव आत्मानंदक्षिणामुखम् ॥ १८ ॥ आसन्दमेषुनिःक्षिप्य इत्युच्चार्य्यद्विजाग्रतः ॥ प्रेतायान्तुपरंलोकं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १६ ॥ पापंमेप्रशमंयातु यातुवृद्धिस्सदाशुभम् ॥ वृद्धियातुसदावंशो ज्ञातिवर्गोद्विजोत्तम ॥ २० ॥ एवमुच्चार्य्यविप्रेन्द्रं देयंपाराशराश्रमे ॥ गोभूनीलहिरण्यानि अन्नंवस्त्रंचशक्तितः ॥ २१ ॥ दातव्यंपाण्डवश्रेष्ठ पराशरवराश्रमे ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्या सोपिपापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे पराशरतीर्थमहिमानुवर्णनोनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ भीमेश्वरंततोगच्छेत्सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ सेव्यतेऋषिसङ्घैश्च भीमव्रतधरैरपि ॥ १ ॥ तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ जपंश्चैकाक्षरंमन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवाकरम् ॥ २ ॥ तस्यजन्मार्जितंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ सप्तजन्मार्जितंपापं गायत्र्यानश्यतेध्रुवम् ॥ ३ ॥ दशभिर्जन्मजनितंशतेनचपुराकृतम् ॥ त्रिजन्मनासह

है ॥ २१ । २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेपराशरतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब पापों के नाश करनेवाले भीमेश्वर को जावे जोकि बड़े भयानक व्रतके करनेवाले भी ऋषियोंके गणोंसे सेया जाताहै ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहायकर उपास किये हुये व इन्द्रियों को जीते हुये जो मनुष्य ऊपरको हाथ किये हुये सूर्य के सामने एक अक्षर के मन्त्र को जपता है ॥ २ ॥ उसके पूर्व जन्म में जमा किया हुआ पाप उसी क्षणमें नष्ट होता है और सात जन्मों का जमा किया हुआ पाप गायत्री से निश्चय करके नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ एक जन्मका पाप

दश गायत्री से और अगिले का सौ से और हजार से तीन जन्मों के पापों को गायत्री नाश करती है ॥ ४ ॥ हे जनेश्वर ! वेद व पुराण के मन्त्रका जप जपागया उसी क्षण में पाप को जलाता है जैसे आग फूसको जलावे ॥ ५ ॥ और जो इसी बलसे कभी अज्ञान से भी पाप करे तो उसको वह फल जल्दी कभी नहीं होता है ॥ ६ ॥ उस तीर्थ में शक्ति के अनुसार गोदान देवे तो हे पाण्डुनन्दन ! उसका सम्पूर्ण फल अक्षय होता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम नारदेश्वर तीर्थ को जावे सब तीर्थों में बडे जिस तीर्थ को नारद ने बनाया है ॥ ८ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! नारद ने किस तीर्थ को बनाया

स्रेण गायत्रीहन्तिकिल्बिषम् ॥ ४ ॥ वैदिकंलौकिकंचापि जाप्यंजप्तंजनेश्वर ॥ तत्क्षणाद्दहतेपापं तृणंचज्वलनोय था ॥ ५ ॥ तदेवबलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ॥ अज्ञानात्तस्यतत्क्षिप्रं नफलंहिकदाचन ॥ ६ ॥ तत्रतीर्थेतुगोदा नं शक्तिमात्रेणदापयेत् ॥ तदक्षयंफलंसर्वं जायतेपाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र नार देश्वरमुत्तमम् ॥ तीर्थानांपरमन्तीर्थं निर्मितंनारदेनतु ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ नारदेनमुनिश्रेष्ठकस्यतीर्थंविनिर्मित म् ॥ एतदाख्याहिमेसर्वं प्रसन्नोयदिसत्तम ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ परमेष्ठिसुतश्चापि नारदोभगवानृषिः ॥ नर्म्म दायोत्तरेकूले तपस्तेपेपुराकृते ॥ १० ॥ नवनाडीनिरोधेन काष्ठावस्थाङ्गतेनच ॥ तोषितःश्रीमहादेवो नारदेनयुधिष्ठि र ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तुष्टोहंतवविप्रेन्द्र योगीश्वरअयोनिज ॥ वरंप्रार्थयहेदेव यत्तेमनसिवर्तते ॥ १२ ॥ नारदउ वाच ॥ त्वत्प्रसादेनभोदेव योगश्चैवप्रसिध्यतु ॥ ईश्वरउवाच ॥ योगोभवतुभक्तिस्ते सर्वकालंममैवतु ॥ १३ ॥ स्वेच्छाचारो

है हे सत्तम ! जो आप प्रसन्न हो तो यह सब मुझ से कहो ॥ ९ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सतयुग में ब्रह्मा के पुत्र भगवान् नारद ऋषि नर्मदा के उत्तर वाले तटपर तपस्या करते हुये ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! नवो इन्द्रियोंके रोंकनेसे काठकीसी हालत को प्राप्त होरहे नारद ने श्रीमहादेव को प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे अयोनिज ! हे योगीश्वर ! हे विप्रेन्द्र ! हम तुम से प्रसन्नहैं इस से हे देव ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ १२ ॥ तब नारद बोले कि हे

देव ! आपके प्रसादसे हमारा योग सिद्ध होवे तब महादेवजी बोले कि तुम्हारे योग होवे और हमेशा हमारी भक्तिरहे ॥ १३ ॥ और इस संसारमें स्वर्ग व पातालमें अपनी इच्छा से घूमो और हे योगिन् ! मनुष्यलोक में भी विचरो किसी से नहीं रोके जासक्तेहो ॥ १४ ॥ सातस्वर, तीनग्राम और इक्कीस मूर्च्छना व हमको खुश करनेवाला दिव्य नाचना व गाना तुम्ह योगीको सदा याद रहेगा ॥ १५ ॥ देवता, दानव और किन्नरों की लडाई को सदा देखोगे और हमारे प्रसादसे तुम्हारा तीर्थ पृथिवी में बडा पुण्यवाला होगा ॥ १६ ॥ इतना कह महादेवजी अन्तर्द्धान होगये तब हे राजेन्द्र ! सब जीवोंके उपकार करनेवाले महादेव का नारदजी ने स्थापन किया ॥ १७ ॥

भवेगच्छ स्वर्गपातालगोचरे ॥ मर्त्येचभ्रमसेयोगिन्नकेनापिनिवार्यसे ॥ १४ ॥ सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ॥ ममप्रियकरंदिव्यं नृत्यङ्गीतञ्चयोगिना ॥ १५ ॥ कलिञ्चपश्यसेनित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥ त्वत्तीर्थंभूतलेपुण्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो नारदस्तत्रलिङ्गिनम् ॥ स्थापयामासराजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पृथिव्यामुत्तमंतीर्थं निर्मितंनारदेनतु ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरश्रेष्ठ नागच्छेद्द्विजितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ मासिभाद्रपदेरम्ये कृष्णपक्षेचतुर्द्दशीम् ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ १९ ॥ छत्रंतत्रप्रदातव्यं ब्राह्मणेशुभलक्षणम् ॥ शस्त्रेणनिहतायेतु तेषांश्राद्धंप्रदापयेत् ॥ २० ॥ यान्तितेपरमंलोकं पिण्डदानप्रभावतः ॥ कपिलाचैवदातव्या तत्रदेशेनराधिप ॥ २१ ॥ अस्यश्राद्धप्रभावेण ब्राह्मणानांनराधिप ॥ नर्म्मदातोयपानस्य न्यायार्जितधनस्यच ॥ २२ ॥ एतेषाञ्चप्रभावेण प्रेतायान्तुपराङ्गतिम् ॥ इत्युच्चार्यद्विजेदेया दक्षिणाचस्वशक्ति

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि पृथिवी में नारदका बनायाहुआ तीर्थ उत्तमहै हे नरश्रेष्ठ ! इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य उस तीर्थको जावे ॥ १८ ॥ भादोंके अँधियारे पाखकी चौदस को उपासकर बड़ी भक्तिसे रातमे जागरण करे ॥ १९ ॥ अच्छे ब्राह्मणको वहा छातेका दानकरे और जो हथियारों से मारेगये हैं उनका श्राद्ध करे ॥ २० ॥ पिण्डदानके प्रभावसे वे प्रेत उत्तमलोक को जाते हैं और हे नराधिप ! वहां कपिलागऊ देना चाहिये ॥ २१ ॥ और हे नराधिप ! श्राद्धके समय में यह कहना चाहिये कि इस श्राद्धके प्रभावसे व नर्मदा के जलके पीने व ब्राह्मणों व नीति से कमायेहुये धन ॥ २२ ॥ इनके प्रभावसे प्रेतलोग परमगतिको पावे ऐसे कहकर अपनी

शक्तिके अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २३ ॥ और हे विशालाक्ष ! ब्राह्मणों को हविष्यान्न देवे एक विद्याके दानमें अक्षयगति होती है ॥ २४ ॥ और हे राजेन्द्र ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मणके लिये तिलोके सहित सोना देवे वह स्वर्गको जाताहै ॥ २५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम जो दो तीर्थ हैं उन को जावे सब पापोंका नाश करनेवाला एक दधिच्छन्द और दूसरा मधुच्छन्दहै ॥ २६ ॥ दधिच्छन्द में जो मनुष्य स्नानकर ब्राह्मणको दही देताहै हे भारत ! उसको सात जन्मोंतक दही खानेको मिलताहै ॥२७॥ उसको रोग, बुढ़ापा, शोच और ईर्षा कभी नहीं आते हैं और वह हजारजन्मतक बडेही कुलमें पैदा होता है ॥ २८ ॥

तः ॥ २३ ॥ हविष्यान्नंविशालाक्ष द्विजानाञ्चैवदापयेत् ॥ विद्यादानेनचैकेन अक्षयागतिराप्यते ॥ २४ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र योदद्यादग्रजन्मने ॥ काञ्चनंसतिलंचैव सगच्छेच्चत्रिविष्टपम् ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ दधिच्छन्दंमधुच्छन्दं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २६ ॥ दधिच्छन्देनरःस्नात्वा योदद्याच्चद्विजेदधि ॥ उपतिष्ठतितस्यैतत्सप्तजन्मसुभारत ॥ २७ ॥ नव्याधिर्नजरातस्य नशोकोनचमत्सरः ॥ दशचन्द्रशतंयावज्जायतेविपुलेकुले ॥ २८ ॥ मधुच्छन्देतुमधुना मिश्रितञ्चतिलोदकम् ॥ नचवैवस्वतन्देवं पश्यतेसप्तजन्मसु ॥ २९ ॥ मधुनासहसंमिश्रं तिलंयमधुनासहमिश्रन्तु तिलंयस्तुप्रयच्छति ॥ तस्यपुत्रस्यपौत्रस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ ३० ॥ मधुनासहसंमिश्रं तिलंयस्तुप्रयच्छति ॥ मधुनासहसंमिश्रं यस्तुपिण्डंप्रदापयेत् ॥ ३१ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःस्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥ पितापितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ॥ ३२ ॥ षोडशाब्दानितुष्यन्ति नात्रकार्य्याविचारणा ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोग

और मधुच्छन्दतीर्थ में मिठाई से मिलेहुये तिलोंको जो देताहै वह सात जन्मोंतक यमराज को नहीं देखता है ॥ २९ ॥ मिठाई से मिलेहुये तिलोंको जो देता है उसके लडके व पोतोंको भी दरिद्र नहीं होताहै ॥ ३० ॥ फिर भी मिठाई से मिले तिलोको जो देताहै अथवा मिठाई से मिलेहुये तिलोंके लड्डूको जो देताहै उस को भी पहले कहाहुआ फल होता है ॥ ३१ ॥ उस तीर्थमें जो विधिसे स्नानकर व दक्षिण मुहँ बैठकर बाप, दादे और परदादेको पिण्ड देताहै ॥३२॥ उसके वे पितर

सोलह वर्षतक सन्तुष्ट रहते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम नन्दितीर्थ को जावे ॥ ३३ ॥ जहां निश्चय से नन्दी सिद्धहुयेहैं वह सब हम कहते हैं आगे नर्मदा को अपने सामनेकर नन्दी ने महादेव के वास्ते ॥ ३४ ॥ तप किया और मन्त्रको जपतेहुये एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को जातेहुये दधिच्छन्द और मधुच्छन्द को छोड जबतक जावें ॥ ३५ ॥ तबतक प्रसन्न होगये महादेवजी उस नन्दी से बोले महादेवजी ने कहा कि हे नन्दीश ! हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनमाने वरको मांगो ॥ ३६ ॥ क्योंकि तुम्हारे उस तपस्या व तीर्थयात्रा के करने से हम सन्तुष्ट हैं तब नन्दी बोले कि धन, कुल

च्छेत्तुराजेन्द्र नन्दितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३३ ॥ यत्रसिद्धश्चवैनन्दी तत्सर्वंकथयाम्यहम् ॥ नर्म्मदांपुरतःकृत्वापुरानन्दी महेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तपस्तप्तंजपंश्चैव तीर्थात्तीर्थंजगामह ॥ दधिच्छन्दंमधुच्छन्दं यावत्त्यक्त्वाचगच्छति ॥ ३५ ॥ तुष्टोमहादेवो नन्दिनन्तमुवाचह ॥ महेश्वरउवाच ॥ भोभोःप्रसन्नोनन्दीश वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ ३६ ॥ तपसातेनतुष्टोहं तीर्थयात्राकृतेनच ॥ नन्द्युवाच ॥ नचाहंकामयेवित्तन्नचाहंकुलसन्ततिम् ॥ ३७ ॥ मुक्तिन्नकामयेचान्यद्देवेश चरणाम्बुजम् ॥ कृमिकीटपतङ्गेषु तिर्य्यग्योनिगतेषुच ॥ ३८ ॥ जन्मजन्मनियास्यामि त्वद्भक्तिरचलाचमे ॥ तथेतिचोक्तोदेवेन परमेशेननन्दिकः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वातंकरेशीघ्रं जगामनिलयंहरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःस्नात्वा भक्त्याभ्यर्च्चप्रपूजयेत ॥ ४० ॥ अग्निष्टोमेचयत्पुण्यं फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ तत्रतीर्थेमहापुण्ये प्राणत्यागंकरोतियः ॥ ४१ ॥ शिवस्यानुचरोभूत्वा मोदतेकल्पमक्षयम् ॥ ततःकालेनमहता जायतेविपुलेकुले ॥ ४२ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जी

और सन्तान को हम नहीं चाहते और न मुक्ति व न औरही कुछ चाहते हैं हे देवेश ! आपके चरणकमलों को हम चाहते हैं कृमि, कीट और पतिंगत्रों की योनिमें अथवा पशु व पक्षियों की योनिमें ॥ ३७।३८ ॥ हम जन्म २ में जावें परन्तु आपकी अचलभक्ति हमको होवे तब महादेवने नन्दी से कहा कि ऐसाहीहो ॥३९॥ और हाथ पकड़कर नन्दी के सहित महादेव अपने स्थानको जल्दी जातेहुये जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नानकर भक्तिसे महादेवका पूजन करता है ॥ ४० ॥ वह अग्निष्टोमयज्ञ में जो पुण्य होता है उस फलको पाता है और बड़े पुण्यवाले उस तीर्थ में जो प्राणोंको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ वह महादेव का सेवक होकर अक्षय कल्पभर

आनन्द करताहै तदनन्तर बहुत कालके बाद वेद व वेदांगों के तत्त्वों के जाननेवाले बड़े कुलमें पैदाहोकर सौवर्ष जीताहै हे पार्थ ! सब सन्तोषों के देनेवाले इस आख्यान को हमने तुमसे कहा ॥ ४२ । ४३ ॥ यह बडा दुर्लभहै और सच्चेके सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डप्राकृतभाषाऽनुवादेनन्दितीर्थवर्णनोनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम वरुणेश्वर को जावे हे नृपसत्तम ! पहले जहां वरुणदेव सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ मनुष्यलोग पीना, शाक, पत्ता

वेच्चशरदांशतम् ॥ एतत्तेकथितंपार्थ सर्वतुष्टिप्रदंशुभम् ॥ ४३ ॥ दुर्लभंसत्यसंज्ञस्य सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेनन्दितीर्थवर्णनोनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र वरुणेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धोपुरादेवो वरुणोनृपसत्तम ॥ १ ॥ पिण्याकशाकपर्णैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥ आराध्यगिरिजानाथं ततस्सिद्धिङ्गताजनाः ॥ २ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ पूजयेच्छङ्करंभक्त्या सगच्छेत्परमंपदम् ॥ ३ ॥ कुण्डिकांवर्द्धनींवापि महद्वाजलभाजनम् ॥ अन्नेनसहितंपार्थ तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ यत्फलंलभतेमर्त्यस्सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ तत्फलंसमवाप्नोति नात्रकार्य्या विचारणा ॥ ५ ॥ सर्वेषामेवदानानामन्नदानमनुत्तमम् ॥ यद्यत्प्रीतिकरञ्चैव तोयञ्चनृपसत्तम ॥ ६ ॥ तत्रतीर्थेमृता

और कृच्छ्र व चान्द्रायण आदि व्रतोंसे महादेव का सेवनकर तदनन्तर सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ २ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नानकर और पितर व देवताओं का तर्पणकर भक्तिसे महादेवका पूजन करताहै वह परमपदको जाताहै ॥ ३ ॥ और हे पार्थ ! कूंडी व बढ़नी और कोई बड़ापानीका पात्र अन्नके सहित जो दियाजाताहै उसके पुण्य फलको तुम सुनो ॥ ४ ॥ बारह वर्षतक जिसमें बैठक रहती है ऐसे सत्र (यज्ञ) में जिस फलको मनुष्य पाताहै उसी फलको पाताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ सब दानोंमे अन्नदान बड़ा उत्तम है व हे नृपसत्तम ! और भी जो जो सबका प्रसन्न करनेवाला पदार्थ जैसे कि जलहै उनको देवे ॥ ६ ॥ उस तीर्थमें मरेहुये

महात्मा मनुष्यों का वरुणलोक में प्रलयतक वास होताहै ॥ ७ ॥ वहां बहुत काल तक भोगोंको भोगकर फिर मनुष्यलोकमें पैदाहोता है अन्नदान का देनेवाला पैदा होकर सौवर्ष बराबर जीताहै ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि फिर हे राजेन्द्र ! अत्युत्तम अग्नितीर्थ को जावे जहां तपस्याको कर बडे तेजवाले अग्निभगवान् सिद्धहुये हैं ॥ ९ ॥ आगे जिसको मुनिने दण्डकवन में सर्वभक्षी करदिया था वही अग्नि नर्मदा के तटपर बैठकर पवित्र होगये ॥१०॥ मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर और पार्वती के सहित महादेवका पूजनकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर हे नृप ! ब्राह्मणों को जल देकर सोना देता है वह अर्बुगुने फलको

नाञ्च नराणांभावितात्मनाम् ॥ वारुणेचपुरेवासो यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ७ ॥ भुक्त्वातत्रबहुंकालं मर्त्यलोकेभिजायते ॥ अन्नदानप्रदोनित्यं जीवेच्चशरदांशतम् ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धोमहातेजास्तपःकृत्वाहुताशनः ॥ ९ ॥ सर्वभक्षीकृतोयश्च दण्डकेमुनिनापुरा ॥ नर्म्मदातटमाश्रित्य पूतोजातोहुताशनः ॥ १० ॥ तत्रतीर्थेनरस्स्नात्वा समभ्यर्च्यजगद्गुरुम् ॥ उमयासहितंभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ११ ॥ तत्र तीर्थेनरस्स्नात्वा दत्त्वैकाञ्चनंनृप ॥ ब्राह्मणेभ्योजलंदत्त्वालभतेवार्बुदंफलम् ॥ १२ ॥ दधिच्छन्देमधुच्छन्दे नन्दीशे वारुणेतथा ॥ आग्नेयेतत्फलंतात स्नात्वामुच्येतकिल्बिषैः ॥ १३ ॥ तेवन्द्यामानुषेलोके धन्याश्चाप्तमनोरथाः ॥ यैर्हिदृष्टंमहापुण्यंनर्म्मदातीर्थपञ्चकम् ॥ १४ ॥ स्वर्गलोकमवापुस्तेयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ततःस्वर्गाच्च्युताश्चापिराजानस्सन्तिधार्मिकाः ॥ १५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताभुञ्जतेतेऽचलांमहीम् ॥ आखण्डलप्रतापोयंनर्म्मदातटसेवने ॥ १६ ॥

पाता है ॥ १२ ॥ हे तात ! दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, नन्दीश्वर, वारुण और आग्नेय में वह फल होताहै कि स्नान करके सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १३ ॥ मनुष्य-लोकमें वे मनुष्य वन्दना करने के योग्य व धन्य हैं और उन्हीको सब मनोरथ मानो मिलगये कि जिन्होंने बडे पुण्यवाले नर्मदा के पांचों तीर्थोंको देखाहै ॥ १४ ॥ वे जबतक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक स्वर्गलोक में प्राप्त बने रहते हैं तदनन्तर स्वर्गसे उतरेहुये व सब पापोंसे छूटेहुये धर्मात्मा राजा होतेहैं और पृथिवी का अचल

भोग करते हैं नर्मदातट के सेवन से इन्द्रके समान प्रतापवाला होता है ॥ १५ । १६ ॥ कनखल में गङ्गा पुण्यवाली हैं और सरस्वती कुरुक्षेत्र में और गांव व वनमें कहीं भी हों नर्मदा सब कहीं पवित्र हैं ॥ १७ ॥ नर्मदा के किनारे रहताहुआ जो हमेशा उनका जल पीताहै वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान करचुका और उसको रोज रोज सोमलता के पीनेका फल होताहै ॥ १८ ॥ गङ्गाआदि सब नदियां व समुद्र व तालाब कल्पके अन्तमें नष्ट होजाते हैं परन्तु नर्मदा कभी नहीं नष्ट होती हैं ॥१६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेतीर्थपञ्चकवर्णनोनामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

गङ्गाकनखलेपुण्याकुरुक्षेत्रेसरस्वती ॥ ग्रामेवायदिवारण्येपुण्यासर्वत्रनर्मदा ॥ १७ ॥ रेवातीरंवसन्नित्यं तोयंयस्तुस दापिबेत् ॥ स्नातोसौसर्वतीर्थेषु सोमपानंदिनेदिने ॥ १८ ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्सर्वास्समुद्राश्चसरांसिच ॥ कल्पान्तेसंक्षयं यान्तिनमृतैकाचनर्म्मदा॥ १९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेतीर्थपञ्चकवर्णनोनामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०२॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ हनूमदीश्वरन्नाम कथंजातंमहामते ॥ ब्रह्महत्याहरंतीर्थं रेवायादक्षिणेतटे ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधुपृष्टंमहाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातंकस्यचिन्मया ॥ २ ॥ तवस्नेहात्प्रवक्ष्यामि पीडितोवार्द्धकेनतु ॥ जातंपूर्वंमहायुद्धं रामरावणयोरपि ॥ ३ ॥ पुलस्त्योब्रह्मणःपुत्रस्तस्यवैविश्रवास्सुतः ॥ रावणस्तस्यसञ्जातो दशग्रीवोपिराक्षसः ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविजयीजातः प्रसादाच्छूलिनस्तथा ॥ गीर्वाणानिर्जितास्सर्वे रामस्यगृहिणीहृता ॥ ५ ॥ यद्भ्राताकुम्भकर्णोवै सीतासावनमाश्रिता ॥ विभीषणेनपापोयं मन्दस्त्यक्तोविचार्य्य

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामते ! नर्मदा के दक्षिणवाले तटमें ब्रह्महत्या का हरनेवाला हनूमदीश्वर नामका तीर्थ कैसे हुआ ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे सोमवंशविभूषण ! हे महाबाहो ! आपने बहुतअच्छा पूँछा गुप्तसे अतिगुप्त इस तीर्थको मैंने किसीसे नहीं कहाहै ॥ २ ॥ यद्यपि बुढ़ापे से पीड़ितहूं तथापि तुम्हारे स्नेहसे कहूंगा अगिले जमानेमें राम और रावण का बड़ा युद्ध हुआ ॥ ३ ॥ ब्रह्माके लड़के पुलस्त्य हुये, उनके पुत्र विश्रवा हुये, विश्रवाके दशकण्ठवाला राक्षस रावण हुआ ॥ ४ ॥ वह महादेव के प्रसाद से तीनों लोकोंका जीतनेवाला हुआ उसने सब देवताओंको जीतलिया और रामकी रानी सीताको हरलेगया ॥ ५॥ जिसका भाई

कुम्भकर्ण था, सीता अशोकवन में रहती थीं, विभीषण ने विचार करके इस पापी नीचको छोड़दिया ॥ ६ ॥ वह सहस्रबाहु से जीतागया था और सहस्रबाहु को परशुराम ने जीताथा वह रावण रामचन्द्र से मारागया और उसकी राज्यभी हर लीगई ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामने उस बडे बलवाले राक्षसको संग्राम में जीता और हनूमान् ने लङ्कामें जाकर वनको तोड़ा और राक्षसों को मारा ॥ ८ ॥ रावण का लड़का अक्षकुमार भी हनूमान् से संग्राममें मारागया इस प्रकार रामायणके होनेपर और सीताके छूटनेपर ॥ ९ ॥ और रामको अयोध्या जानेपर हे पार्थ ! बड़े बलवाले हनूमान् महादेव के प्रणाम करने के वास्ते कैलासको गये ॥ १० ॥ तब नन्दीने

च ॥ ६ ॥ सजितःकार्त्तवीर्य्येण सजितोजामदग्निना ॥ सहतोरामचन्द्रेण तस्यराज्यंहृतन्तथा ॥ ७ ॥ ततोरामेणरक्षोपि जितस्संख्येमहाबलः ॥ वनंभग्नंहतोरक्षो गत्वावायुसुतेनवै ॥ ८ ॥ रावणस्यसुतस्संख्ये हतश्चाक्षकुमारकः ॥ एवंरामायणेजाते सीतामोक्षेकृतेततः ॥ ९ ॥ अयोध्यायांगतेरामे हनूमांश्चमहाबलः ॥ कैलासंहिगतःपार्थ प्रणामार्थंमहेश्वरे ॥ १० ॥ तिष्ठतिष्ठेतिचोक्तोवै नन्दिनावानरोत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायुतस्त्वंहि राक्षसानांवधेनहि ॥ ११ ॥ भैरवस्यासनंपुण्यं नगन्तासिमहाबल ॥ हनूमानुवाच ॥ नन्दिस्त्वंहिवरंयच्छ पातकस्योपशान्तये ॥ १२ ॥ भूत्वानिष्पातकोहंवै प्रणमामिमहेश्वरम् ॥ नन्द्युवाच ॥ रुद्रदेहोद्भवापुण्या नर्मदासरितांवरा ॥ १३ ॥ श्रवणाज्जन्मचरितं कीर्तनाद्द्विगुणंव्रजेत् ॥ सप्तजन्मार्जितंपापं नश्येद्रेवावगाहनात् ॥ १४ ॥ तस्मात्तीरेवसत्वञ्च रेवासङ्गमदक्षिणे ॥ ध्यायमानोविरूपाक्षं त्रिशूलकरसंस्थितम् ॥ १५ ॥ जटामुकुटसंकाशं व्यालयज्ञोपवीतकम् ॥ उमार्द्धाङ्गधरन्देवं गोराजासनसंस्थि

हनूमान्से कहा कि खड़ेरहो २ तुम राक्षसों के मारने से ब्रह्महत्यासे युक्त होरहेहो ॥ ११ ॥ इससे हे महाबल ! पवित्र भैरवके आसनको तुम मतजावो तब हनूमान् बोले कि हे नन्दिन् ! तुम हमारे पातक शान्त होने के वास्ते वर देवो ॥ १२ ॥ तो हम पापसे रहित होकर महादेवको नमस्कार करें तब नन्दी बोले कि नदियोंमें श्रेष्ठ व पुण्यवाली नर्मदा महादेव की देहमे पैदाहुई है ॥ १३ ॥ जिसके सुनने से एक जन्मका पाप नष्ट होताहै और कहने से उससे दूना और नर्मदा के नहाने से सात जन्मोंका पाप नष्ट होजाताहै ॥ १४ ॥ तिससे तीन नेत्रवाले व त्रिशूल को हाथ में लियेहुये जटामुकुट को धरेहुये सर्पोंके जनेऊ को पहनेहुये व पार्वती को आधेअङ्ग

में धरेहुये व श्रेष्ठबैल के आसनपर बैठे हुये महादेव को ध्यावतेहुये तुम नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर बसो ॥ १५ । १६ ॥ तब हनूमान् ने वही किया वहां बहुत वर्षोंतक ध्यान करतेहुये उन हनूमान् से प्रसन्न हुये पार्वती के सहित महादेवजी वहां आये ॥ १७ ॥ और मेघों कीसी आवाज से मीठीवाणी को बोले कि हे वत्स ! तपस्या में बडेकष्ट से तुमको रहना पडा ॥ १८ ॥ तब पार्वती को आधेअङ्ग में धरेहुये वर्तमान महादेवजी को देख हनूमान् ने सब अङ्गोंसे नम्र होकर कहा कि हे देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ अन्धकके मारनेवाले व बाणासुर के मर्दन करनेवाले के लिये जयहो, भूतों के मालिकके लिये जयहो हे भैरवभूषण !

तम् ॥ १६ ॥ वत्सरान्सुबहून्याववृध्यायतस्तस्यतत्रवै ॥ तत्रतुष्टोमहादेव आगतःसहभार्यया ॥ १७ ॥ उवाचमधुरांवाणीं मेघगम्भीरयागिरा ॥ साधुवत्सत्वयाचात्र कष्टंतपसिसंस्थितम् ॥ १८ ॥ हनूमांश्चहरन्दृष्ट्वा उमार्द्धाङ्गधरंस्थितम् ॥ साष्टाङ्गप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १९ ॥ जयचान्धकघाताय बाणासुरविमर्दिने ॥ जयभूतपनाथाय जयभैरवभूषण ॥ २० ॥ जयकामविनाशाय गङ्गांशिरसिधारिणे ॥ एवंस्तुतोमहादेवो वरदोवानरस्यच ॥ २१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंप्रार्थयत्वंवत्स प्रार्थितंरभसंवद ॥ हनूमानुवाच ॥ ब्रह्मरक्षोवधाज्जाता ब्रह्महत्यामहेश्वर ॥ २२ ॥ निष्पापोहंभवेयं वै युष्मत्सम्भाषणेनच ॥ ईश्वरउवाच ॥ नर्म्मदातीर्थमाहात्म्यध्यानयोगप्रभावतः ॥ २३ ॥ मन्मूर्तिदर्शनात्सद्यो निष्पापोनात्रसंशयः ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेव उमासार्द्धंत्रिलोचनः ॥ २४ ॥ हनूमदीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तितः ॥ आ

आपकी जयहो ॥ २० ॥ कामदेव के नाश करनेवाले व गङ्गाको शिरपर धरनेवाले के लिये जयहो इस प्रकार हनूमान् को वर देनेवाले महादेवजी स्तुति कियेगये ॥ २१ ॥ तब महादेव बोले कि हे वत्स ! तुम वरको मांगो जो चाहते हो उसको जल्दी कहो तब हनूमान् बोले कि हे महेश्वर ! ब्रह्मराक्षसों के मारनेसे मुझको ब्रह्महत्या हुई है ॥ २२ ॥ इससे अब आपके सम्भाषण से हम पापसे रहित होजावें तब महादेव बोले कि नर्मदातीर्थ के माहात्म्य व ध्यानयोगके प्रभाव ॥ २३ ॥ व हमारी मूर्त्तिके दर्शनसे तुम शीघ्र पापों से छूटगये इसमें संशय नहीं है इतना कहकर पार्वती के सहित तीन आंखोंवाले महादेवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ २४ ॥ तब वहा

हनूमान् ने हनूमदीश्वर को भक्तिसे स्थापित किया अपने योगबलसे व ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ॥ २५ ॥ व महादेवके प्रभावसे कामनाओं के देनेवाले व जन्म मरणसे रहित व नहीं तर्क करने के योग्य व काटने के अयोग्य शिवको स्थापन किया ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि वहां हनूमदीश्वर में पहिले जो परिचयहुआ व द्वापर की आदिमें व त्रेताके अन्तमें हे नरेश्वर ! जो हालहुआ सो सुनो ॥ २७ ॥ इस पृथिवीमें एक सुपर्णनाम के राजर्षि होतेहुये उनकी राज्य में सदा बड़ी उमरवाले मनुष्य होतेहुये और उनको हमेशा सुख होता हुआ ॥ २८ ॥ उनका पुत्र बड़ा पराक्रमी व सौ हाथोंवाला होताहुआ हे नरेश्वर ! वह जप व ध्यान में हमेशा लगारहता

त्मयोगबलेनैव ब्रह्मचर्यप्रभावतः ॥ २५ ॥ ईश्वरस्यप्रभावेण कामदंस्थापितंशिवम् ॥ अच्छेद्यमप्रतर्क्यञ्च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हनूमदीश्वरेतत्र प्रत्ययंयत्पुराभवत् ॥ यद्वृत्तंद्वापरस्यादौ त्रेतान्तेचनरेश्वर ॥ २७ ॥ सुपर्णोनामराजर्षिर्बभूववसुधातले ॥ तस्यराज्येसदासौख्यं दीर्घायुर्मानवस्सदा ॥ २८ ॥ शतबाहुर्बभूवास्य पुत्रोभीमपराक्रमः ॥ आसक्तस्ससदाकालं जपध्यानेनरेश्वर ॥ २९ ॥ क्रीडतेपृथिवींसर्वां पर्वतांश्चवनानिच ॥ वधार्थंमृगयूथानामागतोविन्ध्यपर्वते ॥ ३० ॥ मृगजातिसमाकीर्णे हस्तिजातिसमाश्रिते ॥ हस्तिचित्रकशोभाढ्ये मृगवाराहसंकुले ॥ ३१ ॥ क्रीडित्वाचततोराजा चासनेसंस्थितस्सच ॥ वनमध्येतदादृष्ट्वा भ्रमन्तंपिङ्गलंद्विजम् ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ एकोवनेवनेकस्माद्भ्रमसेपुस्तिकाकरः ॥ इतश्चेतोनिरीक्षंस्त्वं कथयस्वद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ कान्यकुब्जात्समायातः प्रेषितोराजकन्यया ॥ राजोवाच ॥ कथयस्वप्रसादेन कस्मात्कार्य्यादिदप्रभो ॥ ३४ ॥

था ॥२९॥ और सब पृथिवी व पर्वत व जङ्गलोंमें विहार करता था किसी समय हिरनोंके मारनेके वास्ते विन्ध्यपर्वतपर आया ॥३०॥ जोकि हिरनों व हाथियोंकी जाति से भराहुआ हाथियों के पकड़ने के वास्ते बनेहुये हाथियों के चित्रों की शोभामे युक्त हिरनों व सुवरों से भराहै ॥ ३१ ॥ वह राजा वहां विहारकर आसनपर बैठा तदनन्तर वनके बीचमें घूमतेहुये एक पिङ्गलब्राह्मण को देखा ॥ ३२ ॥ उससे राजा बोला कि हे द्विजोत्तम ! इधर उधर क्या देखतेहुये पुस्तक हाथमें लियेहुये अकेले वन वनमें तुम क्यों घूमतेहो सो कहो ॥३३॥ तब ब्राह्मण बोला कि हम कान्यकुब्ज से राजकन्या के भेजेहुये आये हैं तब राजा बोला कि हे प्रभो ! किस कामके वास्ते

आये हो सो अपनी दयासे कहो ॥ ३४ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि राजा शिखण्डी कान्यकुब्ज देशको भोगताहै वह राजा पुत्रों से खाली है बड़े मनोरथों से उसके एक कन्या हुई ॥ ३५ ॥ वह कन्या नर्मदाके प्रभाव से पूर्वजन्म की सुध रखनेवाली व उत्तम चालवाली है उसके पिताने उसको विवाहके लायक समझा और उससे कहा भी है ॥ ३६ ॥ पिता ने कहा कि इस असारसंसारमें हम कन्यादान करेंगे तब कन्या बोली कि जिससमय में मैं इच्छाकरूं उससमय में दीजाऊं ॥ ३७ ॥ तब कन्या के वचन से राजा विस्मय से युक्त मनवाला होगया और राजा शिखण्डी बोला कि हे महाभागे ! बतावो तो तुमने क्या कहा ॥ ३८ ॥ पिताके वचनसे वह बाला शिरसे

ब्राह्मणउवाच ॥ शिखण्डीचैवराजावै कान्यकुब्जम्बुभुज्यते ॥ अपुत्रस्समहीपालः कन्याजातामनोरथैः ॥ ३५ ॥ जातिस्मराशुभाचारा नर्मदायाःप्रभावतः ॥ पित्रोक्तासाचकन्यावै विवाहायप्रकल्पिता ॥ ३६ ॥ असारेचाद्यसंसारे कन्यादानंददाम्यहम् ॥ कन्योवाच ॥ यस्मिन्कालेह्यहंलिप्सेतस्मिन्कालेप्रदीयताम् ॥ ३७ ॥ पुत्रीवाक्येनराजासौविस्मयाविष्टचेतनः ॥ शिखण्डयुवाच ॥ कथ्यतांमेमहाभागे भाषितंहित्वयाकथम् ॥ ३८ ॥ पितृवाक्येनसाबाला शिरसावनताभुवि ॥ कथयामासयद्वृत्तं हनूमदीश्वरेनृप ॥ ३९ ॥ कलापिन्यस्म्यहन्तात स्थिताभर्तृसहानुगा ॥ उत्तरेमेशसान्निध्ये रेवायाउत्तरेतटे ॥ ४० ॥ हनूमतोवनेपुण्ये क्रीडतिस्मयदृच्छया ॥ भर्तृयुक्तातत्रगुह्ये वञ्जुलेसरलेद्रुमे ॥ ४१ ॥ आगतालुब्धकास्तत्र क्षुधार्तावनमुत्तमम् ॥ भर्तृकोपयुतैःपापैर्हताहंपतिनासह ॥ ४२ ॥ ग्रीवांनिमोटयामासुर्भक्षणोत्पाटनंकृतम् ॥ हुताशनमुखेतेतु हसन्तश्चाशुलुब्धकाः ॥ ४३ ॥ भर्जयित्वाततोमांसं भक्षयित्वायथेच्छया ॥ सुप्ताः

झुकीहुई हे नृप ! हनूमदीश्वरमें हुये हालको कहती हुई ॥३९॥ कन्या कहती है कि हे तात ! इससे पहलेवाले जन्ममें मैं मोरकी स्त्री अर्थात् मयूरी अपने पतिके सहित नर्मदा के उत्तरवाले किनारेपर नागेश्वर के समीप रहती थी ॥ ४० ॥ उस गुप्तपुण्यवाले, हनूमदीश्वर के वनमें मौरसिरी और सरलके दरख्त के ऊपर अपने पति के सहित इच्छापूर्वक विहार करती थी ॥ ४१ ॥ तबतक उस उत्तम वनमें भूंखे बहेलिया लोग आगये मेरे पति के ऊपर क्रोधसे भरेहुये उन पापियों ने मुझे पतिके सहित मारडाला ॥ ४२ ॥ मेरे गलेको मरोड़ दिया और खाने के वास्ते उसे तोड़ डाला तदनन्तर हँसतेहुये वे लोग जल्दी आगमें ॥४३॥ भूनकर तदनन्तर इच्छासे

मांसको खाकर सब इन्द्रिया जिनकी ठीकहोगईं ऐसे वे लोग रातमें सोये रात व्यतीत होगई ॥ ४४ ॥ उस मांसका जो कुछ हिस्सा बाकी रहगया वह गीदड़, गीध और कौवों से खाडालागया मास और नसोंसे भरीहुई मेरी देहकी हड्डीको एक चिड़िया लेकर आसमान को उड़गई मासके सहित उस पक्षी को देख और भी पक्षी आगये ॥ ४५।४६ ॥ चिडियों के झुण्डको आयाहुआ देख उसने हड्डी के टुकड़े को छोडदिया दौड़ते व देखतेहुये उन सब चिड़ियोंके ॥४७॥ वह हड्डी हनूमदीश्वर के समीप नर्मदाके पानीमें गिरपड़ी मेरी हड्डीका टुकडा नर्मदाके जलमें गिरा ॥ ४८ ॥ उस तीर्थके प्रभावसे मैं क्षत्रियके कुलमें पैदाहुईहूं किन्तु चन्द्रमा के समान मुखवाली

स्वस्थेन्द्रियारात्रौ विगताशर्वरीक्षयम् ॥ ४४ ॥ तन्मांसशेषंजुष्टैर्वै जम्बूकैर्गृध्रवायसैः ॥ मच्छरीरोद्भवंचास्थि स्नायुमांसेनसंयुतम् ॥ ४५ ॥ पक्षिणागृह्यचैकेन आकाशात्पततातदा ॥ सामिषंपक्षिणंदृष्ट्वा पक्षिणोन्येसमागताः ॥४६॥ दृष्ट्वापक्षिसमूहन्तु अस्थिखण्डंव्यसर्ज्जयत् ॥ विहगानांसमस्तानां धावताञ्चापिपश्यताम् ॥ ४७ ॥ पतितंनर्म्मदातोये हनूमदीश्वरेनृप ॥ मदीयमस्थिखण्डञ्च पतितंनर्म्मदाजले ॥४८॥ तस्यतीर्थप्रभावेण जाताहंक्षत्रियेकुले ॥ भूपकन्याप्यहंजाता सम्पूर्णशशिवन्मुखी ॥४९ ॥ जातिस्मरानरेन्द्रास्मि जाताहंक्षत्रियेकुले ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कारणंनृपसत्तम ॥ ५० ॥ मदर्थंविषमस्थानेशकुन्तमृगजातिषु ॥ यदिप्रेषयसेतात कमपिनर्म्मदाजले ॥ ५१ ॥ तस्याहंकथयिष्यामि स्थानचिह्नंसमग्रकम् ॥ कन्यायावचनंश्रुत्वा शिखण्डीह्याहमांनृप ॥५२॥ ग्रामविंशञ्चदास्यामि गच्छत्वंनर्म्मदातटे ॥ प्रेक्षणंमेप्रतिज्ञातमलक्ष्यापीडितेनतु ॥ ५३ ॥ गच्छत्वंनर्म्मदांपुण्यां सर्वपापक्षयंकरीम् ॥ अग्रजांसोमना

मैं राजाकी कन्याहुईहूं ॥ ४९ ॥ हे नरेन्द्र ! मुझको अपने अगिले जन्मकी यादहै क्षत्रियके कुलमें पैदाहुईहूं हे नृपसत्तम ! यह सब कारण आपसे कहागया ॥ ५० ॥ हे तात ! चिड़िया व हिरन जहा रहते है ऐसे कठिन स्थानको जो मेरे वास्ते नर्मदा जल के समीप किसीको भेजोगे ॥ ५१ ॥ तो उस से मैं अपने स्थानका सब चिह्न कहूंगी अपनी कन्या के वचन को सुनकर हे नृप ! शिखण्डी राजाने मुझसे कहा ॥५२॥ कि हम तुमको बीसगांव देवेंगे तुम नर्मदा के तटको जावो हमने जिस बात की प्रतिज्ञा की है उसको तुम बेतकल्लीफ देखो ॥ ५३ ॥ उत्तम हनूमदीश्वर स्थानमें सोमनाथ की बडी बहन सब पापोंकी नाश करनेवाली व पुण्यवाली नर्मदा को

तुम जावो ॥ ५४ ॥ नर्मदा से आधेकोसतक विस्तारवाले बरगद व कदम्ब के वृक्षों से घिरेहुये स्थानमें ॥ ५५ ॥ बरगदके समीप हड्डियोंका ढेर देखपड़ेगा उसमेंसे मिट्टी व हड्डीको लेकर हे द्विजोत्तम ! तुम नर्मदा को जाना ॥ ५६ ॥ कुँवार के उजियाले पाखकी चौदस को महादेव को भक्तिसे स्नान कराने और रातमें जागरण करने ॥ ५७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रातःकाल नाभितक जलमें ठहर उस हड्डी व मिट्टीको पानीमें डालदेना यह कहकर कि जिसकी यह चीजहै उसकी सुगति होवे ॥ ५८ ॥ हड्डी को डालकर फिर पापोंके नाश करनेवाले स्नान को करना चाहिये इसतरह कन्याने जो कुछ कहा वह सब मैंने पुस्तकमें करलिया ॥ ५९ ॥ और हे नृपश्रेष्ठ ! महा-

थस्य हनूमदीश्वरेशुभे ॥ ५४ ॥ अर्द्धक्रोशेतुरेवाया विस्तीर्णैर्वटपादपैः ॥ कदम्बकवनैश्चैव संप्रधानेवनस्यच ॥ ५५ ॥ न्यग्रोधवटसान्निध्ये अस्थिलक्ष्यंप्रदृश्यते ॥ मृत्तिकामस्थिसंगृह्य गच्छरेवान्द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥ आश्विनस्यासितेपक्षे त्रिपुरारितिथौस्थिते ॥ स्नापयशूलिनम्भक्त्या रात्रौकुरुचजागरम् ॥ ५७ ॥ प्रभातेक्षिप्यतांशीघ्रं नाभिमात्रेजले स्थितः ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठ सुगतिस्तस्यजायते ॥ ५८ ॥ अस्थिक्षिप्त्वापुनस्स्नानं कर्तव्यमघनाशनम् ॥ कथितंक न्ययायच्च तत्सर्वंपुस्तकेकृतम् ॥ ५९ ॥ आगतोहंनृपश्रेष्ठ तस्मिंस्तीर्थेमहालये ॥ साभिज्ञानंततोदृष्ट्वा अस्थिगृह्य नृपोत्तम ॥ ६० ॥ पूर्वोक्तेनविधानेन निक्षिप्तंनर्म्मदाजले ॥ पुष्पवृष्टिःपपाताथ साधुसाध्वितिब्राह्मण ॥ ६१ ॥ विमान न्तुततोदिव्यं दृष्टंहनुमदीश्वरे ॥ ततोब्राह्मणराजानौ गृहीत्वाऽनशनंस्थितौ ॥६२॥ आत्मानंशोषयित्वाच ईश्वराराध नेरतौ ॥ एवंसन्ध्यायतोदेवं शतबाहुर्द्विजोत्तमः ॥ ६३ ॥ मासार्द्धात्तुमृतोराजा शतबाहुर्महामतिः ॥ किङ्किणीजाल

लय (पितृपक्ष) में मैं उस तीर्थको आया और हे नृपोत्तम ! कहेहुये चिह्नको देख व हड्डीको लेकर ॥ ६० ॥ पहले कहेहुये विधान से नर्मदाके जलमें डालदी तदनन्तर ब्राह्मणपर फूलोंकी वर्षा हुई और कहागया कि हे ब्राह्मण ! वाह वाह ॥ ६१ ॥ तदनन्तर हनूमदीश्वर में एक दिव्य विमान देखपड़ा तदनन्तर ब्राह्मण और राजा दोनों अनशनव्रतको करतेहुये ॥ ६२ ॥ अपनेको सुखाकर ईश्वरके भजनमें तत्पर होतेहुये इस प्रकार भगवान्को ध्यावतेहुये शतबाहु राजा और ब्राह्मण दोनोंमें से ॥ ६३ ॥

पन्द्रह दिनके बाद बड़ी बुद्धिवाला राजा शतबाहु मरगया तब क्षुद्रघण्टिकाओं के जालकी शोभायुक्त एक विमान वहां आगया ॥ ६४ ॥ और उससे आवाज आई कि हे नृपश्रेष्ठ ! वाह २ आप विमानपर सवार हूजिये तब राजा बोला कि जबतक यह ब्राह्मण न चढ़ेगा तवतक हम ऊपरी रास्तेको नहीं जावेंगे ॥ ६५ ॥ क्योंकि यह द्विजोत्तम हमको उपदेश देनेवाला गुरुके बराबर है तब देवता बोले कि हे राजन् ! हनूमदीश्वर में जो मनुष्य मरते हैं ॥ ६६ ॥ वे सब पापों के क्षय करनेवाले शिवलोक को जातेहैं इससे हे नरेश्वर ! अभी इस ब्राह्मण के पापों का क्षय नहीं हुआहै ॥ ६७ ॥ अभी इस ब्राह्मण का मन मकान व स्त्री व धनमें

शोभाढ्यं विमानंतत्रचागतम् ॥ ६४ ॥ साधुसाधुनृपश्रेष्ठ विमानारोहणंकुरु ॥ राजोवाच ॥ ऊर्द्ध्वमार्गन्नगच्छामि वि प्रोयावन्नसंस्थितः ॥ ६५ ॥ उपदेशप्रदोमह्यं गुरुरूपोद्विजोत्तमः ॥ देवाऊचुः ॥ हनूमदीश्वरेराजन्ये मृतास्सन्ति मानवाः ॥ ६६ ॥ तेयान्तिशिवलोकंवै सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ नैवपापक्षयश्चास्य ब्राह्मणस्यनरेश्वर ॥ ६७ ॥ गृहञ्चगृ हिणीवित्तं ब्राह्मणस्यप्रवर्त्तते ॥ शतबाहुस्ततोविप्रं भाषयामासभक्तितः ॥ ६८ ॥ त्यजमूलमधर्म्मस्य लोभमेकंद्विजो त्तम ॥ इत्युक्त्वाप्रययौराजा स्वर्गंस्वर्गिजनैस्सह ॥ ६९ ॥ दिनैःकैश्चिद्गतोविप्रः स्वर्गंसुकृतिभिस्सह ॥ वाहिन्याःका शिराजस्य पुत्र्यास्तीर्थप्रभावतः ॥ ७० ॥ आत्मनःकन्ययादत्ते पूर्वजन्मार्जिततपः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां सर्वका लंमुनीश्वर ॥ ७१ ॥ विशेषादाश्विनेमासे कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ स्नापयेदीश्वरंभक्त्या क्षौद्रक्षीरेणसर्पिषा ॥ ७२ ॥ दध्नाचखण्डयुक्तेन तिलतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन चार्चयेत्तंमहेश्वरम् ॥ ७३ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च वि

लगाहै तब शतबाहु राजाने ब्राह्मणसे कहा ॥ ६८ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! अधर्मकी जड एक लोभ है तिसको तुम छोड़ो इतना कह देवताओं के सहित राजा स्वर्गको चलागया ॥ ६९ ॥ फिर थोड़ेही दिनोंमें और धर्मात्माओंके साथ काशिराज की कन्या नर्मदानदी तीर्थके प्रभावसे व अपनी कन्या के दियेहुये उसके पूर्वजन्मके कमाये हुये तपसे वह ब्राह्मण भी स्वर्गको चलागया इससे हे मुनीश्वर ! अष्टमी व चौदस को हमेशा ॥ ७०।७१ ॥ परन्तु कुँवारके कालेपाखमें जो चौदसहै उसमें विशेषकरके शहद, दूध और घी से भक्तिपूर्वक महादेवको नहवावे ॥७२॥ और शक्कर मिले दही व तिलोंके जलसे नहवावे फिर खुशबूदार चन्दन से उन महादेव का पूजनकरे ॥७३॥

तदनन्तर सुगन्धवाले फूलों व बेलपत्रों से पूजन करे और जो वेदपाठी व सब लक्षणों से युक्त व कुलीन व अपने कुटुम्ब की पालना करनेवाले ब्राह्मणों से वहां श्राद्धको कराता है और अन्न व वस्त्र व सुवर्ण से भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को तृप्त करता है ॥ ७४ । ७५ ॥ यह कहकर कि हे ब्राह्मणो! नरक में पड़ेहुये मेरे पितर स्वर्गको जावें और स्वर्गवाले और भी उत्तमलोकको जावें ऐसे कह ब्राह्मणो के नमस्कारकरे ॥ ७६ ॥ और पतित ब्राह्मणों को छोडदेवे जिसके घरमें वृषली होवे उस का पूजन न करे अपने वृष (पति) को छोड़ और वृषों (पुरुषों) से जो मैथुनकी इच्छाकरे ॥७७॥ देवता उसीको वृषली जानते है शूद्रा वृषली नहीं होती है इसप्रकार

ल्वपत्रैश्चपूजनम् ॥ श्राद्धंयःकारयेत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ७४ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुलीनैर्गृहपालकैः ॥ तर्पये द्ब्राह्मणंभक्त्या अन्नवस्त्रहिरण्यकैः ॥ ७५ ॥ नरकस्थादिवंयान्ति इत्युच्चार्य्यद्विजातयः ॥ स्वर्गस्थाःपरमंलोकमि त्युक्त्वाप्रणमेद्द्विजान् ॥ ७६ ॥ पतितान्वर्जयेद्विप्रान्वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ स्ववृषन्तुपरित्यज्य वृषैरन्यैर्वृषायते ॥ ७७ ॥ वृषलीन्तांविदुर्देवा नशूद्रावृषलीभवेत् ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ ७८ ॥ सुवर्णहरणंतस्यमित्र द्रोहभवन्तथा ॥ नश्यन्तिपातकास्सर्वे इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ७९ ॥ वाक्प्रलापेनकिंवत्स बहुनोक्तेनकिन्तुवा ॥ सर्व पापसमोपेतो दद्याद्दानंद्विजोत्तमे ॥ ८० ॥ सर्वदेवमयीधेनुस्सर्वदेवात्मिकास्थिता ॥ शृङ्गाग्रेषुमहीपाल शक्रोवसति नित्यशः ॥ ८१ ॥ हरिःस्कन्धेशिरोब्रह्मा ललाटेवृषवाहनः ॥ चन्द्रार्कौलोचनेज्ञेयौ जिह्वायान्तुसरस्वती ॥ ८२ ॥ मरु द्गणास्सदासाध्यास्तस्याङ्गानिनरेश्वर ॥ ॐकारश्चतुरोवेदास्सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ८३ ॥ ऋषयोरोमकूपेषु अस्थिख्या

श्राद्ध करनेवाले के ब्रह्महत्या व शराब पीना व गुरुकी स्त्रीका भोगकरना ॥ ७८ ॥ सुवर्ण चुराना व मित्रसे द्रोह करना ऐसे २ सब पाप नष्ट होजाते हैं ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ७९ ॥ हे वत्स ! बहुत बकबाद व बहुत कहने से क्या है सभी पापोंसे युक्त भी पुरुष ब्राह्मण को दानदेवे तो उसको ऊपर कहा फल होवेगा ॥ ८० ॥ गऊमें सब देवता होते हैं और गऊ सब देवताओं के रूपही से स्थित रहती है हे महीपाल ! उसके सीगोंकी नोकोंमें इन्द्र हमेशा रहतेहैं ॥ ८१ ॥ विष्णुभगवान् कन्धेमें रहते हैं शिरमें ब्रह्मा और मस्तकमें महादेव रहते हैं चन्द्रमा और सूर्य नेत्रों में, सरस्वती जिह्वा में रहती है ॥ ८२ ॥ और हे नरेश्वर ! मरुत और साध्य सदा

उसके अङ्गहैं व छहो अङ्ग व पद व क्रमोंके सहित चारोवेद व ॐकार ॥ ८३ ॥ व ऋषिलोग रोवों के छेदोंमें रहते हैं और हड्डियोंमें उत्तम पर्वत हैं कालदण्ड जिनके हाथमेंहै ऐसे भारी देहवाले, काले व भैंसे के सवार ॥ ८४ ॥ यमराज पीठमें हमेशा रहतेहैं जोकि औरोंके पाप व पुण्य के देखनेवाले है पुण्यवाले चारो समुद्र दूधकी धाराहो थनों में हैं ॥ ८५ ॥ विष्णुकी देहसे पैदाहुई गङ्गा दर्शनही से पापोंकी हरनेवाली हैं और जो ऐसे विद्यमान होरही गऊ कि जिसकी देहमें सभी देवता हैं वह पण्डितों से क्यों न माननेलायक होवे ॥ ८६ ॥ पवित्र व मङ्गलरूप लक्ष्मी जिसके गोवर में है हे पाण्डुनन्दन ! इसीसे गोबरसे सदा लीपना चाहिये ॥ ८७ ॥ गन्धर्व,

तामहानगाः ॥ दण्डहस्तोमहाकायः कृष्णोमहिषवाहनः ॥ ८४ ॥ पृष्ठभागस्थितोनित्यं शुभाशुभनिरीक्षकः ॥ चत्वारस्सागराःपुण्याः क्षीरधाराःस्तनेषुच ॥ ८५ ॥ विष्णुदेहोद्भवागङ्गा दर्शनात्पापहारिणी ॥ एवंयामंस्थितायस्मात्तस्मादेषासदाबुधैः ॥ ८६ ॥ लक्ष्मीश्चगोमयेयस्याः पवित्रासर्वमङ्गला ॥ गोमयाल्लेपनंतस्मात्कर्तव्यंपाण्डुनन्दन ॥ ८७ ॥ गन्धर्वाप्सरसोगङ्गा गोखुरेषुचसंस्थिताः ॥ अश्विनौकर्णयोर्नित्यं वर्त्तेतेरविपुत्रकौ ॥ ८८ ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां यानितीर्थानिपाण्डव ॥ तानिसर्वाणिप्राप्तानि गवांपादेषुनित्यशः ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ सर्वतीर्थसमागावो गीर्वाणैस्समलंकृताः ॥ एतत्कथयमेतात कस्माद्गोषुसमाश्रिताः ॥ ९० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वदेवमयोविष्णुर्गावोविष्णुशरीरजाः ॥ देयास्तस्मात्सदावन्द्याः कल्पिताविबुधैर्जनैः ॥ ९१ ॥ श्वेतावाकपिलावापि क्षीरिणीपाण्डुनन्दन ॥ सर्वासांक्षीरिणीर्गावःश्वेतवस्त्रावगुण्ठनाः ॥ ९२ ॥ कांस्यदोहनिकादेयास्स्वर्णशृङ्गीर्विभूषिताः ॥ हनूमदी

अप्सरा और गङ्गा गौवोंके खुरोंमें रहती हैं और कानोंमें सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार सदा वसते हैं ॥ ८८ ॥ और हे पाण्डव ! समुद्रपर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थहैं वे सब गौवोंके पावोंमें सदा रहतेहैं ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि देवताओं ने सब तीर्थों के समान गौवोंको अपने रहने से शोभित कियाहै हे तात ! गौवों के आश्रित देवता क्यों हुये सो मुझसे कहो ॥ ९० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब देवताओं का रूप विष्णुजी हैं और विष्णुकी देहमे गौवें पैदाहुई हैं इसमे पण्डित लोगोंने उन को देने व हमेशा वन्दना करनेलायक माना है ॥ ९१ ॥ सफेदहो व कपिलाहो परन्तु हे पाण्डुनन्दन ! दूधवाली होवे सब गौवों में दूधकी देनेवाली व सफेदभूल से

सजीहुई ॥ ९२ ॥ कांसेकी दोहनीवाली व सोने से मढ़े सींगोंवाली व अन्य भूषणों से भूषित गऊको हनूमदीश्वर के आगे भक्तिसे ब्राह्मणों को देवे ॥ ९२ ॥ सावधान हो अपने कल्याण की इच्छा करतेहुये पुरुषको ऐसी गऊ देनाचाहिये उनको दण्ड देनेके लिये यमराज समर्थ नहीं हैं किन्तु वे विष्णुलोक को जातेहैं ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकसे उतरकर ब्राह्मणों के मकान को जातेहैं वहीं धन व विद्यासे युक्त पैदा होते हैं ॥ ९५ ॥ सब पापोंका हरनेवाला कल्याणरूप हनूमदीश्वरतीर्थ है उसको जो सुनता है वह वर्णसङ्कर पापसे छूटजाता है ॥ ९६ ॥ जो अमावस को इसकी याद करता है वह भी पापोंसे छूटजाता है ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृत

श्वरस्याग्रे भक्त्याविप्रेषुदापयेत् ॥ ९३ ॥ निसर्गस्थेनसादेया स्वर्गमात्मनइच्छता ॥ असमर्थोयमस्तेषां विष्णुलोकं प्रयान्तिते ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकच्युतस्सोपि प्रयातिद्विजमन्दिरम् ॥ तत्रैवजायतेपुत्रो विद्वान्धनसमन्वितः ॥ ९५ ॥ सर्वपापहरंतीर्थं हनूमदीश्वरंशुभम् ॥ शृणोतिमुच्यतेपापाद्वर्णसङ्करसम्भवात् ॥ ९६ ॥ दर्शेसञ्चिन्तयेद्यस्तु मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्यंकथितंतात यदभून्नर्म्मदातटे ॥ सोमनाथस्यतीर्थंहि वाराणस्यासमन्नृप ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ निमग्नोदुःखसंसारे हृतराज्योद्विजोत्तम ॥ युष्मद्वाणीजलैस्स्नातो निर्दुःखोहंसबान्धवः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ पृष्टंतेदुर्लभंतीर्थं गुह्याद्गुह्यतरंयथा ॥ ३ ॥ आदौपितामहस्तात समस्तस्यजनस्यच ॥ मनसातस्यसञ्जाता ऋषयोदशपुङ्गवाः ॥ ४ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यःपुलहःक्र

भाषाऽनुवादेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे तात ! जो नर्मदा के तटमें आश्चर्य्य हुआ उसको मैंने कहा हे नृप ! सोमनाथका तीर्थ काशीके बराबरहै ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! राज्य जिसकी छीनलीगई इसी से दुःखरूपी संसार समुद्र में डूबाहुआ भाइयों के सहित मैं आपकी वाणीरूप पानी से नहायाहुआ इससमय में दुःख से रहित होगयाहूं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे सोमवंशविभूषण, महाबाहो ! वाह २ गुप्तसे अतिगुप्त बड़ेदुर्लभतीर्थ को आपने पूंछा ॥ ३ ॥ हे तात !

पहले सबके पितामह जो ब्रह्मा हैं उनके मनसे दश उत्तम ऋषि पैदाहुये ॥ ४ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश पुत्र हुये प्रचेताके बड़े तेजवाले दक्षप्रजापतिहुये और दक्षके पचास कन्याहुईं ॥ ५ । ६ ॥ दक्षने दश कन्याओं को धर्मराज को दिया और तेरह कश्यपको और हे महाभाग ! इसीतरह सत्ताईस चन्द्रमाको दीं ॥ ७ ॥ उन सत्ताईस कन्याओं में रोहिणी चन्द्रमा को अधिक प्यारीहुई उन्हीं के कारण से चन्द्रमा को दक्षने शाप दिया ॥ ८ ॥ चन्द्रमा प्रजापति के वचनसे क्षयरोगवाले होगये दक्षके शापके प्रभावसे चन्द्रमा तेजसे रहित होगये ॥ ९ ॥ तब चन्द्रमा कांपतेहुये ब्रह्माके तीरगये और

तुः ॥ प्रचेताश्चवशिष्ठश्च भृगुर्नारदएवच ॥ ५ ॥ जज्ञेप्रचेतसोदक्षो महातेजाःप्रजापतिः ॥ दक्षस्यापिसुताजाताः पञ्चाशत्कन्यकाःकिल ॥ ६ ॥ ददौसदशधर्म्माय कश्यपायत्रयोदश ॥ तथैवचमहाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ७ ॥ तासांहिरोहिणीचन्द्रस्याभीष्टासामवत्तदा ॥ तस्याश्चकारणंकृत्वाशप्तोदक्षेणचन्द्रमाः ॥ ८ ॥ क्षयरोग्यभवच्चन्द्रो विवक्षायाःप्रजापतेः ॥ दक्षशापप्रभावेण निस्तेजाःशर्वरीपतिः ॥ ९ ॥ गतःपितामहंसोमो वेपमानःप्रणम्यच ॥ ब्रह्मयोने नमस्तुभ्यं वेदगर्भनमोस्तुते ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्वत्रदुर्ल्लभारेवा त्रिषुस्थानेषुभारत ॥ ओङ्कारेचभृगुक्षेत्रे नर्म्मदाह्युरगेश्वरे ॥ ११ ॥ काष्ठवत्संस्थितस्सोमो ध्यायतेपरमेश्वरम् ॥ यावद्वर्षशतंपूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षस्सोमनाथस्य वृषासनउमार्द्धगः ॥ साष्टाङ्गंप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १३ ॥ जयशङ्करपापघ्नतान्तनमो जय

प्रणामकर ब्रह्मासे बोले कि हे ब्रह्मयोने, वेदगर्भ ! आपके लिये वारंवार नमस्कार है ॥ १० ॥ तब हे भारत ! ब्रह्माजी बोले कि नर्मदा तो सभी कहीं दुर्लभहैं परन्तु तीन जगह बहुत कठिन हैं ॐकार, भृगुक्षेत्र और नागेश्वर में ॥ ११ ॥ यह सुन चन्द्रमा नर्मदाको गये और काठकी तरह स्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करतेहुये जबतक सौवर्ष पूरेहुये तबतक ध्यान किया तब महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ १२ ॥ और पार्वती को आधेअङ्ग में लिये व बैलपर सवार चन्द्रमा के प्रत्यक्ष हुये तब चन्द्रमा साष्टाङ्ग प्रणामकर बोला कि हे देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे पापोंको यमराज के समान, शङ्कर ! जयहो आपके लिये नमस्कार है हे ईश्वर !

हे नाथ ! जयहो आपके लिये वार २ नमस्कारहै हे वासुकिनाग के गहनावाले ! हे भूतपते ! तुम्हारी जयहो, त्रिशूल और खप्पर के धारण करनेवाले के लिये नमस्कार है ॥१४॥ हे अन्धकासुर के नाश करनेवाले ! जयहो तुम्हारे लिये नमस्कारहै दानवोंकी देहके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है घटने बढने से रहित व सब कलाओं से संयुक्तकी जयहो व नमस्कार है कालके कर्तब के दमन करनेवालेकी जय हो व नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे उमापते ! हे नीलकण्ठ ! आपकी जयहो हे सूक्ष्मरूप वाले व माया से रहित शब्दरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे सबकी आदि व अपने आदि और अन्त से रहित ! आपके लिये नमस्कार है हे पिनाक धनुष व त्रिशूल

ईश्वरनाथनमोस्तुनमः ॥ जयवासुकिभूषणभूतपते जयशूलकपालधरायनमः ॥ १४ ॥ जयअन्धकदेहविनाशनमो जयदानवदेहवधायनमः ॥ जयनिष्कलसकलकलायनमोजयकालकलादमनायनमः ॥ १५ ॥ जयनीलकण्ठउमापते जयसूक्ष्मनिरञ्जनशब्दनमः ॥ जयआद्यअनाद्यअनन्तनमो जयपाणिपिनाकत्रिशूलनमः ॥ १६ ॥ एवंस्तुतो महादेवस्सोमनाथेनपाण्डव ॥ तुष्टस्तस्यनृपश्रेष्ठ उमयासहशङ्करः ॥ १७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते ॥ सोमउवाच ॥ दक्षशापेनदग्धोहं क्षीणदेहोमहेश्वर ॥ १८ ॥ पापप्रशमनन्देव कुरुसर्वंममैवतु ॥ महेश्वर उवाच ॥ भवद्भक्तिगृहीतोहं तुष्टश्चैवोमयासह ॥ १९ ॥ निष्पापस्सोमनाथस्य सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्सोमोध्यात्वाक्षणंनृप ॥ २० ॥ स्थापयामासलिङ्गन्तुसिद्धिदंप्राणिनांभुवि ॥ सर्वदुःखहरन्देवं ब्रह्महत्याविनाश

हाथों में रखनेवाले ! जयहो व नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! हे नृपश्रेष्ठ ! इसप्रकार चन्द्रमा से स्तुति किये गये पार्वती सहित महादेवजी उनसे प्रसन्न हुये ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण हो जो तुम्हारे मनमें बर्तताहो उस वरको तुम मांगलेवो तब चन्द्रमा बोले कि हे महेश्वर ! दक्षके शाप से मैं जलाहुआ व दुबली देहवाला होगयाहूं ॥ १८ ॥ इस से हे देव ! मेरे सब पापकी शान्ति को आप करें तब महादेव बोले कि आपकी भक्ति से पकडलिया गया मैं पार्वती के सहित प्रसन्नहूं ॥ १९ ॥ तुम सोमनाथ के तीर्थकी सेवा से पापरहित होगये हो यह कहकर महादेव अन्तर्द्धान होगये हे नृप ! चन्द्रमा भी थोड़ीदेर ध्यानकर ॥ २० ॥

पृथिवी में सब प्राणियों को सिद्धिके देनेवाले व सब दुःखों के व ब्रह्महत्या के हरनेवाले लिङ्गरूप महादेव का स्थापन किया ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि सोमनाथ के प्रभावको तुम से संक्षेप से कहते हैं एक शम्बर नामका राजाहुआ उसका त्रिलोचन नामका पुत्र हुआ ॥ २२ ॥ त्रिलोचन का पुत्र बहुत नीच, बड़ा पापी, कण्ठ नामका हुआ वनमें घूमते हुये उस कण्ठको हिरनों का झुण्ड देखपड़ा ॥ २३ ॥ तब त्रिलोचन के लड़के कण्ठने उस पूरे झुण्डको मारा उस झुण्ड के बीचमें निर्जन वन में विचरता हुआ एक उत्तम ब्रह्मर्षि भी कण्ठ के हथियार से मारागया तब ब्रह्महत्यासे युक्त व तेज से रहित कण्ठ पृथिवी में घूमता हुआ ॥ २४ । २५ ॥

नम् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सोमनाथप्रभावंच संक्षेपात्कथयामिते ॥ शम्बरोनामराजाभूत्तस्यपुत्रस्त्रिलोचनः ॥ २२ ॥ त्रिलोचनसुतःकण्ठः पापनिष्ठोमहाऽधमः ॥ वनेविभ्रमतस्तस्य मृगयूथन्त्वदृश्यत ॥ २३ ॥ मृगयूथंहतंसर्वं त्रिलोचनसुतेनच ॥ मृगरूपीद्विजोमध्ये विचरन्निर्जनेवने ॥ २४ ॥ तदाहतस्तुशस्त्रेण कण्ठेनऋषिसत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायुतःकण्ठो निस्तेजाव्यचरन्महीम् ॥ २५ ॥ विचरन्नपिसंप्राप्तो नर्म्मदानागसङ्गमे ॥ कदम्बपाटलाकीर्णे बिल्वनारङ्गशोभिते॥ २६॥ चिञ्चिनीचम्पकोपेते अगस्तितरुशोभिते ॥ उन्मत्तभृङ्गसंयुक्ते तथासर्वत्रशोभिते ॥ २७ ॥ चित्रकैर्मृगमार्जारैःसिंहैस्सर्वत्रशूकरैः ॥ शशकैर्गवयैर्युक्ते शिखण्डिरवनादिते ॥ २८ ॥ प्रविष्टस्तद्वनेकण्ठस्तृषार्तःश्रमकर्षितः ॥ स्नातोरेवाजलेपुण्ये सङ्गमेपापनाशने ॥ २९ ॥ पत्राणिचविचित्राणि भक्षयन्सहकिङ्करैः ॥ सुप्तःपादपछायायांश्रान्तोमृगव

विचरते हुये नर्मदा और नागेश्वर के सङ्गम में प्राप्तहुआ फिर कदम्ब और पंडरिया के वृक्षों से घने व बेल और नारङ्गी के वृक्षों से शोभित ॥ २६ ॥ अंबिली और चम्पाओं से युक्त, अगस्त्यके वृक्षों से सुहावने, मतवाले भौंरों से युक्त इस प्रकार सबकहीं शोभावाला ॥ २७ ॥ व चीता, हिरन, बिलार, सिंह, सुवर, खरगोश और लीलगायों से युक्त और मोरोंकी आवाजों से भरेहुये ॥ २८ ॥ ऐसे वनमें प्यास के मारे विकल व थकावट से कर्षित कण्ठ पैठताहुआ पापों के नाश करनेवाले सङ्गम में पवित्र नर्मदा के जलमें स्नान करताहुआ ॥ २९ ॥ और अपने सिपाहियों के सहित रङ्ग २ के पत्तों को खाता हुआ व हिरनों के शिकार से थकाहुआ वृक्षकी छाया

धेनच ॥ ३० ॥ आनर्चपरयाभक्त्या सोमनाथंयुधिष्ठिर ॥ पीत्वातोयंकण्ठमात्रं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ ३१ ॥ तावत्तीर्थ
वरेविप्रस्स्नानार्थंसङ्गमम्प्रति ॥ मार्गगोब्राह्मणोभूयस्ततस्तद्गतमानसः ॥ ३२ ॥ मार्गेवृक्षेसमारूढा स्त्रीचैकाचभय
ङ्करी ॥ उवाचब्राह्मणंसाहि तिष्ठतिष्ठद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ त्रस्तोनिरीक्षतेयावद्दिशस्सर्वानरेश्वर ॥ तावद्वृक्षसमारूढां
स्त्रियंरक्ताम्बरावृताम् ॥ ३४ ॥ रक्तपुष्पधरांबालां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ रक्ताभरणशोभाढ्यां पाशहस्तान्ददर्शह ॥
३५ ॥ स्त्र्युवाच ॥ सन्देशंशृणुमेविप्र यदिगच्छसिसङ्गमम् ॥ मद्भर्तातिष्ठतेतत्र शीघ्रमेवविसर्जय ॥ ३६ ॥ एकाकि
नीचतेभार्य्या तिष्ठतेवनमध्यगा ॥ इत्याकर्ण्यंगतोविप्रस्सङ्गमंसुरदुर्लभम् ॥ ३७ ॥ वृक्षच्छायास्थितंकण्ठं ब्राह्मणो
हिददर्शह ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ वनान्तेचमयादृष्टा बालाकमललोचना ॥ ३८ ॥ रक्ताम्बरधरातन्वी रक्तचन्दनचर्चिता ॥
रक्तमाल्यासुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेक्षणा ॥ ३९ ॥ वृक्षारूढावदद्वाक्यं भर्तारंप्रेषयस्वमाम् ॥ कण्ठउवाच ॥ कस्मि

में सोताहुआ ॥ ३० ॥ फिर हे युधिष्ठिर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन करता हुआ फिर सब पापों के क्षय करनेवाले जलको अच्छी तरह पीताहुआ ॥ ३१ ॥ तब तक उसी श्रेष्ठ तीर्थ में सङ्गम नहाने के वास्ते तीर्थ में मनको लगाये हुये रास्तेमें एक ब्राह्मण आता था ॥ ३२ ॥ रास्तेमें एक वृक्षपर चढ़ीहुई एक बड़ी डरावनी स्त्री थी वह उस ब्राह्मण से बोली कि हे द्विजोत्तम ! खड़ेरहो खड़ेरहो ॥ ३३ ॥ हे नरेश्वर ! डराहुआ वह ब्राह्मण जबतक सब दिशाओं में देखे तबतक वृक्षपर चढ़ी हुई, लाले कपड़ों को पहने, लालेफूलों की मालाको पहने व छोटी उमरवाली व लालचन्दनसे शोभित व लाले जेवरोंकी शोभा से युक्त, फँसरी को हाथमें लिये हुये एकस्त्री को देखताहुआ ॥ ३४ । ३५ ॥ वह स्त्री बोली कि हे विप्र ! जो तुम सङ्गम को जाते हो तो हमारे सन्देशको सुनो कि हमारा भर्ता वहां है सो उसको बहुत जल्द भेजो ॥ ३६ ॥ उससे कहना कि वनके बीचमें तुम्हारी स्त्री अकेली बैठी है यह सुनकर ब्राह्मण देवताओं के दुर्लभ संगम को गया ॥ ३७ ॥ वहां वृक्षकी छाया में बैठेहुये कण्ठको ब्राह्मण ने देखा तब ब्राह्मण बोला कि वनमें एक स्त्री को मैंने देखा जो कि छोटी उमरवाली व कमल से जिसके नेत्र हैं ॥ ३८ ॥ और लाले कपड़ों को पहने, सूक्ष्मांगी, लालचन्दन को लगाये, लालेफूलों की मालावाली, अतिशोभा से युक्त, हाथ में फँसरीवाली, हिरनकेसे नेत्रोंवाली ॥ ३९ ॥ और वृक्ष

पर बैठीहुई मुझसे कहा कि हमारे पतिको हमारे पास भेजदेवो तब कण्ठ बोला कि हे विप्रेन्द्र ! वह मृगनयनी स्त्री किस जगह बैठी है ॥ ४० ॥ और किसकी स्त्री है व किस कार्य के वास्ते बुलाया है यह सब मुझसे कहो तब ब्राह्मण बोला कि हेविभो ! संगम से आधेकोस पर सुहावने वनमें ॥ ४१ ॥ तुमको चाहती हुई वह स्त्री बैठी है तब हे युधिष्ठिर ! उस कण्ठ राजाने अपने सेवक से कहा कि ॥ ४२ ॥ तुमजावो और उससे पूंछो कि तू कौन है और कहा से आई है और कहां को जावेगी तब वह बहुत जल्दगया कि जहां वह स्त्री बैठी थी ॥ ४३ ॥ हे नृपसत्तम ! वृक्षपर बैठीहुई स्त्री को देखा और उससे बोला कि हे बाले ! राजा तुझको पूंछता

न्स्थानेतुविप्रेन्द्र तिष्ठतेमृगलोचना ॥ ४० ॥ कस्यसायेनकार्य्येण एतत्सर्व्वंवदस्वमे ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ सङ्गमादर्द्धक्रोशेच उद्यानान्तेप्रशोभिते ॥ ४१ ॥ तत्रतिष्ठतिसानारी सोत्कण्ठितमनाविभो ॥ ततोभृत्यमुवाचेदं कण्ठोराजायुधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ पृच्छत्वंगच्छकाचासि आगताक्वगमिष्यसि ॥ ततःक्षिप्रंगतस्तत्र यत्रनारीस्थिताभवत ॥ ४३ ॥ वृक्षस्थाददृशेबालामुवाचनृपसत्तम ॥ त्वांराजापृच्छतेबाले कासित्वंक्वगमिष्यसि ॥ ४४ ॥ स्त्र्युवाच ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्तादुरात्मनाम् ॥ इहप्रच्छन्नपापानां शास्तावैवस्वतोयमः ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यास्यसंजाता मृगरूपद्विजोद्वधात् ॥ मयायुक्तोपिराजासौ मुक्तस्तीर्थप्रभावतः ॥ ४६ ॥ अत्रार्द्धक्रोशमात्रंवै ब्रह्महत्यानसंविशेत् ॥ सोमनाथप्रभावाच्च तीर्थंवाराणसीसमम् ॥ ४७ ॥ गच्छत्वंप्रेषयेःकण्ठं शीघ्रमेवनसंशयः ॥ समस्तंकथयामास तद्वृत्तान्तंनृपम्प्रति ॥ ४८ ॥ तस्यवाक्येनराजासौपपातधरणीतले ॥ भृत्यउवाच ॥ कस्मात्त्वंशोचसेनाथ पूर्वजातंशुभाशुभम् ॥ ४९ ॥ इत्या

है कि तू कौनहै और कहां को जावेगी ॥ ४४ ॥ तब वह स्त्री बोली कि बुद्धिवालों का सिखानेवाला गुरु होताहै और दुष्टों का सिखानेवाला राजा होताहै और यहां छिपे पापोवाले पापियों को सिखानेवाले यमराज हैं ॥ ४५ ॥ हिरनके रूपको धरे हुये ब्राह्मण के मारने से इसको ब्रह्महत्या हुई है सो मुझ ब्रह्महत्या से युक्तभी यह राजा इस तीर्थ के प्रभावसे छूटगया है ॥ ४६ ॥ यहां आधकोस से ब्रह्महत्या नहीं पैठसक्ती है यह तीर्थ सोमनाथके प्रभावसे काशी के समान है ॥ ४७ ॥ इस से तुम जावो और कण्ठ को निस्सन्देह बहुत जल्द भेजो तब वह सेवक गया और राजासे उस सब हालको कहताहुआ ॥ ४८ ॥ उसकी बातसे यह राजा पृथिवी पर गिर

पड़ा तब सेवक बोला कि हे नाथ ! पहलेहुये पाप पुण्य को आप क्यों सोचते हो ॥ ४९ ॥ उसके इस वचन को सुन वह राजा बोला कि यहां सोमनाथ के समीप मैं अपने प्राणों का त्याग करूंगा ॥ ५० ॥ आग व बहुत ईंधनको जल्द लाओ अपने वशमें होरहे सेवकों ने सब सामान झटसे लादिया ॥ ५१ ॥ तब पापों के नाश करनेवाले सङ्गम के अच्छे जलमें स्नानकर और हे नरेश्वर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन ॥ ५२ ॥ व तीनबार प्रदक्षिणाको कर बरतीहुई आगमें राजा कण्ठ पैठगया और पीताम्बर व महामुकुट के धारण करनेवाले स्वामी जनार्दन भगवान्को अपने हृदय में करके कहा कि विष्णु के ध्यान से मेरी यहीं सुगति होजावे ॥

कर्णर्यवचस्तस्य सराजाविदमब्रवीत् ॥ प्राणत्यागंकरोम्यत्र सोमनाथसमीपतः ॥ ५० ॥ शीघ्रमानीयतांवह्निरिन्धनानिबहून्यपि ॥ आनीतंतत्क्षणात्सर्वं भृत्यैःस्वैर्वशवर्तिभिः ॥ ५१ ॥ स्नानंकृत्वाशुभेतोये सङ्गमेपापनाशने ॥ अर्चित्वापरयाभक्त्या सोमनाथंनरेश्वरः ॥ ५२ ॥ त्रिःप्रदक्षिणकंकृत्वा ज्वलितेजातवेदसि ॥ प्रविष्टःकण्ठराजस्तु हृदिकृत्वाजनार्दनम् ॥ ५३ ॥ पीताम्बरधरंदेवं महामुकुटधारिणम् ॥ विष्णोर्ध्यानेनचात्रैव सुगतिर्मेभवत्विति ॥ ५४ ॥ पपातपुष्पवृष्टिश्च साधुसाधुनृपात्मज ॥ आश्चर्य्यमतुलंदृष्ट्वा निरीक्ष्यचपरस्परम् ॥ ५५ ॥ हुतंतैःपावकेभृत्यैर्हृदिध्यात्वागदाधरम् ॥ विमानस्थादिवंसर्वे सङ्गताःपाण्डुनन्दन ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सोमनाथप्रभावोयं शृणुष्वैकमनान्नृप ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां सर्वकालेशुभेदिने ॥ ५७ ॥ विशेषाच्छुक्लपक्षेच सूर्य्यवारेणसप्तमी ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ५८ ॥ पञ्चामृतेनगव्येन स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ श्रीखण्डलेपनंकुर्य्यात्पुष्प

५३ । ५४ ॥ तब उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं ने कहा कि हे नृपात्मज ! वाह वाह फिर इस अतुल आश्चर्य्य को देख व आपसमें देख ॥ ५५ ॥ उन सेवकोंने भी गदाधर भगवान् को अपने मनमें ध्यानकर आग में अपने शरीर को होमदिया तब हे पाण्डुनन्दन ! वे सब विमानोंपर चढेहुये स्वर्गको गये और कण्ठ से सब मिलते हुये ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृप ! यह सोमनाथ का प्रभाव है इस को एकाग्र मन होकर सुनो हमेशा अष्टमी, चौदस व अच्छे दिन मे ॥ ५७ ॥ व उजियाले पाखमें इतवार सप्तमी को विशेषसे उपासकर जो मनुष्य भक्ति से रातमें जागरण करे ॥ ५८ ॥ और गऊ के पञ्चामृत से महादेव को नहवावे तद-

नन्तर चन्दन से लेपन तथा फूल, धूप आदि करे ॥ ५९ ॥ घीसे दिया जलावे और गाना व नाच करावे फिर दूसरे दिन अर्थात् अष्टमी सोमवार को प्रातःकाल में ब्राह्मण का पूजन करे ॥ ६० ॥ वह ब्राह्मण कैसाहोवे कि बुद्धिमान्हो, क्रोधको जीते हो, किसी की निन्दा न करताहो, सब अङ्गों से सुन्दरहो, शान्तहो, अपनी स्त्री का पालनेवालाहो ॥ ६१ ॥ गायत्री को जपताहो और सदा कुकर्मों से रहित होवे और जिसके घरमें उढ़री व वृषली और सूदिनि रहती हो ऐसे को ॥ ६२ ॥ और घाट बाढ़ अङ्गोंवाले व जिनके आगे पीछे का पता नहीं है ऐसे ब्राह्मणों को व्रत, श्राद्ध व दानमें पण्डित लोग सदा छोंडरहें ॥ ६३ ॥ दूसरे पुरुषके पास रहनेवाली जवान

धूपादिकंतथा ॥ ५९ ॥ घृतेनबोधयेद्दीपं गीतंनृत्यंचकारयेत् ॥ सोमवारेणचाष्टम्यां प्रभातेपूजयेद्द्विजम् ॥ ६० ॥ आत्मवन्तंजितक्रोधं द्विजनिन्दाविवर्जितम् ॥ सर्वाङ्गरुचिरंशान्तं स्वदारपरिपालकम् ॥ ६१ ॥ गायत्रींपठमानञ्च विकर्म्मरहितंसदा ॥ पुनर्भूर्वृषलीशूद्री वर्ततेयस्यमन्दिरे ॥ ६२ ॥ हीनाङ्गास्त्वतिरिक्ताङ्गा येषांपूर्वापरेनहि ॥ व्रतेश्राद्धे तथादाने द्विजावर्ज्याःसदाबुधैः ॥ ६३ ॥ पुंश्चलीतरुणीभार्य्या द्विजःस्वाध्यायवर्जितः ॥ आत्मनासहदातारमधोनयतिपाण्डव ॥ ६४ ॥ शाल्मलीनौकयातुल्याः स्वधर्म्मनिरताद्विजाः ॥ दातारंचैवमात्मानंतारयन्तितरन्तिच ॥ ६५ ॥ श्राद्धंसोमेश्वरेपार्थ यःकुर्य्याद्‌तमानवः ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ६६ ॥ अन्नंवस्त्रंहिरण्यञ्च योदद्यादग्रजन्मने ॥ सयातिशाङ्करंलोकमितिमेसत्यभाषितम् ॥ ६७ ॥ हयंयोवैददात्यत्र सम्पूर्णाभरणान्वितम् ॥ रक्तंवापीतवर्णंवा सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ६८ ॥ कुङ्कुमेनविलिप्ताङ्गमप्रजङ्घददेहिति ॥ स्रग्दामभूषितंकण्ठे सितव

स्त्री और वेद पढ़ने से खाली ब्राह्मण हे पाण्डव ! ये दोनों अपने के सहित देनेवाले को नरक में भेजते हैं ॥ ६४ ॥ और अपने धर्म में लगेहुये ब्राह्मण सेमरकी नाव के समान होते हैं वे देनेवाले को तारते हैं और आपभी तरते हैं ॥ ६५ ॥ और हे पार्थ ! सोमेश्वरमें जो मनुष्य श्राद्ध करताहै प्रलय तक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ६६ ॥ अन्न, वस्त्र और सोना जो ब्राह्मण को देताहै वह महादेवके लोकको जाताहै यह हमारा कहना सत्यहै ॥ ६७ ॥ और सब जेवरों से सजेहुये घोडे को जो यहा देताहै वह घोड़ा लालहो व पीलाहो सब लक्षणों से युक्तहो ॥ ६८ ॥ उसकी देह केसर से रँगीहो और नकन्दहो ऐसे को देवे और कण्ठाको कण्ठ में पहनेहो और सफेद कपड़े

की भूल ओढ़े होवे ॥ ६९ ॥ ऐसे घोडेपर चढ़ने के वास्ते ब्राह्मण से कहे कि अपने पांवको हमारे कन्धे पर रक्खो और हमारे घोडेपर चढ़ो जब ब्राह्मण घोडेपर सवार होजावे तब यह कहे कि सूर्यनारायण प्रसन्न होवें ॥ ७० ॥ वह घोडे का देनेवाला सब पापों से छूटाहुआ शङ्करजी के लोकको जाताहै और उस लोक से उतर फिर धार्मिक राजा होताहै ॥ ७१ ॥ उसके वंश मे हमेशा राज्य बनी रहती है कभी नष्ट नहीं होती है और उसका लडका पूरी उमरवाला होताहै उसकी स्त्री उसके वशमें रहती है ॥ ७२ ॥ और सब दुःखों से रहित आपभी कुछ अधिक सौ वर्ष जीता है इन्द्रियों को जीतेहुये चन्द्रग्रहण में जो वहांको जाता है ॥ ७३ ॥ और व्रतको किये

स्त्रावगुण्ठितम् ॥ ६९ ॥ अङ्घ्रिराधीयतांस्कन्धे मदीयंहयमारुह ॥ आरूढेब्राह्मणेभूयो भास्करःप्रीयतामिति ॥७०॥ सयातिशाङ्करंलोकं सर्वपापविवर्जितः ॥ तस्माल्लोकाच्च्युतश्चापि राजाभवतिधार्म्मिकः ॥ ७१ ॥ तस्यवंशेसदाराज्यं ननश्यतिकदाचन ॥ दीर्घायुर्जायतेपुत्रो भार्य्याचवशवर्तिनी ॥ ७२ ॥ जीवेद्वर्षशतंसाग्रं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सोम स्यचोपरागेतु योगच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ सोपवासोजितक्रोधो गान्तुदद्याद्द्विजन्मने ॥ सवत्सांक्षीरसंयुक्तांश्वेत वर्णांबलान्विताम् ॥ ७४ ॥ शबलींपीतवर्णांवाधूम्रांवानीलकन्धराम् ॥ कपिलांवासवत्सांवा घण्टाभरणभूषिताम् ॥ ७५ ॥ रौप्यखुरांकांस्यदोहां स्वर्णशृङ्गींनरेश्वर ॥ श्वेतयावर्द्धतेवंशो रक्तासौभाग्यवर्द्धिनी ॥ ७६ ॥ शबलीताम्रवर्णा च दुःखघ्नाचप्रकीर्तिता ॥ कपिलातुहरेत्पापं त्रिजन्मभिरुपार्जितम् ॥ ७७ ॥ तस्यलोकमवाप्नोति मान्धातुश्चजनेश्वर॥

[illegible] व क्रोधको जीतेहुये ब्राह्मणको गऊ देताहै गऊ कैसी होवे कि बछडाके सहित हो, दूधवालीहो, सफेदहो, ताकतवाली हो ॥ ७४ ॥ चितली व पीली व धुमैली व [illegible] व [illegible], [illegible], घण्टा आदि जेवरोंसे सजी हो ॥ ७५ ॥ रूपे के खुरोंवाली व कांसे की दोहनीवाली और सोने से मढे सींगोंवाली होवे तो [illegible] बढ़ताहै, लालगऊ भाग्यकी बढानेवाली होती है॥७६॥ चितली और तबिकेसे रंगवाली दुःख के हरनेवाली कहीगई है तीन जन्मों के [illegible] कपिला हरती है ॥ ७७ ॥ और हे जनेश्वर ! ऐसी गौवों का देनेवाला मान्धाता राजाके लोक को पाताहै अमावस, पूर्णमासी, व्यतीपात, वैधृति

संक्रान्ति ॥ ७८ ॥ घटादिन, गजच्छाया और सूर्य्यग्रहण में व देवताओं को दुर्लभ,रोहिणी नक्षत्र में निर्मल देहवाले जो वहां जाते हैं ॥ ७९ ॥ तो माताका मारने वाला, गुरुका मारनेवाला और आत्मघात करनेवाला जो द्रुपदादि मन्त्रको नित्य जपे व हे नृप ! प्राणायाम को करे ॥ ८० ॥ अथवा इच्छानुसारही वैष्णवी व सौरी व शैवी गायत्री को जपे तो वहभी पापों से छूटजाताहै ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ८१ ॥ और जो कर्म करनेवाला वहां सोमनाथकी प्रदक्षिणा करताहै तो हे नरेश्वर ! उसने मानो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा करली ॥ ८२ ॥ ब्रह्महत्या का करनेवाला, दारूपीनेवाला, गुरुकी स्त्री का भोग करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला भी

पक्षान्तेचव्यतीपाते वैधृतौरविसंक्रमे ॥ ७८ ॥ दिनक्षयेगजच्छाया ग्रहणेभास्करस्यच ॥ येव्रजन्तिविशुद्धाङ्गा वैरिञ्च्येसुरदुर्लभे ॥ ७९ ॥ मातृहागुरुहायोहि आत्महातुविशेषतः ॥ द्रुपदाद्यंजपेन्नित्यंप्राणायामंतथान्नृप ॥ ८० ॥ गायत्रींवैष्णवींचैव सौरींशैवींयदृच्छया ॥ सोपिपापैःप्रमुच्येत इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ८१ ॥ यःकुर्य्यात्सोमनाथस्य तत्र कर्ताप्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृतन्तेन जम्बूद्वीपन्नरेश्वर ॥ ८२ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ भ्रूणहाशुद्ध्यतेतत्र एवमेवनसंशयः ॥ ८३ ॥ तीर्थाख्यानमिदंपुण्यं यःशृणोतिजितेन्द्रियः ॥ व्याधितोराजरोगेन अतुलांश्रियमाप्नुयात ॥ ८४ ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रं निष्कामःस्वर्गमाप्नुयात् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्तीर्थंश्रुत्वावरन्नृप ॥८५ एतत्तेसर्वमाख्यातं सोमनाथस्ययत्फलम् ॥ ८६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे सोमनाथतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वहां शुद्ध होजाताहै ऐसाहीहै इस में संशय नहीं है ॥ ८३ ॥ इन्द्रियों को जीतेहुये जो इस तीर्थकी पवित्र कथा को सुनता है वह राजरोगी भी हो परन्तु आराम हो कर बड़ी लक्ष्मी को पाताहै ॥ ८४ ॥ और पुत्रका चाहनेवाला पुत्रको पाताहै और जिसकी कोई कामना नहींहै वह स्वर्गको पाताहै इस उत्तम तीर्थ को सुन हे नृप ! सब पापों से छूटजाताहै यह सोमनाथ का जो फलहै वह सब तुम से कहागया ॥ ८५ । ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेसोमनाथतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृप ! तदनन्तर पिङ्गलावर्तक तीर्थको जावे वह नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सङ्गम के समीप में है ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर का स्थापन कियाहै तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! अग्निने ईश्वर का स्थापन कैसे कियाहै ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जब महादेवके वीर्य से अग्नि तृप्त किये गये फिर सीधे स्वभाववाले रुद्र से अपनी देह को पाकर वे अग्नि चलेगये ॥ ३ ॥ अग्नि के मुखमें जब अतुलतेजस्वी महादेव जीने वीर्य को डालदिया तब रुद्रके तेज से जलेहुये अग्नि तीर्थयात्रा करतेहुये ॥ ४ ॥ वायु का भोजन करतेहुये अग्नि कुछ अधिक सौ वर्षतक बड़ी भक्ति से उग्र

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पिङ्गलावर्तकंनृप ॥ सङ्गमस्यसमीपस्थं रेवायाउत्तरेतटे ॥ १ ॥ हव्यवाहेन राजेन्द्र स्थापितःपिङ्गलेश्वरः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ हव्यवाहेनविप्रेन्द्र स्थापितश्चेश्वरःकथम् ॥२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ रेतसायदिरुद्रेण तर्पितोहव्यवाहनः ॥ प्राप्तोरुद्रेणसौम्येन देहंप्राप्यजगामसः ॥ ३ ॥ हव्यवाहमुखेक्षिप्ते रुद्रेणामिततेजसा ॥ रुद्रस्यतेजसादग्धो तीर्थयात्रांकरोतिसः ॥ ४ ॥ चचारपरयाभक्त्या ध्यानमुग्रंहुताशनः ॥ वायुभक्षश्शतं साग्रं यावदासीद्धुताशनः ॥ ५ ॥ तावत्तुष्टोमहादेवो हुताशनमुवाचह ॥ हव्यवाहवरंब्रूहि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ६ ॥ हुताशनउवाच ॥ नमस्तेसर्वलोकेश उग्ररूपनमोस्तुते ॥ युष्मद्रेतेनसम्प्लुष्टः कुब्जोजातोमहेश्वर ॥ ७ ॥ शरीरात्तोह्यहंकृष्णस्संस्थितोनर्मदातटे ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो नीरुजस्त्वंभविष्यसि ॥ ८ ॥ हव्यवाहेनराजेन्द्रस्थापितःपिङ्गलेश्वरः ॥ जितक्रोधोपियस्तत्र उपवासंसमाचरेत् ॥ ९ ॥ अतिरात्रफलंतत्र अन्तेरुद्रमवाप्नुयात् ॥ गुणान्वितायदीनाय कपि

ध्यान को करतेहुये जबतकध्यान करें ॥ ५ ॥ तबतक महादेवजी प्रसन्नहुये और अग्निसे बोले कि हे हव्यवाह ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको तुम मांगो ॥ ६ ॥ तब अग्नि बोले कि हे सब लोकों के मालिक ! आप के लिये नमस्कारहै हे उग्ररूप ! आप के लिये नमस्कारहै आपके वीर्यसे जला हुआ मैं कुबरा होगयाहूं हे महेश्वर ! ॥ ७ ॥ शरीर से दुःखी काला होगया मै नर्मदा के तटमें रहताहूं तब महादेवने कहा कि तुम रोग से रहित होजावोगे यह कहकर अन्तर्द्धान होगये ॥ ८ ॥ तब हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर को स्थापन किया क्रोधको जीतेहुये जो वहां उपास करता है ॥ ९ ॥ उसको वहां अतिरात्र यज्ञका फल होताहै और अन्त में रुद्र को

पाताहै और हे भारत ! जो वहां बछडा व रूप से संयुक्त व कपडों से युक्त व जेवरसे सजकर कपिलागऊ को गुणों से युक्त गरीब ब्राह्मण के लिये देताहै वह परमपद को जाताहै ॥ १० । ११ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर ब्रह्मा के वंशमें पैदाहुये ब्रह्मर्षियों के थापेहुये अतिउत्तम तीर्थ को जावे ॥ १२ ॥ जो कि नर्मदा के तटमें विद्यमान ऋणमोचन नाम से प्रसिद्धहै जो मनुष्य वहां भक्ति से छह महीने तक पितरों का तर्पण करताहै ॥ १३ ॥ तो वह नर्मदा के जलमें नहाकर अपने किये हुये देवता, पितर और मनुष्यो के ऋण से उसी क्षण छूटजाताहै ॥ १४ ॥ वहा रूपवाला होकर पाप प्रत्यक्ष देखपड़ता है इस से हे राजन् ! इन्द्रियों को जीतेहुये व एकाग्र

त्वांतत्रभारत ॥ १० ॥ अलंकृत्वासवस्त्रांच सवत्सांरूपसंयुताम् ॥ यःप्रयच्छतिविप्राय सगच्छेत्परमंपदम् ॥ ११ ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थंपरमशोभनम् ॥ स्थापितंह्यृषिसङ्घैश्च ब्रह्मवंशोद्भवैर्द्विजैः ॥ १२ ॥ ऋणमोचनविख्यातं रेवातटसमाश्रितम् ॥ षण्मासंमनुजोभक्त्या तत्रयस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ १३ ॥ दिव्यैःपित्र्यैर्मनुष्यैश्च ऋणैरात्मकृतैस्सह ॥ मुच्यतेतत्क्षणात्सोथस्नात्वावैनर्मदाजले ॥ १४ ॥ प्रत्यक्षंपातकंतत्र दृश्यतेचैवरूपिच ॥ तत्रतीर्थेतुयोराजन्नेकचित्तोजितेन्द्रियः ॥ १५ ॥ स्नानंदानंनरोधीमान् कारयेद्भक्तितत्परः ॥ ऋणत्रयविमुक्तस्तु नाकेमोदतिवीर्य्यवान् ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्यैवानन्तरंपार्थ कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ स्थापितंकपिलेनैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १७ ॥ अष्टम्यांवासितेपक्षे चतुर्दश्यांनरेश्वर ॥ स्नापयेत्परयाभक्त्याकपिलाक्षीरसर्पिषा ॥ १८ ॥ मधुनाखण्डयुक्तेन दध्यक्षतफलेनच ॥ कपिलेशंनृपश्रेष्ठ निशीथेतंजगत्प्रभुम् ॥ १९ ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन गुण्ठयेच्चमहेश्वरम् ॥ ततस्सुगन्ध

मनवाला जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्ति में तत्परहो उस तीर्थ में स्नान व दान को करताहै तो वह बलवान् होकर तीनों ऋणों से छूटा हुआ स्वर्ग मे आनन्द भोगताहै ॥ १५ । १६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! उसके बाद उत्तम कपिला तीर्थ को जावे सब पापों के हरनेवाले उस तीर्थको कपिल ने स्थापन कियाहै ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर ! हे नृपश्रेष्ठ ! उजियालेपाख में अष्टमी व चौदस को शहद, शक्कर व दही, अक्षत और फलों से युक्त कपिलागऊके दूध और घीसे बडी भक्तिसे अर्द्धरात्र में उन जगत्प्रभु, कपिलेश्वर महादेव को नहवावे ॥ १८ । १९ ॥ और सुगन्धित चन्दन से महादेवका लेपनकरे हे नृपनन्दन ! तदनन्तर क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य

सुगन्धित सफेद फूलों से महादेवको पूजते हैं वे यमलोक को नहीं जातेहैं हे पार्थ ! कपिलेश्वर के अच्छी तरह पूजन किये पर घोर असिपत्रवन व दारुण यमवल्ली को वे सुख से निकल जाते हैं व हे भारत ! पुण्यवाले नर्मदाके जलमें नहाकर गऊ, वस्त्र, अन्न, छाता और शय्याके दानसे अच्छे ब्राह्मणका पूजनकरे तो वह पृथिवीमें राजा होताहै ॥ २०।२१।२२।२३ ॥ रोग से रहित व बडा तेजवाला व जीतेपुत्रवाला व प्यारी बातोंका कहनेवाला होताहै उसके वैरीभी मित्र होजातेहैं इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकपिलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पुष्पैश्च श्वेतैश्चनृपनन्दन ॥ २० ॥ अर्चयन्तिजितक्रोधा नतेयान्तियमालयम् ॥ असिपत्रवनंघोरं यमवल्लींसुदारुणाम् ॥ २१ ॥ तेव्रजन्तिसुखंपार्थ कपिलेशेसुपूजिते ॥ स्नात्वारेवाजलेपुण्ये पूजयेद्ब्राह्मणंशुभम् ॥ २२ ॥ गोप्रदानेनवस्त्रेण अन्नेनकिलभारत ॥ छत्रशय्याप्रदानेन भूमौराजाभवेत्तुसः ॥ २३ ॥ नीरोगस्तीव्रतेजाश्च जीवत्पुत्रःप्रियंवदः ॥ शत्रवोमित्रतांयान्ति जायतेनात्रसंशयः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे कपिलेश्वरमहिमानुवर्णनोनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र पूतकेश्वरमुत्तमम् ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सुस्थापितःशिवस्तत्र लोकानांहितकाम्यया ॥ यस्तत्रमनुजःशम्भुंपूजयेत्पाण्डुनन्दन ॥ २ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नसयातियमालयम् ॥ कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यां सर्वकामानराधिप ॥ ३ ॥ येर्चयन्तिमहाकालं नतेयान्तियमालयम् ॥ नर्म्म

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर विद्यमान सब पापों के हरनेवाले उत्तम पूतकेश्वर को जावे ॥ १ ॥ लोकों के हित की कामना से वहा महादेवजी थापे गये हैं हे पाण्डुनन्दन ! वहां जो मनुष्य महादेवका पूजन करता है ॥ २ ॥ वह सब कामों को प्राप्त होताहै और यमलोक को नहीं जाताहै कृष्णपक्षकी अष्टमी व चौदश को हे नराधिप ! हरएक कामनाओं के करनेवाले ॥ ३ ॥ जो मनुष्य महाकालजी का पूजन करते हैं वे यमलोक को नहीं

जाते हैं नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर उत्तम वैष्णवतीर्थ है जो कि जलशायी इस नामसे पृथिवी में प्रसिद्ध है वहां दानवों को मारकर जनार्दन भगवान् सोये हैं ॥ ४ । ५ ॥ वहां देवताओं के देवता विष्णुजी ने अपने चक्रको धोयाहै नर्मदा के जल के प्रभावसे सुदर्शनचक्र पापों से रहित होगयाहै ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि ऋषियों के समूह से सेये जाते चक्रतीर्थ को कहो और विष्णु का अतुलप्रभाव व नर्मदाका जो फल है उसको कहो ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, युधिष्ठिर ! वाह २ कि गुप्त से गुप्त इस तीर्थ को चक्रधारी विष्णुजी ने आपही बनायाहै ॥ ८ ॥ सो हम तुमसे उस पापों के नाश करनेवाली कथाको कहेंगे अगिले

दायोत्तरेकूले वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥ जलशायीतिनाम्नावै विख्यातंवसुधातले ॥ दानवानांवधंकृत्वा सुप्तस्तत्रज नार्दनः ॥ ५ ॥ चक्रंचक्षालितंतत्र देवदेवेनशौरिणा ॥ सुदर्शनंचनिष्पापं रेवातोयप्रभावतः ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ चक्रतीर्थंसमाचक्ष्व ऋषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ विष्णोःप्रभावमतुलंरेवायाश्चैवयत्फलम् ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधु साधुमहाभाग विष्णुनाचयुधिष्ठिर ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं निर्मितंचक्रिणास्वयम् ॥ ८ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि कथांपाप प्रणाशिनीम् ॥ आसीत्पुरामहादैत्यो नलमेघइतिश्रुतः ॥ ९ ॥ तेनदेवाजितास्सर्वे हतराज्यानराधिप ॥ नलमेघभया त्पार्थ विष्णुरुद्रास्सवासवाः ॥ १० ॥ यमस्कन्दजलेशाग्निवायवोवैधनेश्वरः ॥ वसुवाक्पतिसिद्धाश्च प्रचेताश्चपिताम हः ॥ ११ ॥ गतादेवाःपरंलोकं विष्णुरुद्रनमस्कृतम् ॥ स्तुवन्तिविविधैःस्तोत्रैर्वागीशप्रमुखास्सुराः ॥ १२ ॥ नमः शिवमूर्तयेतुभ्यं प्राक्सृष्टेःकेवलात्मने ॥ गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ १३ ॥ इन्द्रादिप्रमुखान्देवान्विवर्णान्

जमाने में एक नलमेघ इस नाम से प्रसिद्ध बड़ाभारी दैत्य होताहुआ ॥ ९ ॥ हे नराधिप ! राज्य जिनकी हरलीगई ऐसे सब देवता उस दैत्यसे जीतलिये गये हे पार्थ ! नलमेघ के भयसे इन्द्रसहित विष्णु, रुद्र, ॥ १० ॥ यम, स्कन्द, वरुण, अग्नि, वायु, कुबेर, वसु, बृहस्पति, सिद्ध, प्रचेता और ब्रह्मा आदि ॥ ११ ॥ सब देवता, विष्णु और रुद्र से भी नमस्कार किये गये सर्वोत्तम लोक को जाते हुये और बृहस्पति आदि सब देवता अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ कि सृष्टि के प्रहले एकही रूपवाले कल्याण की मूर्ति जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है तीनोंगुणों के विभाग करनेवाले फिर पीछे से भेदको प्राप्त होनेवाले के

०पु०
६४८

लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ तबतक हे अवनीपते ! इन्द्र आदि सब देवताओं को शोभारहित देख प्रसन्नमुखवाले ब्रह्मा देवताओं से बोले ॥ १४ ॥ कि हे देवता लोगो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहै परन्तु तुम्हारी पहली शोभा क्यों जाती रही है जैसे पालासे ढँका हुआ है प्रकाश जिनका ऐसे नक्षत्र देखपड़ें ॥ १५ ॥ आप से आप चिनगारियों को नहीं उगलता हुआ यह इन्द्रका वज्र गोंठिलसा देख पड़ताहै ॥ १६ ॥ और वैरियों के रोंकने से नहीं रुकनेवाली व वरुणके हाथमें रहनेवाली यह फांसी मन्त्रों से ताकत जिसकी हरलीगई ऐसे सापकी तरह क्यों दीन होरही है ॥ १७ ॥ टूटे बजुल्लावाली यह कुबेरकी भुजा, टूटगईहै शाखा जिसकी ऐसे पेड़की

वनीपते ॥ प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवौकसः ॥ १४ ॥ स्वागतंसुरसङ्घाश्च कान्तिर्नष्टापुरातनी ॥ हिमप्लुष्टप्रभाणीव ज्योतिषाञ्चमुखानिवै ॥ १५ ॥ प्रसभादर्चिषामेतदनुद्गीर्णंसुरायुधम् ॥ वृत्रस्यहन्तुःकुलिशं कुण्ठितश्रीवलक्ष्यते ॥ १६ ॥ किञ्चायमरिदुर्वारः पाणौपाशःप्रचेतसः ॥ मन्त्रोपहतवीर्य्यस्य फणिनोदैन्यमागतः ॥ १७ ॥ कुबेरस्य मनश्शल्यं शंसतीवपराभवम् ॥ अपविद्धाङ्गदोबाहुर्भग्नशाखइवद्रुमः ॥ १८ ॥ यमोपिव्यलिखद्भूमिं दण्डेनापिहतत्विषा ॥ कुरुतस्मैनमोदेहनिर्विण्णोयातिलाघवम् ॥ १९ ॥ अमीचद्वादशादित्याः प्रतापक्षयशीतलाः ॥ चित्रन्यस्ताइवगताः प्रकामालोकनीयताम् ॥ २० ॥ मयिसृष्टिश्चलोकानांरक्षायुष्मास्ववस्थिता ॥ ततोमन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना ॥ २१ ॥ गुरुन्नेत्रसहस्रेण प्रेरयामासवृत्रहा ॥ सद्विनेत्रोहरस्त्र्यक्षः सहस्रनयनाधिकौ ॥ २२ ॥ वाचस्पतिरु

तरह कुबेर के मनकी फांस व उनकी हारको बतलातीसी है ॥ १८ ॥ चमक जिसकी जाती रही ऐसे कालदण्ड से यमराज भी जमीनको खोदरहे हैं इससे उसके नमस्कार करो क्योंकि जिसको देहसे वैराग्य होताहै वह हलकापन को प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ और ये बारहों सूर्य अपने तेज के क्षीण होजाने से ठण्ढे होरहे चित्रसारी में लिखे सूर्योंकी तरह सबको खुशी से देखने लायक होरहे हैं ॥ २० ॥ लोकों की रचना हमारे अधीन है और उनकी रक्षा तुम लोगों के अधीन है तदनन्तर थोडी हवा के चलने से डोलरहे कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ २१ ॥ हजारनेत्रों से इन्द्रने बृहस्पति को इशारा किया क्योंकि दो नेत्रवाले बृहस्पति और तीन नेत्रवाले महादेव येदोनों

इन्द्र से अधिक हैं॥ २२ ॥ इस से हाथ जोडकर बृहस्पति-ब्रह्मा से यह बोले कि हे तात ! बड़ा बलवाला नलमेघ नाम का दानव आप के वंशमे पैदा हुआहै ॥ २३ ॥ उस दानवने सब देवताओंको हरादिया है तब ब्रह्मा ने कहा कि मेरे चलने से देवताओ के मारने लायक नलमेघ नहीं होगा ॥ २४ ॥ विना विष्णु भगवान्के उसका मारना और किसीको साध्य नही है तब सब देवताओंने विष्णुकी स्तुतिकी कि हे शङ्ख,पद्म और गदाको हाथोंमें रखनेवाले व चक्रके धारनेवाले हेप्रभो! आपकीजयहो॥२५॥ इस देवताओं की स्तुतिको सुन भगवान् जागतेहुये और मेघोंकी तरह गहरीआवाज से मीठी वाणीको बोलतेहुये ॥२६॥ कि हे ब्रह्मन् ! सब देवता व दैत्योंसे हम क्यों जगाये

वाचेदं प्राञ्जलिर्हंसवाहनम् ॥ युष्मद्वंशोद्भवस्तात नलमेघोमहाबलः ॥ २३ ॥ तेनदेवगणास्सर्वे निरस्तादानवेनच॥ नलमेघोनवध्योतश्चलितेनमयासुरैः ॥ २४ ॥ विनामाधवदेवेन साध्योभवतिनैवहि ॥ शङ्खपद्मगदापाणेजयचक्रधर प्रभो ॥ २५ ॥ इतिदेवस्तुतिंश्रुत्वा प्रबुद्धोजलशायिकः ॥ उवाचमधुरांवाणीं मेघगम्भीरयागिरा ॥ २६ ॥ किमर्थंवो धितोब्रह्मन्समस्तैश्चसुरासुरैः ॥ब्रह्मोवाच॥ नलमेघभयेनेहसम्प्राप्तास्तवमन्दिरम् ॥२७॥ नवध्यःकस्यचित्पापो नलमे घोजनार्दन ॥ तवहस्तेनदुष्टात्मा मृत्युंप्राप्स्यतिनान्यथा ॥ २८ ॥ जनार्दनउवाच ॥ स्वस्थानंयान्तुगीर्वाणा वधिष्या मिमहाबलम् ॥ स्थानंशंसन्तुमेदेवा वसतेयत्रदुर्मतिः ॥ २९ ॥ देवाऊचुः ॥ हिमाचलगुहांकृष्ण वसतेदानवेश्वरः ॥ चतुर्विंशत्सहस्रैस्तु कन्याभिस्तुसमावृतः॥ ३० ॥ तुरङ्गैःस्यन्दनैश्चैव संख्यातेषान्नविद्यते ॥ भवनानिविचित्राणि असं ख्यानिबहून्यपि ॥ ३१ ॥ द्विरदाःपर्वताकारा हयाश्चद्विरदोपमाः ॥ महाबलोऽवसत्तत्र गीर्वाणभयदायकः ॥ ३२ ॥ श्रु

गये हैं तब ब्रह्मा बोले कि हे जनार्दन ! नलमेघके भयसे हम लोग यहां आपके मन्दिर में प्राप्तहुये हैं नलमेघ पापी किसी के मारने लायक नही है आपही के हाथसे वह दुष्टात्मा मृत्युको पावेगा और तरह नहीं मरसक्ता है ॥ २७ । २८ ॥ तब भगवान् बोले कि देवतालोग अपने स्थानों को जावें हम उस महाबलवान् दैत्य को मारेंगे जहां वह दुर्बुद्धि रहताहो उस स्थान को देवतालोग हमको बतलावें ॥२९॥ तब देवतालोग बोले कि हे कृष्ण ! चौबीस हजार कन्यायों से युक्त वह दानवों का मालिक हिमाचलकी गुफामें रहताहै ॥ ३० ॥ घोड़े और रथोंकी कोई गिन्ती नहीं है और अनगिन्ती बहुत से चित्रविचित्र मकान बने है ॥ ३१ ॥ हाथी पर्वतों

केसे भारी और घोडे हाथियोंकेसे हैं देवताओं को भयका देनेवाला वह बलवान् दैत्य वहां रहता है ॥ ३२ ॥ विकलबुद्धिवाले उन देवताओं के वचन को सुनकर भगवान् शत्रुओं के नाश करनेवाले गरुड़की याद करतेहुये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जनार्दन भगवान् हाथ से चक्रको लेकर व गदा, शङ्ख, शार्ङ्गधनुष व मूसर और हलको हाथों से लेकर ॥ ३४ ॥ दानवके मारने के वास्ते गरुड पर सवार होतेहुये तब हे पार्थ ! उस दानव के घरमें बड़े डरावने उत्पात होने लगे ॥ ३५ ॥ गीदड और घुग्घू उसके घरमें पैठ आये और हवाके विना उसकी ध्वजाका दण्ड गिरपड़ा ॥ ३६ ॥ मूश और सापकी व हाथी और शेरकी लडाई होती हुई भँवर जिनमें उठते हैं ऐसी

श्रुत्वादेवोवचस्तेषां देवानामातुरात्मनाम् ॥ गरुडंचिन्तयामास शत्रुसङ्घविदारणम् ॥ ३३ ॥ चक्रंकरेणसंगृह्य गदांशङ्खंततःप्रभुः ॥ शार्ङ्गंचमुशलंसीरं करैर्गृह्यजनार्दनः ॥ ३४ ॥ आरूढःपक्षिराजंतु वधार्थंदानवस्यच ॥ दानवस्यगृहेपार्थ उत्पाताघोरदर्शनाः ॥ ३५ ॥ गोमायुर्गृहमध्येतु कपोतोगृहमाविशत् ॥ विनावातेनतस्यैव ध्वजदण्डंपपातह ॥ ३६ ॥ सर्पमूषकयोर्युद्धं तथाकेशरिनागयोः ॥ उन्मार्गाःसरितस्तत्र वहन्तेचक्रमाश्रिताः ॥ ३७ ॥ अकालेतरुपुष्पाणि दृश्यन्तेतत्रपर्वते ॥ ततःप्राप्तोजगन्नाथो हिमवन्तंनगेश्वरम् ॥ ३८ ॥ पाञ्चजन्यंचकृष्णेन पूरितंपुरसन्निधौ ॥ पाञ्चजन्यस्यशब्देन आरूढोदानवेश्वरः ॥ ३९ ॥ नलमेघउवाच ॥ कोयंमृत्युवशंप्राप्तस्त्वज्ञानेनसमावृतः ॥ धुन्धुमारव्रजशीघ्रं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ ४० ॥ बलादानयतंबद्ध्वाममाग्रेबलशालिनम् ॥ धुन्धुमारउवाच ॥ आनयामिनसन्देहस्सुरपक्षांश्चसाम्प्रतम् ॥ ४१ ॥ स्यन्दनैश्चसमायुक्तो गजवाजिभटैस्सह ॥ दृष्टस्ततोजगद्योनिस्सुपर्णस्थोमहाबलः ॥ ४२ ॥

नदियां रास्ते को छोड बहनेलगीं ॥ ३७ ॥ और उस पर्वतपर बेमसम के फूल देखपडने लगे तदनन्तर जगत् के स्वामी भगवान् पर्वतों मे श्रेष्ठ हिमालय पर्वतपर पहुँचगये ॥ ३८ ॥ और श्रीकृष्णजी ने शहर के समीप मे अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजादिया तब पाञ्चजन्यकी आवाजसे दानवोंका मालिक सजग हुआ ॥ ३९ ॥ नलमेघ बोला कि अज्ञान से युक्त यह कौन पुरुष मौत के वश मे पड़गया है हे धुन्धुमार ! अपनी सेना से युक्त तुम जल्द जावो ॥ ४० ॥ जबरदस्ती उस बलवान् को बांधकर हमारे सामने लावो तब धुन्धुमार बोला कि मैं देवताओं के सहायकों को अभी लाताहूं इस में सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ फिर रथ, हाथी, घोड़े और सिपा-

हियों के सहित उसने गरुड़पर बैठेहुये महाबली भगवान् को देखा ॥ ४२ ॥ इसको पकड़ो २ जब सिपाहीलोग ऐसे कहेगये तब भगवान् के चारों तरफ सिपाही लोग घिरगये ॥ ४३॥ गरुड़ अग्निबाण से टीड़ीकी तरह मारेजाते हैं धुन्धुमार भी कृष्ण से बाणों की मार से मारागया ॥ ४४ ॥ छाती में मारागया वह रथके ऊपर गिरपड़ा तब लड़ने को तैयार सब दानव हाहाकार को करतेहुये ॥४५॥ तब रिससे भराहुआ व रथपर सवार होकर नलमेघ निकला और हे पार्थ ! शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले भगवान् को देखा ॥ ४६ ॥ तब नलमेघ बोला कि हे दानवो ! इस विष्णुको मारो जिसने धुन्धुमारको माराहै मेरे सेनापति को मारकर अब कहां

गृह्यतांगृह्यतामेष इत्युक्तास्तेचकिङ्कराः ॥ चतुर्दिक्षुचवर्तन्ते किङ्कराःकेशवस्यच ॥ ४३ ॥ सुपर्णेनाग्निबाणेन ह्न न्यन्तेशलभाइव ॥ धुन्धुमारोपिकृष्णेन शरघातेनताडितः ॥ ४४ ॥ हतोवक्षस्थलोपान्ते पतितस्स्यन्दनोपरि ॥ हा हाकारंततस्सर्वे दानवाश्चक्रुरुद्यताः ॥ ४५ ॥ नलमेघस्ततःक्रुद्धो रथारूढोविनिर्गतः ॥ ददर्शकेशवंपार्थ शङ्खचक्रगदा धरम् ॥ ४६ ॥ नलमेघउवाच ॥ हन्यतांदानवाःकृष्णो निहतोयेनदानवः ॥ हत्वाचमेचमूमुख्यमधुनाचक्वयास्यति ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वादानवःपार्थ धर्षयामाससायकैः ॥ दानवस्यशरांस्तत्रच्छेदयामासकेशवः ॥ ४८ ॥ गरुत्मान्भक्षया मास तत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ कृष्णेनद्विगुणास्तत्र प्रेषिताहिशिलीमुखाः ॥ ४९ ॥ द्विगुणाद्विगुणीकृत्य प्रेषयामासदा नवः ॥ तेपिचाष्टगुणाःकृष्णं छादयामासुरोजसा ॥ ५० ॥ ततःक्रुद्धेनदैत्येन आग्नेयंप्रेषितन्तदा ॥ वारुणंप्रतिवायव्यं नलमेघोऽव्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥ नारसिंहंन्नसिंहोयं प्रेषयामासपाण्डव ॥ नारसिंहंततोदृष्ट्वा नलमेघोमहाबलः ॥ ५२ ॥

जाओगे ॥ ४७ ॥ हे पार्थ ! इतना कहकर वह दानव बाणोंसे मारने लगा वहां दानव के बाणोंको भगवान् काट देतेहुये ॥ ४८ ॥ और गरुडभी उसकी बडी डरावनी सेना को खाते हुये और वहां भगवान् ने भी उस दानव के बाणों से दूने बाणों को चलाया ॥ ४९ ॥ तब दानव भी दूने से दूने कर बाणों को चलाता हुआ वे अठगुने बाण अपने तेजसे कृष्ण को ढांक लेतेहुये ॥ ५० ॥ तदनन्तर रिस से भरेहुये दैत्य ने अग्निबाण को चलाया और वरुण व वायव्य बाण को भी नल-

मेघ छोड़ता हुआ ॥ ५१ ॥ हे पाण्डव ! तब भगवान्ने नारसिंह बाणको चलाया बलवान् नलमेघ नारसिंह बाण को देख ॥ ५२ ॥ झट रथसे उतरा और बडाबली दानव हाथसे तलवार लेकर भगवान्के मारने के वास्ते चलाताहुआ ॥ ५३ ॥ तब रिसका भरा हुआ वह दानव हे पार्थ ! कृष्ण के समीप आता हुआ और तलवार से गदा को हाथमें लियेहुये जो भगवान् हैं तिनको मारताहुआ ॥ ५४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले भगवान् मण्डलके अगिले भाग को ग्रहणकर बलवान् नलमेघ दैत्य की छाती मे मारा ॥ ५५ ॥ तब वह दैत्य भगवान् को बाण से मारता हुआ तदनन्तर नलमेघपर बडे क्रुद्ध होकर भगवान् ने हे नृप ! संग्राम में ॥ ५६ ॥ खाली न जावे

उत्तीर्णः स्यन्दनाच्छीघ्रं खड्गंगृह्यकरेणतु ॥ प्रेषयामासकृष्णाय तंहन्तुंबलवत्तरः ॥ ५३ ॥ क्रुद्धोथदानवःपार्थ आगतःकेशवंप्रति ॥ खड्गेनघातयामास गदापाणिजनार्दनम् ॥ ५४ ॥ मण्डलाग्रंततोगृह्य केशवोहृष्टमानसः ॥ हतोवक्षस्थलेदैत्यो नलमेघोमहाबलः ॥ ५५ ॥ जनार्दनंतदादैत्यो नाराचेनजघानह ॥ जनार्दनस्ततःक्रुद्धो नलमेघंमृधेनृप ॥ ५६ ॥ अमोघंचक्रमादाय शिरस्तस्यन्यपातयत् ॥ पतताशिरसातस्य वसुधाचप्रकम्पिता ॥ ५७ ॥ समुद्राःक्षुभिताःपार्थ भयादुन्मार्गगामिनः ॥ पुष्पवृष्टिंततोदेवा ववृषुःकेशवोपरि ॥ ५८ ॥ अवध्यस्सुरसङ्घानां सहतःकेशवेनतु ॥ स्वस्थानमगतोदेवो नलमेघेनिपातिते ॥ ५९ ॥ जनार्दनोपिकौन्तेय नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ लक्ष्मीसमन्वितःकृष्णो विलीनोनर्मदातटे ॥ ६० ॥ चक्रंविमोचितंपापक्षालनायमलान्वितम् ॥ पतितंनर्मदातोये जलशायिसमन्वितम् ॥ ६१ ॥ निर्धूतकल्मषंजातं नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ नलमेघवधोत्पन्नं यत्पापंमनुजाधिप ॥ ६२ ॥ तत्सर्वंक्षालितंशीघ्रं

ऐसे चक्र को लेकर उसका शिर गिरादिया गिरतेहुये उसके शिरसे पृथिवी कांपनेलगी ॥ ५७ ॥ और हे पार्थ ! खलभलाते हुये समुद्र भयसे उछलने लगे तदनन्तर भगवान् के ऊपर देवतालोग फूलोंकी वर्षा करतेहुये ॥ ५८ ॥ जो सब देवताओं को अवध्यथा वह भगवान् से मारागया नलमेघ के मरनेपर भगवान् अपने स्थान को चलेगये ॥ ५९ ॥ हे कौन्तेय ! जनार्दन भगवान्भी नर्मदा के किनारेपर बैठते हुये लक्ष्मी के सहित विष्णुभगवान् नर्मदा के तट में लीन होगये ॥ ६० ॥ और [illegible] चक्रको पापों के धोने के वास्ते छोड़दिया वह चक्र भगवान्के सहित नर्मदा में गिरा ॥ ६१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से चक्र पापों से रहित होगया हे मनुजा-

धिप ! नलमेघके मारने से जो पाप हुआथा ॥ ६२ ॥ वह सब नर्मदा के जल में शीघ्र धोडाला गया हे भारत ! तब से इस लोक व पृथिवी में वह तीर्थ जलशायी कहलाता है ॥ ६३ ॥ अनेक पापों के समूह के नाशकरनेवाले उस तीर्थको कोई चक्रतीर्थ कहते हैं हे महीपते ! इस भारतखण्ड विषे नर्मदा में वह तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ६४ ॥ हे नृप ! उस तीर्थ के प्रभावको एकाग्रचित्त होकर तुम सुनो जैसे नागों में शेषनारायणहैं व देवताओंमें जैसे विष्णुहैं ॥ ६५ ॥ और महीनों में जैसे अगहन है ऐसेही नदियों में पुण्यवाली नर्मदाहै अगहन के उजियाले पाखकी एकादशीको या और अच्छे दिन में ॥ ६६ ॥ काम और क्रोधसे रहित जो मनुष्य वहां जाकर शहद

रेवायाम्भसिभारत ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिञ्जलशायीमहीतले ॥ ६३ ॥ चक्रतीर्थंवदन्त्यन्ये अनेकाघौघनाशनम्॥ विख्यातंभारतेवर्षे नर्म्मदायांमहीपते ॥ ६४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावंवै शृणुष्वैकमनानृप ॥ नागानांचयथानन्तो गीर्वाणानांजनार्दनः ॥ ६५ ॥ मासानांमार्गशीर्षोपि नदीपुण्याहिनर्म्मदा ॥ मासिमार्गेसितेपक्षे एकादश्यांशुभेदिने ॥ ६६ ॥ गत्वायेमनुजास्तत्र कामक्रोधविवर्जिताः ॥ स्नापयन्तिश्रियःकान्तं नागपर्य्यङ्कशायिनम् ॥ ६७ ॥ राजेन्द्रपरयाभक्त्या क्षौद्रसागरसर्पिषा॥ गुडेनतोयमिश्रेण जगद्योनिंजनार्दनम् ॥ ६८ ॥ स्नाप्यमानञ्चपश्यन्ति येलोकागतपातकाः ॥ तेयान्तिपरमंलोकं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६९ ॥ घृतेनबोधयेद्दीपमथवातैलमिश्रितम् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा देवःस्यान्नात्रसंशयः ॥ ७० ॥ कथाञ्चवैष्णवींभक्त्या येशृण्वन्तिनरोत्तमाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ ७१ ॥ प्रदक्षिणंयेकुर्वन्ति जलशायिजगद्गुरुम् ॥ प्रदक्षिणीकृतन्तेन जम्बूद्वीपंनरेश्वर॥ ७२ ॥ ततःप्रभाते

दूध और घीसे व गुडमिले जलसे हे राजेन्द्र ! बडी भक्तिसे लक्ष्मी के पति व नाग की शय्याके सोनेवाले व जगत्की योनि जो भगवान्हैं तिनको नहवाते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ व पापों से रहित जो लोग नहवाये जाते हुये भगवान् को देखते हैं वे सब लोग देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये उत्तम लोकको जातेहैं ॥ ६९ ॥ घीसे दिया को जलावे अथवा तेल मिले घीको जलावे और रातमें जागरण करके देवता होजावे इसमें संशय नहीं है ॥ ७० ॥ और जो उत्तम लोग वहां भक्तिसे विष्णु की कथा को सुनते हैं वे ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटजाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥ जगत् के गुरु जलशायी भगवान्की जो प्रदक्षिणा करते हैं हे नरेश्वर ! वे मानो

जम्बूद्वीपकी प्रदक्षिणा करचुके ॥ ७२ ॥ तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल में यत्न से पितरों का तर्पण कर फिर हे पाण्डवसत्तम ! पूजने लायक ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे ॥ ७३ ॥ वे ब्राह्मण कैसे होवें कि अपनी स्त्री में रतहोवें और शान्तहों, पराई स्त्री से विमुखहों, वेदमें अभ्यास करनेवालेहों, अपने कर्मों के करनेवालेहों, अच्छे हों ॥ ७४ ॥ हमेशा सज्जनों केसे स्वभाववाले हों, तीनों कालोंकी सन्ध्या के करनेवाले हों ऐसे ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे जो अपने भलेको चाहते हों ॥ ७५ ॥ यहां मनुष्य लोक में वे मनुष्य धन्य व पुण्यवाले हैं कि जो सदा ब्रह्मके स्थान कुण्ड में वास करते हैं ॥ ७६ ॥ और देवताओं के मालिक जलशायी भगवान् को प्रत्यक्ष देखते

विमले पितॄन्सन्तर्प्पयन्ततः ॥ श्राद्धंवैब्राह्मणैस्तत्र पूज्यैःपाण्डवसत्तम ॥ ७३ ॥ स्वदारनिरतैःशान्तैः परदारविवर्जितैः ॥ वेदाभ्यसनशीलैश्च स्वकर्म्मनिरतैश्शुभैः ॥ ७४ ॥ नित्यंसज्जनशीलैश्च त्रिसन्ध्यापरिपालकैः ॥ तादृशैः कारयेच्छ्राद्धमिच्छेयुःश्रेयआत्मनाम् ॥ ७५ ॥ तेधन्यामानुषेलोके पुण्याश्चैवात्रमानुषाः ॥ येवसन्तिसदाकालं पदे ब्रह्माश्रयेहृदे ॥ ७६ ॥ जलशायिनश्चपश्यन्ति प्रत्यक्षंसुरनायकम् ॥ पक्षोपवासंयेकेचिद्व्रतंचान्द्रायणंशुभम् ॥ ७७ ॥ मासोपवासमुग्रंच तथान्यत्परमंव्रतम् ॥ तत्रतीर्थेतुयःपार्थकुर्य्यात्स्वर्गमवाप्नुयात ॥ ७८ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि तिलधेनोस्तुयत्फलम् ॥ तथायस्मिन्यथादेशं दानंतस्यश्रुतंफलम् ॥ ७९ ॥ एतत्कथान्तरेपुण्ये मुनीन्द्रैःपापनाशनम् ॥ श्रुतंहिनैमिषारण्ये नारदाद्यैरनेकधा ॥ ८० ॥ इदमाख्यानमायुष्यं पुण्यंकीर्तिविवर्द्धनम् ॥ विप्राणांश्रावयेद्यस्तु सर्वं तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ बहूनांनप्रदेयानिगोगृहंशयनंकिल ॥ विभक्तदक्षिणाह्येषा दातारंनोपतिष्ठति ॥ ८२ ॥ ए

हैं और जो लोग एक पाख का व्रत करते व चान्द्रायण करते हैं ॥ ७७ ॥ व बड़ा कड़ा महीने भरका व्रत व और व्रतको उस तीर्थ में जो करताहै हे पार्थ ! वह स्वर्ग को प्राप्त होताहै ॥ ७८ ॥ अब इसके बाद तिलधेनुका जो फलहै उसको हम कहेंगे वह दान जिसको दियाजावे व जो कुछ उसका फल सुना गयाहै उसको हम कहेंगे ॥ ७९ ॥ पापों के नाश करनेवाले इस दानको नैमिषारण्य में नारद आदि मुनीन्द्रोंने अनेक तरह से पवित्र कथा के बीच में सुनाहै ॥ ८० ॥ इस पुण्यवाले व आयुर्दाय और यशके बढ़ानेवाले आख्यानको जो ब्राह्मणोंको सुनाताहै वह इस सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ ८१ ॥ गऊ, मकान और शय्या बहुतों को नहीं देना

चाहिये अगर इनकी दक्षिणा बँटजावे तो देनेवाले को फल नहीं होताहै ॥ ८२ ॥ हे युधिष्ठिर ! वह एकही को देनेलायक है बहुतों को नहीं अगर वह गऊ बेंची जावे तो सात पीढ़ी तकको भस्म करदेती है ॥ ८३ ॥ तिल सफ़ेद, काले और भूरेभी होते हैं गऊ और बछड़े के मोलभर तिलों के प्रमाणको करे ॥ ८४ ॥ बछड़ा के सहित तिलधेनु देना चाहिये सोभी बहुतों को नहीं विचारसे गऊके जिस स्थान में तिलोंका जितना प्रमाण हो ॥ ८५ ॥ उसी प्रमाणसे अक्षय फलका चाहनेवाला गऊ को बनावे और हे विभो ! चन्दन, फूल और अक्षतों से उसका यत्नसे पूजन करे ॥ ८६ ॥ गऊकी नाक में सब सुगन्धित चीजें रक्खे और उसकी जीभकी जगह षट्

कस्मैसाप्रदातव्या बहूनांनयुधिष्ठिर ॥ साचविक्रयमापन्नादहेदासप्तमंकुलम् ॥ ८३ ॥ तिलाःश्वेतास्तथाकृष्णास्ति लाःप्रोक्ताश्चवर्णतः ॥ तिलानाञ्चप्रमाणानि धेनोर्वत्सस्यकारयेत् ॥ ८४ ॥ दातव्यावत्सकेनाथ बहूनांकामिनांनतु ॥ यस्मिन्देशेचयन्मानं तिलानाञ्चविचारतः ॥ ८५ ॥ तेनमानेनसाकार्य्या अक्षयंफलमिच्छता ॥ अर्चनीयाप्रयत्नेन ग न्धपुष्पाक्षतैर्विभो ॥ ८६ ॥ नासायांसर्वगन्धाश्च जिह्वायांषड्रसाधृताः ॥ मुक्ताफलानिवादन्तजङ्घापुच्छेषुयोजये त् ॥ ८७ ॥ कुक्षौकार्पासकन्देयं नाभ्यांपद्मंसकाञ्चनम् ॥ ओष्ठेमधुघृतंदद्यात्कुर्य्यात्सर्पिपश्चरोमके ॥ ८८ ॥ कम्बले कम्बलंदद्याल्ललाटेताम्रभाजनम् ॥ स्कन्धेतुशकलादेया लोहदण्डश्चसङ्कटे ॥ ८९ ॥ गुडंचैवगुदेदद्याच्छ्रोण्यांमधुघृते तथा ॥ यवसेपायसंदद्याद्घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥ ९० ॥ स्वर्णशृङ्गीरौप्यखुरी मुक्तालाङ्गूलभूषणा ॥ वस्त्रंसदन्नंदातव्यं कांस्यपात्रसुदोहना ॥ ९१ ॥ यत्तुबालकृतंपापं यद्वाकृतमजानता ॥ वाचाकृतंकर्म्मकृतं मनसायच्चचिन्तितम् ॥ ९२ ॥

रसों को धरे दांत, फीली और पूंछ में मोती लगावे ॥ ८७ ॥ कोखियों में कपास और तोंदी में सोने के सहित कमल को देवे ओंठों में घी और शहद देवे रोवों में घी लगावे ॥ ८८ ॥ गऊके गलेकी खालकी जगह कम्बल देवे मस्तक में तांबे के पत्रको लगावे कन्धे में उसी के टुकड़े व रीर में लोहे के दण्डको लगावे ॥ ८९ ॥ गुदामें गुड और पीछेवाले पुट्ठों मे घी और शहद देवे घास की जगह खीर, घी और शहद के सहित देवे ॥ ९० ॥ सोने से मढ़े सींगोंवाली व रूपेसे मढ़े खुरोंवाली व मोतियों से गुँथी पूंछवाली गऊ को देवे उसके साथ कपड़े, अन्न और कांसेकी दोहनी को देवे ॥ ९१ ॥ तो लडकपन में कियाहुआ व बेसमझ से कियागया व

वाणी, कर्म और मन से किया गया पाप ॥ ६२ ॥ व जलमें थूकने में व मूसर के नांघने में व वृषली से मैथुन में व गुरुस्त्री के भोग में ॥ ६३ ॥ व कन्या के साथ भोग करनेमें व सोनेकी चोरी में व दारू के पीने में जो पाप होता है उसको तिलधेनु पवित्र करदेती है ॥ ६४ ॥ जो दिन रातके उपाससे मेरे कहनेके अनुसार विधिपूर्वक गऊ दीजावे तो यमराज के पुरमें जो वैतरणी नदी कहीजाती है ॥ ६५ ॥ व बालूकी जगह जहां पापी पचताहै व अवीचिनरक जहां जोरिहाँ दो पहाड़ हैं ॥ ६६ ॥ व जहां लोहे के मुँहवाले कौवा हैं व जहां डरावनी जगह है व जहां असिपत्रवन है व जहां ताती बालूहै ॥ ६७ ॥ इन सब स्थानों को सुख से नांघकर धर्म-

जलमात्रेष्ठीवनेच मुशलेवाविलङ्घिते ॥ वृषलीगमनेचैव गुरुदारनिषेवणे ॥ ६३ ॥ कन्यायांगमनेचैव सुवर्णस्तेयएव च ॥ सुरापानञ्चयच्चापि तिलधेनुःपुनातिहि ॥ ६४ ॥ अहोरात्रोपवासेन विधिवत्सामयोदिता ॥ यासौयमपुरेचैव नदी वैतरणीस्मृता ॥ ९५ ॥ बालुकायास्स्थलेचैव पच्यतेयत्रदुष्कृती ॥ अवीचिनरकोपेतौ यौवैयुगलपर्वतौ ॥ ९६ ॥ यत्र लोहमुखाःकाका यत्रस्थानंभयानकम् ॥ असिपत्रवनंयत्र यत्रतप्तंचबालुकम् ॥ ९७ ॥ तत्सुखेनव्यतिक्रम्य धर्म्मरा जाश्रमंव्रजेत् ॥ धर्म्मराजस्तुतंदृष्ट्वा सूनृतंवाक्यमब्रवीत् ॥ ९८ ॥ वितानंविततंयोग्यं मणिरत्नविभूषितम् ॥ अत्राग च्छनृपश्रेष्ठ गच्छस्वपरमाङ्गतिम् ॥ ९९ ॥ माचपापरतेदानं नतद्दानंपरंहितम् ॥ माविकालेविरूपेच नव्यङ्गेचतथैवच ॥ १०० ॥ अवेदविदुषेचैव ब्राह्मणेमदविक्लवे ॥ मित्रघ्नेचकृतघ्नेच व्रतहीनेतथैवच ॥ १ ॥ वेदान्तगायदातव्या तस्यतत्त्वं विजानते ॥ वेदान्तगेतुसादेया श्रोत्रियेऽभूतबालका ॥ २ ॥ सर्वाङ्गरुचिरेदेया पवित्रेचप्रियंवदे ॥ पौर्णमास्याममावा

राज के स्थान को जाताहै धर्मराजभी उसको देख मीठी व सच्ची बात कहते हैं ॥ ६८ ॥ कि मणि व रत्नोंसे सजाहुआ बड़ा योग्य सामियाना खडाहै हे नृपश्रेष्ठ ! आप यहां आवें और फिर परमगति को जावो ॥ ६६ ॥ पापी को दान मत देवे क्योंकि वह दान अपना हितू नहीं होताहै और बेसमयमें कुरूप व बिगड़ी देहवाले को मत देवे ॥ १०० ॥ जो ब्राह्मण नशा खाता है और वेद नहीं पढ़ाहै मित्रों का द्रोही व कृतघ्न व व्रतहीन है ऐसेको दान न देवे ॥ १ ॥ वेदान्त के पढ़नेवाले को व उसके तत्त्वके जाननेवाले को गऊ देना चाहिये वेदान्तके पढ़नेवाले व वेदपाठी ब्राह्मण को बेबछड़ाकी नई गऊ देना चाहिये ॥ २ ॥ सब अङ्गोंसे सुन्दर व पवित्र

व प्यारी बातोंके कहनेवाले को गऊ देना चाहिये पूर्णमासी, अमावस, कार्त्तिकी ॥ ३ ॥ वैशाखी, अगहन, चन्द्र व सूर्यका ग्रहण, उत्तरायण व दक्षिणायनका दिन विषुव (जिस समय में दिन और रात बराबर होतेहैं) व्यतीपात, ॥ ४ ॥ षडशीतिमुख नामकी संक्रान्ति और गजच्छाया ये सब दानके समय हैं हे अनघ ! यह मैंने तुम से तिलधेनुके कल्पको कहाहै ॥ ५ ॥ इस दान के करनेवाले सूर्यलोकको भेद कर विष्णुलोकको जाते हैं हे नृप ! चक्रतीर्थ के इस सम्पूर्ण फल को मैंने आपसे कहा ॥ ६॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानके फलको पाताहै ॥ १०७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेचक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

स्यां कार्त्तिक्यांचापिभारत ॥ ३ ॥ वैशाख्यांमार्गशीर्षेच ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ अयनेविषुवेचैव व्यतीपातेचसर्वथा ॥ ४ ॥ षडशीतिमुखेचैव गजच्छायासुसर्वदा ॥ एषतेकथितःकल्पस्तिलधेनोर्मयानघ ॥ ५ ॥ भित्त्वाचभास्करंलोकं हरि लोकंव्रजन्तिते ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं चक्रतीर्थफलन्नृप ॥ ६ ॥ श्रवणात्कीर्त्तनाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे चक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थंपरमशोभनम् ॥ चन्द्रादित्यंनृपश्रेष्ठ स्थापितंचण्डमुण्डयोः ॥ १ ॥ आसीत्पुरामहाभागौ चण्डमुण्डौतुदानवौ ॥ तपश्चेरतुस्तत्रनर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ ध्यायतोभास्करन्देवं तमो नाशंजगद्गुरुम् ॥ ताभ्याञ्चतोषितस्सोपि सहस्रांशुरुवाचह ॥ ३ ॥ साधुसाध्वितितौपार्थ नर्मदायास्तटेशुभे ॥ च ण्डमुण्डौवरंब्रूतंविशिष्टंमनसेप्सितम् ॥ ४ ॥ चण्डमुण्डावूचतुः ॥ अजेयौचैवदेवेश सर्वेषांदेवतानृणाम् ॥ रोगैश्चैव

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर चण्ड मुण्ड के थापेहुये अतिउत्तम चन्द्रादित्य नाम के तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में बडे भाग्यवाले चण्ड और मुण्ड नामके दो दानव वहां नर्मदामें तपस्या करतेहुये ॥ २ ॥ अन्धकारके नाश करनेवाले व जगत् के गुरु जो सूर्य हैं तिनका ध्यान करतेहुये उन दोनों से प्रसन्न कियेगये सूर्य बोलते हुये ॥ ३ ॥ उत्तम नर्मदा के तटमें हे पार्थ ! सूर्यने कहा कि हे चण्ड, मुण्ड ! वाह वाह तुम दोनों अपने मनके प्यारे वरको मांगो ॥ ४ ॥ तब चण्ड मुण्ड बोले कि हे देवेश ! सब देवता व मनुष्यों के जीतने लायक हम न होवें और हे दिनके करनेवाले ! रोगों से रहित

परित्यक्तौ सविकाशंदिवाकर ॥ ५ ॥ तत्तथेतिशुभंवाक्यंभास्करस्तावब्रवीदत् ॥ ततश्चान्तर्दधेभानुर्दानवाभ्यांचभास्क रम् ॥ ६ ॥ स्थापितंपरयाभक्त्या पूजयेद्योजितेन्द्रियः ॥गीर्वाणतामनुष्यस्य प्राप्तातत्रैववर्तते ॥ ७ ॥ वसतेभास्करे लोके वैरिञ्चेदेवसन्निधौ ॥ घृतेनबोधयेद्दीपं षष्ठ्यांषष्ठ्यांनरेश्वर ॥ ८ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो मृतोयातिपुरंरवेः ॥ च न्द्रादित्यमितिख्यातं तत्रतीर्थंनरोत्तम ॥ ९ ॥ विजयन्तेसदाकालं चन्द्रादित्यंव्रजन्तिये॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे चन्द्रादित्येश्वरमहिमानुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र यमहासमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंपार्थ रेवायास्तटमाश्रितम् ॥ १ ॥ युधिष्ठि रउवाच ॥ यमहासंकथंजातं पृथिव्यांमुनिपुङ्गव ॥ एतत्सर्वंसमाख्याहि ममकौतूहलंपरम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच॥ साधुसाधुमहाभाग पृष्टन्तेधर्म्मनन्दन ॥ स्नानार्थंनर्म्मदायान्तु आगतस्तेपितापुरा ॥ ३ ॥ रजकेनयथाधौतं निर्म्म

सदा सुखसे रहें ॥ ५ ॥ तब सूर्यने उन दोनोंसे अच्छे वाक्यको कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर सूर्य अन्तर्द्धान होगये फिर उन दोनों दानवों ने सूर्यका ॥ ६ ॥ स्थापन किया उनका जो कोई इन्द्रियों को जीतेहुये बडी भक्ति से पूजन करताहै वह मनुष्य वही देवभाव को प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥ और सूर्य व ब्रह्मलोक में देवताओं के समीप रहताहै व हे नरेश्वर ! जो प्रत्येक छठिमें घी से दीपक जलाताहै ॥ ८ ॥ वह सब पापों से छूटजाताहै और मरकर सूर्यके पुरको जाता है हे नरोत्तम ! चन्द्रादित्य नामका यह तीर्थ वहां प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ जो लोग चन्द्रादित्य को जाते हैं वे सदा विजयको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेच- न्द्रादित्येश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर सब पापों के हरनेवाले व नर्मदा के तट में विद्यमान अत्युत्तम यमहास तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि हे मुनिपुङ्गव ! पृथिवी में यमहास कैसे हुआ सो सब आप कहो मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! हे धर्म-

नन्दन ! बहुत अच्छा आपने पूंछा आगे नर्मदा में स्नान करने को आपके पिताभी आयेथे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! धोबी का धोया हुआ कपडा जैसा निर्मल होजावे ऐसाही साफ नर्मदा के अत्युत्तम जलको देखतेहुये ॥ ४ ॥ यमराज ने हँसदिया था तब वहां एक उत्तम लिङ्ग उठता हुआ तदनन्तर हे राजेन्द्र ! वहां आकाशवाणी हुई ॥ ५ ॥ कि यह तीर्थ यमहास नाम से सदा प्रसिद्ध रहेगा यमराज वहां महादेवको स्थापन कर स्वर्गको जातेहुये ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! क्रोध और इन्द्रियों को जीतेहुये यमहास तीर्थ में कुँवारके अँधियारे पाखकी चौदस को ॥ ७ ॥ बड़ी भक्ति से उपास कर सब पापों से छूटजाता है रात में जागरण कर घीसे महादेव का दिया ज-

लंवसनंभवेत् ॥ तथैवपश्यताराजन् रेवाजलमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ हास्यंकृतंयमेनाथ उत्थितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ततस्तदाहि राजेन्द्र वागुवाचाशरीरिणी ॥ ५ ॥ यमहासमिदंतीर्थं ख्यातिंयास्यतिसर्वदा ॥ स्थापयित्वाशिवंतत्र यमःस्वर्गंजगाम ह ॥ ६ ॥ यमहासेतुराजेन्द्र जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ विशेषादाश्विनेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ७ ॥ उपोष्यपर याभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपंदेवस्यबोधयेत् ॥ ८ ॥ घृतेनचैवराजेन्द्र शृणुतस्यैवयत्फल म् ॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तु अगम्यागमनोद्भवैः ॥ ९ ॥ अभक्ष्यभक्षणैःपापैः पापैर्वापेयसम्भवैः ॥ अवाह्यवाहनेयच्च अ द्रोहद्रोहणेतथा ॥ १० ॥ स्नानमात्रेणतच्चैव नश्येत्पापमनेकधा ॥ यमलोकन्नपश्येच्च नत्यजेत्पाण्डुनन्दन ॥ ११ ॥ बहूनांपरमंगुप्तं तीर्थंभूम्यांनृपात्मज ॥ तदक्षयफलंतेषां यमहासेप्रदायिनाम् ॥ १२ ॥ अमावास्यांजितक्रोधो यस्तु पूजयतेद्विजान् ॥ भूमिदानेनयोभक्त्या तिलदानेनभारत ॥ १३ ॥ कृष्णाजिनप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ वसुमे

लावे तो हे राजेन्द्र ! उसके फलको सुनो कि जिस स्त्रीका संग्रह नहीं उचित है उसके संग्रह से पैदाहुये सब पापो से छूटजाता है ॥ ८ । ९ ॥ नहीं खानेलायक चीज के खाने से व नहीं पीने लायक के पीनेसे व नहीं जोतने लायक के जोतने से व नहीं बैर करने लायक के साथ में बैर करने से जो अनेकप्रकार का पाप होताहै वह स्नानमात्र से नष्ट होजाताहै और हे पाण्डुनन्दन ! नहानेवाला यमलोकको नहीं देखता है चाहे पापको न भी छोड़े ॥ १० । ११ ॥ हे नृपात्मज ! यह तीर्थ पृथिवी में बहुतोंको छिपाहुआ है यमहास में दान करनेवालों को अक्षय फल होता है ॥ १२ ॥ हे भारत ! अमावस को क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य भक्तिसे पृथिवी, तिल,

मृगचर्म और तिलधेनु के दान से ब्राह्मणों का पूजन करता है अथवा धनिष्ठा नक्षत्र व वृद्धियोगमें जो लोग भक्तिसे देवेंगे ॥ १४ ॥ व भात,जल, बैल, बड़े बलवाला घोडा, कन्या, कपड़ा, बोकरी, गऊ, भैस और घोडी को हे नृपश्रेष्ठ ! देते हैं वे यम के पास नहीं जाते हैं और हे युधिष्ठिर ! उनसे जन्म२में यमराजभी प्रसन्न रहते हैं॥ १५ । १६ ॥ और हे भारत, नृप ! यमकी सवारी भैंसा, भैंस और स्त्री के दानसे यमराज निरन्तर प्रसन्न रहते हैं ॥ १७ ॥ वह पापोंसे भी युक्त हो परन्तु यमलोकमें नहीं जाताहै हे पार्थ ! इसी कारणसे भैसका दान बहुत उत्तमहै ॥ १८ ॥ ऊनके दो कपड़े बनावे और उनको लोहेमें लपेटकर यमराजके वास्ते ब्राह्मणको देवे व कहे कि हे

वृद्धियोगेच येप्रदास्यन्तिभक्तितः ॥ १४ ॥ ओदनंवारिधूर्वाहं हयञ्चापिमहाबलम् ॥ कन्यांवस्त्रमजांगांवै महिषीम थवाश्विनीम् ॥ १५ ॥ येयच्छन्तिनृपश्रेष्ठ नोपसर्पन्तितेयमम् ॥ यमोपिभवतिप्रीतो जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १६ ॥ यम स्यवाहनंस्त्रींच महिषींतत्रभारत॥तस्यदानेनसततं यमःप्रीतोभवेन्नृप॥१७॥नसयातियमेलोके यदिपापैस्समाश्रितः॥ एतस्मात्कारणात्पार्थ महिषीदानमुत्तमम् ॥ १८ ॥ और्णवस्त्रद्वयंकार्य्यं लोहवर्णचवेष्टितम् ॥ दापयेद्धर्म्मराजाय प्री यतांमेद्विजोत्तम ॥ १९ ॥ अनेनैवतुदानेन यमःप्रीतोऽस्तुमेसदा ॥ इत्युच्चार्य्यद्विजस्याग्रे यमलोकंभयावहम् ॥ २० ॥ असिपत्रवनेघोरे यमवल्लीसुदारुणा ॥ रौद्रावैतरणीचेति कुम्भीपाकस्सुदारुणः ॥ २१ ॥ कालसूत्रंमहाभीमं तथायमल पर्वतौ ॥ क्रकचन्तैलयन्त्रञ्च स्थानेगृध्रास्सुदारुणाः ॥ २२ ॥ अनिश्वासोमहारौद्रो भीषणोरौरवस्तथा ॥ एतेघोराश्च नरकाः श्रूयन्तेद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ तत्प्रसादेनतेसौम्यास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ दानस्यास्यप्रभावेण यमहासप्रभाव

द्विजोत्तम ! मुझपर प्रसन्नहोवो ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणके आगे यहभी कहे कि इस दानसे मुझपर यमराज सदा प्रसन्न रहें क्योंकि यमलोक बड़ा डरावनाहै ॥ २० ॥ उसमे बड़ा घोर असिपत्रवन व बडी दारुण यमवल्ली व बडी भयानक वैतरणी नदी व अतिदारुण कुम्भीपाक ॥ २१ ॥ व बड़ा भयानक कालसूत्र व जोरिहाँ दो पहाड़ व आरा और कोल्हू व उसी स्थान मे बडे दारुण गीध ॥ २२ ॥ व महारौद्र अनिश्वास व बड़ा डरावना रौरव है हे द्विजसत्तम ! ये जो घोर नरक सुनेजाते है ॥ २३ ॥

वे सब यमराज के प्रसाद व इस तीर्थके प्रभाव से सुख के देनेवाले होजाते हैं इस दानके प्रभावसे व यमहास तीर्थके प्रभाव से ॥ २४ ॥ यमलोक को नहीं जाता है और नरक को नहीं देखताहै ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेयमहासमाहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम कोटीश्वर तीर्थ को जावे हे कुरुनन्दन ! वहां एक करोड़ ऋषिलोग आयेथे ॥ १ ॥ वहां सम्पूर्ण वेद के पढ़नेवाले ब्राह्मणों से मुनिश्रेष्ठ व्यासजी मोक्षके वास्ते विचारकर ॥ २ ॥ श्रद्धा व भक्ति से युक्तहो तिल मिले गऊ के पञ्चामृत से पितरों के तर्पण को कर विधान

तः ॥ २४ ॥ यमलोकन्नवैयाति नरकंनैवपश्यति ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे यमहाससमहिमानुवर्णनोनामाष्टाधिकशततमोध्यायः ॥ १०८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र कोटीश्वरमनुत्तमम् ॥ ऋषिकोटिस्समायाता तत्रवैकुरुनन्दन ॥ १ ॥ कृष्णद्वैपायनस्तत्र मोक्षार्थंमुनिपुङ्गवः ॥ मन्त्रयित्वाद्विजैस्सर्वैर्वेदमण्डलपारगैः ॥ २ ॥ पञ्चामृतेनगव्येन तिलमिश्रेण तत्परः ॥ पितॄणांतर्पणंकृत्वा पिण्डदानंयथाविधि ॥ ३ ॥ श्रावणस्यतुमासस्य पूर्णिमायांविशेषतः ॥ प्राप्यतेचाक्षयातृप्तिर्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ४ ॥ पितॄणांपरमंगुह्यं रेवाजलमुपाश्रितम् ॥ मोक्षदंसर्वभूतानां निर्मितंमुनिपुङ्गवैः ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥ दुर्लभंमनुजैःपार्थ अन्तरिक्षेव्यवस्थितम् ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्माद्वैव्यासतीर्थन्तु अन्तरिक्षेव्यवस्थितम् ॥ एतदाचक्ष्वसंक्षेपान्नचग्रन्थस्यविस्तरः ॥ ७ ॥ मार्कण्डे

से पिण्डदान करतेहुये ॥ ३ ॥ सावनकी पूर्णमासी को विशेषसे इस कामको करे क्योंकि इस से पितरों को प्रलय तक अक्षय तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ पितरों को बड़ा गुप्त नर्मदा का जल है सब प्राणियों के मोक्षका देनेवाला नर्मदाका जल मुनियों से बनायागया है ॥ ५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर आकाश में विद्यमान व मनुष्यों को दुर्लभ व अत्युत्तम व्यासतीर्थ को जावे ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि व्यासका तीर्थ आकाशमे क्यों

स्थित हुआ संक्षेप से इसको आप कहें जिस मे ग्रन्थका विस्तार न होवे ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो ! वाह २ आप बडे धर्मात्मा व गुरु के प्यारे अपने धर्मके प्रेमी व तीर्थयात्रा के आदर करनेवालेहो हे पार्थ ! ॥ ८ ॥ हे नरेश्वर ! सब प्राणियोंको व्यास का तीर्थ बडा दुर्लभहै हम बुढ़ापे व विकलतासे हे नराधिप ! दबेहुये ॥ ९ ॥ व बेहोश होरहे हैं तब भी कहते हैं हे पाण्डुनन्दन ! गुप्त मे अतिगुप्त इस तीर्थ को हमने किसी से नहीं कहा है ॥ १० ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्रकी आज्ञा से वहा काल नहीं रहसक्ता है जिस से यह नर्मदा का चरित्र आकाश में होरहा है ॥ ११ ॥ ब्रह्माभी नर्मदा के गुणों को नहीं कहसक्ते हैं और व्यासतीर्थ को

यउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो धर्म्मवान्गुरुवत्सलः ॥ स्वधर्म्मनिरतःपार्थ तीर्थयात्राकृतादरः ॥ ८ ॥ दुर्ल्लभंसर्वजन्तूनां व्यासतीर्थंनरेश्वर ॥ धर्षितोवृद्धभावेन वैकल्येननराधिप ॥ ९ ॥ गतचेतास्तुसञ्जातस्तथाभोःपाण्डुनन्दन ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातंकस्यचिन्मया ॥ १० ॥ कालस्तत्रैवराजेन्द्र नवसेद्वासवाज्ञया ॥ अन्तरिक्षेचसञ्जातं रेवायाश्चेष्टितंयतः ॥ ११ ॥ विरञ्चिर्नैवशक्नोति रेवायागुणकीर्तनम् ॥ व्यासतीर्थंविशेषेण श्रुतमात्रंवदाम्यहम् ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षःप्रत्ययोयत्र दृश्यतेहिकलौयुगे ॥ विहङ्गोगच्छतेनैव भित्त्वाशूलंसुदारुणम् ॥ १३ ॥ तस्योत्पत्तिंसमासेनकथयामिनृपात्मज ॥ आसीत्पूर्वंमहाराज ऋषिश्चैवपराशरः ॥ १४ ॥ तेनचोग्रंतपस्तप्तं गङ्गाम्भसितुभारत ॥ प्राणायामेनचातिष्ठत्प्रविष्टोजाह्नवीजले ॥ १५ ॥ पूर्णेचद्वादशेवर्षे निष्क्रान्तोजलमध्यतः ॥ भिक्षार्थंचागतोग्रामं नावितत्रैववतिष्ठती ॥ १६ ॥ तत्रदृष्टापरोत्सृष्टा बालातेनमनोरमा ॥ ताञ्चदृष्ट्वासकामार्त उवाचमधुराक्षरम् ॥ १७ ॥ मांरमस्वाद्यत्वं

तो विशेषही नहीं कहसक्ते हैं मैं सुनेमात्र को कहताहूं ॥ १२ ॥ जहा कलियुग में भी प्रत्यक्ष विश्वास देख पड़ता है जिस तीर्थ के अतिदारुण त्रिशूल को नाघकर पक्षी भी नहीं उड़सक्ता है ॥ १३ ॥ हे नृपात्मज ! उम तीर्थकी उत्पत्तिको हम साधारण रीति से कहते हैं हे महाराज ! आगे पराशर नाम के ऋषि होतेहुये ॥ १४ ॥ हे भारत ! उन्होंने गङ्गाके जल में उग्र तपस्या को किया गङ्गा के जलमें प्राणायाम करतेहुये स्थितरहे ॥ १५ ॥ बारहवीं वर्षके पूरे होनेपर पानी के भीतर से निकले और भिक्षाके वास्ते गांवको गये वहां नौकापर बैठी ॥ १६ ॥ व किसी औरसे छोड़ी हुई मनकी रमानेवाली एक स्त्री उन पराशरको देखपड़ी उसको देख कामसे विकल

वे पराशर उससे मीठे अक्षरों से बोले ॥ १७ ॥ हे मृगलोचने ! तुम कौनहो मुझ कामी से आज रमो हे नावारूढे ! नदी के किनारे पर मेरे चित्त को मथरही हो ॥ १८ ॥ उन महात्मासे ऐसे कहीगई वह स्त्री ऋषिको नमस्कारकर बोली कि हे विप्र ! मैं नावकी रक्षा करनी हूं और अपने स्वामीको नहीं जानती हूं ॥ १९ ॥ और मेरी यह उमर है बाकी रहे हाल को आप जानो उस स्त्रीसे ऐसे कहेगये वे पराशरभी थोड़ी देर ध्यानकर बोलते हुये ॥ २० ॥ कि हे भद्रे ! हम ज्ञानके बलसे तुम्हारी उत्पत्ति को जानते हैं आप केवटकी कन्या नहीं हो बल्कि सुन्दररूपवाली तुम राजाकी कन्याहो ॥ २१ ॥ तब कन्या बोली कि हे ब्रह्मन् ! हमारा पिता कौनहै उसको आप

कासि कामुकंमृगलोचने ॥ नावारूढेनदीतीरे ममचित्तप्रमाथिनी ॥ १८ ॥ एवमुक्तातुसातेन प्रणम्यऋषिसत्तमम् ॥ नावंरक्षाम्यहंविप्र जानामिस्वामिनन्नतु ॥ १९ ॥ ममेदञ्चवयोब्रह्मञ्च्छेषंत्वंज्ञातुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तयासोपि क्षणंध्यात्वाब्रवीदिदम् ॥ २० ॥ अहंज्ञानबलाद्भद्रे जानामितवसम्भवम् ॥ कैवर्तपुत्रिकानत्वं राजपुत्रीहिसुन्दरी ॥ २१ ॥ कन्योवाच ॥ कःपिताकथ्यतांब्रह्मन्कस्याहमुदरोद्भवा ॥ कस्मिन्वंशेप्रजाताहं कैवर्ततनयाकथम् ॥ २२ ॥ पराशरउवाच ॥ कथयामिचतेतातं यंत्वंमांपरिपृच्छसि ॥ वसुनामाचराजाभूत्सोमवंशेप्रतापवान् ॥ २३ ॥ जम्बूद्वीपाधिपोभद्रे शत्रुसंत्रासनस्तथा ॥ शतानिसप्तभार्य्याणां पुत्राणान्तुदशैवहि ॥ २४ ॥ धर्म्मेणपालितालोकाः शिवपूजारतस्सदा ॥ म्लेच्छास्तस्यविरोधेन शाकद्वीपनिवासिनः ॥ २५ ॥ तेषाञ्चसाधनार्थायगतोलङ्घ्यमहोदधिम् ॥ संयुक्तःपुत्रभृत्यैश्च पौरुषेमहतिस्थितः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तैस्समारब्धश्चार्वङ्गिवसुनासह ॥ जिताम्लेच्छास्समस्ताश्च वसुनाह्यवनीभृता ॥ २७ ॥

कहैं और हम किसके पेटसे पैदा हुई हैं व किस वंश में हम पैदाहुईहैं और केवटकी कन्या हम कैसे हुई हैं ॥ २२ ॥ तब पराशर बोले कि हम तुम्हारे पिताको कहते हैं जिसको तुम हम से पूछती हो सोमवंश में बड़े प्रतापवाले वसुनाम के राजा होते हुये ॥ २३ ॥ हे भद्रे ! वे शत्रुओं को डरावनेवाले जम्बूद्वीपके मालिक हुये उनके सातसौ रानी व दश लड़के होते हुये ॥ २४ ॥ धर्म से लोकों की पालनाकी और शिवकी पूजा सदा करते थे तब तक शाकद्वीप के रहनेवाले म्लेच्छ उनके विरोधी होतेहुये ॥ २५ ॥ उनके जीतने के लिये समुद्र नाघकर वहां गये लड़के व सिपाहियों के सहित बड़े पराक्रम में स्थित होते हुये ॥ २६ ॥ हे चार्वङ्गि ! उन म्लेच्छों

व तुम्हारे पिता वसु से लड़ाई होतीहुई राजा वसुने सब म्लेच्छोंको जीत लिया ॥ २७ ॥ राजाने सेवक व सेना और सवारियों के समेत उन सबको कर देनेवाला कर लिया राजाकी बडीरानी मृगों केसे नेत्रोंवाली तुम्हारी माता ॥ २८ ॥ राजाके परदेश मे होनेपर रजस्वला होतीहुई स्त्रियों को तो सदा कामदेव अधिक रहताहै ॥ २९ ॥ परन्तु ऋतुसमय में काम के बाणोंसे बहुत पीड़ित होती है काम से जलती हुई वह उत्तम नेत्रोंवाली रानी विचार करती हुई ॥ ३० ॥ कि आज हम अपने राजा के समीप दूत को भेजें ऐसे विचार कर बड़े जल्द दूतको बुलाया और कहा कि तुम राजा के तीर जाओ ॥ ३१ ॥ तब दूत ने कहा कि हे देवि ! शत्रुओं के नाश करने

करदास्तेकृतास्तेन सभृत्यबलवाहनाः ॥ प्रधानातस्यमहिषी तवमातामृगेक्षणा ॥ २८ ॥ प्रवासस्थेचभूपालेसं जाताचरजस्वला ॥ नारीणान्तुसदाकालेमन्मथोह्यधिकोभवेत् ॥ २९ ॥ विशेषेणऋतौकाले भिद्यतेकामसायकैः ॥ मन्मथेनतुसन्तप्ताचिन्तयत्साशुभेक्षणा ॥ ३० ॥ दूतंसम्प्रेषयाम्यद्य वसुराजसमीपतः ॥ व्याहृतस्सत्वरोदूतोगच्छत्वंनृपसन्निधौ ॥ ३१ ॥ दूतउवाच ॥ परराज्येवसुर्देवि गतोराजाद्विडन्तकृत् ॥ तत्रगन्तुन्नशक्येत जलयन्त्रैर्विनाशुभे ॥ ३२ ॥ जलयानानिसर्वाणि नेयानिचपरेतटे ॥ तस्यवाक्येनसानारी विषण्णामदपीडिता ॥ ३३ ॥ राज्ञींदृष्ट्वासखीब्रूते कस्मात्त्वंपरिखिद्यसे ॥ लेखोयंप्रेष्यतान्देवि शुकहस्तेयथातथा ॥ ३४ ॥ समुद्रंलङ्घयित्वातु शकुन्तोयातिसुन्दरि ॥ व्याहृतोलेखकस्तत्रालिखलेखंममाज्ञया ॥ ३५ ॥ त्वांविनापट्टराज्ञीसा वसुराजनजीवति ॥ ऋतुकालश्चसम्प्राप्तस्समस्तं चावधार्य्यताम् ॥ ३६ ॥ लिखितोभूर्जपत्रेच वृत्तस्सलेखकेनतु ॥ शुकःपञ्जरमध्यस्थ आनीतस्तत्रसन्निधौ ॥ ३७ ॥ उ

वाले राजावसु औरकी राज्यमें गये हैं इस से हे शुभे ! विना पानीवाली सवारी के वहां नहीं जाया जासक्ताहै ॥ ३२ ॥ इससे जलकी सब सवारी किनारेपर लगाई जावें तब उसके वचन से वह रानी मदसे पीड़ित होरही उदास होतीहुई ॥ ३३ ॥ तब रानी को देख सखी कहती है कि तुम क्यों उदास होती हो हे देवि ! यह लेख अपने तोते के हाथ भेजो ॥ ३४ ॥ क्योंकि हे सुन्दरि ! पक्षी समुद्र को नांघ जाता है तब रानी ने लेखक को बुलवाया और कहा कि हमारी आज्ञासे हालको लिखो ॥ ३५ ॥ कि हे वसुराजन् ! तुम्हारे विना वह तुम्हारी पटरानी नहीं जीसक्ती है उसके ऋतुका समय प्राप्तहुआ है आप सब जानलेवें ॥ ३६ ॥ लेखकने भोजपत्र पर वह सब

हाल लिखकर रानीको देदिया तब पिंजरामें बैठाहुआ तोता वहां रानी के समीप लाया गया ॥ ३७ ॥ तब रानीने तोते से कहा कि हे शुक! हमारे लेखको लेकर तुम जावो तब वह पक्षी बहुत जल्द वसुराजा के समीप गया ॥ ३८ ॥ सत्यभामा रानी के भेजेहुये पत्रको तोते ने राजा के तीर फेंकदिया तब उसके वास्ते राजाने विचार किया फिर अपने वीर्य्य को लेकर ॥ ३९ ॥ पोढ़ी देनियां बनाकर नामी राजाने तोते को देदी और कहा कि तुम रानी के पास जावो ॥ ४० ॥ तब वह तोता वसु राजाको प्रणामकर और वीर्य को लेकर उड़ा अपनी इच्छासे जाताहुआ सुआ समुद्र के ऊपर प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ मांसके सहित तोते को जान उसके पीछे बाज दौड़ा

वाचराज्ञीतंतत्र गृह्यलेखंशुकव्रज ॥ गतःपक्षीततःशीघ्रं वसुराजसमीपतः ॥ ३८ ॥ क्षिप्तोलेखःशुकेनैव सत्यभामाविसर्जितः ॥ लेखार्थंचिन्तयामास वीर्य्यंगृह्यनरेश्वरः ॥ ३९ ॥ अमोघपुटिकांकृत्वा प्रतिलोकेनविश्रुतः ॥ शुकस्यचार्पयामास गच्छराज्ञीसमीपतः ॥ ४० ॥ वसुराजंप्रणम्याथ वीजंगृह्यपपातह ॥ समुद्रोपरिसम्प्राप्तः शुकोयातियथेच्छया॥ ४१ ॥ सामिषञ्चशुकंज्ञात्वा श्येनस्तत्रापिधावितः ॥ हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकःश्येनेनभारत ॥ ४२ ॥ मूर्च्छापन्नस्यतद्वीर्य्यं पतितंजलमध्यतः ॥ मत्स्येनगिलितंतत्र तद्वीर्य्यंपार्थिवस्यच ॥ ४३ ॥ दाशैर्मत्स्योगृहीतश्च आनीतस्स्वगृहंप्रति ॥ यावत्तंपाटयामासुर्यमलंददृशेतदा ॥ ४४ ॥ शशिमण्डलसङ्काशं सूर्य्यतेजस्समप्रभम् ॥ दृष्ट्वातेधर्षितास्सर्वे कैवर्ताजाह्नवीतटे ॥ ४५ ॥ हर्षितास्तेगतास्सर्वे प्रधानस्यचमन्दिरम् ॥ पुत्रंराज्ञेप्रदायैव पुत्रींचप्रत्यपालयत् ॥ ४६ ॥ तत्त्वंदेविवरारोहे कैवर्तकन्यकानहि ॥ ततस्साचिन्तयामास पराशरवचस्तदा ॥ ४७ ॥ एवमुक्तातुसातेन दत्त्वात्मानं

और हे भारत! बाजने चोंचसे तोनेको मारा ॥४२॥ मारने से मूर्च्छाको प्राप्तहोगये तोतेके मुहँसे छूटगया वीर्य पानी में गिरपडा तब वहा उस राजा के वीर्यको मछली ने खालिया ॥ ४३ ॥ केवट लोग उस मछलीको पकड अपने घरमें लाये जब उसको फाडा तो उसके पेटमें एक जोडा देखपड़ा ॥ ४४ ॥ चन्द्रमाके मण्डल के समान निर्मल व सूर्य के समान तेजवाले लडके को देख सब धीवरलोग गङ्गाके किनारे चकचौंध गये ॥ ४५ ॥ फिर प्रसन्न होकर वे सब राजा के महल को गये पुत्र को राजाको देकर और कन्याको आप पालते हुये ॥ ४६ ॥ इससे हे वरारोहे! हे देवि! तुम केवटकी कन्या नहीं हो तब वह कन्या पराशरके वचनको विचारती हुई ॥४७॥

पराशर से ऐसे कहीगई वह सीधे स्वभाववाली कन्या हे नरेश्वर ! अपने को पराशर को देकर बोली कि हे ब्रह्मन् ! मेरे शरीरसे मछली का गन्ध जातारहे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपने योगके बलसे उस कन्या को दिव्यगन्धसे बसादिया आगको जलाकर ॥ ४९ ॥ व उसकी प्रदक्षिणाकर कन्याको आगसे निकाललिया और आग के जलतेहुयेही उस स्त्रीके कामके स्थानोंको पराशर छूतेहुये ॥ ५० ॥ हे नृपनन्दन ! तब वह कन्या पराशरको कामसे अपने चाहनेवाले जानकर डरगई और उनसे एकबारगी कहा कि एकतो दिनहै और दूसरे और लोगोंकी समीपताभी है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर थोड़ीदेर पराशरने ध्यान किया तब हे तात ! दिशा और आकाशको ढांकती

नरेश्वर ॥ उवाचसाध्वीभोब्रह्मन्मत्स्यगन्धोनिवर्त्यताम् ॥ ४८ ॥ ततस्तेनतुसाबाला दिव्यगन्धाभिवासिता ॥ कृता योगबलेनैव ज्वालयित्वाविभावसुम् ॥ ४९ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंवह्नेरुद्धृतातेनसातदा ॥ ज्वलमानस्यमध्येतु कामस्थानानिसोऽस्पृशत् ॥ ५० ॥ ज्ञात्वाकामोत्सुकंविप्रं भीतासानृपनन्दन ॥ उवाचसहसाबाला दिवाचलोकसन्निधौ ॥ ५१ ॥ ततस्तेनक्षणंध्याता पूरयन्तीदिगम्बरम् ॥ आगतातामसीतात ययाव्याप्तंसमन्ततः ॥ ५२ ॥ ततस्सविस्मयन्तेन रहोबालामृगेक्षणा ॥ कामेनैवहितप्तेन स्त्रीसौख्यंक्रीडतातदा ॥ ५३ ॥ ततस्तेनमुहूर्त्तेनापत्यभारेणपीडिता ॥ बालकं तत्रजटिलं सुभगंदण्डधारकम् ॥ ५४ ॥ कमण्डलुधरंशान्तं मेखलाकटिभूषणम् ॥ धृतोपवीतकंस्कन्धे विष्णुमायाविवर्जितम् ॥ ५५ ॥ माताहिशङ्कितातत्र दृष्ट्वापुत्रस्यचापलम् ॥ वेपमानाततोबाला गतासाशरणंमुनेः ॥ ५६ ॥ रक्षरक्षमुनिश्रेष्ठ पराशरमहामुने ॥ जातमत्यद्भुतंविप्रं कौपीनाम्बरमेखलम् ॥ ५७ ॥ दण्डहस्तंजटायुक्तमुत्तरीय

हुई अंधेरी आगई जिससे सब व्याप्त होगया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर पराशर ने एकान्तमें कामसे जलरहे आप उस हिरन कीसी नेत्रवाली स्त्री का भोग किया ॥ ५३ ॥ तब वह उसी समय में पुत्र के भारसे पीडित होतीहुई फिर वहां जटावाले व सुन्दररूपवाले व दण्डके धारण करनेवाले व कमण्डलुके धरनेवाले व शान्त व मेखलाको करिहॉव में पहने हुये व कन्धे में जनेऊ पहनेहुये व विष्णुकी मायासे रहित बालक को ॥ ५४ । ५५ ॥ व उसकी चपलताको देख माता बडी शङ्कितहुई और कांपती हुई वह स्त्री मुनिकी शरणको प्राप्तहुई ॥ ५६ ॥ और बोली कि हे मुनिश्रेष्ठ, महामुने, पराशर ! कौपीन व मेखला को पहने हुये व दण्डको हाथमें लिये व जटाओंसे युक्त

व अँचला से भूषित उत्पन्नहुये अतिअद्भुत इस ब्राह्मणकी रक्षाकरो २ तब पराशर बोले कि तुम डरो मत यह तुम्हारा पुत्र हुआ है तुम कन्याही बनी रहोगी ॥ ५७ । ५८ ॥ सत्यवती तुम्हारा नाम होगा और दूसरा गन्धयोजनाभी होगा और शन्तनु नाम का राजा तुम्हारा पति होगा ॥ ५९ ॥ तुम उसकी जेठीरानी चन्द्र-वंश का भूषण होवोगी इससे हे भद्रे ! अपने पहलेवाले रूप से युक्त तुम अपने आश्रमको जावो ॥ ६० ॥ तुम इस विकलताको मतप्राप्त होवो मैने सब देख लिया है मुझको ज्ञानका बलहै यह कहकर पराशर चलेगये वह स्त्री जलके बाहर आतीहुई ॥ ६१ ॥ नम्रता व बड़ी भक्तिसे अपने पुत्रको साष्टाङ्ग प्रणामकर फिर जातेहुये

विभूषितम् ॥ पराशरउवाच॥ माभैषीस्त्वंसुतोजातः कन्यैवत्वंभविष्यसि ॥ ५८ ॥ नाम्नासत्यवतीचेति द्वितीयागन्धयोजना ॥ शन्तनुर्नामराजावै सतेभर्ताभविष्यति ॥ ५९ ॥ प्रथमामहिषीतस्य सोमवंशविभूषणा ॥ गच्छत्वंस्वाश्रमंभद्रे पूर्वरूपेणसंस्थिता ॥ ६० ॥ मावैकल्यंकुरुष्वेदं दृष्टंज्ञानस्यमेबलम् ॥ इत्युक्त्वाप्रययौविप्रः साबालास्थलमाश्रिता ॥ ६१ ॥ नत्वापुत्रंपराभक्त्या साष्टाङ्गंप्रणयेनच ॥ तम्प्रयान्तमथालोक्य सत्यवत्यब्रवीत्सुतम् ॥ ६२ ॥ कामोदेयस्त्वयाभीष्टस्स्नेहोवैयदिमातरि ॥ किमप्युपादिशत्वंमां येनसिद्धिमवाप्नुयाम् ॥ ६३ ॥ व्यासउवाच ॥ ईश्वराराधनेयत्नं कुरुष्वत्वंसदाम्बिके ॥ ततस्सापुत्रवाक्येन विमनापाण्डुनन्दन ॥ ६४ ॥ योजनगन्धोवाच ॥ त्वद्वियोगादहंपुत्र पञ्चत्वंयामिनान्यथा ॥ नास्तिपुत्रसमःस्नेहो नास्तिभ्रातृसमंबलम् ॥ ६५ ॥ पुत्रउवाच ॥ माविषादंकुरुत्वंहि सत्यंवैपितृभाषितम् ॥ आपत्कालेत्वयाहंवैस्मर्तव्यःकार्यसिद्धये ॥ ६६ ॥ आपदस्तारयिष्यामि क्षम्यतांमातरात्मजे ॥ इत्युक्त्वातु

अपने पुत्रको देख सत्यवती पुत्र से बोली ॥ ६२ ॥ कि जो तुम्हारा अपनी माता में स्नेहहो तो मेरे मनका मनोरथ देनेयोग्य है कुछ मुझको बतावो जिससे मैं सिद्धि को पाऊं ॥६३ ॥ तब व्यासजी बोले कि हे अम्बिके ! ईश्वर के आराधन मे तुम हमेशा यत्नकरो हे पाण्डुनन्दन ! तब वह पुत्रके वचनसे बडी उदास होगई ॥ ६४ ॥ और फिर योजनगन्धा बोली कि हे पुत्र ! तुम्हारे वियोगसे मैं मरजाऊंगी यह झूंठ नहीं है क्योंकि पुत्र के बराबर किसी में स्नेह नहीं होता है और भाई के बराबर कोई बल नहीं है ॥ ६५ ॥ तब पुत्र बोला कि तुम विषाद को मतकरो पिताजी का कहना सब सत्य होवेगा और विपत्ति के समय में अपने कार्यकी सिद्धिके लिये

तुम मेरा स्मरण करना ॥ ६६ ॥ मैं विपत्ति से तुमको पार करदेऊंगा हे मातः ! मुझ अपने पुत्रपर क्षमा करना इतना कहकर व्यास चलेगये और वह कन्याभी अपने पिता के घरको चलीगई ॥ ६७ ॥ पराशर के पुत्र व्यासजी वन में बैठते हुये तब त्रेताकी समाप्ति और द्वापर की आदि मे हे नरेश्वर ! ॥ ६८ ॥ नारदने ब्रह्मा से कहा कि पराशर के पुत्र बडे प्रभाववाले व्यासऋषि पैदाहुये ॥ ६९ ॥ केवटकी कन्या से गङ्गाके किनारे पर उत्पन्न हुये है यह आप जानें तब नारदके कहने से देवता लोग आतेहुये ॥ ७० ॥ सूर्य, ब्रह्मा और इन्द्र ऋषियों के साहित आशीर्वाद को देकर वाह २ ऐसे कहतेहुये ॥ ७१ ॥ फिर बालकरूप जो व्यास है उनके ब्रह्मा ने गर्भा-

ययौव्यासः कन्यासापिपितुर्गृहम् ॥ ६७ ॥ पराशरसुतस्तत्र निषण्णोवनमध्यतः ॥ त्रेतायुगावसानेतु द्वापरादौनरेश्वर ॥ ६८ ॥ व्यासोविरञ्चयेजात आख्यातोनारदेनच ॥ ऋषिर्महानुभावस्तु पुत्रःपाराशरस्यच ॥ ६९ ॥ कैवर्तकन्यकाजातो जानीहिजाह्नवीतटे ॥ वाक्योक्त्यानारदस्यैव आगतास्सुरसत्तमाः ॥ ७० ॥ भानुःपितामहःशक्रऋषिसङ्घैस्समावृतः ॥ आशीर्वादंपृथग्दत्त्वा साधुसाध्विविभाषितः ॥ ७१ ॥ पितामहेनबालोसौ गर्भाधानादिसंस्कृतः ॥ द्वैपायनोद्वीपजन्मा पाराशर्य्यःपराशरात् ॥ ७२ ॥ कृष्णगात्रात्कृष्णनामा हव्यादातुर्विशिष्यति ॥ विरिञ्चिनाभिषिक्तोसौ ऋषिसङ्घैःपुनःपुनः ॥ ७३ ॥ व्यासस्त्वंसर्वलोकानामित्युक्त्वाप्रययुःपुनः ॥ तीर्थयात्रासमारब्धा कृष्णद्वैपायनेनतु ॥ ७४ ॥ गङ्गावगाहितातेन केदारंपुष्करन्तथा ॥ गयाचनैमिषंतीर्थं कुरुक्षेत्रेसरस्वती ॥ ७५ ॥ उज्जयिन्यांमहाकालं सोमनाथंययौततः ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां स्नातोव्यासोमहामुनिः ॥ ७६ ॥ अटन्वैनर्म्मदांप्राप्तो

धान आदि संस्कार किये रेती में पैदा होने से द्वैपायन व पराशर से पैदा होने से पाराशर्य्य ॥ ७२ ॥ व काली देहवाले होने से कृष्ण नामवाले व्यास हुये और अग्निसे भी विशेष तेजवाले हुये ब्रह्मा और ऋषियों के समूहमे बार२इनका अभिषेक किया गया ॥ ७३ ॥ और तुम सब लोगोंके व्यास हो ऐसे कहकर सबलोग चले गये तब व्यासजी ने फिर तीर्थयात्राका प्रारम्भ किया ॥ ७४ ॥ व्यासने प्रथम गङ्गा स्नान किया फिर केदार, पुष्कर, गया, नैमिष, कुरुक्षेत्र मे सरस्वती ॥ ७५ ॥ और उज्जैन में महाकाल होकर फिर सोमनाथ को गये समुद्रपर्य्यन्त पृथिवी के तीर्थों में महामुनि व्यास नहाते हुये ॥ ७६ ॥ फिर घूमते हुये महादेव की देहसे पैदाहुई

नर्मदा नदी को प्राप्त होते हुये हे पार्थिव ! नर्मदा को देख आनन्द से अपने चित्त को विश्राम देकर ॥ ७७ ॥ व नर्मदाके तटपर बैठकर बड़े तपको करते हुये ग्रीष्म मे पञ्चाग्नि के बीच में और वर्षा में बाहर चौतरेपर बैठते हुये ॥ ७८ ॥ भीगे वस्त्रों को पहनेहुये हेमन्तऋतु में संसारकी रचना व संहारके करनेवाले व नाशरहित सदाशिव का ध्यान कररहे ॥ ७९ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! हमेशा सिद्धेश्वर लिङ्ग का पूजन करते हुये तब सिद्धलिङ्ग के पूजन व ध्यानयोगके प्रभाव से ॥ ८० ॥ व्यास के प्रत्यक्ष महादेवजी होतेहुये और कहा कि हे विप्र ! तुम ने हमको प्रसन्न किया है इस से अच्छे वरको मांग लेवो ॥ ८१ ॥ तब व्यास बोले कि हे देव ! जो मुझसे

रुद्रदेहोद्भवांनदीम् ॥ साह्लादंनर्म्मदांदृष्ट्वा चित्तंविश्राम्यपार्थिव ॥ ७७ ॥ तपश्चचारविपुलं नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासुस्थण्डिलेशयः ॥ ७८ ॥ सार्द्रवासास्तुहेमन्ते ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ सृष्टिसंहारकर्तारमच्छेद्यंचसदाशिवम् ॥ ७९ ॥ नित्यंसिद्धेश्वरंलिङ्गं पूजयन्पाण्डुनन्दन ॥ अर्चनात्सिद्धलिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभावतः ॥ ८० ॥ प्रत्यक्षईश्वरोजातः कृष्णद्वैपायनस्यतु ॥ तोषितोहंत्वयाविप्र वरंप्रार्थयशोभनम् ॥ ८१ ॥ व्यासउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ प्रत्यक्षोनर्म्मदातीरेस्वयंमेद्यभविष्यति ॥ ८२ ॥ अतीतानागतज्ञानं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंभवतुतेविप्र मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ ८३ ॥ त्वयाभक्तिगृहीतोहं प्रत्यक्षोनर्म्मदातटे ॥ इत्युक्त्वाप्रययौदेवः कैलासंनगमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ पत्नीसंग्रहणंजातं पुत्रोजातोयदास्यच ॥ देवैरध्यासितस्सर्वैस्सेन्द्रब्रह्मपुरोगमैः ॥ ८५ ॥ पुत्रजन्मततोज्ञात्वा आगताऋषिसत्तमाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥ ८६ ॥ मन्वत्रि

आप प्रसन्नहो और जो मुझे आपको वरदेनाहै और जो आज नर्मदाके तीर आप खुद मेरे प्रत्यक्ष हुये हो ॥ ८२ ॥ तो हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से मुझको भूत और भविष्यका ज्ञान होजावे तब महादेव बोले कि हे विप्र ! मेरे प्रसाद से तुम्हारे सब ऐसाही होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ तुम्हारी भक्तिमे पकडे हुय हम नर्मदा के तटमें प्रत्यक्षहुये इतना कह महादेव उत्तम कैलास पर्वत को चलेगये ॥ ८४ ॥ फिर जब व्यास के स्त्री का संग्रह व पुत्र भी हुआ तब इन्द्र और ब्रह्मा आदि सब देवताओं से फिरभी युक्त हुये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर व्यास के पुत्र के जन्मको जान तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से पराशर आदि ऋषिश्रेष्ठ आतेहुये ॥ ८६ ॥ मनु, अत्रि

विष्णु,हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम,आपस्तम्ब,संवर्त, कात्यायन और बृहस्पति ॥ ८७ ॥ आदि सब हजारों लाखों करोड़ों ब्राह्मण पुण्यवाले व्यासके सुन्दर आश्रममें प्राप्तहुये ॥ ८८ ॥ व्यासजी उन ब्राह्मणोंको देख उठे और पितापूर्वक सबको प्रणाम कर फिर उनसे बात करतेहुये ॥ ८९ ॥ हाथ जोड़ इस वचनको बोले कि आप से बोल चाल व दर्शन से मेरा आनन्द उमड़ आया ॥ ९० ॥ अब जङ्गली शाक व फलों को मैं पितापूर्वक आप सबलोगों को देताहूं ॥ ९१ ॥ इतना कह नियमों से युक्त उन सब हरएक ब्राह्मणोंको प्रणाम करतेहुये तदनन्तर वहां प्रणाम करचुके व्यास ब्राह्मणको देख ॥ ९२ ॥ जय और आशीर्वादसे बढ़ाकर फिर आपस

विष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥ यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ८७ ॥ एवमादिसहस्राणि लक्षकोटिरनेकधा ॥ व्यासाश्रमेशुभेपुण्ये प्राप्तास्सर्वेद्विजोत्तमाः ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वाव्यासस्तुविप्रेन्द्रानभ्युत्थायकृतोद्यमः ॥ पितृपूर्वंप्रणम्यादौ तेषांवार्ताप्रदापयन् ॥ ८९ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा इदंवाक्यमुवाचह ॥ उद्धृतन्तुममानन्दं युष्मत्सम्भाषदर्शनात ॥ ९० ॥ आरण्यानिचशाकानि फलान्यारण्यकानिच ॥ तानिदास्यामिसर्वेषां युष्माकंपितृपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ नियमैस्संयुतान्सर्वान्प्रत्येकंप्रणनामच ॥ ततस्तंप्रणतंदृष्ट्वा तत्रद्वैपायनंद्विजम् ॥ ९२ ॥ वर्द्धयित्वाजयाशीर्भिस्ततोवीक्ष्यपरस्परम् ॥ पराशरस्समस्तैश्च वीक्षितोमुनिपुङ्गवैः ॥ ९३ ॥ उत्तरन्दीयतांतात कृष्णद्वैपायनस्यच ॥ एवमुक्तस्तुतैस्सर्वैर्भगवांश्चपराशरः ॥ ९४ ॥ उवाचस्वात्मजंव्यासमृषिभिर्यच्चिकीर्षितम् ॥ नेच्छन्तिदक्षिणेकूले व्रतभङ्गभयात्सुत ॥ ९५ ॥ परंवैभोक्तुकामाश्च तवश्रद्धाविशेषतः ॥ व्यासउवाच ॥ करोमिभवतांयुक्तमत्रैवस्थीयतां

में देख सब मुनिश्रेष्ठों ने पराशर को देखा ॥ ९३ ॥ और कहा कि हे तात ! आप व्यासको उत्तर देवें उन सबों से ऐसे कहेगये भगवान् पराशर ॥ ९४ ॥ अपने पुत्र व्यास से ऋषियों के मनकी वार्ता को कहा कि हे सुत ! अपने व्रतभङ्ग होजाने के कारण ये लोग दक्षिण दिशावाले तटपर तुम्हारे सत्कार की इच्छा नहीं करतेहैं ॥ ९५ ॥ परन्तु तुम्हारी विशेष श्रद्धा के कारणसे खानेकी इच्छा इनको जरूर है तब व्यास बोले कि आपलोग थोडी देर यहीं ठहरें हम आपके उचित कामको करते

हैं ॥ ९६ ॥ नदी के समीप जाकर जब तक हम विधिपूर्वक सब काम को ठीककरें ऐसे कह व पवित्र होकर नर्मदाके तटपर बैठे ॥ ९७ ॥ और सहसा स्तोत्रको पढ़ते हुये हे जनेश्वर ! आप उसको सुनो ॥ ९८ ॥ व्यास बोले कि हे वर व कल्याण की देनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जयहो हे त्रिशूल को हाथमे लिये, पापोंकी नाश करने वाली ! तुम्हारी जयहो हे भैरवकी देहको अपने में लीन करनेवाली, ब्रह्मा से नमस्कार कीगई, हे देवि ! जयहो ॥ ९९ ॥ हे सूर्य और इन्द्र से सदा नमस्कार कीगई, स्वामिकार्त्तिकेय के पिता महादेवकी कन्या, हे वरकी देनेवाली ! तुम्हारी जयहो हे देवताओं के शरीरों का समूहरूपवाली ! तुम्हारी जयहो और हे समुद्र में जाने-

क्षणम् ॥ ९६ ॥ यावदासाद्यसरितं करोमिविधिपूर्वकम् ॥ एवमुक्त्वाशुचिर्भूत्वा नर्म्मदातटमाश्रितः ॥ ९७ ॥ स्तोत्रं जगादसहसा तन्निबोधजनेश्वर ॥ ९८ ॥ व्यासउवाच ॥ जयदेविनमोवरदेशिवदे जयपापविमर्द्दिनिशूलकरे ॥ जयभैरवदेहविलीनकरे जयदेविपितामहसन्नमिते ॥ ९९ ॥ जयभास्करशक्रपदानमिते जयषण्मुखतातसुतेवरदे ॥ जयदेवशरीरसमूहमये जयसागरगामिनिभूमिसुते ॥ १०० ॥ जयलोकसमस्तकृताभरणे जयदुःखदरिद्रविनाशकरे ॥ जयपुत्रकलत्रविवृद्धिकरे जयदेविसुदर्शनपापहरे ॥ १ ॥ एतद्व्यासकृतंस्तोत्रं यःपठेच्छिवसन्निधौ ॥ गृहेवाशुद्धभावेन कामक्रोधविवर्ज्जितः ॥ व्यासस्तस्यभवेत्प्रीतः प्रीतोयंवृषवाहनः ॥ २ ॥ स्तुताचनर्म्मदादेवी ततोवचनमब्रवीत् ॥ नर्म्मदोवाच ॥ स्तुतिवादेनतुष्टास्मि भोभोव्यासमहामुने ॥ ३ ॥ यमिच्छसिवरंसम्यक् तन्तेसर्वंददाम्यहम् ॥ व्यासउवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि यदिदेयोवरोमम ॥ ४ ॥ आतिथ्यमुत्तरेकूले ममदातुंत्वमर्हसि ॥ नर्म्मदोवाच ॥ अयुक्तंचिन्ति

वाली ! हे भूमिसुते ! तुम्हारी जयहो ॥ १०० ॥ हे सब लोकोंकी शोभा करनेवाली व दुःख और दरिद्रको विनाश करनेवाली ! तुम्हारी जयहो हे स्त्री और पुत्रोंकी बढ़ाने वाली व शुभ दर्शन से पापोंकी हरनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जयहो ॥ १ ॥ व्यास के कियेहुये इस स्तोत्र को जो महादेवके समीप पढ़ताहै व अपने घरमे काम क्रोध से रहित होकर सच्चेभाव से पढ़ताहै उससे व्यास व महादेव दोनों प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ तदनन्तर स्तुति कीगई नर्मदा देवी वचन बोली नर्मदा ने कहा कि हे महामुने ! हे व्यास ! आप के स्तुति करने से हम प्रसन्न हैं ॥ ३ ॥ जिस अच्छे वर को तुम चाहते हो वह सब हम तुम्हें देंगी तब व्यास बोले कि हे देवि ! जो मुझसे

प्रसन्नहो और जो मुझे तुमको वरदेनाहै ॥४॥ तो अपने उत्तरवाले किनारेपर मेरा अतिथि सत्कार करो तब नर्मदा बोलीं कि हे व्यास! तुमने अनुचित कामको विचारा है और उलटे मार्ग में तुम प्रवृत्त होतेहो ॥ ५ ॥ क्योंकि इन्द्र, चन्द्र और यमराज भी उलटे रास्ते से बहाने को समर्थ नहीं होसक्ते है इस से हे वत्स (प्यारे) ! और जो कुछ इस पृथिवी में दुर्लभ हो उसे मांगो ॥ ६ ॥ तब देवी के ऐसे वचन को सुनकर व्यास मूर्च्छा को प्राप्त होगये क्योंकि उनको वृथा क्लेश हुआ इससे पृथिवी पर गिरपड़े ॥ ७ ॥ तब पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी कांपती हुई और मूर्च्छा को प्राप्त हुये पराशर के पुत्र व्यास को जान सब देवता ॥ ८ ॥

तंव्यास अमार्गेत्वंप्रवर्तसे ॥ ५ ॥ इन्द्रचन्द्रयमाःशक्ता उन्मार्गेणनवाहितुम् ॥ अन्यंयाचस्वहेवत्स यत्किञ्चिद्भुविदुर्लभम् ॥ ६ ॥ एवंश्रुत्वावचोदेव्या व्यासोमूर्च्छाङ्गतस्तदा ॥ वृथाक्लेशश्चसञ्जातः पतितोधरणीतले ॥७॥ धरणीकम्पितासर्वा सशैलवनकानना ॥ मूर्च्छापन्नंततोव्यासं ज्ञात्वादेवाःपराशरम् ॥ ८ ॥ आयातादेवतास्सर्वे हाहाकारंप्रकुर्वतः॥ उत्थापयन्तस्तेव्यासमूचुश्चसरितांवराम् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणार्थन्तुसंक्लिष्टा नामहेतोस्सरिद्वरे ॥ गवार्थेब्राह्मणार्थेच सद्यःप्राणान्परित्यजेत् ॥ १० ॥ एवंसानर्म्मदाप्रोक्ता ब्रह्माद्यैश्चसुरैर्द्रुतम् ॥ विकूलतांवैप्रददौसमन्ताद्देवाभिषिक्तस्सजलेनपूतः ॥ ११ ॥ सचेतनस्सत्यवतीसुतोयं ननामदेवैस्सहनर्म्मदान्तैः ॥ व्यासउवाच ॥ तीर्थंसमस्तंत्वयिदेवतानां फलंप्रदिष्टंममभन्दभाग्यम् ॥ १२ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ यतोयतोव्यासमहानुभावसुमेरुनाम्नोधरणीधरस्य ॥ विन्ध्यस्य

आतेहुये हाहाकार को करते व व्यासको उठारहे वे सब देवता नदियों मे श्रेष्ठ नर्मदा से बोले ॥ ९ ॥ कि हे सरिद्वरे ! नाम के वास्ते ब्राह्मण के लिये बहुतों ने क्लेश को उठायाहै क्योंकि कहाभी है कि गऊ और ब्राह्मणके वास्ते तुरन्त प्राणोंको छोड़देवे ॥ १० ॥ ब्रह्मा आदि देवताओं से ऐसे कहीगई नर्मदा शीघ्रही सब तरफ किनारों से रहित अर्थात् बराबर होगई तब नर्मदा से अभिषेक को प्राप्त व जल से पवित्र ॥ ११ ॥ व होश के सहित व्यास उन सब देवताओं के सहित नर्मदा को नमस्कार करते हुये और व्यास बोले कि सब तीर्थ आपही में हैं देवताओ को आपने फल दिया मेरा भाग्य बडा मन्दहै ॥ १२ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे महाऽनुभाव ! हे

व्यास ! धर्म के धारण करनेवाले आपकी सुमेरु व विन्ध्याचल व अन्य पर्वत के समीप हो जिधर से रास्ताहो हम उसी रास्ते से जावेंगी और इसी से हम धन्यभी होवेंगी ॥ १३ ॥ ऐसे कहेगये बडे तेजवाले सत्यवती के पुत्र व्यास अपने आश्रम से दक्षिण की तरफ मुनिश्रेष्ठों को चलाते हुये ॥ १४ ॥ हे नृपनन्दन ! दण्ड को हाथ में लिये बड़े तेजवाले व्यास हुङ्कारों से नर्मदाको चलाया व्यासकी हुङ्कार से डरीहुई नर्मदा चलती हुई ॥ १५ ॥ व्यासजी दण्ड से रास्ते को दिखाते हैं नर्मदा उसी रास्ते से चली जाती हैं व्यासकी रास्ते में प्राप्त होरहीं नर्मदाको देख इन्द्र आदि सब देवता ॥ १६ ॥ व्यासके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुये और किन्नर लोग

चान्यस्यचतेहि मार्गैयास्यामिवैधर्मधरस्यधन्या ॥ १३ ॥ एवमुक्तोमहातेजा व्यासस्सत्यवतीसुतः ॥ दक्षिणेचालयामास स्वाश्रमान्मुनिपुङ्गवान् ॥ १४ ॥ दण्डहस्तोमहातेजाहुङ्कारैर्नृपनन्दन ॥ व्यासहुङ्कारभीताच चलितारुद्रनन्दिनी ॥ १५ ॥ दण्डेनदर्शयन्मार्गं देवीतत्रप्रवर्तिता ॥ व्यासमार्गगतान्देवीं दृष्ट्वाचेन्द्रपुरोगमाः ॥ १६ ॥ पुष्पवृष्टिंदहुञ्जिताः ॥ व्यासे स्तुतिंकुर्वन्तिकिन्नराः ॥ प्रफुल्लनयनाजाताः पराशरमुखाद्विजाः ॥ १७ ॥ किंकुर्म्मोत्रमहिम्नाते कर्म्मणातवर ॥ व्यासउवाच ॥ तपःकृत्वासुविपुलंदानंदत्त्वामहत्फलम् ॥ १८ ॥ एतदेवनरैःकार्य्यं साधूनांपरितोषणम् ॥ सुविभक्तामहाभागा अनुग्राह्यस्यसम्प्रति ॥ १९ ॥ तस्मान्ममाश्रमेपुण्ये स्थीयतांनात्रसंशयः ॥ आतिथ्यंशाकपर्णैश्च उदकेनविमिश्रितैः ॥ २० ॥ प्रतिपन्नंसमस्तैश्च पराशरमुखैर्द्विजैः ॥ अयध्वमाश्रमंपुण्यं नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ २१ ॥

स्तुति करते हैं पराशर आदि ब्राह्मण प्रसन्न नेत्रोंवाले होगये ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि यहां तुम्हारी महिमा व तुम्हारे कर्म से राजीहुये हमलोग तुम्हारा क्या काम करें तब व्यास बोले कि बडे तपको कर व बडे फलवाले दान को देकर ॥ १८ ॥ मनुष्यों को यही करना चाहिये कि जिससे साधुवों का परितोष होवे इस से इस समय बडे भाग्यवाले आप लोग अलग २ अनुग्रह करने योग्य जो हम हैं ऐसे मेरे पुण्यवाले आश्रम में निस्सन्देह स्थित होवो हम जल सहित शाक व पत्तियों से आपका अतिथि सत्कार करेंगे ॥ १९ । २० ॥ इस से पराशर आदि सब ब्राह्मणों को उचित है कि नर्मदा के उत्तरवाले तटपर पुण्यवाले हमारे आश्रम के आश्रित

होवें ॥ २१ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि तब ब्राह्मणों ने स्नान और तर्पण आदि कर्मों को किया तदनन्तर व्यासकुण्ड में जाकर अच्छे प्रकार से होम करतेहुये ॥ २२ ॥ ध्यानसे युक्त बेल और बेलपत्रों से हवन करतहुये गौतम, भृगु, माण्डव्य, नारद, लोमश, ॥ २३ ॥ पराशर, शङ्ख, कौशिक, च्यवनमुनि, पिप्पलाद, वशिष्ठ, बड़े तपस्वी नाशिकेतु, ॥ २४ ॥ विश्वामित्र, अगस्त्य, उद्दालक, यम, शाण्डिल्य, जैमिनि, काव्य, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, ॥ २५ ॥ अत्रि, शातातप, भरत, मुद्गल, बड़े तेजस्वी वात्स्यायन, संवर्त, शक्ति ॥ २६ ॥ जातूकर्ण, भरद्वाज और बालखिल्य आदि ब्राह्मण एकाग्रमन होकर हे राजन्! मन्त्र और तन्त्र को करते

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्नानतर्प्पणकृत्यानि कृतानिचद्विजोत्तमैः ॥ व्यासकुण्डंततोगत्वा होमंसम्यगकारयन् ॥ २२ ॥ श्रीफलैर्बिल्वपत्रैश्च ध्यानयुक्ताश्चजुह्वति ॥ गौतमोभृगुमाण्डव्यौ नारदोलोमशस्तथा ॥ २३ ॥ पराशरस्तथाशङ्खः कौशिकश्च्यवनोमुनिः ॥ पिप्पलादोवशिष्ठश्च नाशिकेतुर्महातपाः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रोह्यगस्त्यश्च उद्दालकयमौतथा ॥ शाण्डिल्योजैमिनिःकाव्यो याज्ञवल्क्योशनाङ्गिराः ॥ २५ ॥ अत्रिःशातातपश्चैव भरतोमुद्गलस्तथा ॥ वात्स्यायनोमहातेजास्संवर्तःशक्तिरेवच ॥ २६ ॥ जातूकर्णोभरद्वाजो बालखिल्यादयस्तथा ॥ एकचित्ताद्विजा राजन्मन्त्रतन्त्रंप्रकुर्वतः ॥ २७ ॥ ततःसमुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ साष्टाङ्गंप्रणतोव्यासो देवंदृष्ट्वात्रिलोचनम् ॥ २८ ॥ आशीर्वादंपुनर्विप्रा दत्त्वाव्यासंतदाययुः ॥ ततःप्रभृतितत्त्वज्ञ तीर्थंख्यातन्तुपाण्डव ॥ २९ ॥ स्नानदानविधानञ्च यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम् ॥ कथयामिसमस्तन्तेभ्रातॄणाञ्चैवपाण्डव ॥ ३० ॥ कार्त्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यां नृपोत्तम ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ३१ ॥ स्नापयेदीश्वरंभक्त्या क्षौद्रेणक्षीरसर्पिषा ॥ ३२ ॥ दध्नाच

हुये ॥ २७ ॥ तदनन्तर जलतेहुये प्रलय के अग्निके समान लिङ्ग उठता हुआ त्रिनेत्र महादेवजी को देख व्यासजी साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये ॥ २८ ॥ फिर ब्राह्मणलोग व्यासको आशीर्वाद देकर चलेगये हे तत्त्वज्ञ, पाण्डव ! तब से यह व्यासतीर्थ प्रसिद्ध होता हुआ ॥ २९ ॥ अब हे पाण्डव ! जिस समय में स्नान व दानका विधान प्रतिष्ठित है वह सब हम आप व आप के भाइयों से कहते हैं ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम ! कार्त्तिकके अँधियारे पाखकी चौदस को उपासा रहकर जो मनुष्य भक्ति से

रातमें जागरण करे ॥३१॥ और भक्ति से शहद,दूध,घी,दही, शक्कर और कुशों के जल से महादेवको नहवावे और सुगन्धित चन्दन से महादेव का पूजन करे ॥ ३२ ।
३३ ॥ तदनन्तर सुगन्धित फूल व बेलपत्रों से पूजे कोका ,कुन्द, कुश, फूल, अक्षत आदि ॥ ३४ ॥ धतूरे के फूल, रस और अत्युत्तम जङ्गली फूलों व बड़ी भक्ति से
अत्युत्तम द्वीपेश्वर का पूजन करे ॥ ३५ ॥ और मदार आदि के फूलों से परमेश्वर को पूजे गुड और मॉड़ के देने से दिन भरका कमाया हुआ पाप ॥ ३६ ॥ उससे सौ
गुने दानसे महीने भरका, हजारगुने से छहमहीने का,दो हजार गुने से साल भरका पाप नाश होताहै ॥ ३७ ॥ दशहजार गुने से जन्म भरका पाप नष्ट होजाता है हे

खण्डयुक्तेन कुशतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन पूजयेतमहेश्वरम् ॥ ३२ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च बिल्वपत्रैश्चपूज
येत्॥ कुमुदेनचकुन्देन कुशपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ३४॥ उन्मत्तपुष्पैश्चरसैस्सौम्यैश्चैवाप्यनुत्तमैः॥ अर्चयेत्परयाभक्त्या
द्वीपेश्वरमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ मन्दारादिकपुष्पैश्चपूजयेत्परमेश्वरम्॥ गुडमण्डप्रदानेन पातकंदिवसार्जितम् ॥ ३६॥ मा
सार्जितंचनश्येत गुडमण्डशतेनच ॥षण्मासंचसहस्रेण अर्कोब्दंद्विगुणेनतु ॥ ३७ ॥ आजन्मजनितंपापमयुतेनप्रण
श्यति ॥ पौर्णमास्यांनृपश्रेष्ठ स्नानंकुर्वीतभक्तितः ॥ ३८ ॥मन्त्रोक्तेनविधानेन कृत्वापापक्षयङ्करम् ॥ वारुणंचतथाज्ञेयं
सर्वपापक्षयंकरम् ॥३९॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च विधिवत्तर्प्पयेन्नृप ॥ ऋचमेकांजपेत्स्नातः सामवेदफलंलभेत् ॥४०॥
यजुर्वेदमथर्वाणंगायत्र्यासर्वमाप्नुयात्॥जपेदष्टाक्षरंमन्त्रंसौरंवाशैवमेवच ॥४१॥ अथवावैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरमेव
च ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ४२ ॥ स्वधर्म्मनिरतान्विप्रान्दम्भलोभविवर्जितान् ॥ हीनाङ्गा

नृपश्रेष्ठ ! पूर्णमासी को भक्तिसे स्नानकरे ॥ ३८ ॥ वेदमें कहेहुये विधान से किया गया स्नान पापों का क्षय करनेवाला होताहै इसी प्रकार सब पापोंका क्षय करने
वाला वारुण स्नान भी जानना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे नृप ! देवता, पितर और मनुष्यों का विधि से तर्पण करे और नहाकर एक मन्त्रको जपे तो सामवेद के फल को
पाता है ॥ ४० ॥ और गायत्री से यजुर्वेद और अथर्ववेद के सम्पूर्ण फलको पाता है अष्टाक्षर व सौर व शैव ॥ ४१ ॥ व वैष्णव द्वादशाक्षर मन्त्रको जपे और सब
लक्षणों से युक्त ब्राह्मणों का भक्ति से पूजन करे ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण कैसे होवें कि अपने धर्ममें रतहों, दम्भ व लोभसे रहितहों, अङ्गहीन व अधिक अङ्गवाले न हों और जो

पतितहों व शूद्रों के सेवकहों ॥ ४३ ॥ व शूद्रोंके अन्न से युक्तहों व जिसके मकानमें वृषली (शूद्री) रहती हो व उढरीसे पैदाहों व दुष्टहों व गुरुकी निन्दाके करने वाले हों ॥४४॥ व वेदके पढ़ने से रहितहो व तर्क के करनेवाले हों व कौवों कीसी वृत्तिवाले हों ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध,दान और व्रतमें वर्जित रक्खे ॥ ४५ ॥ गायत्रीमात्र के पढ़ने से पढ़ा हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठहै और जो सर्वभक्षी व सब चीजों का बेंचनेवाला हो तो चारोंवेदों का पढ़नेवाला भी हो परन्तु वह नहीं श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध, व्रत और सोने के दानमें छोड़ेरहे व जूता, कपडा, पलँग, छाता और आसन को ॥ ४७ ॥ जो भक्ति से ब्राह्मणको देताहै वहभी स्वर्ग में पूजित होता

नधिकाङ्गाश्चपतिताञ्छूद्रसेवितान् ॥ ४३ ॥ शूद्रान्नेनचसंयुक्ता वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ पौनर्भवास्तथादुष्टा गुरुनिन्दापरायणाः ॥ ४४ ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च हेतुकाःकाकवृत्तयः ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दानेचैवव्रतेतथा ॥ ४५ ॥ गायत्रीपाठमात्रेण वरंविप्रस्सुपण्डितः ॥ नायंभृतचतुर्वेद्यः सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ४६ ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे व्रतेदानेहिरण्मये ॥ उपानहौचवस्त्रंच शय्यांवाछत्रमासनम् ॥ ४७ ॥ योदद्याद्ब्राह्मणेभक्त्या सोपिस्वर्गेमहीयते ॥ प्रत्यक्षासुरभीतत्र तिलधेनुस्तथामता ॥ ४८ ॥ तिलधेनुप्रदातारः स्वस्वदातारएवच ॥ कृष्णाजिनप्रदातारो दातारःकुञ्जरस्यच ॥ ४९ ॥ कन्याविद्याप्रदातारोऽक्षयंलोकमवाप्नुयुः ॥ धूर्वहौदक्षिणायुक्तौ धान्योपस्करसंयुतौ ॥ ५० ॥ दापयेत्सर्वकामाय इतिमेसत्यभाषितम् ॥ सूत्रेणवेष्टयेदीशमथवाजगतीरुहम् ॥ ५१ ॥ मन्दिरंपरयाभक्त्या अथवापरमेश्वरम् ॥ अथप्रदक्षिणाकार्य्या विनाशूद्रेणमानवैः ॥ ५२ ॥ जम्बूप्लक्षाह्वयौद्वीपौ शाल्मलिश्चभवेन्नृप ॥ कुशःक्रौञ्चस्त

है वहां प्रत्यक्ष गऊ व तिलधेनु देनेको उचितहै ॥ ४८ ॥ तिलधेनु के देनेवाले, अपने धनके देनेवाले, मृगचर्म के देनेवाले, हाथी के देनेवाले, ॥ ४९ ॥ कन्या और विद्याके देनेवाले अक्षयलोकको प्राप्त होते हैं अन्न व और सामान व दक्षिणासे युक्त बैलों को ॥ ५० ॥ सब कामनाओंके वास्ते देवे यह हमारा कहना सत्य है सूतसे महादेव व वृक्ष ॥५१॥ व मन्दिर व परमेश्वर को बड़ी भक्तिसे लपेटे तदनन्तर शूद्र को छोड़ और मनुष्यों को प्रदक्षिणा करना चाहिये ॥ ५२ ॥ जो ऐसा काम करता

है उसने मानो जम्बू, लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्करद्वीप व सातो समुद्रपर्यन्त पृथिवी को लपेटलिया हे भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर में जितेन्द्रिय मनुष्यों को वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥ ५३ । ५४ ॥ क्योंकि बैल के छोड़नेही से ईश्वरके लोकको पाताहै जिसका मुख, माथा, पांव सफेदहो ॥ ५५ ॥ व पूंछ और थूथुन सफेद होवें वह बैल स्वर्गका दिखानेवाला होताहै ऐसाही बैल नील कहा गयाहै उसको शुभस्वरूप द्वीपेश्वर में देवे ॥ ५६ ॥ हे पार्थिव ! इसके देनेवाले अनगिन्ती भी नीच लोग स्वर्ग को जाते हैं अथवा सूर्य व चण्डेश्वर व विष्णुके लोक को जाते हैं ॥ ५७ ॥ व्यासतीर्थ के प्रभावसे वह अपनी इच्छासे इन लोको

थाशाकः पुष्करश्चेतिसप्तमः ॥ ५३ ॥ सप्तसागरपर्य्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्वरेतुराजेन्द्र वृषोत्सर्गोजितेन्द्रियैः ॥ ५४ ॥ वृषस्यमोचणेनैव ऐश्वरंलोकमाप्नुयात ॥ यस्तुवैपाण्डुरोवक्रे ललाटेचरणेतथा ॥ ५५ ॥ लाङ्गूलेचमुखे शुभ्रस्सवैनाकस्यदर्शनः ॥ नीलोयमीदृशःप्रोक्तो दद्याद्वीपेश्वरेशुभे ॥ ५६ ॥ पामरास्तेप्यसंख्याता नाकंगच्छन्ति पार्थिव ॥ सौरेचण्डेश्वरेलोके पुरेवैचक्रपाणिनः ॥ ५७ ॥ सम्भुङ्क्तेस्वेच्छयालोकं व्यासतीर्थप्रभावतः ॥ सपत्नीकांस्ततोविप्रान्पूजयेत्तत्रभक्तितः ॥ ५८ ॥ सितरत्नानिवस्त्राणि प्रदद्यादग्रजन्मने ॥ कृत्वाप्रदक्षिणायुग्मं प्रीयतांमेजगद्गुरुः ॥ ५९ ॥ नास्तिविप्रसमोबन्धुरिहलोकेपरत्रच ॥ यमलोकेमहाघोरे पतितंयोभिरक्षति ॥ ६० ॥ पुरुषाःपरयाभक्त्या वेदशास्त्रार्थचिन्तकाः ॥ द्वीपेश्वरंमहादेवं संस्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ ६१ ॥ तेषान्नजायतेशोको नहानिर्नचदुष्कृतम् ॥ प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गंसिद्धेश्वरन्नृप ॥ ६२ ॥ यत्रसिद्धोमहाभागस्सत्यवत्याश्चनन्दनः ॥ अस्यैवार्चनतास्सिद्धो

को भोगताहै तदनन्तर वहा भक्तिसे सपत्नीक ब्राह्मणों का पूजनकरे ॥ ५८ ॥ सफेद रत्न व वस्त्रो को ब्राह्मण को देवे और दो प्रदक्षिणा करके कहे कि मुझ से जगत् के गुरु प्रसन्न होवें ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण के बराबर इस लोक व परलोक में कोई हितकारी नहीं है जो महाघोर यमलोक में पड़ेहुये पापोंकी रक्षा करताहै ॥ ६० ॥ वेद और शास्त्र के अर्थ जाननेवाले जे पुरुष अपने घरमें बैठेहुये बड़ी भक्ति से द्वीपेश्वर महादेव को स्मरण करते हैं ॥ ६१ ॥ उनको शोक हानि और पाप नहीं होता है

हे नृप ! वहा पहले सिद्धेश्वर लिङ्गका पूजनकरे॥ ६२ ॥ जहां बड़े भाग्यवाले सत्यवतीके पुत्र व्यास सिद्ध हुये हैं इसी लिङ्गके पूजनसे व्यासमुनि सिद्धहुये हैं॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थमें जे अपने प्राणोंका त्याग करतेहैं वे परमलोकको जातेहैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व जो जलमें प्रवेश कर मराहै वह हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहताहै और भृगुपातमें सोलह हजार व युद्धमें साठिहजार और गौवों के पीछे मरने से अस्सीहजार और हे भारत ! अनशनमें अक्षय काल तक स्वर्ग में गति रहती है ॥ ६५ ॥ और योग सेभी अक्षय गति होती है सूर्यलोकको जाकर फिर वे शिवलोक को जाते हैं ॥ ६६ ॥ पिता, दादा और परदादा आते हुये अपने गोत्र

पाराशर्य्योमुनिस्ततः ॥ ६३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयेराजन्प्राणत्यागंप्रकुर्वते ॥ तेयान्तिपरमंलोकं नात्रकार्य्याविचारणा ॥ ६४ ॥ समासहस्राणिमृतोजलेवै योवैनिमग्नःपतनेचषोडश ॥ महाहवेषष्टिरशीतिगोग्रहे त्वनाशकेभारतचाक्षयागतिः ॥ ६५ ॥ अथयोगेनतेनैव प्राप्यतेचाक्षयागतिः ॥ सूर्य्यलोकंततोगत्वा शिवलोकंव्रजन्तिते ॥ ६६ ॥ पितापितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ॥ अनुभूतानिरीक्षन्ते आगच्छन्तंस्वगोत्रजम् ॥ ६७ ॥ तिष्ठतेचैवगोत्रेषु योदद्याच्चतिलोदकम् ॥ कार्त्तिक्याञ्चतथामाघ्यां वैशाख्याञ्चविशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्गंचतेप्रयान्त्यन्ते स्वस्वपुत्रप्रभावतः ॥ एतत्तेकथितंसर्वं द्वीपेश्वरफलंशुभम् ॥ ६९ ॥ यःपठेत्प्रातरुत्थाय यःशृणोतिनरोनृप ॥ सोपिपापैर्विनिर्मुक्तो मोदतेशिवमन्दिरे ॥ ७० ॥ ईश्वरंसर्वतीर्थानां निर्म्मितंऋषिपुङ्गवैः ॥ कामदंसर्वजन्तूनां रेवायाञ्चनृपोत्तम ॥ १७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे द्वीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनोनामनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥ * ॥

वालेको देखते हैं ॥ ६७ ॥ और कहते है कि है कोई हमारे गोत्र में जो विशेष करके कार्त्तिकी व माघी व वैशाखी को यहां तिलोदक देवे ॥ ६८ ॥ वे लोग अपने २ पुत्रों के प्रभाव से अन्त में स्वर्गको जाते हैं यह सब उत्तम द्वीपेश्वर का फल तुम से कहा गया ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य पढता व सुनताहै पापों से छूटा हुआ वह निश्चय करके शिवके मन्दिर में आनन्द करता है ॥ ७० ॥ हे नृपोत्तम ! सब जीवोंकी कामनाओं का देनेवाला व सब तीर्थोंका राजा ऋषियोंका रचाहुआ नर्मदा पर व्यासतीर्थ है ॥ १७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेद्वीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनोनामनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर तीनो लोकों में प्रसिद्ध व उत्तम स्वर्गकी निसेनी के समान, उत्तम प्रभासेश्वर तीर्थको जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि बड़े फलवाला प्रभास नाम तीर्थ जैसे हुआ हो व जैसे स्वर्ग मार्गकी निसेनी के बराबरहो वैसे संक्षेप से आप मुझ से कहिये ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि प्रभा इस नाम से प्रसिद्ध, कुरूपा सूर्यकी स्त्री होती हुई अगिले जमाने में उसने उग्र तपस्यासे महादेव का आराधन किया ॥ ३ ॥ महादेवके ध्यान में तत्पर सालभर वायुका भोजन करतीहुई बनीरही हे पाण्डुनन्दन ! तब प्रसन्न हुये महादेव उस प्रभा से ॥ ४ ॥ बोले कि हे बाले ! तू क्यों तकलीफ उठाती है अपने मन

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र प्रभासेश्वरमुत्तमम् ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ प्रभासन्नामतीर्थंतु यथाजातंमहाफलम् ॥ स्वर्गसोपानमार्गञ्च संक्षेपात्कथयस्वमे ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दुर्भगारविपत्नीच प्रभानामेतिविश्रुता ॥ तयाचाराधितःशम्भुरुग्रेणतपसापुरा ॥ ३ ॥ वायुभक्षास्थितावर्षं शिवध्यानपरायणा ॥ ततस्तुष्टोमहादेवः प्रभांतांपाण्डुनन्दन ॥ ४ ॥ उवाचक्लिश्यतेकस्माद्बालेत्वंब्रूहिचेष्टितम् ॥ अहञ्चभास्करोपेतश्चान्तरंनैवविद्यते ॥ ५ ॥ प्रभोवाच ॥ नान्योदेवस्तथाशम्भो भर्तापुष्यतिनकचित् ॥ सगुणोवापिचाख्यातो निर्गुणोद्रव्यवर्जितः ॥ ६ ॥ प्रियोवायदिवाद्वेष्यः स्त्रीणांभर्ताहिदेवता ॥ दुर्भगात्वेनदग्धाहं लोकमध्येमहेश्वर ॥ ७ ॥ अलब्धसौख्याभर्तुश्च तेनक्लिश्येमहेश्वर ॥ देवउवाच ॥ वल्लभाभास्करस्यत्वं मत्प्रभावाद्भविष्यसि ॥ ८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ वल्लभातववाक्येन भास्करेनभविष्यति ॥ वृथाक्लेशोभवेद्देव प्रभायास्तत्रकाकथा ॥ ९ ॥ देवीवाक्येनरुद्रेण ध्यातस्तिमिर

की बातको कह क्योंकि हम सूर्य से युक्त सदा रहते हैं हमारा और सूर्यका अन्तर नहीं है ॥ ५ ॥ तब प्रभा बोली कि हे शम्भो ! चाहे भर्ता अपनी स्त्रीका पोषण कभी न करे परन्तु स्त्रीका और देवता नहीं है चाहे वह सगुणहो व चाहे निर्गुण हो व द्रव्यसे रहितहो ॥ ६ ॥ चाहे प्रियहो और चाहे अप्रिय हो परन्तु स्त्रियोंका पतिही देवताहै हे महेश्वर ! मैंतो कुरूप होने के कारण से संसार में जलरहीहूं ॥ ७ ॥ हे महेश्वर ! पति से सुखको नहीं पातीहूं इससे तपस्यासे कष्टित होरहीहूं तब महादेव बोले कि हमारे प्रभाव से तुम सूर्यकी प्यारी होवोगी ॥ ८ ॥ तब पार्वती ने कहा कि हे देव ! यह तुम्हारे कहने से सूर्यकी प्यारी न होगी आपको वृथा क्लेश होगा वहां

प्रभाकी वार्ताभी नहीं है ॥ ९ ॥ पार्वती के कहने से महादेवने सूर्यका ध्यान किया तब नर्मदा के उत्तरवाले किनारेपर आकाश से सूर्य आते हुये ॥ १० ॥ और सूर्य बोले कि हे अन्धकासुरनाशन, देव ! आपने मुझको क्यों बुलाया है तब महादेव बोले कि हे भानो ! बडे सन्तोष से प्रभाको पालो ॥ ११ ॥ हे हिमनाशन ! प्रभा के मकान में हमेशा रहाकरो ऐसे महादेव से वरको प्राप्तहुई प्रभा महादेव को थापकर बोली ॥ १२ ॥ कि हे अनघ ! अपने अंश से यहां ठहरो और तीर्थ का प्रकाश करो मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! सब देवताओं का रूप जो लिंगहै सो स्थापन किया गया ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वर नाम का यह लिंग सब लोकों में दुर्लभहै और

नाशनः ॥ आगतोगगनाद्भानुर्नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ १० ॥ भानुरुवाच ॥ कस्मादाह्वानितोदेव अन्धकासुरनाशन ॥ देवउवाच ॥ प्रभांपालयहेभानो संतोषेणपरेणच ॥ ११ ॥ प्रभायामन्दिरेनित्यं स्थीयतांहिमनाशन ॥ एवंलब्धवरा देवात्प्रभास्थाप्याहशङ्करम् ॥ १२ ॥ स्वांशेनस्थीयतामत्रतीर्थमुन्मीलयानघ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वदेवमयंलिङ्गं स्थापितंपाण्डुनन्दन ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वरनामेदं सर्वलोकेचदुर्लभम् ॥ अन्यानियानितीर्थानि कालेतेपिफलन्तिवै ॥ १४ ॥ प्रभासञ्चापिराजेन्द्र सद्यःपुण्यफलप्रदम् ॥ माघमासेचसप्तम्यां विशेषफलदंभवेत् ॥ १५ ॥ अश्वंयोदापयेत्त त्र यथोक्तंब्राह्मणेनृप ॥ इन्द्रस्यप्राप्यतेलोकमथवाभास्करंव्रजेत् ॥ १६ ॥ दौर्भाग्यंनश्यतेतत्र स्नानमात्रेणपाण्डव॥ तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या कन्यादानंप्रयच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणायविवाहार्थे दापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ समानवयसेविप्रे कुलीने धनिनेतथा ॥ १८ ॥ योददातिमहाराज महापातकसंयुतः ॥ तस्यपापंचनश्येत उदकेलवणंयथा ॥ १९ ॥ स्वामिद्रोहो

जो तीर्थ हैं वे समय पर फल देते हैं ॥ १४ ॥ और हे राजेन्द्र ! प्रभास तो तत्कालमें पुण्य फलका देनेवाला है और माघ के महीने में सप्तमी को विशेष/फलका देने वालाहै ॥ १५ ॥ हे नृप ! जैसा कहाहै वैसे घोडे को जो ब्राह्मण को देताहै वह इन्द्र व सूर्यके लोकको जाता है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! वहां स्नानमात्र से कुरूपता नष्ट होजाती है उस तीर्थ में भक्तिसे जो कन्यादान को देता हैं॥१७॥ हे पाण्डुनन्दन ! बराबर उमरवाले कुलीन व धनी ब्राह्मण को विवाह के वास्ते ॥ १८॥ हे महाराज ! जो कन्याको देता व दिलाता है वह महापातक से युक्तभी हो परन्तु उसका पाप नष्ट होजाताहै जैसे पानी में लोन पिघल जाताहै ॥ १९ ॥ स्वामी के साथ द्रोह

करने से जो पाप होताहै व चोरी से जो होताहै व झूंठी गवाही से व चाण्डालोंकी सी चाल चलनेवालों को जो पाप होता है ॥ २० ॥ व पाखण्डसे व वृक्षों के काटने से व अगम्य स्त्री में गमन करने से व गांव भरके साथ छल करने से व विष के देने से व पाप के छिपाने से ॥ २१ ॥ व विद्याके बेंचने में व पापियों का साथ करने से व स्त्री और सब से वैर करने से हे नृप ! ॥ २२ ॥ व ब्रह्महत्यासे व जमीन छीननेवाले को व गोहत्या में व गुरु, अग्नि और ब्राह्मणके साथ अपराध करनेसे जो पाप होताहै ॥ २३ ॥ व हे नृप ! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्करद्वीपमें जो पाप होताहै ॥ २४ ॥ हे पाण्डव ! वह पाप कन्यादानसे नष्ट

द्भवंपापं यत्पापंस्तेयसम्भवम् ॥ कूटसाक्ष्यप्रदंपापंचाण्डालव्रतचारिणाम् ॥ २० ॥ दाम्भिकंवृक्षकच्छेदमगम्या गमनोद्भवम् ॥ ग्रामकूटोद्भवंयच्च गरदंवाप्रवारकम् ॥ २१ ॥ विद्याविक्रयणेयच्च संसर्गोद्भवपातकम् ॥ पत्नीद्रोहो द्भवंघोरं सर्वद्रोहोद्भवंनृप ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्याचयत्पापं यत्पापंभूमिहारिणः ॥ गोवधेचैवयत्पापं गुर्वग्निब्राह्मणेषुच ॥ २३ ॥ जम्बूप्लक्षाह्वयौद्वीपौ शाल्मलिश्चभवेन्नृप ॥ कुशक्रौञ्चस्तथाशाकः पुष्करश्चैवसप्तमः ॥ २४ ॥ तत्पापंविलयंया ति कन्यादानेनपाण्डव ॥ भित्त्वाथभास्करंलोकं शिवलोकंशुभंव्रजेत् ॥ २५ ॥ क्रीडतेरुद्रलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतु र्दश ॥ सर्वपापक्षयेजाते शिवोभवतिभावतः ॥ २६ ॥ तावद्भ्रमतितत्तीर्थं प्रभासंपाण्डुनन्दन ॥ सोश्वमेधफलंप्राप्य सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ २७ ॥ गोदानंचमहत्पुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ प्रत्यक्षंसुरभींतत्र जलधेनुंतथाहृतः ॥ २८ ॥ तिलधेनुप्रदाताच अश्वदातातथैवच ॥ कन्याविद्याप्रदाताच अक्षयंलोकमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ भूरिवस्त्रांक्षीरयुक्तां

होजाताहै कन्यादान का करनेवाला सूर्यलोक को भेदकर शुभरूप शिवलोक को जाताहै ॥ २५ ॥ जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक रुद्रलोक में टिकाहुआ विहार करताहै फिर सब पापों के क्षय होजाने पर भावनासे शिवही होजाता है ॥ २६ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तबतक मनुष्य भ्रमता है जबतक प्रभासतीर्थ को नहीं पाताहै उसको पाकर अश्वमेधके फलको पाताहै ईश्वर का कहना सत्यहै ॥ २७ ॥ गोदान सब पापोंका क्षय करनेवाला और बड़ी पुण्यवाला होताहै वहां प्रत्यक्ष गऊ व

जलधेनु को आदरसे देवे ॥ २८॥ तिलधेनु, घोड़ा, कन्या व विद्या का देने वाला अक्षयलोक को पाताहै ॥ २९ ॥ हे नृपसत्तम ! बहुत कपडे व दूध व अन्न व और सामान से युक्त गऊको सब कामनाओं के वास्ते देवे ॥ ३० ॥ तो उसने मानो सातो समुद्र पर्य्यन्त पृथिवी को लपेट लिया है भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर में जितेन्द्रियों को वृषोत्सर्ग सब कालमें करना चाहिये और चौदसको तो विशेषही करना चाहिये ॥ ३१ । ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेप्रभासतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

धान्योपस्करसंयुताम् ॥ दापयेत्सर्वकामोथ सुरभींनृपसत्तम ॥ ३० ॥ सप्तसागरपर्य्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्वरेतुराजेन्द्र वृषोत्सर्गंजितेन्द्रियैः ॥ ३१ ॥ सर्वकालन्तुकर्तव्यं चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासतीर्थमहिमानुवर्णनोनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र नर्म्मदादक्षिणेतटे ॥ स्थापितंवासुकेर्नाम्ना अशेषाघौघनाशनम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ आः कस्मात्कारणात्तात स्थापितंदक्षिणेतटे ॥ तत्त्वंसर्वंममाख्याहि त्वशेषंधर्म्मकारणम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुत्वंकुरुशार्दूल यःप्रश्नःक्रियतेत्वया ॥ भैरवंरूपमास्थाय नृत्यंशम्भुश्चकारह ॥ ३ ॥ तच्छ्रमाज्जायतेस्वेदोगङ्गातोयविमिश्रितः ॥ तत्रैवपन्नगःस्नातोहरतोयविमिश्रिते ॥ ४ ॥ मन्दाकिनीततःक्रुद्धा व्यालस्यो

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर सबपापों के समूह के नाश करनेवाले व नाम से वासुकिनागके थापेहुये तीर्थको जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर लिङ्ग क्यों स्थापन कियागया सो सब आप मुझसे कहो क्योंकि यह सब धर्महीका कारणहै ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे कुरुशार्दूल ! जिस प्रश्नको आपने कियाहै उसको सुनो किसी समयमें भैरवरूप को धर महादेवने नाच किया ॥ ३ ॥ उसके थकावट से गंगाजल से मिलाहुआ पसीना आया उस महादेवके जलसे मिलेहुये जल में वासुकिनाग ने नहाया ॥ ४ ॥ हे भारत ! तब उस सर्पपर गंगा ने क्रोध किया और

तब सर्पसे कहा कि तू अजगर होजा ॥ ५ ॥ तब वासुकि बोला कि हे हरसम्भृते ! मैं पापी आपसे दयाकरने के योग्यहूं हे शुभलक्षणे ! तुम तो तीनों लोको की पवित्र करनेवाली पुण्य नदीहो ॥ ६ ॥ और संसारके काटनेवाली व कष्टितों के कष्टकी हरनेवाली हो स्वर्ग के फाटक पर ठहरीहुई हे देवि ! मेरे ऊपर दया करो ॥ ७ ॥ तब गंगा बोलीं कि हे नाग ! तुम महादेव के वास्ते बडी तपस्या करो तब वह ईश्वर का जिसमें परम आराधनहै ऐसे तपको करताहुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर महादेव का ध्यान करताहुआ दम से युक्त होता हुआ तदनन्तर सौ वर्ष पूरे होनेपर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ ९ ॥ आकर उसके समीप खड़े होकर स्नेहकी आवाज से बोले कि हे

परिभारत ॥ आजगरत्वमाप्नोषि उरगश्चाब्रवीत्तदा ॥ ५ ॥ वासुकिरुवाच ॥ अनुग्राह्योस्म्यहंपापो भवत्याहरसम्भृते ॥ त्रैलोक्यपावनीपुण्या सरित्त्वंशुभलक्षणे ॥ ६ ॥ संसारच्छेदनकरी आर्तानामार्तिनाशिनी ॥ स्वर्गद्वारस्थितेदेवि दयां कुरुममोपरि ॥ ७ ॥ गङ्गोवाच ॥ चरत्वंविपुलन्नाग तपोवैशङ्करम्प्रति ॥ ततस्तपश्चचारासावीश्वराराधनंपरम् ॥ ८ ॥ ततश्चध्यायतोदेवं दमयुक्तोभवत्सच ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे उपरुद्धोजगद्गुरुः ॥ ९ ॥ आगत्यतत्समीपस्थः श्लक्ष्णांवाणीमुदाहरत् ॥ वरंवरयतुश्रेष्ठं पन्नगत्वंमहाबल ॥ १० ॥ पन्नगउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरंदातुंत्रिशूलभृत् ॥ तदामेदीयतांस्थानं स्वकीयंवृषवाहन ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रसन्नोहंमहाबाहो रेवांगच्छशुभांत्वरम् ॥ याम्येचैवतटेपुण्ये स्नानंकृत्वाविधानतः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो वासुकिस्त्वरितान्वितः ॥ रूपेणाजगरेणाथ विवेशनर्म्मदाजले ॥ १३ ॥ मार्गेणतस्यतज्जातं जाह्नव्याःस्रोतउत्तमम् ॥ निर्धूतकल्मषस्सर्पस्सजातोनर्म्मदाजले ॥ १४ ॥ स्थापि

पन्नग ! हे महाबल ! तुम श्रेष्ठ वरको मागो ॥ १० ॥ तब नाग बोला कि हे त्रिशूलके धारण करनेवाले, देव ! जो आप वर देनेको मुझ से प्रसन्नहो तो हे वृषवाहन ! मुझे अपने स्थान को देवो ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाबाहो ! हम प्रसन्नहैं तुम कल्याणवाली नर्मदाको जल्द जावो और दक्षिणवाले किनारेपर विधान से स्नान करो ॥ १२ ॥ इतना कह महादेव अन्तर्द्धान होगये और बड़ी जल्दी से युक्त वासुकि अजगरके रूप से नर्मदा के जलमें पैठे ॥ १३ ॥ उसकी रास्ते में गंगा

तश्चेश्वरस्तत्र नर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ तेननागेश्वरोभूम्यां सर्वपापविनाशनः ॥ १५ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो जायतेह्यनलोयथा ॥ १६ ॥ अपुत्रायेनराःपार्थ स्नानंकुर्वन्तिसङ्गमे ॥ तेलभन्तेशुभान्पुत्रान्कार्त्तवीर्य्योपमानपि ॥ १७ ॥ श्राद्धंतत्रैवयेभक्त्या उपवासपरायणाः ॥ कुर्वन्तितारयन्तिस्वान्नरकान्नृपनन्दन ॥ १८ ॥ एवमाख्यातवानस्मि तवस्नेहाद्विशेषतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेचराजेन्द्र मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ १९ ॥ नर्म्मदादक्षिणेकूले गीर्वाणैर्वन्दितंशुभम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातंकस्यचिन्मया ॥ २० ॥ स्थापितञ्चमयापुण्यं स्वर्गभोगञ्चमुक्तिदम् ॥ ज्ञानंतत्रैवमेजातं प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ २१ ॥ अन्यसूक्तंचयो ध्यायेद्द्रुपदञ्चजलेजपेत् ॥ सोपिघोरादघौघाच्च मुच्यतेपाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ वाचिकैर्मानसैश्चापि कर्म्मजैरपिपाण्डव ॥ पञ्चेन्द्रियाण्यवष्टभ्य याम्यामाशाञ्चसंस्थितः ॥ २३ ॥ योजपेत्सलिलेभक्त्या इत्येवंशङ्करोब्रवीत ॥ श्राद्धंत

का उत्तम सोता निकल आया नर्मदा के जलमें पाप जिसके धोगये ऐसा वह नाग होगया ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसने वहां नर्मदामें महादेव का स्थापन किया इसी से पृथिवी में नागेश्वर सब पापों के नाश करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ अष्टमी व चौदस को शहद से महादेव को स्नान करावे तो जैसे आग होती है ऐसे सब पापोंसे छूटा हुआ होजाताहै ॥ १६ ॥ और हे पार्थ ! पुत्रसे रहित जो मनुष्य संगममेंस्नान करते हैं वे कार्त्तवीर्य के समान उत्तम पुत्रोंको पाते हैं ॥ १७ ॥ और हे नृपनन्दन ! उपास किये हुये जो मनुष्य भक्ति से श्राद्ध को करते हैं वे अपने पितरों को नरक से तारदेते हैं ॥ १८ ॥ विशेष कर आप के स्नेह से ऐसा मैंने कहा है फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मार्कण्डेश्वर को जावे ॥ १९ ॥ जो कि नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर देवताओं से भलीभांति नमस्कार किया गया गुप्त से गुप्त तीर्थ है जिसको मैंने किसी से नहीं कहा है ॥ २० ॥ स्वर्ग का भोग और मुक्ति का देनेवाला व पुण्यवाला वह लिंग मेरा थापा हुआहै महादेव के प्रसाद से मुझको वहीं ज्ञान पैदा हुआ है ॥ २१ ॥ अन्य सूक्त को जो ध्यावता है व द्रुपद मन्त्रको जलमें जपताहै हे पाण्डुनन्दन ! वह भी घोर पापों के समूह से छूटजाताहै ॥ २२ ॥ और हे पाण्डव ! पाचों इन्द्रियों को रोंक दक्षिण दिशामें बैठा हुआ ॥ २३ ॥ भक्ति से पानी में जो कहे हुये जपको करता है वह वाणी, मन और

शरीरसे किये हुये पापोंसे छूटजाता है ऐसा शङ्करजीने कहा है और हे नृपनन्दन ! भक्ति से जो वहां श्राद्ध करताहै ॥ २४ ॥ उसके पितर प्रलयतक तृप्त रहतेहैं आंवरा, बेर, बेल, अक्षत और जलसे ॥ २५ ॥ जो प्रेतोंका तर्पण करता है उसके प्रेत शुभगतिको प्राप्त होते है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेमार्कण्डेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर यज्ञवाटके बीच में विद्यमान बड़े सुन्दर तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ पापो का नाश करनेवाला

त्रैवयोभक्त्याकुरुते नृपनन्दन ॥ २४ ॥ पितरस्तस्यवैतृप्तायावदाहूतसम्प्लवम् ॥ आमलैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतैर्वाजलेनवा ॥ २५ ॥ तर्पयेत्तत्रयःप्रेतान्प्रेतायान्तिशुभाङ्गतिम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मार्कण्डेश्वरमहिमानुवर्णनो नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्रतीर्थंपरमशोभनम् ॥ उत्तरेनर्म्मदाकूले यज्ञवाटस्यमध्यतः ॥ १ ॥ सङ्कर्षणञ्चविख्यातं पृथिव्यांपापनाशनम् ॥ तपश्चीर्णंपुराराजन्नर्म्मदायास्तटेशुभे ॥ २ ॥ बलभद्रेणराजेन्द्र प्राणिनामुपकारकम् ॥ गीर्वाणैश्चैवतत्रैव सन्निधौनृपनन्दन ॥ ३ ॥ उमयासहितश्शम्भुस्स्थितस्तत्रैवकेशवः ॥ यस्तत्रस्नापयेद्भक्त्या जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ एकादश्यांसितेपक्षेमन्त्रेणस्नापयेच्छिवम् ॥ श्राद्धंतत्रचयोभक्त्या प्रेतानांवैप्रदापयेत् ॥ ५ ॥ सयातिपरमंस्थानं बलभद्रवचोयथा ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र मन्मथेश्वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥ स्नानमात्रो

पृथिवी में वह सङ्कर्षण नाम से प्रसिद्ध है हे राजन् ! आगे नर्मदा के पवित्र तटमें प्राणियों के उपकार करनेवाले तपको बलभद्र ने कियाहै हे राजेन्द्र ! हे नृपनन्दन ! उसके समीपही देवताओं के सहित व पार्वती के सहित महादेव और विष्णु दोनो विद्यमान है जो वहा क्रोध व इन्द्रियोंको जीतेहुये भक्तिसे नहाताहै ॥ २ । ३ । ४ ॥ और उजियाले पाखकी एकादशी को मन्त्रसे शिवको स्नान कराता है व भक्ति से जो प्रेतोंको वहां श्राद्ध देताहै ॥ ५ ॥ वह उत्तम स्थानको जाताहै ऐसा बलभद्र का

वचनहै हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मन्मथेश्वर को जावे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य यमलोक को नहीं देखताहै और हे पाण्डुनन्दन ! पुत्र से रहित जो स्त्री महादेव को स्नान करावे ॥ ७ ॥ तो हे पार्थ ! वह सच्चे और पोढ़े व्रतवाले पुत्रको पाती है और हे राजन् ! मन को जीतेहुये व मौन होरहा मनुष्य वहां स्नान कर ॥ ८ ॥ व भक्ति से उपासकर गोसहस्रके फलको पाता है और भक्तिसे युक्त मनवाले जो मनुष्य वहां नाचते हैं ॥ ९ ॥ और गाने बजाने के सहित रात में जागरण करते हैं उनसे पार्वती के सहित मन्मथेश्वर महादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १० ॥ उस पर नाराज होकर यमराज क्या करसक्ते हैं उस को

नरोराजन्यमलोकन्नपश्यति ॥ अनपत्यातुयानारी स्नापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ पुत्रंसालभतेपार्थ सत्यवन्तंदृढव्रतम् ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्मुनिःप्रयतमानसः ॥ ८ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या गोसहस्रफलंलभेत् ॥ तत्रनृत्यंप्रकुर्वन्ति येनराभक्तिमानसाः ॥ ९ ॥ गीतवादित्रसंयुक्तं रात्रौजागरणंशुभम् ॥ सहाम्बिकोमहादेवस्तुष्टोवैमन्मथेश्वरः ॥ १० ॥ [illegible]करिष्यतिसंरुष्टो यमस्तंनचपश्यति ॥ कामेनस्थापितस्तत्र एतस्मात्कारणान्नृप ॥ ११ ॥ अन्नदानेनभोराजन्की[illegible]मुत्तमम् ॥ सोपानंस्वर्गमार्गस्य पृथिव्यांमन्मथेश्वरः ॥ १२ ॥ विशेषात्तत्रसंख्यातं श्राद्धदानेनभारत ॥ अ[illegible]दानेनभोराजन्कीर्तितंफलमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं तवभक्त्यातुभारत ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरे[illegible] मन्मथेश्वरमहिमानुवर्णनोनामद्वादशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११२ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र एरण्डीसङ्गमेश्वरम् ॥ प्रख्यातंसर्वलोकेषु ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यु

देख भी नहीं सक्ते हैं हे [illegible] ! [illegible] कामदेव ने वहां स्थापन किया है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! अन्नके दानसे उत्तम फल कहा गयाहै पृथिवी में मन्मथेश्वर स्वर्ग मार्गकी निसेनी हैं ॥ १२ ॥ [illegible] हे राजन् ! वहां श्राद्धदान व अन्नदानसे उत्तम फल विशेषसे कहा गयाहै ॥ १३ ॥ हे भारत ! तुम्हारी भक्ति से यह सब मैंने [illegible] ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे[illegible]भाषाऽनुवादेमन्मथेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ११२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

[illegible]ण्डेयजी बोले कि तदनन्तर हे राजेन्द्र ! एरण्डीसङ्गमेश्वर को जावे जो कि सब लोकों में ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला कहा गयाहै ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिर

बोले कि हम कारण को नहीं जानते हैं सो सब आप मुझसे कहिये बुद्धिवाले युधिष्ठिरसे ऐसे कहेगये धर्मात्मा मार्कण्डेय ॥ २ ॥ ऋषियों के समूहसे युक्त उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको कहते हुये मार्कण्डेयजी बोले कि जो पहले पार्वती,महादेव और ब्रह्माने कहा है ॥ ३ ॥ उसीको हम आपसे कहेंगे आप भाइयोंके सहित सुनिये महादेवने कहा है कि हे देव ! ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रिनाम के होते हुये ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र के करनेवाले व देवता और अतिथि के पूजनेवाले हुये इस पर्वत पर उन्हीं ब्राह्मण ने चन्द्रमा का स्थापन किया है ॥ ५ ॥ अनसूया नामकी उनकी स्त्री गुणोंसेयुक्त व पतिव्रता व पतिही जिसके प्राण है व पति के काम व हितमे लगी रहने-

धिष्ठिरउवाच ॥ कारणन्नैवजानेहं तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ एवमुक्तस्तुधर्म्मात्मा धर्म्मपुत्रेणधीमता ॥ २ ॥ कथयामासत त्सर्वमृषिसङ्घैस्समावृतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथितंचोमयापूर्वं शम्भुनापरमेष्ठिना ॥ ३ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि श्रू यतांभ्रातृभिस्सह ॥ महेश्वरउवाच ॥ अत्रिर्नामाह्वयोदेवमानसोब्रह्मणस्सुतः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्ररतोनित्यं देवताति थिपूजकः ॥ सोमस्संस्थापितोत्रैव कृतोविप्रेणपर्वते ॥ ५ ॥ अनसूयेतिनाम्नावै तस्यभार्य्यांगुणान्विता ॥ पतिव्रतापति प्राणा पत्युःकार्य्यहितेरता ॥ ६ ॥ एवंजातस्सदाकालो नपुत्रोनचपुत्रिका ॥ अपराह्णेमहाबाहो सुखासीनौतुतौक्वचि त् ॥ ७ ॥ वदतःसुखदुःखानि दैवदत्तानियानिच ॥ अत्रिरुवाच ॥ सौम्येशुभेप्रियेकान्ते सुरूपेप्रियभाषिणि ॥ ८ ॥ पू र्णचन्द्रनिभाकारे प्रियकामेनिरालसे ॥ नत्वयासदृशीलोके त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ९ ॥ पतिपुत्रप्रियानारीसुहृज्जनहि तेरता ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयति पुत्रेणपरमागतिः ॥ १० ॥ नास्तिपुत्रसमोबन्धुः पृथिव्याञ्चैवदृश्यते ॥ असिपत्रवनेघोरे

वाली होती हुई ॥ ६ ॥ इसी तरह काल व्यतीत होता रहा उनके लड़का व लड़की कुछ न हुआ किसी समय तीसरे पहर हे महाबाहो ! वे दोनों कहीं सुखसे बैठे थे ॥ ७ ॥ प्रारब्धके दियेहुये सुख दुःखको कह रहेथे अत्रि ने कहा कि हे सौम्ये ! हे शुभे ! हे प्रिये ! हे कान्ते ! हे सुरूपे ! हे प्रियभाषिणि ! ॥ ८ ॥ हे पूर्णचन्द्रमा के समान रूपवाली ! हे प्रियकामे ! हे निरालसे ! इन चराचर तीनो लोकों में तुम्हारे बराबर कोई नहीं है ॥ ९ ॥ स्त्री वही है कि जिसको पति और पुत्र प्यारे होवें और जो अपने सम्बन्धियों के हित में रत होवे पुत्र से लोकों को जीतता है व पुत्रही से परमगति होती है ॥ १० ॥ पुत्र के बराबर पृथिवी में कोई बन्धु नहीं देख पडता

है जोकि घोर असिपत्रवन में गिरते हुये पिताकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥ दुर्भिक्ष व गरीबी आदि व बुढ़ापे में पुत्रही रक्षा करता है हे भद्रे ! पुत्रके विना जीते हुये धनियों से भी क्या होता है ॥ १२ ॥ रोगों से दबा हुआ व घर से विरक्त भी पुत्र लोक लज्जा व नीति से डराहुआ पवित्र करसक्ता है ॥ १३ ॥ इन गुणों से युक्त चाहे निर्गुणहो व सगुणहो पुत्र जरूर होवे पुत्रसे हीन होने में इस लोक व परलोक में सुख कहां से होसक्ता है ॥ १४ ॥ दिन रात इस बातकी चिन्ता कररहे जो हम हैं तिनके अङ्ग सूखेजाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियां सूखें ॥ १५ ॥ तब अनसूया बोली कि हे विप्र ! जो आपने मुझ से कहा वह सब मैं शोचा करती हूं आप

पतन्तंयोभिरक्षति ॥ ११ ॥ दुर्भिक्षेष्वपिदैन्यादौ वृद्धकालेपिपुत्रकः ॥ पुत्रंविनाचकिंभद्रे जीवितैःसधनैरपि ॥ १२ ॥ व्याधिभिःपरिभूतोपि निर्विण्णोपियदासुतः ॥ लोकलज्जानयत्रस्तःपवित्रंकर्तुमर्हति ॥ १३ ॥ एतद्गुणसमायुक्तो निर्गुणस्सगुणस्सुतः ॥ पुत्रहीनेकुतस्सौख्यमिहलोकेपरत्रच ॥ १४ ॥ अहश्चमध्यरात्रेच चिन्त्यमानश्चसर्वदा ॥ शुष्यन्तिममगात्राणि ग्रीष्मेकुसरितोयथा ॥ १५ ॥ अनसूयोवाच ॥ यत्त्वयासूचितंविप्र तत्सर्वंशोचयाम्यहम् ॥ तवोद्वेगकरंकार्य्यं तन्मेदहतिचेतसि ॥ १६ ॥ येचपुत्राभविष्यन्तिदीर्घायुर्गुणसंयुताः ॥ तत्कार्य्यंचसमीक्ष्येहं येनतुष्टःप्रजापतिः ॥ १७ ॥ अत्रिरुवाच ॥ तपस्तप्तंमयाभद्रे जन्मप्रभृतिदुष्करम् ॥ व्रतोपवासैर्नियमैश्शाकाहारेणसुन्दरि ॥ १८ ॥ क्षीणन्देहन्तुपश्यामि अशक्तोहंशुभानने ॥ स्थातुंशोचामिचात्मानं रहस्यंकथितंमया ॥ १९ ॥ अनसूयोवाच ॥ भर्तः पतिव्रतानारी पतिपुत्रविवर्द्धिनी ॥ त्रिवर्गसाधनासाच सेव्यासाविपुलेजने ॥ २० ॥ जपस्तपस्तीर्थयात्रा पुत्रेज्याभ

को घबडा देनेवाला काम मेरे चित्तको जलाता है ॥ १६ ॥ जिससे बड़ी उमरवाले व गुणों से संयुक्त पुत्र होवेंगे उस काम को हम करेंगी जिससे प्रजापति प्रसन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ तब अत्रि बोले कि हे भद्रे ! हे सुन्दरि ! व्रत, उपास, नियम औरशाक के भोजनसे मैंने जन्म से दुष्कर तप किया है ॥ १८ ॥ अब अपनी देहको मैं क्षीण देखता हूं इससे हे शुभानने ! मैं असक्त हूं अब अपने को खडे होने में मुझको शोच विचार है क्योंकि मैंने गुप्त बात तुमसे कहदी है ॥ १९ ॥ तब अनसूया बोली कि हे भर्तः ! पतिव्रता जो स्त्रीहै वह पति और पुत्रोंकी बढ़ानेवाली होती है और धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिकी करनेवालीहै इससे वह सबको पालन करने

लायक है ॥ २० ॥ जप, तप, तीर्थयात्रा और पुत्रेष्टि को गुरुलोग पुत्रका साधन कहते हैं बड़े लोगोंका कहना ठीक है ॥ २१ ॥ ऐसे दुःखमें मैं आप से आज्ञा पाऊं तो दुष्कर तप को मैं करूंगी पुत्रकी चाहनेवाली बहुत दिनों के वास्ते अभी मैं विष्णुकी शरण जाती हूँ ॥ २२ ॥ तब अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! मेरे सन्तोष की करनेवाली वाह २ हे भद्रे ! मेरी आज्ञाको पायेहुये तुम पुत्रके वास्ते तप करो ॥ २३ ॥ देवता, मनुष्य और पितरों से मुझको उऋण करो क्योंकि स्त्री के बराबर तीनों लोकों में हितकारी नहीं है ॥ २४ ॥ स्त्री के विना सुखकी देवता तारीफ नहीं करते हैं क्योंकि पति के सम्मुख होने पर आपभी सम्मुख है और उसके विमुख

न्त्रसाधनम् ॥ वदन्तिगुरवस्सर्वे यथोक्तंगुरुभाषितम् ॥ २१ ॥ अनुज्ञाताचदुःखेहं तपस्तप्स्यामिदुष्करम् ॥ पुत्रार्थिनीबहुदिनान्यहंयामिसुरोत्तमम् ॥ २२ ॥ अत्रिरुवाच॥साधुसाधुमहाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि ॥ अनुज्ञातामयाभद्रे पुत्रार्थंतपआचर ॥ २३ ॥ देवानांचमनुष्याणां पितॄणामनृणंकुरु ॥ नभार्य्यासदृशोबन्धुस्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ २४ ॥ नहिदेवाःप्रशंसन्ति भार्य्ययारहितंसुखम् ॥ सम्मुखेसम्मुखायाति विलोमेचपराङ्मुखी ॥ २५ ॥ तेनभार्य्यांप्रशंसन्ति सदेवासुरमानुषाः ॥ महाव्रतेमहाप्राज्ञे सत्यरूपेशुभेक्षणे ॥ २६ ॥ तपश्चरस्वशीघ्रंत्वं पुत्रार्थंचममाज्ञया ॥ एतद्वाक्यावसानेसा साष्टाङ्गंप्रणताब्रवीत् ॥ २७ ॥ त्वत्प्रसादेनविप्रेन्द्रसर्वमेतदवाप्नुयाम् ॥ हंसलीलागतिर्यान्ती लोलाक्षीवरवर्णिनी ॥ २८ ॥ विषमस्थानसूयातु प्राप्तामोनर्म्मदांनदीम् ॥ सोमनाथेनतत्तुल्यं नात्रकार्य्याविचारणा ॥ २९ ॥ येस्मरन्तिदिवारात्रौ योजनानांशतैरपि ॥ मुच्यन्तेसर्वपापेभ्योरुद्रलोकेवसन्तिते ॥ ३० ॥ नर्म्मदायास्समीपेतु द्वेतटेद्वेचयो

होने में आपभी विमुख है ॥ २५ ॥ इसीसे देवता, असुर और मनुष्य सब स्त्री की बड़ाई करते हैं इससे हे महाव्रते ! हे महाप्राज्ञे ! हे सत्यरूपे ! हे शुभेक्षणे ॥२६॥ मेरी आज्ञासे पुत्र के वास्ते तुम जल्दी तप करो इतनी बात के समाप्त होने पर साष्टांग प्रणामकर अनसूया बोलीं ॥ २७ ॥ कि हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे प्रसादसे यह सब मैं पाऊंगी इतना कह हंसकीसी चालवाली व चपलनेत्रोंवाली व उत्तम वर्णवाली ॥ २८ ॥ सङ्कटमें पड़ी हुई अनसूया नर्मदा नदी को प्राप्तहुई वह स्थान सोमनाथ के बराबर है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ दिन व रात में सौ योजन से भी जो इस स्थानका स्मरण करते हैं वे सब पापोंसे छूटजाते हैं व रुद्र-

लोक में रहते हैं ॥ ३० ॥ नर्मदा के समीप में दो योजनकी दो तरहँटी हैं वहां तप करने को नर्मदा में अनसूया ने प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ जिसके दर्शनहीं से पापोका समूह नष्ट होजाताहै तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तट पर पत्तों के भोजन करनेवाली पवित्र ॥ ३२ ॥ व शाकके आहारसे नियमों मे लगी हुई बड नेत्रोंवाली सुन्दरी अनसूया उत्तम स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करती हुई ॥ ३३ ॥ महादेवी अनसूयाने ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि का सेवन किया और वर्षा में भीगे कपड़े पहने हुये चान्द्रायण व्रत को करती हुई ॥ ३४ ॥ फिर हेमन्त के आने पर जलमें वास करती हुई प्रातःकाल व सायङ्काल में स्नान व देवता आदिकों का तर्पण करती हुई ॥ ३५ ॥

जने ॥ प्रविशन्तीतपस्तत्ररेवायांवरवर्णिनी ॥३१॥ यस्यादर्शनमात्रेण नश्यतेपापसंचयम् ॥ ततस्तस्योत्तरेतीरे परेप र्णाशनाशुभा ॥ ३२ ॥ नियमस्थाविशालाक्षी शाकाहारेणसुन्दरी ॥ स्तुवन्तीतुततोदेवाञ्छुभैस्स्तोत्रैश्चसंयता ॥ ३३ ॥ ग्रीष्मेषुचमहादेवी पञ्चाग्निंसाधयेत्ततः ॥ वर्षाकालेसार्द्रवासाचरचान्द्रायणंव्रतम् ॥ ३४ ॥ हेमन्तेचततःप्राप्ते तोयवासाभवत्ततः ॥ प्रातस्स्नानंततस्सान्ध्यं कुर्य्याद्देवादितर्पणम् ॥ ३५ ॥ देवानामर्चनंकृत्वा होमंकृत्वायथाविधि ॥ एवंवर्षशतेप्राप्ते विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ३६ ॥ सम्प्राप्ताद्विजरूपेण एरण्ड्यास्सङ्गमम्प्रति ॥ संस्थिताअग्रतस्तस्या वेदमभ्युच्चरन्तिते ॥ ३७ ॥ अनसूयाजपंत्यक्त्वा निरीक्षन्तीमुहुर्मुहुः ॥ उत्थितासाविशालाक्षी अर्घंदत्त्वायथाविधि ॥ ३८ ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलंतपः ॥ दर्शनेनतुविप्राणां सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणंततःकृत्वा साष्टाङ्गंप्रणताब्रवीत् ॥ कन्दमूलफलैर्दिव्यैरद्याहंतर्प्पयामिवः ॥ ४० ॥ विप्राऊचुः ॥ तपसातुविचित्रेण तव

देवताओं का पूजन व विधान से होम करती हुई इस प्रकार सौ वर्ष होजानेपर विष्णु, महादेव और ब्रह्मा ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणके रूप से एरण्डी के सङ्गम में प्राप्त होते हुये और अनसूया के आगे खडे होकर वे सब वेदका उच्चारण करने लगे ॥ ३७ ॥ जपको छोड बार २ देखती हुई बड़े नेत्रोंवाली अनसूया विधि मे अर्घ देकर उठीं और बोलीं ॥ ३८ ॥ कि आज मेरा जन्म सफल होगया और आज मेरा तप सफल होगया क्योंकि ब्राह्मणों के दर्शन से सब पापोंमे छूटजाता है ॥ ३९ ॥ फिर प्रदक्षिणा व साष्टाङ्ग प्रणामकर बोलीं कि आज हम दिव्य कन्द, मूल और फलों से आप लोगों को तृप्त करेंगी ॥ ४० ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे सुव्रते !

तुम्हारे विचित्र तप से व तुम्हारे सत्य से हम लोग सब मनोरथों से तृप्त हैं और तपस्विनी जो आपहो तिनके दर्शन से अधिक तृप्त हैं ॥ ४१ ॥ हम लोगों को आश्चर्य हुआहै कि तुम किसवास्ते तप करती हो क्या स्वर्ग और मोक्षकी रक्षाके वास्ते दुष्कर तप करती हो ॥ ४२ ॥ तब अनसूया बोलीं कि हे ब्राह्मणो ! तपस्या से स्वर्ग सिद्ध होताहै व तपस्याही से परमगति है और तपस्यासे सभी कामों को प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि दुबली देहवाली व थोड़ी उमरवाली व बड़े नेत्रोंवाली व चिकने अङ्गोंवाली व रूपसे भरीहुई व हंसकीसी चालवाली तुम क्यों अपनेको सुखा रहीहो ॥ ४४ ॥ तब अनसूया बोलीं कि जवानी ही से तप करना चाहिये

सत्येनसुव्रते ॥ तृप्तावैसर्वकामैस्तु तपस्विन्याश्चदर्शनात् ॥ ४१ ॥ अस्माकंकौतुकंजातं किमर्थंतप्यतेत्वया ॥ स्वर्गमोक्षंतुरक्षार्थंतपस्तप्यसिदुष्करम् ॥ ४२ ॥ अनसूयोवाच ॥ तपसासिध्यतेस्वर्गस्तपसापरमागतिः ॥ तपसाचैवभोविप्रास्सर्वकाममवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ तन्वीश्यामाविशालाक्षीस्निग्धाङ्गीरूपसंयुता ॥ हंसलीलागतिस्त्वंहि किञ्चात्मानंविशोषसि ॥ ४४ ॥ अनसूयोवाच ॥ युवत्वेचतपःकार्यं युवत्वेपरमागतिः ॥ युवत्वेचसुतोत्पत्तिर्वृद्धत्वेसर्वमप्रियम् ॥ ४५ ॥ विप्राऊचुः ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे वरंप्रार्थयसुव्रते ॥ यत्त्वयाचाभिलषितं तत्सर्वंप्रददाम्यहम् ॥ ४६ ॥ अहंविष्णुरहंरुद्रो ह्यहंसाक्षात्पितामहः ॥ गूढरूपधरालोके स्वचिह्नैरुपलक्षिताः ॥ ४७ ॥ तस्यावाक्यावसानेतु स्वरूपंदर्शयन्तिते ॥ स्वैःस्वैरूपैस्स्थितादेवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ४८ ॥ चतुर्भुजोवासुदेवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ अतसीपुष्पवर्णस्तु पीतवासाजनार्दनः ॥ ४९ ॥ गरुत्मान्वाहनंयस्य श्रियाचसहितोहरिः ॥ प्रसन्नवदनःश्रीमाञ्छ्रीव

व जवानी ही में परमगति होती है और जवानी ही में पुत्रोंकी उत्पत्ति होती है बुढापे में सबही अप्रिय होजाता है ॥ ४५ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे महाप्राज्ञे ! वाह २ हे सुव्रते ! वरमागो जो तुमने अपने मनमें अभिलाष कियाहो वह सब हम देवेंगे ॥ ४६ ॥ हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं अपने २ चिह्नों से युक्त लोक में गुप्तरूपको धरे हैं ॥ ४७ ॥ अनसूया की बातके समाप्त होने पर उन्होंने अपने २ रूपोंको दिखाया करोडों सूर्यों के समान तेजवाले तीनों देवता अपने २ रूपों से खड़े होगये ॥ ४८ ॥ चारभुजावाले व शंख, चक्र और गदा को धरेहुये, अलसीके फूल के समान रङ्गवाले व पीले वस्त्रवाले जनार्दन, वासुदेव ॥ ४९ ॥ गरुड़ जिन

का वाहन है और लक्ष्मी के सहित, प्रसन्नमुखवाले व शोभावाले कल्याणरूप विष्णु जी वर्त्तमान देखपड़े ॥ ५० ॥ और हे अनघ ! सफेद कपडेवाले व बड़े भाग्य वाले, चारमुखोंसे युक्त, हंसपर सवार, अक्षमालाको हाथमें लियेहुये ॥५१॥ लोकों के पितामह ब्रह्मा नर्मदाके तीर आतेहुये और बैलपर सवार दश भुजाओंसे संयुक्त ॥ ५२ ॥ भस्म से धुरियाली देहवाले व पांच मुख और तीन नेत्रोंवाले व जटाओं के मुकुट से युक्त आधे चन्द्रमा को शिर पर धरे हुये ॥ ५३ ॥ ऐसे रूपको धरे हुये सर्वव्यापी महादेव देखपडे देवताओं के दर्शन के बाद वहीं एकान्त में कांपती व बार २ उनको देखरहीं अनसूया देवी हम ब्रह्मा, हम विष्णु और हम रुद्रहैं ऐसे

रूपोऽव्यवस्थितः ॥ ५० ॥ सितवासामहाभागश्चतुर्वदनसंयुतः ॥ हंसोपरिसमारूढो ह्यक्षमालाकरोऽनघ ॥ ५१ ॥ आगतोनर्म्मदातीरे ब्रह्मालोकपितामहः ॥ वृषभन्तुसमारूढो दशबाहुसमन्वितः ॥ ५२ ॥ भस्मोद्धूलितगात्रस्तु पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥ जटामुकुटसंयुक्तश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ५३ ॥ एतद्रूपधरोदेवस्सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ अनसूयातुतत्रैव देवानांदर्शनात्परम् ॥ ५४ ॥ वेपमानारहस्येतु तान्पश्यन्तीमुहुर्मुहुः ॥ अहंब्रह्माह्यहंविष्णुरहंरुद्रःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ आनन्दितातुसादेवी दृष्ट्वैवैतान्महाव्रत ॥ अनसूयोवाच ॥ किंव्यापाराश्चकेयूयं विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ५६ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामीमंप्रश्नंकथयन्तुते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रावृट्कालोह्यहंप्रोक्त आपश्चैवप्रकीर्तितः ॥ ५७ ॥ मेघरूपोह्यहं प्रोक्तो वर्षामिवसुधातले ॥ अहंसर्वाणिभूतानि प्राक्सन्ध्याह्युदितेरवौ ॥ ५८ ॥ एतस्मात्कारणाद्धावरहस्यंकथितंमया ॥ विष्णुरुवाच ॥ हेमन्तस्त्वाचविहितं विष्णुरूपंचराचरम् ॥ ५९ ॥ पालनीयंजगत्सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ रु

कहरहे उन देवताओंको देख आनन्दित होगई हे महाव्रत ! फिर अनसूया बोलीं विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा जो आप लोग हैं तो तुम्हारा क्या व्यापारहै और तुम कौनहो ॥ ५४ । ५५ । ५६ ॥ सो हम सुनाचाहती हैं इस हमारे प्रश्न को आप कहें तब ब्रह्मा बोले कि हम वर्षाकाल कहेगये हैं और जल हमीं कहेगये हैं ॥ ५७ ॥ और मेघरूप हमीं कहेगये हैं पृथिवी पर जल हमी बरसते हैं सब प्राणी हमीं हैं और सूर्य के उदय होने पर प्रातःकालकी सन्ध्या हमीं हैं ॥ ५८ ॥ इसी कारण से हमने अपने होने का गुप्त वृत्तान्त कहदिया तब विष्णु बोले कि हेमन्तऋतु होने से सब चराचर जगत् विष्णुरूपही है ॥ ५९ ॥ सब जगत् पालना करने के योग्य है यही

विष्णु का उत्तम माहात्म्य है तब महादेव बोले कि सब प्राणियों के क्षयकरनेवाले ग्रीष्मऋतु हमीं कहेगये हैं ॥ ६० ॥ हे तपस्विनि ! रुद्ररूप हम सब जगत् को सुखाते हैं इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रही हे महीपते ॥ ६१ ॥ तीनों सन्ध्या, तीनों देवता, तीनों काल और तीनों अग्नियांहैं फिर एक रूपको प्राप्तहोरहे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बोले ॥ ६२ ॥ कि हे भद्रे ! जो तुम्हारे मन में हो उस वरको हम तुम्हे देवेंगे तब अनसूया बोलीं कि दुनिया में लोग मुझे बांझ कहते हैं ॥ ६३ ॥ सो जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अपनी प्रसन्नता से सुमुख हैं अर्थात् बड़ेतेजवाले भी तीनों देवता मुझपर प्रसन्न हैं ॥ ६४ ॥ और इस तीर्थ में मेरे समीप आये है तो इस समय में मुझ

द्रउवाच ॥ ग्रीष्मकालोह्यहंप्रोक्तस्सर्वभूतक्षयङ्करः ॥ ६० ॥ शोषयामिजगत्सर्वं रुद्ररूपस्तपस्विनि ॥ एवंब्रह्माचविष्णु श्चरुद्रश्चैवमहीपते ॥ ६१ ॥ तिस्रःसन्ध्यास्त्रयोदेवास्त्रयःकालास्त्रयोग्नयः ॥ तथाब्रह्माचविष्णुश्च रुद्रश्चैकत्वमागताः ॥ ६२ ॥ वरंददामितेभद्रे यत्तेमनसिवर्तते ॥ अनसूयोवाच ॥ बन्ध्यालोकैरहंलोके ख्याप्यमानाचसर्वदा ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्चरुद्रश्च प्रसादात्सुमुखायतः ॥ परितुष्टास्त्रयोदेवा दुर्द्धर्षापिममोपरि ॥ ६४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेतुसान्निध्यं वरंददतु मेऽधुना ॥ देवाऊचुः ॥ एवंभवतुतेवाक्यं यत्त्वयाप्रार्थितंशुभे ॥ ६५ ॥ प्रत्यक्षावैष्णवीमाया एरण्डीचैवनामतः ॥ अ नसूयोवाच ॥ यदितुष्टास्त्रयोदेवा ममभक्तिप्रबोधिताः ॥ ६६ ॥ ममपुत्राभवन्त्वत्र हरिरुद्रपितामहाः ॥ विष्णुरुवाच ॥ अर्थदाःपुत्रतांयान्ति नकदाचिच्छ्रुतंमया ॥ ६७ ॥ भद्रेददामितान्पुत्रान्देवतुल्यपराक्रमान् ॥ पितृतुल्यगुणोपेतान्सो मयाजिबहुश्रुतान् ॥ ६८ ॥ अनसूयोवाच ॥ ईप्सितन्तुप्रदातव्यं यन्मयाप्रार्थितंहरे ॥ नान्यथातच्चकर्तव्यं निवसन्तु

को वरदेवें तब देवता बोले कि हे शुभे ! ऐसाहीहो तुम्हारा वचन सत्य होवे जो तुमने प्रार्थना की है वह सब होगी ॥ ६५ ॥ एरण्डी जिसका नाम है ऐसी यह विष्णुकी माया प्रत्यक्ष है तब अनसूया बोलीं कि हमारी भक्ति मे जगेहुये जो तीनों देवता मुझपर प्रसन्न होवें ॥ ६६ ॥ तो विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा मेरे पुत्र होवें तब विष्णु बोले कि वरके देनेवाले पुत्र होते हैं ऐसा हमने कभी नहीं सुनाहै ॥ ६७ ॥ हे भद्रे ! हम ऐसे पुत्र तुमको देवेंगे कि जो देवताओंके तुल्य पराक्रमवाले व पिताके तुल्य गुणोंवाले व सोमयज्ञ के करनेवाले व बहुश्रुत होवें ॥ ६८ ॥ तब अनसूया बोलीं कि हे हरे ! जो मेरे मनमें है व जो मैंने मांगाहै वह देना चाहिये उससे उलटा नहीं

करना चाहिये आप लोग मेरे उदर में वास करें ॥ ६९ ॥ तब भगवान् बोले कि हे शोभने ! आगे भृगुके संवाद में मुझको गर्भवासके वास्ते कहागया था उसका पार हम नहीं देखते हैं ॥ ७० ॥ बल्कि आगे के वृत्तान्त को सुधकररहे हम बार २ चिन्ता किया करते हैं ऐसेही विचार कररहे ब्रह्मा और महादेव ने भी कहा ॥ ७१ ॥ कि हे सुशोभने ! विना योनि से पैदाहुये हम तुम्हारे पुत्र होवेंगे क्योंकि हे वरानने ! देवतालोग योनिवास को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ इतना कह अनसूया के सहित प्रत्यक्ष हुये वे तीनों देवता चलेगये हे पार्थ ! नर्मदाके उत्तरवाले तटपर यह वृत्तान्त हुआ ॥ ७३ ॥ वरको पाये हुई अनसूया अपने पति के तीर माहेन्द्र पर्वत पर

ममोदरे ॥ ६९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पूर्वन्तुभृगुसंवादे गर्भवासउपार्जितः ॥ तस्याहंचैवपारन्तु नचपश्यामिशोभने ॥ ७० ॥ स्मरमाणःपुरावृत्तं चिन्तयामिपुनःपुनः ॥ एवंसञ्चिन्त्यमानौहि पितामहमहेश्वरौ ॥ ७१ ॥ अयोनिजाभविष्यामस्तवपुत्रास्सुशोभने ॥ योनिवासञ्चवैदेवा नैवयान्तिवरानने ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वाचतयासार्द्धं प्रत्यक्षास्तेभवंस्तदा ॥ त्रयोदेवागताःपार्थ नर्मदायोत्तरेतटे ॥ ७३ ॥ प्राप्तावरन्तुसादेवी प्रियंमाहेन्द्रपर्वते ॥ क्षीणदेहाचसानारी शुष्कदेहासुदारुणा ॥ ७४ ॥ कृतयज्ञोपवीतासा तपोनिष्ठाशुभेक्षणा ॥ शिलातलेनिषण्णासापश्यत्कान्तंमहाव्रतम् ॥ ७५ ॥ हृष्टातुष्टामहादेवी तिष्ठकान्तेतिचाब्रवीत् ॥ तान्दृष्ट्वासमुनिर्धीमान्पुनःकान्तामुवाचह ॥ ७६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे अनसूयेमहाव्रते ॥ असाध्यंसर्वनारीणां वरंप्राप्तासिदुर्लभम् ॥ ७७ ॥ अनसूयोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्महर्षेहं वरंप्राप्ताचदुर्लभम् ॥ तेनाहंतेप्रयच्छामि पुत्रानृषितपोधनान् ॥ ७८ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी हर्षेणमहतायुता ॥ आ

चलीगई दुबली, सूखी व खरखरी देहवाली व यज्ञोपवीत को पहने हुये तपकरनेवाली व अच्छे नेत्रोंवाली वे अनसूया शिलापर बैठी हुई बड़े व्रतवाले अपने पति को देखती हुई ॥ ७४।७५ ॥ और बडी प्रसन्न व सन्तुष्ट अनसूया देवी हे कान्त ! खड़ेहो ऐसे कहती हुई उनको देख बड़े बुद्धिमान् अत्रिमुनि अपनी स्त्री से बोले ॥७६॥ अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! हे महाव्रते ! हे अनसूये ! वाह २ सब स्त्रियों को असाध्य व दुर्लभ वरको तुमने पाया है ॥ ७७ ॥ तब अनसूया बोलीं कि हे महर्षे ! आपके प्रसादसे दुर्लभ वरको मैंने पायाहै उससे ऋषि व तपस्याके करनेवाले पुत्रोंको हम तुमको देवेंगी ॥७८॥ ऐसे कह बड़े आनन्दसे युक्त व मङ्गलरूप अनसूयाने तब

लोकयत्तदाकान्तं तेनापिशुभदर्शना ॥ ७९ ॥ दर्शनादेवसञ्जातं ललाटेमण्डलंशुभम् ॥ नवयोजनसाहस्ररश्मिजालसमावृतम् ॥ ८० ॥ कदम्बगोलकाकारं त्रिगुणंपरिमण्डलम् ॥ तस्यमध्येतुदेवेशः पुरुषोदिव्यरूपधृक् ॥ ८१ ॥ हेमवर्णस्सवैदेवस्सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ पूर्वपुत्रोऽनसूयायास्साक्षाद्देवःपितामहः ॥ ८२ ॥ चन्द्रमाइतिविख्यातः सोमःपुत्रोन्टपात्मज ॥ इष्टःपुत्रोवरीयांस्तु कलाषोडशसंयुतः ॥ ८३ ॥ प्रतिपच्चद्वितीयाच तृतीयाचतथान्टप ॥ चतुर्थीपञ्चमीषष्ठी सप्तमीचाष्टमीतथा ॥ ८४ ॥ नवमीदशमीचैव तथाचैकादशीपरा ॥ द्वादशीचत्रयोदशी चतुर्दशीततःपरम् ॥ ८५ ॥ ततःपञ्चदशीदेवी पूर्णमासीप्रकीर्तिता ॥ अमावास्यातुविख्याता अथसाषोडशीकला ॥ ८६ ॥ चतुर्विधस्यलोकस्य सूक्ष्मोभूत्वावरानने ॥ आप्यायतेजगत्सर्वं सोमोऽयंसचराचरम् ॥ ८७ ॥ सुरासुराश्चगन्धर्वा राक्षसाःपन्नगास्तथा ॥ पिशाचाश्चतथादित्याः पितरश्चपितामहाः ॥ ८८ ॥ सर्वेतमुपजीवन्ति हुतंद्रव्यंतुतास्थितम् ॥ वनस्पतिगतेसोमे यश्छिन्द्याच्चवनस्पतिम् ॥ ८९ ॥ भुङ्क्तेदुःखंचवैमूढो हत्यब्दकृतंशुभम् ॥ वनस्पतिगतेसोमे योमन्देहन्त

अपने पतिको देखा ॥ ७९ ॥ देखतेही अत्रि के माथे पर एक शुभ मण्डल पैदा होगया जोकि नव हजार योजन तक प्रकाश करनेवाली किरणों के जालसे युक्त ॥ ८० ॥ व कदम्ब के गोलाके समान आकारवाला है उससे तिगुना उसका परिमण्डल होता हुआ उसके बीच में दिव्यरूपको धरेहुये देवताओं का स्वामी व सोने कासा रंगवाला व करोडों सूर्यों के समान प्रकाशवाला पुरुष देखपडा वे साक्षात् ब्रह्माही अनसूया के पहले पुत्र होतेहुये ॥ ८१ । ८२ ॥ हे नृपात्मज ! चन्द्रमा व सोम नाम से प्रसिद्ध सोलह कलाओं से युक्त व सबसे श्रेष्ठ प्यारा पुत्र होताहुआ ॥ ८३ ॥ परेवा, दुइज, तीज, चौथि, पञ्चमी, छठ, सप्तमी तथा अष्टमी ॥ ८४ ॥ नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, तेरस, चौदस ॥ ८५ ॥ तदनन्तर पद्रहवीं पूर्णमासी कहीगईहै और सोलहवीं कला अमावसहै ॥ ८६ ॥ हे वरानने ! यह चन्द्रमा सूक्ष्म होकर चार प्रकार के जीवोंवाले सम्पूर्ण चराचर जगत् को बढाताहै ॥ ८७ ॥ देवता, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पिशाच, आदित्य, पितर और पितामह ॥ ८८ ॥ ये सब इसी से जीते हैं और होमीहुई चीज चन्द्रमाही में रहती है चन्द्रमा को वनस्पति में प्राप्तहुये पर जो वनस्पति को काटता है ॥ ८९ ॥ वह मूढ़ अपने सालभर के किये

हुये पुण्यको जलाता है और दुःख भोगता है व चन्द्रमाको वनस्पति में प्राप्तहुये पर जो दतून करता है ॥ ९० ॥ उसने मानो चन्द्रमाको खाडाला और अपने पितरों के वंशको नाश करदिया और हे राजेन्द्र ! अमावस के दिन जो विधि से स्नान करता है॥ ९१ ॥ तो हे विशालाक्षि ! उसके पितरोंकी सालभर तक परमगति रहती है सोना, चादी और कपडेको जो ब्राह्मणोंको देताहै ॥ ९२ ॥ तो हे राजन्! वह सब लाख गुनेको पाताहै इसमें संशय नहीं है ऐसे गुणोंसे युक्त चन्द्रमारूप ब्रह्मा होते हुये ॥ ९३ ॥ अनसूया का आनन्द देनेवाला प्रथम पुत्र यह हुआ अब हे महाभाग ! दूसरा दुर्वासा नामका पुत्र ॥ ९४ ॥ सृष्टिके संहार करनेवाले स्वय साक्षात् महादेवजी आपही होतेहुये उन द्वितीय पुत्र दुर्वासाजी ने इन्द्रको भी शाप दिया है ॥ ९५ ॥ दूसरे पुत्रकी उत्पत्ति मैंने कही तीसरे पुत्र दत्तात्रेय नाम से विष्णु होतेहुये ॥ ९६ ॥ जगत् के व्यापी व जगत् के नाथ स्वयं साक्षात् विष्णु भगवान् ब्रह्मा और महादेव समेत अवतार लेतेहुये हे महाभाग ! ॥ ९७ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले तटपर पुत्रप्राप्तिपद नामका तीर्थ है हे पार्थ ! अनसूया का बनाया हुआ वह सब पापोंका क्षय करनेवालाहै ॥ ९८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे एरण्डीतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

धावनम् ॥ ९० ॥ चन्द्रमाभक्षितस्तेन पितृवंशस्तुघातितः ॥ अमावास्यान्तुराजेन्द्र स्नानंकुर्य्याद्यथाविधि ॥ ९१ ॥ अब्दमेकंविशालाक्षि पितृणांपरमागतिः ॥ हिरण्यंरजतंवस्त्रं योददातिद्विजातिषु ॥ ९२ ॥ सर्वंलक्षगुणंराजल्लँभते नात्रसंशयः ॥ एतद्गुणविशिष्टोसौ सोमरूपःप्रजापतिः ॥ ९३ ॥ सञ्जातःप्रथमःपुत्रोऽनसूयायास्तुनन्दनः ॥ द्वितीयस्तुमहाभाग दुर्वासानामनामतः ॥ ९४ ॥ सृष्टिसंहारकर्ताच स्वयंसाक्षान्महेश्वरः ॥ इन्द्रोपिशापितस्तेन द्वितीयेनवरानने ॥ ९५ ॥ द्वितीयस्यतुपुत्रस्य सम्भवःकथितोमया ॥ दत्तात्रेयस्तुनाम्नावै तृतीयोमधुसूदनः ॥ ९६ ॥ जगद्व्यापीजगन्नाथस्स्वयन्देवोजनार्दनः ॥ अवतीर्णोमहाभागब्रह्मशम्भुसमन्वितः ॥ ९७ ॥ पुत्रप्राप्तिपदंतीर्थं नर्म्मदायोत्तरेतटे ॥ अनसूयाकृतंपार्थ सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे एरण्डीतीर्थमहिमानुवर्णनोनामत्रयोदशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! इसके बाद तीनों लोकों में प्रसिद्ध व सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम सौवर्ण तीर्थ है ॥ १ ॥ उस सङ्गमके समीप नर्मदा मे स्नान दुर्लभ है और हे नराधिप ! उस पुण्यक्षेत्र में वह स्थान हाथ भर का है ॥ २ ॥ उस सुवर्णशिलक में स्नानकर बडी अच्छी शान्ति को प्राप्त होताहै सूर्य की मूर्तिको बनाकर ॥ ३ ॥ घी मिले बेल व बहुत बेलपत्रों से अग्निमें हवनकरे और यह कहे कि जगत्के नाथ इससे प्रसन्न होवे और मेरा रोग हमेशाको जाता रहे ॥ ४ ॥ अगर ब्राह्मणों से उसका जवाब देदिया जावे तो यज्ञके फलको पावे और वहां के दानसे मरकर प्रसन्नचित्त स्वर्ग को पाता है ॥ ५ ॥ और हे नृदेव ! उपास

मार्कण्डेयउवाच ॥ एतस्यानन्तरंपार्थ सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषु सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ रेवायांदुर्लभंस्नानं सङ्गमस्यसमीपतः ॥ विभक्तंहस्तमात्रञ्च पुण्यक्षेत्रेनराधिप ॥ २ ॥ सुवर्णशिलकेस्नात्वा शान्तिंयाति परांशुभाम् ॥ निर्मित्वाभास्करन्देवं होतव्यन्तुहुताशने ॥ ३ ॥ विल्वेनघृतमिश्रेण विल्वपत्रेणभूरिणा ॥ प्रीयतांहिजगन्नाथो व्याधिर्नश्यतुमेसदा ॥ ४ ॥ द्विजेभ्यश्चेत्प्रयुक्तंस्याद्यागस्यफलमाप्नुयात् ॥ तत्रदानेनप्रीतात्मा मृतःस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ शुक्लपक्षेतथाष्टम्यां सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं नृदेवभक्तितोनरः ॥ ६ ॥ समुद्धरेत्कुलेतत्र दशपूर्वान्दशापरान् ॥ काञ्चनंवापियोदद्याद्धेनुंचैवसुशोभनाम् ॥ ७ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ पूजयित्वाशिवंतत्र शत्रूणांविजयोभवेत् ॥ ८ ॥ पुत्रवान्गुणवांश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ इत्येवंकथितंराजन्सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेतीर्थं करण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रख्यातंसर्वलोकेषु नर्म्मदायो

किये व इन्द्रियो को जीतेहुये जो मनुष्य उजियाले पाखकी अष्टमी को वहां भक्ति से श्राद्ध करता है ॥ ६ ॥ वह वहीं अपने कुलके आगे पीछेवाले दश २ पुरुषों को उद्धार करता है और जो सोना व अच्छी गऊको देता है ॥ ७ ॥ वह अतिउत्तम स्थानको जाता है जहां महादेवजी हैं वहां महादेवका पूजनकरके शत्रुओं का विजय होता है ॥ ८ ॥ और सब रोगो से रहित, पुत्र व गुणोंवाला होता है हे राजन् ! यह उत्तम सौवर्ण तीर्थ कहागया है ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि इसी बीच मे सब

लोकों में प्रसिद्ध नर्मदाके उत्तरवाले तटपर उत्तम करण्डेश्वर तीर्थ है ॥ १० ॥ जोकि सब पापों व सब दुःखोंका हरनेवाला व श्रेष्ठ कहागयाहै हे राजेन्द्र ! तदनन्तर मनुष्यो के पापोंके नाश करनेवाले अतिउत्तम दिव्य सौभाग्यकरण नाम के तीर्थ को जावे हे नृपनन्दन ! वहा जो अभागी स्त्री व पुरुष ॥ ११ । १२ ॥ स्नानकर महादेव और पार्वती का पूजन करता है उसका सौभाग्य होजाता है इन्द्रियों को जीतेहुये व तीजको दिनरातका उपास कियेहुये ॥ १३ ॥ वहां अच्छे रूपवाले सपत्नीक ब्राह्मण को निमन्त्रण करे और सुगन्धित मालाओं से उसे भूषित व फूल और धूप से अधिवासित कर ॥ १४ ॥ खीर व खिचड़ी को भक्ति से खिलावे योग्यता के

त्तरेतटे ॥ १० ॥ सर्वपापहरंप्रोक्तं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥ ततोगच्छेच्चराजेन्द्र तीर्थंपरमशोभनम् ॥ ११ ॥ सौभाग्यकरणं दिव्यं नराणांपापनाशनम् ॥ तत्रयादुर्भगानारी नरोवानृपनन्दन ॥ १२ ॥ स्नात्वार्चयेदुमारुद्रं सौभाग्यंतस्यजायते ॥ तृतीयायामहोरात्रं सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ निमन्त्रयेद्द्विजंतत्र सपत्नीकंसुरूपिणम् ॥ गन्धमाल्यैरलंकृत्य पुष्पधूपाधिवासितम् ॥ १४ ॥ भोजयेत्पायसान्नेन कृशरेणाथभक्तितः ॥ भोजयित्वायथान्यायं प्रदक्षिणमथाचरेत् ॥ १५ ॥ त्वन्तुदेवोमहादेवसपत्नीकोवृषध्वज ॥ यथातेदेवदेवेश नवियोगःकदाचन ॥ १६ ॥ सोमनाथाख्यकार्पण्यात्तंध्यायामीहचिन्तयन् ॥ ज्येष्ठेशुक्लेतृतीयायां सौभाग्येनर्मदाजले ॥ १७ ॥ स्नात्वादत्त्वाचसुभगा नप्रियेणवियुज्यते ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ नदौर्भाग्यंनदारिद्र्यं नशोकोनचदुर्गतिः ॥ १८ ॥ एतत्सर्वंभवेद्येन तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दौर्भाग्यंदुर्गतिश्चैव दारिद्र्यंशोकवर्द्धनम् ॥ १९ ॥ वैधव्यंसप्तजन्मानि जायतेनयुधिष्ठिर ॥ कर्म्मणाये

साथ भोजन करवाके फिर उनकी प्रदक्षिणा करे ॥ १५ ॥ और कहे कि हे वृषध्वज, महादेव ! आप तो सपत्नीक देवहो हे देवदेवेश ! जैसे आपका कभी वियोग नहीं होता है वैसेही मेरा भी वियोग मतहोवे ॥ १६ ॥ क्योंकि हे सोमनाथाख्य ! मैं दीनता से आपही की चिन्ता व ध्यान करताहूं जेठ सुदी तीजको सौभाग्य तीर्थबिषे नर्मदाके जलमे ॥ १७ ॥ स्नान व दान कर अपने पतिसे कभी वियोगको नहीं प्राप्त होती है तब युधिष्ठिरजी बोले कि कुरूपता,दरिद्र,शोक और दुर्गति ये सब जिससे नहीं होते है वह सब मुझ से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि कुरूपता, दुर्गति, दरिद्र, शोक ॥ १८।१९ ॥ और विधवापन सातजन्मतक नहीं होताहै हे युधिष्ठिर ! जिस कर्म से

पापोंका क्षय होताहै उसको हम तुमसे कहते हैं ॥ २० ॥ विशेष करके जेठ मासके उजियाले पाखकी तीजको वहां जो भक्ति से स्नानकर पञ्चाग्नि तापता है ॥ २१ ॥ वह भी सब पापों से छूटजाता है इसमें संशय नहीं है और महादेव व पार्वती के समीप जो गूगुल जलाता है ॥ २२ ॥ उस कामके करने पर ब्राह्मण को कहेहुये फल होते हैं और मरने पर स्वर्गको प्राप्तहोता है ऐसा शङ्कर जी ने कहाहै ॥ २३ ॥ सफेद, लाल और पीले अनेक अच्छे कपड़ों से ब्राह्मणी व ब्राह्मणो को पहिनाय व अनेक प्रकारके अत्युत्तम फूल, चन्दन, धागा और धूप से यथाविधि पूजन कर व गले में सूत्र (यज्ञोपवीत) पहिनाय उनके केसर लगावे ॥ २४।२५ ॥

नपापानां क्षयस्तच्चवदामिते ॥ २० ॥ ज्येष्ठेमासेसितेपक्षे तृतीयायांविशेषतः ॥ तत्रस्नात्वातुयोभक्त्या पञ्चाग्निंसाधयेत्तपः ॥ २१ ॥ सोपिपापैरशेषैस्तु मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ गुग्गुलुंदाहयेद्यस्तु गौरीशिवसमीपतः ॥ २२ ॥ तस्मिन्कर्माणिविप्रस्य उक्तानिभवतेततः ॥ देहपातेकृतेस्वर्गमित्येवंशङ्करोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ श्वेतैरक्तैस्तथापीतैर्वस्त्रैश्चविविधैःशुभैः॥ब्राह्मणीर्ब्राह्मणांश्चैव पूजयित्वायथाविधि॥ २४॥पुष्पैर्नानाविधैश्चैव गन्धधूपैःसुशोभनैः ॥ कण्ठेसूत्रंसमाधाय कुङ्कुमेनविलेपयेत् ॥ २५ ॥ कल्पयित्वास्त्रियंगौरीं ब्राह्मणंशिवरूपिणम् ॥ ताभ्यांदद्यात्समादृत्य दानमुत्सृज्यवारिणा ॥ २६ ॥ कर्णवेष्टन्त्वङ्गदंच काञ्चनींमुद्रिकांतथा ॥ सप्तधान्यंतथादेयं भोजनंनृपसत्तम ॥ २७ ॥ अन्यानिचैवदानानि तस्मिंस्तीर्थेनरोत्तम ॥ सर्वदानैश्चयत्पुण्यं तत्पुण्यंत्रिगुणंभवेत् ॥ २८ ॥ तत्रसाहस्रगुणितं नात्रकार्य्याविचारणा ॥ शङ्करेणसमन्तत्र भुङ्क्तेभोगाननुत्तमान् ॥ २९ ॥ सौभाग्यंतस्यविपुलं जायतेनात्रसंशयः ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं निर्धनोधन

स्त्री को पार्वती और ब्राह्मण को महादेव मानकर व भलीभांति आदर करके उनके लिये जल सहित दानको त्यागकरदेवे ॥ २६ ॥ फिर हे नृपसत्तम ! कुण्डल, बजुल्ला, सोनेकी अंगूठी,सतनजा और भोजन देवे ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम ! उस तीर्थमे और दानों को भी देवे सब दानों से जो पुण्य होता है उससे तिगुना पुण्य तीर्थ मे ॥ २८ ॥ और इस तीर्थ मे हजार गुना होता है इसमें कुछ विचार नही करना चाहिये और वह महादेवके समान वहां अत्युत्तम भोगों को भोगताहै ॥ २९ ॥ और

उसका बड़ा सौभाग्य होता है इसमें संशय नहीं है पुत्र से रहित मनुष्य पुत्रको और निर्द्धन धन को पाता है ॥ ३० ॥ कामनाओं का देनेवाला यह तीर्थराज नर्मदा पर वर्त्तमान है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेसौभाग्यतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर दरिद्र के नाशकरनेवाले व इक्कीस पीढ़ियों के तारनेवाले उत्तम भाण्डारतीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां कुबेर ने तप किया उनसे ब्रह्माजी खुश हुये वहीं कुबेर ने अपने धनके दान से अक्षय धनको पाया ॥ २ ॥ वहां जाकर व स्नानकर जो धनका दान करताहै उसके धनका नाश

माप्नुयात् ॥ ३० ॥ कामदंतीर्थराजन्तु नर्म्मदायांव्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेसौभाग्यतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र भाण्डारंतीर्थमुत्तमम् ॥ दारिद्र्यभेदकरणं पुरुषांश्चैकविंशतिम् ॥ १ ॥ धनदेनतपस्तप्तं प्रसन्नःपद्मसम्भवः ॥ तत्रैवस्वस्वदानेन प्राप्तंवित्तमनन्तकम् ॥ २ ॥ तत्रगत्वातुयोभक्त्या स्नात्वावित्तं प्रयच्छति ॥ तस्यवित्तपरिच्छेदो नभवेच्चकदाचन ॥ ३ ॥ तस्यैवानन्तरंराजन्रोहिणीतीर्थमुत्तमम्॥ विख्यातंत्रिषुलोकेषु सर्वपापहरंपरम् ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ रोहिणीतीर्थमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रोतुमिच्छामितत्त्वेन तन्मेत्वंवक्तुमर्हसि॥ ५॥ मार्कण्डेयउवाच॥ तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ तस्योदरेशयानस्य देवदेवस्यपाण्डव ॥ ६ ॥ नाभ्यामभून्महत्पद्मं रविमण्डलसन्निभम् ॥ कर्णिकाकेसरयुतं पत्रैश्चसमलंकृतम्॥ ७॥तत्रब्रह्मासमुत्पन्न

कभी नहीं होता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उसीके बाद फिर सब पापोंका हरनेवाला व तीनों लोकों में प्रसिद्ध उत्तम रोहिणीतीर्थ है ॥ ४ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि सब पापों के नाश करनेवाले रोहिणीतीर्थ के माहात्म्यको हम तत्त्व से सुना चाहते हैं उसको तुम मुझसे कहने के योग्य होतेहो ॥ ५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि घोर एकार्णव व स्थावर और जङ्गम जीवों के नाश होने पर हे पाण्डव ! उस जलमें सोतेहुये भगवान् की ॥६॥ नाभि में डब्बी और केसरों से युक्त व पत्रों से सुहावना

सूर्यमण्डलके समान उत्तम कमल पैदाहुआ ॥ ७ ॥ उसमें कमल के समान चार मुखवाले ब्रह्मा पैदाहुये और चिन्ता करतेहुये भगवान्से कहा कि मैं क्या करूं तव तक ब्रह्माकी देहसे ॥ ८ ॥ हे भरताधिप ! वहीं मरीचि भगवान् होतेहुये फिर मरीचि से सब सृष्टिके बनानेवाले कश्यप हुये ॥ ९ ॥ उसी समयमें दक्षके पचास कन्या होतीहुई दक्ष ने उनमें से दश धर्मको और तेरह कश्यप को देदीं ॥ १० ॥ और सत्ताईस कन्या चन्द्रमा को दीं उनके बीच में चन्द्रमा कीसी मुखवाली जो रोहिणी नामकी कन्या थी ॥ ११ ॥ वह सब स्त्रियों को प्यारी और अपने पतिको विशेष प्यारी थी हे नराधिप ! फिर रोहिणी तपस्या के अर्थ निश्चय किये हुये ॥ १२ ॥

श्चतुर्वदनपङ्कजः ॥ किङ्करोमीतिदेवेशं चिन्त्यमानःस्वदेहतः ॥ ८ ॥ भगवानभवत्तत्र मरीचिर्भरताधिप ॥ मरीचेःक श्यपोजातस्सर्वसृष्टिकरस्ततः ॥ ९ ॥ दक्षस्यापितदाजाताः पञ्चाशत्कन्यकास्तुवै ॥ ददौसदशधर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ १० ॥ तथैवचपराःकन्याः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ रोहिणीनामयातासां मध्येताराधिपानना ॥ ११ ॥ अभी ष्टासर्वनारीणां भर्तुश्चापिविशेषतः ॥ ततस्सानिश्चयीभूता तपसेभोनराधिप ॥ १२ ॥ ततस्सानर्म्मदातीरेचचारविपुलं तपः ॥ एकरात्रंद्विरात्रञ्च षड्द्वादशतथापरैः ॥ १३ ॥ पक्षमासोपवासैश्च कर्षयन्तीकलेवरम् ॥ आराधयन्तीसततं महि षासुरमर्द्दिनीम् ॥ १४ ॥ स्नात्वास्नात्वाजलेनित्यं नर्म्मदायाःशुचिस्मिता ॥ ततस्तुष्टामहाभागा देवीनारायणीनृप॥ १५ ॥ प्रसन्नातेमहाभागे व्रतेननियमेनच ॥ ददामितेनसन्देहो वरंवृणुयथेप्सितम् ॥ १६ ॥ एवंश्रुत्वातुवचनं रोहिणी शशिनःप्रिया ॥ वरंवव्रेततोदेवीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ सर्वासांचसपत्नीनामधिकाशशिनःप्रिया ॥ यथाभवानिद्य

नर्मदा के तटमें बड़े तपको करती हुई एक रात,दो रात, छह दिन, बारह दिन, एक पाख और महीनों के उपासों से अपने शरीर को दुबला कर रही व निरन्तर दुर्गाजीका आराधन कररही ॥ १३ । १४ ॥ उस पवित्र मुसक्यानवाली ने नर्मदाके जलमें नित्य नहाय २ कर नियमों को किया हे नृप ! तब बड़े भाग्यवाली देवी भगवती प्रसन्न हुई ॥ १५ ॥ और बोलीं कि हे महाभागे ! तुम्हारे व्रत व नियमोंसे प्रसन्न होरहीं हम तुमको वर देवेंगी इससे तुम अपने मनके वरको निस्संदेह मांगो ॥ १६ ॥ ऐसे वचनको सुन चन्द्रमा की प्यारी रोहिणी ने वरमांगा तदनन्तर देवी से इस बचन को बोली ॥ १७ ॥ कि जैसे सब सौतियों के बीचमें अधिक व चन्द्रमा·

की प्यारी आपके प्रसादसे हम जल्द होजावें वैसा करो ॥ १८ ॥ तब पार्वतीसे वे रोहिणी कहीगई कि ऐसाही हो और भक्तिमे परायण देवताओंसे स्तुति कीगई वहीं अन्तर्द्धान होगई ॥ १६ ॥ हे नृपसत्तम ! तब से रोहिणी देवी चन्द्रमा की प्यारी व सब लोकों की प्यारी होगई ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो स्त्री व पुरुष भक्ति से स्नान करता है तो वह स्त्री अपने पतिको रोहिणी की तरह प्यारी होती है ॥ २१ ॥ और उस तीर्थमें जो कोई प्राणों को त्यागकरता है उसका सातजन्मों तक वियोग नहीं होताहै ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापोंके क्षयकरनेवाले व सेनापुर नाम से प्रसिद्ध अत्युत्तम चक्रतीर्थको जावे ॥ २३ ॥ वहां सेना-

चिरात्त्वत्प्रसादात्तथाकुरु ॥ १८ ॥ एवमस्त्वितिसाप्रोक्ता भवान्याभक्तितत्परैः ॥ स्तूयमानासुरगणैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६ ॥ तदाप्रभृतिसादेवी रोहिणीशशिनःप्रिया ॥ संजातासर्वलोकस्य वल्लभानृपसत्तम ॥ २० ॥ तत्रतीर्थेतुया नारी नरोवास्नातिभक्तितः ॥ वल्लभाभवतेसातु भर्तुर्वैरोहिणीयथा ॥ २१ ॥ तत्रतीर्थेषुयःकश्चित्प्राणत्यागंकरोतिच ॥ सप्तजन्मानितस्यैव वियोगोनैवजायते ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ सेनापुरेतिविख्यातं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ २३ ॥ सेनापत्येभिषिक्तेन देवदेवेनचक्रिणा ॥ अभिषिक्तोमहासेनस्सदेवेन्द्रपुरोगमैः ॥ २४ ॥ दानवस्यवधार्थाय विजयायदिवौकसाम् ॥ भूमिदानेनविप्रेन्द्रांस्तर्पयित्वायथाविधि ॥ २५ ॥ शङ्खभेरीनिनादेन पटहानाञ्चनिःस्वनैः ॥ वीणाभिश्चमृदङ्गैश्च झल्लरीकांस्यतालकैः ॥ २६ ॥ तच्छ्रुत्वानिनदंघोरं दानवोबलदर्पितः ॥ सुराणामाविघातार्थमभिषेकस्यचाग्रतः ॥ २७ ॥ हस्त्यश्वरथपत्त्याद्यैः परिपूर्णोरवाकुलैः ॥ २८ ॥ ततस्तुतांरौद्रवरस्य

पति होने के वास्ते अभिषेक को प्राप्त हुये देवताओं के देवता विष्णुजी ने इन्द्र आदि देवताओं के सहित स्वामिकार्त्तिकेय का अभिषेक किया है ॥ २४ ॥ तारकासुर दानव के मारने के वास्ते व देवताओं के विजयके वास्ते पृथिवी के दानसे ब्राह्मणों को विधिपूर्वक तृप्तकर ॥ २५ ॥ शंख, भेरी, पटह, वीणा, मृदङ्ग, झल्लरी, झांझ, और तालियों को बजाया ॥ २६ ॥ अपने बलसे अभिमान को प्राप्त दानव उस घोर बाजोंके शब्दको सुनकर देवों के नाश करनेके वास्ते अभिषेकके आगे ॥ २७ ॥

शब्दोंसे भरेहुये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल आदि से संयुक्त आताहुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस भयानक सेनाको महात्मा विष्णुजी ने शार्ङ्गधनुष से छूटेहुये अति पैने बाणों से हाथी, घोड़े और रथोंको विध्वंसकर चक्रको छोड़ा ॥ २९ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी चारों तरफ व्याप्त भयानक चक्रको देख वहां का रहना छोड़ बड़े तपको करतेहुये ॥ ३० ॥ लोकोंके धारण करनेवाले विष्णु ने दैत्योंके नाशके वास्ते चक्रको छोड़ा उसने विह्वल सेनाको जलाया और आप निर्मल जलमें गिरपड़ा ॥ ३१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से वह चक्र पापरहित होगया वर्षाऋतु के उजियाले पाखकी द्वादशी को हे भारत ! ॥ ३२ ॥ क्रोधको जीतेहुये विष्णुजी के प्यारे चक्रतीर्थ

वाहिनीं शरैस्सुशार्ङ्गोज्झितकैस्सुतीक्ष्णैः ॥ विध्वस्यहस्त्यश्वरथान्महात्मा चक्रंविमुक्तंमधुघातिनाच ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तुभीषणंचक्रमभिव्याप्तंषडाननः ॥ त्यक्त्वातत्राप्यवस्थानंचकारविपुलंतपः ॥ ३० ॥ चक्रंमुक्तंविनाशाय हरिणालोक धारिणा ॥ विह्वलांदाहयामास पपातविमलेजले ॥ ३१ ॥ निष्पापंतच्चसंजातं नर्म्मदायाःप्रभावतः ॥ प्रावृट्कालेशुभे पक्षे द्वादश्यांचैवभारत ॥ ३२ ॥ यश्चयातिजितक्रोधश्चक्रतीर्थंहरिप्रियम् ॥ सोपिपापैःप्रमुच्येत यमंघोरंनपश्यति ॥ ३३ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपंदेवस्यदापयेत ॥ कथाञ्चवैष्णवींतत्र देवदेवंसमाहितः ॥ ३४ ॥ भीमव्रतंचपाराकं कृच्छ्रंचान्द्रायणंतथा ॥ व्रतंसान्तपनंदेवत्रिरात्रव्रतकंभृशम् ॥ ३५ ॥ तरेद्वैतरणीमन्तेभीमंचक्रमहर्निशम् ॥ कूटशाल्मलिवृक्षांश्चकदाचिन्नैवपश्यति ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंसर्वंचक्रतीर्थस्ययत्फलम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ * ॥ * ॥

को जो जाताहै वह भी पापोंसे छूटजाता और घोर यमराजको नहीं देखताहै ॥ ३३ ॥ रातको जागरण कर विष्णु को दीपदान करे और सावधान होकर वहीं विष्णु को स्मरण करताहुआ विष्णु की कथा को सुने ॥ ३४ ॥ और भयानक व्रत पाराक, कृच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपन और देवत्रिरात्रव्रत को अत्यन्त करे ॥ ३५ ॥ तो अन्त में वैतरणी को तरजाता है और दिन रात घूम रहे भयानक चक्र, कूट और यमलोकके शाल्मली वृक्ष को कभी नहीं देखता है ॥ ३६ ॥ यह जो चक्रतीर्थका फल है सो सब तुम से कहागया ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचक्रतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर पूर्वकाल में विष्णु के बनायेहुये चक्रतीर्थ के समीप में महापापों के नाश करनेवाले धूमपात नाम के तीर्थ को जावे॥ १ ॥ किसी समय में तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली इस श्रेष्ठ देवी नर्मदा को अपने रनिवास के सहित जलके राजा वरुण ॥ २ ॥ हाथों के जेवरों से युक्त व निर्मल छविवाले व पुण्यवाले, सज्जन और प्यारे, अर्घपात्रसे संयुक्त अपने भाइयों के सहित आते हुये ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डल के समान व मोतियों से युक्त व मूंगाओंकी लताओं से युक्त व इन्द्रनीलमणियों से युक्त ॥ ४ ॥ अर्घको नर्मदाके वास्ते नदियों के स्वामी वरुण देतेहुये तब गङ्गा आदि सब नदिया और तापी, पयोष्णी, ॥ ५ ॥ नन्दिनी

मार्कण्डेयउवाच ॥ धूमपातंततोगच्छेन्महापातकनाशनम् ॥ समीपेचक्रतीर्थस्य विष्णुनानिर्मितम्पुरा ॥ १ ॥ मेकलांपरमान्देवीमिमांत्रैलोक्यपावनीम् ॥ कदाचित्पयसांराजा सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ २ ॥ शिष्टैरिष्टैर्बन्धुभिश्च अर्घपात्रेणसंयुतैः ॥ हस्ताभरणसंयुक्तैः पुण्यैरमलकान्तिभिः ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डलमानैश्च युक्तैर्मुक्ताफलैस्तथा ॥ प्रवाललतिकाभिश्च इन्द्रनीलसमन्वितैः ॥ ४ ॥ अर्घंददौतदातस्यैवरुणस्सरितांपतिः ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्सर्वास्तापीचापिपयोष्णिका ॥ ५ ॥ नन्दिनीनलिनीपुण्या सर्वमर्घंददुस्तदा ॥ नर्म्मदोवाच ॥ मदीयेसङ्गमेदिव्ये स्नात्वासन्तर्प्पयन्तिये ॥ ६ ॥ तस्यसप्तकुलोत्पन्नांस्तारयामिनसंशयः ॥ जलाञ्जलिंततोदत्त्वा समुद्रोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ धन्योहंकृतकृत्योहं त्वयादेविवरानने ॥ समायातासिभद्रन्ते मांचात्रपावनंकुरु ॥ ८ ॥ नर्म्मदोवाच ॥ पवित्रोसिमहाभाग एकाकीत्वंमहोदधे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंभगवतीराजन्नर्म्मदामेकलाशुभा ॥ ९ ॥ पूजितासागरेणापि शुभेसिंहासनेस्थिता ॥ पाणिग्रहंष्ट

और पुण्यवाली नलिनी आदि सब नदिया अर्घ देतीहुई तब नर्मदा बोलीं कि हमारे दिव्य सङ्गममें स्नान कर जो तर्पण करते हैं ॥ ६ ॥ उनके सातकुलों में उत्पन्न हुये पुरुषों को हम तारदेती हैं इस में संशय नहीं है तदनन्तर जलाञ्जलि देकर समुद्र वचन बोला कि ॥ ७ ॥ हे वरानने, देवि ! आपसे मैं धन्य और कृतकृत्यहू आप आईहो आपका कल्याण हो यहां मुझको पवित्र करो ॥ ८ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे महाभाग, महोदधे ! तुम आपही पवित्रहो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् !

शुभ, कल्याण देनेवाली, भगवती नर्मदा ॥ ६ ॥ उत्तम सिंहासन पर बैठी हुई समुद्र से भी पूजीगई और हे भारत ! पुरुकुत्स राजासे वे व्याहीगई ॥ पुरुकुत्सकी स्त्री वे नर्मदा गृहस्थी के धर्मसे युक्त हे राजन् ! उसी श्रेष्ठ सङ्गममें निश्चय करके सदा रहती हैं ॥ ११ ॥ हे पृथिवीपते ! उस बड़े जल्समें देवताओं कीहुई फूलोंकी वर्षा होतीहुई और नर्मदाका वहां स्वयंवरभी हुआ ॥ १२ ॥ वहा जो श्राद्ध पितरोंका तर्पण करताहै और स्थान बनवाताहै वह लाख यज्ञों के फलको पाकर मुक्तहोजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥ इसप्रकार तीनोंलोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा तीनोंलोकोंसे पूजनेयोग्यहैं हे महाभुज ! उसका अतुल माहात्म्य

हीतासा पुरुकुत्सेनभारत ॥ १० ॥ पुरुकुत्सस्यभार्य्यासागृहधर्म्मेणसंयुता ॥ सदांवैवर्ततेराजंस्तत्रैवसङ्गमेशुभे ॥ ११ ॥ पुष्पवृष्टिस्तदाह्यासीत्रिदशानांमहोत्सवे ॥ तत्रस्वयंवरश्चासीत्सरितःपृथिवीपते ॥ १२ ॥ तत्रयःकुरुतेश्राद्धं स्थानं चपितृतर्प्पणम् ॥ लक्षयज्ञफलंप्राप्य समुक्तोनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ एवंत्रैलोक्यपूज्याते नर्म्मदालोकपावनी ॥ तस्यासा हात्म्यमतुलं कीर्तितंहिमहाभुज ॥ १४ ॥ भक्त्याश्रुत्वामहाभाग रुद्रलोकेमहीयते ॥ आदिमध्यावसानेषु रेवामाहा त्म्यमुत्तमम् ॥ १५ ॥ यःकश्चिच्छृणुयाद्भक्त्या तस्यस्याद्वाञ्छितंफलम् ॥ श्रुत्वामाहात्म्यमतुलं योनरोहिजितेन्द्रि यः ॥ १६ ॥ दानंकुर्य्यात्तदातस्य सर्वकामार्थसिद्धयः ॥ पुस्तकंपूजयित्वातु धूपदीपकचन्दनैः ॥ १७ ॥ दानंतत्रप्रक र्तव्यं ब्राह्मणांश्चापिपूजयेत् ॥ श्रवणेनतुदानेन सुप्रीतानर्म्मदाभवेत् ॥ १८ ॥ तीर्थेतीर्थेचकथितं तत्पूर्वंपाण्डुनन्दन ॥ पुण्यंश्रुत्वातुमाहात्म्यं तद्दानेनैवपाण्डव ॥ १९ ॥ एतस्मात्कारणाद्दानं श्रुत्वादानंहिकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वाराजशार्दू

आपसे कहागया ॥ १४ ॥ हे महाभाग ! इस को भक्तिसे सुनकर रुद्रलोकमें सत्कार पाताहै इस खण्डमें आदि, मध्य और अन्तमें नर्मदाहीका उत्तम माहात्म्यहै ॥ १५ ॥ उसको जो कोई भक्तिसे सुनताहै उसको वाञ्छित फल होताहै इन्द्रियोंको जीते हुये जो मनुष्य नर्मदाके अतुलमाहात्म्यको सुनकर ॥ १६ ॥ दान करताहै तब उसकी सब काम और अर्थकी सिद्धियां होती हैं व धूप,दीप और चन्दन आदि से पुस्तक का पूजन कर ॥ १७ ॥ वहां दान करना चाहिये और ब्राह्मणों का भी पूजन करे सुनने और दानमे नर्मदा अतिप्रसन्न होती हैं ॥ १८ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तीर्थ तीर्थ में कहेहुये पुण्य व माहात्म्यको सुनकर हे पाण्डव ! उसको दानही से पूरा

करे ॥ १९ ॥ इसी कारणसे दानको सुन दान अवश्य करे क्योंकि पुण्यका कारण दानही है इस मार्कण्डेय के कहने को सुन राजाओं में उत्तम युधिष्ठिरजी ॥ २० ॥ रीति से अर्घको देकर व ऋषियों का पूजनकर घोडे, हाथी, रत्न और भाइयों के सहित धर्मराज ॥ २१ ॥ राजा युधिष्ठिर नर्मदा में तीर्थयात्रा शीघ्रही करते हुये उत्तर

श्रुत्वा मार्कण्डेयस्यभाषितम् ॥ २० ॥ अर्घंदत्त्वायथान्यायंपूजयित्वाऋषीन्सदा ॥ अश्वैर्गजैस्तथारत्नैर्भ्रातृभिस्सहधर्म्मराट् ॥ २१ ॥ तीर्थयात्रांचकाराशु नर्म्मदायांयुधिष्ठिर ॥ उत्तरेदक्षिणेतीरे स्नानपानावगाहनम् ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे युधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादे नर्म्मदाचरित्रवर्णनोनामषोडशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११६ ॥

इति स्कन्दपुराणस्यरेवाखण्डः ॥

और दक्षिणवाले तटपर स्नान, जलपान और अवगाहन करतेहुये ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेयुधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादेनर्मदाचरितवर्णनोनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

श्रुतिरसनवभूमितेऽब्दवृन्दे शुभ इषमास्यसिते दले कतिथ्याम् ॥ गुरुचरणकृतिर्हिमांशुवारेऽवसितिमगाज्जननीगिरा गरिष्ठा ॥ १ ॥

मातृभाषानुवादोऽयं शोधितश्चमुहुर्मुहुः ॥ विद्वद्वयप्रसादेन सर्वेषां मोदहेतवे ॥ १ ॥ शुभमस्तु ॥

प्रथमवार

लखनऊ

सुपरिटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
सन् १९०८ ई०।

इति स्कन्दपुराणरेवाखण्डसमाप्तः ॥

अथ स्कन्दपुराणअवन्तीखण्डः प्रारम्भः ॥

स्कन्दपुराणरेवाखण्डान्तर्गताऽवन्तीखण्डस्य सूचीपत्रं व्याख्यायते ॥

इति श्रीमद्द्विजवरपण्डितगालिधरसंकलितभवन्तीखण्डस्यसूचीपत्रंसमाप्तिमगाद्दितीयम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

स्कन्दपुराणरेवाखण्डान्तर्गत

अवन्तीखण्ड सटीक

दोहा ॥ सिद्धिसदन गजवदनके, चरण कमल शिरनाय । यहि अवन्ति माहात्म्य कर, तिलक करहुँ सुखदाय ॥ १ ॥ पूंछ्यो व्यास मुनीश सन, महाकाल परभाव । सनतकुमार सोई कह्यो, प्रथम माहिं प्रस्ताव ॥ २ ॥ प्रजाओं के रचनेवाले भी देवता प्रबल संसार के भय से जिनको प्रणाम करते हैं और सावधान मनवाले व ध्यान संयुत चित्तवालों के चित्तमें जो भलीभांति पैठे हुये हैं और वे लोकों के आदिदेव श्रीमहाकाल नामक शिवजी उत्कर्ष को प्राप्तहोवैं जोकि

स्रष्टारोपिप्रजानां प्रबलभवभयाद्यंनमस्यन्तिदेवा यश्चित्तेसम्प्रविष्टोप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनांच ॥ लोकानामादिदेवः सजयतुभगवाञ्छ्रीमहाकालनामा बिभ्राणःसोमलेखामहिवलययुतंव्यक्तलिङ्गंकपालम् ॥ १ ॥ उमोवाच ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पुण्याश्चसरितस्तथा ॥ कथ्यतांतानियत्नेन श्राद्धंयेषुप्रदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अस्तिलोकेषुविख्याता गङ्गात्रिपथगानदी ॥ सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥ ३ ॥ तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ॥ पितॄणांवल्लभादेवि महापातकनाशिनी ॥ ४ ॥ चन्द्रभागावितस्ताच नर्म्मदाऽमरकण्टकम् ॥

चन्द्रमाकी कला व सर्पके कंकण संयुत व प्रकट चिह्नवाले कपाल को धारण कियेहैं ॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि पृथ्वीमें जो तीर्थ व पवित्र नदियांहैं उनको यत्नसे कहिये कि जिनमें श्राद्ध दीजाती है ॥ २ ॥ महादेव जी बोले कि तीन मार्गोंसे चलनेवाली गंगा नदी सब लोकोंमें प्रसिद्ध हैं जोकि देवताओं व गंधर्वों से सेवित तथा मुनियों से सेवित है ॥ ३ ॥ व हे देवि ! लोकों को पवित्र करनेवाली तथा बड़ेभारी पापों को नाशनेवाली सूर्यकी कन्या यमुना देवीजी पितरों को प्यारी हैं ॥ ४ ॥

और हे देवि ! चन्द्रभागा, वितरता, नर्मदा, अमरकण्टक, कुरुक्षेत्र, गया, प्रभास व नैमिष ॥ ५ ॥ हे देवि ! केदार, पुष्कर व कायावरोहण तथा उत्तम महाकालवन अत्यन्त पवित्र है ॥ ६ ॥ जहां पर पापरूपी ईंधन को जलाने के लिये अग्नि श्रीमहाकालीजी हैं वह चार कोस तक क्षेत्र ब्रह्महत्यादि पातकोंका विनाशक है ॥ ७ ॥ और वह क्षेत्र सुखदायक व मुक्तिदायक तथा कलियुग के पातकों का विनाशक है व हे देवि ! प्रलय में अविनाशी तथा देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे महेश्वर देवजी ! इस क्षेत्रके माहात्म्य को कहिये क्योंकि वहां पर जो तीर्थ हैं और जो लिंग हैं ॥ ९ ॥ उनको मैं सुनना चाहता हूं क्योंकि मुझको बहुत

कुरुक्षेत्रंगयांदेवि प्रभासंनैमिषन्तथा ॥ ५ ॥ केदारंपुष्करञ्चैव तथाकायावरोहणम् ॥ तथापुण्यतमन्देविमहाकाल वनंशुभम् ॥ ६ ॥ यत्रास्तेश्रीमहाकालः पापेन्धनहुताशनः ॥ क्षेत्रंयोजनपर्यन्तं ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ७ ॥ भुक्तिदंमुक्तिदंक्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ॥ प्रलयेप्यक्षयंदेवि दुष्प्रापंत्रिदशैरपि ॥ ८ ॥ उमोवाच ॥ प्रभावःकथ्यता न्देव क्षेत्रस्यास्यमहेश्वर ॥ यानितीर्थानिविद्यन्ते यानिलिङ्गानिसन्तिवै ॥ ९ ॥ तान्यहंश्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलंहि मे ॥ १० ॥ महादेवउवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन प्रभावंपापनाशनम् ॥ क्षेत्रमाद्यंमहादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरंरत्नचित्रितम् ॥ वैराजभवनन्नाम ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ १२ ॥ तत्रदिव्याङ्गनागी तमधुरस्वरनादिता ॥ पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥ १३ ॥ बहुवाद्यसमुत्पन्नसुमहास्वननादिता ॥ लय तालयुतानेकगीतवादित्रनादिता ॥ विन्यस्ताकोटिभिःस्तम्भैर्निर्मलादर्शशोभिता ॥ १४ ॥ अप्सरोनृत्यविन्यासवि

आश्चर्य्य है ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पापनाशक प्रभावको बडे यत्नसे सुनिये हे महादेवि ! समस्त पातकों का नाशक वह आदि क्षेत्र है ॥ ११ ॥ श्री सुमेरुगिरि के समीप जो रत्नों से बनाहुआ शिखर परमात्मा ब्रह्माजी का वैराजनामक मन्दिर है ॥ १२ ॥ वहा पर देवांगनाओं के गान से मधुर ध्वनि करके शब्दित व पारिजात वृक्षोंसे आच्छादित तथा मंजरी की मालाओं से शोभित ॥ १३ ॥ और बहुत से बाजाओं से उत्पन्न बडे भारी शब्दों से ध्वनित तथा लय व ताल से संयुत अनेक गीतों व बाजनों से शब्दित व करोड़ों खम्भोंसे शोभित तथा निर्मल शीशों से शोभित ॥ १४ ॥ और अप्सराओं के नृत्य करने के विलास (लीला)

तथा हर्षसे शोभित कांतिमती नामक सभा देवों को आनन्द देनेवाली है ॥१५॥ उस सभामें बैठे हुये व ब्रह्मा तथा शिवजी के आराधन मे परायण ब्रह्मा के मानसी पुत्र ब्रह्मर्षि सनत्कुमार जीको ॥ १६ ॥ मुनियों के मध्य से उठकर पराशरजीके पुत्र कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिने विधिपूर्वक प्रणामकर ॥ १७ ॥ व जुड़ेहुये हाथोंवाले होकर शिवजी की भक्ति से शुद्ध चित्तवाले और प्रसन्न रोम व मुखवाले उन्हों ने बड़ी प्रसन्नतासे प्राणियों के मोहको नाशनेवाले महाकालजी के माहात्म्य को पूंछा व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! महाकालजी के क्षेत्र के माहात्म्य को कहिये ॥ १८। १९ ॥ कि सब से उत्तम महाकालवन किस लिये कहा जाता है और ऊपरसमेत

तस्यांनिविष्टं वागीशशङ्कराराधनेरतम्॥ ... लासोल्लासशोभिता ॥ सभाकान्तिमतीनाम्नी देवानांहर्षदायिका ॥ १५ ॥ पराशरसुतोव्यासः सनत्कुमारंब्रह्मर्षिं ब्रह्मणोमानसंसुतम् ॥ १६ ॥ मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनोमुनिः ॥ हृषितांगरुडाननः ॥ प्रणिपत्ययथाविधि ॥ १७ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा भवभक्त्यानुभावितः ॥ पप्रच्छपरयातुष्ट्या महाकालस्यकथ्यताम् ॥ १८ ॥ महाकालस्यमाहात्म्यं प्राणिनांमोहनाशनम् ॥ व्यासउवाच ॥ भगवन्क्षेत्रमाहात्म्यं फलंयथास्यक्षेत्रस्य १९ ॥ महाकालवनंकस्मात् प्रोच्यतेसर्वतोवरम् ॥ कथंगुह्यवनंप्रोक्तं पीठंसऊषरन्तथा ॥ २० ॥ मृतानाञ्चगतिर्यथा ॥ स्नानेनयद्भवेत्पुण्यं दानेनापिचयत्फलम् ॥ २१ ॥ कथमेतच्छ्मशानञ्च क्षेत्रंप्रोक्तंयथातथा ॥ पृष्टोमेशङ्करेभक्तिं ब्रूहित्वंशास्त्रकोविद ॥ २२ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ क्षीयतेपातकंयस्मात तेनेदंक्षेत्रमुच्यते ॥ यस्मा त्स्थानञ्चमातृणां पीठन्तेनैवकथ्यते ॥ २३ ॥ मृताःपुनर्नजायन्ते तेनेदमूषरंस्मृतम् ॥ गुह्यमेतत्प्रियन्नित्यं क्षेत्रंश

पीठ व गुह्यवन किस कारण कहा गया है ॥ २० ॥ और जिस प्रकार इस क्षेत्र का फलहोवै और मरे प्राणियोंकी जिस भांति गति होती है व स्नान से जो पुण्य होती है और दान से भी जो फलहोताहै उसको कहिये ॥ २१ ॥ और कैसे यह श्मशान क्षेत्र कहा गया है हे शास्त्रकोविद ! जिस प्रकार तुम पूछेगये हो उसी भांति सदाशिवजी में भक्ति को कहिये ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जिस लिये पातक नष्ट होता है उसी कारण यह क्षेत्र कहा जाता है और जिसलिये मातृगणो का स्थान है उस कारण पीठ कहा जाता है ॥ २३ ॥ व जिस लिये यहां मरेहुये पुरुष फिर उत्पन्न नहीं होते हैं उससे यह ऊषर कहा गया है और महात्मा सदाशिव जी

समेत आकाश हुआ ॥ ७ ॥ उस समय बीचमें पांच मुखोंवाले व चारभुजाओंवाले ब्रह्मा हुये इसके अनन्तर महादेवजीने अनुमानकर इनको सृष्टिमें युक्त किया ॥ ८ ॥ कि हे महाबाहो ! मेरी दयासे विचित्र सृष्टि कीजिये यह कहकर कहीं भी अन्तर्द्धान होगये और ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ९ ॥ प्रेरणा कियेहुये भी ब्रह्मा जी सृष्टि करने के लिये समर्थ न हुये और उन्हो ने शिवदेव जीको चिन्तन किया व ब्रह्मा मे ध्यान किये जातेहुये भगवान् शिवजीने ज्ञानके लिये ॥ १० ॥ ब्रह्माकी तपस्यासे प्रसन्न होकर छह अङ्गोंवाले वेद को दिया व वेदके मिलनेपर भी वे ब्रह्माजी बहुत दिनों तक सृष्टि करने क लिये न समर्थ हुये ॥ ११ ॥ फिर ब्रह्माजी ने शिवजी को

श्चतुर्भुजः ॥ महेश्वरोनुमान्यैतमयोजयदनन्तरम् ॥ ८ ॥ कुरुसृष्टिंमहाबाहो विचित्रांमदनुग्रहात् ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितःक्वापि देवोब्रह्मानज्ञातवान् ॥ ९ ॥ प्रेर्यमाणोपिवैस्रष्टुं नाभूद्देवमचिन्तयत् ॥ ब्रह्मणाध्यायमानश्च ज्ञानार्थंभगवान्भवः ॥ १० ॥ ब्रह्मणस्तपसातुष्टः प्रादाद्वेदंषडङ्गकम् ॥ लब्धेवेदेपिनचिरात् सृष्टिंकर्तुंशशाकसः ॥ ११ ॥ तपसाराधयद्भूयः समाराधयितुंभवम् ॥ नापश्यत्सयदादेवं तदातुष्टावभावतः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमःशिवायामलसत्त्वचेतसे गुणत्रयातीतविसारितेजसे ॥ षडङ्गवेदस्यममापिवेधसः परस्यरूपानुभवायचक्षुषे ॥ १३ ॥ नमोस्तुतेसृष्टिविधौरजोजुषे जगत्स्थितौसत्त्वमधिष्ठितायते॥ विनाशहेतौतमसोपयोगिने शिवायनिर्वाणसुखप्रदायिने ॥ १४ ॥ अशेषभूतप्रकृतेःपरायवै परात्मरूपायनमःशिवायवै ॥ नबुद्ध्यहङ्कारमनोविधाय धात्रेचषड्विंशकरूपकाय ॥ १५ ॥ भूवायु

आराधनके लिये तपस्या से आराधन किया और उन्होंने जब शिवदेवजीको नहीं देखा तब भक्तिसे स्तुति किया ॥१२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि निर्मल व सत्त्वचित्तवाले तथा तीनों गुणों से परे व फैले हुये तेजवाले शिवजी के लिये प्रणाम है और रूपके अनुभव (ज्ञान) के लिये षडङ्गवेद व मुझ परमात्मा ब्रह्मा के नेत्ररूप शिवजी के लिये प्रणाम है॥ १३ ॥ और सृष्टि करने मे रजोगुणसेवी तुम्हारे लिये प्रणाम है व संसार के पालन में सत्त्वगुण मे स्थित आप के लिये प्रणाम है और विनाश के लिये तमोगुण से युक्त तथा मोक्षसुखके देनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ समस्त प्राणियों की प्रकृति से परे व परमात्मारूप शिवजी के लिये प्रणामहै

और मनुष्यों की बुद्धि अहङ्कार व मनको विधान करनेवाले विधाता के लिये तथा छब्बीस तत्त्वात्मकरूपवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व पृथ्वी, पवन, अग्नि, आकाश, जल, चन्द्रमा व सूर्य तथा यजमानात्मकरूपी जिनके शरीरों से यह भूत, भविष्य, वर्तमान संसार व्याप्त है उन शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ इस संसार में जो तेज व लोकहैं तथा जो भूत, भविष्य कारण हैं वे सृष्टिमें होते हैं और प्रलयमें जिनके शरीरमें नाशको प्राप्त होतेहैं उनको मैं प्रणाम करताहूं ॥ १७ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! इस प्रकार स्तुति करतेहुये ब्रह्माजी से अन्तर्द्धानमें प्राप्त भगवान् शिवजी यह बोले कि हे ब्रह्मन् ! वरदान को मांगिये ॥ १८ ॥

वह्न्यम्बरवारिचन्द्रसूर्यात्मरूपाभिरिदंतनूभिः ॥ व्याप्तंजगद्यस्यनमोस्तुतस्मै भूतंभविष्यंत्त्वथवर्तमानम् ॥ १६ ॥ यानीहतेजांसिजगन्तियानि भूतानिभव्यान्यथकारणानि ॥ भवन्तिसृष्टौविलयंविनाशे व्रजन्तियस्यात्मनितंनमामि॥ १७ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंसंस्तुवतोव्यास ब्रह्मणोभगवान्परः ॥ अन्तर्हितउवाचेदं ब्रह्मन्संवाच्यतांवरः ॥१८॥ सवव्रेमनसापुत्रं अवंगौरवकारणात् ॥ विज्ञायान्तर्गतंतस्य परमेशउवाचतम् ॥ १९ ॥ यस्मान्मांमनसापुत्रं चतुर्मुखसमीहसे ॥ कस्मिंश्चित्कारणेतस्मादहंछेत्स्यामितेशिरः ॥ २० ॥ अयाच्यंयाचितंयस्मान्ममांशोनीललोहितः ॥ रुद्रोभविष्यतिसुतः सचतेहिंस्यतिप्रभाम् ॥ २१ ॥ अन्यद्यस्मात्स्मृतोभक्त्या त्वयाहंपितृभावतः ॥ परब्रह्मस्वरूपेण जिज्ञासाममयाकृता ॥२२॥तस्माद्ब्रह्मेतिलोकेत्र नामख्यातंभविष्यति ॥ पितामहत्वंयेनापि ततोह्यसिपितामहः ॥२३॥

उन ब्रह्माजी ने गौरव के कारण शिवजी से मन करके पुत्रको मांगा व उनके चित्तमें प्राप्त कारण को जानकर परमात्मा शिवजी ने उनसे कहा ॥ १९ ॥ कि हे चतुरानन जी ! जिसलिये मुझ से तुम मन करके पुत्रको चाहते हो इस लिये मैं किसी कारण में तुम्हारा मस्तक काटूंगा ॥ २० ॥ जिस लिये न मागने योग्य वर मागा गया इस कारण मेरा अंश नीललोहितरुद्र पुत्र होगा और वह तुम्हारी प्रभाको नाश करैगा ॥ २१ ॥ और जिस लिये तुमने मुझको पिताके भाव से स्मरण किया व परब्रह्म के स्वरूप से जो मेरे जानने की इच्छा कीगई ॥ २२ ॥ उसकारण इस संसार में ब्रह्मा ऐसा नाम प्रसिद्ध होगा और जिस लिये मुझमें पितामह

का भाव किया गया उससे पितामह हो ॥ २३ ॥ इस प्रकार शाप व वरदानको पाकर उन्होंने पुत्रोंकी सृष्टि किया और अपने तेज से पैदाहुई अग्नि में हवन करते हुये इन ब्रह्माजी के पसीना बहचला ॥ २४ ॥ और समिधा संयुत हाथसे मस्तकको पोंछतेहुये इनका मस्तक छिदगया व उससे रक्तका एक बूंद अग्नि में गिरपड़ा ॥ २५ ॥ और वह बडाभारी नीललोहित हुआ व तदनन्तर शिवजी की आज्ञा से वह रुद्र पुत्र प्राप्तहोकर समीप उतरता भया ॥ २६ ॥ जोकि पांच मुखोंवाला व दश भुजाओंवाला तथा त्रिशूल, धनुष, तलवार व शक्तिको लिये और पन्द्रह नेत्रोंवाला और भयंकर व सर्पोंके जनेऊ को पहने था ॥ २७ ॥ और चन्द्रमा समेत

लब्ध्वाशापवरावेवं पुत्रसृष्टिंचकारसः ॥ स्वतेजोजनितंवह्निं जुह्वतःस्वेदआवहत् ॥ २४ ॥ समिद्युक्तेनहस्तेन ललाटंमार्जतोभवत् ॥ छिन्नंभृष्टस्ततोरक्तबिन्दुरेकोविभावसौ ॥ २५ ॥ सनीललोहितोभूयात्सचरुद्रोभवाज्ञया ॥ तदनन्तरमासाद्य उत्ततारसुतोन्तिकात् ॥ २६ ॥ पञ्चवक्त्रोदशभुजो शूलचापासिशक्तिमान् ॥ त्रिपञ्चनयनोरौद्रो व्यालयज्ञोपवीतकः ॥ २७ ॥ सेन्दुंकपर्दंविभ्राणः सिंहचर्मधरोवरः ॥ जातमेवंसुतंदृष्ट्वा ब्रह्मानामाकरोत्तदा ॥ २८ ॥ नीललोहितनामेति भवरुद्रपिनाकधृक् ॥ ततःप्रववृतेसृष्टिः स्रष्टुर्लोकपितामहात् ॥ २९ ॥ सप्तादौमानसाञ्जज्ञे सनकादींस्ततोपरान् ॥ मरीचिदक्षप्रभृतीन्मन्वादींश्चततोसृजत् ॥ ३० ॥ अष्टभेदान्सुरान्कृत्वा तिर्यग्योनिश्चपञ्चधा ॥ मनुष्यानेकभेदांश्च सृष्टिमेवंससर्जह ॥ ३१ ॥ सृष्टिःसुरादिकाजाता कृत्वाब्रह्माणमप्यधः ॥ प्रणम्याथसिषेवुस्ते केवलं

जटाजूटको धारे और सिंहके चर्मको धारण किये व उत्तमथा उस समय पैदा हुये ऐसे पुत्रको देखकर ब्रह्माने नाम किया ॥ २८ ॥ कि हे रुद्र, पिनाकधारी ! तुम नीललोहित ऐसे नामवाले होवो तदनन्तर लोकोंके पितामह ब्रह्माजीसे सृष्टि वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ पहले सात मानसी पुत्रोंको पैदा किया तदनन्तर अन्य सनकादिकोंको उत्पन्नकिया उसके उपरान्त मरीचि व दक्षादिकोंको व मनु आदिकोंको रचा ॥ ३० ॥ और आठ भेदकर देवताओंको रचा व पांच प्रकारकी तिर्यक्योनि याने पशु आदिकोंको रचा और एक भेदवाले मनुष्योंको रचा इसभांति सृष्टिको उत्पन्नकिया ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा को भी नीचेकर देवादिक सृष्टि उत्पन्न हुई और उन्होंने केवल नीललोहित

को प्रणाम कर सेवा किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने रुद्रजी से कहा कि तुमने मुझको अपूजनीय किया जिस लिये अपने तेजसे आप पूजनीयहो उसीकारण हिमालयको जाइये ॥ ३३ ॥ नीललोहित भी उन ब्रह्माजी से यह कह कर कि आपने मुझको नहीं पूजा तदनन्तर ये शिवजी वहां गये जहां कि भगवान् शिवजी थे ॥३४॥ तदनन्तर रजोगुणसे बढेहुये ब्रह्माजी मूढ़ होगये और अपकारी सृष्टिको मानते हुये ब्रह्माने तेजसे संतप्त किया ॥ ३५ ॥ मेरे तुल्य देवता नहीं है कि जिसने देवता, दैत्य, गंधर्व,पशु व पक्षियों से व्याप्त सृष्टिको बढ़ाया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार वे पांच मुखोंवाले ब्रह्माजी सृष्टि से गर्वित हुये और उन ब्रह्माजी का सुन्दर शब्दवाला

नीललोहितम् ॥३२॥ ततोब्रह्मावदद्रुद्रमपूज्योहंत्वयाकृतः॥ स्वतेजसाभवान्पूज्यो यतोयाहिहिमालयम् ॥ ३३ ॥ तन्नीललोहितोप्युक्त्वा भवतानार्चितोह्यहम् ॥ ततोजगामरुद्रोसौ सयत्रभगवान्भवः ॥ ३४ ॥ ततोब्रह्माभवन्मूढो रजसा चोपबृंहितः ॥ ततापतेजसासृष्टिं मन्यमानोह्यपाकृताम् ॥ ३५ ॥ मत्तुल्योनास्तिवैदेवो येनसृष्टिःप्रवर्द्धिता ॥ सदेवासुरगन्धर्वपशुपक्षिमृगाकुला ॥ ३६ ॥ एवंमूढस्सपञ्चास्योविरञ्चिःसृष्टिदर्पितः ॥ प्राग्वक्त्रंसुस्वरंतस्य ऋग्वेदस्यप्रवर्तकम् ॥ ३७ ॥ द्वितीयंवदनंतस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् ॥ तृतीयंवदनंतस्य सामवेदप्रवर्तकम् ॥ ३८ ॥ चतुर्थंवदनंचास्याथर्ववेदप्रवर्तकम् ॥ साङ्गोपाङ्गेतिहासांश्च सरहस्यान्ससंग्रहान् ॥ ३९ ॥ वेदानधीत्यवक्त्रेण पञ्चमेनससर्जसः ॥ तस्यासुरास्सुरास्सर्वे वक्त्रस्याद्भुततेजसः ॥ ४० ॥ तेजसानप्रकाशन्ते दीपास्सूर्योदयेयथा ॥ सपुत्राअपिसोद्वेगा बभूवुर्नष्टचेतसः ॥ ४१ ॥ नाभिगन्तुन्नद्रष्टुंच चिरन्तेनोपसर्पितुम् ॥ अभिभूतमिवात्मानं मन्यमानाश्चविद्विषः ॥ ४२ ॥ सर्वेते

पहला मुख ऋग्वेद का प्रवर्तक हुआहै ॥ ३७ ॥ और उन ब्रह्माजी का दूसरा मुख यजुर्वेद का प्रवर्तक (उत्पन्न करनेवाला) हुआहै व उनका तीसरा मुख सामवेद का प्रवर्तक हुआ ॥ ३८ ॥ और इन ब्रह्माजीको चौथा मुख अथर्ववेदका प्रवर्तक हुआ है और रहस्यों समेत व संग्रहों सहित तथा अंगों व उपागों समेत इतिहासों को ॥ ३९ ॥ व वेदोंको पांचवें मुखसे पढ़कर उन ब्रह्माजी ने रचाहै और अद्भुततेजवाले उस मुखके तेजसे समस्त देवता व दैत्य नहीं प्रकाशित होतेथे जैसे कि सूर्योदय में दीपक नहीं शोभित होते हैं पुत्रों समेत भी वे देवता नष्ट ज्ञानवाले होकर उद्वेग (दुःख) समेत हुये ॥ ४० । ४१ ॥ और बहुत देरतक वे सामने जाने

के लिये व देखने के लिये तथा समीप में जाने के निमित्त न समर्थ हुये और अपना को तिरस्कृतसे मानते हुये शत्रुवोंसे रहित ॥ ४२ ॥ उन सब देवताओं ने अपने हितकी सम्मति किया कि ब्रह्मा के तेजसे बुद्धिरहित हम लोग सदाशिवजी की शरण में प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ क्या उसके स्थान को हम नहीं जानते हैं कि जहां पर स्थित उन सदाशिवजीको इस समय हम लोग भक्ति से देखेंगे अन्य किसी उपाय से न देखेंगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सम्मति कर उस समय हाथोंको जोडकर उन देवताओं ने उत्तम स्वर की संपदा से शिवजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महेश्वरजी ! आपके लिये नम-

मन्त्रयामासुर्देवावैहितमात्मनः ॥ गच्छामशरणन्देवं निष्प्रज्ञाब्रह्मतेजसा ॥ ४३ ॥ किंतस्यैवनजानीमः स्थानंयत्र व्यवस्थितम् ॥ तम्भीममत्रद्रक्ष्यामो भक्त्यानान्येनकेनचित ॥ ४४ ॥ एवंसंमन्त्र्यतेदेवाः कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ चक्रुःस्तोत्रंमहेशस्य परयास्वरसम्पदा ॥ ४५ ॥ देवाऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेश महेश्वरनमोनमः ॥नविद्मःपरमंमूढाअ भिधानंतवातुलम् ॥ ४६ ॥ यद्योगेनपरंब्रह्म भूतानांत्वंसनातनः ॥ प्रतिष्ठासर्वभूतानां हेतुस्सर्वस्यसर्जने ॥ ४७ ॥ बि भर्तिचैवनेत्रस्थान्सोमसूर्यविभावसून् ॥ नामसङ्कीर्तनादेव मुच्यन्तेजन्तवोऽशुभात् ॥ ४८ ॥ पृथिव्यम्ब्वग्निचन्द्रार्क व्योमवायूपलक्षणाः ॥ मूर्तयस्तेमहादेव व्याप्तमाभिरशेषतः ॥ ४९ ॥ रजःसत्त्वतमोभावैर्भ्राम्यमाणंत्वयाजगत् ॥ नावबुध्यतिसर्वेश सर्वमूर्तिधरोयतः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादीनांसुरेशानां सम्मोहनविमोहनः ॥ त्वङ्करोषियुगावर्तं कालेकालेच

स्कार है नमस्कार है हमलोग मूढ़ तुम्हारे अमित तथा उत्तम नामको नहीं जानते हैं ॥ ४६ ॥ कि जिसके योग से परब्रह्म से लगाकर प्राणियों के तुम सनातन देव हो और सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा व सबके रचने में कारणहो ॥ ४७ ॥ और नेत्रोंमें टिके हुये चन्द्रमा सूर्य व अग्नि को धारण या पालन करते हो व आपके नाम को कीर्तन करने से प्राणी अशुभसे छूटजाते हैं ॥ ४८ ॥ हे महादेवजी ! पृथ्वी, जल,अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, आकाश व पवन लक्षणोंवाली तुम्हारी मूर्तियां हैं व इन से सब व्याप्त है ॥ ४९ ॥ हे सर्वेश ! तुम से रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुणभावसे भ्रमाया हुआ संसार ज्ञानको नहीं प्राप्तहोता है क्योंकि सब मूर्तियों के धारनेवाले

हो ॥ ५० ॥ और तुम ब्रह्मादिक देवेशों का संमोह व विमोह याने अज्ञान व ज्ञान करते हो और समय समय में असह्य युगावर्तको करते हो ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवता, ऋषि, पितर व मनुष्यों से इस प्रकार भलीभाति स्तुति किये जातेहुये ये सदाशिवजी अन्तर्द्धान होकर यह बोले कि हे देवताओ ! जैसा मनोरथ हो वैसा कहिये ॥ ५२ ॥ देवता लोग बोले कि हे शिवजी ! हमलोग सदैव तुम्हारे प्रत्यक्ष दर्शनकी प्रार्थना करते हैं और दयासे हम लोगोंको आप वरदान भी दीजिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि हम लोगों का बडा प्रभाव था और हमलोगों का जो पराक्रमथा वह सब पांच मुखोंवाले ब्रह्मा के तेज से ग्रसित होगया ॥ ५४ ॥ हे महेश्वर,

दुस्सहम् ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंसंस्तूयमानोसौदेवर्षिपितृमानवैः ॥ अन्तर्हितउवाचेदं देवाब्रूतयथेप्सितम् ॥ ५२ ॥ देवाऊचुः ॥ प्रत्यक्षंदर्शनंस्थाणो प्रार्थयामस्सदातव ॥ त्वयाकारुण्यतोस्माकं वरश्चापिप्रदीयताम् ॥५३॥ यदस्माकंमहद्वीर्यं यश्चास्माकंपराक्रमः ॥ तत्सर्वंब्रह्मणोग्रस्तं पञ्चमास्यस्यतेजसा ॥ ५४ ॥ विनेशुस्सर्वतेजांसि त्वत्प्रसादात्पुनर्विभो ॥ जायन्तेतद्यथापूर्वं तथाकुरुमहेश्वर ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ प्रत्यक्षंदर्शनंदत्त्वादेवानामनुकम्पया ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा देवैश्चापिनमस्कृतः ॥ ५६ ॥ आश्वास्यचसुरान्सर्वान् सहदेवैर्महेश्वरः ॥ प्रत्यक्षमेत्यपश्चाच्च चलितःशर्वएवहि ॥ ५७ ॥ जगामतत्रयत्रासौ रजोहङ्कारमूर्तिमान् ॥ देवाःस्तुवन्तोदेवेशं परिवार्यउपाविशन् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मातमागतन्देवं नजज्ञेतमसावृतः ॥ सूर्यकोटिसहस्राणां तेजसारञ्जयज्जगत् ॥ ५९ ॥ तदादृश्यतविश्वा

विभो ! सब तेज नष्ट होगये जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से पहलेकी नाईं फिर तेज उत्पन्न होवैं वैसाही कीजिये ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवताओं को दयासे प्रत्यक्ष दर्शन देकर प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं से प्रणाम कियेगये ॥ ५६ ॥ और सब देवताओं को आश्वासन कर प्रत्यक्ष में प्राप्तहोकर पश्चात् देवताओं समेत महादेवजी चले ॥ ५७ ॥ और ये शिवजी वहां गये जहां कि रजोगुण से अहंकार की मूर्तिको धारण किये ब्रह्माजी थे और देवेश शिवजीकी स्तुति करते हुये देवता घेर कर समीप बैठ गये ॥ ५८ ॥ अज्ञानसे घिरेहुये ब्रह्माजीने उन आयेहुये शिवदेवजीको न जाना और उन शिवजी ने करोड़ों हजार सूर्यों के तेज से संसार

को रंगदिया ॥ ५९ ॥ उस समय विश्वभोगी व विश्वात्मा तथा विश्वभावन शिवजी देख पड़े और उन शिवजी ने बैठे हुये ब्रह्मा व सब देवमण्डल को तेज से तिरस्कार करते हुये ब्रह्माके आगे स्थित हुये और शिवजीके तेजसे तिरस्कृत ब्रह्माका मुख नहीं शोभित होताथा ॥ ६० । ६१ ॥ जैसे कि रात्रिमें प्रकाशसंयुत किरणों वाला चन्द्रमा सूर्योदय में नहीं शोभित होता है इसके अनन्तर अहंकार समेत ब्रह्माजी ने सनातन शिव देव पुत्रको देखकर ॥ ६२ ॥ उनके तेज से घिरेहुये उन्हों ने हाथही से उन शिवदेवजी को प्रणाम किया तदनन्तर भगवान् चन्द्रभालजीने अट्टहास छोड़ा ॥ ६३ ॥ व सब देवताओं के देखते व सुनतेहुये भयंकर वचन कहा

त्मा विश्वभुग्विश्वभावनः ॥ सपितामहमासीनं सकलन्देवमण्डलम् ॥ ६० ॥ तेजसाभिभवन्रुद्रः स्वयम्मोरग्रतःस्थितः ॥ रुद्रतेजोभिभूतञ्च ब्रह्मवक्त्रंनराजते ॥ ६१ ॥ रात्रौप्रकाशकिरणश्चन्द्रस्सूर्योदयेयथा॥ सगर्वोत्थात्मजंदृष्ट्वा रुद्रन्देवंसनातनम् ॥ ६२ ॥ अभिवन्देकरेणैव देवंतत्तेजसावृतः॥ ततोऽट्टहासंभगवान् मुमोचशशिशेखरः॥ ६३ ॥ पश्यतांसर्वदेवानां शृण्वतांवाचमुत्कटाम् ॥ तेनाट्टहासशब्देन मोहयित्वापितामहम् ॥ ६४ ॥ तेजोराशिःशशाङ्काभः शशाङ्कार्काग्निलोचनः ॥ वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ ६५॥ चकर्तकदलीगर्भे नरःकररुहैरिव ॥ छिद्यमानंचवक्त्रंच बुबुधेनपितामहः ॥ ६६ ॥ रुद्रस्यतेजसातस्मान्मोहितोननतिङ्गतः ॥ छिन्नंतस्यशिरःपश्चाद्रुद्रहस्तेस्थितन्तदा ॥ ६७॥ अपश्यद्दैवतैःसार्द्धरौद्रञ्चातिभयाज्ज्वलत् ॥ महेश्वरकरान्तस्थं नखैर्वक्त्रंविराजते ॥ ६८ ॥ ग्रहमण्डलमध्यस्थो

व उस अट्टहास के शब्द से ब्रह्मा को मोहकर ॥ ६४ ॥ चन्द्रमा के समान शोभावाले व तेजों की राशि तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रोंवाले शिवजी ने बायें अंगूठे के नखके अग्रभागसे ब्रह्माके पांचवें मस्तकको काटडाला ॥ ६५ ॥ जैसे कि मनुष्य नखों से केला के अन्तर्भागको काटडालता है और काटेजाते हुये मुखको ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ६६ ॥ इसलिये शिवजी के तेजसे मोहित ब्रह्माजी नतिको न प्राप्तहुये याने उन्होंने प्रणाम नहीं किया उस समय उनका कटाहुआ मस्तक शिवजी के हाथमें स्थितहुआ ॥ ६७ ॥ और देवताओं समेत उन्होंने बडे भयसे जलतेहुये उस भयानक मस्तकको देखा कि शिवजीके हाथमें प्राप्त मुख नखोंसे शोभित है ॥ ६८ ॥

मानो ग्रहों के मण्डलके मध्य में स्थित दूसरा चन्द्रमा है कपालसे संयुत चन्द्रभालजी ने उसको ऊपर फेंक नृत्य किया ॥ ६९ ॥ जैसे कि शिखर पै स्थित सूर्यसे कैलास पर्वत होवै तदनन्तर मस्तक कट जाने पर हृष्टपुष्ट देवता वृषध्वज ॥ ७० ॥ देवदेव कपालधारी शिवकी अनेक भांति के स्तोत्रोंसे स्तुति किया देवता लोग बोले कि कपाली व शंखधारी महाकालजीके लिये नित्यही प्रणामहैं ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्य व ज्ञानसे संयुत तथा स सुखोंको देनेवाले व गर्वविनाशक तथा सर्व देवमय के लिये नमस्कारहै ॥ ७२ ॥ तुम कालके संहार करनेवाले हो उसीकारण महाकाल हो और भक्तोंके दुःखोंके करनेवाले हो उसीसे दुःखसे विकल मनुष्य रुचता

द्वितीयइवचन्द्रमाः ॥ उत्क्षिप्यतत्कपालेन ननर्तशशिशेखरः ॥ ६९ ॥ शिखरेनसूर्येण कैलासइवपर्वतः ॥ छिन्नेव क्रेततोदेवा हृष्टपुष्टावृषध्वजम् ॥ ७० ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्देवदेवंकपालिनं। देवाऊचुः ॥ नमःकपालिनेनित्यं महाकालायशङ्खिने ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्यज्ञानयुक्ताय सर्वभोगप्रदायिने ॥ नमोदर्पविनाशाय सर्वदेवमयायच ॥ ७२ ॥ कालसंहारकर्तात्वं महाकालस्ततोह्यसि ॥ भक्तानांदुःखशमनो दुःखार्तस्तेनरोचते ॥ ७३ ॥ शङ्करोप्याशुभक्तानां तेनत्वंशङ्करःस्मृतः ॥ छित्त्वाब्रह्मशिरोयस्मात्कपालंचबिभर्तिच ॥ ७४ ॥ तेनदेवकपालीत्वं स्तुतोह्यद्यप्रसीदनः ॥ एवंस्तुतःप्रसन्नात्मा देवानुत्थायशङ्करः ॥ ७५ ॥ वृन्दारकेशोभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७६ ॥ शशिशकलमयूखैर्भासितोयत्कपर्दस्त्वमलगगनगङ्गातोयवीचीविचेयः ॥ विधृतसितकपालोमालयप्रश्चकास्ति सजयतिजितवेधाऊर्जितःप्राज्यतेजाः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे ब्रह्मशिरश्छेदोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥

है ॥७३॥ और शीघ्रही भक्तोंका कल्याण करनेवाले हो उसीसे शंकर कहेगये हो और जिस लिये ब्रह्माका मस्तक काटकर कपालको धारण करते हो ॥ ७४ ॥ उस कारण हे देव ! तुम कपालीहो आज स्तुति किये हुये तुम हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवो इसप्रकार स्तुति किये हुये प्रसन्न मनवालेसदाशिवजी देवताओंको उठाकर ॥ ७५ ॥ भगवान् देवेश शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ७६ ॥ चन्द्रखण्डकी किरणों से जिनका जटाजूट प्रकाशित है व निर्मल आकाशगंगा के जल की लहरियों में ढूंढ़ने योग्य व श्वेत कपाल को धारे व माला से शोभितहैं ब्रह्मा को जीतेहुये व बढ़ेभये वे बहुत तेजवाले शिवजी जयको प्राप्तहोवें ॥ ७७ ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दो० । ब्रह्मासन जिमि विष्णुजी, प्रायश्चित्त विधान । कह्यो तीसरे में सोई, चरित प्रमोद निधान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर मस्तक कटने पर क्रोध व मोह से घिरे ब्रह्माजी ने मस्तक में उपजेहुये पसीने को लेकर पृथ्वी में पटक दिया॥ १ ॥ और उनके पसीने से कुण्डलों को धारण किये व धनुष समेत तथा बड़े भारी तरकस समेत और सोने की कवच समेत पुरुष पैदा हुआ और वह बोला कि मैं क्या करूं ॥ २ ॥ शिवजी को दिखलते हुये ब्रह्माजीने उससे कहा कि पराक्रम से इस दुर्बुद्धि को मारडालो कि जिस प्रकार फिर न उत्पन्न होवै ॥ ३ ॥ ब्रह्माके वचन को सुनकर बड़े क्रोध को धारण किये व बाण को हाथ में लिये वह वीर

सनत्कुमारउवाच ॥ छिन्नेवक्त्रेततोब्रह्मा क्रोधेनतमसावृतः ॥ ललाटेस्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वाताडयद्भुवि ॥ १ ॥ तत्स्वेदात्कुण्डलीजज्ञे सधनुस्समहेषुधिः ॥ सस्वर्णकवचोवीरः किङ्करोमीत्युवाचह ॥ २ ॥ तमुवाचविरञ्चिस्तु दर्शयन्रुद्रमोजसा ॥ वध्यतामेषदुर्बुद्धिर्जायतेनयथापुनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा धनुरुद्यम्यपृष्ठतः ॥ सप्रतस्थेमहेशस्य बाणहस्तोतिरोषभृत् ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वापुरुषंचोग्रमभवद्विस्मितोभवः ॥ दिव्यबाणधनुर्हस्तं वेगविक्रान्तगामिनम् ॥ ५ ॥ मयानवध्योतिबलो सखाविष्णोर्भविष्यति ॥ अनुग्राह्योह्यहन्तेन सख्यर्थंतपसिस्थितः ॥ ६ ॥ चिन्तयन्नित्थमीशोपि विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ हुङ्कारध्वनिनाब्रह्मन् मोहयित्वाततोनरम् ॥ ७ ॥ प्रयावतदाहृष्टः क्रीडांकुर्वञ्जगत्स्थितौ ॥ यत्रनारायणःश्रीमांस्तपस्तेपेप्रतापवान् ॥ ८ ॥ अदृश्यस्सर्वभूतानां विश्वात्माविश्वसृग्विभुः ॥ तत्रप्राप्तोवि

धनुष को चढ़ाकर शिवजीके पीछे चला ॥ ४ ॥ और दिव्य बाण व धनुष को हाथमें धारे तथा वेगसे बहुत चलते भयंकर पुरुषको देखकर सदाशिवजी विस्मित हुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने यह विचार किया यह बड़ा बलवान् मुझ से मारने योग्य नहीं है और यह विष्णुमित्र होगा व उन विष्णुजी से मित्रता के लिये तपस्या में स्थित मैं दया करने के योग्य हूं ॥ ६ ॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुये शिव भी विष्णुजी के आश्रमगये तदनन्तर हे ब्रह्मन् ! हुंकारके शब्दसे नरको मोहित कर ॥ ७ ॥ संसार के पालन में क्रीड़ा करते हुये प्रसन्न शिवजी उस समय चलेही जाते थे जहां कि श्रीव प्रतापवान् नारायणजी ने तप किया है ॥ ८ ॥

जोकि पृथ्वी में एक अंगूठे से स्थित व तपस्या में परायण तथा व्याधिरहित थे और युगान्त में हजारसूर्यों के तेज से घिरे व अरूप थे ॥ १० ॥ पवित्र आधार (आसन) से संयुत पुराणपुरुषोत्तम नारायणजी को देखकर सदाशिव देवजी ने कपाल को आगे दिखलाकर यह कहा कि भिक्षा दीजिये विष्णुजी ने जलती हुई अग्निके समान स्थित व कपाल को हाथमें लिये रुद्रजी को देखकर चिन्तन किया ॥ ११ । १२ ॥ कि इस समय भिक्षा दानके अन्य कौन भिक्षुक है यह योग्य है ऐसा सङ्कल्प जोकि समस्त प्राणियों के अदृश्य व विश्वात्मा तथा संसारको रचनेवाले व समर्थथे वहां पर प्राप्तहोकर सदाशिवजी ने विष्णुजीको देखा ॥ ९ ॥

रूपात्सो ददर्शमधुसूदनम् ॥ ९ ॥ एकाङ्गुष्ठस्थितम्भूमौ तपोरतमनातुरम् ॥ युगान्तार्कसहस्रस्य तेजसावृतमद्भुतम् ॥ १० ॥ पुण्याधारसमायुक्तं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥ दृष्ट्वानारायणंदेवो भिक्षांदेहीत्युवाचह ॥ ११ ॥ कपालंदर्शयित्वाग्रे ज्वलज्ज्वलनवत्स्थितम् ॥ कपालपाणिसम्प्रेक्ष्य रुद्रंविष्णुरचिन्तयत् ॥ १२ ॥ कोन्योयोग्योभवेद्भिक्षुर्भिक्षादानस्यसाम्प्रतम् ॥ योग्योयमितिसङ्कल्प्य दक्षिणंभुजमर्पयत् ॥ १३ ॥ भेदान्तर्गतज्ञस्तं शूलेनशशिशेखरः ॥ ततोप्रवाहउत्पन्नश्शोणितस्यविभोर्भुजात ॥ १४ ॥ जाम्बूनदरसाकारो वह्निज्वालेवनिर्मलः ॥ निष्पपातकपालान्तः शम्भुनासंप्रतीच्छता ॥ १५ ॥ ऋज्वीवेगवतीक्षिप्रा दीधितीवाम्बरेरवेः ॥ पञ्चाशद्योजनादीर्घा विस्तारेदशयोजना ॥ १६ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंसा समुवाहहरेर्भुजात् ॥ कियन्तंकालमीशोहि भिक्षांजग्राहभावितः ॥ १७ ॥ दत्तान्नारायणेनाथ सत्पात्रेपात्रउत्तमे ॥ ततोनारायणःप्राह हरंपरमिदंवचः ॥ १८ ॥ सम्पूर्णंतवपात्रंहि ततोवैपरमेश्वरः ॥

कर दाहिनी भुजाको दिया ॥ १३ ॥ व चित्तके भीतर के जाननेवाले चन्द्रभालजीने त्रिशूल से उस भुजाको छेदन किया तदनन्तर व्यापक विष्णुजी की भुजा से रक्तका प्रवाह पैदाहुआ ॥ १४ ॥ और सुवर्णके समान आकारवाला व अग्निकी ज्वालाके समान निर्मल प्रवाह कपाल केभीतर गिरा और ग्रहण करते हुये उन शिवजीसे ॥ १५ ॥ वह सीधी तथा वेगवती क्षिप्रा नदी पचास योजन लम्बी व दशयोजन चौड़ी आकाश में सूर्यनारायणकी किरणकी नाईं शोभित हुई ॥ १६ ॥ और देवताओं के हजार वर्षतक वह नदी विष्णुजी की भुजा से बही और कितेक समयतक शुद्ध चित्तवाले शिवजी ने नारायण से उत्तम पात्र में दीहुई भिक्षाको ग्रहण

किया तदनन्तर विष्णुजी ने महादेवजी से इस उत्तम वचन को कहा ॥ १७ । १८॥ कि तुम्हारा पात्र पूर्ण होगया तदनन्तर परमेश्वर सदाशिवजी जल समेत मेघके समान विष्णुजी का वचन सुनकर ॥ १९ ॥ व चन्द्रमा सूर्य तथा अग्नि नेत्रोंवाले और मस्तक में चन्द्रमा से शोभित व अंगुली से घोटते हुये शिवजी ने तीनों नेत्रो से दृष्टिको कपाल मे लगाकर विष्णुजी से कहा कि कपाल बहुत पूर्ण होगया विष्णुजीने शिवजी का वचन सुनकर रक्तकी धाराको हरलिया ॥ २० । २१ ॥ व सदाशिवजी ने कपाल मे स्थित विष्णुजीके रक्तको देवताओं के हज़ार वर्षोंतक दृष्टिपातपूर्वक याने दृष्टिको लगाकर अपनी अंगुली से मथा ॥ २२ ॥ तदनन्तर रुधिर के

सतोयाम्बुदनिर्घोषं श्रुत्वावाक्यंहरेर्हरः ॥ १९ ॥ शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः ॥ कपालेदृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नेत्रैर्जनार्दनम् ॥ २० ॥ अङ्गुल्याघट्टयन्प्राह कपालंचातिपूरितम् ॥ श्रुत्वाहरिशम्भुवाक्यं रक्तधारांसमाहरत् ॥ २१ ॥ कपालस्थंहरेरीशः स्वाङ्गुल्यारुधिरन्तथा॥दिव्यंवर्षसहस्रंच दृष्टिपातममन्थयत् ॥ २२ ॥ मथ्यमानेततोरक्ते कललंबुद्बुदंक्रमात ॥ बभूवचततःपश्चात् किरीटीसशरासनः ॥ २३ ॥ सहस्रबाहुरक्ताक्षो धनुर्ज्यांसंस्पृशन्मुहुः ॥ बभूवतूणीरधरो वृषस्कन्धोऽङ्गुलित्रवान् ॥ २४ ॥ पुरुषोऽर्जुनसङ्काशो दिव्यमूर्तिर्वहन्॥तन्दृष्ट्वाभगवान्विष्णुःप्राह रुद्रमिदंवचः ॥ २५ ॥ कपालेभगवन्कोयं प्रादुर्भूतोभवन्नरः ॥ उक्तिंश्रुत्वाहरेरीशमुवाचहरेश्रृणु ॥ २६ ॥ नरोनामेति पुरुषः परमास्त्रविदांवरः ॥ यस्त्वयोक्तोनरइति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥ २७ ॥ नरनयणौचोभौ युगेख्यातौभविष्यतः॥

मथने पर कलल व बुद्बुद क्रमसे हुआ तदनन्तर पश्चात् किरीट को धारण किये व धनुष समेत पुरुष उत्पन्न ॥ २३ ॥ व धनुषकी पनचको बार २ स्पर्श करता हुआ वह हजार भुजाओंवाला व वृष के समान कन्धेवाला और अरुण नेत्रोंवाला तथा तरकस को धारण कि दस्तानों को धारण किये था ॥ २४ ॥ अर्जुन के समान दिव्य मूर्तिवाला वह पुरुष हुआ व उसको देखकर भगवान् विष्णुजीने रुद्रजी से यह वचन कहा ।॥ कि हे भगवन् ! कपालमें यह कौन पुरुष प्रकट हुआ है विष्णुजी के वचन को सुनकर उनसे बोले कि हे हरे ! सुनिये ॥ २६ ॥ कि नर नामक ऐसा पुरुष पर का जाननेवाला है जो तुमसे नर ऐसा कहागया

उससे नर होगा ॥ २७ ॥ और नर नारायण दोनों युग में प्रसिद्ध होवेंगे देवकार्योंके होने पर समर में व लोक पालन में ॥ २८ ॥ हे नारायणजी ! यह नर तुम्हारा मित्र होगा व तुम्हारे इकल्ले महामुनि की मित्रतामें तपस्याके ॥ २९ ॥ व विज्ञान की परीक्षा के विस्तार में तेज होगा अधिक तेजवाला यह ब्रह्मा का दिव्य पंचम शिर ॥ ३० ॥ ब्रह्मा के तेज से प्रकाशित है और तुम्हारी भुजाके रक्तसे व मेरी दृष्टिके पड़ने से तीन तेजहैं इस कारण ॥ ३१ ॥ उनके संयोग से उत्पन्न यह युद्धमें शत्रुओं को जीतैगा और जो तुम्हारे अवध्य होंगे और अन्य जो इन्द्र के दुःख से जीतनेय होंगे उन दैत्योंको यह भयंकर होगा इस प्रकार

संग्रामेदेवकार्येषु लोकानांपरिपालने ॥ २८ ॥ एषनारायणसखा नरस्तवर्भावति ॥ तवएकाकिनःसख्ये तपसश्च महामुनेः ॥ २९ ॥ विज्ञानस्यपरीक्षार्थे तेजोलोकेभविष्यति ॥ तेजोधिकमिदंयं ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ ३० ॥ तेजसाब्रह्मणोदीप्तं भुजस्यतवशोणितात् ॥ ममदृष्टिनिपाताच्चत्रीणितेजांसियान्यत ३१ ॥ तत्संयोगात्समुत्पन्नः शत्रून् युद्धेजयिष्यति ॥ अवध्यायेभविष्यन्ति दुर्जयास्तवचापरे ॥ ३२ ॥ शक्रस्यचामरीणां तेषामेपभयङ्करः ॥ एवमुक्तवतश्शम्भोर्विस्मितस्तस्यतेजसा ॥ ३३ ॥ हरेरपिसतत्रैव तुष्टावहरकेशवौ ॥ नमोहरेतुभ्यं नमःशङ्करविष्णवे ॥३४॥ नमस्तेशूलहस्ताय नमस्तेखड्गपाणये ॥ नमोनमस्तेमेध्याय हृषीकेशनमोस्तुते ३५ ॥ नमोस्तुवाचांपतये श्रीधरायनमोनमः ॥ एवंस्तुवन्तंतंव्यास कृताञ्जलिपुटन्नरम् ॥ ३६ ॥ तथैवाञ्जलिसंबद्धंगृहीत्वासुकरद्वयम् ॥ उद्धृत्याथकपालात्तु पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ३७॥ यएवपुरुषोरौद्रो ब्रह्मणःस्वेदसम्भवः ॥ सतुहुङ्कारशब्देन मोहनिद्रामुपागतः ॥३८॥

कहते हुये उन सदाशिवजी के व विष्णुजी के भी तेज से विस्मय में प्राप्त उसने वहीं पर महादेव व विष्णुजीकी स्तुति किया कि हे हर,हरे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शङ्कर तथा विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ३२ । ३३ । ३४ ॥ त्रिशूल हाथवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व तलवा को हाथ में धारे हुये तुम्हारे लिये नमस्कार है पवित्ररूप आपके लिये प्रणाम है हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये प्रणाम है॥ ३५ ॥वाचस्पति आपके लिये प्रणाम है व श्रीधर आपके लिये नमस्कार है हे व्यासजी ! हाथोंको जोड़े इस प्रकार स्तुति करते हुये उस नरके ॥ ३६ ॥ वैसेही अंजली में बँधेहुये दोनों हाथों को पकड़कर व कपालसे ऊपर निकालकर फिर शिवजी वचन

बोले ॥ ३७ ॥ कि ब्रह्मा के पसीने से उपजा हुआ जो भयंकर पुरुष है वह हुंकार के शब्द से मोहनिद्राको प्राप्त हुआ है ॥ ३८ ॥ उसको शीघ्रही जगावो ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये और नारायणके सामने शीघ्रही बायें चरण से मारकर उसको जगाया और वह नर क्रोध से उठा व पसीना तथा रक्तसे उपजे हुये उन दोनों का बडा भारी युद्ध हुआ ॥ ३९ । ४० ॥ कि जिस युद्धमें चढ़ाये हुये धनुषों के शब्दों से सब भूतल शब्दयमान होगया पसीना से उपजे हुये नरके एक कवच व रक्तसे उपजे हुये पुरुषके दो भुजायें शेष रहीं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हे सुद्विज ! तुल्य होने के कारण पृथ्वी में दिव्य युद्ध हुआ व तीन वर्ष कम दश सौ वर्षो

निबोधतंचत्वरितमित्युक्त्वान्तर्दधेहरः ॥ नारायणस्यप्रत्यक्षं बोधयामासस्नाङ्नरम्॥ ३९ ॥ वामपादेनतंहत्वा समुत्तस्थौनरोरुषा ॥ तयोर्युद्धंसमभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥ ४० ॥ विस्फारितधनुश्शब्दैर्नादिताशेषभूतलम् ॥ कवचंस्वेदजस्यैकं रक्तजस्यतथाभुजौ ॥ ४१ ॥ एवंसमेनवैयुद्धं दिव्यंजातन्तुभूतले ॥ त्रिवर्षोनिवर्षाणां शतानिदशसुद्विज ॥ ४२ ॥ युद्ध्यतोस्समतीतानि स्वेदरक्तजयोर्मुने ॥ रक्तजोद्विभुजोदृष्ट्वा कवचैकेनस्वेदजम् ॥ ४३ ॥ बिभेदबाणवेगेनब्रह्मणःस्वेदजंनरम् ॥ ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणंमधुसूदनः ॥ ४४ ॥ मन्नरेणोच्छ्रितब्रह्मंस्त्वदीयोविनिपातितः ॥ श्रुत्वा तदाकुलोब्रह्मा बभाषेमधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ हरेन्यजन्मनिनरो मदीयोयदिहीय॥ तदासहाय्यंकर्तव्यं वचनान्मम माधव ॥ ४६ ॥ तेनतुष्टेनसम्प्रोक्तं हरिणैवंभविष्यति ॥ ततस्तयोरणमपि निवार्य्यमुवाचह ॥ ४७ ॥ अथान्यजन्मनि

तक याने नवसै सत्तानवे वर्ष स्वेदज व रक्तज के युद्ध करते हुये बीत गये हे मुने ! रक्त से उपजे हुये दो भुजावाले नर ने एक कवच से संयुत पसीना से उपजेहुये पुरुषको देखकर ॥ ४२ । ४३ ॥ बाणों के वेगसे ब्रह्माके स्वेद से उपजे हुये नर को काट डाला और मधुसूदनजीने संभ्रम समेत ब्रह्माजीसे यह कहा ॥ ४४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मेरे नर से तुम्हारा बढ़ा हुआ मनुष्य गिरा दिया गया उस वचन को सुनकर व्याकुल ब्रह्माने विष्णुजी से कहा ॥ ४५ ॥ कि हे माधव ! यदि अन्य जन्म में मेरा नर हीन होवै तो हे माधवजी ! मेरे वचन से तुमको सहाय करना चाहिये ॥ ४६ ॥ उन विष्णुजीने कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर उन

दोनो के युद्धको मनाकर उन से कहा ॥ ४७ ॥ कि इसके अनन्तर अन्य जन्ममें कलियुगमें मेरा नर होगा तब महासमर होनेपर वहां मैं उसको युक्त करूंगा ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी ने दिनेश (सूर्य) व सुरेश (इन्द्र) जीको बुलाकर तदनन्तर आपही कहा कि पसीना से उत्पन्न व रक्त से पैदा हुये अपने अंशवाले ये भयंकर नर तुम से पृथ्वी में पालन करने योग्य हैं और द्वापर के अन्तमे अपने अंश से उपजे हुये पृथ्वी में तुमसे युक्त करने योग्य हैं ॥ ४९ । ५० ॥ तदनन्तर उस समय सुरेश इन्द्रजी, विष्णुजी से दुःखित वचन बोले कि हे देव, हरे ! इस मन्वन्तर में त्रेता नामक युगमें ॥ ५१ ॥ सूर्यपुत्र (सुग्रीव) के हितको चाहनेवाले

नरो मदीयोभविताकलौ ॥ ततोमहारणेजाते तत्राहंयोजयामितम् ॥ ४८ ॥ विष्णुनाथसमाहूय दिनेश्वरसुरेश्वरौ ॥ उक्ताविमौनरौरौद्रौ पालनीयौस्वयन्ततः ॥ ४९ ॥ स्वेदजातोप्यसृग्जातः स्वकीयांशोधरातले ॥ स्वांशभूतौद्वापरान्ते नियोज्यौभूतलेत्वया ॥ ५० ॥ ततोब्रवीत्तदाविष्णुं सुरेशोदुःखितंवचः ॥ अस्मिन्मन्वन्तरेदेव त्रेतानाम्नियुगेहरे ॥ ५१ ॥ तद्रूपेणैवमहतासूर्यपुत्रहितार्थिना ॥ वालीनाममहाबाहुस्सुग्रीवार्थेनिपातितः ॥ ५२ ॥ तेनदुःखेनतप्तोहं नाहंगृह्णामितेनरम् ॥ अग्राह्यमाणंदेवेशं कारणान्तरवादिनम् ॥ ५३ ॥ विष्णुःप्रोवाचमघवन् भुवोभारावतारणे ॥ अवतारंकरिष्यामि मर्त्यलोकेप्यहंविभो ॥ ५४ ॥ ततोहृष्टोऽभवच्छक्रो विष्णुभावेनतेनवै ॥ प्रतिगृह्यनरंहृष्टस्सत्यमस्तुवचस्तव ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वातुरवीन्द्रौस प्रेषयित्वाचतौपुनः ॥ गत्वाचपुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणंब्रह्मवेश्मनि ॥ ५६ ॥ उवाचवा

बडे भारी तुम्हारेही रूपसे बालि नामक महाबाहु वानर सुग्रीवके लिये मारा गया है ॥ ५२ ॥ उस दुःख से, मैं संततहूं इस लिये तुम्हारे नर को नहीं ग्रहण करूंगा दूसरे कारण को कहते व न ग्रहण करते हुये सुरेशजी से ॥ ५३ ॥ विष्णुजीने कहा कि हे विभो, मघवन् ! पृथ्वी के भार को उतारने मे मैं भी मृत्युलोक में अवतार करूंगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस विष्णुभाव याने विष्णुजी के होनेसे इन्द्रजी प्रसन्न हुये और प्रसन्न होकर नरको पकडकर कहा कि तुम्हारा वचन सत्य होवै ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर उन सूर्यनारायण व इन्द्रजी को पठाकर फिर उन कमललोचन व धर्मज्ञ विष्णुजी ने ब्रह्माके मन्दिर मे जाकर उस पातक की शुद्धि के लिये ब्रह्माजी

से कहा कि हे ब्रह्मन् ! रुद्रको मारनेकी इच्छा करते हुये तुमने निन्दित कर्म किया ॥ ५६ । ५७ ॥ हे देवदेवेश ! तुमने जिस लिये क्रोध से पुरुष से कहा इसकारण पाप की शुद्धिही के लिये उत्तम प्रायश्चित्त को कीजिये ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तीनि अग्नियोंको ग्रहण करते हुये तुम अग्निहोत्रके उपासक होवो एक गार्हपत्य दूसरी हवनीय ॥ ५९ ॥ न तीसरी दक्षिणाग्नि है इनको तीनि खंडों मे कल्पित करो और गोल वेदी पै अपना को व धनुषाकार वेदी पै मुझको स्थापित करो ॥ ६० ॥ और चौकोन वेदी पै ऋग्, यजुः व साम वेदके नामों से सदाशिवजी को स्थापित करो और तपस्या से अग्नि में हवन कर उसी क्षण विष्णु से अर्पण कीजिये ॥ ६१ ॥

चंधर्मज्ञस्तस्यपापविशुद्धये ॥ कृतंजुगुप्सितंकर्म ब्रह्मन्नीशंजिघांसता ॥ ५७॥ यत्त्वयादेवदेवेश पुमान्कोपेनभाषितः ॥ शुद्ध्यर्थमेवपापस्य प्रायश्चित्तंपरंकुरु ॥ ५८ ॥ गृह्णन्वह्नित्रयंब्रह्मन्नग्निहोत्रमुपासकः ॥ एकोवैगार्हपत्यस्तु द्वितीयोह वनीयकः ॥ ५९ ॥ दक्षिणाग्निस्तृतीयस्तु त्रिखण्डेषुप्रकल्पय ॥ वर्तुलेस्थापयात्मानं मामथोधनुषाकृतौ ॥ ६० ॥ चतुष्कोणेहरंदेवं ऋग्यजुःसामनामभिः ॥ हुत्वात्वग्निञ्चतपसा हरावर्पयतत्क्षणात् ॥ ६१ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतु हुत्वाग्निं सिद्धिमाप्स्यसि ॥ प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा प्रतिपद्यमहेश्वरम् ॥ ६२ ॥ ततोनिष्कल्मषोभूत्वा विषादस्तेगमिष्यति ॥ ६३ ॥ इत्येवमुक्त्वाहरिरुग्रतेजा गतःस्वकीयंनिलयंमहात्मा ॥ ब्रह्मापिचित्तंतपसेनिधाय समादधेसर्वमथाच्युतोक्तम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेप्रायश्चित्तंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवताओं के हज़ार वर्षोंतक अग्नि में हवनकर तुम सिद्धि को पावोगे और प्रायश्चित्त से शुद्ध चित्त वाले तुम महादेवजी को प्राप्त होकर तदनन्तर पाप रहित होकर तुम्हारा दुःखजावैगा ॥ ६२ । ६३ ॥ उग्र तेजवाले महात्मा विष्णुजी यह कहकर अपने स्थान को चले गये व ब्रह्माने भी तपस्या के लिये चित्त धरकर इस के अनन्तर विष्णुजीसे कहे हुये सब कर्म को किया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रबिरचितायाभाषाटीकायां ब्रह्मणे विष्णुनाप्रायश्चित्तनिरूपणं नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। कह्यो अग्नि उत्पत्ति को, सनतकुमार मुनीश। सोइ चौथे अध्याय में,वर्णित चरित बरीश॥ व्यासजी बोले कि जो यह नर नामक धनुषधारी पुरुष कपाल
में पैदा हुआ था क्या वह विश्वकर्माकी उत्पत्तिमें इस समय ऐसा उत्पन्न हुआहै ॥ १ ॥ व स्वामी शिवजी से बुद्धिपूर्वक कैसे उत्पन्न हुआहै और भगवान् विष्णुजी से
ब्रह्मासे भेद के कारण कैसे उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ शिव, विष्णु व ब्रह्माके मध्यमें किससे किस लिये उत्पन्न हुआहै और जो हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीहैं जोकि चार मुखवाले
पैदा हुये थे ॥ ३ ॥ उनके भी पांचवाँ अद्भुत मुख कैसे प्राप्त हुआ है और किसप्रकार रुद्र में मन को धारते हुये वे भगवान् ब्रह्माजी स्थित हुयेहैं ॥ ४ ॥ कि जिन मूढ़

व्यासउवाच ॥ योसौकपालउत्पन्नो नरोनामधनुर्धरः ॥ किमेवंसोधुनाजात उत्पत्तौविश्वकर्मणः॥ १ ॥ कथंरुद्रेण
जनितः प्रभुणाबुद्धिपूर्वकम् ॥ विष्णुनावाभगवता ब्रह्मणाभावभेदतः ॥ २ ॥ केनकस्मात्समुत्पन्नः शङ्कराच्युतब्रह्म
णाम् ॥ब्रह्माहिरण्यगर्भोयो योजातश्चचतुर्मुखः॥ ३ ॥ अद्भुतंपञ्चमंवक्त्रं कथंतस्याप्युपस्थितम्॥सतस्थौभगवान्ब्रह्मा
कथंरुद्रेमनोदधन् ॥ ४ ॥ मूढात्मनानरोयेन हन्तुंसप्रहितोहरम् ॥ सनत्कुमार उवाच॥ महेश्वरहरीएतौद्वावेवव्यासति
ष्ठतः ॥ तयोरविदितंनास्ति सिद्धासिद्धंमहात्मनोः ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःपञ्चमंवक्त्रं यत्तदासीन्महात्मनः ॥ तस्यैवमानसः
सोग्निः शिरसातेनवैधृतः॥ ६ ॥ योनरोब्रह्मणाप्रोक्तः सोप्यग्निस्तस्यमानसः॥ दधारतंमहादेवः कृताङ्गुल्यन्तरान्त
रे ॥ ७॥ पूर्वंदृष्ट्वासमुत्पत्तिमेवंतस्यमहात्मनः ॥ तस्मात्कपालादङ्गुल्या घट्यमानादजायत ॥ ८ ॥ सतंहत्वाशरेणा

मुख वाले ब्रह्माजीने शिवजी को मारने के लिये नर को पठायाहै सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महादेवजी व विष्णुजी दोनों स्थित रहतेहैं और उन महात्माओं
को सिद्ध व असिद्ध अविदित (अप्रकट) नहीं होता है ॥ ५ ॥ उस समय महात्मा ब्रह्माजी का जो पंचम मुख था उसी की वह मानसी अग्नि मस्तक से धारण
की गई है ॥ ६ ॥ और जो नर ब्रह्माजी से कहा गया है वह भी उनकी मानसी अग्नि है अंगुली के मध्य में किये हुये उस पुरुष को महादेवजी ने धारण किया
है ॥ ७ ॥ पुरातन समय उन महात्मा की उत्पत्ति को इसप्रकार देखकर अंगुली से चलाये हुये उस कपाल से नर उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ उसने समर में उसको मारकर

ब्रह्माके रजोगुण धारण किया और रजोगुणसे सत्त्वगुण मोहित हुआ क्योंकि प्रभु स्वच्छन्दतासे कार्य करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनियोसे प्रणाम किये हुये भगवन् सनत्कुमारजी ! अग्नि कैसे उत्पन्न हुई है जिसको शिवजी ने धारण किया इसको विस्तारसे कहिये ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले अव्यक्तादिकों को रचा और वह अण्ड होगया और सुवर्ण के समान शोभावाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी पैदा हुये हैं ॥ ११ ॥ वे ब्रह्माजी देवताओं के हजार वर्षोंतक बड़ी तपस्या कर भली भांति स्थित हुये इसके अनन्तर उन्होंने भूर्भुवः स्वः इस श्रुतिको कहा ॥ १२ ॥ पश्चात् श्रुति के योग से मनसे अग्नि उत्पन्न हुई जब पृथ्वी

जो ब्रह्मणोनिहितंरजः ॥ मुमोहरजसासत्त्वं यद्दच्छाकृत्प्रभुर्यतः ॥ ९ ॥ व्यासउवाच ॥ कथमग्निःसमुत्पन्नो योनिःशर्वेणधारितः ॥ विस्तरेणसमाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दित ॥ १० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डंहितदजायत ॥ जज्ञेसौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ११ ॥ स्वयम्भूःसतपस्तप्त्वा दिव्यंवर्षशतंमहत् ॥ संतस्थौव्याजहाराथभूर्भुवःस्वरितिश्रुतिः ॥ १२ ॥ श्रुतियोगात्तुमनसः पश्चादग्निरजायत ॥ अधोमुखःपपाताग्निः पृथिवींनिर्दहन्यदा ॥ १३ ॥ पाणिभ्यांब्रह्मणासोग्निर्भूमेरूर्ध्वंनिवेशितः ॥ ततोदक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निःप्रणीयते ॥ १४ ॥ पुरापतन्नधोज्वाल ऊर्ध्वज्वालोयतोधृतः ॥ उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा ॥ १५ ॥ ज्वालाभिःप्रज्वलन्नूर्ध्वं सर्वशब्दःस्फुलिङ्गवान् ॥ हिरण्यवर्णंब्रह्माणं सउवाचाग्निरुत्कटम् ॥ १६ ॥ किमर्थंतुमयादेव भूमिभक्ष्यंनिवारितम् ॥ बुभुक्षयाहमाविष्ट आहारोमेप्रदीयताम् ॥ १७ ॥ एवमुक्तोऽग्नयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः ॥ कुशश्चखादन्नाग्निस्तु सर्वरो

को जलाती हुई अग्नि नीचे मुखकर गिरी ॥ १३ ॥ तब उस अग्निको ब्रह्माने हाथोंसे भूमि के ऊपर धारण किया उसीकारण वेदी के ऊपर दाहिने हाथसे अग्नि लाई जाती है ॥ १४ ॥ पहले गिरती हुई नीचे ज्वालावाली अग्नि जिसलिये ऊपर ज्वालावाली धारण कीगई व जिस लिये उतान कीगई उसीकारण ब्रह्मा से तीन प्रकार की अग्नि निर्माण कीगई ॥ १५ ॥ ज्वालाओं से ऊपर जलती हुई चिनगारियोंवाली व सब शब्दोंवाली अग्नि ने सुवर्ण के समान रंगवाले उन ब्रह्मा से उग्रतापूर्वक कहा ॥ १६ ॥ कि हे देव ! मुझ से भूमि में भक्षण करने योग्य वस्तु किसलिये मना कीगई मैं क्षुधा से संयुतहूँ इस लिये मुझको भोजन

और ब्रह्माके सब रोमोको खाते हुये दुबले अग्नि देवजी ॥ १८ ॥
दिया जावै ॥ १७ ॥ इसप्रकार कहे हुये उन ब्रह्माजीने अग्निके लिये अपने रोमो को हवन किया, ॥ १९ ॥ तदनन्तर अग्नि ने उन
बोले कि मेरी न तृप्ति हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्मा ने त्वचाको हवन किया व अग्नि ने उसको खालिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर अग्नि ने उन ॥ २० ॥ अग्नि जी बोले कि मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे
ब्रह्माजी से कहा कि मेरी तृप्ति न हुई तब ब्रह्माजी ने त्वचा से काटकर अपने मांसों को हवन किया ॥ २० ॥ अग्नि जी बोले कि मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शरीरधारी ब्रह्माजी अग्नि
शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्माजी ने अस्थियों को हवन किया व उन अस्थियोंको खाते हुये अग्निजी क्षुधित रहे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शरीरधारी ब्रह्माजी अग्नि

त्वचंजुहावब्रह्मास चखादाग्निस्तमेवच ॥ १९ ॥ अब्रवीत्तं
माणिब्रह्मणः ॥ १८ ॥ अब्रवीचनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः ॥ त्वचंजुहावब्रह्मास चखादाग्निस्तमेवच ॥ १९ ॥ अब्रवीत्तं ॥ २० ॥ अब्रवीचनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृ
ततोवह्निस्तृप्तिर्नास्तिममैवहि ॥ जुहावस्वानिमांसानि त्वचोत्कृत्यप्रजापतिः ॥ २० ॥ अब्रवीचनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृ ॥ तमदेहमथोवह्निर्ब्र
तिः ॥ जुहावब्रह्माचास्थीनि तान्यश्नन्सबुभुक्षितः ॥ २१ ॥ ततोब्रह्माहुताशेन कृतोदेही विधातुकः ॥ तमदेहमथोवह्निर्ब्र ॥ २३ ॥ आह
ह्माणमवदद्वचः ॥ २२ ॥ अहोब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः ॥ क्रुद्धेनब्रह्मणासोग्निर्हुंकारेणद्विधाकृतः ॥ २३ ॥ आह
तूरुदतावग्नी आहारार्थंप्रजापतिम् ॥ हुंकारेणपुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकंचकारवै ॥ २४ ॥ त्रयस्तेषांरुदन्तिस्म रुद्रमेकोहिसं
श्रितः ॥ क्रुद्धेनब्रह्मणाव्यास हुंकारेणैवताडितः ॥ २५ ॥ रोरूयमाणेचाग्नौतु पुनर्ब्रह्माकृपान्वितः ॥ आहकामाभिभूता
नां भुङ्क्ष्वत्वंदेहधातवः ॥ २६ ॥ तेकालेलब्धकामस्यसावृत्तिःसंप्रकल्पिता ॥ अकाराग्निसन्निविष्टं दृष्ट्वामनसिमान

॥ २२ ॥ कि अहो ब्रह्मन्! मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीरको आनन्द
से धातुवों रहित किये गये इसके अनन्तर उन अग्निजी ने शरीररहित ब्रह्माजी से कहा ॥ २२ ॥ कि अहो ब्रह्मन्! मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीरको आनन्द
हुआ क्रोधित ब्रह्माजी ने हुंकार मे उस अग्नि को दो खण्ड किये ॥ २३ ॥ और रोते हुए उन अग्नियोंने भोजन के लिये ब्रह्माजी से कहा फिर ब्रह्माजी ने हुंकारसे
एक एक के दो दो खण्ड किये ॥ २४ ॥ उनके मध्यमें से तीन रोने लगे व एक शिवजी के आश्रित हुआ हे व्यासजी! क्रोधित ब्रह्माजीने हुंकार से ताड़ित किया ॥
२५ ॥ व अग्नि के बहुत रोनेपर फिर ब्रह्मा जी दयासंयुक्त होकर कहा कि काम से तिरस्कृत पुरुषों की धातुवों को तुम भोजन करो ॥ २६ ॥ समय में पाई हुई

कामनावाले तुम्हारी वह जीविका कल्पित कीगई मन में भलीभांति बैठे हुये मानस अकाराग्नि को देखकर ॥ २७ ॥ उकाराग्नि जल उठी और यह क्या है ऐसा कहा ब्रह्माजीने उससे कहा कि तुम भी इच्छा के अनुकूल जीविका के आश्रित होवो ॥ २८ ॥ उन ब्रह्माजीसे ऐसा कहे हुये उसने देवताओं के मध्यमें या बाहर व मुनियों के आश्रयों में इस वृत्ति (जीविका) की रुचि किया ॥ २९ ॥ तब ब्रह्माजी ने बार २ कहा कि मैं ऐसेही दूंगा जिस लिये कि हुंकार से यह दूसरी अग्नि हुई है ॥ ३० ॥ इसलिये अपमान व अभिमान समेत हुंकार जहां कहा जावै मेरी आज्ञा से तुम्हारी क्षुधा के शान्त होने के लिये वह जीविका होवै ॥ ३१ ॥

सम् ॥ २७ ॥ अकाराग्निःप्रजज्वाल किमेतदितिचाब्रवीत् ॥ ब्रह्मातमाहत्वमपि यथेष्टांवृत्तिमाश्रय ॥ २८ ॥ देवमध्येबहिर्वापि मुनीनामाश्रयेषुच ॥ इत्येवमुक्तस्तेनाशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥ २९ ॥ अहमेवंप्रदास्यामि पुनःपुनरुवाचह ॥ यस्मादेषद्वितीयोग्निर्हुंकारात्समजायत ॥ ३० ॥ साभिमानोऽपमानोवाहुंकारोयत्रकथ्यते ॥ साचवृत्तिर्ममादेशाद्बुभुक्षाशान्तयेतव ॥ ३१ ॥ इकाराग्निंसमाहूयब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ भवतोऽग्नेरियंवृत्तिरन्नंभुक्तंदहेरिति ॥ ३२ ॥ उकाराग्निंसमाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ यत्पृथिव्यांमरुस्थानं भगवंस्तत्त्वमाश्रय ॥ ३३ ॥ अहंतवविधास्यामि स्थानमाहारमेवच ॥ इत्युक्तःसतुतेनाग्निर्यः पृथिव्यांशिलाचयः ॥ ३४ ॥ यतोग्निर्व्यासतेनोक्तो गिरौदुर्गेमहामुने ॥ उकाराग्निःसचाप्येष समुद्रेवडवामुखः ॥ ३५ ॥ सोपिभिन्नःसमाहूतो ब्रह्मणास्थानलिप्सया ॥ त्वञ्चक्षुःसर्वलोकस्य

इकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजीने वचन कहा कि आप अग्नि की यह वृत्ति है कि भोजन किये हुये अग्नि को भस्म कीजिये ॥ ३२ ॥ व उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माने वचन कहा कि हे भगवन् ! पृथ्वी में जो मरु (निर्जल) स्थान हो उसमें तुम आश्रित होवो ॥ ३३ ॥ मैं तुमको स्थान व आहार विधान करूंगा उन ब्रह्माजी से ऐसा कहेहुये वे अग्निदेव जी जो पृथ्वी में शिला समूह था उसमें आश्रित हुये ॥ ३४ ॥ हे महामुने, व्यासजी ! जिस लिये कठिन पर्वत में उन व्यासजी से वह अग्नि कही गई उसी कारण वह उकाराग्नि समुद्र में बडवामुख है ॥ ३५ ॥ स्थान पाने की इच्छा से ब्रह्माने उसको भी भिन्न बुलाया और ब्रह्माजी वचन बोले कि

तुम समस्त मनुष्यों के नेत्रहो ॥ ३६ ॥ इस लिये तुम ब्राह्मणों की संस्कृतवाणी को प्रकाशित करो क्योंकि संस्कार कीहुई वाणी दैवी याने देवताओंवाली व पुण्यदायिनी होती है और असंस्कृतवाणी आयुर्बल को नाश करती है ॥ ३७ ॥ इस लिये ब्राह्मण की प्रकाशित वाणी पुण्यदायिनी जाननेयोग्य है और वाणी ब्राह्मणों की माता है वह मुखमें भलीभांति स्थित है ॥ ३८ ॥ झूंठे अक्षरों के बोलने से अमङ्गल देनेवाली असंस्कृतवाणी वक्ताको नाश करती है इस लिये अग्नि सदैव संस्कृतवचनवाला ब्राह्मण है ॥ ३९ ॥ फिर नेत्ररहित अकाराग्नि को बुलाकर यही कहा और उसने भी नेत्रोंको मूंदकर उस देववाणी को कहा ॥ ४० ॥ और अग्निने

ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वंसंस्कृतांवाणीं द्विजातीनांप्रकाशय ॥ दैवीपुण्यासंस्कृताच आयुष्यंहन्त्यसंस्कृता ॥ ३७ ॥ तस्माद्द्विजातेर्विज्ञेया वाणीपुण्याप्रकाशिता॥वाक्चमाताद्विजातीनां मुखेसासंप्रतिष्ठिता ॥ ३८ ॥ अनृताक्षरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता ॥ वक्तारंहन्त्यतोह्यग्निः सदासंस्कृतवाग्द्विजः ॥ ३९ ॥ आहूयभूयोकाराग्निं प्रजापतिरचक्षुषम् ॥ तांदेववाणीमवदत्सोपिसंमीलितेक्षणः ॥ ४० ॥ ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचोहमुखमास्महे ॥ स्थानंमम प्रयच्छस्व सर्वतेजोवरंपरम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मातमाहयस्मात्त्वंतेजःस्थानंसमीहसे ॥ तस्मात्तेजोमयंयत्ते रविस्थानंभविष्यति ॥ ४२ ॥ यस्मात्प्रपद्यतेतेजश्चक्षुर्भवतिदुर्बलम् ॥ तस्मात्त्वांतेजसायुक्तं पश्येदनिमिषश्चकः ॥ ४३ ॥ इकारमथसंभिन्नमग्निमाहपितामहः ॥ सौम्यदृष्ट्यातुब्रह्माणं समुद्वीक्ष्यह्युपागतः ॥ ४४ ॥ यस्माच्छीघ्रंमहासत्त्व सौम्यदृष्टिरिहागतः ॥ तस्माद्दास्याम्यहंस्थानं सर्वभूतमनोरमम् ॥ ४५ ॥ त्वंसितात्माश्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वंभविष्यसि ॥ सर्वतेजो

ब्रह्माजी से कहा कि मैं वाणीके मुखमें स्थितहूं व समस्ततेजों में श्रेष्ठ उत्तमतेजको मुझे दीजिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी ने उससे कहा कि जिसलिये तुम तेजके स्थान को चाहतेहो उसी लिये जो तेजोमय सूर्यनारायणजी का स्थान है वह तुम्हारा स्थान होगा ॥ ४२ ॥ व जिस कारण तुम्हारे तेजको प्राप्त होकर नेत्र दुर्बल होताहै उस लिये तेजसे संयुत तुमको बिन पलकभांजे कौन देखताहै ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर पितामहजी ने भिन्न अग्नि इकार से कहा और वह सौम्यदृष्टि से ब्रह्माको देखकर समीप आया ॥ ४४ ॥ इससे ब्रह्माजी ने उससे कहा कि हे महाबलवान् ! जिसलिये सौम्यदृष्टिवाले तुम शीघ्रही यहां आयेहो इस कारण समस्त प्राणियों के मनोहर

स्थान को मैं दूंगा ॥ ४५ ॥ और तुम श्वेतात्मक सूर्य व चन्द्रमा होगे जोकि समस्त तेजों से अधिक, दिव्य, सौम्य व बहुतही प्रकाशितहै ॥ ४६ ॥ और उसमें स्थित होकर तुम तेजसे सबतेजोंको तिरस्कार करोगे ऐसा कहकर उसको बिदाकर इसके अनन्तर उकाराग्निको बुलाया ॥ ४७ ॥ व यहां आइये आइये इस प्रकार लेकर मस्तक में बिठाया और वहां स्थित होकर यह पांचवां मुख ऊपर हुआ ॥ ४८ ॥ इसप्रकारके रूपवाली अग्नि यह उकाराग्नि प्रतिष्ठित हुई इसलिये इन अग्नि व सूर्यको रुद्र निर्देश करै ॥ ४९ ॥ शिव व अग्निरूपी उत्तमदेव ने ब्रह्मासे यह कहा कि मुझको भी यथायोग्य सुन्दरस्थान को दीजिये ॥ ५० ॥ ब्रह्माने उससे कहा कि पृथ्वीतलमें

धिकोदिव्यः सौम्यःपरमभासुरः ॥ ४६ ॥ तत्रस्थःसर्वतेजांसि तेजसाभिभविष्यति ॥ इत्युक्त्वातंविसर्ज्याथ उकाराग्निमथाह्वयत् ॥ ४७ ॥ इहेह्येहीतिशिरसि समादायन्यवेशयत् ॥ तत्रस्थःपञ्चमंवक्त्रमूर्ध्वमेतदजायत ॥ ४८ ॥ एषएवंरूपवह्निरुकाराग्निःप्रतिष्ठितः ॥ तस्मादग्निश्चसूर्यश्च रुद्रावेतौविनिर्दिशेत् ॥ ४९ ॥ भवाग्निरूपःपरमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत ॥ ममापिसुचिरंस्थानं प्रयच्छस्वयथातथम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मातमाहकतमत् स्थानंतेरोचतेतले ॥ अग्निस्तुप्रत्युवाचेदं स्थानंकथयमेपरम् ॥ ५१ ॥ स्थानंनैवास्तिनोभव्यं ततोह्येवंभविष्यति ॥ अत्रत्वास्थातुमिच्छामि यदिसंरोचतेतव ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोकेनित्यसमाचार लोकसंस्थितिहेतुक ॥ सम्भवार्थमिहासत्वं निजसत्त्वपराक्रमः ॥ ५३ ॥ यदिहत्वंमहाज्वालस्ताभिःकलितशोभनः ॥ प्राप्स्यसेसर्वजन्तूनां भासुरन्त्वंसमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तदेषधर्मश्चैवाद्यो मायामोहितकाम्यया ॥ इत्युक्तोब्रह्मणासोपि प्रजज्वालसहस्रशः ॥ ५५ ॥ ततोह्यनन्तज्वालाभिर्नानावर्णादिभिःश्रितः ॥ अकारेका

तुमको कौन स्थान रुचताहै तब अग्निने यह कहा कि मुझसे उत्तम स्थानको कहिये ॥ ५१ ॥ मेरे कल्याणदायक स्थान नहींहै उसलिये ऐसा होगा कि मैं यहां टिकने की इच्छा करता हूं यदि तुमको रुचता हो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकमें नित्य आचारवाले, संसारकी मर्यादाके कारण ! अपने सत्त्व व बलवाले तुम उत्पत्ति के लिये यहां स्थित होवो ॥ ५३ ॥ यदि बड़ी ज्वालाओंवाले तुम उन ज्वालाओं से शोभित छविवाले होगे और समस्त प्राणियों के मध्य में तुम प्रकाशित उत्तम स्थान को पावोगे ॥ ५४ ॥ तो मायासे मोहित कामनाके कारण यह आदिवाला धर्महै ब्रह्मासे इस प्रकार कहेहुये वे अग्निदेवभी हजारों भांतिसे जलतेभये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर

अनेक रङ्गादिकोंवाली अमित ज्वालाओं से आश्रित हुये इसके अनन्तर ब्रह्माने अकार, इकार व उकारसे उस अग्निको शान्त किया ॥ ५६ ॥ परन्तु यह अग्नि शान्तता को न प्राप्तहुई किन्तु फिरभी बढ़ी और रुद्राग्निसे तिरछा ऊपर व नीचे सब व्याप्तहोगया ॥ ५७ ॥ सब ओर ज्वालाओं से अपना को ऊपर फेंकेहुये देखकर तदनन्तर चिन्तनकर ब्रह्माजी विशेषतासे डरगये ॥ ५८ ॥ और तेजनिधान व सबोंके स्वामी रुद्राग्निजी को जानने की इच्छा करतेहुये ब्रह्माजी ने मस्तक पै अञ्जलीको धरकर प्रणामकर ऋग्,यजुः व सामवेदमें कहेहुये वेदोक्त स्तोत्रोंसे स्तुति किया ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सत्यतेजवाले ! परस्पर महात्मा आपके लिये प्रणाम है और अद्भुत

रोकारैश्चब्रह्मातमथशान्तवान् ॥ ५६ ॥ नैवासौशान्तततांयाति वह्निर्भूयोप्यवर्द्धत ॥ व्याप्तंभवाग्निनासर्वं तिर्यगूर्ध्वमध स्तथा ॥ ५७ ॥ ज्वालाभिरुपरिक्षिप्तं दृष्ट्वात्मानंसमन्ततः ॥ चिन्तयित्वाततोब्रह्मा भीतश्चैवविशेषतः ॥ ५८ ॥ शिर स्यञ्जलिमाधाय तुष्टावाथप्रणम्यतम् ॥ तेजोनिधिञ्चसर्वेशं ज्ञातुमिच्छन्प्रजापतिः ॥ निगमोक्तरहस्यैश्च ऋग्यजुः सामभाषितैः ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यतेजोनमस्तेस्तु परस्परमहात्मने ॥ अद्भुतानांप्रतिश्रोत्रे तेजसांनिधिरव्ययः ॥ ६० ॥ बीजंयोविश्वभावानां संमोहनविमोहनम् ॥ अन्धकारोयुगावर्तं कालेकालेचदुःसहम् ॥ ६१ ॥ ऊर्ध्ववक्त्रनम स्तेस्तु सत्त्वात्मकधरात्मक ॥ ज्वलज्ज्वालोत्पन्नजल जलजेशजलेश्वर ॥ ६२ ॥ जलजोत्फुल्लपत्राक्ष ज्वलदेवहुताश न ॥ कृष्णकान्तःकृष्णमार्गः स्वर्गमार्गप्रदायकः ॥ ६३ ॥ यज्ञाहुतिसमाचार यज्ञरूपनमोनमः ॥ स्वर्णगर्भशमीगर्भ जयदेवसनातन ॥ ६४ ॥ नमोहारमहाहार स्वाहाप्रियतमोहर ॥ प्रदीप्तरोचिषेदेव चित्रभानोनमोस्तुते ॥ ६५ ॥ वैश्वा

जनोंके प्रतिश्रोता के लिये नमस्कार है तुम तेजनिधान व अविनाशी हो ॥ ६० ॥ जो विश्वभावों का संमोहन व विमोहन बीजहो और अन्धकार व समय समय में दुस्सह युगावर्त हो ॥ ६१ ॥ हे सत्त्वात्मक, धरात्मक, ऊर्ध्वानन ! तुम्हारे लिये प्रणामहै हे ज्वाला से उत्पन्न जलवाले, जलजेश, जलेश्वर ! प्रज्वलित होवो ॥ ६२ ॥ हे फूलेहुये कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले, अग्निदेवजी ! प्रज्वलित होवो आप श्याम शोभावाले श्याममार्गवाले तथा स्वर्गमार्ग को देनेवालेहो ॥ ६३ ॥ हे यज्ञाहुति-समाचार, यज्ञरूप ! आपके लिये नमस्कार है नमस्कार है हे स्वर्णगर्भ, शमीगर्भ, सनातन, देवजी ! आपकी जयहो ॥ ६४ ॥ हे हार, महाहार,स्वाहाप्रिय, अन्धकार !

आपके लिये प्रणाम है हे चित्रभानो, देव ! प्रकाशित ज्वालाओंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ६५ ॥ हे वैश्वानर, अनल, विभो, ऊर्ध्वपावक,सर्वव्यापिन्, विभावसो, महाभाग, कृष्णवर्त्म ! आपके लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि उससमय इसभांति स्तुति कियेहुये वे अग्निदेवजी ब्रह्मासे वचन बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं आपसे प्रसन्न हूं तुम्हारे प्रयोजन का कर्म सिद्धहोवै ॥ ६७ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये ब्रह्माजीने बार २ प्रणामकर कहा कि हे देव ! ऐश्वर्यवान् तुम कौनहो यह मैं जानना चाहता हूं ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर उसने ब्रह्माजी से कहा कि तुम प्रजापति पुरुषहो जो उत्तमरूप जाननेयोग्य है उस योगसे मुझको देखिये ॥ ६९ ॥

नरानलविभो ऊर्ध्वपावकसर्वग ॥ विभावसोमहाभाग कृष्णवर्त्मन्नमोनमः ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदा सोग्निर्विरञ्चिमब्रवीद्वचः ॥ तुष्टोहंभवताब्रह्मन् भवत्कर्मप्रसिद्ध्यतु ॥ ६७ ॥ एवमुक्तस्तदाब्रह्मा नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यहंदेव कोसित्वंभगवानिति ॥ ६८ ॥ अब्रवीत्सोथब्रह्माणं पुरुषस्त्वंप्रजापतिः ॥ यज्ज्ञेयंपरमंरूपं तेनयोगेनपश्यमे ॥ ६९ ॥ अथापश्यत्सदिव्येन भगवन्तंसनातनम् ॥ सर्वज्ञंविधिकर्तारमीश्वरंसदसत्परम् ॥ ७० ॥ ज्वलनं गगनम्भूमिर्दृश्यादृश्यम्परम्पदम् ॥ भूतम्भव्यंभविष्यञ्च जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ७१ ॥ सदेवःकुरुतेविश्वं भुङ्क्तेसर्वंयतःप्रभुः ॥ ततःसम्भूतिभव्येन स्तोत्रेणापिप्रजापतिः ॥ ७२ ॥ तुष्टावदेवःप्रणतः पुराणमजमव्ययम् ॥ ततोनिरुक्तवर्णञ्च दृष्ट्वादेवःप्रजापतिः ॥ ७३ ॥ विश्वतोबाहुचरणं विश्वतोग्निशिरोमुखम् ॥ व्यक्ताव्यक्तप्रणेतारं प्रणम्यशिरसास्वयम् ॥ ७४ ॥ तुष्टावचनमस्तेस्तु तुभ्यंविश्वभवात्मने ॥ पृथिवीवायुराकाशं यच्चान्यद्भुवनत्रयम् ॥ ७५ ॥ लोकालोके

इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने सर्वज्ञ व विधि (ब्रह्मा) को रचनेवाले तथा कार्यकारण से परे ईश्वर व सनातन अग्निभगवान् को दिव्यदृष्टि से देखा और आकाश, भूमि, दृश्यादृश्य, परमपद, भूत, भव्य, भविष्य और स्थावर, जङ्गम समेत संसार को देखा ॥ ७० । ७१ ॥ जिस लिये वे प्रभुदेवजी सब संसार को रचते व भोगते हैं उसीकारण उत्पत्ति से कल्याणदायक स्तोत्रकरके ब्रह्मादेवजी ने प्रणामकर अज व अविनाशी पुराणपुरुष की स्तुति किया तदनन्तर निरुक्तवर्णवाले तथा सबओर बाहु व चरणोंवाले व सब ओर अग्नि, शिर व मुखोंवाले और प्रकट व अप्रकट के प्रणेता ईश्वरदेवजी को देखकरके आपही मस्तक से प्रणामकर ॥ ७२ । ७३ । ७४ ॥

कि संसारोत्पत्त्यात्मक तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी,पवन, आकाश और जो त्रिलोकहै ॥ ७५ ॥ व लोकालोकेश्वर, स्थावर,जङ्गम संसार, तत्त्वसृष्टि व भूतसृष्टि व भावसृष्टि ॥ ७६ ॥ और आपही से नेत्रके द्वारा ब्रह्मतेजोमयात्मक को भलीभाति देखतेहुये जो कुछ वस्तु उत्पन्न है वह सब चर व अचर आपही का रूपहै ॥ ७७ ॥ उस समय इस प्रकार स्तुति कियेहुये वे ईश अनादि भगवान् प्रभुजी ब्रह्मा से बोले कि तुमने यथायोग्य देखा ॥ ७८ ॥ नम्रतासे संयुत सो तुम इससमय सब प्रजाओं को रचो लोकोंकी स्थिति के कारणमें मैं कर्त्ताहूं और तुम अनुकार करनेवालेहो ॥ ७९ ॥ पहलेही मुझ से रचाहुआ वह ससार वैसाही होनेयोग्य है उसको कीजिये ऐसा

श्वरंचैव जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ तत्त्वसर्गंभूतसर्गं भावसर्गंतथैवच ॥ ७६ ॥ ब्रह्मतेजोमयात्मानं सम्पश्यंश्चक्षुषास्वतः ॥ यत्किञ्चिद्वस्तुजातंहि तत्सर्वमचरंचरम् ॥ ७७ ॥ एवंस्तुतःसतुतदा अनादिर्भगवान्प्रभुः ॥ अथेशःप्राहब्रह्माणं त्वयाहृष्टंयथातथम् ॥ ७८ ॥ सृजेदानींप्रजाःसर्वाः सचत्वंविनयान्वितः ॥ कर्ताहमनुकर्तात्वं लोकानांस्थितिकारणे ॥ ७९ ॥ कुरुष्वतत्तथाभाव्यं मयापूर्वंविनिर्मितम् ॥ इत्युक्तोदेवदेवेशो ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ८० ॥ नमस्तुभ्यंमहादेव भवशर्व नमोस्तुते ॥ त्वत्प्रसादात्प्रजासर्गं कुर्वतोमेमहेश्वर ॥ ८१ ॥ सखायंप्राप्तुमिच्छामि त्वयादत्तंजगत्पते ॥ महेश्वरउवाच ॥ तुष्टस्तेध्यायतःपुत्रकामस्यभगवन्नहम् ॥ ८२ ॥ विधातःकल्पितांदेव ममोत्पत्तिंयदीच्छसि ॥ पुत्रत्वंप्राप्यहीशस्ते छेत्स्यामिपञ्चमंशिरः ॥ ८३ ॥ तत्रचोत्पादयिष्यामि नरनारायणावुभौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथंनारायणोदेवस्तपसान्यचेतनः ॥ ८४ ॥ कीर्तयस्वसखाधन्यः समेपूज्योभविष्यति ॥ अथापश्यत्ततोब्रह्मा तेजसाहरिमच्युतम् ॥ ८५ ॥

कहे हुये देवदेवेश ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ८० ॥ कि हे महादेवजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे भव, शर्व ! तुम्हारे लिये प्रणाम है महादेवजी तुम्हारी प्रसन्नता से मेरे ऊपर प्रसन्नहोवैं ॥ ८१ ॥ हे जगत्पते ! तुमसे दियेहुये मित्रको मैं पाने के लिये चाहताहूं महादेवजी बोले कि जिसलिये पुत्रकी कामनावाले व सृष्टिको चाहनेवाले तथा ध्यान करतेहुये तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहूं ॥ ८२ ॥ हे विधाता, देव ! यदि कल्पित कीहुई मेरी उत्पत्तिको चाहतेहो तो पुत्रता को प्राप्तहोकर ईश्वर मैं पांचवे मस्तकको काटूंगा ॥८३॥ व उसमें दोनों नरनारायणको उत्पन्न करूंगा ब्रह्माजी बोले कि तपस्यासे सावधान बुद्धिवाले नारायणदेवजी ॥ ८४ ॥ जोकि पूजनीय व प्रशंसनीय हैं वे

किस प्रकार मेरे मित्र होंगे यह कहिये इसके अनन्तर तेजसे उन अच्युत विष्णुजीको जोकि सर्वव्यापी व जानेयोग्य तथा शिवनारायणात्मक हैं देखा तदनन्तर नारायणप्रभुजी ने महेश्वरजी के सत्त्वतेज को किया तदनन्तर वहांपर श्रीयुक्त व शक्तिसे सम्मित उन देवजी ने अंगुली से स्पर्श करते ब्रह्मासे वचन कहा ॥ ८५ । ८६ । ८७ ॥ कि तुम्हारा उत्तम ब्रह्मा नाम होगा व नारायण का अनुगामी ऋषि मनुष्यों के देखने के लिये होगा जोकि सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ है ॥ ८८ ॥ हे महाबल, नारायणजी ! यह मेरी शक्तिहै ऐसा कहकर भगवान् देवजीने उस अग्नि को हाथ से पकड लिया ॥ ८९ ॥ व दाहिने हाथकी अंगुली के नखके मध्यमें स्थित किया

तंसर्वगामिनंगम्यं शिवनारायणात्मकम् ॥ महेश्वरस्यतेजोहि सत्त्वंनारायणःप्रभुः ॥ ८६ ॥ चकारसततस्तत्र श्रीयुक्तःशक्तिसम्मितः ॥ अङ्गुल्यासंस्पृशन्देवो ब्रह्माणमब्रवीद्वचः ॥ ८७ ॥ ब्रह्मातेपरमंनाम ऋषिर्नारायणानुगः ॥ भविता लोकवीक्षार्थं श्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम् ॥ ८८ ॥ नारायणमहावीर्य शक्तिरेषामदीयका ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देवस्तमग्निंपाणिनाग्रहीत् ॥ ८९ ॥ दक्षहस्ताङ्गुलिनखमध्यस्थंसमचीकरत ॥ इतिसंस्कृत्यसततं नरञ्चैवमहेश्वरम् ॥ ९० ॥ ब्रह्मणो दर्शयित्वाथ तत्रैवान्तरधीयत ॥ अथाब्रवीत्ततोब्रह्मा अग्निंतञ्चयुगक्षये ॥ ९१ ॥ स्पृशन्दक्षिणवामाभ्यां शान्तयन्निवतांगिरा ॥ पुत्रौचभृग्वङ्गिरसौ भवितारौनसंशयः ॥ ९२ ॥ वंशविख्यातकर्माणावत्रैवभवतांतव ॥ द्विधासम्भज्यतेनाग्निंसृष्टेर्यज्ञोभविष्यति ॥ ९३ ॥ भवन्तौतिष्ठतस्तत्र पृथिव्यांदानमाश्रितौ ॥ ९४ ॥ तस्मादेवंविधातव्यौ निर्मथ्यविधिपूर्वकम् ॥ अतोऽश्वत्थेशमीगर्भे संयोगस्तत्रपठ्यते ॥ ९५ ॥ भार्गवोऽङ्गिरसश्चैव द्विविधोदेवउच्यते ॥ तस्मात्सुरहितः

इस प्रकार संस्कार कर सदैव नर व महेश्वरजी को ॥ ९० ॥ ब्रह्माको दिखलाकर वहींपर अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर युगके प्रलयमें दाहिने व बायें हाथसे स्पर्शकरते हुये ब्रह्माजीने वाणीसे शान्त करतेहुये से उस अग्निसे बोले कि भृगु व अङ्गिरा पुत्र होवैंगे इसमे सन्देह नही है ॥९१।९२॥ और यहींपर वे तुम्हारे वंशके विख्यातकर्म वाले होवैंगे इस लिये अग्निके दो विभागकर सृष्टिकी यज्ञहोगी ॥ ९३ ॥ और उस पृथ्वी में दानमें आश्रित होकर आपलोग स्थित होवो ॥ ९४ ॥ इस लिये विधिपूर्वक मथकर इस प्रकार उन दोनोंको करना चाहिये इसीकारण उस विषय में पीपल व शमीके गर्भमें संयोग पढाजाता है ॥ ९५ ॥ और भार्गव व अङ्गिरस दोप्रकार

का देव कहाजाताहै उसी कारण देवताओंका हित चौथा श्रेष्ठ ऐसा कहाजाताहै ॥९६॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पूर्वजन्ममें यह नर उत्पन्न हुआहै व इस प्रकार ब्रह्माके पाचवां मुख प्राप्तहुआ है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य अतिउत्तम तेजकी सृष्टि को जानताहै वह शान्त,दान्त व जितेन्द्रिय ब्रह्माकी सालोक्य नामक मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ९८ ॥ हे व्यासजी ! चित्तमें उत्तम बुद्धिवाला जो पुरुष पशुपति महादेवजीके माहात्म्य को सूचित करनेवाली इस अग्निकी उत्पत्ति को सुनताहै और जो श्रद्धासे शुद्धचित्तवाला होताहै व जो ब्राह्मणों तथा देवतादिकोंको भक्तिसे सुनाता है वह शिवजी से शुद्धचित्तवाला पुरुष शिवलोक में देवताओं से भलीभांति पूजा

श्रेष्ठश्चतुर्थइतिकथ्यते ॥ ९६ ॥ एवंव्याससमुत्पन्नोनरोसौपूर्वजन्मनि ॥ एवंतुब्रह्मणोवक्त्रं पञ्चमंसमपद्यत ॥ ९७ ॥ एवं विबुध्यतेयोवै तेजःसर्गमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मणोयातिसालोक्यंशान्तोदान्तोजितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥ एतद्योग्निसमुद्भवंपशुपतेर्माहात्म्यसंसूचकं चित्तेसाधुमतिःशृणोतिमततंयःश्रद्धयाभावितः ॥ योव्यासद्विजदेवताप्रमुखतःसंश्रावयेद्भक्तितः सोत्यर्थंभवभावितःशिवपुरेसम्पूज्यतेदैवतैः ॥९९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽग्नेरुत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

व्यासउवाच ॥ युद्धेनिवारितेतत्र रक्तस्वेदजयोःपुरा ॥ किंकृतंब्रह्मणातत्र प्रायश्चित्तंह्यकर्मणा ॥ १ ॥ जनार्दनेनाकिं कर्म शङ्करेणचयन्मुने ॥ एतत्सर्वंसमाख्याहि प्रसीदवदतांवर ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्माकरोदग्निहोत्रं वनौषधिफलच्छदैः ॥ शस्तैःकुशसमिद्भिश्च यथोक्तंहरिणापुरा ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणावृषी ॥ तेपतुस्तौत

जाता है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नेरुत्पत्तिवर्णननामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । कुशस्थली वन मध्य महँ, छोड्यो ईश कपाल । सोइ पंचम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय वहांपर रक्त व पसीनेसे उपजे हुये नरोंका युद्ध मना करनेपर कर्मरहित ब्रह्माने वहां क्या प्रायश्चित्त कियाहै ॥ १ ॥विष्णुजीने क्या कर्म किया है व हे मुने ! शिवजीने जो कर्म कियाहो इस सबको कहिये हे वदतांवर ! प्रसन्न होवो ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय जिसप्रकार विष्णुजीने कहा था उसीभांति वनकी ओषधि, फल व पत्तोंमे तथा उत्तम

कुशों व समिधाओं से ब्रह्माने अग्निहोत्र किया ॥ ३ ॥ और बदरिकाश्रममें प्राप्त होकर उन नरनारायण ऋषियोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये भयंकर तप किया॥ ४ ॥ और इस पृथ्वीमें घूमतेहुये देवेश सदाशिवजी कपालको हाथमें लिये कुशस्थलीमें प्राप्त होकर उसके उत्तम वनमें पैठते भये ॥ ५ ॥ जो कि अनेक भांतिके वृक्षों व लताओंसे व्याप्त तथा अनेकप्रकारके पुष्पोंसे शोभित व अनेक भांतिके पक्षियोंसे व्याप्त और अनेकप्रकारके मृगोंसे संयुतथा ॥ ६ ॥ और जोकि पवनसे वृक्षोंमें पुष्प भारके आमोद (बहुत सुगन्ध) से वासित था और बुद्धिपूर्वक मानो धरेहुये फलों व फूलोंसे पूजित था ॥ ७ ॥ व पक्के,कच्चे फलोंसे उपजेहुये अनेकप्रकारकी सुगन्ध

पश्चोग्रं हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन्वसुधामिमाम् ॥ कुशस्थलींसमासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् ॥ ५ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ नानापक्षिसमाकीर्णं नानामृगसमाकुलम् ॥ ६ ॥ द्रुमपुष्पभरामोदवासितंयत्सुवायुना ॥ बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तफलपुष्पैस्सुपूजितम् ॥ ७ ॥ नानागन्धरसाद्यैश्च पक्वापक्वफलोद्भवैः ॥ फलैस्सुवर्णरूपाढ्यैरासमन्तान्मनोरमैः ॥ ८ ॥ जीर्णपत्रतृणादीनिशुष्ककाष्ठफलानिच ॥ बहिःक्षिपतिजातानि मारुतोनुग्रहादिव ॥ ९ ॥ नानापुष्पसमूहानां गन्धमादायमारुतः ॥ शीतलोवातितंभूमिदेशंयत्रविवासयन् ॥ १० ॥ हरितस्निग्धनिश्छिद्रद्रुमाणांतत्रकोटरैः ॥ वृक्षैरनेकसङ्ख्यैश्च भूषितंशिखरान्वितैः ॥ ११ ॥ अरोगिदर्शनीयैश्चसुवृत्तैःक्वचिदुद्गतैः ॥ कुटुम्बमिवविप्राणां सिद्धिर्वैभातिसर्वतः ॥ १२ ॥ शोभनैर्वायुसङ्कीर्णैरङ्कुरैश्चावृताद्रुमाः ॥ कुलीनैरिवनिश्छिद्रैः स्वगुणैःप्रावृतानराः ॥ १३ ॥ पवनोद्धूतशिखरैःस्पर्शयन्तिपरस्परम् ॥ आरात्पतन्तिचान्योन्यंपुष्पाःशा

व रसादिकों से तथा सुवर्णस्वरूपसे संयुत फलों से सब ओर घिराथा ॥ ८ ॥ और पुराने पत्तों व तृणादिकों को तथा सूखे काठों व फलोंको पवन मानो दयासे बाहर फेंकता था ॥ ९ ॥ और जहांपर अनेक भांतिके पुष्पसमूहोंकी सुगन्धको लेकर उस भूमिस्थान को वासित करताहुआ शीतल पवन चलता था ॥ १० ॥ और हरित व चिकने छिद्ररहित वृक्षोंके खोढरोंसे और शिखरसे संयुत अनेक संख्यक वृक्षोंसे शोभित था ॥ ११ ॥ और कहीं उत्पन्न हुये रोगरहित मनोहर व गोल वृक्षोसे ब्राह्मणोंके कुटुम्बकी नाई सब ओर सिद्धि शोभित थी ॥ १२ ॥ व पवनसे व्याप्त सुन्दर अंकुरोंसे वृक्ष घिरेथे जैसे कि छिद्ररहित कुलीन अपने गुणोंसे संयुत मनुष्य होवें ॥१३॥

और पवनसे कँपायेहुये शिखरों से वृक्ष आपस में स्पर्श करते थे व शाखाओंके अवतंस (झुमके) रूपी पुष्प आपसमें लगकर समीपही गिरतेथे ॥ १४ ॥ और कहीं भ्रमरों से संयुत केसरोंवाले पुष्पोंसे नागोंके वृक्ष श्यामतारकावाले श्वेत नयनोंकी नाईं शोभित थे ॥ १५ ॥ व कहीं पुष्पोंसे संयुत शिखरोंवाले कर्णिकारके वृक्ष वैसेही शोभितथे जैसे कि विवाह में स्त्री पुरुष भलीभांति शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ उत्तमपुष्पों के आच्छादनों से मेउढ़ी की पंक्तियां शोभित हैं जैसे कि मूर्तिमान् वनदेवता पूजित होकर शोभित होते हैं ॥ १७ ॥ कहीं २ उत्तम पुष्परूपी गहनों से श्वेत कुन्दकी लतायें शोभित हैं जैसे कि प्रत्येक दिशाओं में उदय हुये बाल चन्द्रमा शोभित

खावतंसकाः ॥ १४ ॥ नागवृक्षाःक्वचित्पुष्पैर्भ्रमरालीनकेशरैः ॥ नयनैरिवशोभन्ते धवलैःकृष्णतारकैः ॥ १५ ॥ पुष्पसम्पन्नशिखराः कर्णिकारद्रुमाःक्वचित ॥ यथैवहिविवाहेच शोभतेसाधुदम्पती ॥ १६ ॥ सुपुष्पविभवाटोपैः सिन्धुवारस्यपङ्क्तयः ॥ मूर्तिमन्त्यइवाभान्ति पूजितावनदेवताः ॥ १७॥ क्वचित्क्वचित्कुन्दलताः सुपुष्पाभरणोज्ज्वलाः ॥ दिक्षुदिक्षुचशोभन्ते बालचन्द्राइवोदिताः ॥ १८ ॥ अतीवदुर्गमार्गेषु कान्ताराद्रुत्थितालताः ॥ पुष्पिताःपुष्पविटपैर्वीजयन्तिइवोत्थिताः ॥ १९ ॥ शालार्जुनाःक्वचिद्भान्ति वनोद्देशेषुपुष्पिताः ॥ धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताःपुरुषोत्तमाः॥ २० ॥ अभियुक्ताःसुवल्लीभिः पुष्पितास्तुद्रुमास्तथा ॥ उपगूढाविराजन्ते नारीभिरिवसुप्रियाः ॥ २१ ॥ चूताश्चतिलकाश्चैव मञ्जरीभिःकरैरिव ॥ वायुनुन्नाभिरन्योन्यं ढौकन्तीवहिसज्जनाः ॥ २२ ॥ परस्परञ्चसंयुक्तैस्तिलकाशोकपल्लवैः ॥ हस्तैर्हस्तान्स्पृशन्तीव सुहृदश्चित्तसङ्गताः ॥ २३ ॥ फलपुष्पनतावृक्षाः पैशल्येनेवसज्जनाः ॥ अन्योन्यमर्पयन्तीव

होते हैं ॥ १८ ॥ अत्यन्त कठिन मार्गोंमें दुर्गम मार्गसे उठीहुई फूली लतायें पुष्पवाले वृक्षोंसे पवन डुलातीहुई सी उठी हैं ॥ १९ ॥ व कहींपर वनके स्थानोंमें फूले हुये सांखू व अर्जुनके वृक्ष शोभितहैं जैसे कि धोयेहुये ऊनी वस्त्रोंसे घिरेहुये उत्तम पुरुष होवें ॥ २० ॥ और उत्तम लताओंसे संयुत फूलेहुये वृक्ष शोभित हैं जैसे कि स्त्रियोंसे आलिङ्गित उत्तम प्रिय सोहतेहैं ॥ २१ ॥ और आम्र व तिलक के वृक्ष पवनसे प्रेरित मञ्जरियोंके द्वारा आपसमें चलते हैं जैसे कि हाथोंके द्वारा सज्जन चलते हैं ॥ २२ ॥ आपसमें मिलेहुये तिलक व अशोकके पत्तोंसे मानो चित्तमें प्राप्त मित्र हाथों से हाथोंको स्पर्श करतेहैं ॥ २३ ॥ फलों व फूलोंसे झुकेहुये वृक्ष मानो चतुरता

से सज्जन लोग आपसमें उत्तम फूलों व फलोंको अर्पण करते हैं ॥ २४ ॥ और पवनके मिलापसे छोड़ेहुये ठण्ढेजलों से वृक्ष मानो संसारमें भलीभांति आयेहुये सत् पुरुषोंको प्रीतिके देनेके लिये स्थितहैं ॥ २५ ॥ और पुष्पोंके भारसे मानो अपनी शोभाके लिये प्राप्तहोतेहैं जैसे कि समान प्रभाववाले पुरुषको प्राप्त होकर पुरुष ईर्षासे चलते हैं ॥ २६ ॥ और उत्तम मरतकों से संयुत मतवाले पक्षी पुष्पादिकों के शोभारूपी गहनोंवाले कंपसंयुक्त शिखरों से नाचते हैं ॥ २७ ॥ और अमृतवल्ली याने गुर्चे की लता के आश्रित भ्रमर पवन से चलायेहुये होकर वल्ली समेत नाचते हैं मानो प्यारी समेत मनुष्य हैं ॥ २८ ॥ कहींपर पुष्ट कुन्दलताओं से घिरेहुये वृक्ष वैसेही शोभित

सुपुष्पाणिफलानिच ॥ २४ ॥ मारुताश्लिष्टनिर्मुक्तैः पादपाःशीतवारिभिः ॥ आर्यान्समागताँल्लोके प्रीतिंदातुमिवस्थिताः ॥ २५ ॥ पुष्पाणामिवभारेण स्वशोभार्थंव्रजन्तिवै ॥ समप्रभावमासाद्य पुरुषाःस्पर्द्धयेवहि ॥ २६ ॥ पुष्पादिशोभाभरणैः शिखरैःकम्पसंयुतैः ॥ नृत्यन्तिपक्षिणोमत्तायुक्ताःशोभनशेखरैः ॥ २७ ॥ भृङ्गाःपवनविक्षिप्तामृतवल्लीलताश्रिताः ॥ सवल्लीकाःप्रनृत्यन्ति मानवाइवसप्रियाः ॥ २८ ॥ पुष्टाभिःकुन्दवल्लीभिः पादपाःक्वचिदावृताः ॥ भान्तितारागणैश्चित्रैः शरदीवनभस्तलम् ॥ २९ ॥ द्रुमाणामप्यथाग्रेषु पुष्पितामाधवीलताः ॥ शिखराइवशोभन्ते रचिताबुद्धिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ हरिताःकाञ्चनच्छायाः फलिताःपुष्पिताद्रुमाः ॥ सौहार्दंदर्शयन्तीवनराःसाधुसमागमे ॥ ३१ ॥ पुष्पकिञ्जल्कबहुलाःकिञ्जल्कबहुलोदराः ॥ किञ्जल्कमत्तभ्रमरा विशदाइवसारिकाः ॥ ३२ ॥ शिरीषपुष्पसङ्काशाः शुकामिथुनतःक्वचित् ॥ कीर्तयन्तिगिरश्चित्राः पूजिताब्राह्मणायथा ॥ ३३ ॥ संयुक्ताःसहचारिण्या मयूराश्चित्रबर्हि

हैं जैसे कि शरदऋतु में विचित्र नक्षत्रगणों से आकाश शोभित होता है ॥ २९ ॥ और वृक्षो के ऊपर भागो में फूलीहुई नेवारीकी लतायें बुद्धिपूर्वक रचेहुये शिखरों की नाईं शोभित हैं ॥ ३० ॥ हरित व सुवर्णके समान छायावाले तथा फले व फूले हुये वृक्ष मानो सज्जनके संयोग में पुरुष मित्रता को दिखलाते हैं ॥ ३१ ॥ पुष्पों में बहुत केसरवाले व मध्य में बहुत केसरवाले तथा केसर से मत्त भ्रमरोंवाले वृक्ष उत्तम सारिकाओं की नाईं शोभित हैं ॥ ३२ ॥ कहीं पर मिथुन याने स्त्री के संयोग से सिरसा के फूल की नाईं सुवा विचित्र वचनों को कहते हैं जैसे कि पूजेहुए ब्राह्मण होवें ॥ ३३ ॥ और विचित्र पंखोंवाले मयूर सहचारिणी याने साथ

चलनेवाली स्त्री समेत वन के मध्य में घूमते हैं मानो लोकों के अन्त में स्थितहैं ॥ ३४ ॥ और अनेक भांति के अद्भुत शब्दोंवाले पक्षियो के समूह बोलते हैं मानो मनोहर उत्तम वनको रमण करने योग्य करते हैं ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त व सदैव प्रसन्न पक्षियोंवाला वह वन नन्दनवन के समान मनको व दृष्टिको बढ़ानेवाला है ॥ ३६ ॥ वैसे रूपवाले तथा नन्दनवन के समान उत्तमवनको कपाल हाथवाले भगवान् शिवजीने सौम्यदृष्टिसे देखा ॥ ३७ ॥ व भलीभांति आयेहुये शिवजीको देखकर उन सब वृक्षकी पंक्तियों ने शिवजी के लिये भक्तिसे पुष्पों की संपदाको निवेदन कर छोड़ा है ॥ ३८ ॥ वृक्षों के पुष्पो को ग्रहणकर उन

णः ॥ वनान्तरेसंचरन्ति लोकान्तइवसंस्थिताः ॥ ३४ ॥ कूजन्तिपत्रिसङ्घाता नानाद्भुतविराविणः ॥ कुर्वन्तिरमणीयं हि रमणीयंवनंशुभम् ॥ ३५ ॥ नानामृगसमाकीर्णं नित्यंसमुदिताण्डजम् ॥ तद्वनंनन्दनसमं मनोदृष्टिविवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥ कपालपाणिर्भगवांस्तथारूपंवनोत्तमम् ॥ ददर्शशङ्करोदृष्ट्या सौम्ययानन्दनोपमम् ॥ ३७ ॥ तावृक्षपङ्क्तयस्सर्वा दृष्ट्वारुद्रंसमागतम् ॥ निवेद्यशम्भवेभक्त्या मुमुचुःपुष्पसम्पदाम् ॥ ३८ ॥ पुष्पप्रतिग्रहंकृत्वा पादपानांमहेश्वरः ॥ वरंवृणीध्वंभद्रंवः पादपानित्युवाचसः ॥ ३९ ॥ एवमुक्तेभगवता तरवोनिरवग्रहाः ॥ ऊचुःप्राञ्जलयस्सर्वे नमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥ ४० ॥ वरंददासिदेवेश प्रपन्नजनवत्सल ॥ इहैवविपिनेनित्यं भगवन्सन्निहितोभव ॥ ४१ ॥ एषनःपरमःकामो देवदेवनमोस्तुते ॥ त्वंचेद्वससिदेवेश वनेऽस्मिन्विश्वभावन ॥ ४२ ॥ सर्वात्मनाप्रसन्नास्त्वां याचामोह्युत्तमंवरम् ॥ इत्युक्तः पादपैस्सर्वैश्शरणागतवत्सलः ॥ ४३ ॥ वरन्ददौपादपेभ्यःप्रोच्यमानंमयाशृणु ॥ महेश्वरउवाच ॥ बाढम्मेमनसावा

महादेवजी ने वृक्षों से यह कहा कि तुम लोगों का कल्याण होवै वरदानको मांगिये ॥ ३९ ॥ शिवजी से ऐसा कहनेपर हठरहित सब वृक्ष हाथो को जोड़ महादेवजी को प्रणाम कर बोले ॥ ४० ॥ कि हे शरणागतजनप्रिय देवेशजी ! यदि वर देतेहो तो हे भगवन् ! इसी वनमें सदैव स्थित होवो ॥ ४१ ॥ हे देवदेव ! हमलोगों की यही उत्तम कामना है हे विश्वभावन, देवेशजी ! यदि तुम इस वनमें बसोगे ॥ ४२ ॥ तो सर्वात्मा से प्रसन्न होतेहुए हमलोग उत्तम वरदान को मांगेंगे सब वृक्षोंसे इस प्रकार कहेहुये उन शरणागतप्रिय शिवजीने ॥ ४३ ॥ वृक्षों के लिये वरदान दिया कि मुझसे कहेहुये वचनको सुनिये महादेवजी बोले कि बहुत अच्छा

इस उत्तम वनमें मेरा सदैव मनसे निवास होगा ॥ ४४ ॥ और फिर तुमलोगोंको मैं वरदान देताहूं क्योंकि मेरा दर्शन वृथा नहीं होताहै न अग्नि, न पवन, न जल, न सूर्यनारायणकी किरणोंका घाम ॥ ४५ ॥ और न बिजली न वज्रपात न शीत तुमलोगोंके रोग उत्पन्न करैगा और इच्छा के अनुकूल जानेवाले व इच्छाके अनुसार रूपवाले तथा इच्छाके अनुकूल फल देनेवाले ॥ ४६ ॥ व तपस्या और संध्यासे ज्वलित लोचनोंवाले पुरुषों को इच्छाके अनुकूल दर्शनवाले तथा मेरी प्रसन्नता से उत्तम शोभासे संयुक्त होगे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार उन वरदायक सदाशिवजीने वृक्षोंके ऊपर दयाकिया और हजारवर्ष टिककर कपालको भूमिमें फेंकदिया ॥ ४८ ॥

सो नित्यमत्रवनोत्तमे ॥ ४४ ॥ वरन्ददामिभूयोवो नवृथादर्शनम्मम ॥ नाग्निर्नवायुर्नजलं नसूर्य्यकिरणातपः ॥ ४५ ॥ नविद्युदशनिश्शीतं रुजंवोजनयिष्यति ॥ कामगाःकामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः ॥ ४६ ॥ कामसन्दर्शनाः पुंसां तपःसन्ध्याज्वलद्दृशाम् ॥ श्रियापरमयायुक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ॥ ४७ ॥ एवंसवरदःशम्भुरनुजग्राहपादपान् ॥ स्थित्वावर्षसहस्रन्तु कपालंचाक्षिपद्भुवि ॥ ४८ ॥ क्षितिन्निपतताऽतेन चकम्पेचरसातलम् ॥ विवशास्तत्यजुर्वेलांसागराःक्षुभितोर्मयः ॥ ४९ ॥ शक्राशनिहतानीव व्याघ्रव्यालान्वितानिच ॥ शिखराणिव्यशीर्यन्तपर्वतानांसहस्रशः ॥ ५० ॥ देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगराणिच ॥ प्रस्फुरन्तिविनिष्पेतुर्विनेशुश्चधरातले ॥ ५१ ॥ कल्पान्तमेघाश्चात्यन्तं जगतसङ्घातदर्शनाः ॥ ज्योतिर्ग्रहाञ्छादयन्तो बभूवुस्तीर्णभास्कराः ॥ ५२ ॥ महतातस्यशब्देन जडान्धबधिरंकृतम् ॥ बभूवव्याकुलंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ५३ ॥ सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसिच ॥ अवसेदुश्चकम्पुश्च

और पृथ्वीमे गिरतेहुये उससे रसातल कांपउठा व चलायमान लहरियोंवाले समुद्रोंने विवश होकर मर्यादाको छोड दिया ॥ ४९ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंसे सयुत पर्वतों के हजारों शिखर इन्द्रके वज्रसे मारेहुयेसे टूटगये और देवताओं व सिद्धोंके विमान तथा चमकते हुये गंधर्वोंके नगर पृथ्वीमे गिरपड़े व नाश होगये ॥ ५०।५१ ॥ और अत्यन्त संसारके नाश में दर्शनवाले कल्पान्त के मेघ ज्योतिर्ग्रहों को आच्छादन करतेहुये सूर्यको उल्लंघन करनेवाले हुये ॥ ५२ ॥ और उसके बडेभारी शब्द से जड अन्ध व बधिर किया हुआ स्थावर जंगम समेत सब संसार व्याकुल होगया ॥ ५३ ॥ और सब देवताओ तथा दैत्योंके शरीर व मन दुःखित हुये व कांपउठे और

यह क्याहै ऐसा उन्होंने कहा ॥ ५४ ॥ और इन्द्र आदिक सब भी देवता धीरज का अवलम्बनकर भलीभांति आकर व ब्रह्मलोक में प्राप्तहोकर ब्रह्मासे यह बोले ॥ ५५ ॥ कि हे भगवन् ! यह कारणसे उत्पातका दर्शन क्या है इसको कहिये कि जिससे काल व कर्म से संयुत समस्त त्रिलोक कँपायागया ॥ ५६ ॥ और समुद्रोंकी भिन्नमर्यादोंवाला कल्पान्त होगया किन्तु न चलनेवाले चारों भी दिग्गज चलायमान होगये ॥ ५७ ॥ और किस कारण सातों समुद्रों के जलसे पृथ्वी घिरगई व हे भगवन् ! बिन प्रयोजन सबकी उत्पत्ति नहीं है ॥ ५८ ॥ जैसा यह शब्द सुनागयाहै वैसा न हुआहै न सुनागयाहै कि जिस बड़ेभारी भयंकर शब्दसे त्रिलोक विकल

किमेतदितिवब्रिरे ॥ ५४ ॥ धैर्यमालम्ब्यसर्वेपि समागम्येन्द्रपूर्वकाः ॥ ब्रह्मलोकंसमासाद्य ब्रह्माणमिदमूचिरे ॥ ५५ ॥ किमेतद्भगवन्ब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥ त्रैलोक्यंकम्पितंयेन संयुक्तंकालकर्मणा ॥ ५६ ॥ जातंकल्पावसानञ्च भिन्नमर्यादसागरम् ॥ चत्वारोदिग्गजाःकिन्तु बभूवुरचलाश्चलाः ॥ ५७ ॥ धरासमावृताकस्मात्सप्तसागरवारिणा ॥ उत्पत्तिर्नास्तिसर्वस्य भगवन्निष्प्रयोजनम् ॥ ५८ ॥ यादृशोयंश्रुतःशब्दो नभूतोनापिविश्रुतः ॥ त्रैलोक्यमाकुलंयेन कृतंरौद्रेणभूयसा ॥ ५९ ॥ एवमुक्तोब्रवीद्ब्रह्मा परमेशानुभावितः ॥ ६० ॥ मत्पृष्टममराःसर्वे शृणुध्वंतत्रकारणम् ॥ निश्चयेनात्रविज्ञेयं श्रद्दधानैर्यथाविधि ॥ ६१ ॥ सुखंछित्त्वानखाग्रेण मद्देहात्पञ्चमंशिरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ ६२ ॥ ययाचेपात्रमादाय भिक्षांनारायणम्प्रति ॥ उत्पपातमुनिस्तत्र नरोनामधनुर्धरः ॥ ६३ ॥ ततःकुशस्थलीमेत्य भगवांस्तद्वनोत्तमम् ॥ विवेशतरुमार्गेण पुष्पामोदाभिनन्दितम् ॥ ६४ ॥ अनुग्राह्याथभगवान् व

होगया ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहेहुये व परमेश सदाशिवजी से बुद्धिका निश्चय कियेहुये ब्रह्माजी बोले ॥ ६० ॥ कि हे देवताओ ! उस विषयमें मुझसे पूछेहुये कारणको सब लोग सुनो और विधिपूर्वक निश्चय से इस विषयमें श्रद्धावानोंको जानना चाहिये ॥ ६१ ॥ कि भगवान् शिवजी नख के अग्रभागसे मेरे शरीर से पांचवें मस्तकको सुखपूर्वक काटकर कपालको हाथमें लिये वे विष्णुजीके आश्रमको गये ॥ ६२ ॥ और उन्होंने पात्रको लेकर नारायणसे भिक्षा मांगा व उस कपालमें धनुषधारी नर नामक मुनि उत्पन्नहुआ ॥ ६३ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजीने द्वारकापुरी में आकर पुष्पोंकी अत्यन्त मनोहर सुगन्धसे प्रशंसित उस उत्तम वन मे वृक्षो के

मार्गसे प्रवेशकिया ॥६४॥ और सर्वत्र प्राप्त पक्षियोंवाले उस वनके ऊपर दयाकर संसारके ऊपर कृपा करनेके लिये भगवान् शिवजीने वहांके निवासकी रुचि किया ॥ ६५ ॥ और हाथमें स्थित जो कपालथा उसको भगवान् शिवजीने पृथ्वी में धर दिया उसीसे यह भूमि कँपाईगई व त्रिलोक विकल होगया ॥ ६६ ॥ उसकी रक्षाके लिये तुमलोग मेरे साथ शिवजीके समीप प्राप्त होवो और आराधन कियेहुये वे भगवान् शिवजी तुम लोगों को वरदान देवैंगे ॥ ६७ ॥ ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्माजी उन देवता, दैत्यों समेत उस वनस्थानको गये जहा कि वृषध्वज शिवजी थे ॥ ६८ ॥ और शिवजीको चाहनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले उन सबोंने पुष्पोसे संयुत

नंतत्सर्वंगाण्डजम् ॥ जगतोनुग्रहार्थाय तत्रवासमरोचयत् ॥ ६५ ॥ तत्कपालंकरस्थंयन्न्यस्तंभगवताक्षितौ ॥ तेनै षाकम्पिताभूमिः कृतंत्रैलोक्यमाकुलम् ॥ ६६ ॥ तद्रक्षार्थंविरूपाक्षं प्रापद्यतमयासह ॥ आराध्यमानोभगवान् प्रदा स्यतिवरंहिवः ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्ब्रह्मा सहतैर्देवदानवैः ॥ जगामतद्वनोद्देशं यत्रास्तेवृषभध्वजः ॥ ६८ ॥ प्रहृष्ट मनसस्सर्वे कोकिलालापलापितम् ॥ पुष्पान्वितंवनंतद्वै विविशुश्शङ्करेप्सवः ॥ ६९ ॥ सम्प्राप्तंसर्वदेवैस्तद्वनंनन्दनसं मितम् ॥ सुवल्लीगृहशोभाढ्यं सुदृढंशुशुभेतदा ॥ ७० ॥ दृष्ट्वातद्वनमुत्तमंतनुभृतां प्रोल्लासकंचेतसां नानासत्फलपुष्प पादपवनैरासेवितं सर्वतः ॥ ब्रह्मन्बर्हिणहंससारसरवैर्मण्डूकमत्स्यान्वितं द्रक्ष्यामोहरमत्रचेतसिसुराः प्रापुर्मुदंतेतदा ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवागमोनामपञ्चमोध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उस वनमें प्रवेश किया ॥ ६९ ॥ नन्दनवनके समान देवताओं से प्राप्तहुआ वह उत्तम लतागृहों की शोभासे संयुत वन उससमय बहुत दृढतापूर्वक शोभित हुआ ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन् ! देहधारियों के चित्तोंको आनन्ददायक व अनेक भांतिके उत्तम फल फूलवाले वृक्षों के वनोसे सब ओर सेवित तथा मयूर, हंस व सारसोके शब्दो से तथा मेढ़कों व मछलियोंसे संयुत उस उत्तम वनको देखकर उससमय उन देवताओंने चित्तमें आनन्द पाया कि हमलोग यहा सदाशिवजीको देखैंगे ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। छोड्यो ब्रह्म कपाल शिव, डरे सकल सुर वृन्द । सोइ छठें अध्याय मे,कथा अहै सुखकन्द ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर समस्त पुष्पोंसे शोभित वनमें पैठकर देखनेकी इच्छावाले वे देवता यहां शिव देवजी हैं यहा शिव देवजीहैंयह कहकर पैठतेभये ॥ १ ॥ व महादेवजीको ढूंढ़तेहुये उन देवताओंने अद्भुत वन के अन्तको नहीं देखा और देवताओं ने बहुत वनको देखा ॥ २ ॥ उनसे शिवजी बोले कि तुम लोगोंका कल्याण होवै और विना तपस्या के तुम लोग नही देखोगे महादेवजी को ढूंढ़तेहुये भी तुम शंकरजीको नहीं देखोगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर उत्तम योग्य वचनको हृदयमें स्मरणकर ब्रह्माजी देवताओं से बोले कि सदैव उन शिव

सनत्कुमारउवाच ॥ प्रविश्याथवनन्देवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥ इहदेवोत्रदेवोत्र विविशुस्तेदिदृत्तवः ॥ १ ॥ अद्भुतस्यवनस्यान्तं नतेददृशिरेसुराः ॥ विचिन्वन्तोमहादेवं देवैर्बहुविलोकितम् ॥ २ ॥ तानुवाचसुभद्रंवो नद्रक्ष्यथतपोविना ॥ विचिन्वन्तोविरूपाक्षं नैवापश्यतशङ्करम् ॥ ३ ॥ सुयुक्तंहृदयेस्मृत्वा ब्रह्मादेवांस्ततोब्रवीत् ॥ त्रिविधोदर्शनोपायस्तस्यदेवस्यसर्वदा ॥ ४ ॥ श्रद्धाज्ञानेनतपसा योगेनैवनिगद्यते ॥ सकलंनिष्कलंवापि देवंपश्यन्तियोगिनः ॥ ५ ॥ तपस्विनस्तुसकलं ज्ञानिनोनिष्कलंपरम् ॥ समुत्पन्नेपिविज्ञाने मन्दश्रद्धोनपश्यति ॥ ६ ॥ भक्त्यापरमयोपेतः परंपश्यन्तियोगिनः ॥ द्रष्टव्योनिर्विकारोसौ प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ७ ॥ नादीक्षितैरतोदेवाः शैवदीक्षांप्रपद्यथ ॥ कर्मणामनसा वाचा नित्ययुक्तामहेश्वरे ॥ ८ ॥ तपश्चरथभद्रंवो रुद्राराधनतत्पराः ॥ शिवदीक्षांप्रपन्नानां भक्तानांचतपस्विनाम् ॥ ९ ॥

देवजीके दर्शनका उपाय तीनभांतिका है ॥ ४ ॥ याने श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या व योगसे कहा जाता है कला समेत या कलारहित शिव देवजी को योगीलोग देखते हैं ॥ ५ ॥ व तपस्वी लोग कला समेत शिवजीको देखते हैं और ज्ञानीलोग कलारहित शिवजीको देखते हैं और ज्ञान उत्पन्न होने पर भी न्यून श्रद्धावाला पुरुष नहीं देखता है ॥ ६ ॥ और उत्तम भक्तिसे संयुत योगी लोग परम पुरुषको देखते है विकाररहित ये प्रधान पुरुषेश्वर दीक्षारहित जनों से नहीं देखने योग्य है इस न्यय हे देवताओ ! शिवजीकी दीक्षामें प्राप्त होवो और कर्म, मन व वचनसे शिवजीमे नित्ययुक्त होकर ॥ ७ । ८ ॥ शिवजी के आराधनमे तत्पर तुम लोग तपस्या

करो तुम लोगोंका कल्याण होवै शिवदीक्षामें प्राप्त भक्तों व तपस्वियोंको ॥ ६ ॥ सब समयमें मुझे दर्शन देना चाहिये ब्रह्माके हित वचनको सुनकर शिवजीके देखनेमें पैठे हुये मनवाले उन्होंने ब्रह्मासे यह कहा कि हे सुरोत्तम, ब्रह्मन् ! सबोंको मार्ग व विधिसे शिवदीक्षाको दीजिये क्योंकि हम लोगों के उस विषयमें आप कारणहो शिवदीक्षासे दीक्षादेनेकी इच्छावाले ब्रह्माने सुनकर इसके अनन्तर विचारेहुये वचनको शीघ्रहीदेवताओंसे कहा कि हेदेवताओ ! शिवयज्ञके लिये बहुतही सामग्रियोंको लाइये॥१०।१३ ॥ व यहां वेदी बनाइये और अष्टमूर्तिवाले शिवजी पूजने योग्य हैं इसके अनन्तर देवताओं ने ब्रह्मा के वचनको सुनकर सब किया ॥ १४ ॥ नम्रवेशोंवाले देवता

सर्वकालंविशेषेण दातव्यंदर्शनम्मया ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वाहितमेवतदाचते ॥ १० ॥ शिवेच्छाविष्टमतयो ब्रह्माणमिद मब्रुवन् ॥ मार्गेणविधिनाचैव शिवदीक्षांसुरोत्तम ॥ ११ ॥ प्रयच्छब्रह्मन्सर्वेषां तत्रनःकारणंभवान् ॥ श्रुत्वाथवचनंब्रह्मा प्रत्युवाचविचारितम् ॥ १२ ॥ सन्दिदीक्षयिषुःक्षिप्रममराञ्छिवदीक्षया ॥ शिवयज्ञात्र्थसम्भारानानयध्वमलंसुराः ॥ १३ ॥ वेदीप्रकल्प्यतामत्र यष्टव्योऽष्टतनुश्शिवः ॥ पद्मयोनिवचःश्रुत्वा चक्रुस्सर्वमतस्सुराः ॥ १४ ॥ विनीतवेशाःप्रणता अनेनोक्तंसमन्वगुः ॥ शिवप्रसादसम्प्राप्त्यैपुष्कलज्ञानमीरितम् ॥ १५ ॥ यज्ञंचकारविधिना दीक्षांचन्द्रार्धधारिणः ॥ पद्मयोनिंपुरस्कृत्य तदादीक्षाप्रयोगतः ॥ १६ ॥ अनुजग्राहदेवांस्तान् परेच्छाप्रेरितःक्वचित् ॥ ततोव्रतानांप्रवरं व्रतंदिव्यंमहाप्रभुः ॥ १७ ॥ तेभ्योददौदेवताभ्यो सतदप्यविरोधवित् ॥ पठ्यतेशिवशाखायां महापाशुपतंव्रतम् ॥ १८ ॥ शैवंयथोदितंयच्च आगमाचारचेष्टितम् ॥ शिवाराधनमुख्यानां मुनीनांतीव्रतेजसाम् ॥ १९ ॥ सदानु

प्रणाम कर इनसे कहेहुये वचन के अनुगामी हुये व शिवजी की प्रसन्नताके लिये बहुत ज्ञान कहागया ॥ १५ विधिसे चन्द्रार्धधारी शिवजीकी यज्ञकिया व दीक्षाको ग्रहणकिया ब्रह्माको अगाडीकर उस समय दीक्षाके प्रयोगसे ॥ १६ ॥ कभी उत्तम इच्छासे प्रेरणा किये हुये शिवजीने उन देवताओं के ऊपर दयाकिया तदनन्तर वैर को न जाननेवाले उन महाप्रभु शिवजीने व्रतोंके मध्यमें उस उत्तम व्रतको उनके लिये दिया शिवशाखा में महापाशुपत व्रत पढ़ा जाता है ॥ १७ । १८ ॥ जो

कि शास्त्रों के आचारमें चेष्टित यथोदित शैवव्रत है और तीव्र तेजवाले व शिवजीके आराधनमें मुख्य मुनियोंके ऊपर ॥ १९ ॥ शिवजी सदैव दया करनेवालेहैं इस लिये साथही बुद्धिसे वह रौद्र शिवव्रत प्रार्थना कियागया ॥ २० ॥ और विस्मयको छोडकर सुवर्ण के अण्डेसे उपजेहुये ब्रह्माने उनके लिये भस्म नामक उस कामिक व्रतको दिया जो कि कहाहुआ सदैव शुभ होता है ॥ २१ ॥ व पापोंका नाशक दुःखविनाशक तथा पुष्टि, लक्ष्मी व बलको बढ़ानेवालाहै और सिद्धिदायक, यशकारक व सुन्दर तथा कलियुग के पापों को छुड़ानेवाला है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यत्नसे भस्मस्नान करतेहुये सावधान मनुष्य इन्द्रियों को दमन करनेवाले व

ग्राहकःशम्भुः सर्वदेवैःप्रकल्पितम् ॥ तदेवंप्रार्थितंबुद्ध्या व्रतंरौद्रंशिवंसमम् ॥ २० ॥ नतेभ्योविस्मयंत्यक्त्वा प्रायच्छत्कनकाण्डजः ॥ कामिकंभस्मनामानं सर्वदाकीर्तितंशुभम् ॥ २१ ॥ पापघ्नंदुःखशमनं पुष्टिमावलवर्द्धनम् ॥ सिद्धिदं कीर्तिकृत्कान्तं कलिकल्मषमोचकम् ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मस्नानंसमाहिताः ॥ कुर्वन्तोमानवादान्ताः शान्ताश्चसुजितेन्द्रियाः ॥ २३ ॥ सर्वेकमण्डलुधरास्सर्वेरुद्राक्षधारिणः ॥ अनिष्टदर्शनालापसङ्गत्यागविवर्जिताः ॥ २४ ॥ एवंव्रतधरास्सर्वे वनेतस्मिन्महेश्वरम् ॥ आराधयंस्तमीशानं व्रतेनैवउमाधवम् ॥ २५ ॥ भक्त्यापरमयायुक्ता विधिनापरमेणच ॥ कालेनमहताध्यानाद्देवंज्ञात्वामनोगतम् ॥ २६ ॥ रुद्रध्यानाग्निनिर्दग्धकल्मषाश्चश्रियान्विताः ॥ तदा गत्वासुराञ्छम्भुः प्रत्यक्षोभगवानभूत् ॥ २७ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मदत्तवरादेवास्सर्वेशर्वानुभाविताः ॥ समचीकरं

शान्त और इन्द्रियोंको जीननेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ सब देवता कमंडलुको धारे व सब रुद्राक्षको धारण किये और अशुभ के दर्शन, वार्तालाप, संग व दानसे रहित हुये ॥ २४ ॥ इस प्रकार उस वनमें व्रतोंको धारण कियेहुये सबों ने पार्वतीके पति शिवजी को व्रतहीसे आराधन किया ॥ २५ ॥ और परमभक्ति से संयुत वे उत्तम विधिसे व बहुत समय के कारण ध्यानसे सदाशिव देवजीको मनमें प्राप्त जानकर ॥ २६ ॥ शिवजीके ध्यान की अग्निसे जलेहुये पापोंवाले व लक्ष्मीसे संयुत हुये तब देवताओं के समीप जाकर भगवान् शिवजी प्रत्यक्ष हुये ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ब्रह्मासे दियेहुये बरदानवाले सब देवताओंने शिवजी से शुद्ध चित्तवाले

होकर वहांपर तपकिया व ईशान (सदाशिव) जी से भावित याने शुद्धचित्तवाले ब्रह्माने भी तपस्या किया ॥ २८ ॥ और देवताओंके हज़ारवर्ष बीतनेपर उत्पन्न दयावाले वे देवेश्वरेश्वर शिवजी अनेक भाति के भूषणो से भूषित व अनेक भाति केगणों समेत प्रज्वलित होकर देवताओं के दर्शन को प्राप्तहुये जो गण कि अपने बलसे गर्वको नाश करनेवाले व भयंकर तथा भयानक जंतुवोंको नाश करनेवालेथे ॥ २९ । ३० ॥ व इच्छा के अनुकूल रूपवाले व कामनारहित तथा सब कामनाओंसे संयुत थे व हाथियों के समान शरीरवाले थे ॥ ३१ ॥ और अणिमादिक दिव्यगुणोंवाले और योगैश्वर्य नामवाले व चलतेहुये केश, जिह्वा व दाढ़ों के कट-

स्तपस्तत्र ब्रह्मापीशानभावितः ॥ २८ ॥ गतेवर्षसहस्रेस दिव्येदेवेश्वरेश्वरः ॥ जातानुकम्पोदेवानां दीप्तोदर्शनमेयिवान् ॥ २९ ॥ गणैर्नानाविधैस्सार्द्धं नानाभूषणभूषितैः ॥ स्वबलेनचदर्पघ्नैर्घोरैर्घोरविघातिभिः ॥ ३० ॥ कामरूपैरकामैश्चसर्वकामसमन्वितैः ॥ करीन्द्रकरटाटोपपाटनोसिंहदेहिभिः ॥ ३१ ॥ अणिमादिगुणैर्दिव्यैर्योगैश्वर्यादिनामभिः ॥ व्यालोलकेशरसनादंष्ट्राकटकटोग्रकैः ॥ ३२ ॥ व्याघ्रव्यालाननैरौद्रैः काककङ्कमुखैस्तथा ॥ अरूपैःसमरूपैश्च सुरूपैर्बहुरूपकैः ॥ ३३ ॥ एकद्वित्रिशिरोभिश्च बहुशीर्षैरशीर्षकैः ॥ एकद्वित्रिशिखैश्चैव नानारूपविराजितैः ॥ ३४ ॥ बहुनेत्रैरनेत्रैश्च एकद्वित्रिविलोचनैः ॥ एककर्णैर्द्विकर्णैश्च बहुकर्णैरकर्णकैः ॥ ३५ ॥ एकद्वित्रिसुनासैश्च बहुनासैरनासकैः ॥ एकजङ्घैर्द्विजङ्घैश्च बहुजङ्घैरजङ्घकैः ॥ ३६ ॥ एकपादद्विपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ गौरश्यामैःश्यामगौरैः सितैःकर्बुरकैस्तथा ॥ ३७ ॥

कटाने से भयंकर थे ॥ ३२ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंके समान मुखवाले तथा भयंकर व कौवा और कंक पक्षी के समान मुखवाले थे और रूपरहित व समान रूपवाले तथा सुन्दर रूपवाले व बहुत रूपोंवाले थे ॥ ३३ ॥ और एक, दो, तीन मस्तकोंवाले व बहुत शिरोंवाले तथा शिररहित व एक, दो, तीन शिखाओंवाले व अनेकभाति के रूपों से शोभित थे ॥ ३४ ॥ और बहुत नेत्रोंवाले व नेत्ररहित तथा एक, दो,तीन लोचनोंवाले और एक कानवाले व दो कानोंवाले और बहुत कानोंवाले व कानों से हीनथे ॥ ३५ ॥ और एक, दो, तीन नासिकाओंवाले व बहुत नासिकाओंवाले और नासिकारहित थे व एक जङ्घावाले तथा दो जङ्घोंवाले व बहुत जङ्घो

वाले और जङ्घोंसे हीनथे ॥ ३६ ॥ व एक पांववाले, दोपैरोंवाले व बहुतपांववाले और चरणहीनथे व गौर व श्यामरंगवाले तथा श्याम गौररङ्गवाले व श्वेत तथा विचित्ररङ्ग वाले थे ॥३७॥ और सर्पोंके हार व कङ्कणोंवाले व सर्पोंके जनेऊवाले और त्रिशूल, तलवार व पट्टिश अस्त्रको धारे तथा भुशुण्डी (बन्दूक) व परिघ (दहमर्दा) अस्त्रों वालेथे ॥ ३८ ॥ और चक्र, आरा, धनुष, कालदण्ड अस्त्रोंको हाथमें लिये व गदा, मुद्गर, पत्थर व मुसल को हाथमें लियेथे ॥ ३९ ॥ और वज्र, शक्ति, अशनि, प्रास व भाला शस्त्रोंको धारनेवाले और भम्भा व नगारों को बजातेहुये तथा वीणा, पणव व गोमुख बाजोंको बजाते थे ॥ ४० ॥ व मृदङ्ग, मर्दल, ढोल, डमरु, डिंडिम

भुजङ्गहारवलयैर्नागयज्ञोपवीतकैः ॥ शूलासिपट्टिशधरैर्मुशुण्डिपरिघायुधैः ॥ ३८ ॥ चक्रक्रकचकोदण्डकालदण्डास्त्रपाणिभिः ॥ गदामुद्गरपाषाणमुसलायुधहस्तकैः ॥ ३९ ॥ वज्रशक्त्यशनिप्रासकुन्तशस्त्रविधारिभिः ॥ भम्भाभेरीर्वादयद्भिर्वीणापणवगोमुखान् ॥ ४० ॥ मृदङ्गमर्दलान्ढक्कामड्डुडिण्डिमझर्झरान् ॥ हुडुकान्पणवाद्यांश्च वाद्यान्वादद्भिरर्चकैः ॥ ४१ ॥ एवंनानाविधैरौद्रैर्भीमैर्भीमपराक्रमैः ॥ गणेश्वरैःसुदुर्द्धर्षैर्वृतःसूर्योग्रहैरिव ॥ ४२ ॥ आविर्बभूवभगवान् सगणैःपरिवारितः ॥ संपश्यतांतदाऽयासब्रह्मादीनांदिवौकसाम् ॥ ४३ ॥ अथब्रह्मादयोदेवा दृष्ट्वाग्रेगणनायकम् ॥ तेजसाध्यासितास्तस्य बभूवुर्भ्रान्ततेजसः ॥ ४४ ॥ ततोवलम्ब्यतेधैर्यं दृष्ट्वादेवंयथाविधि ॥ षडङ्गवेदयोगेन हृष्टचित्तवपुर्धराः ॥ ४५ ॥ शिरोगतैरञ्जलिभिः पादेभ्यश्चमहीङ्गतैः ॥ तुष्टुवुःसृष्टिसंहारस्थितिकर्तारमीश्वरम् ॥ ४६ ॥ देवाऊचुः ॥ नमःशिवायशान्ताय सगणायसनन्दिने ॥ वृषासनायसौम्याय शक्तिशूलधरायच ॥ ४७ ॥

झांझ, हुडुक व पणवादिक बाजोंको बजातेहुये पूजन करनेवाले थे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके भयङ्कर व भयानक बलवाले दुर्धर्ष शैव गणनायकों से शिव जी घिरेथे जैसे कि ग्रहोंसे घिरेहुये सूर्यनारायण होवे ॥ ४२ ॥ हे व्यासजी ! उस समय देखतेहुये ब्रह्मादिक देवताओं के मध्यमें गणोंसे घिरेहुये वे भगवान् सदाशिव जी प्रकटहुये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवता गणनायक को आगे देखकर उनके तेजसे स्थित होते हुये भ्रमिततेजवाले हुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर धैर्यको अवलम्बनकर सदाशिवजीको देखकर मस्तक पै प्राप्त अञ्जलियोंसे व पृथ्वी में प्राप्त चरणों से उपलक्षित व प्रसन्नचित्त तथा शरीर को धारेहुये उन देवताओं ने सृष्टि

संहार व पालन करनेवाले महादेवजी की स्तुति किया ॥ ४५ । ४६ ॥ देवता बोले कि गणोंसमेत व नन्दीसमेत शान्त शिवजी के लिये नमस्कार है व वृष पै आसन वाले, सौम्य व शक्ति तथा त्रिशूल को धारनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥४७ और दिशायें तथा चर्मवस्त्रवाले व उत्तमचित्त तथा तीव्रतेजवालेके लिये प्रणाम है और ब्रह्म व ब्रह्मशरीरवाले तथा ब्रह्मासे योजित शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ अन्धकविनाशक के लिये व सुरेशजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है और पंच-मुखवाले तथा समस्त रोगोंके हरनेवाले रुद्रजी के लिये प्रणाम है ॥ ४६ ॥ व गिरिश, सुरेश तथा ईशानजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है व भीम, उग्रस्वरूप व विजय के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५० ॥ देवताओं व दैत्योंके स्वामी व संन्यासियों के स्वामीके लिये प्रणाम है और शुण्ड व प्रचण्डदण्डवाले तथा उत्तम

नमोदिक्चर्मवस्त्राय सुचेतस्तीव्रतेजसे ॥ ब्रह्मणेब्रह्मदेहायब्रह्मणायोजितायच ॥ ४८ ॥ नमोऽन्धकविनाशाय सुरेशा यनमोनमः ॥ रुद्रायपञ्चवक्त्राय सर्वरोगापहारिणे ॥ ४६ ॥ गिरिशायसुरेशाय ईशानायनमोनमः ॥ भीमायोग्रस्वरू पाय विजयायनमोनमः ॥ ५० ॥ सुरासुराधिपतये यतीनांपतयेनमः ॥ शुण्डायचण्डदण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥ ५१ ॥ विरूपाक्षशुभाख्याय विश्वरूपायवैनमः ॥ शान्तायचनमोज्ञाय त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ ५२ ॥ वेधसेविश्वरूपा य विश्वसंहारिणेनमः ॥ भक्तानुकम्पिनेत्यर्थं रुद्रज्ञानपरायच ॥ ५३ ॥ विरूपायसुरूपाय रूपानांशतधारिणे ॥ पञ्चा स्यायशुभास्याय चन्द्रास्यायनमोनमः ॥ ५४ ॥ वरदायवरार्हाय सुकर्मायनमोनमः ॥ त्रिनेत्रत्राणमस्माकं त्रिपुरघ्न विधीयताम् ॥ ५५ ॥ वाङ्मनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नानांमहेश्वर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदादेवैर्विरञ्च्याद्यैस्तथा

खट्वाङ्ग को धारनेवाले शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ५१ ॥ व विरूपाक्ष तथा शुभाख्य के लिये व विश्वरूप के लिये नमस्कारहै व शान्त तथा विद्वान्के लिये प्रणाम है व त्रिलोचनजीके लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५२ ॥ और विश्वरूप ब्रह्माके लिये व संसारके संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है और अत्यन्तही भक्तके ऊपर दया करनेवाले व रुद्रज्ञान में परायणके लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ व विरूप तथा सुरूप और सैकड़ोंरूपो के धारनेवाले के लिये प्रणाम है और पञ्चमुख, शुभानन तथा चन्द्राननजी के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ और वरदायक, वरकेयोग्य व उत्तम कर्मवाले के लिये प्रणाम है प्रणाम है हे त्रिपुरविनाशक, त्रिलोचन, महेश्वरजी !

वचन, मन व शरीर की चेष्टाओं से तुम्हारी शरणमें प्राप्त हमलोगोंकी रक्षाकीजिये सनत्कुमारजी बोले कि उस समय ब्रह्मादिक देवताओंसे स्तुति कियेहुये सदाशिव ॥
५५।५६ ॥ सुरेश्वरजी ईश्वरने ब्रह्मादिक देवताओंके दुबले शरीरों को देखकर और दिव्य प्रतापको धारण कियेहुये तीनप्रकार के अन्तःकरण से आराधन को देखकर
कहा कि हे महाभागो ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम लोगोंने सदैव व्रतकी उपासना कियाहै ॥ ५७।५८ ॥ और मेरे दर्शनकी इच्छा से आपलोगोंने बहुतही श्रद्धासे
इस दैवीविधि से मेरा अत्यन्त आराधन कियाहै ॥५९॥ व्रतमें टिकेहुये मनुष्य व देवता भी मुझको देखते हैं यदि मैं तुमलोगों को किसी उत्तम वरदानों को देऊं ॥६०॥

हरः ॥ ५६ ॥ शरीराणिविलोक्येशः कृशान्यथदिवौकसाम् ॥ दिव्यप्रतापधारेण त्रिविधेनान्तरात्मनाम् ॥ ५७ ॥ आ
राधनंसमीक्ष्याह ब्रह्मादीनांसुरेश्वरः ॥ साधुसाधुमहाभागाःशश्वद्व्रतमुपासितम् ॥ ५८ ॥ देवेनानेनविधिना अशमा
राधितोह्यहम् ॥ भवद्भिःश्रद्धयात्यर्थं ममदर्शनकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥ व्रतस्थामांहिपश्यन्ति मानुषादेवताअपि ॥ यद्यहंच
प्रयच्छामि कांश्चिद्दोहिवराञ्छुभान् ॥ ६० ॥ एकैकशोद्वित्रिशोवा समस्तेभ्यस्समेनतत् ॥ सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं दास्या
मिह्येषदेवताः ॥ ६१ ॥ हितायभवतान्देवा आगत्योज्जयिनीम्प्रति ॥ क्षिप्तंकपालंचमया किम्पुनर्भद्रमस्तुवः ॥ ६२ ॥
देवाऊचुः ॥ किंकृतंहितमस्माकं कपालंक्षिपतात्वया ॥ किमर्थंकम्पिताभूमिर्लोकंवैव्याकुलीकृतम् ॥ ६३ ॥ नैतंनिरर्थ
कन्देव कथ्यतामत्रकारणम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ युष्मद्धितार्थमेतद्वै भयंविनिहितंकृतम् ॥ ६४ ॥ देवानामनुरक्षार्थं श्रूय
तामत्रकारणम् ॥ असुरेन्द्रोहयोनामबलवान्योगमायिकः ॥ ६५ ॥ अवस्थितोन्ववष्टभ्य रसातलतलाश्रयम् ॥ तस्यदे

तो एक एक या दो तीनको दूंगा इस लिये हे देवताओ ! तुल्यता से सबोंके लिये समस्त कामनाओं की सिद्धिके लिये यह मैं दूंगा ॥ ६१ ॥ हे देवताओ ! आपलोगों के
हितके लिये उज्जयिनीपुरी में आकर मैंने कपालको फेंकदिया तुमलोगोंका कल्याण होवै और फिर क्या चाहतेहो ॥ ६२ ॥ देवता बोले कि कपाल को फेंकतेहुये
तुमने हमलोगोंका क्या हित किया और किसलिये पृथ्वी कँपाईगई व लोक विकल कियागया ॥ ६३ ॥ हे देव ! यह बिन प्रयोजन नहींहै इस विषयमें कारण कहिये महा-
देवजी बोले कि तुमलोगोंके हितके लिये यह भय नाश कीगई है ॥ ६४ ॥ इस विषयमें देवताओं की रक्षाके लिये कारण को सुनिये कि बलवान् व योगमायावाला

हयनामक दैत्येन्द्र ॥ ६५ ॥ गर्वित होकर रसातल के नीचे आश्रित होकर स्थित था उस दैत्यके बलवान् व शत्रुपुरों को जीतनेवाले वे बहुत से दैत्य तुमलोगोंको तपस्यामें स्थित जानकर आये व इन्द्रसमेत देवताओंको मारनेके लिये इच्छा करतेहुये मायासे छिपेहुये शरीरोंवाले ॥ ६६।६७ ॥ व अस्त्रोंको उठायेहुये वे दैत्य उद्यतहो कर देवताओंको मारनेके लिये सुवर्णके शृगोंसे संयुत,मुख्य कुशस्थलीपुरीको आये॥६८ ॥ व कपाल गिरनेके कारण बड़े भयङ्कर शब्दसे तथा पृथ्वीके कांपनेसे उनके शरीर से प्राण निकलगये ॥ ६९ ॥ संसार की स्थिति के नाशने के लिये उनका उद्यम हुआथा उसी से राज्य के ऐश्वर्य से गर्वित उन दैत्यों को मैंने माराहै ॥ ७० ॥

त्यस्यबलिनो दैत्याःपरपुरञ्जयाः॥ ६६ ॥ युष्माञ्ज्ञात्वातपःस्थान्वै आययुर्बहवोदिते ॥ सेन्द्रान्निहन्तुमिच्छन्तो मायाप्रच्छन्नविग्रहाः ॥ ६७॥ पुरींकनकशृङ्गाढ्यामेकामधिकुशस्थलीम् ॥ समुद्ययुस्सुरान्हन्तुमुद्यताउद्यतायुधाः ॥ ६८ ॥ शब्देनचातिघोरेण भूमिनिष्कम्पनेनच॥ तेषांकपालपातेन देहात्प्राणाविनिर्ययुः ॥ ६९ ॥ लोकस्थितिविनाशार्थं तेषामासीत्समुद्यमः ॥ राज्यैश्वर्येणदर्पिष्ठास्तेनतेनिहतामया ॥ ७० ॥ देवाऊचुः ॥ विश्वस्तानांत्वयाचैव नोवाचानुग्रहःकृतः ॥ देवानुग्रहकर्त्तात्वं गुणस्मृतिनिषेवितः ॥ ७१ ॥ दिव्यदृष्टिभिरत्यर्थं यशोर्थंभीमपूजितः ॥ इत्युक्त्वाप्रणतान्देवानुत्थायोचेपुनर्भवः ॥ ७२ ॥ शिवउवाच ॥ परिचर्याभिसंयुक्तं नित्यमुग्रनिषेविणम् ॥ ध्यानसाधननिष्पन्नं यदन्येषान्नविद्यते ॥ ७३ ॥ मनोवाक्कायभावेन दुष्करंदुश्चरन्तपः ॥ अनेनतपसादेवाः कष्टेनदुस्सहेनच ॥ ७४ ॥ समन्तादभिवर्धन्तां युष्मत्तेजस्तथाधिकम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्तादेवदेवेन देवाब्रह्मपुरोगमाः ॥ ७५॥ ऊचुरुन्नम्यवक्त्रा

देवता बोले कि विश्वासमें प्राप्त हम लोगोंके ऊपर तुमने वचनसे दयाकिया क्योंकि गुणों के स्मरण से सेवित तुम देवताओं के ऊपर दया करनेवालेहो ॥ ७१ ॥ हे भीम! दिव्यदृष्टिवाले जनोंसे अपयशके लिये बहुतही पूजित होते हो यह कहकर प्रणाम कियेहुये देवताओंको उठाकर फिर शिवजी बोले ॥ ७२ ॥ महादेवजीने कहा कि सेवा से संयुत व ध्यान के साधन से सिद्ध नित्य शिवजी की सेवा जिसलिये अन्यजनों के नहीं विद्यमान है ॥ ७३ ॥ उसीकारण मन, वचन व शरीर के भाव से दुःख से करनेयोग्य तप कठिन है हे देवताओ ! इस तप से व असह्य कष्ट से ॥ ७४ ॥ तुमलोगों का तेज सबओर से बढ़ै व अधिक होवै सनत्कुमारजी बोले कि

देवदेव शिवजी से इसप्रकार कहेहुये ब्रह्मादिक देवता ॥ ७५ ॥ घुट्ठनुओं से स्थित होकर व मुखोंको ऊपर उठाकर बहुतसमय में इकट्ठा कीहुई बड़ी तपस्या से प्रसन्न शिवजीसे बोले देवता बोले कि हे देव ! तुम तपस्यासे प्राणदायक व कारण देखेजातेहो इसलिये तुम्हारे ध्यानमें परायण हमलोगोंको वरदायक होवो ॥ ७६। ७७ ॥ हे भक्तों को अभयकरनेवाले देवेश ! रक्षाकीजिये महादेवजी बोले कि उपाय व विधिसे तुम लोगोंको प्रकट दर्शन दियागया ॥ ७८ ॥ हे सुरोत्तमो ! कहिये हम तुमलोगों को बहुत वरदानों को देवैंगे भगवान् शिवजीसे ऐसा कहने पर देवताओंके आगे खड़े होकर ब्रह्माजी ने शास्त्रके शब्दसे उपजेहुये वचन को सदाशिवजी

णि स्थिताजानुभिरीश्वरम् ॥ महतातपसातुष्टं बहुकालार्जितेनच ॥ ७६ ॥ देवाऊचुः ॥ प्राणदस्त्वंकारणस्त्वं तपसादेव दृश्यसे ॥ तदस्माकंप्रवृत्तानां तवध्यानेवरप्रदः ॥ ७७ ॥ रक्षांकुरुष्वदेवेश भक्तानामभयङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्नेन विधिनादत्तं मुव्यक्तंदर्शनंहिवः ॥ ७८ ॥ व्रियताम्भोःसुरश्रेष्ठा दास्यामोवोवरान्बहून् ॥ एवमुक्तेभगवता ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ७९ ॥ देवानामग्रतःस्थित्वा श्रुतशब्दोद्भवंभवम् ॥ प्राप्तोयंचाद्यभगवन् सुपर्याप्तोमहावरः ॥ ८० ॥ दीयतामस्समैश्वर्यं तेषांस्थानमथाक्षयम् ॥ शिवउवाच ॥ लोकेस्मिन्ममयेभक्ता मयाविनिहताश्चये ॥ ८१ ॥ नैवतेदुर्गतिंयान्ति लभन्तेसुगतिंपराम् ॥ सार्द्धंतत्रजटाजूटैः शिरोभिश्शूलपाणयः ॥ ८२ ॥ भान्तिमद्वामपार्श्वस्था इमेतेद्रोहिणाङ्गणाः ॥ एषांविनिग्रहार्थाय युष्मत्सम्बोधनायच ॥ ८३ ॥ सविकारंमयाक्षिप्तं कपालंधरणीतले ॥ कृतोमेनुग्रहस्तेषां भक्तानांभक्तिमिच्छताम् ॥ ८४ ॥ वनेस्मिन्नित्यवासोमे वृक्षैरभ्यर्थितेनच ॥ महाकालवनेदेवा आगतस्यममानघाः ॥ ८५ ॥

से कहा कि हे भगवन् ! आज भलीभांति परिपूर्ण यह महावरदान पायागया ॥ ७९।८० ॥ और हमलोगों को ऐश्वर्य्य व उनको अविनाशी स्थान दियाजावै शिवजी बोले कि इस संसारमें जो मेरे भक्तहैं व जो मुझसे मारेगयेहैं ॥ ८१ ॥ वे दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोतेहैं किन्तु वहांपर उत्तम सुगतिको पातेहैं व जटाजूटों समेत मस्तकोंसे उपलक्षित व त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ८२ ॥ मेरे बायेंओर समीपमें स्थित ये वे वैरियों के गण शोभित हैं इनके दण्डके लिये व तुमलोगों के ज्ञानके निमित्त ॥ ८३ ॥ विकार समेत कपालको मैंने पृथ्वीमें फेंकदिया और भक्तिको चाहतेहुये उन भक्तोंके ऊपर मैंने दया किया ॥ ८४ ॥ और वृक्षोंसे याचित मुझसे इस महाकालवनमें

सदैव निवास कियाजायगा हे पापरहित देवताओ ! महाकालवनमें आयेहुये मेरे ॥ ८५ ॥ व तपस्या करतेहुये आपलोगोंके उसीकारण दो नामोंसे संयुत गुप्त महाकाल वन संसारमें प्रसिद्ध होगा ॥ ८६ ॥ गुह्यवन व श्मशान क्षेत्रोंके मध्यमें बड़ा श्रेष्ठहै और मैंने इस कपालव्रतचर्याको कहाहै ॥ ८७ ॥ कपालरूपी पात्रमें भोजन करता हुआ व कपालव्रत के भूषणवाला और कपालको हाथमें लिये व भिक्षाव्रतसे संयुत पुरुष सन्तुष्ट होताहै ॥ ८८ ॥ व श्मशान में स्थानवाला, रौद्र तथा व्रत से उन्मत्त व मूढ़बुद्धिवाला नर सदैव समस्त प्राणियों में प्रिय व अप्रिय में समान होकर प्रसन्न होता है ॥ ८९ ॥ और भस्म से भूषित सब अङ्गोंवाला व विशेषकर ज्ञानी,जिते-

तपस्यताश्चभवतां महाकालवनन्ततः ॥ नामद्वययुतंगुह्यं लोकेख्यातंभविष्यति ॥ ८६ ॥ गुह्यंवनंश्मशानञ्चक्षेत्राणांप्रवरंमहत् ॥ कपालव्रतचर्याच मयाह्येषाप्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ कपालपात्रेभुञ्जानः कपालव्रतभूषणः ॥ कपालपाणिस्सन्तुष्टो भिक्षाव्रतसमन्वितः ॥८८॥ श्मशाननिलयोरौद्रो व्रतोन्मत्ताविमूढधीः ॥ नन्दितस्सर्वभूतेषु प्रियाप्रियसमस्सदा ॥ ८९ ॥ भस्मभूषितसर्वाङ्गो ज्ञानीचैवविशेषतः ॥ जितेन्द्रियस्सर्वसङ्गी मृद्भस्मोदकसंग्रही ॥ ९० ॥ नित्ययुक्तस्सदाजापी जपार्जितवरासनः ॥ पुण्यतीर्थाश्रमोपेतश्शनैर्देवेसमाहितः ॥ ९१ ॥ लोकातीतंपरंज्ञानं महापाशुपतंव्रतम् ॥ कपालव्रतमास्थाय पुराचीर्णमयास्वयम् ॥ ९२ ॥ कपालंपरमंगुह्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ कपालव्रतमेतद्धि दुर्द्धरंपरमाद्भुतम् ॥ ९३ ॥ अत्यन्तमुत्कटंरौद्रमघोरंरोमहर्षणम् ॥ महाव्रतंद्विषन्मोहात्पापेनैवस्थितोनरः ॥ ९४ ॥ न मुच्यतेसपापेन जन्मकोटिशतैरपि ॥ महापाशुपतंतस्मान्नहन्यान्नचदूषयेत् ॥ ९५ ॥ एकस्मिन्निहतेयस्मात्कोटिर्भ

न्द्रिय,सबका सङ्ग करनेवाला व मिट्टी,भस्म और जलका संग्रह करनेवाला ॥ ९० ॥ तथा सदैव योगमें प्राप्त व सदा जप करनेवाला और जपसे उत्तम आसनोंको इकट्ठा किये व पवित्र तीर्थों तथा आश्रमों से संयुत पुरुष धीरेसे देवमें सावधान होताहै ॥ ९१ ॥ पुरातन समय कपालव्रत में स्थित होकर मैंने आपही लोकोंसे परे ज्ञान व महापाशुपत व्रतको किया है ॥ ९२ ॥ कपालव्रत बहुतही गुप्त, पवित्र व पापनाशक है और यह कपालव्रत दुर्द्धर व बड़ा आश्चर्यमय है ॥ ९३ ॥ और अत्यन्त उग्र, भयंकर, अघोर व लोगों को प्रसन्न करनेवाले महाव्रत को मोह से द्वेष करताहुआ मनुष्य पापही से स्थित होताहै ॥ ९४ ॥ और वह करोड़ों सै वर्षोंसे भी पातक

से नहीं छूटताहै इसलिये महाशैवको न मारै और न दूषितकरै ॥ ६५ ॥ क्योंकि एक के मारने पर करोड़ मारेहुये होतेहैं व श्रद्धासंयुत जो पुरुष एक महाव्रतीको भोजन कराताहै ॥ ६६ ॥ उससे वेददर्शी करोड़ ब्राह्मण भोजन कराये हुये होतेहैं जो मनुष्य यतियोंको कपाल पूर्ण करनेवाली भिक्षा देताहै ॥ ६७ ॥ समस्त पातकोंमे छूटाहुआ यह दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है कपालमें भोजन श्रेष्ठहै और ब्रह्मासे उपजाहुआ यह मार्गहै ॥ ६८ ॥ लोकों व वेदोंमे प्रणाम कियेहुये व देवताओं तथा दानवों से पूजित और प्राणियों के मोह करानेवाले कपाल को जो ब्राह्मण धारण करैंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे तुल्य वे भूतल में भ्रमण करैंगे महाव्रत मे परायण व कपाल से किये

वतिघातिता ॥ एकंमहाव्रतंयस्तु भोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥९६॥ तेनभुक्ताभवेत्कोटिर्विप्राणांवेददर्शिनाम् ॥ कपाल पूर्णांभिक्षां यतीनांयःप्रयच्छति ॥ ९७ ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो नासौदुर्गतिमाप्नुयात् ॥ कपालभोजनंश्रेष्ठं मार्गोयंब्र ह्मसम्भवः ॥९८॥ वन्दितंलोकवेदेषु पूजितन्देवदानवैः॥धारयिष्यन्तियेविप्राः कपालंभूतमोहनम् ॥ ९९ ॥ ममतुल्या स्तुतेब्रह्मन् विचरन्तिमहीतले ॥ महाव्रतेरताधीराः कपालकृतभूषणाः ॥ १०० ॥ महापाशुपतालोके रुद्रास्संसारतार काः ॥ धर्माधर्मविमुक्ताश्च कृत्याकृत्यविवर्जिताः ॥ १ ॥ दीक्षयानेनयोगेन प्राणिनस्तारयन्तिते ॥ यानितीर्थानिलोके स्मिन् यज्ञकोटिशतानिच ॥ २ ॥ विशुद्धस्यहिज्ञानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ यथाहंसर्वदेवानां सम्पूज्योस्मिपि तामह ॥ ३ ॥ तथैवसर्वयोगेभ्यः सम्पूज्योयंमहाव्रतः ॥ संसारबन्धमोक्षार्थं शिवगुह्यमिदंव्रतम् ॥ ४ ॥ यदेतत्सर्व धर्मेण अपुनर्भवकारणम् ॥ कपालव्रतमादाय यस्त्यजेदजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ रौरवंसप्रयात्याशु प्रणीतोयमकिङ्करैः ॥

हुये भूषणवाले विद्वान् ॥ १०० ॥ महाशैव लोग संसार में रुद्ररूप होकर संसार को तारनेवाले हैं धर्म व अधर्म से छूटेहुये तथा कार्य व अकार्यसे रहित ॥ १ ॥ वे लोग दीक्षासे इस योग करके प्राणियोंको तारते हैं इस संसारमे जो तीर्थ हैं वे और करोडों सै यज्ञ ॥ २ ॥ पवित्र ज्ञानकी सोलहवींमात्रा के योग्य नहीं होते हैं हे पितामह ! सब देवताओं के मध्यमें जैसे मैं भलीभांति पूजनेयोग्य हूं ॥ ३ ॥ वैसेही सब योगों से यह महाव्रत पूजनेयोग्य है संसार के बन्धन व मोक्षके लिये यह शिव गुप्तव्रत है ॥ ४ ॥ क्योंकि सब धर्म से यह फिर न जन्म होनेका कारण है कपालव्रतको लेकर जो अजितेन्द्रियनर त्यागताहै ॥ ५ ॥ यमदूतोंसे लेगयाहुआ वह पुरुष

शीघ्रही रौरवनरक को प्राप्तहोता है जो स्वभाव से आलाप करता है और कर्म नहीं करता है ॥ ६ ॥ वह स्नेहसे शृङ्गारचित्तवाला है धर्मका प्रियकारक नहीं है और एकत्र भोजन करनेवाला व मिष्टभोजी तथा जो निष्कपट प्रिय नहींहै ॥ ७ ॥ और कुगाव व कुनगरमें बसनेवाला तथा कृषी व वाणिज्य का सेवक इत्यादिक उस दुष्ट दोषके सम्भाषण से भी ॥ ८ ॥ मनुष्य नरकगामी होता है क्योंकि वह मेरे व्रतका दूषक होताहै अथवा दुष्टको देखकर महाव्रत को धारनेवाला पुरुष ॥ ९ ॥ अङ्गसे अङ्गको न छुवै और छूकर जलसे स्नानकरै इस प्रकार तुमलोगों से कपालका छोड़ना कहागया ॥ १० ॥ जिस प्रकार कि मैंने यहांपर कपालको छोड़ा व आपही दैत्य

आलापयतिभावेन नतुकर्मकरोतियः ॥ ६ ॥ सरागचित्तश्शृङ्गारी नचधर्मप्रियङ्करः ॥ एकत्रभोजीमिष्टाशी नाकैतववचःप्रियः ॥ ७ ॥ कुग्रामेनगरेवासी कृषिवाणिज्यसेवकः ॥ इत्यादिदुष्टदोषस्य तस्यसम्भाषणादपि ॥ ८ ॥ नरोनरकगामीस्याद्यतोमद्व्रतदूषकः ॥ दृष्ट्वातुदुष्टमथवा महाव्रतधरोनरः ॥ ९ ॥ नस्पृशेदङ्गमङ्गेन स्पृष्ट्वास्नायातुचाम्बुभिः ॥ एवंवस्सर्वमाख्यातं कपालस्यचमोक्षणम् ॥ १० ॥ यथामयात्रनिक्षिप्तं चासुरानिहताःस्वयम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवान् ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ ११ ॥ क्षेत्रंनिर्वासयामास यथावत्कथयामिते ॥ आद्यमेतच्छ्मशानञ्च पठ्यतेमुनिसत्तमैः ॥ १२ ॥ महाकालवनंव्यासयत्रसन्निहितोहरः ॥ अनुग्रहस्यभुवनं भूमिभागेनशम्भुना ॥ १३ ॥ अनुग्रहार्थंभूतानां क्षेत्रंतन्मृत्युधर्मिणाम् ॥ सुवर्णवज्ररचिता वेदिकाचमहीकृता ॥ १४ ॥ विचित्रकुसुमारत्नैः कारितासर्वशोभना ॥ स्वर्णवज्राङ्किततरा श्रेष्ठाहरितशाद्वला ॥ १५ ॥ त्रिंशच्चत्वारिसम्पूर्णाः कलशाःशोभनाःस्थिताः ॥

मारेगये सनत्कुमारजी बोले कि इस प्रकार कहकर उन भगवान् सदाशिवजी ने ब्रह्मादिक देवताओं समेत ॥ ११ ॥ क्षेत्रको बमाया उसको मैं तुमसे यथायोग्य कहताहूं यह पहला श्मशान मुनिश्रेष्ठों से पढ़ाजाता है ॥ १२ ॥ और जहांपर सदाशिवजी टिके हैं वह महाकालवन है और शिवजी से भूमिभाग करके वह दयाभुवन कियागया है ॥ १३ ॥ और मृत्युधर्मी याने मरनेवाले प्राणियों के ऊपर दयाके लिये वह क्षेत्र कियागया है व सुवर्ण तथा हीरोंसे रचीहुई वेदी व पृथ्वी कीगई है ॥ १४ ॥ जोकि रत्नोंसे विचित्र पुष्पोंवाली सबसे उत्तम है और सोने व हीरोंसे अत्यन्तही चिह्नित तथा श्रेष्ठ व हरित बालतृणोंवाली थी ॥ १५ ॥ और सुन्दर चौंतीस

कलश सम्पूर्ण स्थितहैं और उसमें चार अनमोल द्वार तपते हैं ॥ १६ ॥ व उसमें स्थित कलश उदयहुये सूर्यनारायणकी नाईं शोभितहैं वहांपर वनोंके मध्यमें उत्तम वनमें भगवान् शिवजी क्रीडा करते हैं ॥ १७ ॥ त्रेतायुगमें धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी तपस्वीलोग रहते हैं और नन्दीसमेत व कालदण्डीसे संयुत देवगणनायक (स्वामि-कार्त्तिकेय) जी हैं ॥ १८ ॥ यह सब सत्ययुगमें प्रत्यक्ष देखपड़ता है और द्वापर में धर्मशील तथा वेद व विज्ञान से शोभित पुरुष वहां देख पडते हैं ॥ १९ ॥ और कलियुगमें शुद्ध विज्ञानसे शोभित अधिक तपवाले पुरुष कल्याणकारक व भक्तदुःखहारक देवदेव सदाशिवजी को देखते हैं ॥ २० ॥ जोकि महाकालवन में नित्य

द्वाराणितत्रचत्वारि प्रवर्ग्याणितपन्तिच ॥ १६ ॥ कुम्भाःशोभन्तितत्रस्था उदिताभास्कराइव ॥ रमतेतत्रभगवान् वनानामुत्तमेवने ॥ १७ ॥ त्रेतायांधर्मनिरतास्तापसाब्रह्मचारिणः ॥ सनन्दीदेवगणपः संयुतःकालदण्डिना ॥ १८ ॥ एतत्कृतयुगेसर्वं प्रत्यक्षंदृश्यतेवने ॥ द्वापरेधर्मशीलाश्च श्रुतिविज्ञानशालिनः ॥ १९ ॥ कलौतुशुद्धविज्ञानशालिनःशङ्करंहरम् ॥ तपोधिकाःप्रपश्यन्तिदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ २० ॥ महाकालवनेनित्यं शूलपट्टिशधारिणम् ॥ एतत्तेतथ्यमाख्यातं लोकानुग्रहकारकम् ॥ २१ ॥ संहितानुक्रमेणात्र मन्त्रैश्चविधिपूर्वकम् ॥ समर्चयन्तियेविप्रा भक्त्याशम्भुमघापहम् ॥ २२ ॥ वसन्तीहसमीपन्ते महाकालानुभावतः ॥ २३ ॥ पठतियइहलोके तस्यसंस्थानमेतत् प्रथितगुणगणौघैरर्चितंदोषहन्तृ ॥ शुभमतिरभिषिक्तः सोमरैरर्च्यमानो व्रजतिहरपुरंवै यःशृणोत्येकचित्तः ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कपालमोचनन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ही शूल व पट्टिशको धारण कियेहैं तुमसे यह संसारके ऊपर दयाकारक सत्यवृत्तान्तकहागया ॥ २१ ॥ यहांपर संहिता के क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंके द्वारा जो ब्राह्मण भक्तिसे पापविनाशक सदाशिवजीको भलीभांति पूजते हैं ॥ २२ ॥ वे महाकालजीके प्रभावसे यहां मेरे समीप बसते हैं ॥ २३ ॥ इस संसारमें प्रसिद्ध गुणगणोंसे पूजित व दोषोंको नाश करनेवाले उन महादेवजीके इस चरित्रको जो पढ़ताहै देवताओंसे अभिषेक कियाहुआ वह उत्तम बुद्धिवाला पुरुष पूजित होताहै और वह शिवलोक को जाताहै जोकि सावधान चित्त होकर सुनताहै ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकपालमोक्षणंनामषष्ठोऽध्यायः॥६॥

सृष्टिके लिये प्रधान त्रिगुणात्मकहै साधर्म्य व आत्म्य व ऐश्वर्य व प्रधाध व विधर्मि याने अन्य धर्मवाला ॥ २० ॥ और यह रुद्रका कारणहै व यह काम्यता कहीजातीहै सब कही कर्तृत्व है और रुद्रपुरुष में भी अकर्तृत्व है ॥ २१ ॥ और प्रधानपुरुष में अचैतन्यहै और वह यह तत्त्व कहागया है और अन्य तत्त्वसे कार्य व कारण छूटजाते हैं ॥ २२ ॥ और तत्त्व की संख्यासे प्रयोजक में विधर्मता को देखकर संख्या है यह रुद्रके तत्त्वार्थचिन्तकों से कहाजाता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार उनका तत्त्वभाव है और तत्त्वसे तत्त्वोंकी संख्या है व विद्वानों ने रुद्रतत्त्व से भी अधिक ज्ञानतत्त्व को कहाहै ॥ २४ ॥ उसीकारण सांख्ययोग में यह भक्ति विद्वानों से आध्यात्मिकी मानी

च॥२०॥कारणंतच्चरुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते ॥ सर्वत्रकर्तृतारुद्रे पुरुषेचाप्यकर्तृता ॥ २१ ॥ अचैतन्यंप्रधानेच तच्चतत्त्वमिदंस्मृतम् ॥ तत्त्वान्तरेणमुच्येते कार्यकारणमेवच॥२२॥प्रयोजकेचवैजात्यं ज्ञात्वातत्त्वस्यसंख्यया ॥ संख्यास्तीत्युच्यतेप्राज्ञै रुद्रतत्त्वार्थचिन्तकैः ॥ २३ ॥ इतितस्यतत्त्वभावंतत्त्वसंख्याचतत्त्वतः ॥ रुद्रतत्त्वाधिकंचापि ज्ञानतत्त्वंविदुर्बुधाः ॥ २४॥ सांख्येततोभक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकीमता ॥ यौगिकीमपिमेभक्त्या शृणुभक्तिंमहासुराः ॥२५॥ प्राणायामपरोनित्यं ध्यायेतनियतेन्द्रियः ॥ धारणांहृदयेधृत्वाध्यायतेयोमहेश्वरम् ॥२६॥ हृत्कञ्जकर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रंत्रिलोचनम् ॥ शशाङ्कद्योतितजटं व्यालावृतकटीतटम्॥ २७॥ श्वेतंदशभुजंभद्रं वरदाभयहस्तकम् ॥ योगजामानसीत्येषा स रुद्रभक्तिःपरास्मृता ॥ २८ ॥ यएवंभक्तिमान्रुद्रे रुद्रभक्तःसउच्यते ॥ विधिन्तुशृणुमेव्यास यःस्मृतःक्षेत्रवासिनाम् ॥ २९ ॥ स्वयंरुद्रेणविहितो ब्रह्मादीनांसमागमे ॥ कथितोविस्तरात्पूर्वं पूर्वेषांतत्रसन्निधौ ॥ ३० ॥ निर्ममानिरहङ्का

गई है और हे महासुरो ! योगवाली भक्तिको भी मुझ से भक्तिसे सुनिये ॥ २५ ॥ कि प्राणायाम में परायण होकर इन्द्रियोंको जीतेहुये पुरुष नित्यही ध्यानकरै हृदय में धारणा धरकर हृदयके कमलपै बैठे पंचमुख त्रिनेत्र और दशभुजाओंवाले व चन्द्रमा से प्रकाशित जटावाले तथा सर्पों से आच्छादित कटितटवाले और गौरवर्ण व वरदायक तथा अभय हाथोंवाले कल्याणरूप सदाशिवजीको जो ध्यान करताहै हे व्यासजी ! उसके योगमें उपजीहुई उत्तम शिवभक्ति कहीगई है ॥ २६ । २७ । २८ ॥ जो इसप्रकार शिवमें भक्तिमान्है वह शिवभक्त कहा जाताहै व हे व्यासजी ! क्षेत्रवासियोंको जो विधि कहीहै उसको मुझसे सुनिये ॥ २९ ॥ जो कि ब्रह्मादिकों

के संयोग में आपही शिवजी से कहीगई है व पुरातन समय वहांपर पहलेवाले जनों के समीप विस्तार से कहीगई है ॥ ३० ॥ ममतारहित, गर्वविहीन, सङ्गरहित तथा स्त्रीआदिकों से रहित और बन्धुवर्गमें स्नेहरहित तथा ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले ॥ ३१ ॥ और नित्य तीनभांति के कर्मोंसे प्राणियों को अभय देनेवाले व सांख्ययोग की विधिको जाननेवाले, धर्मज्ञ तथा संशयरहित ॥ ३२ ॥ जो क्षेत्रवासी ब्राह्मण अनेक भांति के यज्ञोंसे महाकालवन में शिवजी को पूजते हैं मरेहुये उनलोगों को जो फल होता है उसको सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वे पुरुष बहुतही दुर्लभ व अक्षय ब्रह्मसायुज्य मुक्तिको प्राप्तही होतेहैं और अक्षयमोक्ष को प्राप्तहोकर फिर

रा निस्सङ्गानिष्परिग्रहाः ॥ बन्धुवर्गेचनिःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ३१ ॥ भूतानांकर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः ॥ साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥ ३२ ॥ यजन्तेविविधैर्यज्ञैर्येविप्राःक्षेत्रवासिनः ॥ महाकालवनेतेषां मृतानांयत्फलंशृणु ॥ ३३ ॥ व्रजन्त्येवसुदुष्प्रापं ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ॥ सम्प्राप्यनपुनर्जन्म लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥ ३४ ॥ पुनरावर्तनंहित्वा विधिंमाहेश्वरंस्थिताः ॥ पुनरावृत्तिरन्येषां प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ गार्हस्थ्यविधिमासाद्य षट्कर्मनिरतास्सदा ॥ वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिताः ॥ ३६ ॥ अधिकंफलमाप्नोति सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सर्वलोकेषुचान्यत्र गतिस्तस्यनहन्यते ॥ ३७ ॥ दिव्यैनैश्वर्ययोगेन सुरूढःसुपरिग्रहः ॥ बहुसूर्यप्रकाशेन विमानेनसुवर्चसा ॥ ३८ ॥ वृतःस्त्रीणांसहस्रैश्च स्वच्छन्दगमनालयः ॥ विचरत्यविचारेण सर्वलोकान्दिवौकसाम् ॥ ३९ ॥

जन्मको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ ३४ ॥ और वे फिर पुनरागमन को छोड़कर शिवजी की विधिमें स्थित होतेहैं और प्रपञ्चाश्रम में बसनेवाले अन्य नरों का पुनरागमन होताहै ॥ ३५ ॥ और गृहस्थी की विधिमें स्थित होकर वेदोक्तविधि से सदैव षट् (छह) कर्मोंमें परायण और भलीभांति मन्त्रों व स्तोत्रोंसे बँधाहुआ ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण समस्त दुःखों से रहित होकर अधिक फलको प्राप्त होता है और सब लोकोंमें व अन्यत्र उसकी गति नहीं नष्ट होती है ॥ ३७ ॥ और दिव्य ऐश्वर्य के योगसे पुष्ट व उत्तम परिवारवाला तथा इच्छाके अनुसार स्थानोंमें गमनवाला वह पुरुष हजारों स्त्रियोंसे घिरकर बहुत सूर्यों के समान प्रकाशवाले तथा उत्तम तेजवाले विमान के द्वारा

देवताओं के सब लोकोंमें विचाररहित भ्रमण करता है ॥ ३८।३९ ॥ और पुरुषों के मध्यमें बहुतही चाहनेयोग्य और सब जातियों से उत्तम व धनी होताहै और स्वर्ग से भ्रष्टहुआ पुरुष बडेभारी कुलमें उत्पन्न होकर रूपवान् होताहै ॥ ४० ॥ और धर्म का जाननेवाला व शिवभक्त तथा समस्त विद्याओं के अर्थका पारगामी होताहै और ब्रह्मचर्य्य व गुरुकी सेवासे ॥ ४१ ॥ और वैसेही वेदपाठ से संयुत तथा भिक्षासे जीविका करनेवाला और इन्द्रियजित होताहै और नित्यसत्यरूपी व्रत में संयुत और अपने धर्ममें हर्षवान् होताहै ॥४२॥ और मराहुआ वह पुरुष कामनाओं से बढेहुये व समस्तसुखों को अवलम्बन करनेवाले दूसरे सूर्यकी नाईं विमान से शोभित होता

स्पृहणीयतमः पुंसां सर्ववर्णोत्तमोधनी ॥ स्वर्गाच्च्युतःप्रजायेत कुलेमहतिरूपवान् ॥४०॥ धर्मज्ञोरुद्रभक्तश्च सर्वविद्यार्थपारगः ॥ तथैवब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेनच ॥ ४१ ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो भिक्षावृत्तिर्जितेन्द्रियः ॥ नित्यंसत्यव्रतेयुक्तः स्वधर्मेचप्रमोदवान् ॥ ४२ ॥ मृतःकामसमृद्धेन सर्वभोगावलम्बिना ॥ सूर्येणेवद्वितीयेन विमानेनविराजितः ॥४३॥ गुह्यकानामरुद्रस्य गणाःपरमसम्मताः ॥ अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः ॥ ४४ ॥ तेषांचसमतांयाति तुल्यैश्वर्यसमन्वितः ॥ देवदानवमर्त्येषु सचपूज्यतमोभवेत् ॥ ४५ ॥ वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानिच ॥ एवमैश्वर्यसंयुक्तोरुद्रलोकेमहीयते ॥ ४६ ॥ उषित्वासौविभूत्यावै यदावैच्यवतेनरः ॥ रुद्रलोकाच्च्युतोभूमौ वसतेनात्रसंशयः ॥ ४७ ॥ महाकालवनेक्षेत्रे ब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः ॥ महेश्वरपरोनित्यंवसेद्वाम्रियतेथवा ॥ ४८ ॥ मृतोसौयातिदिव्येवै विमानेसू

है ॥ ४३ ॥ और बहुतही मानेहुये तथा अमित बल व ऐश्वर्यवाले और देवताओं तथा दानवों से पूजित जो गुह्यकनामक शिवजीके गणहैं ॥४४॥ उनके तुल्य ऐश्वर्यों से संयुत पुरुष उनकी समता को प्राप्तहोता है और देवता, दानव व मनुष्यों के बीचमें वह अत्यन्त पूजनीय होताहै ॥ ४५ ॥ व करोड़ों हज़ारों वर्षोंतक और करोड़ों सै वर्षोंतक इसीभांति ऐश्वर्य से संयुक्त पुरुष शिवलोक में पूजित होताहै ॥ ४६ ॥ और वहां बसकर यह पुरुष जब ऐश्वर्य से च्युत (पृथक्) होताहै तब शिवलोक से गिराहुआ वह भूमिमें बसता है इसमें सन्देह नहीं है ॥४७॥ और ब्रह्मचर्य के आश्रम में स्थित शिवमें तत्पर वह पुरुष महाकालवन नामक क्षेत्रमें बसताहै या मरता

है ॥ ४८ ॥ और मराहुआ यह पुरुष सूर्यके समान तेजवाले दिव्य विमान पै प्राप्तहोताहै और वह पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश से चन्द्रमा की नाईं प्रियदर्शनोंवाला होताहै ॥ ४९ ॥ और शिवलोक में प्राप्तहोकर वह गुह्यकों के साथ आनन्द करता है और सब संसारका स्वामी वह बड़े ऐश्वर्यको भोग करताहै ॥ ५० ॥ और हज़ारों युगोंतक भोगकर शिवलोक में पूजित होता है और फिर क्रमसे उस शिवलोक से भ्रष्टहुआ पुरुष ॥ ५१ ॥ नित्यही प्रसन्न होताहुआ वहां व्याधिरहित लोकको भोग कर ब्राह्मणों के बड़ेभारी उत्तमवंशमें पैदाहोता है ॥ ५२ ॥ और सब मनुष्यों के बीचमें रूपवान् होकर बसता है और स्त्रियोंके अत्यन्तही चाहनेयोग्य व महासुखों

यंवर्चसि ॥ पूर्णचन्द्रप्रकाशेन शशिवत्प्रियदर्शनः ॥ ४९ ॥ रुद्रलोकंसमासाद्य गुह्यकैस्सहमोदते ॥ ऐश्वर्यंचमहद्भुङ्क्ते सर्वस्यजगतःप्रभुः ॥ ५० ॥ भुक्त्वायुगसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते ॥ प्रच्युतस्तुपुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्क्रमेणतु ॥५१॥ नित्यंप्रमुदितस्तत्र भुक्त्वालोकमनामयम् ॥ द्विजानामुत्तमेचैव कुलेमहतिजायते ॥ ५२ ॥ मानुषेषुचसर्वेषु वसेद्भूत्वासुरूपवान् ॥ स्पृहणीयवपुःस्त्रीणां महाभोगपतिर्भवेत् ॥ ५३ ॥ वानप्रस्थसमाचारो वनौषधिनिषेवकः ॥ शीर्णपत्रसमाहारः फलपुष्पाम्बुभोजनः ॥ ५४ ॥ कणाशेनाश्मकुट्टेन दन्तोलूखलकेनच ॥ येनकेनाप्युपायेन जीर्णवल्कलवस्त्रतः ॥ ५५ ॥ जटीत्रिषवणस्नायी मुक्तकेशश्चदण्डवान् ॥ जलशायीपञ्चतपा वर्षास्वभ्रशयीतथा ॥ ५६ ॥ कीटकण्टकपाषाणभूम्यान्तुशयनंतथा ॥ स्थानवीरासनरतः संविभागीदृढव्रतः ॥ ५७ ॥ अरण्यौषधिभोक्ताच सर्वभूता

का स्वामी होताहै ॥ ५३ ॥ और वानप्रस्थ आश्रम के आचरणवाला पुरुष वनकी ओषधियों को सेवन करनेवाला व गिरेहुये पत्तोंका आहार करनेवाला तथा फल, फूल व जलको भोजन करताहै ॥ ५४ ॥ और कणभोजन व पत्थर में कूटने से और दन्तरूपी ओखली से व जिस किसी उपाय से भी प्राचीन बकलों के वसनसे युक्तहोकर ॥ ५५ ॥ जटावान् व त्रिकाल स्नान करनेवाला तथा बालोंको छोड़ेहुये और दण्ड धारण किये जलमें शयन करनेवाला व पञ्चाग्नि तापनेवाला और वर्षा ऋतुमें आकाश में शयन करनेवाला होवै ॥ ५६ ॥ और कीट, कंटक, पत्थर व भूमिमें शयनकरै और स्थानमें वीरासनमें तत्पर होवै और भलीभांति विभाग करने

वाला व दृढ़ नियमोंवाला होवै ॥५७॥ और वनकी ओषधियों को भोजन करनेवाला व समस्त प्राणियोंको अभय देनेवाला व नित्यही धर्ममें तत्पर,मौनी,क्रोधको जीते हुये व इन्द्रियजित् ॥ ५८ ॥ शिवभक्त महाकालवन में बसनेवाला मुनिहोवै युवा सूर्यनारायण के समान प्रकाशवान् व वेदिकाओं के स्तम्भों से शोभित ॥ ५९ ॥ और इच्छा के अनुकूल चलनेवाले विमान के द्वारा शिवभक्त जाता है और वह आकाशमें दूसरे चन्द्रमाकी नाईं शोभित होता है ॥ ६० ॥ और गाने बजाने के शब्द समेत अप्सरासमूहों से घिराहुआ पुरुष कुछ अधिक करोड़ सौ वर्षोंतक शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६१ ॥ और रुद्रलोक से भ्रष्टभी वह पुरुष विष्णुलोक में पूजा

भयप्रदः ॥ नित्यन्धर्मपरोमौनी जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ रुद्रभक्तःक्षेत्रवासी महाकालवनेमुनिः ॥ तरुणार्कप्रकाशेन वेदिकास्तम्भशोभिना ॥ ५९ ॥ रुद्रभक्तोविमानेन यातिकामप्रचारिणा ॥ विराजमानोनभसि द्वितीयइवचन्द्रमाः ॥ ६० ॥ गीतवादित्रशब्देन संवृतोप्सरसाङ्गणैः ॥ वर्षकोटिशतंसाग्रं रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६१ ॥ रुद्रलोकाच्च्युतश्चापि विष्णुलोकेमहीयते ॥ विष्णुलोकात्परिभ्रष्टो ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ ६२ ॥ तस्मादपिच्युतःस्थानाद्वीपेषुसहिजायते ॥ स्वर्गेषुचतथान्येषु भोगान्भुङ्क्तेयथेच्छया ॥६३॥ भुक्त्वैश्वर्येनरस्तेषु मर्त्योमर्त्येषुजायते ॥ राजावाराजतुल्योवा जायतेधनवान्सुखी ॥ ६४ ॥ सुरूपःसुभगःकान्तः कीर्तिमान्रुद्रभावितः ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रावाक्षेत्रवासिनः ॥ ६५ ॥ स्वधर्मनिरताव्यास स्ववृत्त्याचारजीविनः ॥ सर्वात्मनारुद्रभक्ता भूतानुग्रहकारिणः ॥ ६६ ॥ महा

जाताहै व विष्णुलोकसे च्युतहोकर वह पुरुष ब्रह्मलोकको जाताहै ॥६२॥ और उस स्थान से भी भ्रष्टहुआ वह पुरुष द्वीपोंमें उत्पन्न होताहै व स्वर्गोंमें तथा अन्य स्थानों में इच्छा के अनुकूल सुखोंको भोगताहै ॥ ६३ ॥ और पुरुष उनमें ऐश्वर्यको भोगकर मनुष्यलोकों में मनुष्य होताहै व राजा या राजाके समान धनवान् व सुखी होता है ॥ ६४ ॥ और सुन्दर रूपवान् व उत्तम ऐश्वर्यवान,मनोहर, यशस्वी तथा शिवजी से शुद्धचित्तवाला होताहै क्षेत्रमें बसनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य व शूद्र ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी! अपने धर्ममें परायण व अपनी जीविका व आचार से जीनेवाले तथा सर्वात्मासे शिवभक्त व प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले ॥६६॥ जो मुक्तिकी इच्छावाले महाकालवन

नामक क्षेत्रमें बसते हैं मरेहुये वे पुरुष अप्सरासमूहों से संयुत तथा इच्छा के अनुकूल जानेवाले व इच्छा के अनुसार रूपवाले उत्तम विमानों के द्वारा शिवभवन को प्राप्तहोते हैं अथवा पायेहुये ज्ञानरूपी अग्निमें जो शरीरको हवन करता है ॥६७।६८॥ रुद्राध्याय पढ़नेवाला व महाबलवान् वह शिवभवनमें बसताहै और रुद्रलोकसे उनका नाश होनेपर गुह्यकों समेत पिशाच ॥ ६९ ॥ सब लोकोंसे उत्तम व मनोहर लोक में प्रिय प्राप्तिका साधन करनेवाला होताहै और महाकालवन में जो मनुष्य अनशनव्रत में प्राणोंको छोड़ते हैं ॥ ७० ॥ हे व्यासजी ! उन महात्माओंको भी अविनाशी शिवलोक होताहै और वे सांख्ययोगवाले पुरुष सब दुःखोंसे

कालवनंक्षेत्रं येवसन्तिमुमुक्षवः ॥ मृतास्तेरुद्रभवनं विमानैर्यान्तिशोभनैः ॥ ६७ ॥ अप्सरोगणसंयुक्तैः कामगैःकामरूपिभिः ॥ अथवाप्तसंविदग्नौ शरीरंविजुहोतियः ॥६८॥ रुद्राध्यायीमहासत्त्वः सरुद्रभवनेवसेत् ॥ रुद्रलोकात्क्षयेतेषां पिशाचोगुह्यकैस्सह ॥ ६९ ॥ सर्वलोकोत्तमेरम्ये भवतीष्टाप्तिसाधकः ॥ येत्यजन्तिमहाकाले प्राणाननशनेनराः ॥ ७० ॥ तेषामप्यक्षयोव्यास रुद्रलोकोमहात्मनाम् ॥ साङ्ख्यास्तिष्ठन्तितेरुद्रं सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ सर्वामरयुतन्देवं नन्दीदेवगणैर्युतम् ॥ अनाशकमृताःशूद्रा महाकालवनेनराः ॥ ७२ ॥ सिंहयुक्तैस्तुतेयान्ति विमानैरर्कसन्निभैः ॥ नानावर्णसुवर्णैश्च पुष्पगन्धादिवासितैः ॥ ७३ ॥ अनौपम्यगुणैरम्यैरप्सरोगीतवाद्यकैः ॥ रुद्रलोकेनरानार्यः सर्वेप्यनशनेमृताः ॥ ७४ ॥ तत्रोषित्वाचिरङ्कालं भोगान्भुक्त्वायथेप्सितान् ॥ धनीविप्रकुलेभोगी जायतेमर्त्यमागतः ॥ ७५ ॥ करीषंसाधयेद्यस्तु महाकालवनेनरः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ ७६ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्या

रहित होकर शिवजी के समीप टिकते हैं ॥ ७१ ॥ जो शिवदेव कि समस्त देवताओं से संयुत व नन्दी तथा देवगणों से युक्तहैं व महाकाल वन में बिन भोजन किये मरेहुये शूद्र मनुष्य ॥ ७२ ॥ वे सिंहसंयुत तथा सूर्यनारायणके समान व अनेक रंगके उत्तम रंगोंसे व पुष्पकी सुगन्धादिकोंसे सुगन्धित विमानोंके द्वारा जाते हैं ॥ ७३ ॥ और अनशनव्रत में मरेहुये सबभी स्त्री पुरुष अनूपगुणवाले और मनोहर अप्सराओं के गीत व बाजाओं समेत शिवलोकमें बसते हैं ॥ ७४ ॥ और वहां बहुत समयतक बसकर व चाहेहुये सुखोंको भोगकर मृत्युलोक में आयाहुआ पुरुष विप्रवंशमें धनी व सुखी उत्पन्न होताहै ॥ ७५ ॥ और जो मनुष्य महाकालवनमें करीष

(सूखे गोमय) को साधन करता है समस्त रोगों से छूटाहुआ वह शिवलोक को जाताहै ॥ ७६ ॥ और तबतक शिवलोकमें बसता है जबतक कल्पका अन्तहोताहै और वहां महासुखोंको भोगकर यहां उत्पन्न होकर मनुष्य सब पृथ्वीका राजा होताहै व रूपवान् और उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ७७।७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहाकालवननिवासविधिवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। कलिनाशन तीरथ यथा भयो अतिहि विख्यात। सो अष्टम अध्याय में वर्णित चरित सुहात ॥ व्यासजी बोले कि आचार मुख्यधर्म है और अपने धर्ममें

वत्कल्पक्षयोभवेत् ॥ तत्रभुक्त्वामहाभोगानिहजातोमहीपतिः ॥ ७७ ॥ पृथिव्यास्सकलायाश्च रूपवान्सुभगोनरः॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकालवननिवासविधिवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❋ ॥

व्यासउवाच ॥ आचारःप्रथमोधर्मस्सर्वधर्मपरायणः ॥ स्वधर्मेनिरतश्चैववर्जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ रुद्रलोकेव्रजेदेव नात्रचिन्तामतेर्मम ॥ असंशयञ्चगच्छन्ति लोकानन्यांश्छशिप्रभैः ॥ २ ॥ विनापिक्षेत्रवासेन तथैवनियमेन च ॥ स्त्रियोम्लेच्छाश्चशूद्राश्च पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ३ ॥ मूकाजडान्धबधिरास्तपोनियमवर्जिताः ॥ एतेषांकागतिर्विप्र महाकालवनेमृताः ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ स्त्रियोम्लेच्छाश्चशूद्राश्च पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ कालेनैवमृताव्यास रुद्रलोकंव्रजन्तिते ॥ ५ ॥ शरीरैर्दिव्यरूपैश्च सर्वभोगसमन्विताः ॥ ६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ अस्मिन्महाकालवने

तत्पर तथा क्रोधको जीते व इन्द्रियों को जीतेहुये ॥ १ ॥ पुरुष शिवलोक को जाताही है इस विषय में मेरी बुद्धिको चिन्ता नहीं है क्योंकि क्षेत्रवास के विना वैसेही नियम से निरसन्देह पुरुष चन्द्रमाके समान विमानों के द्वारा अन्यलोकोंको जातेहैं और स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी व मृग ॥ २ । ३ ॥ और गूंगे, जड, अन्ध व बधिर जोकि तपस्या व नियम से रहित होकर महाकालवन में मरेहैं हे विप्रजी ! इनकी क्या दशा होती है ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी, मृग कालही से मरेहुये वे सब सुखोंसे संयुत होकर दिव्यरूपवाले शरीरों से शिवलोकको प्राप्तहोते हैं ॥ ५।६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी !

इस महाकालवन में शिवजी सदैव बसते हैं एक दिन क्रीड़ा करने के लिये उन पार्वती व प्रेतों से संयुत श्मशान में बसतेहुये उन शिवजी ने पार्वती से हे कालि! यहां आइये इत्यादिक वचनों को कहा ॥७।८॥ इसप्रकार जब शिवजी ने पार्वतीको काली ऐसाकहा तब क्रोधित होतीहुई उन पार्वतीने शिवजी से कटुवचन कहा ॥ ९ ॥ इस प्रकार जहांपर शिव व पार्वती का कलहहुआ वहांपर कलकलेश्वरनामक शिवजी उत्पन्न हुयेहैं ॥१०॥ और उस समय कलहनाशन नामक कुण्ड आगे कियागया है हे व्यासजी! उसमें स्नान करनेपर कलहकारिणी स्त्री नहीं होती है ॥११॥ उस तीर्थमें नहाकर व महादेवजीको पूजकर तथा एकरात्रि उपासकर मनुष्य सौ पुश्तियोंको तारता

शिवोवसतिसर्वदा ॥ एकस्मिन्दिवसेदेवो लीलाङ्कर्तुंशिवाम्प्रति ॥ ७ ॥ ऊचेकालिसमागच्छेत्यादीनिवचनानिसः ॥ तयासहवसन्व्यास श्मशानेप्रेतसंकुले ॥ ८ ॥ इत्थमुक्तातुशर्वेण कालीतिपार्वतीयदा ॥ तदासाकुपितादेवी कटूचेश ङ्करम्प्रति ॥ ९ ॥ एवन्तुकलहोजातः शिवगौर्योर्हियत्रतु ॥ देवस्तत्रसमुद्भूतो नाम्नाकलकलेश्वरः ॥ १० ॥ कृतमग्रेत दाकुण्डं नाम्नाकलहनाशनम् ॥ स्नानेतत्रकृतेव्यास नस्यात्कलहिनीप्रिया ॥ ११ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा पूज यित्वामहेश्वरम् ॥ उपोष्यरजनीमेकां कुलानांतारयेच्छतम् ॥ १२ ॥ तत्रयच्छतियोदानं त्रुटिमात्रञ्चचन्दनम् ॥ आत्मनातारितास्तेन दशपूर्वेदशापरे ॥ १३ ॥ भूमिदानंचयस्तत्र प्रदास्यतिनरोमुने ॥ अपिगोचर्ममात्रेण सर्वभूम्य धिपोभवेत् ॥ १४ ॥ गामेकांरक्तकामेवभूमेरप्येकमङ्गुलम् ॥ यःप्रदास्यतिभक्त्याहि सवैराजाभविष्यति ॥ १५ ॥ धे नुमश्वांस्तिलान्वस्त्रं भाजनंताम्रदोहनम् ॥ उपानहश्छत्रञ्च तथाचैवेष्टपादुके ॥ १६ ॥ येप्रदास्यन्तिविप्रेभ्यस्तेषांलो

है ॥१२॥ व जो पुरुष वहांपर लवमात्र चन्दन दान देताहै उससे अपना समेत दश पहलेवाले व दश पीछेवाले पितर तार दियेजाते हैं ॥१३॥ हे मुने! जो पुरुष वहांपर भूमि दान देवैगा गऊ के चर्ममात्र भूमिसे भी वह समस्त पृथ्वीका स्वामी होताहै ॥ १४॥ और एक अरुणगऊ व भूमिके एक अंगुल को भी जो भक्तिसे देवैगा वह नि-श्चयकर राजा होगा ॥१५॥ और गऊ घोड़े, तिल, वसन व तांबे का दोहनपात्र, पनहीं, छत्र व प्रिय खड़ाउवोंको ॥१६॥ जो ब्राह्मणों के लिये देवैंगे उनके लोक सदैव

अविनाशी होवैंगे और उस कुण्डके दाहिने बगल में पृष्ठमाता देवता हैं ॥ १७ ॥ और वे देवी सब लोकों के पातकों को नाश करनेवाली हैं और वहां मणिक-र्णिकनामक उत्तम तीर्थ जाननेयोग्य है ॥ १८ ॥ उस में नहाकर जो पुरुष, पृष्ठमाता ऐसे नामवाली भगवती का दर्शन करताहै वह समस्त पातकों से छूटकर चाही हुई सिद्धिको पाताहै ॥ १९ ॥ और उसका दर्शनकर मार्गमें यात्राकरै तो उसको चोरोंसे डर नहीं होताहै और राक्षसों व भूतोंका डर नहीं होताहै ॥ २० ॥ और अपने देशमें व परदेश में तथा पर्वतों व जङ्गलों में और समुद्रमें उसको डर नहीं होताहै और न दुष्टभावना होती है ॥ २१ ॥ और सब ग्रहपीड़ाओं में व राजभयादिकों में जो ब्राह्मण

काःसदाक्षयाः ॥ तस्यदक्षिणपार्श्वेच पृष्ठमाताचदेवता ॥ १७ ॥ साचैवसर्वलोकानां देवीदुरितहारिणी ॥ तत्रतीर्थन्तु विज्ञेयं मणिकर्णिकमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्मिन्स्नात्वातुयःपश्येत्पृष्ठमातेतिसंज्ञिताम् ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यः सिद्धिमाप्नो तिवाञ्छिताम् ॥ १९ ॥ तस्यास्तुदर्शनंकृत्वा मार्गेगमनमाचरेत ॥ नभयंतस्यचोरेभ्यो रक्षोभूतभयंतथा ॥ २० ॥ स्वदेशे परदेशेवा पर्वतेष्वटवीषुच ॥ नसमुद्रेभयंतस्य तथावैदुष्टभावनाम् ॥ २१ ॥ ग्रहपीडासुसर्वासु तथाराजभयादिषु ॥ बस्तं वायदिवामेषं महिषंवापिघातयेत ॥ २२ ॥ देवीमुद्दिश्ययोविप्रः सोभीष्टंफलमश्नुते ॥ आश्विनस्यसिताष्टम्यां पूजनं चार्द्धरात्रिके ॥ २३ ॥ यःस्नातिपुरतोदेव्याः ससिद्धिंलभतेपराम् ॥ मृतपुत्रातुयानारी कुण्डेस्नात्वासभर्तृका ॥ २४ ॥ स्नातिवैयदिकुम्भेन अग्रेदेव्याविधानतः ॥ स्नात्वानान्यमुखंपश्येत् कुम्भस्नानंविनामुने ॥ २५ ॥ तस्यास्सञ्जाय तेपुत्रो यथादेवःषडाननः ॥ पृष्ठमातुःपुरापुण्यं तीर्थमप्सरसांशुभम् ॥ २६ ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नस्तत्रस्नातोभवेन्नरः॥

देवीको उद्देशकर छाग या मेष (भेंडा) अथवा भैंसेका बलिप्रदान करताहै वह चाहेहुये फलको भोग करता है और कुँवारके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें जो मनुष्य आधीरात को उन भगवती का पूजन करता है ॥ २२।२३ ॥ और जो देवीजी के आगे स्नान करता है वह उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोता है और जिसके पुत्र मरजाते हैं पतिसमेत वह कुण्ड मे नहाकर ॥ २४ ॥ देवीके आगे यदि कुम्भसे विधिपूर्वक स्नान करती है और हे मुने ! कुम्भस्नान के विना अन्यके मुखको नहीं देखती है ॥ २५ ॥ तो जैसे छह मुखोंवाले स्वामिकार्त्तिकेयजी हैं वैसाही पुत्र उसके पैदाहोता है और पृष्ठमाता के आगे अप्सराओं का उत्तमतीर्थ है ॥ २६ ॥ उसमें नहायाहुआ

पुरुष रूप व सौभाग्यसे संयुत होताहै हेव्यासजी ! पुरातन समय इसतीर्थके प्रभाव से उर्वशी ने ॥ २७ ॥ पुरूरवाको पति पायाहै जो ये कि संसार में राजा थे ॥ २८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थमाहात्म्येकलहनाशनादितीर्थमहिमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । भयो अप्सराकुण्ड कर यथा अमित परभाव । सोइ नवम अध्यायमें चरित अहै सुखचाव ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! वहांपर अप्सराओं का तीर्थ कैसे उत्पन्नहुआहै जिसप्रकार जिसकारणसे व जिससमयमें प्रतिष्ठित हुआहो ॥ १ ॥ उसको वैसेही विस्तार समेत व रहस्यसमेत वर्णन करिये और जो ये पुरूरवा थे उन्होंने

उर्वश्यावैपुराव्यास तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥२७॥ भर्त्तापुरूरवालब्धो लोकेयोसौमहीपतिः ॥२८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेतीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितीर्थमहिमवर्णनन्नामाष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥
व्यासउवाच ॥ कथमप्सरसांतीर्थं तत्रजातंमहामुने ॥ कारणेनयथायेन यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ तथातन्मे सविस्तारं सरहस्यंप्रकीर्तय ॥ कथंपुरूरवाश्चासौ भार्य्यातेनवराप्सराः ॥ २ ॥ उर्वशीनामकासातु केनजातावराङ्गना ॥ सर्वमेतद्यथावृत्तं ब्रूहिकौतूहलंहिमे ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ नरनारायणौपूर्वं यत्रवैतेपतुस्तपः ॥ बदरिकाश्रमस्थौ तौ तेनेन्द्रोभयमागतः ॥ ४ ॥ सर्वाश्चाप्सरसोहृद्या रूपयौवनदर्पिताः ॥ आदिष्टायामघवता विघ्नार्थंचसमागताः ॥ ५ ॥ तौदृष्ट्वाप्सरसस्तत्र रमन्त्योमदविह्वलाः ॥ विघ्नार्थंरहआयातास्तदादेवौप्रजल्पतुः ॥ ६ ॥ अस्माकन्नस्त्रियःसन्ति तेनवैविघ्नकारणम् ॥ एवंसंजल्प्यचनरो नारायणमुवाचह ॥ ७ ॥ करिष्याम्यहमेकान्तामासांवैरूपतोधिकाम् ॥ मञ्जर्यास

कैसे उत्तम अप्सराको स्त्रीपाया है ॥ २ ॥ और वह उर्वशीनामक उत्तमस्त्री कौनहै और किससे पैदाहुई है इस यथार्थ वृत्तान्तको कहिये मेरे आश्चर्य है ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातनसमय जहांपर बदरिकाश्रममें स्थित उन नरनारायण ने तप कियाहै उस से इन्द्रजी भयको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ इन्द्रने जिनको आज्ञा दिया वे रूप व यौवन से गर्वित सब अप्सरायें विघ्नके लिये वहां आईं ॥ ५ ॥ मदसे विह्वल तथा क्रीडा करतीहुई व विघ्नके लिये वहां एकान्त में आई अप्सराओं को देखकर उस समय उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ कि हमलोगों के स्त्रियां नहीं है उससे विघ्नका कारणहै इस प्रकार कहकर नरनारायणजीसे बोले ॥ ७ ॥ कि इनके मध्यमें रूपमें अधिक

उस स्त्रीको करूंगा यह कहकर जङ्घों से सहकार (अतिसुगन्धित आम) की मञ्जरीसमेत स्त्रीको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ संसार में रूपसे असमान याने सबसे उत्तम रूपवाली व सब गहनों से शोभित और अग्निके समान प्रकाशवती तथा बढ़ीहुई उस स्त्रीको देखकर उत्तम स्त्रियोंने ॥ ६ ॥ जाकर इन्द्रजी से कहा कि हमलोग उनको लुभाने के लिये न समर्थ हुई उनका वचन सुनकर मस्तक पै अञ्जलीको धरेहुये इन्द्रजी प्रणामसे झुकेहुये होकर जाकर नरनारायण देवताओं से बोले कि मैं इस स्त्रीका याचकहूं यह प्रसन्नता कीजावै ॥१०।११॥ तदनन्तर परमेश्वरदेवजीने उस उर्वशीको इन्द्रकेलिये दिया व कहा कि हमारे वचनकी सामर्थ्यसे तुम इस उर्वशी

हकारस्य स्त्रीमूरुभ्यांचकारह ॥८॥ रूपेणाप्रतिमांलोके सर्वाभरणभूषिताम् ॥ उच्छ्रितांप्रमदांदृष्ट्वा ज्वलनाभांवराङ्गनाम् ॥९॥ गत्वाशशंसुस्ताःशक्रं नतौलोभयितुंक्षमाः ॥ शक्रस्तासांवचःश्रुत्वा गत्वादेवावुवाचह ॥ १० ॥ प्रणामावनतोभूत्वा शिरस्यञ्जलिमादधन् ॥ अहमर्थीस्त्रियश्चास्याःप्रसादःक्रियतामिति ॥११ ॥ ततस्तान्ददतुर्देवाविन्द्रायपरमेश्वरौ ॥ अस्मद्वचनसामर्थ्याद् गृहाणेमांत्वमुर्वशीम्॥१२ ॥ ऊरुभ्यांजनितायस्मान्नरेणेयंवराङ्गना ॥ मञ्जर्यासहकारस्य तेनेयमुर्वशीमता ॥ १३ ॥ पुरन्दरोगृहीत्वातामुर्वशींपरमाङ्गनाम् ॥ शिक्षाञ्चक्रियतांचित्रपथान्नृत्येविचक्षणा ॥ १४ ॥ क्रियतामचिरादेषा यत्नमास्थायशोभनम् ॥ एवमुक्तेतुचित्रेण कृतातेनविचक्षणा ॥ १५ ॥ बहुप्रवीणासाजाता नृत्येगीतेचकोविदा ॥ एवंसान्यवसत्तत्र पुरासद्मनिसुन्दरी ॥ १६ ॥ गतेबहुतिथेकाले तत्रागात्सनरेश्वरः ॥ इलस्यपुत्रोधर्मात्मा नाम्नाचैवपुरूरवाः ॥ १७ ॥ इन्द्रस्यार्द्धासनगतो नृत्यंपश्यतितत्रह ॥ नृत्यन्तींवासवस्याग्रे उर्वशीं

को ग्रहणकरो ॥ १२ ॥ जिसलिये नरसे यह उत्तमस्त्री सहकारकी मञ्जरीसमेत ऊरुवों से पैदाहुई है उससे यह उर्वशी जानीगई ॥ १३ ॥ इन्द्रने उस उत्तमस्त्री उर्वशीको लेकर चित्रगन्धर्वसे कहा कि उस प्रकार शिक्षा कीजावै कि जिसभांति नृत्यमें चतुर होवै ॥१४ ॥ उत्तम यत्नमें स्थित होकर यह शीघ्रही वैसी कीजावै ऐसा कहनेपर उस चित्रसे चतुर कीगई ॥ १५ ॥ और नृत्य व गानमें चतुर वह बहुतही प्रवीण हुई इसप्रकार पुरातन समय वह सुन्दरी वहां मन्दिरमें बसती भई ॥१६ ॥ और बहुत दिनों वाले समयके बीतनेपर वहांपर इनके पुत्र पुरूरवा नामक धर्मात्मा वे राजा आये ॥ १७॥ और इन्द्रके आधे आसनपर बैठेहुये वे नृत्यको देखतेथे व इन्द्रके आगे नाचती

हुई उर्वशीको देखकर कामी ॥ १८ ॥ राजाने उससे हरेहुये चित्तवाले होकर किसी वस्तुको न प्राप्तहुये अर्थात् चित्तके हरजाने से उन्होंने कुछ न जाना और चित्तमें धैर्य धरकर कुछ देरतक बैठेरहे ॥ १९ ॥ और उस समय उनके दर्शन से हरेहुये चित्तवाली उर्वशी उस स्थानसे निकलकर कामसे विकल होतीहुई अत्यन्त विह्वल हुई ॥ २० ॥ और उन्नत सभामण्डल से वह भूमिमें गिरपडी इसके अनन्तर अपना को जानकर वह पृथ्वीमण्डलसे उठी ॥ २१ ॥ और अनाथकी नाई बहुतही पीड़ित श्रेष्ठ राजाने उसको देखा व उसीको मनसे स्मरण करतेहुये पुरूरवा पृथ्वीपै गये ॥२२॥ व श्रेष्ठ राजा पुरूरवाको स्मरण करतीहुई वहभी घरको चलीगई और चित्रांगद के

वीक्ष्यकामुकः ॥ १८ ॥ हतचित्तस्तयाराजा नकिंचित्प्रत्यपद्यत ॥ धैर्य्यंचित्तेसमावेश्य मुहूर्तंपर्यवस्थितः ॥ १९ ॥ उर्वशीचतदातस्य दर्शनाहृतचेतसा ॥ तत्प्रदेशाद्विनिष्क्रम्यकामार्ताचातिविह्वला ॥ २० ॥ भूमौसापतिताबाला उच्छ्रिताद्रङ्गमण्डलात् ॥ अथात्मानञ्चसंवेद्य उत्थिताभूमिमण्डलात् ॥ २१ ॥ दृष्टासाराजसिंहेन मन्मथेनप्रपीडिता ॥ गतःपुरूरवाभूमिं तामेवमनसास्मरन् ॥ २२ ॥ स्मरन्तीराजशार्दूलं गतासाप्युर्वशीगृहम् ॥ चित्राङ्गदगृहेगत्वा दूतंसाथ चकारह ॥ २३ ॥ चित्राङ्गदेनसानीता रात्रौयत्रपुरूरवाः ॥ उर्वश्यारहितःस्वर्गः शून्योप्यासीद्दिवौकसाम् ॥ २४ ॥ रात्रावेवचसातेन आनीतात्रिदिवंपुनः ॥ तयाविरहितस्सोपिशून्यचित्तःपरिभ्रमन् ॥ २५ ॥ उन्मत्ततांगतोऽयास षष्टिवर्षाणिपार्थिवः ॥ परिभ्रमन्सतीर्थानि महाकालवनङ्गतः ॥ २६ ॥ गन्धर्वेणोर्वशीस्वर्गे नीतासापरमाप्सराः ॥ नापिशेतेनचाश्नाति हेराजन्निति जल्पति ॥ २७ ॥ तावदप्सरसस्सर्वास्ताः प्राप्तायत्रचोर्वशी ॥ रम्भाचमेनकाचैव प्रम्लोचा

घरमें जाकर इसके अनन्तर उसने उसको दूत किया ॥ २३ ॥ और चित्रांगद उसको वहां लेगया जहां कि पुरूरवा थे व उर्वशीसे रहित देवताओंका स्वर्गभी शून्य हो गया ॥ २४ ॥ और रात्रिही में फिर वह चित्रांगद उसको स्वर्गको लेआया व उससे रहित घूमतेहुये शून्यचित्तवाले वे पुरूरवा भी ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! उन्मत्तताको प्राप्तहुये और साठ हजार वर्षतक तीर्थों में घूमतेहुये वे महाकालवनको गये ॥ २६ ॥ और गंधर्व से स्वर्ग में लाईहुई वह उत्तम अप्सरा उर्वशी भी न सोतीथी और न

भोजन करतीथी किन्तु हे राजन्! ऐसा बकतीथी ॥ २७ ॥ तबतक वे सब अप्सरायें वहां प्राप्तहुईं जहां कि उर्वशी थी रंभा, मेनका, प्रम्लोचा व पुंजिकस्थली ॥ २८ ॥ व जलपूर्णा, अंशुकपूर्णा, वसन्ता व चन्द्रिका, सूर्यदत्ता, विशालाक्षी, चन्द्रा व चन्द्रप्रभा ॥ २९ ॥ साथही आकर उन्होंने उर्वशी से वचन कहा कि हे वरारोहे, सुलोचने! मनुष्य के लिये क्यों रोतीहो ॥ ३० ॥ उनके उस वचन को सुनकर उर्वशी वचन बोली कि स्त्री पुरुषों के सङ्गसे जो सुख होताहै उसको नपुंसक नहीं जानता है ॥ ३१ ॥ इस उपमासे उसके लिये कियेहुये निश्चयवाली मैं जाननेयोग्यहूं उसके इस वचन को सुनकर सावधान होतीहुई वे सम्मतिकर ॥ ३२ ॥ और

पुञ्जिकस्थली ॥ २८ ॥ जलपूर्णांशुकापूर्णावसन्ताचन्द्रिकातथा ॥ सूर्यदत्ताविशालाक्षी चन्द्राचन्द्रप्रभातथा ॥२९॥ आगत्यतास्तुसहिता उर्वशींवाक्यमब्रुवन् ॥ किंरोदिषिवरारोहे मर्त्यहेतोःसुलोचने ॥ ३० ॥ तद्वाक्यमुर्वशीतासां श्रुत्वावचनमब्रवीत् ॥ सौख्यंषण्डोनजानाति सङ्गात्स्त्रीपुंसयोर्हियत् ॥ ३१ ॥ अनयोपमयाज्ञेया तस्यार्थेकृतनिश्चया ॥ श्रुत्वाचेतिवचस्तस्यास्तास्संमन्त्र्यसमाहिताः ॥ ३२ ॥ अज्ञातास्ताश्चदेवानां महाकालवनेगताः ॥ नृपञ्चददृशुस्तत्र वृक्षच्छायानिषेवितम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वागत्यनृपंसर्वा भृशंजातास्सुविह्वलाः ॥ दृष्ट्वातथाविधास्सर्वाः कामार्तास्सुरयोषितः ॥३४॥ मूढचित्ताःप्रहस्यैवमुर्वशीवाक्यमब्रवीत ॥ उर्वश्युवाच ॥ अयंसपुरुषव्याघ्रो विनायेनाहमीदृशी ॥३५॥ ऐलःपुरूरवानाम विख्यातोजगतीपतिः ॥ एवंब्रुवन्त्यांवैतस्यामुर्वश्यामप्सरोगणः ॥ ३६ ॥ मौनीभूतश्चिरंतस्थौ लज्जयानतकन्धरः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्रायाद्भगवांस्तत्रनारदः ॥३७॥ दृष्ट्वातथागतास्सर्वा उर्वश्यासहितंनृपम् ॥

देवताओंसे न जानीहुई वे महाकालवनमें गईं और वहांपर उन्हों ने वृक्षोंकी छाया से सेवित राजाको देखा ॥ ३३ ॥ और सब आकर राजाको देखकर बहुतही विह्वल होगईं वैसी कामसे विकल तथा मूढ़चित्तवाली व कामसे विकल सब देवस्त्रियोंको देखकर उर्वशी हँसकर ऐसा वचन बोली उर्वशी बोली कि यह वही श्रेष्ठ पुरुष है कि जिसके विना मैं ऐसीहूं ॥ ३४ । ३५ ॥ यह इलाका पुत्र पुरूरवा नामक राजा प्रसिद्धहै उस उर्वशीके इसप्रकार कहनेपर अप्सराओं के गण ॥ ३६ ॥ लज्जासे नीचे झुकेहुये कन्धोवाले व चुप होकर बहुत देरतक खड़ेरहे इसी अवसर में वहांपर भगवान् नारदजी आये ॥ ३७ ॥ व वैसेही आईहुई सब अप्सराओं को देखकर व

उर्वशी समेत राजाको देखकर तदनन्तर उन्होंने कहा कि वैसे मनोहर तथा उत्तम इन्द्रके स्थानको छोड़कर मौन होतीहुई तुम सब यहां किस लिये आईहो और शीघ्र ही वरदानको मांगिये वियोग न होवेगा ॥ ३८ । ३९ ॥ और नारदजीने इस तीर्थका माहात्म्य कहा कि इस तीर्थ में जो दुर्भगास्त्री या पुरुषभी स्नान करता है ॥ ४० ॥ वह भलीभांति सौभाग्यको प्राप्तहोता है व वैसेही सब उत्तम सुखों को पाताहै और जो यहापर तिलोंसे व लोनसे अपने शरीर को तौलता है ॥ ४१ ॥ और पार्वतीदेवी को उद्देशकर वित्तशाठ्य से रहित पुरुष बहुत शर्करा से और गुड़ व शहद से अपने शरीर को तौलावै ॥ ४२ ॥ लोनसे स्वरूप से संयुत स्त्री होतीहै और तिलों से

सम्प्रेक्ष्यचततःप्राह किंयूयमिहनिःस्वनाः ॥३८॥ त्यक्त्वातथाविधंरम्यमिन्द्रस्यालयमुत्तमम् ॥ वरञ्चव्रियतांशीघ्रं वियोगोनभविष्यति ॥ ३९ ॥ माहात्म्यञ्चास्यतीर्थस्य कथयामासनारदः ॥ अस्मिन्यादुर्भगातीर्थे स्नायात्स्त्रीपुरुषोपिवा ॥ ४० ॥ सौभाग्यंलभतेसम्यक् सर्वभोगांस्तथोत्तमान् ॥ आत्मानन्तोलयेद्यस्तु तिलैर्वालवणेनवा ॥ ४१ ॥ शर्कराभिश्चबह्वीभिर्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ गुडेनमधुनावापिदेवीमुद्दिश्यपार्वतीम् ॥ ४२ ॥ लवणेनस्वरूपाढ्या तिलैस्सर्वाङ्गशोभना ॥ द्रव्यवृद्धिःशर्करया गुडेनाङ्गेषुपूर्णता ॥ ४३ ॥ मधुनाचैवसौभाग्यं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ द्वादशैवतु युग्मानि देव्यादेवस्यभोजयेत् ॥ ४४ ॥ काञ्चींमुखरिणींदद्यात् ताटङ्कंमुकुराञ्जनम् ॥ चौमजांकञ्चुकीञ्चैव वस्त्रेकौसुम्भकेतथा ॥ ४५ ॥ श्वेतानुलेपनंपुंसां स्त्रीणांदद्याच्चकुङ्कुमम् ॥ आषाढेश्रावणेवापि मासिभाद्रपदेतथा ॥ ४६ ॥ शुक्लाश्विनतृतीयायामुत्तमंव्रतमाचरेत् ॥ उत्तमाजायतेनारी यथादेवीतथैवच ॥ ४७ ॥ उमामाहेश्वरौकार्यौ सौवर्णौ

सब अङ्गोंमें सुन्दरी होती है और शर्करासे द्रव्यकी बढ़ती होतीहै व गुडसे अङ्गोंमें पूर्णता होतीहै ॥ ४३ ॥ और इस तीर्थके प्रभावसे शहद से सौभाग्य होताहै और देवी पार्वतीजी व शिवदेवजीकी प्रीतिके लिये बारहयुग्म याने चौबीस स्त्री पुरुषोंको भोजनकरावै ॥४४॥ और बजतीहुई क्षुद्रघण्टिका व झूमकोंको व दर्पण,अञ्जन तथा रेशमी वस्त्रसे उपजीहुई कञ्चुकी और कुसुम से रँगेहुये वस्त्रोंको देवै ॥ ४५ ॥ और पुरुषोंको श्वेतचन्दन व स्त्रियोंको कुंकुम देवै और आषाढ, श्रावणमें व भाद्रपद में ॥ ४६ ॥ और कुँवार मे शुक्लपक्षवाली तीजमें उत्तमव्रत करै तो जैसी पार्वतीदेवीजी हैं वैसी ही उत्तम स्त्री होती है ॥ ४७ ॥ और अपनी शक्तिसे सोनेके पार्वती महादेव बनवा।

चाहिये और स्त्री से उन देवोंको तुलाके शिकहर पै विधिसे धरै ॥ ४८ ॥ और अनेकभांति के शाकों व फलोंको देना चाहिये और वहां दियाहुआ दान व हवन और जप सब कोटिगुना होताहै ॥ ४९ ॥ उस तीर्थ में इस प्रकार सावधान होतीहुई जो स्त्री करती है वह मरकर गन्धर्वों व अप्सराओं के लोकको जाती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ और इस तीर्थमें देवताओं व दानवों से पूजित दो लिंगहैं उनको देखकर स्त्री पुरुष उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोते हैं ॥ ५१ ॥ और वहां कार्त्तिकी में जागरणकर व चन्दन तथा पुष्पों से भलीभांति पूजकर मनुष्य विशेषकर शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ जैसे देवीके स्वरूप से कभी वियोग नहीं देखाजाता है वैसेही

चस्वशक्तितः ॥ धार्य्यौनार्य्याहितौदेवौ तुलाशिक्येविधानतः ॥ ४८ ॥ फलानिचैवदेयानि शाकानिविविधानिच ॥ तत्रदत्तंहुतंजप्तं सर्वंकोटिगुणंभवेत् ॥ ४९ ॥ एवंयाकुरुतेतत्रतीर्थेनारीसमाहिता ॥ गन्धर्वाप्सरसांलोके मृतायातिनसंशयः ॥ ५० ॥ अत्रतीर्थेचद्वेलिङ्गे पूजितेदेवदानवैः ॥ दृष्ट्वातेपरमांसिद्धिं प्राप्नुतोदम्पतीतथा ॥ ५१ ॥ कार्त्तिक्यान्तु विशेषेण कृत्वातत्रप्रजागरम् ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ यथादेव्याःस्वरूपेण वियोगो नैवदृश्यते ॥ तथातयोर्वियोगश्च दृश्यतेनकदाचन ॥ ५३ ॥ एवंकृत्वापिताविप्र सर्वाश्चात्रिदिवंगताः ॥ उक्तमप्सरसां तीर्थं तीर्थान्तरमथोच्यते ॥ ५४ ॥ दक्षिणेपृष्ठदेव्यावै माहिषंकुण्डमुच्यते ॥ महिषोदानवःपूर्वं निहतोगणनायकैः ॥ ५५ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मातॄस्सम्पूज्ययत्नतः ॥ प्रेतरक्षःपिशाचानां पीडयासविमुच्यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥

उन स्त्री पुरुषों का वियोग कभी नहीं देखपड़ताहै ॥ ५३ ॥ हे विप्रजी ! ऐसाकर वे सभी अप्सरायें स्वर्गको चलीगईं यह अप्सराओंका तीर्थ कहागया इसके अनन्तर अन्यतीर्थ कहाजाता है ॥ ५४ ॥ पृष्ठदेवी के दक्षिण ओर माहिषकुण्ड कहाजाता है पुरातन समय जहां गणनायकों ने महिषासुरको माराहै ॥ ५५ ॥ उस तीर्थमें नहाकर वह मनुष्य यत्न से मातृगणों को भलीभांति पूजकर प्रेत, राक्षस व पिशाचोंकी पीड़ासे छूटजाता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो• । महिषकुण्ड अरु रुद्रसर तीर्थ भये जिमि दोइ । यहि दशवें अध्यायमें चरित अहै सबसोइ ॥ व्यासजी बोले कि वह महिषकुण्ड किसप्रकार हुआहै और मातृगणों का आवरण कैसे हुआहै व क्षेत्रमें शिवजी ने कैसे महिषासुर को माराहै ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि क्रीड़ा करतेहुये जगदीश महादेवजी ने अतिप्रकाशमान व कान्तिसे जलतेहुये से ब्रह्मतेजोमय कपालके दिव्यखण्डको लेकर देवताओं को मोहित किया और योगात्मा शिवजी ने पलभर में योगलीलासे इस लोक में ॥ २ । ३ ॥ प्राप्तहोकर जहां अत्यन्त पवित्र क्षेत्र स्थित था वहां वहां देवताओं के स्वामी महाप्रभु शिवजी ने जलतीहुई प्रभावाले बड़े दिव्यकपाल को गणों के

व्यासउवाच ॥ कथंतन्माहिषंकुण्डं मातॄणामावृतिःकथम् ॥ रुद्रेणतुकथंक्षेत्रे महिषोदानवोहतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ कापालंखण्डमादाय महादेवोप्यतिप्रभम् ॥ ब्रह्मतेजोमयंदिव्यं ज्वलन्तमिवचत्विषा ॥ २ ॥ क्रीडमानोजगन्नाथो मोहयामासवैसुरान् ॥ निमेषात्सइमंलोकं योगात्मायोगलीलया ॥ ३ ॥ प्राप्यपुण्यतमंक्षेत्रं यत्रातिष्ठन्महाप्रभुः ॥ तत्रतत्रमहादिव्यं कपालंदेवताधिपः ॥ ४ ॥ स्थापयामासदीप्तार्चिर्गणानामग्रतःप्रभुः॥ तत्स्थापितमथोदृष्ट्वागतास्सर्वेमहौजसः ॥ ५ ॥ विनदन्तोमहानादं नादयन्तोदिशोदश ॥ क्षुब्धार्णवाशनिप्रख्यं नभोयेनविदीर्यते ॥ ६ ॥ तेनशब्देनघोरेण दानवोदेवकण्टकः ॥ हालाहलइतिख्यातो देशंतमभिधावितः ॥ ७ ॥ अमृष्यमाणःक्रोधार्तो दुरात्मादुर्जयस्सुरैः ॥ ब्रह्मदत्तवरश्चैव माहिषंवपुरास्थितः ॥ ८ ॥ दैत्यैःपरिवृतोघोरैः कोटिभिःप्रोद्यतायुधैः ॥ तमायान्तन्तुसक्रोधं महिषंदेवकण्टकम् ॥ ९ ॥ समावेक्ष्याहवैदेवो गणान्सर्वान्पिनाकधृक् ॥ मायाविगणपोदैत्यस्त्रैलोक्य

आगे स्थापित किया इसके अनन्तर थापेहुये उस कपाल को देखकर बड़ाशब्द करते व दशों दिशाओं को शब्दायमान करतेहुये बड़े पराक्रमवाले सब गण चले गये क्षोभित समुद्र व वज्रके समान वह शब्द कि जिससे आकाश फटताथा ॥ ४ । ५ । ६ ॥ उस भयङ्करशब्दसे देवताओं को कण्टकरूप हालाहल ऐसा प्रसिद्ध दानव उस देशके सामने दौड़ा ॥ ७ ॥ और क्रोध से विकल व दुष्टचित्तवाला तथा देवताओं से दुःखकरके जीतनेयोग्य व ब्रह्मासे दियेहुये वरदानवाला बिन विचारे हुये वह दैत्य भैंसे के स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ ८ ॥ जोकि उठायेहुये अस्त्रोंवाले करोड़ों भयङ्कर दैत्यों से घिराथा क्रोधसमेत व देवताओं के कण्टकरूप आतेहुये उस

महिषासुर को ॥ ९ ॥ देखकर पिनाकधारी सदाशिवदेवजी सब गणोंसे बोले कि त्रिलोक का भी कण्टकरूप यह मायावी गणनायकदैत्य ॥१०॥ शीघ्रतासंयुत चला आताहै इसलिये कपालकी गति में आश्रित तुम सब गणनायक इसको मारो ॥ ११ ॥ तदनन्तर बड़े शब्दसे गर्जते और महाप्रकाशवान् तथा भ्रमते व उस आतेहुये महादैत्यको डरेहुये देवगणोंने ॥ १२ ॥ त्रिशूलसमूहों से व तलवारों तथा मुसलों से विदारण किया और बाणोंके समूहसे मोहितकर तदनन्तर उन्होंने पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥ उसके मरनेपर उससमय महादेवजी देवताओंसे बोले कि अतिमूर्ख के अहंकारको आश्चर्यहै और गर्व से वह नाशको प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर

स्यापिकण्टकः ॥ १० ॥ आयातित्वरितोयूयं तस्मादेनंविनिघ्नथ ॥ कपालस्यगतिंसर्वे आश्रितागणनायकाः ॥ ११ ॥ ततोदेवगणाभीतास्तमायान्तंमहासुरम् ॥ गर्जमानंमहानादं भ्रममाणंमहाप्रभम् ॥ १२ ॥ विभिदुश्शूलसङ्घातै रसिभिर्मुसलैस्तथा ॥ सम्मोह्यशरजालेन ततोभूमौन्यपातयन् ॥ १३ ॥ हतेतस्मिन्महादेवो देवान्प्रोवाचवैतदा ॥ अ होदर्पोतिमूढस्य दर्पेणनिधनङ्गतः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास तत्कपालात्सुभैरवाः ॥ दीप्तास्यामातरस्सर्वाः प्रच ण्डास्त्रामहाबलाः ॥ १५ ॥ अभ्यधावंस्तमुद्देशं महादेवंन्यवेदयन् ॥ दैत्यन्ताभक्षयन्तिस्म भित्त्वाभित्त्वामहाबलम् ॥ १६ ॥ कपालमातरस्तस्मात ख्याताःक्षेत्रेमहाबलाः ॥ महाकपालस्तस्माद्वै सदृशःपरिकीर्तितः ॥ १७ ॥ स्थापित स्यकपालस्य भित्त्वातदभवत्पुरा ॥ ख्यातंशिवतडागञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ तदद्यापिमहादिव्यं सरस्तत्रप्र काश्यते ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं गन्धर्वगणसेवितम् ॥ १९ ॥ पात्रस्थमुद्धृतंवापि शीतोष्णंकथितंजलम् ॥ पुनातिरौद्र

में हे व्यासजी ! उस कपालसे जलतेहुये आननवाली व प्रचण्ड अस्त्रोंवाली तथा बड़ी बलवती व भयंकर सब मातृकायें ॥ १५ ॥ उस स्थान को दौड़ीं व महादेवजी से निवेदन किया और काटकाटकर उन बड़ी बलवती स्त्रियोंने भक्षण किया ॥ १६ ॥ इसलिये क्षेत्र में महाबलवती कपालमातायें प्रसिद्धहैं और उसीकारण महाकपाल सदृश कहा गया है ॥ १७ ॥ पुरातन समय थापेहुये कपाल को फोडकर समस्त पातकोंका नाशक शिवतडाग प्रसिद्ध हुआहै ॥ १८ ॥ वहांपर गन्धर्वगणोंसे सेवित आज भी वह बड़ा दिव्य तड़ाग प्रकाशितहै जो कि तीनोंलोकोंमें प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ और पात्रमें स्थित व ऊपरलाया हुआ तथा ठंढा व गरम और क्राथ किया हुआ रुद्र-

तड़ागका जल पवित्र करताहै जैसे कि अश्वमेधयज्ञका अवभृथ (यज्ञान्तस्नान) पवित्र करताहै ॥ २० ॥ सैकड़ों देवताओंसे घिरेहुये ब्रह्मा भी उस स्थान को आयेहैं और आपही ब्रह्माजीने उसको स्वर्गकी सीढ़ी कहाहै ॥ २१ ॥ जो मनुष्य यहां प्राणों को छोड़तेहैं वे शिवलोकको जातेहैं हे व्यासजी ! महाकालवन में टिकेहुये मनुष्य मृत्युलोक में धन्यहैं ॥ २२ ॥ और रुद्रतड़ाग में जो स्नान करते हैं व जो जलको भी पीते हैं अपने धर्म व आचारमें स्थित वे पुरुष ईश्वर महादेवजी को देखते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण स्वर्गमें प्राप्त देवता नित्यही यह अभिलाष करते हैं ॥२४॥ यह सदैव देवताओं से पूजित तथा उत्तम व दिव्य और महापातकोंका नाशक महाकपाल

सरसोश्वमेधावभृथोयथा ॥ २० ॥ प्रागाद्ब्रह्मापितंदेशं देवतानांशतैर्वृतः ॥ स्वर्गलोकस्यनिश्रेणी कीर्तिताब्रह्मणा स्वयम् ॥ २१ ॥ अत्रत्यजन्तियेप्राणान् रुद्रलोकंव्रजन्तिते ॥ धन्याव्यासनरामर्त्ये महाकालवनेस्थिताः ॥ २२ ॥ रौद्रेसरसियेस्नान्ति जलंवापिपिबन्तिये ॥ स्वधर्माचारनिरताः पश्यन्तीशानमीश्वरम् ॥ २३ ॥ इतिस्वर्गगतादेवाःस्पृहांकुर्वन्तिनित्यशः ॥ २४ ॥ इदंशुभंदिव्यमधर्मनाशनं महाकपालंसुरपूजितंसदा ॥ महाप्रभंपापहरंसनातनं सुरेशलोकादिषुदुर्लभंसदा ॥ २५ ॥ तपोरतैस्सिद्धगणैरभिष्टुतं यथानभःस्थंदिननाथमण्डलम् ॥ एकाग्रचित्तःशृणुयात्प्रसादतस्त्रिविष्टपंगच्छतिसोभिनन्दितः ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे माहिषकुण्डरुद्रसरोमाहात्म्यन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ स्वयंभूतंमहेशस्य कुटुम्बेश्वरनामकम् ॥ १ ॥

बड़ा प्रभावान् व पापहारक तथा सनातन व सुरेशलोकादिकों में सदैव दुर्लभ है ॥ २५ ॥ जैसे कि तपस्यामें परायण सिद्धगणोंसे स्तुति कियाहुआ आकाशमें सूर्यमण्डलहै इस चरित्रको सावधान चित्तवाला जो पुरुष सुनताहै वह प्रशंसितनर स्वर्ग को प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमाहिषकुण्डरुद्रसरोमहिमवर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । कुटुम्बेश्वरकतीर्थ की महिमा अमित अपार । गेरहवें अध्याय में चरित सोइ सुखकार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर आपही से उपजेहुये कुटुम्बे-

श्वरनामक त्रिलोक में प्रसिद्ध शिवजी के तीर्थको कहूंगा ॥ १ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है वह सातजन्मों में भी कियेहुये पातकों से छूट जाताहै ॥ २ ॥ व पवित्र होकर जो पुरुष विधिपूर्वक श्राद्धकर शिवदेवजी को देखताहै वह सब लोकोंको नांघकर शिवलोक को जाताहै ॥ ३ ॥ और इस तीर्थ के किनारे जो पुरुष सब शाकोंको और अनेक भांति के कन्दोंको देताहै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ पौषमें शुक्लपक्ष की परेवा या अष्टमी तिथिमें सावधान चित्तवाला पुरुष एकही उपाससे अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ और कुँवारकी पौर्णमासी में जो पवित्र मनुष्य शिवजी के पट्टबन्धको देखता है वह पाप

तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नानं करोतिश्रद्धयान्वितः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृतैरपि ॥ २ ॥ शुचिःपश्यतियोदेवं कृत्वाश्राद्धंयथाविधि ॥ सर्वाँल्लोकानतिक्रम्य शिवलोकंसगच्छति ॥ ३ ॥ यस्तुसर्वाणिशाकानि कन्दानिविविधानि च ॥ तीरेचास्यप्रयच्छेत्तु सप्राप्नोतिपराङ्गतिम् ॥ ४ ॥ पौषेसितप्रतिपदे अष्टम्यांवासमाहितः ॥ एकेनैवोपवासेन अश्वमेधफलंलभेत् ॥ ५ ॥ आश्विन्यांपौर्णमास्याञ्च शुचिःपश्यतिमानवः ॥ पट्टबन्धंमहेशस्य सविपाप्मादिवंव्रजेत् ॥ ६ ॥ चैत्रेमासिसितेपक्षे पञ्चम्यांसमुपोषितः ॥ कर्पूरंकुङ्कुमञ्चैव मृगनाभिसचन्दनम् ॥ ७ ॥ निवेदयतिदेवाय नैवेद्यं घृतपायसम् ॥ सुरूपञ्चैवविप्रेन्द्रं सभार्यंभोजयेद्द्विजम् ॥ ८ ॥ रुद्रलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि तीर्थंविद्याधरस्यतु ॥ ९ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

रहित पुरुष स्वर्गको प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ और चैत महीने में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथिमें उपास कियेहुये जो पुरुष कपूर, कुङ्कुम व चन्दन समेत कस्तूरी को ॥ ७ ॥ और घृतसंयुत खीरकी नैवेद्य को शिवदेवजी के लिये निवेदन करता है व स्त्रीसमेत सुन्दर रूपवाले द्विजेन्द्र ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ ८ ॥ वह तबतक शिवलोकको प्राप्तहोता है कि जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं इसके उपरान्त मैं विद्याधरके तीर्थको कहताहूं ॥ ९ ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर पुरुष विद्याधरों का स्वामी होता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥

दो० । अतिमहिमा संयुत कह्यो तीर्थ गन्धरब नाम । बारहवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन्, महामुने ! इस क्षेत्रमें यह तीर्थ कैसे उत्पन्न हुआहै इस समय इसको मुझसे प्रसन्नतासे कहिये मैं सुनाचाहताहूं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय कोई रूपधारी याने स्वरूपवान् विद्याधरों का स्वामी हुआहै उसने पारिजातकी सुन्दरीमालाको रचा ॥ २ ॥ और वह उस मालाको लेकर इन्द्रके मन्दिरमें गया व इन्द्रके आगे नाचतीहुई मेनकाको उसने देखा॥३॥ और उस समय नाचकी सभामें उसने उस मेनकाके लिये उस मालाको देदिया और वह मेनका उस स्थानमें मालासे मोहित होगई ॥ ४ ॥ तब क्रोधसे संयुत इन्द्र

व्यासउवाच ॥ कथंतीर्थमिदंक्षेत्रं जातमत्रमहामुने ॥ प्रसादाद्ब्रूहिमेब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ विद्याधरपतिःकश्चिदासीद्रूपधरःपुरा ॥ ग्रथितापारिजातस्य मालातेनमनोरमा ॥ २ ॥ गृहीत्वासच तांमालां गतोवासववेश्मनि ॥ नृत्यन्तीवासवस्याग्रेदृष्टातेनचमेनका ॥ ३ ॥ दत्तातस्यैतदातेन सामालान्नृत्यसंसदि ॥ सामेनकातुतत्स्थाने मालयामोहितासती ॥ ४ ॥ कोपाविष्टेनशक्रेण शप्तोविद्याधरस्तदा ॥ पृथिव्यांगच्छपापिष्ठ नृत्यभङ्गस्त्वयाकृतः ॥ ५ ॥ विद्याधरपदंत्यक्त्वा ममशापाच्चसाम्प्रतम् ॥ एवमुक्तस्तुशक्रेण वाक्यंविद्याधरोब्रवीत् ॥ ६ ॥ अजानतामयानाथ अपराधःकृतोधुना ॥ अनुग्रहमतोदेव कुरुमेत्वंप्रसादतः ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्सशक्रोवै विद्याधरमुवाचह ॥ गच्छावन्तींत्वमद्यैव यत्रास्तेगाङ्गटीगुहा ॥ ८ ॥ तस्याश्चोत्तरभागेतु विद्यतेतीर्थमुत्तमम् ॥ ख्याततत्त्रिषुलोकेषु नाम्नाविद्याधरंशुभम् ॥ ९ ॥ भक्त्यातत्रकृतेस्नाने विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ अतस्त्वमपितत्रैव कुरुस्नानंप्रयत्न

ने विद्याधर को शापदिया कि हे पापिष्ठ ! तुम इससमय विद्याधरके स्थान को छोडकर मेरे शापसे पृथ्वीको जावो क्योंकि तुमने नृत्यको भंग करदिया इन्द्रसे इसप्रकार कहेहुये विद्याधर ने वचन कहा ॥ ५ । ६ ॥ कि हे नाथ ! इससमय न जानतेहुये मैंने अपराध किया है इसलिये हे देव ! तुम प्रसन्नतासे मेरे ऊपर दयाकरो ॥ ७ ॥ इसप्रकार कहेहुये वे इन्द्रजी विद्याधरसे बोले कि तुम आजही अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीको जावो जहांपर कि गांगटी गुहाहै॥८॥उसके उत्तरभागमें उत्तमतीर्थ विद्यमान

तः॥१०॥ एवमुक्तःसशक्रेण आगतोवन्तिमण्डले॥ स्नानंकृतश्चतेनैव तीर्थेतस्मिन्मनोरमे ॥ ११ ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थस्य सविद्याधरपोऽभवत् ॥ एवंव्याससमाख्यातं तीर्थंविद्याधरंशुभम् ॥१२॥ तत्रपुष्पाणियोदद्याच्चन्दनञ्चविलेपनम्॥ लभेत्समस्तभोगान्सइहलोकेपरत्रच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविद्याधरतीर्थमाहात्म्यन्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थंचविख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥ १ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा गोशतस्यफलंलभेत् ॥ विस्फोटानांप्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चैवकारणे ॥ २ ॥ माषेणमिश्रितान्कृत्वा मसूरांस्तत्रकुट्टयेत ॥ शीतलायाःप्रभावेण बालाःसन्तुनिरामयाः ॥ ३ ॥ येपश्यन्तिनराभक्त्या शीतलान्दु

है वह तीनोंलोकोंमें विद्याधर नामक उत्तम तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ भक्ति से उसमें स्नान करनेपर विद्याधरोंका स्वामी होताहै इसीकारण तुम भी यत्नसे उसीमें स्नान करो ॥ १० ॥ इसप्रकार इन्द्रजीसे कहाहुआ वह अवन्तीके मण्डलमें आया व उसने उस सुन्दर तीर्थ में स्नान किया ॥ ११ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव से वह विद्याधरोंका स्वामीहुआ हे व्यासजी ! इसप्रकार उत्तम विद्याधरतीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥ १२ ॥ वहांपर पुष्पों को व चन्दनलेपन को जो पुरुष देता है वह इस लोकमें व परलोक में सब सुखोंको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविद्याधरतीर्थमहिमवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः॥१२

दो० । मर्कटेश्वरक तीर्थकर, अहै जौन परभाव । तेरहवें अध्याय में, सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके उपरान्त वहांपर मर्कटेश्वर ऐसे प्रसिद्ध समस्त कामनाओंको देनेवाले उत्तम तीर्थ को कहूंगा ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गोशतके फल को प्राप्त होताहै और बालकों के कारण विस्फोटकों की शांति के लिये ॥ २ ॥ उड़दसे मिश्रितकर मसूरोंको वहां कुटावै तो शीतलाके प्रभाव से बालक निरोग होवैंगे ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य पापनाशिनी शीतलाजी को

भक्तिसे देखते हैं उनको कुछ पातक नहीं होताहै और न दरिद्रता होतीहै ॥ ४ ॥ और न उनको रोगका डर होताहै न ग्रहोंकी पीड़ा होती है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशीतलामाहात्म्यंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत, तीरथ स्वर्गद्वार । चौदहवें अध्यायमें, ताकर चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जो मनुष्य स्वर्गद्वारमें नहाकर व भैरवदेवको देखकर और पितरोंको उद्देशाकर वहींपर भक्तिसे श्राद्धकरै ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! वह अपना समेत पितरोंको तारताहै और स्वर्गद्वारसे वह शिवजीके परमपदको प्राप्तहोता

रितापहाम् ॥ नतेषांदुष्कृतंकिञ्चिन्नदारिद्र्यंद्विजोत्तम ॥४॥ नचरोगभयन्तेषां ग्रहपीडातथैवच ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेशीतलामाहात्म्यन्नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवञ्चभैरवम्॥श्राद्धंतत्रैवकुर्वीत पितॄनुद्दिश्यभक्तितः॥१॥ पितॄंश्चसनरोव्यास तारयेदात्मनासह ॥ स्वर्गद्वारेणसोभ्येति रुद्रस्यपरमंपदम् ॥ २ ॥ भैरवस्याग्रतोदेवी पूर्वेतिष्ठतिचाम्बिका ॥ तान्तुदृष्ट्वानरःस्त्रीवा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ३ ॥ महानवम्यांपुरुषः कृत्वाबस्तमयंबलिम् ॥ महिषंवासुरांमांसं मालांबिल्वमयींशुभाम् ॥ ४ ॥ भक्त्यानिवेदयेद्देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या पूजांकृत्वाशिवस्यच॥ ५ ॥ स्वर्गद्वारेणसोभ्येति रुद्रस्यभवनंद्विज ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे स्वर्गद्वारमाहात्म्यन्नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है ॥ २ ॥ भैरवजी के आगे पूर्वदिशामें अम्बिकादेवी स्थित हैं उनको देखकर स्त्री या पुरुष सब पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ और महानवमी में जो पुरुष छागमय व भैंसकी बलिकरके मदिरा, मांस व बिल्वमयी उत्तम मालाको ॥ ४ ॥ भक्तिसे देवीजीके लिये निवेदन करताहै वह सब सिद्धिको प्राप्तहोता है उसमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे शिवजी का पूजनकर ॥ ५ ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के द्वारा वह पुरुष शिवजीके मन्दिर को प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांस्वर्गद्वारमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । तीरथ चतुःसमुद्रकर चरित सहित विस्तार । पन्द्रहवें अध्याय में कह्यो पुण्यदातार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चतुःसमुद्र नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य राजस्थल शिवको देखै कि जिसके दर्शनही से मनुष्य पुत्रवान् होता है ॥ १ ॥ क्षार, दुग्ध, दधि व इक्षु ये जो चार समुद्रहैं वे उन शिवजी के समीप सुद्युम्नसे थापे गये हैं ॥२॥ व्यासजी बोले कि लाख योजनतक उत्तम जम्बूद्वीपहै उसकी मर्यादा में यह क्षारनामक समुद्र स्थापितहै ॥ ३ ॥ और दोलक्षयोजन शाकद्वीपमें वह क्षीरसागर प्रतिष्ठितहै और चार लाख कुशद्वीपमें दधिसमुद्र स्थितहै ॥ ४ ॥ और शाल्मलिद्वीप में आठ लाख इक्षुरसका समुद्र प्रतिष्ठित है और वे चार समुद्र पृथ्वीमण्डलमें

सनत्कुमारउवाच॥ स्नात्वाचतुस्समुद्रेतुपश्येद्राजस्थलंशिवम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेणपुत्रवाञ्जायतेनरः ॥१॥ समुद्रास्सन्तिचत्वारः क्षारक्षीरदधीक्षवः ॥ समीपेतस्यदेवस्य सुद्युम्नेनप्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ लक्षयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपंसुशोभनम् ॥ मर्य्यादायांस्थापितोयं समुद्रःक्षारसंज्ञितः ॥ ३ ॥ शाकद्वीपेद्विलक्षेतु क्षीराब्धिस्संप्रतिष्ठितः॥ दध्यब्धिश्चकुशद्वीपे चतुर्लक्षेप्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥ शाल्मलेत्विक्षुजलधिर्ह्यष्टलक्षेप्रतिष्ठितः ॥ चत्वारस्तेसमाख्याताः समुद्राभूमिमण्डले ॥ ५ ॥ राजस्थलसमीपेतु कथमेकत्रताङ्गताः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ सुद्युम्नोनामराजासीत् पुराकल्पेषुधार्मिकः ॥ ६ ॥ तस्यपत्नीवरारोहा नाम्नाख्यातासुदर्शना ॥ सादाल्भ्यंमुनिंदृष्ट्वा पप्रच्छसुतकाम्यया ॥ ७॥ भगवन्केनदानेन स्नानेनविधिनाथवा ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णः पुत्रोलभ्योमयाकथम् ॥ ८ ॥ दाल्भ्यउवाच॥ विहितस्तेपुरापुत्रि सर्वपुत्रेषुसत्तमः ॥ स्वयम्भूतेनदेवेन ब्रह्मणालोककारिणा ॥ ९ ॥ तेभर्ताशङ्करन्देवमाराध्यतत्प्रसा

कहे गये हैं ॥ ५ ॥ और राजस्थल के समीप वे कैसे एकत्रता को प्राप्त हुये हैं सनत्कुमार जी बोले कि पुरातन समय कल्पों में सुद्युम्न नामक धर्मवान् राजा हुआ है ॥ ६ ॥ उसकी उत्तम कटिवाली सुदर्शना नामक स्त्री थी उसने दाल्भ्य मुनिको देखकर पुत्रकी कामना से पूछा ॥ ७ ॥ कि हे भगवन् ! किस दानसे व स्नान या विधि से समस्त लक्षणोंसे संपूर्ण पुत्र मुझको कैसे प्राप्त होने योग्य है ॥ ८ ॥ दाल्भ्यजी बोले कि हे पुत्रि ! लोकों के रचनेवाले व आपही से उपजे हुये ब्रह्माजी ने पहलेही सब पुत्रोंमें उत्तम तुम्हारे पुत्रको किया है ॥ ९ ॥ यदि तुम्हारा पति सदाशिव देवजी को आराधकर उनकी प्रसन्नतासे चारों समुद्रों को स्वरूप से अवन्तीपुरी में

लावैंगा ॥ १० ॥ तो उनमें राजाके स्नान करनेपर तुम्हारे पुत्र होगा इसलिये हे पुत्रि ! शिवजी के आराधन में पतिकी प्रेरणा कीजिये ॥ ११ ॥ दालभ्यके वचन से व विचित्र आख्यान से उसने शंकरजी के आराधन करनेमें पतिको पठाया ॥ १२ ॥ और उसने गंधमादन पर्वत पर जाकर शिवजीको प्रसन्न कराया व प्रसन्न होतेहुये चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि लोचनोंवाले शिवजी बोले ॥ १३ ॥ कि हे राजेन्द्र ! उज्जैनीपुरीको जाइये उत्तम पुत्रको पावोगे और मेरी आज्ञासे समुद्र कुशस्थली (अवन्ती) पुरीको जावैंगे ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ, राजन् ! मरुरूप याने निर्जल स्थल में शंकरजी के समीप तुम भलीभाति प्राप्तहुये समुद्रोंको देखोगे ॥ १५ ॥ और तुमसे याचना

दतः ॥ आनयिष्यत्यवन्त्यांचेचतुरोऽब्धीन्स्वरूपतः ॥ १० ॥ तेषुराज्ञाकृतेस्नाने तवपुत्रोभविष्यति ॥ शङ्कराराधनेपुत्रितस्मात्प्रेरयवल्लभम् ॥ ११ ॥ दालभ्यस्यैववाक्येन विचित्राख्यानकेनच ॥ प्रस्थापयामासपतिं शङ्कराराधनेषुच ॥ १२॥ सगत्वातोषयामास शङ्करंगन्धमादने ॥ सन्तुष्टःशङ्करःप्राह शशिसूर्याग्निलोचनः ॥ १३ ॥ अवन्तींगच्छराजेन्द्र पुत्रंप्राप्स्यसिशोभनम् ॥ मच्छासनाज्जलधरा गमिष्यन्तिकुशस्थलीम् ॥ १४ ॥ मरुरूपेस्थलेराजन् समीपेशङ्करस्यच ॥ द्रक्ष्यसित्वंनरश्रेष्ठ जलधींस्तत्रसङ्गतान् ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितास्त्वयातत्र स्थास्यन्तिकलयासदा ॥ एवमुक्त्वामहादेवो जगामादर्शनंविभुः ॥ १६ ॥ सुद्युम्नोभार्ययासार्द्धमाजगामकुशस्थलीम् ॥ आगतांस्तुकुशस्थल्यां समुद्रांश्चददर्शह ॥ १७ ॥ तांस्तुदृष्ट्वानमश्चक्रे राजस्थलसमीपतः ॥ तंवैदृष्ट्वाचसुद्युम्नं प्रणतंभक्तवत्सलाः ॥ १८ ॥ प्रोचुर्वारिधयस्सर्वे वरंवरयसुव्रत ॥ सवव्रेमनसापुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १९ ॥ उवाचचपुनाराजा यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥

कियेहुये वे वहां सदैव कला से टिकैंगे ऐसा कहकर महादेव स्वामी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ ॥ और सुद्युम्न स्त्री समेत कुशस्थली को आये और कुशस्थली में आये हुये समुद्रोंको उसने देखा ॥ १७ ॥ और राजस्थलके समीप उनको देखकर उसने प्रणाम किया व प्रणाम किये उन सुद्युम्नको देखकर भक्तप्रिय ॥ १८ ॥ सब समुद्र बोले कि हे सुव्रत ! वरदान मांगिये उसने मनके द्वारा समस्त लक्षणो से संयुत पुत्रको मांगा ॥ १९ ॥ और फिर राजा बोले कि जबतक पृथ्वी स्थितरहै तबतक

राजस्थलके समीप तुम सबों को यहींपर टिकना चाहिये ॥ २० ॥ समुद्र बोले कि जबतक कल्पान्त होगा तबतक हम सब यहीं टिकैंगे और इसमें तुम्हारे स्नानमात्र से तुम्हारे समस्त लक्षणोंसे संयुत पुत्रहोगा इसलिये स्नान करिये और हे राजन् ! इस उत्तम स्थलमें कला समेत हम सब टिकैंगे ॥ २१ ।२२ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार सुद्युम्नसे समुद्र उत्पन्न किये गये उनमें जो यात्रा करता है उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ २३ ॥ कि महापुण्यदायक क्षारसमुद्र में स्नानकर तदनन्तर हे व्यासजी ! पितरों की भक्ति में तत्पर पुरुष श्राद्ध करै ॥ २४ ॥ और स्थल में टिके हुये पार्वती जीके पति महादेवजी को पूजै तदनन्तर वेदके पारगामी ब्राह्मण के

स्थातव्यंतावदत्रैव राजस्थलसमीपतः ॥ २० ॥ समुद्राऊचुः ॥ तावत्स्थास्यामएवात्र यावत्कल्पावसानकम् ॥ भविष्यतिचतेपुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २१ ॥ अत्रतेस्नानमात्रेण तस्मात्स्नानंसमाचर ॥ स्थलेचात्रशुभेराजन् स्थास्यामःकलयासह ॥ २२ ॥ एवंव्याससमुद्राश्च सुद्युम्नेनावतारिताः ॥ कुरुतेतेषुयोयात्रां तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २३ ॥ स्नानंकृत्वामहापुण्ये समुद्रेक्षारसंज्ञके ॥ कुर्याच्छ्राद्धंततोव्यास पितॄणांभक्तितत्परः ॥ २४ ॥ पूजयेच्चमहादेवं स्थलस्थंपार्वतीपतिम् ॥ मण्डनानिततोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २५ ॥ पात्रंताम्रमयंकार्यं लवणेनप्रपूरितम् ॥ सहिरण्यञ्चदातव्यं ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ २६ ॥ सप्तधान्यसमायुक्तं वेणुजंवस्त्रवेष्टितम् ॥ सदक्षिणंफलैर्युक्तमर्घ्यंदद्यात्प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ क्षीराब्धिंचततोगत्वा स्नानंकुर्याच्चपूर्ववत् ॥ क्षीरंतत्रप्रदातव्यं ताम्रपात्रेप्रपूरितम् ॥ २८ ॥ दध्यब्धौचतथाकृत्वा दद्याद्दध्योदनंशुभम् ॥ इक्ष्वब्धौचतथाकृत्वा दद्याद्विप्रेगुडंशुभम् ॥ २९ ॥ यात्रांकृत्वातुवैव्यास गाञ्च

निमित्त आभूषणोंकोदेवै ॥२५॥ और ताम्रमयपात्र करना चाहिये व लोनसे पूरित तथा सुवर्ण समेत उस पात्रको वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके निमित्त देनाचाहिये ॥२६॥ और सप्तधान्य से संयुत व वसन से लपेटेहुये दक्षिणा समेत व फलों से संयुत बांससे उपजेहुये पात्रका अर्घ्य बड़े यत्नसे देना चाहिये ॥ २७ ॥ तदनन्तर क्षीरसमुद्र को जाकर व पहले की नाईं स्नानकर वहां तांबे के पात्र में भरेहुये दूधको देना चाहिये ॥ २८ ॥ वैसेही दधिसमुद्र में करके उत्तम दही भातको देना चाहिये और ऊखके रसके समुद्र में वैसेही करके ब्राह्मण के निमित्त उत्तम गुड़को देना चाहिये ॥ २९ ॥ व हे व्यासजी ! यात्रा करके दूधवाली गऊको देवै इस प्रकार जो

मनुष्य राजस्थल के समीप यात्रा करता है ॥ ३० ॥ वह कल्याणमयी लक्ष्मी व सुन्दर पुत्रों को पाता है और मरकर स्वर्गको प्राप्त होता है जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांराजस्थलेश्वरसमीपेचतुःसमुद्रमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दो० । कह्यो शङ्करादित्यकर अति अद्भुत परभाव । सोलहवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! शंकरवापिका नामक महातीर्थ को सुनिये कि क्रीड़ा करतेहुये शिवदेवजी ने उत्तम तीर्थका निर्माण कियाहै ॥ १ ॥ देवदेव शिवजी ने कपाल को धोनेवाले जलको फेंक दिया और जिस लिये

दद्यात्पयस्विनीम् ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां राजस्थलसमीपतः ॥ ३० ॥ भव्यांहिलभतेलक्ष्मीं पुत्रांश्चापिमनोरमान् ॥ मृतःस्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे राजस्थलेश्वरसमीपेचतुस्समुद्रमाहात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं नाम्नाशङ्करवापिका ॥ क्रीडमानेनदेवेन निर्मितंतीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रक्षिप्तंदेवदेवेन कपालक्षालनंजलम् ॥ वापीगतंकृतंयस्मादतःशङ्करवापिका ॥ २ ॥ अर्काष्टम्यांनरःस्नात्वा दिशासु विदिशासुच ॥ पूर्वादिक्रमतोयाच्च वापीमध्येतथैवच ॥ ३ ॥ हविष्यान्नयुतान्व्यास दद्याच्चकरकान्नवान् ॥ शाकमूलांश्चविप्रेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ परत्रचेहयेलोकाः सर्वभोगसमन्विताः ॥ तत्रतत्रसमायान्ति भुक्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ येनराःकीर्त्तयिष्यन्ति माहात्म्यमतिभावुकाः ॥ रुद्रलोकेपितेपूज्यास्तेभ्योस्तुसततन्नमः ॥ ६ ॥ सनत्कुमा

वह बावली में प्राप्त कियागया इसीसे शंकरवापिका हुई ॥ २ ॥ अर्काष्टमीमें बावलीके मध्यमें पूर्वादिक क्रमपूर्वक जल से दिशाओं व विदिशाओं में नहाकर ॥ ३ ॥ हे व्यासजी ! हविष्यान्न से संयुत नवीन कमण्डलुवोंको देवै व ब्राह्मणों के लिये शाकों व मूलोंको देवै उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ ४ ॥ कि परलोकमें व इस लोक में समस्त सुखोंसे संयुत जो लोक हैं वहां वहां अति उत्तम ऐश्वर्य को भोगकर वे मनुष्य भली भांति प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ अत्यन्त कुशल जो मनुष्य इस माहात्म्य

को कहैंगे वे भी शिवलोक में पूजनीय होगे और उन के लिये सदैव प्रणाम होवै ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले वृषध्वज देवदेवेश जीने पवित्र होकर देवदेव सूर्यनारायणजी की स्तुति किया ॥ ७ ॥ और सूर्यनारायणजी आये व प्रसन्न होते हुये वे सदाशिवजी से बोले सूर्यनारायणजी बोले कि हे भूतेशजी ! वरदानको मांगिये मैं वरदायकहूं तुम्हैं वरदानको दूंगा ॥ ८ ॥ उनसे शिवजी बोले कि यदि तुम वरदायकहो तो मुझ से याचना की हुई वस्तुको कीजिये कि समस्त शरीरधारियों के हितके लिये यहां अंशसे स्थित होवो ॥ ९ ॥ महादेवजी का वचन सुनकर वहापर सूर्यनारायणजी

रउवाच ॥ ततोवैदेवदेवेशः पिनाकीवृषभध्वजः ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वा देवदेवंदिवाकरम् ॥ ७ ॥ आजगामदिवानाथः सन्तुष्टःप्राहशङ्करम् ॥ सूर्य्यउवाच ॥ वरंवरयभूतेश वरदोस्मिददामिते ॥ ८ ॥ तमाहवरदश्चेत्त्वं याच्यमानंकुरुष्व मे ॥ अंशेनस्थीयतामत्र हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ ९ ॥ अवतीर्णोरविस्तत्र श्रुत्वामाहेश्वरंवचः ॥ ततोदेवाधिदेवेशो य यौख्यातिंमहामतिः ॥ १० ॥ शङ्करादित्यनामेति लोकानांशान्तिकारकः ॥ देवादैत्याश्चगन्धर्वा विस्मितास्सह किन्नरैः ॥ ११ ॥ अहोधन्यमिदंस्थानं यत्रास्तेत्रिपुरान्तकः ॥ भास्करोपिचतत्रस्थस्तीर्थमाहात्म्यवर्णने ॥ १२ ॥ ततस्तुष्टाश्चतेसर्वे ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ देवेशंपूजयामासुर्देवमादित्यशङ्करम् ॥ १३ ॥ मूर्त्तिमन्तश्चतेदेवा अवतीर्य्यच शोभनम् ॥ स्थापयित्वाब्रुवन्वाक्यं येत्वांस्तोष्यन्तिमानवाः ॥ १४ ॥ नदुःखंजायतेतेषां जरामरणदुःखजम् ॥ सर्व

ने अवतार लिया उसीकारण देवाधिदेवेश व महाबुद्धिमान् तथा लोकों के शान्तिकारक सूर्यनारायणजी शंकरादित्य ऐसे नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त हुये और देवता, दैत्य व किन्नरों समेत गन्धर्व विस्मयको प्राप्तहुये ॥ १० । ११ ॥ कि अहो यह स्थान धन्य है कि जहांपर त्रिपुरके विनाशक सदाशिवजी हैं और वहां टिकेहुये सूर्यनारायण भी तीर्थ के माहात्म्यके वर्णन में हैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये उन ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठों ने देवेश आदित्य शंकरजी का पूजन किया ॥ १३ ॥ और मूर्त्तिमान् वे देवता अवतार लेकर व उनको स्थापितकर उत्तम वचन बोले कि जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करैंगे ॥ १४ ॥ उनको वृद्धता व मरणसे उपजाहुआ

उससे अधिक फल यहां शंकरादित्यजी के दर्शन से होताहै और व्याधियां
दुःख नहीं होगा सब यज्ञोंमें जो पुण्य होताहै व समस्त दानों में जो फल होताहै ॥ १५ ॥ शंकरादित्यजी के दर्शनसे न रोग होता
व मनकी व्यथायें व दरिद्रता कभी नहीं होतीहै ॥ १६ ॥ और पृथ्वीमें उनका सदैव अतुल ऐश्वर्य होताहै और हे मुनिश्रेष्ठ ! पुरातन समय इसी कारण त्रिशूल हाथवाले देवदेव सदाशिवजी ने अपने नाम से उत्तम
है व न दरिद्रता होती है और न भाइयो से बिछोह होता है हे मुनिश्रेष्ठ ! इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशंकरादित्यमाहात्म्यवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६॥
तीर्थ को स्थापित कियाहै ॥ १७।१८।१९ ॥

व्याधयोनाधयश्चैव दारिद्र्य
यज्ञेषुयत्पुण्यं सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १५ ॥ तस्माच्चैवाधिकंह्यत्र शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ जायतेमु
न्नकदाचन ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यञ्चातुलंतेषां जायतेभुविसर्वदा ॥ नरोगोनचदारिद्र्यं वियोगोनचबन्धुभिः ॥ १७ ॥ स्थापितंपरमंतीर्थं स्वनाम्नामुनिसत्त
निशार्दूल शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ इत्येवदेवदेवेन पुरावैशूलपाणिना ॥ १८ ॥
म ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे शङ्करादित्यमाहात्म्यन्नामषोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एकस्मिन्समयेव्यास कपालक्षालनायवै ॥ शुद्धोदकंगृहीत्वातु कपालेनमहेश्वरः ॥ १ ॥ प्र
क्षाल्यचाक्षिपद्भूमौ तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ नाम्नागन्धवतीपुण्या नदीत्रैलोक्यविश्रुता ॥ २ ॥ ब्रह्मणोरुधिरेणापि परिपू
र्णाभवत्क्षणात् ॥ तस्यांस्नानंसदाशस्तं स्वयन्देवेनभाषितम् ॥ ३ ॥ श्राद्धंकृतंतर्पणञ्च तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् ॥ वायुभू
तास्तुपितरस्तस्यास्तीरेतुदक्षिणे ॥ ४ ॥ तिष्ठन्तिमुनिशार्दूल चिन्तयन्तिस्वगोत्रजम् ॥ आगमिष्यतिपुत्रोनो नप्ता

दो० । पितर तृप्तिदायक चरित गन्धवती कर जौन । सत्रहवें अध्यायमें बरणत हैं सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकसमय महादेवजीने कपाल
को धोने के लिये शुद्ध जलको लेकर व उसको प्रक्षालन कर भूमि में फेंक दिया वहांपर अतिउत्तम तीर्थ होगया नामसे गन्धवती नामक पुण्यदायिनी नदी त्रिलोक
में प्रसिद्ध हुई ॥ १ । २ ॥ वही ब्रह्माके रक्तसे क्षणभरमे पूर्ण होगई उसमें आपही सदाशिवदेवजीने सदैव स्नानको उत्तम कहा है ॥ ३ ॥ और किया हुआ श्राद्ध व
तर्पण वह सब अक्षय होवै है और उसके दक्षिण किनारे पै पवनभूत पितर ॥ ४ ॥ टिके है व हे मुनिश्रेष्ठ ! वे अपने गोत्रसे उपजेहुये पुरुषको चिन्तन करते हैं कि

हम लोगोंकी संतानमें पुत्र या नाती यहां आवैगा ॥ ५ ॥ और वह गुझिया या खीर भी व सांवां और उत्तम तिन्नी फसही को और सत्तू, शहद व तिलोंसे संयुक्त पिंड को कब देवैगा ॥ ६ ॥ उन पिंड के देने से अविनाशिनी तृप्ति होती है और चन्द्रग्रहण में स्नान कर जो मनुष्य वहा पिंड को देता है ॥ ७ ॥ उसके पितर बारह वर्ष तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं हे द्विज ! यहापर जो उत्तम विद्वान् मनुष्य आकर ॥ ८ ॥ पितरों को तृप्त करैंगे उनको सदैव अक्षयस्वर्ग होगा वहा जो लवमात्र सुवर्णदान दिया जाताहै ॥ ९ ॥ उसका वह आपही उपजेहुये ब्रह्माजीसे अक्षय कहागया है और हरिद्वार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १० ॥ और काशी व गया में

वासन्तताविह ॥ ५ ॥ संयावंपायसंवापि श्यामाकंसन्निवारकम् ॥ सक्तुक्षौद्रतिलैर्युक्तं पिण्डंदास्यतिवैकदा ॥ ६ ॥ तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवतिचाक्षया ॥ यस्तुस्नात्वाचवैपिण्डं दद्याद्वैचन्द्रपर्वणि ॥ ७ ॥ पितरोद्वादशाब्दानि तृप्तिं यास्यन्तितस्यवै ॥ येत्रागत्यसुविद्वांसो मानवावैतथाद्विज ॥ ८ ॥ पितॄन्सन्तर्पयिष्यन्ति स्वर्गस्तेषांसदाक्षयः ॥ तत्रयद्दीयतेदानं त्रुटिमात्रंतुकाञ्चनम् ॥ ९ ॥ अक्षय्यंतस्यतत्प्रोक्तं ब्रह्मणावैस्वयम्भुवा ॥ गङ्गाद्वारेप्रयागेच कुरुक्षेत्रेचपुष्करे ॥ १० ॥ वाराणस्यांगयायाञ्चमासात्तृप्तिर्भविष्यति ॥ तुष्टाश्चपितरोनॄणांदास्यन्तिकाङ्क्षितान्वरान् ॥ ११ ॥ योयमुद्दिश्यवैकाममिहश्राद्धंकरिष्यति ॥ तस्यतज्जायतेसर्वंमृतस्यपरमागतिः ॥ १२ ॥ अष्टमीनवमीचैवामावस्यावाथपूर्णिमा ॥ सर्वास्वेतासुवैव्यास रवेःसंक्रमणेतथा ॥ १३ ॥ ब्रह्मेन्द्ररुद्रदेवांश्च सूर्याग्निब्रह्मदेवताः ॥ विश्वेदेवान्सगन्धर्वान् यक्षांश्च मनुजान्पशून् ॥ १४ ॥ सरीसृपान्पितृगणान् यच्चान्यद्भुविसंस्थितम् ॥ श्राद्धंवैश्रद्धयाकुर्वन् प्रीणय

जो तृप्ति होती है वह तृप्ति होगी और प्रसन्न होते हुये पितर मनुष्यों को चाहे हुये वरदानों को देवैंगे ॥ ११ ॥ जो मनुष्य जिस मनोरथ को उद्देश कर यहां श्राद्ध करैगा उसका वह सब होगा और मरे हुये पुरुष की उत्तम गति होगी ॥ १२ ॥ हे व्यास जी ! अष्टमी, नवमी व अमावस और पूर्णिमा इन सब तिथियों में व सूर्य की संक्रान्ति में ॥ १३ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्र देवताओं को तथा सूर्य, अग्नि व ब्रह्मदेवताओं को और गंधर्वों समेत विश्वेदेवों तथा यक्षों व मनुष्यों और पशुओं

को ॥ १४ ॥ और सर्पों, पितृगणों को व अन्य जो भूमि में स्थित हैं उसको श्रद्धासे श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब संसार को तृप्त करता है ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक महीने में शुक्लपक्ष में पौर्णमासी में और चन्द्रक्षय (अमावस) में जब अनुराधा, विशाखा व रोहिणी होवै ॥ १६ ॥ तब श्राद्ध में पूजेहुये पितरसमूह तृप्ति को प्राप्त होते हैं और धनिष्ठा व पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में तृप्ति को चाहते हुये पितरोंकी ॥ १७ ॥ भक्तिसे श्राद्ध करै उससे पितर तृप्त होते हैं व यह कहते हैं कि कुल में उपजे हुये भी वे धन्य हैं हमलोगों की तृप्ति के कारण ॥ १८ ॥ कि जो श्राद्धकरते हैं व पिंडों को देते हैं उस पिंडदान से हमलोगों की अक्षय तृप्ति होती

त्यखिलंजगत् ॥ १५ ॥ मासिमासिसितेपक्षे पञ्चदश्यांद्विजोत्तम ॥ इन्दुक्षयेयदामैत्रं विशाखाचैवरोहिणी ॥ १६ ॥ श्राद्धेपितृगणास्तृप्तिं प्रयान्तिचतथार्चिताः ॥ वासवाजैकपादर्क्षे पितॄणांतृप्तिमिच्छताम् ॥ १७ ॥ भक्त्याश्राद्धंप्रकुर्वीत पितरस्तेनतर्पिताः ॥ अपिधन्याःकुलेजाता अस्माकंतृप्तिहेतवे ॥ १८ ॥ येकुर्वन्तिचवैश्राद्धं पिण्डान्येनिर्वपन्तिच ॥ तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्नोभविताक्षया ॥ १९ ॥ इहैत्यवैपुण्यजलेषुसम्यक्स्नात्वानरःस्वान्नुलभेतकामान् ॥ यान् प्राप्यचप्रेतगणैःसमेतः समोदतेदेववृतोर्थसिद्धः ॥ २० ॥ चित्तञ्चवित्तञ्चयशोविशुद्धं देशस्तुकालःकथितोविधिश्च ॥ पात्रंयथोक्तंपरमाञ्चभक्तिं नृणांप्रयच्छन्तिहिवाञ्छितानि ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ दशाश्वमेधिकेस्नात्वादृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ १ ॥

है ॥ १९ ॥ यहां आकर व पवित्र जलों में भली भांति नहाकर मनुष्य अपने मनोरथों को प्राप्त होता है कि जिनको पाकर देवताओं से घिरा हुआ वह सिद्ध प्रयोजन वाला मनुष्य प्रेतगणों समेत प्रसन्न होता है ॥ २० ॥ शुद्धचित्त, धन, यश, देश, काल व कही हुई विधि और यथोक्त पात्र ये सब मनुष्यों को उत्तम भक्ति व चाहे हुये मनोरथों को देते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायानीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णननामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० अति उत्तम माहात्म्ययुत तीर्थ दशाश्वकमेध । अठारहें अध्यायमें बरण्यों सोइ सुमेध ॥ सनत्कुमारजी बोले कि दशाश्वमेध तीर्थ में नहाकर व शिवदेवजी को

देखकर मनुष्य दश अश्वमेधों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मनुजेन्द्र मनु व राजा ययाति, रघु, उशना और लोमश महर्षि ने ॥ २ ॥ व अत्रि भृगु तथा बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी व पुण्यरूप पुरूरवा, नहुष और नल ने ॥ ३ ॥ इस तीर्थ में स्नान से दश अश्वमेध यज्ञों के फलको पाया है वैसेही द्वापर का अन्त प्राप्त होने पर बाष्कलि राजाने ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! दश अश्वमेध यज्ञों के फल को पाया है वैसेही कृष्णवर्ण लिंग भक्ति से सदैव पूजित है ॥ ५ ॥ मनुष्य उन देवको देखकर व स्पर्श कर पहले कहे हुये फलको प्राप्त होता है चैत महीने में शुक्लपक्षकी अष्टमी में भक्ति से उन देव को भलीभांति पूजकर ॥ ६ ॥ सुन्दर रूपवाले व

मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञाचैवययातिना ॥ रघुणोशनसाचैवलोमशेनमहर्षिणा ॥ २ ॥ अत्रिणाभृगुणाचैव दत्तात्रेयेण धीमता ॥ पुरूरवसापुण्येन नहुषेणनलेनच ॥ ३ ॥ अत्रस्नानेनसंप्राप्तं दशाश्वमेधिकंफलम् ॥ संप्राप्तेद्वापरस्यान्ते राज्ञाबाष्कलिनातथा ॥ ४ ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्तंद्विजोत्तम ॥ कृष्णवर्णंतथालिङ्गं पूजितंभक्तितःसदा ॥ ५ ॥ दृष्ट्वास्पृष्ट्वाचतंदेवं प्रागुक्तंलभतेफलम् ॥ चैत्रेमासिसिताष्टम्यां देवंसंपूज्यभक्तितः ॥ ६ ॥ अश्वंदद्याच्चविप्राय सुरूपंच गुणान्वितम् ॥ यावन्तितस्यरोमाणि गण्यन्तेसंख्ययाद्विज ७ ॥ तावद्वर्षसहस्राणिशिवलोकेमहीयते ॥ शिवलोकात्परिभ्रष्टःसार्वभौमोभवेद्भुवि ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एकानंशांनमस्कृत्य देवींत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ पूजांकृत्वाविधानेन सर्वसिद्धिफलंलभेत् ॥ १ ॥ अणिमादिगुणान्सर्वान् गुटिकांसिद्धमञ्जनम् ॥ खड्गंचपादुकेचैवबिलवासंरसायनम् ॥ २ ॥ सर्वंतुष्टाप्रयच्छेत्तु नात्रका

गुणों से संयुक्त घोडे को ब्राह्मण के लिये देवै हे द्विज ! उस अश्वके जितने रोम गिने जाते हैं ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षों तक वह शिवलोक में पूजित होता है और शिवलोक से भ्रष्ट हुआ वह पुरुष पृथ्वी में चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दो० । एकानंशा भगवती का उत्तम आख्यान । उनीसवें अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि त्रिलोक में प्रसिद्ध एकानंशा देवीजी को प्रणामकर व विधि से पूजनकर मनुष्य सब सिद्धियों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और अणिमादिक सब गुणों को व गोली तथा सिद्धअञ्जन व तलवार

यांविचारणा ॥ सुरामांसोपहारैश्चभक्ष्यभोज्यैश्चपूजिता ॥ ३ ॥ सर्वान्कामान्नृणांदेवी तुष्टादद्याच्चसर्वदा ॥ महानव
म्यांयोदेवीं महिषेणप्रपूजयेत ॥ ४ ॥ मेषेणचयथालाभं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ व्यासउवाच ॥ कथंदेवीसमुत्पन्ना
एकानंशेतिविश्रुता ॥ ५ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि सर्वपापप्रणाशनम्॥ सनत्कुमारउवाच ॥पुराकृतयुगस्यादौ ब्रह्मालो
कपितामहः ॥ ६ ॥ निशांसंस्मारभगवान् स्वांतनुंपूर्वसम्भवाम् ॥ ततोभगवतारात्रिरुपतस्थेपितामहम् ॥ ७ ॥ तांविवि
क्तेसमालोक्य ब्रह्मोवाचविभावरीम् ॥ विभावरिमहाकाये व्यवधानेह्युपस्थिते ॥ ८ ॥ यत्कर्तव्यंत्वयादेवि शृणुचार्थ
स्यनिश्चयम् ॥ तारकोनामदैत्येन्द्रः सुरशत्रुरनिर्जितः ॥ ९ ॥ तस्माद्भयेनवैदेवास्त्रस्तास्सर्वेदिवौकसः ॥ तस्माद्भद्रे
महेशोवै जनयिष्यतिचेद्वरम् ॥ १० ॥ सुतंसभवितातस्य तारकस्यान्तकःकिल ॥ शङ्करस्याभवत्पत्नी सतीदक्षसुता

पादुका तथा बिलमें वास और रसायन ॥ २ ॥ इस सब वस्तुको प्रसन्न होतीहुई वे भगवतीजी देती हैं इस विषय में विचार न करना चाहिये मदिरा व मांस के उपहारों से तथा भक्ष्य व भोजनों से पूजीहुई ॥ ३ ॥ प्रसन्न देवी जी मनुष्योंको सदैव सब कामनाओं को देती हैं और महानवमी में जो पुरुष भैंसे के द्वारा देवी को पूजता है ॥ ४ ॥ व लाभ के अनुकूल मेष (भेंड़े) से याने भेंड़े के बलिप्रदान से जो उन देवी जी को पूजता है वह समस्त मनोरथों को प्राप्त होता है व्यासजी बोले कि एकानंशा ऐसी प्रसिद्ध देवी कैसे उत्पन्नहुई हैं ॥ ५ ॥ समस्त पातकों के विनाशक उस वृत्तान्त को मैं सुनाचाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय सतयुगके आदिमें लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजीने पहले उपजी हुई अपनी देहरूपिणी रात्रि को स्मरण किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी से स्मरण कीहुई रात्रि ब्रह्माजी के समीप प्राप्त हुई ॥ ६।७ ॥ उस रात्रिको एकान्त में देखकर ब्रह्मा जी बोले कि हे महाशरीरे, विभावरि ! व्यवधान (अंतर्द्धान) प्राप्तहोने पर ॥ ८ ॥ हे देवि ! जो तुमको करना चाहिये उस प्रयोजनके निश्चय को सुनिये कि दैत्येन्द्र तारकनामक देवताओं का शत्रु नहीं जीतागयाहै ॥ ९ ॥ इसकारण स्वर्ग में रहनेवाले सब देवता भय से डरेहुये हैं इसलिये हे भद्रे ! यदि सदाशिवजी उत्तम पुत्र को पैदाकरैंगे तो वह प्रसिद्ध में उस तारक का मारक होगा दक्षजीकी कन्या सती जी जो

शंकरजी की स्त्री हुई हैं ॥ १० । ११ ॥ हे भद्रे ! वे किसी कारण के मध्य मे पिता से क्रोधित हुई थीं और लोकों को पवित्र करनेवाली वे ही हिमाचल की कन्या होवेंगी ॥ १२ ॥ व उनके वियोग से सदाशिवजीने त्रिलोक को शून्य मानकर सिद्धों से सेवित हिमाचल की कन्दरा में तप किया है ॥ १३ ॥ और उसका जन्म परखते हुये वे शिवजी वहा कुछ समय तक बसैंगे भलीभांति तपस्या किये हुये उन शिवजी से जो महाप्रभु होवेंगे ॥ १४ ॥ वे तारक दैत्य के निवारक याने मना करनेवाले होवैंगे पैदा होते ही अल्पसञ्ज्ञावाली वे सुन्दरी देवीजी ॥ १५ ॥ वियोग से उत्कंठित होकर शिवजी के संयोग की लालसावाली होवेंगी और भलीभाति

तुया ॥ ११ ॥ सापितुःकुपिताभद्रे कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ भवित्रीहिमशैलस्य दुहितालोकपावनी ॥ १२ ॥ विरहेण हरस्तस्या मत्वाशून्यंजगत्त्रयम् ॥ अतपद्धिमशैलस्य कन्दरेसिद्धसेविते ॥ १३ ॥ प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालंवसिष्यति ॥ तस्मात्सुतप्ततपसो भवितायोमहाप्रभुः ॥ १४ ॥ सभविष्यतिदैत्यस्य तारकस्यनिवारकः ॥ जातमात्रातुसादेवी स्वल्पसंज्ञैवभामिनी ॥ १५ ॥ विरहोत्कण्ठिताबाढं हरसङ्गमलालसा ॥ तयोस्सुतप्ततपसोस्संयोगःस्यात्सुगुप्तयोः ॥ १६ ॥ पार्वतीहरयोस्तस्मात्सुराणांशक्तिकारिणम् ॥ विघ्नंत्वयाविधातव्यं यथाताभ्यांतथाशृणु ॥ १७ ॥ गर्भस्थितेथतान्देवीं स्वेनरूपेणरञ्जय ॥ ततोरहसिशर्वस्तांविभिन्नानन्दपूर्वकम् ॥ १८ ॥ भर्त्सयिष्यतिकालीति ततस्साकुपितासती ॥ प्रयास्यतितपःकर्तुं ततस्सातपसायुता ॥ १९ ॥ जनयिष्यतियंशर्वादिन्दुवज्ज्योतिमण्डलम् ॥ सभविष्यतिहन्तावै सुरारीणान्नसंशयम् ॥ २० ॥ त्वयापिदानवादेवि हन्तव्यालोकदुर्जयाः ॥ यावच्चनसतीदेहे सं

तपस्या किये व गुप्त पार्वती महादेवजी का संयोग होवेगा इस लिये उन दोनों के लिये तुमको जिस प्रकार देवताओं के शक्तिकारक विघ्न को करना चाहिये वैसेही सुनिये ॥ १६ । १७ ॥ कि गर्भ के स्थित होनेपर इसके अनन्तर तुम उन देवीजी को अपने रूपसे रंग देवो उसी कारण एकान्त में सदाशिवजी उनको बिन आनन्दपूर्वक ॥ १८ ॥ काली है इस कारण से निन्दा करैंगे तदनन्तर क्रोधित होती हुई वे तपस्या करने के लिये जावैंगी उसके उपरान्त तपस्यासे संयुत वे पार्वतीजी ॥ १९ ॥ शिवजी के सकाश से चन्द्रमा की नाईं जिस प्रकाशमंडलवाले पुत्र को पैदा करैंगी वह निरसंदेह देववैरियों का नाशक होगा ॥ २० ॥ व हे देवि !

तुमको भी मनुष्यों से दुर्जय दानवों को मारना चाहिये और जबतक सती जी के शरीर में घिरे हुये गुणगणोंवाला पुत्र उन शिवजी के संगम से न होगा तबतक दैत्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसा करने पर कालीजी तप करेंगी ॥ २१ । २२ ॥ और समाप्तनियमोंवाली वे कालीजी जब गौरी होवेंगी तब पार्वतीजी तुमको अपने रूपत्वको देवेंगी ॥ २३ ॥ उसी कारण तुम्हारी भी सहोदरी वे एक अंशरहित होवेंगी और रूप व अंश से रहित तुम पार्वती होवोगी ॥ २४ ॥ हे वरदायिनि ! बहुत भांति के आकारवाले भेदोंसे सर्वव्यापिनी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजैंगे ॥ २५ ॥ ॐकार मुखवाली ब्रह्म-

तत्सङ्गमेनतावत्तु दैत्यवंशोभविष्यति ॥ एवंकृतेत्वयादेवि तपःकालीकरिष्यति ॥ २२ ॥ स क्रान्तगुणसंचयः ॥ २१ ॥ ततस्तवापिसहजा सैकानंशाभविष्यति ॥ रूपांशेनचसंयुक्ता त्वमुमासंभविष्यसि ॥२४॥ एकानंशेतिलोकस्त्वां वरदेपूजयिष्यति ॥ भेदैर्बहुविधाकारैस्सर्वगांकामसाधनीम् ॥२५॥ ॐकारवक्त्रागायत्रीत्वमेवब्रह्मचारिणी ॥ आक्रान्तरुचिराकारा राज्ञांचाहवशालिना म् ॥ २६ ॥ विशान्त्वंकमलादेवि शूद्राणांजननीस्वयम् ॥ ज्ञानिनांज्ञेयरूपात्वं त्वङ्गतिस्सर्वदेहिनाम् ॥ २७ ॥ त्वञ्च कीर्तिमतांकीर्तिस्त्वंभूतिस्सर्वदेहिनाम् ॥ रतिदारक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वंस्नेहवर्तिनाम् ॥ २८॥ त्वंशोभाकृतभूषाणांत्वं शान्तिःशान्तिकर्मणाम् ॥ त्वंभ्रान्तिस्त्वल्पबोधानां त्वंकीर्तिःक्रमयाजिनाम्॥२९॥ महावेलासमुद्राणां विलासस्त्वंवि

मातानियमासाच यदागौरीभविष्यति ॥ तदातुचैवसारूप्यंशैलजासम्प्रदास्यति ॥ २३ ॥

चारिणी गायत्री तुम्हींहो और युद्ध से शोभित राजाओं के घिरेहुये सुन्दर आकारवाली तुम्हीं हो ॥ २६ ॥ व हे देवि ! वैश्योंकी तुम लक्ष्मीहो और शूद्रोंकी आपही माताहो व ज्ञानियों के जानने योग्य रूपवाली तुम्हीहो और सब शरीरधारियों की तुम गतिहो ॥ २७ ॥ और यशवाले जनोंकी तुम कीर्तिहो व समस्त शरीरधारियो की तुम लक्ष्मीहो और अनुरागी चित्तवालों की प्रीतिदायिनी तुम्हींहो और स्नेहसे वर्तमान होनेवाले मनुष्योंकी प्रीति तुम्हींहो ॥ २८ ॥ और कियेहुये भूषणवाले जनो की तुम शोभाहो व शान्तिकर्मवाले जनोंकी तुम शान्तिहो और थोड़े ज्ञानवाले जनोंकी तुम भ्रांतिहो व क्रमपूर्वक यज्ञ करनेवालोंकी तुम कीर्तिहो ॥ २९ ॥ व

समुद्रोंकी तुम महावेलाहो और विलासी जनोंका तुम विलासहो व पदार्थोंकी तुम उत्पत्तिहो और लोकों से शोभित जनोंकी तुम स्थितिहो ॥ ३० ॥ हे वरदायिनि, देवि ! इस भांति अनेक प्रकार के रूपोंसे तुम लोकों में पूजितहो और जो तुमको देखते हैं व जो पूजन करैंगे ॥ ३१ ॥ वे निश्चयकर सब मनोरथो को पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार ब्रह्मा से भलीभाति स्तुति कीहुई वे देवीजी उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ और वे एकानंशा महादेवी भी भक्ति से ध्यान करने योग्य हैं ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकानंशामाहात्म्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लासिनाम् ॥ सम्भूतिस्त्वंपदार्थानां स्थितिस्त्वंलोकशालिनाम् ॥ ३० ॥ इत्यनेकविधैर्देवि रूपैर्लोकेषुचार्चिता ॥ येत्वां पश्यन्तिवरदे पूजयिष्यन्तिवापिये ॥ ३१ ॥ तेसर्वकामानाप्स्यन्ति नियतन्नात्रसंशयः ॥ इत्येवंसासमुत्पन्ना ब्रह्मणासं स्तुतासती ॥ ३२ ॥ एकानंशामहादेवी ध्यातव्यासापिभक्तितः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेएकानंशा माहात्म्यन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि हरसिद्धिंसुसिद्धिदाम् ॥ पार्वत्याहरणेयत्र सिद्धिःप्राप्ताहरेणच॥ १ ॥ बलिनौदानवौजातौ नाम्नाचण्डप्रचण्डकौ ॥ उत्साद्यत्रिदिवंसर्वं गिरिंकैलासमागतौ ॥ २ ॥ दृष्ट्वातत्रगिरीशन्तु उद्यताचैकहस्तकम् ॥ पिनाकंवरखट्वाङ्गं गृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ ३ ॥ देविदेवीतिजल्पन्तं दासस्तेस्मीतिवादिनम् ॥ यावदेकन्तुफलकं तावद्द्यूतंप्रवर्तताम् ॥४॥ ऋणीभूतेतदादेवेतौप्राप्तौदेवकण्टकौ ॥ उत्सादिताःशिवगणानन्दिनाप्रति

दो० । अहैं सुभग माहात्म्य युत देवी जिमि हरसिद्धि । सोइ बीस अध्यायमें वर्णित चरित प्रसिद्धि ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इसके उपरान्त उत्तम सिद्धिदायिनी हरसिद्धि देवीजी को कहूंगा जहा पर कि सदाशिव देवजी ने पार्वती के हरने में सिद्धि को पाया है ॥ १ ॥ चण्ड, प्रचण्ड नामक बली दानव हुये हैं वे सब स्वर्गको उजाड़ कर कैलास पर्वत पर आये ॥ २ ॥ वहां पर दाहिने हाथ में पिनाक धनुष व उत्तम खट्वांग को लेकर एक हाथमें उठाये हुये पांसा को लिये सदाशिवजी को देखकर ॥ ३ ॥ जो शिव कि हे देवि ! हे देवि ! ऐसा कहते हुये और जब तक एक पांसा है तबतक द्यूत (जुवा) वर्तमान होवै मै तुम्हारा दासहूं ऐसा कहते थे ॥ ४ ॥

उस समय सदाशिव देवजी के ऋणी होने पर देवताओं के कण्टकरूप वे दैत्य प्राप्त हुये और उन्होंने शिवगणों को क्षोभित किया और नन्दी ने उनको मना किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस समय उन्हों ने शूलों से नन्दीको विदीर्ण किया और दाहिने व बायें अंगसे साथही बहुत रक्त बहचला ॥ ६ ॥ उस समय सत्क्रियके पुत्र नन्दी जीको ताडित देखकर शिवजी से ध्यान की हुई वे देवी प्रणामकर आगे स्थित हुई ॥ ७ ॥ और वे बड़े भारी दैत्य मारे जावें शिवजी के ऐसा कहने पर वे देवी वचन बोलीं कि मैं मारती हूं जब उन देवीजी से पराक्रम से गर्वित वे दैत्य मारे हुये देखे गये ॥ ८ ॥ तब शिवजी ने उससे कहा कि हे चण्डि ! तुमने दुष्ट

षेधितौ ॥ ५ ॥ ततस्ताभ्यांतदानन्दी शूलाभ्यांप्रविदारितः ॥ समंसव्यदक्षिणाभ्यां सुस्रावरुधिरंबहु ॥ ६ ॥ नन्दिनंताडितंदृष्ट्वा तदासत्क्रियनन्दनम् ॥ ध्याताहरेणसादेवी प्रणताप्राक्ततःस्थिता ॥ ७ ॥ वध्यतान्तौमहादैत्यौ वधामीति वचोब्रवीत ॥ यदातयाहतौदृष्टौ दानवौबलगर्वितौ ॥ ८ ॥ हरस्तामाहहेचण्डि संहृतौदुष्टदानवौ ॥ हरसिद्धिरतोलोके नाम्नाख्यातिंगमिष्यसि ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतिसादेवीहरसिद्धिप्रदायिनी ॥ हरसिद्धिरितिख्याता महाकालेबभूवह ॥ १० ॥ यःपश्येत्परयाभक्त्या हरसिद्धिन्नरोत्तमः ॥ सोक्षयाल्लँभतेकामान् मृतःशिवपुरंव्रजेत ॥ ११ ॥ आदिसिद्धिंमहादेवीं नित्यंव्योमस्वरूपिणीम् ॥ हरसिद्धिंप्रपश्येद्यस्सोभीष्टंलभतेफलम् ॥ १२ ॥ यःस्मरेद्धरसिद्धीति मन्त्रञ्चचतुरक्षरम् ॥ ॥ नवैरिणोभयंतस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ १३ ॥ नरोमहानवम्यांयोहरसिद्धिंप्रपूजयेत ॥ महिषञ्चबलिंदद्यात्सभ

दानवों का संहार किया इसलिये नाम से हरसिद्धि तुम प्रसिद्धिको प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ तब से लगाकर हरसिद्धि को देनेवाली वे देवी महाकालवन में हरसिद्धि ऐसी प्रसिद्ध हुई हैं ॥ १० ॥ जो उत्तम मनुष्य हरसिद्धि देवीजी को परम भक्ति से देखता है वह अक्षय मनोरथों को प्राप्त होताहै और मर कर शिवपुर को जाता है ॥ ११ ॥ आदिसिद्धि व आकाशरूपिणी हरसिद्धि महादेवीजी को जो मनुष्य नित्य देखता है वह प्रिय मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ व जो मनुष्य हरसिद्धि ऐसे चार अक्षरोंवाले मंत्र को स्मरण करता है उसके शत्रु का भय नहीं होता है न दरिद्रता होती है ॥ १३ ॥ व महानवमी को जो मनुष्य हरसिद्धि को पूजता है और

भैंसे को बलि देता है वह पृथ्वी में राजा होता है ॥ १४ ॥ हे व्यास जी ! नवमी में पूजी हुई हरप्रिया हरसिद्धि देवीजी प्रसन्न होकर मनुष्यों को सदैव सम्पूर्ण फलको देती हैं ॥ १५ ॥ वे पुण्यरूपिणी हैं और वे पवित्र हैं तथा वे समस्त सुखों को देनेवाली हैं व स्मरण पूजन तथा दर्शन कीहुई वे देवी धन, पुत्र व सुखों को देनेवाली हैं ॥१६॥ हे व्यासजी ! महानवमी में जो महिषादिक मारे जाते हैं वे सब स्वर्ग की गति को प्राप्त होते हैं और मारनेवालों को पातक नहीं होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांहरसिद्धिमाहात्म्यंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

वेद्भूपतिर्भुवि ॥ १४ ॥ नवम्यांपूजितादेवी हरसिद्धिर्हरप्रिया ॥ तुष्टान्टणांसदाव्यास ददात्यनवमंफलम् ॥ १५ ॥ सापुण्यासापवित्राच सासर्वसुखदायिनी ॥ स्मृतासम्पूजितादृष्टा धनपुत्रसुखप्रदा ॥ १६ ॥ महानवम्यांयेव्यास हन्यन्ते महिषादयः ॥ सर्वेतेस्वर्गतिंयान्ति व्रतांपापन्नविद्यते ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे हरसिद्धिमाहात्म्यन्नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ मासमेकन्नरोभक्त्या पश्येद्योवटयक्षिणीम् ॥ पूजयेत्स्वर्णपुष्पैश्च तस्यसिद्धिर्महीयते ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेवटयक्षिणीमाहात्म्यन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ पिशाचकेनरःस्नात्वा चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ तिलान्ददातियोभक्त्या नपिशाचःप्रजायते ॥१॥

दो॰ । वटयक्षिणि इमि भगवती कर माहात्म्य रसाल । इकीसवें अध्याय में सोइ चरित्र विशाल ॥ सनत्कुमार जी बोले कि जो मनुष्य भक्ति से एक महीने तक वटयक्षिणी भगवतीको देखताहै व धतूर के पुष्पों से पूजता है उसकी सिद्धि नहीं न्यून होती है ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवटयक्षिणीमाहात्म्यंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ॥

दो॰ । अहै चतुर्दश यात्रा कर जिमि परम प्रभाव । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखपाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चौदसि तिथि मे पिशाचक तीर्थ में विशेष

कर नहाकर जो मनुष्य भक्तिसे तिलों को देताहै वह पिशाच नहीं होता है ॥ १ ॥ और जिससे उद्देश कर जो दियाजाता है वह बहुतही अक्षय होताहै और उसका वंश पिशाचता से छूटजाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ जिसके नाम से मनुष्य नहाता है वह पिशाचता से छूट जाता है और जो यहां दही समेत कुंभों व कमंडलुवो को देता है ॥ ३ ॥ उसकी निरंतरवाली मुक्ति होती है और उसके वंशमें प्रेत नहीं होता है व शिवभक्त जितेन्द्रिय नर शिप्रागुप्तेश्वरजी को देखकर ॥ ४ ॥ सब पापों से वैसेही छूट जाता है जैसे कि केचुलि से सर्प छूटजाता है और स्नान कर बड़ी भक्ति से जो मनुष्य अगस्त्येश्वर जी को देखता है ॥ ५ ॥ हे

येनचोद्दिश्ययद्दत्तं तदक्षयतरंभवेत् ॥ तत्कुलंहिपिशाचत्वान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ २ ॥ यस्यनाम्नानरःस्नाति पिशाचत्वात्समुच्यते ॥ कुम्भान्वाकरकान्वापि योत्रदद्यात्समण्डकान् ॥ ३ ॥ तस्यवंशाश्वतीमुक्तिः कुलेप्रेतोनजायते ॥ शिप्रागुप्तेश्वरंदृष्ट्वा रुद्रभक्तोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ॥ स्नात्वागस्त्येश्वरंपश्येद्योतिभक्त्याथमानवः ॥ ५ ॥ त्यक्त्वायमगृहंव्यासरुद्रलोकंसगच्छति ॥ शिप्रायांयोनरःस्नात्वा पश्येड्ढुण्ढेश्वरंशिवम् ॥ ६ ॥ सोश्वमेधफलंव्यास लभतेनात्रसंशयः॥ देवेनात्रपुराव्यास वादितोडमरुर्यतः ॥ ७ ॥ देवस्तेनसमाख्यातो नाम्नाडमरुकेश्वरः ॥ भक्त्यापश्येन्नरोयस्तु देवंडमरुकेश्वरम् ॥ ८ ॥ नैवव्याधिभयंतस्य मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ अनादिकल्पेशंयस्तु भक्त्यापश्यतिमानवः ॥ ९ ॥ राज्यंसलभतेस्वर्गं यथादेवःपुरन्दरः ॥ देवानामप्यसौव्या

व्यासजी ! वह यमराज के मन्दिर को छोड़कर शिवलोक को जाताहै व शिप्रा नदी में नहाकर जो मनुष्य ढुण्ढेश्वर शिवजी को देखताहै ॥ ६ ॥ हे व्यासजी ! वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जिस लिये सदाशिवदेवजी ने यहां डमरू को बजाया है ॥ ७ ॥ उसी से डमरुकेश्वर नामक शिवदेवजी कहे गये हैं जो मनुष्य भक्तिसे डमरुकेश्वर देवजी को देखता है ॥ ८ ॥ उसके रोगों का डर नहीं होता है और मरकर वह शिवलोक को जाता है मनुष्य भक्ति से अनादिकल्पेश जी को देखता है ॥ ९ ॥ वह स्वर्ग के राज्य को प्राप्त होताहै जैसे कि इन्द्र देवजी हैं और हे व्यासजी ! यह पुरुष देव-

ताओं के भी ईर्षा करने योग्य होता है ॥ १० ॥ और कुछ अधिक सौ कल्पों तक सुखों से युक्त होकर आनन्द करता है और जो सिद्धेश्वर वीरभद्र व चण्डिकाजी को देखता है ॥ ११ ॥ वह मनुष्य यहीं पर सिद्धि को प्राप्त होता है व सब कहीं जीत को प्राप्त होता है और त्रिविष्टपतीर्थ में नहाकर स्वर्णजालेश्वरजी को देखकर ॥ १२ ॥ धतूर से शिवदेवजी को पूजता है वह सब पापों से छूटजाता है और स्नान कर जो मनुष्य भक्ति से कर्कटेश्वर शिवजी को देखता है ॥ १३ ॥ उस को सर्प से डर नहीं होता है और न दरिद्रता होती है और जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे सनातनी माया को देखता है ॥ १४ ॥ विष्णुजी की माया से छूटकर वह परम

स स्पर्द्धनीयस्सदाभवेत् ॥ १० ॥ कल्पकोटिशतंसाग्रं भोगयुक्तस्तुमोदते ॥ पश्येत्सिद्धेश्वरंयस्तु वीरभद्रञ्चचण्डिकाम् ॥ ११ ॥ सोऽत्रैवलभतेसिद्धिं जयंसर्वत्रमानवः ॥ स्वर्णजालेश्वरंदृष्ट्वा स्नात्वातीर्थेत्रिविष्टपे ॥ १२ ॥ स्वर्णेनपूजयेद्देवं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ स्नात्वापश्येन्नरोभक्त्या यःशिवंकर्कटेश्वरम् ॥ १३ ॥ सर्पतोनभयंतस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ यःपश्येत्परयाभक्त्या महामायांसनातनीम् ॥ १४ ॥ विष्णुमायाविनिर्मुक्तस्सयातिपरमंपदम् ॥ अर्चयेत्परयाभक्त्या यःकपालेश्वरन्नरः ॥ १५ ॥ समुच्यतेमहापापैर्यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ स्वर्गद्वारेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वादेवञ्चभैरवम् ॥ १६ ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य शतयज्ञफलंलभेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे चतुर्दशयात्रानामद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रिदशपूजितम् ॥ हनुमत्केश्वरन्नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥

पद को प्राप्त होता है और जो मनुष्य उत्तम भक्ति से कपालेश्वर देवजी को देखता है ॥ १५ ॥ वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि महापातकों से छूट जाता है और स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य भैरवदेवजी को देखकर ॥ १६ ॥ उन देव के दर्शन से सौ यज्ञों के फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्दशयात्रानामद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । हनुमत्केश्वरलिंगको थाप्यो जिमि हनुमान । तेइसवें अध्यायमें सोई कीन बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इस के अनन्तर देवताओं से पूजित व भुक्ति

मुक्ति को देनेवाले अन्य हनुमत्केश्वर नामक देवजी को कहूंगा ॥ १ ॥ जो मनुष्य शिवजी के तड़ाग में नहाकर हनुमत्केश्वरजी को देखता है वह करोड़ों हज़ार वर्षों तक पवनलोक में प्रसन्न रहता है ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातन समय तुम ने जिन हनुमत्केश्वरजी को कहा है इनकी पुरातन समय वर्तमान होनेवाली सनातनी कथा को कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्रिलोक का कण्टकरूप रावण नामक राक्षस श्रीरामचन्द्ररूपी विष्णुजी से लंकापुरी में मारा गया है ॥ ४ ॥ उस दुष्ट को मारकर श्रीरामजी श्रीजानकीजी को लेकर ऋक्षों व वानरों समेत अपनी पुरी को आये हैं ॥ ५ ॥ वहां राज्य को

शैवेसरसियःस्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ॥ कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोकेसमोदते ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ हनुमत्केश्वरोयस्तु ह्युक्तःपूर्वस्त्वयानघ ॥ कथांकथयह्येतस्य व्रतपूर्वांसनातनीम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ त्रैलोक्यकण्टकःपूर्वो रावणोनामराक्षसः ॥ विष्णुनारामरूपेण लङ्कायांविनिपातितः ॥ ४ ॥ घातयित्वातुतन्दुष्टं सीतामादायजानकीम् ॥ वानरैस्सहऋक्षैश्च नगरींस्वामुपागतः ॥ ५ ॥ तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिःपरिवारितः ॥ कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६ ॥ पृष्टोधिकोद्वयोर्वापि शम्भुवातजयोस्तुकः ॥ तदादाशरथिंप्राह अगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौर्येमहेश्वरः ॥ ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ८ ॥ एवंश्रुत्वाथहनुमान्यच्छिवेनोपमामम ॥ कृतामुनिवरेणेह प्रत्यक्षंराघवस्यहि ॥ ९ ॥ गमिष्येनगरींलङ्कां लिङ्गमेकंप्रयाचितुम् ॥ राक्षसेन्द्रं

प्राप्त होकर उन श्रीरामचन्द्रजी को ऋषियों ने घेर लिया और कथाओं के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी से ॥ ६ ॥ पूंछा कि शिव व पवनसुत हनूमान्‌जी इन दोनों के मध्य में कौन अधिक है उस समय मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥ ७ ॥ कि जैसे युद्ध व शूरता में महादेवजी उपमारहित हैं वैसेही पवनपुत्र हनुमान् जी जानने योग्य हैं मैं तुम से यह सत्य कहता हूं ॥ ८ ॥ इस प्रकार सुनकर इसके उपरान्त हनुमान् जी बोले कि जिस लिये यहां मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने श्रीरामचन्द्रजी के सामने मेरी उपमा शिवजीसे किया ॥ ९ ॥ इस लिये महाभाग्यवान् व पापरहित तथा राक्षसोंके राजा

विभीषण जी से एक लिंग को मांगने के लिये मैं लंकापुरी को जाऊंगा ॥ १० ॥ तदनन्तर लंका को गये हुये वे हनुमान्जी विभीषण से बोले कि हे महाभाग ! मुझको तुम एक उत्तम लिंग को देओ ॥ ११ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषण ने कहा कि रुचि के अनुसार इस को ग्रहण कीजिये ये छह लिंग रावण के थापे हुये हैं ॥ १२ ॥ मेरे भाई महात्मा रावण ने त्रिलोक को जीतने के पहले इनको थापा है हे सुव्रत ! इन में तुमको जो प्रिय हो उस लिंग को कहिये ॥ १३ ॥ हे वानर ! उस को मैं तुमको आजही दूंगा यह सत्य है तदनन्तर हनुमान्जीने मोती के समान लिंगको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ व कहा कि हे अनघ,वीर ! जो यह लिंग देख पडता

महाभागं विभीषणमकल्मषम् ॥ १० ॥ ततोगतस्सलङ्कायां विभीषणमुवाचह ॥ देहिमेत्वंमहाभाग लिङ्गमेकञ्चशोभनम् ॥ ११ ॥ उक्तश्चराक्षसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथारुचि ॥ एतानिषड्वैलिङ्गानि रावणस्थापितानिवै ॥ १२ ॥ त्रैलोक्यविजयात्पूर्वं ममभ्रात्रामहात्मना ॥ एतेषुयदभीष्टन्ते लिङ्गंकथयसुव्रत ॥ १३ ॥ तत्प्रयच्छामितेद्यैव सत्यमेतत्प्लवङ्गम ॥ ततोजग्राहहनुमाल्लिँङ्गंमौक्तिकसन्निभम् ॥ १४ ॥ यदेतद्दृश्यतेवीर तत्प्रयच्छममानघ ॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यमथोवाचविभीषणः ॥ १५ ॥ दत्तमेतन्महावीर लिङ्गंयत्कृतवानसि ॥ श्रूयतेहिपुरावृत्तं लिङ्गमेतद्धनेश्वरः ॥ १६ ॥ रुद्रभक्त्यासमायुक्तस्त्रिकालमप्यपूजयत् ॥ रावणेनयदाबद्धस्तदानींहिधनेश्वरः ॥ १७ ॥ लिङ्गस्यास्यप्रभावेण विमुक्तस्समपद्यत ॥ प्रसादात्तस्यलिङ्गस्य धनेशोधनरक्षकः ॥१८॥ गृहीत्वातन्महालिङ्गं स्वस्थोजातोथवानरः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ गृहीत्वातुततोलिङ्गं प्रस्थितोविमलेम्बरे ॥ १९ ॥ सप्तमेदिवसेचैव सम्प्राप्तोवन्तिकांपुरीम् ॥ संस्थाप्यरुद्रसरस

है उसको मुझे दीजिये हनुमान् जी का वचन सुनकर इसके अनन्तर विभीषणजी बोले ॥ १५ ॥ कि हे महावीर ! जिस लिंग को तुमने मागा है यह दिया गया पुरातन का वृत्तांत सुना जाता है कि शिवजी की भक्ति से संयुक्त धनेश कुबेरजी ने इस लिंग को त्रिकाल में भी पूजा है जब रावण ने कुबेर को बांधा है ॥१६।१७॥ तब इस लिंगके प्रभाव से छूटे हुये प्राप्त होगये और उस लिगके प्रभावसे धनेश कुबेरजी धनके रक्षक हुये हैं ॥ १८ ॥ इस के अनन्तर उस महालिंग को लेकर वानर हनुमान्जी स्वस्थ हुये सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर उस लिग को लेकर हनुमान्जी निर्मल आकाश में चले ॥ १९ ॥ और सातवें दिन अवन्तीपुरी

में प्राप्त हुये और रुद्रतडाग के किनारे उसको भलीभांति धरकर उन्हों ने स्नान किया ॥ २० ॥ और महाकालजी के पूजन के लिये गमन को चिन्तन किया और उस लिंग को उठाने की इच्छावाले वे उठाने के लिये न समर्थ हुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर विशेषता से टिके हुये शिवदेवजी उन पवनपुत्र हनुमान्जी से बोले कि हे हनुमान्जी ! इस क्षेत्र मे तुम अपने नाम से थापकर पूजन करो ॥ २२ ॥ और संसार में यह हनुमत्केश्वर लिंग प्रसिद्ध होगा पवनपुत्र हनुमान्जी ने पर्वत की नाईं ऊंचे लिंग को स्थापित किया ॥ २३ ॥ जो मनुष्य शनिवार को हनुमत्केश्वर शिवजी को देखता है उसके शत्रुका भय नहीं होता है और समर में वह जीतको

स्तीरेस्नानमथाकरोत् ॥२०॥ महाकालस्यपूजार्थंगमनंप्रत्यचिन्तयत् ॥ उद्धर्तुकामस्तल्लिङ्गमुद्धर्तुन्नशशाकसः॥२१॥ ततोऽव्यवस्थितोदेवः प्राहतंवायुनन्दनम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेहनूमंस्त्वं स्वनाम्नास्थाप्यपूजय ॥ २२ ॥ हनुमत्केश्वरञ्चाथ लोकेख्यातंभविष्यति ॥ शैलवच्चोन्नतंलिङ्गं स्थापितंवायुसूनुना ॥२३॥ शनौपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वरंशिवम् ॥ तस्यशत्रुभयन्नास्ति संग्रामेजयमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ नचचौरभयंतस्य नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ तैलाभिषेकंयःकुर्याद्धनुमत्केश्वरंशिवम् ॥ २५ ॥ तस्यरोगाःप्रलीयन्ते ग्रहपीडानजायते ॥ येपश्यन्तिनराभक्त्या तेषांमोक्षोभविष्यति ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेहनुमत्केश्वरमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यमेश्वरन्तुयःपश्येत्स्नापयित्वातिलाम्भसा ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्य पूजयेदुत्पलैस्ततः॥१॥

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ और उसके चोरों का भय नहीं होता है व न दरिद्रता होती है और न दुर्गति होती है जो मनुष्य हनुमत्केश्वर शिवजी के तैल का अभिषेक करता है ॥ २५ ॥ उसके रोग नाश होजाते हैं व ग्रहों की पीडा नहीं होती है व जो मनुष्य भक्ति से देखते हैं उनका मोक्ष होगा ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णननामत्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहै यथा माहात्म्य युत सुभग यमेश्वर देव । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदेव । सनत्कुमारजी बोले कि तिल मिले हुये जलसे स्नान कराकर जो

मनुष्य यमेश्वरजी को देखता है और कुंकुम से भलीभांति लेपन कर तदनन्तर कमलोंसे पूजन करता है ॥ १ ॥ व कालागुरु को जलाता है और तिलों व चावलों को देता है व जो मनुष्य त्रिशूल हाथवाले सदाशिव देवजीको इस प्रकार पूजताहै ॥ २ ॥ जहां कहीं मरे हुये भी उस पुरुष के यमराज पिता के समान होते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। अति उत्तम माहात्म्य युत तीर्थ रुद्रसर नाम। पचीसवें अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! मैं तीर्थों में उत्तम श्रेष्ठ

दहेत्कृष्णागुरुंधूपं दापयेत्तिलतण्डुलान् ॥ यएवमर्चयेद्देवमीश्वरंशूलहस्तकम् ॥ २ ॥ यत्रकुत्रमृतस्यापि यमःपितृसमोभवेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे यमेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कथयामिपरंव्यास तीर्थंतीर्थेषुचोत्तमम् ॥ नाम्नारुद्रसरःप्रोक्तं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पश्येत्कोटिवरंशिवम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ श्राद्धंतत्रैवकृत्वातु शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्यच ॥ ३ ॥ फलंकोटिगुणंव्यास लभतेनात्रसंशयः ॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते ॥ ४ ॥ तत्सर्वंकोटिगुणितं जायतेनात्रसंशयः ॥ कोटितीर्थेनरस्स्नात्वा ध्यायेद्यःपरमाक्षरम् ॥ ५ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो निर्मोकेनयथोरगः ॥ प्रातरुत्थाययोविप्र तत्रस्नानंकरोतिवै ॥ ६ ॥ दृष्ट्वादेवं

तीर्थ को कहता हूं जो कि नाम से रुद्रसर ऐसा कहा हुआ तीनों लोकों में प्रसिद्धहै ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य कोटियर शिवजी को देखता है वह सब पापों से छूटता है और शिवलोक को जाता है ॥ २ ॥ और वहीं श्राद्धकर जिस फल को प्राप्त होता है उसको सुनिये कि हे व्यासजी ! वह दश अश्वमेधों के व सौ वाजपेय यज्ञों के कोटिगुने फल को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है पितरोंको उद्देशकर जो कुछ कोटितीर्थ में दियाजाताहै ॥ ३।४॥ वह सब कोटिगुना है इस में सन्देह नहीं है कोटितीर्थ में नहाकर जो मनुष्य परमाक्षर को ध्यान करता है ॥ ५ ॥ वह सब पापों से छूटजाता है जैसे कि केंचुलिसे साँप

छूटजाता है हे विप्र जी ! प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य उसमें स्नान करता है ॥ ६ ॥ वह महाकाल शिव देवजी को देखकर हज़ार गोदान के फल को प्राप्त होता है और कोटितीर्थ में नहाकर सात रात्रियों तक उपास किये पवित्र ॥ ७ ॥ पुरुष हज़ार चान्द्रायण व्रत के फलको प्राप्त होता है और जो पुरुष वहां जागरण करता है वह अनन्त फल को भोगता है ॥ ८ ॥ और उपवास समेत जितेन्द्रिय जो पुरुष महा स्नानपूर्वक चन्दन व पुष्पों से पूजन कर इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करता है ॥ ९ ॥ वह समस्त मनोरथ को प्राप्त होता है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है वहां कार्त्तिकी व वैशाखी में शिवदेवजी को समय में उपजे हुये गंध पुष्पों से व

महाकालं गोसहस्रफलंलभेत् ॥ कोटितीर्थेनरःस्नात्वा सप्तरात्रोषितश्शुचिः ॥ ७ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलंप्राप्नोति मानवः ॥ जागरंतत्रकुर्याद्यो ह्यनन्तंफलमश्नुते ॥ ८ ॥ गन्धपुष्पार्चनंकृत्वा महास्नपनपूर्वकम् ॥ यएवंनयतेरात्रिं सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ ९ ॥ लभतेसर्वकामित्वं यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ कार्त्तिक्यामथवैशाख्यां देवंतत्रप्रपूजयेत् ॥१०॥ गन्धपुष्पैश्चकालीनैस्तथावस्त्रैस्सुशोभनैः ॥ कर्पूरंकुसुमंचैव श्रीखण्डमगुरुंतथा ॥ ११ ॥ समभागानिकृत्वातु शिलापृष्ठेचपेषयेत् ॥ अनुलिप्यमहाकालं रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे रुद्रसरमाहात्म्यन्नामपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथयात्रांप्रवक्ष्यामि महाकालस्ययत्नतः ॥ शिवश्रेयस्करींपुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥१॥ स्नात्वासरसिरुद्रस्य दृष्ट्वाकोटीश्वरंशिवम् ॥ नमस्कृत्यततोगच्छेन्महाकालंसनातनम् ॥ २ ॥ गन्धैःपुष्पैर्नमस्कारै

सुन्दर बसनों से पूजन करै और कपूर, कुसुम, चन्दन व अगुरु ॥ १० । ११ ॥ इनको बराबर भागवाले कर पत्थरके पृष्ठ पै पीसै और महाकाल जी के अनुलेपन कर शिवजी का दास होवै ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्रसरमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

दो० । महाकाल शिवदेवकी यात्रा कर सुविधान । छब्बिसवें अध्याय में कीन्हों चरित बखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इस के अनन्तर यत्न से महाकालजी की यात्रा को कहता हूं जो कि कल्याण व पुण्यकारिणी तथा पवित्र व पवित्रलोकों को देनेवाली है ॥ १ ॥ रुद्रसर में नहाकर व कोटीश्वर शिवजी को देखकर

व प्रणाम कर तदनन्तर सनातन महाकालजी के समीप जावै ॥ २ ॥ और चन्दन व पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदशेश्वर जी को भलीभांति पूजकर व प्रणामकर
तदनन्तर कपालमोचन देवजी के समीप जावै ॥ ३ ॥ वहां पर देवदेवेश शिवजीने पृथ्वी में कपाल को धरा है कपाल धरने पर उसी क्षण समस्त पातकों का नाशक
कपालमोचन नामक उत्तम लिंग हुआहै और वहांपर सौ पल घी से स्नान करावै ॥ ४।५ ॥ या वित्तशाठ्यसे रहित पुरुष उसके आधेसे आधे भागकरके व चौथाई भाग
से स्नानकरावै तो हे द्विजेन्द्र ! वह पुरुष पूर्ण समयमें शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रणामकर उत्तम कपिलेश्वरको जावै उन देवजी के दर्शनसे ब्रह्मघाती

स्सम्पूज्यत्रिदशेश्वरम् ॥ प्रणिपत्यततोगच्छेद्देवंकपालमोचनम् ॥ ३ ॥ तत्रवैदेवदेवेशः कपालंन्यस्तवान्क्षितौ ॥ क
पालेतत्क्षणान्न्यस्ते तत्राभूल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥ कपालमोचनन्नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्रवैस्नपनंकुर्यादाज्यंपल
शतन्तुवै ॥ ५ ॥ तदर्धार्धेनपादेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ कालेपूर्णेसविप्रेन्द्र शिवलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ नमस्कृत्यत
तोगच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य मुच्यतेब्रह्मघातकः ॥ ७ ॥ हनुमत्केश्वरन्देवं ततोगच्छेत्समाहि
तः ॥ ऐश्वर्यमतुलंव्यास दर्शनादस्यजायते ॥ ८ ॥ ततोगच्छेन्महादेवं पिप्पलादंसनातनम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मु
क्तिःस्याद्द्विजसत्तम ॥ ९ ॥ स्वप्नेश्वरंततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ दर्शनादस्यदेवस्य दुःस्वप्नञ्चविनश्यति ॥ १० ॥
ततोगच्छेन्महादेवमीशानंविश्वतोमुखम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण विश्वस्यैवपतिर्भवेत् ॥ ११ ॥ सोमेश्वरन्ततोगच्छेज्जि
तक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ कुष्ठरोगादिदोषेभ्यो दर्शनादस्यमुच्यते ॥ १२ ॥ वैश्वानरेश्वरंव्यास ततोगच्छेत्समाहितः ॥

मुक्त होजाता है ॥ ७ ॥ तदनन्तर सावधान चित्तवाला पुरुष हनुमत्केश्वरको जावै हे व्यास जी ! इन के दर्शन से अतुल ऐश्वर्य होता है ॥ ८ ॥ तदनन्तर हे द्विजो-
त्तम ! सनातन पिप्पलाद महादेव जी के समीप जावै जिनके दर्शनही से मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धा से संयुत पुरुष स्वप्नेश्वर को जावै इस
देवता के दर्शन से दुःस्वप्न नष्ट होजाता है ॥ १० ॥ तदनन्तर विश्वतोमुख ईशान महादेव जी को जावै कि जिनके दर्शन ही से संसार भर का स्वामी होता है ॥ ११ ॥
तदनन्तर क्रोध को जीते हुये जितेन्द्रिय पुरुष सोमेश्वर जी के समीप जावै इनके दर्शन से मनुष्य कुष्ठ रोगादिकों के दोषों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ तदनन्तर

हे व्यासजी ! सावधान होता हुआ पुरुष वैश्वानरेश जीके समीप जावै उनके दर्शन से उस मनुष्य की सदैव बढ़ती होती है ॥ १३ ॥ तदनन्तर बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) हाथ वाले लकुलीश्वर जी के समीप जावै उनके दर्शन से रुद्रत्व होता है इस में संदेह नहीं है ॥ १४ ॥ तदनन्तर उत्तम गणपेश्वरजी के समीप जावै जिन के दर्शनही से समस्त सिद्धियां होती हैं ॥ १५ ॥ सिद्धियों के कारण याचना कियेहुये सदैव देवताओं से पूजित हुये हैं उस कारण ये अभ्यर्थित पूरक विघ्ननायक प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वयोवृद्ध सनातन महाकालजी के समीप जावै उनके दर्शन से न रोग होता है न वृद्धता होती है और न व्याधि होती है इसमें सन्देह

तस्यवृद्धिस्सदालोके जायतेतस्यदर्शनात् ॥ १३ ॥ बीजपूरकहस्तन्तु लकुलीशंततोव्रजेत् ॥ रुद्रत्वंदर्शनात्तस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ १४ ॥ ततोगच्छेन्महादेवं गणपेश्वरमुत्तमम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण जायन्तेसर्वसिद्धयः ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितस्सदादेवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ॥ तेनाभ्यर्थितपूरोयं विख्यातोविघ्ननायकः ॥ १६ ॥ वयोवृद्धंततोगच्छेन्महाकालंसनातनम् ॥ नरोगोनजराव्याधिर्दर्शनान्नात्रसंशयः ॥ १७ ॥ विघ्ननाशंततोगच्छेत्प्राणीशन्देवमुत्तमम् ॥ स्नानंशतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्यासमाहितः ॥ १८ ॥ तस्यचैवकृतेस्नाने लभ्यन्तेसर्वसिद्धयः ॥ स्वर्गश्चापिसदाव्यासदर्शनात्तस्यजायते ॥ १९ ॥ मार्गेगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणिंततोव्रजेत् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकोनदृश्यते ॥ २० ॥ पुष्पदन्तन्ततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २१ ॥ गुह्यंचैवमहाकालं ततोगच्छेत्समाहितः ॥ यस्यदर्शनमात्रेणगुह्यपापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ ततोगच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासेश्वरमुत्तमम् ॥ यस्य

नहीं है ॥ १७ ॥ तदनन्तर उत्तम प्राणीश विघ्ननाशक देवजी के समीप जावै व सावधान होता हुआ पुरुष सौ घड़ों से उनका स्नान करावै ॥ १८ ॥ क्योंकि उनके स्नान कराने पर समस्त सिद्धियां मिलती हैं व हे व्यासजी ! इनके दर्शन से स्वर्गभी होता है ॥ १९ ॥ तदनन्तर मार्ग में प्राप्त दण्डपाणि जी को उल्लंघन कर उनके समीप जावै कि जिनके दर्शनमात्र से यमलोक नहीं देखा जाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धासंयुक्त पुरुष पुष्पदन्तजी के समीप जावै जिनके दर्शन ही से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर सावधान होता हुआ पुरुष गुह्य महाकाल जी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से पुरुष गुप्त पातकों से

छूट जाता है ॥ २२ ॥ तदनन्तर समाधि में स्थित मनुष्य उत्तम दुर्वासेश्वरजी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य कृतकृत्य होजाता है ॥ २३ ॥ और दुर्वासेश्वर जीके समीप श्वास को रोंककर और महादुर्गा गौरीजी के समीप जाकर इसके अनन्तर श्वास को छोड़ै ॥ २४ ॥ वहां ऊर्ध्व श्वासको छोड़ना चाहिये और सावधान होता हुआ मनुष्य उन भगवती को पूजै तदनन्तर देवदेव कालेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २५ ॥ जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है तदनन्तर देवदेव बधिरेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २६ ॥ जिनके दर्शनही से बधिरता नहीं होती है तदनन्तर यात्रा के पूर्ण फल को देनेवाले यात्रे-

दर्शनमात्रेण कृतकृत्योनरोभवेत् ॥ २३ ॥ श्वासावरोधनंकृत्वा दुर्वासस्यसमीपतः ॥ गौरीङ्गत्वामहादुर्गां त्यजेच्छ्वा समनन्तरम् ॥ २४ ॥ तत्रोच्छ्वासोविमोक्तव्यस्तामर्चेत्सुसमाहितः ॥ कालेश्वरन्ततोगच्छेद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ २५ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकन्नपश्यति ॥ बधिरेशंततोगच्छेद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ २६ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण बधिरत्वन्नजायते ॥ यात्रेश्वरन्ततोगच्छेद्यात्रापूर्णफलप्रदम् ॥ २७ ॥ कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थानंगोत्रञ्चतत्रवै ॥ नकीर्तयेद्यदानाम सायात्राविफलीभवेत् ॥ २८ ॥ देवस्याग्रेततोव्यास उपविश्यसमाहितः ॥ भक्तियुक्तःस्तुतिंब्रूयान्नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥ २९ ॥ मयासमर्पितायात्रात्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ संसारसागराद्घोरान्मामुद्धरजगत्पते ॥ ३० ॥ अनेनविधिनायस्तु महाकालंप्रदक्षयेत् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ३१ ॥ गोलक्षंद्विजवर्य्याय दत्त्वायल्लभतेफलम् ॥ तत्फलंदेवदेवस्य सकृत्कृत्वाप्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ भक्त्यापरमयायुक्तो महाकालंप्रदक्षयेत् ॥ पदेपदेयज्ञफलमितिमेश

श्वरजी के समीप जावै ॥ २७ ॥ और वहां पर अपने नाम व स्थान व गोत्र को कहै यदि नाम न कहै तो वह यात्रा निष्फल होती है ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे व्यास जी ! सावधान होता हुआ भक्तिसंयुक्त पुरुष उन देव के आगे बैठकर व बार २ प्रणाम कर स्तुति कहै ॥ २९ ॥ कि हे महेश्वरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने यात्रा को समर्पण किया हे जगदीश्वरजी ! भयकर संसारसागर से मुझको उधारिये ॥ ३० ॥ इस विधि से जो मनुष्य महाकाल जी की प्रदक्षिणा करता है उस से सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ ३१ ॥ द्विजोत्तम के लिये लाख गौवों को देकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त होता है उस फलको देवदेव महाकालजी की एक

बार प्रदक्षिणा करके पाता है ॥ ३२ ॥ बड़ी भक्ति से संयुक्त जो पुरुष महाकालजीकी प्रदक्षिणा करता है उसको पग२ पै यज्ञ का फल होता है यह मुझसे सदाशिव जी ने कहा है ॥ ३३ ॥ यहां पर यात्रेश्वर जी के पूजन से साठ करोड़ हज़ार व साठ करोड़ सौ लिंग पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥ शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष इस प्रकार यात्रा को करता है और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देता है उसके पुण्य के फलको सुनिये ॥ ३५ ॥ कि वह सात जन्मों में कियेहुये पातक से छूट जाताहै इस में सन्देह नहीं है इस प्रकार यात्रा को समाप्त कर इसके अनन्तर मनुष्य अपने घरको जाकर ॥ ३६ ॥ यात्रा के देवताओं की संख्यावाले शिवभक्त तथा शिवजी

ङ्करोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ पूजितानिभवन्त्यत्र यात्रेश्वरसमर्चनात् ॥ ३४ ॥ यएवंकुरुतेयात्रां शिवध्यानपरायणः ॥ सवस्त्रान्दक्षिणांदद्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ३५ ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ॥ एवंयात्रांसमाप्याथ गत्वाचस्वगृहन्नरः ॥ ३६ ॥ यात्रादैवतसंख्यान्वै षड्विंशतिद्विजोत्तमान् ॥ भोजयेच्छिवभक्तांश्च शिवध्यानपरायणान् ॥ ३७ ॥ सवस्त्रांदक्षिणांदत्त्वा प्राप्यानुज्ञांविसर्जयेत् ॥ यात्राक्रमेणचैकैकं तीर्थान्तरमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥ धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ धेनुंपयस्विनींदद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ३९ ॥ भुञ्जीताथस्वयंव्यास सर्वभृत्यसमन्वितः ॥ दीनानाथदरिद्रान्धविकलांश्चापिभोजयेत् ॥ ४० ॥ यदत्रफलमुद्दिष्टं तद्दामश्शृणुष्वमे ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहितः ॥ ४१ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोकेसमोदते ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेमहाकालयात्रामाहात्म्यंनामषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥

के ध्यान में परायण छब्बीस द्विजोत्तमों को भोजन करावै ॥ ३७ ॥ और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देकर व आज्ञापाकर बिदाकरै व यात्रा के क्रम से एक एक तीर्थ के अन्तर से पश्चात् जावै ॥ ३८ ॥ और पश्चात् वित्तशाठ्य से वर्जित नर धर्मोपदेशक तीर्थ में सब उपस्करों से संयुत दूधवाली गऊ को देवै ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर हे व्यासजी ! समस्त सेवकों समेत आप भी भोजन करै और दीन, अनाथ, निर्धनी, अन्ध व विकल मनुष्यों को भी भोजन करावै ॥ ४० ॥ यहांपर जो फल

कहागया है उसको कहता हूं तुम मुझसे सुनो कि वह सावधान चित्तवाला पुरुष माता व पिताके सौकुलों को उद्धारकर कराड़ों हज़ार कल्पोंतक शिवलोकमें प्रसन्न रहता है ॥ ४१ । ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालयात्रामाहात्म्यवर्णनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❁ ॥

दो० । बाल्मीकि पूज्यो यथा बालमीकेश्वर देव । सत्ताइस अध्याय में सोई चरित सुभेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! मौन व ध्यान में तत्पर होकर जो पुरुष भक्ति से बालमीकेश्वर देवजी को पूजै वह उत्तम कवित्व को प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यहां वे कैसे उत्पन्न हुये हैं और बाल्मीकेश्वर स्वामी कौन हैं कि जिनके दर्शनही से कवित्व होता है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! पुरातन समय भृगुवंश में उपजे हुये सुमति नामक ब्राह्मण हुये हैं और रूप व

सनत्कुमारउवाच ॥ बाल्मीकेरीश्वरंव्यास भक्त्यादेवंप्रपूजयेत् ॥ मौनीध्यानपरोभूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ कथमत्रसमुत्पन्नो कोबाल्मीकेश्वरःप्रभुः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ आसीद्व्यासपुराविप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः ॥ रूपयौवनसम्पन्ना तस्यभार्याथकौशिकी ॥ ३ ॥ तस्यपुत्रः समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मेतिनामतः ॥ सपित्राप्रोच्यमानोपि वेदाभ्यासंनमन्यते ॥ ४॥ ततोबहुतिथेकाले अनावृष्टिरजायत ॥ तदापिबहवश्चासौ दक्षिणामाश्रितोदिशम् ॥ ५॥ ततोसौसुमतिर्विप्रः सभार्यःससुतस्तथा ॥ विदिशंकाननंप्राप्तः कृत्वाचाश्रममाश्रितः ॥ ६ ॥ आभीरैर्दस्युभिःसार्द्धं सङ्गोभूदग्निशर्मणः ॥ आगच्छतियथातेन यस्तंहन्तिसपापकृत ॥ ७ ॥ स्मृतिर्नष्टागतावेदा गतंगोत्रंगताश्रुतिः ॥ कस्मिंश्चिदथकालेतु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥८॥ सप्तर्षयःपथा

यौवन से सम्पन्न कौशिकी नामक उनकी स्त्री हुई है ॥ ३ ॥ उनके अग्निशर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है पिता से कहा जाता हुआ भी वह वेदाभ्यास को नहीं मानता था ॥ ४ ॥ तदनन्तर बहुत दिनोंवाले समय में अनावृष्टि हुई उस समय भी बहुत से मनुष्य व यह दक्षिण दिशा में आश्रित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्त्रियों समेत व पुत्रों सहित यह सुमति ब्राह्मण विदिशा में वनको प्राप्त होकर आश्रम बनाकर स्थित हुआ ॥ ६ ॥ और अहीरों व चोरों के साथ अग्निशर्मा का संग हुआ उस रास्ता से जो आताथा उसको वह पापकारी अग्निशर्मा मारताथा ॥७॥ स्मरण नष्ट होगया व वेद जातेरहे और गोत्र जातारहा व श्रुति जातीरही इसके अनन्तर किसीसमयमें तीर्थ-

यात्रा के प्रसंग से ॥ ८ ॥ उत्तम व्रतोंवाले सप्तर्षिलोग उसी मार्ग से उपस्थित हुये इसके अनन्तर मारने की इच्छावाला अग्निशर्मा उनको देखकर यह बोला ॥ ९ ॥ कि इन वस्त्रों को व छतुरी तथा पनहियों, को छोड़देवो क्योंकि यमस्थानको जानेवाले तुम लोग मुझसे मारने योग्यहो ॥ १० ॥ उसके उस वचनको सुनकर अत्रिजी वचन बोले कि हमारी पीड़ासे उपजा हुआ पाप तुम्हारे हृदयमें कैसे वर्तमानहै ॥ ११ ॥ हम लोग तपस्वी होकर तीर्थयात्रा में उद्यम कियेहैं अग्निशर्मा बोले कि मेरे माता व पिता तथा पुत्र व प्यारी स्त्री है ॥ १२ ॥ उनको मैं सदैव पोषण करताहूँ यह मेरे हृदयमें स्थित है अत्रि जी बोले कि अपने इकट्ठा किये हुये कर्म के

तेन सुव्रताःसमुपस्थिताः ॥ अग्निशर्माथतान्दृष्ट्वा हन्तुकामोब्रवीदिदम् ॥ ९ ॥ वस्त्राणीमानिमुञ्चध्वं छत्रकोपानहौतथा ॥ हन्तव्याहिमयायूयं गन्तारोयमसादने ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत् ॥ अस्मत्पीडनजंपापं कथंतेहृदिवर्तते ॥ ११ ॥ वयंतपस्विनोभूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः ॥ अग्निशर्मोवाच ॥ ममास्तिमाताथपिता सुतोभार्यागरीयसी ॥ १२ ॥ पोषयामिसदातांस्तु एतन्मेहृदिसंस्थितम् ॥ अत्रिरुवाच ॥ पित्रादीननुपृच्छत्वं स्वकर्मोपार्जितंप्रति ॥ १३ ॥ यद्युष्मदर्थंक्रियते पापंतत्कस्यकथ्यताम् ॥ चेन्नतेकथयन्तिस्म मामृषाप्राणिनोवधीः ॥ १४ ॥ अग्निशर्मोवाच ॥ नकदाचिन्मयातेतु संपृष्टाईदृशंवचः ॥ युष्माकंवचसामेद्य प्रतिबोधःप्रवर्तते ॥ १५ ॥ गत्वापृच्छामितान्सर्वान् कस्यभावश्चकीदृशः ॥ यूयमत्रैवतिष्ठध्वं यावदागमनंमम ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वाताञ्जगामाशु पितरंस्वमुवाचह ॥ धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनांपीडनेनच ॥ १७ ॥ सुमहद्दृश्यतेपापं कस्यैतत्कथ्यतांमम ॥ पिताप्राहाथतन्माता नापु

विषयमें तुम पितादिकोंसे पूछो ॥ १३ ॥ कि तुम लोगों के लिये जो पातक कियाजाता है वह किसको होताहै यह कहिये यदि तुमसे उन्होंने न कहा हो तो वृथा प्राणियों को मतमारिये ॥ १४ ॥ अग्निशर्मा बोले कि मैंने उनसे कभी ऐसे वचन को नहीं पूछाहै आज तुम लोगोंके वचन से मेरे ज्ञान वर्तमान है ॥ १५ ॥ जाकर मैं उन सबोंसे पूछूंगा कि किसका कैसा अभिप्राय है तबतक तुम लोग यहीं टिको कि जबतक मेरा आगमन होवै ॥ १६ ॥ उनसे ऐसा कहकर शीघ्रही गया व अपने पिता से बोला कि धर्मके नाशसे व प्राणियों को दुःख देने से ॥ १७ ॥ बड़ा भारी पाप देख पड़ता है यह किसको होता है उसको मुझ से कहिये इसके अनन्तर

पिता व उसकी माता ने कहा कि हम दोनों को इसमें पाप नहीं है ॥ १८ ॥ जिसको करते हो उसको तुम जानो और किया हुआ कर्म तुमसे भोगने योग्य होगा उन के उस वचन को सुनकर स्त्री से वचन बोला ॥ १९ ॥ व उसने भी कहा कि मुझको पाप नहीं होगा किन्तु यह पातक तुम्हीं को होगा और उस वचन को पुत्र से कहा व उसने कहा कि मैं बालकहूं ॥ २० ॥ उनके वचन व व्यवहारको यथार्थसे जानकर मैं नष्ट होगया और तपस्वीलोग मेरी शरण (रक्षक) हैं यह मानता हुआ वह अग्निशर्मा ॥ २१ ॥ उस दण्डको पृथ्वी में फेंककर जिससे कि प्राणी मारेगये थे हे कृष्ण (व्यास) जी ! बालोंको फैलाकर शीघ्रता संयुत होकर ऋषियों के

एयमावयोरिह ॥ १८ ॥ त्वंजानासिकुरुषे यत्कृतंभोग्यंपुनस्त्वया ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा भार्यावचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ तयाप्युक्तंनमेपापं पापमेतत्तवैवतु ॥ तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोहमितिसोब्रवीत् ॥ २० ॥ तज्ज्ञात्वाभाषितन्तेषां चेष्टितञ्चैवतत्त्वतः ॥ नष्टोहमितिमन्वानः शरणंमेतपस्विनः ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वाथलकुटंकृष्ण येनवैजन्तवोहताः ॥ प्रकीर्यकेशांस्त्वरितो ऋषीणामग्रतःस्थितः ॥ २२ ॥ प्रणम्यदण्डपातेन ततोवचनमब्रवीत ॥ नमेमातानचपिता नभार्यानचमेसुतः ॥ २३ ॥ सर्वैस्तैःपरित्यक्तोहं भवतांशरणङ्गतः ॥ सुष्ठूपदेशदानान्मां नरकात्रातुमर्हथ ॥ २४ ॥ एवंतंवादिनंदृष्ट्वा ऋषयोत्रिमथाब्रुवन् ॥ भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥ २५ ॥ भवतायमनुग्राह्यः शिष्योभवतुतेमुने ॥ तथेत्युक्त्वाथतम्प्राह इमन्ध्यानंसमाचर ॥ २६ ॥ अनेनध्यानयोगेन पापपुञ्जंप्रणाशय ॥ संस्थितोवृक्षमूलेत्वं परांसि

आगे स्थित हुआ ॥ २२ ॥ और दण्डवत् गिरकर प्रणामकर तदनन्तर उसने वचन कहा कि न मेरे माताहै न पिता है और न स्त्री है न पुत्र है ॥ २३ ॥ उन सबों से छोड़ा हुआ मैं आपलोगों की शरण में प्राप्त हूं तुमलोग उत्तम उपदेश के दानसे मेरी नरकसे रक्षा करने के योग्यहो ॥ २४ ॥ इसप्रकार कहतेहुये उसको देखकर इसके अनन्तर ऋषियों ने अत्रिजी से कहा कि आपके वचन से इसके ज्ञान आगया ॥ २५ ॥ हे मुने ! आपसे यह दया करने योग्यहै और तुम्हारा यह शिष्य होवै वैसाही होगा यह कहकर अत्रिजी उस अग्निशर्मासे बोले कि तुम इस ध्यानको करो ॥ २६ ॥ और वृक्षकी जड़में भलीभांति बैठेहुये तुम इस ध्यान के योगसे

पापकी राशिको नाश करो और परमसिद्धिको प्राप्त होवोगे ॥२७॥ यह कहकर वे सब चलेगये और कामना समेत वह योगी भी वहां तेरह वर्ष तक उस ध्यान में स्थित हुआ ॥ २८ ॥ और उस मार्गसे लौटेहुये उन मुनियोंने बेंबौरिमें उससे कहेहुये शब्दको सुना व विस्मय से संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस बेंबौरि को देखकर मुनियों ने दारुभूतकीलों के द्वारा उस नीतिसंयुत अग्निशर्मा को देखकर उठाया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर उस अग्निशर्मा मुनि ने उन मुनिश्रेष्ठों को प्रणाम किया व प्रणत होकर तपस्या से प्रकाशित तेजवाले उन मुनियों से कहा ॥ ३१ ॥ कि आप लोगों की प्रसन्नतासे आज मैंने उत्तम ज्ञानको पाया और पातक के

द्धिंगमिष्यसि ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वातेययुस्सर्वे सकामःसोपितत्रवै ॥ तद्ध्यानस्थोभवद्योगी वत्सराणित्रयोदश ॥ २८ ॥ निवृत्तास्तुयथातेन मुनयस्तत्प्रशुश्रुवुः ॥ उदीरितंध्वनिन्तेन वल्मीकेविस्मयान्विताः ॥ २९ ॥ ततस्तुदृष्ट्वावल्मीकं काष्ठीभूतोरुशङ्कुभिः ॥ तन्दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयोनयसंयुतम् ॥ ३० ॥ नमश्चक्रेथतान्सर्वान् समुनिर्मुनिपुङ्गवान् ॥ तान्प्राहप्रणतोभूत्वा तपसादीप्ततेजसः ॥ ३१ ॥ प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानंलब्धंमयाशुभम् ॥ दीनोहमुद्धृतस्सर्वैर्मग्नोहं पापकर्दमे ॥ ३२ ॥ श्रुत्वातस्येतितद्वाक्यमूचुःपरमधार्मिकाः ॥ वल्मीकेस्मिन्स्थितःपुत्र यतस्त्वमेकचित्ततः ॥३३॥ बाल्मीकिरितितेनाम भुविख्यातंभविष्यति ॥ इत्युक्त्वामुनयोजग्मुः स्वान्दिशंतपसान्विताः ॥ ३४ ॥ गतेषुमुनिमुख्येषु बाल्मीकिस्तपतांवरः ॥ कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्यमहेश्वरम् ॥ ३५॥ तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रेकाव्यं मनोरमम् ॥ रामायणञ्चयत्प्राहुः कथासुप्रथमंस्थितम् ॥ ३६ ॥ ततःप्रभृतिदेवेशो बाल्मीकेश्वरसंज्ञकः ॥ ख्यातोव

कीचड़ में डूबा हुआ मैं दीन आप सबों से उधारा गया हूं ॥ ३२ ॥ उसके उस वचन को सुनकर परमधर्मवान् उन ऋषियों ने कहा कि हे पुत्र ! जिसलिये तुम एक चित्तसे इस बंबौरि में स्थितहुये हो ॥ ३३ ॥ इसलिये बाल्मीकि ऐसा तुम्हारा नाम पृथ्वी में प्रसिद्ध होगा यह कहकर तपस्या से संयुत मुनिलोग अपनी दिशा को चलेगये ॥ ३४ ॥ मुख्य मुनियों के जानेपर इसके अनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ बाल्मीकि जीने कुशस्थली में आकर व महादेवजी को आराधकर ॥ ३५ ॥ उनसे कविताको पाकर मनोहर काव्य किया कि जिसको रामायण कहते हैं व जो कथाओं में प्रथम स्थित है ॥ ३६ ॥ हे व्यासजी ! तब से लगाकर बाल्मीकेश्वर नामक

देवेश अवन्ती में प्रसिद्ध हुये और उसी कारण वे मनुष्योंको कवितादायक हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबाल्मीकेश्वरमहिमवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । शुक्रेश्वरलिंगादिकन पूजि मिलत फल जौन । अट्ठाइसवें में कह्यो चरित सुखद सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि श्वेत पुष्पों व विलेपनों से शुक्रेश्वरजी को भलीभांति पूजकर तदनन्तर भक्तिसे प्रणाम कर मनुष्य शिवलोक में पूजा जाताहै ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! भीमेश्वरजी को देखकर व यत्न से भक्तिपूर्वक पूजकर

न्त्यांततोव्यास कवित्वदायकोनृणाम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे बाल्मीकेश्वरमहिमवर्णनन्नामसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शुक्रेश्वरंसमभ्यर्च्य सितपुष्पैर्विलेपनैः ॥ प्रणिपत्यततोभक्त्या रुद्रलोकेमहीयते ॥ १ ॥ भीमेश्वरंनरोदृष्ट्वा भक्त्यासम्पूज्ययत्नतः ॥ नभयंलभतेव्यास रणेरात्रौजलेनले ॥ २ ॥ गर्गेश्वरंस्नापयित्वा तिलतैलेनमानवः ॥ बिल्वपत्रैस्तुसम्पूज्य धर्मवृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ उपोषितश्चतुर्दश्यां तिलप्रस्थतिलाम्भसा ॥ स्नापयित्वातिलैरिष्ट्वा सदासौख्यमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ गोसहस्रन्नरोदत्त्वा भावंकृत्वाविशेषतः ॥ भवबन्धविनिर्मुक्तो रुद्रलोकेसगच्छति ॥ ५ ॥ कामेश्वरंसमभ्यर्च्य कुङ्कुमादिविलेपनैः ॥ कामिकेनविमानेन यातिस्वर्गन्नसंशयः ॥ ६ ॥ चूडामणिंनमस्कृत्य नवम्यांकार्त्तिकेसिते ॥ नवियोनिन्नरोयाति धर्मबुद्धिस्तुजायते ॥ ७ ॥ चण्डेश्वरंसमभ्यर्च्य कृष्णाष्ट

मनुष्य समर में रात्रिमें जल में व अग्नि में भयको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ २ ॥ और तिलके तैलसे गर्गेश्वरजी को नहवाकर मनुष्य बिल्वपत्रों से पूजकर धर्मकी वृद्धि को प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ और चौदसि में उपास करके मनुष्य प्रस्थ (ढाई पाव) तिलोंसे संयुत तिलोदकसे स्नान कराकर व तिलों से पूजकर मनुष्य सदैव सुखको प्राप्तहोताहै ॥ ४ ॥ और मनुष्य गोसहस्र को देकर व विशेषता से भावकर संसार के बंधनसे छूटाहुआ वह पुरुष शिवलोकमें जाताहै ॥ ५ ॥ और कुंकुमादिक लेपनों से कामेश्वरजी को पूजकर इच्छा के अनुकूल विमान के द्वारा निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है ॥ ६ ॥ और कातिक के शुक्लपक्ष में नवमी तिथि में चूड़ामणि देवजी को

व्यमुपोषितः ॥ निर्माल्योल्लङ्घनोत्थेन सशोकेननलिप्यते ॥८॥ इत्यादितीर्थानिमहेश्वरस्य पुण्यानिसर्वाणिनरोभि
गम्य॥विशुद्धचित्तोभुविभावितात्मा प्रयातिशम्भोर्भवनंसुरम्यम् ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेतीर्थमाहात्म्य
न्नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ गुह्यस्थानेपवित्राणि कीर्तितानित्वयामुने ॥ प्रमाणंकथयस्वाद्य महाकालवनस्यमे ॥ १ ॥ सनत्कु
मारउवाच ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वं गदतोब्रह्मणस्स्वयम् ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुत्वंगदतोमम ॥ २ ॥ योजनस्यैवप
र्यन्तं चतुर्दिक्षूपशोभितम् ॥ सौवर्णैस्तोरणैश्चैव मुक्तादामविलम्बिभिः ॥३॥ द्वाराणितत्रशोभन्ते काञ्चनैःकलशैःस्थि
तैः ॥ सितपद्ममुखैर्द्वारैरनेकैर्मणिमण्डितैः ॥ ४॥ महेश्वरप्रयुक्ताश्च द्वाराध्यक्षामहाबलाः ॥ द्वारेषुतेषुशोभन्ते लोका
नुग्रहकारकाः ॥ ५ ॥ पिङ्गलेशःस्थितःपूर्वं बालरूपोविभावसुः ॥ तीर्थस्याभिमुखेगौरो गुरुर्गणरथानुगः ॥ ६ ॥ दक्षि

व कृष्णपक्षकी अष्टमी में उपास कियेहुये वह मनुष्य चण्डेश्वरजी को पूजकर नि-प्रणाम कर मनुष्य वियोनि को नहीं प्राप्तहोताहै और धर्मबुद्धिवाला होता है ॥ ७ ॥ महादेवजी के इत्यादिक सब पवित्र तीर्थोंको जाकर पृथ्वीमें शुद्ध आत्मा व विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य र्माल्यके नाँघनेसे उपजे हुये पातकसे नहीं लिप्त होताहै ॥ ८ ॥ सदाशिवजी के मनोहर मन्दिर को प्राप्तहोता है ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

दो० । पंचेशानीयात्राकर विधि सहित प्रभाव । उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥

व्यासजी बोले, कि हे मुने ! तुमने गुह्यस्थान में पवित्र तीर्थोंको कहा आज मुझ से महाकालवन का प्रमाण कहिये ॥१॥ सनत्कुमारजी बोले कि मैंने पुरातन समय जिसप्रकार आपही कहतेहुये ब्रह्माजी से सुनाहै उसको मैं तुमसे कहूंगा तुम कहते हुये मुझ से सुनो ॥ २ ॥ योजन भरतक चारों दिशाओं में शोभित है ॥ ३ ॥ और कि मोती की झालर जिन में लटकती हैं उन सुवर्ण के बाहरी द्वारों से शोभित है ॥ ४ ॥ व उन द्वारों में महादेवजीसे नियोजित उस में धरेहुये सुवर्ण के कलशों से द्वार शोभितहै और अनेक मणियों से शोभित श्वेतकमलमुखद्वारों से शोभित है ॥ बड़े बलवान् द्वारपाल हैं जोकि लोकों के ऊपर दयाकरनेवाले हैं ॥ ५ ॥ तीर्थ के सामने बालरूपी विभावसु पिंगलेशजी स्थितहैं जो कि गौरवर्ण व गुरु तथा गणों

णेपिमहायोगी नाम्नाकायावरोहणः ॥ बिल्वेशःपश्चिमेद्वारे क्षेत्रस्याभिमुखंस्थितः ॥ ७ ॥ नियुक्तोवैमहेशेन वारुणीन्दिशमास्थितः ॥ उत्तरान्दिशमाश्रित्य स्थितश्चैवोत्तरेश्वरः ॥ ८ ॥ साधकस्सर्वकार्याणामादिष्टश्शङ्करेणसः ॥ मानवायेवसन्त्यत्र क्षेत्रमध्येसुधार्मिकाः ॥ ९ ॥ मृतारुद्रपुरंयान्ति विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामथवा कन्दुसङ्गमे ॥ १० ॥ पञ्चेशानींनमस्कृत्य प्रतिलोमानुलोमतः ॥ उपोषितोदिनैकेन ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ ११ ॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तु बहुजन्मकृतैरपि ॥ एवंचविप्रयोयात्रां पञ्चेशानींसमारभेत् ॥ १२ ॥ अनेनैवस्वदेहेन रुद्रलोकंसगच्छति ॥ पञ्चेशानीमथान्यान्ते सुखेनक्रियतेयथा ॥ १३ ॥ तथाशृणुप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ प्रातःस्नात्वारुद्रसरस्येकादश्यांसमाहितः ॥ १४ ॥ श्राद्धंकृत्वामहाकालं नत्वाईशानमीश्वरम् ॥ पिङ्गलेशन्ततःप्राप्य स्नात्वाश्राद्धंसमाचरेत् ॥१५॥ उपगम्यततोदेवं गणेशंपिङ्गलेश्वरम् ॥ गन्धैःपुष्पैश्चधूपैश्च तमभ्यर्च्यनिवर्तयेत् ॥ १६ ॥

के रथों के अनुगामी हैं ॥६॥ व दक्षिण दिशा में भी कायावरोहणनामक महायोगी स्थित हैं और क्षेत्र के सामने स्थित बिल्वेशजी पश्चिम द्वार पै हैं ॥ ७ ॥ जो कि महादेवजी से नियुक्त कियेहुये पश्चिम दिशा में स्थित हैं और उत्तर दिशा में आश्रित होकर उत्तरेश्वर जी स्थितहैं ॥ ८ ॥ शिवजीसे आज्ञा दियेहुये वे समस्त कार्यों के साधन करनेवाले हैं इस क्षेत्र के मध्यमें उत्तम धर्मवान् जो मनुष्य बसते हैं ॥ ९ ॥ वे मरकर सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शिवपुर को जाते हैं कृष्णपक्ष की चौदसि व सूर्यनारायण तथा चन्द्रमा के संयोग याने अमावस में ॥ १० ॥ पञ्चेशानीजी को प्रणामकर और महादेवजी को ध्यान करताहुआ एकदिनसे विलोम व अनुलोम याने तीनदिन उपासकर मनुष्य ॥११॥ बहुतजन्मों में कियेहुये भी सब पातकों से छूटजाता है इसप्रकार हे विप्रजी ! जो पञ्चेशानी यात्रा को प्रारम्भ करता है ॥ १२ ॥ वह इसी देह से शिवलोक को जाताहै इस के अनन्तर समस्त पातकों को नाशनेवाली अन्य पञ्चेशानी यात्राको तुम से कहता हूं जिसप्रकार वह यात्रा सुख से कीजाती है वैसेही सुनिये कि सावधान होताहुआ पुरुष एकादशीतिथि में प्रातःकाल रुद्रसर में नहाकर ॥ १३ । १४ ॥ श्राद्धकर व महाकालेश्वर ईशानजी को प्रणामकर तदनन्तर पिङ्गलेश्वरजी को प्राप्तहोकर नहाकर श्राद्धकरै ॥ १५ ॥ तदनन्तर पिङ्गलेश्वर गणनायकजी के समीप जाकर और गन्ध, पुष्प व

धूपोंसे उनको पूजकर निवृत्त होवै ॥१६॥ व महाकालेश्वरजीको प्राप्तहोकर फिर स्नान कियेहुये जितेन्द्रिय पुरुष आपही से उपजेहुये सनातन देवदेवेशजी को पूजे ॥ १७ ॥ और ईशान में रात्रिको व्यतीत करै व रात्रि में भोजन कर महेशजी को ध्यान करताहुआ पुरुष भूमि में शरीर को धरकर ॥ १८ ॥ द्वादशी में सब पहले की नाई करके प्रातःकाल नहाकर मनुष्य गमन करै और कायावरोहण तीर्थ मे जाकर पिङ्गलेश्वर की नाई पूजै ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर तेरसि में भी इस प्रकार पश्चिममें बिल्वेशजी का पूजन करै वैसेही चौदसि तिथि में उत्तर दिशामें उत्तरेश्वरजी को पूजै ॥ २० ॥ और अमावस तिथि में नहाकर पवित्र होताहुआ पुरुष महा-

महाकालेश्वरम्प्राप्य भूयस्स्नातोजितेन्द्रियः ॥ अर्चयेद्देवदेवेशं स्वयंभूतंसनातनम् ॥ १७ ॥ ईशानेगमयेद्रात्रिं कृत्वावैनक्तभोजनम् ॥ ध्यायमानोमहेशानं भूमौविन्यस्यविग्रहम् ॥ १८ ॥ द्वादश्यांपूर्ववत्सर्वं प्रातस्स्नात्वाव्रजेन्नरः ॥ कायावरोहणेगत्वा पिङ्गलेश्वरवद्यजेत् ॥ १९ ॥ त्रयोदश्यामथाप्येवं बिल्वेशंपश्चिमेर्चयेत् ॥ चतुर्दश्यांतथासौम्ये पूजयेदुत्तरेश्वरम् ॥ २० ॥ अमायान्तुशुचिस्स्नातो महाकालेश्वरंव्रजेत् ॥ गन्धैःपुष्पैश्चधूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ गीतनृत्यादिकंकृत्वा प्रणिपत्यक्षमापयेत् ॥ यात्रांकृत्वातुपूर्वोक्तां ततोनिजगृहंव्रजेत् ॥ २२ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्पञ्च शिवभक्तिपरायणान् ॥ प्रणम्यदेवरूपांश्च महाकालेपितान्द्विजान् ॥ २३ ॥ पूजयित्वाहिरण्येन सूक्ष्मवस्त्रैस्तथानवैः ॥ रथंपिङ्गलकेदद्याद्गजंकायावरोहणे ॥२४॥ दत्त्वाबिल्वेश्वरेचाश्वं वृषंदत्त्वाथचोत्तरे ॥ धेनुंदद्यान्महाकाले सर्वोपस्कारसंयुताम् ॥ २५ ॥ यएवंकुरुतेव्यास तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पितृकैर्मातृकैस्सार्द्धं कुलैस्सादिविमो

कालेश्वरजी को जावै और गन्ध, पुष्प, धूप और अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजनकरै ॥ २१ ॥ और गीत नृत्यादिक कर प्रणाम कर क्षमापन करावै व पूर्वोक्त यात्रा करके तदनन्तर अपने घरको जावै ॥ २२ ॥ और शिवजी की भक्तिमे तत्पर पांच ब्राह्मणों को भोजन करावै व महाकालमें भी उन देवरूपी ब्राह्मणों को प्रणाम कर ॥ २३ ॥ और सुवर्ण से व नवीन रेशमी वस्त्रोंसे पूजकर पिङ्गलकमे रथ देवै व कायावरोहण तीर्थ मे हाथी देवै ॥ २४ ॥ व बिल्वेश्वरमें अश्वको देकर और उत्तर में वृषको देकर महाकालमें सब उपस्कारों समेत गऊको देवै ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य इसप्रकार करता है उसके पुण्यका फल सुनिये कि अप्सराओं के गीत

व नृत्य से संयुत सब कामनाओंवाले विमानों से पिता व मातावाले कुलों समेत वह स्वर्ग में आनन्द करता है ॥ २६ । २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चेशानीयात्रामाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । कही सात देवीनकी महिमा अतिहिं अमान । सोइ तीस अध्याय में कीन्हों चरित बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नियम से जो कुशस्थली (उज्जैनी) की प्रदक्षिणा करता है उससे सातद्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ १ ॥ जो मनुष्य पद्मावतीजी के दर्शन करता है व कमलों से पूजता है तथा नैवेद्य समेत

दते ॥ २६ ॥ अप्सरोगीतनृत्याढ्यैर्विमानैस्सार्वकामिकैः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पञ्चेशानीयात्रामाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुप्रदक्षिणांकुर्यान्नियमेनकुशस्थलीम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ १ ॥ यस्तुपद्मावतींपश्येदर्चयेत्पङ्कजैर्नरः ॥ दद्याद्धूपंसनैवेद्यं मृतोब्रह्मपुरंव्रजेत् ॥ २ ॥ स्वर्णशृङ्गाटिकांव्यास कुसुमैस्स्वर्णसन्निभैः ॥ समभ्यर्च्यमहाभक्त्या सयातिशिवमन्दिरम् ॥ ३ ॥ अवन्तिकान्तुयःपश्येद्देवींत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ कामगेनविमानेनयातिपौरन्दरंपदम् ॥ ४ ॥ अर्चयेत्पङ्कजैर्भक्त्यायोदेवीममरावतीम् ॥ अमरैस्सहसंहृष्टो मोदतेदिविसर्वदा ॥ ५ ॥ देवीमुज्जयिनींभक्त्या यःपश्यतिसमाहितः ॥ सर्वैश्वर्यसमायुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ विशालांचैवयःपश्ये

धूपको देताहै वह मरकर ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २ ॥ व हे व्यासजी ! सोने के समान पुष्पों से स्वर्णशृंगाटिका देवीजी को बड़ी भक्ति से भलीभांति पूजकर वह मनुष्य शिवमन्दिर को जाता है ॥ ३ ॥ और त्रिलोक में प्रसिद्ध अवन्तिका देवीजी को जो देखता है वह इच्छा के अनुकूल जानेवाले विमान के द्वारा इन्द्रपुर को जाता है ॥ ४ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से अमरावती देवीजी को कमलों से पूजता है वह देवताओं समेत प्रसन्न होकर सदैव स्वर्ग में आनन्द करताहै ॥ ५ ॥ और सावधान होताहुआ जो पुरुष उज्जयिनी देवीजीको देखताहै सब ऐश्वर्यों से संयुत वह शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ व जो सावधान मनुष्य शिवभक्ति से

द्रुद्रभक्त्यासमाहितः ॥ मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सप्तदेवीनांमहिमवर्णनन्नामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं पुण्यंयद्ब्रह्मणार्चितम् ॥ अक्रूरेश्वरमित्याख्यं यत्रसिद्धःपितामहः ॥ १ ॥ तत्रदेवार्चनंकृत्वा कृष्णाष्टम्यामुपोषितः ॥ जितेन्द्रियश्शुचिर्दान्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ नवदेत्केनचित्सार्द्धं नरःप्रातस्समुत्थितः ॥ दृष्ट्वाक्रूरेश्वरन्देवं हेमदानफलंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽक्रूरेश्वरमहिमवर्णनन्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुपश्यतिब्रह्माणं शुचिस्स्नातोजितेन्द्रियः ॥ मुच्यतेपातकाद्घोराद् ब्रह्मलोकमतोव्रजेत् ॥ १ ॥ पद्मासनस्थितोब्रह्मा ध्यायमानःपरम्पदम् ॥ वशिष्ठाद्यैर्मुनिवरैर्विज्ञप्तःकर्मसम्भवात् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ आ

विशाला देवीजी को देखता है वह तीनों प्रकार के पातकों से छूटजाता है इस में विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायासप्तदेवीनांमहिमवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । अक्रूरेश्वरदेव को अहै जौन परभाव । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! अक्रूरेश्वर ऐसे नामवाले पवित्र महातीर्थ को सुनिये जोकि ब्रह्मा से पूजागया है और जहां पर ब्रह्माजी सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमी में उपास कियेहुये इन्द्रियों को जीते व पवित्र तथा शान्त पुरुष वहां देवपूजन कर शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ किसी के साथ वार्तालाप न करै और प्रातःकाल उठकर मनुष्य अक्रूरेश्वर देवको देखकर सुवर्ण दान के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामक्रूरेश्वरमहिमवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥

दो० । शिवयाज्ञिक ब्राह्मणन कहँ दीन्हीं वर अरु शाप । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित संलाप ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नहाया हुआ पवित्र व जितेन्द्रिय जो पुरुष ब्रह्मादेवजी को देखता है वह भयंकर पातकसे छूटजाताहै व इसके उपरान्त ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १ ॥ पद्मासन से बैठे व परमपद को ध्यान करतेहुये ब्रह्मा

जी से वशिष्ठादिक मुनिश्रेष्ठों ने कर्मके संभव से विनय किया ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि आदित्य,मरुत,साध्य,वसु व दोनों अश्विनीकुमार तथा जो लोकोंके पितर पृथ्वीमें मनुष्योंसे पूजे जातेहैं ॥३॥ और ग्रह,सूर्यनारायण,तारा,यक्ष,दिग्गज,अग्नि व पवन ये देवता और हम सब तुम्हारे अंशसे पढेजातेहैं ॥ ४ ॥ हे देवेश ! तुम किस को ध्यान करते हो यह सब हमलोगों से कहिये ब्रह्माजी बोले कि तत्त्वरूपिणी जो परा व अपरा दो विद्या है ॥ ५ ॥ वे सदैव मूर्त्ति व मूर्तात्मिका मेरे स्वरूपसे जानने योग्य हैं ऋषिलोग बोले कि हे पितामह जी ! आपको परमप्रभु हमलोग कैसे जानैं ॥ ६ ॥ कि जिससे तुम्हारे दर्शन से हम लोगों की उत्तम सिद्धि होवै ॥ ७ ॥

दित्यामरुतस्साध्या वसवश्चाश्विनावुभौ ॥ पितरोयेचलोकानां पूज्यन्तेभुविमानवैः ॥ ३ ॥ ग्रहार्कास्तारकायक्षा दिग्गजाश्चानलानिलाः ॥ अमीदेवावयंसर्वे प्रपठ्यन्तेत्वदंशतः ॥ ४ ॥ कंवैध्यायसिदेवेश एतत्सर्वंब्रवीहिनः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ द्वेविद्येतत्त्वरूपेये पराचैवापरातथा ॥ ५ ॥ ज्ञेयेममस्वरूपेणमूर्त्तमूर्त्तात्मिकेसदा ॥ ऋषयऊचुः ॥ पितामहकथंविष्णो भवतःपरमंविभुम् ॥ ६ ॥ येनास्माकंपरासिद्धिर्जायतेतवदर्शनात् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ माहेश्वरंपरंक्षेत्रं कुशस्थलीतिशब्दितम् ॥ यज्ञार्थिनामयादेवः श्रीकण्ठःपार्वतीपतिः ॥ ८ ॥ याचितस्तेनदेवेन उक्तोहंतत्रशम्भुना ॥ समन्ताद्योजनंसाग्रं क्षेत्रमेतत्पितामह ॥ ९ ॥ मयादत्तंतवविभो महाकालवनादृते ॥ वारितोपिमयातत्र वनेगुप्तोहिरोषतः ॥ १० ॥ आरब्धोवैततोयज्ञो नारायणपरिग्रहात् ॥ ज्ञातस्तथापिमेयज्ञो देवदेवेनशम्भुना ॥ ११ ॥ यज्ञवाटकपर्दीशस्ततोभिक्षार्थमागतः ॥ याज्ञिकैस्सोथतत्रोक्तो मात्रतिष्ठजुगुप्सित ॥ १२ ॥ कपर्दिनाचतेतत्र उक्तायास्यामतत्पुनः ॥ एवमुक्त्वाक

ब्रह्माजी बोले कि कुशस्थली ऐसा कहाहुआ माहेश्वर उत्तम क्षेत्र है यज्ञके प्रयोजनवाले मैंने पार्वती के पति सदाशिवजी से याचना किया उन शिवदेवजी ने वहां मुझ से कहा कि हे पितामहजी ! सब ओर कुछ अधिक योजन भर यह क्षेत्र ॥ ८।९ ॥ हे विभो ! महाकालवन को छोडकर मैंने तुमको दिया और उस वनमें मुझ से मना किये हुये भी वे क्रोधसे गुप्त होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर नारायणके परिग्रह से मैंने यज्ञका प्रारंभ किया तो भी देवदेव शिवजीने मेरी यज्ञको जाना ॥ ११ ॥ तदनन्तर भिक्षा के लिये शिवजी यज्ञवाट को आये इसके अनन्तर वहां यज्ञ करानेवालों ने उनसे कहा कि हे निन्दित ! यहा मत स्थित होवो ॥ १२ ॥ फिर वहां

शिवजी ने उनसे कहा कि तो हम जाते हैं ऐसा कहकर वहां भूमि में कपाल को धरकर ॥ १३ ॥ जटाधारी परमेश्वरजी नहाने के लिये शिप्रानदी को गये और वे जटाधारी शिवजी जब शिप्रानदी को गये तब ब्राह्मणों ने कहा ॥ १४ ॥ कि सभा में कपाल के स्थित होने पर कैसे होम कियाजाता है क्योंकि पुरातन समय विद्वानों ने कपालरहित अग्नियों को पवित्र कहा है ॥ १५ ॥ उस कपाल को आपही सामाजिक ने फेंक दिया व उसके फेंकने पर अन्य हुआ व बार २ फेंकने पर फिर हुआ ॥ १६ ॥ इसप्रकार मुनिश्रेष्ठों को कपाल का अन्त नहीं मिलता था वे जटाधारी शिवजी को प्रणाम कर शरण में प्राप्तहुये ॥ १७ ॥ तदनन्तर भक्तिसे प्रसन्न

पालन्तु भूमौसंस्थाप्यतत्रहि ॥ १३ ॥ स्नातुन्नदींययौशिप्रां कपर्दीपरमेश्वरः ॥ उक्तंतस्मिन्गतेशिप्रां कपर्द्दिनिद्विजातिभिः ॥ १४ ॥ कथंहिक्रियतेहोमः कपालेसदसिस्थिते ॥ अकपालानिशौचानि पुराप्रोक्तानिसूरिभिः ॥ १५ ॥ तत्कपालंसदस्येन उत्क्षिप्तंपाणिनास्वयम् ॥ तस्मिन्क्षिप्तेऽभवच्चान्यत्क्षिप्तेक्षिप्तेऽभवत्पुनः ॥ १६ ॥ एवन्नान्तःकपालानांप्राप्यतेमुनिसत्तमैः ॥ रुद्रंकपर्दिनंनत्वा शरणन्तेसमागताः ॥ १७ ॥ ततस्सदर्शनंप्रादाद्भक्त्यातुष्टोमहेश्वरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् मामुवाचपुनःप्रभुः ॥ १८ ॥ वरंवरयभोब्रह्मन् यत्तेमनसिवर्तते ॥ नास्त्यदेयंमयातुभ्यं सर्वदास्यामितत्त्वतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मोत्तरमिदंस्थानं मयादत्तंचतुर्मुख ॥ कारयस्वयथाकामं तथावर्णचतुष्टयम् ॥ २० ॥ एवं वदन्तंवरदमीशानंपरमेश्वरम् ॥ तथेतिचोक्त्वासदसि नममान्योवरोवृतः ॥ २१ ॥ उज्जयिनीतिवैनाम कुशस्थल्यानिवेशितम् ॥ कुण्डंमन्दाकिनीतत्र मयाकृतमनन्तरम् ॥ २२ ॥ तत्रविप्रकृतेस्नाने सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ तस्यांसंस्था

महादेवजी ने दर्शन दिया और कपाल हाथवाले भगवान् सदाशिव प्रभुजी फिर मुझ से बोले ॥ १८ ॥ कि हे ब्रह्मन्! जो तुम्हारे मन में वर्त्तमानहो उस वरदान को मांगिये मुझ से तुम्हारे लिये कुछ न देने योग्य नहीं है मैं सबको तत्त्व से दूंगा ॥ १९ ॥ हे चतुराननजी! मैंने इस ब्रह्मोत्तर स्थान को दिया जैसी इच्छा होवै वैसेही चारों वर्णों को कीजिये ॥ २० ॥ इसप्रकार कहते हुये उन वरदायक परमेश्वर महादेवजी से वैसाही होगा यह कहकर मैंने सभा में अन्य वरदानको नहीं मांगा ॥ २१ ॥ और मैंने कुशस्थली समेत उज्जयिनी ऐसा नाम धरा इसके अनन्तर मैंने वहां मन्दाकिनीकुण्ड निर्माण किया ॥ २२ ॥ हे विप्रजी! उसमें स्नान

करने पर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाता है और उस पुरीमें दिशाओं में चार उत्तम घटों को स्थापित करै ॥ २३ ॥ और तिलों समेत व वसनों सहित व फलो समेत तथा आभूषणों समेत उन घटों को कार्त्तिकी व माघी में चारों वेदों के जाननेवालों के लिये देवै ॥ २४ ॥ पूर्वका घट ऋग्वेद के लिये व दक्षिण घटको यजुर्वेद के लिये और पश्चिम घट सामवेदके लिये व उत्तर का घट अथर्वण वेदके लिये देवै ॥ २५ ॥ वेदोंको इसप्रकार उद्देशकर कि मेरे ऊपर पितामह देवजी प्रसन्न होवैं इस प्रकार करने पर जो पुण्य होताहै उसको सावधान होतेहुये सुनिये ॥ २६ ॥ कि सब तीर्थों में जो पुण्य मिलताहै वैसेही मन्दाकिनी में होताहै और स्नान हज़ार

पर्येद्दिक्षु चतुरोथघटाञ्छुभान् ॥ २३ ॥ सतिलांस्तान्सवस्त्रांश्च सफलान्मण्डनैस्सह ॥ कार्त्तिक्यामथमाघ्याञ्च चतुर्विद्भ्यःप्रदापयेत् ॥ २४ ॥ प्रथमंचऋग्वेदाय यजुर्वेदायदक्षिणम् ॥ पश्चिमंसामवेदाय अथर्वणेतथोत्तरम् ॥ २५ ॥ वेदानुद्दिश्यचाप्येवं प्रीयतांमेपितामहः ॥ कृतेचैवंहियत्पुण्यं तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यं मन्दाकिन्यांतथाभवेत् ॥ सहस्रगुणितंस्नानं जाप्यंलक्षगुणंभवेत् ॥ २७ ॥ दानंकोटिगुणंज्ञेयं मन्दाकिन्यान्नसंशयः ॥ कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्ते गोदानंतत्रकारयेत् ॥ २८ ॥ घृतधेनुश्चकार्त्तिक्यां माघ्यांतिलमयींतथा ॥ जलधेनुन्तुवैशाख्यां दत्त्वामुच्येतपातकात् ॥ २९ ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मजंयच्चदुष्कृतम् ॥ विनश्येत्किल्बिषंसर्वं मन्दाकिन्यास्तुदर्शनात् ॥ ३० ॥ मन्दाकिनीसमन्तीर्थं पृथिव्यान्नैवदृश्यते ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्मलोकेसमोदते ॥ ३१ ॥ मन्दाकिन्यान्तुयस्स्नानं कृत्वाश्राद्धंप्रदास्यति ॥ दर्शेचपूर्णिमायांवा पितृलोकेसमोदते ॥ ३२ ॥ पितामहन्तुयोभक्त्या नित्यं

गुना व जप लाख गुना होवै है ॥ २७ ॥ और मन्दाकिनी में दान कोटिगुना जाननेयोग्यहै इसमें सन्देह नहीं है कातिक महीना प्राप्तहोने पर वहां गोदान करावै ॥ २८ ॥ कार्त्तिकी में घी की गऊ व माघी में तिलमयी गऊ और वैशाखी में जल की गऊको देकर मनुष्य पातक से छूटजाना है ॥ २९ ॥ व वाचिक और मानस पाप तथा कर्म से उपजाहुआ जो पातकहै वह सब पातक मन्दाकिनी जीके दर्शन से नाश होजाता है ॥ ३० ॥ मन्दाकिनी के समान तीर्थ पृथ्वी मे नहीं देखपड़ता है जिसके दर्शनही से वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें आनन्द करता है॥ ३१ ॥ और जो मनुष्य मन्दाकिनी में स्नान कर अमावस व पौर्णमासी मे श्राद्ध देताहै वह पितृ-

लोकमें प्रसन्न होताहै ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नित्य ब्रह्माजी को देखताहै वह हजार अश्वमेध और सौ राजसूययज्ञ से ॥ ३३ ॥ युक्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे तपोधनो ! यह सत्य है तदनन्तर मन्वन्तर बीतने पर जब फिर वैवस्वत मनु प्राप्तहुआ तब फिर ॥ ३४ ॥ उसी उन्मत्त वेष से ऊर्ध्वजटाओंवाले महादेवजी ब्रह्मा की यज्ञ में पैठे और उन द्विजोत्तमों ने देखा ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणलोग उनको शाप देते थे व कोई निन्दा करते थे व अन्य ब्राह्मण धूलियों से उनके लिंग को मारते थे और कोई ब्राह्मण शाप देते थे ॥ ३६ ॥ और बल से गर्वित कोई मनुष्य उनको ढेलों व दण्डों से मारते थे और अन्य कोई ब्राह्मण जटाओं के

पश्यतिमानवः ॥ अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेनच ॥ ३३ ॥ युज्यतेनात्रसन्देहः सत्यमेतत्तपोधनाः ॥ ततोमन्वन्तरेतीते प्राप्तेवैवस्वतेपुनः ॥ ३४ ॥ तेनैवोन्मत्तवेषेण ऊर्ध्वशेफोमहेश्वरः ॥ प्रविष्टोब्राह्मसत्रेतु दृष्टस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ ३५ ॥ तंब्राह्मणाःशपन्तिस्म निन्दांकुर्वन्तिचापरे ॥ अपरेपांशुभिःशिश्नं घ्नन्तितस्याशपन्द्विजाः ॥ ३६ ॥ लोष्टैर्लगुडकैश्चान्ये घ्नन्तितंबलगर्विताः ॥ जटामुकुटकंकेचिद्धृत्वाकर्षन्तिचापरे ॥ ३७ ॥ पृच्छन्तिव्रतचर्यांवै व्रतंकेनप्रदर्शितम् ॥ अत्रचैवस्त्रियस्सन्ति कथमेवंत्वयाकृतम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मणाचेदृशीचर्य्या विष्णुनावाकृतास्वयम् ॥ गिरिशेनापिदेवेन केनेदंदुष्कृतंकृतम् ॥ ३९ ॥ माविडम्बयदेवेशं बद्धोह्यसित्वमद्यनः ॥ एवन्तैर्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्रशङ्करः ॥ ४० ॥ स्मितंकृत्वाब्रवीत्सर्वान् ब्राह्मणान्परमेश्वरः ॥ ममाभिघ्नन्तिकिंयूयमुन्मत्तंनष्टचेतसम् ॥ ४१ ॥ यूयंकारुणिकास्सर्वे मित्रभावेव्यवस्थिताः ॥ तमेवंवादिनन्देवं जाल्मरूपधरंहरम् ॥ ४२ ॥ माययातस्यदेवस्य मोहितास्तेद्वि

मुकुटको पकड़कर खींचते थे ॥ ३७ ॥ और कोई व्रतचर्याको पूंछते थे कि किससे यह व्रत दिखलाया गया है और यहां स्त्रियां हैं तुमने कैसे ऐसा किया ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा ने व आपही विष्णु या गिरीश शिवजी ने ऐसी चर्या (कर्तव्यता) किया किसने इस पापको कियाहै ॥ ३९ ॥ देवेश शिवजीकी मत विडम्बना कीजिये आज हमलोगों से तुम बँधगये इसप्रकार वहांपर उन ब्राह्मणों से मारेजातेहुये सदाशिव ॥ ४० ॥ परमेश्वरजी मुसकराकर सब ब्राह्मणों से बोले कि नष्टचित्तवाले मुझ उन्मत्तको तुमलोग क्यों मारते हो ॥ ४१ ॥ तुमलोग सब दयावान् व मित्रता में स्थित हो इसप्रकार कहते हुये उन जाल्म (नीच) रूपधारी शिवदेवजी को

देखकर ॥ ४२ ॥ वे ब्राह्मणलोग उन शिवदेवजी की मायासे मोहित हुये और उन ब्राह्मणों ने फिर जटाधारी शिवजी को हाथ व पांवसे मारा ॥ ४३ ॥ उन ब्राह्मणों से मारेजाते हुये शिवजी बड़े क्रोधको प्राप्तहुये तदनन्तर शिवदेवजी ने उनको शाप दिया कि तुमलोग वेदसे रहित होवो ॥ ४४ ॥ और ऊपर जटाजूटवाले व दण्ड समेत तथा पराई स्त्री से जीविकावाले और जुवा व वेश्या में परायण होवो और पिता, मातासे रहित होवो ॥ ४५ ॥ और पुत्र में पिताका धन व विद्याभी न होगी जिन्होंने मेरी जटा को नाश कियाहै वे सब इन्द्रियोंसे रहित होवैं ॥ ४६ ॥ व भिक्षाको मांगतेहुये वे भयंकर पुरुष पराई पीड़ा से जीविकावाले होवैं व धन धान्य

जातयः ॥ पुनःकपर्दिनंजघ्नुः पाणिपादेनवैद्विजाः ॥ ४३ ॥ ताड्यमानस्तुतैर्विप्रैः परंकोपमुपागमत् ॥ ततोदेवेनतेशप्ता यूयंवेदविवर्ज्जिताः ॥ ४४ ॥ ऊर्ध्वजूटास्सलगुडाः परदारोपजीविनः ॥ रताद्यूतेचवेश्यायां पितृमातृविवर्ज्जिताः ॥ ४५ ॥ नपुत्रेपितृवित्तंच विद्यावापिभविष्यति ॥ शेफोममहतोयैश्च तेसर्वेन्द्रियवर्जिताः ॥ ४६ ॥ रौद्राभिक्षान्तु भिक्षन्तः परपीडोपजीविनः ॥ आत्मानंवर्णयिष्यन्ति धनधान्यविवर्जिताः ॥ ४७ ॥ यैश्चतत्रकृताविप्रैर्हन्यमानेकृपा मयि ॥ तेषांधनञ्चपुत्राश्च दासीदासादयश्चवै ॥ ४८ ॥ कुलोत्पन्नाश्चवैनार्यो भविष्यन्तिवरान्मम ॥ एवंशापंवरन्द त्त्वा गतोन्तर्द्धानमीश्वरः ॥ ४९ ॥ ततोद्विजागतेदेवे मत्वातंशङ्करंविभुम् ॥ अन्वेषयन्तोयत्नेन महाकालवनङ्गताः ॥ ५० ॥ स्नात्वासरसिरुद्रस्य जपन्तःशतरुद्रियम् ॥ जाप्यावसानेतान्देवोऽशरीरिण्यागिराब्रवीत् ॥ ५१ ॥ अनृतन्नमया प्रोक्तं क्लेशेष्वपिकुतस्सुखे ॥ भूयोप्यनुग्रहंविप्रा युष्माकंकरवाण्यहम् ॥ ५२ ॥ शान्तादान्ताश्चयेविप्रा भक्तिमन्तोम

से रहित वे लोग अपना को वर्णन करैंगे ॥ ४७ ॥ और वहांपर मारेजाते हुये मेरेऊपर जिन ब्राह्मणों ने दया किया उनके धन, पुत्र, दासी व दासादिक ॥ ४८ ॥ और कुलमें उपजी हुई स्त्रियां मेरे वरदान से होवैंगी इसप्रकार शाप व वरदानको देकर सदाशिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर शंकरदेवजीके चलेजानेपर उन प्रभुको शिव जानकर यत्न से ढूंढ़ते हुये ब्राह्मण महाकालवनको गये ॥ ५० ॥ और रुद्रसर में नहाकर शतरुद्रियको जपते हुये उनसे सदाशिवदेवजी जप के अन्तमें आकाशवाणी से बोले ॥ ५१ ॥ कि मैंने क्लेशों में भी झूंठ नहीं कहाहै फिर सुखमें क्या कहना है हे ब्राह्मणो ! मै फिर भी तुमलोगों के ऊपर दया करता

हूं ॥ ५२ ॥ कि जो इन्द्रियों को दमन किये व शान्त ब्राह्मण मुझ में भक्तिमान् स्थित हैं उनका वंश नहीं नाश होताहै और न धन न सन्तान नाश होतीहै ॥ ५३ ॥ और अग्निहोत्र में परायण जो विष्णुजी में भक्तिमान् हैं व ब्रह्मा तथा तेजराशि दिननायकजी को पूजते हैं ॥ ५४ ॥ उनके अशुभ नहीं विद्यमान होताहै कि जिनकी बुद्धि समतामें स्थित है इतना कहकर जगत् के स्वामी देवेश शिवजी चुपहोगये ॥ ५५ ॥ इसप्रकार देवदेव महादेवजी से शाप व वरदान को पाकर सब साथही वहां आये जहां कि ब्रह्मादेवजी थे ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर जपों से ब्रह्माको प्रसन्नकरातेहुये वे आगे स्थित हुये और प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माजीने उनसे कहा कि मुझसे

यिस्थिताः ॥ नतेषांक्षियतेवंशो नधनंनचसन्ततिः ॥ ५३ ॥ अग्निहोत्ररतायेच भक्तिमन्तोजनार्दने ॥ पूजयन्तिच ब्रह्माणं तेजोराशिन्दिवाकरम् ॥ ५४ ॥ नाशुभंविद्यतेतेषां येषांसाम्येस्थितामतिः ॥ एतावदुक्त्वादेवेशो तूष्णीमासीज्जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ एवंशापंवरंलब्ध्वा देवदेवान्महेश्वरात ॥ आजग्मुस्सहितास्सर्वे यत्रदेवःपितामहः ॥ ५६ ॥ विरञ्चिमथतेजाप्यैस्तोषयन्तःपुरःस्थिताः ॥ तुष्टस्तानब्रवीद्ब्रह्मा मत्तोपिव्रियतांवरः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणस्तेनवाक्येन तुष्टाःसर्वेद्विजोत्तमाः ॥ कोवरोयाच्यतांविप्राः परितुष्टेपितामहे ॥ ५८ ॥ एकेतत्राब्रुवन्विप्रा वेदान्वैवृणवामहे ॥ ततोन्येश्चधनंधान्यं वृतमेवाविशङ्कितैः ॥ ५९ ॥ अन्येप्राहुःकिमस्माकं धनैस्तुष्टेपितामहे ॥ अग्निहोत्रादिवेदाश्च शास्त्राणिविविधानिच ॥ ६० ॥ शान्ताआढ्याश्चयेलोका वरदानाद्भवन्तुनः ॥ एवंप्रजल्पतांतत्र विप्राणांकोपआविशत् ॥ ६१ ॥ परस्परंवरार्थेथ युद्धंकर्तुंसमुद्यताः ॥ युध्यन्तेसायुधाःकेचित्केचित्तत्रोपसर्पकाः ॥ ६२ ॥ उदासीनाश्चयेविप्रास्ते

भी वरदान मांगिये ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा के उस वचन से प्रसन्न होतेहुये सब द्विजोत्तम आपसमें बोले कि हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर कौन वरदान मांगाजावै ॥ ५८ ॥ वहां पर कितेक ब्राह्मणलोग बोले कि हमलोग वेदों को मांगते हैं तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों ने धन धान्यको मांगा ॥ ५९ ॥ और अन्य बोले कि ब्रह्माके प्रसन्न होने पर हमलोगों का धनों से क्या प्रयोजन है और अग्निहोत्रादिक व वेद तथा अनेक प्रकारके शास्त्र ॥ ६० ॥ और शान्त व धनवान् जो लोक हैं वे वरदान से हमलोगों के होवैं वहां इसप्रकार कहते हुये ब्राह्मणों के क्रोध ने प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वर के लिये आपस में युद्ध करने के लिये तैयार हुये अस्त्रों

समेत कोई युद्ध करते थे और कोई वहां भगगये ॥ ६२ ॥ और जो ब्राह्मण उदासीन थे वे मौन से स्थित हुये इसप्रकार युद्ध करतेहुये ब्राह्मणोंको देखकर भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ६३ ॥ कि जिसलिये शाला में बाहर टिकेहुये ब्राह्मण भगगये उसीकारण हे ब्राह्मणो ! वह गुल्म युद्धमें मूलसे लगाकर याने पहलेही से भागनेवाला होवै ॥ ६४ ॥ और जो उदासीन गुल्म (सेनाभेद) वृत्ति (जीविका) हीन होगा उसके वेद होवेंगे जोकि मौन स्थित हुआहै ॥ ६५ ॥ और अस्त्रों समेत व युद्ध करने की इच्छावाला जो तीसरा गुल्म है हे ब्राह्मणो ! जीविकाहीन वह चारप्रकार का होगा ॥ ६६ ॥ कि पराई स्त्रियोंमें, वेश्याओंमें, जुवामें व चोरीमें सदैव परायणहोगा

चमौनेनसंस्थिताः ॥ दृष्ट्वैवंभगवान्प्राह विप्रान्युद्धंप्रकुर्वतः ॥ ६३ ॥ यस्मादुपद्रुतंविप्रैः शालायांबाह्यसंस्थितैः ॥ तस्मा दामूलतोविप्रा गुल्मोयुद्धेविसर्प्पकः ॥ ६४ ॥ उदासीनस्तुयोगुल्मो वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ वेदास्तस्यभवेयुर्वै यस्त्वा सीन्मौनसंस्थितः ॥ ६५ ॥ तृतीयस्सायुधोगुल्मो योद्धुकामस्तुयःस्थितः ॥ चातुर्विधस्सवैविप्रा वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ ६६ ॥ परदारासुवेश्यायां द्यूतेचौर्येसदारतः ॥ नज्ञानंनचमोक्षःस्यात्तेषांवैदुष्टचेतसाम् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वाययौब्रह्मा वैराजंभवनोत्तमम् ॥ एवंमेपरमंक्षेत्रं मुनयोवन्तिमण्डले ॥ ६८ ॥ यान्देवनगरींलोके प्रवदन्तीहमानवाः ॥ तस्यान्तु येद्विजाश्शान्ता वसन्तिक्षेत्रवासिनः ॥ ६९ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चिन्ममलोकेभविष्यति ॥ कोकामुखेकुरुक्षेत्रे नैमिषेपु ष्करेषुच ॥ ७० ॥ वाराणस्यांप्रयागेच तथाबदरिकाश्रमे ॥ गङ्गाद्वारेप्रभासेच गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ७१ ॥ रुद्रकोट्यांविरू पाक्षे मित्रस्यापितथावने ॥ तीर्थेष्वेतेषुक्षेत्रेषु यासिद्धिर्द्वादशाब्दिका ॥ ७२ ॥ प्राप्यतेमानवैर्लोके यामासेनैवलभ्य

और उन दुष्टचित्तवाले द्विजों के न ज्ञान होगा न मोक्ष होगा ॥ ६७ ॥ यह कहकर ब्रह्माजी उत्तम वैराज मन्दिरको गये इसप्रकार हे मुनियो! अवन्ती के मण्डल में मेरा उत्तम क्षेत्र है ॥ ६८ ॥ इस लोकमें जिसको मनुष्य देवनगरी कहते हैं उसमें जो क्षेत्रवासी शान्त ब्राह्मण बसते हैं ॥ ६९ ॥ उनको मेरे लोकमें कुछ दुर्लभ न होगा कोकामुख, कुरुक्षेत्र, नैमिष व पुष्कर में ॥ ७० ॥ और काशी, प्रयाग व बदरिकाश्रममें तथा हरिद्वार, प्रभास व गंगासागर के संगम में ॥ ७१ ॥ और रुद्र-कोटि में व विरूपाक्षमें तथा मित्रके भी वन में इन क्षेत्रों में जो बारह वर्षवाली याने बारह वर्ष में सिद्धि होती है ॥ ७२ ॥ वह सिद्धि संसार में मनुष्यों को उज्ज-

यिनी में एकही महीने में मिलती है यदि ब्रह्मचर्यमें मन होताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ७३ ॥ तीर्थोंके मध्य में यह उत्तम तीर्थ है व क्षेत्रोंके बीचमें भी उत्तम है और हे मुनिश्रेष्ठो ! यह तीर्थ मुझको सदैव मनोहर है ॥ ७४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मन्दाकिनी का माहात्म्य व क्षेत्रकी उत्तम उत्पत्ति कहीगई फिर आपलोग अन्य क्या सुनना चाहते हो ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! ब्रह्मा के इस वैसे वचन को सुनकर वे वशिष्ठादिक मुनिलोग उत्तम ध्यानको प्राप्तहुये ॥ ७६ ॥ और बहुत समयतक ध्यानकर उन्हों ने वहां निवास में मनको धारण किया और अग्निहोत्र समेत व स्त्रियों समेत वे अवन्ती के मण्डल में गये ॥ ७७ ॥ और महाकाल-

ते ॥ उज्जयिन्यान्नसन्देहो ब्रह्मचर्येमनोयदि ॥ ७३ ॥ तीर्थानांप्रवरन्तीर्थं क्षेत्राणामपिचोत्तमम् ॥ सदाभिरुचिरंम ह्यमेतद्वैमुनिसत्तमाः ॥ ७४ ॥ मन्दाकिन्यास्तुमाहात्म्यं क्षेत्रस्योत्पत्तिरुत्तमा ॥ भूयःकिमन्यदिच्छन्ति श्रोतुंवैद्विज सत्तमाः ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एतत्तेब्रह्मणोवाक्यं श्रुत्वाव्यासतथाविधम् ॥ वशिष्ठाद्याश्चमुनयः परन्ध्यानम थोगताः ॥ ७६ ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं तत्रवासेमनोदधुः ॥ साग्निहोत्रास्सपत्नीका गताश्चावन्तिमण्डले ॥ ७७ ॥ म हाकालवनंदृष्ट्वा शिप्राञ्चैवमहानदीम् ॥ श्मशानमूखरञ्चैव नदींगन्धवतींतथा ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थमुपस्पृश्य चक्रुर्वा सन्तत्रवै ॥ स्मृत्वातद्ब्रह्मणोवाक्यं रुचिस्तेषांतदाभवत् ॥ ७९ ॥ अरुन्धत्यावशिष्ठश्च गमनंप्रतिमोदितः ॥ उवाच तांमहात्मासौ स्वांभार्यांमुनिसत्तमः ॥ ८० ॥ महाकालःसरिच्छिप्रा गतिश्चैवसुनिर्मला ॥ उज्जयिन्यांविशालाक्षी सःकस्यनरोचते ॥ ८१ ॥ स्नानंकृत्वानरोयस्तु महानद्यांहिदुर्लभम् ॥ महाकालंनमस्कर्ता नैवमृत्युंसशोचयेत्॥८२॥

व शिप्रामहानदी तथा श्मशान, ऊखर व गन्धवती नदीको देखकर ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थ को स्पर्श कर उन्होंने वहां निवास किया व ब्रह्मा के उस वचन उस समय उनकी रुचि हुई ॥ ७९ ॥ और अरुन्धती ने वशिष्ठजीको जाने के लिये प्रेरणा किया व इन महात्मा मुनिश्रेष्ठजीने उस अपनी स्त्री से कहा ॥ हाकाल व शिप्रानदी तथा अतिनिर्मलगति व विशालाक्षीदेवी जहां है उस उज्जयिनी में किसको निवास नहीं रुचता है ॥ ८१ ॥ जो मनुष्य महानदी

में दुर्लभ स्नानकर महाकालजी को प्रणाम करताहै वह मृत्युको नहीं शोचता है ॥ ८२ ॥ और कीट या पतंग मरकर शिवजीका सेवक होताहै जहां पर यह मुक्ति सुनी जाती है वह मुझसे कैसे छोड़ीजावै ॥ ८३ ॥ इसप्रकार कहकर इसके अनन्तर मुनियों में मुख्य वशिष्ठजी ने अचानकही वहीं निवास किया और वनकी संपदा को कहते हुये वे मुख्य मुनियों समेत इसी उज्जयिनी में स्थित हुये ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमन्दाकिनीमाहात्म्य वर्णनंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ● ॥ ⊛ ॥ ● ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

मृतःकीटःपतङ्गोवा रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ यत्रैषाश्रूयतेमुक्तिः कथंसात्यज्यतेमया ॥ ८३ ॥ एवंप्रजल्प्याथमुनिप्रधानस्तत्रैववासंसहसाचकार ॥ वनस्यव्युष्टिंपरिकीर्तयंस्तुस्थितस्सहैवात्रमुनिप्रधानैः ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेमन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनन्नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अवन्त्यामङ्कपादाख्ये पश्येद्रामजनार्द्दनौ ॥ ययोर्दर्शनमात्रेण यमलोकन्नपश्यति ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ कथंतावङ्कपादाख्ये यातावत्रमहामुने ॥ नपश्येद्यमलोकंस यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ भारावतारणार्थाय देवौरामजनार्दनौ ॥ अवतीर्णौयदोर्वंशे दिव्यरूपौमहाद्युती ॥ ३ ॥ कंसंहत्वाथचाणूरमुग्रसेनंनराधिपम् ॥ अभिषिच्यस्वयंराज्ये यदुसिंहउवाचतम् ॥ ४ ॥ किंकार्यंतेमयाब्रूहि कर्तव्यन्तेसुतेहते ॥ एवमुक्तस्स

दो० । आन्यो मृत गुरुपुत्र को यथा कृष्ण बलदेव । तेंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अवन्ती में अंकपाद नामक क्षेत्र में मनुष्य बलराम व जनार्दन (श्रीकृष्ण) जी को देखै कि जिनके दर्शनही से पुरुष यमलोकको नहीं देखताहै ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! यहां अङ्कपादनामक क्षेत्रमें वे किस प्रकार प्राप्तहुयेहैं कि जिनके देखनेसे मनुष्य यमलोकको नहीं देखताहै यद्यपि वह ब्रह्मघाती होवै ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि भारको उतारने के लिये दिव्यरूपवाले व महाछविवाले बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने यदु के वंशमें अवतार लियाहै ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर कंस व चाणूर को मारकर तथा उग्रसेन राजा

को राज्यपै अभिषेककर आपही यदुवंशमें सिंहरूप श्रीकृष्णजी उनसे बोले ॥ ४ ॥ कि मुझसे तुम्हारे पुत्रके मारने पर मुझको तुम्हारा क्याकार्य करना चाहिये यह कहिये इस प्रकार कहेहुये उस राजा उग्रसेनने यह कहा ॥ ५ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! आपको सब वस्तु प्राप्तहै कुछ दुर्लभ नहीं है और तुम दोनों भी विशेष कर जाने हुये समस्त विज्ञानवाले होवोगे ॥ ६ ॥ तुम दोनों उज्जयिनी पुरीको जाओ और विद्यावान् होवोगे तदनन्तर बलराम व श्रीकृष्णजी सांदीपनि ब्राह्मण के समीप गये ॥ ७ ॥ और वेदोंको कण्ठस्थ किया व उन्होंने समस्त आचार व रहस्य समेत तथा संहार समेत धनुर्वेद को पढ़ा ॥ ८ ॥ हे द्विज ! चौंसठ दिनरातों से वह अद्भुत

राजावै उग्रसेनोब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥ सर्वंसम्पत्स्यतेकृष्ण भवतोहिनदुर्लभम् ॥ विज्ञाताखिलविज्ञानौ भवितारावुभावपि ॥ ६ ॥ गच्छेतामुज्जयिन्यांवै कृतविद्यौभविष्यथः ॥ ततस्सान्दीपनिंविप्रं जग्मतूरामकेशवौ ॥ ७ ॥ कण्ठस्थांश्चक्रतुर्वेदानाचारमखिलश्चतौ ॥ सरहस्यंधनुर्वेदं ससंहारंतथैवच ॥ ८ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभूद्द्विज ॥ सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोःकर्मातिमानुषम् ॥ ९ ॥ विचिन्त्यतौतदामेने प्राप्तौचन्द्रदिवाकरौ ॥ ततःकिञ्चित्सनोवाचस्नातुंतीर्थमथोययौ ॥ १० ॥ शिष्यैस्तुसहितोविप्रो महाकालमथाविशत् ॥ शिष्यैस्सहप्रविष्टौद्वौ तदातौरामकेशवौ ॥ ११ ॥ वन्द्यमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् ॥ त्वयानाथेनदेवानां मनुष्यत्वेहितिष्ठता ॥ १२ ॥ सुखमासीच्चसाधूनामज्ञानानाञ्चसर्वदा ॥ जनपीडाकरायेतु सदाबलदर्पिताः ॥ १३ ॥ युवाभ्यांतेहतास्सर्वे कंसप्रमुखतोनृपाः ॥ मुनिसिद्धसुरा

होगया और सांदीपनि ने मनुष्यों के न करने योग्य व संभावना के अयोग्य उनदोनोके कर्मको देखकर ॥ ९ ॥ व चिन्तन कर उससमय उनको प्राप्तहुये चन्द्रमा व सूर्य माना तदनन्तर वे कुछ न बोले इसके अनन्तर नहाने के लिये चले गये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर शिष्यों समेत वे विप्रजी ! महाकालवन में पैठे और उस समय शिष्यों समेत वे बलभद्र व श्रीकृष्णजी दोनों ने प्रवेश किया ॥ ११ ॥ व प्रणाम कियेजाते हुये महाकालजी उस समय कृष्णजीसे बोले कि मनुजता में टिके हुये तथा देवताओं के स्वामी तुम से ॥ १२ ॥ साधुओं को व अज्ञानियों को सदैव सुखहुआ है और जो मनुष्यों के पीड़ाकारक व सदैव बल से गर्वित थे ॥ १३ ॥

वे कंसादिक सब राजा तुम दोनोंसे मारेगये हे अनघ ! तुमको मुनि व सिद्ध तथा देवतादिकों की स्थिति (पालन) करना चाहिये ॥ १४ ॥ करूंगा उनसे यह कह कर प्रणाम करने योग्य वे चलेगये सांदीपनि को देखकर प्रतिदिन शिष्यलोग ऐसा कहते थे ॥ १५ ॥ परन्तु कोई भी नहीं श्रद्धा करता था क्योंकि उनके वचन बहुत ही अद्भुत थे तदनन्तर शिष्यों से कहेहुये आश्चर्यको देखने के लिये आपही गये॥ १६ ॥ तदनन्तर वैसाही शब्द उठा व उन दोनों को मिलाप हुआ और वहां घर में आये हुये उन दोनोंसे गुरुजी वचन बोले ॥ १७ ॥ कि यदि यदुवंश में उपजे हुये तुम दोनों वीर हो तो मुझसे नहीं जानेगये तदनन्तर कृतकृत्य श्रीकृष्णजी

दीनां स्थितिःकार्यात्वयानघ॥१४॥करिष्यामितमित्युक्त्वासनमस्यस्ततोययौ ॥ दृष्ट्वासान्दीपनिंशिष्या ऊचुरेवंदिनेदिने ॥ १५ ॥ कोपिनाश्रद्दधत्तेषां वचस्त्वत्यद्भुतंयतः ॥ स्वयंययौततोद्रष्टुमाश्चर्यंशिष्यभाषितम् ॥ १६ ॥ ततस्तथोत्थितःशब्दः संश्लेषश्चतथातयोः ॥ तावागतौगृहंतत्रगुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ नवैज्ञातौमयावीरौ यदिवृष्णिकुलोद्भवौ ॥ ततस्सान्दीपनिंकृष्णः कृतकृत्योब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥ गुर्वर्थंकिन्ददामीति सहरामेणहर्षितः ॥ तच्छ्रुत्वावचनंहृद्यं गुरुःप्रोवाचहर्षितः ॥ १९ ॥ पुत्रमिच्छाम्यहंत्वत्तो योमृतोलवणाम्भसि ॥ पुत्रएकोहिमेजातस्सचापितिमिनाहतः ॥ २० ॥ प्रभासेतीर्थयात्रायां त्वमेवतमिहानय ॥ तथेतिचाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगतः ॥ २१ ॥ तंसमुद्रउवाचेदं दैत्यःपञ्चजनोमहान् ॥ तिमिरूपेणतंबालं ग्रस्तवान्मयिसंस्थितः ॥ २२ ॥ ततःपञ्चजनंहत्वा ग्राहरूपंमहाबल

सांदीपनि से वचन बोले ॥ १८ ॥ कि बलभद्र समेत प्रसन्न मैं गुरुके लिये क्या देऊं उस मनोहर वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुये गुरुजी बोले ॥ १९ ॥ कि जो क्षारसमुद्र में मरगया है उस पुत्रको मैं तुमसे चाहता हूं मेरे एक पुत्र पैदा हुआ था उसको भी तीर्थयात्रा में तिमिनामक मत्स्यने प्रभासक्षेत्र में मारडाला उसको तुम्हीं यहां ले आवो बलभद्रजीके मत में प्राप्त श्रीकृष्णजी ने यह कहा कि वैसाही होगा ॥ २० । २१ ॥ उनसे समुद्र ने यह कहा कि पंचजन नामक बड़े भारी दैत्य ने तिमिमत्स्य के रूपसे उस बालक को ग्रस लियाहै जोकि मुझ में टिकाहै ॥ २२ ॥ तदनन्तर ग्राहरूपी बड़े बलवान् पंचजन दैत्यको मारकर उसके

बीचमें स्थित शंखको ग्रहण किया जोकि पहले जल के बीचमें स्थित ग्राहसे बड़ीलीला से ग्रसित हुआ था जब उसके पेटमें श्रीकृष्णजी ने बालक को न देखा ॥ २३ । २४ ॥ तब यममन्दिर में प्राप्त मानकर वरुण से कहा कि हे जलजन्तुवोंके स्वामी, भगवन् ! मुझको बड़ा भारी रथ दीजिये ॥ २५ ॥ कि जिससे समर में उनको मारकर प्रेतों के पति यमराज को देखूं पुरातम समय मैंने जिस रथ से संग्राम में बलसे गर्वित दैत्यों व दानवों को माराहै आज मुझको उसी रथ को दीजिये हे जलोंके स्वामी ! जब समर समाप्त होगया था तब मैंने न्यासभूत याने धरोहर की नाईं जिस रथको तुम्हारे समीप धरा है उसको दीजिये यह सुनकर

म् ॥ तन्मध्यस्थंचजग्राह शङ्खंग्रस्तोहियःपुरा ॥ २३ ॥ जलमध्यस्थितेनैव ग्राहेणातीवलीलया ॥ तस्योदरेयदाबालं नददर्शजनार्द्दनः ॥ २४ ॥ यमालयगतंमत्वा तदावरुणमब्रवीत् ॥ भगवन्यादसामीश रथोमेदीयताम्महान् ॥ २५॥ येनाहवेहिताञ्जित्वा पश्येयंप्रेतपंयमम् ॥ पुराजिरेहतादैत्या दानवाबलदर्पिताः ॥ २६ ॥ मयायेनरथेनाद्य समद्यंदीयतांरथः ॥ न्यासभूतोरथोयस्ते विधृतोपरतेरणे ॥ २७ ॥ मयाधर्मंपुरस्कृत्य दीयतांसद्यपाम्पते ॥ एतच्छ्रुत्वाप्रहृष्टात्मा ज्ञात्वाकार्यार्थिनंहरिम् ॥ २८ ॥ ददौतुरथमक्षोभ्यं रणेतस्मैसुरासुरैः ॥ ततोहरिस्समालोक्य रथंरत्नपरिष्कृतम् ॥ २९ ॥ द्वीपिचर्मपरीधानं वैयाघ्रपरिवारितम् ॥ नानाचित्रविचित्राङ्गं गरुडध्वजराजितम् ॥ ३० ॥ संयुक्तंशैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ अजेयन्देवदेवेन्द्रदानवासुरराक्षसैः ॥ ३१ ॥ अनेकायुधसम्पूर्णं मणिविद्रुमभूषितम् ॥ सहस्रसूर्यप्रतिमं चारुवक्रंचतुर्युगम् ॥ ३२ ॥ किङ्किणीशतशोभाढ्यं घण्टाचामरचन्द्रिकम् ॥ संवर्त्ताकारविषमं खगे

प्रसन्न चित्तवाले वरुणजी ने कार्यार्थी श्रीकृष्णजी को जानकर ॥ २६ । २७ । २८ ॥ समर में देवताओं व दैत्यों से क्षोभरहित रथको उन श्रीकृष्णजी के लिये दिया तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने रत्नों से जटित रथको देखकर ॥ २९ ॥ जोकि चीते के चर्म से नीचे बिछौनेवाला व व्याघ्रचर्म से घिरा था व अनेक प्रकार के चित्र विचित्र अगोंवाला तथा गरुड के ध्वजा से शोभित ॥ ३० ॥ व शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प व बलाहक नामक घोड़ोंसे संयुत था और देवता, देवेन्द्र, दानव, असुर व राक्षसों से न जीतने योग्य था ॥ ३१ ॥ व अनेक अस्त्रों से संपूर्ण तथा मणियों व मूंगों से भूषित था और हज़ार सूर्यों के समान प्रकाशमान तथा सुन्दर धुरी व चार

जुआँवोंवाला था ॥ ३२ ॥ व सैकड़ों घंटियों से शोभासंयुत व घंटा और चामरकी चन्द्रिकावाला था व प्रलय के समान आकार से विषम और उत्तम गरुड़ के ध्वजावाला था ॥ ३३ ॥ उस रथको देखकर बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी विस्मयरहित होकर प्रसन्न हुये और प्रदक्षिणापूर्वक जाकर व देवताओं के लिये प्रणाम कर ॥ ३४ ॥ जन्मरहित श्रीकृष्णजी बड़े भाई समेत विमान के समान रथ पै चढ़े ॥ ३५ ॥ तदनन्तर संसार के निवासभूत श्रीकृष्णजी शीघ्रतासंयुत होकर यम-लोकके आश्रित दिशाको गये और उन अच्युत श्रीकृष्णजी ने हज़ारों किरणों से घिरीहुई पुरीको देखा और शंखको लेकर ॥ ३६ ॥ तलवार व धनुषको धारण किये

न्द्रवरकेतनम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदेवीतविस्मयः ॥ प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यःप्रणम्यच ॥ ३४ ॥ आरुरोहरथंविष्णुर्विमानंसाग्रजोऽजनः ॥ ३५ ॥ ततोजगामत्वरितोजनार्द्दनो जगन्निवासोयमलोकमाश्रिताम् ॥ दिशं सहस्रैःकिरणैर्वृताम्पुरीं ददर्शशङ्खंपरिगृह्यचाच्युतः ॥ ३६ ॥ तत्रप्रध्मापयामास शङ्खंखड्गधनुर्धरः ॥ तेनशब्देनवित्र स्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥ ३७ ॥ नरकान्तर्गतामर्त्याः पापाचारपरायणाः ॥ सुखमापुःप्रशान्ताश्च वह्नयःकृष्णद र्शनात् ॥ ३८ ॥ शस्त्राणिकुण्ठतांप्रापुर्यन्त्राणिविविधानिच ॥ विदीर्णानितदाचाशु देवदेवस्यदर्शनात् ॥ ३९ ॥ असिपत्रवनन्नाम शीर्णपर्णमजायत ॥ रौरवन्नामनरकमभैरवमभूत्तदा ॥ ४० ॥ अभैरवंभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचि कम् ॥ शृङ्गाटंशृङ्गसदृशं लोहसूच्यप्यसूचिका ॥ ४१ ॥ दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणीनृणाम् ॥ नरकान्तेतदाजाते

श्रीकृष्णजी ने शंख को बजाया उस शब्दसे यमलोकनिवासी डरगये ॥ ३७ ॥ और पापके आचरण में परायण नरकमध्यगामी पुरुषों ने श्रीकृष्णजी के दर्शन से सुख पाया व अग्नियां शान्त होगईं ॥ ३८ ॥ और उस समय देवदेव श्रीकृष्णजीके दर्शन से शीघ्रही शस्त्र कुण्ठताको प्राप्तहुये और अनेक भांतिके यन्त्र फटगये॥३९॥ व असिपत्र नामक वन गिरेहुये पत्तोंवाला याने पत्तों से हीन होगया और उस समय रौरव नामक नरक अभयानक होगया ॥ ४० ॥ व भैरव नामक नरक अभैरव हुआ और कुंभीपाक बिन पचानेवाला हुआ तथा शृगाट नरक शिखर के समान व लोहसूची नरक सूचीरहित हुआ ॥ ४१ ॥ और दुःख से उतरे योग्य वैतरणी नदी

मनुष्योंको सुखसे उतरनेवाली हुई उस समय जब व्यापक जगदीशजी वहां गये तब नरकों का अन्त होनेपर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर पापोंके क्षय होने के कारण वे सब मनुष्य नरक से छूटगये अविनाशी स्थान पै प्राप्तहोकर अज्ञाननाशक श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४३ ॥ वे पुरुष सब ओर हजारों विमानो पै चढ़े और कमललोचन श्रीकृष्णजी को देखकर वे सब पाप से छूट गये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे मुने ! उन विश्वरूपी श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब नरकमण्डल शून्य होगया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर विकलतारहित यमराज के दूतों ने नरकों में पैठते हुये युद्धकारक श्रीकृष्णजी को मना किया ॥ ४६ ॥ दूत बोले कि हे वीर ! इस मार्ग से रथ

गतेविश्वेश्वरेविभौ ॥ ४२ ॥ पापक्षयात्ततस्सर्वे तेमुक्तानरकान्नराः ॥ पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वाविष्णुंतमोपहम् ॥४३॥ विमानेषुसहस्रेषु ह्यारूढास्तेसमन्ततः ॥समीक्ष्यपुण्डरीकाक्षं मुक्तास्तेसर्वपातकात् ॥४४॥ ततश्शून्यंमुनेजातं सर्वंनिरयमण्डलम् ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिणः ॥ ४५ ॥ ततोदूताःकृतान्तस्य कृष्णञ्चयुद्धकारिणम् ॥ वारयामासुरव्यग्रा विशन्तंनरकान्प्रति ॥ ४६ ॥ किङ्कराऊचुः ॥ मावीरानेनमार्गेण रथमानयमानवाः ॥ प्रयान्त्यधोगतिंपापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥ ४७ ॥ यमादिष्टानराःपापाद्येमोच्यावर्षकोटिभिः ॥ दृष्ट्वातएवसद्यस्त्वां गतास्स्वर्गमघावृताः ॥ ४८ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तेषां कृपयापीडितोभृशम् ॥ पुनःप्रोवाचमधुहा मोक्षायाहमुपागतः ॥ ४९ ॥ सर्वेषां स्वर्गदाताहं यमलोकनिवारकः ॥अञ्जसायमराड्दूता यमायाख्यातमेवच ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वावचोदूतास्सत्वरायममागताः ॥ सर्वमाचख्युरेवृत्तं यथानारकिमोक्षणम् ॥ ५१ ॥ ततोयमोरुषाविष्टःप्राहतान्यमकिङ्करान् ॥ यःकश्चिदागतोम

को मत लाइये क्योंकि पराई स्त्री व धन को हरनेवाले मनुष्य पाप से अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ यमराज से आज्ञा दियेहुये जो मनुष्य पाप से करोड़ों वर्षों में छोड़ने योग्य थे पापों से घिरे हुये वेही तुमको देखकर उसी क्षण स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ उनके इस वचन को सुनकर दया से बहुतही पीड़ित मधुदैत्यनाशक श्रीकृष्णजी फिर बोले कि मैं मोक्ष के लिये आया हूं ॥ ४९ ॥ और मैं यमलोक का निवारक व सबों को स्वर्गदायक हूं हे यमराज के दूतो ! तुमलोग शीघ्रही मेरे वचन को यमराज से कहिये ॥ ५० ॥ इस वचनको सुनकर शीघ्रता समेत दूत यमराजके समीप आये व उन्होंने नारकी जनोंके मोक्षवाले सब वृत्तान्त

को कहा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर क्रोध से संयुत यमराजजी उन यमदूतों से बोले कि जो कोई मर्यादा का भेदकारक मृत्युलोकवाला मनुष्य आया हो ॥ ५२ ॥ उसको जाकर मना करिये और पकड़ कर यहां ले आइये और दूतों समेत यह नरांतक नामक दूत जावै ॥ ५३ ॥ यमराज से इसप्रकार कहे हुये उस नरांतक दूत ने जाकर उग्र बचनों से उन श्रीकृष्णजी को मनाकिया ॥ ५४ ॥ जब मनाकिये हुये श्रीकृष्णजी न स्थित हुये तब नरान्तक क्रोधित हुआ और उसने बहुतही उग्र बाणों से श्रीकृष्णजी को मारा ॥ ५५ ॥ और समर में बलभद्र भी अनेक भांतिके बाणों से ताड़ित हुये व भयंकर यमराजके दूतों से सब ओर वे दोनों ताड़ित

र्यो मर्यादाभेदकृन्नरः ॥ ५२ ॥ तंगत्वावारयध्वंवै गृहीत्वानीयतामिह ॥ अयन्नरान्तकोयातु किङ्करस्सहकिङ्करैः ॥ ५३ ॥ एवमुक्तोयमेनाथ किङ्करस्सनरान्तकः ॥ गत्वातंवारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥ ५४ ॥ यदानवारितस्त स्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तकः ॥ तदाशरैरतीवोग्रैस्ताडितस्तेनकेशवः ॥ ५५ ॥ बलदेवोपिसमरे ताडितोविविधैश्शरैः ॥ तावुभौताडितौघोरैःसमन्ताद्यमकिङ्करैः ॥ ५६ ॥ आदायधनुषीदिव्ये जघ्नतुर्यमकिङ्करान् ॥ बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरा मजनार्द्दनौ ॥ ५७ ॥ नरान्तकोपिसमरे बलेनबलिनार्द्दितः ॥ पपातगदयाभिन्नो मूर्ध्निनिर्गतलोचनः ॥ ५८ ॥ ततोन रान्तकेवीरे पतितेयमकिङ्करे ॥ किङ्कराणामभूत्सैन्यमार्त्तरणपराङ्मुखम् ॥ ५९ ॥ तेदूताराभकृष्णाभ्यां हन्यमानाभ यातुराः ॥ यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपातनम् ॥ ६० ॥ ततोयमोययौक्रुद्धः समन्तात्किङ्करैर्वृतः ॥ ततःप्राहयमःक्रु द्धोनोजितोहंपुरापरैः ॥ ६१ ॥ ततोवादित्रघोषैस्तु मुरजानकगोमुखैः ॥ नानाडमरुकाद्यैश्चचित्रगुप्तेचगच्छति ॥ ६२ ॥

हुये ॥ ५६ ॥ और दिव्य धनुषोंको लेकर उन क्रोधित बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने अनेक हजार बाणों से यमदूतों को मारा ॥ ५७ ॥ और बलिष्ठ बलभद्रजी से युद्ध में नरांतक भी विकल हुआ व गदा से भिन्नमस्तकवाला व निकले हुये लोचनोंवाला वह गिरपड़ा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर यमदूत नरांतक वीर के गिरनेपर दूतों की विकल सेना युद्ध से विमुख हुई ॥ ५९ ॥ बलभद्र व श्रीकृष्णजी से मारे हुये भय से विकल उन दूतों ने यमराज से नरांतक का नाश कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर सब ओर दूतों से घिरे हुये क्रोधित यमराजजी गये उसके उपरान्त क्रोधित यमराज ने कहा कि पुरातन समय शत्रुओं ने मुझको नहीं जीताहै ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त

मुरज, ढोल व गोमुख और अनेक भांति के डमरू आदिक बाजाओं के शब्दों से चित्रगुप्तके जाने पर॥ ६२ ॥ देवता, विद्याधर व सिद्ध यमराज के समर में क्षोभ-रहित व कामपालक जगदीश व बड़े बलवान् श्रीकृष्णजी को देखने के लिये प्राप्तहुये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर चित्रगुप्तसे प्रेरणा किये हुये दूतोंने शरसमूहों से सब ओर रथको घेरकर समर में बलभद्र व श्रीकृष्णजी को पीड़ित किया और चित्रगुप्त के देखते हुये समर में अनेक भांतिके बाणोंसे उन दोनों ने भी मारा ॥ ६४ । ६५ ॥ और सब ओर से हज़ारों दूतों को विदारण कर यमराजकी सेनाके बीच में समर में दुर्धर्ष व काम से पालित श्रीकृष्णजी यमराजकी नाईं घूमने लगे ॥६६।६७॥

देवाविद्याधराःसिद्धाद्रष्टुं प्राप्तामहाबलम् ॥ कृतान्तस्यरणेऽक्षोभ्यंकामपालंजगत्पतिम् ॥ ६३ ॥ ततस्तेकिङ्कराःसर्वे चित्रगुप्तेननोदिताः ॥ रथमावृत्यबाणौघैः प्रबबाधुस्समन्ततः ॥ ६४ ॥ बलञ्चकेशवंसंख्ये जघ्नतुस्तावुभावपि ॥ रणे चविविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्यपश्यतः ॥ ६५ ॥ विदार्यचसहस्राणि किङ्कराणांसमन्ततः ॥ कुन्तातानीकिनीमध्ये कृतान्त इवकेशवः ॥ ६६ ॥ चचाररणदुर्द्धर्षः कामपालेनपालितः ॥ ६७ ॥ ततश्चित्रगुप्तोरणेकिङ्करौघं विदीर्णंनिरीक्ष्यार्त नादंचकार ॥ शरैःपञ्चभिःकृष्णमायान्तमाजौ जघानाष्टभिर्वक्त्रदेशेसभिन्नः ॥ ६८ ॥ शरार्तोरथोपस्थआसीत्तदानीं तमालोक्यभिन्नंरणेनष्टसंज्ञम् ॥ रथंस्वंसमादाययातःकृतान्तस्ततश्चित्रगुप्तेशरार्तेप्रसुप्ते॥ ६९ ॥ रणेकीर्त्तिलुप्तेभयक्षो भयुक्ताः स्वसैन्यैश्चयुक्ताभयार्तानिषण्णाः ॥ प्रधानाश्चभग्नाविचित्राश्चभग्नास्ततश्चित्रगुप्तंनिशम्याथभग्नम्॥ ७० ॥

तदनन्तर युद्ध में दूतगणों को विदीर्ण देखकर चित्रगुप्त ने दुःखित शब्दको किया और समर में आतेहुये श्रीकृष्णजी को पांच बाणों से मारा और वे चित्रगुप्त आठ बाणों से मुख में भेदितहुये ॥ ६८ ॥ और बाणों से विकल चित्रगुप्त रथ पै स्थितहुये उस समय समर में नष्टचेतनावाले व विदीर्ण उन चित्रगुप्त को देखकर अपने रथको लेकर यमराजजी प्राप्तहुये तदनन्तर समर में लुप्त यशवाले व बाण से विकल चित्रगुप्त के मूर्च्छित होने पर भय व क्षोभ से संयुत व अपनी सेनाओं से युक्त मुख्य यमदूत भग्न व भय से विकल होकर स्थित होगये व विचित्र गण विदीर्ण हुये तदनन्तर चित्रगुप्त को विदीर्ण देखकर इसके अनन्तर ॥ ६९ । ७० ॥

उन यमराजजी ने दूरही से आते हुये देवारिशत्रु श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तमसेना को लेकर युद्ध किया जैसे कि प्रलय में प्रजाओं के नाश के लिये ज्वालाओंसे बढाहुआ वडवानल वर्तमान होवै ॥ ७१ ॥ आतेहुये उन करालकाल को देखकर श्रीकृष्णजी ने कालके समान बाणों से यमराजको आच्छादित किया और उन यमराजजी ने भयंकर दण्डको लेकर सब देवताओं के देखते हुये श्रीकृष्णजी के ऊपर छोड़ा ॥ ७२ ॥ तदनन्तर प्रजाओं का नाशकारक वह कालदण्ड श्रीकृष्णजीके समीप प्राप्तहुआ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, यक्ष व मुनीन्द्रोंने बलभद्रजी को देखकर बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ७३ ॥ और शेषमूर्तिवाले उन बलभद्रजीने जलते

सकालस्तमायान्तमालोक्यदूराद्दरंसैन्यमादाय देवारिशत्रुम् ॥ विनाशाययुध्ययुगान्तेप्रजानां यथावाडवो ज्वालवृद्धःप्रवृत्तः ॥ ७१ ॥ तमायान्तमालोक्यकालंकरालं शरैरावृणोदन्तकंकालकल्पैः ॥ सकालःकरालंसमादायदण्डं मुमोचाच्युतेपश्यतान्देवतानाम् ॥ ७२ ॥ ततःकालदण्डःप्रजानांविनाशो हरेस्सन्निकाशंसमभ्याजगाम ॥ ततोदेवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः परंविस्मयंप्रापुरन्वीक्ष्यरामम् ॥ ७३ ॥ ज्वलन्तञ्जग्राहकालस्यदण्डं सरामोवरंलीलयानन्तमूर्तिः ॥ कालदण्डेगृहीतेबलेनाहवे मोक्तुकामेपुनःकालनाशायवै ॥ ७४ ॥ तूर्णमध्येत्यतत्रान्तरेपद्मजस्तंरणेवारयामासकृष्णंतदा ॥७५॥ मांमुञ्चेत्यब्रवीद्वेधाः कालंकालायुधंबल ॥ त्वयाबलवतावीर चराचरधराधर ॥ धार्यतेशिरसादेव संसारेनास्तितेसमः ॥ ७६ ॥ त्वयाविश्वपतिर्विष्णुरुत्सङ्गेनसदोह्यते ॥ कोन्योस्तित्वत्समोराम योजगद्दहनेक्षमः ॥७७॥ जगत्स्रष्टाजगद्धाता जगद्धर्ताजगत्पतिः ॥ पाल्यतेयस्त्वयासोपि विष्णुर्विश्वैकनायकः ॥ ७८ ॥

हुये उस कालके उत्तम दण्डको खेलही से पकड लिया जब समर में बलभद्र ने कालदण्डको ग्रहण किया व फिर यमराजके लिये छोड़ने की इच्छा किया ॥ ७४ ॥ तब उसी मध्य में शीघ्रही ब्रह्माजी ने आकर उस समय समर में उन श्रीकृष्णजीको मना किया ॥ ७५ ॥ कि हे बलभद्रजी ! कालके समान अस्त्रको यमराज के ऊपर मत छोड़िये ऐसा ब्रह्माजी ने कहा हे चराचर समेत पृथ्वी को धारनेवाले,वीर,देव ! तुम बलवान् से शिरके द्वारा सब पृथ्वी धारण कीजाती है संसारमें तुम्हारे समान कोई नहीं है ॥ ७६ ॥ तुम सदैव गोदीसे जगदीश विष्णुजी को धारण करते हो हे राम ! अन्य कौन है जोकि संसार के धारण करने में समर्थ है ॥ ७७ ॥ तुम संसार

को रचनेवाले व संसार की रक्षा करनेवाले तथा संसार को हरनेवाले और संसारकेस्वामी हो जो तुम से पालन किये जाते हैं वे विष्णु भी संसार के एकही स्वामी हैं॥ ७८ ॥ यहा तुम्हारी स्तुति करनेवाला कौनहै और कौन गुणोंको जानने के लिये योग्यहै और उसी कारण विष्णुजी की नाभि से उपजे हुये कमल स्थानवाले हम लोग तुम्हारी गोदी मे स्थित हैं ॥ ७९ ॥ ऐसा बलभद्रजीसे कहकर फिर देवताओं से घिरेहुये चतुराननजी स्तुतिपूर्वक श्रीकृष्णजी से वचन बोले ॥ ८० ॥ कि हे भयानक मुखवाले कृष्ण ! हे श्रीकृष्णजी ! इस काल के ऊपर दया कीजिये क्योंकि हे जगदीशजी ! आतेहुये आपको यह संसारके एकही स्वामी व नरकसमुद्र से

कस्तेस्तुतिकरोऽस्तीह कोगुणान्वेत्तुमर्हति ॥ ततोवयंत्वदङ्कस्था विष्णुनाभिभवायनाः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वाबलदेव श्च वासुदेवंपुनर्वचः ॥ उवाचचतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्वंवृतस्सुरैः ॥ ८० ॥ कृष्णकृष्णकरालास्य कालस्यास्यकृपांकु रु ॥ यतोभवन्तमायान्तं विष्णुंविश्वैकनायकम् ॥ ८१ ॥ वेत्तिनायंजगन्नाथ नरकार्णवतारकम् ॥ त्वयावैभगवन्पूर्वं यमःसंस्थापितःपदे ॥ ८२ ॥ नृणांदुष्कृतकर्तॄणां नरकाययमःप्रभो ॥ तस्मादस्यजगन्नाथ क्षम्यतांपुरुषोत्तम ॥८३॥ विभोकृतापराधस्य ब्रूहियत्तेविवक्षितम् ॥ एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्कृष्णो धातःशृणुगुरोर्मम ॥ ८४ ॥ सान्दीपनेस्समानीत स्सुतस्तेनागताविह ॥ समर्प्यतांगुरुश्रेष्ठ श्रेष्ठायगुरुदक्षिणा ॥ ८५ ॥ आवाभ्यांयाप्रतिज्ञाता तस्मात्सापाल्यतांवि भो ॥ एतत्पितामहःश्रुत्वा यमंसमरनिर्जितम् ॥ ८६ ॥ समाहूयाब्रवीद्विष्णुर्य्यद्ब्रवीतिकुरुष्वतत ॥ तच्छ्रुत्वाधर्म्म

तारनेवाले विष्णु नहीं जानता है हे भगवन् ! पहले तुम ने यमराजको स्थान पै भलीभांति स्थापित किया है ॥ ८१ । ८२ ॥ हे प्रभो ! जो यमराजजी पाप करनेवाले मनुष्यों के नरकके लिये हैं इसलिये हे पुरुषोत्तम, जगदीशजी ! इनका अपराध क्षमाकीजिये ॥ ८३ ॥ हे विभो ! कियेहुये अपराधवाले यमराज से जो तुम्हारे कहने की इच्छा होवै उसको कहिये इस वचन को सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे विधाता ! सुनिये मेरे गुरु ॥ ८४ ॥ सांदीपनि का पुत्र लायागयाहै उसी से हम दोनों यहा आये हैं श्रेष्ठ गुरुओं के मध्य में उत्तम सांदीपनि के लिये गुरुदक्षिणा दीजावै ॥ ८५ ॥ हे विभो ! हम दोनों से जो प्रतिज्ञा कीगई वह उसीकारण पालन कीजावै

इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने युद्धमें जीतेहुये यमराजको बुलाकर कहा कि जो श्रीकृष्णजी कहते हैं उसको कीजिये उस वचनको सुनकर धर्मराजने ब्रह्मासे यह कहा ॥ ८६।८७ ॥ कि हे विश्वकृत, भगवन् ! यह मार्ग तुमसे नहीं कियागया है कि यमलोक को प्राप्त शरीररहित प्राणी ॥ ८८ ॥ शरीर समेत जावै यह यहां नहीं प्राप्तहोताहै उसकोसुनकर फिर इस संसारके स्वामी आपही ब्रह्माजी बोले ॥८९॥ कि जिस लिये ये संसार को रचनेवाले व संसारको हरनेवालेहैं उसकारण जो चाहते हैं उसको करैं और तुम सांदीपनि मुनि के पुत्रको अर्पण कीजिये ॥ ९० ॥ व हे महामते ! फिर मनुष्य शरीर करके उनको ले आइये उस वचन को सुनकर धर्मराज

राजस्तुविरञ्चिमिदमब्रवीत् ॥ ८७ ॥ भगवन्विश्वकृल्लोकेनैपमार्गस्त्वयाकृतः ॥ यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनःशरीरवान् ॥ ८८ ॥ शरीरसहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते ॥ तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुःस्वयम् ॥ ८९ ॥ विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छतिकरोतुतत् ॥ तस्मादर्पयपुत्रंत्वं मुनेस्सान्दीपनेश्चवै ॥ ९० ॥ नरकायंपुनःकृत्वा तञ्चानयमहामते ॥ तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तथा ॥ ९१ ॥ ससर्जबालरूपञ्च तदात्मानंतदुद्भवम् ॥ अर्पयामासकृष्णाय बालंरूपसमन्वितम् ॥ ९२ ॥ समक्षन्देवतानाञ्च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततःप्राप्यगुरोःपुत्रं प्रभुःप्रीतःप्रजापतिम् ॥ ९३ ॥ प्राहप्राप्तोमयाब्रह्मन् स्वरूपोद्विजदारकः ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ अद्यप्रभृतिलोकेश देशेमच्चरणाङ्किते ॥ ९४ ॥ अवन्त्यामङ्कपादाख्ये मृतानेच्छन्तितेयमम् ॥ महाकालोत्तरेदेवमाद्यंवैपुरुषोत्तमम् ॥ ९५ ॥ विश्वरूपञ्चगोविन्दं शङ्खोद्धारंचकेशवम् ॥ येपश्यन्तिकुशस्थल्यामेतेषांमूर्तिपञ्चकम् ॥ ९६ ॥ तेनरानगमिष्यन्ति विरञ्चेनिरयंक्वचित् ॥ तथै

ने सांदीपनि के पुत्र ॥ ९१ ॥ जोकि तदात्मक थे उन से उपजा हुआ था उस बालकरूपी पुत्रको बिदा किया व रूपसे संयुत बालक को श्रीकृष्णजी के लिये अर्पण किया ॥ ९२ ॥ देवताओं के सामने वह अद्भुतसा होगया तदनन्तर गुरुजी के पुत्रको पाकर प्रसन्न होतेहुये प्रभु श्रीकृष्णजी ब्रह्माजी से ॥ ९३ ॥ बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैंने स्वरूपवाले द्विज बालक को पायाहै श्रीकृष्णजी बोले कि हे लोकेश ! आजसे लगाकर उज्जयिनी में मेरे चरणों से चिह्नित अंकपाद नामक देश (स्थान) में जो मरै वे पुरुष यमराज को न देखैं और महाकालजी के उत्तरमें पुरुषोत्तम आदिदेवको ॥ ९४।९५ ॥ व विश्वरूप, गोविन्द तथा शङ्खोद्धार व केशव

मूर्तियों को जो पुरुष कुशस्थली याने उज्जयिनी में देखते हैं ॥ ९६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे पुरुष कभी नरक को न जावैंगे वैसेही मेरे व बलभद्रजी के यहां आने से नरक वाले जो लोग हैं ॥ ९७ ॥ वे सब तुमसे भयंकर नरक से छूटकर स्वर्गको प्राप्त होवैं ऐसा वचन कहने पर प्रसन्न ब्रह्माजी श्रीकृष्णजी से बोले ॥ ९८ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! तुमने जो कहा है वह सब सदैव होवै और जो आदिपुरुष व श्रेष्ठ तुम पुरुषोत्तमजी को ॥ ९९ ॥ प्रणामकर और जो रुद्रसर में नहाकर देखेंगे व जो अधोज्वल महाकालजी को देखताहै वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होताहै ॥ १०० ॥ इसप्रकार कहेहुये श्रीकृष्णजी पुत्र को लेकर बलभद्र समेत ॥ १ ॥ श्रीब्रह्मादेवजी

वागमनादत्र ममरामस्यनारकाः ॥ ९७ ॥ विमुक्तास्तेत्वयाघोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ॥ इत्युक्तेवचनेवेधाः प्रोवाचप्रीतिमान्हरिम् ॥ ९८ ॥ यत्त्वयोक्तंवचःकृष्ण तदस्तुसकलंसदा ॥ येचत्वामादिपुरुषं प्रथमंपुरुषोत्तमम् ॥ ९९ ॥ प्रणम्ययेचद्रक्ष्यन्ति स्नात्वाशिवसरस्यपि ॥ अधोज्वलंमहाकालं सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ १०० ॥ एवमुक्तोहरिःपुत्रमादायबलेनसह ॥ १ ॥ आपृच्छ्यवेधसन्देवमारुरोहरथंततः ॥ शङ्खमापूरयामास कृतकार्योजनार्द्दनः ॥ २ ॥ मोत्तायनिरयस्थानं नृणांवैपापकर्मणाम् ॥ ततस्तेशङ्खशब्देन स्मरणेनाच्युतस्यच ॥ ३ ॥ दिव्यान्विमानानारुह्य दिवमेवाखिलागताः ॥ शून्यंतन्मण्डलंजातं नारायणसमागमे ॥ ४ ॥ कालोपिदण्डमासाद्य बलदेवात्पुरःपुरम् ॥ प्रविवेशततोधाता तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५ ॥ कृष्णोपिबलवान्वीरः प्राप्तउज्जयिनींपुरीम् ॥ बलदेवसहायस्तु सरथेनाशुगामिना ॥ ६ ॥ ततस्सान्दीपनेःपुत्रमर्पयामासकेशिहा ॥ गुरवेयत्प्रतिज्ञातं सतस्मादनृणोभवत् ॥ ७ ॥ एवंसान्दीपनेः

से पूंछकर तदनन्तर रथ पै सवार हुये और कार्य किये हुये श्रीकृष्णजी ने नरक में टिकेहुये पापकर्मी जनों के मोक्षके लिये शङ्खको बजाया तदनन्तर शङ्ख के शब्द से व श्रीकृष्णजी के स्मरणसे वे पुरुष ॥ २ । ३ ॥ उत्तम विमानों पै चढ़कर सब स्वर्गही को चलेगये और नारायण के समागम में उस नरकका मण्डल शून्य हो गया ॥ ४ ॥ और यमराज ने भी दण्डको लेकर बलभद्र से पहले नगर में प्रवेश किया तदनन्तर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ५ ॥ और बलभद्रकी सहायवाले बलवान् वीर वे श्रीकृष्णजी शीघ्रगामी रथ के द्वारा उज्जयिनी पुरीको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर केशवजी ने सांदीपनि के पुत्र को अर्पण किया और गुरु से जो

प्रतिज्ञा किया था उससे वे श्रीकृष्णजी उऋण हुये ॥ ७ ॥ इसप्रकार फिर आये हुये सांदीपनि के पुत्रको देखकर वहां नगरवासी व राजा बड़े विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और उन्होंने देवोत्तमों में उत्तम मानकर उन वीरों का पूजन किया और सांदीपनिने उन बलभद्र व श्रीकृष्णजी से यह कहा ॥ ९ ॥ कि कल्पपर्यन्त यहांपर तुम्हारा यश स्थित रहैगा और हे यदुपुत्रो ! हमलोग इस स्थान में टिकैंगे ॥ १० ॥ मैंने यदुवंश में उपजे देवकार्य के लिये आयेहुये तुम दोनों नर नारायण देव वीरों को नहीं जाना ॥ ११ ॥ और यदि यहां जो पुरुष नहाता है तो उसकी अल्पमृत्यु नहीं होती है और न रोग होताहै न दुर्दशा होती है तथा स्वर्ग में प्राप्त होताहै और स्वर्ग-

पुत्रं दृष्ट्वाचपुनरागतम् ॥ नागरास्तत्रराजाच विस्मयंपरमंययुः ॥ ८ ॥ तौवीरावर्चयामासुर्मत्वादेवोत्तमोत्तमौ ॥ सान्दीपनिरुवाचेदं तौचरामजनार्द्दनौ ॥ ९ ॥ इहस्थास्यतिवःकीर्तिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ स्थानेतुवयमेतस्मिन् स्थास्यामोयदुनन्दनौ ॥ १० ॥ नविज्ञातौमयावीरौ यदुवृष्णिकुलोद्भवौ ॥ नरनारायणौदेवौ देवकार्यार्थमागतौ ॥ ११ ॥ नाल्पमृत्युर्भवेत्तस्य नव्याधिर्नचदुर्गतिः ॥ प्राप्नोत्यत्रचस्नातश्चेत स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ शङ्खिनंविश्वरूपञ्च माधवञ्चक्रिणंतथा ॥ चत्वारिविष्णुक्षेत्राणि अङ्कपादस्तुपञ्चमः ॥ १३ ॥ एषांयात्रांप्रवक्ष्यामि यथाकार्यामनीषिभिः ॥ मन्दाकिन्यांकृतस्नानो दृष्ट्वारामजनार्दनौ ॥ १४ ॥ शङ्खोद्धारेततस्स्नात्वा प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानंकृत्वाततःकुण्डे गोविन्दञ्चसमर्चयेत् ॥ १५ ॥ चक्रिणञ्चततोदृष्ट्वा विश्वरूपंततोव्रजेत् ॥ तस्याग्रतःकरीकुण्डे स्नानंकृत्वायथाविधि ॥ १६ ॥ पुनस्तेनप्रकारेण प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानंकृत्वाततःकुण्डे गोविन्दञ्चसमर्चयेत् ॥ १७ ॥

लोकमे पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और शङ्खी, विश्वरूप, माधव व चक्री चार विष्णुजी के क्षेत्र हैं व अंकपाद पांचवा क्षेत्र है ॥ १३ ॥ इनकी यात्रा को कहताहूं कि जिस प्रकार वह विद्वानो को करना चाहिये कि मन्दाकिनी मे स्नानकर राम व जनार्दन जी को देखकर ॥ १४ ॥ तदनन्तर शङ्खोद्धार मे नहाकर बलराम व केशवजी को देखै उसके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को भलीभांति पूजै ॥ १५ ॥ तदनन्तर चक्रीजी को देखकर उसके उपरान्त विश्वरूपजी के समीपजावै उनके आगे करीकुण्ड मे विधिपूर्वक नहाकर ॥ १६ ॥ फिर उसी विधि से बलभद्र और केशवजी को देखै उसके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को पूजै ॥ १७ ॥

वैसेही चक्र हाथोंवाले उन दोनोंको देखकर केशवजी के समीपजावै व शिप्रानदीके जलमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे केशवजीको पूजकर ॥ १८ ॥ अंकपादमें लौटकर वह पवित्र पुरुष उसरात्रिको व्यतीतकरै और प्रातःकाल उत्तम व्रतोंवाले पांच ब्राह्मणोंको भोजनकरावै ॥ १९ ॥ व शङ्खी के लिये गऊ दक्षिणा व विश्वरूपजी के लिये अश्व तथा गोविन्दजी के लिये हाथी कहागयाहै और केशवजी को सब कुछ देवै ॥ २० ॥ ॥ व हे विप्रजी! जो पुरुष द्वादशी को उपासकर अंकपादजी को चन्दन, पुष्प, धूप व अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजता है ॥ २१ ॥ व जो श्राद्ध करता है उसके सब पुण्यके फलको सुनिये कि सौ कुलोंको उद्धारकर सब कामनाओंवाले विमानों

तथैवचक्रहस्तौतौ दृष्ट्वाकेशवमाव्रजेत् ॥ शिप्राम्भसिनरस्स्नात्वा भक्त्यासम्पूज्यकेशवम् ॥ १८ ॥ परावृत्याङ्कपा देतु तांरात्रिङ्गमयेच्छुचिः ॥ प्रातर्वैभोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांश्चसुव्रतान् ॥ १९ ॥ गोदक्षिणाश्शङ्खिनेतु विश्वरूपायवैह यः ॥ गोविन्दायगजःप्रोक्तस्सर्वंदद्याच्चकेशवम् ॥ २० ॥ उपोष्यद्वादशींविप्रायाङ्कपादंसमर्चयेत् ॥ गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ श्राद्धंयःकुरुतेसर्वं तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य विमानैस्सार्वकामिकैः ॥२२॥ गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठेसुचिरंवसेत् ॥ पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रेजायतेकुले ॥ २३ ॥ प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णु लोकंपुनर्व्रजेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽङ्कपादमाहात्म्यन्नामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ चन्द्रादित्यमितिख्यातं चन्द्रादित्यार्चितम्पुरा॥ १ ॥ यस्तंसमर्चयेद्देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ गन्धैःपुष्पैस्तथाधूपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २ ॥ चन्द्रादित्यादिसालोक्यं

के द्वारा जाकर ॥ २२ ॥ वह गीत नृत्यादिके भोगोंसे वैकुण्ठमें सदैव बसताहै फिर इस लोकको प्राप्तहोकर पवित्र कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥ व अमितसन्तानको प्राप्तहोताहै फिर विष्णुलोकको जाताहै॥२४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामङ्कपादमाहात्म्यवर्णननामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

दो० । चंद्रादित्य महात्म्य जिमि अहै अनंत अपार । चौंतिसवे अध्याय में सोई चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर पुरातन समय चन्द्रमा व सूर्य से पूजे चन्द्रादित्य ऐसे कहेहुये त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्यदेवको कहताहूं ॥ १ ॥ देवता व दैत्यों से प्रणाम किये हुये उन देव को गंध, पुष्प, धूप व अनेक प्रकार के

नैवेद्योंसे जो पुरुष पूजता है ॥ २ ॥ वह सब कामनाओंवाले तथा सूर्य के समान विमानों के द्वारा चन्द्रमा व सूर्यादिकों की सलोकताको तबतक प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचन्द्रादित्यमाहात्म्यंनामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥

दो० । करभेश्वर नामक यथा भये सदाशिवदेव। पैंतिसवें अध्यायमें सोई है सब भेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवदेव करभेश महेश्वरजी के समीप जावै कि जिनके दर्शनही से मनुष्य दुष्टयोनि में नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे देव ! मैं यथार्थ से करभेशजी की कथा को सुना चाहताहूं कि कर-

प्रयातिसार्वकामिकैः ॥ विमानैस्सूर्यसङ्काशैर्यावच्चेन्दुदिवाकरौ ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेचन्द्रादित्यमाहात्म्यन्नामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ करभेशंततोगच्छेद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण कुयोनौनैवजायते ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ करभेशकथान्देव श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ कथन्देवस्समुत्पन्नः करभेशेतिसंज्ञितः ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरादेवगणैस्सार्द्धं देवदेवोमहेश्वरः ॥ वनेस्मिन्क्रीडयामास परमाह्लादसंयुतः ॥ ३ ॥ क्रीडन्बहुतिथेकाले शङ्करःकरभोभवत् ॥ नज्ञायतेसर्वदेवैः शङ्करःकरभाकृतिः ॥ ४ ॥ अन्वेषयन्तितन्देवास्ततोविस्मयसंयुताः ॥ नपश्यन्तियदातत्र तन्देवंशूलपाणिनम् ॥ ५ ॥ देवैःपृष्टस्ततोब्रह्मा कास्तिदेवोमहेश्वरः ॥ ध्यातोपिब्रह्मणादृष्टो गुप्तयोगप्रभुर्हरः ॥ ६ ॥ देवैस्सार्द्धंततोब्रह्मा पप्रच्छगणनायकम् ॥ नदृष्टश्शङ्करोस्माभिर्गतःकुत्रविनायक ॥ ७ ॥ कथयस्वनमस्तुभ्यं

भेश ऐसे संज्ञक देव कैसे उत्पन्नहुये हैं ॥२॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय देवगणों समेत बड़े आनन्द से संयुत देवदेव महेश्वरजी ने इस वनमें क्रीड़ा किया है ॥ ३ ॥ और बहुत दिनोंवाले समयके बीतने पर खेलतेहुये शङ्करजी करभ याने ऊंट के बच्चे के समान हुये और करभआकारवाले शिवजी को समस्त देवताओं ने नहीं जाना ॥ ४ ॥ तदनन्तर विस्मयसे संयुत देवता उनको ढूंढ़ने लगे और जब वहां पर त्रिशूल हाथवाले उन शिवदेवजी को नहीं देखा ॥ ५ ॥ तब देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि महेश्वरदेवजी कहां हैं ब्रह्मासे ध्यान कियेहुये भी गुप्तयोगवाले महादेव स्वामीजी न देखेगये ॥ ६ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने गणेश

जीसे पूंछा कि हे विनायकजी ! हमलोगों ने शिवजी को यहीं देखा वे कहा गये ॥ ७ ॥ हे विभो ! यह कहिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हमलोग तुम्हें लड्डुवों को देवैंगे उस समय ऐसा कहेहुये गणेशजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ८ ॥ कि हे देवोत्तमो ! इन करभरूपी महादेवजी को देखिये ऐसे वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुये देवता ऊंटके बच्चे के समीपगये ॥ ९ ॥ और हमलोगों ने आपही महादेवजी को जानलिया यह कहते हुये वे सब जाकर तदनन्तर आपही चारों दिशाओं में स्थित हुये ॥ १० ॥ मैं कैसे जानागया यह चिन्तन कर शिवजी विस्मयको प्राप्तहुये इस के अनन्तर ऊंटके बच्चे के रूपको छोड़कर देवदेव महेश्वरजी ने ॥ ११ ॥ जो कर-

दास्यामोलड्डुकान्विभो ॥ एवमुक्तस्तदाहृष्टः प्रोवाचगणनायकः ॥ ८ ॥ करभोयंमहादेवो दृश्यतांविबुधोत्तमाः ॥ श्रुत्वाचैवंवचोदेवाः प्रहृष्टाःकरभंययुः ॥ ९ ॥ ज्ञातोस्माभिर्महादेवो जल्पन्तइतितेस्वयम् ॥ गत्वाचैवततःसर्वे चतुर्दिक्षु स्थितास्स्वयम् ॥ १० ॥ विचिन्त्येतिकथंज्ञातः शङ्करोविस्मयङ्गतः ॥ त्यक्त्वाथकारभंरूपं देवदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ लिङ्गमुत्पादयामास देवंयत्करभेश्वरम् ॥ तन्दृष्ट्वाथसुरास्सर्वे साष्टाङ्गंप्रणतिंस्थिताः ॥ १२ ॥ ततःप्रभृतिविख्यात श्शङ्करःकरभेश्वरः ॥ स्नात्वाचैवशुचिर्भूत्वा यस्तमर्चयतेशिवम् ॥ १३ ॥ गन्धपुष्पैश्चनैवेद्यैः शृणुतेषाञ्चयत्फलम् ॥ सर्वमेधेषुयत्पुण्यं सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १४ ॥ ततोधिकंसलभते नात्रकार्याविचारणा ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे करभेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भेश्वर देव हैं उस लिंगको उत्पन्न किया उसको देखकर इसके अनन्तर सब देवता साष्टांग प्रणाम में स्थित हुये ॥ १२ ॥ तब से लगाकर करभेश्वर शिवजी प्रसिद्ध हुये हैं नहाकर व पवित्र होकर जो पुरुष उन शिवजीको गन्ध, पुष्प व नैवेद्यो से पूजताहै उनको जो फल होताहै उसको सुनिये कि सबयज्ञोंमें जो पुण्य होताहै और समस्त दानों में जो फल होताहै ॥ १३।१४ ॥ उससे अधिक फलको वह पाताहै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकरभेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अति उत्तम माहात्म्य युत अहै यथा गणनाथ । छत्तिसवें अध्यायमें सोई वरणत गाथ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवताओंने लड्डुवोंसे गणेशजी को भलीभांति पूजा है तब से लगाकर लड्डुकप्रिय विघ्नेश जी प्रसिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ जो पुरुष उनको भक्तिसे पूजता है उसके विघ्न नहीं होताहै व प्रसन्न होतेहुये गणेशजी उसके लिये समस्त अभिलाषों को देते हैं ॥२॥ और चौथि तिथि में रात्रिको भोजन करनेवाला मनुष्य शिप्रानदी में विशेष कर नहाकर और अरुणवसन-धारी होकर मन्त्रों के द्वारा लाल चन्दन से मिलेहुये जल से स्नानपूर्वक उन गणेशजीके लाल चन्दन से विलेपन कर लाल लाल फूलों से पूजन करै ॥ ३।४ ॥ व

सनत्कुमारउवाच ॥ लड्डुकैश्चततोदेवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः ॥ तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशोलड्डुकप्रियः ॥ १ ॥ यस्समर्चयतेभक्त्या तस्यविघ्नन्नजायते ॥ तस्मैददातिसन्तुष्टस्सर्वकामान्विनायकः ॥ २ ॥ नक्ताहारश्चतुर्थ्यांच स्नात्वाशिप्रांविशेषतः॥रक्ताम्बरधरोभूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥ ३ ॥ रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रैस्स्नपनपूर्वकम् ॥ चन्दनेनापिरक्तेन तंविलेप्यप्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ धूपंदद्यात्तथादिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम् ॥ नैवेद्येलड्डुकादेया आज्यखण्डपरिप्लुताः ॥ ५ ॥ नतस्यजायतेव्यास भयंविघ्नंकदाचन ॥ लभतेचतथाभीष्टं मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥ ६ ॥ अवतीर्णःपुनर्लोके जायतेवसुधाधिपः ॥ मतिमान्पुत्रवाञ्छूरो नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गणेशमाहात्म्यन्नामषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुसुमेशंसुरद्वारे सुरासुरनमस्कृतम् ॥ श्रद्धयापूजयेद्यस्तु शिवलोकेसमोदते ॥ १ ॥ जयेश्व

लड्डुकप्रिय गणेशजी को उत्तम गन्धवाली दिव्य धूप देवै और नैवेद्य में घी व शक्करसे संयुत लड्डुवों को देना चाहिये ॥५॥ हे व्यासजी ! उसके कभी विघ्न नहीं होता है और वैसेही मनोरथको प्राप्तहोताहै व मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ६ ॥ और फिर जगतमें अवतार लेकर वह पुरुष भूपति होता है व बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होताहै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणेशमाहात्म्यवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो० । सोमेश्वर आदिकन कर अहै यथा परभाव । सैंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुरद्वार में देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये

हुये कुसुमेशजी को जो मनुष्य श्रद्धा से पूजता है वह शिवलोक में आनन्द करताहै ॥ १ ॥ जो मनुष्य देवदेव जयेश्वर महेश्वरजी को देखताहै वह समस्त कार्यों में जयवान् होताहै और शिवलोकको प्राप्तहोताहै ॥ २ ॥ और यदि शिवद्वारमें मनुष्य शिवलिङ्गको पूजता है तो विमानके द्वारा स्वर्ग को प्राप्तहोताहै और गणाध्यक्षताको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर अन्य उत्तम मार्कण्डेश्वरजी को कहताहूं जहांपर कि मार्कण्डेयजी ने बहुत तप कियाहै ॥ ४ ॥ उन शङ्करदेवजी को देखकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फलको प्राप्तहोता है और सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला पुरुष बहुत आयुर्बलवान् होता है ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! इस पुरी में उत्तम महास्थानको सुनिये

शिवद्वारेशिवलिङ्गमर्चयेन्मानवो ॥ २ ॥ जयीस्यात्सर्वकार्येषु शिवलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ रन्तुयःपश्येद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेयो यदि ॥ त्रिदिवंयातियानेन गाणपत्यञ्चविन्दति ॥ ३ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायतेनरः ॥ मुनिर्यत्र तप्तवान्सुमहत्तपः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वातंशङ्करन्देवं वाजपेयफलंलभेत् ॥ भक्तानांपूरयेदाशां ५ ॥ शृणुव्यासमहास्थानमस्यांपुर्यांसमुत्तमम् ॥ यत्रतिष्ठतिसादेवी ब्रह्माणीहंसवाहिनी ॥ ६ ॥ अर्च पुत्रवत्परिपालयेत् ॥ यथामातातथादेवी दृष्टाशान्तिपरैरपि ॥ ७ ॥ अर्चिताब्रह्मणासातु स्तुतादेवीसुरोत्तमैः ॥ येद्गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैस्सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८ ॥ अपियाब्रह्मणःपूर्वमभूद्देवीसुसिद्धिदा ॥ यस्स्नात्वाब्रह्मसरसि पश्येद्ब्रह्मे श्वरंशिवम् ॥ ९ ॥ भवबन्धविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेसमोदते ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि यज्ञवापीमनुत्तमाम् ॥ १० ॥ यत्र वैब्रह्मणापूर्वमिष्टोयज्ञस्सदक्षिणः ॥ यज्ञार्थंयत्कृतंकुण्डं यज्ञवापीचसास्मृता ॥ ११ ॥ पशुश्चपातितोयस्मात्तस्मात्प

जहां पर कि हंसवाहिनी ब्रह्माणीजी स्थित हैं ॥ ६ ॥ शान्ति में तत्पर पुरुषों से देखीहुई वे देवी माता की नाईं भक्तोंकी आशाको पूर्ण करती हैं और पुत्रकी नाईं पालन करती हैं ॥ ७ ॥ उन देवीजी को ब्रह्माने पूजा है व सुरोत्तमोंने स्तुति किया है उन सब सिद्धिदायिनी को गन्ध, पुष्पों से व नैवेद्योंसे पूजन करै ॥ ८ ॥ पहले जो कि ब्रह्माको भी उत्तम सिद्धिदायिनी हुई हैं ब्रह्मसर मे नहाकर जो पुरुष ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखताहै ॥ ९ ॥ वह संसारके बन्धन से छूटकर ब्रह्मलोक में प्रसन्न होताहै इसके अनन्तर अति उत्तम अन्य यज्ञवापीको मैं कहताहूं ॥ १० ॥ जहां पर कि पुरातन समय दक्षिणा समेत यज्ञ किया है यज्ञके लिये जो कुण्ड कियागया था

वह देववापी कहीगई है ॥ ११ ॥ और जिसलिये पशु पातित कियागया है उसी कारण वे पशुपति कहेगये हैं उसमें नहाकर पवित्र होकर जो पुरुष पशुपतिजी को देखता है ॥१२॥ वह पशुयोनिमें प्राप्त भी पितरोंको उद्धारताहै और सुवर्ण, मणि व मूंगाओं से संयुत व सब कामना प्राप्तवाले विमानों के द्वारा ॥ १३ ॥ दिव्य शिवपुर को जाता है जहां कि महेश्वर देवजी हैं वैसेही मनुष्य रूपकुंड में नहाकर सुरूपवान् होता है ॥ १४ ॥ और स्वर्ग में सदैव गंधर्वों से चाहने योग्य शरीरवाला होताहै और अनंगकुंड में नहाकर व पवित्र होकर जो सावधान मनुष्य ॥ १५ ॥ पहले कामदेव से पूजेहुये देवदेवेश शिवजी को देखता है वह चाहेहुये मनोरथ को प्राप्त

शुपतिःस्मृतः ॥ तस्यांस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पश्येत्पशुपतिन्तुयः ॥ १२ ॥ उद्धरेत्सपितॄन्व्यास पशुयोनिगतानपि ॥ सुवर्णमणिमुक्ताढ्यैर्विमानैस्सर्वकामगैः ॥ १३ ॥ यातिरुद्रपुरन्दिव्यं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ रूपकुण्डेनरस्स्नात्वा सुरूपोजायतेतथा ॥ १४ ॥ स्वर्गेसदैवगन्धर्वैस्स्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ कुण्डेस्नात्वाप्यनङ्गेयश्शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १५ ॥ पश्येच्चदेवदेवेशमनङ्गेनार्चितम्पुरा ॥ कामंसलभतेभीष्टं मृतोयातिशिवालयम् ॥ १६ ॥ आषाढेतुसिताष्टम्यां जागरंयस्तुकारयेत् ॥ केदारेयत्फलंप्रोक्तं तत्समानमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ करीकुण्डेनरस्स्नात्वा विश्वरूपन्तुयोर्चयेत् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ १८ ॥ अजागन्धेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाब्रह्मेश्वरंशिवम् ॥ ब्रह्महत्यासमंपापं तत्क्षणात्सव्यपोहति ॥ १९ ॥ चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा चक्रस्वामिनमर्चयेत् ॥ जायतेसनरोव्यास चक्रवर्तीसदाभुवि ॥ २० ॥ सिद्धेश्वरञ्चयःपश्येत् स्नात्वासुविधिपूर्वकम् ॥ कामिकेनविमानेन रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २१ ॥ सोमव

होता है और मरकर शिवजी के स्थान को जाताहै ॥ १६ ॥ और वहापर आषाढ़ महीने में शुक्लपक्षकी अष्टमी में जो जागरण करता है वह केदारक्षेत्र में जो फल कहा गयाहै उसके समान फल को पाता है ॥ १७ ॥ व जो पुरुष करीकुण्ड में नहाकर विश्वरूप शिवजी को पूजता है वह सब पापों से छूट जाता है और विष्णु जी के लोकको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ व अजागन्ध नामक तीर्थ में नहाकर व ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखकर वह ब्रह्महत्या के समान पातक को उसीक्षण नाश करता है ॥ १९ ॥ और जो पुरुष चक्रतीर्थ मे नहाकर चक्रस्वामी शिवजी को पूजता है वह हे व्यास जी ! सदैव चक्रवर्ती के समान पृथ्वी में होता है ॥ २० ॥ और जो

त्यान्नरस्स्नात्वा सोमेश्वरमथार्चयेत् ॥ सोमवन्निर्मलोभूत्वा सोमलोकेसमोदते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ती खण्डे सोमेश्वरादिवर्णनन्नामसप्तत्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ तीर्थंसोमवतीनाम लिङ्गंसोमेश्वरन्तथा ॥ अभूदेतत्कथन्नाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थंसुशोभनम् ॥ सोमेश्वरन्तथालिङ्गमेतत्सत्यंवदामिते ॥ २ ॥ योदेवो भगवान्सोमो लोकस्याप्यायनंपरम् ॥ आसीत्तस्यपुराव्यास पिताविप्रोमहातपाः ॥ ३ ॥ अवन्त्याञ्चमहाभागो योत्रिनामातपोनिधिः ॥ वर्षाणांत्रीणिदिव्यानि सहस्राणितपोमहत् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वबाहुस्सवैतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः ॥ ऊर्ध्वंगतंततोव्यास ब्राह्मंतेजोमहात्मनः ॥ ५ ॥ नेत्राभ्यांतस्यसुस्राव काशयंश्चादिशोदश ॥ तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा त

मनुष्य भलीभांति विधिपूर्वक नहाकर सिद्धेश्वरजी को देखता है वह कामनासंयुत विमान के द्वारा शिवलोक को जाता है ॥ २१ ॥ और सोमवतीतीर्थ में नहा कर इसके अनन्तर जो पुरुष सोमेश्वर जी को देखता है वह चन्द्रमा के समान निर्मल होकर चन्द्रलोक में प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसोमेश्वरादिवर्णननामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । सोमवती नामक यथा भयो तीर्थ विख्यात । अर्तिसवें अध्याय में सोइ चरित आख्यात ॥ व्यास जी बोले कि सोमवती नामक तीर्थ व सोमेश्वर नामक लिंग यह कैसे नाम हुआ है इसको मैं यथार्थ सुना चाहता हूं ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार अति उत्तम सोमतीर्थ उत्पन्न हुआ है व जिस भांति सोमेश्वर लिंग हुआ है यह तुमसे सत्य कहता हूं ॥ २ ॥ हे व्यास जी ! जो भगवान् सोमदेवजी लोक के परमतृप्तिकारक हैं पुरातन समय उनके पिता विप्र बड़े तपस्वी हुयेहैं ॥ ३ ॥ जो तपस्या के निधान महाभाग अत्रि नामक उज्जैनी पुरीमें हुये हैं ब्रह्मध्यान में तत्पर उन ऊर्ध्वबाहु मुनिने देवताओं की तीन हज़ार वर्षोंतक बड़ी तपस्या कियाहै तदनन्तर हे व्यास जी ! उन महात्मा का ब्रह्मतेज ऊपर गया ॥ ४ । ५ ॥ और दशों दिशाओं को शोभित करता हुआ

वह तेज उनके नेत्रों से बह चला तदनन्तर आपही से देशों में उपजे हुये उस तेज को देखकर अचानकही ॥ ६ ॥ जब उस सबको धारण करने के लिये दिशायें न समर्थ हुईं तब हे व्यास जी ! वह असह्य तेज दिशाओं से बह चला ॥ ७ ॥ और सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ वह पृथ्वी में गिर पड़ा तदनन्तर उससे शीतल किरणोंवाला तथा मनुष्यों को प्यारा चन्द्रमा पैदा हुआ ॥ ८ ॥ व हे व्यास जी ! उसी तेजसे सोमानदी उत्पन्न हुई और अमृत से बहुतही पूरित वह नदी शिप्रा नदी में पैठ गई ॥ ९ ॥ उसी कारण बहुत पुण्यदायिनी सोमवती शिप्रा प्रसिद्ध है सोम से युक्त शिप्रा नदी को देखकर मनुष्य पातक को नाश करता

तोदेशोद्भवंस्वतः ॥ ६ ॥ दिशश्चतद्यदाव्यास सर्वान्धर्तुमशक्नुवन् ॥ सुस्रावचतदादिग्भ्यस्तद्धितेजोतिदुस्सहम् ॥ ७ ॥ लोकांश्चभासयन्सर्वान् धरण्यांवैपपातह ॥ सोमोजातस्ततस्तेन शीतांशुश्चजनप्रियः ॥ ८ ॥ सरित्सोमासमुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा ॥ प्रविष्टासानदींशिप्राममृतेनातिपूरिता ॥ ९ ॥ ततस्सोमवतीशिप्रा विख्याताह्यतिपुण्यदा ॥ सोमयुक्तांनदींशिप्रां दृष्ट्वापापंव्यपोहति ॥ १० ॥ ख्याताचत्रिषुलोकेषु पापिनांपुण्यदायिनी ॥ ब्रह्महावासुरापोवा स्तेयोवागुरुतल्पगः ॥ ११ ॥ चत्वारोप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्ध्रुवम् ॥ अमासोमौयदायुक्तौ सोमवत्यांतदामुने ॥ १२ ॥ स्नानंदानंचयोधीमाञ्जपहोमंसमाचरेत् ॥ अक्षयंतस्यतत्सर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डदानेनकालिज ॥ अकालेकालिकींतृप्तिं पितॄणाञ्चयथोदिता ॥ १४ ॥ सर्वत्रदुर्लभाशिप्रा सोमस्सोमग्रहस्तथा॥

है ॥ १० ॥ और पापियों को पुण्यदायिनी वह नदी तीनों लोको में प्रसिद्ध है ब्रह्मघाती या मदिरा पीनेवाला व चोर अथवा गुरुकी शय्या पर बैठनेवाला या गुरु की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला मनुष्य ॥ ११ ॥ चारों भी यहां दर्शन से निश्चय कर पातक से छूट जाते हैं हे मुने ! अमावस व सोमवार जब युक्त होवैं तब सोमवती में ॥ १२ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य स्नान व दान, जप तथा होम करता है उसका वह सब तबतक अक्षय होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १३ ॥ हे कालिज ! यहापर असमय मे तिल व जल के दान से तथा पिंडदान से पितरों की समयवाली यथोक्त तृप्ति होती है ॥ १४ ॥ सब कहीं शिप्रा नदी दुर्लभ है

और सोम व सोमग्रह तथा सोमेश्वर व सोमवार पांच सकार दुर्लभ है ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! शिप्रानदी व सोमतीर्थ का जल कोटितीर्थों के फलको देनेवाला है और अमावस व सोमवार के संयोगमें पितृतीर्थ के समान कहा गया है ॥ १६ ॥ यदि अमावस तिथिमें सोमवार व व्यतीपात होवै तो गयासे सौगुना फल सोमवती में कहा गयाहै ॥ १७ ॥ इस प्रकार हे महामुने ! यहां पर सोमवतीतीर्थ उत्पन्न हुआहै इसके अनन्तर पृथ्वी में गिरेहुये सोम को देखकर हे व्यासजी ! उन जगद्गुरु व वेदमय तथा धर्मज्ञ और सत्यसंग्रह ब्रह्माजी ने लोकों के हितकी कामना से उनको रथपै स्थापित किया ॥ १८ । १९ ॥ उस समय हजार घोड़ों से संयुत रथ ब्रह्माजी

सोमेश्वरस्सोमवारस्सकाराःपञ्चदुर्लभाः ॥ १५ ॥ शिप्रासोमजलंव्यास कोटितीर्थफलप्रदम् ॥ अमासोमसमायोगे पितृतीर्थसमंस्मृतम् ॥ १६ ॥ अमायांसोमवारश्चेद् व्यतीपातोयदाभवेत् ॥ शतगुणंगयायास्तु सोमवत्यांप्रकीर्तितः ॥ १७ ॥ एवंसोमवतीतीर्थं जातमत्रमहामुने ॥ सोमंदृष्ट्वाथपतितं क्षितौब्रह्माजगद्गुरुः ॥ १८ ॥ रथेतंस्थापयामास लोकानांहितकाम्यया ॥ सतुवेदमयोव्यास धर्मज्ञस्सत्यसंग्रहः ॥ १९ ॥ युक्तोवाजिसहस्रेण ब्रह्मणाप्रेरितस्तदा ॥ दृष्ट्वासोमंततोदेवा रथेतंब्रह्मणायुतम् ॥ २० ॥ तुष्टुवुस्सर्वभावेन हृष्टाःसर्वेसमाहिताः ॥ तस्यसंस्तूयमानस्यतेजस्सोमस्यभास्वरम् ॥ २१ ॥ आप्यायमानंत्रीँल्लोकान् पपातधरणीतले ॥ ब्रह्मातेनरथेनाथ सागरान्तांवसुन्धराम् ॥ २२ ॥ त्रिसप्तकृत्वोतिशयाच्चकारसप्रदक्षिणम् ॥ तस्ययत्पतितंतेजो व्याससोमस्यशीतलम् ॥ २३ ॥ तदेवौपधयोदिव्या जाताभुविसुनिर्मलाः ॥ याभिर्धार्योह्ययंलोकः प्रजाश्चैवचतुर्विधाः ॥ २४ ॥ तुष्टोथभगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने ॥

से प्रेरित हुआ तदनन्तर रथपै ब्रह्मा से संयुत चन्द्रमा को देखकर सावधान होतेहुये सब देवताओंने समस्तभाव से प्रसन्न होकर स्तुति किया स्तुति किये जातेहुये उन चन्द्रमा का प्रकाशवान् तेज ॥ २० । २१ ॥ जो कि तीनो लोकों को तृप्तिकारक था वह पृथ्वी में गिरपडा इसके अनन्तर उस रथ से समुद्र अन्तवाली पृथ्वीकी ॥ २२ ॥ अतिशय से इक्कीसबार उन्हों ने प्रदक्षिणा किया हे व्यासजी ! उन चन्द्रमा का गिरा हुआ जो शीतल तेज था ॥ २३ ॥ वही पृथ्वी में बहुत निर्मल व दिव्य ओषधिया हुई जिनसे कि यह संसार व चार प्रकार के प्रजा धारण किये जाते हैं ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर हे मुने ! ससार को सब कुछ देनेवाले भगवान्

चन्द्रमाजी ने प्रसन्न होकर दश हज़ार वर्षोंतक बडा असह्य तप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह (ब्रह्मा)जी ने उन चन्द्रमाके लिये स्वामिताको दिया और बीजों व ओषधियों का चन्द्रमा राजा हुआ ॥ २६ ॥ और प्रचेता के पुत्र दक्ष जीने चन्द्रमा के लिये नक्षत्रसंज्ञक महाव्रतवाली सत्ताईस दाक्षायणी स्त्रियों को दिया ॥ २७ ॥ उस समय उस बडी भारी राज्यको पाकर स्त्रियों से संयुत चन्द्रमा ने हजारों व सैकड़ों दक्षिणावाले राजसूय यज्ञका प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥ उस में भगवान् अत्रिजी होता व भगवान् भृगुजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) और हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी उद्गाता (सामवेदी) व ब्रह्मा ब्रह्मता को प्राप्तहुये ॥ २९ ॥ और सनका-

दशवर्षसहस्राणि तेपेतिदुस्सहंतपः ॥ २५ ॥ ततस्तस्मैददौस्वाम्यं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ बीजौषधीनांविप्राणां सोमोराजाबभूवह ॥ २६ ॥ सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः ॥ पत्न्यःप्राचेतसोदक्षो ददौनक्षत्रसंज्ञकाः ॥ २७ ॥ सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा ॥ समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २८ ॥ होताचभगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः ॥ हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥ २९ ॥ सदस्योभगवान्विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृतः ॥ ददौसदक्षिणांसोमस्त्रींल्लोकान्सुसमाहितः ॥ ३० ॥ सिनीवालीकुहूश्चैव द्युतिःपुष्टिःप्रभावसुः ॥ कीर्तिर्धृतिश्चलक्ष्मीस्तं देव्योदिव्यास्सिषेविरे ॥ ३१ ॥ प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ अतीवराजतेचन्द्रो दशप्रोद्भासयन्दिशः ॥ ३२ ॥ तस्यतत्प्राप्यदुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम् ॥ विबभ्राममतिर्व्यास तदामृतमयस्यच ॥ ३३ ॥ बृहस्पतेस्तदाभार्यां तारानाम्नींयशस्विनीम् ॥ जहारतमसासाध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥ ३४ ॥ वाच्यमानस्तदासोमो

दिकों से संयुत भगवान् विष्णुजी सदस्य हुये उन चन्द्रमा ने सावधान होकर तीन लोक दक्षिणा दिया ॥ ३० ॥ और सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति व लक्ष्मी इन दिव्य देवियों ने उन चन्द्रमा की सेवा किया ॥ ३१ ॥ और सब देवर्षियों से पूजित तथा विकलतारहित चन्द्रमा ने अवभृथ याने यज्ञान्त स्नानको पाकर दशों दिशाओंको प्रकाशित करताहुआ शोभित भया ॥ ३२ ॥ हे व्यास जी! ऋषियों से संस्कार कियेहुये उस दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त होकर उससमय उन अमृतमय चन्द्रमा की बुद्धि भ्रमित होगई ॥ ३३ ॥ तब अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिजी को अपमान कर उन बृहस्पति की तारा नामक यशस्विनी तथा उत्तम आचरण

वाली स्त्रीको अज्ञान से हरलिया ॥ ३४ ॥ उस समय देवताओं तथा देवर्षियों से निन्दा किये जातेहुये चन्द्रमा ने उन अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति जी के लिये तारा को नहीं विदाकिया ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त इन्द्र ने क्रोधसे बृहस्पति का पक्ष लिया क्योंकि वे बडे तेजस्वी इन्द्रजी पितापूर्वक बृहस्पतिजी के शिष्य थे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! वहा पर इन्द्र व बृहस्पति का तथा देवताओं व दैत्यों का भयानक तथा भयकारक बड़ा भारी युद्धहुआ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर डरेहुये सब देवता ब्रह्मा के शरणमें गये और उन्होंने ब्रह्माके आगे चन्द्रमा व इन्द्र के युद्धको कहा ॥ ३८ ॥ देवताओं के वचन को सुनकर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने युद्धके समय में

देवैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ नैवव्यसर्जयत्तारां तस्माआङ्गिरसायच ॥ ३५ ॥ बृहस्पतेस्ततःपक्षं शक्रोजग्राहकोपतः ॥ सहि शिष्योमहातेजाः पितुःपूर्वंबृहस्पतेः ॥ ३६ ॥ ततोयुद्धमभूत्तत्र सुघोरंशक्रसोमयोः ॥ देवानांदानवानाञ्च व्यासत्रासङ्करंमहत ॥ ३७ ॥ सर्वेभीतास्ततोदेवा ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ अग्रतोब्रह्मणोयुद्धं कथितंसोमशक्रयोः ॥ ३८ ॥ देवानां वचनंश्रुत्वा सार्द्धंदेवैःपितामहः ॥ आगत्ययुद्धसमयेवारयद्देवदानवान् ॥ ३९ ॥ वारितास्तेस्थितास्तत्र युद्धंत्यक्त्वासुरासुराः ॥ तारामादायसतदा ददावाङ्गिरसेद्विज ॥४०॥ तान्चसप्रसवांदृष्ट्वा आहभार्यांबृहस्पतिः ॥ अन्यदीयोनतेयोन्यां गर्भोधार्यःकथञ्चन ॥ ४१ ॥ उत्ससर्जततस्तारा कुमारन्देवरूपिणम् ॥ ऐषिकास्त्रंसमादाय ज्वलन्तमिवपावकम् ॥ ४२ ॥ सतेजोजातमात्रोपि देवानामाक्षिपद्यशः ॥ ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारान्दिवौकसः ॥ ४३ ॥ कस्यायंब्रूहिसु

आकर देवताओं तथा दानवों को मना किया ॥ ३९ ॥ वहां पर मना कियेहुये वे देवता व दैत्य युद्धको छोडकर स्थित हुये और हे द्विज ! उस समय उन चन्द्रमा ने तारा को लेकर बृहस्पति के लिये दिया ॥ ४० ॥ और प्रसव समेत याने गर्भिणी उस स्त्री को देखकर बृहस्पति जी बोले कि अन्य पुरुष का गर्भ तुमको योनि में किसी प्रकार न धारण करना चाहिये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर देवरूपी कुमार को ताराने त्याग दिया जैसे कि ऐषिक अस्त्रको लेकर जलतेहुये अग्निजी होवैं ॥ ४२ ॥ पैदा होतेही उस बालक ने देवताओं के तेज व यशको आक्षेप किया तदनन्तर संशय को प्राप्त होतेहुये देवताओंने तारासे कहा ॥ ४३ ॥कि हे सुभगे ! यह पुत्र किसकाहै

चन्द्रमाका या बृहस्पति काहै ताराने देवताओं से न कहा फिर ब्रह्माने उससे पूंछा ॥ ४४ ॥ कि हे तारे ! इस विषयमे जो सत्य हो उसको कहिये कि यह किसका पुत्रहै हाथों को जोड़े हुई वह तारा वरदायक व व्यापक ब्रह्मा जी से यह बोली ॥ ३५ ॥ कि देवताओंके समान यह महासौम्य कुमार चन्द्रमा का है ब्रह्मा जीने चन्द्रमा के उस पुत्र को जानकर लिपटाकर ॥ ४६ ॥ उससमय उस पुत्र का बुध ऐसा नाम किया पराई स्त्रीके हरने से जो शरीर को असह्य पाप था ॥ ४७ ॥ उससे चन्द्रमा जी उससमय क्षयरोगसे संयुत होकर कुष्ठी हुये तदनन्तर विधिपूर्वक राज्यपै अपने पुत्रको स्थापितकर ॥ ४८ ॥ जितेन्द्रिय सोमजी सोमवारके दिन अमावसके संयोग

भगे सोमस्याथबृहस्पतेः ॥ नाचचक्षेदेवतानां वेधाःपप्रच्छताम्पुनः ॥ ४४ ॥ यदत्रसत्यंतद्ब्रूहि तारेकस्यसुतोह्ययम् ॥ साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणंवरदंविभुम् ॥ ४५ ॥ सोमस्येतिमहासौम्यः कुमारोदेवसन्निभः ॥ सोमस्यतंसुतंज्ञात्वा परि ष्वज्यपितामहः ॥ ४६ ॥ बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्यवैतदा ॥ परदारापहाराच्च यत्पापंतनुदुस्सहम् ॥ ४७ ॥ तेन सोमोभवत्कुष्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ॥ ततोराज्येस्वकंपुत्रंस्थापयित्वायथाविधि ॥ ४८ ॥ अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेव दिदृक्षया ॥ सोमाहेसोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥ स्नात्वासम्पूजयामास सोमस्सोमेश्वरंततः ॥ त स्यभक्त्याचसन्तुष्टः प्राहसोमंमहेश्वरः ॥ ५० ॥ मत्प्रसादाद्वपुःकान्तं तवसोमभविष्यति ॥ सोमेश्वरमितिख्यातं भु क्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥ एवन्तुव्यासतत्तीर्थं लिङ्गंचैवातिदुर्लभम् ॥ कथितंतथ्यभावेन मयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ श्रावणंप्राप्ययोमासं सोमनाथंजितेन्द्रियः ॥ नित्यंपश्येन्नरोव्यास तस्यपुण्यफलंश्रृणु ॥ ५३ ॥ सौराष्ट्रेसोमना

में सोमवती में शिवदेवजी के दर्शनकी इच्छासे अवन्ती (उज्जैनी) पुरीमें शीघ्रही गये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सोमवती तीर्थ मे नहाकर चन्द्रमाने सोमेश्वरजीको पूजन किया उनकी भक्तिसे प्रसन्न होतेहुये महेश्वर देवजी चन्द्रमा से बोले ॥ ५० ॥ कि हे सोमजी ! मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा सुन्दर शरीर होगा भुक्ति व मुक्ति का देनेवाला सोमेश्वर ऐसा लिङ्ग प्रसिद्ध है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! उस तीर्थ व अतिदुर्लभ लिङ्गको प्रसन्न होतेहुये मैंने इस समय सत्यता से कहा है ॥ ५२ ॥ हे व्यास जी ! श्रावणमास को प्राप्त होकर जो जितेन्द्रिय पुरुष नित्य सोमनाथजीको देखताहै उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ५३ ॥ कि सौराष्ट्रदेश मे सोमनाथ के प्रतिदिन

पूजन के फलको वह मनुष्य पाता है हे व्यासजी ! इस विषय में विचार न करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषा टीकायांसोमवतीतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पापीजन जेहि नरक में जो दुख पावत जाय । उन्तालिसवें में कह्यो सोइ चरित सुखदाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इससमय इस नरकतीर्थ के माहात्म्य को सुनिये कि नरकतीर्थ में नहाकर व महेश्वर देव जी को देखकर ॥ १ ॥ मनुष्य कभी नरक को नहीं देखता है यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै व्यास जी बोले कि

थस्य पूजायाःप्रत्यहंफलम् ॥ लभतेसनरोव्यास नात्रकार्याविचारणा ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेसोमवतीतीर्थमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थस्यनरकस्यास्य माहात्म्यंशृणुसाम्प्रतम् ॥ तीर्थेचनरकेस्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥१॥ नपश्येन्नरकंक्वापि यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥व्यासउवाच ॥ कियन्तोनरकास्तात कस्मिन्स्थानेप्रतिष्ठिताः ॥२॥ पतन्तिकेनपापेन पापिनस्तेषुदुःखिताः ॥ तत्कथंप्राणिनस्तत्र गच्छन्तिपापकारिणः ॥ ३ ॥ एतत्सर्वंसमाख्याहि यदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुष्वनरकान्व्यास यावन्तोयत्रसंस्थिताः ॥ नलभ्यन्तेयथातेतु सत्यमेतद्वदामिते ॥ ५ ॥ पातालनिलयास्सर्वे विख्यातादुःखदास्सदा ॥ पुण्यप्लावेनतेसर्वे तिर्यग्यान्तिस्वकर्मभिः ॥ ६ ॥ रौरवश्शूकरोरौद्रस्तालोविनशकस्तथा ॥ तप्तकुम्भस्तुतप्तायो महाज्वालस्तथैवच ॥ ७ ॥ कुम्भीपाकःक्रकचनस्तथा

हे तात ! कितने नरक हैं व किस स्थान मे प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ और किस पाप से दुःखित पापीलोग उन में गिरते हैं और वह कैसा है कि पापकारी प्राणी वहां को जाते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो इस सब वृत्तान्तको कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! जहांपर जितने स्थित हैं उन नरकों को सुनिये कि जिस प्रकार वे नहीं मिलते हैं यह मै तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ५ ॥ कि पातालमें स्थानवाले वे सब सदैव दुःखदायक प्रसिद्धहैं और पुण्य के नाश से वे सब अपने कर्मो से तिर्यग्योनि में प्राप्त होते है ॥ ६ ॥ रौरव, शूकर, रौद्र, ताल, विनशक, तप्तकुंभ, तप्ताय और महाज्वाल ॥ ७ ॥ व कुंभीपाक, क्रकचन और

अतिदारुण, कृमिभुक्ति, रक्ताख्य, लालाभक्षक व गंडक ॥ ८ ॥ अधोमुख, अस्थिभंग, यंत्रपीड़नक, संदंश, रुधिरांग, असिपत्र व कुभोजन ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब नरक बहुतही भयङ्कर हैं जो कि यमराज के स्थान में भयदायक प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥ उन में वे पुरुष गिरते हैं जो कि पापकर्मों में परायण होते हैं और गिरेहुये वे पुरुष कर्मों के अनुसार पचते हैं ॥ ११ ॥ व विचित्र पीडाओं से बहुतही भयङ्कर कर्मका नाश होता है तचीहुई शृङ्खला (ज़ंजीर) से हाथों को दृढ़तापूर्वक बाँधकर मनुष्य ॥ १२ ॥ बड़े भारी वृक्ष के शिखरों में यमदूतों से लटकाये जाते हैं और अपने कर्मों को शोचते हुये वे पुरुष निश्चल होकर चुपचाप स्थित होते हैं ॥ १३ ॥ और पापकारी पुरुष अग्नि के समान कीलों से व काँटों समेत दण्डों के द्वारा भयानक यमदूतों से सब ओर मारेजाते है ॥ १४ ॥ तदनन्तर क्षण भरमें विशेषकर अग्निसे तचाये जाते हैं व काटे तथा जर्जर कियेहुये वे नर सब ओर फेंके जाते हैं ॥१५॥ वैसेही जो पुरुष पक्षपात से झूठी गवाही कहता है और जो अन्य झूंठ कहता है वह पुरुष रौरव नरक को प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥ और मदिरा पीनेवाला व ब्रह्मघाती तथा सुवर्ण को चुरानेवाला और जो पुरुष उनसे संसर्ग (मेल) को प्राप्त होताहै वे नर शूकर नामक नरकको जाते हैं ॥ १७॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! गर्भघाती, गुरुघाती व गोघाती ये पुरुष रौद्रनामक नरकको जाते

चैवातिदारुणः ॥ कृमिभुक्तिश्चरक्ताख्यो लालाभक्षश्चगण्डकः ॥ ८ ॥ अधोमुखश्चास्थिभङ्गो यन्त्रपीडनकस्तथा ॥ सन्दंशोरुधिराङ्गश्च असिपत्रकुभोजनौ॥ ९ ॥इत्येवमादयस्सर्वेनरकाभृशदारुणाः॥यमस्यविषयेसन्ति श्रुताहिभयदायिनः ॥ १० ॥ पतन्तिपुरुषास्तेषु पापकर्मरताश्चये ॥ पतिताश्चप्रपच्यन्ते नराःकर्मानुरूपतः ॥ ११ ॥ यातनाभिर्विचित्राभीरौद्रकर्मक्षयोभृशम् ॥ सुगाढंहस्तयोर्बद्ध्वा तप्तशृङ्खलयानराः ॥१२॥ महावृक्षस्यशृङ्गेषु लम्ब्यन्तेयमकिङ्करैः ॥ शोचन्तःस्वानिकर्माणि तूष्णींतिष्ठन्तिनिश्चलाः ॥ १३ ॥ अग्निवर्णैःशङ्कुभिश्चलोहदण्डैस्सकण्टकैः ॥ हन्यन्तेकिङ्करैर्घोरैस्समन्तात्पापकारिणः ॥ १४ ॥ ततःक्षणात्प्रतप्यन्तेवह्निनाचविशेषतः ॥ समन्ततःप्रक्षिप्यन्ते कृत्ताश्चजर्जरीकृताः ॥ १५ ॥ कूटसाक्ष्यंतथासम्यक्पक्षपातेनयोवदेत् ॥ यश्चान्यदनृतंब्रूयात्सनरोयातिरौरवम् ॥ १६ ॥ सुरापोब्रह्महाहर्ता सुवर्णस्यचशूकरम् ॥ प्रयान्तिनरकञ्चैव तैस्संसर्गमुपैतियः ॥ १७ ॥ भ्रूणहागुरुहन्ताच गोघ्नश्चमुनिसत्तम ॥

हैं और जो विश्वासघाती हैं वे भी रौद्रनरकको प्राप्तहोतेहैं ॥ १८ ॥ और स्वर्णको चुरानेवाला व गुरुकी शय्या पै बैठनेवाला नर वैतालनामक नरक में जाताहै और जो निन्दितकर्म करता है व जो गौवों को मना करता है ॥ १९ ॥ वह पुरुष अतिभयानक विनशक नामक नरक में जाता है और जो स्वामी से द्रोह करनेवाला भयंकर पुरुषहै वह तप्तकुम्भ नरक में गिराया जाता है ॥ २० ॥ और जो भक्तको छोडता है वह तप्तलोह नरक में पचता है व जो पतोहू तथा कन्या से संग करता है वह महाज्वाल नामक नरक में गिराया जाताहै ॥ २१ ॥ और देवताओंके दूषक व वेदों के बेंचनेवाले पुरुष ऊपर पांवों से उपलक्षित होकर नीचे मुखकरके कुम्भीपाक

यान्त्येतेनरकंरौद्रं येचविश्वासघातकाः ॥ १८ ॥ स्वर्णस्तेयीचवैताले तथैवगुरुतल्पगः ॥ करोतिकर्मवैनिन्द्यं यश्चगाःप्रतिषेधयेत् ॥ १९ ॥ नरोविनशकेयाति नरकेभृशदारुणे ॥ स्वामिद्रोहीचयोरौद्रस्तप्तकुम्भेसपात्यते ॥ २० ॥ तप्तलोहेषुपच्येत यस्तुभक्तंपरित्यजेत् ॥ स्नुषांसुताञ्चयोगच्छेन्महाज्वालेसपात्यते ॥ २१ ॥ कुम्भीपाकेप्रयात्येव पादैरूर्ध्वैरधोमुखः ॥ देवदूषयितारश्च वेदविक्रयकास्तथा ॥ २२ ॥ परस्त्रीगामिनोयेच यान्तिक्रकचनेतुते ॥ चौरोतिदारुणेयाति मर्यादाभेदकस्तथा ॥ २३ ॥ देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिताचयः ॥ सयातिकृमिभक्षेवै रक्ताख्येचपतन्तिवै ॥ २४ ॥ पितृदेवगुरूणाञ्च सपर्य्यानकरोतियः ॥ लालाभक्षेसयात्युग्रेकूटकर्मकरोतियः ॥ २५ ॥ अन्त्यजेभ्योग्रहीताच नरकेयात्यधोमुखे ॥ अस्थिभङ्गेप्रयात्येव एकोमिष्टान्नभुङ्नरः ॥ २६ ॥ कृतघ्नःपिशुनःक्रूरः कूटमानीविडम्बकः ॥ यन्त्रपी

नरक में जाता है ॥ २२ ॥ और जो पराई स्त्री के निकट जानेवाले हैं वे क्रकचन नामक नरक को जाते हैं और मर्यादा को तोडनेवाला व चोर अतिदारुण नरक में प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ और देवता, ब्राह्मण व पितरों से वैर करनेवाला और जो रत्नोंको दूषण देनेवाला होता है वह कृमिभक्ष नरक में और रक्तनामक नरकमें प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ और पितर, देवता व गुरुवोंकी जो सेवा नहीं करता है व जो कूट याने कपटके कर्मको करता है वह लालाभक्ष नामक उग्र नरक में जाताहै ॥ २५ ॥ और चाण्डालों से धन ग्रहण करनेवाला पुरुष अधोमुख नामक नरक में जाता है और एकही मिष्टान्न भोजन करनेवाला पुरुष अस्थिभग नामक नरक में जाता है ॥ २६ ॥

और कृतघ्न, चुगुल, क्रूर व कपटसे मान करनेवाला, विडम्बना करनेवाला और अन्यकी छिपीहुई वस्तुको प्रकाश करनेवाला पुरुष यन्त्रपीडन नामक नरक में प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ और लाख,मास व रसोंको बेंचनेवाला और तिलोंका व रसका बेंचनेवाला ब्राह्मण संदंश नरकमें जाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥२८॥ और मधुहा याने शहद की मक्खियों को मारनेवाला व ग्रामनाशक पुरुष वैतरणी नदी में प्राप्तहोता है और जो नर कर्म, मन व वचन से वर्ण व आश्रम के विरुद्ध कर्मको करते हैं वे महानदी में प्राप्तहोते हैं और गुरुवों को अपमान करनेवाला व जो शास्त्रोंका दूषण देनेवालाहै ॥ २९ । ३० ॥ वैसेही पर्वोंका उल्लंघन करनेवाला पुरुष असिप-

डनकेयाति परगुह्यप्रकाशकः ॥ २७ ॥ लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानाञ्चरसस्यच ॥ विक्रयीब्राह्मणोयाति सन्दंशे नात्रसंशयः ॥ २८ ॥ मधुहाग्रामहन्ताच यातिवैतरणींनदीम् ॥ वर्णाश्रमविरुद्धंच कर्मकुर्वन्तियेनराः ॥ २९ ॥ कर्मणामनसावाचा महानद्यांप्रयान्तिते ॥ गुरूणामवमन्ताचशास्त्रदूषयिताचयः ॥ ३० ॥ असिपत्रेप्रयात्येवतथापर्वविलङ्घकः ॥ धनयौवनमत्ताये मर्यादाभेदिनोनराः ॥ ३१ ॥ तेयान्तिनरकेघोरे असिपत्रेतिदारुणे ॥ असंस्कृतश्चयोविप्रो वृषलींसेवतेतुवै ॥ ३२ ॥ वृषलीमिथुनाच्चैव पततस्तावुभावपि ॥ उच्छिष्टायेस्पृशन्तीह गामग्निंजननींद्विजान् ॥ ३३ ॥ तेपच्यन्तेकुभोज्येहि मित्रद्वेषीविशेषतः ॥ पङ्क्तिभेदंदिवास्वप्नं येनराब्रह्मचारिणः ॥ ३४ ॥ पुत्रैरध्यापितायेवै तेपतन्तिकुभोजने ॥ एतेचान्येचनरकाःशतशोथसहस्रशः ॥ ३५ ॥ तत्रदुष्कृतकर्माणः पच्यन्तेया

त्रननामक नरक में प्राप्तहोता है और धन व यौवनसे मत्त व मर्यादाको तोडनेवाले जो पुरुष होते हैं ॥ ३१ ॥ वे असिपत्र नामक बड़े भयंकर व घोर नरक में प्राप्तहोते हैं और संस्काररहित जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्री को सेवता है ॥ ३२ ॥ शूद्राके मैथुनसे वे दोनों भी नरक में पतित होते है और इस संसारमें जो जूंठे पुरुष गऊ, अग्नि, माता व ब्राह्मणों का स्पर्श करते हैं ॥ ३३ ॥ वे कुभोज्य नामक नरक में पचते हैं और मित्रसे द्वेष करनेवाला नर विशेषकर उस नरक में पचताहै और जो ब्रह्मचारी पुरुष पंक्तिभेद व दिनमें शयन करते हैं ॥ ३४ ॥ और जो पुत्रों से पढ़ाये जाते हैं वे कुभोजन नामक नरकमें पतितहोते हैं ये और अन्य सैकड़ों व हजारों नरक

हैं ॥ ३५ ॥ वहांपर पीड़ाओं में प्राप्त पापकर्मी पुरुष पचते हैं मनुष्यों के जितने स्वर्ग हैं उतनेही उनके नरक हैं ॥ ३६ ॥ जोकि बहुत पातकको कर प्रायश्चित्तसे विमुख होतेहैं और पापकरने पर जिस पुरुषके सन्ताप होवै ॥ ३७ ॥ उसको शिव जीका भलीभांति स्मरण करना एक उत्तम प्रायश्चित्तहै इसलिये दिनरात पुरुषोत्तम शिवजी को भलीभांति स्मरण करताहुआ ॥ ३८ ॥ समस्त नष्ट पातकोंवाला पुरुष पवित्र होकर नरकको नहीं जाताहै कातिकके कृष्णपक्ष में जो चौदशि होती है ॥ ३९ ॥ उसमें देवदेव शिवजीके आगे दीप देना चाहिये ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनरकेश्वरनरकतीर्थमाहात्म्यंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

पापंकृत्वातुबहुलं प्रायश्चित्तपराङ्मुखाः ॥ कृतेपापेच तनागताः ॥ नृणांस्वर्गाश्चयावन्तस्तावन्तोनिरयास्तथा ॥ ३६ ॥ पापंकृत्वातुबहुलं प्रायश्चित्तपराङ्मुखाः ॥ कृतेपापेच वैतापो यस्यपुंसःप्रजायते ॥ ३७ ॥ प्रायश्चित्तन्तुतस्यैकं शिवसंस्मरणंपरम् ॥ तस्मादहर्निशंशम्भुं संस्मरन्पुरुषोत्तमम् ॥ ३८ ॥ नयातिनरकंशुद्धस्संक्षीणाखिलपातकः ॥ कार्त्तिकस्यासितेपक्षे याभवेच्चचतुर्दशी ॥ ३९ ॥ तस्यान्दीपःप्रदातव्यो देवदेवस्यचाग्रतः ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नरकेश्वरनरकतीर्थमाहात्म्यन्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ दीपेस्मिन्यत्फलंदत्तं विधिनायेनदीयते ॥ तत्सर्वंब्रूहिमेतात दीपोत्पत्तिञ्चशोभनम् ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुराकृतयुगेशम्भुः पार्वतींशङ्करोयदा ॥ अभिप्रयाचितुंयातस्तयापिसोभियाचितः ॥ २ ॥ पार्वत्युवाच ॥ शरीरेकृष्णताशम्भो ममास्तेरूपहारिणी ॥ तस्माद्याचेभृशंशम्भो प्रसीददिव्यलोचन ॥ ३ ॥ भवेनवर्णितासावे

दो० । अहै दीपके दानकर जौन सुभग माहात्म्य । चालिसवें अध्यायमें सोइ चरित सर्वात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे तात ! इस दीप में जो फल दिया गया है और जिस विधि से वह दियाजाताहै उस सब उत्तम चरित्र व दीपक की उत्पत्तिको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय सतयुग में जब शिवजी पार्वतीजी से याचना करने के लिये गये तब उन पार्वतीने भी उन सदाशिवजी से याचना किया ॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे शम्भो ! मेरे शरीर में रूप

को हरनेवाली श्यामता है इसलिये हे दिव्यनयन, शङ्करजी ! मैं बहुतही याचना करतीहूं कि प्रसन्न हूजिये ॥ ३ ॥ शिवजी ने उनसे कहा कि तुम मुझको बहुतही उत्तम लगती हो जैसे कि पक्ष्म याने पलकों की पंक्तिसे सदैव लोचन बहुतही शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ व जैसे श्वेत कमल पै भलीभांति बैठाहुआ भ्रमर उसको शोभित करता है उन पार्वतीजी वृषासन धूर्जटि इन शिवजी से वैसेही याचना किया॥ ५ ॥ कि विरूप व रूपके करनेवाले तुम जब मेरे वचन को न सुनोगे तब मैं उत्तम वैराग्यसे कठिन तप करूंगी ॥ ६ ॥ उन पार्वतीजी से कहेहुये शिवजीने भी उसके हाथको पकड़लिया और कभी शिवदेवजी ने उन प्यारी पार्वतीजी से रति

अतीवशोभनामम ॥ लोचनेपक्ष्मपङ्क्त्येव शोभतेतितरांसदा ॥ ४ ॥ सिताब्जसंस्थितोभृङ्गो यथाशोभयतेचतम् ॥ तयातथायाचितोसौ धूर्ज्जटिर्वृषभासनः ॥ ५ ॥ विरूपरूपकर्तात्वं नश्रृणोषिवचोयदा ॥ तदात्वहंसुवैराग्याच्चरेयंदुष्करन्तपः ॥ ६ ॥ भवस्तयापिचोक्तस्तु तस्यावैपाणिमग्रहीत ॥ कदाचिच्छङ्करोदेवो रतिंयाचितवान्प्रियाम् ॥७॥ रतिंदत्तवतीसातु जहासनामकीर्तयन् ॥ सुदुःखिताभवत्सातु तंविहायपराङ्मुखी ॥ ८ ॥ उवाचरोषसंयुक्ता स्मरन्तीदेवभाषितम् ॥ तपोवनंव्रजाम्यद्य सुगौरत्वोपलब्धये ॥ ९ ॥ सुवर्णरूपरूपिणी यदापुनर्भवामिचेत्तदातवानुरागिणी भवामिचैवनान्यथा ॥ १० ॥ इतीदमेवजल्पती जगामविन्ध्यपर्वतं हरश्शुशोचतान्ततो गताक्वसाविहायमाम् ॥ ११॥ स्मरत्तदेवचेष्टितं यदेवपूर्वभाषितं तदैवमेवृथामतिर्मुदायदानमानिता ॥ १२ ॥ यतोमयाहिमाद्रिजा समस्तलोकसुन्दरी

मांगा ॥ ७ ॥ और उन पार्वतीजीने रति दिया व नाम कहतेहुये शिवजी हँसे और बहुत दुःखित होतीहुई वे पार्वतीजी उनको छोडकर विमुख हुई ॥ ८ ॥ और शिवदेवजी के वचन को स्मरण करती हुई क्रोधसंयुत पार्वतीजी बोलीं कि आजही मैं उत्तम गौरताको पानेके लिये तपोवनको जातीहूं ॥९॥ यदि मैं सोनेके समान रूपवती फिर जब होऊंगी तब तुम्हारी प्रेमवती होऊंगी अथवा न होऊंगी ॥ १० ॥ इसप्रकार इसी वचनको कहतीहुई पार्वतीजी विन्ध्याचल पर्वत पै गईं तदनन्तर शिवजीने उनका शोचकिया कि वे पार्वतीजी मुझको छोड़कर कहांगईं ॥ ११ ॥ शिवजीने उसी कर्मका स्मरणकिया जोकि पहले कहा था तभी मेरी बुद्धि वृथा होगई थी जब कि

मैंने हर्षसे उनको नहीं मानाथा ॥ १२ ॥ जिसलिये मैंने सब लोकों में सुन्दरी हिमालयकी कन्याकी पहलेही प्रशंसा नहीं किया इसीकारण मुझको छोड़कर वे चलीगईं ॥ १३ ॥ उन शिवजी ने यहीं कहा तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये कि मैं प्यारी पार्वतीजी के ऐसे भारी वियोग को सहने के लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय संसार बड़े भय से संयुत हुआ और देवता, दैत्य व महर्षिलोग बड़े विषादको प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ और घरोंको छोड़कर वे बड़े दुःखको प्राप्त हुये तथा उन्होंने विष्णुजी की अद्भुत उपमावाली उत्तम स्तुति किया ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जब बालचन्द्रमा भालवाले शिवदेवजी न देखपड़े तब

पुरैवनाभिनन्दिता गताविहायमामिति ॥१३॥ इतीदमेवसोवदद्भतस्त्वदर्शनंततः ॥ प्रियावियोगमीदृशं गुरुन्नसोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥ ततोजगत्तदाभवन्महाभयेनसंयुतम् ॥ सुरासुरामहर्षयः परंविषादमभ्ययुः ॥ १५ ॥ विहायमन्दिराणिते परंविषादमागताः ॥ हरेस्स्तुतिंपराञ्चते प्रचक्रुरद्भुतोपमाम् ॥१६॥ सनत्कुमारउवाच ॥ नदृश्यतेयदारुद्रो देवोबालेन्दुशेखरः ॥ नष्टालोकंजगत्सर्वं कान्तारमभवत्तदा ॥ १७ ॥ त्रीणिनेत्राणिरुद्रस्य यतस्सूर्येन्दुवह्नयः ॥ गतेरुद्रेनतेभान्ति जगत्यस्मिंश्चराचरे ॥ १८ ॥ ततस्तमसिदुस्तारे सम्भूतेलोमहर्षणे ॥ अन्योन्यंहिनपश्यन्ति सुरादैत्यास्तमोवृताः ॥ १९ ॥ एषाबुद्धिस्ततस्तेषामुत्पन्नाकार्यसिद्धये ॥ ययाबुध्याजगन्नाथो ज्ञायतेपार्वतीपतिः ॥ २० ॥ नह्यालोकोविनातेनशशिसूर्याग्निचक्षुषा ॥ परस्परंब्रुवन्तिस्मदुःखितास्तेविसंज्ञया ॥ २१ ॥ हेदेवहेमुनेसिद्ध हेऋषेहेनिशा

नष्ट प्रकाशवाला समस्त संसार वन होगया ॥ १७ ॥ जिसलिये कि सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि ये तीन शिवजी के नेत्र हैं उसीकारण शिवजीके अन्तर्द्धान होनेपर इस चराचर संसार में वे नहीं प्रकाश करते थे ॥ १८ ॥ तदनन्तर रोमहर्षण व दुःखसे पार होनेवाले अन्धकार के उत्पन्न होनेपर अन्धकार से घिरेहुये देवता, दैत्य आपस में नहीं देखते थे ॥ १९ ॥ तदनन्तर कार्यकी सिद्धिके लिये उनके वह बुद्धि उत्पन्न हुई कि जिस बुद्धि से जगदीश व पार्वतीजी के पति शिवजी जाने जाते हैं ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रवाले उन शिवजी के विना प्रकाश नहीं है इसप्रकार अचैतन्यतासे दुःखित होतेहुये उन्हों ने आपस में ऐसा कहा ॥ २१ ॥

कि हे देव, हे मुने, हे सिद्ध, हे ऋषे, हे निशाचर, हे दैत्य, हे दनुश्रेष्ठ, हे मनुष्यनिदेशक ! ॥ २२ ॥ हे तात ! तुम किस दिशाको चलेगये हे विभो ! तुम ने किस को पाया और तुम्हारे विश्राम का स्थान कहीं है व तुम्हारा क्या अवलम्ब है ॥२३॥ और तुम्हारे कुछ मार्गव्ययहै और कहां तुम स्थानवालेहो और प्रकाश, वाहन, छत्र, भोजन, शयन व घर ॥ २४ ॥ व निवास कहां है और तुम्हारे चित्तको आनन्द किसप्रकार होता है व हे तात ! बन्धु या पुत्र है और उत्तम व शीतल वृक्षों की छाया है ॥ २५ ॥ इसप्रकार आपस में करुणापूर्वक वचन भलीभांति कहकर फिर इन्द्र आदिक सब देवता चिन्तामें तत्परहुये ॥ २६ ॥ पृथ्वी के बिलमें आश्रित

चर ॥ हेदैत्यहेदनुश्रेष्ठ हेमनुष्यनिदेशक ॥ २२ ॥ गतोसिकान्दिशंतात कोवालम्बस्त्वयाविभो ॥ क्वचविश्राममभूमिस्ते किंस्विदालम्बनन्तव ॥ २३ ॥ पाथेयमस्तिकिञ्चित्तेदैशिकोवाथकुत्रचित ॥ प्रकाशंवाहनंछत्रमशनंशयनंगृहम् ॥ २४ ॥ क्वचवासःकथन्तेचाप्यथवाचित्तनिर्वृतिः ॥ बन्धुःपुत्रोस्तिवातात वृक्षच्छायासुशीतला ॥ २५ ॥ एवंप्रकारंकरुणं समाभाष्यपरस्परम् ॥ भूयश्चिन्तापरास्सर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ २६ ॥ भूमेर्विवरमाश्रित्य प्राणिनोयेवसन्त्यपि ॥ रसातलेचदैतेयास्संस्थिताःपन्नगाश्चये ॥ २७ ॥ नतेषांविद्यतेसूर्यो नेन्दुर्नान्येमहाग्रहाः ॥ नाग्निर्देवमुखंविद्युन्नैवतारककोटयः ॥ २८ ॥ केनालोकेनपश्यन्ति समानिविषमाणिच ॥ नरकस्थानरालोकं केनपश्यन्त्यलोकनात ॥ २९ ॥ विचरंस्तुसनःकोवा मनोरथशतप्रदः ॥ तृष्णाम्भःक्षुधितान्नञ्च श्रान्तानामथवाहनम् ॥ ३० ॥ श्रमेशय्याजलेनौश्च रागेसत्परिचारकः ॥ श्रेष्ठौषधिरसद्रोगे सम्पदोव्याधिसङ्कटे ॥ ३१ ॥ सुहृद्विदेशेछायोष्णे निर्धूमश्शिशिर

होकर जो प्राणी बसते हैं व रसातल में जो दैत्य व नाग भलीभांति टिके थे ॥२७॥ उनके सूर्य, चन्द्रमा व बड़ेभारी ग्रह नहीं विद्यमानहैं व देवताओं का मुख अग्नि प्रकाशित नहीं है और न बिजली प्रकाशित है और न करोड़ों नक्षत्र प्रकाशित हैं ॥ २८ ॥ तो वे सम व विषम वस्तुवोंको किससे देखते हैं और न देखपडने के कारण नरकमें टिकेहुये पुरुष किससे लोकको देखते हैं ॥ २९ ॥ व भ्रमण करताहुआ वह कौन सैकड़ों मनोरथों को देनेवालाहै और तृषाका जल व क्षुधितका अन्न व थकेहुये पुरुषोंका जो वाहनहै ॥३०॥ और परिश्रममें शय्या व जल में नौका व स्नेहमें उत्तम सेवक तथा दुष्ट रोगमें उत्तम ओषधि व व्याधि के संकट में संपदा ॥३१॥

व विदेश में मित्र तथा धूप में छाया व शिशिर ऋतु में धूमरहित अग्नि व बड़े डर में रक्षा और महारात्रि में प्रकाश ॥ ३२ ॥ और सदैव हम सबों को सैकड़ों मनोरथों को देनेवाला जो एकही है उसको हमलोग नहीं जानते है ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कहतेहुये उन्होंने आकाश के मध्य से अतुलकर्मवाले विष्णु जी की पहले सुनीहुई मीठी वाणी को सुना ॥ ३४ ॥ और वे यह नहीं जानते थे कि व्यापक विष्णुजी कहां स्थित होकर कहते हैं इस वचन को उन्होंने सुना कि सावधान होतेहुये तुम सब लोग सुनो ॥ ३५ ॥ कि सदैव चिन्तामणिके समान एक दान भलीभांति कहागया है कि सबही दानों के मध्यमें दीपदान उत्तमहै ॥ ३६ ॥

रेशिखी ॥ महाभयेपरित्राणं प्रकाशश्चमहानिशि ॥ ३२ ॥ सर्वदाचैवसर्वेषां मनोरथशतप्रदः ॥ एकएवभवेद्योनस्तन्न जानीमहेवयम् ॥ ३३ ॥ ब्रुवन्तस्तइतिव्यास शुश्रुवुर्मधुराङ्गिरम् ॥ श्रुतपूर्वांनभोमध्याद्विष्णोरतुलकर्मणः ॥ ३४ ॥ नजानन्तिस्थितःकुत्र भाषतेकेशवोविभुः ॥ शृणुध्वमितिमेवाक्यं सर्वेचैवसमाहिताः ॥ ३५ ॥ दानमेकंसदासम्यक् चिन्तामणिसमंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां दीपदानंप्रशस्यते ॥ ३६ ॥ तच्चदेयमतस्सर्वे शृणुध्वंतत्त्वतोभृशम् ॥ मयारसातलेपूर्वं नागानामनुकम्पया ॥ ३७ ॥ उत्पादितोदीपवरो येनध्वस्तमिदन्तमः ॥ एवंभूतस्तुवायूनामप्रध ष्योमहाप्रभः ॥ ३८ ॥ निष्कम्पोनिर्मलोहृद्यः सुन्दरोभास्करप्रभः ॥ नात्युष्णोनातिशीतश्च दिव्ययोगसमुद्भवः ॥ ३९ ॥ तेनदीपप्रकाशेन गोकर्णानिर्वृतिंययुः ॥ नागाश्शेषादयस्सर्वे नोद्यमानाश्चसङ्घशः ॥ ४० ॥ तदादीपसहस्राणि ददुस्तेवैशिवाग्रतः ॥ पर्वतेषुसमुद्रेषु वनेषूपवनेषुच ॥ ४१ ॥ नदीतीरेषुसर्वत्र दीपान्प्रज्वाल्यरेमिरे ॥ भुञ्जानाःफलमू

इसलिये उसको देना चाहिये और सबलोग यथार्थता से सुनिये कि पुरातन समय मैंने रसातलमें नागों के ऊपर बहुतही दयासे ॥ ३७ ॥ उत्तम दीपको उत्पन्न किया कि जिससे यह अन्धकार नाश होगया जो दीप ऐसाथा कि पवनोंसे धर्षणा न करने योग्य व महाप्रकाशवान् ॥ ३८ ॥ तथा कम्परहित व निर्मल,मनोहर,सुन्दर व सूर्य के समान प्रभावान् और न अति उष्ण व न बहुत शीत और दिव्य योगसे उपजा हुआथा ॥ ३९ ॥ उस दीपके प्रकाश से गोकर्ण (सर्पविशेष) आनन्द को प्राप्त हुये और प्रेरणा कियेहुये शेषादिक उन सर्पसमूहों ने ॥ ४० ॥ उससमय शिवजी के आगे हज़ारों दीपोंको दिया पर्वतों में व समुद्रोंमें तथा वनो व उपवनों मे ॥ ४१ ॥

और नदी के किनारों म सब कहीं दीपों को जलाकर दिव्य फलों व मूलों को तथा ऊंखके रसको भोजन करतेहुये उन्होंने क्रीडा किया ॥ ४२ ॥ और परमान्न याने खीर पूरी व मास मकरन्द (पुष्पमधु) तथा घी भात व चन्द्रमाके समान शाली (जडहनधान) से उपजेहुये भात व सात प्रकार को प्राप्त तावूल ॥ ४३ ॥ और स्त्री से पीकर बचीहुई आठ प्रकारकी मदिरा को पीकर आपस में उद्वेष्टन करते हुये उन सब सापोंने बडी मोलवाली शय्याओं पै व मनोहर वनकी पंक्तियो मे तथा वनकी छाया से समीप शोभित वृक्षोंकी जड़ों में रमण किया ॥ ४४ । ४५ ॥ व कामतन्त्रमे कहेहुये चुम्बनादिक व्यवहारों से क्रीडा किया और वे सूर्यनारायण के

लानि दिव्यानीक्षुरसन्तथा ॥४२॥ परमान्नञ्चमांसानि मकरन्दंघृतोदनम् ॥ चन्द्रशालिभवंभक्तं ताम्बूलंसप्तधागतम् ॥ ४३ ॥ मद्यमष्टप्रकारन्तु भार्यापीतावशेषकम् ॥ शयनेषुमहार्हेषु हृद्यासुवनराजिषु ॥ ४४ ॥ वृक्षमूलेषुसर्वेषु वनच्छायोपशोभिषु ॥ रमन्तेस्मचतेसर्वे उद्वेष्टन्तःपरस्परम् ॥४५ ॥ कामतन्त्रोपदिष्टैस्तु चेष्टितैश्चुम्बनादिभिः ॥ सूर्यतापभयान्मुक्ताश्चन्द्ररश्मिभयाच्चते ॥ ४६ ॥ विमुक्ताश्चभयाद्घोरात् पिपीलिकोद्भवात्तथा ॥ सूर्यतापेनदाहस्स्याच्छीतंचन्द्रमरीचिभिः ॥ ४७ ॥ मयूरनकुलाद्यैश्च पिपीलीसरणाद्भयम् ॥ सौवर्णान्दीपकान्कृत्वा द्विजेभ्यस्तेददुःपुनः ॥ ४८ ॥ तेनपातालमाश्रित्य कृत्वाभोगवतीम्पुरीम् ॥ वसन्तिसुखिनस्तत्र स्वर्गादष्टगुणान्सदा ॥ ४९ ॥ एवमन्धतमोदेवाः पातालाद्दीपतोगतम् ॥ एतद्गुह्यंमयाख्यातं भवतांचानुकम्पया ॥ ५० ॥ दीपदानमतोयूयं कुरुध्वंसुसमाहि

तापसे व चन्द्रमा की किरणों के भयसे छूटेहुयेथे ॥४६॥ और पिपीलिकासे उपजेहुये भयंकर भयसे मुक्त थे सूर्यनारायण के तापसे दाह (जलन) होतीहै व चन्द्रमा की किरणों से शीत होता है ॥ ४७ ॥ और मयूर व नेउलाआदिक तथा पिपीलिकाके गमन से भय होताहै फिर उन नागों ने सुवर्ण के दीपोंको बनाकर ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ४८ ॥ उसी से पाताल में आश्रित होकर स्वर्ग से अठगुने सुखोंवाली भोगवती नामक पुरी को बनाकर उसमें सदैव सुखी नाग बसते हैं ॥ ४९ ॥ इसप्रकार हे देवताओ ! दीपके कारण पाताल से बहुत अन्धकार जातारहा मैंने आपलोगोंके ऊपर दयाके कारण इस गुप्त चरित्रको कहाहै ॥ ५० ॥ इसलिये साव-

धान होतेहुये तुमलोग दीपदान करो क्योंकि दीपरूपी अग्निके विना अन्धकाररूपी अग्नि नहीं जलती है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर नारायण में परायण देवतालोग सुनकर प्रसन्न व सावधान होतेहुये फिर उन सबोंने व्यापक विष्णुजीसे पूंछा ॥५२॥ कि हे जगदीश ! हमलोगों से अग्नि को कहिये कि जिससे वह दीप उत्पन्न होता है भयंकर अन्धकार में डूबेहुये हमलोग अग्निको नहीं जानते हैं ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजीने देवताओंसे मानसी अग्निको कहा व उससे दीपकको जला कर शिवजीमें परायण उनदेवताओं ने समस्त मनोरथों के फलको देनेवाले सदाशिवजीको उद्देश कर दिया तदनन्तर दीप देनेपर अदृश्य शिवजी प्रसन्न हुये ॥५४।५५॥

ताः ॥ दीपाग्निनाविनानैव तमोदारुप्रदह्यते ॥ ५१ ॥ नारायणपरादेवा निशम्याथसमाहिताः ॥ पप्रच्छुस्तेपुनस्सर्वे हृष्टादामोदरंविभुम् ॥ ५२ ॥ ब्रूहिनोऽग्निंजगन्नाथ सदीपोयेनजायते ॥ घोरेतमसिवैमग्ना नाग्निंजानीमहेवयम् ॥ ५३ ॥ देवानांमानसोवह्निरथकृष्णेनकीर्तितः ॥ तेनदीपंचप्रज्वाल्य देवाःशिवपरायणाः ॥ ५४ ॥ ददुस्तेशिवमुद्दिश्यसर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ दत्तेदीपेततोदेवैर्नष्टोहृष्टोमहेश्वरः ॥ ५५ ॥ तिमिरंतद्गतंचापि जगद्येनजडीकृतम् ॥ ततोदेवास्सुखंप्रापुस्स्वर्गेसेन्द्रपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दीपदानफलंज्ञात्वादैतेयाश्चापिविस्मिताः ॥ राज्यंभोगान्वितम्प्राप्य सार्द्धंस्त्रीभिश्चरेमिरे ॥ ५७ ॥ तथैवतत्फलंज्ञात्वा व्यासयक्षाश्चविस्मिताः ॥ पूजयित्वामहादेवं पुष्पैश्चनिर्मलैर्जलैः ॥ ५८ ॥ ददुर्दीपसहस्राणि सर्वेशिवपरायणाः ॥ स्वस्थानेचाभवन्सर्वे दीपदानाच्चशोभनात् ॥ ५९ ॥ स्वेच्छयाभुञ्जतेभोगान् बन्धुभृत्यादिसंयुताः ॥ निराहारास्ततोव्यास पिशाचावैनिराश्रयाः ॥ ६० ॥ दीपदानफलंज्ञात्वा सर्वेतेपरिविस्मिताः॥

और वह अन्धकार भी जातारहा कि जिससे संसार जड करदिया गया था तदनन्तर इन्द्र समेत देवताओंने स्वर्ग में सुख पाया ॥ ५६ ॥ और दीपदान के फलको जानकर दैत्य भी विस्मित हुये और सुखों से सयुत राज्यको पाकर उन्हों ने स्त्रियों समेत रमण किया ॥ ५७ ॥ हे व्यासजी ! वैसेही उस फलको जानकर यक्ष लोग विस्मितहुये और पुष्पों तथा निर्मल जलों से महादेवजी को पूजकर ॥ ५८ ॥ शिवजी में परायण उन सबों ने हजारों दीपोंको दिया और उत्तम दीपके दान से सब अपने स्थान में हुये ॥ ५९ ॥ और बंधुवों व सेवकों से सयुत वे अपनी इच्छा से सुखोंको भोगते हैं उसके उपरान्त हे व्यासजी ! आश्रयरहित व निराहार

चाण्डालादग्निमानीय ददुर्दीपंशिवेरताः ॥ ६१ ॥ दीपदानफलात्तेवै पुत्रदारसमन्विताः ॥ खिद्यमानंगतरसं पूति पर्युषितंतथा ॥ ६२ ॥ उच्छिष्टंसूतिकास्पृष्टममेध्यञ्चातिलङ्घितम् ॥ भुञ्जानास्तेसदाहृष्टा रमन्तेदुष्टभूमिषु ॥६३॥ विद्याधरास्तथामर्त्याः सिद्धाश्चशिवमानसाः ॥ दीपदानफलंज्ञात्वा ददुर्दीपंशिवाग्रतः ॥ ६४ ॥ दीपदानात्ततस्सर्वे सर्वभोगसमन्विताः ॥ स्थानेषुमुदितास्स्वेषु रमन्तेसुखिनस्सदा ॥ ६५ ॥ तिमिरंतद्गतञ्चैव व्यासलोकेषुदीपतः ॥ ततोघोरंस्थितंसम्यक् प्रेतलोकेषुसर्वदा ॥ ६६ ॥ प्रेतलोकन्तदादृष्ट्वा घोरेणतमसावृतम् ॥ दामोदरंजगन्नाथमूचुस्सर्वे सुरोत्तमाः ॥ ६७ ॥ घोरंचैवतमोहत्वा प्रसन्नास्तेसदाविभो ॥ गन्धर्वाश्चतथायक्षाः सिद्धाविद्याधरोरगाः ॥ ६८ ॥ वयञ्चैवतथामर्त्यास्सर्वेभोगैश्चसंयुताः ॥ स्थानेषुचसदास्वेषु रमन्तेसुखिनोभृशम् ॥ ६९ ॥ प्रेतलोकेनरायेवै घोरेणतमसावृताः ॥ वसन्तिचजगन्नाथ वर्तन्तेचातिदुःखिताः ॥ ७० ॥ नतैःकृतंशुभंकर्म कृष्णालंपापमोहितैः ॥ नतेषांविद्यतेकिञ्चि

पिशाच ॥ ६० ॥ दीपदानके फलको जानकर वे सब विस्मितहुये और चाण्डाल से अग्निको मँगाकर शिवजी में तत्पर उन्होंने दीपको दिया ॥ ६१ ॥ और दीपदान के फलसे वे पुत्रों व स्त्रियों से संयुतहुये व निरस भोजन किये जातेहुये अन्नको व दुर्गन्धिसंयुत तथा पर्युषित ॥ ६२ ॥ व उच्छिष्ट तथा सूतिका याने सँवरिवाली स्त्री से छुयेहुये व अशुद्ध तथा नाँघेहुये अन्नको भोजन करतेहुये वे प्रसन्न राक्षस सदैव दुष्ट भूमियों में रमण करते हैं ॥ ६३ ॥ और शिवजी में मनको लगायेहुये विद्याधर, मनुष्य व सिद्धोंने दीपदान के फलको जानकर शिवजीके आगे दीपको दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर दीपदान से सब समस्त सुखों से संयुत होकर सुखी व प्रसन्न होते हुये सदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी ! लोकों में दीपसे वह अन्धकार जातारहा तदनन्तर वह घोर अन्धकार सदैव प्रेतलोकों मे भलीभाँति स्थितहुआ ॥ ६६ ॥ उससमय भयंकर अन्धकार से घिरेहुये प्रेतलोकको देखकर सब सुरोत्तमों ने संसारके स्वामी विष्णुजीसे कहा ॥ ६७ ॥ कि हे विभो ! भयंकर अन्धकार को नाशकर वे गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध व विद्याधर सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥ ६८ ॥ और सुखों से संयुत हमलोग व मनुष्य बहुतही सुखी होकर सदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६९ ॥ हे जगदीश ! प्रेतलोकमें जो मनुष्य बसते हैं भयंकर अन्धकारसे घिरेहुये वे बहुतही दुःखी वर्तमानहैं ॥ ७० ॥ हे श्रीकृष्णजी !

बहुतही पापसे मोहित उन्होंने शुभ कर्म नहीं किया है और उनके कुछ नहीं वर्तमान है जोकि प्रकाश करै ॥ ७१ ॥ वे घोर अन्धकार में मग्न हैं क्योंकि वहां सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि नहीं हैं और न सहाय है न यह स्त्री है और न आलम्ब है न देशवाला है ॥ ७२ ॥ और न वाहन है न शय्याहै केवल बड़ा अन्धकार है और वहां पर अट्ठाईस नरकभूमिया प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ और वे सब अन्धकारमय तथा पापियों को सदैव भयदायक हैं हे श्रीकृष्णजी ! वहां पर दुःखित मनुष्य किस प्रकार सुखको पाते हैं ॥ ७४ ॥ जोकि दरिद्रता, दुःख. रोग, माया व मोहसे सदैव संयुत होते हैं ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार देवताओं की प्रार्थना को

द्यत्प्रकाशंकरोतिच ॥ ७१ ॥ घोरेतमसितेमग्नास्तत्रनार्केन्दुवह्नयः ॥ नसहायोनजायेयं नालम्बोनचदैशिकः ॥ ७२ ॥ नवाहनन्नशय्याच केवलन्तुमहत्तमः ॥ तत्राष्टाविंशतिःख्याता घोरानरकभूमयः ॥ ७३ ॥ तमोमयाश्चतास्सर्वाः पापिनांभयदास्सदा ॥ सुखंतत्रकथंकृष्ण लभन्तेदुःखितानराः ॥ ७४ ॥ दारिद्र्यदुःखरोगैश्च मायामोहैश्चसर्वदा ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इतिश्रुत्वातुदेवानां प्रार्थनांगरुडध्वजः ॥ उवाचवचनंहृद्यं मनोरथफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ शृणुध्वंत्रिदशास्सर्वे यत्प्रवक्ष्यामिवोवचः ॥ अवन्त्यांवर्ततेतीर्थं सद्यःपापहरंपरम् ॥ ७७ ॥ अनर्काख्यंमहापुण्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ कार्त्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यांसमाहितः॥७८ ॥ तत्रस्नात्वानरोयस्तु यमध्यानपरायणः ॥ संगृह्यवै तिलान्कृष्णान् पितृभक्तोजितेन्द्रियः ॥ ७९ ॥ दक्षिणाभिमुखोभूत्वा मध्याह्नेसुरसत्तमाः ॥ अपसव्यन्तथाभूत्वा मन्त्रैस्सन्तर्पयेद्यमम् ॥ ८० ॥ यमायधर्मराजाय मृत्यवेचान्तकायच ॥ वैवस्वतायकालाय दत्तायमनवेतथा ॥ ८१ ॥

सुनकर विष्णुजी मनोरथ के फलको देनेवाले व मनोहर वचनको बोले ॥७६॥ कि हे समस्त देवताओ ! मैं जिस वचन को तुमलोगों से कहताहूं उसको सुनिये कि अवन्ती पुरी में शीघ्रही पापहारक उत्तम तीर्थ वर्तमान है ॥ ७७ ॥ जोकि अनर्क नामक व महापवित्र तथा समस्त तीर्थोत्तमोंमें उत्तमहै कातिकके कृष्णपक्ष में चौदसितिथि में सावधान होताहुआ ॥ ७८ ॥ यमराजके ध्यान मे तत्पर व पितरों का भक्त तथा जितेन्द्रिय जो मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर काले तिलों को लेकर ॥ ७९ ॥ हे सुरोत्तमो ! दुपहरके समय में दक्षिण मुख होकर व अपसव्य होकर मन्त्रों से यमराजको भलीभांति तर्पण करै ॥ ८० ॥ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत,

काल, दक्ष व मनुके लिये ॥ ८१ ॥ और कृष्ण व प्रेतलोक मे परायण कृष्णगुप्त हरि व यमुनाजी के सहोदर भाई सूर्यपुत्र के लिये ॥ ८२ ॥ वैसेही श्राद्धदेव व पितरों के पति के लिये इन नमः अन्तवाले व ॐकार आदिवाले उत्तम मन्त्रोंके द्वारा ॥ ८३ ॥ तिलोंसे संयुत व कुश समेत जलकी अञ्जली को देवै और यमदेव को भलीभाति तर्पण करै और सावधान होताहुआ विद्वान् पुरुष वित्तशाठ्य से रहितहोकर तिलके पात्रको ब्राह्मणके लिये देवै इस विधि से जो पुरुष यमराज स्वामी को तर्पण करताहै ॥ ८४।८५ ॥ उसके वे पितर मुक्त होजाते हैं कि जो नरक में भी होते हैं इसके अनन्तर वहा यश संयुत मनुष्य रात्रि को भलीभांति पाकर ॥ ८६ ॥

कृष्णायकृष्णगुप्ताय प्रेतलोकपरायच ॥ हरयेरविपुत्रायकालिन्दीसोदरायच ॥ ८२ ॥ तथावैश्राद्धदेवाय पितृणांप तयेतथा ॥ मन्त्रैरेभिर्नमःप्रान्तैरोङ्काराद्यैस्सुशोभनैः ॥ ८३ ॥ जलाञ्जलिंसदर्भांवै दद्यात्तिलसंयुताम्॥ सन्तर्पये द्यमन्देवं तिलपात्रंसमाहितः ॥ ८४ ॥ प्राज्ञोविप्रायवेदद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ अनेनविधिनायस्तु तर्पयेच्चयमं विभुम् ॥ ८५ ॥ पितरस्तस्यमुच्यन्ते निरयेयेगताअपि ॥ रात्रिंतत्राथसम्प्राप्य मानवःकीर्तिसंयुतः ॥ ८६ ॥ नमःपि तृभ्यःप्रेतेभ्यो नमोधर्मायविष्णवे ॥ नमस्सूर्यायरुद्राय कान्तारपतयेनमः ॥ ८७ ॥ एभिर्मन्त्रैर्यमन्दीपं योदद्याद्घृत पूरितम् ॥ कार्त्तिकन्तुसमग्रन्तु वर्द्धन्तेतस्यसम्पदः ॥८८॥ सम्पूर्णकार्त्तिकेचैवदीपोद्यापनमारभेत् ॥८९॥ दिवाकरेहस्त मितेचसूर्ये दीपस्यवृत्तिंपुरुषप्रमाणम् ॥ यूपाकृतियज्ञियदारुणाच करोतिधीमान्यमभक्तिचित्तः ॥ ९० ॥ निक्षिप्य भूमावथहस्तमात्रं मूर्ध्निद्विहस्ताष्टदलान्विताश्च ॥ धार्याश्चतस्रश्शुभपट्टिकाश्च छिद्रेप्रयुक्ताश्चतुरङ्गुलेन ॥ ९१ ॥ त

पितरों के लिये प्रणाम है व धर्म के लिये तथा विष्णुजी के लिये नमस्कार है और सूर्य व रुद्र के लिये प्रणाम है और कांतारपति के लिये नमस्कार है ॥ ८७ ॥ इन मन्त्रों से जो पुरुष समस्त कार्त्तिक मासभर घृत से भरेहुये दीपको यमराज को देताहै उसकी समस्त संपदायें बढ़ती हैं ॥ ८८ ॥ और सब कातिक भर दीपोद्यापन का प्रारम्भ करै ॥ ८९ ॥ रविवारके दिन सूर्यनारायण अस्तहोनेपर दीपको वर्तमानकरै और यमराज की भक्तिमें चित्तवाला बुद्धिमान् मनुष्य यज्ञवाले काष्ठ से पुरुषके प्रमाण भर याने तीन हाथ यूपाकार याने खम्भा का आकार बनावै ॥ ९० ॥ इसके अनन्तर भूमि में हाथ भर गाड़कर दो हाथ ऊपर रक्खै और आठदलोंसे संयुत

चार उत्तम पट्टिकाओं को चार अंगुल छिद्रमें युक्त करै ॥ ९१ ॥ और उसकी कर्णिका (गुजरी) में महाप्रकाशवान् दीपको परमभक्ति से देना चाहिये और उस के दलों में घीसे भरेहुये आठ उत्तम दीप दिशाओं के सामने धरना चाहिये ॥ ९२॥ और अनंगवल्ली से चिह्नित वसनका खण्ड नवीन व अरुण अथवा श्वेत वस्त्र बाती के लिये देना चाहिये उसके उपरान्त चिकनी व समस्त तथा समान व उत्तम दो वर्तिकाओं को देवै ॥ ९३ ॥ और उस दीपको जड़हन चावलों के पिसानके ऊपर वैसेही धरकर कि जिसप्रकार न निकलै और न काँपै और सब से तिगुने प्रमाणभर दीपराजको मध्य में स्थित करना चाहिये ॥ ९४॥ और दलोंमें बहुतही शोभा

त्कर्णिकायान्तुमहाप्रकाशो देयोहिदीपःपरयाचभक्त्या ॥ दिशुन्मुखादीपवरास्तथाष्टौ दलेषुतस्याघृतपूर्यमाणाः ॥ ९२ ॥ अनङ्गवल्ल्यङ्कितवस्त्रखण्डं नवंसुरक्तंह्यथवासुशुक्लम् ॥ वर्त्यैप्रदेयञ्चततोहिदद्यात्स्निग्धेत्वखण्डेसुसमेप्रशस्ते॥९३॥ तच्छालिपिष्टोपरिसन्निधाय यथाननिर्यातिनकम्पतेच ॥ कृत्स्नात्प्रकार्यस्त्रिगुणप्रमाणोमध्यस्थितःस्यादथ दीपराजः ॥ ९४ ॥ दलेषुशोभार्थमतीवकुर्यान्मनोरथप्रत्युपलब्धयेच ॥ घण्टाष्टकंलम्बितपुष्पदामसवस्त्रशोभान्वितमत्रकार्यम् ॥ ९५ ॥ संलिप्यभूमिंत्वथगोमयेन पुनःसुगन्धेनजलेनलिप्त्वा ॥ कुर्याद्विचित्रंत्वथमण्डलञ्च दलाष्टकंपद्ममनन्यरम्यम् ॥ ९६ ॥ ततोजलंशीतलमानयित्वाआपूर्यचाष्टौकलशांस्तुरम्यान् ॥ निधायमूर्ध्निक्रमशोहिधीमान् फलानिमूलानितथेक्षुकाणि ॥ ९७ ॥ मध्वाज्ययुक्तादधिदुग्धपूपा नैर्ऋत्यकोणादथदक्षिणान्तम् ॥ धर्माय दद्यादथशङ्कराय दामोदरायाप्यथवेधसेच ॥ ९८॥ प्रजापतिभ्यःक्रमशोहिभक्त्या प्रेतेभ्यइन्द्रायतथापितृभ्यः ॥ हे

[illegible] और इसमें लटकाये हुये फूलोंकी मालावाले तथा वस्त्र समेत व शोभासे संयुत आठ घण्टोंको करना चाहिये ॥ [illegible] जल से लीपकर इसके उपरान्त आठ दलवाला मण्डल व सुन्दर कमल को बनावै ॥ ९६ ॥ उसके [illegible] को भरकर बुद्धिमान् मस्तक पै धरकर क्रमसे फल, मूल व ऊंख ॥ ९७ ॥ तथा शहद व घीसे संयुक्त [illegible] अन्ततक धरे इसके अनन्तर धर्म, सदाशिव, विष्णु व ब्रह्मा के लिये देवै ॥ ९८ ॥ और भक्तिसे

क्रमपूर्वक प्रजापतियों के लिये व प्रेतों के निमित्त तथा इन्द्र व पितरोंके लिये देवै और दक्षिणा समेत तिलोंसे भरेहुये सुवर्णादि के पात्रको ब्राह्मणों को देवै ॥ ९९ ॥ गौवें, सुवर्ण, चादी, वस्त्र, फल, मूल, यव, धान्य, गृह, रथ हाथी, घोड़ा और ऐसे ही हृदय में जो अन्य सुन्दर वस्तु होवै ॥ १०० ॥ उसको अधिक विद्यावाले द्विजोत्तमों के लिये व पुराण बाचनेवाले ब्राह्मणों के लिये देवै और यहां पर दलों में स्थित दीपों से यमादिकों के मध्यमें एक एक को तर्पण करै ॥ १ ॥ इसके अनन्तर अपने गुरुके सकाशसे आज्ञाको पाकर धर्मराजके लिये मध्यवाला दीप देना चाहिये और नृत्य व उत्तम गान तथा उत्तम बाजन से संयुत उत्साहको करावै ॥ २ ॥

मादिपात्रंतिलपूर्णमेव दद्याद्विजानांचसदक्षिणञ्च॥ ९९ ॥ गावोहिरण्यंरजतंचवस्त्रं फलानिमूलानियवाश्चधान्यम् ॥ गृहंरथंकुञ्जरमश्वमेव मनोज्ञमन्यंहृदयेहियच्च ॥१००॥ विद्याधिकेभ्योद्विजसत्तमेभ्यः पौराणिकेभ्यश्चतथाद्विजेभ्यः॥ एकैकसंप्रीणनमत्रकुर्याद्दीपैर्दलस्थैश्चयमादिकानाम् ॥ १ ॥ धर्मायदेयस्त्वथमध्यदीप आज्ञांचलब्ध्वास्वगुरोःसकाशात् ॥ नृत्येनगीतेनसुशोभनेन युक्तंसुवाद्येनचकारयेच्च ॥ २ ॥ एतत्समग्रंविधिवच्चकुर्यात्स्वशक्तिमादौस्वधनंसमीक्ष्य ॥ आहूयविप्राञ्छुभभावयुक्तान् वदेच्चधीमान्परयाचभक्त्या ॥ दीपान्समग्रानपिवर्जयित्वा सर्वंनयेयुःस्थितमत्रविप्राः ॥ ३ ॥ प्रदक्षिणीकृत्यविसृज्यविप्रांस्ततोभवेद्वैसचनक्तभोजी ॥ एवंकृतेनागलोकाद्विशिष्टं सुखंभवेत्प्रेतलोकेस्थितानाम् ॥ ४ ॥ एवमेवनरोव्यास दीपदानंकरोतियः ॥ तस्यैवयत्फलंप्रोक्तं तदिहैकमनाःशृणु ॥ ५ ॥ विमानैःका

पहले अपनी शक्ति व अपने धनको देखकर विधिपूर्वक इस सब वस्तु को करै और सुन्दर भावसे संयुत ब्राह्मणोंको बुलाकर बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम भक्तिसे कहै और समस्त दीपोंको वर्जितकर सब स्थित वस्तुको यहां ब्राह्मणलोग लावैं ॥ ३ ॥ और प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणों को विदा करके तदनन्तर वह रात्रिभोजी होवै ऐसा करने पर प्रेतलोकमें स्थित मनुष्यों को नागलोकसे विशेष सुख होताहै ॥ ४ ॥ इसीप्रकार हे व्यासजी ! जो मनुष्य दीपदान करताहै उसको जो फल कहागयाहै उसको यहां

एकमनवाले होकर सुनिये ॥ ५ ॥ कि अप्सराओं के गणों से सेवित व कामनाओंवाले दिव्य विमानो पै चढा हुआ पुरुष तबतक स्वर्गमें प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायादीपदानमाहात्म्यंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि रामेश्वर तीर्थ कर अहै सुभग परभाव । इकतालिसवें में कह्यो सोइ चरित सुखपाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर मैं अन्य उत्तम केदारेश्वरजी को कहूंगा जोकि समस्त तीर्थोंमे उत्तम व तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य महादेवजीको देखताहै वह उस

मिकैर्दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः ॥ उह्यमानोदिवंयातियावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे दीपदानमाहात्म्यंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रवरंसर्वतीर्थानांसर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा यःपश्यतिमहेश्वरम् ॥ केदारेयत्फलंप्रोक्तं तदत्रापिलभेन्नरः ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः ॥ विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकेसमोदते ॥ ३ ॥ जटाशृङ्गेनरःस्नात्वा शुचिर्भूत्वाजितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वाजटेश्वरं देवं ततःपापाद्विमुच्यते ॥ ४ ॥ महास्नपनमादौच कृत्वागच्छेच्छिवम्प्रति ॥ मातृकंपैतृकंचैव कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाचेन्द्रेश्वरंशिवम् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यः शक्रलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ कुण्डेश्वरंतु यःपश्येच्छिवध्यानपरायणः ॥ लभतेसनरोव्यास शिवदीक्षाफलंशुभम् ॥ ७ ॥ गोपतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागोपेश्व

फलको यहां भी पाताहै जोकि केदारक्षेत्रमें कहागया है ॥ २ ॥ और सब पापों से छूटा हुआ वह मनुष्य अपने वंशसे संयुत होकर सूर्य वर्ण (रंग) वाले विमान समेत शिवलोकमें प्रसन्न होताहै ॥ ३ ॥ व जटाशृङ्गतीर्थ में नहाकर जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्रहोकर जटेश्वर देवजी को देखकर तदनन्तर पातक से छूटजाताहै ॥ ४ ॥ जो मनुष्य पहले महास्नान कर शिवजी के समीप जाताहै वह माता व पिता के सौ कुलोंको तारता है ॥ ५ ॥ व इन्द्रतीर्थ में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजीको देखकर मनुष्य समस्त पापों से छूटकर इन्द्रलोकमें पूजाजाता है ॥ ६ ॥ और हे व्यासजी ! शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष कुण्डेश्वरजी को देखताहै वह शिवजी

की दीक्षाके उत्तम फलको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ व गोपतीर्थ में नहाकर गोपेश्वर शिवजी को देखकर वह पुरुष शिवलोकको जाता है जैसे कि अमृत से देवता स्वर्ग को प्राप्तहोताहै ॥ ८ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! चिपिटातीर्थ में नहाकर व शिवदेवजी को प्रणामकर पुरुष तिर्यग्योनि में नहीं जाताहै ॥ ९ ॥ व विजय नामक तीर्थ में नहाकर आनन्देश्वरजी के पूजनसे समस्त पापों से छूटाहुआ पुरुष स्वर्गलोक में विजयवान् होताहै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे व्यासजी ! कुशस्थली याने उज्जयिनी पुरी में निर्मित व भुक्ति, मुक्तिको देनेवाले अन्य रामेश्वर देवजी को मैं कहताहूं ॥ ११ ॥ कि पुरातन समय जानकी व लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी ने चित्रकूट से

रंशिवम् ॥ शिवलोकंसवैयाति ह्यमृतादमरोयथा ॥ ८ ॥ स्नात्वातुचिपिटातीर्थे शिवंदेवंप्रणम्यच ॥ तिर्यग्योनिंनरो नैव प्रयातिमुनिपुङ्गव ॥ ९ ॥ विजयेचनरःस्नात्वा आनन्देश्वरपूजनात् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यःस्वर्लोकेविजयीभवेत् ॥ १० ॥ अथान्यंसम्प्रवक्ष्यामि कुशस्थल्यांविनिर्मितम् ॥ देवंरामेश्वरंव्यास भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥ चित्रकूटात्पुरारामो मैथिल्यालक्ष्मणेनच ॥ अत्ररामंसमागत्य पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १२ ॥ रामोवाच ॥ कानितीर्थानिपुण्यानि किंवाक्षेत्रंमहामुने ॥ यत्रगत्वानचाप्नोति वियोगःसहबान्धवैः ॥ १३ ॥ अनेनवनवासेन मरणेनपितुःप्रभो ॥ भरतस्यवियोगेन प्रतप्येहंत्रिभिर्मुने ॥ १४ ॥ तद्वाक्यंराघवेणोक्तंश्रुत्वाविप्रर्षभस्तदा ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ साधुपृष्टन्त्वयावीर रघूणांवंशवर्धन ॥ ममपित्राकृतंक्षेत्रं प्रयाच्यशिवमादरात् ॥ १६ ॥ अवन्तीविषये राम पुरातस्मिन्कुशस्थली ॥ उज्जयिनीतिवैनाम्ना ख्यातिंलोकेगताविभो ॥ १७ ॥ तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेन

यहां आकर मुनिश्रेष्ठ परशुरामजी से पूछा ॥ १२ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे महामुने ! कौन क्षेत्र व कौन तीर्थ पुण्यदायक है कि जहां जाकर मनुष्य बन्धुवोंके साथ वियोगको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ हे प्रभो,मुने ! इस वनवास व पिताका मरण तथा भरत का वियोग इन तीनों से मैं संतप्तहूं ॥ १४ ॥ श्रीरामजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर उस समय द्विजश्रेष्ठ ने बहुत समय तक ध्यानकर इस वचन को कहा ॥ १५ ॥ कि हे रघुवोंके वंशको बढ़ानेवाले,वीर ! तुमने बहुत अच्छा पूछा मेरे पिताने शिवजीसे आदर समेत याचना कर क्षेत्रको रचाहै ॥ १६ ॥ हे विभो ! श्रीरामजी ! पुरातन समय उस अवन्ती देशमे कुशस्थली उज्जयिनी ऐसे नाम से

संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्तहुई है ॥ १७ ॥ उस पुरी में जाकर दशरथजी को पिण्डदान से तृप्तकरो वहां पर देवताओं व दैत्योंके गुरु महाकालजी टिके हैं ॥ १८ ॥ जो सदाशिवदेवजी चाहेहुये फलको देनेवाले हैं उन जगदीशजी के देखनेपर वियोग नहीं होता है ॥ १९ ॥ वहां जो ब्राह्मण व बड़े बलवान् राजा लोग जातेहैं वे उत्तम स्थान को पाते हैं जहां कि सदाशिवदेवजी हैं ॥ २० ॥ हे विष्णो ! अवन्ती के मण्डल में वह तीर्थोंके मध्य में भी तीर्थ है तदनन्तर श्रीरामजी अवन्ती पुरीको गये जहां कि वह पुण्यदायिनी शिप्रानदी है ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर श्रीरामजीने पहले उपजेहुये पितरोंको तर्पण किया जब श्रीरामजी ने महाकालजी को

तर्पय ॥ सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोऽप्यवस्थितः ॥ १८ ॥ देवःसदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते ॥ १९ ॥ तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः ॥ लभन्तेतेपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २० ॥ तीर्थानामपितत्तीर्थं भोविष्णोवन्तिमण्डले ॥ आजगामततोवन्तीं याशिप्रायत्रपुण्यदा ॥ २१ ॥ तस्यांस्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् ॥ महाकालंयदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दनः ॥ २२ ॥ वाण्याततोशरीरिण्या देवदेवेनभाषितम् ॥ भोभोराघवभद्रन्ते स्वनाम्नास्थापयस्वमाम्॥२३ ॥ अत्रस्थानंमयादत्तं माविचारयराघव ॥ ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ अनुगृहीतःसौमित्रे देवदेवेनशम्भुना ॥ तस्मात्स्थापयतीर्थेस्मिंल्लिङ्गंरामेश्वरंशुभम् ॥ २५ ॥ वाक्यंतल्लक्ष्मणःश्रुत्वा स्थापयामासशङ्करम् ॥ दृष्ट्वादेवंपुरोरामो लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय ॥ करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनंशुभम् ॥ २७ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्धा

देखने के लिये प्रयाण किया ॥ २२ ॥ तब देवदेव शिवजीने आकाशवाणीसे कहा अहो राघवजी ! तुम्हारा कल्याण होवै अपने नामसे मुझको स्थापन करिये॥२३॥ मैंने यहां पर स्थानको दिया हे राघवजी ! मत विचारिये तदनन्तर प्रसन्नमनवाले श्रीरामजी लक्ष्मणजी से वचन बोले ॥ २४ ॥ कि हे सौमित्रे ! देवदेव शिवजी ने मेरे ऊपर दयाकियाहै इसलिये इस तीर्थ में रामेश्वर देवजी को स्थापित कीजिये ॥ २५ ॥ उस वचनको सुनकर लक्ष्मणजीने शिवजीको स्थापित किया आगे शिवदेवजी को देखकर श्रीरामजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ २६ ॥ कि हे लक्ष्मण जी ! शीघ्रही आइये और तुम शिप्रानदी के जलको लावो क्योंकि हे भाई ! मैं शिवदेव

जीको उत्तम स्नान कराऊंगा ॥ २७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि सीता से तुम क्या करोगे हे श्रीरामजी ! मैं सदैव तुम्हारी सेवकाई नहीं करूंगा ॥ २८ ॥ यह सीता पुष्ट व दृढ़ तथा मुझसे भी मोटीहै इसलिये हे राघवजी ! सत्यतासे कहिये कि तुम इससे क्या करोगे ॥ २९ ॥ पहले लक्ष्मणजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर उदासीन राघवजी व उत्तम मुखवाली सीताजी स्थितहुईं ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर जो लक्ष्मणजीने कहा उसको जानकीजी ने किया और नहाकर व भोजनकर वे वीर महाकालजी के समीप आये ॥ ३१ ॥ और वहा रात्रिको व्यतीतकर जाने के लिये मन धारण किया व कहा कि हे वत्स, सौमित्रे ! उठिये हम दक्षिण दिशाको जाते

क्यं सीतयाकिंकरिष्यसि ॥ रामनाहंसर्वकालं दासभावंकरोमिते ॥ २८ ॥ इयंचपुष्टासुदृढा पीवराचममाप्यतः ॥ वदराघ वसत्येन अनयाकिंकरिष्यसि ॥ २९ ॥ श्रुत्वापूर्वंहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् ॥ विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना ॥ ३० ॥ यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसीताचकारह ॥ स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ ॥ ३१ ॥ नीत्वाविभावरींतत्र गमनायमनोदधे ॥ उत्तिष्ठवत्ससौमित्रेव्रजामोदक्षिणांदिशम् ॥ ३२ ॥ सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाहंगन्ताकथञ्चन ॥ व्रजत्वमनयासार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण ॥ ३३ ॥ नाहमग्रेवनंयामि नवायोध्यांकथञ्चन ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः ॥ ३४ ॥ कथंपूर्वमयोध्याया निर्गतोसिमयासह ॥ वनेवसाम्यहंराम नववर्षाणिपञ्चच ॥ ३५ ॥ प्रसादःक्रियतांमह्यं नयमामपिराघव ॥ इदानींत्वमर्द्धपथे कथंस्थातासिशत्रुहन् ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाहंगन्तावनंपुनः ॥ लक्ष्मणंविकृतंज्ञात्वा रामोवचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ मामनुव्रजसौमित्रे एकोयास्यामिकाननम् ॥ द्विती

हैं ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं किसीप्रकार नहीं जाऊंगा हे कमललोचन ! तुम इस स्त्री समेत जावो ॥ ३३ ॥ मैं आगे न वनको जाऊंगा और न किसी प्रकार अयोध्याको जाऊंगा ऐसा कहतेहुये लक्ष्मणजी से श्रीरामजी बोले ॥ ३४ ॥ कि पहले मेरे साथ अयोध्या से क्यों निकले थे हे रामजी ! मै नव व पांच वर्ष तक वन में बसूंगा ॥ ३५ ॥ हे श्रीरघुनाथजी ! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजाय मुझ को भी ले चलिये हे शत्रुहन ! इस समय तुम आधेमार्ग में कैसे टिकोगे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं फिर वनको न जाऊंगा विकार में प्राप्त लक्ष्मणजी को जानकर श्रीरामजी वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हे सौमित्रे ! मेरे पीछे चलिये मैं

अकेले वनको जाऊंगा और दूसरी यह जानकीजी हैं इसप्रकार श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी से कहा ॥ ३८ ॥ और उस समय धनुषको लेकर उदासीन लक्ष्मणजी उठे व शत्रुओं के सन्तापक वे दोनों क्षेत्रकी सीमाको प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ और श्रीरामजी बोले कि हे सौमित्रे ! मुझको धनुष देवो तुम लौटजावो श्रीरामजी के वचन को सुनकर लक्ष्मणजी सीतासे बोले ॥ ४० ॥ कि मैं किसलिये छोडागया और मैंने क्या अपराध कियाहै श्रीरामजीसे छोडाहुआ मैं निरसन्देह प्राणोंको त्यागूंगा॥४१॥ तदनन्तर जानकीजी श्रीरामजीसे बोलीं कि हे देव ! सुमित्राजीके आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी को तुम किसलिये छोड़तेहो ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी ने सीताजी से

याचत्वियंसीता उक्तोरामेणलक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ धनुःसंगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा ॥ प्राप्तौप्राकारमर्यादां क्षेत्रसीमांपरंतपौ ॥ ३९ ॥ त्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयचमेधनुः ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतांवैलक्ष्मणोब्रवीत् ॥ ४० ॥ किमर्थंहिपरित्यक्तः कोपराधःकृतोमया ॥ रामेणचपरित्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ ४१ ॥ रामंततोब्रवीत्सीता किमर्थंलक्ष्मणस्त्वया ॥ देवसन्त्यज्यतेवीरः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ४२ ॥ राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहंत्यक्ष्यामिलक्ष्मणम् ॥ नकदाचिदपिस्वप्ने लक्ष्मणस्येदृगप्रियम् ॥ ४३ ॥ श्रुतपूर्वन्तुसुश्रोणि क्षेत्रस्यास्यविचेष्टितम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे न सौभ्रात्रं सर्वोहिस्वार्थतत्परः ॥ ४४ ॥ परस्परंनमन्यन्ते स्वार्थनिष्ठैकहेतवः ॥ नशृण्वन्तिपितुःपुत्राः पुत्राणाञ्चतथा पिता ॥ ४५ ॥ नचशिष्योगुरोर्वाक्यं गुरुर्वाशिष्यकर्मच ॥ अर्थानुबन्धिनीप्रीतिर्नकश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणोजानकीतथा ॥ लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नारघुनन्दनः ॥ ४७ ॥ रामतीर्थेनरःस्नात्वा दृ

कहा कि मैं लक्ष्मणजी को नहीं छोडूंगा हे सुन्दर कटिवाली, जानकीजी ! मैंने कभी स्वप्नमें भी लक्ष्मणजीके ऐसे अप्रिय वचनको नहीं सुनाथा इस क्षेत्रके व्यवहार को मैंने पहले सुना था कि इस क्षेत्रमें सुबन्धुता नहीं है क्योंकि सब मनुष्य स्वार्थमें तत्पर होताहै ॥ ४३ । ४४ ॥ और स्वार्थ में केवल सिद्धिरूप कारणवाले मनुष्य आपस में नहीं मानते हैं पिताके वचन को पुत्र नहीं मानते हैं और न पुत्रोंके वचन को पिता सुनते हैं ॥ ४५ ॥ और शिष्य गुरु के वचन को नहीं सुनता है न गुरु शिष्य के कर्मको सुनताहै प्रयोजनके सम्बन्धवाली प्रीति होती है कोई किसी का प्यारा नहीं है ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर वहांपर अपने नामसे लिङ्गको स्थापितकर श्री-

राम, लक्ष्मण व जानकीजी ने यात्रा किया ॥ ४७ ॥ रामतीर्थ में मनुष्य स्नानकर व रामेश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोंसे छूटाहुआ वह विष्णुलोकको जाता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरतीर्थमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

दो० । जिमि सौभाग्यक तीर्थ कर अहै अतुल परभाव । बयालीसवें में कह्यो सोइ चरित्र सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सौभाग्यतीर्थ में नहाकर व सौभाग्येश्वरजीको देखकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष उत्तम सौभाग्यको पाताहै ॥ १ ॥ व घृततीर्थमें नहाकर मनुष्य घृतसे शिवजीको नहवावै इसके अनन्तर घृतको अग्नि

ष्ट्वारामेश्वरंशिवम् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेरामेश्वरतीर्थमाहात्म्यंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थेसौभाग्यकेस्नात्वा दृष्ट्वासौभाग्यकेश्वरम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यंपरमंलभेत् ॥ १ ॥ घृततीर्थेनरःस्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् ॥ घृतमग्नावथोहुत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥ २ ॥ देवींयोगेश्वरींप्राच्र्य सुरासुरनमस्कृताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परंयोगमवाप्नुयात ॥ ३ ॥ शङ्खावर्तेनरःस्नात्वा सर्वपापविवर्जितः ॥ धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥ ४ ॥ शुद्धोदकेचतुर्दश्यां मुक्त्यर्थंस्नानवान्नरः ॥ शिवंसुरेश्वरंदृष्ट्वा ततोमोक्षगतिर्भवेत् ॥ ५ ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ किंपुनरितिविख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ६ ॥ पूर्वंत्रेतायुगेव्यास सुनेत्रोनामवैद्विजः ॥ तस्यपुत्रःसमुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः ॥ ७ ॥ यवक्रीतस्यशापेन सपिताते

में हवनकर शिवलोक में पूजित होताहै ॥ २ ॥ देवताओं व दैत्यों से प्रणाम कीहुई योगेश्वरी देवीजी को पूजकर समस्त पातकोंसे छूटकर उत्तम योगको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ और शंखावर्त तीर्थ में नहाकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष धन धान्य से संयुत होकर निर्मल कुलमें पैदा होताहै ॥ ४ ॥ और शुद्धोदक तीर्थ में चौदसि तिथि में नहानेवाला पुरुष सुरेश्वर शिवजीको देखकर तदनन्तर मोक्षकी गतिवाला होताहै ॥ ५ ॥ वैसेही त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्यतीर्थ को कहताहूं जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ानेवाला किंपुनः ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ पुरातन समय हे व्यासजी ! सुनेत्रनामक ब्राह्मण हुआहै उनका पुत्र विश्वावसु ऐसा कहा हुआ उत्पन्न भयाहै ॥ ७ ॥

यवक्रीत के शाप से वह पिता उनसे मारागया और हे व्यासजी ! तीर्थ से तीर्थमें घूमतेहुये ब्रह्महत्यासे संयुत ॥ ८ ॥ वे ब्राह्मण किंपुनक तीर्थ में नहाकर धारातीर्थ में गये तदनन्तर कपिलधारा मे आपही चित्तसे चिन्तनकर ॥ ९ ॥ कि मेरा ब्रह्महत्याका पाप कैसे शान्तिताको प्राप्तहोगा इसप्रकार चिन्तन करताहुआ वह ब्राह्मण फिर अवन्ती पुरी में आया ॥ १० ॥ और जबतक इस तीर्थ में स्नान करै तबतक उसने इस वाणी को सुना कि हे ब्रह्मन् ! जिसलिये कि तुमने स्नान किया है इसकारण फिर क्या ध्यान करते हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे ब्रह्महत्या नहींहै क्योंकि वह तीर्थस्नानसे नाश कीगई हे विप्रजी ! पापहीन तुम सुखपूर्वक घरको जावो॥१२॥

नघातितः ॥ ब्रह्महत्यान्वितोऽव्यास तीर्थात्तीर्थपरिभ्रमन् ॥८॥ तीर्थेकिंपुनकेस्नात्वा धारातीर्थेगतोद्विजः ॥ ततःकपिलधारायां चिन्तयित्वात्मनास्वयम् ॥ ९ ॥ कथंमेब्रह्महत्याया यायात्पापंप्रशान्तिताम् ॥ एवंहिचिन्तयन्सोथ पुनरायादवन्तिकाम् ॥ १० ॥ अत्रतीर्थेपुनःस्नाति यावद्वाणींततोऽशृणोत् ॥ किंपुनर्ध्यायसेब्रह्मन् येनस्नातोद्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ नतेस्तिब्रह्महत्यावै तीर्थस्नानेननाशिता ॥ गच्छशीघ्रंगृहंविप्र पापहीनोयथासुखम् ॥ १२ ॥ पुनरन्यंप्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रस्थित्वामहेशेन पुनःपत्तनमीक्षितम् ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वरइत्याख्यो देवदेवोमहेश्वरः ॥ यस्तु गन्धैश्चपुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्मनोरमैः ॥ १४ ॥ भावयुक्तोनरोऽव्यास पूजयेद्विधिवत्सदा ॥ यथावत्तिष्ठतेलिङ्गं वंशच्छेदोनजायते ॥ १५ ॥ हंसयुक्तेनयानेन शिवलोकंसगच्छति ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६ ॥ दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ पुरादिवाकरोऽव्यास चक्रेदुर्धर्षनामतः ॥ १७ ॥ तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातंसूर्यसं

फिर मैं अन्य उत्तम पत्तनेश्वरजी को कहताहूं वहां पर टिककर सदाशिवजी ने फिर नगरको देखाहै ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वर ऐसे नामक देवदेव महेशजी हैं हे व्यासजी ! भक्तिसंयुत जो मनुष्य सदैव उस लिंगको विधिपूर्वक सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप व दीपोंसे पूजता है वह यथायोग्य स्थित रहता है और उसके वंशका नाश नहीं होता है ॥ १४ । १५ ॥ व हंसोंसे संयुत विमान के द्वारा वह शिवलोकको जाताहै वैसेहीत्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्य तीर्थको मैं कहताहूं ॥ १६ ॥ जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ानेवाला दुर्धर्ष ऐसा प्रसिद्ध है पुरातन समय हे व्यासजी ! सूर्यनारायणजी ने दुर्धर्ष ऐसे नाम से ॥ १७ ॥ तीर्थ किया है सूर्यनारायण से संस्कार कियाहुआ जोकि इस

नदीके किनारे प्रसिद्ध है गन्धर्वगणों से पूजित वह तेजराशि लिंग हुआहै ॥ १८ ॥ सप्तमी, अष्टमी, संक्रान्ति व रविवारको उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर तीन रातों तक उपास कियेहुये पुरुष ॥ १९ ॥ वहां शिप्रानदी के किनारे स्थित महादेवजी को देखकर व भक्तिभाव से पूजनकर जिस फलको प्राप्तहोताहै उसको मुझ से सुनिये ॥ २० ॥ कि समस्त पिता व माताके वंशको भलीभांति उधारकर शिवजी के समीप प्राप्तहोताहै वहापर जो विशेषकर गऊ व सुवर्णादिक दान को देताहै ॥ २१ ॥ उसका वह तबतक अक्षय होताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं वैसेही अन्य उत्तम गोपीन्द्रतीर्थ को कहताहूं ॥ २२ ॥ जहां पर गौतमजी ने शाप से

स्कृतम् ॥ तेजःपुञ्जोभवल्लिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम् ॥ १८ ॥ सप्तम्यामथवाष्टम्यां संक्रान्तौरविवासरे ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा सुत्रिरात्रमुपोषितः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वामहेश्वरंतत्र शिप्राकूलेऽव्यवस्थितम् ॥ पूजयित्वातुभावेन यत्फलंतच्छृणुष्व मे ॥ २० ॥ पितृमातृकुलंसर्वं समुद्धृत्यशिवंव्रजेत् ॥ तत्रयच्छतियोदानं गोहेमादिविशेषतः ॥ २१ ॥ तावत्तदक्षयं लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रंतीर्थमुत्तमम् ॥ २२ ॥ गौतमेनपुरायत्र इन्द्रःशापाद्भगीकृतः ॥ भगव्रीडायुतःशक्रः प्रविश्यवनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ अतोषयत्तदोग्रेण तपसाशङ्करम्पुरा ॥ तुष्टेनशम्भुनाविप्र ये भगास्तच्छरीरगाः ॥ २४ ॥ गोसहस्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रमितिकथ्यते ॥ तत्रस्नात्वादिवंयातिशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २५ ॥ येमृतास्तेपुनर्जन्म नाप्नुवन्तिमहीतले ॥ गङ्गातीर्थेनरःस्नात्वापुण्यंप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ २६ ॥ ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु गङ्गायाःफलमादिशेत् ॥ गङ्गातीर्थेनरःस्नात्वादृष्ट्वापुष्कररण्डकम् ॥ २७ ॥ पुष्पकेणविमानेन प्रयाति

इन्द्र के भग कियाहै और भगकी लज्जा से संयुत इन्द्रजी ने उत्तम वन में पैठकर ॥ २३ ॥ पुरातन समय तब उग्र तपसे शङ्करजीको प्रसन्न कियाहै हे विप्रजी ! उन इन्द्र के शरीर मे जो भग प्राप्त थे वे उन प्रसन्न शिवजी से हजार नेत्र किये गये इससे वह गोपीन्द्र ऐसा तीर्थ कहाजाता है उस तीर्थ में नहाकर इन्द्र के तुल्य बलवाला मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥२४।२५॥ और जो वहा मरजाते हैं वे फिर पृथ्वीतल मे जन्म नहीं पाते है और गङ्गा नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य बड़े पुण्य को प्राप्तहोताहै ॥ २६ ॥ और ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तिथि मे गङ्गाजी के फलको आदेश करै है और गङ्गातीर्थ मे नहाकर व पुष्कररण्डक तीर्थको देखकर मनुष्य ॥ २७ ॥

पुष्पक विमान के द्वारा प्रयाण करता है व स्वर्ग में प्रसन्न होताहै और उत्तरेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही पितरों को नरक से उधारता है ॥ २८ ॥ और प्रियसुखों से संयुत वह मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है और भूतेश्वर तीर्थ में नहाकर इस के अनन्तर भूतेश्वर जी को चंदन पुष्पादिक व नैवेद्यों से पूजै तो मरकर सुरपुर को जाता है और शिप्रा नदी में नहाकर जो मनुष्य कैलास को प्रणाम करता है ॥ २९ । ३० ॥ उसका पाप वैसेही नाश होजाता है जैसे कि सूर्यनारायणसे नष्ट किया हुआ अन्धकार होवे और जो पुरुष समाधि के नियम से अंबालिका देवी जी को देखता है ॥ ३१ ॥ वह सब पापों से वैसेही छूट

दिविमोदते ॥ नरकादुद्धरत्याशु नरःस्नात्वोत्तरेश्वरे ॥२८॥ इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गंनसंशयः ॥ भूतेश्वरेनरःस्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत ॥ २९ ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्मृतःसुरपुरंव्रजेत् ॥ शिप्रायान्तुनरःस्नात्वा कैलासन्तुनमस्यति ॥ ३० ॥ सूर्याहतंतमोयद्वत्तद्वत्पापंप्रणश्यति ॥ अम्बालिकांचयःपश्येत् समाधिनियमेनच ॥ ३१ ॥ समुक्तःसर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ॥ घण्टेश्वरंप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥ ३२ ॥ यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलंलभेत् ॥ अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥ ३३ ॥ शिवलोकेवसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पुण्येश्वरन्तुयःपश्येच्छुचिःस्नातोजितेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ सगाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वा समभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ ३५ ॥ नयातिनरकंमर्त्यः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ पूजितंब्र

जाता है जैसे कि केंचुलि से सांप छूटता है व घटेश्वर जी को मैं कहताहूं जोकि देवताओं से भी पूजित हैं ॥ ३२ ॥ और जहां कूपका जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त होता है और जो मनुष्य क्रमसे चन्दन तथा पुष्पों से देवेश जी को पूजता है ॥ ३३ ॥ वह तबतक शिवलोक में बसता है कि जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं और इन्द्रियों को जीतेहुये नहाकर जो पवित्र पुरुष पुण्येश्वरजी को देखताहै ॥ ३४ ॥ वह गणपतित्व को प्राप्तहोताहै जोकि देवताओंको भी दुर्लभहै और लुम्पेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य महादेवजी को भलीभांति पूजकर ॥ ३५ ॥ नरकको नहीं जाताहै और वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाजाताहै वैसेही अन्य तीर्थको कहता

हूं जोकि देवताओं को भी दुर्लभ हैं ॥ ३६ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने स्थविर नामक गणेशजीको पूजाहै उस तीर्थमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य विनायकजी को गन्ध,धूप,पुष्प,भक्ष्य व भोज्योंसे पूजताहै उसके फलको सुनिये कि चाही हुई सिद्धि होती है और मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ३७।३८ ॥ जो विद्वान् मनुष्य नवनदी के समीप पार्वतीजी को गन्ध, पुष्प व धूपों से पूजै वह अतुल सौभाग्यको पावै ॥ ३९ ॥ और कामोदक तीर्थ में नहाकर रतिके प्यारे कामदेवजी को देखकर मनुष्य स्वर्ग में देवता व गन्धर्वों के चाहने योग्य शरीरवाला होताहै ॥ ४० ॥ और प्रयागतीर्थ में नहाकर जो मनुष्य प्रयागेशजीको देखताहै वह सब लोकोंको नांघ

ह्मणापूर्वं स्थविराख्यंविनायकम् ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वापूजयेद्योविनायकम् ॥ ३७ ॥ गन्धधूपैश्चपुष्पैश्च भक्ष्यैर्भोज्यैःफलंशृणु ॥ समीहिताभवेत्सिद्धिर्मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ३८ ॥ नवनद्याःसमीपेतु पार्वतीम्पूजयेद्बुधः ॥ गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमतुलंलभेत् ॥ ३९ ॥ कामोदकेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाकामंरतिप्रियम् ॥ स्वर्गेचदेवगन्धर्वस्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ ४० ॥ प्रयागेतुनरःस्नात्वा प्रयागेशन्तुपश्यति ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य शिवलोकेमहीयते ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेसौभाग्यतीर्थमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यंसंप्रवक्ष्यामि नरादित्यंदिवाकरम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥ १ ॥ स्थापनान्तेप्रवक्ष्यामि नरादित्यस्ययादृशी ॥ युद्धेनिवारितेतस्मिन् रक्तस्वेदजयोःपुरा ॥२॥ नरंनारायणौदेवाववतीर्णौ धरातले ॥ कुन्त्यान्देव्यांसुदेवक्यां मथुरायांसमागतौ ॥ ३ ॥ एवंतौभवतोलोके कान्तौवृद्धिम्पराङ्गतौ ॥ अन्यस्मा

कर शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसौभाग्यतीर्थमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२॥

दो० । नरादित्यको थप्यो जिमि स्तुति करि अर्जुनवीर । तैंतालिसवें में सोई कह्यो चरित मतिधीर ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर अन्य नरादित्य नामक सूर्यनारायणको कहताहूं कि जिनके दर्शनही से मनुष्य सब रोगों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ नरादित्यजी की जैसी स्थापना है वैसी मैं तुमसे कहूंगा पुरातन समय रक्त व पसीने से उपजेहुये पुरुषों का युद्ध निवारण करने पर ॥ २ ॥ नरनारायणदेवजीने पृथ्वी में अवतार लियाहै जोकि कुन्तीदेवी में व मथुरामें देवकीजीमें भलीभांति

प्राप्तहुये हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार परम वृद्धिको प्राप्त वे लोकमें मनोहर हुये श्रीकृष्णजी अन्य हेतुसे उत्पन्नहुये और अर्जुनजी अन्य कारणसे पैदाहुये ॥ ४ ॥ उन श्री-
कृष्णजी ने युद्धमें कंसादिक सब दानवों को माराहै तदनन्तर पृथाके पुत्र अर्जुन जी इन्द्र से अस्त्रोंकी सिद्धिके लिये स्वर्ग में प्राप्तहुये हैं ॥ ५ ॥ और अस्त्रोंको सीखे
हुये अर्जुन वीरने सुरराजसे दक्षिणाको कहा और देवताओंके राजा इन्द्रने उस दक्षिणाको मांगा ॥ ६ ॥ कि हे अर्जुनजी ! हिरण्यपुरमें बसनेवाले उग्र निवातकवच
नामक दैत्यों को शीघ्रही मारिये यह मेरी गुरुदक्षिणा है ॥ ७ ॥ अर्जुन ने उन दुष्टात्मा दैत्यों के मारनेकी प्रतिज्ञा किया और भयंकर रथ पै चढ़कर व बाण समेत

त्कारणात्कृष्णोन्यस्माज्जातोधनञ्जयः ॥ ४ ॥ कंसादीन्दानवान्सर्वान् निजघानरणेहिसः ॥ स्वर्गंगतस्ततःपार्थो
वासवादस्त्रसिद्धये ॥ ५ ॥ कृतास्त्रेणतुवीरेण देवराजस्तुदक्षिणाम् ॥ संस्तुतोदेवराजेन दक्षिणासातुयाचिता ॥ ६ ॥ निवा
तकवचाह्युग्रा हिरण्यपुरवासिनः ॥ वध्यतामर्जुनक्षिप्रमेषामेगुरुदक्षिणा ॥ ७ ॥ अर्जुनेनप्रतिज्ञातो वधस्तेषांदुरात्म
नाम् ॥ रौद्रंसरथमास्थाय गृहीत्वासशरंधनुः ॥ ८ ॥ निहत्यतांस्ततःपार्थः कृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ प्रीतिमुत्पादयामा
स सर्वेषांचदिवौकसाम् ॥ ९ ॥ कृतकार्यंतदाशक्रस्त्वर्जुनंवाक्यमब्रवीत् ॥ यत्तेभिरुचिरंवीर मर्त्यलोकेसुदुर्लभम् ॥१०॥
मनसाकाङ्क्षितम्पार्थ वरन्तंवरयोत्तमम् ॥ सवव्रेप्रतिमेद्वेतुयेर्चितेब्रह्मणास्वयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणाप्रीतियुक्तेन दत्तायप्र
तिपादिते ॥ दक्षेणापियुगंसाग्रं पूजितेतिमिरापहे ॥ १२ ॥ सुराणामसुराणाञ्च विग्रहेसमुपस्थिते ॥ दानवैर्निर्जितःश

धनुषको लेकर उन ॥ ८ ॥ अर्जुनजीने उन दैत्योंको मारकर न कठिन कर्म करके तदनन्तर सब देवताओं के प्रीति उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ उस समय कार्यको कियेहुये
अर्जुनजी से इन्द्र ने वचन कहा कि हे वीर, अर्जुनजी ! मृत्युलोकमें दुर्लभ व मनोहर जो तुम्हारे ॥ १० ॥ मनसे चाहागयाहो उस उत्तम वरदान को मांगिये उन्हों
ने दो प्रतिमाओंको मांगा कि जिनको आपही ब्रह्माजीने पूजा था ॥ ११ ॥ व प्रीतिसंयुत ब्रह्माजीने दक्षजीके लिये उन मूर्तियोंका प्रतिपादन किया और दक्षजीने भी
कुछ अधिक युग भरतक अन्धकारनाशक (दिननायक) की मूर्तियों का पूजन किया ॥ १२ ॥ जब देवताओं व दैत्योंका वैर उपस्थित हुआ तब दानवोंसे जीते व

हरीहुई राज्यवाले इन्द्रजी वनको चलेगये ॥ १३ ॥ व इन्द्रजीने एक चरणसे स्थितहोकर देवताओं के हज़ार वर्षोंतक असह्य तप किया और बृहस्पतिजीने उनको देखा ॥ १४ ॥ व उन इन्द्रको देखकर बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्रजी ! स्वर्ग को छोड़कर तुम क्यों इस वन में आयेहो ॥ १५ ॥ अकेले वन में टिकेहुये तुमसे शत्रु साधन योग्य नहीं हैं ऐसा जानकर हे सुरराज ! तुम शीघ्रही दक्षजी के आश्रमको जावो ॥ १६ ॥ पूजन के लिये पारिजात से उपजीहुई जिन मूर्तियों को ब्रह्माने दिया है व जिनको विश्वकर्माने रचा है उनको प्रजापति (दक्ष) जी से मांगिये ॥ १७ ॥ उन मूर्तियोंके पूजन व प्रसाद से शत्रुओंका विनाशहोगा बृहस्पतिजी के उस वचन से इन्द्रदेवजी प्रसन्नहुये ॥ १८ ॥ और जहां पर दक्षप्रजापति थे वहां शीघ्रही गये व विनयसे झुँकेहुये होकर उन्होंने दोनों प्रतिमाओंको मांगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर दक्षजी ने उन इन्द्र के लिये उत्तम प्रतिमाओं को दिया व हे व्यासजी ! सौ वर्ष तक उन प्रतिमाओं को इन्द्र ने पूजा ॥ २० ॥ और उनके तेजसे सब दानव नाश को प्राप्तहुये व प्रतिमाओंने इन्द्रजीसे कहा कि उत्तम वरदानको मांगिये ॥ २१ ॥ हे वासवजी! इस भक्तिसे हम दोनोंको बहुत प्रसन्न जानो तदनन्तर हे व्यासजी ! उस समय प्रसन्न चित्तवाले इन्द्रजीने वरदानको मांगा ॥ २२ ॥ कि पाप चित्तवाले जो दानव हम लोगों के शत्रुहैं वे सब नाशको प्राप्तहोवैं यह वरदान मेरा सम्मतहै ॥ २३ ॥

कोहृतराज्योवनंगतः ॥ १३ ॥ तपश्चचारदुर्धर्षमेकपादःशतक्रतुः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु धिषणस्तंददर्शह ॥ १४ ॥ दृष्ट्वातन्देवराजन्तु बृहस्पतिरुवाचह ॥ हित्वात्रिदिवमायातः कथंशक्रत्विदंवनम् ॥ १५ ॥ एकाकिनावनस्थेन नसाध्याःशत्रवस्त्वया ॥ ज्ञात्वैवन्देवराजत्वं शीघ्रंदक्षाश्रमंव्रज ॥ १६ ॥ पूजार्थेब्रह्मणादत्ते पारिजातसमुद्भवे ॥ चकारविश्वकर्मायेते याचस्वप्रजापतिम् ॥ १७ ॥ शत्रूणांचक्षयोभावी प्रसादादर्चनात्तयोः ॥ गुरोस्तुतेनवाक्येन हृष्टोदेवश्शतक्रतुः ॥ १८ ॥ जगामसत्वरस्तत्र यत्रदक्षःप्रजापतिः ॥ विनयावनतोभूत्वा ययाचेप्रतिमेशुभे ॥ १९ ॥ ददौतस्मैततोदक्षः शक्रायप्रतिमेशुभे ॥ पूजितेप्रतिमेव्यास शक्रेणशरदांशतम् ॥ २० ॥ तयोस्तुतेजसासर्वे विनाशंदानवागताः ॥ प्रतिमेचोचतुःशक्रं वरयस्ववरोत्तमम् ॥ २१ ॥ भक्त्यानयापरन्तुष्टा आवांजानीहिवासव ॥ वरंवव्रेतदाशक्रःप्रसन्नात्माद्विजोत्तम ॥ २२ ॥ अस्माकंप्रतिपक्षाये दानवाःपापचेतसः ॥ सर्वेतेनाशमायान्तु वरएषमतोमम ॥ २३ ॥

और जबतक मैं इन्द्र होऊं तबतक मैं तुम दोनों को पूजना चाहताहूं बहुतअच्छा ऐसा कहकर वे प्रतिमायें स्वर्गको चलीगई ॥ २४ ॥ वरके लिये उन दोनों प्रतिमाओं को मांगना चाहिये इन्द्रजी बोले कि हे अर्जुनजी ! बहुत अच्छा बहुतअच्छा क्योंकि तुम ऐसा कहतेहो ॥ २५ ॥ व हे अर्जुनजी ! इन प्रतिमाओं को महात्मा सदाशिवजीने अरुण कमलोंसे ब्रह्माके दिन पर्यन्त पूजाहै ॥ २६ ॥ व पुरातन समय श्रीविष्णुजी ने त्रिलोककी रक्षाके लिये कमलों व सुगन्धों से हज़ारों वर्ष तक इन दो मूर्तियों को पूजाहै ॥ २७ ॥ तदनन्तर सावधान होतेहुये सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्माजी ने उत्तम लाल कमलोंसे प्रतिमाओं का पूजन कियाहै ॥ २८ ॥

युवांपूजितुमिच्छामि यावदिन्द्रोभवाम्यहम् ॥ तथेतिचोक्त्वाप्रतिमे तेनाकंप्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥ तत्तुयाच्यमव श्यार्थं वरार्थंप्रतिमाद्वयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ साधुपार्थपुनस्साधु यतश्चेत्थंत्वयोच्यते ॥ २५ ॥ इमेचप्रतिमेपार्थ शङ्करेणमहात्मना ॥ सुरक्तैःशतपत्रैश्च पूजितेब्रह्मणोदिनम् ॥ २६ ॥ त्रैलोक्यपालनार्थंच पूजितेविष्णुनापुरा ॥ नीलो त्पलैस्सुगन्धैश्च सहस्रपरिवत्सरान् ॥ २७ ॥ ततःप्रजापतिस्सृष्टिं कर्तुकामस्समाहितः ॥ पूजयामासप्रतिमे पद्मैरक्तो त्पलैश्शुभैः ॥ २८ ॥ त्वमेवहिकथंपार्थ मृत्युलोकन्नयिष्यसि ॥ एताभ्यांरहितस्स्वर्गस्तृणतुल्योभविष्यति ॥ २९ ॥ आदातुकामंदेवेन्द्रं प्रणिपत्यतमर्ज्जुनः ॥ उवाचचाहमर्थ्यस्मि वरेणानेनवैप्रभो ॥ ३० ॥ ततःशक्रःपुनःपार्थमुवा चमुनिपुङ्गव ॥ गृहीत्वात्वमिमेवीर कुशस्थल्यांनिवेशय ॥ ३१ ॥ शिप्रायाउत्तरेतीरे केशवार्कन्तुकेशवः ॥ स्थापयि ष्यतिवैतत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ भविष्यतिसदायात्रा आषाढीचाथकार्त्तिकी ॥ आगमिष्याम्यहंतत्र सहितो

हे पार्थ ! तुम्हीं कैसे मृत्युलोकको ले जावोगे इन दो मूर्तियोंसे रहित स्वर्गलोक तिनुका के समान होगा ॥ २९ ॥ लेनेकी इच्छावाले सुरेन्द्र को प्रणामकर अर्जुनजी बोले कि हे प्रभो ! मैं इसी वरदान से अर्थी (प्रयोजनवान्) हूं ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठ ! इन्द्रजीने फिर अर्जुनजी से कहा कि हे वीर ! तुम इन मूर्तियोंको लेकर उज्जयिनी पुरीमें स्थापितकरो ॥ ३१ ॥ वहां शिप्रानदी के उत्तर किनारे पै विष्णुजी समस्त पापोंके विनाशक केशवार्कजीको थापैंगे ॥ ३२ ॥ और सदैव आषाढ़ी व

कार्त्तिकी यात्रा होगी और वहां पर अप्सराओंके गणों समेत मैं आऊंगा॥३३॥ और बिजलियों समेत मेघ व पवन आवैंगे व मेघोंके समूह में उत्पन्न मेरे वहां बरसने पर ॥ ३४ ॥ मनुष्य कहैंगे कि इन्द्रदेवजी प्राप्तहुये ब्रह्मादिक देवताओं से पूजित व्यापक सूर्यनारायणजी को प्रणामकर ॥ ३५ ॥ हे अर्जुनजी ! फिर भी जिस प्रकार आया था उसीभांति लौटजाऊंगा इसप्रकार विष्णुकी दोनों प्रतिमाओंको अर्जुनजीके लिये देकर ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवजी ! पुत्र समेत पृथ्वीलोकको पठाया और श्रीकृष्ण जीके बुलाने के कारण द्वारकापुरी में नारदजी ने ॥ ३७॥ सुरराज के चरित्र समेत उस वचन को श्रीकृष्णजी को सुनाया व हे द्विजेन्द्र ! यह कहा कि हे कृष्णजी!

प्सरसाङ्गणैः ॥ ३३ ॥ मरुतश्चागमिष्यन्ति मेघाश्चैवसविद्युतः ॥ मेघखण्डेसमुद्भूते मयितत्रप्रवर्षति ॥ ३४ ॥ प्रवदिष्यन्तिवैलोकाः प्राप्तोदेवःपुरन्दरः ॥ भास्करन्तुनमस्कृत्यब्रह्माद्यैःपूजितंविभुम् ॥ ३५ ॥ प्रतियामितुवीभत्सो पुनरेव यथागतम् ॥ एवंमूर्त्तिद्वयंशौरेर्दत्त्वापार्थायवासवः ॥ ३६ ॥ भूर्लोकंप्रेषयामास सुतेनसहपाण्डव ॥ नारदोद्वारकायान्तु कृष्णस्याह्वानकारणात् ॥ ३७ ॥ देवराजस्यतद्वाक्यं सरहस्यञ्चकेशवम् ॥ श्रावयामासविप्रेन्द्र एहिकृष्णकुशस्थलीम् ॥ ३८ ॥ अर्चस्वपारिजातस्य विश्वकर्मसुकारिते ॥ इन्द्रेणाथप्रदत्तेवै तेतुभ्यंपाण्डवायच ॥ ३९ ॥ श्रुत्वाशौरिस्तुतद्वाक्यं प्रतस्थेवन्तिकाम्पुरीम् ॥ अवातरच्चह्याकाशात्तमालिङ्गयचपाण्डवम् ॥ ४० ॥ प्रीतःप्रोवाचवचनं परिष्वज्यचफाल्गुनम् ॥ जन्ममेसफलंजातं प्रीतिर्मेह्यतुलार्जुन ॥ ४१ ॥ यतोमेप्रीतिरतुला क्रियतांकार्यमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वातौतदाव्यास समायातौकुशस्थलीम् ॥ ४२ ॥ पार्थंप्राहतदाकृष्णस्सुसम्पूर्णमनोरथः ॥ गत्वार्जुनदिशंप्राचीं मूर्त्ति

अवन्तीपुरीको आइये ॥ ३८ ॥ व विश्वकर्मासे रचीहुई पारिजातकी प्रतिमाओंको पूजिये क्योंकि इन्द्रने उन मूर्तियोंको तुम्हारे व पाण्डवजीके लिये दियाहै ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णजी उस वचनको सुनकर उज्जयिनी पुरीको चले व आकाशमे नीचे उतरे और उन पाण्डव (अर्जुन) जी को लिपटाकर ॥ ४० ॥ प्रसन्नहुये व अर्जुनजी को लिपटाकर यह वचन बोले कि हे अर्जुनजी ! मेरा जन्म सफल होगया और मेरे बहुत प्रीति हुई ॥ ४१ ॥ जिस लिये मेरे बहुत प्रीति है उसीकारण उत्तम कार्य को कीजिये ऐसा कहकर उस समय हे व्यासजी ! वे दोनों अवन्ती पुरीको भलीभांति आये ॥ ४२ ॥ उस समय सम्पूर्ण मनोरथवाले श्रीकृष्णजी अर्जुनजी से बोले

कि हे अर्जुनजी ! पूर्वदिशाको जाकर एक मूर्तिको स्थापित कीजिये ॥ ४३ ॥ हे मुने ! दुपहरके इसपार उत्तम मनोहर लग्न होगी मैं भी स्थापनाके लिये उत्तरदिशा को नदीके समीप जाऊंगा ॥ ४४ ॥ और तुम मेरे शंखके शब्दसे सूर्यनारायणको स्थापितकरो तदनन्तर पूर्वदिशाको जाकर अर्जुनजीने उत्तम स्थानको देखा ॥ ४५॥ व हे व्यासजी ! सुस्थिर अर्जुनजीने दिननायककी उस मूर्तिको स्थापित किया जबतक पाण्डव अर्जुनजी ने यह ध्यान किया कि देवको कहां स्थापितकरूं ॥ ४६ ॥ तबतक उस मूर्तिने कारणसे उत्तम देवस्थानको कहा व अर्जुनजीके लिये अपने तेजसे असह्य स्थानको दिखलाया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बोलतीहुई उस मूर्तिको देख

मेकान्निवेशय ॥ ४३ ॥ पूर्वाह्णेहिशुभंलग्नं भविष्यतिमनोरमम् ॥ अहमप्युत्तरांयास्ये स्थापनार्थंनदींमुने ॥ ४४ ॥ म मशङ्खस्यनादेन प्रतिष्ठापयभास्करम् ॥ पूर्वङ्गत्वाततःपार्थः शुभंस्थानंव्यलोकयत् ॥ ४५ ॥ व्यासतांस्थापयामास दिननाथस्यसुस्थिरः ॥ क्वदेवंस्थापयामीति यावद्दध्यौचपाण्डवः ॥ ४६ ॥ तावत्साह्यब्रवीद्देवस्थानंकारणशोभनम् ॥ दर्शयामासपार्थाय तेजसास्वेनदुस्सहम् ॥ ४७ ॥ सव्यसाचीततोभीतो दृष्ट्वार्चान्तांप्रजल्पतीम् ॥ तेजस्त्वसहमानो वै देवंवचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ क्वदेवत्वांप्रमुञ्चामि किंस्थानंतवरोचते ॥ सौम्यरूपस्सुदर्शश्च प्रजाभ्योभवगोपते ॥ ४९ ॥ दिविसंस्थाश्चयेदेवा नागाःपातालसंश्रयाः ॥ भुविस्थामानवाःपूता भवन्तुतवदर्शनात् ॥ ५० ॥ सोर्जुनमब्रवी द्देवो माभैस्त्वंममदर्शनात् ॥ दक्षिणेनकरेणाथ ह्यभयेनाभयप्रदः ॥ ५१ ॥ समाश्वास्याथतंशान्तस्सौम्यमूर्तिर्बभू वह ॥ प्रभाकरेणदेवेन निजन्तेजःप्रदर्शितम् ॥ ५२ ॥ ततस्सूर्योब्रवीत्स्थानमेतदेवाचलंमम ॥ प्राप्तेलग्नेचहरिणा श

कर तेजको न सहतेहुये डरेहुये अर्जुनजी सूर्यदेवजीसे वचन बोले ॥ ४८ ॥ कि हे देव ! मैं तुमको कहां स्थापित करूं तुमको कौन स्थान रुचताहै हे गोपते ! सौम्य रूपवाले और सुन्दर दर्शनोंवाले होवो ॥ ४९ ॥ स्वर्ग में स्थित जो देवता हैं और पाताल में टिकेहुये जो नाग हैं वे और पृथ्वी में टिकेहुये मनुष्य तुम्हारे दर्शन से पवित्र होवैं ॥ ५० ॥ उन सूर्यदेवजी ने अर्जुनजी से कहा कि मेरे दर्शन से तुम मत डरो इसके अनन्तर दाहिने अभय हाथ से अभय देनेवाले ॥ ५१ ॥ सूर्यनारायणजी उनको भलीभांति आश्वासन कर शान्त व सौम्य मूर्तिवालेहुये सूर्यदेवजीने अपने तेजको दिखलाया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणजीने कहा कि मेरा यह

अचल स्थानहै और लग्न प्राप्तहोनेपर विष्णुजीने बड़ेभारी शङ्खको बजाया ॥ ५३ ॥ और नर (अर्जुन) जी ने देवताओं से प्रशंसा किये हुये सूर्यनारायणको स्थापित किया ॥ ५४ ॥ अर्जुनजी बोले कि प्रकाशमान सूर्यनारायणजी जयको प्राप्तहोवैं जो कि सात घोड़ोंवाले व सब लोकों में तेजवाले तथा पूर्वदिशा के अन्त में अट्टहासवाले हैं और जिनके कीर्तन से बहुत दोषों से ग्रसेहुये मनुष्योंका अंग पापरहित होता है ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादिक मुनियों से स्तुति कियेहुये सूर्यनारायणजीका पूर्ण स्तुति करने के लिये कौन पुरुष चाहता है तौ भी उत्तम ज्ञानवाला मैं विस्तारसे स्तुति करताहूं क्या चन्द्रमाके उदय होनेपर दीप जलता है ॥ ५६ ॥ शास्त्रोके अर्थ

ङ्खश्चापूरितोमहान् ॥ ५३ ॥ नरेणचसवैसूर्यस्स्थापितोमरसंस्तुतः ॥ ५४ ॥ अर्जुनउवाच ॥ नयतिकिरणमाली भासुरस्सप्तसप्तिस्सकलभुवनधामा प्राग्दिगन्ताट्टहासः ॥ भवतिविगतपापं कीर्तनादेवयस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गंनराणाम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्माद्यैर्मुनिभिरभिष्टुतंपतङ्गं कस्स्तोतुंकविरभिवाञ्छतिप्रकामम् ॥ स्तोष्येहंतदपिसुविस्तरात्सुबुद्धः किंदीपोज्वलतिहिप्रोदितेशशाङ्के ॥ ५६ ॥ शास्त्रार्थकामनिपुणैर्मुनिभिःस्तुतस्य किंवस्तुयन्नरचितंविविधैःप्रयोगैः ॥ द्वैपायनप्रभृतिभिर्मुनिभिःपुराणैरापीतसारमिहभातिजगत्समस्तम् ॥ ५७ ॥ कामंतथाप्यहमतीवविचार्यबुद्ध्या भानोत्रिलोकगुरुपूजितपादयुग्मम् ॥ वृत्तैस्स्फुटार्थमधुराक्षरसन्धियुक्तैस्त्वांवैविचित्रगतिभिःपरिकीर्तयिष्ये॥ ५८ ॥ तावज्जगद्भवतिनिश्चलमेवसर्वं तावत्क्रियाश्चविविधानचयान्तिसिद्धिम् ॥ यावच्चनाथकमलामलमण्डलस्त्वं नोत्तिष्ठसेव्यपनयन्किरणैस्तमांसि ॥ ५९ ॥ यावन्नभान्तिशिखराणिमहीरुहाणां गुच्छान्यफुल्लतनुमीलितलोचनानि ॥ सुप्तानिबोधयसि

में चतुर मुनियों से स्तुति कियेहुये सूर्यनारायणजी की वह कौन वस्तु है जोकि अनेक भांतिके प्रयोगों से नहीं रचित है और व्यासादिक मुनियो से पियेहुये सारांशवाला सब संसार यहां शोभित है ॥ ५७ ॥ तौ भी हे सूर्यनारायणजी ! त्रिलोक मे गुरुवों से पूजित युगल चरणोंवाले तुमको बहुतही बुद्धि से विचारकर प्रकट अर्थ व मीठे अक्षरों से संधिसंयुत व विचित्र गतियोंवाले श्लोकों से तुम्हारा कीर्तन करताहूं ॥ ५८ ॥ तबतक सब संसार अचलही होताहै और तबतक अनेक भांतिके कर्म सिद्धिको नहीं प्राप्तहोते हैं जबतक कि हे नाथ ! किरणों से अन्धकारोंको दूर करतेहुये कमलके समान निर्मल मण्डलवाले तुम नहीं उदय होतेहो ॥ ५९ ॥ जब

तक कि वृक्षोंके शिखर नहीं शोभित होतेहैं व जबतक बिनफूले हुये शरीररूप मूंदेहुये नेत्रोंवाले व भ्रमरोंसे व्याप्त व सोतेहुये गुच्छोंको अतिउत्तम प्रकाशोंसे नहीं जगाते तब तक यह संसार नहीं शोभित होता है ॥ ६० ॥ आकाशमें उदयको प्राप्त तुमको देवताओं व सिद्धों के समूह व ब्रह्मा समेत दैत्य, मुनि,किन्नर,नाग और यक्ष तथा देवता प्रणाम कियेहुये मस्तकों से व शोभित किरीट की मणियों को अति उत्तम प्रकाशों से पूजते हैं ॥ ६१ ॥ तुम्हारे अस्त होजानेपर संसार सुप्त होजाताहै और फिर तुम्हारे तपने पर बोधको प्राप्तहोताहै इसप्रकार हे भगवन्, वरदायक ! सदैव लोकोंके हितके लिये एक तुम्हीं अन्धकार के नाशकहो ॥ ६२ ॥ उत्साह, शक्ति,

षट्चरणाकुलानि यावन्नभाभिरमलाभिरनुत्तमाभिः॥६०॥उद्यन्तमम्बरतलेसुरसिद्धसङ्घास्सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनाग यक्षाः॥त्वामर्चयन्तिविबुधाःप्रणतैःशिरोभिश्चञ्चत्किरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः॥ ६१ ॥ अस्तंगतेत्वयिजगद्भवतिप्रसुप्तं भूयस्त्वयिप्रतपतिप्रातिबोधमेति ॥ एवंसदावरदलोकहितार्थहेतोरेकस्त्वमेवभगवंस्तिमिरस्यहन्ता ॥ ६२ ॥ उत्साहशक्तिनयशौर्यसमन्वितानां सेवाप्रयोगरचनाविधितत्पराणाम् ॥ कार्याणियन्नफलदानिभवन्तिपुंसां हेतुस्त्वभक्तिरिहनाथतवेतिनूनम् ॥ ६३ ॥ यत्संयुगेषुरथकुञ्जरकुन्तशक्तिनाराचचक्रशरतोमरभीमखड्गैः ॥ क्षिप्रंनरास्समुपयान्तिविजित्यशत्रून्सर्वंसदाप्रणतवत्सलचेष्टितन्ते ॥ ६४ ॥ कान्तारदुर्गविषमेष्वपिवर्तमाना ऋक्षेभसिंहबहुकण्टकतस्करेषु ॥ कष्टान्विताश्चबहुशोकविमूढचित्तास्त्वत्कीर्तनाद्विगतमृत्युभयाभवन्ति ॥ ६५ ॥ तेजोराशेत्वमिहशरणं स

नीति व शूरता से संयुत तथा सेवाप्रयोगकी रचनाकी विधि में तत्पर मनुष्यों के जो कार्य फलदायक नही होते हैं इस विषय मे हे नाथ ! निश्चय कर तुम्हारी अभक्ति कारण है ॥ ६३ ॥ और युद्धों में जो रथ, हाथी, भाला, शक्ति, नाराच,चक्र, बाण, तोमर व भयंकर तलवारों से मनुष्य शीघ्रही शत्रुवोंको जीतकर सब वस्तु को प्राप्तहोते हैं हे प्रणतप्रिय ! वह तुम्हारी चेष्टा है ॥ ६४ ॥ ऋक्ष, हाथी, सिंह व बहुत कांटों तथा चोरों से संयुत दुर्गम पन्थ व किला और विषम स्थानों मे वर्तमान तथा कष्ट से संयुत व बहुत शोचसे मूढचित्तवाले पुरुष तुम्हारे कीर्तनसे मृत्युके भयसे रहित होजाते हैं ॥ ६५ ॥ हे तेजराशि ! इस संसारमे सब ओरसे दुःखितजनोंके

तुम रक्षकहो और सब संसार में तुम्हारे समान अन्य कोई दयालु नहीं है और खोजी जातीहुई सब भक्ति तुम्हीं एक में होतीहै और तुमको प्राप्तहोकर मनुष्यों को रोगोंका दुःख कहां से होताहै याने कहीं से भी नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ कौन कुष्ठ से पीड़ित मनुष्य व शत्रुओं से भी तथा रोगादिकों से पीड़ित कौन नर और लँगडे, अन्ध व जड़ तथा नष्ट चरणोंवाले कौन व कौन निर्धन तथा कौन क्रियारहित पुरुष इसीप्रकार देखकर हे देव ! दयाके कारण दोषसे रक्षा करतेहो जैसी तुम्हारी पराये उपकार में परायण यह चेष्टाहै वैसी अन्य कौनकी है ॥ ६७ ॥ सेवा कियाहुआ यह धर्म प्रसिद्धि में परलोकमें टिकताहै व देवता अन्य समय से वरदायक होते हैं

वंतोदुःखितानां त्वत्तुल्योन्योजगतिसकलेनास्तिकश्चिद्दयालुः ॥ त्वय्येकस्मिन्भवतिसकला भक्तिरन्विष्यमाणा त्वामासाद्यप्रभवतिकुतोव्याधिदुःखन्नराणाम् ॥ ६६ ॥ कःकुष्ठाभिहतोनरोरिभिरपिव्याध्यादिभिःपीडितःकेपङ्ग्वन्धजडाश्चशीर्णचरणाःकोवाधनःकोक्रियः ॥ इत्येवंप्रसमीक्ष्यदेवकृपयादोषात्परित्रायसे कस्यान्यस्यपरोपकारनिरता चेष्टायथैषातव ॥ ६७ ॥ धर्मःपरत्रकिलतिष्ठतिसेवितोसौ कालान्तरेणविबुधावरदाभवन्ति ॥ त्वंसेवितःप्रणतवत्सलभूतिकामैस्सद्यःप्रयच्छसिफलंयदभीप्सितन्तैः ॥ ६८ ॥ विभ्रान्तकान्तहरिणीसदृशेक्षणाभिरङ्गेपुहारमणिकुण्डलमेखलाभिः ॥ तेषांभवन्तिभवनानिविलासिनीभिर्येषांनृणांत्वमसिवैवरदःप्रसन्नः ॥ ६९ ॥ यैस्त्वन्नरैस्सकृदपिप्रणतःकथंचिद्ध्यातोऽथवाभुवननाथतथान्तकाले ॥ निष्कल्मषाजगतिदुष्कृतिनोभवन्ति तेनिर्मलास्सुकृतिनोगतिमाप्नुवन्ति ॥ ७० ॥ येत्वांकुतर्कमतिभिर्ननमन्तिभक्त्या रोमाञ्चकञ्चुकशताकुलितैश्शरीरैः ॥ तेनिर्धनाःपरगृहेष्ववभूतम

व हे प्रणतप्रिय ! ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुषों से सेवित तुम शीघ्रही उस फलको देतेहो जोकि उनसे चाहाजाता है ॥ ६८ ॥ जिन मनुष्यों के ऊपर वरदायक तुम प्रसन्न होतेहो उनके मन्दिर भ्रमित व सुन्दरी मृगी के समान नेत्रोंवाली तथा अंगों में हार, मणि, कुण्डल व क्षुद्रघण्टिकाओंवाली स्त्रियों से संयुत होते हैं ॥६९॥ हे भुवननाथ ! जिन मनुष्यों ने किसीप्रकार एकबार भी तुम्हारा प्रणाम किया है व अन्तकालमें ध्यान किया है वे पापी पातकोंसे रहित होतेहैं व निर्मल होकर पुण्यवान् की गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ७० ॥ जो मनुष्य भक्तिसे कुतर्कवाली बुद्धियों के द्वारा रोमांचरूपी सैकड़ों कवचों से आकुल शरीरों से तुमको नहीं प्रणाम करते हैं

क्षुधा से दुबले कण्ठवाले वे निर्धनी पुरुष पराये घरों में अपमान कियेहुये अन्न की याचना करते हैं ॥ ७१ ॥ व समुद्र के जलकी लहरियों के क्षोभकी नाईं चञ्चल युगल नेत्रोंवाले और सैकडों उत्तम मणियों की किरणों से शोभित व जिह्वाओंको लपलपातेहुये प्रणाम किये शिरोंवाले मुख्य नागों से तुम अनुपम व बड़ीभारी स्तुतियों से सदैव स्तुति कियेजातेहो ॥ ७२ ॥ हे सुरोत्तम, सूर्यनारायणजी! जब तुम उदयको प्राप्तहोतेहो तब सुरनदी गंगाजी के कमलोंसे उत्पन्न व पवनों के द्वारा सोने के समान कमलों की धूरिसे रंगेहुये भ्रमरोंके समूह उडते हैं ॥ ७३ ॥ हे भगवन्! तत्त्व का ध्यान करने के लिये समुद्र के मध्य में स्थितहोकर जीविका

नं क्षुत्क्षामकण्ठवदनाःपरितङ्कयन्ति ॥ ७१ ॥ उदधिजलतरङ्गक्षोभलोलाक्षियुग्मैस्सुमणिशतमयूखोद्भासितैर्लेलिह
कैः ॥ प्रणिपतितशिरोभिर्नागमुख्यैरजस्रं श्रुतिभिरनुपमाभिस्स्तूयसेपुष्कलाभिः॥७२॥ तवसुरवरगच्छतोप्युदेतुंत्रिद
[illegible]कमलोद्भवाानिवातैः॥ कनककमलरेणुरञ्जिताानिभ्रमरकुलानिपतङ्गउत्पतन्ति ॥७३॥ तत्त्वध्यानंकर्तुंजलनिधि
[illegible]किरणकानिवहेः ॥ आजीवार्थेप्रतपासिभगवन्कस्तेतुल्यस्त्रिभुवनमध्ये ॥ ७४ ॥ उदयाद्रिनितम्बसंस्थित
[illegible]पृष्ठाचावृतस्य ॥ किरणास्तपनीयसम्प्रभास्ते विलसन्तस्तडितोविडम्बयन्ति ॥ ७५ ॥ यथायथात्र
[illegible]विपाटयन्घनतिमिरौघसञ्चयान्॥तथातथाक्षुभितमहानिलेरितः प्रतीयतेमुहुरिवदुन्दुभिर्यथा॥७६॥
[illegible]चक्रवाककलहंसमेखलाम् ॥ कामिनीमिवरतिश्रमालसान्तां विबोधयसिपद्मिनीङ्करैः ॥
[illegible]भृङ्गतुङ्गचरणाकुलीकृतम् ॥ त्वत्प्रभाभिरनुरागरञ्जितं पद्मरागमिवशोभतेभृश

[illegible] मध्य में कौन है ॥ ७४॥ उदयोंमें उदयाचल के पृष्ठभाग में स्थित व अस्तमयों में घिरेहुये तुम्हारी सोने के [illegible] करती है ॥ ७५ ॥ घने अन्धकार के समूहकी राशियों को विदारण करताहुआ तुम्हारा रथ ज्यों ज्यों [illegible] दुन्दुभिकी नाईं प्रतीत होताहै ॥ ७६ ॥ सुन्दर कमलोंकी नाईं मूँदेहुये नेत्रोंवाली व चकवाक तथा [illegible] कमलिनी को किरणोंसे जगाते हो ॥ ७७ ॥ भ्रमर के उन्नत चरणों से आकुल किया

होवो [illegible]
[illegible]णजीके लिये न[illegible]
इस स्तोत्र से प्रसन्नहूं व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस [illegible]
योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तम [illegible]

हुआ तथा नील व चञ्चल और अतिसुन्दर और तुम्हारी प्रभाओं से अनुराग समेत रंगाहुआ कमल पद्मरागकी नाईं बहुत शोभित होताहै ॥ ७८ ॥ शोभायमान चन्द्रमा के समान हारकी नाईं निर्मल व तुम्हारी किरणों से पूर्ण आकाश बहुतही शोभित होताहै जोकि वडाभारी व श्वेत तथा अरुणवर्ण है ॥ ७९ ॥ इस संसारमे तबतक तुम उदय होकर मनुष्यों के सन्ताप को हरतेहो जबतक कि तुम्हारी किरणों से यह संसार पूर्ण होताहै हे वरदायक ! सदैव वेदके मार्ग में तत्पर उदार बुद्धिवाले ऋषि मुनियों से तुम्हारे गुणोंकी स्तुति नहीं आश्रय कीजासक्ती है ॥ ८०॥ तुम विष्णुहो तुम चन्द्रमाहो और दैत्यों के मथनेवाले स्वामिकार्त्तिकेयहो और तुम

म् ॥ ७८ ॥ स्फुरच्छशाङ्कहारनिर्मलंत्वदंशुपूरितम् ॥ विभात्यतीवकान्तमम्बरंबृहच्चपाटलम् ॥७९ ॥ हरसित्वमेवताप मिहतावदुदेत्यनृणां भवतिचयावदेवकिरणैस्तवपूर्णमिदम् ॥ ऋषिमुनिभिरुदारधीभिरनिशंश्रुतिमार्गपरैर्वरदनशक्य तेतवगुणस्तुतिराश्रयितुम् ॥ ८० ॥ त्वंविष्णुस्त्वंशशाङ्कस्त्वमसुरमथनःषण्मुखस्त्वंधनेशस्त्वंकालस्त्वञ्चधाताक्षि तिधरमृदपामाश्रयस्त्वंहुताशः ॥ ॐकारस्त्वंद्विजानां त्वमिहजलनिधिस्त्वं यमस्त्वंचरुद्रस्त्वं शक्रस्त्वंपयोदो व्रतयम नियमास्त्वंजगत्सर्वमेव ॥ ८१ ॥ त्वमनिन्द्यगोपतेत्रिपुरमथनमन्मथदाहकस्त्वमसुरभीमदर्पहा ॥ त्रिदशाधिपकम लवराननस्त्वमिहदेवगुरुर्भगवंस्त्रिभुवनमण्डलेस्तिकतमस्तवतुल्यगुणः ॥ ८२ ॥ आदित्यभास्करदिवाकरसप्तसप्ते मार्तण्डसूर्यहरिदश्वपतङ्गभानो ॥ अश्रान्तवाहनस्वरूपगभस्तिमालिंस्त्वांलोकनाथशरणंप्रणिपद्यतेसो ॥ ८३ ॥

कुबेरहो व तुम कालहो और तुम विधाता, पर्वत, मिट्टी व जलोंके आश्रयहो और तुम अग्निहो व तुम ब्राह्मणोंके मध्यमें ॐकारहो और इस संसार मे तुम समुद्रहो, तुम यमहो, तुम रुद्रहो और तुम इन्द्रहो व मेघहो और तुम व्रत, यम व नियमहो और तुम सब संसारहो ॥ ८१ ॥ और हे त्रिपुरमथन, गोपते, अनिन्दनीय ! तुम कामदेवके सन्तापकारकहो और तुम भयंकर दैत्यों के गर्वविनाशकहो हे सुराधीश, भगवन् ! कमल के समान उत्तम मुखवाले तुम यहां देवताओंके गुरुहो त्रिलोक के मध्यमें तुम्हारे समान गुणवाला कौन पुरुष है ॥ ८२ ॥ हे आदित्य, भास्कर, दिवाकर, सप्ताश्व, मार्तण्ड, सूर्य, हरिदश्व, पतंग, भानो. अश्रान्तवाहनस्वरूप,

किरणमालिन्, लोकनाथ ! यह संसार तुम्हारी शरणमें प्राप्तहै ॥ ८३ ॥ हे पूर्वदिशा रूपी स्त्री के तिलकरूप ! व हे प्रकाशमान कर्णपूर! हे मन्दाकिनीप्रिय, नाथ, संसार-दीपक, कनकाचलतापन, आकाश के हारके रत्न ! हे सन्ध्यारूपी स्त्रीके वदनराग! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ८४ ॥ हे ब्रह्मण्य, सत्य, शुभ, मंगल, जगदीश, आकाश व कमलेश ! हे मुनियों से स्तुति कियेहुये, विश्वमूर्ते ! हे दुःखित जनके शोकहारक, सेवकपालक! हे भगवन् ! शरण में आयेहुये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ८५ ॥ हे देव, प्रभो ! जिसलिये कमलकलीरूपी हाथों से मस्तक पै अंजली करके तुम भलीभाति भक्ति से यहां आज स्तुति कियेगये उसी कारण मेरे ऊपर

प्राग्दिग्वधूतिलकभासुरकर्णपूरमन्दाकिनीदयितनाथजगत्प्रदीप ॥ हेमाद्रितापननभस्तलहाररत्नसन्ध्याङ्गनावदनरागनमोनमस्ते ॥ ८४ ॥ ब्रह्मण्यसत्यशुभमङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेशमुनिसंस्तुतविश्वमूर्ते ॥ आर्तस्यशोकहरकिङ्करपालकश्च त्वम्मेप्रसीदभगवञ्छरणागतस्य ॥ ८५ ॥ कृत्वाञ्जलिंशिरसिपङ्कजकुड्मलाभ्यां यत्संस्तुतस्त्वमिहदेवमयाद्यभक्त्या ॥ तेनप्रभोभवममोपरिसौम्यमूर्त्तिर्धर्मेमतिंकुरुसदाश्रियमूर्जिताञ्च ॥ ८६ ॥ नमस्सवित्रेजगदेकचक्षुषेजगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ॥ त्रयीमयायत्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ ८७ ॥ सूर्यउवाच ॥ तुष्टोहमधुनापार्थ स्तोत्रेणानेनसुव्रत ॥ वरंदास्यामियत्नेनयत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ८८ ॥ मद्दर्शनंहिविफलं नकदाचित्प्रजायते ॥ शूराणाञ्चविशेषेण ह्यदेयंनास्तियत्नतः ॥ ८९ ॥ अर्जुनउवाच ॥ एषोथवरोमह्यं वराणामुत्तमोत्तमः ॥ अत्रसन्निहितोदेव सर्वकालंभवप्रभो ॥ ९० ॥ येचत्वांमानवाभक्त्या स्तोष्यन्तेप्रणतास्सदा ॥ तेषान्धनञ्चधान्यञ्च पुत्रदा

सौम्यमूर्ति होवो व धर्म में बुद्धि करो और सदैव बढ़ीहुई लक्ष्मी कीजिये ॥ ८६ ॥ संसार के एक नेत्ररूपी व संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश के कारणरूप सूर्यनारायणजीके लिये नमस्कारहै व वेदत्रयीमय, त्रिगुणात्मधारी, ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मकके लिये प्रणामहै ॥ ८७ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे सुव्रत, पार्थ ! इस समय मैं इस स्तोत्र से प्रसन्नहूं व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस वरदान को यत्न से दूंगा ॥ ८८ ॥ कभी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता है और शूरोंको विशेषकर यत्न से न देने योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तमोत्तम यही मेरा वरदानहै कि हे देव, प्रभो ! सब समयमें तुम यहां स्थित होवो ॥ ९० ॥ और

जो मनुष्य सदैव भक्तिसे प्रणामकर सदा तुम्हारी स्तुति करैं उनको धन, धान्य व पुत्र, स्त्री आदिक धन ॥ ९१ ॥ और मनका सम्पूर्ण अभिलाष देना चाहिये यह मेरा वरदान है इसके उपरान्त सूर्यनारायणजी नर (अर्जुन) जी से उत्तम वचन बोले ॥ ९२ ॥ कि हे अर्जुन ! बड़ी भक्तिसे मुझको पूजकर जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करैंगे उनको लक्ष्मीजी से वियोग न होगा यह मेरा वरदान है ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांनरादित्यमाहात्म्यंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

रादिकंवसु ॥ ९१ ॥ मनसश्चेप्सितंसर्वं दातव्यंहिवरोमम ॥ अथादित्योनरन्देव उवाचवचनंशुभम् ॥ ९२ ॥ येमांस्तुवन्त्यनेनाङ्ग पूजयित्वातिभक्तितः ॥ श्रियानविच्युतिस्तेषांभवेदेषवरोमम ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नरादित्यमाहात्म्यन्नामत्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ नारायणोपिसंस्थाप्य शङ्खंप्रधमाययत्नतः ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वा स्तोत्रेणानेनभास्करम् ॥ १ ॥ आदित्यंभास्करंभानुं रविंसूर्यंदिवाकरम् ॥ प्रभाकरन्दिननाथं तपनंतपतांवरम् ॥ २ ॥ वरेण्यंवरदंविष्णुमनघंवासवानुजम् ॥ बलंवीर्य्यंसहस्रांशुं सहस्रकिरणद्युतिम् ॥ ३ ॥ मयूखमालिनंविश्वं मार्तण्डंचण्डरोचिषम् ॥ सदागतिंसुभास्वन्तं सप्तसप्तिंसुखोदयम् ॥ ४ ॥ देवदेवमहिर्बुध्न्यं धाम्नान्निधिमनुत्तमम् ॥ तपोब्रह्ममयालोकं लोकपालमपाम्पतिम् ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधकन्देवं जगद्दीपंजगत्प्रभुम् ॥ अर्कन्निःश्रेयसपरं कारणंश्रेयसाम्परम् ॥ ६ ॥ इनंप्रभाविनं

दो० ।-यथा केशवादित्य कर अहै सुभग माहात्म्य । चवालिसें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि विष्णुजी ने भी यत्न से शङ्खको बजाकर व भलीभांति स्थापनकर पवित्र होकर इस स्तोत्र से सूर्यनारायणकी स्तुति किया ॥ १ ॥ कि आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, सूर्य, दिवाकर, प्रभाकर, दिननाथ, तपन, तपतांवर ॥ २ ॥ व वरेण्य, वरद, विष्णु, अनघ, वासवानुज, बल, वीर्य, सहस्रांशु, सहस्रकिरणद्युति ॥ ३ ॥ मयूखमाली, विश्व, मार्तण्ड, चण्डरोचि, सदागति, सुभास्वान्, सप्तसप्ति, सुखोदय ॥ ४ ॥ देवदेव, अहिर्बुध्न्य, धामनिधि, अनुत्तम, तप, ब्रह्ममयालोक, लोकपाल व अपांपति ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधक, देव, जगद्दीप, जगत्प्रभु,

अर्क, निःश्रेयसपर, कारण, श्रेयसांपर ॥ ६ ॥ इन, प्रभावी, पुण्य, पतंग, पतगेश्वर व चाहेहुये अर्थोंके दायक और देखे व न देखेहुये फलों के दायक ॥ ७ ॥ ग्रह, ग्रहकर, हंस, हरिदश्व, हुताशन, मंगल्य, मंगल, मेध्य, ध्रुव, धर्मप्रबोधन ॥ ८ ॥ भवसंभावित, भाव, भूतभव्य, भवात्मक, दुर्गम, दुर्गतिहारक, हरनेत्र, त्रयीमय ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यतिलक, तीर्थ, तरणि, सर्वतोमुख, तेजराशि, सुनिर्वाण, विश्वेश, शाश्वत धाम ॥ १० ॥ कल्प, कल्पानल, काल, कालचक्र, क्रतुप्रिय, भूषण, मरुत, सूर्य, मणिरत्न, सुलोचन ॥ ११ ॥ त्वष्टा, विष्टर, विश्व, सदसत्कर्मसाक्षी, सविता, सहस्रलोचन, प्रजापाल, अधोक्षज ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, वासरारम्भ, रक्तवर्ण, महाद्युति व मध्य

पुण्यं पतङ्गपतगेश्वरम् ॥ दातारंवाञ्छितार्थानां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥ ७ ॥ ग्रहंग्रहकरंहंसं हरिदश्वंहुताशनम् ॥ मङ्गल्यंमङ्गलंमेध्यं ध्रुवंधर्मप्रबोधनम् ॥ ८ ॥ भवसम्भावितंभावं भूतभव्यंभवात्मकम् ॥ दुर्गमंदुर्गतिहरं हरनेत्रंत्रयीमयम् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यतिलकंतीर्थं तरणिंसर्वतोमुखम् ॥ तेजोराशिंसुनिर्वाणं विश्वेशन्धामशाश्वतम् ॥ १० ॥ कल्पंकल्पानलंकालं कालचक्रंक्रतुप्रियम् ॥ भूषणंमरुतंसूर्य्यं मणिरत्नंसुलोचनम् ॥ ११ ॥ त्वष्टारंविष्टरंविश्वं सदसत्कर्मसाक्षिणम् ॥ सवितारंसहस्राक्षं प्रजापालमधोक्षजम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माणंवासरारम्भं रक्तवर्णमहाद्युतिम् ॥ सूक्ष्मंमध्यदिने मध्ये श्यामंविष्णुंदिनक्षये ॥ १३ ॥ नाम्नामष्टशतंदिव्यं विष्णुनासमुदाहृतम् ॥ यइदंप्रयतोभूत्वा पठेद्भक्त्यासमाहितः ॥ १४ ॥ ननस्यविपदःक्वापि सर्वत्रापिशुभागतिः ॥ धनधान्यसुखावाप्तिः पुत्रलाभश्चजायते ॥ १५ ॥ तेजःप्रज्ञापरंज्ञानं वृद्धिश्चपरमागतिः ॥ एवंश्रुत्वाजगन्नाथो जगामादर्शनन्ततः ॥ १६ ॥ केशवार्कमुखंदृष्ट्वा पद्मरागसमप्रभम् ॥

[illegible] सूक्ष्म मध्य व दिनान्त में श्याम, विष्णु ॥ १३ ॥ इन एकसौआठ दिव्यनामोंको श्रीविष्णुजी ने कहा है पवित्रहोकर सावधान होताहुआ जो मनुष्य भक्तिसे इस [illegible] पढ़ता है ॥ १४ ॥ उसको कहीं पर भी विपत्तियां नहीं होतीहैं और सब कहीं उत्तम गति होतीहै व धन, अन्न और सुखोंकी प्राप्ति व पुत्रलाभ होताहै ॥ १५ ॥ [illegible] प्रज्ञापर, ज्ञान और वृद्धि व उत्तम गति होतीहै ऐसा सुनकर तदनन्तर जगदीशजी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ ॥ पद्मरागके समान प्रभावान् केशवार्कजी के

मुखको देखकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष सूर्यलोकमें पूजाजाताहै ॥ १७ ॥ और दशाश्वमेधतीर्थ के मध्य में रेणुतीर्थ कहाजाता है उसको देखकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ केशवार्कजी के समीप रेणुतीर्थ कहागया है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकेशवादित्यमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

दो० । शक्तिभेद अस तीर्थ जिमि भयो भूमि विख्यात । पैंतालिस अध्याय में सोइ चरित है ख्यात ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शक्तिभेद ऐसे कहेहुये अन्य तीर्थ को मैं कहूंगा यहांपर सदाशिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी का जटाभद्र (क्षौर) कियाहै ॥ १ ॥ और वहां पर देवताओं के वैरी तारकासुर को मारकर क्रोधित होते हुये आपही स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको भूतल में फेंकदिया ॥ २ ॥ व्यास जी बोले कि हे भगवन्, महामुने ! यत्नसे कहिये मेरे सन्देह है और मैं यह जाननेकी इच्छा करताहूं कि स्वामिकार्त्तिकेयजी कैसे उत्पन्नहुये हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय देवासुरसंग्राम में दानवों ने देवताओं को जीता भय से विकल इन्द्रादिक देवता स्वर्गको छोड़कर दिशाओंको चलेगये ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे कालिज ! सुरराज इन्द्रजी ने उग्र तपस्या से त्रिपुरविनाशक त्रिलोचन महादेवजी की

॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सूर्यलोकेमहीयते ॥ १७ ॥ दशाश्वमेधमध्येतु रेणुतीर्थंप्रचक्ष्यते ॥ तद्दृष्ट्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ १८ ॥ केशवार्कसमीपेतु रेणुतीर्थंप्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवन्तीखण्डेकेशवादित्यमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थमन्यत्तथावक्ष्ये शक्तिभेदमितिस्मृतम् ॥ स्कन्दस्यचजटाभद्रं चक्रेथात्रपुराशिवः ॥ १ ॥ तारकञ्चतथादैत्यं हत्वातत्रसुरद्विषम् ॥ शक्तिंस्कन्दस्स्वयंक्रुद्धो निचिक्षेपमहीतले ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ भगवन्ब्रूहि यत्नेन संशयोमेमहामुने ॥ कथंस्कन्दस्समुत्पन्न एतदिच्छामिवेदितुम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे निर्जितादानवैस्सुराः ॥ दिवंत्यक्त्वादिशोजाताः शक्राद्याभयविह्वलाः ॥ ४ ॥ ततस्तुदेवराजेन तपसोग्रेणकालिज ॥ आराधितोमहादेवस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ ५ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवः शक्रस्याभिमुखःस्थितः ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं व

आराधना किया है ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी इन्द्रके सामने स्थितहोकर कोमल वचन बोले कि मैं तुमको प्यारे वरदान को दूंगा ॥६॥ इन्द्रजी बोले कि हे भगवन्, शङ्करजी ! दयासे यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो हे परमेश्वर, देव ! महासेनापतिको दीजिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेन्द्र ! सब अर्थ से बढ़ेहुये पुत्रको उत्पन्न करो जोकि महासेन नामक देवताओं के भयहारक हैं ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ऐसा कहकर समस्त प्राणियों के स्वामी शिवदेवजी अन्तर्द्धान होगये और पुत्रकी चिन्ता में परायण सदाशिवदेवजी हिमाचलको चलेगये ॥ ९ ॥ व देवदारु के वन में टिकतेभये और ज्ञान व ध्यान में तत्परहुये हे मुने !

रमिष्टंददामिते ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवन्कारुण्यान्ममशङ्कर ॥ महासेनापतिन्देव प्रयच्छपरमेश्वर ॥ ७ ॥ हरउवाच ॥ उत्पादयामिदेवेन्द्रं सर्वार्थाद्रूर्जितंसुतम् ॥ नामतोयोमहासेनस्सुराणांभयहारकः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्सर्वभूतपतिर्हरः ॥ सुतचिन्तापरोदेवो जगामचहिमालयम् ॥ ९ ॥ देवदारुवनेतस्थौ ज्ञानध्यानपरोभवत् ॥ ब्रह्मादयोपियन्देवं योगिनोध्यानचिन्तकाः ॥ १० ॥ ध्यायन्तिनियतात्मानः प्राणायामपरा मुने ॥ लिङ्गमूर्तिश्चयोनित्यं पूज्यतेसर्वजन्तुभिः ॥ ११ ॥ सध्यायतिकिमर्थन्तं नविद्मःपरमार्थतः ॥ एवंध्यानपरेदेवे देवीहिमवतोगृहे ॥ १२ ॥ मध्येवयसिवर्तन्ती यासीद्दाक्षायणीसती ॥ पितुर्गृहेनिजोदेहो ययायोगाद्विसर्जितः ॥ १३ ॥ निमन्त्रितोनमेभर्ता इतिकोपंचकारया ॥ तान्देवींहिमवाञ्छ्रुत्वा पूर्वन्देवर्षिनारदात ॥ १४ ॥ भवभार्याभवित्रीति

प्राणायाम में परायण पवित्र चित्तवाले व ध्यान के चिन्तन करनेवाले ब्रह्मादिक योगी भी जिनको ध्यान करते हैं और लिंगमूर्तिवाले जो नित्य समस्त प्राणियों से पूजेजाते हैं ॥ १० । ११ ॥ वे किसलिये उनको ध्यान करते हैं हम परमार्थ से उसको नहीं जानते हैं इसप्रकार जब सदाशिवदेवजी ने ध्यान किया तब देवी पार्वती जी हिमाचलके घरमें ॥ १२ ॥ मध्य (युवा) अवस्था में वर्तमान थीं जोकि दक्षजी की कन्या सती जी हुई हैं और जिन्होंने पिताके घरमें योग से अपने शरीर को त्याग दियाथा ॥ १३ ॥ मेरे पतिका निमन्त्रण नहीं कियागया इसकारण जिन्होंने क्रोध कियाथा उन पार्वती देवीजीको पहले देवर्षि नारदजीसे यह सुनकर कि शिव

जी की स्त्री होवैंगी उन्होंने अन्य वरदानको नहीं चिन्तन किया जोकि शिवजी के लिये तप करती थीं वे सखियों से संयुक्त थीं ॥ १४।१५॥ किसप्रकार शङ्कर देवजी मेरे पति होवैंगे जबतक इसप्रकार हिमवान्‌की कन्या पार्वतीदेवी शिवदेवजीके समीप गईं ॥ १६ ॥ तबतक बलसूदन (इन्द्र) जी को आगेकर देवता भली भांति प्राप्तहुये और अविनाशी ब्रह्माजी को देखने के लिये पवित्र ब्रह्मसभाको गये ॥ १७ ॥ और उन देवताओंने स्तुतिकर इस वचनको कहा कि दानवोंसे जीते हुये देवताओंके रक्षक होवो ॥ १८ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि मैंने समस्त कार्यको जाना परन्तु इन शंभुजीके वीर्यके बिना कार्यकी सिद्धि न होगी ॥१९॥

नान्यंवरमचिन्तयत ॥ यातपस्यतिरुद्राय सासखिभ्यांसमन्विता ॥ १५ ॥ कथंहिशङ्करोदेवो ममभर्ताभविष्यति ॥ यावदेवंगतादेवं देवीहिमवतस्सुता ॥ १६ ॥ ततस्समागतादेवाः कृत्वाग्रेबलसूदनम् ॥ जग्मुर्ब्रह्मसदःपुण्यं द्रष्टुंब्रह्मा णमव्ययम् ॥ १७ ॥ तेसुराश्चस्तुतिंकृत्वा वाक्यमेतत्समब्रुवन् ॥ शरणंभवदेवानां दानवैर्विजितात्मनाम् ॥ १८ ॥ ततोवोचत्सुरान्ब्रह्मा ज्ञातंकार्यंमयाखिलम् ॥ नैतच्छम्भोर्विनावीर्यात्कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ १९ ॥ तथापतध्वन्देवेशो यथावाञ्छतिपार्वतीम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेब्रह्मा स्वप्नेलब्धंधनंयथा ॥ २० ॥ ततोमेरुंसमागत्य पुनर्मन्त्रंप्रचक्रिरे ॥ तेषा माहेदृशंशक्रस्तुष्टोशम्भुःपुरामम ॥ २१ ॥ प्रतिज्ञातश्चदेवेन स्वाङ्गात्सेनापतिम्प्रति ॥ तस्मादेवङ्गतेकार्ये कारणंम करध्वजम् ॥ २२ ॥ इतिसञ्चिन्त्यदेवेशो काममाहूयसत्वरम् ॥ उवाचवचनंहृद्यं देवानामनुकम्पया ॥ २३ ॥ यथादेवो

तुमलोग उस प्रकार यत्न करो कि जिस भांति देवेश सदाशिवजी पार्वतीजी की इच्छा करैं ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये जैसे कि स्वप्न में पाया हुआ धन अन्तर्द्धान होजाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर सुमेरु गिरिपै भलीभांति आकर उन देवताओं ने सम्मति किया और इन्द्रजी ने उन देवताओं से ऐसा वचन कहा कि पुरातन समय मेरे ऊपर शिवजी प्रसन्न हुये ॥ २१ ॥ और शिवदेवजी ने अपने अंग से सेनापति के विषयमें प्रतिज्ञा कियाहै इसलिये इसप्रकार कार्य के प्राप्तहोने पर मकरध्वज (कामदेव) कारण है ॥ २२ ॥ ऐसा भलीभांति चिन्तनकर देवताओं के ऊपर दया की कामनासे सुरेश (इन्द्र) जीने शीघ्रही कामदेवको बुलाकर

मनोहर वचन कहा ॥ २३ ॥ कि हे कामदेव ! जिसप्रकार सदाशिवदेवजी देवी पार्वती जीको भजैं वैसाही कीजिये क्योंकि देवताओं का यह बडाभारी कारण प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इन्द्रका वचन सुनकर कामदेव ने हँसकर कहा कि मैं सब ऐसा करूंगा यदि वसंत मेरा मित्र होवे ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस क्षणमें कामदेवजी के वचन के उपरान्त इन्द्र ने वसंत को आज्ञादिया कि शीघ्रही कामदेवके सेवक होवो ॥ २६ ॥ कामदेव वसन्तको मित्र पाकर स्त्री समेत चला और पुष्पोंके धनुष को चढ़ाकर व बाणको हाथ में लेकर सावधान हुआ ॥ २७ ॥ जिस देवदारुवन में देवाधिदेवेश शिवजी स्थित थे वहापर ध्यान किये नन्दीश्वर द्वारपालजी टिके

भजेद्देवीं तथाकामंविधीयताम् ॥ कारणंमहदेतद्धै देवानांसमुपस्थितम् ॥ २४ ॥ कामोवाक्यंहरेःश्रुत्वा प्रहस्यैवमुवाच ह ॥ करिष्येसर्वमेवंहि सखाचेन्मेभवेन्मधुः ॥ २५ ॥ तस्मिन्क्षणेथशक्रेण कामवाक्यादनन्तरम् ॥ समादिष्टोमधुःक्षिप्रं कामस्यानुचरोभव ॥ २६ ॥ लब्ध्वाकामोमधुंमित्रं प्रतस्थेभार्ययासह ॥ कृत्वासज्जंधनुर्बाणं पौष्पंपाणौसमाहितः ॥ २७ ॥ यत्रदेवाधिदेवेशो देवदारुवनेस्थितः ॥ नन्दीश्वरःप्रतीहारः कृतध्यानोवतिष्ठते ॥ २८ ॥ चूतवृक्षाश्रितः कामो यावद्बाणंसमोहनम् ॥ सन्दधत्यन्तरेचास्मिन् देवीप्रापभवाश्रमम् ॥ २९ ॥ त्यक्तध्यानव्रतोदेवो हृष्टश्चाह्लादचेतनः ॥ ततोविलोकयामास दिशस्सर्वाःप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ चूतवृक्षाश्रितंकाममपश्यत्सरुषान्वितः ॥ भस्मीकृतस्तृतीयाक्ष्णा वह्निज्वालाकुलेनसः ॥ ३१ ॥ देवोप्यन्तर्दधेतस्मात् स्थानादाशुगणैस्सह ॥ पार्वतीविस्मितासाध्वी लज्जितादुःखिताभवत् ॥ ३२ ॥ हिमवांस्तांसमुत्थाप्य निनायाशुनिजंगृहम् ॥ गतेदेवेचदेव्याञ्च कामपत्नीसुदुःखिता ॥ ३३ ॥

थे ॥ २८ ॥ आमके वृक्षके आश्रित कामदेव जबतक मोहनबाणको संधानकरै उसी समय में देवी पार्वतीजी शिवजी के आश्रम मे प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर ध्यान व व्रतोंको छोडेहुये आनन्द बुद्धिवाले प्रसन्न शिवजी ने बडे यत्न से सब दिशाओंको देखा ॥ ३० ॥ और क्रोधसंयुत उन्होंने आम्रवृक्षके आश्रित कामदेवजीको देखा और अग्निकी ज्वालामे आकुल तीसरे नेत्रसे उसको भस्म करदिया ॥ ३१ ॥ और गणोंसमेत सदाशिवदेवजी भी उस स्थान से अन्तर्द्धान होगये और पतिव्रता पार्वती जी विस्मित होकर लज्जित व दुःखितहुई ॥ ३२ ॥ हिमाचलजी उन पार्वतीजीको उठाकर शीघ्रही अपने घरको लेआये सदाशिवजीके जानेपर जब पार्वतीजी

चलीगई तब कामदेवकी स्त्री रति दुःखित हुई ॥ ३३ ॥ और भस्म कियेहुये पति को देखकर बहुत दुःखित होतीहुई रति ने विलाप किया व दुःख से विकल रति को देखकर आकाशवाणी ने कृपासे दुःखित सखी की नाई समझातीहुईसी कहा कि हे उत्तमापांगि ! तुम मत रोवो तुम्हारा पति बिन अंगवाला भी होकर मित्रके कार्यकी विधि से सब कार्योंको करैगा और जब ये महादेवजी पार्वतीजी का ब्याह करैंगे ॥ ३४।३५।३६ ॥ तब शिवजी के ध्यान से उठैगा इसमें सन्देह नहीं है और द्वापरके अन्तमें जब श्रीकृष्णजी द्वारकामें बसैंगे ॥ ३७ ॥ तब हे देवि ! उनका पुत्र प्रद्युम्न नामक तुम्हारा पति होगा इसप्रकार कहीहुई उस रतिने आकाशसे पैदाहुई

भस्मीकृतंपतिन्दृष्ट्वा विललापसुदुःखिता ॥ दृष्ट्वारतिंसुदुःखार्तां वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३४ ॥ आश्वासयन्तीकृपया सखीमिवसुदुःखिताम् ॥ मारोदीस्त्वंशुभापाङ्गितवभर्ताकरिष्यति ॥ ३५ ॥ सर्वकार्याण्यनङ्गोपि मित्रकार्यविधानतः ॥ यदाचापंमहादेवः परिणेष्यतिपार्वतीम् ॥ ३६ ॥ तदाशम्भोरनुध्यानादुत्थास्यतिनसंशयः ॥ द्वारकायां यदाकृष्णो द्वापरान्तेनिवत्स्यति ॥ ३७ ॥ तत्पुत्रोभवितादेवि प्रद्युम्नोनामतेपतिः ॥ इत्युक्त्वासाजहाच्छोकमाकाशाज्जातयागिरा ॥ ३८ ॥ अचिन्तयत्तदादेवी उमापिहिमवद्गृहे ॥ कामस्यदहनंतेजश्शम्भोर्यत्तदनुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कथंभर्ताभवेदीशः कामस्योत्थापनंकथम् ॥ नैतत्तपोविनाकार्यं कचित्कस्यापिसिद्धये ॥ ४० ॥ एवंसञ्चिन्तयित्वाथ सखीभिस्सहिताततः ॥ तपश्चकारसुमहत् पित्रादेशाच्छुभव्रता ॥ ४१ ॥ वर्षास्वभ्रावकाशस्था हेमन्तेजलशायिनी ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्नितप्ताङ्गी तपस्युग्रेसमास्थिता ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वातपसोपेतां ब्रह्मचारिवपुर्हरः ॥ आजगामाश्रमन्देव्याः कृता

वाणी से शोकको त्यागदिया ॥ ३८ ॥ और उस समय हिमवान् के घरमें पार्वती देवी ने भी चिन्तन किया कि शिवजी का जो तेज कि कामदेवको जलानेवाला है वह बहुत उत्तम है ॥ ३९ ॥ और ईश्वर शिवजी कैसे पति होवैंगे व कामदेवका उत्थापन (उठाना) किस भांति होगा कहीं पर यह कार्य विना तपके किसी की भी सिद्धिके लिये नहीं हुआहै ॥ ४० ॥ इसप्रकार चिन्तन कर तदनन्तर सखियों समेत उत्तम व्रतवाली पार्वती जीने पिताकी आज्ञासे बड़ीभारी तपस्या किया ॥ ४१ ॥ कि वर्षाऋतु में आकाशस्थ व हेमन्तमें जलशायिनी तथा ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि से तचेहुये अंगोंवाली पार्वती जी उग्र तपस्यामें स्थितहुईं ॥ ४२ ॥ तपस्या से संयुत

उन पार्वती जी को देखकर ब्रह्मचारी शरीरवाले महादेवजी महादेवी पार्वतीजीके आश्रम को आये व किये आतिथ्य (पहुनई) वाले शिवजी यह बोले ॥ ४३ ॥ कि हे सूक्ष्मकटिवाली, कृशापाङ्गि, नवयौवने, कल्याणि ! तुम किसके लिये व क्यों तप करतीहो कारण को कहिये ॥ ४४ ॥ उन पार्वतीजी ने सत्य व मीठे उत्तर को कहा कि हे ब्रह्मचारी जी ! मुझ से तपस्या का प्रारम्भ शिवजी की प्राप्ति के लिये कियाजाता है ॥ ४५ ॥ यह सुनकर व विचारकर अपने कर्मकी निन्दा करते हुये शिवजी ने विचार किया कि पर्वतकी कन्या पार्वतीजी भक्तिकी परीक्षा के प्रयोजन को नहीं सहैंगी ॥ ४६ ॥ उस स्थान से जानेकी इच्छावाली पार्वतीजी के समीप

कृशमध्येकृशापाङ्गि किमर्थन्नवयौवने ॥ तपःकरोषिकल्याणि कस्यार्थेकारणंवद ॥४४॥
तिथ्योब्रवीदिदम् ॥ ४३ ॥ कृशमध्येकृशापाङ्गि किमर्थन्नवयौवने ॥ तपःकरोषिकल्याणि कस्यार्थेकारणंवद ॥४४॥ विचार्यचहरःश्रुत्वा निन्दयन्
उवाचचोत्तरंसावै सत्यञ्चमधुरन्तथा ॥ वटोतपस्समारम्भःक्रियतेशङ्कराप्तये ॥ ४५ ॥ विचार्यचहरःश्रुत्वा निन्दयन् स्वंव
कार्यमात्मनः ॥ उमाभक्तिपरीक्षार्थन्नसहेतगिरेस्सुता ॥ ४६ ॥ गन्तुकामामुमांमत्वा तस्मात्स्थानान्महेश्वरः ॥ स्वंव
पुर्दर्शयामास त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ४७ ॥ लज्जिताभूद्भवानीशं दृष्ट्वातस्थावधोमुखी ॥ विवाहायार्थयागेन्द्रं यथा
मेत्वांसयच्छति ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो देव्यगाच्चपितुर्गृहम् ॥ देवीलाभायसप्तर्षीन् सस्मारस्मरशासनः ॥४९॥
प्रणेमुस्तेतथागम्य संस्मृताःपरमेश्वरम् ॥ ऊचुश्चप्राञ्जलिपुटाः कुर्मःकिंशाधिनोद्रुतम् ॥ ५० ॥ ततोब्रवीन्मुनीनीश
स्समस्तांश्चगिरेर्गृहम् ॥ गत्वातथाकुरुध्वम्मे पार्वतीस्याद्यथाप्रिया ॥ ५१ ॥ तथेतिचप्रतिज्ञाय सङ्केतंशम्भुनास्वयम्॥

व शिवजी को देखकर लज्जितहुई और नीचे मुखकरके खडी होगई विवाह के लिये जाकर तीन नेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले अपने शरीर को दिखलाया ॥ ४७ ॥ व शिवजी को देखकर लज्जितहुई और नीचे मुखकरके खडी होगई विवाह के लिये हिमाचलजीसे प्रार्थना करिये कि जिसप्रकार मुझे तुमको देवैं ॥ ४८ ॥ ऐसा कहकर शिवदेवजी अन्तर्द्धान होगये और पार्वती देवीजी पिताके घरको गई व कामदेव-विनाशक शिवजीने पार्वतीदेवीजी के मिलने के लिये सप्तर्षियों को स्मरण किया ॥ ४९ ॥ वैसेही स्मरण कियेहुये वे सप्तर्षिलोग आकर शिवजी को प्रणाम करते भये व हाथों को जोडकर बोले कि हमलोग क्या करैं शीघ्रही हमलोगों को आज्ञा दीजिये ॥ ५० ॥ तदनन्तर शिवजी सब मुनियोंसे बोले कि हिमाचलके घर

जाकर तुमलोग वैसाही कीजिये कि जिस प्रकार पार्वतीजी मेरी प्यारी होवैं ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर व आपही शिवजीसे सकेत कर स्त्रियोंसमेत वे सप्तर्षि हिमाचलके स्थानको गये ॥ ५२ ॥ व हिमाचलसे दिये अर्घवाले तथा आसनों को ग्रहण कियेहुये वे सप्तर्षि हिमालयसे बोले कि याचना करते हुये शिवजी के लिये प्यारी पार्वतीजी को दीजिये ॥ ५३ ॥ दीगई ऐसा हिमाचलसे कहेहुये सप्तर्षिलोग विवाह के दिनको निरूपणकर व आज्ञाको पाकर वहा आये जहा कि महादेवजी थे ॥ ५४ ॥ और उन्हों ने शिवदेवजीसे कहा कि हिमवान् ने पार्वतीजी को देदिया और कियेहुये कार्यवाले वे सब जिसभांति आये थे वैसेही चलेगये ॥ ५५ ॥ और

कृत्वाजग्मुस्सपत्नीका गिरीन्द्रस्यनिवेशनम् ॥ ५२ ॥ दत्तार्घाभूधरेन्द्रेण कृतासनपरिग्रहाः ॥ ऊचुरद्रिमुमांयच्छ श ङ्करायार्थिनेप्रियाम् ॥ ५३ ॥ दत्तेत्युक्ता गिरीन्द्रेणनिरूप्योद्वाहवासरम् ॥ लब्ध्वानुज्ञांसमायाता यत्रास्तेसमहेश्वरः ॥ ५४ ॥ ऊचुस्तेशङ्करंसर्वे दत्ताहिमवताशिवा ॥ कृतकार्याश्चसर्वेपि वव्रजुस्तेयथागताः ॥ ५५ ॥ चक्रुर्विवाहसामग्रीं ब्रह्म वस्विन्द्रनारदाः ॥ वृषासनंजगामाशु नन्दीशप्रमुखैर्गणैः ॥ ५६ ॥ मातृदुन्दुभिनादैश्च ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ प्राप्यागे न्द्रालयंशम्भुः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ५७ ॥ विवाह्यैनांविधानेन जगामस्वालयम्पुनः ॥ तत्रैकान्तरतिर्देवो यावत्तिष्ठति कामवान् ॥ ५८ ॥ तावत्त्रस्तैस्सुरैरग्निः प्रेषितोगान्महेश्वरम् ॥ अग्नौतत्रगतेदेवो रतिंत्यक्त्वामहेश्वरः ॥ ५९ ॥ नि चिक्षेपमुखेवह्नेः स्वरेतोव्रीडितोभृशम् ॥ रेतसातेनतप्तोग्निर्गङ्गातोयेऽभ्यचिक्षिपत् ॥ ६० ॥ हररेतोग्निनोद्गीर्णं गङ्गाम

ब्रह्मा, वसु, इन्द्र व नारद ने विवाहकी सामग्री को किया व नन्दीश आदिक गणों समेत शिवजी वृष के आसन पै शीघ्रही गये ॥ ५६ ॥ व माताओं की दुन्दुभियों के शब्दोंसे ब्रह्मादिक देवताओं समेत कियेहुये कौतुकपूर्वक मंगलवाले शिवजी हिमाचल के स्थान को प्राप्तहोकर ॥ ५७ ॥ विधिसे इन पार्वतीजी को व्याहकर फिर अपने स्थान को चलेगये वहां पर एकान्त में रतिवाले कामी शिवदेवजी जबतक स्थितहुये ॥ ५८ ॥ तबतक डरेहुये देवताओं से पठायेहुये अग्निजी महादेवजी के समीप गये वहां अग्निके जानेपर रतिको छोडकर महादेवजी ने ॥ ५९ ॥ बहुतही लज्जित होकर अपने वीर्यको अग्नि के मुखमें फेंकदिया और उस वीर्य से तपेहुये

अग्निजी ने गंगाजी के जल में फेंकदिया ॥ ६० ॥ व अग्निजी से उगिलाहुआ शिवजीका वीर्य गंगाजी के बीचमें गिरा और उसके तेजसे जलीहुई उन गंगाजी ने उसको अपने किनारे पै धरदिया ॥ ६१ ॥ और सप्तर्षियों की छह स्त्रियां नहाने के लिये गंगाजी के समीपगई व स्नान कियेहुई शीत से विकल वे किनारे पै जलते हुये तेजको देखकर ॥ ६२ ॥ अग्नि मानकर तापने की इच्छावाली वे सब भलीभांति प्राप्तहुई व उन स्त्रियोंके तापने पर हे मुने ! वह वीर्य छह मुखवाला होगया और कटिके द्वार से शीघ्रही चढ़गया और अग्नि के आगे स्थित वे स्त्रिया जब आपसमें ऊपर फेंकने के लिये न समर्थ हुई ॥ ६३ । ६४ ॥ तब उस भयसे मुनियों के

ध्येपपातह ॥ तयातुस्वतटेन्यस्तं दग्धयातस्यतेजसा ॥ ६१ ॥ सप्तर्षीणांचषट्पत्न्यःस्नानार्थंजाह्नवींययुः ॥ शीतार्तास्ताःकृतस्नाना दृष्ट्वातेजस्तटेज्वलत् ॥ ६२ ॥ मत्वाग्निमितितास्सर्वास्तप्तुकामास्समाययुः ॥ तपन्तीनाञ्चवैतासां तद्वीर्यमभवन्मुने ॥ ६३ ॥ षडाननंसमारूढं श्रोणिद्वारेणसत्वरम् ॥ यदान्योन्यमुत्पतितुं शक्तानाग्नेःपुरःस्थिताः ॥ ६४ ॥ चिन्तामगुस्तदासर्वा मुनित्रासात्ततोभयात् ॥ ततश्चतपसोवीर्याद्विकृष्यस्वोदरात्ततः ॥ ६५ ॥ षड्भिरेकत्वमापन्नं श्वेतपर्वतमस्तके ॥ मध्येशराणांवैकृत्स्नं निक्षिप्तंवीर्यमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ शुक्लायांप्रतिपद्यासीद्द्वितीयायांसमीकृतः ॥ तृतीयायांवसाकारस्सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६७ ॥ चतुर्थ्यांपरिपूर्णाङ्गः षण्मुखोद्वादशेक्षणः ॥ अलंकृतस्तुपञ्चम्यां षष्ठ्यांचससमुत्थितः ॥ ६८ ॥ तेजसास्वेनतीव्रेणततापसजगत्त्रयम् ॥ जातमित्थंसमाकर्ण्य सर्वेशक्रमुखाःसुराः ॥ ६९ ॥ समा

डरके कारण वे सब चिन्ताको प्राप्तहुई तदनन्तर तपस्या के बल से अपने पेटसे खींचकर उसके उपरान्त ॥ ६५ ॥ श्वेतपर्वत (कैलास) के बीचमें छहों ने एकता में प्राप्तकिया और रामसरों के बीच में समस्त उत्तम वीर्य को शुक्लपक्षवाली परेवामें फेंकदिया और दुइज में सम कियागया व तीज में समस्त लक्षणों से लक्षित वह वसा के आकारवाला होगया ॥ ६६ । ६७ ॥ और चौथि में छह मुख व बारह नेत्रोंवाला वह पूर्ण अंगोंवाला होगया व पञ्चमी में अलंकार कियाहुआ वह छठि में उठताभया ॥ ६८ ॥ और उसने अपने तीव्र तेजसे त्रिलोकको सन्तप्त किया इस प्रकार पैदाहुये उनको सुनकर इन्द्रादिक सब देवताओं ने ॥ ६९ ॥ आकर ब्रह्मा ने

इनका विधिपूर्वक संस्कार किया और प्रसन्न पार्वतीश शिवजी ने उत्तम व दृढ़ शक्ति दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर पार्वतीजी ने मयूर को वाहन में कल्पित किया व अग्निने छाग दिया व समुद्र ने कुक्कुट (मुर्गा) को दिया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर पुत्र की कामना से कृत्तिकाओं ने उसको बढ़ाया उसके उपरान्त संस्कारको प्राप्त व ब्रह्मादिक देवताओं से प्रणाम कियेहुये ॥ ७२ ॥ शक्ति हाथवाले व सुरसेनासे घिरे हुये उनका अभिषेक हुआ और वित्ताधिप,महासेन,पावक,षण्मुख व अंशज ॥७३॥ गांगेय, कार्त्तिकेय, गुह, स्कन्द, उमासुत, देवसेनापति, स्वामी, सेनानी व शिखिध्वज ॥ ७४ ॥ कुमार और शक्तिधारी उनके सोलह नामोंको जो मनुष्य भक्तिसे

गत्यास्यसंस्कारं ब्रह्माचक्रेयथाविधि ॥ तुष्टेनपार्वतीशेनशक्तिर्दत्तादृढाशुभा ॥ ७० ॥ ततोगौर्य्यामयूरश्च वाहनेपरिकल्पितः ॥ छागश्चैवाग्निनादत्तः कुक्कुटंसरिताम्पतिः ॥ ७१ ॥ ततस्सकृत्तिकाभिश्च वर्द्धितःपुत्रकाम्यया ॥ ततस्तुप्राप्तसंस्कारो ब्रह्माद्यैरभिवन्दितः ॥ ७२ ॥ शक्तिहस्तोभिषिक्तस्तु देवसेनासमावृतः ॥ वित्ताधिपोमहासेनः पावकःषण्मुखोंशजः ॥ ७३ ॥ गाङ्गेयःकार्त्तिकेयश्च गुहस्स्कन्दउमासुतः ॥ देवसेनापतिःस्वामी सेनानीचशिखिध्वजः ॥ ७४ ॥ कुमारःशक्तिधारीच तस्यनामानिषोडश ॥ यःपठेन्मानवोभक्त्या बाधातस्यनजायते ॥ ७५ ॥ एवंजातोमहासेनोदानवानांक्षयङ्करः ॥ कुशस्थल्यांसमानीतः शम्भुनास्थानकारणात् ॥ ७६ ॥ अभिषिक्तःसतेनासौ भद्रितस्सजटःपुरा ॥ तेनभद्रजटोनाम देवतीर्थंचकथ्यते ॥ ७७ ॥ कृताभिषेकंलब्धास्त्रं महासेनंमहेश्वरः ॥ तमुवाचसमधुरंसर्वदेवसमागमे ॥ ७८ ॥ रक्षाकार्यात्वयापुत्र सामरस्यशतक्रतोः ॥ देवानांबाधकास्सर्वे निहन्तव्याःसुरद्विषः ॥ ७९ ॥ इत्थं

पढ़ताहै उसके बाधा नहीं होतीहै ॥ ७५ ॥ इसप्रकार दानवों के क्षयकारक महासेनजी पैदाहुयेहैं और स्थान के कारण शिवजी से कुशस्थली उज्जैनीमे लायेगये हैं ॥ ७६ ॥ और पुरातन समय उन शिवजी से ये महासेनजी अभिषेक कियेगये और जटाओ समेत भद्रित (मुण्डित) हुये उस कारण भद्रजट नाम हुआ और देवतीर्थ कहाजाता है ॥ ७७ ॥ अभिषेक किये व अस्त्रो को पायेहुये उन स्वामिकार्त्तिकेयजीसे महादेवजी ने सर्व देवताओं के संयोग में मधुरतापूर्वक कहा ॥ ७८ ॥

कि हे पुत्र ! तुमको देवताओं समेत इन्द्रकी रक्षा करना चाहिये और देवताओं को बाधा करनेवाले सब दैत्योंको मारना चाहिये ॥ ७९ ॥ इसप्रकार उस प्रथमसागर मे बड़ा उत्सव होने पर पातालतल में टिकीहुई सब मातायें आईं ॥ ८० ॥ और सदाशिवजी ने उनके भोजनों की संज्ञासे जिन नामों को किया है हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको तुम सुनो ॥ ८१ ॥ कि बरगदको भोजनकी इच्छावाली जो माताथीं वे वटमाताहुई और जिन्होंने चिर्भटी (ककड़ी) को खाया वे चिर्भटमातृका हुईं ॥ ८२ ॥ व शिवजी के साथ क्रीडा के लिये जो मांस भोजन में प्राप्तहुईं वे सब छानबे मातायें पलमाता हुईं ॥ ८३ ॥ हे मुने ! उन सबोंका पुण्यदर्शन गृह के भूतों का

महोत्सवेजाते तत्रप्रथमसागरे ॥ मातरोन्वागतास्सर्वाः पातालतलसंस्थिताः ॥ ८० ॥ तासामाहारसंज्ञाभिश्चक्रे नामा निशङ्करः ॥ यानितानिप्रवक्ष्यामि शृणुत्वंमुनिपुङ्गव ॥ ८१ ॥ वटभोजनकामाया ज्ञेयास्तावटमातरः ॥ भुक्तातुचिर्भटीयाभिस्तावैचिर्भटमातरः ॥ ८२ ॥ क्रीडार्थंशम्भुनाचाथप्राप्तायाःपलभोजनैः ॥ पण्णवतिर्मातरश्चासन् सर्वास्ताःपलमातरः ॥ ८३ ॥ सर्वासान्दर्शनंपुण्यं गृहभूतविनाशकम् ॥ तायत्नतस्सदादेव्यो द्रष्टव्यामानवैर्मुने ॥ ८४ ॥ लब्ध्वा शक्तिंमहासेनो देवसेनासमावृतः ॥ जघानदानवेन्द्रन्तंतारकंतरसातदा ॥ ८५ ॥ दत्त्वाराज्यंतथेन्द्राय स्फीतंनिहतकण्टकम् ॥ कुशस्थलींसमागम्य तत्रवासंसमाचरेत् ॥ ८६ ॥ एवंनिहत्यदैत्येन्द्रं सगाङ्गेयोमहाबलः ॥ शक्तिंशिप्राजलेमुञ्चत्पातालंचबिभेदसा ॥ ८७ ॥ ततोभोगवतीव्यास शक्तिभेदेननिर्गता ॥ वन्दितासर्वदेवैश्च मुनिभिश्चतपोधनैः ॥ ८८ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि समुद्रादिगतानिच ॥ शक्तिभेदेतुन्यस्तानि शतकोटिसहस्रशः ॥ ८९ ॥ अतो

विनाशक है सदैव यत्न से उन देवियोंको मनुष्यों को देखना चाहिये ॥ ८४ ॥ देवताओं की सेनासे घिरेहुये स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको पाकर उस समय वेग से असुरेन्द्र तारक को मारा है ॥ ८५ ॥ व नष्टकण्टकोंवाली तथा समृद्धराज्यको इन्द्र के लिये देकर उज्जैनी में आकर उन स्वामिकार्त्तिकेयजीने वहां निवास किया ॥ ८६ ॥ इसप्रकार असुरेन्द्र तारकको मारकर उन महाबलवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको शिप्रानदी के जलमें फेंकदिया और उसने पातालको विदारण किया ॥८७॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! शक्तिके भेदसे भोगवती (सर्पपुरी) निकली जोकि सब देवताओं व तपस्यारूपी धनवाले मुनियों से प्रणाम कीहुई थी ॥८८॥

समुद्रादिको में प्राप्त जो तीर्थ पृथ्वी में हैं वे सैकड़ों करोड़ हजार तीर्थ शक्तिभेद तीर्थ मे न्यास किये गये हैं ॥ ८९ ॥ इसलिये त्रिलोकमें कोटितीर्थ अतिपवित्रकहा गया है और ब्रह्माने वहां कोटितीर्थेश्वर सदाशिवजी को थापा है ॥ ९० ॥ कोटि तीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोंसे छूटजाता है जैसे कि केंचुलि-से सांप छूटजाता है ॥ ९१ ॥ हे मुने ! पितरों का भक्त जो मनुष्य वहा श्राद्ध करता है वह दश अश्वमेधों के समस्त फलको प्राप्तहोता है ॥ ९२ ॥ व पितरों को उद्देश कर जो कुछ कोटितीर्थ में दियाजाता है वह सब कोटिगुना होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९३ ॥ उस तीर्थ में जो मनुष्य दूधवाली गऊको

तिपुण्यंत्रैलोक्ये कोटितीर्थमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मणास्थापितस्तत्र कोटितीर्थेश्वरःशिवः ॥ ९० ॥ कोटितीर्थेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वाकोटीश्वरंशिवम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो निर्मोकादिवपन्नगः ॥ ९१ ॥ श्राद्धंकरोतियस्तत्र पितृभक्तोनरोमुने ॥ दशानामश्वमेधानां प्राप्नोतिसकलंफलम् ॥९२॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते ॥ तत्सर्वंकोटिगुणितं जायतेनात्रसंशयः ॥ ९३ ॥ तत्रतीर्थेनरोयस्तु गान्ददातिपयस्विनीम् ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥९४॥ यावन्त्यङ्गेपिरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषुच ॥ तावद्युगसहस्राणिब्रह्मलोकेमहीयते ॥९५॥ पौर्णमास्याममावस्यां पश्येच्छक्तिधरन्तुयः ॥ नापुत्रीनाधनोरोगी सप्तजन्मनिजायते ॥ ९६ ॥ जलप्रवेशंयःकुर्यात्तत्रतीर्थेनरोत्तमः ॥ सोक्षयंलभते लोके यावच्चन्द्रार्कयोस्सुखम् ॥ ९७ ॥ वृषोत्सर्गन्तुयःकुर्यात् पितृभक्तोनरोमुने ॥ सोक्षयंलभतेस्थानं यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥९८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे शक्तिभेदमाहात्म्यन्नामपञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥

देता है वह सब लोकों को नॉघकर उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ९४ ॥ व उसकी सन्तानके वंशोंमें जितने रोम होते हैं उतने हजार युगों तक वह ब्रह्मलोकमें पूजा जाताहै ॥ ९५ ॥ पौर्णमासी व अमावसमें जो मनुष्य शक्तिधर (महासेन) जीको देखताहै वह सातजन्मोंतक पुत्ररहित व निर्धनी नहीं होताहै ॥ ९६ ॥ व उसतीर्थ में जो उत्तम मनुष्य जलमें प्रवेश करताहै वह संसारमें तबतक अविनाशी सुखको प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहतेहैं ॥ ९७ ॥ हे मुने! जो पितरोंका भक्त मनुष्य वहा वृषोत्सर्ग करताहै याने बैलको छोड़ताहै वह अक्षय स्थानको प्राप्तहोताहै जोकि देवताओं को भी दुर्लभहै ॥ ९८ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अगस्त्येश शिव देखकर अति अद्भुत परभाव। छियालिसें अध्याय में कह्यो मुनीश सचाव॥ सनत्कुमार जी बोले कि स्वर्णक्षुर तीर्थमें नहाकर व महेश्वर देवजी को देखकर सौ कपिलादान से भी अधिक फल होताहै॥ १॥ और जो जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्माकी बावली में स्नान करता है वह हंसों से संयुत विमान के द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है॥ २॥ व रात्रि में तैल नामक मातृगणों को जो बलि देता है उसकी शीघ्रही सिद्धि होती है व मरकर वह शिवलोक को जाताहै ॥ ३ ॥ और चैत व फागुन में विष्णुवापी में नहाकर उपवास समेत जो जितेन्द्रिय पुरुष जागरण करता है॥ ४॥ वह सब पापों से छूटजाता है व विष्णुलोक को प्राप्त होता है

सनत्कुमारउवाच॥ स्वर्णक्षुरेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम्॥ कपिलाशतदानस्य फलमप्यधिकंभवेत्॥ १॥ वाप्यांपितामहस्यापि यस्स्नायाद्विजितेन्द्रियः॥हंसयुक्तेनयानेन ब्रह्मलोकंसगच्छति॥ २॥ तैलाभिधानमातॄणां रात्रौयोयच्छतेबलिम्॥ तस्यसिद्धिर्भवेत्सद्यो मृतःशिवपुरंव्रजेत्॥ ३॥ विष्णुवाप्यान्नरस्स्नात्वा चैत्रेवाफाल्गुनेतथा॥ जागरंयस्तुकुर्वीत सोपवासोजितेन्द्रियः॥ ४॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति॥ अभयेश्वरदेवस्य भक्त्यानियतमानसः॥ ५॥ पट्टबन्धमथोदृष्ट्वा रुद्रलोकंसगच्छति॥ लोकेतुजायतेदाता सार्वभौमोमहीपतिः॥ ६॥ यस्त्वगस्त्येश्वरंगच्छेदेकचित्तोनरोमुने॥ दृष्ट्वागस्त्येश्वरन्देवं सोपवासोजितेन्द्रियः॥ ७॥ अगस्त्योदयवेलायां मुच्यतेसर्वपातकैः॥ कृत्वागस्त्यञ्चसौवर्णं रौप्यंवाथस्वशक्तितः॥ ८॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेणचसमन्वितम्॥ तत्कालीनैःफलैःपुष्पैः पूजनीयोविधानतः॥ ९॥ विधानंतस्यवक्ष्यामि चातुर्वर्ण्येद्विजोत्तम॥ सप्तधान्यानिमुख्यानि ता

और मनको रोके हुये पुरुष भक्तिसे अभयेश्वर देवजी के॥५॥ पट्टबन्धको देखकर इसके उपरान्त वह शिवलोक को जाता है और लोक में वह दाता व चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ६॥ व हे मुने! सावधानचित्तवाला जो मनुष्य अगस्त्येश्वरजी के समीप जाताहै वह उपवास समेत जितेन्द्रिय पुरुष अगस्त्यजी के उदयकी वेला में अगस्त्येश्वर देवजी को देखकर समस्त पातकों से छूटजाता है व अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण व चांदी के अगस्त्यजी को निर्माणकर॥ ७। ८॥ व पंचरत्न से संयुत व वस्त्रसे संयुत कर उस समय वाले फलों व फूलों से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये॥ ९॥ हे द्विजोत्तम! उन अगस्त्यजी की चारों वर्णोंवाली विधि

को कहता हूं कि सात धान्य व उतनेही फल मुख्य हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! पहले एक धान्य व एक फल त्यागने योग्य होता है इसी प्रकार सात वर्षोंतक ऐसाही व्रत करै ॥ ११ ॥ व हे काशपुष्पके समान, अग्नि व पवनसे उत्पन्न, मित्रावरुण के पुत्र, कुम्भयोने ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ इस मन्त्र से अर्घ देने पर हे व्यासजी ! जो फल होता है उसको सावधानचित्तवाले होकर सुनिये कि वह पुत्रवान् व धनवान् होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ और मरकर वह स्वर्ग को जाता है व फिर मृत्युलोकमें प्राप्त होकर सम्पन्न (धनवान्) कुल में पैदा होता है और महायोगीश्वर होताहै ॥ १४ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस

वन्त्येवफलानिच ॥ १० ॥ एकंधान्यंफलंचैकमग्रेत्याज्यंभवेन्मुने ॥ यावत्सप्तवर्षाणि व्रतमेवंसमाचरेत् ॥ ११ ॥ काशपुष्पप्रतीकाशवह्निमारुतसम्भव ॥ मित्रावरुणयोःपुत्र कुम्भयोनेनमोस्तुते ॥ १२ ॥ दत्तेर्घेयत्फलंव्यास तदेक्य कमनाःशृणु ॥ पुत्रवान्धनवांश्चैव जायतेनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ मृतस्स्वर्गमवाप्नोति सम्पन्नेजायतेकुले ॥ मर्त्यलोके पुनःप्राप्य महायोगीश्वरोभवेत् ॥ १४ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वासुसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मुनिलोकेस मोदते ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽगस्त्येश्वरमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

व्यासउवाच ॥ महाकालंकिमर्थन्तु किंवाशिवपदंस्मृतम् ॥ कोटीश्वरंकिमर्थन्तु पावकंततकिमुच्यते ॥ १ ॥ नरदीपःकिमर्थन्तु द्वितीयावटमातरः ॥ अभयेश्वरंकिमर्थन्तुशङ्खोद्धारणमेवच ॥ २ ॥ शूलेश्वरंकिमर्थन्तु किमोङ्कार

चरित्र को नित्य सुनता व पढ़ता है समस्त पापों से छूटा हुआ वह पुरुष मुनि (अगस्त्य) जीके लोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामगस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । नरदीपक नामक यथा भे दिननायक देव ।, सैंतालिसवें में कह्यो सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यासजी बोले कि महाकाल किस लिये हैं और कौन शिवस्थान कहागया है व कोटीश्वर किस लिये हैं और वह पावक क्या कहाजाता है ॥ १ ॥ व नरदीप किस लिये हैं और दूसरी वटमातृका किस लिये हैं और अभयेश्वर

किस लिये हैं व शखोद्धारण किस लिये हैं ॥ २ ॥ व शूलेश्वर किस लिये हैं और ॐकार क्यो कहाजाता है व धूतपाप किस लिये है वैसेही अंगारेश्वर किस नि-मित्त हैं ॥ ३ ॥ और दिव्य उज्जयिनी पुरी किस लिये सात कल्पोंवाली कही गई है हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके जो नाम है उनको कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार दिव्य पुरी उत्तम पुण्यदायिनी है पहले मे स्वर्णशृङ्गा व दूसरे कल्प में कुशस्थली ॥ ५ ॥ तीसरे में अवन्तिका कही गई है व चौथे कल्पमें अमरावती और पांचवें में चूड़ामणि ऐसी पुरी प्रसिद्ध हुई है ॥ ६ ॥ व छठे में पद्मावती जानने योग्यहै व सातवें करप में उज्जयिनी पुरी कहीगई है और

स्तुकथ्यते ॥ धूतपापंकिमर्थन्तु किमङ्गारेश्वरन्तथा ॥ ३ ॥ पुरीचोज्जयिनीदिव्या सप्तकल्पाकथंस्मृता ॥ कथयस्वमुनिश्रेष्ठ तस्यानामानियानिच ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथाख्याता पुरीदिव्यासुपुण्यदा ॥ स्वर्णशृङ्गा तुप्रथमे द्वितीयेतुकुशस्थली ॥ ५ ॥ तृतीयेवन्तिकाप्रोक्ता चतुर्थेत्वमरावती ॥ विख्यातापञ्चमेकल्पे पुरीचूडामणीति च ॥ ६ ॥ षष्ठेपद्मावतीज्ञेयोज्जयिनीसप्तमेपुरी ॥ पुनरन्तेतुकल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिकास्मृता ॥ ७ ॥ एतानिसप्तनामानि प्रातरुत्थाययःपठेत् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ उज्जयिन्यांपुरोराजा वभूवकिलचान्धकः ॥ तस्यपुत्रोमहावीर्यो नाम्नाकनकदानवः ॥ ९ ॥ युद्धार्थेसमहावीर्यः शक्रंयुद्धेसमाह्वयत् ॥ क्रोधादिन्द्रेणसंग्रामे युद्ध्यमानोनिपातितः ॥ १० ॥ निहत्यदानवंशक्रो भयादन्धासुरस्यतु ॥ जगामशङ्करान्वेषी कैलासंशङ्करालयम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वाप्रणम्यदेवेशं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ भीतोविज्ञापयामास सहस्राकुललोचनः ॥ १२ ॥ अभयन्देहिमेदेव

फिर कल्प के अन्त में स्वर्णशृङ्गादिका कही गई है ॥ ७ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इन सात नामों को पढ़ता है वह सात जन्मों में किये हुये पातक से छूट जाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ पुरातन समय उज्जयिनी में अन्धक राजा हुआ है उसका बड़ा बलवान् पुत्र कनकदानव नामक हुआ है ॥ ९ ॥ उस महा-बलवान् ने युद्ध के लिये समर में इन्द्र को बुलाया और संग्राम में युद्ध करते हुये उसको इन्द्रने क्रोधसे गिरा दिया ॥ १० ॥ व दानव को मारकर अन्धक के डर से शिवजी को ढूंढ़नेवाले इन्द्रजी कैलास नामक शिवजी के स्थान को गये ॥ ११ ॥ व अर्द्धचन्द्रमा को मस्तक में किये देवेश शिवजी को देखकर तदनन्तर

हज़ार विकल लोचनों वाले इन्द्र ने विनय किया ॥ १२ ॥ कि हे देव! अन्धक दानव से मुझको अभय दीजिये इस प्रकार इन्द्र के वचन को सुनकर शरणागत-प्रिय इन शिवजी ने ॥ १३ ॥ अभय दिया कि तुम अन्धक से मत डरो और महादेवजीने विश्वरूप व भयङ्कर रूप कर ॥ १४ ॥ जो कि भयङ्कर शब्द करते हुये व पातालकी नांई उदररूपवाले तथा विष से उग्र व पैनी दाढ़ोंवाले व अतिभयंकर और जिह्वाओं को लपलपाते हुये सर्पोंसे उपलक्षित था ॥ १५ ॥ व बहुत शस्त्रों को धारेहुये अनेक हजार भुजाओं से संयुत था और सिंहचर्मको पहने व व्याघ्रचर्म को कॉधासूती दुपट्टा डाले ॥ १६ ॥ व हाथीके चर्मको आच्छादन किये तथा चन्द्रमा

दानवादन्धकाच्चवै ॥ शक्रस्येत्थंवचःश्रुत्वा शरणागतवत्सलः ॥ १३ ॥ ददावभयमेवासौ माभैस्त्वमन्धकाद्विवै ॥ कृत्वारूपंमहादेवो विश्वरूपंसुभैरवम् ॥ १४ ॥ सर्पैर्लिहद्भिरत्युग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥ पातालोदररूपैश्च भैरवारावनादिभिः ॥ १५ ॥ भुजैरनेकसाहस्रैर्बहुशस्त्रधृतैस्तथा ॥ सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् ॥ १६ ॥ गजाजिनकृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम् ॥ महामहीध्रतुल्याभिर्जङ्घाभिर्भूषितंसदा ॥ १७ ॥ क्षोभयंश्चालयन्सर्वान् पातालस्यतलावधि ॥ ईदृग्रूपंविधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥ १८ ॥ अवातरन्महींभीमः पादेनैकेनशङ्करः ॥ तत्रैवहिहृदोजातः सर्वदैवतवन्दितः ॥ १९ ॥ ख्यातंशिवपदंतद्धियत्पदाक्रान्तवान्विभुः ॥ यस्मादत्रपुराकोटिः पादाङ्गुष्ठस्यधारिता ॥ २० ॥ कोटितीर्थमतःख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ अगस्त्येनतथाकोटिस्तीर्थानामत्रधारिता ॥ २१ ॥ अतोपीदृक्शुभंलोके कोटितीर्थंसदास्मृतम् ॥ दृष्ट्वातुत्रिदशास्सर्वे स्नातावैहितकाम्यया ॥ २२ ॥ महाकालंकृतंरूपं महाकालस्ततः

अग्नि व सूर्य लोचनोंवाले और सदैव महापर्वतोंके समान जंघाओं से भूषित ॥ १७ ॥ और पाताल के नीचे तक सब जन्तुवों को क्षोभित करते व कँपाते थे दानवों व दैत्यों के भय कारक ऐसे रूपको बनाकर ईश्वर ॥ १८ ॥ सदाशिवजी एक चरणसे पृथ्वीमें उतरे वहीं पर सब देवताओं से प्रणाम कियाहुआ कुण्ड हुआ ॥ १९ ॥ वह शिवपद कहागया जिसको कि व्यापक शिवजी ने चरण से आक्रमण किया जिसलिये पहले चरण के अंगूठेकी कोटि धारण कीगई ॥ २० ॥ इसी कारण सब पापों का विनाशक कोटितीर्थ कहागया है वैसेही यहांपर अगस्त्य जीने कोटितीर्थों को धारण किया है ॥ २१ ॥ इसीकारण संसार में सदैव ऐसा उत्तम कोटितीर्थ

कहागया है उसको देखकर सब देवता हितकी कामना से नहाते भये ॥ २२ ॥ जिस लिये महाकालरूप कियागया उसीकारण महाकाल कहेगये हैं अन्धकासुर दैत्य ने भी युद्धमें मरेहुये पुत्रको सुनकर ॥ २३ ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर समर में तुरहियों को बजाया और सेना समेत निकलकर वहां प्राप्तहुआ जहां कि रथों व हाथियोंसे संयुत बड़ी सेना समेत वे देवता स्थित थे उसी समय महायुद्धमें किये हुये उद्यमवाले दानवों को देखकर ॥ २४ । २५ ॥ कांपतेहुये वे तैयार देवता शिव जी की शरण में गये व त्रिलोचन महाकालजी ने देवताओं से कहा कि मत डरो ॥ २६ ॥ क्रोध के कारण दाढ़ों से ओष्ठों को काटतेहुये शिवजी त्रिशूल को लेकर

स्मृतः ॥ अन्धासुरोपिदनुजःपुत्रंश्रुत्वाहतंयुधि ॥ २३ ॥ क्रोधेनमहताविष्टो रणतूर्याण्यवादयत् ॥ ससैन्योनिर्गतःप्राप्तो यत्रतेत्रिदशाःस्थिताः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्द्धं रथवारणयुक्तया ॥ तद्देवदानवान्वीक्ष्य महाहवकृतोद्यमान् ॥ २५ ॥ वेपन्तस्तेसुसन्नद्धाः शम्भुंशरणमाययुः ॥ माभैषतमहाकालो देवानूचेत्रिलोचनः ॥ २६ ॥ गृहीत्वाशूलमातिष्ठ द्दंष्ट्रादष्टाधरोरुषा ॥ कोपयुक्तेविरूपाक्षे ज्वालाभिःपूरितन्नभः ॥ २७ ॥ अन्धकेनाथरुष्टेन शरकोटिस्तुदुस्सहा ॥ मुक्ता जगामदेवानां नाशायशलभाकृतिः ॥ २८ ॥ विस्फुलिङ्गार्चिषंवह्निं मुञ्चमानःपिनाकधृक् ॥ शतशश्शकलीचक्रे त ञ्चबाणैरताडयत् ॥ २९ ॥ अन्धकोपिहियुद्धस्थो शिथिलःशिथिलायुधः ॥ निरुद्धश्शम्भुनाबाणैरलिभिःपङ्कजंयथा ॥ ३० ॥ तस्यसैन्यञ्चबहुधा स्वगणैर्युद्धयोधिभिः ॥ योधृवरैर्हतंदिव्यैस्स्थाणुसान्निध्यमाश्रितैः ॥ ३१ ॥ ततोन्धकेनसं

स्थित हुये जब शिवजी क्रोध से संयुक्त हुये तब ज्वालाओंसे आकाश पूर्ण होगया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित अन्धक से छोड़ेहुये असह्य करोड़ बाण जोकि पांखी के समान आकारवाले थे देवताओं के नाशके लिये गये ॥ २८ ॥ चिनगारी व ज्वालाओंवाली अग्निको छोड़तेहुये पिनाकधारी शिवजीने सैकड़ों खण्ड किये और उस अन्धक को बाणोंसे ताड़ित किया ॥ २९ ॥ और शिथिल अस्त्रोंवाला व युद्धमें टिकाहुआ अन्धक भी शिथिल हुआ और शिवजीसे बाणोंके द्वारा आच्छादित कियागया जैसे कि भ्रमरों से कमल आच्छादित होताहै ॥ ३० ॥ और निज गण व शिवजी की समीपता में आश्रित तथा युद्धमें लड़नेवाले दिव्य उत्तम

न्यंस्वं भिन्नंदृष्ट्वातथासुरैः ॥ आत्मानञ्चमहेशेन विद्धंचबाणकोटिभिः ॥ ३२ ॥ विकलीकृतदेहोसौ भयमाश्रित्यवेगतः ॥ चकारतामसींमायां मायाशतविशारदः ॥ ३३ ॥ तयान्तर्हितदेहोसौ जगामदिशमुत्तराम् ॥ शम्भोर्भीतिहरं बिभ्रद्भ्रामभुविभिन्नहृत ॥ ३४ ॥ येनाध्वनागतोदैत्यस्तेनदेवोजगामह ॥ वदन्नदृश्यतेकासौ गतोदुष्टःपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ उवाचचान्धकश्शब्दं तथोवाचमहेश्वरः ॥ तत्रतीर्थमथोत्पन्नं वागन्धकमितिश्रुतम् ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा योवैदद्यात्सशर्करम् ॥ नवम्यांमार्गशीर्षस्य शुक्लायांश्रद्धयान्वितः ॥ ३७ ॥ अक्षयंतद्भवेत्सर्वं दाताशिवपुरंव्रजेत ॥ पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चिद्दीयतेभक्तितश्शिवे ॥ ३८ ॥ तृप्तास्तिष्ठन्तितेतावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तमसाछादितादेवास्संबभूवुस्समाकुलाः ॥ ३९ ॥ सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे नकिञ्चिदपिमेनिरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास नरादित्यस्स्वतेजसा ॥ ४० ॥ उत्तस्थौनररूपेण कुर्वन्वितिमिरादिशः ॥ नष्टेतमसिदैत्येपि प्रकाशेप्रकटेसति ॥ ४१ ॥ देवामुदमवा

योधाओं से उस अन्धककी सेना बहुत खण्ड कीगई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अन्धकने देवताओं से कटीहुई अपनी सेनाको देखकर व शिवजी से करोड़ों बाणों करके अपना को वेधित देखकर सैकड़ों मायावों में चतुर व विकल कीहुई देहवाले इसने भय में प्राप्तहोकर वेगसे तामसी (अन्धकारवाली) माया किया ॥ ३२।३३ ॥ व उस मायासे अन्तर्द्धान शरीरवाला यह दैत्य उत्तर दिशाको चलागया व शिवजीके भयहारक रूपको धारण करताहुआ भिन्नहृदयवाला यह दैत्य पृथ्वी में भ्रमता भया ॥ ३४ ॥ जिस मार्गसे दैत्य (अन्धक) गया था उसीसे बार २ यह कहतेहुये शिव देवजी गये कि यह दुष्ट नहीं देखपड़ताहै कहां गया ॥ ३५ ॥ और जिसभांति अन्धक बोला वैसेही महादेवजी ने शब्दको कहा वहांपर वागन्धक ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्न हुआ ॥३६॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर श्रद्धासंयुत जो पुरुष अगहनकी शुक्लपक्षवाली नवमी में शर्करा समेत दान देताहै ॥३७॥ वह सब अक्षयहोताहै और दाता शिवपुरको जाता है शिवजी में भक्ति से पितरों को उद्देशकर जो कुछ दिया जाताहै ॥ ३८ ॥ तो वे पितर तृप्तहोकर तबतक स्थित होते हैं जबतक कि प्रलय होती है व अज्ञानसे आच्छादित देवता विकलहुये ॥ ३९ ॥ और भ्रमितमनवाले सबों ने कुछ भी नहीं जाना इसी अवसर में हे व्यासजी ! अपने तेज से दिशाओंको अन्धकार रहित करते हुये नरादित्यजी मनुष्य के रूपसे उठे अन्धकार व दैत्य

के भी नाश होनेपर व प्रकाश प्रकट होनेपर ॥ ४० । ४१ ॥ नेत्रों से अनन्तजीको देखकर अनेक भांति के स्तोत्रों से मनुष्यरूपी सूर्यनारायणजी की स्तुति करते
हुये उन देवताओं ने आनन्द पाया ॥ ४२ ॥ जिसलिये प्रकाशित सूर्यनारायणजी नररूप से उठे उसी कारण उन समर्थ देवताओं ने इनका नरदीप ऐसा नाम
किया ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नरदीप सूर्यनारायणजी को देखता है वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि समस्त पापोंसे छूटजाताहै ॥ ४४ ॥ हे विप्रजी ! रविवार
में छठि व सप्तमी तिथि में उपवास करनेवाला पुरुष दिनक्षय मे संक्रान्ति में व ग्रहण तथा विषुवत (दिन रात बराबरवाले समय) मे ॥ ४५ ॥ कुण्ड में नहाकर

पुस्ते दृष्ट्वानन्तन्तुलोचनैः ॥ स्तुवन्तोविविधैस्स्तोत्रैर्नररूपंदिवाकरम् ॥ ४२ ॥ उत्तस्थौनररूपेण दीप्तोयस्माद्दिवा
करः ॥ तेनास्यनामतेचक्रुर्नरदीपइतीश्वराः ॥ ४३ ॥ यःपश्यतिनरोभक्त्या नरदीपंदिवाकरम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो
यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ ४४ ॥ षष्ठ्यामर्कदिनेविप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ॥ दिनक्षयेथसंक्रान्तौ ग्रहणेविषुवत्यथ ॥ ४५ ॥
कुण्डेस्नात्वाशुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः ॥ नरदीपंनरःपश्येत् स्तोत्रवादित्रमङ्गलैः ॥ ४६ ॥ गन्धैर्धूपैस्तथादीपैर्नैवे
द्यैर्विविधैस्तथा॥गीतंवाद्यंपुराकृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेवच॥४७॥प्रातर्मध्येपराह्णेवा कृत्वार्कस्यप्रदक्षिणाम् ॥समुक्तस्सर्वपा
पैस्तु सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ४८ ॥ सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैस्सार्वकामिकैः ॥ सूर्यलोकंप्रयात्याशु यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥
४९ ॥ शक्रात्प्राप्यपुरायस्माद्धानुरत्रप्रतिष्ठितः ॥ नरेणैवप्रसादेन नरदीपस्ततोह्ययम् ॥ ५० ॥ तदेवास्यपुराव्यास या

व पवित्र होकर नियम में प्राप्त मनवाला पुरुष जपताहुआ मनुष्य स्तोत्र व वाद्यादिक मंगलों से नरदीपजी को देखै ॥ ४६ ॥ और गंध, धूप, दीप व अनेक भांति
के नैवेद्यों से पूजकर व आगे गीतवाद्यकर व अष्टाग प्रणामकर ॥ ४७ ॥ प्रातःकाल मध्याह्न व दुपहरके उसपार सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणाकर वह सातजन्मों मे
भी कियेहुये सब पातकों से छूटजाता है ॥ ४८ ॥ और करोडों सूर्योंके समान सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शीघ्रही सूर्यलोकको जाता है जोकि देवताओंको
भी दुर्लभ है ॥ ४९ ॥ पुरातन समय जिसलिये इन्द्र से पाकर नरजी ने वहांपर प्रसन्नतासे सूर्यनारायण को थापाहै उसकारण ये नरदीपजी है ॥ ५० ॥ हे व्यासजी !

पुरातन समय तभी इन्द्र ने यात्रा किया है और यह कहा कि हे पार्थ ! ज्येष्ठ बीतने पर सदैव सावधान होताहुआ मैं देवताओं समेत आऊंगा और संसार में देवकी वृष्टि से वहा आयाहुआ मैं जानने योग्य हूं ॥ ५१ । ५२ ॥ उसके उपरान्त देवालय मे जो देवता प्राप्तथे वे आकर प्रकाशकारक वैसे नरदीप देवजी को पूजकर ॥ ५३ ॥ और यात्राकर तदनन्तर देवयात्रा के अन्त में वे जाते थे जो मनुष्य रथ पै स्थित नरदीपदेवजी को देखता है ॥ ५४ ॥ सब पापोंसे छूटाहुआ वह सूर्यलोक में पूजाजाता है इसके उपरान्त फिर जो नरदीपजी की रथयात्रा है उसको कहताहूं ॥ ५५ ॥ कि उसको करके उस पुण्यको मनुष्य प्राप्तहोता है जोकि मुनियों से

त्राशक्रेणनिर्मिता ॥ आगमिष्याम्यहंपार्थ सार्द्धन्देवैस्समाहितः ॥ ५१ ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां नरदीपेतुसर्वदा ॥ तत्राहमागतोज्ञेयो लोकैर्देवस्यवर्षणात् ॥ ५२ ॥ ततोनन्तरमागम्य देवायेत्रिदशालये ॥ इष्ट्वादेवंतथारूढं नरदीपं सुदीपनम् ॥ ५३ ॥ कृत्वायात्राञ्चतेयान्ति देवयात्रात्ययेततः ॥ यःपश्येन्मानवोभक्त्या नरदीपंरथस्थितम् ॥ ५४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्सूर्यलोकेमहीयते ॥ रथयात्रामथोवक्ष्ये नरदीपस्ययापुनः ॥ ५५ ॥ तांकृत्वाचैवयत्पुण्यं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां रथस्थोहिदिवाकरः ॥ ५६ ॥ कुशस्थल्यांद्विजश्रेष्ठैर्बाहुक्षेपैःप्रणीयते ॥ उत्तरान्दिशमायान्तं यःपश्यतिदिवस्पतिम् ॥ ५७ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य लभतेसोखिलंफलम् ॥ निवृत्तंकेशवार्काद्यो रथंपश्यतिमानवः ॥ ५८ ॥ मुण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसंशयः ॥ रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षणवैमुने ॥ ५९ ॥ कुलमुद्धरतेसोपि पूर्वान्पितृपितामहान् ॥ दक्षिणाभिमुखंयान्तं नरदीपंद्विजोत्तम ॥ ६० ॥ येसंयताःप्रपश्यन्ति तेया

कहागयाहै ज्येष्ठ बीतने पर द्वितीया तिथिमें रथपै स्थित सूर्यनारायणजी ॥ ५६ ॥ उज्जैनीपुरी में द्विजोत्तमों से भुजाक्षेपके द्वारा प्राप्तकियेजाते हैं उत्तर दिशामें आते हुये सूर्यनारायणजी को जो देखताहै ॥ ५७ ॥ वह अग्निष्टोम यज्ञके समस्त फलको प्राप्तहोताहै व केशवार्कजीसे लौटेहुये रथको जो मनुष्य देखताहै ॥ ५८ ॥ उसने मुंडीर स्वामीकी यात्राकिया इसमें सन्देह नहीं है व हे मुने ! जो मनुष्य रस्सीके आकर्षणसे रथको खींचता है ॥ ५९ ॥ वह भी वंशको उद्धारता है व पहलेवाले पिता

पितामहादिकों को उद्धारता है हे द्विजोत्तम ! दक्षिण दिशाके सामने जातेहुये नरदीपजी को ॥ ६० ॥ संयम में प्राप्त जो पुरुष देखते हैं वे स्वर्गको प्राप्तहोते हैं व जो मनुष्य सूत्र से क्षेत्र, रथ व देव (नरदीप) जी को घेरताहै ॥ ६१ ॥ वह सब मनोरथों को प्राप्तहोताहै व कीहुई पुण्यवाला होताहै और जो मनुष्य भक्तिसे सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ६२ ॥ उनसे सात द्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई व प्रातःकाल उठकर मौनहो जो मनुष्य सूर्यनारायणजी के समीप जाता है ॥ ६३ ॥ व हे द्विजोत्तम ! पूर्वद्वारसे देखकर और प्रणामकर और दक्षिणही द्वार से प्रवेश कर रथचक्रको पूजै ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उस द्वारसे निकल कर गमन

न्तिचत्रिविष्टपम् ॥ सूत्रेणवेष्टतेक्षेत्रं रथन्देवमथापिवा ॥ ६१ ॥ सर्वकामानवाप्नोति कृतपुण्यस्सजायते ॥ प्रदक्षिणान्तुसूर्यस्य भक्त्याकुर्वन्तियेनराः ॥ ६२ ॥ प्रदक्षिणीकृतातैस्तु सप्तद्वीपवसुन्धरा ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या मौनीयातिदिवाकरम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वातुपूर्वद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ॥ प्रविश्यदक्षिणेनैव रथचक्रंप्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥ तेनद्वारेणनिष्क्रम्य प्रणिपत्यव्रजेत्ततः ॥ पश्चिमंद्वारमाश्रित्य रथस्थंसूर्यमर्चयेत् ॥ ६५ ॥ चामरेचवितानञ्च घण्टांवापिनिवेदयेत् ॥ पूर्वद्वारेतुगौर्देया तथाश्वश्चैवदक्षिणे ॥ ६६ ॥ पश्चिमेचगजःप्रोक्त उत्तरेरथएवच ॥ कुर्यादेवन्तुयोयात्रां रथदीपस्यमानवः ॥ ६७ ॥ गोसूर्यशिवशक्राणां स्वालोक्यंलभतेसुखम् ॥ प्रदक्षिणामहामेरोः कृतातेनभवेन्मुने ॥ ६८ ॥ दद्याद्गवांसहस्रंयो व्यतीपातशतेनच ॥ अश्वानाञ्चसहस्रेण यात्रायांतत्फलंलभेत् ॥ ६९ ॥ नरदीपेरथारूढे व

करै व पश्चिम द्वार में प्राप्तहोकर रथ पै स्थित सूर्यनारायण का पूजन करै ॥ ६५ ॥ चौर दो चँवर, वितान (चँदोवा) व घण्टाको भी निवेदन करै और पूर्वद्वार में गऊ देनाचाहिये वैसेही दक्षिणद्वार में अश्वदेनाचाहिये ॥ ६६ ॥ व पश्चिम में हाथी कहागया है और उत्तर में रथही देना चाहिये जो मनुष्य इसप्रकार नरदीपजी की रथयात्रा करता है ॥ ६७ ॥ वह गोलोक तथा सूर्य, शिव व इन्द्रकी सलोकतावाले सुखको पाताहै व हे मुने ! इससे महामेरुकी प्रदक्षिणा कीहुई होतीहै ॥ ६८ ॥ और जो मनुष्य सौ व्यतीपात योगों में गोसहस्र देताहै और हजार घोड़ों के दान से जो फल होताहै उस फलको मनुष्य यात्रासे पाताहै ॥ ६९ ॥ व नरदीप

जीके रथ पै चढ़ने पर जो मनुष्य चौर कराता है उसका लक्ष्मीजी से विछोह नहीं होताहै और वह सूर्यलोक में पूजाजाता है ॥ ७० ॥ और जो मनुष्य सूर्यनारायण जी के आगे बावली में महीनाभरतक नित्यस्नान कर उन नरदेवजी को देखता है उसका दुःस्वप्न नाश होजाताहै ॥ ७१ ॥ हे व्यासजी ! भक्तिसे प्रतिदिन जो मनुष्य नरदीपजी को देखता है वह उत्तम स्थानको प्राप्तहोकर पुत्रों व पौत्रों से संयुक्तहोता है ॥ ७२ ॥ और भाइयों समेत क्रीड़ा कर मरकर वह मनुष्य सूर्यलोक को जाता है हे विप्रजी ! अन्धकार नाशहोनेपर व सब कहीं उत्तम प्रकाश होने पर ॥ ७३ ॥ व तीन शिखावाले शूल याने त्रिशूल से अन्धकासुर को महादेवजी

पनंकारयेत्तुयः ॥ श्रियानविच्युतिस्तस्य सूर्यलोकेमहीयते ॥ ७० ॥ सूर्य्यस्यपुरतोवाप्यां मासन्नित्यंविगाह्यच ॥ यस्त मालोकतेमर्त्यो दुस्स्वप्नंतस्यनश्यति ॥ ७१ ॥ भक्त्यायोनुदिनंव्यास नरदीपंप्रपश्यति ॥ उत्तमंस्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ प्रक्रीड्यबन्धुभिस्सार्द्धं मृतस्सूर्यपुरंव्रजेत् ॥ प्रणष्टेतिमिरेविप्र जातेसर्वत्रसुप्रभे ॥ ७३ ॥ हतेन्धके महेशेन शूलेनत्रिशिखेनवै ॥ प्रहृष्टाश्चसुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥ ७४ ॥ शङ्खंदध्मौतदाविष्णुस्सुराणांहितकाम्यया ॥ तत्रतीर्थमथोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसंज्ञकम् ॥ ७५ ॥ तत्रसन्निहितोविष्णुर्लिङ्गंचैवचतुर्मुखम् ॥ अनाद्यञ्चैवविप्रेन्द्रलिङ्गस्यचसमीपतः ॥ ७६ ॥ देवस्यदक्षिणेभागे शूलेनालक्षितःस्थितः॥ चतुर्द्दश्यान्तथाष्टम्यां येपश्यन्तिजितेन्द्रियाः ॥ ७७ ॥ तेक्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ योगिनीनांबलिंयस्तु यथावत्संप्रदास्यति ॥ ७८ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासौकेनापिबाध्यते ॥ द्वादशींसमुपोष्यैव स्नात्वादेवंजनार्द्दनम् ॥ ७९ ॥ यःपश्येच्छङ्खिनन्देवं सो

के मारने पर उस समय ब्रह्मा व इन्द्रादिक सब देवता प्रसन्न हुये ॥ ७४ ॥ तब देवताओंके हितकी कामना से विष्णुजी ने शंख को बजाया इसके अनन्तर वहांपर शंखोद्धारण नामक तीर्थ उत्पन्नहुआ ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वहांपर विष्णुजी भलीभांति स्थित हैं व अनादि चतुर्मुख लिंग है और लिंगके समीप ॥ ७६ ॥ देवजी के दक्षिण भाग में त्रिशूल से लक्षित शिवजी स्थितहैं जो जितेन्द्रिय पुरुष चौदसि व अष्टमीमें उनको देखते हैं ॥ ७७ ॥ वे नष्ट समस्त पातकोंवाले पुरुष उत्तमगति को प्राप्त होते हैं और जो मनुष्य योगिनियों को यथायोग्य बलि देता है ॥ ७८ ॥ यह भूत, प्रेत, पिशाचादिकों से व किसी से भी नहीं पीड़ित होता हैं और द्वादशी

को उपासकर व नहाकर जनार्द्दन देवजी को ॥ ७९ ॥ व शंखधारी देवजीको जो देखताहै वह अच्युतजीके स्थानको प्राप्तहोताहै ॥ ८० ॥ जो स्थूल व सूक्ष्म वस्तुवोंमें प्रकट प्रकाशवान् है और जो सर्वभूतमय है और सर्वभूत नहीं है व जिससे संसारहोताहै व जो जगत् का कारण है उस पुरुषोत्तमके लिये नमस्कार है ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुमाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अंगारेश्वर कर अहै अति अद्भुत माहात्म्य । अर्तालिसवें में कह्यो सोइचरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शिवजी के त्रिशूलसे जब अन्धकासुर

च्युतंस्थानमाप्नुयात् ॥ ८० ॥ यस्स्थूलसूक्ष्मप्रकटप्रकाशोयस्सर्वभूतोनचसर्वभूतः ॥ विश्वंयतश्चैवहिविश्वहेतुर्नमोस्तु तस्मैपुरुषोत्तमाय ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविष्णुमाहात्म्यन्नामसप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ भिन्नेन्धकेत्रिशूलेन ध्वनीरुद्रस्यनिर्गतः ॥ तत्रोङ्कारस्समुत्पन्नो देवदेवोमहेश्वरः ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा समाधिनियमेनच ॥ दृष्ट्वौङ्कारंमहादेवं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ हत्वान्धकंत्रिशूलस्तु भोगवत्या जलेययौ ॥ दृष्ट्वाशूलंसुतेजस्कं हाटकोविस्मयङ्गतः ॥ ३ ॥ पप्रच्छकेनकार्येण भवानिहसमागतः ॥ कथयामासशूलोसौ शङ्करेणाहमीरितः ॥ ४ ॥ अन्धकस्यवधार्थाय पापवृत्तेस्सुदुर्मतेः ॥ भित्त्वातमहमायातो भोगवत्याजलेशुभे ॥ ५ ॥ गमिष्यामिपुनस्तत्र यत्रतिष्ठतिशङ्करः ॥ शूलोक्तंवचनंश्रुत्वा परमेशदिदृक्षया ॥ ६ ॥ हाटकश्शूलमार्गेण निर्ज

विदारण कियागया तब शब्द निकला वहां पर देवदेव ॐकार महेश्वरजी उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ वहां नहाकर व पवित्रहोकर समाधि तथा नियम से ॐकार महादेवजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ अन्धकासुर को मारकर त्रिशूल भोगवती के जलमें प्राप्तहुआ और उत्तम तेजस्वी त्रिशूल को देखकर हाटकेश्वरजी विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ और उन्होंने पूंछा कि आप यहां किस कार्य से आयेहो इस शूल ने कहा कि पाप आचरणवाले व दुर्बुद्धि अन्धकासुर के मारने के लिये शिवजीने मुझको पठाया था उसको काटकर मैं भोगवतीके उत्तम जलमें आयाहूं ॥ ४।५ ॥ और फिर वहां जाऊंगा जहां कि सदाशिवजी स्थित हैं त्रिशूलसे

कहेहुये वचन को सुनकर परमेश्वर शिवजीके देखनेकी इच्छा से ॥ ६ ॥ वे हाटकेश्वरजी वेग से त्रिशूल मार्ग के द्वारा निकले बहुत मुखो से संयुत व उत्तम प्रभा-वान् तथा मनोहर ॥ ७ ॥ उन शूलेश हाटकेश्वरजी को फूले कमलकी नाईं देखकर सब देवता प्रसन्न रोमोंवाले होगये ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता-ओं ने अनेक भांति के स्तोत्रोंसे स्तुति किया जो हाटकेश्वर नामक पातालमें टिकेथे ॥ ९ ॥ वे शूल के मार्ग से निकले उसीकारण शूलेश्वर कहेगये हैं और देवदेव जी के उत्तर में धूतपाप नामक तीर्थ है ॥ १० ॥ वहां पर वह पराक्रमी व पापी दैत्येन्द्र शूल से मारागया है उसकारण हे व्यासजी ! यह धूतपाप तीर्थ कहाजाता

गामजवेनसः ॥ बहुवक्त्रसमाकीर्णं सुप्रभंसुमनोरमम् ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वात्रिदशास्सर्वे शूलेशंहाटकेश्वरम् ॥ प्रणम्यहृष्टरोमाणो यथाप्रोत्फुल्लपङ्कजम् ॥ ८ ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ हाटकेश्वरनामासीत्पातालेयोऽव्यवस्थितः ॥ ९ ॥ निर्गतश्शूलमार्गेण तेनशूलेश्वरस्स्मृतः ॥ धूतपापञ्चतीर्थञ्च देवदेवस्यचोत्तरे ॥ १० ॥ तत्रपापस्स दैत्येन्द्रो धूतश्शूलेनवीर्यवान् ॥ तेनतीर्थमिदंव्यास धूतपापंप्रचक्ष्यते ॥ ११ ॥ अष्टम्यांवापौर्णमास्यां चतुर्दश्यांशनौ तथा ॥ उपोष्यरजनीमेकां शिवभक्तोजितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ धूतपापन्तुयःपश्येद्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृतैरपि ॥ १३ ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति ॥ कृत्वाभिषेकंयःपश्येत् पौषेमासिसवैनरः ॥ १४ ॥ शूलेश्वरप्रभावेण मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ विमानानांसहस्रेण मृतोयातिपरम्पदम् ॥ १५ ॥ इतिचान्धकशूलोयं यावद्भोगवतीङ्गतः ॥ तावत्समुत्थितायोरा असुरारुधिरोद्भवाः ॥ १६ ॥ खड्गहस्तामहावीर्या अनेकशतसंख्यया ॥ च

है ॥ ११ ॥ अष्टमी, पौर्णमासी, चौदसि व शनैश्चर दिन में एकरात्रि उपास कर शिवभक्त व जितेन्द्रिय ॥ १२ ॥ जो पुरुष धूतपाप नामक देवदेव महेश्वरजी को देखता है वह सातजन्मों में कियेहुये पातको से छूटजाता है ॥ १३ ॥ और सौ कुलों को उद्धारकर वह शिवलोकको जाताहै और स्नानकर जो मनुष्य पौष महीने में उन शिवजी को देखताहै वह पुरुष ॥ १४ ॥ शूलेश्वरजी के प्रभाव से ब्रह्महत्याकरके छूटजाता है और मरकर वह हजार विमानों के द्वारा परमपदको प्राप्तहोता है ॥ १५ ॥ इसप्रकार अन्धकासुरका यह शूल जबतक भोगवती को गया तबतक रक्तोंसे उपजेहुये भयकर दैत्य उठे ॥ १६ ॥ जोकि बडे बलवान् व तलवार हाथो-

वाले अनेक सौ संख्यकथे चारों दिशाओं में स्थित भयंकर दानवों से मारेजातेहुये व उन दुष्टात्माओं से पीडित महादेवजी ने सिंहनाद छोड़ा याने गरजे और सिंह-
नाद से मूर्च्छित होकर वे पापी पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १७ । १८ ॥ और फिर उठकर वे देवदेव महेश्वरजीके समीपगये तदनन्तर डरेहुये ब्रह्मा व विष्णु आदिक हितैषी
देवता उनको असाध्य मानकर सम्मतिकर तदनन्तर विचार कर स्त्रीको रचैं यह आपही ॥ १९ । २० ॥ कहकर ब्रह्मा ने हंस पै बैठीहुई व चारमुखोंवाली तथा चार
हाथोंवाली और ब्रह्माणी के रूपको धारनेहारी उत्तम स्त्रीको पैदा किया ॥ २१ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजीने उत्तम मयूरवाहनवाली कौमारी स्त्री को उत्पन्न किया जो

तुर्द्दिक्षुस्थितैर्घोरैर्हन्यमानोमहेश्वरः ॥ १७ ॥ सिंहनादंमुमोचाथपीडितस्तैर्दुरात्मभिः ॥ सिंहनादेनतेपापा मूर्च्छिताः
पतिताभुवि ॥ १८ ॥ पुनस्समुत्थिताजग्मुर्देवदेवंमहेश्वरम् ॥ वित्रस्ताश्चततोदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १९ ॥ असा
ध्यांस्तांस्तथामत्वा मन्त्रंकृत्वाहितैषिणः ॥ ततोदेवाविचार्याथ स्त्रींसृजामइतिस्वयम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वोत्पादयामास
ब्रह्माहंसासनांशुभाम् ॥ चतुर्वक्त्रांचतुर्हस्तां ब्रह्माणीरूपधारिणीम् ॥ २१ ॥ कुमारश्चैवकौमारीं मयूरवरवाहनाम् ॥ र
क्तमाल्याम्बरधरां शक्तिखङ्गंचधारिणीम् ॥ २२ ॥ पुनःकुमारःकौमारीं पक्षीन्द्रवरवाहनाम् ॥ कृष्णांकरालदशनां ध
र्मराजस्तथासृजत ॥ २३ ॥ दैत्यदेहप्रमथिनींदण्डमुद्गरधारिणीम् ॥ ललाटलोचनांनीलां कपालकरभूषिताम् ॥ २४ ॥
सिंहाननधरांकृष्णां सर्वभूषणभूषिताम् ॥ कर्तृहस्तांसखट्वाङ्गां खङ्गखेटकधारिणीम् ॥ २५ ॥ चर्मास्थिकेशवपुषं चा
मुण्डामसृजत्प्रभुः ॥ वटस्यनिकटेपूर्वं निर्मितालोकमातरः ॥ २६ ॥ ततोलोकेषुविख्याताः प्रत्यक्षावटमातरः ॥ त

कि अरुणमालाओं व वसनों को धार तथा शक्ति व तलवारको धारण किये थीं ॥ २२ ॥ और फिर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने काली व कराल दांतोंवाली तथा उत्तम ग-
रुड़ वाहनवाली कौमारी शक्तिको रचा और वैसेही धर्मराज ने रचा ॥ २३ ॥ और दैत्योंके देहको मथनेवाली तथा दण्ड व मुद्गरको धारनेहारी व मस्तकमें नेत्रवाली
और नीलवर्ण व कपाल से शोभित हाथवाली ॥ २४ ॥ व सिंहमुखधारिणी, काली तथा सब भूषणोंसे भूषित व कतरनी हाथवाली और खट्वांग समेत व तलवार और
खेटक अस्त्रको धारनेहारी ॥ २५ ॥ और चर्म, अस्थि व केश संयुत शरीरवाली चामुण्डाजी को प्रभु (शिव) जीने रचा पहले बरगद के समीप लोकमातृकाओं को

चाहिये ॥ ४७ ॥ और ताम्र पात्रसे संयुक्त पांच कमंडलु बनवानाचाहिये और उनको गुडपिंडमय व लालवसनों से संयुत करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और उनको लाल चन्दन से संयुत व लाल फूलों से पूजितकरै व उनमें एक कमंडलुको तिलों व चावलों से पूर्णकरै ॥ ४९ ॥ और दूसरेको लड्डुवों से पूर्णकरै व तीसरे को दुग्ध से और चौथे को तीर्थों के जलों से व पांचवेंको मूलों से पूर्णकरै ॥ ५० ॥ इसप्रकार करके विधिपूर्वक इस मन्त्रसे अर्घ निवेदनकरै कि कुजके लिये व लोहितांग तथा ग्रहों के मध्य में स्थित के लिये ॥ ५१ ॥ और कार्त्तिकेयानुरूप व सुरूपवान् के लिये बार २ नमस्कार है हे शिवजी के ललाट से उपजेहुये, पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न ! ॥ ५२ ॥

पञ्चवैकरकाःकार्यास्ताम्रपात्रेणसंयुताः ॥ गुडपिण्डमयाःकार्या रक्तवस्त्रसमन्विताः ॥ ४८ ॥ रक्तचन्दनसंयुक्ता रक्तपुष्पैश्चपूजिताः ॥ तिलतण्डुलसम्पूर्णमेकंतत्रैवकारयेत् ॥ ४९ ॥ द्वितीयंलड्डुकैश्चैव तृतीयंपयसातथा ॥ तीर्थाम्बुभिश्चतुर्थञ्च पञ्चमंमूलकैस्तथा ॥ ५० ॥ कृत्वाह्येवंविधानेन मन्त्रेणार्घ्यंनिवेदयेत् ॥ कुजायलोहिताङ्गाय ग्रहमध्यस्थितायच ॥ ५१ ॥ कार्त्तिकेयानुरूपाय सुरूपायनमोनमः ॥ शिवललाटसम्भूत धरणीगर्भसम्भव ॥ ५२ ॥ रूपार्थन्त्वांप्रपन्नोस्मि गृहाणार्घ्यंनमोस्तुते ॥ ज्वलिताङ्गारवर्णाभस्निग्धविद्रुमभासुर ॥ ५३ ॥ पुत्रार्थन्त्वांप्रपन्नोस्मि गृहाणार्घ्यंधरात्मज ॥ आवन्त्यमण्डलेजातो धरण्याञ्चशिवेनवै ॥ ५४ ॥ धनन्देहियशोदेहि रूपन्देहिनमोस्तुते ॥ एवंसम्पूजितेभौमे चतुर्थ्यांद्विजसत्तम ॥ ५५ ॥ भुक्त्वाभोगांस्तथापुत्रान् प्राप्यवैक्षितिमण्डले ॥ मृतस्स्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवन्तीखण्डेङ्गारेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥

मैं रूपके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं अर्घको ग्रहण कीजिये हे जलतेहुये अंगारके समान वर्णवाले, चिक्कण मूगों के समान प्रकाशवान् ! ॥ ५३ ॥ हे पृथ्वी-पुत्र ! मैं पुत्रके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं अर्घको ग्रहणकीजिये अवन्ती के मंडल में शिवजीसे पृथ्वी मे पैदाहुयेहो ॥ ५४ ॥ धनको दीजिये, यशको दीजिये व रूपको दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे द्विजोत्तम ! मंगलचतुर्थी मे इसप्रकार पूजनेपर ॥ ५५ ॥ पृथ्वीमंडल मे भोगो को भोगकर व पुत्रोंको प्राप्तहोकर मरकर तबतक स्वर्गको प्राप्तहोताहै जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायामङ्गारेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । दियो अन्धकासुरहिं जिमि श्री शिवजी वरदान । उंचसवें अध्याय में सोई कियोबखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि राक्षसों का पियाजाताहुआ रक्त जब शेषनरहा तब चामुण्डाका अरुणमुख प्रकाशितहुआ ॥ १ ॥ जो कि कृष्णवर्ण व प्राणियों का अन्तकारक कराल दांतों व ओंठोंवाला और जलतीहुई अग्निके समान केशान्तवाला तथा प्रज्वलित अग्निके समान लोचनोंवाला था ॥ २ ॥ और भयंकरघुर्घुर शब्द से बढ़ेहुये फेत्कार से विस्वरथा व गरुड़पक्षका मुकुट किये तथा पैनी दाढ़ों के अंकुरों से उज्ज्वल था ॥ ३ ॥ उस मुखमें कपाल के अग्रभाग को धरकर क्रोधित मुखवाली व प्रचण्ड भुजदण्डों से शोभित चण्डिका ने रक्त पिया ॥ ४ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ नास्तिशेषंयदारक्तं पीयमानञ्चरक्षसाम् ॥ चामुण्डायास्ततोरक्त मभूदास्यञ्चभास्वरम् ॥ १ ॥ कृष्णंभूतान्तकल्पान्तकरालदशनाधरम् ॥ प्रज्वलद्वह्निकेशान्तं ज्वलज्ज्वलनलोचनम् ॥ २ ॥ घोरघुर्घुरनिर्घोषस्फीतफेत्कारविस्वरम् ॥ तार्क्ष्यपक्षकृतापीडं तीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरोज्ज्वलम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्मुखेकपालाग्रं निधायरुषितानना ॥ अपिबद्रुधिरञ्चण्डी चण्डदोर्दण्डमण्डिता ॥ ४ ॥ तयापिबन्त्यादैत्येन्द्रश्शरीरेकृशताङ्गतः ॥ सर्वासंहृत्यमायाया बलक्षीणमथाकरोत् ॥ ५ ॥ तीव्रंभयंसमासाद्य प्राणत्राणपरायणः ॥ दृष्ट्वानान्याङ्गतिंलोके दैत्यस्तुष्टावशङ्करम् ॥ ६ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा रोमाञ्चितशरीरकः ॥ सात्त्विकंभावमापन्नस्त्यक्त्वाचैवरजस्तमः ॥ ७ ॥ लोकानांकारणन्देवं विबुधाधिपतिंविभुम् ॥ शश्वद्बुध्यान्वितोभक्त्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥ श्लाघ्यंशिवंचतुष्टाव देवंचन्द्रार्द्धशेखरम् ॥ ८ ॥ कृत्स्नस्ययोऽस्यजगतःसचराचरस्य कर्ताकृतस्यचतथासुखदुःखदाता ॥ संसारहेतुरपियःपुनरन्तकाल

पीती हुई उन चण्डिका से दैत्येन्द्र अन्धक शरीर में दुर्बलताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर जो मायाथीं उन सबोंको संहारकर बलको क्षीणकिया ॥ ५ ॥ व तीक्ष्ण भयको प्राप्तहोकर प्राणों की रक्षा में तत्पर दैत्य ने अन्यगति को न देखकर शिवजी की स्तुति किया ॥ ६ ॥ हाथोंको जोड़कर रोमांचित देहवाला वह दैत्य रजोगुण व तमोगुणको छोड़कर सात्त्विक भावको प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ व निरन्तर बुद्धि से संयुत उस दैत्य ने निर्मल चित्तसे लोकों के कारण, देवपति,प्रशंसनीय व व्यापक तथा अर्द्धचन्द्रभाल शिवदेवजी की स्तुति किया ॥ ८ ॥ कि समस्त चराचर इस संसार का जो कर्ता है व किये कर्म का जो सुख दुःखदायक है व संसारका कारण भी हो-

कर जो अन्तकाल है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ ९ ॥ सावधान मनवाले व निवृत्त कामनाओंवाले और मोह, तम व रजसे रहित समस्त बुद्धिवाले योगी लोग जिन अमित व दिव्य मूर्तिवाले शिवजी का ध्यान करते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १० ॥ और शोभित किरणोंवाले निर्मल चन्द्रखण्डको बांधकर जो सदैव मस्तक से गंगाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने बाये अंग में गिरिराजकुमारी को धारणकिया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ ११ ॥ और सिद्धों व चारणों से सेवित चरणकमलवाले जिन्हो ने बडी लहरियोंसे विषम व आकाशसे गिरती तथा त्रि-

स्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ ९ ॥ यंयोगिनोविगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसोविनिवृत्तकामाः ॥ ध्यायन्तिचाखिलधियोमितदिव्यमूर्त्तिं तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १० ॥ यश्चन्द्रखण्डममलंविलसन्मयूखं बद्ध्वा सदासुरधुनींशिरसाविभर्ति॥ वामाङ्गकेविधृतवान्गिरिराजपुत्रीं तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि॥ ११॥ यस्सिद्धचारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गांमहोर्मिविषमांगगनात्पतन्तीम् ॥ मूर्द्धादधेस्रजमिवत्रिजगत्पुनन्तींतंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि॥ १२ ॥ कैलासगोत्रशिखरेपरिकम्पमाने कैलासशृङ्गसदृशेनदशाननेन ॥ यःपादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १३ ॥ दक्षाध्वरेतुनयनेचतथाभगस्य पूष्णस्तथादशनपङ्क्तिमशातयद्यः ॥ व्यस्तम्भयत्कुलिशहस्तमथेन्द्रमीशं तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि॥ १४ ॥ येनासकृद्दितिसुताश्चदनोस्सुताश्च विद्याधरोरगगणाश्चव

लोकको पवित्र करतीहुई गंगाजी को मस्तक से मालाकी नाईं धारण किया है उनशरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १२ ॥ और सब ओर से कांपते हुये कैलासपर्वत के शिखर पै कैलास शिखर के समान दशमस्तकोंवाले रावण से जो चरणकमल के पीडन से सेवा किये जाते हैं उन शरणदायक शंकरजीकी शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १३ ॥ व जिन्होंने दक्ष के यज्ञमें भगदेवता के नेत्रों को व पूषाके दांतों की पंक्तिको गिरादिया है व वज्रहाथवाले ईश्वर इन्द्रजी को स्तंभित किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूं ॥ १४ ॥ व जिन्होंने दिति के पुत्र (दैत्य) व दनु के पुत्र (दानव) तथा विद्याधर व नाग-

उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होताहूं ॥ १५ ॥ गण सब उत्तम वरदानों से युक्त कियेगये व फल मूल खानेवाले मुनीश्वरवरों से संयुक्त कियेगये हैं
व ऐसा करने पर भी विषयोंमें लगेहुए भाववाले पुरुष जिनसे ज्ञान व शास्त्रों के गुणों से भी युक्त होकर जिनके भलीभांति आश्रित मनुष्य सुखके भोगी होते हैं
उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होताहूं ॥ १६ ॥ और स्वामिकार्तिकेय समेत ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु व मरुत देवताओं को जिन भगवान् महेशजी ने
बहुत वरदानोंको दिया है व जिन्हों ने सूतको मृत्युके मुखसे फिर उद्धारा है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १७ ॥ और हिमाचल के कुञ्जमें

एवंकृतेपिविषयेष्वपिसक्तभावा ज्ञानेनचश्रुतगुणैरपियेनयुक्ताः ॥ यंसंश्रितास्सुखभुजःपुरुषाःभवन्ति तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १६ ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुमरुतांचसषण्मुखानां योदाद्वरान्सुबहुशोभगवान्महेशः ॥ सूतञ्चमृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १७ ॥ आराधितस्तुतपसाहिमवन्निकुञ्जे धूम्राव्रतेनतपसापिपरैरगम्यः ॥ सञ्जीविनीमदितयोभृगवेमहात्मा तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १८ ॥ क्रीडार्थमेवभगवान्भुवनानिसप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ॥ सब्रह्मकानिसमृजेसुकृताभिधानि तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १९ ॥ यस्सव्यपाणिकमलाग्रनखेनदेवस्तत्पञ्चमंप्रसभमेवकरालरन्ध्रम् ॥ ब्राह्मयंशिरस्तरणिपद्मनिभश्चकर्त तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ २० ॥ येत्वांसुरोत्तमगुरुंपुरु

तपस्या से आराधना कियेहुये व धूम्र से घिरे से तप से भी अन्यजनों से अगम्य जिन महात्मा ने भृगुजी के लिये संजीवनी विद्याको दिया है उन शरणदायक
शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १८ ॥ व जिन भगवान् शिवजी ने अनेक प्रकारकी नदी, पक्षी व वृक्षों से शोभित तथा पुण्यनामवाले ब्रह्मलोक समेत सात
लोकोंको क्रीड़ाही के लिये रचाहै उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १९ ॥ व जिनदेवजी ने बांये हस्तकमल के अग्रनख से सूर्य व कमलके
समान तथा भयंकर छिद्रवाले उस ब्रह्माके पांचवें शिरको हठही से काटडाला है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ २० ॥ हे सुरोत्तम ! जो मूढ़

पुरुष चराचर समेत इस संसार के गुरु तुमको नहीं जानते हैं हे महेशजी ! ऐश्वर्य व मान के विनाशके कारण वे पश्चात् पीडाको भोगते हैं जैसे कि मैं हूं ॥ २१ ॥ पवित्र कर्मोंवाला जो शिवभक्त पुरुष सदैव इस स्तोत्रकोपढ़ता है ब्राह्मणों की सभा में सदैव शुभ कर्मवाला वह अखण्ड शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करतेहुये उनके पूर्ण सौ वर्षके अन्तमें शूल हाथ वाले वृषध्वज शिवदेवजी प्रसन्न होकर बोले ॥ २३ ॥ कि हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूं तुम्हारा कल्याणहोवै इस समय तुम निर्मल हुयेहो तुमको मैं दिव्यनेत्रको देताहूं ज्वररहित तुम मुझको देखो ॥ २४ ॥ हे दानवोत्तम ! तुम्हारे मन से भी जो कुछ

षाविमूढा जानन्तिनास्यजगतस्सचराचरस्य ॥ ऐश्वर्यमानविगमेनमहेशपश्चात्तेयातनामनुभवन्तियथाहमेव ॥२१॥ यःपठेत्स्तवमिदंशुचिकर्मा यःशृणोतिसततंशिवभक्तः ॥ विप्रसंसदिसदाशुभकर्मा सप्रयातिशिवलोकमखण्डम् ॥ २२ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ तस्यैवंस्तुवतोदेवः शूलपाणिर्वृषध्वजः ॥ पूर्णेवर्षशतस्यान्ते प्रीतःप्रोवाचशङ्करः ॥ २३ ॥ पुत्रतुष्टोस्मिभद्रन्ते जातस्त्वंनिर्मलोऽधुना ॥ दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमांविगतज्वरः ॥ २४ ॥ यच्चतेमनसावापि किञ्चिचाकाङ्क्षितंफलम् ॥ तत्तेसर्वंप्रदास्यामि ब्रूहिदानवसत्तम ॥ २५ ॥ अन्धकउवाच ॥ ब्राह्मंवैष्णवमैन्द्रंवापदमावृत्तिलक्षणम् ॥ विदितंममतत्सर्वं मनागपिनकाङ्क्षये ॥ २६ ॥ यदितुष्टोसिदेवेश गाणपत्यंददस्वमे ॥ सविशेषंविशुद्धञ्च तदक्षरञ्चसर्वदा ॥ २७ ॥ शिवउवाच ॥ अमरोजरयात्यक्तस्सर्वदुःखविवर्जितः ॥ भविष्यसिगणाध्यक्षस्सर्वलोकनमस्कृतः ॥२८॥ कामरूपीमहायोगी महासत्त्वोमहाबलः ॥ अणिमादिगुणैर्युक्तः प्रियश्चममसर्वदा ॥ २९ ॥ सनत्कुमा

चाहाहुआ फल होवै उस सब को तुम्हें दूंगा कहिये ॥ २५ ॥ अन्धक बोला कि ब्रह्मा, विष्णु, व इन्द्रका जो आवृत्तिलक्षणवाला स्थान है उस सबको मै जानता हूं इससे कुछभी नहीं चाहताहूं ॥ २६ ॥ हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो तो मुझको गणाध्यक्षता को दीजिये जोकि विशेषता समेत तथा पवित्र और सदैव अक्षयहो ॥ २७ ॥ शिवजी बोले कि अमर व वृद्धतासे छोड़ेहुये तथा सब दुःखों से रहित और सब मनुष्यों से नमस्कार कियेहुये गणाध्यक्ष होवो ॥ २८ ॥ व कामरूपी महा-

योगी, महाप्रभाववान् व महाबलवान् और अणिमादि गुणों से संयुत व मुझको सदैव प्रियहोवोगे ॥ २९ ॥ ... अन्धक के जानेपर तदनन्तर ब्रह्माणी आदिक देवियां वहां भलीभांति आईं जहां वह श्रीमान् अन्धक महादेवजीका गणहोकर वहीं अन्तर्द्धान होगया ॥ ३० ॥ और उन्होंने महादेवजी की स्तुति किया इसके अनन्तर महादेवजी प्रसन्नहुये और महेशाजी से समझाई कि अन्धक के वरदायक वे भगवान् शिवदेवजी थे ॥ ३१ ॥ व उनके आगे स्थित तथा प्रणाम किये हुये शङ्करजीको देखकर ब्रह्मादिक देवताओं ने भी विविध स्तुतियों से स्तुति हुई चामुण्डा भी कल्याणदायिनी हुईं ॥ ३२ ॥

रउवाच ॥ ततश्चसोऽन्धकःश्रीमान्वराँल्लब्ध्वासुदुर्लभान् ॥ महादेवगणोभूत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥ गतेऽन्धकेततो देव्यो ब्रह्माण्याद्यास्समागताः ॥ सदेवोयत्रभगवानन्धकस्यवरप्रदः ॥ ३१ ॥ तास्तुष्टुवुर्महादेव मथतुष्टोमहेश्वरः ॥ चामुण्डापिमहेशेन समाश्वस्ताशिवाभवत् ॥ ३२ ॥ शङ्करंप्रणतंदृष्ट्वा तासामग्रेऽव्यवस्थितम् ॥ ब्रह्मादयोपितेदेवास्तु ष्टुवुर्विविधैस्स्तवैः ॥ ३३ ॥ प्रशान्तास्तायदाहृष्टाः शम्भुनारुधिराशनाः ॥ तदावोचदिदंवाक्यं तासांस्थित्यर्थमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ आवन्त्यविषयेसर्वा यस्माज्जातामहाबलाः ॥ आवन्त्यमातरस्तस्मात् ख्यातालोकेभविष्यथ ॥ ३५ ॥ अवन्त्यांप्रीतिसम्पन्नास्सर्वपापप्रणाशिकाः ॥ स्थिरावसन्त्योलोकानां वरदाश्चभविष्यथ ॥ ३६ ॥ श्रावणस्यतुमासस्यामावस्यायांसमाहिताः ॥ येद्रक्ष्यन्तिसदाभक्त्या तेषांलोकामहोदयाः ॥ ३७ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रान् धनार्थीलभते धनम् ॥ रूपवान्सुभगोभोगी सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३८ ॥ हंसयुक्तेनयानेन पितृलोकेमहीयते ॥ पुरीमिमाञ्चरक्षध्वं कल्पे

किया ॥ ३३ ॥ जब रक्तभोजनवाली वे शान्तदेवियां शिवजी से प्रसन्न हुईं तब उनकी स्थिति के लिये शिवजी यह उत्तम वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि जिस लिये आवन्ती देश में तुम सब महाबलवती उत्पन्न हुईंहो इस कारण संसार में आवन्त्यमातृका प्रसिद्ध होवोगी ॥ ३५ ॥ व सब पातकों को विनाशनेवाली तथा प्रीति से युक्त अवन्ती में स्थिर होकर बसतीहुई तुम सब मनुष्योंको वरदायिनी होवोगी ॥ ३६ ॥ और श्रावण महीनेकी अमावस में सावधान होतेहुये जो मनुष्य सदैव भक्ति से तुमको देखेंगे उनको बड़े ऐश्वर्यवाले लोक होवेंगे ॥ ३७ ॥ और बिन पुत्रवाला पुरुष पुत्रों को पाता है व धनको चाहनेवाला धन पाताहै और रूपवान्

उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुखी व सब शास्त्रों में चतुर होताहै ॥ ३८ ॥ और वह पुरुष हंससंयुत विमान के द्वारा जाकर पितृलोकमें पूजा जाताहै प्रति कल्पमें क्रमसे तुम सब इस पुरी की रक्षाकरो ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर दैत्यों व देवताओं के गणेश्वरों तथा रुद्रगणों से स्तुति कियेजातेहुये देवेश शिवजी कैलासपर्वत को चले गये ॥ ४० ॥ जो पुरुष कहनेयोग्य इस कीर्ति को श्रद्धा से कहता व सुनताहै वह दैत्यों व देवगणों का नायक होताहै और देवगणों व दनुजनाथोंसे पूजित तथा समस्त सुखोंके निधान अनन्त शिवलोक को जाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामन्धकवृत्तान्तंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

कल्पेक्रमेणतु ॥३९॥ एवमुक्त्वाचदेवेशो गतःकैलासपर्वतम् ॥ स्तूयमानोगणै रौद्रैर्दैत्यामरगणेश्वरैः ॥ ४० ॥ असुरसुरगणानां नायकस्यानुकीर्त्तिं कथयतिकथनीयां श्रद्धयायःशृणोति ॥ सकलसुखनिधानं रुद्रलोकंसकान्तं सुरगणदनुनाथैरर्चितंयात्यनन्तम् ॥४१॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेअन्धकवृत्तान्तंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

व्यासउवाच ॥ भगवन्क्षेत्रमाहात्म्यं कथितञ्चयथातथम् ॥ तीर्थानामुत्तमन्तीर्थं पुण्यानांपुण्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥ कतिसन्त्यत्रतीर्थानि लिङ्गानिचतथाकति ॥ कथयस्वप्रसादेन पृच्छतोममसाम्प्रतम् ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ महाकालवनेव्यास लिङ्गसंख्यानविद्यते ॥ ३ ॥ अकामोवासकामोवा जायतेयोत्रमानवः ॥ महाकालवनेरम्ये शिवलोकेमहीयते ॥ ४ ॥ कर्कराजादितीर्थानि प्रासादायतनानिच ॥ तेषुस्ना

दो० । महाकाल शिव देवकर अति अद्भुत माहात्म्य । पचासवें अध्यायमे सोइ चरितयाथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! आपने क्षेत्र के माहात्म्य को यथा योग्य कहा जो कि पवित्र तीर्थों के मध्यमें उत्तम तीर्थ है व पुण्य को बढानेवाला है ॥ १ ॥ यहां पर कितने तीर्थ व कितने लिङ्गहैं इस समय पूंछते हुये मुझसे इस को प्रसन्नतासे कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! साठकरोड़ हजार व साठकरोड सौ महाकाल वन में तीर्थ है और लिगों की सख्या नही विद्यमान है ॥ ३ ॥ जो कामना रहित व कामना समेत मनुष्य इस सुन्दर महाकाल वन में उत्पन्न होताहै वह शिवलोकमे पूजाजाताहै ॥ ४ ॥ जो कर्कराजादिक तीर्थ व देव

मन्दिर हैं उनमें नहाकर व पवित्रहोकर मनुष्य शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ५॥ जो पवित्र सब तीर्थ हैं व सम्पूर्णता से सिद्धक्षेत्र हैं उनमें इसको बहुत मुख्यक्षेत्र
व उत्तम तीर्थ जानिये ॥ ६ ॥ जो बड़ी भक्तिसे इस चरित्रको सुनता है वह उत्तमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि
तायांभाषाटीकायांमहाकालमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कनक शृंग जिमि नाम । इक्यावनवें में कह्यो सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! संसारके भयको नाशनेवाले

त्वाशुचिर्भूत्वा शिवलोकेमहीयते ॥ ५ ॥ पुण्यानिसर्वतीर्थानि सिद्धक्षेत्राणिसर्वतः ॥ तेषांमुख्यतमंविद्धि क्षेत्रंतीर्थंतथोत्तमम् ॥ ६ ॥ यःशृणोतिमहाभक्त्या सयातिपरमांगतिम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकालमाहात्म्यन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं भवभीतिविनाशकम् ॥ १ ॥ ईश्वरस्थानमाख्यातं समंतात्साग्रयोजनम् ॥ यत्रक्षेत्रेमृतामर्त्यास्सदाचारास्तथेतरे ॥ २ ॥ विमानस्थापुरेनूनमैश्वरेतेवसन्तिच ॥ यत्रकीटपतङ्गाद्या मृतायान्तिपरांगतिम् ॥ ३ ॥ किंतीर्थंपुण्यमन्यच्च महाकालवनादृते ॥ तस्माद्ब्रूहिममैकन्तु प्रश्नंतथ्येनसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ कथंकनकशृङ्गेति ख्याताह्येषापुरामुने ॥ कुशस्थलीकथन्नाम तथाऽवन्तीकथंस्मृता ॥ ५ ॥ पद्मावतीकथंसाधो कथमुज्जयिनीतथा ॥ नाम्नांहेतुमथाप्येषां ब्रूहित्वंमुनिसत्तम ॥ ६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासप्रवक्ष्यामि यथापूर्वंविरञ्चि

सब शिवस्थानको कहा जोकि सब ओरसे कुछ अधिक योजन भर है उत्तम आचारवाले व अन्य मनुष्य जिस क्षेत्रमें मरकर ॥ १ । २ ॥ विमानों पै स्थित होकर निश्चयकर शिवलोक में बसते हैं व कीट पतंगादिक जहां मरकर उत्तम गातिको प्राप्तहोते हैं ॥ ३ ॥ महाकाल वन के सिवाय अन्य कौन पवित्र तीर्थ है इसलिये इस समय मुझ से एक प्रश्नको सत्यता से कहिये ॥ ४ ॥ हे मुने ! पुरातन समय यह कनकशृंगा ऐसी कैसे प्रसिद्ध हुई व कैसे कुशस्थली नाम हुआ और किस कारण अवन्ती कहीगई है ॥ ५ ॥ हे साधो ! कैसे पद्मावती और कैसे उज्जयिनी कहीगईहै हे मुनिश्रेष्ठ ! इन नामोंका तुम कारणकहो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्या-

सजी ! सुनिये मैं कहताहूं कि जिसप्रकार पहले ब्रह्मा ने पुरातन गौरकल्पमें वामदेवजी के लिये कहा है ॥७॥ और भगवान् महादेवजी ने व ब्रह्माजी ने इन हेतुवों मे कहाहै व्यासजी बोले कि पृथ्वी में स्वर्ग से गिरे व निवसतेहुये मनुष्यों को किस कारण सुखहोताहै ॥८॥ और अपनी इच्छाके अनुकूल आचार व विहारवाले पुरुषों को किस प्रकार स्वर्ग की प्राप्तिहोती है और बहुत पुण्यवान् और पापहारी कौन श्रेष्ठ देश है ॥ ९ ॥ व हे भगवन् ! कहा बसते हुये मनुष्यों को किस कारण सुख होताहै व हे लोकेश ! कहा बसतेहुये मनुष्यों को इस लोक व परलोकवाला आनन्द होताहै ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सब देहधारियोके हितके लिये मुझसे यह कहिये

ना ॥ कथितंवामदेवाय गौरकल्पेपुरातने ॥ ७ ॥ महेश्वरश्चभगवान् विधाताचात्रहेतुषु ॥ व्यासउवाच ॥ जगत्यांस्वश्च्युतानाञ्च कुतोनिवसतांसुखम् ॥ ८ ॥ स्वर्गप्राप्तिश्चभवति स्वेच्छाचारविहारिणाम् ॥ कोतिपुण्यतमःश्रेष्ठः प्रदेशःपापहारकः ॥ ९ ॥ कुतोनिर्वृतिर्भगवन् जायतेवसतांकचित् ॥ वसतामपिलोकेश ऐहिकीपारलौकिकी ॥ १० ॥ एतन्मेभगवन्ब्रूहि हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवमादौपुराकल्पे प्रोक्तःपृष्टस्सशम्भुना ॥ ११ ॥ प्रोवाचपार्वतीकान्तं प्रभुःप्रीतःपितामहः ॥ भगवन्सर्वकर्तात्वंसर्वदर्शीसदाशिवः ॥ १२ ॥ अजानान्निवत्वंसर्वं मांपृच्छसि सनातन ॥ यत्रकल्पान्तकोवह्नि रधोज्वालःप्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥ सत्वमेवमहाकाल सर्वंचज्ञायतेत्वया ॥ नाथयेमानवास्तत्र सदाचारास्तथापरे ॥ १४ ॥ निवसन्तिनतेमर्त्यास्सुरास्तेनचमानुषाः ॥ लभन्तेचपुनःस्वर्गं मृतावैकालपर्यये ॥ १५ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसीप्रकार पहले कल्प में शिवजी से पूंछे हुये जब उन ब्रह्मा ने कहा है ॥ ११ ॥ प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मा स्वामी ने पार्वती के पति शिवजी से कहा कि हे भगवन् ! आप सदाशिवजी सब करनेवाले व सब को देखनेवाले हो ॥ १२ ॥ हे सनातन ! न जानतेहुये से तुम मुझ से सब पूंछतेहो नीचे ज्वालावाली कल्पान्तक अग्नि जिसमें प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ हे महाकालजी ! वह तुम्हींहो और तुम से सब जाना जाताहै हे नाथ ! उत्तम आचारवाले तथा अन्य जो मनुष्य वहां ॥ १४ ॥ बसते हैं वे मनुष्य नहीं हैं किन्तु वे देवता हैं मनुज नहीं हैं और कालके उल्लंघन में मरकर वे फिर स्वर्गको पाते हैं ॥ १५ ॥

और वहां पर सुन्दर मन्दिरोंवाली उत्तम पुरी वर्तमान है उसमें अनेक भांति के बिचित्र मन्दिर शोभित हैं ॥ १६ ॥ और सोने के शिखरवाले मन्दिरों को विश्वकर्मा ने रचाहै व जहां पर कि देवता तथा अनेक भांति के तीर्थ सदैव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ मैं पहले कल्प में वहां स्थित था जहां कि तुम व केशवजी थे और उसी अवन्ती पुरी को देखनेके लिये सब लोग ॥ १८ ॥ व देवर्षि, सिद्ध, यक्ष, किन्नर, व दानव कमलयोनि ब्रह्मा व शिवजी समेत आये ॥ १९ ॥ वैसेही देवताओं की प्यारी सुन्दरीभी हज़ारों स्त्रियां अति अद्भुत पुरीको देखनेके लिये आईं ॥ २० ॥ उससमय देवताओं समेत महेशदेवजीने सुन्दरी नगरीको देखने के लिये आकर

वर्ततेचपुरीतत्र रम्यहर्म्यासुशोभना ॥ तस्यांभान्तिविचित्राणि हर्म्याणिविविधानिच ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गाश्चप्रासादाः विहिताविश्वकर्मणा ॥ देवास्सन्तिसदायत्र तीर्थानिविविधानिच ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पेस्थितोहञ्च यत्रत्वंकेशवस्तथा ॥ तामेवचपुरींद्रष्टुं सर्वेलोकाह्यवन्तिकाम् ॥ १८ ॥ तथादेवर्षयःसिद्धा यक्षकिन्नरदानवाः ॥ आजग्मुस्स्थाणुना सार्द्धं वेधसापद्मयोनिना ॥ १९ ॥ तथैवचवरानार्य्यो देवानामपिवल्लभाः ॥ समापेतुस्सहस्राणि द्रष्टुमत्यद्भुताम्पुरीम् ॥ २० ॥ आगत्यचतदादेवस्सहदेवैर्महेश्वरः ॥ वीक्षितुंनगरींरम्या मपश्यदावृतान्तथा ॥ २१ ॥ प्रासादैस्स्वर्णशृङ्गाढ्यैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ विश्वरूपोहिभगवान् राजाविश्वैकनायकः ॥ २२ ॥ तत्रास्तेशोभनेदिव्ये प्रासादेमणिभूषिते ॥ सेव्यमानस्सुरैस्सिद्धैर्मुनिविद्याधरोरगैः ॥ २३ ॥ ततोमहेशश्चपितामहश्च समेत्यतंविश्वपतिंववन्दतुः ॥ सहानुगावीशकजेशमर्चितौतौविधिनासमादरात् सहानुगावागमनंत्वपृच्छत् ॥ २४ ॥ किमागतौवैत्रिदिवान्महीतलं

वैसेही सोने के शृंगों से संयुत व मणियों तथा रत्नों से मन्दिरों से घिरी हुई देखा और संसार के एकही स्वामी भगवान् विश्वरूप राजा ॥ २१ । २२ ॥ वहां मणियों से भूषित दिव्य उत्तम मन्दिर में स्थित हैं जोकि देवता, सिद्ध, मुनि, विद्याधर व नागों से सेवा कियेजाते थे ॥ २३ ॥ तदनन्तर महादेव व ब्रह्माजी ने भलीभांति आकर उन जगदीशजी को प्रणाम किया और सेवकों समेत विधि से आदरपूर्वक पूजेहुये उनसे आगमन पूंछा ॥ २४ ॥ कि हे ईश ! हे जलजेश ! अनुगामियों समेत

तुम दोनों आकाश से पृथ्वी में किसलिये आये हो यह कहिये तदनन्तर वे कमल से उपजेहुये ब्रह्मा व ईश्वर बोले कि जहां एकान्त में आपहो वहां हम दोनों को स्नेह है ॥ २५ ॥ और तुम्हारे विना देवालय (स्वर्ग) व पृथ्वी तथा रसातलमें सुख नहीं है और तुमने स्वर्ण शिखरवाली तथा मन्दिरोंवाली विचित्र पुरीको कब स्थापित कियाहै ॥ २६ ॥ हे ईश ! मैंने तुम्हारेही लिये समस्त गुणोंकी खानि व विशेष कर शोभित पुरीको रचाहै तुम यहांपर हम दोनोंको स्थान दीजिये तदनन्तर प्रसन्न मनवाले शिवजी शीघ्रही बोले ॥ २७ ॥ कि तुम दोनों को मैं यहांपर प्रियस्थानको दूंगा कि ब्रह्माके उत्तर ओर तुम्हारी स्थिति होगी हे महेश्वरजी ! तुम दक्षिणस्थान

कथ्यताम् ॥ ततस्तुतावुचतुरब्जजेश्वरौ भवान्नहोयत्रचतत्रनौरतिः ॥ २५ ॥ त्वयाविनानैवसुरालयेसुखं महीतलेवापि रसातलेस्ति ॥ कदात्वयाकाञ्चनशेखरापुरी निवेशितावेश्मवतीविचित्रा ॥ २६ ॥ त्वदर्थमेवेशविशेषशालिनी सृष्टाहिवैसर्वगुणाकरामया ॥ प्रयच्छस्थानंत्वमिहावयोरिह ततोजगादाशुप्रसन्नमानसः ॥ २७ ॥ ददाम्यभीष्टंयुवयोरिहालयं प्रजापतेरुत्तरतस्तवस्थितिः ॥ महेश्वरत्वंव्रजदक्षिणालयं स्थानंसुदत्तंयुवयोस्सुशोभनम् ॥ २८ ॥ महाकालोह्यधोज्वाल अगादात्मप्रभुस्सदा ॥ गणैरनेकसाहस्रैरावृतःपरमेश्वरः ॥ २९ ॥ क्रीडितानगरीसृष्टा सर्वभूतहितैषिणा ॥ मयायद्युवयोर्दत्ता विवाहालयमात्मनः ॥ ३० ॥ भवद्भ्यांहेमश्रृङ्गेति यस्माचसमुदीरिता ॥ पुरीकनकश्रृङ्गेति लोकेख्याताभविष्यति ॥ ३१ ॥ एवंकनकश्रृङ्गेति प्रथमन्नामकथ्यते॥जपन्तश्चस्थितायत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३२॥ नित्यंरमन्तिभक्तानां सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीकनकश्रृङ्गाभिधानन्नामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥

को जावो मैंने तुम दोनों को उत्तम स्थानदिया ॥ २८ ॥ और अनेकों हज़ार गणों से घिरेहुये व सदैव नीचे ज्वालाओंवाले तथा आत्मस्वामी सदाशिव परमेश्वरजी आये ॥ २९ ॥ और समस्त प्राणियों के हितैषी तथा क्रीड़ा करतेहुये मैंने नगरी को रचा है और मैंने जिसलिये अपने विवाह स्थानको तुम दोनों को दिया ॥ ३० ॥ और आप दोनोंसे जिसलिये हेमश्रृंगा कहीगई उस कारण संसारमें कनकश्रृंगा ऐसी पुरी प्रसिद्ध होगी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कनकश्रृंगा ऐसा पहला नाम कहाजा-

ताहै और जपतेहुये ब्रह्मा, विष्णु व महादेवजी जहां पर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ और भक्तोंको समस्त मनोरथोंके देनेवाले ये नित्यही रमण (क्रीड़ा) करते हैं ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाकनकशृङ्गाभिधानंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कुशस्थली जिमि नाम । बावनवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जिसप्रकार यह कुशस्थली कहीजाती है उसको सुनिये ॥ १ ॥ कि ब्रह्मा ने दैत्यों व दानवों तथा राक्षसोंवाले संसारको रचा है जोकि आपस में अहंकार से मत्त व परस्पर में सदैव द्वेषकारक है ॥ २ ॥ देवता, दानव व राक्षस नित्यही ईर्षा संयुत हुये व मनुष्यों के साथ तथा सिद्ध विद्याधरों के साथ ईर्षा संयुक्त हुये ॥ ३ ॥ व चारण किन्नरों के साथ

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथेयन्तु प्रोच्यतेहिकुशस्थली ॥ १ ॥ वेधसासृजितंविश्वं दैत्यदानवराक्षसम् ॥ अन्योन्यमदसंमत्त मन्योन्यद्वेषिणंसदा ॥ २ ॥ देवाश्चदानवारक्षो नित्यंस्पर्द्धासमन्विताः ॥ मनुष्यामनुजैस्सार्द्धं सिद्धाविद्याधरैस्सह ॥ ३ ॥ चारणाःकिन्नरैस्सार्द्धं मेवन्तेद्वेषतत्पराः ॥ युद्धंकुर्वन्तिसततं संविस्पष्टार्थयागिरा ॥ ४ ॥ सर्वेचैवन्तुबलिनो दुर्बलैर्मनुजैस्सह ॥ पशवःपशुभिस्सार्द्धंपक्षिणस्सहपक्षिभिः ॥ ५ ॥ एवमन्योन्यमन्यैश्च निर्मर्यादमिदंजगत् ॥ तस्माद्विश्वस्यकर्तारं विष्णुंविश्वेश्वरंपरम् ॥ ६ ॥ व्रजामिशरणन्देवं शरणार्त्तिहरंहरिम् ॥ एवंमनसिसन्धाय दध्यौध्यानेनमाधवम् ॥ ७ ॥ ततोध्यातोमहायोगी विश्वरूपधरोहरिः ॥ लोहदण्डधरःश्रीमानिदमाह पितामहम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मन्ध्यातस्त्वयासम्यक् ध्यानयोगेनपश्यमाम् ॥ समायातंयथाध्यातं जनतांपातुमुद्यतम् ॥ ९ ॥

स्पर्द्धा संयुक्त हुये इसप्रकार शत्रुता में तत्पर वे सदैव प्रकटवाणी से युद्ध करतेथे ॥ ४ ॥ इसी प्रकार सब बलवान् दुर्बल मनुष्यों के साथ व पशुवों से पशु तथा पक्षियों से पक्षी युद्ध करते थे ॥ ५ ॥ इस प्रकार आपस में अन्य प्राणियों से भी यह संसार मर्याद रहित होगया इसलिये ब्रह्माने चिन्तवन किया कि मैं संसार के रचनेवाले परम विश्वेश्वर विष्णुजी की ॥ ६ ॥ शरण मे प्राप्तहोऊं जो विष्णुदेवजी कि शरणागत दुःखहारक हैं इसप्रकार मन में विचारकर उन्होंने ध्यान से विष्णुजीका ध्यान किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर ध्यान कियेहुये विश्वरूपधारी श्रीमान् विष्णु महायोगीने लोहके दण्डको धारण कर ब्रह्माजी से यह कहा ॥ ८ ॥ कि हेब्रह्मन् ! तुम

ने मुझको ध्यान योगसे भलीभांति ध्यान किया इस लिये भलीभांति आये व ध्यान किये हुये तथा प्राणिगणों की रक्षा करने के लिये उद्यत मुझको देखिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने इस वचन को सुनकर व ध्यानको छोड़ देखकर सावधान मन से आगे पूजन करते हुये उठकर प्रणाम किया ॥ १० ॥ पाद्य आचमनीय व मधुपर्क से अच्युत विष्णुजी को पूजकर फिर कमल से उपजेहुये ब्रह्माजी ने कहा ॥ ११ ॥ कि हे देवदेव, जगदीशजी ! मुझ से रचाहुआ यह संसार हे विष्णो, हरे ! स्थित होने के लिये नहीं योग्य है ॥ १२ ॥ इस पवित्र संसारके तुम्हीं पालकहो अन्य नहीं है तुमसे यह समस्त संसार है इसलिये तुम पालन करो ॥ १३ ॥ यक्ष,

ततोधातानिशम्यैतत्त्यक्त्वाध्यानमवेक्ष्यच ॥ समुत्थायैकमनसा नमश्चक्रेऽर्चयन्पुरः ॥ १० ॥ पाद्येनाचमनीयेन मधुपर्केणकेशवम् ॥ पूजयित्वापुनर्वाक्य मुवाचाच्युतमब्जजः ॥ ११ ॥ देवदेवजगन्नाथ जगत्सृष्टमिदंमया ॥ ऋतेत्वयाहरेविष्णो नैवावस्थातुमर्हति ॥ १२ ॥ शास्तात्वमस्यविश्वस्य विशुद्धस्यचनापरः ॥ त्वत्तोस्तीदंजगत्सर्वं तस्मात्त्वमनुशासय ॥ १३ ॥ देवदानवगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ॥ परस्परंविनिघ्नन्ति तांश्चत्वंरक्षितुंक्षमः ॥ त्वामृते पुण्डरीकाक्ष व्यापिताशेषविग्रहम् ॥ १४ ॥ त्वमस्यविश्वस्यचराचरस्य स्थितस्सदाप्राणभृदात्मरूपी ॥ त्वयाधृतंसर्वमिदंजगद्वै यतस्ततोसित्वमुपेन्द्रसञ्ज्ञः ॥ १५ ॥ प्रवेशनव्याप्तिविधायकोसि त्वमुच्यसेविष्णुरतोमुनीन्द्रैः ॥ निवासितंविश्वमिदंत्वयायद्वसेश्चधातोरितिवासुदेवः ॥ १६ ॥ तवानुगंविश्वमिदंविभुस्त्व मशेषविश्वस्यविभासिराजा ॥ सेनानुरूपंजगदेवयस्मादतस्स्मृतस्त्वंकिलविश्वसेनः ॥ १७ ॥ विलेखनादस्यचराचरस्य कृषेश्चधातोस्त्वमतोसिकृष्णः ॥

नाग व राक्षसों समेत देवता, दानव व गन्धर्व आपस में युद्ध करते हैं उनको तुमरक्षा करने के लिये योग्यहो हे कमललोचन ! व्यापित समस्त शरीरवाले तुम्हारे विना इस ससार का कोई रक्षक नहीं है ॥ १४ ॥ इस चराचर ससारके प्राणधारी व आत्मरूपी तुम स्थितहो और जिसलिये इस संसारको तुमने धारणकियाहै उसी कारण तुम उपेन्द्र संज्ञकहो ॥ १५ ॥ और तुम प्रवेश व व्याप्ति करनेवाले हो इसी कारण मुनीन्द्रोंसे विष्णु कहेजातेहो ॥ और जिसलिये तुमसे यह संसार निवासित है उसी कारण वसि धातु से वासुदेवहो ॥ १६ ॥ यह संसार तुम्हारा अनुगामी है और तुम व्यापकहो व समस्त ससारके राजा प्रकाशित हो जिस लिये संसार सेना

के अनुरूप है इसीसे तुम विश्वसेन कहे गयेहो ॥ १७ ॥ इस चराचर संसारके विलेखन (आकर्षण या विदारण) के कारण कृषि धातुसे तुम कृष्ण हो व
हे देव ! जिस लिये तुमने त्रिलोकको जीता है उसी कारण जिधातु से तुम जिष्णुहो ॥ १८ ॥ इसलिये ग्रहों व लोकपालों वाला तथा सब समय में नाशवाला
यह सब संसार तुम्हारा है व इस सब संसार के तुम आदि राजा होवो और तुम्हारा अद्वितीय सिंहासन होवै ॥ १९ ॥ दक्षिणावर्तवाला शंख तुम्हारे हाथ
में स्थित है इसलिये तुम पुरुषोत्तमहो और सुदर्शन नामक तुम्हारा चक्र है इसलिये तुम चक्रीहो अन्य अचक्री (चक्र रहित) है ॥ २० ॥ और विष्णुदेवजी का

जितन्त्वयादेवजगत्रयंयज्जयेश्चधातोस्त्वमतोसिजिष्णुः ॥ १८ ॥ तस्मात्समस्तंग्रहलोकपालं जगत्तवैतल्लयसर्वकालम् ॥ त्वमस्यसर्वस्यभवादिराजा तवास्तुभद्रासनमद्वितीयम् ॥ १९ ॥ प्रदक्षिणावर्त्तनअस्तिशङ्खःकरस्थितोतःपुरुषोत्तमोसि ॥ सुदर्शनन्नामतवास्तिचक्रं चक्रीह्यतस्त्वंह्यपरस्त्वचक्री ॥ २० ॥ ध्वजोस्तिदेवस्यसुपर्णसेवितस्तथासुवर्णच्छदनोस्तिवाहनः ॥ तुरङ्गमास्सन्तितवारिसंहरास्तथाहृषीकेशसुमत्तदन्तिनः ॥ २१ ॥ किरीटनिष्काङ्गदकर्णपूर केयूरहारोत्तमहेमसूत्रैः ॥ विचित्रवस्त्रोत्तररक्तमाल्यैर्विभूषितस्त्वंभवभीमसेन ॥ २२ ॥ श्रियाकदाचिन्नसुच्यतेभवान् भवन्तितेनित्यमनन्तसम्पदः ॥ तवानुगाभक्तिरिहास्तुवैसतां मुकुन्दभक्तेत्वमतःप्रसीद ॥ २३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ सएवमुक्तस्तुपुरादिवौकसां विभुःप्रसन्नस्त्विदमब्रवीद्धरिः ॥ विरिञ्चमेदर्शयशुद्धमण्डलं त्वयाविमुक्तं

ध्वजा गरुड से सेवित है व सुवर्णके समान पंखोंवाले गरुड़वाहन हैं और हे हृषीकेश ! तुम्हारे शत्रु विनाशक अश्व हैं व मतवाले हाथी हैं ॥ २१ ॥ हे भव,
भीमसेन ! किरीट, अशर्फी, बजुल्ला, कर्णपूर,केयूर व उत्तमहार स्वर्ण सूत्रोंसे और विचित्र उत्तरीय वस्त्र और लाल मालाओंसे तुम भूषितहो ॥ २२ ॥ आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होतेहो और तुम्हारे सदैव अमित संपदायें होतीहैं इस संसार में सज्जनों के तुम्हारी अनुगामिनी भक्ति होवै इसलिये हे मुकुन्द ! भक्त के ऊपर
तुम प्रसन्न होवो ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसप्रकार कहेहुये व्यापक विष्णुजी प्रसन्न होकर देवताओं के मध्यमें यह बोले कि हे विभो,ब्रह्मन् !

सुझको शुद्ध मण्डल दिखलाइये जोकि तुम से न छोड़ाहुआहो व सदैव कल्याणमय होवै ॥ २४ ॥ जहां पर कि स्थिर स्थित होकर मैं संसारको रचूं तदनन्तर ब्रह्मा ने कुशो की मूठीको लिया और उस समय पवित्र देशके दिखलाने के लिये पवित्र वनाश्रमको गमन किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर देवताओ समेत सम्मति कर व अति उन्नत स्थली को पाकर ब्रह्मा ने आदरसे विष्णुजी से कहा कि तुम्हारी उत्पत्ति के लिये यहां पवित्र मण्डल है ॥ २६ ॥ सदैव देवताओं से पूजित तुम्हीं विष्णुहो और मुनीन्द्रो से वही तुम विष्टरश्रवा कहेगये हो हे कुशेश्वर, जगदीश ! कुशों समेत बैठिये इस प्रकार कहेहुये विष्णुजी उस समय बैठगये ॥ २७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा व

चसदाशिवंविभो ॥ २४ ॥ स्थिरःस्थितोयत्रजगत्करोम्यहंततोविरञ्चिःकुशमुष्टिमाददे॥ पवित्रदेशस्यनिदर्शनायजगामपुण्यञ्चवनाश्रमन्तदा ॥ २५ ॥ संमन्त्र्यदेवैस्सहितोमुकुन्दस्ततःस्थलीमुच्चतरामवाप्यवै ॥ पितामहःकेशवमाहचादरात्त्वदुद्भवायात्रपवित्रमण्डलम् ॥ २६ ॥ त्वमेवविष्णुर्विबुधार्चितस्सदास्मृतोमुनीन्द्रैस्सचविष्टरश्रवाः ॥ निषीदविश्वेशकुशैःकुशेश्वर तदाश्रितोमाधवएवमुक्तः ॥ २७ ॥ ततोविधाताभगवान् पुराणःपुरुषोत्तमः ॥ कुशस्थलीतुतस्यास्तु चक्रतुर्नामतावुभौ ॥ २८ ॥ तत्रविश्वपतिःश्रीमान् विश्वेशोविश्वकृद्विभुः ॥ विश्वंशशासविश्वात्मा सर्वविश्वविनायकः ॥ २९ ॥ एवंकुशस्थलीख्याता हेमश्रृङ्गेतियापुरा ॥ व्याप्ताकुशैर्यतोधात्रा कुशस्थलीततःस्मृता॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कुशस्थलीनामहेतुकथनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥

भगवान् पुराण पुरुषोत्तमजी उन दोनों ने उसका कुशस्थली नाम किया ॥ २८ ॥ वहां पर विश्वपति, श्रीमान्, विश्वेश व व्यापक विश्वकारी, विश्वात्मा तथा सब संसार के स्वामी विष्णुजीने संसार का पालन किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार वह कुशस्थली प्रसिद्ध हुई है जोकि पहले हेमश्रृंगा नामक थी व जिसलिये विधाताने कुशों से व्याप्त किया उसी कारण कुशस्थली कहीगई है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकुशस्थलीनामहेतुकथनन्नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी कर भयो अवन्ती नाम । तिरपनवें अध्यायमें सोइचरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय ईशानकल्पमें जिसप्रकार अवन्ती पुरी कहीगई है वैसेही सुनिये कि दैत्योंकीसेनासे पराजित सब देवता ॥ १ ॥ वन के कुञ्ज व गुहाओं से घिरेहुये सुमेरु गिरि के शिखर पै प्राप्तहुये और वहां जाकर हे द्विजोत्तम ! उद्यत होतेहुये उन्होंने सम्मति किया ॥ २ ॥ व आपस में प्राप्तहोकर और परस्पर भलीभांति पूजकर सब देवगण वहां गये जहां कि ब्रह्मा देवजी थे ॥ ३ ॥ और वहां आने के सब कारण को उन्होंने कहा उन देवताओं के उस वचन को सुनकर वे ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ देवताओं समेत देवदेव शिवजीके समीप

सनत्कुमारउवाच ॥ पुराचेशानकल्पेतु स्मृतावन्तीयथापुरी ॥ तथाशृणुसुरैस्सर्वैर्दैत्यसैन्यपराजितैः ॥ १ ॥ आश्रितम्मेरुशिखरं वनकुञ्जगुहावृतम् ॥ तत्रगत्वाद्विजश्रेष्ठ मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ २ ॥ अन्योन्यञ्चसमासाद्य समभ्यर्च्यपरस्परम् ॥ जग्मुस्सर्वेसुरगणा यत्रब्रह्माप्रजापतिः ॥ ३ ॥ वेदयाञ्चक्रिरेसर्वं तत्रागमनकारणम् ॥ तेषांतद्वचनं श्रुत्वा देवानांसप्रजेश्वरः ॥ ४ ॥ जगामत्रिदशैस्साकं देवदेवंमहेश्वरम् ॥ सचापिह्यगमत्तत्र वैकुण्ठेधामयत्रवै ॥ ५ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदन्नित्यं मुनिचारणसेवितम् ॥ किन्नरैर्गीयमानञ्च ह्यप्सरोगणसेवितम् ॥ ६ ॥ ऋषिभिर्भार्गवाद्यैश्च देवर्षिनारदादिभिः ॥ सिद्धगन्धर्वमुख्यैश्च कुमारैस्सनकादिभिः ॥ ७ ॥ प्रजापतिगणाकीर्णं मानवैश्चचतुर्दशैः ॥ वसुभिर्विश्वदेवैश्च पितॄणामुत्तमैर्गणैः ॥ ८ ॥ सदासेव्यंसदाचारैःपुण्यवद्भिर्जनैस्तथा ॥ दिव्यंदिव्याद्यभिप्रायैर्दिव्यपादपशोभितम् ॥ ९ ॥ मणिभीरत्नसोपानैस्सरोदिव्यंसुशोभितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं यत्रतिष्ठतिभास्वरम् ॥ १० ॥ षड्ूर्मि

गये और वे भी वहां गये जहां कि वैकुण्ठ में मन्दिर था ॥ ५ ॥ जोकि ऋद्धियों व सिद्धियों का दायक तथा नित्यही मुनियों व चारणों से सेवित और किन्नरों से गाया जाता हुआ व अप्सरा समूहों से सेवित था ॥ ६ ॥ व भार्गवादिक ऋषियों तथा नारदादिक देवर्षियों और मुख्य सिद्धों व गन्धर्वों से तथा सनकादिक कुमारों से संयुत था ॥ ७ ॥ व प्रजापति गणों से व्याप्त तथा चौदह मनुवों से संयुत व वसु विश्वेदेवता तथा पितरों के उत्तमगणों से सयुक्त था ॥ ८ ॥ और उत्तम आचारवाले व पुण्यवान् जनोंसे सदैव सेवनीय था व दिव्यादिक अभिप्रायोंसे दिव्य तथा दिव्य वृक्षोंसे शोभित था ॥ ९ ॥ और मणियों तथा रत्नों के सोपानों से दिव्य

व सुशोभित व हंसों तथा कारंड व पक्षियोंसे व्याप्त तथा प्रकाशवान् तड़ाग जहां स्थित था ॥ १० ॥ व छाऊर्मियों से रहित तथा वैर विहीन पशु पक्षियोंवाला स्थान था वहां विष्णुजी के देखने की इच्छा से सब देवताओं ने जाकर ॥ ११ ॥ देवदेव जगदीशजी की स्तुति करने के लिये प्रारम्भ किया देवता बोले कि बृहत् व अनंतजी के नमस्कार है तथा कूर्मजी (कच्छपजी) के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १२ ॥ व उग्र नृसिंहरूपके लिये प्रणाम है और वाराहरूपधारीके लिये नमस्कार है व राघव श्रीरामचन्द्रजी के लिये तथा अनंतशक्तिवाले ब्रह्माके लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ व शान्त वासुदेवजीके लिये तथा पशुपतिके लिये प्रणामहै व शुद्ध बुद्धजी

रहितंस्थानं निर्वैरपशुपक्षिकम् ॥ तत्रगत्वासुरास्सर्वे वासुदेवदिदृक्षया ॥ ११ ॥ स्तुतिमारेभिरेकर्तुं देवदेवजगत्पतेः॥ देवाऊचुः ॥ नमोनन्तायबृहते कूर्मायवैनमोनमः ॥ १२ ॥ नृसिंहरूपायोग्राय नमोवाराहरूपिणे ॥ राघवायचरामाय ब्रह्मणेनन्तशक्तये ॥ १३ ॥ वासुदेवायशान्ताय पशूनाम्पतयेनमः ॥ नमोबुद्धायशुद्धाय कल्किम्लेच्छान्तकारिणे ॥ १४ ॥ इतिस्तवाभियुक्तानां वागुवाचाशरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोसुरास्सर्वे सम्भूयैकाग्रमानसाः ॥ १५ ॥ महाकालवनं रम्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ तत्रपुण्यापुरीह्येका सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ नाम्नाकुशस्थलीरम्या सिद्धगन्धर्वसेविता॥ कल्पादौकल्पमध्येवा यत्रसन्निहितोहरः ॥ १७ ॥ कल्पक्षयेक्षयंयान्ति स्थावराणिचराणिच ॥ तीर्थानिचैवसर्वाणिपुण्यान्यायतनानिच॥ १८ ॥सरितस्सागरास्सर्वे सरांस्युपवनानिच॥ औषधिवृक्षवल्यश्च यन्त्रमन्त्रशुभाशुभम् ॥१९॥

के लिये प्रणाम है और म्लेच्छों के अन्तकारक कल्कीजीके लिये प्रणामहै ॥ १४ ॥ इसप्रकार स्तुति से संयुत देवताओं से आकाशवाणी बोली कि हे सब देवताओ ! एकाग्रमनवाले होकर तुम लोग सुनो ॥ १५ ॥ कि ब्रह्मर्षियों के गणों से सेवित सुन्दर महाकाल वन है वहां समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली एक पवित्रपुरी है ॥ १६ ॥ जो सुन्दरी व नाम से कुशस्थली ऐसी प्रसिद्ध और सिद्धों व गन्धर्वों से सेवित है और जहां पर कि कल्पके आदि व मध्यमें महादेवजी टिकेरहते है ॥१७॥ कल्पान्त में स्थावर व जंगम प्राणी क्षयको प्राप्तहोते हैं और सब तीर्थ व पवित्रदेव मन्दिर नाशहोजाते हैं ॥ १८ ॥ नदियां व सब समुद्र तथा तड़ाग,उपवन, औषधी,

वृक्ष, लता, यन्त्र, मन्त्र, शुभाशुभ वस्तु ॥ १६ ॥ प्रकाश, चन्द्रमा, सूर्य सब संसार विष्णुमय है व उन सबों का बीज, पुण्य व जीव तथा कर्मका आशय ॥ २० ॥ सबको लेकर भगवान् शिवजी वहां स्थित रहते हैं गंगा समस्त तीर्थ मयी हैं और विष्णुजी समस्त देवमय हैं ॥ २१ ॥ व वेद सर्वयज्ञमय है व दया समस्त धर्ममयी है और पृथ्वी में नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी अधिक पुण्यमयी है ॥ २२ ॥ हे सुरोत्तमो ! उससे हितकारक कुरुवों का क्षेत्र है उससे दशगुना उत्तम प्रयाग तीर्थको मैं मानताहूं ॥ २३ ॥ व उससे दशगुनी काशी और काशीसे दशगुनी गया और उससे दशगुनी अति पुण्यदायिनी कुशस्थली कही गई है ॥ २४ ॥ हजार ग्रहण

ज्योतींषिचन्द्रसूर्यौच सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥ तेषांबीजंचपुण्यञ्च जीवकर्माशयन्तथा ॥ २० ॥ सर्वमादायभगवाञ्छंकरस्तत्रतिष्ठति ॥ सर्वतीर्थमयीगङ्गा सर्वदेवमयोहरिः ॥ २१ ॥ सर्वयज्ञमयोवेदस्सर्वधर्ममयीदया ॥ रेवाच सरितांश्रेष्ठा भुविपुण्यमयाधिका ॥ २२ ॥ तस्माद्धितकरंक्षेत्रं कुरूणांवैसुरोत्तमाः ॥ तस्माद्दशगुणंमन्ये प्रयागंतीर्थमुत्तमम् ॥ २३ ॥ तस्माद्दशगुणाकाशी काश्यादशगुणागया ॥ ततोदशगुणाप्रोक्ता कुशस्थल्यतिपुण्यदा ॥ २४ ॥ उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानिच ॥ अमालक्षंकुशस्थल्याः कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ २५ ॥ लक्षमिन्दुक्षये दानं सहस्रंचायनद्वये ॥ व्यतीपातेचकोटिस्स्याद्राकायाञ्चह्यनन्तकम् ॥ २६ ॥ तस्माद्धितकरीदेवाः पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ अनन्तानन्तसङ्ख्यातं दानंकिञ्चित्कृतन्नरैः ॥ २७ ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठास्सर्वंतच्चाक्षयंभवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यूयंयातहिमाचिरम् ॥ २८ ॥ क्षीणपुण्याभवन्तोवैबाधन्तेतेनवोसुराः ॥ महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ २९ ॥

व दश हजार व्यतीपात और लक्ष अमावस तिथियां कुशस्थली की सोलहवीं कलाके योग्य नहीं होती हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि वहां अमावस में लक्ष दान और दोनों अयनों में हजार तथा व्यतीपात में करोड़ और पौर्णमासी में अनन्त दान होताहै ॥ २६ ॥ इसलिये हे देवताओ ! यह कुशस्थली पुरी हितकारिणी है क्योंकि यहां मनुष्यों से कुछ भी कियाहुआ दान अनन्तानन्त संख्यक होताहै ॥ २७ ॥ व हे सुरोत्तमो ! सुनिये कि वह सब दान अक्षयहोताहै इसलिये तुम लोग सब यत्न से वहां जाओ देर मत करो ॥ २८ ॥ आप लोग क्षीण पुण्यवाले हो इसलिये दैत्य तुम लोगों को पीड़ित करते हैं सुन्दर महाकाल वन में यह कुशस्थली पुरी है ॥ २९ ॥

पृथ्वी में वहां जाकर आप लोग उत्तम विधि से स्नान दानादिकको कीजिये तब पुण्य सेस्वर्गको पावोगे ॥ ३० ॥ उस आकाशवाणी के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा व शिव अग्रगामीवाले सब देवता उस वाणी के लिये मस्तक से प्रणामकर फिर वहांगये जहां कि महादेवजी का वन था और हे द्विजोत्तमो ! समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली पुरी को गये ॥ ३१।३२ ॥ जोकि चारों वर्णोंसे व्याप्त व ऋषियों तथा गन्धर्वों से सेवित व पुण्यवान् जनों से पूर्ण तथा सिद्धों व चारणों से सेवित थी ॥ ३३ ॥ और कहीं निर्धनी, अन्ध, जड़, मूर्ख नहीं देख पड़ता था और न रोगी न ईर्षावान् न मानसी पीड़ा समेत और न अपकारी देख पड़ता था ॥ ३४ ॥

तत्रगत्वाभवन्तोवै स्नानदानादिकम्भुवि ॥ आचरध्वंसुविधिना पुण्यात्स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्याः वाण्याश्चाकाशगाहिते ॥ प्रणम्यशिरसातस्यैब्रह्माभवपुरोगमाः ॥ ३१ ॥ पुनर्जग्मुस्सुरास्सर्वे यत्रमाहेश्वरंवनम् ॥ पुरीञ्चैवद्विजश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ३२ ॥ चतुर्वर्णसमाकीर्णामृषिगन्धर्वसेविताम् ॥ पुण्यवद्भिर्जनैःपूर्णां सिद्धचारणसेविताम् ॥ ३३ ॥ दरिद्रोन्धजडोमूर्खो नरोगीनचमत्सरी॥नसाधिर्नापकारीच जनःक्वचित्प्रदृश्यते ॥३४॥ दान्ताश्शान्तास्सुशीलाश्च जरारोगविवर्जिताः ॥ स्वधर्मनिरतानित्यं सदाचारातिथिप्रियाः ॥ ३५ ॥ निवसन्तिनरा यत्र नार्यश्चैवपतिव्रताः ॥ महोत्सवसुगीतानि हव्यकव्यंगृहेगृहे ॥ ३६ ॥ ईदृशीञ्चपुरीन्दृष्ट्वा देवाहर्षपरङ्गताः ॥ तत्र तीर्थसमाख्यातं नाम्नापैशाचमोचनम् ॥ ३७ ॥ पुण्यवद्भिस्सदासेव्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ तस्मिन्स्नात्वाचजप्त्वा च हुत्वादत्त्वाचदेवताः ॥ ३८ ॥ पुण्यंचाप्यत्तयंलब्ध्वा पुनर्यातासुरालयम् ॥ जित्वासुरान्महादुष्टान् स्थानंप्राप्तास्स्व

और इन्द्रियों को दमन किये व शान्त, सुशील और वृद्धता व रोगसे रहित तथा नित्य अपने धर्ममें तत्पर व उत्तम आचार व अतिथि प्रिय लोग जहां बसते थे॥ ३५ ॥ व पतिव्रता स्त्रिया जहा बसतीथीं और बडे उत्साह के उत्तम गीत और हव्य कव्य घर घर में होते थे ॥ ३६ ॥ ऐसी पुरी को देखकर देवता बड़े हर्षको प्राप्तहुये वहां पर पिशाच मोचन नामक कहाहुआ तीर्थ है॥ ३७ ॥ जोकि पुण्यवानोंसे सदैव सेवनीय व समस्त तीर्थों से सेवित है उसमें नहाकर जपकर और हवन व दानकर

देवता ॥ ३८ ॥ अक्षय पुण्यको पाकर फिर सुरालय (स्वर्ग) को चलेगये और बड़े दुष्ट दानवों को जीतकर अपने २ स्थान को प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ जो महाभाग्यवान् पुरुष अवन्ती पुरी में स्नान, दान व पूजन, हवन और तर्पण करते हैं उनका वह सब अनन्त होताहै ॥ ४० ॥ इसलिये सब यत्नसे विद्वानों को यह सदैवकरना चाहिये जिसलिये कि देवता, तीर्थ, औषधि, बीज व प्राणियों का पालन ॥ ४१ ॥ कल्प कल्प में जिसमें होताहै उसीसे वह अवन्ती पुरी कहीगई है आज से लगाकर यह कुशस्थली पुरी अवन्ती नामक होवै ॥ ४२ ॥ यह कहकर उस समय देवता अपने उत्तम स्थानको चलेगये तब से लगाकर हे द्विजोत्तम ! पृथ्वी में अवन्ती

कंस्वकम् ॥ ३९ ॥ येवन्त्यान्तुमहाभागास्स्नानंदानंतथार्चनम् ॥ हवनंतर्पणंचैव तत्सर्वंस्यादनन्तकम् ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन एतत्कार्यंसदाबुधैः ॥ देवतीर्थौषधीबीजं भूतानाञ्चैवपालनम् ॥ ४१ ॥ कल्पेकल्पेचयस्यांवै तेनावन्ती पुरीस्मृता ॥ अद्यारभ्यपुरीह्येषा नाम्नावन्तीकुशस्थली ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वावैतदादेवास्स्वधामपरमङ्गताः ॥ तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ ह्यवन्तीभुविविश्रुता ॥ ४३ ॥ यएताञ्चकथांदिव्यां पुण्यांवैपापहारिणीम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्योवै सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४४ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रमधनोधनमाप्नुयात् ॥ वाजपेयसहस्राणां राजसूयशताधिकम् ॥ ४५ ॥ पुण्यंलब्ध्वानरोनित्यं शिवलोकेमहीयते ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्त्यभिधानकथनन्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास यथासोज्जयिनीस्मृता ॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतांतत्समाहितः ॥१॥

प्रसिद्ध हुई है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष इस पापहारिणी तथा पुण्यदायिनी दिव्य कथाको सुनता है और जो सुनाता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और बिन पुत्रवाला पुरुष पुत्रको पाताहै व निर्धनी धनको प्राप्तहोता है व हज़ार वाजपेय और सौ राजसूय यज्ञों से अधिक ॥ ४५ ॥ पुण्यको पाकर मनुष्य नित्य शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामवन्त्यभिधानकथनंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर भो उज्जायिनी नाम । चौवनवें अध्यायमें सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! इसी अवसरमें जिस भांति वह

उज्जयिनी कहीगई है वैसेही मैं भलीभांति कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥ कि सब दैत्य जनोंके स्वामी त्रिपुरनामक महादैत्यने ब्रह्माजी की प्रसन्नताके लिये बड़ा कठिनतप किया है ॥ २ ॥ कि आतप (धूप) में वह अग्निसेवी हुआ और वर्षा में आकाश में टिका याने मन्दिरादिको के बाहर रहा और शीतकाल मे उस समय चित्तको दमनकर जलाशय में रहा ॥ ३ ॥ गिरेहुये पत्तों को व जलको भोजन करनेवाला वह पवनभक्षी होकर आश्रय रहित हुआ और गायत्री के व्रत में टिककर सब परिवार को उसने छोड़ दिया ॥ ४ ॥ इसप्रकार हजार वर्षतक उसने कठिन तप किया और हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर प्रसन्न मनवाले ब्रह्माजी बोले ॥ ५ ॥

त्रिपुराख्योमहादैत्यो सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ तपस्तेपेसुदुर्द्धर्षं ब्रह्मणस्तुष्टिकारणात् ॥ २ ॥ आतपेचाग्निसेवीवै प्रावृष्याकाशसुस्थिरः ॥ दमयित्वातदात्मानं शीतकालेजलाशये ॥ ३ ॥ शीर्णपत्रजलाहारो वायुभक्षीनिराश्रयः ॥ गायत्रीव्रतमास्थाय त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ४ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तु तपस्तप्तंसुदुश्चरम् ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतु ब्रह्माप्रीतमनाब्रवीत् ॥ ५ ॥ व्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिकाङ्क्षितम् ॥ तत्सर्वंसाम्प्रतंलोके वरंतुभ्यंददामिते ॥ ६ ॥ एवमुक्तस्सविधिना दैत्यस्त्रिपुरसञ्ज्ञितः ॥ उवाचवचनंसद्यो ब्रह्माणंशंसितव्रतम् ॥ ७ ॥ त्रिपुरउवाच ॥ यदितुष्टमनाःब्रह्मन्वरम्मे दातुमिच्छसि ॥ देवदानवगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसैः ॥ ८ ॥ अवध्योहंभवेयंवै वरमेतद्वृणोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवंभवतुभोवत्स विचरस्वाकुतोभयम् ॥ ९ ॥ एत्युक्त्वासहसाब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यमहादैत्यो देवानांकदनंमहत् ॥ १० ॥ चकारकोपपूर्णोवै पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ वासयित्वायत्रतत्र ग्रामाणिनगराणिच ॥ ११ ॥ तत्रयेन्यवस

कि हे सुरोत्तम ! मुझ से चाहे हुये वरदान को मांगिये उस सब वर को मैं इस समय संसार में तुमको दूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा से कहाहुआ वह त्रिपुरनामक दैत्य प्रशंसितव्रतवाले ब्रह्मा से शीघ्रही वचन बोला ॥ ७ ॥ त्रिपुर बोला कि हे ब्रह्मन् ! यदि प्रसन्न मनवाले तुम मुझको वर देना चाहते हो तो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच,नाग व राक्षसों से ॥ ८ ॥ मैं अवध्य होऊं इस वरदानको मैं मांगता हूं ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! ऐसा होवै तुम सब कहीं से निडर होकर भ्रमण करो ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर अचानकही ब्रह्माजी वहीं पर अन्तर्द्धान होगये तब से लगाकर पहले के वैरको स्मरण करतेहुये कोपसे पूर्ण त्रिपुरमहासुरने देवताओं का

बड़ा विनाश किया और जहां तहां ग्रामो व नगरों को बसाकर ॥ १० । ११ ॥ वहां जो सब वर्णों व आश्रमों में तत्पर मनुष्य बसते थे उनको पापबुद्धिवाले उस त्रिपुर ने अनेकों उपाय से नाशकिया ॥ १२ ॥ उस दुष्टवासी पुर में वेदके पारगामी ब्राह्मण हवन नहीं करतेथे और न कभी अग्निहोत्र व सोमपान होताथा ॥ १३ ॥ और भयंकर दैत्य किसी कारण से पुण्यकर्मको नहीं करते थे जोकि स्वाहाकार स्वधाकार व वषट्कारसे वर्जित थे ॥ १४ ॥ और किसीके घरमें विस्तारको प्राप्त उत्सव नहीं देखपड़ता था व जहा पर देव मन्दिर नहीं था और न शिवपूजन होता था ॥१५ ॥ और न यज्ञ, न दान और न गऊ ब्राह्मण का पूजन होता था और उत्तम

न्सर्वे वर्णाश्रमपराजनाः ॥ तेषांवैकदनञ्चक्रे नानोपायेनपापधीः ॥ १२ ॥ तस्मिन्पुरेदुष्टवासे ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ नजुह्वत्यग्निहोत्रंवै सोमपानन्नकर्हिचित् ॥ १३ ॥ कुतश्चित्सुकृतंकर्म नैवकुर्वन्तिभैरवाः ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारविवर्जिताः ॥ १४ ॥ नोत्सवंदृश्यतेगेहे कस्यचिद्धुविविस्तृतम् ॥ देवतायतनन्नास्ति यत्रनोशिवपूजनम् ॥ १५ ॥ नास्तियज्ञोनदानानि नगोब्राह्मणपूजनम् ॥ सदाचारोजनोनास्ति दयादानविवर्जितः ॥ १६ ॥ नदानीनोपकारीचतपस्वी नैवदृश्यते ॥ एवंव्यासपुरेतस्मिन्नष्टप्रायमिदंजगत् ॥ १७ ॥ प्रजानांब्राह्मणोमूलं वेदमूलाहिब्राह्मणाः ॥ वेदमूलपरायज्ञा यज्ञमूलाहिदेवताः ॥ १८ ॥ तस्माद्व्यासहतंसर्वं कृतन्तेनदुरात्मना ॥ तेनदेवगणास्सर्वे हतप्रायाहतौजसः ॥ १९ ॥ विचरन्तियथामर्त्या भुवितेनपराजिताः ॥ अन्योन्यकृतसन्धाना मन्त्रंकृत्वासमाहिताः ॥ २० ॥ जग्मुस्तेतत्रयत्रास्ते प्रजापतिरकल्मषः ॥ त्रिदशाःकथयामासुरात्मव्यसनकारणम् ॥ २१ ॥ तज्ज्ञात्वासहसोत्थाय ब्रह्मालोकपितामहः ॥

आचारवाला मनुष्य न था व दया और दान से रहित था ॥ १६ ॥ और न दानी न उपकारी और न तपस्वी देख पड़ता था हे व्यासजी ! उस नगर के ऐसा होने पर यह संसार नष्टसा होगया ॥ १७ ॥ प्रजाओं की जड़ ब्राह्मण हैं और वेदमूलवाले ब्राह्मण होते हैं व वेदमूल में तत्पर यज्ञ हैं व यज्ञमूलवाले देवता होते हैं ॥ १८ ॥ इसलिये हे व्यासजी ! उस दुष्टात्मा तारकने सब नाशकिया और उससे मारेहुये सब देवगण नष्टबलवाले हुये ॥ १९ ॥ और उससे हारे हुये देवता पृथ्वी में मनुष्यों की नाई विचरनेलगे व आपस में मेलकर सावधान होतेहुये वे देवता सम्मतिकर वहां गये जहां कि पाप रहित ब्रह्माजी थे और देवताओं ने अपनी विपत्ति का

कारण कहा ॥ २० । २१ ॥ उसको जानकर व अचानकही उठकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी देवताओं समेत उत्तम महाकाल वनको गये ॥ २२ ॥ जहां कि पार्वती समेत सदाशिवदेवजी सदैव टिके रहते हैं व जहां पर समस्त तीर्थोंसे सेवित दिव्यअवन्ती पुरी है ॥ २३ ॥ वहां देवताओं समेत चतुर्मुख ब्रह्माजी आकर उस समय रुद्रसरमे स्नान, दान, जप व हवन कर ॥ २४ ॥ और महाकालजी को पूजकर ब्रह्माजी वचन बोले ब्रह्मा बोले कि हे भक्तों को अभय करनेवाले, देवदेव, महादेव जी ! ॥ २५ ॥ हे सुरोत्तम ! अति उत्तम देवकार्य को सुनिये कि त्रिपुरनामक दैत्येन्द्र देवताओं का बड़ा विनाश ॥ २६ ॥ सदैव करता है और वेदों व ब्राह्मणों का

जगामत्रिदशैस्सार्द्धं महाकालवनोत्तमम् ॥ २२ ॥ यत्रास्तेसततन्देवो उमयासहितश्शिवः ॥ यत्रावन्तीपुरीदिव्या सर्वतीर्थनिषेविता ॥ २३ ॥ तत्रागत्यसुरैस्साकं स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ स्नानंदानंजपंहोमं कृत्वारुद्रसरेतदा ॥ २४ ॥ पूजयित्वामहाकालं ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवमहादेव भक्तानामभयङ्कर ॥ २५ ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठ देवकार्यमनुत्तमम् ॥ त्रिपुरोनामदैत्येन्द्रो देवानांकदनंमहत् ॥ २६ ॥ करोतिसततन्दैत्यो वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ वासयित्वापुरत्रीणि विस्तीर्णानिचरत्यथ ॥ २७ ॥ तत्रस्थितानिभूतानि नाशंयान्तिदुरात्मना ॥ एवंकृत्वाप्रजास्सर्वा क्षयंनीताश्चराचराः ॥ २८ ॥ उद्वासितानिद्वीपानि ग्रामाणिनगराणिच ॥ ऋषीणामाश्रमास्सर्वे यतीनामाश्रमास्तथा ॥ २९ ॥ एवंकृत्वासुरास्सर्वे भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ विचरन्तियथामर्त्यास्त्रिपुरेणदुरात्मना ॥ ३० ॥ ब्रह्मलब्धवरोनित्यं व्रजत्येवाकुतोभयम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वधस्तस्यविचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ इति श्रुत्वावचस्तस्य ब्रह्मणश्शंसिता

निन्दक वह दैत्य तीन विस्तारित पुरों को बसाकर इसके अनन्तर भ्रमण करताहै ॥ २७ ॥ और वहां टिकेहुये प्राणी दुष्टात्मा तारक से नाशको प्राप्तहोतेहैं और ऐसा करके चराचर सब प्रजा नाश कियेगये ॥ २८ ॥ और द्वीप ग्राम व नगर उजाडदिये गये व ऋषियों के सब आश्रम और संन्यासियों के आश्रम उजाड़ दिये गये ॥ २९ ॥ ऐसा कर दुष्टात्मा त्रिपुरसे हारेहुये व भ्रष्टराज्यवाले सब देवता मनुष्यों की नाई घूमते हैं ॥ ३० ॥ और ब्रह्मा से पाये हुये वरदानवाला वह सब कहीं से निडर होकर विचरता है इसलिये सब उपायसे उसका वध विचार कियाजावै ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उन प्रशंसित चित्तवाले ब्रह्मा का वचन सुनकर महादेवजी बहुत देर

तक ध्यानकर उन ब्रह्मासे बोले ॥ ३२ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन्! व इन्द्रादिक सुरोत्तमो! सुनिये इस दुष्टात्मा दैत्यको जीतने का उपाय करूंगा ॥ ३३ ॥ और अपने जयको चाहनेवाले तुम लोग तपस्या करो अवन्ती पुरीमें जो हवन व दियाहुआ दान होताहै वह सब अक्षय होवै है ॥ ३४ ॥ सब देवताओं से यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और भूतों व प्रेतों से सेवित श्मशानस्थान में जाकर ॥ ३५ ॥ उस दुष्टात्मा त्रिपुर दैत्यको जीतने के लिये वहां सुरोत्तमों ने चामुण्डा, जी की उपासना किया ॥ ३६ ॥ और भैंसों व महामेषों (बड़े भेड़ों)से तथा पशु (बालि) पुष्प, और अनेकभांति की बलियों से व धूप, दीप और अग्निहोत्रों से ॥

त्मनः ॥ चिरन्ध्यात्वामहादेवो ब्रह्माणन्तमुवाचह ॥ ३२ ॥ महादेवउवाच ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठा ब्रह्मइन्द्रपुरोगमाः ॥ जयोपायंकरिष्यामि दैत्यस्यास्यदुरात्मनः ॥ ३३ ॥ तपश्चरतयूयंवै आत्मनोजयकाङ्क्षिणः ॥ अवन्त्यांयद्धुतंदत्तं तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वासर्वदेवानां तत्रैवान्तर्हितश्शिवः ॥ गत्वाश्मशाननिलये भूतप्रेतनिषेविते ॥ ३५ ॥ जयार्थंतस्यदैत्यस्य त्रिपुरस्यदुरात्मनः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतत्र चामुण्डायास्सुरेश्वराः ॥ ३६ ॥ महिषैश्चमहामेषैः प शुपुष्पार्घतर्पणैः ॥ बलिभिर्विविधैर्दानैर्धूपदीपाग्निहोत्रकैः ॥ ३७ ॥ पूजयित्वातदादेवीं तामीडेवृषभध्वजः ॥ दुर्गांभग वतींभद्रां दुर्गसंसारतारिणीम् ॥ ३८ ॥ त्रिपुरान्तकरींकृत्यांचण्डमुण्डवधोद्यमाम् ॥ दैत्यान्तकांमदोन्मत्तां रक्ताख्यांर क्तदन्तिकाम् ॥ ३९ ॥ रक्ताम्बरधरान्धीरांरक्तपुष्पावतंसिनीम् ॥ महिषवाहिनींश्यामां पद्मासनपरिग्रहाम् ॥ ४० ॥ द्वी पिचर्मपरीधानां शुष्कमांसातिभैरवाम् ॥ पूजयित्वाप्रसन्नात्मा ध्यानमादायसंस्थितः ॥ ४१ ॥ तदाभगवतीभद्राय

३७ ॥ उन देवीजी को पूजकर उस समय वृषध्वज शिवजी ने स्तुति किया और कल्याणकारिणी तथा दुर्गरूपी संसार से तारनेवाली दुर्गाजी को ॥ ३८ ॥ व चण्ड मुण्ड के वध में उद्यमवाली त्रिपुरान्तकारिणी कृत्या व दैत्यों को नाशनेवाली और मद से उन्मत्त व रक्तनामवाली रक्तदंतिकाजी को ॥ ३९ ॥ तथा लाल पुष्पोंसे कर्णभूषणवाली व अरुण बसनों को धारे हुई भैंसे पर सवार व चतुर तथा श्यामा व पद्मासन से बैठी हुई ॥ ४० ॥ व व्याघ्र चर्मको पहने और सूखे मांस से बहुतही

भयकारिणी भगवतीजी को पूजकर प्रसन्न चित्तवाले शिवजी ध्यानको ग्रहण कर भलीभांति बैठे ॥४१॥ तब जो इस संसारको धारे हैं उन प्रसन्न मुखवाली कल्याणकारिणी भगवती चण्डिकाजी ने प्रत्यक्षहोकर कहा ॥ ४२ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझ से चाहेहुये वरदानको मांगिये मैं लोकों के उपकारक तुमसेकहेहुये उस सब वरको दूंगी ॥ ४३॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! यदि तुम प्रसन्नहोतो मुझको उत्तम वर दीजिये कि जिससे देवताओं के कण्टकरूपी त्रिपुर महादैत्य को मारूं ॥ ४४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझसे दियेहुये दैत्यों के नाशकारक उत्तम पाशुपत अस्त्रको ग्रहण कीजिये इस महादैत्य को तुम जीतोगे ॥४५॥

येदंधार्यतेजगत् ॥ प्रसन्नवदनाभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहचण्डिका ॥ ४२ ॥ देव्युवाच ॥ व्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिवाञ्छितम् ॥ ददामिसर्वंत्वयोक्तं जगतामुपकारकम् ॥ ४३ ॥ श्रीहरउवाच ॥ परितुष्टासिचेद्देवि देहिमेवरमुत्तमम् ॥ येनहन्मिमहादैत्यं त्रिपुरन्देवकण्टकम् ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जयस्येनंमहादैत्यं गृहाणपाशुपतंपरम् ॥ मयादत्तंसुरश्रेष्ठ दैत्यनाशकरम्परम् ॥ ४५ ॥ महापाशुपतंशस्त्रं करेकृत्वाचशङ्करः ॥ उज्जहारतदाशम्भुर्दैत्यनाशायसत्वरम् ॥ ४६ ॥ महाडम्बरकोभूत्वा सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ स्तुतिंकृत्वाजयैश्शब्दैः पृष्ठतोनुययुस्सुराः ॥ ४७ ॥ शरेणैकेनवैरुद्रो जघानतंमहासुरम् ॥ मायिनन्तंत्रिधाभित्त्वा मायायुद्धेनशङ्करः ॥ ४८ ॥ पुनरागात्पुरीमेतामवन्तींसुरसेविताम् ॥ जयाशिषंप्रयुंजाना ऋषयस्सिद्धचारणाः ॥ ४९ ॥ तुष्टुवुश्चतदादेवं जयशब्देनहर्षिताः ॥ अप्सरानन्नृतुस्तत्र गन्धर्वाललितंजगुः ॥ ५० ॥

महापाशुपत शस्त्रको हाथमें धारणकर उस समय कल्याण कारक शिवजीने दैत्य के नाशने के लिये शीघ्रही ऊपर उठाया ॥ ४६ ॥ और समस्त प्राणियों को भयकारक जुझाऊ नगाड़ा की गर्जन होकर देवता लोग जय शब्दों से स्तुति कर पीछेसे चले ॥ ४७ ॥ और शिवजी ने एक बाण से उस महादैत्यको मारा व मायाके युद्धसे उस मायावी के तीन खण्डकर शंकरजी ॥ ४८ ॥ फिर देवताओं से सेवित इस अवन्ती पुरी को आये व जयपूर्वक आशीर्वादको युक्त करतेहुये ऋषि, सिद्ध व चारणोंने ॥४९ ॥ उस समय शिवदेवजीकी स्तुति किया और जयके शब्दसे प्रसन्न होतीहुई अप्सरायें वहां नाचने लगीं और गन्धर्व लोगोंने सुन्दर गान किया ॥ ५० ॥

व उस समय मनुष्यों को सुखदायक अति पवित्र पवन चलनेलगा और प्राणियों के घर घर में उस समय जयका शब्द हुआ ॥ ५१ ॥ और अग्नियां शान्त होगईं व दिशाओंमे उत्पन्न शब्द शान्त होगये और उस समय बड़े उत्सव व दक्षिणाओंवाले यज्ञ वर्तमान हुये ॥ ५२ ॥ और देवता छिपेहुये अपने स्थानको फिर प्राप्त हुये जिसलिये कि दानव उच्चप्रकारसे जीतागया व जिससे त्रिलोक स्थापन किया गया ॥ ५३ ॥ इसलिये सब सुरोत्तमों व सनकादिक ऋषियों से भक्तोंके पापका विनाशक अवन्तीनामक स्थान स्थापित कियागया ॥ ५४ ॥ और पुरातन समय सबकामनाओं व वरों को देनेवाली अवन्ती पुरी कहीगई है हे व्यासजी ! तब से

ववौतदापुण्यतमो वायुस्सुखप्रदोनृणाम् ॥ जयशब्दस्तदाजातः प्राणिनाञ्चगृहेगृहे ॥ ५१ ॥ जज्वलुश्चाग्नय श्शान्ताश्शान्तादिग्जनितस्वनाः ॥ प्रवर्तन्तेतदायज्ञा महोत्सवसदक्षिणाः ॥ ५२ ॥ देवाप्रपेदिरेस्थानं स्वकीयंपुन रावृतम् ॥ उज्जितोदानवोयस्मात् त्रैलोक्यंस्थापितंयतः ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्वैस्सुरश्रेष्ठ ऋषिभिस्सनकादिभिः ॥ स्था पितंनामावन्त्याख्यं सात्त्वतांपापनाशनम् ॥ ५४ ॥ अवन्तीचपुराप्रोक्ता सर्वकामवरप्रदा ॥ तत्प्रभृतिपुरीव्यास उ ज्जयिनीसमाश्रिता ॥ ॥ ५५ ॥ येमुष्यांस्नानदानानि भुविकुर्वन्तिमानवाः ॥ नतेषांदुष्कृतंकिञ्चिद्देहेतिष्ठतिपापजम् ॥ ५६ ॥ विद्यार्थीगिरीशंधनार्थीधनेशं सुतार्थीसुरेशंदिनेशंसुखार्थी ॥ धियोर्थीगणेशंप्रियार्थीचशेषं गिरापूजमानोज नश्चोज्जयिन्याम् ॥ ५७ ॥ यएतस्यांमहाभागस्सदावसतिमानवः ॥ भुक्त्वाकामान्मनोभीष्टान्मृतश्शिवपुरंव्रजे त् ॥ ५८ ॥ तत्रैववसतेनित्यं कल्पकोटिशताधिकम् ॥ येनैषाचकथापुण्या पठ्यतेश्रूयतेथवा ॥ ५९ ॥ मुच्यतेसर्वपा

लगाकर उज्जयिनी भलीभाति स्थितहुई है ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीपर इसमें स्नानदानादिक करते हैं उनके शरीर में पापसे उपजा हुआ कुछ दुष्कृत नहीं होताहै ॥ ५६ ॥ विद्याको चाहनेवाला पुरुष महादेवजी को व धन चाहनेवाला नर धनेश कुबेरजी व पुत्र चाहनेवाला मनुष्य सुरेश (इन्द्रजी) को और सुख चाहनेवाला पुरुष सूर्यनारायणजी को व बुद्धि चाहनेवाला नर गणेश को तथा प्रिय चाहनेवालापुरुष शेषजी को वाणी से पूजता हुआ उज्जयिनी पुरी में बसै ॥ ५७ ॥ जो बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष इसमें सदैव बसता है वह मन से चाहीहुई कामनाओं को भोगकर मरकर शिवपुर को जाता है ॥ ५८ ॥ और वहीं पर वह सदैव करोड़ों सौ कल्पों

से भी शधिकतक बसता है और जो मनुष्य इस पवित्र कथा को पढ़ता या सुनताहै ॥ ५९ ॥ वह सब पापोंसे छूटजाता है और गौ सहस्र के फलको प्राप्तहोता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुज्जयिन्यभिधानकथनंनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ❁ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर जिमि पद्मावति नाम । पचपनवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर जिस प्रकार वह पद्मावती ऐसी हुई है उसको मैं भलीभाति कहताहूं हे व्यासजी ! बहुत पुण्य करनेवाली कथाको आदर से सुनिये ॥ १ ॥ कि एक समय उन दुष्टात्मा दुष्ट दानवों से सब रत्नों

पेभ्यो गोसहस्रफलंलभेत ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे उज्जयिन्यभिधानकथनन्नामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि यथापद्मावतीतिसा ॥ श्रूयतामादृतोव्यास बहुपुण्यकृताङ्कथाम् ॥ १ ॥ एकदासर्वरत्नानां हानिर्जातादुरात्मभिः ॥ धर्मग्लानिंनिरोधश्चजातस्तैर्दुष्टदानवैः ॥ २ ॥ तदासुरासुरैस्सर्वैर्मिलित्वामथितोर्णवः ॥ मेरुर्वंशोर्णवःपात्रं रज्जुर्वासुकिपन्नगः ॥ ३ ॥ कूर्मपृष्ठेऽचलंकृत्वा रत्नानिदुदुहुस्तदा ॥ आदौलक्ष्मीविनिर्याता कृष्णायप्रतिपादिता ॥ ४ ॥ तेनैवचविवादोभूद्देवदानवयोस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोनारदोदेवदर्शनः ॥ ५ ॥ वारितःकलहस्तेन देवदैत्यसमुद्भवः ॥ महाकालवनेतत्र पद्मासिन्धुसमुद्भवा ॥ ६ ॥ सागरान्तेचरत्नानि तिष्ठन्ति विविधानिच ॥ तानिसर्वाणिचादाय यावत्तुभ्यंददाम्यहम् ॥ ७ ॥ मथ्यतामुदधिश्शीघ्रं नात्रकार्याविचारणा ॥ पुनस्ते

का नाशहोगया और धर्मकी हानि व बिनाश हुआ ॥ २ ॥ तब सब देवता व दैत्योंने मिलकर समुद्र को मथा और सुमेरु वंश (मथानी) हुआ व समुद्र पात्र हुआ और वासुकिसर्प रज्जु याने नेती हुआ ॥ ३ ॥ उस समय उन्होंने कच्छपके पृष्ठपै पर्वत को करके रत्नों को दुहा पहले लक्ष्मीजी निकलीं और वे श्रीकृष्णजी को दी- गईं ॥ ४ ॥ उसी कारण उस समय देवताओं व दानवों का विवादहुआ इसी अवसर में देवदर्शन नारदजी प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने देवताओं व दैत्यों से उपजा हुआ कलह (झगड़ा) मना किया व कहा कि उस महाकाल वन में समुद्र में उपजी हुई लक्ष्मी हैं ॥ ६ ॥ और समुद्र के मध्य में अनेक भांति के रत्न हैं उन

सर्वों को लेकर जबतक मैं तुमको देऊं ॥ ७ ॥ तबतक शीघ्रही समुद्र मथाजावै इस विषय में विचार न करना चाहिये फिर उन देवताओं व दैत्यों ने रत्नों के लिये उद्यम किया ॥ ८ ॥ और उनके समुद्र मथने पर कौस्तुभ मणि प्राप्तहुई पश्चात् पारिजात वृक्ष हुआ तदनन्तर मदिरा उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त धन्वंतरि पैदाहुये तदनन्तर चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसके उपरान्त कामधेनु प्राप्तहुई तदनन्तरउत्तम हाथी हुआ ॥ १० ॥ और उत्तम घोडा उच्चैःश्रवा तदनन्तर सुधा उसके उपरान्त रंभा अप्सराहुई तदनन्तर सब अस्त्रोंकी उत्पत्तिवाला शार्ङ्ग धनुष हुआ ॥ ११ ॥ और मुरदानवके वैरी विष्णुजी के हाथमें पाचजन्य नामक शख स्थितहुआ

तूद्यमंचक्रूरत्नार्थंवैसुरासुराः ॥ ८ ॥ मथ्यमानेनिधौतेषां मणिःप्राप्तश्चकौस्तुभः ॥ पारिजाततरुःपश्चात् सुराजातातत परम् ॥ ९ ॥ धन्वन्तरिरथोत्पन्नश्चन्द्रोजातोपिवैततः ॥ कामधेनुस्समाप्राप्ता गजरत्नंततःपरम् ॥ १० ॥ उच्चैःश्रवाहय श्रेष्ठस्सुधारम्भाततस्ततः ॥ ततःपरञ्चशारङ्गं धनुस्सर्वास्त्रसम्भवम् ॥ ११ ॥ पाञ्चजन्यनामाशङ्खः करेतिष्ठन्मुरद्वि षः ॥ निधिरेषमहापद्मो विषंहालाहलन्ततः ॥ १२ ॥ चतुर्द्दशानिरत्नानि प्राप्तानिविविधानिच ॥ समादायगतास्तत्र यत्रमाहेश्वरंवनम् ॥ १३॥ गत्वातेतुसमासीना मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमितितेसमयंत्रिताः ॥ १४ ॥ को लाहलोह्यथोत्पन्नः पुनर्नारदअभ्यगात् ॥ तेषांकलिमलंदृष्ट्वा विष्णुमाराधयत्ततः ॥ १५ ॥ मोहिनीरूपमास्थाय नारीभूत्वाभ्यगाद्धरिः ॥ अतिरूपवतींतन्वीं तामालोक्यमहासुराः ॥ १६ ॥ विह्वलाङ्गाःकृतास्सर्व्वे कामबाणवशंग ताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतेषां सुरान्दत्वासुरेश्वरः ॥ १७॥ हस्तलाघवयोगेन देवानाममृतन्ददौ ॥ एतस्मिन्नन्तरेऽव्यास रा

पैदा हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार प्राप्तहुये अनेक भांतिके चौदह रत्नो को लेकर देवता वहां गये जहां कि माहेश्वर वन था ॥ १३ ॥ और जाकर बैठहुये उन्होंने उद्यत होकर सम्मति किया व मैं पहले मैं पहले इसप्रकार कहकर वे साथही यंत्रितहुये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर कोलाहल पैदाहुआ और फिर नारदजी आये तदनन्तर उनके कलिमल (विवाद) को देखकर उन्होने विष्णुजी का आराधन किया ॥ १५ ॥ और मोहनीरूपमें टिककर स्त्री होकर विष्णुजी आये व अतिरूपवती उस स्त्रीको देखकर महादैत्य ॥ १६ ॥ विह्वलअंगवाले होकर सब कामदेवके बाण के वशमें प्राप्तहुये इसी अवसर में उन

को मदिरा देकर सुरेश्वर विष्णुजी ने ॥ १७ ॥ हस्त लाघव याने हाथोंकी शीघ्रता के संयोग से देवताओं को अमृत दिया इसी अवसर में हे व्यासजी ! उन देवता-
ओं के रूपको धरनेवाले राहुने ॥ १८ ॥ उनके बीचमें प्राप्तहोकर उत्तम अमृतको पीलिया उसको जानकर विष्णुजी ने शीघ्रही चक्रसे मस्तक को काटडाला ॥ १९ ॥
उस समय अमृतके स्पर्श के प्रसंग से असुर राहु नहीं मरा व हे सत्तम व्यासजी ! पृथ्वी में इस क्षेत्रमें राहु व केतु ऐसा प्रसिद्धहुआ ॥ २० ॥ और राहुके शरीर से
उपजाहुआ बहुत रुधिर बहा व उस क्षेत्रमें उस दोषको नाशनेवाला महातीर्थ हुआ ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर पवित्रहोकर जो राहुके दर्शन में तत्पर होताहै उसके कभी

हुस्तद्रूपधारकः ॥ १८ ॥ तेषामन्तरतोभूत्वा पपौचामृतमुत्तमम् ॥ तज्ज्ञात्वाचद्रुतंविष्णुश्शिरश्चक्रेणप्राच्छिनत् ॥
१९ ॥ सुधास्पर्शप्रसङ्गेन नममारासुरस्तदा ॥ राहुःकेतुरितिख्यातो क्षेत्रेस्मिन्भुविसत्तम ॥ २० ॥ राहुकायात्समुद्भूतं
बहुसुस्रावशोणितम् ॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहातीर्थं जातंतद्दोषनाशनम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा राहोर्दर्शनतत्परः ॥
नतस्यजायतेकाचिद् राहुपीडाकदाचन ॥ २२ ॥ वाञ्छितार्थमवाप्नोति गोसहस्रफलंभवेत् ॥ ततस्तानिचरत्नानि म
हाकालवनेसुराः ॥ २३ ॥ विभज्यभागन्तेसर्वे ततोरत्नभुजोऽभवन् ॥ मणिंपद्मांधनुश्शङ्खं ददौसातत्रविष्णवे ॥ २४ ॥
सूर्यायचददौचाश्वं मोहिनीसाब्धिसम्भवम् ॥ ऐरावतंगजश्रेष्ठं वासवायसमर्पयत् ॥ २५ ॥ दिविषद्गणांश्चपीयूषं
ददौचन्द्रंचशम्भवे ॥ पारिजातंतरुश्रेष्ठं रम्भाञ्चैववराङ्गनाम् ॥ २६ ॥ इन्द्रःक्रीडावनेरम्ये नन्दनेचसमर्पयत् ॥ ऋषी

कोई राहुकी पीडा नहीं होती है ॥ २२ ॥ और चाहेहुये प्रयोजन की प्राप्ति होतीहै व गोसहस्र का फल होता है तदनन्तर महाकाल वन में देवता उन रत्नों को ले-
कर ॥ २३ ॥ व भागको बांटकर तदनन्तर वे सब रत्न भोगीहुये और वहां पर उनमोहनीजीने मणि, लक्ष्मी, धनुष और शंखको विष्णुजी के लिये दिया ॥ २४ ॥
और उन मोहनीजी ने समुद्र से उपजेहुये अश्वको सूर्यनारायणजी के लिये दिया और इन्द्रजी के लिये उत्तम हाथी ऐरावत को दिया ॥ २५ ॥ और देवगणों
को अमृत व शिवजी के लिये चन्द्रमाको दिया और वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात को व उत्तम स्त्री रंभाको ॥ २६ ॥ इन्द्र ने सुन्दर क्रीड़ावन नन्दन में भलीभांति अर्पण

किया और यज्ञकी सिद्धिके लिये ऋषियों को कामधेनु गऊ दिया ॥ २७ ॥ और यह महापद्मनिधि कुबेरजीके घरको गई और जो हलाहल विष कहागयाहै उसको किसीने भी आदर न किया ॥ २८ ॥ क्योंकि जहा जहा वह फैलता था वहा वहां प्राणी नाशको प्राप्तहोते थे लोकोंके हितकी कामनासे उस विषको शिवजीने धारण किया ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर महादेवजी नीलकण्ठ ऐसे कहेगये जो मनुष्य रत्नकुण्ड में नहाकर नीलकण्ठजी को देखताहै ॥ ३० ॥ वह सब पापों से छूटकर सब रत्नों का भोगी होताहै और सौ अश्वमेध यज्ञों के पुण्यको पाकर शिवलोकको जाताहै ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उस समय हर्षसे पूर्ण मनवाले ब्रह्मा व विष्णु आदिक

णाञ्चाददाद्धेनुं कामदोग्ध्रींयज्ञसिद्धये ॥ २७ ॥ निधिरेषमहापद्मः कुबेरभवनेगतः ॥ यत्तद्धालाहलंप्रोक्तं विषंकेनापिनादृतम् ॥ २८ ॥ यतोयतःप्रसरति प्रलयंयान्तिजन्तवः ॥ दधारतद्विषंशम्भुर्जगतांहितकाम्यया ॥ २९ ॥ तत्प्रभृतिमहादेवो नीलकण्ठइतिस्मृतः ॥ रत्नकुण्डेनरस्स्नात्वा नीलग्रीवञ्चपश्यति ॥ ३० ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यो भवेचसर्वरत्नभुक् ॥ शताश्वमेधिकंपुण्यं लब्ध्वाशिवपुरंव्रजेत् ॥ ३१ ॥ तदादायसुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ स्वयमूचुस्तदाव्यास हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ३२ ॥ उज्जयिनींसमासाद्य जातारत्नभुजोवयम् ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु पद्मावसतिनिश्चला ॥ ३३ ॥ अद्यप्रभृतिपुर्य्येषा पद्मावतीरितिस्मृता ॥ यएतस्यांमहाभागास्स्नानंदानंतथार्चनम् ॥ ३४ ॥ तर्पणंचैवदेवानां पितॄणांवाविशेषतः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिन्नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ ३५ ॥ शतंकुलानिसर्वाणि तारयेन्निरयार्णवात् ॥ धनार्थीवाचपुत्रार्थी विद्यार्थीबहुकामुकः ॥ ३६ ॥ यत्रकुत्रस्थितोभूत्वा पद्मावतीरितिस्मरेत् ॥ सर्वान्

गब देवताओं ने उसको लेकर आपही कहा कि ॥ ३२ ॥ उज्जयिनी को भलीभांति प्राप्तहोकर हमलोग रत्नोंके भोगीहुये और जिसलिये यहां सब समयों में अचल लक्ष्मी बसती है ॥ ३३ ॥ इस कारण आजसे लगाकर यह पुरी पद्मावती ऐसी कहीजावै बड़े ऐश्वर्यवाले जो पुरुष इस पुरी में स्नान, दान व पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ और देवताओं व विशेषकर पितरों का तर्पण करते हैं उसके कुछ पाप व दरिद्रता और दुर्गति नहीं होतीहै ॥ ३५ ॥ और वह नरकों के समुद्र से सौ कुलों को तारता है व धन चाहनेवाला तथा पुत्रों को चाहनेवाला और विद्यार्थी व बहुत कामनाओंवाला पुरुष ॥ ३६ ॥ जहां कहीं स्थित होकर पद्मावति ऐसा स्मरण करता

है वह मनुष्य समस्त कामनाओं को पाताहै व साक्षात् शिवहोताहै ॥ ३७ ॥ हेव्यासजी ! यह नाम का फल है और बहुत दिनोंके सेवने से क्या कहनाहै जो पुरुष इस पवित्र कथाको सुनते हैं और जो नित्य सुनाताहै ॥ ३८ ॥ उसके कुछ पातक नहीं रहताहै और वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्तहोताहै ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायापद्मावतीनामकथनंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरीकर कुमुद्वती जिमि नाम । छप्पनवें अध्याय में सोइचरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! सावधान होकर पापहारिणी

कामानवाप्नोति शिवस्साक्षाद्भवेन्नरः ॥ ३७ ॥ एतद्व्यासफलंनाम्नः किञ्चिरंसेवनेनवै ॥ येशृण्वन्तिकथांपुण्यां यःश्रावयतिनित्यशः ॥ ३८ ॥ नतस्यपातकंकिञ्चिदश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पद्मावतीनाम कथनन्नामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुष्वावहितोव्यास कथांपापहरांपराम् ॥ एषाकुमुद्वतीजाता यथापद्मावतीपुरा ॥ १ ॥ लोमशउवाच ॥ एकदातीर्थयात्रायां गतोहंवैकुशस्थलीम् ॥ गुह्याद्गुह्यतमंस्थानं यत्रसन्निहितोहरः ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ यत्रतत्रस्थिताविप्रा ब्रह्मघोषंचकुर्वते ॥ ३ ॥ यज्ञांश्चैवतथाचित्रान्दृत्विजोद्वारकर्मच ॥ ऋषयश्चयहाभागा प्रकुर्वन्तिसमाहिताः ॥ ४ ॥ ऋषिपत्न्यस्तथासाध्व्यः परिचारंप्रकुर्वते ॥ दशविष्णवश्चप्रख्यातास्तत्रैवनिवसन्तिते ॥ ५ ॥ रुद्राह्येकादशप्रोक्ता द्वादशार्कास्तथैवच ॥ अष्टौच वसवःख्याता विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ ६ ॥

उत्तम कथा को सुनिये जिस प्रकार कि पुरातन समय यह पद्मावतीपुरी कुमुद्वतीहुई है ॥ १ ॥ लोमश ऋषि बोले कि एक समय मैं तीर्थ यात्रामें कुशस्थलीपुरी को गया जे कि गुप्तसे भी अत्यन्त गुप्तस्थानहै और जहां पर सदाशिवजी टिके हुये हैं ॥ २ ॥ जिनके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है और जहा तहां पै टिके हुये ब्राह्मणलोग वेदध्वनि करते हैं ॥ ३ ॥ और ऋत्विक् लोग विचित्र यज्ञों को व द्वारकर्मको करतेहैं व बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषिलोग सावधान होकर यज्ञोंको करतेहैं ॥ ४ ॥ वैसेही पतिव्रता ऋषियोंकी स्त्रियां सेवा करतीहैं और वहींपर वे प्रसिद्ध दशविष्णु बसतेहैं ॥ ५ ॥ और गेरह रुद्र कहे गयेहैं व बारह सूर्य तथा आठ वसु व तेरह विश्वे-

देवा प्रसिद्धहैं ॥ ६ ॥ और वे आठ दिग्गज तथा चौदहमनु और वेसब पवनगण तथा इन्द्रादिक देवता वहां बसतेहैं ॥ ७ ॥ और हे व्यासजी ! गंधर्व अप्सरा, किन्नर,नाग व राक्षस,सिद्ध व तपस्वी वहीं पर भलीभांति प्राप्त हैं ॥ ८ ॥ व आठ भैरव कहेगयेहैं और चार पवनपुत्र तथा ये छः विनायक व चौबिस देवियांहैं ॥ ९ ॥ ये देवताओंके गण व रुद्रगण कहे गयेहैं और वेदों के जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा,मरीचि, और कश्यप आदिक ॥१०॥ और प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्षजी व देवताओंकी माता अदिति और श्रुतियों से सम्मत गाइयां व स्थावर जंगम प्राणी ॥ ११ ॥ व जो सब तीर्थहैं व नदियां, झरना और पृथ्वी में जो अति पवित्र सब क्षेत्र हैं ॥ १२ ॥ और सातपुरी, तीन ग्राम व

अष्टौतेदिग्गजाश्चैव मनवश्चचतुर्दश ॥ मरुद्गणाश्चतेसर्वेतत्रचेन्द्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नरोरगरा राक्षसाः ॥ सिद्धास्तपस्विनोऽव्यास तत्रैवसमुपस्थिताः ॥ ८ ॥ अष्टौचभैरवाःख्याताश्चत्वारःपवनात्मजाः ॥ विनायकाः षडेतेच देव्यश्चचतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥ एतेदेवगणाःप्रोक्ता रौद्राश्चैवतथैवच ॥ ब्रह्मावेदविदांश्रेष्ठो मरीचिःकश्यपादयः ॥ १० ॥ दक्षःप्रजापतिश्रेष्ठोऽदितिर्वैदेवमातृका ॥ श्रुतिभिस्संमतागावः स्थावराणिचराणिच ॥ ११ ॥ तीर्थानियानिस र्वाणि नद्यप्रस्रवणानिच ॥ क्षेत्राणिचैवसर्वाणि भुविपुण्यतमानिवै ॥ १२ ॥ सप्तपुर्य्यस्त्रयोग्रामा नवारण्यानिचैवतु॥ चतुर्दशानिगुह्यानि मुक्तिद्वाराणिभूतले ॥ १३ ॥ समुद्राश्चैवचत्वारो रत्नानिविविधानिच ॥ राजर्षयोऽमलाश्शान्ता ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ १४ ॥ वेदाःपुराणस्मृतयो गाथागीतिःप्रहेलिकाः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य तदानींचाप्युमापतेः ॥ १५ ॥ तस्यदर्शनमात्रेण जातोहंविज्वरोऽमलः ॥ दीर्घायुर्दीर्घतपसा जरारोगविवर्जितः ॥ १६ ॥ स्नातोहंसर्वतीर्थेषु शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ प्रसन्नमानसोजातस्सर्वपापपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वापद्मावतींशुभ्रां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ न

नवबन और चौदहगुप्त पृथ्वी में मुक्ति के द्वार हैं ॥ १३ ॥ व चार समुद्र तथा अनेक भांति रत्न व निर्मल राजर्षि और वेदों के पारगामी शान्तब्राह्मण ॥ १४ ॥ व वेद, पुराण, स्मृतियां और कथाओं का गान व पहेलिकाओंने उस समय उन उमानाथ की उपासना किया ॥ १५ ॥ उनके दर्शनहीं से मैं निर्मल व ज्वर रहित होगया और बड़े तप से बहुत आयुर्बलवाला व वृद्धता तथा रोग से रहित हुआ ॥ १६ ॥ और सावधान होता हुआ प्रसन्नमनवाला मैं समस्त तीर्थों में नहाकर

व पवित्र होकर समस्त पापों से रहित हुआ ॥ १७ ॥ जहांपर समस्त कामनाओं व वरोंको देनेवाली उत्तम पद्मावतीजी को देखकर कोई मनुष्य शोक व रोगसे सं-
युक्त नहीं देख पडता है ॥ १८ ॥ और न दुःखी न दरिद्री न मूर्ख न अजितेन्द्रिय होताहै व जहां पर आपस में वैरी और न व्रतहीन देख पड़ता है ॥ १९ ॥ और
जहां पर आपस में सब मित्र व परस्पर में उपकारी व इन्द्रियोंको दमन करनेवाले व सब विद्याके उपदेशक हैं ॥ २० ॥ और सुन्दर बगीचे व वन तथा उपवन और
सब सुन्दर मन्दिर पंक्तियों से बँधे हुये हैं ॥ २१ ॥ जो कि अनेक भांतिके रत्नों से संयुक्त सुन्दर स्वर्ण घंटोंसे और गीतों व बाजाओं के बड़े भारी उछाहों से विचित्र

यत्रदृश्यतेकश्चिच्छोकरोगपरोनरः ॥ १८ ॥ नदुःखीनचदारिद्री नमूर्खोनाजितेन्द्रियः ॥ परस्परंविरोधीच नाव्रती
यत्रदृश्यते ॥ १९ ॥ अन्योन्यंसर्वमित्राणि अन्योन्यैश्चोपकारिणः ॥ सर्वेदान्ताश्चशान्ताश्च सर्वेविद्योपदेशिनः ॥२०॥
उद्यानानिचरम्याणि वनान्युपवनानिच ॥ हर्म्याणिचैवशुभ्राणिश्रेणिबद्धानिसर्वशः ॥ २१ ॥ नानारत्नसमाकीर्णैर्हेम
कुम्भैस्सुशोभनैः ॥ विराजन्तेविचित्राणि गीतवाद्यमहोत्सवैः ॥ २२ ॥ सदैववसतेयत्र उमयासहशङ्करः ॥ चन्द्रचूडा
कृतिर्व्यास चिताभस्माङ्गलेपनः ॥ २३ ॥ चन्द्रज्योत्स्नाकलापूर्णमरीचिस्सर्वतोबभौ ॥ नयत्रकृष्णपक्षोभून्नामाव
स्यानवैतमः ॥ २४ ॥ सदैवपुष्पिताश्यामा बाल्येरूपवतीयथा ॥ हर्म्यपृष्ठेगवाक्षेच द्वाराजिरगृहांतरे ॥ २५ ॥ गिरि
गह्वरकुञ्जेषु गुहाध्वान्तान्तरेषुच ॥ आश्रमेषुचरम्येषु वनेषूपवनेषुच ॥ २६ ॥ गृहदीर्घिकासुरम्यासु शालामालासुस

शोभित हैं ॥ २२ ॥ और जहांपर पार्वती समेत सदाशिवजी सदैव बसते हैं जोकि हे व्यासजी ! चन्द्रचूड़ आकारवाले व चिताके भस्मसे अंग लेपवाले हैं ॥ २३ ॥
और जो कि सब ओर से चन्द्रमा की चन्द्रिका से संयुक्त कलाओं से पूर्ण किरणोंवाले शोभित थे और जहांपर न कृष्णपक्ष हुआ न अमावस हुई और न अन्धकार
हुआ ॥ २४ ॥ और जो पुरी सदैव प्रफुल्लित थी जैसे कि बाल्यावस्था में रूपवती श्यामा स्त्री होवै और मन्दिरके पृष्ठ पै व झरोखा में तथा द्वार अंगनाई और घरके
भीतर ॥ २५ ॥ व पर्वतोंकी गुफाओं व कुंजों तथा कन्दराओं के अन्धकारके मध्योंमें व सुन्दर आश्रमों और वनों व उपवनों में ॥ २६ ॥ व सुन्दरी घरकी बावलियों में और

सब ओर से शालाओं की मालाओं में चन्द्रमाकी उजियाली से भलीभांति पूर्ण दिशायें देख पड़ती हैं ॥ २७ ॥ और जिन में फूलेहुये कुमुदवाले तड़ाग शोभित
हैं जैसे कि शरदऋतु में नक्षत्र गणों से व्याप्त आकाशस्थल होवै ॥ २८ ॥ और नदियां व सब तड़ाग तथा छोटे तड़ाग कुमुद्वती (कुमुदिनी) से व्याप्त होकर पृ-
थ्वी मानो चन्द्रमा से संयुत हुई ॥ २९ ॥ जिसलिये सब समयों में कुमुदिनी प्रफुल्लित हुई उसी कारण यह कुमुदिनी पुरी हुई ॥ ३० ॥ सावधान होते हुये जो
मनुष्य कुमुद्वती पुरी में श्राद्ध करते हैं उनके पितर कभी स्वर्ग से नहीं अलग होते हैं ॥ ३१ ॥ व अक्षय श्राद्धको प्राप्त होता है और पितरोंको दियाहुआ दान अक्षय

ज्योतिर्गणसमावृतः ॥ चन्द्रज्योत्स्नासमापूर्णा दृश्यन्तेधवलीदिशः ॥२७॥ कुमुद्वतीप्रफुल्लानि तडागानिविरेजिरे ॥ कुमुद्वत्यासमाकीर्णा आसीच्चन्द्रमसी मही ॥ २९ ॥ नद्यःसरांसिसर्वाणि वापीकूपसुपल्वलाः ॥ कीर्णं शरदीवनभःस्थलम् ॥ २८ ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु प्रफुल्लाचकुमुद्वती ॥ तस्मात्पद्मावतीह्येषा पुरीजाताकुमुद्वती ॥ ३० ॥ कुमुद्वत्यां नरायेतु श्राद्धंकुर्युःसमाहिताः ॥ नतेषांपितरःस्वर्गाच्च्यवन्तेवैकदाचन ॥ ३१ ॥ अक्षयंलभतेश्राद्धंपितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ स्नानंदानंतथाहोमं देवताराधनंतथा ॥ ३२ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् ॥ एवंकुमुद्वतीजाता पुरीव्याससनातना ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुमुद्वतीप्रभावकथनंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अमरावतीयथाजाता पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ शृणुव्यासमहाप्राज्ञ यथाब्रह्माब्रवीत्सुरान् ॥१॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि विस्तरेणतपोधन ॥ एकदाब्रह्मणादिष्टो प्रजार्थंऋषिसत्तमः ॥ २ ॥ मारीचःकश्यपस्तेपे तपःप

होताहै व स्नान, दान, होम तथा देवता का आराधन ॥ ३२ ॥ जो कुछ कर्म इस कुमुद्वती पुरी में किया जाता है वह सब अक्षय होता है हे व्यासजी ! इस प्रकार
सनातन कुमुद्वती पुरी हुई है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमुद्वतीप्रभावकथनंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

दो॰ । भयो अवन्तीपुरीकर जिमिअमरावति नाम । सत्तावनवें में कह्यो सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, व्यासजी ! जिसप्रकार यह
कुशस्थलीपुरी अमरावती हुई है उसको सुनिये और जिसप्रकार ब्रह्माने देवताओं से कहा है ॥ १ ॥ हे तपोधन ! उसीप्रकार मैं विस्तार से भलीभांति कहूंगा एक

समय सन्तान के लिये ब्रह्मा से आज्ञा दियेहुये ऋषिश्रेष्ठ ॥ २ ॥ मरीचि के पुत्र कश्यपजीने बड़ा कठिन तप किया है व मनोहर महाकाल वनमें देवी समेत महर्षि कश्यप जीने ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिय व पवन भक्षी तथा गिरेहुये पत्तोंको भोजन करनेवाले होकर तपस्या किया है और हज़ारवर्ष पूर्णहोनेपर आकाशवाणी बोली ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मेरे अतिउत्तम वचनको सुनिये हे सुव्रत ! जिसलिये फलको उद्योग कर तुम्हारी तपस्या तीव्रहुई है ॥ ५ ॥ उसीकारण तुम्हारी सन्तान तबतक रहैगी जबतक कि चन्द्रमा सूर्यरहैंगे व तुम्हारी सन्तान तबतक यश समेत व पुत्रों तथा पौत्रों समेत पृथ्वी में रहैगी ॥ ६ ॥ और जिसलिये तुम्हारी पाति-

रमदुष्करम् ॥ महाकालवनेरम्ये देव्यासहमहान्नृषिः ॥ ३ ॥ शीर्णपत्राशनस्तेपे वायुभक्षीजितेन्द्रियः ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतु वाग्रुवाचाशरीरिणी ॥ ४ ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ ममवाक्यमनुत्तमम् ॥ यस्मात्तेस्तितपस्तीव्रं फलमुद्यम्यसुव्रत ॥ ५ ॥ तस्मात्तेसन्ततिस्तावद् यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ तावत्तिष्ठतिमेदिन्यां यशसापुत्रपौत्रकैः ॥ ६ ॥ अदितिस्तेसतीभार्या त्वयासहाचरत्तपः ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु छायाभूतायशस्विनी ॥ ७ ॥ भविष्यन्तिसुराःसर्वे विष्णुचन्द्रपुरोगमाः ॥ अमरानिर्ज्जरादेवा दिविख्याताभवन्तिवति ॥ ८ ॥ त्वंचापीहिऋषिश्रेष्ठ प्रजापतिरकल्मषः ॥ भविष्यसिनसन्देहो ममवाक्याद्द्विजोत्तम ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वाचपुनर्देवीतत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यपुरीं व्यास कुशस्थलीमनुत्तमाम् ॥ १० ॥ कश्यपःसहदात्तिण्यासाग्निकःसमुपाश्रितः ॥ प्रजापिवद्र्धेतस्मात्सदेवासुरमानुषा ॥ ११ ॥ मरीचेःकश्य

व्रता स्त्री अदितिजीने तुम्हारे साथ तप किया है उसीकारण सब समयों में वे यशस्विनी छायाभूत याने छायाकी नाईं अनुगामिनी होवेंगी ॥ ७ ॥ और विष्णु व चन्द्रमादिक सब देवता अमर व वृद्धतारहित होवैंगे और देवता स्वर्ग में प्रसिद्ध होवैंगे ॥ ८ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ, द्विजोत्तम ! तुम भी मेरे वचनसे पाप रहित प्रजापति होवोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर फिर वहीं पर देवी अन्तर्द्धान होगई तबसे लगाकर हे व्यासजी ! अतिउत्तम कुशस्थली पुरी में ॥१०॥ दक्ष की कन्या अदिति समेत व अग्निसहित कश्यप जी आश्रित हुयेहैं उसी कारण देवता दैत्य व मनुष्यों समेत प्रजा बढ़ते भये ॥ ११ ॥ मरीचि से कश्यप पैदाहुये

व उन से सब प्रतिष्ठित हुआ हे व्यासजी ! जिसलिये देवताओं ने अमृत को पियाहै उसीकारण अमर कियेगये हैं ॥ १२ ॥ और उसी उत्तम महाकाल वन में नन्दनवन को प्राप्त होकर मनोरथ के वरदान को देनेवाली कामधेनु भलीभांति कही गईहै ॥ १३ ॥ और वह भी सदैव यहांपर महाकाल महेश्वर जी को सेवती है और वृक्षों में श्रेष्ठ पारिजात व प्रफुल्लित कमलोंवाला ॥ १४॥ बिन्दुसर कहा गयाहै और उत्तम मानस तड़ागहै जो कि हंसो व सारसों से व्याप्त तथा सदैव सिद्धोंसे सेवितहै ॥ १५ ॥ व जो कि मोती व मणिगणोंसे संयुत तथा रत्नों के सोपानों से शोभितहै और लालकमलों व कोकाबेलीसे उज्ज्वल यह महापद्म निधिहै ॥ १६ ॥ और

पोजज्ञे ततःसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ सुधापानकरादेवा व्यासतेनामराःकृताः ॥ १२ ॥ नन्दनंप्राप्यतत्रैव महाकालवनोत्तमे॥ कामधेनुःसमाख्याता मनोरथवरप्रदा ॥ १३ ॥ साप्यत्रैवसदासेवेन्महाकालंमहेश्वरम् ॥ पारिजातंतरुश्रेष्ठं तथाचाम्लानपङ्कजम् ॥ १४ ॥ बिन्दुसरःसमाख्यातंमानसंसरउत्तमम् ॥ हंससारससंकीर्णं सदासिद्धनिषेवितम् ॥ १५ ॥ मुक्तामणिगणासक्तं रत्नसोपानशोभितम् ॥ निधिरेषमहापद्मः कल्हारकुमुदोज्ज्वलः ॥ १६ ॥ यानियानिचदिव्यानि सन्तिब्रह्माण्डगोलके ॥ तानिसर्वाणितिष्ठन्ति महाकालवनेशुभे ॥ १७ ॥ तेनतेनात्मयोगेन मानवाश्चात्रसंस्थिताः ॥ तत्तद्देहास्तदाचारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यंचसमाकीर्णाः सर्वेचामरसन्निभाः ॥ विचरन्तियथा देवाः पुरीमेतांजनाभुवि ॥ १९ ॥ सुराङ्गनासमानार्यः सदैवस्थिरयौवनाः ॥ ईदृशींचपुरींदृष्ट्वा भुविव्याससनातनाम् ॥ २० ॥ देवदानवगन्धर्वः किन्नरोरगराक्षसाम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदानित्या बहुकालफलप्रदा ॥ २१ ॥ अमराणांस्थिति

ब्रह्माण्ड गोलकमें जो जो दिव्य वस्तुयें हैं वे सब उत्तम महाकाल वनमें स्थितहैं ॥ १७ ॥ और उस उस आत्मयोगसे मनुष्य यहांपर भलीभांति स्थितहैं जो कि उस उस देहवाले और उनके आचारवाले तथा उनके रूपवाले और उनके पराक्रमवाले हैं ॥ १८ ॥ और आपसमें मिलेहुये सब देवताओं के समानहैं पृथ्वी पै इस पुरी में मनुष्य वैसेही घूमते हैं जैसे कि देवता होवैं ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी में ऐसी सनातन पुरी को देखकर सदैव निश्चल यौवनवालीं स्त्रियां देवांगनाओं के समानहैं ॥ २० ॥ और देवता, दानव, गंधर्व, किन्नर, नाग व राक्षसोंको यह सनातन पुरी भुक्ति, मुक्ति दायिनी व बहुत कालतक फलको देनेवाली है ॥ २१ ॥ जिस

लिये यहां अमरों (देवताओं) की स्थितिहै उसीकारण अमरावतीहुई प्रसंग से आयाहुआ बहुत ऐश्वर्यवाला जो पुरुष इस पुरी में ॥ २२ ॥ स्नान दानादिक करके सदाशिवदेवजीको देखताहै उसको पुत्र से या धनसे भी कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ २३ ॥ और समस्त सुखोंको पाताहै व मरकर वह पुरुष शिवलोकको जाताहै और इस चरित्रके पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य शतरुद्रीके फलको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाममरावतीनामकथनन्नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ह्यत्र तस्माज्जातामरावती ॥ एतस्यांमहाभागः प्रसङ्गेनसमागतः॥ २२ ॥स्नानदानादिकंकृत्वा पश्येद्देवंमहेश्वरम् ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चित् पुत्रतोधनतोपिवा ॥ २३ ॥ सर्वभोगानवाप्नोति मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापिशतरुद्रीफलंलभेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽमरावतीनामकथनन्नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाभाग पुरीह्येषामरावती ॥ विशालाचसमाख्याता सर्वलोकेषुगीयते ॥ १ ॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाकथितम्पुरा ॥ गुह्याद्गुह्यतरंक्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥ उमयासहितोदेव एकएवाभवद्वने॥ ततोभूतगणास्सर्वे पश्चात्सर्वेसुरासुराः॥ ३ ॥विष्णुर्दशाकृतिर्यत्र देव्यस्त्रैलोक्यमातरः॥ विनायकाश्चवैतालाः कूष्माण्डाभैरवादयः ॥ ४ ॥ कल्पोद्भेदाश्चलिङ्गाश्च चतुराशीतिज्र्योतिषाः ॥ क्षेत्राणिक्षेत्रपालाश्च ऋद्धिस्सिद्धिस्त

दो० । यथा अवन्ती पुरीकर भयो विशाला नाम । अट्ठावन अध्याय में सोइ चरित शिवधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि महाभाग, व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार विशाला ऐसी कहीहुई यह अमरावतीपुरी सब लोकों में गानकी जातीहै ॥ १ ॥ वैसेही मैं कहूंगा पुरातन समय ब्रह्माने सब पापोंको नाशनेवाले व गुप्तसे भी अधिक गुप्तक्षेत्र को कहाहै ॥ २ ॥ पार्वती समेत एकही शिवदेवजी वनमें हुये हैं तदन्तर समस्त भूतगण पश्चात् सब देवता व दैत्य हुए हैं ॥ ३ ॥ और जहापर दश आकारवाले विष्णुजी व त्रिलोक की माताएं देवियांहैं व विनायक, वैताल, कूष्मांड व भैरवादिकहै ॥ ४ ॥ व कल्पोद्भेद तथा चौरासी ज्योतिर्लिंगहैं और क्षेत्र,क्षेत्रपाल-

ऋद्धि व सिद्धि हैं ॥ ५ ॥ और पितर, लोकपाल, सिद्ध व जो सिद्धिदायक हैं वे और बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषि व निर्मल आशयवाली ऋषियों की स्त्रियांहैं ॥ ६ ॥ और कि-
न्नर, देवता, गंधर्व व वरांगना अप्सराएं तथा जो सब पवनगण हैं व जो साध्यों के गण हैं ॥ ७ ॥ और यक्ष व गुह्यक संज्ञक तथा पिशाच, नाग, राक्षस, चर व अचर
प्राणियों ने ध्यान व मौन में भलीभांति आश्रित होकर ॥ ८ ॥ उन देवदेव पार्वती के पति शिवजीकी उपासना किया है उस समय उनको देखकर तब वे गि-
रिनन्दिनी पार्वती जी ॥ ९ ॥ संसारके आश्रयरूप शिवजीसे नम्र वचनसे बोलीं पार्वती जी बोलीं कि हे संसारधारक, संसारस्वामिन्, देवदेव, जगदीशजी ! ॥ १० ॥

ऋद्धिश्च सिद्धिदेवी च ॥ ५ ॥ पितरोलोकपालाश्च सिद्धास्सिद्धिप्रदाश्चये ॥ ऋषयश्चमहाभागा ऋषिपत्न्योमलाशयाः ॥ ६ ॥ कि
न्नरादेवगन्धर्वा अप्सरसोवराङ्गनाः ॥ मरुद्गणाश्चयेसर्वे साध्यानांचगणाश्चये ॥ ७ ॥ यक्षागुह्यकसंज्ञाश्च पिशाचोरग
राक्षसाः ॥ स्थावराजङ्गमास्सर्वे ध्यानमौनंसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य देवदेवस्योमापतेः॥ तान्दृष्ट्वासात
दादेवी पार्वतीगिरिजातदा ॥ ९ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा शङ्करंजगदाश्रयम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेवजगन्नाथजगद्धा
रजगत्प्रभो ॥ १० ॥ पश्यएतान्महाभागान् ध्यायमानांस्तवाश्रितान् ॥ नतूपेक्ष्यान्पितात्वञ्च तपमानांस्तपोर्दिता
न् ॥ ११ ॥ कल्पयत्वंमहाभाग एतेषामात्मनोहितम् ॥ यथायोग्यंवासनार्थं स्थानंपरमशोभनम् ॥ १२ ॥ पुरींकल्प
यमेनाथ वासार्थंसर्वकामदाम् ॥ एषामेवासनास्वामिन् भवतांयदिरोचते ॥ १३ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्याः पार्वत्याःप
रमेश्वरः ॥ कल्पयामासचपुरीं रम्यांसर्वमनोरमाम् ॥ १४ ॥ आत्मनोपमितांपुण्यां शम्भुस्सर्वात्मनातदा ॥ बहुयो

और तपस्या करते हुये व तपसे विकल हैं ॥ ११ ॥ हे
तुम पिताहो इन बहुत ऐश्वर्यवाले व ध्यान करतेहुए प्राणियों को देखिये जो कि छोड़ने योग्य नहीं हैं और तपस्या करते हुये व तपसे विकल हैं ॥ ११ ॥ हे
महाभाग ! इनके व अपने बसने के लिये अतिउत्तम व हितकारक यथायोग्य स्थानको कल्पित कीजिये ॥ १२ ॥ व हे नाथ ! मेरे बसने के लिये सब कामनाओं
को देनेवाली पुरी को कल्पित कीजिये हे स्वामिन् ! यदि आपको रुचै तो यह मेरी इच्छाहै ॥ १३ ॥ उन पार्वतीजी के ऐसे वचन को सुनकर उस समय सब यत्न

से परमेश्वर शिवजीने सबसे मनोहर सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि अपने समान व पुण्यदायिनी तथा बहुत योजन चौड़ी व दिव्य और दिव्यजनोंको प्यारी॥ १४ । १५॥ व दिव्य अभिप्रायसे संयुत और दिव्य स्थानोंसे सुन्दरी तथा समस्त दिव्यगुणों से संयुक्त व विशाल तथा निर्मल और उत्तम है॥ १६॥ व क्रय विक्रय (मोल व बेंच) से संयुत व बाज़ार, और अटारी चौतरोंवालीहै और मन्दिर वगृहोंसे व्याप्त तथा राजमन्दिरों की पंक्तियों से शोभितहै॥ १७॥ व स्फटिक मणियों की भित्तियों से रचित तथा वैदूर्यमणिकी भूमिवाले और मूंगाओंके खम्भों से श्रेष्ठ तथा स्वर्ण के भूषणों से पूर्ण है॥ १८॥ व कुछ अरुण मणिकी देहलीवाली

जनविस्तीर्णां दिव्यांदिव्यजनप्रियाम्॥१५॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्तां दिव्यस्थानमनोरमाम्॥ दिव्यसर्वगुणोपेतां विशालांविरजांशुभाम्॥ १६॥ क्रयविक्रयसम्पन्नां हट्टाट्टालकचत्वराम्॥ बहुहर्म्यगृहाकीर्णां सौधपङ्क्तिविराजिताम्॥ १७॥ स्फाटिकाभित्तिरचितां वैडूर्यमणिभूमिकाम्॥ प्रवालस्तम्भप्रवरां हेमाभरणसम्भराम्॥ १८॥ आरक्तमणिदेहल्यां द्वारशाखाभिमण्डिताम्॥ जाम्बूनदकपाटाभ्यां वज्रार्गलसुसंस्कृताम्॥ १९॥ मणिरत्नसमाभूमिद्वाराजिरगृहान्तराम्॥ घोषजालानिरम्याणि मुक्तादामविलम्बिनीम्॥ २०॥ हेमस्तम्भध्वजोपेतां पताकाचगृहेगृहे॥ कलशाश्चविराजन्ते मणिहेमयुतागृहे॥२१॥वापीकूपतडागानि सरांसिविमलानिच॥ पद्मकिञ्जल्कगन्धीनिराजन्ते जलजन्तुभिः॥ २२॥ हंसकारण्डवाकीर्णां शिखण्डिगणसेविताम्॥ जलयन्त्रकृताधारां गृहवापीवनाकराम्॥२३॥

व द्वारशाखाओं से शोभित तथा सुवर्णके कपाटों से व हीरेकी अर्गला (जञ्जीर)से संस्कार की हुई है॥ १९॥ और मणियों व रत्नोंके समान भूमि, द्वार, अंगनाई व घरके भीतरवाली है और जहां सुन्दर व्रजसमूह हैं और जिसमें मोतियोंकी झालर लटकी है॥ २०॥ और सुवर्ण के खम्भोंसे व ध्वजाओं से संयुक्त है और घर घर में पताका हैं व घर में मणियों व सुवर्णसे संयुत कलश शोभित हैं॥ २१॥ और बावली, कूप तड़ाग व कमलके केसरसे सुगन्धवाले निर्मल तड़ाग जल जन्तुओं से शोभित हैं॥ २२॥ और हंसों व कारण्डव पक्षियोंसे व्याप्त तथा मयूरगणोंसे सेवित और जलयंत्रों (फुहारों) से कियेहुये आधारवाली तथा गृह, बावली

व वनोंकी खानिवाली है ॥ २३ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं व कहीं कोकिलायें कूजती हैं व भ्रमरोंसे भक्षित पुष्पगुच्छोंवाली वनकी पंक्तियां हैं ॥ २४ ॥ व पुरुषों तथा स्त्रि-यों के समूहोंसे व्याप्त व वर्णों और आश्रमों से सेवित है और सुन्दर मन्दिरों के भीतर प्राप्त स्त्रियां देखने में तत्पर होकर शोभितहुई ॥ २५ ॥ और चन्द्रशाला याने अटारी के ऊपर बनेहुये मन्दिरों से कीहुई पंक्ति बन्दनवारोंकी नाईं शोभितहै हे व्यासजी! इसप्रकार अपने योगसे बसाईहुई सुंदरी पुरी है ॥ २६ ॥ जहां पर कुबेरके मन्दिर से चिह्नित व सुन्दरी तथा श्वेत अलका पुरी है जोकि राक्षसों से व्याप्त व पक्षियों से शोभित है ॥ २७ ॥ और वहांपर उत्तम वरुणजी का स्थान व भयंकर

क्वचिन्मयूरानृत्यन्ति क्वचित्कूजन्तिकोकिलाः ॥ भ्रमरावलीढपुष्पस्तवकावनराजयः ॥ २४ ॥ नरनारीगणाकीर्णा वर्णाश्रमनिषेविताम् ॥ सुहर्म्यान्तर्गतानार्यो विलोकनपराबभुः ॥ २५ ॥ चन्द्रशालाकृताश्रेणी तोरणानीवशोभते ॥ एवंव्यासपुरीरम्या आत्मयोगेनवासिता ॥ २६ ॥ यत्रालकापुरीरम्या कुबेरभवनाङ्किता ॥ धवलापुण्यजनैःकीर्णा पक्षिभीरुपशोभिता ॥ २७ ॥ तत्रभोगवतीदिव्या वरुणालयमुत्तमम् ॥ नागकन्याभीरुद्राभिर्नागस्त्रीभिश्चसंकुला ॥ २८ ॥ संयमिनीपुरीश्रेष्ठा धर्मराजेनपालिता ॥ अनाचारजनैःपूर्णा कृताभूतविगर्हितैः ॥ २९ ॥ देवतानांपुरीरम्या वामवेनाभिपालिता ॥ पुण्यस्त्रीनृगणाकीर्णा किन्नरोद्गीतमण्डिता ॥ ३० ॥ एवंविधानिरम्याणि बहुपुण्यतराणिच ॥ क्वचिद्रम्भाकृतद्वारा यवाङ्कुरघटाशुभा ॥ ३१ ॥ क्वचिद्गायन्तिगन्धर्वाः क्वचिन्नृत्यतिनर्तकी ॥ क्वचिद्बालाःपठन्तिस्म वेदाध्ययनकाद्विजाः ॥ ३२ ॥ क्वचित्यज्ञान्यजन्तिस्म यजमानास्सऋत्विजः ॥ क्वचिच्चावभृथस्नाने तद्दानानिप्र

नागकन्याओं तथा नागपत्नियों से संयुत नागपुरी है ॥ २८ ॥ और धर्मराज से पालित उत्तम यमपुरी है जोकि प्राणियों से निन्दित व आचार रहित जनोंसे पूर्ण है ॥ २९ ॥ व इन्द्र से पालित सुन्दरी देवताओं की पुरीहै जोकि पवित्र स्त्रियों व मनुष्यगणों से व्याप्त तथा किन्नरों के उच्चप्रकार के गानसे शोभित है ॥ ३० ॥ इस प्रकार के बहुत पवित्र व सुन्दर स्थान हैं और कहीं कदली से किये द्वारवाली व यवों के अंकुरों से संयुत कलशोंवाली उत्तम पुरीहै ॥ ३१ ॥ कहीं गन्धर्व गाते हैं व कहीं नर्तकी (नाचनेवाली वेश्या) नाचती हैं और कहीं वेदाध्ययनवाले बालक ब्राह्मण पढ़ते हैं ॥ ३२ ॥ और कहीं ऋत्विजो समेत यजमान यज्ञोंको करते हैं व

कहीं यज्ञान्त स्नान में उसके दानों को करते हैं ॥ ३३ ॥ कहीं यज्ञोपवीत कर्महोताहै व कहीं विवाह और अग्निका परिग्रहण होताहै व कहीं बगीचादिक तथा पूर्त (तड़ागादि खनन) होताहै और कहीं यात्राका निश्चय होताहै ॥ ३४॥ वैसेही कहीं पर विधिपूर्वक बावली,कूप व तड़ागोंका कर्म होताहै और कहीं वाचक कथाके प्रसंगों को कहताहै ॥ ३५ ॥ व उत्तम नगर में कहीं पर कविलोग कथा कहते हैं व कहीं मल्ल विरोध करते हैं कहीं नट नाचने में तत्पर हैं ॥ ३६ ॥ और मणियोंकी सोपान पंक्तियोंवाले तडाग शोभित हैं व सोलह वर्षवाली चञ्चल चपल बाला ॥ ३७ ॥ वहां जलके हरने में तत्पर है जोकि मणियों व सुवर्णके घटोंसे शोभित है हे व्यास

कुर्वते ॥ ३३ ॥ क्वचित्तूपनयनंक्वचिद्विवाहाग्निपरिग्रहम् ॥ क्वचिदारामपूर्तंवै क्वचिद्यात्रावधारणम् ॥ ३४ ॥ वापीकूपतडागानां तथैवविधिपूर्वकम् ॥ क्वचित्कथाप्रसङ्गाश्च वाचकःपरिशंसति ॥ ३५ ॥ क्वचिद्गाथाःप्रकुर्वन्ति कवयःपुरउत्तमे ॥ क्वचिन्मल्लाविरुध्यन्ति नटानाट्यपराःक्वचित ॥ ३६ ॥ तडागाश्चविराजन्ते मणिसोपानपङ्क्तयः॥चञ्चलाचपलाबालाश्यामाषोडशवार्षिकी॥ ३७॥ वारिहारपरातत्र मणिहेमघटोत्कटा॥ एवंव्यासपुरीरम्या निर्मितायोगमायया ॥ ३८ ॥ शम्भुनासर्वपापघ्नी प्रियाप्रियचिकीर्षया॥ विशालाबहुविस्तीर्णा पुण्यापुण्यजनाश्रया ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु सर्वलोकेषुगीयते ॥ विशालेतिसमाख्याता पुरीरम्यासनातनी ॥ ४० ॥ यत्रकुत्रस्थितोवापि सर्वावस्थाङ्गतोपिवा ॥ विशालेतिवदन्नित्यं शिवलोकेमहीयते ॥ ४१ ॥ ईदृशीनपुरीव्यास भुविब्रह्माण्डगोलके ॥ विशालासदृशीचान्या भुक्तिमुक्तिप्रदानृणाम् ॥ ४२ ॥ पितॄनुद्दिश्यकुर्वन्ति श्राद्धकालेनरास्तुयत ॥ तदक्षयंभवेत्तेषां पितृकल्पे

जी ! इसप्रकार शिवजी ने प्रिय करने की इच्छा से योगमायाके द्वारा सब पापों को नाशनेवाली व प्यारी सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि विशाल व बहुत चौंडी तथा पवित्र व पवित्रजनों से आश्रयवाली है ॥ ३८। ३९ ॥ इसलिये सब कालोंमे विशाला ऐसी कहीहुई सुन्दरी व सनातनी पुरी सब लोकोंमें गानकीजाती है ॥४०॥ जहां कहां भी स्थित व सब दशामें प्राप्तभी नित्य विशाला ऐसा कहताहुआ मनुष्यशिवलोक में पूजाजाता है ॥ ४१ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी पै ब्रह्माण्ड गोलक में विशाला के समान मनुष्यों को भुक्ति मुक्तिदायिनी ऐसी अन्य पुरी नहीं है ॥ ४२ ॥ श्राद्धके समयमें पितरोंको उद्देश कर मनुष्य जो करते हैं उनका वह अक्षय होताहै

और पितृकल्प मे गान कियाजाता है ॥ ४३ ॥ जिन्होंने विशाला पुरी में प्रसंग से स्नान दानादिक किया है जहां कहीं भी प्राप्त वे मनुष्य मरकर शिवजी के स्थान को प्राप्तहोते हैं ॥ ४४ ॥ वे धन्य व अत्यन्त पवित्रहैं कि जिनकी प्रीति सदैव विशालापुरीमें निश्चल रहतीहै और विशालाके फलको कहनेके लिये सदैव शेषजी भी नहीं समर्थ हैं ॥ ४५ ॥ कथाके सुननेही से व कहे जाने से उसीक्षण महापातकसे उपजाहुआ पाप छूटजाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ४६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार कुशस्थली पुरी विशाला हुईहै और प्रति कल्पमें जिसप्रकार हुई है वैसेही कहते हुये मुझसे सुनिये ॥४७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

चगीयते ॥ ४३ ॥ स्नानदानादिकंयैस्तु विशालायांप्रसङ्गतः ॥ यत्रकुत्रगतास्तेवै मृतायान्तिशिवक्षयम् ॥ ४४ ॥ धन्याःपुण्यतमालोके प्रीतिर्येषांसदाचला ॥ विशालायाःफलंशश्वच्छेषोवक्तुन्नशक्नुयात् ॥ ४५ ॥ कथाश्रवणमात्रेण वाच्यमानेनतत्क्षणात् ॥ महापापोद्भवंपापं मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ४६ ॥ एवंव्यासपुरीजाता विशालाचकुशस्थली ॥ प्रतिकल्पंयथाजाता तथामेशृणुभाषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे विशालाभिधानकथनन्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुष्वावहितोव्यास कथामेकाग्रमानसः ॥ मयाव्यासमुखात्प्राप्ता कल्पभेदकथाशुभा ॥ १ ॥ गुह्याद्गुह्यतराश्रेष्ठा देयायस्यनकस्यचित् ॥ नास्तिकायकृतघ्नाय नाशिष्यायकदाचन ॥ २ ॥ एषापुण्यतमा व्यास कथापापहरापरा ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण कल्पदोषोनबाधते ॥ ३ ॥ प्रमाणंकल्पपर्यन्तं ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ म

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर प्रतिकल्पा भो नाम । उनसठिवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकाग्रमनवाले होकर व सावधान होतेहुये तुम कथाको सुनो मैंने व्यासजी के मुखसे कल्पके भेदकी उत्तम कथाको पायाहै ॥ १ ॥ जोकि गुप्त से भी अधिक गुप्त व श्रेष्ठ है और जिस किसी को देने योग्य नहीं है और नास्तिक, कृतघ्न व विनाशिष्य के लिये कभी न देना चाहिये ॥ २ ॥ हे व्यासजी ! यह कथा अति पवित्र व उत्तम तथा पापहारिणी है

कि जिसके सुननेहीसे कल्पका दोष बाधा नहीं करता है ॥ ३ ॥ सब मन्वन्तरों में व कल्पों तथा कल्पान्तरों में परमेष्ठी ब्रह्माका कल्पपर्यन्त प्रमाण है ॥ ४ ॥ हेसत्तम ! जितनी संख्या प्रमाण कीगई है उसको सुनिये कि सूर्यनारायणजी मनुष्यों व देवताओं के दिनरात्रिका विभाग करते हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस गणना को ग्रहण कर संख्याको सुनिये कि पन्द्रह निमेषों की काष्ठा होतीहै और उनतीस काष्ठाओं की कलाहोती हैं ॥ ६ ॥ व तीस कलाओं का मुहूर्त होताहै और उन तीस मुहूर्तोंसे विद्वानोंने दिनरात ऐसा कहा है व चन्द्रमा सूर्यकी गति कहीगई है ॥ ७ ॥ नित्य इन सबों में सूर्यनारायणकी गतिके भेदसे मनुष्यों का वह दिनहोता है और वैसेही

न्वन्तरेषुसर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषुच ॥ ४ ॥ यावत्सङ्ख्यापरिमिता तावतींशृणुसत्तम ॥ अहोरात्रंविभजते सूर्योमानुषदैवतम् ॥ ५ ॥ तामुपादायगणनां शृणुसङ्ख्यांद्विजोत्तम ॥ निमिषैःपञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिंशत्तुताःकलाः ॥ ६ ॥ त्रिंशत्कलोमुहूर्तस्तु त्रिंशद्भिस्तैर्मनीषिणः ॥ अहोरात्रमितिप्राहुश्चन्द्रादित्यगतिस्तथा ॥ ७ ॥ रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषुनित्यशः ॥ तदहस्तुमनुष्याणां रात्रिश्चैवतुतादृशी ॥ ८ ॥ पक्षामासाऋतूरब्दमयनंचप्रकीर्तितम् ॥ पितॄणाञ्चैवदेवानां ब्रह्मणश्चयथातथम् ॥ ९ ॥ यावत्सङ्ख्यासमाख्याता आयुरन्तश्चतादृशः ॥ अहोरात्राःपञ्चदश पक्षइत्यभिशब्दितः ॥ १० ॥ पक्षौद्वौतौकृतोमासो मासौद्वावृतुरुच्यते ॥ अयनंतैस्त्रिभिःप्रोक्तमब्देद्वेअयनेस्मृतः ॥ ११ ॥ दक्षिणंचोत्तरञ्चैवंसङ्ख्यातत्त्वविशारदैः ॥ मानेनानेनयोमासः पक्षद्वयसमन्वितः ॥ १२ ॥ पितॄणांतदहोरात्रमितिकालविदोविदुः ॥ शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्तुशर्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णपक्षेत्विहश्राद्धं पितॄणांवर्ततेततः ॥ मानुषेनतुमानेन योवैसंवत्स

रात्रि होती है ॥ ८ ॥ और पितरो, देवताओं व ब्रह्माका पक्ष, मास, ऋतु,वर्ष व अयन यथायोग्य कहागयाहै ॥ ९ ॥ व जितनी संख्या कहीगई हैं वैसाही आयुर्बल का अन्त है पन्द्रह दिनरात्रोंका पक्ष ऐसा कहागया है ॥ १० ॥ और उन दो पक्षोंका मास कहागया है व दो महीनों की ऋतु कहीजाती है और उन तीन ऋतुवों से अयन कहा गयाहै व संख्याके यथार्थ जाननेमें चतुर लोगोंने दक्षिण व उत्तर दो अयनों का वर्ष कहाहै इस प्रमाणसे दो पक्षोंसे संयुक्त जो महीनाहै ॥ ११ । १२ ॥ वह पितरों का दिन रात होता है ऐसा कालके जाननेवालोंने कहा है शुक्लपक्ष उन पितरों का दिन है व कृष्णपक्ष रात्रि है ॥ १३ ॥ उसीकारण इस संसार मे

कृष्णपक्ष में पितरों की श्राद्ध वर्तमान होती है मनुष्योंवाले प्रमाण से जो वर्ष कहा गया है ॥ १४ ॥ वह देवताओं का दिन रात्रि होताहै और उत्तरायण दिन है व यथार्थ जाननेवाले विद्वानों से दक्षिणायन रात्रि कहीगई है ॥ १५ ॥ और देवताओंवाला सौगुना वर्ष मनुका दिनरात्रि कहागया है व दशगुना दिनरात्रि मनुका पक्ष कहाजाताहै ॥ १६ ॥ पक्षसे दशगुना महीना होता है और बारहगुने महीनों से यथार्थ दर्शी विद्वानों ने मनुवों की ऋतु कहाहै ॥ १७ ॥ और उन छा ऋतुवों से वर्ष कहीगई है उसीसे संख्या बांधी जातीहै व चारही हज़ार वर्ष सतयुग होताहै ॥ १८ ॥ और उतनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होताहै और

रस्स्मृतः ॥ १४ ॥ देवानांतदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ॥ दक्षिणायनंस्मृतारात्रिःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ १५ ॥ दिव्यमब्दंशतगुणमहोरात्रंमनोस्स्मृतम् ॥ अहोरात्रंदशगुणं मानवःपक्षउच्यते ॥ १६ ॥ पक्षाद्दशगुणोमासो मासैर्द्वादशभिर्गुणैः ॥ ऋतुर्मनूनांसम्प्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥ १७ ॥ षड्भिस्तैर्वर्षआख्यातस्तेनसङ्ख्यानिबध्यते ॥ चत्वार्यैवसहस्राणि वर्षाणान्तुकृतंयुगम् ॥ १८ ॥ तावतीतुभवेत्सन्ध्या सध्यांशश्चतथाविधः ॥ त्रीणिवर्षसहस्राणि त्रेतायाःपरिमाणतः ॥ १९ ॥ तस्याश्चतावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ तथावर्षसहस्रेद्वे द्वापरंपरिकीर्तितम् ॥ २० ॥ तस्यापितावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ कलिर्वर्षसहस्रन्तु संख्यातोत्रमनीषिभिः ॥ २१ ॥ तस्यतावतिकासन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ॥ एषाद्वादशसाहस्री युगसंख्याप्रकीर्तिता ॥ २२ ॥ दिव्येनानेनमानेन युगसंख्यानिबोधमे ॥ ससर्जसपुनस्तात जगत्सर्वमिदंततम् ॥ २३ ॥ कृतंत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चैवचतुर्युगम् ॥ युगंतदेकसप्त

तीनहज़ार वर्ष त्रेताका प्रमाण है ॥ १९ ॥ और उसकी उतनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होताहै और दो हजार वर्ष द्वापर कहागया है ॥ २० और उसकी भी उतनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है और इस विषय में विद्वानों ने हजार वर्ष कलियुगकी संख्या कियाहै ॥ २१ ॥ और उसकी उतनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है यह बारहहज़ार युगकी संख्या कहीगई है ॥ २२ ॥ इस दिव्य याने देवतावाले प्रमाणसे मुझसे युगकी संख्या को जानिये हे तात ! फिर उन ब्रह्मा ने

इस सब विस्तारित संसारको रचा है॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग यह चारों युग हैं और इकहत्तरसे गुना कियाहुआ वह युग॥ २४ ॥ गणना के प्रयोजन में चतुर मनुष्यों से मन्वन्तर ऐसा कहागयाहै और वह अयनभी कहागया है व दक्षिण, उत्तर दो अयन होते हैं ॥ २५ ॥ हे संसारके स्वामी ! इसके भलीभांति प्राप्तहोने पर मनु नाश होजाते हैं तदनन्तर इतनेही समयतक अन्य मनु होताहै ॥ २६ ॥ और नृपेन्द्र मनुके बीतने पर वह संवत्सर कहागया है और यथार्थदर्शी मनुने उसीको अयन कहाहै ॥ २७ ॥ और वही ब्रह्मा का दिन कहागया है व कल्प ऐसा कहाजाता है और विद्वानों से हजार युगतक वह रात्रि

त्या गुणितांद्विजसत्तम ॥ २४ ॥ मन्वन्तरमितिप्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः ॥ अयनंचापितत्प्रोक्तं द्व्ययनेदक्षिणोत्तरे ॥ २५ ॥ मनुःप्रलीयतेह्यत्र सम्प्राप्तेजगतःप्रभो ॥ ततोपरोमनुःकालमेतावन्तंभवत्युत ॥ २६ ॥ समतीतेतुराजेन्द्रे प्रोक्तस्संवत्सरस्सवै ॥ तदेवचायनंप्रोक्तं मुनिनातत्त्वदर्शिना ॥ २७ ॥ ब्रह्मणस्तदहःप्रोक्तः कल्पश्चेतिसमुच्यते ॥ सहस्रयुगपर्य्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेबुधैः ॥ २८ ॥ निमज्जत्यथतत्रोर्वी सशैलवनकानना ॥ तस्मिन्युगसहस्रेतु पूर्णेभरतसत्तम ॥ २९ ॥ ब्राह्मयोदिवसपर्यन्तं कल्पोनिश्शेषउच्यते ॥ युगानिसमतीतानि साग्राणिकथितानिते ॥ ३० ॥ कृतत्रेतानियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ॥ चतुर्दशैतेमनवःकथिताःकीर्तिवर्द्धनाः ॥ ३१ ॥ वेदेषुसपुराणेषु सर्वेषुप्रभविष्णवः ॥ प्रजानाम्पतयोव्यास धन्यमेषांप्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरेषुसंहारास्संहारान्तेषुसम्भवाः ॥ नशक्यमन्तस्तेषांवै वक्तुंवर्षशतैरपि ॥ ३३ ॥ विसर्गाश्चप्रजनांवै संहारोस्यचभारत ॥ मन्वन्तरेषुसंहारः श्रूयतेभरतर्षभ ॥ ३४ ॥

कहीजाती है ॥ २८ ॥ हे भरतोत्तम ! इसके अनन्तर उस रात्रि में पर्वत, जल व वनों समेत पृथ्वी डूबजाती है और उस हजार युगके पूर्ण होने पर ॥ २९ ॥ दिन पर्यन्त ब्रह्माका समस्त कल्प कहाजाता है कुछ अधिक बीते हुये युग तुमसे कहेगये ॥ ३० ॥ और सतयुग व त्रेता संयुक्त युग मन्वन्तर कहाजाता है यशके बढ़ानेवाले ये चौदह मनु कहेगये ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! पुराणों समेत सब वेदों में प्रजाओं के पति समर्थ हैं और इनका कीर्तन धन्य है ॥ ३२ ॥ व मन्वन्तरों में संहार और संहार के अन्तों में उत्पत्तियां होती हैं व उनका अन्त सैकड़ों वर्षोंसे भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३३ ॥ हे भारत ! प्रजाओंकी सृष्टियां व उनका संहार होताहै और

हे भरतर्षभ ! मन्वन्तरों में संहार सुनाजाताहै ॥ ३४ ॥ जहां कि तपस्या,ब्रह्मचर्य व शास्त्र से संयुक्त सब देवता सप्तर्षियों समेत स्थित होते हैं ॥ ३५ ॥ व हज़ार युग पूर्णहोने पर सब कल्प कहाजाता है उसमें समस्तप्राणी सूर्यनारायणकी किरणों से जलजाते हैं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्माको आगे कर आदित्यगणों समेत ब्राह्मण (सप्तर्षि) सुरोत्तम प्रभु नारायण विष्णुजी में प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ वे अव्यक्त तथा सनातन देवजी कल्पान्तोंमें बार २ सब प्राणियों के रचनेवाले हैं और उनका यह सब संसारहै ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी ! महादेव व ब्रह्मा संयुक्त वही विष्णुजी विद्यमान रहते हैं व उस ईश्वरने मनोहर महाकाल वन में निवास कियाहै ॥ ३९ ॥ हे व्यास

यत्रतिष्ठन्तिवैदेवास्सर्वेसप्तर्षिभिस्सह ॥ तपसाब्रह्मचर्येण श्रुतेनचसमन्विताः ॥ ३५ ॥ पूर्णेयुगसहस्रेतु कल्पोनिश्शेषउच्यते ॥ तत्रसर्वाणिभूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६ ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ॥ प्रविशन्तिसुरश्रेष्ठं हरिन्नारायणंप्रभुम् ॥ ३७ ॥ स्रष्टासर्वभूतानां कल्पान्तेषुपुनःपुनः ॥ अव्यक्तश्शाश्वतोदेवस्तस्यसर्वमिदंजगत् ॥ ३८ ॥ सएवविद्यतेव्यास महेशविधिसंयुतः ॥ महाकालवनेरम्ये वासंचक्रेसईश्वरः ॥ ३९ ॥ प्रलयोनबाधतेव्यास महाकालवनोत्तमे ॥ कल्पेकल्पेचवैरम्या पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ ४० ॥ निरामयानिरातङ्का निर्विकारायुगेयुगे ॥ मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानिसम्भवन्तिच ॥ ४१ ॥ अत्रैवचवनेरम्ये ब्रह्मालोकपितामहः ॥ प्रजानांपतयोयेते दक्षःप्राचेतसस्तथा ॥ ४२ ॥ मरीचिःकश्यपोरुद्रो येचान्येभार्गवादयः ॥ कल्पादौसृजतेलोकाञ्चराचरयथातथान् ॥ ४३ ॥ एवमादौपुराव्यास कल्पंकल्पान्तकंसदा ॥ वाराहोवामनोविष्णुः पितृणांवैतथैवच ॥ ४४ ॥ कल्पभेदा

जी ! महाकाल नामक उत्तम वनमें प्रलय बाधा नहीं करताहै और प्रतिकल्पमें यह कुशस्थली पुरी सुन्दरी होतीहै ॥ ४० ॥ व युग २ में व्याधिरहित व शंकाहीन तथा विकार रहित होती है और मार्कण्डेयजी से आज्ञा दियेहुये कल्पहोते हैं ॥ ४१ ॥ इसी सुन्दर वनमें लोकोंके पितामह ब्रह्माजी हैं और जो प्रजाओंके पति हैं वे प्रचेताओं के पुत्र दक्षजी हैं ॥ ४२ ॥ व मरीचि, कश्यप, रुद्र व जो अन्य रुद्रादिकहैं वे वर्तमान हैं कल्पके आदि में वे ब्रह्माजी यथायोग्य चराचरलोकों को रचते हैं ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय इसीप्रकार पहले सदैव कल्प व कल्पान्त होता है वाराह, वामन व विष्णु ये पितरों के ॥ ४४ ॥ कल्प भेद उत्तम महाकाल

वनमें कहेगये हैं हे द्विजोत्तम! चौरासी कल्प हुये हैं॥ ४५॥ व हे सत्तम! उतनेही ज्योतिर्लिङ्ग वन में स्थित हैं और मही सागर व पर्वत फिर उत्पन्न होते हैं व फिर नाश होजाते हैं॥ ४६॥ और बार २ होवैंगे व यह पुरी अचल कहीगई है उसीकारण सब कालों में व सब लोकोंमें गान कीजाती है॥ ४७॥ व हे व्यासजी! पृथ्वी में प्रतिकल्पा संज्ञक ऐसी वह पुरी होवैगी कि जिसमें इन्द्रियों के दमन करनेवाले मनुष्य हैं व स्नान, दानादिक॥ ४८॥ और जप व होम तथा जिन पितरों को उद्देश कर श्राद्ध दियाजाता है करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उनकी आवृत्ति नहीं होतीहै॥ ४९॥ वैशाख महीने में पूर्णमासी तिथिमें मनुष्य प्रतिकल्पा पुरीमें प्राप्तहोकर

स्समाख्याता महाकालवनेशुभे॥ चतुराशीतिकल्पानि सञ्जातानिद्विजोत्तम॥ ४५॥ तावन्तिज्योतिर्लिङ्गानि वनेतिष्ठन्तिसत्तम॥ पुनर्जातापुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः॥ ४६॥ पुनःपुनर्भविष्यन्ति पुरीह्येषाचलास्मृता॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु सर्वलोकेषुगीयते॥ ४७॥ प्रतिकल्पेतिसंज्ञासा भुविठ्यासभविष्यति॥ यस्याञ्चमानवादान्ताःस्नानदानादिकंतथा॥ ४८॥ जपंहोमंतथाश्राद्धं पितृनुद्दिश्यदीयते॥ नतेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि॥ ४९॥ प्रतिकल्पामनुप्राप्य दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम्॥ वैशाखेपूर्णमास्यांवैस्नापयेदेकवासरम्॥ ५०॥ प्रसङ्गतोरजःक्रान्तो चिप्राम्भसिचमानवः॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्विष्णुलोकंसगच्छति॥ ५१॥ मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेनयत्फलम्॥ तत्फलंप्राप्नुतेजन्तुः प्रतिकल्पात्क्षणादपि॥ ५२॥ प्रतिकल्पेचकल्पान्ते सदैवासीत्पुरीशुभा॥ तस्मात्सर्वजनैःख्याता प्रतिकल्पाद्विजो म॥ ५३॥ यएतस्यांमहाभागाः प्रीतिंकुर्वन्तिमानवाः॥ नतेषांकल्पभेदोयं स्वप्नवज्जायतेक्षणात्॥ ५४॥

न तक नहवावै॥ ५०॥ और धूलिसे ग्लानिको प्राप्त जो मनुष्य प्रसंग से शिप्रानदीके जलमें स्नान करता है उसके कुछ पातक नहीं ताहै॥ ५१॥ हज़ारों मन्वन्तरोंमे काशीवाससे जोफल मिलता है उसी फलको प्राणी प्रतिकल्पा पुरी क्षणभर से भी प्राप्तहोताहै॥५२॥ कल्पान्त में सदैव यह उत्तम पुरी हुई है उसी कारण सब मनुष्यों से प्रतिकल्पा कही गई है॥ ५३॥ बहुत ऐश्वर्यवाले जो

पुरुष इसमें प्रीति करते हैं उनके यह कल्पभेद नहीं होता है और क्षणभर में स्वप्न की नाईं होता है ॥ ५४ ॥ और प्रतिकल्पा से उपजी हुई पवित्र व उत्तम कथा को जो मनुष्य सुनता है व बड़े यत्न से सुनाता है वह ब्रह्महत्या को नाश करताहै ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणऽवन्तीखण्डदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाप्रतिकल्पाभिधानकथनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा। वैष्णव अरु माहेश ज्वर भे शिप्रा महं शान्त। सोइ साठि अध्याय में वर्णित चरित सुकान्त॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ व्यास जी ! इसप्रकार

यःशृणोतिकथांपुण्यां प्रतिकल्पोद्भवांशुभाम् ॥ श्रावयेद्वाप्रयत्नेन ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेप्रतिकल्पाभिधानकथनन्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एवंव्यासपुरीरम्या नामभूतासनातनी ॥ युगेयुगेयथाजाता तथाख्यातामयानघ ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोवेदविदांवर॥शिप्रायाश्चकथांपुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ २ ॥ सुन्दरकण्डंसमाख्यातं पिशाचमोचनंतथा ॥ नीलगङ्गाइतिप्रोक्ता कर्कराजमतःपरम् ॥ ३ ॥ पुष्कराणिचसर्वाणि गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातं नाम्नाधर्मसरस्तथा ॥ ४ ॥ ख्यातंसङ्गमजंतीर्थं शनेर्जन्मकथाशुभा ॥ च्यवनाश्रमेचयावार्ता तथानागालयेशुभे॥ ५ ॥ पुरुषोत्तममहिमानंकालेकेनकथंभवेत्॥ एतद्वेदितुमिच्छामि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ६॥

व्यासजी बोले कि हे वेदविदांवर ! मैं पवित्र व हुयेनामवाली व मनोहर तथा सनातनी पुरी प्रतियुग में जिसप्रकार हुई है उसी भांति मुझसे कहीगई ॥ १ ॥ पुण्यदायिनी तथा पापहारिणी शिप्रा की कथा को तुमसे फिर सुनना चाहता हूं ॥ २ ॥ कि सुन्दरकंड व पिशाचमोचन तीर्थ कहागया है और नीलगंगा ऐसी कही हुई व इसके उपरान्त कर्कराज तीर्थ कहा गया है ॥ ३ ॥ और सब पुष्कर व अतिउत्तम गयातीर्थ तथा गोमती कुंड कहागया है व धर्मसर नामक है ॥ ४ ॥ और संगम से उपजाहुआ तीर्थ कहागया है व शनिश्चर के जन्म की उत्तम कथा और च्यवन के आश्रम में व उत्तम नागस्थान में जो वार्ता हुई है ॥ ५ ॥ और पुरुषोत्तम

की महिमा को कहिये कि वह समय में किससे किसप्रकार होती है मैं इसको जानना चाहता हूं जो कि तुम्हारे मनमें वर्तमान है ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग व्यासजी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये कि जिसप्रकार उत्तम महाकाल वनमें शिप्रानदी हुई है ॥ ७ हे वत्स ! भूतल में शिप्राके समान नदी नहीं है कि जिसके किनारे क्षणभर में मुक्ति होजाती है बहुत दिनोंतक सेवा से क्या है ॥ ८ ॥ वैकुंठ में क्षिप्रा व स्वर्ग में ज्वरघ्नी नामक होती है और यमद्वार में पापघ्नी व पाताल में अमृत संभवा नामक है ॥ ९ ॥ और वाराहकल्प में विष्णुदेहा ऐसे नाम से कही गई है व अवन्तीपुरी में कामधेनु से उपजीहुई शिप्रानदी कहीगई है ॥ १० ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाभाग कथांपापहरांपराम् ॥ यस्मिन्कालेयथाजाता महाकालवनेशुभे ॥ ७ ॥ नास्तिवत्समहीपृष्ठे शिप्रायाःसदृशीनदी ॥ यस्यास्तीरेक्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनवै ॥ ८ ॥ वैकुण्ठेजायतेक्षिप्रा ज्वरघ्नीचसुरालये ॥ यमद्वारेचपापघ्नी पातालेमृतसम्भवा ॥ ९ ॥ वाराहकल्पेवैप्रोक्ता विष्णुदेहेतिनामतः ॥ शिप्रावन्त्यांसमाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्नृषिसत्तम ॥ वक्तुमर्हसिक्षिप्रायास्समासेनकथांशुभाम् ॥ ११ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मकपालमादाय भिक्षार्थंव्यचरन्महीम् ॥ महादेवोविशुद्धात्मा सर्वलोकेषुसर्वतः ॥ १२ ॥ अप्राप्तभिक्षोभिक्षार्थी वैकुण्ठमगमद्विभुः ॥ गतस्त्वातिथ्यवेलायां अमन्देवोयतस्ततः ॥ १३ ॥ लोकनिन्दापरःक्रुद्धः क्षुधितोबहुवासरैः ॥ भिक्षान्देहीतिभोब्रह्मन् क्षुधितोहंसमागतः ॥ १४ ॥ कपालंचकरेकृत्वा इत्युवाचपुनःपुनः ॥ गृह्यतांहरभिक्षान्ते ददामीतिहरिस्तदा ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वाकरमुद्यम्य तर्जन्यङ्गुलिमद

व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, भगवन् ! यह विचित्र कहागया और तुम क्षिप्रानदी की उत्तम कथा को संक्षेप से कहने योग्य हो ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पवित्र चित्तवाले महादेव जी ब्रह्मा के कपाल को लेकर भिक्षा के लिये सब लोकों में सब ओर भ्रमतेभये ॥ १२ ॥ और भिक्षा को न पायेहुये भिक्षार्थी स्वामी शिवदेवजी जहां तहां घूमते हुये आतिथ्य समय में वैकुण्ठ को गये ॥ १३ ॥ जो कि लोक की निन्दा में तत्पर व क्रोधित तथा बहुत दिनो से क्षुधित थे उन्होने यह कहा कि हे ब्रह्मन् ! भिक्षा को दीजिये मैं क्षुधित आया हूं ॥ १४ हाथ मे कपाल को कर के यह बार २ कहा व हे शिवजी ! ग्रहण कीजिये मै भिक्षा तुम को देता हूं उस

समय विष्णुजी ने ॥ १५ ॥ यह कहकर व हाथ को उठाकर तर्जनी (अंगूठेके पासवाली) अंगुली को दिखलाया तब क्रोधित शिवजीने क्रोधसे त्रिशूलसे मारा ॥ १६ ॥ तब अंगुली से उपजाहुआ बहुत रक्त बहचला और उससे शिवजीके हाथ में स्थित पात्र शीघ्रही पूर्ण होगया ॥ १७ ॥ तब उबलते हुये पात्रसे सब ओर धारा उत्पन्न हुई और उस स्थानसे रक्त की धारसे उपजी हुई शिप्रानदी उत्पन्न हुई ॥१८॥ और त्रिलोक को पवित्र करनेवाली नदी शीघ्रही वैकुण्ठ से उत्पन्नहुई इसप्रकार नदियों में श्रेष्ठ शिप्रानदी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहुई ॥ १९ ॥ व हे व्यासजी ! जिस प्रकार ज्वरघ्नी कही गईहै मैं वैसेही कहताहूं कि जब अनिरुद्ध से अपमान किये

शंयत् ॥ तदारुद्रस्समाध्मातस्त्रिशूलेनाहनद्रुषा ॥ १६ ॥ तदाङ्गुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ॥ पूर्णपात्रंचतेनाशु शङ्करस्यकरेस्थितम् ॥ १७ ॥ तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमन्ततः ॥ तत्रस्थानात्समुद्भूता च्छिप्रासृग्धारसम्भवा ॥ १८ ॥ वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ एवंशिप्रासरिच्छ्रेष्ठा त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ १९ ॥ ज्वरघ्नीचयथा प्रोक्ता तथाऽव्यासब्रवीम्यहम् ॥ यदाबाणासुरोदैत्यः कृष्णेनसहसंयुगे ॥ २० ॥ योधयामासदैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेल नः ॥ सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥ २१ ॥ तस्मात्क्रुद्धोवासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ॥ चिच्छेददोस्सहस्रन्तु क्षुरप्रेणाशुगामिना ॥ २२ ॥ सतदाभग्नसङ्कल्पश्छिन्नदोश्चरणार्दितः ॥ युद्धात्पराङ्मुखोभूत्वा शङ्करंशरणंययौ ॥ २३ ॥ तदागतंमहादैत्यं समीपेभयविह्वलम् ॥ विलोक्यकृपयाविष्टो गतस्सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥ २४ ॥ छित्वाबाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे ॥ क्रुद्धःकृष्णोमहाबाहुः परसेनान्तकोबली ॥ २५ ॥ स्थितोयत्राचलोऽव्यास गतस्तत्रमहेश्वरः ॥

हुये बाणासुर दैत्यने समर में कृष्णके साथ हज़ार भुजाओं से युद्ध किया जो कि दैत्यों में श्रेष्ठ व वीर तथा अनेक भांतिके अस्त्रों को उठाये था ॥ २० । २१ ॥ तब उसी कारण शीघ्रता समेत क्रोधित वासुदेवजी ने चक्रको लेकर शीघ्रगामी क्षुरप्र अस्त्र से हज़ार भुजाओं को काटडाला ॥ २२ ॥ तब नष्ट संकल्पवाला व कटी भुजाओंवाला व पादपीडित तथा समर से विकल बाणासुर युद्धसे विकल होकर शंकरजी की शरण में गया ॥ २३ ॥ तब डरसे विकल समीप आयेहुये महादैत्य को देखकर दया संयुत महादेवजी समर शिरमें गये ॥ २४ ॥ दैत्यराज बाणासुर की हज़ार भुजाओं को काटकर शत्रु सेनाके नाशक व बलवान् महाभुज श्रीकृष्णजी क्रोधितहुये ॥ २५ ॥

हे व्यासजी ! जहांपर निश्चल श्रीकृष्णजी स्थित थे वहांपर महादेवजी गये और शरसमूहों को फेंकतेहुये उन्हों ने श्रीकृष्णजी को मनाकिया ॥ २६ ॥ वे दोनों प्राप्तहोकर समस्त प्राणियों को भयंकर तथा बड़ेविकराल शस्त्रास्त्रों से आपसमें भयानक युद्धकर ॥ २७ ॥ उस समय श्रीकृष्णजी ने शिवजी को मारने की इच्छा से वैष्णव अस्त्र को संधानकिया तब श्रीकृष्णजी के प्राणोंको हरने में उत्कण्ठित शिवजीने सबको संहार करनेवाले पाशुपत नामक अस्त्रको सन्धान किया तब सब लोकों में हाहाकार उत्पन्न हुआ सुनाजाता था ॥ २८ । २६ ॥ फिर श्रीकृष्णजी ने महादेवजी के ऊपर मोहन अस्त्र को छोड़ा तब देवमाया के कारण उस अस्त्र से शिवजी

वारयामासकृष्णंवै शरौघांश्चसमाकिरन् ॥ २६ ॥ अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धंकृत्वाचदारुणम् ॥ शस्त्रास्त्रैश्चमहाघोरैस्सर्वप्राणिभयङ्करैः ॥ २७॥ वैष्णवास्त्रंतदाकृष्णस्सन्दधेहरजिघांसया ॥ पाशुपतञ्चनामास्त्रं सर्वसंहारकारकम् ॥२८॥ सन्दधेवैतदाशम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ॥ हाहाकारस्तदाजातस्सर्वलोकेषुश्रूयते ॥ २९ ॥ मोहनास्त्रंपुनःकृष्णो हरोपरिमुमोचह ॥ तेनास्त्रेणतदाशम्भुर्मोहितोदेवमायया ॥ ३० ॥ जृम्भमाणःस्थितस्संख्ये किञ्चित्कालंमुहुर्मुहुः ॥ लब्धसंज्ञःपुनर्जातो यदारुद्रोमहाहवे ॥ ३१ ॥ तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः ॥ ललाटफलकात्सद्यो वीरभद्रोमहाबलः ॥ ३२ ॥ त्रिनेत्रस्त्रिशिरोहस्वस्त्रिपादोबर्कराकृतिः ॥ क्षुद्रोजटिलभस्माङ्गो महाव्याधिर्दुरत्ययः ॥ ३३ ॥ कृष्णसेनांसमासाद्य महादेवेनप्रेरितः ॥ प्राणिनांकदनंचक्रे सर्वेषांकृष्णसङ्गिनाम् ॥ ३४ ॥ पराङ्मुखपराभग्ना ज्वराभिघातपीडिता ॥ बभूवसहसाव्यास सेनाकृष्णेनपालिता ॥ ३५ ॥ तथाभूतांसमालोक्य जृम्भमाणांरुजार्दिताम् ॥ स्व

मोहित हुये ॥ ३० ॥ व बार बार जमुहातेहुये शिवजी समर में कुछ समय तक स्थितरहे और जब महायुद्धमें शिवजी फिर प्राप्त चैतन्यतावाले हुये ॥ ३१ ॥ तब क्रोध से तिरस्कृत शिवजी ने माहेश्वरज्वर को निर्माण किया व मस्तक से शीघ्रही महाबलवान् वीरभद्रजी उत्पन्न हुये ॥ ३२ ॥ और त्रिलोचन, त्रिभाल, लघु,त्रिचरण व अजाकार, क्षुद्र तथा जटावान् व भस्म अंगवाले और दुःखसे उल्लंघन करने योग्य महारोग ने ॥ ३३ ॥ महादेवजी से प्रेरित होकर श्रीकृष्णजी की सेना में प्राप्त होकर समस्त श्रीकृष्णजी के साथी प्राणियों का विनाश किया ॥३४॥ हे व्यासजी ! श्रीकृष्णजी से पालित व ज्वरकी चोटसे पीड़ित सेना भग्न होकर अचानकही विमुख

में तत्परहुई ॥ ३५ ॥ रोगसे विकल व नष्ट संकल्पवाली, जमुहातीहुई तथा शिवजीके ज्वरसे पीडित वैसी सेना को देखकर ॥ ३६ ॥ बड़े क्रोधी श्रीकृष्णजीने वैष्णव ताप को रचा और विष्णुजी के उस ज्वरसे व माहेश्वर ज्वरसे ॥ ३७ ॥ आपस में बहुतही भयंकर युद्धहुआ व बहुत सग्रामकर माहेश्वर ज्वर विकलहुआ ॥ ३८ ॥ व समस्त लोकों में जाकर शान्ति को न प्राप्त हुआ और उससे पीड़ित वह सुन्दर महाकाल वनमें प्राप्तहुआ ॥३९॥ व क्षिप्रानदी में मग्नहोगया तदनन्तर उत्तम शान्तिको प्राप्तहुआ और बड़े क्रोधी माहेश्वरज्वरको शान्तदेखकर॥ ४० ॥ वैष्णव ज्वर ने भी प्राप्तहोकर उस नदी मे स्नानकिया और उसके प्रभावसे विष्णु व शिवजी से उपजे

सेनांभग्नसङ्कल्पां माहेशज्वरपीडिताम् ॥ ३६ ॥ ससर्जवैष्णवन्तापं कृष्णःपरमकोपनः ॥ तेनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेणच ॥ ३७ ॥ अन्योन्यमभवद्युद्धं घोरंघोरतरंमहत् ॥ सङ्ग्रामंबहुलंकृत्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वरः॥३८॥ सर्वलोकेषुगत्वावै नशान्तिंप्रतिजग्मिवान् ॥ महाकालवनेरम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥ ३९ ॥ निमग्नश्चैवक्षिप्रायां ततश्शान्तिपरांययौ ॥ दृष्ट्वामाहेश्वरंशान्तं ज्वरंपरमकोपनम् ॥ ४० ॥ वैष्णवोपिसमासाद्य तस्यांमज्जनमाचरत् ॥ तस्याःप्रभावसन्नष्टौ ज्वरौहरिहरोद्भवौ॥४१॥तस्मात्सर्वेषुकालेषु ज्वरघ्नीसाभवत्क्षणात्॥ ज्वराभिभूताह्यासाद्यजनाः परमदुःखिताः ॥ ४२ ॥ निमज्जन्तिचशिप्रायां वसन्तिचसमाहिताः ॥ नतेषांबाधतेपीडा ज्वरोद्भूताकदाचन॥४३॥ सत्यमुक्तंतदाव्यास ब्रह्मन्हरिहरेणच ॥ येशृण्वन्तिकथांदिव्यां नराश्चैकाग्रमानसाः ॥४४॥नतेषांजायतेकिञ्चिज्ज्वरसन्तापजंभयम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्येज्वरानुग्रहोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

हुये ज्वर नष्ट होगये ॥ ४१ ॥ उस कारण सब कालोंमे वह क्षणभरमें ज्वरघ्नी हुई ज्वर से विकल व बडे दुःखित जो मनुष्य वहा प्राप्त होकर ॥ ४२ ॥ सावधान् होकर क्षिप्रा नदीमें स्नानकरतेहैं व बसतेहैं उनको कभी ज्वर से उपजी हुई बाधापीडा नहीं करती हैं ॥ ४३ ॥ उस समय हे ब्रह्मन्, व्यासजी ! विष्णु व महादेवजी ने सत्य कहाहै व सावधानमनवाले जो मनुष्य इस उत्तम कथा को सुनते हैं ॥ ४४ ॥ उनको ज्वर व सन्ताप से उपजा हुआ कुछ भय नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांक्षिप्रामाहात्म्येज्वरानुग्रहोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । क्षिप्रानदी प्रभाव सन भई दमन की मुक्ति । इकसठिके अध्याय में सोइ कथा की उक्ति ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे परंतप ! जिसप्रकार क्षिप्रानदी पापनाशिनी प्रसिद्ध हुई है वैसेही मैं संक्षेप से कहताहूं ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय सतयुग में बड़ा क्रोधी दमन राजा कीकट देशों में हुआ है ॥ २ ॥ जो कि सब धर्मों का नाशनेवाला व गऊ तथा ब्राह्मणों का निन्दक व मदिरा पीनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला और गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला तथा अन्य के शुभमें द्वेष करनेवाला था ॥ ३ ॥ और प्रजाओंका सर्वस्व हरनेवाला व पराई स्त्रीसे प्रसंग करनेवाला तथा धूर्त व कपटी को संग करनेवाला, चुगुल व चोर के आकारवाला था ॥ ४ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ पापनाशिनीविख्याता यथाक्षिप्रापयस्विनी ॥ तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि समासेनपरन्तप ॥ १ ॥ पुराकृतयुगेव्यास दमनोनामवैनृपः ॥ कीकटेषुसमाख्यातोराजापरमकोपनः ॥ २ ॥ उत्थायीसर्वधर्माणां गोब्राह्मणनिन्दकः ॥ सुरापानीहेमहारी गुरुतल्पगमत्सरी ॥ ३ ॥ प्रजासर्वस्वहर्ताच परदाराभिमर्शकः ॥ धूर्तकोधूर्तसङ्गीच पिशुनस्तस्कराकृतिः ॥ ४ ॥ गोगृहपुरभेदीच निन्द्योनिन्द्यजनप्रियः ॥ कुत्सितःकोपपूर्णश्च वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ५ ॥ साधुसङ्गपरित्यागी दुष्टोदुष्टजनप्रियः ॥ कुलाङ्गनापरित्यागी परस्त्रीवृषलीपतिः ॥ ६ ॥ धर्मनिन्दाकरोनित्यमधर्मेरमतेमतिः ॥ नहूयन्तेनपूज्यन्ते नश्रूयन्तेकथाबुधैः ॥ ७ ॥ वेदायज्ञाश्चदेवानां पुरंहट्टंचताड्यते ॥ एवंदुष्टतरोराजा नभूतोनभविष्यति ॥ ८ ॥ सएकदावनेघोरे मृगयावनगोचरः ॥ इतस्ततोभ्रममाणो व्याधैःपरिवृतःखलः ॥ ९ ॥ नल

और गऊ गृह व नगरों को भेदन करनेवाला तथा निन्दनीय व निन्द्यजन उसको प्रिय थे और निन्दित व क्रोध से परिपूर्ण तथा वेद शास्त्र से रहित था ॥ ५ ॥ व साधु के साथ को छोडनेवाला, दुष्ट व दुष्टलोग उसको प्यारे थे और कुल स्त्री को त्याग करनेवाला तथा पराई स्त्री व शूद्रा का पति था ॥ ६ ॥ और धर्म की निन्दा करनेवाला व नित्यही अधर्म में उसकी बुद्धि रमती थी और हवन नहीं कियेजाते थे व देवता नहीं पूजे जाते थे और विद्वान् लोग कथाओं को नहीं सुनते थे ॥ ७ ॥ और वेद व यज्ञ तथा देवताओं का नगर व बाज़ार नाश की जाती थी ऐसा अधिक दुष्ट राजा न हुआ है और न होगा ॥ ८ ॥ इधर उधर घूमता हुआ व बहेलियों से

घिरा वह दुष्ट राजा एकसमय भयकर वनमे शिकार के लिये वनगोचर हुआ ॥ ९ ॥ कुछ शिकार न मिला और क्षुधार्त्त, दुःखित व दुष्ट तथा संगरहित वह अकेला राजा महाकालवन के समीप आया ॥ १० ॥ वहां भयंकर प्राणियों से सेवित व भयानक रात्रि प्राप्तहुई तब क्षुधा से विकल व सोने की इच्छावाला राजा वृक्ष की जडमें लौटकर ॥ ११ ॥ उस वृक्षमे घोड़े को बांधकर आप भी बैठगया उसी समय वृक्ष से उसके मस्तक पै सर्प गिरपडा ॥ १२ ॥ यह क्या है व कहां से आश्चर्य प्राप्त हुआ यह कहकर हाथ से मनाकिया व उससमय उस दुष्ट सांपने राजा के अंगूठे में काट खाया ॥ १३ ॥ और काटनेहीपर दुःखित होताहुआ राजा पृथ्वी में प्राप्त हुआ

ध्यंखेटकंकिञ्चितक्षुधार्तोदुःखितःखलः ॥ एकाकीसङ्गविगतो महाकालवनान्तिके ॥ १० ॥ रात्रिस्समागतातत्र घोरा घोरनिषेविता ॥ वृक्षमूलमुपावृत्य शयनार्थीक्षुधार्दितः ॥ ११ ॥ तत्राश्वंविटपेबध्वा स्वयमेवन्यषीदत ॥ तदैवकाले वृक्षाद्वै तस्यशीर्ष्णयुरगोपतत॥ १२॥ किमिदंकुतआश्चर्यं कृत्वाहस्तेनवारितः ॥ तेनदुष्टेनवैराजा दष्टोङ्गुष्ठेतदाहिना ॥ १३ ॥ दष्टमात्रेतुनृपतिर्व्यथितःक्षितिमागतः ॥ कियत्कालेव्यथाविष्टो मुमोहक्षीणमङ्गलः ॥ १४ ॥ तत्क्षणात्प्रेतभूतोसौघोरेनरकसञ्चये ॥ यमदूतैस्ताड्यमानो विविधास्त्रैस्स्वकर्मजैः ॥ १५ ॥ हर्षिताश्चगणास्सर्वे यमराजस्यकिङ्कराः॥ दृष्टोबहुतरेकाले पापिष्ठोयममन्दिरे ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास क्रव्यादैःखादितंशवम् ॥ किञ्चिच्छेषतरंप्राप्तं वायसेनाभिलक्षितम्॥१७॥ तत्रगत्वानयन्मांसं तुण्डेनवियतङ्गतः॥ ततोन्यैर्वायसैर्भग्नो भ्राम्यमाणइतस्ततः॥ १८॥तत्राग

व कुछ समयतक पीड़ा संयुत व नष्ट मंगलवाला राजा मोहित हुआ ॥ १४ ॥ व उसीक्षण मरकर यह राजा भयंकर नरक में यमदूतों से अपने कर्मों से उपजेहुये अनेक भांति के अस्त्रों के द्वारा ताड़ित हुआ ॥ १५ ॥ और यमराजके सेवक सब गण प्रसन्न हुये कि बहुतही समय में यह पापी यमराज के मन्दिर में देख पड़ा ॥ १६ ॥ इसी अवसर में हे व्यासजी ! मांसभक्षी प्राणियों ने मुर्दे को खाडाला और कुछ बचेहुये मुर्दे को कौवा ने देखा ॥ १७ ॥ व वहां जाकर चोंचसे मांस को ग्रहण करताहुआ वह कौवा आकाश में प्राप्तहुआ तदनन्तर अन्य कौवों से इधर उधर भ्रमाया जाताहुआ वह कौवा ताडित हुआ उसके उपरान्त ॥ १८ ॥ वहां आया जहां

कि क्षिप्रानदी थी और कुछकर्म के फल से उस कौवा का मांस जातारहा ॥ १९ ॥ और उस राजा के शरीर से उपजाहुआ वह मांस उस क्षिप्रानदी में गिरपड़ा व उस पुण्य के प्रभाव से वह उसीक्षण शिव होगया ॥ २० ॥ त्रिलोचन व जटाजूट तथा व्याघ्र चर्म से घिरा और त्रिशूल हाथवाला व बैलपै चढ़ाहुआ, चन्द्रभाल, पार्वती-पति शिवरूप होगया ॥ २१ ॥ इस आश्चर्यमय रूप को देखकर उन शिवजी के गणों से मारे व भगेहुये तिरस्कृत दूतोंने सभा में यमराज से कहा ॥ २२ ॥ कि हे महाराज, धर्मराज ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै दूतों का बहुत आश्चर्यमय व परम सुन्दर जो वचन है उसको सुनिये ॥ २३ ॥ कि कीकट देशों का स्वामी, मूर्ख,

तोहियत्रास्ते दिव्याक्षिप्रापयस्विनी ॥ किञ्चित्कर्मविपाकेन वायसस्यगतंपलम् ॥ १९ ॥ पतितंवैजलेतस्याः क्षिप्रायास्तस्यकायजम् ॥ तेनपुण्यप्रभावेन तत्क्षणात्सोभवच्छिवः ॥ २० ॥ त्रिनेत्रश्चजटाजूटव्याघ्राम्बरपरीवृतः ॥ शूलहस्तोवृषारूढो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ २१ ॥ इत्याश्चर्यमयंरूपं दृष्ट्वादूताश्चधर्षिताः ॥ तद्गणैस्ताडिताभग्ना धर्मराजायसंसदि ॥ २२ ॥ श्रूयताम्भोमहाराज धर्मराजनमोस्तुते ॥ दूतानांयद्वचोरम्यं बह्वाश्चर्यमयम्परम् ॥ २३ ॥ कीकटाधिपतिर्मन्दो पापिष्ठोवृषलीपतिः ॥ मदनोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमण्डले ॥ २४ ॥ यानिकानिचपापानि ब्रह्महत्यासमानिच ॥ तानिसर्वाणितेनापि कृतानिभुविसत्तम ॥ २५ ॥ मर्यादाभेदकोमूढो वर्णाश्रमविभेदकः ॥ कुसङ्गीधूर्तकोन्मादी बहुव्यङ्गभरःखलः ॥ २६ ॥ यमदण्डपरःपापी ह्यस्माकंहर्षवर्द्धनः ॥ सकथंशिवरूपीस्यात् किमाश्चर्यमतःपरम् ॥ २७ ॥ यावन्तःपतिताःपूर्वं पापिनस्सर्वएवहि ॥ कृष्णेनतारितास्सर्वे ब्रह्मपुत्रार्थिनातदा ॥ २८ ॥ तदाप्र

पापी व शूद्रा का पति मदन नामक समस्त पृथ्वी में राजा हुआहै ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! ब्रह्महत्याके समान जो कोई पातकहै उन सबोंको भी उसने पृथ्वीमें कियाहै ॥ २५ ॥ और जो मर्यादा को नष्ट करनेवाला, मूर्ख तथा वर्णों व आश्रमों का निन्दक, दुष्टसंगी, कपटी, मतवाला व बहुत व्यंगोंको धारण करनेवाला और दुष्ट था ॥ २६ ॥ और यमराज के दण्ड से पूर्ण व पापी तथा हमलोगों के आनन्दको बढ़ानेवाला था वह कैसे शिवरूपी होवेहै इससे अन्य क्या आश्चर्य होवे ॥ २७ ॥ पहले जितने

पापी पतित हुयेथे वे सबही उस समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकों को चाहनेवाले श्रीकृष्णजी से तारगये ॥ २८ ॥ बड़े खेदकी बातहै कि तबसे लगाकर नरकके सब कुंड सूखे देखपड़तेहैं जैसे कि ग्रीष्म ऋतु के अन्तमें कुण्ड होवें ॥ २९ ॥ तुम्हारे मन्दिर में दुःखित लोगों का कोई शब्द नहीं सुनपड़ताहै हम लोगोंका जीवन नहीं है इससे हम सबों से किमी उपाय को कहिये ॥ ३० दैवके बलसे संसार में एकही हमलोगों की जीविका को देनेवाला आया था वहै भी शिवताको प्राप्त होगया तो हमलोगों का जीवन किससे व किसप्रकार होगा ॥ ३१ ॥ उस समय धर्मराजने दूतों के उत्तम वचन को सुनकर व बहुत देरतक ध्यानकर अपने गणों से देश व

भृतिसर्वाणि कुण्डानिनरकस्यवै ॥ शुष्काणिवतदृश्यन्ते ग्रीष्मान्तेवैह्रदायथा ॥ २९ ॥ नैवार्तानांरवःकश्चिच्छ्रूयते तवमन्दिरे ॥ अस्माकंजीवनंनास्ति कमुपायंवदस्वनः ॥ ३० ॥ एकएवागतोलोके वृत्तिदोनोविधेर्बलात् ॥ सोपिशिवत्वमापन्नः कस्मान्नोजीवितंकथम् ॥ ३१ ॥ धर्मराजस्तदाश्रुत्य किङ्कराणांपरंवचः ॥ चिरन्ध्यात्वास्वकान्प्रोचे देशकालोचितंवचः ॥ ३२ ॥ धर्मराजोवाच ॥ शृण्वन्तुभोगणास्सर्वे भूत्वाचैकाग्रमानसाः ॥ येनपुण्यप्रभावेन पापिष्ठश्शिवताङ्गतः ॥ ३३ ॥ भुविपुण्यतमेदेशे महाकालवनेशुभे ॥ क्षिप्रानामसरिच्छ्रेष्ठा सर्वपापहरापरा ॥ ३४ ॥ येषांक्षिप्रोदकस्पर्शो जायतेभुविकिङ्कराः ॥ नतेषांपातकंकिञ्चिन्मृतस्सुरपुरंव्रजेत् ॥ ३५ ॥ मनसावपुषावाचा पापानिविविधानिच ॥ तत्क्षणात्प्रलयंयान्ति क्षिप्रासरिन्निषेवणात् ॥ ३६ ॥ क्षिप्राक्षिप्रेतियोब्रूते यत्रकुत्रापिमानवः ॥ सएवाशिवतांयाति न

समय के योग्य वचन को कहा ॥ ३२ ॥ धर्मराज बोले कि हे समस्तगणो ! सावधान मनवाले होकर सुनिये कि जिस पुण्य के प्रभाव से पापी शिवत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ कि पृथ्वीपै अत्यन्त पवित्र देश में महाकाल नामक उत्तम वनमें समस्त पापों को हरनेवाली क्षिप्रानामक उत्तम श्रेष्ठ नदी है ॥ ३४ ॥ हे दूतो ! पृथ्वी में जिनको क्षिप्रानदी के जलका स्पर्श होताहै उनके कुछ पातक नहीं रहता है और वह मरकर स्वर्ग को जाता है ॥ ३५ ॥ क्षिप्रानदी के सेवन से मन, देह व वचन से किये हुये अनेकभांति के पातक उसीक्षण नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥ जहा कहीं भी जो मनुष्य क्षिप्रा क्षिप्रा ऐसा कहताहै वही शिवता को प्राप्तहो-

ताहै और स्नान से उपजे हुये फलको मैं नहीं जानताहूं ॥ ३७ ॥ जहांपर कीट पतंगादिक व जो क्षिप्रानदीके जलचारी जन्तुहैं और जो महापातकी होतेहैं वे भी यहां मरकर शिवस्थान में प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ वैशाख महीना प्राप्तहोनेपर जो उत्तम मनुष्य क्षिप्रानदीमें स्नान करतेहैं उनको कोई नरक नहीं होताहै और वे शिवरूप होकर विचरते हैं ॥ ३९ ॥ अपराध कियेहुये उस राजा के मांस को कौवाने हरलिया और क्षिप्रानदी के गहरे जलमें फेंकदिया उस विषयमें क्या शोच है ॥ ४० ॥ बावली, कूप व तड़ागादिकों में जो, अधिक फल कहागया है उससे दशगुना पुण्य नदियों में होता है ॥ ४१ ॥ उससे दशगुनी तापी नदी है और उससे अधिक

जानेस्नानजंफलम् ॥ ३७ ॥ यत्रकीटपतङ्गाद्याः क्षिप्रावारिचराश्चये ॥ महापातकिनोयेते मृतायान्तिशिवालये ॥ ३८ ॥ माधवेमासिसम्प्राप्ते निमज्जन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषान्निरयःकश्चिच्छिवरूपाश्चरन्तिते ॥ ३९ ॥ वायसेनाहृतंमांसं तस्यराज्ञःकृतागसः ॥ क्षिप्रागाधजलेक्षिप्तं कातत्रपरिदेवना ॥ ४० ॥ वापीकूपतडागादिष्वधिकंयत्फलंस्मृतम् ॥ तस्माद्दशगुणंपुण्यंनदीषुह्युपजायते ॥ ४१ ॥ तस्माद्दशगुणातापी गोदापुण्याततोधिका ॥ तस्माद्दशगुणारेवा गङ्गापुण्याततोधिका ॥ ४२ ॥ तस्माद्दशगुणाक्षिप्रा पवित्रापापनाशिनी ॥ दमनस्यशरीरस्य मांसंक्षिप्रासमागतम् ॥ ४३ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन शिवरूपधरोभवत् ॥ ईदृशीचनदीरम्या अवन्त्यांभुविवर्तते ॥ ४४ ॥ वाञ्छन्तिदेवतास्सर्वा दुर्लभंतस्यदर्शनम् ॥ धर्मराजवचश्श्रुत्वा गणाविस्मयमागताः ॥ ४५ ॥ मनसाचनिरातङ्काः क्षिप्राशरणमागताः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ तदाप्रभृतिसमाख्याता क्षिप्रेयंपापनाशिनी ॥ ४६ ॥ गीयतेचपुराणेषु तस्यामाहात्म्यमुत्त

पुण्यदायिनी गोदावरीहै उससे दशगुनी रेवा (नर्मदा) और उससे अधिक पुण्यदायिनी गगा नदी है ॥ ४२ ॥ व उससे दशगुनी पवित्र व पाप नाशिनी क्षिप्रानदी है दमनके शरीर का मांस क्षिप्रानदीमें प्राप्तहुआ ॥ ४३ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे वह शिवरूपधारी हुआ पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी नदी अवन्ती पुरीमें वर्तमान है ॥ ४४ ॥ और सब देवता उसके दुर्लभ दर्शन की इच्छा करते हैं धर्मराज के वचन को सुनकर गण विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ४५ ॥ और मन से निश्शंक होकर क्षिप्रा नदी की शरण में आये सनत्कुमारजी बोले कि तबसे लगाकर यह क्षिप्रा पापनाशिनी कहीगई है ॥ ४६ ॥ और उसका उत्तम माहात्म्य व दमन राजा की मुक्ति पुराणोंमे

गाई जातीहै और क्षिप्रा नदीके उत्तम माहात्म्यको ॥ ४७ ॥ यमदूतोंके संवादमें सुनकर निरसंदेह मुक्ति होती है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमि
श्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षिप्रामाहात्म्यवर्णनन्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । क्षिप्रा नदिकर भयोजिमि अमृतोद्भवा सुनाम । बासठि के अध्याय में सोइ कथा अभिराम । सनत्कुमारजी बोले कि हे महाबुद्धे, व्यासजी ! क्षिप्रानदी के
उत्तम माहात्म्य को सुनिये कि जिसप्रकार नागों से संमत पाताल में अमृतभवा कहीगई है ॥ १ ॥ एक समय क्षुधित शिवजी भिक्षाके लिये हाथमें कपालको लेकर

मम् ॥ दमनस्यचनिर्मुक्तिः क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ संवादयमदूतानां श्रुत्वामुक्तिर्नसंशयः ॥ ४८ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्रामाहात्म्यवर्णनन्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाबुद्धे क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यथामृतभवाख्याता पातालेनागसम्मते ॥
१ ॥ एकदारुद्रोभिक्षार्थं नागलोकेबुभुक्षितः ॥ करेकपालमादाय भोगवत्यांसमागतः ॥ २ ॥ भिक्षांदेहिवचोदीनमि
त्युवाचगृहेगृहे ॥ भिक्षाकेनापिनोदत्ता क्षुधितस्यचधूर्जटेः ॥ ३ ॥ तदाक्रोधाभिरक्ताक्षः शूलपाणिःक्षुधार्दितः ॥ भ्र
मित्वाचपुरींसर्वां शनैर्बहिर्विनिर्ययौ ॥ ४ ॥ एकविंशतिकुण्डानि पीयूषस्यद्विजोत्तम ॥ यत्रतिष्ठन्तिसर्वाणि नागलो
कस्यरक्षणे ॥ ५ ॥ तत्रगत्वासभगवाञ्छम्भुस्सर्वात्मसम्भवः ॥ अपिबन्नेत्रमार्गेण तृतीयेनचशङ्करः ॥ ६ ॥ रिक्तान्य
मृतकुण्डानि कृत्वातत्रैवसोत्थितः ॥ कम्पितञ्चतदालोकंनागानांसर्वतोमुखम् ॥ ७ ॥ कस्येदंकर्मकिञ्जातं सुधाय

नागलोकमें भोगवती पुरीमें भलीभांति आये ॥ २ ॥ और भिक्षाको दीजिये ऐसे दीनवचन को उन्होंने घर २ मे कहा व क्षुधित शिवजी को किसीने भी भिक्षा नहीं
दिया ॥ ३ ॥ तब क्रोध से लालनेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले तथा क्षुधा से विकल शिवजी सब पुरी में धीरे धीरे घूमकर बाहर निकले ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! जहांपर
नागलोक की रक्षामें अमृतके सब इक्कीस कुण्ड स्थित हैं ॥ ५ ॥ वहां जाकर सर्वात्मसम्भव (सर्वव्यापी) उन कल्याणकारक शिव भगवान् ने तीसरे नेत्रमार्ग से
अमृत के कुंडोंको पी लिया ॥ ६ ॥ और वहीं पर अमृत के कुंडों को शून्य कर वे शिवजी उठे और उस समय सब ओर मुखवाला नागों का लोक कंपित हुआ ॥ ७ ॥

और किस का यह कर्म है व क्या हुआ कि जिससे यहां से अमृत जातारहा यह कह कर तदनन्तर वासुकि आदिक सब नाग ॥ ८ ॥ बड़े अति क्रमसे शंकित होकर वे नगरसे बाहर निकले व यह बोले कि क्याकरैं व कहां जावैं किसने यह अपमान किया ॥ ९ ॥ कि जिस क्रोधित ने उत्तम अमृत को व हमलोगों के जीवन को नाश किया इसलिये हे नागो! हमलोग कैसे जियैंगे ॥ १० ॥ यह कहकर स्त्री बालक व परिवार समेत सब नाग शंकित होकर मनसे विष्णुजी की शरण में गये ॥ ११ ॥ उनके अनुग्रह के लिये आकाशवाणी बोली कि हे सब नागो! सुनिये तुम लोगों ने देवता का अपमान किया ॥ १२ ॥ क्षुधा से विकल व कपाल

स्मादितोगता ॥ इत्युक्त्वाचततस्सर्वे नागावासुकिपुरोगमाः ॥ ८ ॥ महदतिक्रमाशङ्काः पुरात्तेचबहिर्ययुः ॥ किंकुर्मः क्वचगच्छामः केनेदंहेलनंकृतम् ॥ ९ ॥ येनास्माकंप्रकुपेन हतंचामृतमुत्तमम् ॥ अस्माकंजीवनंतस्मात्कथंजीवाम पन्नगाः॥१०॥इत्युक्त्वापन्नगास्सर्वे सस्त्रीबालपरिग्रहाः॥हरिंप्रजग्मुश्शरणं मनसापरिशङ्किताः॥११॥तेषामनुग्रहार्था य वागुवाचाशरीरिणी ॥ श्रूयतांचोरगास्सर्वे युष्माभिर्देवहेलनम् ॥ १२ ॥ भिक्षार्थमागतश्शम्भुः क्षुधार्तश्चगृहेगृहे ॥ विदित्वातिथिवेलांस कपालकरभिक्षुकः ॥ १३ ॥ सादत्ताहिनकेनापि भोगवत्यांपिनाकिनः ॥ तदाबहिर्गतोनाथः क्षु धितोधर्मविग्रहः ॥ १४ ॥ तेननष्टासुधासर्वा कुण्डान्तेपन्नगोत्तमाः ॥ यूयंप्रयातपातालान्महाकालवनोत्तमे ॥ १५ ॥ तत्रैकावैसरिच्छ्रेष्ठा क्षिप्रानामेतिविश्रुता ॥ त्रैलोक्यपावनीह्येषा सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ यस्यादर्शनमात्रेण स र्वपापक्षयोभवेत् ॥ तत्रगत्वाभवद्भिश्च स्नानंकार्यंयथाविधि ॥ १७ ॥ भजनन्देवदेवस्य ततःपूताभविष्यथ ॥ भजनाद्दे

हाथवाले वे भिक्षुक शिवजी अतिथि समय को जानकर घर घर में भिक्षाके लिये आयेथे ॥ १३ ॥ जब पिनाकधारी शिवजी को भोगवती पुरीमें किसी ने भी उस भिक्षा को नहींदिया तब क्षुधित व धर्मशरीरवाले शिवजी बाहर चलेगये ॥ १४ ॥ हे नागोत्तमो! इसीसे कुण्डों के मध्यमें सब अमृत नाश होगया तुम लोग पाताल से महाकाल नामक उत्तम वनमें जाओ ॥ १५ ॥ वहां क्षिप्रा ऐसे नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठनदी है और यह नदी त्रिलोक को पवित्र करनेवाली व सब कामनाओंके फल को देनेवालीहै ॥ १६ ॥ जिसके दर्शनही से सब पापों का क्षय होताहै वहां जाकर आप लोगोंको विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये ॥ १७ ॥ व देवदेव शिवजी का भजन करो

उसके उपरान्त तुम लोगोंके लोकमें अमृत होगा उन नागों
तदनन्तर पवित्र होवोगे देवदेव शिवजीके भजनसे व क्षिप्रा नदी के जलमें स्नान से ॥ १८ ॥ हे नागो ! उसके उपरान्त तुम लोगोंके लोकमें अमृत होगा उन नागों से ऐसा कहकर हे व्यासजी ! उस समय लोकसाक्षिणी दिव्यवाणी अचानकही वहीं अन्तर्द्धान होगई देवतासे कही हुई वाणीको सुनकर व वैसाही होगा यह कहकर स्त्री, बालक व वृद्धों समेत नाग महाकालवन को गये और वहां जाकर त्रिलोकसे प्रणाम की हुई नदी को उन्हों ने देखा ॥ १९ । २० । २१ ॥ जो कि सब कहीं कुशों से व्याप्त व वृक्षों की छाया से परिश्रम रहित तथा हंसों व कारण्डव पक्षियों से पूर्ण व मणि, मोती और मूंगाओंवाली थी ॥ २२ ॥ और मणियों के सोपानों से

भविष्यतिततस्सद्यस्सुधालोकेतुवोरगाः ॥ इतिसम्भाष्यतान्नागान् तत्रैवान्त
वदेवस्य शिप्रासलिलमज्जनात् ॥ १८ ॥ र्धीयत ॥ १९ ॥ वाणीव्यासतदादिव्या सहसालोकसाक्षिणी ॥ श्रुत्वादेवेरितांवाणीं तथेत्युक्त्वाचपन्नगाः ॥ २० ॥ स
स्त्रियोबालवृद्धाश्च महाकालवनंययुः ॥ तत्रगत्वाददृशुस्तेनदींत्रैलोक्यवन्दिताम् ॥ २१ ॥ सर्वत्रकुशसमाकीर्णां तरु
च्छायागतश्रमाम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णां मणिमुक्ताप्रवालकाम् ॥ २२ ॥ मणिसोपानरचितां पद्मखण्डैश्चमण्डिताम्॥
सायंप्रातःस्थिताविप्रास्सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ २३ ॥ ऋषयश्चमहाभागा भृगुराङ्गिरसादयः ॥ सगन्धर्वाश्चतत्रै
व नारदाद्यास्सुरर्षयः ॥ २४ ॥ वसवश्चतथादित्यावश्विनौमरुतस्तथा ॥ रुद्रास्साध्याश्चदेवाश्च पितरोविमलाशयाः ॥
२५ ॥ उपासतेचक्षिप्रांवै सन्ध्याकालेसमाहिताः ॥ ऋषिपत्नीमहाभागा देवकन्याप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ पतिव्रताम
हाभागास्तत्रैवपतिनासह ॥ उपासन्तेसदाचारा वर्णाश्रमपुरोगमाः ॥ २७ ॥ राजर्षयस्समासीना निर्वाणपदवीङ्गताः ॥

रचित व कमलसमूहों से शोभित थी और वहां सायंकाल व प्रातःकाल में सन्ध्योपासन में परायण ब्राह्मण स्थित थे ॥ २३ ॥ व बड़े ऐश्वर्यवाले भृगु व आंगिरस आदिक ऋषिलोग स्थित थे और वहीं पर गंधर्वोंसमेत नारदादिक देवर्षि थे ॥ २४ ॥ वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार व पवन, रुद्र, साध्य, देवता और निर्मल आशयवाले पितर ॥ २५ ॥ सावधान होकर संध्या समय क्षिप्रानदी की उपासनाकरते हैं और ऋषिस्त्रियां व बड़े ऐश्वर्यवाली देवकन्या व अप्सराओं के समूह ॥ २६ ॥ और महाऐश्वर्यवती पतिव्रता स्त्रियां पतिसमेत वहीं उपासना करती हैं व वर्णों तथा आश्रमों के अग्रगामी उत्तम आधारवाले ॥ २७ ॥ बैठेहुये राजर्षिलोग

मोक्षकी पदवी को प्राप्त होकर वहां धर्मों को व सब महादानोंको करते हैं ॥ २८ ॥ और सिद्ध व शान्त योगेश्वर तथा प्रशंसित नियमोंवाले तपस्वी व अनेक प्रकार के देशों में उपजे हुये यात्रीलोग आकर ॥ २९ ॥ पुरुषों व स्त्रियों से संयुत वे क्षिप्रानदी के किनारे बैठे हैं हे व्यासजी! त्रिलोक से वन्दित ऐसी अमृतमयी सब नदी को देखकर नाग बड़े प्रसन्न हुये और स्नान, दानादिक को करके उन्होंने महादेवकी उपासना किया ॥ ३० । ३१ ॥ और सब नागोत्तमों ने वेदोक्त विधि से यक्ष-कर्दम (कर्पूर अगुरु, कस्तूरी व कंकोल से रचित वस्तु) का लेपन व पंचांगपूर्वक स्नानकिया ॥ ३२ ॥ और अनेक प्रकार के पुष्पों व अक्षतों समेत और बसन, माला,

कुर्वतेतत्रधर्माणि महादानानिसर्वशः ॥ २८ ॥ सिद्धायोगेश्वराश्शान्तास्तापसास्संशितव्रताः ॥ नानादेशोद्भवालोका यात्रिणास्समुपागताः ॥ २९ ॥ क्षिप्राकूलेसमासीना नरनारीसमन्विताः ॥ एवंविधांसमालोक्य व्यासत्रैलोक्यवंदिताम् ॥ ३० ॥ नदींसुधामयींसर्वां नागाःपरमहर्षिताः ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा महादेवमुपासिरे ॥ ३१ ॥ वेदोक्तविधिनासर्वे चक्रुःपन्नगसत्तमाः ॥ पञ्चाङ्गपूर्वकंस्नानं यक्षकर्दमलेपनम् ॥ ३२ ॥ अम्लानपङ्कजांमालां नानापुष्पाक्षतैस्तथा ॥ वासःस्रगनुलेपाद्यैश्चन्दनैर्गन्धधूपकैः ॥ ३३ ॥ दीपदानादिनैवेद्यैस्ताम्बूलमथदक्षिणाम् ॥ कर्पूरार्तिकरास्सर्वे महादेवमुपागताः ॥ ३४ ॥ स्तुतिमारेभिरेकर्तुं सुधाकामास्तदोरगाः ॥ सर्पाऊचुः ॥ नमोनन्तायबृहते सर्वदेवनमोनमः ॥ ३५ ॥ चन्द्रचूडनमस्तेस्तु जटामुकुटधारिणे ॥ शेषहारनमस्तेस्तु चिताभस्माङ्गधारिणे ॥ ३६ ॥ कृत्तिवासनमस्तेस्तु घस्मरायनमोनमः ॥ त्रिपुरघ्ननमस्तेस्तु स्मरान्तकनमोस्तुते ॥ ३७ ॥ मृगव्याधनमस्तेस्तु गिरीशायनमोनमः ॥

अनुलेपनादिकों से व चन्दन, गंध तथा धूपोंसहित प्रफुल्लित कमलोंवाली माला को लेकर ॥ ३३ ॥ और दीप दानादिक नैवेद्यों समेत तांबूल व दक्षिणा को लेकर कपूर की आरतीको हाथमें लिये सब नाग महादेवजीके समीप आये ॥ ३४ ॥ व उस समय अमृत की इच्छावाले नागोंने स्तुतिकरने के लिये प्रारंभ किया सर्प बोले कि बृहत् व अनन्तके लिये नमस्कारहै व हे सर्वदेव! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ हे चन्द्रचूड! जटा मुकुटको धारनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे शेषहार! चिताभस्मांगधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ हे कृत्तिवास! तुम्हारे लिये नमस्कार है व घस्मर के लिये नमस्कार है नमस्कार है हे त्रिपुर

नाशक ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कामदेवविनाशक ! आपके लिये नमस्कारहै हे मृगव्याध ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै व गिरीशजीके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै हे सर्वकामफलप्रद, शङ्करात्मन् ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे सर्वबीजसमुद्भव, सर्वसाक्षिन् ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे दिव्यहास ! तुम्हारे लिये नमस्कार है और अमृतस्रवके लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे काम्य काम, सर्व कामवरप्रद ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै व शान्तरूप शिवजीके लिये प्रणाम है तथा पशुपतिजी के लिये नमस्कारहै ॥ ४० ॥ दान्त मृड (शिव) जी के लिये प्रणामहै व शान्तरूप के लिये प्रणामहै इसप्रकार नागोंसे प्रसन्न करायेहुये भगवान् शिवजी ॥ ४१ ॥ प्रत्यक्षही प्रसन्न

शङ्करात्मन्नमस्तेस्तु सर्वकामफलप्रद ॥३८॥ सर्वसाक्षिन्नमस्तेतु सर्वबीजसमुद्भव ॥ दिव्यहासनमस्तेस्तु नमोमृतस्रवा यच ॥ ३९ ॥ काम्यकामनमस्तेस्तु सर्वकामवरप्रद ॥ नमश्शिवायशान्ताय पशूनांपतयेनमः ॥ ४० ॥ नमोमृडा यदान्ताय शान्तरूपायवैनमः ॥ एवंप्रसादितोनागैर्भगवान्वृषभध्वजः ॥ ४१ ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहपन्नगान् ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ श्रूयतामुरगास्सर्वे वचस्तथ्यंवदामिवः ॥ ४३ ॥ एकदानागलोकेतु भिक्षणार्थंगतोस्म्यहम् ॥ गृहेगृहेभोगवत्यां विचरन्क्षुधितोभृशम् ॥ ४४ ॥ कपालंचकरेकृत्वा धृत्वाकन्थांसुचीरकाम् ॥ अप्राप्तभिक्षोभिक्षार्थी पुनरागात्ततोगृहम् ॥ ४५ ॥ तेनपापप्रसङ्गेन सुधानष्टातदालयात ॥ किञ्चित्पुण्यप्रसङ्गेन महाकालवनोत्तमे ॥ ४६ ॥ यूयंप्राप्तामहाभागा हित्वानागालयोत्तमम् ॥ बालवृद्धैस्त्रिभिस्साकं दृष्टाशिप्रासरिद्वरा ॥ ४७ ॥ यस्या

मुखहोकर नागोंसे बोले ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हेसमस्तनागो ! सुनिये मैं तुमलोगोंसे सत्य वचनको कहताहूं ॥ ४३ ॥ एक समय नाग लोकमें मैं भिक्षा के लिये गया व भोगवती पुरी में घर घर घूमताहुआ मैं बहुतही क्षुधित हुआ ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कपालको हाथमें कर व उत्तम बसनवाली गुदडी को धरकर भिक्षा को न पाकर भिक्षा को चाहनेवाला मैं फिर घरको आया ॥ ४५ ॥ तब उसी पापके प्रसंग से अमृत स्थान से नष्ट होगया और कुछ पुण्यके प्रसंग से बड़े ऐश्वर्य-वाले तुमलोग उत्तम नागस्थान को छोड़कर महाकाल नामक उत्तम वन मे प्राप्त हुये और बालक, वृद्ध व स्त्रियोंसमेत तुम सभो ने क्षिप्रानामक उत्तम नदी को

देखा ॥ ४६।४७ ॥ कि पुरातन समय जिसके दर्शनही मे मैं पाप रहित हुआ हूं क्षिप्रा के स्नान से उपजा हुआ पुण्य किसी से नहीं कहाजासक्ता है ॥ ४८ ॥ हे नागो ! पृथ्वी में इसके दर्शन से मनुष्य उसी क्षण शिवहोजाता है उसी कारण सब नागोत्तमों ने क्षिप्रा नदी में स्नानकिया ॥ ४६ ॥ और उस पुण्यके प्रभाव से तुमलोगों के घर घरमें अमृत होवैगा क्षिप्रा नदी के पवित्र जलको लेकर कुंडो में छिड़क दीजिये ॥ ५० ॥ उससे हे नागोत्तमो ! ये इक्कीस स्थिर कुण्ड अमृतसे पूर्ण होजावैंगे ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह कहकर वे सब महादेवजी को प्रणाम कर व हाथोंसे क्षिप्रानदी के जलको धरकर अपने लोकको चलेगये ॥ ५२ ॥ तबसे लगाकर वह

दर्शनमात्रेण निष्पापोस्मिअहंपुरा ॥ क्षिप्रायाःस्नानजंपुण्यं वक्तुंशक्यन्नकेनचित् ॥ ४८ ॥ दर्शनाज्जायतेशम्भुस्तत्क्षणाद्भुविपन्नगाः ॥ तस्मात्स्नानंकृतंसर्वैः क्षिप्रायांपन्नगोत्तमैः ॥ ४६ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन सुधावोस्तुगृहेगृहे ॥ नीत्वाक्षिप्रोदकंपुण्यं कुण्डेषुपरिषेचय ॥५०॥ तेनैतानिहिकुण्डानि अमृतेनैकविंशतिः ॥ सम्पूर्णानिभविष्यन्ति स्थिराणिपन्नगोत्तमाः ॥ ५१ ॥ तथेत्युक्त्वाचतेसर्वे धृत्वाक्षिप्रोदकंकरैः ॥ गतास्तेवैस्वकंलोकं नमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥५२॥ ततःप्रभृतिसाक्षिप्रा जातानागेमृतोद्भवा ॥ सर्वलोकेषुविख्याता व्यासक्षिप्रामृतोद्भवा ॥ ५३ ॥ यएतस्यांप्रकुर्वन्ति नराःस्नानादिकंभुवि ॥ नतेपान्दुष्कृतंकिञ्चिन्नापदोनचदुर्गतिः ॥ ५४ ॥ नवियोगोभवेत्तेषां पुत्रदारादिकैःकदा ॥ नचमित्राणिदुष्यन्ति नरोगोनदरिद्रता ॥ ५५ ॥ कथापापहरापुण्या सर्वकामवरप्रदा ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्राया अमृतोद्भवानामकथनंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

क्षिप्रा अमृतोद्भवा हुई और हे व्यासजी ! क्षिप्रा सबलोकों में अमृतोद्भवा प्रसिद्ध हुई ॥ ५३ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इसमें स्नान,दानादिक करतेहैं उनके कुछपातक नहीं रहताहै और न आपत्तियां होतीहैं न दुर्दशा होतीहै ॥ ५४ ॥ और पुत्रों व स्त्री आदिकों से उनका कभी वियोग नहीं होताहै और मित्र विकारको नहीं प्राप्तहोते हैं व रोग तथा दरिद्रता नहीं होती है ॥ ५५ ॥ यह कथा पापहारिणी व पवित्र तथा सब कामनाओं को देनेवाली है इसके पढ़ने व सुनने से मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितयांभाषाटीकायांक्षिप्रायाअमृतोद्भवानामकथनंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥ ❀ ॥

दो०। विष्णु भूमि उद्धरन हित धस्यो वराह स्वरूप। तिरसठिवें अध्याय में सोई चरितअनूप ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग! क्षिप्राके उत्तम माहात्म्यको फिर सुनिये कि जिसके सुननेही से अश्वमेध यज्ञका फल होताहै ॥ १ ॥ क्षिप्रा नदी सबकहीं पुण्यदायिनी व अतिपवित्र तथा पापहारिणी है और अवन्ती पुरीमें क्षिप्रा नदी विशेष कर पाप हारिणी है ॥ २ ॥ तथापि उसकी उत्पत्ति को विस्तार से कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जिसप्रकार विष्णुजी की देहसे उपजी हुई कल्याणकारिणी क्षिप्रानदी वाराह की कन्या हुईहै ॥ ३ ॥ हे व्यासजी! पुराणवाली पवित्र व उत्तम कथा को सुनिये पुरातनसमय बड़ा बलवान् हिरण्याक्ष महादैत्य हुआहै ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुमहाभाग क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण हयमेधफलंलभेत ॥ १ ॥ क्षिप्रासर्वत्रपुण्यातिपवित्रापापहारिणी ॥ अवन्त्यांचविशेषेण क्षिप्रावैपापहारिणी ॥ २ ॥ तथापितत्समुत्पत्तिं विस्तराद्वदतोमम ॥ यथावाराहतनया विष्णुदेहोद्भवाशिवा ॥ ३ ॥ शृणुव्यासमहापुण्यां कथाम्पौराणिकींशुभाम् ॥ पुरामहासुरोजातो हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ ४ ॥ सइमांसकलांपृथ्वीं वशीकृत्वाचकारह ॥ राज्यंचसार्वभौमानां दानवैश्चदुरात्मभिः ॥ ५ ॥ जित्वाचसकलाँल्लोकान् सुरानिन्द्रपुरोगमान् ॥ दिक्पालान्वसुपालांश्च तिरस्कृत्यासुराधिपः ॥ ६ ॥ सर्वांश्चसर्वकामेभ्यः स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ स्वर्गान्निराकृताःसर्वे तेनदेवगणाभुवि ॥ ७ ॥ विचरन्तियथामर्त्या भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ अलब्धशरणाःसर्वे ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ८ ॥ तत्रगत्वानमस्कृत्वा दैत्यकृत्यंन्यवेदयन् ॥ भगवन्किमिदंकार्यं भवतापरमेष्ठिना ॥ ९ ॥ येनदेवगणाःसर्वे नष्टप्रायाश्चतत्क्षणात ॥ हिरण्याक्षेणदैत्येन हतंस्वर्गमकण्ट

और सबलोकों को जीतकर व इन्द्रादिक दिक्पाल देवताओं को तथा सब दुष्ट दानवों समेत उसने इस सब पृथ्वी को वशाकर सार्वभौमों की राज्य कियाहै ॥ ५ ॥ और सबलोकों को जीतकर व इन्द्रादिक दिक्पाल देवताओं को तथा सब वसुपालों को तिरस्कार कर वह असुरेश समस्त कामनाओं समेत स्थित हुआ है उसने देवगणों को स्वर्गसे भूमि में निकाल दिया ॥ ६।७ ॥ और छूटेहुये राज्यवाले वे पराजित देवता मनुष्यों की नाईं विचरने लगे व शरणको न पाकर सब ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ८ ॥ वहांजाकर प्रणामकर उन्होंने दैत्यकी कर्तव्यताको कहा कि

हे भगवन् ! आपब्रह्मा ने यह क्या कार्य्यकिया ॥ ९ ॥ कि जिससे सब देवगण उसी क्षण नष्ट होगये हिरण्याक्षने निष्कंटक स्वर्ग को नष्ट करदिया ॥ १० ॥ और जो सब यज्ञभाग है उनको वह दैत्य भिन्न भिन्न भोजन करताहै हमलोग किस उपाय से जियें व कैसे पृथ्वी में स्थित होवैं ॥ ११ ॥ देवताओं के ऐसे विकलता में प्राप्त वचन को सुनकर उन ब्रह्माजी ने उस समय समयके योग्य सुन्दर वचन को कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तम ! पुरातन समय अतुल तेजवाले विष्णुजी के मनोहर वैकुंठभवन में विजय से संयुत सावधान होता हुआ यह महाबाहु जय नामक श्रेष्ठ पार्षद द्वारपालक था ॥ १३ । १४ ॥

कम् ॥ १० ॥ यज्ञभागाश्चयेसर्वे उपाश्नातिपृथक्पृथक् ॥ केनोपायेनजीवाम कथंतिष्ठामभूतले ॥ ११ ॥ इतिविक्लवितंश्रुत्वा देवानांसपितामहः ॥उवाचवचनंरम्यं तत्कालेसमयोचितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तुभोसुरश्रेष्ठा यूयं सर्वेसमाहिताः॥पुरायंपार्षदश्रेष्ठो द्वारपालःसमाहितः॥ १३ ॥वैकुण्ठभवनेरम्ये विष्णोरतुलतेजसः॥जयोनाममहाबाहु विजयेनचसंयुतः ॥ १४ ॥ द्वावेवसचिवौदान्तौ विष्णुवेषधराबुभौ ॥ आत्तयष्टीचविक्रान्तौ तिष्ठतोद्वारिसर्वदा ॥ १५ ॥ एकदावैमुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोमानसात्मजाः ॥ स्वैरंचरन्तोलोकेषु विष्णोर्भवनमागताः ॥ १६ ॥ सनकादयोमहाभागा विष्णुदर्शनलालसाः ॥ ताभ्यांनिवारिताःसर्वे प्रपेतुर्धरणीतले ॥ १७ ॥ मुमुहुश्चतदाव्यास कुमाराभृशदुःखिताः॥ ततोगात्समहाबाहुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥ १८ ॥ ददर्शसहसाविष्णुः कुमारान्भुविदुःखितान् ॥ उत्थाप्यैकंसमारोप्य

इन्द्रियों को दमन किये हुये दोनोंही मंत्री व दोनों विष्णुवेषधारी थे और दण्ड को लिये हुये वे दोनों पराक्रमी सदैव द्वार पै टिके रहते थे ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! एक समय लोकों में अपनी इच्छा से घूमते हुए ब्रह्मा के मानसी पुत्र विष्णुजी के मन्दिर को आये ॥ १६ ॥ और विष्णुजी के दर्शन की लालसावाले बड़े ऐश्वर्यवान् सब सनकादिक उन दोनों से निवारित होकर पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १७ ॥ व हे व्यासजी ! उस समय बहुतही दुःखित सनकादिक कुमार मोहित हुये तदनन्तर वे कमललोचन महाबाहु विष्णु भगवान् आये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में दुःखित बालकों को श्रीविष्णुजी ने अचानकही देखा व एकको उठाकर मधुसूदनजी ने गोदी

में बिठाकर लिपटा लिया ॥ १९ ॥ व मस्तकमें सूंघकर तथा भुजाओं से लिपटाकर विष्णुजी बोले कि किसकारण तुम लोगोंको यह कष्टहुआ व किससे बहुत दुःखी हो ॥ २० ॥ हेधर्मज्ञ श्रेष्ठ बालको ! उस सब कारणको हम से कहिये कुमार बोले कि हे महाराज ! हम लोगोंके ऐसे दुःखको सुनिये ॥ २१ ॥ कि जिससे हे सुव्रत, मदान ! हमलोग इस दशाको प्राप्त हुये हे रमानाथ ! आपके दर्शन के लिये अभिलाष समेत व दैत्यों से विकल ये चारोंभाई जो कि लोकों में प्रसिद्धहैं आये और [illegible] द्वारपालों से अचानकही मना किये गये ॥ २२।२३ ॥ उसी कारण आप से परिपालित यह दशा प्राप्त हुई अब से लगाकर इस स्थान में इनकी सनातनी

[illegible]मधुसूदनः ॥ १९ ॥ मूर्ध्निचाघ्रायबाहुभ्यां परिष्वज्यउवाचह ॥ कस्माद्वःकश्मलमिदं केनापिदुःखिताभृश म ॥ २० ॥ सर्वंतत्कारणंबाला ब्रूतनोधर्मवित्तमाः ॥ कुमाराऊचुः ॥ श्रूयताम्भोमहाराज अस्माकंदुःखमीदृशम् ॥ २१ ॥ येनप्राप्तावयंब्रह्मन् दशामेतांसुसुव्रत ॥ आयाताभ्रातरोह्येते चत्वारोलोकविश्रुताः ॥ २२ ॥ दर्शनार्थंरमानाथ [illegible]दिनाः ॥ निवारिताश्चसहसा द्वारपालैर्बलोत्कटैः ॥ २३ ॥ तेनचेयंदशाप्राप्ता भवतापरिपालिता ॥ अ नःप्रभृतिस्थानेऽस्मिन् स्थितिर्नास्तिचशाश्वती ॥ २४ ॥ एतस्मादासुरींयोनिं प्राप्नुतांसुसमाहितौ ॥ सद्यःप्राप्तौतदा [illegible] आसुरींयोनिंकुत्सिताम् ॥ २५ ॥ जयश्चविजयाख्यश्च दुष्टभावंसमाश्रितौ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण तपोदान समाधिभिः ॥ २६ ॥ नराणांक्षीणपापानां कृष्णेभक्तिःप्रजायते ॥ दुष्टभावेनवैसद्यो जन्मभिर्जायतेत्रिभिः ॥ २७ ॥ भ [illegible]विष्णुभक्तिःपरास्मृता ॥ जन्मजन्मान्तरेजातौ तामसींयोनिमुद्धतौ ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव

[illegible] सावधान ये आसुरी योनिको प्राप्त होवैं उस समय हे व्यासजी ! शीघ्रही वे दोनों निन्दित आसुरी योनिको प्राप्त [illegible] प्राप्त हुये हजारों जन्मान्तरों से तपस्या, दान व समाधिसे ॥ २६ ॥ क्षीण पापोंवाले मनुष्यों की श्रीकृष्णजी में [illegible] ॥ २७ ॥ उसीकारण उत्तम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुमदोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरों

में तामसी (आसुरी) योनि को प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपु व महाबलवान् हिरण्याक्ष वैसेही कुंभकर्ण नामक और लोकों को रुलानेवाला रावण ॥ २९ ॥ और दन्तवक्र व शिशुपाल इसप्रकार तीनजन्मों में कहेगये हैं व जो यह महाबलवान् दैत्य हिरण्याक्ष ऐसा कहा गयाहै ॥ ३० ॥ देवता व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व दुष्टभाव में प्राप्त वह सब देवताओं को जीतकर आपही स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ और छूटे राज्यवाले व उससे पराजित सब देवता स्वर्ग से निकाल दिये गये और वे मनुष्यों की नाईं घूमते थे ॥ ३२ ॥ व स्वधाकार, वषट्कार और स्वाहाकार नहीं देख पड़ता है और देवताओं का पूजन अर्चन नहीं होताहै व विशेषकर ब्राह्मणों

हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ तथैवकुम्भकर्णाख्यो रावणोलोकरावणः ॥ २९ ॥ दन्तवक्रःशिशुपाल एवंजन्मत्रयेस्मृताः ॥ योसौमहाबलोदैत्यो हिरण्याक्षइतिस्मृतः ॥ ३० ॥ दुष्टभावंसमापन्नो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ जित्वाचसकलान्देवान् स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ३१ ॥ स्वर्गान्निराकृताःसर्वे भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ विचरन्तियथामर्त्यास्तेनदेवगणाभुवि ॥ ३२ ॥ स्वधाकारोवषट्कारः स्वाहाकारोनदृश्यते ॥ देवपूजार्चनंनास्ति ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ ३३ ॥ नैवतीर्थानिकाशन्ते पुण्यान्यायतनानिच॥ आश्रमेषुचसर्वेषु ऋषीणांचमहात्मनाम् ॥३४॥ अत्यद्भुतंप्रकुर्वन्ति दुष्टदैत्याःप्रहारिणः ॥ वर्णाश्रमवतांधर्माः स्त्रीणांचैवसुशीलता ॥३५॥ उच्छिन्नाहितदाजाता तस्मिन्राज्ञिदुरात्मनि॥ दुष्टाचारादुरात्मानो मायिनो बहुमानिनः ॥ ३६ ॥ पाखण्डिनोविक्रमिणः सर्वधर्मबहिर्मुखाः ॥ पशुधर्मगताह्येते सर्वंब्रह्मेतिशंसिनः ॥ ३७ ॥ बहुम्लेच्छाबहुक्लेशा बहुबाधावनिष्कृता ॥ कोवेदःकास्मृतिःपुण्याकोयज्ञःकाचदक्षिणा ॥ ३८ ॥ तमोभूतंजगत्सर्वं दृश्यते

का पूजन नहीं होता था ॥ ३३ ॥ और तीर्थ व पवित्र देव मन्दिर नहीं शोभित होते थे व ऋषियों तथा महात्माओंके सब आश्रमों में ॥ ३४ ॥ प्रहार करनेवाले दुष्ट दैत्य अतिअद्भुत कर्मको करते थे और वर्ण व आश्रमवाले जनों के धर्म व स्त्रियोंकी सुशीलता ॥ ३५ ॥ तब नष्ट होगई जब कि वह दुष्टराजा हुआ और दुष्ट आचारवाले व दुरात्मा, मायावी तथा बहुत मानी ॥ ३६ ॥ पाखण्डी, पराक्रमी व सब धर्मोंसे विमुख तथा सब ब्रह्महै ऐसा कहनेवाले ये दैत्य पशुधर्मत्वको प्राप्त हुये ॥ ३७ ॥ और बहुत म्लेच्छ बहुत क्लेश व बहुत पीड़ाओंवाली पृथ्वी कीगई कौन वेद व कौन पवित्रस्मृति, कौन यज्ञ और कौन दक्षिणा है ॥ ३८ ॥ पृथ्वी तलमें सब संसार

अन्धकारभूत देख पडता था हे व्यासजी ! जब देखा सब त्रिलोक ऐसा होगया ॥ ३९ ॥ तब जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म की बढ़ती होती है तब हे अर्जुनजी ! मैं अपना को रचता हूं याने अवतार को धारण करता हूं ॥ ४० ॥ ऐसा जानकर आत्मवान् महाविष्णुजीने लीला से श्वेतद्वीप के समान दिव्य व उत्तम वाराहशरीर को धारण किया ॥ ४१ ॥ जो कि यज्ञ स्तंभरूपी दाढ़ोंवाला व हव्य गन्धिवाला और बीज व औषधीरूप रोमोंवाला तथा वेदरूपी चरणोंवाला था स्मृति इन वाराहजी की नासिकाथी व जिह्वा अग्नि और तालु आहुतिथी ॥ ४२ ॥ और वे वाराहजी भीतर मुख के प्रकाश से आटोप (गर्व) वाले व यज्ञशरीर

वसुधातले ॥ एवंव्यासयदाजातं दृष्टंसर्वंजगत्रयम् ॥ ३९ ॥ यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥ ४० ॥ इतिज्ञात्वामहाविष्णुर्वाराहंवपुरात्मवान् ॥ दधारलीलयादिव्यं श्वेतद्वीपोपमंशुभम् ॥ ४१ ॥ यूपदंष्ट्रोहविर्गन्धो बीजौषधितनूरुहः ॥ वेदपादःस्मृतिर्घोणाजिह्वाग्निस्तालुचाहुतिः ॥ ४२ ॥ अन्तरास्यरुचाटोपोयज्ञकायःसुदक्षिणः ॥ उद्गमोघुर्घुरोनादो विहारोऋत्विजाकृतिः ॥ ४३ ॥ श्वेतःश्वासपरोदक्षःसदस्यावयवःस्मृतः ॥ पुच्छःकर्मासनोनित्यं यजतांबहुमानदः ॥ ४४ ॥ वेदीपल्वलसंतारो ब्रह्माध्वर्य्युर्वनाकरे ॥ लोककल्पोलोकसाक्षी परावरवहःशुचिः ॥ ४५ ॥ आद्यःपुरुषईशानः पुरुहूतःपुरुष्टुतः ॥ तेनासौनिहतोदैत्यो हिरण्याक्षोदुरासदः ॥ ४६ ॥ संग्रामान्सुबहून्कृत्वा बहुकष्टेनविष्णुना ॥ दैत्येनपीडितापृथ्वी रसातलतलंगता ॥ ४७ ॥ उद्धृताचवराहे

तथा उत्तम दक्षिणावाले थे इनका घुर्घुर शब्द उच्चगान था व विहार ऋत्विज के समान आकारवाला था ॥ ४३ ॥ व ये वाराहजी श्वेत श्वास में तत्पर व प्रवीण और सामाजिक अंगोंवाले कहेगये हैं व इनकी पुच्छ कर्म का आसन है जो कि पूजन करनेवालों को बहुत मानदायक है ॥ ४४ ॥ और वाराहजीका छोटे तड़ागों का उतरना वेदी है और वन व खानि ब्रह्मा अध्वर्यु (यजुर्वेदी) है व लोकों की कल्पना करनेवाले तथा लोकसाक्षी तथा कार्य व कारण के धारनेवाले और पवित्र हैं ॥ ४५ ॥ जो वाराहजी आदि पुरुष व ईशान तथा बहुत नामोंवाले व बहुतों से स्तुति किये हुये हैं उन विष्णुजी से बहुत संग्रामों को कर बड़े कष्ट से यह

हिरण्याक्ष दुरासद दैत्य मारा गया दैत्य से पीड़ित पृथ्वी रसातल के नीचे चलीगई थी ॥ ४६।४७ ॥ उसको वाराहजी चन्द्रमा की रेखा के समान दाढ़ से ऊपरलाये हैं और वे सब दानव मारेगये व शेष पाताल को प्राप्तहुये ॥ ४८ ॥ तब पवित्र पवन चलने लगे व सूर्य सुन्दर प्रकाशवाले हुये और शान्त हुई अग्नियां जल उठीं व दिशाओं में उत्पन्न शब्द शान्त होगये ॥ ४९ ॥ और नदियां मार्ग में बहनेलगीं व समुद्र प्रकृति को प्राप्तहुये याने जैसे कि पहले थे वैसेही होगये हे व्यासजी ! वाराहदेवजी ! सब संसार को देखकर प्रसन्न चित्तहुये ॥ ५० ॥ वाराहमूर्तिवाले भगवान् सब कामनाओं के फलों को देनेवाले हैं और आनन्द से पूर्ण वाराहदेवजी

णदंष्ट्रयाचन्द्ररेखया ॥ हतास्तेदानवाःसर्वेशेषाः पातालमाययुः ॥ ४८ ॥ ववुःपुण्यास्तदावाताः सुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥ जज्वलुश्चाग्नयःशान्ताः शान्तादिग्जनितस्वनाः ॥ ४९ ॥ सरितोमार्गवाहिन्यः सागराःप्रकृतिंगताः ॥ दृष्ट्वादेवोखिलं व्यासप्रसन्नात्माबभूवह ॥ ५० ॥ वाराहमूर्त्तिर्भगवान् सर्वकामफलप्रदः ॥ आनन्दनिर्भरोदेवो हतदैत्योवरप्रदः ॥ ५१ ॥ तस्यापिहृदयाज्जाता नदीह्येषासनातनी ॥ आनन्दजलसम्पूर्णा सर्वानन्दवरप्रदा ॥ ५२ ॥ बहुयोजनविस्तारा बहुलाकामचारिणी ॥ पद्माकरसमाकीर्णा हंसकारण्डवाकुला ॥ ५३ ॥ सरत्नातरलामाया यक्षगन्धर्वसेविता ॥ किन्नरीभिर्गीयमाना गीयमानाखगालिभिः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्त्यप्सरसोनित्यं स्तूयमानामहर्षिभिः ॥ हुताग्निभिर्युतानित्यं राजर्षिभिस्समाश्रिता ॥ ५५ ॥ तुङ्गस्तनभराक्रान्तवरस्त्रीभिःसमावृता ॥ क्वचित्करिवरापोतै रम्यमाणाविराजिता ॥ ५६ ॥

दैत्यों को मारनेवाले व वरदायक हैं ॥ ५१ ॥ उनके भी हृदय से यह सनातनी नदी उत्पन्न हुई है जो कि आनन्द जल से पूर्ण व सब आनन्दों तथा वरोंको देनेवाली है ॥ ५२ ॥ और बहुत योजन चौड़ी बहुत व इच्छा के अनुकूल चलनेवाली है और कमलों की खानि से व्याप्त व हंसों तथा कारंडव पक्षियों से संयुक्त है ॥ ५३ ॥ और रत्नों समेत व चंचला माया रहित तथा यक्षों व गंधर्वों से सेवित है और किन्नरों से गाई जाती व पक्षियों तथा भ्रमरों से गान की जाती है ॥ ५४ ॥ जहांपर सदैव अप्सरायें नृत्य करती हैं व महर्षियों से स्तुतिकी जाती तथा हवन की हुई अग्नियों से नित्यही संयुत व राजर्षियों से भलीभांति आश्रितहै ॥ ५५ ॥ और उन्नत

रत्नों के भारसे घिरीहुई स्त्रियोंसे भलीभांति घिरीहै और कहींपर उत्तम हाथियों के बच्चोंसे क्रीड़ा की जातीहुई वह नदी शोभित है ॥ ५६ ॥ और प्रशंसित चित्तवाले ऋषियों व वेदज्ञ ब्राह्मणों से सदैव सेवने योग्य तथा मनुष्यों को सब समय में ऋद्धि, सिद्धि, दायिनीहै ॥ ५७ ॥ मनोहर महाकाल पुरी में सुन्दरी पद्मावती पुरी है व हे व्यासजी ! उत्तम सुन्दर कुण्ड बहुत सुन्दर व प्राचीन है ॥ ५८ ॥ जिसमें नहाकर मनुष्य सनातन शिवलोक को जातेहैं हे व्यासजी ! लोकोंको पवित्र करनेवाली उत्तम क्षिप्रा नदी उसमें लीन होगई है ॥ ५९ ॥ वाराहजीने सब दुष्ट दैत्यों का विनाश किया है और उन वाराहमूर्त्तिवाले विष्णुजी ने देवताओं को ताप व शंका

वेदविद्भिर्द्विजैस्सेव्या ऋषिभिश्शंसितात्मभिः ॥ सर्वदासर्वकालेच ऋद्धिसिद्धिप्रदान्नृणाम् ॥ ५७ ॥ महाकालपुरे रम्येरम्यापद्मावतीपुरी ॥ सुन्दरकुण्डंपरंव्यास रम्यंप्राचीनकंशुभम् ॥ ५८ ॥ यत्रस्नात्वानरायांति शिवलोकंसनातनम् ॥ तत्रलीनापराव्यास क्षिप्रात्रैलोकपावनी ॥ ५९ ॥ वाराहेणकृतंसर्वं दुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥ तेनदेवानिरातंकाः कृता वाराहमूर्त्तिना ॥ ६० ॥ भूत्वाप्राञ्जलयःसर्वे देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिंकृत्वामहाविष्णुं सन्नताःपुरतःस्थिताः ॥ ६१ ॥ देवाऊचुः ॥ देवदेवजगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ किंदानंकिंतपःपुण्यं किंतीर्थंकाचदेवता ॥ ६२ ॥ येनपुण्यप्रभावेन पुनःस्वर्गोह्यवाप्यते ॥ एवंनिश्चित्यनोब्रूहि सर्वगुह्यतरंविभो ॥ ६३ ॥ श्रीवाराह उवाच ॥ श्रूयतांभोसुराःसर्वे युष्माकंसिद्धिकारणम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरंपुण्यं महाकालवनेशुभम् ॥ ६४ ॥ ममदेहोद्भवाक्षिप्रा यत्रलीनापयस्विनी ॥ नीलगङ्गासरिच्छ्रेष्ठा यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ६५ ॥ पुष्करं च गयातीर्थं पुरुषोत्तमसरःशुभम् ॥ तद्यूयंगच्छतक्षिप्रां पुनर्लोका

रहित किया है ॥ ६० ॥ व इन्द्रादिक सब देवता हाथों को जोड़ आगे स्थित होकर स्तुति कर महाविष्णुजी को भलीभांति प्रणाम करते भये ॥ ६१ ॥ देवता बोले कि हे पवित्र श्रवण व कथनवाले देवदेव जगदीशजी ! कौन दानहै कौन तपहै व कौन पवित्र तीर्थ है और कौन देवताहै ॥ ६२ ॥ कि जिस पुण्य के प्रभाव से फिर स्वर्ग मिलै हे विभो ! ऐसा निश्चय कर अत्यन्त गुप्त सब वृत्तान्त को कहिये ॥ ६३ ॥ श्री वाराहजी बोले कि हे समस्तदेवताओ ! सुनिये कि गुप्त से भी गुप्त व पवित्र तथा उत्तम तुमलोगों की सिद्धि का कारण महाकाल वनमें है ॥ ६४ ॥ मेरे शरीर से उत्पन्न क्षिप्रानदी जिसमें लीनहुई है वह नीलगंगा उत्तम नदी है जहां कि

प्राची सरस्वती है ॥ ६५ ॥ व पुष्कर, गया तीर्थ और उत्तम पुरुषोत्तम तड़ाग है इसलिये तुमलोग क्षिप्रानदी को जावो फिर लोकोंको प्राप्त होवोगे ॥ ६६ ॥ वहां देव-देव जगद्गुरु वाराहजी के इस प्रकार उत्तम वचन को सुनकर ब्रह्मा इन्द्रादिक सब देवगण ॥ ६७ ॥ जहां क्षिप्रा उत्तम नदी थी वहां सुन्दर महाकाल वनमें गये और स्नान दानादिक कर यथा योग्य श्राद्ध कर ॥ ६८ ॥ उस पुण्य के प्रभाव से देवता अपने लोकों को गये इस प्रकार हे व्यासजी ! क्षिप्रा लोकापवनी कही गई है ॥ ६९ ॥ व अतुल तेजवाले वाराहविष्णुजी का तड़ाग हुआ है कि जिसके दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्या नाश होजाती है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर जल पीकर व

नवाप्स्यथ ॥ ६६ ॥ इतिश्रुत्वापरं वाक्यं देवदेवजगद्गुरोः ॥ तत्रदेवगणाःसर्वे ब्रह्मइन्द्रपुरोगमाः ॥ ६७ ॥ महाकालवनेर म्ये यत्रक्षिप्रासरिद्वरा ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा श्राद्धंकृत्वायथोचितम् ॥ ६८ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन स्वकाँल्लोकान्गताः सुराः ॥ एवंव्याससमाख्याता क्षिप्रात्रैलोकपावनी ॥ ६९ ॥ जातंसरोवराहस्य विष्णोरतुलतेजसः ॥ यस्यदर्शनमात्रे ण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ ७० ॥ तत्रस्नात्वापयःपीत्वा श्राद्धं कृत्वायथोचितम् ॥ पयस्विनींचगांदत्वा विष्णुलोकेम हीयते ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्रामाहात्म्यंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि तानिसर्वाणिसुव्रत ॥ अवन्त्यांसुन्दरेतीर्थे तिष्ठन्तिसर्वदाभुवि ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ किमिदंसुन्दरंकुण्डं कदाकालेभवत्क्षितौ ॥ निर्मितंकेनकोदेवः किंवातस्यफलंस्मृतम् ॥ २ ॥ सनत्कु

यथायोग्य श्राद्धकर और दूधवाली गऊ को देकर मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाताहै ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां क्षिप्रामाहात्म्यंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि पिशाच मोचन तथा सुन्दर कुण्डप्रभाव । चौसठिवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले हे सुव्रत ! पृथ्वीमें जो तीर्थ हैं वे सब पृथ्वी पर अवन्ती पुरीमें सुन्दर कुण्ड में सदैव स्थित रहते हैं ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यह कौन सुन्दरकुण्ड पृथ्वी में किस समय हुआ है और किसने निर्माण किया है व

उसका कौन फल कहागयाहै ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुनिये कि जब अत्यन्त पवित्र तीर्थ में सब पापों का नाशक व चाहेहुऐ मनोर्थके फलदायक सुन्दर नामक कुण्ड हुआ है ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है व अश्व मेध से अधिक तथा सौ वाजपेय यज्ञों से अधिक पुण्य होताहै ॥ ४ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय जब कल्पान्त में प्रचण्ड पवन व बरसने से पृथ्वी नष्ट होगई और सुमेरु गिरि कांपउठा ॥ ५ ॥ तब इस भयंकर, गुप्त, विकार रहित व अचल महाकाल वनमें वैकुंठनामक वह उत्तम शिखर गिराहै ॥ ६ ॥ शिखर गिरने पर उसी क्षण रत्नों के सोपानों से निर्मल व मोतियों की बालू से पूर्ण निश्चित कुण्ड हुआ ॥ ७ ॥

मार उवाच ॥ शृणुपुण्यतमेक्षेत्रे सुन्दराख्यंयदाभवत् ॥ सर्वपापप्रशमनं वाञ्छितार्थफलप्रदम् ॥ ३ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ अश्वमेधाधिकंपुण्यं वाजपेयशताधिकम् ॥ ४ ॥ पुराकल्पक्षयेव्यास नष्टकल्पाचमेदिनी ॥ प्रचण्डवातवर्षाभ्यां घूर्णितोमेरुपर्वतः ॥ ५ ॥ तदात्रपतितंवैकुण्ठाख्यंतच्छिखरोत्तमम् ॥ महाकालवनेघोरे गुह्येचैवाव्ययेध्रुवे ॥ ६ ॥ तत्क्षणातपतितेशृङ्गे कुण्डंजातंसुनिश्चितम् ॥ रत्नसोपानसुस्वच्छं मुक्तासैकतपूरितम् ॥ ७ ॥ जाम्बूनदकृतारोहं हेमपद्मविराजितम् ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायं चिन्तामणिसमुच्छ्रितम् ॥ ८ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं महर्षिगणसेवितम् ॥ बीजौषधिगणाकीर्णं सर्वतत्त्वाभिसंयुतम् ॥ ९ ॥ कल्पक्षयेनक्षीयन्ते यानितत्त्वानिसर्वदा ॥ तानितत्रप्रतिष्ठन्ति मूर्त्तिमन्तिपराणिच ॥ १० ॥ वेदशास्त्रपुराणानि गाथागीत्यक्षराःस्वराः ॥ ॐकारश्चवषट्कारः गायत्रीत्रिपदीपरा ॥ ११ ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तानि लवत्रुटिपलकाघटिः ॥ अहर्निशश्चयामाश्च पक्षोमासोऋतुस्तथा ॥ १२ ॥ संव

जो कि सुवर्ण मे रचित आरोहवाला व सुवर्ण के समान कमलों से शोभित तथा कल्पवृक्ष से की हुई छायावाला और चिन्तामणि से उन्नत था ॥ ८ ॥ व हंसों तथा कारंडव पक्षियों से व्याप्त तथा महर्षिगणोंसे सेवित और बीजों व औषधियोंसे पूर्ण तथा सब तत्त्वों से संयुत था ॥ ९ ॥ जो तत्त्व कल्पान्त में नहीं नष्ट होतेहैं वे मूर्त्तिमान् उत्तम तत्त्व सदैव उसमें प्रतिष्ठित रहतेहैं ॥ १० ॥ और वेद, शास्त्र,पुराण, गाथा, गान, अक्षर, स्वर, ॐकार, वषट्कार व त्रिपदी परम गायत्री ॥ ११ ॥

त्सरोयुगश्चैव कुण्डेतिष्ठतिमूर्तिमान् ॥ देवायक्षाश्चनागाश्चगुह्यकाःकिन्नरास्तथा ॥ १३ ॥ गन्धर्वाप्सरसोयक्षाः सिद्धाः किंपुरुषास्तथा ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य कल्पदोषभयातुराः ॥ १४ ॥ ब्रह्मारुद्रश्चकालश्च लोकपालामहौजसः ॥ केचिद्ध्यानपराःसिद्धास्तपस्वीशंसितव्रतः ॥ १५ ॥ तिष्ठन्तिबहुयुगंव्यास यावत्कल्पःसमाप्यते ॥ सुदर्शनसमाकारं पूरितंचामृताम्बुभिः ॥ १६ ॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्तं पारिजातगुणान्वितम् ॥ दिव्यस्त्रीस्नानगन्धोदैर्वासितंतुसदैवहि ॥ १७ ॥ क्वचिन्मयूरान्नृत्यन्ति क्वचित्कूजन्तिकोकिलाः ॥ क्वचिच्चकेकाभिरवाः क्वचिद्घोषसमाकुलं ॥ १८ ॥ सुन्दरंसुन्दराकारं सुन्दरंतत्तथोच्यते ॥ बहुपुण्यकरंव्यास सर्वपापहरंपरम् ॥ १९ ॥ यत्रसन्निहितोविष्णुः शिवःशक्त्यायुतोवशी ॥ उपासाञ्चक्रिरेशश्वत् सर्वकालेषुसर्वदा ॥ २० ॥ क्षणार्द्धंक्षणमेकंच सुन्दरकुण्डेनरोवसेत ॥ वैकुण्ठेनियतंवासः यावत्कल्पशतंभवेत ॥ २१ ॥ पतङ्गाःपक्षिणःकीटा मृतायान्तिशिवालयम् ॥ किंपुनर्मानवालोके स्नानपूतास्तुतज्जले ॥ २२ ॥

और कला, काष्ठा, मुहूर्त, लव, त्रुटि, पल, घटी, दिनरात, पहर, पक्ष, महीना व ऋतु ॥ १२ ॥ और मूर्त्तिमान् संवत् व युग कुंड में स्थितहैं और देवता, यक्ष, नाग, गुह्यक व किन्नर ॥ १३ ॥ कल्प के दोष के भयसे आतुर गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध व किंपुरुषोंने उस कुण्ड की उपासना कियाहै ॥ १४ ॥ और ब्रह्मा, रुद्र, काल व बड़े पराक्रमी लोकपाल तथा ध्यान में परायण कोई सिद्ध व प्रशंसित नियमोंवाला तपस्वी ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! ये बहुत युगोंतक तब तक उसमें टिकते हैं जबतक कि कल्प समाप्त होता है और सुदर्शन चक्र के समान आकारवाला व अमृत जलों से पूर्ण ॥ १६ ॥ व दिव्य अभिप्रायों से संयुत और पारिजात के गुणोंसे संयुत तथा दिव्यस्त्रियों के स्नान के कारण सुगन्धित जलों से सदैव वासित है ॥ १७ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं और कहीं कोकिलाएं कूजती हैं कहीं मयूर की वाणी होरही हैं, कहीं सब्दों से संयुत है ॥ १८ ॥ सुन्दर व सुन्दर आकारवाला वह तड़ाग सुन्दर कहाजाता है हे व्यासजी ! जो कि बहुत पुण्यकारक व समस्त पातकों का हारक तथा उत्तम है ॥ १९ ॥ जहांपर विष्णुजी स्थितहैं व शक्तिसे संयुत कान्तिमान् शिवजी सदैव रहते हैं इन सबोंने सदैव सब समयों मे उसकी उपासना कियाहै ॥ २० ॥ आधा क्षण व क्षणभर जो मनुष्य सुन्दर कुण्डमें बसताहै उसको तबतक वैकुण्ठमें निश्चय कर निवास होताहै कि जबतक सौ कल्प होतेहैं ॥ २१ ॥

और पतंग, पक्षी व कीट वहां मरकर शिवजीके स्थान को प्राप्त होते हैं फिर संसार में उसके जल में स्नान से पवित्र मनुष्यों को क्या कहना है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य तिल, धेनु, हाथी, घोड़ा, रथ व पृथ्वी को देता है और दासी, दास, सुवर्ण व अनेक भांति के रत्नों को देता है ॥ २३ ॥ और शय्यादान, विमान व अनेक भांति के दानों को देता है हे व्यासजी ! मैं नहीं जानताहूं कि उसके दान से उपजाहुआ क्या फल होता है ॥ २४ ॥ हे व्यासजी ! कहे हुये सुन्दरकुंडके उत्तम फलको फिर सुनिये कि एक समय बहुत पाप से पापी योनियों में पतित ॥ २५ ॥ पिशाच मोक्षको प्राप्त होकर शिवरूपधारी वह चलागया पिशाचमोचन तीर्थ में नहाकर व सदा-

योददातितिलान्धेनुं गजंवाजिरथावनीम् ॥ दासीदाससुवर्णंच रत्नानिविविधानिच ॥ २३ ॥ शय्यादानविमानानि दानानिविविधानिच ॥ नतस्यदानजंवेद्मि कीदृग्व्यासफलंभवेत ॥ २४ ॥ भूयःशृणुपरंव्यास सुन्दरकुण्डफलं स्मृतम् ॥ एकदाबहुपापेन पतितःपापयोनिषु ॥ २५ ॥ पिशाचोमोक्षमापन्नः शिवरूपधरोगतः ॥ पिशाचमोचने स्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ २६ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्योयद्यपिब्रह्महाभवेत ॥ व्यासउवाच ॥ कःपिशाचइतिख्यातः किंतेनदुष्कृतंकृतम् ॥ २७ ॥ येनपापप्रसङ्गेन पिशाचत्वंसमागतः॥कथंतीर्थेप्रसङ्गोस्य जातोवैद्विजसत्तम ॥ २८ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाख्यानं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ब्राह्मणोदेवलोनाम दाक्षिणात्योद्विजाधमः ॥ ३० ॥ सदापापरतोलोभी कूटसाक्षीचलम्पटः ॥ गुरुध्रुक्कैतवोधूर्तो भ्रूणहागुरुतल्पगः ॥ ३१ ॥ हेमहारीसुरापीच ब्रह्महास्वामिद्रोहकः ॥ अभक्ष्य

शिव देवजीको देखकर ॥ २६ ॥ यद्यपि ब्रह्मघाती होवै तथापि वह मनुष्य सब पापों से छूट जाताहै व्यासजी बोले कि पिशाच ऐसा कहाहुआ कौन है व उसने क्या पाप किया था ॥ २७ ॥ कि जिस पाप के प्रसंग से पिशाचत्व को प्राप्त हुआ है व हे द्विजोत्तम ! तीर्थ में इसका कैसे प्रसंग हुआ है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे इसको जानना चाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! उत्तम तीर्थमाहात्म्यरूप महाकथानक को सुनिये ॥ २९ ॥ कि जिसके सुननेही से सब पातकों का नाश होता है ब्राह्मणों में नीच देवल नामक दक्षिण में रहनेवाला ब्राह्मण हुआ है ॥ ३० ॥ जो कि सदैव पाप मे परायण, लोभी, झूंठी गवाही देनेवाला

लम्पट, गुरुद्रोही, कपटी, धूर्त्त, गर्भघाती व गुरुशय्यागामी था॥ ३१ ॥ व सुवर्ण को चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला और ब्रह्मघाती व स्वामिद्रोही, अभक्ष्य को भोजन करनेवाला और वेदों व शास्त्रोंसे रहित था॥ ३२ ॥ और बहुत जन्मोंसे इकट्ठाकिये पापवाला व सब धर्मोंसे अलग कियाहुआ, विश्वासघाती, मानी व चोरों के साथमें लगाहुआ तथा दुष्टथा॥ ३३ ॥ चोरोंके कार्यके प्रयोजन को साधन करनेवाला वह मूर्ख अन्यदेश को चलागया और मार्गमें उस पाप आचरणवाले प्राणी से बहुत लोग मारेगये॥ ३४ ॥ और पापकारी लोगोंके प्रसङ्गसे वह दुष्ट मगधदेशोंमें गया वहांपर वेदो व वेदाङ्गों का जाननेवाला एक दान्त (इन्द्रियों को दमन

भक्षकश्चैव वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ३२ ॥ बहुजन्मार्जितपापी सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥विश्वासघातकोमानी चोरसङ्गरतः खलः॥३३ ॥ देशान्तरगतोमन्दश्चौरकार्यार्थसाधकः ॥ बहवोनिहतामार्गे पापचारेणजन्तुना ॥ ३४ ॥ मगधेषु गतो दुष्टः प्रसङ्गात्पापकारिणाम्॥ तत्रैकोब्राह्मणोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३५॥साग्निकःशुद्धसत्त्वस्थो ब्रह्मकर्मरतःसदा॥ श्वशुरगृहास्थितांभार्यां तामादाययशस्विनीम् ॥ ३६ ॥ चलितोमार्गमारुह्य तेनपापेनघातितः॥तस्यस्त्रीचवरारोहारूपलावण्यशालिनी ॥ ३७ ॥ पतिव्रतामहाभागा पूतचित्ताशुचिस्मिता ॥ हतेभर्तरिदुःखार्ता पत्युर्विरहकातरा ॥ ३८ ॥ वनेघोरेपरिभ्रष्टा काष्ठमादायभामिनी ॥ आरुरोहचितांदीप्तां पतिनाशुद्धमानसा ॥ ३९ ॥ सचदुष्टतरःसर्वं तस्यवित्तस्यजीवनम् ॥ गृहीत्वाचलितोमार्गे गृहीतोराजकिङ्करैः ॥ ४० ॥ निगडित्वातुवित्तेन वेदितोराजसन्निधौ ॥ घातितो

करनेवाला) ब्राह्मण रहताथा ॥ ३५ ॥ जोकि साग्निक व शुद्ध सत्त्वमें स्थित और सदैव ब्रह्मकर्म में परायण था वह श्वशुरके घरमें स्थित उस यशस्विनी स्त्रीको लेकर॥ ३६ ॥ चला और मार्गको रोंककर उसको उस पापीने मारडाला उसकी स्त्री उत्तम कटिवाली व रूप तथा लावण्यसे शोभितथी ॥ ३७ ॥ और पतिव्रता,महाभाग्यवाली, पवित्र चित्तवाली व पवित्र मुसक्यानवाली थी पतिके मरजानेपर वह पतिके वियोगसे डरकर दुःख से विकलहुई ॥ ३८ ॥ भयङ्करवन में छूटी हुई वह शुद्धमनवाली स्त्री ईंधनको लेकर पतिसमेत जलतीहुई चिता पै चढ़ी ॥ ३९ ॥ और वह अत्यन्त दुष्ट उस ब्राह्मण के सब प्राणको लेकर चला व मार्ग में राजदूतों से पकड़

लियागया ॥ ४० ॥ और द्रव्यके कारण ज़ंजीरोंसे बाँधकर राजाके समीप बतलाया गया व वृक्षके खोढ़रमें रस्सीसे गलेमें बाँधकर मारागया ॥ ४१ ॥ और कुत्तेको पचाने वाले चाण्डालों ने उसको इधर उधर भूमिमें घिसलाया व उस कर्मके फलसे वह रौरवनरकको गया ॥ ४२ ॥ साठिहज़ार वर्षतक विष्ठामें कीटता को प्राप्तहुआ तदनन्तर यमराजकी आज्ञा करनेवालों से नरकमें प्राप्तहोनेपर ॥ ४३ ॥ वैतरणी से पीडित व कुम्भीपाकमें प्राप्त वह रोताथा इस भांति वह पापी बहुत प्रकार के नरकोंको दुःखसे भोगकर ॥ ४४ ॥ तदनन्तर पचहत्तरि युगोंतक प्रेतयोनिमें प्राप्त हुआ जोकि सूजीके समान मुखवाला तथा बड़े शरीरवाला, बड़ीध्वनिवाला व बड़े पेटवाला

वेगलेबद्धा रज्जुनावृक्षकोटरे ॥ ४१ ॥ चाण्डालैर्घृष्टितोभूमावितश्चेतःश्वपाकिभिः ॥ तेनकर्मविपाकेन रौरवंनरकंगतः ॥ ४२ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायांकृमितांगतः ॥ ततोहिनरकंप्राप्ते यमशासनकारकैः ॥ ४३ ॥ कुम्भीपाकगतो रौति वैतरण्याप्रपीडितः ॥ एवंबहुविधान्नरकान्भुक्त्वापापीसदुःखतः ॥ ४४ ॥ ततःप्रेतत्वमापन्नो युगानांपञ्चसप्ततिम् ॥ सूचीमुखोमहाकायो महारावोमहोदरः ॥ ४५ ॥ क्षुधातृषापराक्रान्तो मरुदेशसमाश्रितः ॥ ततःकष्टतरंप्राप्य पिशाचींतनुमाश्रितः ॥ ४६ ॥ कुटिलोदुष्टभावश्च दुष्टाचारीदिगम्बरः ॥ विष्ठामूत्रकृताहारो पूतिपर्यक्तभोजनः ॥४७॥ श्मशानेविट्प्रभोजीच कृत्तिवासाविलोचनः ॥ भग्नवाप्यांतडागेच शुष्कवृक्षेचनिर्जले ॥ ४८ ॥ प्राकारपरिघाकारे शून्यागारेनदीतटे ॥ निवासोरोचतेतस्य सर्वदासर्वसन्धिषु ॥ ४९ ॥ एवंबहुयुगेयाते महाकालवनेगतः ॥ यत्रमाहेश्वरा

था ॥ ४५ ॥ और क्षुधा व प्यास से आक्रमित वह मरुदेशमें प्राप्तहुआ तदनन्तर बहुत कष्टको पाकर पिशाचवाले शरीर में प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ जो कि कुटिल व दुष्टस्वभाव दुष्ट आचरणोंवाला तथा दिगम्बर (वसनहीन) और विष्ठा मूत्रको आहार करनेवाला व दुर्गन्धिसंयुत वस्तुको भोजन करनेवाला हुआ ॥ ४७ ॥ और श्मशानमें विष्ठा खानेवाला व चर्मवसनवाला, नेत्रहीन था व फूटीबावली व तड़ाग में और सूखेवृक्ष व निर्जल स्थान में ॥ ४८ ॥ और छहरदिवाली व परिघ के समान आकारवाले तथा शून्य घरमें व नदीके किनारे सदैव सब सन्धियों (सन्ध्याओं) में उसको निवास रुचताथा ॥ ४९ ॥ इस प्रकार बहुत युग बीतनेपर वह महाकालवनमें गया जहां

कि शिवजी का लिंग व अद्भुत सुन्दरकुण्डथा ॥ ५० ॥ वहांपर भी क्षणभर में सिंहने मारडाला और उस पापीको मारकर जलको चाहनेवाला सिंह कुण्ड में पैठ गया॥५१॥ और दाढ़ोंके बीचमें प्राप्त अस्थि (हड्डी) उसके मुख से जलमें गिरपडी उस पुण्यके प्रभावसे सब पाप नाशको प्राप्तहुआ ॥ ५२ ॥ और उस समय मरनेही पर वह लिंग नेत्रोंके मध्यमें प्राप्तहुआ व पिशाचके शरीर को छोड़कर ज्योति उस लिंगमें पैठगई ॥५३॥ तब से लगाकर हे व्यासजी ! उत्तम पिशाचमोचन तीर्थहुआ और पिशाचमोचनेश नामक शिवजी पृथ्वीमें प्रसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ मदसे मतवाले हाथियों की नाईं पातक तबतक गरजते हैं जबतक कि मनुष्य क्षिप्रानदी

लिङ्गः सुन्दरंकुण्डमद्भुतम् ॥ ५० ॥ तत्रापिक्षणमात्रेणसिंहेनविनिपातितः ॥ घातयित्वाचतंपापं जलार्थीकुण्डमा विशत् ॥ ५१ ॥ दंष्ट्रान्तरगतंचास्थिपतितंतन्मुखाज्जले ॥ तेनपुण्यप्रभावेण सर्वपापंक्षयंगतम् ॥ ५२ ॥ मृतमात्रेच लिङ्गन्तन्नेत्रान्तरगतंतदा ॥ हित्वापैशाचकंदेहं ज्योतिस्तल्लिङ्गमाविशत् ॥ ५३ ॥ तदारभ्यपरंव्यास तीर्थंपैशाचमो चनम् ॥ पिशाचमोचनेशाख्यो भुविविख्याततांगतः ॥ ५४ ॥ तावद्गर्ज्जन्तिपापानि मदोन्मत्तागजाइव ॥ याव न्नायातिक्षिप्रायां तीर्थेपैशाचमोचने ॥ ५५ ॥ पिशाचमोचनेस्नात्वा शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ पिशाचमोचनेशाख्यं पू जयित्वायथाविधि ॥५६॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायतेनात्रसंशयः॥ पिशाचमोचनेव्यास महादानानिकारयेत्॥५७॥ नतस्यपुनरावृत्तिः शिवलोकात्कदाचन ॥ पिशाचमोचनकथां पवित्रांपापहारिणीम् ॥५८॥ पठनाच्छ्रवणाच्चैव हयमेध फलंलभेत्॥५९॥इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेसुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यंनामचतुःषष्टितमोध्यायः॥६४॥

में पिशाचमोचनतीर्थ में नहीं आताहै ॥ ५५ ॥ सावधान होताहुआ मनुष्य पिशाचमोचनतीर्थ में नहाकर और विधिपूर्वक पिशाचमोचनेश्वर नामक शिवजीको पूज कर ॥ ५६ ॥ सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जो नर पिशाचमोचनतीर्थ में महादानोंको करै ॥ ५७ ॥ उसकी कभी शिवलोकसे पुनरावृत्ति नहीं होती है याने वह शिवलोकसे फिर कभी नहीं लौटताहै पवित्र व पापहारिणी पिशाचमोचन की कथा के ॥ ५८ ॥ पढ़ने व सुनने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्तहोता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायांसुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यवर्णनंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ❀ ॥

दो० । कह्यो नीलगङ्गा यथा ब्रह्मा सों निजहाल । पैंसठिवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदांवर, ब्रह्मन् ! मैं फिर तुमसे यह सुना चाहताहूं कि नीलगंगा किस समय क्षिप्राकुण्ड में भलीभांति प्राप्तहुई हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! समस्त तीर्थोंके फलको देनेवाले महातीर्थ को सुनिये कि नीलगंगा में नहाकर मनुष्य संगमेश्वरजीको पूजै ॥ २ ॥ तो उसके दुष्टसंगसे उपजेहुये दोष कभी नहीं होते हैं एक समय तीनों लोकोंको पवित्र करतीहुई त्रिपथगा (तीनमार्गोंसे गमन करनेवाली) श्रीगंगानदी नीलवसनवाली तथा शोचसे विकल होकर ब्रह्मलोकमें गई व बोली कि हे ब्रह्मन् ! पहले मेरा कियाहुआ यह

व्यासउवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ नीलगङ्गाकदाब्रह्मन् क्षिप्राकुण्डेसमागता ॥१॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नीलगङ्गान्नरःस्नात्वा सङ्गमेश्वरमर्चयेत् ॥ २ ॥ दुष्टसङ्गोद्भवादोषा नभवन्तिकदाचन ॥ एकदाब्रह्मलोकेवै गङ्गात्रिपथगानदी ॥ ३ ॥ गतापुनन्तीत्रींल्लोकान्नीलवासाशुचार्दिता ॥ भगवन्किमिदंजातं पातकंमेकृतम्पुरा ॥ ४ ॥ दुष्टाचारपरामेद्य येनैषाप्रापितादशा ॥ सर्वलोकेषुयत्किञ्चिज्जनानांपातकम्भुवि ॥५॥ तत्सर्वम्मयितिष्ठेत्तु सर्वेषामपिदेहिनाम् ॥ तेनाहंवैभराक्रान्ता नोशक्ताचालितुन्धराम् ॥ ६ ॥ नीलवासाविवर्णाच सर्वधर्मबहिर्मुखैः ॥यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म शुभंवायदिवाशुभम् ॥ ७ ॥ मयित्यक्त्वापुनन्तीमे जन्तवःसर्वशोमलाः ॥ तिष्ठन्तिपुण्यलोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदेषुच ॥ ८ ॥ अस्माकंचमहत्कष्टं जातंधातःपरम्मलम् ॥ नहिशर्मनैवशान्तिर्ननिद्रानचनिर्वृतिः ॥ ९ ॥ नहिलोकेस्थितिर्मेद्य पापिष्ठायासनातनी ॥ दुष्टसङ्गोद्भवैर्दोषैः प्लावि

क्या पाप उत्पन्न हुआहै ॥ ३ । ४ ॥ किजिसमे आज दुष्टआचारमें तत्पर यह दशा प्राप्तकीगई पृथ्वीपर सब लोकोंमें मनुष्यों का जो कुछ पातक होताहै ॥ ५ ॥ सबभी प्राणियोंका वह सब पाप मुझमें स्थित होताहै उस कारण भारसे घिरीहुई व नीलवसनवाली व उदासीन मैं पृथ्वीमें चलने के लिये नहीं समर्थहूं क्योंकि सब धर्मोंसे पृथक्जनों से जो कुछ शुभ या अशुभकर्म कियाजाता है ॥ ६ । ७ ॥ उसको मुझमें छोडकर ये सब निर्मल प्राणी पवित्र होतेहैं व भुक्ति, मुक्तिदायक पुण्यलोको में स्थित होतेहैं ॥ ८ ॥ हे विधातः ! हमको बड़ा कष्ट है क्योंकि बहुत मल होगया इससे न कल्याण है न शान्ति है न निद्रा आती है और न सुख होता है ॥ ९ ॥ हे

जगद्गुरो ! जो सनातनी स्थितिथी वह आज मेरी पापिनी स्थिति संसार में न होगी क्योंकि दुष्टसंग से उपजेहुये दोषोंसे मैं डूबीहुई हूं ॥ १० ॥ क्या करूं व कहांजाऊं कि जिमसे मेरी शान्तिहोवै मेरे लिये क्या तपहै व क्या दान, कौनतीर्थ और कौन यत्नहै ॥ ११ ॥ कि जिससे पापसे संयुत अंगवाली मैं पहलेकी प्रकृति (दशा) को प्राप्तहोऊं ऐसा जानकर हे महायोगिन् ! जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ॥ १२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे सरिदुत्तमे ! पापनाशक कारणको सुनिये कि महाकालनामक सुन्दर वन में यह अमरावती पुरी है ॥ १३ ॥ भूमिमें वहा क्षिप्रानामक पवित्रकारिणी नदी वर्त्तमान है उसके दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका क्षयहोवै है ॥ १४ ॥ हे महाभागे !

ताहंजगद्गुरो ॥ १० ॥ किङ्करोमिकगच्छामि येनशान्तिर्भवेन्मम ॥ किंतपःकिञ्चदानम्मे किंतीर्थंकिंचसाधनम् ॥ ११ ॥ येनाहंपापलिप्ताङ्गी पूर्वप्रकृतिमाप्नुयाम् ॥ एवञ्ज्ञात्वामहायोगिन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसरिच्छ्रेष्ठे कारणंपापनाशनम् ॥ महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषामरावती ॥ १३ ॥ तत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा वर्तते भुविपावनी ॥ तस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ १४ ॥ तत्रगच्छमहाभागे सद्यश्चात्मविशुद्धये ॥ ब्रह्मणेदंसमाख्यातं श्रुत्वागङ्गासरिद्वरा ॥ १५ ॥ तमभिज्ञायसंप्राप्ता महाकालवनंशुभम् ॥ पुष्करस्याग्रमार्गेच यत्रदेवोमरुत्सुतः ॥ १६ ॥ विन्ध्यस्यचोत्तरेभागे अञ्जन्याश्रममुत्तमम् ॥ सापुत्रेणतपस्तेपे पवित्राब्रह्मचारिणी ॥ १७ ॥ पतिव्रताभिःसर्वाभिः पतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥ देवाङ्गनाभिर्बहुभिः क्रीडद्भिर्बालकुञ्जरैः ॥ १८ ॥ सरसीफुल्लकह्लारैर्मत्तालिकुलनादितम् ॥ निर्वैरजन्तुभिःसेव्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ १९ ॥ मनआह्लादकंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ तत्रप्रवेशमात्रेण

अपनी शुद्धिके लिये वहा शीघ्रही जावो ब्रह्मासे इस कहेहुये वचन को सुनकर श्रेष्ठनदी श्रीगंगाजी ॥ १५ ॥ उसको जानकर उत्तम महाकालवनमें प्राप्तहुई पुष्कर के आगे मार्गमे जहां पवनसुत (हनुमान्) जी हैं ॥ १६ ॥ वहां विन्ध्याचल के उत्तरभागमें उत्तम अञ्जनीका आश्रम है पुत्रसमेत ब्रह्मचारिणी व पवित्र उस अंजनी ने वहा तप कियाहै ॥ १७ ॥ जो आश्रम कि ब्रह्मचारी पतियों समेत सब पतिव्रता स्त्रियों से संयुत व खेलतेहुये बहुत बालगजों व देवांगनाओं से संयुत था ॥ १८ ॥ व तड़ाग में फूलेहुये कमलों से व मतवाले भ्रमरसमूहों से शब्दितथा और वैररहित प्राणियों से सेवनेयोग्य व ब्रह्मर्षिगणों से सेवित ॥ १९ ॥ व मनको आनन्द-

दायक, पुण्यदायक, पवित्र व पापनाशक था वहां प्रवेशमात्र से नीलवसनवाली श्रेष्ठ नदी वे यशस्विनी गंगाजी श्वेत वसनवाली, नष्टपापरूपी मलोंवाली तथा शरदृतुके चन्द्रमा के समान आकारवाली, कम्पित पातकोंवाली व उत्तम होगई ॥ २०।२१ ॥ और वहींपर उन्होंने मनके हर्ष कारणवाले आश्रम को किया तब से लगाकर वह सब लोकों में पुण्यदायक कहागया है ॥ २२ ॥ हे व्यासजी ! नीलगंगा ऐसा वह तीर्थ सब पातकों का नाशक है इस तीर्थ में नहाकर इसके उपरान्त जो मनुष्य श्रीहनुमान्जी को पूजता है ॥ २३ ॥ उसके हाथ में सिद्धि प्राप्त होती है इस में सन्देह नहीं है कुंवार महीना भलीभांति प्राप्त होनेपर सावधान

नीलवासासरिद्वरा ॥ २० ॥ शुक्लवासाभवत्सातु नष्टपापमलाशुभा ॥ शरच्चन्द्रनिभाकारा धूतपापायशस्विनी ॥ २१ ॥
तत्रैवचाश्रमंचक्रे मनसोहर्षकारणम् ॥ ततःप्रभृतिसमाख्यातं सर्वलोकेषुपुण्यदम् ॥ २२ ॥ नीलगङ्गेतितत्तीर्थं व्यासकि
ल्बिषनाशनम् ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा हनुमन्तमथार्चयेत् ॥ २३ ॥ तस्यसिद्धिःकरगता भविष्यतिनसंशयः ॥ आश्वि
नेमासिसंप्राप्ते कृष्णपक्षेसमाहितः ॥ २४ ॥ दर्शेपितॄन्समुद्दिश्यश्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ तारितंतेनस्वकुलंसर्वमेको
त्तरंशतम् ॥ २५ ॥ सप्तगोत्रेषुयेजाताः पूर्वजाःपितरस्तथा ॥ तेसर्वेसद्गतिंयान्ति तेषांलोकाःसनातनाः ॥ २६ ॥ स्नात्वा
तिलाञ्जलिन्दद्यात् पितॄनुद्दिश्यतत्परः ॥ अक्षयाजायतेतृप्तिः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ २७ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्सप्त श्रा
द्धंकृत्वातुपायसैः ॥ अक्षयंलभतेश्राद्धमश्वमेधफलंभवेत् ॥ २८ ॥ तीर्थंपुण्यतरंव्यास शृणुपुण्यतरंस्मृतम् ॥ दुग्ध

होताहुआ जो पुरुष ॥ २४ ॥ अमावस में पितरों को उद्देश कर महालय श्राद्ध करता है उसने अपने सब एक सौ एक कुल को तार दिया ॥ २५ ॥ और उसके सात कुलों मे जो पहले पैदा हुये पितर हैं वे सब उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और उनको सनातन (सदा रहनेवाले) लोक होते हैं ॥ २६ ॥ और उसमें परायण पुरुष नहाकर व पितरो को उद्देश कर तिलांजलि देवै तो अक्षया तृप्ति होती है व स्वर्गलोक में वह पूजाजाताहै ॥ २७ ॥ श्राद्ध कर खीर से सात ब्राह्मणों को भोजन करावै तो अक्षय श्राद्ध को प्राप्त होता है व अश्वमेधयज्ञ का फल होताहै ॥ २८ ॥ हे व्यासजी ! अधिक पवित्र कहेहुये अत्यन्त पुण्यदायक तीर्थ को सुनिये

जोकि दुग्धकुंड ऐसा कहाहुआ तीनों लोकोमें प्रसिद्धहै ॥ २९ ॥ जो कि सब पापोंको हरनेवाला व समस्त कामनाओंके बरको देनेवालाहै पुरातन समय धर्म की मूर्ति पृथु ने पृथ्वी देवीको दुहाहै ॥ ३० ॥ सब हव्यों को उपजानेवाले व सबों को जीवनदायक दुग्धको इस कुंडमें धरकर उन्होंने दियाहै उसीकारण दुग्धतडाग कहागया है ॥ ३१ ॥ इस कुंडमें नहाकर जलको पीकर व दूधवाली गऊको देकर मनुष्य सब पीड़ाओं से छूट जाताहै सब समयों में धन, धान्य से संयुत होताहै और मरकर स्वर्गलोक को जाता है तदनन्तर पुष्करतीर्थ को प्राप्त होकर स्नान दानादिक करै ॥ ३२ । ३३ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष पुष्कर के फल को प्राप्त होता

कुण्डमितिख्यातं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ २९ ॥ सर्वपापहरंपुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ पुरादुग्धाधरादेवी पृथुनाधर्ममूर्तिना ॥ ३० ॥ दुग्धंसर्वहविर्भाव्यं सर्वेषांजीवनप्रदम् ॥ दत्तंनिधायकुण्डेस्मिंस्तेनदुग्धसरःस्मृतम् ॥ ३१ ॥ कुण्डे स्नात्वापयःपीत्वा दत्त्वागाञ्चपयस्विनीम् ॥ सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ ३२ ॥ जायतेसर्वकालेषु मृतःस्वर्गपुरंव्रजेत् ॥ ततःपुष्करमासाद्य स्नानदानादिकंचरेत् ॥ ३३ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पुष्करस्यफलंलभेत् ॥ ३४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेवन्तीखण्डेनीलगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ कोसौविन्ध्यगिरिर्ब्रह्मन् कदाकालेसमागतः ॥ महाकालवनेरम्ये केनवाप्रेषितःपुरा ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरारेवाजलैर्व्यास प्लावितेषावसुन्धरा ॥ तदासर्वसुरैरेवमगस्त्यमुनिसत्तमः ॥ २ ॥ आराधितोमहाभाग धरणीत्राणकारणात् ॥ तदागत्यगिरौरम्ये विन्ध्येसमुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ एकाग्रमानसोभूत्वा भवानींविन्ध्यवासिनी

है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां नीलगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी महँ विन्ध्यवासिनी देवि । आईं छाछठि में कह्यो सोइ चरित सुखसेवि ॥ व्यास जी बोले कि हे ब्रह्मन् ! यह विन्ध्याचल कौन है व सुन्दर महाकालवन में किस समय आया है व पहले किससे पठाया गया है ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पुरातन समय जब नर्मदा के जलों से यह पृथ्वी डुबाईगई तब सब देवताओं ने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको ॥ २ ॥ पृथ्वी की रक्षा के कारण आराधन किया तब हे महाभाग ! सुन्दर विन्ध्याचल पै

आकर उन मुनिश्रेष्ठ ने ॥ ३ ॥ एकाग्रमनवाले होकर उससमय उन देवीजी से वरदान की इच्छा से विन्ध्यवासिनी भगवती का आराधन किया ॥ ४ ॥ जो कि कंस को भगानेवाली व दैत्यों को नाश करनेवाली तथा भार उतारनेवाली, पुण्यरूपिणी व उत्तम और बलदेव जीकी बहन हैं ॥ ५ ॥ व यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न और चाणूर के बल को मर्दन करनेवाली, बिजली के समान रूपवती, आकाश में स्थित,कृष्ण और कालिय सर्प को मर्दनेवाली हैं ॥ ६ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेय जीकी माता, कवियों की वाणी की देवता, मुख्य ब्राह्मणों की गायत्री व छंदों के मध्य में उत्तम बृहतीछन्द हैं ॥ ७ ॥ और सुरेन्द्र की सहस्रनयना व ऋषि

म् ॥ आराधनंतदाचक्रे तस्यादेव्यावरेप्सया ॥ ४ ॥ कंसविद्रावणकरीमसुराणांक्षयंकरीम् ॥ भारावतारणींपुण्यां बलस्यभगिनींशुभाम् ॥ ५ ॥ यशोदागर्भसम्भूतां चाणूरबलमर्दिनीम् ॥ विद्युद्रूपांनभस्थान्तु कृष्णांकृष्णाहिमर्दिनीम् ॥ ६ ॥ जननींदेवसेनस्य कवीनांवाक्यदेवताम् ॥ गायत्रींद्विजमुख्यानां बृहतींछन्दसांवराम् ॥ ७ ॥ सहस्राक्षीं सुरेन्द्रस्य ऋषेश्चारुन्धतीम्पराम् ॥ गवांकामदुघांश्यामांलतांमधुतमप्रियाम् ॥ ८ ॥ अदितिंसर्वमातॄणां पार्वतींसर्वयोपिताम् ॥ ज्योत्स्नाञ्चान्द्रमसींबालां सर्वकामवरप्रदाम्॥ ९ ॥ शारदांक्रतुवेलायां वृन्दावनचरींवराम् ॥ मायिनां वैष्णवींमायां सर्वदैत्यविमोहिनीम् ॥ १० ॥ महालक्ष्मींश्रीमभीष्टां यक्षिणींधनदार्चिताम् ॥ महोदधीप्सितांवेलां राज्ञां कायेषुचक्रिणीम्॥ ११ ॥वेदिकांयज्ञशालानां वराहस्यावनींशुभाम् ॥ दक्षिणांसर्वदीक्षाणां सर्वकामफलप्रदाम् ॥ १२॥

की उत्तम अरुंधती स्त्री हैं तथा गौवों के मध्य में कामदुघा श्यामा स्त्री व अत्यन्त मधुप्रिया लता हैं ॥ ८ ॥ व सब माताओंके मध्यमें अदिति और सब स्त्रियों के मध्य में पार्वती, चन्द्रमा की चन्द्रिका, बाला व सब कामनाओं के वरको देनेवालीहैं ॥ ९ ॥ व यज्ञसमय में शारदा, वृंदावनचारिणी, उत्तमा व सब दैत्यों को मोहनेवाली मायावियोंकी वैष्णवी माया हैं ॥ १० ॥ व महालक्ष्मी, लक्ष्मी व कुबेर से पूजित प्यारी यक्षिणी, समुद्रकी प्रियवेला (मर्यादा) और राजाओं के शरीरों में चक्रधारिणी हैं ॥ ११ ॥ व यज्ञमन्दिरोंकी वेदी व वराहजीकी उत्तम पृथ्वी तथा सब दीक्षाओंकी दक्षिणा व समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली हैं ॥ १२ ॥

उस समय इसप्रकार स्तुतिकी हुई व प्रसन्नता से सुमुखी विन्ध्यवासिनी देवी प्रत्यक्ष होकर ऋषियों के मध्यमें श्रेष्ठऋषि अगस्त्यजी से बोलीं ॥ १३ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! जो तुमको प्रियहो उस मनोरथ को मुझ से मांगिये क्योंकि हे वत्स ! तुमने बहुत दिनोंतक मेरी स्तुति की है ॥ १४ ॥ अगस्तिजी बोले कि हे देवताओं का उपकार करनेवाली, मातः ! यदि वरदेने योग्य है तो संसार में सबलोकों को भयदायिनी यह नर्मदा बढ़ीहै ॥ १५ ॥ उसने इस संसारको डुबादिया उस को निग्रह (दण्ड) कीजिये उस समय महर्षि अगस्तिजी से इसप्रकार प्रार्थना कीहुई वे ॥ १६ ॥ उत्तम आचरणवाली विन्ध्यवासिनी देवी उस समय हे व्यासजी !

एवंस्तुतातदादेवी प्रत्यक्षाविन्ध्यवासिनी ॥ प्राहप्रसादसुमुखी ऋषीणांप्रवरंऋषिम् ॥ १३ ॥ व्रियताम्भोद्विज श्रेष्ठ तदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ॥ यदीप्सितंत्वयावत्स स्तुतिर्मेसुचिरंकृता ॥ १४ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ यदिमातर्वरोदेयो देवानामुपकारिणि ॥ रेवेयंवर्द्धितालोके सर्वलोकभयप्रदा ॥ १५ ॥ तयेदंप्लावितंविश्वं तस्यानिग्रहणंकुरु ॥ इतिसाप्रा र्थितातेन तदाकालेमहर्षिणा ॥ १६ ॥ अगात्साध्वीतदाव्यास महाकालवनंशुभम् ॥ सान्त्वपूर्ववचःपथ्यमगस्तिमिद मब्रवीत् ॥ १७ ॥ वारयिष्येपरान्देवीं वर्द्धमानांद्रुतंऋषे ॥ तावत्त्वंऋषिभिःसाकं विन्ध्यस्यचमहागिरेः ॥ १८ ॥ परमे त्रिकुटेद्वारे स्थास्यसिऋषिसत्तम ॥ पुरीह्येषामुनिश्रेष्ठ त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ १९ ॥ अत्रैवसुचिरंकालं मातृभिर्निवसा म्यहम् ॥ तत्रापित्वंसदासिद्धक्षेत्राधिपतिमाप्नुहि ॥ २० ॥ मत्सरोनिर्मलंपुण्यं विमलोदन्तुविश्रुतम् ॥ यत्रपुण्यवतां वासो देव्यस्तिष्ठन्तिकोटिशः ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनराःस्नात्वा भूत्वाचैवसमाहिताः ॥ यजन्तिचैवमाम्भक्त्या धूप

उत्तम महाकालवनको गईं व प्रियवचनपूर्वक अगस्तिजी से इस पथ्य वचनको बोलीं ॥ १७ ॥ कि हे ऋषे ! मैं बढ़तीहुई उत्तम देवीजी को शीघ्रही मनाकरूंगी और तब तक तुम ऋषियों समेत विन्ध्य नामक महापर्वत के ॥ १८ ॥ उत्तमत्रिकुट द्वारपै स्थित होवो हे ऋषिसत्तम, मुनिश्रेष्ठ ! यह पुरी तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ यहींपर मैं बहुत समय तक मातृकाओं समेत बसूंगी और वहांपर तुम भी सदैव सिद्धक्षेत्राधिपति को प्राप्त होवोगे ॥ २० ॥ और पवित्र व निर्मल विमलोद ऐसा प्रसिद्ध मेरा तड़ागहै जहां कि पुण्यवानों का निवासहै व करोड़ों देविया स्थितहैं ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व सावधान होकर जो पुरुष मुझको भक्तिसे

धूप, दीप व अग्नितर्पण (हवन) से पूजतेहैं ॥ २२ ॥ और दूध, शक्कर व घी के भोजनों से विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ २३ ॥ और वह मनुष्य धन, धान्य, पृथ्वी, ऐश्वर्य व पुत्र स्त्रीआदि की संपदा और देवताओं को भी दुर्लभ अनेक भांति के सुखों को प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ और उनको शत्रुसे व चोरों से तथा राजा से भय नहीं होताहै और न शस्त्र, अग्नि व जलराशि से कभी भय होवेगा ॥ २५ ॥ और दीर्घ आयुर्बलवाला व बुद्धिमान् तथा सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह मनुष्य संसार में सैकड़ों वर्षोंतक निवासकर मरकर शिवपुर को जाताहै ॥ २६ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मनो-

दीपाग्नितर्पणैः ॥ २२ ॥ क्षीरखण्डाज्यभोज्यैश्च भोजयेद्विधिवद्द्विजान् ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ २३ ॥ धनधान्यधरैश्वर्यपुत्रदारादिसम्पदः ॥ प्राप्नोतिविविधान्भोगान् देवानामपिदुर्लभान् ॥ २४ ॥ नशत्रुतोभयं तेषान्दस्युभ्योवानराजतः ॥ नशस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्बुद्धिमाँल्लोके उषित्वाशाश्वतीःसमाः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ २६ ॥ एवंव्यासपुरीम्प्राप्य रम्यांचोज्जयिनींशुभाम् ॥ समाश्रितातदादेवी सततंविन्ध्यवासिनी ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ स्त्रियोवारजदोषाक्ता वन्ध्यावैकाकवन्ध्यका ॥ २८ ॥ दुर्भगाशीलहीनाच सर्वकामविवर्जिता ॥ विमलोदेपिताःस्नात्वा दृष्ट्वावैविन्ध्यवासिनीम् ॥ २९ ॥ मुच्यतेसर्वदोषैस्तु नात्रकार्याविचारणा ॥ अपुत्राःप्राप्नुयुःपुत्रान् कन्यावीरंपतिंवरा ॥ ३० ॥ प्राप्यते सर्वसौभाग्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ विद्यावाञ्जायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ ३१ ॥ वैश्यश्चबहुलाभाढ्यः शूद्रस्तु

हर व उत्तम उज्जयिनी पुरी को प्राप्तहोकर उस समय विन्ध्यवासिनी देवी सदैव स्थितहुई ॥ २७ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै रज के दोष से संयुत स्त्रियां, बंध्या व काकबंध्या ॥ २८ ॥ दुर्भगा, शीलरहित व जो सब कामनाओं से रहितहैं वे भी विमलोद कुण्ड में नहाकर व विन्ध्यवासिनी देवी जी को देखकर ॥ २९ ॥ सब दोषों से छूटजातीहैं इस विषय में विचार न करनाचाहिये व बिन पुत्रवाली स्त्रियां पुत्रों को प्राप्तहोतीहैं और पतिको स्वीकार करने वाली कन्या पतिको पाती है ॥ ३० ॥ व सब कामनाओं के वरदायक समस्त सौभाग्य को पाती है व ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता

है ॥ ३१ ॥ और वैश्य बहुत लाभ से संयुत होता है व शूद्र सुखको भोगता है इस समस्त कामनाओं के वरोंको देनेवाली कथा के ॥ ३२ ॥ पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायांविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दो० । क्षातासंगम तीर्थकर जो माहात्म्य विचित्र । सरसठिवें अध्याय में सोइ रसाल चरित्र ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! क्षातानदी के संगम से उपजा हुआ अन्य तीर्थ है कि जिसके स्नानही से पुरुष बड़े पातकों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ जब शनैश्चरदिन समेत अमावस तिथि आवै तब सावधान होता हुआ

सुखमश्नुते ॥ कथाम्पुण्यवतीमेतां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ३२ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थमन्यतरंव्यास क्षातासङ्गमसम्भवम् ॥ यस्यतुस्नानमात्रेण महापापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ अमावैशनिवारेण यदायातिसमाहितः ॥ पितॄनुद्दिश्ययःकुर्याच्छ्राद्धंचैवतिलोदकम् ॥ २ ॥ पश्येच्छनैश्चरंदेवं स्थावरंलिङ्गमुत्तमम् ॥ तस्यशानिश्चरीपीडा नभवेत्तुकदाचन ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ महातीर्थसमाख्यातं महाकालवनेशुभे ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ कथांपौराणिकींशुभाम् ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ ५ ॥ रेवाचर्मण्वती क्षातातिस्रोनद्यःपुरानघ ॥ त्रैलोक्यपावनीर्जाताभुविचामरकण्टकात् ॥ ६ ॥ पुण्याःपुण्यजलारम्याःपवित्राःपापहारिणीः ॥ पुनन्त्यःसर्वलोकान्हि पापिनःपाप

जो पुरुष तिलोदक श्राद्धको करता है ॥ २ ॥ व उत्तम शनैश्चरदेव स्थावर लिंग को देखता है उसके शनैश्चर से उपजीहुई पीडा कभी नहीं होती है ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले कि हे तपोधन ! महाकालवन में महातीर्थ ऐसे कहेहुये तीर्थको मैं फिर विस्तार से सुनना चाहताहूं ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पुराणवाली उत्तम कथाको सुनिये कि जिसके सुननेहीसे बड़े पातकों का नाश होताहै ॥ ५ ॥ हे अनघ ! तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली नर्मदा, चर्मण्वती व क्षाता तीन नदियां पुरातन समय अमरकण्टक से पृथ्वीपर हुई हैं ॥ ६ ॥ जोकि पुण्यदायिनी व पवित्रजलवाली तथा मनोहर, पवित्र व पापोंको हरनेवाली हैं और पापकारी व

पापी सब मनुष्यों को पवित्र करती हैं ॥ ७ ॥ एक समय मान्धाता के उत्तमक्षेत्र में सुन्दर उपवन में आपस में जीतने की इच्छा से प्रसन्न होतीहुई वे परस्पर में क्रीडा करती थीं ॥ ८ ॥ और कुछ दोषके प्रसङ्गसे आपस में भेदहुआ व नर्मदासंग को छोड़कर व उत्तम विन्ध्याचल को भेदनकर ॥ ९ ॥ सुन्दर महाकालवन में भलीभांति आई जहां कि नदियों में उत्तम व महापुण्यदायिनी क्षिप्रानदी व यह अमरावतीपुरी है ॥ १० ॥ वहां सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व रुद्रसर ऐसा कहाहुआ उत्तमतीर्थ है जोकि भुक्ति, मुक्तिका दायक व नित्य सिद्धर्षिगणों से सेवित है ॥ ११ ॥ जहां पुरातन समय आकर क्षातानदी क्षिप्राके सङ्गम से घिरीहै वहां क्षातासङ्गम संज्ञक

कारिणः ॥ ७ ॥ एकदोपवनेरम्ये मान्धातृक्षेत्रउत्तमे ॥ मिथोरमन्तिसंहृष्टाः परस्परजिगीषया ॥ ८ ॥ किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन मिथोभेदोह्यजायत ॥ रेवासङ्गंपरित्यज्य भित्त्वाविन्ध्यगिरिंवरम् ॥ ९ ॥ महाकालवनेरम्ये समायातासरिद्वरा ॥ यत्रक्षिप्रामहापुण्या पुरीह्येषामरावती ॥ १० ॥ सर्वतीर्थवरंश्रेष्ठं नाम्नारुद्रसरःस्मृतम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंनित्यं सिद्धर्षिगणसेवितम् ॥ ११ ॥ यत्रागत्यपुराक्षाता क्षिप्रासङ्गसमावृता ॥ तत्रतीर्थपरंजातं क्षातासङ्गमसंज्ञितम् ॥ १२ ॥ यत्र धूतरजोजातः सद्यःप्रोक्तोविभावसुः ॥ व्यासउवाच ॥ कथंसूर्यस्त्वयाप्रोक्तो विरजोस्मिन्पुराभवत् ॥ १३ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरातुसंज्ञांसावित्रीं त्वष्टास्वतनयान्ददौ ॥ १४ ॥ पतिधर्मरतांनित्यं सवित्रेलोकचक्षुषे ॥ तस्यांवैमिथुनंजज्ञेलोकसाक्षिविभावसोः ॥ १५ ॥ यमोवैवस्वतोजातो यमुनालोकपावनी ॥ ततःसंज्ञाब्रवीच्छायां स्वकीयांसूनृतांगिरम् ॥१६॥ मिथुनंमेतवोत्सङ्गे धृतंतत्परिपालय ॥ यावत्त्वहमितश्छा

उत्तमतीर्थ उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ जहां कि उसीक्षण रजरहित कहेहुये सूर्यनारायणजी हुये हैं व्यासजी बोले कि तुमसे कहेहुये सूर्यनारायणजी पुरातनसमय इस क्षेत्रमें किस प्रकार रजरहित हुयेहैं ॥ १३ ॥ हे वेदविदांवर ! मैं तुमसे यह जानना चाहताहूं सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्वष्टा (विश्वकर्मा) जीने अपनी कन्या सावित्री संज्ञाजी को लोकोंके नेत्ररूप सूर्यनारायणजी के लिये दिया जोकि नित्यही पतिके धर्ममें परायणथीं उन संज्ञामें लोकसाक्षी सूर्यनारायणजी के एक कन्या व एक पुत्र पैदाहुआ ॥ १४ । १५ ॥ याने वैवस्वत यमराज व लोकोंको पवित्र करनेवाली यमुनानदी हुई तदनन्तर संज्ञाने अपनी छायासे प्रिय व सत्य वचन

को कहा ॥ १६ ॥ कि तुम्हारी गोदीमें मेरे धरेहुये उस कन्या व पुत्रको परिपालन कीजिये हे छाये ! जबतक मैं यहां अपने पिताके घरमें बसूं ॥ १७ ॥ तबतक सूर्य-नारायणकी भक्तिमे तत्पर होतीहुई तुम मेरे घरमें रहो और पिताके मकान में गई हुई मैं कभी सूर्यनारायण से कहनेयोग्य नहींहूं ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर वे सावित्रीजी उस समय चलीगई सूर्यनारायणके भयसे विकल वे बालासंज्ञाजी पिता के घरको चलीगईं ॥ १९ ॥ और पितासे मनाकीहुई उन संज्ञाने घोड़ीके रूपको धारणकर बहुत जलवाले व घास से हरित मनोहरवनमें भ्रमण किया ॥ २० ॥ एक समय उन क्षुधित यमराजजी से याचना कीहुई उन संज्ञाने मांगतेहुये यमराज के

ये वत्स्यामिस्वपितुर्गृहे ॥ १७ ॥ रविभक्तिरताताबचरत्वंममवेश्मनि ॥ नोवाच्याहंकदाछाये पितुर्वेश्मगतारवेः ॥ १८ ॥ एवंसासमयंकृत्वा सावित्रीह्यगमत्तदा ॥ पितुर्वेश्मगताबाला सवितुर्भयविह्वला ॥ १९ ॥ पित्रानिवारितासातु वडवारूपधारिणी ॥ विचचारवनेरम्ये बहुलोदकशाद्वले ॥ २० ॥ एकदायाचितातेन सायमेनबुभुक्षुणा ॥ नौदनंवैत यादत्तं याचमानायतत्क्षणात् ॥ २१ ॥ तदापदाहतातेनछायातंचशशापह ॥ यस्मात्पादेनमेघातं कृतवान्बलभा वतः ॥ २२ ॥ तस्मात्त्वन्तुपदाखञ्जो भविष्यसिनसंशयः ॥ एवंशप्तोरुजाक्रान्तो विललापशुचार्दितः ॥ २३ ॥ एत स्मिन्नन्तरेव्यास परिभूयवसुन्धराम् ॥ भावयन्सकलाँल्लोकान् ग्रहचारीविभावसुः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाचतनयम्पङ्गुमि त्युवाचतदायमम् ॥ किमिदंवत्सतेकष्टं कुतःप्राप्तंत्वयानघ ॥ २५ ॥ इतिपृष्टोयदातेन सवित्रालोकभावनः ॥ उवाचग

लिये उसीक्षण भातको नहीं दिया ॥ २१ ॥ तब उन यमराज से पांवसे मारीहुई छायाने उनको शापदिया कि जिसलिये बलहोने के कारण तुमने चरणसे मेरे प्रहार किया ॥ २२ ॥ उस कारण तुम पैरसे खंज होजावोगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार शापित व रोगसे आक्रमित तथा शोचसे विकल यमराज ने विलाप किया ॥ २३ ॥ इसी अवसर मे हे व्यासजी ! पृथ्वीको तिरस्कारकर सब लोकोंकी भावना करतेहुये ग्रहचारी सूर्यनारायणजी ने ॥ २४ ॥ पुत्रको पंगु देखकर उस समय यह कहा कि हे अनघ,वत्स ! यह तुम्हारे क्या कष्टहै व तुमको कहासे प्राप्तहुआ ॥२५॥ जब इस प्रकार लोकोंकी भावना करनेवाले यमराजजीसे सूर्यनारायणजी ने पूछा

तब संयमिनीपुरी के स्वामी व गद्गद वचनवाले यमराजजी बोले ॥ २६ ॥ कि हे नाथ ! मैंने माताके समीप प्रातःकाल भोजन के लिये मांगा और उसने शीघ्रही भोजन न दिया व मैंने शिशुता से मारा ॥ २७ ॥ और माताके शापसे तिरस्कृत मेरे चरण शीघ्रही गिरपड़े उस वचन को सुनकर ध्यान में तत्पर सूर्यनारायणजी मोहको प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व माताके शापका कारण यह विचित्र कहागया इस प्रकार बहुत समयतक ध्यानकर किरणोंवाले सूर्यनारायणजी ने जाना ॥ २९ ॥ कि लोक को पवित्र करनेवाली यह वह सुन्दर नेत्रान्तोंवाली त्वष्टाकी कन्या नहीं है यह कौनहै व कहांसे आई है हे शुचिस्मिते ! तुम कौनहौ यह कहिये ॥ ३० ॥ छाया बोली कि

द्गदवचा यमःसंयमिनीपतिः ॥ २६ ॥ प्रातराशायमेनाथ याचितंमातुरन्तिकात् ॥ नोदत्तम्भोजनंक्षिप्रं बालभावेनता डिता ॥ २७ ॥ पादौमेगलितौसद्यो मातुःशापतिरस्कृतौ ॥ तच्छ्रुत्वामोहमापन्नो रविर्ध्यानपरायणः ॥ २८ ॥ विचित्र मिदमाख्यातं मातुःशापस्यकारणम् ॥ एवंध्यात्वाचिरङ्कालं ज्ञातवान्रविरंशुमान् ॥ २९ ॥ नेयंसारुचिरापाङ्गी त्वा ष्ट्रीलोकस्यपावनी ॥ केयंवाकुतआयाता कात्वंवदशुचिस्मिते ॥ ३० ॥ छायोवाच ॥ नसासंज्ञामहाराज छायातादात्म्यस म्भवा ॥ गतावैसापितुर्गेहे वारिताहंतयानघ ॥ ३१ ॥ सवित्रेनैववक्तव्यं छायेकिञ्चित्कथञ्चन ॥ एषमेसमयोनाथ ते नाहंमौनमास्थिता ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवांस्त्वष्टुः समीपंरथमास्थितः ॥ जगामसहसाभानुर्बहुरोषसमन्वितः ॥ ३३ ॥ तन्दृष्ट्वासहसोत्थाय त्वष्टालोकपितामहः ॥ पाद्यार्घाचमनीयादिमधुपर्कैरपूजयत् ॥ ३४ ॥ नत्वापादौपरिक्रम्य बहुमानपुरःसरम् ॥ ऊचेमधुरयावाचा प्रियन्तेकरवामकिम् ॥ ३५ ॥ रविरुवाच ॥ क्वसातुसंज्ञासाविज्ञी ममविप्रियका

हे महाराज ! वह संज्ञा नहीं है और उसके शरीर से उपजीहुई मैं छायाहूं हे अनघ ! वह पिताके घरको गई और उसने मुझको मना कियाथा ॥ ३१ ॥ कि हे छाये ! सूर्यनारायण के लिये कुछ किसी प्रकार न कहना चाहिये हे नाथ ! यह मेरी प्रतिज्ञा है उससे मैं मौनमें स्थितहूं ॥ ३२ ॥ उस वचन को सुनकर बहुत क्रोधसे संयुत सूर्यनारायणजी रथपै बैठकर अचानकही त्वष्टा के समीप गये ॥ ३३ ॥ उनको देखकर अचानकही उठकर लोकोंके पितामह त्वष्टाजी ने पाद्य, अर्घ, आचमनीय व मधुपर्क से पूजन किया ॥ ३४ ॥ और बहुत मानपूर्वक परिक्रमाकर चरणों को प्रणामकर मधुर वचन से कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं ॥ ३५ ॥ सूर्यनारायणजी

बोले कि हे तात ! मेरा अप्रिय करनेवाली व मेरे मार्गको भेदन करनेवाली वह संज्ञा कहां है जोकि तुम्हारे घरआईथी ॥ ३६ ॥ त्वष्टाजी बोले कि हे तात ! हम तुम्हारी प्यारी के गमन व आगमन को नहीं जानते हैं त्वष्टाजी से ऐसा वचन कहनेपर दुःखित मनवाले सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ३७ ॥ कि क्या करूं कहांजाऊं और कहां मेरा अधिक प्रियहोगा सूर्यनारायण के ऐसा कहनेपर इसके अनन्तर त्वष्टा ने वचन कहा ॥ ३८ ॥ कि तुम्हारे तेजसे भ्रष्टहोकर कहीं वह स्त्री भगगई है यदि तुमको स्त्री प्रियहो तो तेजको शान्तकरो ॥ ३९ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे पितामहजी ! यदि मेरा ऐसा अपूर्व दुःसह तेजहै तो जैसा तुमको भलीभाति रुचता

रिणी ॥ आगतातेगृहंतात मममार्गानुभेदिनी ॥ ३६ ॥ त्वष्टोवाच ॥ नहिजानीमहेतात प्रियायास्तेगतागतम् ॥ इत्युक्ते वचनेत्वष्टा रविर्दुःखितमानसः ॥ ३७ ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामि क्वचप्रियतरोमम ॥ इतिसम्भाषमाणेतुत्वष्टा वाक्यमथा ब्रवीत् ॥ ३८ ॥ तवतेजःपरिभ्रष्टा भग्नाक्वापिगताबला ॥ यदितेवल्लभाभार्या तेजस्त्वम्परिशामय ॥ ३९ ॥ सूर्यउवा च ॥ यद्येवन्दुःसहंतेजो ममापूर्वंपितामह ॥ यथातेरोचतेसम्यक् तथामेघर्षणंकुरु ॥ ४० ॥ इतिसूर्यवचःश्रुत्वा शाणंकृत्वा सुदर्शनम् ॥ घृषितःक्षुरधारेण लघीयान्निर्मलोभवत् ॥ ४१ ॥ तस्यघर्षितमात्रेण त्वष्टालोकविवस्वतः ॥ शाणंसुद र्शनंचक्रे सैकतामणिजातयः ॥ ४२ ॥ तदात्वष्टाब्रवीद्वाक्यंमधुरंसूर्यसन्निधौ ॥ महाकालवनेरम्ये वडवारूपधारिणी ॥ ४३ ॥ गृह्यतांभोःसुरश्रेष्ठ शीघ्रंगच्छतुशाड्वले ॥ यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा यत्रक्षातासमागता ॥ ४४ ॥ उभयोःसङ्गमोयत्र तत्रमुक्तिर्नसंशयः ॥ तत्रसासुभगापत्नी प्राप्यतेतेनसंशयः ॥ ४५ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा सवितासर्वतापनः ॥ तत्रागच्छ

होवैसाही घर्षण कीजिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार सूर्यके वचनको सुनकर उत्तम दर्शनवाली शानको कर छुरेकी धारसे घिसा तो सूर्यनारायणजी अत्यन्त लघु व निर्मल हुये ॥ ४१ ॥ लोकोंके विवस्वत सूर्यनारायण के घिसेहुये तेजसे त्वष्टाने शान व सुदर्शनचक्र को बनाया व बालू सम्बन्धिनी मणिजातियोंको निर्माण किया ॥ ४२ ॥ उस समय त्वष्टाने सूर्यनारायणके समीप मधुरवचन कहा कि सुन्दर महाकालवनमें घोडीके रूपको धारण करनेवाली ॥ ४३ ॥ संज्ञाको हे सुरश्रेष्ठ ! शीघ्रही ग्रहण कीजिये और घाससे हरितस्थानमें जाइये जहा नदियोंमें श्रेष्ठ क्षिप्रानदी व जहां क्षातानदी भलीभांति आई है ॥ ४४ ॥ व जहां दोनोंका सङ्गमहै वहां निस्सन्देह मुक्तिहै और वहांपर

वह सुभगासंज्ञा तुमको प्राप्तहोगी इसमें सन्देह नहींहै ॥ ४५ ॥ उनके इस वचनको सुनकर सबको सन्ताप करानेवाले सूर्यनारायणजी वहां आये जहां कि महाकाल जीका पवित्रकारकवन है ॥ ४६ ॥ क्षाताके सङ्गम से संयुत क्षिप्रानदी जहा है वहा भुक्ति व मुक्ति और धन, धान्यका सङ्गम होताहै ॥ ४७ ॥ वहांपर अश्वरूपधारी सूर्यनारायणजीने घोड़ीके रूपको धारण करनेवाली उन प्यारी, श्यामासंज्ञा स्त्रीको देखा फिर ॥ ४८ ॥ नासिकाके सूंघनेहीसे जो उत्पन्नहुये देखनेयोग्य व सुकुमार अङ्गोंवाले वे दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुये ॥ ४९ ॥ और हे द्विजोत्तम! वहांपर संज्ञाने एक पुत्र व कन्याको पैदा किया और उस छायानेभी सब लोकोंको

द्वनंयत्र महाकालस्यपावनम् ॥ ४६ ॥ क्षातासङ्गमसंयुक्तायत्रक्षिप्रापयस्विनी ॥ तत्रभुक्तिश्चमुक्तिश्च धनधान्यसमागमः ॥ ४७ ॥ तत्रागत्यप्रियाम्भार्यां वडवारूपधारिणीम् ॥ ददर्शताम्पुनःश्यामां हरिरूपधरोहरिः ॥ ४८ ॥ नासिकाघ्राणमात्रेण यौजातावाश्विनावुभौ ॥ दर्शनीयसुकुमाराङ्गौ भिषजौतौदिवौकसाम् ॥ ४९ ॥ संज्ञाचसुषुवेतत्र मिथुनंद्विजसत्तम ॥ सापिशनैश्चरंचैव सर्वलोकप्रतापनम् ॥ ५० ॥ शनियोगेयदामावै जायतेसर्वकामदा ॥ तदास्नानंतदादानं श्राद्धंचैवतुकारयेत् ॥ ५१ ॥ तस्यहस्तगतालक्ष्मीर्जायतेसर्वदाभुवि ॥ यःक्षातासङ्गमेस्नात्वा दानंदद्याच्चशक्तितः ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्वरमभ्यर्च्य तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ सौरिःशनैश्चरोमन्दः कृष्णोनन्तोन्तकोयमः ॥ ५३ ॥ पिङ्गश्छायासुतोबभ्रुः स्थावरःपिप्पलायनः ॥ एतानिशनिनामानि प्रातःकालेपठेन्नरः ॥ ५४ ॥ तस्यशनैश्चरीपीडा नभवेत्तुकदाचन ॥ धर्मोपिसाक्षादत्रैव तपस्तेपेसुदुस्तरम् ॥ ५५ ॥ यज्ञकुण्डोत्तरेभागे यत्रतिष्ठतिमारुतिः ॥ धर्मसरइतिख्यातं

ताप करानेवाले शनैश्चर को उत्पन्न कियाहै ॥ ५० ॥ जब शनैश्चरके योगमें सबकामनाओंको देनेवाली अमावसहोतीहै तब स्नान व तब दान व श्राद्धको जो पुरुष करता है ॥ ५१ ॥ पृथ्वीपर सदैव उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्तहोती है जो मनुष्य क्षातानदी के सङ्गममें नहाकर शक्तिके अनुसार दान देताहै ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्वरजी को पूजकर उसके पातकोंका नाश होता है और सौरि, शनैश्चर, मन्द, कृष्ण, अनन्त, अन्तक व यम ॥ ५३ ॥ पिंग, छायासुत, बभ्रु, स्थावर, पिप्पलायन इन शनैश्चर के नामोंको जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर पढ़ता है ॥ ५४ ॥ उसके शनैश्चरसे उपजीहुई पीड़ा कभी नहीं होतीहै और साक्षात् धर्मराज ने भी यहां कठिन तप

कियाहै ॥ ५५ ॥ जहां यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में पवनपुत्र हनुमान्जी स्थित हैं वहां नामसे धर्मसेर ऐसा प्रसिद्ध अतिउत्तम तीर्थहै ॥ ५६ ॥ जहांपर पवनपुत्र हनुमान्जी तपस्या से उत्तम सिद्धि को प्राप्तहुये हैं उस तीर्थ में नहाकर कांस्यपात्र को देकर ॥ ५७ ॥ व मणियों तथा मोतियों समेत सुवर्ण से भूषित उत्तम वसनको आदर समेत जो पुरुष भूषित ब्राह्मणोंके लिये व वेद जाननेवाले द्विजों के लिये देताहै ॥ ५८ ॥ वह मातृलोक से उत्तीर्ण होकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है श्रावण महीने में शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में उत्तम आचारवाला जो पुरुष धर्मतीर्थ में स्नान व दानादिक कर्मों को करता है उसको सदैव सनातन विष्णुलोक होता

नाम्नातीर्थमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥ यत्रसिद्धिम्परांप्राप्तस्तपमापवनात्मजः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा दत्त्वावैकांस्य भाजनम् ॥ ५७ ॥ सुवासोमणिमुक्ताभिः काञ्चनालंकृतंवरम् ॥ ब्राह्मणेभ्योलंकृतेभ्यो वेदविद्भ्यश्चसादरात् ॥ ५८ ॥ मातृलोकसमुत्तीर्णो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ श्रावणेधवलेपक्षे एकादश्यान्तुयोनरः ॥ ५९ ॥ धर्मतीर्थेसदाचारी स्नानंदानादिकाःक्रियाः ॥ करोतिसततंतस्य विष्णुलोकंसनातनम् ॥ ६० ॥ च्यवनाश्रमेनरःस्नात्वा च्यवनेशंविलोकयेत्॥ यत्रसिद्धिंगतौपुण्यावाश्विनौभिषजांवरौ ॥ ६१ ॥ च्यवनस्यप्रसादेन देवपङ्क्तिमवापतुः ॥ च्यवनेनपुरादृष्टिः प्राप्ता वैदेवभेपजात् ॥ ६२ ॥ तस्मिंस्तीर्थेद्विजश्रेष्ठ देवदृष्टिर्भवेन्नरः ॥ अत्रैवप्राप्तवान्सूर्यः साग्निहोत्राश्रमम्परम् ॥ ६३ ॥ ततःसंज्ञामहाभागा सावित्रीलोकविश्रुता ॥ सूर्यलोकंसमासाद्य बुभुजेविपुलांश्रियम् ॥ ६४ ॥ तस्माद्व्यासपरंतीर्थं ज्ञाता सङ्गमसंज्ञितम् ॥ सर्वपापहरम्पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ यएतांसुकथाम्पुण्यां शृणोतिसुविभक्तितः ॥ पठेद्वा

है ॥ ५९।६० ॥ च्यवनजी के आश्रममें मनुष्य नहाकर च्यवनेशजीको देखै जहांपर कि वैद्योंमें श्रेष्ठ व पुण्यरूप अश्विनीकुमार सिद्धिको प्राप्तहुयेहैं ॥ ६१ ॥ व च्यवनजीकी प्रसन्नता से उन्होंने देवपंक्ति को पाया है और पुरातन समय वहांपर च्यवन जीने देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार जीसे दृष्टि को पाया है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस तीर्थ मे मनुष्य देवदृष्टि होता है यहीपर सूर्यनारायण जी ने उत्तम साग्निहोत्राश्रम को पाया है ॥ ६३ ॥ उसीकारण महाभाग्यवती व लोक मे प्रसिद्ध संज्ञा सावित्री जीने सूर्यलोक को प्राप्तहोकर बड़ी लक्ष्मी को भोग किया है ॥ ६४ ॥ उसी कारण हे व्यासजी ! ज्ञाता सगम संज्ञक उत्तम तीर्थ है जो कि सब पापों को

हरनेवाला व पवित्र तथा समस्त कामनाओं के वरदान का देनेवाला है ॥ ६५ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इस पवित्र उत्तम कथा को भक्ति से सुनता है व जो प्रातःकाल
उठकर पढ़ता है उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ ६६ ॥ कि हज़ार कपिला गऊ दान का जो फल पर्व में होता है उस फल को वह मनुष्य प्राप्त होता है इसमें विचार न
करना चाहिये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांज्ञातासङ्गममाहात्म्यंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ॥

दो० । गयातीर्थ माहात्म्य जिमि अहै अमित सुखदाय । अरसठिवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! इसके उपरान्त एक

प्रातरुत्थाय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ६६ ॥ कपिलागोसहस्रेण फलम्भवतिपर्वणि ॥ तत्फलंसमवाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षातासङ्गममाहात्म्यंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासप्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतःपरम् ॥ १ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं गयानामेतिनामतः ॥ यत्रस्नात्वानरोनित्यं मुच्यतेचऋणत्रयात ॥ २ ॥ देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य विष्णुलोकंसगच्छति ॥ व्यासउवाच ॥ कीकटेषुगयापुण्या नदीपुण्यापुनःपुनः ॥ ३ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं पुण्योराजगिरिस्तथा ॥ सकथंविदितोदेशे महाकालवनेशुभे ॥ ४ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासकथाम्पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५ ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥ पुराकृतयुगेपुण्ये युगादिदेवनामतः ॥ ६ ॥ राजा

तीर्थ को कहता हूं उसको सुनिये ॥ १ ॥ जो कि तीर्थों के मध्य में नामसे गया नामक तीर्थ है कि जिसमें नित्य स्नान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ २ ॥
और देवताओं व पितरों को भलीभांति पूजकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाता है व्यास जी बोले कि कीकट देशों में गया पुण्यदायिनी है व पुनःपुनः नदी पुण्य-
रूपिणी है ॥ ३ ॥ व तीर्थों के मध्य में उत्तम तीर्थ पुण्यरूप राजागिरि है वह कैसे उत्तम महाकालवनमे विदित हुआहै ॥ ४ ॥ हे तपोधन ! मैं इसको विस्तार
से जानना चाहता हूं सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पवित्र व पापहारिणी तथा पुण्यरूपिणी कथा को सुनिये ॥ ५ ॥ कि जिसके सुननेही से पितर उत्तम

गति को प्राप्त होते हैं पुरातन समय पुण्यरूप सत्ययुगमें युगादिदेव नाम से ॥ ६ ॥ राजाहुआ है वह धर्मात्मा पवित्र श्रवण व कीर्तनवाला था और सपुत्रों की नाईं भलीभांति पालतेहुये उसके प्रजालोग ॥ ७ ॥ सब ओर से बढते हुये सब वस्तुमे संपन्न हुये और उस राजा के पालन करनेपर नित्यही धर्म चारों चरणों से वर्तमान था ॥ ८ ॥ और मेघ समय में बरसते थे व ऋतुयें अपने धर्म से आचरण करती थीं और बहुत अन्न व फलोंवाली पृथ्वी थी व गाइयां बहुत दुग्ध देनेवाली थीं ॥ ९ ॥ और ब्राह्मण वेद के बाद में तत्पर थे व क्षत्रिय भुजाओं से शोभित थे और वैश्य नित्यही धनमें परायण थे और शूद्र सेवा में तत्पर थे ॥ १० ॥ और सब

सोऽसतुधर्मात्मा पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ ७ ॥ बभूवुःसर्वसम्पन्ना वर्द्धमानाःसमन्ततः ॥ धर्मश्चतुष्पदोनित्यं तस्मिन्राज्ञिप्रशासति ॥८॥ कालेवर्षीचपर्ज्जन्यो ऋतवःस्वाङ्गचारिणः ॥ बहुसस्यफलापृथ्वी गावश्चबहुदुग्धदाः ॥ ९ ॥ वेदवादरताविप्राः क्षत्रियाबाहुशालिनः ॥ वैश्याधनपरानित्यं शूद्राःशुश्रूषणेरताः ॥ १० ॥ वर्णाश्रमरताःसर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः ॥ श्रुतिस्मृतिपरोधर्मो हृष्टपुष्टजनाकरः ॥ ११ ॥ नाधिव्याध्यभिसम्भूता लक्ष्यन्तेकेपिमानवाः ॥ दुःशीलादुर्भगानार्यो विधवानोतथैवच ॥ १२ ॥ बहुपुत्राल्पपुत्राश्च मृतपुत्रानबन्ध्यकाः ॥ रूपशीलगुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥ १३ ॥ सुमार्गकरसंकीर्णो दस्युदोषविवर्जितः ॥ हूयताम्भुज्यतांशश्वद्दीयताञ्चगृहेगृहे ॥ १४ ॥ जपदानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापराः ॥ जनाःसर्वत्रदृश्यन्ते सर्वधर्मपरायणाः ॥ १५ ॥ च

लोग वर्णों व आश्रमों में रत तथा सब धर्म के उपदेश करनेवाले थे और जनों को हृष्टपुष्ट करनेवाला धर्म श्रुतियों व स्मृतियो में तत्पर था ॥ ११ ॥ और आधि व व्याधि से तिरस्कृत कोई भी प्राणी नहीं देखपड़ते थे व दुःशीलवती और दुर्भगा स्त्रियां नहीं देखपड़ती थीं न विधवा देखी जाती थी ॥ १२ ॥ और बहुत पुत्र व थोड़े पुत्रोंवाली तथा मरे पुत्रोंवाली व बंध्या स्त्री नहीं होती थीं और रूप शील व गुणो से संयुत तथा पतिव्रतधर्म में परायण थीं ॥ १३ ॥ और उत्तम मार्ग करनेवाले जनों से व्याप्त तथा चोरों के दोष से रहित धर्म था और हवन किया जाय, भोजन कियाजावे व सदैव दियाजाय यह शब्द घर २ मे सुन पड़ता था ॥ १४ ॥

और जप, दान, तपस्या, हवन, स्तुति व यज्ञकर्मों में तत्पर तथा सब धर्मों में परायण मनुष्य सब कहीं देख पड़ते थे ॥ १५ ॥ और धर्म चार चरण से चलता था व अधर्म एक चरण संयुत शरीरवाला था इसप्रकार युगादिदेव संज्ञक वह राजा धर्मात्मा था ॥ १६ ॥ जिसने इस पृथ्वी को पालन किया और धर्म से प्रजाओं को बढ़ाया व हे व्यास जी ! उसने पुरातनसमय अवन्तीपुरी में कोटियज्ञों को किया है ॥ १७ ॥ उससमय अतिपराक्रमी तुहुण्ड नामक दानव हुआ है उसने इस सब चराचर संसार को वश किया ॥ १८ ॥ और उस दुष्ट ने भयंकर व पुण्यरूप तपस्या कर ब्रह्मासे वरदानको पायाहै और न देवता न यज्ञ हुये तथा वह दानव वेद-

तुष्पदचरोधर्मोह्यधर्मःपादविग्रहः ॥ एवंराजासधर्मात्मा युगादिदेवसंज्ञितः ॥ १६ ॥ येनेयंपालितापृथ्वी धर्मेणवर्द्धिताःप्रजाः ॥ अवन्त्यांचपुराव्यास यज्ञकोटिंसमाचरत् ॥ १७ ॥ तस्मिन्कालेतिविक्रान्तस्तुहुण्डोनामदानवः ॥ तेनसर्वंवशंनीतं चराचरमिदंजगत् ॥ १८ ॥ घोरंतप्त्वातपःपुण्यं ब्रह्मलब्धवरःखलः ॥ नैवदेवानयज्ञाश्च वेदमार्गविवर्जितः ॥ १९ ॥ देवतापूजनंनास्ति स्वधास्वाहानदृश्यते ॥ उत्सन्नोधर्ममार्गोयं शाश्वतोवैदुरासदः ॥ २० ॥ नष्टप्रायाःसुरास्तेन कृताःसर्वोत्तमोत्तमाः ॥ ब्रह्माणंशरणंजग्मुः पितृणांसहसाधुभिः ॥ २१ ॥ किंकुर्मःक्वचगच्छामस्तुहुण्डेनपराजिताः ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषां ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २२ ॥ समुत्थायततःसर्वैर्विष्णुलोकंजगामह ॥ तत्रगत्वा समाराध्य विष्णुंदेवगणैःसह ॥ २३ ॥ स्तुतिंपुरुषसूक्तेनविष्णोरतुलतेजसः ॥ प्रचक्रुस्तुसर्वएतेह्यात्मनोभ्युदयायच ॥ २४ ॥ तदातेषांशमिच्छन्तीं वैष्णवीचाशरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोःसुरश्रेष्ठा भवतांश्रेयउत्तमम् ॥ २५ ॥ यूयंयात

मार्ग से रहित था ॥ १९ ॥ न देवताओं का पूजन होता था और न स्वधा, स्वाहा देखपड़ता था सनातन व कठिन यह धर्म का मार्ग त्याग कियागया ॥ २० ॥ उस से नष्ट से किये हुये सब से उत्तमोत्तम देवता पितरों व साधुवों समेत ब्रह्मा की शरण में गये ॥ २१ ॥ व यह बोले कि तुहुण्ड से पराजित हमलोग क्या करैं व कहां जावैं उनके इसप्रकार वचन को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ २२ ॥ उठकर तदनन्तर सबों समेत विष्णुलोक को गये और वहां जाकर देवगणों समेत विष्णु जी को भलीभांति आराधन कर ॥ २३ ॥ अपने ऐश्वर्य के लिये इन सबों ने अतुल तेजवाले विष्णु जी की पुरुषसूक्त से स्तुति किया ॥ २४ ॥ उससमय

उनके कल्याण को चाहतीहुई विष्णु जीकी अशरीरिणी (आकाशवाणी) बोली कि हे सुरोत्तमो ! जो आपलोगों का उत्तम कल्याण है उसको सुनिये ॥ २५ ॥ कि तुमलोग शीघ्रही पृथ्वी में महाकालवन को जावो जो कि गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त व पुण्यरूप तथा पवित्र व पापनाशक है ॥ २६ ॥ पृथ्वी में जहांपर मायावियों की माया नहीं प्रकाशित होती है वह समस्त तीर्थमय तीर्थ कोटितीर्थों के वरको देनेवाला है ॥ २७ ॥ जहां कि सब कामनाओं के फलों को देनेवाली श्रेष्ठ क्षिप्रानदी है जो कि दैत्यों का अन्त करनेवाली, दिव्य, महाकाली व कुलेश्वरी है ॥ २८ ॥ कोटि कोटि गणो से व्याप्त वह मातृकाओं की शक्ति को बढ़ानेवाली है व जहांपर महा-

क्षितौक्षिप्रं महाकालवनंप्रति ॥ गुह्याद्गुह्यतरंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ २६ ॥ नयत्रमायिनांमाया प्रकाशय तिभूतले ॥ सर्वतीर्थमयंतीर्थं कोटितीर्थवरप्रदम् ॥ २७ ॥यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा सर्वकामफलप्रदा ॥ दैत्यान्तकारि णीदिव्या महाकालीकुलेश्वरी ॥ २८ ॥ कोटिकोटिगणाकीर्णा मातॄणांशक्तिवर्द्धनी ॥ गयायत्रमहापुण्या फल्गुश्चै वमहानदी ॥ २९ ॥ पुरुषोत्तमगिरिःश्रेष्ठो यत्रबुद्धगयास्मृता ॥ तथैवचगयाख्याता त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ३० ॥ विष्णोः षोडशपदीतीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ॥ सर्वपापहरापुण्या यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ३१ ॥ महासुरनदीप्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति पुण्यदाः ॥ न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुराप्रोक्तोमहर्षिणा ॥ ३२ ॥ तत्रैवसाशिलाप्रोक्ता प्रेतमोक्षकरीशुभा ॥ तत्रैववसते सर्वा देवताःपितृकल्पजाः ॥ ३३ ॥ सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयोहरिः ॥ सर्वतीर्थमयंदेवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

पुण्यदायिनी गया व फल्गू महानदी है ॥ २९ ॥ और जहांपर श्रेष्ठ पुरुषोत्तमगिरि व बुद्धगया कही गई है वैसेही तीनों लोकों में प्रसिद्ध गया कहीगई है ॥ ३० ॥ और गदाधर से निर्माण कियाहुआ विष्णु जी का षोडशपदी तीर्थ है और जहांपर सब पापों को हरनेवाली व पुण्यदायिनी प्राची सरस्वती है ॥ ३१ ॥ और महासुरनदी कहीगई है ये पांच पुण्यदायक स्थित हैं व पुरातनसमय महर्षि जीने अक्षय व सनातन वट कहाहै ॥ ३२ ॥ और वहींपर प्रेतों को मोक्ष करनेवाली वह उत्तम शिला कहीगई है व वहींपर पितृकल्प में उपजेहुये समस्त देवता बसते हैं ॥ ३३ ॥ हे देवताओ ! ॐकार सब अक्षरमयहै व विष्णुजी सब देवमय हैं और अतिउत्तम गया

तीर्थ समस्ततीर्थमय है ॥ ३४ ॥ वहींपर तुमलोग शीघ्रही जावो क्योंकि उत्तम सिद्धिको पावोगे जहां कि प्रवेशमात्र से जो नरकगामी पितरहैं ॥ ३५ ॥ वे सर्व स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और वह ब्रह्म होने के लिये समर्थ होताहै ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयातीर्थमाहात्म्ये गयातीर्थप्रशंसावर्णननामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पितरन की उत्तम कथा गया श्राद्ध सुविधान । उनहत्तरि अध्याय में कीन्हों सुखद बखान ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् । इस विचित्र गयाजी के माहात्म्य

शीघ्रंगच्छततत्रैव परांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयगामिनः ॥ ३५ ॥ तेसर्वेस्वर्गमायान्ति ब्रह्मभूयायकल्पते॥३६॥इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगयातीर्थमाहात्म्येगयातीर्थप्रशंसानामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

व्यासउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं गयामाहात्म्यमुत्तमम्॥भगवन्भवतासर्वं विदितंविश्वमूर्तिना ॥१॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि श्राद्धस्यफलमुत्तमम् ॥ क्षेत्रस्यचद्विजश्रेष्ठ विस्तरेणतपोधन ॥ २॥ कियन्तःपितरोनित्यं तृप्तायान्ति सुरालयम् ॥ केषांकेपितरःप्रोक्ताः केतआसन्पुरानघ ॥३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ धन्योसिकृतकृत्योसि यस्यतेनैष्ठिकी मतिः ॥ तथापिश्रूयतांवत्स श्राद्धस्यविधिमुत्तमम् ॥ ४ ॥ श्राद्धेप्रकल्पितालोकाः श्राद्धेधर्मःप्रतिष्ठितः॥श्राद्धेयज्ञाहितिष्ठन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥५॥श्राद्धेयद्दीयतेकिञ्चिद्देवविप्राग्नितर्पणम् ॥ श्राद्धंतद्धिविजानीयात्पुराप्रोक्तंमहर्षिणा ॥६॥

को आपने कहा व आपही विश्वमूर्त्ति से सब जानागयाहै ॥ १ ॥ हे तपोधन, द्विजोत्तमजी ! श्राद्धके उस उत्तम फलको व क्षेत्रके फलको मैं विस्तार से सुनाचाहता हूं ॥ २ ॥ हे अनघ ! कितने पितर नित्य तृप्त होकर देवालय को जाते हैं और किनके कौन पितर कहे गये हैं व पहले वे कौन हुयेहैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि तुम धन्य व कृतकृत्यहो कि जिनकी तुम्हारी नैष्ठिकी बुद्धिहै तथापि हे वत्स ! श्राद्धकी उत्तम विधिको सुनिये ॥ ४ ॥ श्राद्ध में लोक कल्पितहैं व श्राद्ध में धर्म स्थितहै और श्राद्ध में सब कामनाओं के फलको देनेवाले यज्ञ स्थितहैं ॥ ५ ॥ कि श्राद्ध में जो कुछ देवता, ब्राह्मण व अग्नि को तृप्तिकारक दियाजाता है उसको श्राद्ध जानै

यह पहिले महर्षि जी ने कहाहै ॥ ६ ॥ मनुष्य, सब ऋषि, देवता, सिद्ध, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ब्रह्मा शिव व सुरेश ॥ ७ ॥ सावधान होकर तीन तीन पिंडों को उद्देश कर श्राद्ध देकर हे व्यासजी ! मनमें प्राप्त सब कामनाओं को प्राप्तहोते है ॥ ८ ॥ व इसप्रकार परापर सनातन मार्ग में वर्तमान होतेहैं तथापि ये पितर तपस्वियो समेत कहेगयेहै ॥ ९ ॥ उस सब को मै कहूंगा जिसप्रकार सुनागयाहै वैसेही उससब को मै भलीभाति कहूंगा जैसे ये पितर देवताहैं वैसेही देवता भी पितर होतेहैं ॥ १० ॥ ये देवता पितृगणों समेत आपस मे पितर हैं हे द्विजोत्तम ! पुरातन समय मार्कण्डेयजीने इस प्रश्नको पूछाहै ॥ ११ ॥ हे व्यासजी ! पहलेसे लगाकर उससब को तुमसे

मनुष्याऋषयःसर्वे सुरसिद्धाश्चमानवाः ॥ गन्धर्वाःकिन्नरानागा ब्रह्मभवसुरेश्वराः ॥ ७ ॥ त्रींस्त्रीन्पिण्डानस मुद्दिश्य श्राद्धंदत्त्वासमाहिताः ॥ प्राप्नुवन्त्यखिलान्कामान् सर्वान्व्यासमनोगतान् ॥ ८ ॥ एवंपरापरम्मार्गं प्रवर्त न्तेसनातनम् ॥ तथापिपितरोह्येते समाख्यातास्तपस्विभिः॥९॥ तत्सर्वंसंप्रवक्ष्यामि यथाश्रुतंतथाश्रृणु ॥ यथैतेपितरो देवा देवाश्चपितरस्तथा ॥ १० ॥ अन्योन्यंपितरोह्येते देवाःपितृगणैःसह ॥ मार्कण्डेनपुरापृष्टं प्रश्नमेतंद्विजोत्तम ॥ ११ ॥ निबोधयामितेव्यास निखिलंसर्वमादितः ॥ यावन्तस्तेपितृगणास्तस्मिँल्लोकेचतेगताः ॥ १२ ॥ सनत्कुमारउ वाच ॥ सप्तैतेयजतांश्रेष्ठाः सर्वेपितृगणाःस्मृताः ॥ चत्वारोमूर्तिमन्तोवै त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥ १३ ॥ तेषांलोकंविसर्गञ्च कीर्तयिष्यामितच्छृणु ॥ प्रभावत्वंमहत्त्वञ्च विस्तरेणतपोधन ॥ १४ ॥ धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयोयेपरमागणाः ॥ ते षांनामानिलोकांश्च कीर्तयिष्यामितच्छृणु ॥ १५ ॥ लोकाःसनातनानाम यत्रतिष्ठन्तिभास्वराः ॥ अमूर्तयःपितृगणा

बोध करताहूं कि जितने वे पितरों के गणहैं वे उस लोक मे प्राप्त हुयेहै ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि यज्ञ करनेवालो में श्रेष्ठ ये सात पितरगण कहेगये है उन मे चार मूर्त्तिमान्है व तीन मूर्त्तिरहितहै ॥ १३ ॥ हे तपोधन ! उनके लोक, उत्पत्ति, प्रभावत्व व महत्त्व को मै विस्तारसे कहताहू उसको सुनिये ॥ १४ ॥ उनके मध्य में जो मूर्तिधारी तीन उत्तम गणहै उनके नामों व लोकोंको कहताहूं उसको सुनिये ॥ १५ ॥ कि प्रसिद्ध मे वे सनातन लोक है जहा कि प्रकाशवान् वे पितर टिके है

और जो मूर्तिरहित पितरों के गणहैं वे हे द्विजोत्तम ! विराज प्रजापति के पुत्र वैराज हैं ऐसा हमलोगोंने सुनाहै उनको देवगण विधि से देखेहुये कर्मसे पूजते हैं ॥ १६ । १७ ॥ योग से भ्रष्ट ये सनातन लोकों को प्राप्त होकर फिर हज़ार युगों के अन्त में ब्रह्मवादी होतेहैं ॥ १८ ॥ फिर उस स्मरणको प्राप्त होकर व अतिउत्तम सांख्ययोग को पाकर पुनरावृत्ति याने पुनर्जन्म दुर्लभवाले व सिद्धयोगकी गति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ हे तात ! योगियों के योगको बढ़ानेवाले ये पितर हैं जो कि पहले योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! इसलिये योगियों को श्राद्ध दीजाती हैं सोमपान ऐसा प्रसिद्ध यह प्रथम कल्प है ॥ २१ ॥

स्तेवैपुत्राःप्रजापतेः ॥ १६ ॥ विराजस्यद्विजश्रेष्ठ वैराजाइतिनःश्रुतम् ॥ यजन्तेतान्देवगणा विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ १७ ॥ एतेवैयोगविभ्रष्टा लोकान्प्राप्यसनातनान् ॥ पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्तेब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥ तेप्राप्यतांस्मृतिम्भूयः सांख्ययोगमनुत्तमम् ॥ यान्तियोगगतिंसिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥ १९ ॥ एतेस्युःपितरस्तात योगिनांयोगवर्द्धनाः ॥ आप्याययन्तियेपूर्वं सोमंयोगबलेनवै ॥ २० ॥ तस्माच्छ्राद्धानिदीयन्ते योगिनांद्विजसत्तम ॥ एषवैप्रथमःकल्पः सोमपानमितिश्रुतम् ॥ २१ ॥ एतेषांमानसीकन्या मेनानाममहागिरेः ॥ पत्नीहिमवतःश्रेष्ठा यस्यामैनाकउच्यते ॥ २२ ॥ मैनाकस्यसुतःश्रीमान् क्रौञ्चोनाममहागिरिः ॥ अग्निष्वात्ताःपितृगणास्तत्रतिष्ठन्तिभास्कराः ॥ २३ ॥ याम्यांबर्हिषदाआसन् यमाद्याश्चैवपश्चिमाम् ॥ सोमपाश्चोत्तराम्प्राप्ता दिशंधनदपालिताम् ॥ २४ ॥ अमूर्तिमन्तश्चाकाशे कव्यवाडनलाःक्षितौ ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च यजन्तेभावितात्मनः ॥ २५ ॥ साध्यादेवान्यजन्तिस्म विश्वेदेवान्

इनकी मेना नामक मानसी कन्या हिमवान् महाचल की श्रेष्ठ स्त्री हुई है जिसका पुत्र मैनाक कहा जाताहै ॥ २२ ॥ और मैनाक का पुत्र श्रीमान् क्रौञ्चनामक महाचल है उसपै प्रभाकर अग्निष्वात्त नामक पितृगण टिके हैं ॥ २३ ॥ बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा मे प्राप्तहुये हैं व यमादिक पश्चिम दिशा मे तथा सोमपानामक पितरों के गण कुबेर से पालित उत्तर दिशाको प्राप्त हुये हैं ॥ २४ ॥ और बिन मूर्तिवाले पितरों के गण आकाश मे व कव्यवाड और नलनामक पितरगण पृथ्वी में

प्राप्त हुये हैं व शुद्ध चित्तवाले यक्ष, राक्षस व पिशाच ॥ २५ ॥ और साध्यदेवता देवताओं को व विश्वेदेवों तथा ऋषियों को पूजते हैं और मनुलोग श्राद्धदेव को ऋषि सनातन ब्रह्मको पूजते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्राद्ध सनातन धर्ममें परम्परा से प्राप्त है और पितृकार्य देवकार्य से उत्तम कार्य है व विशेष है ॥ २७ ॥ श्राद्ध के धर्म में तत्पर भरद्वाज जी के सात पुत्र जातिकी स्मरणता को प्राप्त होकर मोक्ष की पदवी को प्राप्त हुये हैं ॥ २८ ॥ और दूध देनेवाली गुरुकी गऊ को मारकर ये सातों ब्राह्मणों में नीचहुये और पितरों को उद्देशकर सब मांसको भक्षण करते हुये वे क्षुधासे विकल सब ॥ २९ ॥ योग से भ्रष्ट होकर उस पुण्यके प्रभाव से स्वर्ग

ऋषींस्तथा ॥ मनवःश्राद्धदेवश्च ऋषयोब्रह्मसनातनम् ॥ २६ ॥ एवंपरम्पराप्राप्तं श्राद्धंधर्मसनातनम् ॥ देवकार्यात्परं कार्य्यं पितृकार्यंविशिष्यते ॥ २७ ॥ भरद्वाजात्मजाःसप्त श्राद्धधर्मपरायणाः ॥ जातिस्मरत्वमापन्ना निर्वाणपदवींगताः ॥ २८ ॥ गुरोर्दोग्ध्रीन्तुगांहत्वा सप्तैतेवैद्विजाधमाः ॥ पितॄनुद्दिश्यतेसर्वं भक्षयन्तःक्षुधार्दिताः ॥ २९ ॥ तेनपुण्यप्रभावेण योगभ्रष्टादिवङ्गताः ॥ सप्तजातिषुसर्वेते योगयुक्तास्तथैवते ॥ ३० ॥ तस्माच्छ्राद्धंपरम्प्रोक्तं सूरिभिःपरमात्मभिः ॥ श्राद्धम्प्रतिष्ठितालोकाः श्राद्धंयोगःपरंतपः ॥३१॥ एवंतेपितरःप्रोक्ताः श्राद्धस्यचविधिंशृणु॥ ब्रह्मचर्यरतोदान्तो नक्रोधीनचमत्सरी ॥ ३२ ॥ शौचाचारपरोधीरः शास्त्रदृष्टिर्जितेन्द्रियः ॥ एवंयःकुरुतेश्राद्धं तीर्थेचैवविशेषतः ॥ ३३ ॥ ततोधिकतराप्रोक्ता तृप्तिर्व्यासक्षयेहनि ॥ वृद्धिश्राद्धंतथाप्रोक्तं महालयशताधिकम् ॥ ३४ ॥ ततोदशगुणाप्रोक्ता

को प्राप्तहुये हैं और वैसेही वे सब सात जातियों में योगसंयुत हुये हैं ॥ ३० ॥ इस लिये उत्तम चित्तवाले विद्वानों ने श्राद्ध को उत्तम कहाहै व श्राद्ध मे लोक प्रतिष्ठितहैं और श्राद्ध योगहै व श्राद्ध उत्तम तपहै ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे पितर कहेगयेहैं और श्राद्ध की विधिको सुनिये कि ब्रह्मचर्य में परायण व इन्द्रियों को दमन करनेवाला पुरुष क्रोधी न होवै और न ईर्षावान् होवै ॥ ३२ ॥ और शौच के आचार में परायण, विद्वान् व शास्त्रदृष्टिवाला तथा जितेन्द्रिय जो पुरुष तीर्थ में विशेषकर श्राद्ध करताहै ॥ ३३ ॥ उससे बहुतही अधिक हे व्यासजी ! क्षयाह में तृप्ति होतीहै वैसेही सौ महालय श्राद्धों से अधिक वृद्धिश्राद्ध कहागयाहै ॥ ३४ ॥

और तीर्थों के मध्य में जो गया कहीगईहै वह उससे दशगुना कहीहै हे व्यासजी! उससे दशगुना अधिक श्राद्ध उत्तम महाकालवनमें कहागयाहै ॥ ३५ ॥ अवन्ती पुरी में सबओर से गयातीर्थ सदैव पुण्यदायकहै क्योंकि जन्म जन्म में जो पितर नरक में प्राप्त हुयेहैं ॥ ३६ ॥ उनके उधारने के लिये यह दुर्लभ तीर्थहै यहां एकही बार स्मरण करने से पितरों को दियाहुआ अक्षय होताहै ॥ ३७ ॥ चौथे आश्रम के मध्यमें टिकेहुये जो पिताके वंशसे रहितहैं और जो गर्भपात में मरेहैं और जो नाम व गोत्रसे अलगहैं ॥ ३८ ॥ और अपने गोत्र व पराये गोत्रमें व जो अन्य आत्मघातसे मरतेहैं उनके उधारनेकेलिये यहां श्राद्धकीजावै ॥३९॥ ऊपरके बंधन से जो मरेहैं

यातीर्थेषुगयास्मृता ॥ ततोदशाधिकंव्यास महाकालवनेशुभे ॥३५॥ अवन्त्यांसर्वतःपुण्यं गयातीर्थंचसर्वदा ॥ येवैनिरयमापन्नाः पितरोजन्मजन्मनि ॥ ३६ ॥ तेषामुद्धरणार्थायतीर्थमेतत्सुदुर्लभम् ॥ सकृत्स्मरणमात्रेण पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ ३७ ॥ चतुर्थाश्रममध्यस्थाः पितृवंशविवर्जिताः ॥ गर्भपातेमृतायेच नामगोत्रच्युतास्तथा ॥ ३८ ॥ स्वगोत्रेपरगोत्रेवा आत्मघातमृताःपरे ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्रश्राद्धंविधीयताम् ॥ ३९ ॥ उद्बन्धनमृतायेच विषशस्त्रहताश्चये ॥ दंष्ट्रिभिश्चहतायेवै ब्राह्मणैश्चार्दिताश्चये ॥ ४० ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्रश्राद्धंविधीयताम् ॥ अग्निदग्धाश्चयेजीवा नाग्निदग्धास्तथापरे ॥ ४१ ॥ विद्युद्घातेनयेकेचिन्मुद्गरैश्चहताःपरे ॥ते०॥४२॥ रौरवेचान्धतामिस्रे कालसूत्रेचयेगताः ॥ अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकेचयेगताः ॥ ते० ॥ ४३ ॥ असिपत्रवनेघोरे कुम्भीपाकेषुयेगताः ॥ पशुयोनिगतायेच पक्षिकीटसरीसृपाः ॥ ते० ॥ ४४ ॥ उदकेषुमृतायेच नार्यःसूतिमृतास्तथा ॥ अश्वशूकरकैश्चैव शृङ्गिभिः

व विष तथा शस्त्रों से जो मारेगयेहैं और शूकरों से जो मारेगयेहैं व ब्राह्मणों से जो दुःखित होतेहैं ॥ ४० ॥ उनके उधारने के लिये यहा श्राद्ध कीजावे और जो प्राणी अग्नि में जलेहैं व अन्य जो अग्नि में नहीं जलेहैं ॥ ४१ ॥ और बिजली के गिरनेसे जो कोई मरेहैं व अन्य जो मुद्गरों से मारेगयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावे ॥ ४२ ॥ और रौरव, अन्धतामिस्र व कालसूत्र में जो प्राप्त हैं व अनेक पीड़ाओं में स्थित जो प्रेतलोक में प्राप्तहैं उनके उधारने के लिये यहां पर श्राद्ध की जावे ॥ ४३ ॥ भयंकर असिपत्रवन में व कुंभीपाक में जो प्राप्तहैं और पशुयोनिमें जो प्राप्तहैं व पक्षी, कीट और जो क्षुद्रसर्प हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की

जावै ॥ ४४ ॥ और जो जलों में मरगयेहैं व पुत्र पैदा होनेपर जो स्त्रियां मरीहैं और घोडा, शूकर व सींगवाले प्राणियों से तथा गाड़ियों से जो मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४५ ॥ और वनके दौरहा में शस्त्रादिकों से व व्याघ्र, सर्प, हाथी, राजा और शलभों (पाखियों) से तथा बीछू व शूकर तथा राक्षसों से जो मारे गयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्धकीजावै ॥ ४६ ॥ और अटारीपर शय्यापै जो मरेहैं और जो शौच व आचार से रहितहैं व विसूचिकारोग से जो मरेहैं व जो भ्रम तथा अतीसार से मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४७ ॥ व जो शाकिनी आदिक ग्रहों से ग्रस्त हुयेहैं और जो जलके मध्य में मरेहैं व न छूने के योग्य पुरुष के स्पर्श से जिन्हो ने संसर्ग कियाहै व जो पतित व सन्तान से रहितहैं ॥ ४८ ॥ और अपने कर्म से जो हज़ारों जन्मोंतक भ्रमते हैं व जिनको मनुज

शकटैर्हताः ॥ ते० ॥ ४५ ॥ वनदावेचशस्त्राद्यैर्व्याघ्राहिगजभूमिपैः ॥ शलभैर्वृश्चिकैर्दंष्ट्रिचौरक्रव्यादघातिताः ॥ ते० ॥ ४६ ॥ अट्टशय्यामृतायेच शौचाचारविवर्जिताः ॥ विसूचिकामृतायेच भ्रमातीसारतोमृताः ॥ ते० ॥ ४७ ॥ शाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता जलमध्येचयेमृताः ॥ अस्पर्श्यस्पर्शसंसृष्टाः पतितापत्यवर्जिताः ॥ ४८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि भ्रमन्तिस्वेनकर्म्मणा ॥ मानुषंदुर्लभंयेषां तेभ्यःश्राद्धंविधीयताम् ॥ ४९ ॥ येबान्धवाबान्धवाये येन्यजन्मनिबान्धवाः ॥ यानिमित्राण्यमित्राये मित्रमित्रास्तथापरे ॥ ते० ॥ ५० ॥ पितृवंशेमृतायेच मातृवंशेतथैवच ॥ गुरुश्वशुरबन्धूनां येचान्येबान्धवाःस्मृताः ॥ ते० ॥ ५१ ॥ येमेकुलेलुप्तपिण्डाः पुत्रदारादिवर्ज्जिताः ॥ क्रियालोपगतायेच जात्यन्धाःपङ्गवस्तथा ॥ ५२ ॥ काणाःकुब्जाविरूपाश्च आमगर्भाश्चयेमृताः ॥ येज्ञातायेपिचाज्ञाता ज्ञाताज्ञाताःकुलेमम ॥

शरीर दुर्लभहै उनके लिये श्राद्धकीजावै ॥ ४९ ॥ और जो बांधव तथा अबांधवहैं व जो अन्य जन्म में बांधव हुयेहैं और जो मित्रहै व जो अमित्रहैं तथा अन्य जो मित्रों के मित्रहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्धकीजावै ॥ ५० ॥ और जो पिता के वंश में मरेहैं व जो माता के वंशमें मरे हुयेहैं और जो गुरु व श्वशुर के बंधुवों के अन्य बांधव कहेगयेहै उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५१ ॥ और पुत्र व स्त्री से रहित जो मेरे वंशमें लुप्तपिंडवालेहैं व जो कर्म के लोप को प्राप्त हुयेहैं और जो जाति से अन्ध व पंगु हैं ॥ ५२ ॥ व जो काने, कुबडे, कुरूप और जो कच्चे गर्भवाले मरेहुये हैं व जो जानेहुये और जो विनजाने हुयेहैं तथा जो

मेरे वंश में ज्ञात व अज्ञातहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५३ ॥ और ब्रह्मसदन तक जो अन्य दुर्मरणों से मरेहुयेहैं व प्यास से विकल तथा भूंखे व त्यागे हुये जो मरेहैं ॥ ५४ ॥ व जो प्रेतयोनि मे प्राप्तहैं और जो म्लेच्छ की योनिमें प्राप्तहुयेहैं उनके उधारने के लिये यहांपर श्राद्ध कीजावै ॥ ५५ ॥ हे व्यासजी ! जो पुरुष इसप्रकार जिसतीर्थ में श्राद्धकी विधिको करताहै तीनोंऋणों से छूटाहुआ वह चाहेहुये मनोरथ को प्राप्तहोताहै ॥ ५६ ॥ इन्द्रादिक सब देवताओं ने गयातीर्थ में प्राप्तहोकर विधिपूर्वक उसको किया जोकि देववाणी से कहागया ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयामाहात्म्येश्रा

ते० ॥ ५३ ॥ आब्रह्मभुवनेयेचाप्यन्यैर्दुर्मरणैर्मृताः ॥ तृषार्त्ताःक्षुधिताश्चैव हापिताश्चैवयेमृताः ॥ ५४ ॥ प्रेतयोनिङ्गता श्चैव म्लेच्छयोनिंगताश्चये ॥ ते० ॥ ५५ ॥ एवंश्राद्धविधिंव्यास यस्मिंस्तीर्थेसमाचरेत् ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तो वाञ्छि तार्थंलभेत्तुसः ॥ ५६ ॥ गयायाञ्चसमासाद्य सुराइन्द्रपुरोगमाः ॥ चक्रुश्चविधिवत्सर्वं यदुक्तंदेवभाषया ॥ ५७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगयामाहात्म्येश्राद्धविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ ततःसुरगणाःसर्वे धूतपापाःसमाहिताः ॥ पुनर्योगबलंप्राप्य स्वाधिकारान्ययुःपुरा ॥ १ ॥ एवं व्यासगयातीर्थं कुमुद्वत्यांसुनिश्चितम् ॥ गयायांयानितीर्थानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ २ ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरःस्ना त्वा तत्तत्तीर्थफलंलभेत् ॥ तथैवचगयाक्षेत्रं गयाश्राद्धफलप्रदम् ॥ ३ ॥ फल्गुश्चसरितांश्रेष्ठा तथैवफलदायिनी ॥ आ

द्धविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गयातीर्थ के तीर्थ सब अरु उत्तम परभाव । सत्तरिके अध्याय में कह्यो कथा सतिभाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर पापरहित सब देवगण सावधान होकर फिर योगबलको पाकर पुरातन समय अपने अधिकारोंको प्राप्तहुये हैं ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कुमुद्वती पुरीमें भलीभांति निश्चित गयातीर्थहै और गया में जो तीर्थ व पवित्र देवमन्दिर हैं वे हैं ॥ २ ॥ इस तीर्थ में नहाकर मनुष्य उस उस तीर्थ के फलको प्राप्तहोताहै और वैसेही गयाक्षेत्र गया में श्राद्ध के फलको देने

वालाहै ॥ ३ ॥ वैसेही नदियों में श्रेष्ठ व फलदायिनी फल्गूनदी है व आदिगया, बुद्धगया व विष्णुपदी कहीगई है ॥ ४ ॥ और वैसेही कोष्ठक कहागयाहै व गदाधर-पद और सोलह वेदिका वैसेही अक्षयवट कहागयाहै ॥ ५ ॥ वैसेही नित्यही प्रेतों को मुक्ति करनेवाली शिला कहीगई है और अच्छोदा नदी कहीगई है व पितरों का उत्तम आश्रम कहा गयाहै ॥ ६ ॥ वैसेही किन्नरों समेत देवता, दानव, यक्ष व सबनागों का उत्तम आश्रम कहा गया है ॥ ७ ॥ इन सब स्थानों में स्नान दानादिक कर्म करना चाहिये व विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये जो ऐसा करता है उसको तीर्थ का फल होताहै ॥ ८ ॥ पितरलोकों के मध्य में गयाजी में आपही विष्णुजी

दिगयाबुद्धगया तथाविष्णुपदीस्मृता ॥ ४ ॥ कोष्ठकस्तुतथाप्रोक्तो गदाधरपदानिच ॥ वेदिकाःषोडशप्रोक्तास्तथैव चाक्षयोवटः ॥ ५ ॥ प्रेतमुक्तिकरीनित्यं शिलाचोक्तातथैवच ॥ अच्छोदानिम्नगाप्रोक्ता पितॄणाञ्चाश्रमोत्तमः ॥ ६ ॥ देवानांदानवानाञ्च यक्षाणांसहकिन्नरैः ॥ पन्नगानाञ्चसर्वेषां तथैवाश्रममुत्तमम् ॥ ७ ॥ एतत्स्थानेषुसर्वेषु स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ श्राद्धञ्चविधिवद्देयं तस्यतीर्थफलम्भवेत् ॥ ८ ॥ गयायांपितृलोकेषु स्वयमेवजनार्द्दनः ॥ तन्ध्यात्वापुण्डरीकाक्षं मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥ ९ ॥ एवंव्यासगयातीर्थं पुरावन्त्यांप्रतिष्ठितम् ॥ पश्चात्तुकाककेजातं यत्र सन्निहितोसुरः ॥ १० ॥ तदारभ्यद्विजश्रेष्ठ गयातत्रप्रतिष्ठिता ॥ गदाधरपदाघातैर्महादैत्यनिपातितः ॥ ११ ॥ तत्पदे महिमानंच जनार्द्दनसमर्पितम् ॥ पञ्चक्रोशंगयाक्षेत्रं क्रोशमेकंगयाशिरः ॥ १२ ॥ यत्रयत्रस्मरिष्यामि पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ सर्वदासर्वकालेषु गयाश्राद्धंविधीयते ॥ १३ ॥ संवत्सरेपरंव्यास पक्षमेकंप्रतिष्ठितम् ॥ कन्यास्थेचदिवानाथे

हैं उन कमललोचनजी को ध्यानकर मनुष्य तीनों ऋणों से छूटजाता है ॥ ९ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पुरातन समय अवन्ती पुरी में गयातीर्थ प्रतिष्ठित हुआ है पश्चात् काकक देशमें हुआहै जहां कि असुर भलीभांति टिका है ॥ १० ॥ तब से लगाकर हे द्विजश्रेष्ठ ! वहां पर गया प्रतिष्ठित हुई है गदाधरजी के चरणप्रहारों से जहा महादैत्य मारा गया है ॥ ११ ॥ उसी स्थान पै जनार्दनजी से समर्पित महिमाहै गयाक्षेत्र पांच कोस है व एक कोस गयाशिर है ॥ १२ ॥ उसको जहा जहां मैं स्मरण करूं वहा वहां पितरों का दिया हुआ अक्षय होता है सदैव सब समयों में गया श्राद्ध कीजाती है ॥ १३ ॥ परन्तु हे व्यासजी ! वर्षभर में एक दिन प्रतिष्ठित

है कि हस्तनक्षत्र से संयुत जब दिननाथ सूर्यनारायण कन्याराशि में स्थित होवैं ॥ १४ ॥ तब वह महालय ऐसा कहा गया है उसमें पितरों को दिया हुआ अक्षय होताहै सदैव सब समयोंमे गयाश्राद्ध कीजाती है ॥ १५ ॥ परन्तु हे व्यास जी ! वर्षभर में एक पक्ष प्रतिष्ठित है इसप्रकार हे व्यासजी ! स्नान दानादिक कर्मों में अवन्तीपुरी मनोहर है ॥ १६ ॥ फिर मैं बड़े अद्भुत माहात्म्यको कहताहूं मुझसे कहेहुये उस पवित्र व पापनाशक माहात्म्यको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सप्तर्षियों की जो सात पतिव्रता स्त्रियांथीं भाग्यसे भ्रष्टहुई वे अग्नि से दूषित हुई ॥ १८ ॥ और ऋषियों से छोड़ी हुई वे वनसे वनमें भ्रमती भई इस भांति बहुत समय बीतने

हस्तनक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ महालयेतितत्प्रोक्तं पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ सर्वदासर्वकालेषु गयाश्राद्धंविधीयते ॥ १५ ॥ संवत्सरेपरंव्यास पक्षमेकंप्रतिष्ठितम् ॥ एवंव्यासपुरीरम्या स्नानदानादिकर्मसु ॥ १६ ॥ भूयस्तुसंप्रवक्ष्यामि माहात्म्यंपरमाद्भुतम् ॥ तच्छृणुष्वमयाख्यातं पवित्रम्पापनाशनम् ॥ १७ ॥ सप्तर्षीणान्तुयाभार्या सप्तपत्न्यःपतिव्रताः ॥ तास्तुदैवपरिभ्रष्टा दूषिताःपावकेनच ॥ १८ ॥ ऋषिभिःपरित्यक्तास्ता बभ्रमुश्चवनाद्वनम् ॥ एवंबहुगतेकाले नारदो देवदर्शनः ॥ १९ ॥ तासान्तुप्रियमन्विच्छन् समायातोवनान्तरे ॥ ताभिःससत्कृतोनित्यं समासीनोधृतव्रतः ॥२०॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा देशकालोचितंवचः ॥ किमिदंक्रियतेजातो भवतीनाम्पराभवः ॥२१॥ कस्मात्तुऋषिभिस्त्यक्ता लोकमातृपतिव्रताः ॥ ऋषिपत्न्यऊचुः ॥ नजानेहिवयंतातयेनदोषेणतापसैः ॥ २२ ॥ विमुक्ताःसाग्निकैर्विप्रैः कार्त्तिकेयप्रसङ्गतः ॥लोकापवादजंकिञ्चिज्जातंदिष्टवशादघम् ॥२३॥किंकुर्मःक्वचगच्छामः किंतपःकाचदेवता ॥ यस्याराधनपु

पर देवदर्शन नारदजी ॥ १९ ॥ उनके प्रिय को चाहतेहुये वनके मध्यमें भलीभांति आये और उन सबों से सत्कार कियेहुये वे नित्य धारेहुये नियमवाले नारदजी बैठगये ॥ २० ॥ और देश व समय के योग्य वचनको नम्रवाणी से बोले कि यह क्या किया जाताहै जो कि आप सबोंका अनादर हुआ ॥ २१ ॥ और किस कारण ऋषियों से लोकों की माता व पतिव्रता तुम सब छोड़ी गई हो ऋषियों की स्त्रिया बोलीं कि हे तात ! हम सब यह नहीं जानती हैं कि जिस दोषसे हमलोग साग्निक ब्राह्मणों से छोड़ीगई हैं भाग्यके वशसे कार्त्तिकेय जी के प्रसंग से कुछ संसारके अपवाद (कलंक) से उपजाहुआ पातक हुआहै ॥ २२।२३ ॥ हम सब क्याकरैं व

कहांजावें क्या तप व कौन देवता है कि जिसके आराधन के पुण्य से फिर आश्रमको जावें ॥ २४ ॥ यह निश्चय कर हे ब्रह्मन् ! कहिये क्योंकि तुम यथार्थ जानते हो उस समय इस भांति उन ऋषिस्त्रियों से पूछे हुये नारदजी ॥ २५ ॥ बहुत देरतक ध्यानकर उनके कल्याण के लिये बोले नारदजी बोले कि हे ऋषिस्त्रियो ! आप सबोंके लिये जो श्रेष्ठतप है उसको सुनिये ॥ २६ ॥ कि मनोहर महाकालवनमें अतिउत्तम गयातीर्थ है वहींपर वृक्षों में श्रेष्ठ अक्षय नामक वट है ॥ २७ ॥ वहां आगमनमात्रसे पापरहित होवोगी क्योंकि वह तीर्थ सब दोषोंका हरनेवाला व सब कामनाओं के वरदान को देनेवाला है ॥ २८ ॥ और सब सुखों का करनेवाला

एयेन व्रजामःपुनराश्रमम् ॥ २४ ॥ एतन्निश्चित्यभोब्रह्मन् ब्रूहित्वंवेत्सितत्त्वतः ॥ इतिपृष्टस्तदाताभिर्ऋषिस्त्रीभिश्चना
रदः ॥ २५ ॥ उवाचसुचिरंध्यात्वा तासांशर्मस्यहेतवे ॥ नारदउवाच ॥ श्रूयताम्भोस्तपःश्रेष्ठम्भवतीनाञ्चकारणम् ॥
२६ ॥ महाकालवनेरम्ये गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रैवचाक्षयोनाम न्यग्रोधःशाखिनांवरः ॥ २७ ॥ तत्रागमनमात्रेण
धूतदोषाभविष्यथ ॥ सर्वदोषहरंतीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ २८ ॥ सर्वसौख्यकरंपुण्यं तत्रगच्छतमाचिरम् ॥ नारदस्य
वचःश्रुत्वा ऋषिपत्न्यःसुचोदिताः ॥२९॥ महाकालवनेऽयास इच्छन्त्यःप्रियमात्मनः ॥ जग्मुस्तास्तुतदातत्र यत्रतीर्थं
गयाभिधम् ॥ ३० ॥ तत्रगत्वाशुचिर्भूत्वा स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ कृतास्ताभिश्चपुण्याभिर्नभस्यस्यासितेतरे ॥
३१ ॥ गयायांऋषिपत्नीभिः पञ्चम्यांसुचिरंकृतम् ॥ उपोष्यचैकरात्रञ्च जागरंचैवयोगतः ॥ ३२ ॥ कृतमात्रेव्रतेऽया
स निष्पापाह्यभवन्क्षणात् ॥ भर्तृकोपपरिभ्रष्टा सद्यःप्राप्तागृहाश्रमम् ॥ ३३ ॥ ऋषिभिःस्वागतंदत्तं पूर्ववद्दापिसत्त

व पवित्र है वहा शीघ्रही जावो नारदजी के वचन को सुनकर अपने प्रियको चाहतीहुई भलीभांति प्रेरित वे ऋषियों की स्त्रियां उस समय हे व्यासजी ! उस महाकाल वनमें गईं जहां कि गया नामक तीर्थहै ॥ २९।३० ॥ वहां जाकर पवित्र होकर उन पुण्यरूपिणी ऋषिस्त्रियोंने पवित्र होकर गयातीर्थमें भाद्रपदके शुक्लपक्षमें पंचमी तिथि में स्नान दानादिक कर्मों को किया और एक रात्रि उपासकर योग से बहुत दिनों तक जागरण किया ॥ ३१।३२ ॥ हे व्यासजी ! व्रत के करनेहीपर क्षणभर में पाप-रहित होगईं और पतिके क्रोध से भ्रष्ट वे ऋषिस्त्रियां शीघ्रही गृह के आश्रम को प्राप्तहुईं ॥ ३३ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठजी ! ऋषियों ने पहले की नाईं स्वागत दिया तब

से लगाकर इस संसार में वह तिथि ऋषिपंचमी प्रसिद्ध हुई ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! उस तिथिमें जो मनुष्य इस व्रत को करता है और जो सावधान होता हुआ पवित्र होकर नीवार (तिन्नीकसहीं) का आहार करता है ॥ ३५ ॥ उसको कुछ आपत्तिका दुःख कभी नहीं होताहै व स्त्रियों की दुर्भगता नहीं होती है और न पतियों से वियोग होता है ॥ ३६ ॥ और न कभी पुत्र व धन से भी वियोग होवैगा हे व्यासजी ! जो तुमने उत्तम पूंछा वह इसप्रकार भलीभांति कहागया ॥ ३७ ॥ हे सत्तम ! पृथ्वीपर अवन्तीपुरी में ऐसा तीर्थ वर्तमान है कि वैसा पुण्यदायक कोई तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ३८ ॥ इस तीर्थ में जो कोई मनुष्य महादानोंको करता है

म ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिन् सातिथिर्ऋषिपञ्चमी ॥ ३४ ॥ योनरोव्यासतस्यांवै व्रतमेतत्करोतिच ॥ नीवाराहारकंकुर्याच्छुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ३५ ॥ नतस्यजायतेकिञ्चिदापद्दुःखंकदाचन ॥ दुर्भगत्वंननारीणां नवियोगश्चभर्तृभिः ॥ ३६ ॥ पुत्रतोधनतोवापि कदाचित्सम्भविष्यति ॥ एवंव्याससमाख्यातं यत्त्वयापृष्टमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ अवन्त्यामीदृशंतीर्थं वर्त्ततेभुविसत्तम ॥ तादृशंपुण्यदंकिञ्चिन्नास्तिब्रह्माण्डगोलके ॥ ३८ ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरःकश्चिन्महादानानिकारयेत् ॥ अक्षयंतस्यभवति विष्णुलोकेमहीयते ॥ ३९ ॥ योवैनियतवान्भूत्वा कथामेतांशृणोतिवा ॥ पर्वेचसततंव्यास हयमेधफलंलभेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगयातीर्थमाहात्म्यन्नामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यासउवाच ॥ पुरुषोत्तमकंतीर्थन्त्वयाप्रोक्तंपुरानघ ॥ महिमातस्यतीर्थस्य विस्तराद्वदमेप्रभो ॥ १ ॥ एतत्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ श्रूयताम्भोद्विजश्रेष्ठ कथांपापहराम्पराम् ॥ २ ॥ यस्याःश्रवणमा

उसका वह अक्षय होताहै और वह विष्णुलोक में पूजा जाताहै ॥ ३९ ॥ हे व्यासजी ! जो पुरुष नियमवान् होकर इस कथा को सुनता है व सदैव जो पर्व में सुनता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगयातीर्थमाहात्म्यंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

दो० । पूजै जिमि मलमास मे श्रीपुरुषोत्तम देव । इकहत्तरि अध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यासजी ! बोले कि हे अनघ, प्रभो ! पुरातन समय तुमने पुरुषोत्तम तीर्थको कहा है मुझसे उस तीर्थ की महिमा को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे यह सुनना चाहताहूं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम !

पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये ॥ २ ॥ कि जिसके सुननेही से महापातकोंका नाश होता है हे ब्रह्मन् ! पहले कल्पों में निर्मल व उत्तम वैकुंठ में पार्षद तथा उत्तम वर्णवाले सनकादिक महर्षियों व पितामह आदिक देवताओं समेत रमानाथ विष्णुजी बैठेथे ॥ ३ । ४ ॥ जो कि ऋद्धि, सिद्धियों के गुणों से संयुत उन महदादिक तत्त्वों से व गण तथा गन्धर्वसमूहों से सब ओर सेवित थे ॥ ५ ॥ और किन्नरों के उच्चप्रकार के गान व सम्मान से उत्तम आगन में नृत्य होनेपर और चिन्तामणि के गृहद्वार व सुन्दर अँगनाई की भूमियों में ॥ ६ ॥ कल्पवृक्ष से कीहुई छायावाले मुरशत्रु विष्णुजी के बैठनेपर ब्रह्ममार्ग में भलीभाति निश्चय किये हुये सब धर्म

त्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ पुराकल्पेपुरैब्रह्मन् वैकुण्ठेविमलेशुभे ॥ ३ ॥ समासीनोरमानाथः पार्षदैःसनकादिभिः ॥ महर्षिभिश्चसद्वर्णैः पितामहपुरोगमैः ॥ ४ ॥ ऋद्धिसिद्धिगुणोपेतैस्तत्त्वैस्तैर्महदादिभिः ॥ गणगन्धर्वसङ्घैश्च सेव्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥ किन्नरोद्गानसम्मानैर्नृत्यमानेवराङ्गणे ॥ चिन्तामणिगृहद्वारललिताङ्गणभूमिषु ॥ ६ ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायआसीनेहिमुरद्विषि ॥ धर्मवादरताःसर्वे ब्रह्ममार्गसुनिश्चिताः ॥ ७ ॥ तेषांमध्येपराम्भाषां कमलातमपृच्छत॥ पुण्यकानांविधिंनाथ श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ८ ॥ सर्वज्ञोसिमहाप्राज्ञ प्रोच्यतांयदिरोचते ॥ श्रीभगवानुवाच॥ दानंस्नानंतपस्तप्तं सदाशस्तंहिशोभने ॥ ९ ॥ तथापिविधिनाप्राप्तं तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ देशेकालेचपर्वेच तीर्थेप्राप्तेचगोपदे ॥ १० ॥ दानंस्नानंतपःश्राद्धं मुनिभिःपरिकीर्तितम् ॥ पूर्णिमायाममावास्यां संक्रान्तौग्रहणेतथा ॥११॥ वैधृतौचव्यतीपाते दानमृद्धिपरंस्मृतम् ॥ गङ्गायांभास्करक्षेत्रेरुणक्षेत्रेचपुष्करे ॥ १२ ॥ गोदावर्य्यांगयायाञ्च तीर्थेचामरक

के वाद में परायण थे ॥ ७ ॥ उनके मध्य मे लक्ष्मीजी ने उन विष्णुजी से उत्तमवचन को पूंछा कि हे नाथ ! मैं पुण्यों की विधिको यथार्थ सुनना चाहतीहूं ॥ ८ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तुम सर्वज्ञ हो यदि तुमको रुचता हो तो कहिये श्रीभगवान् बोले कि हे शोभने ! दान, स्नान व किया हुआ तप सदैव शुभ होताहै ॥ ९ ॥ तथापि विधि से प्राप्त वह सब अक्षय होता है देश, काल व पर्व में गोपदतीर्थ प्राप्त होनेपर ॥ १० ॥ दान, स्नान, तप व श्राद्ध मुनियों से कहा गयाहै पौर्णमासी, अमावस, संक्रान्ति व ग्रहण में ॥ ११ ॥ और वैधृति व व्यतीपातयोग में दान ऋद्धिदायक कहा गया है व गंगा, भास्करक्षेत्र, अरुणक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १२ ॥ और गोदा-

वरी व गयातीर्थ में तथा अमरकंटक व अवन्तीपुरी में जो हवन किया व दियाहुआ होता है वह सब अक्षय होता है ॥ १३ ॥ इसलिये सब यत्न से पर्वतीर्थ करै क्योंकि तीर्थ पर्व से भ्रष्ट मनुष्य निश्चयकर कुवसनी, दुर्भग, मूर्ख, जड व रोगसे संयुत होता है लक्ष्मीजी बोलीं कि कौन योग व कौन कर्म हैं इस सबको सम्पूर्णता मे कहिये ॥ १४ । १५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे अनघे, भद्रे, प्रिये ! तुमने पुण्यों के मध्य में बहुत अच्छा पूंछा मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य व्रतसे रहित होते हैं ॥ १६ ॥ हे शोभने ! उनके जन्म जन्म में दरिद्रता होती है लक्ष्मीजी बोलीं कि मलमास कैसा होता है और किस योगसे होता है ॥ १७ ॥ व किस समय

एटके ॥ अवन्त्याञ्चहुतंदत्तं तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पर्वतीर्थंसमाचरेत् ॥ कुचैलोदुर्भगोमूर्खो जडोरोगसमन्वितः ॥ १४ ॥ तीर्थपर्वपरिभ्रष्टो नरोभवतिनिश्चितम् ॥ श्रीरुवाच ॥ केचयोगाश्चकर्माणि ब्रूहिसर्वंविशेषतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुपृष्टन्त्वयाभद्रे पुण्यकानांप्रियेनघे ॥ मलमासेसमायाते येनराव्रतवर्जिताः ॥ १६ ॥ जन्मजन्मनिदारिद्र्यं तेषाम्भवतिशोभने ॥ श्रीरुवाच ॥ कीदृशोहिमलोमासः केनयोगेनजायते ॥ १७ ॥ कदाकालेसमायाति एतन्नोवदविस्तरात् ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ युक्तमुक्तन्त्वयादेवि प्रश्नकालोयमीदृशः ॥ १८ ॥ देवतापितृकार्याणि विधिनाहिमलिम्लुचे ॥ चौरंमौञ्जीविवाहादिव्रतोपवासकंतथा ॥ १९ ॥ विशेषेणगृहस्थानां वर्ज्यंमुनिवरोत्तमैः ॥ संवत्सरत्रयान्तेच मासोयमधिगच्छति ॥ २० ॥ असंक्रमणंरवेरस्मिंस्तस्मादधिकमासकः ॥ अधिमासाधिपत्योहं सदैवपुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ ममाभिधानंमेतीर्थं महाकालवनेशुभम् ॥ पुरुषोत्तमाख्यंमेधाम सदैवात्रसुतिष्ठ

प्राप्त होता है इसको मुझसे विस्तार से कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे देवि ! तुमने योग्य कहा यह ऐसाही प्रश्न का समय है ॥ १८ ॥ मलमास में विधिसे देवता व पितरो के कार्य, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाहादिक, व्रत व उपास ॥ १९ ॥ गृहस्थोंको विशेष कर वर्जित करना चाहिये यह मुनिश्रेष्ठों ने कहा है और तीन वर्ष के अन्त में यह मास आताहै ॥ २० ॥ इस महीने में सूर्यका सक्रमण नहीं होताहै इसी कारण अधिक मास होताहै मैं पुरुषोत्तम सदैव अधिमासका स्वामी हूं ॥ २१ ॥

महाकालवनमें मेरे नामवाला मेरा उत्तम तीर्थ है यहांपर सदैव पुरुषोत्तम नामक मेरा स्थान स्थित रहताहै ॥ २२ ॥ इसलिये सब यत्नसे तुम समेत जाना चाहिये जहां महाकालवनहै वहा मेरे नामवाला तीर्थ है ॥ २३ ॥ हे प्रिये, देवि ! जो मनुष्य स्नान के लिये वहां भलीभांति आते हैं उनको कुछ मेरे न देने योग्य कभी न होवैगा ॥ २४ ॥ और धन, धान्य व स्त्री आदिक तथा पुत्रों का सुख सदैवही रहताहै संक्रान्तिरहित मास प्राप्त होनेपर मनुष्य मुझको उद्देशकर व्रत करै ॥ २५ ॥ पुरुषोत्तम मैं सदैव अधिमास का स्वामी हूं स्नान, दान, जप, होम, निज वेदपाठ व पितरों का तर्पण ॥ २६ ॥ व जो उत्तम मनुष्य दुपहर में देवता का पूजन करते

ति ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यंहित्वयासह ॥ महाकालवनंयत्र तत्रतीर्थंममाभिधम् ॥ २३ ॥ प्राणिनोयेसमायान्ति मज्जनार्थंप्रियेध्रुवम् ॥ तेषांदेविममादेयं नकदापिभविष्यति ॥ २४ ॥ धनधान्यकलत्रादिपुत्रसौख्यंसदैवहि ॥ असंक्रान्तेपिसंप्राप्ते मामुद्दिश्यव्रतंचरेत् ॥ २५ ॥ अधिमासाधिपत्योहं सदावैपुरुषोत्तमः ॥ स्नानंदानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥ २६ ॥ देवार्चनंचमध्याह्ने येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ अक्षयंस्यात्तुतत्सर्वं तेषांवैकमलेध्रुवम् ॥ २७ ॥ मलमासोगतःशून्यो येषांदेविप्रमादतः ॥ दारिद्र्यञ्चसदातेषां शोकरोगविवर्द्धनम् ॥ २८ ॥ अधिमासेनरायेचाप्यवन्त्यांव्रतकारकाः ॥ तेषान्ददाम्यहंप्रीत्या त्वामेवतुनसंशयः ॥ २९ ॥ स्वल्पंदानम्मलेकार्यं यत्किञ्चिदिहयत्कृतम् ॥ तत्सर्वंमत्प्रसादेन ह्यनन्तंप्रियदर्शने ॥ ३० ॥ श्रीरुवाच ॥ ईदृशोहित्वयाप्रोक्तस्त्वधिमासस्यसुव्रत ॥ महिमाह्यपिलोकानां सर्वकामवरप्रदः ॥ ३१ ॥ अधिमासव्रतम्पुण्यंकथयस्वप्रसादतः ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ असंक्रान्तोयदामासः

हैं हे लक्ष्मी जी ! उनका वह सब निश्चय कर अक्षय होता है ॥ २७ ॥ हे देवि ! असावधानतासे जिनका मलमास शून्य व्यतीत होताहै उनके सदैव दरिद्रता होती है और शोक व रोगों की वृद्धि होती है ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य अवन्तीपुरी में मलमास मे व्रत करनेवाले हैं उनको मैं प्रीति से तुम्हीं को देताहूं इस में सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ मलमास मे यहा जो कुछ थोडा भी होवै उसको दान करै क्योंकि हे प्रियदर्शने ! यहा जो दान किया होताहै वह सब मेरी प्रसन्नता से अनन्त होता है ॥ ३० ॥ लक्ष्मी जी बोली कि हे सुव्रत ! तुमने मनुष्यों को सब कामनाओ को वरदायक ऐसी मलमास की महिमाको कहा ॥ ३१ ॥ और मलमास के पुण्यदायक

व्रतको प्रसन्नतासे कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे प्रिये ! बिन संक्रान्तिवाला (मलमास) जब मनुष्यों को प्राप्त होवै ॥ ३२ ॥ तब आगमन में हित चाहनेवाले पुरुषों को बडा भारी उत्सव करना चाहिये हे सुरेश्वरि ! कृष्णपक्ष में चौदसि व नवमी में ॥ ३३ ॥ और अष्टमी में यथालाभ उपहार से शोकविनाशक व्रत करना चाहिये व मलमासमें ॥ ३४ ॥ पुण्य दिनमें प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्नवाले कर्मको करके न नियम ग्रहणकर पश्चात् हृदयमें विष्णुजी को स्मरण करताहुआ पुरुष ॥ ३५ ॥ हे मानिनि ! उपवास, नक्तव्रत व एकभुक्त व्रतों में से एकका निश्चयकर तदनन्तर ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै ॥ ३६ ॥ जो कि सपत्नीक, उत्तम आचारवाले

प्राप्यतेमानवैःप्रिये ॥ ३२ ॥ महोत्सवस्तदाकार्य आगमेहितकाङ्क्षिभिः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नवम्यांवासुरेश्वरि ॥ ३३ ॥ अष्टम्याञ्चाथकर्तव्यं व्रतंशोकविनाशनम् ॥ यथालाभोपहारेण मासेचापिमलिम्लुचे॥३४॥पुण्याहेप्रातरुत्थाय कृत्वापूर्वाह्णिकींक्रियाम् ॥ गृहीत्वानियमंपश्चाद्वासुदेवंहृदिस्मरन् ॥ ३५ ॥ उपवासश्चनक्तञ्च एकभुक्तश्चमानिनि ॥ एकस्यनिश्चयंकृत्वा ततोविप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ ३६ ॥ सपत्नीकान्सदाचारान् कुलीनाञ्ज्ञातिसम्भवान् ॥ ततोमध्याह्नसमये लक्ष्मीयुक्तंसनातनम् ॥ ३७ ॥ स्थापयेदव्रणेकुम्भे वेदमन्त्रैर्द्विजातिभिः ॥ पूजयेत्परयाभक्त्या गोत्रभित्सपितामहम् ॥ ३८ ॥ गन्धतोयेनसंस्थाप्य पञ्चामृतैस्तथैवच ॥ मिष्टान्नैर्विविधैश्चैव नैवेद्यैर्धूपदीपकैः ॥ ३९ ॥ आच्छादनैश्चवस्त्रैश्च पीतकौशेयकैस्तथा ॥ घण्टामृदङ्गनिर्ह्रादैर्दिव्यघोषसमन्वितैः ॥ ४० ॥ आरातिकंव्रतीकुर्यात कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ अलाभेतूलकैश्चापि फलस्यानन्तहेतवे ॥ ४१ ॥ ताम्रपात्रस्थितैस्तोयैश्चन्दनाक्षतपुष्पकैः ॥ अर्घंदद्यात्सप

कुलीन व ज्ञाति में उत्पन्न होवें तदनन्तर मध्याह्न समय में लक्ष्मी समेत सनातन पुरुष को ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणों से वेदमंत्रों के द्वारा व्रणरहित (बिनफूटे) कुंभमें स्थापित करावै और इन्द्र व ब्रह्मा समेत बडी भक्ति से पूजन करै ॥ ३८ ॥ व भलीभांति स्थापित कर सुगन्धजल व पंचामृतों से तथा अनेक भांति के नैवेद्यों व धूप दीपों से ॥ ३९ ॥ और आच्छादन व पीत रेशमी वस्त्रों से तथा दिव्य शब्द से संयुत घंटा व मृदंग के शब्दों से ॥४०॥ व्रती पुरुष कर्पूर, अगुरु व चन्दन से आरती करै और इनके न मिलनेपर अनन्त फलके कारण रुई की बत्तियों से आरती करै॥ ४१ ॥ और स्त्री समेत व्रती पुरुष प्रसन्नचित्त से चन्दन, अक्षत व पुष्पों समेत

तांबे के पात्र में स्थित जल से अर्घ देवै ॥ ४२ ॥ याने घुटनुवों को पृथ्वी में कर शिवभक्ति से संयुत पुरुष हाथों से उसको लेकर पंचरत्नों से संयुत जलों से अर्घ देवै ॥ ४३ ॥ हे देव ! तुम सब प्राणियों में दयावान् व संसार को आनन्दकारकहो अर्घ को ग्रहण कीजिये व सम्पूर्ण फलों के दायक हूजिये यह अर्घ का मंत्र है ॥४४॥ अमिततेजवाले आप स्वयंभू व ब्रह्माके लिये नमस्कार है व हे श्रियानन्द,ब्रह्मानन्द, कृपाकर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है यह प्रार्थना का मंत्र है ॥ ४५ ॥ नहाकर व पवित्र होकर इसप्रकार गोविन्दजी की प्रार्थना कर लक्ष्मीनारायण को स्मरण करताहुआ पुरुष आपही पत्नी समेत ब्राह्मणों को पूजै ॥ ४६ ॥ विधि से पूजकर घी

वीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥ पञ्चरत्नैःसमायुक्तैर्जानुनीकृत्यभूतले ॥ समादायचपाणिभ्यां सर्वभक्तिसमन्वितः ॥ ४३ ॥ कृपावान्सर्वभूतेषु जगदानन्दकारकः ॥ गृहाणार्घ्यमिदंदेव सम्पूर्णफलदोभव ॥ इत्यर्घ्यमन्त्रः ॥ ४४ ॥ स्वयम्भुवेनमस्तुभ्यं ब्रह्मणेमिततेजसे ॥ नमोस्तुतेश्रियानन्द ब्रह्मानन्दकृपाकर ॥ इति प्रार्थनामन्त्रः ॥ ४५ ॥ एवंसंप्रार्थ्यगोविन्दं पूजयेद्ब्राह्मणान्स्वयम् ॥ सपत्नीकाञ्छुचिःस्नात्वा लक्ष्मीनारायणौस्मरन् ॥४६॥ पूजयित्वाविधानेन भोजयेद्घृतपायसैः ॥ भोजयित्वाविधानेन सपत्नीकंयथोचितम् ॥ ४७ ॥ विद्याविनयसम्पन्नं स्वयापत्न्यासमन्वितम् ॥ परिस्थाप्ययथाशक्त्या वस्त्रालङ्कारकुङ्कुमैः ॥४८॥ गोस्तन्यासकपित्थैश्च खर्ज्जूरैःकदलीफलैः ॥ पनसैर्नारिकेलैश्चनारङ्गैर्दाडिमैस्तथा ॥ ४९ ॥ घृतपकान्नगोधूमैः शुभैर्मिष्टान्नकैरपि ॥ शर्कराघृतपूरैश्च फाणितैःखण्डमण्डितैः ॥ ५० ॥ उर्वारुकर्कटीशाकैः शृङ्गवेरैःसमूलकैः ॥ अन्यैश्चविविधैःशाकैरामैःपक्वैःपृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥ भक्ष्यभो

व खीर से भोजन करावै और विद्या व विनय से संयुत अपनी स्त्री समेत सपत्नीक ब्राह्मण को विधि से यथोचित भोजन कराकर व बिठाकर यथाशक्ति से वसन, अलंकार व कुकुम से पूजन करै ॥ ४७।४८ ॥ व मुनक्का और कैथा समेत खजूर व केला के फलों से तथा कटहर, नारियल, नारंगी व अनारों से पूजन करै ॥ ४९ ॥ और घी में पकेहुये गोधूमान्न व उत्तम मिष्टान्नों से और शर्करा व घृत से पूर्ण भोजनों से और राब व खांड से शोभित नैवेद्यों से ॥ ५० ॥ और ककड़ी के शाकों से व

मूली समेत अदरखों से तथा अनेक भांति के अन्य कच्चे व पक्के अलग अलग शाकों से भोजन करावै ॥ ५१ ॥ व विशेष कर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य (चाटने योग्य पदार्थ) व पीनेयोग्य वस्तुवोंको और कंद व सुवासित गोरसों को परोसकर कोमल वचन कहताहुआ पुरुष यह कहै ॥ ५२ ॥ कि हे प्रभो ! यह स्वादुरसवाला भोजन आपके लिये रचागया है जो रुचताहोवै उसको मांगिये जो कि मैंने पकाया है ॥ ५३ ॥ मैं धन्यहूं व अनुग्रह कियागयाहूं और मन्दिर सार्थ कियागया तदनन्तर तांवूल व दक्षिणा को देकर ब्राह्मणों को बिदाकरै ॥ ५४ ॥ हे देवि ! चार वस्तुवों से मिलेहुये, प्रिय तांवूल को जो पुरुष मुझको देता है हे द्विजोत्तम ! वह मनुष्य

ज्यलेह्यपेयकन्दकानिविशेषतः ॥ सुवासितान्गोरसांश्च परिवेष्यमृदुब्रुवन् ॥ ५२ ॥ इदंस्वादुरसंभोज्यम्भवदर्थंप्रक ल्पितम् ॥ याच्यतांरोचयेद्यच्च यन्मयापाचितंप्रभो ॥ ५३ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि कृतंसार्थञ्चमन्दिरम् ॥ वि सर्जयेत्ततोविप्रान् दत्त्वाताम्बूलदक्षिणाः ॥ ५४ ॥ चतुर्भिर्मिलितन्देवि ताम्बूलम्ममवल्लभम् ॥ योददातिद्विजश्रेष्ठ स भवेत्सुभगोनरः ॥ ५५ ॥ सुभगाचसदाचारा वल्लभास्वजनेसदा ॥ पुत्रसौभाग्ययुक्ताच ताम्बूलैर्जायतेप्रिये ॥ ५६ ॥ प त्रैस्तुकेशवःप्रीतः पूगैरीशःसहोमया ॥ चूर्णकेनरमाप्रीताखादिरेणचमन्मथः ॥ ५७ ॥ चतुर्भिर्विश्वरूपोसौ यःपुष्णा तिजगत्त्रयम्॥ परितोष्यसपत्नीकान् हस्तेदेयाश्चमोदकाः ॥ ५८ ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य भुञ्जीतसहबन्धुभिः ॥ असं क्रान्तिव्रतंनारी याकरोतीहसुप्रिये ॥ ५९ ॥ दारिद्र्यंपुत्रशोकञ्च वैधव्यंनाप्नुयात्क्वचित् ॥ नरोवायदिवानारी यः

उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ५५ ॥ व हे प्रिये ! तांवूलों से स्त्री सुभगा व उत्तम आचारवाली तथा सदैव अपने जनों में प्रिय और पुत्र व सौभाग्य से संयुत होती है ॥ ५६ ॥ पत्तों से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और सुपारी से पार्वती समेत महादेवजी प्रसन्न होते है व चून से लक्ष्मीजी प्रसन्न होती हैं और खैर से कामदेव प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ और चारो से ये विश्वरूप विष्णुजी प्रसन्न होते हैं जो कि त्रिलोक को पालन करते हैं स्त्री समेत ब्राह्मणों को प्रसन्नकर हाथ में लड्डुओं को देना चा- हिये ॥ ५८ ॥ और हद्दके अन्ततक उनके पीछे जाकर भाइयों समेत भोजन करै हे सुप्रिये ! इस संसार में जो स्त्री संक्रान्तिरहित (मलमास) व्रतको करती है ॥ ५९ ॥ वह

कभी दरिद्रता, पुत्रशोक व वैधव्यता को नहीं प्राप्त होती है व जो पुरुष या स्त्री मलमास में व्रत करती है वह सब मनोरथों को प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ इस संसार में मलमास को प्राप्त होकर जिन मनुष्यों ने मुझ नारायण को परम भक्ति से नहीं पूजा है उनके सुख व पुत्र संपत्ति और मित्र तथा स्त्री अपने गुणों से संयुत कैसे होवैंगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायापुरुषोत्तममाहात्म्यंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पुरुषोत्तम सर की अहै महिमा अमित अपार । बहत्तरिवें अध्याय में सोई चरित सुखार । सनत्कुमारजी बोले कि मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य महाकाल

कुर्याच्चमलिम्लुचे ॥ ६० ॥ मलिम्लुचंप्राप्यनपूजितोयैर्नारायणोहंपरयेहभक्त्या ॥ कथम्भवेयुःसुखपुत्रसम्पत्सुहृत्सु भार्याःस्वगुणैरुपेताः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेपुरुषोत्तममाहात्म्यंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अधिमासेसमायाते यश्चान्यत्रस्थितिंनरः ॥ करोतिसनरोमूर्खो महाकालवनादृते ॥ १ ॥ अधिमासेनरोव्यास तीर्थेपुरुषोत्तमाभिधे ॥ स्नात्वादद्याच्चदानानि तस्यलोकाःसनातनाः ॥ २ ॥ पुरुषोत्तमंसमभ्यर्च्य रमालालितपादकम् ॥ तथैवचउमांदेवीं शङ्करेणचपूजयेत् ॥ ३ ॥ वाञ्छितार्थशतान्प्राप्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ भाद्रपदेसितेपक्ष एकादश्यांसमाहितः ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तमसरःस्नाति तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पुत्रदाराधनंसम्यगायुरारोग्यसम्पदः ॥ ५ ॥ नतेषान्दुर्ल्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ तस्यपूर्वतटेभागे जलेश्वरमहेश्वरौ ॥ ६ ॥ तिष्ठतस्त

वनके सिवाय अन्यत्र स्थिति करता है वह मूर्खहै ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! मलमास में जो मनुष्य पुरुषोत्तम नामक तीर्थ में नहाकर दानों को देता है उसके सनातन लोक होते हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मीजी से लालित चरणवाले पुरुषोत्तमजी को भलीभांति पूजकर वैसेही शिवजी समेत पार्वती देवी को पूजै ॥ ३ ॥ तो सैकड़ों चाहेहुये मनोरथों को प्राप्त होकर वह विष्णुलोक में पूजाजाता है भाद्रपदके शुक्लपक्ष मे एकादशीतिथि मे सावधान होताहुआ जो पुरुष ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तम तडाग को नहाता है उसके पुण्य के फलको सुनिये कि पुत्र, स्त्री, धन व भलीभांति आयुर्बल, आरोग्य व संपदा होती हैं ॥ ५ ॥ और उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होता है उसके पूर्व

वाले भाग में जलेश व महेशजी ॥ ६ ॥ तपती नदी के किनारे टिके हैं जहां कि पुण्यवानों में श्रेष्ठ भगीरथराजा ने तपस्या कर उत्तम पुण्य को पाया है ॥ ७ ॥ और सब लोकोंके सुख के लिये वे गंगाजी को पृथ्वीमें लाये हैं उनके तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य तिलकी गऊ को देताहै ॥ ८॥ वह नर सब यज्ञों के फलको पाकर पुत्रवान् होता है और उसके ईशानभाग में भृगुश्रेष्ठ व धर्मात्मा परशुरामजी ने अपने कार्य की शुद्धि के लिये तप किया है और वहींपर सब तीर्थों के वर को देनेवाली व नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नदीहै ॥ ९।१० ॥ उसमें नहाकर मनुष्य हत्या के दोषसे रहित होता है और रामेश्वरजी को भलीभांति देखकर मनुष्य पापरहित होताहै ॥११॥

पतीतीरे यत्रराजाभगीरथः ॥ तपस्तप्त्वापरंलेभेपुण्यम्पुण्यवतांवरः ॥ ७ ॥ गङ्गाम्भूतलमानिन्येसर्वलोकसुखायवै ॥ तस्यतीर्थेनरःस्नात्वा तिलधेनुंप्रदापयेत् ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञफलंप्राप्य पुत्रवाञ्जायतेनरः ॥ तस्येशानतरेभागे रामोभार्गव सत्तमः ॥ ९ ॥ तपस्तेपेचधर्मात्मा आत्मकार्यविशुद्धये ॥ कौशिकीचसरिच्छ्रेष्ठासर्वतीर्थवरप्रदा ॥ १० ॥ तत्रस्ना त्वानरोजातिहत्यादोषविवर्जितः ॥ रामेश्वरंसमालोक्य धूतपापोभवेन्नरः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख ण्डेपुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातं पुराब्रह्मसनातनम् ॥ कस्मिन्कालेकदाजातं तन्नोवदसुविस्तरात् ॥ १ ॥ स नत्कुमारउवाच ॥ शृणुध्वम्भोमहाप्राज्ञ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ गोमतीकुण्डजाम्पुण्यां पुरारुद्रेणभाषिताम् ॥ २ ॥ तस्मिन्नवसरेपुण्ये नैमिषारण्यआसीना ऋषयःशौनकादयः ॥ कथयन्तिकथाम्पुण्यां सर्वतीर्थोद्भवांशुभाम् ॥ ३ ॥ ... ॥ ७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

दो० । अहै गोमतीकुण्ड की महिमा यथा अनन्त । तिहत्तरवें अध्याय में सोई कथा भनन्त ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय सनातन ब्रह्म गोमतीकुण्ड कहा गयाहै वह कब और किससमय हुआहै उसको हमसे विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये जो कि गोमतीकुण्ड से उपजी हुई व पुण्यदायिनी तथा पहले शिवजी से कही गई है ॥ २ ॥ नैमिषारण्यमें बैठेहुये शौनकादिक ऋषि सब तीर्थोंसे उपजी हुई व पुण्यदायिनी उत्तम कथाको

कहते थे ॥ ३ ॥ उस पुण्यदायक समय में नारदजी ने पवित्र व पापहारक, उत्तम काशीजी के माहात्म्य को कहा ॥ ४ ॥ कि पुण्य व पापोंकी ऊषर भूमि काशीपुरी धन्य है जहां कि चाण्डाल व पण्डित निश्चयकर उत्तम मोक्षको पाते हैं ॥ ५ ॥ असी व वरणाके बीचमें पांच कोसका क्षेत्र बड़ा फलदायक है जहां कि देवता मरने की इच्छा करते हैं फिर अन्य मनुष्यों को क्या कहनाहै ॥६॥ ऐसा सुनकर उस समय हे व्यासजी ! सब देवताओं व ऋषियों के सुनतेहुये परंतप ब्रह्माजीने कहा ॥७॥ कि गोमती के समान नदी नहीं है और कृष्ण के समान देवता नहीं है और सब पाताल व पृथ्वी के बीचमें द्वारका के समान पुरी नहीं है ॥ ८ ॥ ऐसा निश्चय

काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कथितंवैनारदेन पवित्रंपापहारकम् ॥ ४ ॥ ऊषरःपुण्यपापानां धन्यावाराणसीपुरी ॥ ध्रुवं लभन्तेमोक्षञ्च शुभंचाण्डालपण्डिताः ॥ ५ ॥ असीवरणयोर्म्मध्ये पञ्चक्रोशंमहत्फलम् ॥ अमरामरणमिच्छन्ति काकथाइतरेजनाः ॥ ६ ॥ इतिश्रुत्वातदाव्यास स्वयम्भूःप्रत्यभाषत ॥ शृण्वतांसर्वदेवानां ऋषीणाञ्चपरन्तपः ॥ ७ ॥ नदीनगोमतीतुल्या कृष्णतुल्योनदेवता ॥ सर्वपातालभूमध्ये द्वारकानसमापुरी ॥८॥ इतितेनिश्चयंज्ञात्वा ऋषयः शौनकादयः ॥ यत्रतत्रस्थिताःसर्वे प्रातःसन्ध्यामुपासनम्॥ ९ ॥ तत्रैवगोमतीतीरे चक्रुस्तेवैधृतव्रताः ॥ सान्दीपनोपि तत्रैव प्रातःसन्ध्यांसमाचरत् ॥ १० ॥ एवंबहुतिथेकाले चरतस्तस्यवैव्रतम् ॥ सान्दीपनस्यप्राग्व्यास अवन्तीपुरवासि नः ॥ ११ ॥ तस्यैवकामपूर्णार्थं वीरौरामजनार्द्दनौ ॥ आयातौ सुकुमाराङ्गौ सततंब्रह्मचारिणौ ॥ १२ ॥ निवासंचक्रतु स्तस्य गुरोर्गेहेपरंतप ॥ तस्यपाठस्यतौसम्यग्विद्यांजगृहतुःपराम् ॥ १३ ॥ उषस्युषसितत्रैव दृश्यतेनयदागुरुः ॥

जानकर व्रत को धारण किये जहां तहां बैठेहुये उन सब शौनकादिक ऋषियों ने प्रातःकाल सन्ध्योपासन किया और सान्दीपनने भी वहीं प्रातःकाल सन्ध्या किया ॥ ९ । १० ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार बहुत समयतक पहले अवन्तीपुरवासी उन सांदीपनजीके व्रत करनेपर ॥११॥ उन्हींकी कामनाके पूर्ण होनेके लिये सुकुमार अङ्गवाले व सदैव ब्रह्मचारी बलभद्र व श्रीकृष्णजी आये ॥ १२ ॥ व हे परंतप ! उन्होंने उन सांदीपन गुरु के घर में निवास किया व उन अध्यापक के सकाश से भलीभांति उत्तम विद्या को ग्रहण किया ॥ १३ ॥ और जब नित्य प्रातःकाल के समय में वहीं गुरुजी न देखपड़ते थे तब यह पूंछते थे कि यह विद्या के उपदेश

का समयहै हमारे श्रेष्ठ गुरुजी कहां गये ॥ १४ ॥ उनके इस प्रकार पूंछने पर गुरुकी स्त्री बोली कि हे वत्स ! वे सदैव प्रातःकाल सन्ध्योपासन करते हैं ॥ १५ ॥ और वहीं पर तुम्हारे गुरु नित्य स्नान के लिये जाते हैं द्वारका में पवित्रकारिणी श्रेष्ठ गोमती नदी है ॥ १६ ॥ ऐसा सुनकर उस समय बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी ने विचार किया कि हमको यहां क्या अपना उत्तम हित करना चाहिये ॥ १७ ॥ मैं यहीं पर स्थित होकर गुरु का आगमन चाहताहूं इसी समय में सांदीपनिजी घर को आये ॥ १८ ॥ तदनन्तर उठकर गुरु का प्रणाम करने पर वे वीर नम्रता से झुँक कर गुरु से वचन बोले ॥ १९ ॥ कि हे महायोगिन् ! हमारे निवास का

विद्योपदेशकालोयं क्वगतोनोगुरुर्वरः ॥ १४ ॥ इतिपृष्टेतयोरेवं गुरुपत्नीउवाचह ॥ सदैवकुरुतेवत्स प्रातःसन्ध्यामुपासनम् ॥ १५ ॥ नित्यंगच्छतितत्रैव गुरुस्तेस्नानकारणात् ॥ गोमतीवैसरिच्छ्रेष्ठा द्वारकायांचपावनी ॥ १६ ॥ इतिश्रुत्वा तदाकृष्णो रामेणसहसंयुतः ॥ किंकर्त्तव्यमिहास्माभिरात्मनोहितमुत्तमम् ॥ १७ ॥ गुरोरागमनंकाङ्क्षे अत्रैवस्थितिमाश्रितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सान्दीपनिरगाद्गृहम् ॥ १८ ॥ ततउत्थायतौवीरौ गुरोराबन्दनेकृते ॥ प्रश्रयावनतौभूत्वा ह्यब्रूतांवचनंगुरोः ॥ १९ ॥ श्रूयतांभोमहायोगिन्नस्माकंवासकारणम् ॥ विद्यार्थमिहसंप्राप्तौ युष्माकञ्च गृहोत्तमे ॥ २० ॥ प्रातःकालेचतेब्रह्मन् समयोनास्तिवैप्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य कृष्णस्यचबलस्यच ॥ २१ ॥ उवाचभगवन्व्यास आत्मनोव्रतकारणम् ॥ अस्माकंपरमंवत्स व्रतंतच्छाश्वतंगतम् ॥ २२ ॥ कर्त्तव्यंगोमतीस्नानं प्रातःकालेसदाबुधैः ॥ तत्रैवोपासनंपुण्यं सन्ध्यायामितिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ इतिविश्वस्यभगवन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥

कारण सुनिये कि तुम्हारे उत्तम घरमें मैं विद्याके लिये प्राप्त हुआहूं ॥ २० ॥ व हे ब्रह्मन्, प्रभो ! प्रातःकालमें तुमको समय नहीं होताहै उन श्रीकृष्ण व बलभद्रजी के इस वचन को सुनकर ॥ २१ ॥ हे भगवन्, व्यासजी ! उन सांदीपनिने अपने व्रतका कारण कहा कि हे वत्स ! हमारा वह उत्तम व्रत शाश्वत (सदैववाला) माना गयाहै ॥ २२ ॥ सदैव प्रातःकाल में पण्डितों को गोमती स्नान करना चाहिये और वहींपर सन्ध्यासमय में पुण्यदायिनी उपासना करना चाहिये यह निश्चय

कियागया है ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! ऐसा विश्वासकर जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ऐसा सुनकर कारण से मनुजरूपवाले भगवान् विष्णुजी ने ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम! कुशस्थली में गोमतीजीका आराधन किया जहांकि विश्वेश्वर देव और अतिउत्तम यज्ञकुण्डहै॥ २५॥ और कुण्डेश्वर के उत्तरभाग में वे गोमतीजी भलीभांति प्राप्तहुई और पातालतल को भेदनकर सरस्वतीजी से संयोग को प्राप्तहुई ॥ २६ ॥ प्रातःकाल उठकर उन सबोंने व्यासजी के आश्रम में प्राप्त नदियोंमें श्रेष्ठ सुन्दर नेत्रान्तों वाली गोमतीजी को देखा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! नदियों में श्रेष्ठ गोमतीजी यहींपर प्राप्तहुई हैं व यहींपर मनुष्य स्नान, दानादिक सब करते हैं ॥ २८॥ और यज्ञकुण्ड

तच्छ्रुत्वाभगवान्विष्णुःकारणमानुषरूपवान् ॥ २४ ॥ गोमत्याराधनंचक्रे कुशस्थल्यांद्विजोत्तम ॥ यत्रविश्वेश्वरोदेवो यज्ञकुण्डमनुत्तमम् ॥ २५ ॥ कुण्डेश्वरस्योत्तरेभागे गोमतीसासमागता ॥ पातालतलमाभेद्य सरस्वत्यातुसङ्गता ॥ २६ ॥ प्रातरुत्थायतेसर्वे गोमतींसरितांवराम् ॥ ददर्शरुचिरापाङ्गीं व्यासस्याश्रमभागिनीम् ॥ २७ ॥ अत्रैवचागताब्रह्मन् गोमतीसरितांवरा ॥ स्नानदानादिकंसर्वमत्रैवसमुपासते ॥ २८ ॥ गोमतीचसमालीना यज्ञकुण्डेसरस्वती ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिन् गोमतीकुण्डमुच्यते ॥ २९ ॥ सर्वेषामपिलोकानां मार्गोत्रैवचविद्यते ॥ तस्माद्व्यासमहापुण्यम्भुवितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ भाद्रपदेऽसिताष्टम्यां कृष्णजन्मसमुद्भवे॥ ३१ ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं रात्रौजागरणंचरेत्॥उपोष्यविधिवद्व्यास सशिष्यंव्यासमर्चयेत् ॥ ३२ ॥ वैष्णवांश्चनरांश्चैव कृष्णजन्मोत्सुकान्वरान् ॥ नानासुगन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रालङ्कारसंयुतैः ॥ ३३ ॥ गोब्राह्मणानांपूजाश्च कुर्वते

में गोमती व सरस्वतीजी मिली हैं तब से लगाकर इस संसार में गोमतीकुण्ड कहाजाता है ॥ २९ ॥ और यहींपर सब लोकोंका मार्ग विद्यमान है इसलिये हे व्यासजी ! पृथ्वीमें अतिउत्तम तीर्थ महापुण्यदायक है ॥ ३० ॥ सब पापोंका विनाशक गोमतीकुण्ड कहागया है भाद्रपदमें कृष्णपक्ष की अष्टमी में कृष्णजी का जन्म होनेपर ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर सदैव मनुष्य रात्रिमें जागरण करै और विधिपूर्वक उपासकर शिष्य समेत व्यासको पूजनकरै ॥ ३२ ॥ और श्रीकृष्णजन्ममें उत्कण्ठित उत्तम वैष्णवनरों को अनेक भांतिके सुगन्धवाले पुष्पोंसे संयुत व वस्त्रों तथा आभूषणों से युक्त वस्तुवों से पूजनकरै ॥ ३३ ॥ और सावधान होते

हुये जो पुरुष गौ व ब्राह्मणों का पूजन करते हैं उनको सब लोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ और गोमती के स्नान से उपजाहुआ पुण्य व वासुदेवजी का समागम तथा मनोरथकी प्राप्ति होतीहै इसमें सन्देह नहीं है ॥३५॥ और चैत्रके शुक्लपक्षमें जब एकादशी होवै उस दिन गोमतीमें विशेषकर स्नानकर मनुष्य ॥३६॥ रात्रिमें जागरण कर विष्णुजी का पूजन करै तदनन्तर आमलकी यात्राकरै तो प्रदक्षिणा के पग २ पै उनको गोसहस्रका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है जो मनुष्य इस पवित्र व पापहारिणी कथाको सुनताहै ॥ ३७ । ३८ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजाजाता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे

येसमाहिताः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् सर्वलोकेषुविद्यते ॥ ३४ ॥ गोमतीस्नानजम्पुण्यं वासुदेवसमागमम् ॥ मनोरथस्यसंप्राप्तिर्जायतेनात्रसंशयः ॥ ३५ ॥ तथाचैत्रसितेपक्षेयदाचैकादशीभवेत् ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा गोमत्यांचविशेषतः ॥ ३६ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा विष्णुपूजांतथैवच ॥ आमलकीततोयात्राप्रदक्षिणपदेपदे ॥ ३७ ॥ गोसहस्रफलंतेषांप्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ यःशृणोतिकथाम्पुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ ३८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगोमतीकुण्डमाहात्म्यन्नामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुण्डेश्वरइतिख्यातं यत्तुतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ १ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शुचिःप्रयतमानसः ॥ विमानशतसंयुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ २ ॥ भुविधन्यतरंतीर्थं सर्वपापहरम्परम् ॥ स्वर्गङ्गासङ्गमोयत्र गङ्गेश्वरसमीपतः ॥ ३ ॥ महापापहरम्पुण्यं महापुण्यफलप्रदम् ॥ आकाशात्पतिता य

देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमतीकुण्डमाहात्म्यंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । वामनकुण्ड कथा तथा सहस विष्णुके नाम । चौहत्तरि अध्यायमें वर्णित चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि कुण्डेश्वर ऐसा प्रसिद्ध जो अतिउत्तम तीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर मनुष्य ॥ १ ॥ सब पापों से छूटजाताहै व पवित्र तथा शुचिमनवाला वह पुरुष सौ विमानों से संयुत होकर शिवलोकमें पूजाजाता है ॥२॥ और पृथ्वीमें वहां सब पापोंको हरनेवाला बड़ा धन्य व उत्तमतीर्थ है जहां कि गङ्गेश्वरजी के समीप आकाशगङ्गाजीका संगमहै॥३॥ वह

तीर्थ महापापहारक व पवित्र तथा महापुण्य के फलको देनेवाला है जहां कि त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी आकाश मे गिरी हैं ॥ ४ ॥ उनको शम्भु महादेवजीने उसीक्षण मस्तकमें धारण कियाहै उस तीर्थमें नहाकर मनुष्य गंगेश्वरजीको देखै ॥५॥ तो गंगाजीके स्नानके फलको पाकर वह विष्णुलोकमें पूजा जाताहै व विश्वेश्वरजीको प्राप्त होकर जो मनुष्य उस तीर्थमें निवास करै वह सब पातकों से शुद्धचित्त होकर विष्णुजी के लोकको प्राप्तहोता है और महर्षियो से पृथ्वीमें महापवित्र अन्यतीर्थ कहागयाहै ॥ ६। ७ ॥ वामनकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध जोकि तीनोंलोकोंमें प्रसिद्धहै और जिसके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है ॥८॥ व सैकडों

त्रगङ्गात्रैलोक्यपावनी ॥ ४ ॥ विधृताशिरसासद्यो महादेवेनशम्भुना ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा गङ्गेशमवलोकये
त् ॥ ५ ॥ गङ्गास्नानफलंप्राप्य विष्णुलोकेमहीयते ॥ विश्वेश्वरमनुप्राप्य तस्मिंस्तीर्थेनरोवसेत् ॥ ६ ॥ सर्वपापवि
शुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ तीर्थमन्यन्महापुण्यंभुविख्यातंमहर्षिभिः ॥ ७ ॥ वामनकुण्डेतिविख्यातं त्रिषु
लोकेषुविश्रुतम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याऽप्यपोह्यते ॥ ८ ॥ मनोरथशतम्प्राप्य पश्चाद्विष्णुपुरंव्रजेत् ॥ व्यासउ
वाच ॥ कदाकालेसमुत्पन्नं वामनाख्यम्पुरानघ ॥ ९ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमारउवा
च ॥ श्रूयताम्भोद्विजश्रेष्ठ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ १० ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ दैत्येन्द्रश्चपुराप्रो
क्तो विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ११ ॥ प्रह्लादइतिविख्यातः सर्वधर्मभृतांवरः ॥ आचारविजितोधर्मःसत्येनविजितारमा ॥
१२ ॥ धैर्येणचधृताल्लोकाः क्षमयाविधृतामही ॥ गाम्भीर्येणार्णवादिव्याः शौर्येणशत्रुसङ्घकाः ॥ १३ ॥ प्रश्रयेणाभ्या

मनोरथों को पाकर पश्चात वह विष्णुलोक को जाताहै व्यासजी बोले कि हे अनघ! पुरातनसमय वामननामक कुण्ड किस समय उत्पन्न हुआहै ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मविदांवर! मैं इस सबको तुमसे सुना चाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ १० ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै पुरातन समय सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ व विष्णुजीकी भक्तिमें तत्पर प्रह्लाद ऐसे प्रसिद्ध दैत्येन्द्र कहेगये हैं उनसे आचारसे धर्म जीतागया व सत्यसे लक्ष्मीजी जीतीगई ॥ ११।१२ ॥ व धैर्य से लोक धारण कियेगयेहैं व क्षमामे पृथ्वी धारण कीगईहै और गम्भीरतासे दिव्य समुद्र व शूरतासे शत्रुओंके समूह जीतेगये ॥ १३ ॥

और उन महात्माने नम्रता से अतिथियों को जीता और दक्षिणाओं से यज्ञ जीतीगई व हव्यसे अग्नि जीतीगई ॥ १४ ॥ और पवित्रता व आचार से वे शुद्धचित्तवाले तथा तपस्यासे नष्ट अमङ्गलवाले थे और उन प्रह्लादजी से भोजन व आच्छादनादिकों से व दान, मानसे ब्राह्मण जीतेगये ॥ १५ ॥ व संस्कार से जन्म जीतागया और दमसे सनातन आत्मा जीतागया तथा प्राणायामसे पवन जीतागया व योग और ध्यान से विष्णुजी जीतेगये ॥ १६ ॥ और इन्द्रके तुल्य वे महायोगी, सत्य व धर्ममें तत्पर हुये प्रह्लादके समान ज्ञानी न हुआहै और न होगा ॥ १७ ॥ कि जिनके उत्तम आचारवाले पौत्र बलि ऐसे कहेजाते हैं भलीभांति पालन करते

गताश्च जितास्तेनमहात्मना ॥ दक्षिणानिर्जितोयज्ञो हविषाहव्यवाहनः ॥ १४ ॥ शौचाचारविशुद्धात्मा तपसाचहता शुभः ॥ दानमानजिताविप्रा भोजनाच्छादनादिभिः ॥ १५ ॥ संस्कारेणजितंजन्म दमेनात्मासनातनः ॥ प्राणायामजितोवायुर्योगध्यानजितोहरिः ॥ १६ ॥ इन्द्रतुल्योमहायोगी सत्यधर्मपरायणः ॥ प्रह्लादेनसमोधीरो नभूतोनभविष्यति ॥ १७ ॥ यस्यपौत्रःसदाचारी बलिरित्यभिधीयते ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजानित्यंविवर्द्धिताः ॥ १८ ॥ नाल्पायुर्नजडोमूर्खो नरोगीनचमत्सरी ॥ अपुत्रोधनहीनश्च कोपिनास्तिमहीतले ॥ १९ ॥ महाराजोमहीपालो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ सप्तद्वीपवतीतेन पालितावसुधासदा ॥ २० ॥ एकदाचसमासीने सभामध्येवरानने ॥ जयशब्देवर्त्तमाने गन्धर्वाललितंजगुः ॥ २१ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु नन्तृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ कथ्यमानेकथांदिव्याम्पौराणस्मृतिसम्मिताम् ॥ २२ ॥ सूतावैतालिकाःसिद्धाश्चारणाश्चबहुश्रुताः ॥ ऋषयश्चसमायातास्तत्रैवद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ सुन्दोप

हुये उनके प्रजा नित्यही बढ़तेभये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में कोईभी मनुष्य न थोड़ीआयुवाला, जड़, मूर्ख, रोगी और न ईर्षावान् था और कोई पुत्ररहित व धनसे हीन न था ॥ १९ ॥ और यज्ञकर्त्ता व बहुत दक्षिणावाले वे प्रह्लाद भूपति महाराजथे और उनसे सात द्वीपोंवाली पृथ्वी सदैव पालन कीगई ॥ २० ॥ एक समय उत्तममुख वाले वे बलि जब सभाके बीचमें बैठेथे तब जयशब्द वर्तमान होनेपर गन्धर्वलोग प्रियपूर्वक गानेलगे ॥ २१ ॥ और बाजनों के बजनेपर अप्सराओंके गण नाचने लगे व पुराणों व स्मृतियों में कहीहुई दिव्यकथा के कहने पर ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! सूत, बोधकर, सिद्ध व चारण तथा बहुत शास्त्रोंवाले ऋषिलोग वहींपर भली

भांति आये ॥ २३ ॥ और सुंद, उपसुंद, हुंडादिक व भयङ्कर महिषासुर और शुम्भ,निशुम्भ, धूम्राक्ष व कालकेय दानव ॥ २४ ॥ व कालनेमि, विक्रान्तसौहृद, मूषक, यम, निकुम्भ, कुम्भ, विपद व महाबलवान् अन्धक ॥ २५ ॥ और शङ्ख, जलंधर, रौद्र व अधिक बलवाला वातापी, सर्वजिह्व, हंता, कामचारी, हलायुध ॥ २६ ॥ ये व दानवों के वंशको बढ़ानेवाले अन्य बहुतसे दानव उन पापरहित बलि राजाकी उपासना करतेभये ॥ २७ ॥ व सिद्ध, नाग, यक्ष, किन्नर व किंपुरुष, आकाशचारी, भूमिचारी, बाल व भयङ्कर राक्षस ॥ २८ ॥ ये व अन्य बहुतसे लोग राजा बलिकी उपासना करते थे हे द्विजोत्तम ! वहांपर महादिव्य सभा शोभित हुई ॥ २९ ॥

सुन्दहुण्डाद्या महिषासुरकोल्बणः ॥ शुम्भनिशुम्भधूम्राक्षकालकेयाश्चदानवाः ॥ २४ ॥ कालनेमिश्चविक्रान्तसौहृदोमूषकोयमः ॥ निकुम्भकुम्भौविपदोह्यन्धकश्चमहाबलः ॥ २५ ॥ शङ्खोजलंधरोरौद्रो वातापीचबलाधिकः ॥ सर्वजिह्वश्चहन्ताच कामचारीहलायुधः ॥ २६ ॥ एतेचान्येचबहवोदनुवंशविवर्द्धनाः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतंवै बलिराजमकल्मषम् ॥ २७ ॥ सिद्धानागाश्चयक्षाश्च किंपुरुषास्तुकिन्नराः ॥ खेचराभूचराबाला राक्षसाश्चैवदारुणाः ॥ २८ ॥ एते चान्येचबहवो राजानंपर्युपासते ॥ सभातत्रमहादिव्या शुशुभेचद्विजोत्तम ॥ २९ ॥ ग्रहैरुज्ज्वलितैःकीर्णं शरदीवनभस्थलम् ॥ तस्यांसभायामासीनो रराजबलिराट्तथा ॥ ३० ॥ महद्भिरिवसंवीतो वासवोदिविदैवतैः ॥ एकदाचसभामध्ये नारदोदेवदर्शनः ॥ ३१ ॥ आगतस्तेषुसर्वेषु दानवेषुसभाङ्गणे ॥ दृष्ट्वातमागतंसर्वे उत्तस्थुर्दितिनन्दनाः ॥ ३२ ॥ ववन्दुः सर्वशःपूर्वं बलिनःकिन्नरोत्तमाः ॥ सतकृत्यचासनंदत्त्वा पप्रच्छकुशलंनृपः ॥ ३३ ॥ कृतातिथ्यःसमासीनो नारदः

जैसे कि शरद्ऋतुमें उज्ज्वल ग्रहों से व्याप्त आकाशस्थल होवै वैसेही उस सभामें बैठाहुआ राजा बलि शोभित भया ॥ ३० ॥ जैसे कि स्वर्ग में पवन देवताओं से घिरेहुये इन्द्रहोवैं एक समय सभाके बीचमें देवदर्शन नारदजी ॥ ३१ ॥ सभा के आंगन में उन सब दानवों के मध्यमें आये व आयेहुये उन नारदजी को देख कर सब दैत्य उठे ॥ ३२ ॥ और पहलेही सब बलवान् दैत्य व किन्नरोत्तमोंने प्रणाम किया और सत्कारकर आसन देकर राजाने कुशल पूंछा ॥ ३३ ॥ और कीहुई पहु-

प्राहसत्तमम् ॥ नारदउवाच ॥ श्रूयतांदितिजश्रेष्ठगतोहंवृषमन्दिरे ॥ ३४ ॥ तत्रदेवसभारम्या दिव्याभिप्रायसंयुताः ॥ तत्रदेवाःसगन्धर्वाः पुरन्दरपुरोगमाः ॥ ३५ ॥ समासीनाःकथाम्पुण्यां कथयन्तःपरस्परम् ॥ ततस्तेतुकथांशुभ्रां म याख्यातान्नसेहिरे ॥ ३६ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यः पुरासीत्तुप्रजापतिः ॥ त्रैलोक्यविजयीनेता येनेयंवसुधाजिता ॥३७॥ सर्वलोकान्वशीकृत्य बुभुजेचवसुन्धराम् ॥ अतीवतेजःसम्पन्नो महाबलपराक्रमी ॥ ३८ ॥ वशीचसर्वगःकामी नृसिं हेननिपातितः ॥ बलिःकियद्बलीलोके नारदत्वंप्रशंससि ॥ ३९ ॥ इतिमान्धर्षयित्वाच विडौजालोकसंग्रही ॥ बहुधा चाकरोद्वादान् कटुकान्दानवोत्तम ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वंदानवश्रेष्ठ पितृपर्यागतांमहीम् ॥ विजित्वासार्वभौमत्वं लभस्व वसुधाधिप ॥ ४१ ॥ कियद्बलयुतालुब्धा देवाश्चदनुजोत्तम ॥ पलायनपरादान्ताः सदासमरभीरवः ॥ ४२ ॥ ममवा क्यपरोभूत्वा त्रैलोक्याधिपतिर्भव ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा बलिर्वैरोचनस्तदा ॥ ४३ ॥ चकारकोपमतुलं त्रैलोक्यविजये

नईवाले बैठेहुये नारदजीने सत्तम बलिजी से कहा नारदजी बोले कि हे दितिजोत्तम ! सुनिये कि मैं इन्द्रके मन्दिर में गयाथा ॥ ३४ ॥ वहां सुन्दरी देवसभा थी और उत्तम अभिप्रायसे संयुत गन्धर्वों समेत इन्द्रादिक देवता वहां ॥ ३५ ॥ बैठे हुये आपसमें पवित्र कथाको कहतेथे तदनन्तर मुझसे कहीहुई उत्तम कथाको उन्हों ने नहीं सहा ॥ ३६ ॥ कि पुरातन समय हिरण्यकशिपु प्रजापति दैत्य नेता व त्रिलोकको जीतनेवाला हुआहै कि जिसने इस पृथ्वीको जीताहै ॥ ३७ ॥ और सब लोकों को वशकरके उसने पृथ्वीको भोगाहै बड़ेतेज से संयुत महाबलवान् व पराक्रमी ॥ ३८ ॥ और सुन्दर व सब कहीं जानेवाला और कामी वह हिरण्यकशिपु नृसिंह जीसे मारागया है हे नारदजी ! बलि कितना बलवान् है कि जिसकी तुम प्रशंसा करतेहो ॥ ३९ ॥ हे दानवोत्तम ! इस प्रकार मेरी धर्षणाकर लोकोंका संग्रह करने वाले इन्द्रजी ने बहुत से कटुवादों को किया ॥ ४० ॥ इसलिये हे दानवश्रेष्ठ, भूपते ! पितरोंकी परंपरासे आईहुई पृथ्वीको जीतकर चक्रवर्तित्वको प्राप्त होवो ॥ ४१ ॥ हे दानवोत्तम ! लोभी दानव कितने बलवान् हैं जोकि भागने में तत्पर व इन्द्रियोंको दमन किये तथा सदैव समर से डरते हैं ॥ ४२ ॥ मेरे वचन में तत्पर होकर त्रिलोक के स्वामी होवो उस समय नारदजी के वचन को सुनकर विरोचन के पुत्र बलिने ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक के विजय के निमित्त बड़ा क्रोध किया सब

दैत्योंसे सम्मतिकर समस्त दैत्योंके स्वामी बलिने ॥ ४४ ॥ बलवान् इन्द्रके साथ बड़ा तीव्र समर किया और इन्द्रसमेत सब देवताओंको जीतकर वशकिया ॥ ४५ ॥ व विरोचन का पुत्र बलि सबलोकोंका स्वामी हुआ और देवता छूटे राज्यवाले व हारेहुये तथा हरे हुये अधिकारवाले हुये ॥ ४६ ॥ उस समय देवताओंके गण मनुष्यों की नाईं पृथ्वी में विचरनेलगे और कुछ समयतक प्राप्तहोकर ब्रह्माजी की शरणमें गये ॥ ४७ ॥ व बोले कि हे परंतप, ब्रह्मन् ! हमलोग बलिसे सुरलोक से अलग किये गये क्या करैं व कहां जावैं और क्या यत्न करैं ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तमो ! तुमलोगों का जो उत्तम यत्न है उसको सुनिये कि हे सुरोत्तमो ! तुम

द्विज ॥ मन्त्रयित्वाऽसुरान्सर्वान् सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ ४४ ॥ संग्राममकरोत्तीव्रंवासवेनबलीयमा ॥ जित्वाचसकलान्देवान् वशीचक्रेसवासवान् ॥ ४५ ॥ सर्वलोकेश्वरोजातो बलिर्वैरोचनोऽसुरः ॥ हृताधिकारास्त्रिदशा भ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ ४६ ॥ विचरन्तियथामर्त्यास्तदादेवगणाभुवि ॥ किञ्चित्कालंसमासाद्य ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मन्हिबलिनाभ्रष्टा देवलोकात्परंतप ॥ किंकुर्मःक्वचगच्छामः किमुपायञ्चकुर्महे ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसुरश्रेष्ठा युष्माकंसाधनंपरम् ॥ पद्मावतीम्पुरींरम्यांयूयंयातामरोत्तमाः ॥ ४९ ॥ तत्रतीर्थवरंश्रेष्ठं नाम्नाचोत्तरमानसम् ॥ यत्राष्टसिद्धिदाख्याता महासिद्धिप्रदानृणाम् ॥ ५० ॥ निधिश्चपद्मप्रभृतिस्तत्रातिष्ठतिसत्तम ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तत्रस्नात्वानरःपश्येत्सिद्धेशींयःसुसिद्धिदाम् ॥ ऋद्धिसिद्धिपरोभूत्वा विष्णुलोकेमहीयते ॥ ५२ ॥ आश्विनस्यासितेपक्षे दशम्यांदिवसेतथा ॥ अष्टसिद्धिंशमीमूले गणेशमभिपूजयेत् ॥ ५३ ॥ विजयीसर्वकामेषु जाय

लोग सुन्दरी पद्मावतीपुरी को जावो ॥ ४९ ॥ वहां उत्तरमानस नामक तीर्थों में श्रेष्ठ उत्तमतीर्थ है जहां कि मनुष्यों को महासिद्धियों को देनेवाली अष्टसिद्धिदा भगवती प्रसिद्ध हैं ॥ ५० ॥ व हे सत्तम ! वहां पद्मादिक निधि स्थित हैं और उसी के दक्षिणभाग में अतिउत्तम विष्णुतीर्थ है ॥ ५१ ॥ उसमें नहाकर जो मनुष्य सुसिद्धिदायिनी सिद्धेशीजी को देखता है वह ऋद्धि सिद्धि से संयुत होकर विष्णुलोक मे पूजाजाता है ॥ ५२ ॥ कुँआर के शुक्लपक्ष में दशमी के दिन जो मनुष्य अष्टसिद्धि व शमीवृक्ष की जड़ में गणेशजी को पूजता है ॥ ५३ ॥ वह सब कामों में विजयवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है शमीवृक्षके मूलमें स्थित

और समस्त कामनाओं के देनेवाले गणेशजी को जो मनुष्य नित्य पूजता है वह समस्त
ऋद्धि, सिद्धियों के वरको देनेवाली सनातनी भगवती जी को ॥ ५४ ॥ और समस्त कामनाओं के देनेवाले गणेशजी को जो मनुष्य नित्य पूजता है वह समस्त
कामनाओं के वरको पाकर पुत्रवान् व धनवान् होताहै ॥ ५५ ॥ इसलिये सब यत्नसे महाकालवन को जावै जहां कि विष्णुसर तीर्थ है वहां शीघ्रही जाइये ॥ ५६ ॥
हे सुरोत्तमो ! अतुल तेजवाले विष्णुजी की उपासना कीजिये वे सुरश्रेष्ठ विष्णुजी सब दुःखोंसे रक्षक होंगे ॥ ५७ ॥ यहां आकर व पवित्र होकर विष्णुजी की भक्तिमें
परायण सिद्धोंने स्नान दानादिक कर्मोंसे उपासना कियाहै ॥ ५८ ॥ उन महात्मा ब्रह्माजी के इस प्रकार वचन को सुनकर उस समय उन सुरोत्तमों ने उन ब्रह्मादेव

शमीमूलस्थितांनित्यां ऋद्धिसिद्धिवरप्रदाम् ॥ ५४ ॥ पूजयेद्यैनरोनित्यं गणेशंसर्वकामदम् ॥ सर्व
तेनात्रसंशयः ॥ शमीमूलस्थितांनित्यां ऋद्धिसिद्धिवरप्रदाम् ॥ ५४ ॥ पूजयेद्यैनरोनित्यं गणेशंसर्वकामदम् ॥ सर्व
कामवरंलब्ध्वा पुत्रवान्धनवान्भवेत ॥ ५५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाकालवनंव्रजेत् ॥ यत्रविष्णुसरस्तीर्थं तत्रग
च्छथमाचिरम् ॥ ५६ ॥ उपासनांसुरश्रेष्ठा विष्णोरतुलतेजसः ॥ सतुवैसर्वदुःखेभ्यस्त्राताभावीसुरोत्तमः ॥ ५७ ॥ अत्राग
त्यशुचिर्भूत्वा स्नानदानादिकर्मभिः ॥ उपासाञ्चक्रिरेसिद्धाविष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ५८ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य ब्रह्मणः
शंसितात्मनः ॥ ब्रह्माणंतंतदादेवमूचुःसर्वेसुरोत्तमाः ॥ ५९ ॥ देवाऊचुः ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण विष्णुभक्तिपरोभवेत् ॥ तत्स
र्वंश्रोतुमिच्छामस्त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसुरश्रेष्ठा विष्णुभक्तिमनुत्तमाम् ॥ शुक्लाम्बरधरं
देवं शशिवर्णंचतुर्भुजम् ॥ ६१ ॥ प्रसन्नवदनंध्यायेत सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ लाभस्तेषांजयस्तेषां कुतस्तेषाम्पराज
यः ॥ ६२ ॥ येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थोजनार्दनः ॥ अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थम्पूज्यतेयःसुरैरपि ॥ ६३ ॥ सर्वविघ्नहर

जीसे कहा ॥ ५९ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! किस विधिसे मनुष्य विष्णुजीकी भक्तिमें तत्पर होवै हे वेदविदों में उत्तम ! उससबको मैं तुमसे सुना चाहताहूं ॥ ६० ॥ ब्रह्मा
जी बोले कि हे सुरोत्तमो ! अतिउत्तम विष्णुजी की भक्तिको सुनिये कि श्वेतवसनको धारे व चन्द्रमा के समान वर्णवाले तथा चार भुजाओंवाले व प्रसन्नमुखवाले
विष्णुजी को सब विघ्नोंके शान्त होनेके लिये ध्यान करे क्योंकि उनको लाभ होताहै व उनकी जीत होतीहै और उनका पराजय कहां से होताहै ॥ ६१ । ६२ ॥ कि
जिन के हृदयमें श्यामकमल की नाईं श्याम विष्णुजी स्थितहैं चाहेहुये प्रयोजन की सिद्धिके लिये जो देवताओं से भी पूजेजाते हैं ॥ ६३ ॥ और जो सब विघ्नोंको

नाशनेवाले हैं उन गणेशजी के लिये प्रणाम है, कल्प के आदिमें सृष्टिकी इच्छावाले विष्णुजी ने मेरी प्रेरणा किया ॥ ६४ ॥ और विष्णुजी के ध्यानमें लगाहुआ मैं प्रजाओं के रचने के लिये न समर्थ हुआ इसी अवसर में मार्कण्डेय महर्षिजी शीघ्रही आगये ॥ ६५ ॥ जोकि सब सिद्धोंके स्वामी, दान्त, दीर्घायु व इन्द्रियों को जीतनेवाले थे वे प्रफुल्लित लोचनोंवाले होकर और अन्योन्य सत्कारकर ॥ ६६ ॥ और उत्तम कल्याण को पूंछतेहुये वे सुरोत्तम सुखपूर्वक बैठे तब मैंने पूंछा कि हे भगवन्! मुझसे कीहुई प्रजा किस प्रकार होवैगी ॥ ६७ ॥ हे मुनिवन्दित, भगवन्! वह सब मैं सुना चाहताहूं श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि सब दुःखोंको नाशनेवाली

स्तस्मै गणाधिपतयेनमः ॥ कल्पादौसृष्टिकामेन प्रेरितोहञ्चशौरिणा ॥ ६४ ॥ नशक्तोहंप्रजाःकर्तुं विष्णुध्यानपराय णः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसद्यो मार्कण्डेयोमहाऋषिः ॥ ६५ ॥ सर्वसिद्धेश्वरोदान्तो दीर्घायुर्विजितेन्द्रियः ॥ प्रफुल्लनयनो भूत्वा सत्कृत्यचेतरेतरम् ॥ ६६ ॥ पृच्छमानौपरम्भद्रं सुखासीनौसुरोत्तमौ ॥ भगवन्केनप्रकारेण प्रजामेविहिताभ वेत ॥ ६७ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि भगवन्मुनिवन्दित ॥ श्रीमार्कण्डेयउवाच ॥ विष्णुभक्तिःपरानित्या सर्वार्तिदुःख नाशिनी ॥ ६८ ॥ सर्वपापहरापुण्या सर्वप्रीतिप्रदायिनी ॥ एषाब्राह्मीमहाविद्या नदेयायस्यकस्यचित् ॥ ६९ ॥ कृत घ्नायह्यशिष्याय नास्तिकायानृतायच ॥ ईर्षकायचरूक्षायकामुकायकदाचन ॥ ७० ॥ तद्गतंहन्तितज्ज्ञानं यतोधर्मं सनातनम् ॥ एतद्गुह्यतमंशास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७१ ॥ पवित्रञ्चपवित्राणांपावनानाञ्चपावनम् ॥ विष्णोर्नामसह स्रञ्च विष्णुभक्तिकरंशुभम् ॥ ७२ ॥ सर्वसिद्धिकरंनृणाम्भुक्तिमुक्तिप्रदंशुभम् ॥ ॐअस्यश्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य

उत्तम विष्णुभक्ति है ॥ ६८ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाली व पुण्यदायिनी तथा सब आनन्दों को देनेवाली है यह ब्राह्मीविद्या जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ६९ ॥ कृतघ्न, अशिष्य, नास्तिक व असत्य तथा ईर्षावान्, अविनीत व कामीके लिये कभी न देना चाहिये ॥ ७० ॥ क्योंकि उसमें प्राप्त वह ज्ञान सनातनधर्मको नाश करता है यह शास्त्र सब पापोंको नाशनेवाला व अत्यन्त गुप्तहै ॥ ७१ ॥ और पवित्रों के मध्यमें पवित्र व पवित्र करनेवालों में पवित्रकारकहै और विष्णुसहस्रनाम उत्तम व विष्णुभक्तिकारकहै ॥ ७२ ॥ जोकि मनुष्योंको सब सिद्धिकारक व भुक्ति, मुक्तिका दायक तथा उत्तमहै इस विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रके ब्रह्माऋषि हैं विष्णु देवता हैं अनुष्टुप्

छन्द है और सब कामनाओं की प्राप्तिके लिये जप में विनियोग कियाजाता है ॥ अब ध्यान कहते हैं कि जलसमेत मेघके समान नीलवर्णवाले और उदारस्वभावको दिखलानेहारे, हाथमें पर्वत को लिये व वेणुके बजानेमें प्रवीण तथा व्रजवासीजनोंके पालक व कामिनी स्त्रियोंकी क्रीड़ामें चञ्चल और नवीन तुलसीकी मालाको पहने हुये गोपालबालक श्रीकृष्णजीको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ७३ ॥ संसारमें व्यापक, जयशीलवाले, इन्द्रियोंके स्वामी, सबोंकी आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, रात्रिनाथ, प्राणीगणों के आशय के आशय ॥ ७४ ॥ आदिअन्तरहित, क्रीड़ा करनेवाले, सर्वज्ञाता, सबोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, संसारको पोषणकरने

ब्रह्माऋषिर्विष्णुर्देवता अनुष्टुप्छन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थंजपे विनियोगः ॥ अथ ध्यानम् ॥ सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं करतलधृतशैलं वेणुवाद्येरसालम् ॥ व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं तरुणतुलसिमालं नौमिगोपालबालम् ॥ ७३ ॥ ॐविष्णुर्जिष्णुर्हृषीकेशः सर्वात्मासर्वभावनः ॥ सर्वगःशर्वरीनाथो भूतग्रामाशयाशयः ॥ ७४ ॥ अनादिनिधनोदेवः सर्वज्ञःसर्वसम्भवः ॥ सर्वव्यापीजगद्धाता सर्वशक्तिधरोनघः ॥ ७५ ॥ जगद्बीजंजगत्स्रष्टा जगदीशोजगत्पतिः ॥ जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाताजगन्मयः ॥ ७६ ॥ सर्वाकृतिधरःसर्वो विश्वरूपीजनार्द्दनः ॥ अजन्माशाश्वतोनित्यो विश्वाधारोविभुःप्रभुः ॥ ७७ ॥ बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरोहरः ॥ महार्णवोमहामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ॥ संस्कारीविकारीमत्स्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिलः ॥ ७८ ॥ अनन्तोवासुकिःशेषो वाराहोधरणीधरः ॥ पयःक्षीरविवेक्षा

वाले, सब शक्तियोंके धारनेवाले, पापरहित ॥७५॥ संसार के बीज, संसारको रचनेवाले, जगदीश व जगत् के स्वामी, संसार के गुरु, जगन्नाथ, जगत् को धारनेवाले, संसारमय ॥ ७६ ॥ सब आकृतियों के धारनेवाले, सर्व, संसाररूपी, जनोंके दुःखहारक, जन्मरहित, सनातन, नित्य, संसार के आधार, व्यापक, समर्थ ॥ ७७ ॥ बहुतरूपोंवाले, एक रूपवाले, सब रूपोंको धारनेवाले, भक्तदुःखहारक, महासमुद्र, महामेघ, जलके बुल्लेसे उत्पत्तिवाले, संस्कार कियेहुये, विकार को प्राप्त, मत्स्यरूप, महामत्स्यस्वरूपवाले व तिमिंगिल नाम बड़ीभारी मछली के स्वरूपवाले ॥ ७८ ॥ अनन्त, वासुकि, शेष, वाराहरूप, पृथ्वीको धारनेवाले व पानी और दूधके अलग

करनेमें हंसरूप और कनकाचल पै आसन करनेवाले ॥ ७९ ॥ हयग्रीव, विशाललोचन, अश्वकर्ण, अश्वाकार, मथन, रत्नहारी, कूर्मरूप, अधरधराधर ॥ ८० ॥ निद्रा-रहित, निद्रामें प्राप्त, अनन्त, सुनन्दी, नन्दन, प्रिय ॥ ८१ ॥ और नाभिमें कमलनालवाले, आपही से उत्पन्न, चतुर्मुख, प्रजापतियों में परायण, दक्ष, सृष्टिकारक, प्रजाकारक ॥ ८२ ॥ मरीचि, कश्यप, वत्स व देवता और दैत्योंके गुरु, कवि, वामनरूप, वामभागी, कर्मोंके कर्मरूप और बड़े शरीरवाले ॥ ८३ ॥ और त्रिलोक को नापनेवाले, दयावान्, बलिके यज्ञके विनाशक, यज्ञहर्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञके स्वामी, यज्ञको भोगनेवाले, व्यापक ॥ ८४ ॥ हज़ार किरणोंवाले, भगदेवरूप, प्रकाश-

यां हंसोहैमगिरासनः ॥ ७९ ॥ हयग्रीवोविशालाक्षो हयकर्णोहयाकृतिः ॥ मथनोरत्नहारीच कूर्मोऽधरधराधरः ॥ ८० ॥ विनिद्रोनिद्रितोनन्तः सुनन्दीनन्दनःप्रियः ॥ ८१ ॥ नाभिनालमृणालीच स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ताप्रजाकरः ॥ ८२ ॥ मरीचिःकश्यपोवत्सः सुरासुरगुरुःकविः ॥ वामनोवामभागीच कर्मकर्माबृहद्वपुः ॥ ८३ ॥ त्रैलोक्यक्रमणोदायो बलियज्ञविनाशनः ॥ यज्ञहर्तायज्ञकर्ता यज्ञेशोयज्ञभुग्विभुः ॥ ८४ ॥ सहस्रांशुर्भगोभानुर्विवस्वान्रविरंशुमान् ॥ तिग्मतेजाल्पतेजाश्च कर्मसाक्षीमनुर्यमः ॥ ८५ ॥ देवराजोसुरपतिर्दानवारिःशचीपतिः ॥ रविर्वायुसखोवह्निर्वरुणोयादसाम्पतिः ॥ ८६ ॥ नैर्ऋतोनन्दनोनादी रक्षोयक्षोधनाधिपः ॥ कुबेरोवित्तवान्वेगो वसुपालविलासकृत् ॥ ८७ ॥ अमृतःश्रावणःसोमः सोमपानकरःसुधीः ॥ सर्वौषधिकरःश्रीमान् निशाकारोदिवाकरः ॥ ८८ ॥ विषहाविषहर्ताच विषकण्ठधरोगिरिः ॥ नीलकण्ठोवृषीरुद्रो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ ८९ ॥ शिवःशान्तोवशी

कारक, विवस्वान्, सूर्यनारायण, किरणोंवाले, तीक्ष्ण तेजवान्, थोड़े तेजवाले, कर्मोंके साक्षी, मनुरूप, यमराजरूप ॥ ८५ ॥ देवताओंके राजा, दैत्योंके स्वामी, दानवों के शत्रु,इन्द्राणीके पति, रवि, पवनमित्र, अग्नि, वरुण व जलजन्तुवोंके स्वामी ॥ ८६ ॥ निर्ऋति, आनन्दको देनेवाले, शब्दकारक,राक्षस, यक्ष व धनके स्वामी, कुबेर, धनवान्, वेग और वसुपालकोंसे विलास करनेवाले ॥ ८७ ॥ मोक्षरूप, श्रावण,सोम व सोमपान करनेहारे तथा भलीभांति ध्यान करनेवाले,सब ओषधियोंको करनेवाले, लक्ष्मीवान्, रात्रिकारक, दिनकारक ॥ ८८ ॥ विषनाशक, विषहारक, विषकंठधारी,पर्वतरूप, नीलकण्ठ, वृषवाले, रुद्र, चन्द्रभाल, पार्वती के पति ॥ ८९ ॥ कल्याण-

कालक, शान्तरूप, सुन्दरस्वरूपवाले, वीर, ध्यान करनेवाले, मान करनेहारे व मानदायक, कृमिकीटस्वरूप, मृगको वेधनेवारे, मृगहंता, मृगप्रिय ॥ ९० ॥ बटुक,
भैरव, बाल, कपालधारी, दण्डसंयुत शरीरवाले, श्मशानमें बसनेवाले, मांसभोजी, खप्पर में भोजन करनेवाले व कामदेवनाशक ॥ ९१ ॥ योगिनियों को डरपानेवा-
ले, योगी, ध्यानमें स्थित व ध्यान वासनावाले, सेनाध्यक्ष, सेननाशक, स्वामिकार्त्तिकेय, महाकालस्वरूप, गणनायक ॥ ९२॥ आदिदेव, गणेश, विघ्ननाशक व विघ्न-
विनाशन, नित्य ऋद्धिसिद्धिदायक, हस्ती, गजमुख ॥ ९३ ॥ नृसिंह, उग्र दाढ़ोंवाले, नखोंवाले, दानवोंको नाश करनेवाले, प्रह्लादका पोषण करनेवाले व सर्वदैत्यजनों के

वीरो ध्यानीमानीचमानदः ॥ कृमिकीटोमृगव्याधो मृगहामृगवत्सलः ॥ ९० ॥ बटुकोभैरवोबालः कपालीदण्ड
विग्रहः ॥ श्मशानवासीमांसाशी खर्पराशीस्मरान्तकृत् ॥ ९१ ॥ योगिनीत्रासकोयोगी ध्यानस्थोध्यानवासनः ॥ से
नानीसेनहास्कन्दो महाकालोगणाधिपः ॥ ९२ ॥ आदिदेवोगणपतिर्विघ्नहाविघ्ननाशनः ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदोनित्यं द
न्तीचैवगजाननः ॥ ९३ ॥ नृसिंहउग्रदंष्ट्रश्च नखीदानवनाशकृत् ॥ प्रह्लादपोषकर्ताच सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ ९४ ॥ श
लभःसागरःसाक्षी कल्पद्रुमविकल्मषो ॥ हेमदोहेमभागीच हिमकर्ताहिमाचलः ॥ ९५ ॥ भूधरोभूमिदोमेरुः कैला
सःशिखरोगिरिः ॥ लोकालोकान्तरालोकी विलोकीभुवनेश्वरः ॥ ९६ ॥ दिक्पालोदिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायोजिते
न्द्रियः ॥ विरूपोरूपवान्रागी नृत्यगीतविशारदः ॥ ९७॥ हाहाहूहूश्चित्ररथो देवर्षिर्नारदःसखा ॥ विश्वेदेवाःसाध्यदे
वा घृताशीचाचलश्चलः ॥ ९८॥ कपिलोजल्पकोवादी दत्तोहैहयहंसराट् ॥ वसिष्ठःकामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरोभृगुः ॥९९॥

स्वामी ॥ ९४ ॥ शलभ, सागररूप, साक्षी, कल्पवृक्ष, पापरहित, स्वर्णदायक, स्वर्णभागी, पालाको करनेवाले, हिमाचलरूप ॥ ९५ ॥ पृथ्वीको धरनेवाले, भूमिदायक, सुमेरु,
कैलास, शिखररूप, पर्वतरूप और जो लोकालोक के मध्यको देखनेवाले, लोकरहित, लोकोंके स्वामी ॥ ९६ ॥ दिशाओं के पालक, दिशाओं के स्वामी, दिव्य व दिव्य
शरीरवाले, इन्द्रियजीत, रूपरहित, रूपवान्, अनुराग करनेवाले व नाचने और गानेमें चतुर ॥ ९७ ॥ और हाहा, हूहू व चित्ररथ गन्धर्व स्वरूप, देवर्षि, नारदरूप,
सखारूप, विश्वेदेवा, साध्यदेवता, घृतभोजी, अचल, चल ॥ ९८ ॥ कपिलदेवरूप, व्यक्तवचन कहनेवाले, वाद करनेहारे, दत्तात्रेयस्वरूप, हैहयार्जुनरूप व हंसराज,

वसिष्ठस्वरूप, कामदेवरूप व सप्तर्षियों में श्रेष्ठ, भृगु ॥ ९९ ॥ जमदग्निरूप, महावीरस्वरूप, क्षत्रियों का विनाश करनेवाले, सत्यवादी, हिरण्यकशिपुस्वरूप, हिरण्याक्षरूप, हरिप्रिय ॥ १०० ॥ अगस्ति, पुलह, रक्ष, पौलस्ति, रावण, घट, देवताओंके शत्रु, तपस्वी, ताप करनेवाले व हरिप्रिय विभीषणस्वरूप ॥ १ ॥ तेजवाले, तेजनाशक, तेजराशि, राजाओं के स्वामी, प्रभु, दशरथ के पुत्र, राघव, श्रीरामचन्द्र, रघुवंश को बढ़ानेवाले ॥ २ ॥ जानकीनाथ, रक्षक, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों को माननेवाले, भक्तप्रिय, संनद्ध, कवचधारी, तलवारको धारनेवाले, चीर वसन पहने व दिगम्बर याने नग्न ॥ ३ ॥ किरीट को धारनेवाले, कुण्डलों को धारे बाणको

जमदग्निर्महावीरः क्षत्रियान्तकरोऋषिः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षोहरिप्रियः ॥ १०० ॥ अगस्तिःपुलहोरक्षः पौलस्तीरावणोघटः ॥ देवारिःतापसस्तापी विभीषणहरिप्रियः ॥ १ ॥ तेजस्वीतेजहातेजराशीराजपतिःप्रभुः ॥ दाशरथीराघवोरामो रघुवंशविवर्द्धनः ॥ २ ॥ सीतापतिःपतिःश्रीमान् ब्रह्मण्योभक्तवत्सलः ॥ संनद्धःकवचीखड्गी चीरवासादिगम्बरः ॥ ३ ॥ किरीटीकुण्डलीचापि शरीचक्रीगदाधरः ॥ कौशल्यानन्दनोरामोभूमिशायीगुरुप्रियः ॥ ४ ॥ सौमित्रोभरतोबालः शत्रुघ्नोभरताग्रजः ॥ लक्ष्मणःपरवीरघ्नः स्त्रीसहायःकपीश्वरः ॥ ५ ॥ हनूमान्ऋक्षराजश्च सुग्रीवोबालिनाशनः ॥ दीनप्रियोदानवारिरङ्गदोगदतांवरः ॥ ६ ॥ वनध्वंसीवनीवेगी वानरोवानरध्वजः ॥ लाङ्गूलीचनखीदंष्ट्री लङ्काहाहाकरोवरः ॥७॥ भवसेतुर्महासेतुर्बद्धसेतूरमेश्वरः ॥ जानकीवल्लभःकामी किरीटीकुण्डलीखगः ॥८ ॥

लिये, चक्रको धारेहुये और गदाको धारण करनेवाले, कौशल्याजी के पुत्र, रमण करनेवाले, भूमिमें सोनेवाले व गुरुवों को प्यारे ॥ ४ ॥ सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणरूप, भरत, बालक, शत्रुघ्न व भरत के जेठेभाई, लक्ष्मण, शत्रुवीरनाशक, स्त्रीसहायवाले, वानरों के स्वामी ॥ ५ ॥ हनूमान्, ऋक्षराज (जाम्बवान्), सुग्रीवरूप व बालिको नाशनेवाले, दुःखीजनप्रिय, दानवों के शत्रु, अङ्गदरूप व कहनेवालों में श्रेष्ठ ॥ ६ ॥ वनविनाशक, वनवाले, वेगवान्, वानर व वानर के ध्वजावाले, पुच्छवाले, नखवाले, दाढ़ोंवाले व लङ्कामें हाहाकार करनेवाले, श्रेष्ठ ॥ ७ ॥ संसार के सेतु (पुल) रूप, महासेतु, सेतु बांधनेवाले, रमानाथ, जानकीजी के प्यारे, कामी,

किरीटधारक,कुण्डल धारनेवाले,आकाशगामी ॥ ८ ॥ कमलके नाईं चौड़नेत्रवाले,महाभुज,मेघस्वरूप,चञ्चल,चपल,कामी, सुन्दरतावाले व वामाङ्गप्रिय ॥ ६ ॥ स्त्रीप्रिय, स्त्रीमें तत्पर, स्त्रैण व स्त्री के बायेंअङ्ग में बसनेवाले, शत्रुवोंको जीतनेवाले,क्रोधकोजीतेहुये, कामदेव को जीतनेहारे और इन्द्रियोंको जीतनेवाले ॥ १० ॥ शान्तस्वरूप, इन्द्रियों को दमन किये दयामें रमण करनेवाले, एक स्त्रीके नियमको धारनेवाले, सत्त्वगुणवाले व सत्त्वगुणमें टिकेहुये, कामदेव,क्रोधी,कठोर ॥ ११ ॥ बहुत राक्षसोंसे घिरेव सब राक्षसोंको नाशकरनेवाले रावणकेवैरी व समरमें क्षुद्र दश मस्तकोंको काटनेवाले ॥१२॥ राज्य करनेवाले,यज्ञ करनेवाले,दानी,भोगी व तपस्यारूपधनवाले,अयो-

पुण्डरीकविशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥ चञ्चलश्चपलःकामी वामीवामाङ्गवत्सलः ॥ ६ ॥ स्त्रीप्रियःस्त्रीपरःस्त्रैणः स्त्रियोवामाङ्गवासकः ॥ जितवैरीजितक्रोधोजितकामोजितेन्द्रियः ॥ १० ॥ शान्तोदान्तोदयाराम एकस्त्रीव्रतधारकः ॥ सात्त्विकःसत्त्वसंस्थानो मदनःक्रोधनःखरः ॥ ११ ॥ बहुराक्षससंवीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥ रावणारीरणक्षुद्रदशमस्तकछेदकः ॥ १२ ॥ राज्यकारीयज्ञकारी दाताभोक्तातपोधनः ॥ अयोध्याधिपतिःकान्तो वैकुण्ठोकुण्ठविग्रहः ॥ १३ ॥ सत्यव्रतोव्रतीशूरस्तपीसत्यःफलप्रदः ॥ सर्वसाक्षीसर्वसङ्गः सर्वप्राणहरोऽव्ययः ॥ १४ ॥ प्राणोपानःसमानश्च व्यानोदानःसमानकः ॥ नागःकृकलकूर्मश्च देवदत्तोधनञ्जयः ॥ १५ ॥ सर्वप्राणविदव्यापी योगधारणधारकः ॥ तत्त्ववित्तत्त्वदस्तत्त्वी सर्वतत्त्वविशारदः ॥१६॥ ध्यानस्थोध्यानशीलीच मनस्वीयोगवित्तमः ॥ ब्रह्मज्ञोब्रह्मज्ञानीच ब्रह्महा ब्रह्मसम्भवः ॥ १७ ॥ अध्यात्मविज्जगद्दीपो ज्योतीरूपोनिरञ्जनः ॥ज्ञानदोज्ञानहाज्ञानी गुरुशिष्योपदेशकः ॥ १८ ॥

ध्याके स्वामी, सुन्दर, वैकुण्ठस्वरूप व कुण्ठशरीरवाले ॥ १३ ॥ सत्यव्रतवाले, नियमवान्, शूर, तपस्वी, सत्य, फलदायक, सबोंके साक्षी, सबके सङ्गवाले, सबोंके प्राणनाशक, विकाररहित ॥ १४ ॥ व प्राणरूप, अपानस्वरूप, समानस्वरूप, उदानरूप, समानस्वरूप, नागरूप, कृकलरूप, कूर्मस्वरूप, देवदत्तरूप व धनञ्जयस्वरूप ॥ १५ ॥ सबोंके प्राणोंको जाननेवाले, अव्यापी, योगकी धारणा को धारनेवाले, तत्त्वज्ञ, तत्त्वदायक, तत्त्ववान्, सब तत्त्वोंके जानने में चतुर ॥ १६ ॥ ध्यानमें स्थित, ध्यानस्वभाववाले, मनस्वी व योगके ज्ञाता, ब्रह्मको जाननेवाले, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्महा, ब्रह्म से उत्पत्तिवाले ॥ १७ ॥ अध्यात्म को जाननेवाले, संसार के दीपक,

ज्योतिस्वरूप, निरञ्जन, ज्ञानदायक, ज्ञाननाशक, ज्ञानवान्, गुरु व शिष्यको उपदेश करनेवाले ॥ १८ ॥ उत्तम शिक्षा के योग्य, शिक्षाको प्राप्त, शोभित व सीखने योग्य शिक्षामें चतुर, मन्त्रको देनेवाले, मंत्रनाशक, मन्त्रवाले, तन्त्रवाले और तन्त्रवाले लोगोंके प्रिय ॥ १९ ॥ उत्तम मन्त्रवाले, मन्त्रके ज्ञाता, मन्त्री व यन्त्रों तथा मन्त्रों को एकही तोड़नेवाले, मारण, मोहन, मोहवाले, स्तम्भनवाले, उच्चाटन करनेवाले, खल ॥ २० ॥ बहुत मायाओंवाले, मायारहित, महामायावाले, मोहरहित, मोक्षदायक, बाधनेवाले, कारागृह व आकर्षण, विकर्षण ॥ २१ ॥ ह्रींकार, बीजस्वरूप, क्लींकारवाले, कीलक के स्वामी, सौंकार, शक्तिमान्, शक्ति, सब शक्तियों को धारनेवाले, पर्वत

सुशिक्ष्यःशिक्षितःशाली शिक्ष्यशिक्षाविशारदः ॥ मन्त्रदोमन्त्रहामन्त्री तन्त्रीतन्त्रजनप्रियः ॥ १९ ॥ सन्मन्त्री मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ॥ मारणोमोहनोमोहीस्तम्भ्युच्चाटकरःखलः ॥ २० ॥ बहुमायोविमायश्च महामायीविमोहकः ॥ मोक्षदोबन्धकोवन्दी ह्याकर्षणविकर्षणः ॥ २१ ॥ ह्रींकारोबीजरूपीच क्लींकारीकीलकाधिपः ॥ सौङ्कारःशक्तिमाञ्छक्तिः सर्वशक्तिधरोधरः ॥ २२ ॥ अकारोकारईकार छन्दोगायत्रिसम्भवः ॥ वेदोवेदविदोवेदी वेदाध्यायीसदाशिवः ॥ २३ ॥ ऋग्यजुःसामचाथर्वः सामगानकरःकरी ॥ त्रिपदोबहुपादीच सत्पथःसर्वतोमुखः ॥ २४ ॥ प्राकृतःसंस्कृतोयोगी गीतग्रन्थप्रहेलिकः ॥ सगुणोविगुणोच्छन्दः निःसङ्गोविगुणोगुणी ॥ २५ ॥ निर्गुणोगुणवान्सङ्गी कर्मधर्मीत्वकर्मदः ॥ निष्कर्माकामकामीच निःसङ्गःसङ्गवर्जितः ॥ २६ ॥ निर्लोभीनिरहङ्कारी निष्किञ्चनजनप्रियः ॥ २७ ॥

स्वरूप ॥ २२ ॥ अकार, उकार, ईकार स्वरूप व गायत्री से उत्पन्न छन्दस्वरूप, वेदरूप, वेदज्ञ, वेदवान्, वेदाध्ययन करनेवाले, सदाशिवस्वरूप ॥ २३ ॥ ऋक्, यजुः, साम व अथर्वस्वरूप, सामगान करनेवाले, हस्तीस्वरूप, तीन चरणोंवाले, बहुत चरणोवाले, उत्तममार्ग व सबओर मुखवाले ॥ २४ ॥ और प्राकृत (बनाहुआ) संस्कृत (संस्कार कियाहुआ) योगी व गीता ग्रन्थ के चलानेवाले, गुणोंसमेत, निर्गुण, स्वच्छन्द, सङ्गरहित, गुणरहित, गुणवान् ॥ २५ ॥ निर्गुण, गुणवान्, सङ्ग करनेवाले, कर्म धर्मवाले व अकर्मदायक, कर्मरहित, कामनाओं को चाहनेवाले, सङ्गरहित व सङ्गसे वर्जित ॥ २६ ॥ लोभरहित, अभिमानहीन व अकिञ्चनजनप्रिय ॥ २७ ॥

व सबोंसे साथ करनेवाले, अनुरागी, सबको छोडनेवाले, बाहर चलनेवाले, एकचरणवाले, दोचरणवाले, बहुत चरणोंवाले, थोड़े चरणोंवाले ॥ २८ ॥ द्विचरण, त्रिचरण, चरणोंवाले व चरणोंसे रहित, चरणोके संग्रहवाले, आकाशगामी, भूमिगामी, ऐश्वर्यवान् व भृंगकीटमधुप्रिय ॥ २९ ॥ ऋतुरूप, वर्षस्वरूप, मासरूप, अयनस्वरूप, पक्षरूप, दिनरात्रिस्वरूप, ॥ ३० ॥ सत्ययुगरूप, त्रेतास्वरूप, कलियुगरूप, द्वापरस्वरूप व चारों आकारवाले, देशकालको करनेवाले, कालस्वरूप, वंशके धर्मरूप, सदैव रहनेवाले ॥ ३१ ॥ कलारूप, काष्ठास्वरूप, पलारूप व नाड़ीस्वरूप, प्रहररूप, पक्षस्वरूप, श्वेतकृष्णरूप, युगस्वरूप, युगको धारनेवाले, योग्य व युगोंके धर्मको

सर्वसङ्गकरोरागी सर्वत्यागीबहिश्चरः ॥ एकपादोद्विपादश्च बहुपादोल्पपादकः ॥ २८ ॥ द्विपदस्त्रिपदःपादी विपादीपादसंग्रहः ॥ खेचरोभूचरोभागी भृङ्गकीटमधुप्रियः ॥ २९ ॥ ऋतुःसंवत्सरोमासोऽयनःपक्षोह्यहर्निशः ॥ ३० ॥ कृतस्त्रेताकलिश्चैव द्वापरश्चतुराकृतिः ॥ देशकालकरःकालःकुलधर्मःसनातनः ॥ ३१ ॥ कलाकाष्ठापलानाड्यो यामःपक्षःसितासितः ॥ युगोयुगन्धरोयोग्यो युगधर्मप्रवर्तकः ॥ ३२ ॥ कुलाचारःकुलकरः कुलदेवकरोकुली ॥ चतुराश्रमचारीच गृहस्थोह्यतिथिप्रियः ॥ ३३ ॥ वनस्थोवनचारीच वानप्रस्थाश्रमाश्रमी ॥ वटुकोब्रह्मचारीच शिखासूत्रःकमण्डलुः ॥ ३४ ॥ त्रिजटीध्यानवान्ध्यानी बद्रिकाश्रमवासकृत् ॥ हेमाद्रिप्रभवोहेमा हेमराशिर्हिमाकरः ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थानकोविप्रो विरागीरागवान्गृही ॥ नरनारायणोरागीकेदारोदारविग्रहः ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्वारतपःपारो तपोवनतपोनि

वर्तमान करनेवाले ॥ ३२ ॥ कुलके आचारस्वरूप वंशकारक, कुलदेवकारक व कुलरहित, चारों आश्रमों में गमन करनेवाले, गृहस्थरूप व अतिथिप्रिय ॥ ३३ ॥ वनमें स्थित, वनमे चलनेवाले, वानप्रस्थाश्रम के आश्रमवाले, वटुस्वरूप, ब्रह्मचारीरूप, शिखासूत्रस्वरूप, कमण्डलुरूप ॥ ३४ ॥ तीन जटाओंवाले, ध्यानवाले, ध्यानी व बद्रिकाश्रम में निवास करनेवाले, कनकाचल से उत्पन्न, सुवर्णरूप, सुवर्णकी राशि, हिमखानि ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थान करनेवाले, विप्ररूप, अनुरागरहित, अनुरागी, गृहवाले, नर व नारायणस्वरूप, अनुरागवान्, क्षेत्रस्वरूप, स्त्रीरूपवाले ॥ ३६ ॥ व हरिद्वार में तपस्या में तत्पर, तपोवन व तपस्या के

निधान, यह महापद्म निधि व तडाग की लक्ष्मी के स्थान ॥ ३७ ॥ कमलनाभ, सर्वव्यापी, संन्यासीरूप, पुरुषों में उत्तम, पुराण, परमानन्दरूप, सम्राट् व राजर्षियों के राजा ॥ ३८ ॥ चक्रमें स्थित, चक्रपालों में स्थित, चक्रवर्ती, नरेश, आयुर्वेद के जाननेवाले, वैद्य, चलनेवाले, धन्वन्तरिस्वरूप व ग्रहण करनेवाले ॥ ३९ ॥ और ओषधी व बीजोंको उत्पन्न करनेवाले व रोगीके रोगको नाश करनेवाले, चैतन्यरूप, अचेत, चिन्तन के योग्य, चित्तकी चिन्ता के विनाश करनेवाले ॥ ४० ॥ इन्द्रियों से परे, सुखको स्पर्श करनेवाले, चर प्राणियों में गमन करनेवाले, आकाशगामी, गरुड़स्वरूप, पक्षियोंके राजा, प्रशस्त लोचनोंवाले, विनताके पुत्र ॥ ४१ ॥

धिः ॥ निधिरेषमहापद्मः पद्माकरश्रियालयः ॥ ३७ ॥ पद्मनाभःपरीतात्मा परिव्राट्पुरुषोत्तमः ॥ पुराणःपरमानन्दः सम्राट्राजर्षिराजकः ॥ ३८ ॥ चक्रस्थश्चक्रपालस्थश्चक्रवर्तीनराधिपः ॥ आयुर्वेदविदोवैद्यश्चरो धन्वन्तरिर्ग्रहः ॥ ३९ ॥ ओषधीबीजसम्भूतो रोगिरोगविनाशकृत ॥ चेतनोचेतकोचिन्त्यश्चित्तचिन्ताविनाशकृत ॥ ४० ॥ अतीन्द्रियःसुखस्पर्शश्चरचारीविहङ्गमः ॥ गरुडःपक्षिराजश्च चाक्षुषोविनतात्मजः ॥ ४१ ॥ विष्णुर्यानविमानस्थो मनोमयतुरङ्गमः ॥ बहुवृष्टिकरोवर्षी ऐरावणविरावणौ ॥ ४२ ॥ उच्चैःश्रवाहयोगामी हरिदश्वोहरिप्रियः ॥ प्रावृषोमेघमालीच गजरत्नंपुरन्दरः ॥ ४३ ॥ वसुदोवसुधारश्च निद्रालुःपन्नगाशनः ॥ शेषशायीजलेशायी व्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४४ ॥ वेदव्यासकरोवाग्मी बहुशाखाविकल्पकः ॥ स्मृतिःपुराणधर्मार्थी पारावरकविःकृतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशीर्षासहस्राक्षः सहस्र

व्यापक, वाहन व विमान पै स्थित, मनोमय अश्वरूप, बहुत वृष्टि करनेवाले, न बरसनेवाले, ऐरावतस्वरूप, शब्द करनेवाले ॥ ४२ ॥ व उच्चैःश्रवा अश्वरूप, गमन करनेवाले, हरित् अश्वोंवाले, इन्द्रप्रिय, वर्षाके समय में मेघोंकी पङ्क्तिवाले, गजोंमें रत्नरूप, इन्द्रस्वरूप ॥ ४३ ॥ धनको देनेवाले, धनको धारनेवाले, निद्रावान, सर्पभोजी, शेषजी के ऊपर शयन करनेवाले, जलमें सोनेवाले, सत्यवतीजी के पुत्र व्यासस्वरूप ॥ ४४ ॥ वेदोंका विस्तार करनेवाले व प्रशस्त वचनवाले, बहुत शाखाओं के भेदकारक, स्मृतिरूप, प्राचीन धर्मको चाहनेवाले, कार्य व कारण के विद्वान्, पुण्यवान्‌रूप ॥ ४५ ॥ हज़ार मस्तकोंवाले, हज़ार लोचनोंवाले व हज़ार

मुखोंसे उज्ज्वल, हज़ार भुजाओंवाले, हज़ार किरणोंवाले व हज़ार किरणोंसे उन्नत ॥४६॥ बहुत मस्तकोंवाले, एक मस्तकवाले, तीन मस्तकोंवाले, शिररहित, शिखावान्, जटाधारी, भस्ममें अनुराग करनेवाले, दिव्य वसनों को धारे व पवित्र ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मस्वरूप, स्थूलरूप, रूपरहित, विकराके आकारवाले, समुद्रको मथानेवाले, मथने वाले, सब रत्नोंको हरनेवाले, भक्तदुःखहारक ॥ ४८ ॥ हीरा व वैडूर्यमणिवाले, वज्रको धारनेवाले व चिन्तामणिमहामणिस्वरूप, मूल्यरहित, बड़े मूल्यवाले, निर्मूल्य, सरभ (मृगभेद) स्वरूप व सुखी ॥ ४९ ॥ पितारूप व मातास्वरूप, बालकरूप, बन्धुस्वरूप, विधातारूप, त्वष्टा देवतारूप, अग्निरूप, भीतर स्थित, बाहर कार्य

दनोज्ज्वलः ॥ सहस्रबाहुःसहस्रांशुः सहस्रकिरणोन्नतः ॥ ४६ ॥ बहुशीर्षैकशीर्षश्च त्रिशिराविशिराःशिखी ॥ जटिलोभस्मरागीच दिव्याम्बरधरःशुचिः ॥४७॥ अणुरूपोबृहद्रूपो विरूपोविकराकृतिः ॥ समुद्रमाथकोमाथी सर्वरत्नहरोहरिः ॥ ४८ ॥ वज्रवैडूर्यकोवज्री चिन्तामणिमहामणिः ॥ अनिर्मूल्योमहामूल्यो निर्मूल्यःसरभःसुखी ॥ ४९ ॥ पितामाताशिशुर्बन्धुर्धातात्वष्टाहुताशनः ॥ अन्तःस्थोबाह्यकारीच बहिःस्थोवैबहिश्चरः ॥ ५० ॥ पावनःपावकःपाकी सर्वभक्षीहुताशनः ॥ भगवान्भगहाभागी भगभञ्जभयङ्करः ॥ ५१ ॥ कायस्थोच्चार्थकारीच कार्यतर्कीकरप्रदः ॥ एकधर्माद्विधर्माच सुखीदूतोपजीवकः ॥ ५२ ॥ पालकोजारकस्त्राता कालमूषकभक्षकः ॥ संजीवनोजीवकर्ता सजीवोजीवसम्भवः ॥ ५३ ॥ षड्विंशकोमहाविष्णुः सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ दिव्याङ्गदोमुक्तमाली श्रीवत्सोमकरध्वजः ॥५४॥

करनेवाले, बाहर स्थित व बाहर विचरनेवाले ॥ ५० ॥ पवित्रकारक, अग्नि, पचानेवाले, सब कुछ भोजन करनेवाले, हुतभोजी, ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यनाशक, अंशवाले, ऐश्वर्यको भञ्जन करनेवाले व भयङ्कर ॥ ५१ ॥ शरीर में स्थित व अच्छ अर्थको करनेवाले, कार्यमें तर्क करनेवाले, करदायक, एक धर्मवाले, दो धर्मोंवाले, सुखी व दूतों को जीविका देनेवाले ॥ ५२ ॥ पालक, परस्त्री भोग करनेवाले, रक्षक व कालरूपी मूसको भक्षण करनेवाले, भलीभांति जिलानेवाले, जीव करनेवाले, जीव समेत व जीवको उत्पन्न करनेवाले ॥ ५३ ॥ व छब्बीसवें महाविष्णु, सब में व्याप्त, महेश्वररूप, उत्तम बजुल्ले को धारण किये व मोतियों की मालाको पहने

व भृगुलताको धारे व मकरध्वजावाले ॥ ५४ ॥ श्याम शरीरवाले, घन के समान श्यामरंगवाले, पीले वसनवाले, उत्तम मुखवारे, चीर वसनवाले, वसनरहित व भूतों तथा दानवों को प्यारे ॥ ५५ ॥ अमृतरूप, अमृतके अंशवाले, मोहनीरूपको धारनेवाले, दिव्यदृष्टिवाले, समानदृष्टिवाले व देवताओं तथा दानवों को छलने वाले ॥ ५६ ॥ कबंध याने शिरके विहीन शरीररूप, केतुको करनेवाले, राहुरूप, चन्द्रमा को सन्तापकारक, ग्रहोंके राजा, ग्रहण करनेवाले, ग्राहस्वरूप, सब ग्रहों को छुड़ानेवाले ॥ ५७ ॥ दान, मान, जप व होमस्वरूप, अनुकूलता समेत शुभग्रहस्वरूप, विघ्नकारक व हारक, विघ्ननाशक, विनायकस्वरूप ॥ ५८ ॥ अपकार

श्याममूर्तिर्घनश्यामः पीतवासाःशुभाननः ॥ चीरवासाविवासाश्चभूतदानववल्लभः ॥ ५५ ॥ अमृतोमृतभागीच मोहनीरूपधारकः ॥ दिव्यदृष्टिःसमदृष्टिर्देवदानववञ्चकः ॥ ५६ ॥ कबन्धःकेतुकारीच स्वर्भानुश्चन्द्रतापनः ॥ ग्रहराजो ग्रहीग्राहः सर्वग्रहविमोचकः ॥ ५७ ॥ दानमानजपोहोमः सानुकूलशुभग्रहः ॥ विघ्नकर्तापहर्ताचविघ्ननाशोविनायकः॥ ५८ ॥ अपकारोपकारीच सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥ सेवकःसामदानीच भेदीदण्डीचमत्सरी ॥ ५९ ॥ दयावान्दानशीलश्च दानीचैवप्रतिग्रही ॥ हविरग्निश्चरुस्थाली समिधश्चतिलोयवः ॥ ६० ॥ होतोद्गाताशुचिःकुण्डःसामगोवैकृतिःसवः ॥ द्रव्यम्पात्राणिसाकल्यो मूसलोह्यरणिःकुशः ॥ ६१ ॥ दीक्षितोमण्डपोदेवो यजमानपशुःक्रतुः ॥ दक्षिणास्वस्तिमान्स्वस्तिराशीर्वादःशुभप्रदः ॥ ६२ ॥ आदिवृक्षोमहावृक्षोदेववृक्षोवनस्पतिः ॥ प्रयागोवेणिमान्वेणी न्यग्रोधश्चाक्षयो

रूप व अपकार करनेवाले, सब सिद्धियोंके फलों को देनेवाले, सेवकरूप, साम व दाम करनेवाले, भेदकरनेवाले, दंडदेनेवाले, अन्यके शुभमें द्वेषकरनेवाले ॥ ५९ ॥ दयावान्, दानकेस्वभाववाले, दानी व दानको ग्रहण करनेवाले, हविरूप, अग्निस्वरूप, चरुस्थालीस्वरूप, समिधारूप, तिलरूप व यवस्वरूप ॥ ६० ॥ हवनकरने वाले, उद्गाता (सामवेदी), पवित्र कुंड, सामवेदको गानकरनेवाले, विकृतिरूप, यज्ञरूप, द्रव्यरूप, पात्ररूप, साकल्यस्वरूप, मूसलरूप, अरणिस्वरूप, कुशारूप ॥ ६१ ॥ दीक्षितरूप, मंडपस्वरूप, क्रीड़ा करनेवाले यजमानके पशुरूप, यज्ञस्वरूप, दक्षिणारूप, कल्याणवान्, कल्याणस्वरूप, आशीर्वादस्वरूप, मंगलदायक ॥ ६२ ॥

आदिवृक्ष, बड़ेभारी वृक्षरूप, देववृक्षस्वरूप, वनस्पतिरूप, प्रयागरूप, वेणीवान् व वेणीस्वरूप, बरगदरूप व अक्षयवटस्वरूप ॥ ६३ ॥ उत्तम तीर्थ व तीर्थ करनेवाले, तीर्थों के राजा, व्रतवान् व व्रतस्वरूप, व्रतवाले, दानस्वरूप, पृथुरूप, पात्ररूप, दुहनेवाले, गऊ व बछड़ास्वरूपवाले ॥ ६४ ॥ दुग्धरूप व दूधको बहानेवाले, दूधवाले व दूध और पानीके विभाग को जाननेवाले, राज्यके भागको जाननेवाले, ऐश्वर्यवाले व सब भागों के भेद करनेवाले ॥ ६५ ॥ प्राप्तकरनेवाले, प्राप्तकरानेवाले, वेगरूप, पदको कहनेवाले, चैतन्यमें विचरनेवाले, गोचरणरूप, रक्षाकरानेवाले, रक्षाकरनेवाले व गोपोंकी कन्याओं से विहार करनेवाले ॥ ६६ ॥ वसुदेव के पुत्र, विशाललोचन, कृष्णरूप, गोपीजनों को प्रिय, देवकीजीके पुत्र, समृद्धिकरनेवाले, नन्द गोपके घरमें आश्रम करनेवाले ॥ ६७ ॥ यशोदाजीके पुत्र, मालाओं

वटः ॥ ६३ ॥ सुतीर्थस्तीर्थकारीच तीर्थराजोव्रतीव्रतः ॥ व्रतीदानंपृथुःपात्रो दोग्धागौर्वत्सएवच ॥ ६४ ॥ क्षीरंक्षीरवहःक्षीरी क्षीरनीरविभागवित् ॥ राज्यभागविदोभागी सर्वभागविकल्पकः ॥ ६५ ॥ वहनोवाहकोवेगः पदवाचीचितश्चरः ॥ गोपदोगोपकोगोपी गोपकन्याविहारकृत् ॥ ६६॥ वासुदेवोविशालाक्षः कृष्णोगोपीजनप्रियः ॥ देवकीनन्दनो नन्दी नन्दगोपगृहाश्रमी ॥ ६७ ॥ यशोदानन्दनोदामी दामोदरउलूखली ॥ पूतनारिस्तृणावर्तहारीशकटभञ्जकः ॥ ६८ ॥ नवनीतप्रियोवाग्मी वत्सपालकबालकः ॥ वत्सरूपधरोवत्सी वत्सहाधेनुकान्तकृत् ॥ ६९ ॥ बकारिर्वनवासीच वनक्रीडाविशारदः ॥ कृष्णवर्णाकृतिःकान्तो वेणुवेत्रविधारकः ॥ ७० ॥ अन्धमोक्षकरोमोक्ष्यो यमुनापुलिनेचरः ॥ मायावत्सकरोमायी ब्रह्ममायापमोहकः ॥ ७१ ॥ आत्मसारविहारश्च गोपदारकदारकः ॥ गोचरोगोपतिर्गोपो गोवर्द्ध

को पहने, दामोदर, उलूखलवाले, पूतनाकेशत्रु, तृणावर्तको हरनेवाले, शकटविनाशक ॥ ६८ ॥ नवनीत (नैनू) प्रियवाले, प्रशस्त वचनवाले, वत्सपालक के बालक, वत्सरूप को धरनेवाले, वत्सवान्, वत्सनाशक, धेनुक को नाशकरनेवाले ॥ ६९ ॥ बकासुरके शत्रु, वनमें बसनेवाले, वनकी क्रीड़ा में चतुर श्यामवर्णके आकारवाले, सुन्दर व वेणु तथा बेंत को धारनेवाले ॥ ७० ॥ अन्धकासुर को मोक्ष करनेवाले, मोक्ष के योग्य, यमुनाजी के किनारे चलनेवाले, माया के बछड़ों को करनेवाले, मायावाले व ब्रह्मा की माया को मोहनेवाले ॥ ७१ ॥ व अपनेही सारांशमें विहार करनेवाले, गोपपुत्र के बालक, इन्द्रियों के सामने प्राप्त होनेवाले, गौवों

के स्वामी, गौवों की रक्षा करनेवाले, गोवर्धन को धारनेहारे व बलवान् ॥ ७२ ॥ इन्द्रद्युम्न के यज्ञको विध्वंस करनेवाले, वृष्टिनाशक, गोपोंके रक्षक, देवताओंकी रक्षा करनेवाले, दवके पानकरनेवाले,कलिस्वरूप ॥ ७३ ॥ कालियनाग को मर्दनकरनेवाले, कालीरूप व यमुनाजीके कुण्ड में विहार करनेवाले, बलभद्ररूप, बलसे प्रशंसा करनेयोग्य, बलदेवस्वरूप, हल अस्त्रवाले ॥ ७४ ॥ हल धारण करनेवाले,मुसल धारनेवाले, चक्रको धारण करनेवाले, योगियोंके रमणकरने योग्य, रोहिणी जी के पुत्र, यमुनाजी को खींचनेवाले व उधारनेवाले, नीलवसनवारे व हल को धारण करनेहारे ॥ ७५ ॥ रेवतीजीमें रमण करनेवाले, चंचल,बहुत मान करनेवाले उत्तम व धेनुकासुर के शत्रु, महावीर व गोपकन्याओं के विदूषक ॥ ७६ ॥ कामदेव का मान करनेवाले, कामी व गोपियों के वसनों के चुरानेवाले, वेणु को बजाने

नधरोबली ॥ ७२ ॥ इन्द्रद्युम्नमखध्वंसी वृष्टिहागोपरक्षकः ॥ सुराणांत्राणकर्ताच दावपानकरःकलिः ॥ ७३ ॥ कालीयमर्दनःकाली यमुनाह्रदक्रीडकः ॥ सङ्कर्षणोबलश्लाघ्यो बलदेवोहलायुधः ॥ ७४ ॥ लाङ्गलीमूसलीचक्री रामोरोहिणिनन्दनः ॥ यमुनाकर्षणोद्धारो नीलवासाहलीतथा ॥ ७५ ॥ रेवतीरमणोलोलो बहुमानकरःपरः ॥ धेनुकारिर्महावीरो गोपकन्याविदूषकः ॥ ७६ ॥ काममानकरःकामी गोपीवासोपतस्करः ॥ वेणुवादीचनादीच नृत्यगीतविशारदः ॥ ७७ ॥ गोपीमोहकरोगानी रासकोरजनीचरः ॥ दिव्यमालीविमालीच वनमालाविभूषितः ॥ ७८ ॥ कैटभारिश्चकंसारिर्मधुहामधुसूदनः ॥ चाणूरमर्दनोमल्लो मुष्टिमुष्टिकनाशकृत् ॥ ७९ ॥ मुरहामोदकोमोदो मानीचनरकान्तकृत ॥ विद्याध्यायीभूमिशायी सुदाम्नश्चसखासखा ॥ ८० ॥ शकलोविकलोविद्यः कलितोवैकलानिधिः ॥ विशालशा

वाले, नाद करनेवाले व नाचने तथा गाने में चतुर ॥ ७७ ॥ गोपियोंको मोहकरनेवाले, गान करनेवाले, रासकरनेहारे व रात्रि में चलनेवाले, दिव्य मालाओं को पहने व मालाओं से रहित तथा वनमाला से शोभित ॥ ७८ ॥ कैटभ दैत्यके शत्रु, कंस के शत्रु, मधुदैत्यको मारनेवाले व मधुसूदन, चाणूर को मर्दन करनेवाले, मल्लरूप व मुष्टिक को घूंसा से नाशकरनेवाले ॥ ७९ ॥ मुर दैत्य को नाशकरनेवाले, आनन्द करनेवाले, आनन्दरूप, मानी व नरकासुर को नाशनेवाले, विद्याके पढ़नेवाले, पृथ्वी में सोनेवाले व सुदामा के मित्र व सखारूप॥ ८० ॥खण्डरूप, कलाओं से रहित, विद्यावान्, शोभित व कलाओं के निधिरूप, विशाल

से शोभित व शोभावान् तथा माता, पिताको छुडानेवाले ॥ ८१ ॥ रुक्मिणी जी में रमण करनेवाले, रमणीय व यमुनाजी के पति तथा शंखदैत्यको नाशनेवाले, पांचजन्यरूप, महापद्मनिधिरूप व बहुत नायकों के स्वामी ॥ ८२ ॥ धुंधु दैत्य को मारनेवाले, निकुंभ के नाशक, कामदेव को नाश करनेवाले, रतिप्रिय, प्रद्युम्नरूप, अनिरुद्धस्वरूप, देवनाओं के स्वामी अर्जुनरूप ॥ ८३ ॥ फाल्गुन, गुडाकेश, सव्यसाची व धनंजयरूप, किरीटमाली, धनुष को हाथ में लिये व धनुष विद्या में चतुर ॥ ८४ ॥ शिखंडीरूप, सात्यकिस्वरूप, सेवा के योग्य, भयंकररूप व भयंकर पराक्रमवाले, पांचालरूप, भयंकर क्रोधवाले, सौभद्ररूप व द्रौपदी के

लीशालीच मातृपितृविमोचकः ॥ ८१ ॥ रुक्मिणीरमणोरम्यः कालिन्दीपतिशङ्खहा ॥ पाञ्चजन्योमहापद्मो बहुनायकनायकः ॥ ८२ ॥ धुन्धुमारोनिकुम्भघ्नः स्मरान्तकरातिप्रियः ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सात्वताम्पतिरर्जुनः ॥ ८३ ॥ फाल्गुनश्चगुडाकेशः सव्यसाचीधनञ्जयः ॥ किरीटमालीधनुष्पाणिर्धनुर्वेदविशारदः ॥ ८४ ॥ शिखण्डीसात्यकिःसेव्यो भीमोभीमपराक्रमः ॥ पाञ्चालोभीममन्युश्च सौभद्रोद्रौपदीपतिः ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिरोधर्मराजः सत्यवादीशुचिव्रतः ॥ नकुलःसहदेवश्च कर्णोदुर्योधनोघृणी ॥ ८६ ॥ गाङ्गेयश्चगदापाणिर्भीष्मोभागीरथीसुतः ॥ प्रज्ञाचक्षुर्धृतराष्ट्रो भारद्वाजोथगौतमः ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामाविकर्णश्च जह्नुर्युद्धविशारदः ॥ सीमन्तकिर्गदीगाल्वो विश्वामित्रोदुरासदः ॥ ८८ ॥ दुर्वासादुर्विनीतश्च मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ लोमशोनिर्मलोलोमी दीर्घायुश्चचिरोचिरी ॥ ८९ ॥ पुनर्जीव्यमृतोभावी भूतोभव्योभविष्यता ॥ त्रिकालज्ञस्त्रिलिङ्गश्च त्रिनेत्रस्त्रिपदीपतिः ॥ ९० ॥ यादवोयाज्ञवल्क्यश्च यदुवंशविवर्द्धनः ॥

पति ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिररूप, धर्मराजस्वरूप, सत्य बोलनेवाले, पवित्र नियमवाले, नकुलरूप, सहदेवस्वरूप, कर्णरूप, दुर्योधनरूप, दयावान् ॥ ८६ ॥ गंगाजी के पुत्र, गदा को हाथ में लिये, भीष्मरूप, भागीरथीजीके पुत्र, बुद्धिरूपी नेत्रवाले, धृतराष्ट्रस्वरूप, भारद्वाजरूप व गौतमस्वरूप ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामास्वरूप, विकर्णरूप, जह्नुस्वरूप व युद्धमें चतुर, सीमन्तकिरूप, गदाको धारनेवाले, गाल्वरूप, विश्वामित्रस्वरूप, दुरासद ॥ ८८ ॥ दुर्वासारूप, दुर्विनीत, मार्कंडेयरूप, महामुनि, लोमशस्वरूप, निर्मल, लोमोंवाले, दीर्घआयुर्बलवाले, चिर व अचिरवाले ॥ ८९ ॥ फिर जीनेवाले, अमृतस्वरूप, होनेवाले, भूतरूप, कल्याणरूप व भविष्य समेत तीनों

काल के जाननेवाले, तीन लिङ्गोंवाले, तीननेत्रोंवाले, तीनचरणोंवाले व रक्षा करनेवाले ॥ ९० ॥ यदुवंश में उत्पन्न, याज्ञवल्क्यस्वरूप, यदुवंश को बढ़ाने वाले, शल्य से क्रीडा करनेवाले, क्रीडारहित, यादवों के विनाशक, कलिस्वरूप ॥ ९१ ॥ दया समेत व दुष्टहृदयवाले के द्रोही, भागरहित व उत्तम भाग के भागी समुद्ररूप, पृथ्वीरूप, नीलवर्णवाले व पर्व्वत पै निवासकरनेवाले ॥ ९२ ॥ एक रंगवाले, वर्णरहित व सब वर्णों से बाहर चलनेवाले, यज्ञकी निन्दा करनेवाले, वेदनिन्दक, वेद से बाहर, बलभद्ररूप, बलिस्वरूप ॥ ९३ ॥ बौद्धरूप, बाधाकरनेवाले, बाधी, जगदीश व संसार के स्वामी, भक्तिरूप, भगवान्के सम्बन्धी, अंशवाले, विशेषकर भक्त व ऐश्वर्यवानों को प्रिय ॥ ९४ ॥ तीनग्रामरूप, नववनस्वरूप व गुप्त उपनिषदों से आसनवाले, शालिग्राम शिला से युक्त, वि-

शल्यक्रीडीविक्रीडश्च यादवान्तकरःकलिः ॥ ९१ ॥ सदयोहृदयोदग्रद्रोह्यदायःसुदायभाक् ॥ महोदधिर्महीपृष्ठो नीलः पर्वतवासकृत् ॥ ९२ ॥ एकवर्णोविवर्णश्च सर्ववर्णबहिश्चरः॥यज्ञनिन्दोवेदनिन्दो वेदबाह्योबलोबलिः ॥ ९३ ॥ बौद्धश्चबाधकोबाधी जगन्नाथोजगत्पतिः ॥ भक्तिर्भागवतोभागी विभक्तोभगवत्प्रियः ॥ ९४ ॥ त्रिग्रामश्चनवारण्यो गुह्योपनिषदासनः ॥ शालिग्रामशिलायुक्तो विशालोगण्डकाश्रमः ॥ ९५ ॥ श्रुतदेवःश्रुतःश्रावी श्रुतबोधःश्रुतश्रवाः ॥ कल्किःकालकलःकल्को दुष्टम्लेच्छविनाशकृत् ॥ ९६ ॥ कुङ्कुमीधवलोधीरः क्षमाकरवृषाकपिः ॥ किङ्करःकिन्नरःकाण्वः केकीकिंपुरुषाधिपः ॥ ९७ ॥ एकरोमाविरोमाच बहुरोमाबृहत्कविः ॥ वज्रप्राणहरोवज्री वृत्रहावासवानुजः ॥ ९८ ॥ बहुतीर्थकरोतीर्थः सर्वतीर्थजनेश्वरः ॥ व्यतीपातःप्रयागश्च दानवृद्धिकरःशुभः ॥ ९९ ॥ असंख्येयोप्रमेयश्च संख्याकारो

शाल व गंडकी नदी में आश्रमवाले ॥ ९५ ॥ प्रसिद्ध देवता, सुनेहुये व सुनानेवाले, शास्त्र के बोधवाले, सुनेहुये यशवाले, कल्किस्वरूप, काल के विनाशक, कल्करूप व दुष्ट म्लेच्छों के नाश करनेवाले ॥ ९६ ॥ कुंकुम रंगवाले. श्वेत, बुद्धिदायक, क्षमा करनेवाले व कामनाओं को देनेवाले तथा पातकों को नाशनेवाले, किंकर, किन्नररूप, कण्वसंबन्धी व मयूर वचनवाले तथा किंपुरुषों के स्वामी ॥ ९७ ॥ एकरोमवाले, रोमरहित, बहुत रोमोंवाले, बडेभारी कवि, वज्र से प्राणों को हरनेवाले, वज्र को धारनेवाले, वृत्रासुरविनाशक, इन्द्रानुज ॥ ९८ ॥ बहुत तीर्थों को करनेवाले, तीर्थरहित व सब तीर्थों तथा मनुष्यों के स्वामी, व्यतीपातयोगस्वरूप, प्रयागतीर्थरूप,

द्धनकी वृद्धि करनेवाले, शुभ ॥ ९९ ॥ संख्या से रहित, अप्रमाण, संख्या करनेवाले व संख्याविहीन, मिहिर (सूर्य) स्वरूप, तारनेवाले, ॐकारस्वरूप, ब-लिरूप, चन्द्रस्वरूप, अमृतकी खानि ॥ २०० ॥ किंवर्ण, कीदृश, किंचितस्वरूप, किंस्वभाव, किमाश्रय, लोकसे रहित, आकारहीन, बहुत आकारवाले व एकही करनेवाले ॥ १ ॥ नाती के पुत्ररूप, पौत्रस्वरूप, नातीरूप, वंश को धारनेवाले, न धारनेवाले, नम्रभूत, दयावान्, सब सिद्धियों के देनेवाले, मणिस्वरूप ॥ २ ॥ आधारभूत, धारनेवाले, पृथ्वी के पुत्र, सुमंगलरूप, मंगलमय, मंगल आकारवाले, मंगलरूप व सर्वमंगलस्वरूप ॥ ३ ॥ अतुल तेजवाले विष्णुजी के इस

विसंख्यकः ॥ मिहिरस्तारकस्तारो बलिश्चन्द्रःसुधाकरः ॥ २०० ॥ किंवर्णःकीदृशःकिञ्चित्किंस्वभावःकिमाश्रयः ॥ निर्लोकश्चनिराकारी बह्वाकारैककारकः ॥ १ ॥ दौहित्रपुत्रकःपौत्रो नप्तावंशधरोधरः ॥ द्रवीभूतोदयालुश्च सर्वसिद्धिप्रदोमणिः ॥ २ ॥ आधारभूतोधारश्च धरासूनुःसुमङ्गलः ॥ मङ्गलोमङ्गलाकारो माङ्गल्यःसर्वमङ्गलः ॥ ३ ॥ नाम्नांसहस्रकमिदंविष्णोरतुलतेजसः ॥ सर्वसिद्धिकरंकाम्यं पुण्यंहरिहरैःकृतम् ॥ ४ ॥ यःपठेत्प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ यश्चेदंशृणुयान्नित्यं नरोनिश्चलमानसः ॥ ५ ॥ त्रिसन्ध्यंश्रद्धयायुक्तः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ मोदतेपुत्रपौत्रैश्च दारभृत्यैश्चपूजितः ॥ ६ ॥ प्राप्यतेविपुलांलक्ष्मीम्मुच्यतेसर्वसङ्कटात् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति लभतेविपुलंयशः ॥ ७ ॥ विद्यावाञ्जायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ वैश्योधनसुलाभाढ्यः शूद्रःसुखमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ रणेघोरेविवादेचव्याप

पुण्यदायक सहस्रनाम को हरिहरने किया है जो कि समस्त सिद्धियों को देनेवाला व मनोरथों का दायक है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल उठकर सावधान होताहुआ जो मनुष्य पवित्र होकर इसको पढ़ता है व अचल मनवाला जो श्रद्धासंयुत मनुष्य इसको तीनों संध्याओं में नित्य सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है और स्त्रियों व सेवकों से पूजित होकर पुत्रों व पौत्रो समेत आनन्द करताहै ॥ ५ । ६ ॥ और बहुत लक्ष्मी को प्राप्त होता है व सब दुःख से छूटजाता है व सब मनोरथों को प्राप्त होता है और बहुत यशको पाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता है तथा वैश्य धनके उत्तम लोभ से संयुत होता है और

शूद्र सुखको पाता है ॥ ८ ॥ और भयंकर समर व विवाद तथा पराये अधीन व्यापार में विजयवान् मनुष्य सदैव सब कर्मों में जीत को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ और एकबार, दशबार, सौबार व हज़ार बार जो मनुष्य इसको नित्य पढ़ता है वह वैसेही फलको भोगता है ॥ १० ॥ पुत्रको चाहनेवाला नर पुत्रों को पाता है व धन को चाहनेवाला पुरुष अविनाशी धनको पाता है व मोक्ष को चाहनेवाला पुरुष मोक्ष को पाता है और धर्म को चाहनेवाला मनुष्य धर्मसंचय को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ और कन्या को चाहनेवाला पुरुष कन्या को प्राप्त होता है व ज्ञानी देवताओं को भी जो दुर्लभ है उस ज्ञान को पाता है और योगी योगों में युक्त होता है ॥ १२ ॥

रेपारतन्त्रके ॥ विजयीजयमाप्नोति सर्वदासर्वकर्मसु ॥ ९ ॥ एकधादशधाचैव शतधाचसहस्रधा ॥ पठेच्चयोनरोनित्यं तथैवफलमश्नुते ॥ १० ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रान् धनार्थीधनमव्ययम् ॥ मोक्षार्थीलभतेमोक्षं धर्मार्थीधर्मसञ्चयम् ॥ ११॥ कन्यार्थीलभतेकन्यां दुर्लभांयत्सुरैरपि ॥ ज्ञानंचलभतेज्ञानीयोगीयोगेषुयुज्यते ॥१२॥ महोत्पातेषुघोरेषु दुर्भिक्षेराजविग्रहे ॥ महामारीसमुद्भूते दारिद्र्यदुःखपीडिते ॥ १३ ॥ अरण्येप्रान्तरेवापि दावाग्निपरिवारिते॥ सिंहव्याघ्राभिभूतेपि वनहस्तिसमाकुले ॥ १४ ॥ राज्ञाक्रुद्धेनचाज्ञप्तो दस्युभिस्सहसङ्गमे ॥ विद्युत्पातेषुघोरेषु स्मर्तव्यंहिसदानरैः ॥ १५ ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासु वधबन्धगतोपिवा ॥ महार्णवेमहानद्यां पोतस्थेषुचनापदः ॥ १६ ॥ रोगग्रस्ताविवर्णाश्च गतकेशनखत्वचः ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि दिव्यकायाभवन्तिवै ॥ १७ ॥ तुलसीवनसंस्थाने तडागेचसुरालये ॥ बद्रिका

बड़े भयंकर उत्पातों में व दुर्भिक्ष तथा राजाओं के वैर में और महामारी उत्पन्न होनेपर व दरिद्रता तथा दुःख से पीड़ित होनेपर ॥ १३ ॥ वनमें व दूरतक शून्य मार्ग में व दावाग्नि से घिरनेपर और सिंहों व व्याघ्रों से तिरस्कृत होनेपर व वन के हाथियों से आकुल होने में ॥ १४ ॥ और क्रोधित राजा से आज्ञा देनेपर व चोरों से समागम होनेपर और भयंकर बिजली के गिरने में मनुष्यों को सदैव स्मरण करना चाहिये ॥ १५ ॥ ग्रहों की उग्र पीड़ाओं में व वध या बंधन में प्राप्त होनेपर और महासमुद्र व महानदी में जहाज़ पै स्थित होनेपर विपत्तियां नहीं होतीहैं ॥ १६ ॥ रोग से ग्रसे व रंगहीन तथा केश, नख व त्वचा से रहित पुरुष इसके

पढ़ने व सुनने से भी उत्तम शरीरवान् होते हैं ॥ १७ ॥ और तुलसीजी के वनस्थान में व तड़ाग तथा देवालय में व उत्तम बद्रिकाश्रम स्थान में और हरिद्वार में तपोवन में ॥ १८ ॥ व मधुवन, प्रयाग और द्वारका व महाकालवनमें सावधान होकर सब कामनाओंवाले व जितेन्द्रिय भक्तिमान् जो पुरुष नियम में प्राप्त होकर इसको सौबार पढ़ते हैं वे सिद्ध पुरुष ससार में सिद्धिदायक होकर पृथ्वीमें घूमतेहैं ॥१९।२०॥ और आपसमें भेदके भेदोंका यह उत्तम मैत्रीकरणहै और मोहनोंका मोहन है व पवित्र तथा पापनाशक है ॥ २१ ॥ और बालकों के ग्रहोंके नाशनेकेलिये उत्तम शान्तिकारकहै व दुष्ट आचरणों तथा पापों की बुद्धिका नाशक उत्तमहै ॥ २२ ॥

श्रमेशुभेदेशे गङ्गाद्वारेतपोवने ॥ १८ ॥ मधुवनेप्रयागेचद्वारकायांसमाहिताः ॥ महाकालवनेचैव नियतास्सर्वकामुकाः ॥ १९ ॥ येपठन्तिशतावर्तं भक्तिमन्तोजितेन्द्रियाः ॥ तेसिद्धाःसिद्धिदालोके विचरन्तिमहीतले ॥ २० ॥ अन्योन्यभेदभेदानां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ मोहनंमोहनानाञ्च पवित्रंपापनाशनम् ॥ २१ ॥ बालग्रहविनाशाय शान्तीकरणमुत्तमम् ॥ दुर्वृत्तानाञ्चपापानां बुद्धिनाशकरंपरम् ॥ २२ ॥ पतद्गर्भाचवन्ध्याच स्राविणीकाकवन्ध्यका ॥ अनायासेनसततं पुत्रमेवप्रसूयते ॥ २३ ॥ पयःपुष्कलदागावो बहुधान्यफलाकृषिः ॥ स्वामिधर्मपराभृत्या नारीपतिव्रताभवेत् ॥ २४ ॥ अकालमृत्युनाशाय तथादुःस्वप्नदर्शने ॥ शान्तिकर्मणिसर्वत्र स्मर्तव्यश्चसदानरैः ॥ २५ ॥ यःपठेत्त्वन्वहंमर्त्यः शुचिमान्विष्णुसन्निधौ ॥ एकाकीचजिताहारोजितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ २६ ॥ गरुडारूढसम्पन्नः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ वाञ्छितंप्राप्यलोकेस्मिन् विष्णुलोकंसगच्छति ॥ २७ ॥ एकतस्सकलाविद्या एकतस्सकलन्तपः ॥

और पतित गर्भवाली, वन्ध्या व जिसके रक्त बहताहो व काकबंध्या बिन परिश्रमके सदैव पुत्रहीको पैदा करती है ॥ २३ ॥ गौवें बहुत दूध देनेवाली व खेती बहुत धान्य फलवाली और सेवक स्वामीके धर्ममें तत्पर व स्त्री पतिव्रता होती है ॥ २४ ॥ अकालमृत्युके नाश होनेके लिये व दुःस्वप्न के देखने में और शान्तिकर्म में सब कहीं मनुष्योंको इसका स्मरण करना चाहिये ॥ २५ ॥ आहारको जीते व क्रोधको जीते और जितेन्द्रिय जो पवित्र पुरुष अकेले विष्णुजी के समीप इस सहस्रनामको प्रतिदिन पढ़ताहै ॥ २६ ॥ इस लोकमें मनोरथको पाकर गरुड़जी पै चढ़कर पीतवसन पहने व चार भुजाओंको धारण किये वह विष्णुजीके लोकको जाताहै ॥२७॥

एकओर सब विद्याहै व एकओर सब तपहैं तथा एकओर सब धर्महैं और एकओर विष्णुजी का नामहै ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण मुझको हजार नामों से स्तुति कियाचाहै सो मैं एकही श्लोकसे स्तुति किया होताहूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ हे सहस्रभुज ! आप हजार लोचनोंवाले व हज़ार चरणोंवाले तथा हज़ार मुखों से उज्ज्वल हो व अनन्त लोचनोंवाले और हज़ार नामोंवालेहो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ यह विष्णुसहस्रनाम प्राचीन व वेदों से संमित है सब मंगलोंका मंगलमय यह स्तोत्र भक्तिसे पढ़ना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! इस स्तोत्रसे युक्त देवताओंसे वहां वरदायकोंको भी वरदेनेवाले भगवान् विष्णुजीने प्रत्यक्ष होकर कहा ॥ ३२ ॥

एकतस्सकलोधर्मो नामविष्णोश्चएकतः ॥ २८ ॥ योमांनामसहस्रेणस्तोतुमिच्छतिवैद्विजः ॥ सोहमेकेनश्लोकेन स्तुतएवनसंशयः ॥ २९ ॥ सहस्राक्षस्सहस्राङ्घ्रिस्सहस्रवदनोज्ज्वलः ॥ सहस्रनामानन्ताक्षः सहस्रभुजतेनमः ॥ ३० ॥ विष्णोर्नामसहस्रन्तु पुराणंवेदसम्मितम् ॥ पठितव्यंसदाभक्त्या सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ३१ ॥ इतिस्तवाभियुक्तानां देवानांतत्रवैद्विज ॥ प्रत्यक्षंप्राहभगवान् वरदोवरदानपि ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ व्रियताम्भोःसुरास्सर्वे वरंमत्तोभिवाञ्छितम् ॥ तत्सर्वंसम्प्रदास्यामि नात्रकार्याविचारणा ॥ ३३ ॥ देवाऊचुः ॥ वरदोसियदाविष्णो वरमेतंददस्वनः ॥ अदितेर्गर्भसम्भूतः शक्रस्याप्यनुजोभव ॥ ३४ ॥ इतिसम्प्रार्थितोदेवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ॥ तथेत्युक्त्वाचभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३५ ॥ ततःकतिपयेकाले भगवानदितिनन्दनः ॥ विष्णुरूपधरोनन्तो वामनत्वाच्चवामनः ॥ ३६ ॥ बलिर्वैरोचनोऽयास वाजिमेधशतेनच ॥ ईजेद्विजवरश्रेष्ठ इन्द्रराज्यजिहीर्षया ॥ ३७ ॥ ऋत्विजंकश्यपंकृत्वा होतारं

श्रीभगवान् बोले कि हे सब देवताओ ! मुझसे चाहेहुये वरदान को मांगिये मैं उस सबको दूंगा इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ देवता बोले कि हे विष्णो! यदि वरदायकहो तो हमलोगों को यह वर दीजिये कि अदितिजी के गर्भ में उत्पन्न होकर तुम इन्द्रके भी छोटेभाई होवो ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवताओं से इसप्रकार प्रार्थना कियेहुये भगवान् वैसाही होगा यह कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर कुछ समयमें विष्णुरूपधारी अनन्त भगवान् अदितिजी के पुत्र होकर वामन (लघुरूप) होने के कारण वामन नामक हुये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तम ! विरोचनके पुत्र बलिने इन्द्र का राज्य हरने की इच्छासे सौ अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन

किया ॥ ३७ ॥ कश्यप को ऋत्विक् व भृगुश्रेष्ठ शुक्राचार्यजी को होता (ऋग्वेदी) करके उस यज्ञ में आपही पितामहजी ब्रह्मा हुये ॥ ३८ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् अत्रिजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) हुये और नारदजी उद्गाता (सामवेदी) हुये व वसिष्ठजी सभासद हुये ॥ ३९ ॥ जो जिस स्थानमें कियेगये थे वे सब मुनीश्वर वहां वहां बैठे व हे व्यासजी ! राजाओंमें श्रेष्ठ बलिजी वहा दीक्षित हुये ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इसप्रकार यज्ञों के वर्तमान होनेपर हवन कियाजाय,भोजन कियाजावे, दियाजावे व धराजावे ॥ ४१ ॥ ये उत्तम वचन वहांपर सुनपडतेथे व हे द्विजोत्तम ! उस विचित्र समय में पवित्र मुसक्यानवाले वामनजी आये ॥ ४२ ॥ हे नृपेन्द्र ! मुखसे

भृगुसत्तमम् ॥ ब्रह्मातत्राभवच्चैव स्वयमेवपितामहः ॥ ३८ ॥ अध्वर्युर्भगवानत्रिर्बभूवमुनिसत्तम ॥ उद्गातानारदश्चैववसिष्ठश्चसभासदः ॥ ३९ ॥ येयत्रविहितास्सर्वे तत्रतत्रमुनीश्वराः ॥ बलिस्तत्राभवद्व्यास दीक्षितोराजसत्तमः ॥ ४० ॥ एवंप्रवर्तमानेषु यज्ञेषुमुनिसत्तम ॥ हूयतांभुज्यताञ्चैव दीयतांधीयतान्तथा ॥ ४१ ॥ इतिवाचश्शुभास्तत्र श्रूयन्तेच द्विजोत्तम ॥ तस्मिन्कालेसुचित्रेतु वामनोगाच्छुचिस्मितः ॥ ४२ ॥ पठमानोमुखाग्रेण चतुरोवेदपारगः ॥ द्वारेतिष्ठतिराजेन्द्र वामनोद्विजसत्तमः ॥ ४३ ॥ प्रतीहारेणतुव्यास सर्वं राज्ञेनिवेदितम् ॥ उत्थायचमहाराजो बलिर्वैरोचनस्तदा ॥ ४४ ॥ अर्घ्यमादायतत्सर्वं तंजगामसभासदैः ॥ पूजयित्वायथान्यायं वामनंलोकभावनम् ॥ ४५ ॥ आनयित्वा सभामध्ये दत्त्वासनपरिग्रहम् ॥ कुतआगमनंब्रह्मन् किन्तेभीष्टंददाम्यहम् ॥ ४६ ॥ वामनउवाच ॥ राजराजाखिला सृष्टिर्ब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ ततोहमागतोभूमन् यज्ञन्तेवैदिदृक्षया ॥ ४७ ॥ वरुणस्यचयज्ञोवै सुदृष्टोमेपुरानघ ॥ यक्षा

चारों वेदों को पढ़ताहुआ वेदों का पारगामी वामनरूप द्विजोत्तम द्वार पै स्थित है ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! जब इसप्रकार द्वारपालने सब वृत्तान्त को राजा से निवेदन किया तब विरोचनकेपुत्र महाराज बलिजी उठकर ॥४४॥ अर्घ्य व उस सबवस्तुको लेकर सभासदों समेत उनके समीप गये व लोकोंको उत्पन्न करनेवाले वामनजी को यथायोग्य पूजकर ॥ ४५ ॥ सभा के बीचमें आनकर व आसन को देकर बलि बोले कि हे ब्रह्मन् ! कहांसे तुम्हारा आगमन हुआ और तुमको क्या प्रिय वस्तु देऊं ॥ ४६ ॥ वामनजी बोले कि हे राजराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजीकी सब सृष्टिहै उसी कारण हे भूमन् ! तुम्हारे यज्ञके देखने की इच्छासे मैं आयाहूं ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! पुरातन

समय मैंने वरुण के यज्ञको भलीभांति देखाहै और वैसेही यक्षोंके स्वामी कुबेरजीके यज्ञको मैंने देखाहै ॥ ४८ ॥ और राजर्षियों के यज्ञोंको मैंने देखाहै और वे बड़े नियमवान् थे परन्तु हे महाराज ! जैसे इस तुम्हारे यज्ञको मैंने देखाहै ॥ ४९ ॥ हे राजराजेन्द्र ! ऐसा यज्ञ न हुआहै न होगा इसलिये हे अनघ, राजन् ! मांगने के लिये मैं यहा आयाहूं ॥ ५० ॥ बलि बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुम मांगो तुम्हारा क्या मनोरथहै उसको मैं देऊं वामनजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! यदि तुमको रुचता हो तो हे नृपोत्तम ! बसनेके लिये आज मुझको तीन पग पृथ्वीको दीजिये बलिबोले कि हे विप्रजी ! तुमने यह थोड़ा क्या मांगा मुझको नहीं अच्छा लगा ॥ ५१।५२ ॥

धिपस्यचतथा यज्ञश्चदृष्टवानहम् ॥ ४८ ॥ राजर्षीणाञ्चमेयज्ञा दृष्टास्तेतिमहाव्रताः ॥ यादृशोयंमहाराज यज्ञस्तेदृष्टवानहम् ॥ ४९ ॥ ईदृशोराजराजेन्द्र नभूतोनभविष्यति ॥ तस्मादिहागतोराजन् याचनार्थंत्वथानघ ॥ ५० ॥ बलिरुवाच ॥ याचस्वत्वंद्विजश्रेष्ठ किन्तेभीष्टंददाम्यहम् ॥ वामनउवाच ॥ देहिमेराजराजेन्द्र पादानित्रीणिमेदिनीम् ॥ ५१ ॥ वासार्थंरोचतेतेद्य यदिपार्थिवसत्तम ॥ बलिरुवाच ॥ किमिदंयाचितंविप्र स्वल्पन्तेनहिमेपरम् ॥ ५२ ॥ रत्नानिविविधानित्वं गजवाजिरथान्भुवम् ॥ दासदासीर्वरारोहाःस्त्रीर्यानानिवसूनिच ॥ ५३ ॥ द्रव्याणिवाससीशुक्ले याचस्वत्वंद्विजोत्तम ॥ पात्रोसिकृतकृत्योसि वेदवेदाङ्गपारग ॥ ५४ ॥ वामनउवाच ॥ नमेकिञ्चित्स्पृहाराजन् विद्यतेभुविमानद ॥ देहित्वंत्रिपदाम्भूमिं यदिश्रद्धास्तितेधुना ॥ ५५ ॥ गृहाणत्रिपदांभूमिं वासस्यार्थंहिमानद ॥ इत्युक्त्वावैसराजर्षिर्ददौभूमिंद्विजायवै ॥ ५६ ॥ वारितोयंतदाव्यास भृगुणादैवनोदितः ॥ दत्तमात्रेजलेसद्यो ब्रह्माण्डमाक्रमद्धरिः ॥ ५७ ॥

तुम अनेकों प्रकारके रत्न, हाथी, घोड़े, रथ व पृथ्वी, दास, दासी और उत्तम कटिवाली स्त्री, सवारी व धनोंको मांगो ॥ ५३ ॥ हे वेदवेदांगपारग, द्विजोत्तम ! द्रव्य व श्वेत वसनोंको तुम मुझसे मांगो क्योंकि पात्रहो और कृतकृत्यहो ॥ ५४ ॥ वामनजी बोले कि हे मानद, राजन् ! पृथ्वी में मेरी कुछ इच्छा नहीं है यदि इससमय तुम्हारे श्रद्धा होवे तो तीन पग पृथ्वीको दीजिये ॥ ५५ ॥ हे मानद ! निवास के लिये तीनपग पृथ्वीको लीजिये यह कहकर उन राजर्षि बलिने ब्राह्मण के लिये पृथ्वीको दिया ॥५६॥ तब हे व्यासजी! शुक्राचार्यजीने दैवसे प्रेरित इन बलिको मना किया और जल देनेहीपर उसीक्षण विष्णुजीने ब्रह्माण्डका आक्रमण किया ॥५७॥

अव॰
अ॰

हे व्यासजी ! पर्वत, वन व काननों समेत यह पृथ्वी उससमय ढाईपग हुई और बलिने शरीर को अर्पणकिया ॥ ५८ ॥ वामनरूपधारी विष्णुजीने सब असुर-गणोंको जीतकर व इन्द्रको राज्यदेकर पश्चात् कुमुद्वतीपुरी में प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ हे व्यासजी ! ऋद्धि सिद्धिदायक उस पवित्र स्थान पै अपना से उपजेहुये तीर्थको करके सुरश्रेष्ठ वामनजी ने वहीं निवास किया ॥ ६० ॥ वामनजी से कियाहुआ तीर्थ वामनकुण्ड कहाजाताहै भादों महीने में शुक्लपक्षमें श्रवण नक्षत्र से संयुत द्वादशी तिथि ॥ ६१ ॥ कोटि हत्याओं को नाशनेवाली वामनद्वादशी कहीगई है इस तीर्थमें नहाकर मनुष्य एकादशी व्रतकर ॥ ६२ ॥ व रात्रि में जागरणकर ब्रह्म

सार्द्धपादद्वयंजाता सशैलवनकानना ॥ वसुधेयंतदाव्यास बलिनार्पितंवपुः ॥ ५८ ॥ जित्वासुरगणान्सर्वान् राज्यंद त्वाशतक्रतोः ॥ पश्चात्कुमुद्वतींप्राप्तो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ५९ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदेपुण्ये तीर्थंकृत्वात्मसम्भवम् ॥ निवासमकरोद्व्यास तत्रैवसुरसत्तमः ॥ ६० ॥ वामनेनकृतंतीर्थं वामनंकुण्डमुच्यते ॥ भाद्रेमासिसितेपक्षे द्वादशीश्रवणान्विता ॥ ६१ ॥ वामनद्वादशीप्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ॥ अस्मिन्तीर्थेनरस्स्नात्वा उपोष्यैकादशींतिथिम् ॥ ६२ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ द्वादश्यांवैविशेषेण महादानानिकुर्वते ॥ ६३ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ व्यासैवंवामनंतीर्थं पुराप्रोक्तंमहर्षिणा ॥ ६४ ॥ सर्वपापहरंपुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे वामनकुण्डमहिमावर्णनन्नामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि वीरेश्वरमथोश्शृणु ॥ तस्मिन्तीर्थेनरस्स्नात्वा वीरलोकमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

होनेके लिये समर्थ होताहै जो मनुष्य द्वादशी तिथिमें विशेषकर महादानोंको करताहै ॥ ६३ ॥ तीनोंलोकों में उसको कुछ दुर्लभ नहीं होताहै हे व्यासजी ! पुरातन समय इसप्रकार व्यासजीने वामनतीर्थ को कहाहै ॥ ६४ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाला व पवित्र तथा सब कामनाओं के वरको देनेवालाहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । कह्यो भैरवाष्टक यथा तीरथ भैरव नाम । पचहत्तरि अध्यायमें सोईचरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अब इसके उपरान्त वीरेश्वर तीर्थको कहूंगा उस

को सुनिये कि उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य वीरलोकको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और सब कामनाओं का वरदायक नागों का उत्तम तीर्थ है व जो कालभैरवजी कहेगये हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ २ ॥ कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब दुःखोंसे छूटजाता है व्यासजी बोले कि हे मुनिवर ! श्रेष्ठ कालभैरव संज्ञक तीर्थ किस समय प्रसिद्ध हुआ है इसको विस्तार से कहिये सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय यह भैरव योगी योगिनियों को भयकारक था ॥ ३ । ४ ॥ उस समय कालचक्र से की हुई कृत्या व जो योगिनीगण थे उनके मध्य में काली ऐसी प्रसिद्ध योगिनी अति उत्तम थी ॥ ५ ॥ उससे यह भैरव उस समय नित्य पुत्रकी नाईं पालित रहताथा हे सत्तम ! उसी से ये दोषों के उत्पात नष्ट कियेजाते थे ॥ ६ ॥ पृथ्वी में सब विघ्नों को करनेवाले श्रेष्ठ तीनप्रकार के प्रसिद्ध हैं उस परमात्मा से सबकाल कृत्या भ्रष्ट की गई ॥ ७ ॥ महामारी, पूतना, कृत्या, शकुनि, कोटरी, तामसी, माया ये मातृगण कहेहैं ॥ ८ ॥ जो कि दुष्टदोषों को प्राप्त करनेवाले व दुष्ट तथा सब प्राणियों को भयंकर हैं सब कामनाओं के वरदायक उस धर्मात्मा ने इन सबों को वशकिया ॥ ९ ॥ और क्षिप्रानदी के उत्तर ओर उत्तम किनारे पै वे नित्य स्थित हैं और आखर स्थान के पश्चिम व पूर्व में भी वे भैरवजी सदैव टिकेरहतेहैं ॥ १० ॥ आषाढ़ के शुक्लपक्ष में रविवार को नवमी व अष्टमी तिथिको पाकर

नागानांप्रवरन्तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ कालभैरवआख्यातस्तस्यतीर्थंपरंस्मृतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वदुःखातिगोभवेत् ॥ व्यासउवाच ॥ कस्मिन्कालेहिविख्यातं कालभैरवसंज्ञितम् ॥ ३ ॥ तीर्थंमुनिवरश्रेष्ठमेतद्विस्तरतोवद ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुरायंवैभैरवोयोगी योगिनीत्रासकारकः ॥ ४ ॥ कालचक्रकृताकृत्या योगिनीनांगणास्तदा ॥ तासांकालीतिविख्याता योगिनीपरमोत्तमा ॥ ५ ॥ तयायंपालितोनित्यं पुत्रवद्भैरवस्तदा ॥ तेनैतेवैविनिर्धूतादोषोत्पाताश्चसत्तम ॥ ६ ॥ त्रिविधाभुविविख्यातास्सर्वविघ्नकराःपराः ॥ कालकृत्याखिलातेन भ्रंशितापरमात्मना ॥७॥ महामारीपूतनाच कृत्याशकुनिरेवच ॥ कोटरीतामसीमाया एतेमातृगणास्स्मृताः ॥ ८ ॥ दुष्टदोषवहादुष्टास्सर्वप्राणिभयङ्कराः ॥ वशीचक्रेसधर्मात्मा सर्वकामवरप्रदः ॥ ९ ॥ क्षिप्रातीरेस्थितोनित्यं कूलेचोत्तरतश्शुभे ॥ आखरस्यपरेपूर्वे सोपितिष्ठतिसर्वदा ॥१०॥ आषाढस्यसितेपक्षे रविवारेसमाहिताः ॥ नवमींचाष्टमींप्राप्य चतुर्दश्यांविशेषतः॥११॥

सावधान होतेहुये जो कोई निश्चल मनवाले मनुष्य पूजन करते हैं वे अपने मनोरथ को प्राप्त होते हैं और विवाह, पुत्र जन्म व उत्तम मंगल कार्य में ॥ ११ । १२ ॥
पत्र, पुष्प, अर्घ, गंध व अनेक भांति के नैवेद्यों से तथा सुगन्ध संयुत तांबूलों से वरदरूपी भैरवजी को पूजै ॥ १३ ॥ और ब्राह्मणों के भोजनों से तथा हवनों से
सदैव व्यापक भैरवजी को तृप्तकरै तदनन्तर परम कल्याण व परम मंगल को प्राप्त होवैहै ॥ १४ ॥ और उन देवको प्रणामकर व स्तुतिकर सब कामनाओं की अर्थ
सिद्धिके लिये होता है ॥ १५ ॥ सब पातकों के हरनेवाले व धूर्तों तथा दुष्टोंके नाशक व उत्तम आचार व चरित पै चलनेवाले तथा मुंडों की माला को धारण कर-

पूजांकुर्वन्तियेकेचिन्नरानिश्चलमानसाः ॥ विवाहेपुत्रजनने माङ्गल्येचशुभेतथा ॥ १२ ॥ पत्रपुष्पार्घगन्धैश्च नैवे
द्यैर्विविधैस्तथा ॥ ताम्बूलैर्वासुगन्धाढ्यैः पूजयेद्वरदरूपिणम् ॥ १३ ॥ विप्राणांभोजनैर्होमैस्तर्पयेत्सततंविभुम् ॥ त
तःपरमकल्याणमियात्परममङ्गलम् ॥ १४ ॥ नत्वास्तुत्वाचतन्देवं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ सकलकलुषहारी धूर्त
दुष्टान्तकारी सुचरचरितचारी मुण्डमालांप्रधारी ॥ करकलितकपाली कुण्डलीदण्डपाणिस्सभवतुसुखकारी भैरव
स्त्रासहारी ॥ १६ ॥ विविधरासविलासविलासितं नववधूप्रविधूतपराक्रमम् ॥ मदविघूर्णितयुग्मविलोचनं भयहरंसत
तंभवजंस्मरे ॥ १७ ॥ अमलकमलनेत्रंचारुचन्द्रावतंसं सकलगुणवरिष्ठं कामिनीकामरूपम् ॥ परिधुतपरितापं डा
किनीनाशहेतुं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ १८ ॥ सकलबलविघातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकटिकरालं साट्ट

नेवाले व जिनके हाथ में कपाल शोभित है और कुण्डलों को धारण किये व दण्डको हाथ में लिये हैं वे भयहारक भैरवजी सुखकारक होवैं ॥ १६ ॥ अनेक भांति
के रास व विलास से शोभित और नवीन नारियों से कंपित पराक्रमवाले तथा मदसे घूमतेहुये युगल लोचनोंवाले, भयहारक, शिवपुत्र (भैरव) जी को मैं सदैव
स्मरण करताहूं ॥ १७ ॥ निर्मल कमल के नाईं नेत्रवाले व सुन्दर चन्द्रमारूपी अवतंस (शिरोभूषण) को धारण किये, सबगुणों से श्रेष्ठ व कामिनियों के लिये
कामदेवरूप व सब ओर से सन्ताप को नाशकरनेवाले, और डाकिनियों के नाश के कारण व सेवकों के लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १८ ॥

सब बलों को नष्ट करनेवाले व क्षेत्रपाल के एकही पालक तथा विकट कटि से करालरूप, अट्टहास समेत विशालरूप व हाथ में तलवार को लिये तथा सांपोंका यज्ञोपवीत पहनेहुये जनके लिये शिवरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १९ ॥ संसार के भयको हरनेवाले, योगिनियों को भयकारक, सब सुरगणों के स्वामी व सुन्दर चन्द्रमा, सूर्य नेत्रवाले, मस्तकपै मुकुट को रचेहुये व विशाल मोतियों की मालको पहने जनके लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ २० ॥ चार भुजाओं को धारे व शंख तथा गदा इत्यादिक अस्त्रों को धारण किये, पीतवसनवाले तथा सघन मेघों के समान सुन्दर, श्रीवत्स चिह्नवाले, जिनके गल में कौस्तुभ

हासंविशालम् ॥ करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ १९ ॥ भवभयपरिहारं योगिनीत्रासकारं सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम् ॥ मुकुटरचितभालं मुक्तमालंविशालं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ २० ॥ चतुर्भुजंशङ्खगदाधरायुधं पीताम्बरंसान्द्रपयोदसौभगम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मङ्गलशोभिकौस्तुभं शिवप्रदंशङ्कररक्षकम्भजे ॥ २१ ॥ लोकाभिरामंवचनाभिरामं प्रियाभिरामंयशसाभिरामम् ॥ कीर्त्याभिरामंतपसाभिरामं तम्भूतनाथंशरणंप्रपद्ये ॥ २२ ॥ आद्यंब्रह्मसनातनंशुचिपरं सिद्धिप्रदंकामदं सेव्यंभक्तिसमन्वितंसुरवरं सेव्यंसुभक्त्यासदा ॥ योग्यंयोगविचारितंयुगधरं योग्याननंयोगिनं वन्देहंसकलंकलङ्करहितं सत्सेवितम्भैरवम् ॥ २३ ॥ भैरवाष्टकमिदंपुण्यं प्रातःकालेपठेन्नरः ॥ दुःस्वप्ननाशनंतस्य वाञ्छितार्थफलंभवेत् ॥ २४ ॥ राजद्वारेविवादेच सङ्ग्रामेसङ्कटेतथा ॥ राज्ञा

शोभित है उन कल्याण दायक व शंकरजी को रक्षा करनेवाले भैरवजी की मैं भजताहूं ॥ २१ ॥ देखने में सुन्दर व वचन से मनोहर तथा प्रियसे सुन्दर व यश से मनोहर, कीर्ति से सुन्दर, तपस्या से मनोहर उन भूतनाथजी के शरण में मैं प्राप्त होताहूं ॥ २२ ॥ आदिमें होनेवाले सनातन ब्रह्म, पवित्रता में तत्पर, सिद्धि दायक, कामनाओं को देनेवाले, सेवा के योग्य व भक्ति से संयुत, सुरश्रेष्ठ तथा सदैव उत्तम भक्ति से सेवने योग्य व यथार्थ योग को विचारनेवाले, युगधारी व योग्य मुखवाले, कलाओं समेत व कलंकरहित, उत्तम जनों से सेवित भैरवयोगी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ २३ ॥ इस पवित्र भैरवाष्टक को जो मनुष्य प्रातःकाल प-

दता है उसके दुःस्वप्नकानाश होता है और चाहेहुये अर्थ का फल होता है ॥ २४ ॥ राजद्वार, विवाद समर व संकट में तथा क्रोधित राजा से आज्ञा देनेपर व शत्रु के बंधन में प्राप्त होनेपर सदैव ॥ २५ ॥ दरिद्रता व दुःख के नाश होने के लिये सावधान होतेहुये मनुष्यों को यह भैरवाष्टक पढ़ना चाहिये जो मनुष्य इसको पढ़ते हैं उनको कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २६ ॥ इस तीर्थ में मनुष्योंको स्नान,दानादिक करना चाहिये क्यों कि संसार के भ्रमसे डरेहुये मनुष्यों से श्रेष्ठभैरव देवजी पूजित हुयेहैं ॥ २७ ॥ इसलिये सब यत्न से उत्तम तीर्थ करना चाहिये ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकालभैरव

कुद्धेनचाज्ञप्ते शत्रुबन्धगतेसदा ॥ २५ ॥ दारिद्र्यदुःखनाशाय पठितव्यंसमाहितैः ॥ नतेषांजायतेकिञ्चिद्दुर्लभंयेपठन्तिवै ॥ २६ ॥ अस्मिन्तीर्थेप्रकर्तव्यं स्नानदानादिकन्नरैः ॥ संसारभ्रमभीतैश्च पूजितोभैरवोवरः ॥ २७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कालभैरवतीर्थयात्रामाहात्म्यन्नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ नागतीर्थंत्वयाब्रह्मन् पुराप्रोक्तंयशस्विना ॥ तस्यतीर्थवरस्यापि महिमानञ्चसत्तम ॥ १ ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ किञ्चित्कालेसमाख्यातमेतद्विस्तरतोवद ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि तवाग्रेनागतीर्थजाम् ॥ कथाम्पुण्यतमांव्यास भुविपापहरांपराम् ॥ ३ ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण शापमुक्तोभ

तीर्थयात्रामाहात्म्यन्नामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत नागतीर्थ परभाव । छिहत्तरि अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे सत्तम ! पुरातन समय आप यशस्वी ने नागतीर्थ को कहाहै उस उत्तम तीर्थ की महिमाको भी ॥ १ ॥ मैं फिर तुमसे सुना चाहताहूं हे ब्रह्मविदांवर ! समय में कुछ कहेहुये इस चरित्रको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे ब्रह्मन्, व्यासजी ! सुनिये नागतीर्थ से उपजीहुई अत्यन्त पवित्र व पृथ्वी में पापोंको हरनेवाली उत्तम कथाको मैं तुम्हारे

आगे कहूंगा ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य शाप से छुटजाताहै हे परंतप! पुरातन समय माता के शाप से जो नागभ्रष्टहुये ॥ ४ ॥ जनमेजय से जलायेहुये वे आस्तिक से छुड़ायेगये उस समय उन्हों ने जरत्कारुके पुत्र द्विजोत्तम आस्तिकजी से पूछा ॥ ५ ॥ नाग बोले कि हे ब्रह्मन्! सुरराज के समीप जनमेजय के इस यज्ञमें हमलोग तुम्हारी प्रसन्नतासे अग्निसे छुड़ायेगये ॥ ६ ॥ हे परंतप, ब्रह्मन्! जब जिस स्थान में अभय निवासहोवै हमारे निवास के लिये ऐश्वर्य को चाहते हुये तुम वहां निवास बतलावो ॥ ७ ॥ आस्तिकजी बोले कि हे मातुलोंमें श्रेष्ठ! तुम लोगोंका जो उत्तम हितहै उसको सुनिये कि मनोहर महाकाल वनमें जो कुशस्थली

वेन्नरः ॥ पुरानागाःपरिभ्रष्टामातुश्शापात्परन्तप ॥ ४ ॥ जनमेजयेनदग्धास्ते मोचितास्त्वास्तिकेनच ॥ पप्रच्छुस्तेद्विज श्रेष्ठं जरत्कार्वात्मजंतदा ॥ ५ ॥ नागाऊचुः ॥ हेब्रह्मन्त्वत्प्रसादेन मोचिताहव्यवाहनात् ॥ जनमेजयस्ययज्ञेस्मिन्देव राजस्यसन्निधौ ॥ ६ ॥ अस्माकंभूतिमन्विच्छन् वासस्यार्थेपरन्तप ॥ यस्मिन्स्थानेयदाब्रह्मन् निवासोजायतेभयः ॥ ७ ॥ आस्तिकउवाच ॥ श्रूयतांमातुलश्रेष्ठा युष्माकंहितमुत्तमम् ॥ महाकालवनेरम्ये यावैकुशस्थलीस्मृता ॥ ८ ॥ त स्याहिदक्षिणेभागे पूर्वंतीर्थंसनातनम् ॥ नागालयःपुराप्रोक्तो यत्रसन्निहितोहरः ॥ ९ ॥ योगनिद्रांसमासाद्य शेतेब्रह्म सनातनः ॥ बकदाल्भ्योऋषिस्तत्र तपस्तेपेधृतव्रतः ॥ १० ॥ लोमशश्चमहातेजास्तत्रैवंसतुतिष्ठति ॥ दीर्घायुस्त्वंसमा पन्नो मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ ११ ॥ कालचक्रप्रवर्ताच महाकालप्रतापनः ॥ कपिलःसिद्धिमापन्नो यत्रतीर्थवरोत्तमे ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्रोविमुक्तोभूच्चाण्डालात्तुयगर्हणात् ॥ सप्तर्षिप्रवराह्येते निर्वाणपदवींगताः ॥ १३ ॥ एतस्मात्कार

पुरी कहीगई है ॥ ८ ॥ उसके दक्षिण भाग में पहले सनातन तीर्थहुआ है पुरातन समय वहा नागस्थान कहागया है जहां कि महादेवजी भलीभांति टिके हैं ॥ ९ ॥ और वहीं पर सनातन ब्रह्म योगनिद्राको प्राप्तहोकर सोते हैं व व्रतको धारण किये बकदाल्भ्य ऋषिने वहां तपस्याकिया है ॥ १० ॥ और इसी भांति बड़े तेजस्वी वे लोमशजी वहां टिके हैं व महामुनि मार्कंडेयजी बड़े आयुर्बल को प्राप्तहुये हैं ॥ ११ ॥ व महाकालको सन्ताप करनेवाले व कालचक्र के प्रवर्तक कपिलदेव जो जिस उत्तमोत्तम तीर्थ में सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १२ ॥ व जहांपर हरिश्चन्द्रजी निन्दित चाण्डाल के घरसे मुक्त हुये हैं और ये श्रेष्ठ सप्तर्षिलोग जहां मोक्ष

पवृत्तीको प्राप्तहुये हैं ॥ १३ ॥ इसीकारण हे नागो ! वहींपर विरामकियाजावै क्योंकि वहां पर माताके शाप से उपजाहुआ दोष तुमलोगों को नहीं पीड़ितकरैगा ॥ १४ ॥ आस्तिक ऋषि के इस वचनको सुनकर उस समय वे नागोत्तम निवास के लिये गये ॥ १५ ॥ एलापत्र, मल, कर्कोटक, धनंजय व नागों में श्रेष्ठ वासु कि, तक्षक व नील ॥ १६ ॥ पद्मक और प्रसिद्ध अर्बुद बहुत दिनोंतक नियमोंवाले उनसबों ने यहां आकर अपने स्थानों को किया ॥ १७ ॥ हे सत्तम ! वहां पर उत्तम व मनोहर तीर्थहुये हैं और तीर्थभूत नवीनकुण्ड हुये हैं ॥ १८ ॥ जो कि विद्वानों से महापुण्यदायक व महापातकों के हरनेवाले कहेजाते हैं और जहां पर सिद्ध,

णान्नागास्तत्रैवचविरम्यताम् ॥ मातुःशापोद्भवोदोषोयुष्माकन्नैवबाधते ॥ १४ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वा ऋषेरास्तिकस्यच ॥ आगच्छन्तुतदातेवै वासार्थंपन्नगोत्तमाः ॥ १५ ॥एलापत्रोमलश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ वासुकिःपन्नगश्रेष्ठस्तक्षकोनीलएवच ॥ १६ ॥ पद्मकोर्बुदविख्यातो नागास्तेसर्वएवहि ॥ अत्रागत्यस्वस्थानानि चक्रुस्तेसुचिरव्रताः ॥ १७ ॥ तत्ररम्याणितीर्थानि जातानिपरमाणिच ॥ नवानिचसुकुण्डानि तीर्थभूतानिसत्तम ॥ १८ ॥ महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणिच ॥ यत्रसिद्धाश्चगन्धर्वा ऋषयःशंसितव्रताः ॥ १९ ॥ अप्सरोगणसङ्घैश्च सेवितंचसदावरैः ॥ यत्रशेषोमहानागः पुराप्रोक्तोमहर्षिभिः ॥ २० ॥ शेषशायीस्वयंविष्णुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥ तत्रसर्वाणितीर्थानि तिष्ठन्ति भुविसर्वदा ॥ २१ ॥ श्वेतद्वीपेतिविख्याता मणिविक्रान्तभूमिका॥ यत्रपुण्यानिवृक्षाणि पुष्पितानिचसर्वशः॥ २२॥ हंसकारण्डकाकादि पिककोकिलसारसाः ॥ मयूराणांगणास्तत्र नृत्यन्तिचरमन्तिच ॥ २३ ॥ निधिभिर्व्याप्तमाखिलं

गंधर्व व प्रशंसित नियमोंवाले ऋषिलोग हैं ॥ १९ ॥ व जो तीर्थ सदैव अप्सराओं के गणों से सेवित हैं और जहां पर पहले महर्षियों से महानागशेषजी कहे गये हैं ॥ २० ॥ व ये कमललोचन शेषशायी भगवान् विष्णुजी जहां पर हैं वहां सदैव सब तीर्थ पृथ्वी में स्थित हैं ॥ २१ ॥ मणियों से आक्रमित भूमिवाली श्वेतद्वीपा ऐसी पृथ्वी प्रसिद्धहै जहां सब ओर फूलेहुये पुण्यमय वृक्षहैं ॥ २२ ॥ और वहांपर हंस, कारण्डव, काकादि, पिक, कोकिल, सारस व मयूरों के गण नाचते व

रमण करतेहैं ॥२३॥ और जो सब स्थान निधियों से व्याप्त व कमलों की सुगन्धसे वासित तथा उत्तमता से किन्नरों के उच्चशब्द से संयुत है॥ २४॥ व जहांपर संस्कार कियेहुई स्त्रियां मित्रगणों के साथ विहार करतीं हैं व सुन्दरी नागकन्याओं से जोबड़ा अद्भुतस्थान शोभित है ॥ २५ ॥ जिस तीर्थ में नहाकर मनुष्य वैकुंठनामक उत्तम स्थान को प्राप्त होताहै व उसमें नित्य नहाकर मनुष्य श्रीमान् होता है अन्यथा नहीं होता था ॥ २६ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! सब पापोंको हरनेवाला उत्तम स्थान है व यहीपर उत्तमतीर्थरूप बलिका अद्भुत आश्रम है ॥ २७ ॥ यहां स्नानादिक करना चाहिये जहां कि विष्णुजी स्थितहैं क्योंकि उसीसे मनुष्य सब

नीलोत्पलसुगन्धिना ॥ वासितंवायुनाशुभ्रं किन्नरोच्चविनादितम् ॥ २४ ॥ यत्रवैसंस्कृतानार्यो विहरन्तिसुहृद्गणैः ॥ रम्याभिर्नागकन्याभिर्मण्डितम्परमाद्भुतम् ॥ २५ ॥ यत्रस्नात्वानरोयाति वैकुण्ठाख्यंचशोभनम् ॥ तत्रस्नात्वानरो नित्यं श्रीमानभवतिनान्यथा ॥ २६ ॥ एवंव्यासपरंस्थानंसर्वपापहरंपरम् ॥ अत्रैवचपरंतीर्थं बलेराश्रममद्भुतम् ॥ २७ ॥ अत्रस्नानादिकंकार्यं यत्रसन्निहितोहरिः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवतितत्क्षणात ॥ २८ ॥ कियत्प्रमाण मात्राञ्च योददातिवसुन्धराम् ॥ तनूरुहाणियावन्ति तावन्तिकालसङ्ख्यया ॥ २९ ॥ असङ्ख्यांलभतेवृद्धिं तस्यलोकःसनातनः ॥ श्रावणेमासिशुक्लेच पञ्चम्यांसोमवासरे ॥ ३० ॥ नागानांपूजनङ्कार्यं श्राद्धंदर्शेविधीयते ॥ अक्षयञ्जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थोभवेत्ततः ॥ ३१ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनागतीर्थमहिमानामषट्सप्ततितमोध्यायः ॥७६॥

पापों से शुद्ध चित्त होताहै ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य कुछ प्रमाणभर पृथ्वीको देताहै तो जितने रोम होते हैं उतनेही वर्षोंतक कालकी संख्यासे ॥ २९ ॥ वह असंख्य वृद्धि को प्राप्त होता है और उसको सनातन लोक होता है श्रावण के महीने में शुक्लपक्ष में पंचमी व सोमवार में ॥ ३० ॥ नागों का पूजन करना चाहिये और अमावस में श्राद्धकिया जाता है तो अक्षय श्राद्ध होताहै व उससे चाहाहुआ प्रयोजन होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनागतीर्थमहिमावर्णननामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

❀ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अहै अतुल माहात्म्य युत तीर्थ नृसिंहक नाम । सतहत्तरि अध्याय में सोइ चरित सुख धाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! तीर्थों के मध्य में जो उत्तम तीर्थ है वह सब पापों का नाशक तीर्थ महात्मा नृसिंहजी का है ॥ १ ॥ जिस के दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है पुरातम समय हिरण्यकशिपु दैत्यराज कहागया है ॥ २ ॥ उस दुष्टात्मा ने इस सब पृथ्वी को पाया है और दुष्टदैत्यसेनाओं से व्याप्त तथा भारसे आक्रमित तथा शोच से विकल ॥ ३ ॥ दुःखित पृथ्वी आंसुओं से संयुत मुखवाली गऊ होकर ब्रह्मा की शरण में गई भार से आक्रमित पृथ्वी को देखकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ उसके परिश्रम

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुपरं व्यास तीर्थानामुत्तमंचयत् ॥ तत्तीर्थंसर्वपापघ्नं नृसिंहस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ दैत्यराजःसमाख्यातोहिरण्यकशिपुःपुरा ॥ २ ॥ तेनेयंवसुधासर्वा संप्राप्ताचदुरात्मना ॥ दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ताशुचार्दिता ॥ ३ ॥ गौर्भूत्वाश्रुमुखीखिन्ना ब्रह्माणंशरणंययौ ॥ भाराक्रान्तान्धरांदृष्ट्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा तच्छ्रमञ्चव्यपोहितुम् ॥ श्रूयतांभोवनेपुण्ये भवत्याउपकारकम् ॥ ५ ॥ वचोददामितेतथ्यं देशकालोचितन्तथा ॥ पुरानेनतपश्चीर्णं दुष्करंसर्वदेहिनाम् ॥ ६ ॥ गायत्र्युपासनं तेनकृतञ्चावहितात्मना ॥ ब्रह्मणाचवरोदत्तः प्रीतियुक्तेनचेतसा ॥ ७ ॥ नदिवानतथारात्रौ नान्तरिक्षेनभूतले ॥ नातिशुष्केणचार्द्रेण नचशस्त्रास्त्रघातिकैः ॥ ८ ॥ मानवैःपक्षिसङ्घैश्च न मेमृत्युर्भवेदिति ॥ एकपाणितलाघातैः सामात्यबलवाहनम् ॥ ९ ॥ मारयिष्यतियोवीरः समेमृत्युर्भविष्यति ॥ तथेत्युक्त्वातिहृष्टात्मा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १० ॥

को नाशकरने के लिये नम्र वचन से बोले कि हे पुण्यरूपे, पृथिवि ! जो तुम्हारा उपकारक है उसको सुनिये ॥ ५ ॥ मैं देश व समय के योग्य सत्यवचन को तुम्हें देताहूं कि पहले इस दैत्यने सब देहधारियों के कठिन तप को किया है ॥ ६ ॥ व सावधान मनवाले इसने गायत्री की उपासना किया है और प्रीतिसंयुत चित्त से ब्रह्मा ने वरदान दियाहै ॥ ७ ॥ न दिनमें न रात्रि में न आकाश में न पृथ्वी में न बहुत सूखे से न भीगे से और न शस्त्रास्त्रों के मारने से ॥ ८ ॥ और मनुष्यों तथा पक्षीगणों से मेरीमृत्यु न होवै और एकही चपाटे के मारने से मंत्री, सेना व सवारी समेत मुझको ॥ ९ ॥ जो वीर मारै वही मेरीमृत्यु होवै बहुत अच्छा ऐसा

में मनुष्य नहाकर व उत्तम दानको देकर आठ सौभाग्यों से सम्पूर्ण व बसन समेत बांसके पात्रको ॥ ३१ ॥ जो कि सप्तधान्य से संयुत व पंचरत्नों से शोभित होवै और ऊनीसूत्र से संयुत मालाओं व सुगन्धि इत्यादिकों को ॥ ३२ ॥ व हे परंतप ! शक्तिके अनुसार सोने की सावित्री बनाकर जो मनुष्य वेदवेदांग के जाननेवाले ब्राह्मण के लियेदेता है ॥ ३३ ॥ वह बहुत सुखों को करनेवाली बहुत उत्तम लक्ष्मीको प्राप्तहोकर और अनेक भांति के भोगों को भोगकर फिर स्वर्गको पावैगा ॥ ३४ ॥ सावित्रीजी का व्रत करनेवाली स्त्री पति को प्यारी होती है और पतिव्रता व बड़े ऐश्वर्यवाली होती है व कभी विधवा नहीं होती है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख

त्वा दत्त्वादानञ्चसौभगम् ॥ अष्टसौभाग्यसम्पूर्णं वंशपात्रंसवस्त्रकम् ॥ ३१ ॥ सप्तधान्यसमोपेतं पञ्चरत्नपरिष्कृतम् ॥ सौगन्ध्यादीनिमाल्यानि ऊर्णसूत्रसमायुतम् ॥ ३२ ॥ सावित्रींहाटकींकृत्वा यथाशक्तिपरन्तप ॥ योवैददातिविप्राय वेदवेदाङ्गज्ञानिने ॥ ३३ ॥ लभतेविपुलांलक्ष्मीं बहुभोगकरींशुभाम् ॥ भुक्त्वावैविविधान्भोगान् पुनःस्वर्गमवाप्स्यते ॥ ३४ ॥ सावित्रीव्रतकृन्नारी जायतेपतिवल्लभा ॥ पतिव्रतामहाभागा विधवानकदाचन ॥ ३५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनृसिंहतीर्थयात्रामहिमानामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुव्यासपरंतीर्थं भुविविख्यातिकारकम् ॥ कुटुम्बेश्वरविख्यातः फलदोयोमहेश्वरः ॥ १ ॥ तस्यतीर्थवरंतीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ यस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा कुटुम्बंलभतेध्रुवम् ॥ २ ॥ कुटुम्बार्थंतपस्तेपे पुरा दक्षःप्रजापतिः ॥ नारदेनपुराव्यास पुत्राःषष्टिर्विनाशिताः ॥ ३ ॥ प्रजाकामःसधर्मात्मा सुचिरंव्रतमाचरत् ॥ सपत्नीको

एडेदे ीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनृसिंहतीर्थयात्रामहिमावर्णनंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कुटुंबेश तीरथ महँ मिलत अहै फल जौन । अठहत्तरि अध्याय में कथित कथा सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पृथ्वी में प्रसिद्धकारक उत्तम तीर्थ को सुनिये कि कुटुंबेश्वर ऐसे प्रसिद्ध जो फलदायक महादेवजी हैं ॥ १ ॥ उनका सब तीर्थों के फलको देनेवाला, तीर्थों में उत्तम तीर्थ है कि जिस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर कुटुंब को पाता है ॥ २ ॥ पुरातन समय दक्षप्रजापतिजी ने कुटुंब के लिये तप किया है हे व्यासजी ! पहले नारदजी ने उनके साठ पुत्रों को

विदेश भेजदिया ॥ ३ ॥ सन्तान की इच्छावाले, बड़े तेजवान् व जितेन्द्रिय उन धर्मात्मा दक्षजी ने स्त्रीसमेत निराहार होकर बहुत दिनोंतक यहां व्रत किया है ॥ ४ ॥ इस तीर्थ में नहाकर पवित्र होकर उन्होंने सनातनब्रह्म को जपा और हे व्यासजी ! दशहज़ार वर्षतक कठिन तप किया है ॥ ५ ॥ उस तीर्थ के प्रसाद से उन दक्ष जी ने बहुत प्रजा को पाया है व प्रतापवान् दक्षजी प्रजापति ऐसे प्रसिद्ध हुये ॥ ६ ॥ और ब्रह्मा ने भी वहीं बहुतकठिन तपस्या कर उसीक्षण निष्कलंक व निर्मल रूप को पाया है ॥ ७ ॥ और वहींपर महादेव ने भी ब्रह्मा के स्थान को पाया है हेसत्तम ! चतुर्मुखधारी लिंग आजभी देखपड़ता है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! वहींपर सिं-

महातेजा निराहारोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेशुचिस्नातोजयद्ब्रह्मसनातनम् ॥ वर्षाणामयुतंव्यास तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥ तेनतीर्थप्रसादेन सलेभेबहुलांप्रजाम् ॥ प्रजापतिरितिख्यातो जातोदक्षःप्रतापवान् ॥ ६ ॥ ब्रह्मापि तत्रैवतपः कृत्वासुबहुदुष्करम् ॥ निष्कलङ्कामलंरूपं प्राप्तवानेवतत्क्षणात् ॥ ७ ॥ महादेवोपितत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणःपदम् ॥ चतुर्मुखधरंलिङ्गं दृश्यतेद्यापिसत्तम ॥ ८ ॥ भद्रपीठस्थितादेवी भद्रकालीतिविश्रुता ॥ तत्रैवचसदाव्यास क्रीडतेस्मधृतव्रता ॥ ९ ॥ द्वारेतिष्ठतितत्रैव भैरवःक्षेत्रपालकः ॥ पादेनखञ्जतांयातः पुरादैत्यवरार्दितः ॥ १० ॥ पुत्रवत्पालितोदेव्या सदातिष्ठतिचत्वरे ॥ येतेदेवगणाःसर्वे तस्मिंस्तीर्थेप्रतिष्ठिताः ॥ ११ ॥ ऋषयोपिमहाभागाः सदा पर्वणिपर्वणि ॥ आयान्तिचैवसन्ध्यार्थं बहुपुत्रप्रदेसरे॥१२॥अस्मिंस्तीर्थेसदाचाराः स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चिज्जायते जन्मजन्मनि ॥ १३ ॥ महाव्याधिषुघोरासु महामारीषुतत्रवै ॥ हवनंक्रियतेनित्यं सर्वपौरार्जितैर्य

हासन पै स्थित व्रतको धारण किये भद्रकाली ऐसी प्रसिद्ध देवी सदैव क्रीडा करती है ॥ ९ ॥ वहींपर क्षेत्रपालक भैरवजी द्वारपै टिकेहैं जो कि उत्तम दैत्य से दुःखित होकर पुरातन समय चरण से खंजता को प्राप्तहुये हैं ॥ १० ॥ देवीजी से पुत्रकी नाईं पालेहुये वे सदैव चौतरे पै स्थित हैं और जो देवगण हैं वे सब उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥ ११ ॥ व महात्मा ऋषिलोग भी सदैव पर्व पर्व में बहुत पुण्यदायकतड़ाग में संध्या करने के लिये आते हैं ॥ १२ ॥ इस तीर्थ में उत्तम आचारवाले जो पुरुष स्नान करते हैं उनको जन्म जन्म में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ १३ ॥ और भयंकर बड़ी व्याधियों में व महामारियों में वहां सबपुर वासियों से इकट्ठा कि-

येहुये यवों से व पायस (खीर) से नित्य हवन कियाजाता है और अनेक भांतिके रोगों से उनको दोष नहीं होता है दुर्भिक्ष व राज्य के भ्रष्ट होनेपर तथा बहुत ही कठिन युद्ध होनेपर ॥ १४।१५ ॥ व सब आपत्तियों में सावधान होताहुआ जो मनुष्य क्षेत्रपालजी को पूजता है वह सब दुःखों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ कुटुंबकतीर्थ में नहाकर व महादेवजी को पूजकर तपस्वी ब्राह्मणके लिये सुवर्ण, मणि, मुक्ता व वसन समेत कूष्माडको दान देवै तो मनुष्य कुटुंबमें धन व अन्न से संयुत होता है ॥ १७ । १८ ॥ हे व्यासजी ! फागुन में कृष्णपक्ष में तेरसिसंयुत जो चौदसि होती है वह शिवरात्रि कहीजाती है ॥ १९ ॥ उसदिन मनुष्य

वैः ॥ १४ ॥ पायसैर्विविधैरोगैस्तेषांदोषोनजायते ॥ दुर्भिक्षेराज्यभ्रंशेच सङ्ग्रामेभृशदारुणे ॥ १५ ॥ पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदिसमाहितः ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जायतेनात्रसंशयः ॥ १६ ॥ स्नात्वाकुटुम्बकेतीर्थे पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ दानंकूष्माण्डकंदद्याद्ब्राह्मणायतपस्विने ॥ १७ ॥ सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोलङ्कारसंयुतैः ॥ धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बेजायतेनरः ॥ १८ ॥ फाल्गुनेचासितेपक्षे भवेद्यावैचतुर्दशी ॥ त्रयोदशीयुताव्यास शिवरात्रिस्तुप्रोच्यते ॥ १९ ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा रात्रौजागरणंचरेत् ॥ विल्वोदकसुगन्धेन बहुपुष्पफलेनवा ॥ २० ॥ धूपदीपैश्चनैवेद्यैर्वासोलङ्कारकादिभिः ॥ पूजयेद्योनरोनित्यं गिरिशंसगणंपरम् ॥ २१ ॥ तस्यपापंक्षयंयाति शिवलोकेमहीयते ॥ अश्वमेधाधिकंपुण्यं लभतेभुविमानवः ॥ २२ ॥ अश्वमेधफलंतस्यजागरेचक्षणेक्षणे ॥ ततस्तुप्रातरुत्थायस्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २३ ॥ कृत्वातुविधिवद्व्यास शिवपूजार्चनंतथा ॥ विप्रांश्चभोजयेत्सप्त तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २४ ॥ कपिलायाः

उस तीर्थ में नहाकर रात्रि में जागरण करै और बिल्वपत्र व सुगन्धित जलसे तथा बहुत पुष्प व फलसे ॥ २० ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, वसन व अलंकारादिकों से जो मनुष्य नित्य गणोंसमेत उत्तम शिवदेवजी को पूजता है ॥ २१ ॥ उसका पाप नाशहोजाता है और वह शिवलोक में पूजाजाता है और पृथ्वी में मनुष्य अश्वमेध से अधिक फलको प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ और जागरण में उसको क्षण क्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल होताहै तदनन्तर प्रातःकाल उठकर स्नान दानादिक कार्य ॥ २३ ॥ करके हे व्यासजी ! विधिपूर्वक शिवजीका पूजनकरै और सातब्राह्मणों को भोजन करावै उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ २४ ॥ कि बछड़ा समेत चौदह

हज़ार कपिलागौवों के दान का फल व हज़ार वाजपेय यज्ञका फल होता है अन्यथानहीं है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांकुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । है खण्डेश्वर देवकी महिमा अमित अपार । उन्नासी अध्यायमें चरित सहित विस्तार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महापुण्यवान् व अति उत्तम तीर्थको सुनिये जो कि सब पातकों का विनाशक देवप्रयाग ऐसा कहागया है ॥ १ ॥ हे परंतप ! जहां तीर्थ है वहां देवताओं का उत्तम स्थान है सोमतीर्थ के उत्तर भागमें व प्रयाग के दक्षिण में ॥ २ ॥ व क्षिप्रानदी के पूर्वभागमें वहां तीर्थ प्रतिष्ठित है उसतीर्थ में नहाकर व सुरोत्तमजी को देखकर ॥ ३ ॥ पृथ्वी में सब फलको देनेवाले देवमाधव ऐसे प्रसिद्ध जगदीश देवेन्द्रजी उसको चाहेहुये मनोरथ को देते है ॥ ४ ॥ वहींपर सब देवताओंसे प्रणाम कियेहुये आनन्द भैरवजी है कि जिनके दर्शनहीमे सब पातकों का नाशहोता है ॥ ५ ॥ और उसको कभी भैरवजी की पीड़ा नहीं होती है व हे व्यासजी ! स्वर्गद्वारमें मनुष्य निर्भय होताहै ॥ ६ ॥ हे व्यासजी ! जेठमहीने में शुक्लपक्ष में दशमी तिथि को बुधदिन व हस्तनक्षत्र का योग होनेपर दशहरा होता है उसदिन गंगा जन्म में परायण व पवित्र मनुष्य श्री गंगाजी में

सवत्सायाः सहस्राणिचतुर्दश ॥ वाजपेयसहस्रस्य फलंभवतिनान्यथा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यन्नामाष्टसप्ततितमोध्यायः ॥ ७८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुव्यासमहापुण्यं तीर्थंपरमशोभनम् ॥ देवप्रयागमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ देवानाञ्चपरंस्थानं यत्रतीर्थंपरंतप ॥ सोमतीर्थोत्तरेभागेप्रयागस्यचदक्षिणे ॥ २ ॥ क्षिप्रायाःपूर्वभागेच तत्रतीर्थंप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाचैवसुरोत्तमम् ॥ ३ ॥ देवमाधवविख्यातो भुविसर्वफलप्रदः ॥ ददातितस्यदेवेन्द्रो वाञ्छितार्थंजगत्पतिः ॥ ४ ॥ आनन्दभैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ५ ॥ नतस्यजायतेव्यास यातनाभैरवीकदा ॥ स्वर्गद्वारेसदाव्यासजायतेनिर्भयःपुमान् ॥ ६ ॥ जेष्ठेमासेसितेपक्षे दशम्यांबुधहस्तयोः ॥ दशहराजायतेव्यास गङ्गाजन्मपरःशुचिः ॥ ७ ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा सर्वतीर्थफलंलभेत ॥ अपरञ्चपरंतीर्थं

नहाकर सब तीर्थोंके फल को पाताहै इसके उपरान्त हे व्यासजी ! अन्य उत्तम तीर्थ को सुनिये ॥ ७।८ ॥ कि जिमके सुननेहीसे व्रतका भंग नहीं होता है हे ब्रह्मन् ! पुरातन समय ब्रह्मविदोत्तम व उत्तम आचारवाला धर्मशर्मा ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था जो कि पवित्र व बहुत व्रतों को धारण करनेवाला तथा दान्त व वेद-वेदाङ्गों का पारगामी था ॥ ९।१० ॥ कुछदोष के प्रसंगसे उसका व्रत पूर्ण नहीं होताथा इसप्रकार बहुत दिनोंवाले समय में देव दर्शन नारदजी ॥ ११ ॥ महा तपस्वी पहुनई के लिये हे ब्रह्मन् ! उसके घरको आये तब शीघ्रही उठकर ब्राह्मणने बहुत मानपूर्वक ॥ १२ ॥ सत्कार कर हे भूमन् ! विधिसे देखेहुये कर्म से मुनिश्रेष्ठ नारद

शृणुव्यासअतःपरम् ॥ ८ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण व्रतभङ्गोनजायते ॥ एकएवपुराब्रह्मन् ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ ९ ॥ धर्मशर्मेतिविख्यातः सदाचाररतःशुचिः ॥ बहुव्रतधरोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १० ॥ किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन व्रतंपूर्णंनजायते ॥ एवंबहुतिथेकाले नारदोदेवदर्शनः ॥ ११ ॥ तस्यगेहागतोब्रह्मन्नातिथ्यार्थंमहातपाः ॥ तदोत्थायद्विजःशीघ्रं बहुमानपुरःसरम् ॥ १२ ॥ सत्कृत्यनारदंभूमन् विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ पूजयित्वाद्विजश्रेष्ठः पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १३ ॥ भगवन्भवतासर्वं विदितंज्ञानचक्षुषा ॥ अस्माकंचपरोदोषःकश्चिज्जातःपुरानघ ॥ १४ ॥ येनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोभवेद्ध्रुवम् ॥ कारणंब्रूहिमेनाथ कोदोषोत्रतुगण्यते ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ भवद्भिश्चपुराकृतम् ॥ महाराष्ट्रेसुविख्यातो ब्राह्मणोधनसञ्चकः ॥ १६ ॥ ब्रह्मदत्तेतिनाम्नावै वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ धनलोभपराक्रान्तः सर्वधर्मबहिर्मुखः ॥ १७ ॥ नास्तिकोदेवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ॥ परस्त्रींरमतेनित्यं द्यूतवादीचतस्करः ॥ १८ ॥ एवमा

जी को पूजकर द्विजोत्तमने पूछा ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! आपने ज्ञानदृष्टि से सबजाना है हे अनघ ! पुरातन समय मेरा कोई बड़ा दोष हुआ है ॥ १४ ॥ कि जिम पाप के प्रसंग से निश्चयकर व्रतका भंग होता है हे नाथ ! इसकारण को कहिये कि इसमें मेरा कौन दोष गिनाजाता है ॥ १५ ॥ नारदजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पहले जो तुमसे कियागयाहै उसको सुनिये कि महाराष्ट्र देशमें धनका संचयकरनेवाला ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण रहताथा जो कि वेदों व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व धन के लोभ से घिरा तथा सब धर्मों से विमुख ॥ १६।१७ ॥ व नास्तिक और देवतीर्थों में पराये द्रव्यको हरनेवाला था वह नित्यही पराई स्त्री से

रमित तथा द्यूतवादी व चोरथा ॥ १८ ॥ इसप्रकार आयुर्बल से क्षीण वह धनहीन होगया तब इधर उधर घूमताहुआ भ्रष्ट होकर गोदानदी के किनारे प्राप्त वह चोरके कर्म व आचारवाला द्विज यात्रिकों के साथ संयोगको प्राप्तहुआ व कुछ समय में रोग से विकल वह मोह (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ १९।२० ॥ उसी समय हे द्विज ! वह यमदूतों से यमपुरी में प्राप्त कियागया और यमराज के पुर में प्राप्त बहुत पापकारी व पाप में परायण इस ब्राह्मण को उस समय यमराज ने देखा व देखकर अचानकही दूतों से धर्मदायक वचन को कहा ॥ २१ । २२ ॥ कि हे दूतो ! सावधान मनवाले होकर तुमलोग सब सुनो कि इसने सब पातक व दुष्कर्म

युःपरिक्षीणो धनहीनोभवत्तदा ॥ इतस्ततोभ्रमन्भ्रष्टो गोदातीरेसुविह्वलः ॥ १९ ॥ गतश्चोरक्रियाचारी यात्रिकैःस हसङ्गतः ॥ किञ्चित्कालेषुदुःशीलो मोहंप्राप्तोरुजार्दितः ॥ २० ॥ नीतःसंयमिनींविप्र तत्कालंयमकिङ्करैः ॥ यमराज पुरंप्राप्तो बहुपापकरोद्विज ॥ २१ ॥ दृष्टोसौधर्मराजेन तदापापपरायणः ॥ निरीक्ष्यसहसोवाच किङ्करान्धर्मदंवचः ॥ २२ ॥ श्रूयतांकिङ्कराःसर्वे यूयमेकाग्रमानसाः ॥ अनेनाचरितंसर्वं दुष्कर्मसर्वकिल्विषम् ॥ २३ ॥ गोदातीरेमृतःपापी तत्रवैकारणम्महत् ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च यानितीर्थानिभूतले ॥ २४ ॥ आयान्तिगौतमीतीरे सिंहस्थेपिबृहस्प तौ ॥ तेषान्तुवायुस्पर्शेन जातोस्यान्तःकलेवरे ॥ २५ ॥ तस्यपुण्यप्रभावेन नोस्माकङ्कारणंकचित् ॥ नोग्राह्योभवता चायं मुच्यतांभोपुरस्सराः ॥ २६ ॥ एवंतैर्मोचितोविप्रः पुनर्ब्रह्मगतिङ्गतः ॥ तेनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गीगतोभुवि ॥ २७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ किंतपःकिंचदानञ्च किंतीर्थंव्रतसेवनम् ॥ २८ ॥ येनपुण्य

को किया है ॥ २३ ॥ और यह पापी गोदा के किनारे मराहै उसमें बडा कारणहै क्योंकि तीनकरोड व अर्धकरोड़ याने साढ़ेतीन करोड़ जो तीर्थ पृथ्वी में हैं ॥ २४ ॥ वे बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर गौतमी नदी के किनारे आते हैं इसके शरीर में उनके पवन के स्पर्श से यह नाशहोगया ॥ २५ ॥ उसके पुण्य केप्रभावसे हमलोगों का कहीं कारण नहीं है हे अग्रगामियो ! आपको इसे पकडना न चाहिये छोड़ दीजिये ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन दूतोंसे छोड़ाहुआ ब्राह्मण फिर ब्रह्मकी गति को प्राप्तहुआ उसी पाप के प्रसंग से तुम पृथ्वी में व्रतभंग करनेवाले हुये ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे ब्रह्मन् ! किस भांति से सब पापों का नाश होगा क्या तपहै

क्या दान है कौन तीर्थ है व कौन व्रतसेवन है ॥ २८ ॥ कि जिस पुण्यके प्रभावसे व्रतभंग नहीं होता है नारदजी बोले कि हे द्विजवरश्रेष्ठ ! सुनिये जो महाकाल वन कहागया है ॥ २९ ॥ जहांपर तत्त्वदर्शी ऋषिने रुद्रसर कहा है व हे द्विजोत्तम ! यहांपर करोडों करोड़ तीर्थ वर्तमान हैं ॥ ३० ॥ हे द्विज ! वहांपर कोटितीर्थ ऐसा कहाहुआ सनातन तीर्थ है और उसके उत्तर ओर सब कामनाओं को देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ३१ ॥ जोकि खण्डेश्वर के समीप में प्राप्त नामसे खंडसरकहागया है जिसके दर्शनमात्र से मनुष्य सब तीर्थों के फलको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ इसलिये हे वत्स ! तुम सब प्रकार से वहां शीघ्रही जावो इस भांति उनके वचन

प्रभावेन व्रतभङ्गोनजायते ॥ नारदउवाच ॥ शृणुद्विजवरश्रेष्ठ महाकालवनंस्मृतम् ॥ २९ ॥ यत्ररुद्रसरःप्रोक्तं ऋषिणा तत्त्वदर्शिना ॥ कोटिकोटिश्चतीर्थानि वर्तन्तेत्रद्विजोत्तम ॥ ३० ॥ कोटितीर्थमितिख्यातं तत्रद्विजसनातनम् ॥ तस्यचो त्तरभागेच सुतीर्थंसर्वकामदम् ॥ ३१ ॥ नाम्नाखण्डसरःख्यातं खण्डेश्वरसमीपगम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ ३२ ॥ तस्मात्त्वंसर्वथावत्स गच्छस्वतत्रमाचिरम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा सद्विजोगात्कुमुद्वतीम् ॥ ३३ ॥ स्नात्वा खण्डसरेव्यास दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ सद्यःपुण्यवतांलोकान् प्राप्तःसचद्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥ एवंव्यासमहातीर्थं खण्डे श्वरमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेखण्डेश्वरमहिमावर्णनन्नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुपरंतीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ कीर्तितंब्रह्मणापूर्वं मार्कण्डेयस्यपृच्छतः ॥ १ ॥ शृ

को सुनकर वह ब्राह्मण कुमुद्वती पुरीको गया ॥ ३३ ॥ व हे व्यासजी ! खंडसर में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर वह द्विजोत्तम ! शीघ्रही पुण्यवानों के लोकों को प्राप्तहुआ ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! ऐसा महातीर्थ व अति उत्तम खंडेश्वरदेवजी हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांखण्डेश्वरमहिमावर्णनंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । कर्क राज इमि तीर्थ जिमि है महिमा सयुक्त । सो अरसी अध्यायमे अहै कथा सब उक्त ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सब तीर्थों के फलको देनेवाले उत्तम

तीर्थको फिर सुनिये जिसको पहले पूंछते हुये मार्कण्डेयजी से ब्रह्माने कहाहै ॥ १ ॥ हे वत्स ! सुनिये कि महीतल पै जो अनूपम क्षिप्रानदी है उसके किनारे पै कर्क-
राज ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ २ ॥ कि जिसके भलीभांति दर्शनही से महापातकोंका नाश होताहै मनके सब विकार होते हैं और चंद्रमा मनसे उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥
उसके स्थान (कर्कराशि) में प्राप्त उत्तम सूर्यनारायणजी याम्यायन करते हैं वे तीन ऋतुवें धूम्र व प्रकाशरहित कहीगई हैं ॥ ४ ॥ उस दक्षिणायन में मरेहुये योगी
भी संसारमें वर्तमान होते हैं हे परंतप ! चौमासेमें विष्णुजी के सोने पर जे मनुष्य व्रत से रहित होते हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! उनकी उत्तमगति नहीं होती है यह मैं

शृणुवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायासदृशीनदी ॥ तस्यास्तीरेवरंतीर्थं कर्कराजेतिविश्रुतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण महापापक्ष योभवेत् ॥ विकारामानसास्सर्वे चन्द्रोमानससम्भवः ॥ ३ ॥ तस्यस्थानेगतोभानुर्याम्यायनकरःपरः ॥ ऋतुत्रयंसमाख्यातं धूम्रोनार्चिस्तदुच्यते ॥ ४ ॥ तत्रमृत्वाप्रवर्तन्ते योगिनोपिपरन्तप ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते येनराव्रतवर्जिताः ॥ ५ ॥ नतेषांसद्गतिर्वत्स सत्यमेवब्रवीमिते ॥ चातुर्मास्येमृतायेच येमृतादक्षिणायने ॥ ६ ॥ तेषामुद्धारणार्थाय तीर्थमेतद्विनिर्मितम् ॥ कर्कराजइतिख्यातं सर्वलोकेपुगीयते ॥ ७ ॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वंनिर्मितंविश्वमूर्त्तिना ॥ चराचरमिदंविश्वं जगत्सर्वंजगत्पते ॥ ८ ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते धर्माचारविधिःस्मृतः ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुवत्सपरंपुण्यं चातुर्मास्यफलंशुभम् ॥ यच्छ्रुत्वाभारतेखण्डे नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा॥ १० ॥ मुक्तिप्रदोयंभगवान् संसारोत्तमकारणः ॥ यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ११ ॥ मानुषंदुर्लभंलोके

तुम से सत्य कहताहूं जो चौमासे में मरे हैं और जो दक्षिणायन में मरे हैं ॥ ६ ॥ उनके उधारने के लिये यह तीर्थ बनाया गया है जो कि कर्कराज ऐसा प्रसिद्ध
सबलोकों में गायाजाता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन् ! विश्वमूर्त्ति आपने सब निर्माण कियाहै व हे जगत्पते ! चराचर ! यह सब संसार आपहीसे होता
है ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जो धर्म व आचारकी विधि कहीगई है उसको मैं तुमसे सुना चाहताहूं ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स !
परम पुण्यवाला चौमासे का उत्तम फल सुनिये कि जिसको सुनकर भरतखण्ड में मनुष्यों को मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ १० ॥ क्योंकि संसार के उत्तम कारण-

भूत ये भगवान् मुक्तिदायक हैं जिनके स्मरणही से सब पातकों का नाश होताहै ॥ ११ ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है व उसमें भी कुलीनता दुर्लभ है और उस कुलीनता में भी संयम होना व उसमें भी सज्जनों का उत्तम समागम दुर्लभहै ॥ १२ ॥ जहांपर सज्जनों का समागम व विष्णुजीकी भक्तिके व्रत नहीं हैं वहां चौमासेमें विशेषकर विष्णुजी के व्रतको करनेवाला उत्तम होताहै ॥ १३ ॥ चौमासेमें जो नियमरहित होताहै उसका पुण्य निरर्थक होताहै सब तीर्थ, दान व पवित्र देवमन्दिर ॥ १४ ॥ चौमासा आनेपर विष्णुजीके आश्रित होकर टिकते हैं और वे विष्णुजी सदैव कर्कराजनामक उत्तमतीर्थ में टिकेहैं ॥ १५ ॥ उत्तम पुष्टिवाले शरीरसे

तत्रापिचकुलीनता ॥ तत्रापिसंयमत्वञ्च तत्रसत्सङ्गमःशुभः ॥ १२ ॥ सत्सङ्गमोनयत्रास्ति विष्णुभक्तिव्रतानिच ॥ चातुर्मास्येविशेषेण विष्णुव्रतकरःशुभः॥ १३ ॥चातुर्मास्येऽव्रतीयस्तु तस्यपुण्यंनिरर्थकम् ॥ सर्वतीर्थानिदानानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ १४ ॥ विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्ति चातुर्मास्येसमागते ॥ सविष्णुराश्रितोनित्यं कर्कराजेसुतीर्थके ॥ १५ ॥ सुपुष्टिकेनदेहेन जीवितंतस्यशोभनम् ॥ चातुर्मास्येसमायाते हरिर्येनार्चितस्तदा ॥ १६ ॥ कृतार्थास्तस्याविबुधा यावज्जीवंवरप्रदाः ॥ सम्प्राप्यमानुषन्देहं चातुर्मास्येपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ तस्यपापशतान्याहुर्देहस्थानिनसंशयः ॥ मानुषंदुर्लभंलोके हरिभक्तिश्चदुर्लभा॥ १८ ॥चातुर्मास्येविशेषेण सुप्तेदेवेजनार्दने ॥ चातुर्मास्येनराःस्नात्वा कर्कराजेद्विजोत्तम॥ १९॥ सर्वक्रतुफलंप्राप्य देववद्दिविमोदते ॥ विशेषेणतुतत्स्नानं कर्कस्थेपिदिवाकरे ॥ २० ॥ दु

उसका जीवन उत्तम है कि जिसने उस चौमासे में विष्णुजीको पूजा है ॥ १६ ॥ उसके ऊपर जीवनपर्यंत प्रसन्न होतेहुये देवता वरदायक होते हैं मनुष्य के शरीरको प्राप्त होकर जो चौमासे में नियम से विमुख होता है ॥ १७ ॥ उसके शरीर में स्थित सैकड़ों पाप कहेगये हैं इसमें सन्देह नहीं है संसार में मनुष्य होना व विष्णुजी की भक्ति दुर्लभ है, ॥ १८ ॥ और चौमासे में विष्णुदेवजी के सोनेपर विशेषकर दुर्लभहै हे द्विजोत्तम ! चौमासे मे कर्कराजतीर्थ मे नहाकर मनुष्य ॥ १९ ॥ सब यज्ञों के फलको पाकर स्वर्ग में देवताओं की नाईं प्रसन्न रहता है और सूर्यनारायणजी के कर्कराशि में टिकनेपर विशेषकर उसका स्नान करना चाहिये ॥ २० ॥ देवता,

दैत्यों व मनुष्योंसमेत सब प्राणियोंको उसका स्नान दुर्लभ है क्योंकि पहले देहकी पवित्रता करके मनुष्य मुक्तिके मार्ग को पाता है ॥ २१ ॥ तथापि झरना, कूप, तड़ाग व सरोवर में भी जो मनुष्य नित्य नहाता है उसके पाप का नाश होता है ॥ २२ ॥ इसलिये देवताओं व दैत्यों से बावली पुण्यदायिनी नहीं कही गई है किन्तु पुष्कर व प्रयागमें और जहां कहीं बहुत जलमें ॥ २३ ॥ जो पुरुष चार महीनोंमें नहाताहै उसके पुण्यकी संख्या उससे अधिक होतीहै और नर्मदामें व भास्कर-क्षेत्र में तथा प्राचीसरस्वती व गंगासागर के सङ्गम में ॥ २४ ॥ चौमासे में जो मनुष्य एक दिन भी स्नान करता है वह दुःखभागी नहीं होता है जगदीशदेवजी

दुर्लभंसर्वजन्तूनां ससुरासुरमानुषैः ॥ देहशुद्धिंविधायादौ मुक्तिमार्गमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥ तथापिनिर्झरेकूपे तडागेवासरस्यपि ॥ यःस्नातिवैनरोनित्यं तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ २२ ॥ तस्मान्नदीर्घिकापुण्या समाख्यातासुरासुरैः ॥ पुष्करेचप्रयागेच यत्रक्वापिमहाजले ॥ २३ ॥ चातुर्मास्येषुयःस्नाति पुण्यसङ्ख्याततोधिका ॥ रेवायांभास्करेक्षेत्रे प्राच्यांसागरसङ्गमे ॥ २४॥ एकाहमपियस्स्नाति चातुर्मास्येनदुःखभाक् ॥ दिनत्रयञ्चयस्स्नाति नर्मदायांसमाहितः ॥ २५ ॥ सुप्तेदेवेजगन्नाथे पापंयातिसहस्रधा ॥ पक्षमेकञ्चयस्स्नाति गोदावर्य्यांदिनोदये ॥ २६ ॥ सभित्त्वाकर्मजंदेहं यातिविष्णोःसलोकताम् ॥ अवन्त्याङ्कर्कराजेतु साक्षाद्विष्णुर्भवेन्नरः ॥ क्षणमेकंक्षणार्द्धंवा चातुर्मास्येनलङ्घयेत् ॥ २७ ॥ तिलोदकेनामलसंयुतेन बिल्वोदकेनापिचमज्जयेद्यः ॥ नतस्यजानामिफलाधिकंवै किन्तस्यकीदृङ्मुनिभिःप्रणीतम् ॥ २८ ॥ गङ्गांस्मरतियोनित्यमुदपानसमीपतः ॥ तद्गाङ्गेयञ्जलंजातं तेनस्नानंसमाचरेत् ॥ २९ ॥ गङ्गापिदेवदेवस्य चरणाङ्गुष्ठ

के सोने पर सावधान होताहुआ जो मनुष्य तीन दिनतक नर्मदा में स्नान करताहै उसका पाप सहस्रखंड होजाता है और दिनके उदय में जो मनुष्य एक पक्षभर गोदावरी में स्नान करता है ॥ २५ । २६ ॥ वह कर्म से उपजेहुये शरीरको नाशकर विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है अवन्तीपुरी में कर्कराजतीर्थ में मनुष्य साक्षात् विष्णु होताहै एक क्षण व आधा क्षण चौमासे में नियम से उल्लङ्घन करना न चाहिये ॥ २७ ॥ आँवलासे संयुत तिल मिलेहुये जलसे व बिल्व से मिश्रित जलसे जो मनुष्य स्नान करताहै उसके अधिक फलको मैं नहीं जानता हूं कि मुनियों से वह कैसा कहागया है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य नित्य कूप के समीप

ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा है इस लिये सब यत्न से महाकालवनको जाइये ॥ ४८ ॥ वहीं पर हमलोगों का भी अति उत्तम स्थान है चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जब तक बोधिनी एकादशी नहीं आती है ॥ ४९ ॥ उतने समय तक वहां मुक्ति है इस में सन्देह नहीं है व चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर यदि वहां जो मनुष्य शरीर को छोड़ता है ॥ ५० ॥ तो यमलोक में इसका निवास नहीं होताहै इस में सन्देह नहीं है इसलिये तुलसी के समीप व शालग्राम के समीप तथा देवालय में ॥ ५१ ॥ आत्माको प्रणयन कर उसी में जबतक योजित करै जब तक कि प्रबोधिनी द्वादशी होवै ॥ ५२ ॥ पश्चात् घृत व सुवर्ण से आत्माको छुड़ाकर

तत्रैव स्थानम्परमशोभनम् ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते यावन्नायातिबोधिनी ॥ ४९ ॥ तावत्कालंहितत्रास्ति मुक्तिरेवनसंशयः ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते जहातिचेत्कलेवरम् ॥ ५० ॥ यमलोकेनास्यवासो जायतेनात्रसंशयः ॥ तस्मात्तुलसीसमीपे शालग्रामेसुरालये ॥ ५१ ॥ आत्मानंप्रणयीकृत्य तत्रैवसन्नियोजयेत् ॥ यावत्प्रबोधिनीचेति द्वादशीद्विजसत्तम ॥ ५२ ॥ पश्चाद्घृतसुवर्णेन मोचयित्वास्वकन्नयेत् ॥ चातुर्मास्योद्भवोदोषो बाधतेमुन्नमानवम् ॥ ५३ ॥ यस्यक्षिप्रोदके स्नानं कर्कराजेषुजायते ॥ एवंव्यासवरन्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ५४ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि सरितस्सागराश्चये ॥ तेचसर्वेसमायान्ति चातुर्मास्येद्विजोत्तम ॥ ५५ ॥ तस्माच्चतद्वरन्तीर्थं कर्कराजेतियत्स्मृतम् ॥ यएतांवैकथाम्पुण्यां शृण्वन्तिश्रावयन्तिच ॥ ५६ ॥ नतेषांजायतेदोषश्चातुर्मास्योद्भवःकदा ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकर्कराजतीर्थमहिमवर्णनन्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ले आवै चातुर्मास्य से उपजाहुआ दोष इस मनुष्यको नहीं पीड़ित करताहै ॥ ५३ ॥ कि जिसका स्नान क्षिप्रानदी के जलमें व कर्कराजतीर्थोंमें स्नान होताहै हे व्यास जी ! इसप्रकार सब तीर्थोंके फलको देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ५४ ॥ पृथ्वी में जो तीर्थ व नदियां और जो समुद्र हैं हे द्विजोत्तम ! वे सब चौमासेमें इस तीर्थ में भली भांति आतेहैं ॥ ५५ ॥ उसीकारण वह उत्तम तीर्थ है जो कि कर्कराज ऐसा कहागयाहै जो मनुष्य इस पुण्यकथाको सुनते व सुनाते हैं ॥ ५६ ॥ उनको कभी चौमासेसे उपजा हुआ दोष नहीं होताहै ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकर्कराजतीर्थमहिमवर्णनन्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दो०। देवतीर्थ यात्रा किये जो फल होत अनूप। इक्यासी अध्याय में कह्योसोइ मुनिभूप॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुमेरुगिरिके दक्षिणभाग में व दुग्धकुंडके
उत्तर में ऋषभनामक श्रेष्ठपर्वत देवताओं व गंधर्वों से सेवित है ॥ १ ॥ जहांपर हे द्विज ! सदैव सुन्दरी देवांगना क्रीड़ा करती हैं वहांपर सब कामनाओं को देने·
वाला रम्यनामक तड़ाग स्थित है ॥ २ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है जहांपर देवता क्रीड़ा करते हैं वह उत्तमतीर्थ पृथ्वी में
प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ भादों महीने में अनुराधा नक्षत्र से संयुत शुक्लपक्ष की अष्टमी में उसदिन यहां आकर जो मनुष्य स्नान दानादिक कर्मों को ॥ ४ ॥ सदैव करते हैं

सनत्कुमारउवाच ॥ मेरोश्चदक्षिणेभागे दुग्धकुण्डोत्तरेतथा ॥ ऋषभाख्योगिरिश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः ॥ १ ॥
यत्रदेवाङ्गनारम्याः क्रीडन्तिसततंद्विज ॥ तत्ररम्यंसरोनाम तिष्ठतिसर्वकामदम् ॥ २ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सुभगो
जायतेध्रुवम् ॥ यत्रदेवाश्चक्रीडन्ति भुविविख्यातकंपरम् ॥ ३ ॥ भाद्रेमासिसिताष्टम्यां युक्तायामनुराधया ॥ तद्दिनेत्र
समागम्य स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ ४ ॥ कुर्वन्तिसततंव्यास तेषांलोकाःसनातनाः ॥ मेरोश्चसानुकेतीर्थं दिव्यम्प
रमशोभनम् ॥ ५ ॥ बिन्दुसारेतिविख्यातं सर्वकामवरप्रदम् ॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या सरयूश्चतपस्विनी ॥ ६ ॥ एताःस
रिद्वराःप्राप्ता राजन्सत्यवतीसुत ॥ येसिद्धायेचसाध्याश्च महात्मानस्तपस्विनः ॥ ७ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्मिंस्तत्रती
र्थेहिसर्वदा ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वार्थान्प्राप्नुतेध्रुवम् ॥ ८ ॥ भाद्रेमासिचशुक्लावै चतुर्थीयाप्रकीर्त्तिता ॥ सिद्धासा
सर्वदाप्रोक्ता यत्रजातोगणाधिपः ॥ ९ ॥ कामेश्वरइतिख्यातः सर्वकामवरप्रदः ॥ तस्यतीरेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवंगणे

हे व्यासजी ! उनको सनातन लोकहोते हैं और सुमेरुगिरिके शिखरपै, अति उत्तम दिव्यतीर्थ है ॥ ५ ॥ बिन्दुसार ऐसा प्रसिद्ध वह सब कामनाओं के वरों को देनेवाला
है गंगा व सरस्वती तथा तपस्विनी व पुण्यदायिनी सरयूजी ॥ ६ ॥ हे सत्यवती के पुत्र, राजन् ! ये उत्तम नदियां वहां पर प्राप्त हैं जो सिद्ध, साध्य व महात्मा
तपस्वी लोग हैं ॥ ७ ॥ उन्होंने सदैव वहां उसतीर्थ में उपासना किया है उसतीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब अर्थों को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ भादों महीने
में जो शुक्लपक्षवाली चौथि कहीगई है वह सदैव सिद्ध कही गई है जिसमें कि गणेशजी पैदा हुए हैं ॥ ९ ॥ और कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध सब कामनाओं के वरों

को देनेवाले हैं उनके तीर्थ में मनुष्य नहाकर व गणेशदेवजी को देखकर ॥ १० ॥ सैकड़ों मनोरथों को पाकर मनुज कामचारी होता है ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, व्यास जी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये हे महामुने ! उज्जयिनी पुरी में जो तीर्थ हैं ॥ १२ ॥ उन सबों को साठहज़ार वर्षों से भी कहने के लिये चारमुखवाले ब्रह्मा भी कभी समर्थ नहीं हैं ॥ १३ ॥ मेघमालाओं के जितने जलके बूंद गिरते हैं व पृथ्वी में जितनी तृणकी संख्याहै व भूमि में जितने बालू के किनके हैं ॥ १४ ॥ और आकाश के नक्षत्रों की संख्या को कहने के लिये कोई भी नहीं समर्थ है वैसेही हे तपोधन ! अवन्तीपुरी में तीर्थों की संख्या नहीं

श्वरम् ॥ १० ॥ मनोरथशतम्प्राप्य कामचारीभवेन्नरः ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुव्यासऋषिश्रेष्ठ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ उज्जयिन्याश्चतीर्थानि यानिसन्तिमहामुने ॥ १२ ॥ तानिसर्वाण्यसौदेवः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ वर्षाणामयुतैःषड्भिर्नचवक्तुंकदाचन ॥ १३ ॥ यावन्तिमेघमालानांपतन्तिजलबिन्दवः ॥ धरित्र्यांतृणसंख्यावै पृथिव्यांसिकतास्तथा ॥ १४ ॥ नभसोज्योतिषांसङ्ख्यां वक्तुंकोपिनशक्नुयात् ॥ नतीर्थानांतथासङ्ख्या संत्यवन्त्यांतपोधन ॥ १५ ॥ अन्तरिक्षेचमेदिन्यां तीर्थभूतापुरीत्वियम् ॥ वापीकूपतडागादि प्रस्रावोझरणानिच ॥ १६ ॥ नदीसरांसिखाताश्च तीर्थभूतंहिसर्वशः ॥ तथापिदेवयात्रांत्वं प्रसङ्गेननिबोधमे ॥ १७ ॥ यानिकानिचमुख्यानि तानितुभ्यंवदाम्यहम् ॥ यज्ज्ञात्वामोक्ष्यसे नित्यंसर्वाचारैः शुभाशुभैः ॥ १८ ॥ प्रातरुत्थाययोनित्यंशुचिःप्रयतमानसः ॥ श्रुत्वावैसर्वगंधादि तिलाक्षतसमन्वितः ॥ १९ ॥ स्नात्वारुद्रसरेतात तथैवव्रतमाचरेत् ॥ ऊर्जेचमाघमासेवै वैशाखाषाढयोस्तथा ॥ २० ॥ शिवरा

है ॥ १५ ॥ आकाश व पृथ्वीमें यह पुरी तीर्थभूतहै बावली, कूप,तडागादिकों का प्रवाह व झरना ॥ १६ ॥ और नदी,तडाग व खात ये सब वहां तीर्थभूत हैं तौ भी तुम प्रसंग से तीर्थयात्रा को मुझसे सुनो ॥ १७ ॥ जो कोई मुख्य हैं उनको मैं तुमसे कहताहूं कि जिसको जानकर नित्य शुभाशुभ सब आचारोंसे छूटोगे ॥ १८ ॥ नित्य प्रातःकाल उठकर पवित्रमनवाला जो पवित्र मनुष्य इसको सुनकर सब गंधादिक, तिल व अक्षतोंसे संयुत होकर ॥ १९ ॥ हे तात ! रुद्रसर में नहाकर वैसे

ही व्रत करता है वह सब पापों से छूटजाता है और कार्त्तिक व माघ महीने में तथा वैशाख व आषाढ में ॥ २० ॥ व विशेषकर शिवरात्रि में देवयात्रा प्रशस्त है जिस देवता का जो तीर्थ है उस देवता के समीप ॥ २१ ॥ वहां अभिषेक व देवता का पूजन करना चाहिये जो विधिपूर्वक यात्रा करता है वह सब फलको भोगता है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यत्न से मनुष्य देवयात्रा करै ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मनुष्य किसप्रकारसे देवयात्रा करै हे तपोधन ! उस सबको मैं विस्तार से सुना चाहताहूं ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जैसा सुनागया है वैसेही परम गुप्तचरित्र को मैं कहूंगा उसको सुनिये ॥ २५ ॥ पार्वती व महादेव

न्यांविशेषेण देवयात्राप्रशस्यते ॥ यस्यदेवस्ययत्तीर्थंतस्यदेवस्यसन्निधौ ॥२१॥ तत्राभिषेककंकार्यं देवतायाश्चपूजनम् ॥ विधिवदाचरेद्यस्तु सकलंफलमश्नुते ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवयात्रांसमाचरेत् ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण देवयात्राञ्चरेन्नरः ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ २४॥ सनत्कुमार उवाच॥ शृणुव्यासपरंगुह्यं प्रवक्ष्यामियथाश्रुतम् ॥ २५ ॥ उमामहेशसंवादं देवयात्रादिकर्मसु ॥ उमोवाच ॥ प्रभावः कथ्यतां देव क्षेत्रस्यास्यमहेश्वर ॥ २६ ॥ यानितीर्थानिविद्यन्ते यानिलिङ्गानिसन्तिवै ॥ तान्यादृतोदेवभूमन् वदस्ववदतांवर ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन प्रभावंपापनाशम् ॥ क्षेत्रमाद्यंमहादेवि ममातीवप्रियंसदा ॥ २८ ॥ यत्रक्षिप्रा महापुण्या दिव्यानवनदीप्रिया ॥ नीलगङ्गाप्रियामेच तथागन्धवतीनदी ॥ २९ ॥ चत्वारोमेप्रियानद्यः कुमुद्वत्यांहिसुव्रते ॥ ईश्वराश्चतुराशीतिस्तथाष्टौसन्तिभैरवा ॥ ३० ॥ एकादशतथारुद्रा आदित्याद्वादशस्मृताः ॥ षड्वैविनाय

जी का जो संवाद कि देव यात्रादिक कर्मों में हुआ है पार्वतीजी बोलीं कि हे महेश्वर, देवजी ! इस क्षेत्र के प्रभाव को कहिये ॥ २६ ॥ हे भूमन्, देव ! जो तीर्थ व जो लिंग विद्यमान हैं हे वदतांवर ! उनको आदर से कहिये ॥ २७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! बड़े यत्नसे पापनाशक प्रभाव को सुनिये हे महादेवि ! वह आदितीर्थ मुझको सदैव बड़ा प्यारा है ॥ २८ ॥ जहां कि महापुण्यदायिनी दिव्यक्षिप्रानदी व प्यारी नवनदी है नीलगंगा व गंधवती नदी मुझको प्यारी है ॥ २९ ॥ हे सुव्रते ! कुमुद्वती पुरी में मुझको प्यारा चार नदियां हैं व चौरासी महादेव तथाआठ भैरव हैं ॥ ३० ॥ वैसेही गेरह रुद्र व बारह आदित्य (सूर्य) कहेगये हैं और

यहां छा विनायक व चौबिस देवियां हैं ॥ ३१ ॥ हे भद्रे ! जिसलिये उत्तम महाकाल वनमें मैं आया उसी कारण हे शुभे ! यहींपर विष्णु व ब्रह्मादिक सब उपस्थित हुये ॥ ३२ ॥ हे देवि ! योजन भरकी प्रमाण को प्राप्त यह क्षेत्र देवताओं से व्याप्त है जो दशविष्णु कहेगये हैं उनके नामों को मुझसे सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वासुदेव, अनन्त, बलराम, जनार्दन, नारायण, हृषीकेश, वाराह, धरणीधर, ॥३४॥ व वामनरूप से विष्णुजी तथा लक्ष्मीजी के स्थान शेषशायी भगवान् ये उत्तम दश विष्णु सब पातकों के हरनेवाले कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे भगवन् ! मनोहर महाकाल वनमें जो देवेश बसते हैं उन देवताओं के चरित्रों को क्रमसे

काश्चात्र देव्यश्चचतुर्विंशतिः ॥ ३१ ॥ यतोहमागतोभद्रेमहाकालवनोत्तमे ॥ विष्णुब्रह्मादयःसर्वे ह्यत्रैवनिहिताःशुभे ॥ ३२ ॥ देवैर्व्याप्तमिदंक्षेत्रं देवियोजनमागतम् ॥ दशविष्णवआख्यातास्तेषांनामानिमेशृणु ॥ ३३ ॥ वासुदेवो ह्यनन्तश्च बलरामोजनार्दनः ॥ नारायणोहृषीकेशो वाराहोधरणीधरः ॥ ३४ ॥ विष्णुर्वामनरूपेण शेषशायीरमालयः ॥ दशैतेविष्णवःप्रोक्ताः सर्वपापहराःपराः ॥ ३५ ॥ उमोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देवानामनुपूर्वशः ॥ महाकालवनेरम्ये येवसन्तिसुरेश्वराः ॥ ३६ ॥ विनायकाभैरवाश्च दैत्यायेपवनात्मजाः ॥ रुद्रादित्यास्तथाचान्ये तेषां नामानिमेप्रभो ॥ ३७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ऋद्धिदःसिद्धिदोनित्यं कामदोवैगणाधिपः ॥ विघ्नहाचप्रमोदीच चतुर्थीव्रतकप्रियः ॥ ३८ ॥ षडेतेवैसमाख्याता विघ्ननाशकराःपराः ॥उमाचण्डीश्वरीगौरी ऋद्धिदासिद्धिदानृणाम्॥३९॥वटयक्षिणीवीरभद्रेत्यष्टौतामातरःस्मृताः॥ महामायासतीख्याता कपालमातृकातथा ॥ ४० ॥ अम्बिकाशीतलाचैव एका

लगाकर सुनना चाहताहूं ॥ ३६ ॥ विनायक, भैरव, दैत्य व जो पवन कुमार हैं व रुद्र, आदित्य तथा अन्य जो कोई हैं हे प्रभो ! मुझसे उनके नामोंको कहिये ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि ऋद्धिदायक, सिद्धिदायक व नित्यही कामदायक, गणनायक, विघ्ननाशक, आनन्दी व चतुर्थी व्रतप्रिय ॥ ३८ ॥ ये छा उत्तम विघ्ननाशक कहेगये हैं और उमा, चंडी, ईश्वरी, गौरी व मनुष्यों को ऋद्धिदायिनी तथा सिद्धिदायिनी ॥ ३९ ॥ और वटयक्षिणी व वीरभद्रा ये आठ वे मातृका कहीगई हैं महा-

माया सती कही गई हैं और कपाल मातृका ॥ ४० ॥ व अंबिका शीतला तथा एका, अनन्ता, अष्टसिद्धिदायिनी, ब्रह्माणी, पार्वती व योगसे शोभित योगिनी ॥ ४१ ॥ कौमारी, भगवती व छा कृत्तिकाएं ये चर्पटमातृका व वटमातृका कहीगई हैं ॥ ४२ और सरस्वती कहीगई हैं व प्रसिद्ध महालक्ष्मी ये योगिनी मातृका कहीगई हैं और चौंसठिमातृका कहीगई हैं ॥ ४३ ॥ और कालिका, महाकाली, ब्रह्मचारिणी, चामुण्डा व वैष्णवी कहीगई है और वाराही, विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ और अंबा अम्बालिका ये उत्तम चौबीस मातृकाएं हैं व हनूमान्, ब्रह्मचारी, कुमारेश व महाबली ॥ ४५ ॥ इनचार पवनपुत्रोंको मैंने तुमसे कहा और पराक्रमी दंडपाणि व

नन्ताष्टसिद्धिदा ॥ ब्रह्माणीपार्वतीचैव योगिनीयोगशालिनी ॥ ४१ ॥ कौमारीभगवतीचैव षट्कृत्तिकास्तथैवच ॥ चर्पटमातृकाःख्याता वटमातरस्तथैवच ॥ ४२ ॥ सरस्वतीतथाख्याता महालक्ष्मीश्चविश्रुता ॥ योगिनीमातृकाःख्याताश्चतुःषष्टमातृकाःस्मृताः ॥ ४३ ॥ कालिकाचमहाकाली चामुण्डाब्रह्मचारिणी ॥ वैष्णवीचसमाख्याता वाराहीविन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ अम्बाचाम्बालिकाचैव चतुर्विंशतिकाःपराः ॥ हनूमान्ब्रह्मचारीच कुमारेशोमहाबली ॥ ४५ ॥ चत्वारोवैसमाख्याता मयातेपवनात्मजाः ॥ दण्डपाणिश्चविक्रान्तो महाभैरवसंज्ञितः ॥ ४६ ॥ वटुकोबालकोनन्दी षट्पञ्चाशतकोपरः ॥ कालभैरवविख्यातो महापापहरःपरः ॥ ४७ ॥ कपर्दीचकपालीच कलानाथोवृषासनः ॥ त्र्यम्बकःशूलपाणिश्च चीरवासादिगम्बरः ॥ ४८ ॥ गिरीशःकामचारीच शर्वःसर्वाङ्गभूषणः ॥ रुद्राश्चैकादशप्रोक्ताः सर्वशत्रुविनाशनाः ॥ ४९ ॥ अरुणःसूर्यवेदाङ्गो भानुश्चरविरंशुमान् ॥ सुवर्णरेताहःकर्ता मित्रोविष्णुःसनातनः ॥ ५० ॥ इत्येतेद्वादशादित्याः सर्वरोगहराःपराः ॥ अगस्त्येश्वरमुख्यानां लिङ्गानाञ्चतुराशिनाम् ॥ ५१ ॥ हिमाचल

महाभैरव नामक ॥ ४६ ॥ वटुक, बालक, नन्दी व अन्य षट्पंचाशतक तथा प्रसिद्ध कालभैरव व अन्य महापापहारक हैं ॥ ४७ ॥ और कपर्दी, कपाली, कलानाथ, वृषासन, त्रिलोचन, शूलपाणि, चीरवासा, दिगंबर ॥ ४८ ॥ गिरीश, कामचारी व शर्व, सर्वांगभूषण ये सब शत्रुओं के विनाशकारक गेरह रुद्र कहेगये हैं ॥ ४९ ॥ अरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, रवि, अशुमान्, सुवर्णरेता, दिनकर्ता, मित्र, विष्णु, सनातन ॥ ५० ॥ ये सब रोगोंके हरनेवाले उत्तम बारह आदित्य हैं हे हिमालय-

कन्यके ! अगस्त्येश्वर जिनमें मुख्य हैं उन चौरासी लिंगों के नामों को कहतेहुये मुझसे सदैव सुनिये कि अगस्त्येश्वर कहेगये हैं तदनन्तर गुहेश्वर ॥ ५१।५२ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! ढुंढेश्वर व डमरुकेश्वर कहेगये हैं और अनादिकल्पेश शिवजी हैं व अन्य स्वर्णजालेश्वर हैं ॥ ५३ ॥ और त्रिविष्टपेश्वर देव व कपालेश्वरसंज्ञक तथा कर्कोटकेश्वर शिव तदनन्तर सिद्धेशजी ॥ ५४ ॥ व स्वर्गद्वारेश रुद्र तथा अन्य लोकपालेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं तदनन्तर कुटुंबेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर इंद्रद्युम्नेश्वर कहेगये हैं व ईशानेशजी तथा अप्सरेश्वर विख्यात हैं व उसके उपरान्त कलकलेश्वरजी हैं ॥ ५६ ॥ व दिनके पाप को हरने-

मुत्तेनित्यं नामानिगदतःशृणु ॥ अगस्त्येश्वरआख्यातोगुहेश्वरस्ततःपरम् ॥ ५२ ॥ ढुण्ढेश्वरस्ततःप्रोक्तो डमरुकेशश्चभामिनि ॥ अनादिकल्पेशःशम्भुः स्वर्णजालेश्वरःपरः ॥ ५३ ॥ त्रिविष्टपेश्वरोदेवः कपालेश्वरसंज्ञकः ॥ कर्कोटकेश्वरःशम्भुः सिद्धेशश्चततःपरम् ॥ ५४ ॥ स्वर्गद्वारेश्वरोरुद्रो लोकपालेश्वरःपरः ॥ कामेश्वरइतिख्यातः कुटुम्बेशस्ततःपरम् ॥ ५५ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरःख्यात ईशानेशस्ततःपरम् ॥ अप्सरेश्वरविख्यातः कलकलेशस्ततःपरम् ॥ ५६ ॥ नागचण्डेश्वरोदेवो दिवापापहरःपरः ॥ प्रतिहारेश्वरश्चैव कुक्कुटेशोह्यतःपरम् ॥ ५७ ॥ मेघनादेश्वरः पुण्यः महाकालेश्वरःपरः ॥ मुक्तेश्वरःसमाख्यातः सोमेशश्चततःपरम् ॥ ५८ ॥ खण्डेश्वरःसमाख्यातः पतनेशः परःस्मृतः ॥ आनन्देशस्ततःप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ ५९ ॥ इन्द्रेश्वरइतिख्यातो मार्कण्डेयेश्वरःपरः ॥ शिवेश्वरइतिप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ ६० ॥ अक्रूरेशइतिप्रोक्तः कुण्डेशश्चततःपरम् ॥ लुम्पेश्वरःसमाख्यातस्ततो

वाले अन्य नागचण्डेश्वरजी हैं व प्रतिहारेश्वर तथा इसके उपरान्त कुक्कुटेशजीहैं ॥ ५७ ॥ व पुण्यदायक मेघनादेश्वर व अन्य महाकालेश्वरजी हैं और मुक्तेश्वर कहेगये हैं व तदनन्तर सोमेशजी हैं ॥ ५८ ॥ और खण्डेश्वर कहेगये हैं व अन्य पतनेशजी कहेगये हैं तदनन्तर आनन्देश व उसके उपरान्त कुसुमेशजी कहेगये हैं ॥ ५९ ॥ व इन्द्रेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा अन्य मार्कंडेयेश्वरजी व शिवेश्वर ऐसे कहेगये हैं उसके उपरान्त कुसुमेशजी कहेगये हैं ॥६०॥ और अक्रूरेश ऐसे कहेगये हैं

तदनन्तर कुंडेशजी व लुंवेश्वरजी कहेगये उसके उपरान्त गंगेश्वरजी हुयेहैं ॥ ६१ ॥ व शूलेश्वर ऐसे प्रसिद्धहैं तदनन्तर ॐकारेशजी कहेगयेहैं व कंटकेश महारुद्र व उसके उपरान्त सिंहेशजी कहेगये हैं ॥ ६२ ॥ व घटेश्वरपूर्वक उत्तम रेवन्तेश्वर देवजी हैं व प्रयागेश्वर महादेवजी और तदनन्तर सिद्धेश्वरजी हैं ॥ ६३ ॥ व अन्य मातंगेश्वर देव तदनन्तर सौभाग्येशदेवजी कहेगये और प्रसिद्ध रूपेश्वरदेवजी व इसके उपरान्त ब्रह्मेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६४ ॥ और षष्टिजल्पेश्वरदेव व केदारेश्वरजी कहेगये हैं और पिशाचेश्वर शंभु तदनन्तर संगमेशजी कहेगये हैं ॥ ६५ ॥ और प्रसिद्ध दुर्धर्षेश्वर व चन्द्रादित्येश्वर कहेगये हैं तदनन्तर पुष्पदन्तेश्वर

गङ्गेश्वरोभवत ॥ ६१ ॥ शूलेश्वरेतिविख्यात ॐकारेशस्ततःस्मृतः ॥ कण्टकेशोमहारुद्रः सिंहेशश्चततःपरम् ॥ ६२ ॥ रेवन्तेशःपरोदेवो घण्टेश्वरपुरस्सरः ॥ प्रयागेशोमहादेवः सिद्धेश्वरस्ततःपरम् ॥ ६३ ॥ मातङ्गेशःपरोदेवः सौभाग्येशस्ततःपरः ॥ रूपेश्वरेतिविख्यातो ब्रह्मेश्वरोह्यतःपरम् ॥ ६४ ॥ षष्टिजल्पेश्वरोदेवः केदारेश्वरएवच ॥ पिशाचेश्वरशम्भुश्च सङ्गमेशस्ततःपरः ॥ ६५ ॥ दुर्धर्षेश्वरविख्यातश्चन्द्रादित्येश्वरःस्मृतः ॥ पुष्पदन्तेश्वरोदेवश्चाविमुक्तेश्वरस्ततः ॥ ६६ ॥ करभेश्वरःपरःप्रोक्तो राजस्थलेश्वरःशिवः ॥ वटेश्वरस्ततःप्रोक्तो ऋद्धेश्वरस्ततःपरम् ॥ ६७ ॥ नीलकण्ठइतिख्यातः स्थानेश्वरोह्यतःपरम् ॥ कामेश्वरइतिप्रोक्तः प्रतिहारेश्वरःपरः ॥ ६८ ॥ पाशुपतेश्वरः प्रोक्तो विश्वेश्वरस्ततःपरः ॥ सुवर्णेशइतिख्यातः कामनेशस्ततःपरः ॥ ६९ ॥ दुर्वासेशःपरंलिङ्गं सौभाग्येशमतःपरम् ॥ खर्परेशःपरःशम्भुर्ब्रह्मचारीश्वरस्ततः ॥ ७० ॥ पातालेशःसमाख्यातो ह्यतोगुप्तेश्वरःस्मृतः ॥ कपिलेश्वरइ

देवजी और अविमुक्तेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६६ ॥ अन्य करभेश्वरजी कहेगये व राजस्थलेश्वर शिवजी कहेगये हैं तदनन्तर वटेश्वरजी कहेगये उसके उपरान्त सिद्धेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६७ ॥ व नीलकंठ ऐसे कहेगये और इसके उपरान्त स्थानेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे कहेगये तथा अन्य प्रतिहारेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६८ ॥ तदनन्तर पाशुपतेश्वर व अन्य विश्वेश्वरजी कहेगये उसके उपरान्त सुवर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कामनेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ६९ ॥ और उत्तम दुर्वासेश्वर लिंग व इसके उपरान्त सौभाग्येश लिंग है व अन्य खर्परेश्वर शिव और तदनन्तर ब्रह्मचारीश्वर कहेगये हैं ॥ ७० ॥ व इसके उपरान्त पातालेश्वर कहेगये व गुप्तेश्वरजी

कहेगये हैं व कपिलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा इसके उपरान्त योगेश्वर कहेगये हैं ॥ ७१ ॥ व भीमेश्वर ऐसे कहेगये और धनुःसाहस्रनामक हैं व तदनन्तर अग्नीश्वर और तदनन्तर देवेशजी कहेगये हैं ॥ ७२ ॥ व द्वादशार्कजी कहेगये हैं और दशाश्वमेधिकेश्वर व गदाधरेश्वर तथा वैजनाथ ऐसे शंभुराज कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ और तदनन्तर सोमनाथेश्वर व कुसुमेशजी कहेगये हैं उसके उपरान्त भीमशंकरनामक तथा घंटेशजी कहेगये हैं ॥ ७४ ॥ तदनन्तर औषधेश्वर शंभु व नरादित्य जी कहेगये हैं और अन्य केशवार्क व शक्तिभेदेश्वर कहेगये हैं ॥ ७५ ॥ अन्य रामेश्वरदेव व बाल्मीकेश्वर शिव कहेगये तदनन्तर जालेश्वर शिव व अभयेश्वर

तिख्यातो ह्यतोयोगेश्वरःस्मृतः ॥ ७१ ॥ भीमेश्वरइतिख्यातो धनुःसाहस्रनामकः ॥ अग्नीश्वरःपरःप्रोक्तो देवेशश्च ततःपरम् ॥ ७२ ॥ द्वादशार्कःसमाख्यातो दशाश्वमेधिकेश्वरः ॥ गदाधरेश्वरःख्यातो वैजनाथेतिशम्भुराट् ॥ ७३ ॥ सोमनाथेश्वरःख्यातः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ भीमशङ्करनामाच घण्टेशश्चततःपरम् ॥ ७४ ॥ औषधेश्वरशम्भुश्च नरादित्यस्ततःपरम् ॥ केशवार्कःसमाख्यातः शक्तिभेदेश्वरःपरः ॥ ७५ ॥ रामेश्वरःपरोदेवो बाल्मीकेश्वरशङ्करः ॥ जालेश्वरःशिवःप्रोक्तोऽभयेश्वरस्ततःपरम् ॥ ७६ ॥ विघ्नहर्तेश्वरःप्रोक्तश्चञ्चलेश्वरनामकः ॥ पुरुषोत्तमेतिविख्यातो विश्वेशश्चततःपरम् ॥ ७७ ॥ कर्णेश्वरइतिख्यातःपृथुकेशस्ततःपरम् ॥ अनन्तेश्वरविख्यातःकोटेशश्चततःपरम् ॥ ७८ ॥ अविमुक्तेश्वरःप्रोक्तो हनुमत्केश्वरःपरः ॥ विमलेश्वरेतिविख्यातश्चन्द्रेशश्चततःपरम् ॥ ७९ ॥ बिन्दुकेशस्ततःप्रोक्तो बालकेश्वरसंज्ञकः ॥ सहस्रलिङ्गकोदेवःसङ्ख्यासङ्ख्येश्वरःपरः ॥ ८० ॥ यानिकानिचतीर्थानि या

जी कहेगये हैं ॥ ७६ ॥ और विघ्नहर्तेश्वर व चंचलेश्वर नामक कहेगये हैं तदनन्तर पुरुषोत्तम ऐसे प्रसिद्ध व विश्वेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ७७ ॥ तदनन्तर कर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व पृथुकेश्वरजी कहेगये हैं उसके उपरान्त अनंतेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कोटेश्वरजी कहेगये ॥ ७८ ॥ और अविमुक्तेश्वर व अन्य हनुमत्केश्वरजी कहेगये तदनन्तर विमलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व चन्द्रेश्वरजी हैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बिंदुकेश्वर व बालकेश्वर संज्ञक कहेगये हैं व सहस्रलिंगके देव और अन्यसंख्यासंख्येश्वर

जी कहेगये हैं ॥ ८० ॥ हे सत्तम ! जो कोई तीर्थ व जो लिंग हैं वे सब पूजनीय व प्रणाम करने योग्य वहां स्थित हैं ॥ ८१ ॥ और सब चार द्वारपाल महात्माओं को विदित हैं उनमें पिंगलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध द्वारपाल पश्चिम के द्वार पै टिके हैं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर उत्तरसंज्ञक द्वारपै उत्तरेशजी हैं ये व अन्य बहुत से भुवनेश्वर लिंग ॥ ८३ ॥ मनोहर महाकालवनमें पवित्रकारक कहेगये हैं जो कि साठकरोड़हज़ार व साठकरोड़ सौ हैं ॥ ८४ ॥ हे व्यासजी ! महाकालवनमें लिंगों की संख्या नहीं है तौ भी मैंने यहां मुख्यता से कहा है ॥ ८५ ॥ जिस देवताका जो तीर्थ है उसका नाम कहागया है उनमें नहाकर व उस दानको देकर उसको तीर्थ का फल

नि लिङ्गानि सत्तम ॥ तिष्ठन्ति तत्र पूज्यानि तानि वन्द्यानि सर्वशः ॥ ८१ ॥ चत्वारो विदिताः सर्वे द्वारपाला महात्मभिः ॥ पिङ्गलेश्वर आख्यातः पश्चिमद्वारमाश्रितः ॥ ८२ ॥ उत्तरेशस्ततः प्रोक्तो द्वारे चोत्तरसंज्ञके ॥ एते चान्ये च बहवो लिङ्गानि भुवनेश्वराः ॥ ८३ ॥ महाकालवने रम्ये समाख्याता हि पावनाः ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥ ८४ ॥ महाकालवनेऽप्यासं लिङ्गसङ्ख्या न विद्यते ॥ तथापि च प्राधान्येन मयात्र परिकीर्तितम् ॥ ८५ ॥ यस्य देवस्य यत् तीर्थं तन्नाम परिकीर्तितम् ॥ स्नात्वा दत्त्वा च तद्दानं तस्य तीर्थफलं भवेत् ॥ ८६ ॥ तथा नवग्रहाः पुण्याः समाख्याताः पुरानघ ॥ तेषान्नामानि पुण्यानि तीर्थानि चैव मे शृणु ॥ ८७ ॥ शङ्करादित्यविख्यातः सोमेशश्च ततः परम् ॥ मङ्गलेश्वर आख्यातो बुधेशश्च ततः परम् ॥ ८८ ॥ बृहस्पतीश्वरः प्रोक्तस्तथा शुक्रेश्वरः शिवः ॥ शनीश्वरो महादेवः समाख्यातो मुनीश्वर ॥ ८९ ॥ राहुकेतू समाख्यातौ तयोस्तीर्थे हि सत्तम ॥ तयोः खलु नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९० ॥

होता है ॥ ८६ ॥ वैसेही हे अनघ ! पुरातन समय पुण्यदायक नवग्रह कहेगये हैं उनके पवित्रनामों व तीर्थों को मुझसे सुनिये ॥ ८७ ॥ कि शंकरादित्य ऐसे प्रसिद्ध हैं व तदनन्तर सोमेशजी और मंगलेश्वर व तदनन्तर बुधेशजी कहेगये हैं ॥ ८८ ॥ और बृहस्पतीश्वर व शुक्रेश्वर शिवजी कहेगये हैं व हे मुनीश्वर ! शनीश्वर महादेवजी कहेगये हैं ॥ ८९ ॥ हे सत्तम ! जो राहु, केतु कहेगये हैं उनके जो तीर्थ हैं उनमें नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ९० ॥ ग्रह राज्यको

देतेहैं व ग्रह राज्यको हरतेहैं और चराचर समेत सब त्रिलोक ग्रहोंसे व्याप्तहै ॥९१॥ ग्रहोंके तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य ग्रहों का पूजन करता है उसको कभी ग्रहों की पीड़ा बाधा नहीं करती है ॥ ९२ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मैंने तुमसे अत्यन्तपवित्र, श्रेष्ठ, पवित्र व पापनाशिनी देवतीर्थ से उपजीहुई यात्रा को कहा ॥ ९३ ॥ उग्र ग्रहों की पीड़ाओं में तथा दरिद्रता व भयंकर संकट में उन मनुष्यों के उधारने के लिये देवयात्रा कहीगई ॥ ९४ ॥ जो उत्तम मनुष्य इन तीर्थों में स्नान करते हैं उनको तीनोंलोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ पुत्ररहित मनुष्य पुत्रको पाताहै और निर्धनी धनको पाताहै और ब्राह्मण विद्यावान् होताहै व क्षत्रिय विजयवान्

ग्रहाराज्यंप्रयच्छन्ति ग्रहाराज्यंहरन्तिच ॥ ग्रहैस्तुव्यापितंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ९१ ॥ ग्रहतीर्थेनरःस्नात्वा ग्रहाणामर्चनञ्चरेत् ॥ नतस्यग्रहपीडावै बाधतेनकदाचन ॥ ९२ ॥ एवंव्याससमाख्याता मयातेदेवतीर्थजा ॥ यात्रापुण्यतराश्रेष्ठा पवित्रापापनाशिनी ॥ ९३ ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासु दारिद्र्येघोरसङ्कटे ॥ तेषामुद्धारणार्थाय देवयात्राप्रकीर्तिता ॥ ९४ ॥ अवगाहनमेतेषु येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ ९५ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं निर्धनोधनमाप्नुयात् ॥ विद्यावाञ्जायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ ९६ ॥ अक्षयासन्ततिस्तस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवतीर्थयात्रामहिमवर्णनन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

व्यास उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं कथितंदेवमूर्तिना ॥ अवन्तीतीर्थमाहात्म्यं यद्विप्रवेदसम्मतम् ॥ १ ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ महाकालवनेरम्ये अवन्त्यांभुविसत्तम ॥ २ ॥ तीर्थानिकतिसंख्यानि विद्यन्तेह्यत्र

होताहै ॥ ९६ ॥ और उसकी अविनाशिनी सन्तान होती है व शिवलोक में वह पूजाजाता है ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांदेवतीर्थयात्रामहिमवर्णनंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । तीर्थ अवन्ती यान करहि फल अतिसुखदाइ । बयासिवें अध्यायमें सोई चरित सुहाइ ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! देवमूर्तिधारी आपने सब अवन्ती तीर्थ के माहात्म्यको कहा जोकि ब्राह्मणों व वेदोंसे संमत है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर,सत्तम ! मैं तुमसे फिर यह सुनना चाहताहूं कि पृथ्वीमें अवन्तीपुरी में सुन्दर महा-

कालवन में ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! यहां कितने संख्यक तीर्थ विद्यमान हैं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! बुद्धिमान् नारदजी का व पार्वती, शिवजी का संवाद हुआहै पुरातन समय नारदजीने इस प्रश्न को पूछा है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन् ! उत्तम महाकालवनमें जो तीर्थ विद्यमान हैं उनको मुझसे विस्तार से कहिये मैं सुनना चाहताहूं ॥ ५ ॥ हे अनघ, विप्रजी ! पहले उस समय इसप्रकार पूछेहुये पार्वती समेत सदाशिवजी नम्रवाणी से बोले ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सुव्रत, ऋषिश्रेष्ठ ! सुनिये कि उत्तम महाकालवनमें जो तीर्थ स्थित हैं उनको मैं कहूंगा ॥ ७ ॥ पृथ्वी

सुव्रत ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ कथांपापहरांपराम् ॥ ३ ॥ उमामहेशसंवादो नारदस्यचधीमतः ॥ नारदेनपुरापृष्टे प्रश्नमेतंद्विजोत्तम ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि महाकालवनेशुभे ॥ तीर्थानियानि विद्यन्ते तानिनोवदविस्तरात् ॥ ५ ॥ इतिपृष्टस्तदाविप्र नारदेनपुरानघ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा उमयासहितोहरः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणुष्वभोऋषिश्रेष्ठ महाकालवनेशुभे ॥ तीर्थानियानितिष्ठन्ति तानिवक्ष्यामिसुव्रत ॥ ७ ॥ पुष्कराद्यानितीर्थानि यानिकानिमहीतले ॥ तानिसर्वाणिवर्तन्ते महाकालवनोत्तमे ॥ ८ ॥ असङ्ख्यातसहस्राणि कोटिकोटीनिसत्तम ॥ रुद्रसरेनिमज्जन्ति कोटितीर्थंतथोच्यते ॥ ९ ॥ नीहारकर्णिकांवृष्टिङ्गिरौवर्षतिकिन्नरः ॥ हिमान्तेचैवदृश्यन्ते तीर्थेपैशाचमोचने ॥ १० ॥ नहिसङ्ख्यांविजानामि तीर्थानांमुनिसत्तम ॥ कियन्तिसन्तितीर्थानि लिङ्गानिचतथैवच ॥ ११ ॥ तथापितुप्राधान्येन कथयिष्यामिसत्तम ॥ संवत्सरस्ययावन्ति अहानिचद्विजोत्तम ॥ १२ ॥

में पुष्करादिक जो कोई तीर्थ हैं वे सब उत्तम महाकालवन में वर्तमान हैं ॥ ८ ॥ हे सत्तम ! असंख्य हज़ार व करोड़ों कोटितीर्थ रुद्रसर में स्नान करते हैं इससे वह कोटितीर्थ कहाजाता है ॥ ९ ॥ और पर्वतपै किन्नर कुहर से व्याप्त वृष्टिको करते हैं और हेमन्त ऋतुके अन्तमें सब तीर्थ पिशाचमोचन नामक तीर्थ में देख पड़ते हैं ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तीर्थों की संख्या को नहीं जानताहूं कि कितने तीर्थ व लिंग हैं ॥ ११ ॥ तथापि हे सत्तम ! प्रधानता से कहूंगा। हे द्विजोत्तम ! वर्षभर

के जितने दिन होते हैं ॥ १२ ॥ हे परंतप ! उतने प्रसिद्ध तीर्थों को मनुष्य नित्य प्राप्त होता है और वर्षपूर्ण होनेपर अवन्तीपुरी की यात्रा होती है ॥ १३ ॥ उसको विधिपूर्वक जो करता है वह साक्षात् देवताओं में उत्तम होता है और हजारों मन्वन्तरों तक काशीजी के निवास में जो फल होता है ॥ १४ ॥ वह फल वैशाख महीने में अवन्तीपुरी में पांच दिनों से होता है इसलिये मोक्ष चाहनेवाले पुरुषको बड़े यत्न से अवन्तीपुरी को जाना चाहिये ॥ १५ ॥ और वैशाख महीने में विशेषकर मनुष्य अवन्ती में स्नानकरै हे व्यासजी ! जो मनुष्य अवन्तीपुरीमें वैशाख महीनेको प्राप्त होकर ॥ १६ ॥ विधिपूर्वक वर्षभरतक प्रत्येक तीर्थमें नहाताहै वह सब दानों

तावन्तिप्राप्नुते नित्यंप्रसिद्धानिपरंतप ॥ संवत्सरपारिपूर्णेजायतेवन्तियात्रिका ॥ १३ ॥ विधिवत्कुरुतेयस्तु साक्षात्स विबुधोत्तमः ॥ मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेचयत्फलम् ॥ १४ ॥ तत्फलंजायतेवन्त्यां वैशाखेपञ्चभिर्दिनैः ॥ तस्माद वन्तीगन्तव्या प्रयत्नेनमुमुक्षता ॥ १५ ॥ माधवेपिविशेषेणाह्यवन्तीस्नानमाचरेत् ॥ योवैवैशाखमासाद्य ह्यवन्त्यांव्या समानवः ॥ १६ ॥ संवत्सरंप्रतिस्नातस्तीर्थेतीर्थेयथाविधि ॥ दत्त्वादानानिसर्वाणि सकलंफलमश्नुते ॥ १७ ॥ भु क्त्वाभोगान्सविपुलाञ्छिवलोकेमहीयते ॥ यत्रकुत्रापियोनित्यं नरोनिश्चलमानसः ॥ १८ ॥ शृणोत्येकमनाःपुण्यां पूजयित्वाचवाचकम् ॥ सत्कृत्यविधिवद्वत्स वासोलङ्कारभूषणैः ॥ १९ ॥ अन्यैश्चविविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेणच ॥ नत स्यदुर्लभंकिञ्चिद्विद्यतेभुविसत्तम ॥ २० ॥ एवंव्यासपुराशम्भुर्नारदायसुधीमते ॥ उवाचपरमाख्यानमवन्तीव्रत मुत्तमम् ॥ २१ ॥ तेनप्रख्यापितंपुण्यं सर्वलोकेषुसत्तम ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं मयासत्यव्रतीसुत ॥ २२ ॥ अवन्तीतीर्थ

को देकर समस्त फल को भोगता है ॥ १७ ॥ और बहुत सुखों को भोगकर वह शिवलोकमें पूजा जाताहै व जहां कहीं भी नित्य अचल मनवाला जो मनुष्य ॥ १८ ॥ सावधान मन होकर बांचनेवाले को पूजकर पुण्यदायिनी कथा को सुनता है व हे वत्स ! विधिपूर्वक, वसन, अलंकार व भूषणों से सत्कार कर ॥ १९ ॥ व अनेक प्रकार के अन्य भोगों के दानों से जो वाचक को पूजता है हे सत्तम ! उसको पृथ्वीमें सालभर में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २० ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! पुरातन समय सदाशिवजी ने बुद्धिमान् नारदजी से अवन्ती पुरी के उत्तम व्रतरूपी परमकथानक को कहा है ॥ २१ ॥ व उन्हों ने हे सत्तम ! सब लोकों में इस पुण्यमय

कथानकको कहाहै हे सत्यवतीसुत ! मैंने इस सब चरित्रको तुमसे कहा ॥ २२ ॥ जोकि अवन्तीतीर्थ यात्राका सनातन आख्यान था हे द्विजोत्तम ! फिर तुम्हारे क्या सुनने की इच्छाहै ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यवर्णनंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

दो०। जेहि तीरथ में जौन फल मिलत अवन्ती मध्य। तिरासिवें अध्यायमें सोइ चरित सुख मध्य ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मविदांवर ! अवन्ती पुरीकी बहुतपुण्य- वाली महिमा को मैंने तुम से सुना और तुमसे फिर सुना चाहता हूं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम ! ब्रह्म के जाननेवाले तुमने ब्रह्मचारियों के इस तीर्थ के वर्षभर व्रत के पा-

यात्रायाः कथाख्यानंसनातनम् ॥ भूयःकिंश्रोतुमिच्छातेवर्ततेद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख ण्डेऽवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ अवन्त्याश्चपरंपुण्यं महिमानंश्रुतंमया ॥ १ ॥ त्वया ब्रह्मविदाप्रोक्तं वत्सरव्रतपारणम् ॥ तीर्थस्यास्यसुविस्तारात्स्नातकानांद्विजोत्तम ॥ २ ॥ अचिरेणतुकालेन तीर्थस्यफ लमश्नुते ॥ सिद्धोभूत्वानरोयाति तद्वदस्वद्विजोत्तम ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ गुह्याद्गुह्यतरंवत्स पृच्छसित्वंममान घ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वत्वंसमाहितः ॥ ४ ॥ महाकालंततोगच्छेन्नियतोनियतात्मना ॥ कोटितीर्थेनरस्स्ना त्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ५ ॥ नास्तिवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायास्सदृशीनदी ॥ यस्यानिरीक्षणान्मुक्तिः किंचिरात्सेवनेन वै ॥ ६ ॥ माधवेमासियोदेवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ मोचनेमुच्यतेनित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥ ७ ॥ अवन्त्यामङ्गपा

रण को विस्तारसे कहा है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिससे मनुष्य थोड़ेही समयमें तीर्थ के फल को भोगताहै व सिद्ध होकर शिवलोकको जाताहै उसको कहिये ॥३॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ, वत्स ! तुम मुझसे गुप्तमे भी अधिक गुप्त चरित्रको पूछते हो उसको मैं तुमसे कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ कि तदनन्तर नियम में प्राप्त मनुष्य सावधान चित्त से महाकाल वनको जावै क्यों कि नियम मेंप्राप्त चित्त से कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ हे वत्स ! पृथ्वी में क्षिप्रा के समान नदी नहीं है कि जिसके देखनेही से मुक्तिहोती है बहुत दिनों के सेवन मे क्या है ॥ ६ ॥ वैशाख महीने में जो पुरुष पुरुषो-

त्तम (विष्णु) जी को सदैव पूजता है वह मोचनतीर्थ में एकही दिनके तर्पण करने से पातकों से छूट जाता है ॥ ७ ॥ अवन्तीपुरी में अंगपात नामक विष्णुजी को जे मनुष्य देखते हैं उनकी सैकड़ों करोड़ कल्पों से पुनरावृत्ति (फिर जन्म) नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी इस वचनको वाराह, मत्स्य, कन्दादिक व लोमश महामुनि ये सब महात्मा कहते हैं ॥ ९ ॥ तथापि पुण्य के समान तीर्थ की विधि को फिर सुनिये कि जो पुरुष थोड़ेपुण्य से तीर्थ के फलको चाहता है ॥ १० ॥ हे तपोधन ! उस सबके फलको कहूंगा इसको सुनिये कि पवित्रमन व सब तीर्थों के फलको चाहनेवाला पवित्र पुरुष ॥ ११ ॥ जोकि स्नान के नियमवाला होवै वह

तारूयं येपश्यन्तिजनार्दनम् ॥ नतेषांपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥ इतिव्यासवचस्सर्वे वदन्तिनियतात्मनः ॥ वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ॥ ९ ॥ विधिंतथापितीर्थस्य शृणुपुण्यसमम्पुनः ॥ योवैस्वल्पेनपुण्येन तीर्थस्यफलमिच्छति ॥ १० ॥ तस्यसर्वस्यवक्ष्यामिशृणुष्वेदंतपोधन ॥ सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचिःप्रयतमानसः ॥ ११ ॥ अवगाहव्रतीयाति तीर्थानिचाष्टविंशतिः ॥ ऊर्जेमाघेतथाषाढे वैशाखेचविशेषतः ॥ १२ ॥ यदाकदापुरींप्राप्य कर्तव्यंतीर्थमज्जनम् ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥ १३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ क्षिप्रातीरेहिवर्तन्ते पुराख्यातानिसूरिभिः ॥ पुण्यानितीर्थमुख्यानि तानिमेगदतःशृणु ॥ १४ ॥ पापार्दितश्शुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरितिस्मरन् ॥ आदायनियमंसर्वं स्नातकानांचसत्तम ॥ १५ ॥ स्नात्वारुद्रसरेनित्यं कृत्वाश्राद्धादिकंतथा ॥ यथाशक्तिपरांवत्स गान्दत्त्वाचैवकाञ्चनीम् ॥ १६ ॥ तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थावगाहने ॥ अनुज्ञान्देहिमेनित्यं करिष्यामितवा

अट्ठाईस तीर्थोंको जावै कार्तिक, माघ, आषाढ वै विशेषकर वैशाख में ॥१२॥ व जब कभी पुरीको पाकर तीर्थस्नान करना चाहिये क्योंकि इस तीर्थमें स्नान करने वाला पुरुष सब तीर्थोंके फलको पाकर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥१३॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले विद्वानों से कहेहुये जो पवित्र व मुख्यतीर्थ क्षिप्रानदी के तटपै वर्तमान हैं उनको कहतेहुये मुझसे सुनिये ॥ १४ ॥ हे सत्तम ! पापसे विकल मनुष्य पवित्र होकर विष्णु, विष्णु ऐसा स्मरण करताहुआ ब्रह्मचारियों के सब नियमको ग्रहणकर ॥ १५ ॥ रुद्रतड़ागमें नित्य नहाकर तथा श्राद्धादिक करके हे वत्स ! शक्तिके अनुसार सोने की गऊ को देकर ॥ १६ ॥ हे तीर्थराज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है अपने तीर्थ

तत्रस्नानादिकंकृत्वा घृतपात्रंप्रदापये
चनम् ॥ १७ ॥ इति प्रार्थनामन्त्रः ॥ ततःप्रयातितत्तीर्थं कर्कराजाभिधंसरः ॥ तत्रस्नानादिकंकृत्वा घृतपात्रंप्रदापये
त् ॥ १८ ॥ नृसिंहाख्यंपरन्तीर्थं तत्रस्नायाद्विजोत्तम ॥ कृष्णाजिनंततोदद्यादात्मकार्यविशुद्धये ॥ १९ ॥ सङ्गमोनी
लगङ्गायाःक्षिप्रायाश्चैवसत्तम ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा दृष्ट्वाचसङ्गमेश्वरम् ॥ २० ॥ वाहनञ्चततोदेयं द्विजातिभ्यः
स्वलंकृतम् ॥ भूषणानिचदेयानि यानानिविविधानिच ॥ २१ ॥ ततःप्रायाद्व्रतीसम्यक् तीर्थंपैशाच्यमोचनम् ॥ त
त्रस्नात्वाचविधिव दाह्निकादिचकारयेत् ॥ २२ ॥ गांसवत्सांततोदद्याद्वेदवेदाङ्गपारिणे ॥ सीदत्कुटुम्बिनेनित्यं द्विजाय
मुनिसत्तम ॥ २३ ॥ महादानानिसर्वाणि तत्रदेयानिसत्तम ॥ पिशाचेशंततोदृष्ट्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २४ ॥ गन्धर्व
तीर्थंगच्छेच्च नियमीव्रतकारकः ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वाश्राद्धंकुर्यात्समाहितः ॥ २५ ॥ षष्टिजलपेश्वरन्देवं पूजयेद्वि
धिवद्द्विज ॥ ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्गेहदानादिकंपरम् ॥ २६ ॥ दासीदासंततोदेयं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ धनवान्पुत्रवाँ

के नहान म मुझको नित्य आज्ञा दीजिये मैं तुम्हारा पूजन करूंगा ॥ १७ ॥ यह प्रार्थना का मंत्र है ॥ तदनन्तर कर्कराज नामक उस तीर्थभूत तड़ाग को जावै और उसमें स्नानादिक करके घृत पात्रको देवै ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो नृसिंह नामक उत्तमतीर्थ है उसमें स्नान करै तदनन्तर अपने कार्य की शुद्धि के लिये कृष्णाजिन (मृगचर्म) को देवै ॥ १९ ॥ व हे सत्तम ! नीलगंगा और क्षिप्रानदी का जो संगम है उसमें नहाकर पवित्र होकर व संगमेश्वरजी को देखकर ॥ २० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों के लिये अलंकार कियेहुये वाहन को देना चाहिये और भूषण व अनेकभांति की सवारियोंको देना चाहिये ॥ २१ ॥ उसके उपरान्त व्रतवान् पुरुष भलीभांति पिशाचमोचन तीर्थ को जावै और उसमे नहाकर विधिपूर्वक दिनकेकार्यादिक करै ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठजी ! क्लेशित कुटुंबी तथा वेदवेदांग के पारगामी ब्राह्मण के लिये नित्यही बछड़ा समेत गऊको देवै ॥ २३ ॥ हे सत्तम ! वहांपर सब महादानों को देना चाहिये उसके उपरान्त पिशाचेशजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २४ ॥ और व्रत करनेवाला नियमवान् पुरुष गंधर्वतीर्थ को जावै और उसमें नहाकर पवित्र होकर सावधान होताहुआ पुरुष श्राद्धकरै ॥ २५ ॥ व हे द्विज ! षष्टिजल्पेश्वर देवजी को विधिपूर्वक पूजन करै उसके उपरान्त उत्तम गृहदानादिक को ब्राह्मणों के लिये देवै ॥ २६ ॥ तदनन्तर

सब कार्यों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये दासी व दास को देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष संसारमें धनवान् व पुत्रवान् होकर मरकर मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥२७॥ तदनन्तर हे विप्रजी ! व्रतवान् पुरुष केदारनामक उत्तमतीर्थ को जावै व उसमें नहाकर ब्राह्मणों के लिये महादान को देवै ॥ २८ ॥ और उत्तम गऊ के युग याने एक गऊ व एक बैल को देकर वहां विधिपूर्वक कार्य करै हे सत्तम ! वहांपर कंबल मृगचर्म व बसनों को देना चाहिये ॥ २९ ॥ ऐसा करके मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर शिवलोक में पूजा जाता है व चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य चक्रपाणिजी को भलीभांति पूजै ॥ ३० ॥ हे सत्तम ! वहांपर शंख, शस्त्र व वि-

ल्लोके मृतोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ ततोगच्छेद्व्रतीविप्रकेदारंतीर्थमुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वामहादानं ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् ॥२८॥ शुभङ्गोमिथुनंदत्त्वा विधिवत्तत्रकारयेत्॥कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्तम ॥२९॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा चक्रपाणिंसमर्चयेत् ॥ ३० ॥ शङ्खशस्त्रविमानानि तत्रदेयानिसत्तम॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते॥ ३१ ॥ सोमतीर्थेनरःस्नात्वा द्रष्ट्वासोमेश्वरंशिवम् ॥ निर्मलाङ्गोनरोभाति कुष्ठरोगोनबाधते ॥ ३२ ॥ इक्षुधेन्वादिकंदानं तत्रदेयंद्विजातये ॥ देवप्रयागंगच्छेच्च स्नानार्थंद्विजसत्तम ॥ ३३ ॥ तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवंमाधवमर्चयेत् ॥ गुडधेनुःप्रदातव्याविधिद्दष्टेनकर्मणा ॥ ३४ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोकेमहीयते ॥ प्रयागेपरमंव्यास वेणीतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ तत्रस्नानंचकर्तव्यं तिलामलकसंयुतम् ॥ प्रयागेशमथाभ्यर्च्य

मानोंको देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूटजाता है व विष्णुलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३१ ॥ व सोमतीर्थ में नहाकर मनुष्य सोमेश्वर शिवजीको देखकर निर्मल अंगवाला मनुष्य शोभित होता है और उसको कुष्ठरोग बाधा नहीं करता है ॥ ३२ वहां ब्राह्मण के लिये ऊख व गऊ आदिक दानको देना चाहिये व हे द्विजोत्तम ! स्नान के लिये देवप्रयागजी को जावै ॥ ३३ ॥ उस तीर्थ मे नहाकर पवित्र होके मनुष्य माधवदेवजीको पूजै और वहांपर विधिसे देखेहुये कर्मसे गुड़ की गऊको देना चाहिये ॥ ३४ ॥ ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध चित्तवाला होकर देवलोक में पूजाजाता है हे व्यासजी ! प्रयाग में अतिउत्तम वेणी-

तीर्थ है ॥ ३५ ॥ वहांपर तिलों व आंवलों से संयुक्त स्नान करना चाहिये इसके उपरान्त प्रयागेशजी को पूजकर मनुष्य सब फलको प्राप्तहोता है ॥ ३६ ॥ और वहांपर विधिपूर्वक द्विजोत्तम के लिये तिलकी गऊ देना चाहिये जो ऐसा करताहै वह सब कामनाओं के वरको पाकर विष्णुलोकमें पूजाजाता है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर फिर व्रतवान् पुरुष अति उत्तम योगतीर्थ को जावै व उसमें स्नानकर पवित्र होकर योगिनीश्वरजी को पूजे ॥ ३८ ॥ उसके उपरान्त जलकी गऊको देवै तो दीर्घ आयुर्बलवाला व सुखी होता है तदनन्तर मनुष्य कपिलाश्रम नामक उत्तम तीर्थको जावै ॥ ३९ ॥ और स्नान दानादिक करके कपिलेश्वरजीको पूजै तो वह सबपापों

सकलंफलमश्नुते ॥ ३६ ॥ तिलधेनुःप्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे ॥ सर्वकामवरंप्राप्य विष्णुलोकेसमोदते ॥ ३७ ॥ ततोगच्छेद्व्रतीभूयो योगतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥ ३८ ॥ जलधेनुंततोदद्याद्दीर्घायुश्चसुखीभवेत् ॥ कपिलाश्रमंपरन्तीर्थं नरोगच्छेत्ततःपरम् ॥ ३९ ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोकेसगच्छति ॥ ४० ॥ घृतकुल्यापरन्तीर्थं क्षिप्राकूलेचपश्चिमे ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं घृतधारेश्वरंशिवम् ॥ ४१ ॥ पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनुंसमर्पयेत् ॥ प्राप्यपुण्यकृताँल्लोकान् सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४२ ॥ मधुकुल्यांनरस्स्नात्वा पूजयित्वामहेश्वरम् ॥ मधुदानंप्रकुर्वीत इक्षुधेनुंततःपरम् ॥ ४३ ॥ ऊषरंपरमंतीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ तत्रस्नात्वानरःपश्येन्महेशमूषरेश्वरम् ॥ ४४ ॥ फलमूलादिकंदेयं प्राप्यतेमोक्षउत्तमः ॥ नरादित्यःस्थि

से छूटजाता है और तपोलोक में जाता है ॥ ४० ॥ और क्षिप्रा नदी के पश्चिम किनारे पै घृतकुल्या नामक उत्तमतीर्थ है उसमें नित्य नहाकर मनुष्य घृतधारेश्वर शिवजी को ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक पूजै व हे विप्रजी ! घृत की गऊको देवै तो वहपुण्य से कियेहुये लोकों को प्राप्तहोकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ४२ ॥ मधुकुल्या तीर्थ में नहाकर व महेश्वरजी को पूजकर मनुष्य शहदका दान करै उसके उपरान्त ऊंखकी गऊको देवै ॥ ४३ ॥ और सब तीर्थों के फलको देनेवाला उत्तम ऊषर तीर्थ है उसमें नहाकर मनुष्य ऊषरेश्वर महादेवजी को देखे ॥ ४४ ॥ और वहां फल, मूलादिक देना चाहिये ऐसा करनेपर उत्तममोक्ष मिलती है और जहां नरा-

दित्यजी स्थितहैं वहां उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ ४५ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य श्रेष्ठक्षेत्रादित्येश्वरजीको पूजै तदनन्तर रथ दानको देकर वह नर लोकमें जाताहै ॥ ४६ ॥ व अन्य केशवार्क देवजी हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है उसमें स्नान व केशवार्कजी का पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस तीर्थ में बहुत प्रकार का अन्न देना चाहिये उस तीर्थ में कालभैरवजी कहेगये हैं महाव्रती ॥ ४८ ॥ पुरुष उसमें नित्य नहाकर कालभैरवजी देखकर पूर्ण महादान को देवै तो वह यमलोक को नहीं जाता है ॥ ४९ ॥ और क्षिप्रानदी के दक्षिण किनारे पै द्वादशार्क ऐसा प्रसिद्धतीर्थ सब पापों को हरनेवाला व सब कामनाओंके वरको देनेवाला

तोयत्र तत्रतीर्थंपरंस्मृतम् ॥ ४५ ॥ तत्रस्नात्वापरःपश्येत् क्षेत्रादित्येश्वरंपरम् ॥ रथदानंततोदत्त्वा नरलोकेसगच्छति ॥ ४६ ॥ केशवार्कोपरोदेवस्तस्यतीर्थंपरंस्मृतम् ॥ तत्रस्नानंविधेयञ्च केशवार्कसमर्चनम् ॥ ४७ ॥ अन्नंवहुविधं देयं तत्रतीर्थेद्विजोत्तम ॥ कालभैरवआख्यातस्तत्रतीर्थेमहाव्रती ॥ ४८ ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं दृष्ट्वाभैरवमन्तकम् ॥ दद्यात्पूर्णंमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥ ४९ ॥ द्वादशार्केतिविख्यातंक्षिप्राकूलेचदक्षिणे ॥ तीर्थञ्चसर्वपापघ्नं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ५० ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वाद्वादशार्कंसमर्चयेत् ॥ अजादानंचदेयंवै वासोलङ्कारसंयुतम् ॥ ५१ ॥ आरोग्यंसर्वदादेहे तस्यसम्पत्पदेपदे ॥ तत्रापिऋषयोदेवाःसन्ध्योपासनतत्पराः ॥ ५२ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य प्रातःकालेसदैवहि ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥५३॥ एकानंशेतिविख्याता भवानीपापनाशिनी ॥ तामर्चयेद् द्विजश्रेष्ठ दशाश्वमेधपंशिवम् ॥५४॥ तत्रदेयंमहादानं श्वेताश्वंसमलङ्कृतम् ॥ विप्रायवेदविदुषेविधिवद्दृपिसत्तम॥५५॥

है ॥ ५० ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर द्वादशार्कजी को पूजै और वसनों व भूषणों से संयुत छागदान देना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य ऐसा करता है उसके शरीरमें सदैव निरोगता होती है व पग पगपै संपत्ति होती है और वहापर भी संध्योपासन में परायण ऋषियों व देवताओं ने ॥ ५२ ॥ सदैव प्रातःकाल में उसकी उपासना कियाहै उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर सावधान होता हुआ मनुष्य ॥ ५३ ॥ जो एकानंशा ऐसी प्रसिद्ध पापनाशिनी भवानीहै उनको पूजै व हे द्विजोत्तम ! दशाश्वमेधेश शिवजीको पूजै ॥ ५४ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ ! वहां वेदज्ञद्विजके लिये भलीभांति अलंकार किया हुआ श्वेतघोड़ा विधिपूर्वक देना चाहिये ॥ ५५ ॥

क्योंकि सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह पुरुष स्वर्गलोक में पूजा जाता है और पृथ्वीके पुत्र जो ये मंगलदेवजी प्रसिद्ध हैं ॥ ५६ ॥ हे व्यासजी ! सब तीर्थों के फल को देनेवाला उनका उत्तमतीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य मंगलेश्वरजी को पूजै ॥ ५७ ॥ और गुड़, अन्न व वसन समेत अलकार किया हुआ लाल बैल अलंकृत ब्राह्मणों के लिये जो सावधान होकर देताहै ॥ ५८ ॥ उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्त होतीहै और पुत्र, दारादिक संपदाएं होती हैं गङ्गाजीके भेद से संयुत आकाश गंगा संगमतीर्थ है ॥ ५९ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गंगेश्वर शिवजीको देखकर सब पापोंसे छूटजाताहै और वह विष्णुलोक में पूजा जाताहै ॥ ६० ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ योसावङ्गारकोदेवो विख्यातोवैधरात्मजः ॥ ५६ ॥ तस्यतीर्थंपरंव्यास सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥ ५७ ॥ गुडान्नंवृषभंरक्तं सवासःसमलङ्कृतम् ॥ स्वलङ्कृतेभ्योविप्रेभ्यो योददातिसमाहितः ॥ ५८ ॥ तस्यहस्तगतालक्ष्मीः पुत्रदारादिसम्पदः ॥ खगङ्गासङ्गमंतीर्थं गङ्गोद्भेदसमन्वितम् ॥ ५९ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरंशिवं ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ६० ॥ तिलपात्रंप्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् ॥ सर्वसौख्यकरंदानं सर्वपापहरंपरम् ॥ ६१ ॥ ऋणमोचनकंतीर्थं सर्वपापहरंस्मृतम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नत्वा ऋणतेश्वरमर्चयेत ॥ ६२ घृतश्राद्धंप्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णंचशक्तितः ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ६३ ॥ ततोगच्छेन्नरोनित्यं शक्तिभेदमकल्मषम् ॥ तीर्थानाञ्चैवसर्वेषामुत्तमंपापनाशनम् ॥ ६४ ॥ तत्रस्नात्वानरोव्यास शुचिःप्रयतमानसः ॥ मातृकानाञ्चसर्वेषां दर्शनंकारयेद्बुधः ॥ ६५ ॥ को

वहां सुवर्णसंयुत तिलका पात्र विधिपूर्वक देना चाहिये क्योंकि यह दान सब सुखोंको करनेवाला व सब पापोंका हरनेवाला कहागयाहै ॥ ६१ ॥ व सब पापों को हरनेवाला ऋणमोचन तीर्थ कहागयाहै उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य ऋणतेश्वरजी को पूजै ॥ ६२ ॥ और शक्तिके अनुसार सुवर्ण को देकर घृतका श्राद्ध करै तो तीनों ऋणों से छूटाहुआ वह स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मनुष्य नित्यही पापरहित शक्तिभेद तीर्थ को जावै जो कि सब तीर्थोंके मध्य में उत्तम व

पापनाशक है ॥६४॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर पवित्र मनवाला, पवित्र व बुद्धिमान् पुरुष सब मातृकाओं का दर्शन करै ॥६५॥ कौमारी व कार्त्तिकी माता, चर्पटा व वट मातृका वैसेही भगवती देवी व स्वामिकार्त्तिकेयजी को पूजै ॥ ६६ ॥ हे सत्तम ! वहां विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये और शय्यादिक दान व कांस की गऊ और अन्य दान को देकर ॥ ६७ ॥ माता के ऋण को उल्लंघनकर मनुष्य सायुज्य मुक्तिको पाता है और जो वह पापमोचन नामक श्रेष्ठ व उत्तमतीर्थ है ॥ ६८ ॥ उसमें नहाकर हे सत्तम ! मनुष्यों को छायादान देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध चित्तवाला होता है ॥ ६९ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! त्रिलोक में प्रसिद्ध

मारीकार्त्तिकीमाता चर्पटावटमातरः ॥ तथाभगवतींदेवीं स्कन्दंचैवसमर्चयेत् ॥ ६६ ॥ तत्रश्राद्धानिदेयानि विधिवद् द्विजसत्तम॥ दत्त्वाशय्यादिकंदानं कांस्यधेनुंतथेतरद् ॥६७॥ मातुर्ऋणंसमुत्तीर्य सायुज्यंलभतेनरः ॥ यत्ततीर्थवरंश्रेष्ठं पापमोचनसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥ तत्रस्नात्वानरैर्देयं छायादानंचसत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायतेभुविमानवः ॥ ६९ ॥ ततःपरंपरंव्यास तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ प्रेतशिलेतिविख्यातं प्रेतमोक्षकरम्परम् ॥ ७० ॥ तत्रस्नात्वानरोदद्या च्छ्राद्धंद्विजसमाहितः ॥ तिलोदकप्रदानेन पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥७१॥ घटदानंततोदेयं छत्रोपानत्समन्वितम् ॥ महिषींश्चततोदद्याद्वासांसिविविधानिच ॥ ७२ ॥ अन्नदानंततोदेयं रसेनलवणान्वितम् ॥ यमेश्वरंसमभ्यर्च्य निरये नाधिगच्छति ॥ ७३ ॥ पितरस्तस्यसन्तुष्टा यान्तिब्रह्मसनातनम् ॥ पितृदोषानबाधन्ते तेषाञ्चद्विजसत्तम ॥ ७४ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं भुवित्रैलोक्यवन्दितम् ॥ नवनदीसङ्गमोयत्र तत्रतिष्ठतिपार्वती ॥ ७५ ॥ तत्रस्नात्वानरोनित्यं शु

प्रेतशिला नामक तीर्थ प्रेतों को मोक्षकारक व श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर हे द्विज ! सावधान होताहुआ पुरुष श्राद्ध को देवै क्योंकि तिलसमेत जलके देनेसे पितर उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ उसके उपरान्त छत्र व पनही समेत घटदान देवै तदनन्तर भैंस व अनेकभांतिके वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ७२ ॥ उसके उपरान्त रस व लोन से संयुत अन्नदान देना चाहिये यमेश्वरजीको पूजकर मनुष्य नरक में नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ और प्रसन्न होतेहुये उसके पितर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं और हे द्विजोत्तम ! उनको पितरों के दोष नहीं बाधा करते हैं ॥ ७४ ॥ और पृथ्वी में त्रिलोक से प्रणाम कियाहुआ तीर्थों के मध्य में उत्तम

तीर्थ है जहांपर नवनदी का संगम है वहापर पार्वतीजी स्थित हैं ॥ ७५ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर पवित्र होकरके सावधान होताहुआ पुरुष कल्याणकारिणी भगवती पार्वतीजी को विधिपूर्वक पूजै ॥ ७६ ॥ और महादानों को करै व हाथी की सवारी, पृथ्वी और तिलोंको व दुग्धसमेत गऊको द्विजोत्तम के लिये देवै ॥ ७७ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष साक्षात् शिव होता है उसकेउपरान्त अपने कार्य की शुद्धि के लिये मन्दाकिनीजीको जावै ॥ ७८ ॥ व उसमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य सदाशिवजी को पूजता है व गाड़ी तथा अन्नादि को देकर द्रोणप्रमाण भर तिल देवै ॥ ७९ ॥ तो सब पापों से शुद्धचित्तवाला पुरुष कुबेर के समान

चिर्भूत्वासमाहितः ॥ पूजयेद्भगवतींभद्रां पार्वतींविधिवत्ततः ॥ ७६ ॥ महादानानिकुर्याच्च हस्तिपान्नधरान्तिलान् ॥ सुरभींदुग्धसहितां दद्याद्द्विजवरायच ॥ ७७ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ॥ मन्दाकिनींततोगच्छेदा त्मकार्यविशुद्धये ॥ ७८ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पूजयेद्यःसदाशिवम् ॥ दत्त्वाशकटमन्नाद्यं तिलद्रोणंप्रदापयेत् ॥ ७९ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमोभवेत् ॥ ततोगच्छेद्व्रतीविप्र तीर्थंपैतामहंपरम् ॥ ८० ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ॥ दत्त्वादानानिसर्वाणि त्रीणितत्रविशेषतः ॥ ८१ ॥ यथाशक्तिप्रदेयानि पृथ्वीगावस्सुवर्णक म् ॥ विप्रांश्चभोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणैः ॥ ८२ ॥ ततस्तुपुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ॥ तस्मिन्स्नात्वाचनत्वा च दृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् ॥ ८३ ॥ पूजयित्वायथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ तुलसीबिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः ॥ ८४ ॥ धूपदीपादिनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः ॥ पूजयित्वामहादेवं यात्रेश्वरमुमापतिम् ॥ ८५ ॥ प्रार्थयेद्देवदेवेशं व्रत

होता है तदनन्तर हे विप्रजी ! व्रतवान् पुरुष पितामहजी के उत्तमतीर्थ को जावै ॥ ८० ॥ और उसमें स्नानकर व पवित्र होकर विधिपूर्वक स्नान करै व सब दानों को देकर वहां तीन दानों को विशेषकर ॥ ८१ ॥ शक्तिके अनुकूल देना चाहिये याने पृथ्वी, गऊ व सुवर्ण को देवै और विधिपूर्वक बहुत दक्षिणाओं समेत नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ ८२ ॥ तदनन्तर फिर अतिउत्तम रुद्रसर को आकर व उसमें स्नानकर व महेश्वर देवको देखकर के प्रणाम कर ॥ ८३ ॥ न्यायपूर्वक अतिउत्तम यात्रेश्वर को तुलसी, बिल्वपत्र व अनेकभांति के सुगंधित पुष्पों से पूजकर ॥ ८४ ॥ और धूप दीपादिक व नैवेद्यों तथा तांबूल व चादर

या दुपट्टे से उमापति यात्रेश्वर महादेवजी को पूजकर ॥ ८५ ॥ व्रतके पूर्ण होनेकेलिये देवदेवेश शिवजी की प्रार्थना करै कि हे जगदीश, पार्वतीनाथ, यात्रेश्वरजी! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८६ ॥ हे प्रभो! तुम्हारी प्रसन्नता से की हुई मेरी यात्रा को सफल कीजिये ॥ ८७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम! इसप्रकार जो मनुष्य अवन्तीपुरी की यात्रा करता है उसको अवन्ती में निवास से उपजा हुआ पुण्य मिलता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ और बहुत सुखोंको व धन, स्त्री आदिकी संपदा को भोगकर सब पापों से शुद्धचित्तवाला वह मरकर शिवलोकको जाता है ॥ ८९ ॥ जो मनुष्य पवित्र व पाप हारिणी तथा पुण्यदायिनी कथा

सम्पूर्णहेतवे ॥ यात्रेश्वरनमस्तुभ्यमुमानाथजगत्पते ॥ ८६ ॥ त्वत्प्रसादात्कृतांयात्रां सफलांकुरुमेप्रभो ॥ ८७ ॥ सनत्कुमारउवाच॥एवंयःकुरुतेयात्रामवन्त्याश्चद्विजोत्तम॥ अवन्तीवासजंपुण्यं प्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ ८८ ॥ भुक्त्वा चविपुलान्भोगान् धनदारादिसम्पदम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा मृतःशिवपुरंव्रजेत् ॥ ८९ ॥ येशृण्वन्तिकथांपुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चिदिहलोकेपरत्रच ॥ ९० ॥ माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवर्द्धनं यशस्करंपुण्य विवर्धनञ्च ॥ यःश्रावयेद्वाशृणुयाच्चभक्त्या कुलंसमुद्धृत्यहरेःपदंव्रजेत् ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे तीर्थमहिमानामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ इत्यवन्तीक्षेत्रमाहात्म्यंसमाप्तम् ॥ शुभंभूयात् ॥ * ॥

को सुनते हैं उनको इसलोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं मिलता है ॥ ९० ॥ यशको करनेवाले व पुण्य को बढ़ानेवाले तथा शिवभक्ति को बढ़ानेहारे इस माहात्म्य को जो सुनाता है व जो भक्तिसे सुनता है वह कुलको उधारकर विष्णुजी के स्थानको जाता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थमहिमावर्णनन्नामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

प्रथमवार
लखनऊ
सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर (सी. आई. ई.) के छापेखाने में छपा सन् १९०९ ई० ॥

इति स्कन्दपुराणावन्तीखण्डः समाप्तः ॥